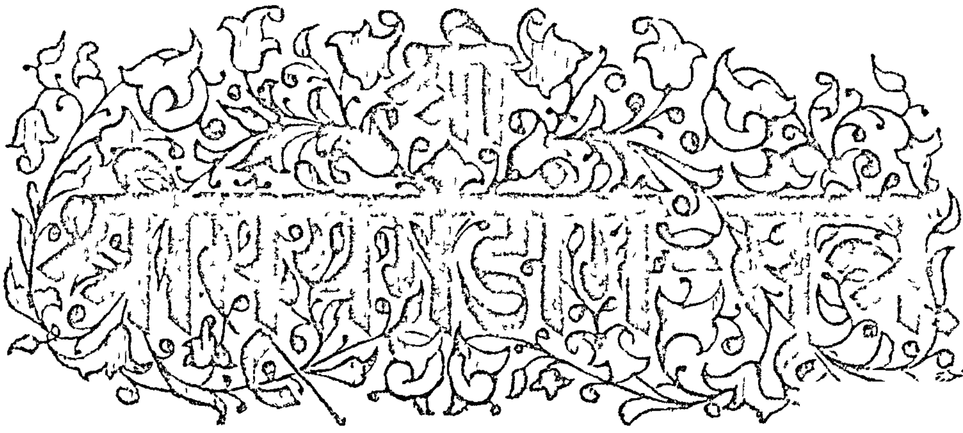


॥ द्वितीयांगम् ॥

अर्हद्ज्ञान क्षीराब्धि वीचिबिंदु प्राप्तित गणधरोद्धार रूपस्य

टीका, दीपिका तथा बालावबोध सहितम्

स्वमत्यनुसार शुद्ध करीने

श्री मकसूदाबादनिवासी बाबुसाहेब

राय धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादुरनी आज्ञाथी

श्री मुंबापुरीमध्यें

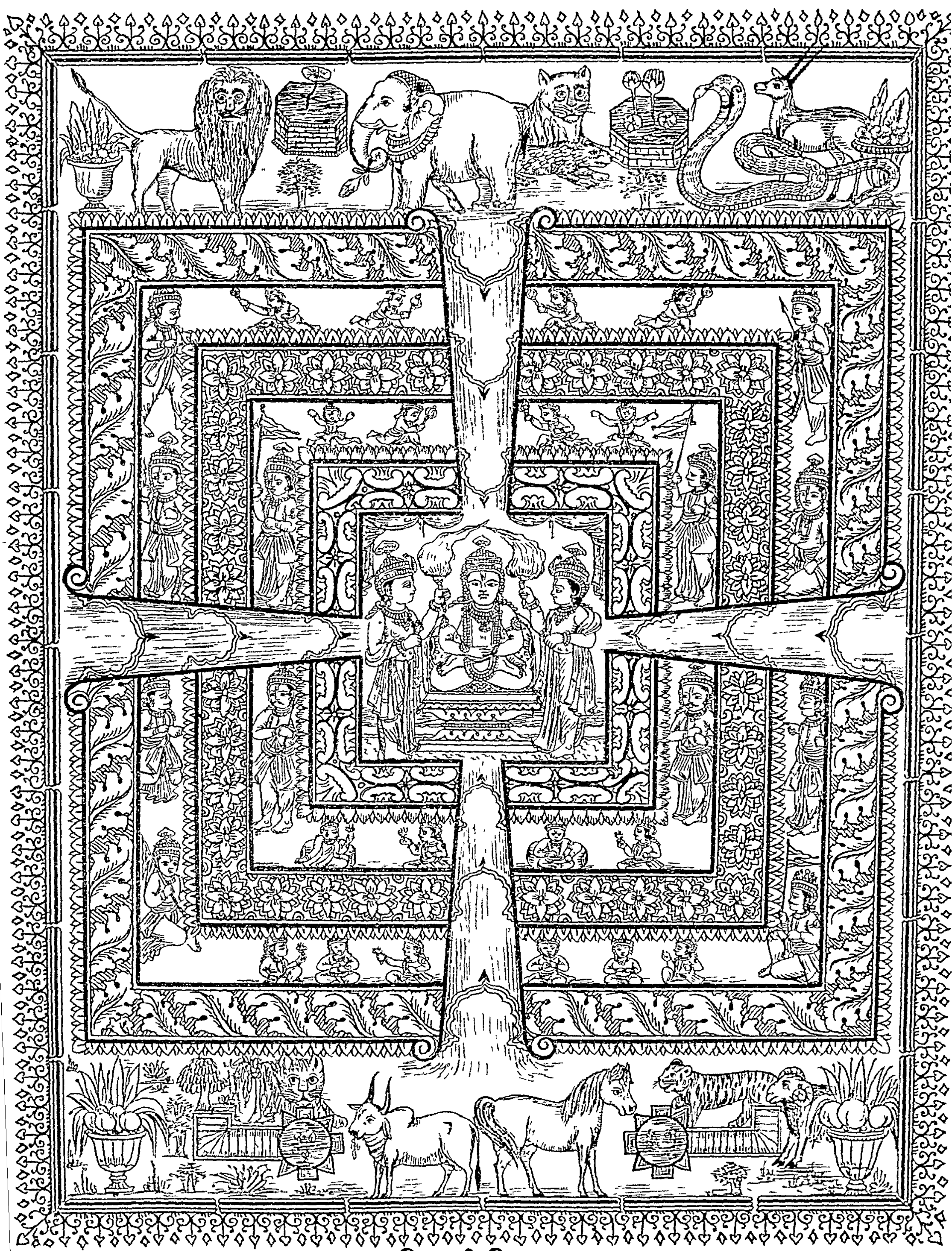
शा० भीमसिंह माणकाख्य श्रावकें प्रीतिपूर्वक

" निर्णयसागर " मुद्रायंत्रना अधिपति जावजी दादाजीनी पासेथी

छपावीने प्रसिद्ध कीधुं.

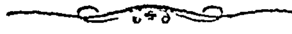
संवत् १९३६—शके १८०१

मिति पौष शुद्ध पूर्णिमा भौमवासर.



सुररचितश्रीजिन समवशरण.

प्रस्तावना.



आ असार संसार समुद्रनेविषे संतत पर्यटन करनारा प्राणीउने जन्म मरणादिक अत्युग्र डुःखोमांथी मुक्त करे एवो तो मात्र एक धर्मज छे. अने एमज सर्व दर्शनीना शास्त्रमां पण कहेलुं छे, एवो जे धर्म तेनुं मूल तो सर्वांश युक्त दयाज छे. कहेलुं छे के " अहिंसा परमो धर्मः " दयावडे धर्मनी प्राप्ति थाय छे; अने परिपूर्ण धर्म प्राप्त थया पछी जीव मोक्षगामी थाय छे; माटें दया सर्वोत्कृष्ट पदार्थ छे. सर्व दर्शनीउ दयानो उपयोग करेछे खरा, परंतु सर्वांशें करता नथी. एटलाज माटें तेउने धर्म पदार्थनो जेवो जोइयें तेवो लान्न थतो नथी. दयानो सर्वांशें उपयोग तो मात्र जैन दर्शनमां स्वीकार्यो छे तेथीज जैनदर्शन धर्मधुरिंधर कहेवाय छे, माटें दयानो सर्वांशें उपयोग करवानी अगत्य छे, जेम कांइ नोजनार्थे पक्वान्न करवुं होय तो तेमां घृत, पिष्ट, शर्करादिक अगत्य वस्तुनुं एकत्रपणुं यथाविधि थाय त्यारेंज ते पक्वान्न स्वादिष्ट कहेवाय; पण जो उपर कहेली वस्तुउमांथी एक पण वस्तुनुं उछा पणुं होय तो ते पक्वान्न स्वाद रहित बने. माटें दया पदार्थ सर्वांशें पलाय तोज तेथी धर्मोपलब्धि थाय, ते विना तो कदी पण थायज नहीं. सर्व दर्शनीउने दया मान्य छे खरी तथा पि तेउनी समजमां फेर होवाथी तेउ श्रद्धता पूर्वक दयानो उपयोग सर्वांशें करी शकता नथी. ए वात आगलना व्याख्यान उपरथी सिद्ध थशे. जेमके कोइएक दर्शनी तो एम जाणे छे के पशुउनो प्राणघात करवो, एटले तेउ जन्मथी बूटे, एम कही दया मानी लिये छे; कोइएक कहेछे के प्राणीउ, ज्यां सुधी शरीरें सुखी होय त्यां सुधी तेमनी उ पर दया करवी, पण ज्यारें तेउ व्याधिग्रस्त स्थितिमां पीडाता होय त्यारें तो ते प्रा णीउनो वध करी तेमने थती पीडामांथी मुक्त करवा एज दयाछे; केटलाएक कहे छे के सूक्ष्म अथवा स्थूल प्राणीउ, जेउ मनुष्यने डुःख दीये छे, तेउने मारी नाखवा एज दया छे; केटलाएक तो यज्ञयागादिक करवामां प्राणीउनो नाश करी तेमांज धर्म धुरं धरता मानी बेठा छे, अने केटलाएक अति सूक्ष्मादि प्राणीउ जेनुं स्वरूप दृष्टिगोच र नथी तेनी चिंता लेश मात्र न राखतां मात्र स्थूल प्राणीउ उपरज दया करवामां दया माने छे. एम अनेक प्रकारें दयानो उपयोग अन्य दर्शनीउ करे छे तथापि तेउ स्वदया, परदया, द्रव्यदया, नावदया, निश्चयदया, व्यवहारदया, स्वरूपदया, अनुबं धदया, इत्यादि दयाना अनेक प्रकार, जैनग्रंथोमां सविस्तर वर्णन करेला छे ते प्रमा णें वर्त्ती दयानुं स्वरूप नयशैलीपूर्वक समजता नथी, एज तेउनी मतिमां विज्रम छे

अने एवी भ्रमित मतिवाळा दर्शनीओनुं मत क्यारें पण शुद्ध कहेवाय नहीं परंतु जे दर्शनमां पोताना आत्मानुं आत्मत्वपणुं जाणीने पूर्णपणे दयाने अंगीकार करी दीय, एवुं तो एक श्री जैनदर्शन छे अने ते सर्व लोक प्रविदित छे. तेथी ए धर्म जगतमां सर्वोत्कृष्ट कहेवाय छे. ए धर्मना एक रीतें आचारधर्म, दयाधर्म, क्रियाधर्म अने वस्तुधर्म, एवा चार भेद छे अने दान, शील, तप, तथा भाव, ए चार तेनां कारण छे. हवे धन बळें करी दान देवाय, मन बळवडे शील पळाय, शरीर बळवडे तप थाय अने सम्यक्ज्ञानबळवडे भावधर्मनी वृद्धि थाय. ए भावधर्म, दान, शील अने तप, ए त्रणे करतां अधिक छे, केमके भावधर्मनुं कारण ज्ञान बळ छे; जेणे करी वस्तुनुं स्वरूप जाणीयें, तेने ज्ञान कहीयें. ते ज्ञानथकी आत्मधर्मनी वृद्धि तथा संरक्षण जटलुं थायछे तेटलुं पेलां त्रण जे दान, शील ने तप, ते थकी थतुं नथी. एनुं कारण ए छे के नय, निक्षेप, प्रमाण, चार अनुयोगनो विचार, सप्तभंगी, षट्द्रव्यादिकनो विचार, आदि लइ ज्ञान बळवडे जीवने परिपूर्ण प्राप्त थायछे. वळी श्री दशवैकालिक सूत्रमां पण प्रथम ज्ञानने पछी क्रिया कहीछे. ते उपरांत ज्ञान विनानी जे क्रिया करवी ते पण क्लेशरूप कहीछे. अर्थात् क्रिया तो ज्ञाननी दासी जेवीजछे. ज्ञानी पुरुषनी अल्प क्रिया पण अत्यंत श्रेष्ठ छे. वळी श्री उत्तराध्ययनमां पण कह्युं छे के ज्ञान गुण संयुक्त जे होय तेनेज मुनि कहेवो. एथी पण ज्ञाननुं महात्म्य अत्युत्कृष्ट जणायछे. श्री महानिशीथमां ज्ञानने अप्रतिपाति वर्णव्युं छे. श्री मरुदेवी माताने हस्ती उपर बेठां छतां केवळ ज्ञान उत्पन्न थयुं. वळी श्री भरतेश्वरने आरीसा भुवनमां रह्यां छतां कर्मोनी विमुक्तता थइ ते पण ज्ञाननुंज प्राबल्य हतुं; अने श्री उपदेश माळामां कह्युंछे के ज्ञान रूपी नेत्रें करी उज्जमाळ एवा मुनिने वंदन करवुं योग्य छे. देवाचार्य मल्लवादि प्रमुखोएं बौध दर्शनीओने जीतीने जगत्मां यशोवाद लीधो ते पण ज्ञाननो ज प्रसाद जाणवो. ज्ञाननी जे तीक्ष्णता तेज अबंध चारित्र जाणवुं. जे निकाचित कर्मनो क्रोडो वर्षपर्यंत दान, शील तथा तप कर्याथी विनाश थतो नथी ते ज्ञानथी एक श्वासोश्वासमां थायछे. एटलाज माटें क्रिया गुरुने पींपळाना पत्र जेवा गण्या छे. अने ज्ञानी गुरुने समुद्र समान गण्या छे. ज्ञान विना सम्यक्त्वपणुं रही शके नहीं, ज्ञान विना अहिंसानो मार्ग समजाय नहीं, सिद्धांतोक्त समस्त क्रियानुं मूळ जे श्रद्धा छे तेनुं पण कारण ज्ञान छे केमके ज्ञान विना श्रद्धानी प्राप्ति थती नथी, एवुं जे ज्ञान तेना पांच प्रकार छे. मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव अने केवळ. ए पांचने विषे पण श्रुतज्ञान सर्वथी अधिकोपयोगी छे श्रुतज्ञान पदार्थमात्रनुं प्रकाशक छे. स्वमत तथा परमतनुं परिपूर्ण प्रकाश करनारुं पण श्रुतज्ञानज छे. अज्ञानरूप तिमिर टाळवाने सूर्यस

दशछे तथा दुस्सम कालरूप रात्रीने विषे तो दीपक समानछे बीजां चार प्रकारनां जे ज्ञान छे तेनुं पण कारण नूत श्रुतज्ञानज छे. परमेश्वरें कह्युं छेके श्रुतज्ञान संव्यवहारक छे. उद्देश, समुद्देश, आज्ञा इत्यादि व्यवहारनो लान श्रुतज्ञानथी थाय छे. वली स्वस्वरूपने परस्वरूप समजाववाने श्रुत ज्ञानज समर्थ छे. बीजां केवल ज्ञानादिक चारे ज्ञानथकी जाणेला पदार्थनुं स्वरूप पण श्रुत ज्ञानवडेज कहेवाय छे. माटें मत्यादिक चार ज्ञान स्थापवा योग्यछे पण तेणे करीने परजीवने उपदेश आपी उपकार करी शकाय नहीं ; अने श्रुतज्ञानथी उपदेश थाय माटें उपकारी छे. श्रुतज्ञानना श्रवण करवाथी शुद्धात्मिक परमपदनी प्राप्ति थाय छे. माटें श्रुतज्ञान ते महोटुं निमित्त कारण छे. श्रुतज्ञानने सांनलवे करी जीवने शुद्धस्वरूप विशुद्ध श्रद्धान (प्रतीत) उपजे ने तेथी शुद्धात्मानुं आचरण, आसेवन तथा अनुनव उपजे तेज परमपद प्राप्ति जाणवी. श्रुतज्ञान सांनलवाना प्रनावथकी जीव, धर्मने विशेषें जाणे विवेकवंत थाय, दुर्मतिनो त्याग करे, ज्ञाननी प्राप्ति थाय अने अंतें मोक्ष पामे, माटें श्रुतज्ञाननो आदर अवश्य करवो. श्रुतज्ञाननो संयोग थवो जीवने अत्यंत दुर्लन छे. श्रुतज्ञानने संयोगें करीने पूर्वें श्रीगौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी, जंबुस्वामी प्रमुख घणा जीवो संसार समुद्रने तरी गया ; अने वर्त्तमान कालें महाविदेह क्षेत्रने विषे विहरमान सीमंधरादिक वीश तीर्थंकरनी वाणी सांनलीने घणा जीवो तरेछे, तथा आगमिक कालें पद्मनानादिक तीर्थंकरनी वाणी सांनलीने श्रीधर्मरुचि अणगार प्रमुख अनेक जीवो तरशे. तेमज आ नरतादिक क्षेत्रने विषे हमणा पण जे श्रुत ज्ञानने सांनलशे, नणशे, अंतरंग रुचिएं करीने जे श्रद्धा (प्रतीत) करशे, ते सुलन बोधी थशे, कर्मथी विमुक्त थशे अने तेथी परंपराएं मुक्ति पामशे. एवुं श्रुतज्ञाननुं मूल द्वादशांगी छे. ते श्रुतज्ञाननी वांचना, पृछना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा अने धर्मकथा थाय छे. ए धर्मकथा श्रीउववाइ सूत्रमां चार प्रकारनी कही छेः– आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, निर्वेदिनी अने संवेदिनी. हवे जे थकी एक तत्वमार्गमां प्रवृत्ति थाय तेने आक्षेपिणी कहीएं ; जे थकी मिथ्यात्वनी निवृत्ति थाय तेने विक्षेपिणी कहीएं ; जे थकी मोक्षनी अनिलाषा उत्पन्न थाय, तेने निर्वेदिनी कहीयें अने जे थकी वैराग नावनी उत्पत्ति थाय तेने संवेदिनी कहीयें.

एवी ए श्रुतज्ञानरूप कथा श्री अरिहंत देवाधिदेव तीर्थंकर परमेश्वर समवसरणमां बेशीने त्रिपदी उच्चारण पूर्वक द्वादश पर्षदाना मध्यने विषे करेछे. अने तद्रूप दानथी श्रीगणधरो द्वादशांगीनी रचना करेछे, ते सूत्र कहेवायछे. ते प्रत्येक तीर्थंकरना शासनने विषे थाय छे ; तथा ते तीर्थंकरोना शासनमां थयेला प्रत्येक बुध, चौद पूर्वधर, तथा दश पूर्वधर प्रमुख महत्पुरुषो जे निबंधोनी रचना करे छे तेने पण सूत्र संज्ञा

अने एवी भ्रमित मतिवाळा दर्शनीउनुं मत क्यारें पण शुद्ध कहेवाय नहीं परंतु जे दर्शनमां पोताना आत्मानुं आत्मत्वपणुं जाणीने पूर्णपणे दयाने अंगीकार करी हो य. एवुं तो एक श्री जैनदर्शन छे अने ते सर्व लोक प्रविदित छे. तेथी ए धर्म जगतुमां सर्वोत्कृष्ट कहेवाय छे. ए धर्मना एक रीतें, आचारधर्म, दयाधर्म, क्रियाधर्म अने वस्तुधर्म, एवा चार भेद छे अने दान, शील, तप, तथा भाव, ए चार तेनां कारण छे. हवे धन वडें करी दान देवाय, मन बळवडे शील पळाय, शरीर बळवडे तप थाय अने सम्यक्ज्ञानबळवडे भावधर्मनी वृद्धि थाय. ए भावधर्म, दान, शील अने तप, ए त्रणे करतां अधिक छे, केमके भावधर्मनुं कारण ज्ञान बळ छे; जेणे करी वस्तुनुं स्वरूप जाणीयें, तेने ज्ञान कहीयें. ते ज्ञानथकी आत्मधर्मनी वृद्धि तथा संरक्षण जेटलुं थायछे तेटलुं पेलां त्रण जे दान, शील ने तप, ते थकी थतुं नथी. एनुं कारण ए छे के नय. निक्षेप, प्रमाण, चार अनुयोगनो विचार, सप्तभंगी, षट्द्रव्यादिकनो विचार, आदि लइ ज्ञान बळवडे जीवने परिपूर्ण प्राप्त थायछे. वळी श्री दशवैकालिक सूत्र मां पण प्रथम ज्ञानने पछी क्रिया कहीछे. ते उपरांत ज्ञान विनानी जे क्रिया करवी ते पण क्लेशरूप कहीछे. अर्थात् क्रिया तो ज्ञाननी दासी जेवीजछे. ज्ञानी पुरुषनी अल्प क्रिया पण अत्यंत श्रेष्ठ छे. वळी श्री उत्तराध्ययनमां पण कह्युं छे के ज्ञान गुण संयुक्त जे होय तेनेज मुनि कहेवो. एथी पण ज्ञाननुं महात्म्य अत्युत्कृष्ट जणायछे. श्री महानिशीथमां ज्ञानने अप्रतिपाति वर्णव्युं छे. श्री मरुदेवी माताने हस्ती उपर बेठां छतां केवळ ज्ञान उत्पन्न थयुं. वळी श्री भरतेश्वरने आरीसा भुवनमां रह्यां छतां कर्मोनी विमुक्तता थइ ते पण ज्ञाननुंज प्राबल्य हतुं; अने श्री उपदेश माळामां कह्युंछे के ज्ञान रूपी नेत्रें करी उंजमाळ एवा मुनिने वंदन करवुं योग्य छे. देवाचार्य मल्लवादि प्रमुखोएं बौध दर्शनीउने जीतीने जगत्मां यशोवाद लीधो ते पण ज्ञाननो ज प्रसाद जाणवो. ज्ञाननी जे तीक्ष्णता तेज अबंध चारित्र जाणवुं. जे निकाचित कर्मना क्रोडो वर्षपर्यंत दान, शील तथा तप कर्याथी विनाश थतो नथी ते ज्ञानथी एक श्वासोश्वासमां थायछे. एटलाज माटें क्रिया गुरुने पींपळाना पत्र जेवा गण्या छे. अने ज्ञानी गुरुने समुद्र समान गण्या छे. ज्ञान विना सम्यक्त्वपणुं रही शके नहीं, ज्ञान विना अहिंसानो मार्ग समजाय नहीं, सिद्धांतोक्त समस्त क्रियानुं मूळ जे श्रद्धा छे तेनुं पण कारण ज्ञान छे केमके ज्ञान विना श्रद्धानी प्राप्ति थती नथी, एवुं जे ज्ञान तेना पांच प्रकार छे. मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव अने केवळ. ए पांचने विषे पण श्रुतज्ञान सर्वथी अधिकोपयोगी छे श्रुतज्ञान पदार्थमात्रनुं प्रकाशक छे. स्वमत तथा परमतनुं परिपूर्ण प्रकाश करनारुं पण श्रुतज्ञानज छे. अज्ञानरूप तिमिर टाळवाने सूर्यस

दशछे तथा दुस्सम कालरूप रात्रीने विषे तो दीपक समानछे बीजां चार प्रकारनां जे ज्ञान छे तेनुं पण कारण जूत श्रुतज्ञानज छे. परमेश्वरें कह्युं छेके श्रुतज्ञान संव्यवहारक छे. उद्देश, समुदेश, आज्ञा इत्यादि व्यवहारनो लाज श्रुतज्ञानथी थाय छे. वळी स्वस्वरूपने परस्वरूप समजाववाने श्रुत ज्ञानज समर्थ छे. बीजां केवल ज्ञानादिक चारे ज्ञानथकी जाणेला पदार्थनुं स्वरूप पण श्रुत ज्ञानवडेज कहेवाय छे. माटें मत्यादिक चार ज्ञान स्थापवा योग्यछे पण तेणे करीने परजीवने उपदेश आपी उपकार करी शकाय नहीं ; अने श्रुतज्ञानथी उपदेश थाय माटें उपकारी छे. श्रुतज्ञानना श्रवण करवाथी शुद्धात्मिक परमपदनी प्राप्ति थाय छे. माटें श्रुतज्ञान ते महोटुं निमित्त कारण छे. श्रुतज्ञानने सांजळवे करी जीवने शुद्धस्वरूप विशुद्ध श्रद्धान (प्रतीत) उपजे ने तेथी शुद्धात्मानुं आचरण, आसेवन तथा अनुजव उपजे तेज परमपद प्राप्ति जाणवी. श्रुतज्ञान सांजळवाना प्रजावथकी जीव, धर्मने विशेषें जाणे विवेकवंत थाय, दुर्मतिनो त्याग करे, ज्ञाननी प्राप्ति थाय अने अंतें मोक्ष पामे, माटें श्रुतज्ञाननो आदर अवश्य करवो. श्रुतज्ञाननो संयोग थवो जीवने अत्यंत दुर्लज छे. श्रुतज्ञानने संयोगें करीने पूर्वें श्रीगौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी, जंबुस्वामी प्रमुख घणा जीवो संसार समुद्रने तरी गया ; अने वर्त्तमान काळें महाविदेह क्षेत्रने विषे विहरमान सीमंधरादिक वीश तीर्थंकरनी वाणी सांजळीने घणा जीवो तरेछे, तथा आगमिक काळें पद्मनाजादिक तीर्थंकरनी वाणी सांजळीने श्रीधर्मरुचि अणगार प्रमुख अनेक जीवो तरशे. तेमज आ जरतादिक क्षेत्रने विषे हमणा पण जे श्रुत ज्ञानने सांजळशे, जणशे, अंतरंग रुचिएं करीने जे श्रद्धा (प्रतीत) करशे, ते सुलज बोधी थशे, कर्मथी विमुक्त थशे अने तेथी परंपराएं मुक्ति पामशे. एवुं श्रुतज्ञाननुं मूळ द्वादशांगी छे. ते श्रुतज्ञाननी वांचना, पृच्छना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा अने धर्मकथा थाय छे. ए धर्मकथा श्रीउववाइ सूत्रमां चार प्रकारनी कही छेः— आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, निर्वेदिनी अने संवेदिनी. हवे जे थकी एक तत्वमार्गमां प्रवृत्ति थाय तेने आक्षेपिणी कहीएं ; जे थकी मिथ्यात्वनी निवृत्ति थाय तेने विक्षेपिणी कहीएं ; जे थकी मोक्षनी अजिलाषा उत्पन्न थाय, तेने निर्वेदिनी कहीयें अने जे थकी वैराग जावनी उत्पत्ति थाय तेने संवेदिनी कहीयें.

एवी ए श्रुतज्ञानरूप कथा श्री अरिहंत देवाधिदेव तीर्थंकर परमेश्वर समवसरणमां बेशीने त्रिपदी उच्चारण पूर्वक द्वादश पर्षदाना मध्यने विषे करेछे. अने तद्रूप दानथी श्रीगणधरो द्वादशांगीनी रचना करेछे, ते सूत्र कहेवायछे. ते प्रत्येक तीर्थंकरना शासनने विषे थाय छे ; तथा ते तीर्थंकरोना शासनमां थयेला प्रत्येक बुध, चौद पूर्वधर, तथा दश पूर्वधर प्रमुख महत्पुरुषो जे निबंधोनी रचना करे छे तेने पण सूत्र संज्ञा

युक्त छे. एनुं सहज व्याख्यान प्रगट करूं छुं, ते वांचवाथी एनुं अतिशय श्रेष्टपणुं ते मज आवश्यकता ध्यानमां आवशे.

सूयगडांग एटले संस्कृत भाषामां सूत्रकृतांग एवुं नाम छे. सूत्र एटले जेमां सूत्र नी सूचना होय तथा स्वपरमतनी सूचना कराय ते सूत्र कहीयें. ते सूत्र बे प्रकारनुं होय छे. पहेलुं द्रव्यसूत्र अने बीजुं भावसूत्र जे कार्पासादिकथी उत्पन्न थयुं होय, ते द्रव्यसूत्र कहीयें, अने श्रुत ज्ञानरूप सूत्र ते भावसूत्र छे, एम जाणवुं. वली जे प दार्थनुं सूचक होय ते श्रुतज्ञान सूत्र जाणवुं. ते श्रुतज्ञान सूत्रना चार भेद छे संज्ञा सूत्र, संग्रहसूत्र, वृत्तबंधसूत्र, तथा जातिबंधसूत्र हवे जे स्वसंकेत पूर्वक बांधे लुं होय ते संज्ञासूत्र केवाय; जेमां घणा अर्थोनो संग्रह तथा धर्माधर्मद्रव्यनुं ग्रह ण होय ते संग्रह सूत्र केवाय; जे अनेक प्रकारना वृत्त छंदनी जातिथी बांधेलुं होय ते वृत्तबंधसूत्र केवाय अने जे जातिथी बांधेलुं होय ते जातिबंध सूत्र कहेवाय. ए जाति सूत्रना चार भेद छे. तेनां नाम कहीयें छैयें. जेम के, कथ्य, गद्य, पद्य, अने गेय. हवे जे उत्तराध्ययन तथा ज्ञाताधर्मकथादिकनी पेरें प्रायें पूर्व ऋषिनां चरित्र प्रमुख कथा ओनो विस्तार जेमां होय ते कथ्य; जे ब्रम्हचर्य अध्ययनादिकनी पेरें जेमां मुक्त भाषानुं विवेचन होय ते गद्य. जेमां छंदरचनावडे मनोहर वर्णन होय, ते पद्य अने कापिली अध्ययननी परें स्वप्रीतिथी गायन करी जेनी रचना थइ होय ते गेय.

अथवा तीर्थंकरोना मुख थकी भव्य जीवोना मोक्षार्थें उत्पन्न थयेलो जे अर्थ ते सूत्र; अने तेनी जे गणधरें रचना करी तेने कृत कहीयें. एम सूत्र अने कृत ए बे मलीने सूत्रकृत एवुं पद थयुं. अथवा सूत्रने अनुसारें जेमां तत्वनो प्रबोध होय, ते पण सूत्रकृत कहेवाय; अने तेना कर्त्ता पण गणधरो छे. हवे गणधर कोने कहेवा? जे सामान्याचार्य होय ते गणधर कहेवाय; ते गौतमादिक जाणवा. ते गौतमादिक एकाद श गणधरोमांहेला पांचमा गणधर श्रीसुधर्मा स्वामी तेमणे पोताना श्रीजंबुप्रभृति शिष्योने उपदेश करवाने अर्थें आ ग्रंथनी रचना कीधी छे; अने ए कारण माटें आ ग्रं थनुं नाम सूत्रकृत छे एम जाणवुं. वली बीजुं नाम द्वितीय सूत्रकृतांग एवुं पण छे, तेनुं कारणके पूर्वोक्त पिस्तालीश सूत्रांतर्गत एकादशांगमानुं ए द्वितीय अंगछे ते पूर्वो क्त गणधर विरचित एकादशांग मध्यें प्रथमांगनुं नाम आचारांग छे; तेमां जीवनी छ कायनुं स्वरूप जाणवुं, एनो सविस्तर उपदेश करेलो छे अने एमां ज्ञाननुं प्राधान्य छे. ज्ञाननी प्राप्ति थया पछी ज्ञान पूर्वक क्रिया करवी ते संबंधी आरंभमां (बुज्झिज्ज) एवी गाथा लखीने प्रथम आचारांग साथें आ द्वितीय सूत्रकृतांगनो संबंध मेलव्यो छे. एना बे श्रुत स्कंध छे. ते मध्यें प्रथम श्रुतस्कंधना शोल अने द्वितीय श्रुतस्कंधना सा

त, मली त्रेवीश अध्ययनो छे. अने तेमां तेत्रीश उद्देशाउ छे. एनी पद संख्या बत्रीश हजारनी छे. मूल सूत्रनी श्लोक संख्या (२१००) छे. एमां मुख्यत्वें द्रव्यानुयोग नी प्रधानता छे अने स्वसमयानुसारी महान् साधु जनोनें उदासीनरूप क्रिया प्रवृत्ति आश्रयी उपदेश करतां थकां अन्य पाखंडी दर्शनीउना मतोनुं खंमन यथायोग्य कीधुं छे. ए शीवाय बीजा पण जे जे विषयोछे ते सर्वे अनुक्रमणिकामां सविस्तर दर्शावेला छे, ते जोवाथी स्पष्ट समजाशे.

ए ग्रंथनी टीका करनार पंमितोमां श्रेष्ठ एवा श्रीशीलंगाचार्य नामें पंमित हता, तेउ विक्रम संवत् ८००ना सुमारमां थइ गया एवी दंतकथा छे. ए विषे कोइ ग्रंथ साक्षी आपे एवुं आज सुधी महारा जाणवामां आव्युं नथी. ए महान् टीकाकारनी जन्मभूमि वल्लभीपुर नगरी जे हाल वळानें नामें प्रख्यात छे त्यां हती, एवुं मने सांभळवामां आव्युं छे. सांप्रत कालना पंमितो एमनी टीका वांचीने तेनी वाक्यरचना तथा उत्तम सरलता साथें गांभिर्य अने शब्द चातुर्यथी मोह पामी स्तुति करवामां महोटो आनंद माने छे. ए टीकानी श्लोक संख्या बार हजार आठशो ने पचाश छे. ए महा पंमितें अन्यसूत्रो आचारांगादि उपर पण टीका करेली छे. ए स्तुतिपात्र टीकाकारनी टीका करवानी शैली एवी सरल अने सुगम छे के ते वांचतां वांचतां पंमितोने पदशःपरमानंदप्राप्तिनोज थातो रहेज नहिं तथा एनी मनोहर रचना अने अर्थ चमत्कृतिनी एवी सुंदर छटाथी वांचनार ते वाणीरसनेज अनुभवे. सूक्ष्म विषयनुं विवेचन एवी अलौकिक ढबथी कर्युं छे के वक्ता तेमज श्रोता उभयना मनने संपूर्ण संतोष उपजे अने क्यारें पण संशयनो लेश मात्र रहेज नहीं. प्रत्येक विषयनुं निरूपण साद्यंत नियम बंध कीधेलुं छे के जेथी आपोआप तेनी सर्वे मतलब ध्यानमां आवे; जेम एक वार कहेली वातनो संबंध बीजे ठेकाणे लगाडवो होय, तो त्यां पूर्ववत् ए संकेतथी वांचनारने तुरत आगली वातनुं ज्ञान थाय. वली आ टीका वांचवा थकी जाणे टीकाकारें ग्रंथकर्तानो सर्वहृद्गत अभिप्राय सान्निध्यताथी निःशेष श्रवण कर्यो होय एम टीका वांचनारने उत्प्रेक्षा थाय छे. एम सूत्रनो अक्षरशः अर्थ न जाय एवी रीतें सनियुक्तिक टीका करी छे एवा अनेक प्रकार जेणे करीने टीकानी श्रेष्ठता अने स्तुति पंमितो करे, ते आ महाविद्वान् पंमितनी टीकामां नजरें आवे छे. टुंकामां एटलुंज केहुं छे के जेटली खुबीउ ए टीकामां रही छे ते सर्वे विस्तारनी बार छे. मात्र वांचवाथीज तेनो आनंद प्राप्त थाय एम छे.

एनी दीपिका श्री हर्षविमलसूरिएं विक्रम संवत् १५८३ ना वर्षमां करेली छे. तेनी श्लोक संख्या मूल सुधां सात हजार छे. कारणके "सप्त सहस्राणि किंचिन्न्यूना

नि " एवुं एमणे पोतेंज लख्युं छे. ए दीपिका पण घणी सरल सुरस, अने पदना य थायोग्य अर्थयुक्त अतिशय मनोहर छे. एनी शैली एवी बांधीछे के जेने थोडुं घणुं संस्कृतनुं ज्ञान होय तेने पण सुगमताथी समज पडे अने एवी सरलरचनाने माटें ते वा जनो, ए पंक्तिनो अत्यंत आनार माने छे.

आ ग्रंथनो बालावबोध श्री पार्श्वचंद्र सूरियें करेलो छे. आ वात, बीजा श्रुतस्कंध ना अंतमां प्रगट करेली छे. ए बालावबोध टीका उपरथी कीधेलो छे. केमके दीपिका करनार करतां बालावबोध करनारनी उत्पत्ति पूर्वें छे, तो पण ज्यारें ते मारा वांचवामां आव्यो त्यारें ते एटलो तो अस्तव्यस्त देखायो के तेने सुधारवानी मारी हिम्मत चाली नहीं. तथापि ए कार्य अवश्य थवुंज जोइयें एवुं जाणी में मारी अल्पमत्यनुसार श्रम लइने सुधार्यो छे.

हवे ए सूत्ररूप कल्पवृक्षनो जे जन आश्रय ग्रहण करें छे, ते निज नावानुसार फल पामे छे. पण तेने अर्थें ए वृक्ष उपर आरोहण करवा माटें पूर्वाचार्योएं निश्रेणियो करेली छे ; जेम के टीका, नाष्य, निर्युक्ति, दीपिका, चूर्णी तथा बालावबोध प्रमुख. एमांथी वली टीकाकर्त्तायें टीकामांहेज निर्युक्तिनी गाथाउ लखीने तेनी पण टीका करेली छे तेथी निर्युक्तिनो समावेश टीकामां करेलो छे तथा दीपिका अने बालावबोध रूप एवी चार नीश्रेणीउ जूदा जूदा चार आचार्योंनी करेली आ सूयगडांगसूत्ररूप कल्पवृक्षने लगाडी छे तेने उपयोगमां लइ उपर कह्युं एवुं जे आ सूयगडांग सूत्ररूपकल्पवृक्ष, तेनां फल ग्रहण करवा माटें नविक जनोएं अत्यानंद पूर्वक तत्पर थवुं, ए मारी सविनय प्रार्थना छे.

ए सूत्रमां सर्व जगतूने प्रमोद उपजावनारी श्री वीतरागनी वाणी छे. ते केवी छे तोके नव रूप वेलनी कृपाणी, संसार रूप समुद्रथी तारवा वाली, महामोहरूप अंधकार नो नाश करवाने दिनकरना किरणो जेवी प्रकाश वाली, क्रोधरूप दावानलनो उपशम करनारी, मुक्तिना मार्गने दर्शावनारी, कलिमलनो प्रलय करनारी, मिथ्यात्वने छेदन करनारी, त्रिजुवननुं पालन करनारी, मन्मथनो रोध करनारी, अमृतरसनुं आस्वादन करावनारी अने हृदयने अत्याल्हाद करनारी एवां अनेक विशेषणोपयुक्त एवी जे श्री जिनवाणी ते सर्व सज्जनोनें मान्य थाउ.

कदापि निबिड कर्मनी शृंखलायें प्रतिबद्ध थयेला एवा अनव्य डुर्नव्यने बोध करवा माटें ए वाणी समर्थ नथी थती तो पण ए वाणीनुं असामर्थ्य समजवुं नहीं. केमके सूर्यना किरणो जेम घुअड पक्षीना नेत्रने प्रकाश करी शकतां नथी तो पण ते जगतूमां निंदानां आधिष्ठान थतां नथी. वली जलनी वृष्टि करनारो मेघ जो प

ए उपर क्षेत्रने विषे तृणादिक उत्पन्न करवा माटें असमर्थ छे ते छतां ते लोकने विषे निंदानें पात्र थतो नथी. तेमज जे पुरुषने ए वाणी गमती नथी ते तेनुं पोतानुंज दौर्भाग्य समजवुं. माटें कुशल बुद्धिवाला सज्ञानोने आ जिनवाणी रूप प्राधान्य ग्रंथ महोत्सवरूप आनंद आपनारो थाउ अने तेमना चित्त रूप सरोवरने विषे प्रेम रूप जल भराउ, तथा तेने योगें तेउने मोक्ष रूप महा सुंदर कमलनी प्राप्ति थाउ. अस्तु.

शा० भी० मा०.

विज्ञापना.

परमेश्वरनी वाणी रूप अमृतरस जेमां रेलाइ रह्यो होय तेवा ग्रंथोने मुद्रित करी प्रसिद्ध करवा ए महा परमार्थ छे. एथी सुज्ञजनो आनंद पामेछे. विवेकी जनो पठन पाठन करीने जिनधर्म भावमां दृढता वधारे छे, सामान्य जीवो व्याख्यानादिक श्रवण करीने धर्मलाभने पामे छे. सज्ञान पुरुषो वांचीने पोताना चित्तनें निर्मल राखी धर्मने विषे आदर करेछे. एवी उत्कृष्ट जिनवाणी जेमां मुख्य छे एवा श्रुतज्ञाननी वृद्धि, संरक्षण तथा विनय करवा जेवुं कोइ पण उग्र, पुण्यप्रकृति बांधनारुं बीजुं शुभ कर्म नथी. तेनुं साधन वर्त्तमान समयमां उपर कह्या प्रमाणे मुद्रायंत्र घणुं सुलभ अने मनोहर छे. एनी सहायताथी सर्व सूत्रो तथा सर्व ग्रंथो छपावी प्रसिद्ध करवा, ए श्रुतज्ञाननी वृद्धि, संरक्षण तथा विनय, हाल सर्वोत्कृष्ट गणाय एम छे खरुं पण ए कार्य, द्रव्यवान गृहस्थथी बनी शके. जेम द्रव्यवान् तेमज वली श्रीजिन धर्म प्रसार उपर प्रीतिमान् पण संपूर्ण होवो जोइयें, एवो असाधारण पुरुष चतुर्विध संघमां कोइ विरलोज मली आवे. जेम हाल बाबु साहेब "राय धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी" छे. एवो श्रावक आधुनिक वर्त्तमान कालमां बीजो कोइ पण नथी. एमणे उक्त रीति प्रमाणे प्रीतिसहित सर्व आगमो छपावी प्रसिद्ध करवानो उद्योग चालु कर्योछे.ए स्वधर्माग्रही बाबु साहेबें मने हाल श्री सूयगडांग सूत्र छापवानी आज्ञा करी ते में यथा बुद्ध्यनुसार सुधारीने मूल सूत्र, दीपिका, टीका तथा बालावबोध सहित छाप्युं छे. एमां दृष्टिदोषथी वा बुद्धिदोषथी अज्ञानरूप अंधकारना पराधीन पणाथी कोइ अशुद्धपद, वा शब्दनी योजना थइ होय तो सज्ञान पुरुषोएं तेने माटे मने क्षमा करवी. यद्यपि आ मारो विवेक योग्य नथी केम के सज्ञानोनो तो एवो स्वभावज होय छे के कोइ पण सत्कर्ममां दोष तेउनी दृष्टिगोचर थतो नथी, ते छतां पूर्वें श्रेष्ठ ग्रंथकारोएं एवी

पद्धति राखी छे तेने अनुगत थईने में पण ए विवक कीधो छे. सज्जनो पासें क्षमा मा
गी, तेना करतां विशेषपणें दुर्जनो पासें क्षमा मागुं छुं, केम के तेउनो स्वनावज एवो
होय छे के कोइना हाथथी शुन कृत्य थाय छे ते जोइ तेमने मनःसंताप उपजे छे अने
बीजानी हानी थाय तेमां तेउ लान समजे छे. बीजाना दोष कहाडवामां महा पंमि
त होय छे. बीजाना कल्याणरूप घृतनी उपर माखी थइ बेसे छे इत्यादिक अगणित
दीर्घदोषोयें करी युक्त दुष्टजनो होय छे, एवा दुष्टजनो उलूक समान छे तेथी ते
उ आ जिनवाणी रूप सूर्यना प्रकाश थकी अंध थइने विपर्यासने पामशे, अने द्वेष
बुद्धिथी ईर्ष्या करशे तेथी तेमना हृदयमां ताप उत्पन्न थशे तेने माटें हुं तेमनी पासें
क्षमा मागुं छुं, कारणके, ते ताप उत्पन्न थवानुं कारण तेउ मने गणशे. अस्तु.

शा० नी० मा०.

ज्ञान प्रसाररूप पुण्यकर्म उपार्जन करवामां प्रथम पंक्तिमां गणवा लायक म
हान्पुरुष जेणे लोकोपकारने अर्थें पिस्तालीश आगम मूल तथा तेउमांथी जेनी
टीका प्रमुख जे अंग मले ते सहित मुद्रित करी प्रसिद्ध करवानो उद्योग आ समय
मां प्रसार कीधो छे ; तेवा सज्जन गृहस्थोनी उत्पत्ति विषे सहज लख्या विना मारी
कलम अन्यकार्य करवामां चाली शकती नथी. तेथी यत्किंचित् लखुं छुं.

बंगाला इलाकामां बालोचर, मकशुदाबाद, अने मुरसिदाबाद एवा त्रण नामें उलखातुं सुं
दर शहेर छे. ज्यां कृष्णगढथी आवी निवास करनारा उसवंशरूप नंदन वनमां कल्पवृक्ष स
मान दुगडगोत्रीय, धर्म, न्याय, विवक अने विनयादिक श्रेष्टगुणें युक्त, तेमज सर्व सत्यवा
दिउमां अग्रेसर, महाबुद्धिनिधि, दीन जीवने तन, मन, धनवडे सहाय करनार, रूडा स्वना
ववाला, पुण्य प्रनावरूप चंद्रना प्रकाशवडे दिशाउने प्रकाश करनारा एवा "राय बुधसिं
हजी" नामें श्रावक श्रीजिनधर्म उपर महोटा श्रद्धावान् हता. तेमनी कुशलादे नामें पत्नी
नी कुक्षिथकी संवत् १७३७ ना माघवदि एकमने गुरुवारने दिवसें राय प्रतापसिंहनामें
कुलदीपक सुपुत्र उत्पन्न थया. तेउ सर्व धनाढ्योमां शिरोमणि अने महाधर्मनिष्ठ
तेमज क्षमावान् तथा धर्माऽधर्मना निर्णय करनाराउमां अग्रेसर थया. तेमनी च
तुर्थ पत्नीनुं नाम महताबबाई हतुं. तेमणे उसवंशमां मुकुटमणि, न्यायमार्गें लक्ष्मी
नुं उपार्जन करनार तथा धर्म, अर्थ, काम, ए त्रिवर्गना साधनारा अने प्राणिमात्र
ने विषे दयाईपणाएं युक्त, एवा महातेजस्वी बे पुत्रोने जन्म आप्यो. तेमां वडा पुत्रनुं
नाम "रायलक्ष्मीपति सिंह बाहादुर" तथा जेमणे आवा ग्रंथो छपावी प्रसिद्ध करवा
नो उद्योग आरंन्यो छे, ते कनिष्ट पुत्रनुं नाम "रायधनपति सिंह बाहादुर" छे. ए बेहु सद्
गृहस्थो, सद्गुणनिधान अने मनुष्य मात्रना कल्याणमां उत्सुक छे, माटें आ जिनधर्म

॥ द्वितीयोद्देशानुक्रमणिका ॥

॥ तृतीयोद्देशानुक्रमणिका ॥

॥ चतुर्थोद्देशानुक्रमणिका ॥

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

बीजुं वैतालीयनामा अध्ययन छे. एमां त्रण उद्देशक छे.प्रत्येक उद्देशकमां एकेक अर्थाधिकार छे तेनी अनुक्रमणिका करीयें छैयें.

॥ अथ तृतीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

त्रीजुं उपसर्ग परिज्ञानामें अध्ययन छे. एमां चार उद्देशक छे ते मध्यें त्रीजा उद्देशामां बे अर्थाधिकार छे अने बाकीना त्रणे उद्देशामां प्रत्येकें एकेक अर्थाधिकार छे. तेनी अनुक्रमणिका करीयें छैयें.

॥ अथ चतुर्थाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

चोथुं स्त्रीपरिज्ञानामें अध्ययनछे. एमां बे उद्देशक छे, एकेक उद्देशकमां एकेको अर्थाधिकार छे. तेनी अनुक्रमणिका करीयें छैयें.

॥ अथ पंचमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

पांचमुं निरयविभक्ति नामें अध्ययन छे. एमां बे उद्देशा छे, प्रत्येक उद्देशामां एकेक अर्थाधिकार छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

॥ अथ षष्ठाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ सप्तमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथाष्टमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ नवमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ दशमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ एकादशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ द्वादशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ त्रयोदशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ चतुर्दशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ पंचदशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ षोडशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ ॥

॥ द्वितीय श्रुतस्कंधस्य सप्ताध्ययनानुक्रमणिका ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

ज्ञानप्राप्ति थती नथी तेथी ते पौंमरिक कहेवाय नहिं. ते नुं सविस्तर वर्णन तथा जे सत्साधु ठे ते सम्यक्दर्शनादिक एवा मोक्षमार्गमां प्रवर्त्तता कर्मना मोचक जाणवा, ते प्रतिपादन कर्युं ठे. आ अध्ययनमां जूदा जूदा शाठ आलावा ठे, तेनी अनुक्रमणिका लखीयें ठैयें.

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

बीजुं क्रिया स्थानक नामा अध्ययन छे. एमां एक उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार छे. एमां बार क्रियास्थानकें करी कर्म बंधाय छे अने तेरमा क्रियास्थानकें करी कर्म मूकाय छे. एवा तेर क्रिया स्थानकनुं स्वरूप कह्युं छे एमां पच्चाशी आलावा छे. तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

बीजुं क्रिया स्थानक नामा अध्ययन छे. एमां एक उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार छे. एमां बार क्रियास्थानकें करी कर्म बंधाय छे अने तेरमा क्रियास्थानकें करी कर्म मूकाय छे. एवा तेर क्रिया स्थानकनुं स्वरूप कह्युं छे एमां पञ्चाशी आलावा छे. तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

॥ अथ तृतीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

त्रीजुं आहारपरिज्ञानामा अध्ययन छे. तेनो एक उद्देशक तथा अर्थाधिकार पण एकज छे, तेना जूदा जूदा आ डत्रीश आलावा छे तेनी अनुक्रमणिका लखियें छैयें.

॥ अथ चतुर्थाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

चोथुं प्रत्याख्यान क्रियानामा अध्ययन छे एमां एकज उद्देशक अने अर्थाधिकार पण एकज छे. एना जूदा जूदा अगीआर आलावा छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

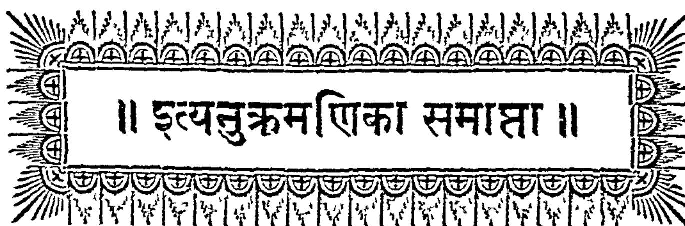
॥ अथ पंचमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ पष्ठाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

लहुं आर्द्रकीयनामा अध्ययन ले. एमां एक उद्देशक अ
ने एकज अर्थाधिकार ले. ते मध्यें पञ्चावन गाथाउ ले.
तेनी अनुक्रमणिका लखीयें लैयें.

॥ अथ सप्तमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

सातमुं नालंदीय नामा अध्ययन छे. तेमां एकज उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार छे, एमां जूदा जूदा चालीश आलावा छे पूर्वाध्ययनमां साधुना आचार कह्या तेम आ अध्ययनमां श्रावकना आचार कह्या छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.


॥ इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ॥

रायधनपतसिंघ बाहाडुरका जैनागम संग्रह

नाग डुसरा.

॥ ॐनमो वीतरागाय ॥

अथ

॥ द्वितीयंसूत्रकृतांगं ॥

गुर्जरनाषासहितं श्रीहर्षकुलकृतदीपिकायुक्तं शीलंगाचार्यकृतटीकायुतंच प्रारन्यते.

तत्रमूलं ॥ बुज्किज्जत्तितिउट्टिज्जा, बंधणं परिजाणिया॥किमाह बंधणं वीरो किंवा जाणंति तुट्टई ॥ १ ॥ चित्तमंतमचित्तंवा परिगिज्क किसामवि ॥ अन्नंवा अणुजाणाइ एवं डुक्खाणमुच्चइ ॥ २ ॥

प्रथम गुर्जर नाषामां अर्थकर्तानुं मंगलाचरण.

अर्थ—प्रणम्य सद्गुरून् नक्त्या बालानां बोधहेतवे ॥ किंचित् सूत्रकृतांगस्य लिख्यते वार्तिकं मया ॥ १ ॥ प्रथम श्रीआचारांग कहीने पढी सुयगडांग कह्युं तेनो संबंध मेलवेढे. जे कारण श्री आचारांग मांहे, (जीवो ढक्काय परू, वणा य तेसिंव हेणबंधो त्ति) ॥ इत्यादि कह्युं ढे. ते सर्व परमार्थने (बुज्किज्जके०) जाणवुं जोइए. एम आचाराङ्गसाथे आ सुयगडांगनो संबंध जाणवो. ए अधिकारे बीजुं अंग सुयगडांग प्रारंनीए ढैए. अहींयां केटलाएक वादी ज्ञानेकरीनेज मुक्ति थायढे एम कहेढे, अने केटलाएक क्रियाए करी मुक्ति कहेढे. अने जैन तो एम कहेढे के ज्ञान अने क्रिया ए बन्ने थकी मुक्तिढे, ए अर्थ ए श्लोकमांहे देखाडेढे ते एमके.

(बुज्किज्जत्ति) के० ढ कायनुं स्वरूप जाणे एटले ज्ञान कह्युं, अने ज्ञानपूर्वक क्रिया करवी ते सफलढे. तेकारण माटे आगल (तिउट्टिज्जा) एवो सूत्रपाठ कह्यो, ते (तिउट्टिज्जाके०) त्रोडे ते शुं जाणीने! शुं त्रोडे! ते कहेढे. (बंधणं) के० बांधीए जे जीवने प्रदेशे करी ते बंधन ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकार कर्मरूप इत्यर्थः ते कर्मना हेतु मिथ्यात्व, अविरत, कषाय अने योग अथवा परिग्रह आरंन ए बंधनना कारणने (परिजाणिया) के० जाणे. पण एकला जाणपणाथकी वांढितार्थसिद्धिडुर्लनढे; ते माटे क्रिया देखाडेढे. ते बंधन ज्ञपरिज्ञाए करी जाणीने पढी प्रत्याख्यानपरिज्ञा जे संयमानुष्ठान तेणे करी बंधनने त्रोडे. एटले आत्माथकी कर्म दूर करे, एवुं वचन श्रीसुधर्मास्वामिनाषित सांनलीने जं

बूस्वामिप्रमुख शिष्य पूछेछे के, (किमाहबंधणंवीरो) के० श्रीमहावीर देवे बंधन केवुं कह्युं छे! अथवा (किंवा जाणंतिउट्टई) के० शुं जाणीने ते बंधन त्रोडे? इति प्रथम श्लोकार्थः॥१

हवे बंधननुं कारण कहेछे; ए जगतमांहे ज्ञानावरणीयादिक जे कर्म ते बंधन जाणवुं, ते कर्म बांधवानां कारण आरंभ अने परिग्रहछे. तेमां पहेलुं परिग्रह देखाडेछे, (चित्तमंतमचित्तंवा) के० सचित्तते द्विपद चतुष्पदादिक अने अचित्तते सुवर्णरूप्यादिक ए बे प्रकारे परिग्रहछे, ते (परिगिज्झ किसामवि) के० थोडा तृण तुषादिक पोतानीपासे परिग्रहीने (अन्नंवा) के० अनेरा बीजा पासे परिग्रहावे तथा (अणु जाणाइ)के०परिग्रह करतांने अनुमोदे. एवो जीव, (एवं) के०एरीते (दुक्खा णमुच्चइ) के० दुःखथकी न मूकाए ॥२॥

श्रीः ॥ अथ श्री द्वितीयांगदीपिका प्रारभ्यते ॥

॥प्रणम्य श्रीजिनं वीरं, गौतमादिगुरूंस्तथा ॥ स्वाम्योपकृतये कुर्वे द्वितीयांगस्य दीपिकां ॥१॥ इह हि प्रवचने चत्वारोऽनुयोगाः ॥ तथाहि चरणकरणानुयोगः १ द्रव्यानुयोगः २ धर्मकथानुयोगः ३ गणितानुयोगश्च ४ तत्र प्रथमं श्रीमदाचारांगं चरणकरणानुयोगप्राधान्येन व्याख्यातं ॥ अथेदं श्रीसूत्रकृताख्यं द्वितीयांगं द्रव्यानुयोगप्राधान्येन व्याख्यायते ॥ सूत्रकृतांगमिति कः शब्दार्थः ॥ उच्यते ॥ सूत्रं स्वपरसमयसूचनं कृतं येन तत्सूत्रं तदेवांगमिति ॥ तत्रश्रुतस्कंधद्वयं ॥ प्रथमश्रुतस्कंधे षोडशाध्ययनानि ॥ द्वितीये सप्त ॥ तत्र प्रथमश्रुतस्कंधस्य प्रथमाध्ययने चत्वार उद्देशकाः ॥ तत्रापि पूर्वं प्रथमोद्देशकः ॥ तस्यायमादिःश्लोकः ॥ (बुज्झिज्झत्ति०) ॥१॥ व्याख्या ॥ बुध्येत जानीयात् ॥ किंतत् ॥ बंधनं बध्यते जीवोऽनेन बंधनं ज्ञानावरणाद्यष्टप्रकारं कर्म ॥ तद्धेतवो मिथ्यात्वादयोवा परिग्रहारंभादयो वा बंधनं जानीयादित्युक्तं ॥ नच ज्ञानमात्रेण सिद्धिरित्याह ॥ (तिउट्टिज्जा) (परिजाणिआ) परिज्ञायत्रोटयेत् अपनयेत् आत्मनःपृथक्कुर्यादित्यर्थः ॥ अथजंबुस्वामी शिष्यः श्रीसुधर्मस्वामिनमाह ॥ (किमाहेति) ॥ श्रीवीरः किंबंधनं आह उक्तवान् किंवा जानन् बंधनं त्रोटयति ॥ उत्तरमाह ॥ १ ॥ (चित्तेति) ॥ चित्तवत् सचित्तं द्विपदचतुष्पदादि अचित्तं कनकरजतादि तद्द्वयमपि परिगृह्य परिग्रहं कृत्वा कृशमपि स्तोकमपि स्वयमन्यान्वा ग्राहयित्वा ॥ गृण्हतोवाऽन्याननुज्ञाय एवंदुःखान्नमुच्यते॥ परिग्रहएव परमानर्थमूलमित्युक्तं ॥ परिग्रहतश्चावश्यंनावारंभस्तस्मिंश्च प्राणातिपात इति दर्शयति. ॥ २ ॥

॥ ॐनमःसिद्धाय ॥ अथ श्री शीलंगाचार्यकृत टीका ॥ आर्या वृत्तं ॥

स्वपरसमयार्थसूचकमनंतगमपर्ययार्थगुणकलितम् ॥ सूत्रकृतमंगमतुलं, विवृणोमि जिनान्नमस्कृत्य ॥ १ ॥ ॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ ॥ व्याख्यातमंगमिह यद्यपि सूरिमुख्यै,

नेत्तया तथापि विवरीतुमहं यतिष्ये ॥ किं पक्षिराजगतमप्यवगम्य सम्यक्, तेनैव वांछति पथा शलनो न गंतुम् ॥ २ ॥ ॥ इंड्रवज्रावृत्तम् ॥ ॥ ये मध्यवज्ञां व्यधुरिद्धबोधा, जानंति ते किंचन तानपास्य ॥ मत्तोपि यो मंदमतिस्तथास्ति, तस्योपकाराय ममैष यत्नः ॥ ३ ॥ इहापारसंसारांतर्गतेनाऽसुमताऽवाप्याऽतिडुर्लभं मनुजत्वं सुकुलोत्पत्तिसमग्रेंड्रियसामग्र्याद्युपेतेनाऽहेदर्शनमशेषकर्मोछित्तये यतितव्यम् ॥कर्मोछेदश्च सम्यग्विवेकसव्यपेक्षोऽसावप्याप्तोपदेशमंतरेण न नवति ॥ आप्तश्चात्यंतिकाद्दोषक्षयात्सचार्हन्नेवातस्तत्प्रणीतागमपरिज्ञाने यत्नो विधेयः ॥ आगमश्च द्वादशांगादिरूपः सोप्यार्यरक्षितमिश्रैरैदंयुगीनपुरुषानुग्रहबुध्ध्या चरणकरणड्रव्यधर्मकथागणितानुयोगनेदाच्चतुर्धा व्यवस्थापितः।तत्राचारांगं चरणकरणप्रधान्येन व्याख्यातमधुनाऽवसरायातं ड्रव्यप्राधान्येन सूत्रकृताख्यं द्वितीयमंगं व्याख्यातुमारन्यत इति । ननु चार्थस्य शासनाछास्त्रमिदं ।शास्त्रस्य चाशेषप्रत्यूहोपशांत्यर्थमादिमंगलं तथा स्थिरपरिचयार्थं मध्यमंगलं शिष्यप्रशिष्यविछेदार्थं चांत्यमंगलमुपादेयं तच्चेह नोपलन्यते । सत्यमेतत् । मंगलं हीष्टदेवतानमस्कारादिरूपं । अस्य च प्रणेतासर्वज्ञस्तस्य चापरनमस्कार्यान्नावान्मंगलकरणे प्रयोजनान्नावाच्च न मंगलान्निधानं । गणधराणामपि तीर्थकृडुक्तानुवादित्वान्मंगलाकरणं । अस्मदाद्यपेक्षयातु सर्वमेव शास्त्रं मंगलं।अथवा निर्युक्तिकारएवात्रन्नावमंगलमन्निधातुकामआह ॥ (तित्थयरे जिनवरे, सुत्तकरे गणहरें पणमि ऊणं । सूयगडस्स नगवउ, णिज्जुत्तिं कित्तइस्सामि) ॥ १ ॥ गाथापूर्वार्द्धेनेहन्नावमंगलमन्निहितं पश्चार्द्धेन तु प्रेक्षापूर्वकारिप्रवृत्त्यर्थंप्रयोजनादित्रयमिति । तडुक्तं—"उक्तार्थं ज्ञातसंबंधं, श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते ॥ शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः संबंधः सप्रयोजनः" । तत्र सूत्रकृतस्येत्यन्निधेयपदं । निर्युक्तिं कीर्त्तयिष्ये इति प्रयोजनपदं । प्रयोजनं तु मोक्षावाप्तिः । संबंधस्तु प्रयोजनपदानुमेय इति पृथक् नोक्तः ॥ तडुक्तं—"शास्त्रं प्रयोजनं चेति संबंधस्याश्रयावुन्नौ ॥ तडुक्त्यंतर्गतस्तस्मान्निन्नो नोक्तः प्रयोजनादिति समुदायार्थः ॥ अधुनाऽवयवार्थः कथ्यते ॥ तत्र तीर्थं ड्रव्यन्नावन्नेदाद्विधा । तथापि ड्रव्यतीर्थं नद्यादेः समः समुत्तरणमार्गः ॥न्नावतीर्थं तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि॥संसारार्णवाडुत्तारकत्वात् तदाधारोवा संघः प्रथमगणधरोवा तत्करणशीलास्तीर्थकरास्तान्नत्वेति क्रिया । तत्रान्येपामपितीर्थकरत्वसंन्नवेतद्व्यवछेदार्थमाह (जिनवरानिति) ॥ रागद्वेषमोहजितो जिनाः । एवंन्नूताश्च सामान्यकेवलिनोऽपिन्नवंति तद्व्यवछेदार्थमाह—(वराः) प्रधानाश्चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वितत्वेन तान्नत्वेति ॥ एतेषां च नमस्कारकरणमागमार्थोपदेष्टृत्वेनोपकारित्वात् । विशिष्टविशेषणोपादानं च शास्त्रस्य गौरवाधानार्थं शास्तुः प्राधान्येनेह शास्त्रस्यापि प्राधान्यं नवतीति न्नावः । अर्थस्य सूचनात्सूत्रं तत्करणशीलाः सूत्रकारास्ते च स्वयंबुद्धादयोपि नवंतीत्यतआह (गणधरास्तांश्च नत्वेति) ॥ सामान्याचार्याणां गणधरत्वेपि तीर्थक

रनमस्कारानंतरोपादानाद्गौतमादय एवेह विवक्षिताः ॥ प्रथमश्चकारः सिद्धाद्युप लक्षणार्थो द्वितीयः समुच्चितः । क्त्वाप्रत्ययस्य क्रियांतरसव्यपेक्षतामाह–स्वपर समयसूचनं कृतमनेनेति सूत्रकृतस्तस्य महार्थत्वाद्भगवांस्तस्यानेन च सर्वज्ञप्रणी तत्वमावेदितं भवति ॥ (निर्युक्तिं कीर्तयिष्ये) इति ॥ योजनंयुक्तिः । अर्थघटना निश्चये नाधिक्येन वा युक्तिर्निर्युक्तिः । सम्यगर्थप्रकटनमिति यावत् । निर्युक्तानां वा सूत्रेष्वेव प रस्परसंबंधानामर्थानामाविर्भावनं । युक्तशब्दलोपान्निर्युक्तिरिति । तां कीर्त्तयिष्येऽभिधास्य इति । इह सूत्रकृतस्य निर्युक्तिं कीर्त्तयिष्ये इत्यनेनोपक्रमद्वारमुपक्षिप्तं तच्चेहोद्देशोनिर्देशो इत्यादिनेपदनिहितमिति । तदनंतरं निक्षेपः ॥ सचत्रिविधः । तद्यथा–ओघनिष्पन्नो नामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्चेति । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽगं नामनिष्पन्ने तु निक्षे पे सूत्रकृतमिति॥१॥तत्र तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्येत्यतः पर्यायप्रदर्शनार्थं निर्युक्तिकृदाह(सूय गडं अंगाणं, बितियं तस्स य इमाणि नामाणि ॥ सूयगडं सुत्तकडं,सूयगमं चेव गोणाइं ॥) ॥ २ ॥ सूत्रकृतमित्येतदंगानां द्वितीयं तस्य चामून्येकार्थिकानि । तद्यथा–सूत्रमुत्पन्नमर्थ रूपतया तीर्थकृद्भ्यः । ततः कृतं ग्रंथरचनया गणधरैरिति । तथा (सूत्रकृतमिति) । सूत्रा नुसारेणतत्वावबोधः क्रियतेऽस्मिन्निति । तथा सूचाकृतमिति । स्वपरसमयार्थसूचनं सूचा साऽस्मिन्कृतेति।एतानि चास्य गुणनिष्पन्नानि नामानीति॥२॥सांप्रतं सूत्रकृतपदयोर्निक्षेपा र्थमाह (दव्वं तु पोंडयादी, भावे सुत्तमिह सूयगं नाणं। सण्णासंगहवित्ते, जातिणिबद्धेय कब्बादी) ॥ ३ ॥ (दव्वमित्यादि) । नामस्थापनेऽनादृत्य सूत्रं दर्शयति (पोंडया इति)। पों डगं च वनीफलाडुत्पन्नं कार्प्पासिकं । आदिग्रहणादंडजवालजादेर्ग्रहणं। भावसूत्रंत्वि हास्मिन्नधिकारे सूचकं ज्ञानं श्रुतज्ञानमित्यर्थः ॥ तस्यैव स्वपरार्थसूचकत्वादिति । तच्च श्रुतज्ञानसूत्रं चतुर्द्धा भवति । तद्यथा–संज्ञासूत्रं संग्रहसूत्रं वृत्तबद्धं जातिनिबद्धं । तत्र संज्ञासूत्रं यत् स्वसंकेतपूर्वकं निबद्धं ॥ तद्यथा–जे छेए सागरियं नसेवे सव्वामगंधं परिण्णा यणिरामगंधो परिव्वए इत्यादि । तथा लोकेपि पुलाः संस्कारक्षेत्रजाइत्यादि ॥ संग्रहसूत्रं तु यत्प्रभूतार्थसंग्राहकं ॥ तद्यथा द्रव्यमित्याकारिते समस्तधर्माऽधर्मादिद्रव्यग्रहइति । यदिवोत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति ॥ वृत्तनिबद्धं सूत्रं पुनर्यदनेकप्रकारया वृत्तजात्या निब द्धं ॥ तद्यथा(बुज्झिज्जत्तितिउट्टिज्जेत्यादि)॥ जातिनिबद्धं तु चतुर्द्धा॥ तद्यथा कथनीयंकथ्य मुत्तराध्ययनज्ञाताधर्मकथादि पूर्वर्षिचरितकथानकप्रायत्वात्तस्य । तथा गद्यं–ब्रह्मचर्या ध्ययनादि तथा पद्यं–छंदोनिबद्धं तथा गेयं यत्स्वरसंचारेण गीतिप्रायं निबद्धं । तद्यथा– कापिलीयमध्ययनं अधुवेअसासयंमि संसारंमि दुरकपउराए इत्यादि ॥३॥ इदानीं कृतप दनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृद्गाथामाह (करणं चकारउय, कडं च तिण्हंपि छक्कनिक्खेवो; दव्वे खित्ते काले, भावेणउ कारउ जीवो) ॥ ४ ॥ (करणंचेत्यादि) । इहकृतमित्यनेन कर्मोपात्तं

न चाकर्तृकं कर्म नवतीत्यर्थात्कर्तुराक्षेपो धात्वर्थस्य च करणस्यामीपां त्रयाणामपि प्रत्येकं नामादिः । पोढानिक्षेपस्तत्रगाथापश्चार्द्धेनाल्पवक्तव्यत्वात्तावत्करणमतिक्रम्यकारकस्य निक्षेपमाह—तत्र नामस्थापने प्रसिद्धत्वादनादृत्य इव्यादिकं दर्शयति (दवेइति ॥ इव्यविषये कारकश्चेत्यर्थः । सच इव्यस्य इव्येण इव्यनूतो वा कारको इव्यकारकः । तथा क्षेत्रे नरतादौ यः कारको यस्मिन् वा क्षेत्रे कारको व्याख्यायते सक्षेत्रकारकः । एवं कालेपि योज्यं ॥ नावेन तु नाव द्वारेण चिंत्यमानोंत्र कारकोयस्मात्सूत्रस्य गणधरः कारकः ॥ एतच्चसूत्रकृदेवोत्तरत्र वक्ष्यति (विइ अणुनावेत्यादौ)॥४॥सांप्रतं करणव्याचिख्यासया नामस्थापने मुक्त्वा इव्यादिकारणनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह ॥ (दवंपउगवीससा, पउगसामूल उत्तरे चेव ॥ उत्तरकरणं वंजण, अज्ञो उवक्करोसवो) ॥५॥ (दवइत्यादि) इव्ये इव्यविपये करणं चिंत्यते । तद्यथा इव्यस्य इव्येण इव्यनिमित्तंवा करणमनुष्ठानं इव्यकरणं । तत्पुनर्द्विधा । प्रयोगकरणं विस्रसाकरणं च । तत्र प्रयोगकरणं पुरुपादिव्यापारनिष्पाद्यं । तदपि द्विविधं । मूलकरणमुत्तरकरणं च । तत्रोत्तरंकरणं गाथापश्चार्द्धेन दर्शयति—उत्तरत्र करणमुत्तरकरणं कर्णवेधादि । यदिवा तन्मूलकरणं घटादिकं येनोपस्करेण दंडचक्रादिना अनिव्यज्यते स्वरूपतः प्रकाश्यते तडुत्तरकरणं । कर्तुरुपकारकः सर्वोप्युपस्करार्थ इत्यर्थः॥५॥पुनरपि प्रपंचतो मूलोत्तरकरणे प्रतिपादयितुमाह॥(मूलकरणं सरीरा, णि पंचतिसुकसुखंदमादीयं । दविंदियाणि परिणा, मियाणि विसउजहादीहिं) ॥६॥ (मूलकरणमित्यादि) । मूलकरणमौदारिकादीनि शरीराणि पंच । तत्र चौदारिकवैक्रियाहारकेषु त्रिषूत्तरकरणं कर्णस्कंधादिकं विद्यते । तथाहि सीसमुरोयर पिठी, दो बाहू करुयाय अठंगत्ति; त्रयाणामप्येतन्निष्पत्तिर्मूलकरणं । कर्णस्कंधाद्यंगोपांगनिष्पत्तिस्तूत्तरकरणं ॥ कार्मणतैजसयोस्तु स्वरूपनिष्पत्तिरेव मूलकरणमंगोपांगानावान्नोत्तरकरणं ॥ यदिवौदारिकस्य कर्णवेधादिकमुत्तरकरणं । वैक्रियस्यतूत्तरकरणमुत्तरवैक्रियं दंतकेशादिनिष्पादनरूपं वा आहारकस्यतु गमनाद्युत्तरकरणं ॥ यदिवौदारिकस्य मूलोत्तरकरणे गाथापश्चार्द्धेन प्रकारांतरेण दर्शयति—इव्येंडियाणि कलंबुकापुष्पाद्याकृतीनि मूलकरणं तेपामेव परिणामिनां विषौषधादिनिः पाटवाद्यापादनमुत्तरकरणमिति ॥६॥ सांप्रतमजीवाश्रितं करणमनिधातुकाम आह (संघायणेयपरिसा, डणाय मीसे तहेव पडिसेहो ॥ पडिसंखसगडथूणा, उट्टतिरिच्छादिकरणंच)॥७॥(संघायणेयइत्यादि) ॥ संघातकरणं आतानवितानीनूततंतुसंघातेन पटस्य ॥ परिसाटकरणं करपत्रादिनाशंखस्य निष्पादनं ॥ संघातपरिसाटकरणंशकटादेस्तडुनयनिपेधकरणं स्थूणादेरूर्ध्वतिरश्चीनाद्यापादनमिति ७ प्रयोगकरणमनिधाय विस्रसाकरणानिधित्सयाह (खंधेसुदुपएसा,दिएसु अब्नेसुविज्जुमाईसु । णिप्पसुगाणिदवा,णि जाणतंवीससाकरणं) ॥८॥ (खंधेसु इत्यादि) । विस्रसाकरणं साद्यनादिनेदाद्विधा ।

तत्रानादिकं धर्माऽधर्माऽकाशानामन्योन्यानुवेधेनावस्थानं । अन्योन्यसमाधानाश्रयणाच्च सत्यप्यनादित्वे करणत्वाविरोधः । रूपिद्रव्याणां च द्व्यणुकादिप्रक्रमेण भेदसंघाताभ्यां स्कंधत्वापत्तिः । सादिकं करणं पुद्गलद्रव्याणां च दशधा परिणामः । तद्यथा बंधन गति संस्थान भेद वर्ण गंध रस स्पर्श अगुरुलघु शब्दरूप इति । तत्र बंधः स्निग्धरुक्षत्वात् गतिपरिणामो देशांतरप्राप्तिलक्षणः । संस्थानपरिणामः परिमंडलादिकः पंचधा । भेदपरिणामः खंडप्रतरचूर्णिकाऽनुतटिकोत्करिकाभेदेन पंचधैव । खंडादिस्वरूपप्रतिपादकं चेदं गाथाद्वयं । तद्यथा (खंडेहिं खंडभेयं, पयरब्भेयं जहस्स पडलस्स ॥ चुन्नं चुन्नियभेयं, अणुतडियं वंसवक्कलियं) ॥१॥ (डुंडंमि समारोहे, भेए उक्केरियाय उक्केरं ॥ वीसस पउगमीसग, संघाय विउगविविहगमो)॥ २ ॥ वर्णपरिणामः पंचानां श्वेतादीनां वर्णानां परिणतिर्द्रव्यादिसंयोगपरिणतिश्च । एतत्स्वरूपं च गाथाभ्योऽवसेयं । ताश्चेमाः (जइ कालगमेगगुणं, सुक्किलयंपि य हविज्ज बहुय गुणं । परिणामिज्जइ कालं सुक्केण गुणाहियगुणेणं ॥ १ ॥ जइ सुक्किलमेगगुणं कालगदव्वं तु बहुगुणं जइय । परिणामिज्जइ सुक्कं, कालेण गुणाहियगुणेणं ॥ २ ॥ जइ सुक्कं एक्कगुणं, कालगदव्वंपि एक्कगुणमेव । कावोयं परिणामं, तुल्लगुणत्तेण संभवइ ॥३ एवं पंचविवण्णा, संजोएणं तु वण्णपरिणामो, एकत्तीसं भंगा, सव्वेवि य ते मुणेयव्वा ॥४॥ एमेवय परिणामो, गंधाण रसाण तहय फासाणं, संगाणाणय भणिउ, संजोगेणं बहुविगप्पो) ॥ ५ ॥ एकत्रिंशद्भंगा एवं पूर्यंते । दशद्विकसंयोगा दशत्रिकसंयोगाः पंचचतुष्कसंयोगा एकः पंचकसंयोगः प्रत्येकं वर्णाश्च पंचेति । अगुरुलघुपरिणामस्तु परमाणोरारभ्य यावदनंतानंतप्रदेशिकाः स्कंधाः सूक्ष्माः । शब्दपरिणामस्ततविततघनसुषिरभेदाच्चतुर्धा । तथा ताल्वोष्टपुटव्यापाराद्यभिनिवर्त्यश्च । अन्येपि पुद्गलपरिणामाश्छायादयो भवंति ते चामी (छाया य आयवो वा, उज्जोउ तहय अंधकारो य । एसो उ पुग्गलाणं, परिणामो फंदणा चेव ॥ १ ॥ सीयाणा य पगासा, छायाणाइत्त्रिया बहुवि गप्पा । उह्णो पुणप्पगासो, णायव्वो आयवो नाम ॥ २ ॥ नविसीउ नविउह्णो, समोपगासोय होइ उज्जोउ । कालं मइलं तंपिय, वियाणतं अंधयारंति ॥ ३ ॥ दव्वस्स चलण पप्फं, दणाउ सापुण गईउ निद्दिठा । वीसस पउग मीसा, अत्तपरेणं तु उभउवी)॥ ४ ॥ तथाऽभ्रेंद्रधनुर्विद्युदादिषु कार्येषु-यानि पुद्गलद्रव्याणि परिणतानि तद्विस्रसाकरणमिति॥७॥गतंद्रव्यकरणं इदानीं क्षेत्रकरणाभिधित्सयाऽह ॥ (णविणा आगासेणं,कीरइजं किंचि खेत्तमागासं। वंजण परियावन्नं,उच्छुकरणमादियं बहुहा) ॥ण॥ (णविणेत्यादि) ॥ क्षिनिवासगत्योरस्मादधिकरणे ष्ट्रना क्षेत्रमिति । तच्चावगाहदानलक्षणमाकाशं । तेनचावगाहदानलक्षणयोग्येन विना न किंचिदपि कर्तुं शक्यत इत्यतः क्षेत्रकरणं । क्षेत्रकरणं नित्यत्वेपि चोपचारतः क्षेत्रस्यैव करणं क्षेत्रकरणं । यथा गृहादावपनीते कृतमाकाशं उत्पादिते विनष्टमि

ति। यदिवा व्यंजनपर्यायापन्नं शब्दद्वाराऽयातमिक्षुकरणादिकमितीक्षुक्षेत्रकरणं ॥ लांग लादिना संस्कारः क्षेत्रकरणं। तच्च बहुधा शालिक्षेत्रादि नेदादिति॥ए॥सांप्रतं कालकरणा निधित्सयाऽह ॥ (कालो जो जावइउ, जं कीरइ जंमि जंमि कालंमि । उहेण णामउ पुण, करणा एक्कारस हवंति)॥१०॥ (कालोजोइत्यादि)। कालस्यापि मुख्यं करणं न संन्न वतीत्यौपचारिकं दर्शयति ॥ कालोयोयावानिति। यःकश्चिद्घटिकादिको नलिकादिना व्यवच्छिद्य व्यवस्थाप्यते तद्यथा। षष्ठ्युदकपलमाना घटिका। द्विर्घटिकोमुहूर्त्तस्त्रिंशन्मुहूर्तैमहोरात्रमित्यादि तत्कालकरणमिति । यद्वा यत् यस्मिन् काले क्रियते यत्रवा काले करणं व्याख्यायते तत्कालकरणमेतदोघतः ॥१०॥ नामतस्त्वेकादशकरणानि तानि चामूनि (बवंच बालवं चैव, कोलवं तेत्तिलं तहा। गरादि वणियं चेव,विठ्ठी हवइ सत्तमा ॥११॥ सउणि चउप्पय नागं,किंसुग्घं च करणं नवे एयं। एते चत्तारि धुवा,अन्ने करणा चला सत्त ॥१२॥ चाउद्दसि रत्तीए, सउणी पडिवज्जए सदा करणं।तत्तो अहक्कमं खलु,चउप्पयं णागकिंसुग्घं) ॥१३॥ एतद्गाथात्रयं सुखोन्नेयमिति ॥११॥१२॥१३॥ इदानीं नावकरणप्रतिपादनायाह (नावे पउग वीसस, पउगसा मूल उत्तरे चेव। उत्तर कम सुय जोवण, वन्नादीलो अणादीसु) ॥१४॥ (नावे पउगेत्यादि)। नावकरणमपि द्विधा। प्रयोग विस्रसानेदात्। तत्र जीवाश्रितं प्रायोगिकं मूलकरणं पंचानां शरीराणां पर्याप्तिस्तानि हि पर्याप्तिनामकर्मोदयादौदयिके नावे वर्तमानो जीवः स्ववीर्यजनितेन प्रयोगेण निष्पादयति । उत्तरकरणं तु गाथापश्चार्द्धेनाह–उत्तरकरणं क्रमश्रुतयौवनवर्णादिचतूरूपं। तत्र क्रमकरणं शरीरनिष्पत्त्युत्तरकालं बालयुवस्थविरादिक्रमेणोत्तरोत्तरोऽवस्थाविशेषः। श्रुतकरणं तु व्याकरणादिपरिज्ञानरूपोऽवस्थाविशेषोऽपरकलानां परिज्ञानरूपश्चेति । यौवनकरणंकालकृतो वयोवस्थाविशेषो रसायनाद्यापादितोवेति ॥ तथा वर्णगंधरसस्पर्शकरणं विशिष्टेषु नोजनादिषु सत्सु यद्विशिष्टवर्णाद्यापादनमित्येतच्च पुजलविपाकित्वा द्वर्णादीनामजीवाश्रितमपिड्रष्टव्य मिति १४ इदानीं विस्रसाकरणानिधित्सयाऽह॥(वन्नादियायवन्ना,दिएसुजेके इवीससा मेला ॥ ते हुंति थिरा अथिरा, ग्राया तवडुह्मादीसु)॥१५॥ (वन्नाइत्यादि) वर्णादिका इति रूपरसगंधस्पर्शास्ते यदा परेषामपरेषां वा स्वरूपादिन। मिलंति ते वर्णादिमेलकाविस्रसाकरणं ॥ तेच मेलकाः स्थिरा असंख्येयकालावस्थायिनोऽस्थिराश्च क्षणावस्थायिनः संध्यारागाभ्रेंद्रधनुरादयोन्नवंति ॥ तथा ग्रायात्वेनातपत्वेनच पुजलानां विस्रसा परिणामत एव परिणामो नावकरणं ॥ स्तनप्रच्यवनानंतरं डुग्धादेश्च प्रतिक्षणं कठिणाम्लादिनावेन गमनमिति१५सांप्रतं श्रुतज्ञानमधिकृत्य मूलकरणाऽनिधित्सयाऽह ॥ (मूलकरणं पुण सुते, तिविहे जोगे सुनासुने झाणे ॥ ससमयसुएण पगयं, अज्ञवसाणेण य सुहेणं)॥ १६ ॥ (मूलेत्यादि) श्रुते पुनः श्रुतग्रंथे मूलकरणमिदं त्रिविधे योगे मनोवाक्का

यत्लक्षणे व्यापारे शुनाशुने च ध्याने वर्तमानैर्ग्रंथरचना क्रियते । तत्र लोकोत्तरैः शुना शुनध्यानावस्थितैर्ग्रंथरचना विधीयते ॥ लोकेंत्वशुनध्यानाश्रितैर्ग्रंथग्रंथनं क्रियतइति ॥ लौकिकग्रंथस्य कर्मबंधहेतुत्वात् कर्तुरशुनध्यायित्वमवसेयं ॥ इहतु सूत्रकृतस्य तावत्स्व समयेन शुनाध्यवसायेनच प्रकृतं ॥ यस्माद्गणधरैःशुनध्यानावस्थितैरिदमंगं कृतमिति १६ तेषांच ग्रंथरचनांप्रति शुनध्यायिनां कर्म द्वारेण योऽवस्थाविशेषस्तद्दर्शयितुकामो निर्यु क्तिकृदाह ॥ (ठिइअणुनावे बंधण, निकायणनिहत्त दीहहस्सेसु ॥ संकम उदीरणाए उदये वेदेउवसमेयं)॥१७॥(ठिइइत्यादि) । तत्र कर्मस्थितिं प्रति अजघन्योत्कृष्टकर्मस्थिति निर्गणधरैः सूत्रमिदं कृतमिति ॥ तथाऽनुनावो विपाकस्तदपेक्ष्या मंदानुनावैस्तथा वं धमंगीकृत्य ज्ञानावरणीयादिप्रकृतीर्मंदानुनावा बध्नद्भिस्तथाऽनिकाचयद्भिरेवं निधत्ता वस्थामकुर्वद्भिस्तथा दीर्घस्थितिकाः प्रकृतीर्न्हसीयसीर्जनयद्भिस्तथोत्तरप्रकृतीर्बध्यमाना सु संक्रामयद्भिस्तथोदयवतां कर्मणामुंदीरणां विदधानैरप्रमत्तगुणस्थैस्तु शाताऽशाताऽ यूंष्यनुदीरद्भिस्तथा मनुष्यगति पंचेंद्रिय जात्यौदारिक शरीर तदंगोपांगादिकर्मणा मुदये वर्तमानैस्तथावेदमंगीकृत्य पुंवेदेसति तथोवसमेति सूचनात्सूत्रमिति क्षायोपश मिकानावे वर्तमानैर्गणधारिनिरिदं सूत्रकृतांगं ग्रंथितमिति १७सांप्रतं स्वमनीषिकापरिहार द्वारेण करणप्रकारमनिधातुकामआह ॥ (सोऊण जिणवरमतं, गणहारी काउं तरक उं वसमं ॥ अज्ञवसाणेण कयं, सूत्तमिणं तेणसूयगडं) ॥१८॥ (सोऊणेत्यादि) श्रुत्वा निशम्य जिनवराणां तीर्थकराणां मतमनिप्रायं मातृकादिपदं गणधरैर्गौतमादिनिः कृत्वा तत्रग्रंथरचने क्षयोपशमं तत्प्रतिबंधकर्मक्षयोपशमादत्तावधानैरितिनावः ॥ शुनाध्यवसा येन वसता कृतमिदं सूत्रं तेनसूत्रकृतमिति॥१८॥इदानीं कस्मिन् योगे वर्तमानैस्तीर्थकृद्भि र्नापितं कुत्रवा गणधरैर्दृब्धमित्येतदाह ॥(वइजोगेणपनासिय, मणेगजोगंधराणसाहूणं॥ तो वय जोगेणकयं, जीवस्स सनावियगुणेण)॥ १९ ॥ (वइजोगेणेत्यादि) । तत्र तीर्थ कृद्भिः क्षायिकज्ञानवर्तिनिर्वाग्योगेनार्थः प्रकर्षेण नापितः प्रनापितो गणधराणां ॥ तेच नप्राकृतपुरुषकल्पाः किंत्वनेकयोगधराः ॥ तत्र योगः क्षीराश्रवाद्विलब्धिकलापसंबंधस्तं धारयंतीत्यनेकयोगधरास्तेषां प्रनाषितमिति सूत्रकृतांगाऽपेक्ष्या नपुंसकता ॥ साधवश्चा त्र गणधरा एव गृह्यंते तडद्देशेनैव नगवतामर्थप्रनाषणादिति ॥ ततोर्थं निशम्य गणधरै रपि वाग्योगेनैव कृतं तच्च जीवस्य स्वानाविकेन गुणेनेति ॥ स्वस्मिन्नावे नवः स्वानावि कः प्राकृतइत्यर्थः ॥ प्राकृतनाषयेत्युक्तं नवति ॥ नपुनः संस्कृतया लट्लिट्शप् प्रकृतिप्रत्य यादिविकारविकल्पनानिष्पन्नयेति ॥१९॥ पुनरन्यथा सूत्रकृतनिरुक्तमाह ॥ (अरकरगुण मतिसंघा; यणाएकम्मपरिसाडनाएय ॥ मङ्जयजोगेण कयं, सुत्तमिणं तेण सूत्तगर्म) ॥ २० ॥ (अरकरेत्यादि) । अक्षराणि अकारादीनि तेषां गुणोऽनंतगमपर्यायत्वमुच्चारणं

वाऽन्यथाऽर्थस्य प्रतिपादयितुमशक्यत्वात् ॥ मतेर्मतिज्ञानस्य संघटना मतिसंघटना अक्षर गुणेन मतिसंघटना ॥ नावश्रुतस्य ड्व्यश्रुतेन प्रकाशनमित्यर्थः ॥ अक्षरगुणस्य वा मत्या बुध्या संघटना रचनेति यावत् ॥ तया ऽक्षरगुणमतिसंघटनया ॥ तथा कर्मणां ज्ञानावरणा दीनां परिशाटना जीवप्रदेशेन्यः पृथक्करणरूपा तयाच हेतुनूतया सूत्रकृतांगं कृतमिति संबन्धः । तथाहि । यथा यथा गणधराः सूत्रकरणायोद्यमं कुर्वन्ति तथा तथा कर्मपरिशा टना नवति । यथा यथाच कर्मपरिशाटना तथा तथा ग्रंथरचनायोद्यमः संपद्यत इति । ए तदेव गाथापश्चार्धेन दर्शयति । तडुनययोगेनेति ॥ अक्षरगुणमतिसंघटनायोगेन कर्मपरि शाटनायोगेन च ॥ यदि वा वाग्योगेन मनोयोगेन च कृतमिदं सूत्रं तेन सूत्रकृतमिति । इहा ऽनंतरं सूत्रकृतस्य निरुक्तमुक्तमधुना सूत्रपदस्य निरुक्तानिधित्सयाह । “सुत्तेण सुत्तियं चिय, अबा नह सूइयाय जुत्ताय ॥ तोबहुविहप्पउत्ता एया पसिद्धा अणादीया” ॥२१॥ सुत्तेणेत्यादि । अर्थस्य सूचनात्सूत्रं तेन सूत्रेण केचिदर्थाः साक्षात्सूत्रिता मुख्यतयो पात्तास्तथाऽपरे सूचिता अर्थापत्त्याक्षिप्ताः ॥ साक्षादनुपादानेपि दध्यानयनचोदनया तदा धारानयनचोदनावदिति । एवंच कृत्वा चतुर्दशपूर्वविदः परस्परं षट्स्थानपतिता नवंति । तथा चोक्तं । अस्करलंनेण समा, ऊणहिया हुंति मतिविसेसेहिं । तेविथ मईविसेसा, सुयणाणप्नितरेजाण ॥१॥ तत्र ये साक्षाडुपात्तास्तान् प्रति सर्वेपि तुल्याः ॥ ये पुनःसूचिता स्तदपेक्षया कश्चिदनंतनागाधिकमर्थं वेत्त्यपरोऽसंख्येयनागाधिकमन्यः संख्येयनागाधि कं तथान्यः संख्येयाऽसंख्येयाऽनंतगुणमिति तेच सर्वेपि युक्ता युक्त्युपपन्नाः सूत्रो पात्ताएव वेदितव्याः । तथा चानिहितं “ तेवियमईविसेसे ” इत्यादि । ननु किं सूत्रो पात्तेन्योऽन्येपि केचनार्थाः संति येन तदपेक्षया चतुर्दशपूर्वविदां पट्स्थानपतितत्वमुद् घुष्यते । बाढं विद्यते । यतोऽनिहितं । पन्नवणिज्जानावा, अणंतनागोउ अणनिल प्पाणं । पन्नवणिज्जाणं पुण, अणंतनागो सुयनिबद्धो ॥ १ ॥ यतश्चैवं ततस्ते अर्था आगमे बहुविधं प्रयुक्ताः सूत्रैरुपात्ताः केचन साक्षात्केचिदर्थापत्त्या समुपलन्यन्ते । य दि वा क्वचिद्देशग्रहणं क्वचित्सर्वार्थोपादानमित्यादि । यैश्च पदैस्ते अर्थाः प्रतिपाद्यन्ते तानि पदानि प्रकर्षेण सिद्धानि प्रसिद्धानि न साधनीयानि । तथाऽनादीनि च तानि नेदानीमुत्पाद्यानि ॥तथा चेयं द्वादशांगी शब्दार्थरचना द्वारेण विदेहेषु नित्या नरतैराव तेष्वपि शब्दरचना द्वारेणैव प्रति तीर्थकरं क्रियते ऽन्यथा तु नित्यैव । एतेन चोच्चरित प्रध्वंसिनो वर्णा इत्येतन्निराकृतं वेदितव्यमिति॥२१॥सांप्रतं सूत्रकृतस्य श्रुतस्कंधाध्ययनादि निरूपणार्थमाह । “दोचेवसुयखंधा, अज्झयणाइं च हुंति तेवीसं॥ तेत्तिसुदेसणकाला, आ याराउ डुगुणमंगं” ॥२२॥ (दोचेवेत्यादि)। द्वावत्र श्रुतस्कन्धौ त्रयोविंशतिरध्ययनानि त्रय स्त्रिंशडुद्देशनकालास्ते चैवं नवंति । प्रथमाध्ययने चत्वारो द्वितीये त्रयस्तृतीये चत्वारः ॥

एवं चतुर्थपंचमयो र्द्वौ द्वौ तथैकादशस्वेकसरकेष्वेकादशैवेति । प्रथमश्रुतस्कन्धे तथा द्वितीयश्रुतस्कन्धे सप्ताध्ययनानि तेषां सप्तैवोद्देशनकाला एवमेते सर्वेपि त्रयस्त्रिंशदिति।एतच्चाचारांगाद्द्विगुणमंगं षट्त्रिंशत्पदसहस्रपरिमाणमित्यर्थः ॥२२॥ सांप्रतं सूत्रकृतांगनिक्षेपानंतरं प्रथमश्रुतस्कंधस्य नामनिष्पन्ननिक्षेपान्निधित्सयाऽह । "निरकेवोगाहाए,चउव्विहो छव्विहोय सोलससु॥निरकेवोयसुयंमिय,खंधेयचउव्विहो होइ"॥२३॥ (निरकेवो इत्यादि) इहाद्यश्रुतस्कंधस्य गाथाषोडशक इति नाम। गाथाख्यं षोडशमध्ययनं यस्मिन् श्रुतस्कंधे सतथेति । तत्र गाथाया नामस्थापनाद्रव्यभावश्चतुर्विधो निक्षेपः ॥ नामस्थापनेप्रसिद्धे ॥ द्रव्यगाथा द्विधा ॥ आगमतो नो आगमतश्च ॥ तत्र आगमतो ज्ञाता तत्र चानुपयुक्तोऽनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा । नोआगमतस्तु त्रिधा । ज्ञशरीरद्रव्यगाथा भव्यशरीरद्रव्यगाथा ताभ्यां विनिर्मुक्ता च ॥ 'सत्तच्छतरूविसामणसेहयाताण छछणह जलया॥ गाहाएपच्छद्धे भेउ छगो त्ति इक्ककलो ' इत्यादिलक्षणलक्षिता पत्रपुस्तकादिन्यस्तेति ॥ भावगाथापि द्विविधा ॥ आगमत आगमभेदात् ॥ तत्रा ऽऽगमतो गाथापदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तः । नोआगमतस्त्विदमेव गाथाख्यमध्ययनं ॥ आगमैकदेशत्वादस्य षोडशकस्यापि नामस्थापनाद् द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् षोढा निक्षेपः ॥ तत्र नामस्थापने क्षुण्णे । द्रव्यषोडशकं ज्ञशरीरभव्यशरीरविनिर्मुक्तं । सचित्तादीनि षोडश द्रव्याणि । क्षेत्रषोडशकं षोडशाकाशप्रदेशाः ॥ कालषोडशकं षोडश समया एतत्कालावस्थापि वा द्रव्यमिति ॥ भावषोडशकमिदमेवाध्ययनषोडशकं क्षायोपशमिकभाववृत्तित्वादिति ॥ श्रुतस्कंधयोः प्रत्येकं चतुर्विधो निक्षेपः ॥ सचान्यत्र निक्षेपेण प्रतिपादित इति नेह प्रतन्यते ॥२३॥ सांप्रतमध्ययनानांप्रत्येकमर्थाधिकारदिदर्शयिषयाऽह ॥ "ससमय परसमयपरू, वणायणाऊण बुझणा चेव ॥ संबुद्धस्सुवसग्गा थीदोसविवज्जणाचेव ॥ २४ ॥ उवसग्गभीरुणोथी वस्साणरएसु होज्ज उववाउ ॥ एवमहप्पावीरो जयमास तहा जएज्जाह ॥ २५ ॥ परिचत्तनिशीलकुशी,लसुशील स विग्गशीलवंचेव ॥ णाऊण वीरियदुगं पंमिय वीरियपट्ठज्ज पवयइ ॥ २६ ॥ धम्मोसमाहिमग्गो समोसढा चउसुसव्ववादीसु ॥ सीसगुण दोसकहणा गंथंमि सदा गुरुनिवासो ॥२७॥ आदाणिय संकलिया आदाणीयंमि आदयचरित्तं ॥ अप्पग्गंथे पंमिय वयणेणंहा गहाइ अहिगारो" ॥२८॥ (ससमय इत्यादि गाथाःपंच) । तत्र प्रथमाध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणा । द्वितीये स्वसमयगुणान् परसमयदोषांश्च ज्ञात्वा स्वसमय एव बोधो विधेय इति ॥ तृतीयाध्ययने तु संबुद्धः सम्यग्योपसर्गसहिष्णुर्भवति तदभिधीयते ॥ चतुर्थे स्त्रीदोषविवर्जना ॥ पंचमेत्वयमर्थाधिकारः ॥ तद्यथा ॥ उपसर्गाऽसहिष्णोः स्त्रीवशवर्तिनोऽवश्यं नरकेषु पात इति ॥ षष्ठे पुनरेवमित्यनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहनेन स्त्रीवर्जनेन च भगवान् महावीरो जेतव्यस्य कर्मणः संसारस्य वा पराभवेन जयमाह ॥

ततस्तत्रैव यत्नं विधत्त यूयमिति शिष्याणामुपदेशो दीयते ॥ सप्तमे त्विदमनिहितं ॥ त द्यथा ॥ निःशीला गृहस्थाः कुशीलास्त्वन्यतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयो वा ते परित्यक्ता येन सा धुना स परित्यक्तनिःशीलकुशील इति ॥ तथा सुशीला उद्युक्तविहारिणः संविग्नाः संवे गमग्नास्तत्सेवाशीलः शीलवान् नवतीति । अष्टमे त्वेतत्प्रतिपाद्यते । तद्यथा । ज्ञात्वा वीर्य द्वयं पंमितवीर्ये प्रयत्नो विधीयत इति ॥ नवमे चार्थाधिकारस्त्वयं ॥ तद्यथा ॥ यथाऽवस्थि तोधर्मः कथ्यते ॥ दशमेतु समाधिः प्रतिपाद्यते ॥ एकादशेतु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्म को मोक्षमार्गः कथ्यते ॥ द्वादशे त्वयमर्थाधिकारः ॥ तद्यथा । समवसृता अवतीर्णा व्य वस्थिताश्चतुर्षु मतेषु क्रियाऽक्रियाऽज्ञानवैनयिकाख्येष्वनिप्रायेषु त्रिषष्ट्युत्तरशतत्रय संख्याः पाखंडिनः स्वीयं स्वीयमर्थं प्रसाधयंतः समुबितास्तडुपन्यस्तसाधनदोषोद्भा वनतो निराक्रियंते ॥ त्रयोदशे त्विदमनिहितं ॥ तद्यथा ॥ सर्ववादिषु कपिलकणा दाक्षपादशौद्धोदनिजैमिनिप्रनृतिमतानुसारिषु कुमार्गप्रणेतृत्वं साध्यते ॥ चतुर्दशेतु ग्रंथाख्येऽध्ययनेऽयमर्थाधिकारः ॥ तद्यथा । शिष्याणां गुणदोषकथना तथा शिष्यगुणसंपडु पेतेन च विनेयेन नित्यं गुणानुरूपगुरुकुलवासो विधेय इति ॥ पंचदशे त्वादानीयाख्ये ऽध्ययनेऽर्थाधिकारोऽयं ॥ तद्यथा ॥ आदीयंते गृह्यंते उपादीयंते इत्यादानीयानि पदान्य र्था वा ते च प्रागुपन्यस्तपदैरर्थैश्च प्रायशोऽत्र संकलिताः॥तथा आयतं चरित्रं सम्यक्चरित्रं मोक्षमार्गप्रसाधकं तच्चात्र व्यावर्ण्यत इति ॥ षोमशेतु गाथाख्येऽल्पग्रंथेऽध्ययनार्थोयं व्यावर्ण्यते। तद्यथा ॥ पंचदशनिरध्ययनैर्योर्थोनिहितः सोत्र पंमितवचनेन संक्षिप्तानिधा नेन प्रतिपाद्यत इति ॥ ‘गाहा सोलसगाणं पिंडबोवन्निउ समासेण ॥ इत्तो इक्किक्कं पुण अक्षयणं कित्तयिस्सामि’ ॥१॥ तत्राद्यमध्ययनं समयाख्यं तस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्य नुयोग द्वाराणि नवंति ॥ तत्रोपक्रमणमुपक्रम्यते वाऽनेन शास्त्रं न्यासदेशं निक्षेपावसरमा नीयत इत्युपक्रमः। सच लौकिको नामस्थापनाद् इव्यक्षेत्रकालनावनेदेन षड्रूप आवश्यका दिष्वेवप्रपंचितः॥शास्त्रीयोप्यानुपूर्वीनामप्रमाणवक्तव्यतार्थाधिकारसमवताररूपः षोढैव । तत्रानुपूर्व्यादीन्यनुयोग द्वारानुसारेण ज्ञेयानि तावद्यावत्समवतारसूत्रैस्तदध्ययनमानु पूर्व्यादिषु यत्र यत्र समवतरति तत्र तत्र समवतारयितव्यं ॥ तत्र दशविधायामानुपूर्व्यांग णनानुपूर्व्यां समवतरति सापि त्रिधा। पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी चेति॥तत्रेदमध्य यनं पूर्वानुपूर्व्यां प्रथमं पश्चानुपूर्व्यां षोडशम्। अनानुपूर्व्यां तु चिंत्यमानमस्यामेवैकादिका यामेकोत्तरिकायां षोडश गन्नतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासद्विरूपोनसंख्यानेदं नवति ॥ अना नुपूर्व्यांतु षोडशनेदसंख्यापरिज्ञानोपायोयं । तद्यथा । ‘एकाद्या गन्नपर्यंताः परस्परसमाह ताः॥राशयस्तद्धि विज्ञेयं विकल्पगणिते फलं’॥१॥ प्रस्तारानयनोपायस्त्वयं॥पुव्वाणुपुव्विहेठा

१२३४५ इत्यादि॥तत्र।'गणितेंत्यविभक्ते तु लब्धं शेषैर्विभाजयेत्॥ आदावंते च तत्
२१३४५ स्थाप्यं विकल्पगणिते क्रमात्'॥१॥ अयं श्लोकः शिष्यहितार्थं विव्रियते। त
१३२४५ त्र सुखावगमार्थं षट् पदानि समाश्रित्य तावत् श्लोकार्थो योज्यते। तत्रैवं
३१२४५ षट् पदानि स्थाप्यानि। १२३४५६। एतेषां परस्परताडनेन सप्तशतानि
२३१४५ विंशत्युत्तराणि गणितमुच्यते। तस्मिन् गणितेऽत्योत्र षट्कस्तेन भागे हृते विं
३२१४५ शत्युत्तरं शतं लभ्यते तच्च षसां पंक्तीनामंत्यपंक्तौ षट्कानां न्यस्यते। तदधः
१२४३५ पंचकानां विंशत्युत्तरमेवशतम्॥एवमधोधश्चतुष्कत्रिकद्विकैकानां प्रत्येकं विंश
त्युत्तरशतं न्यस्यमेवमंत्यपंक्तौ सप्त शतानि विंशत्युत्तराणि भवंत्येषा च गणितप्रक्रियाया आ
दिरुच्यते। तथा यत्तद्विंशत्युत्तरं शतं लब्धं तस्य च पुनः शेषेण पंचकेन भागेनापहृते ल
ब्धा चतुर्विंशतिस्तावंतस्तावन्तश्च पंचकचतुष्कत्रिकद्विकैकाः प्रत्येकं पंचमपंक्तौ न्यस्या याव
द्विंशत्युत्तरं शतमिति॥ तदधोग्रतो न्यस्तमंकं मुक्त्वा येन्ये तेषां यो यो महत्संख्यः स सोध
स्ताच्चतुर्विंशतिसंख्य एव तावत् न्यस्यो यावत्सप्तशतानि विंशत्युत्तराणि पंचमपङ्क्तावपि
पूर्णानि भवंति॥ एषा च गणितप्रक्रियेत्यभिधीयते॥ एवमनया प्रक्रियया चतुर्विंशतेः शे
षचतुष्ककेन भागे हृते षट् लभ्यंते तावंतश्चतुःपंक्तौ चतुष्ककाः स्थाप्यास्तदधः षट्त्रिकाः
पुनर्द्विका भूय एककाः पुनः पूर्वन्यायेन पंक्तिः पूरणीया॥ पुनः षट्कस्य शेषत्रिकेण
भागे हृते द्वौ लभ्येते तावन्मात्रौ त्रिकौ तृतीयपंक्तौ शेषं पूर्ववत्। शेषपंक्तिद्वये शेषमंकद्व
यं क्रमोत्क्रमाभ्यां व्यवस्थाप्यमिति॥ तथा नाम्नि षड्विधनाम्न्यवतरति। यतस्तत्र षड्
भावाः प्ररूप्यंते। श्रुतस्यच क्षायोपशमिकभाववर्तित्वात्। प्रमाणमधुना प्रमीयतेनेने
ति प्रमाणं॥तत् द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदाच्चतुर्द्धा। तत्रास्याध्ययनस्य क्षायोपशमिकभावव्य
वस्थितत्वाद्भावप्रमाणेऽवतारः। भावप्रमाणं च गुण, नय, संख्या, भेदात्रिधा। तत्रापि गु
णप्रमाणे समवतारः। तदपि जीवाजीवभेदाद् द्विधा। समयाध्ययनस्य च क्षायोपशमिक
भावरूपत्वात्तस्य च जीवानन्यत्वाज्जीवगुणप्रमाणे समवतारः। जीवगुणप्रमाणमपि ज्ञान,
दर्शन, चारित्र, भेदात्रिविधं। तत्रास्य बोधरूपत्वात् ज्ञानगुणप्रमाणे समवतारः॥ तदपि
प्रत्यक्षानुमानोपमानागमभेदाच्चतुर्द्धा। तत्रास्यागमप्रमाणे समवतारः॥ सोपि लौ
किक, लोकोत्तर, भेदाद् द्विधा। तदस्य लोकोत्तरे समवतारस्तस्य च सूत्रार्थतदुभयरूपत्वा
त्रैविध्यं। त्रिष्वपि समवतारः। यदि वाऽत्मानंतरपरंपरभेदादागमस्त्रिविधस्तत्र तीर्थ
कृतामर्थापेक्षयाऽत्मागमो गणधराणामनंतरागमस्तच्छिष्याणां परंपरागमः। सूत्रापेक्षया
तु गणधराणामात्मागमस्तच्छिष्याणामनंतरागमस्तदन्येषां परंपरागमः। गुणप्रमाणानंत
रं नयप्रमाणावसरस्तस्य चेदानीं पृथक्त्वानुयोगे नास्ति समवतारो भवेद्वा पुरुषापे
क्षया॥ तथा चोक्तं॥ मूढनइयं सुयं का,लियंतुणणया समोरयंति इहं॥ अपु

हत्ते समुयारो एचि पुहुत्ते समोयारो ॥ १ ॥ तथा ॥ आसज्ज उ सोयारं नएनय विसारउ बूया' ॥ संख्याप्रमाणं त्वष्टधा ॥ नाम, स्थापना, ड्व्य, क्षेत्र, काल, परिमाण, पर्यव, जाव, जेदात् । तत्रापि परिमाणसंख्यायां समवतारः ॥ सापि कालिकदृष्टिवादजावात् द्विधा ॥ तत्रास्य कालिकपरिमाणसंख्यायां समवतारस्तत्राप्यंगानंगयोरंगप्रविष्टे समवतारः । पर्यवसंख्यायां त्वनंताः पर्यवाः ॥ तथा संख्येयान्यक्षराणि संख्येयाः संघाताः संख्येयानि पदानि संख्येयाः श्लोकाः संख्येया गाथाः संख्येया वेदाः संख्येयान्यनुयोग द्वाराणि । सांप्रतं वक्तव्यतायाः समवतारश्चिंत्यते ॥ साच स्व, पर, समय, तडुजयजेदात्त्रिधा । तत्रेदमध्ययनं त्रिविधायामपि समवतरति । अर्थाधिकारो द्वेधा॥ अध्ययनार्थाधिकार उद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राध्ययनार्थाधिकारोऽजिहितः । उद्देशार्थाधिकारं तु गाथांतरितं निर्युक्तिक्त वक्ष्यति । सांप्रतं निक्षेपावसरः सच त्रिधा । उघनिष्पन्नो नामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्च । तत्रौघनिष्पन्नेऽध्ययनं तस्यच निक्षेप आवश्यकादौ प्रबंधेनाजिहित एव । नामनिष्पन्नेतु समय इति॥ २ ७॥नाम तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकार आह॥ "नामंठवणा दविए खेत्ते काले कुतित्थसंगारे ॥ कुलगणसंकरगंडी । बोधवा जावसमएय" ॥ २ ए॥ (नामं ठवणाइत्यादि) । नाम, स्थापना, ड्व्य, क्षेत्र, काल, कुतीर्थ, संगार, कुल, गण, संकर, गंडी, जाव, जेदात् द्वादशधा समयनिक्षेपः । तत्र नामस्थापने क्षुस्से । ड्व्यसमयो ड्व्यस्य सम्यगयनं परिणतिविशेषः स्वजाव इत्यर्थः । तद्यथा । जीवड्व्यस्योपयोगः पुजलड्व्यस्य मूर्तत्वं धर्माधर्माकाशानां गतिस्थित्यवगाहदानलक्षणोऽथवा योयस्य ड्व्यस्यावसरो ड्व्यस्योपयोगकाल इति ॥ तद्यथा ॥ 'वर्षासु लवणममृतं शरदि जलं गोपयश्च हेमंते ॥ शिशिरे चामलकरसो घृतं वसंते गुडश्चांते' ॥ १ ॥ क्षेत्रसमयः क्षेत्रमाकाशं तस्य समयः स्वजावः । यथा ॥ ' एगेणविसेपुस्से दोहिंविपुणे सयंपि माएज्जा ॥ लक्खसएणविपुस्से, कोडिसहस्सं पि माएज्जा' ॥१॥ यदि वा देवकुरुप्रजृतीनां क्षेत्राणामीदृशोऽनुजावो यडुत तत्र प्राणिनः सुरूपा नित्यसुखिनो निर्वैराश्च जवंतीति क्षेत्रस्य वा परिकर्मणावसरः क्षेत्रसमय इति ॥ कालसमयस्तु सुषमादेरनुजावविशेषः । उत्पलपत्रशतजेदाजिव्यंग्यो वा कालविशेषः कालसमय इति ॥ अत्र च ड्व्यक्षेत्रकालप्राधान्यविवक्षया ड्व्यक्षेत्रकालसमयता ड्ष्टव्येति । कुतीर्थसमयः पाखंडिकानामात्मीयानात्मीय आगमविशेषस्तडुक्तं वानुष्ठानमिति ॥ संगारः संकेतस्तद्रूपः समयः संगारसमयः ॥ यथा सिद्धार्थसारथिदेवेन पूर्वकृतसंगारानुसारेण गृहीतहरिशवो बलदेवः प्रतिबोधित इति ॥ कुलसमयः कुलाचारो यथा शकानां पितृशुद्धिः आजीरकाणां मंथनिका शुद्धिः । गणसमयो यथा॥ मल्लानामयमाचारो यथा यो ह्यनाथो मल्लो म्रियते स तैःसंस्क्रियते पतितश्चोध्रियत इति । संकरसमयस्तु संकरोजिन्नजातीयानां मीलकस्तत्र च समये एकवाक्यता ॥ यथा वाममा

र्गीदावनाचारप्रवृत्तावपि गुप्तिकरणमिति । गंडीसमयो यथा शाक्यानां भोजनावसरे गं डीताडनमिति । भावसमयस्तु नो आगमत इदमेवाध्ययनमनेनैवात्राधिकारः शेषाणां तु शिष्यमतिविकासार्थमुपन्यास इति ॥२ए॥सांप्रतं प्रागुपन्यस्तोद्देशार्थाधिकारानिधित्सया ऽह ॥ "महपंचभूय एक्क, प्पएय तज्जीवतस्सरीरेय ॥ तहय अगार गवाती अत्तछ्ठो अफलवादी ॥३०॥ बीए नियवाईउं, अन्नाणियतहय नाणवाईउं ॥ कम्मं च यन्नगछ्छइ, चउव्विहं भिरकुसमयंमि ॥ ३१॥ तइए आहाकम्मं, कडवाई जहयतेयवाईउं ॥ किच्चुवमा य चउछ्छे, परप्पवाई अविरएसु" ॥ ३२ ॥ महपंचभूय इत्यादिगाथात्रयं । अस्याध्ययनस्य चत्वार उद्देशकास्तत्राद्यस्यषडर्थाधिकारा आद्यगाथयाऽभिहिताः ॥ तद्यथा । पंचभूतानि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यानि महांति च तानि सर्वलोकव्यापित्वात् भूतानि च महाभूतानि इत्ययमेकोऽर्थाधिकारः । तथा चेतनाचेतनं सर्वं मेकात्मविवर्त्त इत्यात्माऽद्वैतवादः प्रतिपाद्यत इत्यर्थाधिकारो द्वितीयः । स चासौ जीवश्च तज्जीवः कायाकारो भूतपरिणामस्तदेव शरीरं जीवशरीरयोरैक्यमिति यावदिति तृतीयोर्थाधिकारः । तथाऽकारको जीवः सर्वस्याः पुण्यपापक्रियाया इत्येवंवादीति चतुर्थोधिकारः ॥ तयात्मा षष्ठ इति पंचानां भूतानामात्मा षष्ठः प्रतिपाद्यत इत्ययं पंचमोर्थाधिकारः । तथा फलवादीति । न विद्यते कस्याश्चित् क्रियायाः फलमित्येव वादी च प्रतिपाद्यत इति षष्टोर्थाधिकार इति । द्वितीयोद्देशकेचत्वारोर्थाधिकाराः॥तद्यथा । नियतिवादस्तथाऽज्ञानिकमतं ज्ञानवादी च प्रतिपाद्यते । कर्म च चयमुपचयं चतुर्विधमपि न गछ्छति भिक्षुसमये शाक्यागमे चतुर्थोर्थाधिकारः । चातुर्विध्यंतु कर्मणो ऽविज्ञोपचितं ॥ अविज्ञानमविज्ञा तयोपचितमनाभोगकृतमित्यर्थः । यथा मातुः स्तनाद्याक्रमणेन पुत्रव्यापत्तावप्यनाभोगान्नकर्मोपचीयते । तथा परिज्ञानं परिज्ञा केवलेन मनसा पर्यालोचनं तेनापि कस्यचित्प्राणिनो व्यापादनाभावात् कर्मोपचयाभाव इति । तथा ईरणमीर्यागमनं तेन जनितमीर्याप्रत्ययं तदपि कर्मोपचयं न गछ्छति प्राणिव्यापादनाभिसंधेरभावादिति । तथा स्वप्नांतिकं स्वप्नप्रत्ययं कर्म नोपचीयते । यथा स्वप्नभोजने तृप्त्यभाव इति तृतीयोद्देशकेत्वयमर्थाधिकारः । तथा आधाकर्मगतविचारस्तद्भोजिनां च दोषोपदर्शनमिति । तथा कृतवादी च भण्यते । तद्यथेश्वरेण कृतोयं लोकः प्रधानादिकृतो वा ॥ यथा च ते प्रतिवादिन आत्मीयं कृतवादं गृहीत्वोपस्थितास्तथा भंण्यंत इति द्वितीयोधिकारः । चतुर्थोद्देशकाधिकारस्त्वयं । तद्यथा॥ अविरतेषु गृहस्थेषु यानि कृत्यान्यनुष्ठानानि स्थितानि तैरसंयमप्रधानैः कर्त्तव्यैः परप्रवादी परतीर्थिक उपमीयत इति । इदानीमनुगमः सच द्वेधा । सूत्रानुगमो निर्युक्त्यनुगमश्च । तत्र निर्युक्त्यनुगमस्त्रिविधः । तद्यथा । निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम उपोद्धातनिर्युक्त्यनुगमः सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमश्च । तत्र निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमोऽनु

गत उघनामनिष्पन्ननिक्षेपयोरंतर्गतत्वात् । तथाच वक्ष्यमाणस्य सूत्रस्य निक्षेपावसरत्वा त् । उपोद्घातनिर्युक्त्यानुगमस्तु षड्विंशति द्वारप्रतिपादकाजाथा द्वयादवसेयस्तच्चेदं उद्देश निर्देशेय इत्यादि । सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमस्तु सूत्रे सति संनवति ॥ सूत्रं च सूत्रानुगमे सचावसरप्राप्त एव । तत्राऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं ॥ बुज्झिज्जत्ति तिउट्टि ज्जत्यादिश्लोकः । अस्य संहितादिक्रमेण व्याख्या । (बुध्यतेत्यादि) । सूत्रमिदं सूत्रकृतां गादौ वर्तते । अस्यच ऽऽचारांगेन सहायं संबंधः । तद्यथा आचारांगेनिहितं । ' जीवो छ क्कायपरू, वणायतेसिं वहेणबंधोत्ति ' इत्यादि तत्सर्वं बुध्येतेत्यादि । यदि चेह केषांचि द्वादिनां ज्ञानादेवमुक्त्यवाप्तिरन्येषां क्रियामात्रात् । जैनानां तूनान्यां निश्रेयसाधिगम इत्ये तदनेन श्लोकेन प्रतिपाद्यते । तत्रापि ज्ञानपूर्विका क्रिया फलवती नवतीत्यादि बुध्येते त्यनेन ज्ञानमुक्तं॥त्रोटयेदित्येनेनच क्रियोक्ता॥तत्रायमर्थो बुध्येतावगच्छेत् बोधं विदध्यादित्यु पदेशः । किंपुनस्तद्बुध्येत तदाह । बंधनं बध्यते जीवप्रदेशैरन्योन्यानुवेधरूपतया व्यवस्था प्यत इति बंधनं ज्ञानावरणाद्यष्टप्रकारं कर्म तद्धेतवो वा मिथ्यात्वाऽविरत्यादयः परि ग्रहारंनादयो वा । नच बोधमात्रादनिलषितार्थावाप्तिर्नवतीत्यतः क्रियां दर्शयति । त च्च बंधनं परिज्ञाय विशिष्टया क्रियया संयमानुष्ठानरूपया त्रोटयेदपनयेदात्मनः पृथक्कुर्या त्परित्यजेद्वा । एवं चानिहिते जंबूस्वाम्यादिको विनेयो बंधादिस्वरूपं विशिष्टं जिज्ञासुः प प्रच्छ ॥ किमाह किमुक्तवान् बंधनं वीरस्तीर्थकृत् किंवा जानन्नवगच्छंस्तद्बंधनं त्रोटयति ततो वा त्रुट्यतीति श्लोकार्थः ॥ १ ॥ बंधनस्वरूपनिर्वचनायाह ॥ (चित्तमंतमचित्तं वे त्यादि)॥ इह बंधनं कर्म तद्धेतवो वाऽनिधीयंते ॥ तत्र न निदानमंतरेण निदानिनो जन्मेति निदानमेव दर्शयति ॥ तत्रापि सर्वारंनाः कर्मोपादानरूपाः प्रायश आत्मात्मी यग्रहोत्थानामिति कृत्वाऽदौ परिग्रहमेव दर्शितवान् ॥ चित्तमुपयोगो ज्ञानं तद्विद्यते य स्य तच्चित्तवत् द्विपदचतुष्पदादि । ततोन्यदचित्तवत् कनकरजतादि तडुनयरूपमपि परि ग्रहं परिगृह्य कृशमपि स्तोकमपि तृणतुषादिकमपीत्यर्थः । यदि वा कसनं कसः परिग्रह ग्रहणबुध्या जीवस्य गमनपरिणाम इति यावत् । तदेवं स्वतः परिग्रहं परिगृह्यान्यान्वा ग्राहयित्वा गृह्णतो वान्याननुज्ञाय डुःखयतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्म तत्फलं वा असा तोदयादिरूपं तस्मान्न मुच्यत इति । परिग्रहाग्रह एव परमार्थतोनर्थमूलं नवति । तथा चोक्तं । 'ममाहमिति चैष यावदनिमानदाहज्वरः कृतांतमुखमेव तावदिति न प्रशांत्युन्न यः ॥ यशःसुखपिपासितैरयमसावनर्थोत्तरैः परैरपसदः कुतोपि कथमप्यपाकृष्यते' ॥ १ ॥ तथाच ॥ द्वेषस्यायतनं धृतेरपचयः क्षांतेः प्रतीपो विधिर्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य नवनं ध्या नस्य कष्टो रिपुः ॥ डुःखस्य प्रनवः सुखस्य निधनं पापस्य वासो निजः प्राज्ञस्यापि परिग्र हो ग्रहइव क्लेशाय नाशायच' ॥ १ ॥ २ ॥

सयं निवायए पाणे, अज्ञवाऽन्नेहिं घायए ॥ हणंतं वा णुजा णाइ, वेरं वड्ढइ अप्पणो ॥३॥ जेस्सिं कुले समुप्पन्ने जेहिं वा सं वसे नरे ॥ ममाइ लुप्पई वाले, अन्ने अन्नेहि मुछिए ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे ज्यां परिग्रह त्यां आरंभ होय, अने ज्यां आरंभ त्यां प्राणातिपात होय एवुं देखाडेछे. ते परिग्रहवंत पुरुष असंतोषी थतो ते परिग्रह उपार्जवाने अर्थे, अने उपार्जन करेलो परिग्रह राखवाने अर्थे सयंके० पोते, पाणेके० प्राणीउंनो, निवायएके० निपात एटले विनाश करे, अज्ञवाके० अथवा अन्नेहि घायएके० अनेरा पासे प्राणीउंनी घात करावे; वाके० अथवा हणंतं के० जे प्राणीउंने हणतो होय अर्थात् प्राणीउंनो विनाश करतो होय तेने अणुजाणाइके० अनुमोदवे करी. प्राणीउंनी घात करतो थको अथवा करावतो थको अप्पणोके० आत्माने वेरंवड्ढइके० वैरनी वृद्धी करेछे. तेथी जे दुःख परंपरारूप बंधन तेथकी बुटे नहीं ॥३॥ वली पण बंधन आश्रयी कहेछे. जेस्सिं कुले समुप्पन्नेके० रागोडादिक जे कुलमां उत्पन्न थयो, अथवा जेहिंवा संवसे के० जेनीसाथे वास वसे, एटले पांसुक्रीडादिक करे. एवा नरेके० मनुष्य जे माता, पिता, भाई, वेहेन, भार्या, अने मित्रादिक तेने विषे ममाइके० ममत्वनो करनार एटले मातापितादिकनी साथे स्नेह करतो एवो वालेके० अज्ञानी जीवते लुप्पइके० कर्मे संसारचक्रमांहे भमतो थको पीडायछे, ते मनुष्य केवोछे तोके अन्नेअन्नेहिके० अन्य अन्य एटले प्रथम माता पिता, तदनंतर भाईने विषे, तदनंतर पुत्रपौत्रादिक, एम अन्य अन्यने विषे मुछिएके० मूर्छित एटले मूर्छा पामतो थको स्नेहे करी पीडायछे. ॥ ४ ॥

दीपिका ॥ अथवा प्रकारांतरेण बंधनमेवाह । सयंतीति ॥ सपरिग्रहवान् स्वयमात्मना प्राणानतिपातयेत् जीवान् हिंस्यात् । अथवा अन्यैः परैरपि घातयति घ्नतश्चान्याननुजानीते तदेवं कृतकारितानुमतिभिः प्राणिघातं कुर्वन्नात्मनो वैरं वर्धयति ततश्च बंधनान्न मुच्यते इति भावः ॥ ३ ॥ पुनर्बंधनमेवाश्रित्याह । जेस्सिंमित्ति । यस्मिन् कुले जातो यैर्वा मित्रैर्भार्यादिभिर्वा सह संवसेन्नरः तेषु मित्रपितृमातृभार्यादिषु ममायमिति ममत्ववान् लुप्यते ममत्वजनितेन कर्मणा बाध्यते । बालो मूर्खः विवेकरहितत्वादन्येषु च मूर्छितो ममत्वबहुल इत्यर्थः ॥ ४ ॥

टीका ॥ तथाच परिग्रहेष्वप्राप्तनष्टेषु कांक्षाशोकौ प्राप्तेषु च रक्षणमुपभोगे वाऽतृप्तिरित्येवं परिग्रहे सति दुःखात्मकाद्बंधनान्न मुच्यत इति परिग्रहवतश्चावश्यंभाव्यारंभस्तस्मिंश्च प्राणातिपात इति दर्शयितुमाह । सयंनिवायएपाणे इत्यादि । यदि वा प्रकारांत

रेण बंधनमेवाह । मयंतीत्यादि । स परिग्रहवानसंतुष्टो नूयस्तदर्जनपरः समार्जितोप इवकारिणि च द्वेषमुपगतस्ततः स्वयमात्मना त्रिन्यो मनोवाक्कायेन्य आयुर्बलशरीरेंन्यो वा पातयेत् च्यावयेत् प्राणान् प्राणिनः । अकारलोपा द्वा अतिपातयेत् प्राणानिति । प्रा णाश्चामी । पंचेंड्रियाणि त्रिविधं बलंच, उह्वासनिश्वासमथान्यदायुः ॥ प्राणा दशैते नगव ह्रिरुक्ता,स्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥ तथा स परिग्रहाग्रही न केवलं स्वतो व्या पादयति अपरैरपि घातयति घ्नतश्चान्यान् समनुजानीते तदेव कृतकारितानुमतिनिः प्राण्युपमर्दनेन जन्मांतरशतानुबंध्यात्मनो वैरं वर्धयति । ततश्च डुःखपरंपरारूपबंधनान्न मुच्यत इति । प्राणातिपातस्य चोपलक्षणार्थत्वात् मृषावादादयोपि बंधहेतवो इष्टव्या इति ॥ ३ ॥ पुनर्बंधनमेवाश्रित्याह । (जेस्सिमित्यादि) । यस्मिन् राष्ट्रकूटादौ कुले जातो यैर्वा सह पांसुक्रीमितैर्यैर्नार्यादिनिर्वा सह संवसेन्नरस्तेषु मातृपितृच्रातृनगिनीनार्यावय स्यादिषु ममायमिति ममत्ववान् स्निह्यन् लुप्यते विलुप्यते ममत्वजनितेन कर्मणा नारकतिर्यङ्मनुष्यामरलक्षणे संसारे च्रम्यमाणो बाध्यते पीड्यते। कोसौ बालोऽज्ञः स दसद्विवेकरहितत्वादन्येष्वन्येषु च मूर्छितो गृद्धोध्युपपन्नो ममत्वबहुल इत्यर्थः । पूर्वं तावन्मातापित्रोस्तदनुनार्यायां पुनः पुत्रादौ स्नेहवानिति ॥ ४ ॥

वित्तं सोयरिया चेव, सवमेयं नताणइ॥ संखाए जीविच्यं चेवं, कम्मुणा उ तिउट्टइ ॥५॥ एए गंथे विउक्कम्म, एगे समणमाह णा ॥ च्ययाणंता विउस्सित्ता सत्ता कामेहि माणवा ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे जे प्रथम कह्युं हतुंके, कहेवुं जाणतो थको बंधन त्रोडे ते कहेछे. वित्तं के० धनधान्यादिक सचित्त तथा अचित्त वस्तु अने सोयरियाके० नाइ प्रमुख कौटुंबि क स्वजनादिक चेवके० वली सवमेयंके० ए सर्व जे कुटुंबादिक स्नेहवंतछे, ते शारीरी, मानसी वेदना नोगवता थका ए जीवने नताणइके० त्राण नणी न थाय. एवुं जाणी ने जीवियंचके० जे प्राणीउनुं जीवतव्य अल्पछे. एवंके० एवुं संखाएके० जाणीने, जी वितव्य प्राणीउने एटले परिग्रह प्राणिघात अने स्वजन स्नेहादिक बंधननां स्थानने ज्ञ परिज्ञाये जाणीने, प्रत्याख्यान परिज्ञाये ढांमिने, कम्मुणाउ तिवट्टइके० कर्म थकी बुटे अ र्थात् कर्म थकी वेगलो थाय. ॥ ५ ॥ हवे स्वसमयनो अधिकार कही परसमयनो अधिकार कहेछे. एएगंथेके० ए अरिहंतना नाषित ग्रंथ जे करुणारसमय छे. ते ने ढांमीने स्वेछायें रचित ग्रंथोने विषे विउक्कम्मके० आसक्त थका, एगेसमणके० एक शाक्यादिकना श्रमण, बीजा बृहस्पतिमतानुसारी एवा माहणा के० ब्राह्मण ए अया णंताके० परमार्थना अजाण थका विउस्सित्ता के० विविध प्रकारे उत्प्रबलपणे पोताना

ग्रंथनेविषे सक्ता एटले बंधाणा, एतावतां आपणा मतना कदाग्रही एवा छतां माणवाके० पु रुष जे छे, ते पोतपोताना मतना अनुरागेकरी. कामेहिं के० इच्छामदनादिक तेनेविषे सत्ता के० आसक्त थका प्रवर्त्तेछे एटले पोतानो मार्ग लोकोमांहे प्रसिद्धपणे सारो करी देखाडेछे.

॥ दीपिका–किं जानन् बंधनं त्रोटयतीत्यस्योत्तरमाह । (वित्तमिति) । वित्तं द्रव्यं तच्च सचित्तमचित्तं वा । सोदर्या भ्रातृभगिन्यादयः सर्वमेतद्वित्तादिकं संसारे पीड्यमानस्य जंतोर्न त्राणाय न रक्षणाय भवतीति । एतत् संख्याय ज्ञात्वा तथा जीवितं स्वल्पमिति संख्याय ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्याय कर्मणः सकाशात् त्रुट्यति अपगच्छत्यसौ । तुर्निश्चये त्रुट्येदेव । यदि वा कर्मणा क्रियया संयमानुष्ठानरूपया बंधनात् त्रुट्यति कर्मणः पृथग्भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ स्वसमयं प्रतिपाद्य परसमयंप्रतिपादयितुकाम आह । (एएइति) । एतान् पूर्वोक्तान् ग्रंथान् सूत्रार्थान् व्युत्क्रम्य परित्यज्य एके केचित् श्रमणब्राह्मणाः श्रमणाः शाक्यादयो ब्राह्मणाश्च (अयाणंता) परमार्थमजानानाः (विउस्सित्ता) विविधमुत्प्राबल्येन सिता बद्धाः स्वसमयेषु प्रतिबद्धाः संतः कामेषु च सक्ता वर्त्तंतइति ॥ ६ ॥

॥टीका–सांप्रतं यदुक्तं प्राक् किंवा जानन् बंधनं त्रोटयतीत्यस्य निर्वचनमाह । (वित्तमित्यादि) । वित्तं द्रव्यं तच्च सचित्तमचित्तं वा । तथा सोदर्या भ्रातृभगिन्यादयः सर्वमपि चैतद्वित्तादिकं संसारांतर्गतस्यासुमतोऽतिकटुकाः शरीरमानसवेदनास्समनुभवतो न त्राणाय रक्षणाय भवंतीत्येतत्संख्याय ज्ञात्वा । तथा जीवितं च प्राणिनां स्वल्पमपि तत्संख्याय ज्ञपरिज्ञया । प्रत्याख्यानपरिज्ञया तु सचित्ताचित्तपरिग्रहप्राण्युपघातस्वजनस्नेहादीनि बंधनस्थानानि प्रत्याख्याय कर्मणः सकाशात्त्रुट्यति अपगच्छत्यसौ । तुरवधारणे । त्रुट्येदेवेति । यदि वा कर्मणा क्रियया संयमानुष्ठानरूपया बंधनात्त्रुट्यति । कर्मणः पृथग्भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ अध्ययनार्थाधिकाराभिहितत्वात्स्वसमयप्रतिपादनानंतरं परसमयप्रतिपादनाभिधित्सयाऽऽह । (एएगंथेविउक्कम्मेत्यादि) । एतानंतरोक्तान् ग्रंथान् व्युत्क्रम्य परित्यज्य स्वरुचिविरचितार्थेषु ग्रंथेषु सक्ताः सिताः बद्धा एके न सर्वे इति संबंधः । ग्रंथातिक्रमश्चैतेषां तदुक्तार्थानभ्युपगमात् । अनंतरग्रंथेषु चायमर्थोऽभिहितस्तद्यथा जीवास्तित्वे सति ज्ञानावरणीयादि कर्मबंधनं तस्य हेतवो मिथ्यात्वाविरतिप्रमादादयः परिग्रहारंभादयश्च । तत्त्रोटनं च सम्यक्दर्शनाद्युपायेन मोक्षसद्भावश्चेत्येवमादिकः । तदेवमेके श्रमणाः शाक्यादयो बार्हस्पत्यमतानुसारिणश्च ब्राह्मणा एतानर्हदुक्तान् ग्रंथानतिक्रम्य परमार्थमजानाना विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन सिता बद्धाः स्वसमयेष्वभिनिविष्टाः । तथा च शाक्या एवं प्रतिपादयंति । यथा सुखदुःखेच्छाद्वेषज्ञानाधारभूतो नास्त्यात्मा

कश्चित् किंतु विज्ञानमेवैकं विवर्ततइति । क्षणिकाः सर्वसंस्काराइत्यादि । तथा सां ख्या एवं व्यवस्थिताः । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोहंकार स्तस्माजणश्च षोडशकस्तस्मात्षोडशकादपि पंचनूतानि चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमित्या दि । वैशेषिकाः पुनराहुः । इव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवायाः पट् पदा र्थाइति । तथा नैयायिकाः प्रमाणप्रमेयादीनां पदार्थानामन्वयव्यतिरेकपरिज्ञाना न्निःश्रेयसाधिगमइति व्यवस्थिताः । तथा मीमांसकाश्चोदनालक्षणोधर्मो नच सर्वज्ञः क श्चिद्विद्यते मुक्त्यनावश्चेत्येवमाश्रिताः । चार्वाकास्त्वेवमनिहितवंतो यथा नास्तिकश्चि त्परलोकयायी नूतपंचकाद्व्यतिरिक्तः पदार्थो नापि पुण्यपापे स्तइत्यादि । एवंचांगीकृत्यै ते लोकायतिकाः । मानवाः पुरुषाः सक्ता गृद्धा अध्युपपन्नाः कामेष्विच्छामदनरूपेषु । त थाचोचुः । एतावानेव पुरुषो, यावानिंद्रियगोचरः ॥ नद्रेवृकपदं पश्य, यद्वदंत्यबहुश्रुताः ॥ १ ॥ पिब खाद च साधु शोजने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि जोरु गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरं ॥ २ ॥ एवं ते तंत्रांतरीयाः स्वसमयार्थवासितांतःकरणाः सं तो नगवदर्हडुक्तं ग्रंथार्थमज्ञातपरमार्थाः समतिक्रम्य स्वकीयेषु ग्रंथेषु सिताः संबद्धाः कामेषु च सक्ताइति ॥ ६ ॥

संति पंच महब्भुया, इहमेगेसि माहिया ॥ पुढवी आउ तेऊ वा,
वाउ आगासपंचमा ॥ ७ ॥ एए पंच महब्भूया, तेब्नो एगोत्ति
आहिया ॥ अहतेसिं विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे ग्रंथकार प्रथम चार्वाकनुं मत देखाडेछे. संतिपंचमहब्भूया के० ते चार्वा क एम कहेछे के जगत्मां सर्वलोकव्यापी पंचमहानूत छे. इहके० आ लोकमांहे, एगेसिं के० कोइ एक नूतवादी तेना मतने विषे आहियाके० कह्याछे. ते कोण? तोके० पुढवी के० पृथ्वी कठिणरूप छे, आउके० अप्प ते इव्य लक्षणछे, तेऊके० तेज उष्णरूप, वाउके० वायु चलन लक्षण अने पंचमाके० पांचमुं आगासके० आकाश अवकाश लक्षण छे, ॥७॥ हवे एनुंज विशेष कहेछे. एएपंचमहब्भूयाके० ए पूर्वे कह्याते जे पंचमहा नूत तेब्नो के० ते थकीज एगोत्ति के० कोइ एक चिड्रूप ते नूत थकी अव्यतिरिक्त एवो आहिया के० आत्मा होय छे; परंतु जेम ए पांच नूत थकी पृथक् नूत एवो अन्य कोइ बीजो आत्मा छे, एवी रीते जे बीजा दर्शनी कल्पना करेछे तेम नथी. केमके ए परलो कनो जनार, सुखडुःखनो नोगवनार जीव एवो पदार्थ कोइ बीजो नथी, एम ते चार्वाक कहेछे तेमने कोइ परवादी एम पूछे के, अहो चार्वाको जो ! तमारे मते पंचम हानूत थकी अन्य कोइ आत्मा एवो पदार्थ नथी, तो मरण पाम्यो एम कोण कहेवाय?

हवे एनो उत्तर चार्वाक दर्शनीओ कहेछे. अहएसिंके० अथ एटले हवे एसिं एटले ए पंच महाभूत जे छे तेना विणासेणं के० विनाश थकी, देहिणो के० जीवनो पण विणासो होइ के० विनाश होयछे. परंतु जे एवुं कहेछे के आत्मा चवीने अन्यत्र स्थाने जायछे. कर्मना वशथकी सुखी दुःखी थायछे, ते सर्व मुग्धरंजन जाणवुं ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—सांप्रतं नास्तिकमतमाश्रित्याह । (संतीति) संति पंचमहाभूतानि इह अस्मिन् लोके एकेषां भूतवादिनामाख्यातानि तत्वार्थकृतानि । तैर्वा भूतवादिभिर्नास्तिकैराख्यातानि स्वयमंगीकृतानि । परेषां च प्रतिपादितानि तानि चामूनि । (पुढवीत्यादि) । पृथ्वी १ आपो जलं २ तेजो वन्हिः ३ वायुः ४ आकाशं पंचमं येषां तानि । ननु सांख्यादिभिरपि भूतानि मन्यंतएव । तत्कथं चार्वाकमतापेक्षयैव भूतोपन्यास इति चेदुच्यते । सांख्यादिभिर्हि प्रधानाहंकारादिकं तथा कालदिगात्मादिकं चान्यदपि वस्तुजातमंगीक्रियते । चार्वाकैस्तु भूतव्यतिरिक्तं नात्मादि किंचिन्मन्यतइति तन्मताश्रयेणैवायं सूत्रोपन्यास इति ॥७॥ चार्वाकमतांगीकारमेवाह । (एतइति) । एतानि पंचमहाभूतानि तेभ्यो भूतेभ्यः कायाकारपरिणतेभ्य एकः कश्चिच्चिद्रूपो भूताव्यतिरिक्त आत्मा भवति नतु कश्चिदपरः परलोकयायी जीवाख्यः पदार्थोस्तीत्येवमाख्यातवंतस्ते । ननु यदि भूतेभ्योन्यः कश्चिदात्मा नास्ति कथं तर्हि मृतइति व्यपदेशइत्याशंकायामाह । (अहतेसिंति) । अथ तेषां भूतानां विनाशेऽपगमे देहिनो देवदत्तादेर्विनाशो भवति ततश्च मृतइत्युच्यते न पुनर्जीवापगमइति । अत्रैतन्मतनिर्लोठनयुक्तयो वृत्तितोऽवसेयाः ॥८॥

॥ टीका—सांप्रतं विशेषेण सूत्रकार एव चार्वाकमतमाश्रित्याऽह । (संतिपंचमहभूयाइत्यादि) । संति विद्यंते महांति च तानि भूतानि च महाभूतानि । सर्वलोकव्यापित्वान्महत्वविशेषणं । अनेन च भूताभाववादिनिराकरणं द्रष्टव्यं । इहास्मिन् लोके एकेषां भूतवादिनामाख्यातानि प्रतिपादितानि तत्तीर्थकृता तैर्वा भूतवादिभिर्बार्हस्पत्यमतानुसारिभिराख्यातानि स्वयमंगीकृतान्यन्येषां च प्रतिपादितानि । तानि चामूनि । तद्यथा । पृथिवी कठिनरूपा । आपो द्रवलक्षणाः । तेज उष्णरूपं । वायुश्चलनलक्षणः । आकाशं सुषिरलक्षणमिति तच्च पंचमं येषां तानि । तथा । एतानि सांगोपांगानि प्रसिद्धत्वात् प्रत्यक्षप्रमाणावसेयत्वाच्च न कैश्चिदपह्नोतुं शक्यानि । ननु च सांख्यादिभिरपि भूतान्यभ्युपगतान्येव । तथाहि । सांख्यास्तावदेवमूचुः । तद्यथा । सत्वरजस्तमोरूपात्प्रधानान्महान् बुद्धिरित्यर्थः । महतोऽहंकारोऽहमितिप्रत्ययस्तस्मादप्यहंकारात्षोडशकोगण उत्पद्यते । सचायं । पंच स्पर्शादीनि बुद्धींद्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थरूपाणि पंच कर्मेंद्रियाणि । एकादशं मनः । पंचतन्मात्राणि । तद्यथा । गंधरसरूपस्पर्शशब्दत

न्मात्राख्यानि । तत्र गंधतन्मात्रात्पृथिवी गंधरसरूपस्पर्शवती । रसतन्मात्रादापो रस रूपस्पर्शवत्यः । रूपतन्मात्रात्तेजो रूपस्पर्शवत् । स्पर्शतन्मात्राद्वायुः स्पर्शवान् । शब्द तन्मात्रादाकाशं गंधरसरूपस्पर्शवर्जितमुत्पद्यतइति । तथा वैशेषिका अपि जूतान्यजि हितवंतः । तद्यथा । पृथिवीत्वयोगात्पृथिवी । साच परमाणुलक्षणा नित्या । द्व्यणुकादि प्रक्रमनिष्पन्नकार्यरूपतया त्वनित्या । चतुर्दशजिर्गुणैरूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परि माण, पृथक्त्व, संयोग, विजाग, परत्वा,परत्व, गुरुत्व, डवत्व, वेगाख्यैरुपेता । तथा प्त्वयोगादापस्ताश्च रूपरसस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविजागपरत्वापरत्वगुरुत्व स्वाजाविकड्वत्वस्नेहवेगवत्यस्तासु च रूपं शुक्लमेव रसो मधुरएव स्पर्शः शीतएवेति । तेजस्त्वाजिसंबंधात्तेजः । तच्च रूपस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविजागपरत्वापरत्वनै मित्तिकड्वत्ववेगाख्यैरेकादशजिर्गुणैर्गुणवत् । तत्र रूपं शुक्लं जास्वरं च । स्पर्शउष्णएवेति । वायुत्वयोगाद्वायुः । सचानुष्णशीतस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविजागपरत्वापरत्व वेगाख्यैर्नवजिर्गुणैर्गुणवान् । हृत्कंपशब्दानुष्णशीतस्पर्शलिंगं । आकाशमिति पारिजाषिकी संज्ञा एकत्वात्तस्य । तच्च संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविजागशब्दाख्यैः षड्जिर्गुणैर्गुण वत् । शब्दलिंगंचेत्येवमन्यैरपि वादिजिर्जूतसद्भावाश्रयणे किमिति लोकायतिकमतापेक्ष या जूतपंचकोपन्यासइत्युच्यते । सांख्यादिजिर्हि प्रधानात्साहंकारिकं तथा कालदिगात्मा दिकं चान्यदपि वस्तुजातमन्युपेयते । लोकायतिकैस्तु जूतपंचकव्यतिरिक्तं नात्मादिकं किं चिदन्युपगम्यते इत्यतस्तन्मताश्रयणेनैव सूत्रार्थो व्याख्यायतइति ॥ ७ ॥ यथा चैतत्त था दर्शयितुमाह । (एएपंचमहब्जूयाइत्यादि) । एतान्यनंतरोक्तानि पृथिव्यादीनि पंच महा जूतानि यानि तेन्यः कायाकारपरिणतेन्य एकः कश्चिच्चिडूपो जूताव्यतिरिक्त आत्मा जवति न जूतेन्यो व्यतिरिक्तोऽपरः कश्चित्परः परिकल्पितः परलोकानुयायी सुखडुःखजो क्ता जीवाख्यः पदार्थोस्तीत्येवमाख्यातवंतस्ते । तथाहि । एवं प्रमाणयंति । न पृथिव्यादि व्यतिरिक्त आत्माऽस्ति तद्ग्राहकप्रमाणाजावात् ॥ प्रमाणं चात्र प्रत्यक्षमेव नानुमानादिकं । तत्रेंद्रियेण साक्षादर्थस्य संबंधाजावाद्व्यजिचारसंजवः । सति च व्यजिचारसंजवे सदृशे च बाधासंजवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यादिति सर्वत्रानाश्वासः । तथाचोक्तं । हस्तस्पर्शादि वांधेन, विषमे पथि धावता ॥ अनुमानप्रधानेन, विनिपातो न डुर्ल्लजः ॥ १ ॥ अनुमानं चात्रोपलक्षणमागमादीनामपि । साक्षादर्थसंबंधाजावाद्धस्तस्पर्शनेनैव प्रवृत्तिरिति । तस्मात्प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं । तेन च जूतव्यतिरिक्तस्यात्मनो न ग्रहणं । यत्तु चैतन्यं ते षूपलन्यते तज्जूतेष्वेव कायाकारपरिणतेष्वजिव्यज्यते मद्यांगेषु समुदितेषु मदशक्तिवदि ति । तथा न जूतव्यतिरिक्तं चैतन्यं तत्कार्यत्वाद्धटादिवदिति । तदेवं जूतव्यतिरिक्तस्या त्मनोऽजावाज्जूतानामेव चैतन्याजिव्यक्तिर्जलस्य बुद्बुदादिव्यक्तिवदिति । केषांचिल्लोकाय

तिकानामाकाशस्यापि भूतत्वेनाभ्युपगमाद्भूतपंचकोपन्यासो न दोषायेति । ननुच यदि भूतव्यतिरिक्तोऽपरः कश्चिदात्माख्यः पदार्थो न विद्यते कथं तर्हि मृतइति व्यपदेश इत्याशंक्याह । अथैषां कायाकारपरिणतौ चैतन्याभिव्यक्तौ सत्यां तदूर्ध्वंतेषामन्यतमस्य विनाशेऽपगमे वायोस्तेजसश्चोभयोर्वा देहिनो देवदत्ताख्यस्य विनाशोऽपगमो भवति ततश्च मृतइति व्यपदेशः प्रवर्तते न पुनर्जीवापगमइति भूताव्यतिरिक्तचैतन्यवादिपूर्वपक्षइति । अत्र प्रतिसमाधानार्थं निर्युक्तिकृदाह । "पंचण्हं संजोए,अण्णगुणाणंच चेयणाइगुणो। पंचिंदियगणाणं,णअण्णमुणियं मुणइ अण्णो ॥ ३ ४॥ (पंचण्हंसंजोएइत्यादि)। पंचानां पृथिव्यादीनां भूतानां संयोगे कायाकारपरिणामे चैतन्यादिकः। आदिशब्दात् भाषाचंक्रमणादिकश्च गुणो न भवतीति प्रतिज्ञा। अन्यादयस्त्वत्र हेतुत्वेनोपात्ताः । दृष्टांतस्त्वभ्यूहः । सुगमत्वात्तस्यनोपादानं । तत्रेदं चार्वाकः प्रष्टव्यः । यदेतद्भूतानां संयोगे चैतन्यमभिव्यज्यते तत्किं तेषां संयोगेपि स्वातंत्र्यएवाऽहोस्वित्परस्परापेक्षया पारतंत्र्ये इति । किंचाऽतः ॥ न तावत्स्वातंत्र्ये यत आह । (अण्णगुणाणंचेति) चैतन्यादन्ये गुणा येषां तान्यन्यगुणानि । तथा ह्याधारकाठिन्यगुणा पृथिवी द्रव्यगुणा आपः पक्तृगुणं तेजः । चलनगुणो वायुः अवगाहदानगुणमाकाशमिति । यदि वा प्रागभिहिता गंधादयः पृथिव्यादीनामेकैकपरिहान्याऽन्येगुणाश्चैतन्यादिति । तदेवं पृथिव्यादीन्यन्यगुणानि । च शब्दो द्वितीयविकल्पवक्तव्यतासूचनार्थः। चैतन्यगुणे साध्ये पृथिव्यादीनामन्यगुणानां सतां चैतन्यगुणस्य पृथिव्यादीनामेकैकस्याप्यभावान्नतत्समुदायाच्चैतन्याख्यो गुणः सिद्ध्यतीति । प्रयोगस्त्वत्र भूतसमुदायः स्वातंत्र्ये सति धर्मित्वेनोपादीयते न तस्य चैतन्याख्यो गुणोस्तीति । साध्यो धर्मः पृथिव्यादीनामन्यगुणत्वात् । योयोन्यगुणानांसमुदायस्तत्रतत्राऽपूर्वगुणोत्पत्तिर्न भवतीति । यथा सिकतासमुदाये स्निग्धगुणस्य तैलस्य नोत्पत्तिरिति घटपटसमुदाये वा न स्तंभाद्याविर्भावइति । दृश्यते च कार्ये चैतन्यं तदात्मगुणो भविष्यतीति न भूतानामिति । अस्मिन्नेवसाध्ये हेत्वंतरमाह । (पंचिंदियगणाणंति) । पंच च तानि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राख्यानींद्रियाणि तेषां स्थानान्यवकाशास्तेषां चैतन्यगुणाभावान्न भूतसमुदाये चैतन्यं । इदमत्र हृदयं। लोकायतिकानां हि अपरस्य द्रष्टुरनभ्युपगमादिंद्रियाण्येव द्रष्टॄणि । एतेषां च यानि स्थानान्युपादानकारणानि तेषामचिद्रूपत्वान्न भूतसमुदाये चैतन्यमिति। इंद्रियाणां चामूनि स्थानानि। तद्यथा। श्रोत्रेंद्रियस्याकाशं सुषिरात्मकत्वात् । घ्राणेंद्रियस्य पृथिवी तदात्मकत्वात् । चक्षुरिंद्रियस्य तेजस्तद्रूपत्वात् । एवं रसनेंद्रियस्यापः । स्पर्शनेंद्रियस्य वायुरिति । प्रयोगश्चात्र नेंद्रियाण्युपलब्धिमंति तेषामचेतनगुणारब्धत्वात् । यद्यदचेतनगुणारब्धं तत्तदचेतनं। यथा घटपटादीनि। एवमपिच भूतसमुदाये चैतन्याभावएव साधितो भवति । पुनर्हेत्वंतरमाह । (ण अण्णमुणियंमुण

इअसोत्ति)। इहेंडियाणि प्रत्येकं नूतात्मकानि तान्येवापरस्य डष्टुरनावाद्द्रष्टॄणि तेषां च प्रत्येकं स्वविषयग्रहणादन्यविषये चाप्रऽवृत्तेनान्यदिंडियज्ञातमन्यदिंडियं जानातीत्यतो मया पंचापि विषया ज्ञाता इत्येवमात्मकः संकलनाप्रत्ययो न प्राप्नोत्यनुनूयते चायं तस्मादेकेनैव डष्ट्रा नवतिव्यम्। तस्यैव च चैतन्यं न नूतसमुदायस्येति। प्रयोगः पुनरेवं नूतसमुदाये चैतन्यं तदारब्धेंडियाणां प्रत्येकविषयग्राहित्वे सति संकलनाप्रत्ययानावात्। यदि पुनरन्यगृहीतमप्यन्यो गृह्णीयाद्देवदत्तगृहीतं यज्ञदत्तेनापि गृह्येत न चैतद् दृष्टमिष्टं चेति। ननुच स्वातंत्र्यपक्षेऽयं दोषः। यदा पुनः परस्परसापेक्षाणां संयोगपारतंत्र्यान्युपगमेन नूतानामेव समुदितानां चैतन्याख्यो धर्मः संयोगवशादाविर्नवति। यथा किएवोदकादिषु मद्यांगेषु समुदितेषु प्रत्येकमविद्यमानापि मदशक्तिरिति तदा कुतोऽस्य दोषस्यावकाशइति। अत्रोत्तरं। गाथायां चशब्दाक्षिप्तमनिधीयते। यत्तावडुक्तं। यथा नूतेन्यः परस्परसव्यपेक्षसंयोगनाग्न्यश्चैतन्यमुत्पद्यते। तत्र विकल्पयामः। किमसौ संयोगः संयोगिन्यो निन्नोऽनिन्नो वा। निन्नश्चेत्षष्ठनूतप्रसंगो न चान्यत्पंचनूतव्यतिरिक्तसंयोगाख्यनूतग्राहकं नवतां प्रमाणमस्ति। प्रत्यक्षस्यैवैकस्यान्युपगमात्तेन च तस्याग्रहणात् प्रमाणांतरान्युपगमे च तेनैव जीवस्यापि ग्रहणमस्तु। तथा ऽनिन्नो नूतेन्यो नूतानामेव संयोगस्तत्राप्येतच्चिंतनीयं किंनूतानि प्रत्येकं चेतनावंत्यचेतनावंति वा। यदि चेतनावंति तदा एकेंडियसिद्धिस्तदा समुदायस्य पंचप्रकारचैतन्यापत्तिः। अथाचेतनानि तत्रोक्तो दोषो नहि। यद्यत्र प्रत्येकमविद्यमानं तत्समुदाये नवडुपलन्यते सिकतासु तैलवदित्यादिना। यदप्यत्र पूर्वोक्तं तथा मद्यांगेष्वविद्यमानाऽपि प्रत्येकं मदशक्तिः समुदाये प्राडुर्नवतीति। तदप्ययुक्तं। यतस्तत्र किएवादिषु याच यावती शक्तिरुपलन्यते। तथा हि॥ किएवे बुभुक्षापनयनसामर्थ्यं नमिजननसामर्थ्यं चोदकस्य तृडपनयनसामर्थ्यमित्यादिनेति नूतानां प्रत्येकं चैतन्याऽनन्युपगमे दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यं। किंच नूते चैतन्यान्युपगमे मरणानावो मृतकायेपि पृथ्व्यादीनां नूतानां सद्भावात्। नैतदस्ति। तत्र मृतकाये वायोस्तेजसो वाऽनावान्मरणसद्भाव इत्यशिक्षितस्योल्लापः। तथाहि। मृतकाये शोफोपलब्धेर्न वायोरनावः कायस्य च पक्तिस्वनावस्य दर्शनान्नाग्नेरिति। अथसूक्ष्मःकश्चिद्वायुविशेषोग्निर्वा ततोपगतइति मतिरित्येवं च जीव एव नामांतरेणान्युपगतो नवति। यत्किंचिदेतत्। तथा न नूतसमुदायमात्रेण चैतन्याविर्नावः। पृथिव्यादिष्वेकत्र व्यवस्थापिते चैतन्यानुपलब्धेः। अथकायाकारपरिणतौ सत्यां तदानिव्यक्तिरिष्यते। तदपि न। यतो लेप्यमयप्रतिमायां समस्तनूतसद्भावेऽपि जडत्वमेवोपलन्यते। तदेवमन्वयव्यतिरेकान्यामालोच्यमानो नायंचैतन्याख्यो गुणो नूतानां नवितुमर्हति। समुपलन्यते चायं शरीरेषु। तस्मात् पारिशेषात् जीवस्यैवायमिति स्वदर्शनपक्षपातं विहायांगीक्रियतामिति।

यच्चोक्तं प्राक् न पृथिव्यादिव्यतिरिक्त आत्माऽस्ति तद्ग्राहकप्रमाणाजावात् । प्रमाणं चात्र प्रत्यक्षमेवैकमित्यादि तत्र प्रतिविधीयते । यत्तावडुक्तं प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं नानुमानादिकमित्येतदनुपासितगुरोर्वचः । तथाहि । अर्थाविसंवादकं प्रमाणमित्युच्यते प्रत्यक्षस्य च प्रामाण्यमेव व्यवस्थाप्यते । कश्चित्प्रत्यक्षव्यक्तीर्धर्मित्वेनोपादाय प्रमाणयति । प्रमाणमेता अर्थाऽविसंवादकत्वादनुजूतप्रत्यक्षव्यक्तिवत् । नच ताजिरेव प्रत्यक्षव्यक्तिजिः स्वसंविदिताजिः परंव्यवहारयितुमयमीशस्तासां स्वसन्निविष्टत्वान्मूकत्वाच्च । प्रत्यक्षस्य नानुमानं प्रमाणमित्यनुमानेनैवानुमाननिरासं कुर्वंश्चार्वाकः कथं नोन्मत्तः स्यादेवं ह्यसौ तदप्रामाण्यं प्रतिपादयेत् । यथा नानुमानं प्रमाणं विसंवादकत्वादनुजूतानुमानव्यक्तिवदित्येतच्चानुमानमथपरप्रसिध्यैतडुच्यते । तदप्ययुक्तं । यतस्तत्परप्रसिद्धमनुमानं जवतः प्रमाणमप्रमाणं वा । प्रमाणं चेत्कथमनुमानमप्रमाणमित्युच्यते । अथाप्रमाणं कथमप्रमाणेन सता तेन परः प्रत्याज्यते । परेण तस्य प्रामाण्येनाज्युपगतत्वादिति चेत्तदप्यसांप्रतं । यदिनाम परो मौढ्यादप्रमाणमेव प्रमाणमित्यवध्यस्यति । किं जवताऽतिनिपुणेनापि तेनैवाऽसौ प्रतिपाद्यते । यो ह्यन्यो गुडमेव विषमपि मन्यते किं तस्य मारयितुकामेनापि बुद्धिमता गुडएव दीयते । तदेवं प्रत्यक्षानुमानयोः प्रामाण्याप्रामाण्ये व्यवस्थापयतो जवतोऽनिच्छतोपि बलादायातमनुमानस्य प्रामाण्यं । तथा स्वर्गापवर्गदेवतादेः प्रतिषेधं कुर्वन् जवान् केन प्रमाणेन करोति न तावत्प्रत्यक्षेण प्रतिषेधं कर्त्तुं पार्यते । यतस्तत्प्रत्यक्षं प्रवर्तमानं वा तन्निषेधं विदध्यान्निवर्तमानं वा । न तावत्प्रवर्तमानं तस्याऽजावविषयत्वविरोधात् । नापि निवर्तमानं । यतस्तच्च नास्ति तेन च प्रतिपत्तिरित्यसंगतं । तथाहि । व्यापकविनिवृत्तौ व्याप्यस्यापि निवृत्तिरिष्यते ॥ न चार्वाकदर्शितप्रत्यक्षेण समस्तवस्तुव्याप्तिः संजाव्यते । तत्कथं प्रत्यक्षविनिवृत्तौ पदार्थव्यावृत्तिरिति । तदेवं स्वर्गादेः प्रतिषेधं कुर्वता चार्वाकेणाऽवश्यं प्रमाणांतरमज्युपगतं । तथाऽन्याजिप्रायविज्ञानाज्युपगमादत्र स्पष्टमेव प्रमाणांतरमज्युपगतं । अन्यथा कथं परावबोधाय शास्त्रप्रणयनमकारि चार्वाकेणेत्यलमतिप्रसंगेन । तदेवं प्रत्यक्षादन्यमपि प्रमाणमस्ति तेनात्मा सेत्स्यति किंपुनस्तदिति चेडुच्यते । अस्त्यात्मा । असाधारणतजुणोपलब्धेश्चक्षुरिंद्रियवत् । चक्षुरिंद्रियं हि न साक्षाडपलज्यते । स्पर्शनादींद्रियाऽसाधारणरूपविज्ञानोत्पादनशक्त्या त्वनुमीयते । तथात्मापि पृथिव्याद्यसाधारणगुणोपलब्धेरस्तीत्यनुमीयते । चैतन्यं च तस्यासाधारणगुणइत्येतत्पृथिव्यादिजूतसमुदाये चैतन्यस्य निराकृतत्वादवसेयं । तथास्त्यात्मा समस्तेंद्रियोपलब्धार्थसंकलनाप्रत्ययसद्भावात् । पंचगवाक्षान्यनन्योपलब्धार्थसंकलनाविधाय्येकदेवदत्तवत् । तथाऽत्माऽर्थद्रष्टा नेंद्रियाणि । तद्विगमे हि तडपलब्धार्थस्मरणात् । गवाक्षोपरमेऽपि तद्द्वारोपलब्धार्थस्मर्तृदेवदत्तवत् । तथार्या

पत्त्याप्यात्मास्तीत्यवसीयते । तथापि सत्यपि पृथिव्यादिनूतसमुदाये लेप्यकर्मादौ न सुखडुःखेज्ञाद्वेषप्रयत्नादिक्रियाणां सद्भाव इत्यतः सामर्थ्यादवसीयते । अस्ति नूतातिरिक्तः कश्चित्सुखडुःखेज्ञादीनां क्रियाणां समवायिकारणं पदार्थः सचात्मेति । तदेवं प्रत्यक्षानुमानादिपूर्विकाऽन्याप्यर्थापत्तिरन्यूह्या । तस्यास्त्विदं लक्षणं । प्रमाणषट्कविज्ञातो, यत्रार्थो नान्यथा नवेत् ॥ अदृष्टं कल्पयेदन्यं, सार्थापत्तिरुदाहृता ॥ १ ॥ तथाऽगमादप्यस्तित्वमवसेयं । सचायमागमः । अज्ञिमेआयाउववाइएइत्यादि । यदि वा किमत्राऽपरप्रमाणचिंतया सकलप्रमाणज्येष्ठेन प्रत्यक्षेणैवात्मास्तीत्यवसीयते । तजुणस्य ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वात् । ज्ञानगुणस्य च गुणिनोऽनन्यत्वात् । प्रत्यक्षएवात्मा रूपादिगुणाप्रत्यक्षत्वेन पटादिप्रत्यक्षवत् । तथा ह्यहं सुख्यहं डुःख्येवमाद्यहंप्रत्ययग्राह्यऽस्त्यात्माप्रत्यक्षः । अहंप्रत्ययस्य स्वसंविद्रूपत्वादिति । ममेदं शरीरं पुराणं कर्मेति च शरीराझेदेन निर्दिश्यमानत्वादित्यादीन्यन्यान्यपि प्रमाणानि जीवसिद्धावन्यूह्यानीति ॥ तथा यडुक्तं । न नूतव्यतिरिक्तं चैतन्यं तत्कार्यत्वात् घटादिवदित्येतदप्यसमीचीनं । हेतोरसिद्धत्वात् । तथाहि । न नूतानां कार्यं चैतन्यं तेषामतजुणत्वात् नूतकार्यचैतन्ये संकलनाप्रत्ययासंनवाचेत्यादिनोक्तप्रायमतोस्त्यात्मा नूतव्यतिरिक्तो ज्ञानाधारइत्युक्तं । ननुच किं ज्ञानाधारजूतेनात्मना ज्ञानाभिन्नेनाश्रितेन यावता ज्ञानादेव सर्वसंकलनाप्रत्ययादिकं सेत्स्यति किमात्मनांतर्गडुकल्पेनेति । तथाहि । ज्ञानस्यैव चिडूपत्वाद्भूतैरचेतनैः कायाकारपरिणतैः सह संबंधे सति सुखडुःखेज्ञाद्वेषप्रयत्नक्रियाः प्राडुष्षंति तथा संकलनाप्रत्ययो नवान्तरगमनंचेति । तदेवं व्यवस्थिते किमात्मना कल्पितेनेत्यत्रोच्यते । नत्वात्मानमेकमाधारनूतमंतरेण संकलनात्र न्याय्या घटते । तथाहि । प्रत्येकमिंड्रियैः स्वविषयग्रहणे सति परविषये चाप्रवृत्तेरेकस्य च परिज्ञेत्तुरनावात् । मया पंचापि विषयाः परिच्छिन्ना इत्यात्मकस्य संकलनाप्रत्ययस्यानावादिति । आलयविज्ञानमेकमस्तीति चेदेवं सत्यात्मनएव नामांतरं नवता कृतं स्यात् । नच ज्ञानाख्यो गुणो गुणिनमंतरेण नवतीत्यवश्यमात्मना गुणिना नाव्यमिति । सच न सर्वव्यापी तजुणस्य सर्वत्रानुपलन्यमानत्वात् घटवत् । नापि श्यामाकतंडुलमात्रोंगुष्ठपर्वमात्रो वा । तावन्मात्रस्योपात्तशरीराव्यापित्वात् त्वक्पर्यंतशरीरव्यापित्वात् त्वचोपलन्यमानगुणत्वात् । तस्मात्स्थितमिदमुपात्तशरीरत्वक्पर्यंतव्याप्यात्मेति । तस्य चानादिकर्मसंबद्धस्य कदाचिदपि सांसारिकस्यात्मनः स्वरूपेऽनवस्थानात् सत्यप्यमूर्तत्वे मूर्तेन कर्मणा संबंधो न विरुध्यते । कर्मसंबंधाच्च सूक्ष्मबादरैकेंड्रियद्वित्रिचतुःपंचेंड्रियपर्याप्तापर्याप्तसाद्यवस्था बहुविधाः प्राडुर्नवंति । तस्य चैकांतेन क्षणिकत्वे ध्यानाध्ययनश्रमप्रत्यनिज्ञानाद्यनावः । एकांतनित्यत्वे च नारकतिर्यङ्मनुष्यामरगतिपरिणामानावः स्यात्तस्मात्स्यादनित्यः स्यान्नित्यआत्मेत्यलमतिप्रसंगेन ॥ ७ ॥

जहा य पुढवीथूने, एगे नाणाहि दीसइ ॥ एवं नो कसिणे लोए विन्नू नाणाहि दीसइ ॥ ए ॥ एवमेगेत्ति जप्पंति, मंदा आरंनणिस्सिआ ॥ एगे किच्चा सयं पावं, तिवं डुक्कं नियहइ ॥ १० ॥

अर्थ–एम पंचनूतियागता एटले पंच नूतिक वादिनो मत कह्युं. हवे आत्माद्वैत वादिनो मत दृष्टांतेकरी कहिये ढैयें. जहाय के० जेम पुढवीथूनेएगे के० पृथ्वीरूप थून एक ढतां नाणाहिदीसइ के०नदी, समुद्र, पर्वत. नगर अने ग्राम इत्यादि रूप नाना प्रकारे देखायढे. परंतु विचाले पृथ्वीनुं अंतर कांइ देखातुं नथी एटले पृथ्वी एकज ढे. एवंके० ए उक्त न्याये, नो ए वचन परने वोलाववाने अर्थेढे. एटले अहो? दर्शनीउ तेम कसिणे लोएके० ए समस्त लोक चराचर स्वरूप एकज ढे एटले आत्मारूप ढे, परंतु विन्नू के० विद्वान् ते चराचररूप आत्मा. नाणाइ दीसइ के० नानाप्रकारे द्विपद चतुष्पद वहुपदादिरूप देखाय ढे. परंतु जे एम कहे के, शरीर शरीरने विषे आत्मा जुदो जुदो ढे ते मिथ्या ढे. यडुक्तं। एकएवहि नूतात्मा, नूते नूते व्यवस्थितः॥ एकधा वहुधा चैव, दृश्यते जलचंडवत् ॥ १ ॥ इत्यादि ॥ ए ॥ हवे जैन एने उत्तर आपेढे. एवं के० ए पूर्वोक्त न्याये एगेत्ति के० एक एटले कोइ एक परवादी, पोताना ढंदने वलात्कारे एम जप्पंति के०वोले ढे. ते केवाढे, तोके मंदा के०मंद ढे. एटले सम्यक् ज्ञान विकल ढे; केमके, जो सर्वत्र आत्मा एकज ढे, वीजो नथी तो जगत्मांहे एगेके० एकेक जीव करसणी प्रमुख आरंनणिस्सिआ के० जीवहिंसात्मक आरंननेविषे निस्सिया एटले आसक्त थका सयंके० पोते पावं के० पापने किच्चा के० करीने तिव्वंडुक्कं के० तीव्र डुःखने नियहइ के० पामेढे. पण अनेरा नथी पामता, तथा जे जीव जगत्मां कांइ असमंजस चौरादिक कर्म करे ढे, ते ढेदनन्नेदनादिक अनेक विटंबनाउ पामेढे. अने जे नलो समाचरेढे ते साता पामेढें: माटे जो सर्वजीवनो आत्मा एकज होय तो सर्व जीवने विटंवना अथवा साता केम न थवी जोइये? माटे ए तमारुं वचन मिथ्या ढे; केमके सर्व जीव पोतपोतानी करणीए सुख डुःखने पामेढे ॥ १० ॥ ए सव्वगतवादिगता एटले सर्वगत वादीनुं मत कह्युं.

॥ दीपिका– अथ एकात्माऽद्वैतवादमुद्दिश्याह । (जधायेति) यथा च शब्दोऽपिशब्दार्थे। सच निन्नः । पृथिव्याःस्तूपः पृथिव्येव वा स्तूपः पृथिवीसंघाताख्योऽवयवी । सच एकोपि यथा नानारूपः सरित्समुद्रपर्वतनगरग्रामाद्याधारतया विचित्रो दृश्यते । निम्नोन्नतमृडुकविनरक्तपीतादिन्नेदेन वा दृश्यते । नच तावता पृथिवीत्वस्यैकस्य नेदो नवति। एवं नोऽइति परामंत्रणं । कृत्स्नोपि चेतनाचेतनरूपो लोक एको विद्वानेक एवात्मा विद्वान् ज्ञानपिंडः पृथिव्यादिनूताकारतया नाना दृश्यते।नच तावता तस्यैकस्यात्मतत्त्वस्य नेदो

जवति ॥ए॥ अस्योत्तरमाह । (एवमिति) एवमात्माद्वैतवादमाश्रिता एके जल्पंति । मंदा जडाः। मंदत्वं चैतेषां युक्तिविकलजीवाऽद्वैतपक्षाश्रयणात् । तथाहि। यद्येकएवात्मा स्या त्तदा एके कृषीवलादय आरंजे जीवहिंसात्मके निःश्रिता आसक्ताः स्वयंपापं कृत्वा तीव्रं नारकादिडुःखं (निगबइत्ति) आर्षत्वाद्बहुवचनार्थे एकवचनं। निश्चयेन गछंति । तएवारं जसक्तानान्ये इत्येतन्न स्यात्। यद्येक एवात्मा स्यात्तदा एकेनाप्यशुजे कर्मणि कृते सर्वेषां डुः खं स्यान्नचैवं दृश्यते । तस्मादेकएवात्मेति न युक्तं ॥ १० ॥

॥ टीका ॥ सांप्रतमेकात्माऽद्वैतवादमुद्देशार्थाधिकारप्रदर्शितं पूर्वपक्षयितुमाह ।(जहापुढवीत्यादि) दृष्टांतबलेनैवार्थस्वरूपावगतेः पूर्वंदृष्टांतोपन्यासः। यथेत्युपदर्शने । च शब्दोऽपिशब्दार्थे । सचजिन्नक्रमएकेइत्यस्यानंतरं इष्टव्यः। पृथिव्येव स्तूपा पृथिव्या वा स्तूपः पृथिवीसंघातावयवी। सचैकोपि यथा नानारूपः सरित्समुद्रपर्वतनगरसन्निवेशा द्याधारतया विचित्रो दृश्यते निम्नोन्नतमृडुकठिनरक्तपीतादिजेदेन वा दृश्यते । नच तस्य पृथिवीतत्त्वस्यैतावताजेदेन जेदो जवत्येवमुक्तरीत्या । जोइत्यादिपरामंत्रणं । कृत्स्नोपि लोकश्चेतनाचेतनरूप एकोविद्वान् वर्तते । इदमत्र हृदयं । एकएव ह्यात्मा विद्वान् ज्ञानपिंडः पृथिव्याद्याकारतया नाना दृश्यते नच तस्यात्मनएतावताऽत्मतत्त्व जेदो जवति । तथा चोक्तं । एकएव हि जूतात्मा, जूते जूते व्यवस्थितः॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ तथा पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च जव्यं॥ उतामृतत्व स्येशानो यदन्नेनातिरोहति, यदेजति यन्नेजति यद्दूरे यदंतरस्य सर्वस्य यत्सर्वस्यास्य बाह्यत इत्यात्माद्वैतवादः ॥ए॥ अस्योत्तरदानायाह। (एवमेगे इत्यादि) एवमित्यनंतरोक्ता त्माद्वैतवादोपदर्शनं। एके केचन पुरुषकारणवादिनो जल्पंति प्रतिपादयंति । किंजूतास्ते इत्याह। मंदा जडाः सम्यक्परिज्ञानविकलाः॥मंदत्वं चैषां युक्तिविकलात्माऽद्वैतपक्षसमाश्रयणात्। तथाहि।यद्येकएवात्मा स्यान्नात्मबहुत्वं ततो ये सत्वाःप्राणिनःकृषीवलादय एके केचन आरंजे प्राण्युपमर्दकारिणि व्यापारे निःश्रिता आसक्ताः संबद्धा अध्युपपन्नास्ते च संरंज समारंजैः कृत्वोपादाय स्वयमात्मना पापमशुजप्रकृतिरूपमसातोदयफलं तीव्रं डुःखं तदनुजवस्थानं वा नरकादिकं नियछतीति। आर्षत्वाद्बहुवचनार्थे एकवचनमकारि। ततश्चायमर्थो निश्चयेन यछंत्यवश्यतया गछंति प्राप्नुवंति तएवारंजासक्ता नान्यइत्येतन्न स्यादपित्वेकेनापि अशुजे कर्मणि कृते सर्वेषां शुजानुष्ठायिनामपि तीव्रडुःखाजिसंबंधः स्यादेकत्वादात्मनइति । नचैतदेवं दृश्यते।तथाहि।यएव कश्चिदसमंजसकारी सएव लोके तदनुरूपाविडंबनाः समनुजवन्नुपलज्यते नान्यइति । तथा सर्वगतत्वे आत्मनो बंधमोक्षाद्यजाव स्तथा प्रतिपाद्यप्रतिपादकविवेकाजावाच्छास्त्रप्रणयनाजावश्च स्यादिति । एतदर्थसंवादित्वात्प्राक्तन्येव निर्युक्तिकृजाथात्र व्याख्यायते । तद्यथा । पंचानां पृथिव्यादीनां जूतानामेकत्र

कायाकारपरिणतानां चैतन्यमुपलभ्यते । यदि पुनरेकएवात्मा व्यापी स्यात्तदा घटादिष्वेव चैतन्योपलब्धिः स्यान्नचैवं । तस्मान्नैकआत्मा भूतानां चान्योन्यगुणत्वं न स्यादेकस्मा दात्मनोभिन्नत्वात् । तथा पंचेंद्रियस्थानानां पंचेंद्रियाश्रितानां ज्ञानानां प्रवृत्तौ सत्याम न्येन ज्ञात्वा विदितमन्यो न जानातीत्येतदपि न स्याद्यद्येकएवात्मा स्यादिति ॥ १० ॥

पत्तेअं कसिणे आया, जे बाला जे अ पंमिआ ॥ संति पिच्चा
न ते संति, नत्थि सत्तोववाइया ॥ ११ ॥ नत्थि पुणेच पावेवा,
नत्थि लोए इतो परे ॥ सरीरस्स विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥१२॥

अर्थ—हवे तज्जीवतच्छरीरवादिनो मत कहेछे.—ते तज्जीवतच्छरीरवादी एम कहेछे के, जेम पंचभूत मली कायाने आकारें परिणामी चेतना उपजावेछे. तो ते कारणे प त्तेअंकसिणेआया के० शरीर शरीर प्रत्ये आत्मा जुदो जुदो छे. जगत्मां जे बालाके० बाल अज्ञानी तथा जेअपंमिआके० जे पंमित एटले विवेकी छे, ते सर्व जुदा जुदा छे. परंतु एक आत्मा सर्वव्यापी न जाणवो. एटले जैनमत अने तेमनो मत एकज थयो. हवे गाथानां उत्तरार्द्धवडे तेमनो भेद देखाडेछे. ते परवादी एम कहेछे के, आत्मा घणा छे, परंतु ज्यांसुधी शरीर छे त्यांसुधी संति के० छे. पण जेवारे शरीर नहीं, तेवारे आत्मापण नहीं. एटले गत्यंतर गामी आत्माउ नथी. ए प्रकारे करी भेद देखाडयो. वली तेहिज कहेछे. पिच्चानते संतिके० ते आत्माउ परलोकने विषे न जाय. एतावता शरीरथकी भिन्न आपणां कर्मनो भोगवनार एवो आत्मा नथी. तथापि न त्थिसत्तोववाइयाके० सत्व जे प्राणीउ ते उपपातिक नथी. एटले भवांतरमां जई उपजे नहीं अर्थात् गतागति पण नथी. अहीं शिष्य पूछेछे के, पूर्वे जे भूतवादि कह्या अने ए तज्जीव तच्छरीरवादी ए बेहुने मांहोमांहे शुं विशेषछे? तेवारे गुरु कहेछे के, भूतवा दीने मतें जे पंचमहाभूत तेहिज कायाने आकारे परिणमीने धावनवल्गनादिक क्रिया करे. अने एमने मतें पंचभूत कायाने आकारे परिणमी चैतन्य स्वरूप आत्मा उप जावे. परंतु भूतथकी आत्मा जुदो नथी. एटलुं विशेष छे. ॥ ११ ॥ हवे तेनी वक्त व्यता कहेछे, नत्थिपुणेचपावेवा के० तज्जीवतच्छरीरवादी एम कहेछे के, पुण्य नथी, पाप पण नथी, अने नत्थिलोएइतोपरे के० अतः उपरांत लोक पण नथी. जेटलुं दृष्टि गोचर आवेछे तेटलोज लोक छे. वली ग्रंथकार एनुं कारण कहेछे के; सरीरस्सविणासे णंके० शरीरने विनाशेकरी विणासीहोइ देहिणो के० आत्मानो पण विनाश थाय. ए कार ण माटे आत्माने अभावे पुण्य पाप तथा लोकनी संभावना क्यां थकी थाय? ॥१२॥
" तज्जीवतच्छरीरवादिगता " एटले तज्जीवतच्छरीरवादिनुं ए प्रमाणे मत कह्युं.

॥ दीपिका— सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतं पूर्वपक्ष्यन्नाह। (पत्तेअमिति)। प्रत्येकं प्रति शरीरमात्मानः कृत्स्नाः सर्वेपि ये बाला अज्ञा ये च पंडितास्ते सर्वेपि पृथग्व्यवस्थिताः नहि एकएवात्मा सर्वव्यापी स्वीकार्यो बालपंडितविभागाभावप्रसंगात्। नन्वेवमात्मबहुत्वं जैनैरपि स्वीक्रियतएव तत्किमिति परमतमाश्रित्य सूत्रमिदमुच्यतइत्याशंकायामाह। (संतित्ति)। संतिविद्यंते जीवाः शरीरं यावत्। शरीराभावे तु न संति। एतदेवाह। (पिच्चानतेसंति) प्रेत्य परलोके ते जीवा न संति। तेषां मते शरीराद्भिन्नः परलोकयायी न कश्चिदात्माख्यः पदार्थोस्तीति जैनेभ्यो भेदः किमित्येवं ते मन्यंत इत्याह। (नह्रिसत्तोववाइया) उपपातिका भवाद्भवांतरगामिनः सत्त्वाः प्राणिनो नहि न संति। ननु भूतवादिनोस्य च तज्जीवतच्छरीरवादिनः को भेद इत्यत्रोच्यते। भूतवादिनो भूतान्येव कायाकारपरिणतानि धावनवल्गनादिक्रियां कुर्वंति। अस्य तु कायाकारपरिणतेभ्योभूतेभ्यश्चैतनाख्य आत्मोपपद्यते अभिव्यज्यते वा तेभ्यश्चाभिन्न इत्यनयोर्विशेषः ॥ ११ ॥ तन्मतमेवाह। (नह्रीति)। नास्ति पुण्यं पापं च नास्त्यतोऽस्माल्लोकात्परोऽन्यो लोकः परलोको यत्र पुण्यपापानुभवइति। अत्र हेतुमाह। शरीरस्य विनाशेन देहिनो आत्मनोपि विनाशो ऽभावो भवति। तथाच दर्श्यते तन्मतलेशः। यथा स्वभावादेव जगद्वैचित्र्यं। यडुक्तं। कंटकस्य च तीक्ष्णत्वं, मयूरस्य विचित्रता ॥ वर्णाश्च ताम्रचूडानां, स्वभावेन भवंति हीति ॥ १२ ॥

॥ टीका— सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतं पूर्वपक्ष्यितुमाह। (पत्तेअमित्यादि)। तज्जीवतच्छरीरवादिनामयमभ्युपगमः। यथा पंचभ्यो भूतेभ्यः कायाकारपरिणतेभ्यश्चैतन्यमुत्पद्यते अभिव्यज्यते चैकैकं शरीरंप्रति प्रत्येकमात्मनः कृत्स्नाः सर्वेप्यात्मान एवमवस्थिताः ॥ ये बालाअज्ञा ये च पंडिताः सदसद्विवेकज्ञास्ते सर्वे पृथग्व्यवस्थिताः। नह्येकएवात्मा सर्वव्यापित्वेनाभ्युपगंतव्यो बालपंडिताद्यविभागप्रसंगात्। ननु प्रत्येकशरीराश्रयत्वेनात्मबहुत्वमर्हतानामपीष्टमेवेत्याशंक्याह। संति विद्यंते यावच्छरीरं विद्यंते तदभावे तु न विद्यंते। तथाहि। कायाकारपरिणतेषु भूतेषु चैतन्याविर्भावोभवति भूतसमुदायविघट्टने च चैतन्यापगमो न पुनरन्यत्र गच्छच्चैतन्यमुपलक्ष्यते। तदेव दर्शयति। (पिच्चानते संतीति) प्रेत्य परलोके न ते आत्मानः संति विद्यंते। परलोकानुयायी ह्यात्मा शरीराद्भिन्नः स्वकर्मफलभोक्ता न कश्चिदात्माख्यः पदार्थोस्तीति भावः। किमित्येवमतआह। (नह्रिसत्तोववाइया)। अस्तिशब्दस्तिङंतप्रतिरूपको निपातो बहुवचने द्रष्टव्यस्तदयमर्थः। न संति न विद्यंते ॥ तदभावेतु न विद्यंते सत्वाः प्राणिन उपपातेन निर्वृत्ता उपपातिका भवाद्भवांतरगामिनो न भवंतीति तात्पर्यार्थः। तथाहि। तदागमाः विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुछाय ताम्ये

वानुविनश्यतीति नप्रेत्य संज्ञा ध्यस्तीति । ननु प्रागुपन्यस्तनूतवादिनोऽस्य च तज्जीवतच्छरीर वादिनः को विशेष इत्यत्रोच्यते । नूतवादिनो नूतान्येव कायाकारपरिणतानि धावनवल्ग नादिकां क्रियां कुर्वंत्यस्य तु कायाकारपरिणतेन्यो नूतेन्यश्चैतन्याख्य आत्मोत्पद्यते ऽनिव्य ज्यते वा तेन्यश्चानिन्नइत्ययं विशेषः ॥ ११ ॥ एवंच धर्मिणोऽनावाद्धर्मस्याप्यनावइति दर्शयि तुमाह । (नह्निपुरुणेच पावेवा इत्यादि) । पुण्यमन्युदयप्राप्तिलक्षणं तद्विपरीतं पापमेतडुनय मपि न विद्यते । आत्मनो धर्मिणोऽनावात् । तदनावाच्च नास्त्यतोऽस्माह्लोकात्परोऽन्यो लोको यत्र पुण्यपापानुनवइति । अत्रार्थेसूत्रकारः कारणमाह । शरीरस्य कायस्य वि नाशेन नूतविघटनेन विनाशेन देहिनआत्मनोप्यनावो नवति यतो न पुनःशरीरे विनष्टे तस्मादात्मा परलोकं गत्वा पुण्यं पापं वाऽनुनवतीत्यतोधर्मिणआत्मनोनावात्तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरप्यनावइति । अस्मिंश्चार्थे बहवो दृष्टांताः संति । तद्यथा । यथा जलबुद्बु दो जलातिरेकेण नापरः कश्चिद्विद्यते तथा नूतव्यतिरेकेण नापरः कश्चिदात्मेति । तथाच यथा कदलीस्तंनस्य बहिस्त्वगपनयने क्रियमाणे त्वङ्मात्रमिव सर्वं नांतः कश्चित्सारोस्त्ये वं नूतसमुदाये विघटति सति तावन्मात्रं विहाय नांतःसारनूतः कश्चिदात्माख्यः पदा र्थ उपलन्यते । यथावाऽलातं न्राम्यमाणमतद्रूपमपि चक्रबुद्धिमुत्पादयत्येवं नूतसमुदायो पि विशिष्टक्रियोपेतो जीवन्रांतिमुत्पादयतीति । यथा च स्वप्ने बहिर्मुखाकारतया विज्ञा नमनुनूयते आंतरेणैव बाह्यमर्थमेवमात्मानमंतरेण तद्विज्ञानं नूतसमुदाये प्राडुर्नवती ति । तथा । यथाऽदर्शे स्वह्नत्वात्प्रतिबिंबितो बहिःस्थितोप्यर्थोंतर्गतो लक्ष्यते नचासौ त था । यथाच ग्रीष्मे नौमेनोष्मणा परिस्पंदमाना मरीचयो जलाकारं विज्ञानमुत्पादयंत्ये वमन्येपि गंधर्वनगरादयः स्वस्वरूपेणाऽतथानूता अपि तथा प्रतिनासंते तथात्मापि नू तसमुदायाकारपरिणतौ सत्यां पृथगसन्नेव तथा न्रांतिं समुत्पादयतीत्यमीषां च दृष्टांता नां प्रतिपादकानि केचित्सूत्राणि व्याचक्षते । अस्मानिस्तु सूत्राऽदर्शेषु चिरंतनटीकायां चादृष्टत्वान्नालिंगितानीति । ननु च यदि नूतव्यतिरिक्तः कश्चिदात्मा न विद्यते तत्कृते च पुण्यापुण्ये न तत्कथमेतद्यद्वैचित्र्यं घटते । तद्यथा कश्चिदीश्वरोऽपरो दरिद्रोन्यः सुनगो परोडुर्नगः सुखी डुःखी सुरूपो मंदरूपो व्याधितो नीरोगीत्येवं प्रकारा विचित्रता किन्नि बंधनेत्यत्रोच्यते । स्वनावात् । तथाहि । कुत्रचिच्छिलाशकले प्रतिमारूपं विद्यते तच्च कुं कुमागरुचंदनादिविलेपनानुन्नोगमनुनवति धूपाद्यामोदं च । अन्यस्मिंस्तु पाषाणखंडे पाद क्षालनादि क्रियते नच तयोः पाषाणखंडयोः शुनाशुने स्तः । यडुदयात्स तादृगवस्था विशेष इत्येवं स्वनावाज्जगद्वैचित्र्यं । तथाचोक्तं । कंटकस्य च तीक्ष्णत्वं मयूरस्य विचि त्रता ॥ वर्णाश्च ताम्रचूडानां,स्वनावेन नवंति हीति॥ १॥तद्यावत्तच्छरीरवादिमतं गतं ॥१२॥

कुवं च कारयं चेव, सव्वं कुव्वं न विज्जई ॥ एवं अकारउ अप्पा, एवं
तेउ पगप्भिआ ॥ १३ ॥ जे ते नुवाइणो एवं, लोए तेसिं कउसिया ॥
तमाउ ते तमं जंति, मंदा आरंन्ननिस्सिया ॥१४॥ आत्मषष्ठवादीगतः ॥

अर्थ—हवे अक्रियावादिनो मत कहेछे. ते अकर्मवादी एम कहेछे के; आत्मा अमूर्त्तछे, नित्यछे, तथा सर्वव्यापी छे. ते कारणे कुव्वंचके० क्रियानो कर्त्ता नथी. तथा कारयंचेवके० अनेरा पासे करावनार पण नथी; एटले आत्मा पोते क्रियाने विषे न प्रवर्त्ते, तथा अनेराने पण प्रवर्त्तावे नही. पूर्वे चकार आव्योछे ते अतीत अनागतना कर्त्ताने निषेधवाने अर्थे छे. यद्यपि स्थितिक्रिया अने मुद्राप्रतिबिंबोदयन्याये नोजनक्रिया पण करे. तथापि समस्त क्रिया कारकपणुं नथी. एहिज नाव देखाडेछे. सव्वंकुंव्वंन विज्जई के० सर्व क्रियानें एटले देशथकी देशांतर गमनरूप क्रियाने आत्मा करतो नथी. एवंअकारउ अप्पाके० ए रीते आत्मा अकारक छे. एवंतेउपगप्भिआके० एप्रकारे ते सांख्यवादी धृष्टपणुं करता थका, प्रकृति करे, पुरुष नोगवे, इत्यादिक अयोग्य वचन बोले एटले अक्रिया वादिनुं मत कह्युं. ॥१३॥ हवे जैन, एना मतनुं निराकरण करेछे. जेते उवाइणो एवंके० जे, आत्मा शरीरथकी जुदो नथी. तथा आत्मा अकर्त्ता छे एम कहेछे. तेसिंके० तेने लो एकउसियाके० चतुर्गतिक संसाररूप लोक क्यां थकी होय? निःकेवल ते लोकमांहे वाचालपणुं देखाडेछे. एवा छतां तमाउते तमंजंतिके० ते अज्ञानरूप तम एटले अंधकार तेमांहेथकी निकलीने अनेरा तम एटले अंधकारमांहे जंति एटले जायछे, एटले ज्ञानवर्णादिक कर्म उपार्जन करेछे. अथवा तमनेविषे द्विअर्थे नरक पृथ्वी एवो अर्थ थायछे. माटे त्यांपण जायछे. ते नरक पृथ्वीयें केम जाय, तेनुं कारण कहेछे. ते लोक मंदाके० मंद एटले मूर्ख छे, वली आरंन्ननिस्सियाके० आरंन्ननिश्रित एटले आरंन्न जे प्राणघात तेनां व्यापारे निश्रितछे, एकांते तेमां आसक्तछे, जे कारण माटे तेमना मते आत्मानो अन्नावछे, ते कारणे पुण्य पाप पण नथी. एवुं जाणीने ते नास्तिकवादी आरंन्न करतां थका शंका पामता नथी. तथा जे एवुं कहेछे के आत्मा क्रिया करे नहीं, तेपण एमनी पेरेज आरंन्नी जाणवा ॥ १४ ॥ अकिरियावाइगता एटले सांख्यनुं मत ए प्रमाणे कह्युं.

॥दीपिका—अथाऽक्रियावादिमतमाह।(कुर्वन्निति) कुर्वन् कारयंश्चा ऽऽत्मा न नवति। आत्मनो व्यापकत्वादमूर्तत्वाच्च कर्तृत्वानुपपत्तिः।ततएव कारयितृत्वमप्यात्मनो न युक्तं।एकश्च शब्दोऽतीतानागतकर्तृत्वनिषेधको द्वितीयः समुच्चयार्थः ॥ कर्तृत्वकारयितृत्वनिषेधादन्यापि क्रिया तस्य नास्तीत्याह । (सव्वंति)। सर्वां परिस्पंदादिकां देशादेशांतरप्राप्तिरूपां क्रियां

कुर्वन्नात्मा न विद्यते । सर्वव्यापित्वेनामूर्तत्वेन चाकाशस्येवात्मनो निष्क्रियत्वं सांख्यमते । (एवंतेउत्ति) एवमुक्तप्रकारेण ते सांख्याः प्रगल्भिताः प्रागल्भ्यवंतो धाष्टर्यवंतो विद्यंते॥ १३॥ सांप्रतं तज्जीवतच्छरीराकारकवादिनोमतं निराकुर्वन्नाह । (जेतेइति)। ये तावच्छरीरा ऽव्यतिरिक्तात्मवादिन एवं पूर्वोक्तयुक्त्या भूताऽव्यतिरिक्तमात्मानमभ्युपगतवंतस्ते निराक्रियंते । तेषां लोकश्चतुर्गतिभवरूपः सुभग, दुर्भग, सुरूप, कुरूपेश्वर, दारिद्र्याद्दिगत्या जगद्वैचित्र्यरूपः कुतः स्यात् । आत्माऽनंगीकारे पुण्यपापाभावे कथं विश्ववैचित्र्यमित्यर्थः । तेच नास्तिकास्तमसोऽज्ञानरूपात् तमो यांति । ज्ञानावरणावृताः पुनर्ज्ञानावरणरूपं तमः प्रविशंति । अथवा सद्विवेकप्रध्वंसित्वात्तमोदुःखं तस्मात्तमो महादुःखं यांति । यतस्ते मंदा जडाः परलोकनिरपेक्षत्वाच्चाऽरंभनिश्रिताः । अयमेवश्लोकोऽकारकवादिम तमाश्रित्य किंचिद्विव्रियते । येवादिनोऽकारकाः सांख्याः संति तेषां लोको जरामरण शोकहर्षादिरूपो नारकतिर्यगादिरूपो निष्क्रिये सत्यात्मनि कुतः कस्माद्धेतोः स्या न्न स्यादित्यर्थः । ततश्चदृष्टेष्टबाधारूपात्तमसोऽज्ञानात्ते तमो वेदनास्थानं यांति । यतो मंदाश्चारंभनिश्रिताश्चेति सांख्यमतं निरस्तं ॥ १४ ॥

॥टीका—इदानीमकर्मकवादिमताभिधित्सयाऽह । (कुवंचेत्यादि) कुर्वन्निति स्वतंत्रः कर्ताभिधीयते ॥ आत्मनश्चामूर्तत्वात्सर्वव्यापित्वाच्च कर्तृत्वाऽनुपपत्तिः॥ अतएवहेतोः कारयितृत्वमप्यात्मनोनुपपन्नमिति । पूर्वश्चशब्दोऽतीतानागतकर्तृत्वनिषेधको द्वितीयः समुच्चयार्थः । ततश्चात्मा न स्वयं क्रियायां प्रवर्तते नाप्यन्यं प्रवर्तयति । यद्यपि च स्थितिक्रियां मुद्राप्रतिबिंबोदयन्यायेन च भुजिक्रियां करोति तथापि समस्तक्रियाकर्तृत्वं तस्य नास्तीत्येतद्दर्शयति । (सव्वंकुव्वंणविज्जइत्ति) सर्वा परिस्पंदादिकां देशाद्देशांतरप्राप्तिलक्षणां क्रियां कुर्वन्नात्मा न विद्यते । सर्वव्यापित्वेनामूर्तत्वेन चाकाशस्येवात्मनो निष्क्रियत्वमिति । तथा चोक्तं । अकर्ता निर्गुणो भोक्ता, आत्मा सांख्यनिदर्शन इति । एवमनेन प्रकारेणात्माऽकारक इति ते सांख्याः । तुशब्दः पूर्वेभ्यो व्यतिरेकमाह । ते पुनः सांख्या एवं प्रगल्भिताः प्रगल्भवंतो धाष्टर्यवंतः संतो भूयोभूयस्तत्र तत्र प्रतिपादयंति । यथा प्रकृतिः करोति पुरुष उपभुंक्ते यथा बुध्यवसितमर्थं पुरुषश्चितयते इत्याद्यकारकवादिमतमिति ॥ १३ ॥ सांप्रतं तज्जीवतच्छरीराकारकवादिनो मतं निराचिकीर्षुराह । (जेतेउवाइणोइत्यादि) तत्र ये तावच्छरीराव्यतिरिक्तात्मवादिन एवमिति पूर्वोक्तया नीत्या भूतव्यतिरिक्तमात्मानमभ्युपगतवंतस्ते निराक्रियंते। तत्र यत्तैस्तावदुक्तं । यथा न शरीराद्भिन्नोस्त्यात्मेति तदसंगतं । यतस्तत्प्रसाधकं प्रमाणमस्ति । तच्चेदं । विद्यमानकर्तृकमिदं शरीरमादिमत्प्रतिनियताकारकत्वात् । इह यद्यदादिमत्प्रतिनियताकारं तत्तद्विद्यमानकर्तृकं दृष्टं । यथा घटः । य

त्ताऽविद्यमानकर्तृकं तदादिमत्प्रतिनियताकारमपि न नवति यथाकाशं । आदिमत्प्रतिनियताकारस्य च सकर्तृत्वेन व्याप्तेः। व्यापकनिवृत्तौ व्याप्यस्य विनिवृत्तिरिति सर्वत्र योजनीयं। तथाविद्यमानाधिष्ठातृकानींडियाणि । करणत्वात् । यद्यदिह करणं तत्तद्विद्यमानाधिष्ठातृकं दृष्टं । यथा दंडादिकमिति । अधिष्ठातारमंतरेण करणत्वाऽनुपपत्तिः । यथाकाशस्य। हृषीकाणां चाधिष्ठाताऽत्मा सच तेन्योऽन्य इति । तथा विद्यमानाधिष्ठातृकमिदमिंडियविषयकदंबकं । आदानादेयसन्नावात् । इह यत्र यत्राऽदानादेयसन्नावस्तत्र तत्र विद्यमान आदाता ग्राहको दृष्टः । यथा संदंशकायःपिंडयोस्तद्भिन्नोऽयस्कार इति । यथा त्रेंडियैः करणैर्विषयाणामादाता ग्राहकः स तद्भिन्नआत्मेति । तथा विद्यमाननोक्तृकमिदं शरीरं नोग्यत्वादोदनादिवत् । अत्रच कुलालादीनां मूर्तत्वाऽनित्यत्वसंहतत्वदर्शनादात्मापि तथैव स्यादिति धर्मविशेषविपरीतसाधनत्वेन विरुद्धा शंका न विधेया । संसारिण आत्मनः कर्मणा सहान्योन्यानुबंधतः कथंचिन्मूर्तत्वाद्यन्युपगमादिति । तथा यडुक्तं। नास्ति सत्त्वाऔपपातिका इति तदप्ययुक्तं । यतस्तदहर्जातबालकस्य यःस्तनानिलाषः सोन्यानिलाषपूर्वको ऽनिलाषत्वात् कुमारानिलाषवत् । तथा बालविज्ञानमन्यविज्ञानपूर्वकं विज्ञानत्वात् कुंमारविज्ञानवत् । तथाहि । यदहर्जातबालकोपि यावत्सएवायं स्तन इत्येवं नावधारयति तावन्नोपरत रुदितो मुखमर्पयति स्तने इत्यतोऽस्ति बालके विज्ञानलेशः सचाऽन्यविज्ञानपूर्वकः । तथान्यद्विज्ञानं नवांतरविज्ञानं तस्मादस्ति सत्त्व उपपातिकइति । तथा । यदनिहितं विज्ञानघनएवैतेन्यो नूतेन्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यतीति । तत्राप्ययमर्थो विज्ञानघनो विज्ञानपिंड आत्मा नूतेन्य उत्थायेति प्राक्तनकर्मवशात्तथाविधकायाकारपरिणते नूतसमुदाये तद्द्वारेण स्वकर्मफलमनुनूय पुनस्तद्विनाशे आत्मापि तदनु तेनाकारेण विनश्यापरपर्यायांतरेणोत्पद्यते नपुनस्तैरेव सह विनश्यतीति । तथा यडुक्तं। धर्मिणो ऽन्नावात्तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरन्नावइति तदप्यसमीचीनं । यतो धर्मी तावदनंतरोक्तिकदंबकेन साधितस्तत्सिद्धौ च तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरपि सिद्धिरवसेया जगद्वैचित्र्यदर्शनाच्च ।यत्तु स्वन्नावमाश्रित्योपलशकलं दृष्टांतत्वेनोपन्यस्तं तदपि तद्भोक्तृकर्मवशादेव तथा तथासंवृत्तइति डुर्निवारः पुण्यापुण्यसन्नावइति । येपि बहवः कदलीस्तंनादयो दृष्टांता आत्मनो ऽन्नावसाधनायोपन्यस्तास्तेप्यन्निहितनीत्याऽत्मनोनूतव्यतिरिक्तस्य परलोकयायिनः सारनूतस्य साधितत्वात्केवलं नवतो वाचालतां प्रख्यापयंति इत्यलमतिप्रसंगेन । शेषं सूत्रं विव्रियतेऽधुनेति । तदेवं तेषां नूतव्यतिरिक्तात्मनिन्हववादिनां योयं लोकश्चतुर्गतिकसंसारो नवान्नवांतरगतिलक्षणः प्राक् प्रसाधितः सुन्नगडुर्नगसुरूपमंदरूपेश्वरदारिद्र्यादिगत्या जगद्वैचित्र्यलक्षणश्च स एवंनूतो लोकस्तेषां कुतो नवेत् । कयोपपत्त्या घटेत । आत्मनोऽनन्युपगमान्न किंचिदित्यर्थः । तेच नास्तिकाः परलोकयायिजीवा

ऽनन्युपगमेन पुण्यपापयोश्चान्नावमाश्रित्य यत्किंचनकारिणोऽज्ञानरूपात्तमसः सकाशाद न्यत्तमो यांति । नूयोपि ज्ञानावरणादिरूपं महत्तरं तमः संचिन्वंतीत्युक्तं नवति । यदि वा तमइवतमो दुःखसमुद्घातेन सदसद्विवेकप्रध्वंसित्वाद्यातनास्थानं तस्मादेवंनूतात्त मसः परतरं तमो यांति । सप्तमनरकपृथिव्यां रौरव, महारौरव, काल, महाकालाप्र तिष्ठानाख्यं नरकावासं यांतीत्यर्थः । किमिति । यतस्ते मंदा जडा मूर्खाः सत्यपि यु क्त्युपपन्ने आत्मन्यसद्न्निनिवेशात्तदन्नावमाश्रित्य प्राण्युपमर्दकारिणि विवेकिजननिंदि ते आरंन्ने व्यापारे निश्चयेन नितरां चाश्रिताः संबद्धाः पुण्यपापयोरन्नाव इत्याश्रित्य परलो कनिरपेक्ष्याऽऽरंन्ननिश्रिताइति । तथा तज्जीवतब्बरीरवादिमतं निर्युक्तिकारोपि निराचिकी र्षुराह । " पंचण्हमित्यादिगाथा प्राग्वदत्रापि " ॥ ३३ ॥ सांप्रतमकारकवादिमतमाश्रि त्याथमनंतरश्लोको नूयोपि व्याख्यायते । ये एते अकारकवादिन आत्मनोऽमूर्तत्वनि त्यत्वसर्वव्यापित्वेन्यो हेतुन्यो निष्क्रियत्वमेवान्युपपन्नास्तेषां यएषलोको जरामरणशोका क्रंदनहर्षादिलक्षणो नरकतिर्यङ्मनुष्यामरगतिरूपः सोयमेवंनूतो निष्क्रिये सत्यात्मन्य प्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनावे कुतः कस्माद्धेतोः स्यान्न कथंचित्कुतश्चित्स्यादित्यर्थः । तत श्च दृष्टेष्टबाधारूपात्तमसोऽज्ञानरूपात्ते तमोंतरं निकृष्टं यातनास्थानं यांति । किमिति । यतो मंदाजडाः प्राण्यपकारकाऽऽरंन्ननिश्रिताश्च ते इति । अधुना निर्युक्तिकारोऽकारकवादि मतनिराकरणार्थमाह । " कोवेएई य कयं, कयनासो पंचहा गई न नि ॥ देवमणुस्सग यागइ, जाईसरणा इयाणं च " ॥ ३४ ॥ (कोवेएइत्यादि) । आत्मनोऽकर्तृत्वात्कृतं नास्ति ततश्चाकृतं को वेदयते । तथा निष्क्रियत्वे वेदनक्रियाऽपि न घटां प्रांचति । अथा ऽकृतमप्यनुनूयेत तथा सत्यकृतागमकृतनाशापत्तिः स्यात् । ततश्च एककृतपातकेन सर्व प्राणिगणो डुःखितः स्यात् पुण्येन च सुखी स्यादिति । नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । तथाव्यापि त्वान्नित्यत्वाच्चात्मनः पंचधा पंचप्रकारा नारक, तिर्यङ्,मनुष्या,मर, मोक्ष, लक्षणागति र्न नवेत् । ततश्च नवतां सांख्यानां काषायचीवरधारण,शिरस्तुंडमुंडन,दंडधारण, निक्षान्नोजित्व,पंचरात्रोपदेशानुसारयमनियमाद्यनुष्ठानं । तथा । पंचविंशतितत्त्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रतः ॥ जटी मुंडी शिखी वापि, मुच्यते नात्र संशयइत्यादि सर्वमपार्थकमा प्नोति । तथा देवमनुष्यादिषु गत्याऽगती न स्यातां सर्वव्यापित्वादात्मनः । तथानित्यत्वा च्च विस्मरणान्नावाज्जातिस्मरणादिका च क्रिया नोपपद्यते । तथा । आदिग्रहणात्प्रकृ तिः करोति पुरुषउपनुंक्तइति नुजिक्रिया या समाश्रिता सापि न प्राप्नोति । तस्या अपि क्रियात्वादिति । अथ मुड्राप्रतिबिंबोदयन्यायेन न्नोगइति चेदेतत्तु निरंतराः सुहृदः प्रत्ये ष्यंति । वाङ्मात्रत्वात् । प्रतिबिंबोदयस्यापि च क्रियाविशेषत्वादेव । तथा नित्ये चावि कारिण्यात्मनि प्रतिबिंबोदयस्यान्नावाद्यत्किंचिदेतदिति ॥३४॥ ननुच नुजिक्रियामात्रेण प्र

तिर्बिंबोदयमात्रेण च यद्यप्यात्मा सत्क्रियस्तथापि न तावन्मात्रेणास्मानिः सत्क्रिय त्वमिष्यते किं तर्हि समस्तक्रियावत्वे सतीत्येतदाशंक्य निर्युक्तिकृदाह । "णहु अफलत्वो वणि त्तित, कालफलनत्रणमिहं अडुमहेत ॥ णाडुब्वोवडुथ,त्ताणणगा वित्तणेहेक्क" ॥ ॥ ३५ ॥ (णहुअफलेत्यादि) नहु नैवाऽफलत्वं द्रुमानावे साध्ये हेतुर्नवति । नहि यदैव फलवांस्तदैव द्रुमोऽन्यदात्वद्रुम इति नावः । एवमात्मनोपि सुप्ताद्यवस्थायां यद्य पि कथंचिन्निष्क्रियत्वं तथापि नैतावता त्वसौ निष्क्रियइति व्यपदेशमर्हति । तथा स्तोक फलत्वमपि न वृक्षानावसाधनायालं । स्वल्पफलोपि हि पनसादिर्वृक्षस्य व्यपदेशनाग्न वति । एवमात्मापि स्वल्पक्रियोपि क्रियावानेव ॥ कदाचिदेषा मतिर्नवतो नवेत् स्तोकक्रि यो निष्क्रियएव । यथैककार्षापणधनो न धनित्वमास्कंदत्येवमात्मापि स्वल्पक्रियत्वा दक्रियइत्येतदप्युपचारः । यतोयं दृष्टांतः प्रतिनियतपुरुषापेक्षया चोपगम्यते समस्तपुरुषा पेक्षया वा । तत्र यद्याद्यः पक्षस्तदा सिद्धसाध्यता । यतः सहस्रादिधनवदपेक्षया निर्धनए वासौ । अथ समस्तपुरुषा पेक्षया तदसाधु । यतोन्यान्जरन्नीवरधारिणोपेक्ष्य कार्षापणध नोपि धनवानेव । तथात्मापि यदि विशिष्टसामर्थ्योपेतपुरुषक्रियापेक्षया निष्क्रियोऽन्युपगम्य ते । न काचित्क्षतिः। सामान्यापेक्षया तु क्रियावानेवेत्यलमतिप्रसंगेन । एवमनिश्चिताकालफ लत्वाख्यहेतु द्वयमपि न वृक्षानावसाधकमित्यादि योज्यं।एवमडुग्धत्वस्तोकडुग्धत्वरूपावपि हेतू न गोत्वानावत्वं साधयतः । उक्तन्यायेनैव दार्ष्टांतिकयोजना कार्येति ॥ ३५ ॥ १४ ॥

संति पंच महब्नूया, इहमेगेसि आहिया ॥ आयठ्ठो पुणो आहु,
आया लोगेय सासए ॥ १५ ॥ डुहउ ण विणस्संति, नोय उप्पज्ज
ए असं ॥ सवे वि सवहा नावा, नियतीनावमागया ॥ १६ ॥

अर्थ—हवे आत्मषष्ठवादिनो मत कहेछे. ते वादी एम कहेछे के, इहमेगेसिआहियाके० आसंसारनेविषे एक आत्मषष्ठवादिउना मते एम कह्युं के, संतिपंचमहब्नूयाके० पांच महा नूतछे. वली ते वादी एम कहेछे के, आयठ्ठोपुणोआहुके०जेम पंच महानूत तेम आत्मा ठ्ठोछे. वली अनेराने मते आत्मा अने पंच महानूत अशाश्वताछे. तेम एने मते नथी, ते कहेछे के, आयालोगेयसासएके० आत्मा अने पृथिव्यादिकरूपजे लोक ते एने मते शा श्वता सर्वव्यापिछे. माटे अविनाशि रूपछे. ॥ १५ ॥ वली तेनुं नित्यपणुं देखाडेछे. ते आत्मषष्ठ पृथिव्यादिक पदार्थ, निःकारण विनाश अथवा सकारण विनाश, ए डुहउके० बन्ने विनासे करी, णविणस्संतिके० विनास पामे नही. पृथ्वी, अप्प, तेज, वा यु, अने आकाश. ए कदापि पोतानुं स्वरूप ठांमे नही, ते कारणे शाश्वताछे. तथा कोइ ए जेनो आकार कस्यो नथी, ते कारणमाटे आत्मा शाश्वत छे. यडुक्तं।नैनं छिंदंति शस्त्राणि,

नैनं दहति पावकः ॥ नचैनं क्लेदयंत्यापो, नशोषयति मारुतः ॥१॥ अछेद्योयमच्चेद्योय, म विकारी सउच्यते, ॥ नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलो यं सनातनः ॥२॥ इत्यादिवचनात् ॥ तथा नोयउप्पज्जएअसंके० जे असत् एटले अविद्यमान होय ते उपजे नही. केमके अविद्यमान पदार्थने विषे करनारनो व्यापार स्फुरे नहीं. जो अछती वस्तु उपजे तो आकाश कुसुमगर्दजशृंगादिक पदार्थ पण उपजवानो संजवछे. ए कारणे सव्वविसव्वहानावा के० सर्वकाले पण पृथिव्यादिक सर्वे पदार्थो नियतिजावमागया के० नित्यजावे परिणाम पाम्याछे. ॥ १६ ॥ "आत्मषष्टवादीगतः" एटले आत्म षष्टवादीनुं मत ए प्रमाणे कह्युं.

॥ दीपिका– अथाऽत्मषष्ठवादिमतमाह । (संतित्ति) संति पंच महाजूतानि । इहाऽस्मिन्संसारे एकेषामात्मषष्ठवादिनां सांख्यानां वैशेषिकाणां चैतदाख्यातं जूतान्याख्यातानि वा । ते पुनर्वादिन एवमाहुः । यज्जूतानि आत्मषष्ठानि आत्मा षष्ठोयेषांतानि आत्मषष्ठानि । केषांचिद्वादिनामनित्यानि जूतानि आत्मा च न तथा एषामित्याह (आया) आत्मा लोकश्च पृथिव्यादिरूपः शाश्वतोनित्यः ॥ १५ ॥ शाश्वतत्वमेवाह । (डुहउत्ति) ते जूतपदार्था आत्मषष्ठा उजयतो निर्हेतुकसहेतुकविनाशाज्यां न विनश्यंति । बौद्धादिमते घटादिवस्तु हेतुं विनापि क्षणे क्षणेविनश्यति । वैशेषिकाणां तु लकुटादिहेतुयोगेन घटादीनां विनाशः । तेन द्विविधेनापि विनाशेन लोकात्मनोर्नविनाशइति तात्पर्यार्थः । यदिवा द्विरूपाच्चेतनाचेतनस्वजावान्न विनश्यत्यात्मा पृथिव्याद्या लोकाश्च चेतनस्वजावान्नविनश्यंतीति न चोत्पद्यते ऽसदविद्यमानं । सर्वेपिजावाः सर्वथा नियतिजावं नित्यत्वमागताः प्राप्ताः ॥ १६ ॥

॥ टीका–सांप्रतमात्मषष्ठवादिमतं पूर्वपक्षयितुमाह (संतीत्यादि) संति विद्यंते पंचमहाजूतानि पृथिव्यादीनि इहास्मिन्संसारे एकेषां वेदवादिनां सांख्यानां शैवाधिकारिणां च एतदाख्यातमाख्यातानि च जूतानि तेच वादिन एवमाहुरेवमाख्यातवंतः । यथा । आत्मषष्ठानि आत्मा षष्ठो येषां तानि आत्मषष्ठानि जूतानि विद्यंतइति । एतानि चात्मषष्ठानि जूतानि यथा न्येषां वादिनामनित्यानि तथा नामीषामितिदर्शयति । आत्मा लोकश्च पृथिव्यादिरूपः शाश्वतोऽविनाशी । तत्रात्मनः सर्वव्यापित्वादमूर्तत्वाच्चाकाशस्येव शाश्वतत्वं पृथिव्यादीनां च तद्रूपाप्रच्युतेरविनश्वरत्वमिति ॥ १५ ॥ शाश्वतत्वमेव जूयः प्रतिपादयितुमाह । (डुहउणविणस्संतीत्यादि) ते आत्मषष्ठाः पृथिव्यादयः पदार्था उजयतइति निर्हेतुकसहेतुकविनाशद्वयेन न विनश्यंति । यथा बौद्धानां स्वतएव निर्हेतुको विनाशः । तथाच ते ऊचुः । जातिरेव हि जावानां, विनाशे हेतुरिष्यते ॥ यो जातश्च न च ध्वस्तो,

नश्येत्पश्चात्स केन च ॥ १ ॥ यथाच वैशेषिकाणां लकुटादिकारणसांनिध्ये विनाशः स हेतुकस्तेनोनयरूपेणापि विनाशेन लोकात्मनोर्न विनाशइति तात्पर्यार्थः। यदि वा (डुहउत्ति)। द्विरूपादात्मनः स्वनावाच्चेतनाचेतनरूपान्न विनश्यतीति। तथाहि। पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानि रूपापरित्यागतया नित्यानि। न कदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वा आत्मापि नित्यएव कृतकत्वादिन्यो हेतुन्यः। तथा चोक्तं। नैनं छिंदंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः॥ न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥१॥ अच्छेद्योयमदाह्योयमविकार्योयमुच्यते॥ नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः॥२॥ एवं च कृत्वा नासडुत्पद्यते सर्वस्य सर्वत्र सन्नावादसति च कारकव्यापाराजावात् सत्कार्यवादः। यदि वा असडुत्पद्येत खरविषाणादेरप्युत्पत्तिःस्यादिति। तथा चोक्तं। असदकरणाडुपादानग्रहणात्सर्वसंनवाजावात् शक्तस्य शक्यकरणात्कारणनावाच्च सत्कार्यं। एवंच कृत्वा मृत्पिंडेपि घटोस्ति। तदर्थिनां मृत्पिंडोपादानात्। यदि वा ऽसडुत्पद्येत ततो यतःकुतश्चिदेव स्यान्नावश्यमेतदर्थिना मृत्पिंडोपादानमेव क्रियते इत्यतः सदेव कारणे कार्यमुत्पद्यतइति। एवं च कृत्वा सर्वेपि नावाः पृथिव्यादय आत्मषष्ठा नियतिनावं नित्यत्वमागता नानावरूपतामनूत्वा च नावरूपतां प्रतिपद्यंते। आविर्नावतिरोनावमात्रत्वाडुत्पत्तिविनाशयोरिति। तथा चानिहितं। नासतो जायते नावो नानावो जायते सतइत्यादि। अस्योत्तरं निर्युक्तिकृदाह। "कोवेएइत्यादिप्राक्तन्येव गाथा,,। सर्वपदार्थनित्यत्वान्युपगमे कर्तृत्वपरिणामो न स्यात्ततश्चात्मनोऽकर्तृत्वे कर्मबंधानावस्तदनावाच्च को वेदयति न कश्चि त्सुखडुःखादिकमनुनवतीत्यर्थः। एवं च सति कृतनाशः स्यात्। तथा असतश्चोत्पादानावे येयं मया आत्मनःपूर्वनावपरित्यागेनापरनावोत्पत्तिलक्षणा पंचधा गतिरुच्यते सा न स्यात्। ततश्च मोक्षगतेरनावाद्दीक्षादिक्रियानुष्ठानमनर्थकमापद्यते। तथाऽप्रच्युताऽनुत्पन्नस्थिरैकस्वनावत्वेन त्वात्मनो देवमनुष्यगत्यागती तथा विस्मृतेरनावात् जातिस्मरणादिकं वा न प्राप्नोति। यच्चोक्तं सदेवोत्पद्यते तदप्यसत्। यतो यदि सर्वथा सदेव कथमुत्पादः। उत्पादश्चेत्तर्हि सर्वदा सदिति। तथा चोक्तं। कर्मगुणव्यपदेशाः प्रागुत्पत्तेर्न संति यत्तस्मात्कार्यमसद्विज्ञेयं क्रियाप्रवृत्तेश्च कर्तृणां। तस्मात्सर्वपदार्थानां कथंचिन्नित्यत्वं सदसत्कार्यवादश्चेत्यवधार्यं। तथाचानिहितं। सर्वं व्यक्तिषु नियतं, क्षणे क्षणेऽन्यत्वमथ च न विशेषः। सत्यश्चित्यपचित्योराकृतिजातिव्यवस्थानात् इति। तथा। नान्वयः सहि नेदत्वा,न्न नेदोऽन्वयवृत्तितः॥ मृद्भेदद्वयसंसर्ग, वृत्तिजात्यंतरं घटः ॥१॥ १६॥

पंच खंधे वयंतेगे, बाला उ खणजोइणो ॥ अन्नो अणन्नो णेवाहु,
हेउयं च अहेउयं ॥ १७॥ पुढवी आउ तेऊ य, तहा वाऊय एग
उ ॥ चत्तारि धाउणो रूवं, एवमाहंसु जाणया ॥ १८ ॥

अर्थ–हवे अफलवादिनुं मत कहेछे. एगे के० कोइएक वादी एटले बौद्ध ते पंचखंधेव यंते के० पंचस्कंध बोलेछे, तेना नाम कहेछे. प्रथम विज्ञान ते रसनुं, विज्ञान सुखडुखवेदे ते वेदना, संज्ञा ते धर्मसमुदायने, पृथिव्यादिकते संस्कार, अने धातुरूपादिकते रूप, ए पांच पदार्थ जगतमांछे, पण एथकी अन्य आत्मादिक पदार्थ जगतमांहे कोइ नथी. एम ते बालाउके० बाल एटले अज्ञानी कहेछे. वलीते स्कंध केवा छे, खणजोइणोके० क्षणयोगीछे. एटले एक क्षण मात्र रहे, उपरांत रहे नहीं. एवीरीतना बोलनारा ते क्षणिकवादी जाणवा. हवे अनेरा दर्शनीउथकी एमनो भेद जे छे, ते गाथाना उत्तरार्द्ध वडे देखाडेछे. अस्रोअणस्रो णेवाहुके० ते जेम आत्मपष्टवादी सांख्यादिक भूत थकी आत्मा अन्य छे, एम कहेछे. तथा जेम चार्वाकमति भूतथकी आत्मा अनेरो नथी. एटले जे भूत तेहिज आत्मा एम कहेछे, तेम बौद्धमति कहेतां नथी. तथा हेउयंच के० हेतु एटले आत्मा कोणे नीपजाव्यो एम पण कहेता नथी. अने अहेउयं के० अहेतुक एटले अनादि अनंत शाश्वत आत्माछे. एम पण बौद्ध कहेता नथी. ॥ १७ ॥ अफलवादीगतः। तथा अनेरा बौद्धदर्शनी चतुर्धातुक जगत् कहेछे, ते देखाडेछे. पुढवीके० पृथिवी ते पाषाण पर्वत अने स्थलादिक ए प्रथमधातु, तथा आउके० अप्प ते पाणी ए बीजी धातु, तथा तेज के० अग्नि ए त्रीजी धातु, तथा वायु ए चोथी धातु, जे कारणे ए चारे पदार्थ जगत्रने धरे एटले पोषे ते कारणे एने धातु कहिये. ए केहवाछे? तोके एगउ के० ए चारे एकाकार पणे परिणमे, माटे एकाकारछे. तेथी ए चत्तारिधाउणोरूवं के० चारेधातुरूप जाणवां. एटले ए शरीर चतुर्धारूप छे. ते थकी अनेरो आत्मा एवो पदार्थ कोइ नथी, एवं के० एम ते बौद्ध कहेछे. ते केवा जाणवा? तोके आहंसु के०पोताने लोकमांहे जाणयाके० जाण कहेवराविये एवुं अभिमान धरेछे. परंतु ए सर्व क्षणिकवादिपणा थकी क्रियाना फलने संबंध मले नहीं ते कारणे एने अफलवादि कहियें.

॥ दीपिका–अथ बौद्धमतमाह। (पंचेति)। एके बौद्धाः पंचस्कंधान् वदंति। रूपस्कंधः १ वेदनास्कंधः २ विज्ञानस्कंधः ३ संज्ञास्कंधः ४ संस्कारस्कंधः ५। तत्र रूपस्कंधः पृथिवीत्वादयो रूपादयश्च। वेदनास्कंधः सुखा दुःखा अदुःखसुखा च वेदना। विज्ञानस्कंधो रूपविज्ञानं रसविज्ञानमित्यादि। संज्ञास्कंधः संज्ञानिमित्तोद्ग्रहणात्मिकः प्रत्ययः। सविकल्पसंज्ञानमित्यर्थः। संस्कारस्कंधः पुण्यापुण्यादिधर्मसमुदायः ५ नचैतेभ्योन्यः कश्चिदात्माख्यः पदार्थोस्तीति। बाला मूर्खाः। ते स्कंधाः किंभूताः क्षणयोगिनः क्षणेक्षणेविनश्वराइत्यर्थः। पूर्ववादिभ्यो बौद्धव्यतिरेकमाह। (अणोत्ति)। यथा सांख्यादयो भूतेभ्योऽन्यमात्मानमंगीकृतवंतः। यथा चार्वाका भूतेभ्योऽनन्यमभिन्नमा

त्मानमिष्टवंतस्तथा बौद्धा नैवाहुर्नोक्तवंतः । तथा हेतुन्योजातोहेतुकः कायाकारपरिणतनूतनिष्पादितः तथा ऽहेतुकोनित्य इत्येवं तमात्मानं बौद्धा नांगीकृतवंतइति ॥१७॥ तथान्ये चतुर्धातुकं जगद् बौद्धा वदंतीत्याह । (पुढवीति) पृथिवीधातुः । आपोजलं धातुः । तथातेजो वायुश्चेति धातवः । एते चत्वारोपि धातवो यदा (एकन्ति) एकाकारपरिणतास्तदाकारतयाजीवाख्यां लनंते । एवमाहुर्जानिकाः पंमितंमन्या बौद्धाः । (एवमाहंसुआवरेइति) कचित्पाठः । तत्र आवरेत्ति । अपरे बौद्धा इत्यर्थः ॥ १ ए ॥

॥ टीका—सांप्रतं बौद्धमतं पूर्वपक्षयन्निर्युक्तिकारोपन्यस्तमफलवादाधिकारमाविर्नावयन्नाह । (पंचखंधेवयंतेगेइत्यादि) । एके केचन वादिनो बौद्धाः पंच स्कंधान् वदंति । रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा, संस्कारा, ख्याः पंचैव स्कंधाविद्यंते नापरः कश्चिदात्माख्यः स्कंधोस्तीत्येवं प्रतिपादयंति । तत्र रूपस्कंधः पृथिवीधात्वादयो रूपादयश्च ॥१॥ सुखा डुःखा अडुःखसुखाचेति वेदनावेदनास्कंधः ॥ २ ॥ रूपविज्ञानं रसविज्ञानमित्यादि विज्ञानं विज्ञानस्कंधः ॥३॥ संज्ञास्कंधः संज्ञानिमित्तोऽवग्रहणात्मकः प्रत्ययः ॥४॥ संस्कारस्कंधः पुण्यापुण्यादिधर्मसमुदाय इति ॥ ५ ॥ नचैतेन्यो व्यतिरिक्तः कश्चिदात्माख्यः पदार्थोऽध्यक्षेणाऽध्यवसीयते । तदव्यनिचारिलिंगग्रहणाऽनावान्नाप्यनुमानेन । नच प्रत्यक्षानुमानव्यतिरिक्तमर्थाऽविसंवादिप्रमाणांतरमस्तीत्येवं बालाइव बाला यथाऽवस्थिततत्त्वार्थापरिज्ञानात् बौद्धाः प्रतिपादयंति । तथा ते स्कंधाः क्षणयोगिनः । परमनिकृष्टः कालः क्षणः । क्षणेन योगः संबंधः क्षणयोगः स विद्यते येषां ते क्षणयोगिनः । क्षणमात्राऽवस्थायिनइत्यर्थः । तथाच तेऽनिदधति । स्वकारणेन्यः पदार्थेनत्पद्यमानः किं विनश्वरस्वनावनत्पद्यतेऽविनश्वरस्वनावो वा । यद्यविनश्वरस्ततस्तद्व्यापिन्याः क्रमयौगपद्यान्यामर्थक्रियाया अनावात् पदार्थस्यापि व्याप्यस्यानावः प्रसक्ताति । तथाहि । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सदिति । सच नित्योर्थः क्रियायां प्रवर्तमानः क्रमेण वा प्रवर्तते यौगपद्येन वा । न तावत्क्रमेण । यतो ह्येकस्याऽर्थक्रियायाः काले तस्यापरार्थक्रियाकरणस्वनावो विद्यते वा न वा । यदि विद्यते किमिति क्रमकरणं । सहकार्यपेक्षयेति चेत् । तेन सहकारिणा तस्य कश्चिदतिशयः क्रियते न वा । यदि क्रियते किं पूर्वस्वनावपरित्यागे नापरित्यागेन वा । यदि परित्यागेन ततोऽतादवस्थ्यापत्तेरनित्यत्वं । अथ पूर्वस्वनावापरित्यागेन ततोऽतिशयानावात्किं सहकार्यपेक्षया । अथाऽकिंचित्करोपि विशिष्टकार्यार्थमपेक्षते । तदयुक्तं । यतः । अपेक्षेत परं कश्चि,द्यदि कुर्वीत किंचन ॥ यदकिंचित्करं वस्तु, किं केनचिदपेक्ष्यते ॥ १ ॥ अथ तस्यैकार्थक्रियाकारणकाले ऽपरार्थक्रियाकरणस्वनावो न विद्यते । तथाच सति स्पष्टैव नित्यताहानिः । अथासौ नित्यो यौगपद्येनाऽर्थक्रि

यां कुर्यात्तथा सति प्रथमक्षणएवाऽशेषार्थक्रियाणां करणात् द्वितीयक्षणेऽकर्तृत्वमाया तं । तथाच सैवानित्यता । अथ तस्य तत्स्वनावत्वात्ताएवार्थक्रिया नूयो नूयो द्विती यादिक्षणेष्वपि कुर्यात्तदसांप्रतं । कृतस्य करणानावादिति । किंच द्वितीयादिक्षणसा ध्या अप्यर्थाः प्रथमक्षणएव प्राप्नुवंति । तस्य तत्स्वनावत्वात् । अतस्तत्स्वनावत्वे च तस्यानित्यत्वापत्तिरिति । तदेवं नित्यस्य क्रमयौगपद्याच्यामर्थक्रियाविरहान्न स्वकारणे न्यो नित्यस्योत्पादइति । अथाऽनित्यः स्वनावः समुत्पद्यते । तथाच सति विघ्नानावा दायातमस्मङुक्तक्रमशेषपदार्थजातस्य क्षणिकत्वं । तथाचोक्तं । जातिरेव हि नावानां, विनाशे हेतुरिष्यते ॥ यो जातश्च नच ध्वस्तो नश्येत्पश्चात्स केन च ॥ १ ॥ ननु च स त्यप्यनित्यत्वे यस्य यदा विनाशहेतुसन्नावस्तस्य तदा विनाशः । तथा च । स्वविनाशका रणापेक्षाणामनित्यानामपि पदार्थानां न क्षणिकत्वमित्येतच्चानुपासितगुरोर्वचः।तथाहि। तेन मुजरादिकेन विनाशहेतुना घटादेः किं क्रियते । किमत्र प्रष्टव्यमनावः क्रियते । अत्र च प्रष्टव्यो देवानांप्रियः । अनाव इति किं पर्युदासप्रतिषेधोयमुत प्रसज्यप्रतिषेधइति । तत्र यदि पर्युदासस्ततोयमर्थो नावादन्यो नावो नावांतरं घटात्पटादिः सोऽनावइति । त त्र नावांतरे यदि मुजरादिव्यापारो न तर्हि तेन किंचिद्घटस्य कृतमिति । अथ प्रसज्यप्र तिषेधस्तदा यथार्थो विनाशहेतुरनावं करोति । किमुक्तं नवति नावं न करोतीति । ततश्च क्रियाप्रतिषेधएव कृतः स्यात् । नच घटादेः पदार्थस्य मुजरादिना करणं । तस्य स्वकारणैरेव कृतत्वात् । अथ नावानावोऽनावस्तं करोतीति तस्य तुब्रस्य नीरूपत्वात् कुतस्तत्र कारणानां व्यापारोऽथ तत्रापि कारणव्यापारो नवेत् खरशृंगादावपि व्याप्रिये रन् कारणानीति । तदेवं विनाशहेतोरकिंचित्करत्वात् स्वहेतुतएवाऽनित्यताक्रोडीकृ तानां पदार्थानामुत्पत्तेर्विघ्नहेतोश्चानावात् क्षणिकत्वमवस्थितमिति । तुशब्दः पूर्वादिन्यो ऽस्य व्यतिरेकप्रदर्शकः । तमेव श्लोकपश्चार्धेन दर्शयति । (अण्णोअणण्णोइति) । ते हि बौद्धा यथाऽऽत्मषष्ठवादिनः सांख्यादयो नूतव्यतिरिक्तमात्मानमन्युपगतवंतो यथा चार्वाका नूताऽव्यतिरिक्तं चैतन्याख्यमात्मानमिष्टवंतस्तथा नैवाङ्गुनैवोक्तवंतः । तथा हेतुन्योजातो हेतुकः । कायाकारपरिणतनूतनिष्पादितइति यावत् । तथाऽहेतुको ऽनाद्यपर्यवसितत्वान्नित्यइत्येवमात्मानं ते बौद्धा नाऽन्युपगतवंत इति ॥ १७ ॥ तथाऽपरे बौद्धाश्चतुर्धातुकमिदं जगदाहुरित्येतद्दर्शयितुमाह । (पुढवीत्यादि) पृथि वी धातुरापश्च धातुस्तथा तेजो वायुश्चेति धारकत्वात्पोषकत्वाच्च धातुत्वमेषां। (एगञत्ति)। यदैते चत्वारोप्येकाकारपरिणतिं बिन्नति कायाकारतया तदा जीवव्यपदेशमश्नुवंतः । तथाचोचुः । चतुर्धातुकमिदं शरीरं न तद्व्यतिरिक्तआत्मास्तीति । (एवमाहंसुअवरेत्ति) अपरे बौद्धविशेषा एवमाहुरनिहितवंतइति । क्वचिज्जाणगा इतिपाठस्तत्राप्ययमर्थो जा

नका ज्ञानिनो वयं किलेत्यभिमानाग्निदग्धाः संत एवमाहुरिति संबंधनीयं । अफलवादि त्वं चैतेषां क्रियाक्षणएव कर्तुः सर्वात्मना नष्टत्वात् क्रियाफलेन संबंधाभावादवसेयं । स र्वेएव वा पूर्ववादिनोऽफलवादिनो द्रष्टव्याः कैश्चिदात्मनोऽनित्यस्याऽविकारिणोऽभ्युपगत त्वात् कैश्चित्त्वात्मनएवानभ्युपगमादिति । अत्रोत्तरप्रदार्थानां प्राक्तन्येव निर्युक्तिगाथा। कोवेएइत्यादि व्याख्यायते । यदि पंचस्कंधव्यतिरिक्तः कश्चिदात्माख्यः पदार्थो न विद्यते त तस्तदभावात्सुखदुःखादिकं कोऽनुभवतीत्यादिगाथा प्राग्व ह्याख्येयेति । तदेवमात्मनो भावाद्योयं स्वसंविदितः सुखदुःखानुभवः स कस्य भवत्विति चिंत्यतां । ज्ञानस्कंधस्यायमनु भवइति चेन्न । तस्यापि क्षणिकत्वात् । ज्ञानक्षणस्य चातिसूक्ष्मत्वात् सुखदुःखानुभवाभावः । क्रियाफलवतोश्च क्षणयोरत्यंतासंगतेः कृतनाशाकृताभ्यागमापत्तिरिति ज्ञानसंतान ए कोस्तीति । तस्यापि संतानिव्यतिरिक्तस्याऽभावाद्यत्किंचिदेतत् । पूर्वक्षणएव उत्तरक्षणे वासनामाधाय विनंक्ष्यतीति चेत् । तथाचोक्तं । यस्मिन्नेव हि संताने, आहिता कर्मवासना॥ फलं तत्रैव संधत्ते, कार्पासे रक्तता यथा ॥ १ ॥ अत्रापीदं विकल्प्यते । सा वासना किं क्षणेभ्यो व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्ता वा । यदि व्यतिरिक्ता वासकत्वानुपपत्तिरथाव्यतिरिक्ता क्ष णवत् क्षणक्षयित्वं तस्याः । तदेवमात्माभावे सुखदुःखानुभवाभावः स्यादस्ति च सुखदुः खानुभवोऽतोस्त्यात्मेति । अन्यथा पंचविषयानुभवोत्तरकालमिंद्रियज्ञानानां स्वविषया दन्यत्राप्रवृत्तेः संकलनाप्रत्ययो न स्यात् । आलयविज्ञानाद्भविष्यतीति चेदात्मैव तर्हि सं ज्ञांतरेणाभ्युपगतइति । तथा बौद्धागमोप्यात्मप्रतिपादकोस्ति । सचायं । इतः । एकनवति मे कल्पे, शक्त्या मे पुरुषो हतः ॥ तेन कर्मविपाकेन, पादे विद्धोस्मि भिक्षवः ॥ १ ॥ तथा । कृतानि कर्माण्यतिदारुणानि, तनूभवंत्यात्मनिगर्हणेन ॥ प्रकाशनात्संवरणाच्च तेषा,मत्यंतमूलोद्धरणं वदामीत्येवमादि । तथा यदुक्तं । क्षणिकत्वं साधयता यथा पदार्थः कारणेभ्य उत्पद्यमानो नित्यः समुत्पद्यते ऽनित्यो वेत्यादि । तत्र नित्येऽप्र च्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावे कारकाणां व्यापाराभावादतिरिक्ता वाचोयुक्तिरिति नित्यत्वपक्षा नुत्पत्तिरेव । यच्च नित्यपक्षे भवताभिहितं नित्यस्य न क्रमेणार्थक्रियाकारित्वं नापि यौगप द्येनेति तत्क्षणिकत्वेपि समानं । यतः क्षणिकोप्यर्थक्रियायां प्रवर्तमानः क्रमेण यौ गपद्येन वाऽवश्यं सहकारिकारणसव्यपेक्षएव प्रवर्तते । यतः । सामग्री जनिका नहोकं किंचिदिति । तेनच सहकारिणा न तस्य कश्चिदतिशयः कर्तुं पार्यते । क्षणस्यविवेकत्वेना ऽनाधेयातिशयत्वात् क्षणानां च परस्परोपकारकोपकार्यत्वानुपपत्तेः सहकारित्वाभावः । सहकार्यनपेक्षायां च प्रतिविशिष्टकार्यानुपपत्तिरिति । तदेवमनित्यएव कारणेभ्यः पदा र्थः समुत्पद्यत इति द्वितीयपक्षसमाश्रयणमेव । तत्रापि चैतदालोचनीयं । किं क्षणक्षयि त्वेनानित्यत्वमाहोस्वित्परिणामाऽनित्यतयेति । तत्र क्षणक्षयित्वे कारणकार्यत्वाभावा

त् कारणानां व्यापारएवानुपपन्नः कुतः क्षणिकानित्यस्य कारणेन्य उत्पादइति । अथ पूर्वक्षणाडुत्तरक्षणोत्पादे सति कार्यकारणभावो भवतीत्युच्यते तदयुक्तं । यतोसौ पूर्वक्षणो विनष्टो वोत्तरक्षणं जनयेदविनष्टो वा । न तावद्विनष्टस्तस्यासत्वाज्जनकत्वानुपपत्तेः । नाप्यविनष्ट उत्तरक्षणकाले पूर्वक्षणव्यापारसमावेशात्क्षणभंगभंगापतेः । पूर्वक्षणो विनश्यंस्तूत्तरक्षणमुत्पादयिष्यति तुलांतयोर्नामोन्नामवदितिचेत् । एवं तर्हि क्षणयोः स्पष्टैवैककालताश्रिता । तथाहि । यासौ विनश्यदवस्था साऽवस्था तु भिन्ना । उत्पादावस्थातोप्युत्पित्सोस्ततश्च तयोर्विनाशोत्पादयोर्यौगपद्याभ्युपगमे तद्धर्मिणोरपि पूर्वोत्तरक्षणयोरेककालावस्थायित्वमिति । तद्धर्मतानभ्युपगमे च विनाशोत्पादयोरवस्तुत्वापत्तिरिति । यथोक्तं जातिरेव हि भावानामित्यादि । तत्रेदमभिधीयते । यदि जातिरेवोत्पत्तिरेव भावानां पदार्थानामभावहेतुस्ततोऽभावकारणस्य सन्निहितत्वेन विरोधेनाघ्रातत्वाडुत्पत्त्यभावो ऽथोत्पत्त्युत्तरकालं विनाशो भविष्यतीत्यभ्युपगम्यते । तथा सति उत्पत्तिक्रियाकाले तस्याऽभूतत्वात्पश्चाद्भवन्नंतरायएव भवति न भूयसा कालेनेति । किमत्र नियामकं विनाशे हेत्वभाव इतिचेत् । यतउक्तं निर्हेतुकत्वाद्विनाशस्य स्वभावानुबंधितेत्येतदप्ययुक्तं । यतो घटादीनां मुजरादिव्यापारानंतरमेव विनाशो भवन् लक्ष्यते । ननु चोक्तमेवात्र तेन मुजरादिना घटादेः किं क्रियत इत्यादि । सत्यमुक्तं । इदमयुक्तंतूक्तं तथाह्यभावइति । प्रसज्यपर्युदासविकल्पद्वयेन योयं विकल्पः पक्षद्वयेपि च दोषः प्रदर्शितः सोऽदोष एव । यतः पर्युदासपक्षे कपालाख्यभावांतरकारणे घटस्य च परिणामानित्यतया तद्रूपतापत्तेः कथं मुजरादेर्घटादीन् प्रत्यकिंचित्करत्वं । प्रसज्यप्रतिषेधस्तु भावं न करोतीति प्रतिषेधात्मकोत्र नाश्रीयते । किंतर्हि प्रागभाव,प्रध्वंसाभावे,तरेतरा,त्यंताभावानां चतुर्णां मध्ये प्रध्वंसाभावएवेहाश्रीयते । तत्र च कारकाणां व्यापारोभवत्येव । यतोसौ वस्तुतः पर्यायोऽवस्थाविशेषो न भावमात्रं । तस्य चाऽवस्थाविशेषस्य भावरूपत्वात्पूर्वोपमर्देन च प्रवृत्तत्वाद्यएव कपालादेरुत्पादः सएव घटादेर्विनाशइति विनाशस्य सहेतुकत्वमवस्थितं । अपिच कादाचित्कत्वेन विनाशस्य सहेतुकत्वमवसेयमिति । पदार्थव्यवस्थार्थं चाऽवश्यमभावचातुर्विध्यमाश्रयणीयं । तदुक्तं । कार्यद्रव्यमनादिः स्या,त्प्रागभावस्य निन्हवे ॥ प्रध्वंसस्य च भावस्य, प्रच्यवेऽनंततां व्रजेत् ॥ १ ॥ सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे इत्यादि । तदेवं क्षणिकस्य विचाराक्षमत्वात्परिणामानित्यपक्षएव ज्यायानिति । एवं च सत्यात्मा परिणामी ज्ञानाधारो भवांतरयायी भूतेभ्यः कथंचिदन्यएव शरीरेण सहाऽन्योन्यानुवेधादनन्योपि । तथा सहेतुकोपि नारकतिर्यङ्मनुष्यामरभवोपादानकर्मणा तथा तथा विक्रियमाणत्वात् पर्यायरूपतयेति । तथात्मस्वरूपाप्रच्युतेर्नित्यत्वादहेतुकोपीति ।

आत्मनश्च शरीरव्यतिरिक्तस्य साधितत्वाच्चतुर्धातुकमात्रं शरीरमेवेदमित्येतडुन्मत्तप्रल पितमपकर्णयितव्यमित्यलं प्रसंगेनेति ॥ १७ ॥

अगारमावसंतावि, अरस्रा वा वि पव्वया ॥ इमं दरिसणमावस्रा सव्वडुक्का विमुच्चई ॥१७॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते उहंतराहिया ॥२०॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते संसारपारगा ॥२१॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते गप्नस्स पारगा ॥२२॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते जम्मस्स पारगा ॥ २३ ॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते डुःस्कस्स पारगा ॥ २४ ॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते मारस्स पारगा ॥ २५ ॥

अर्थ—हवे ए पूर्वोक्त दर्शनी पोतपोतानां दर्शननेविषे मुक्तीनुं कारण जे कहेछे ते देखाडे छे. ते उपर कहेछेके ते सर्व दर्शनी अगारं के० घर तेनेविषे आवसंतावि के० निवास करनार एटले गृहस्थ, वा के० अथवा, अरस्रा के० अरण्यवासी तापसादिक अथवा पव्वयाके० प्रव्रजितशाक्यादिक ते एम नावना करेछे के, इमंदरिसणमावस्रा के० अमारा दर्शने आवस्रा एटले आव्या. एटले जे कोई अमे कहिये तेने माने तो, ते सव्वडु क्काविमुच्चईके०सर्व डुःखथकी मुक्त थाय. एवी रीते पोतपोताना दर्शननेविषे सर्व कोई मुक्ति देखाडेछे ॥१७॥ हवे ग्रंथकार कहेछे. तेणाविके० ते पंचनूतवादी प्रमुख दर्शनीउ तेने नैव के० नथी. संधिके० छिद्र एटले ज्ञानावरणादिक कर्म तेनो विपर्ययनाव ते संधि जाणवी. ते अहीं ज्ञानावरणादिक कर्मना विवरण तेने णच्चाणंके० अजाणताथका बापडा डुःखथ की मूकाववाने अर्थे सावधान थयाछे. ते कारणे ते जणाके० जन एटले लोक, नतेध म्मविउके० क्षांत्यादिक दशप्रकारनो जे यतिधर्म तेना जाण नथी. जेतेउवाइणो एवंके० ते वादी जे नास्तिकमति प्रमुख पूर्वे कह्या, ते असमंजस वचनना बोलनारछे. माटे नतेउहंतराहिया के० ते संसाररूप उघ एटले प्रवाह, अर्थात् संसारसमुद्रना तारना र ते नथी. एम श्रीतीर्थंकरे तथा गणधरे कह्युंछे. ॥ २० ॥ ते पंचनूतवादी प्रमुख कर्म आववानां स्थानक जाणता नथी; वली ते जनके० लोक क्षांत्यादिक दशविध यतिधर्मने जाणता नथी. एवा ते पूर्वे कह्या जे नास्तिकप्रमुख वादी ते संसारना पा

रगामी नहोय. ए गाथानां पहेलां त्रण पदनो अर्थ प्रथम कह्यो तेप्रमाणेज छे.॥२१॥ जे एम बोले ते गर्भना पारगामी नहीं, एटले अनंता गर्भनां दुःख सहन करे. ॥२२॥ वली जे एम बोले ते जन्मना पारगामी नथी अर्थात् अनंता जन्मनुं दुःख सहन करे. ॥ २३ ॥ तथा जे एम बोले ते दुःखना पारगामि न होय, अनंतो काल चतुर्गति रूप संसारना दुःख सहन करे. ॥ २४ ॥ तथा जे एम बोले ते मरणना पारगामी न समजवा, अर्थात् अनंतिवार मरण पामे. ॥२५॥

॥ दीपिका—अथ पूर्वोक्तसर्वेंदुर्मतीनामफलत्वं स्वदर्शनांगीकारं च दर्शयन्नाह । (अगारेति) अगारं गृहमावसंतस्तिष्ठंतो गृहस्था आरण्या वा तापसादयः प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः । अपि संभावने । इदं ते संभावयंति । यथा इदमस्मदीयं दर्शनं मतमापन्ना आश्रिताः सर्वदुःखेभ्यो जीवाविमुच्यंतइति ते वदंति ॥ १९ ॥ अथ तेषां निष्फलत्वमाह । तेइति षड्भिः । ते पंच पंचभूतवाद्याद्याः संधिज्ञानावरणादिकर्मविवररूपं नापि नैव ज्ञात्वा अज्ञात्वेइत्यर्थः । णंवाक्यालंकारे । यथा जीवकर्मणोः संधिर्भिन्नत्वं भवति तथा ज्ञात्वा मोक्षार्थं प्रवृत्ता इत्यर्थः॥ संधिर्द्विविधः । द्रव्यसंधिः कुड्यादेः । भावसंधिः कर्मविवररूपस्तमुत्तरोत्तरपदार्थपरिज्ञानं वा संधिस्त मज्ञात्वा प्रवृत्ताः । ते किंभूताइत्याह । (नतेत्ति)। ते जना लोका न सम्यक्धर्मविदः । येतु ते । एवंविधवादिनस्ते । ओघो भवौघः संसारस्तत्तरणशीला न आख्याता जिनैः ॥२०॥ अग्रेतनाः पंचश्लोका एवमेव व्याख्येयाः।परं संसार १ गर्भ २ जन्म ३ दुःख ४ मारपारगा न भवंतीति ज्ञेयं ॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥

॥ टीका—सांप्रतं पंचभूतात्माऽद्वैततज्जीवतच्छरीराकारकात्मषष्ठक्षणिकपंचस्कंधवादिनामफलवादित्वं वक्तुकामः सूत्रकारस्तेषां स्वदर्शनफलाभ्युपगमं दर्शयितुमाह । (अगारेत्यादि) अगारं गृहं तदावसंतस्तस्मिंस्तिष्ठंतो गृहस्थाइत्यर्थः । आरण्या वा तापसादयः प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः । अपि संभावने । इदं ते संविभावयंति । यथेदमस्मदीयं दर्शनमापन्नाआश्रिताः सर्वदुःखेभ्यो विमुच्यंते । आर्षत्वादेकवचनं सूत्रे कृतं । तथाहि । पंचभूततज्जीवतच्छरीरवादिनामयमाशयोयथेदमस्मदीयं दर्शनं ये समाश्रितास्ते गृहस्थाः संतः सर्वेभ्यः शिरस्तुंडमुंडन,दंडाऽजिनजटाकाषायचीवरधारण, केशोल्लुंचन, नाग्न्यस्तपश्चरण,कायक्लेशरूपेभ्यो दुःखेभ्यो मुच्यंते । तथा दुः। तपांसि यातनाश्चित्राः, संयमो भोगवंचनं ॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यत इति । सांख्यादयस्तु मोक्षवादिनएवं संभावयंति यथा । येऽस्मदीयं दर्शनमकर्तृत्वात्माऽद्वैतपंचस्कंधादिप्रतिपादकमापन्नाः प्रव्रजितास्ते सर्वेभ्यो जन्मजरामरणगर्भपरंपराऽनेकशारीरमानसातितीव्रतराऽसातोदयरूपे

न्यो डुःखेन्यो विमुच्यंते । सकलद्वंद्वविनिर्मोक्षं मोक्षमास्कंदंतीत्युक्तं नवति ॥ १ए ॥ इदानीं तेषामेवाऽफलवादित्वाविष्करणायाह । (तेणावीत्यादि) ते पंचनूतवाद्याद्या नापि नैव संधिं छिडं विवरं । सचद्रव्यनावनेदाद्वेधा । तत्र द्रव्यसंधिः कुड्यादिर्नावसंधिर्ज्ञानावरणादिकर्मविवररूपस्तमज्ञात्वा ते प्रवृत्ताः । णमिति वाक्यालंकारे । यथा आत्मकर्मणोः संधिर्द्विधा नावलक्षणोनवति । तथा अबुधाइव ते वराका डुःखमोक्षार्थमन्युद्यताइत्यर्थः । यथा तएवंनूतास्तथा प्रतिपादितं लेशतः प्रतिपादयिष्यतेच । यदि वा संधानं संधिरुत्तरोत्तरपदार्थपरिज्ञानं तदज्ञात्वा प्रवृत्ताइति । यतश्चैवमतस्ते न सम्यक्धर्मपरिछेदे कर्तव्ये विद्वांसो निपुणा जनाः पंचनूतास्तित्वादिवादिनो लोकाइति । तथाहि । क्षांत्यादिकोदशविधो धर्मस्तमज्ञात्वैवान्यथा च धर्मं प्रतिपादयंति । यत्फलानावाच्च तेषामफलवादित्वं तडुत्तरग्रंथेनोद्देशकपरिसमाप्त्यवसानेन दर्शयति । ये तेत्विति । तुशब्दश्चशब्दार्थे यइत्यस्यानंतरं प्रयुज्यते । येच ते एवमनंतरोक्तप्रकारवादिनो नास्तिकादयोउघोनवौघः संसारस्तत्तरणशीलास्ते न नवंतीति श्लोकार्थः ॥ २० ॥ तथा न ते वादिनः संसार, गर्न, जन्म, डुःख, मारादिपारगा नवंतीति ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

नाणाविहाइं डुःखाइं, अणुहवंति पुणो पुणो ॥ संसारचक्कवालंमि, मच्चुवाहिजराकुले ॥२६॥ उच्चावयाणि गछंता, गप्नमेस्संति णंतसो ॥ नायपुत्ते महावीरे, एवमाह जिणोत्तमे ॥२७॥ इति बेमि पढममज्ञयणं पढमो उद्देसो समत्तो ॥ ७ ॥ ७ ॥

अर्थ–वली ते जे स्थितिने पामे ते कहेबे. नाणाविहाइंडुरकाइं के० नानाविध बहु प्रकारे बेदन नेदन ताडनादिक डुखोनें अणुहवंतिपुणोपुणो के० वली वली अनुनवेबे. परंतु ते डुःख क्यां पामे? तोके संसार चक्कवालंमिके० संसारचक्रवालने विषे पामे. ते संसार केवो डुस्तरबे तो के, मच्चुवाहिजराकुले के० मृत्यु, व्याधि अने जरा तेणे करी आकुलव्याकुल बे. एवा संसारमांहे परिच्रमण करतां अनंतो काल डुःखी थाय. ॥२६॥ ते दर्शनीउ वली असमंजस थका सूत्रविरोधना बोलनारा उच्चावयाणिगछंता के० उंचे नीचे स्थानके परिच्रमण करतां आगामिक काले गप्नमेसंतिणंतसोके० अनंता गर्नना डुःख पामसे. एवमाहकें० एवुं वचन, नायपुत्तेमाहावीरेके० ज्ञातपुत्र श्रीमहावीरदेव जिणोत्तमेके० जिनोत्तम तेणे कह्युं. तेम अमे पण कहिये बैए ॥ २७ ॥ इतिप्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ए प्रथम उद्देशकमां नूतवादिप्रमुख परवादीना मत कह्या.

॥ दीपिका–ते यत्प्राप्नुवंति तदाह । (नाणेति) । नानाविधान्यनेकप्रकाराणि डुःखानि

अनुनवंति । पुनःपुनः संसारचक्रवाले व्याधिमृत्युजरानिराकुले व्याप्ते ॥ २६ ॥ तेषां डुःखफलमुपसंहारं चाह । (उच्चेति) । उच्चावचान्यधमोत्तमानि स्थानानि गर्भतोत्र मंतोगर्नाज्जन्मेष्यंति यास्यंत्यनंतशः । (नायपुत्तेति) । ज्ञातः सिद्धार्थक्षत्रियस्तस्य पुत्रः श्रीमहावीरो जिन एवमुक्तवान् । इति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याहेति ॥ २७ ॥ इति श्रीसूत्रकृते द्वितीयांगे प्रथमाध्ययनेप्रथमोद्देशकव्याख्या संपूर्णा ॥ ॥

॥ टीका–यत्पुनस्ते प्राप्नुवंति तद्दर्शयितुमाह (नाणाविहाइंइत्यादि) नानाविधानि बहुप्रकाराणि डुःखान्यासातोदयलक्षणान्यनुनवंति पुनः पुनः । तथाहि नरकेषु करपत्र दारण,कुंनीपाक,तप्तायःशाल्मलीसमालिंगनादीनि तिर्यक्षु च शीतोष्णादिदमनांकताडनाऽतिसारारोपणक्षुत्तृडादीनि । मनुष्येषु इष्टवियोगाऽनिष्टसंयोगशोकाक्रंदनादीनि देवेषु चाभियोगेर्ष्याकिल्बिषिकत्वच्यवनादीन्यनेकप्रकाराणि डुःखानि ये एवंनूता वादिनस्ते पौनःपुन्येन समनुनवंति।एतच्च श्लोकार्द्धं सर्वेपूत्तरश्लोकार्धेषु योज्यं।शेषं सुगमं यावडुद्देशकसमाप्तिरिति ॥२६॥ नवरमुच्चावचानीति अधमोत्तमानि नानाप्रकाराणि वासस्थानानि गर्भतीति गर्भतोत्रमंतोगर्नाज्जन्मेष्यंति यास्यंत्यनंतशो निर्विच्छेदमिति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याह । ब्रवीम्यहं तीर्थंकराज्ञया न स्वमनीषिकया सचाहं ब्रवीमि येन मया तीर्थंकरसकाशाच्छ्रुतं । एतेनच क्षणिकवादिनिरासो इष्टव्यः ॥२७॥ इति समयाख्यप्रथमाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ प्रथमाध्ययनेद्वितीयउद्देशकः प्रारभ्यते

आघायं पुण एगेसिं, उववन्ना पुढो जिया ॥ वेदयंति सुहं डुःखं, अडु वा लुप्पंति गणउ ॥ १ ॥ न तं सयं कडं डुक्कं, कउ अन्नकडं च णं॥सुहं वा जइ वा डुखं, सेहियं वा असेहियं ॥ २ ॥ सयं कडं न असेहिं, वेदयंति पुढो जिया ॥ संगइअं तं तहा तेसिं, इहमेगेसि आहिअं ॥३॥

अर्थ–पुणके० वली एगेसिंके० एक नियतवादिने मते, आघायंके० एम कह्युंडे. एटले तेनो जे अभिप्राय डे ते कहेडे. उववन्नापुढोजियाके० पृथक् पृथक् नारकादिकने नवे जे जीवडे, ते पोतपोताना देहस्थित थका सुहंडुक्कं के० सुखडुःखने वेदयंतिके० वेदेडे. अडुवाके० अथवा ते प्राणीउ सुख डुःख अनुनवता गणउके० ते स्थानकथी पोतानुं आयुष्य पूर्णकरीने लुप्पंतिके० स्थानांतरे संक्रमे. एम नियतवादी कहेडे. ॥ १ ॥ वली पण बेगाथाए नियतवादीनां मतनो अभिप्राय कहेडे. जे ते प्राणी सुख डुःख अनुनवेडे, एक स्थानक थकी बीजे स्थानके उपजेडे, नतंसयंकडंडुक्कंके० ते डुःखादिक ते जीवनुं पोतानुं कीधेलुं नथी. तेम कउअन्नकडंचणं के० अनेरा का

ल ईश्वर स्वनावादिकनुं करेलुं क्यांथी होय. जो स्वयंकृत सुख डुःख ठे, तो सर्वे जीव व्यापारादिक सरिखो व्यापार करतां सर्वे सरखाज केम नथी थता. माटे पुरुषाकारे कांइज नथाय, अने जो काल ईश्वरादिकना करेलां सुख डुःख होय तो जगतनी विचित्रता केम थाय? तेमाटे काल ईश्वरादिकनुं करेलुं पण सुख डुःख थतुं नथी. एटले जीवने सुहंवाजइवाडुरकंके० सुख अथवा डुख जे ठे ते केवां ठे, तोके सेद्दियं वा असेद्दियं के० सैद्धिक अथवा असैद्धिक ठे. तेमां स्रग् चंदन विनितादिक तेथकी उपनुं जे सुख तेने सैद्धिक कहिये. अने अंतरंग आनंदरूप जे सुख तेने असैद्धिक कहिये. एवीरीते बे प्रकारे डुःख पण जाणवुं, तेमां एक वध, बंधन, ताडनादिक क्रियाना करवाथीकरी अने बीजुं शूलज्वरादिरूप जाणवुं, एटले एक कारणे निष्पन्न अने बीजुं स्वानाविक निष्पन्न ठे. ॥ २ ॥ ए सुखडुःख जो कोइए कर्यां नथी, तो ए जीव सुखी डुःखी केम थायठे, ते कहेठे. सयंकडंनअसेहिंवेदयंति पुढोजियाके०सयं एटले पोतानुं करेलुं अथवा अनेरानुं करेलुं जे सुख डुःख ते जीव वेदतो नथी. किंतु संगइअंतंतहातेसिंके० नवितव्यतानुं करेलुं तेहिज जीवने सुख डुःख उपजेठे. तथाच तन्मतं। प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः, सोवश्यं नवति नृणां शुनोशुनो वा ॥ नूतानां महति कृतेपिहि प्रयत्ने, नानाव्यं नवति न नाविनोस्ति नाशः ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥ ३ ॥ एप्रमाणे नियतवादीना मतनो अनिप्राय दर्शाव्यो.

॥ दीपिका—उक्तः प्रथमोद्देशकः । अथ द्वितीयोद्देशकः कथ्यते । तस्यायमर्थसंबंधः । आद्योद्देशके नूतवादादिमतं प्रदर्श्य निराकृतं । इहाप्यवशिष्टं तदेवोपदर्श्य निराक्रियत इत्यनेन संबंधेनागतस्यास्योद्देशकस्य सूत्रं यथा । (आघायमिति) । पुनः एकेषां नियतिवादिनामेतदाख्यातं । आख्यातमित्यत्र नावे क्तप्रत्ययः।तद्योगेन वा क्लीवइति कर्तरिषष्ठी । ततश्च नियतिवादिनिरिदमाख्यातमित्यर्थः । किं तदित्याह । (उववसुत्ति) उपपन्ना युक्त्या घटमानाः पृथक् अनेके जीवाः। जीवसत्वे पंचनूततच्छरीरवादिमतं निराकृतं । पृथगित्यनेन आत्माऽद्वैतवादिनिरासश्च । तेऽनेके जीवाः सुखं डुःखं देवनारकादिनवेषु वेदयंत्यनुनवंति अनेनाऽकर्तृवादो निरस्तः (अडुवेत्ति)। अथवा लुप्यंते स्थानात् स्थानांतरं संक्राम्यंते। एतेनोपपातिकत्वमप्युक्तं ॥ १ ॥ नियतिवादमतमेवाह श्लोकद्वयेन । (नतमिति) यत्तैः प्राणिनिरनुनूयते सुखं डुःखं स्थानविलोपनं वा न तत्स्वयमात्मना पुरुषकारेण कृतं डुःखं। डुःखस्यचोपलक्षणात्सुखमपि ग्राह्यं । सुखडुःखानुनवः पुरुषकारकृतो न स्यादित्यर्थः। अनेन कालेश्वरस्वनावकर्मादिना च कुतः कृतं । णमित्यलंकारे। कालादिनिरपि न कृतमित्यर्थः । किंतु नियतेरेव निष्पद्यते सर्वमिति । ततः सुखं सैद्धिकं सिद्धौ मोक्षे नवं सै

द्धिकं । यदिवा दुःखमसैद्धिकं सांसारिकं । अथवा सैद्धिकमसैद्धिकं च सुखं यथा । स्रक् चंदनांगनाद्युपभोगक्रियासिद्धो भवं सैद्धिकं । आंतरं सुखमानंदरूपमसैद्धिकं । तथा सैद्धिकमसैद्धिकं च दुःखं यथा । कशाताडनांकनादिक्रियासिद्धो भवं सैद्धिकं । ज्वरशिरोर्तिशूलादिरूपमंगोद्भवमसैद्धिकं दुःखं । एतद्भयमपि सुखं दुःखं च नपुरुषकारकृतं । नचान्यैः कालादिभिः कृतं वेदयंत्यनुभवंति पृथक्जीवाः । कथं तर्हि प्राणिनांसुखं दुःखं च स्यादित्याह । (संगइअंति) । सम्यक् स्वपरिणामेन गतिर्यस्याः यदा यत्र यत्सुखदुःखानुभवनं सा संगतिर्नियतिस्तस्याभवं सांगतिकं नियतिकृतमित्यर्थः । इहाऽस्मिन्सुखदुःखानुभववादे एकेषां नियतिवादिनामिदमाख्यातं । यदुक्तं तैः । प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेण योर्थः, सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा ॥ भूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने, नाभाव्यं भवति न भाविनोस्ति नाश इति ॥ ३ ॥

॥ टीका—उक्तः प्रथमोद्देशकस्तदनु द्वितीयोऽभिधीयते । तस्य चायमभिसंबंधः। इहाऽनंतरोद्देशके स्वसमयपरसमयप्ररूपणाकृता । इहाप्यध्ययनार्थाधिकारत्वात्सैवाभिधीयते । यदि चानंतरोद्देशके भूतवादादिमतं प्रदर्श्य तन्निराकरणं कृतं । तदिहापि तदवशिष्टनियतिवाद्यादिमिथ्यादृष्टिमतान्युपदर्श्य निराक्रियंते । अथवा प्रागुद्देशकेऽभ्यधायि यथा बंधनं बुध्येत तच्च त्रोटयेदिति तदेव च बंधनं नियतिवाद्यभिप्रायेण न विद्यतइति प्रदर्श्यते । तदेवमनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्यावर्ण्य सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (आघायमित्यादि) अस्य चाऽनंतरपरंपरसूत्रैः संबंधोवक्तव्यस्तत्राऽनंतरसूत्रसंबंधोयं । इहानंतरसूत्रे इदमभिहितं यथा । पंचभूतस्कंधादिवादिनोमिथ्यात्वोपहताऽतरात्मनोऽसद्ग्राहाभिनिविष्टाः परमार्थाऽवबोधविकलाः संतः संसारचक्रवाले व्याधिमृत्युजराकुले उच्चावचानि स्थानानि गच्छंतो गर्भमेष्यंत्यन्वेषयंति वाऽनंतशइति । तदिहापि नियत्यज्ञानिज्ञानचतुर्विधकर्मोपचयवादिनां तदेव संसारचक्रवालभ्रमणगर्भान्वेषणं प्रतिपाद्यते । परंपरसूत्रसंबंधस्तु (बुज्झेज्जेत्यादि) । तेन च सहायं संबंधस्तत्र बुध्येतेत्येतत् प्रतिपादितमिहापि यदाख्यातं नियतिवादिभिस्तद्बुध्येतेत्येवं मध्यसूत्रैरपि यथासंभवं संबंधो लगनीयइति । तदेवं पूर्वोत्तरसंबंधसंबद्धस्यास्य सूत्रस्याऽधुनार्थः प्रतन्यते । पुनःशब्दः पूर्ववादिभ्यो विशेषं दर्शयति । नियतिवादिनां पुनरेकेषामेतदाख्यातं । अत्र चाविवक्षितकर्मकाअपि अकर्मका भवंतीति ख्यातेर्धातोर्भावे निष्ठाप्रत्ययस्तद्योगे कर्तरि षष्ठी । ततश्चायमर्थस्तैर्नियतवादिभिः पुनरिदमाख्यातं तेषामयमाशयइत्यर्थः । तद्यथा । उपपन्नो युक्त्या घटमानकाइत्यनेन च पंचभूततज्जीवतच्छरीरवादिमतमपाकृतं भवति । युक्तिस्तु लेशतः प्राग्दर्शितैव । प्रदर्शयिष्यते

च पृथक्पृथक्नारकादिनवेषु शरीरेषु चेत्यनेनाऽप्यात्माऽद्वैतवादिनिरासोऽवसेयः। के पुन स्ते पृथगुपपन्नास्तदाह।जीवाः प्राणिनः सुखडुःखनोगिनः। अनेन च पंचस्कंधातिरिक्तजीवा नावप्रतिपादकबौद्धमताऽपक्षेपः कृतोद्रष्टव्यः। तथा ते जीवाः पृथक्पृथक् प्रत्येकदेहे व्य वस्थिताः सुखं डुःखं च वेदयंत्यनुनवंति। न वयं प्रतिप्राणिप्रतीतं सुखडुःखानुनवं निह्नु महे। अनेन चाऽकर्तृवादिनोनिरस्तानवंति। अकर्तर्यविकारिण्यात्मनि सुखडुःखानुनवा नुपपत्तेरिति नावः। तथैतदस्मानिर्नोऽपजप्यते। अडुवेत्यथवा। तेप्राणिनः सुखं डुःखं चानुनवंति विलुप्यंते ब्रियंते स्वायुषः प्रच्याव्यंते स्थानात्स्थानांतरं संक्राम्यंत इत्यर्थः। ततश्चौपपातिकत्वमप्यस्मानिस्तेषां न निषिध्यते इतिश्लोकार्थः॥ १॥ तदेवं पंचनूता स्तित्वादिवादिनिरासं कृत्वा यत्तैर्नियतिवादिनिराश्रीयते तच्छ्लोकद्वयेन दर्शयितुमाह।

(नतंसयमित्यादि) यत् तैः प्राणिनिरनुनूयते सुखं डुःखं स्थानविलोपनं वा न तत्स्वय मात्मना पुरुषकारेण कृतं निष्पादितं डुःखमिति। कारणेकार्योपचारात्। डुःखकारणमेवो क्तं। अस्य चोपलक्षणत्वात् सुखाद्यपि ग्राह्यं। ततश्चेदमुक्तं नवति। योयं सुखडुःखानुनवः सपुरुषकारकृतकारणजन्यो न नवतीति। तथा कुतोऽन्येन कालेश्वरस्वनावकर्मादिना च कृ तं नवेत्। णमित्यलंकारे। तथाहि। यदि पुरुषकारकृतं सुखाद्यनुनूयेत ततः सेवकवणि कर्षकादीनां समाने पुरुषकारे सति फलप्राप्तिवैसदृश्यं फलप्राप्तिश्च न न वेत्। कस्यचित्तु से वादिव्यापारानावेपि विशिष्टफलावाप्तिर्दृश्यत इत्यतो न पुरुषकारात्किंचिदासाद्यते किं त र्हिनियतेरेवेत्येतच्च द्वितीयश्लोकांतेऽनिधास्यते। नापि कालः कर्ता। तस्यैकरूपत्वाज्जग ति फलवैचित्र्यानुपपत्तेः। कारणनेदे हि कार्यनेदोनवति नानेदे। तथा ह्ययमेवहि नेदो नेदहेतुर्वा घटते। यडुत विरुद्धधर्माध्यासः कारणनेदश्च। तथेश्वरकर्तृकेपि सुखडुःखे नन वतः।यथाऽसावीश्वरो मूर्तोऽमूर्तो वा। यदि मूर्तस्ततः प्राकृतपुरुषस्येव सर्वकर्तृत्वानावः। अथाऽमूर्तस्तथा सत्याकाशस्येव सुतरां निष्क्रियत्वं। अपिच यद्यसौ रागादिमांस्ततो ऽस्मदाद्यव्यतिरेकाद्विश्वस्याकर्तैव। अथासौ विगतरागस्ततस्तत्कृतं सुनगडुर्नगेश्वरद रिद्रादिजगद्वैचित्र्यं न घटां प्रांचति ततोनेश्वरः कर्तेति। तथा स्वनावस्यापि सुखडुः खादिकर्तृत्वानुपपत्तिः। यतोऽसौ स्वनावः पुरुषाद्भिन्नोऽनिन्नोवा। यदि निन्नोन पुरुषा श्रिते सुखडुःखे कर्तुमलं तस्माद्भिन्नत्वादिति। नाप्यनिन्नोऽनेदे पुरुषएव स्यात्तस्य चाक र्तृत्वमुक्तमेव। नापि कर्मणः सुखडुःखं प्रति कर्तृत्वं घटते। यतस्तत्कर्म पुरुषाद्भिन्नमनि न्नं वा नवेत्। अनिन्नं चेत्पुरुषमात्रतापत्तिः कर्मणस्तत्र चोक्तो दोषः। अथ निन्नं तत्किं स चेतनमचेतनं वा। यदि सचेतनं एकस्मिन् काये चैतन्यद्वयापत्तिः। अथाचेतनं तथा सति कुतस्तस्य पाषाणखंडस्येवास्वतंत्रस्य सुखडुःखोत्पादनंप्रति कर्तृत्वमित्येतच्चोत्तरत्र व्यासेन प्रतिपादयिष्ये इत्यलं प्रसंगेन। तदेवं सुखं सैद्धिकं सिद्धावपवर्गलक्षणायां

७

नवं यदि वा दुःखं आसातोदयलक्षणमसैद्धिकं सांसारिकं । यद्विवोजयमप्येतत्सुखं दुःखं वा स्रक्चंदनांगनाद्युपजोगक्रियासिद्धौजवं तथा कशाताडनांकनादिसिद्धौ जवं सैद्धिकं । तथाऽसैद्धिकं सुखमांतरमानंदरूपमाकस्मिकमनवधारितवाह्यनिमित्तं । एवं दुःखमपि ज्वर शिरोऽतिशूलादिरूपमंगोद्भवमसैद्धिकं । तदेतद्द्वयमपि न स्वयं पुरुषकारेण कृतं नाप्यन्येन केनचित् कालादिना कृतं वेदयंत्यनुजवंति पृथक्जीवाः प्राणिनइति । कथं तर्हि तत्तेषाम जूदिति नियतिवादी स्वाजिप्रायमाविष्करोति (संगइयंति) सम्यक्स्वपरिणामेन गतिर्यस्य यदा यत्र यत्सुखदुःखानुजवनं सा संगतिर्नियतिस्तस्यां जवं सांगतिकं । यतश्चैवं न पुरुषकारादिकृतं सुखदुःखाद्यतस्तत्तेषां प्राणिनां नियतिकृतं सांगतिकमित्युच्यते । इहास्मिन् सुखदुःखानुजववादे एकेषां वादिनामाख्यातं तेषामयमन्युपगमः । तथाचोक्तं । प्राप्तव्यो नियतिवलाश्रयेण योऽर्थः, सोऽवश्यं जवति नृणां शुजोऽशुजो वा ॥ जूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने नाजाव्यं जवति न जाविनोस्ति नाशः ॥ १ ॥ ३ ॥

एवमेयाणि जंपंता, वाला पंमिअमाणिणो ॥ निययानिययं संतं,
अयाणंता अवुद्धिया ॥ ४ ॥ एवमेगे उ पासबा, ते जुज्जो विप्पग
प्रिआ ॥ एवं उवठिआ संता, ण ते दुःखविमोरकया ॥ ५ ॥

अर्थ—हवे ग्रंथकार एने उत्तर आपेठे एवमेयाणिजंपंता के० एवं पूर्वोक्त वचन नियतवादाश्रित वोलतां एवा ते वालाके०वाल अज्ञानी ठतां पोताने पंमिअमाणिणोके० पंमित करी मानतां शा माटे मानेठे ते कहेठे के; निययानिययंके० ते अज्ञानी नियतिकृत सुख दुःख अथवा अनियतिकृत पुरुषकारादिकनुं करेलुं एवुं सुख दुःख ते संतं के० एकांते जवितव्यतायेज कर्युं एम कहेठे; ते कारणे तेने सुखदुःखादि कारणना अयाणंता अवुद्धियाके० अजाण, वुद्धिरहित कहिए. अने जैनतो नियतिकृतपणे तथा अनियतिकृतपणे ए वंने प्रकारे सुख दुःख मानेठे एटले स्याद्वादी कहिए. ॥ ४ ॥ हवे तेने एवी प्ररूपणानुं विपाक देखाडेठे एवमेगेके० एरीते कोइ एक नियतवादने विषे आश्रित परवादीठे ते केवाठे; ताके पासबाके० पार्श्वस्थ एटले न्यायपक्षथकी वाहेर अथवा पासबा एटले पाशके० कर्मनुं वंधन तेने विषे स्थित उज्जो के० तेवली पुनः विप्पगप्रियाके० विविध प्रगल्जित एटले अत्यंत धिठाथका मुक्तिमार्गनेविषे प्रवर्त्ते; वली एवुं कहेठे के अमे एवी क्रिया करता थका मुक्तिपामीशुं परंतु एवंके० ए प्रकारे ते उवठियासंताके० उठित एटले पोतानी क्रियानेविषे प्रवर्ततां ठतां णतेदुःखविमोरकयाके० पोताने दुःखथी मूकावनार न होय एटले मुक्ति पामेनहीं.॥५॥ एटले नियतवादी कह्या.

॥ दीपिका—अस्योत्तरमाह । (एवमिति) । एवमेतानि पूर्वोक्तानि वचनानि जल्पंतो

नियतिवादिनोबाला मूर्खाः पंडितमानिनः स्वयमपंमिताअप्यात्मानं पंडितं मन्यमानाः। किंनूताः नियताऽनियतमजानंतः किंचिन्नियतिकृतमवश्यंनावि नियतमात्मपुरुषकारेश्वरादिकृतं किंचिदनियतमेवं द्विविधं वस्तु अजानंतोनियतिकृतमेवैकांतेनाश्रयंतोऽतएवाबुद्धिकाबुद्धिरहितान्नवंति । पुरुषकारादयोपि वस्तूत्पादकाः । यतः । न दैवमिति संचिंत्य, त्यजेडुद्यममात्मनः । अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेन्यः प्राप्तुमर्हति ॥ १ ॥ इत्याद्यजानंतोऽतएव निर्बुद्धिकाः ॥ ४ ॥ एतद्वादिनामपायमाह । (एवमिति)। एवमेके नियतिवादिनं पार्श्वस्थाः युक्तिसमूहाद्बहिस्तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः परलोकक्रियापार्श्वस्थावा । अथवा पाशः कर्मबंधनं तत्र स्थिताः । (तेनुज्जोत्ति)। ते नूयो विविधं प्रगल्निता धाष्टर्योपेतानियतिवादमंगीकृत्यापि एवं पुनरपि स्वकार्यपरलोकक्रियासु प्रवर्तमानाअतएव धाष्टर्योपेतानते डुःखविमोचकाआत्मानं डुःखान्न मोचयंति॥ ५॥ नियतिवादिनोगताः॥

॥टीका—एवं श्लोकद्वयेन नियतिवादिमतमुपन्यस्यास्योत्तरदानायाह । (एवमेयाणि इत्यादि). एवमित्यनंतरोक्तस्योपप्रदर्शने । एतानि पूर्वोक्तानि नियतिवादाश्रितानि वचनानि जल्पंतोऽनिदधतो बालाअज्ञाः सदसद्विवेवविकलाअपि संतः पंडितमानिनआत्मानं पंमितं मंतुं शीलं येषां ते तथा । किमिति तएवमुच्यंतइति तदाह । यतो (निययानियर्यसंतमिति)। सुखादिकं किंचिन्नियतिकृतमवश्यं नाव्युदयप्रापितं तथाऽनियतमात्मपुरुषकारेश्वरादिप्रापितं सतु नियतिकृतमेवैकांतेनाश्रयंत्यतोऽजानानाः सुखडुःखादिकारणमबुद्धिकाबुद्धिरहितान्नवंतीति । तथाह्यार्हतानां किंचित्सुखडुःखानि नियतितएव नवंति । तत्कारणस्य कर्मणः कस्मिंश्चिदवसरेऽवश्यंनाव्युदयसद्भावान्नियतिकृतमित्युच्यते । तथा किंचिदनियतिकृतं च पुरुषकालेश्वरस्वन्नावकर्मादिकृतं तत्र कथंचित्सुखडुःखादेः पुरुपकारसाध्यत्वमप्याश्रीयते । यतः क्रियातः फलं नवति क्रिया च पुरुषकाराऽयत्ता प्रवर्तते । तथाचोक्तं । न दैवमिति संचिंत्य, त्यजेडुद्यममात्मनः । अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेन्यः प्राप्तुमर्हति ॥१॥ यत्तु समाने पुरुषव्यापारे फलवैचित्र्यं दूषणत्वेनोपन्यस्तं तददूषणमेव । यतस्तत्रापि पुरुषकारवैचित्र्यमपि फलवैचित्र्ये कारणं नवति । समाने वा पुरुषकारे यः फलान्नावः कस्यचिद्भवति सोऽदृष्टकृतः । तदपि चास्मान्निः कारणत्वेनाश्रितमेव । तथा कालोपि कर्ता । यतो बकुलचंपकाशोकपुन्नागसहकारादीनां विशिष्टएव काले पुष्पफलाद्युद्भवोन सर्वदेति । यच्चोक्तं । कालस्यैकरूपत्वाज्जगद्वैचित्र्यं न घटतइति तदस्मान् प्रति न दूषणं । यतोऽस्मान्निर्न कालएवैकः कर्तृत्वेनान्युपगम्यतेऽपितु कर्मापि ततो जगद्वैचित्र्यमित्यदोषः । तथेश्वरोपि कर्ता । आत्मैवहि तत्र तत्रोत्पत्तिद्वारेण सकलजगद्व्यापनादीश्वरः । तस्य सुखडुःखोत्पत्तिकर्तृत्वं सर्ववादिनामविगानेन सिद्धमेव । यच्चात्र मूर्तामू

तादिदूषणमुपन्यस्तं तदेवंभूतेश्वरसमाश्रयणे दूरोच्छेदितमेवेति । स्वभावस्यापि कथंचि त्कर्तृत्वमेव । तथा ह्यात्मन उपयोगलक्षणत्वमसंख्येयप्रदेशत्वं । पुजलानां च मूर्तत्वं ध र्माधर्मास्तिकाययोर्गतिस्थित्युपष्टंभकारित्वममूर्तत्वं चेत्येवमादिस्वभावापादितं । यदपि चा त्मव्यतिरेकाऽव्यतिरेकरूपं दूषणमुपन्यस्तं तददूषणमेव । यतः स्वभावआत्मनोऽव्यति रिक्तः । आत्मनोपि च कर्तृत्वमभ्युपगतमेव तदपि स्वभावापादितमेवेति । तथा कर्मापि कर्तृ भवत्येव । तद्धि जीवप्रदेशैः सहान्योन्यानुवेधरूपतया व्यवस्थितं कथंचिच्चात्मनोऽभि न्नं त द्वशाच्चात्मा नरकतिर्यङ्मनुष्यामरभवेषु पर्यटन् सुखदुःखादिकमनुभवतीति । तदेवं नियत्यनियत्योः कर्तृत्वे युक्त्युपपन्ने सति नियतेरेव कर्तृत्वमभ्युपगच्छंतोनिर्युक्तिकाभवंतीत्य वसेयम्॥४॥तदेवं युक्त्या नियतिवादं दूषयित्वा त द्वादिनामपायदर्शनायाह।(एवमेगे उइत्या दि`। एवमितिपूर्वाभ्युपगमसंसूचकं । सर्वस्मिन्नपि वस्तुनि नियतानियते सत्येके नियतमेवा ऽवश्यंभाव्येव कालेश्वरादिनिराकरणेन निर्हेतुकतया नियतिवादमाश्रिताः । तुरवधार णे । तएव नान्ये । किंविशिष्टाः पुनस्ते इति दर्शयति । युक्तिकदंबकाद्वहिस्तिष्ठंतीति पा र्श्वस्थाः परलोकक्रियापार्श्वस्थावा । नियतिपक्षसमाश्रयणात्परलोकक्रियावैयर्थ्यं । य दि वा पाशइवपाशः कर्मबंधनं तच्चेह युक्तिविकलनियतिवादप्ररूपणं तत्रस्थिताः पाश स्थाः । अन्येप्येकांतवादिनः कालेश्वरादिकारणिकाः पार्श्वस्थाः पाशस्थावा द्रष्टव्याइ त्यादि । ते पुनर्नियतिवादमाश्रित्यापि भूयोविविधं विशेषेण वा प्रगल्भिताधार्ष्ट्योंपग ताः परलोकसाधकासु क्रियासु प्रवर्तंते । धार्ष्ट्यार्श्रयणं तु तेषां नियतिवादाश्रयणे स त्येव । पुनरपि तत्प्रतिपंथिनीषु क्रियासु प्रवर्तनादिति ते पुनरेवमप्युपस्थिताः परलोक साधकासु क्रियासु प्रवृत्ताअपि संतोनात्मदुःखविमोक्षकाः । असम्यक्प्रवृत्तत्वान्नात्मानं दुःखाद्विमोचयंति । गतानियतिवादिनः ॥ ५ ॥

जविणो मिगा जहा संता, परिताणेण वज्जिआ॥ असंकियाइं संकंति, संकिआइं असंकिणो ॥६॥ परियाणिआणि संकंता, पासिताणि असंकि णो ॥ अन्नाणभयसंविग्गा संपलिंति तहिंतहिं ॥ ७ ॥ अह तं पवेज्ज वज्झं, अहे वज्झस्स वा वए ॥ मुच्चेज्ज पयपासाउ, तं तु मंदे ण देहए ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे अज्ञानवादीना मत उपर दृष्टांत कहेछे. जहाके० जेम, मिगाके० मृग एटले अरण्यना पशु जविणो संता के० वेगवंत छतां ते केवांछे, तोके परिताणेणवज्जि याके० परित्राण एटले शरणेकरी वर्जित अर्थात् तेमनो कोइ राखनार नथी. एवा ते भयविव्हलभूत विवेकरहित थका असंकियाइं के० अशंकित स्थानक जे कूट पा शादिक रहित तेने संकंति के० शंकानुं स्थानक जाणे तथा जे संकिआइं के० शंकित

स्थानक जे वधनुं कारण ते स्थानक थकी असंकिणो के० शंका पामे नहीं. ॥ ६ ॥ वली एहिज कहेछे के, ते मृगादिक जीव परियाणिआणि के० परित्राण जे रक्षानुं स्थानक तेथी संकंता के० शंकाता अने पासिताणि असंकिणो के० पाशना स्थानक थकी अण शंकाता, अस्राणभयके० अजाणपणे अथवा भयें करी, संविग्गा के० व्याकुल थका संपलिंति तहिं तहिं के० तेहिज तेहिज स्थानके जाय. ज्यां त्यां पाशादिक मांहेज पडे ॥ ७ ॥ वली एज दृष्टांत दिपावेछे. अह के० अथ एटले हवे तंके० ते मृगादिक जीव ते वागुरादिकनो जे बझंपवेज्ञ के० बंधपाशादिकनां स्थानक ने अहेवझस्सवाव ए के० नीचे अथवा उपर आक्रमीने जाय. जो एम करे तो ते मुच्चेज्ञपयपासाउके० पगना पाशथकी मूकाय एटले बुटो थाय परंतु ते अनर्थ परिहरवानो उपाय तंके० ते, मंदे के० मंद अज्ञानी, णदेहएके० नदेखे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–अथाज्ञानिमतमाह । (जविणोत्ति)। यथा जविनोवेगवंतः संतोमृगाः परित्राणेन शरणेन वर्जितारहिताः । अथवा परित्राणं वागुरादिबंधनं तेन तर्जिताभयं प्रापिताः संतोऽशंकितानि स्थानानि शंकंते भयभ्रांताः संतोनिर्भयान्यपि स्थानानि सभयतया मन्यंते । शंकितानि च वागुरादीन्यशंकमानाः संपर्ययंतइत्युत्तरसूत्रेण संबंधः ॥ ६ ॥ परित्राणं संजातं येषु तानि परित्राणितानि शरभूतानि स्थानानि मूढत्वात् शंकमानाः सभयानि मन्यमानाः पाशितानि पाशयुक्तान्यशंकमानास्तेषु शंकाम कुर्वाणाअज्ञानेन भयेन च (संविग्गत्ति) सम्यक्व्याप्तास्तत्र तत्र वागुरादिके बंधने संपर्ययंते समेकीभावेन परिसमंतादयंते गछंतीति ॥ ७ ॥ इममेव दृष्टांतमाश्रित्याह । (अहेति)। अथानंतरमसौ मृगस्तत् (बझमिति) बंधोबंधनकारणं रज्जुवागुरादिबंधं वा यदि लवेतोपरिगछेत वा अथवा बंधस्याधोव्रजेत् तदा पदपाशात् वागुरादिबंधनान्मुच्यते । एवं संतमपि तमनर्थपरिहरणोपायं मंदोजडोन देहतीति न पश्यतीति ॥ ८ ॥

॥ टीका–सांप्रतमज्ञानिमतं दूषयितुं दृष्टांतमाह । (जविणोइत्यादि) यथा जविनोवेगवंतः संतोमृगाआरण्याः पशवः परिसमंतात् त्रायते रक्षतीति परित्राणं तेन वर्जिता रहिताः परित्राणविकलाइत्यर्थः । यदिवा परित्राणं वागुरादिबंधनं तेन तर्जिताभयं ग्रहिताः संतोभयोद्भ्रांतलोचनाः समाकुलीभूतांतःकरणाः सम्यक्विवेकविकलाअशंकनीयानि कूटपाशादिरहितानि स्थानान्यशंकार्हाणि तान्येव शंकंते अनर्थोत्पादकत्वेन गृण्हंति । यानि पुनः शंकार्हाणि शंका संजाता येषु योग्यत्वात्तानि शंकितानि शंकायोग्यानि वागुरादीनि तान्यशंकिनस्तेषु शंकामकुर्वाणास्तत्र तत्र पाशादिके संपर्ययंतइत्युत्तरेण संबंधः ॥६॥ पुनरप्येतदेवाऽतिमोहाविष्करणायाह । (परियाणीत्यादि) परित्रायते इति परित्राणं तज्जातं येषु तानि । यथा परित्राणयुक्तान्येव शंकमानाअतिमूढत्वाद्विपर्यस्तबु

ध्यस्त्रातर्यपि नयमुत्प्रेक्षमाणानि पाशितानि पाशोपेतान्यनर्थोपादकान्यशंकिनस्तेषु शंकामकुर्वाणाः संतोऽज्ञानेन नयेन च (संविग्गंति)। सम्यक्व्याप्तावशीनूताः शंकनीयमशंकनीयं वा तत्राऽपरित्राणोपेतं पाशाद्यनर्थोपेतं वा सम्यक्विवेकेनाऽजानाना स्तत्र तत्राऽनर्थवहुले पाशवागुरादिके वंधने संपर्ययंते समेकीनावेन परिसमंतादयंते यांति वा गछंतीत्युक्तं नवति। तदेवं दृष्टांतं प्रसाध्य नियतिवादाद्येकांताऽज्ञानवादिनोदार्ष्टांतिकत्वेनाऽयोज्याः। यतस्तेप्येकांतवादिनोऽज्ञानकास्त्राणनूतानेकांतवादवर्जिताः सर्वदोषविनिर्मुक्तं कालेश्वरादिकारणवादान्युपगमेनाऽनाशंकनीयमनेकांतवादमाशंकंते शंकनीयं च नियत्यज्ञानवादमेकांतं न शंकंते। ते एवंनूताः परित्राणार्हेप्यनेकांतवादे शंकां कुर्वाणायुक्त्याऽघटमानकमनर्थवहुलमेकांतवादमशंकनीयत्वेन गृह्णंतोऽज्ञानावृतास्तेषु तेषु कर्मवंधस्थानेषु संपर्ययंत इति ॥ ७ ॥ पूर्वदोषैरनुप्यन्नाचार्योदोषांतरदित्सया पुनरपि प्राक्तनदृष्टांतमधिकृत्याह। (अहतंपवेज्जइत्यादि) अथानंतरमसौ मृगस्तत् (वज्झमिति) वद्धं वंधनाकारेण व्यवस्थितं। वागुरादिकं वा वंधनं वंधकत्वाद्वंधमित्युच्यते। तदेवंनूतं कूटपाशादिकं वंधनं यद्यसावुपरिप्लवेत् तदधस्तादतिक्रम्योपरिगछेत् तस्य वध्र्यादेर्वंधनस्याधोगछेत्तत एवं क्रियमाणेऽसौ मृगः पदेपाशः पदपाशोवागुरादिवंधनं तस्मान्मुच्यते। यदि वा पदं कूटं पाशः प्रतीतस्ताभ्यां मुच्यते। क्वचित्पदपाशादीति पठ्यते। आदिग्रहणाद्वधताडनमारणादिकाः क्रियागृह्यंते। एवं संतमपि तमनर्थोत्पादकं परिहरणोपायं मंदोजडोऽज्ञानावृतोन देहतीति न पश्यतीति ॥ ८ ॥

अहिअप्पाऽहियप्पन्नाणे, विसमंतेणुवागते ॥ सवद्धे पयपासेणं, तत्थ घायं नियछइ ॥ए॥ एवं तु समणा एगे, मिछदिठी अणारिआ ॥ असंकिआइं संकंति, संकिआइं असंकिणो ॥ १० ॥ धम्मपन्नवणा जा सा, तं तु संकंति मूढगा ॥ आरंनाइं न संकंति, अविअत्ता अकोविआ ॥ ११ ॥ सवप्पगं विउक्कस्सं, सवंणूमं विहूणिआ ॥ अप्पत्तिअं अकम्मंसे, एयमठं मिगे चुए ॥ १२ ॥

अर्थ–हवे ते नपाय अण देखतो थको जे अवस्थाने पामे ते कहेछे. अहिअप्पा के० ते मृग आत्माने अहित तथा अहियप्पन्नाणेके० अहित जेनुं जाणपणु छे, एवा छता, विसमंते के० विषम कूट पाशादिक प्रदेशे, णुवागते के० आवे. एटले ते पाश मांहे पडे. सवद्धेपयपासेणं के० ते त्यां पडया छता वंधन पामे. तथा तछघायं के० त्यां ते विनाशने नियछइके० डुःखी थता पामे. ॥ ए ॥ हवे ए दृष्टांत परवादिसाथे

मेलवेछे. एवंतु के० एरीते जेम ते मृग अजाणतां थकां पाशमांहे पडेछे, तेम सम णाएगे के० कोइएक श्रमण शाक्यादिक दर्शनी ते केवाछे, तोके मिछदिठी के० मि थ्यादृष्टी तथा अणारिआ के० अनार्य अज्ञानपणे अनाचारना सेवनारा ते असंकिया ईके० अशंकित एवां जे रुडा धर्मनां अनुष्ठानछे, तेनेविषे संकंति के० अधर्मनी शंका आणे; अने संकियाइं के० जे हिंसादिक शंकित स्थानकछे, तेथकी असंकिणो के० न शंकाय. ॥ १० ॥ वली ते दर्शनीउनी जे विपरीत मति छे ते देखाडेछे. धम्मपन्नव णाजासा के० क्षांत्यादिक दशविध धर्मसहित प्ररूपणा जेनीछे. तंतुसंकंतिमूढगा के० तेथकी ते अज्ञानी शंकाय अने कहेके ए अधर्मनी प्ररूपणाछे, तथा जे आरंभाईके० आरंभादिक पापनां कारण छे. तेथकी नसंकंति के० न शंकाय अने तेनेज धर्म करी देखाडे. माटे ते केवा छे, अविअत्ता के० अव्यक्त, मुग्ध, विवेक, विकल तथा अकोवि याके० अकोविद एटले अपंमित छे. ॥ ११ ॥ हवे तेने फल देखाडेछे. सवप्पगं के० सर्वात्मक ते लोन, विउक्कस्सं के० मान, सव के० समस्त, णूमं के० माया, तथा अप त्तियं के० क्रोध ए चार कषाय विहूणिया के० खपावीने जीव अकम्मंसेके० अकर्माश थाय, एटले कर्माशरहित थाय. एयमठं के० एवो अर्थ ते मिगेके० मृगनी पेरे अज्ञान प ष्ठवादी दर्शनी चूएके० छांमेछे. सारांश जेथकी जीव मुक्ति पामे ते अर्थ जाणता नथी॥१२॥

॥ दीपिका–पाशमपश्यतोयाऽवस्था स्यात्तामाह । (अहिअप्पेति । स मृगोऽहिता त्मा तथा अहितं प्रज्ञानं बोधोयस्य सोऽहितप्रज्ञानः विषमांतेन कूटपाशादियुक्तेन प्रदेशे नोपागतः। अथवा विषमांते कूटपाशे आत्मानमनुपातयेत्। तत्र चासौ बद्धः पादपाशा दीननर्थबहुलान् अवस्थाविशेषान् प्राप्तस्तत्र बंधने घातं विनाशं निगछति प्राप्नोति ॥ ॥ ए ॥ दृष्टांतयोजनामाह । (एवमिति)। एवं पूर्वोक्तमृगदृष्टांतेन । तुरवधार णे। एकेश्रमणाः पाखंमाश्रितमिथ्यादृष्टयोऽनार्याअसदनुष्ठानाअशंकितानि धर्मानुष्ठा नानि शंकमानास्तथा शंकितान्येकांतपक्षाश्रयणान्यशंकिनोमृगाइवाऽनर्थनाजः स्युः ॥ ॥ १० ॥ शंकिताशंकितविपर्यासमाह। (धम्मेत्ति)। धर्मप्रज्ञापना क्षांत्यादिदशविधधर्म प्ररूपणा या सा प्रसिद्धा तां शंकंते सद्धर्मप्ररूपणेयमिति मन्यंते । आरंभांश्च पापो पादानभूतान् शंकंते । यतोऽव्यक्तामुग्धाः सदसद्विवेकविकलाअकोविदाअपंडिताः स छास्त्रावबोधविधुराः ॥११॥ तेषां सत्फलानावमाह। (सवप्पगमिति) सर्वात्मकोलो नस्तं। व्युत्कर्षोमानस्तं (सव्वंणूमंति) मायां तथा (अप्पत्तिअंति) क्रोधस्तं च विधूय अकर्मा शः न विद्यते कर्माशोयस्य सोऽकर्माशः स्यात्। अकर्माशत्वं च ज्ञानाद्भवति नाऽज्ञानादि त्याह। (एयमठंति)। एतमर्थं कर्माभावरूपं मृगइव मृगोऽज्ञानी (चुएत्ति) त्यजेत्॥१२॥

॥ टीका—कूटपाशादिकं चापश्यन् यामवस्थामवाप्नोति तां दर्शयितुमाह। (अहीत्यादि) स मृगोऽहितात्मा। तथाऽहितं प्रज्ञानं बोधोयस्य सोऽहितप्रज्ञानः। सचाहितप्रज्ञानः सन् विपमांतेन कूटपाशादियुक्तप्रदेशेनोपागतः। यदिवा विपमांते कूटपाशादिके आत्मानमनुपातयेत्। तत्र चासौ पतितो बद्धश्च तेन कूटादिना पदपाशादीननर्थबहुलानवस्थाविशेषान् प्राप्तस्तत्र बंधने घातं विनाशं नियच्छति प्राप्नोतीति ॥ ए ॥ एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य सूत्रकारएव दार्ष्टांतिकमज्ञानविपाकं दर्शयितुमाह। (एवंतुइत्यादि) एवमिति यथा मृगाअज्ञानावृताअनर्थमनेकशः प्राप्नुवंति। तुरवधारणे। एवमेव श्रमणाः केचित्पाखंमविशेपाश्रिताः। एके न सर्वे। किंनूतास्ते इति दर्शयति। मिथ्या विपरीता दृष्टिर्येषामज्ञानवादिनां नियतिवादिनां वा ते मिथ्यादृष्टयः। तथा अनार्याः आराज्जाताः सर्व हेयधर्मेन्यइति आर्याः न आर्याअनार्याअज्ञानावृतत्वादसदनुष्ठायिनइति यावत्। अज्ञानावृतत्वं च दर्शयति। अशंकितान्यशंकनीयानि सुधर्मानुष्ठानादीनि शंकमानास्तथा शंकनीयान्यपायबहुलान्येकांतपक्षसमाश्रयणान्यशंकिनोमृगाइव मूढचेतसस्तत्तदाऽरनंते यद्यदनर्थाय संपद्यंतइति ॥ १० ॥ शंकनीयाशंकनीयविपर्यासमाह। (धम्मपस्रवणेत्यादि)। धर्मस्य क्षांत्यादिदशलक्षणोपेतस्य या प्रज्ञापना प्ररूपणा। तंत्विति। तामेव शंकंते असद्धर्मप्ररूपणेयमित्येवमध्यवस्यंति। ये पुनः पापोपादाननूताः समारंनास्तानाशंकंते। किमिति। यतोऽव्यक्तामुग्धाः सहजसद्विवेकविकलाः। तथा। अकोविदाअपंडिताः सच्छास्त्रावबोधरहिताइति ॥ ११ ॥ तेच अज्ञानावृतायन्नाप्नुवंति तद्दर्शनायाह। (सव्वप्पगमित्यादि)। सर्वत्राप्यात्मा यस्याऽसौ सर्वात्मको लोनस्तं विधूयेति संबंधः। तथा। विविधउत्कर्षोगर्वोव्युत्कर्षोमानइत्यर्थः। तथा (णूमंति) माया तां विधूय। तथा (अप्पत्तियंति) क्रोधं विधूय। कपायविधूनने च मोहनीयविधूननमावेदितं नवति तदपगमाच्च शेषकर्मानावः प्रतिपादितो नवतीत्याह। (अकर्मांशइति)। न विद्यते कर्मांशोऽस्येत्यकर्मांशः। सच कर्मांशोविशिष्टज्ञानाद्भवति नाज्ञानादित्येव दर्शयति। एतमर्थं कर्मानावलक्षणं मृगः अज्ञानी (चुएत्ति)। त्यजेत्। विनक्तिपरिणामेन वा अस्मादेवंनूतादर्थात् च्यवेत् भ्रश्येदिति ॥ १२॥

जे एयं नाभिजाणंति, मिछदिठी अणारिया ॥ मिगा वा पासबद्धा ते, घायमेसंति णंतसो ॥ १३॥ माहणा समणा एगे, सव्वे नाणं सयं वए॥ सव्वलोगे वि जे पाणा, न ते जाणंति किंचण ॥१४॥ मिलक्खू अमिलक्खुस्स, जहा चुत्ताणुभासए॥ ण हेउं से विजाणाइं, भासिअंतणु भासए ॥१५

एवमन्नाणिया नाणं, वयंतावि सयं सयं ॥ निछयछं न याणंति, मिलरकुव्व अबोहिया ॥ १६ ॥

अर्थ– वली एनोज दोष देखाडेछे. जेएयंनाभिजाणंति के० जे अज्ञानवादी ए कर्म खपाववानो उपाय नथी जाणता, ते केवा छे, मिछदिठीअणारिया के० मिथ्यादृष्टी अनार्य एवा मिगावापासबद्धाते के० मृगलानी परे पाशमां बंधाणाछे. तेघायमेस्संति णंतसो के० आगामिक काले अनंताघात एटले मरणने पामशे; एटले मृगतो एकवार मरण पामीनेज छूटेछे परंतु ते अज्ञानी अनंते मरणे पण छूटसे नहीं. ॥ १३ ॥ हवे जे पोते एकवार ग्रह्युं एवुं जे पोतानुं कदाग्रह तेने कोइवारे मूकेनहीं ते उपर विशेष कहेछे. माहणासमणाएगे के० एक ब्राह्मण तथा एक श्रमण परिव्राजक विशेष ए सव्वे के० सर्वे, सयंके० पोत पोतानुं, नाणंके० जाणपणुं रुडुंछे एम वएके० वदे एटले कहेछे. वली ते जुदां जुदां ज्ञान परस्पर माहोमांहे विरुद्ध संदेह उपजावेछे; ते माटे अजाणपणुंज भलु छे जाणपणानुं कांइ काम नथी, ए रीते अज्ञानवादी कहेछे. तेमाटे सव्वलोगेविके० सर्व लोकमांहे, जे पाणा के० जे प्राणीउ छे, नतेजाणंतिकिंचणं के० ते कांइ जाणता नथी, एटले सर्व सम्यक्ज्ञान रहित जाणवा. यद्यपि तेने कांइ गुरुपरंपरागत जाणपणुं होय तथापि ते कांई परमार्थ जाणता नथी, माटे ते अज्ञानीज जाणवा. ॥ १४ ॥ हवे ते उपर दृष्टांत कहेछे. मिलरकुअमिलरकुस्स के० जेम म्लेछ आर्यभाषानो अजाण थको अम्लेछ जे आर्य भाषा तेने जहाचुत्ताणुभासए के० जेम भाषंतानी परे बोले परंतु ते णहेउसेविआणाइ के० हेतु एटले परमार्थ कांइ जाणे नहीं, निःकेवल परमार्थे करी शून्य भासियंतणुभासए के० भाषाने केडे भाषे. ॥ १५ ॥ हवे ए दृष्टांत अज्ञानवादी साथे मेलवेछे. एवमन्नाणियाणाणं के० एरीते अज्ञानी सम्यक्ज्ञानरहित एवा श्रमण ब्राह्मणादिक पोतपोताना मतनुं ज्ञान प्रमाण करीने वयंताविसयंसयं के० पोतपोतानो मार्ग कहेछे पण ते निछयछंनयाणंति के० निश्चयार्थ नथी जाणता. मिलरकुवअबोहिया के० ते म्लेछवत् एटले म्लेछनीपरे अबोधिक एटले ज्ञानरहित छे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–भूयोप्यज्ञानवादिनां दोषमाह । (जेएतमिति) । ये एतं कर्मक्षयोपायं न जानंति मिथ्यादृष्टयोऽनार्यास्ते मृगाइव पाशबद्धाघातं विनाशमेष्यंति यास्यंत्यन्वेषयंतिवा तद्योग्यक्रियाकरणात् । अनंतशोनिरंतरम् ॥ १३ ॥ अज्ञानवादिनामेव दूषणांतरमाह । (माहणाइति) । एके ब्राह्मणास्तथा श्रमणाः परिव्राजकाः सर्वे स्वकमात्मीयं ज्ञानं वदंति नच तानि सर्वेषां ज्ञानानि । अन्योन्यविरोधेन प्रवृत्तत्वात् । तस्मादज्ञानमेव श्रेयइत्याह । (सव्वलोयेवित्ति) । सर्वस्मिन् लोके ये प्राणाः प्राणिनस्ते किंचन स

म्यक् न जानंति ॥ १४ ॥ अथ दृष्टांतमाह । (मिलक्खुइति) । यथा म्लेञ्छोऽनार्यः अ म्लेञ्छस्य आर्यस्य यडुक्तं नाषितं तदनुनाषते परमार्थशून्यं तन्नाषितमेवानुनाषते । नच हेतुं विजानाति ॥ १५ ॥ दार्ष्टांतिके योजयति (एवमिति) । एवमज्ञानिकाः स म्यक्ज्ञानरहिताः स्वकं स्वकमात्मीयं ज्ञानं प्रमाणत्वेन वदंतोपि निश्चयार्थं न जानंति । इव यथा म्लेञ्छो निश्चयार्थमजानन् परोक्तमनुवदत्येवं तेप्यबोधिकाबोधरहिताः । ततोऽज्ञानमेव श्रेयइति ॥ १६ ॥

॥ टीका–नूयोप्यज्ञानवादिनां दोषानिधित्सयाह । (जेएयमित्यादि) । ये अज्ञान पक्षं समाश्रिताएनं कर्मक्षपणोपायं न जानंति । आत्मीयाऽसद्ग्राहाऽग्रहग्रस्तामि थ्यादृष्टयोऽनार्यास्ते मृगाइव पाशबंधाघातं विनाशमेष्यंति यास्यंत्यन्वेषयंति वा । त द्योग्यक्रियानुष्ठानात् । अनंतशोविछेदेनेत्यज्ञानवादिनोगताः ॥ १३ ॥ इदानीमज्ञानवादिनां दूषणोद्भिनावयिषया स्ववाग्यंत्रितावादिनोन चलिष्यंतीति तन्मताविष्करणायाह । (मा हणाइत्यादि) । एके केचन ब्राह्मणविशेषास्तथा श्रमणाः परिव्राजकविशेषाः सर्वेप्ये ते ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं हेयोपादेयार्थाऽविर्नावकं परस्परविरोधेन व्यवस्थितं स्वकमात्मीयं वदंति । नच तानि ज्ञानानि परस्परविरोधेन प्रवृत्तत्वात्सत्यानि । तस्मादज्ञानमेव श्रेयः किं ज्ञानपरिकल्पनयेत्येतद्दर्शयति । सर्वस्मिन्नपि लोके ये प्राणाः प्राणिनोन ते किंचना पि सम्यगुपेतवाचं जानंतीति विदंतीति ॥ १४ ॥ यदपि तेषां गुरुपारंपर्येण ज्ञानमायातं तदपि छिन्नमूलत्वादवितथं न नवतीति दृष्टांत द्वारेण दर्शयितुमाह । (मिलक्खुअमिलक्खु स्सेत्यादि) । यथा म्लेञ्छआर्यनाषानजिज्ञोऽम्लेञ्छस्यार्यस्य म्लेञ्छनाषानजिज्ञस्य यन्नाषि तं तदनुनाषते अनुवदति केवलं न सम्यक्तदजिप्रायं वेत्ति यथाऽनया विवक्षयाऽने न नाषितमिति । नच हेतुं निमित्तं निश्चयेनासौ म्लेञ्छस्तन्नाषितस्य जानाति । केवलं पर मार्थशून्यं तन्नाषितमेवानुनाषत इति ॥ १५ ॥ एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं योजयितुमा ह । (एवमित्यादि) । यथा म्लेञ्छः अम्लेञ्छस्य परमार्थमजानानः केवलं तन्नाषितानु नाषते । तथा अज्ञानकाः सम्यक्ज्ञानरहिताः श्रमणाब्राह्मणावदंतोपि स्वीयं स्वीयं ज्ञानं प्रमाणत्वेन परस्परविरुद्धार्थनाषणात् निश्चयार्थं न जानंति । तथाहि । ते स्वकी यं तीर्थकरं सर्वज्ञत्वेन निर्द्धार्य तडुपदेशेन क्रियासु प्रवर्तेरन् । नच सर्वज्ञविवक्षा अर्वा ग्दर्शना ग्रहीतुं शक्यते । नासर्वज्ञः सर्वज्ञं जानातीति न्यायात् । तथाचोक्तं । सर्वज्ञोऽ साविति ह्येतत्तत्कालेपि बुभुत्सुनिः ॥ तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञान,रहितैर्गम्यते कथं ॥ १ ॥ ए वं परचेतोवृत्तीनां डुरन्वयत्वाडपदेष्टुरपि यथावस्थितविवक्षया ग्रहणाऽसंनवान्निश्चया र्थमजानानाम्लेञ्छवदपरोक्तमनुनाषंतएव । अबोधिकाबोधरहिताः केवलमित्यतोऽज्ञा

नमेव श्रेयइति । एवं यावद्यावज्ज्ञानान्युपगमस्तावत्तावद्गुरुतरदोषसंनवः । तथाहि । यो वगछन्पादेन कस्यचित् शिरः स्पृशति तस्य महानपराधोनवति । यस्त्वनानोगेन स्पृशति तस्मै न कश्चिदपराध्यतीत्येवं चाज्ञानमेव प्रधाननावमनुनवति नतु ज्ञानमिति । १६ ॥

अन्नाणियाण वीमंसा, नाणे ण विनियछइ ॥ अप्पणो य परं नालं, कुतो अन्नाणुसासिउं ॥ १७ ॥ वणे मूढे जहा जंतू, मूढे णेयाणुगामिए ॥ दोवि एए अकोविया, तिव्वं सोयं नियछइ ॥ १८ ॥ अंधो अंधं पहं णिंतो, दूरमद्धाणु गछइ ॥ आवज्जे नुप्पहं जंतु; अडुवा पंथाणु गामिए ॥ १९ ॥ एवमेगे णियायठी, धम्ममाराहगा वयं ॥ अडुवा अहम्ममावज्जे, ण ते सवज्जुयं वए ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥

अर्थ—हवे एने दोष देखाडेछे. जे एम कहेके, अज्ञानज नलुंछे; तेने अन्नाणियाण के० अज्ञानवादी कहिये. तेनी जे वीमंसा के० जाणवानी इछा, ते नाणे ण विनियछइ के० ज्ञानने विषे पहोचे नहीं. कारण ते एम विचार करेछे के अज्ञानवडे अपराध करनारानो दोष स्वल्प छे, अने जाणनारने दोष घणो लागेछे. जेम कोइक मनुष्य मार्गे जतां जाणतो थकोज कोइकना मस्तकने पगे करीने फरशे. तोते महा अपराधनो पात्र थायछे. परंतु जो अजाणतां फरशे तोते स्वल्प अपराधी छे. ए कारण माटे अज्ञानपणुंज रुडुंछे, एवी जेनामां विचारणा छे. ते अज्ञानवादी जाणवा. ते अज्ञानवादी अप्पणोय कहेतां पोतानो आत्मा समजवानेज असमर्थ छे. तो परंनालं के० बीजाने कुतो अन्नाणुसासिउं के० बीजा अज्ञानी जनोने समजाववाने क्यांथी समर्थ थाय? अर्थात् नज थाय. ॥ १७ ॥ हवे एज अर्थ दृष्टांते करी दिपावेछे. वणे के० वन एटले अटवीने विषे, जहा के० जेम, कोइक मूढेजंतू के० दिशिमूढजीव ते दिशिने जाणवा असमर्थ थको मूढेणेयाणुगामिए के० अनेरा दिशिमूढने आगेवान करीने तेनी पाछळ चाले ते समये दोविएए के० ते बन्ने जण, ते मार्गना अकोविया के० अजाण थका, तिव्वंसोयंनियछई के० तीव्र गहनमांहे पडे अर्थात् महादुःख पामे. ॥ १८ ॥ वळी बीजुं दृष्टांत कहेछे. अंधोअंधंपहंणिंतो के० जेम कोइएक पोते अंध छतां अनेरा अंधने मार्गे लेई जतो थको दूरमद्धाणुगछइ के० घणे दूर जईने आवज्जेउप्पहंजंतु के० ते अंध उन्मार्गे पडे; अडुवा के० अथवा पंथाणुगामिए के० अनेरे पंथे जाय पण वांछित मार्गे न जाय. एटले पोते उन्मार्गे पडतां पाछळाने पण उन्मार्गे पाडे. ॥१९॥ हवे ए दृष्टांत अज्ञानवादी साथे मेळवेछे. एवं के० ए अ

जाणता अंधनी पेठे जावमूढ एवा एगे के० कोइ एक परदर्शनी णियायठी के० मोक्ष ना अर्थी धम्ममाराह्गावयं के० अमे धर्मना आराधक ठैये एम कही प्रव्रज्याने लईने अनेक ठकायनुं मर्दन करता थका, अडुवा के० अथवा अनेराने ठकायना आरंजनो उपदेश करता थका, अहम्ममावज्जे के० अधर्मज आचरे. परंतु णतेसव्वज्जुअंवए के० ते सर्व प्रकारे रुजु एटले सरल एवो मार्ग न पामे. एटले ते मोक्षने अर्थे यत्न करे प रंतु मोक्षनो मार्ग न पामे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका—इदानीमेतद्दूपणायाह् । (अन्नाणित्ति) अज्ञानिकानामज्ञानमेव श्रेयइति वादिनां योविमर्शोविचारस्स अज्ञानेऽज्ञानविपये न नियह्वति न युज्यते । यतोज्ञानं सत्यमसत्यं वेति विमर्शः । अज्ञानेन कृतेऽपराधे स्वल्पोदोपः ज्ञानेन कृते महान् इत्येवं नूतोविचारोपि तेषां न युज्यते । एवंविधविचारस्य ज्ञानरूपत्वादित्यज्ञानवादे विचारोन युज्यते । तथा आत्मनोपि परं प्रधानमज्ञानवादं शासितुमुपदेष्टुं नालं न समर्थाः । स्वयमज्ञत्वात् कुतोऽन्येषां शिष्याणामुपदेष्टुं समर्थान्नवेयुः ॥ १७ ॥ यथा ते आत्मनः परेषां च शिक्षणे ऽसमर्थास्तथा दृष्टांतेनाह् (वणेत्ति) वनेऽरण्ये यथा कश्चिन्मूढोमूढं नेतारं प्रापकमनुगह्वत्याश्रयति तदा तौ द्वावप्यकोविदौ मार्गाऽनिपुणौ संतौ तीव्रं स्रोतोगहनं शोकं वा नियह्वतः प्राप्नुतः ॥ १८ ॥ दृष्टांतांतरमाह् । (अंधेति) यथा अंधः स्वयं अन्यमंधं पंथानं नयन् दूरमध्वानं वांछितमार्गादन्यं दूरं मार्गं गह्वति । तथा उत्प थमुन्मार्गमापद्यते जंतुः प्राणी अंधः । अथवा परं पंथानमनुगह्वेन्न वांछितं ॥ १९ ॥ दार्ष्टांतिकमर्थमाह् । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तार्थेन एके जावमूढानियागोमोक्षः सद्ध र्मोवा तदर्थिनस्ते किल वयं धर्माराधका इतिजानंतोऽधर्मं पापमेवापद्येरन् प्राप्नुवंति तथा ते सदनुष्ठानाआजीविकादयोगोशालकमतानुसारिणोऽज्ञानवादप्रवृत्ताः सर्वथा ऋ जुः सर्वर्जुः संयमः सद्धर्मोवा तं न व्रजेयुः न गह्वंति न प्राप्नुवंतीत्यर्थः । अथवा सर्व र्जुकं सत्यमज्ञानांधान व्रजेयुः ॥ २० ॥

॥ टीका—एवमज्ञानवादिमतमनूद्येदानीं तद्दूपणायाह् । (अन्नाणियाणमित्यादि) न ज्ञा नमज्ञानं तद्विद्यते येषां तेऽज्ञानिनः।अज्ञानशब्दस्योत्तरपदत्वाद्वा मत्वर्थीयः। यथा गौरखरव दरण्यमिति । यथा तेपामज्ञानिनामज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वादिनां योयं विमर्शः पर्यालोच नात्मकोमीमांसा वा मातुं परिछेत्तुमिछा साऽज्ञानेऽज्ञानविपये (नणियह्वत्ति) न नि श्चयेन यह्वति नावतरति न युज्यतइतियावत् । तथाहि । यैवंनूता मीमांसा विमर्शोवा किमेतज्ज्ञानं सत्यमुताऽसत्यमिति । यथा अज्ञानमेव श्रेयोयथा यथाच ज्ञानातिशय स्तथा तथाच दोषातिरेकइति सोयमेवंनूतोविमर्शस्तेपां न युध्यते । एवंनूतस्य पर्यालो

चनस्य ज्ञानरूपत्वादिति । अपिच तेऽज्ञानवादिनआत्मनोपि परं प्रधानमज्ञानवाद मिति शासितुमुपदेष्टुं नालं न समर्थास्तेषामज्ञानपङ्कसमाश्रयणेनाऽज्ञत्वादिति कुतः पुनस्ते स्वयमज्ञाः संतोऽन्येषां शिष्यत्वेनोपगतानामज्ञानवादमुपदेष्टुमलं समर्थाभवेयु रिति । यदप्युक्तं छिन्नमूलत्वात् म्लेच्छानुभाषणवत्सर्वमुपदेशादिकं तदप्ययुक्तं । यतोऽ नुभाषणमपि न ज्ञानमृते कर्तुं शक्यते । तथा । यदप्युक्तं परचेतोवृत्तीनां डुरन्वयत्वाद ज्ञानमेव श्रेयइति तदप्यसत् । यतोभवतैवाज्ञानमेव श्रेयइत्येवं परोपदेशदानाभ्यु द्यतेन परचेतोवृत्तिज्ञानस्याभ्युपगमः कृतइति । तथाऽन्यैरप्यधायि । आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥ नेत्रवक्त्रविकारैश्च, गृह्यतेंतर्गतं मनः ॥ १७ ॥ तदेवं ते तपस्विनोऽ ज्ञानिनआत्मनः परेषां च शासने कर्तव्ये यथा न समर्थास्तथा दृष्टांतद्वारेण दर्शयितुमा ह । (वणेइत्यादि) वनेऽटव्यां यथा कश्चिन्मूढो जंतुः प्राणोदिक्परिच्छेदं कर्तुमसमर्थः स एवंभूतोयदा परं मूढमेव नेतारमनुगच्छति तदा द्वावप्यकोविदौ सम्यक्ज्ञानाऽनिपुणौ संतौ तीव्रमसह्यं स्रोतोगहनं शोकं वा नियच्छतोनिश्चयेन गच्छतः प्राप्नुतोऽज्ञानावृत त्वात् । एवं तेप्यज्ञानवादिनआत्मीयं मार्गं शोभनत्वेन निर्धारयंतः परकीयं वा शोभन त्वेन जानानाः स्वयं मूढाः संतः परानपि मोहयंतीति ॥ १८ ॥ अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतांत रमाह । (अंधोअंधमित्यादि ।) यथा अंधः स्वयमपरमंधं पंथानं नयन् दूरमध्वानं वि वक्षितादध्वनः परतरं गच्छति तथोत्पथमापद्यते जंतुरंधः । अथवा परं पंथानमनुगच्छे न्न विवक्षितमेवाध्वानमनुयायादिति ॥१९॥ एवं दृष्टांतं प्रसाध्य दार्ष्टांतिकमर्थं दर्शयितुमा ह । (एवमेगेनियायछित्ति ।) एवमिति पूर्वोक्तोर्थोपप्रदर्शने । एवं भावमूढाभावांधाश्चेके आजीविकादयः (नियायछिति) । नयोमोक्षः सद्धर्मोवा तदर्थिनस्ते किल वयं सद्धर्मारा धकाइत्येवं संधाय प्रव्रज्यायामुद्यताः संतः पृथिव्यंबुवनस्पत्यादिकायोपमर्देन पचनपा चनादिक्रियासु प्रवृत्ताः संतस्तत्तत्स्वयमनुतिष्ठन्त्यन्येषां चोपदिशंति येनाऽभिप्रेतायामो क्षावाप्तेर्भ्रंशयंति । अथवा तावन्मोक्षाभावस्तमेवं प्रवर्तमानाअधर्मं पापमापद्येरन् । सं भावनायामुत्पन्नेन लिङ्प्रत्ययेनैतद्दर्शयति । एतदपरं तेपामनर्थांतरं संभाव्यते । यदुत विवक्षितार्थाभावतया विपरीतार्थावाप्तेः पापोपादानमिति । अपिच तएवमसदनुष्ठायि नआजीविकादयोगोशालकमतानुसारिणोऽज्ञानवादप्रवृत्ताः सर्वैः प्रकारैर्ऋजुः प्रगुणो विवक्षितमोक्षगमनंप्रत्यकुटिलः सर्वर्जुसंयमः सद्धर्मोवा तं सर्वर्जुकं ते न व्रजेयुर्न प्रा प्नुयुरित्युक्तं भवति । यदि वा सर्वर्जुकं सत्यं तत्तेऽज्ञानांधाज्ञानाऽपलापिनोन वदेयुरि ति । एते चाज्ञानिकाः सप्तषष्टिभेदाभवंति । तेच भेदाअमुनोपायेन प्रदर्शनीयाः । तद्यथा । जीवादयोनव पदार्थाः । सत्, असत्, सदसत्, अवक्तव्यः, सदवक्तव्यः, असदवक्तव्यः, सदसदवक्तव्यइत्येतैः सप्तभिः प्रकारैर्विज्ञातुं न शक्यंते नच विज्ञातैः प्रयोजनमस्ति । भा

वना चेयं। सन् जीवइति कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन। असन् जीवइति को वेत्ति किंवा तेन ज्ञातेनेत्यादि। एवमजीवादिष्वपि प्रत्येकं सप्त विकल्पाः। नव सप्तकास्त्रिषष्टिः। अमी चान्ये चत्वारस्त्रिषष्टिमध्ये स्थाप्यंते। तद्यथा। सती भावोत्पत्तिरिति को जानाति किंवाऽनया ज्ञातया। एवमसती सदसदवक्तव्यताभावोत्पत्तिरिति को जानाति किंवाऽनयाज्ञातयेति। शेषविकल्पत्रयं तूत्पत्त्युत्तरकालं पदार्थावयवापेक्षमतोत्र न संभवतीति नोक्तं। एतच्चतुष्टय प्रक्षेपात्सप्तषष्टिर्भवति। तत्र सन् जीवइति को वेत्तीत्यस्यायमर्थोन कस्यचिद्विशिष्टं ज्ञानमस्ति योऽतींद्रियान् जीवादीनवभोत्स्यते। नच तैर्ज्ञातैः किंचित्फलमस्ति। तथाहि। यदि नित्यः सर्वगतोऽमूर्तोज्ञानादिगुणोपेतएतद्गुणव्यतिरिक्तोवा ततः कतमस्य पुरुषार्थस्य सिद्धिरिति तस्मादज्ञानमेव श्रेयइति ॥ २० ॥

एवमेगे वियक्काहिं, नोअन्नं पज्जुवासिया ॥ अप्पणोय वियक्काहिं, अय मंजूहिं डुम्मई ॥ २१ ॥ एवं तक्काइ साहिंता, धम्माधम्मे अकोविया ॥ डुक्खं ते नाइतुट्टंति, सउणी पंजरं जहा ॥ २२ ॥ सयं सयं पसंसंता, गरहंता परं वयं ॥ जे उ तत्त विउस्संति, संसारं ते विउस्सिया ॥२३॥ अहावरं पुरक्खायं, किरियावाइदरिसणं ॥ कम्मचिंतापणठाणं, संसरास्स पवहुणं ॥ २४ ॥

अर्थ—वली ग्रंथकार कहेछे. एवं के० एरीते एगे के० कोइएक अज्ञानी परवादी वियक्काहिं के० वितर्के करी, पोतानी कल्पित कल्पनाए असत्यने सत्य करी मानता थका नोअन्नंपज्जुवासिया के० अनेरा साचा होय तोपण तेने पर्युपाशे नहीं. एटले सेवे नहीं. किंतु अप्पणोयवियक्काहिं के० पोतानाज वितर्के करी एवुं कहे जे ए अयमंजूहिं के० अमारो मार्गज रुजु एटले सरल अकुटिल छे, इत्यादिक कहेछे. तेमाटे ते डुम्मई के० डुर्मति विपरीतबुद्धिवाला छे. केमके ते सन्मार्गथी उपरांठा वर्तेछे. अने विपरीत मार्गने सन्मुख छे. तेथी ते विपरीतबुद्धिवाला जाणवा. ॥ २१ ॥ हवे ज्ञानवादी ते अज्ञानवादीनो अनर्थ प्रगट देखाडेछे. एवं के० ए पूर्वोक्त न्यायें तक्काइसाहिंता के० तर्कें करी एटले पोतानी कल्पनायें मोक्षमार्गने कहेतां थका अष्ट प्रकारे जे कर्मनो बंध तेने त्रोडी न शके, ते केवाछे, धम्माधम्मे के० धर्म जे क्षांत्यादिक दशविध अने अधर्म जे हिंसादिक पांच आश्रव तेने विषे अकोविया के० अकोविद एटले अजाणछे अर्थात् ते धर्मअधर्मने जाणता नथी. डुक्खंतेनाइतुट्टंति के० ते पोतानां डुःखने शी रीते त्रोडे ते उपर दृष्टांत कहेछे. ते जहा के० जेम सउणी के० शकुनी एटले पक्षी

ते पंजरं के० पंजरमांहे पड्युं थकुं पांजराने त्रोडीने पोताने मूकावी शके नहीं. तेम ए अज्ञानवादी पण पोताने संसारपंजरथकी मूकावी शके नहीं एम जाणवुं. ॥ २२ ॥ हवे सामान्याकारे एकांत मतिने दूषण करेछे सयंसयंपसंसंता के०सर्व दर्शनी पोतपोतानुं दर्शन प्रशंसतां अने परंवयं के० पारकां वचनने गरहंता के० निंदतां जेउ के० जे तञ के०त्यां एरीते विउस्संति के० पोतानुं विश्वास एटले पंमित पणुं देखाडेछे. ते के० ते एवां वचनना बोलनार संसार के० चतुर्गतिक संसारमांहे विउस्सिया के० विशेषे बांध्या बतां अनंतो काल तञ के० त्यांज रहे. ॥ २३ ॥ एटले अन्नाणवाईगया के० अज्ञानवादी कह्या. हवे क्रियावादीनो मत कहेछे. अह के० अथ एटले हवे अवरं के० अपर एटले अज्ञानवादीना मतथकी अनंतर पुरस्कार्य के० पूर्वे कह्युं. एवुं किरियावाइदरिसणं के० क्रियावादीनुं दर्शन, ते क्रियावादी केवाछे, कम्मचिंतापणहाणं के० कर्मचिंताप्रनष्ट एटले कर्म जे ज्ञानावरणीयादिक तेने विषे चिंता एटले आलोचवुं ते थकी प्रनष्ट थयेला एटले ते कर्मबंधनो परमार्थ जाणे नहीं तेथी तेनुं दर्शन निःकेवल संसारस्सपव्वहणं के० संसारनुं वधारनार जाणवुं. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–दूषणांतरमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तनीत्या एकेऽज्ञानवादिनोवितर्काभिर्मीमांसाभिः स्वमतिकल्पनाभिः परमन्यं जैनादिकं न पर्युपासते न सेवंते स्वमतमेव श्रेयइति ज्ञात्वा तदेव सेवंते नान्यं ज्ञानादिवादिनं । तथा (अप्पणोत्ति) । आत्मीयैर्वितर्कैः सुविचारैरयमस्मदीयोमार्गोऽज्जुर्निर्दोषत्वाद्व्यक्तः स्पष्टऋजुर्वा प्रगुणोऽकुटिलः । हियस्मात्ते दुर्मतयस्ततएव एवमाहुः ॥ २१ ॥ पुनस्तेषामेव दोषमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तन्यायेन तर्कया स्वकल्पनया साधयंतोवदंतोधर्माधर्मयोरकोविदाः दुःखं ते नातित्रोटयंति नातिशयेनापनयंति । यथा शकुनिः पंजरं । पक्षी पंजरस्थो यथा पंजरं त्रोटयितुं बंधनादात्मानं मोचयितुं न समर्थएवमसावपि संसारपंजरादात्मानं मोचयितुं नालं ॥ २२ ॥ अथैकांतवादिमतं दूषयन्नाह । (सयमिति) । स्वकं स्वकं आत्मीयमात्मीयं मतं प्रशंसंतः परकीयां वाचं गर्हंतोनिंदंतः । यथा सांख्यानित्यवादिनोबौद्धं क्षणिकवादिनं निंदंति तेपि सांख्यान् । एवमन्येपि ज्ञेयाः । एवमेकांतवादिनो ये । तुरवधारणे । तत्र तेष्विव स्वमतेषु विश्वस्यंते विश्वासइवाचरंति ते संसारं व्युच्छ्रिताः विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन श्रिताः संसारे संबद्धाउषिताः स्युः ॥ २३ ॥ अथ क्रियावादिमतमाह । (अथेति) । अथापरं पूर्वमाख्यातं पूर्वसूचितं क्रियावादिदर्शनं । किंभूताः क्रियावादिनइत्याह । (कम्मचिंतत्ति) । कर्मणि ज्ञानावरणादिके चिंता कर्मचिंता ततः प्रनष्टाअपगताः । यतस्ते चतुर्विधं कर्मबंधं नेछंति ततः कर्मचिंताप्रणष्टास्तेपामिदं मतं संसारस्यप्रवर्धनं स्यात् ॥ २४ ॥

॥ टीका–पुनरपि तद्दूषणाभिधित्सयाऽऽह । (एवमित्यादि)। एवमनंतरोक्तया नीत्या एके केचनाऽज्ञानिकावितर्काभिर्मीमांसाभिः स्वोत्प्रेक्षिताभिरसत्कल्पनाभिः परमन्यमार्हतादिकं ज्ञानवादिनं न पर्युपासंते न सेवंते स्वावलेपग्रहग्रस्तावयमेवतत्त्वज्ञानाभिज्ञानपरः कश्चिदित्येवं नान्यं पर्युपासंतइति । तथात्मीयैर्विकल्पैरेवमभ्युपगतवंतोयथाऽयमेवास्मदीयोऽज्ञानमेव श्रेयइत्येवमात्मकोमार्गः। अंजूरिति। निर्दोषत्वा द्व्यक्तः स्पष्टः परैस्तिरस्कर्तुमशक्यऋजुर्वा प्रगुणोऽकुटिलः । यथावस्थितार्थाभिधायित्वात् । किमिति एवमभिदधति । हिर्यस्मादर्थे । यस्मात्ते दुर्मतयोविपर्यस्तबुद्धयइत्यर्थः ॥ २१ ॥ सांप्रतमज्ञानवादिनां ज्ञानवादिनां स्पष्टमेवाऽनर्थाभिधित्सयाह । (एवं तक्काइइत्यादि) एवं पूर्वोक्तन्यायेन तर्कया स्वकीयविकल्पनया साधयंतः प्रतिपादयंतोधर्मे क्षांत्यादिके अधर्मे च जीवोपमर्दापादिते पापेऽकोविदाअनिपुणाडुःखमसातोदयलक्षणं तद्धेतुं वा मिथ्यात्वाद्युपचितकर्मबंधनं नातित्रोटयंति अतिशयेनैत द्व्यवस्थितं ।तथा ते न त्रोटयंत्यपनयंतीति। अत्र दृष्टांतमाह ।यथा पंजरस्थः शकुनिः पंजरं त्रोटयितुं पंजरबंधनादात्मानं मोचयितुं नालमेवमसावपि संसारपंजरादात्मानं मोचयितुं नालमिति ॥ २२॥ अधुना सामान्येनैकांतवादिमतदूषणार्थमाह । (सयंसयमित्यादि) स्वकं स्वकमात्मीयं च दर्शनमभ्युपगतं प्रशंसंतोवर्णयंतः समर्थयंतोवा । तथा गर्हमाणानिंदंतः परकीयां वाचं । तथाहि । सांख्याः सर्वस्याविर्भावतिरोभाववादिनः सर्वं वस्तु क्षणिकं निरन्वयनिरीश्वरं वेत्यादिवादिनोबौद्धान दूषयंति तेपि नित्यस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरहात् सांख्यान् । एवमन्येपि द्रष्टव्याइति । तदेवं यएकांतवादिनः।तुरवधारणे भिन्नक्रमश्च। तत्रैव तेष्वेवाऽत्मीयात्मीयेषु दर्शनेषु प्रशंसां कुर्वाणाः परवाचं च विगर्हमाणावि द्व्स्यंते विद्वांसइवाऽऽचरंति तेषु वा विशेषेणोशंति स्वशास्त्रविषये विशिष्टं युक्तिव्रातं वदंति । तेचैवं वादिनः संसारं चतुर्गतिभेदेन संसृतिरूपं विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन श्रिताः संबद्धाः । तत्र वा संसारे भपिताः संसारांतर्वर्तिनः सर्वदा भवंतीत्यर्थः ॥ २३ ॥ सांप्रतं यडुक्तं निर्युक्तिकारेणोद्देशकार्थाधिकारे कर्मचयं न गच्छति चतुर्विधं भिक्षुसमयइति तदधिकृत्याह । (आहावरमित्यादि) । अथेत्यानंतर्ये । अज्ञानवादिमतानंतरमिदमन्यत् पुरा पूर्वमाख्यातं कथितं । किंपुनस्तदित्याह ।क्रियावादिदर्शनं। क्रियैव चैत्यकर्मादिका प्रधानं मोक्षांगमित्येवं वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनस्तेषां दर्शनमागमं क्रियावादिदर्शनं ॥ किंभूतास्ते क्रियावादिनइत्याह। कर्मणि ज्ञानावरणादिके चिंतापर्यालोचनं कर्मचिंता तस्याः प्रणष्टाअपगताः कर्मचिंताप्रणष्टाः । यतस्ते अविज्ञानाद्युपचितं चतुर्विधं कर्मबंधं नेच्छंत्यतः कर्मचिंताप्रणष्टास्तेषां चेदं दर्शनं डुःखस्कंधस्यासातोदयपरंपराया विवर्धनं भवति । क्वचित्संसारवर्धनमिति पाठः । तेह्येवं प्रतिपद्यमानाः संसारस्य वृद्धिमेव कुर्वंति नोच्छेदमिति ॥ २४ ॥

जाणं काएण णाउट्टी, अबुहो जं च हिंसति ॥ पुट्ठो संवेदइ परं, अविय
त्तं खु सावज्जं ॥ २५॥ संति मे तउ आयाणा, जेहिं कीरइ पावगं ॥ अ
भिकम्माय पेसाय, मणसा अणुजाणिया ॥ २६ ॥ एते उ तउ आया
णा, जेहिं कीरइ पावगं ॥ एवं भावविसोहीए, निव्वाणमभिगच्छइ ॥
॥ २७ ॥ पुत्तं पिया समारप्भ, आहारेज्ज असंजए ॥ भुंजमाणो य
मेहावी, कम्मणा नो विलप्पइ ॥ २८ ॥

अर्थ—जे कारणे ते कर्मचिंता थकी प्रनष्ट ठे, ते उपर देखाडेठे. जाणंकाएणणाउट्टी के० जे पुरुष जाणतो थको प्राणीउने हणे एटले जे पुरुष क्रोधे चड्यो थको मनने व्यापारे प्राणीनो घात करे परंतु कायाये करी अनाकुट्टी एटले कायाये करी प्राणीना अवयवना ठेदनभेदनना व्यापारे प्रवर्ते नहीं तेने कर्मबंध न लागे. तथा जंचके० जे पुरुष अबुहोके० अजाणतो थको एकली कायाना व्यापारेज, हिंसतिके० प्राणीउनी हिंसा करे तेने पण कर्म लागे नहीं तथा एवा एकला मनना व्यापारे अथवा एकला कायाना व्यापारे जो कर्म लागे तो पुठोके० ईषत्मात्र फरश्यो थको स्पर्शरूपेज कर्म भोगवे, परंके० परंतु एनो अधिक विपाक नथी. केमके खुके० निश्चे सावज्जंके० ते सावद्य एटले पाप ते केवुंठे, तो के अवियत्तंके० अव्यक्तमात्र ठे एटले अस्पष्ट ठे, सिकता मुष्टिवत् ठे एटले जेम वेलुनी मुष्टी भींतने सन्मुख नांखी ठतां स्पर्श मात्र करी पाठी पडे; पण ते भींतने कांइ लागी रहे नहीं. तेम ए कर्मनो बंध जाणवो, एम क्रियावादी कहेठे. ॥ २५ ॥ हवे कर्मनो बंध पूरण केम थाय एटले कर्मनो उपचय केम थाय ते कहेठे. मेतउ के० ए त्रण आयाणा के० आदान एटले कर्मबंधननां कारण संति के० ठे. जेहिं किरइपावगंके० जेणे करी पाप करीयें ते देखाडेठे. अभिकम्मायके० अभिमुख चित्तमांहे जाणीने जे स्वयमेव एटले पोते जीवने हणे तथा तेने हणवानुं मन करे के हुं एनो विनाश करुं ए पहेलुं कर्म बंधननुं कारण जाणवुं. तथा ते जीवनो विनाश करवाने अर्थे पेसाय के० अन्यने आदेश आपी तेनोविनाश करावे ए बीजुं कर्मबंधनुं कारण जाणवुं. अने मणसाअणुजाणियाके० बीजो कोई जीवनो विनाश करतो होय तेने मने करी अनुमोदे, ए त्रीजुं कर्मबंधनुं कारण जाणवुं. ॥ २६ ॥ हवे ए त्रण कारणे करी उपार्ज्युं कर्म अधिक बंधाय ते कहेठे. एतेउतउआयाणाके० निश्चे पूर्वोक्त ए त्रण कर्म बंधनां कारणठे; ए त्रण एकठां मले तो निबड कर्म बंधाय एरीते जेहिंके० जे डुष्टअध्यवसायेकरी कीरइपावगंके० पाप उपचयरूप करे. एवंके० एरीते ए त्रण प्रकारे प्राणीघातने विषे प्रवर्त्ते नहीं अने भावविसोहीएके० भावनी विशुद्धि होय. एतावता रागद्वेष

यमपि तुल्येप्यर्थे सत्येकपक्षस्याक्रोशनमपरस्य विशेषणपक्षस्याभिनंदनमित्येपदोषाप्युप गमोऽनवतां नो नैयायिकोऽन न्यायोपपन्नोऽनवत्युभयोरपि पक्षयोः समानत्वात्केवलं सविशेषणपक्षे भूतशब्दोपादानं मोहमावहतीति ॥ ए ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइआ मणुस्सा भवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंमा भवित्ता आगा राउ अणगारियं पव्वइत्तए पावय एहं अणुपुव्वेणं गुत्तस्स लिसि स्सामो ते एवं संखेवेंति ते एवं संखं ठवयंति ते एवं संखं ठा वयंति नन्नत्थ अभिउएणं गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए त सेहिं पाणेहिं निहाय दंरू तंपि तेसिं कुसलमेव भवइ ॥ १० ॥

अर्थ—हवे एज अर्थने दीपाववा माटें (भगवंचणंउदाहु के०) भगवंत श्री गौतम स्वामी कहेडे. (संतेगइयामणुस्साभवंति के०) कोइ एक हलवां कर्म वाला मनुष्य हो य, अने ते प्रवज्यी पालवाने असमर्थ होय, (तेसिंचणंएवंवुत्तंपुव्वंभवइ के०) तेणें पू र्वे एम कह्युं होय, शुं कह्युं होय? ते कहेडे. (णोखलुवयंसंचाएमोमुंमाभवित्ता के०) निश्चें अमे मुंमित होवाने समर्थ नथी,(आगाराउअणगारियंपव्वइत्तए के०)गृहस्थावास त्यागिनें अणगारपणुं अंगीकार करी शकता नथी. (पावयएहंअणुपुव्वेणं के०) अमें घर थकी निकलीने प्रवज्यी लेइने अनुक्रमें, (गुत्तस्सलिसिस्सामो के०) साधुपणुं पालशुं, एट ले शुं कह्युं ? तोके, प्रथमतो देशविरतिरूप, श्रावकनो धर्म पालशुं, अनें अनुक्रमें प ठी श्रमणनो धर्म पालशुं. (तेएवंसंखेवेंति के०) ते एवी व्यवस्था संभलावे (तेएवंसं खंठवयंति के०) ते पुरुष, एवी व्यवस्था स्थापन करे एटले एवी रीतें पच्चखाण करे, (तेएवंसंखंगवयंति के०) नें पठी तेज प्रमाणे मनमां रुडा प्रकारे स्थापन करे. ते कहेडे के, (नन्नत्थअभिउएणं के०) राजादिकना अभियोगें करी त्रसप्राणीनी घातथी अमारो व्रतभंग नथी. इत्यादिक पच्चखाण, साधुनो उपदेश सांभली करे. तेनी उपर (गाहावइचोरग्गहणविमोरकणयाए के०) गृहपति जे चोर तेनुं गृहण तथा विमोक्ष णठे जेमां, एवो गृहपति तथा राजानो दृष्टांत कहेडे.

रत्नपुरनामा नगरनें विषे रत्नशेखर राजा हतो. तेणे एकदा एवो विचार कर्यो के, आपणे कौमुदीमहोत्सव करवो. पठी रत्नमाला प्रमुख पोतानी स्त्रीयोनें आ वा तनी विज्ञापना करावी जे, स्वतंत्रक्रीडा, चंद्रनी चांदनीमां आपणे करवी. वली पोता ना नगरमां पण उद्घोषणा देवरावी जे, कोइ मनुष्यें आज रात्रें नगरमां न रहेवुं, अनें

पक्ष सुप्रणीत एटले रूडोछे एम अमे केम जाणियें ? त्रसनूतप्राणी त्रस, ए तमारो पक्ष छे, अनें त्रसप्राणी त्रस ए अमारो पक्षछे, तो ते अमारो पक्ष केवी रीतें डुःप्रणीत ए टले मागो थाय ? त्रसप्राणी त्रस, एम एकार्थ वर्त्तमान ए शब्दनो तमनें केवो व्यामोह उपनो ? जे, (ततोएगमाउसोपडिकोसह के०) तेमां तमे एक पक्षनी प्रशंसा करोछो. एटले स्थापन करोछो (एकंअनिणंदह के०) एक पक्षनी निंदा करोछो (अयं पिन्नेदो के०) ए तमारो नेद पणछे, (सेणोणेआउएनवइ के०) ते न्यायोपपन्न न होय, ए न्यायमार्ग नथी. ॥ ए ॥

॥ दीपिका—उदकआह । उदकोगौतममवादीत् हे आयुष्मन् गौतम ! कतरान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसप्राणिनइति । अथ स द्वाचं गौतमउदकमवादीत् आयुष्मन्नुदक ! यान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसनूतास्त्रसत्वेन वर्तमानानप्येष्यास्तानेव वयं वदामस्त्रसाइति । ये यान् वयं वदामस्त्रसांस्तान्यूयं वदथ त्रसनूतान् एते हे स्थाने तुल्ये एकार्थे एव नात्र कश्चिदर्थनेदः। एवं सत्ययं युष्मदीयः पक्षः किं सुपनीततरोयुक्तियुक्तः त्रसनूताः प्राणाइत्ययंतु पक्षोडुःप्रणीततरोऽयुक्तः प्रतिनासते कोयं व्यामोहोनवतां येन शब्दनेदादिकं पक्षमाक्रोशथ द्वितीयं त्वनिनंदथ । इत्ययमेवांगीकारोनवतां नो नैयायिकोन न्यायोपपन्नः उनयोरपि पक्षयोस्तुल्यत्वात् ॥ ए ॥

॥ टीका—तदेवं निरस्ते नूतशब्दे सत्युदकआह । (सवायंउदएइत्यादि) स द्वाचं सवादं चोदकः पेढालपुत्रोनगवंतं गौतममेवमवादीत् । तद्यथा । हे आयुष्मन् गौतम ! कतरान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसनूतास्त्रसत्वेंनाविर्नूताः प्राणिनस्तएव त्रसाः प्राणाइत्युतान्यथेत्येवं पृष्टोनगवान् गौतमस्तमुदकं स द्वाचं पेढालपुत्रमेवमवादीत् । तद्यथा । आयुष्मन्नुदक ! यान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसनूतास्त्रसत्वेनाविर्नूताः प्राणिनोनातीतानाप्येष्याः किंतु ? वर्तमानकालएव त्रसाः प्राणाइति तानेव वयं वदामस्त्रसास्त्रसत्वं प्राप्तास्तत्कालवर्तिनएव त्रसाः प्राणाइति । एतदेव व्यत्ययेन बिनणिषुराह । (जेवयमित्यादि) यान्वयं वदामस्त्रसाएवप्राणास्त्रसाः प्राणास्तानेव यूयमेवं वदथ त्रसनूताएवप्राणास्त्रसाः प्राणाः एवंच व्यवस्थिते एते अनंतरोक्ते हे अपि स्थाने एकार्थे तुल्ये नवतोनह्यत्रार्थनेदः कश्चिदस्त्यन्यशब्दनेदादित्येवं व्यवस्थिते किमायुष्मन् ! युष्माकमयं पक्षः सुष्ठु प्रणीततरोयुक्तियुक्तः प्रतिनासते । तद्यथा । त्रसनूताएव प्राणास्त्रसनूताः प्राणाइत्ययं पक्षोडुःप्रणीततरोनवति प्रतिनासते नवतां । तद्यथा । त्रसाएव प्राणास्त्रसाः प्राणाः संति चैकार्थत्वेन नवतां कोयं व्यामोहोयेन शब्दनेदमाश्रित्यातएकं पक्षमाक्रोशथ द्वितीयं त्वनिनंदथ इति । तद

करवानें उपदेश आपेछे. परंतु श्रावक पोतें अशक्तपणानें लीधे एक त्रसकाय राखी शके छे. ते वारें साधु पण जे कांइ श्रावक राखे ते श्रावकनें कृतार्थ पोतें जाणे, परंतु बीजा पांच काय श्रावक विराधे छे. तेनी अनुमति साधुनें नथी, ए कारणें तेनुं कर्म कांइ लागे नही. ए न्याय उपर "गाहावइचोरग्गहणविमोरकणयाए" ए पदनो अर्थ समाप्त थयो. हवे सूत्रथकी आगलनो संबंध देखाडेछे. (तसेहिंपाणेहिंनिहायदंमं के०) त्रस बे इंड्रियादिक प्राण, तेहनो वध छांमिनें श्रावक जे विरति करे. (तंपि के०) ते विरति पण (तेसिंकुसलमेवन्नवइ के०) ते श्रावकनें पुण्यरूप होय. एम जाणवुं॥१०॥

॥ दीपिका—कुमतनिषेधमाह। नगवंचणं उदाहु रिति। नगवान् गौतमः पुनराह। संति एके केचन मनुष्याः येषां साधोर्धर्मकथकस्य पुरइदमुक्तं नवति यथा न खलु वयं मुंमान्न वितुं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं शकुमः अगारादनगारितां प्रव्रजितुं वयमानुपूर्व्येण क्रमेण गोत्रं साधुत्वमनुश्लेपयिष्यामः। कोऽर्थः? वयं देशविरतिं पालयामः ततः क्रमेण चारित्रं ततएवं ते संख्यां व्यवस्थां श्रावयंति प्रत्याख्यानं कुर्वंतः प्रकाशयंति ते एवं व्यवस्थां स्थापयंति सू पस्थापयंतिच नान्यत्रानियोगेन। अनियोगोराजानियोगादिः। तेन त्रसं घ्नतोपि न व्रतनं गः तथा गृहपतिचोरविमोक्षणतयेति । अस्यार्थः कथागम्यः । सा चेयं । रत्नपुरे रत्नशेखरराज्ञा स्वांतःपुरादिस्त्रीणां स्वैरक्रीडारूपः कौमुदीमहोत्सवोऽनुज्ञातः पुरुषेण केनापि नगरमध्ये न स्थेयमित्याघोषणा कारिता नृपादयः पुरुषाः सर्वेपि उद्याने सायं जग्मुः । एकस्य वणिजः षट् पुत्राः क्रयविक्रयादिव्यग्राः पुरमध्यएव तस्थुः । स्थगितानि गोपुराणि ततस्ते निष्क्रांते महे राज्ञा रक्षकाणामुक्तं पश्यत नगरे कोपि नरोस्ति नवेति? तैर्विलोकयद्भिः षट् पुत्रास्ते दृष्टाः राज्ञोनिवेदिताः राज्ञा कुपितेन षसामपि वधः समादिष्टः । ततस्तत्पिता शोकाकुलोराजानं विज्ञापयतिस्म। देव! मा कृथाः कुलक्षयमस्माकं। सर्वधनं गृह्यतां मुच्यंतां पुत्राः। एवमुक्तेपि राजा कथमपि न मुंचति पुत्रान् ततः पिता सर्वेपुत्रघातप्रवृत्तं राजानं ज्ञात्वा पंचानां मोचनं याचितवान् राजा पंचानपि न मुंचति ततश्चत्वारोयाचिताः तथापि न मन्यते नृपः । ततस्त्रयोयाचितास्तेपि न मुक्ताः । ततो द्वौ मार्गितौ तावपि अमुंच नृपएकं पुत्रं याचितः समग्रपौरजनविज्ञप्तोनृपः पुत्रमेकं ज्येष्ठं मुक्तवान् । अत्रेयं दृष्टांतयोजना । सम्यक्त्ववान् श्राद्धः सर्वप्राणातिपातविरतिं कर्तुमशक्तोनृपस्थानीयः षट्कायपितृतुल्येन साधुना प्रेरितोपि सर्वविरतिं नांगीकुरुते षमपि जीवकायान्मोचयति साधुः। श्राद्धस्तु षसां मोचनेऽशक्तोज्येष्ठमेकं त्रसकायं मुंचति पालयतीत्यर्थः । साधुरेकमोचनेनापि कृतार्थमात्मानं मन्यते । यथाच तस्य वणिजोन शेषपंचपुत्रवधानुज्ञा एवं साधोरपि न शेषप्राणिवधानुमतिः किंतु? यदेव व्रतं गृहीत्वा यानेव स्थू

बाहेर उद्यानमां सायंकालें जवुं. अने कोइ नगरमां रहेशे तेना शरीरनो निग्रह राजा करशे ते प्रमाणें राजानी उद्घोषणाथी सर्व मनुष्य सायंकालें नगर बाहेर गयां, तथा राजा पण सपत्नीक गयो. हवे ते पछी, कोइ एक वैश्यना छ पुत्र हता. ते क्रयविक्रय व्यापारना व्यग्रपणाथी नगरमांज रहि गया, एटलामां सूर्यास्त थयो तेवारें नगर बाहेर निकलवा लाग्या परंतु गोपुर जे नगरना दरवाजा, ते बंध थइ गया दीठा तेवारें भ यभ्रांत छता नगरमांहेंज कोइ स्थले पोतें गुप्त रह्या पछी कौमुदी महोत्सव संपूर्ण थया नंतर राजायें आरक्षकनें तेडावी कह्युं के, अहो आरक्षको! तमें रूडी रीतें कोइ पुरुष, नगरमां रहेलो होयतो तेनें जुवो? तेवार पछी नगरमां जोतां श्रेष्ठीना छ पुत्रो दीठा. तेनें देखीनें, आरक्षकोयें राजाने विनव्यो के, स्वामी! कोइ एक श्रेष्ठीना छ पुत्र नगरमां रह्याछे. तेवारें राजायें ते छए पुत्रनो विनाश करवानें आदेश आप्यो. एवुं सांभली श्रेष्ठी, पुत्रशोकें व्याकुल छतो राजापासें आवीनें एम कहेवा लाग्यो के, हे स्वामी! अमारा कुलनो क्षय म करो. अनें जे कांइ अमारा घरमां कुलक्रमागत धन छे ते सर्व लेइनें अमारा छए पुत्रनें जीवता मूको? ए प्रमाणें श्रेष्ठियें कहे थके, राजा अत्यंत क्रोधें व्याप्त थयो थको, श्रेष्ठि प्रत्यें कहेवा लाग्यो के, अरे पापिष्ठ! राजानी आज्ञा ते राजाना प्राणसमान! जेणें राजानी आज्ञा न मानी, तेणें राजानां प्राण हर्यां माटें तहारा पुत्रनें जीवता मूकुं नहिं. एवो राजानो घणो आग्रह जाणीनें फरी श्रेष्ठीयें पांच पुत्रनें जीवता मूकवानी विनति राजानें करी, तोपण राजायें मान्युं नहीं. तेवारें चार पुत्र मुकावनी विनती करी ते पण मानी नहीं, तेवारें त्रण पुत्र मुकाववानें अर्थें विनति करी तेपण राजायें मानी नहीं, तेवारें बे पुत्र मुकाववानी विनति करी, ते पण राजायें न मानी. एवो राजानो आग्रह जाणी श्रेष्ठीयें नगरमांहेला महोटा महोटा लोकोनें एकठा करी, ते बधानें राजापासें लइ जइने राजाने विनव्यो के, हेस्वामी! तमें प्रजाना पिता छो तो सर्वथा प्रकारें अमारा कुलनो क्षय करवा शुं मामथोछे? अहिंयां आवेला अमोनें तमेंज शरण छो एटले अमारे तमारोज आश्रय छे. तमने भावे तो मारो? अने भावेतो जीवाडो? एम कहि श्रेष्ठी राजानें पगे लागो ते वारें राजायें अनुकंपा करीनें छ पुत्रमांहेथी एक महोटा पुत्रनें जीवतो मूक्यो. ए द्रव्य थकी दृष्टांत कह्यो, हवे दृष्टांतनी योजना करेछे के,-जेम श्रेष्ठी तेम आहिं श्रावक जाणवो, जेम त्यां छ पुत्र तेम आहिं छकाय जाणवा. जेम श्रेष्ठीयें विलाप करवाथकी राजायें छ पुत्र मांहेंथी एक पुत्र जीवतो मूक्यो, तेवारें श्रेष्ठी पोतानें कृतार्थ मानतो, एटले बीजा पांच पुत्रनी उपर श्रेष्ठीनें विनाश करवानो भाव नथी, परंतु शुं करे! जे राजा कोइ रीतें मूके नहिं? तेम अहीं पण साधुउ श्रावकनें संरक्षण

तविधेयाविधेयविशेषोराजानमुपस्थितोऽवादीन्न गनदया गिग यथा मा कृथादेवास्माकं कुलक्षयं गृह्यतामिदमस्मदीयं कुलक्रमायातं स्वभुजोपार्जितं प्रभूतं ऽविणजातं मुच्यतां मुच्यताममी षट् पुत्राः क्रियतामयमस्माकमनुग्रहइति । एवमनिहितोराजा न ढचनमाकर्ण्य पुनरपि सविशेषमादिदेश असावपि वणिक्सर्वघाशंकी सर्वमोचनानन्निप्रायं राजानमवेत्य पंचानां मोचनं याचितवान् तानप्यसौ राजा नमोक्तुमनाइत्येवमनिगम्य चतुर्मोचनकृते सादरं विज्ञप्तवांस्तं तथापि राजा तमनाहत्य कुपितवदनएव स्थितस्ततस्त्रयाणां विमोचने कृतादरस्तत्पिताऽनूत् तानप्यमुंचंतं राजानं ज्ञात्वा गणितस्वापराधो ढयोर्मोचनं प्रार्थितवांस्तथाप्यवज्ञाप्रधानं नृपतिमवगम्य ततः पौरमहत्तमसमेतोराजानमेवं विज्ञप्तवांस्तद्यथा देवाऽकांडएवास्माकं कुलक्षयः समुपस्थितः तस्मान्न नवंतएव त्राणायालमतः क्रियतामेकमत्पुत्रविमोचनेन प्रसादइति नणित्वा पादयोः सपौरमहत्तमः पतितोराज्ञापि संजातानुकंपेन मुक्तस्तदेकोज्येष्ठपुत्रइति । तदेवमस्य दृष्टांतस्य दार्ष्टांतिकयोजनेयं । तद्यथा साधुनाभ्युपगतसम्यग्दर्शनमवगम्य श्रावकमखिलप्राणातिपातविरतिग्रहणं प्रतिचोदितोप्यशक्ततया यदा न सर्वप्राणातिपातविरतिं प्रतिपद्यते यथाऽसौ राजा वणिजोत्थं विज्ञपितोपि न षडपि पुत्रान् समुत्कृति नापि पंचचतुस्त्रिढिःसंख्यान् पुत्रानिति । ततएकविमोक्षणेनात्मानं कृतार्थमिव मन्यमानः स्थितोसावेवं साधोरपि श्रावकस्य यथाशक्तिव्रतं गृह्णतस्तदनुरूपमेवाणुव्रतदानमविरुद्धमिति यथाच तस्य वणिजोन शेषपुत्रवधानुमितिलेशोप्यस्त्येवं साधोरपि न शेषप्राणिवधानुमिति प्रत्ययजनितःकर्मबंधोनवति किं तर्हि? यदेव व्रतं गृहीत्वा यानेव सत्वान् बादरान् संकल्पजप्राणिवधनिवृत्त्या रक्षति तन्निमित्तः कुशलानुबंधएवेत्येतत्सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । (तसेहिमित्यादि) त्रस्यंतीति त्रसाढींडियादयस्तेन्यः सकाशान्निधाय निहाय वा परित्यज्येति यावत् दंमयतीति दंमस्तं परित्यज्य त्रसप्राणातिपातविरतिं गृहीत्वेत्यर्थस्तदपि च त्रसप्राणातिपातविरमणव्रतं तेषां देशविरतानां कुशलहेतुत्वात्कुशलमेव नवति ॥ १० ॥

तसावि वुच्चंति तसा तससंन्नारकडेणं कम्मुणा णामंचणं अब्नुवगयं नवइ तसाउयंचणं पलिक्खीणं नवइ तसकायठिइया ते तउ आउयं विप्पजहंति ते तउ आउयं विप्पजहित्ता थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि वुच्चंति थावरा थावरसंन्नारकडेणं कम्मुणा णामंचणं अब्नुवगयं नवइ थावरा आउयंचणं पलिक्खीणं नवइ थावरकायठिइया तउ आउयं विप्पजहंति तउ आ

त्रसत्वात् संकल्पवधनिवृत्तोरक्षति श्राद्धः। तन्निमित्तं कुशलानुबंधएवेत्याह। (तसेहिं) त्रसेन्योदंम हिंसां त्यक्त्वा यावद्विरमति तावत्तस्य कुशलं पुण्यमेवेति ॥ १० ॥

॥ टीका–यच्च नवतास्माकं प्राग्दोषोद्भावनमकारि तद्यथा त्रसानां वधनिवृत्तौ तद न्येषां वधानुमतिः स्यात् साधोस्तथानूतशब्दानुपादानेनांतरमेव त्रसं स्थावरपर्यायापन्नं व्यापादयतोव्रतनंगइत्येतत्कुचोद्यजातं परिहर्तुकामआह। (नगवंचणमित्यादि) णमि ति वाक्यालंकारे। नगवान्गौतमस्वामी चशब्दः पुनः शब्दार्थे। पुनराह। तद्यथा। संति वि द्यंते एके केचन लघुकर्माणोमनुष्याः प्रव्रज्यां कर्तुमसमर्थास्तद्व्यतिरेकेणैव धर्मं चिकीर्ष वस्तेषां चैवमध्यवसायिनां साधोर्धर्मोपदेशप्रवणस्याग्रतइदमुक्तपूर्वं नवति। तद्यथा। नो साधो! न खलु वयं शक्नुमोमुंमानवितुं प्रव्रज्यां ग्रहीतुमगाराद्गृहादनागारतां साधुनावं प्र तिपत्तुं वयं त्वानुपूर्व्येण क्रमशोगोत्रस्येति गां त्रायइति गोत्रं साधुत्वं तस्य साधुनावस्य पर्यायेण परिपाल्यात्मानमनुश्लेपयिष्यामःइदमुक्तं नवति। पूर्वं देशविरतिरूपतया श्रा वकधर्मं गृहस्थयोग्यमनिंद्यमनुपालयामस्ततोनुक्रमेण पश्चाच्छ्रमणधर्ममिति। ततएवं ते सं ख्यां व्यवस्थां श्रावयंति प्रत्याख्यानं कुर्वंतः प्रकाशयंति। तद्यथा। नान्यत्राभियोगेन। सचाभियोगोगणाभियोगोबलाभियोगोदेवताभियोगोगुरुनिग्रहश्चेत्येवमादिनाभियोगेन व्या पादयतोपि त्रसं न व्रतनंगः। तथा गृहपतिचोरविमोक्षणतयेत्यस्यायमर्थः। कस्यचिद्गृ हपतेः षट् पुत्रास्तैश्च सत्यपि पितृपितामहक्रमायाते महति वित्ते तथाविधकर्मोदयाद्रा जकुलनांडागारे चौर्यमकारि राजपुरुषैश्च नवितव्यतानियोगेन गृहीतास्ते इत्येके। परे त्वन्यथा व्याचक्षते। तद्यथा। रत्नपुरे नगरे रत्नशेखरोनाम राजा तेन च परितुष्टेन रत्न मालाग्रमहिषीप्रमुखांतःपुरस्य कौमुदीप्रचारोऽनुज्ञातस्तदवगम्य नागरलोकेनापि राजानु मत्या स्वकीयस्य स्त्रीजनस्य तथैव क्रीडनमनुमतं राज्ञाच नगरे डिंडिमशब्दमाघोषितं। तद्यथास्तमनोपरि कौमुदीमहोत्सवे प्रवृत्ते यः कश्चित्पुरुषः समुपलभ्यते नगरमध्ये त स्याविज्ञप्तिकः शरीरनिग्रहः क्रियतइत्येवं च व्यवस्थिते सत्येकस्य वणिजः षट् पुत्रास्ते च कौमुदीदिने क्रयविक्रयसंव्यवहारव्यग्रतया तावत्स्थितायावत्सवितास्तमुपगतः। तदंतर मेव स्थगितानि च नगरद्वाराणि तेषांच तत्कालात्ययान्न निर्गमनमनूत्ततस्ते नयसंभ्रां तानगरमध्यएवात्मानं गोपयित्वा स्थितास्ततोनिष्क्रांते कौमुदीप्रचारे राज्ञा रक्षिकाः स माहूयादिष्टायथा सम्यक् निरूपयत यूयं नात्र नगरे कौमुदीचारे कश्चित्पुरुषोव्यवस्थित? इति। तैरप्यारक्षिकैः सम्यक् निरूपयद्भिरुपलभ्य षड्वणिक्पुत्रवृत्तांतोयथावस्थितएव राज्ञे निवेदितः। राज्ञाप्याज्ञानंगकुपितेन तेषां षण्णामपि वधः समादिष्टस्ततस्तत्पिता पुत्रवधस माकर्णनगुरुशोकविह्वलोऽकांडापतितकुलक्षयोद्भ्रांतलोचनः किं कर्तव्यतामूढतया गणि

ठी ते नागरिक बाहिर आरामनें विषे वेठेलाने विणाशतां व्रतभंग थाय? ए दृष्टांत अंहीं त्रस, अनें स्थावरनें जेदें मलतो नथी केमके, ते नागरिक पुरुष जो बाहेर आरामादिकने विषे स्थित होय तो पण, तेनुं नागरिक पणु शुं जतुं रह्युं? त्यां पण ते नागरिक तेज आकारेंछे. तेहिज वर्णछे, तेहिज परिणामेछे, ए दृष्टांत पर्यायें त्रसनें मले नही, एवुं जाणी, तमे अयुक्त बोलोगो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका—त्रसाअपि द्वींद्रियादयोपि त्रसाउच्यंते त्रसास्त्रससंजारकृतेन कर्मणा स्युः। संजारोनाम कर्मणोऽवश्यं विपाकानुजवेन वेदनं। तच्च त्रसनाम प्रत्येकनाम इत्यादिकं त्रसत्वेन संबद्धं यदायुष्कं उदयप्राप्तं स्यात्तदा त्रसनामादिकर्मणा त्रसाउच्यंते। त्रसायुर्यदा क्षीणं स्यात्त्रसकायस्थितिश्च क्षीणा स्यात् साच जघन्येनांतर्मुहूर्तं उत्कृष्टतः सातिरेकसहस्रद्वयसागरमानास्ततस्ते त्रसायुस्त्यजंति अन्यान्यपि तत्सहचरकर्माणि त्यक्त्वा स्थावरत्वेन प्रत्यायांति। स्थावराअपि तथैव कर्मणा स्थावरत्वेनोत्पद्यंते एवंसति स्थावरकायं घ्नतः श्राद्धस्य कथं स्थूलप्राणातिपातनिवृत्तिव्रतजंगइति। किंच (यावराअउंति) यदा स्थावरायुष्कमपि क्षीणं स्यात्तथा स्थावरकायस्थितिश्च सा जघन्येनांतर्मुहूर्तं उत्कृष्टतोनंतकालमसंख्येयाः पुजलपरावर्ताः। ततस्ते स्वायुः परित्यज्य जूयः पुनरपि परलोकतया स्थावरकायस्थितेरजावात्सामर्थ्यात्त्रसत्वेन प्रत्यायांति ते त्रसाः प्राणाअप्युच्यंते त्रसाअप्युच्यंते। महाकायास्ते योजनलक्षप्रमाणशरीरविकुर्वणात् चिरस्थितिकास्ते जवस्थित्यपेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरायुष्कजावात्। ततस्त्रसनिवृत्तिरेव श्राद्धेन कृता न तु स्थावराणां। नागरिकदृष्टांतोप्ययुक्तः। नागरिकोन हंतव्यइति प्रतिज्ञां कृत्वा बहिःस्थितं तमेव पर्यायापन्नं घ्नतोव्रतजंगइति त्वत्पक्षः। सचायुक्तोयोहि नगरधर्मैरुपेतः स बहिःस्थोपि नागरिकएवातः पर्यायापन्नइति विशेषणमयुक्तं। सर्वथा नगरधर्मत्यागेतु तमेवेति नोपद्यते। सचान्यएवेति तथा त्रसत्वत्यागाद्यदा स्थावरत्वं प्राप्तस्तदान्यएवायमिति तं घ्नतोन व्रतजंगः ॥ ११ ॥

॥ टीका—यच्च प्रागजिहितं तद्यथा तमेव त्रसं स्थावरपर्यायापन्नं नागरिकमिव बहिःस्थं व्यापादयतोऽवश्यंजावी व्रतजंगइत्येतत् परिहर्तुकामआह। (तसावीत्यादि) त्रसा अपि द्वींद्रियादयोपि स्वसंजारकृतेन कर्मणा जवंति। संजारोनामावश्यतया कर्मणोविपाकानुजवने वेदनं। तच्चेह त्रसनाम प्रत्येकनामेत्यादिकं नामकर्माज्युपगतं जवति त्रसत्वेन यत्परिबद्धमायुष्कं तद्यदोदयप्राप्तं जवति तदा त्रससंजारकृतेन कर्मणा त्रसाइति व्यपदिश्यंते न तदा कथंचित्स्थावरत्वव्यपदेशोयदाच तदायुः परिक्षीणं जवति। एमिति वाक्य

उयं विप्पजहित्ता भुज्जो परलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चं
ति ते तसावि वुच्चंति ते महाकायाए ते चिरठिइया ॥ ११ ॥

अर्थ–हवे जे उदयपेढालपुत्रनो अभिप्राय पूर्वें कह्यो ते एछे जे, त्रस जीव, स्थावर मांहे उपनो तेनो, आराम केतां अरण्यमांहे बेठे विनाश करतां, नागरिक पुरुषनी पेरें अवश्य व्रत भंग थाय. ए बोल टालवा माटें कहेछे. (तसाविवुच्चंति के०) त्रस एटले बे इंद्रियादिक एम पण कहियें, (तसातससंभारकडेणंकम्मुणाणामंचणंअप्भुवगयंभवइ के०) ते त्रस, पूर्वबंध त्रसनाम कर्मनें उदयें त्रसनुं नाम पामे, पछी (तसाउयंचणंपलिख्कीणंभवइ के०) णं एवे वाक्यालंकारें जेवारें ते त्रसकायनुं आयुष्य परिक्षीण थाय. ते त्रसकायनी स्थिति क्यां सुधी होय? ते कहेछे (तसकायठिइयाते के०) ते त्रसकायस्थिति, जघन्यथकी अंतरमुहूर्त्त अनें उत्कृष्टसाधिक बे हजार सागरोपम प्रमाणे होय. (ततोआउयंविप्पजहंति के०) ते वार पछी ते त्रसपणुं छांडे. (विप्पजहित्ता के०) ते त्रसपणुं छांमीने (थावरत्ताएपच्चायंति के०) स्थावर पणे उपजे, (थावराविवुच्चंति के०) तेवारें तेने स्थावर पण कहियें. (थावराथावरसंभारकडेणंकम्मुणाणामंचणंअप्भुवगयंभवइ के०) ते स्थावर, पूर्वें बंध कर्युं जे स्थावरनाम कर्म, तेना उदयथी स्थावर एवुं नाम पामे, एटले स्थावर होय, (थावराआउयंचणंपलिख्कीणंभवइ के०) वली ते जेटले ते स्थावरनुं आयुःकर्म परिक्षीण थाय. (थावरकायठिइया के०) हवे स्थावरकायनी स्थिति केवी होय? तो के, जघन्य अंतर मुहूर्त्त अने उत्कृष्ट थकी अनंतो काल असंख्यात पुज्जलपरावर्त्त पर्यंत, एवी स्थिति होय. पछी एटली स्थिति खपावीने, (तउआउयंविप्पजहंति के०) तेवार पछी स्थावर पणुं छांमे, (तउआउयंविप्पजहित्ता के०) ते स्थावर स्थिति छांमीनें (भुज्जोपरलोइयत्ताए पच्चायंति के०) वली परलोक पणे उपजे. एतावता त्रसपणुं पामे. (तेपाणाविवुच्चंतितेतसाविवुच्चंति के०) ते प्राण पण कहियें, ते त्रसनामकर्मनें उदयें, त्रसनाम पणे उपनाछे, माटें त्रसप्राण एवे नामे कहियें, तथा त्रस पण कहिये. (तेमहाकायाए के०) ते महोटी काया एटले लक्ष योजन प्रमाण वैक्रिय शरीर वाला एवा महाकाय कहियें. तथा (तेचिरठिइयाए के०) ते चिरस्थितिक, भवस्थितिनी अपेक्षायें तेत्रीश सागरोपम प्रमाण स्थिति जाणवी. तो अहीयां श्रावकें त्रसनुंज पच्चख्काण कीधुंछे परंतु स्थावरकायपणें उपना ते जीवोनुं पच्चख्काण नथी कर्युं. ते कारणें कयो व्रत भंग थयो? तथा तमे जे नागरीकनो दृष्टांत देखाडयो ते दृष्टांत पण अहीं संभवे नहीं. ते दृष्टांत देवाथी अमे एम जाणीयें छैयें जे, तमे गुरुना मुख थकी सूत्रार्थ लीधो नथी केमके, नगरनें धर्में सहित ते नागरिक कहियें ते नागरिक पुरुष महारे हणवो नहीं, एवी प्रतिज्ञा ग्रहण करीनें प

अर्थ—हवे वादसहित उदयपेढालपुत्र, भगवंत श्रीगौतम प्रत्यें बोल्या के, अहो आयुष्यमन् गौतम! ते कोइ पर्याय नथी के, जेणें करी श्रमणोपासक श्रावकनें एक प्राणातिपातविरति विषयिक दंमनो त्याग कस्यो जाय. ते केवा हेतुथी? ए कारण देखाडे छे. संसारी प्राणी परस्पर मांहो मांहे गतिना करनारछे. स्थावरप्राणी त्रस पण उपजे, अने त्रसप्राणी पण स्थावर पणे उपजे. हवे वली विशेषें कहेछे. स्थावर काय थकी मूकाता थका एतावता स्थावरकायनुं आयुष्य त्यागी सर्वे त्रसकाय पणे उपजे, पाछल कोइ स्थावर रहे नहीं, तथा वली त्रसकाय थकी मूकाता एतावता त्रसकायनुं आयुष्य त्यागीनें सर्वे, स्थावरकाय मांहे उपजे, पाछल कोइ त्रस रहे नहीं, तेवारें ते श्रावकनें स्थावर मांहे उत्पन्न त्रसनुं स्थानक हणाणुं, ए व्रतभंग थयो ॥१२॥

॥ दीपिका—पुनरुदकः प्राह । सवादमुदकोगौतममवादीत् । हे गौतम ! नास्ति सकश्चित्पर्यायः यस्मिन्नेकप्राणातिपातविरमणेपि श्रमणोपासकस्य दंमोवधोनिक्षिप्तः परित्यक्तः स्यात् । कोर्थः । श्राद्धेन त्रसमुद्दिश्य प्रत्याख्यानं कृतं । संसारिणा वान्योन्यगमनसंभवात्त्रसाः सर्वेपि स्थावरत्वं प्राप्तास्तदा त्रसानामभावान्निर्विषयं प्रत्याख्यानमित्यर्थः। (कस्सणंति) केन हेतुना इदमुच्यते सांसारिकाः खलु प्राणाः स्थावरास्त्रसतया त्रसाअपि स्थावरतया प्रत्यायांति स्थावरकायाद्विप्रमुच्यमानाः स्वायुषा सर्वे निरवशेषकास्त्रसकाये समुत्पद्यंते त्रसकायादपि तदायुषा मुच्यमानाः सर्वे स्थावरकाये समुत्पद्यंते तेषां त्रसानां स्थावरकायोत्पन्नानां स्थानमेतद्घात्यं । यथा केनचित्प्रतिज्ञातं मया नगरनिवासी न हंतव्यः तच्च उद्वसितं नगरं ततोनिर्विषयं प्रत्याख्यानं । एवमत्रापि त्रसानामभावान्निर्विषयत्वमिति ॥ १२ ॥

॥ टीका—पुनरप्यन्ययोदकः पूर्वपक्षमारचयितुमाह । (सवायंउदएइत्यादि) सहवाचं सवादं वोदकः पेढालपुत्रोभगवंतं गौतममेवमवादीत् । तद्यथाऽऽयुष्मन् गौतम! नास्त्यसौ कश्चित्पर्यायोयस्मिन्नेकप्राणातिपातविरमणेपि श्रमणोपासकस्य विशिष्टविषयामेव प्राणातिपातनिवृत्तिं कुर्वतोदंमः प्राण्युपमर्दनरूपोनिक्षिप्तपूर्वः परित्यक्तपूर्वोभवति । इदमुक्तं भवति । श्रावकेण त्रसपर्यायमेकमुद्दिश्य प्राणातिपातविरतिव्रतं गृहीतं संसारिणां च परस्परगमनसंभवात्तेच त्रसाः सर्वेपि किल स्थावरत्वमुपगतास्ततश्च त्रसाभावान्निर्विषयं यत्प्रत्याख्यानमिति । एतदेव प्रश्नपूर्वकं संदर्शयितुमाह । (कस्सणंतंहेउमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । कस्य हेतोरिदमभिधीयते केन हेतुनेत्यर्थः। सांसारिकाः प्राणाः परस्परसंसरणशीलायतस्ततः स्थावराः सामान्येन त्रसतया प्रत्यायांति त्रसाअपि स्थावरतया प्रत्या

जंकारे । त्रसकायस्थितिकं च कर्म यदा परिक्षीणं जवति तच्च जघन्यतोंतर्मुहूर्तमुत्कृष्टतः सातिरेकसहस्र द्वयसागरोपमपरिमाणं तदा ततस्त्रसकायस्थितेरजावात्तदायुष्कं ते परित्यजंत्यपराण्यपि तत्सहचरितानि कर्माणि परित्यज्य स्थावरत्वेनोदयं यांति । इत्येवंच व्यवस्थिते कथं स्थावरकायं व्यापादयतोगृहीतत्रसकायप्राणातिपातनिवृत्तः श्रावकस्य व्रतजंगइति? । किंचान्यत् (थावराओवयंचणमित्यादि) यदा तदपि स्थावरायुष्कं परिक्षीणं जवति तथा स्थावरकायस्थितिश्च सा जघन्यतोंतर्मुहूर्तमुत्कृष्टतोऽनंतकाजमसंख्येयाः पुजजपरावर्ताइति ततस्तत्कायस्थितेरजावात्तदायुष्कं परित्यज्य जूयः पुनरपि पारजौकिकत्वेन स्थावरकायस्थितेरजावात् त्रसत्वेन सामर्थ्यात्प्रत्यायांति । तेषांच त्रसानामन्वर्थितान्यजिधानान्यजिधातुमाह । (तेपाणावीत्यादि) ते त्रससंजारकृतेन कर्मणा समुत्पन्नाः संतः सामान्यसंज्ञया प्राणाअप्युच्यंते । तथा विशेषतस्त्रसनयचजनयोरिति धात्वर्थानुगमाद्भयचजनान्यामुपेतास्त्रसाअप्युच्यंते तथा महान् कायोयेषां ते महाकायाः योजनजक्षप्रमाणशरीरविकुर्वणात्तथा चिरस्थितिकाअप्युच्यंते । जवस्थित्यपेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुष्कसद्भावात्ततस्त्रसपर्यायव्यवस्थितानामेव प्रत्याख्यानं तेन गृहीतं नतु स्थावरकायत्वेन व्यवस्थितानामपीति । यस्तु नागरिकदृष्टांतोजवतोपन्यस्तोऽसावपि दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात्केवजं जवतोनुपासितगुरुकुलवासित्वमाविष्करोति । तथाहि । नगरधर्मैरुपयुक्तो नागरिकः सच मया न हंतव्यइति प्रतिज्ञां गृहीत्वा यदा तमेव व्यापादयति बहिः स्थितं पर्यायापन्नं तदा तस्य किज व्रतजंगइति जवतः पक्षइति । सच न घटते । यतोयोहि नगरधर्मैरुपेतः सबहिस्थोपि नागरिकएवातः पर्यायापन्नइत्येतद्विशेषणं नोपपद्यते अथ सामस्त्येन परित्यज्य नगरधर्मं नासौ वर्तते अतस्तमेवेत्येतद्विशेषणं नोपपद्यते तदेवमत्र त्रसः सर्वात्मना त्रसत्वं परित्यज्य यदा स्थावरः समुत्पद्यते तदा पूर्वपर्यायपरित्यागादपरपर्यायापन्नत्वाच्च सएवासौ न जवति तद्यथा नागरिकः पद्भ्यां प्रविष्टस्तद्धर्मापेतत्वात्पूर्वधर्मपरित्यागाच्च नागरिकएवासौ न जवतीति ॥ ११ ॥

सवायं उदए पेढालपुत्ते जयवं गोयमं एवं वयासी आउसंतो गोयमा णब्रिणं से केइ परियाए जसं समणोवासगस्स एगपाणातिवायविरएवि दंमे निक्खित्ते कस्सणं तं हेउं सांसारिया खजु पाणा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा सबे तसकायंसि उववज्जंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा सबे थावरकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं थावरकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं घत्तं ॥ १२ ॥

विना यद्यपि कांई मने करी तथा कायाये करी प्राणिघात थाय. तोपण तेने जावनी विशुद्धियें कर्मबंध न लागे ते कर्मबंधने अजावे निव्वाणमन्निगब्इ के० निर्वाणपदे पहो चे. एटले मुक्ति पामे एम परवादी कहेले. ॥२७॥ ए उपर दृष्टांत कहेले. पुत्तंपियासमा रप्नके० बाप दीकरानो विनाश करी तेनुं मांस आहारने अर्थें कोइक आपत्कालने विषे, आहारेज्ञअसंजएके० असंयत जे गृहस्थ ते रागद्वेषरहित थको पुत्रना मांसने आहारे तथा मेधावीके० पंमितपण एटले संयती दीक्षित ते पण ते मांसनो जुंजमाणो के० आहार करतो थको जो शुद्ध अध्यवसाय ले. तो कम्मणानोविलिप्पई के० कर्मे लेपातो नथी तेम बीजो प्राणी पण रागद्वेषरहित कर्तो थको कर्मे करी बंधातो नथी. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—कर्मचिंतानष्टत्वमेवाह ॥ जानन् यः प्राणिनोहिनस्ति कायेनशरीरेणच नाकु ट्टी अहिंसकः । कोर्थः । कोपादेर्निमित्तात्मनोव्यापारेण जीवान् हंति न कायेन तस्याऽनवद्य कर्मोपचयोन स्यादित्यर्थः । तथा अबुधोऽजानन् कायेन हिनस्ति तस्यापि मनोव्यापारा जावान्न कर्मबंधः । (पुठोत्ति) । तेन कर्मणा असौ केवलमनोव्यापारकृतेन केवलका यक्रियोत्थेन वा स्पृष्टएव संवेदयति स्पर्शमात्रेणैव तत्कर्मानुजवति न तस्याधिको विपाकः स्पर्शानंतरमेव परिशटतीत्यर्थः । एवं तत्सावद्यं कर्माऽव्यक्तमेव न स्पष्टं ॥ २५ ॥ कथं तर्हि कर्मोपचयः स्यादित्याह । (संतित्ति)। संत्यमूनि त्रीण्यादानानि कर्मोपादा नानि । यैः पापकर्म क्रियते तान्याह । अनिक्रम्य सन्मुखं गत्वा स्वयं हंति १ परं प्रे ष्य यत्कारयति २ कुर्वंतं वाऽनुजानातीति ३ एतत्कर्मोपादानत्रयं । अयं जावः । केवलं म नसा शरीरेण वा न कर्मबंधः किंतु यत्र स्वयंकृतकारितानुमतयः क्लिष्टाध्यवसायश्च तत्रैव कर्मबंधः ॥ २६ ॥ एतदेव दर्शयति । तुरवधारणे । एतान्येव त्रीणि व्यस्तानि समस्तानि कर्मोपादानानि यैः पापं कर्म क्रियते । एवं सति यत्र कृतकारितानुमतयः प्राणिहिंसायां न संति तत्र जावविशुध्या रागद्वेषरहितबुध्या प्रवर्तमानस्य सत्यपि प्राणातिपाते केवलेन म नसा मनोव्यापाररहितेन कायेन उनयेन वा विशुद्धबुद्धेर्न कर्मबंधस्तदजावान्निर्वाणम निगबति प्राप्नोति ॥ २७ ॥ जावशुध्या प्रवर्तमानस्य हिंसायामपि कर्मबंधो न स्यादि त्यत्रार्थे दृष्टांतमाह । (पुत्तंति) । पिता पुत्रं समारन्य व्यापाद्य आहारार्थं कस्यां चित्त थाविधायामापदि रागद्वेषरहितोऽसंयतोगृहस्थस्तन्मांसं जुंजानोपि । चशब्दोप्यर्थे । मेधा वी संयतोपि जुंजानः कर्मणा नोपलिप्यते । यथा पितुः पुत्रं व्यापादयतोपि शुद्धमन सः कर्मबंधोन स्यात्तथा तस्यारक्तद्विष्टस्य प्राणिवधे न कर्मबंधः ॥ २८ ॥ ॥

॥ टीका—यथा च ते कर्मचिंतातोनष्टास्तथा दर्शयितुमाह।(जाणंकायेणणाउट्टीत्यादि)।यो हि जानन्नवगबन् प्राणिनो हिनस्ति कायेन चाऽनाकुट्टी । कुट्टछेदने । आकुट्टनमाकुट्टः सवि

यांति । तदेवं संसारिणां परस्परगमनं प्रदर्श्याधुना यत्परेण विवक्षितं तदाविष्कुर्वन्नाह । (थावरकायाउइत्यादि) स्थावरकायाद्विप्रमुच्यमानाः स्वायुषा तत्सहचरितैश्च कर्मभिः स र्वे निरवशेषास्त्रसकाये समुत्पद्यंते ते त्रसकायादपि तदायुषा विप्रमुच्यमानाः सर्वे स्थावर काये समुत्पद्यंते तेषांच त्रसानां सर्वेषां स्थावरकायसमुत्पन्नानां स्थानमेतद्घात्यं वर्तते तेन श्रावकेण स्थावरकायवधनिवृत्तेरकारणादतः सर्वस्य त्रसकायस्य स्थावरकायत्वेनो त्पत्तेर्निर्विषयं तस्य त्रसवधनिवृत्तिरूपं प्रत्याख्यानं प्राप्नोति । तद्यथा केनचिद्व्रतमेवंनूतं गृहीतं यथा मया नगरनिवासी न हंतव्यस्तच्चोद्वसितं नगरमतोनिर्विषयं तत्तस्य प्रत्या ख्यानमेवमत्रापि सर्वेषां त्रसानामन्नावान्निर्विषयत्वमिति ॥ १२ ॥

सवायं नगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी णो खलु आ उसो अस्साकं वत्तवएणं तुम्नंचेव अणुप्पवादेणं अत्थिणं से परि याए जेणं समणोवासगस्स सवपाणेहिं सवनूएहिं सवजीवेहिं सवसत्तेहिं दंमे निक्खित्ते नवइ कस्सणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि पाणा तस त्ताए पच्चायंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे थावरकायंसि उव वज्जंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे तसकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं तसकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं ते पाणावि वुच्चं ति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरठिइया ते वहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चरकायं नवति ते अप्पयरागा पाणा जे हिं समणोवासगस्स अपच्चरकायं नवइ से महया तसकायाउ उवसंतस्स उवठियस्स पडिविरयस्स जन्नं तुम्नेवा अन्नोवा एवं वदह णत्थिणं से समणो केइ परियाए जं से समणोवासगस्स एग पाणा पविरएवि दंमे णिक्खित्ते अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥ १३ ॥

अर्थ—हवे एम कहे छते वादसहित नगवंत श्रीगौतम स्वामी, उदयपेढाल पुत्र प्रत्यें एम बोल्या के, निश्चें अहो आयुष्मन् उदक! (अस्साकंवत्तवएणं के०) अमारी वक्तव्य तायें जे तुं वचन कहेछे, तेम थयुं पण नथी, अनें थशे पण नहीं, ते केमके, समस्त स्थावरजीव, त्रस पणें उपजे एम तमे कहोगे तो, जगत् मांहे त्रस जीवतो असंख्या ताछे, अनें स्थावर अनंताछे तो, अनंता असंख्याता मांहे शी रीतें समाय? तथा वली

समस्त त्रस जीव पण स्थावर पणुं न पामे. केम के कोइ वारें पण त्रसशून्य संसार न था य, तेमज स्थावरशून्य पण संसार न थाय, ए अमारो मतछे. हवे तमारो पक्ष तमारेज अभिप्रायें करी निराकरण करियें छैयें. ते सांजलो. (तुप्नंचवअणुप्पवादेणं के०) तमाराज के वा प्रमाणे (अविणंसपरियाए के०) ते पर्यायछे के जे पर्यायें करी श्रमणोपासकनें सर्व प्राण, सर्व नूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, तेनो घात छंमायछे एटले त्याग थायछे केमके, तमा री वक्तव्यतायें जे वारें सर्व स्थावरजीव त्रसपणे उपना तेवारें सर्व प्राण विषे पच्चरका ण श्रावकनो थयो, ते कारण माटें श्रावक, त्रसनो घात न करे. ए विशेष सूत्रें करी देखाडेछे (कस्सणंतंहेउं के०) तेनो हेतु कयो ? ते देखाडेछे निश्चें सांसारिक प्राणी, त्रस प्राणी पण स्थावर पणे उपजे, अनें स्थावर प्राणी त्रस पणे उपजे, त्रसकाय थकी मूका ता सर्व स्थावर पणे उपजे, अनें स्थावर कायथकी मूकाता सर्व त्रस पणे उपजे तेवारें (तेसिंचणंतसकायंसिउववन्नाणंठाणमेयंअघत्तं के०) जो स्थावरकाय पणुं त्यागीनें त्रस पणे उपजे, तेवारे श्रावकनें त्रसना स्थानक नणी अघत्तं एटले विराधनानुं कांहिं कारण नथी, जे कारणें (तेपाणाविवुच्चंति के०) ते त्रसप्राण पण कहियें, अने तेने त्रस पण कहि यें, ते महाकाय, ते चिरस्थितिक, ए अर्थ पूर्ववत् जाणवो. (तेवहुयरगापाणा के०) ते घ णा त्रसप्राणीयो जेणें करी श्रमणोपासकनें रूडो पच्चरकाण थाय (तेअप्पयरागापाणा के०) ते प्राण, आहीं अल्प शब्द सर्वथा अनावनें अर्थेछे जे कारणे सर्व स्थावर फीटी त्रस थाय, तेवारें स्थावर जीवनो अभाव थयो. एम तमारी वक्तव्यतायेंज श्रावकनें घणुं रू डुं पच्चरकाण थाय. अने जे तमें कहोछो के श्रावकनें अपच्चरकाण थाय, ते तो उलटुं रू डुं पच्चरकाण थाय ते श्रावक महोटी त्रसकायना आरंनथी उपशम्या सावधान थया विशेषेंथी निवर्त्या, तेनें रूडुं पच्चरकाण थाय (जन्नं के०) जे कारण माटें तमे अथ वा बीजा (एवंवदह के०) एम कहे के जे एवुं कोइ पर्याय नथी, के जे पर्यायें श्रावकने प्राणातिपातनो पच्चरकाण थाय. ए तमारुं कहेवुं ते न्यायमार्गनुं नथी ॥ १३ ॥

॥ दीपिका—अथ गौतमः प्राह सवाचं गौतम उदकमवादीत् । अस्माकमिति मगध देशे सर्वजनप्रसिद्धं संस्कृतमेवोच्चार्यते तथैवात्र पवितं । तदेवमस्माकं संबंधिना वक्तव्येन नैतदर्शोजनं किं तर्हि ? युष्माकमेवानुप्रवादेन एतदर्शोनमिति । अस्म द्वक्तव्येनास्य चोद्य स्यानुत्थानमेव । तथाहि । नैतद्भूतं न जवति नापिच जविष्यति यत्सर्वेपि स्थावरास्त्र सत्वं प्रतिपद्यंते स्थावराणामानंत्यात्त्रसानां वाऽसंख्येयत्वेन तदाधारत्वं न युक्तं । त्रसाश्र पि स्थावरत्वं न प्रतिपन्नानच प्रतिपद्यंते नापि प्रतिपत्स्यंते । नच कदाचित्त्रसशून्यः संसा रः स्यादिति जवदाक्षेपानुपपत्तिरेव । अस्त्ययं पर्यायोयच्छ्रमणोपासकस्य सर्वप्राणिनिस्त्रसत्वेन

भूतैरुत्पन्नैर्दंमोनिक्षिप्तोवधस्त्यक्तः । केन हेतुनेत्याह । सांसारियाइत्यादि पूर्ववत् । याव त्रसकाये उत्पन्नानां स्थानमेतदघात्यं स्यात् । तेच त्रसाप्राणाउच्यंते त्रसाअप्युच्यंते । ते महाकायाश्चिरस्थितिकाः। ते त्रसाबहवोयैः श्राद्धस्य तु प्रत्याख्यातं भवति । भवदभिप्रा येण सर्वस्थावराणां त्रसत्वेनोत्पत्तेः । तेऽल्पतरकाः यैः श्राद्धस्याप्रत्याख्यानं भवति । अ ल्पशब्दोभाववाचकः। न संत्येव त्वदभिप्रायेण ते जीवाः येषु अप्रत्याख्यानमिति । एवं सेत स्य श्राद्धस्य महतस्त्रसकायाडुपशांतस्य विरतस्य सुप्रत्याख्यानं स्यादिति । एवंसति य यूयं वदथान्योवा वदति यन्नास्त्यसौ पर्यायइत्यादि सुगमं यावस्रोणेयाउएभवइत्ति ॥ १३॥

॥ टीका—एवमुदकेनाभिहिते सति तदभ्युपगमेनैव गौतमस्वामी दूषयितुमाह । (स वायमित्यादि) सद्वाचं वादं वा तमुदकं पेढालपुत्रं गौतमस्वाम्येवमवादीत् । तद्यथा भो खल्वायुष्मन्नुदकास्माकमित्येतन्मगधदेशे आगोपालांगनादि प्रसिद्धं संस्कृतमेवोच्चार्यते त दिहापि तथैवोच्चारितमिति । तदेवमस्माकं संबंधिना वक्तव्येन नैतदशोभनं किं तर्हि युष्मा कमेवानुप्रवादेनैतदशोभनं। इदमुक्तं भवत्यस्मद्वक्तव्येनास्य चोद्यस्यानुत्थानमेव। तथाहि । नैतद्भूतं न च भवति नापि कदाचिद्भविष्यति यद्धुत सर्वेपि स्थावरानिर्लेपतया त्रसत्वं प्रतिपद्यंते स्थावराणामानंत्यात्त्रसानां चासंख्येयत्वेन तदाधारत्वानुपपत्तेरित्यभिप्रायः । तथा त्रसाअपि सर्वे न स्थावरत्वं प्रतिपन्नान प्रतिपत्स्यंते । इदमुक्तं भवति । यद्यपि विवक्षितकालवर्तिनस्त्रसाः कालपर्यायेण स्थावरकायत्वेन यास्यंति तथा च परंपरापर त्रसोत्पत्त्या त्रसजात्यनुच्छेदान्न कदाचिदपि त्रसकायशून्यः संसारोभवतीति । तदेव मस्मन्मतेन चोद्यानुत्थानमेवाभ्युपगम्यच भवदीयं पक्षं युष्मदभ्युपगमेनैव परिह्रियते तदेव पराभिप्रायेण परिहरतस्तस्यासौ पर्यायः । सचायं भवदभिप्रायेण यदा सर्वेपि स्थावरास्त्रसत्वं प्रतिपद्यंते यस्मिन्पर्यायेऽवस्थाविशेषे श्रमणोपासकस्य कृतप्राणा तिपातनिवृत्तेः सतः त्रसत्वेन च भवदभ्युपगमेन सर्वप्राणिनामुत्पत्तेः। तैश्च सर्वप्राणिभिस्त्र सत्वेन भूतैरुत्पन्नैः करणभूतैस्तेषु वा विषयभूतेषु दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तः । इदमुक्तं भव ति । यदा सर्वेपि स्थावराः भवदभिप्रायेण त्रसत्वेनोत्पद्यंते तदा सर्वप्राणिविषयं प्रत्या ख्यानं श्रमणोपासकस्य भवतीति । एतदेव प्रश्नपूर्वकं दर्शयितुमाह । (कस्सणंहेउमित्या दि) सुगमं । यावत्त्रसकाये समुत्पन्नानां स्थानमेतदघात्यमघातार्हं तत्र विरतिसद्भावादि त्यभिप्रायः । तेच त्रसानारकतिर्यङ्नरामरभाजः सामान्यसंज्ञया प्राणिनोप्यभिधीयंते त था विशेषसंज्ञया भयचलनोपेतत्वात्त्रसाअप्युच्यंते । तथा महान् कायः शरीरं येषां ते महाकायाः वैक्रियशरीरस्य योजनलक्षप्रमाणत्वादिति । तथा चिरस्थितिकायाः त्रयस्त्रिंश त्सागरोपमपरिमाणत्वाद्भवस्थितेस्तथा ते प्राणिनस्त्रसाबहुतमाभूयिष्ठायैः श्रमणोपास

कस्य सुप्रत्याख्यानं नवति। त्रसानुद्दिश्य तेन प्रत्याख्यानस्य ग्रहणत्वादन्युपगमेनच सर्वे स्थावराणां त्रसत्वेनोत्पत्तेरतस्तेऽल्पतरकाः प्राणिनोयैः कारणनूतैः श्रावकस्याप्रत्याख्यानं नवति । इदमुक्तं नवति । अल्पशब्दस्यानाववाचित्वान्न संत्येव ते येष्वप्रत्याख्यानमित्येवं पूर्वोक्तया नीत्या सेतस्य श्रमणोपासकस्य महतस्त्रसकायाडुपशांतस्योपरतस्य प्रतिविरतस्य सतः सुप्रत्याख्यानं नवतीति संबंधस्तदेवं व्यवस्थिते। णमिति वाक्यालंकारे। यद्यूयं वदथान्योवा कश्चित्तद्यथा नास्त्यसावित्यादि सुगमं यावत्तोणेयाउएनवइत्ति ॥ १३ ॥

नगवंचणं उदाहु नियंठा खलु पुच्चियवा आउसंतो नियंठा इह खलु संतेगइया मणुस्सा नवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुवं नवइ जे इमे मुंमे नवित्ता आगाराउ आणगारियं पवइत्ता एएसिंचणं आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते जे इमे आगारमावसंति एएसिणं आमरणंताए दंमे णो णिक्खिते केइ तंचणं समणा जाव वासाइं चउपंच माइं उठ्ठदसमाइं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा देसं दूईज्जित्ता आगारमावसेज्जा हंता वसेज्जा तस्सणं तं गारत्थं वहमाणस्स से पच्चक्खाणे नंगे नवइ णेतिणठे समठे एवमेव समणोवासगस्सवि तसेहिं पाणेहिं दंमे णिक्खित्ते थावरेहिं पाणेहिं दंमे णो णिक्खित्ते तस्सणं तं थावरकायं वहमाणस्स से पच्चक्खाणे णो नंगे नवइ से एवं मायाणह णियंठाए से एवं मायाणियवं ॥ १४ ॥

अर्थ–हवे श्रीगौतमस्वामिज स्थावर पर्यायें पहोता एवा त्रस जीवोनें विनाशवा थकी, व्रतनंग न थाय! एवा अर्थनी प्रसिद्धिनें अर्थें त्रण दृष्टांत देखाडेठे. (नगवंचणं उदाहु के०) नगवंत श्रीगौतमस्वामी पोतानुं उद्धत पणुं टालवा माटें बीजा स्थविरनें साक्षी करी बोलेठे, एटले पोतानी पासें कोइ एक स्थविर बेठाठे तेनें उद्देशी कहेठे के, अहो उदक! जे अर्थ हुं कहुं हुं तेना साक्षी (नियंठाखलुपुच्चियवा के०) निश्चें आ निर्ग्रंथोने पूठवुं. एम कही निर्ग्रंथ प्रत्यें कहेठे के, (आउसंतोनियंठा के०) अहो आयुष्मंत निर्ग्रंथो ! जे हुं आगल कहीश, ते वचन तमारे मनमां मान्य थाय ठे किंवा नथी थतुं ? ते वचन हुं कहुंठुं, तमे सांनलो. (इहखलु के०) आ जगत् मांहे निश्चें (संतेगइयामणुस्सानवंति के०) कोइ एक मनुष्य शांतिप्रधान एवा होय, (तेसिंचणंएवंवुत्तंपुवंनवइ

के०) तेणें पोतानुं एवुं व्रतविशेष पूर्वें कह्युंछे, ते केवुं कह्युंछे? ते कहेछे. (जेइमेमुंमे भवित्ता के०) जे तें हुं मुंम थइश. (आगाराउअणगारियंपवइत्ता के०) गृहस्थावास ढांमीने अणगार पणुं प्रव्रजीश (एएसिंचणंआमरणंताएदंमेणिस्किते के०) एने विषे मरणांतिक एटले मरणांतसुधी में दंम ढांम्यो,एतावता ए प्रव्रजीतने एटले यतिपणाने पा मेलोने विणाशवो नही. (जेइमेआगारमावसंति के०) जे गृहस्थावास विषें वसतो पुरु ष, (एएसिणंआमरणंताएदंमेणोणिस्किते के०) तेनुं मरणना अंतसुधी, दंम एटले हणवुं निषेध्युं नथी. एवुं तेनुं व्रत विशेषछे, (केइतंचणंसमणाजाववासाइंचउपंचमाइंढदस माइं के०) तेवारें कोइ एक श्रमण, प्रवर्ज्या पर्याय पाली यावत् चार, पांच, ढ, तथा दश वर्ष, इत्यादिक (अप्पयरोवाज्जुक्षियरोवा के०) अल्पकाल, अथवा घणा काल सुधी. (दे संदूइज्जित्ता के०) चारित्रनें विषे विचरी, तथाविध कर्मनें उदयें वली, (आगारमावसे ज्ञा के०) गृहस्थावास सेवन करे,ए भाव संभवे किंवा न संभवे? तेवारें आगल बेठेला निर्ग्रंथी बोल्या के, (हंतावसेज्ञा के०) हा, चारित्रिया थकी गृहस्थ थाय. जे कारण माटें कर्मनी गति विचित्रछे. हवे वली गौतम स्वामी कहेछे. (तस्सणंतंगारत्थंवहमाणस्स के०) हवे ते पुरुष के, जेनें चारित्रियापणे विनाशवानो नियमछे अनें गृहस्थपणे विनाश वानो नियम नथी,तेवारें ते चारित्रियो फीटी गृहस्थ थयो छे तेवानें विनाशता तेनुं, (सेपच्च क्काणेभंगेभवइ के०) ते पच्चरकाण भांजे, किंवा न भांजे ? ते कहो. तेवारें ते बोल्या. (णोतिणहेसमहे के०) ए अर्थ समर्थ न थाय, अर्थात् तेनुं व्रत न भांजे. (एवमे वसमणोवासगस्सवि के०) एणी परें श्रमणोपासकने पण (तसेहिंपाणेहिंदंमेणिस्किते के०) त्रस प्राणिनें विषे घात करवानो नियमछे परंतु (थावरेहिंपाणेहिंदंमेणोणिस्किते के०) अनें स्थावर प्राणिनें घात करवानो नियम नथी, ते कारण माटें जे त्रस फीटी नें स्थावर थयो, (तस्सणं के०) तेनो, (तंथावरकायं के०) ते स्थावरकायनी, (वहमा णस्स के०) विराधना करनार श्रावकनुं (सेपच्चरकाणे के०) ते पच्चरकाण (णोभंगे भवइ के०) भंग न थाय. (सेएवंमायाणह के०) तें एम जाणो (णियंगाए के०) अहो निर्ग्रंथो ! (सेएवंमायाणियव्वं के०) ते बीजुं पण एमज जाणवुं ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—अथ त्रसानां स्थावरत्वं प्राप्तानां वधेपि न व्रतभंगः स्यादित्यत्र दृष्टांतत्रयमा ह। भगवान् । गौतमउदाह उक्तवान् निर्ग्रंथाः प्रष्टव्याः । निर्ग्रंथानां सर्वेषामप्येतत्संम तमिति ज्ञापनाय निर्ग्रंथप्रश्नः। किमुक्तवानित्याह । शांतिप्रधानाइह केचिन्मनुष्याः स्युस्ते षामेतडुक्तपूर्वं भवति । अयं व्रतग्रहणविशेषः स्यात् यइमे मुंमाभूत्वाऽगारान्निर्गत्यानगा रितां प्रतिपन्नाएषामुपरि मया मरणांतोदंमोनिक्षिप्तोवधस्त्यक्तः । कोर्थः ? केनापि यती

नाश्रित्य व्रतं गृहीतं । यथा यावज्जीवं मया यतयोन हंतव्याइति । येच इमेऽगारं गृहमा वसंति तेषां दंमोन त्यक्तः । गृहस्थानां हिंसा न प्रत्याख्याताइत्यर्थः । तत्र केचिच्छ्रमणाः कियंतमपि कालं प्रव्रज्यां प्रतिपाल्य । कालमानमाह । वासाइत्ति । वर्षाणि पंच च प ड्दशवा । अस्योपलक्षणादन्योपि कालविशेषोज्ञेयस्तमेवाह । अल्पतरं प्रभूततरं च कालं । तथा देसंदूइज्ज विहृत्य कर्मोदयाद्गृहमावसेयुर्गृहस्थाभवेयुः एवंभूतः पर्यायः किं संभाव्यते उत नेति ? पृष्टानिर्ग्रंथाः प्रत्यूचुः हंत गृहवासं व्रजेयुः । तस्य च यतिवधगृ हीतव्रतस्य तं गृहस्थं घ्नतः किं व्रतभंगोभवेत् ? उतनेति ते आहुर्नेति । एवं श्राद्धस्य त्र सवधनिवृत्तस्य स्थावरस्य प्राप्तं त्रसं घ्नतोन स्याद्व्रतभंगः ॥ १४ ॥

॥ टीका—सांप्रतं त्रसानां स्थावरपर्यायापन्नानां व्यापादनेनापि न व्रतभंगोभवतीत्यर्थ स्य प्रसिद्धये दृष्टांतमाह ।(भगवंचणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । चशब्दः पुनःशब्दा र्थे ।पुनरपि भगवान् गौतमस्वाम्येवाह । स्वौद्धत्यपरिहरणार्थमपरानपि स्थविरान् साक्षि णः कर्तुमिदमाह । ते निर्ग्रंथायुष्मत्स्थविराः खलु प्रष्टव्यास्तद्यथा आयुष्मंतोनिर्ग्रंथायु ष्माकमप्येतद्वक्ष्यमाणमभिमतमाहोस्विन्नेत्यवष्टंभेन चेदमाह । युष्माकमप्येतदभिप्रेतं यदहं वच्मि । तद्यथा । शांतिरुपशमस्तत्प्रधानाएके केचन मनुष्याभवंति न नारकतिर्यग्दे वाः किं तर्हि मनुष्यास्तेपि नाकर्मभूमिजानापि म्लेछाअनार्यावा तेषां चार्यदेशोत्पन्ना नामुपशमप्रधानानामेतदुक्तपूर्वं भवति अयं व्रतग्रहणविशेषोभवति । तद्यथा । यइमे मुंमा भूत्वाऽगाराद्गृहान्निर्गत्यानगारतां प्रतिपन्नाः प्रव्रजिताइत्यर्थः । एतेषां चोपचर्यामरणांतं मया दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोभवति । इदमुक्तं भवति कश्चित्तथाविधोमनुष्योयतीनुद्दि श्य व्रतं गृण्हाति तद्यथा न मया यावज्जीवं यतयोहंतव्यास्तथा ये चेमेऽगारं गृहवा समावसंति तेषां दंमोनिक्षिप्तइत्येवं केषांचिद्व्रतग्रहणविशेषे सति व्यवस्थिते इदमपदि श्यते तत्र केचन श्रमणाः प्रव्रजिताः कियंतमपि कालं प्रव्रज्यापर्यायं प्रतिपाल्य तमेव काल विशेषं दर्शयति । यावद्वर्षाणि चत्वारि पंच वा षड् दश वास्य चोपलक्षणत्वादन्योपि काल विशेषोद्रष्टव्यः । तमेवाह । अल्पतरं प्रभूततरं वा कालं तथा देशंच दूइज्जइत्ति । विहृत्य कुतश्चित्कर्मोदयात्तथाविधपरिणतेरगारं गृहवासं वसेयुर्गृहस्थाभवेयुरित्येवंभूतः पर्यायः किं संभाव्यते?उत नेत्येवं पृष्टानिर्ग्रंथाः प्रत्यूचुः हंत गृहवासं व्रजेयुस्तस्य च यतिवधगृहीत स्य तं गृहस्थं व्यापादयतः किं व्रतभंगोभवेदुत नेति ? आहुर्नेति । एवमेव श्रमणोपासक स्यापि त्रसेषु दंमोनिक्षिप्तोन स्थावरेष्विति अतस्त्रसं स्थावरपर्यायापन्नं व्यापादयतस्तत्प्र त्याख्यानभंगोन भवतीति ॥ १४ ॥

भगवंचणं उदाहु नियंठा खलु पुच्छियव्वा आउसंतो नियंठा इह खलु गाहावइ गहावइपुत्तोवा तहप्पगारेहिं कुलेहिं आगम्मा धम्मं सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा हंता उवसंकमेज्जा तेसिंचणं तहप्पगाराणं धम्मं आइक्खियव्वे हंता आइक्खियव्वे किं ते तहप्पगारं धम्मं सोच्चा णिसम्म एवं वएज्जा इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं संसुद्धं णेयाउयं सल्लकत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमसंदिद्धं सव्वडुक्खपहीणमग्गं एत्थंठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वडुक्खाणमंतं करेंति तं माणाए तहा गच्छामो तहा चिट्ठामो तहा णिसियामो तहा सुयट्टामो तहा भुंजामो तहा भासामो तहा अब्भुट्ठामो तहा उट्ठाए उट्ठेमोत्ति पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमामोत्ति वएज्जा हंता वएज्जा किं ते तहप्पगारा कप्पंति पव्वावित्तए हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति मुंमावित्तए हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति सिक्खावित्तए हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति उवट्ठावित्तए हंता कप्पंति तेसिंचणं तहप्पगाराणं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं दंमे णिक्खित्ते हंता णिक्खित्ते सेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा जाव वासाइं चउपंचमाइं छट्ठद्दसमाइंवा अप्पयरोवा भुज्जयरोवा देसं दूइज्जेत्ता आगारं वएज्जा हंता वएज्जा तस्सणं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं दंमे णो णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स परेणं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं दंमेणो णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स आरेणं सव्वपाणेहिं जाव सत्तेहिं दंमे णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स इयाणिं सव्वपाणेहिं जाव सत्तेहिं दंमे णो णिक्खित्ते भवइ परेणं असंजए आरेणं संजए इयाणिं असंजए असंजयस्स णं सव्वपाणेहिं जावसत्तेहिं दंमे णो णिक्खित्ते भवइ सएव मायाणह णियंठा से एव मायाणियव्वं ॥ १५ ॥

अर्थ–जगवंत श्रीगौतम स्वामी,वली बीजो दृष्टांत देखाडता बता बोल्या के,आ दृष्टां तमां निर्ग्रंथोनें निश्चे पूबवुं. अहो आयुष्यमंत निर्ग्रंथो ! आ जगतमांहे गृहपति,अथवा गृहपतिना पुत्र, ते तथाप्रकारनां रूडा कुलनें विषे (आगम्मा के०) आवीनें (धम्मंस्स वणवत्तियं के०) धर्म सांजलवानें (उवसंकमेज्जा के०) उद्यम करे? एवुं पुब्युं ते वा रें निर्ग्रंथ बोल्या, (हंताउवसंकमेज्जा के०) हा रूडा कुलना उपना होय, ते धर्मने विषे उद्यम करे. तेवारें फरी श्रीगौतमस्वामी बोल्या (तेसिंचणंतहप्पगाराणंधम्मंआइक्खि यव्वे के०) तेवा गृहस्थने तथा प्रकारनो धर्म कहेवो ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या (हंताआइक्खि यव्वे के०) हा ते ग्रहस्थने धर्म कहेवो. फरी श्री गौतमस्वामी बोल्या के, (किंतेतहप्पगारंध म्मंसोच्चा के०) केंम के ते गृहस्थ, तेवा तथा प्रकारनो धर्म सांजलीनें (णिसम्म के०) हृदयनें विषे अवधारीनें (एवंवएज्जा के०) एवुं वचन बोले. शुं बोले ? तोके (इणमेव निग्गंथंपावयणंसच्चं के०) ए तीर्थंकरजाषित निर्ग्रंथनुं प्रवचन, ते सत्यबे. समस्त जी वनें हितकारीबे, अनुत्तर अन्यशास्त्रमां प्रधान, केवलिजाषित, उत्तम मनोहर एवो बी जो कोइ मार्ग नथी. (पडिपुण्णंसंसुद्धंणेयाउयं के०) मोक्षमार्गना गुणे करी प्र तिपूर्ण, संशुद्ध एटले अत्यंत शुद्ध मोक्षार्थीजीवनें न्यायसंपन्न (सल्लकत्तणं के०) स म्यक्प्रकारें मायादिक शल्यनो कापनार सिद्धिनो मार्ग, मुक्तिनो मार्ग, एटले निर्लोज पणानो मार्ग, निर्वाण एटले सिद्धनो मार्ग, अर्थात् समस्तकर्मक्षय करवानो मार्ग, ते निर्वाणमार्ग (अवितहं के०) अवितथ्य सत्य, (असंदिद्धं के०) असंदिग्ध एटले सं देह रहित मार्ग, सर्वडुःख प्रक्षीण करवानो मार्ग, (एब्बंठियाजीवा के०) ए मार्गनें विषे स्थित एटले रहेला जीव, सीझंति एटले कार्य सिद्धि करे, लोकालोकनुं स्वरूप बूजे, सर्वडुःखथकी मूकाय, (परिणिव्वायंति के०) कर्म रूपदावानलनें उपशमाववे करी, शीतलीजूत थाय, एटले सर्व समाधि पामे, सर्व डुःखनो अंत करे, ए मार्गनें अमे पण आदरीनें (तमाणाए के०) तमारी आज्ञायें (तहागब्बामो के०) तेम चालियें (त हाचिट्ठामो के०) तेम उजारहियें (तहाणिसियामो के०) तेम बेशियें (तहासुयट्टामो के०) तेम सुयें, एटले निद्रा करियें, (तहाजुंजामो के०) तेम जमियें (तहाजासा मो के०) तेम बोलियें (तहाअब्जुट्ठामो के०) तेम सावधान पणे प्रवर्त्तियें (तहाउ ट्ठाए के०) तेम उठवे करी उठियें (उट्ठेमोत्ति के०) उठीनें जेम सर्व प्राण, जूत, जीव, सत्व, तेनी विराधना न थाय (संजमेणं के०) एवा आचारें करी, (संजमामो त्तिवएज्जा के०) संयम पालि ते गृहपति एम कहे. ए प्रकारें गौतम प्रजुयें कह्युं, तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या. (हंतावएज्जा के०) हा ते गृहस्थ जेम तमे बोल्या, तेमज कहे. वली गौत म स्वामी कहेबे. (किंतेतहप्पगाराकप्पंतिपव्वावित्तए के०) केम ते गृहीने तथा प्रकारनुं

प्रव्रज्या व्रत कल्पे, एटले दीक्षा आपवी कल्पे ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या (हंताकप्पंति के०) हा कल्पे. तेवारें श्री गौतम बोल्या. केम तेवा गृहीनें मुंम करवा कल्पे ? निर्ग्रंथ बोल्याके, हा कल्पे. गौतम बोल्या तेवा गृहीनें शीखावबुं कल्पे ? निर्ग्रंथ बोल्या हा कल्पे. तेवा गृहीनें धर्मने विषे उगाववो कल्पे ? निर्ग्रंथ बोल्या के, हा कल्पे. तेवा गृहीनें चारित्र लीधा अनंतर सर्वप्राण, नूत, जीव, सत्व, तेनें विषे घात करवानो त्याग एटले ढांमवा पणुं कल्पे ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या के,हा कल्पे. (सेणं के०) ते, ण ए वे वाक्यालंकारें एतडूपेण एटले एवे विहारें विचरता यावत् चार, तथा पांच, ढ, तथा दश वर्ष, अथवा अल्पकाल, अथवा घणा काल पर्यंत देशमांहे, अथवा संयममांहे विचरी तथाविध चारित्रावरणीय कर्मने उदयें वली गृहवास सेवे ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या हा सेवे. जे कारण माटें कर्मनी गति वैचित्र्यढे तेथी जेणें चारित्र मूकीने गृहवास आदर्योढे तेनें सर्वप्राण, नूत, जीव, अनें सत्वनें विषे घात मूकाणो ? अर्थात् नहीं मूकाणो, तो हवे जुर्ज के (सेजेसेजीवे के०) ते जीव, जे प्रथम गृहस्थ हतो. तेवार पढी ते जीव चारित्रियो थयो. तेवारें पण तेज जीव हतो,तेवार पढी वली गृहस्थ थयो तेवारें पण तेहिज जीव ढे.(जस्सपरेणं के०) जेने प्रथम, सर्व प्राण,नूत,जीव,सत्वना वधनो दंम नथी ढंमाणो तेज जीव,अनें जेनें आरेण एटले वच्चें ढंमाणो अने जेने इयाणिं एटले हमणा वर्त्तमानें वली नथी ढंमाणो,ए रीतें तेनी त्रण अवस्था थइ.प्रथम असंयत हतो,वच्चें संयत थयो, तेवार पढी वली असंयत थयो तेवारे तेने सर्व प्राण, यावत् सर्व सत्वना वधनो दंम, ढंमाणो न होय, ए जीव कांइ सर्वकाल असंयत न कहेवाय! परंतु जेवारें जेवो होय. तेवारें तेवो कहेवाय. तो अहो निर्ग्रंथो त्रस! अने स्थावरने विषे पण एम जाणवुं माटें जेवारें त्रस तेवारें त्रस, अनें जेवारें स्थावर. तेवारे स्थावर. ए बीजो दृष्टांत कह्यो ते एम जाणे अने बिजु पण एप्रमाणे मानवुं ॥ १५ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयदृष्टांतं प्रत्याख्यातृविषयगतं दर्शयन्नाह । नगवान् गौतमः प्राह । निर्ग्रंथाः प्रष्टव्याः इह खलु गृहपतिर्वा गृहपतिपुत्रोवा तथाप्रकारेषु श्रेष्ठकुलेषु उत्पद्य धर्मश्रवणार्थमागढेयुः तेषां धर्मआख्यातव्यइति पृष्टे श्रमणाआहुः । हंत आख्यातव्यः किं ते तथाप्रकारं शुद्धं धर्मं श्रुत्वा एवं वदेयुः । इदमेव निर्ग्रंथसंबंधि प्रवचनं सत्यं यावत् सर्वडुःखप्रहीणमार्गं इढंति । अत्र स्थिताजीवाः सिध्यंति । यावत्सर्वडुःखानामंतं कुर्वंति तदाज्ञया तथा गढामः तथा वेष्टामहे यावत् तथा उढया प्रयत्नेन प्राणिनां संयमेन हिंसानिवृत्या संयमामोसंयमं कुर्मोयथा जिनाज्ञा एवं ते वदेयुः इति पृष्टे श्रमणाआहुः हंत वदेयुः । पुनः श्रमणान् पृढति । किं ते तादृशायोग्याः कल्पंते प्रव्राजयितुं । श्रमणाआहुर्हंत कल्पंते इत्यादि । तेसिंचणं तैस्तथाविधैः सर्वजीवेन्योदंमस्त्य

क्तः एवंविधास्ते विहरंतोवर्षाणि चत्वारि पंच वा षट् दश वा अल्पतरं बहुतरं वा कालं देशग्रामादावुद्यतविहारेण विहृत्य पश्चात्पतितपरिणामाः संतोगारं व्रजेयुर्गृहस्थाश्चवेयुरि त्यर्थः । निर्ग्रंथाः पृष्टोत्तरमाहुः । हंत व्रजेयुः तेषां सर्वप्राणिभ्योदंमोनो निक्षिप्तः । तेषा मवस्थात्रयमाह । पूर्वं गृहस्थत्वे सर्वजंतुवधोन त्यक्तः अथ यः ससाधुत्वे सर्वजंतुवध स्तेन त्यक्तः । पुनः साधुत्वं मुक्त्वेदानीं गृहस्थे जाते सर्वजंतुवधोन त्यक्तः । पूर्वमसंयतः१ आरतः संयतः२ इदानीमसंयतः३ असंयतस्य सर्वजंतुवधोन त्यक्तः । तदेवं जानीत निर्ग्रं थास्तदेवमाज्ञातव्यं । एवं यथावस्थात्रयेप्यन्यथात्वं स्यादेवं त्रसस्थावरयोरपि ज्ञेयं ॥ १५॥

॥ टीका—सांप्रतं पुनरपि पर्यायापन्नस्यान्यथात्वं दर्शयितुं द्वितीयं दृष्टांतं प्रत्याख्यातृ विषयगतं दर्शयितुमाह (भगवंचणमित्यादि) भगवानेव गौतमस्वाम्याह । तद्यथा गृह स्थाः यतीनामंतिके समागत्य धर्मं श्रुत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपद्य तदुत्तरकालं संजातवैराग्याः प्रव्रज्यां गृहीत्वा पुनस्तथाविधकर्मोदयात्तामेव त्यजंति तेच पूर्वं गृहस्थाः सर्वारंभप्रवृत्ता स्तदा रताः प्रव्रजिताः संतोजीवोपमर्दपरित्यक्तदंमाः पुनः प्रव्रज्यापरित्यागे सति नो परित्य क्तदंमाः । तदेवं तेषां प्रत्याख्यातॄणां यथावस्थात्रयेप्यन्यथात्वं भवत्येवं त्रसस्थावरयोर पि इष्टव्यमेतच्च भगवंचणमुदाहुरित्यादेर्ग्रंथस्य सेएवमायाणियव्वं इत्येतत्पर्यवसानस्य तात्पर्यं । अक्षरघटना तु सुगमेति स्वबुध्या कार्या ॥ १५ ॥

भगवंचणं उदाहु णियंठा खलु पुछियव्वा आउसंतो नियंठा इह ख लु परिवाइयव्वा परिवाइआउत्रा अन्नयरेहिंतो तिछायपणेहिंतो आगम्मधम्मं सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा हंताउवसंकमेज्जा किं ते सिं तहप्पगारेणं धम्मे आइक्खियव्वे हंता आइक्खियव्वे तंचेव उवठा वित्तिए जाव कप्पंति हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति संभुंजि त्तए हंता कप्पंति तत्तेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा तंचेव जा व आगारं वएज्जा हंता वएज्जा तेणं तहप्पगारा कप्पंति संभुंजित्तए णो इणठे समठे से जे से जीवे जे परेणं तो कप्पंति संभुंजित्तए से जे से जीवे आरेणं कप्पंति संभुंजित्तए से जे से जीवे जे इयाणी णो कप्पंति संभुंजित्तए परेणं अस्समणे आरेणं समणे इयाणिं अस्स मणे अस्समणेणं सिद्धिं णो कप्पंति संमणेणं निग्गंथाणं संभुंजि त्तए से एव मायाणह णियंठा सेएव मायाणियव्वं ॥ १६ ॥

द्यते यस्यासावाकुट्टी नाकुट्टयनाकुट्टी॥ इदमुक्तं नवति।योहि कायादेर्निमित्तात् केवलं मनोव्यापारेण प्राणिनोव्यापादयति नच कायेन प्राण्यवयवानां छेदनन्नेदनादिके व्यापारे वर्तते न तस्याऽवद्यं। यस्य कर्मोपचयोन नवतीत्यर्थः। तथाऽबुधोऽजानानः कायव्यापारमात्रेण यंच हिनस्ति प्राणिनं तत्रापि मनोव्यापारान्नावान्न कर्मोपचयइति। अनेन च श्लोकार्धेन यडुक्तं निर्युक्तिकृता। यथा चतुर्विधं कर्म नोपचीयते निक्कुसमयइति। तत्र परिज्ञोपचितमविज्ञोपचिताख्यं नेदद्वयं साक्षाडुपात्तं। शेषं त्वीर्यापथस्वप्नांतिकन्नेदद्वयंच शब्देनोपात्तं। तत्रेरणमीर्या गमनं तत्संबद्धः पंथाईर्यापथस्तत्तत्प्रत्ययं कर्मेर्यापथं। एतडुक्तं नवति। पथि गछतोयथाकथंचिदननिसंधेर्यत्प्राणिव्यापादनं नवति कर्मणश्चयोन नवति तथा स्वप्नांतिकमिति। स्वप्नएव लोकोक्त्या स्वप्नांतः सविद्यते यस्य तत्स्वप्नांतिकं तदपि न कर्मबंधाय। यथा स्वप्ने नुजिक्रियायां तृप्त्यन्नावस्तथा कर्मणोपीति। कथं तर्हि तेषां कर्मोपचयोनवतीत्युच्यते। यद्यसौ हन्यमानः प्राणी नवति हंतुश्च यदि प्राणीत्येवं ज्ञानमुत्पद्यते तथैनं हन्मीत्येवं च यदि बुद्धिः प्राडुःष्यादेतेषु च सत्सु यदि कायचेष्टा प्रवर्तते तस्यामपि यद्यसौ प्राणी व्यापाद्यते ततोहिंसा ततश्च कर्मोपचयोनवतीत्येषामन्यतरान्नावेपि न हिंसा नच कर्मचयः। अत्र च पंचानां पदानां द्वात्रिंशद्भंगान्नवंति। तत्र प्रथमनंगे हिंसकोऽपरेष्वेकत्रिंशत्स्वहिंसकः। तथाचोक्तं। प्राणी प्राणिज्ञानं, घातकचित्तं च तगता चेष्टा॥ प्राणैश्च विप्रयोगः पंचन्निरापद्यते हिंसा॥ १॥ किमेकांतेनैव परिज्ञोपचितादिना कर्मोपचयो न नवत्येव काचिदव्यक्तिमात्रेति दर्शयितुं श्लोकपश्चार्धमाह। पुष्ठोत्ति। तेन केवलमनोव्यापाररूपपरिज्ञोपचितेन केवलकायक्रियोछेदेन वाऽविज्ञोपचितेनेर्यापथेन स्वप्नांतिकेन च चतुर्विधेनापि कर्मणा स्पृष्टईषत्सुप्तःसंस्तत्कर्माऽसौ स्पर्शमात्रेणैव परमनुनवति न तस्याधिकोविपाकोस्ति। कुड्यापतितसिकतामुष्टिवत्स्पर्शानंतरमेव परिशटतीत्यर्थः। अतएव तस्य चयान्नावोऽनिधीयते न पुनरत्यंतान्नावइति। एवंच कृत्वा तदव्यक्तमपरिस्फुटं। खुरवधारणे। अव्यक्तमेव स्पष्टविपाकानुनवान्नावात्। तदेवमव्यक्तं सद्यावद्यन गर्ह्येण वर्तते तत्परिज्ञोपचितादिकर्मेति॥ २५॥ ननु च यद्यनंतरोक्तं चतुर्विधं कर्म नोपचयं याति कथं तर्हि कर्मोपचयोनवतीत्येतदाशंक्याह। (संतिमेइत्यादि)। संति विद्यंते अमूनि त्रीणि आदीयते स्वीक्रियते अमीन्निः कर्मेत्यादानानि। एतदेव दर्शयति। यैरादानैः क्रियते विधीयते निष्पाद्यते पापकं कल्मषं तानि चामूनि। तद्यथा। अतिक्रम्येत्यान्निमुख्येन वध्यं प्राणिनं क्रात्वा तद्घातान्निमुखं चित्तं विधाय यत्र स्वतएव प्राणिनं व्यापादयति तदेकं कर्मादानं। तथाऽपरं च प्राणिघाताय प्रेष्यं समादिश्य यत्प्राणिव्यापादनं तद्वितीयं कर्मादानमिति। तथाऽपरं व्यापादयंतं मनसाऽनुजानीतइत्येतत्तृतीयं कर्मादानं। परिज्ञोपचितादस्यायं नेदः। तत्र केवलं मनसा

गाराउ अणगारियं पव्वइत्ताए वयं एां चाउद्दसठमुद्दिठपुस्सि मासिणीसु पडिपुस्सं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहरिस्सामो थूलगं पाणाइवायं पच्चरकाइस्सामो एवं थूलगं मुसावायं थूलगं अदिन्नादाणं थूलगं मेहुणं थूलगं परिग्गहं पच्चरकाइस्सामो इच्छापरिमाणं करिस्सामो डविहं तिविहेणं मा खलु मम घाए किंचि करेहवा करावेहवा तच विपच्चरकाइस्सामो ते एां अन्नोच्चा अपिच्चा असिणाइत्ता आसंदीपेढियाउ पच्चारुहित्ता ते तहा कालगया किं वत्तव्वंसिया सम्मं कालगताव वत्तव्वंसिया ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरठिइया ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चरकायं नवइ ते अप्पयरागा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चरकायं नवइ इति से महयाउ जस्सं तुझे वयह तं चेव जाव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥ १७ ॥

अर्थ—वली उदक प्रत्यें नगवंत श्री गौतमस्वामी बोल्या के, निश्चें आ जगत् मां हे कोइ एक श्रमणोपासक होय, तेणे एवुं व्रत विशेष पूर्वें उच्चार कस्युं होय के, निश्चें अमे मुंम थई गृहस्थावास थकी, अणगार पणुं आदरी शकवाने समर्थ नथी तेथी, अमें चतुर्दशी, अष्टमी, चोमासानी त्रण पूर्णिमा, तथा उद्दिष्टतिथि ते महा कल्याणिक तिथि, एटले दिवसें प्रतिपूर्ण सम्यक् प्रकारें पौषध पालता विचरिशुं, तथा वली स्थूल प्राणातिपात पच्चरकीशुं. एणी पेरें स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तान, स्थूल मैथुन, स्थूल परिग्रह, पच्चरकीशुं. इच्छा प्रमाणे करीशुं, "डविहंतिविहेणं" इत्यादिक नांगायें करी पच्चरवीशुं. (माखलुममहाए के०) निश्चें महारे अर्थे पौषध मांहे कांहिं पचन पाचनादिक म करवुं. बीजा पासें म करावबुं, त्यां पण एवुं पूर्वोक्त अमें पच्चरकाण करीशुं (तेणं के०) ते एवा व्रतना उच्चार करनार श्रावक, (अन्नोच्चा के०) अणजम्या, (अपिच्चा के०) पाणी पीधा विनाना, (असिणाइत्ता के०) अने स्नान कस्या विना, पोसहव्रत करे. पोसहव्रतमां एटला वानां न करे. (आसंदी के०) मंचक, (पेढियाउ के०) पीढी, मांची इत्यादिक, ते थकी (पच्चारुहित्ता के०) उत्तरीनें सम्यक् प्रकारें पौषध लीये. (तेतहाकालगयाकिंवत्तव्वंसिया

अर्थ–हवे भगवंत श्री गौतमस्वामी त्रीजो दृष्टांत कहेछे के, आ दृष्टांतनें विषे पण, निश्चें निर्ग्रंथोनें पूछवुं. ए कारण माटें निर्ग्रंथ उद्देशीनें पूछे छे के, अहो आयुष्यमंत निर्ग्रंथो! निश्चें आ जगत् मांहे परिव्राजक संन्यासी, परिव्राजिका संन्यासिणी, तथा (अन्नयरेहिंतोतित्थायणेहिंतो के०) अन्य तीर्थायतनथकी आवीनें (आगम्मधम्मंसवणवत्तियं के०) आगम धर्म सांभलवानें साधु पासें आवी ते(उवसंकमेज्जा के०) उद्यम करे? (हंताउवसंकमेज्जा के०) हा आवीने उद्यम करे, तो केम तथाप्रकारना परिव्राजक, तथा परिव्राजिकाने धर्म कहेवो? हा धर्म कहेवो. (तंचेवउवट्ठावित्तिए के०) तेम कहेवो के, ज्यांसुधि तेनें उट्ठाववुं कल्पे.? हा, कल्पे. ते वली परिव्राजक थका चारित्रिया थयाछे, तेनें मंमलें बेसाडवा कल्पे? हा, बेसाडवा कल्पे. तथा आहार पाणी लेवो कल्पे? हा, कल्पे. एवा विहारें विचरता ते वली ज्यां सुधी तथाविधकर्मनें उदयें करी गृहस्थावास सेवे? हा, सेवे. तेवारें तेनें तथाप्रकारें आहारपाणी करवा, मंमलीमां बेसाडवा कल्पे? तेवारें निर्ग्रंथबोल्या, के, (णोइणट्ठेसमट्ठे के०) ए अर्थ समर्थ नथी. एतावता तेनें मंमलीमां बेसाडवुं न कल्पे. तो हवे जुर्ज! के तेनो तेज जीव, तेनी साथें प्रथम आहार पाणी करवो न कल्पे, वच्चें वली आहारपाणी करवो कल्पे, अनें वली तेज जीव साथें हमणां आहार पाणी करवो न कल्पे. एम तेनी त्रण अवस्था थइ. प्रथम अश्रमण, पछी वच्चें श्रमण, नें हमणां वली अश्रमण. ते अश्रमणपणायें सहित एवा ते श्रमण निर्ग्रंथनें मंमलीमां पोतानी साथें बेसारी जमाडवो न कल्पे. अहो निर्ग्रंथो! ए दृष्टांतनी पेरें त्रस स्थावरनें विषे पण जाणवुं. जेवारें त्रस तेवारें त्रसज, अनें जेवारें स्थावर, तेवारें स्थावरज, जाणवा. ए रीतें मानो, अनें एवी रीतें जाणवुं. एप्रमाणे निर्ग्रंथनी साक्षियें देशविरति प्रमाण करी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–अथ तृतीयं दृष्टांतं परतीर्थिकानुद्दिश्याह। सुगमार्थमिदं सूत्रं। तात्पर्यार्थस्त्वयं पूर्वं परिव्राजकादयः संतोऽसंभोग्याः साधूनां गृहीतश्रामण्याश्च साधूनां संभोग्याः पुनः श्रामण्यत्यागेऽसंभोग्याः एवं पर्यायान्यथात्वं त्रसस्थावराणामपि योज्यं॥ १६ ॥

॥ टीका–तदेवं द्वितीयं दृष्टांतं प्रदर्श्याधुना तृतीयं दृष्टांतं परतीर्थिकोद्देशेन दर्शयितुमाह। (भगवंचणमुदाहुरित्यादि जावसेएवमायाणियव्वंत्ति) उत्तानार्थं। तात्पर्यार्थस्त्वयं पूर्वं परिव्राजकादयः संतोऽसंभोग्याः साधूनां गृहीतश्रामण्याश्च साधूनां संभोग्याः संवृत्ताः पुनस्तदभावे त्वसंभोग्याइत्येव पर्यायाऽन्यथात्वं त्रसस्थावराणामप्यायोजनीयमिति॥ १६॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा भवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंमा भवित्ता आ

तन्निर्विषयं श्रावकस्य त्रसवधनिवृत्तिरूपप्रत्याख्यानं । तदधुना बहुप्रकारत्रससंभूत्याऽशून्य तां संसारस्य दर्शयति । जगवानाह । संति विद्यंते शांतिप्रधानावा एके केचन श्रमणो पासकाजवंति तेषां चेदमुक्तपूर्वं जवति संजाव्यते च श्रावकाणामेवंजूतस्य वचसः संजव इति । तद्यथा । न खलु वयं शकुमः प्रव्रज्यां ग्रहीतुं किंतु ? वयं । णमिति वाक्यालंकारे । चतुर्दश्यष्टमीपौर्णमासीषु संपूर्णं पौषधमाहारशरीरसत्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधं सम्यगनुपालयंतोविहरिष्यामः तथा स्थूलप्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्र हं प्रत्याख्यास्यामोद्विविधमिति कृतकारितप्रकारद्वयेनानुमतेः श्रावकस्याप्रतिषिद्धत्वात्तथा त्रिविधेनेति मनसा वाचा कायेन च तथा मा इति निषेधे खलु इति वाक्यालंकारे मदर्थं पचनपाचनादिकं पौषधस्य मम कृते मा कार्ष्ट तथा परेण मा कारयत तत्राप्यनुमतावपि सर्वथा यदसंजवति तत्प्रत्याख्यास्यामः ते एवंजूतकृतप्रतिज्ञाः संतः श्रावकाः अजुक्त्वाऽ पीत्वाऽस्नात्वा च पौषधोपेतत्वादासंदीपीठिकातः प्रत्यारुह्यावतीर्य सम्यक् पौषधं गृही त्वा कालं कृतवंतस्ते तथाप्रकारेण कृतकालाः संतः किं सम्यक्कृतकालाजवतासम्यगिति ? कथं वक्तव्यं स्यादित्येवं पृष्टैर्निर्ग्रंथैरवश्यमेवं वक्तव्यं स्यात् सम्यक्कालगताइत्येवं कालग तानामवश्यंजावी तेषां देवलोकेपूत्पादस्तडुत्पन्नश्च त्रसएव ततश्च कथं निर्विषयता प्रत्याख्यानस्योपासकस्येति ॥ १७ ॥

जगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा जवंति तेसिंचणं ए वं वुत्तं पुव्वं जवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंडा जवित्ता आगा राउ जाव पव्वइत्तए णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दसठमुद्दिठपुस्न मासिणीसु जाव अणुपालेमाणा विहरित्तए वयं णं अपच्छिम मारणंतियं संलेहणा जूसणा जूसिए जत्तपाणं पडियाइक्खिया जाव कालं अणवकंखमाणा विहरिस्सामो सव्वं पाणाइवायं पच्च स्काइस्सामो जाव सव्वं परिग्गहं पच्चस्काइस्सामो तिविहं तिविहे णं मा खलु ममघाए किंचिवि जाव आसंदीपेढियाउ पच्चारुहित्ता एते तहा कालगयाइ किं वत्तव्वंसिया सम्मं कालगयाइ वत्तव्वं सिया ते पाणावि वुच्चंति जाव अयंपि जेदे से णो णेयाउए जवइ ॥ १८ ॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेठे. कोइ एक श्रमणोपासक एवा होय, तेणे एवुं पूर्वे व्रत उच्चारवानुं वचन कह्युं होय के, निश्चे अमे मुंम थइने गृहस्थावास थका यावत् अ

के०) तेणें तथा प्रकारे काल कीधो, तो तेनें केवा कहियें, ते रूडी पेरें मरण पा म्या कहियें किंवा नहीं ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या के, (सम्मंकालगयाविवत्तव्वंसिया के०) ते सम्यक् प्रकारें रूडी रीतें कालगत थया एम कहियें, तेवारें श्रीगौतम बोल्या के, ए रीतें जेणें काल कीधो, तेनें अवश्य देवलोकनें विषे उत्पत्ति जाणीयें छैयें केमके, रूडे परिणामें जे मरण पामे ते देव थाय. (तेपाणाविवुच्चंति के०) त्यां थका तेने प्राण पण कहियें, (तेतसाविवुच्चंति के०) तेने त्रस पण कहियें, ते महाकाय कहीयें, तेनें चिरस्थितिक कहियें, तो ए कारणे (तेबहुतरगापाणा के०) ते घणा जीव के, (जेहिंसमणोवासगस्ससुप च्चखायंजवइ के०) जेने विषे श्रावकने रूडूं पच्चरकाण होय. अने ते थोडा जीव, के जेने विषे श्रावकनें पच्चरकाण नथी. एम ते श्रावकनें महोटी त्रसकाय थकी उपशमछे ते पच्चखाण राखवानो उद्यमछे तेने विराधवानी विरतिछे. एवा श्रावकनें तमे कहोछो के, एवो कोइ पर्याय नथी के, जेणें करी श्रावकनें एक पण प्राणातिपातनुं पच्चरकाण थाय! ते तमारुं वचन न्यायमार्गेनुं नथी ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—एवं दृष्टांतत्रयेण निर्दोषां देशविरतिं प्रसाध्य पुनरपि तद्गतमेव विचारमा ह । जगवान् गौतमउदकं प्रत्याह । शांतिप्रधानाएके श्रमणोपासकाजवंति तेषां च इ दमुक्तपूर्वं जवति । यथा न खलु वयं शक्नुमः प्रव्रज्यां ग्रहीतुं किंतु ? वयं चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषु संपूर्णं पौषधं सम्यगनुपालयंतोविहरिष्यामः तथा स्थूलप्राणातिपातमृषावादा दत्तादानमैथुनपरिग्रहं प्रत्याख्यास्यामः । द्विविधं कृतकारितन्नेदात् श्राद्धस्यानुमतेरनिषिद्ध त्वात्त्रिविधं मनोवचनकायैः मा निषेधे पौषधस्यस्य मम कृते किंचित्पचनपाचनादिकं मा कार्ष्ट परेण मा कारयत सर्वथाऽसंजविनोवस्तुनोऽनुमतेरपि निषेधः तत्रापि प्रत्याख्यास्यामः ते श्रावकाअनुक्त्वाऽपीत्वाऽस्नात्वा च पौषधयुतत्वादासंदीपीठिकातः प्रत्यारुह्याऽवतीर्य सम्यक् पौषधं कृत्वा कालं कृतवंतः ते किं सम्यक्कृतकालाउतासम्यक् ? एवं पृष्टैर्निर्ग्रंथैरव श्यमेवं वक्तव्यं ते सम्यक्कालगता । एवं कालगतानामवश्यंजावी देवलोकोत्पादः तत्रोत्प न्नाश्च ते त्रसाएव ततश्च कथं निर्विषयता प्रत्याख्यानस्येति ॥ १७ ॥

॥ टीका—तदेवं दृष्टांते प्रत्याख्यातृविषयगतोगृहस्थयतिपुनर्गृहस्थन्नेदेन पर्यायन्नेदः प्रदर्शितः । तृतीयेतु दृष्टांते परतीर्थिकसाधुजावोनिष्क्रमणन्नेदेन संजोग द्वारेण पर्यायन्नेद व्यवस्थापितइति । तदेवं दृष्टांतप्राचुर्येण निर्दोषां देशविरतिं प्रसाध्य पुनरपि तद्गतमेव विचारं कर्तुकामआह । (जगवंचणमुदाहुरित्यादि) पुनरपि गौतमस्वाम्युदकं प्रतीदमा ह । तद्यथा बहुनिः प्रकारैस्त्रससन्नावः संजाव्यते ततश्चाशून्यस्तैः संसारस्तदशून्यत्वे

य कालं दीर्घमनवकांक्षमाणाविहरिष्यामः । इदमुक्तं नवति । न वयं दीर्घकालं पौषधादि कं व्रतं पालयितुं समर्थाः किंतु? वयं सर्वमपि प्राणातिपातादिकं प्रत्याख्याय संलेखनया संलिखितकायाश्चतुर्विधाहारपरित्यागेन जीवितं परित्यक्तुमलमिति । एतत्सूत्रेणैव दर्शयति (सव्वपाणाइवायमित्यादि) सुगमं । यावत्ते तथा कालगताः किं वक्तव्यमेतत्स्यात्सम्यक् ते कालगताइत्येवं पृष्टानिर्ग्रंथाएतदूचुर्यथा ते सन्मनसः शोननमनसस्ते कालगताइति तेच सम्यक् संलेखनया यदा कालं कुर्वंति तदाऽवश्यमन्यतमेषु देवलोकेपूत्पद्यंते तत्र चोत्पन्नायद्यपि ते व्यापादयितुं न शक्यंते तथापि त्रसत्वात्ते श्रावकस्य त्रसवधनिवृत्तस्य विषयतां प्रतिपद्यंते ॥ १७ ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा नवंति तंजहा महइच्छा म हारंना महापरिग्गहा अहम्मिया जाव डुप्पडियाणंदा जाव स वाउ परिग्गहाउ अप्पडिविरया जाव जीवाए जेहिं समणोवा सगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते ते ततो आउगं विप्पजहंति ततो नुज्जो सगमादाए डुग्गइगामिणो नवंति ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरठिइया ते बहुयरगा आयाणसोइति से महयाउ णं जस्सं तुप्ने वदह तंचेव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥ १ए ॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेडे. आ जगत् मांहे कोइ एक एवा होय, ते कहेडे. (महइच्छा के०) महोटी इच्छावाला एटले महालोनी, महाआरंनी, महापरिग्रही, अधार्मिक यावत् डुष्प्रत्यानंदी, एटले कोइनुं चुंरूं थाय तो पोतें आनंद पामे, यावत् सर्व परिग्रह थकी अविरति एटले निवर्त्या नथी. जाव जीव लगें जेनें विषे श्रमणोपासकने (आयाणसो के०) प्रथम व्रत ग्रहण प्रारंनीने मरणांत सुधी त्रस पणाने लीधे तेनो घात टंमाणोडे. हवे ते सर्वथा अविरति मनुष्यनो ते नवसंबंधी आयुष्यनो क्षय थये थके ते आयुष्य त्यागीनें (नुज्जोसगमादाए के०) वली पोताना उपार्जन करेलां कर्मो लेइनें (डुग्गइगामिणोनवंति के०) दौर्गतिगामि थाय, एटले शुं कह्युं? तोके, जे महारंनी, महापरिग्रही होय, ते नरकादिक डुर्गतियें जाय. त्यां उतां तेने प्राण पण बोलियें, अने त्रस पण बोलियें, ते महाकायवाला कहियें, तेनें घणी स्थिति होय, एम पण कहियें, ते घणा जीवनी त्रस जाति पणानें पामे. माटें तेनो विनाश करवाने विषे श्रावकने रूडुं पच्चरकाण होय. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ए कारणे तमारुं बोलवुं न्याय मार्गेनुं नथी॥१ए॥

एगार पणुं आदरी शकवाने समर्थ नथी. चतुर्दशी, अष्टमी, त्रण चोमासानी पूर्णिमा, तथा महाकल्याणिक तिथिने विषे पौषध जइ न शकियें अमारे छेल्ले कालें मरणने अंते शरीर पातखुं पाडवा संलेषणाने विषे जूसणा एटले आत्मा स्थापवो, स्थापीने भात, एटले अन्न पाणी निषेधिने यावत् मरणकाल अण वांछता मरणा निलाषा अण करता विचरीशुं यावत् सर्व प्राणातिपात, सर्व मृषावाद, सर्व अदत्तादान, सर्व मैथुन, सर्व परिग्रह, त्रिविध त्रिविध प्रकारें पच्चरकीशुं, तथा अमारे अर्थें कांइ पण पचन पाचनादिक म करो,म करावो,एवुं पण पच्चरकाण करीशुं. ते श्रावको ए रीतें अण जमते,पाणी अणपीते, स्नानादिक अण करते, मंचक, मांची इत्यादिक थकी उतरीने ते प्रकारें काल करे. तो तेनें केवा कहियें, रूडा मरणना करनार कहियें के, माठा मरणना करनार कहियें? ते वारें निर्ग्रंथ बोल्या, ते रुडी पेरें कालगत थया कहेवाय, तेपाणाविवुच्चंति इत्यादिक शब्दोनो अर्थ, पूर्ववत् जाणवो. यावत् तमारुं एवुं बोलवुं, ते न्याय मार्गनुं नथी. त्यां सुधी जाणवुं. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–पुनः श्राद्धोद्देशेन प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । गौतमः प्राह । संति विद्यंते एके केचन श्रमणोपासकास्तेषामेतडुक्तपूर्वं नवति । यथा न शक्नुमोवयं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं नापि चतुर्दश्यादिषु सम्यक् पौषधं पालयितुं वयं चापश्चिमया संलेखनक्षपणया क्षपितकायाः । यदिवा संलेखनाजोषणया सेवनया जोषिताः सेविताउत्तमार्थगुणैरेवंनूताः संतोनक्तपानं प्रत्याख्याय कालं दीर्घकालमनवकांक्षमाणाविहरिष्यामः । कोर्थः? न खलु वयं दीर्घकालं व्रतं पालयितुं समर्थाः किंतु वयं सर्वमपि प्राणातिपातादिकं प्रत्याख्याय संलेखनया संलिखितकायाश्चतुर्विधाहारत्यागेन जीवितं त्यक्तुं समर्थाः । इति सूत्रेणैवाह । (सव्वंपाणाइवायमित्यादि) यावत्ते तथा कालगताः किं वक्तव्यमेतत्स्यात् सम्यक् ते कालगताइति पृष्टानिर्ग्रंथाआहुर्यथा ते सन्मनसः शोननचित्ताः कालगता इति । ते कालं कृत्वा सुरलोकेपूत्पद्यंते तत्र चोत्पन्नायद्यपि हंतुं न शक्यंते तथापि त्रसत्वात्ते श्राद्धस्य त्रसवधनिवृत्तिप्रत्याख्यानस्य विषयाः स्युः ॥ १८ ॥

॥ टीका–पुनरन्यथा श्रावकोद्देशेनैव प्रत्याख्यानस्य विषयं प्रदर्शयितुमाह । (नगवं चणमित्यादि) गौतमस्वाम्येवाह । तद्यथा संति विद्यंते एके केचन श्रमणोपासकास्तेषां चैतडुक्तपूर्वं नवति । तद्यथा । खलु न शक्नुमोवयं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं नापि चतुर्दश्यादिषु सम्यक् पौषधं पालयितुं वयं चापश्चिमया संलेखनक्षपणया क्षपितकायायदिवा संलेखनाजोषणया सेवनया जोषिताः सेविताउत्तमार्थगुणैरित्येवंनूताः संतोनक्तमानं प्रत्याख्या

सुशीलाः साधवः एते च सामान्यश्रावकास्तेपि त्रसेष्वेव देवेषूत्पद्यंते ततोपि न निर्विषयं प्रत्याख्यानं ॥ २० ॥

॥ टीका–पुनरन्येन प्रकारेण प्रत्याख्यानस्य विषयं दर्शयितुमाह । (ज्ञगवंचणंउदाहुरित्यादि) पूर्वोक्तेज्योमहारंजपरिग्रहवदादिज्योविपर्यस्ताः सुशीलाः सुप्रत्यानंदाः साधवइत्यादि सुगमं । यावत् (सुणेयाउएजवइत्ति) । एते च सामान्यश्रावकास्तेपि त्रसेष्वेवान्यतरेषु देवेषूत्पद्यंते ततोपि न निर्विषयं प्रत्याख्यानमिति ॥ २० ॥

ज्ञगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा ज्ञवंति तं जहा अप्पेछा अप्पारंज्ञा अप्पपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव एगच्चाउ परिग्गहाउ अप्पडिविरया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते ते तउ आउगं विप्पजहंति ततो ज्जुज्जो सगमादाए सग्गइगामिणो ज्ञवंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए ज्ञवइ ॥ ११ ॥

अर्थ–वली गौतम स्वामी कहेछे. निश्चें आ जगत् मांहे कोइ एक मनुष्य, एवा होय, ते कहेछे. अल्पइछा एटले अल्पलोजी, अल्पारंजी, अल्पपरिग्रही, धार्मिक धर्मानुग, प्राणातिपातादिक थकी एकपदें विरति, अनें एकपदें अविरति, ए कारण माटें ते विरताविरत कहेवाय. जेनें विषे श्रमणोपासकनें व्रतग्रहणकाल प्रारंजी मरणांतसुधी जीवघातरूप दंमनो निषेधछे. ते विरताविरत पुरुष, ते जव संबंधी आयुष्य छांमीनें, पछी पोतानां पूर्वोपार्जित शुज्ज कर्म लेइने, सज्ञतियें जाय. ते त्यां छतां प्राण पण कहेवाय, त्रस पण कहेवाय, इत्यादिक पाठ सर्व, पूर्ववत् जाणवो. ज्यां सुधी तमारुं बोलवुं न्यायमार्गनुं नथी. ॥ २१ ॥

॥ दीपिका–किंच । सुगममिदं सूत्रं एते चाल्पेछादिविशेषणाअवश्यं प्रकृतिज्ञद्रतया सज्ञतिगामित्वेन त्रसेषूत्पद्यंते ॥ २१ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (ज्ञगवंचणंउदाहुरित्यादि) सुगमं यावत्सुणेयाउएत्ति । एते चाल्पेछादिविशेषणविशिष्टाअवश्यं प्रकृतिज्ञद्रतया सज्ञतिगामित्वेन त्रसकायेषूत्पद्यंतइति इष्टव्यं ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—पुनः प्रत्याख्यानविषयमाह । न प्रथमव्रतग्रहणं ततआरभ्य मरणांतं या वद्दंमोनिक्षिप्तस्त्यक्तः । तेच तस्माद्भवात्स्वायुषं जहंति त्यक्त्वा त्रसजीवितं स्वकं पाप मादाय गृहीत्वा डुर्गतिगामिनः स्युः । महारंभपरिग्रहत्वात्ते मृतानरके नारकत्रसत्वेनोत्प न्नाः सामान्येन प्राणिनउच्यंते विशेषतस्तु त्रसामहाकायाइत्यादि पूर्ववत् ॥ १ए ॥

॥ टीका—पुनरन्यथा प्रत्याख्यानस्य विषयमुपदर्शयितुमाह । (भगवंचणंउदाहुरित्यादि) भगवानाह । एके केचन मनुष्याएवंभूताभवंति । तद्यथा महेच्छामहारंभामहापरिग्रहा इत्यादि सुगमं । यावद्येर्येषु वा श्रमणोपासकस्यादीयतइत्यादानं प्रथमव्रतग्रहणं ततआ रभ्याऽऽमरणांताद्दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोभवति। तेच तादृग्विधास्तस्माद्भवात्कालात्स्वा युषं विजहंति त्यक्त्वा त्रसजीवितं ते भूयः पुनः स्वकर्म स्वकृतकिल्बिषमादाय गृही त्वा डुर्गतिगामिनोभवंति एतडुक्तं भवति । महारंभपरिग्रहत्वात्ते मृताः पुनरन्यतरपृथिव्यां नारकत्रसत्वेनोत्पद्यंते तेच सामान्यसंज्ञया प्राणिनोविशेषसंज्ञया त्रसामहाकायाः चिर स्थितिकाइत्यादिपूर्ववद्यावत् (णोणेयाउएत्ति) ॥ १ए ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तंजहा अणारंभा अ परिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव सवाउ परिग्गहाउ पडिवि रया जाव जीवाए जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आम रणंताए दंमे णिक्खित्ते ते तउ आउगं विप्पजहंति ते तउ भुज्जो सग मादाए सग्गइगामिणो भवंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउ ए भवइ ॥ ७० ॥

अर्थ—वली एहिज अर्थ दीपाववा भणी, गौतम स्वामी कहेछे के, आ जगत् मांहे को इ एक मनुष्य, एवा होय के, निरारंभी, निःपरिग्रही, धार्मिक धर्मनीज अनुमोदना क रनार, इत्यादिक त्यां सुधी कहेवुं, ज्यां सुधी सर्वपरिग्रह थकी विरति एटले निवृत्त्याछे सर्व विरतिना पालनार, जावजीव सुधी, जेने विषे श्रमणोपासकनें प्रथम व्रतग्रहण का ल प्रारंभी मरणांतसुधी घातनो निषेध कस्योछे. ते तेवा सर्वविरति वाला मनुष्य, भव सं बधीनुं आयुष्य छांमीनें पोतानां पूर्वोपार्जित शुन कर्म लेइनें सद्गतिगामि थाय. ते त्यां छता प्राण पण कहेवाय. इत्यादिक बीजो पाठ, सर्व पूर्ववत् जाणवो. ए कारणें ए तमारुं वचन रूडुं न्याय मार्गनुं नथी. ॥ ७० ॥

॥ दीपिका—पुनः प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । पूर्वोक्तेभ्योमहारंभादिभ्योविपरीताः

तेच नो बहुसंयताः क्रियासु नो बहुप्रतिविरताः सर्वजंतुवधान्न निवृत्ताः सत्यामृषाणि वा क्यानि परेषु एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रयुंजंति (एवंविप्पडिवेदेंति) क्वचित्पाठः एवं विविधप्रकारेण प्रतिवेदयंति ज्ञापयंति । यथा । अहं न हंतव्योऽन्ये हंतव्याः ।अहं नाज्ञापयितव्योन्येऽज्ञापयितव्याइत्यादीन्युपदेशवाक्यानि ददति ।एवंभूतास्ते कामासक्ताः किंचिदज्ञानतपःपराः कालं कृत्वाऽन्यतरेष्वासुरीयेषु स्थानेषु किल्बिषिकेषु असुरदेवाधमेषूत्पद्यंते अथवा प्राण्युपघातकोपदेशदातारोभोगमूर्छिताअसूर्येषु नित्यांधकारेषु किल्बिषप्रधानेषु नरकस्थानेषु समुत्पद्यंते ते च देवानारकास्त्रसत्वं न व्यभिचरंति तेषुच यद्यपि द्रव्यप्राणातिपातो न संभवति तथापि भावप्राणातिपातस्य विरतेर्विषयतां प्रतिपद्यंते ततोदेवलोकाच्च्युतान रकाउद्धृतावा क्लिष्टपंचेंद्रियतिर्यक्षु हीनमनुष्येषुवा एडमूकतया तमोरूपतया अंधबधिरतया प्रत्यायांति ते चावस्थाद्वयेपि त्रसत्वं न व्यभिचरंति ततोन निर्विषयं प्रत्याख्यानं एषु च द्रव्यप्राणातिपातोपि संभवति ॥ २१ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (भगवंचणंउदाहुरित्यादि) गौतमस्वाम्येव प्रत्याख्यानस्य विषयं दर्शयितुमाह । एके केचन मनुष्याएवंभूताभवंति तद्यथा अरण्ये भवाआरण्यकास्तीर्थिकविशेषास्तथा आवसथिकास्तीर्थिकविशेषाएव तथा ग्रामनिमंत्रिकास्तथा (कण्हुईरहस्सियात्ति) क्वचित्कार्ये रहस्यकाः क्वचिद्रहस्यकाएते सर्वेपि तीर्थिकविशेषास्तेच नो बहुसंयताहस्तपादादिक्रियासु तथा ज्ञानावरणीयावृतत्वान्न बहुविरताः सर्वप्राणभूतजीवसत्वेभ्यस्तत्स्वरूपापरिज्ञानात्त द्वधादविरताइत्यर्थः । ते तीर्थिकविशेषावंहसंयताः स्वतो विरताआत्मना सत्यामृषाणि वाक्यान्येवमिति वक्ष्यमाणरीत्या वियुंजंति । (एवं विप्पडिवेदेंति) क्वचित्पाठोस्यायमर्थः। एवं विविधप्रकारेण परेषां प्रतिवेदयंति तानि पुनरेवंभूतानि वाक्यानि दर्शयति । तद्यथा । अहं न हंतव्योऽन्ये पुनर्हंतव्याः तथाहं नाज्ञापयितव्योऽन्ये पुनराज्ञापयितव्या इत्युदीरितान्युपदेशवाक्यानि ददति । ते चैवमेवोपदेशदायिनः स्त्रीकामेषु मूर्छितागृद्धाअध्युपपन्नायावद्वर्षाणि चतुःपंचानिवा षड्दशमानि वा तेऽप्यल्पतरं वा प्रभूततरंवा कालं भुक्त्वोत्कटान्भोगभोगास्तांस्ते तथाभूताः किंचिदज्ञानतपःकारिणः कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेष्वासुरीयेषु स्थानेषु किल्बिषिष्वसुरदेवाधमेषु स्थानेषूपपत्तारोभवंति यदि प्राण्युपमर्दोपदेशदायिनोभोगाभिलाषुकाअसूर्येषु नित्यांधकारेषु किल्बिषप्रधानेषु नरकस्थानेषु ते समुत्पद्यंते तेच देवानारकावा त्रसत्वं न व्यभिचरंति तेषु च यद्यपि द्रव्यप्राणातिपातोन संभवति तथापि ते भावतोयः प्राणातिपातस्तद्विरतेर्विषयतां प्रतिपद्यंते ततोपि देवलोकाच्च्युतानरकोद्धृताः क्लिष्टपंचेंद्रियतिर्यक्षु तथाविधमनुष्येषु चैडमूकतया समुत्पद्यंते तथा तमोरूपत्वापत्तिमंधबधिरतया प्रत्यायांति

भगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तं जहा आरणिया आवसहिया गामणियंतिया कण्हुई रहस्सिया जेहिं समणोवा सगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते भवइ णो बहु संजया णो बहुपडिविरया पाण भूय जीव सत्तेहिं ते सतो अप्पणा सच्चा मोसाइं एवं विप्पडिवेदेंति अहं ण हंतव्वो अन्ने हंतव्वा जाव कालमासे कालं किच्चा अन्नयराइं आसुरियाइं किब्बिसियाइं जाव उववत्तारो भवति तउ विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमुयत्ताए तमोरुवत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए भवइ ॥२१॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेछेके, आ जगत्मांहे कोइएक मनुष्य एवा होय के, आरणिक एवुं तीर्थविशेष तेनें विषे रहेनार ते आरण्यवासी, तथा कंदमूलफलाहारी, वृक्षनें मूलें वसनार एवा पुरुष, तापस विशेष जाणवा. (आवसहिया के०) वली कोइएक पानडानी पर्णकूटी करी रहेनारा, ग्राम निमंत्रिक एटले आजीविका निमित्तें ग्राम समीपें वसनारा, (कण्हुईरहस्सिया के०) कोइएक कार्यनें विषे रहस्यना करनार, इत्यादि तापस विशेष, जेनें विषे श्रमणोपासकनें व्रतग्रहण प्रारंभीने मरणांत सुधी हिंसानो निषेधछे. हवे ते तीर्थिक केवाछे? तोके घणा संयत नथी, कारणके तेमांहे सम्यक् ज्ञान नथी; ते माटें ते पूर्ण संयमनें जाणता नथी, तथा प्राण, भूत, जीव, अने सत्वनें विषे जेने घणुं व्रतिपणु नथी. ते पोतें पोता थकी एवी सत्यामृषा भाषा प्रयुंजीनें लोक आगल आवी रीतें बोले. ते कहेछे. मनें ब्राह्मण पणाने लीधे दंमादिकें करी हणवो नहीं. बीजा शूद्रादिकोने हणवा. इत्यादिक पूर्वे अध्ययननें विषे कह्युंछे, ते सर्व अंहीं जाणी लेवुं. एवा मनुष्य, कालमासें काल करीनें बालतपश्चर्यानें योगें अनेरा आसुरिय किल्विषीयादिकनी गतिने विषे जाय. जे कारण माटें ते जीवघातना उपदेशना देनार, भोगाभिलाषी, तापसो, नित्यांधकार सहित एवी नरकादिक गतिमांहे जाय. वली बालतपनें योगें तेनें प्रथमतो पूर्वोक्त नीचगति प्राप्त थाय, ते वार पछी वली ते आसुरीयादिक गतिथकी आयुष्यने क्षयें चवीनें वली वली बेहेरा, मूगा, एवा तमोरूप अंध मनुष्य थाय. एवा छता तेनें त्रस कहियें, तेने प्राण कहियें, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. इत्यादिक यावत् ए तमारुं वचन न्यायमार्गेनुं नथी ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—किंचान्यत् एके मनुष्याएवंभूताः स्युः आरण्यिकाआरण्यवासिनः आवसथिकाग्रामनिमंत्रिकाः (कण्हुईरहस्सिया) क्वचित्कार्ये रहस्यकाः एते सर्वेपि तीर्थिकविशेषाः

चिंतनमिह त्वपरेण व्यापाद्यमाने प्राणिन्यनुमोदनमिति॥ २६ ॥ तदेवं यत्र स्वयं कृतका रितानुमतयः प्राणिघाते क्रियमाणे विद्यंते क्लिष्टाध्यवसायस्य प्राणातिपातश्च तत्रैव कर्मो पचयोनान्यत्रेति दर्शयितुमाह ।(एएउइत्यादि) तुरवधारणे।एतान्येव पूर्वोक्तानि त्रीणि व्य स्तानि समस्तानि वा आदानानि यैर्दुष्टाध्यवसायव्यपेक्षैः पापकं कर्मोपचीयतइति । एवंच स्थिते यत्र कृतकारितानुमतयः प्राणिव्यपरोपणं प्रति न विद्यंते। तथा नावशुध्या अरक्त द्विष्टबुध्या प्रवर्तमानस्य सत्यपि प्राणातिपाते केवलेन मनसा कायेन वा मनोनिसंधि रहितेनोनयेन वा विशुद्धबुद्धेर्नकर्मोपचयस्तदनावाच्च निर्वाणं सर्वदःखोपरतिलावमनि गबत्यानिमुख्येन प्राप्नोतीति ॥ २७ ॥ नावशुध्या प्रवर्तमानस्य कर्मबंधोन नवतीत्य त्रार्थे दृष्टांतमाह । (पुत्तपियाइत्यादि) पुत्रमपत्यं पिता जनकः समारच्य व्यापाद्याहा रार्थं कस्यांचित्तथाविधायामापदि तदुद्धरणार्थमरक्तद्विष्टोऽसंयतोगृहस्थस्तत्पिशितं भुं जानोपि चशब्दस्यापिशब्दार्थत्वादिति । तथा मेधाव्यपि संयतोपीत्यर्थः । तदेवं गृहस्थो निक्कुर्वा शुद्धाशयः पिशिताश्यपि कर्मणा पापेन नोपलिप्यते नाश्लिष्यतइति। यथाचा त्र पितुः पुत्रं व्यापादयतस्तत्रारक्तद्विष्टमनसः कर्मबंधो न नवति तथान्यस्याप्यरक्तद्विष्टांतः करणस्य प्राणिवधे सत्यपि न कर्मबंधोनवतीति ॥ २८ ॥

मणसा जे पउस्संति,चित्तं तेसिं ण विज्जइ ॥ अणवज्जमतहं तेसिं, ण ते संवुम्रचारिणो ॥२ए॥ इच्चेयाहिं य दिठीहिं, सातागारवणिस्सिया ॥ स रणंति मन्नमाणा, सेवंती पावगं जणा ॥ ३० ॥ जहा अस्साविणिं णावं, जाइ अंधो डरूहिया ॥ इछई पारमागंतुं, अंतराय विसीयई ॥ ३१ ॥ एवं तु समणा एगे, मिछदिठी अणारिया ॥ संसारपारकंखी ते, संसारं अणुपरियट्टंतित्तिबेमि ॥ ३२ ॥ इति प्रथमाध्ययने द्वितीयोद्देशकः ः॥

अर्थ–हवे एने उत्तर कहेछे. मणसाजे पउस्संतिके० जे कोई पुरुप कोईक कारण उत्पन्न थया थकी मने करी द्वेष करे, चित्ततेसिंणविज्जइ के० तेनुं चित्त शुद्ध केवी री ते थशे ? अर्थात् नहीं थशे; कारणके ते दर्शनीये एम कह्युं के, अणवज्जमतहंतेसिं के० एकला मनना व्यापार थकी कर्म न लागे. ते एवुं तेनुं बोलवुं मिथ्याछे. जेमाटे ते एकले मनने अशुद्धपणे णतेसंवुमचारिणो के० ते संवृतचारी नहीं एटले संवुद्धचारी थ को संवरमां प्रवर्त्तनार नथी. केमके कर्मबंधनी वेलायें मुख्य कारणतो मनजछे. माटे जो तेने व्यापारेज कर्मबंध न थाय, तो पछी बीजा कया कारणे कर्मबंध थाय? ते मा टे पुत्रंपिता ए दृष्टांत योग्य नथी. ॥ २ए ॥ हवे ए क्रियावादीने अनर्थपरंपरा देखाडे

ते चोनयोरप्यवस्थायास्त्रसत्वं न व्यभिचरंति । इत्यतो न निर्विषयं प्रत्याख्यानमेतेषु च इव्यतोपि प्राणातिपातः संभवतीति ॥ २२ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया पाणा दीहाउया जेहिं समणोवा
सगस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंमे णिक्खित्ते भवइ ते
पुव्वामेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति ते
पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरहिइ
या ते दीहाउया ते बहुयरगा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खा
यं भवइ जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २३ ॥

अर्थ—वली भगवंत श्रीगौतम स्वामी बोल्या के, आ जगत्मांहे एकेक प्राणी एवाछेके, जे श्रावक पच्चखाण करेछे, ते थकी ते प्राणी दीर्घायुवालाछे; ते देवता, नारकी, तिर्यंच, अने मनुष्यपणे परलोकमांहे उपजे, तेने प्राण पण कहियें, तेने त्रस पण कहिये, तेने मोहोटी काया ना धणी पण कहिये, तेने घणी स्थिति कहिये. तेने घणा प्रकारना जीव कहियें, जेने विषे श्रमणोपासकने व्रतग्रहण प्रारंभीने मरणांतसुधि विनाशवानो निषेधछे, अने ते श्रावक तो, तेनी पूर्वेंज काल करे. ते कारण माटें ते श्रमणोपासकने, तेने विनाशवानो निषेधछे, परंतु ते दीर्घायुत्रसने विषे प्राणातिपात विरमणव्रत शामाटें पले नही? तमे जे कहोछे के, एवो पर्याय कोइ नथी के, जेणे करी श्रावक पच्चखाण करे. ते तमारुं वचन न्यायमार्गेनुं नथी. ॥ २३ ॥

॥ दीपिका—अथ प्रकटमेव विरतिविषयमाह । भगवानाह । योहि प्रत्याख्यानं गृह्णाति तस्माद्दीर्घायुष्काः प्राणिनस्ते च नारकमनुष्यदेवाद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यंचश्च संभवंति ततः कथं निर्विषयं प्रत्याख्यानमिति ? शेषं सुगमम् ॥ २३

॥ टीका—सांप्रतं प्रत्यक्षसिद्धएव विरतेर्निर्विषयं दर्शयितुमाह । (भगवंचणंउदाहुरित्यादि) भगवानाह योहि प्रत्याख्यानं गृह्णाति तस्माद्दीर्घायुष्काः प्राणाः प्राणिनस्ते च नारकमनुष्यदेवाद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यंचश्च संभवंति ततः कथं निर्विषयं प्रत्याख्यानमिति ? शेषं सुगमं यावस्रो णेयाउए भवइ ॥ २३ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया पाणा समाउया जेहिं समणोवास
गस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंमे णिक्खित्ते भवइ ते
सममेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणा

वि वुच्चंति तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते समाउया ते बहुयरगा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चरकायं नवइ जाव णो णेयाउए नवइ ॥ २४ ॥

अर्थ—वली श्रीगौतमस्वामी कहेछे के, जे श्रावक पच्चरकाण करेछे, तेथकी आ जगत् मांहे कोइ एक प्राणी (समाउया के०) समायुष्य एटले सरखा आयुष्य वाला छे, जेनें विषे श्रमणोपासकनें प्रथम व्रत ग्रहण प्रारंनी मरणांत सुधी हिंसानो नियमछे, ते वार पछी ते समकालें काल करे, सरखा काल करीनें परलोकें उपजे तेनें प्राण पण कहियें, तेने त्रस पण कहियें, तेनें महोटी कायाना धणी कहियें, तेने घणा प्रकारें जीव कहियें, जेनें विषे श्रमणोपासकनें निषेधवानो नियमछे. एकारणें श्रावकनें पच्चरकाण केम न होय ? ते माटें ए तमारुं बोलवुं नलुं नथी ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—इदं समायुष्कसूत्रं पूर्ववत् ॥ २४ ॥

॥ टीका—एवमुत्तरसूत्रमपि तुल्यायुष्कविषयं समानयोगक्षेमत्वाद्व्याख्येयं ॥ २४ ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया पाणा अप्पाउया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंमे णिक्खित्ते नवइ ते पुव्वामेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइत्ताए पच्चायंति ते पाणा वि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते अप्पाउया ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चरकायं नवइ जाव णो णेयाउए नवइ ॥ २५ ॥

अर्थ—वली नगवंत श्री गौतम स्वामी बोल्या के, आ जगत् मांहे एकेक प्राणी एवा छे के, ते श्रावक थकी अल्प एटले थोडा आयुष्य वालाछे, जेनें आश्री श्रमणोपासकनें रूडुं पच्चरकाणछे एतावता घणा प्राणने विषे पच्चरकाणछे अने थोडा प्राणने विषे अपच्चरकाणछे. एतावता जाव जीव सुधी जे जीव ते नियम करनार श्रावक थकी अल्पायुष्यवालाछे ते ज्यां सुधी मरण न पामे, त्यां सुधी त्रस आश्री ते श्रावकनें पच्चरकाणछे, ते कदापि मरण पामीनें फरी तेहिज त्रसकायमां उपजे तेवारें ते पच्चरकाण आगल पण पले. ए कारणें निर्विषय पच्चरकाण केम कहियें ? माटें तमारुं वचन अयुक्तछे. अहीं बीजा रही गयेलां पदोनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २५ ॥

॥ दीपिका—इदमल्पायुष्कसूत्रमपि स्पष्टं नवरं यावत्ते न म्रियंते तावत्प्रत्याख्यानस्य विषयः त्रसेषु वा समुत्पन्नाः संतोविषयतां प्रतिपद्यंते ॥ २५ ॥

॥ टीका—तथाल्पायुष्कसूत्रसिद्धमेव । इयांस्तु विशेषोयावत्ते न म्रियंते तावत्प्रत्याख्यानस्य विपयस्त्रसेषु वा समुत्पन्नाः संतोविषयतां प्रतिपद्यंतइति ॥ २५ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा भवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुवं भवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंमे भवित्ता जाव पवइत्तए णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दसठमुद्दिठपुसमासिणीसु पडिपुसं पोसहं अणुपालित्तए णो खलु वयं संचाएमो अपछिमं जाव विहरित्तए वयंचणं सामाइयं देसावगासियं पुरठा पाईणं पडिणंवा दाहिणं उद्दीणं एतावता जाव सवपाणेहिं जाव सवसत्तेहिं दंमेहिं णिखित्ते सवपाणभूयजीवसत्तेहिं खेमं करेहि अहमंसि तठ आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिखित्ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहित्ता तठ आरेणं चेव जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो जाव ते सुपच्चायंति जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चखायं भवइ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से ॥ २६ ॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी बोल्या के,आ जगत् मांहे एकेक श्रमणोपासक एवा होयछे के जेनें पूर्वें एवा व्रतनो उच्चार होयछे के,निश्चें अमें मुंम थइ आगारवास छांमीनें चारित्र लइ शकता नथी.निश्चें अमे चतुर्दशी,अष्टमी,उद्दिष्ट एटले कल्याणिक तिथि,अने पूर्णमासी एटले चोमासानी त्रण पुन्यम ते दिवसें प्रतिपूर्ण पौषध पाली शक्ता नथी (णोखलु वयंसंचाएमो के०) निश्चें करी अमे समर्थ नथी,शुं करवाने समर्थ नथी? (अपछिमंजावविहरित्तए के०) तोके अपश्चिम संलेषणा करी अणसण पणु उच्चरी शकवाने समर्थनथी (वयंचणंसामाइयंदेसावगासियंपुरठा के०) किंतु अमे सामायक तथा देशावकाशिक ए व्रत पालशुं, एटले जावजीव सुधी दिनप्रत्यें दिशाउनुं परिमाण करीशुं. तथा पुरठा एटले प्रभातें पच्चरकाणने अवसरें(पाईणं के०) पूर्वदिशायें,पश्चिम दिशायें,दक्षिण दिशायें,उत्तर दिशायें,ए चारे दिशायें, अमुक अमुक भूमि सुधी जावुं, उपरांत भूमियें जवानु पच्चरकाण करीशुं,एवुं व्रत पालीशुं, एतावता जेटलुं दिशिनुं परिमाण कीधुंछे ते दिशि थकी उपरांत

नी नूमिमांहे जेटला प्राणीउछे यावत् सर्व सत्वछे तेनें घात करवानो त्याग करीशुं. एटले ते उपरांत सर्व प्राण, नूत, जीव, अनें सत्वछे, अर्थात् जे कांइ त्रस, अनें स्थावर प्राणीयोछे तेनें (खेमंकरे के०) तेनी दया पालीशुं. (अहमंसितछआरेणंजेतसापाणा के०) ते नूमिमांहे पण वली जे त्रस प्राणीयोछे तेनें आश्री ते श्रमणोपासकें मरणांत सुधी तेनो दंम निषेध्योछे ते त्रस जीव त्यांथी पोतानुं आयुष्य त्यागीने वली तेहिज नूमिने विषे त्रसप्राणमांहे आवी उपजे एटले जेनें विषे श्रमणोपासकनें पच्चरकाण होय. जे कारण माटें त्यां जेटला त्रस जीवछे तेनें विषे ते श्रावकनें मरणांत सुधी दंमनो निषेध छे ते कारणें ते श्रावकने रूडुं पच्चरकाण कहियें. ते माटें ए तमारुं वचन रूडुं नथी. ए प्रथमनंग थयो. ए रीतें वली, वीजा आठ नंग आगल कहेछे. ॥ २६ ॥

॥दीपिका–पुनः श्रावकाणां दिग्व्रताश्रयेण प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । सुगमं नवरं (देसावगासियंत्ति) पूर्वगृहीतस्य दिग्व्रतस्य योजनशतादिकस्य यत्प्रतिदिनं संक्षिप्तयोजनगतादियानं करोति तद्देशावकाशिकमुच्यते । तथाहि । पुरन्नापायीणमिति । (पुरन्नात्ति) प्रातरेव प्रत्याख्यानावसरे दिगाश्रितमेवंनूतं प्रत्याख्यानं करोति यथा प्राचीनं पूर्वाभिमुखं पूर्वदिशि एतावन्मयाऽद्य गंतव्यं प्रतीचीनं पश्चिमायां दिशि दक्षिणस्यामुदीच्यामुत्तरस्यां एतावद्गंतव्यं एवं प्रत्यहं प्रत्याख्यानं करोति तेन च व्रतेन गृहीतपरिमाणे देशे ये आरेण त्रसाः येषु श्रावकस्यादानतः प्रथमव्रतादारच्यामरणांतं दंमं त्यक्तं ते त्रसाः स्वायुष्कं परित्यज्य तत्रैव गृहीतमानदेशएव त्रसत्वेन प्रत्यायांति गृहीतपरिमाणदेशे त्रसायुष्कं परित्यज्य त्रसेष्वेवोत्पद्यंते तेषु श्राद्धस्य सुप्रत्याख्यानं स्यादन्यथापि त्रसत्वसद्भावादिति । शेषं सुगमम् ॥ २६ ॥

॥ टीका–पुनरपि श्रावकाणामेव दिग्व्रतसमाश्रयणतः प्रत्याख्यानस्य विषयं दर्शयितुमाह. । (नगवंचणमित्यादि) सुगमं यावत् वयंणंसामाऽयं देशावकासियंति । देशोवकाशोदेशावकाशः तत्र नवं देशावकाशिकं । इदमुक्तं नवति । पूर्वगृहीतस्य दिग्व्रतस्य योजनशतादिकस्य यत्प्रतिदिनं संक्षिप्ततरं योजनगव्यूतिपत्तनगृहमर्यादादिकं परिमाणं विधत्ते तद्देशावकाशिकमित्युच्यते । तदेव दर्शयति । (पुरन्नापायीणमित्यादि) पुरछित्ति प्रातरेव प्रत्याख्यानावसरे दिगाश्रितमेवं नूतं प्रत्याख्यानं करोति तद्यथा प्राचीनं पूर्वाभिमुखं प्राच्यां दिश्येतावन्मयाऽद्य गंतव्यं तथा प्रतीचीनं प्रतीच्यामपरस्यां दिशि तथा दक्षिणानिमुखं दक्षिणस्यामेवोदीच्यां दिश्येतावन्मयाऽद्य पंचयोजनमात्रं तदधिकमूनतरं वा गंतव्यमित्येवंनूतं सप्रतिदिनं प्रत्याख्यानं विधत्ते तेनच गृहीतदेशावकाशिकेनोपास

केन सर्वप्राणिन्योगृहीतपरिमाणात्परेण दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोनवति ततश्चासौ श्रावकः सर्वप्राणभूतजीवसत्वेषु क्षेमंकरोहमस्मिन्नित्येवमध्यवसायी नवति तत्र गृहीतपरिमाणे देशे ये आरेण त्रसाः प्राणायेषु श्रमणोपासकस्य दानतइत्यादेरारन्यामरणांतो दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोनवति तेच त्रसाः प्राणाः स्वायुष्कं परित्यज्य तत्रैव गृहीतपरिमाणदेशएव योजनादिदेशान्यंतरएव त्रसाः प्राणास्तेषु प्रत्यायांति । इदमुक्तं नवति । गृहीतपरिमाणदेशत्रसायुष्कं परित्यज्य त्रसेष्वेवोत्पद्यंते ततश्च तेषु श्रमणोपासकस्य सुप्रत्याख्यानं नवत्युनयथापि त्रसत्वसन्नावात्। शेषं सुगमं यावत् णो णेयाउए नवतित्ति॥२६॥

तब आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तब आरेणं चेव जाव थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अघाए दंमे अणिक्खित्ते अणघाए दंमे णिक्खत्ते तेसु पच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स अघाए दंमे अणिक्खित्ते अणघाए दंमे णिक्खित्ते ते पाणावि वुच्चंति ते तसा ते चिरघिइया जाव अयंपि नेदे से ॥ ३७ ॥ तब जे आरेणं तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तब परेणं जे तसा थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए तेसु पच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं नवइ ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से ॥ ३८ ॥ तब जे आरेणं थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अघाए दंमे अणिक्खित्ते अणघाए णिक्खित्ते ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तब आरेणं चेव जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति तेसु समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं नवइ ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से णो ॥३९॥ तब जे ते आरेणं जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अघाए दंमे अणिक्खित्ते अणघाए णिक्खित्ते ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता ते तब आरेणं चेव जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अघाए दंमे अणिक्खित्ते अणघा

ए णिक्खित्ते ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए अण ट्ठाए ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो ॥३०॥ तत्र जे ते आरे णं थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खि त्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते तत्र आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्र परेणं जे तसथावरापाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥३१॥ तत्र जे ते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आया णसो आमरणंताए ते तत्र आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्र आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आ मरणंताए ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भव इ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो णेयाउए भवइ॥ ३२ ॥ तत्र जे ते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आया णसो आमरणंताए ते तत्र आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्र आरेणं जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अ णिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते सुपच्चायंति जेहिं समणोवास गस्स अट्ठाए अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते जाव ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो ॥३३॥ तत्र जे ते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते तत्र आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता ते तत्र परेणं चेव जे तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति ते समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो ॥ ३४ ॥

अर्थ—ते आठ भंग मांहे प्रथम भंग कहेछे. जेटली भूमिकानी अविरति छे ते मांहे जे त्रस जीवोछे ते त्रस, तेहिज भूमिका मांहे जे स्थावर जीवोछे, ते मांहे आवी उप जे. ए प्रथम भंगछे. ते सूत्रना अर्थथी कहेछे. (तत्रआरेणं के०) त्यां जेटली भूमिनी

अविरतिछे ते थकी उरे एटले आगल, (जेतसापाणा के०) जे त्रस प्राणीछे (जेहिंसम णोवासगस्स के०) जेनें विषे श्रमणोपासकें (आयाणसो के०) व्रत ग्रहण प्रारंजीनें (आ मरणंताए के०) मरणांत सुधी (दंमेणिक्खित्ते के०) घात करवानो निषेध्योछे, (तउ आउंविप्पजहंति के०) पछी ते जीव त्यां थकी आयुष्य पूर्ण करे. (विप्पजहंतित्ता के०) त्यांथी आयुष्य पूर्ण करीने (तड्आरेणंचेव के०) फरी त्यां मर्यादा वाली नूमियेंज निश्चे (जावथावरापाणा के०) यावत् जे स्थावर प्राणीछे (जेहिंसमणोवासगस्स के०) जे स्थाव रप्राणीने विषे श्रमणोपासकने (अठाएदंमेअणिक्खित्ते के०) अर्थदंम एटले अर्थें हणवा नो निषेध नथी, अने (अणठाएदंमेणिक्खिते के०) अनर्थदंम एटले, अनर्थें विनाश करवा नो निषेधछे (तेसुपच्चायंति के०) तेवा स्थावर जीवोनें विषे ते पूर्वोक्त त्रस जीव आवी उप जे. (तेहिंसमणोवासगस्स के०) तेनेविषे श्रमणोपासकने (अठाएदंमेअणिक्खित्ते के०)अ र्थदंम छांम्यो नथी(अणठाएदंमेणिक्खित्ते के०)अने अनर्थ दंम छांम्योछे (तेपाणाविवुच्चंति के०) तेनें प्राण पण कहियें, तेने त्रस पण कहियें,तेनें चिरस्थितिक पण कहियें,(जावअयं पिन्नेदे के०) यावत् ए नेदवालुं पण (से के०) ते तमारुं वचन, न्याय मार्गनुं नथी. ए प्र थम नंग कह्यो ॥२७॥ हवे बीजो नंग कहेछे. जेटली नूमिकानी अविरतिछे ते नूमिका मांहे लाज त्रस जीव होय ते मरण पामिने फरी नियम करेली नूमिका मांहे जे त्रस अने स्थावर जीवोछे तेमांहे आवी उपजे. ए बीजो नंग ॥२८॥ हवे त्रीजो नंग कहेछे. जेटली नूमिकानी अविरतिछे ते मांहेला स्थावर जीव,ते मरण पामीनें फरी तेहिज प्रत्याख्यान करेली नूमि का मांहे जे त्रस जीवोछे तेमांहे आवी उपजे ॥२ए॥ हवे चोथो नंग कहेछे. जेटली नू मिकानी अविरतिछे ते मांहेला स्थावर जीव, मरण पामीने फरी तेहिज नूमि मांहेला स्थावर मांहे आवी उपजे ॥३०॥ हवे पांचमो नंग कहेछे. जेटली नूमिकानी अविरति छे जे नियम करेली नूमिकाछे ते मांहेला स्थावर जीवछे ते मरण पामीने ते मांहे आ वीने स्थावर पणे उपजे ॥३१॥ हवे छठो नंग कहेछे. नियम करेली नूमिका मांहेला त्रस अनें स्थावर जीव,ते त्यांथी मरण पामीनें जेटली नूमिकानी अविरतिछे ते नूमि मांहेला त्रस जीवोने विषे आवी उपजे ॥ ३२ ॥ हवे सातमो नंग कहेछे- नियम करे ली नूमिका मांहेला त्रस, अनें स्थावर जीव, ते त्यांथी मरण पामीनें जेटली नूमिका नी अविरतिछे ते मांहेला स्थावर जीवोने विषे आवी उपजे ॥३३॥ हवे आठमो नंग कहेछे. नियम करेली नूमिका मांहेला त्रस अनें स्थावर जीव,ते त्यांथी मरण पामीनें फरी तेहिज नियम करेली नूमिका मांहे त्रस, अनें स्थावरने विषे आवी उपजे, एटले ए आठ नंग थया. अनें नवमो नंग प्रथम कह्यो, एम बधा मली नव नंग थया. हवे ए नवे प्रकारें करी श्रावकने पच्चरकाण देखाडेछे. ते केवी रीतें? तोके, ए नांगा मांहे ज्यां

त्रस जीव कह्याछे तेनो सर्वथा प्रकारें श्रावकने आमरणांतसुधी पञ्चरकाणछे अनें ज्यां ज्यां स्थावर बोल्याछे त्यां त्यां श्रावकें अनर्थें पञ्चरकाण कर्युंछे. तेथी तेमांहे ते जीव, उपना भणी, ए पण पञ्चरकाण थाय. एटले नवे भंग मांहे श्रावकनें पञ्चरकाण होय. ए रीतें जाणवुं. एवी रीतें घणा दृष्टांतें करी श्रावकना पञ्चरकाणनो विषय देखाड्यो.॥३४॥

॥ दीपिका—अत्र आराद्देशवर्तिनस्त्रसाआराद्देशवर्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥ अत्र आराद्देशवर्तिनस्त्रसागृहीतपरिमाणोद्देशाद्बहिर्येत्रसाः स्थावराश्च तेषूत्पद्यंते ॥ २८ ॥ आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिनोये त्रसास्तेषूत्पद्यंते ॥ २९ ॥ आराद्देश वर्तिनोये स्थावरास्तेषु तद्देशवर्तिष्वेव स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३० ॥ आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्ते परदेशवर्तिषु त्रसस्थावरेषूत्पद्यंते ॥३१॥ परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु त्रसेषूत्पद्यंते ॥ ३२ ॥ परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आराद्देशव र्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३३ ॥ परदेशवर्तिनोये त्रसास्थावरास्ते परदेशवर्तिष्वेव त्रस स्थावरेषूत्पद्यंते । एवं नवापि सूत्राणि भणितानि तत्र, यत्र यत्र त्रसास्तत्रादानशः प्रथम व्रतग्रहणादारभ्य श्रावकेणामरणांतोदंमः परित्यक्तइति योज्यं । यत्र तु स्थावरास्तत्रार्था य दंमोन निक्षिप्तोन त्यक्तः अनर्थाय च दंमः परित्यक्तइति । शेषं सुगमम् ॥ ३४ ॥

॥ टीका—एवमन्यान्यप्यष्ट सूत्राणि ड्रष्टव्यानि सर्वाण्यपि नवरं तत्र प्रथमे सूत्रे तदेवं यद्व्याख्यातं तच्चैवं भूतं तद्यथा गृहीतपरिमाणे देशे ये त्रसास्ते गृहीतपरिमाणदेशास्तेष्वेव । तथा द्वितीयं सूत्रं त्वाराद्देशवर्तिनस्त्रसाः आराद्देशवर्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥ तृतीये त्वाराद्देशवर्तिनस्त्रसागृहीतपरिमाणादेशाद्बहिर्ये त्रसाः स्थावरास्तेषूत्पद्यंते॥२८॥ तथा चतुर्थसूत्रे त्वाराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्ते तद्देशवर्तिष्वेव त्रसेषूत्पद्यंते ॥ २९ ॥ पंचमं सूत्रं तु आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्तेषु तद्देशवर्तिष्वेव स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३० ॥ षष्ठं सूत्रं तु दूरदेशवर्तिनो ये स्थावरास्ते गृहीतपरिमाणास्तेषुत्रसस्थावरेषूत्पद्यंते ॥३१॥ सप्तमसूत्रंत्विदं परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु त्रसेषूत्पद्यंते ॥३२ ॥ अष्टमसूत्रं तु परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३३ ॥ नवमसूत्रं तु परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते परदेशवर्तिष्वेव त्रसस्थावरेषूत्पद्यंते । एवमनया प्रक्रियया नवापि सूत्राणि भणनीयानि । तत्र यत्र यत्र त्रसास्त त्रादानशआदेरारभ्य श्रमणोपासकेनामरणांतोदंमस्त्यक्तइत्येवं योजनीयं । तत्र तु स्था वरा[illegible]र्थाय दंमो न निक्षिप्तोन परित्यक्तोऽनर्थायच दंमः परित्यक्तइति । शेषाक्षरघट ना तु [illegible] विधेयेति ॥ ३४ ॥

भगवंचणं उदाहु ण एतं भूयं ण एतं भवं ण एतं भविस्संति जसं तसा पाणा वोछिज्जिहिंति थावरा पाणा भविस्संति थावरा पाणावि वोछिज्जिहिंति तसा पाणा भविस्संति अवोछिन्नेहिं तसथावरेहिं पाणेहिं जसं तुझेवा अन्नोवा एवं वदह णछिणं से केइ परियाए जाव णो णेयाउए भवइ ॥ ३५ ॥

अर्थ—हवे वली उदक पेढालपुत्र प्रत्यें, भगवंत श्री गौतमस्वामी कहेछे के, अहो उदक! (णएतंभूयं के०) भूतकालने विषे ए वात थइ नथी, (णएतंभवं के०) वर्त्तमानकालें ए वात थाय नही, (णएतंभविस्संति के०) आगमिक कालें ए वात थशे नहीं (जसंतसापाणावोछिज्जिहिंति के०) जे त्रसप्राणी सर्वथापि विछेद थशे (थावरापाणाभविस्संति के०) अने जगत् मांहे स्थावर प्राणीज हशे, अथवा स्थावरप्राणी सर्वथा विछेद पामशे, अनें जगत् मांहे त्रस प्राणीज रहेशे. यद्यपि तेनें परस्पर मांहोमांहे गतिछे जे स्थावर फीटी त्रस थाय, अनें त्रस फीटी, स्थावर थाय, परंतु समस्तपणे एकनो बीजा मांहे सद्भाव न थाय. तथा एवीपण संभावना नथी जे, एक पच्चरकाणना करनार टाली अन्य नारकी, बेइंडियादिक, तिर्यंच, मनुष्य, देवता, ए समस्तनो अभाव होय? जो एमज होय तो त्रसनुं पच्चरकाण निर्विषय थाय. परंतु ए वात संभवे नहीं! (अवोछिन्नेहिंतसथावरेहिंपाणेहिं के०) एम त्रस अनें स्थावर प्राणीनो अविछेद होय. (जसंतुझेवाअन्नोवाएवंवदह के०) माटें जे तमे अथवा बीजो कोइ, एम कहेके (णछिणं सेकेइपरियाए के०) ते कोइ पर्याय नथी के जे पर्यायें करी श्रावकनें प्राणातिपातनुं पच्चरकाण थाय. ते वचन, (जावणोणेयाउएभवइ के०) यावत् न्यायोक्त नथी ॥ ३५ ॥

॥ दीपिका—तदेवं बहुदृष्टांतैः श्रावकप्रत्यारव्यानस्य सविषयतां प्रसाध्याधुना परप्रश्नस्यात्यंतासंबद्धतां दर्शयन्नाह। गौतमस्वामी उदकं प्राह। नैतद्भूतं नैतद्भव्यं नैतद्भविष्यं यत्त्रसाः सर्वथा उच्छेत्स्यंति स्थावराएव भविष्यंति तथा स्थावराउच्छेत्स्यंति त्रसाएव भविष्यंति एतद्द्वयं न संभवति नहि कदाप्येवं संभवोस्ति यत्प्रत्यारव्यानिनमेकं विहायान्येषां नारकाणां द्वींद्रियादितिरश्चां मनुष्याणां देवानां च सर्वथाप्यभावः । एवंहि च प्रत्यारव्यानं निर्विषयं स्याद्यदि प्रत्यारव्यानिनोजीवतएव नारकाद्यास्त्रसाः समुछिद्यंते नचायं प्रकारः संभवी स्थावराणां वानंतत्वाऽसंख्येयेषु त्रसेषूत्पादसंभवः एवं सति य छदत यूयमन्योवा वदति तद्यथा नास्त्यसौ पर्यायोयत्श्रावकस्यैकत्र सविषयोदंमत्यागइति तदेवं त्वदीय प्रेर्यं सर्वमशोभनमिति ॥ ३५ ॥

॥ टीका—तदेवं बहुभिर्दृष्टांतैः स्वस्वविषयतां श्रावकप्रत्याख्यानस्य प्रसाध्याधुनात्यंता बंधतां चोद्यस्य सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । (ज्ञगवंचणंउदाहुरित्यादि) ज्ञगवान् गौतमस्वा म्युदकं प्रत्येतदाह । तद्यथा नैतद्भूतमनादिके काले प्रागतिक्रांते नाप्येतदप्यऽनंते काले ज्ञाव्यं नाप्येत द्वर्तमानकाले ज्ञवति । ये त्रसाः प्राणाः सर्वथा निर्लेपतया स्वजात्युछेद तोछेत्स्यंति स्थावराज्ञविष्यंतीति तथा स्थावराश्च प्राणिनः कालत्रयेपि नैव समुछेत्स्यं ति त्रसाज्ञविष्यंति यद्यपिच तेषां परस्परसंक्रमेण गमनमस्ति तथापि न सामस्त्येनान्य तरेषामितरत्र सद्भावस्तथाहि न ह्येवंज्ञूतः संज्ञवोस्ति यङत प्रत्याख्यानिनमेकं विहाय परे षां नारकाणां द्वींद्रियादीनां तिरश्चां मनुष्यदेवानां च सर्वदाप्यज्ञावः एवंच त्रसविषयं प्र त्याख्यानं निर्विषयं ज्ञवति यदि तस्य प्रत्याख्यानिनोजीवतएव सर्वेपि नारकादयस्त्रसा समुछिद्यंते न चास्य प्रकारस्य संज्ञवोस्त्युक्तन्यायेनेति स्थावराणां चानंतानामनंतत्वादेव नासंख्येयेषु त्रसेषूत्पादइति सुप्रतीतमिदं तदेव ज्ञव्यवछिन्नैस्त्रसैः स्थावरैश्च प्राणिभिर्य छ दत यूयमन्योवा कश्चिछदति तद्यथा नास्त्यसौ पर्यायोयत्र श्रमणोपासकस्यैकत्रसविष योपि दंमपरित्यागइति तदेतङक्तनीत्या सर्वमशोज्ञनमिति ॥ ३५ ॥

ज्ञगवंचणं उदाहु आउसंतो उदगा जे खलु समणं वा माहणं वा परि ज्ञासेइ मिति मन्नंति आगमित्ताणाणं आगमित्तादंसणं आगमित्ताच रित्तं पावाणं कम्माणं अकरणयाए से खलु परलोगपलिमंथत्ताए चिठइ जे खलु समणं वा माहणं वा णो परिज्ञासइ मिति मन्नंति आ गमित्ताणाणं आगमित्तादंसणं आगमित्ताचरित्तं पावाणं कम्माणं अ करणयाए से खलु परलोगविसुद्धीए चिठइ तएणं से उदय पेढालपु त्ते ज्ञगवं गोयमं अणाढायमाणा जामेव दिसिं पाउज्ञूते तामेव दिसिं पहारेछगमणाए ॥ ३६ ॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेछे, के, अहो आयुष्यमन् उदक ! खलु इति निश्चें जे पुरुष यथोक्त क्रियानुष्ठाननो करनार एवो श्रमण होय, अथवा माहण एटले ब्रह्मचर्य नो पालनार एवो ब्राह्मण होय तेनें (परिज्ञासेइ के०) निंदे, (मितिमन्नंति के०) तेने विषे मैत्री ज्ञाव मानतो बतो (आगमित्ताणाणं के०) तथा सम्यक् ज्ञान, पोतानें विषे आ णीनें, (आगमित्तादंसणं के०) सम्यक् दर्शन पोताने विषे आणीने, (आगमित्ताचरित्तं के०) सम्यक् चारित्र पोताने विषे आणीने, एतावता सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, अने सम्यक् चारित्रनो पालनार पण होय. (पावाणंकम्माणंअकरणाए के०) पाप

बे. इच्चेयाहिं के० इत्यादिक ए पूर्वोक्त एवी दिठीहिं के० ज्ञानदृष्टीना अंगीकारे करीने ते वादी सातागारवणिस्सिया के० सातागारवे निश्रित एटले आसक्त अर्थात् सुखशी लीया एवा थका, ते क्रियाना करनार जेवो सदोष निर्दोष आहार पामे तेना नोगवना र एवा बतां ते पोतानुंज दर्शन सरणंतिमन्नमाणाके० संसारथकी उद्धरवासमर्थबे. एवुं माणा एटले मानता थका, सेवंतीपावगं के० ते विपरीत अनुष्ठाने करी हिंसादिक पा पज सेवेबे, तेमाटे यद्यपि ते व्रतधारी बे, तथापि ते अनेरा पामर एवा जणाके० लो क तेना सरखा जाणवा. ॥ ३० ॥ एहिज-अर्थ दृष्टांते कहेबे. जहा के० जेम अस्सा विणिं के० बिड्सहित एवी णावं के० नाव तेने विषे जाइअंधो के० जातिअंध एट ले जन्मांध पुरुष डुरुहिया के० चडीने इब्बईपारमागंतुं के० पार पामवा वांबे परंतु पार पामे नहीं. किंतु अंतराय के० अंतराले एटले वचमांहेज ते विसीयई के० बुडी जाय इत्यर्थः ॥ ३१ ॥ हवे ए दृष्टांत दर्शनीउ साथे मेलवेबे. जेम सब्बिड्नावे चड्यो थको अंध पुरुष पार पोहोचे नहीं एवंतुसमणाएगे के० तेनीपेरे कोइएक शाक्यादिक श्रमण ते मिब्बदिठीअणारिया के० मिथ्यादृष्टी एटले जिनप्रणीत धर्मथकी विपरीत दृष्टि तथा अनारिया एटले अनाचारी संसारपारकंखीते के० ते पोताना दर्शनने अनु रागे संसारनो पार पामवाने वांबे बे, परंतु ते संसारंअणुपरियट्टंति के० संसारमांहेज परावर्तन घचन घोलन इत्यादिक अनंत कालसुधी पामे. ॥ ३२ ॥ एम श्रीमहावीर देवे कह्युं इति के० एम हुं पण तुजने कहुंबुं. एरीते श्रीसुधर्मास्वामिये पोताना शिष्य श्रीजंबुस्वामी प्रत्ये कह्युं. इति प्रथम समयाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः। ए उद्देशे करी स्वसमय परसमयनी प्ररूपणा करीबे.

॥ दीपिका–एतद्दूषयन्नाह । (मणसेति)। ये कुतोपि हेतोर्मनसा प्रडुष्यंति प्रद्वेषयं ति तेषां वधपरिणतानां शुद्धं चित्तं न विद्यते । एवंच यत्तैरुक्तं केवलमनःप्रद्वेषेप्यनवद्यं पापाजावइति तत्तेषामतथ्यं मिथ्या । यतस्ते न संवृतचारिणोमनसोऽशुद्धत्वात् । तथा हि । कर्मबंधे मुख्योहेतुर्मनएव । यथा ईर्यापथेऽनुपयुक्तोगछन् कर्मबंधकः । उपयु क्तस्तु सहसा हिंसकोपि न कर्मबंधकइति ततः पुत्रं पितेति दृष्टांतोन समीचीन इति ॥ २ए ॥ अथ तेषामनर्थमाह । (इच्चेहियाहिंति)। इत्येताजिः पूर्वोक्ताजिर्दृष्टीजि र्मतैस्ते वादिनः सातागौरवनिश्रिताइदमस्मन्मतं शरणमिति मन्यमानानराः पापमेव सेवंते कुर्वंति ॥ ३० ॥ अत्रार्थे दृष्टांतमाह । (जहत्ति)। आश्राविणीं सब्बिडां नावं य था जात्यंधः समारुह्य पारं तटमागंतुमिछति स नरोनावोजलव्याप्तत्वादंतरा मध्यएव विषीदति जले निमज्जति ॥ ३१ ॥ दार्ष्टांतिकमर्थमाह । एवमिति । एवं नौदृष्टांतेन ए

परिहृतं नवति तदेवं यथावस्थितमर्थं गौतमस्वामिनावगतोप्युदकः पेढालपुत्रोयदा नगवं तं गौतममनाद्रियमाणोयस्याएव दिशः प्राङ्नूतस्तामेव दिशं गमनाय संप्रधारितवान्॥३६

नगवंचणं उदाहु आउसंतो उदगा जे खलु तहानूतस्स समणस्सवा माहणस्सवा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म अप्पणो चेव सुहम्माए पडिलेहीए अणुत्तरं जोगखेमपयं लंनिएसमाणे सोवित्तावतं आढाइ परिजाणेंति वंदंति नमंसंति सक्कारेइ समाणेइ जाव कल्याणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासंति ॥ ३७ ॥

अर्थ–नगवंत श्रीगौतम स्वामी बोल्या के, अहो आयुष्यमन् उदक ! खलु इति निश्चें जे कोइ तथानूत श्रमण ब्राह्मणने समीपें एक पण आर्य धर्म संबंधिक रूडुं वचन सांनलीने सम्यक् प्रकारें संयमने विषे धारीनें (अप्पणोचेवसुहम्माए के०) पोता थकी सूक्ष्म कुशाग्र वत् बुद्धियें करी (पडिलेहीए के०) आलोचीनें विचारीनें जाणे के, आ रूडा वचनें करी हुं (अणुत्तरं के०) प्रधान, (जोगखेमपयंलंनिएसमाणे के०) योगक्षेमपद एटले रूडुं मुक्ति साधवा योग्य पद, तेने विषे पहोंचो एतावता ए थकी में रूडुं एक पद लाध्युं. (सोवित्तावतं के०) ते पुरुष, ते उपदेशना देनार पुरुषनें (आढाइ के०) आदर करे, तथा (परिजाणेंति के०) ए पुज्यछे एवुं करी जाणे, तथा तेने वांदे, ते आगल अंजली करे (नमंसंति के०) मस्तक नमावे, (सक्कारेइ के०) सत्कार करे, वस्त्रादिकें करी प्रतिलाने. (समाणेइ के०) अन्युछानादिक करे, तथा यावत् कल्याणमंगल देवता चैत्य एनी उपमा मानि स्तुति करे, तथा, (पज्जुवासंति के०) पर्युपासना करे, यद्यपि ते उपदेशनो दातार कांइ वंदनादिक वांछे नही,तथापि ते सांनलनारें ते परमार्थ उपकारी नणी यथाशक्तियें विनयादिक समाचरवो.॥३७॥

॥ दीपिका–तदा । नगवान् गौतमआह । हे आयुष्मन्नुदक ! यः खलु तथानूतस्य श्रमणस्य ब्राह्मणस्य वांतिके समीपे एकमप्यर्थं धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वानिशम्यावधार्यात्मनएव तदनुत्तरं योगक्षेमपदमित्यवगम्य सूक्ष्मया बुध्ध्या प्रत्युपेक्ष्य विचार्यादमनेन योगक्षेमपदमनुत्तरं लंनितः प्रापितः सन् सोपि तावल्लौकिकोपि तमुपदेशदातारमाद्रियते पूज्योयमिति जानाति कल्याणं मंगलं देवतं चैत्यमिव पर्युपास्ते प्राकृतजनोपि चेद्धितोपदेशदातारं पूजयति तदा किं पुनर्वाच्यमनुत्तरधर्मोपदेशकपूजायां विवेकिजनस्येति ! नावः ॥ ३७ ॥

कर्मनें क्षय करवा नणी उठ्यो. एटले सावधान थयो. (सेखलुपरलोगंपलिमंथत्ताए चिठ्ठइ के०) ते पण निश्चें परलोकना विघात नणी तिष्टे, एटले रहे, एटले शुं कह्युं? तोके, चारित्रिउं पुरुष घणोज गुणवान् होय परंतु यथोक्त श्रमण ब्राह्मणनी निंदा करे, ते परलोकनो, तथा संयमनो विराधक कहेवाय. हवे जे गुणवंतना गुण ग्रहण करे, तेनां फल देखाडेछे. जे महासत्ववंत पुरुष रत्नाकरनी पेरें गंनीर, श्रमण ब्राह्मणने निंदे नही, ते सहित थको तेनी साथें मैत्री नाव पोषण करे, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, अने सम्यक् चारित्रनें यथोक्त पालतो छतो, पापकर्मने क्षय करवा नणी उठ्यो एटले सावधान थयो. ते निश्चें थकी परलोकनो तथा संयमनो आराधक थाय. ए कारण माटें श्रमण ब्रह्मणनी निंदा न करे! ते पुरुष रूडो जाणवो. एवुं जाणीने ए निंदा परिहरवी. अने सूधो संयम पालवो. (तएणंसे के०) तेवार पछी ते उदक पेढाल पुत्र, नगवन् श्री गौतम समीपें एवा अर्थो सांनलीनें, श्री गौतम स्वामीनें आदर दीधा विना पूछ्या विना जे दिशा थकी आव्यो हतो, तेहिज दिशा तरफ फरी गमन चिंतवन करतो हवो॥३६॥

॥ दीपिका—अथोपसंहारमाह । गौतमस्वाम्याह । आयुष्मन्नुदक! यः खलु श्रमणं यथोक्तक्रियाकारिणं माहनं वा सद्ब्रह्मचर्योपेतं परिनापते मैत्रीं मन्यमानोपि निंदति सम्यक् ज्ञानदर्शनं चारित्रं च आगम्य प्राप्य पापकर्मणामकरणायोछितः खलु तुछप्रकृतिः पंमितंमन्यः परलोकस्य सजतेः पलिमंथाय विघाताय तिष्ठति यः पुनर्महासत्वः सागरवजंनीरः श्रमणादीन्न परिनाषते न निंदति तेषुच परमां मैत्रीं मन्यते सम्यक् ज्ञानादीन्यनुगम्य पापकर्मणामकरणायोछितः सखलु परलोकविशुद्ध्या तिष्ठति अनेन वाक्येन परनिंदावर्जनाद्यथावस्थितार्थकथनेन श्रीगौतमः स्वौद्धत्यं परिहरतिस्म एवं श्रीगौतमेन यथास्थितार्थज्ञापितोप्युदकोयदा गौतममनाद्रियमाणोयस्याएव दिशः प्रादुर्नूतस्तामेव दिशं गमनाय प्रधारितवान् चिंतितवान् ॥ ३६ ॥

॥ टीका—सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । (नगवंचणंउदाहुरित्यादि) गौतमस्वाम्याह । आयुष्मन्नुदक! यः खलु श्रमणं वा यथोक्तकारिणं माहनं वा सद्ब्रह्मचर्योपतं परिनाषते निंदति मैत्रीं मन्यमानोपि तथा सम्यक्ज्ञानमागम्य तथा दर्शनं चारित्रं च पापानां कर्मणामकरणाय समुछितः स खलु लघुप्रकृतिः पंमितंमन्यः परलोकस्य सुगतिलक्षणस्य तत्कारणस्य वा सत्संयमस्य पलिमंथाय तद्विलोडनाय तद्विघाताय तिष्ठति यस्तु पुनर्महासत्वोरत्नाकरवजंनीरोन श्रमणादीन् परिनाषते तेषु च परमां मैत्रीं मन्यते सम्यग्दर्शनचारित्राण्यनुगम्य तथा पापानां कर्मणामकरणायोछितःस खलु परलोकविशुद्ध्यावतिष्ठते अनेन च परपरिनाषावर्जनेन यथावस्थितार्थस्वरूपदर्शनतोगौतमस्वामिना स्वौद्धत्यं

रोयियं के०) प्रत्याख्यानमां रुचिपण न करी ते अर्थ रुच्यो नहीं (एतेसिणंनंतेपदा णं के०) एटलां पद, हे नगवन् ! (एण्हिं के०) हमणा (जाणयाए के०) जाण्यां, सांनल्यां, बोध थयो, यावत् हृदयने विषे अवधार्यां. ते कारण माटें ए पदनो अर्थ, सद्दहुंछुं, प्रतितमां आणुंछुं, तथा रुचेछे. किं बहुना (सेजहेयंतुप्नेवदह के०) ते जेम त में कहोगे (एवमेव के०) एमजछे ॥ ३८ ॥

॥ दीपिका–उदकोगौतमस्वामिनमाह । यथा एतेषां पदानां पूर्वमज्ञाततयाऽश्रवणत याऽनाकर्णनेन अबोध्याश्रवणेप्यनवबोधात् अनभिगमेन बोधेपि सम्यगप्रतिपत्त्याऽदृष्टा नामविज्ञातानामश्रुतानामविसृष्टानां गुरुणाऽदत्तानामनिर्गूढानां स्थिरतया स्थापितानाम नुपधारितानामनवधारितानां चानिर्णीतानां न श्रद्धानं कृतवान् न प्रत्याख्यानरुचिं च कृ तवान् । इदानीं तु युष्मदंतिके श्रुत्वा ज्ञात्वावदृष्टादि विशिष्टानां पदानामेनमर्थं श्रद्दधेहं प्रत्ययरुचिं च करोमि एवमेतद्यथा यूयं वदथ ॥ ३८ ॥

॥ टीका–तदेवं गौतमस्वामिनाभिहितउदकइदमाह । एतद्यथैतेषां पदानां पूर्वमज्ञा तया श्रवणतया वोध्याचेत्यादिना विशेषणकदंबकेन श्रद्धानं कृतवान् सांप्रतं तु युष्मदं तिके विज्ञायैनमर्थं श्रद्दधेहं ॥ ३८ ॥

तएणं नगवं गोयम उदयं पेढालपुत्ते एवं वयासी सद्दहाहिणं अज्जो पत्ति याहिणं अज्जो रोहिणं अज्जो एवमेयं जहाणं अम्हे वयामो तएणं से उदए पेढालपुत्ते नगवं गोयमं एवं वयासी इच्छामि णं नंते तुप्नं अंतिए चाउज्जामो उ धम्माउ पंचमहव्वयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ॥३९॥

॥ अर्थ–तेवारें नगवंत श्रीगौतमस्वामी उदयपेढाल पुत्र प्रत्यें एम बोल्या के, अहो आर्य उदक! ए अर्थनी सद्दहणा कर. केम के,श्री वीतरागनो नांखेलो अर्थ अन्यथा नथी, अहो आर्य ! तथा (पत्तियाहिणं के०)ए वचननी प्रतीत आणः तथा ए वचननी रुचि कर. ए अर्थ एमज जेम हुं कहुं छुं ते नगवंतनो नांखेलोछे माटें ते तहत्ति करी जाणजे. तेवार पढी ते उदक पेढालपुत्र, नगवंत श्री गौतम स्वामी प्रत्यें बोल्या के (इच्छामिणंनंत्ते के०) इछुं छुं हे नगवन् ! हुं तमारा (अंतिए के०) पासेंथी चातुर्याम धर्म थकी पंच महाव्रत रूप धर्म, तथा पडिक्कमणा सहित धर्मने. (उवसंपज्जित्ताणं के०) अंगीकार करीने (विहरित्त ए के०) विचरवाने वांछुं छुं. ॥ ३९ ॥

॥ टीका–तं चैवमनिप्रायमुदकं दृष्ट्वा नगवान्गौतमस्वाम्याह । तद्यथा । आयुष्मन्नुदक! यः खलु तथानूतस्य श्रमणस्य ब्राह्मणस्य वांतिके समीपे एकमपि योगक्षेमाय पद्यते गम्यते येनार्थस्तत्पदं योगक्षेमपदं किंनूतमार्यमार्यानुष्ठानहेतुत्वादार्यं तथा धार्मिकं शोन नवचनं सुवचनं सन्नतिहेतुत्वात्तदेवंनूतं पदं श्रुत्वा निशम्यावगम्याचात्मनएव तदनुत्तरं योग क्षेमपदमित्येवमवगम्य सूक्ष्मया कुशाग्रीयया बुद्ध्या प्रत्यपेक्ष्यपर्यालोच्य तद्यथाहमनेनैवं नूतमर्थपदं लंनितः प्रापितः सन्नसावपि तावल्लौकिकस्तमुपदेशदातारमाद्रियते पूज्योयमित्येवं जानाति तथा कल्याणं मंगलं देवतामिव स्तौति पर्युपास्ते च यद्यप्यसौ पूजनीयः किमपि नेच्छति तथापि तेन तस्य परमार्थोपकारिणोयथाशक्ति विधेयम् ॥ ३७ ॥

तएणं से उदए पेढालपुत्ते नगवं गोयमं एवं वयासी एतेसिणं नंते पदाणं पुविं अन्नाणयाए असवणयाए अबोहिए अणनिगमेणं अदिघाणं असुयाणं अमुयाणं अविन्नायाणं अवोगडाणं अणिगूढाणं अविछिन्नाणं अणिसिघाणं अणिवूढाणं अणुवहारियाणं एयमघं णो सद्दहियं णो पत्तियं णो रोइयं एतेसिणं नंते पदाणं एण्हिं जाणयाए सवणत्ताए बोहए जाव उवहारणयाए एयमघं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि एवमेव से जहेयं तुप्ने वदह ॥ ३८ ॥

अर्थ–तेवार पढी ते उदकपेढालपुत्र, नगवंत श्रीगौतम स्वामी प्रत्यें एम बोल्या के, (एतेसिणंनंतेपदाणं के०) हेनगवन् ! तमे एटलां पद कह्यां, ते में (पुविंअन्नाणयाए के०) पूर्वें न जाएयां (असवणयाए के०) पूर्वें न सांनल्यां, (अबोहिए के०) जिनधर्मनी अप्राप्तिने लीधे एनी बोधि उपनी नहीं. (अणनिगमेणं के०) विस्तारें बोधिना रहितपणा थकी एनो अनिगम न थयो, (अदिघाणं के०) पूर्वें साक्षात् पोताथी दीगं नहीं एटले पाम्यां नहीं. ते नणी अदृष्टः (असुयाणं के०) कोइनी पासेंथी सांनल्यां नहीं, (अमुयाणं के०) स्मरण कर्यां नहीं, (अविन्नायाणं के०) अविज्ञात एटले विशिष्ट बोधरहित (अवोगडाणं के०) विशेषथी गुरुयें कह्यां नहीं. (अणिगूढाणं के०) अप्रगट एटले प्रगट न थयां (अविछिन्नाणं के०) विपक्षादिक संदेह छेद्या नहीं. (अणिसिघाणं के०) अनिश्चित कोइयें संनलाव्यां नहीं. (अणिवूढाणं के०) अण सांनल्यां माटें निर्वाह्यां नहीं (अणुवहारियाणं के०) अणविरत पणे हृदयने विषे अवधार्यां नहीं (एयमघं के० (ए प्रकारें पदोनो अर्थ, (णोसद्दहियं के०) सद्दह्यो नही, एटले श्रद्धाकरी नहीं, (णोपत्तियं के०) प्रतित करी नहीं, (णो

समीपें चातुर्यामिक धर्मथकी पंचमहाव्रत सप्पडिक्कमण धर्म आदरीने विचरेछे, सर्वज्ञ प्रणितधर्म पालेछे. (त्तिबेमि के०) श्री सुधर्मस्वामी पोताना शिष्यो प्रत्यें कहेछे. के, में जेवुं ज्ञगवंत श्री महावीरदेव पासेंथी सांज्ञल्युंछे, तेवुं तमने कहुं छुं. इत्यादिक अर्थ, पूर्ववत् जाणवो॥४०॥एरीतें "णालंदइज्जं" नामा सातमा अध्ययननो अल्पार्थबालावबोध समाप्त थयो॥ ए बीजा श्री सूयगडांगना बीजा श्रुतस्कंधनो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो.॥ सम्मत्तं सूयगडांगं आदितः ॥ सर्वाणि अध्ययनानि त्रयोविंशतिकानि संपूर्णानि ॥ श्री साधुरत्नष्येण पाशचंद्रेण वृत्तितः कृतबालावबोधार्थं द्वितीयांगस्य वार्तिकं समाप्तम् ॥७॥

॥ दीपिका—ततोज्ञगवान् गौतमस्तं प्राक् प्रतिपन्नश्रीपार्श्वशासनव्रतमुदकं गृहीत्वा यत्र श्रीवीरोज्ञगवांस्तत्रैवोपागच्छति । ततः सउदकः श्रमणं ज्ञगवंतं त्रिःकृत्वः आदक्षिणं प्रदक्षिणं करोति तिस्रः प्रदक्षिणाः करोतीति कृत्वा च वंदते नमस्यति वंदित्वा नमस्यित्वा च एवमवादीत् इच्छामि ज्ञवदंते युष्मदंतिके चातुर्यामात्पंच महाव्रतिकं धर्ममुपसंपद्य विहर्तुमिति । ततः श्रीवीरस्तमुदकमेवमवादीद्यथा सुखं देवानुप्रिय ! मा प्रतिबंधं धर्मांतरायं कार्षीरिति । ततः सउदकः श्रीवीरांतिके पंच महाव्रतिकग्रहणायोद्यतः ज्ञगवतापि तस्य सप्रतिक्रमणः पंचमहाव्रतिकोधर्मोनुज्ञातः सच तं धर्ममुपसंपद्य स्वीकृत्य विहरतीति । इतिः परिसमाप्त्यर्थे ।ब्रवीमीति पूर्ववत् । सुधर्मस्वामी स्वशिष्यानिदमाह । तद्यथा सोहं ब्रवीमि येन मया ज्ञगवदंतिके श्रुतमिति ॥४०॥ नालंदीयाख्यमिदं सप्तममध्ययनं समाप्तं । तत्समाप्तौ च समाप्तोयं द्वितीयः श्रुतस्कंधस्तत्संपूर्त्तौ च पूर्णेयं श्रीसूत्रकृतांग दीपिका ॥ ग्रंथसंख्या ॥ सुमारें ॥ (७०००)

॥ अथ प्रशस्तिः ॥ आर्या वृत्तम् ॥

निस्तंद्रचंद्रचारुणि,चंद्रकुले चरणचातुरीज्ञाजः॥विख्याततपेत्याख्या,जगति जगच्चंद्रसूरयोऽज्ञूवन् ॥ १ ॥ तेषां दोषांशमुषां, संताने सुकृतसंचयविताने ॥ श्रीसोमसुंदरगुरू,त्तमाक्षमासंगमाअज्ञवन् ॥ २ ॥ तत्पट्टस्फुटकमला,ज्ञाले कालेयतिलकसंकाशः॥श्रीमुनिसुंदरगुरवः,कामितसंपत्तिसुरतरवः ॥३॥ बाल्येपि ज्ञारतीज्ञि,रुदपादि वादिवर्गे यैः ॥ श्रीजयचंद्रमुनींद्रा,स्ते परगजेषु सिंहसदृशाः॥४॥ तत्पदविशदस्थाने,स्थाने शृंगारसारतां ज्ञेजुः॥श्रीरत्नशेखराइति,जगति यतः ख्यातिमापुस्ते॥५॥तेषामनंकपट्टे,गुणसंघट्टे प्रज्ञावकषपट्टे॥प्रासाधिकनिष्ठा श्री, श्रीलक्ष्मीसागराःशिष्टाः॥६॥ ज्ञर्त्सितकलिकालुष्या,शिष्याज्ञापायथार्थनामानः ॥ श्रीसुमति साधुगुरवो, लक्ष्मीसुरज्ञीकारसाद्यशोगुरवः ॥ ७ ॥ तत्पट्टे प्रवादेप्सित, पूरणचिंतामणीयमानानाम् ॥ लब्धाधिकमानानां, सुहेमविमलाज्ञिधानानाम् ॥८॥ सुरीपगच्छनायक, देवीप्राप्त प्रज्ञाप्रतिष्ठानाम् ॥ शिष्याणुर्गुणशासन,जननीतिथिसंमिते (१५८२) वर्षे ॥९॥ विबुधना

॥ दीपिका–ततः श्रीगौतम उदकमेवमवादीद्यथा । अस्मिन्नर्थे श्रद्धानं कुरु हे आर्य ! प्रत्ययं रुचिं च कुरु । एवमेतद्यथा वयं वदामः तथा त्वं प्रत्येहि । ततः स उदकः श्रीगौतममेवमवादीत् । इछाम्यहं नदंते युष्मत्समीपे चातुर्मासिकाच्चतुर्व्रतरूपाद्धर्मात्पंचयामिकं पंच महाव्रतरूपं सप्रतिक्रमणं धर्ममुपसंपद्य स्वीकृत्य विहर्तुमिति ॥ ३९ ॥

॥ टीका–एवमवगम्य गौतमस्वाम्युदकमेवाह । यथास्मिन्नर्थे श्रद्धानं कुरु नान्यथा सर्वज्ञोक्तं नवतीति मत्वा पुनरप्युदकएवमाह । इष्टमेवैतन्मे किंत्वमुष्माच्चातुर्यामिकाद्धर्मात्पंचयामिकं धर्मं संप्रति सप्रतिक्रमणमुपसंपद्य विहर्तुमिछामि ॥ ३९ ॥

तएणं से नगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं गहाय जेणेव समणे नगवं महावीरे तेणेव उवागडइ उवागडइत्ता तएणं से उदए पेढालपुत्ते समणं नगवं महावीरं तिरकुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ तिरकुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करित्ता वंदइ नमंसति नमंसतित्ता एवं वयासी इछामि णं नंते तुप्नं अंतिये चाउज्जामाउ धम्माउ पंच महव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए तएणं समणे नगवं महावीरे उदयं एवं वयासी अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेहि तएणं से उदए पेढालपुत्ते समणस्स नगवउ महावीरस्स अंतिए चाउज्जामाउ धम्माउ पंच महव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ त्तिबेमि॥इति नालंदइज्जं सत्तमं अज्ञयणं सम्मत्तं ॥ इति सूयगडांगबीयसुयखंधोसम्मत्तो ॥४०॥ ग्रंथाग्रं ॥ २१०० ॥

अर्थ–ते वार पछी एवुं वचन सांनलीनें नगवंत श्री गौतमस्वामी, ते उदक पेढाल पुत्रनें संघातें लइने ज्यां श्रमण नगवंत श्रीमहावीर देवछे, त्यां आव्या. तेवार पछी ते उदकपेढाल पुत्र, श्रमण नगवंत श्रीमहावीर देवने (तिरकुत्तो के०) त्रणवार प्रदक्षिणा पूर्वक वांदी नमस्कार करे, त्रण वार प्रदक्षिणा पूर्वक नमस्कार करीनें एवी रीतें बोल्या के, (इछामिणंनंते के०) हे नगवन्! तमारा समीपें हुं इछुं छुं. शुं इछुं छुं? तोके चातुर्यामिक धर्म थकी रहित थइनें पंच महाव्रत, तथा सप्पडिक्कमण धर्म, अंगीकार करी विचरवाने वांछुं छुं. तेवारें श्रमण नगवान् श्रीमहावीर देव बोल्या के, (अहासुहंदेवाणुप्पिया के०) हे देवानुप्रिय! जेम तमारे सुख उपजे, तेम करो! (मापडिबंधंकरेह के०) धर्मने विषे विलंब म करो. तेवार पछी ते उदक पेढालपुत्र एवुं सांनलीने, श्रमण नगवंत श्रीमहावीर देवनें

के श्रमणाः शाक्यादयोमिथ्यादृष्टयोऽनार्याः स्वमतानुसारेण संसारपारकांक्षिणोपि संसारमेवानुपर्यटंति संसारएवानंतकालं भ्रमंति इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगे प्रथमाध्ययने द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ टीका—सांप्रतमेतद्दूषणायाह । (मणसाजेइत्यादि) । येहि कुतश्चिन्निमित्तान्मनसांऽतःकरणेन प्रदुष्यंति प्रद्वेषमुपयांति तेषां वधपरिणतानां शुद्धं चित्तं न विद्यते । तदेवं यत्तैरभिहितं । यथा केवलमनःप्रद्वेषेप्यनवद्यं कर्मोपचयाभावइति । ततस्तेषामतथ्यमसदर्थाभिधायित्वं । यतो न ते संवृतचारिणोमनसोऽशुद्धत्वात् । तथाहि । कर्मोपचये कर्तव्ये मनएव प्रधानं कारणं । यतस्तैरपि मनोरहितकेवलकायव्यापारे कर्मोपचयाभावोभिहितः । ततश्च यद्यस्मिन् सति भवत्यसति तु न भवति तत्तस्य प्रधानं कारणमिति । ननु तस्यापि कायचेष्टारहितस्याऽकारणत्वमुक्तं सत्यमुक्तं । अयुक्तं तूक्तं । यतोभवतैवैवं भावशुध्यानिर्वाणमभिगछतीति भणता मनसएवैकस्य प्राधान्यमभ्यधायि । तथाऽन्यदप्यभिहितं । चित्तमेव हि संसारे रागादिक्लेशवासितं ॥ तदेव तैर्विनिर्मुक्तं भवांतइतिकथ्यते । तथान्यैरप्यभिहितं । मतिविभवमनस्ते यत्समत्वेपि पुंसां, परिणमसि शुभांशैः कल्मषांशैस्त्वमेव ॥ निरयनगरवर्त्मप्रस्थिताः कष्टमेके उपचितशुभशक्त्या सूर्यसंभेदिनोन्ये ॥ १ ॥ तदेवं भवदभ्युपगमेनैव क्लिष्टमनोव्यापारः कर्मबंधायेत्युक्तं भवति । तथेर्यापथेपि यद्यनुपयुक्तोयातितवान् ततोनुपयुक्ततैव क्लिष्टचित्ततेति कर्मबंधो भवत्येवाथोपयुक्तोयाति ततो ऽप्रमत्तत्वादबंधकएव । तथाचोक्तं । उच्चालियंमि पाए, इरियासमियस्स संकमट्ठाए । वावज्जेज्जकुलिंगी, मरेज्ज तं जोगमासज्ज ॥१॥ णय तस्स तन्निमित्तो बंधो सुहुमो विदेसिउ समये । अणवज्जो उपयोगे, ण सव्वभावे णसो जम्हा ॥ २ ॥ स्वप्नांतिकेप्यशुद्धचित्तसद्भावादीषद्बंधोभवत्येव सच भवतोप्यभ्युपगतएवाव्यक्तं तत्सावद्यमित्यनेनेति । तदेवं मनसोपि क्लिष्टस्यैकस्यैव व्यापारबंधसद्भावात् । यदुक्तं भवता प्राणी प्राणिज्ञानमित्यादि तत्सर्वं प्लवतइति । यदप्युक्तं । पुत्रं पिता समारभ्येत्यादि तदप्यनालोचिताभिधानं । यतोमारयामीत्येवं यावन्न चित्तपरिणामोभूत्तावन्न कश्चिद्व्यापादयति । एवंभूतचित्तपरिणतेश्च कथमसंक्लिष्टता चित्तसंक्लेशे चावश्यंभावी कर्मबंधइत्युभयोरपि संवादोत्रेति । यदपि च तैः क्वचिदुच्यते यथापरव्यापादितपिशितभक्षणे परहस्ताऽकृष्टांगारदाहाभाववन्न दोषइति । पिशितभक्षणेऽनुमतिरप्रतिहताऽस्याञ्च कर्मबंधइति । तथा चान्यैरप्यभिहितं । अनुमंता, विशसिता, संहर्ता, क्रयविक्रयी, ॥ संस्कर्ता, चोपभोक्ता च, घातकश्चाष्ट घातकाः । यच्च कृतकारितानुमतिरूपमादानत्रयं तैरभिहितं तद्भौर्नेडमतजवास्वादनमेव तैरकारीति । तदेवं कर्मचतुष्टयं नोपचयं यातीत्येवं तदभिदधानाः कर्मचिंतातोनष्टा

चेवके० निश्चे डुपक्खंके० द्विपक्ष एटले गृहस्थ अने प्रव्रजितनो पक्ष सेवइके० सेवे एटले ते लिंगे तो प्रव्रजित देखायछे, पण सदोष आहारना लेवा थकी ग्रहस्थ सरखो जाणवो. । यडुक्तं । आहाकम्मंभुंजमाणे,समणे कइकम्मपयडीउंबंधइ गोयमा अठकम्मपयडिउंबंधइ सिढिलबंधणबद्धाउ, धणियबंधणबद्धाउंकरेत्ति ॥ इत्यादिवचनात्. ए कारणे परतीर्थी अथवा स्वतीर्थी आधाकर्मादिक आहार लेता थका द्विपक्षना सेवनार जाणवा. ॥ १ ॥ हवे एने एवो आहार लेतां थकां जे विपाक उपजे ते देखाडेछे. तमेवअवियाणंता के० ते दर्शनी ते आधाकर्मि आहारनो दोष अजाणता तथा विसमंसिके० विषम जे अष्ट प्रकारना कर्मनो बंध अथवा चतुर्गतिक संसारने विषे अकोविया के० अपंडित छे, एटले ते एम नथी जाणता के जीवने कर्मनो बंध अथवा मोक्ष केम थाय? अथवा केवा उपाय थकी संसारसमुद्र तरे एवो परमार्थ ते जाणता नथी एवा छतां संसारमां हे कर्मपासे बंधाणा थका दुःखी थायछे, अहियां दृष्टांत कहेछे. मच्छा के० जेम माछलां वेसालिया के० समुद्रना उपना, अथवा विशाल जातीना उपना, अथवा विशाल एटले बृहत्काय एटले मोहोटा शरीरवाला एवा महामच्छ ते उदगस्सनियागमे के० पाणीना आगमे एटले समुद्रनी वेलि प्रसार पामी छते, ॥ २ ॥ उदकस्सपभावेणं के० उदकने प्रभावे एटले पाणीने पूरे, समुद्र थकी निकलीने नदीना मुखमां आवी पडे त्यारपछी ते पाणी सुक्कंसिग्घंतमिंतिउ के० सुके छते ते मच्छ शरीरने स्थूलपणे कादवमां हे खूता थका घातमेस्संति के० मरण पामे. ते केवी रीते, तो के ढंकेहियकंकेहियके० ढंक अने कंक ए जातिना पक्षी विशेष अने आमिसछेहिं के० बीजापण मांसना लोभिष्ट एवा मच्छीमारोए विलुप्यमान एवां ते दुही के० दुःख पामेछे एटले ते जीवतां मच्छोने विलुरी नाखे, छेदीनाखे, किं बहुना प्राण थकी मुकावे. ए रीते दुःख पामे. ॥ ३ ॥ ए दृष्टांत दर्शनीउ साथे मेलवेछे, एवंतु के० ए पूर्वोक्त न्याये माछलांनी पेरे समणाएगे के० एक शाक्यादिक श्रमण अथवा स्वतीर्थी द्रव्यलिंगी ते केवाछे, तोके वट्टमाणसुहेसिणोके० वर्त्तमान सुख जे आधाकर्मिकआहार भोजन सुख तेना गवेषणहार परलोकना सुखथी पराङ्मुख मच्छावेसालियाचेव के० वैशालिक मच्छनी परे आगमिक काले अरहट्टघटिकाने न्याये घातमेस्संतिणंतसो के० संसारमांहे अनंता उन्मज्जन निमज्जन सरखा जन्म मरण पामे पण संसारना पारंगामी न थाय. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–द्वितीयोद्देशके स्वान्यसमयप्ररूपणा कृता तृतीयेपि सैवोच्यतइति तस्येदमादिसूत्रं । (जंकिंचिदिति किंचिदाहारजातं स्वल्पं घनं वा पूतिकृतमाधाकर्मादिसिक्थेनापि युक्तं । (सड्ढित्ति) । श्रद्धावता भक्तिमताऽन्येनापरानागंतुकानुद्दिश्य ईहितं कृतं तत्सहस्रां

इति सुप्रतिष्ठमिदमिति ॥ २ए ॥ अधुनैतेषां क्रियावादिनामनर्थपरंपरां दर्शयितुमाह । (इच्चेयाहिं इत्यादि) इत्येताभिः पूर्वोक्ताभिश्चतुर्विधं कर्म नोपचयं यातीति दृष्टिभिरभ्यु पगमैस्ते वादिनः सातागौरवनिश्रिताः सुखशीलतायामासक्तायत्किंचनकारिणोयथाल ब्धभोजिनश्च संसारोध्धरणसमर्थं शरणमिदमस्मदीयं दर्शनमित्येवं मन्यमानाविपरीता नुष्ठानतया सेवंते कुर्वंति पापमवद्यमेवं व्रतिनोपि संतोजनाइव जनाः प्राकृतपुरुषसदृशा इत्यर्थः ॥ ३० ॥ अस्यैवार्थस्योपदर्शकं दृष्टांतमाह । (जहाअस्साविणिमित्यादि) आस मंतात्स्रवति तच्छीला आस्राविणी सच्छिद्रेत्यर्थः । तां तथाभूतां नावं यथा जात्यंधः समारुह्य पारं तटमागंतुं प्राप्तुमिच्छत्यसौ तस्याश्च स्राविणीत्वेनोदकप्लुतत्वादंतराले जलम ध्यएव विषीदति वारिणि निमज्जति तत्रैव च पंचत्वमुपयातीति ॥ ३१ ॥ सांप्रतं तं दार्ष्टां तिकयोजनार्थमाह । (एवमित्यादि) यथाऽधः सच्छिद्रां नावं समारूढः पारगमनाय नालं तथा श्रमणाएके शाक्यादयोमिथ्या विपरीता दृष्टिर्येषां मिथ्यादृष्टयः । तथापि शिताशनानुमतेरनार्याः स्वदर्शनानुरागेण संसारपारकांक्षिणोमोक्षाभिलाषुकाअपि सं तस्ते चतुर्विधकर्मचयानभ्युपगमेनानिपुणत्वाच्छासनस्य संसारमेव चतुर्गतिसंसरणरूपम नुपर्यटंति । भूयोभूयस्तत्रैव जन्मजरामरणादौ गत्यादिक्लेशमनुभवंतोऽनंतमपि काल मासते न विवक्षितमोक्षसुखमाप्नुवंतीति । ब्रवीमीति पूर्ववदिति ॥३२॥ इति सूत्रकृतांगे समयाख्याध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ अथ प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशकः प्रारभ्यते. ॥

जं किंचिउ पूइकडं सड्डीमागंतुमीहियं ॥ सहस्संतरियं भुंजे, डुपक्खं चेव सेवइ ॥ १ ॥ तमेव अवियाणंता, विसमंसि अकोविया ॥ मच्छा वेसा लिया चेव, उदगस्स भियागमे ॥ २ ॥ उदगस्स पभावेणं, सुक्कं सिग्घं तमिं तिउ ॥ ढंकेहिय कंकेहिय, आमिसछीहिं ते डुही ॥ ३ ॥ एवं तु सम णा एगे, वट्टमाणसुहेसिणो ॥ मच्छा वेसालिया चेव, घातमेस्संति णंतसो ४

अर्थ—पाछलना उद्देशे स्वसमय परसमय प्ररूपणा करी, अने अहींपण तेहिज कहेछे. जं किंचिउके० जे कांइ अल्प अथवा घणो आहार पाणी पूइकडं के० पूतीकर्म एटले आधाक र्मिना एक कणे सहित एवो आहार पाणी सड्डिके० श्रद्धावंत गृहस्थें भक्तियें करी आगं तुमीहियं के० अनेरा आवनारना उद्देशे करी नीपजाव्योछे. तेज आहार कदाचित् सह स्संतरियं के० सहस्रांतरित एटले एके बीजाने दीधो, बीजे त्रीजाने दीधो, त्रीजे चो थाने दीधो एवी रीते सहस्रांतरित पणे ते सदोष आहार जे भुंजे के० भक्षण करे ते,

मेव चोपभुंजते तेच सुतरां द्विपक्षसेविनोभवंतीत्यर्थः । यदि वा द्विपक्षमिति ईर्यापथः सांपरायिकं वा । अथवा पूर्वबद्धानिकाचिताद्यवस्थाः कर्मप्रकृतीर्नयत्यपूर्वश्चादत्ते । तथाचागमः । आहाकम्मं भुंजमाणे समणे कइ कम्मपयडीउ बंधइ गोयमा अठकम्म पयडीउ बंधइ सिढिलबंधणबद्धाउ धणियबंधणबद्धाउ करेइ चियाउ करेइ उवचियाउ करेइ हस्सठिइयाउ दीहठिइयाउ करेइ इत्यादि । ततश्चैवं शाक्यादयः परतीर्थिकाः स्वयूथ्यावा आधाकर्मभुंजानाद्विपक्षमेवाऽसेवंतइति सूत्रार्थः ॥ १ ॥ इदानीमेतेषां सुखैषिणामाधाकर्मभोजिनां कटुकविपाकाविर्भावनाय श्लोकद्वयेन दृष्टांतमाह । (तमेव अवियाणंता इत्यादि) तमेव आधाकर्मोपभोगदोषमजानानाविषमोऽष्टप्रकारकर्मबंधोभवकोटिभिरपि दुर्मोक्षश्चतुर्गतिसंसारोवा तस्मिन्नकोविदाः कथमेषकर्मबंधोभवति कथं वा न भवति केन चोपायेनायं संसारार्णवस्तीर्यतइत्यत्राऽकुशलास्तस्मिन्नेव संसारोदरे कर्मपाशावपाशिताडुःखिनोभवंतीति । अत्र दृष्टांतमाह । यथा मत्स्याः पृथुरोमाणोविशालः समुद्रस्तत्र भवावैशालिकाः विशालाख्यविशिष्टजात्युद्भवावा वैशालिकाः विशालाएव वैशालिकाबृहच्छरीरास्ते एवंभूतामहामत्स्याउदकस्याभ्यागमे समुद्रवेलायां सत्यां प्रबलमरुद्वेगोद्भूतोत्तुंगकल्लोलमालाऽपनुन्नाः संतउदकस्य प्रभावेन नदीमुखमागतापुनर्वेलापगमे तस्मिन्नुदके शुष्के वेगेनैवापगते बृहत्वाच्छरीरस्य तस्मिन्नेव धुनीमुखे विलग्नाश्चवसीदंतआमिषगृध्नुभिर्ढंकैः कंकैश्च पक्षिविशेषैरन्यैश्च मांसवसार्थिभिर्मत्स्यबंधादिभिर्जीवंतएव विलुप्यमानामहांतं दुःखसमुद्घातमनुभवंतोऽशरणाघातं विनाशं यांति प्राप्नुवंति । तुरवधारणे । त्राणाभावाद्विनाशमेव यांतीति श्लोकद्वयार्थः ॥ ३ ॥ एवं दृष्टांतमुपदर्श्य दार्ष्टांतिके योजयितुमाह । (एवंतुसमणा इत्यादि) यथैतेऽनंतरोक्तमत्स्यास्तथा श्रमणाः श्राम्यंतीति श्रमणाएके शाक्यपाशुपतादयः स्वयूथ्यावा । किंभूतास्ते इति दर्शयति । वर्तमानसुखैषिणः समुद्रवायसवत् तत्कालावाप्तसुखलवासक्तचेतसोनालोचिताधाकर्मोपभोगजनिताऽतिकटुकदुःखौघानुभवनावैशालिकमत्स्याइव घातं विशालमेष्यंत्यनंतशोऽरहघट्टीन्यायेन भूयोभूयः संसारोदन्वति निमज्जनोन्मज्जनं कुर्वाणान ते संसारांभोधेः पारगामिनोभविष्यंतीत्यर्थः ॥ ४ ॥

इणमन्नं तु अन्नाणं, इहमेगेसि आहियं॥देवउत्ते अयं लोए, बंभउत्तेति आवरे ॥ ५ ॥ ईसरेण कडे लोए, पहाणाइ तहावरे ॥ जीवाजीवसमाउत्ते, सुहदुक्खसमन्निए ॥ ६ ॥ सयंभुणा कडे लोए, इति वुत्तं महेसिणा॥ मारेण संथुया माया, तेण लोए असासए ॥७॥ माहणा समणा एगे आह अंमकडे जगे ॥ असो तत्तमकासीय, अयाणंता मुसं वदे ॥ ८ ॥

तरितमपि यो जुंजीत स द्विपक्षं गृहस्थपक्षं प्रव्रजितपक्षंच सेवते। अयमर्थः। आधाकर्मादिलवेनापि संसृष्टं परकृतमप्याहारं योनक्षयेत् सोपि द्विपक्षसेवी स्यात् किं पुनः स्वयमाहारं निष्पाद्य ये शाक्यादयोजुंजते ते सुतरां द्विपक्षसेविनः स्युरित्यर्थः। अथवा द्विपक्षमीर्यापथं सांपरायिकं वा बद्धनिकाचितनेदं वा कर्म तत्सेविनः परतीर्थिकाः स्वयूथ्यावा स्युरिति ॥ १ ॥ अथ तद्भोजिनां विपाकं दृष्टांतेनाह। (तमेवेति)। तमाधाकर्माद्युपनोगदोषमविजानंतोविषमे कर्मबंधे संसारे वा अकोविदाः कथं कर्मबंधः स्यात्कथं च न स्यात् कथं संसारार्णवस्तीर्यतइत्यत्राऽनिपुणाडुःखिनः स्युः। दृष्टांतमाह। मत्स्या यथा (वेसालियत्ति) विशालः समुद्रस्तत्र नवाविशालाख्यजातिनवावा विशालाएव वा वैशालिकाबृहच्छरीराउदकस्य जलस्याग्यागमे समुद्रवेलायां सत्यामुदकस्य प्रनावेन नदीमुखमागताः पुनर्वेलापगमे जले शुष्के वेगे अपगते सति ढंकैः कंकैश्च पक्षिविशेषैरन्यैश्चामिषार्थिनिर्विलुप्यमानास्ते डुःखिनोमत्स्यघातं विनाशं यांति प्राप्नुवंतीति श्लोकद्वयार्थः ॥ ३ ॥ दार्ष्टांतिकयोजनामाह। (एवमिति)। एवमेके श्रमणाः शाक्यादयः स्वयूथ्यावा वर्तमानमेव सुखमिहलोकसुखमाधाकर्माद्युपनोगजमेषितुं शीलं येषां ते वर्तमानसुखैषिणोवैशालिकामत्स्याइव घातं विनाशमेष्यंत्यनंतशोयास्यंति बहुवारं संसारे ज्रमिष्यंति डुःखमनुनवंतः ॥ ४ ॥

॥ टीका–द्वितीयोद्देशकानंतरं तृतीयः समारन्यते ॥ अस्य चायमनिसंबंधः। अध्ययनार्थाधिकारः स्वसमयपरसमयप्ररूपणेति। तत्रोद्देशकद्वयेन स्वपरसमयप्ररूपणा कृता। अत्रापि सैव क्रियते। अथ चाऽद्ययोरुद्देशकयोः कुदृष्टयः प्रतिपादितास्तद्दोषाश्च तदिहापि तेषामाचारदोषः प्रदृश्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्यावर्ण्यास्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं। (जंकिंचिउपूइकडमित्यादि)। अस्य चानंतरसूत्रेण सहायं संबंधइहानंतरोद्देशकपर्यंतसूत्रेनिहितः। (एवंतुश्रमणाएकेइत्यादि)। तदिहापि संबध्यते। एके श्रमणायत्किंचित्पूतिकृतं नुंजानाः संसारं पर्यटंतीति। परंपरसूत्रेत्वनिहितं (बुज्झिज्जइत्यादि) यत्किंचित्पूतिकृतं तद्बुध्येतेत्येवमन्यैरपि सूत्रैरुत्प्रेक्ष्यः संबंधोयोज्यः। अधुना सूत्रार्थः प्रतीयते। (यत्किंचिदिति)। आहारजातं स्तोकमप्यास्तांतावत्प्रनूतं। तदपि पूतिकृतमाधाकर्मादि सिक्थेनाप्युपसृष्टमास्तांतावदाधाकर्म। तदपि न स्वयंकृतमपि तु श्रद्धावतान्येन नक्तिमताऽपरानागंतुकानुद्दिश्येहितं चेष्टितं निष्पादितं तच्च सहस्रांतरितमपि योनुंजीतान्यवहरेदसौ द्विपक्षं गृहस्थपक्षं प्रव्रजितपक्षं वा सेवते। एतडुक्तं नवति। एवंनूतमपि परकृतमपरागंतुकयत्यर्थं निष्पादितं यदाधाकर्मादि तस्य सहस्रांतरितस्यापि योवयवस्तेनाप्युपसृष्टमाहारजातं जुंजानस्य द्विपक्षसेवनमापद्यते। किं पुनः यएते शाक्यादयः स्वयमेव सकलमाहारजातं निष्पाद्य स्वय

मिहास्मिन् लोके एकेषामाख्यातं । किं पुनस्तैराख्यातमित्याह । देवउत्तेति । देवेन उप्तः कृतोदेवोप्तोदेवपुत्रोवायं लोकः । ब्रह्मणा उप्तोब्रह्मणा कृतोवायं लोकइत्यपरे वदंतीति ॥ ॥५॥ तथा ईश्वरेण कृतोलोकः । अपरे वदंति प्रधानादिकृतोलोकः । सत्वरजस्तमोगुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः सैव प्रधानशब्दवाच्या । आदिशब्दान्नियतिकृतोलोकइत्यन्ये । लोकोजीवाजीवसमायुक्तः सुखडुःखसमन्वितश्च ॥ ६ ॥ तथा स्वयंनूर्विष्णुरन्योवा सचैकाकी रतिं न लनते ततोन्या शक्तिः समुत्पन्ना तदनंतरं जगत्सृष्टिरनूदिति महर्षिणा उक्तं । ततः स्वयंनुवा लोकं निष्पाद्यातिसंसारनयात् यमाख्योमारयतीतिमारोव्यधायि । तेन मारेण संस्तुता कृता माया तया मायया च लोको म्रियते । नच तत्त्वतोजीवस्य मृतिरस्त्यतोमायैषा तेन लोकोऽशाश्वतइति गम्यते ॥ ७ ॥ तथा ब्राह्मणाद्विजातयः श्रमणास्त्रिदंडिप्रमुखाएके अंडेन कृतमंडकृतं अंडाज्जातं जगदाहुर्वदंति । ब्रह्मणांडं कृतं ततोविश्वं जातं । एवं कृते जगति असौ ब्रह्मा तत्त्वं पदार्थसमूहमकार्षीत् कृतवान् ते च ब्राह्मणाद्याः परमार्थानभिज्ञाएवं मृषा वदंति ॥ ८ ॥

॥ टीका–सांप्रतमपराज्ञानिमतोपप्रदर्शनायाह । (इणमन्नंतुअन्नाणमित्यादि) । इदमिति वक्ष्यमाणं । तुशब्दः पूर्वेन्योविशेषणार्थः । अज्ञानमिति मोहविजृंनणमिहास्मिन् लोके एकेषां न सर्वेषामाख्यातमनिप्रायः । किंपुनस्तदाख्यातमिति तदाह । देवेनोप्तोदेवोप्तः कर्षकेणेव बीजवपनं कृत्वा निष्पादितोयं लोकइत्यर्थः । देवैर्वा गुप्तोरक्षितोदेवगुप्तोदेवपुत्रोवेत्यादिकमज्ञानमिति । तथा ब्रह्मणाउप्तोब्रह्मोप्तोयंलोकइत्यर्थः । परे एवं व्यवस्थिताः । तथाहि । तेषामयमन्युपगमः । ब्रह्मा जगत्पितामहः सचैकएव जगदवासीत्तेनच प्रजापतयः सृष्टास्तैश्च क्रमेणैतत्सकलं जगदिति । तथेश्वरेण कृतोयं लोकः । एवमेके ईश्वरकारकाअनिदधति प्रमाणयंति वा । सर्वमिदं विमत्यधिकरणनावोपपन्नं तनुनुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादीयते । बुद्धिमत्कारणपूर्वकमिति साध्योधर्मः । संस्थानविशेषवत्त्वादिति हेतुः । यथा घटादिरिति दृष्टांतोयं । यद्यत्संस्थानविशेषवत्तत्तद्बुद्धिमत्कारणपूर्वकं दृष्टं । यथा देवकुलकूपादिसंस्थानविशेषवच्च मकराकरनदीधराधरधराशरीरकरणादिकं विवादगोचरापन्नमिति । तस्माद्बुद्धिमत्कारणपूर्वकं । यश्च समस्तस्यास्य जगतः कर्ता ससामान्यपुरुषोन नवतीत्यसावीश्वरइति । तथा सर्वमिदं तनुनुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादीयते बुद्धिमत्कारणपूर्वकमिति । साध्योधर्मः कार्यत्वादघटादिवत् तथा स्थित्वा प्रवृत्तेर्वा वास्यादिवदिति । तथाऽपरेप्रतिपन्नायथा । प्रधानादिकृतोलोकः । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः साच पुरुषार्थं प्रवर्तते । आदिग्रहणाच्च प्रकृतेर्महान् ततोहंकारस्तस्माच्च गणः षोडशकस्तस्मादपि षोडशकात्पंचन्यः पंच महानूतानीत्यादिकया प्रक्रियया सृष्टिर्नवतीति । यदि वा आदिग्रहणात्स्वनावादिकं गृह्य

अ० धा० छा तारमा० श्री

अर्थ–हवे अनेरा अज्ञानीनुं मत देखाडेछे. इणमन्नंतु अन्नाणं के० ए पूर्वे कह्योजे सदोष आहार लइने सुख माने तेनाथी वली अन्य अज्ञानीनुंमत देखाडेछे. इहमेगेसिआ हियके० अहीयां कोइ एकने मते पण सर्वने मते नहीं एटले कोइक अज्ञानी एम कहेछे के देवउत्तेअयंलोए के० आ लोक जे चराचर संसार छे, ते देवें नीपजावेलो छे. जेम करसणी बीज वावीने करसण नीपजावेछे ते सरखो जाणवो. तथा वली बीजा एम कहेछे के बंभउत्तेतिआवरे के० ए लोक ब्रह्मदेवें नीपजाव्योछे. ब्रह्मा जगत्पितामह इतिवचनात्. ॥ ५ ॥ वली कोइएक एम कहेछे, के ईसरेणकडेलोए के० ए लोक ईश्वरें करेलोछे. पहाणाइ तहावरे के० तथा अवरे एटले बीजा वली एम कहेछे के, प्रधान एटले सत्व, रज अने तमगुणनी जे सम अवस्था ते प्रकृति कहिए. तेणे ए लोक करे लो छे. बीजा एम कहेछे के मोरनी पांख कोणे चीतरी? सेलडीमिष्ठ कोणे कीधी? स्वना वथकी लोक नीपनो छे. वली कांटा तीखा कोणे कीधा! लींब कडवो कोणे कर्यो तथा लस ण डुर्गंधमय, कमल सुगंधमय ए सर्व स्वनावेज नीपनांछे, तेम लोक पण स्वनावे निष्प न्न छे. ते लोक केवोछे, तोके जीवाजीवसमाउत्तेके० जीव अजीव सहित तथा सुह डुरक सम न्निएके०सुखडुःखसहित छे. ॥ ६ ॥ एक कहेछे के, सयंभुणाकडेलोएके० ए लोक स्वयंभु एटले विष्णु तेणे नीपजाव्यो. अथवा ते विष्णु पेहेलो एकज हतो तेणे जगत नीपजाववानी चिंता करी त्यारे बीजी शक्ति नीपनी, त्यार पछी जगतनी सृष्टी निष्पन्न थई. इतिवुत्तंम हेसिणा के० एवुं महर्षिए कह्युंछे: त्यार पछी स्वयंभुए लोक नीपजावीने एवुं चिंतव्युं जे एटली जगत सृष्टीनो समास क्यां थशे! तेवारे मार एटले यम नीपजाव्यो. पछी मारे णसंथुयामायाके० तेणेमारे माया नीपजावी ते थकी ए लोक मरेछे. तेणलोए असासए के० ते कारण माटे ए लोक अशाश्वतो छे. ॥ ७ ॥ वली तेहिज कहेछे माहणा समणा एगेके० एक ब्राह्मण तथा एक श्रमण जे त्रिदंमी प्रमुख ते एम आह के० कहेछे के, अंमकडेजगेके०ए सचराचर जगत ते अंमथकी निपनुं छे; ते एम कहेछे के जेवारे जगत मां काइ वस्तु न हती सर्व पदार्थ शून्य संसार हतो तेवारे ब्रह्मायें पाणीमांहे इंडुं सरज्युं पछी ते इंडु वध्युं तेवारे ते नांगीने बे खंम थया; तेमांहे थकी अधोलोक अने ऊर्ध्वलोक नीपना तेमां समस्त प्रजा उत्पन्न थई. एवा अनुक्रमे पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, आकाश, समुड, नदी, पर्वत, ग्राम, आगर, नगर इत्यादिक सर्व स्थिति उत्पन्न थई; ए कारणे अ सोके० ए ब्रह्माये ए सर्व तत्तंके० तत्व एटले पदार्थ ते अकासीयके० कीधा. एरीते ते ब्राह्मणादिक अयाणंता मुसंवदेके० परमार्थने अजाणता थका मृषा बोलेछे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–अथाऽपराज्ञानिमतमाह । (इणमिति) । इदं वक्ष्यमाणमन्यदज्ञान

खाडेछे. ते दर्शनी श्रमणब्राह्मणके० विरुद्ध अनुष्ठान अनाचार ते थकी जेनी समुप्पायं के० उत्पत्तिछे, ते केवुं तोके, डुक्खंके० हिंसादिक विरुद्ध अनुष्ठान तेमां जे प्रवर्त्तशे ते डुःखी थाशे एवविजाणियाके० एवुं जाणवुं जोइये. समुप्पायमजाणंताके० ते एवा डुःखनी उत्पत्तिनां कारणोने नजाणे परंतु ते अजाण वापडा कहंनायंतिसंवरं के० संवरपणुं जे डुःखनिवारणनुं कारण छे, तेने केवी रीते जाणी शकशे? एतावता अति यत्न करतां प ण डुःखनो उच्छेद न पामे, किंतु संसारमांहे अनंतो काल रहेशे.॥ १० ॥ ॥

॥ दीपिका–अथ तेषामुत्तरमाह । (सएहिमिति)। स्वकैर्निजैः पर्यायैरभिप्रायैर्लोकं कृतमब्रुवन् कथितवंतस्ते तत्त्वं परमार्थं नाभिजानंति । नच विनाशी लोकः कदाचित् निर्मूलतः पर्यायरूपेण विनाश्यपि द्रव्यार्थतया नित्यत्वात् । लोकस्य ईश्वरादिकृतत्वं नि षेधयुक्तयष्टीकातोज्ञेयं ॥ ए ॥ अथ तेषां मृषावादिनां फलमाह । अमणुन्नेति । अ मनोज्ञं असदनुष्ठानं तस्मादुत्पादः प्रादुर्भावोयस्य तदमनोज्ञसमुत्पादं डुःखं विजा नीयात् प्राज्ञः । अयमर्थः स्वकृतादसदनुष्ठानादेव डुःखमुत्पद्यते नेश्वरादेरिति । ते चैवं डुःखस्य संवरं प्रतिघातहेतुं ज्ञास्यंति । कारणोच्छेदादेव कार्योच्छेदः स्यात् । कारणं वाऽजा नंतः कथं डुखोच्छेदाय यतिष्यंते यत्नवंतोपि डुःखोच्छेदं नाप्नुवंतीति ॥ १० ॥ ॥ ॥

॥ टीका–अधुनैषां देवोप्तादिजगद्वादिनामुत्तरदानायाह । (सएहिमित्यादि)। स्वकीयैः स्वकीयैः पर्यायैरभिप्रायैर्युक्तिविशेषैरयं लोकः कृतइत्येवमब्रुवन्नभिहितवंतः। देवोप्तोब्रह्मो प्तईश्वरकृतः प्रधानादिनिष्पादितः स्वयंभुवा व्यधायि तन्निष्पादितमायया म्रियते तथांड जश्चायं लोकइत्यादिस्वकीयाभिरुपपत्तिभिः प्रतिपादयंति । यथाऽस्मदुक्तमेव सत्यं ना न्यदिति ते चैवंवादिनो वादिनः सर्वेपि तत्त्वं परमार्थं यथावस्थितलोकस्वभावं नाभिजानं ति न सम्यक् विवेचयंति । यथाऽयं लोकोद्रव्यार्थतया न विनाशीति निर्मूलतः कदाचन। नचायमादितआरभ्य केनचित् क्रियते अपित्वयं लोकोऽभूद्भवति भविष्यति च। तथाहि। य त्तावदुक्तं यथा देवोप्तोऽयं लोकइति तदसंगतम्। यतोदेवोप्तत्वे लोकस्य न किंचित्तथावि धं प्रमाणमस्ति। नचाप्रमाणकमुच्यमानं विद्वज्जनमनांसि प्रीणयति। अपिच किमसौ देव उत्पन्नोऽनुत्पन्नोवा लोकं सृजेन्न तावदनुत्पन्नस्तस्य खरविषाणस्येवासत्त्वात्करणाभावः। अथोत्पन्नः सृजेत्तत्किं स्वतोऽन्यतो वा। यदि स्वतएवोत्पन्नस्तथा सति तद्वल्लोकस्यापि स्वतए वोत्पत्तिः किं नेष्यते। अथान्यतउत्पन्नः सन् लोककरणाय सोप्यन्योन्यतः सोप्यन्योन्यतइ त्येवमनास्थालतानभोमंडलव्यापिन्यनिवारितप्रसरा प्रसर्पतीति। अथासौ देवोऽनादित्वा न्नोत्पन्नइत्युच्यते इत्येवंसति लोकोप्यनादिरेवास्तुको दोषः। किंचासावनादिः सन्नित्योऽनि त्योवा स्यात्तद्यदि नित्यस्तदा तस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधान्न कर्तृत्वं। अथाऽनि

ते । ततश्चायमर्थः । स्वन्नावेन कृतोलोकः कंटकादितैक्ष्ण्यवत् । तथान्ये नियतिकृतोलोको मयूरांगरुहवदित्यादिनिः कारणैः कृतोयं लोकोजीवाजीवसमायुक्तो जीवैरुपयोगलक्षणै स्तथा जीवैर्धमाधर्माकाशपुजलादिकैः समन्वितः समुइधराधरादिकइति । पुनरपि लोकं विशेषयितुमाह । सुखमानंदरूपं डुःखमसातोदयरूपमिति ताभ्यां समन्वितोयुक्तइति ॥ ॥ ६ ॥ किंच । (सयंनुणाइत्यादि) । स्वयं नवतीति स्वयंनूर्विष्णुरन्यो वा सचैकएवादाव नूत्तत्रैकाकी रमते द्वितीयमिष्टवांस्तच्चिंतानंतरमेव द्वितीया शक्तिः समुत्पन्ना तदनंतरमेव जगत्सृष्टिरनूदित्येवं महर्षिणोक्तमनिहितं । एवं वादिनोलोकस्य कर्तारमन्युपगतवंतोपि च । तेन स्वयंनुवा लोकं संपाद्यातिन्नारनयाद्यमाख्योमारयतीति मारोऽन्यधायि । तेन मारेण संस्तुता कृता प्रसाधिता माया तया च मायया लोकाम्रियंते । नच परमार्थतोजीवस्योपयोगलक्षणस्य व्यापत्तिरस्त्यतोमायैषा । यथायं मृतस्तथा चायं लोकोऽशाश्वतोऽनित्योऽविनाशीति गम्यते ॥ ७ ॥ अपिच । (माहणाइत्यादि) । ब्राह्मणाद्विजातयः श्रमणास्त्रिदंडिप्रनृतयः । एके केचन पौराणिकान सर्वे एवमाहुरुक्तवंतोवदंति च । यथा जगदेतच्चराचरमंडेन कृतमंडकृतं । अंडाज्जातमित्यर्थः । तथाहि । ते वदंति यदा न किंचिदपि वस्त्वासीत् पदार्थशून्योयं संसारस्तदा ब्रह्माऽप्स्वंडमसृजत्तस्माच्च क्रमेण वृद्धात्पश्चाद्विधान्नावमुपगतादूर्ध्वाधोविन्नागोऽनूत् तन्मध्ये च सर्वाः प्रकृतयोऽनूवन् । एवंपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसमुइसरित्पर्वतमकराकरनिवेशादिसंस्थितिरनूदिति । तथाचोक्तं । आसीदिदं तमोनूतमप्रज्ञातमलक्षणं ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ १ ॥ एवंनूते चास्मिन् जगत्यसौ ब्रह्मा तस्य नावस्तत्त्वं पदार्थजातं तदंमादिप्रक्रमेणाकार्षीत् कृतवानिति । तेच ब्राह्मणादयः परमार्थमजानानाः संतोमृषावदंति अन्यथा च स्थितं तत्त्वमन्यथाप्रतिपादयंतीत्यर्थः ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सएहिं परियाएहिं, लोयं बूया कडेतिय ॥ तत्तं ते ण विजाणंति, ण विणासी कयाइवि ॥ ९ ॥ अमणुन्नसमुप्पायं, डुक्खमेव विजाणिया ॥ समुप्पायमजाणंता, कहं नायंति संवरं ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवे ग्रंथकार एनो उत्तर कहेले. एरीते पूर्वे जे दर्शनी कह्या ते, सएहिं परियाएहिंके० पोतपोताना पर्यायें करी एटले पोतपोतानी कल्पनाये लोयंबूयाकडेतियके० एम कहे जे ए लोक अमुक अमुक प्रकारे कीधोले. परंतु तत्तंते णविजाणंतिके० ते तत्व कांइ जाणता नथी. णविणासीकयाइविके० ए लोकतो कदापि काले विनाश पामे नहीं, एनी आदि पणनथीअने अंत पण नथी, तेथी एनो कर्त्ता कोइ नथी. एवो परमार्थ ते जाणता नथी; पण अजाणथका नावे तेम बोलेले.॥९॥ हवे एवां वचनना बोलनारने फल दे

प्रति प्रवृत्तिर्येनाऽत्मनोजोगोपपत्त्या सृष्टिः स्यादिति । प्रकृतेरयं स्वनावइति चेदेवं तर्हि स्वनावएव बलीयान् । यस्तामपि प्रकृतिं नियमयति ततएव च लोकोप्यस्तु किमदृष्टप्रधानादिकल्पनयेति । अथादिग्रहणात्स्वनावस्यापि कारणत्वं कैश्चिदिष्यतइति चेदस्तु । न हि स्वनावोऽन्युपगम्यमानोनः क्षतिमातनोति । तथाहि । स्वनावः स्वकीयोत्पत्तिः । सा च पदार्थानामिष्यतएवेति । तथा यडुक्तं नियतिकृतोयं लोकइति । तत्रापि नियमनं नियतिर्यथान्नवनं नियतिरित्युच्यते । साचाऽलोच्यमाना न स्वनावादतिरिच्यते । यच्चान्यथापि स्वयंनुवोत्पादितोलोकइति तदप्यसुंदरमेव । यतः स्वयंनूरिति किमुक्तं नवति । किं यदाऽसौ नवति तदा स्वतंत्रोन्यनिरपेक्षएव नवति । अथाऽऽदिनवनात्स्वयंनूरिति व्यपदिश्यते । तद्यदि स्वतंत्रनवनान्युपगमस्तल्लोकस्यापि नवनं किं नान्युपेयते किं स्वयंनुवा । अथानादिस्ततस्तस्यानादित्वे नित्यत्वं नित्यस्य चैकरूपत्वात्कर्तृत्वाऽनुपपत्तिस्तथा वीतरागत्वात्तस्य संसारवैचित्र्यानुपपत्तिः । अथ सरागोसौ ततोऽस्मदाद्यव्यतिरेकात्सुतरां विश्वस्याकर्ता मूर्ताऽमूर्तादिकल्पाश्च प्राग्वदायोज्याइति । यदपि चात्रानिहितं । तेन मारः समुत्पादितः सच लोकं व्यापादयति तदप्यकर्तृत्वस्यानिहितत्वात्प्रलापमात्रमिति । तथा यडुक्तं अंडादिक्रमाज्जायते लोकइति तदप्यसमीचीनं । यतोयास्वप्सु तदंडं निसृष्टं तायथांडमंतरेणान्नूवन् तथा लोकोपि नूतइत्यन्युपगमे न काचिद्बाधा दृश्यते । तथासौ ब्रह्मा यावदंडं सृजति तावल्लोकमेव कस्मान्नोत्पादयति किमनया कष्टया युक्त्यसंगतया चांडपरिकल्पनया । एवमस्त्विति चेत् केचिदन्निहितवंतोयथा ब्रह्मणोमुखाद्ब्राह्मणाः समजायंत बाहुन्यां क्षत्रियाऊरुन्यां वैश्याः पन्न्यां शूद्राइत्येतदप्ययुक्तिसंगतमेव । यतोन मुखादेः कस्यचिडुत्पत्तिर्नवंत्युपलक्ष्यते । अथापि स्यात्तथा सति वर्णानामन्नेदः स्यादेकस्माडुत्पत्तेः । तथा ब्राह्मणानां कवतैत्तिरीयककलापादिकश्च नेदोन स्यादेकस्मान्मुखाडुत्पत्तेः । एवंचोपनयनादिसन्नावोन नवेन्नावे वा स्वस्रादिग्रहणापत्तिः स्यादेवमाद्यनेकदोषडुष्टत्वादेवं लोकोत्पत्तिर्नान्युपगंतव्या । ततश्च स्थितमेतत् । तएवं वादिनोलोकस्याऽनाद्यपर्यवसितस्योर्ध्वाधश्चतुर्दशरज्जुप्रमाणस्य वैशाखस्थानस्थकटिन्यस्तकरयुग्मपुरुषाकृतेरधोमुखमल्लकाकारसप्तपृथिव्यात्मकाधोलोकस्य स्थालाकाराऽसंख्येयद्वीपसमुद्राधारमध्यलोकस्य मल्लकसमुज्जकाकारोर्ध्वलोकस्य धर्माधर्माकाशपुजलजीवात्मकस्य ड्रव्यार्थतयाऽनित्यस्य पर्यायापेक्षया क्षणक्षयिणउत्पादव्ययध्रौव्यापादितड्रव्यसतत्त्वस्याऽनादिजीवकर्मसंबंधापादिताऽनेकप्रपंचस्याष्टविधकर्मविप्रमुक्ताऽत्मलोकांतोपलक्षितस्य तत्त्वमजानानाः संतोमृषा वदंतीति ॥ ए ॥ इदानीमेतेषामेव देवोप्तादिवादिनामज्ञानत्वं प्रसाध्य तत्फलदिदर्शयिषयाऽह । (अमणुन्नइत्यादि) । मनोनुकूलं मनोज्ञं शोननमनुष्ठानं न मनोज्ञममनोज्ञमसदनुष्ठानं तस्माडुत्पादः प्राडुर्नावोयस्य

इदं सुखदुःखात्मकं लोकं जगत् स्वस्वमानकर्तृत्वम् ॥श्रीसूत्रपाठ

त्यस्तथासति स्वतएवोत्पस्यनंतरं विनाशित्वादात्मनोन त्राणाय कुतोन्यत्करणं प्रति तस्य व्यापारचिंतेति । तथा किममूर्तोमूर्तिमान् वा । यद्यमूर्तस्तदाऽऽकाशवदकर्तैवाऽथ मूर्तिमान् तथासति प्राकृतपुरुषस्येवोपकरणसव्यपेक्षस्य स्पष्टमेव सर्वजगदकर्तृत्वमिति । देवगुप्तदेवपुत्रपक्षौ त्वतिफल्गुत्वादपकर्णयितव्याविति । एतदेव दूषणं ब्रह्मोप्तपक्षेपि द्रष्टव्यं तुल्ययोगक्षेमत्वादिति । तथा यडुक्तं । तनुन्नुवनकरणादिकं विमत्यधिकरणन्नावापन्नं विशिष्टबुद्धिमत्कारणपूर्वकं कार्यत्वाद्घटादिवदिति तदयुक्तं । तथाविधविशिष्टकारणपूर्वकत्वे न व्याह्यसिद्धिः । कार्यपूर्वकत्वमात्रेण तु कार्यं व्याप्तं । कार्यविशेषोपलब्धौ कारणविशेषप्रतिपत्तिर्गृहीतप्रतिबंधस्यैव न्नवति । नचात्यंतादृष्टे तथा प्रतीतिर्न्नवति।घटे तत्पूर्वकत्वं प्रतिपन्नमिति चेत् युक्तं ।तत्र घटस्य कार्यविशेषत्वप्रतिपत्तेर्नत्त्वेवं सरित्समुद्रपर्वतादौ बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेन संबंधोगृहीतइति । पुनरप्युक्तं । नन्वतएव घटादिसंस्थानविशेषदर्शनवत्पर्वतादावपि विशिष्टसंस्थानदर्शनाद्बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वस्य साधनं क्रियते । नैतदेवं युक्तं । यतोनहि संस्थानशब्दप्रवृत्तिमात्रेण सर्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वत्वावगतिर्न्नवति । यदितु स्यान्मृद्विकारत्वाद्वल्मीकस्यापि घटवत्कुंन्नकारकृतिः स्यात् । तथाचोक्तं । अन्यथाकुंन्नकारेण मृद्विकारस्य कस्यचित् । घटादेः कारणात्सिद्ध्येद्वल्मीकस्यापि तत्कृतिरिति । तदेवं यस्यैव संस्थानविशेषस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेन संबंधोगृहीतस्तद्दर्शनमेव तथाविधकारणानुमापकं न्नवति न संस्थानमात्रमिति । अपिच घटादिसंस्थानानां कुंन्नकार एव विशिष्टः कर्तोपलक्ष्यते नेश्वरः । यदि पुनरीश्वरः स्यात्किं कुंन्नकारेणेति । नैतदस्ति । तत्रापीश्वरएव सर्वव्यापितया निमित्तकारणत्वेन व्याप्रियते । नन्वेवं दृष्टहानिरदृष्टकल्पना स्यात् । तथाचोक्तं । शस्त्रौपधादिसंबधाच्चैत्रस्य व्रणरोहणे ॥ असंबद्धस्य किं स्थाणोः कारणत्वं न कल्प्यते ॥ १ ॥ तदेवं दृष्टकारणपरित्यागेनाऽदृष्टपरिकल्पना न त्याज्येति । अपिच । देवकुलावटादीनां यः कर्ता ससावयवोऽव्याप्यनित्योदृष्टस्तद्दृष्टांतः साधितश्चेश्वरएवंन्नूतएव प्राप्नोति । अन्यथान्नूतस्य च दृष्टांतान्नावाद्व्याप्त्यसिद्धेर्नानुमानमिति । अनयैव दिशा स्थित्वाप्रवृत्त्यादिकसाधनमसाधनमायोज्यं तुल्ययोगक्षेमत्वादिति । यदपि चोक्तं प्रधानादिकृतोऽयं लोकइति तदप्यसंगतं । यतस्तत्प्रधानं किं मूर्तममूर्तं वा । यद्यमूर्तं न ततोमकराकरादेर्मूर्तस्योद्भवोघटते । नह्याकाशात्किंचिदुत्पद्यमानमालक्ष्यते मूर्तोऽमूर्तयोः कार्य कारणविरोधादिति । अथ मूर्तं तत्कुतः समुत्पन्नं । न तावत्स्वतोलोकस्यापि तथोत्पत्तिप्रसंगात् नाप्यन्यतोऽनवस्थापत्तेरिति । अन्यथाऽनुत्पन्नमेव प्रधानाद्यनादिन्नावेनास्ते तद्वल्लोकोपि किं नेष्यते । अपिच । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रधानमित्युच्यते नचाऽविकृतात्प्रधानान्महदादेरुत्पत्तिरिष्यते न्नवद्भिः । नच विकृतं प्रधानव्यपदेशमास्कंदतीत्यतोन प्रधानान्महदादेरुत्पत्तिरिति । अपिचाचेतनायाः प्रकृतेः कथं पुरुषार्थं

णी तेहनीपरे जाणवुं. जेम नीरयंके० निर्मल पाणी होयते रजादिकने संयोगे सरयंके० रजसहित एटले मलिन थाय, फरी ते पाणी निर्मलपण थाय; तहाके० तेम ए आत्मा पण जाणी लेवो. ॥ १२ ॥ हवे ए मतने दूषवेछे. एतके० ए पूर्वोक्त वादीउनां वचन असमं जस अणुचिंतिके० चिंतवी आलोचीने, मेधावी के० पंमित जे होय ते मनमां एवी रीते अवधारे ते कहेछे. बंनचेरे णतेवसेके० ए त्रैराशिक तथा अनेरा दर्शनी ब्रह्मचारीनेविषे न वसे एटले सूधो संयम नपाले. जे कारण माटे ते सम्यक्ज्ञानरहित थका अकर्मक ने सकर्मक कहेछे ते माटे ते अज्ञानी छे. तथा पुढोपावाउयासवेके० ए सर्वे जुदाजुदा प्रा वाडुक एटले परदर्शनी अरकायारो सयंसयंके० पोतपोतानुं दर्शन रुडुं करी वखाणेछे. ॥१३॥ वली तेहिज दर्शनीनुं मत कहेछे. सएसएउवठाणे के० ते पोतपोतानां दर्शनने विषे प्रवर्त्तता पोतपोतानुं अनुष्ठान जे दीक्षा, गुरु चरण, शुश्रूषादिक तेहिज सिद्धिमेव के० सिद्धिनुं कारणछे पण नअन्नहाके० अनेरा दर्शन थकी, अनेरा अनुष्टान थकी मुक्ति न पामिये. अहोऽहेववसवत्ती के० ते एम कहेछे के–अमारा दर्शन थकी एहिज जन्ममां यावत् आत्मवर्ती थको एटले समस्त इंद्रीनो जीपनार एवो थको सवकामसमप्पिएके० सर्वकामएटले जे जे काम जोगनी प्रार्थना तथा वांछनाकरे ते ते पामे. ॥ १४ ॥ ॥

॥ दीपिका–कृतवादिमतमेवाह । (सुद्धेति)। अयमात्मा शुद्धोमनुष्यजवएव शु द्धाचारोजूत्वा मोक्षे अपापकः स्यात् । इदमेकेषां गोशालमतानुसारिणामाख्यातं । पुनर यमात्मा अकर्मकोजूत्वा क्रीडया प्रद्वेषेण वा स तत्र मोक्षस्थएवाऽपराध्यति रजसा श्लि ष्यते । तस्यहि स्वशासनपूजामन्यदर्शनपराजवमुपलज्य क्रीडाप्रमोदः स्यात् । स्वशासनपरा जवदर्शनाच्च द्वेषस्ततोऽसौ क्रीडाद्वेषाज्यां कर्मणा बाध्यते ततोऽसौ जूयः संसारेऽवत रति ॥११॥ किंच । (इहेति) । इह संसारे प्राप्तः सन् प्रव्रज्यामंगीकृत्य संवृतात्मा जातः सन् पश्चादपापः स्यात् । यथाविकटांबु जलोदकं नीरजस्कं निर्मलं सत् वातोद्भूतरेणुयु क्तं सरजस्कं मलिनं जूयः स्यात् तथायमात्मा त्रैराशिकाणां मते राशित्रयावस्थः स्यात्। यथापूर्वं संसारावस्थायां सकर्मकः ततो मोक्षे ऽकर्मकः पुनः शासनपराजवदर्शनात् द्वे षोदयात् सकर्मा स्यादिति ॥१२॥ एतन्मतं दूषयति । (एयाणुत्ति)। एतान्पूर्वोक्तान् वा दिनोऽनुचिंत्य मेधावी प्रज्ञावान् एतदवधारयेत् यथा न ते वादिनो ब्रह्मचर्ये संयमानुष्ठा ने वसेयुः । यद्यपि ते संयमे स्थितास्तथापि न सम्यगनुष्ठातारइत्यवधारयेत् । पृथक्पृथक् सर्वेप्येते प्रावाडुकाः परमतिनः स्वकं स्वकमात्मीयं दर्शनमाख्यातारः शोजनत्वेन कथयिता रः स्वदर्शनं शुजं वदंति ते । नच तत्रास्था विधेयेति ॥ १३ ॥ कृतवादिमतमेव प्रकारांतरे णाह । (सएति)। ते कृतवादिनः स्वके स्वके उपस्थाने संयमाद्यनुष्ठाने सिद्धिं मोक्ष

दुःखस्य तदमनोज्ञसमुत्पादं । एवकारोऽवधारणे । सचैवं संबंधनीयः । अमनोज्ञसमुत्पादमेव दुःखमित्येवं विजानीयादवगच्छेत्प्राज्ञः । एतदुक्तं भवति । स्वकृताऽसदनुष्ठानादेव दुःखस्योद्भवोभवति नान्यस्मादित्येवं व्यवस्थितेपि सत्यनंतरोक्तवादिनोऽसदनुष्ठानोद्भवस्य दुःखस्य समुत्पादमजानानाः संतोऽन्यतईश्वरादेर्दुःखस्योत्पादमिच्छंति । तेचैवमिच्छंतः कथं केन प्रकारेण दुःखस्य संवरं दुःखप्रतिघातहेतुं ज्ञास्यंति । निदानोच्छेदेन हि निदानिनउच्छेदोभवति । तेच्च निदानमेव न जानंति तत्त्वाऽजानानाः कथं दुःखोच्छेदाय यतिष्यंते यतवंतोपि च नैव दुःखोच्छेदनमवाप्स्यंत्यपि तु संसारएव जन्मजरामरणेष्टवियोगाद्यनेक दुःखव्राताघ्राताभूयोभूयोऽरहट्टघट्टीन्यायेनानंतमपि कालं संस्थास्यंति ॥ १० ॥ ॥

सुद्धे अपावए आया, इहमेगेसिमाहियं ॥ पुणो किड्डापदोसेणं, सो तत्थ अवरज्झई ॥११॥ इह संवुडे मुणी जाए, पच्छा होइ अपावए ॥ वियडंबु जहा भुज्जो, नीरयं सरयं तहा ॥१२॥ एताणुवीति मेधावी, बंभचेरेण ते वसे ॥ पुढो पावाउया सवे, अक्खायारो सयं सयं ॥ १३ ॥ सए सए उवठाणे, सिद्धिमेव न अन्नहा ॥ अहो इहेव वसवत्ती, सवकाम समप्पिए ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे प्रकारांतरे दर्शनीनुं मत देखाडेछे. ए प्रस्तावे इहमेगेसिमाहियंके० एक वली कोइक, त्रैराशिक गोशालामतानुसारी ते एम कहेछेके, ए आयाके० आत्माते मनुष्यने भवेज सुद्धेके० शुद्ध थाय. अपावए के० पापरहित थाय. एटले सर्व कर्म क्षयकरी मोक्षे जाय. पुणोके० वली सोके० तेहज आत्मा तत्थके० त्यां मोक्षनेविषे छतो किड्डापदोसेणंके० क्रीडाप्रदोषे करी एटले रागद्वेषने वशें करी अवरज्झइके० अपराध करे एटले कर्म रजे करी अशुद्ध थाय. एटले शुं कह्युं? के ते मुक्ति छतां जीवने पोतानां सासननी पूजा जाणी, अने अन्य सासननो पराभव जाणी, पोताने राग उपजावे. तथा पोताना सासननो व्याघात देखी द्वेष उपजे. ए कारण माटे आत्मा निर्मल छतो उज्वल वस्त्रनी परे शनैःशनैः मलीन थाय. ए प्रकारे ते आत्मा वली संसारमांहे अवतरे एवुं जे त्रैराशिक कहेछे, ते जीवनी त्रणराशी स्थापेछे. प्रथम आत्मा सकर्मक, पछी वली अकर्मक थईने मुक्तिमां जाय, ए बीजी राशी. अने त्यां मुक्तिने विषे वली कर्म उपार्जी संसारमांहे आवे ए त्रीजी राशी. ॥११॥ इहसंवुडेमुणीजाएके० अहीं मुक्ति थकी आवी मनुष्यना भवमां उपजीने मुनि एटले यमनियम आदरी, संवुडे एटले संवर आदरी, पच्छाहोइअपावएके० पछी पापरहितनिर्मल थाय. एना उपर दृष्टांत कहेछे, जहाके० जेम वियडंबुके० विकटांबु एटले पा

कुतः पुनः कर्मबंधस्तस्माच्च संसारावतरणमित्यर्थः ॥ अतस्ते यद्यपि कथंचिद्द्व्यब्रह्मचर्यें व्यवस्थितास्तथापि सम्यक् ज्ञानाभावान्न सम्यगनुष्ठानभाजइतिस्थितं । अपिच सर्वेप्येते प्रावादुकाः स्वकं स्वकमात्मीयं दर्शनं स्वदर्शनानुरागादाख्यातारः शोभनत्वेन प्रख्यापयितारइति । नच तत्र विदितवेद्येनास्था विधेयेति ॥१३॥ पुनरन्यथाकृतवादिमतमुपदर्शयितुमाह । (सएसएइत्यादि) ते कृतवादिनः शैवैकदंडिप्रभृतयः स्वकीये स्वकीये उपतिष्ठत्यस्मिन्नित्युपस्थानं स्वीयमनुष्ठानं दीक्षा गुरुचरणशुश्रूषादिका तस्मिन्नेव सिद्धिमशेषसांसारिकप्रपंचरहितस्वभावमभिहितवंतोनान्यथा नान्येन प्रकारेण सिद्धिरवाप्यत इति । तथाहि शैवादीक्षातएव मोक्षइत्येवं व्यवस्थिताः । एकदंडिकाः पंचविंशतितत्त्वपरिज्ञानान्मुक्तिरित्यभिहितवंतस्तथान्येपि वैदांतिकाध्यानाध्ययनसमाधिमार्गानुष्ठानात्सिद्धिमुक्तवंतइत्येवमन्येपि यथास्वदर्शनान्मोक्षमार्गं प्रतिपादयंतीति । अशेषद्वंद्वोपरमलक्षणायाः सिद्धिप्राप्तेरधस्तात्प्रागपि यावदद्यापि सिद्धिप्राप्तिर्न भवतीति तावदिहैव जन्मन्यस्मदीयदर्शनोक्तानुष्ठानानुभावादष्टगुणैश्वर्यसद्भावो भवतीति दर्शयति । आत्मवशं वर्तितुं शीलमस्येति वशवर्ती वशेंद्रियइत्युक्तं भवति तद्वसौ सांसारिकैः स्वभावैरभिभूयते । सर्वे कामाअभिलाषाअर्पिताः संपन्नायस्य ससर्वकामसमर्पितोयान्यान् कामान् कामयते ते तेऽस्य सर्वे सिध्यंतीति यावत् । तथाहि । सिद्धेरारादष्टगुणैश्वर्यसिद्धिर्भवति । तद्यथा । अणिमा लघिमा गरिमा प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वमप्रतिघातित्वं यत्र कामावसायित्वमिति ॥ १४ ॥

> सिद्धा य ते अरोगा य, इहमेगेसिमाहियं ॥ सिद्धिमेव पुरो काउं
> सासए गढिआ नरा ॥ १५ ॥ असंवुमा अणादीयं, भमिहिंति
> पुणो पुणो ॥ कप्पकालमुवज्जंति, ठाणा आसुरकिव्विसियात्ति
> बेमि ॥ १६ ॥ इति प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशकः ॥

अर्थ–हवे परभवे जे गति थाय ते कहेछे. सिद्धायते के० ते जीव अमारा दर्शने प्रवर्त्तता शरीर त्याग करी, विशिष्ट समाधिने योगे सिद्ध थाय. ते सिद्ध केवा? तो के, अरोगाय के० रोगरहित एटले शरीरनां दुःख थकी रहित छे. एरीते इह के० एहिज लोकने विषे मेगेसि के० एकेक कोइ शिवने मतें एम आहियं के० भाख्युं एटले कह्युं. ते दर्शनी पोतपोताने अनुष्ठाने सिद्धिमेवके० सिद्धिनेज, पुरोकाउंके० आगल करी सासए के० आपणा अभिप्रायने विषे गढिआ के० गृध छता अनेक हेतु युक्ति कहे. ते कोनी परें? तो के, नराके० पामर नरनी पेरे. जेम ते अजाण मनुष्य पोताना मतनुं कदाग्रह न त्यागे, तेम तें दर्शनीउंपण जे कांइ पोताना मतनुं

मन्निहितवंतोनान्यथा । तथासिद्धिप्राप्तेरधः प्रागपि वशवर्ती वशेंद्रियः स्यात् अस्मन्म ताश्रितः सांसारिकैः स्वनावैर्नानिनूयते । सर्वे कामाअनिलाषाः समर्पिताः संपन्नायस्य ससर्वकामसर्पितः इहलोके ईदृशः स्यात् परलोके च मोक्षं यायादित्यर्थः ॥ १४ ॥ ॥

॥ टीका—सांप्रतं प्रकारांतरेण कृतवादिमतमेवोपन्यस्यन्नाह । (सुद्धेत्यादि) । इहा स्मिन् कृतवादिप्रस्तावे त्रैराशिकागोशालकमतानुसारिणोयेषामेकविंशतिसूत्राणि पूर्व गतत्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या व्यवस्थितानि ते एवं वदंति । यथायमात्मा शुद्धोमनुष्यन्न वएव शुद्धाचारोनूत्वा अपगताशेषमलकलंकोमोक्षेऽपापकोन्नवति । अपगताशेषक र्मा नवतीत्यर्थः । इदमेकेषां गोशालकमतानुसारिणामाख्यातं । पुनरसावात्माऽशुद्धत्वाऽक मेकत्वराशिद्वयावस्थोनूत्वा क्रीडया प्रद्वेषेण वा सतत्र मोक्षस्थएवाऽपराध्यति रज सा श्लिष्यते । इदमुक्तं नवति । तस्य हि स्वशासनपूजामुपलन्यान्यशासनपरानवं चोपल न्य क्रीडोत्पद्यते प्रमोदः संजायते स्वशासनन्यक्कारदर्शनाच्च द्वेषस्ततोऽसौ क्रीडाद्वेषान्या मनुगतांतरात्मा शनैर्निर्मलपटवडुपन्नुज्यमानोरजसा मलिनीक्रियते मलीमसश्च कर्मगौ रवाद्भूयः संसारेऽवतरति । अस्यां चावस्थायां सकर्मकत्वात्तृतीयराश्यवस्थोन्नवति ॥ ॥ ११ ॥ किंच । (इहेत्यादि) । इहास्मिन् मनुष्यन्नवे प्राप्तः सन् प्रव्रज्यामन्युपेत्य संवृ तात्मा यमनियमरतोजातः सन् पश्चादपापो नवति। अपगताऽशेषकर्मकलंकोन्नवतीति नावः । ततः स्वशासनं प्रज्ञाप्य मुक्त्यवस्थोन्नवति । पुनरपि स्वशासनपूजादर्शनान्निका रोपलब्धेश्च रागद्वेषोदयात्कलुषितांतरात्मा विकटांबुवडुदकवन्नीरजस्कं स वातोद्भूतरेणुनि वहसंपृक्तं सरजस्कं मलिनं नूयोयथा नवति तथाऽयमप्यात्माऽनंतकालेन संसारोद्वेगा छुद्धाचारावस्थोनूत्वा ततोमोक्षावाप्तौ सत्यामकर्मावस्थोन्नवति। पुनः शासनपूजानि कारदर्शनाद्रागद्वेषोदयात्सकर्मा नवतीत्येवं त्रैराशिकानां राशित्रयावस्थोन्नवत्यात्मे त्याख्यातं ॥ उक्तंच । दग्धेंधनः पुनरुपैति नवं प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितन्नीरु निष्ठः ॥ मुक्तः स्वयं कृतन्नवश्च परार्थशूरस्त्वच्छासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्यमिति ॥ १२ ॥ अधुनैतद्दूषयितुमाह । (एयाणुचीइत्यादि) । एतान्पूर्वोक्तान् वादिनोऽनुचिंत्य मेधावी प्र ज्ञावान् मर्यादाव्यवस्थितोवा एतदवधारयेत् । यथा नैते राशित्रयवादिनोदेवोप्तादिलोक वादिनश्च ब्रह्मचर्ये तडुपलक्षिते वा संयमानुष्ठाने वसेयुरवतिष्ठेरन्निति । तथाहि । तेषामय मन्युपगमोयथा स्वदर्शनपूजानिकारदर्शनात्कर्मबंधोन्नवत्येवंचावश्यं तद्दर्शनस्य पूजा यास्तिरस्कारेण चोन्नयेन वा नाव्यं तत्संन्नवाच्च कर्मोपचयस्तडुपचयाच्च शुध्यनावः शु ध्यन्नावाच्च मोक्षानावः । नच मुक्तानामशेषकर्मकलंकानां कृतकृत्यानामपगताशेषयथाव स्थितवस्तुतत्त्वानां समस्तुतिनिंदानामपगतात्मात्मीयपरिग्रहाणां रागद्वेषानुषंगस्तन्नावाच्च

नुरोधेन सर्वविषयोपन्नोगादमुत्र मुक्त्यवाप्तेः । तदेवं मुग्धजनं प्रतारयंतोऽनादि संसारकांतारं ज्रमिष्यंति पर्यटिष्यंति। स्वडुश्चरितोपात्तकर्मपाशाः पाशावशापिताः पौनः पुन्येन नारकादियातनास्थानेपूत्पद्यंते । तथाहि । नेंद्रियैरनियमितैरशेषद्वंद्वप्रच्युतिल क्षणासिद्धिरवाप्यते । याप्यणिमाद्यष्टगुणलक्षणैहिकी सिद्धिरन्निधीयते सापि मुग्धजनप्र तारणाय दंन्नकल्पैवेति । यापि च तेषां बालतपोनुष्ठानादिना स्वर्गावाप्तिः साप्येवंप्राया नवतीति दर्शयति । कल्पकालं प्रनूतकालमुत्पद्यंते संनवंति । असुराअसुरस्थानोत्प न्नानागकुमारादयस्तत्रापि न प्रधानाः किं तर्हि किल्बिषिकाअधमाः प्रेष्यन्नूताअल्पर्ध योऽल्पन्नोगाः स्वल्पायुःसामर्थ्याद्युपेताश्च नवंतीति। इति उद्देशकपरिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमी ति पूर्ववत् ॥ १६ ॥ इति समयाख्याध्ययनस्य तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

अथ-प्रथमाध्ययने चतुर्थ उद्देशकः प्रारन्यते ॥

एते जिया न्नो न सरणं, बाला पंमियमाणिणो (पाठांतरे॥ यत्थबालेवसीय ति)॥ हिच्चा णं पुव्व संजोगं, सिया किच्चोवएसगा॥१॥ तं च न्निक्खू परिन्ना य, वियं तेसु ण मुच्छए॥ अणुक्करसे अप्पलीणे, मज्झेण मुणि जावए॥२॥

अर्थ-हवे चोथो उद्देशो प्रारंनियें बैये. त्रीजे उद्देशे परतीर्थिनी वक्तव्यता कही हवे अहीं पण तेहिज कहेबे. एते के० ते दर्शनी जे पूर्वे कह्यां ते पंचन्नूतिक तज्जीव तच्छरीरवादी तथा गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक ए सर्वने कोणे जियाके० जीत्या? ते क हेबे-राग, द्वेष, परिग्रह, उपसर्ग तथा शब्दादिक विषय प्रबल मोहरूप वेरीए जीत्या. ते कारणे न्नो के० शिष्यने आमंत्रणे अहो शिष्य ए वचन तुं सही करीने सदहे. न सरणं के० ए परतीर्थीक कोइ जीवने शरण न थाय, एटले संसारमांहे पडतां प्राणीने उद्ध री नशके. केमके जे कारणे ते बालाके० बाल अज्ञानी बतां पंमिय माणिणोके० आ त्माने पंमित करी मानता अज्ञाने लागा सिदाय. पोते उन्मार्गे पडतां बीजाने उन्मार्गे पाडेबे, केमके तेनी आचरणादिरूप विरुद्ध देखायबे; ते गाथाना उतरार्धवडे देखाडेबे. हिच्चाणंपुव्वसंयोगं के० पूर्व संयोगं एटले पूर्वे धनधान्य अने स्वजनादिक संयोग ढां मीने "अमे निःसंग प्रव्रजित बैये" एम कहे; परंतु ते वली सियाके० ते बंधाणा एटले परिग्रह आरंन्नने विषे आसक्त एवा बता गृहस्थजबे केमके ते किच्चोवएसगाके० ते ग्र हस्थनां कृत्य जे पचन तथा पाचनादिक बकाय हिंसानो व्यापार तेनो जे उपदेश तेने विषे प्रवर्त्ते. ते कारणे प्रवाजित बतां गहस्थोनां करतव्य थकी वेगला नथी. अर्थात् "जेवा गृही तेवा दर्शनी" ए कारणे कोइनो उद्धार न करी शके. ॥ १ ॥ एवा दर्श नीउं देखीने चारित्रियायें जे करवुं ते देखाडेबे. तंच निक्खू के० ते पाखंमी लोक वि

अनुष्ठान ते सर्वे मुक्तिनुं कारण छे, एम कहे. ॥ १५ ॥ हवे एवुं कहेनारने फल देखाडेछे. असंवुमा के० ते पाखंमि दर्शनी संवररहित, असंयमसहित, एवी रीते मुग्धलोकने विप्रतारणहार अणादीयं के० अनादि संसारमांहे ज्रमिहिंति के० परिज्रमण करतां पुणो पुणो के० वली वली नरकादिनी पीडा पामशे. कदाचित् ते बाल तपने प्रजावे स्वर्गादिक गति पामे; तोपण केवी पामे तो के, कप्पकालं के० घणाकालसुधी गणा के० स्थानक जे आसुर के० असुर कुमारादिकनां स्थानक तेनेविषे अथवा किव्बिसिया के० किल्बिषीयादिक अधमें स्थानक त्यां उवर्क्कंति के० उत्पन्न थया छतां डुःखज पामे. तिबेमि के० पूर्ववत्. ॥ १६ ॥ इति प्रथमाध्ययनस्य तृतीयोद्देशकः समाप्तः ।

दीपिका–एतदेवाह । (सिद्धेति) । तेऽस्मन्मताश्रिताः सिद्धाश्च अरोगाः स्युः । अरोगग्रहणाच्छारीरमानसानेकडुःखरहिताश्चेति ज्ञेयं । इहास्मिन् लोके एकेषां शैवादीनामिदमाख्यातं । ते हि सिद्धिं मुक्तिमेव पुरस्कृत्यांऽगीकृत्य स्वाशये स्वमतानुरागे ग्रथिताः संबद्धानराः प्राकृतपुरुषाः पंमितंमन्याइवेत्यर्थः ॥ १५ ॥ एतद्दूषणायाह । (असंवुडेति) ते पाखंडिनस्तत्त्वतोऽसंवृताअनादिकं संसारं पुनःपुनर्ज्रमिष्यंति । यदि कथंचित्तेषां स्वर्गावाप्तिस्तथापि कल्पकालं बहुकालमुत्पद्यंते संजवंत्यसुराः । असुरस्थानोत्पन्नाअपि न प्रधानाः किंतर्हि किल्बिषिकाअधमाएवेति ॥ १६ ॥ ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ इति सूत्रकृतांग दीपिकायां प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशकः ।

॥ टीका–तदेवमिहैवास्मडुक्तानुष्ठायिनोऽष्टगुणैश्वर्यलक्षणा सिद्धिर्जवत्यमुत्रचाऽशेषद्वंद्वोपरमलक्षणा (अपि) जवतीति दर्शयितुमाह । (सिद्धायतेइत्यादि) ये ह्यस्मडुक्तमनुष्ठानं सम्यगनुतिष्ठंति तेऽस्मिन् जन्मन्यष्टगुणैश्वर्यरूपां सिद्धिमासाद्य पुनर्विशिष्टसमाधियोगेन शरीरत्यागं कृत्वा सिद्धाश्चाशेषद्वंद्वरहिताअरोगाजवंति । अरोगग्रहणं चोपलक्षणं। अनेकशरीरमानसद्वंद्वैर्न स्पृशंति शरीरमनसोरजावादित्येवमिहास्मिन्लोके सिद्धिविचारे वा एकेषां शैवादीनामिदमाख्यातं जाषितं । तेच शैवादयः सिद्धिमेव पुरस्कृत्य मुक्तिमेवांगीकृत्य स्वकीये आशये स्वदर्शनाज्युपगमे ग्रथिताः संबद्धाअध्युपपन्नास्तदनुकूलायुक्तीः प्रतिपादयंति । नराइव नराः प्राकृतपुरुषाः शास्त्रावबोधविकलाः स्वाजिप्रेतार्थसाधनाय युक्तीः प्रतिपादयंत्येवं तेपि पंडितंमन्याः परमार्थमजानानाः स्वाग्रहप्रसाधिकां युक्तिमुद्घोषयंतीति । तथाचोक्तं । आग्रही बत निनीषति युक्तिं, तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा ॥ पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशं ॥ १ ॥ १५ ॥ सांप्रतमेतेषामनर्थप्रदर्शनपुरःसरं दूषणाजिधित्सयाह (असंवुडाइत्यादि) तेहि पाखंडिकामोक्षाजिसंधिनः समुब्रिताअपिअसंवृताइंडियनोइंड्रियैरसंयताइहाप्यस्माकं लाजइंड्रिया

नाऽथातस्याऽस्योद्देशकस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराण्यभिधाय सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं (एतेजियाजो इत्यादि) अस्य चानंतरसूत्रेण सहायं संबंधस्तद्यथा। अनंतरसूत्रेऽभिहितं। तीर्थिकाअसुरस्थानेषु किल्बिषाजायंतइति। किमिति। यतएते जिताः परीषहोपसर्गैः। परंपरसूत्रसंबंधस्त्वयं। आदाविदमभिहितं बुध्येत त्रोटयेच्च। ततश्चैतदपि बुध्येत। यथैते पंचभूतादिवादिनोगोशालकमतानुसारिणश्च जिताः परीषहोपसर्गैः कामक्रोधलोभमानमोहमदाख्येनाऽरिषड्वर्गेण चेत्येवमन्यैरपि सूत्रैः संबंधउत्प्रेक्ष्यः। तदेवं कृतसंबंधस्याऽस्य सूत्रस्येदानीं व्याख्या प्रतन्यते। (एतइति) पंचभूतैकात्मतज्जीवतच्छरीरादिवादिनः कृतवादिनश्च गोशालकमतानुसारिणश्च त्रैराशिकाश्च जिताअभिभूतारागद्वेषादिभिः शब्दादिविषयैश्च तथा प्रबलमहामोहोद्भाऽज्ञानेन च। भो इति विनेयामंत्रणं। एवं त्वं गृहाण। यथैते तीर्थिकाअसम्यगुपदेशप्रवृत्तत्वान्न कस्यचिच्छरणं भवितुमर्हंति। न कथंचित्त्रातुं समर्थाइत्यर्थः। किमित्येवं यतस्ते बालाइव बालाः। यथा शिशवः सदसद्विवेकवैकल्याद्यत्किंचनकारिणोभाषिणश्च। तथैतेऽपि स्वयमज्ञाः संतः परानपि मोहयंति। एवंभूताअपिच संतः पंडितमानिनइति। क्वचित्पाठोलच्छबालोवसीयइति। यत्राऽज्ञाने बालोऽज्ञोलग्नः सन्नवसीदति तत्र ते व्यवस्थिताः यतस्ते न कस्यचित्त्राणायेति। यच्च तैर्विरूपमाचरितं तदुत्तरार्द्धेन दर्शयति। हित्वा त्यक्त्वा। णमिति वाक्यालंकारे। पूर्वं संयोगोधनधान्यस्वजनादिभिः संयोगस्तं त्यक्त्वा किल वयं निःसंगाः प्रव्रजिताइत्युत्थाय पुनः सिता बद्धाः परिग्रहेष्वारंभेष्वासक्तास्ते गृहस्थास्तेषां कृत्यं करणीयं पचनपाचनकंडनपेषणादिकाभूतोपमर्दकारी व्यापारस्तस्योपदेशस्तं गच्छंतीति कृत्योपदेशगाः कृत्योपदेशकावा। यदिवा सियाइति आर्षत्वाद्बहुवचनेन व्याख्यायते। स्युर्भवेयुः। कृत्यं कर्तव्यं सावद्याऽनुष्ठानं तत्प्रधानाः कृत्यागृहस्थास्तेषामुपदेशः संरंभसमारंभारंभरूपः सविद्यते येषां ते कृत्योपदेशिकाः प्रव्रजिताअपि संतः कर्तव्यैर्गृहस्थेभ्यो न भिद्यंते। गृहस्थाइव तेऽपि सर्वावस्थाः पंचसूनाव्यापारोपेताइत्यर्थः॥ १॥ एवंभूतेषु च तीर्थिकेषु सत्सु भिक्षुणा यत्कर्तव्यं तद्दर्शयितुमाह। तंचभिक्खूइत्यादि। तं पाखंडिकलोकमसदुपदेशदानाऽभिरतं परिज्ञाय सम्यगवगम्य यथैते मिथ्यात्वोपहतांतरात्मानः सद्विवेकशून्यानात्मने हितायालं नान्यस्माइत्येवं पर्यालोच्य भावभिक्षुः संयतोविद्वान् विदितवेद्यस्तेषु न मूर्छयेत् न गार्ध्यं विदध्यान्न तैःसह संपर्कमपि कुर्यादित्यर्थः। किंपुनः कर्तव्यमिति पश्चार्द्धेन दर्शयति। अनुत्कर्षवानित्यष्टमदस्थानानामन्यतमेनाऽप्युत्सेकमकुर्वन्। तथा अप्रलीनोऽसंबद्धस्तीर्थिकेषु गृहस्थेषु पार्श्वस्थादिषु वा संश्लेषमकुर्वन् मध्येन रागद्वेषयोरंतरालेन संचरन् मुनिर्जगत्त्रयवेदी यापयेदात्मानं वर्तयेत्। इदमुक्तं भवति। तीर्थिका

परीत उपदेश देवाने प्रवर्त्तता तेने परिन्नायके० सम्यक् प्रकारे जाणीने जेम ए दर्शनी बाप डा मिथ्यात्वव्यापारें विवेकशून्य पोते पोतानेज अहितकारी दीशेछे, तो अन्य जीव ने हितकर्ता क्यांथी थशे ? एवुं आलोचीने निक्कु जे चारित्रीउ वियंतेसुंके० परमार्थिनो जाण ते दर्शनीउनेविषे णमुछ्रए के० मूर्छाय नहीं अर्थात् तेनीप्रत्ये संबंध पण न करे. त्यारे शुं करे, ते अर्थ गाथाना उतरार्धवडे देखाडे छे. अणुक्कस्से के० ते उत्कर्ष र हित आठ मदनो टालनार, अप्पलीणे के० अप्रलीन एटले असंबंध गृहस्थ तथा पास छादिकने विषे संसर्ग अणकरतो ते नणी मझेण के० मध्यमजावे रागद्वेष रहित छतो मुणिके० मुनी एटले जे साधु ते जावए के० पोताने प्रवर्त्तावे, एटले शुं कह्युं! तो के, कदाचित परतीर्थीक अथवा पासछादिक संघाते संबंध मले तो मद न करवो ने ते नी प्रशंसा तथा निंदा अणकरतो राग द्वेष रहित वर्त्ते. ए प्रकारेकरी संयम जे पाले तेज साधु जाणवो. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—तृतीयोद्देशकेऽन्यतीर्थिकाणां कुत्सितत्वमुक्तमिहापि तदेवोच्यतइत्यर्थसं बद्धस्यास्योद्देशकस्येदमादिसूत्रं ॥ (एतइति) एतेऽन्यमतिनोजिताअनिनूताराग द्वेषा दिनिः । जोइति शिष्यामंत्रणं । एवं त्वं जानीहि । यथाएते न शरणं कस्यचित्त्राणाय न समर्थाः । (जछत्ति) यत्राऽज्ञाने बालोऽज्ञोलग्नः सन् अवसीदति तत्र ते व्यवस्थिताः। बालापंमिअमाणिणोइति क्वचित्पाठस्तत्र बालानिर्विवेकाअपंमिताअपि पंमितमानिनः कस्यापि न त्राणाय स्युरित्यर्थः । तत्कृत्यमाह । हित्वा त्यक्त्वा पूर्वसंयोगं धनस्वजनादिकं । णमिति वाक्यालंकारे । सिताबद्धाः परिग्रहारंजेषु । पुनः किंनूताः । कृत्यं कार्यं पचन पाचनादि तस्योपदेशं गछंतीति कृत्योपदेशगाः । अथवा सियाइत्यार्षत्वात् स्युर्नवेयुः । कृत्यं सावद्यानुष्ठानं तत्प्रधानाः कृत्यागृहस्थास्तेषामुपदेशः संरंजसमारंजरूपः स विद्यते येषां ते कृत्योपदेशिकाः । प्रव्रजिताअपि कर्तव्यैर्गृहस्थेन्योन निद्यंतइत्यर्थः ॥ १ ॥ एवं नूतेषु तीर्थिकेषु सत्सु साधुना यत्कर्तव्यं तदाह । (तंचेति) तं पासमिलोकं परिज्ञाय स म्यक् ज्ञात्वा निक्कुः संयतोविद्वान् तेषु न मूर्छयेत् तैः सह संबंधं न कुर्यात् । किंतर्हि कु र्यादित्याह । अनुत्कर्षवान् उत्कर्षोमदस्तमकुर्वन् । तथाऽप्रलीनोऽसंबद्धस्तीर्थिकेषु गृहस्थे षु पार्श्वस्थादिषु वा संश्लेषमकुर्वन् मध्येन रागद्वेषयोरंतरालेन संचरन् मुनिर्जगत्त्रयवेदी या पयेदात्मानं वर्तयेत् तेषु निंदां स्वस्य प्रशंसांच परिहरन् साधुर्मध्यस्थवृत्या चरेदित्यर्थः।

॥ टीका—उक्तस्तृतीयोद्देशकः । अधुना चतुर्थः समारज्यते । अस्यचायमजिसंबंधः । अनंतरोद्देशकेऽध्ययनार्थत्वात्स्वपरसमयवक्तव्यतोक्तेहापि सैवाऽनिधीयते । अथचाऽ नंतरोद्देशके तीर्थिकानां कुत्सिताचारत्वमुक्तमिहापि तदेवाजिधीयते । तदनेन संबंधे

दित्युक्ताः धनाद्यभावेपि शरीरोपकरणादौ मूर्छावंतः सपरिग्रहाएव तथा सारंभाः सावद्य व्यापाराइतीह विचारे एकेषामाख्यातं । यथा किमनया शिरस्तुंडमुंडनक्रियया । गुरो रनुग्रहाद्यदा परमाक्षरावाप्तिर्भवति तदा मोक्षः स्यादेवं भाषमाणास्ते न त्राणाय स्युः । ये त्रातुं समर्थास्तानाह । अपरिग्रहाधर्मोपकरणंविना शरीरोपभोगाय स्वल्पोपि न विद्य ते परिग्रहोयेषां तेऽपरिग्रहाअनारंभाश्च तान् भिक्षुः साधुः शरणं परिव्रजेत् गच्छेत् । तेषां शरणं यायादित्यर्थः ॥३॥ परिग्रहारंभवर्जनं यथा स्यात्तथाह । (कडेसुइति) । कृतेषु गृहस्थैः स्वार्थं निष्पादितेषु ओदनादिपिंडेषु ग्रासमाहारं एषयेत् याचेत इति षोडशोद्गमदोषत्यागः सूचितः । तथा विद्वान् संयमनिपुणोदत्तं परैराशंसादोषरहितैर्निःश्रेयसबुध्या वितीर्णं तत्र एषणां ग्रहणैषणां चरेत् । दत्तमित्यनेन षोडशोत्पादनादोषाः एषणां चरेदित्यनेन दश एष णादोषाश्च सूचिताः । एतद्दोषत्यागेन पिंडं गृण्हीयादित्यर्थः । अगृद्धोऽमूर्छितोविप्रमुक्तो रागद्वेषरहितश्च । आहारे स्यादिति पंचग्रासैषणादोषत्यागउक्तः । सएवंभूतोभिक्षुः परेषा मपमानं परिवर्जयेत् तपोमदं ज्ञानमदं च न कुर्यादित्यर्थः । आत्मनः सकाशात्परान् ही नान् न पश्येदिति तात्पर्यं ॥ ४ ॥

॥ टीका–किमिति ते तीर्थिकास्त्राणाय न भवंतीति दर्शयितुमाह । (सपरिग्गहाइत्या दि) । सपरिग्रहेण धनधान्यद्विपदचतुष्पदादिना वर्तंते तदभावेऽपि शरीरोपकरणादौ मूर्छावंतः सपरिग्रहाः । तथा सहारंभणे जीवोपमर्दादिकारिणा व्यापारेण वर्ततइति तदभा वेऽप्यौद्देशिकादिभोजित्वात्सारंभाः । तीर्थिकादयः सपरिग्रहारंभकत्वेनैव च मोक्षमार्गं प्रसा धयंतीति दर्शयति । इह परलोकचिंतायामेकेषांकेषांचिदाख्यातं भाषितं । यथा किमनया शिरस्तुंडमुंडनादिकया क्रियया परं गुरोरनुग्रहात्परमक्षरावाप्तिस्तद्दीक्षावाप्तिर्वा यदि भव ति ततोमोक्षोभवतीत्येवं भाषमाणास्ते न त्राणाय भवंतीति । येतु त्रातुं समर्थास्तान्प श्चार्द्धेन दर्शयति । अपरिग्रहाः न विद्यते धर्मोपकरणादृते शरीरोपभोगाय स्वल्पोऽपि परि ग्रहोयेषांते अपरिग्रहाः । तथा न विद्यते सावद्यआरंभो येषां तेऽनारंभास्तेचैवं भूताः क र्मलघवः स्वयंयानपात्रकल्पाः संसारमहोदधेर्जंतूत्तारणसमर्थास्तान् भिक्षुर्भिक्षणशील उद्देशिकाद्यपरिभोजी त्राणं शरणं परि समंताद्व्रजेद्गच्छेदिति ॥३॥ कथं पुनःपुनस्तेनापरिग्र हेणाऽनारंभेण च वर्तनीयमित्येतद्दर्शयितुमाह (कडेसुइत्यादि) गृहस्थैः परिग्रहारंभ द्वारेणाऽत्मार्थं ये निष्पादिताओदनादयस्ते कृताउच्यंते । तेषु कृतेषु परकृतेषु परनि ष्ठितेष्वित्यर्थः ॥ अनेन च षोडशोद्गमपरिहारः सूचितः । तदेवमुद्गमदोषरहितं ग्रस्यतइति ग्रा सआहारस्तमेवंभूतमन्वेषयेन्मृगयेत् याचेदित्यर्थः । तथा विद्वान्संयमकरणैकनिपुणः प रैराशंसादोषरहितैर्यन्निःश्रेयसबुध्या दत्तमित्यनेन षोडशोत्पादनदोषाः परिगृहीताद्रष्टव्याः ।

दिनिःसह सत्यपि कथंचित्संबंधे त्यक्ताहंकारेण तथा जावतस्तेष्वप्रजीयमानेनारक्तद्विष्टेन तेषु निंदामात्मनश्च प्रशंसां परिहरता मुनिनाऽत्मा यापयितव्यइति ॥ २ ॥

सपरिग्गहा य सारंजा इह मेगेसिमाहियं ॥ अपरिग्गहा अ
णारंजा, जिरकू ताणं परिव्वए ॥ ३ ॥ कडेसु घासमेसेज्जा, विऊ
दत्तेसणं चरे ॥ अगिद्धो विप्पमुक्को अत्तमाणं परिवक्कए ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे जे कारणे परतीर्थीकने विरुद्धाचारी कह्या ते कारण देखाडेछे—सपरिग्गहा के० ते धनधान्यादिक द्विपद चतुष्पदादिक सहित, तेने अजावे शरीर उपकरणादिकने विषे मूर्छा राखेछे तेहिज परिग्रह कहिए. अने सारंज के० जीवघातने विषे प्रवर्त्तमान, तेहने अजावे उद्देशादिकना जोगवनार छे. माटे आरंजी कहिये. एवाछतां मोक्ष मार्ग साधे ते देखाडे छे. इह मेगेसिमाहियंके० ते इह परलोकने चिंतवे. एक दर्शनीने मतें एम कह्युं, के, ए तपस्यादिक तथा मुंमसुंमनादिक क्रिया करे ते व्यर्थ छे, किंतु जे गुरु जक्तीने प्रसादे एक परम अक्षर लाजे तेथी जीवने मोक्ष थाय. बीजो जे कांइ काय क्लेश करे ते सर्व अप्रमाण छे. एम जे कहे ते साधु पदवी न पामे. ते तारवाने समर्थ नहीं होवाने लीधे जे तारवाने समर्थ एवो साधु होय, ते आगल अर्द्ध गाथायें देखाडेछे. अपरिग्गहाके० जे किंचित् मात्र परिग्रहरहित होय एक धर्मोपकरण टाली अने तेना उपर पण ममताने अजावे परिग्रह उपर स्वल्प मात्रे नराचे. तथा अणारंजाके० सर्वथा प्रकारे छकायना आरंजरहित एवा जिरकूताणं के० जिक्षु पोताने अने बीजाने त्राण शरण होय. एटले संसारसमुड्रमांहेथी पोते पण प्रवहणनीपरे तरे अने बीजा पण संसार समुड्रमां बुडता जीवने प्रवहणनी पेठे तारनार होय एरीते साधु परिव्वएके० उद्देशादिक आहार वर्जतो संयम पाले. ॥३॥ हवे चारित्रिउ आरंज अने परिग्रह टाली केम प्रवर्त्ते ते कहेछे. कडेसुके० ते गृहस्थे पोताने अर्थे जे जात पाणी कीधांछे. तेनेविषे सोल जातना उजम दोषरहित घासके० आहार एसेज्जाके० गवेषे,विऊके० ते पंमित निःकेवल निर्जरा निमित्ते जे आहार दातारे दत्तके० दीधो. तेना धात्रादिक सोले उत्पादन दोष तेनी एसणंचरेके० एषणाने विषे विचरे. अने संकीतादि दश एषणाना दोष जाणवा. अर्थात् बेतालीश दोष विसुद्ध आहार ले एम कह्युं. तथा अगिद्धोके० ते अमूर्छित थको आहारे एटले पांच मांमलिना दोष टाले. विप्पमुक्कोके० आहारने विषे रागद्वेषरहित, एवो छतो अत्तमाणं परिवक्कए के० बीजानुं अपमान वर्जे; एटले अनेरानो करेलो पराजव अहियासे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—कथं तीर्थिकास्त्राणाय न स्युरित्याह । (सपरिग्गहाइति) । सपरिग्रहाधना

अंगना अंगनैवेति । अथवा अनंतोनिरवधिकः तथा नित्योऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपः तथा शाश्वतः कार्यद्रव्यं नवदपि प्रांते परमाणुत्वं न त्यजति तथा न विनश्यति दिगात्माकाशाद्यनपेक्षया । तथा अंतवान् लोकः सप्तद्वीपा वसुंधरेति परिमाणोक्तेस्तादृक्परिमाणोनित्यइति धीरः .साहसिकोव्यासादिरतीव पश्यति ॥ ६ ॥

॥ टीका—एवं निर्युक्तिकारेणोद्देशकार्थाधिकाराऽभिहितं किञ्चुवमाय चशहत्तीत्येतत्प्रदर्श्येदानीं परवादिमतमेवोद्देशार्थाधिकाराभिहितं दर्शयितुमाह । (लोगवायमित्यादि) । लोकानां पाखंडिनां पौराणिकानां वा वादोलोकवादः । यथा स्वाभिप्रायेणाऽन्यथावाऽभ्युपगमस्तं निशामयेत् शृणुयात् जानीयादित्यर्थः । तदेव दर्शयति । इहाऽस्मिन्संसारे एकेषां केषांचिदिदमाख्यातमभ्युपगमः । तदेव विशिनष्टि । विपरीता परमार्थादन्यथाभूता या प्रज्ञा तया संभूतं समुत्पन्नं तत्त्वविपर्यस्तबुद्धिग्रथितमितियावत् । पुनरपि विशेषयति । अन्यैरविवेकिभिर्यदुक्तं तदनुगं यथावस्थितार्थविपरीतानुसारिभिर्यदुक्तं विपरीतार्थाभिधायितया तदनुगच्छतीत्यर्थः ॥५॥ तमेव विपर्यस्तबुद्धिरचितं लोकवादं दर्शयितुमाह । (अणंतेनिइएलोएइत्यादि) नाऽस्यांतोऽस्तीत्यनंतः । न निरन्वयनाशेन नश्यतीत्युक्तं भवतीति । तथाहि । यो यादृगिह भवे स तादृगेव परभवेऽप्युपपद्यते पुरुषः पुरुष एवांऽगनांऽगनैवेत्यादि । यदिवाऽनंतोऽपरिमितोनिरवधिकइति यावत् । तथा नित्यइति । अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावोलोकइति । तथा शश्वद्भवतीति शाश्वतो द्व्यणुकादिकार्यद्रव्यापेक्षया शश्वद्भवन्नपि न कारणद्रव्यं परमाणुत्वं परित्यजतीति । तथा न विनश्यतीति दिगात्माकाशाद्यपेक्षया । तथांऽतोऽस्याऽस्तीत्यंतवान् लोकः । सप्तद्वीपा वसुंधरेति परिमाणोक्तेः सच तादृक् परिमाणोनित्यइत्येवं धीरः कश्चित्साहसिकोऽन्यथाभूतार्थप्रतिपादनात् व्यासादिरतीव पश्यतीत्यतिपश्यति । तदेवंभूतमनेकभेदभिन्नं लोकवादं निशामयेदिति प्रकृतेन संबंधः । तथा अपुत्रस्य न संति लोकाब्राह्मणादेवाः श्वानोयक्षागोभिर्हतस्य गोघ्नस्य वा न संति लोकाइत्येवमादिकं निर्युक्तिकं लोकवादं न निशामयेदिति ॥६॥

अपरिमाणं वियाणाई, इह मेगेसिमाहियं ॥ सवञ्च सपरिमाणं, इति धीरोति पासई ॥७॥ जे केइ तसा पाणा, चिठंति अडुवा वरा ॥ परियाए अत्थि से अंजू, जेण ते तसथावरा ॥ ८ ॥

अर्थ—वली तेहिज कहेछेः—अपरिमाणं वियाणाइ के० जेनुं क्षेत्र थकी तथा काल थकी प्रमाण नथी, तेटलुंज मात्र जाणे पण सर्वज्ञ नथी. इह के० ए लोकनेविषे मेगेसिमाहियं के० कोइएक दर्शनीने मते एम कह्युंछे, जे अमारा तीर्थनो स्वामी अपरिमा

तदेवंभूते दौत्यधात्रीनिमित्तादिदोषरहिते आहारे सभिक्षुः एषणां ग्रहणैषणां चरेदनुतिष्ठे दित्यनेनाऽपि दशैषणादोषाः परिगृहीताइति मंतव्यं । तथा । अगृद्धोऽनध्युपपन्नोऽमूर्छि तस्तस्मिन्नाहारे रागद्वेषविप्रमुक्तः । अनेनाऽपि च ग्रासैषणादोषाः पंच निरस्ताअवसेयाः । सएवंभूतोभिक्षुः परेषामपमानं परावमदर्शित्वं परिवर्जयेत् परित्यजेत् । न तपोमदं ज्ञा नमदं च कुर्यादिति भावः ॥ ४ ॥

लोगवायं णिसामिज्जा, इह मेगेसिमाहियं ॥ विवरीयपन्नसं
भूयं, अन्नउत्तं तयाणुयं ॥ ५ ॥ अणंते निइए लोए, सासए ण
विणस्सती ॥ अंतवं णिइए लोए, इति धीरोति पासइ ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे वली परवादी मिश्रित वचन कहेछे—लोगवायं के० पाखंमी लोक तेनो वाद पोतपोताने मतें कल्पित जे स्वरूप ते णिसामिज्जाके० सांभले, सांभलीने हैयामां धरे जिन मतिथी कछुं खोटुं जाणी परिहरे ते लोकवाद देखाडेछे. इह के० तेए जगतने विषे, मे गेसिके० एकेक वादीने मतें, आहियंके० कह्युं छे. ते केवुं तोके, विवरीयंके० विपरीत पन्न के० प्रज्ञातत्व थकी उपरांठी बुद्धि, संभूयंके० तेहथकी उपनो तथा अन्नउत्तंतयाणुगं के० ते अनेरा अविवेकीनुं जे भाष्युं तेने अनुसारे वली तेवुंज प्रवर्त्तवुं एवो लोकवाद सांभली हैये धारेछे. ॥५॥ हवे ते विपरीत बुद्धि रचित लोकवाद देखाडेछे.—तें लोक अणंते के० अनंत तथा निइएलोए के० नित्यछे. एटले शुं कह्युं ? के जे आ भवमां पुरुषछे अथ वा स्त्री छे, ते आगमिक भवे पण तेवोज पुरुष तथा स्त्रीने रूपेछे. एटले स्त्री ते स्त्री ने पुरुष ते पुरुष छे, ते माटे लोक नित्यछे. सासए के० वली ए लोक सास्वतोछे. ण विणस्सति के० वणसे नही. अंतवंके० ते अंतसहित छे, एटले सप्तद्वीप तथा सप्त समुद्रसहित एटलो लोकछे. एथी न्यून अधिक नथी; ए कारणे लोकनो अंत छे. अने णिइएलोए के० लोक नित्यछे. स्त्री ते स्त्री अने पुरुष ते पुरुष रूपज छे. ते माटे इति के० एरीते, धीरोके० अमारा जे व्यासादिक धीरपुरुष अनेक गुणवंत ते पासइके० देखेछे.

॥ दीपिका—स्वमतं प्रख्याप्य पुनः परमतं दर्शयति । (लोगवायमिति) । लोकानां पाखंमिनां वादमंगीकारं (णिसामिज्जा) निशामयेत् जानीयात् । तद्दर्शयति । इह संसा रे केषांचित् इदमाख्यातं । तथा विपरीता मिथ्या या प्रज्ञा तया संभूतमुत्पन्नं तत्त्व विपर्यस्तबुद्धिग्रथितमित्यर्थः । तथाऽन्यैरविवेकिभिर्यदुक्तं तदनुगं तत्सदृशं अविवेकिजन वाक्यसदृशमिति ॥ ५ ॥ लोकवादमेवाह । (अणंतेति) । न विद्यतेंऽतोयस्येत्यनं तोनित्यः शाश्वतोन विनश्यति । योयादृगिह भवे सपरभवेपि तादृशएव पुरुषः पुरुषएव

न्निप्रेतार्थोऽतींद्रियदर्शीति । तथाचोक्तं । सर्वं पश्यतु वा मा वा, इष्टमर्थं तु पश्यतु ॥ कीटसंख्यापरिज्ञानं, तस्य न क्कोपयुज्यतइति । इहाऽस्मिंल्लोके एकेषां सर्वज्ञापन्हववा दिनामिदमाख्यातमयमन्युपगमः । तथा सर्वक्षेत्रमाश्रित्यकालं वा परिछेद्यं कर्मतापन्न माश्रित्य सदपरिमाणेन सपरिमाणं सपरिछेदं धीर्बुद्धिस्तयाराजतइतिधीरइत्येवमसौ अतीव पश्यतीत्यतिपश्यति । तथाहि । ते ब्रुवते दिव्यं वर्षसहस्रमसौ ब्रह्मा स्वपिति तस्यामवस्थायां न पश्यत्यसौ तावन्मात्रं च कालं जागर्ति तत्र च पश्यत्यसाविति तदेवंनूतोवहुधा लोकवादः प्रवृत्तः ॥ ७ ॥ अस्य चोत्तरदानायाह । (जेकेइइत्यादि) ये केचन त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादयः प्राणाः प्राणिनः सत्वास्तिष्ठंति त्रसत्वमनुन्न वंति । अथवा स्थावराः स्थावरनामकर्मोदयात् पृथिव्यादयस्ते । यद्ययं लोकवादः सत्योनवेत् । यथासौ यादृगस्मिन् जन्मनि मनुष्यादिः सोऽन्यस्मिन्नपि जन्मनि ता दृगेव नवतीति । ततः स्थावराणां त्रसाणां च तादृशत्वे सति दानाध्ययनजपनियमत पोनुष्ठानादिकाः क्रियाः सर्वाप्यनर्थिकाश्चापद्येरन् । लोकेनाऽपि चाऽन्यथात्वमुक्तं । तद्य था । सवै एषशृगालोजायते यः सपुरीषोदह्यते तस्मात् स्थावरजंगमानां स्वकृतकर्मवशा त् परस्परसंक्रमणाद्यनिवारितमिति । तथा अनंतोनित्यश्च लोकइति यदन्निहितं तत्रेदमन्निधीयते । यदि स्वजात्यनुछेदेनास्य नित्यताऽनिधीयते ततः परिणामानित्य त्वमस्मदन्नीष्टमेवाऽन्युपगतं न काचित्क्षतिः । अथाऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वन्नावत्वेन नित्यत्व मन्युपगम्यते तन्न घटते तस्याऽध्यक्षवाधितत्वात् । नहि क्षणन्नाविपर्यायानाऽलिं गितं किंचिद्वस्तु प्रत्यक्षेणाऽवसीयते । निःपर्यायस्यच खपुष्पस्येवाऽसद्रूपतैव स्यादिति । तथा शश्वद्भवनं कायद्रव्यस्याऽकाशात्मादेश्चाऽविनाशित्वं यदुच्यते द्रव्यविशे षापेक्षया तदप्यसदेव । यतः सर्वमेव वस्तूत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तत्वेन निर्विन्नागमेव प्रवर्त ते अन्यथा वियदरविंदस्येव वस्तुत्वमेव हीयेतेति । यथा यदुक्तमंतवांल्लोकः सप्तद्वीपावछि न्नत्वादित्येतन्निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति न प्रेक्षापूर्वकारिणस्तद्ग्राहकप्रमाणान्नावादिति । तथा यदप्युक्तं अपुत्रस्य न संति लोकाइत्यादीत्येतदपि वालन्नाषितं । तथाहि । किंपुत्रस त्तामात्रेणैव विशिष्टलोकावाप्तिरुत तत्कृतविशिष्टानुष्ठानात् । तद्यदि सत्तामात्रेण ततइम हत्कार्मुकगर्त्तावराहादिन्निर्व्याप्तालोकान्नवेयुस्तेषां पुत्रवहुलत्वसंन्नवात् । अथानुष्ठानमाश्री यते । तत्र पुत्रद्वयेसत्येकेन शोन्ननमनुष्ठितमपरेणाऽशोन्ननमिति तत्र का वार्त्ता स्व कृतानुष्ठानं च निष्फलमापद्येतेत्येवं यत्किंचिदेतदिति । तथा श्वानोयक्षाइत्यादियुक्ति विरोधित्वादनाकर्णनीयमिति । यदपि चोक्तम् । अपरिमाणं विजानातीति तदपि न घटा मियर्ति । यतः सत्यऽप्यपरिमितज्ञत्वे यद्यसौ सर्वज्ञोन नवेत् ततोहेयोपादेयोपदेश दानविकलत्वान्नैवाऽसौ प्रेक्षापूर्वकारिन्निरादियते तथासति तस्य कीटसंख्यापरिज्ञान

ए जाणे. जगतमां सर्वज्ञ कोइ नथी, किंतु सव्वड के० सर्वत्र सपरिमाणं के० प्रमाण सहित ले. सर्वज्ञ अपन्हववादी ते एम कहेले. इति के० एम धीरोति पासइ के० धीर पुरुष देखेले, ते एम कहे ले के, देवता संबंधी सहस्र वर्ष ब्रह्मा सुए ते प्रस्तावे, ते कांइ न देखे, वली एटलोज काल ब्रह्मा जागृत थाय त्यारे देखे. ए कारणे सपरिमाण वस्तु जाणे तथा देखे एप्रमाणे कोइ एक कहेले. ॥७॥ हवे ग्रंथकार तेने उत्तर कहेले. जगतमां हे जे केइ के० जे कोइ तसाके० त्रस ते बेइंडियादिक पाणाके० प्राणी जीव, चिठंति के० ते तिष्ठंति एटले रहेले. अडुवाके० अथवा बीजा थावराके० स्थावर पृथिव्यादिक एवा बंने स्वजाव जगत्मां दिशेले. अने अन्य दर्शनी एम कहे के " जे जेवो ते तेवोज होय " परंतु अन्वय परावर्त न थाय. जो ए वचन साचुं होय तो दान, अध्ययन, जप, नियम, तप तथा अनुष्ठानादिक क्रिया सर्व निरर्थक थाय. ए कारणे तेनुं बोलवुं प्रमाण जाणवुं नहीं. अने जैन कहेले के, जगतमां त्रस अने स्थावर ले तेने पोतपोतानां कर्मने परिणामे अंजू के० रुजु परियाएके० पर्याय अजिसे के० ले. एटले शुं कह्युं? तो के पोतपोताना कर्मना उपार्ज्या पर्यायने पामे ते पर्यायेकरी जेणतेके० जे कारणे ते तसके० त्रस जीव ते थावराके० स्थावर थाय. एटले त्रस फीटी स्थावर थाय अने स्थावर फीटी त्रस थाय परंतु " जे जेहवो ते तेहवो " ए निश्चये थकी नथी. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—किंच (अपरिमाणमिति) न विद्यते परिमाणमियत्ता क्षेत्रतः कालतोवायस्य तदपरिमाणं विजानाति कश्चित्तीर्थिकः । अपरिमितज्ञोऽसावतींद्रियड्ष्टा न पुनः सर्वज्ञः । यद्वाऽपरिमितज्ञोऽजिप्रेतार्थातींद्रियदर्शी न पुनः सर्वदर्शी । यडुक्तं । सर्वं पश्यतु वा मा वा, इष्टमर्थं तु पश्यतु ॥ कीटसंख्यापरिज्ञानं, तस्य न क्वोपयुज्यतइति । इह एकेषां सर्वज्ञापन्हववादिनामिदमाख्यातं । तथा सर्वत्र क्षेत्रे काले वा सपरिमाणं परिमाणयुक्तं धीर्बुद्धिस्तया राजत इतिधीरः इत्येवमसावतीव पश्यति । दिव्यं वर्षसहस्रं ब्रह्मा स्वपिति तावत्कालं न पश्यति किंचित् पुनस्तावंतं कालं जागर्ति तत्र च पश्यति एवं बहुधा प्रवृत्तो लोकवादः ॥ ७ ॥ अस्योत्तरमाह । (जेकेइति) । ये केचित्त्रसाः प्राणिनस्तिष्ठंति अथवा स्थावराः तेषां स्वकर्मपरिणत्याऽयं पर्यायोस्ति । (अंजूइति) प्रगुणोऽव्यजिचारी तेन पर्यायेण ते त्रसाः स्थावराः स्युः । त्रसत्वमनुजूय कर्मपरिणत्या स्थावराः स्थावरत्वमनुजूय त्रसाश्च जवंतीति । ततोयोयादृगिहजवे सपरजवेपि तादृगिति नियमो न युक्तः॥८॥

॥ टीका—किंच । (अपरिमाणमित्यादि) । न विद्यते परिमाणमियत्ता क्षेत्रतः कालतोवा यस्य तदपरिमाणं । तदेवंजूतं विजानाति कश्चित्तीर्थिकस्तीर्थकृत् । एतडुक्तं जवति । अपरिमितज्ञोऽसावतींद्रियड्ष्टा न पुनः सर्वज्ञ इति । यदि वाऽपरिमितज्ञइत्य

॥ दीपिका–अत्र दृष्टांतमाह । (उरालमिति)। उदारं स्थूलं जगतोयोगं । औदारिकाः प्राणिनोगर्भकललार्बुदरूपादवस्थाविशेषाद्विपरीतं बालकुमारयौवनादिकमुदारं योगं परिसमंतादयंते गछंति । अयमर्थः । औदारिकशरीरिणोमनुष्यादेर्बालकुमाराद्यवस्थाविशेषाःप्रत्यक्षेण दृश्यंते न पुनर्यादृक्प्राक्ताहृगेव सर्वदेति । एवं सर्वेषां स्थावरजंगमानामन्यथाभवनं ज्ञेयं । तथा आक्रांताः पीडिताडुःखेन सर्वे जंतवस्ततस्तेऽहिंसिताभवंति तथा कार्यं । अथवाऽकांतमप्रियंडुःखं येषां तेऽकांतडुःखाश्चशब्दात् प्रियसुखाश्च अतः सर्वान्नहिंस्यादिति दृष्टांतोदर्शितउपदेशश्च दत्तः । ॥ ए ॥ किमर्थं सत्वान्न हिंस्यादित्याह । (एयमिति) खुनिश्चये । एतदेव ज्ञानिनः सारं यत्किंचन प्राणिजातं न हिनस्ति । अहिंसा समता चैव एतावद्विजानीयात् । कोर्थः । यथा मम मरणं डुःखं वाऽप्रियं एवं सर्वस्य प्राणिलोकस्यापीति । एवं ज्ञात्वा न हिंस्यात्प्राणिनः । उपलक्षणान्मृषा न ब्रूयान्नादत्तं गृण्हीयान्नाब्रह्म सेवेत न परिग्रहं कुर्यादिति ॥ १० ॥

॥ टीका–अस्मिन्नेवाऽर्थे दृष्टांतानिधित्सयाऽऽह । (उरालमित्यादि)। उरालमिति स्थूलमुदारं जगतऔदारिकजंतुग्रामस्य योगं व्यापारं चेष्टामवस्थाविशेषमित्यर्थः । औदारिकशरीरिणोहि जंतवः प्राक्तनादवस्थाविशेषाद्गर्भकललार्बुदरूपाद्विपर्यासभूतं बालकौमारयौवनादिकमुदारं योगं परिसमंतादयंते गछंति पर्ययंते । एतडुक्तं भवति । औदारिकशरीरिणोहि मनुष्यादेर्बालकौमारादिकः कालादिकृतोऽवस्थाविशेषोऽन्यथा चाऽन्यथाऽभवन् प्रत्यक्षेणैव लक्ष्यते न पुनर्यादृक् प्राक् तादृगेव सर्वदेति । एवं सर्वेषां स्थावरजंगमानामन्यथाऽन्यथा च भवनं इष्टव्यमिति । अपिच सर्वे जंतवआक्रांता अभिभूताडुःखेन शारीरमानसेनाऽसातोदयेन डुःखाक्रांताः संतोऽन्यथाऽवस्थाभाजो लक्ष्यंते । अतः सर्वेपि ते यथाऽहिंसिता भवंति तथा विधेयं । यदि वा सर्वेऽपि जंतवोऽकांतमनभिमतं डुःखं येषां तेऽकांतडुःखाः । चशब्दात् प्रियसुखाश्च ते तान् सर्वान् न हिंस्यादित्यनेन वाऽन्यथात्वदृष्टांतोदर्शितोभवत्युपदेशश्च दत्तइति ॥ ए ॥ किमर्थं सत्वान् न हिंस्यादित्याह । (एवंखुइत्यादि)। खुरवधारणे । एतदेव ज्ञानिनोविशिष्टविवेकवतः सारं न्याय्यं यत्किंचनप्राणिजातं स्थावरं जंगमं वा न हिनस्ति न परितापयति । उपलक्षणं चैतत् । तेन न मृषा ब्रूयान्नादत्तं गृण्हीयान्नाऽब्रह्म सेवेत न परिग्रहं परिगृण्हीयान्न नक्तं भुंजीतेत्येवं ज्ञानिनः सारं यत्र कर्माश्रवेषु वर्ततइति । अपिच अहिंसया समता अहिंसासमता तां चैतावद्विजानीयात् । यथा मम मरणं डुःखं वाऽप्रियमेवमन्यस्याऽपि प्राणिलोकस्येति । एवंकारोऽवधारणे । इत्येवं साधुना ज्ञानवता प्राणिनां परितापनाऽपद्रावणादि वा न विधेयमेवेति ॥ १० ॥

मप्युपयोग्येव । यतोयथैव तद्विषयेऽस्याऽपरिज्ञानमेवमन्यत्राऽप्याशंकया हेयोपादेये प्रेक्षापूर्वकारिणः प्रवृत्तिर्न स्यात् तस्मात्सर्वज्ञत्वमेष्टव्यं । तथा यडुक्तं । स्वापबोधविभागेन परिमितं जानातीत्येतदपि सर्वजनसमानत्वे यत्किंचिदिति । यदपिच कैश्चिडुच्यते । यथा ब्रह्मणः स्वप्नावबोधयोर्लोकस्य प्रलयोदयौ भवतइति तदप्ययुक्तिसंगतमेव । प्रतिपादितं चैतत् प्रागेवेति न प्रतन्यते । नचाऽत्यंतं सर्वजगतउत्पादविनाशौ विद्येते । न कदाचिदनीदृशं जगदिति वचनात् । तदेवमनंतादिकं लोकवादं परिहृत्य यथावस्थितवस्तुस्वभावाविर्भावनं पश्चार्द्धेन दर्शयति । ये केचन त्रसाः स्थावरावा तिष्ठंत्यस्मिन् संसारे तेषां स्वकर्मपरिणत्याऽस्त्यऽसौ पर्यायः । अंजूइति प्रगुणोव्यभिचारी तेन पर्यायेण स्वकर्मपरिणतिजनितेन ते त्रसाः संतः स्थावराः संपद्यंते । स्थावरा अपिच त्रसत्वमश्नुवते । तथा त्रसास्त्रसत्वमेव स्थावराः स्थावरत्वमेवाऽप्नुवंति । न पुनर्यायादृगिह सतादृगेवाऽमुत्राऽपि भवत्ययं नियमइति ॥ ८ ॥

उरालं जगतो जोगं, विवज्जासं पलिंतिय ॥ सव्वे अक्कंतडुक्खाय
अउ सव्वे अहिंसिता ॥ ए ॥ एवं खु नाणिणो सारं; जन्न हिंसइ
किंचणं ॥ अहिंसासमयं चेव, एतावत्तं वियाणिया ॥ १० ॥

अर्थ—हवे ए उपर दृष्टांत कहेछे—ए जीव उरालंके० ते औदारिक एटले अति स्थूल एहवा जगतो जोगंके० जगनो योग जीवनो, व्यापार चेष्टा विशेष, विवज्जासं के० ते विपरीत जुदो जुदो पलिंतिय के० पामे. अत्रे गर्भनुं दृष्टांत कहेछे. जेम गर्भमांहे रह्यो थको जीव अर्बुद, कलल, पेसी इत्यादिक जुदी जुदी अवस्था पामे. तथा जन्म पाम्या पछी बाल, कुमार, तरुण अने वृद्ध एवी जुदी जुदी अवस्था पामे. ए कारणे तेनुं वचन साचुं नथी जणातुं. तो जैन कहे छे के, सव्वेके० सर्व जीव एकेंद्रियादिकथी मांडीने पंचेंद्रियपर्यंत जे छे, तेने अक्कंतडुःखाय के० शारीरी तथा मानसी डुःख ते वल्लभ नथी. अउ के० ए कारणे सव्वे के० सघला जीव अहिंसया के० हणाय नहीं, तेम करवुं. ॥ ए ॥ एवं शब्द अवधारणे छे नाणिणो के० ज्ञानी एटले जे जाण पुरुष तेनो एहज सारं के०सार एटले न्यायछे. जन्नहिंसई किंचणं के० जे कोइ त्रस अने स्थावर जीवने किंचित् मात्र हणे नहीं, उपलक्षणथी मृषा बोले नहीं, अदत्त, मैथुन तथा परिग्रह ए आश्रव न सेवे, रात्री भोजन न करे, एज ज्ञानीनो सार जे आश्रव न सेवे, अहिंसा के० जीवनी दया तथा समयंचेव के० समता सर्वत्र सम परिणाम राखे. एतावत्तंके० एटलुंज वियाणियाके० जाणवुं जोइये. बीजुं घणुं पलाल भार सरखुं जाणवा थकी शुं फल छे? जेम मुजने मरण ते डुःख तेम बीजा जीवने पण मरण तेडुःख एम जाणे एटले मूल गुण कह्या. ॥ १० ॥

जक्तपानमित्येतेन एषणासमितिः । जक्तपानार्थं च प्रविष्टस्य जाषणासंजवाद्भाषणासमितिराक्षिप्ता । सति चाहारे प्रश्रवणादीनां सद्भावात्प्रतिष्ठापनसमितिरप्यायाता इति तृतीयं स्थानं ३ एतेषु त्रिषु स्थानेषु सम्यग्यतः संयतञ्चामोक्षाय परिव्रजेदित्युत्तरश्लोकेन संबंधः । तथा सततं मुनिरुत्कर्षोमानः, ज्वलनः क्रोधः, णूमंति गहनं मायेत्यर्थः । संसारमध्ये सर्वदा जवतीति मध्यस्थोलोजः । चः समुच्चये । एतान् मानादीन् कषायान । (विगिंचएति) । विवेचयेदात्मनः पृथक्कुर्यात् । ननु क्रोधएवादौ सर्वत्र स्थाप्यते ऽत्रतु कथं मानइति चेडुच्यते । माने सत्यवश्यंजावी क्रोधः क्रोधे च सति मानः स्याद्भवेत्यर्थस्य दर्शनाय क्रमोल्लंघनमिति. ॥ १२ ॥

॥ टीका—एवं मूलगुणानजिधायेदानीमुत्तरगुणानजिधातुकामआह । वुसिएयइत्यादि । विविधमनेकप्रकारमुषितः स्थितोदशविधचक्रवालसामाचर्या व्युषितस्तथा विगता ऽपगता आहारादौ गृद्धिर्यस्यासौ विगतगृद्धिः साधुरेवंजूतश्चादीयते स्वीक्रियते प्राप्यते वा मोक्षोयेन तदादानीयं ज्ञानदर्शनचारित्रत्रयं तत्सम्यग्रक्षयेदनुपालयेत् यथा यथा तस्य वृद्धिर्जवति तथाकुर्यादित्यर्थः॥ कथंपुनश्चारित्रादि पालितं जवतीति दर्शयति । चर्यासनशय्यासु । चरणं चर्यागमनं साधुनाहि सति प्रयोजने युगमात्रदृष्टिनागंतव्यं तथा सुप्रत्युपेक्षिते सुप्रमार्जिते चासने उपवेष्टव्यं तथा शय्यायां वसतौ संस्तारके वा सुप्रत्युपेक्षित प्रमार्जितस्थानादि विधेयं तथा जक्ते पाने चांतशः सम्यगुपयोगवता जाव्यं । इदमुक्तं जवति । ईर्याजाषैषणादाननिक्षेपप्रतिष्ठापनासमितिरूपयुक्तेनांऽतशोजक्तपानं यावडुद्गमादिदोषरहितमन्वेषणीयमिति ॥ ११ ॥ पुनरपि चारित्रशुध्यर्थं गुणानधिकृत्याह । एतेहिं इत्यादि । एतान्यनंतरोक्तानि त्रीणि स्थानानि । तद्यथा । ईर्यासमितिरित्येकं स्थानं, आसनं शय्येत्यनेनादानजांडमात्रनिक्षेपणासमितिरित्येतच्च द्वितीयं स्थानं, जक्तपानमित्यनेनैषणासमितिरुपात्ता जक्तपानार्थं च प्रविष्टस्य जाषणासंजवाद्भाषासमितिराक्षिप्ता सति चाहारे उच्चारप्रश्रवणादीनां सद्भावात्प्रतिष्ठापनासमितिरप्यायातेऽत्येतच्च तृतीयं स्थानमित्यतएतेषु त्रिषु स्थानेषु सम्यग्यतः संयतञ्चामोक्षाय परिव्रजेदित्युत्तरश्लोकांते क्रियेति । तथा सततमनवरतं मुनिः सम्यक् यथावस्थितजगत्त्रयवेत्ता । उत्कृष्यते आत्मादर्पाध्मातोविधीयतेऽनेनेत्युत्कर्षोमानस्तथात्मानं चारित्रं वा ज्वालयति दहतीति ज्वलनः क्रोधस्तथा णूममिति गहनं मायेत्यर्थः । तस्याअलब्धमध्यत्वादेवमजिधीयते । तथा आसंसारमसुमतां मध्येंऽतर्जवतीति मध्यस्थोलोजः । चशब्दः समुच्चये । एतान् मानादींश्चतुरोपि कषायांस्तद्विपाकाजिज्ञोमुनिः सदा (विगिंचएति) विवेचयेदात्मनः पृथक्कुर्यादित्यर्थः । ननु चान्यत्रागमेक्रोधआदावुपन्यस्यते तथा हृप

वुसिए य विगयगेही, आयाणं सरक्कए ॥ चरिआसणसेज्जासु, नत्तपाणे अ अंतसो ॥ ११ ॥ एतेहिं तिहिं गणेहिं, संजए सततं मुणी ॥ नक्कसं जलणं णूमं, मज्ज्ञं च विगिंचए ॥ १२ ॥

अर्थ—एटले मूलगुण कह्या हवे उत्तरगुण कहेछे. दशविध सामाचारीनेविषे विविध नाना प्रकारे वुसिएके० वश्या, तथा विगतगृद्धि के० जेमां आहारादिकनी लोल्यता नथी; एवा साधु ते आयाणं के० आदान, ज्ञान, दर्शन अने चारित्र ए रत्नत्रयने सरक्कए के० सम्यक्प्रकारे राखे. एटले जे प्रकारे ए रत्नत्रयनी वृद्धि थाय तेम करे तेज कहेछे. चरिआ के० चालवुं, एटले चारित्रवंत पुरुषने कोइ प्रयोजन कार्य उपना थकां चालवुं पडे तो धूसर प्रमाण दृष्टि जोतो थको चाले; तथा प्रतिलेषित, प्रमार्जित एवा आसण के० आसन उपर बेशे, तथा सुप्रतिलेषित, सुप्रमार्जित एवा सेज्जासुके० उपाश्रय अथवा संथाराने विषे रहे अथवा शयन करे. तथा नत्तपाणेअ के० नात पाणीने विषे अंतसो के० सम्यक् प्रकारे उपयोग करे एटले निर्दोष आहारनी गवेषणा करे. ॥ ११ ॥ वली पण उत्तरगुण आश्रयीज कहेछे. एतेहिं के० ए पूर्वे कह्याजे तिहिंगणेहिं के० त्रण स्थानक एटले एक चर्या, बीजुं आसन सज्जा, अने त्रीजुं नातपाणी ए त्रणे स्थानक रुडी परे जाणवां. एटले चालवामां ईर्यासमिति ए एक स्थानक, अने आसन सज्जा एटले आदान नांम्ड मात्र निक्षेपणासमिति कही ए बीजुं स्थानक, तथा नत्तपाण एटले एषणासमिति कही; अने नातपाणीनी याचना करतां नाषा निरवद्य बोले, एटले नाषासमिति पण आवी तथा आहार लीधाथी उच्चार प्रश्रवणनो सद्भाव थाय, तेने रुडीपेरे परठवतां पारिष्ठापनिका समिति पण कही ए त्रीजुं स्थानक जाणवुं. ए त्रणे स्थानकने विषे संजएके० संयत छतो सततंके० सतत एटले निरंतर मुणी के० चारित्रवान ते नक्कसंके० उत्कर्ष एटले मान, जलणंके० क्रोध, णूमं के० माया अने मज्ज्ञं के० मध्यस्थ एटले लोन ए चारे कषायने विगिंचए के० आत्मा थकी जूदा करे. ॥१२॥

॥ दीपिका—विविधमनेकधोषितः स्थितोदशविधसामाचर्यां व्युषितः । विगता आहारादौ गृद्धिर्यस्य सविगतगृद्धिः साधुः । आदीयते प्राप्यते मोक्षोयेन तदादानीयं ज्ञानादित्रयं तत्सम्यग्रक्षयेत् । तथा चर्यासनशय्यासु । चर्यागमनं, आसनं निषीदनस्थानं, शय्या वसतिः, संस्तारकोवा तेषु तथा नक्तपाने चांतशः सम्यगुपयोगवता नाव्यं । अयमर्थः । ईर्यानाषेषणादाननिक्षेपप्रतिष्ठापनासमितिप्रयुक्तेनांतशोनक्तपानं यावन्निर्दोषमन्वेषणीयं ॥ ११ ॥ पुनरुत्तरगुणानाह । एतानि त्रीणि स्थानानि । यथा ईर्यासमितिरित्येकं स्थानं १ आसनं शय्येत्यादानमांडमात्रनिक्षेपणासमितिरिति द्वितीयं २

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः प्रारंनः ॥

संबुज्झह किंन बुज्झह, संबोही खलु पेच्च डुल्लहा ॥ णोहूवणमंति राइउ, नो सुलनं पुणरवि जीवियं ॥ १ ॥ महरा वुड्ढाय पासह, गप्नत्था वि चियंति माणवा ॥ सेणे जह वट्टयं हरे, एवमाउक्खयंमि तुट्टई ॥२॥

अर्थ—पहेलुं समय नामे अध्ययन कह्युं. हवे बीजुं वैताली नामक अध्ययन कहेछे. तेनो ए संबंध पेहेला अध्ययनने विषे परसमयना दोष कह्या तथा स्वसमयना गुण कह्या. ते सर्व जाणीने जेम कर्म विदारीयें तेम यत्न करवो, ए नाव कहेछे. ते श्री आदीश्वर देवे नरते तिरस्कार कर्या. संवेग उपन्या थकी रूषनदेवना अगणुं पुत्र रूषनदेवनी पासे आव्या. ते स्वपुत्र प्रत्यें उपदेश कहेछे. अथवा श्रीमहावीर देव परखदा प्रत्यें कहेछे. संबुज्झह के० अहो नव्यो ? तमे समजो. ज्ञान, दर्शन तथा चारित्ररूप धर्मनेविषे उद्यम करो ; केमके आ अवसर मलवो फरी फरी डुर्लन छे, तो एवो अवसर पामीने किंनबुज्झह के० केम नथी समजता जे आ नवने विषे धर्म नहीं करशो तेने पेच्चके० परनवनेविषे खलुके० निश्चे थकी, संबोहीके० बोधबीज ते डुल्लहाके० डुर्लन छे. णोहूवणमंतिराइउ के० जेम अतिक्रमेली रात्री फरीथी आवे नहीं तेम यौवनादिक सर्व पदार्थ गया तेपण फरी आवे नहीं. णोसुलनंपुणरवि जीवियं के० फरी फरी जीवित शब्दे संयमे करी प्रधान जे जीवितव्य ते सुलन नथी. ॥ १ ॥ हवे सर्व संसारी जीवने आयुष्य अनित्य करी देखाडेछे. महरा के० बालक एटले कोइक जीव बाल्यावस्थामांयकांज विनाश पामेछे. तथा कोइएक वुड्ढायके० बुढा (वृद्ध) थईने विनाश पामेछे. तथा पासह के० जूउ के, गप्नत्था विचयंति माणवा के० कोइ एक मनुष्य जे छे, ते गर्नमां रह्या थकां पण विनाशने पामेछे. एम ए मृत्यु जे छे, ते जीवने सर्व अवस्थाये आवी पोहोचेछे. तेना उपर दृष्टांत कहेछे. जह के० जेम सेणे के० श्येन एटले सींचाणो जे छे, ते वट्टयं के० वाटो एटले तीतर पक्षी तेने छलीने पुहुते हरे के० हरण करी लीये. एवं आउक्खयंमि तुट्टई के० एम ए मनुष्यनुं आयुष्य पण क्षणे क्षणे त्रूटे छे. एवं जीवाण जीवियं के० ए पूर्वें कह्युं एवुं जीवनुं जीवितव्य जाणवुं. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—व्याख्यातं प्रथमं समयाध्ययनं । अथ द्वितीयं वैतालीयाध्ययनं व्याख्यायते तत्र प्रथमाध्ययने परसमयदोषाः स्वसमयगुणाश्चोक्तास्तांश्च ज्ञात्वा यथा कर्म विदार्यते तथा बोधोविधेयइत्यनेन संबंधेनागतस्यास्योद्देशकत्रयं । तत्र प्रथमोद्देशकस्येदमादिसूत्रं । (संबुज्झहत्ति) । तत्र नगवानादितीर्थंकरोनरतः तिरस्कारागतसंवेगान्

कश्रेण्यामारूढोनगवान् क्रोधादीनेव संज्वलनान् क्षपयति किमर्थमागमप्रसिद्धमुल्लंघ्यादौ मानस्योपन्यासइति ॥ अत्रोच्यते । माने सत्यवश्यंनावी क्रोधः क्रोधेतु मानः स्याद्वानवेत्यस्यार्थस्य प्रदर्शनायान्यथाक्रमकरणमिति. ॥ १२ ॥

समिएउ सयासाहु, पंचसंवरसंवुमे ॥ सिएहिं अ
सिए निरकू, अमोरकायपरिव्वए ज्ञासित्तिबेमि ॥ १३ ॥

अर्थ—हवे अध्ययन उपसंहरतो कहेछे. समिएके० पांच समिते समितो, उके० तु अवधारणने अर्थे छे. तथा सयासाहुके० सर्वकालनेविषे साधु केवोछे ? ते कहेछे. पंचसंवर संवुमेके० पांच महाव्रतनो पालनार तथा पांच प्रकारना संवरे करी संवस्यो छतो तथा सिएहिके० जे गृहस्थ पासबादिकने विषे बंधाणा तेवा गृहस्थने विषे असिए के० अणबंधाणो थको एटले तेने विषे मूर्छा नकरे. जेम कर्दम थकी कमल उंचुंरहे तेम निरकूके० साधु ते आरंन परिग्रह थकी दूर रहे पण तेनी साथे बंधाय नहीं, एवो छतो अमोरकायपरिव्वएके० ज्यांसुधी मोक्ष न थाय त्यांसुधी संयम पाले. ईत्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत्. ॥ १३ ॥ इति प्रथमाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशकः समाप्तः । प्रथमाध्ययनं स०

॥ दीपिका— एवं समितिनिः समितः साधुः पंचमहाव्रतोपेतत्वात्पंचप्रकारसंवृतः । चशब्दाजुप्तिगुप्तस्तथा गृहपाशादिषु सिताबद्धा गृहस्थास्तेष्वसितोन बद्धोन मूर्छितो निक्षुर्नावनिक्षुरासमंतात् मोक्षाय परिसमंताद्व्रजेः संयमानुष्ठानरतोनवेस्त्वमितिशिष्यस्योपदेशः । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १३ ॥ इति तपागच्छाधिपश्रीहेमविमलसूरिस्वशिष्यहर्षकुलप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां प्रथमं समयाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका— तदेवं मूलगुणानुत्तरगुणांश्चोपदर्श्याऽधुना सर्वोपसंहारार्थमाह । (समिए उसया इत्यादि) तुरवधारणे । पंचनिः समितिनिः समितएव साधुस्तथा प्राणातिपातादिपंचमहाव्रतोपेतत्वात्पंचप्रकारसंवरसंव्रतस्तथा मनोवाक्कायगुप्तिगुप्तस्तथा गृहपाशादिषु सिताअवबद्धाः सक्तागृहस्थास्तेष्वसितोऽनवबद्धस्तेषुमूर्छामकुर्वाणः पंकाधारपंकजवत्तत्कर्मणाऽदिह्यमानोनिक्षुर्निक्षणशीलोनावनिक्षुरामोक्षायाऽशेषकर्मापगमलक्षणमोक्षार्थं परि समंतात् व्रजेः संयमानुष्ठानरतोनवेस्त्वमिति विनेयस्योपदेशः । इति अध्ययनसमाप्तौ । ब्रवीमीति गणधरएवमाह यथा तीर्थकृतोक्तं तथैवाहं ब्रवीमि न स्वमनीषिकयेति गतोऽनुगमः । सांप्रतं नयास्तेषामयमुपसंहारः । सव्वसिंपि नयाणं बहुविधवत्तव्वयं निसामित्ता । तं सव्वणयविसुद्धं जं चरणगुणहिउसाहुत्ति ॥ १ ॥ १३ ॥ इति सूत्रकृतांगे प्रथमाध्ययनं समाप्तं ॥ ॥

तु नामस्थापने अनादृत्य द्रव्यं दार्वादि । भावे पुनरष्टप्रकारं कर्मेति ॥ ३९ ॥ सांप्रतं वे तालियमित्येतस्य निरुक्तं दर्शयितुमाह " वेयालियं इह देलियंति वेयालियंतओ होइ ॥ वेयालियं तहा वित्तमत्थि तेणे वयणिबद्धं " ॥ ४० ॥ (वेयालियमित्यादि) । इ हाऽध्ययनेऽनेकधाकर्मणां विदारणमभिहितमिति कृत्वैतदध्ययनं निरुक्तिवशाद्विदारकं ततोभवति । यदि वा वैतालियमित्यध्ययननामात्राऽपि प्रवृत्तौ निमित्तं । वैतालियछंदोवि शेषरूपं वृत्तमस्ति तेनैव च वृत्तेन निबद्धमित्यध्ययनमपि वैतालीयं । तस्य चेदं लक्षणं । वैतालीयलिंगनैधनाः, षडयुक्पादेऽष्टौ समे चलः । नसमोऽत्र परेण युज्यते, नेतः षट्च नि रंतरायुजोः ॥ ४० ॥ सांप्रतमध्ययनस्योऽपोद्घातं दर्शयितुमाह " कामं तु सासयमिणं कहियं अहावयंति उसभेणा ॥ अठ्ठाणउतिसयाणं सोऊण वि तेइ पव्वइया " ॥ ४ ॥ (काममित्यादि) कामशब्दोऽयमभ्युपगमे । तत्र यद्यपि सर्वोप्यागमः शाश्वतः तदंतर्गत मध्ययनमपि तथाऽपि भगवतादितीर्थाधिपेनोत्पन्नदिव्यज्ञानेनाऽष्टापदोपरिव्यवस्थितेन भरताधिपभरतेन चक्रवर्तिनोऽपहृतैरष्टनवतिभिः पुत्रैः पृष्टेन यथा भरतोऽस्मानाऽज्ञां का रयत्यतः किमस्माभिर्विधेयमित्यतस्तेषामंगारदाहकदृष्टांतं प्रदर्श्य न कथंचिद्भोगे छा निवर्ततइत्यर्थः । गर्भमिदमध्ययनं कथितं प्रतिपादितं तेऽप्येतच्छ्रुत्वा संसारासारता

मवगम्य विषयाणां च कटुविपाकतां निःसारतां च ज्ञात्वा मत्तकरिकर्णवच्चपलमायुर्गि रिनदीवेगसमं यौवनमित्यतोभगवदाज्ञैव श्रेयस्करीति तदंतिके सर्वे प्रव्रज्यां गृहीतवं तइत्यत्र उद्देसेनिद्देसेयइत्यादिसर्वोऽप्युपोद्घातोभणनीयः ॥ ४१ ॥ सांप्रतं उद्देशार्था धिकारं प्रागुल्लिखितं दर्शयितुमाह " पढमे संबोहो अनिच्चयाय वीयंमि माणवज्जणया, अहिगारो पुण भणिउ, तहा तहा बहुविहो तत्र ॥ ४२ ॥ उद्देसंमिय तइये, अन्नाण वियस्स अवचउ भणिउ । वज्जेयव्वो य सया सुयप्पमाउ जइ जणेण " ॥ ४३ ॥ (प ढमइत्यादिगाथा द्वयं) तत्र प्रथमोद्देशिके हिताऽहितप्राप्तिपरिहारलक्षणोबोधोविधेयोऽ नित्यता वेत्ययमर्थाधिकारः । द्वितीयोद्देशके मानोवर्जनीयइत्ययमधिकारः । पुनश्च त थाऽनेकप्रकारोबहुविधः शब्दादाऽवर्थेऽनित्यतादिप्रतिपादकोऽर्थाऽधिकारोभणितइति । तृतीयोद्देशके बहुविधज्ञानोपचितस्य कर्मणोऽपचयरूपोर्थाधिकारोभणितइति यतिज नेनच सुखप्रमादोवर्जनीयः सदेति ॥ ४३ ॥ सांप्रतं सूत्रानुगमे अस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (संबुज्झहेत्यादि) तत्र भगवानादितीर्थकरोभरतैस्तिरस्का त रागतसंवेगान् स्वपुत्रानुद्दिश्येदमाह । यदि वा सुरासुरनरोरगतिरश्चः समुद्दिश्य प्रोवाच य था संबुध्यध्वं यूयं ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणे धर्मे बोधं कुरुत । यतः पुनरेवंभूतोऽवसरो दुरापः । तथाहि । मानुषं जन्म तत्राऽपि कर्मभूमिः पुनरार्यदेशः सुकुलोत्पत्तिः सर्वेंद्रिय

स्वपुत्रानुद्दिश्येदमाह । यदि वा सुरासुरनरोरगतिरश्चः समुद्दिश्याह । यथा बुध्यध्वं यूयं धर्मे बोधं कुरुत । किं न बुध्यध्वं एवंविधसामग्र्यां सत्यां कस्माद्धर्मे बोधोन क्रियतइत्यर्थः । यतः अकृतधर्माणां प्रेत्य परलोके संबोधिर्धर्मप्राप्तिरूपा पुनर्डुर्लना । डुर्नि श्चये । नैवातिक्रांतारात्रयउपनमंति पुनर्ढौकंते । नहि अतिक्रांतोयौवनादिकालः पुनरावर्ततइतिनावः । पुनरपि जीवितं संयमजीवितं नो नैव सुलनं । यदि वा जीवितमायुस्त्रुटितं सत्संधातुं न शक्यतइति ॥ १ ॥ आयुषोऽनियतत्वमाह । (.महरेति)। मह राबालाएव केचिज्जीवितं त्यजंति तथा वृद्धागर्नस्थाअपि मानवाः । उपदेशयोग्यत्वान्मानवग्रहणं । एतत्पश्यत यूयं यत्सर्वास्वप्यवस्थासु प्राणी जीवितं त्यजतीति । तथाहि त्रिपल्योपमायुष्कस्यापि पर्याप्त्यनंतरमंतर्मुहूर्तेनैव कस्यचिन्मृत्युरुपतिष्ठतीति । अत्र दृष्टांतमाह । यथा श्येनोवर्तकं तित्तिरिजीवं हरते हंति एवमायुःक्षये प्राणान् मृत्युरपहरेत् । आयुःक्षये वा त्रुटयति जीवितं. ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तं समयाख्यं प्रथममध्ययनं सांप्रतं वैतालीयाख्यं द्वितीयमारन्यते । अस्य चाऽयमनिसंबंधः । इहाऽनंतराऽध्ययने स्वसमयगुणाः परसमयदोषाश्च प्रतिपादितास्तांश्च ज्ञात्वा यथाकर्मविदार्यते तथा बोधोविधेयइत्यनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यऽनुयोगद्वाराणि नणनीयानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाऽधिकारोद्विधा । अध्ययनार्थाऽधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राऽध्ययनार्थाधिकारः प्रागेव निर्युक्तिकारेणाऽनाणि । णाऊणबुज्जणाचेवेत्यनेन गाथाद्वितीयपादेनेत्युद्देशार्थाधिकारं तु स्वतएव निर्युक्तिकारउत्तरत्र वक्ष्यति । नामनिष्पन्नं तु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह " वेयालियंमि वेया,लगो य वेयालणं वेयालियं । तिन्निवि चउक्कगाइं, वेयालेर्ज एड पुण जीवी " ॥ ३७ ॥ (वेयालियमित्यादि) । तत्र प्राकृतशैल्या वेयालियमिति । दृविदारणेइत्यस्य धातोर्विपूर्वस्य बांदसत्वात् नावे एवुल्प्रयांतस्य विदारकमिति क्रियावाचकमिदमध्ययनाऽनिधानमिति । सर्वत्र च क्रियायामेतत्त्रयं सन्निहितं । तद्यथा कर्ता करणं कर्म चेत्यतस्तद्दर्शयति । विदारकोविदारणं विदारणीयं च तेषां त्रयाणामपि नामस्थापनाद्व्यनावन्नेदाच्चतुर्द्धा निक्षेपेण । त्रीणि चतुष्ककानि द्रष्टव्यानि । अत्र च नामस्थापने क्षुस्से द्रव्यविदारकोयोहि द्रव्यं काष्ठादि विदारयति । नावविदारकस्तु कर्मणोविदार्यत्वात् नो आगमतोजीवविशेषः साधुरिति ॥ ३७ ॥ करणमधिकृत्याऽह " दवं च परसुमादी दंसणणाणतवसंयमानावे । दवं च दारुगाही नावे कम्मं वियालणियं " ॥ ३९ ॥ (दवंचेत्यादि) नामस्थापने क्षुस्से द्रव्यविदारणं परश्वादि नावविदारणं दर्शनज्ञानतपःसंयमास्तेषामेव कर्मविदारणे सामर्थ्यमित्युक्तं नवति । विदारणीयं

मायाहिं पियाहिं लुप्पइ, नो सुलहा सुगई य पेच्चउ ॥ एयाइं
भयाइं पेहिया, आरंभा विरमेज्ज सुव्वए ॥ ३ ॥ जमिणं जगती
पुढो जगा, कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो ॥ सयमेव कडेहिं गाहइ,
णो तस्स मुच्चेज्ज पुठ्ठयं ॥ ४ ॥

अर्थ—कोइएक जीव बापडो मायाहिं पियाहिं के० मातापितादिक स्वजने लुप्पइ के० संसारमांहे भमाडयो थको एटले तेने मोहे बांध्यो थको, धर्मने विषे उद्यम करे नहीं ते जीवने पेच्चउ के० परभवने विषे सुगईय के० सद्गति जे मुक्ति ते नोसुलहा के० सुलभ नथी. केमके मोहरूप क्लेश तथा विषयसुख थकी दुर्गति थाय एवुं जाणी एयाइंभयाइं के० ए मोहादिक भयने पेहिया के० देखीने जे आरंभाविरमेज्ज के० आरंभ थकी विरमे, निवृत्ते ते सुव्वएके० सुव्रत थाय. एटले शोभनिकव्रत वंत थाय. ॥३॥ हवे जे कोई आरंभादिक थकी निवृत्ते नहीं तेने दोष कहेछे, जमिणं के० जे कारणे अव्रति जीवने आगल जे कहेशे ते उत्पन्न थाय. ते शुं उत्पन्न थाय ? तो के जगती के० जगतमांहे पुढोजगा के० पृथक् पृथक् जुदां जुदां जीवनां स्थानक जे नरकादिक छे, ते स्थानकोमांहे कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो के० प्राणी पोतानां उपार्जेलां कर्मोनां जे दुःख तेणेकरी पीडाय. ते प्राणी सयमेवकडेहिं के० स्वमेव एटले पोते कीधां जे कर्म तेणे करी गाहइ के० अवगाहे एटले नरकादिक स्थानक दुःखना हेतु उपचय करे. णोतस्समुच्चेज्ज के० ते अशुभविपाक थकी न मूकाय; अपुठ्ठयं के० अणफरइयो एटले ते बांधेलां कर्म भोगव्या विना छूटे नहीं. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—मायेति । योमातापितृमोहेन धर्मोद्यमं न कुरुते सतैरेव मातापित्रादिनिर्लुप्यते संसारेभ्राम्यते । तस्य प्रेत्य जन्मांतरे सुगतिश्च नो सुलभा । एतानि दुर्गतिगमनादीनि भयानि (पेहिया) प्रेक्ष्यारंभाद्विरमेत् सुव्रतः शोभनव्रतः । सुस्थितोवा पाठांतरे ॥ ३ ॥ (जमिणमिति) यद्यस्मादनिवृत्तानामिदं स्यात् । जगति पृथिव्यां (पुढो जगत्ति) पृथग्भूताव्यवस्थिताः सावद्याचारोपचितैः कर्मभिः प्राणिनोलुप्यंते नरकादिषु भ्राम्यंते । स्वयमेव कृतैः कर्मभिर्नरकादिस्थानान्यभिगाहते । नच तस्याऽशुभाचरितस्य कर्मणो विपाकेनाऽस्पृष्टोमुच्यते जंतुः ॥ ४ ॥

॥ टीका—तथा (मायाहींत्यादि) कश्चिन्मातापितृभ्यां मोहेन स्वजनस्नेहेन च न धर्मं प्रत्युद्यमं विधत्ते सचतैरेव मातापित्रादिभिर्लुप्यते संसारे भ्राम्यते । तथाहि । विहितमजोहमहोमह,न्मातापितृपुत्रदारबंधुसंज्ञं । स्नेहमयमसुमतामतः किंबंधनं शृंखलं

पाटवं । श्रवणश्रद्धादिप्राप्तौ सत्यां स्वसंवित्यवष्टंभेनाह । किं न बुत्ध्यध्वमित्यवश्यमेवंविध सामग्र्यावाप्तौ सत्यां सकर्णेन तुच्छान् भोगान् परित्यज्य सद्धर्मबोधोविधेयइतिभावः । तथाहि । निर्वाणादिसुखप्रदे नरभवे जैनेंद्रधर्मान्विते, लब्धे स्वल्पमचारु कामजसुखं नो सेवितुं युज्यते । वैडूर्यादिमहोपलौघनिचिते प्राप्तेऽपि रत्नाकरे, लातुं स्वल्पमदीप्तिकाचशकलं किं चोऽचितं सांप्रतं ॥१॥ अकृतधर्मचरणानां तु प्राणिनां संबोधिः सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राऽवाप्तिलक्षणा प्रेत्य परलोकगतानां खलुशब्दस्याऽवधारणार्थत्वात् सुदुर्लभैव । तथाहि । विषयप्रमादवशात् सकृत् धर्माचरणाद्भ्रष्टस्याऽनंतमपि कालं संसारे पर्यटनमभिहितमिति । किंच । दुरित्यवधारणे । नैवाऽतिक्रांताराात्रयउपनमंति पुनर्ढौकंते । नह्यतिक्रांतोयौवनादिकालः पुनरावर्त्ततइतिभावः । तथाहि । भवकोटिभिरसुलभं, मानुष्यं प्राप्य कः प्रमादोमे । नच गतमायुर्भूयः प्रत्येत्यपि देवराजस्य ॥ १ ॥ नोनैव संसारे सुलभं सुप्रापं संयमप्रधानं जीवितं यदि वा जीवितमायुस्त्रुटितं सत् तदेव संधातुं न शक्यतइति वृत्तार्थः । संबोधश्च प्रसुप्तस्य सतोभवति स्वापश्च निद्रोदये निद्रासंबोधयोश्च नामादिश्चतुर्धा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने अनादृत्य द्रव्यभावनिक्षेपं प्रतिपादयितुं निर्युक्तिकृदाह । “दव्वं निद्दा वेउ दंसणनाणतवसंजमा भावे । अहिगारो पुणभणिउ नाणे तव दंसणचरित्ते ” ॥ ४४ ॥ (दव्वंनिद्दावेउ इति) इह च गाथायां द्रव्यनिद्राभावसंबोधश्च दर्शितः । तत्राऽद्यंतग्रहणेन भावनिद्राद्रव्यबोधयोस्तदंतर्वर्तिनोर्ग्रहणं द्रष्टव्यं । तत्र द्रव्यनिद्रा निद्रा वेदोवेदनमनुभवः । दर्शनावरणीयविशेषोदयइति यावत् । भावनिद्रातु विषयज्ञानदर्शनचारित्रशून्यता । तत्र द्रव्यबोधोद्रव्यनिद्रया सुप्तस्य बोधनं । भावे भावविपये पुनर्बोधोदर्शनज्ञानचारित्रतपःसंयमाद्रष्टव्याः । इह च भावप्रबोधेनाऽधिकारः सच गाथापश्चार्द्धेन सुगमेन प्रदर्शितइति । अत्र च निद्राबोधयोर्द्रव्यभावभेदाच्चत्वारो भंगायोजनीयाइति ॥ ४४ ॥ १ ॥ भगवानेव सर्वसंसारिणां सोपक्रमत्वादनियतमायुरुपदर्शयन्नाह । (डहराबुड्ढायेत्यादि) डहराबालाएव केचन जीवितं त्यजंति । तथा वृद्धाश्च गर्भस्थाअप्येतत्पश्यत यूयं के ते मानवामनुष्यास्तेषामेवोपदेशदानार्हत्वात् मानवग्रहणं । बह्वपायत्वादायुषः सर्वास्वऽप्यवस्थासु प्राणी प्राणांस्त्यजतीत्युक्तं भवति । तथाहि । त्रिपल्योपमायुष्कस्यापि पर्याप्त्यनंतरमंतर्मुहूर्तेनैव कस्यचिन्मृत्युरुपतिष्ठतीति । अपिच गर्भस्थं जायमानमित्यादि । अत्रैव दृष्टांतमाह । यथा श्येनः पक्षिविशेषोवर्त्तकं तित्तिरजातीयं हरेत् व्यापादयेदेवं प्राणिनः प्राणान् मृत्युरुपहरेत् । उपक्रमकारणमायुष्कमुपक्रमेत् । तदभावे वा आयुष्यक्षये त्रुटयति व्यवछिद्यते जीवानां जीवितमिति शेषः ॥ २ ॥

बूटे तेवारे अवश्य पडे, एवं के० एम आउरकयंमि तुट्टती के० जीव, जे छे ते आयुष्य ना क्षय थकी जेवारे विनाश पामे तेवारे तेने कोइ जीवाडी शके नहीं. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—देवेति । देवाज्योतिष्कसौधर्माद्याः गंधर्वराक्षसयोरुपलक्षणार्थत्वादष्टप्रकाराव्यंतराः । असुरा दशधा भवनपतयः । येचान्ये भूमिचराः. सरीसृपास्तिर्यंचः । राजानश्च क्रिहरिप्रमुखाः । नराः सामान्यमनुष्याः । श्रेष्ठिनः पुरमहत्तरा ब्राह्मणाश्च । एते सर्वेपि स्वस्थानानि दुःखिताः संतस्त्यजंते । सर्वेषां मरणं दुःखदायीति ॥५॥ (कामेहिंति) कामैरिछामदनरूपैः संस्तवैः पूर्वापरभूतैर्गृद्धाआसक्ताः कर्मविपाकसहिष्णवः कालेन जंतवः स्युः । भोगेछोर्विषयासेवने क्लेशएवेत्यर्थः । कामभोगैर्न त्राणमस्तीत्याह (तालेत्ति) तालफलं यथा बंधनात् वृंतात् च्युतमत्राणं पतति एवं जंतुरपि स्वायुःक्षये त्रुट्यति च्यवते ॥६॥

॥ टीका—अधुना सर्वस्थानाऽनित्यतां दर्शयितुमाह (देवाइत्यादि) देवाज्योतिष्कसौधर्माद्याः, गंधर्वराक्षसयोरुपलक्षणत्वादष्टप्रकाराव्यंतरागृह्यंते । तथा असुरादशप्रकाराभवनपतयः, ये चाऽन्ये भूमिचराः सरीसृपाद्यास्तिर्यंचः, तथा राजानश्चक्रवर्तिनोबलदेववासुदेवप्रभृतयः । तथा नराः सामान्यमनुष्याः । श्रेष्ठिनः पुरमहत्तराब्राह्मणाश्चैते सर्वेऽपि स्वकीयानि स्थानानि दुःखिताः संतस्त्यजंति । यतः सर्वेषामपि प्राणिनां प्राणपरित्यागे महद्दुःखं समुत्पद्यतइति ॥ ५ ॥ किंच (कामेहिंत्यादि) कामैरिछामदनरूपैस्तथा संस्तवैः पूर्वापरभूतैर्गृद्धा अध्युपपन्नाः संतः (कम्मसहित्ति) कर्मविपाकसहिष्णवः कालेन कर्मविपाककालेन जंतवः प्राणिनोभवंति । इदमुक्तं भवति । भोगेप्सोर्विषयाऽसेवनेन तदुपशममिछतइहामुत्र क्लेशएव केवलं न पुनरुपशमावाप्तिः । तथाहि । उपभोगोपायपरो, वांछति यः शमयितुं विषयतृष्णां । धावत्याऽक्रमितुमसौ पुरो पराह्णे निजछायां । नच तस्य मुमूर्षोः कामैः संस्तवैश्च त्राणमस्तीति दर्शयति । यथातालफलं बंधनात् वृंतात् च्युतमत्राणमवश्यं पतति एवमसावपि स्वायुषःक्षये त्रुट्यति जीवितात् च्यवतइति ॥६॥

जे यावि बहुस्सुए सिया, धम्मिय माहणभिक्खुएसिया ॥ अभिणूमकडेहिं मुछिए, तिव्वं से कम्मेहिं किच्चती ॥७॥ अह पास विवेगमुट्ठिए, अवितिन्ने इह भासई धुवं ॥ णाहिसि आरं कउ परं वेहासे कम्मेहिं किच्चती ॥८॥

अर्थ—जेयाविबहुस्सुए के० जे कोइ बहुश्रुत एटले शास्त्रना पारंगामी सियाके०होय, तथा धम्मियके० धार्मिक एटले धर्मना करनार होय तथा माहणभिक्खुएके० ब्राह्मण अने भिक्षुक एटले भिक्षा अटनशील एवा सिया के० होय; तेपण अभिणूमके० माया

खलेन धात्रा ॥ १ ॥ तस्य च स्नेहाकुलितमानसस्य सदसद्विवेकविकलस्य स्वजनपोषणार्थं यत्किंचनकारिणइहैव सद्भिर्निंदितस्य सुगतिरपि प्रेत्य जन्मांतरे नोसुलजाऽपि तु मातापितृव्यामोहितमनसस्तदर्थं क्लिश्यतोविषयसुखेप्सातश्च डुर्गतिरेव जवतीत्युक्तं जवति । तदेवमेतानि जयानि जयकारणानि डुर्गतिगमनादीनि (पेहियत्ति) प्रेक्षाऽरंजात्सावद्याऽनुष्ठानरूपाद्विरमेत् । सुव्रतः शोजनव्रतः सन् सुस्थितोवेति पाठान्तरं ॥ ३ ॥ अनिवृत्तस्य दोषमाह । (जमिणमित्यादि) यद्यस्मादनिवृतानामिदं जवति । किं तत् जगति पृथिव्यां (पुढोत्ति) पृथक्नूताव्यवस्थिताः सावद्यानुष्ठानोपचितैः कर्मजिर्विलुप्यंते नरकादिषु यातनास्थानेषु जाम्यंते । स्वयमेव च कृतैः कर्मजिर्नेश्वराद्यापादितैर्गाहते नरकादिस्थानानि यानि तानि वा कर्माणि डुःखहेतूनि गाहते उपचिनोति । अनेन च हेतुसद्भावः कर्मणामुपदर्शितोजवति । नच तस्याऽशुजाऽचरितस्य कर्मणोविपाकेनाऽस्पृष्टोऽक्षुप्तो मुच्यते जंतुः । कर्मणामुदयमननुजूय तपोविशेषमंतरेण दीक्षाप्रवेशादिना न तदपगमं विधत्तइतिजावः ॥ ४ ॥

देवा गंधव्वरक्खसा, असुरा जूमिचरा सिरिसिवा ॥ राया नरसेठिमाहणा, ठाणा ते विचयंति डुक्किया ॥५॥ कामेहिंय संथवेहिय गिद्धा, कम्मसहा कालेण जंतवो॥ताले जह बंधणच्चुए, एवं आउक्खयंमि तुट्टती ॥६॥

अर्थ—हवे सर्व स्थाननुं अनित्यपणुं देखाडेछे. देवा के० देवता ते ज्योतिषि सौधर्मादिक तथा गंधव्वरक्खसा के० गांधर्व राक्षस एटले व्यंतरदेवो कह्या, तथा असुरा के० दश प्रकारना जुवनपति तथा जूमिचरा के० जूमिचरादिक ते मनुष्यादिक जाणवा. अने सिरिसिवा के० सरीसृप एटले सर्पादिक तिर्यंच जाणवा; तथा राया के० राजा चक्रवर्त्यादिक अने नर के० सामान्य मनुष्य, सेठिके० श्रेष्ठि ते नगरमांहे मोहोटा, माहणा के० ब्राह्मण, ठाणा तेविचयंति डुक्किया के० एटला सर्व पोतपोतानां स्थानकने पोते डुखिया थया थका ठांमेछे एटले सर्व प्राणीमात्रने अंतकाले डुःख उपजेछे इत्यर्थः ॥५॥ वली तेहिज जाव कहेछे. कामेहिंयके० कामते विषयादिक जोग अने संथवेहिय के० संस्तवते मातापितादिक तथा स्वसुर वर्गादिक तेनो परिचय, तेणेकरी गिद्धाके० आसक्त थतो कम्मसहाकालेण के० काले कर्मविपाके एटले जोगववाने प्रस्तावे जंतवो के० जीव कर्मनो सहन करनार थाय, एटले विषयासक्त मनुष्यने आगमिक काले डुःखज थाय, परंतु ते जीवने काम, जोग तथा स्वजन ए सर्व डुःख थकी राखनार नथी. जह के० जेम ताले के० तालवृक्षनुं फल ते बंधणच्चुए के० बीट थकी

परित्यागं परिग्रहस्य परिज्ञानं वा संसारस्या ऽऽश्रित्योऽह्नितः प्रव्रज्योत्थानेन । सच स म्यक् परिज्ञानान्नावादवितीर्णः संसारसमुद्रं तितीर्षुः केवलमिह संसारे प्रस्तावे वा शाश्वतत्वात् ध्रुवोमोक्षस्तं तदुपायं वा संयमं नाषतएव न पुनर्विधत्ते तत्परिज्ञाना नावादितिनावः । तन्मार्गे प्रपन्नस्त्वमपि कथं ज्ञास्यसि । आरमिहनवं कुतोवा परं पर लोकं । यदि वा आरमिति गृहस्थत्वं परमिति प्रव्रज्यापर्यायं । अथवा आरमिति संसा रं परमिति मोक्षं एवंभूतश्चाऽन्योऽप्युभयभ्रष्टः । (वेहासित्ति) अंतराले उनयानावतः स्वकृतैः कर्मभिः कृत्यते पीड्यतइति ॥ ८ ॥

जइ वि य णिगणे किसे चरे, जइविय भुंजिय मासमंतसो ॥ जे इह मायावि मिज्जई, आगंतागप्नायणंतसो ॥ ए ॥ पुरिसो रम पावकम्मुणा, पलियंतं मणुयाणजीवियं ॥ सन्ना इह काममु च्छिया, मोहं जंति नरा असंवुमा नरा ॥ १० ॥

अर्थ—हवे शिष्य कहेछे के, हे जगवन्? केटलाएक दर्शनी निपरिगृही तथा तपस्या ना करनार देखायछे, तो तेने मोक्ष केम नहोय? हवे गुरु कहेछे के, जइविय के० यद्य पि ते परतीर्थिक तापसादिक अथवा आज्ञा थकी भ्रष्टस्वयूथिक णिगणे के० नग्न सर्व बाह्य परिग्रह रहित, किसे के० कृश डुर्बल कीधुंछे शरीर जेमने एवा छतां चरे के० पोतपोतानी प्रव्रज्या आदरीने विचरेछे. वली जइविय के० यद्यपि भुंजिय मासमं तसोके० मासमास खमण करी मासने अंते जमे तथापि जेइह के० जे आ संसारने विषे मायावि के० मायासहित मिज्जइ के० संयोगकरे. उपलक्षणथी कषायादिके करी युक्त होय ते आगंतागप्नयाणंतसो के० आगमिक काले अनंता गर्जादिक डुःख पामे, ए टले अनंतो संसार परिभ्रमण करे. ॥ ए ॥ हवे जे कारणे मिथ्यादृष्टिने उपदेशे घणो कायक्लेशे, पण मुक्ति नथी तेकारणे निरते मार्गे रहेवुं ए जाव कहेछे. पुरिसो के० अ हो पुरुषो? तमे पावकम्मुणा के० पापकर्म थकी उपरम के० निवर्त्तो. केमके पलियंतं मणुयाणजीवियं के० मनुष्यनुं जीवितव्य ते पल्योपमांतछे, एटले संयमरहित जीवनुं जो घणुंज आयुष्य होय तो त्रण पल्योपम होय अने संयमसहित तो एक पल्योपमनी अंदर जाणवुं एटले आठ वर्षे उणी एक पूर्वकोडी एटलुंज मनुष्यनुं आयुष्यछे तेतो गयुंज जाणजे एवुं जाणीने जेटलो काल जीविए तेटलो काल सम्यक् अनुष्ठाने करी सफल करिए वली जे नरा के० मनुष्य सन्नाइह के० नोग स्नेह पंकनेविषे खुता अथवा काममुच्छिया के० कामजोगने विषे मूर्छित छता एवाजे मनुष्य असंवुमा नराके० ते

येकरी कडेहिं के० कीधां एवां जे कर्म तेने विषे मुच्छिए के० मूर्छित थतां तिवंसे के० ती व्र एटले आकरा एवा कम्मेहिं के० कर्म तेणेकरी किच्चती के० पीडाय; एटले सारो अ थवा नरसो कोई पण जीव करेलां कर्मने नोगव्याविना बूटे नहीं. ॥ ७ ॥ हवे ज्ञान, दर्शन अने चारित्रविना अन्य कोइ मोक्षमार्ग नथी एवुं देखाडेछे. अहपास के० एवुं देखीने शिष्य प्रत्ये गुरु एम कहेछे के, कोइएक दर्शनी विवेक के० परिग्रहनो परित्या ग करी उछिते के० उठ्यो अर्थात् प्रव्रज्याने विषे सावधान थयो; परंतु अवितिन्ने के० सम्यक् परिज्ञानने अनावे तिन्न एटले संसारसमुद्र थकी तख्यो नहीं, एवो थतो वली इहनासइ के० एम नाषे के धुवं के० जे मोक्षनो मार्ग अथवा मोक्षनो उपाय ते अ माराज आचार थकीछे एम कहे. माटे हे शिष्य ! तेना मार्गे प्रपन्न थतो तुं णाहिसिके० क्यां थकी जाणीश ! आरं के० इहलोक अने वली कउके० क्यां थकी परं के० परलो कने जाणीश अथवा आरं एटले गृहस्थावास अने परं एटले प्रव्रज्या अथवा आरं एटले संसार अने परं एटले मोक्ष तेने केम जाणीश एटले इहलोक परलोक बन्ने थकी न्रष्ट एवो थको वेहासे के० अंतराले एटले संसारमांहेज कम्मेहिं किच्चइ के० पोताना करेला जे कर्म तेणेकरी पीडातो जइश. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–(जेयाविति) येचापि बहुश्रुताः स्युर्येधार्मिकास्तथा ब्राह्मणास्तथा निक्षुकाः स्युः आनिमुख्येन (णूमंति) कर्म माया वा तत्कृतैरसदनुष्ठानैर्मूर्छितास्तीव्रमत्यर्थं । सेत्ति आर्षत्वाद्बहुवचनं ज्ञेयं । ते कर्मनिः कृत्यंते पीडयंते ॥ ७ ॥ ज्ञानादिसाध्यएव मोक्षोन तीर्थिकोक्तइत्याह । (अहेति) अथाऽनंतरं त्वं पश्य विवेकं त्यागं परिग्रहस्य ज्ञानं वा संसा रस्याश्रित्य उत्थितः स्वक्रियोद्युक्तः सम्यक्ज्ञानानावादवितीर्णः संसाराब्धिमतीर्णः केव लं ध्रुवं मोक्षं तडुपायं वा नाषतएव नतु विधत्ते ज्ञानानावादित्यर्थः । तन्मार्गप्रपन्न स्त्वमपि कथमारं इहनवं परं वा परनवं ज्ञास्यसि । एवं नूतश्चो नयन्रष्टो (वेहासित्ति) अंतराले कर्मनिः कृत्यते पीड्यते ॥ ८ ॥

॥ टीका–अपिच (जेयावीत्यादि) येचाऽपि बहुश्रुताः शास्त्रार्थपारगाः । तथा धार्मि काधर्माचरणशीलाः । तथा ब्राह्मणाः । तथा निक्षुकानिक्षाटनशीलाः स्युर्नवेयुः । तेऽप्यानिमुख्येन (णूमंति) कर्म माया वा तत्कृतैरसदनुष्ठानैर्मूर्छितागृद्धास्तीव्रमत्य र्थं । अत्र च छांदसत्वाद्बहुवचनं द्रष्टव्यं । एवंनूताः कर्मनिरसद्वेद्यादिनिः कृत्यंते छिद्यं ते पीडयंतइतियावत् ॥ ७ ॥ सांप्रतं ज्ञानदर्शनचारित्रमंतरेण नाऽपरोमोक्षमार्गोऽस्तीति त्रिकालविषयत्वात् सूत्रस्याऽगामितीर्थिकधर्मप्रतिषेधार्थमाह (अहेत्यादि) अथेत्य धिकारांतरे लब्हादेशो एकादेशइति । अथेत्यनंतरं एतच्च पश्य । कस्तीर्थिकोविवेकं

जययं विहराहि जोगवं, अणुपाणा पंथा दुरुत्तरा ॥ अणुसासणमेव प
क्कमे, वीरेहिं सम्मं पवेइयं ॥ ११ ॥ विरया वीरा समुट्ठिया कोहकायरि
याइ पीसणा ॥ पाणेण हणंति सव्वसो, पावाउ विरिया अभिनिवुडा ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे जो एमछे तो शुं करवुं ते कहेछे. जययं के० आयुष्य तुच्छ जाणी अने विषयने क्लेशनुं कारण जाणी. गृहपाशबंध छेदीने चारित्रने विषे यत्न करतो विहराहि के० विचर ते केहवो थको विचरे? तोके. जोगवं के० समिति अने गुप्तिसहित थको विचरे; केमके अणुपाणापंथाके० सूक्ष्मजीव जे पंथ एटले मार्गने विषे छे, ते पंथ ईर्यासमितिविना दुरुत्तराके० दुस्तरछे एटले जतां दोहिलोछे, एथी बीजी समितिने पण कहेवी तो एम सदा सावधान पणे हिंडे. अणुसासणं के० जेम श्रीवीतरागदेवे सूत्रमध्ये शीखामण कहीछे. एवके० तेम सूत्रने अनुसारे पक्कमेके० चाले. एम वीरेहिं के० श्रीवीर तीर्थंकरे सम्मंके० सारु पवेइयं के० कह्युंछे. ॥ ११ ॥ ते श्रीवीर कहाछे, ते कहेछे. जे हिंसादिक पापथकी विरियाके० विरत एटले निवर्त्या ते वीरा के० वीरकर्मना छेदनारा तथा समुट्ठियाके० सम्यक् आचारने विषे सावधान थया एवा वता कोह के० क्रोध अने कायरियाइके० कातरी एटले माया तथा आदि शब्द थकी मान अने लोभ पण जाणी जेवां तेना पीसणा के० पीसनार एटले मर्दन करनार ते वीर कहवो के० सर्वथापि पाणेणहणंति के० प्राण हणे नहीं. पावाउ के० पाप जे सावद्य अनुष्ठान ते थकी विरिया के० विरत तथा अभिनिवुडा के० क्रोधादिकना उपशमे करी शीतल थयाछे एवा श्रीवीर जाणवा. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—जययमिति। यतमानो यत्नं कुर्वन् विहर उद्युक्तविहारी भव योगवान् संयमयोगवान्। अणवः सूक्ष्माः प्राणाः प्राणिनो येषु ते अणुप्राणाः पंथानोऽनुपयोगिभिर्दुस्तराः दुर्गमाः। ईर्यादिसमितिषु उपयोगवता भाव्यमित्यर्थः। अनुशासनमेव सूत्रानुसारेण च संयमे प्रक्रमेत् चरेत्। एवं वीरैरर्हद्भिः सम्यक् प्रवेदितं कथितं ॥ ११ ॥ विरया इति। हिंसादेर्विरताः समुत्थिताः सम्यगारंभत्यागेनोत्थिताः क्रोधकातरिकादिपीषणाः। क्रोधग्रहणान्मानोपि ग्राह्यः। कातरिका माया। मायाग्रहणाच्च लोभो गृहीतः। तेषां पीषणा विनाशकाः एवंविधा वीराः स्युः। तथा प्राणान् सर्वशो मनोवाक्कायैर्न घ्नंति। पापात् सावद्यव्यापारात् विरता अभिनिर्वृताः क्रोधाद्युपशमेन शांताः स्युः ॥ १२ ॥

॥ टीका—एवं च स्थिते यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह। (जययमित्यादि) स्वल्पं जीवित मवगम्य विषयांश्च क्लेशप्रायाऽनवबुध्य छित्वा गृहपाशबंधनं यतमानो यत्नं कुर्वन् प्राणि

पुरुष असंवरी बतां मोहंजंति केण्मोहने विषे पोहोचे एटले हिताहित न जाणे.॥१०॥

॥ दीपिका–जइवीति । यद्यपि कश्चित्तापसादिर्नग्नः कृशश्च चरेत् । यद्यपि षष्ठाष्टमादिकुर्वन् यावदंतशोमासं स्थित्वा भुंक्ते तथापि योमायावी उपलक्षणात्कषाययुक्तोमीयते सगर्नाय गर्नार्थमनंतशोऽनंतवारं आगंता यास्यति । अनंतकालं संसारे भ्रमिष्यतीति नावः ॥ ए ॥ पुरीसोति । हे पुरुष त्वं पापकर्मणः सकाशात् उपरम निवर्तस्व । यतोमनुजानां जीवितं सुबह्वपि त्रिपल्योपमांतं संयमजीवितं वा पल्योपमस्यांतर्मध्ये पूर्वकोटिमितमित्यर्थः । अथवा परिसमंतादंतो यस्य तत् पर्यंतं सांतमित्यर्थः । ये पुनः कामेषु इच्छामदनादिषु मूर्छिताः सन्नामग्नाइह संसारे ते मोहं यांति ते मोहनाय कर्म बध्नंति असंवृताः संवररहितानराः ॥ १० ॥

॥ टीका–ननु च तीर्थिकाअपि केचन निष्परिग्रहास्तथा तपसा निष्टप्तदेहाश्च तत्कथं तेषां नो मोक्षावाप्तिरित्येतदाशंक्याह । (जइविइत्यादि) यद्यपि तीर्थिकः कश्चित्तापसादिस्त्यक्तबाह्यगृहवासादिपरिग्रहत्वात् निष्किंचनतया नग्नस्त्वक्त्राणाभावाच्च कृशश्चरेत् स्वकीयप्रव्रज्यानुष्ठानं कुर्यात् । यद्यपिच षष्ठाष्टमदशमद्वादशादितपोविशेषं विधत्ते यावदंतशो मासं स्थित्वा भुंक्ते तथापि आंतरकषायाऽपरित्यागान्न मुच्यते इतिदर्शयति । यस्तीर्थिकइह मायादिना मीयते उपलक्षणार्थत्वात् कषायैर्युक्तइत्येवं परिछिद्यते । असौ गर्नाय गर्नार्थमासमंतात् गंता यास्यत्यनंतशोनिरवधिकं कालमिति । एतडुक्तं नवति । अकिंचनोऽपि तपोनिष्टप्तदेहोऽपि कषायाऽपरित्यागान्नरकादिस्थानात् तिर्यगादिस्थानं गर्नाज्जन्मनंतमपि कालमविश्रममेवत् संसारे पर्यटतीति ॥ ए ॥ यतोमिथ्यादृष्ट्युपदिष्टतपसाऽपि न डुर्गतिमार्गनिरोधोऽतोमडुक्तएव मार्गे स्थेयमेतज्जन्मुपदेशं दातुमाह । (पुरिसोइत्यादि) हे पुरुष येन पापेन कर्मणा असदनुष्ठानरूपेण त्वमुपलक्षितस्तत्राऽसकृत् प्रवृत्तत्वात् तस्माडुपरम निवर्त्तस्व । यतः पुरुषाणां जीवितं सुबह्वपि त्रिपल्योपमांतं संयमजीवितं वा पल्योपमस्यांऽतर्मध्ये वर्त्तते तदऽप्यूनां पूर्वकोटिमिति यावत् । अथवा परिसमंतात्अंतोऽस्येतिपर्यंतं सांतमित्यर्थः । तच्चैवं तज्ज्ञतमेवाऽवगंतव्यं । तदेवं मनुष्याणां स्तोकं जीवितमवगम्य यावत्तन्नपर्यैति तावद्धर्मानुष्ठानेन सफलं कर्त्तव्यं । ये पुनर्नोगस्नेहपंके अवसन्नामग्नाइह मनुष्यन्नवे संसारे वा कामेष्विच्छामदनरूपेषु मूर्छिताअध्युपपन्नास्ते नरा मोहं यांति हिताहितप्राप्तिपरिहारे मुह्यंति मोहनीयं वा कर्मोपचिन्वंतीति संनाव्यते । एतदसंवृतानां हिंसादिस्थानेन्योनिवृत्तानामसंयतेंद्रियाणां चेति ॥ १० ॥

॥ दीपिका—एवितेति। परीषहैःस्पृष्टोपि तान् अधिसहेत क्षमेत। पीडितएवं चिंतयेत् नतावदहमेव परीषहोपसर्गैर्लुप्ये पीड्ये किंतु अन्येपि प्राणिनस्तिर्यङ्मनुष्याः पीड्यंते लोके एवं सहितोज्ञानादिभिः स्वहितआत्महितोवा पश्येत् निर्मलबुद्ध्या विचारयेत् पूर्वोक्तं। अनीहः क्रोधादिभिरपीमितः संयमेपरीषहसहनेवा निगूहीतवीर्योवा सन् परिषहैः स्पृष्टोपि तान् अधिसहेत क्षमेत ॥ १३ ॥ धुणियाइति। धूत्वा विधूय कुडिअं कुड्यं भित्तिमिवेत्यर्थः। लेपवत् सलेपं। यथा कुड्यं गोमयादिलेपेन सलेपं क्रमेण लेपोप गमतः कृशं स्यात् एवमशनादिभिर्देहं कर्शयेत्। देहकृशत्वाच्च कर्मकृशत्वं स्यादितिभा वः। तथा विविधाहिंसाविहिंसा न विहिंसा अविहिंसा तां प्रव्रजेत प्रकर्षेण व्रजेत। अ हिंसा प्रधानः स्यादित्यर्थः। अनुगतोमोक्षं प्रति अनुकूलोधर्मोऽनुधर्मोऽयं मुनिना सर्व ज्ञेन प्रवेदितः कथितः ॥ १४ ॥

॥ टीका—पुनरप्युपदेशांतरमाह । (एविताइत्यादि परीषहोपसर्गाएतद्भावनापरेण सोढव्याः नाहमेवैकस्तावदिह शीतोष्णादिदुःखविशेषैर्लुप्ये पीड्ये । अपित्वऽन्येऽपि प्राणि नस्तथाविधा स्तिर्यङ्मनुष्याअस्मिंल्लोके लुप्यंते अतिदुःसहैर्दुःखैः परिताप्यंते तेषां च सम्यग्विवेकाभावान्ननिर्जराख्यफलमस्ति । यतः । क्षांतं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषतः सोढा दुःसहतापशीतपवनक्लेशान तप्तं तपः ॥ ध्यातं चित्तमहर्निशं नियमि तं द्वंद्वैर्न तत्वं परं तत्तत्कर्मकृतं सुखार्थिभिरहो तैस्तैः फलैर्वंचिताः ॥१॥ तदेवं क्लेशादिस हनं सद्विवेकिनां संयमाभ्युपगमे सति गुणाय भवति । तथाहि । कार्श्यं क्षुत्प्रभवं कदन्न मशनं शीतोष्णयोः पात्रता पारुष्यं च शिरोरुहेषु शयनं मह्यास्तले केवले । एतान्येव गृ हे वहंत्यवनतिं तान्युन्नतिं संयमे दोषाश्चापि गुणाभवंति हि नृणां योग्ये पदे योजि ताः । १ । एवं सहितो ज्ञानादिभिः स्वहितोवा आत्महितः सन् पश्येत् कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोचयेदनंतरोदितं । तथा निहन्यतइति निहः न निहोऽनिहः क्रोधादिभि रपीमितः सन् समहासत्वः परीषहैः स्पृष्टोऽपि तानाधिसहेत मनःपीमां न विदध्यादिति । यद्विवाऽनिहइति तपः संयमपरीषहने वा निगूहितबलवीर्यः । शेषंपूर्ववदिति ॥ १३ ॥ अपिच (धुणियाइत्यादि) । धूत्वा विधूय (कुलियंति) कम्मणकृतं कुड्यं । लेपवत्सलेपं । अयमत्रार्थः । यथाकुड्यं गोमयादिलेपेन सलेपं जायद्यमानं लेपापगमात् कृशं भवति एवं अनशनादिभिर्देहं कर्शयेत् अपचितमांसशोणितं विदध्यात् । तदपचयाच्च कर्मणोऽ पचयोभवतीति भावः । तथा विविधाहिंसा विहिंसा न विहिंसा अविहिंसा तामेव प्रकर्षे ण व्रजेत् अहिंसाप्रधानोभवेदित्यर्थः । अनुगतोमोक्षं प्रत्यनुकूलो धर्मोऽनुधर्मः असावहिं सालक्षणः परीषहोपसर्गसहनलक्षणश्च धर्मोमुनिना सर्वज्ञेन प्रवेदितःकथितइति ॥ १४॥

नामनुपरोधेन विहरयुक्तविहारी भव । एतदेव दर्शयति । योगवानिति ॥ संयमयोगवान् गुप्तः समितिगुप्तइत्यर्थः । किमित्येवं। यतोऽणवः सूक्ष्माः प्राणाः प्राणिनोयेषु ते । तथा चैवंभूताः पंथानोऽनुपयुक्तैर्जीवानुपमर्दैन डुस्तराडुर्गमाइत्यनेन ईर्यासमितिरुपक्षिप्ता । अस्याश्चोऽपलक्षणार्थत्वात् अन्यास्वऽपि समितिषु सततोऽपयुक्तेन भवितव्यं । अपिच अनुशासनमेव यथागममेव सूत्राऽनुसारेण संयमं प्रक्रमेत् । एतच्च सर्वैरेव वीरैरर्हद्भिः सम्यक् प्रवेदितं प्रकर्षेणाऽख्यातमिति ॥ ११ ॥ अथ कएते वीराइत्याह । (विरयेत्यादि) हिंसाऽनृतादिपापेभ्योये विरताः । विशेषेण कर्म प्रेरयंतीति वीरा; । सम्यगारंभपरित्यागेनोत्थिताः समुत्थिताः ते एवंभूताश्च क्रोधकातरिकादिपीषणाः। तत्र क्रोधग्रहणान्मानोगृहीतः । कातरीका माया तद्ग्रहणाल्लोभोगृहीतः । आदिग्रहणात् शेषमोहनीयपरिग्रहः तत्पीषणास्तदपनेतारः तथा प्राणिनोजीवान् सूक्ष्मतरभेदभिन्नान् सर्वशोमनोवाक्कायकर्मभिर्नघ्नंति नव्यापदयंति । पापाच्च सर्वतः सावद्यानुष्ठानरूपाद्विरताः निवृत्तास्तश्चाऽभिनिवृत्ताःक्रोधाद्युपशमेनशांतीभूताः। यदि वाऽभिनिवृत्ताः मुक्ताइव डष्टव्याइति॥ १२

णवि ता अहमेव लुप्पए, लुप्पंति लोअंसि पाणिणो ॥ एवं स
हिएहिं पासए, अणिहेसे पुट्ठे अहियासए ॥ १३ ॥ धुणिया
कुलियं चलेववं, किसए देहमणासणा इह ॥ अविहिंसा मेव
पव्वए, अणुधम्मो मुणिणापवेदितो ॥ १४ ॥

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेछे. ए भावनाये परिसह अने उपसर्ग सहन करवा ते कहेछे. ण के० नथी अपि के० निश्चे ता के० तेप्रत्ये ए शीत, उष्ण, क्षुधातृषादिक परिसह तेणेकरी अहमेवलुप्पएके० नथी पीडाता शुं ? किंतु लुप्पंतिलोअ सिंपाणिणोके० लोकने विषे घणा तीर्यंच तथा मनुष्यादि प्राणीउ जे छे, ते शीततापादिक कष्टे करी पीडायछे, परंतु तेने सम्यक् विवेकने अभावे निर्जरा कांइ पण थती नथी. तेमाटे एवं के० ए प्रकारे सहिएहिं के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करीसहित छता जे शीततापादिक पूर्वे कह्या तेने पासए के० आलोचे तथा अणिहे के० स्नेहरहित अथवा क्रोधादिकेरहित छतो सेपुठेके० ते परिसहे पीडयो थको तेनी वेदना सम्यक् प्रकारे अहियासे. ॥१३॥ वली तेहिज कहेछे. धुणिया के०दूरकरी कुलियं चलेववं के० लेपसहित भींतने एटले शुं कह्युं के, जेम गोबरथकी लींपेली भींत ते अनुक्रमें तेनो लेप गये थके डुर्बल थाय. ए दृष्टांते करी मणासणाइहिंके०अनशनादिक तपे करीने किसएदेहके०देहने कृश करे तथा वली अविहिंसा मेवपव्वएके०एक अहिंसाज आदरे. अणुधम्मो मुणिणापवेदितो के०ए अहिंसादिलक्षण जे धर्मछे,ते जीवने अनुकूल एटले हितकारी सर्वज्ञेकह्योछे.॥१४॥

णत्ति) सावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य सप्राकृतशैल्या माहणेत्युच्यतइति ॥ १५ ॥ अनुकूलोप सर्गमाह । (उठियेत्यादि) अगारं गृहं तदस्य नास्तीत्यनागारस्तमेवं भूतं संयमोत्थाने नैपणां प्रत्युत्थितं प्रवृत्तं । श्राम्यतीतिश्रमणस्तं । तथाम्थानस्थितमुत्तरोत्तरविशिष्टसंयम स्थानाध्यासिनं तपस्विनं विशिष्टतपोनिष्टप्तदेहं तमेवंभूतमपि कदाचित् मह्ग पुत्रनप्ता दयोवृद्धाः पितृमातुलादयः उन्निष्कामयितुं प्रार्थयेयुर्याचेरंस्तएवमूचुर्नवता वयंप्रतिपाल्या न त्वामंतरेणाऽस्माकं एकः प्रतिपाल्यएवं नणंतस्ते जनाअपि शुष्येयुः श्रमं गच्छेयुर्न च तं साधुं विदितपरमार्थं लनेरन् नैवाऽऽत्मसात्कुर्युर्नैवाऽऽत्नवशगं विदध्युरिति ॥ १६ ॥

जइ कालुणियाणि कासिया, जइ रोयंति य पुत्तकारणे ॥ दवि
यं निक्कुसमुठियं णो लप्नंति ण संठवित्तए ॥ १७ ॥ जइ विय
कामेहिं लाविया, जइ णं जाहिण बंधिउं घरं ॥ जइ जीवितना
वकंखए, णो लप्नंति णं संठवित्तए ॥ १८ ॥

अर्थ—जइके० यद्यपि ते माता पिता पुत्र कलत्रादिक जेहे ते साधुने सन्मुख आवीने कालुणियाणिकासियाके० अनेक करुणा प्रलाप वचन बोले. तथा जइके० यदि रोयंतियपुत्तकारणेके० पुत्रने निमित्ते रुदन करे. तोपण ते दवियंके० मुक्ति गमन योग्य निक्कुके० साधु रागद्वेपरहित एवो समुठियंके० सम्यक् प्रकारे संयमने विषे उठ्यो हे, सावधान थयोहे, एवा साधुने णोलप्नंतिके० क्षोभावी न शके. णसंठवित्तएके० प्रव्रज्या मूकावी गृहस्थावासने विषे स्थापि नशके. ॥ १७ ॥ जइवियकामेहिंलावियाके० यद्यपि ते पोताना सज्जन ते संयम पालता साधुने कामनोगे करी लोनावे ए अनुकूल उपसर्ग अने जइणंजाहिणवंधिउंघरं के० अथवा जो तेने बांधीने घेर लेई जाय ए प्रतिकूल उपसर्ग हे. तो एवा अनुकूल अने प्रतिकूल उपसर्गे पीड्यो थको पण साधु जइ के० यदि जीवितंनावकंखए के० असंयमे जीवितव्य न वांठे एटले मरण कबुल करे. पण असंयमे जीवितव्य न वांठे तो तेने णोलप्नंति णसंठवित्तए के० तेना स्वजन ते पोताने वशकरी नशके अर्थात् गृहवासने विषे स्थापी नशके ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—जईति । यद्यपि ते मातापित्रादयः कारुणिकानि विलापवचनानि कुर्युः । तथा यदि रुदंति पुत्रकारणात् सुतनिमित्तं । एवं रुदंतोयदिनणंति निरकुं । किंनूतं इव्यं मुक्ति योग्यत्वात् इव्यनूतं संयमे समुत्थितमुद्यतं तथापि तं साधुं न लप्स्यंते न शक्नुवंति संयमा च्चालयितुं तथा न गृहस्थत्वे संस्थापयितुं ॥ १७ ॥ (जईति) यद्यपि ते पित्रादयस्तं साधुं कामैरिच्छामदनैर्लावयंति उपनिमंत्रयेयुः । तथा यदि णंवाक्यालंकारे बध्वा गृहं नयंति।

सउणी जह पंसुगुंडिया, विहुणिय धंसयई सियं रयं ॥ एवं दविन्उवहाणवं, कम्मं खवइ तवस्सिमाहणे ॥ १५ ॥ उठियमणगारमेसणं, समणं ठाण ठिअं तवस्सिणं॥ डहर बुड्ढाय पठए, अवि सुस्से ण य तं लनेज्जणो ॥१६

अर्थ–हवे कहेछे के जह के०जेम सउणी के० पक्षिणी ते पंसुगुडिया के०रजे करी खरडी छती विहुणिय के० अंग धुणावीने धंसयईसियंरयं के० ते बधी रज खंखेरीने दूर करे. एवं के० एरीते दविए के० मोक्ष जवाने योग्य जव्यजीव ते वहाणवं के० उप धान वंत छतो उपधान एटले तपविशेष तेनो करनार एवो तवस्सिमाहणे के० तपस्वी माहण महणो एवोजेनो उपदेश छे,तेने प्राकृत शैली माटे माहण कहिए; एटले तपस्वी ब्रह्मचर्यनो पालनार ते कम्मंखवइ के० कर्म खपावीने पोता थकी वेगलाकरे. ॥१५॥ हवे अनुकूल उपसर्ग कहेछे. अणगारं के० साधु ते संयमने विषे उठियं के० प्रवर्त्त्यों तथा एसणंके० एषणानो पालनार तथा समणंके० श्रमण अने तवस्सिणं के० तपस्वी ठाणठिअंके०स्थान स्थित उत्तरोत्तर संयमने स्थानके प्रवर्त्त्यों ते तवस्सिणंके० तपस्वी एवा साधुने कदाचित् डहरा के० बालक पुत्र पौत्रादिक तथा बुड्ढाके० पिता माता दिक तेणे पठएके० प्रार्थ्यों एटले प्रार्थना करी कहेके, शुं तमे अमारुं प्रतिपालन कर वानुं टालोछो. अमारुं पालण पोषण करनार तमारा विना बीजो कोइ नथी. इत्यादिक व चन कहेतां ते अवि के० अपि सुस्से के० श्रम पामे; परंतु तंजणा के० ते जन जे स्व जनादिकते परमार्थना जाण एवा साधुने णयलनेतुके०पोताने वश करी शके नहीं.॥१६॥

॥ दीपिका–सउणीति । शकुनिः पक्षिणी यथा पांसुना रेणुना गुंठिता व्याप्ता सती अं गं विधूय कंपयित्वा सितं बद्धं रजोध्वंसयत्यपनयति एवं इव्योजव्योमुक्तिगमनयोग्य उपधानवान् तपोयुक्तः क्षपयति तपस्वी । मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य सप्राकृतशैल्यामाहणः ॥१५॥ (उठियेति) डहराबालाः पुत्रादयोवृद्धाः पित्रादयः श्रमणं प्रार्थयेयुः । वयं त्वया पाल्यास्त्वंचास्माकं पाल्यइति । किंजूतं श्रमणं अनगारं गृहरहितं एषणां प्रति उत्थितमुद्य मवंतं स्थानस्थितं संयमस्थानस्थं तपस्विनं एवं जणंतस्ते जनाअपि शुष्येयुः श्रमं ग छेयुः न च तं साधुं लनेरन् नैवात्मवशं कुर्युरित्यर्थः ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंच (सउणीत्यादि) शकुनिका पक्षिणी यथा पांसुना रजसा ऽवगुंठितासती अंगं विधूय कंपयित्वा तद्रजः सितमवबद्धंसत् ध्वंसयत्यपनयति । एवं इव्योजव्यो मुक्तिगमनयोग्योमोक्षंप्रत्युपसामीप्येन दधातीति उपधानमनशनादिकं तपः तदस्याऽस्ती त्युपधानवान् सचैवंजूतः कर्मज्ञानावरणादिकं क्षपयत्यपनयति । तपस्वी साधुः (माह

के० पोषण करवुं ते महापुण्यनुं कामछे. ॥१९॥ हवे कोइएक कायर पुरुष ते मातापितादिकना वचनथी लोभाय तेने विपाक कहेछे. अन्नेके० अनेरा कोइएक अल्प सत्ववंत एवा चारित्रिया ते अन्नेहिंके० अन्य जे मातापितादिक तेने विषे मुछिया के० मोहे मूछर्याथका मोहंजंतिणराअसंवुडा के० असंवरी एटले संवरविना मोह पामे, एटले रूडाअनुष्ठाननुं करवुं मूकी आपे अने मोहनेविषे पोहोचे तथा ते असंयतिनरोने विसमके० गृहस्थे विसमेहिंगाहियाके० असंयम तेने विषे पोहोचाडया छता पुणो के० वली ते पावेहिंके० पापेकरी पगब्भियाके० धृष्ट छतां पापकर्म करतां लज्जा पामे नहीं. ॥२०॥

॥ दीपिका–(सेहंतीति) ते मात्रापित्रादयः सुताभार्या च । णमिति व्याक्यालंकारे । तं साधुं (ममाइणोत्ति) ममायं साधुरिति स्नेहालवः शिक्षयंति । किमित्याह । पश्य नोऽस्मान् दुःखितान् त्वं तु दर्शीकः सूक्ष्मदर्शी अतोऽस्मान् पोषय अन्यथा त्वया प्रव्रज्याग्रहणादिह लोकस्त्यक्तः । अस्मत्परिपालनत्यागात्परलोकमपि त्वं जहासि त्यजसि ॥ १९ ॥ (अन्नेति) अन्ये केचनाऽल्पसत्वाअन्यैर्मातापित्रादिनिर्मूर्छिताअसंवृतानरामोहं यांति सदनुष्ठाने मुह्यंति । तथा विषमैरसंयतैर्विषममसंयमं ग्राहिताअसंयमे प्रवर्तितास्ते पापैः कर्मभिः पुनः प्रगल्भिताधृष्टतांगताः ॥ २० ॥

टीका–च (सेहंतियणमित्यादि) ते कदाचिन्मातापित्रादयस्तमभिनवप्रव्रजितं (सेहंतित्ति) शिक्षयंति । णमिति वाक्यालंकारे । (ममाऽइणोत्ति) । ममाऽयमित्येवं स्नेहालवः । कथं शिक्षयंतीत्यतआह । पश्य नोऽस्मानत्यंतदुःखितांस्त्वदर्थं पोषकाभावाद्वा त्वं च यथावस्थितार्थपश्यक.सूक्ष्मदर्शी सश्रुतिकइत्यर्थः । अतोनोऽस्मान् पोषय प्रतिजागरणं कुरु अन्यथा प्रव्रज्याऽभ्युपगमेनेह लोकस्त्यक्तोभवताऽस्मत्प्रतिपालनपरित्यागेन च परलोकमपि त्वं त्यजसीति दुःखितनिजप्रतिपालनेन च पुण्यावाप्तिरेवेति । तथाहि । या गतिः क्लेशदग्धानां गृहेषु गृहमेधिनां । बिभ्रतां पुत्रदारांस्तु तां गतिं व्रज पुत्रकेति ॥१९॥ एवं तैरुपसर्गिताः केचन कातराः कदाचित् यद्यत्कुर्युरित्याह । (अन्नेइत्यादि) अन्य केचनाऽल्पसत्वाः अन्यैर्मातापित्रादिभिर्मूर्छिताअध्युपपन्नाः सम्यग्दर्शनादिव्यतिरेकेण सकलमपि शरीरादिकमन्यदित्यऽन्यग्रहणं । ते एवंभूताः असंवृतानराः संमोहं यांति सदनुष्ठाने मुह्यंति तथा संसारगमनैकहेतुभूतत्वात् विषमोऽसंयमस्तं विषमैरसंयतैरुन्मार्गप्रवृत्त्वेनाऽपायाभीरुभिः रागद्वेषैर्वा अनादिभवाभ्यस्ततया दुश्छेद्यत्वेन विषमैर्ग्राहिताअसंयमं प्रति वर्तिताः । ते चैवंभूता. पापैः कर्मभिः पुनरपि प्रवृत्ताः प्रगल्भिताः धृष्टतां गताः पापकं कर्म कुर्वंतोऽपि नलज्जंतइति ॥ २० ॥

एवमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गैपीडितोपि साधुर्यदि जीवितं नाभिकांक्षयेत् यदि जीवितं न वांछेत् असंयमजीवितं वा नाकांक्षेत् । तदा ते निजास्तं साधुं न लभंते न प्राप्नुवंति स्वव शेकर्तुं (नसंठविंत्तएत्ति) नापि गृहस्थत्वे संस्थापयितुमलं ॥ १७ ॥

॥ टीका-किंच (जईत्यादि) यद्यपि ते मातापितृपुत्रकलत्रादयस्तदंतिके समेत्य करुणा प्रधानानि विलापप्रायाणि वचांस्यऽनुष्ठानानि वा कुर्युः । तथाहि । णाहपियकंतसामिय, अइवल्लहदुल्लहोसि भवणंमि ॥ तुहविरहम्मियनिक्किवसुसुंसवंपिपडिहाइ ॥१॥ सेणीगा मोगोवी,गणोव्वतंज ब्बहोसिसणिहिंतो ॥ दिप्पइसिरिएसुपुरिसाकिंपुणनिययंघरदारं ॥ २ ॥ तथा यदि (रोयंतियत्ति) रुदंति पुत्रकारणं सुतनिमित्तं कुलवर्धनमेकं सुतमुत्पाद्य पुनरेवं क र्तुमर्हसीति । एवं रुदंतोयदि भणंति तं भिक्षुं रागद्वेषरहितत्वान्मुक्तियोग्यत्वाद्वा द्रव्यभूतं सम्यक्संयमोत्थानेनोत्थितं तथाऽपि साधुं न लप्स्यंते न शक्नुवंति प्रव्रज्यातोभ्रंशयितुं भावाच्चयावयितुं नाऽपि संस्थापयितुं गृहस्थभावेन द्रव्यालिंगाच्चयावयितुमिति ॥ १७ ॥ अपिच (जइविइत्यादि) यद्यपि ते निजास्तं साधुं संयमोत्थानेनोत्थितं कामैरिच्छामदन रूपैर्लोवयंति उपनिमंत्रयेयुरुपलोभयेयुरित्यर्थः । अनेनाऽनुकूलोऽपसर्गग्रहणं । तथा । यदि नयेयुर्बध्वा गृहं । णमिति वाक्यालंकारे। एवमनुकूलप्रतिकूलोपस र्गैरभिद्रुतोऽपि साधु र्यदि जीवितं नाभिकांक्षेत् यदि जीविताभिलाषी न भवेत् असंयमजीवितं वा नाऽभिनंदेत् ततस्ते निजास्तं साधुं (णो लब्भंतित्ति) न लभंते न प्राप्नुवंति आत्मसात्कर्तुं (णसंठ वित्तएति । नाऽपि गृहस्थभावेन संस्थापयितुमलमिति ॥ १७ ॥

सेहंतिय णं ममाइणो,माया पियाय सुयाय भारिया ॥ पोसाहि
ण पासउ तुमं, लोगपरं पि जहासि पोसणो ॥ १९ ॥ अन्ने अ
न्नेहिं मुच्छिया, मोहं जंति णरा असंवुडा ॥ विसमं विसमेहिं
गाहिया, ते पावेहिं पुणो पगब्भिया ॥ २० ॥

अर्थ-ते माता पितादिक ते चारित्रियाने अहीं णं इति वाक्यालंकारे, सेहंतिके० शी खवे ते स्वजन केवा छे? तोके, ममाइणोके० अत्यंत स्नेहकरी ते मायाके० माता, पिया यके० पिता, सुयायके० सुत एटले छोकरा अने भारियाके० भार्या एवा सज्जन शुं शी खवे तेकहेछे. के अहो पुत्र? अमे ताहरे वियोगे अत्यंत दुखिआछैए, एवा अमने पासउके० देखीने तुमंके० तुं अमारु पोसाहिणके० पोषण कर;कारणके तुं अत्यंत सूक्ष्मदृष्टीवालोछो ते माटे तारा हृदयमां सारीपेठे विचारीने अमारुं पोषण कर,अन्यथातो लोगंके०इहलोक तथा परंके० परलोक थकी पण जहाहिके० भ्रष्ट थईश. तेमाटे दुःखी एवा मावित्रनुं पोसणो

रहितोवा सन्नीक्ष्य तद्विपाकं पर्यालोचय । पंडितः सद्विवेकयुक्तः पापात् कर्मणोसद नुष्ठानरूपात् विरतोनिवृत्तः क्रोधादिपरित्यागाच्छांतीजूतइत्यर्थः । तथा प्रणताः प्रव्हीनू तावीराः कर्मविदारणसमर्थामहावीथिं महामार्गं । तमेव विशिनष्टि । सिद्धिपथं ज्ञा नादिमोक्षमार्गं तथा मोक्षंप्रति नेतारं प्रापकं ध्रुवमव्यनिचारिणमित्येतदवगम्य सएव मार्गोऽनुष्ठेयोवा सदनुष्ठानप्रगल्नैर्नाव्यमिति ॥ २१ ॥ पुनरप्युपदेशदानपूर्वकमुपसंहर न्नाह । (वेयालियमग्गइत्यादि) कर्मणां विदारणमार्गमागतोजूत्वा तं तथाजूतं मनो वाक्कायसंवृतः पुनस्त्यक्त्वा परित्यक्त्वा वित्तं इव्यं तथा ज्ञातींश्च स्वजनांश्च तथा साव द्यारंनं च सुष्ठु संवृतइंद्रियैः संयमानुष्ठानं चरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इति वैतालीयद्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

अथ वेतालीयऽध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकप्रारंनः ॥ प्रथम उद्देशामांबाह्य इव्य, स्वज न तथा आरंननो परित्याग कह्यो, हवे बीजे उद्देशे माननो परित्याग कहेडे.

तय संच जहाइ सेरयं, इति संखाय मुणीण मऊई॥गोयन्नतरेण माहणे, अह सेयकरी अनेसि इंखणी ॥१॥ जे परन्नवई परं ज णं, संसारे परिवत्तई महं॥अड इंखणिया उ पाविया, इति संखा य मुणीण मऊई॥ ७ ॥

अर्थ–तयसंच के० ते जहा के० जेम सर्प्प पोतानी त्वचा जे कांचली ते परिहरवा योग्य जाणीने बांमे, सेरयं के० तेम ए साधुजे बे, ते रजनी पेरे अष्ट प्रकारनां कर्मने बांमे एतावता कषाय नकरे. केमके कषायने अनावे कर्म पोतानी मेले बंमाशे. इति संखायमुणी के० एवीरीते जाणीने चारित्रिउ णमऊई के० मद एटले अहंकार करे नहीं; ते मदनुं कारण देखाडेबे. गोके० काश्यपादिक गोत्रकरी अथवा यन्नतरेण के० अनेरा कुलरूपादिक मद तेने पामीने उत्कर्ष मान नकरे एवो माहणे के० साधु ते जेम पोता थकी मद नकरे तेम अनेसिं के० अनेरानी पण अह्लसेयकरी के० अश्रेयकारणी एवी जे इंखणी के० निंदा तेपण नकरे. ॥१॥ हवे परनिंदाना दोष कहे बे. जे के० जे कोइ अविवेकी पुरुष परंजणं के० अनेरा लोकने परन्नवई के० परान्नव करे एटले अवहेलना करे ते पुरुष संसारेपरिवत्तईमहं के० संसारमांहे अत्यंत परिभ्रमण करे. अड के० अथ जे कारणे इंखणिया के० परनिंदाते पावया के० एवी पापणीबेके जे स्वस्थानक थकी अधोस्थानके जीवने पाडे इतिसंखाय के० एवुं जाणी ने एटले परनिंदाने दोषरूप जाणीने मुणी के० मुनिश्वर जे बे, ते जाति कुल श्रुत त

तम्हा दवि इक्क पंम्हिए, पावाउ विरतेऽभिणिवुम्हे॥ पणए वीरे म
हाविहिं, सिद्धिपहं णेआउयं धुवं ॥२१॥ वेयालियमग्गमागउ
मणवयसाकायएणसंवुम्हो॥ विच्चा वित्तं च णायउ आरंभं च सुसंवु
म्हे चरेज्जासित्तिबेमि ॥२२॥ इति वैतालीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः

अर्थ–जो तेने ए विपाक लागेतो शुं करवुं ? ते कहेछे. तम्हा के० ते कारणे दवि के० मुक्तिगमन योग्य भव्यजीव रागद्वेषरहित पंम्हिए के० पंमित विवेकयुक्त छतो संसारवास सेवतां महाक्लेशछे एवुं जाणी. इक्क के० तेना विपाकने चिंतवे एवो तो के० ते पावा के० पापकर्म थकी विरते के० निवर्त्ते अभिणिवुम्हे के० क्रोधादिकने परिहारे करी शीतल थाय तथा पणतके० महाविनयवंत अने वीरेके०कर्म विदारवाने सामर्थ्यवान महाविहिं के० जे महांत एटले जैनमार्गे प्रवर्त्ते ते मार्ग केवो छे? तो के, सिद्धिपहं के० सिद्धिपंथ जे मोक्षनो मार्ग तथा णेआउयं के० न्यायमार्ग तथा धुवं के० शाश्वतो एवो मार्ग जाणीने आदरवो ॥ २१ ॥ वली तेहज उपदेश उपसंहार करतो कहेछे. वेयालिय के० कर्मनो विदारनार एवो जे मग्गं के० मार्ग तेनेविषे आगउ के० आगत एटले आव्यो तथा वली मणवयसाकाएण संवुम्हो के० मन, वचन अने कायायेकरी संवरनो पालनार विच्चाके० छांमीने; शुं छामीने? तोके, वित्तंचणायउके० धन, ज्ञाती, स्वजन तथा आरंभं के० आरंभ एटलां वाना छांडीने सु के० सुष्टु एटले भली परे इंडीउने संवुम्हे के० संवरतो छतो चरे के० संयमने पाले तिबेमि के० एरीते पंचम गणधर श्रीसुधर्मास्वामी जंबुप्रत्ये कहेछे के, जेम श्रीमहावीरदेव पासेथी सांभल्युं तेम तुजने कहुंछुं. ॥ २२ ॥ इति श्रीवैतालियाऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशः समाप्तः

॥ दीपिका–तम्हादिति । तस्मात् द्रव्यभूतोमुक्तियोग्यः पंडितः सन् ईक्षस्व विचारय । पापाद्विरतोऽभिनिर्वृतः क्रोधादित्यागात् शांतीभूतः तथा वीराः कर्मविदारणसमर्थामहावीथिं महामार्गं प्रणताः प्राप्तानान्ये । महावीथिंकिंभूतां सिद्धिप्रदं ज्ञानादिमार्गं प्रतिनेतारं प्रापकं ध्रुवमव्यभिचारं इतिज्ञात्वा संयमप्रागल्भ्यैर्भाव्यमिति ॥ २१ ॥ वैतालिएत्ति । कर्मणां वैदारिकं विदारणसमर्थं मार्गमागतोमनोवाक्कायसंवृतस्त्यक्ता वित्तं धनं ज्ञातीन् स्वजनान् सावद्यारंभं च सुसंवृतइंद्रियैः संयमे चरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इति वैताजीयाख्यद्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ टीका–यतएवं ततः किं कर्तव्यमित्याह । (तम्हाइत्यादि) यतोमातापित्रादिमूर्छिताः पापेषु कर्मसु प्रगल्भाभवंति तस्माद्द्रव्यभूतोभव्योमुक्तिगमनयोग्योरागद्वेष

ति । मुणीनमज्जइइत्यादिकस्य सूत्रावयवस्य सूत्रस्पर्शगाथाद्वयेन निर्युक्तिकृदाह । तवसंजमणाणेसु, विजईमाणोवज्जिउ महेसीहिं ॥ अत्रसमुक्करिसत्थंकिंपुणहीला उअन्नेसिं ॥ २ ॥ जइतावनिज्जरमउ, पडिसिद्धोअठमाणमहणेहिं । अविसेसमयठाणा, परिहरयव्वापयत्तेण ॥ ३ ॥ (तवसंजमइत्यादि) । तपःसंयमज्ञानेष्वऽप्यात्मसमुत्कर्पणार्थे मुत्सेकार्थे यः प्रवृत्तोमानोयद्यसावपि तावद्विवर्जितस्त्यक्तोमहर्पिभिर्महामुनिभिः किं पुनर्निंदाऽन्येपां न त्याज्येति । यदि तावन्निर्जरामदोपि मोक्षैकगमनहेतुः प्रतिषिद्धोऽष्टमानमथनैरर्हद्भिरवशेषाणि तु मदस्थानानि जात्यादीनि प्रयत्नेन सुतरां परिहर्त्तव्यानीति गाथाद्वयार्थः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ १ ॥ साप्रतं परनिंदादोषमधिकृत्याह । (जोपरिभवइत्यादि) । यः कश्चिदविवेकी परिभवत्यवज्ञयति । परं जनं अन्यं लोकमात्मव्यतिरिक्तं । सतत्कृतेन कर्मणा संसारे चतुर्गतिलक्षणे भवोदधावरघट्टघटीन्यायेन परिवर्त्तते भ्रमति महदत्यर्थं महांतं वा कालं ।क्वचिच्चिरमितिपाठः (अइत्ति) अथशब्दोनिपातः । निपातानामनेकार्थत्वात् अतइत्यस्याऽर्थे वर्तते । यतः परपरिभवादात्यंतिकः संसारः अतः (इंखिणिया)परनिंदा । तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् पापिकैव दोपवत्येव । अथवा स्वस्थानादधमस्थाने पातिका । तत्रेह जन्मनि । सुवरोदृष्टांतः । परलोकेऽपि पुरोहितस्याऽपि श्वादिषूत्पत्तिरिति इत्येवं संख्याय परनिंदां दोषवतीं ज्ञात्वा मुनिर्जात्यादिभिर्यथाऽहं विशिष्टकुलोद्भवः श्रुतवान् तपस्वी भवांस्तु मत्तोहीनइति न माद्यति ॥ २ ॥

जे यावि अणायगे सिया,जेविय पेसग पेसए सिया ॥ जे मोणप
यं उवठिए, णो लज्जे समयं सयायरे ॥३॥ समअन्नयरम्मि सं
जमे, संसुद्धे समणे परिव्वए ॥ जे आवकहा समाहिए, दविए
कालमकासि पंडिए ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे मदने अभावे जेकांइ कर्त्तव्यछे ते देखाडेछे. जेयाविके० जेकोइ अणायगेके० अनायक एटले नायक रहित किंतु स्वमेव नायक चक्रवर्त्यादिक सियाके० होय तथा जेवियके० जेकोइ अनेरो पेसगके० कर्म करनो पेसएके० कर्मकर होय परंतु जे के० जे मोणपयंके० मौन पद एवुंजे चारित्र तेने विषे उवठिएके० उपस्थित एटले सावधान थयो तेपण णोलज्जेके० लज्जाने अण करतो थको एतावता अभिमान छांमीने सर्वक्रिया परस्पर वंदन प्रतिवंदनादिक करे. जो चक्रवर्त्ति चारित्र आदरे तो पण पूर्व दिक्षित पोताना कर्मकरना कर्म करने वांदे परंतु गर्व नकरे; लज्जा पामे नहीं. एरीते सयाके० सदाय समयंके० समभावने आयरेके० आदरे. संयमने विषे सावधान थाय ॥ ३ ॥ हवे क्यां रह्यो थको लज्जा तथा मद नकरे? ते देखाडेछे. समके० सामायकादिक अन्नयरम्मिसंजमे

पादिकने विषे एमकाई केο मद न करे, एटले हुं उत्तम बुं. ए अमुक महारा थकी घणो हीन छे एवो पोतानो उत्कर्ष नकरे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयआरन्यते पूर्वोद्देशके श्रीरुषनस्वामिना स्वपुत्राणामुपदेशः कथितः इहापि सएवोच्यतइति तत्रेदं प्रथमसूत्रं (तयेत्ति)यथा सर्पः त्वचं स्वां जहाति एवमसौ साधुः रजःकर्म त्यजति एवं कषायान्नावे कर्मान्नावइति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति मदं न याति । गोत्रेण काश्यपादिना । अन्यतरग्रहणात् शेषमदग्रहणं । माहणेत्ति। साधुः । जेविउत्तिपाठे यो विद्वान् जातिकुलादिन्निर्न माद्यतीति तथा । अश्रेयस्करी इंखिणी निंदा साप्यन्येषां न कार्येति ॥१॥ (जोपरिनवइत्ति) यः परिनवति अवज्ञति परं जनं ससंसारे परिवर्तते च्रमति महदत्यर्थं । चिरं वा पाठः । अडुत्ति । अथशब्दोऽतइत्यर्थे। अतः इंखिणिआ परनिंदा । तुर्निश्चये । पापिकैव डुष्टैव । इहलोके निंदायां सुघरोदृष्टांतः । यथा एकोवानरःकश्चिद्वृक्षे वर्षासु ऊंऊावातैः पीडयमानः सुगृहीकया पक्षिण्या नणितः । यथा। वानरगापुरिसोसी,निरत्थयंवहसिबाहुदंडाइं । जोपायवस्ससिहरे,नकरोसिकुडिंपडालिंवा ॥१॥ सचैवं पक्षिण्या न्नाषितोपि तूर्ष्णीमास्ते तावत्पक्षिणी वानरं वारं वारं तद्वक्ति रुष्टेन वानरेण तं वृक्षमारुह्य तद्गृहं नग्नं सा दूरं नष्टा । वानरोवक्ति । यथा। नवसिममंमहतरि आनवसिममंसोहिआवनिध्धावा । सुघरेअत्थसुविघरा,जावध्धसिलोगतत्तासु ॥१॥ सुखमिदानीं तिष्ठेति सुगृहा डुःखिनी जाता परलोकपुरोहितस्यापि श्वादियोनिषूत्पत्तिरिति इति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति मदं न कुर्यात् यतोमदादेव परनिंदा स्यादिति ॥ २ ॥

॥ टीका—प्रथमानंतरं द्वितीयः समारन्यते । अस्य चाऽयमन्निसंबंधः । इहानंतरोद्देशके नगवता स्वपुत्राणां धर्मदेशनान्निहिता । तदिहापि सैवाऽध्ययनार्थाधिकारत्वात् अन्निधीयते । सूत्रस्य सूत्रेण सह संबंधोऽयं । अनंतरोक्तसूत्रे बाह्यद्रव्यस्वजनारंनपरित्यागोऽन्निहितस्तदिहाऽप्यांतरमानपरित्यागउद्देशार्थाधिकारः सूचितोऽन्निधीयते । तदनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्योद्देशकस्यादिसूत्रं । (तयसंचयइत्यादि) । यथाह्युरगः स्वां त्वचं अवश्यं परित्यागार्हत्वात् जहाति परित्यजति । एवमसावपि साधुः रजइव रजोऽष्टप्रकारं कर्म तद् कषायित्वेन परित्यजतीति । एवं कषायान्नावो हि कर्मान्नावस्य कारणमिति संख्याय ज्ञात्वा मुनिः कालत्रयवेदी न माद्यति मदं न याति । मदकारणं दर्शयति । गोत्रेण काश्यपादिना । अन्यतरग्रहणात् शेषाणि मदस्थानानि गृह्यंतइति (माहणत्ति) साधुः । पाठांतरं वा (जेविउत्ति) विद्वान् विवेकी सजातिकुललानादिन्निर्न माद्यतीति । न केवलं स्वतोमदोन विधेयोजुगुप्साऽप्यन्येषां न विधेयेति दर्शयति । अथाऽनंतरं । असौ अश्रेयस्करी पापकारिणी (इंखिणित्ति) निंदा अन्येषाऽमतोन कार्ये

तोमुक्तिगमनयोग्यतया वा नव्यः । सएवंनूतः कालमकार्षीत् पंडितः सद्विवेकासद्विवेक कलितः । एतडुक्तं नवति । देवदत्तइति कथा मृतस्याऽपि नवत्यतोयावन्मृत्युकालं ता वल्लज्जामदपरित्यागोपेतेन संयमानुष्ठाने प्रवर्तितव्यमिति स्यात् ॥ ४ ॥

दूरं अणुपस्सिया मुणी, तीतं धम्ममणागयं तहा ॥ पुठे परुसेहिं माहणे, अविहस्सू समयंमि रीयइ ॥ पाठांतरे समयाहिया सये ति ॥ ५ ॥ पस्स समत्ते सया जए, समताधम्ममुदाहरे मुणी॥ सुहमे उ सया अलूसए, णो कुझे णो माणि माहणे ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे शानुं अवलंबन करीने संयम पाले ते कहेले. दूरंके० जे कारणे दूर वर्त्त माटे ते दूर शब्दे मोक्ष कहियें; तेने अणुपस्सियाके०आलोचीने एटले सम्यक्धर्म विना मोक्ष न थाय एवुं विमाशीने ते मुणीके० चारित्रिउ अतीतंधम्मं के० अतीत धर्म एट ले पाछले काले जीवनुं अनेक प्रकारे उंच नीच गतिने विषे जे चमण कर्युं तेरूप धर्म तहा के० तथा अणागयं के० अनागत एटले आगमिक काले जीवनी गतिरूपधर्मनुं स्वरूप जाणीने लज्जा तथा मद करे नहीं. तथा परुसेहिंके० कठण वचन अथवा दंम कशादिक तेणे पुठे के० फरश्यो थको माहणे के० ब्रह्मचर्यनो पालनार चारित्रिउ ते अपि के० किंबहुना हस्सू के० सर्वथापि मार्यो थको पण स्कंदकमुनिना शिष्यनी पेरे समयंमि के० सिद्धांतना मार्गेज रीयति के० चाले एटले तेना उपर कषाय नकरे अ थवा पाठांतरे (समयाहियासएति) के० समताये करी सहित थको विचरे ॥५॥ वली उपदेशांतर कहेले. पस्ससमत्ते के० ते प्रज्ञाये करी पूर्ण नलनो जाण सया के० सर्व काल कषायादिकने जए के० जीपे. अथवा प्रश्न पूछ्या थकां प्रत्युत्तर देवाने स मर्थहोय. समता के० समनावे धम्मं के० अहिंसादि लक्षण जे धर्म ते उदाहरे के० लोकप्रत्ये कहेले एवो मुणी के० चारित्रिउ सुहमेउ के० सूक्ष्म संयमने विषे सयाअ लूसए के० सर्व काल अविराधक तथा ते चारित्रियाने कोइए हण्यो थको पण णोकु झे के० क्रोध नकरे अने कोइए पूज्यो थको णोमाणि के० मान नकरे एवो माह णे के० साधु जाणवो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–(दूरमिति) दूरं मोक्षमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनिरतीतमनागतं च धर्मं जी वानां स्वनावं विचार्य लज्जामानौ न कार्यौ । तथा स्पृष्टः परुपैः कठिनैर्दंडादिभिर्वचनैर्वा माहनोमुनिः (अविहसूत्ति) अपि हन्यमानः स्कंदकशिष्यवत्समये संयमे रीयते गड ति । पाठांतरे वा (समयाहियासये) । समतयासहते इत्यर्थः ॥५॥ (पस्ससमत्तेत्ति) ।

के० अनेरा संयमनें विषे एटले सामायक छेदोपस्थापनीयादिक संयमने विषे प्रवर्त्ततो थको संके० सम्यक्प्रकारे सुद्धेके० शुद्ध समणेके० श्रमण जे तपस्वीते लज्जा तथा मदने परित्यागे समचित्त थको परिव्वए के० प्रव्रज्या पाले. ते केटलो काल सुधी पाले? ते क हेछे. जेआवके० ज्यांलगे तेनी कहाके० कथा रहे त्यांलगे पाले एटले जावजीव लगे म रण सीम समाहिएके० समाधिवंत अथवा आत्मज्ञानसहित अथवा रुडा अध्यवसा ये करी युक्त दविएके० ते मुक्ति गमन योग्य अथवा रागद्वेषरहित एवो थको जे काल मकासिके० काल करे ते पंमिएके० पंमित कहेवाय ॥ ४ ॥.

॥ दीपिका—जेयावित्ति । यश्चापि अनायकोनायकरहितः स्वयं प्रभुश्चक्रवर्त्यादिः स्यात् यश्चापि प्रेष्यस्यापि प्रेष्यः कर्मकरस्यापि कर्मकरः स्यात् एवंभूतः सन् मुनेरिदं मौनं पदं स्था नं मौनपदं संयममुपस्थितआश्रितोनोलज्जते । कोर्थः । चक्रवर्त्यपि प्रेष्यं साधुं वंदमानोन लज्जते प्रेष्योपि प्रभुः साधुमितरं वा उत्कर्षरहितोनमन्न लज्जते । एवमनेन प्रकारेण सम तां चरेत् साधुः ॥ ३ ॥ (समेति) समोमध्यस्थः संयमस्थानानां षट्स्थानपतितत्वादन्यत रस्मिन् संयमस्थाने सामायिकछेदोपस्थापनीयादौ वा संयमे संशुद्धे निर्मले संशुद्धो वा मदरहितः श्रमणः परिव्रजेत् उद्यमवान् भवेत् । कियंतं कालं यावत्कथा यावन्नाम धत्ते तावत् । किंभूतः साधुः समाहितः शुभध्यानः पंडितोयावत्कालमकार्षीत् मृत्युकालं याव दित्यर्थः । नामवार्तातु मृतस्यापि भवेत् ततउक्तं यावत्कालमकार्षीदिति ॥ ४ ॥

॥ टीका—मदाभावे च यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह (जेयावीत्यादि) यश्चाऽपि कश्चिदास्तां तावत् । अन्योन विद्यते नायकोऽस्येत्यनायकः स्वयं प्रभुश्चक्रवर्त्यादिः स्यात् भवेत् यश्चा ऽपि प्रेष्यस्याऽपि प्रेष्यः तस्यैव राज्ञः कर्मकरस्यापि कर्मकरोयएवंभूतोमौनींद्रं पद्यते गम्यते मोक्षोयेन तत्पदं संयमस्तं उपसामीप्येन स्थितः उपस्थितः समाश्रितः सोऽप्य लज्जमानउत्कर्षमकुर्वन् वा सर्वाः क्रियाः परस्परतोवंदनप्रतिवंदनादिकाविधत्ते । इद मुक्तं भवति ।चक्रवर्तिनाऽपिमौनींद्पदमुपस्थितेन पूर्वमात्मप्रेष्यमपि वंदमानेन लज्जा न विधेया इतरेण चोत्कर्षइत्येवं समतां समभावं सदा भिक्षुश्चरेत् संयमाद्युक्तोभवेदिति ॥ ३ ॥ कपुनर्व्यवस्थितेन लज्जामदौ न विधेयाविति दर्शयितुमाह (समेइत्यादि) (समेत्ति) समभावोपेतः सामायिकादौ संयमे संयमस्थाने वा षट्स्थानपतितत्वात् संयमस्थाना नामन्यतरस्मिन् संयमस्थाने छेदोपस्थानीयादौ वा । तदेव विशिनष्टि । सम्यक् शुद्धे स म्यक् शुद्धोवा श्रमणस्तपस्वी लज्जामदपरित्यागेन समानमनावा परिव्रजेत् संयमोद्युक्तोभ वेत् स्यात्। कियंतं कालं यावत् कथा देवदत्तोयज्ञदत्तइति कथां यावत् ।सम्यगाहितआत्मा ज्ञानादौ येन ससमाहितः समाधिना वा शोभनाध्यवसायेन युक्तोऽद्व्यभूतोरागद्वेषादिरहि

२६

छांदसत्वात् वर्त्तमानेभूतनिर्देशइति ॥ ७ ॥ सबहुजननमने धर्मे व्यवस्थितोयादृक् धर्मं प्रकाशयति तद्दर्शयितुमाह । (बहवेइत्यादि) यदिवोपदेशांतरमेवाऽधिकृत्याह । (बहवेइत्यादि) बहवोऽनंताः प्राणादशविधप्राणभ्नोक्तृत्वात्तद्भेदोपचारात् प्राणिनः । पृथगिति पृथिव्यादिभेदेन सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तनरकगत्यादिभेदेन वा संसारमाश्रितास्तेषां च पृथगाश्रितानामपि प्रत्येकं समतां दुःखद्वेषित्वं सुखप्रियत्वं च समीक्ष्य दृष्ट्वा। यदि वा समतां माध्यस्थ्यमुपेक्ष्य योमौनींद्रपदमुपस्थितः संयममाश्रितः ससाधुस्तत्राऽनेकभेदभिन्नप्राणिगणे दुःखद्वेषिसुखाभिलाषिणि सति तदुपघाते कर्तव्ये विरतिमकार्षीत् कुर्याद्वेति पापाद्भीनः पापानुष्ठानात् दवीयान् पंमितइति ॥ ८ ॥

धम्मस्स य पारए मुणी, आरंभस्स य अंतए ठिए ॥ सोयंति य णं ममाइणो, णो लप्भंति णियं परिग्गहं ॥ ए॥ इह लोगदुहावहं विऊ, पर लोगेय दुहं दुहावहं ॥ विद्धंसण धम्ममेव तं इति विज्जं कोगारमावसे॥१०॥

अर्थ—वली तेहिज कहेछे. धम्मस्सयपारएमुणी के० धर्म शब्दे श्रुत चारित्ररूप तेनो पारंगामी एटले संवेगी अने गीतार्थ एवो मुनीश्वर तथा आरंभस्सय के० आरंभ जे सावद्यानुष्ठान तेनाथी अंतएठिए के० अत्यंत दूर रह्योछे अर्थात् सावद्यानुष्ठानने अण करतो थको प्रवर्त्ते ते मुनि कहेवाय. अने सोयंतियणं के० ए पूर्वे कह्युं एवो जे धर्म तेना अण करनार जे होय ते मरण आवे थके शोच पामे. परंतु ते केवा जाणवा? तोके, ममाइणो के० ममत्वना करनार णोलप्भंतिनियं परिग्गहं के० ते पोतानुं जे नष्ट थयेलुं सुवर्णादिक परिग्रह अथवा स्वजन नाशीगयेलो अथवा मरण पाम्यो एवो स्वजन तेने न पामे. पण ते शोच करता अकाज मरीने दुर्गतिये जाय. ॥ ए ॥ धन धान्य अने स्वजनादिक जे परिग्रह छे ते इहलोगदुहावहंविऊ के० आ लोकने विषे दुःखनुं कारण जाणी. यतः । अर्थानामर्जने दुःखमार्जितानां च रक्षणे ॥ आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान् दुःखभाजनान् ॥ १ ॥ अने परलोगेयदुहं दुहावहंके० परलोके पण दुःख तथा अनेरां दुःखनो करनार जाणीने तथा विद्धंसणधम्ममेवतं के० तेथी परिग्रह जे छे, विद्धंसण धर्मिछे एटले अशाश्वत अनित्यछे. इतिविज्जं के० एवुं जाणतो थको कोगारमावसे के० कोण सकर्ण मनुष्य गृहवासनने विषे वसे. यतः । दाराः परिभवकाराबंधुजना बंधनं विषं विषयाः ॥ कोयं जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहदाशा ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ १० ॥

॥ दीपिका—(धम्मस्सेति) धर्मस्य श्रुतचारित्ररूपस्य पारगोमुनिः आरंभस्य च अं

प्रज्ञासमाप्तः पटुप्रज्ञः। अथवा प्रश्नसमर्थः प्रश्ने कृते तडुत्तरदानसमर्थः सदाजयेत्कषाया दिकं तथा समतया धर्ममुदाहरेत् कथयेन्मुनिः। सूक्ष्मं स्तोकमपि यत्संयमकृत्यं तस्याऽ ल्लूषकोऽविराधकोनो क्रुध्येत् हन्यमानं पूज्यमानोमानी नोपि माहनोयतिः ॥ ६ ॥

॥ टीका–किमालंब्यैतद्विधेयमित्युच्यते। (दूरमित्यादि) दूरवर्त्तित्वात् दूरोमोक्षस्त मनु पश्चात् तद्दृष्ट्वा। यदि वा दूरमिति दीर्घकालमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनिः कालत्रयवेत्ता दूरमेव दर्शयति अतीतं धर्मं स्वनावं जीवानामुच्चावचगतिस्थानलक्षणं तथा अनागतं च धर्मं स्वनावं पर्यालोच्य लज्जामदौ न विधेयौ। तथा स्पृष्टः परुषैर्दंडकशादिनिर्वाग्निर्वा (मा हणेत्ति) मुनिः (अविहम्मूत्ति) अपि मार्यमाणः स्कंदकशिष्यगणवत्समये संयमे रीयते त डुक्तमार्गेण गच्छतीत्यर्थः। पाठांतरं वा (समयाहियासयत्ति)समतयासहतंइति ॥ ५॥ पुन रप्युपदेशांतरमाह (पन्नसमत्तइत्यादि) प्रज्ञायां समाप्तःप्रज्ञासमाप्तः पटुप्रज्ञः। पाठांतरं वा (पन्नसमत्थे) प्रश्नविषये प्रत्युत्तरदानसमर्थः सदा सर्वकालं जयेज्जेयं कषायादिकमिति शेषः। तथा समया समता तया धर्ममहिंसादिलक्षणमुदाहरेत् कथयेत् मुनिर्यतिः सूक्ष्मे संयमे यत्कर्तव्यं तस्याल्लूषकोऽविराधकस्तथा न हन्यमानोवा पूज्यमानोवा क्रुध्ये न्नाऽपि मानी गर्वितः स्यात् माहणो यतिरिति ॥ ६ ॥

बहुजणणमणंमि संवुमो, सव्वठेहिं णरे अणिस्सिए ॥ हरएव
सया अणाविले, धम्मं पाडुरकासिकासवं ॥७॥ बहवे पाणा पुढो
सिया पत्तेयं समयउवेहिया ॥ जे मोणपदं उवठिते, विरतिं
तब अकासि पंमिए ॥ ८ ॥

अर्थ–बहुजण के० घणालोकने णमणंमि के० नमाडे एटले जेने सर्व लोक पोत पोतानो करीने प्रसंशे तेमाटे जेबहुजणनमन तेने धर्म कहिए ते धर्मने विषे संवुमोके० संवृत एटले समाधिवंत एवो बतो णरेके० नर एटले मनुष्य ते सव्वठेहिं के० सर्व अ र्थ एटले बाह्य अने अभ्यंतर धन धान्य पुत्र कलत्रादिके करी,अणिस्सिएके०अनिश्रित ए टले अप्रतिबंध बतो धर्म प्रकाशे. हरएवके०ड्रहनी पेरे जेम ड्रहजेबे, ते सयाके० सर्व काल स्वब निर्मल पाणीयेंज नर्यो थको रहेबे. अणाविले के० अनेक जलचर जीव ना फोलवा थकी पण डोहोलुं नथाय. तेम चारित्रिउ रागद्वेषरहित बतो धम्मंपाडु रकासि के० धर्म प्रगट करे. तेधर्म कासवं के० श्रीतीर्थंकरसंबंधी एटले श्रीवर्द्धमान स्वा मिनिर्देश जाणवो. ॥ ७ ॥ हवे जेवो धर्म प्रकाशे तेवो कहेबे. अथवा उपदेशांतरे कहेबे. बहवेपाणा के० घणाप्राणी एटले अनंताजीव ते पुढोसियाके० पृथक्पृथक् जुदा जुदा

महयं पलिगोव जाणिया जाविय वंदणपूयणाइहं ॥ सुहुमे सल्ले दुरुद्धरे, विउ मंता पयहिज्ज संथवं ॥११॥ एगेचरे ठाणमासणे सयणे एगे समाहिए सिया ॥ भिक्खू उवहाणवीरिए वइगुत्ते अज्झत्तसंवुडो ॥ १२ ॥

अर्थ—वली उपदेश कहेछे. महयं के० महा मोटा जीवने कतरतां दुर्लन एवो शुं? तो के पलिगोव के० कर्दम ते अंतरंग कर्दम जाणवो जाविय वंदणपूयणाइहं के० तेअहीं साधुने राजादिकनी करेली वंदना तथा पूजना एटले वस्त्रादिकनी प्रतिलान ना तेणे करी उपजी जे पूजा तेने कर्मोपशमनुं कारण जाणिया के० जाणीने उ त्कर्ष न करवो, जे जीवने गर्व उत्पन्न थाय तेहिज कर्दम सरखो जाणवो केमके सुहु मेसल्लेदुरुद्धरेके० ए गर्वरूप जे सल्यछे ते सूक्ष्मछे माटे दुरुद्धर एटले एने उद्धरता घणो दुर्लनछे तेमाटे विउमंता के० विद्वांस विवेकी पुरुषते पयहिज्ज के० छांमे संथवं के० संस्तव परिचयादिकनो त्याग करे ॥११॥ वली तेहिज कहेछे एगेचरे के० चारित्रिउ एका की द्रव्य थकी एकल्लविहारी अने नाव थकी रागद्वेषरहित एवो उतो विचरे तथा एक लो उतो ठाण के० काउस्सग करे तथा आसणेके० आसनने विषे पण रागद्वेषरहित थको बेशे एरीते सयणेके० शयनजे पाटप्रमुख त्यां पण एकाकीरहे ते केवो थको रहे? तोके समाहिएके० समाहित एटले जे जे क्रियामां प्रवर्ते त्यांत्यां सियाके० रागद्वेष टाल तो थको प्रवर्त्तमान होय एवो निरकू के० आहारनो लेनार तथा उवहाण के० तपने विषे वीरिएके० बल वीर्यनो फोरवनार तथा वइगुत्तेअके० वचनगुप्ति एटले विमाशीने बोलनार तथा अज्झत्त के० मन तेनेविषे संवुमे के० संवृत एटले मनने स्थिरतानो कर नार एवो साधु होय. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—(महयमिति) महांतं परिगोपं नावपंकोऽनिष्वंगस्तं विपाकतोज्ञात्वा यो पि च प्रव्रजितस्य सतोवंदना पूजना इहाऽस्मिंल्लोके तां ज्ञात्वा गर्वोन कार्यइति । यतो गर्वोऽयं सूक्ष्मशल्यं वर्तते ।सूक्ष्मत्वाच्चदुरुद्धरमुद्धर्तुमशक्यअतोविद्वान् तत्तावत्संस्तवं परि चयं संगं प्रजह्यात् त्यजेत् ॥११॥ (एगेइति) एकोरागद्वेषरहितएकल्लविहारीवा चरेत् स्थानं कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् ।आसने शयने वा स्थितएकएव रागद्वेषरहितएव समाहितो धर्मादिध्यानयुक्तः स्यात् । तथानिक्षुरुपधानं तपस्तत्र वीर्यमुपधानवीर्योऽनिगूहितबलवी र्यः वाग्गुप्तः अध्यात्मं मनस्तेन संवृतः स्यात् ॥ १२ ॥

तें पर्यंते स्थितः स्यात् । ये पुनरेवं नस्युः ते । णंवाक्यालंकारे (ममाइणोत्ति) । ममेदं अहमस्य स्वामीत्यध्यवसायिनः शोचंति । शोचमानाअपि निजपरिग्रहं धनस्वजनादिकं नष्टं मृतं वा लनंते ॥ ए ॥ (इहेति) इह लोकदुःखावहं धनस्वजनादिकं (विउत्ति) विद्याः जानीहि । यतः । अर्थानामर्जने दुःख,मर्जितानां च रक्षणे ॥ आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान् दुःखनाजनान् ॥ १ ॥ तथा रेवापयः किसलयानिव सल्लकीनां विंध्योपकंठविपिनं स्वकुलं च हित्वा ॥ किं ताम्यसि द्विप गतोसि वशं करिण्याः स्नेहोहि कारणमनर्थपरंपरायाः ॥ २ ॥ परलोके च धनादिकं दुःखं तदप्यपरं दुःखं करोति । तदुपादानकर्मोपादानात् ॥ तथा तद्धनादिविध्वंसनधर्मकमेव विनश्वरमेव इति विद्वान् एवं जानन् कोऽगारवासमावसेत् गृहवासे तिष्ठति । यतः । दाराः परिनवकारा,बंधुजनो बंधनं विषं विषयाः ॥ कोयं जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहृदाशा इति॥ १ ॥ १० ॥

॥ टीका—अपिच । (धम्मस्सइत्यादि) । धर्मस्य श्रुतचारित्रनेदनिन्नस्य पारं गच्छतीति पारगः सिद्धांतपारगामी सम्यक् चारित्रनुष्ठायी वेति । चारित्रमधिकृत्याह । आरंनस्य सावद्यानुष्ठानरूपस्यांते पर्यंते तदनावरूपे स्थितोमुनिर्नवति।ये पुनर्नैवं नवंति ते अकृतधर्माः मरणे दुःखेवा समुछिते आत्मानं शोचंति । णमिति वाक्यालंकारे । यदि चेष्टमरणादाऽवर्थनाशे वा (ममाइणोत्ति) ममेदमहमस्य स्वामीत्येवमध्यवसायिनः शोचंति । शोचमानाअप्येते निजमात्मीयं परिसमंतात् गृह्यते आत्मसात्क्रियतइति । परिग्रहोहिरण्यादिरिष्टस्वजनादिर्वा । नष्टं मृतं वा नलनंते न प्राप्नुवंतीति । यदिवा धर्मस्य पारगं मुनिमारंनस्यांऽते व्यवस्थितमेनमागत्य स्वजनामातापित्रादयः शोचंति ममत्वयुक्ताः स्नेहालवः । नच ते लनंते निजमप्यात्मीयपरिग्रहबुद्ध्या गृहीतमिति । अत्रांतरे नागार्जुनीयास्तु पठंति ॥ सोऊणतयंउवठियं केइगिहीविग्घेणउठिया धम्मंमिअणुत्तरे मुणी,तंपि जिणिज्जइमेणपंडिए॥१॥ एतदेवाह । (इहलोगेइत्यादि) । इहाऽस्मिन्नेव लोके हिरण्यस्वजनादिकं दुःखमावहति । (विउत्ति) विद्याः जानीहि । तथाहि । अर्थानामर्जने दुःख,मर्जितानां च रक्षणे । आये दुःखं व्यये दुःखं, धिगर्थं दुःखनाजनं । तथाहि । रेवापयः किसलयानि च सल्लकीनां विंध्योपकंठविपिनं स्वकुलं च हित्वा ॥ किं ताम्यसि द्विप गतोसि वशं करिण्याः स्नेहोनिबंधनमनर्थपरंपरायाः ॥१॥परलोके च हिरण्यस्वजनादिममत्वाऽपादितकर्मजं दुःखं नवति तदप्यपरं दुःखमावहति तदुपादानकर्मोपादानादिति नावः ॥ तथैतदुपार्जितमपि विध्वंसनधर्मं विशरारुस्वनावं गत्वरमित्यर्थः । इत्येवं विद्वान् जानन् कः सकर्णोऽगारवासं गृहवासमावसेत गृहवासं वा ऽनुबध्नीयादिति । उक्तंच । दाराः परिनवकाराबंधुजनो बंधनं विषं विषयाः ॥ कोऽयं जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहृदाशा॥१०॥

पनो जाए एवो मुनीश्वर ते सम एटले अनुकूल शय्यादिक तथा विषम एटले प्रतिकूल शय्यादिक तेने अहियाशे तथा तेमज ते स्थानकने विषे चरकके० मांस मसादिक अडवावि के० अथवा नेरवा के० बिहामणा एवा घूक सिंहादिक जीव अडवा के० अथवा तव के० त्यां सुनाघरने विषे सरीसिवा के० सरीसृप एटले सर्प, सिया के०होय तो ते जीवोना करेला उपसर्गने सहन करे. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(णोपीहेति)। केनचिद्वयनादिनिमित्तेन शून्यं गृहमाश्रितोनिक्षुस्तस्य गृहस्य द्वारं कपाटादिना न पिदधीत न स्थगयेत्।(णयावपंगुणेत्ति)। नोद्घाटयेत्। केनचिद्धर्मादिकं मार्गादिकं पृष्टः सन् सावद्यां वाचं नोदाहरेन्नब्रूयात्।आनिग्रहिकोजिनकल्पिकादिर्निरवद्यामपि न ब्रूयात्। न समुच्छिंद्यात्तृणानि कचवरंवा प्रमार्जनेन नावनयेत् नापि शयनार्थी कश्चिदानिग्राहिकस्तृणादिकं संस्तरेत् तृणैरपि संस्तारकं न कुर्यात् किंपुनः कंबलादिना अन्योवा शुषिरतृणं न संस्तरेत् ॥ १३ ॥ (जत्तेत्ति)। यत्रास्तमेति सविता तत्र वाऽनाविलोऽनाकुलस्तिष्ठति। समविषमाणि शयनासनादीन्यधिसहेत समतया सहेत। तत्र स्थितस्य मुनेश्चरकादंशमशकादयोनैरवानयंकरारक्षःशिवादयोऽथवा सरीसृपाः सर्पास्युस्तदा तत्कृतोपसर्गानपि सहेत ॥ १४ ॥

॥ टीका–किंच (णोपिहेत्यादि)। केनचिद्वयनादिनिमित्तेन शून्यगृहमाश्रितोनिक्षुः तस्य गृहस्य द्वारं कपाटादिना नस्थगयेन्नाऽपि तच्चालयेत्।यावत् (नयावपंगुणेत्ति)नोद्घाटयेत् तत्रस्थोऽन्यत्रवा केनचिद्धर्मादिकं मार्गं वा पृष्टः सन् सावद्यां वाचं नोदाहरेत् न ब्रूयात्। आनिग्रहिकोजिनकल्पिकादिर्निरवद्यामपि न ब्रूयात् तथा न समुच्छिंद्यात्। तृणानि कचवरंच प्रमार्जनेन नाऽपनयेत नाऽपि शयनार्थी कश्चिदानिग्राहिकस्तृणादिकं संस्तरेत् तृणैरपि संस्तारकं न कुर्यात् किं पुनः कंबलादिनाऽन्योवा शुषिरतृणं न संस्तरेदिति ॥ १३ ॥ तथा (जत्थत्थमियेत्यादि)। निक्षुर्यत्रैवाऽस्तमुपैति सविता तत्रैव कायोत्सर्गादिना तिष्ठतीति। यत्राऽस्तमितस्तत्राऽनाकुलः समुद्भवन्नकादिन्निः परीषहोपसर्गैरक्षुभ्यन् समविषमाणि शयनासनादीन्यनुकूलप्रतिकूलानि मुनिर्यथावस्थितसंसारस्वनावचेत्ता सम्यगारक्तद्विष्टतयाऽधिसहेतेति ॥ १४ ॥

तिरिया मणुयाय दिव्वगा, उवसग्गा तिविहा हियासिया ॥ लो
मादियं पिण हरिसे सुन्नागारगउ महामुणी ॥१५॥ णो अन्निकं
खेज्ज जीवियं, नोविय पूयणपत्थए सिया ॥ अप्पत्तमुविंति
नेरवा, सुन्नागारगयस्स निक्खुणो ॥ १६ ॥

॥ टीका—पुनरप्युपदेशमधिकृत्याह (महयमित्यादि) महांतं संसारिणं दुस्त्यजत्वान्महता वा संरंभेण परिगोपणं परिगोपोऽभ्यतः पाकादिभीवतोऽनिष्वंगस्तं ज्ञात्वा स्वरूपतस्तद्विपाकतोवा परिछिद्य याऽपि च प्रव्रजितस्य सतोराजादिभिः कायादिभिर्वंदना वस्त्रपात्रादिभिश्च पूजना तांच इहाऽस्मिन् लोके मौनींद्रे वा शासने व्यवस्थितेन कर्मोपशमजं फलमित्येवं परिज्ञायोत्सेकोन विधेयः । किमिति यतोगर्वात्मकमेतत्सूक्ष्मशल्यं वर्त्तते सूक्ष्मत्वाच्च दुरुद्धरं दुःखेनोद्धर्तुं शक्यते अतोविद्वान् सदसद्विवेकज्ञस्तत्तावत् संस्तवं परिचयमनिष्वंगं परिजह्यात् परित्यजेदिति ॥ नागार्जुनीयास्तु पठंति । पलिमंथमहं वियाणिया जावियवंदणपूयणाइहं ॥ सुहुमं सल्लं दुरुद्धरं तंपि जिणे एएण पंडिए ॥१॥ अस्यचाऽयमर्थः । साधोः स्वाध्यायाऽध्ययनपरस्यैकांतनिस्पृहस्य योऽपि चाऽयं परैर्वंदनापूजनादिकः सत्कारः क्रियते.असावपि सदनुष्ठानस्य सज्जतेर्वा महान् पलिमंथे विघ्नआस्तां तावच्छब्दादिष्वनिष्वंगस्तमित्येवं परिज्ञाय तथा सूक्ष्मशल्यं दुरुद्धरं वाऽतस्तमपि जयेदपचयेत् पंडितएतेन वक्ष्यमाणेनेति ॥११॥ (एगेचरेइत्यादि) एकोऽसहायोऽभ्यतएकलविहारी भावतोरागद्वेषरहितश्चरेत् तथा स्थानं कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् तथा आसनेऽपि व्यवस्थितोऽपि रागद्वेषरहितएव तिष्ठेत् । एवं शयनेऽप्येकाक्येव समाहितोधर्मादिध्यानयुक्तः स्यात् भवेत् । एतदुक्तं भवति । सर्वास्वऽप्यवस्थानासनशयनरूपासु रागद्वेषविरहात् समाहितएव स्यादिति । तथा भिक्षणशीलोभिक्षुः उपधानं तपस्तत्र वीर्यं यस्य सउपधानवीर्यः तपस्यनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थः । तथा वाक्गुप्तः सुपर्यालोचिताभिधायी अध्यात्मं मनस्तेन संवृतोभिक्षुर्भवेदिति ॥ १२ ॥

णोपिहे ण यावपंगुणे दारं सुन्नघरस्स संजए ॥ पुट्ठेण उदाहरेवायं, ण स
मुछे णो संथरे तणं ॥१३॥ जछ छमिए अणाउले, समविसमाइं मुणी
हियासए ॥ चरगाय दुवावि भेरवा, अछुवा तछ सरीसिवा सिया ॥१४॥

अर्थ—वली साधुने उपदेश कहेछे. कोइ एक शयनादिक कारणे सुन्नघरस्सके० शून्य घरें रह्यो थको एवोजे संजएके० साधु, ते ते घरना दारंके० द्वारतेने णोपिहेणयावपंगुणेके० ढांके पणनहीं, तेम उघाडे पण नहीं वली त्यां रह्यो छतो अथवा अन्यत्र स्थानके रह्योछतो पुट्ठेणउदाहरेवायंके० कोइएके धर्म पूछ्यो थको सावद्यवचन बोलेनहीं. तथा णसमुछे णोसंथरेतणं के० त्यां रहेलाजे तृणकचरादिक ते प्रमार्जे नहीं, वली तेनेणो संथरे एटले पाथरे पण नहीं. ए आचार जिनकल्पादिक अभिग्रहधारी प्रमुख साधुनो कह्योछे; ॥ १३ ॥ वली जछछमिए के० चारित्रिउ ज्यां सूर्य अस्त थाय त्यांज रहे अने अणाउले के० परिसह उपसर्गे करी आकुल व्याकुल न थाय; क्षोभ पामे नहिं,अक्षोभ थको रहे. तथा समविसमाइंमुणीहियासएके० यथावस्थित संसारना स्वरू

स्वात्मनां उपसामीप्येन यंति गच्छंति । तत्सहनाच्च भिक्षोः शून्यागारगतस्य नीराजित वारणस्येव शीतोष्णादिजनिताउपसर्गाः सुसहाएव भवंतीति भावः ॥ १६ ॥

उवणीयतरस्स ताइणो, भयमाणस्सवि विक्कमासणं ॥ सामाइयमाहु तस्स जं, जो अप्पाण भएण दंसए ॥ १७ ॥ उसिणोदग तत्तभोइणो धम्मठियस्स मुणिस्स हीमतो ॥ संसग्गिअ साहुराइहिं, असमाहीउ तहागयस्सवि ॥ १८ ॥

अर्थ—वली बीजो उपदेश कहेछे. उवणीयतरस्सके० उपनीततर एटले जेणे पोताना आत्माने ज्ञान, दर्शन अने चारित्रनेविषे पहोचाड्योछे. तथा ताइणोके० त्राइ एटले जेनो आत्मा अन्यने उपकारी होय तेने त्राइ कहिए. तथा विविक्कके० विविक्त आसणंके० आशन एटले स्त्री तथा पशु पंमके करी विवर्जित एवा भयमाणस्सके० उपाश्रयनो से वनार सामाइयमाहुतस्सजंके० तेने सामायक चारित्र जाणवो. जोके० जेचारित्रिउ अ प्पाणके० पोतानाआत्माने परिसह उपसर्ग उपना थका भएणदंसएके० भयने देखाडे नहीं, एटले उपसर्ग उत्पन्नथयाथी बीहे नहीं. ॥१७॥ वली उसिणोदगतत्तके० उस उ दक तथा तप्तोदकनो भोइणोके० भोगवनार एटले उस थकां शीतल नकरे, किंतु उस्रो दक छतांज पानकरे; तथाधम्मठियस्सके० श्रुत अने चारित्र धर्मने विषे स्थित मुनि स्सके० मुनिराज एटले तत्वनो जाण हीमतोके० लज्जावंत एटले असंयमे प्रवर्त्यो थको लज्जा पामे. एवा साहुके० साधुने पण राइहिंके राजादिकने संसग्गिअके० संस र्गे असमाहिउ के० असमाधिज थाय, तह गयस्सविके० तथा गतस्य यथोक्त अनुष्ठा नना करनार एवा साधु पण राजादिकना संसर्गे करी स्वाध्याय ध्यानथकी चूके. ॥१८॥

॥ दीपिका—उवणीयेति । उपनीतोऽतिशयेन ज्ञानादौ प्रापितआत्मायेन सउपनीतत रस्तस्य । तायिनः परात्मोपकारिणस्त्रायिणोवा सम्यक्पालकस्य विविक्तं स्त्रीपशुपंडकवि वर्जितमासनं वसत्यादि भजमानस्य सेवमानस्य सामायिकादिचारित्रमाहुः । सर्वं ज्ञा यते यस्मात्ततः साधुना निश्चलात्मना भाव्यं । तथा यआत्मानं भयेन दर्शयेत् परीषहो पसर्गभीरुर्नस्यात् तस्य सामायिकमाहुरिति ॥ १७ ॥ (उसिणेत्ति) मुनेरुष्णोदकत प्तभोजिनः त्रिदंडोद्धृतोष्णोदकभोजिनः अथवा उष्णं सत् न शीतीकुर्यादिति तप्तग्रहणं ।त था धर्मे स्थितस्य न्हीमतः असंयमे लज्जावतोराजादिभिः सह संसर्गः संबंधोऽसाधुरन र्थकरः । तथागतस्य यथोक्तानुष्ठायिनोपि राजादिसंसर्गवशादसमाधिरेव भकदाचित्स्वा ध्यायादिकं स्यादित्यर्थः ॥ १८ ॥

अर्थ—तथा तिरिया के० तिर्यंच संबंधी, मणुयाय के० मनुष्यसंबंधी अने दिव्वगा के० देवतासंबंधी ए तिविहा के० त्रण प्रकारना उवसग्गा के० उपसर्गने साधु हियासियाके० सहन करे. पण तेना करेला उपसर्गथी विकार पामे नहीं; लोमादियंपि के० किं बहुना तेने ते नयथकी रोमोद्गम पण णहरिसेके० नथाय, सुन्नागारगउ के० एरीते जे सुनाघरने विषे रहे ते महामुणी के० महामुनि जिनकल्पियादिक जाणवा. ॥ १५ ॥ तथा नोअभिकंखेज्जजीवियंके० ते चारित्रिउ पूर्वोक्त उपसर्गे पीड्यो थको जीवितव्यने वांछे नहीं किंतु मरण आगमिने परिसहने सहन करे, तथा नोपियपूयणपत्थएसियाके० परिसह सहन करवा थकी पूजाना अभिलाषी नथाय. एरीते ते सुन्नागारगयस्सभिकुणोके० शुनागारगत चारित्रियाने भेरवा के० महारौद्र उपसर्ग ते अप्पत्र के०सहन करतां सुलभ भवंति के० होय. ॥ १६॥

॥दीपिका—तिरियाइति ।तिरश्चाः सिंहादिकृताः मानुषाअनुकूलप्रतिकूलादिव्याव्यंतरादिकृताउपसर्गास्त्रिविधास्तान् अधिसहेत निर्विकारतया क्षमेत । लोमादिकमपि नहर्षेत् नयेन रोमोद्गमं नकुर्यात् । आदिशब्दाद्दृष्टिमुखविकारादिग्रहः । शून्यागारगतोमहामुनिः उपलक्षणात्प्रेतवनादिस्थितः ॥१५॥ नोअभिकंखेइति । उपसर्गैः पीड्यमानोपि साधुर्नाभिकांक्षेज्जीवितं । जीवितनिरपेक्षेणोपसर्गाः सोढव्याइत्यर्थः । नापिच पूजाप्रार्थकःस्यात् । उपसर्गसहनात्पूजामपि नसमीहते इत्यर्थः । एवं सह्यमानाः परिषहाभैरवाभयंकराअपि अभ्यस्तभावं यंति गच्छंति । शून्यागारगतस्यभिक्षोरे वमुपसर्गाः सदभ्यस्ताः सुसहाभवंतीति॥१६

॥ टीका—सांप्रतं त्रिविधोपसर्गाधिसहनमधिकृत्याह । (तिरियाइत्यादि) तैरश्चाः सिंहव्याघ्रादिकृतास्तथा मानुषाअनुकूलप्रतिकूलाः सत्कारपुरस्कारदंडकशाताडनादिजनिताः। तथा (दिव्वगाइति) व्यंतरादिना हास्यप्रद्वेषादिजनिताः। एवंत्रिविधानऽप्युपसर्गानऽधिसहेत नोपसर्गैर्विकारं गच्छेत् । तदेव दर्शयति । लोमादिकमपि न हर्षेत् भयेन रोमोद्गममपि न कुर्यात् । यदिवा एवमुपसर्गास्त्रिविधाअपि (अहियासियत्ति) अधिसोढा भवंति । यदि रोमोद्गमादिकमपि न कुर्यात् । आदिग्रहणात् दृष्टिमुखविकारादिपरिग्रहः। शून्यागारगतः शून्यगृहव्यवस्थितस्य चोपलक्षणार्थत्वात् पितृवनादिस्थितोवा महामुनिर्जिनकल्पिकादिरिति ॥ १५ ॥ किंच । (णोअभिकंखेइत्यादि) । सतैर्भैरवैरुपसर्गैरुदीर्णैस्तोतुद्यमानोऽपिजीवितं नाऽभिकांक्षेत जीवितनिरपेक्षेणोपसर्गाः सोढव्यइतिभावः । नचोपसर्गसहनद्वारेण पूजाप्रार्थकः प्रकर्षाऽभिलाषी स्यात् भवेत् । एवंच जीवितपूजानिरपेक्षेणाऽसकृत् सम्यक् सह्यमानाभैरवाभयानकाः शिवाः पिशाचादयोऽभ्यस्तभावं

के० गृहस्थसंबंधी जे नाजन कांस्यपात्रादिक तेने विषे नभुंजती के० नोजन न करे तेने सामायकवंत जाणवो. ॥ २० ॥

॥ दीपिका-(अहिगरणेति) । अधिकरणं कलहस्तत्करस्य निक्षोर्दारुणं वाचं प्रसह्य प्रगटमेववदतोऽर्थोमोक्षः संयमोवा बहु परिहीयते भृशं विनश्यतीत्यर्थः । बहुकालार्जित मपि महत्पुण्यं कलहं कुर्वतस्तत्कालं क्षीयते । यतः । जं अज्जिअं समीखल्लएहिं तवनियम बंनमइएहिं ॥ माहुतयंकलहंता, छड्डेअहसागपत्तेहिं ॥ १ ॥ तस्मादधिकरणं नकुर्यात्पं मितः ॥ १९ ॥ (सीओदगेति) । शीतोदकमप्रासुकजलं तत्प्रति जुगुप्सकस्य परिहारिणो न विद्यते प्रतिज्ञा निदानं यस्य सअप्रतिज्ञस्तस्याऽनिदानस्य लवं कर्म तस्मादवसर्पिणोनि वर्तमानस्य साधोः सामायिकादिसंयममाहुः सर्वज्ञाः । यश्च साधुर्गृहमात्रे गृहस्थनाज नेन भुंक्ते तस्य सामायिकमिति ॥ २० ॥

॥ टीका-परिहार्यदोषप्रदर्शनेनाऽधुनोपदेशानिधित्सयाह । (अहिगरणेत्यादि) । अधिकरणं कलहस्तत्करोति तच्छीलश्चेत्यधिकरणकरस्तस्यैवंनूतस्य निक्षोस्तथाऽधिकरण करीं दारुणां वा नयानकां वा प्रसह्यप्रगटमेव वाचं ब्रुवतः सतोर्थोमोक्षस्तत्कारण नूतोवा संयमः सबहु परिहीयते ध्वंसमुपयाति । इदमुक्तं नवति । बहुना कालेन यद र्जितं विप्रकृष्टेन तपसा महत्पुण्यं तत्कलहं कुर्वतः परोपघातिनीं च वाचं ब्रुवतस्तत्क्ष णमेव ध्वंसमुपयाति । तथाहि । जंअज्जियंसमीखल्लएहिं तवनियमबंनमइएहिं । माहु तयंकलहंताछड्डेअह सागपत्तेहिं ॥ १ ॥ इत्येवं मत्वा मनागप्यधिकरणं न कुर्यात् पं मितः सदसद्विवेकीति ॥ १९ ॥ तथा (सीओदगेत्यादि) । शीतोदकमप्रासुकोदकं तत्प्र ति जुगुप्सकस्याऽप्रासुकोदकपरिहारिणः साधोर्न विद्यते प्रतिज्ञा निदानरूपा यस्य सोप्र तिज्ञोऽनिदानइत्यर्थः । लवं कर्म तस्मात् (अवसर्प्पिणोत्ति) । अवसर्पिणः यदनुष्ठा नं कर्म बंधोपादाननूतं तत्परिहारिणइत्यर्थः । तस्यैवंनूतस्य साधोर्यस्मात् यत्सामा यिकं समन्नावलक्षणमाहुः सर्वज्ञाः । यश्च साधुः गृहमात्रे गृहस्थनाजने कांस्यपात्रादौ न भुंक्ते तस्यच सामायिकमाहुरिति संबंधनीयमिति ॥ २० ॥

णय संखयमाहु जीवियं, तहविय बालजणो पगप्नइ ॥ बाले पापेहिं मिज्जती, इति संखाय मुणी ण मज्जती ॥ २१ ॥ छंदेण पाले इमा पया, व हुमाया मोहेण पाउडा ॥ वियडेण पलिंति माहणे, सीउण्ह वयसा हियासए ॥ २२ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमाह (उवणीयेत्यादि) उपसामीप्येन नीतः प्रापितोज्ञानादाऽवात्मा येन सतथा अतिशयेनोपनीतउपनीततरस्तस्य तथा तायिनः परात्मोपकारिणस्त्रायिणोवा सम्यक्पालकस्य तथा भजमानस्य सेवमानस्य विविक्तं स्त्रीपशुपंडकविवर्जितमास्यते स्थीयते यस्मिन्निति तदासनं वसत्यादि तस्यैवं भूतस्य मुनेः सामायिकं समभावरूपं सामायिकादिचारित्रमाहुः सर्वज्ञाः। यद्यस्मात् ततश्चारित्रिणा प्राग्व्यवस्थितस्वभावेन भाव्यं यश्चात्मानं भयेन परिषहोपसर्गजनितेन दर्शयेत् तद्भीरुर्न भवेत् तस्य सामायिकमाहुरिति संबंधनीयं ॥ १७ ॥ किंच (उसिणोदगेत्यादि) मुनेरुष्णोदकतप्तभोजिनः त्रिदंडोद्वृतोष्णोदकभोजिनः। यदिवा उष्णं सन्नशीतीकुर्यादिति तप्तग्रहणं। तथा श्रुतचारित्राख्ये धर्मे स्थितस्य (हीमतोत्ति) ह्वीरसंयमं प्रति लज्जा तद्वतो ऽसंयमजुगुप्सावतइत्यर्थः। तस्यैवंभूतस्य मुनेराजादिभिः सार्द्धं यः संसर्गः संबंधोऽसाऽवसाधुरनर्थोदयहेतुत्वात्तथागतस्यापि यथोक्तानुष्ठायिनोऽपि राजादिसंसर्गवशादसमाधिरेवाऽपध्यानमेव स्यात् न कदाचित् स्वाध्यायादिकं भवेदिति ॥ १८ ॥

अहिगरणकडस्स भिक्कुणो, वयमाणस्स पसज्जदारुणं ॥ अट्ठे परिहायती बहु, अहिगरणं नकरेज्ज पंमिए ॥ १९ ॥ सीओदग पडिडुगंछिणो, अपडिन्नस्स लवावसप्पिणो ॥ सामाइय साहु तस्स जं, जो गिहिमत्तसणं न भुंजती ॥ २० ॥

अर्थ–हवे उपदेश आश्री कहेछे. अहिगरण के० अधिकरण ते कलह तेनो कडस्स के० करनार एवो भिक्कुणो के० चारित्रिउ वली पसज्झदारुणं के० प्रगटदारुण एटले जीवने भयनुं कारण वयमाणस्स के० एवी भाषानो बोलनार एवा चारित्रियानो घणो एवो जे अट्ठेके० अर्थ जे मोक्ष तेनुं कारण जे संयम ते परिहायती के० हीणो थाय. एटले बहुके० घणाकाले उपार्जित जे दुष्करतप संयम तेनो पण कलह करतां परोपघातीया वचन बोलतां क्षय थाय. एवुं जाणीने शुंकरे ? ते कहेछे. पंमिएके० जे पंमितविवेकी होयते अहिगरणके० अधिकरण जे क्रोध ते स्वल्पपण नकरेज्जके० नकरे, एटले पंमित अल्पक्रोध पण करे नहीं. ॥ १९ ॥ जे चारित्रिउ सीओदगं के० शीतोदक एटले सचेतपाणी तेने पडिडुगंछियो के० टालनार तथा अपडिन्नस्स के० अप्रतिज्ञ एटले नियाणु सर्वथापि नकरे. तथा लवावसप्पिणो के० लव एटले कर्म तेथकी शंकातो रहे. एटले कर्मबंधनुं कारण एवुं जे अनुष्ठान होय ते नकरे. सामाइयसाहुतस्सजंके० ते साधुने सामायक एटले समता लक्षणवंत कहिए. वली जोके० जे साधु गिहिमत्तसणं

न जक्तइति। सचैवंभूतोबालस्तैरसदनुष्ठानापादितैः पापैः कर्मभिर्नीयते तद्युक्तइत्येवं प रिछिद्यते च्रियते वा मयेन धान्यादिना प्रस्थकवदित्येवं संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्यथावस्थि तपदार्थानां वेत्ता न माद्यतीति तेष्वसदनुष्ठानेष्वहं शोजनः कर्त्तेत्येवं प्रगल्जमानोमदं न करोति ॥ २१ ॥ उपदेशांतरमाह (छंदेणेत्यादि) छंदोऽनिप्रायस्तेन तेन स्वकीया निप्रायेण कुगतिगमनैकहेतुना इमाः प्रजाअयं लोकस्तासु गतिषु प्रलीयते । तथाहि रागादिवधमपि स्वानिप्रायग्रहग्रस्ताधर्मसाधनमित्येवं प्रगल्जमानाविदधति। अन्येतु संघा दिकमुद्दिश्य दासीदासधनधान्यादिपरिग्रहं कुर्वंति तथाऽन्ये मायाप्रधानैः कुकुटैरसकृ त्प्रेक्षमाणश्रोत्रस्पर्शनादिभिर्मुग्धजनं प्रतारयंति । तथाहि । कुक्कटसाध्योलोकोन कुक्कुट तः प्रवर्तते किंचित् । तस्माल्लोकस्याऽर्थे पितरमपि सकुक्कुटं कुर्यात् तथेयं प्रजा बहु माया कपटप्रधाना किमिति यतोमोहोऽज्ञानं तेन प्रावृताऽऽछादिता सदसद्विवेकविकले त्यर्थः। तदेवमवगम्य (माहणेत्ति) साधुर्विकटेन प्रकटेनाऽमायेन कर्मणा मोक्षे संयमे वा प्रकर्षेण लीयते प्रलीयते शोजनजावयुक्तोनवतीति जावः। तथा शीतंच उष्णंच शीतो ष्णः शीतोष्णोवा अनुकूलप्रतिकूलपरीषहास्तान् वाचा कायेन मनसा च करणत्रयेणाऽपि सम्यगधिसहेतइति ॥ २२ ॥

कुजए अपराजिएजहा, अस्केहिं कुसलेहिं दीवयं ॥ कडमेव गहाय णो कलिं, नो तियंनो चेवदावरं ॥ २३ ॥ एवंलोगंमि ताइणा, बुइए जे धम्मे अणुत्तरे ॥ तं गिण्ह हियंति उत्तमं, कडमिव सेसवहाय पंमिए॥२४॥

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेले. कुजए के कुत्सित एटले मागो एवो जेनो जय तेने कु जय कहिए. ए जुगार कहेवाय ले; केमके एमां घणो जय थाय तोपण निंदा करवा यो ग्य ले माटे कुंजयले,ते केवो? तोके अपराजिएके० लब्ध लक्षपणे खेलतो अपर एटले अ न्य कोइथी जीत्यो जाय नहीं. एवो जुगारी जहा के० जेम अस्केहिंके० अक्ष एटले पाशा तेणेकरी कुसलेहिं के० कुशल निपुण एवीरीते दीवयं के० खेलतो लतो ते कड मेवसहाय के० चोतरो दाव ग्रहण करीने खेलतां जीते तो ते चोतरो दावज ग्रहण करे, पण णोकलीके०एकनोदाव ग्रहण करे नहीं. तेमज णोतियंके० त्रणनो दावग्रहण नकरे अने नोचेवदावरं के० बेनो दाव पण ग्रहण नकरे. ॥ २३ ॥ हवे एदृष्टांत साधु साथे मेलवे ले, जेम जुगारने विषे जय पामवानो अनिलाषी एक चोकानो दावज ग्र हण करी बीजा दावनो त्याग करे. एवंलोगंमि के० एरीते ए मनुष्यलोकमांहे ताइ णा के० लकायनो रक्षपाल चारित्रियें बुइएजेधम्मे के० अहिंसाले प्रधान जेमां, एवो धर्म जे श्रीवीतरागे कह्यो, अणुत्तरे के० एवो अन्य धर्म जगतमांहे कोई नथी.

अर्थ—वली प्रकारांतरे कहेछे. आहुजीवियंके० जीवितव्य आयुष्य काल पर्यायें करी त्रूटोछतां णयसंखयके० वधारी नशकाय, एरीते पंमितो कहेछे. तहवियके० तोपण बालजणोके० बाल अज्ञानी जन पगप्नइके० पाप करतो धृष्टपणुं करे एवो बालेके० बाल ते पापेहिंमिज्ञतीके० पापकर्मेकरी नराय, संसारमां डुःख पामे. इतिसंखायके०एवुं जाणीने मुणी के० साधुजेछे, ते णमज्ञतीके० मद नकरे एटले पापे करी धीठो न थाय. ॥ २१ ॥ वलीउपदेश कहेछे. छंदेणके० पोतपोताने अनिप्रायेंकरी इमापया के० ए प्रजा एटले लोकजेछेते पालेके० तेवी तेवी नरकादिक गतिने विषे पर्यटन करे,ते केवीरीते? तोके, एक दशनी पोताना अनिप्रायें करी गृहनेविषे ग्रस्त छतां अजादिकना वधने पण धर्मनुं कारण कहेछे, अन्य वली धनधान्यादिक परिग्रह पृथ्वीकायनो आरंन एने पण धर्म कहेछे, इत्यादिक प्रकारें ए प्रजालोक जे छे ते मुग्धजनरंजननिमित्ते बहुमाया के० कपट प्रधान अनेक प्रकारनी कपटक्रिया करे, परंतु श्रीवीतरागनो मार्ग सम्यक् प्रकारे नजाणे. तेनुं कारण कहेछे, केमके ए लोक जेछे, ते मोहेणके० अज्ञाने करी पाउडाके० आवस्था. विवेकरहित छे, माटे खोटा साचानी व्यक्तिने जाणता नथी,एवुं जाणीने माहणे के० साधु ते वियडेण के० विकटेण एटले प्रगट मायारहित निर्माय कर्मे करी पलिंति के० मोक्ष तथा संयमने विषे प्रवर्त्ते, एटले शुन ध्याने करीयुक्त होय, सीउण्हके०शीत उस्स एटले अनुकूल अने प्रतिकूल उपसर्ग ते वयसा के० वचने,कायाये अने मने ए त्रिकरण शुद्धेकरी अहियासए एटले परीसह आवे थके दीनपणुं आणेनहीं. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—नयेति । जीवितं त्रुटितं सत् (नसंखयन्ति) नसंस्कर्तुं शक्यमित्याहुस्तद्विदः तथापि बालोऽज्ञो जनः प्रगल्नते पापं कुर्यात् । बालः पापैः कर्मनिर्मीयते म्रियते वा इति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति अहं सदनुष्ठानइति मदं नकुर्यात् ॥२१॥ (छंदेणेति) इमाः प्रजाः अयंलोकः छंदेन स्वानिप्रायेण प्रलीयते शोननन्नावः स्यात् । यथा छागादि वधेपि केचिद्धर्मं वदंति कुटुंबमुद्दिश्य धनादिपरिग्रहं कुर्वंति केचिन्मायया मुग्धजनं प्रतारयंति तथा बहुमाया प्रजा मोहेन प्रावृता आछादिताच एवंज्ञात्वा (माहणेत्ति) साधुः विकटेन प्रकटेन निर्मायेन कर्मणा संयमे प्रलीयते शुन्नन्नावः स्यात् । तथा शीतं उस्नंच वाचा कायेन मनसा वाऽधिसहते ॥ २२ ॥

॥ टीका—किंच (नयसंखयमित्यादि) नच नैव जीवितमायुष्कं कालपर्यायेण त्रुटितं सत् पुनः (संखयमिति) संस्कर्तुं तंतुवत्संधातुं शक्यते इत्येवमाहुस्तद्विदस्तथाऽप्येवमपि व्यवस्थिते बालोऽज्ञो जनः प्रगल्नते पापं कुर्वन् धृष्टोनवति असदनुष्ठानरतोऽपि

अर्थ—वली अन्य उपदेश कहेछे. मणुयाणके० मनुष्यने उत्तरके० जीपतां अति दुर्लभ आहिया के० कह्या. एवा शुं ? तोके, गामधम्मा के० ग्रामधर्म ते शब्दादिक विषय अथवा मैथुन सेवन इत्यादिकने ग्रामधर्म कहिए. इति के० एरीते मेके० में अणुस्सुयं के० श्रीवीरभगवंत पाशेथी सांभल्युं छे, एटले श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबुस्वामि प्रत्ये कहे छे के; ग्रामधर्म जे शब्दादिक विषय छे ते मनुष्यने घणा दुर्जय श्रीवीतरागे कह्या छे, एवुं में भगवंत पाशेथी सांभल्युं छे. तेरीते हुं तुजने कहुंछुं तो हवे ए ग्रामधर्म आश्री. जंसी के० जे विरता के० विरतिने विषे समुठिया के० सावधान थया ते पुरुष कासवस्स के० काश्यप गोत्री एटले श्रीरुषभदेव स्वामि अथवा श्रीमहावीरस्वामि एमना धम्म के० धर्मना अणुचारिणोके० अनुचारी जाणवा. ॥ २५ ॥ वली कहेछे. जेके० जे पुरुष एयं के० ए पूर्वोक्त ग्रामधर्मने विषे विरतिलक्षण एवो जे धर्म तेने चरंति के० आचरे ते धर्म कोणे आहियंके० कह्यो ? तोके, महया के० महोटा महेसिणा के० महारूषी एवा नाएण के० ज्ञातपुत्रे कह्योछे. तेके० ते एवा धर्मना करनार संयम पालवाने उठिय के० उठ्या, सावधान थया, तथा समुठिया के० सम्यक् प्रकारें कुमार्ग देशनाने परित्यागे करी घणा सावधान छता प्रवर्त्ते. ते अन्नोन्नंसारंति धम्मउके० परस्पर मांहोमांहे धर्मथकी भगता प्राणीने वली धर्मनेविषे सारंति एटले स्थापे इत्यर्थः ॥२६॥

॥ दीपिका—(उत्तरेति) । मनुजानां नराणां ग्रामधर्माः शब्दादिविषयाउत्तराद्रुर्जयत्वात्प्रधानाजिनैराख्याताः । मयैतदनुपश्चाच्छ्रुतमाकर्णितं । यतः श्रीरुषभस्वामिना स्वपुत्रानुद्दिश्य प्रोक्तं तत्पाश्चात्यगणधरैः शिष्येभ्यः कथितं ततोमया श्रुतमिति । यस्मिन्निति पंचम्यर्थे सप्तमी । येभ्योविषयेभ्योविरताः समुत्थिताउद्यताः काश्यपस्य श्रीरुषभस्य श्रीवीरस्य वा संबंधी योधर्मस्तदनुचारिणोजिनोक्तधर्मकारिणः स्युः ॥२५॥ (जेएयमिति) । ये एवंविधाः पूर्वोक्तास्ते धर्मविषयत्यागरूपं चरंति कुर्वंति इति महता महर्षिणा ज्ञातेन श्रीवीरेणाख्यातं । तएवोत्थिताः सम्यङ्मार्गेभ्यः समुत्थिताश्च कुमतिभ्यस्तएवाऽन्योन्यं परस्परं धर्मतोधर्ममाश्रित्य धर्मतोभ्रश्यंतं वा सारयंति धर्मे प्रवर्तयंतीत्यर्थः ॥ २६ ॥

॥ टीका—पुनरप्युपदेशांतरमाह । (उत्तरेत्यादि) । उत्तराः प्रधानाः दुर्जयत्वात् । केषामुपदेशार्हत्वान्मनुष्याणामन्यथा सर्वेषामेवेति । के ते ग्रामधर्माः शब्दादिविषयामैथुनरूपावेति । एवं ग्रामधर्माउत्तरत्वेन सर्वज्ञैराख्याताः । मयैतदनुपश्चाच्छ्रुतं । एतच्च सर्वमेव प्रागुक्तं । यच्च वक्ष्यमाणं तन्नाभेयेनाऽऽदितीर्थकृता पुत्रानुद्दिश्याऽभिहितं सत् पाश्चात्यगणधराः सुधर्मस्वामिप्रभृतयः स्वशिष्येभ्यः प्रतिपादयंत्यतोमयैतदनुश्रुतमित्यन

तंके० ते धर्मने अहो शिष्य? तुं निःसंदेह थइने हियंतिके० एकांत हितकारी जाणीने गि एह्के० आदर. ए उत्तमके० सर्वोत्तम मार्ग बे. ते तूं ग्रहण कर. कोनी पेरे तोके, कड मेव के० ते जुगारिये ग्रहण करेला चोकाना दावनी पेरे. सेसवहाय के० शेष एकादि कनो दाव बांमी दीधो. तेम पंमिए के० पंमित जे बे, ते शेष अनेरा जे गृहस्थ, कुलिं गी, इव्यलिंगी एवा धर्म बांमीने एक सर्वज्ञोपदिष्ट धर्मने ग्रहण करे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–(कुजएत्ति)। कुजयोद्यूतकारोयथा अक्षैः पाशैर्दीव्यन् क्रीमन् कुशलो नापराजितःस्यात्। अन्येन न जीयतइत्यर्थः। कडमेवत्ति। सद्यूतकारः कमचतुष्कमेव गृहीत्वाकैकं नो गृएहाति। नत्रैतं त्रिकं नद्वापरंद्विकंवा गृएहाति किंतुचतुष्कमेव लाति ॥ २३ ॥ दार्ष्टांतिकमाह। (एवमिति)। एवं लोकेस्मिन् तायिना सर्वज्ञेनोक्तोऽनु त्तरउत्कृष्टोयोयं धर्मस्तं हितमुत्तमं त्वं गृहाण। दृष्टांतनिगमनमाह। यथा द्यूतकारः शेषं एककादि अपहाय त्यक्त्वा कृतं कृतयुगं चतुष्कमेव लाति तथा पंमितः साधुरपि गृहस्थः कुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिभावं त्यक्त्वा सर्वोत्तमं धर्मं गृएहीयादित्यर्थः ॥ २४ ॥

॥ टीका–अपिच (कुजएत्यादि)। कुत्सितोजयोऽस्येति कुजयोद्यूतकारः महतो ऽपि द्यूतजयस्य सद्भिर्निंदितत्वादनर्थहेतुत्वाच्च कुत्सितत्वमिति। तमेव विशिनष्टि। अप राजितोदीव्यन् कुशलत्वादऽन्येन न जीयते। अक्षैर्वा पाशकैर्दीव्यन् क्रीडंस्तत्पातज्ञः कुशलोनिपुणः यथा असौ द्यूतकारोऽक्षैः पाशकैः कपर्दकैर्वा रममाणः (कडमेवत्ति) चतुष्कमेव गृहीत्वा तल्लब्धजयत्वात् तेनैव दीव्यति। ततोसौ तल्लब्धजयःसन्न कलिमे ककं नाऽपि त्रैतं त्रिकं च नापि द्वापरं द्विकं गृएहातीति ॥ २३ ॥ दार्ष्टांतिकमाह। (एवमित्यादि) यथा द्यूतकारः प्राप्तजयत्वात् सर्वोत्तमं दीव्यंश्चतुष्कमेव गृएहात्येवम स्मिंल्लोके मनुष्यलोके तायिना त्रायिणा वा सर्वज्ञेनोक्तोऽयं धर्मः क्षांत्यादिलक्षणः श्रु तचारित्राख्योवा नाऽस्योत्तरोऽधिकोऽस्तीत्यनुत्तरस्तमेकांतहितमपि कृत्वा सर्वोत्तमंच गृ हाण विस्रोतसिकारहितः स्वीकुरु। पुनरपि निगमनार्थंतमेव दृष्टांतं दर्शयति। यथा क श्चित् द्यूतकारः कृतं कृतयुगं चतुष्कमित्यर्थः। शेषमेककाद्यपहाय त्यक्त्वा दीव्यन् गृएहा ति एवं पंडितोऽपि साधुरपि शेषं गृहस्थकुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिभावमपहाय संपूर्णं म हांतं सर्वोत्तमं धर्मं गृएहीयादिति भावः ॥ २४ ॥

उत्तरमणुयाण आहिया, गामधम्मा इइ मे अणुस्सुयं ॥ जंसी
विरता समुठिया कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २५ ॥ जे
एयं चरंति आहियं, नाएणं महया महेसिणा ॥ ते उठ्ठिय
ते समुठ्ठिया, अन्नोन्नं सारंति धम्मओ ॥ २६ ॥

अथवा अनेरायें पूछ्याथकी निमित्तादिक कहे नहीं तथा संपसारए के० अर्थकांमादिक कथानो विस्तार नकरे, केमके धम्मंके० ए श्रीवीतराग देवनो जे धर्म तेने अणुत्तरं के० सर्वोत्तम नच्चा के० जाणीने विकथादि न करे एटले सम्यक् धर्म जाणवानुं एहिज फलछे, जे विकथादिकनो त्याग करवो अने सम्यक् प्रकारे क्रिया करवी ते नाव देखाडेछे. कयके० कीधीछे रुडीपरे अन्यासीने संयमानुष्ठानरूप किरिए के० क्रिया जेणे एवो छतो उत्तम साधु ते णयाविमामए के० देहादिकने विषे पण ममत्व न करे ॥ २७ ॥

॥ दीपिका–(मापेहेति)। प्रणामयंति प्रापयंति दुर्गतिं प्रणामकाः शब्दादिविषयास्तान् माप्रेक्षस्व मास्मर । तथा उपधिं मायां धूनयितुमपनयनायानिकांक्षेत् चिंतयेत् मायात्यागाय यतेतेत्यर्थः । ये नराडुर्मनोनिर्विपर्यैर्ननता न तत्पराः स्युस्ते जानंति समाधिं धर्मध्यानं आहितं आसमंतात् हितं ॥२७॥ (नोकाहिएति) संयतः साधुः काथिकः कथाकथकोगोचरादौ न नवेत् । प्राश्निकः प्रश्ननिमित्तकथकश्च ननवेत् । नच संप्रसारको मेघवृष्ट्यर्घकांडादिसूचककथाविस्तारको नवेत् । किंकृत्वाऽनुत्तमुत्कृष्टं धर्मं ज्ञात्वा कृता अन्यस्ता क्रिया संयमानुष्ठानरूपा येन सकृतक्रियोमामकोन स्यात् ममेदं वस्तु अहमस्य स्वामीति मामकः परिगृही नस्यादित्यर्थः ॥ २७ ॥

॥ टीका–किंच (मापेहेत्यादि) दुर्गतिं संसारं वा प्रणामयंति प्रव्हीकुर्वंति प्राणिनां प्रणामकाः शब्दादयोविषयास्तान् पुरा पूर्वं नुक्तान् मा प्रेक्षस्व मास्मर। तेषां स्मरणमपि यस्मान्महतेऽनर्थाय । अनागतांश्च नोदीक्षेत नाऽऽकांक्षेदिति । तथाऽनिकांक्षेत् अनिलषेदनारतं चिंतयेदनुरूपमनुष्ठानं कुर्यात् । किमर्थमिति दर्शयति । उपधीयते ढौक्यते दुर्गतिं प्रत्यात्मा येनाऽसावुपधिर्माया अष्टप्रकारं वा कर्म तद्धननायाऽपनयनायाऽनिकांक्षेदिति संबंधः । दुष्टधर्मं प्रत्युपनताः कुमार्गानुष्ठायिनस्तीर्थिकाः यदिवा (दूमणत्ति) दुष्टमनःकारिणउपतापकारिणोवा शब्दादयोविषयास्तेषु ये महासत्वाः न नतान प्रव्हीनूतास्तदाचारानुष्ठायिनोन नवंति तेच सन्मार्गानुष्ठायिनोजानंति विंदंति समाधिं रागद्वेषपरित्यागरूपं धर्मध्यानंच आहितमात्मनि व्यवस्थितं आसमंताद्धितं वा तएव जानंति नाऽन्यइतिनावः ॥ २७ ॥ तथा (णोकाहिएइत्यादि) संयतः प्रव्राजितः कथया चरति काथिकोगोचरादौ न नवेत् । यदिवा विरुद्धां पैशून्यापादनीं स्त्र्यादिकथां वा न कुर्यात् । तथा प्रश्नेन राजादिकिंवृत्तरूपेण दर्पणादिप्रश्ननिमित्तरूपेण वा चरतीति प्राश्निकोन नवेत् नाऽपिच संप्रसारकोदेववृष्ट्यर्घकांडादिसूचककथाविस्तारकोन्नवेदिति । किंकृत्वेति दर्शयति । ज्ञात्वाऽवबुध्य नास्योत्तरोविद्यतइत्यनुत्तरस्तंश्रुतचारित्राख्यं धर्मं सम्यगवगम्य तस्य हि धर्मस्यैतदेव फलं यडुत विकथानिमित्तपरिहारेण स

वद्यं । यस्मिन्निति कर्मणि ल्यब्लोपे पंचमी सप्तमीवेति । यान् ग्रामधर्मानाश्रित्य ये विरताः । पंचम्यर्थे वा सप्तमी । येन्योवा विरताः सम्यक्संयमरूपेणोब्थिताः समुब्थितास्ते काश्यपस्य षभस्वामिनोवर्धमानस्वामिनोवा संबंधी योधर्मस्तदनुचारिणस्तीर्थकरप्रणीतधर्मानुष्ठायिनोजवंतीत्यर्थः ॥२५॥ किंच (जेएइत्यादि) । ये मनुष्याएनं प्रागुक्तं धर्मं ग्रामधर्मविरतिलक्षणं कुर्वंति चरंति । आख्यातं ज्ञातेन ज्ञातपुत्रेण (महयेति) महाविषयस्य ज्ञानस्याऽनन्यजूतत्वात् महान् तेन तथाऽनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहिष्णुत्वान्महर्षिणा श्रीमद्धर्धमानस्वामिना आख्यातं धर्मं ये चरंति तएव संयमोब्थाने कुतीर्थिकपरिहारेणोब्थितास्तथा निन्हवादिपरिहारेण । तएव सम्यक्त्वमार्गदेशनाऽपरित्यागेनोब्थिताः समुब्थिता इति नाऽन्ये कुप्रावाचनिकाजमालिप्रजृतयश्चेतिजावः । तएव च यथोक्तधर्मानुष्ठायिनोऽन्योऽन्यं परस्परं धर्मतोधर्ममाश्रित्य धर्मतोवाभ्रश्यंतं सारयंति चोदयंति पुनरपि सद्धर्मे प्रवर्तयंतीति ॥ २६ ॥

मापेह पुरा पणामए, अनिकंखे उवहिं धुणित्तए ॥ जे दूमणते
हिं णोणया, ते जाणंति समाहिमाहियं ॥ २७ ॥ णोकाहिए हो
ज्ज संजए, पासणिए णय संपसारए ॥ नच्चा धम्मं अणुत्तरं
कय किरिए ण यावि मामए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे जेरीते धर्मस्थापे ते रीत कहेडे. पणामएके० प्रणाम एटले सर्व जीवने नमाडे. एवा प्रणाम ते शब्दादिक विषयरूप पुरा के० पूर्वेला जोगव्या जोग तेने मापेह के० न चिंतवे. केमके तेनुं चिंतववुं पण महा अनर्थनुं कारणडे. तो ए शब्दादिक विषयने सेववानुं शुं कहेवुं ? तथा अनिकंखे के० आगमिक काले उपजनार जे विषय तेने पण न वांछे, तेनी अनिलाषा न करे, तथा तेने दूर करवा वांछे. तोआत्माने जे उवहिंके० उपधि एटले माया अथवा अष्टप्रकारे कर्म तेने धुणित्तए के० पोताथकी दूर करे. तथा जे दूमणतेहिं के० दुष्ट मनना करनार एवाजे शब्दादिक विषय तेने विषे णोणयाके० नम्या नथी. अथवा दुष्ट धर्मना करनार एवा जे कुतीर्थिक तेनां कहेलां जे अनुष्ठान तेना करनार थया नथी एटले तेने वशीगत थया नथी. ते जाणंति समाहिमाहियं के० ते पुरुष राग,द्वेष, परित्यागरूप जे समाधि तद्रूप धर्मध्यान तेने आहियं एटले आत्माने विषे व्यवस्थित जाणे. ए थकी जे अन्य डे तेने विषे समाधि जाणे नहीं, एवुं जाणीने विषयने डांमे ॥ २७ ॥ वली उपदेशांतर कहेडे. संजए के० चारित्रिउ जे डे, ते णोकाहिए होज्ज के० गोचरीने विषे कथानो करनार न होय एटले विकथा न करे. अथवा विरुद्ध रूप पैशुन्य वार्त्ता एटले स्त्रीयादिकनी कथा तेपण न करे. तथा पासणिएणयके० प्रश्न नकरे

इति प्रशस्योजोनस्तं च नकुर्यात् । तथा जात्यादिनिर्मदस्थानैर्लघुप्रकृतिं पुरुषमुत्क र्षयतीत्युत्कर्षकोमानस्तमपि न कुर्यादिति संबंधः । तथाऽतथ्यैवस्थितोऽपि मुखदृष्टि जंगविकारैः प्रकाशी जवतीति प्रकाशः क्रोधस्तं च (माहणेत्ति) साधुर्न कुर्यात् । तेषां क पायाणां यैर्महात्मन्निर्विवेकः परित्यागऋाहितो जनितस्तएव धर्मं प्रति प्रणताइति । य दिवा तेषामेव सत्पुरुषाणां सुष्ठु विवेकः परिज्ञानरूपऋाहितः प्रथितः प्रसिद्धिं गतस्त एवच धर्मं प्रति प्रणताः । यैर्महासत्वैः सुष्ठु जुष्टं सेवितं । धूयतेऽष्टप्रकारं कर्म येन तद्धूतं सं यमानुष्ठानं । यदिवा यैः सदनुष्ठायिभिः (सुजोसिअंति) सुष्ठु क्षिप्तं धूननार्हत्वात् धूतं कर्मेति ॥ २९ ॥ अपिच (अणिहेइत्यादि) स्निह्यतइतिस्निहः । नस्निहः अस्निहः सर्व त्र ममत्वरहितइत्यर्थः । यदिवा परीषहोपसर्गैर्निहन्यतेइतिनिहः ननिहोऽनिहउप सर्गैरपराजितइत्यर्थः । पाठांतरंवा । (अणहेति) नाऽस्याऽघमस्तीत्यनघोनिरवद्यानु ष्ठायीत्यर्थः । सह हितेन वर्ततइति सहितः सहितोयुक्तोवा ज्ञानादिभिः स्वहितआ त्महितोवा सदनुष्ठानप्रवृत्तेः । तामेव दर्शयति । सुष्ठु संवृतइंद्रियनोइंद्रियैर्विस्रोत सिकारहितइत्यर्थः । तथा धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्तेनाऽर्थः प्रयोजनं सएवाऽर्थस्तस्यैव सद्भि रर्थ्यमाणत्वात् धर्मार्थः सयस्याऽस्तीति सधर्मार्थी । तथोपधानं तपस्तत्र वीर्यवान् सए वंभूतो विहरेत् संयमानुष्ठानं कुर्यात् । समाहितेंद्रियः संयतेंद्रियः । कुतएवं । यतआ त्महितं दुःखेनाऽसुमता संसारे पर्यटता अकृतधर्मानुष्ठानेन लभ्यते अवाप्यतइति । त थाहि । नपुनरिदमतिदुर्लभ,मगाधसंसारजलधिविभ्रष्टं । मानुष्यं खद्योतकतडिल्लताविल सितप्रतिमं ॥ १ ॥ तथाहि । युगसमिलादिदृष्टांतनीत्या मनुष्यजवएव तावत् दुर्लभ स्तत्राऽप्यार्यक्षेत्रादिकं दुरापमित्यतआत्महितं दुःखेनाऽवाप्यतइति मंतव्यं । अपिच । भू तेषु जंगमत्वं, तस्मिन् पंचेंद्रियत्वमुत्कृष्टं ॥ तस्मादपि मानुष्यं मानुष्येप्यार्यदेशश्च । १ । देशे कुलं प्रधानं, कुले प्रधाने च जातिरुत्कृष्टा ॥ जातौ रूपसमृद्धी रूपे च बलं विशिष्ट तमं ॥२॥ जवति बले चायुष्कं प्रकृष्टमायुष्कतोऽपि विज्ञानं । विज्ञाने सम्यक्त्वं सम्यक्त्वे शीलसंप्राप्तिरिति ॥ ३ ॥ एतत्पूर्वश्चाऽयं, समासतोमोक्षसाधनोपायः । तत्रच बहु संप्रा प्तं, जवद्भिरल्पं च संप्राप्यं ॥ ४ ॥ तत्कुरुतोद्यममधुना मदुक्तमार्गे समाधिमाधाय ॥ त्यक्त्वा संगमनार्यं, कार्यं सद्भिः सदा श्रेयइति ॥ ५ ॥ ३० ॥

णहि णूण पुरा अणुस्सुतं, अडवा तं तह णो समुठियं ॥ पा ठांतरं अडवा अवितहणो अणुठिअं॥मुणिणा सामाइ आहितं, नाएणं जगसवदंसिणा॥३१॥एवं मत्ता महंतरं,धम्ममिणं सहिया बहू जणा॥ गुरुणो ठंदाणुवत्तगा,विरया तिन्न महोघमाहितंतिबेमि॥३२

म्यक्क्रियावान् स्यादिति । तद्दर्शयति । कृता स्वन्यस्ता क्रिया संयमानुष्ठानरूपा येन सकृतक्रियस्तथाभूतश्च। नचाऽपि मामकोममेद मद्दमस्य स्वामीत्येवं परिग्रहाग्रही भवेदिति॥२८॥

छन्नं च पसंस णोकरे, नय उक्कोस पगास माहणे ॥ तेसिं सुविवेगमाहिए,पण याजेहिं सुजोसिअं धुयं॥ २ए ॥ अणिहे सहिए सुसंवुमे, धम्मठी उवहाण वीरिए ॥ विहरेज्ज समाहि इंदिए, आत्तहिअं खु डुहेण लप्नइ ॥ ३० ॥

अर्थ–तथा चारित्रिउ होयते छन्नं के० माया अने पसंस के० लोभ ते णोकरे के० नकरे, तथा उक्कोस के० उत्कर्ष एटले मान तथा पगास के० प्रकाश एटले क्रोध तेपण माहणे के० साधु ते नय के० नकरे, तेसिं के० ते क्रोधादिकनो सुविवेग के० परित्याग आहिए के० महांत पुरुषे कह्यो तेहिज धर्मनेविषे पणया के० सावधान थया एवा जेहिं के० जे महासत्ववंत पुरुष तेणे धुयं के० संयमानुष्ठान सुजोसियं के० सेव्युं ते साधु जाणवा ॥ २ए ॥ अणिहे के० स्नेहरहित तथा सहिए के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी संयुक्त अने सुसंवुमे के० सुसंवृत एटले संवरेसहित प्रवर्त्ततो तथा धम्मठी के० धर्मनो अर्थि तथा उवहाण के० उपधान एटले तपविशेष तेनेविषे वीरिए के० बलवीर्यनो फोरवनार संयम पालतो समाहिइंदिए के० समाहित इंद्रिउ एटले इंद्रिउ वश करीछे जेणे, एवो छतो विहरेज्जा के० विचरे केमके संसारमांहे भमता खु के० निश्चे आत्तहियं के० आत्महित जे छे, ते डुहेणलप्नइ के० डुःखेकरी लभ्यमान थायछे ॥३०॥

॥ दीपिका–(छन्नंति) मायां न कुर्यात् । प्रशस्यते सर्वैरिंद्रियैरिति प्रशस्योलोभस्तंच उत्कर्षमानं प्रकाशंक्रोधंच माहनः साधुर्न कुर्यादिति सर्वत्र संबंधः । तेषां कषायाणां यैर्महात्मनिर्विवेकः परित्यागआहितोजनितस्तएव धर्मंप्रति प्रणताः प्रह्वीभूताः । अथवा तेषां सत्पुरुषाणां सुविवेकआहितः प्रथितः । यैः सत्पुरुषैर्जुष्टं सेवितं । धूयते क्षिप्यते कर्म येन तद्धूतं संयमानुष्ठानं।(अथवा यैः सुजोसिअंति)सुष्ठु क्षपितं धूतं कर्मेति ॥२ए ॥ (अणिहः अस्निहोममत्वरहितः परीषहोपसर्गैर्न निहन्यतइत्यनिहोवा । अणहेतिपाठेतु अनघो निरवद्यः सहितोहितयुक्तः स्वहितोवा सुसंवृतोधर्मार्थी । उपधानं तपस्तस्य वीर्यवान् समाहितेंद्रियः संयतेंद्रियोविरहेत् । कुतएवं यतआत्महितं डुःखेन जीवैर्लभ्यते । यतो दशदृष्टांतैर्मानुष्यादिकं डुर्लभमिति ॥ ३० ॥

॥ टीका–किंच (छन्नमित्यादि) (छन्नंति) माया तस्याः स्वाभिप्रायप्रछादनरूपत्वात् तां न कुर्यात् । चशब्द उत्तरापेक्षया समुच्चयार्थः । तथा प्रशस्यते सर्वैरप्यविगानेनाद्रियत

रोराचार्यादेस्तीर्थंकरस्य वा तदानुवर्त्तकास्तदुक्तमार्गानुष्ठायिनो विरताः पापेभ्यः कर्मभ्यः संतस्तीर्णासहौघमपारं संसारसागरमेवमाख्यातं मया भवतामपरैश्च तीर्थंकृद्भिरन्येषां. । इ तिशब्दः परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत्॥२१॥वैतालीयस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः॥२॥

॥ अथ वैतालीयाध्ययनस्य तृतीयोद्देशकस्य प्रारंभः ॥

संवुडकम्मस्स भिक्खुणो, जं दुक्खं पुठं अबोहिए ॥ तं संजमओव चिज्जई, मरणं हेच्च वयंति पंडिया ॥१॥ जे विन्नवणा अजोसिया, संतिन्नेहिं समं विद्याहिया ॥ तम्हा उद्धंति पासहा, अदक्खुकामाइरोगवं ॥ २ ॥

अर्थ—हवे त्रीजो उद्देशो प्रारंभियेछैयें. बीजा उद्देशामां चारित्र पालवुं कह्युं ते चारित्र पालतां कदाचित् परिसह आवेतो सहन करवा एवो भाव कहेछे, संवुड के० संवर्याछे कम्मस्स के० मिथ्यात्वादिक कर्म जेणे एवा भिक्खुणो के० साधुने जंदुक्खं के० जे दुःख भोगवतां दोहिलां अथवा तेनां कारण जे अष्ट प्रकारना कर्म अबोहिए के० अज्ञानपणे पुठं के० बांध्यांछे, निकाचित कर्याछे तंके० ते संजमओ के० सत्तर प्रकारना संयमे करी चिज्जई के० क्षणे क्षणे खुटेछे; जेम तलावनुं पाणी सूर्यना किरणे करी सर्वदा क्षणे क्षणे खूटेछे, तेम चारित्रियानां कर्म ते तप अने संयमे करी खूटेछे, मरणं हेच्चपंडिया के० तथा संवृत्ति आत्मा ते पंडित मरण एटले जन्म, जरा, मरण अने शोकादिक छांडीने वयंति के० मोक्षे पोहोचे. अथवा एरीते वयंति पंडिया के० जे पंडित विवेकी सर्वज्ञ छेते कहेछे. ॥१॥ हवे जे विरति रुडा अनुष्ठानना करनारछे, ते ते हिज भवे मोक्षे जाय. ते आश्री कहेछे. जे के० जे महासत्ववंत पुरुष विन्नवणाके० जे कामार्थि पुरुषे विनंती कराय ते कारणमाटे विन्नवणा शब्दे स्त्री कहिए. तेने अजो सियाके० नसेवे तथा रुडे आचारे करी संतिन्नेहिं के० संतीर्ण शब्दे संसार थकी मूकाणा स मवि विहिया के० सरखा कह्या तम्हा के० तेकारणे उद्धंति के० उंचुं एवुं जे मोक्ष तेने पास हा के० जोयुं वली जेणे अदक्खूकामाइरोगवं के० कामभोग जे छे तेने रोगनीपरे दीठा॥२॥

॥ दीपिका—उक्तो द्वितीयोद्देशकः सांप्रतं तृतीयः समारभ्यते तस्यायमधिकारः । पूर्वं विरताइत्युक्तं तेषांच कदाचित् परीषहाअपि उदीर्येरन् ते सम्यक् सोढव्याइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्येदमादिसूत्रं ॥ (संवुडेति) संवृतं निरुद्धं कर्म येन तस्य संवृतकर्मणः साधोर्दुःखं यत् स्पृष्टं बद्धं तदबोधिना अज्ञानेनोपचितं सत्संयमतोऽपचीयते क्षीयते । ते संवृतात्मानोमरणं उपलक्षणाज्जातिशोकादिकं च हित्वा त्यक्त्वा मोक्षं व्रजंति पंडिताः ॥ १ ॥ (जेवीति) । कामार्थिभिर्विज्ञाप्यंते प्रार्थ्यंतइति विज्ञापनास्त्रियस्ताभि

अर्थ—हवे ए जीव क्यांए जे नथी पाम्यो ते देखाडेछे. जे श्रीवीतरागे संयमानुष्ठान कह्युं. ते पुराके० पूर्वे ए जीवे णूणअणुस्सुतंणहिके० निश्चेंथकी सांभल्युं पण नथी अडुवाके० अथवा तंके० ते धर्म कदापि तह के० तथा णोसमुठियं के० रुडीरीते पाल्युं पण नथी मुणिणा के० महर्षियें ज्ञातपुत्रे सामाइआ के० सामायिकादिक घणां डुर्लभ छे, एरीते आहितं के० कह्यां ते नाएणं के० ज्ञातपुत्र जे श्रीमहावीर जगसवदंसिणा के० जगतमां सर्वदर्शी तेणे कह्युं ॥ ३१ ॥ एवो जाणी जे करवुं ते कहेछे. एवंमत्तामहंतरं के० एम पूर्वोक्त प्रकारे आत्महित डुर्लभ जाणीने तथा धम्ममिणं के० धर्मनो ए महांतआंतरो एटले धर्मनुं विशेष जाणीने सहिया के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्र सहित बहु के० घणा एवा हलवा कार्मे जणा के० लोक ते गुरुणो छंदाणुवत्तगा के० गुरुने छंदे प्रवर्त्तता एटले गुरूपदिष्ट यथोक्त संयमने पालता विरया के० पापथकी विरत ते महोघ के० महोटो जेनो प्रवाह छे, एवा संसारसमुड् थकी तिन्न के० तस्या. एरीते आहितं के० श्रीतीर्थंकर गणधरे कह्युं तिबेमि एटले पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इति श्रीवैतालियाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ दीपिका—(णहिणूणेति)। यन्मुनिना ज्ञातेन श्रीवीरेण जगतः सर्वभावदर्शिना सर्वज्ञेन सामायिकादि आहितमाख्यातं तन्नूनं निश्चितं पुरापूर्वं जीवैर्नहि अनुश्रुतं श्रवणपथमागतं। अथवा श्रुतमपि नसमुत्थितं यथावन्नानुष्ठितं ॥ ३१ ॥ (एवमिति) एवमात्महितं डुर्लभं मत्वा (महंतरंति) मानुष्यादिकमवरं ज्ञात्वा एनं जैनं धर्मंच स्वहिताबहवोजना लघुकर्माणोगुरोश्छंदानुवर्तकास्तडुक्तमार्गानुष्ठायिनोविरताः पापेभ्यइत्याख्यातं तीर्थकृद्भिः। इतिशब्दः समुच्चयार्थः। ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ टीका—एतच्च प्राणिभिर्न कदाचिदवाप्तपूर्वमित्येतद्दर्शयितुमाह ॥ (णहिणूणेत्यादि)। यदेतन्मुनिना जगतः सर्वभावदर्शिना ज्ञातपुत्रीयेण सामायिकाद्याहितमाख्यातं तन्नूनं निश्चितं। नहि नैव पुरापूर्वं जंतुभिरनुश्रुतं श्रवणपथमायातं। अथवाश्रुतमपि तत्सामायिकादि यथावस्थितं तथा नाऽनुष्ठितं। पाठांतरंवा। (अवितहत्ति) । अवितथं यथावन्नाऽनुष्ठितमतः कारणादसुमतामात्महितं सुडुर्लभमिति ॥ ३१ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह । (एवंमत्ताइत्यादि)। एवमुक्तरीत्याऽऽत्महितं सुडुर्लभं मत्वा ज्ञात्वा धर्माणां च महदंतरं धर्मविशेषं कर्मणोवा विवरं ज्ञात्वा । यदिवा (महंतरंति) मनुष्यार्यक्षेत्रादिकमवसरं सदनुष्ठानस्य ज्ञात्वा एनं जैनं धर्मं श्रुतचारित्रात्मकं सह हितेन वर्ततइति सहिताज्ञानादियुक्ताबहवोजनालघुकर्माणः समाश्रिताः संतोगु

अग्गं वणिएहिं आहियं धारंति राइणिया इह ॥ एवं परमा महव्वया, अ
क्खायाउ सराइन्नोयणा ॥३॥ जे इह सायाणुगा नरा, अप्नोववन्ना कामे
हिं मुच्छिया ॥ किवणेणसमं पगप्भिया, न विजाणंति समाहिमाहितं ॥४॥

अर्थ—वली उपदेश आश्री कहेछे. जेम वणिएहिं के० वणिके अग्गंके० अग्र एटले प्रधान एवां रत्नवस्त्राभरणादिक देशांतर थकी, आहियंके० आण्या तेने इह के० आमनुष्यलोकमांहे राइणिया के० राजा अथवा मोहोटा व्यवहारवंतपुरुषजे होय तेज धारंति के० धारण करेछे एटले पहेरेछे एवं के० एप्रकारे परमा के० प्रधान रत्नतुल्य एवाजे महव्वया के० पांच महाव्रत ते सराइन्नोयणा के० छठारात्रीभोजन विरमण सहित छ व्रत ने अक्खा याउ के० आचार्ये आण्या तेने साधुज धारणकरे अने सारीरीते पाले ॥३॥ जे के० जे इह के० आजगतने विषे सायाणुगा के० सुखशिलीया त्रण गारवेंकरी अप्नोववन्ना के० अध्युपपन्न एटले सहित तथा कामेहिंमुच्छिया के० कामभोगने विषे मूर्छित ते किवणे णसमं के० कृपण एटले दीन, कायर सरखा पगप्भिया के० धीठा एटले अल्पदोषे अमारो निर्मल संयम शी रीते मलिन थशे? एवी रीते धृष्टपणुकरनार जे होय ते समाहिमाहितं के० श्रीवीतरागनो कह्यो एवो जे समाधिनो मार्ग तेने नविजाणंति के० नजाणे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—(अग्गमिति) अग्रं प्रधानं रत्नाभरणादिकं वणिग्भिर्देशांतरादाहितं ढौकितं राजानस्तत्तुल्याइह मनुष्यलोके धारयंति बिभ्रति । एवं रत्नतुल्यानि परमाणि प्रधानानि महाव्रतानि पंचसरात्रिभोजनानि त्रिरात्रिभोजनविरमणषष्ठानि आख्यातान्याचार्यैरि ति तानि महासत्वाः साधवोधारयंति नान्ये इति तात्पर्यार्थः ॥ ३ ॥ (जेइहेति)। ये इह मनुष्यलोके सातानुगाः सुखशीलानराऋद्धिरससातागौरवेष्वध्युपपन्नागृद्धा स्तथा कामेषु इच्छामदनेषु मूर्छिताः सतृष्णाः संतः कृपणेन दीनेन इंद्रियपराजितेन समास्तत्कामा सेवने प्रगल्भिताधृष्टतां गताः किमनेनाऽसम्यक् प्रत्युपेक्षणादिस्तोकदोषेणास्मच्चारित्रविराधना भाविनीत्येवं प्रमादवंतोधृष्टाः शनैः समस्तमपि संमलिनयंति । एवंभूतास्ते समाधिं धर्मध्यानादिकमाख्यातं कथितमपि नजानंति ॥ ४ ॥

टीका—पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह । (अग्गंवेत्यादि) अग्रं वर्यं प्रधानं रत्नवस्त्राभरणादिकं । तद्यथा वणिग्भिर्देशांतरादाहितं ढौकितं राजानस्तत्कल्पाईश्वरादयः इहाऽस्मिन्मनुष्यलोके धारयंति बिभ्रति एवमेतान्यपि महाव्रतानि रत्नकल्पानि आचार्यैराख्यातानि सरात्रिभोजनविरमणषष्ठानि साधवोबिभ्रति । तुशब्दः पूर्वरत्नेभ्यो विशेषापादकइति । इदमुक्तं भवति । यथा प्रधानरत्नानां राजानएव महाव्रतरत्नानां

यें अजुष्टाअसेवितास्ते संतीर्णैर्मुक्तैः समं व्याख्याताः । अतीर्णाअपि ते संसारं तीर्णाइव स्यु रित्यर्थः ॥ तस्मादूर्ध्वंमोक्षं यूयंपश्यत ये च कामान् रोगवत् रोगतुल्यान् अज्ञाकुर्द्दष्ट वंतस्तेपि तीर्णसमाइत्यपि पश्यत । यतः पुप्फफलाणं च रसं, सुराइमंसस्स महिलि आणं च ॥ जाणंतो जे विरया, ते डुक्करकारएवंदे ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तोद्दितीयोद्देशकः सांप्रतं तृतीयः समारन्यते ॥ अस्यचाऽयमन्निसंबंधः । इहाऽनंतरोद्देशकांते विरताइत्युक्तं तेषांच कदाचित्परीषहाः समुदीर्येरन्नतस्तत्सहनं विधेयमित्युद्देशार्थाधिकारोऽपि निर्युक्तिकारेणाऽनिहितः । यथाऽज्ञानोपचितस्य कर्मणोऽपचयोन्नवतीति सच परीषहसहनादेवेत्यतः परीषहाः सोढव्याइत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्योद्देशकस्याऽदिसूत्रं । (संवुमकम्मस्सेत्यादि) । संवृतानि रुद्धानि कर्माण्यनुष्ठानानि सम्यगुपयोगरूपाणि वा मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगरूपाणि वा यस्य निक्षोः साधोः सतथा तस्य यत् डुःखमसद्वेद्यं तदपादानन्नूतं वाऽष्टप्रकारं कर्म । (स्पृष्टमिति) बद्धस्पृष्टनिकाचितमित्यर्थः । तच्चाऽत्राबोधिना अज्ञानेनोपचितं सत् संयमतोमौनींद्रोक्तात् सप्तदशरूपादनुष्ठानादपचीयते प्रतिक्षणं क्षयमुपयाति । एतडुक्तं नवति । यथा तटाकोदरसंस्थितमुदकं निरुद्धापरप्रवेशद्वारं सदादित्यकरसंपर्कात् प्रत्यहमपचीयते । एवं संवृताश्रवद्वारस्य निक्षोरिंद्रिययोगकषायं प्रति संलीनतया संवृतात्मनः सतः संयमानुष्ठानेन चाऽनेकन्नवाज्ञानोपचितं कर्म क्षीयते । ये च संवृतात्मानः सदनुष्ठायिनश्च ते हित्वा त्यक्त्वा मरणं मरणस्वन्नावमुपलक्षणत्वात् जातिजरामरणशोकादिकं त्यक्ता मोक्षं व्रजंति पंडिताः सदसद्विवेकिनः । यदि वा पंडिताः सर्वज्ञाएवं वदंति यत् प्रागुक्तमिति ॥ १ ॥ येऽपिच तेनैवं न्नवेन च मोक्षमाप्नुवंति तानधिकृत्याह । (येविन्नवणेत्यादि) ये महासत्वाः कामार्थिनिर्विज्ञाप्यंते यास्तदर्थिन्यो वा कामिनं विज्ञापयंति ताविज्ञापनाः स्त्रियस्तानिरजुष्टाअसेविताः क्षयं वा अवसायलक्षणमतीतास्ते संतीर्णैर्मुक्तैः समं व्याख्याताः । अतीर्णाअपि संतोयतस्ते निष्किंचनतया शब्दादिषु विषयेष्वप्रतिबद्धाः संसारोदन्वतस्तटोपांतवर्तिनोन्नवंति । (तस्मादूर्ध्वमिति) मोक्षं योषित्परित्यागादूर्ध्वं यन्नवति तत्पश्यत यूयं । येच कामान् रोगवद्व्याधिकल्पान् अज्ञाकुर्द्दष्टवंतस्ते संतीर्णसमाव्याख्याताः । तथाचोक्तं । पुप्फफलाणंचरसं, सुराइमंसस्समहलियाणंच ॥ जाणंताजेविरया, तेडुक्करकारएवंदे ॥ १ ॥ तृतीयपादस्य पाठांतरं वा । उड्ढंतिरियंअहेतहा. ऊर्ध्वमिति सौधर्मादिषु तिरियमिति तिर्यक्लोके अध इति न्नवनपत्यादौ येकामास्तान् रोगवदज्ञाकुर्यै ते तीर्णकल्पाव्याख्याताइति ॥ २ ॥

ह्यतीतिवाहः शाकटिकस्तेनाऽवहन् गौः प्रतोदादिना कृतः प्रेरितोपि अबलोविषमपथे गंतुमसमर्थः स्यात् सचांतशोमरणांतमपि यावत् अल्पस्यामाऽल्पसामर्थ्योनोजारं वोढुं शक्नोति एवंभूतश्चतत्रैव पंकादौविषीदति ॥ ५ ॥ दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तदृष्टांतेन कामानां शब्दादीनां या गवेषणा प्रार्थना तस्यां विद्वान् निपुणः कामप्रार्थनासक्तोऽद्य श्वोवा संस्तवं कामसंबंधं प्रजह्यात् । नवा बलीवर्दइव विषममार्गकामान त्यक्तुमलं । किंच नवैहिकामुष्मिकापायभीरुः कामी भूत्वा प्राप्तानपि कामान् कामयेताऽभिलपेत वैरस्वामी जंबूस्वामिनामादिवत् तथाक्षुल्लककुमारवत् कुतश्चिन्निमित्तात् । सुष्ठु गाइयं सुष्ठुवाइयं सुनेच्चिअंसामसुंदरि ॥ अणुपालिअदीहराइअं जसुमिणंते मापमायह । इत्यादि प्रतिबुद्धोलब्धानपि कामान् लब्धसमान् मन्यमानोनिस्पृहःस्यात् ॥ ६ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह (वाहेणेत्यादि) व्याधेन लुब्धकेन (जहावत्ति) यथा (गवत्ति) मृगादि. पशुर्विविधमनेकप्रकारेण कूटपाशादिना कृतः परवशीकृतः श्रमं वा ग्राहितः प्रणोदितोऽप्यबलोभवति जातश्रमत्वात् गंतुमसमर्थः । यदिवा वाह्यतीति वाहः शाकटिकस्तेन यथावदवहन् गौर्विविधं प्रतोदादिना कृतः प्रचोदितोऽप्यबलोविषमपदादौ गंतुमसमर्थोभवति । सचांऽतशोमरणांतमपि यावदल्पसामर्थ्याद्भाऽतीव वोढुं शक्नोति । एवंभूतश्चाऽवलोभारं वोढुमसमर्थस्तत्रैव पंकादौ विषीदतीति ॥ ५ ॥ दार्ष्टांतिकमाह (एवमित्यादि) एवमनंतरोक्तया नीत्या कामानां शब्दादीनां विषयाणां या गवेषणा प्रार्थना तस्यां कर्त्तव्यायां विद्वान् निपुणः कामप्रार्थनासक्तः शब्दादिपंके मग्नः सचैवंभूतोऽद्य श्वोवा संस्तवं परिचयं कामसंबंधं प्रजह्यात् । क्लिल्येवमध्यवसाय्येव सर्वदाऽवतिष्ठते।नच तान् कामान् अवलोबलीवर्दवत् विषमं मार्गं त्यक्तुमलं । किंच नचैहिकामुष्मिकापायदर्शितया कामी भूत्वोपपन्नानऽपि कामान् शब्दादिविषयान् वैरस्वामिजंबूनामादिवद्वा कामयेताभिलपेदिति । तथा क्षुल्लककुमारवत् कुतश्चिन्निमित्तात् । सुष्टुगाइयमित्यादिना प्रतिबद्धोलब्धानप्यप्राप्तानपि कामान् लब्धसमान् मन्यमानोमहासत्वतया तन्निस्पृहोभवेदिति ॥ ६ ॥

मापच्छ असाधुता भवे, अच्चेही अणुसास अप्पगं ॥ अहियंच असाहु सोयती, संथणाती परिदेवती बहु ॥ ७ ॥ इह जीवियमेव पासहा, तरुणे एव वाससयस्स तुट्टती ॥ इत्तरवासेय बुज्झह, गिद्धनरा कामेसु मुच्छिया ॥८॥

अर्थ–हवे शावास्ते कामभोगनो त्याग करवो ते कहेछे. मापच्छ के० रखे, पछी मरणकाले भवांतरने विषे ए कामभोगनी सेवाये करी असाधुताभवे के० असाधु

भाजनं एवं महाव्रतरत्नानामपि महासत्वाएव साधवोभाजनं नान्ये इति ॥३॥ किंच (जेइहेत्यादि) ये नरालघुप्रकृतयइहाऽस्मिन् मनुष्यलोके सातं सुखमनुगच्छंतीति सातानुगाः सुखशीलाऐहिकामुष्मिकाऽपायभीरवः समृद्धिरससातागौरवेष्वध्युपपन्नागृध्राः। तथा कामेषु इच्छामदनरूपेषु मूर्छिताः कामोत्कटतृष्णाः। कृपणोदीनोवराकःकइंद्रियैः पराजितस्तेन समास्तुल्यकामासेवने प्रगल्भिताधृष्टतां गताः। यदिवा किमनेन स्तोकेन दोषेणाऽसम्यक्प्रत्युपेक्षणादिरूपेणाऽस्मत्संयमस्य विराधनं भविष्यत्येवं प्रमादवंतः कर्तव्येष्ववसीदंतः समस्तमपि संयमं पटवन्मणिकुट्टिमवद्वा मलिनीकुर्वंति। एवंभूताश्च ते समाधिधर्मध्यानादिकमाख्यातं कथितमपि न जानंतीति ॥ ४ ॥

वाहेण जहा व विछए, अबले होइ गवं पचोइए॥ से अंतसो अप्पथामए नाइ वहइ अबले विसीयति ॥ ५ ॥ एवं कामेसणं विऊ अज्जसुए पयहेज्ज संथवं ॥ कामी कामेण कामए, लद्धेवावि अलद्धकएहई ॥ ६ ॥

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेछे. जहाव के० जेम वाहेणके० व्याध एटले आहेडी ते मृगादिक पशुने विछएके० त्राशदेतो छतो ते गवंके० मृगादिक अबले होइके० बलरहित थाय. क्यांए जइ शकेनहीं. अथवा वाहेणके० गाडानो वाहक एटले सांधडीउं तेणे जेम विषम मार्गने विषे गवंके० बलदने पचोइतेके० पराणे प्रेरणा करी खेड्यो छतो बलरहित थायः पछी से के० ते बलदने अंतसो के० मरणांत सुधी जो कष्ट आपे तो पण अप्पथामए के० अल्प सामर्थ्यपणाने लीधे नाइवहइके० चाली नशके. अबलेविसीयति के० निर्बलपणाथी तेहिज कादवमां विषम मार्गे खूतो रहे ॥५॥ हवे ए दृष्टांत पुरुष साथे मेलवेछे' एवं के० ए पूर्वोक्त न्याये काम के० शब्दादिक विषय तेनी एसणं के० गवेषणा एटले प्रार्थना तेनेविषे विऊ के० निपुण आसक्त छतो ते पुरुष सिदाय परंतु कामभोगने छांमी नशके; कामभोगरूप कर्दमने विषे खुतो एवो छतो अज्जसुएके० आज अथवा काले संथवं के० ए कामभोगनो संबंध पयहेज्जके० छांमीश. एम चिंतवे; पण निर्बल बलदनी परें छांमी नशके एमजाणी संवेग आणीने कामी के० कामि पुरुषे कामेण के० कामभोग वांछवा नही वली कामएलद्धेवावि के० ते कामभोगने लाधा थका पण अलद्धकएहइ के० अणलाधा एटले अणपाम्या सरखा करे. कोइएक निमित्ते बुज्यो छतो जंबुस्वामि तथा वेरस्वामिनी पेरे निस्पृहीथाय. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—(वाहेणेति)। व्याधेन लुब्धकेन यथा(गवंति)। मृगादिपशुः विक्षतोविविधप्रकारेणक्षतः पीमितः प्रचोदितः श्रमं प्रापितः सन्नबलोगंतुमसमर्थः। अथवा वा

ऽत्यर्थं स्तनति सशब्दं निःश्वसिति । तथा परिदेवते विलपऽत्याक्रंदति । बव्हिति । हामातर्म्रियतइति त्राता नैवाऽस्ति सांप्रतं कश्चित् किंशरणं मेस्यादित्याह । डुष्कृतचरितस्य पापस्येत्येवमादीनि डुःखान्यऽसाधुकारिणः प्राप्नुवंतीत्यतोविषयानुषंगोन विधेयइत्येवमात्मनोऽनुशासनं कुर्विति संबंधनीयं ॥७॥ किंच (इहजीवियमेवेत्यादि) । इहाऽस्मिन् संसारे आस्तां तावदन्यज्जीवितमेव सकलसुखास्पदमनित्यताऽघ्रातं आवीचिमरणेन। प्रतिक्षणं विशरारुस्वनावं तथा सर्वायुःक्षयएव वा तरुणएव युवैव वर्षशतायुरप्युपक्रमतोध्यवसाननिमित्तादिरूपादायुपस्त्रुटयति प्रच्यवते । यदिवा सांप्रतं सुवव्हप्यायुर्वर्षशतं तच्च तदंते त्रुटयति । तच्च सागरोपमापेक्षया कतिपयनिमेषप्रायत्वात् इत्वरं वासकल्पं वर्तते स्तोकनिवासकल्पमित्येवं बुध्यध्वं यूयं । तथैवंनूतेऽप्यायुषि नराः पुरुषालघुप्रकृतयः कामेषु शब्दादिषु विषयेषु गृध्धाअध्युपपन्नामूर्छितास्तत्रैवाऽसक्तचेतसोनरकादियातनां स्थानमाप्नुवंतीति शेषः ॥ ८ ॥

जे इह आरंनिस्सया, आत्तदंमा एगंतलूसगा ॥ गंता ते पावलोगयं,
चिरायं आसुरियं दिसं ॥ए॥ एय संखय माहु जीवितं, तहविय बाल
जणो पगप्नई ॥ पच्चुप्पन्नेण कारियं, कोदठुं परलोकमागते ॥ १० ॥

अर्थ—जेइह के० जे आ मनुष्य लोकमांहे महामोहाकुलित पुरुष आरंन के० आरंन हिंसादिक सावद्यानुष्ठानने विषे निस्सिया के० निश्रित एटले आसक्तछे, ते पुरुष आत्तदंमा के० आत्माने दंमनार तथा एगंतलूसगा के० एकंत जीवना प्राणने लूसनार अथवा सद् अनुष्ठाननेलूसनार, गंताते पावलोगयं के० एवा पुरुष पापलोक एटले जे गतिमां पापकर्मना करनार जाय, ते गतिमां जशे किंबहुना चिरायं असुरियंदिसं के० चिरकाल सुधी नरकादिकना डुःख पामसे. यद्यपि ते अज्ञान कष्टने प्रनावे कदाचित् देवगति पामे तोपण असुरिगति एटले किल्बिषीयादिकनी गति पामे ॥ए॥ वली कहेछे एयसंखयमाहुजीवितं के० सर्वज्ञे एम कह्युंछे के, त्रुटयुं आयुष्य संधाय नही तहविय के० तोपण बालजणो के० बाल अज्ञानी लोक ते निर्विवेकी पणे पगप्नई के० धृष्टपणुं करेछे, ते कहेछे, कोइ एक पंमिते धर्मने विषे प्रेर्योछतो ते नरविवेकी पुरुष एम कहेछे के पच्चुप्पन्नेणकारियं के० अमारा प्रत्युत्पन्न जे वर्त्तमान सुख तेनी साथेज अमारो कार्य छे, कोणजाणे परलोकछे किंवा नथी कोदठुं परलोगमागते के० परलोकने कोण देखी आव्योछे, जे देखीने परलोकथी आव्यो होय ते अमोने कहेतो मान्य करीये इत्यादिक धृष्टपणानी वातो करे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका—जेइहेति। ये केचन इह लोके आरंननिःश्रिताआरंनसंबध्धाआत्मानं दंडयं

थकी दुर्गति गमनरूप थाय. एवुं जाणी पोतानो आत्मा विषयना संग थकी अ के० दूर करे तथा अणुसासअप्पगं के० पोताना आत्माने शीखवे के, रे जीव अ कर्मने प्रमाणे तुं दुर्गतियें गयो थको दुःखी थईश तथा अहियंचके० अत्यंत अ के० असाधु कर्मने प्रमाणे सोयती के० शोचकरीश संथणती के० हे जीव तुज रमाधार्मियें पीड्यो थको गाढा आकरा शब्द करीश, तथा परिदेवइबहु के० घणा ाप करीश. हे माय? हुं मरुंछुं, आ वखत मने राखनार कोइ नथी इत्यादिक क आक्रंद करीश एवुं कहीने आत्माने शीखामण आपे. ॥७॥ वली इहके० आ सं नांहे धनधान्यादिक पदार्थ तो दूररह्या, पण जीवियमेव के० एकलुं जीवितव्य पणुज ह के० देखो तेएवुं तो असाश्वतुं छे के, क्षणेक्षणे विनाशशीलछे. कोइक तो तरुणएव तरुण पणेज विनाशपामे वाससतस्सतुट्टती के० चालता समयमां घणुतो शो व आयुष्यछे, तेपण छेहेडे त्रूटेछे जेमाटे ते आयुष्य सागरोपमनी अपेक्षायेतो मेषो प्रायें इत्तरवासेय के० इत्वर एटले अल्प वर्ष सरखुं थाय. एवुं जाणीने रे जीव ह के० बुजो के, एवीरीतनो आयुष्यनो भरोशो छता पण गिद्धनराकामेसुमुछियाके० क पुरुष गृद्धछता कामभोगने विषे मूर्छित रहेछे? तेनरकादिक पीडाने पामेछे ॥८॥

॥ दीपिका—(मापछेति पश्चान्मरणकाले भवांतरेवा मानुषंगादसाधुता कुगतिरूपा ावेत् माप्राप्नुयादित्यतोविषयेभ्यआत्मानमत्येहि त्याजय । तथा आत्मानमनुशास्तिं । यथा हेजीव असाधुरशुभकर्मकारी अधिकं दुर्गतौ गतः शोचति । सच परमाधार्मिकैः र्थ्यमानस्तिर्यक्षु क्षुदादिवेदनाग्रस्तः स्तनत्याक्रंदति परिदेवते विलपति बहूपि इत्या नुशासनंकुरु ॥ ७ ॥ (इहेति) इह संसारे आस्तांतावदन्यत् । जीवितमायुरेवाऽनि पश्यत प्रतिक्षणमावीचीमरणसद्भावात् । तथा सर्वायुःक्षयात्तरुणएव त्रुटयति च्यव अथवा सांप्रतं सुबह्वप्यायुर्वर्षशतं तच्च सागरोपमापेक्षया कतिपयमेषोन्मेषप्रायत्वा त्वरवासकल्पं स्तोकवासतुल्यमिति बुध्यध्वं । एवंभूतेप्यायुषि गृद्धानराः कामे मूर्छिताश्चा ानरकादिपीडां लभंतइति शेषः ॥ ८ ॥

॥ टीका—किमिति कामपरित्यागोविधेयइत्याशंक्याह । (मापछेत्यादि) मापश्चान्मरण ले भवांतरेवा कामानुषंगादसाधुता कुगतिगमनादिकरूपा भवेत् प्राप्नुयादिति । अतो ायासंगादात्मानमत्येहि त्याजय । तथात्मानं चाऽनुशाध्यात्मनोऽनुशास्तिं कुरु । यथा ीव योह्यसाधुरसाधुकर्मकारी हिंसानृतस्तेयादौ प्रवृत्तः सन् दुर्गतोपतितोऽधिक र्थमेवं शोचति सच परमाधार्मिकैः कदर्थ्यमानस्तिर्यक्षु वा क्षुधादिवेदनाग्रस्तो

अर्थ–हवे एवुं धृष्टपणुं करे तेने उपदेश कहेछे, अहो अदक्कुव के० अंध सरखा पुरुषो दक्कुव के० त्रणभुवननो देखनार एवो सर्वज्ञजे श्रीवीतरागदेव तेनो आहियंके० कहेलो जे श्रीसिद्धांत तेने सद्दहसु के० सर्द्दहे, तुं केवोछे ? तोके, अदक्कुदंसणा के० अंध ज्ञानदृष्टीरहित एवाजे छे, तेमना दर्शनने विषे प्रवर्त्तनहारछे माटे तने बोलावियें छैयें के अहो ? अदक्कुदंसणा तुं श्रीवीतराग परमात्मानोभाष्युंजे सिद्धांत तेनाउपर श्रद्धाकरीने हंदि के० तेने गृहणकर अने आलोकना सुखटालीने परलोक उपर कोण भरोशो राखे, परलोकतो नथी इत्यादिकजे तुं बोलेछे, ते ताहारुं बोलवुं अयोग्यछे; केमके वर्त्तमानकाल टालीने अतीत अनागत नही मानीश तो पितामहादिक पुत्रपौत्रादिक एपण नथी, एम पण कहेवुंपडशे परंतु एवीरीतना ताहारा बोलवा थकी एम जाणीयें छैयें जे सु के० सुठु पणे तुं निरुद्धदंसणे के० निरुद्ध दर्शनेछे, एटले सर्वदा ज्ञानदृष्टीरहितछो, मोहणिज्जेणकडेण कम्मुणा के० मोहनीयकर्मेकरी अथवा ज्ञानावरणादिक कर्मेकरी ताहरो दर्शन रुंधाणुछे तेमाटे तुं जैनमार्ग सर्द्दहतो नथी, माटे ए तारो मत मूकीने सूत्रना सत्यमार्गनी सर्द्दहणा कर ॥ ११ ॥ वली उपदेश कहेछे एवा वचननो बोलनार डुक्कीके० डुःखीछतो मोहेपुणोपुणो के० वली वली मोह पामे एटले वली तेनेज समाचरे जे थकी संसार मांहे अनंतो काल परिभ्रमण करे. एवुं जाणी मोह मूकीने जे संयमने विषे प्रवर्त्ते ते उत्तम पुरुष जाणवो, निव्विदेज्जसिलोगपूयणं के० ते आत्मश्लाघा स्तुति लोकपूजा तथा वस्त्रादिक लाभना उत्कर्षने न वांछे, एटले ए सर्वनो त्यागकरे. एवं के० ते एम करतो सहितेहिं के० ज्ञानादिक सहित थको संजए के० संयती पाणेहिं के० सर्व प्राणीमात्रने आयतुलंके० पोताना आत्मा तुल्यकरी पासएके० देखे. ए रीते दया पाले ॥ १२ ॥

दीपिका–एवं नास्तिकेनोक्तेसत्युत्तरमाह । (अदक्कवेति) पश्यतीतिपश्यः नपश्योऽपश्योंधस्त द्वदंधवत् हेअंधतुल्य पश्येन सर्वज्ञेन आख्यातं सर्वज्ञागमं श्रद्धस्व प्रमाणीकुरु । तथाऽपश्यकस्यासर्वज्ञस्याऽभ्युपगतं दर्शनं येन सोपश्यकदर्शनस्तस्यामंत्रणं हेऽपश्यकदर्शन प्रत्यक्षस्यैकस्य प्रमाणस्यांगीकारे व्यवहारलोपः स्यात् तस्मादागमं प्रमाणमिति । कस्मादेवमुपदिश्यतइत्याह । (हंदीत्यादि) हंदिएवंगृहाण । हुशब्दोवाक्यालंकारे । मोहनीयेन स्वकृतेन कर्मणा सुष्ठु निरुद्धमावृतं दर्शनं सम्यगवबोधोयस्य ससुनिरुद्धदर्शनः। एवंविधः प्राणी सर्वज्ञोक्तं मार्गं नश्रद्दधते तस्मादेवं बहूपदिश्यतेइति ॥ ११ ॥ (डुःखीति) डुःखी प्राणी पुनः पुनर्मोहंयाति डुःखेन विवेकविकलोभवति । निर्विवेकीच पुनर्डुःखी स्यात् तस्मान्मोहं परित्यज्य श्लोकमात्मश्लाघां पूजनं च निर्विद्येत जुगुप्सेत । परिहरेदित्यर्थः । एवमुक्तनीत्या सहहितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादियुक्तोवा संयतः साधुः परैः प्राणिभिरा

तीत्यात्मदंडकाः । तथा एकांतेन लूषकाजंतूनां हिंसकास्ते पापलोकं नरकादिगतिं गंता रोयास्यंति चिररात्रं प्रनूतकालं तन्निवासिनोनवंति । तथा बालतपश्चरणादिना यद्यपि देवत्वप्राप्तिस्तथाप्यासुरींदिशं यांति किल्बिषिकादेवाऽधमाः स्युरित्यर्थः ॥ ए ॥ (नयेति । नचनैव संस्कृतमायुस्त्रुटितमायुर्न संस्कर्तुं संधातुं शक्यमेवमाहुः सर्वज्ञाः । तथापिच एवं सत्यपि बालजनोमूर्खलोकः सावद्यं कृत्यं कुर्वन् प्रगल्नतेऽसदनुष्ठानेनापि नलज्जते । एवं पापकर्माणि कुर्वन् परेण प्रेरितोवक्ति । प्रत्युत्पन्नेन वर्तमानकालेनास्माकं कार्यं अतीतानागतयोर्विनष्टाऽनुत्पन्नत्वादसत्वं तस्मादिह लोकएव विद्यते नपरलोके । यतः । एतावानेव लोकोयं यावानिंद्रियगोचरः । नद्रे वृकपदं पश्य य द्वदंत्यबहुश्रुताइति ॥ १० ॥

॥ टीका—अपिच (जेइहेत्यादि) ये केचन महामोहाकुलितचेतसइहाऽस्मिन्मनुष्यलोके आरंने हिंसादिके सावद्यानुष्ठानरूपे निश्चयेन श्रिताः संबद्धाअध्युपपन्नास्ते आत्मानं दंडयंतीत्यात्मदंडकास्तथैकांतेनैव जंतूनां लूषकाहिंसकाः सदनुष्ठानस्य वा ध्वंसकास्ते एवंनूतागंतारोयास्यंति पापं लोकं पापकर्मकारिणां योलोकोनरकादिश्चिररात्रमिति प्रनूतं कालं तन्निवासिनोनवंति । तथा बालतपश्चरणादिना यद्यपि तथाविधदेवत्वापत्तिस्तथाऽप्यासुराणामियमासुरी तां दिशं यांति । अपरे प्रेष्याः किल्बिषिका देवाऽधमानवंतीत्यर्थः ॥ ए ॥ किंच (णयसंखयेत्यादि) नचनैव त्रुटितं जीवितमायुः संस्कर्तुं संधातुं शक्यते एवमाहुः सर्वज्ञाः । तथाहि दंमकलियं करित्तावच्चंति डुराइउयद्रिवसाय आउसंचेह्लंता गयाय पुणोनाणनियत्तंति । तथाऽप्येवमपि व्यवस्थिते जीवानामायुषि बालजनोऽन्योलोकोनिर्विवेकतया असदनुष्ठाने प्रवृत्तिं कुर्वन् प्रगल्नते धृष्टतां यात्यसदनुष्ठाने नाऽपि लज्जतइत्यर्थः । सचाऽन्योजनः पापानि कर्माणि कुर्वन् परेण चोदितोधृष्टतया अलीकपांडित्यानिमानेनेदमुत्तरमाह । प्रत्युत्पन्नेन वर्तमानकालनाविना परमार्थतोऽतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेनाऽविद्यमानत्वात् कार्यं प्रयोजनं प्रेक्षापूर्वकारिनिस्तदेव प्रयोजनसाधकत्वादाद्रीयते । एवंच सतीह लोकएव विद्यते नपरलोक इति दर्शयति । कः परलोकं दर्शयति कं परलोकं कोदृष्ट्वेहायातस्तथाचोचुः । पिब खादच साधु शोनने यदतीतं वरगात्रि तन्न ते । नहि नीरुगतं निवर्तते समुदयमात्रमिदं कलेवरं । तथा एतावानेव पुरुषोयावानिंद्रियगोचरः॥नद्रे वृकपदं पश्य य द्वदंत्यबहुश्रुताइति ॥ १०॥

अदक्खुव दक्खुवाहियं, सद्दहसु अदक्खुदंसणा॥हंदि हु सुनिरुद्ध
दंसणे, मोहणिज्जेण कडेण कम्मुणा॥ ११॥ डुक्की मोहे पुणोपुणो,
निव्विंदेज्जसि लोगपूयणं ॥ एवं सहिते हियासए, आयतुलं पा
णेहिं संजए ॥ १२ ॥

गारंपिअ आवसे नरे, अणुपुव्वं पाणेहिं संजए ॥ समता सव्वत्त सुव्वते, देवाणं गछे सलोगयं ॥ १३ ॥ सोच्चा नगवाणुसासणं सच्चे तत्थकरेज्जुवक्कमं ॥ सव्वत्त विणीयमछरे, उंछं भिक्खु विसुद्धमाहरे ॥ १४

अर्थ–वली उपदेशांतर कहेछे. गारंपिअआवसेनरे के० गृहवासने विषे वसतो एवो मनुष्य तेपण अणुपुव्वं के० अनुक्रमे धर्म सांजली, श्रावकना व्रतादिकने अंगीकार करी, पाणेहिं के० जीवोने विषे संजए के० सम्यक्प्रकारे यत्न करतो, समतासव्वत्तसुव्वते के० सर्वत्र समता परिणामे वर्त्ततो एवीरीते गृहस्थ धर्मने पालतो थको पण देवाणंगछेसलोगयंके० देवलोकमां जाय. तो पछी यतिधर्म पालनारनो केवोजकहुं ॥ १३ ॥ वली कहेछे सोच्चाजगवाणुसासणं के०ते श्रीवीतरागनी आज्ञापूर्वक धर्म सांजलीने सच्चेतछकरे ज्जुवक्कमंके० तेनां आगमने विषे जेम कह्युंछे. तेम सत्य संयमने विषे उपक्रम एटलेउद्यम करे, सव्वछविणीयमछरेके० सर्वत्र मछररहित एवो थको जिक्खु के० साधुते उंछं के० माधुकरी वृत्तियें विसुद्धमाहरे के० शुद्ध एटले बेतालीश दोष रहित एवो आहार लीये. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–किंच । (गारंपीति) अगारं गृहमप्यावसन् गृहस्थोपि नरआनुपूर्व्या चारित्रप्रतिपत्त्यादिरूपया प्राणिषु जीवेषु संयतोहिंसानिवृत्तः । यतः सर्वत्र समता श्रूयते । यतौ गृहस्थेच समतैव जिनमतेऽनिधीयते तां कुर्वन् गृहस्थोपि देवानां लोकं गछेत् किंपुनर्यतिरिति ॥ १३॥ (सोच्चेति) नगवदनुशासनं जिनागमं श्रुत्वा तडुक्ते सत्ये संयमे उपक्रमं उद्यमं कुर्यात् । किंनूतः सर्वत्र उपनीतमत्सरोऽरक्तद्विष्टः (उंछंति) नैक्ष्यं शुद्धं दोषरहितमाहरेद्गृएहीयात् ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ टीका–किंच (गारंपियइत्यादि) । अगारमपि गृहमप्यावसन् गृहवासमपि कुर्वन् नरो मनुष्यः(आनुपूर्वमिति)आनुपूर्व्या श्रवणधर्मप्रतिपत्त्यादिलक्षणया प्राणिषु यथाशक्त्या सम्यक् यतः संयतस्तडपमर्दान्निवृत्तः । किमिति । यतः समता समजावः । आत्मपरतुल्यता सर्वत्र यतौ गृहस्थे च यदिचैकेंद्रियादौ श्रूयतेऽनिधीयते आर्हते प्रवचने तां च कुर्वन् सगृहस्थोऽपि सुव्रतः सन् देवानां पुरंदरादीनां लोकं स्थानं गछेत् किं पुनर्योमहासत्वतया पंचमहाव्रतधारी यतिरिति ॥ १३ ॥ अपिच । (सोच्चाइत्यादि) । ज्ञानैश्वर्यादिगुणसमन्वितस्य नगवतः सर्वज्ञस्य शासनमाज्ञामागमं श्रुत्वाऽधिगम्य तत्र तस्मिन्नागमे तडुक्तेवा संयमे सद्भ्योहिते सत्ये लघुकर्मा तडपक्रमं तत्प्राप्त्युपायं कुर्यात् । किंनूतः सर्वत्राऽपनीतोमत्सरोयेन सतथाऽसौरक्तद्विष्टः क्षेत्रवस्तूपधिशरीरनिष्पिपासः । तथा (उंछंति) नैक्ष्यं शुद्धं द्विचत्वारिंशद्दोषरहितमाहारं गृह्णीयादभ्यवहरेद्वेति ॥ १४ ॥

त्मतुलामात्मतुल्यत्वं पश्यन् यथाऽत्मनोदुःखमप्रियं सुखंच प्रियं एवं सर्वेपि प्राणिनईद्दशाएवेति ज्ञात्वा सर्वान् प्राणिनः पालयेदित्यर्थः ॥ १२ ॥

टीका–(अदक्कुवेत्यादि) । पश्यतीति पश्योनपश्योऽपश्योंऽधस्तेन तुल्यं कार्याकार्याविवेचित्वादपश्यवत्तस्याऽऽमंत्रणं हेऽपश्यवदंधसदृश प्रत्यक्षस्यैवैकस्याऽन्युपगमेन कार्याकार्यानभिज्ञ पश्येन सर्वज्ञेन व्याह्रतमुक्तं सर्वज्ञागमं श्रद्धस्व प्रमाणीकुरु प्रत्यक्षस्यैवैकस्याऽन्युपगमेन समस्तव्यवहारविलोपेन हंत हतोसि पितृनिबंधनस्याऽपि व्यवहारस्याऽसिद्धेरिति । तथाऽपश्यकस्याऽपि सर्वज्ञस्याऽन्युपगमं दर्शनं येनासाऽवपश्यकदर्शनस्तस्याऽमंत्रणं वा हेऽपश्यकदर्शन स्वतोऽर्वाकुदर्शी नवांस्तथाविधदर्शनप्रमाणश्च सन् कार्याकार्यविवेचितयांऽधवदनविष्यत् यदिसर्वज्ञान्युपगमं नाऽकरिष्यत् यदिवाऽदक्षोवाऽनिपुणो वा यादृशस्तादृशोवाऽचक्षुदर्शनमस्याऽसावचक्षुदर्शनः केवलदर्शनः सर्वज्ञस्तस्माद्यदवाप्यते हितं तत् श्रद्धस्व । इदमुक्तं नवति । अनिपुणेन निपुणेन वा सर्वज्ञदर्शनोक्तं हितं श्रद्धातव्यं । यदि वा हे अदृष्ट हेअर्वाक्दर्शन दृष्टाऽतीताऽनागतव्यवहितसूक्ष्मपदार्थदर्शिना यद्व्याह्रतमनिहितमागमं तंश्रद्धस्व । हेअदृष्टदर्शन अदक्षदर्शन इतिवा असर्वज्ञोक्तशासनानुयायिन् तमात्मीयमाग्रहं परित्यज्य सर्वज्ञोक्तेमार्गे श्रद्धानं कुर्विति तात्पर्यार्थः । किमिति सर्वज्ञोक्ते मार्गे श्रद्धानमसुमान्नकरोति । येनैवमुपदिश्यते तन्निमित्तमाह । हंदीत्येवं गृहाण । दुशब्दोवाक्यालंकारे । सुष्ठु अतिशयेन निरुद्धमावृतं दर्शनं सम्यक् अवबोधरूपं यस्य सः केनेत्याह । मोहयतीति मोहनीयं मिथ्यादर्शनादिज्ञानावरणीयादिकं वा तेन कृतेन कर्मणा निरुद्धदर्शनः प्राणी सर्वज्ञोक्तं मार्गं नश्रद्दधते ऽतस्तन्मार्गेश्रद्धानं प्रति चोद्यते इति ॥ ११ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमाह । (दुःखीत्यादि) दुःखमसातवेदनीयमुदयेन यत्प्राप्तं तत्कारणं वा दुःखयतीति दुःखं तदस्याऽस्तीति दुःखी सन् प्राणी पौनःपुन्येन मोहं याति सदसद्विवेकविकलोनवति । इदमुक्तंनवति । असातोदयात् दुःखमनुनवन्नार्तोमूढस्तत्करोति येन पुनः पुनः सुखी संसारसागरमनंतमस्येति तदेवंनूतं मोहं परित्यज्य सम्यगुत्थानेनोऽत्थाय निर्विद्येत जुगुप्सेत परिहरेदात्मश्लाघां स्तुतिरूपां तथा पूजनं वस्त्रादिलाभरूपं परिहरेत् । एवमनंतरोक्तरीत्या परिवर्त्तमानः सहहितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादियुक्तोवा संयतः प्रव्राजितोऽपरप्राणिभिः सुखार्थिभिरात्मतुलामात्मतुल्यतां दुःखाप्रियत्वसुखप्रियत्वरूपामधिकं पश्येत् आत्मतुल्यान् सर्वानपि प्राणिनः पालयेदिति ॥ १२ ॥

रमजत्कष्टआयततोदीर्घः सर्वकालजवनात् मोक्षस्तेनाऽर्थिकस्तदजिलाषी पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टोजवेदिति ॥ १५ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमाह (वित्तमित्यादि) वित्तं धनधान्यहिरण्यादि । पशवः करितुरगगोमहिष्यादयोज्ञातयः स्वजनामातापितृपुत्रकलत्रादयः तदेतद्वित्तादिकं बालोऽज्ञः शरणं मन्यते । तदेव दर्शयति । ममैते वित्तपशुज्ञातयः परिजोगे उपयोक्ष्यंते । तेषु चाऽर्जनपालनसंरक्षणादिना शेषोपद्रवनिराकरणेन परिहारेणाऽहंजवामीत्येवं बालोमन्यते । न पुनर्जानीते यदर्थं धनमिहंति तच्छरीरमशाश्वतमिति । अपिच । रिद्धी सहावतरला, रोगजराजंगुरं हयशरीरं ॥ तथा मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च । प्रतिजन्मनि वर्तंते कस्य माता पितापि वा ॥१॥ एतदेवाह । नोनैव वित्तादिकं संसारे कथमपि त्राणं जवति । नरकादौ पततोनापि रागादिनोऽपहृतस्य क्वचिच्छरणं विद्यतइति ॥१६॥

अप्नागमितंमि वा दुहे, अहवा उक्कमिते जवंतिए ॥ एगस्स गती
य आगती, विडमंता सरणं ण मन्नई ॥ १७ ॥ सव्वे सयकम्मक
प्पिया, अवियत्तेण दुहेण पाणिणो ॥ हिंमंति जयाउला सढा,
जाई जरा मरणेहिं जिहुता ॥ १८ ॥

अर्थ—वली उपदेश कही देखाडेछे. अप्नागमितंमिवादुहे के० पूर्वोपार्जित असाता वेदनीय कर्मना उदय थकी दुःख प्राप्त थयां छतां ते दुःख एकलोज जीव अनुजवेछे. पण ज्ञाति, स्वजन अथवा द्रव्य ते दुखः थकी मूकावी शकता नथी अहवाके० अथवा उक्कमितेजवंतिए के० मरण आवे छते पण एकलोज दुःख जोगवे तथा जवांतरने विषे पण एकलोज दुःख जोगवे तथा एगस्सगतीय आगती के० गति आगति पण एकलानेज होय, परंतु ते वखते धनादिक जे छे ते कोइ सरण न थाय विडमंता के० विवेकी पंमित जन एवी रीते जाणता थका सरणं णमन्नइ के० कोइनुं सरण करी माने नही ॥ १७ ॥ सव्वे के० संसारमांहे सर्व जीव सय के० पोताना करेला कम्म के० कर्मे करी कप्पिया के० एकेंद्रियादिकनी अवस्थाये कल्प्या छतां अवियत्तेणके० अव्यक्त संज्ञाये दुहेण के० अस्पष्ट शिरशूलादिक दुःखे करी दुःखीया छतां एवा पाणिणो के० प्राणीउ ते हिंमंति के० चतुर्गतिकरूप संसार मांहे अरहट्ट घटीने न्याये परिभ्रमण करेछे, ते ज योनीनेविषे जयाउला के० जयाकुल बिहीता थका तथा सढा के० शठ एटले अज्ञानी छता जाई जरामरणेहिं के० वली वली जाइ एटले जाति अने जरा तथा मरणे करी जिहुता के० पीडया थका रहेछे. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—(अप्नागमितंमिवेति) अन्यागते प्राप्ते दुःखेऽथवा उपक्रमकारणैरुपक्रांते क्षी

सवं नञ्चा अहिठिए, धम्मठी उवहाणवीरिए॥ गुत्ते जुत्ते सदाजये आय
परे परमायतठ्ठिते ॥ १५ ॥ वित्तं पसवोय नाईउ, तं बाले सरणं ति म
न्नइ ॥ एते मम तेसुवी अहं, नोताणं सरणं नविज्जई ॥ १६ ॥

अर्थ–वली उपदेश कहेछे ते साधु सवंके० सर्व हेय उपादेयवस्तुने नञ्चाके० जाणीने सर्व ज्ञोक्त संवररूप मार्गने अहिठ्ठिएके० अधितिष्ठेत् एटले आश्रये वली धम्मठीके० धर्मार्थी थको उवहाण के० उपधान एटले तपनेविषे वीरिएके० वीर्य फोरवे एटले तेमा बलवंत थाय पण तेमां वीर्य गोपवे नहीं वली गुत्तेजुत्ते के० मन वचन अने काय गुप्तिए गुप्त अने शुन्नयोगे युक्त थवानो सदा के० सर्वकाल आयपरे के० पोताने विषे अने परने विषे जयेके० यत्न करे परमायतठ्ठिते के०ते साधुपरमायतजे मोक्ष तेनो अर्थी जाणवो ॥ १५ ॥ वित्तं के० धनकनकादिक तथा पसवो के० पशु चतुष्पदादिक अने नाईउ के० ज्ञातिते स्वजन मातापितादिक तंके० तेनु बाले सरणंतिमन्नई के० जे बाल अज्ञानी होय ते सरणकरीमाने केवीरीते तोके एतेममतेसुवीअहं के० ए जेवित्तादिकछे ते माहाराछे हुं एनी रक्षा करनारछुं पण नोताणं सरणंनविज्जई के० एम न जाणे जे ए धनादिक जे छे, ते रोगादिक उपने थके अथवा डुर्गतिमां पडतां थका मने त्राणशरण नविद्यते एटले नथी. थवाना ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–(सच्चमिति) सत्यमार्गमिमं ज्ञात्वाऽधितिष्ठेदाश्रयेत् । धर्मार्थी उपधानं तपस्त त्र वीर्यवान् मनोवाक्कायगुप्तोज्ञानादिन्निर्युक्तः सदा यतेत आत्मनि परस्मिंश्च । किंन्नूतः परमउत्कृष्टआयतोदीर्घोमोक्षस्तेनार्थिकस्तदन्निलाषी ॥ १५ ॥ (वित्तमिति) वित्तं ध नं पशवस्तुरगादयः ज्ञातयः स्वजनामात्रादयः तदेतद्बालोमूर्खः शरणमिति मन्यते । कथमित्याह । एते वित्तादयोमम मदीयाअहं तेषु वित्तादिषु रक्षाकरणेन प्रवर्ते एवं बालोमन्यते नत्वेवं वेत्ति यद्वित्तादिकं त्राणं नस्याद्दुर्गतौपततोनापिरोगादौ शरणं विद्य ते । रिद्धासहावतरला, रोगजरान्नंगुरं हयसरीरं ॥ दोएहंपि गमणसीला, णाकिच्चिरहोक्ष संबंधाइति ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंच (सच्चंणच्चेत्यादि) सर्वमेतद्धेयमुपादेयं च ज्ञात्वा सर्वज्ञोक्तं सर्वसंव ररूपमधितिष्ठेत् आश्रयेत् । धर्मेणार्थोधर्मएव वाऽर्थः परमार्थताऽन्यस्याऽनर्थरूपत्वात् धर्मार्थः सविद्यते यस्याऽसौ धर्मार्थी धर्मप्रयोजनवान् । उपधानं तपस्तत्रवीर्यं यस्य स तथा अनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थः । तथा मनोवाक्कायगुप्तः सुप्रणिहितयोगइत्यर्थः । तथा युक्तोज्ञानादिन्निः सदा सर्वकालं यतेताऽऽत्मनि परस्मिंश्च । किंविशिष्टः सन् अतआह । प

के० बोधबीज पामवुं सुलन नथी, ए रीते आहितं के० कह्युंछे. एवुं जाणी धर्म अण करवा थकी फरी फरी बोधि डुर्लनछे. एवं के० एरीते ज्ञान दर्शनेकरी सहिएके० सहित साधु जाणे तथा उदय आव्या परिसहने हियासए के० अहियाशे. ए वचन आदि जिणे के० श्री आदिनाथ नगवाने प्रकाश्यो तथा इणमेवसेसगा के० एरीतेज शेष बी जा तीर्थंकर पण प्रकाशेछे. ॥ १९ ॥ अनविंसुपुराविनिरकुवो के० हवे सर्वज्ञ पोता ना शिष्यने बोलावी कहेछे के, अहो निक्कु ? एटले यतिउ पूर्वे जे तीर्थंकर थया, त था आएसाविनवंति के० आगमिक काले जे थशे ते केवा थशे तो के सुवता के० सुव्रत एटले प्रधान व्रतधारी तेणे एयाइंगुणाइं आहुतेके० ए सर्व गुण जे पाछल कह्या ते अ थवा आगल कहेशे ते कह्याछे परंतु ते तीर्थंकरने मते नेद नथी कासवस्स के० काश्य प ते श्रीआदीश्वर तथा वर्द्धमान स्वामी तेना अणुधम्मचारिणो के० धर्मना अनुचारि जे छे ते एमज कहेछे के ज्ञान, दर्शन अने चारित्र एहिज मोक्षमार्ग छे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका–(इणमिति) इमं प्रत्यक्षं क्षणमवसरं विज्ञाय ज्ञात्वा तथा वोधिं नोसुलनामि त्याख्यातां ज्ञात्वा तडुचितं विधेयं। ईदृशोमानुष्यार्यदेशधर्मसामग्र्याद्यवसरः पुनः सुलनोन स्यादिति नावः। तदेवमुत्कर्षतोपार्धपुजलपरावर्तकालेन पुनःसुडुर्लना वोधिरित्येवं ज्ञानादि सहितोऽधिपश्येत् बोधेर्डुर्लनत्वं पर्यालोचयेत्। पाठांतरंवा (अहियासएत्ति) परीषहानु दीर्णान् सम्यक् पश्येत् । एवं जिनः श्रीक्रुषनोष्टापदे स्वसुतानुद्दिश्याह कथितवान् । तथा शेषाअपि जिनाएवमेवोक्तवंतइति ॥ १९ ॥ (अनविमिति) हेनिक्षवः साधवः सर्व ज्ञाः स्वशिष्यानामंत्रयति । पुरा ये अनूवन् अतिक्रांताजिनाः (आएसत्ति) आगमिष्याश्च ये नविष्यंति जिनास्ते सर्वेपि सुव्रताः सुव्रतत्वेनैव सर्वे जिनत्वं प्राप्ताइत्यर्थः । ते सर्वे जिनाए तान् गुणानाहुरुक्तवंतः । नकश्चित्सर्वज्ञानां मतनेदइति नावः । येच काश्यपस्य क्रुषनस्वा मिनः श्रीवीरस्यवा सर्वेप्यनुचीर्णधर्मचारिणः । एतेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकएव मोक्षमार्गइत्यावेदितम् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंच (इणमेइत्यादि) । इदमः प्रत्यक्षासन्नवाचित्वात् इमं इव्यक्षेत्रकालना वलक्षणं क्षणमवसरं ज्ञात्वा तडुचितं विधेयं । तथाहि । इव्यं जंगमत्वपंचेंड्रियत्वसुकु लोत्पत्तिमानुष्यलक्षणं। क्षेत्रमप्यार्य देशार्धषड्विंशतिजनपदलक्षणं । कालोऽप्यवसर्पिणी चतुर्थारकादिधर्मप्रतिपत्तियोग्यलक्षणः। नावश्च धर्मश्रवणतच्रद्धानचारित्राचरणकर्मक्षयो पशमाहितविरतिप्रतिपत्त्युत्साहलक्षणः। तदेवंविधं क्षणमवसरं परिज्ञाय तथा वोधिं च सम्यग्दर्शनावाप्तिलक्षणां नोसुलनामित्येवमाख्यातामवगम्य तदवाप्तौ तदनुरूपमेव कुर्या

णे आयुषि नवांते वा सति एकाक्येव डुःखमनुनवतीतिशेषः ॥ यतः सयणस्सविमज्झगउ, रोगानिदउकिलिस्सइइहेगो ॥ सयणोवियसेरोगं, नविरंचइनेव नासेइ इति ॥ तथाचाह । (एकस्सत्ति) एकस्यैव प्राणिनान्नवांतरे गतिरागतिश्च स्यात् ततोविद्वान् तावदीषदपि शरणं न मन्यते । यतः एकस्य जन्ममरणे गतयश्च शुनाशुनान्नवावर्ते ॥ तस्मादाकालिकहितमेकेनैवात्मनः कार्यमिति॥ १७॥(सवेत्ति) सर्वे प्राणिनः स्वकेन स्वकृतेन कर्मणा कल्पिताए केंड्रियादिन्नेदेन व्यवस्थिताः । तथा एकेंड्रियादिनवेषु अव्यक्तेन डुःखेन उन्नयलक्षणाव्यक्तेनापि डुःखेन समन्विताः प्राणिनोन्नयाकुलाः शवकर्मकारित्वात् शगाहिंडंति पर्यटंति तासुतासु योनिषु । किंनूताः प्राणिनः जातिजरामरणैरनिडुताः पीडिताः ॥ १८ ॥

॥ टीका-एतदेवाऽह । (अप्नागमितंमीत्यादि)। पूर्वोपात्ताऽसातवेदनीयोदये नाऽन्यागते डुःखे सत्येकाक्येव डुःखमनुनवति न ज्ञातिवर्गेण वित्तेन वा किंचित्क्रियते । तथाच । सयणस्सविमज्झगउरोगानिहतोकिलिस्सइइहेगो ॥ सयणोवियसेरोगं नविरंचइनेवनासेइ ॥ १ ॥ अथवोपक्रमकारणैरुपक्रांते स्वायुषि स्थितिक्षयेण वा नवांतरे नवांतिके वा मरणे समुपस्थिते सति एकस्यैवाऽसुमतोगतिरागतिश्च नवति । विद्वान् विवेकी यथावस्थितसंसारस्वन्नावस्य वेत्ता ईषदपि तावत् शरणं न मन्यते कुतः सर्वात्मना त्राणमिति । तथाहि । एकस्य जन्ममरणे गतयश्च शुनाशुनान्नवावर्ते । तस्मादाकालिकहित,मेकेनैवाऽत्मनः कार्यं ॥ १ ॥ एक्को करेइ कम्मं फलमवि तस्सिं क्कउसमणुहवइ । एक्को जायइ मरइ य परलोयं एक्कउजाइ ॥१॥१७॥ अन्यच्च । (सवेसयइत्यादि)। सर्वेपि संसारोदरविवरवर्तिनः प्राणिनः संसारे पर्यटंतः स्वकृतेन ज्ञानावरणीयादिना कर्मणा कल्पिताः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकैकेंड्रियादिन्नेदेन व्यवस्थिताः। तथा तेनैव कर्मणैकेंड्रियाद्यवस्थायामव्यक्तेनाऽपरिस्फुटेन शिरःशूलाद्यलक्षितस्वन्नावेनोऽपलक्षणत्वात् प्रव्यक्तेन च डुःखेनाऽसातावेदनीयस्वन्नावेन समन्विताःप्राणिनःपर्यटंत्यरघट्टघटीन्यायेन तावत्स्वेव योनिषु नयाकुलाः शवकर्मकारित्वात् शगाच्रमंति जातिजरामरणैरनिडुतागर्नाधानादिन्निर्डुःखैःपीडिताइति १८

इणमेव खणं वियाणिया, णोसुलनं बोहिंच आहितं ॥ एवं स
हिए हिपासए, आहिजिणे इणमेव सेसगा ॥ १९ ॥ अन्नविंसु
पुरा विन्निक्खुवो, आएसावि नवंति सुवता ॥ एयाइं गुणाइं आ
हुते, कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २० ॥

अर्थ-इणमेव के० एहिज आर्य क्षेत्र सुकुमाल जन्म जिनधर्म प्रतिपत्तिरूप एवो खणंवियाणिया के० क्षण एटले अवसर जाणी यथोचित धर्म करवो णोसुलनंबोहिंच

मान स्वामी पाशेथी अमे सांनल्युं ने, तेरीते तमोने कहुंबुं ॥ २२ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगे प्रथमश्रुतस्कंधे श्रीद्वितीयवेतालीयाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ दीपिका–(तिविहेणेति) त्रिविधेन मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमतिनिर्वा प्राणिनो माहन्यात् । इदमाद्यव्रतं । उपलक्षणादन्यान्यपि व्रतानि ज्ञेयानि । तथा आत्महितोऽनिदानोनिदानरहितः संवृतएवंनूतः सिध्यतीत्याह । एवंनूताअनंतशः सिद्धाः संप्रति वर्तमानकालेपि सिद्धिगमनयोगे सिध्यंति । अपरे अनागते काले सेत्स्यंति । नान्योमुक्तिमार्गइत्यर्थः ॥ २१ ॥ (एवमिति) एवमुद्देशकत्रयोक्तनीत्या श्रीऋषनस्वामी स्वसुतानुद्दिश्य उदाहृतवान् कथितवान् । अनुत्तरमुत्कृष्टं ज्ञानं तदस्यास्तीत्यनुत्तरज्ञानी । एवमनुत्तरदर्शी । अनंतज्ञानदर्शनइत्यर्थः । बौद्धमतनिरासाय ज्ञानाधारंजीवं दर्शयति । अनुत्तरज्ञानदर्शनधरइति । कथंचिद्भिन्नज्ञानदर्शनाधारइत्यर्थः । अर्हन् सुरेंद्रादिपूज्योज्ञातपुत्रोवर्धमानस्वामी ऋषनस्वामीवा नगवान विशालानगर्यामाख्यातवान् श्रीवीरः । ऋषनस्वामीतु विशालकुलोद्भवत्वात् वैशालिकः ॥ यदुक्तं “ विशालाजननीयस्य, विशालकुलमेववा ॥ विशालं वचनं वास्यात्तेन वैशालिकोजिनः ” इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ॥ २२ ॥ इति द्वितीयाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका–तदनिहितांश्च गुणानुद्देशतआह । (तिविहेणेत्यादि) । त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन यदिवा कृतकारितानुमतिनिर्वा प्राणिनोदशविधप्राणनाजोमाहन्यादिति । प्रथममिद महाव्रतं । अस्य चोपलक्षणार्थत्वात् एवं शेषाण्यपि इष्टव्यानि । तथाऽऽत्मनेहित आत्महितः । तथानाऽस्य स्वर्गावास्यादिलक्षणनिदानमस्तीत्यनिदानः । तथेंद्रियनोइंद्रियैर्मनोवाक्कायैर्वा संवृतस्त्रिगुप्तिगुप्तइत्यर्थः । एवंनूतश्चावश्यं सिद्धिमवाप्नोतीत्येतद्दर्शयति । एवमनंतरोक्तमार्गानुष्ठानेनानंताः सिद्धाअशेषकर्मक्षयनाजः संवृत्ताविशिष्टस्थानजाऽजो वा । तथा संप्रति वर्तमाने काले सिद्धिगमनयोग्ये सिध्यंत्यऽपरेवाऽनागते काले एतन्मार्गानुष्ठायिनएव सेत्स्यंति । नाऽपरः सिद्धिमार्गोऽस्तीति नावार्थः ॥ २१ ॥ एतच्च सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिप्रनृतिन्यः स्वशिष्येन्यः प्रतिपादयतीत्याह । (एवंसेत्यादि) । एवमुद्देशकत्रयानिहितनीत्या सऋषनस्वामी स्वपुत्रानुद्दिश्योदाहृतवान् प्रतिपादितवान् । नाऽस्योत्तरं प्रधानमस्तीत्यनुत्तरं । तच्च तज्ज्ञानंच अनुत्तरज्ञानं तदस्याऽस्तीत्यनुत्तरज्ञानी तथाऽनुत्तरदर्शी । सामान्यविशेषपरिछेदकाववोधस्वनावइति बौद्धमतनिरासद्वारेण ज्ञानाधारं जीवं दर्शयितुमाह । (अनुत्तरज्ञानदर्शनधरइति) । कथंचिद्भिन्नज्ञानदर्शनाधारइत्यर्थः । अर्हन् सुरेंद्रादिपूजार्होज्ञातपुत्रोवर्द्धमानस्वामी ऋषनस्वामी वा नगवानैश्वर्यादिगुणयुक्तोविशाल्यां नगर्यां वर्द्धमानोऽस्माकमाख्यातवान् ऋषनस्वामी वा । विशालकुलोद्भव

दितिशेषः। अकृतधर्माणां च पुनर्दुर्लना बोधिः। तथाहि। लध्देल्लियंच बोहिं अकरेंतो अ णागयंचपछंतो। अन्नं दाइं बोहिं लप्निसिकयरेण मोल्लेणं ॥ १ ॥ तदेवमुत्कृष्टतोपार्ध्दपुज लपरावर्तप्रमाणकालेन पुनः सुडलेना बोधिरित्येवं सहितोज्ञानादिनिरधिपश्येत्। बोधिसु डुर्लनत्वं पर्यालोचयेत्। पाठांतरंवा। (अहियासएत्ति) परीषहानुदीर्णान् सम्यगधिसहेत। एतच्चाह जिनोरागद्वेषजेता नानेयोऽष्टपदस्थान् सुतानुद्दिश्य। तथाऽन्येपि इदमेव शेष काजिनाअनिहितवंतइति ॥१९॥। एतदाह। (अनविंसुइत्यादि) हेनिक्षवः साधवः सर्वे ज्ञाः स्वशिष्यानेवमामंत्रयति। येऽनूवन् अतिक्रांताजिनाः सर्वज्ञाः (आएसावित्ति) आगमिष्याश्च नविष्यंति। तान् विशिनष्टि। सुव्रताः शोननव्रताः। अनेनेदमुक्तं नवति। तेषामपि जिनत्वं सुव्रतत्वादेवाऽऽयातमिति तेसर्वेऽप्येतानऽनंतरोदितान् गुणानाहुरनिहि तवंतः। नाऽत्र सर्वज्ञानां कश्चिन्मतनेदइत्युक्तं नवति। तेच काश्यपस्य रूपनस्वामिनो वर्ध्दमानस्वामिनो वा सर्वेऽप्यनुचीर्णधर्मचारिणइति। अनेन च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रा त्मकएकएव मोक्षमार्गइत्यावेदितं नवतीति ॥ २० ॥

तिविहेणवि पाण माहणे, आयहिते अणियाण संवुमे॥ एवं सिद्धा अणं तसो, संपइ जे अणागयावरे॥ २१ ॥ एवं से उदाहु अणुत्तर नाणी अ णुत्तरदंसी अणुत्तरनाणदंसणधरे ॥ अरहा नायपुत्ते नगवं वेसालिए वि याहिएत्तिबेमि ॥ २२ ॥ इति श्रीवेयालियं द्वितीयमध्ययनं सम्मत्तं ॥

अर्थ—हवे ते गुण कहेछे. तिविहेणवि के० मन, वचन अने कायायें करण कराव ण अने अनुमोदने करी पाणमाहणे के० जीवना प्राण हणे नहीं. ए प्रथम महाव्र त एम उपलक्षण थकी शेष महाव्रत पण जाणवा. तेणेकरी आयहिते के० आत्माने हेतु तथा अणियाणके० नियाणा रहित संवुमेके० इंडियोने संवरवेकरी संवृतिथका एवं के० एवा आचारे प्रवर्तता सिद्धाअणंतसोके० आगल अनंताजीव सिद्धि पाम्या वली सं पइजेके० सांप्रत एटले वर्त्तमान काले सिद्ध थायछे. अने अणागयावरेके० अवर आगमि ककाले, अनेक सिद्ध थशे. ॥२१॥ एवंके० एरीते सेके० श्रीआदीश्वर नगवाने उदाहुके० पोताना पुत्र आश्री उद्देशीने मोक्षमार्गनो उद्देशो कह्यो ते नगवंत केवा छे? तोके अणुत्त रनाणीके० निरुपमज्ञान अने अणुत्तरदंसीके० निरुपम दर्शन एटले सम्यक् ज्ञान दर्शनना धरनार छे. तथा अणुत्तरनाणदंसणधरके० कथंचित् ज्ञान दर्शनना आधार छे एरीते अर हानायपुत्तेके० अरिहंत ज्ञातपुत्र श्रीवर्ध्दमान स्वामी नगवं के० नगवंत तेणे वेसालिएवि के० विशालानगरीने विषे ए मार्ग अमोने आहिएके० कह्यो तिबेमिके० एरीते पंचम गण धर श्रीसुधर्मस्वामी जंबुप्रनृति पोताना शिष्योने कहेछे के अहो शिष्यो? जेम श्रीवर्ध्द

तोयथा वसुदेवस्वसा माद्री दमघोषाय दत्ता । तयोः पुत्रः शिशुपालः मयौवनमदगर्वितोबलवान् चतुर्भुजश्च तं तादृशं दृष्ट्वा माता नैमित्तिकं पप्रच्छ । तेनोक्तं अयं तव पुत्रोऽजेयः समरे । यं दृष्ट्वास्य स्वाभाविकं भुजायुगलं भावि तस्मादस्य मृतिः । एवमन्य कियान कालोतिक्रांतः सकदाचित्कृष्णेन दृष्टस्तदा तस्य भुजायुगलमेव जातं । तदा तद्विदित्वा माद्री नाम्न्या तन्मात्रा कृष्णपितृष्वस्रा कृष्णाय निवेदितं । त्वं मत्पुत्रोपरि कृपां कुर्याः ।कृष्णेनोक्तं। अहं त्वत्सुतस्यापराधशतं सहिष्ये तदादेशात् । शिशुपालस्तु कृष्णं तृणमिव मन्यते । असन्यवचांसि वक्ति । बहूनपराधान् करोति ।अपराधशते पूर्णे मात्रादिभिर्निवार्यमाणोपि नतिष्ठति तदा कृष्णश्चक्रेण तदुत्तमांगं चिच्छेदेति ॥ १ ॥ सांप्रतं जनप्रतीतं दृष्टांतमाह । (पयाइति) । प्रकर्षेण पातः पादपातोयेपांते प्रपातारणशिरसि प्रयाताः प्रकर्षेण प्राप्तावा शूराः सुभटंमन्यास्ततः संग्रामे उपस्थिते प्राप्ते सति सर्वस्याकुलीभूतत्वान्माता पुत्रं न जानाति । एवंविधे रणे जेता कुंतादिभिः परिविक्षतः परि समंताद्विविधं क्षतोहतश्छिन्नोवा यथा कश्चिदल्पसत्वोभंगं याति दैन्यं भजतइत्यर्थः ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तं द्वितीयमध्ययनमधुना तृतीयमारभ्यते । अस्यचाऽयमभिसंबंधः । इहाऽनंतराध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणाऽभिहिता । तथा परसमयदोषान् स्वसमयगुणांश्च परिज्ञाय स्वसमये बोधोविधेयइत्येतच्चाऽभिहितं । तस्यच प्रतिबुद्धस्य सम्यगुत्थानेनोत्थितस्य सतः कदाचिदनुकूलप्रतिकूलोपसर्गाः प्रादुर्भवेयुस्तेचोदीर्णाः सम्यक् सोढव्याइत्येतदनेनाऽध्ययनेन प्रतिपाद्यते । ततोऽनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि भवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोद्वेधा । अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राऽध्ययनार्थाधिकारः संबुद्धस्सुवसग्गाइत्यादिना प्रथमाध्ययने प्रतिपादितः । उद्देशार्थाऽधिकारं तूत्तरत्र स्वयमेव निर्युक्तिकारः प्रतिपादयिष्यतीति । नामनिष्पन्नंतु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । (उवसग्गमित्यादि) उवसग्गंमियछक्कं दव्वे चेयणमचेयणं डुविहं । आगंतुगोयपीला, करोयजोसोउवसग्गो ॥ १ ॥ नामस्थापनात् द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् उपसर्गाः पोढा । तत्र नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्योपसर्गं दर्शयति । द्रव्ये द्रव्यविषये उपसर्गोद्वेधा । यतस्तद्द्रव्यमुपसर्गकर्तृ चेतनाचेतनभेदात् द्विविधं । तत्र तिर्यङ्मनुष्यादयः स्वावयवाभिघातेन यदुपसर्गयंति ससचित्तद्रव्योपसर्गः सएवकाष्ठादिभेतरः तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्यातः । तत्रोपसर्गउपतापः शरीरपीडनोत्पादनमित्यादिपर्यायाः । भेदाश्च तिर्यङ्मनुष्योपसर्गादयः नामादयश्च । तत्र व्याख्यांतु निर्युक्तिकृदेव गाथापश्चार्द्धेन दर्शयति । अपरस्माद्दिव्यादेरागच्छतीत्यागंतुकोयोऽसावुपसर्गोभवति । सच देहस्य संयमस्य वा पीडाकारीति ॥ १ ॥ क्षेत्रोपसर्गानाह । खेत्तमित्यादिना । खेत्तं बहुओघपयं

त्वा द्वैशालिकः । तथाचोक्तं । विशाला जननी यस्य विशालं कुलमेव वा । विशालं वचनं चास्य तेन वैशालिकोजिनः । एवमसौ जिनआख्यातइति । इतिशब्दः परिसमाप्त्यर्थोब्रवीमीतिउक्तार्थोऽनया पूर्ववदिति ॥ २२॥ समाप्तंच द्वितीयं वैतालीयमध्ययनं ॥ ग्रंथाग्रं॥ १ ७ ६ ॥

हवे बीजो अध्ययन कह्या अनंतर त्रीजो अध्ययन प्रारंभियेछैए. एनो ए संबंधछे के, पाछले अध्ययने स्वसमय परसमयनी प्ररूपणा कही माटे परसमयना दोष अने स्वसमयना गुण जाणीने स्वसमयने विषे प्रवर्तवो; तेने विषे प्रवर्त्ततां थकां जे अनुकूल अने प्रतिकूल उपसर्ग उपजे ते सहन करवा ए अधिकारे आव्यो जे अध्ययन तेप्रारंभियें छैयें.

सूरं मस्सइ अप्पाणं, जावजेयं नपस्सती ॥ जुझंतं दढधम्माणं,
सिसुपालोव महारहं ॥ १ ॥ पयाता सूरा रणसीसे, संगामंमि
उवछिते ॥ माया पुत्तं नयाणाइ, जेएण परि विह्वए ॥ २ ॥

अर्थ—कोइएक बाल मनुष्य संग्रामने विषे अप्पाणंके० पोताने सूरंमस्सइके० शूरवीर करी माने जे आजगतमांहे माहारा समान सुजट कोइ नथी. परंतु जावजेयं के० ज्यां सुधी तेसंग्रामने विषे पोताने जीपनार कोइ नपस्सतीके० न देखे त्यांसुधी जाणवुं. कोनीपरे? सिसुपालोवके० जेम शिशुपालराजा पोतानी आत्माने शूरवीर मानतो हतो परंतु संग्रामने विषे दढधम्माणं के० दृढधर्मी तथा महारहं के० महारथी एवा नारायणने जुझंतं के० जुंजतो देखी, क्षोज पामी, मद छांमीने निर्मद थयो. ॥ १ ॥ सांप्रत सामान्यपदे दृष्टांत कहेछे. कोइएक पोतानेविषे सूरा के० शूरवीरपणुं मानता रण के० संग्रामने सीसे के० मस्तके अग्रेसर पणे पयाताके० आव्या; एवा संगामंमिउवछितेके० ते संग्रामनेविषे उपस्थित एटले प्राप्त थये थके त्यां परदलने सुजटे सर्वजनने व्याकुलचित्त कर्या छे. ते संग्राम एवो वर्त्तेछे के, ज्यां मायापुत्तंनयाणाइ के० माता पुत्रने न जाणे; एटले माताने केडे रह्यो बालक पडतो जाणे नहीं एवा संग्रामने विषे जेएण के० जे आगले जीपणहार पुरुषो तेणे परिविह्वए के० शस्त्रादिके करी छेद्यो थको, हत प्रहत कीधो छतो, कायरपणे जंग पामे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—उक्तं द्वितीयमध्ययनं । तत्र स्वसमये बोधोविधेयइत्युक्तं । तत्र प्रतिबुद्धस्य कदाचिडुपसर्गाः स्युस्तेच उदीर्णाः सम्यक्सोढव्याइत्यर्थः । अथ तृतीयाध्ययनमारज्यते । तत्र चत्वारउद्देशकास्तेषु प्रथमोद्देशकस्येदमादिसूत्रं । (सूरंमस्सइत्ति) कश्चिद्बालः संग्रामे आत्मानं शूरं सुजटं मन्यते शूरोहमिति गर्जति। यावज्जेतारं पुरःस्थितमुद्यतासिं नपश्यति।दृष्टांतमाह । युध्यमानं दृढः समर्थोधर्मः स्वजावोयस्यस तथातं । महान् रथोऽस्येति महारथोऽत्रनारायणस्तं दृष्ट्वा यथा शिशुपालोमाद्रीसुतः समर्थोपि क्षोजंगतस्तं दृष्टां

॥ ६ ॥ (हेउइत्यादि) चतुर्थोद्देशके अयमर्थाधिकारः । तद्यथा । हेतुसदृशैर्हेत्वा भासैरन्यतीर्थिकैर्व्युद्ग्राहिताः प्रतारितास्तेषां शीलस्खलितानां व्यामोहितानां प्रज्ञाप ना यथाव स्थितार्थप्ररूपणा स्वसमयप्रतीतैर्निपुणभणितैर्हेतुभिः कृतेति ॥ सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (सूरंमण्णइत्यादि) । कश्चिल्लघुप्रकृतिः संग्रामे समुपस्थिते शूरमात्मानं मन्यते । निस्तोयांबुदइवात्मश्लाघाप्रवणोवाग्भिर्विस्फूर्जन् गर्जति । तद्यथा । नमत्कल्पः परानीके कश्चित् सुभटो ऽस्तीत्येवं तावद्गर्जति यावत् पुरोऽवस्थितं प्रोद्यतासिं जेतारं न पश्यति। तथा चोक्तं । तावद्गजः प्रस्रुतदानगंडः करोत्यकालांबुदगर्जितानि । यावन्न सिंहस्य गुहास्थलीषु लांगूलविस्फोटरवं शृणोति ॥ १ ॥ न दृष्टांतमंतरेण प्रायोलोकस्याऽर्थावगमोभवतीत्यतस्तद वगतये दृष्टांतमाह । यथा माद्रीसुतः शिशुपालोवासुदेवदर्शनात्प्राक् आत्मश्लाघाप्रधानं गर्जितवान् पश्चाच्च युध्यमानं शस्त्राणि व्यापारयंतं दृढः समर्थोधर्मः स्वभावः सं ग्रामाभंगरूपो यस्य सतथा तं महान् रथोऽस्येति महारथः सच प्रक्रमादत्रनाराय णस्तं युध्यमानं दृष्ट्वा प्राग्गर्जनाप्रधानोपि क्षोभं गतः। एवमुत्तरत्र दार्ष्टांतिकेऽपि योजनी यमिति । भावार्थस्तु कथानकादऽवसेयः । तच्चेदं । वसुदेवसुसाएसुउदमघोसणराहिवेणसु दीए । जाऊचउब्भुउब्भुजवलकलिउकलहपत्तंप्पो ॥१॥ दठ्ठूणतउजणणी, चउब्भुयपुत्तमब्भुय मणग्घं॥भयहरिसविम्हयमुही पुछइणेमत्तियंसहसा॥२॥णेमित्तिकएणसुणिऊणसाहियंतो इहठहियियाए॥जहएसतुज्झपुत्तोमहावलोऊकाउसमरे॥३॥ एयस्सनयजंदठ्ठूणहोइसाभावियं भुयाजुयलं॥ होहीतत्तोवियभयंसुतस्सतेणछिसंदेहो ॥४॥ भाविभयवेविरंगी पुत्तंदंमेइज्झा वकण्हस्स ।तावच्चियतस्सछियंपयइट्ठंवरभुयाजुगलं॥५॥ तोकण्हस्सपिउच्छापुनंपाडेइपाय पीढंमि॥ अवराहखामणंठंसोविसयंसेखमिस्सामि ॥५॥ सिसुवालोविहुजुव्वणमएण नारा यणंअसब्भेहिं ॥ वयणेहिंभणइसोविहुखमइखमाएसमत्थोवि ॥ ७ ॥ अवराहसएपुण्णेवारि ज्जंतोणचिठ्ठईजाहे। कण्हेणतउ छिन्नंचक्केणंउत्तमंगंसे ॥७॥ सांप्रतं सर्वजनप्रतीतं वार्तमानिकं दृष्टांतमाह । (पयायाइत्यादि) यथा वाग्भिर्विस्फूर्जतः प्रकर्षेण विकटपादपातं रणशिरसि संग्राममूर्धन्यग्रानीके याताःगताः। केते शूराः शूरंमन्याः सुभटाः । ततः संग्रामे समुपस्थिते पतत्परानीकसुभटमुक्तहेतिसंघाते सति तत्रच सर्वस्याऽऽकुलीभूतत्वात् माता पुत्रं न जानाति कटीतोभ्रश्यंतं स्तनंधयमपि न सम्यक् प्रतिजागर्तीत्येवं मातापुत्रीये संग्रामे परानीकसुभटेन जेत्रा च शक्त्यादिभिः परिसमंतात् विविधमनेकप्रकारं क्षतोहत श्छिन्नोवा यथा कश्चिदल्पसत्वोभंगमुपयाति दीनोभवतीति यावदिति ॥ २ ॥

कालोएगंतदूसमादीउ।नावेकम्मप्पुदउ,सो डुविहोउंघुवक्कमिउ॥२॥ यस्मिन् क्षेत्रे बहून्योघतः सामान्येन पदानि क्रूरचोराद्युपसर्गस्थानानि नवंति तत्क्षेत्रं बव्होघपदं। पाठांतरंवा बव्होघनयं बहून्योघतोनयस्थानानि यत्र तत्तथा । तच्च लाढादिविषयादिकं क्षेत्रमिति। कालस्त्वेकांतडुःषमादिः । आदिग्रहणात् योयस्मिन् क्षेत्रे डुःखोत्पादकोग्रीष्मादिः सगृह्यतइति । कर्मणां ज्ञानावरणादीनामन्युदयोनावोपसर्गइति । सच उपसर्गः सर्वोऽपि सामान्येन औघिकोपक्रमिकनेदात् द्विधा । तत्रौघिकोऽशुनकर्मप्रकृतिजनितनावोपसर्गोनवति । औपक्रमिकस्तु दंडकशशस्त्रादिनाऽसातवेदनीयोदयापादकइति । ॥ १ ॥ तत्रौघिकौपक्रमिकयोरुपसर्गयोरौपक्रमिकमधिकृत्याह । (उवक्कमिउइत्यादि)। नवक्कमिउ संयमविग्घकरेतत्थुवक्कमेपगयं । दव्वे चउव्विहो देवमणुयतिरियायसंवेत्तो ॥ ॥ ३ ॥ नपक्रमणमुपक्रमः । कर्मणामनुदयप्राप्तानामुदयप्रापणमित्यर्थः । एतच्च यद्द्रव्योपयोगात् येन वा द्रव्येणाऽसातवेदनीयाद्यशुनं कर्मोदीर्यते । यडुदयाच्चाल्पसत्वस्य संयमविघातोनवति । अतऔपक्रमिकउपसर्गः संयमविघातकारीति। इहच यतीनां मोक्षं प्रति प्रवृत्तानां संयमोमोक्षांगं वर्तते तस्य योविघ्नहेतुः सएवाऽत्राऽधिक्रियतइति दर्शयति । तत्रौघिकौपक्रमिकयोरौपक्रमिके प्रकृतं प्रस्तावस्तेनात्राधिकारइतियावत् । सच द्रव्ये द्रव्यविषयश्चिंत्यमानश्चतुर्विधोनवति । तद्यथा । दैविकोमानुषस्तैरश्चआत्मसंवेदनश्चेति ॥३॥ सांप्रतमेतेषामेव नेदमाह। एक्केक्कोयेत्यादि। एक्केक्कोयचउविहो, अठविहोवाविसोलसविहोवा।घडणाजयणायतेसिं, एत्तोवोठ्ठंय अहियारो॥४॥ एकैकोदिव्यादिश्चतुर्विधश्चतुर्नेदः। तत्र दिव्यस्तावत् हास्यात् प्रद्वेषात् विमर्शात् पृथग्विमात्रातश्चेति। मानुषाअपि हास्यतः प्रद्वेषाद्विमर्शात् कुशीलप्रतिसेवनातश्च। तैरश्चाअपि चतुर्विधाः । तद्यथा । नयात्प्रद्वेषादाहारादपत्यसंरक्षणाच्च । आत्मासंवेदनाअपि चतुर्विधाः । तद्यथा । घट्टनातोलेशनातोऽगुल्याद्यवयवसंश्लेषरूपायास्तंननातः प्रपाताच्चेति । यदिवा वातपित्तश्लेष्मसंनिपातजनितश्चतुर्धेति । सएव दिव्यादिश्चतुर्विधोऽनुकूलप्रतिकूलनेदात् अष्टधा नवति । सएव दिव्यादिः प्रत्येकं यश्चतुर्धा प्राग्दर्शितः सचतुर्णां चतुष्कानां मेलापकात् षोडशनेदोनवति। तेषां चोपसर्गाणां यथा घटनासंबंधप्राप्तिः प्राप्तानांचाऽधिसहनं प्रतियातना नवति । तथाऽतऊर्ध्वमध्ययनेन वक्ष्यते इत्ययमत्रार्थाधिकारइतिनावः ॥४॥ नद्देशार्थाधिकारमधिकृत्याऽह ।(पढमंमीत्यादि) पढमंमियपडिलोमा हुंतीअणुलोमगायवितियंमि।तइएअत्तविसीदणंयपरवादियणंच॥५॥ प्रथमे नद्देशके प्रतिलोमाः प्रतिकूलानपसर्गाः प्रतिपाद्यंतइति तथा द्वितीये ज्ञातिकृताः स्वजनापादिताअनुलोमाअनुकूलाइति । तथा तृतीये अध्यात्मविषीदनं परवादिवचनं चेत्ययमर्थाधिकारइति । हेउसरिसेहिंअहेउएहिं समयपडिएहिंणिउणेहिं । शीलखलितपण्णवणाकयाचउमि उद्देशे

तावच्छिशुपालवत् शूरं मन्यते यावज्जेतारमिव रूक्षं संयमं कर्म संश्लेषकारणा भावात् नसेवते नजानतइति । तत्प्राप्ता तु बहवोगुरुकर्माणोऽल्पसत्वाभंगमुपयांति ॥ ३ ॥ संयमस्य रूक्षत्वप्रतिपादनायाह । (जयाहेमंतेइत्यादि) । यदा कदाचित् हेमंत मासे पौषादौ शीतं सहिमकणवातं स्पृशति लगति तत्र तस्मिन्नसह्ये शीतस्पर्शे ल गतिसति एके मंदाजडागुरुकर्माणोविषीदंति दैन्यभावमुपयांति राज्यहीनाराज्यच्यु ताः यथा क्षत्रियाराजानइवेति ॥ ४ ॥

पुठे गिम्हाहि तावेणं, विमणे सुप्पिवासिए ॥ तत्थ मंदा विसियं
ति, मच्छा अप्पोदए जहा ॥ ५ ॥ सदादत्तेसणा डुक्खा, जायणा
डुप्पणोल्लिया ॥ कम्मत्ता डुब्भगा चेव, इच्चाहु सुपुठो जणा ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे उष्णपरिसह कहेछे. गिम्हाहि के० ग्रीष्मकाले ज्येष्ठादिक मासनो उप न्यो तावेणं के० उष्ण आताप,तेणे करी पुठे के० फरश्यो एटले व्याप्यो छतो, विमणे के० विमन एटले आमण डुमणो थयो थको सप्पिवासिए के० अत्यंत तृषाये करी पराभव पाम्यो तेवारे तछमंदाविसीयंतिके० त्यां पण मंदवापडो कायर सिदाय.भंग पामे. जहा के० जेम मछाअप्पोदए के० माछलुं अल्पोदकमां एटले पाणीना वियोगथी सिदाय तेम सत्वरहित चारित्रियो संयम थकी भ्रष्ट थाय. जेम माछलां जीवितव्य थ की भ्रष्ट थाय तेनी पेरें जाणी लेवुं. ॥ ५ ॥ हवे याचना परिसह कहेछे. सदादत्तेस णाडुक्खा के० सर्वकाल शिलिमात्रपण साधुने दीधो अने एषणिय लेवो ए महाडुःखछे जायणा के० याचना एटले मागवुं ते डुप्पणोल्लियाके० अपार डुर्जनछे. तेमां जे काय र होय ते सिदाय. हवे पाछले अर्थे आक्रोश परिसह कहेछे. पुठोजणाके० पामर लो क होय ते साधुने इच्चाहंसु के० एम कहेके, कम्मत्ताके० ए वापडा पूर्वे आचरित कर्मे करी आर्त्त थका पूर्वकृत कर्मनां फल अनुभवेछे अथवा ए वापडा मलमलिन श रीर डुःखादिक वेदनाये ग्रसित दरिद्री करसणादिक कार्य करवा असमर्थ माटे उद्वेग पा म्याथका यति थयाछे ए पुत्र कलत्रादिके करी मूकायला, डुब्भगाचेव के० दौर्भागी थ का परिवार छांमी प्रवर्ज्या आदरी रहेछे. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—(पुठेति) । ग्रीष्मेऽग्नितापस्तेन स्पृष्टोव्याप्तः सन् विमना विमनस्कः सु ष्टु अतिशयेन पिपासां तृषां प्राप्तः स्यात् । तत्रोक्तपरीषहे मंदाविषीदंति । यथा मत्स्या अल्पोदके विषीदंति ॥ ५ ॥ (सदेति) सदासर्वकालं दंतशोधनाद्यपि दत्तमेषणीयदो परहितं भोक्तव्यमिति दत्तैषणाडुःखं । तथा इयं याञ्चा डुःखेन प्राणोद्यते परीषहोडुर्ज

एवं सेहेवि अपुठे, निरका यरिया अकोविए ॥ सूरं मसंति अप्पाणं, जावलूहं नसेवए ॥ ३ ॥ जया हेमंतमासंमि, सीतं फुसइ सव्वगं, पाठांतरं सवायगं ॥ तब मंदा विसीयंति, रज्जहीणावि खत्तिया ॥ ४ ॥

अर्थ–हवे ए दृष्टांत साधु साथे मेलवे छे. एवं के० एम पूर्वोक्त सुनटनी पेरे शीशुपालवत् सेहेविके० नवदीक्षित शिष्य पण अपुठेके० परिसहने अण फरश्यो थको एम कहेके, दीक्षापालवामां शुं डुर्लनछे? एटले दीक्षानो मार्ग सुलनज छे. एवो ते निरकायरिया अकोविएके० निक्षाचर्याने विषे अकोविद, एटले अजाण, अनेरा आचारने विषे अनिपुण थको नवदीक्षितछे. ते सूरंमसंतिअप्पाणं के० वचन मात्रे करी पोताने विषे शूरपणानो माननार ते जावके० ज्यांलगे लूहके० संयमने नसेवए के० सेवे नही त्यांलगे एवुं कहे के, “ ए संयममां शुं डुष्करपणुं छे? ” परंतु जेवारे संयम आदरे तेवारे परिसहनो उदय आवे थके सिदाय. ॥ ३ ॥ हवे संयमनुं डुष्करपणुं देखाडेछे. जया के० त्यां एकदाकाले हेमंतमासंमि के० हेमंत ऋतुना पोष अने माघ मासमां सव्वगं के० सर्वांगे पाठांतरे सवायगं के० वायरासहित सीतंफुसति के० शीत फरसे तब के० तेवारे मंदाविके० मंदबुद्धि नारी कार्मिजीव कायर थको, चारित्रने विषे सीयंतिके० सिदाय एटले दीनपणुं पामे. कोनी पेरे? तोके, रज्जहीणावि खत्तिया के० जेम राज्यहीन क्षत्री सिदाय तेनी परे ते साधु पण जाणी लेवो. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण यथा शूरंमन्योजेतारं वासुदेवमन्यंवा युध्यमानं दृष्ट्वा नंगं याति । एवं शिष्यकोऽनिनवप्रव्रजितः परीषहैरस्पृष्टः प्रव्रज्यायां किंडुष्करमिति गर्जन् निक्षाचर्यायां निक्षाटनेऽकोविदोनिपुणः । उपलक्षणादन्यस्मिन्नपि साध्वाचारेऽनिपुणः सन्नात्मानं तावत् शिशुपालवत् शूरं मन्यते । यावज्जेतारमिव रूक्षं संयमं नसेवते नजजते । संयमप्राप्तौहि बहवोगुरुकर्माणोऽल्पसत्वान्नंगमुपयांतीति ॥३॥ संयमस्य रूक्षत्वमाह ।(जयेत्ति) यदा हेमंतमासे शीतकाले शीतं स्पृशति सर्वांगं।तत्र शीते मंदाविषीदंति दीनाः स्युः । राज्यहीना राज्यच्युतायथाक्षत्रियाराजानः॥४॥

॥ टीका–दार्ष्टांतिकमाह । (एवंसेहेवीत्यादि) । एवमिति प्रक्रांतपरामर्शार्थः । यथाऽसौ शूरंमन्यउत्कृष्टसिंहनादपूर्वकसंग्रामशिरस्युपस्थितः पश्चाज्जेतारं वासुदेवमन्यं वा युध्यमानं दृष्ट्वा दैन्यमुपयाति । एवं शिष्यकोऽनिनवप्रव्रजितः परीषहैरस्पृष्टोब्रुतः किंप्रव्रज्यायां डुष्करमित्येवं गर्जन् निक्षाचर्यायां निक्षाटनेऽकोविदोऽनिपुणः । उपलक्षणार्थत्वादन्यत्राऽपि साध्वाचारेऽनिनवप्रव्रजितत्वादप्रवीणः सएवंनूतआत्मानं

अर्थ–एतेसद्द के० एवा पूर्वोक्त आक्रोश संबंधि जे शब्द तेने सहन करवाने अचायंता के० असमर्थ गामेसु के० ग्रामने विषे, वाके० अथवा णगरेसु के० नगरने विषे तह्यके० त्यां एवा आक्रोश उपने थके मंदाविसीयंतिके० तेमंद अज्ञानी चारित्रिउ सीदायछे, कोनी परे सिदायछे ते कहेछे. संगामंमिवनीरुयाके० जेम बीकण मनुष्य संग्रामने विषे शस्त्र देखी सिदाइने नागी जाय, तेनी पेरे ते मंद चारित्रियो चारित्रथी नंग पामेछे. ॥७॥ हवे वध परिसह कहेछे. अप्प के० अपि संनावनाये एगे के० एक कोइ एक लूसक श्वानादिक ते खुधियंनिरकुं के० निक्षाये नमतो नूख्यो एवोजे साधु तेने देखी मुणी के० ते श्वानादिक मंसंतिके० मंख मारे. लूसए के०वलुरे तह्य के०त्यां श्वानादिके खाधो छतो मंदाविसीयंति के० अज्ञानी सिदाय एटले दीन थाय. कोनी परे, तोंक जेम तेउ के० अग्निने पुठाव के० स्पर्शे करी पाणिणो के० प्राणी एटले जीव पोतानुं शरीर संकोचें तेम मंद चारित्रिउ पण पोतानुं गात्र संकोचे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–(एतेइति) एतान् पूर्वोक्तानाक्रोशशब्दान् सोढुमशक्नुवंतोग्रामनगरादौ स्थिताः। तत्राक्रोशे मंदा विषीदंति दैन्यंनजंते संयमाद्वा नश्यंति यथा नीरवः कातराः संग्रामेषु नज्यंते ॥७॥ वधपरीषहमाह (अप्पेगइति) अपिःसंनावने। एकः कश्चित् श्वादिर्लूषकः क्रूरोनक्षकः (खुधियमिति) क्षुधितं निक्षामटंतं निक्षुं दशति नक्षयति। तत्र श्वादिनक्षणे मंदाविषीदंति। यथा तेजसाग्निनास्पृष्टादह्यमानाः प्राणिनोवेदनार्ताः सीदंति ॥ ८ ॥

॥ टीका–(एएसद्दइत्यादि) एतान पूर्वोक्तानाक्रोशरूपान् तथा चौरचारिकादिरूपान् शब्दान् सोढुमशक्नुवंतोग्रामनगरादौ तदंतराले वा व्यवस्थिताः। तत्र तस्मिन आक्रोशे सति मंदाअज्ञानलघुप्रकृतयोविषीदंति विमनस्कान्नवंति संयमाद्भ्रश्यंति। तथा नीरवः संग्रामे रणशिरसि चक्रकुंताऽसिशक्तिनाराचाकुले रटत्पटहशंखकल्लरीनादगंनीरे समाकुलाः संतः पौरुषं परित्यज्याऽयशःपटहमंगीकृत्य नज्यंते। एवमाक्रोशादिशब्दाकर्णनादऽल्पसत्वाः संयमे विषीदंति ॥ ७ ॥ वधपरीषहमधिकृत्याह। (अप्पेगेइत्यादि)। अपिः संनावने। एकः कश्चिच्छ्वादिः लुपयतीतिलुपकः प्रकृत्यैवक्रूरोनक्षकः। खुधियंति। क्षुधितं बुभुक्षितं निक्षामटंतं निक्षुं दशति नक्षयति दशनैरंगावयवं विलुंपति। तत्र तस्मिन् श्वादिनक्षणे सति मंदाअज्ञाअल्पसत्वतया विषीदंति दैन्यं नजंते। यथा तेजसाऽग्निना संस्पृष्टादह्यमानाः प्राणिनोजंतवोवेदनार्त्ताः संतोविषीदंति गात्रं संकोचयंत्यार्तध्यानोपहतान्नवंति। एवं साधुरपि क्रूरसत्वैरनिद्रुतः संयमाद्भ्रश्यतइति दुःसहत्वाद्ग्रामकंटकानां ॥ ८ ॥

यइतिभावः । भिक्षाइ मुहलावसुं, वायाघोलेइकंठमझंमि । कहकहकरेइहियय, देहित्ति परं भणंतस्स ॥ १ ॥ गतिभ्रंशोमुखे दैन्यं गात्रस्वेदोविवर्णता । मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके ॥ २ ॥ एवं याञ्चापरिषहं परित्यज्य महापुरुषसेवितः पंथाः श्रयणीयः । आक्रोशपरिषहमाह । कम्मत्तत्ति । पृथक्जनाएवमाहुः सामान्यलोकाइत्नमुक्तवंतः । यथा एते यतयः कर्मभिः कृष्यादिभिरार्तास्तत्कर्तुमसमर्थाः संतोयतित्वं प्रतिपन्ना दुर्भगाः पुत्रदारादिनात्यक्तानिर्गतिकाः संतः प्रव्रज्यामाश्रिताइति ॥ ६ ॥

॥ टीका—उष्णपरीषहमधिकृत्याह । (पुठेइत्यादि) । ग्रीष्मे ज्येष्ठाषाढाख्ये अभितापस्तेन स्पृष्टश्छुप्तोव्याप्तः सन् विमनाविमनस्कः सुष्टुवा अतिशयेन पातुमिछा पिपासा तां प्राप्तोनितरां तृडभिभूतोबाहुल्येन दैन्यमुपयातीति दर्शयति । तत्र तस्मिन्नुष्णपरीषहोदये मंदाजडाअशक्ताविषीदंति पराभंगमुपयांति । दृष्टांतमाह । यथा मत्स्याअल्पोदके विषीदंति । गमनाभावान्मरणमुपयांत्येवं सत्वाभावात्संयमात् भ्रश्यंतइति । इदमुक्तं भवति । यथा मत्स्याअल्पत्वाउदकस्य ग्रीष्माभितापेन तप्ताअवसीदंत्येवमल्पसत्वाश्चारित्रप्रतिपत्तावपि जलमलक्लेदक्लिन्नगात्राबहिरुष्णाभितप्ताः शीतलान् जलाश्रयान् जलाधारगृहचंदनादीनुष्णप्रतिकारहेतूननुस्मरंतआकुलितचेतसः संयमानुष्ठानं प्रति विषीदंति ॥ ५ ॥ सांप्रतं याञ्चापरीषहमधिकृत्याह (सदादत्तेइत्यादि) यतीनां सदा सर्वदा दंतशोधनाद्यपि परेण दत्तमेषणीयमुत्पादाद्येषणादोषरहितमुपभोक्तव्यमित्यतः क्षुधादिवेदनार्त्तानां यावज्जीवं परदत्तैषणादुःखं भवति । अपि चेयं याञ्चापरीषहोल्पसत्वैर्दुःखेन प्रणोद्यते त्यज्यते । तथाचोक्तं । भिक्षाइमुहलावसुं, वायाघोलेइकंठमझंमि । कहकहकहेइहियय देहित्तिपरंभणंतस्स ॥ १ ॥ गतिभ्रंशोमुखे दैन्यं गात्रस्वेदोविवर्णता । मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके इत्यादि । एवं दुस्त्यजं याञ्चापरीषहं परित्यज्य गताभिमानामहासत्वाज्ञानाद्यभिवृध्दये महापुरुषसेवितं पंथानमनुव्रजंतीति श्लोकपश्चार्द्धेनाऽक्रोशपरीषहं दर्शयति । पृथक्जनाः प्राकृतपुरुषाअनार्यकल्पाइत्येवमाहुरित्येवमुक्तवंतः । तद्यथा । ये एते यतयः जलाविलदेहालुंचितशिरसः क्षुधादिवेदनाग्रस्तास्ते एतैः पूर्वाचरितैः कर्मभिरार्ताः पूर्वस्वकृतकर्मणः फलमनुभवंति । यदिवा कर्मभिः कृष्यादिभिरार्त्तास्तत्कर्तुमसमर्थाउद्विग्नाः संतोयतयः संवृत्ताइतितथैते दुर्भगाः सर्वेणैव पुत्रदारादिना परित्यक्ता निर्गतिकाः संतः प्रव्रज्यामभ्युपगताइति ॥ ६ ॥

एते सद्दे अचायंता, गामेसु णगरेसु वा ॥ तत्न मंदा विसीयंति,
संगामंमिव भीरुया ॥७॥ अप्पेगे खुधियं भिरकुं, सुणी डंसंति
लूसए ॥ तत्न मंदा विसीयंति, तेउ पुठाव पाणिणो ॥ ८ ॥

दत्तादानाखुंचितशिरसः सर्वनोगवंचिताडःखितं जीवंतीति ॥ ए ॥ किंच (अप्पेगेइ त्यादि) अप्येके केचन कुसृतिप्रसृताअनार्यावाचं युंजंति नापंते। तद्यथैते जिनक ल्पिकादयोनग्नास्तथा (पिंमोलगत्ति) परपिंमप्रार्थकाअधमाः मलाविलत्वात् जुगुप्सितामुं माखुंचितशिरसस्तथा क्वचित्कंमूकृतक्ततैरेखाभिर्वा विनष्टांगाविकृतशरीराअप्रतिकर्मश रीरतया वा क्वचिद्रोगसंनवे सनत्कुमारवद्विनष्टांगस्तथोऽतोजल्लः शुष्कप्रस्वेदोयेषांते उल्ल ल्लास्तथा असमाहिताअशोननावीनत्साउष्टावा प्राणिनामसमाधिमुत्पादयंतीति ॥ १० ॥

एवं विप्पडिवन्नेगे, अप्पणाउ अजाणया ॥ तमउ ते तमं जंति,
मंदा मोहेण पाउडा ॥ ११ ॥ पुठोय दंस मसएहिं, तण फास
मवाइया ॥ न मे दिठे परे लोए, जइ परं मरणंसिया ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे जे साधुने एवां डुर्वचन बोले, तेने विपाक देखाडे ले. एवं के० एपूर्वेजी रीते विप्पडिवन्नेगे के० कोइ एक पुण्य रहित जीव, विप्रतिपन्न एटले साधु मार्गना द्वे षी अप्पणाउअजाणया के० पोते अजाण बतां तु शब्दथकीअन्य विवेकी पुरुषनां वच न अण मानतां एवा जीव तमउतेतमंजंति के० अंधकार गति थकी फरी आकरी अं धकार गतियें जाय. ते मंदा के० अज्ञानी केवाडे. तोके, मोहेण के० मिथ्यात्व दर्शने करी पाउडा के० ढाक्या आवख्या कुमार्गने सेवेबे ॥ ११ ॥ हवे दंसमसकादिक परिसह कहे बे. सिंधु ताम्रलिप्त कोंकणादिक देशने विषे प्रायें दंस मशकादिक अधिक होयबे. ते देशोने विषे कोइवार साधु गयो थको, दंसमसएहिं के० दंस मशकादिक पुठोय के० फरशे तेथी दंसमशकादिके पीडायो तथा अकंचन नावबे, माटे तण के० तृणादिकने विषे संथारो करे, तेथी ते तृणादिकना फास के० स्पर्श मवाइया के० सहन कर वाने अशक्तिवंत बतो, कोइ एक कायर एम चिंवतन करे के एवुं डुष्कर अनुष्ठान परलो कने अर्थें करियें बैयें. अने नमेदिठेपरेलोए के० ते परलोकतो अमे दीठुं नथी. जइ के० जेमाटे अपरंमरणं के० एवा क्लेशथी मरण तो प्रत्यक्ष देखायबे जे अवश्य मरण पामीशुं माटे एवा क्लेशथी सखुं ॥ १२ ॥

॥दीपिका—एवं नापंते ये तेषां विपाकमाह। (एवमिति) एवं पूर्वोक्तनीत्या एके केचित् प्रति पन्नाः साधुमार्गे द्वेषिणआत्मना स्वयमज्ञाः। तुशब्दादन्येषां वचनमकुर्वाणास्तेऽज्ञानात्तमो यांति। अधस्तमां गतिं गच्छंति। मंदामोहेन मिथ्यात्वेन प्रावृताआच्छादिताः साधुद्वेषिणः कुमा र्गगाः स्युः। यथा। एकं हि चक्षुरमलं सहजोविवेक,स्त द्विद्भिरेव सह संवसतिर्द्वितीयं॥ एतद्द्व यं त्रुवि न यस्य सतत्वतोंधस्तस्यापमार्गचलने खलु कोपराधः॥ ११ ॥दंशमशकपरीषहानाह।

अप्पेगे पडिनासंति, पडिपंथियमागता ॥ पडियारगता एते,
जे एते एव जीविणो ॥ ए॥ अप्पेगे वइ जुंजंति, नगिणा पिंमो
लगाहमा ॥ मुंमाकंमूविणठंगा, उज्जल्ला असमाहिता ॥ १०॥

अर्थ—वली ग्रामीण लोकनुं वचन परिसह कहेछे. अप्पेगे के० अपि संनावनायें. कोइ एक धर्मना अजाण पडिपंथियमागता के० साधुना द्वेषी, साधुनी साथे शत्रुनावे पोंहोंता थका पडिनासंति के० एवुं कठोर वचन साधुप्रते नासे एटले बोले. शुं बोले? तो के, पडियारगताएते के० ए बापडा पाठला नवना करेलां कर्मनां फल नोगवेछे. जे एते के० जे ए यति ते एवजीविणो के० एम आजीविकायें जीवेछे. एटले परघरनी निक्षा मागेछे, तथा अंतप्रांत आहारना लेनारा छे. एणे पूर्वले नवे कांइ दीधुं नथी, कांइ लाधु नथी, तेथी मस्तक मुंम थइ बीनत्सरूपे सर्व नोग थकी वंच्या एवा ए बापडा डुःखी थका, जीवे छे. ॥ ए ॥ तथा वली एहिज परिसह कहेछे. अप्पेगेवइजुंजंति के० अपि संनावनायें, एक कोइ अनार्य एवां वचनबोले के, नगिणा के० ए नागा सर्वकाल पिंमोलगाहमा के० परपिंमना उसीआला अधम डुगंछाना स्थानक मुंमा के० मुंमितकेश, कंमूके० खाजीये करी एमना शरीर विणठंगाके० विणठाछे. अंगजेना एवा पामर तथा उज्जल्ला के० मेल प्रस्वेद थकी खरडयाछे असमाहिया के० सर्वकाल असमाधिया एटले अशोननिक देखनाराने असमाधिना उपजावनारछे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका—आक्रोशमेव पुनराह । (अप्पेगइति) अप्येके प्रातिपंथिकतां साधुविद्वेषितां प्राप्ताः प्रतिनाषंते । यथा प्रतीकारपूर्वकर्मानुनवस्तमेकेगताः प्राप्ताः स्वकृतकर्मनोगिनोयएते एवं जीविनः परगृहाण्यटंतः अंतप्रांतनोजिनोलुंचितशिरसः सर्वनोगं चिंताडुखं जीवंतीति ॥ ए ॥ किंच (अप्पेगेइति) अप्येके अनार्यावाचं युंजंति नाषंते । यथा एते जिनकल्पिकादयोनग्नाः पिंमोलगाः परपिंमप्रार्थकाअधमामुंडालुंचितकेशाः कंडूः खर्जूस्तया विनष्टांगाः अप्रतिकर्मतया क्वचित् रोगसंनवे सनत्कुमारवद्विनष्टांगाउज्जतोजल्लोमलः प्रस्वेदोयेषांते उज्जल्लाः असमाहिताअशोननाः ॥ १० ॥

॥ टीका—पुनरपि तानधिकृत्याह । (अप्पेगेइत्यादि) । अपिः संनावने । एके केचनाऽपुष्टधर्माणः अपुण्यकर्माणः प्रतिनाषंति ब्रुवते । प्रतिपंथाः प्रतिकूलत्वं तेन चरंति प्रातिपंथिकाः साधुविद्वेषिणस्तद्भावमागताः कथंचित्प्रतिपथेवा दृष्टाअनार्याएतद्ब्रुवते । संनाव्यते एतदेवंविधानां तद्यथाप्रतीकारः पूर्वाचरितस्य कर्मणोऽनुनवस्तमेके गताः प्राप्ताः स्वकृतकर्मफलनोगिनोयएते यतयएवं जीवंति परगृहाण्यटंतोंऽतप्रांतनोजिनो

न्ना के० रागद्वेषे व्याकुल एवा केइ के० कोइएक अनारिया के० अनार्य पुरुषो ते चारित्रवंत साधुने क्रीडायें करी लूसंति के० लूंशे कदर्थना करे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—(संताइति)। केशानां लोचने संतप्ताः पीडितास्तथा ब्रह्मचर्येण पराजितान्नग्नाः संतस्तत्र केशलोचे ब्रह्मचर्ये मंदाविषीदंति संयमाद्भ्रश्यंते। यथा मत्स्याः केतने मत्स्यबंधने प्रविष्टाविषीदंति जीविताद्भ्रश्यंति ॥ १३ ॥ (आयदंडेत्ति)। आत्मा दंड्यते दुर्गतौ पात्यते येन स आत्मदंडः समाचारोनुष्ठानं येषां ते आत्मदंड समाचाराः। मिथ्यासंस्थिताविपरीततया स्वीकृता भावना चित्तवृत्तियैस्ते मिथ्यासंस्थितभावनामिथ्यात्वोपहतदृष्टयइत्यर्थः । हर्षद्वेषमापन्नारागद्वेषाकुलाएवंविधाअनार्याः केचित् साधुं लूषयंति कदर्थयंति दंडादिभिर्वाग्भिर्वा ॥ १४ ॥

॥ टीका—अपिच (संतत्ताइत्यादि)। समंतात् तप्ताः संतप्ताः केशानां लोचउत्पाटनं तेन। तथाहि। सरुधिरकेशोत्पाटने हि महती पीडोपपद्यते तया चाऽल्पसत्वाः विस्रोतसिकां भजंते। तथा ब्रह्मचर्यं वस्तिनिरोधस्तेनच पराजिताः पराभग्नाः संतस्तत्र तस्मिन् केशोत्पाटनेऽतिदुर्जयकामोद्रेके वा सति मंदाजडालघुप्रकृतयोविषीदंति संयमानुष्ठानं प्रति शीतलीभवंति सर्वथा संयमाद्भ्रश्यंति। तथा मत्स्याः केतने मत्स्यबंधने प्रविष्टानिर्गतिकाः संतोजीविताद्भ्रश्यंति। एवं तेपि वराकाः सर्वे कष्टकामपराजिताः संयमजीवितात् भ्रश्यंति ॥ १३ ॥ किंच (आयदंडेत्यापि)। आत्मा दंड्यते खंड्यते हितात् भ्रश्यते येन स आत्मदंडः समाचारोऽनुष्ठानं येषामनार्याणां ते। तथा मिथ्या विपरीता संस्थिता स्वानुग्रहारूढा भावनांतःकरणवृत्तिर्येषां ते मिथ्यासंस्थितभावनामिथ्यात्वोपहतदृष्टयइत्यर्थः। हर्षश्च प्रद्वेषश्च हर्षप्रद्वेषं तदापन्नारागद्वेषसमाकुलाइति यावत्। तएवंभूताअनार्याः साधुं सदाचारं क्रीडया प्रद्वेषणं वा क्रूरकर्मकारित्वात् लूषयंति कदर्थयंति दंडादिभिर्वाऽग्भिर्वैते ॥ १४ ॥

अप्पेगे पलियंतेसिं,चारो चोरोति सुव्वयं॥ बंधंति भिक्खुयं बाला
कसायवयणेहिय ॥१५॥ तत्र दंडेण संवीते, मुठिणा अडुफलेण
वा ॥ नातीणं सरती बाले,इत्वीवा कुद्धगामिणी ॥१६॥ एते भोक
सिणा फासा, फरुसा दुस्सहियासया॥हत्वी वा सरसंवित्ता कीवा
वसगयागिहंतिबेमि ॥१७॥ इति तृतीय ऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशोस०

अर्थ—वली अपि संभावनायें एगेपलियं के० कोइएक अनार्य, देशपर्यंत विचरता

(पुठेत्ति) क्वचित्सिंधुताम्रलिप्तकोंकणादिषु बह्वोदंशमशकाः स्युस्तत्रपर्यटन् साधुस्तैः स्पृष्टोनक्षितस्तथा निष्किंचनत्वात्तृणेषु शयानस्तेषां स्पर्शं सोढुमशक्नुवन् आर्तः सन् एवं कदाचिच्चिंतयेत् । यथा परलोकार्थमिदं डुष्करमनुष्ठानं क्रियते नचासौ मया परलोकः प्रत्यक्षेण दृष्टोनाप्यनुमानादिना । यदि परमनेन क्लेशेन मरणं स्यान्नान्यत्फलं किंचिदिति १२

॥ टीका–सांप्रतमेतद्भाषकाणां विपाकदर्शनायाह । (एवमित्यादि) । एवमनंतरोक्तरीत्या एके अपुण्यकर्माणोविप्रतिपन्नाः साधुसन्मार्गद्वेषिणआत्मना स्वयमज्ञाः । तुशब्दादन्येषां च विवेकिनां वचनमकुर्वाणाः संतस्ते तमसोऽज्ञानरूपादुत्कृष्टं तमोयांति गच्छंति यदिवा अधस्तादप्यधस्तनीं गतिं गच्छंति । यतोमंदाज्ञानावरणीयेनाऽवष्टब्धास्तथा मोहेन मिथ्यादर्शनरूपेण प्रावृताआच्छादिताः संतः पिंगप्रायाः साधुविद्वेषतया कुमार्गगान्नवंति । तथाचोक्तं । एकं हि चक्षुरमलं सहजोविवेक,स्त द्विद्भिरेव सह संवसतिर्द्वितीयं । एतद्द्वयं भुवि न यस्य सतत्वतोऽधस्तस्याऽपमार्गचलने खलु कोपराधः॥ १ ॥ ११ ॥ दंशमशकपरीषहमधिकृत्याह । (पुठोयेत्यादि) क्वचित्सिंधुताम्रलिप्तकोंकणादिके देशे अधिकादंशमशकान्नवंति । तत्रच कदाचित्साधुः पर्यटंस्तैस्पृष्टश्च नक्षितस्तथानिष्किंचनत्वात् तृणेषु शयानस्तत्स्पर्शं सोढुमशक्नुवन् आर्त्तः सन् एवं कदाचिच्चिंतयेत् । तद्यथा । परलोकार्थमेतद्दुष्करमनुष्ठानं क्रियमाणं घटेत नचाऽसौ मया परलोकः प्रत्यक्षेणोपलब्धोऽप्रत्यक्षत्वात् नाऽप्यनुमानादिनोपलभ्यतइति । अतोयदि परं ममानेन क्लेशाभितापेन मरणं स्यान्नाऽन्यत्फलं किंचनेति ॥ १२ ॥

संतत्ता केसलोएणं, बंन्नचेर पराइया ॥ तब मंदा विसीयंति,
मच्छा विठ्ठाव केयणे ॥ १३ ॥ आयदंमसमायारे, मिच्छासंठिय
न्नावणा ॥ हरिसप्पन्नसमावन्ना, केइ लूसंति नारिया ॥ १४ ॥

अर्थ–तथा वली संतत्ता केसलोएणं के० केशना लोचे संताप्या तथा बंनचेर पराइया के० ब्रह्मचर्य थकी नागा एटले लोचनी पीडा उपनी थकी तथा कामविकार ना दीपवा थकी तब के० त्यां मंदा के० मंद अज्ञानी बापडा विसीयंति के० सदाय. संयम थकी ज्रष्ट थाय. ते कोनी परे? तोके, जेम केयणे के० केतन एटले मत्स बंधन तेने विषे विठ्ठाव के० प्रवेश करवा थकी मछा के० माछलुं जीवितव्य थकी चूकेछे. तेनी पेरे ते बापडा संयम थकी चूकेछे. ॥ १३ ॥ आयदंमसमायारे के० आत्मा जे थकी दंमाय एवो जेनो आचार एटले अनुष्ठानछे. तथा मिछासंठियन्नावणा के० मिथ्यादर्शन संस्थित एटले मिथ्यादर्शने नावित जेनुं चित्त छे, तथा हरिसप्पन्नसमाव

॥ टीका–एतदेव दर्शयितुमाह । (अप्पेगेइत्यादि) । अपिःसंभावने । एके अनार्या आत्मदंभसमाचारामिथ्यात्वोपहतबुद्धयोरागद्वेषपरिगताः । साधुं (पलियंतेसिंति) अनार्यदेशपर्यंते वर्तमानं (चारोत्ति) चारोयं चौरोयं स्तेन इत्येवं मत्वा सुव्रतं कदर्थयंति । तथाहि । बध्नंति रज्वादिना संयमयंति भिक्षुकं भीक्षणशीलं बालाअज्ञाः सदसद्विवेकविकलास्तथा कषायवचनैश्च क्रोधप्रधानकटुकवचनैर्निर्भर्त्सयंतीति ॥ १५ ॥ अपिच (तत्थदंडेणेत्यादि) । तत्र तस्मिन्ननार्यदेशपर्यंते वर्त्तमानः साधुरनार्यैर्दंडेन यष्टिना मुष्टिना वा संवीतः प्रहतोऽथवा फलेन वा मातुलिंगादिना खड्गादिना वा ससाधुरेवं तैः कदर्थ्यमानः कश्चिदपरिणतोबालोऽज्ञोज्ञातीनां स्वजनानां स्मरति । तद्यथा । यद्यत्र मम कश्चित् संबंधी स्यात् नाऽहमेवंभूतां कदर्थनामवाप्नुयामिति । दृष्टांतमाह । यथा स्त्री क्रुद्धा सती स्वगृहात् गमनशीला निराश्रया मांसपेशीव सर्वैस्पृहणीया तस्करादिभिरभिद्रुता सती जातपश्चात्तापा ज्ञातीनां स्मरत्येवमसावपीति ॥ १६ ॥ उपसंहारार्थमाह । (एतेभोइत्यादि) । भोइति शिष्यामंत्रणं । यएतआदितः प्रभृति दंशमशकादयः पीडोत्पादकत्वेन परीषहाएवोपसर्गाश्चभिहिताः कृत्स्नाः संपूर्णाबाहुल्येन स्पृश्यंते स्पर्शेंद्रियेणाऽनुभूयंतइति स्पर्शाः । कथंभूताः परुषाः परुषैरनार्यैः कृतत्वात् पीडाकारिणः । तेचाऽल्पसत्वैर्दुःखेनाऽधिसह्यंते तांश्चाऽसहमानालघुप्रकृतयः केचन श्लाघामंगीकृत्य हस्तिनइव रणशिरसि शरजालसंवीताः शरशताकुलाभंगमुपयांत्येवं क्लीबाअसमर्थाअवशाः परवशाः कर्मायत्तागुरुकर्माणः पुनरपि गृहमेव गताः । पाठांतरं वा (तिव्वसढेत्ति) तीव्रैरुपसर्गैरभिद्रुताः शठाः शठानुष्ठानाः संयमं परित्यज्य गृहं गताइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् । उपसर्गपरिज्ञायाः प्रथमोद्देशकइति ॥ १७ ॥

॥ अथ द्वितीयोद्देशकस्य प्रारंभः पहेला उद्देशामां प्रतिकूल उपसर्गना कारण कह्या. हवे बीजा उद्देशामां अनुकूल उपसर्गना कारण कहेछे.

अहिमे सुहमा संगा, भिक्खुणं जे दुरुत्तरा ॥ जत्थ एगे विसीयं
ति, णचयंतिज वित्तए ॥ १ ॥ अप्पेगे नायत्रं दिस्स, रोयंति
परिवारिया ॥ पोसणे ताय पुट्ठोसि, कस्स तायजहासि णे ॥२॥

अर्थ–अहके० अथ हवे इमे के० ए सुहमाके० सूक्ष्म, एटले चित्तने विकार उपजावनार एवा अंतरंग प्रतिकूल उपसर्गना कारण पण बादर एटले प्रगट देखाय नही तेवा शरीरने विकार करनार उपसर्ग न जाणवा एवा संगाके० मातापितादिकनो संबंध, ते संबंधी जेके० जे भि

जें साधु तेसिंके० ते साधुने एम कहेके, चारोचोरोतिसुव्वयंके० ए हेरुछे चोरछे, निक्कण शील एम कहीते सुव्रतजे अणगार तेने बंधंतिनिरकयंके० राशी प्रमुखे करी, साधुने बांधे एवा बालाके० बाल अज्ञानी तथा कसायवयणेहियके० कषायना वचने करी निर्नर्त्सना करे. ॥१५॥ तबके० त्यां अनार्य पुरुषे साधुने दंमेणके० दंमे करी तथा मुठिणाके० मुष्टियें करी अडवाके० अथवा फलेणवाके० फले करी संवीतेके० हण्यो छतो कांइक परिणत साधु नातिणंसरती बाले के० एवा डुःखोने ते बाल अज्ञानी अण सहेतो थको ज्ञाती गोत्रीने संनारे के, माहारो संबंधि गोत्री जो कोइ अंहियां होत तो ए मने एवी कदर्थना नकरत; एवी चिंतवना करे इछिवाकुद्धगामिणी के० जेम स्त्री रीशाणी थकी, पोताना घरमांथी निकली; रस्तामां तेने चोर लोकोए ग्रहण करी छती पोताना संबंधिउनुं स्मरण करे, पश्चात्ताप करे, तेनीपेरे जाणी लेवी. ॥ १६ ॥ हवे उपसंहार करतो कहेछे. एते के० ए जे पूर्वे दंसमशकादिकना परिसह कह्या ते नोके० श्रीसुधर्मस्वामी जंबूप्रमुख शिष्योने बोलावी कहेछे के, नोशिष्यो कसिणाफासा के०जे परिसह कह्या ते संपूर्णप्रत्ये फरशे फरुसा डुसहियालया के० जे कगोर अहियासता डुर्लनछे एवा परिसहने अणसहेता एवा जे किवाके० क्लीब असमर्थ अवसाके० परवशे एटले कर्मना वशें पड्या थका गयागिहं के० वली गृहवासे गया. कोनीपरे ? तोके, हछिवासरसंविता के० जेम हस्ती संग्रामने माथें, मस्तके शरजाले वींध्यो थको त्यांथी नाशी पाछो फरे तेम कायर साधु चारित्र थकी पाछो फरें तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ १७ ॥

इति तृतीयाऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ दीपिका–(अप्पेगत्ति) एके पूर्वोक्तविशेषणाअनार्याः पर्यंतदेशे वर्तमानं साधुं सुव्रतं (चारोचोरित्ति) चरोयं चोरोयमिति कृत्वा बध्नंति निक्षुकं निक्कणशीलं बालाअज्ञास्तथा कषायवचनैः क्रोधवचनैर्निर्नर्त्सयंति ॥ १५ ॥ (तछेति) तत्राऽनार्यदेशेऽनार्यैर्दंडेन मुष्टिना फलेन मातुलिंगादिना खड्गादिनावा संवीतः कश्चिदपरिणतः साधुर्ज्ञातीनां स्मरति। यद्यत्र मम कश्चित्संबंधी स्यात्तदा नाहमीदृशीं कदर्थनां प्राप्नुयामीति। यथा स्त्री क्रुध्दा सती स्वगृहाजमनशीला निराश्रया मांसपेशीव सर्वैस्पृहणीया तस्करादिनिरनिद्रुतासती जातपश्चात्तापा ज्ञातीनां स्मरत्येवं साधुरपि ॥ १६ ॥ (एतेइति)। नोइति शिष्यामंत्रणं । एते दंशमशकादयः परीषहाः स्पृश्यंते अनुनूयंते स्पर्शाः परुषाः कठिनाडुःखेनाधिसह्यंते डुरधिसह्याहस्तिनइव शरैर्बाणैः संवीताव्याप्तानज्यंतइति शेषः । एवं क्लीबाअसमर्थाअवशाःपरवशाःकर्मायत्ताः पश्चात्स्वगृहं गता ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १७ ॥

इतिउपसर्गपरिज्ञाख्ये तृतीयाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

तथाविधाज्ञातयः स्वजनामातापित्रादयः प्रव्रजंतं प्रव्रजितं वा दृष्ट्वोपलभ्य परिवार्य वेष्ट यित्वा रुदंति रुदंतोवा वदंति च दीनं । यथा बाल्यात् प्रभृति त्वमस्माभिः पोषितोवृद्धा नां पालकोभविष्यतीति कृत्वा ततोधुनानोऽस्मानपित्वं तात पुत्र पोषय पालय कस्य कृ ते केन कारणेन कस्यवा बलेन तातास्मान् त्यजसि नास्माकं भवंतमंतरेण कश्चित्राता विद्यतइति ॥ २ ॥

पिया ते थेरउ तात, ससा ते खुड्डिया इमा ॥ भायरोते सगा ता
त, सोयरा किं जहासि ऐ ॥ ३ ॥ मायरं पियरं पोस, एवं लोगो
भविस्सति ॥ एवं खु लोइयं ताय, जे पालंति य मायरं ॥ ४ ॥

अर्थ-पियाते थेरउतात के० अहो तात ताहरो जे पिताछे ते थेरउ एटले मोकरो छे अर्थात वृद्धछे, तथा ससा के० बेहेन ते खुड्डिया के० न्हानीछे, इमाके० ए प्रत्यक्ष देखायछे, तथा भायरोतेसगातात के० हेतात ताहरा सगाभाइ ते एक माताना जण्या एवा सोयरा के० सहोदर एक उदरना उपज्या, स्नेहना पात्र, तेने किंजहासिऐ के० केम छांमीश ते कारण माटे तु अमने कां छांमेछे ॥ ३ ॥ तथा मायरं के० माता अने पियरं के० पिता तेने पोस के० पोषण कर एवं लोगोभविस्सति के० एरीते पर लोकनी सिद्धि थशे. एवंखुलोइयं ताय के० तथा हेतात आलोकने विषे पण निश्चय थकी एवो आचारछे के जे पालंति य मायरं के० जे संसारमांहे पोताना मातापितानुं पालणपोषणकरे, तेज श्रेष्ठ मनुष्य कहेवायछे. यतोगुरुवोयत्र पूज्यंतिइति वचनात्॥४॥

॥ दीपिका-पियेति। हेतात पुत्र ते तव पिता स्थविरः स्वसाभगिनी तव क्षुल्लिका लघ्वी इमे भ्रातरस्तव निजास्तात सोदराः स्वकाःसहोदराः किमस्मान् त्यजसि ॥३॥ मायरमिति। मातरं पितरं पुषाण पोषय एवंकृते तवेह लोकः परलोकश्च भविष्यति । इदमेव लौकिकं लोकसंमतं यत् वृद्धयोर्मातृपित्रोः परिपालनं । यतः । गुरवोयत्र पूज्यंते यत्र धान्यं सुसं स्कृतं ॥ अदंतकलहोयत्र तत्र शक्र वसाम्यहमिति ॥ ४ ॥

॥ टीका-किंच (पियेत्यादि) हेतातपुत्र पिता ते तव स्थविरोवृद्धः शताती तः स्वसाच भगिनी तव क्षुल्लिका लघ्वी अप्राप्तयौवना इमा पुरोवर्त्तिनी प्रत्यक्षेति तथा भ्रातरस्ते तव स्वकानिजास्तात सोदराएकोदराः किमित्यस्मान् परित्यजसीति ॥ ३ ॥ त था (मायरमित्यादि) मातरं जननीं तथा पितरं जनयितारं पुषाण बिभृहि। एवं च कृते तवेह लोकः परलोकश्च भविष्यति । तातेदमेवलौकिकं लोकाचीर्णमयमेव लौकिकः पं

रकुणंके० चारित्रियाने दुरुत्तराके० दुर्लंघनीय उपसर्गछे तेज उपसर्ग कहेछे. जबके० जे उपसर्ग आवे थके एगेके०कोइ एक कायर चारित्रिउ; सीयंतिके० सदाय एचियंतिजविन्तएके० ते पोताना आत्माये संयमनो निर्वाह करी शके नही ॥१॥ अपि संभावनाए, एगेके० कोइएक नायउद्दिस्स के० ज्ञातिना साधुने देखीने साधुने परिवारिया कें० वीटीने रोयंति के० रुदन करे एटले विलाप करे अने एम कहेके अम्हे तारुं बालपण थकी पालण पोषण कर्युं, ते अम्हे तारा ताय के० तात एटले पिता छैयें माटे एवुं जाण्युजे अमारी वृद्धावस्थामां; तुपण अमारुं पोषण करीश पुठोसि के० तेमाटे हेपुत्र तुं अमारुं पोसणके० पोषण कर, तथा ते साधुना पुत्रादिक होय ते एम कहेके कस्सतातायजहासिणे के० अहो तात अहोपिता तमे अमने शाकारणे छांमोछो ? ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयआरभ्यते । पूर्वं प्रतिकूलाउपसर्गाउक्ताः इहाऽनुकूलाउच्यंते । यथा (अहिमेति) अथ इमे वक्ष्यमाणाः सूक्ष्माअांतरविकारिणः संगामातापित्रादयोभिक्षूणां ये दुरुत्तरादुर्लंघ्याः । यत्र येषु उपसर्गेषु एकेअल्पसत्वाविषीदंति संयमे मंदाः स्युः । नशक्नुवंति यापयितुं संयमे आत्मानं प्रवर्तयितुमिति ॥ १ ॥ (अप्पेगइति) अपिःसंभावने । एके ज्ञातयः स्वजनाः प्रव्रजंतं प्रव्रजितं वा दृष्ट्वा परिवार्य विष्टभ्य आश्रित्य रुदंति वदंति चैवं त्वमस्माभिः पोषितोबाल्यादारभ्यावृद्धमस्माकं बालकोभविष्यसीति कृत्वा ततोऽस्मान् त्वं तातपुत्र पोषय पालय कस्य कृते केन कारणेनास्मान् त्यजसि ॥२॥

॥ टीका—उक्तः प्रथमोद्देशकः । सांप्रतं द्वितीयः समारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहोपसर्गपरिज्ञाध्ययने उपसर्गाः प्रतिपादितास्तेचानुकूलाः प्रतिकूलाश्च । तत्र प्रथमोद्देशके प्रतिकूलाः प्रतिपादिताइहत्वनुकूलाः प्रतिपाद्यंतइत्यनेन संबंधेनायातस्याऽस्योद्देशकस्याऽदिसूत्रं । (अहिमेइत्यादि) । अथेत्यानंतर्ये । प्रतिकूलोपसर्गानंतरमनुकूलाः प्रतिपाद्यंतइत्यानंतर्यार्थः । इमे त्वनंतरमेवाभिधीयमानाः प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिदमभिधीयंते । तेच सूक्ष्माः प्रायश्चेतोविकारकारित्वेनांतरान प्रतिकूलोपसर्गाइव बाहुल्येन शरीरविकारकारित्वेन प्रकटतया बादराइति । संगामातापित्रादिसंबंधाः । यएते भिक्षूणां साधूनामपिदुरुत्तरादुर्लंघ्यादुरतिक्रमणीयाइति । प्रायोजीवितविघ्नकरैरपि प्रतिकूलोपसर्गैरुदीर्णैर्माध्यस्थ्यमवलंबयितुं महापुरुषैः शक्यमेतेत्वनुकूलोपसर्गास्तानप्युपायेन धर्माच्च्यावयंत्यतोऽमीदुरुत्तराइति । यत्र येषूपसर्गेषु सत्त्वेके अल्पसत्वाः सदनुष्ठानं प्रति विषीदंति शीतलविहारित्वं भजंते सर्वथा वा संयमं त्यजंति नैवात्मानं संयमानुष्ठानेन यापयितुं वर्तयितुं तस्मिन् वा व्यवस्थापयितुं शक्नुवंति समर्थाभवंतीति ॥ १ ॥ तानेव सूक्ष्मसंगान् दर्शयितुमाह । (अप्पेगेइत्यादि) अपिः संभावने । एके

गंतुं ताय पुणो गछे, णय तेणासमणोसिया ॥ अकामगं परि
कम्मं, कोउते वारेउ मरिहृति ॥७॥ जं किंचि अणगं तात, तंपि
सवं समीकतं ॥ हिरसं ववहाराइ, तंपि दाहासु ते वयं ॥ ८ ॥

अर्थ—गंतुंताय के० तेमाटे अहो तात एकवार घेर जइने पुणोगछे के० वली फरी आवीने यति थाजो णयतेणासमणोसिया के० एटलुं कीधा थकी अश्रमणपणु न थाय; जो तमे अकामगं के० गृह व्यापारनी इछारहित परिकम्मं के० पोतानुं मन मान्यु अनुष्ठान करशो, तो तमने कोउतेवारेउमरिहृति के० कोण वारवाने समर्थ छे अ थवा अकामगं के० वृद्धावस्थायें विषयाभिलाष निवर्त्ते थके परिकम्मं के० संयमानुष्ठा नने विषे पराक्रम करजो, केमके तेवखत धर्म करवाने योग्य छे; तेवारे कोतेवारेउ मरिहृतिके० तमोने कोइ पण वारवाने समर्थ थशे नही ॥७॥ जंकिंचिअणगंतातके० वली अहो तात जेकांइ तमारा उपर ऋण एटले लेणुहतुं तंपिसवंके० तेपण अमे सर्व देवुं स मीकितं के० समुंकीधुं, एटले मागनाराउनुं सर्व लेणुं चुकावी दीधुं छे, तथा हिरन्नंववहा राइ के० जे व्यवहारने कार्ये अथवा अन्य कोइ भोगोपभोगने अर्थे सुवर्ण रूपादिक खपमां लागशे तंपि के० तेपण सर्व अमे तेवयं के० तमोने दाहासुके० आपीशुं ॥८॥

॥ दीपिका—(गंतुमिति) तात गत्वा गृहं स्वजनवर्गं दृष्ट्वा पुनर्गतासि नच तेनैतावता गृहगमनमात्रेण त्वश्रमणोभविष्यसि । अकामकं गृहव्यापारेछारहितं पराक्रमंतं स्वाभि प्रेतानुष्ठानं कुर्वाणं कोवारयितुमर्हति । एकवारं गृहमागत्य पुनर्यथोचितं कुर्याइति भावः । अथवा अकामकं वृद्धावस्थायां मदनेछारहितं पराक्रमंतं संयमे प्रवर्तमानं त्वां कोवारयि तुमर्हति ॥७॥ (जंकिंचिदिति) यत्किंचित्तव ऋणमासीत्तदस्माभिर्विभज्य समीकृतं समभा रेण व्यवस्थापितं । यच्च हिरण्यं द्रव्यं व्यवहारादावुपयुज्यते तदपि वयं तव दास्यामः ॥८॥

॥ टीका—किंच । (गंतुमित्यादि) । तात पुत्र गत्वा गृहं स्वजनवर्गं दृष्ट्वा पुनरागंता सि नच तेनैतावता गृहगमनमात्रेण त्वश्रमणोभविष्यसि । (अकामगंति) अनिछंतं गृहव्यापारेछारहितं पराक्रमंतं स्वाभिप्रेतानुष्ठानं कुर्वाणं कस्त्वां भवंतं वारयितुं निषेध यितुमर्हति योग्योभवति । यदिवा (अकामगंति) वार्द्धकावस्थायां मदनेछाकामरहि तं पराक्रमंतं संयमानुष्ठानं प्रति कस्त्वामवसरप्राप्ते कर्मणि प्रवृत्तं धारयितुमर्हतीति ॥ ॥७॥ अन्यच्च (जंकिंचिइत्यादि) । तात पुत्र यत्किमपि भवदीयमृणजातमासीत्तत्सर्वमस्मा भिः सम्यग्विभज्य समीकृतं समभागेन व्यवस्थापितं । यदिचोत्कटं सत् समीकृतं सुदेयत्वेन व्यवस्थापितं यच्चहिरण्यं द्रव्यजातं व्यवहारादावुपयुज्यते । आदिशब्दात् येनवा प्रकारेण तवोपयोगं यास्यति तदपि वयं दास्यामोनिर्धनोहमिति माकृथाभयमिति ॥ ८ ॥

था यदुत वृद्धयोर्मातापित्रोः प्रतिपालनमिति । तथाचोक्तं । गुरवोयत्र पूज्यंते यत्र धान्यं सुसंस्कृतं ॥ अदंतकलहोयत्र तत्र शक्रवसाम्यहमिति ॥ ४ ॥

उत्तरा महुरुल्लावा, पुत्ता ते तात खुड्डया ॥ भारिया ते णवा तात, मा सा अन्नं जणं गमे ॥ ५ ॥ एहि ताय घरं जामो, माय कम्मं सहावयं ॥ बितियं पिताय पासामो, जासु ताव सयं गिहं ॥ ६ ॥

अर्थ–एरीते उत्तर के० प्रधान तथा उत्तरोत्तर महुरुल्लावा के० मधुर जेनो आलाप छे एटले नरम वचनना बोलनारा एवा पुत्तातेतातखुड्डया के० अहोतात तमारा पुत्र न्हानाछे, तथा भारियातेणवातात के० तमारी भार्या ते नवीन परणेलीछे ने लघुवयवालीछे, माटे माके० रखे साके० ते अन्नंजणंगमे के० अन्यजन पासे जशे तो आपणा कुलने ते कलंक लगाडशे. ॥ ५ ॥ माटे एहितायघरंजामो के० अहो तात तमे आवी घरमां रहो अने त्यां रह्या थका मायकम्मं के०कांइपण कार्य करशोमां नवा कार्य उपने थके अम्हे तमोने सहावयं के०सहाइ थइशुं, तेमाटे एकवार गृहकार्यथी तमे भागाछो परंतु बितियंपि के० बीजी वखत तायके० हेतात अथवा हे पुत्र पासामो के० तमे जुउ के अमे शरवाइ छता जोइये जे तमारो शुं बिगाड थायछे, जासुतावसयंगिहंके० तेमाटे चालो पोताने घेर जइये, एटलुं अमारुं वचन मान्यकरो. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–(उत्तराइति) उत्तराः प्रधानाउत्तरोत्तरजातावा । मधुरोल्लापामधुरवचनास्ते तात पुत्रालघवः । तथा भार्या तव नवा नवयौवना नवोढा वा सा त्वया त्यक्ता सती नान्यं गछेदुन्मार्गगामिनी मास्यात् ॥ ५ ॥ (एहीति) एहि आगछ तात गृहं यामः । मात्वं किमपि कर्म कृथाः । अपितु कर्मण्युपस्थिते ते वयं सहायकाभविष्यामः । एकवारं तावद्गृहकर्मनिर्विन्नस्त्वं पुनरपि द्वितीयवारं पश्यामोऽद्ध्यामोयदस्माभिः सहायैर्भवतो भविष्यतीत्यतोयामस्तावत्स्वकं निजं गृहं ॥ ६ ॥

॥ टीका–अपिच । (उत्तरेत्यादि) उत्तराः प्रधानाउत्तरोत्तरजातावा मधुरोमनोज्ञउल्लापआलापोयेषांते तथाविधाः पुत्रास्ते तव तातपुत्र क्षुल्लकालघवः । तथा भार्यापत्नी ते नवा प्रत्यग्रयौवना अतिनवोढा वा मासौ त्वया परित्यक्ता सत्यन्यं जनं गछेदुन्मार्गयायिनी स्यादयं च महाजनापवादइति ॥ ५ ॥ अपिच । (एहीत्यादि) जानीमोवयं यथा त्वं कर्मभीरुस्तथाप्येहि आगछ गृहं यामोगछामः । मात्वं किमपि सांप्रतं कर्मकृथाः अपितु तव कर्मण्युपस्थिते वयं सहायकाभविष्यामः साहाय्यं करिष्यामः । एकवारं तावद्गृहकर्मनिर्विन्नस्त्वं तात पुनरपि द्वितीयवारं पश्यामोऽद्ध्यामोयदस्माभिः सहायैर्भवतोभविष्यतीत्यतोयामोगछामस्तावत् स्वकं गृहं कुर्वे तदस्मद्वचनमिति ॥ ६ ॥

२३

विबद्धो नातिसंगेहिं, हत्थीवावि नवग्गहे ॥ पिठ्ठतो परिसप्पंति,
सुयगोव्व अदूरए ॥ ११ ॥ एतेसंगा मणूसाणं, पातालाव अ
तारिमा ॥ कीवा जठ्ठ य किस्संति, नायसंगेहिं मुछिया ॥ १२ ॥

अर्थ–वळीते नातिसंगेहिं के० ज्ञाति गोत्रीनी संगते करी विबद्धो के० विविध प्रकारे बंधाणो थको परवश थयो, एटले तेमना अनुकूल वचने करी मनने विषे धृति उपजी तेणे करी बंधाणो हत्थीवाविनवग्गहे के० जेम नवा ग्रहण करेला हस्तिने, जो इक्षुखंमादिकनो आहार करावियें तो नवा बंधने करी बंधाय अथवा मधुर वचने करी उपचारियें तेवारे ते बंधननो अंगीकार करे तेम अहीं पण ए दृष्टांते ते ज्ञाति गोत्रि जे पुत्रादिकछे ते सुयगोव्व के० नवप्रसूत गायनीपेरे जेम तेगाय पोताना बालक थकी अदूरए के० दूर नजाय, तेम ते पिठ्ठतोपरिसप्पंति के० पुत्रादिक तेसाधुने व्यामोहमां पाडवाने अर्थे पछवाडे लाग्याज फरता रहे ॥ ११ ॥ हवे संगनो दोष कहेछे, एतेसंगा के० ए पूर्वोक्त मातापितापुत्रादिकनो जे संगम छे ते मणूसाणं के० मनुष्यने पातालाव के० पाताल समुद्रनी पेरे अतारिमा के० तरतां दुस्तर जाणवो जठ्ठय के० जे संगमने विषे मनुष्य कीवा के० क्लीब असमर्थ छतां किस्संति के० क्लेश पामेछे, ते केवाछता क्लेशपामेछे, तोके नायसंगेहिंमुछिया के० ज्ञाति स्वजनने संगे गृद्ध मूर्छित छतां संसार मांहे क्लेश पामेछे. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–(विबद्धइति) । ज्ञातिसंगैर्विबद्धोविशेषेण बद्धः । तेच ज्ञातयस्तस्मिन्नवसरे तस्य सर्वमनुकूलमनुतिष्ठंति । यथा हस्ती नवग्रहे धृत्युत्पादनार्थं इक्षुखंडादिनिरुपचर्यते तथाऽसावप्युपचर्यते । यथाऽचिनवप्रसूता गौर्निजवत्सस्यादूरगा समीपवर्तिनीसती पृष्ठतः परिसर्पति एवं स्वजनाअपि तन्मार्गानुगाः स्युः ॥ ११ ॥ (एतेति) एते पूर्वोक्ताः संगाः पित्रादिसंबंधामनुष्याणां पातालाः समुद्राइव अतारिमाडस्तराः संति क्लीबाअसमर्थाः। यत्र येषु संगेषु क्लिश्यंति क्लेशमनुभवंति ज्ञातिसंगैर्मूर्छिताः ॥ १२ ॥

॥ टीका–अपिच । (विबद्धइत्यादि) विविधं बद्धः परवशीकृतः विबद्धोज्ञातिसंगैर्मातापित्रादिसंबंधैस्तेच तस्य तस्मिन्नवसरे सर्वमनुकूलमनुतिष्ठंतोधृतिमुत्पादयंति । हस्तीवापि नवगृहे अचिनवग्रहणे धृत्युत्पादनार्थमिक्षुशकलादिभिरुपचर्यते । एवमसावपि सर्वानुकूलैरुपायैरुपचर्यते । दृष्टांतांतरमाह । यथाऽचिनवप्रसूता गौर्निजस्तनंधयस्यादूरगा समीपवर्तिनी सती पृष्ठतः परिसर्पत्येवं तेपि निजाःउत्प्रव्रजितं पुनर्जातमिव मन्यमानाः पृष्ठतोनुसर्पंति तन्मार्गानुयायिनोभवंतीत्यर्थः॥११॥ संगदोषदर्शनायाह । (एतेसंगाइत्यादि)

इच्चेव णं सुसेहंति, कालुणीयसमुछिया ॥ विबद्धो नायसंगेहिं, ततो गारं पहावइ ॥ ९ ॥ जहा रुरकं वणे जायं, मालुया पडि बंधई ॥ एव णं पडिबंधंति, णातउ असमाहिणा ॥ १० ॥

अर्थ—इच्चेवके० एरीते वचनेकरी, णंइति वाक्यालंकारे. ते सर्वे पुत्रादिक सुके० रुडीरीते सेहंति के० शीखवे कालुणीय के० करुणाकारे एवावचने समुछिया के० पोते ते पुत्रादिक दीनपणाने नावे पोंहोंच्या बतां, एम पूर्वोक्त रीते कहे, तेथी ते नायसंगेहिं के० ते ज्ञाति गोत्रीजे पुत्रादिक तेना संगे करी, विबद्धो के० बांध्योबतो ततोके० तेवारे ते अल्प सत्ववंत कायर साधु, तेमना वचने मोहित थयो बतो आगारंपहावइ के० आगार नणी ध्यावे, एटले घरवास मांमीने संयमने बांमे ॥ ९ ॥ पबी जहा के० जेम वणेजायं के० वनने विषे उत्पन्न थयुं एवुंजे रुरकं के० वृक्ष ते मालुया के० वेलडीउ तेणेकरी पडिबंधई के० बंधाय, एटले वेलडीयें करी वींटाय, एव के० एम, णंइति वाक्यालंकारे. णातउ के० जाति स्वजनादिक जे बे ते साधुने असमाहिणा के० असमाधियेकरी पडिबंधंति के० बांधीलीये संयमथकी भ्रष्ट करे इत्यर्थः ॥ १० ॥

॥ दीपिका—(इच्चेवेति) णंवाक्यालंकारे । इत्येवं पूर्वोक्तनीत्या स्वजनाः करुणामुत्पादयंतीति कारुणिकाः समुपस्थिताः प्राप्तास्तं साधुं (सुसेहंत्ति) सुष्ठु शिक्षयंति व्युद्ग्राहयंति । सचाऽपरिणतधर्माऽल्पसत्वोगुरुकर्मा जातिसंगैर्विबद्धोमोहितस्ततोऽगारंगृहं (पधावइत्ति) प्रव्रज्यां त्यक्वा गृहे यातीत्यर्थः ॥ ९ ॥ (जहेति) यथा वने जातं वृक्षं मालुयावल्ली प्रबध्नाति वेष्टयति । एवं ज्ञातयस्तं साधुमसमाधिना प्रतिबध्नंति । तत्कुर्वंति येनास्याऽसमाधिरुत्पद्यते । यडुक्तं । अमित्तो मित्तवेसेण कंठे घेत्तूण रोयइ । मामित्तासो गईजाई, दोविगब्बासुडुग्गई इति ॥ १० ॥

॥टीका—उपसंहारार्थमाह (इच्चेवणमित्यादि)। णमितिवाक्यालंकारे ।इत्येव पूर्वोक्तया नीत्या मातापित्रादयः कारुणिकैर्वचोभिः करुणामुत्पादयंतः स्वयंवा दैन्यमुपस्थितास्तं प्रव्रजितं प्रव्रजंतं वा ॥ (सुसेहंतित्ति) सुष्ठु शिक्षयंति व्युद्ग्राहयंति । सचापरिणतधर्माऽल्पसत्वो गुरुकर्मा ज्ञातिसंगैर्विबद्धोमातापितृपुत्रकलत्रादिमोहितस्ततोगारं गृहं प्रति धावति प्रव्रज्यां परित्यज्य गृहपाशमनुबध्नातीति ॥९॥ किंचान्यत् । (जहारुरकमित्यादि) । यथा वृक्षं वने अटव्यां जातमुत्पन्नं मालुयावल्ली प्रतिबध्नाति वेष्टयत्येव । णमितिवाक्यालंकारे । ज्ञातयः स्वजनास्तं यतिं असमाधिना प्रतिबध्नंति ते तत्कुर्वंति येनास्यासमाधिरुत्पद्यतइति । तथा चोक्तं । अमित्तो मित्तवेसेण, कंठे घेत्तूण रोयइ । मामित्तासोगई जाइं, दोविगब्बासु डुग्गई ॥ १० ॥

परिज्ञया परिहरेत् । किमिति यतः सर्वेपि केचन संगास्ते महाश्रवामहांति कर्मणश्चा श्रवद्वाराणि वर्तंते । ततोनुकूलैरुपसर्गैरुपस्थितैरसंयमजीवितं गृहावासपाशं नाभि कांक्षेत नाभिलपेत् । प्रतिकूलैश्चोपसर्गैः सद्भिर्जीविताभिलापी नभवेदसमंजसकारित्वेन भ वजीवितं नाभिकांक्षेत् । किंकृत्वा श्रुत्वा निशम्यावगम्य । कं धर्मं श्रुतचारित्राख्यं । नास्यो त्तरोस्तीत्यनुत्तरं प्रधानं मौनींद्रमित्यर्थः ॥ १३ ॥ अन्यच्च । (अहिमेत्यादि) । अथेत्यधिका रांतरदर्शनार्थः । पाठांतरं वा अहोइति तच्चविस्मये । इमे इतिप्रत्यक्षासन्नाः सर्वजनविदि तत्वात् संति विद्यंते वक्ष्यमाणाआवर्तयंति प्राणिनं भ्रामयंतीत्यावर्तास्तत्र इव्यावर्ता नद्यादेर्भावावर्तास्तूत्कटमोहोदयापादितविषयाभिलापसंपादकसंपत्प्रार्थनाविशेषाएतेचाव र्ताः काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिनाऽनुत्पन्नदिव्यज्ञानेनावेदिताः कथिताः प्रतिपादिताः । यत्र येषु सत्सु बुद्धाअवगततत्त्वाआवर्तविपाकवेदिनस्तेभ्योवसर्पंते । प्रम त्ततया तद्दूरगामिनोभवंत्यअबुद्धास्तु निर्विवेकतया येष्ववसीदंत्यासक्तिं कुर्वंतीति ॥ १४॥

रायाणो रायमच्चाय, माहणा अडुव खत्तिया ॥ निमंतियंति भो गेहिं, भिक्कूणं साहु जीविणं ॥ १५ ॥ हबस्स रहजाणेहिं, वि हारगमणेहिया ॥ भुंजभोगे इमे सग्घे, महरिसी पूजयामु तं ॥१६॥

अर्थ—हवे ते आवर्त्त कहेछे. रायाणोराय के० राजाना राजा जे चक्रवर्ति प्रमुख तथा राजाना मच्चाय के० अमात्य मंत्रीश्वरप्रमुख तथा माहणा के० ब्राह्मण ते पुरोहित प्रमुख अथवा खत्तिया के० क्षत्रीते इक्ष्वाकुकुलप्रमुख वंशने विषे उत्पन्न थयला एवा पुरुषो ते भिक्कूणंजीविणं के० साधुने आचारे प्रवर्तता एवा साहु के० साधुउने भोगेहिं के० भोगे करी निमंतियंति के० ब्रह्मदत्त जेम चित्र साधुने निमंत्रण कर्युं तेनी पेरे निमं त्रण करे ॥१५॥ हवे जेरीते भोगे करी निमंत्रे ते देखाडेछे. हबस्सके० हस्ती घोडा रह के० रथ यानके० पालखी प्रमुख, एटले करी निमंत्रण करे भोजवे विहारगमणेहिय के० उद्यानादिकने विषे क्रीडादिक हेतुये गमन करवाने अर्थे, तथा अन्य इंद्रियोने अनुकूल एवा विषयसुखने अर्थे निमंत्रण करे अने कहेके इमे के० आ प्रत्यक्ष सग्घे के० श्लाघनीय भोगे के० भोग ते तमे भुंजके० भोगवो; महरिसी के० अहो महर्षि एटले प्रकारे करीने पूजयामुतं के० अमें तमोने पूजीये छैयें ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—(रायाणोत्ति) । राजानोराजामात्यामंत्रिणोब्राह्मणाः अथवा क्षत्रियाः ज्ञेपभृत्याः । एते सर्वेपि भिक्षुकं साधुजीविनं साध्वाचारेण जीवनशीलं साधुं भोगैर्निमंत्रयं ति भोगांश्चांगीकारयंति । यथा ब्रह्मदत्तचक्रिणा चित्रसाधुर्भोगैर्निमंत्रितइति ॥१५॥ तथा

एते पूर्वोक्ताः सज्यंतइति संगाः मातृपित्रादिसंबंधाः कर्मोपादानहेतवः मनुष्याणां। पाताला इव समुद्राइवाप्रतिष्ठितजूमितलत्वात् ते (अतारिमत्ति) डुस्तराएवमेतेपि संगाअल्पसत्वैर्डुःखेनातिलंघ्यंते । तत्रच येषु संगेषु क्लीबाअसमर्थाः क्लिश्यंति क्लेशमनुजवंति संसारांतर्वर्तिनोजवंतीत्यर्थः । किंजूताः ज्ञातिसंगैः पुत्रादिसंबंधैर्मूर्छितागृध्राअध्युपपन्नाः संतोन पर्यालोचयंत्यात्मानं संसारांतर्वर्तिनमेव क्लिश्यंति ॥ १२ ॥

तं च निक्खू परिन्नाय, सवे संगा महासवा॥ जीवियं नाव कंखिज्जा, सोच्चा धम्ममणुत्तरं ॥ १३ ॥ अहिमे संति आवट्टा, कासवेणं पवेइया॥ बुद्धा जञ्च वसप्पंति, सीयंति अबुहा जहिं ॥१४॥

अर्थ—तंचके० तेमाटे निक्खूके० जे साधु होय ते ज्ञाती स्वजनादिकना समागमने परिन्नाय के० ज्ञ परिज्ञायें करी संसारनुं कारण जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे केमके, ए सवेसंगा के० समस्त समागमो जे छे ते महासवा के० महाश्रव महोटा कर्मोना स्थानको जाणवा. ते कारण माटे जीवियंनावकंखिज्जा के० अनुकूल उपसर्गआवे थके पण, असंयमे जीवितव्य वांछे नही, एटले गृहस्थावासनी वांछा साधु करे नही; शुं करीने तो के अणुत्तरं के० अनुत्तर एटले प्रधान एवो धम्मं के० श्रीजिनधर्म तेने सोच्चा के० सांजलीने असंयम वांछे नही ॥ १३ ॥ अहके० अथ एटले हवे अथवा पाठांतरे अहो इति विस्मयें इमेके० ए प्रत्यक्ष समस्त जन प्रसिद्ध संति के० छे एवा आवट्टा के० आवर्त एटले जेम नदीने विषे पाणीना आवर्त होय, तेम अहीं उत्कृष्ट मोहनीयना उदय थकी उत्पन्न थयां जे विषयाजिलाषरूप आवर्त, ते जीवने संसार मांहे बुडवाना स्थानक जाणवा. ए कासवेणं के० काश्यपगोत्री श्रीवर्द्धमान स्वामी तेणे पवेइया के० प्रवेदिता एटले कह्या छे जञ्च के० जे थकी बुद्धा के० पंमित तत्वना जाण ते अवसप्पंति के० दूर थाय छे; अने अबुहा के० अबुद्ध एटले अज्ञानी लोक ते जहिं के० जे आवर्त्तने विषे सीयंति के० सदाय भ्रममां पडीने बुडेछे. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—(तंचेति) तंच निक्षुर्ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् । यतः सर्वे संगामहाश्रवाः कर्मबंधहेतवस्ततोऽसंयमजीवितं नावकांक्षेत नाजिलपेत् श्रुत्वा धर्ममनुत्तरं प्रधानं ॥ १३ ॥ (अहिमेइति) । अथ इमे आवर्तामोहपाशाः संति काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदिताः कथिताः । यत्र येषु संगेषु सत्सु बुधास्तत्वज्ञाअपसर्पंति तद्दूरगामिनः स्युः । अबुधाअज्ञास्तु तत्र सीदंति आसक्ताः स्युः ॥ १४ ॥

॥टीका—अपिच। (तंचेत्यादि)। तंच ज्ञातिसंगं संसारैकहेतुं निक्षुर्ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यान

॥ टीका–किंचान्यत् । वत्थगंधेत्यादि । वस्त्रं चीनांशुकादि गंधाः काष्टपुटपाटकादयः वस्त्राणि च गंधाश्च वस्त्रगंधमिति समाहारद्वंद्वः । तथा अलंकारं कटककेयूरादिकं तथा स्त्रियः प्रत्यग्रयौवनाः शयनानि च पर्यंकतूलीप्रवरपटोपधानयुक्तानि इमान् भोगानिंद्रियमनोनुकूलानस्मानिर्ढौकितान् भुंक्ष्व तडपभोगेन सफलीकुरु हेआयुष्मन् भवंतं पूजयाम सत्कारयामइति ॥ १७ ॥ अपिच (जोतुमेइत्यादि) यस्त्वया पूर्वं भिक्षुभावे प्रव्रज्यावसरे नियमोमहाव्रतादिरूपश्चीर्णोनुष्ठितः इंद्रियनोइंद्रियोपशमगतेन हेसुव्रत ससांप्रतमप्यगारं गृहमावसतोगृहस्थभावं सम्यगनुपालयतोभवतस्तथैव विद्यतइति । नहि सुकृतस्यानुचीर्णस्य नाशोस्तीति भावः ॥ १८ ॥

चिरं दूइज्जमाणस्स, दोसोदाणिं कुतो तव ॥ इच्चेव णं निमंतेति, नीवारेणव सूयरं ॥ १९ ॥ चोइया भिक्खचरिया, अचयंता जवित्तए ॥ तत्र मंदा विसीयंति, उज्जाणंसिव डुब्बला ॥ २०॥

अर्थ–चिरंदूइज्जमाणस्स के० घणो काल संयमानुष्ठाने करी विचरता तमने दोसोदाणिंकुतोतव के० हमणा दोषनी प्राप्ति क्यांथी थशे एटला दिवस सुधी घणा व्रत पाळ्यांछे इच्चेवणं के० इत्यादिक भोग योग्य पदार्थोये करी निमंतेति के० ते साधुने निमंत्रण करे ते उपर दृष्टांत कहेछे नीवारेणवसूयरं के० जेम नीवार एटले व्रीहिना कण तेणे करी सूयरने कूटबंधमां पाडे तेम चारित्रियाने संयम थकी भ्रष्ट करी संसाररूप पास बंधनमां नाखे॥१९॥ चोइयाके० संयमने विषे वारंवार प्रेर्या छतां पण भिक्खूके० चारित्रिया चरियाए के० साधुनी समाचारीने विषे अचयंता के० असमर्थ जवित्तए के० संयम रूप भारनो निर्वाह करवाने अशक्त छता तत्र के० ते मुक्ति पंथने विषे मंदा के० कोइएक मंद अज्ञानी कायर चारित्रिउ होयते विसीयंति के० सीदाय एटले सीतल विहारी थाय. ते उपर दृष्टांत कहेछे. उज्जाणंसीव के० जेम मार्गने विषे उंचे स्थानके आवे थके डुब्बला के० दुर्बल बलदिया गाम्हलाने भारे पीड्या थका सीदाय गावडनाखी नीचे पडे, तेम साधु मंद चारित्रिउ महाव्रतनो भार नाखी संसारमांहे पडे ॥ २० ॥

॥ दीपिका–(चिरमिति) चिरं बहुकालं (दूइज्जमाणस्सेति) संयमक्रियया विहरतस्तवेदानीं कुतोदोषोनैवास्तीत्यर्थः । इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञातयः साधुं निमंत्रयंति । यथा नीवारेण व्रीहिविशेषेण सूकरं वराहं कूटे पातयंति एवं साधुमपि ॥ १९ ॥ (चोइआइति) भिक्षुसमाचर्यया साधुसमाचर्यया प्रेरिताः संयमानुष्ठानेनात्मानं यापयितुं

(हब्रस्सेति)। हस्त्यश्वरथयानैस्तथा विहारगमनैः क्रीडादिगमनैः साधुं निमंत्रयंतीति। यथा। त्वं जुंक्ष्व नोगान् इमान् श्लाघ्यान् हे महर्षे वयं त्वां पूजयामः सत्कारयामः॥१६॥

॥ टीका–तानेवावर्तान् दर्शयितुमाह। (रायाणोइत्यादि)। राजानश्चक्रवर्त्यादयो राजामात्याश्च मंत्रीपुरोहितप्रनृतयस्तथा ब्राह्मणाअथवा क्षत्रियाइक्ष्वाकुवंशप्रनृतयः। एते सर्वेपि नोगैः शब्दादिविषयैर्निमंत्रयंति नोगोपनोगं प्रत्यन्युपगमं कारयंति कं निकुकं (साधुजीविणमिति)। साध्वाचारेण जीवितुं शीलमस्येति साधुजीविनमिति। यथा ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिना नानाविधैर्नोगैश्चित्रसाधुरुपनिमंत्रितइत्येवमन्येपि केनचित्संबंधेन व्यवस्थितायौवनरूपादिगुणोपेतं साधुं विषयोद्देशेनोपनिमंत्रयेयुरिति ॥ १५ ॥ एतदेव दर्शयितुमाह। (हब्रस्सरहेत्यादि)। हस्त्यश्वरथयानैस्तथाविहारगमनैः विहरणं क्रीडनं विहारस्तेन गमनान्युद्यानादौ क्रीडया गमनानीत्यर्थः। चशब्दादन्यैश्चेंद्रियानुकूलैर्विषयैरुपनिमंत्रयेरंस्तद्यथा जुवि नोगान् शब्दादिविषयानिमानस्मानिर्ढौकितान् प्रत्यक्षासन्नान् श्लाघ्यान् प्रशस्तान् ननिंद्यान् महर्षेसाधो वयं विषयोपकरणढौकनेन त्वां नवंतं पूजयामः सत्कारयामइति ॥ १६ ॥

वब्रगंधमलंकारं, इब्रीउ सयणाणिय ॥ नुंजाइं माइं नोगाइं,
आउसो पूजयामुतं ॥ १७ ॥ जो तुमे नियमो चिन्नो, निक्कुनावं
मि सुव्वया ॥ अगारमावसंतस्स, सव्वो संविज्जए तहा ॥ १८ ॥

अर्थ–वली वब्र के० वस्त्र नीना विना चीन अंशुकादिक अने गंध के० गंध ते कपूरादिक तथा अलंकारं के० आनूषण ते केयूरादिक तथा इब्रीउ के० स्त्री ते नवयौवना अने सयणाणिय के० शयन ते पर्यंकतूलिकादिक नुंजाइंमाइंनोगाइं के० इत्यादिक ए प्रत्यक्ष नोग नोगवो; आउसो के० अहो आयुष्मन् साधु पूजयामुतं के० एटले प्रकारे करी अमे तमने पूजीये बैये ॥ १७ ॥ जोतुमे नियमोचिन्नो के० अहो साधु जो तमे पूर्वे महाव्रतादिकरूप नियम आचर्योछे, निक्कुनावंमि के० ते निक्कुने नावे संयमने अवसरे आचर्योछे, सुव्वया के० हे सुव्रति अगारमावसंतस्स के० ते आगार गृहस्थावासे वसता पण सव्वो संविज्जएतहा के० सघलो तेमजछे सुकृत अथवा डुष्कृत जे करवां तेनो नाश नथी ॥ १७ ॥

॥ दीपिका–(वब्रेति), वस्त्राणि गंधाः सुगंधचूर्णानि वस्त्रगंधं अलंकारं केयूराद्यानरणं तथा स्त्रियः शयनानि पर्यंकादीनि इमान्नोगांस्त्वं नुंक्ष्व। हेआयुष्मन् त्वां एनिः पूजयामः ॥१७॥ (जोतुमेति) यस्त्वयापूर्वं निक्कुनावे नियमोमहाव्रतरूपश्चीर्णोऽनुष्ठितः अगारं गृहं आवसतस्तव सर्वोपि विद्यते नहि सुकृतस्याऽनुचीर्णस्य नाशोस्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥

तथा गिद्धइत्थीसु के० स्त्रीने विषे गृद्ध एटले अत्यंत आसक्त छता तथा अज्ञोववन्ना कामेहिं के० कामजोगने विषे अध्युपपन्न एटले तेनेविषे रागी होय तेने विवेकी पुरुषे चोइजंता के० चोयणा करी छनि ते चोयणा सहन करी शके नही, एवा मंद चारित्रिया, ते संयम छांमीने गयागिहं के० जागा थका, फरी घरवास अंगीकार करे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इतिश्री उवसग्गपरिन्नाए बितिउद्देशः समाप्तः

॥ दीपिका-(अचेति) रूक्षेण संयमेनात्मानं यापयितुमशक्नुवंतउपधानेन तर्जिताः पीडिताः संतस्तत्र संयमे मंदाविषीदंति स्यजन्भौ यथा जरज्ञवाजीर्णबलीवर्दाः । तरुणस्यापि तत्रसीदनं संजवति किंपुनर्जीर्णस्येति जीर्ण ग्रहणं । तथा समर्थानां विवेकिनामपि संयमे सीदनं संजाव्यते किंपुनर्मंदानामिति ॥ २१ ॥ (एवमिति) एवं पूर्वोक्तं निमंत्रणं जोगं प्रति प्रार्थनं लब्ध्वा प्राप्य तेषु मूर्छिताआसक्ताः स्त्रीषु गृद्धादत्तोपयोगा रमणीरागमोहितास्तथा कामेषु इछामदनेषु अध्युपपन्नाः कामानुगतचित्ताः संयमं प्रति प्रेरणां सोढुमसमर्थाः प्रव्रज्यां त्यक्त्वा गृहंगता गृहस्थीजूताइति । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥२२॥ इति उपसर्गपरिज्ञाख्ये तृतीयाध्ययने द्वितीयोद्देशकः समाप्तः

॥ टीका-किंच । (अचयंताइत्यादि) रूक्षेण संयमेनात्मानं यापयितुमशक्नुवंतः स्तथोपधानेनानशनादिना सबाह्याभ्यंतरेण तपसा तर्जिताबाधिताः संतस्तत्र संयमे मंदाविषीदंत्युद्यानशिरस्युट्ठंकमस्तके जीर्णोडुर्बलोगौरिव यूनोपि हि तत्रावसीदनं संजाव्यते किंपुनर्जरज्ञवस्येति जीर्णग्रहणं । एवमावर्तमंतरेणापि धृतिसंहननोपेतस्य विवेकिनोप्यवसीदनं संजाव्यते किंपुनरावर्तैरुपसर्गितानां मंदानामिति ॥ २१ ॥ सर्वोपसंहारमाह । (एवमित्यादि) । एवं पूर्वोक्तया नीत्या विषयोपजोगोपकरणं दानपूर्वकं निमंत्रणं विषयोपजोगंप्रति प्रार्थनं लब्ध्वा प्राप्य तेषु विषयोपकरणेषु हस्त्यश्वरथादिषु मूर्छिताअत्यंतासक्तास्तथा स्त्रीषु गृद्धादत्तावधानारमणीरागमोहितास्तथा कामेषु इछामदनरूपेष्वंऽध्युपपन्नाः कामगतचित्ताः संयमेऽवसीदंतोऽपरेणोद्युक्तविहारिणानोद्यमानाः संयमं प्रति प्रोत्सह्यमानानोदनं सोढुमशक्नुवंतः संतोगुरुकर्माणः प्रव्रज्यां परित्यज्याल्पसत्वा गृहं गतागृहस्थीजूताः ॥ इतिपरिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥

हवे त्रीजा अध्ययननो त्रीजो उद्देशो प्रारंजिये छैयें.

जहा संगामकालंमि, पिछतो जीरु वेहइ ॥ वलयं गहणं णूमं, कोजाणइ पराजयं ॥ १ ॥ मुहुत्ताणं मुहुत्तस्स, मुहुत्तो होइ तारिसो ॥ पराजिया वसप्पामो, इति जीरु उवेहई ॥ २ ॥

वर्तयितुमशक्नुवंतस्तत्र संयमे मंदाविषीदंति शीतलविहारिणः स्युः । यथा उद्याने ऊर्ध्वस्थलनूमौ उत्क्षिप्तमहानारबलीवर्दाअतिदुर्बलाः सीदंति ग्रीवां पातयित्वा तिष्ठंत्येवं साधवोपि ॥ २० ॥

॥ टीका-किंच (चिरमित्यादि)। चिरं प्रनूतकालं संयमानुष्ठानेन (डुइज्जमाणस्सत्ति) विहरतः सतइदानीं सांप्रतं दोषः कुतस्तव नैवास्तीति नावः । इत्येवं हस्त्यश्वरथादि निर्वस्त्रगंधालंकारादिनिश्च नानाविधैरुपनोगोपकरणैः करणनूतैः । एमितिवाक्यालंकारे । तं निक्षुं साधुजीविनं निमंत्रयंति नोगबुद्धिं कारयंति । दृष्टांतं प्रदर्शयति । यथा नीवारेण व्रीहिविशेषकणदानेन सूकरं वराहं कूटके प्रवेशयंत्येवं तमपि साधुमपि ॥ १ए ॥ अनंतरोपन्यस्तवार्तोपसंहारार्थमाह । (चोदिताइत्यादि) ! निक्षूणां साधूनामुद्युक्तविहारिणां चर्या दशविधचक्रवालसामाचारी इच्छामिछेत्यादिका तया नोदिता प्रेरिता । यदि वानिक्षुचर्यया करणनूतया सीदंतश्चोदितास्तत्करणं प्रत्याचार्यादिकैः पौनःपुन्येन प्रेरितास्तच्चोदनामशक्नुवंतः संयमानुष्ठानेनात्मानं यापयितुं वर्तयितुमसमर्थाः संतस्तत्र तस्मिन् संयमे मोक्षैकगमनहेतौ नवकोटिशतावाप्तेमंदाजडाविषीदंति शीतलविहारिणोनवंति तमेवाचिंत्यचिंतामणिकल्पं महापुरुषानुचीर्णं संयमं परित्यजंति । दृष्टांतमाह । ऊर्ध्वयानमुद्यानं ।मार्गस्योन्नतोनागउट्टंकमित्यर्थः । तस्मिन् उद्यानशिरसि उत्क्षिप्तमहानराक्रांताणोतिदुर्बलायथावसीदंति ग्रीवां पातयित्वा तिष्ठंति नोत्क्षिप्तनरनिर्वाहकानवंतीत्येवं तेपि नावमंदाउत्क्षिप्तपंचमहाव्रतनारं वोढुमसमर्थाः पूर्वोक्तनवावर्तैःपराजग्माविषीदंति २०

अचयंतावलूहेण, उवहाणेण तज्जिया ॥ तञ्च मंदा विसीयंति, उ
ज्जाणंसि जरग्गवा ॥ २१ ॥ एवं निमंतिए लद्धु, मुच्छिया गिद्ध इ
त्थीसु ॥ अज्झोववन्ना कामेहिं, चोइज्जंता गयागिहं तिबेमि ॥२२॥
इति उवसग्गपरिन्नाए बितिउद्देसो सम्मत्तो ॥ २ ॥

अर्थ-एरीते अचयंतावलूहेण के० संयमने निर्वाह करवा अशक्त, तथा उवहाणेण के० बाह्याभ्यंतर तपे करीने तज्जिया के० पीडया थता तञ्च के० ते संयमने विषे, मंदा के० कोइएक मंद अज्ञानी विसीयंतिके० सीदाय; कोनीपेरे तोके उज्जाणंसि के० जेम उद्यान एटले उर्ध्वस्थलनूमिने मस्तके आवे तेवारे जरग्गवा के० गरढो मोकरो वृषन सीदाय, अने नारनी पीडायें पीडयो थको तो तरुण बलद पण सीदाय तो जरव एटले मोकरो बलद सीदाय तेमां केवुंजखुं; ॥२१॥ एवंनिमंतिएलद्धु के० ए पूर्वोक्तरीते कामनोगादिके करी निमंत्रण लेइने ते कामनोगने विषे मुच्छियाके० मूर्छित थता

कटिसंस्थानीयं(णूमंति) प्रछन्नं गिरिगुहादिकं किमित्यसावेवमवलोकयति । यतएवं मन्य ते । तत्रैवंभूते तुमुले संग्रामे सुभटसंकुले कोजानाति कस्यात्र पराजयोभविष्यतीति यतो दैवायत्ताः कार्यसिद्धयस्तोकैरपि बहवोजीयंतइति ॥ १ ॥ किंच (मुहुत्ताणमित्यादि) मुहूर्त्तानामेकस्य वा मुहूर्तस्यापरोमुहूर्तः कालविशेषलक्षणोवसरस्तादृग्भवति यत्रजयः पराजयोवा संभाव्यते तत्रैवं व्यवस्थिते पराजितावयमपसर्पामोनश्यामइत्येतदपि संभाव्य ते अस्मद्विधानामिति भीरुः पृष्ठतआपत्प्रतीकारार्थं शरणमुपेक्षते ॥ २ ॥

एवं तु समणा एगे, अबलं नच्चाण अप्पगं ॥ अणागयं भयं दिस्स, अविकप्पंति मंसुयं ॥३॥ कोजाणइ विउवातं, इत्थीन उदगा उवा ॥ चोइज्जंता पवरकामो, णणो अत्थि पकप्पियं ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे एपूर्वोक्तदृष्टांत, कायर साधु साथे मेलविएछैए एवंतु के० एरीते समणाएगे के० कोइएक श्रमण प्रव्रजित अल्प सत्वना धणी ते अप्पगं के० पोताने विषे अबलं के० अबलपणु एटले संयमरूप भार वहेवाने जाव जीवसुधी पोताने विषे असमर्थ पणु नच्चाण के० जाणीने अणागयंभयं के० अनागत एटले आगमिक कालनो भय दिस्सके० देखीने, एटले आगल वृद्धावस्थायें तथा ग्लानावस्थायें तथा दुर्भिक्षने विषे मने शुं त्राण शरण थशे अविकप्पंतिमंसुयंके० एवी कल्पना करीने ठेरावकरे के मने व्याकर्ण,ज्योतिष, वैद्यकादिक त्राण शरण थशे माटे तेवा शास्त्रो भणे ॥३॥ कोजाणइके० कोण जाणे विउवातं के० मुजने केवा कारण थकी संयमनो भ्रंस थशे. इत्थीउ के० स्त्रीथकी थसे उदगाउवाके० किंवा उदक एटले सचित्तपाणीना परिभोग थकीथशे, केमके कर्मनी विचित्र गतिछे णणोअत्थिपकप्पियंके० प्रकल्पित पूर्वोपार्जित द्रव्य नथी जे ते समय मने काम आवे; तो तेवखते चोइज्जंताके० कोइयें अमने पूछ्या थकां पवरकामो के० व्याकर्णादिक कहिसुं एरीते चिंतवन करी ज्योतिषादिकने विषे यत्न करे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—श्लोकद्वयेन दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) एवं पूर्वोक्तदृष्टांतेन श्रमणाएके अल्पसत्वाआत्मानमबलं संयमभारवहनाक्षमं ज्ञात्वाऽनागतमेव भयं दृष्ट्वा इदंव्याकरणं गणितं ज्योतिष्कं वैद्यकं मंत्रादिकं वा श्रुतमधीतं मम त्राणाय स्यादिति अविकल्पंते मन्यंते ॥ ३ ॥ (कोजाणइति) कोजानाति व्यापातं संयमाद्भ्रंशं । केन पराजितस्य मम संयमाद्भ्रंशः स्यादिति । किंस्त्रीतः किंवा उदकात् स्नानाद्यर्थमुदकसेवनाभिलाषात् इत्येवं ते वराकामन्यंते ननो ऽस्माकं किंचित्प्रकल्पितं पूर्वोपार्जितं द्रव्यमस्ति यत्तस्यां दुःखावस्थायां कार्यं ममेति । अतश्चोद्यमानाः परेण पृछ्यमानावयं हस्तिशि

अर्थ—जहासंगामकालंमि के० जेम संग्रामनो काल आवे बते, नीरु के० कोइएक बीकणो पुरुष पिठतोके० पाछो वेहईके० जूए, एटले बीकण मनुष्य संग्रामने काले प्रथमथीज प्रतिकार कारण डुर्ग प्रछन्न स्थानक नासवाने अर्थे जूए; ते स्थानक देखाडेछे; वलयं के० वलयाकारे उदक रहित एवी गर्ताते डुर्गम होय अथवा जेमां पेसतां, तथा नीकलतां गहणंके० गहन होय, एटले वृक्षे करी व्याप्त होय अने णूमं के० प्रछन्न एवा जे गिरि गुफादिक तेनुं अवलोकन नासवाने अर्थे करे तेनुं कारण मनमां आवीरीते चिंतवे जे, कोजाणइपराजयं के० कोण जाणे एवा संग्रामने विषे कोनो जय पराजय थशे, कार्यसिद्धि दैवायत्तछे, थोडा होय ते घणाने पण जीतीशकेछे ॥ १ ॥ मुहुत्ताणं मुहुत्तस्स के० मुहूर्त्त जोवामां कोइएक मुहूर्त्त मुहुत्तोहोइतारिसो के० अपर अन्य मुहूर्त्त काल विशेष लक्षण तेवुं होय त्यां एवो प्रस्ताव आवेके पराजियाके० ज्यां जीवने जय पणुं थाय अथवा पराजय पणुं पण थाय तेवारे नासीजइने ए स्थानको मने छुपीरेवाने काम आवशे इतिके० एवा स्वरूपे अवसप्पामोके० पराजयने अवसरे कदाचित् संग्राम थकी नासीने पाछा आववुं पडे तेवारे शी गति थाय, तेमाटे नीरु के० बीकण सुनट ते नासवानुं स्थानक उवेहती के० प्रथमथीज मनमा चिंतवी राखे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ तृतीयोद्देशकः प्रारन्यते । पूर्वोद्देशकयोरनुकूलप्रतिकूलोपसर्गा उक्तास्तैश्चाध्यात्मविषादः स्यादिति । अत्रोच्यते । (जहेति) यथा संग्रामकाले कश्चिद्भीरुः परानीकयुद्धावसरे पृष्ठतः प्रेक्षते नाशस्थानं वाऽऽलोकते । वलयं यत्रोदकं वलयाकारेण स्थितं उदकरहिता वा गर्ता गहनं धवादिवृक्षावृतं स्थानं णूमं प्रछन्नगिरिगुहादिकमित्यादिस्थानं नाशहेतोरालोकते । यतः कोजानाति पराजयं कस्य जयः पराजयोवा नावीति कोवेत्ति दैवायत्ताः कार्यसिद्धयः ॥ १ ॥ किंच । (मुहुत्तेति) मुहूर्तानामेकस्य वा मुहूर्तस्याऽपरो मुहूर्तः कालविशेषस्तादृशोनवति । यत्र जयः पराजयोवास्यात् । एवं सति पराजितावयमवसर्पामइति नीरुरुपेक्षते शरणमपीति ॥ २ ॥

॥ टीका—उपसर्गपरिज्ञायां उक्तोद्वितीयोद्देशकः सांप्रतं तृतीयः समारन्यते । अस्यचायमनिसंबंधः । इहानंतरोद्देशकान्यामुपसर्गा अनुकूलप्रतिकूलनेदेनाजिहितास्तैश्चाध्यात्मविषीदनं नवतीति तदनेन प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्यादिसूत्रं (जहेत्यादि) दृष्टांतेन हि मंदमतीनांसुखेनैवार्थावगतिर्नवतीत्यतआदावेव दृष्टांतमाह । यथा कश्चिद्भीरुरकृतकरणः संग्रामकाले परानीकयुद्धावसरे समुपस्थितः पृष्ठतः प्रेक्षते आदावेवापत्प्रतीकारहेतुनूतं डुर्गादिकं स्थानमवलोकयति। तदेव दर्शयति । वलयमिति । यत्रोदकं वलयाकारेण व्यवस्थितमुदकरहितावा गर्ता डुःखनिर्गमप्रवेशा तथा गहनं धवादिवृक्षैः

चित्तना अस्थिरपणाने पोहोता थका, मनमां विचार करे के, शुं जाणीयें, अमे जाव जीव सुधी संयम पाली शकशुं; किंवा नही पाली शकशुं; कोनीपेरे तोके पंथाणंचके० जेम मार्गने विषे अकोवियाके० अनिपुण एवापुरुषो मार्ग देखी संदेहमां पडे. के शुं जाणीयें एमार्ग अमुक स्थानके जशे किंवा नही जाय; ॥५॥ हवे माहापुरुषनी स्थिति कहेछे. जे उके० जे महासत्ववंत मोहोटा पुरुष नाता के० ज्ञात लोकोमांहे प्रसिद्ध अने सूरपुरं गमा के० शूरवीर पुरुषोमां अग्रेसर, एटले आगेवान एरीते प्रसिद्ध थयेलाछे ते संगामकालंमि के० संग्रामकालने अवसरे, णोतेपिठमुवेहिंति के० पाछुं न जुवे, एटले नासी जवानुं स्थानक जूए नही; किंपरंमरणंसियाके० ते एम जाणे जे आपणने मरण तो साश्वतछे एटले क्यारेपण मरवुं तो आवश्यछे नासी जइशुं तो, अमारो यश जतो रेशे; ते कारण माटे आ संग्राममनेविषे अमे मरणं पामीशुं पण अमारो यश अखंमित राखीशुं ॥६॥

॥ दीपिका–(इच्चेवेति) इत्येवं पूर्वे प्रकारेण यथा नीरवः संग्रामे प्राप्तावलयादि स्थानसमुपेक्षिणः स्युस्तथा प्रव्रजिताअपिआजीविकानया व्याकरणगणितादिकं जीवनोपायत्वेन प्रत्युपेक्षंते परिकल्पयंति । किंनूताः । विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः किमेनं संयमं वयं समर्थाउत नेत्येवंरूपा । यडुक्तं । लुरकमणुएहमत्तिययं, कालाइक्क तसोयणं विरसं ॥ नूमीसयणं लोउ, असिणाणं बंनचेरंच ॥ १ ॥ तां समापन्नाः प्राप्ताः। यथा पंथानं प्रत्यकोविदाअनिपुणाः किमयं पंथा इष्टं देशं यास्यति नवेति कृतचित्तसंदेहाः स्युः । तथा ते संयमनारवहने संदेहं प्राप्ताः । यथानिमित्तादिकं जीविकार्थं परिकल्पयंति ॥ ५ ॥ (जेउसंगेति) ये पुनर्महासत्वाः । तुर्विशेषणे । संग्रामकाले ज्ञाताः प्रसिद्धाः शूराणां पुरंगमाः पुरोगामिनः सुनटाग्रवर्तिनस्ते पृष्ठं नप्रेक्षंते नाशस्थानं नविलोकयंति किंत्वेवं मन्यंते यदत्रास्माकं किमपरं मरणमेव स्यात् नवतु मरणं यशोमायातु । यडुक्तं । विशरारुनिरविनश्वरमतिचपलैः स्थास्नुवांछतां विशदं ॥ प्राणैर्यदिशूराणां, नवति यशः किं न पर्याप्तमिति ॥ ६ ॥

॥ टीका–उपसंहारार्थमाह । (इच्चेवमित्यादि) । इत्येवमिति पूर्वप्रक्रांतपरामर्शार्थः । यथा नीरवः संग्रामे प्रविविक्षवोवलयादिकं प्रत्युपेक्षिणोनवंतीत्येवं तेपि प्रव्रजिता मंदनाग्यतया अल्पसत्वाआजीविकानया व्याकरणादिकं जीवनोपायत्वेन प्रत्युपेक्षंते परिकल्पयंति । किंनूताः विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः किमेनं संयमनारमुत्क्षिप्तमंतं नेतुं वयं समर्थाः उतनेतीत्येवं नूताः। तथाचोक्तं । लुरकमणुएहमणियय, कालाइक्कं तनोयणं विरसं । नूमीसयणंलोउ असिणाणं बंनचेरंच ॥१॥तां समापन्नाः समागताः । यथा पंथानं प्रत्यकोविदाअनिपुणाः किमयं पंथा विवक्षितं नूनागं यास्यत्युत नेतीत्येवं कृतचित्तविप्लुत

ह्याधनुर्वेदादिकं कुटिलविटलादिकं वा प्रवक्ष्यामः कथयिष्यामइत्येवं हीनसत्वाः संप्रधार्य व्याकरणादिनणितादौ प्रवर्त्तते तथापि तेषां मंदभाग्यानामभिमतार्थोनसिध्यति। यतः उपशमफलाद्विद्याबीजात्फलं धनमिछतां भवति विफलोयद्यायासस्तदत्र किमद्भुतं। न नियतफलाः कर्तुर्भावाः फलांतरमीशते जनयति खलु व्रीहेर्बीजं न जातु यवांकुरं ॥४॥

॥ टीका–इति श्लोकद्वयेन दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह। (एवमित्यादि) एवमिति यथा संग्रामं प्रवेष्टुमिछुः पृष्ठतोवलोकयति किमत्र मम पराजग्नस्य वलयादिकं शरणं त्राणाय स्यादिति। एवमेव श्रमणाः प्रव्रजिताएके केचनाऽदृढमतयोऽल्पसत्वाआत्मानं अबलं यावज्जीवं संयमभारवहनाऽक्षमं ज्ञात्वा अनागतमेव भयं दृष्ट्वोत्प्रेक्ष्य। तद्यथा। निष्किंचनोहं किंमम वृद्धावस्थायां ग्लानावस्थायां डुर्भिक्षे वा त्राणाय स्यादित्येवमाजीविकाभयमुत्प्रेक्ष्य विकल्पयंति परिकल्पयंति मन्यंते इदं व्याकरणं गणितं जोतिष्कं वैद्यकं होराशास्त्रं मंत्रादिकं वा श्रुतमधीतं ममाऽवमादौ त्राणाय स्यादिति ॥ ३ ॥ एतचैते विकल्पयंतीत्याह। (कोजाणइइत्यादि) अल्पसत्वाः प्राणिनोविचित्राच कर्मणां गतिर्बहूनि प्रमादस्थानानि विद्यंते अतः कोजानाति कः परिछिनत्ति व्यापातं संयमजीवितात् भ्रंश्यंतं केन पराजितस्य मम संयमाद्भ्रंशः स्यादिति। किं स्त्रीतः स्त्रीपरिषहाडुतोदकात् स्नानाद्यर्थमुदकासेवनाभिलाषादित्येवं तेवराकाः प्रकल्पयंति। ननोऽस्माकं किंचन प्रकल्पितं पूर्वोपार्जितद्रव्यजातमस्ति। यत्तस्यामवस्थायामुपयोगे समेत्य यास्यत्यतश्चोद्यमानाः परेण पृछ्यमानाहस्तिशिक्षा धनुर्वेदादिकं कुटिलविटलादिकं वा प्रवक्ष्यामः कथयिष्यामः प्रयोक्ष्यामइत्येवं ते हीनसत्वाः संप्रधार्य व्याकरणादौ श्रुते प्रयतंतइति, नच तथापि मंदभाग्यानामभिप्रेतार्थावाप्तिर्भवतीति। तथाचोक्तं। उपशमफलाद्विद्या। बीजात्फलं धनमिछतां भवति विफलोयद्यायासस्तदत्र किमद्भुतं ॥ ननियतफलाः कर्तुर्भावाः फलांतरमीशते जनयति खलु व्रीहेर्बीजं न जातु यवांकुरं ॥ ४ ॥

इच्चेव पडिलेहंति, वलया पडिलेहिणो ॥ वितिगिछ समावन्ना, पंथाणंच अकोविया ॥ ५ ॥ जेउ संगामकालंमि, नाया सूरपुरं गमा ॥ णो ते पिठमुवेहिंति, किंपरं मरणंसिया ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे उपसंहार करतो कहेछे. इच्चेव के० ए जेम पूर्वे कह्या एवा पडिलेहंति के० कायर सुनट. जेम बीक पामता थका वलयापडिलेहिणोके० वलयादिक स्थानकना जोनारा थाय, तेम प्रमादि चारित्रिया मंद नाग्यने लीधे, अल्प सत्वना धणी आजीविकाना नय थकी अनेक कुशास्त्र शीखे; ते केवा छे तोके, वितिगिछसमावन्नाके०

तंत इति ॥ ७ ॥ अध्यात्मविषीदनाधिकारोगतः अथ परवादिवचनाधिकारमाह । (त मेगइति) एके परवादिनः साधुं भिक्षुं साधु शोभनं जीवितुं शीलमस्य सतथा तं एवं परि भाषंते । ये ते पुष्टधर्माणोगोशालकमतानुगताः आजीविकादिगंबरावा ये ते एवं वक्ष्यमा णं परिभाषंते साधुं निंदंति ते अंतके पर्यंते समाधेर्मोक्षाद्दाह्याइति शेषः ॥ ८ ॥

॥ टीका–तदेवं सुभटदृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह । (एवमित्यादि) यथा सुभटाज्ञा तरोनामतः कुलतः शौर्यतः शिक्षातश्च तथा सन्निबद्धपरिकराः करगृहीतहेतयः प्रतिभ टसमितिभेदिनोन पृष्ठतोवलोकयंति । एवं भिक्षुरपि साधुरपि महासत्वः परलोकप्रति स्पर्धिनमिंद्रियकषायादिकमरिवर्गं जेतुं सम्यक् संयमोत्थानेनोत्थितः समुत्थितः । तथा चोक्तं । कोहं माणं च मायंच लोहं पंचेंदियाणिय । डुज्जयं चेवमप्पाणं सव्वमप्पेजिएजि यं ॥ किं कृत्वा समुत्थितइति दर्शयति । व्युत्सृज्य त्यक्त्वा अगारबंधनं गृहपाशं तथा आरं भं सावद्यानुष्ठानरूपं तिर्यक्कृत्वाऽपहस्तयित्वात्मनोभावआत्मत्वमशेषकर्मकलंकरहित त्वं तस्मै आत्मत्वाय । यदिवा आत्मा मोक्षः संयमोवा तद्भावस्तस्मै तदर्थं परिसमंताद्व्रजेत् संयमानुष्ठानक्रियायां दत्तावधानोभवेदित्यर्थः ॥ ७ ॥ निर्युक्तौ यदभिहितमध्यात्मविषी दनं तदुक्तमिदानीं परवादिवचनं द्वितीयमर्थाधिकारमधिकृत्याह । (तमेगेइत्यादि) तमिति । साधुमेके ये परस्परोपकाररहितं दर्शनमापन्नाअयःशलाकाकल्पास्ते च गोशालक मतानुसारिणआजीविकादिगंबरावा तएवं वक्ष्यमाणं परिसमंताद्भाषंते । तं भिक्षुकं सा ध्वाचारं साधु शोभनं परोपकारपूर्वकं जीवितुं शीलमस्य ससाधुजीविनमिति । ये ते ऽपुष्ट धर्माणएवं वक्ष्यमाणं परिभाषंते साध्वाचारनिंदां विदधति तएवं भूताअंतके पर्यंते दूरे समाधे र्मोक्षाख्यात्सम्यक् ध्यानात्सदनुष्ठानात् वा वर्त्ततइति ॥ ८ ॥

संबद्ध सम कप्पाउ, अन्न मन्नेसु मुछिया ॥ पिंमवायंगिलाण
स्स, जं सारेह दलाहय ॥ ए ॥ एवं तुब्भे सरागत्था, अन्न मन्न
मणुवसा ॥ नठसप्पह सप्भावा, संसारस्स अपारगा ॥ १० ॥

अर्थ–हवे ते गोसालकादिक मतानुसारी जे कहे ते देखाडेछे. संबद्धसमकप्पाउ के० निश्चयथकी ग्रहस्थ समान तमारो कल्प एटले आचारछे; अर्थात् तमे मोहे करी बंधाणाछो अन्नमन्नेसु के० जेम ग्रहस्थ अन्योन्य परस्पर माहोमांहे मातापितादिकनी सार संभाल करे तेम तमे पण माहोमांहे आचार्यादिक उपर मुछिया के० मुर्छित थयेलाछो ते केवीरीते मुर्छितछो ते देखाडे छे पिंमवायं गिलाणस्स के० पिंम एटले भिक्षा ते गिलाण एटले रोगीने अर्थे जंके० जेमाटे सारेह के० गवेषो छो दलाहय के० भिक्षा आणी आपोछो. च शब्द थकी गुर्वादिकनो वैयावच्च करोछो तेमाटे तमे गृहस्थ

योजवंति तथा तेपि संयमजारवहनंप्रति विचिकित्सां समापन्नानिमित्तगणितादिकं जीविकार्थं प्रत्युपेक्षंतइति ॥ ५ ॥ सांप्रतं महापुरुपचेष्टिते दृष्टांतमाह । (जेउसंगामेत्या दि) । ये पुनर्महासत्वाः । तु शब्दोविशेषणार्थः । संग्रामकाले परानीकयुद्धावसरे ज्ञाता रोलोकविदिताः । कथं शूरपुरंगमाः शूराणामग्रगामिनोयुद्धावसरे सैन्याग्रस्कंधवर्तिनइति एवंनूताः संग्रामं प्रविशंतोन पृष्ठमुत्प्रेक्षंते नडुर्गादिकमापत्राणाय पर्यालोचयंति । तेचा जंगकृतबुद्ध्योपित्वेवं मन्यंते । किमऽपरमत्रास्माकं नविष्यति यदि परं मरणं स्यातच्च शाश्व तं यशःप्रवाहमिच्छतामस्माकं स्तोकं वर्ततइति । तथाचोक्तं । विशरारुनिरऽविनश्वर, मति चपलैः स्थास्नु वांबता विशदं ॥ प्राणैर्यदिशूराणां, नवति यशः किं न पर्याप्तं ॥१॥६॥

एवं समुठिए जिरकू, वोसिज्जा गारबंधणं ॥ आरंनं तिरियंकट्टु
आत्तत्ताए परिवए ॥ ७ ॥ तमेगे परिजासंति, जिरकयं साहुजी
विणं ॥ जे एवं परिजासंति, अंतए ते समाहिए ॥ ८ ॥

अर्थ—एवं के० एरीते जिरकू के० साधु संयमने विषे समुठिए के० सावधान थयो बतो, तथा अगारबंधणं के० गृहस्थावासनुं बंधन तेने वोसिज्जा के० बांमीने, तथा आरंनं के० आरंन जे सावद्यानुष्ठान तेने तिरियं कट्टुके० तिर्छो करीने एटले, आरंनने दूर क रीने आत्तत्ताए परिव्वएके० एक मोक्षनेविषे सावधान थाय, संयमानुष्ठानने विषे प्रवर्त्ते॥७॥ अध्यात्माविषीदनार्थाधिकारोगतःके० ए आत्मा थकीजे विवाद ते कह्यो. हवे बीजो अ धिकार परवादिना वचन आश्री कहेले. एगे के० एक कोइ परने उपकार रहि त एवा दर्शनने ग्रहण करनारा गोसालीक मतना अनुसारी तथा दिगंबरादिक एवा अन्य तीर्थिकना साधुउ तं के० ते पूर्वोक्त साहुजीवणं के० साधु एटले रूडी आ जीवणं एटले आजीविकाये प्रवर्त्तनार अर्थात् परने उपकार करनार, रूडा आचारे प्रव र्त्तमान एवा जिरकूयं के० साधुने परिजासंति के० एवीरीते कहे. इतिकोर्थः तेनी निंदा करे, तो जे के० जे धर्मना अजाण एवं के० एम पूर्वे कह्युं, तेम परिजासंति के० साधु ना आचारनी निंदा करे ते के० तेवा अन्यतीर्थिक साधुउ समाहिए के० समाधि एट ले सम्यक् अनुष्ठान थकी अथवा मोक्षथकी अंतए के० वेगला जाणवा. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) एवं जिक्षुरपि महासत्वः सम्यक्संयमे उत्थि तः कपायादिवैरिवर्गं जेतुं प्रवृत्तः । यतः । कोहंमाणं च मायं च, लोहं पंचिंदिआणिअ । डु ज्जयं चेवमप्पाणं, सव्वमप्पेजिएजिअ।१।किंकृत्वा समुत्थितः अगारबंधनं गृहपाशं व्युत्सृज्य त्यक्का आरंनं तिर्यक्कृत्वा निराकृत्य आत्मत्वाय शेषकर्मरहितत्वाय परिव्रजेत् संयमे प्रव

अह ते परिनासेज्जा, निरकू मोरकविसारए ॥ एवं तुप्ने पन्नासं
ता, डपरकं चेव सेवह ॥ ११ ॥ तुप्ने नुंजह पाएसु, गिलाणो अ
निहडंमिया ॥ तंच बीठदगं नोच्चा, तमुद्दिस्सादिजंकडं ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे ते अन्य तीर्थिउने साधु उत्तर आपेठे अह के० अथ एवुं कह्या नंतर तेके० ते असाधु प्रत्ये परिनासेज्जा के० साधु एवीरीते बोले परंतुने बोलनार निरकू के० साधु केवाठे तो के मोरकविसारए के० मोक्षमार्गना विशारद एटले जाण ते असाधु प्रत्ये कहेठेके एवंके० एम पूर्वोक्त न्यायें तुप्नेके० अहो तुमे पन्नासंताके०एम बोलता थका डपरकंचेव के० निश्चे थकी बे पक्षने सेवह के० सेवो ठो एटले रागद्वेषरूप बन्ने पक्षने सेवोठो कारण के एकतो पोते अनाचारी ठो सदोष पक्षीठो माटे अने बीजा निर्दोषी साधुना निंदकठो माटे बेहु पक्षना सेवनारठो अथवा बीज उदक उद्देशिकादिक नोगवतां गृहस्थ समानठो अने लिंग ग्रहण कर्युं माटे यति समान देखवा मात्रठो एम बन्ने पक्षने सेवोठो ॥ ११ ॥ हवे आजीविकादिक परतीर्थिकोनो आचार कही देखाडेठे. तुप्ने के० तमे एम कहोठो के अमे निःकंचन ठैयें अने तमे जे नुंजह के० नोगवोठो तेपण पाएसु के० कांशादिक धातुना जे गृहस्थना पात्र तेने विषे नोजन करोठो तेमाटे तमे सपरिग्रहीठो तथा आहारादिकनी मूर्छा करोठो माटे निःपरिग्रहि शीरीतें थशो वली गिलाणो के० गिलानने अर्थे निक्षा अटनने विषे असमर्थ ठतां अनिहडंमियाके० गृहस्थने हाथे आणी देवाडोठो तंचके० तेह्नि दोष देखाडेठे बीठदगंके० जे गृहस्थे बीज अने उदकनुं मर्द्दन करीने तमुद्दिस्सादिजंकडं के० ते ग्लानने अर्थे उद्देशीने जे आहार नीपजाव्यो तेने नोच्चाके० नोगववा थकी तमने दोष लागेठे॥१२

॥ दीपिका—अथात्रपूर्वपक्षे दोषमाह । (अहतेइति) । अथ तान् परवादिनएवमुपस्थितान् निकुः परिनाषेत ब्रूयात् । किंनूतोनिकुः मोक्षविशारदः।एवं यूयं प्रज्ञापमाणाडुष्पक्षं इष्टं पक्षं सेवध्वं । यदिवा द्विपक्षं रागद्वेषात्मकं पक्षद्वयं सेवध्वं । तथाहि । सदोषेपि स्वमते रागः । निर्दोषेप्यसमन्मते द्वेषः । अथवा बीजोदकोद्दिष्टादिनोजित्वाद्गृहस्थायूयं यतिलिंगांगीकाराच्च प्रव्रजिताइतिपक्षद्वयं ॥ ११ ॥ परमतीनामसदाचारं दर्शयति । (तुप्नेति) हेपरमतिनोयूयं पात्रेषु कांस्यपात्र्यादिगृहस्थनाजनेषु नुंग्ध्वं नोजनं कुरुध्वं। ततः कथं निष्परिग्रहाः।तथा ग्लानस्य निक्षाटनं कर्तुमसमर्थस्य यदपरैर्गृहस्थैरन्याहृतं कार्यते नवद्भिः यतेरानयनाधिकारान्नावात् । तद्दृष्टं नवतां यच्च गृहस्थैर्बीजोदकाद्युपमर्देन निष्पादितमाहारं नुक्त्वा ग्लानमुद्दिश्योद्देशिकादियत्कृतं यन्निष्पादितं तदवश्यं युष्मत्परिनोगाय

सरखा डो ॥ ए ॥ एवं के० ए कारणमाटे तुम्हके० तुमे सरागडा के० गृहस्थनी पेरे सराग पणे वर्त्तोडो अन्नमन्न के० माहोमांहे मणुवसा के० वशगामी साधु कोइना आधीन न थाय ते कारणमाटे तमे सप्पह के० सद्‌पंथ एटले रुडोमार्ग तेना सन्नावा के० सन्नावने नठ के० नष्ट कीधो एटले सन्मार्गने नृष्ट कीधो तेथी तमे संसारस्सअपारगा के० संसारना पारंगामी नही एवा दोष अन्य तीर्थिं बोले ॥ १० ॥

॥ दीपिका–यत्परिजापंते तदाह । (संबद्धेति) संबद्धागृहस्थास्तैस्तुल्यः समः कल्पो व्यवहारोयेषां ते तथा गृहस्थानुष्ठानतुल्याः।यथा गृहस्थाः परस्परमुपकारे प्रवर्तंते । माता पुत्रे पुत्रोमातरि एवं यूयमप्यन्योन्यमुपकारे मूर्छिताः । कथमित्याह पिंडपातंनैक्ष्यं ग्लानस्य रोगिणः साधोर्यस्मात् (सारेहत्ति) अन्वेषयंते तथा (दलाहत्ति) ग्लानायददध्वं । चशब्दादाचार्यादिवैयावृत्त्यै प्रवर्तध्वं ततोगृहस्थतुल्याइत्यर्थः ॥ए॥ (एवमिति) एवं यूयं सरागः स्वनावस्तत्रस्थिताअन्योन्यं वशमुपागताः परस्परायत्ताः । यतयस्तु निःसंगाः कस्यचिदायत्तानस्युः । ततोगृहस्थानामयं न्यायइति । तथा नष्टसत्पथसन्नावाः गतसन्मार्गपरमार्थाएवंनूतायूयं संसारस्य । अपारगाः न पारगामिनः ॥ १० ॥

॥ टीका–यत्ते प्रनाषंते तद्दर्शयितुमाह । (संबद्धेत्यादि) समेकीनावेन परस्परोपकार्योपकारितयाच बद्धाः पुत्रकलत्रादिस्नेहपाशैः संबद्धागृहस्थास्तैः समस्तुल्यः कल्पोव्यवहारोनुष्ठानं येषांते संबद्धसमकल्पागृहस्थानुष्ठानतुल्यानुष्ठानाइत्यर्थः । तथाहि । यथा गृहस्थानामयं न्यायोयडुतपरस्मै परस्परोपकारेण माता पुत्रे पुत्रोपि मात्रादावित्येवंमूर्छिताअध्युपपन्नाएवं नवंतोप्यन्योन्यं परस्परतः शिष्याचार्याद्युपकारक्रियाकल्पनया मूर्छिताः । तथाहि । गृहस्थानामयं न्यायो यडुतपरस्मै दानादिनोपकारइति नतु यतीनां । कथमन्योन्यं मूर्छिताइति दर्शयति । पिंडपातं नैक्ष्यं ग्लानस्याऽपरस्य रोगिणः साधोर्यद्यस्मात् (सारेहत्ति) अन्वेषयंते । तथा (दलाहयत्ति) ग्लानयोयग्यमाहारमन्विष्य तडुपकारार्थं ददध्वं । चशब्दादाचार्यादेः वैयावृत्त्यकरणाद्युपकारेण वर्तध्वं ततोगृहस्थसमकल्पाइति ॥ ए ॥ सांप्रतमुपसंहारव्याजेन दोषदर्शनायाह । (एवमित्यादि) एवं परस्परोपकारादिना यूयं गृहस्थाइव सरागस्थाः सहरागेण वर्ततइति सरागः स्वनावस्तस्मिन् तिष्ठंतीति ते तथा अन्योन्यं परस्परतोवशमुपागताः परस्परायत्ताः । यतयोहि निःसंगतया नकस्यचिदायत्ता नवंति । यतोगृहस्थानामयंन्याय इति।तथा नष्टोऽपगतः सत्पथः सन्नावः सन्मार्गः परमार्थोयेन्यस्ते तथा । एवंनूताश्च यूयं संसारस्य च डुर्गतिन्नमणलक्षणस्याऽपारगा अतीरगामिनइति ॥ १० ॥

खरुं ठेरावबुं एवी जेनी प्रतिज्ञा नथी ते अप्रतिज्ञ रागद्वेष रहित तथा जाणया के० जाणते एवे संयत तत्वे सहित तेने हेयोपादेय परमार्थ जाण्याविना नत्तेण अणुसि ह्राते के० परमार्थे करीने ते असाधु ठे एम तेना मार्गने दोष देखाडवानुं तमने कोणे शिखव्युं एएसणीयएमग्गेके० माटे अहो तुमारो उपमार्ग ते निश्चय मलनो नथी जे कारणे गिलानने अशनादिक आपे ते गृहस्थ समान जाणवा एवो तमे कहोठो परंतु ए असमिरकावती के० अणआलोच्याना बोलनारनुं कती के० जे कर्तव्य अनुष्ठान ते पण अणआलोच्योज देखायठे. ॥ १४ ॥

॥दीपिका–(जित्तेति) तीव्रतापेन साधुनिंदारूपेण लिप्ताव्याप्ताः(उज्झयेति)निर्विवेकाउद्देश कादिनोजित्वात् असमाहिताः शुनाध्यवसायरहिताः । दृष्टांतमाह । यथाऽरुपोव्रणस्याति कंडूयितं नश्रेयः किंतु अपराध्यति दोषंकरोति एवं यूयमपि निर्विवेकाःवयं किल निष्किंच नाइति कृत्वा कांस्य पात्रादिकं परिहृत्यैतदन्नावादवश्यमशुद्धाहारपरिनोगकारिणः निष्किं चनत्वात्पात्रादिपरिहारोनश्रेयो व्रणस्यातिकंडूयितमिव ॥ १३॥ (तत्तेणेति) ते गोशालम तानुसारिणआजीविकादयोदिगंबरावा तत्वेनाऽनुशासिताः शिक्षांग्राहिताः केन अप्रतिज्ञेन इदंमया समर्थनीयमिति प्रतिज्ञा सा नास्ति यस्याऽसावप्रतिज्ञोरागद्वेषरहितः साधुस्तेन जा नताज्ञानवता । कथमनुशिष्टाइत्याह । (एएसेति) । योनवन्निरंगीकृतः सनियतोन युक्ति क्षमोमार्गः । याच साधुनिंदा वाक् सा समीक्ष्योक्ता आचार्यकथिता। तथाकृतिः क्रिया प्यविचाररम्यैव ॥ १४ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (लित्ताइत्यादि) यूयं षट्जीवनिकायविराधनयोद्दिष्टन्नोजित्वेना निगृहीतमिथ्यादृष्टितया च साधुपरिनापणेन च तीव्रोनितापः कर्मबंधरूपस्तेनोपलिप्ताः संवेष्टितास्तथा (उज्झयत्ति)सद्विवेकशून्यानिक्षापात्रादित्यागात्परगृहनोजितयोद्देशकादि नोजित्वात् । तथा असमाहिताः शुनाध्यवसायरहिताः सत्साधुप्रद्वेषित्वात् । सांप्रतं दृ ष्टांतद्वारेण पुनरपि तद्दोषानिधित्सयाह । यथाऽरुपोव्रणस्यातिकंडूयितं नखैर्विलेखनं नश्रे योनशोननं नवति । अपित्वपराध्यति तत्कंडूयनं व्रणस्य दोषमावहति । एवं नवंतोपि सद्विवेकरहिताः वयं किल निष्किंचनाइत्येवं निष्परिग्रहतया षट्जीवनिकायरक्षणनूतं निक्षापात्रादिकमपि संयमोपकरणं परिहृतवंतः । तदन्नावाच्चावश्यं नावी अशुद्धाहारपरि नोगइत्येवं इव्यक्षेत्रकालनावानपेक्षणेन नातिकंडूयितं श्रेयोनवतीति नावः ॥ १३॥ अपि च । (तत्तेणेत्यादि) तत्वेन परमार्थेन मौनींद्राभिप्रायेण यथावस्थितार्थप्ररूपणया ते गो शालकमतानुसारिणआजीविकादयः कोटिकाअनुशासितास्तदन्युपगमदोषदर्शनद्वारेण शिक्षांग्राहिताः । केनाप्रतिज्ञेन । नास्य मयेदमसदपि समर्थनीयमित्येवं प्रतिज्ञा विद्यते

समेतअवतिष्ठते । तदेवं गृहस्थगृहे तद्भाजनेषु जुंजानाग्लानस्य च गृहस्थैः कारयंतोयूयं अवश्यं बीजोदकादिन्नोजिनउद्देशकादिकृतन्नोजिनश्चेति ॥ १२ ॥

॥ टीका—अयं तावत्पूर्वपक्षोस्य च दूषणायाह । (अहतेपरिन्नासेक्कत्यादि) । अथानंतरं तानेवं प्रतिकूलत्वेनोपस्थितान् निकुः परिन्नापेत ब्रूयात् । किंनूतो मोक्षविशारदो मोक्षमार्गस्य सम्यक्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपस्य प्ररूपकः । एवमनंतरोक्तं यूयं प्रनाषमाणाः संतः डुष्टःपक्षोडुष्पक्षोऽसत्प्रतिज्ञाऽन्युपगमस्तमेव सेवध्वं यूयं यदिवा रागद्वेषात्मकं पक्षद्वयं सेवध्वं यूयं । तथाहि । सदोषस्याप्यात्मीयपक्षस्य समर्थनाड्रागो निष्कलंकस्याप्यस्मदन्युपगमस्य दूषणाद्वेषोऽथैवं पक्षद्वयं सेवध्वं यूयं । तद्यथा । वक्ष्यमाणनीत्या बीजोदकोद्दिष्टकृतन्नोजित्वाद्गृहस्थाः यतिलिंगान्युपगमात्किल प्रव्रजिताश्चेत्येवं पक्षद्वयासेवनं नवतामिति । यदिवा स्वतोऽसदनुष्ठानमपरंच सदनुष्ठायिनां निंदनमितिन्नावः ॥ ११ ॥ आजीविकादीनां परतीर्थिकानां दिगंबराणां वा सदाचारनिरूपणायाह ।(तुन्ने जुंजहेत्यादि) किल वयमपरिग्रहतया निष्किंचनाएवमन्युपगमं कृत्वा यूयं जुंग्ध्वं पात्रेषु कांस्यपात्र्यादिषु गृहस्थन्नाजनेषु तत्परिन्नोगाच्च तत्परिग्रहोऽवश्यं न्नावी । तथाऽहारादिषु मूर्बां कुरुध्वमित्यतः कथं निष्परिग्रहान्युपगमोन्नवतामकलंकइति । अन्यच्च ग्लानस्य निक्षाटनं कर्तुमसमर्थस्य यदपरैर्गृहस्थैरन्याहृतं कार्यते । नवद्भिर्यतोरानयनाधिकारान्नावाद्गृहस्थानयने च योदोषसद्भावः सन्नवतामवश्यंन्नावीति । तमेव दर्शयति । यच्च गृहस्थैर्बीजोदकाद्युपमर्देनापादितमाहारं जुक्त्वा तं ग्लानमुद्दिश्योद्देशकादि यत्कृतं यन्निष्पादितं तदवश्यं परिन्नोगायावतिष्ठते । तदेवं गृहस्थगृहे तद्भाजनादिषु नुंजानास्तथा ग्लानस्य च गृहस्थैरेव वैयावृत्त्यंकारयंतो यूयमवश्यं बीजोदकादिन्नोजिनउद्देशिकादिकृतन्नोजिनश्चेति ॥ १२ ॥

लित्ता तिव्वा न्नितावेणं, उज्झआ असमाहिया ॥ नातिकंडूइयं सेयं, अरुयस्सावरज्झती ॥ १३ ॥ तत्तेण अणुसिघाते अपडिन्नेण जाणया ॥ एएस णियए मग्गे, असमिक्खा वती किती ॥ १४ ॥

अर्थ—तिव्वान्नितावेण के० तुमे ठ काय जीवनी विराधना तथा साधुनी निंदारूप तीव्र तापे एटले संतापे करी लित्ता के० लिप्तठो तथा उज्झआ के० विवेक रहित ठो वली असमाहिया एटले शुनध्यान रहितठो माटे जेम नातिकंडूइयं सेयं के० कंडू एटले खुजली तेने अत्यंत खणवी श्रेयकारी नथी किंतु अरुयस्स के० गुंबडाने खणवुं थकुं अवरज्झती के० अपराधियें घणा दोषनी वृद्धि करे तेम तमने साधु साथे द्वेषपणुं करवुं श्रेय नथी ॥ १३ ॥ अपडिन्नेण के० जे खराने खोटुं ठेरावबुं अने खोटाने

दृष्टीनिर्युष्मन्मतानुगताभिः पूर्वमादौ सर्वज्ञैः प्रकल्पितं प्ररूपितमासीत् न हि सर्वज्ञा एवंवि धमसारं ब्रुवते । यद्गृहस्थैर्ग्लानवैयावृत्त्यं कार्यं नतूपयुक्तेन संयतेनेति । ग्लानोपका रोभवद्भिरप्यनुमतोगृहस्थप्रेरणादनुमोदनाच्च ॥ १६ ॥

॥ टीका–यथा प्रतिज्ञातमाह । (एरिसेत्यादि) येयमीदृक्षा वाक् यतिना ग्लानस्यानी य नदेयमित्येषा अग्रे वेणुवदंशवत्कर्पिता तन्वी युक्त्यक्षमत्वात् दुर्बलेत्यर्थः । तामेव वा चं दर्शयति । गृहिणां गृहस्थानां यदभ्याहृतं तद्यतेर्नोक्तुं श्रेयः श्रेयस्करं नतु भिक्षूणां संबंधीति । अग्रे तनुत्वं चास्या वाचएवं द्रष्टव्यं । यथा गृहस्थाभ्याहृतं जीवोपमर्देन भव ति यतीनांतूद्गमादि दोषरहितमिति ॥ १५ ॥ किंच । (धम्मपणवणेत्यादि) धर्मस्य प्र ज्ञापना देशना यथा यतीनां दानादिनोपकर्तव्यमित्येवंभूता या सा सारंभाणां गृहस्था नां विशोधिकायतयस्त्वनुष्ठानेनैव विशुध्यंति । नतु तेषां दानाधिकारोस्तीत्येतत् दूष यितुं प्रक्रमते । नतु नैवेताभिर्यथागृहस्थैनैव पिंडदानादिना यतेर्ग्लानाद्यवस्थायामु पकर्तव्यं । नतु यतिभिरेव परस्परमित्येवंभूताभिर्युष्मदीयाभिर्दृष्टिभिर्धर्मप्रज्ञापनादि भिः पूर्वमादौ सर्वज्ञैः प्रकल्पितं प्ररूपितं प्रख्यापितमासीदिति । यतो नहि सर्वज्ञाएवं भूतं परिफल्गुप्रायमर्थं प्ररूपयंति यथा असंयतैरेषणाद्यनुपयुक्तैर्ग्लानादे वैयावृत्त्यं विधे यं नतूपयुक्तेन संयतेनेति । अपिच भवद्भिरपि ग्लानोपकारोऽभ्युपगतएव । गृहस्थप्रेरणा दनुमोदनाच्च ततोभवंतस्तत्कारिणस्तत्प्रद्वेषिणश्चेत्यापन्नमिति ॥ १६ ॥

सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं, अचयंताजवित्तए ॥ ततो वायं णिराकि
च्चा, ते भुज्जोवि पगप्भिए ॥ १७ ॥ रागदोसाभिभूयप्पा, मिछत्ते
ण अभिहुता ॥ आउस्स सरणं जंति, टंकणाइव पव्वयं ॥ १८ ॥

अर्थ–सव्वाहिं के० ते गोसालादिक मतानुसारी अन्य समस्त अणुजुत्तीहिं के० अ नुयुक्ति एटले हेतु दृष्टांते करी अचयंताजवित्तए के० पोताने पक्षे पोतानो पक्ष स्थापन करवाने असमर्थ बता ततो के० ते माटे वायंणिराकिच्चाके० वाद मूकीने तेउक्को के० ते फरी फरी विपगप्भिए के० विशेषे धृष्टपणु करे एटले एम कहेके अमारे जेम परं परागतबे तेज श्रेष्ठबे अन्यथी अमारे कांइ काम नथी इत्यादिक कहीने धृष्ट पणु अंगी कार करे पण युक्ति पूर्वक जैनमतानुसारीने उत्तर आपी शके नही ॥ १७॥ ते रागदो स के० राग अने द्वेषे अभिभूयप्पाके० पराभव्या थका सारी युक्तिये करी प्रत्युत्तर आ पवाने असमर्थ एवा मिछत्तेण के० मिथ्यादृष्टियें करीने अभिहुता के० व्याप्तथता आ उस्ससरणंजंति के० ते अनार्य अनेक आक्रोस एटले असत्य वचने दंड मुष्ट्यादिक हण

इत्यप्रतिज्ञोरागद्वेषरहितः साधुस्तेन जानता हेयोपादेयपदार्थपरिच्छेदकेनेत्यर्थः । कथमनुशासिताइत्याह । योयं भवद्भिरभ्युपगतोमार्गो यथा यतीनां निष्किंचनतयोपकरणाभावात् परस्परतउपकार्योपकारकाभावइत्येषनियतोनिश्चितोन युक्तिसंगतोऽतो येयं वाग् यथा ये पिंमपातं ग्लानस्यानीय ददति ते गृहस्थकल्पाइत्येषा असमीक्ष्याभिहिता अपर्यालोच्योक्ता तथा कृतं करणमपि भवदीयमसमीक्षितमेव यथा वा पर्यालोचितकरणता भवति भवदनुष्ठानस्य तथा नातिकंमूयितं श्रेयइत्यनेन प्राग्लेशतः प्रतिपादितं पुनरपि सदृष्टांतं तदेव प्रतिपादयंति ॥ १४ ॥

एरिसा जावई एसा, अग्गवेणु वकरिसिता ॥ गिहिणो अभिहडं
सेयं, भुंजीउ णउ भिरकुणो ॥१५॥ धम्मपन्नवणा जासा, सारंभा
ण विसोहिआ ॥ णउ एयाहिं दिठीहिं, पुवमासिं पग्गप्पिअं॥१६॥

अर्थ–एरिसाजावईएसा के० भो एटले आमंत्रणे करीने तमारी एवी वाणीजे ग्लानने आहारलावी नआपवो ते अग्गवेणुव करिसिता के० वंशना अग्री सरखी अत्यंत सुक्ष्म एटले कोइ पण युक्तिने खमे नही एवी तमारी वाणी केही ते कहेछे गिहिणो अभिहडंसेयं के० तमे कह्युं जे गृहस्थनो आणेलो आहार श्रेयछे भुंजीउ के० ते भोगववो परंतु णउभिरकुणो के०यतिनो आणेलो आहार यतिने लेवो अयोग्यछे ए तमारुं वचन रुडुं नथी अमे एम कहियेंछैये के गृहस्थनो आण्यो आहार सदोषछे अने यतिनो आण्यो आहार निर्दोषछे ॥ १५ ॥ वली साधु तेने कहेछे के धम्मपन्नवणाजासा के० जे तमारी धर्म प्रज्ञाप्ना एटले धर्मदेशना जे यतिने दाननो देवो नथी सारंभाण विसोहिया के० केमके दान जे छेते ते सारंभ जे गृहस्थ तेनी विशुद्धिनो करनार जाणवो कारण के यतितो पोताना अनुष्ठाने शुद्धि पामेछे यतिने दान देवानो अधिकार नथी एयाहिं दिठीहिं के० एम तमारी दृष्टीमां जे आवेछे परंतु ए प्रकारे पुवमासिं के० जे पूर्वे तीर्थंकर थया तेणे णउपग्गप्पिअं के० नथी प्रकल्प्यो एटले जेरीते तमे धर्म कहोछो तेरीतनो धर्म सर्वज्ञे कह्यो नथी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–(एरिसेति) ईदृशी एषा वाक् साधुना ग्लानस्यानीय न देयमिति एषा वाक् अग्रवेणुवत् वंशवत् निकरिषिता डुर्बला यथा वंशाग्रं डुर्बलं स्यात्तथा डुर्बलेत्यर्थः । तामेव वाचं दर्शयति । गृहिणायदभ्याहृतं तद्यथा भोक्तुंश्रेयोनतु भिक्षूणां । गृहस्थाभ्याहृतं जीवोपमर्दहेतुभूतं साधूनामकल्पमिति ॥१५॥ (धम्मपन्नवणेति) या धर्मस्य प्रज्ञापना देशना यतीनां दानादिना उपकर्तव्यमित्येवंभूता सारंभाणां गृहस्थानां विशोधिका विशुद्धिकारिणी । यतयः स्वस्वानुष्ठानेनैव शुद्ध्यति नतु तेषां दानाधिकारः । एतद्दूषयति । नतुएतानि

दृष्टयआक्रोशादिकं शरणमाश्रयंते । नच ते इदमाकलय्य प्रत्याक्रोष्टव्याः । तद्यथा । अ क्कोसहणणमारण धम्मकंसाणवाल सुलनाणं । लान्नमन्नइधीरो जहुत्तराणंअनावंमि॥१८॥

बहुगुणप्पगप्पाइं, कुज्जा अत्तसमाहिए ॥ जेणन्नेणोविरुज्झेज्जा, तेण तंतं समायरे ॥ १९ ॥ इमं च धम्म मादाय,कासवेण पवेइयं ॥ कुज्जा भिक्कू गिलाणस्स, अगिलाए समाहिए ॥ २० ॥ संखाय पेसलं धम्मं, दिट्ठि मं परिनिव्वुडे ॥ उवसग्गे नियामित्ता,आमोरकाए परिव्वएज्जा सित्तिबेमि ॥ २१ ॥ इति ततीय अज्झयणस्स तईउ उद्देसो सम्मत्तो.

अर्थ–परंतु जे साधुछे ते तेमनी साथे आक्रोशादिक करे नही किंतु ज्यां बहुगुण के० घणागुणछे एटले प्रतिज्ञा हेतु दृष्टांत उपनय नैगम नय इत्यादिक प्पगप्पाइं के० प्रकल्पिये एवा मध्यस्थपणाना कारणने कुज्जा के० करे वली जे थकी अत्त के० आ त्मा समाहिए के० समाधिवंत रहे एवा अनुष्ठान करे जेणन्नेणो विरुज्झेज्जा के० जे अ नुष्ठानकरवाथी अथवा जे वचन बोल्या थकी अन्यपुरुष विरोध नपामे तेवुं कार्य करे तेण के० तेमाटे तंतं के० ते ते विधि समायरे के० समाचरे ॥१९॥ एरीते परमत नि राकरण करी उपसंहारे स्वमत स्थापन करतां कहेछे इमंके० ए पूर्वोक्त वचनरूप धम्म मादाय के० धर्मने ग्रहण करीने ते धर्म कासवेण पवेइयंके० काश्यप एटले श्रीमाहावीर देवे प्रवेद्यो च शब्द थकी अन्य मतिनु निराकरण करीने प्रवेद्यो एटले कह्यो ते केवीरीते तो के भिरकूके० साधु जे छे ते गिलाणस्स के० गिलाननी कुज्जाके० वैयावच्च करे अगि लाए समाहिए के० परंतु अगिलान पणे करे जेम पोताने तथा गिलानने समाधि उत्पन्न थाय तेवीरीते वैयावच्च करे ॥२०॥ संखायपेसलंधम्मं के० ते पेसल एटले मनो हर एवा सर्वज्ञ प्रणीत श्रुत चारित्ररूप धर्मने सम्यक् प्रकारे जाणीने दिट्ठिमं के० दृष्टी मंतसाचा तत्वनो जाण परिनिव्वुडेके०परिनिवृत्त एटले क्रोधना उपशम थकी शीतलभूत थएलो एवो साधु तेने उवसग्गेके० उपसर्ग उदय आव्या छता नियामित्ताके० तेने सह न करीने आमोरकाय के० मोक्ष प्राप्तिसुधी परिव्वएज्जासि के० सुद्धो संयम पालतो थ को प्रवर्त्ते. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥२१॥ इति श्रीद्वितीयसूत्रकृतांगे प्रथमश्रु तस्कंधे तृतीयाध्ययने उपसर्ग परिज्ञानाम स्तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ दीपिका–(बहुगुणेति) । बहवोगुणाः स्वपक्षसिद्ध्यादयः प्रकल्प्यंते प्रादुर्भवंति ये पु तानि बहुगुणप्रकल्पानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनादीनि मध्ये स्ववचनानि वाऽनु ष्ठानानि साधुर्वादकाले कुर्यात् । कीदृशः साधुः आत्मसमाधिकश्चित्तस्वास्थ्यवान् । तत्त

वानो जे व्यापार तेनुं शरण ग्रहण करे टंकणाइव पव्वयं के० जेम टंकण एटले म्लेछादिक लोको जेछे ते शस्त्रादिके करी युद्ध करवाने असमर्थ छता पर्वतनो सरण ग्रहण करे तेम पूर्वोक्त कुतीर्थिकोपण युक्तिपूर्वक उत्तर देवाने असमर्थ छता क्रोधनो सरण अंगीकार करे. ॥ १७ ॥

॥ दीपिका–(सव्वेहिंति) तेगोशालमतीयादिगंबरावा सर्वानिरनुगतयुक्तिनिः स्वपक्षं यापयितुमशक्नुवंतस्थापयितुस्ततोवादं निराकृत्य ते तीर्थिका नूयोपि प्रगल्नितां गताः वादपरित्यागेपि स्वधर्मस्थापनं नामुंचन्निति ॥ १७ ॥ (रागेति) रागद्वेषानिनूतात्मानो मिथ्यात्वेनाऽनिडुताव्याप्तावादं कर्तुमसमर्थाआक्रोशेन शरणं यांति असत्यवचनानि दंमादिहननव्यापारंवा स्वीकुर्वंतीत्यर्थः । यथा टंकणाम्लेछविशेषाः परैरनिडुताः पर्वतं शरणंयांति ॥ १७ ॥

॥ टीका–अपिच (सव्वाहीत्यादि) ते गोशालकमतानुसारिणोदिगंबरावा सर्वानिरर्थानुगतानिर्युक्तिनिः सर्वैरेव हेतु दृष्टांतैः प्रमाणनूतैरशक्नुवंतः स्वपक्षे आत्मानं यापयितुं संस्थापयितुं ततस्तस्माद्युक्तिनिः प्रतिपादयितुं सामर्थ्याजावाद्वादं निराकृत्य सम्यग्हेतुदृष्टांतैर्योवादोजल्पस्तं परित्यज्य ते तीर्थिकानूयः पुनरपि वादपरित्यागे सत्यपि प्रगल्निता धृष्टतां गताइदमूचुः । तद्यथा । पुराणं मानवोधर्मः संगोवेदश्चिकित्सितं । आज्ञासिद्धानिचत्वारि न हंतव्यानि हेतुनिः ॥ १ ॥ अन्यच्च किमन्यया बहिरंगया युक्त्या ऽनुमानादिकया ऽत्र धर्मपरिक्षणे विधेये कर्तव्यमस्तियातः प्रत्यक्षएव बहुजन्मसंमतत्वेन राजाद्याश्रयणाच्चायमेवास्मदनिप्रेतोधर्मः श्रेयान्नापरइत्येवं विवदंते तेषामिदमुत्तरं । नह्यत्र ज्ञानादिसाररहितेन बहुनापि प्रयोजनमस्तीति । युक्तं च । एरंमकठरासी जहायगोसीस चंदनपलस्स । मोल्लेन होज्ज सरिसो कितियमेत्तो गणिज्जंतो ॥१॥ तहविगणणातिरेगो जहारासी सोनचंदनसरिछो ॥ तहनिव्विणाणमहो जणो विमोल्ले विसंवयति ॥२॥ एक्कोसचस्कुगोणविमूढापमाणं जेगइंणयाणंति ॥ संसारगमणगुविलेणिउणस्सयबंधमोस्कस्स ॥ ३ ॥ इत्यादि ॥ १७ ॥ अपिच (रायदोस्साइत्यादि) रागश्च प्रीतिलक्षणोद्वेषश्च तद्विपरीतलक्षणस्ताभ्यामनिनूतआत्मायेषां परतीर्थिकानां ते । तथा मिथ्यात्वेन विपर्यस्तावबोधेनातत्वाऽध्यवसायरूपेणानिद्रुताव्याप्ताः सद्युक्तिनिर्वादं कर्तुमसमर्थाः क्रोधानुगाआक्रोशानसत्यवचनरूपांस्तथा दंममुष्ट्यादिनिश्च हननव्यापारं यांत्याऽश्रयंते । अस्मिन्नेवार्थे प्रतिपाद्ये दृष्टांतमाह । यथा टंकणाम्लेछविशेषाडर्जयायदा परेण बलिना स्वानीकादिनानिद्रूयंते तदा ते नानाविधैरप्यायुधैर्योद्धुमसमर्थाः संतः पर्वतं शरणमाश्रयंत्येवं तेपि कुतीर्थिकावादपराजिताः क्रोधाद्युपहत

यस्य सोढा नोपसर्गैरुपसर्गितोऽसमंजसं विदध्यादित्येवमामोक्षायाशेषकर्मक्षयप्राप्तिं या वत्परिसमंतात् व्रजेत्संयमानुष्ठानोद्युक्तोनवेत् परिव्रजेदिति । परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २१ ॥ उपसर्गपरिज्ञायास्तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ तृतीयाध्ययने चतुर्थोद्देशकस्य प्रारंभः

आहंसु महापुरिसा, पुव्विं तत्ततवोधणा ॥ उदयेण सिद्धिमाव न्ना, तह मंदोवसीयति ॥ १ ॥ अभुंजिया नमी विदेही, रामगुत्ते य भुंजिआ ॥ बाहुए उदगं भोच्चा, तहा तारागणेरिसी ॥ २ ॥

अर्थ—आहंसु महा पुरिसाके० हवे ते परमार्थना अजाण एम कहेछेके महा पुरुष प्रधान पुरुष तारागणऋषि प्रमुख तेणे एवीरीते आहं एटले कह्युंछे शुंकह्युंछे तोके पुव्वित तत्तके०पूर्व कालनेविषे तपश्चर्याना करनार तवोधणाके० तपरूप धनना धणी एवा अनेक ऋषीश्वर ते उदयेणके० उदक एटले शीतल पाणीनो परिभोग करता थका सिद्धिमाव न्ना के० सिद्धिने पाम्या तेरीतनुं अन्य तीर्थिनुं वचन सांभलीने तहमंदोवसीयति के०मंद अज्ञानी बापडा तह एटले तेहिज शीतलोदकने विषे राचे ; पण प्राशुक उदकनो भोग नकरे, एरीते संयमानुष्ठानने विषे सीदाय. ॥ १ ॥ हवे कोइक कुतीर्थि होयते सा धुने विप्रतारवाने अर्थे आवीरीते कहेके अभुंजिया के० अशनादिकने अण भोगवतो एवो नमीविदेही के० नमीराजा वि[illegible] उत्पन्न थयेलो हतो, ते मुक्ति पोहोतो ; तथा अन्य तीर्थिक कहेछे के इह दशमे भुंजिया के० रामगुप्त राजऋषीश्वर आहा र भोगवतो थको मुक्ति पोहोतो रामगुत्तेय बाहुए के० बाहुक ऋषीश्वर तहा के० तेमज तारागणेरिसी के० तारागण[illegible] तथा ऋषीश्वर ए वंने उदगंभोच्चा के० शीतल पाणीना परिभोग थकी सिद्धिने पाम्या ॥ २ ॥

॥ दीपिका—सांप्रतं चतुर्थआरभ्यते । सच साधुना शीलरक्षणाय यत्नोविधीयतइत्य र्थवान् तस्य चेदमादिमं सूत्रं । (आहंसुइति) केचिदविज्ञाततत्वाआहुरुक्तवंतः । यथा म हापुरुषावल्कलचीरितारागणर्षिप्रमुखाः पूर्वं पूर्वकाले तप्तमनुष्ठितं तपएव धनं येषांते तप्ततपोधनाः पंचाग्न्यादिसाधकास्तएवंभूताउदकेन सचित्तोदकपरिभोगेण उपलक्ष णात्कंदमूलादिभोजिनः सिद्धिमापन्नाः सिद्धिं गताः । तत्रैवंभूतार्थाकर्णने मंदोमूर्खोऽ वसीदति संयमे सीदति शीतोदकादिपरिभोगे प्रवर्तते । तत्रैवं वेति तेषां तापसानां कुतश्चिज्जातिस्मरणादिप्रत्ययादाविर्भूतसम्यग्दर्शनानां संयमप्रतिपत्त्याऽगतज्ञानावरणा

त्कुर्यात्साधुर्येन कृतेनान्यस्तीर्थिकोनविरुध्येत नविरोधं गछेत् । तेन तत्तदविरुद्धं समाचरेत् ॥१ए॥ (इममिति) इमं वक्ष्यमाणं धर्ममादाय काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्ररूपितं कुर्याद्भिक्षुः साधुर्ग्लानस्य वैयावृत्त्यादिकं अग्लानतया यथाशक्ति समाहितः समाधिंप्राप्तः । यथा ग्लानस्य समाधिरुत्पद्यते स्वस्य वा योगानविषीदंति तथा वैयावृत्त्यादिकं विधेयमिति ॥ २० ॥ (संखाएति) । पेशलं श्रेष्ठं सर्वज्ञोदितं धर्मं संख्याय ज्ञात्वा दृष्टिमान् दर्शनोपेतः परिनिर्वृतोरागद्वेषत्यागाच्छीतलउपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् नियम्य नियंत्र्य आमोक्षाय सर्वकर्मक्षयाय परिव्रजेत्संयमोद्यतोनवेत् ससाधुरिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२१॥ इति तृतीयाध्ययने तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (बहुगुणेत्यादि) । बहवोगुणाः स्वपक्षसिद्धिपरपक्षदोषोद्भावनादयोमाध्यस्थ्यादयोवा प्रकल्पंते प्राडुर्नवंत्यात्मनि येष्वनुष्ठानेषु तानि बहुगुणप्रकल्पानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनादीनि माध्यस्थ्यवचनप्रकाराणि वा अनुष्ठानानि साधुर्वादकाले अन्यदा वा कुर्यात् विदध्यात् सएव विशिष्यते । आत्मनः समाधिश्चित्तस्वास्थ्यं यस्य सनवत्यात्मसमाधिकः। एतडुक्तं नवति । येन येनोपन्यस्तेन हेतुदृष्टांतादिना आत्मसमाधिः स्वपक्षसिद्धिलक्षणोमाध्यस्थवचनादिना वा परानुपघातलक्षणः समुत्पद्यते तत् तत् कुर्यादिति । तथा येनानुष्ठितेन वा नाषितेन वा अन्यतीर्थिकोधर्मश्रवणादौ वान्यः प्रवृत्तोन विरुध्येत नविरोधं गछेत् तेन पराविरोधकारणेन तत्तदविरुद्धमनुष्ठानं वाचनं वा समाचरेत् कुर्यादिति ॥ १ए ॥ तदेवं परमतं निराकृत्योपसंहारद्वारेण स्वमतस्थापनायाह । (इमंचेत्यादि) । इममिति वक्ष्यमाणं पूर्वोक्तमूलोत्तरगुणरूपं चारित्राख्यं वा डुर्गतिधारणाद्धर्ममादायोपादाय आचार्योपदेशेन गृहीत्वा। किंनूतमिति। तमेव विशिनष्टि । काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिनोत्पन्नदिव्यज्ञानेन सदेवमनुजायां पर्षदि प्रकर्षेण यथावस्थितार्थनिरूपणद्वारेण वेदितं प्रवेदितं । चशब्दात्परमतं च निराकृत्य निक्षणशीलोनिक्षुर्ग्लानस्यापटोरपरस्य निक्षोर्वैयावृत्त्यादिकं कुर्यात् । कथं कुर्यादेतदेव विशिनष्टि। स्वतोप्यग्लानतया यथाशक्ति समाहितः समाधिंप्राप्तइति। इदमुक्तं नवति। यथा यथात्मनः समाधिरुत्पद्यते तथा पिंमपातादिकं विधेयमिति ॥ २० ॥ किंकृत्वैतद्विधेयमितिदर्शयितुमाह । (संखायेत्यादि) । संख्याय ज्ञात्वा कं धर्मं सर्वज्ञप्रणीतं श्रुतचारित्राख्यन्नेदभिन्नपेशलमिति । सुश्लिष्टं प्राणिनामहिंसादिप्रवृत्त्या प्रीतिकारणं। किंनूतमिति । दर्शनं दृष्टिः समुद्भूतपदार्थगतं सम्यग्दर्शनमित्यर्थः । सा विद्यते यस्याऽसौ दृष्टिमान् यथा व्यवस्थितपदार्थपरिछेदवानित्यर्थः । तथा परिनिर्वृतोरागद्वेषविरहाच्छांतीनूतस्तदेवं धर्मं पेशलं परिसंख्याय दृष्टिमानू परिनिर्वृतउपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान्नियम्य सं

दगंनोच्चा के० शीतलपाणीने जोगवी तथा बीयाणि के० बीजकाय हरियाणिय के० हरिकायना परिजोग थकी सिद्ध थया ॥ ३ ॥ एते के० ए नेमीराज रुषी प्रमुख पुर्वं महापुरिसाके० पूर्वकालनेविषे माहा पुरुष (आहिताके०)कह्या ते ते इहके० आलोकने विषे संमता के० प्रसिद्धछे ते कुतीर्थिक अथवा साताशील स्वयूथिक एम कहे के ए सर्वं वीउदगं के० बीज सचेतपाणीने जोच्चा के० जोगवीने सिद्धा के० सिद्ध थया इतिके० एम मेयं के० ए अमे महाजारतादिक तथा पुराणोमांथी अणुस्सुयं के० सांजल्युंछे. माटे अमे पण एवीज रीते मुक्ति साधशुं ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–(असिलेति) । असिलोनाम महर्षिस्तथा देवलोद्वैपायनः पराशराख्यइत्यादयः शीतोदकबीजहरितादिजोजिनःसिद्धाः ॥ ३ ॥ (एतइति) एते पूर्वोक्तामहापुरुषानम्यादयः पूर्वकाले त्रेताद्वापारादौ आख्याताः प्रसिद्धाः इहाप्यार्हतमते रुषिजापितादौ केचन संमता इत्येवं कुतीर्थिकाः प्रोचुः । एते सर्वेपि बीजोदकादिजोगात्सिद्धाइति मया जारतादौ पुराणे श्रुतं ॥ ४ ॥

॥टीका–अपिच । (असिलेइत्यादि) । असिलोनाम महर्षिर्देवलोद्वैपायनश्च तथा पराशराख्यइत्येवमादयः शीतोदकबीजहरितादिपरिजोगादेव सिद्धाइति श्रूयते ॥३॥ एतदेव दर्शयितुमाह । (एतेइत्यादि) एते पूर्वोक्तानम्यादयोमहर्षयः पूर्वमिति पूर्वस्मिन्काले त्रेताद्वापरादौ महापुरुषाइति प्रधानपुरुषाआसमंतात् ख्याताः प्रख्याताराजर्षित्वेनप्रसिद्धिमुपगताइहाप्याहितप्रवचने रुषिजाषितादौ केचन संमताअजिप्रेताइत्येवं कुतीर्थिकाः स्वयूथ्यावा प्रोचुः । तद्यथा । एते सर्वेपि बीजोदकादिकं जुक्त्वा सिद्धाइत्येतन्मया जारतादौ पुराणे श्रुतं ॥ ४ ॥

तह मंदा विसीअंति, वाहछिन्नाव गद्दजा ॥ पिठतो परिसप्पंति
पिठसप्पी च संजमे ॥ ५ ॥ इह मेगेउ जासंति, सातं सातेण वि
जती ॥ जे तह आरिअं मग्गं, परमं च समाहिए ॥ ६ ॥

अर्थ–तवके० त्यां कुशास्त्र जे जारतपुराणादिक तेने सांजलवे करी तथा परिसह उपने थके मंदाविसीअंति के० कोइक मंद अज्ञानी चारित्र थकी सीदाय कोनीपेरे तोके वाहछिन्नावगद्दजा के० जेम जार थकी जागा एवा जे गर्द्दज ते मार्गमांज जार नाखीदेइने नासीजाय अथवा पिठतोपरिसप्पंति के० पृष्ट सर्प्प एटले जग्न गति पुरुष संजमे के० संभ्रमी पणे अग्न्यादिक उपद्रव उपने थके पिठसप्पिय के० नाशीजनार मनुष्य

दिकर्मणां नरतादीनामिव मुक्तिः संजाता न तु शीतोदकपरिनोगादिति ॥ १ ॥ (अ नुंजिएति) केचित्कुतीर्थिकाअथवा स्ववर्ग्याएवं शीतलविहारिण एवमाहुः। नमी राजा विदेहपुरवासिनोलोकावैदेहास्तेयस्य संति स वैदेही अशनादिकमनुक्त्वा सिद्धिं गतः। रामगुप्तश्च राजर्षिराहारादिकंनुक्त्वैव नुंजानएव सिद्धिं गतः । तथा बाहुकः शीतोद कादिपरिनोगं कृत्वा तथा तारागणनामा मुनिः शीतोदकादिपरिनोगात्सिद्धः ॥ २ ॥

॥टीका—उक्तस्तृतीयोद्देशकः सांप्रतं चतुर्थः समारन्यते। अस्यचायमनिसंबंधः। इहानंतरो देशके अनुकूलप्रतिकूलोपसर्गाः प्रतिपादितास्तैश्च कदाचित्साधुः शीलात् प्रच्याव्येत तस्य च शीलस्खलितस्य प्रज्ञापनानेन प्रतिपाद्यते इति। अनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्यादिमं सू त्रं (आहंसुइत्यादि)। के चन अविदितपरमार्थाआहुरुक्तवंतः। किंतदित्याह। यथा महापुरु षाःप्रधानपुरुषावल्कलचीरितारागणर्षिप्रनृतयः। पूर्वं पूर्वस्मिन् काले तप्तमनुष्ठितं तपएव ध नं येषां ते तप्ततपोधनाः पंचाग्न्यादितपोविशेषेण निष्टप्तदेहास्तएवंनूताः शीतोदकपरिनो गेन उपलक्षणार्थत्वात् कंदमूलफलाद्युपनोगेन च सिद्धिमापन्नाः सिद्धिं गतास्तत्रैवंनूता र्थसमाकर्णने तदर्थसद्भावावेशात् मंदोझोस्नानादित्याजितः प्राशुकोदकपरिनोगनग्नः संय मानुष्ठाने प्रविषीदति। यदि वा तत्रैव शीतोदकपरिनोगे विषीदति लगति निमज्जतीति यावत्। न त्वसौ वराकएवमवधारयति यथा तेषां तापसादिव्रतानुष्ठायिनां कुतश्चि ज्जातिस्मरणादिप्रत्ययादाविर्नूतसम्यग्दर्शनानां मौनींद्रनावसंयमप्रतिपत्त्या अपगतज्ञा नावरणादिकर्मणां नरतादीनामिव मोक्षावाप्तिर्न तु शीतोदकपरिनोगादिति॥१ ॥ किंचा न्यत्। (अनुंजियाणमित्यादि) केच न कुतीर्थिकाः साधुप्रतारणार्थमेवमूचुः । यदिवा स्ववर्ग्याः शीतलविहारिणएतद्वक्ष्यमाणमुक्तवंतस्तद्यथा निमीराजा विदेहानाम जनप दस्तत्रनवावैदेहास्तन्निवासिनोलोकास्तेऽस्य संतीति वैदेही। सएवंनूतो निमीराजा अश नादिकमनुक्त्वा सिद्धिमुपगतस्तथा रामगुप्तश्च राजर्षिराहारादिकं नुक्त्वैव नुंजानएव सि द्धिं प्राप्तइति। तथा बाहुकः शीतोदकादिपरिनोगं कृत्वा तथा नारायणोनाममहर्षिः परिणतोदकादिपरिनोगात्सिद्धइति ॥ २ ॥

आसिले देवले चेव, दीवायण महारिसी, पारासरे दगं नो
च्चा, बीयाणि हरियाणिया॥ ३॥ एते पुव्वं महापुरिसा, आहिता
इह संमता ॥ नोच्चा बीतदगं सिद्धा, इति मेयमणुस्सुत्रं ॥ ४॥

अर्थ—वली आसिले के० आसिल तथा देवले के० देवल चेव के० एमज दीवाय णमहारिसी के० द्वीपायन महाऋषीश्वर अने पारासरे के० पाराशर ए सर्वे ऋषीउं उ

दाचिदपि सर्वविरतिपरिणामभावलिंगमंतरेण शीतोदकबीजाद्युपभोगेन जीवोपमर्दप्राये ण कर्मक्षयोऽवाप्यते । विषीदने दृष्टांतमाह । वहनं वाहोभारो वहनं तेन भिन्नाः कर्षि तास्त्रुटितारासभाइव विषीदंति । यथा रासभागमनपथएव प्रोज्झितभारानिपतंति ए वं ते प्रोज्य संयमभारं शीतलविहारिणोभवंति । दृष्टांतांतरमाह । यथा पृष्ठसर्पिणोभग्न गतयोऽग्न्यादिसंभ्रमे सत्युद्भ्रांतनयनाः समाकुलाः प्रनष्टजनस्य पृष्ठतः पश्चात्परिसर्पं ति नाग्रगामिनोभवंत्यपि तु तत्रैवाग्न्यादिसंभ्रमे विनश्यंत्येवं तेपि शीतलविहारिणो मोक्षं प्रतिप्रवृत्ताअपि तु न मोक्षगतयोभवंत्यपि तु तस्मिन्नेव संसारे अनंतमपि कालं यावदासतइति ॥ ५ ॥ मतांतरं निराकर्तुं पूर्वपक्षयितुमाह । (इहमेगेइत्यादि) । इहेति मोक्षगमनप्रस्तावे एके शाक्यादयः स्वयूथ्यावा लोचादिनोपतप्ताः । तुशब्दः पूर्वस्मात् शी तोदकापरिभोगाद्विशेषमाह । भाषंते ब्रुवते । मन्यंते च इति क्वचित्पाठः । किंतदित्याह । सातं सुखं सातेन सुखेनैव विद्यते भवतीति । तथाच वक्तारोभवंति । सर्वाणि सत्वानि सुखे रतानि सर्वाणि दुःखाच्च समुद्विजंति । तस्मात्सुखार्थीसुखमेव दद्यात् सुखप्रदाता लभ ते सुखानि॥१॥ युक्तिरप्येवमेव स्थिता । यतः कारणानुरूपं कार्यमुत्पद्यते । तद्यथा । शा लिबीजाच्छाल्यंकूरोजायते न यवांकुरइत्येव प्रीत्यात्मसुखान्मुक्तिसुखमुपजायते न तुलो चादिरूपात् दुःखादिति । तथाह्यागमे ऽप्येवमेव व्यवस्थितं ॥ मणुसं भोयणं भोच्चा मणु सं सयणासणं । मणुसंति अगारंसि मणुसं झायए मुणी ॥१॥ तथा मृद्वी शय्याप्रातरुत्थाय पेया, भुक्तं मध्ये पानकं चापराह्णे । द्राक्षाखंडं शर्करा चार्द्धरात्रे मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टः ॥१॥ इत्यतोमनोज्ञाहारविहारादेश्चित्तस्वास्थ्यं ततः समाधिरुत्पद्यते समाधेश्च मुक्त्यवाप्तिर तः स्थितमेतत्सुखेनैव सुखावाप्तिर्न पुनः कदाचनापि लोचादिना कायक्लेशेन सुखावाप्तिरि ति स्थितं । इत्येवं व्यामूढमतयोये केचन शाक्यादयस्तत्र तस्मिन्मोक्षमार्गप्रस्तावे स मुपस्थिते आराज्ञातः सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्योमार्गोजैनेंद्रशासनप्रतिपादितोमोक्षमार्ग स्तं ये परिहरंति । तथा च । परमं च समाधिज्ञानदर्शनचारित्रात्मकं ये त्यजंति तेऽज्ञाः संसा रांतर्वर्तिनः सदा भवंति । तथाहि । यत्तैरभिहितं कारणानुरूपं कार्यमिति तन्नायमेकां तोयतः शृंगाच्छरोजायते गोमयाद्वृश्चिकोगोलोमाविलोमादिभ्योदूर्वेति । यदपि मनोज्ञा हारादिकमुपन्यस्तं सुखकारणत्वेन तदपि विषूचिकादिसंभवाद्व्यभिचारीति । अपिचेदं वै षयिकं सुखं दुःखप्रकारहेतुत्वात् सुखाभासतया सुखमेव न भवति । तदुक्तं । दुःखात्म केषु विषयेषु सुखाभिमानः सौख्यात्मकेषु नियमादिषु दुःखबुद्धिः । उत्कीर्णवर्णपदपंक्तिरि वान्यरूपा सारूप्यमेति विपरीतगतिप्रयोगात् ॥१॥ इति । कुतस्तत्परमानंदरूपमस्यात्यंतिकै कांतिकस्य मोक्षसुखस्य कारणं भवति । यदपि लोचभूशयनभिक्षाटनपरपरिभवक्षुत्पिपासा दंशमशकादिकं दुःखकारणत्वेन भवतोपन्यस्तं तदप्यल्पसत्वानामपरमार्थदृशां महापु

नी पबवाडे दोडतो जाय परंतु अग्रगामि नथाय अग्नीमांहेज विनाश पामे तेम जे शीतल विहारी ले तेपण मुक्तिना अग्रगामी नथाय अनंतोकाल संसारमांहेज भमे ॥५॥ इहके० ए मोक्षमार्गे विचारवाने प्रस्तावे एगेउ के० कोइक शाक्यादिक अथवा स्वतीर्थि लोच प्रमुख कष्टे पीडचा थका एम कहेके सातंके० ते जे मुक्तिना सुख ले ते सातेणके० सुखे करीज विज्जती के० थाय परंतु डुःख थकी सुख न थाय. यथा शालिबीजाल्लाल्यांकुरो, जायतेनयवांकुर इतिवचनात् माटे लोचादिक कष्ट थकी मुक्ति शीरीते थशे एवीरीते बोलीने जेके० जे कोइक शाक्यादिक तल के० त्यां मोक्षविचारणाने प्रस्तावे आरिय के० श्रीतीर्थंकर देव तेनो प्ररुप्यो एवो जे मग्गं के० मोक्षमार्ग तेने मूकी आपेले, ते परमंचसमाहियं के० परम समाधिनो कारण जे ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूपले तेने त्यागीने घणो संसारमांहे परिभ्रमण करेले. तेहिज देखाडेले ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-(तत्रेति) तत्र कुमतश्रवणोपसर्गे मंदाविषीदंति संयमे सीदंति । यथा वाहेन भारेण छिन्नास्त्रुटितारासभाः सीदंति । कोर्थः । यथा रासभाभारपीडिता मार्गएव निपतंति एवं ते संयमभारं त्यक्त्वा शीतलविहारिणः स्युः । यथा पीवसर्पिणो भग्नगमनतया अग्न्यादिभये उद्भ्रांतनयनाः पश्चान्न परिसर्पंति नाग्रगामिनोभवंति अपितु तत्रैवाग्न्यादिसंभ्रमे विनश्यंति । एवं तेपि शीतलविहारिणोन मोक्षगामिनः स्युः अपितु तत्रैव संसारे अनंतकालं तिष्ठंति ॥ ५ ॥ (इहेति) इह मोक्षविचारे एके शाक्यादयः स्वतीर्थ्यावा लोचादिपीडिताः। तुशब्दोविशेषणे । भाषंते । तथाहि । सातं सुखं सातेन सुखेन विद्यते स्यात् । यतउक्तं । सर्वाणि सत्वानि सुखे रतानि, सर्वाणि डुःखाच्च समुद्विजंति ॥ जीवेषु तस्मात्सुखमेव दद्यात् सुखप्रदानाल्लभते सुखानि ॥ १ ॥ इत्यात्मसुखान्मुक्तिसुखं स्यात् नतु लोचादिडुःखात् । यडुक्तं । मणुणं भोअणं भुच्चा, मणुणं सयणासणं ॥ मणुणंसि अगारंसि, मणुणं कायए मुणी ॥१ ॥ तथा । मृद्वी शय्या प्रातरुत्थाय सेव्या, भुक्तं मध्ये पानकं वाऽपराह्णे ॥ द्राक्षाखंडं शर्करा चार्धरात्रे मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टइति । अतोमनोज्ञाहारादेश्चित्तस्वास्थ्यं ततः समाधिः सएव मुक्तिरिति । ततः सुखेन सुखावाप्तिर्न तु लोचादिक्लेशेनेति एवंये भाषंते तथा आर्यं जैनेंद्रमार्गं परमंच समाधिज्ञानदर्शनचारित्रात्मकं येत्यजंति ते सदा भवे भ्राम्यंतीति ॥६ ॥

॥टीका-एतडुपसंहारद्वारेण परिहरन्नाह। (तत्रेत्यादि) तत्र तस्मिन् कुश्रुत्युपसर्गोदये मंदाअज्ञानानाविधोपसाध्यं सिद्धिगमनमवधार्य विषीदंति संयमानुष्ठानेन पुनरेतद्दंत्यज्ञाः ।तद्यथा। येषां सिद्धिगमनमभूत् तेषां कुतश्चिन्निमित्तात् जातजातिस्मरणादिप्रत्ययानामवाप्तसम्यक्ज्ञानचारित्राणामेव वल्कलचीरिप्रभृतीनामिव सिद्धिगमनमभूत् । न पुनः क

यमपि ॥ ७ ॥ (पाणाइवेति) यूयं प्राणातिपाते मृषावादे संयताः संतोवर्त्तमानास्तथा ऽदत्तादाने मैथुने परिग्रहे वर्तमानाश्चल्पेन सुखेन बहु हारयथ ॥ ८ ॥

॥ टीका–अतोव्यपदिश्यते । (माएयमित्यादि) एनमार्यं मार्गं जैनेंद्रप्रवचनं सम्यक् ज्ञानदर्शनचारित्रमोक्षमार्गप्रतिपादकं सुखं सुखेनैव विद्यते इत्यादिमोहेन मोहिताश्चवमन्यमानाः परिहरंतोऽल्पेन वैषयिकेण सुखेन मावहु परमार्थसुखं मोक्षाख्यं लुंपथ विध्वंसथ तथाहि । मनोज्ञाऽहारादिना कामोद्रेकस्तदुद्रेकाच्च चित्तास्वास्थ्यं न पुनः समाधिरिति । अपि चैतस्यासत्पक्षाभ्युपगमस्यामोक्षे परित्यागे सति । (आयो हारिवजूरहत्ति) आत्मानं यूयं कदर्थयथ । यथैव केवलं यथावाऽयसो लोहस्याहर्त्ता अपांतराले रूप्यादिलाभे सत्यपि दूरमानितमिति कृत्वा नोज्झितवान् । पश्चात् स्वावस्थानावाप्तावल्पलाभे सति जूरितवान पश्चात्तापं कृतवान् एवं भवंतोपि जूरयिष्यंतीति ॥७॥ पुनरपि सातेन सातमित्येवं वादिनां शाक्यानां दोषोद्भिभावयिषयाह । (पाणाइवायेत्यादि) प्राणातिपाते मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहेषु वर्तमानाश्चसंयतायूयं वर्तमानसुखैषिणोल्पेन वैषयिकसुखाभासेन परमार्थिकमेकांतात्यंतिकं बहु मोक्षसुखं विलुंपथेति । किमिति । यतः पचनपाचनादिषु क्रियासु वर्तमानाः सावद्यानुष्ठानारंभतया प्राणातिपातमाचरथ । तथा येषां जीवानां शरीरोपभोगोभवद्भिः क्रियते तानि शरीराणि तत्स्वामिभिरदत्तानीत्यदत्तादानाचरणं । तथा गोमहिष्यजोष्ट्रादिपरिग्रहात्तन्मैथुनानुमोदनादब्रह्मेति । तथा प्रव्रजितादयमित्येवमुच्चाय गृहस्थाचरणानुष्ठानान्मृषावादस्तथा धनधान्यद्विपदचतुष्पदादिपरिग्रहात्परिग्रहइति ॥ ८ ॥

एवमेगे उ पासत्था, पन्नवंति अणारिया ॥ इत्थीवसंगया बाला,
जिणसासणपरम्मुहा ॥ ए ॥ जहा गंमं पिलागं वा, परिपीलेज्ज
मुहुत्तगं ॥ एवं विन्नवणित्थीसु, दोसो तत्थ कउसिआ ॥ १० ॥

अर्थ–वली परमतनो भाषा दोष कही देखाडेछे. एव के० एरीते एगेउ के० कोइएक परतीर्थिक अथवा स्वतीर्थिक पासत्थाके० पासत्थादिक ते केवाछे तोके अणारियाके० अनार्य कर्मना करनार अणाचारि वली इत्थीवसंगया के० स्त्रीने वसे पड्या एटले स्त्रीनो परिसह जीतवाने असमर्थ तथा बाला के० अज्ञानी वली जिणसासण परम्मुहा के० जिनमार्ग थकी वपरांग ते पन्नवंति के० एम कहेछेके ॥ ए ॥ जहा के० जेम गंमंके० गूवडुं पिलागंवा के० पाकुं थकुं तेने परि के० त्यांज पीलेज्ज के० पीलीने तेमांथी परु अथवा रुधीर काढी नाखवा थकी मुहुत्तगंके० मुहूर्त्तमात्रमां सुख थाय परंतु पीडा कांइ

रुषाणां तु स्वार्थान्युपगमप्रवृत्तानां परमार्थचिंतकानां महासत्वतया सर्वमेवैतत्सुखायैवे ति। तथाचोक्तं। तणसंथारनिविस्सो विमुनिवरो नट्टरागमयमोहो॥ जंपावइ मुत्तिसुहं कत्तो तंचक्कवट्टीवि॥१॥ तथा। डुष्कृतसंख्यया च महतां क्षांतं पदं वैरिणः कायस्याशुचिता विराग पदवी संवेगहेतुर्जरा॥ सर्वत्यागमहोत्सवाय मरणं जातिः सुहृत्प्रीतये संपद्भिः परिपूरितं जगदिदं स्थानं विपत्तेः कुतइति॥१॥ अपिचैकांतेन सुखेनैव सुखेऽन्युपगम्यमाने विचित्रसंसाराभावः स्यात्तथा स्वर्गस्थानां नित्यसुखिनां पुनरपि सुखानुभूतैस्तत्रैवोत्पत्तिः स्यात्तथा नारकाणां च पुनर्डुःखानुभवात्तत्रैवोत्पत्तेर्न नानागत्या विचित्रता संसारस्य. स्यान्नचैतत् दृष्टमिष्टं चेति॥६॥

मा एयं अवमन्नंता, अप्पेणं लुंपहा बहुं॥ एतस्स अमोरकाए, अयहारिव जूरह॥७॥ पाणाइवाते वट्टंता, मुसावादे असं जता॥ अदिन्नादाणे वट्टंता, मेहुणोय परिग्गहे॥८॥

अर्थ—मा के० अहो दर्शनीउ, तमे एयं के० सुख थकी सुख थाय एवां वचने करी अवमन्नंता के० श्रीजिनेंद्रना मार्गने अवहिलता थका अप्पेणं के० अल्प विषयने अर्थे बहुं के० घणा एवांजे मोक्षना सुख तेने लुंपहा के० गमावोबो; एतस्स के० एवा असत्य पक्षने अमोरकाए के० न मूकवे करीने अयहारिव के० लोहवाहकनी पेरे जूरह के० जूरशो; जेम कोइक बे जण हता तेणे लोहनो भार उपाड्यो हतो, पबी मार्गे जता सुवर्ण दीठुं तेवारे एकजणे लोहनां भारने नाखी देइने अमुलक सुवर्ण वस्तु ग्रहण करी अत्यंत धनवंत थयो, अने बीजायें लोहनो भार नाखी दीधो नही, ते पबी जूरवा लागो, तेम तमे पण जूरशो. ए कथा सविस्तर श्रीरायप्रश्नि सूत्रमांहे त्यां थकी जोइ लेवी॥७॥ पाणाइवातेवट्टंता के० प्राणातिपातने विषे वर्त्तता मुसावादे के० मृषावादने विषे वर्त्तता अदिन्नादाणेके० अदत्तादान तथा मेहुणेके० मैथुन च के० वली परिग्गहेके० परिग्रह एटलाने विषे वट्टंताके० वर्त्तता थका तमे असंजताके० असंयतिबो अल्प विषयसुखमां पड्या थका घणुं एवुं जे मोक्ष सुख तेनो विनाशकरोबो.॥८॥

॥ दीपिका—(माएति) एनं जैनमार्गं अवमन्यमानाः परिहरंतोऽल्पेन सुखेन मा बहु मोक्षसुखं लुंपथ विध्वंसयथ। तथा एतस्यासत्पक्षस्यामोक्षेपरित्यागे अयोहारीव (जूरहत्ति) आत्मानं कदर्थयते। यथाऽयसोलोहस्याहर्ता ऽपांतरालेे रूप्यादिलाभेपि दूरमानीतमिति लोहं नोज्झितवान् पश्चादलाभे जूरितवान् पश्चात्तापं कृतवान् एवं यू

वमेगे उ पासडा, मिछदिठी अणारिआ ॥ अझोववन्ना कामे
हिं, पूयणा इव तरुणए ॥ १३ ॥

अर्थ—वली दृष्टांत कहेछे. जहाके० जेम मंदादननामके० मेपो एवे नामे जनावर ते थि मितं के० जेरीते पाणी मोलाय नही एरीते भुंजतीदगं के० उदकनुं पान करे, परंतु पाणीने पण बाधा नथाय अने पोताने पण बाधा नकरे एवंके० एरीते विन्नवणित्थीसु के० प्रार्थना करती स्त्री साथे संबंध करवा थकी दोसोतछकउसिया के० त्यांपण दोप क्यां थकी थाय अपितु नज थाय. ॥ ११ ॥ जहा के० जेम विहंगमापिंगा के० कपिंजल एवेनामे पंखणी आकाशे उडती थकीज थिमिअंभुंजतीदगं के० निर्मलपाणीनुं पानकरे एवं के० एरीते विन्नवणित्थीसु के० अंहींपण गर्नांतर करण पूर्वक पुत्रादिकने अर्थे राग द्वेष रहित प्रार्थती एवी स्त्रीनी साथे संग करतां थकां दोप क्यांथकी थाय ॥ १२ ॥ हवे सूत्र कर्ता ते वादीउना दोप प्रगट करतो कहेछे. एवमेगेउपासछाके० ते पूर्वोक्त गंवडादिक ना दृष्टांते करी मैथुनने निर्दोप मानता एवा कोइ एक परतीर्थिक तथा स्वयूथिक पासछादि क जेणे स्त्री परिसह जित्यो नथी, ते सिथल विहारी केवा छे, तो के मिछदिठी अणा रिया के० मिथ्यादृष्टी अनार्य कर्मना करनार अनाचारी अझोववन्नाकामेहिंके० कामनो गने विपे गृद्ध छता प्रवर्त्ते कोनीपेरे तोके पूयणाइवके० पुतना एटले माकणनीपेरे जेम माकण न्हाना बालकने देखी गृद्ध थाय अथवा पुतना एटले गाम्मरीनीपेरे जेम गाम्मरी पोताना तरुणए के० तरुण बालकने विषे गृद्ध थाय; एटले समस्त जीवोमांहे संता नने विपे गाम्मरीनो स्नेह आकरो दीपेछे ते माटे ए दृष्टांत कह्युं तेम पूर्वोक्त अनाचा री पासछादिक पण कामनोगनेविपे गृद्ध थायछे. ॥ १३ ॥

॥ दीपिका—(जहेति) यथा मंधादनोमेपः स्तिमितं अनालोड्याग्रतउदकं भुंक्ते पिब त्यात्मानं प्रीणयति नचान्योपघातं कुर्यात् एवं स्त्रीसंबंधे न काचिदन्यस्य पीमा आ त्मनश्च प्रीणनमिति कुतस्तत्र दोपः ॥ ११ ॥ यथा पिंगाः कपिंजलाविहंगमाः पक्षिणआ काशएव वर्तमानाः स्तिमितं निभृतमुदकं पिबंति एवमत्रापि पुत्राद्यर्थे स्त्रीसंबंधं कुर्वतोऽ रक्तद्विष्टस्य पक्षिणइव कुतोदोपः । यदुक्तं ॥ धर्मार्थे पुत्रकामस्य स्वदारेष्वधिकारिणः ॥ ऋतुकालविधानेन दोपस्तत्र नविद्यतइति ॥ १२ ॥ अथैवं वदतां परेपां दोपमाह । एवं प रोक्तैः पूर्वदृष्टांतैर्मैथुनं निर्दोपमितिमन्यमानाएके शाक्यादयः स्वयूथ्यावा पार्श्वस्थादय स्तथा मिथ्यादृष्टयोऽनार्याधर्मविरुद्धत्वात्पापिणोऽध्युपपन्नागृद्धाः कामेपु वा । यथा पूतना शाकिनी तरुणके बाले आसक्ता यदि वा पूतना गड्डरिका स्वापत्ये आसक्ता । कथाचात्र केनापि सर्वपशूनामपत्यानि निरुदके कूपेऽपत्यस्नेहपरीक्षार्थं क्षिप्तानि । तत्र चान्यामात

पण न थाय एवं के० एरीते अंहीं पण विन्नवणिडीसु के० प्रार्थना करती एवी स्त्रीनी साथे संबंध करवाथी दोसोतबकडसिया के० त्यांपण क्यां थकीदोष आवशे अपितु कांइज दोषनथी. ॥ १० ॥

॥ दीपिका—एवं पूर्वोक्त प्रकारेण एके बौद्धविशेषाः शैवविशेषावा पार्श्वस्थाः स्वयूथ्या वाऽवसन्नकुशीलादयोऽनार्याः स्त्रीवशंगताः प्रज्ञापयंति वदंति। यतस्तेषां वचनं। प्रियादर्शन मेवास्तु, किमन्यैर्दर्शनांतरैः ॥ प्राप्यते येन निर्वाणं, सरागेणापि चेतसा इति । ते किंनूताः जिनशासनपराङ्मुखाः ॥ ९ ॥ (जहेत्ति) ते एवमाहुः । यथा गंडं पिटकं पीडोपशमार्थं परिपीड्य रुधिरादिकं निर्गाल्य मुहूर्तमात्रं सुखिनः स्युर्नच दोषेणानुषज्यंते । एवं विज्ञापनासु प्रार्थनीयासु स्त्रीषु दोषः कुतःस्यात् । तत्रकोर्थः । गंडपरिपीडनतुल्ये स्त्रीसंबंधे क दोषः स्यात् । तत्र दोषोयदि काचित्पीडा नवेन्न चेह साकाप्यस्तीति ॥ १० ॥

॥ टीका—सांप्रतं मतांतरदूषणाय पूर्वपक्षयितुमाह । (एवमेगेइत्यादि) तुशब्दः पूर्वे स्माद्विशेषणार्थः । एवमिति वक्ष्यमाणया नीत्या यदि वा प्राक्तनएव श्लोकोत्रापि संबधनीयः । एवमिति । प्राणातिपातादिषु वर्तमानाएकइत्यादिबौद्धविशेषानीलपटादयोनाथवादिकमंमलप्रविष्टावा शैवविशेषाः सदनुष्ठानात् पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः स्वयूथ्यावा पार्श्वस्थावसन्नकुशीलादयः स्त्रीपरीषहपराजितास्तएवं प्रज्ञापयंति प्ररूपयंति । अनार्याः अनार्यकर्मकारित्वात्। तथाहि। ते वदंति। प्रियादर्शनमेवास्तु किमन्यैर्दर्शनांतरैः। प्राप्यते येन निर्वाणं सरागेणापि चेतसा। किमित्येवं तेनिदधतीत्याह।स्त्रीवशंगताः यतोयुवतीनामाज्ञायां वर्तंते बालाअज्ञारागद्वेषोपहतचेतसइति । रागद्वेषजितोजिनास्तेषां शासनमाज्ञा कषायमोहोपशमहेतुनूता तत्पराङ्मुखाः संसारनिष्वंगिणोजैनमार्गविद्वेषिणएतद्वक्ष्यमाणमूचुरिति ॥ ९॥ यदूचुस्तदाह (जहागंडमित्यादि) यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः। यथा येन प्रकारेण कश्चित् गंमी पुरुषोगंडं समुत्थितं पिटकं वा तज्जातीयकमेव तदा कृतोपशमनार्थं परिपीड्य पूयरुधिरादिकं निर्गाल्य मुहूर्तमात्रं सुखितोनवति न च दोषेणानुषज्यते । एवमत्रापि स्त्रीविज्ञापनायां युवतिप्रार्थनायां रमणीसंबंधे गंमपरिपीमनकल्पे दोषस्तत्र कुतः स्यात् । न ह्येतावता क्लेदापगममात्रेण दोषोनवेदिति । स्यात्तत्र दोषोयदि काचित्पीडा नवेत् ॥ १० ॥

जहा मंधादए नाम, थिमिच्चं नुंजती दगं ॥ एवं विन्नवणिडीसु,
दोसो तब कडसिच्चा ॥११॥ जहा विहंगमा पिंगा, थिमिच्चं नुं
जती दगं ॥ एवं विन्नवणिडीसु, दोसो तब कडसिच्चा ॥१२॥ ए

त्रयतात्पर्यार्थः ॥ १२ ॥ सांप्रतं सूत्रकारउपहारव्याजेन गंमपीमनादिदृष्टांतवादिनां दो पोद्भिावयिपयाह् । (एवमेगेइत्यादि)। एवमिति गंडपीमनादिदृष्टांतबलेन निर्दोपं मैथुन मिति मन्यमानाएके स्त्रीपरीपहपराजिताः सदनुष्टानात्पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थानाथ वादिकमंडलचारिणः। तुशब्दात् स्वयूथ्यावा तथा विपरीता तत्वाग्राहिणी दृष्टिर्दर्शनं येषां ते तथा आराद्दूरे यातागताः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्याः नआर्या अनार्याः । धर्मविरुद्धानुष्टाना त्तएवं विधाअध्युपपन्नागृध्नवइच्छामदनरूपेपु कामेपु कामैर्वाकरणचूतैः सावद्यानुष्टानेष्विति । अत्र लौकिकं दृष्टांतमाह् । ययावा पूतना डाकिनी तरुणके स्तनंधयेऽध्युपन्ना । एवं तेप्यना र्याः कामेष्विति।यदि वा(पूयणत्ति)गड्डरिका आत्मीयेऽपत्येऽध्युपपन्ना एवं तेपीति। कथा न कंचात्र । यथा किल सर्वपशूनामपत्यानि निरुदके कूपेऽपत्यस्नेहपरीक्षार्थं क्षिप्तानि तत्र चापरामातरः स्वकीयस्तनंधयशब्दाकर्णनेपि कूपतटस्थारुदंत्यस्तिष्ठंति । उरभ्रीत्वपत्याति स्नेहेनांधा अपायमनपेक्ष्य तत्रैवात्मानं क्षिप्तवतीत्यतोऽपरपशुभ्यः स्वापत्येऽध्युपपन्नेति ॥

अणागयमपस्संता, पच्चुप्पन्नगवेसगा ॥ ते पच्छा परितप्पंति,
खीणे आउंमि जोव्वणे ॥ १४ ॥ जेहिं काले परिक्कंतं, नपच्छा प
रितप्पए ॥ ते धीरा बंधणुम्मुक्का, नाव कंखंति जीविअं ॥ १५ ॥

अर्थ—हवे ते काम गृध्नना दोप कहेछे. ते काम जोग थकी जे निवृत्या नथी तेने अणागय के० आगामिक काले नरकादिक डुःख उत्पन्न थाय एवुं अपस्संता के० अ ण देखता थका अने पच्चुप्पन्नगवेसगाके० प्रत्युत्पन्न जे वर्तमान विपय सुख तेने गवेपता एनेज रुडुंकरी मानता थका रहेछे तेपछाके० तेपछी खीणआउंमिजोव्वणेके० जेवारे आ युष्य क्षीण थाय, अने यौवन जतुं रहे तेवारे परितप्पंति के० पश्चात्ताप करे; अने क हेके अमे एवा अनाचार शावास्ते कर्या ? ॥ १४ ॥ जेहिं के० जे महापुरुपे कालेके० काल प्रस्तावे धर्मनेविपे परिक्कंतं के० पराक्रम कर्युं. नपच्छापरितप्पए के० ते महापुरुप पछी वृद्धावस्थायें तथा मरणावसरे पश्चात्तापकरे नही; ते धीराबंधणुम्मुक्का के० ते धैर्य वंत पुरुप बंधण थकी मूकाणा नावकंखंतिजीविअंके० असंयमे जीवितव्यनी आकां क्षाकरता नथी अथवा जीवितव्य मरणने विपे निस्पृहि थका वर्तेछे. ॥ १५ ॥

॥ दीपिका—तेपां दोपमाह (अणागयमित्यादि)। अनागतं नरकादिडुःखमपश्यंतः प्रत्युत्पन्नं वर्तमानमेव विपयसुखाभासमन्वेपयंतः पश्यंतः पश्चात्क्षीणे स्वायुपि यौवने वा गते परितप्यंति पश्चात्तापं कुर्वंति । यडुक्तं । हतं मुष्टिभिराकाशं तुपाणां कंडनं कृतं । यन्मया प्राप्य मानुष्यं सदर्थे नादरः कृतः ॥ १ ॥ तथा । विहवावलेवनमिएहिं । जाइ

रः स्वापत्यशब्दाकर्णनेऽस्मिन्नपि कूपतटस्थाएव रुदंति उरभ्री त्वअपस्यातिस्नेहांधा अपायमनपेक्ष्य तत्रैवात्मानं क्षिप्तवतीत्यतोन्यपशुन्योगमुरिका स्वापत्ये नृशमासक्ता एवं तेपि कामासक्ताः ॥ १३ ॥

॥ टीका—दृष्टांतेन दर्शयति । (जहेत्यादि) यथेत्ययमुदाहरणोपन्यासार्थः । मंधाद नइति मेषः । नामशब्दः संनावनायां । यथा मेषस्तिमितमनालोडयन्नुदकं पिबत्यात्मानं प्रीणयति नच तथान्येषां किंच नोपघातं विधत्ते।एवमत्रापि स्त्रीसंबंधे न काचिदन्यस्य पीडा आत्मनश्च प्रीणनमतः कुतस्तत्र दोषःस्यादिति ॥ ११ ॥ अस्मिन्नेवानुपघातार्थे दृष्टांतबहुत्वख्यापनार्थं दृष्टांतांतरमाह। (जहाविहंगमाइत्यादि) यथा येन प्रकारेण विहायसा गच्छतीति विहंगमा पक्षिणी(पिंगेति)कपिंजला साकाशएव वर्तमाना स्तिमितं निभृतमुदकमापिबत्येवमत्रापि दर्नप्रदानपूर्विकया क्रियया अरक्ताद्विष्टस्य पुत्राद्यर्थं स्त्रीसंबंधं कुर्वतोपि कपिंजलायाइव न तस्य दोषइति । सांप्रतमेतेषां गंडपीडनतुल्यं स्त्रीपरिन्नोगं मन्यमानानां तथैमकोदकपानसदृशं परपीडाऽनुत्पादकत्वेन परात्मनोश्च सुखोत्पादकत्वेन किल मैथुनं जायतइत्यध्यवसायिनां तथा कपिंजलोदकपानं यथा तमागोदकासंस्पर्शेन किल नवत्येव मरक्तद्विष्टतया दर्नाद्युत्तारणात् स्त्रीगात्रस्पर्शेन पुत्रार्थं न कामार्थं । रुतुकालानिगामितया शास्त्रोक्तविधानेन मैथुनेपि न दोषानुषंगः॥ तथाचोचुस्ते। धर्मार्थं पुत्रकामस्य स्वदारेष्वधिकारिणः । रुतुकाले विधानेन दोषस्तत्र न विद्यते इति । एवमुदासीनत्वेन व्यवस्थितानां दृष्टांतेनैव निर्युक्तिकारो गाथात्रयेणोत्तरदानायाह । (जहणामेइत्यादि) जहणा ममंमलग्गे णसिरं णकस्सइमणुस्सो ॥ अछेज्जपराहुत्तो किं नाम ततो णये पेछा ॥ ५३ ॥ जहणा विसगंडूसं, कोतीघेत्तूणनामतुण्हिक्को ॥ अस्पुणअदीसंतो, किं नाम ततो नवमरेज्जा ॥ ५४॥ जह नाम सिरिघराउ, कोइरयणेणणामघेत्तूणं । अछेज्जपराहुत्तो किंणामततो न घेपेज्जा॥५५॥यथा नामकश्चिन्मंमलाग्रेण कस्यचिच्छिरश्छित्वा पराङ्मुखस्तिष्ठेत् । किमेतावतोदासीनन्नावावलंबनेन न गृह्येत नापराधी नवेत्।तथा यथा कश्चिद्विषगंडूषं गृहीत्वा पीत्वानाम तूष्णींन्नावं नजेदन्येन वा संदृश्यमानोसौ किं नाम ततोसावन्यादर्शनात् नम्रीयेत।तथा यथा कश्चिच्छ्रीगृहाद्भांडागाराद्रत्नानि महार्घाणि गृहीत्वा पराङ्मुखस्तिष्ठेत् किमेतावतासौ न गृह्येतेति। अत्र च यथा कश्चित् शठतया अज्ञतया वा शिरच्छेदे विषगंडूषरत्नापहाराख्ये सत्यपि दोषत्रये माध्यस्थ्यमवलंबेत। न च तस्य तदवलंबनेपि निर्दोषतेति। एवमत्राप्यवश्यंन्नाविरागकार्यमैथुने सर्वदोषास्पदे संसारवर्द्धके कुतोनिर्दोषतेति । तथा चोक्तं । प्राणिनां बाधकं चैतच्छास्त्रैर्गीतं महर्षिन्निः ॥ नलिकातप्तकणकप्रवेशज्ञा ततस्तथा ॥ १ ॥ मूलं चैतदधर्मस्य नवनावप्रवर्धनं॥तस्माद्विषान्नवत्त्याज्यमिदं पापमनिच्छतेति निर्युक्तिगाथा

के० ते पुरुषे एसर्व स्त्रीसंगादिक तथा क्षुधा तृषादिक अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गना गण एटले समूह तेने निराकरीने जे महापुरुष संसेवित मार्गे प्रवर्त्ते तेठियासुसमाहिए के० तेपुरुष संवररूप समाधिने विषे स्थित जाणवा. ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—यथा वैतरणी नदी सर्वनदीनां मध्ये दुस्तरा दुर्लंघ्या इह लोके सम्मता। एवं लोके नार्योऽमतिमता निर्विवेकेन नरेण दुस्तराः। यदुक्तं ! सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेंद्रियाणां लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालंबते तावदेव। भ्रूचापाक्षेपमुक्ताः श्रवणपथजुषोनीलपक्ष्माणएते यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतंति इति ॥ १६ ॥ यैरुत्तमैर्नारीणां संयोगास्तत्संयोगार्थमेव वस्त्रालंकारादिभिरात्मनः पूजनाः कामविभूषाः पृष्ठतः कृतास्त्यक्तास्ते महापुरुषाः सर्वमेतत्स्त्रीप्रसंगादिकं निराकृत्य सुसमाधिना चित्तस्वास्थ्येन स्थिताः ॥ १७ ॥

॥ टीका—अन्यच्च (जहाइत्यादि) यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः। यथा वैतरणी नदीनां मध्येऽत्यंतवेगवाहित्वात् विषमतटत्वाच्च दुस्तरा दुर्लंघ्या एवमस्मिन्नपि लोके नार्योऽमतिमता निर्विवेकेन हीनसत्वेन दुःखेनोत्तीर्यंते। तथाहि। ताहावभावैः कृतविद्यानपि स्वीकुर्वंति। तथाचोक्तं। सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेंद्रियाणां, लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालंबते तावदेव ॥ भ्रूचापाक्षेपमुक्ताः श्रवणपथजुषोनीलपक्ष्माणएते यावल्लीलावतीनां न यदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतंति। तदेवं वैतरणीनदीवत् दुस्तरानार्योभवंतीति ॥ १६ ॥ अपिच। (जेहींत्यादि। यैरुत्तमसत्वैः स्त्रीसंगविपाकवेदिभिः पर्यंतकटवोनारीसंयोगाः परित्यक्तास्तथा तत्संगार्थमेव वस्त्रालंकारमाल्यादिभिरात्मनः पूजनाकामविभूषा पृष्ठतः कृता परित्यक्तेत्यर्थः। सर्वमेतत्स्त्रीप्रसंगादिकं क्षुत्पिपासादिप्रतिकूलोपसर्गकदंबकं च निराकृत्य ये महापुरुषसेवितपंथानं प्रति प्रवृत्तास्ते सुसमाधिना स्वस्थचित्तवृत्तिरूपेण व्यवस्थितानोपसर्गैरनुकूलप्रतिकूलरूपैः प्रक्षोभ्यंते। अन्येतु विषयाभिष्वंगिणः स्त्र्यादिपरीषहपराजिताअंगारोपरिपतितमीनवद्रागाग्निना दह्यमानाअसमाधिना तिष्ठंतीति ॥ १७॥

एते उग्घं तरिस्संति, समुद्दं ववहारिणो ॥ जछ पाणा विसन्नासि, किच्चंती सयकम्मणा ॥ १८ ॥ तंच भिक्खू परिसाय, सुवते समिते चरे ॥ मुसावायं च वज्जिज्जा, दिन्नादाणं च वोसिरे ॥ १९॥

अर्थ—एतेके० ए पूर्वोक्त परिसहना जीपणहार ते उग्घंके० उघसंसारने तरिस्संतिके० तरसे समुदंववहारिणोके० समुद्रवत; एटले जेम व्यवहारिया समुद्रने नाव वडे तरेछे तेनीपरे जाणीलेवुं जछके० जे संसार समुद्रने विषे पाणाविके० प्राणी एटले जीव ते सन्नासिके०

कीरंतिजोव्वणमएण ॥ वयपरिणामेसरिआ । इंताइंहि अपखुडुक्कंति इति ॥१४॥ (जेहिं इत्यादि) यैरात्महितैः कालेऽवसरे पराक्रांतं संयमोद्यमः कृतस्ते पश्चान्न परितप्यंते । एकवचनंसूत्रे छांदसत्वात् । ते वीरास्तपश्चरणोद्यताबंधनात्कर्मणोन मुक्ताअसंयमजीवितं नावकांक्षंतिने छंति । जिविते मरणे वा निस्पृहाः स्युरित्यर्थः ॥ १५ ॥

॥टीका—एवं तेपि कामान्निष्वंगिणांदोषमाविष्कुर्वन्नाह॥(अणागयमित्यादि)अनागतमेष्यत्कामानिवृत्तानां नरकादियातनास्थानेषु महत् डुःखमपश्यंतोऽपर्यालोचयंतस्तथा प्रत्युत्पन्नं वर्तमानमेव वैषयिकं सुखान्वासमन्वेषयंतोमृगयमाणानानाविधैरुपायैर्भोगान्प्रार्थयंतस्ते पश्चात् क्षीणे स्वायुषि जातसंवेगायौवने वा अपगते परितप्यंतेशोचयंते पश्चात्तापं विदधति । उक्तं च। हतंमुष्टिनिराकाशं तुषाणां कंडनंकृतं।यन्मया प्राप्य मानुष्यं सदर्थे नादरःकृतः॥१॥ तथा। विहवावलेवनडिएहिं। जाइंकीरंतिजोव्वणमएण॥वयपरिणामे सरियाइंताइंहिअपखुडुक्कंति ॥१॥१४॥ येतूत्तमसत्वतया अनागतमेव तपश्चरणादावुद्यमं विदधति न ते पश्चाछोचंतीति तद्दर्शयितुमाह । (जेहिंकाले इत्यादि). यैरात्महितकर्तृभिः काले धर्मार्जनावसरे पराक्रांतमिंद्रियकषायपराजयाद्युद्यमोविहितोन ते पश्चान्मरणकाले वृद्धावस्थायां वा परितप्यंते न शोकाकुलान्नवंति। एकवचननिर्देशस्तु सौत्रछांदसत्वादिति। धर्मार्जनकालस्तु विवेकिनां प्रायशः सर्वएव तस्मात्सएव प्रधानपुरुषार्थः प्रधानएव च प्रायशः क्रियमाणोघटां प्रांचति । ततश्चायं बाल्यात्प्रनृत्यकृतविषयासंगतयाकृततपःश्चरणास्ते धीराः कर्मविदारणसहिष्णवोबंधनेन स्नेहात्मकेन कर्मणा चोत्प्राबल्येन मुक्तानावकांक्षंति असंयमजीवितं यदि वा जीविते मरणे वानिस्पृहाः संयमोद्यममतयोन्नवंतीति ॥ १५ ॥

जहा नई वेयरणी, डुत्तरा इह संमता ॥ एवं लोगंसि नारीउ,
डुत्तरा अमईमया ॥ १६ ॥ जेहिं नारीणसंजोगा, पूयणा पिठ
तोकता ॥ सव्वमेयंनिराकिच्चा, तेठिया सुसमाहिए ॥ १७ ॥

अर्थ—जहानईवेयरणी के० जेम नदी वेतरणी जेछेते डुत्तराइहसंमता के० सर्वेनदीओमां तरवी डुर्लनछे एवात लोक प्रसिद्धछे एवंलोगंसिनारीउ के० एरीते लोकमांहे स्त्रीउजेछे तेपण डुत्तराअमईमया के० अमतिवंत निरविवेकी पुरुषने अपार डुस्तर डुर्लंघनीय जाणवी ॥ १६ ॥ एवुं जाणीने जे हितकारी वातछे ते कहेछे जेहिं के० जे पुरुषे नारीणसंजोगा के० स्त्री संबंधी संयोगना जे विपाक तेने कडवा जाणीने स्त्रीना संयोग छांमीदीधा वली पूयणापिठतोकता के० तेस्त्रीना संयोगने अर्थें जे पोताना शरीरनी पूजा विनूपाते पण जेणे उपरांठी कीधी एटले मूकीदीधी, सव्वमेयंनिराकिच्चा

पेसलं धम्मं दिट्ठिमं परिनिवुमे ॥ उवसग्गे हियासित्ता, आमो
रकाए परिव्वएज्जा सितिबेमि ॥ २२ ॥ इति श्री उवसग्गपरिन्ना
ए तइयं अझयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ–हवे बीजा सर्वव्रत दयानी वाड रूपछे तेकारणे अहिंसाने विशेष दीपावेछे उड्ढं के० उंचो अहे के० अधो एटले नीचो तिरियं के० तीर्छो वा के० अथवा एटले सर्वे लोकमांहे क्षेत्रथी प्राणातिपात कह्युं हवे द्रव्यप्राणातिपात कहेछे. जेकेईतसथावरा के० ए सर्व लोकमांहे जेकांइ त्रस अने स्थावर जीवछे सव्वउविरतिंकुज्जा के० तेनेविषे सर्व प्रकारे एटले करण करावण अने अनुमतियेंकरी सर्वत्रकालें विरतिपणुं करे एटले सर्व जीवोनी दयानुं पालवुं तेने संतिनिव्वाण माहियं के० ते शांति एटले कर्म दाहनी उप शम करनार कहिये तथा एनेज निरवाण एटले मोक्षपदमांपण आहितंएटलेकह्युंछे.॥२०॥ हवे अध्ययनना अर्थ उपसंहरतो कहेछे. इमंच धम्ममादाय के० एम श्रुत चारित्र रूप धर्मने ग्रहण करीने ते धर्म कासवेणप्पवेदितं के० श्रीमहावीर स्वामिये प्रकाश्यो ते मार्ग आदरीने भिरकू के० साधु ते गिलाणस्स के० गिलानने विषे वैयावच्चने कुज्जा के० करे ते केवो थको वैयावच्च करे तो के अगिलाए समाहिए के० अगिलाणपणे आत्माने समाधिमान थको जे साधु वैयावच्च करेछे तेने धन्यछे एवी समाधि धारण करतो थको वैयावृत करे ॥ २१ ॥ संखायके० सम्यक् प्रकारे जाणीने एटले जातिस्म रणादिके अथवा अन्यपासेथी सांभलीने पेसलं के० रूडो एवो धम्मं के० केवलीनुं भा ष्योजे धर्म तेने दिट्ठिमं के० सम्यक्दृष्टी जीव परिनिवुमे के० कषायने उपशमावी शीत लीभूत थको उवसग्गेहियासित्ता के० अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गने अहिआसीने आमो रकाए के० ज्यांसुधी मोक्षे जाय त्यांसुधी परिव्वएज्जासिके० सुधो संयम पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२२॥ ए उपसर्ग परिज्ञानामे त्रीजाध्ययननुं अर्थ समाप्त थयुं ॥

॥ दीपिका–ऊर्ध्वमधः ये केचित् त्रसाः स्थावराः प्राणिनस्तेषु सर्वत्र कालेऽवस्थासु च विरतिं कुर्यात् यस्माच्छांतिनिर्वाणं कर्म दाहोपशमः शांतिस्तद्रूपं निर्वाणं मोक्षपदं आ ख्यातं कथितं यतोविरतेर्मोक्षोभवतीति ॥ २० ॥ इमं चारित्ररूपं धर्ममादाय गृहीत्वा काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितमाख्यातं ग्लानस्य साधोर्वैयावृत्त्यं कुर्यात् भिक्षुः। कथं। अग्लान तया यथाशक्ति समाहितः समाधिं प्राप्तः यथाग्लानस्य समाधिरुत्पद्यतेः स्वस्यच योगान विषीदंति यथा वैयावृत्त्यादिकं विधेयमिति ॥२१॥ पेशलं मोक्षप्रदं धर्मं संख्याय ज्ञात्वा दृष्टिमान् सम्यग्दर्शनी परिनिर्वृतः शांतः उपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् नियम्य नियंत्र्य

खुता थका सयकम्मणाके० पोताना करेला पापकर्मे करी असातावेदनीयरूपे किच्चंती के० पीडायछे ॥ १८ ॥ हवे उपदेश कहेछे तंचभिक्खू के० ते पूर्वोक्त चारित्रिउं परिन्नायके० हेय उपादेय स्वरूप जाणीने सुव्रते के० भला व्रतनो पालक समितेचरे के० पांच समिते समितो एवो थको विचरे अने मुसावायंच वज्जिज्जा के० मृषावादने वर्जे तथा दिन्नादाणंचवोसिरे के० अदत्तादान एटले चोरी थकी वोसिरे एटले चोरीनुं त्यागकरे, एम अनुक्रमे मैथुन तथा परिग्रहने पण छांमे. ॥ १९ ॥

॥ दीपिका—एतेस्त्रीपरीषहजेतारउंघं संसारं तरिष्यंति । यथा व्यवहारिणः सांयात्रिकाः समुद्रं तरंति । यत्र भवौघे प्राणिनोविषयसंगैर्विषमाः संतः कृत्यंते पीड्यंते स्वकर्मणा ॥ १८ ॥ तदेतत्प्रागुक्तं भिक्षुः परिज्ञायज्ञात्वा सुव्रतः शोभनव्रतयुक्तः समितः पंचसमितिभिश्चरेत् संयमानुष्ठानं कुर्यात् तथामृषावादं वर्जयेददत्तादानंच व्युत्सृजेत् त्यजेत् । आदिशब्दान्मैथुनपरिग्रहादिच त्यजेत ॥ १९ ॥

॥ टीका—स्त्र्यादिपरीषहपराजयस्य फलं दर्शयितुमाह ।(एतेइत्यादि) यएते अनंतरोक्ता अनुकूलप्रतिकूलोपसर्गजेतारएते सर्वे उंघंसंसारं डुस्तरमपितरिष्यंति। डव्यौघदृष्टांतमाह । समुद्रंलवणसागरमिव व्यवहारिणःसांयात्रिकायानपात्रेण तरंत्येवं भवौघमपि संसारसंयमयानपात्रेण यतयस्तरिष्यंति।तथातीर्णास्तरंतिचेति।भवौघमेव विशिनष्टि।भवौघे संसारसागरेप्राणाःप्राणिनःस्त्रीविषयसंगाद्विषमाःसंतःकृत्यंते पीड्यंते स्वकृतेनानुष्ठितेन पापेनकर्मणा असद्वेदनीयोदयरूपेणेति ॥१८॥ सांप्रतमुपसंहारव्याजेनोपदेशांतरविधित्सयाह । (तंचभिक्खूइत्यादि) । तदेतद्यथा प्रागुक्तं । यथा वैतरणीनदीवत् डुस्तरानार्योयैः परित्यक्तास्ते समाधिस्थाः संसारं तरंति स्त्रीसंगिनश्च संसारांतर्गताः स्वकृतकर्मणा कृत्यंतइति । तदेतत्सर्वं भिक्षणशीलोभिक्षुः परिज्ञाय हेयोपादेयतया बुध्वा शोभनानि व्रतान्यस्य सुव्रतः पंचभिः समितिभिः समितइत्यनेनोत्तरगुणावेदनं कृतमित्येवंभूतश्चरेत् संयमानुष्ठानं विदध्यात् तथा मृषावादमसद्भूतार्थभाषणं विशेषेण वर्जयेत्तथा अदत्तादानं च व्युत्सृजेद्दंतशोधनमात्रमप्यदत्तं न गृह्णीयात् । आदिग्रहणान्मैथुनादेः परिग्रहइति । तच्चमैथुनादिकं यावज्जीवमात्महितं मन्यमानः परिहरेत् ॥ १९ ॥

उड्ढमहे तिरियं वा,जे केई तस थावरा ॥ सव्वछ विरतिं कुज्जा, संति निव्वाणमाहियं ॥२०॥ इमं च धम्ममादाय,कासवेण पवेदितं॥ कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स, अगिलाए समाहिए ॥२१॥ संखाय

छन्नपएण इछिउ मंदा ॥ उवायंपि ताउ जाणं सु जहा लिस्संति भिरकुणो एगे ॥ २ ॥

अर्थ-(जेके०) जे उत्तमसाधु (मायरंचपियरंचके०) माता पिता अने भाइ प्रमुखनो (पुव्व संजोगंके०) पूर्वलो संयोग एटले आगलो संबंध तथा श्वशुरादिकनो पश्चात् संबंध एटले पाछलथी थयलो संबंध तेने विप्पजहायके० छांमीने एगेके० एकलो रागद्वेषरहित अने ज्ञान दर्शन तथा चारित्रे करीने सहितेके०सहित एवो छतो,चरिस्सामिके०हुं संयम पालीश एवी प्रतिज्ञा करे; वली मेहुणो के० मैथुन थकी आरत के० निवर्त्योछे विवित्तेसु के० स्त्री पशु पंमग रहित एवा उपाश्रयनो गवेषणाहार एवा साधुने पण कोइएक स्त्री विप्रतारेछे ते कहेछे ॥ १ ॥ सुहुमेणं के० कोइएक कार्यने मीशे तंपरिक्कम्म के० ते साधुने समीपे आवीने छन्नपएण के० छाने शब्दे, हलवे हलवे, अनेक गूढार्थ पदे करी एटले मर्मना वचने करी, इछिउमंदाके० कोइक स्त्री मंद एटले विवेकरहित एवी छति पुरुषने वशकरवाना उवायंपि के० उपायने ताउ के० ते स्त्री जाणंसु के० जाणे जहा के० जे उपाये करीने एगेके० कोइक भिरकुणो के० चारित्रिउ मोहनीय कर्मना उदय थकी स्त्रीने वश थई जाय अने लिस्संति के० संयम थकी पडी जाय. ॥ २ ॥

अथ चतुर्थमध्ययनं.

॥ दीपिका-उक्तं तृतीयमध्ययनं । अथ चतुर्थमारभ्यते । तत्र स्त्रीपरीषहोजेयइत्यर्थंवाचकं तस्येदमादिमंसूत्रं । जेमायरमिति । योमातरं पितरं चशब्दात्पुत्रादिकं च विप्रहाय त्यक्त्वा पूर्वसंयोगं एकोनिःसंगः सहितोज्ञानादिभिः स्वहितोवा चरिष्यामि संयमं करिष्यामीति कृतप्रतिज्ञः। आरतमुपरतं मैथुनं कामाभिलाषोयस्य सआरतमैथुनोविविक्तेषु स्त्र्याद्यनाकुलेषु स्थानेषु चरतीति शेषः। अथवा विविक्तं स्थानं एषितुं मार्गितुं शीलमस्य विविक्तैषी॥१॥तं साधुं सूक्ष्मेन परकार्यव्यपदेशेन छन्नपदेन कपटेन पराक्रम्य समीपमागत्य मंदागत्यमंदाः कामोद्रेककारित्वान्निर्विवेकाः स्त्रियः शीलाद्भ्रंशयंति । कोयैः । भ्रातृपुत्रव्यपदेशेन साधुसमीपमागत्य स्त्रियः संयमाद्भ्रंशयंति साधुमिति । प्रछन्नपदं गुप्ताभिधानं । यथा । काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य मेघांधकारासु च शर्वरीषु ॥ मिथ्या न भाषामि विशालनेत्रे ते प्रत्ययाये प्रथमाक्षरेषु इत्यादि । स्त्रियस्तथोपायंजानंति यथाश्लिष्यंते साधवोप्येके ॥ २ ॥

॥टीका-उक्तं तृतीयमध्ययनं सांप्रतं चतुर्थमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः। इहानंतराध्ययने उपसर्गाः प्रतिपादितास्तेषां च प्रायोनुकूलाःदुःसहास्ततोपि स्त्रीकृताअतस्तज्जयार्थमिद

आमोक्षाय मोक्षार्थं परिव्रजेत् संयमेचरेदिति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इतितृतीयाध्ययने चतुर्थउद्देशकः समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ टीका—अपरिव्रतानामहिंसायावृत्तिकल्पत्वात् तत्प्राधान्यख्यापनार्थमाह (उड्ढमहे इत्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् चेत्यनेन क्षेत्रप्राणातिपातोगृहीतः। तत्रच ये केचन त्रसंतीति त्रसाद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाः पर्याप्तापर्याप्तकभेदभिन्नास्तथा तिष्ठंतीति स्थावराः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकभेदभिन्नाइत्यनेन च द्रव्यप्राणातिपातोगृहीतः। सर्वत्र काले सर्वास्ववस्थास्वित्यनेनापि कालभावभेदभिन्नः प्राणातिपात उपात्तोद्रष्टव्यः। तदेवं चतुर्दशस्वपि जीवस्थानेषु कृतकारितानुमतिभिर्मनोवाक्कायैः प्राणातिपातविरतिं कुर्यादित्यनेन पादोनेनापि श्लोकद्वयेन प्राणातिपातविरत्यादयोमूलगुणाः ख्यापिताः। सांप्रतमेतेषां सर्वेषामेव मूलोत्तरगुणानां फलोद्देशेनाह। शांतिरिति कर्मदाहोपशमस्तदेवच निर्वाणं मोक्षपदं यदाख्यातं प्रतिपादितं सर्वद्वंद्वापगमरूपं तदस्यावश्यं चरणकरणानुष्ठायिनः साधोर्भवतीति ॥ २० ॥ समस्ताध्ययनार्थोपसंहारार्थमाह। (इमंचधम्ममित्यादि) इममिति पूर्वोक्तं मूलोत्तरगुणरूपं श्रुतचारित्राख्यं वा दुर्गतिधारणात् धर्ममादायाचार्योपदेशेन गृहीत्वा (किंभूतमिति)। तदेव विशिनष्टि। काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिना समुत्पन्नदिव्यज्ञानेन भव्यसत्वाऽभ्युद्धरणाभिलाषिणा प्रवेदितमाख्यातं समधिगम्य भिक्षुः साधुः परीषहोपसर्गैरतर्जितोग्लानस्यापरस्यसाधोर्वैयावृत्त्यं कुर्यात्। कथमिति। स्वतोऽग्लानतया यथाशक्ति समाहितइति समाधिं प्राप्तः इदमुक्तं भवति। कृतकृत्योहमिति मन्यमानोवैयावृत्त्यादिकं कुर्यादिति ॥ २१ ॥ अन्यञ्च (संखायइति) संख्यायेति सम्यक् ज्ञात्वा स्वसंमत्या अन्यतोवा श्रुत्वा (पेशलंति) मोक्षगमनं प्रत्यनुकूलं किंतद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यं दृष्टिमान् सम्यक्दर्शनी परिनिर्वृतइति। कषायोपशमाच्छीतीभूतः परिनिर्वृतकल्पोवा उपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् सम्यग् नियम्यातिसह्यामोक्षाय मोक्षंयावत् परिसमंतात् व्रजेत् संयमानुष्ठानेन गच्छेदिति। इतिशब्दः समाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत्। नयचर्चापि तथैवेति ॥ २२ ॥ उपसर्गपरिज्ञायाः समाप्तश्चतुर्थोद्देशकस्तत्परिसमाप्तौ च तृतीयाध्ययनमिति । ग्रंथाग्रं ॥७७५॥

हवे प्रथम श्रुतस्कंधने विषे चोथुं अध्ययन प्रारंभियें छैयें. त्रीजा अध्ययननेविषे जे उपसर्ग कह्या तेमांहे अनुकूल उपसर्ग सहन करवा दुर्लभ छे एम कह्युं हतुं, तेमाटे स्त्रीना करेला अनुकूल उपसर्ग सहन करवाने अर्थे चोथुं अध्ययन कहियें छैयें.

जे मायरंच पियरंच, विप्पजहाय पुव्वसंजोगं ॥ एगे सहिते चरिस्सामि, आरतमेहुणो विवित्तेसु ॥ १ ॥ सुहुमेणं तं परिक्कम्म

नि कर्माण्यनुजवन्तीत्येते दशपुरुषनिक्षेपान्नवंति। सांप्रतं प्रागुद्दिगितमुद्देशार्थाधिकारमधिकृत्याह (पढमेइत्यादि) पढमेसंथवसंजवमाइहिखलणाउहोतिसीलस्स । बितिएइहेवखलियस्सअवत्ताकम्मबंधोयं॥ ए ७॥प्रथमे उद्देशके अध्ययनार्थाधिकारः।तद्यथा। स्त्रीनिःसार्धं संस्तवेन परिचयेन यथा संलापेन जिन्नकथाद्यालापेनादिग्रहणादंगप्रत्यंगनिरीक्षणादिना कामोत्काचकारिणोल्पसत्वस्य शीलस्य चारित्रस्य स्खलनातुशब्दात्तत्परित्यागोवेति। द्वितीये त्वयमर्थाधिकारस्तद्यथा । शीलस्खलितस्य साधोरिहैवास्मिन्नेव जन्मनि स्वपक्षपरपक्षकृता तिरस्कारादिकाविमंबना तत्प्रत्ययश्च कर्मबंधस्ततश्च संसारसागरपर्यटनमिति। किं स्त्रीनिः कश्चित् शीलात् प्रच्याव्यात्मवशः कृतोयेनैवमुच्यते कृतइति दर्शयितुमाह । (सूरामोइत्यादि) सूरामोमन्नंता, कतिववियाहिंउवहिप्पहाणाहिं ॥ गहियाहुंअनयपज्जोवकूलवालादिणोबहवे ॥ ५ए ॥ बहवः पुरुषाअनयप्रद्योतकूलवालादयः शूरा वयमित्येवं मन्यमानाः ।मो इतिनिपातोवाक्यालंकारार्थः । कृत्रिमानिः सन्नावरहितानिः स्त्रीनिस्तथोपधिर्माया तत्प्रधानानिः कृतकपटशतानिर्गृहीत्वा आत्मवशतां नीताः केचन राज्यादपरे शीलात् प्रच्याव्येहैव विमंबनां प्रापिताः॥ अनयकुमारादिकथानकानिच मूलादावश्यकादवगंतव्यानि । कथानकत्रयोपन्यासस्तु यथाक्रमं मत्यैबुद्धिविक्रमात्यंतबुद्धिविक्रमतपस्वित्वख्यापनार्थंइति । यतएवं ततोयत्कर्तव्यं तदाह ।तम्हाणउवीसंजोगं तवोणिच्चमेवइत्थीसु ॥ पढमुद्देसेजणिया, जेदोसातेगणंतेणं ॥ ६०॥ (तम्हाइत्यादि) । यस्मात् स्त्रियः सुगतिमार्गार्गलामायाप्रधानावंचनानिपुणास्तस्मादेतदवगम्य नैव विश्रंजोविश्वासस्तासां विवेकिना नित्यं सदा गंतव्योयातव्यः कर्तव्यइत्यर्थः । ये दोषाः प्रथमोद्देशके अस्योपलक्षणार्थत्वात् द्वितीयेच तान् गणयता पर्यालोचयता तासां मूर्तिमत्कपटराशिनूतानामात्महितमिछता नविश्वसनीयमिति । अपिच । सुसमछावसमछा, कीरंतीअप्पसत्तियापुरिसा । दीसंतीसूरवादीणारीवसगाणतेसूरा ॥६१॥(सुसमछेत्यादि) परानीकविजयादौ सुष्ठु समर्थाअपि संतः पुरुषाः स्त्रीनिरात्मवशीकृताअसमर्थाभ्रूक्षेपमात्रनीरवः क्रियंतेल्पसात्विकाः स्त्रीणामपि पादपतनादिचाटुकरणेन निःसाराः क्रियंते तथा दृश्यंते प्रत्यक्षेणोपलन्यंते । शूरमात्मानं वदितुं शीलं येषां ते शूरवादिनोपि नारीवशगाः संतोदीनतां गताः । एवंनूताश्च नते शूराइति । तस्मात् स्थितमेतदविश्वास्याः स्त्रियइति । उक्तंच । कोवीससेज्जतासिं,कतिवयनरियाणडञ्चियघाणे । खणरत्तविरत्तेणं, धिरत्थुइत्तीणहियायाणं ॥ १ ॥ असं नणंतिपुरउ असंपासेइविज्जमाणीउ । अन्नंच तासिंहियए, जंचखमंतंकरिंतिपुणो ॥२॥ कोएयाणंणाहिइ, वेत्तलयागुम्मगुविलहिययाणं ॥ नावंनग्गासाणं तब्भुपन्नंजणंतीणं ॥ ३ ॥ महिलायरत्तमेत्ता, उछुखंमंचसक्कराचेव । सापुणविरत्तम्मित्ताणिंबंकूरेविसेसेत्ति ॥४॥ महिलादिज्ञकरेज्जवमारिज्जवतंवविज्जवमणुस्सं । तुछा

मध्ययनमुपदिश्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि नवंति। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारो द्वेधा। अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च। तत्राध्ययनार्थाधिकारः प्राग्वत् निर्युक्तिकृता(स्त्रीदोषविवऊाणा)चेवेत्यनेनस्वयमेव प्रतिपादितः। उद्देशार्थाधिकारं तूत्तरनिर्युक्तिकृदेव नणिष्यति।सांप्रतं निक्षेपः सचौघनामसूत्रालापकनेदात्रिधा। तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने स्त्रीपरिज्ञेति नाम। तत्र नामस्थापने क्षुसत्वादनादृत्य स्त्रीशब्दस्य ड्व्यादिनिक्षेपार्थमाह। (दव्वानिलावेत्यादि)। दव्वानिलावचिंधे, देवेनावेयइत्तिणिरकेवो। अहिलावे तहसिक्षी, नावे वेयंमिउवउत्तो॥ ५६॥ तत्र ड्व्यस्त्री द्वेधा। आगमतोनोआगमतश्च। आगमतः स्त्रीपदार्थज्ञस्तत्र चानुपयुक्तोनुपयोगोड्व्यमिति कृत्वा नोआगमतोज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तात्रिधा। एकनविकाबद्धाऽयुष्कानिमुखनामगोत्रावेति। चिन्ह्यते ज्ञायतेऽनेनेतिचिह्नं स्तननेपथ्यादिकं चिह्नमात्रेण स्त्री चिह्नस्त्री अपगतस्त्री वेदछद्मस्थः केवलीवा अन्योवा स्त्रीवेषधारी यः कश्चिदिति। वेदस्त्रीतु पुरुषानिलाषरूपः स्त्रीवेदोदयः। अनिलाषनावौ तु निर्युक्तिकृदेव गाथापश्चार्द्धेनाह। अनिलाप्यते इत्यनिलाषः स्त्रीलिंगानिधानः शब्दः। तद्यथा। शाला माला सिद्धिरिति। नावस्त्री तुद्वेधा। आगमतोनोआगमतश्च। आगमतः स्त्रीपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तउपयोगोनावइति कृत्वा नोआगमतस्तु नावविषये निक्षेपे वेदेस्त्रीवेदरूपे वस्तुन्युपयुक्तातडपयोगानन्यत्वान्नावस्त्री नवति। यथाऽग्नावुपयुक्तोमाणवकोग्निरेव नवत्येवमत्रापि। यदिवा स्त्रिवेदनिवर्तकान्युदयप्राप्तानि यानि कर्माणि तेषूपयुक्तेति तान्यनुनवंती नावस्त्रीति। एतावानेव स्त्रियोनिक्षेपइति। परिज्ञानिक्षेपस्तु शस्त्रपरिज्ञावद् ड्ष्टव्यः। सांप्रतं स्त्रीविपक्षनूतं पुरुषनिक्षेपार्थमाह। (नामंठवणाइत्यादि)। णामंठवणादविए खेत्ते कालेयपज्जणणकंमे। नोगेगुणेयनावे, दसएएपुरिसणिरकेवा॥५७॥ नामेति संज्ञा तन्मात्रेण पुरुषोनामपुरुषः। यथाघटः पटइति यस्य वा पुरुषइति नामेति। स्थापनापुरुषः काष्ठादिनिर्वर्तितोजिनप्रतिमादिकः। ड्व्यपुरुषोज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तोनो आगमतएकनविकोबद्धायुष्कोनिमुखनामगोत्रश्चेति। ड्व्यप्रधानोवा मम्मणवणिगादिरिति। योयस्मिन् सुराष्ट्रादौ क्षेत्रे नवः सक्षेत्रपुरुषोयथा सौराष्ट्रिकइति। यस्यच यत् क्षेत्रमाश्रित्य पुंस्त्वं नवतीति।योयावंतं कालं पुरुषवेदवेद्यानि कर्माणि वेदयते सकालपुरुषइति। यथा पुरिसेणं नंते पुरिसेत्ति कालउक्केव चिरं होइ। गो. जहन्नेणं एगंसमयंउक्कोसेणंजोजम्मिकालेपुरिसोनवइ। जहाकोइएगंमिपरकेपुरिसोएगंमिनपुंसगोत्ति।प्रजन्यतेऽपत्यं येन तत्प्रजननं शिश्नं लिंगं तत्प्रधानः पुरुषः परपुरुषकार्यरहितत्वात् प्रजननपुरुषः।कर्मानुष्ठानं तत्प्रधानः पुरुषः कर्मपुरुषः कर्मकरादिकस्तथा नोगप्रधानः पुरुषोनोगपुरुषश्चक्रवर्त्यादिस्तथा गुणाव्यायामविक्रमधैर्यसत्वादिकास्तत्प्रधानः पुरुषोगुणपुरुषः। नावपुरुषस्तु पुंवेदोदये वर्तमानस्तद्वेद्या

नूतां लेशतोदर्शयति । आरतमुपरतं मैथुनं कामाभिलापोयस्यासावारतमैथुनस्तदेवंनू तोविविक्तेषु स्त्रीपशुपंमकवर्जितेषु स्थानेषु चरिष्यामीत्येवं सम्यगुत्थानेनोत्थाय विहरती ति । क्वचित्पाठो (विवित्तेसित्ति) विविक्तं स्त्रीपंडकादिरहितं स्थानं संयमानुपरोध्ये षितुं शीलमस्य तथेति ॥ १ ॥ तस्यैवं कृतप्रतिज्ञस्य साधोर्यथाभवत्यविवेकिस्त्रीजनान दर्शयितुमाह । (सुहुमेणेत्यादि) । तं महापुरुषं साधुं सूक्ष्मेणाऽपरकार्यव्यपदेशभूते न छन्नपदेनेति छद्मना कपटजालेन पराक्रम्य तत्समीपमागत्य यदिवा पराक्रम्येति शील स्खलनयोग्यतापत्त्या अभिभूय काः स्त्रियः कूलवालकादीनामिव मागधगणिकाद्यानाना विधकपटशतकरणदक्षाविविधविब्बोकवत्योभावमंदाः कामोद्रेकविधायितया सदसद्वि वेकविकलाः समीपमागत्य शीलात् ध्वंसयंति । एतडुक्तं भवति भ्रातृपुत्रव्यपदेशेन साधुस मीपमागत्य संयमाद् भ्रंशयंति । तथाचोक्तं । पियपुत्तभाइ किडगाणभूचकिम्मगायसय णकिडगाय॥एतेजोव्वण किम्मगा पच्छन्नपइमहिलियाणं । यदिवा छन्नपदेनेति गुप्ताभि मानेन । तद्यथा । काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य मेघांधकारासु च शर्वरीषु॥मिथ्या न भाषा मि विशालनेत्रे ते प्रत्ययाये प्रथमाक्षरेषु इत्यादि ॥ ताः स्त्रीयो मायाप्रधानाः प्रतारणो पायमपि जानंत्युत्पन्नप्रतिभतया विदंति । पाठांतरं वा ज्ञातवत्यः यथाश्लिष्यंते विवेकि नोपि साधवएके तथाविधकर्मोदयात् तासु संगं उपयांति ॥ २ ॥

पासे भिसं णिसीयंति, अभिक्खणं पोसवत्थं परिहिंति ॥ कायं अहे
वि दंसंति, बाहूउद्धुकक्खमणुव्वजे ॥ ३ ॥ सयणासणेहिं जोगेहिं,
इत्थिउ एगता णिमंतंति ॥ एयाणिचेव सेजाणे, पासाणि विरूवरूवाणि॥४॥

अर्थ–हवे जे उपाये करी ते स्त्री साधुने विप्रतारे ते उपाय कहेछे. ते स्त्री पासेके० साधुनी पासे भिसं के० ढुकडी एटले नजीक आवी णिसीयंति के० वेशीने अभिक्खणं के० वारंवार पोस के० जेरीते कामविकार पोषाय तेरीते वत्थंपरिहिंति के० वस्त्र पहेरे कायंअहे के० नीचलुं शरीर जे जंघादिक ते विदंसंति के० देखाडे बाहूउद्धु के० वं ने बाहु उंची उपाडीने कक्खं के० कांख देखाडती छती अणुव्वजे के० साधुने सन्मुख जाय अथवा साधुने सन्मुख नजर राखे ॥ ३ ॥ वली इत्थिउ एगता के० कोइ एक स्त्री एकदा प्रस्तावे जोगेहिं के० साधुने लेवा योग्य एवा सयणासणेहिं के० सय नाशन एटले पाट पाटलादिके करी निर्व्यंजन वेलाये स्नेहना वचने करी णिमंतंतिके० निमंत्रणा करे तेवारे विरूवरूवाणि एयाणि के० विरूपरूप एवा ए पूर्वोक्त नानाप्र कारना जे पाट पाटलादिक तेने पासाणिके० ए मुजने बंधनना करनाराछे एरीते सेके० ते साधु जाणे के० जाणीने त्यां बेसे नही. चेव शब्द पद पूरणार्थेछे. ॥ ४ ॥

जीवाविंझाअहवरणारं वंचयावेझा ॥ ५ ॥ णविरस्कंतेसुकयं, णविणेहंणवियदाणस म्माणं ॥ णकुलंणपुव्वयंआयतंच शीलंमहिलियाउ ॥ ६ ॥ मावीसंजहताणं महि लाहिययाणकवड नरियाणं ॥ सुिसुहनिदयाणं अलियवयणजंपणरयाणं ॥ ७ ॥ मारेइ जियंतंपिहुमयंपि अणुमरइकाइनत्तारं ॥ विसहरगइवच्चरियं वंकविवंकंमहेलाणं ॥ ८ ॥ गंगाएवालुयंसागरेजलंहिमवउयपरिमाणं । जाणंति बुद्धिमंतामहिलाहिययंणजाणंति ॥ ९ ॥ रोवावंतिरुवंतिय अलियंजपंतिपत्तियावंति ॥ कवडेणयखंतिविसंमरंतिणयजंतिस ब्नावं ॥१०॥ चिंतिंतिकझमस्संअस्संसंठवइनासईअस्सं॥आढवइकुणइअस्सं माइणग्गूणिय म्मिसारो ॥ ११ ॥ असयारंनाणतहासवेसिंलोगगरहणिझाणं ॥ परलोगवैरियाणंकारणयं चैवइलीउ ॥ १२ ॥ अहवाकोजुवईणं जाणइचरियंसहावकुमिलाणं ॥ दोसाणआगरोच्चि य जणेसरीरेवसइकासा ॥ १३ ॥ मूलंडुच्चरियाणं हवइनणरयस्सवत्तिणी ॥ विवुला मो रकस्समहाविग्धंवझेयवासयानारी ॥ १४ ॥ धस्रातेवरपुरिसाजेच्चियमोत्तूणणिययजुव ईउ ॥ पव्वइयाकयनियमासिवमयलमणुत्तरंपत्ता ॥ १५ ॥ अधुना यादृक्ः शूरोनवति तादृक्ं दर्शयितुमाह । धम्मंमिजोदढमइसोसूरोसत्तिउयवीरोय ॥ णहुधम्मणिरुत्साहोपुरि सोसूरोसुबलिउवि ॥ ६२ ॥ (धम्ममित्यादि) । धर्मे श्रुतचारित्राख्ये दृढा निश्चला मति र्यस्य सतथा एवंनूतः सइंडियनोइंड्यिारिजयाच्छूरस्तथा सात्विकोमहासत्वोपेतोऽसा वेव वीरः स्वकर्मदारुणसमर्थोऽसावेवेति । किमिति यतोनैव धर्मनिरुत्साहः सदनुष्ठाननि रुद्यमः सत्पुरुषाचीर्णमार्गपरिच्रष्टः पुरुषः सुष्ठु बलवानपि शूरोनवतीति । एतानेव दोषान् पुरुषसंबंधेन स्त्रीणामपि दर्शयितुमाह । एतेचेवयदोसा पुरीससमाएविइच्चियाणंपि ॥ त म्हाणअप्पमाउविरागमग्गंमितासिंतु ॥६७॥(एतेचेवेत्यादि)। ये प्राक्शीलप्रध्वंसादयः स्त्री परिचयादिन्यः पुरुषाणामनिहिताएतएव न्यूनाधिकाः पुरुषेण सह यः समायः संबंधस्त स्मिन स्त्रीणामपि यस्माद्दोषाजवंति तस्मात्तासामपि विरागमार्गे प्रवृत्तानां पुरुषपरिचया दिपरिहारलक्षणोऽप्रमादएव श्रेयानिति । एवं यडुक्तं स्त्रीपरिज्ञेति तत्पुरुषोत्तमधर्मप्रति पादनार्थमन्यथा पुरुषपरिज्ञेत्यपि वक्तव्येति । सांप्रतं सूत्रानुगमे स्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (जेमायरंचेत्यादि) । अस्य चाऽयमनंतरसूत्रेण सह संबं धः । तद्यथा । अनंतरसूत्रेनिहितमामोक्षाय परिव्रजेदित्येतच्चाऽशेषानिष्वंगवर्जितस्य नवतीत्यतोऽनेन तदनिष्वंगवर्जनमनिधीयते । यः कश्चिडुत्तमसत्वोमातरं पितरं जननीं जनयितारमेतद्ग्रहणादन्यदपि च्रातृपुत्रादिकं पूर्वसंयोगं तथा श्वश्रूश्वशुरादिकं पश्चात्सं योगं च विप्रहाय त्यक्त्वा । चकारौसमुच्चयार्थौ । एकोमातापित्राद्यनिष्वंगवर्जितः क षायरहितोवा तथा सहितोज्ञानदर्शनचारित्रैः स्वस्मै वा हितः स्वहितः परमार्थानुष्ठा नविधायी चरिष्यामि संयमं करिष्यामीत्येवं कृतप्रतिज्ञः । ता मेव प्रतिज्ञां सर्वप्रधान

थका अप्पा के० पोताना आत्मानु रक्खिउं के० रक्षण सु के० रुमीरीते होइ के० था य ॥ ५ ॥ स्त्री स्वनावे अकार्य करवाने सावधान होयछे, तेमाटे निरकु के०साधुने आ मंतिय के० आमंत्रीने कहे के हुं अमुक वखते आवीश, एम संकेत कहीने उस्स विय के० विश्वास उपजावे आयसा के० पोते पोताना आत्माने मैथुन सेववाने अर्थे एकदा प्रस्तावे निमंतंति के० साधुने निमंत्रण करे, अथवा साधुने निवारवा नणी ते स्त्री एम कहेके आयसा के० माहारा नर्तारिना आदेशथी हुं तमारा पाशे आवी बुं, एवी रीते पोताने वश करवाना वचन कहे एताणिचके० ए पूर्वोक्त वचनने करी अंहींच पद पू रणार्थ बे एवं के० एम से के० ते साधु जाणे के० ज्ञ परिज्ञायेकरी स्त्रीनुं स्वरूप जेवुंबे तेवुं जाणे सुंजाणे तोके सद्दाणि विरूवरूवाणि के० विषय संबंधिया नानाप्रकारना हावनावादिकरूप जे स्त्रीना शब्द तेने साधु बंध पासना कारण जाणे. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–नो तासु स्त्रीषु चक्षुः संदध्यात् संधयेत् । स्वदृष्टिः स्त्रीदृष्टौ न निवेशयेदित्यर्थः॥ यतिः कार्ये ईषदवज्ञया निरीक्षेत । यडुक्तं । कार्येपीषन्मतिमान्निरीक्षते योषिदंगमस्थिरया॥ अस्निग्धयादृशावज्ञयाह्यकुपितोपि कुपितइवेति॥तथा नोपि च साहसमकार्यकरणं तत्प्रार्थ नया समनुजानीयात्प्रतिपद्येत स्त्रीनिः सार्धं ग्रामादौ न विहरेन्नगबेत् । अपिशब्दात्तानिः सहै कासने नतिष्ठेत्॥ यडुक्तं। मात्रा स्वस्रा डुहित्रा वा न विविक्तासनो नवेत्॥बलवानिंड्रियग्रामः पंमितोप्यत्र मुह्यतीति । एवमात्मा सुरक्षितोनवति ॥ ५ ॥ ताः स्त्रियः साधुमामंत्र्य सं केतं ग्राहयित्वा (उस्सविअत्ति) संस्थाप्य उच्चावचैर्विश्वासजनकैरालापैर्विश्रंने पातयित्वा निक्षुं आत्मनोनिमंत्रयंति आत्मनोगेन साधुमन्युपगमं कारयंति सच निक्षुरेतान्विरूपरूपा न् नानाविधान् शब्दादिविषयान् ज्ञपरिज्ञया जानीयात् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥६॥

॥ टीका–किंच । (णोतासु इत्यादि) नोनैव तासु शयनासनोपमंत्रणपाशावपा शिकासु स्त्रीषु चक्षुर्नेत्रं संदध्यात्संधयेद्वा न तद्दृष्टौ स्वदृष्टिं निवेशयेत् । सतिच प्रयोज ने ईषदवज्ञया निरीक्षेत । तथाचोक्तं । कार्येपीषन्मतिमान्निरीक्षते योषिदंगमस्थिरया । अस्निग्धया दृशाऽवज्ञया ह्यकुपितोपि कुपितइव ॥ १ ॥ तथा नापिच साहसमकार्यकर णं तत्प्रार्थनया समनुजानीयात्प्रतिपद्येत । तथा ह्यसति साहसमेतत्संग्रामावतरणवद्य न्नरकपातादिविपाकवेदिनोपि साधोर्योषिदासंजनमिति । तथा नैव स्त्रीनिः सार्धं ग्रामादौ विहरेत् गबेत् । अपिशब्दान्न तानिः सार्धं विविक्तासनोऽनवेद्यतोमहापापस्थानमेतद्यतीनां यत् स्त्रीनिः सह सांगत्यमिति ॥ तथाचोक्तं । मात्रा स्वस्रा डुहित्रा वा नविविक्तासनो नवेत् ॥ बलवानिंड्रियग्रामः पंमितोप्यत्रमुह्यति ॥ १ ॥ एवमनेन स्त्रीसंगवर्जनेनात्मा स

॥ दीपिका—नृशं सस्नेहं निषीदंति तिष्ठंतिस्त्रियः पुष्णात्यतिपोपं मनोहरवस्त्रं परिद धति अनीक्ष्णं निरंतरं तथाधःकायं कर्वादिकं दर्शयंति बाहून् नकृत्य ऊर्ध्वीकृत्य कक्षा मादश्यानुव्रजेत् अनुकूलं गच्छेत् ॥ ३ ॥ शयनासनैर्योग्यैर्नोगयोग्यैः स्त्रियएकदा नि र्व्यंजनकालादौ निमंत्रयंति प्रार्थयंति साधुं । ससाधुस्तानि शयनासनानि पाशरूपाणि जानीयात् बंधनरूपाणि अवगच्छेत विरूपरूपाणि तानि नानाविधानि ॥ ४ ॥

॥ टीका—तानेव सूक्ष्मप्रतारणोपायान् दर्शयितुमाह । (पासेनिसमित्यादि) पार्श्वे समीपे नृशमत्यर्थमुरःपीडमतिस्नेहमाविष्कुर्वत्योनिषीदंति विश्रंनमापादयितुमुपविशं तीति । तथा कामं पुष्णातीति पोषं कामोत्काचकारि शोजनमित्यर्थः । तच्च तद्व स्त्रं तदनीक्ष्णमनवरतं तेन शिथिलादिव्यपदेशेन परिदधति स्वानिलाषमावेदयंत्यः सा धुप्रतारणार्थं परिधानं शिथिलीकृत्य पुनर्निबध्नंतीति । तथाऽधःकायमूर्वादिकमनंगोद्दीप नाय दर्शयंति प्रकटयंति तथा बाहुमुद्धृत्य कक्षामादर्श्याऽनुकूलं साध्वभिमुखं व्रजेत् ग च्छेत् । संनावनायां लिङ् । संनाव्यते एतदनंगप्रत्यंगसंदर्शकत्वं स्त्रीणामिति ॥३॥ अपिच । (सयणासणेइत्यादि) शय्यतेऽस्मिन्निति शयनं पर्यंकादि तथाऽऽस्यतेऽस्मिन्नित्यासनमा संदकादीत्येवमादिना योग्येनोपनोगार्हेण कालोचितेन स्त्रियोयोषितएकदेति विविक्त देशकालादौ निमंत्रयंत्यन्युपगमं ग्राहयंति । इदमुक्तं नवति । शयनासनाद्युपनोगंप्रति साधुं प्रार्थयंति । एतानेव शयनासननिमंत्रणरूपान् ससाधुर्विदितवेद्यः परमार्थदर्शी जा नीयादवबुध्येत स्त्रीसंबंधिकारिणः पाशयंति बध्नंतीति पाशास्तान्विरूपरूपान् नानाप्रका रानिति । इदमुक्तं नवति । स्त्रियोह्यासन्नगामिन्योनवंति । तथाचोक्तं । अंबं वा निंबं वाप्रव्भा सगुणेन आरुहाइ वल्ली । एवं इत्थीतोविजं आसन्नं तमिच्छंति । १ । तदेवंनूताः स्त्रियोज्ञात्वा न तानिः सार्धं साधुः संगं कुर्याद्यतस्तडुपचारादिकःसंगोडुष्परिहार्योनवति । तडुक्तं।जंइछसि घेत्तुंजे, पुव्विंतं आमिसेण गिण्हाहि॥आमिसपासनिबद्धोकाहिइकज्जंअकज्जंवा॥ २ ॥ ४ ॥

नोतासु चक्खु संधेज्जा, नोविय साहसं समन्निजाणे ॥ णोसहियंपि वि हरेज्जा, एवमप्पासु रक्खित होइ ॥५॥ आमंतिय नस्सविय निक्खु आ यसा निमंतंति ॥ एताणि चेव सेजाणे, सद्दाणि विरूवरूवाणि ॥ ६ ॥

अर्थ—नो तासुचक्खुसंधेज्जा के० तेस्त्रीनी दृष्टी साथें साधु पोतानी दृष्टी मेलवे न ही, तथा नोवियसाहसं के० मैथुनादिक अकार्यनुं करवुं करे नही, अने समन्निजाणे के० ते स्त्रीनुं कहेलुं जे विषयनी प्रार्थनारूप वचन तेने अनुमोदे नही. णोसहियं पिवि हरेज्जा के० वली ते स्त्रीनीसाथे ग्रामादिकने विषे विचरे नही, एव के० एरीते रहेता

अने कायाने संवरयाळे एवा एगतियं अणगारंके० कोइएक सुव्रती अणगारने स्नेहरूप बंधनेकरी बंधंतिके० बांधे धर्म थकी पाडे तो बीजा सामान्य साधुनुं केवुंज शुं. ॥८॥

॥ दीपिका–मनो बध्यते यैस्तानि मनोबंधनानि मंजुलालापस्निग्धावलोकनांगप्रकटनादीनि तैरनेकैः करुणालापविनयपूर्वकं (उवगसित्ताणंति) उपसंश्लिष्य समीपमागत्याथवा तदनंतरं मंजुलानि पेशलानि लापंते । तथा भिन्नकथाभीरहस्यालापैर्मैथुनसंबद्धैर्वचोभिः साधोश्चित्तमकार्यकरणंप्रति आज्ञापयंति प्रवर्तयंति ॥ ७ ॥ यथा सिंहं (कुणिमेणं) मांसेनोपलोभ्य निर्भयमेकचरं पाशेन यंत्रेण बध्नंति एवं स्त्रियोप्येकं कंचनाऽनगारं साधुं संवृतमपि बध्नंति स्ववशं कुर्वंति ॥ ८ ॥

॥ टीका–अन्यच्च । (मणबंधणेहिइत्यादि) मनोबध्यते यैस्तानि मनोबंधनानि मंजुलालापस्निग्धावलोकनांगप्रत्यंगप्रकटनादीनि । तथाचोक्तं । णाहपियकंत सामिय दतियजियाउ तुमं मह पिउत्ति । जीएजीयामिअहं पहवसितंमेशरीरस्स ॥ १ ॥ इत्यादिभिरनेकैः प्रपंचैः करुणालापविनयपूर्वकं (उवगसित्ताणंति) उपसंश्लिष्य समीपमागत्याऽथ तदनंतरं मंजुलानि पेशलानि विश्रंभजनकानि कामोत्काचकानि वा लापंते । तदुक्तं । मितमहुररिभिय जंपुल्लएहिंईसीकडक्ख हसिएहिं॥ सविगारेहिवरागंहियियं पिहियं मयच्छीए ॥१॥तथा भिन्नकथाभीरहस्यालापैर्मैथुनसंबद्धैर्वचोभिः साधोश्चित्तमादाय तमकार्यकरणं प्रत्याज्ञापयंति प्रवर्तयंति स्ववशं वा ज्ञात्वा कर्मकरवदाज्ञां कारयंतीति ॥ ७ ॥ अपिच । (सीहंजहेत्यादि) यथेति दृष्टांतोपदर्शनार्थे । यथा बंधनविधिज्ञाः सिंहं पिशितादिनामिषेणोपप्रलोभ्य निर्भयं गतभीकं निर्भयत्वादेवैकचरं पाशेन गलयंत्रादिना बध्नंति बद्ध्वाच बहुप्रकारं कदर्थयंत्येवं स्त्रियोनानाविधैरुपायैः पेशलभाषणादिभिः (एगतियंति) कंचन तथाविधमनगारं साधुं संवृतमपि मनोवाक्कायगुप्तमपि बध्नंति स्ववशं कुर्वंतीति । संवृतग्रहणं च स्त्रीणां सामर्थ्योपदर्शनार्थं । तथाहि । संवृतोपि ताभिर्बध्यते किं पुनरपरोऽसंवृतइति ॥ ८ ॥

अह तत्थ पुणो णमयंती रहकारोव णेमि अणुपुव्वी ॥ बद्धे मिएव पासे णं फंदंते वि णमुच्चए ताहे ॥ए॥ अह से णुतप्पई पच्छा भोच्चा पायसंच विसम्मिस्सं ॥ एवं विवेगमादाय, संवासो नविकप्पए दविए ॥ १० ॥

अर्थ–अथ के० हवे साधुने पोताने वश करीने पछी तत्थ के० त्यां ते स्त्री पोताना कार्यनेविषे ते साधुने पुणोके० वली णमयंती के० नमाडे एटले सेवकनी पेरे कार्य क

मस्तापायस्थानेज्योरक्षितोभवति । यतः सर्वापायानां स्त्रीसंबंधः कारणमतः स्वहितार्थी तत्संगं दूरतः परिहरेदिति ॥ ५ ॥ कथं चैताः पाशाइव पाशिकाइत्याह (आमंतिये त्यादि) स्त्रियोहि स्वभावेनैवाकर्तव्यप्रवणाः साधुमामंत्र्य यथाहममुकस्यां वेलायां भव दंतिकमागमिष्यामीत्येवं संकेतं ग्राहित्वा तथा (उस्सवियत्ति) संस्थाप्योच्चावचैर्वि श्रंभजनकैरालापैर्विश्रंभे पातयित्वा पुनरकार्यकरणायात्मना निमंत्रयंत्यात्मनोपभोगेन साधुमज्युपगमं कारयंति । यदिवा साधोर्भयापहरणार्थं ताएव योषितः प्रोचुस्तद्यथा भ र्तारमामंत्र्याप्टच्याहमिहायाता तथा संस्थाप्य भोजनपदधावनशयनादिकया क्रिययो पचर्य ततस्तवांतिकमागतेत्यतोभवता सर्वा मद्भर्तृजनितामाशंकां परित्यज्य निर्भयेन भाव्यमित्येवमादिकैर्वचोभिर्विश्रंभमुत्पाद्य भिक्षुमात्मना निमंत्रयंते । युष्मदीयमिदं शरीरकं यावद्धस्य क्षोदीयसोगरीयसोवा कार्यस्य क्षमं तत्रैव निमज्यतामित्येवमुपप्र लोभयंति । सच भिक्षुरवगतपरमार्थएतानेव विरूपरूपान्नानाप्रकारान् शब्दादीन् विष यान् तत्स्वरूपनिरूपणतोज्ञपरिज्ञया जानीयाद्यथैते स्त्रीसंसर्गापादिताः शब्दादयोविष याद्गतिगमनैकहेतवः सन्मार्गार्गलारूपाइत्येवमवबुध्येत । यथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया च तद्विपाकागमेन परिहरेदिति ॥ ६ ॥

मणबंधणेहिं णेगेहिं, कलुण विणीयमुवगसित्ताणं॥अङ मंजुलाइं भासं ति, आणवयंति भिन्नकहाहिं॥७॥ सीहं जहा च कुणिमेणं, निभ्रयमेगच रंति पासेणं ॥ एवं त्थियाउ बंधंति संवुमं एगतियमणगारं ॥ ८ ॥

अर्थ-(मणबंधणेहिंके०) मनने बंधन करे एवा अणेगेहिंके० अनेक प्रपंचकरती कलुण के० जे थकी पुरुषने दया उपजे तेवा करुणाना वचने विणीय के० विनय पूर्वक उवगसित्ताणं के० साधुनी पाशे आवीने अङ के० अथवा निरंतर मंजुलाइं के० मधुर स्नेह सहित मनोहर वचन भासंति के० बोले तथा भिन्नकहाहिं के० भि न्नकथा एटले रहस्यवार्ता जे मैथुन संबंधि बाना वचन तेणे करी आणवयंति के० से वकनी पेरे साधुने ते स्त्री पोतानी आज्ञा करावे, अथवा भिन्नकहाहिं के० मैथुन संबं धिया वचनेकरी ते स्त्री आणवयंति के० साधुनुं चित्त मैथुन सेववा भणी प्रवर्त्ते तेम मैथुन सेववानी आज्ञा आपी पोतानी आज्ञायें साधुने प्रवर्त्तावे ॥ ७ ॥ हवे दृष्टांते करी देखाडेडे. जहाचके० जेम सीहंकुणिमेणंके० सिंहने मांसे करी लोभवीने निभ्रयं के० निर्भ य करी ने एगचरंति के० एकलो थको विचरे तेम करी पढी तेने पासेणं के० अनेक बंधने बांधीने कदर्थियें एवं के० एम त्थियाउ के० स्त्रीपण संवुमं के० जेणे मन वचन

स्निग्धं भोजनं भुक्त्वा पश्चात्तत्र कृतावेगाकुलितोऽनुतप्यते । तद्यथा । किमेतन्मया पापेन सांप्रतेक्षिणा सुखरसिकतया विपाककटुकमेवंभूतं भोजनमास्वादितमिति । एवमसावपि पुत्रपौत्रदुहितृजामातृस्वसृभ्रातृव्यभागिनेयादीनां भोजनपरिधानपरिणयनालंकारजातमृतकर्मतद्व्याधिचिकित्साचिंताकुलोपगतस्वशरीरकर्तव्यः प्रनष्टैहिकामुष्मिकानुष्ठानोऽहर्निशं तद्व्यापारव्याकुलितमतिः परितप्यते । तदेवमनंतरोक्तया नीत्या विपाकं स्वानुष्ठानस्यादाय प्राप्य । विवेकमिति वा क्वचित्पाठस्तद्विपाकं विवेकं चादाय गृहीत्वा स्त्रीभिश्चारित्रपरिपंथिनीभिः सार्धं संवासोवसतिरेकत्र नकल्पते न युद्यते कस्मिन्द्रव्यभूते मुक्तिगमनयोग्ये रागद्वेषरहिते वा साधौ । यतस्ताभिः सार्धं संवासोवश्यं विवेकिनामपि सदनुष्ठानविघातकारीति ॥ १० ॥

तम्हाउ वज्जए इत्थी, विसलित्तंच कंटगं नच्चा ॥ उए कुलाणि वसवत्ती
आघाते ण सेवि णिग्गंथे ॥ ११ ॥ जे एयं उंछं अणुगिद्धा अन्नयरा
हुंति कुसीलाणं ॥ सुतवस्सिएवि से भिक्कु, नोविहरे सह णमित्थीसु ॥१२॥

अर्थ—जे कारण माटे स्त्रीना समागम थकी कडवा विपाक प्राप्त थाय तम्हा के० तेकारणे इत्थीके० स्त्रीने वज्जएके० वर्जे. तु शब्द थकी स्त्रीनी साथे आलाप संलाप पण करे नहिं, जेम विसलित्तंच के० विषेकरी लिप्त एटले विषेकरी खरड्यो एवो कंटगंके० कांटो नच्चाके० जाणीने तेने दूर थकी टालियें, तेम साधु होयते स्त्रीने विषे करी खरड्या कांटानी पेरे दुर थकी टाले तथा उए के० एकलो थको कुलाणि के० ते गृहस्थने कुलेजइ, वसवत्ती के० तेनो वशवर्त्ती थको जे साधु आघाते के० धर्मकथा कहे सेवि के० ते द्रव्यलिंगी साधु पण णणिग्गंथे के० निर्ग्रंथ नही निषिद्धाचरण सेवनादित्यर्थः ॥ ११ ॥ जे एयं के० जे चारित्रिया ए स्त्री संबंधिया उंछं के० निंदनिक तेने विषे अणुगिद्धा के० गृद्ध एटले मूर्च्छा थका होय ते अन्नयराहुंति कुसीलाणं के० अन्य पासत्था उसन्ना कुशीलिया प्रमुख जे स्त्रीनी पाशे कथाना करनार होय तेमांहेला कुशीलिया जाणवा ते कारणे सुतवस्सिएवि के० रूडो तपस्वी जे होय सेभिक्खु के० ते साधु नोविहरेसहणमित्थीसु के० स्त्रीसहित विचरे नही, तथा स्त्रीनो समागम आलाप संलापादिक पण करे नही. अही णं वाक्यालंकारेछे. स्त्रीने अंगारा सरखी जाणी दूर तजी आपे. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—तस्मात् स्त्रियो वर्जयेत् । तुशब्दादालापादिन कुर्यात् । विषे लिप्तं कंटकमिव ज्ञात्वा । विषदिग्धकंटकः शरीरेमग्नः सन्ननर्थं करोति स्त्रियस्तु स्मरणादपि । यतः । विषस्य विषयाणां च दूरमत्यंतमंतरं ॥ उपभुक्तं विषं हंति विषयाः स्मरणादपीति । तथा (उए)

रावे रहकारोव के० जेम रथकार सूत्रधार अणुपुव्वीके० अनुक्रमे णेमिके० पइडानो बाहे रजो प्रदेश नमाडे तेम साधुने ते स्त्री पोताना कार्य करवाने विषे नमाडे प्रवर्त्तावे, तेवारे ते साधु, बद्धे मिएवपासेणंके० मृगनी पेरे स्त्रीरूप पासे करी बंधाणो थको जेम मृग पासे करी बंधाणो होय ते फंदंतेविके० फंदाणोथको अरहो परहो हाले चाले पण ताहेके० ते पास थकी णमुच्चएके० मूकाय नही तेम साधु पण स्त्रीरूपीआ पास थकी मूकाय नही॥ए॥ अथ के० हवे स्त्रीरूपीआ पासमां पडया पबी, सेके० ते साधु णुत्तप्पइ के० पश्चात्ताप करे पबा के० पबी संयम बांमीने गृहवास आदरे, तेवारे जूरे जेम विसम्मिसं के० विषमि श्रित एवो पायसं के० दूध तेने नोच्चा के० जमीने पबी पश्चात्ताप करे के ए अन्नमे सा वास्ते आसेव्यो एम चिंतवे चके० तेनी पेरे ते साधु पण पश्चाताप करे एवंके० एवो वि वेग मादायके० विवेक ग्रहण करीने दविए के० मुक्ति गमन योग्य एवा साधुने संयमनी बे षणी एवीजे स्त्री तेनी साथे संवासो नविकप्पएके० संवास संसर्ग करवो नकल्पे. ॥१०॥

॥ दीपिका—अथ पुनस्तत्र स्वात्मनि अवस्तुनि नमयंति आसक्तं कुर्वंति । यथा रथ कारोवर्धकिर्नेमिचक्रधाराकाष्ठं आनुपूर्व्या नमयति एवं स्त्रियोपि साधुं नमयंति स्ववशं कुर्वंति । सच साधुर्मृगवत् पाशेन बद्धोमोक्षार्थं स्पंदमानोपि चलमानोपि पाशान्नमुच्य ते ॥ ए ॥ अथ ससाधुः पाशबद्धमृगइवाऽनुतप्यते पश्चात्तापं करोति । यतः । मया परि जनस्यार्थे कृतं कर्म सुदारुणं ॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलनागिनइति । यथा कश्चिद्वि षमिश्रं पायसं नुक्त्वाऽनुतप्यते एवं पूर्वोक्तप्रकारेण विपाकं स्वानुष्ठानस्यादाय प्राप्य तानिः सह संवासोनकल्पते इव्यमुक्तियोग्ये साधौ ॥ १० ॥

॥ टीका—किंच । (अहतंत्वेत्यादि) अथेति स्ववशीकरणादनंतरं पुनस्तत्र स्वानिप्रे ते वस्तुनि नमयंति प्रह्वं कुर्वंति । यथा रथकारोवार्धकिर्नेमिकाष्ठं चक्रवाह्यन्नमिरूपमा नुपूर्व्या नमयत्येवं ताअपि साधुं स्वकार्यानुकूल्ये प्रवर्तयंति । सच साधुर्मृगवत् पाशेन बद्धोमोक्षार्थं स्पंदमानोपि ततः पाशान्नमुच्यतइति ॥ ए ॥ किंच । (अहसेइत्यादि) अ थासौ साधुः स्त्रीपाशावबद्धोमृगवत् कूटके पतितः सन् कुटुंबकृते अहर्निशं क्लिश्यमानः प श्चादनुतप्यते । तथाहि । गृहांतर्गतानामेतदवश्यं संनाव्यते । तद्यथा । कोधायउंकोस मवित्तु कोहोवणाहिं काहोविक्कउवित्त कोउग्घाम्ह उपहिय उपरिणीय उकोवकुमार उपडि यतो जीवखडप्पडेहि परबंधइ पवेहनारउ । तथा यत् । मया परिजनस्यार्थे, कृतं कर्म सु दारुणं ॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलनागिनः ॥ १ ॥ इत्येवं बहुप्रकारं महामोहा त्मके कुटुंबकूटके पतिताअनुतप्यंते । अमुमेवार्थं दृष्टांतेन स्पष्टयति । यथा कश्चिद्विष

कहेछे अवि के० अपि संभावनाये धूयराहिंसुएहाहिं के० धूआ एटले बेटी साथे पण साधु विचरे नहीं, तथा सुएहा एटले वहु साथे अने धातीहिं के० धाव, ते माता स मानछे ते साथे पण, अडुव के० अथवा दासीहिं के० दासी साथे, तथा महतीहिं के० म्होटी स्त्री साथे, वा के० अथवा कुमारीहिं के० कुमारिका जे न्हानी स्त्री, तेनी साथे पण संथवं के० संस्तव परिचय से के० ते साधुनकुज्जा के० नकरे तेने अणगा रे के० अणगार जाणवो. ॥ १३ ॥ हवे ए पूर्वोक्त स्त्रीउंना समागम थकी जे दोष उप जे ते कहेछे. अथ के० हवे कदापि एगता के० एकदा प्रस्तावे एकांते स्त्रीनी साथे साधु नो संसर्ग तेने णाईणं के० ज्ञाति गोत्रि वा के० अथवा सुहीणं के० सुहृत् एटले मि त्र संबंधि वर्ग होंति के० त्यां होय ते दट्ठु के० देखे तेवारे तेउंने अप्पियं के० अप्री ति एटले द्वेष उपजे अने तेउं जाणेके गिद्धासत्ता कामेहिं के० जूवो ए पुरुष एवा गृ द्धने कामभोगने विषे आसक्त देखायछे एम चिंतवी सक्रोध वचन बोले के मणुस्सोसिके० अरेतुं एनो पुरुषछे के शुं जे तुं अंहीं घणो घणो बेशेछे. रक्कण पोसणे के० राखवे पो षवे आदर करेछे, तेनो शुं कारणछे, एवा कठोर वचन ते बोले. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—दुहितृभिरपि पुत्रीभिरपि सार्धं न विरहेत् स्नुषाः सुतभार्यास्ताभिर्धात्र्यास्त न्यदायिन्यस्ताभिरथवा दासीभिर्महतीभिः प्रौढाभिः कुमारीभिर्लघ्वीभिर्वा सार्धं संस्त वं परिचयं न कुर्यादनगारः ॥ १३ ॥ अथ एकदा स्त्रीभिः सह संगतं साधुं दृष्ट्वा योषि तृज्ञातीनां सुहृदां वाऽप्रियं चित्ताशंका भवति । एवंच ते मात्रुवेरन् । यथा सत्वाः प्राणि नः कामैर्गृद्धाः । एवंविधोप्ययं श्रमणः स्त्रीसक्तचेताः स्त्रीभिः सार्धं तिष्ठति । तदुक्तं । मुंडं शिरोवदनमेतदनिष्टगंधि, भिक्षाशनेन भरणं वहतोदरस्य । गात्रं मलेन मलिनं गतसर्व शोभं, चित्रं तथापि मनसो मदनेस्ति वांछेति ॥ अतिस्त्रीसंगं दृष्ट्वा तव ज्ञातयः क्रुद्धाः साधुं ब्रुवंति रक्षणं वा पोषणं वा समाहारद्वंद्वे रक्षणपोषणं तत्र त्वमादरं कुरु । यतस्त्व मस्यामनुष्योसि । यदिवा वयं रक्षणे पोषणे प्रछन्नास्त्वमेव मनुष्योसि त्वयैव सार्धमिय मेकाकिन्यहर्निशं त्यक्तगेहव्यापारा तिष्ठतीति ॥ १४ ॥

॥ टीका—कतमाभिः पुनःस्त्रीभिःसार्धं न विहर्तव्यमित्येतदाशंक्याह । (अविधूयराही त्यादि) अपिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । (धूयराहित्ति) दुहितृभिरपि सार्धं न विहरे त्तथा स्नुषाः सुतभार्यास्ताभिरपि सार्धं न विविक्तासनादौ स्थातव्यं । तथा धात्र्यः पंच प्रकाराः स्तन्यदायिन्योजननीकल्पास्ताभिश्च साकं न स्थेयं । अथवा सतां तावदपरायोपि तोयाअप्येतादास्योघटयोषितः सर्वापसदास्ताभिरपि सह संपर्कं परिहरेत् । तथा महती भिः कुमारीभिर्वाशब्दाल्लघ्वीभिश्च सार्धं संस्तवं परिचयं प्रत्यासत्तिरूपं सोऽनगारोन कु

एकोऽसहायः कुलानि गृहस्थगृहाणि गत्वा स्त्रीणां वशवर्ती योधर्ममाख्याति नासौ निर्ग्रंथोनिभिक्षाचरणात् ॥ ११ ॥ ये यतयएतत् पूर्वोक्तं ऊंबं गर्ह्यं स्त्रीसंबंधादिकं एकाकिस्त्रीधर्मकथानादिकं वा अनुगृध्धाः प्रत्यासक्तास्ते कुशीलादीनां पार्श्वस्थादीनामन्यतमाः स्युः । ततस्तु तपस्व्यपि तपःकृशदेहोपि स्त्रीनिः सह नविहरेन्नगछेन्नापि तिष्ठेत् । तृतीयार्थे सप्तमी । णं वाक्यालंकारे ॥ १२ ॥

॥ टीका—स्त्रीसंबंधदोषानुपदर्श्योपसंहरन्नाह । (तम्हाइत्यादि) । यस्माद्विपाककटुः स्त्रीनिः सह संपर्कस्तस्मात्कारणात् स्त्रियोवर्जयेत् । तुशब्दात्तदालापमपि न कुर्यात् । किं तदित्याह । विषोपलिप्तं कंटकमिव ज्ञात्वाऽवगम्य स्त्रियं वर्जयेदिति । अपिच । विषदिग्ध कंटकः शरीरावयवे नग्नः सन्ननर्थमापादयेत् स्त्रियस्तु स्मरणादपि । तडुक्तं । विषस्य विषयाणां च, दूरमत्यंतमंतरं ॥ उपयुक्तं विषं हंति,विषयाः स्मरणादपि ॥१॥ तथा वरि विसखड्डमंविसय सुहुइक्क सुविसिणमरंति॥विसयामि सपुणघाहिया णरणरएहिंपडंति॥१॥ तथौजएकोऽसहायः सन् कुलानि गृहस्थानां गृहाणि गत्वा स्त्रीणां वशवर्ती तन्निर्दिष्टवेलागमनेन तदानुकूल्यं नजमानोधर्ममाख्याति योसावपि ननिर्ग्रंथोनसम्यक् प्रव्रजितोनिभिक्षाचरणसेवनादवश्यं तत्रापायसंनवादिति । यदा पुनः काचित्कुतश्चिन्निमित्तादागंतुमसमर्था वृध्धा वा नवेत्तदा परिसहायसाध्वनावे एकाक्यप्यपि गत्वाऽपरस्त्रीवृंदमध्यगतायाः पुरुषसमन्वितायावा स्त्रीनिंदाविषयजुगुप्साप्रधानं वैराग्यजननं विधिना धर्मं कथयेदपीति ॥ ११ ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तोर्थः सुगमोनवतीत्यभिप्रायवानाह । (जेएयंउंबमित्यादि) ये मंदमतयः पश्चात्कृतसदनुष्ठानाः सांप्रतेक्षिणएतदनंतरोक्तं ऊंबंतिजुगुप्सनीयं गर्ह्यं तदत्र स्त्रीसंबंधादिकं एकाकिस्त्रीधर्मकथनादिकं वा दृष्टव्यं । तदनु तत्प्रति ये गृध्धा अध्युपपन्नामूर्छितास्तेहि कुशीलानां पार्श्वस्थावसन्नकुशीलसंसक्तयथाछंदरूपाणामन्यतरा नवंति , यदिवा काथिकपश्यकसंप्रसारकमामकरूपाणां वा कुशीलानामन्यतरानवंति तन्मध्यवर्तिनस्तेपि कुशीलानवंतीत्यर्थः। यतएवमतः सुतपस्व्यपि विकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोपि निकुः साधुरात्महितमिछन् स्त्रीनिः समाधिपरिपंथिनीनिः सह न विहरेन्नक्वचिज्जछेन्नापि संतिष्ठेत्। तृतीयार्थेसप्तमी।णमितिवाक्यालंकारे।ज्वलितांगारपुंजवहूरतः स्त्रियोवर्जयेदितिनावः।१२

अवि धूयराहि सुण्हाहिं,धातीहिं अडुव दासीहिं ॥ महतीहि वा कुमारीहिं, संथवं सेन कुज्जा अणगारे॥१३॥अडु णाइणंच सुहीणंवा अप्पियं दछु एगता होंति ॥ गिध्धासत्ता कामेहिं; रस्कणपोसणे मणुस्सोसि ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे कदाचित् पुत्री प्रमुखनो संसर्ग थइ जाय,तो ते पण साधुयें टालवो ते आश्रयी

ति ।किंपुनः कृतविकारं । तथा स्त्रीदोषाशंकिनश्च ते भवंति । ते चामी दोषाः। भोजनैर्बहुविधै र्न्यस्तैः साध्वर्थमुपकल्पितैरियमेनमुपचरति अथवा भोजनार्थमुपविष्टेष्वपि श्वशुरादिषु साध्वागमने सा वधूः समाकुला सत्यन्यस्मिन् दातव्येऽन्यद्ददाति । यथा । कयाचिद्वध्वा ग्राममध्यप्रारब्धनटप्रेक्षणगतचित्तया पतिश्वशुरयोर्भोजनार्थमुपविष्टयोस्तंडुलाइति कृत्वा राइकाः संस्कृत्य दत्ताः । ततश्चासौ श्वशुरेणोपलक्षिता पत्या क्रुद्धेन ताडिता ऽन्यगतचित्तेत्याशंकया गृहान्निर्धाटितेति ॥१५॥ ताभिः स्त्रीभिः सह संस्तवं परिचयं कुर्वंति । किंभूताः । प्रभ्रष्टाः सचलिताः समाधियोगेभ्योधर्मध्यानव्यापारेभ्यः प्रच्युताः तस्मात् श्रमणा (णसमेंतिति) नगच्छंति । सत्यः शोभनाअनुकूलत्वान्निषद्याइव निषद्याः स्त्रीकृता माया अथवा स्त्रीवसतीः आत्महिताय स्वहितं मन्यमानाः ॥ १६ ॥

॥ टीका–(किंचान्यत् । समणंपीत्यादि) श्राम्यतीतिश्रमणः साधुः । अपिशब्दोभिन्नक्रमः। तमुदासीनमपि रागद्वेषविरहान्मध्यस्थमपि दृष्ट्वा।श्रमणग्रहणं तपःखिन्नदेहोपलक्षणार्थं । तत्रैवंभूतेपि विषयद्वेषिण्यपि साधौ तावदेके केचन रहस्यस्त्रीजल्पनकृतदोषत्वात्कुप्यंति । यद्दिवा (पाठांतरं) "समणं दठूणुदासीणं" श्रमणं प्रव्रजंतं उदासीनं परित्यक्तनिजव्यापारं स्त्रिया सह जल्पंतं दृष्ट्वोपलभ्य तत्राप्येके केचन तावत् कुप्यंति किंपुनः कृतविकारमितिभावः । अथवा स्त्रीदोषाशंकिनश्चते भवंति। ते चामी स्त्रीदोषाः। भोजनैर्नानाविधैराहारैर्न्यस्तैः साध्वर्थमुपकल्पितैरेतदर्थमेव संस्कृतैरियमेनमुपचरति तेनायमहर्निशमिहागच्छतीति।यद्दिवा भोजनैःश्वशूरादीनां न्यस्तैरर्धदत्तैः सद्भिः सावधूः साध्वागमनेन समाकुलीभूता सत्यन्यस्मिन् दातव्येऽन्यद्द्यात्ततस्ते स्त्रीदोषाशंकिनोभवेयुर्यथेयं दुःशीलाऽनेनैव सहास्तइति । निदर्शनमत्र यथा कयाचिद्वध्वा ग्राममध्यप्रारब्धनटप्रेक्षणैकगतचित्तया पतिश्वशुरयोर्भोजनार्थमुपविष्टयोस्तंडुलाइति कृत्वा राइकाः संस्कृत्य दत्तास्ततोसौ श्वशुरेणोपलक्षिता निजपतिना क्रुद्धेन ताडिता अन्यपुरुषगतचित्तेत्याशंक्य स्वगृहान्निर्धाटितेति ॥ १५ ॥ किंचान्यत् । (कुर्वंतीत्यादि) ताभिः स्त्रीभिः सन्मार्गार्गलाभिः सह संस्तवं तद्गृहगमनालापदानसंप्रेक्षणादिरूपं परिचयं तथाविधमोहोदयात्कुर्वंति विदधति। किंभूताः।प्रकर्षेण भ्रष्टाः स्खलिताः समाधियोगेभ्यः।समाधिर्धर्मध्यानं तदर्थं तत्प्रधानावा योगामनोवाक्कायव्यापारास्तेभ्यः प्रच्युताः शीतलविहारिणइति । यस्मात् स्त्रीसंस्तवात्समाधियोगपरिभ्रंशोभवति तस्मात्कारणाछ्रमणाः सत्साधवोन (समेंति) न गच्छंति ।सद्भोजनाः सुखोत्पादकतयाऽनुकूलत्वान्निषद्याइव निषद्यास्त्रीभिः कृता माया यद्दिवा स्त्रीवसतीरिति आत्महिताय स्वहितं मन्यमानाः। एतच्च स्त्रीसंबधपरिहरणं तासामप्यैहिकामुष्मिकापायपरिहाराद्धितमिति । क्वचित्पश्चार्धमेवं पठ्यते ॥ तत्प्रासमणाउ जहा

र्यादिति । यद्यपि तस्यानगारस्य तस्यां डुहितरि स्नुषादौ वा नचित्तान्यथात्वमुत्पद्यते तथा पि च तत्र विविक्तासनादावपरस्य शंकोत्पद्यते अतस्तबंकानिरासार्थं स्त्रीसंपर्कः परिहर्त व्यइति ॥१३॥ अपरस्य शंका यथोत्पद्यते तथा दर्शयितुमाह । (अडुणाईणमित्यादि) विविक्तयोपिता सार्धमनगारमथैकदा दृष्ट्वा योषिज्ज्ञातीनां सुहृदां वा अप्रियं चित्तडुःखा सिका नवत्येवं च ते समाशंकेरन् यथा सत्वाः प्राणिनइच्छामदनकार्मैर्गृध्दाअध्युपप न्नास्तथाह्येवंनूतोप्ययं श्रमणः स्त्रीवदनावलोकनासक्तचेताः परित्यक्तनिजव्यापारोऽनया सार्धं निह्रीकस्तिष्ठति । तडुक्तं । मुंमं शिरोवदनमेतदनिष्टगंधि, निक्षाटनेन नरणं वह तोदरस्य ॥ गात्रं मलेन मलिनं गतसर्वशोनं चित्रं तथापि मनसो मदनेस्ति वांछा ॥१॥ तथातिक्रोधाध्मातमानसाश्चैव मूचुर्यथा रक्षणं पोषणं चेति विगृह्य समाहारद्वंद्व स्तस्मिन् रक्षणपोषणे सदादरं कुरु । यतस्त्वमस्याः मनुष्योसि मनुष्योवर्तसे । यदि वा परं वयमस्यारक्षणपोषणव्यापृतास्त्वमेव मनुष्योवर्तसे । यतस्त्वयैव सार्धमियमेका किन्यहर्निशं परित्यक्तनिजव्यापारा तिष्ठतीति ॥ १४ ॥

समणंपि दठुदासीणं, तब्रवि तावएगे कुप्पंति ॥ अडु नोयणेहिं णब्रेहिं इत्थीदोसं संकिणो होंति ॥१५॥ कुव्वंति संथवं ताहिं, पब्भठा समाहि जोगेहिं ॥ तम्हा समणा णसमेंति, आयहियाए सत्तिसेज्जाउ ॥ १६ ॥

अर्थ—समणंपि दठुदासीणं के० तपस्वी, उदासीन मध्यस्थ, राग द्वेष रहित एवो साधु पण स्त्री साथे आलाप करतो थको देखीने ताव के० तेवारे तब्रवि के० त्यां पण एगे के० कोइएक कुप्पंति के० क्रोध करे अडुवा के० अथवा नोयणेहिं के० अनेक प्रकारना नोजन ते णब्रेहिं के० साधुने अर्थे थाप्या देखीने एम जाणे जे ए यति आहारनो गृद्ध सदैव अहीं आवेढे, इत्थीदोसं संकिणोहोंति के० तेवारे तेने स्त्रीना दोषनी शंका मनमांहे उपजे, अने एम जाणे के ए स्त्रीपण नली नथी ॥ १५ ॥ तेमाटे जे पब्भठा समाहि जोगेहिं के० प्रकर्षे करी धर्मरूप समाधि जे मन वचन कायाना शुनयोगरूप व्यापार, तेथकी न्रष्ट थया होय. कुव्वंति संथवंताहिंके० तेवा इव्यलिंगीउ स्त्रीनी साथे संस्तव परिचय करे तम्हा के० तेमाटे एवुं जाणीने समणा के० साधु णसमेंति के० स्त्रीनी साथे नजाय, आयहियाए के० आत्माना हितने अर्थे सन्निसेज्जाउ के० स्त्रीजे स्थानके रहेती होय ते स्थानके साधु निषिद्धा अशनादिक परिचय करे नही.॥१६॥

॥ दीपिका—श्रमणमुदासीनमपि रागद्वेषरहितमपि दृष्ट्वा तत्रापि मध्यस्थे रहस्यस्त्री जल्पनकृतदोषादेके कुप्यंति श्रमणं मध्यस्थमपि स्त्रिया सहैकांते जल्पं दृष्ट्वा एके कुप्यं

हवेइत्यादि) बहवः केचन गृहाण्यपहृत्य परित्यज्य पुनस्तथाविधमोहोदयान्मिश्रीजावइ ति । इव्यालिंगमात्रसद्भावाद्भावतस्तु गृहस्थसमकल्पाइत्येवंनूतामिश्रीनावं प्रस्तुताः सम नुप्राप्तान गृहस्थाएकांततोनापि प्रव्रजितास्तदेवंनूताअपि संतोध्रुवोमोक्षः संयमोवा तन्मा र्गमेव प्रवदंति । तथाहि । ते वक्तारोनवंति यथाऽयमेवास्मदारब्धोमध्यमः पंथाः श्रेया न् तथाह्यनेन प्रवृत्तानां प्रव्रज्यानिर्वहणं नवतीति तदेतत्कुशीलानां वाचा कृतं वीर्यं नानुष्ठा नकृतं । तथाहि । ते इव्यालिंगधारिणोवाङ्मात्रेणैव वयं प्रव्रजिताइति ब्रुवते नतु तेषां सातगौरवविषयसुखप्रतिबद्धानां शीतलविहारिणां सदनुष्ठानकृतं वीर्यमस्तीति ॥ १७ ॥ अपिच (शुद्धंरवतीत्यादि) सकुशीलोवाङ्मात्रेणाविष्कृतवीर्यः पर्षदि व्यवस्थितोधर्मदेश नावसरे सत्यात्मानं शुद्धमपगतदोषमात्मानमात्मीयानुष्ठानं वा रौति नाषते । अथाऽनं तरं रहस्येकांते डुष्कृतं पापं तत्कारणं वा सदनुष्ठानं करोति विदधाति तच्च तस्यासदनु ष्ठानं गोपायतोपि जानंति विदंति । के । तथारूपमनुष्ठानं विदंतीति तथाविदइंगिताकार कुशलानिपुणास्तद्विदइत्यर्थः । यदिवा सर्वज्ञाः । एतडुक्तंनवति । यद्यप्यपरः कश्चिदकर्त व्यं तेषां न वेत्ति तथापि सर्वज्ञाविदंति तत्परिज्ञानेनैव किंन पर्याप्तं यदिवा मायावी महा शवश्चायमित्येवं तथाविदस्तिद्विदोजानंति । तथाहि । प्रच्छन्नकार्यकारी न मां कश्चिज्जाना त्येवं रागांधोमन्यते अथच तं तद्विदो वदंति । तथाचोक्तं । नयलोएंलोणिज्जइ,णयउंपि ज्जइ घयं चतेल्लंवा ॥ किहसक्कावंचेउंअत्ताअणूहूयकल्लाणो॥ १ ॥ १८ ॥

सयं इक्कडं च न वदति; आइछोवि पकछति बाले ॥ वेयाणुवीइ मा का सी, चोइज्जंतो गिलाइ से नुज्जो ॥ १९ ॥ उसियावि इछिपोसे सुपुरिसा इछिवेयखेदन्ना ॥ पन्नासमन्निताविगे, नारीणं वसं उवकसंति ॥ २० ॥

अर्थ—सयंडक्कडंच के० जे इव्यलिंगी होय, ते पोतानो करेलो अनाचार तेने चशब्द थकी आचार्यादिके पुछ्यो थको, नवदति के० नकहे; एटले पोतानो अ नाचार प्रकाशे नही, तथा आइछोवि के० आदिष्ट एटले चोयणा कस्यो छतो, एटले हे वत्त आज पछी एम न करवुं एरीते प्रेस्यो थको, पण बाले के० ते बाल अज्ञानी पक छति के० पोताना आत्माने श्लाघनीय मानतो थको एम कहेके, आज पछी तमे क होछो तेम करीश, तथा वेय के० पुरुषवेदनो उदय तेथी थयोजे अणुवीइ के० मैथुन सेववानो अनिलाप ते माकासी के० मकरीश, एरीते चोइज्जंतोके० प्रेस्यो थको गिलाइ के० गिलानपणु पामे. एम सेके० ते इव्यलिंगी साधु नुज्जो के० वली वली सांज लुं अणसांनल्युं करे ॥ १९ ॥ उसियावि के० अनेक प्रकारना कामनोगने विषे उषित

हि अहिताउ सन्निसेज्जाउ ॥ अयमस्यार्थः। यस्मात्स्त्री संबंधोनर्थाय नवति तस्मात् हे श्रमण साधो । तुशब्दोविशेषणार्थः । विशेषेण सनिषद्या स्त्रीवसतीस्तत्कृतोपचाररूपा वा माया आत्महिताद्धेतोर्जह्याहि परित्यजेति ॥ १६ ॥

बहवे गिहाइं अवहट्टु, मिस्सीनावं पत्थुया (पाठांतरे पणता) यएगे ॥ धुव मग्गमेव पवयंति वायावीरियं कुसीलाणं ॥१७॥ सुद्धं रवति परिसाए, अह रहस्संमि डुक्कडं करेंति ॥ जाणंतियणं तहाविया, माइल्ले महासढेयंति॥ १८ ॥

अर्थ–बहवे के० घणा मनुष्य गिहाइंअवहट्टु के० घर ठांमी संयम आदरीने वली मोहनीय कर्मना उदय थकी अज्ञानपणे, मिस्सीनावं के० मिश्रनावे पत्थुयाचके० पहोता एवा एगे के० कोइएक मनुष्य ते गृहस्थ पण नही अने यतिपण नही एटले इव्यलिंगी थाय. एवा बतां पण धुवमग्गमेव के० मोक्ष मार्गेज एटले अमारो मोक्षनो मार्ग सत्यबे एम पवयंति के०मध्यम मार्गने श्रेष्ठ कही बोले एकारणे अहो कुसीलाणं के०ते कुसीलीयाना वायाके० वचननुं बोलवा मात्र, जे वीरियंके० वल वीर्यबे ते जुवो केवुं बे ॥ १७ ॥ एरीते परिसाए के० परखदा मध्ये ते कुशीलिया पोतानी आत्माने सुद्धं के० शुद्ध निर्दोष रवति के० बोले अह के० अथ हवे परखदा मांहेथी उठ्या पढी, रहस्संमि के० एकांत ठांनो डुक्कर्म करेंति के० डुष्कृत एटले अनाचार करे. एरीते ते मूर्ख पोतानो अनाचार गोपवे, तोपण जाणंतियणंतहाविया के० तेना अंग चेष्टाना जाण होय तेजाणे, तथा सर्वज्ञ तो जाणेजबे के ए साधु माइल्लेके० डुष्ट मायावीबे, तथा महासढेयंति के० महाधूर्त्त मृषावादी बे. एरीते तो बीजा जाणे किंवा नजाणे परंतु सर्वज्ञतो जाणेजबे. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–बहवः केचन गृहाण्यपहृत्य परित्यज्य मिश्रीनावं गृहस्थतुल्यत्वं प्रणताः प्राप्ताएवंनूतास्ते ध्रुवमार्गं मोक्षमार्गमेव प्रवदंति, यथायमेवास्मदीयोमार्गः श्रेयान् अनेनैव प्रव्रज्यानिर्वाहः स्यादिति । तदेतत्कुशीलानां वाचा कृतवीर्यं नानुष्ठानकृतं । वाङ्मात्रेणैव ते प्रव्रजितानतु सदनुष्ठानतइत्यर्थः ॥ १७ ॥ सकुशीलोवाङ्मात्रेण परिषदि शुद्धमात्मानं रौति नाषते । अथ रहस्येकांते डुष्कृतं पापं करोति तच्च तस्य पापमन्यः कोपि न वेत्ति तथापि तथारूपमनुष्ठानं विदंतीतितथाविदोनिपुणाइंगिताकारज्ञाः सर्वज्ञावा जानंत्येव यतोयं मायावी महाशठश्चेति ॥ १८ ॥

॥ टीका–किं केचनान्युपगम्यापि प्रव्रज्यायां स्त्रीसंबंधं कुर्युर्येनैवमुच्यते ऊमित्याह । (ब

तन्माकार्षी रित्येवं भूयः पुनश्चोद्यमानोसौ ग्लायति ग्लानिमपयात्यकर्णश्रुतं विधत्ते मर्मवि द्धोवा सखेदमिव भाषते । तथा चोक्तं । संभाव्यमानपापोहमपापेनापि किं मया ॥ निर्वि षस्यापि सर्पस्य भृशमुद्विजते जनइति ॥ १ए ॥ अपिच । (उसियावीत्यादि) स्त्रियं पो षयंतीति स्त्रीपोषकाअनुष्ठानविशेषास्तेषूषिताअपि व्यवस्थिताअपि पुरुषामनुष्याभुक्त भोगिनोपीत्यर्थः तथा स्त्रीवेदज्ञाः स्त्रीवेदोमायाप्रधानइत्येवं निपुणाअपि तथा प्रज्ञया औत्पत्तिक्यादिबुध्या समन्विताायुक्ताअप्येके महामोहांधचेतसोनारीणां सम्यक्स्त्री णां संसारावतरणवीथीनां वशं तदायत्ततामुपसामीप्येन कषंति व्रजंति । यद्यत्ताः स्वप्राय मानाअपि कार्यमकार्यं वा ब्रुवते तत्तत्कुर्वते नपुनरेतज्जानंति यथैताएवंभूताभवंतीति । तद्यथा । एताहसंति च रुदंति च कार्यहेतो,र्विश्वासयंति नंनरं नच विश्वसंति ॥ तस्मा न्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिकाइव वर्जनीयाः ॥ १ ॥ तथा । समुद्र वीचीव चलस्वभावाः, संध्याभ्ररेखेव मुहूर्तरागाः ॥ स्त्रियः कृतार्थाः पुरुषं निरर्थकं, नि ष्पीडितालक्तकवत्त्यजंति ॥ २ ॥ अत्रच स्त्रीस्वभावपरिज्ञाने कथानकमिदं । तद्यथैकोयुवा स्वगृहान्निर्गत्य वैशिकं कामशास्त्रमध्येतुं पाटलिपुत्रं प्रस्थितः। तदंतराले ऽन्यतरग्रामवर्तिन्यै कया योषिताऽभिहितस्तद्यथा सुकुमारपाणिपादशोभनाकृतिस्त्वं क्व प्रस्थितोसि तेनापि य थास्थितमेव तस्याः कथितं । तयाचोक्तं । वैशिकं पठित्वा मम मध्ये नागंतव्यं तेनापि तथै वाभ्युपगतं। अधीत्य चासौ मध्येनायातस्तया च स्नानभोजनादिना सम्यगुपचरितोविविध हावभावैश्चापहृतहृदयः संस्तां हस्तेन गृह्णाति ततस्तया महता शब्देन फूत्कृत्य जनागमना वसरे मस्तके वारिवर्धनिका प्रक्षिप्ता। ततोलोकस्य समाकुले एवमाचष्टे। यथायं गले लग्नेनो दकेन मनाक् मृतः । ततोमयोदकेन सिक्तइति । गतेच लोके किं त्वया वैशिकशास्त्रोप देशेन स्त्रीस्वभावानां किं परिज्ञातमित्येवं स्त्रीचरित्रं दुर्विज्ञेयमिति नात्रास्था कर्तव्येति । तथा चोक्तं । हृद्यन्यद्वाच्यन्यत्कर्मण्यन्यत्पुरोथपृष्ठेन्यत् ॥ अन्यत्तव मम चान्यत् स्त्रीणां सर्वं किमप्यन्यत् ॥ २० ॥

अवि हत्थपादछेदाए, अडुवा वद्धमंसउक्कंते ॥ अवि तेयसाभितावणाणि भछिय खारसिंचणाइं च ॥ २१ ॥ अडु कसणासछेदं,कंठछेदणं तितिरकंती ॥ इत्र पावसंतत्ता, नयविंति पुणोन काहिंति ॥ २२ ॥

अर्थ–हवे इहलोके पण स्त्रीने संबंधे जे विपाक थाय ते देखाडेछे अपि एवी संभावना छे जे कुशीलिया पुरुष होय ते हत्थपादछेदाएके० हस्तपादादिकनुं छेद पामे, अडुवा के०अथवा वद्धमंसके० चर्म अने मांसनुं उक्कंते के० उपडवुं पामे अपि एवी संभावना

एटले भुक्तभोगी थइने पुरिसाके० ते मनुष्य इंद्रिपोसेसुके० स्त्रीने पोषवाने विषे प्रवर्त्ते तथा इंद्रिवेयखेदन्ना के० स्त्रीवेद खराबछे, एटले स्त्री संसार भ्रमणनुं कारणछे, एम जाणता छता पण पन्नासमन्नितावेगे के० प्रज्ञासमन्वित एटले बुद्धिमंत एवा कोइएक पुरुष मो हने उदये करी नारीणंवसं के० तेहिज स्त्रीने वशवर्त्तियें रहे अने उवकसंति के० ते स्त्री जे कांइ कहे ते किंकरनी पेरे करे इत्यर्थः ॥ २० ॥

॥ दीपिका–स्वयंकृतं पापं परेण पृष्टोपि नवदति यदहमेतत्पापकारीति परेणादिष्ट श्चोदितोपि बालोऽज्ञः प्रकत्थते आत्मानंश्लाघमानोऽकार्यमपलपति । तथा वेदः पुंवेदोदय स्तस्यानुवीचिरानुकूल्यं मैथुनाभिलाषं माकार्षीरिति यः पुनश्चोद्यमानोग्लायति ग्लानिं याति अनाकर्णितं करोति मर्मविद्धोवा सखेदं भाषते । यथा । संभाव्यमानपापश्चेदपापेना पि किं मया । भृशमुद्विजते लोको,निर्विषादपि सर्पतइति ॥ १९ ॥ स्त्रीपोषकाये अनुष्ठान विशेषास्तेषु उषिताव्यवस्थिताः पुरुषा भुक्तभोगिनइत्यर्थः । तथा स्त्रीवेदे खेदज्ञाः स्त्रीवेदो मायाबहुलइति निपुणाअपि प्रज्ञाबुद्धिरौत्पत्त्यादिका तया समन्विताःयुक्ताअपि एके ना रीणां वशमायत्ततां उपकर्षंति व्रजंति स्त्रीवशवर्तिनोभवंतीत्यर्थः । नतु एवं जानंति । यतः । एताहसंतिच रुदंतिच कार्यहेतोर्विश्वासयंति च नरं नच विश्वसंति ॥ तस्मान्नरेण कुल शीलसमन्वितेन नार्यः स्मशानघटिकाइव वर्जनीयाः ॥१॥ स्त्रीस्वभावस्तथा । यथा । ए कोयुवा गृहान्निर्गत्य पाटलिपुत्रं प्रस्थितस्तदंतरेऽन्यतरग्रामवर्तिन्या कयाचिन्नार्याऽभि हितस्त्वमेवं शुभकृतिः क्व यासि तेनापि च यथास्थितमुक्तं । तयोक्तं पठित्वा चलमानोत्रा गच्छेः । तेनांगीकृत्याग्रे गतं । अधीत्य च तत्रायातः । तया च स्नानभोजनादिभिः सत्यापितो हावभावैश्च हृतचित्तस्तां हस्ते गृण्हाति ततस्तया महता शब्देन फूत्कृत्य जनागमनावसरे त न्मस्तके वारिघटः प्रक्षिप्तः । ततोलोकस्य तयोक्तं अयं गले लग्नेन जलेन व्याकुलोमृतइव । ततोमयोदकेन सिक्तइति । गते लोके सा पृष्टवती त्वया कामशास्त्रं पठता स्त्रीस्वभावानां किं ज्ञातमिति एवं स्त्रीचरितं डुर्विज्ञेयं । यतः । हृद्यन्य द्वाच्यन्यत्, कर्मण्यन्यत् पुरो थ पृ ष्ठेऽन्यत् ॥ अन्यत्तव मम चान्यत् स्त्रीणां सर्वं किमप्यन्यदिति ॥ २० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (सयंडुक्कडंचेत्यादि) । स्वयमात्मना प्रच्छन्नं यद्दुष्कृतं कृतं तदप रेणाचार्यादिना पृष्टोन वदति न कथयति यथाहमस्याऽकार्यस्य कारीति । सच प्रछन्नपा पोमायावी स्वयमवदन् यदापरेणादिष्टश्चोदितोपि सन् बालोज्ञोरागद्वेषकलितोवा प्रकत्थते आत्मानं श्लाघमानोऽकार्यमपलपति वदतिच यथाहमेवंभूतमकार्यं कथं करिष्ये इत्येवं धाष्ट्यात्प्रकत्थते । तथा वेदः पुंवेदोदयस्तस्यानुवीच्याऽनुकूल्यं मैथुनाभिलाषं

पाशेथी सुतमेके० मेंसांजल्युंछे. एतमेवके० एवीरीते एगेसिंके० कोइएकने कडवाविपाक होय इच्छिवेदेतिहुके० स्त्रीवेद थकी दुःइति निश्चे डःखज पामे. सुयरकायंके० ए नलुं कह्युं एवंपि के० एरीते लोकपरंपराये पण सांजल्युंछे जे, स्त्रीना संबंध थकी कडवा विपाक पामियें; एम सांजलीने ताके० ते अकार्यनो करनार वदित्ताणंके० एम कहे जे हवे हुं ए अकार्य नही करुं. अडुवाके० अथापि एटले तोपण कम्मणाके० माठा कर्मने करवे करी अवकरेंतिके० तेहिज अकार्यनुं आचरण करे ॥२३॥ हवे स्त्री उपर विरक्त थवाने अर्थे स्त्रीना दोष कहेछे. अन्नंमणेणचिंतेति के० स्त्री जेछे ते मने करी अन्य चिंतवे अने वायाअन्नंच के० वचने करी अन्य बोले कम्मणाअन्नं के० वली कायाये करी अन्य करे तम्हा के० तेमाटे णसद्दहिंनिरकू के० स्त्रीना वचन मायासहित होय तेने परमार्थनो जाण साधु सद्दहे नही. बहुमायाउ इत्थिउ के० अत्यंत मायासहित एवी स्त्रीने णच्चा के० जाणीने साधु जे होय ते स्त्रीनो विश्वास करे नही. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—श्रुतमेतद्गुरोः सकाशात् यत्पूर्वमुक्तं एवमेकेषां ख्याख्यातं नवति । यत स्त्रियो निंद्याइति । तथास्त्रियं वेदयति ज्ञापयतिस्त्रीवेदोवैशिकादिकं स्त्रीस्वनावप्रकाशकं शास्त्रमिति । तडुक्तं । डुर्ग्राह्यं हृदयं यथैव वदनं यद्दर्पणांतर्गतं, नावः पर्वतडुर्गमार्गविषमः स्त्रीणां न विज्ञायते ॥ चित्तं पुष्करपत्रतोयचपलं नैकत्र संतिष्ठते नार्योनाम विषांकुरैरिव लतादोषैः समं वर्धिताः ॥१॥ तथा उप्पेउअंगुलिसोपुरिसो सयलंमिजीवलोगंमि। कामं तएणनारिंजेण नपत्ताइं डुःखाइं इत्यादि । किंच । अकार्यमहं न करिष्यामीत्येवं वाचा उक्त्वापि (अडुवत्ति) अथापि तथा कर्मणा क्रिययाऽपकुर्वंति विरूपमाचरंति स्त्रियः ॥ २३ ॥ स्त्रियोमनसाऽन्यत् चिंतयंति वाचान्यज्ञापंते कर्मणा क्रिययाऽन्यत् कुर्वंति । तस्मात्तासां निकुः साधुर्नश्रद्दधीत तत्कृतमायया आत्मानं नप्रतारयेत् । यतोबहुमायाः स्त्रियइति ज्ञात्वा । अत्र दत्तावेशिकदृष्टांतः । यथा दत्तकोनामकश्चिद्युवा एकया गणिकया बहुप्रकारैः प्रतार्यमाणोपि तां नेष्टवान् ततस्तयोक्तं किंमया दौर्नाग्यकलंकितया जीवंत्या प्रयोजनं । अहं त्वया त्यक्ताऽग्निं विशामि ततोदत्तकोवदत् मायया इदमप्यस्ति वैशिके तदासौ पूर्वं सुरंगामुखे काष्ठनारं संमील्य तं प्रज्वाल्य तत्रानुप्रविश्य सुरंगया गृहमागता । दत्तकोपि इदमप्यस्ति वैशिके इत्येवं विलपन्नपि वातिकैश्चितायां प्रक्षिप्तस्तथापि नासौ तासु श्रद्धानं कृतवान् एवमन्येनापि स्त्रीषु न श्रद्धातव्यं ॥ २४ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (सुतमेतमित्यादि) श्रुतमुपलब्धं गुर्वादेः सकाशाल्लोकतोवा एतदिति यत्पूर्वमाख्यातं। तद्यथा । डुर्विज्ञेयं स्त्रीणां चित्तं दारुणः स्त्रीसंबंधविपाकस्तथा चलस्वनावाः स्त्रियोडुष्परिचाराअदीर्घप्रेक्षिण्यः प्रकृत्या लघ्व्या नवंत्यात्मगर्विताश्चेत्येव

बे तेयसाके० अग्नीनो ताप पामे एटले राजपुरुष रीशाणा थका अनितावणानिके० पर स्त्री गमन करनार पुरुषना अग्नी सहित तेना शरीरना नडथुआ करे नविय के० वांशला साथे तेना शरीर त्राबीने तेवार पबी खारसिंचणाइंच के० क्षारनुं सीचवुं करे, एटले लुणक्षेप पामे ॥२१॥ अड के० अथवा कस्सणासबेदंके० कान अने नाशिकानुं बेदन पामे. कंठबेदणं तितिरकंती के० कंठनुं बेदन पोताना कर्मना उदये सहन करे एरीते इब के० अंहीं मनुष्य लोकने विषे पण पावसंतत्ता के० पापे करी संतप्त एवी विटंबना पामे, तथापि नयबिंतिके० एमनकहे जे पुणोके० हवे वली हुं एवो अनाचार नकाहिंतिके० नही करुं एम विचारी विरति पणु अंगीकार करे नही॥२२॥

॥ दीपिका–स्त्रीसंबंधे रागिणां हस्तपादबेदाद्यपि अथ वर्ध्रमांसोत्कर्तनमपि तेजसाग्निनाऽभितापनानि स्त्रीसंबंधिभिर्नृपुरुषैर्नटित्रकाण्यपि क्रियंते। पादारिकास्तथा शस्त्रैश्छित्वा क्षारोदकसेचनानि प्राप्यंते ॥ २१ ॥ कर्णनासिकाबेदमपि कंठबेदनं च तितिक्षंते सहंते। इति एवं प्रकारेणात्रैव मनुष्यजन्मनि पापसंतप्तामहावेदनामनुनवंति नच ब्रुवते एवं पुनर्न करिष्यामइति ॥ २२ ॥

॥ टीका–सांप्रतमिह लोकएव स्त्रीसंबंधविपाकं दर्शयितुमाह। (अविहबेत्यादि) स्त्रीसंपर्कोहि संसार्गिणां हस्तपादबेदनाय नवति। अपिः संनावने। संनाव्यतएतन्मोहातुराणां संबंधाद्धस्तपादबेदादिकं अथवा वर्ध्रमांसोत्कर्तनमपि तेजसाग्निनाऽभितापनानि स्त्रीसंबंधिनिरुत्तेजितैराजपुरुषैर्नटित्रकाण्यपि क्रियंते पादारिकास्तथा वास्यादिना तक्षयित्वा क्षारोदकसेचनानि च प्रापयंतीति ॥२१॥ अपिच। (अडकस्सेत्यादि) अथ कर्णनासिकाबेदं तथा कंठबेदनं च तितिक्षंते स्वकृतदोषात्सहंते इत्येवं बहुविधां विडंबनामस्मिन्नेव मानुषे च जन्मनि पापेन पापकर्मणा संतप्तानरकातिरिक्तां वेदनामनुनवंतीति। नच पुनरेतदेवंनूतमनुष्ठानं नकरिष्यामइति ब्रुवतइत्यवधारयंतीति यावत्। तदेवमैहिकामुष्मिकाडुःखविमंबनाअप्यंगीकुर्वंति न पुनस्तदकरणतया निवृत्तिं प्रतिपद्यंतइति नावः ॥ २२ ॥

सुतमेत मेवमेगेसिं, इबीवेदेतिहु सुयरकायं॥ एवंपि ता वदित्ताणं
अडुवा कम्मणा अव करेंति ॥ २३ ॥ अन्नं मणेण चिंतेति, वा
या अन्नंच कम्मणा अन्नं॥ तम्हा णसद्दाहिंनिक्खू, बहुमायाउ
इबिउ णच्चा ॥ २४ ॥

अर्थ–श्रीसुधर्मस्वामी कहेबे के एवंके० ए जे पूर्वे स्त्रीना संबंधनुं फल कह्युं. ते, नगवंत

वल पाखंम तेणे करी ते स्त्री साधुने समीप आवे अहमंसिसाहम्मिणीय समणाणं के० हुंश्रमण माहात्मानी सामिणीबुं, एवा प्रपंच करी साधुने धर्मथकी त्रष्ट करे तेना उपर दृष्टांत कहेछे. जहा के० जेम जतुकुंने के० लाखनो घडो ते उवज्जोइ के० अग्नी समीपे गलीने पाणी रूप थाय, तेम विडविके० पंमित होय तेपण संवासेके० स्त्रीने संवासे संसर्गे करी सीएज्जाके० सीदाय सीतल विहारी थाय तो अन्य जननुं केवुंज शुं? ॥ २६ ॥

॥ दीपिका–युवतिर्मायया श्रमणं ब्रूयाद्विचित्रवस्त्राणि परिधायालंकृतशरीरेत्यर्थः। अहं गृहपाशाद्विरता मह्यं पतिर्नरोचते परित्यक्ताहं च तेन ततश्चरिष्यामि रूक्षं संयमं। मे म महेत्नयत्रातर्धर्ममाख्याहि ॥ २५ ॥ अनेन प्रवादेन छलेन अथवा स्त्री साधुसमीपमागछे तु अहं श्राविका अहंश्रमणानां सधर्मिणी एवं मायया समीपमागत्य कूलवालकमिव साधुं धर्माद्भ्रंशयति। यडुक्तं। तज्ज्ञानं तच्च विज्ञानं तत्तपः सच संयमः ॥ सर्वमेकपदे त्रष्टं सर्वथा किमपि स्त्रियः ॥ १ ॥ यथा जतुकुंनोज्योतिःसमीपे उपज्योतिर्वर्ती विलीयते ए वं योषितां संवासे विद्वानपि विषीदेत शीतलविहारी नवेत् ॥ २६ ॥

॥ टीका–किंचान्यत्। (जुवईत्यादि) युवतिरनिनवयौवना स्त्री विचित्रवस्त्रालंकारवि नूषितशरीरा मायया श्रमणं ब्रूयात्। तद्यथा। विरताहं गृहपाशान्नममानुकूलोनर्ता मह्यं चासौ नरोचते परित्यक्ता चाहं तेनेत्यतश्चरिष्यासि धर्ममाचक्षाणेति । अस्माकं हेत्नयत्रात यथाहमेवं डुःखानां नाजनं ननवामि तथाधर्ममावेदयेति ॥ २५ ॥ किंचान्यत् । (अड साविएइत्यादि) अथवाऽनेन प्रवादेन व्याजेन साध्वंतिकं योषिडुपसर्पेत। यथाहं श्राविके ति कृत्वा युष्माकं श्रमणानां साधर्मिणीत्येवं प्रपंचेन नेदीयसी नूत्वा कूलवालुकमिव साधुं धर्माद्भ्रंशयति। एतडुक्तं नवति योषित्सान्निध्यं ब्रह्मचारिणां महतेऽनर्थाय । तथा चोक्तं। तज्ज्ञानं तच्च विज्ञानं, तत्तपः सच संयमः॥ सर्वमेकपदे त्रष्टं सर्वथाकिमपि स्त्रियः॥ १॥ अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतमाह । यथा जातुषः कुंनोज्योतिषोग्नेः समीपे व्यवस्थितवपज्यो तिर्वर्ती विलीयते डवत्येवं योषितां संवासे सान्निध्ये विद्वानप्यास्तांतावदितरोयोपि विदि तवेद्योसावपि धर्मानुष्ठानं प्रति विषीदेत शीतलविहारी नवेदिति ॥ २६ ॥

जतुकुंने जोइ उवगूढे, आसु नितत्ते णासमुवयाइ ॥ एविह्नियाहिं अ णगारा, संवासेण णासमुवयंति ॥ २७ ॥ कुव्वंति पावगं कम्मं, पुठावेगे वमाहिंसु ॥ नोहं करेमि पावंति, अंके साइणी ममेसत्ति ॥ २८ ॥

अर्थ–जतुकुंनेके० जेम लाखनो घडो जोइके० अग्नियें उवगूढेके० आलिंग्यो बतो आसुके०

मेकेषां स्वाख्यातं नवति लोकश्रुतिपरंपरया चिरंतनाख्यासु वा परिज्ञातं नयति। तथास्त्रि यं यथावस्थितस्वनावतस्तत्संबंधविपाकतश्च वेदयति ज्ञापयतीति स्त्रीवेदोवैशिकादिकं स्त्रीस्वनावाविर्नावकं शास्त्रमिति। तडुक्तं। डुर्ग्राह्यं हृदयं यथैव वदनं यद्दर्पणांतर्गतं, नाव: पर्वतमार्गडुर्गविषमः स्त्रीणां न विज्ञायते ॥ चित्तं पुष्करपत्रतोयतरलं नैकत्र संतिष्ठते, नार्योनाम विषांकुरैरिव लतादोषैः समं वर्धिताः ॥ १ ॥ अपिच। सुठुविजयासुसुठुविपियासुसुठुलङ्पसरासु ॥ अडईसु महिलियासु य,वीसंनोनेवकायव्वो ॥ १ ॥ उन्नेज अंगुलीसोपुरिसोसयलंमि जीवलोयम्मि। कामेतएणनारी, जेणनपत्ताइ डुःखाइं ॥ २ ॥ अहएयाणंपगई, सव्वस्सकरेंतिवेमणास्सइं। तस्सणकरेंतिणवरं, जस्सअलंचेवकामेहिं ॥३॥ किंच कार्यमहं न करिष्यामीत्येवमुक्त्वापि वाचा (अडुवत्ति) तथापि कर्मणापि क्रिययाऽपकुर्वंतीति विरूपमाचरंति। यदि वाऽग्रतः प्रतिपाद्यपि शास्तुरेवापकुर्वंतीति ॥२३॥ सूत्रकारएव तत्स्वनावाविष्करणायाह। (अस्सुंमणेणेत्यादि) पातालोदरगंनीरेण मनसा न्यच्चितयंति तथाश्रुतमात्रपेशलया विपाकदारुणया वाचा अन्यद्भापंते। तथाकर्मणानुष्ठानेनान्यन्निष्पादयंति यतएवं बहुमायाः स्त्रियइति। एवं ज्ञात्वा तस्मात्तासां निकुः साधुर्न श्रद्दधीत तत्कृतया माययात्मानं न प्रतारयेत् दत्तावैशिकवत्। अत्र चैतत्कथानकं। दत्तावैशिकएकया गणिकया तैस्तैः प्रकारैः प्रतार्यमाणोपि तां नेष्टवान् ततस्तयोक्तं किं मया दौर्नाग्यकलंकांकितया जीवंत्या प्रयोजनमहंत्वत्परित्यक्ताऽग्निं विशामि ततोसाववोचत् मायया इदमप्यस्ति वैशिके तदाऽसौ पूर्वं सुरंगामुखे काष्ठसमुदयं कृत्वा तं प्रज्वाल्य तत्रानुप्रविश्य सुरंगया गृहमागता। दत्तकोपि इदमपि चास्ति वैशिके इत्येवमसौ विलपन्नपि व्रातिकैश्चितायां प्रक्षिप्तस्तथापि नासौ तासु श्रद्धानं कृतवानेवमन्येनापि नश्रद्धातव्यमिति ॥ २४ ॥

जुवती समणं बूया, विचित्तलंकारवत्थगाणि परिहित्ता ॥ विरता चरिस्सहं रुक्खं, धम्ममाइक्ख णे नयंतारो॥२५॥ अड साविया पवाएणं, अहमंसि साहम्मिणीय समणाणं॥जतुकुंने जहा उवज्जोई, संवासे विडुविसीएज्जा॥२६॥

अर्थ—विचित्तलंकार वत्थगाणि परिहित्ताके० विचित्र प्रकारना आनूषण अने वस्त्र पेहेरी विनूषावंत शरीर करी, जुवती के० कोइक नव यौवना स्त्री अनिराम मायाकरी समणं के० साधुप्रत्ये बूया के० बोले के हे साधु हुं विरता के० घरना पाश थकी विरक्त थइबुं, माहारो नर्तार माहारी साथे नलो नथी, अथवा ए नर्तार मने रुचतोनथी अथवा ए नर्तारे मने मूकी दीधीछे, तेकारणे चरिस्सहं रुक्खं के० हुं संयम आचरीश, तेमाटे नयंतारो के० अहो नय थकी राखनार धम्ममाइक्खणे के० तमे अमने धर्म कहो,॥२५॥ अड पवाएणंके० अथवा अन्य प्रवादे सावियाके० हुं तमारी श्राविकाछुं एवुं

अर्थ–बालस्स के० अज्ञानीनी एबीजी मंदयं के० मूर्खता जाणवी; केमके एकतो अकार्य करवा थकी चोथा व्रतनो भंग थायछे ने बीयं के० बीजो जंचकडं के० जे अनाचार कीधो तेने अवजाणई के० उलववे करी मृषावाद बोले तेथकी बीजाव्रतनो भंग थाय, तेमाटे उज्जो के० वली वली सेके० ते पुरुष डुगुणंकरेईपावं के० बमणुं पाप करे, ते सावास्ते करे, तेनुं कारण कहेछे. पूयणकामो पूजा सत्कारनो अभिलाषी असंयमनुं विसन्नेसि के० गवेषणहार थको मनमां एम जाणे जे माहारो लोकोमां अवर्णवाद थशे. तेमाटे अनाचारने छाना राखे ॥ २९ ॥ संलोकणिज्जमणगारं के० संलोकनीय एटले सुंदराकार एवा साधुने देखीने. आयगयं के० आत्मगत जाणी कोइएक स्त्री निमंतणेण के० निमंत्रणा पूर्वक आहंसु के० एम कहे के ताय के० अहो छकायना रक्षपाल वछंच के० वस्त्र वली पायं के० पात्र वा के० अथवा अन्नंपाणगं के० अन्न पाणी जे कांइ आपने खप होय ते पडिग्गहे के० अमारे घेर आवीने लेजो ॥ ३० ॥ जे उत्तम साधु होय ते ए पूर्वोक्त आमंत्रणने णीवारमेवं बुझे के० व्रीहीना कण समान जाणीने णोइछेअगारमागंतुं के० एवा घेरने विषेजवुं आववुं वांछे नही. जो कदापि कोइएक साधु तेवा घरे जाय तो ते बद्धेविस यपासेहिं के० विषयरूप पाशे करी बंधाणो छतो पुणो के० वली वली मोहमावज्जइ के० मोहने आवर्त्ते पडे एटले मोहने वश थको चित्तनुं आकुल व्याकुलपणुं पामे; मंद के० ते मूर्ख स्नेहरूप पास त्रोडवाने असमर्थ होय माटे दुःखी थाय. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत जाणवो. ॥ ३१ ॥ इति चतुर्थाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः

॥दीपिका–बालस्याऽज्ञस्य द्वितीयं मंदत्वं । प्रथममज्ञत्वमेकं तावदकार्यकरणेन तुर्यव्रतविलोपोद्वितीयं तदपलपनेन मृषावादः । तदेवाह । यत्कृतमकार्यमपजानीते अपलपति सएवंभूतोद्विगुणं पापं करोति । किमर्थमपलपतीत्याह । पूजनकामुकः सत्काराभिलाषी मामे लोकेऽवर्णवादः स्यादित्यकार्यं प्रछादयति । विषस्रोऽसंयमस्तमेषितुं शीलमस्य सविषसैषी ॥ २९ ॥ संलोकनीयं रूपवंतमनगारमात्मगतमात्मज्ञं काश्चन स्वैरिण्यो निमंत्रणपूर्वमाहुरुक्तवत्यः । तथाहि । हेत्रायिन् साधो वस्त्रं पात्रं चान्नापानादिकं वा यत्तव विलोक्यते तत्त्वस्मद्गृहमागत्य प्रतिगृहाण लाहि ॥३०॥ वस्त्रादिदानं नीवारतुल्यं बुध्येत जानीयात् । यथा नीवारेण च व्रीहिणा मृगादिर्वशमानीयते एवंसाधुरप्यामंत्रणेन वशमानीयते अतस्तं नेछेदगारं गृहं गंतुं बद्धश्च विषयदामभिर्विषयपाशैर्मोहं चित्ताकुलत्वमापद्यते मंदोमूढइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥३१॥ इति चतुर्थाध्ययने प्रथमोद्देशकः ॥

॥ टीका–किंच (बालस्येत्यादि) । बालस्याज्ञस्य रागद्वेषाकुलितस्यापरमार्थदृशए

शीघ्र नितत्तेके० तेना तापेकरी णासमुवयातिके० विनाश पामे, एटले लाख बधीगली जाय. ए वके०एरीते इत्थियाहिंके० स्त्रीने संवासेणके० संवासे करीने अणगाराके०साधु पण ते लाख नीपेरे णासमुवयंतिके० संयम थकी विनाश पामे ॥२७॥ कुव्वंतिपावगंकम्मंके० कोइएक साधु अनाचारी मोहना उदय थकी न्रष्ट थको मैथुनसेवादिरूप पापकर्म करे, तेने पुछा वेगे वमाहिंसु के० कोइ एक आचार्यादिके पुछ्यो थको एम कहे, जे नोहंकरेमिपावं ति के० हुं एवुं पाप कर्म नकरुं अंकेसाइणी ममेसत्ति के० ए स्त्रीतो मारे दीकरी स मानछे, ए जेवारे न्हानी हती तेवारे माहरे खोले सयन करती, ते अन्यासे हमणा पण माहारा खोलामां बशेछे, सयन करेछे, परंतु हुं प्राणांते पण व्रतन्नंग करुं नही. ॥२८॥

॥ दीपिका–यथा जतुषः कुंनोज्योतिषाऽग्निनोपगूढोव्याप्तआशु अनितप्तोना शमुपयाति एवं स्त्रीनिः सार्धं संवसनेनाऽनगारानाशमुपयांति संयमाद्भ्रश्यंति ॥ २७ ॥ स्त्रीष्वासक्ताः पापं कर्म कुर्वंति न्रष्टाः संयमादेके आचार्यादिना चोद्यमानाएवमाहुर्वक्ष्य माणमुक्तवंतः। नाहमेवंनूतकुलप्रसूतः पापमकार्यं करिष्यामि ममैषा डुहितृतुल्या पूर्वमंके शायिनी आसीत् तदेषा पूर्वान्यासान्मयि एवमारचयति । नपुनरहं प्राणांतेपि व्रतन्नंगं विधास्य इति ॥ २८ ॥

॥ टीका–एवं तावत्स्त्रीसान्निध्ये दोषान् प्रदर्श्य तत्संस्पर्शजं दोषं दर्शयितुमाह । (ज उकुंनेत्यादि) यथा जातुषः कुंनोज्योतिषाग्निनोपगूढः समालिंगितोनितप्तोग्निनानिमु ख्येन संतापितः क्षिप्रं नाशमुपैति डवीनूय विनश्यत्येवं स्त्रीनिः सार्धं संवसनेन परिनो गेनानगारानाशमुपयांति सर्वथा जातुषकुंनवत् व्रतकाविन्यं परित्यज्य संयमशरीराद्भ्रश्यं ति॥२७॥अपिच।(कुर्वंतीत्यादि) तासु संसारानिष्वंगिणीष्वनिसक्ताअवधीरितैहिकामुष्मि कापायाःपापं कर्म मैथुनासेवनादिकं कुर्वंति विदधति। परिन्रष्टाः सदनुष्ठानादेके केचनोत्कट मोहाआचार्यादिना चोद्यमानाएवमाहुर्वक्ष्यमाणमुक्तवंतः। तद्यथा।नाहमेवंनूतकुलप्रसूतः एतदकार्यं पापोपादानन्नूतं करिष्यामि ममैषा डुहितृकल्पा पूर्वमंकेशयिनीआसीत् तदेषा पूर्वा न्यासेनैव मय्येवमाचरति नपुनरहं विदितसंसारस्वन्नावः प्राणात्ययेपि व्रतन्नंगं विधास्यइति.

बालस्स मंदयं बीयं, जंच कम्मं अवजाणई नुज्जो ॥ डुगुणं करे इ से पावं, पूयणकामो विसन्नेसी ॥२९॥ संलोकणिज्जमणगारं, आयगयं निमंतणेणाहंसु ॥ वछंच ताय पायंवा, अन्नं पाणगं पडिग्गहे ॥ ३० ॥ णीवारमेवं बुझेज्जा, णोइछे अगारमागं तुं ॥ बद्धे विसयपासेहिं, मोहमावज्जइपुणो मंदित्तिबेमि ॥३१॥ इति इछी परिन्नाए पढमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

पाम्यो बतो(मुच्छितंके०)स्त्रीने विषे मूर्च्छित एवो(भिरकूके०)यति तथा (काममतिवट्टंके०) कामभोग उपरे मति अभिलाषनुं प्रवर्त्तावबुंछे जेमने एवा साधुने ते स्त्री एम कहेके(प लिभिंदियाणंके०) में माहारा कुलशीलनी मर्यादा अतिक्रमीने माहारो आत्मा तुजने दीधोछे इत्यादिक वचन कहीने ते यतिने पोताने वश करे (पच्छाके०) तेवारपछी को इएक प्रकारे ते स्त्रीने रीशाणी जाणीने ते बापडो ते स्त्रीने पगे पोतानुं मस्तक लगाडे तेवारे ते पुरुषने एवो वश थयो देखीने ते स्त्री (पाउद्धट्टुछिके०) पोतानो पग उंचो उ पाडीने माबा पगे करी ते द्रव्यलिंगी यतिना मस्तकने विषे (पहणंतिके०) प्रहार करे तोपण जे काम भोगनेविषे गृद्ध होय ते मूर्ख स्त्रीथकी विरचे नहि. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथ द्वितीयआरभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं ॥ (उएति) उजएकोरागद्वेषर हितः सदास्त्रीषु न रागं कुर्यात् यद्यपि कर्मोदयाद्भोगाभिलाषी भवेत्तथापि पुनस्ताभ्योविर ज्येत । कोर्थः। कर्मोदयात् प्रवृत्तमपि चित्तं ज्ञानांकुशेन निवर्तयेत् । तथाश्रमणानां भोगाइती र्यविर्मबनैवेति शृणुत यूयं। यडुक्तं मुंडंशिरइत्यादि पूर्ववत् । तथान्यैरप्युक्तं ॥ कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुच्छविकलः क्षुधाक्षामोजीर्णः पिठरककपालार्दितगलः॥ व्रणैः पूयक्लि न्नैः कृमिकुलशतैराविलतनुः शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हंत्येव मदनइत्यादि । यथा अधर्मीणोभिक्षवोप्येके भोगान् भुंजते तथाग्रे वक्ष्यतीति ॥१॥ अथ तं साधुं भेदं शील भेदं चारित्रस्खलनमापन्नं प्राप्तं स्त्रीमूर्छितं।तुर्विशेषणे । पुनः किंभूतं । कामेषु इच्छामद नेषु मतिर्बुद्धिर्वर्तते यस्य स काममतिवर्तस्तमेवंविधं भिक्षुं परिभिद्य मया कुलशीलमर्या दामतिक्रम्य तवात्मा अर्पितस्त्वंतु अकिंचित्करइत्यादिवचनान्युच्चार्य याः पादंचरणमु द्धृत्य उर्ध्वीकृत्य साधोर्मूर्ध्नि प्रघ्नंति प्रहारं ददति एवं विडंबयंति ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तः प्रथमोद्देशकः सांप्रतं द्वितीयः समारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः। इहा नंतरोद्देशके स्त्रीसंस्तवाच्चारित्रस्खलनमुक्तं स्खलितशीलस्य या अवस्था इहैव प्राडुर्भवति तत्कृतकर्मबंधश्च तदिह प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबधेनायातस्योद्देशकस्यादिसूत्रं (उएस याइत्यादि) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रसंबंधोवक्तव्यः सचायं संबंधोविषयपाशैर्मोहमा गच्छति यतोऽतउजएकोरागद्वेषवियुतः स्त्रीषु रागं न कुर्यात् । परंपरसूत्रसंबंधस्तु संलो कनीयमनगारं दृष्ट्वा च यदि काचिद्योषित् साधुमशनादिना नीवारकल्पेन प्रतारयेत्तत्रौजः सन्न रज्येतेति । तत्रौजोद्रव्यतः परमाणुर्भावतस्तु रागद्वेषवियुतः । स्त्रीषु रागादिहैव वक्ष्य माणनीत्या नानाविधाविर्मबनाभवंति तत्कृतश्च कर्मबंधस्तद्विपाकाच्चामुत्र नरकादौ तीव्रावेदनाभवंति । यतोऽतएतन्मत्वा भावोजः सन् सदा सर्वकालं वाऽनर्थखनिषु स्त्रीषु न रज्येत । तथा यद्यपि मोहोदयात् भोगाभिलाषी भवेत्तथाप्यैहिकामुष्मिकापायान्

तद्द्वितीयं मांद्यं । अज्ञत्वमेकं तावदकार्यकरणेन चतुर्थव्रतभंगो द्वितीयं तदपलपनेन मृषावादः । तदेव दर्शयति । यत्कृतमसदाचरणं भूयः पुनरपरेण चोद्यमानोऽपजानीतेऽपलपति नैतन्मयाकृतमिति सएवंभूतोऽसदनुष्ठानेन तदपलपनेन च द्विगुणं पापं करोति । किमर्थमपलपतीत्याह । पूजनं सत्कारपुरस्कारस्तत्कामस्तदभिलाषी मामेलोके अवर्णवादः स्यादित्यकार्यं प्रच्छादयति । विषण्णोऽसंयमस्तमेषितुं शीलमस्येति विषण्णेषी ॥ २९ ॥ किंचान्यत् (संलोकणिज्जमित्यादि) संलोकनीयं संदर्शनीयमाकृतिमंतं कंचनानगारं साधुमात्मनि गतमात्मगतमात्मज्ञमित्यर्थः । तदेवंभूतं काश्चन स्वैरिण्योनिमंत्रणेन निमंत्रणपुरःसरमाहुरुक्तवत्यः।तद्यथा । हेशयिन् साधो वस्त्रं पात्रमन्य द्वा पानादिकं येन केनचिद्भवतः प्रयोजनं तदहं भवते सर्वं ददामीति मद्गृहमागत्य प्रतिगृहाण त्वमिति ॥ ३० ॥ उपसंहारार्थमाह (णीवारमित्यादि) एतद्योषितां वस्त्रादिकमामंत्रणं नीवारकल्पं बुध्येत्त जानीयात् । यथाहि नीवारेण केनचिद्भक्ष्यविशेषेण सूकरादिर्वशमानीयते एवमसावपि तेनामंत्रणेन वशमानीयते अतस्तं नेछेदगारं गृहं गंतुं।यदि वा गृहमेवावर्तोगृहावर्तोग्रहं भ्रमस्तं नेछेत् नाभिलषेत् । किमिति । यतोबद्धोवशीकृतोविषयाएव शब्दादयः पाशरज्जुबंधनानि तैर्बद्धः परवशीकृतः स्नेहपाशानपत्रोटयितुमसमर्थः सन्मोहं चित्तव्याकुलत्वमागछति किंकर्तव्यमूढोभवति पौनःपुन्येन मंदोऽज्ञोजडइति ।इति परिसमाप्तौ। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ इतिस्त्रीपरिज्ञायां प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

हवे चोथा अध्ययननो बीजो उद्देशो प्रारंभियें छैयें पहेला उद्देशामां स्त्रीना परिचय थकी चारित्रनो विनाश थायछे एम कह्युं. हवे बीजा उद्देशामां जे साधु शील थकी पडे तेने जे विटंबना थाय ते कहेछे.

उएसया णरज्जेज्जा, भोगकामी पुणोविरज्जेज्जा ॥ भोगे समणाण सुणेह,
जह भुंजंति भिक्खुणो एगे ॥१॥ अह तं तु भेदमावन्न, मुछितं भिक्खूका
ममतिवट्टं ॥ पलिभिंदियाणं तो पछा, पाडुद्धट्टुमुद्धि पहाणंति ॥ २ ॥

अर्थ–(उएसयाके०)चारित्रिउ एकाकी राग द्वेषरहित होय ते साधु स्त्रीने विषे सदा काल(णरज्जेज्जाके०)नराचे, (भोगकामीपुणोके०) कदापि कर्मोदय थकी भोगाभिलाषी थाय; तो वली विरज्जेज्जाके० विरचे केमके गृहस्थने पण जे भोगछे,ते विटंबनाप्रायछे, तेथी ते पण विरचेछे तो, साधुने भोगनी विटंबनानुं केवुंजथुं तेकारण माटे (भोगेसमणाण सुणेहके०)साधुना भोग केवा विटंबना प्रायछे ते सांभलो(जहके०)जेम (भुंजंति भिक्खुणो एगेके०)धर्मना जाण एवा कोइक साधु भोगवे ते आगल कहेछे. ॥१॥(अहके०)हवे(तंके०)ते साधु(तुके०)विशेषेकरी स्त्रीना परिचय थकी(भेदंके०)शीलना विनाशने(आवन्नके०)

रा आदेशो प्रवर्त्तिश इत्यादिक वचने करी विश्वास उपजावीने ते स्त्री जे करे ते कहेछे ॥ ३ ॥ (अह के०) अथ एटले हवे णं वाक्यालंकारे एवा वचने करी (साके०) ते साधु (होईनवलछो के०) स्त्रीने वश थाय एम ते स्त्री पोताने वश थयो जाणीने (तो के०) तेवारपछी तेने (पेसंतिततहाभूएहिं के०) तथा नूत एटले तेवाज अनेक कर्मकरना कार्य करवा मोकले एटले दासनी पेरे कार्य करवानी आज्ञा आपे ते कार्य कया ते देखाडेछे (अलाउछेदं के०) तुंवडुं छेदवाने अर्थे शस्त्रो (पेहाहि के०) जोइए ते लावो के जे शस्त्रे करी तुंबिपात्रादिक समारियें तथा (वग्गुफलाइं आहराहित्ति के०) रुडा नालियरादिकना फल लइ आवो ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–केशाविद्यंते यस्याः सा केशिका। णंवाक्यालंकारे। हेनिक्षो यदि मया स्त्रिया केशिकया सह त्वं नोविहरेः । यदि मया सह नोगान् भुंजानोव्रीडां वहसि तदा केशा नप्यहंलुंचिष्याम्यपनेष्यामि । आस्तांतावद्भूषणादिकमित्यपेरर्थः । अस्योपलक्षणादन्यदपि डुष्करं विदेशगमनादि सर्वमहं करिष्यामि त्वं पुनर्मया रहितोनान्यत्र चरेः ॥ ३ ॥ णं वाक्यालंकारे । अथ ससाधुराकारेंगितैस्तया उपालब्धः स्ववशइति ज्ञातस्तदा तं तथा नूतैर्दासव्यापारैः प्रेषयति नियोजयति । तथाहि । अलावु तुंबं छिद्यते येन तदलावुछेदं पि प्पलकादिशस्त्रं प्रेक्षस्व निरूपय येन शस्त्रेण पात्रादेर्मुखं क्रियते । तथा वल्गूनि शोजनानि नालिकेरादीनि त्वं आहर आनय । अथवा देशनादिरूपया यानि लज्यंते तानि वाक्फ लानि वस्त्राहारादीनि तान्यानय ॥ ४ ॥

॥ टीका–अन्यच्च (जइइत्यादि) केशाविद्यंतेयस्याः सा केशिका । णमितिवाक्यालं कारे। हेनिक्षो यदिमया स्त्रिया नार्यया केशवत्या सह नोविहरेस्त्वं सकेशया स्त्रिया नो गान् भुंजानोव्रीडां यदि वहसि ततः केशानप्यहंत्वत्संगमाकांक्षिणी लुंचिष्याम्यपने ष्यामि । आस्तां तावदलंकारादिकमित्यपिशब्दार्थः। अस्य चोपलक्षणार्थत्वादन्यदपि डुष्क रं विदेशगमनादिकं तत्सर्वमहं करिष्ये त्वं पुनर्न मया रहितोनान्यत्र चरेः। इदमुक्तं नवति मया रहितेन नवता क्षणमपि नस्थातव्यमेतावदेवाहं नवंतं प्रार्थयामि अहमपियन्नवा नादिशति तत्सर्वं विधास्यइति ॥ ३ ॥ इत्येवमतिपेशलैर्विश्रंनजननैरापातनइकै रालापैर्विश्रंनयित्वा यत्कुर्वंति तद्दर्शयितुमाह । (अहणमित्यादि) अथेत्यानंतर्या र्थः । णमिति वाक्यालंकारे । विश्रंनालापानंतरं यदासौ साधुर्मदनुरक्तइत्येवमुपलब्धोनव त्याकारैरिंगितैश्चेष्टया वा मद्वशगइत्येवं परिज्ञातोनवति तानिः कपटनाटकना यिकानिः स्त्रीनिस्ततस्तदनिप्रायपरिज्ञानाडत्तरकालं तथानूतैः कर्मकरव्यापारैरपशब्दैः

परिगणय्य पुनस्तान्योविरज्येत । एतडुक्तं नवति । कर्मोदयात्प्रवृत्तमपि चित्तं हेयोपादेयपर्यालोचनया ज्ञानांकुशेन निवर्तयेदिति । तथा श्राम्यंति तपसा खिद्यंतीति श्रमणास्तेषामपि नोग इत्येतत्शृणुत यूयं । एतडुक्तं नवति । गृहस्थानामपि नोगा विडंबनाप्रायायतीनांतु नोगा इत्येतदेव विडंबनाप्रायं किंपुनस्तत्कृतावस्थाः । तथाचोक्तं । मुंमं शिरइत्यादि पूर्ववत् । यथा यथा च नोगानेकेऽपुष्टधर्माणोनिक्तवोयतयोविडंबनाप्रायान् नुंजते तथोद्देशकसूत्रेणैव वक्ष्यमाणेनोत्तरत्र महता प्रबंधेन दर्शयिष्यामि । अन्यैरप्युक्तं । कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुछविकलः, क्षुधाक्षामोजीर्णः पिठरककपालार्दितगलः ॥ व्रणैः पूयक्लिन्नैः कृमिकुलशतैराविलतनुः शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हंत्येव मदनः इत्यादि ॥ १ ॥ नोगिनां विडंबनां दर्शयितुमाह । (अहेत्यादि) अथेत्यानंतर्यार्थः । तुशब्दोविशेषणार्थः स्त्रीसंस्तवादनंतरं निकुं साधुं नेदं शीलनेदं चारित्रस्खलनमापन्नं प्राप्तं संतं स्त्रीषु मूर्छितं गृद्धमध्युपपन्नं । तमेव विशिनष्टि । कामेष्विछामदनरूपेषु मतेर्बुद्धेर्मनसोवा वर्तनं प्रवृत्तिर्यस्यासौ काममतिवर्तः कामानिलाषुकइत्यर्थः । तमेवंनूतं परिनिद्य मदस्युपगतः श्वेतकृष्णप्रतिपन्नोमद्वशकइत्येवं परिज्ञाय यदिवा परिनिद्य परिसार्यात्मसात्कृतं चोच्चार्येति । तद्यथा । मया तव लुंचितशिरसोजल्लमलाविलतया डुर्गंधस्य जुगुप्सनीयकक्षावक्षोबस्तिस्थानस्य कुलशीलमर्यादालज्जाधर्मादीन्परित्यज्यात्मादत्तस्त्वं पुनरकिंचित्करइत्यादि नणित्वा प्रकुपितायास्तस्याअसौ विषयमूर्छितस्तत्प्रत्यापनार्थं पादयोर्निपतितः । तथाचोक्तं । व्यानिन्नकेसरबृहच्छिरसश्च सिंहा,नागाश्च दानमदराजिकृशैः कपोलैः ॥ मेधाविनश्च पुरुषाः समरेच शूराः स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषानवंति ॥ १ ॥ ततोविषयेष्वेकांते न मूर्छितइति परिज्ञानात्पश्चात्पादं निजवामचरणमुद्धृत्योत्क्षिप्य मूर्ध्नि शिरसि प्रघ्नंति ताडयंत्येवं विमंबनां प्रापयंतीति ॥ २ ॥

जइ केसिआ णं मए निस्कु, णोविहरे सह ण मिडीए॥ केसाणविह लुंचिस्सं नन्नड मए चरिज्जासि ॥ ३ ॥ अहणं सहोई उवलझो, तो पेसंति तहानूएहिं ॥ अलाउछेदं पेहेहिं, वग्गुफलाइं आहराहित्ति ॥ ४ ॥

अर्थ—वली कोइक स्त्री एवी माया करे के (जइके०) जो तमे (केसिआके०) केसवंती एवी णंवाक्यालंकारे (मएके०) माहारा सहित विहार करताथका शंका पामताहो तो (निस्कूके०) अहो साधु तमे (णोविहरेसहणमिडीएके०) केशवाली स्त्रीनी साथे विहार करशो नहीं (केसाणविहके०) केशनेपण हुं (लुंचिस्सुंके०) लोच करीने दूर करीश. अपि शब्द थकी अन्य जे कांइ तमे कहेशो ते सर्व हुं करीश पण (नन्नडमएचरेज्जासि के०) माहारा विना तमे अन्य स्थानके विचरशो नही एटली वीनती करुंहुं ते मान्य करो. हुं पण तमा

॥ टीका-अपिच (दारूणीत्यादि) यथा दारूणि काष्ठानि शाकं पक्ववस्तुजातादिकं त्रप शाकं तत्पाकार्थं।क्वचिदन्नपाकायेति पाठस्तत्रान्नमोदकादिकमिति । रात्रौ रजन्यां प्रद्योतो वा भविष्यतीति कृत्वा अतोऽटवीतस्तमाहरेति । तथा पात्राणि पतद्ग्रहादीनि रंजय लेपय येन सुखेनैव भिक्षाटनमहं करोमि ।यदिवा पादावलक्तकादिना रंजयेति । तथा प रित्यज्यापरं कर्म तावदेह्यागच्छ मे मम पृष्ठमुत्प्राबल्येन मर्दय बाधते ममांगमुपवि ष्टायाअतः संहारय पुनरपरं कार्यशेषं करिष्यसीति ॥ ५ ॥ किंच (वत्थाणियमेइत्यादि) वस्त्राणिच अंबराणि मे मम जीर्णानि वर्ततेऽतः प्रत्युपेक्षस्वान्यानि निरूपय । य दिवा मलिनानि रजकस्य समर्पय मडुपधिंवा मूषिकादिभयात्प्रत्युपेक्षस्वेति । तथा अन्नपा नादिकमाहरानयेति तथा गंधं कोष्ठपुटादिकग्रंथिं वा हिरण्यं तथा शोभनं रजोहरणं तथा लोचं कारयितुमहमशक्तेत्यतः काश्यपं नापितं मच्छिरोमुंडनाय श्रमणानुजानीहि येनाहं बृहत्केशानपनयामीति ॥ ६ ॥

अडु अंजणिं अलंकारं,कुक्कययंमे पयच्छाहि ॥ लोध्धंच लोध्धकु
सुमंच, वेणुपलासियंच गुलियंच ॥ ७ ॥ कुठं तगरंच अगरुं, सं
पिठं सम्मं उसिरेणं॥ तेल्लं मुहभिंजाए, वेणुफलाइं सन्निधानाए ॥८॥

अर्थ-(अडुके०)अथवा हवे प्रकारांतरे गृहस्थना उपकरण कहीदेखाडेछे (अंजणिंके०) काजलनुं भाजन लावो तथा (अलंकारंके०) घरेणानुं भाजन लावो तथा (कुक्कययंके०) खुंखणो आणी आपो तथा(पयच्छाहिके०)घुघुरा विणा (मेके०) मुजने लावी आपो जेम हुं सर्व आभरण पेहेरीने तमने विनोद उपजावुं तथा (लोध्धंचलोध्धकुसुमंचके०) लोध्र अने लोध्रना फल तथा (वेणुपलासियंचके०) वंशनी लाकडी आणी आपो जेने वाम हाथे ग्रहणकरी भावाहाथे वीणा वजाडिये तथा (गुलियंचके०) औषधगुटिका एटले औषधनी गोली लावी आपो जेणेकरी हुं सदा यौवनाभिराम थकी रहुं ॥७॥ कुठंअगरं तगरंचके०) कुष्ट ते पुटादिक तथा अगर अने तगर रूडावास सुगंध द्रव्य (संपिठं स म्मउसिरेणंके०) एसर्ववस्तु उसिरजे वालो ते सहित पीसेली एवी सुगंध लइ आवो(तेल्लं मुहभिंजाएके०) तथा औषधादिके संस्कार्युं एवुं तैल मुखना अभ्यंगने अर्थे लइ आ वो जे थकी माहारो मुख सतेज देखाय तथा (वेणुफलाइं सन्निधानाएके०) वांसना करंडीआ पेटी प्रमुख वस्त्रालंकारादिक राखवाने अर्थे लइ आवो. ॥ ८ ॥

॥दीपिका-अथ अंजनिकां कज्जलाधारभूतां नलिकां अलंकारं केयूरादिकं च मे प्रयच्छ देहि (कुक्कययं) खुखंणक प्रयच्छयेनाहं वीणाविनोदेन त्वां रंजयामि लोध्रं लोध्रंकुसुमं सुगंधं तथा (वेणुपलासिअत्ति) वंशात्मिका लक्षाष्टिका सा दंतैर्वीणाव द्वाद्यते तथौषधगुटिकां

प्रेपयंति नियोजयंति । यदिवा तथानूतैरिति लिंगस्थयोग्यैर्व्यापारैः प्रेपयंति तानेवदर्शयितुमाह् । (अलाउत्ति) अलाबु तुंबं छिद्यते येन तदलाबुछेदं पिप्पलकादि शस्त्रं (पेहाहित्ति) प्रेक्षस्व निरूपय लजस्वेति येन पिप्पलकादिना लब्धेन पात्रादेर्मुखादि क्रियतइति । तथा वग्गूनि शोजनानि फलानि नारीकेरादीनि अलाबुकानिवा त्वमाहरानयेति । यदिवा वाक्फलानिच धर्मकथारूपायाव्याकरणादिव्याख्यानरूपायावा वाचोयानि फलानि वस्त्रादिलाजरूपाणि तान्याहरेति ॥ ४ ॥

दारूणि साग पागाए, पज्जोउ वा नविस्सती राउ ॥ पाताणिय मे रयावेहि, एहि तामे पिछउ मद्दे ॥५॥ वछाणिय मे पडिलेहेहिं, अन्नं पाणंच आहराहित्ति ॥ गंधंच रउहरणं च कासवगं मे समणुजाणाहि ॥ ६ ॥

अर्थ—(दारूणिसाग पागाएके०) दारुण एटले काष्ठ शाकपत्र एटले वत्थुलादिक रांधवाने अर्थे लावो (वाके०) अथवा (पज्जोउके०) प्रद्योत एटले अजवालुं (राउके०) रात्रीनेविषे (नविस्सतीके०) थाय ते वास्ते तैलादिक लावो. तथा (पाताणिय मेरयाहिके०) माहारा पात्राने रंगी आपो के जेणे करी हुं सुखे निक्षा मांगी आहारादिक लावुं अथवा माहारा पग रंगवाने अर्थे रंग लइ आवो तथा (एहितामे पिछउमद्देके०) अहीं आवो माहारा अंगडुःखेछे माटे माहारी पीठे मर्दन करो एम कहे ॥ ५ ॥ (वछाणियमेपडिलेहेहिंके०) माहारा वस्त्र प्रतिलेखो एटले जूनं जुना थयाछे, माटे बीजा नवा आणी आपो, तथा मलीन थयाछे तेने धोवरावो तथा (अन्नंपाणंच आहराहित्तिके०) अन्न पाणी आणी आपो तथा (गंधंचके०) सुगंध कर्पूरादिक लइ आवो, अथवा ग्रंथ ते हिरण्यादिक लावो तथा (रउहरणंचके०) रजोहरण सारो आणी आपो तथा (कासवगंमेसमणुजाणाहिके०) हुंलोच करावी शकुं तेम नथी तेमाटे मस्तक नइ कराववा एटले वृद्धकेश उतारवाने अर्थे नावीने तडी लावो एटला उपकरण वेषधारीना कह्या ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—दारूणि काष्ठानि शाकंच पाकायानय । रात्रौ रजन्यां प्रद्योतोनविष्यतीति रात्रावपि वनादौ गत्वाऽ नय । तथा पात्राणि नाजनानि मे रंजय लेपय येनाहं सुखं निक्षां मार्गये । अथवा पादौ रंजय अलक्तकादिना । एहि आगछ साधो तावन्मेम म पृष्ठं मर्दय विश्रमणां कुरु बाधते ममांगमिति ॥ ५ ॥ वस्त्राणि मे जीर्णानि वर्त्तंते अतस्तानि प्रत्युपेक्षस्व अन्यानि निरूपय अन्नपानादिकं चाहारमानय गंधं वासादिकं ग्रंथंवा हिरण्यादिकं शोजनं रजोहरणंच । अहं लोचं कारयितुमसमर्थो ततः काश्यपं नापितं अनुजानीहि येनाहं शिरोमुंडयामि ॥ ६ ॥

इत्यादिक लावो (तिलगकरणं के०) जेणेकरी गोरोचननुं तिलक करियें तेवी शलि लावो तथा (अंजण के०) जेणेकरी आंख आंजीयें एवी (सलागं के०) शिलाका लावो (घिंसुमेविहूयणंविजाणेहिं के०) उन्हालो जे ग्रीष्मकाल विशेष ते दिवशे वायु ढोलवाने अर्थे वींजणो लावो ॥ १० ॥

॥दीपिका–नंदीचूर्णं उपग्रलक्षणचूर्णं प्राहार प्रकर्षेणानय आतपस्य वृष्टेर्वारणाय छत्रमुपानहौ च ममानुजानीहि। तथा शस्त्रं दात्रादिकं सूपछेदाय पत्रशाकछेदनार्थं देहि तथा नीलं वस्त्रं रंजय। उपलक्षणाद्रक्तादिकं च कारय॥ए॥ सुष्टु फण्यते क्वाथ्यते तक्रादिकं यत्र सा सुफणि स्थाल्यादिनाजनं तत् शाकपाकार्थमानय। आमलकानि पित्तोपशमाय नक्षणार्थं स्नानार्थंवा उदकाहरणं च जलाहरणपात्रं । उपलक्षणाद्घृतादिपात्रमानय । सर्वं गृहोपस्करमानय । तथाहि । तिलकं क्रियते यया सा तिलककरणी अंजनशलाका यया तिलकः क्रियते तामानय तथा ग्रीष्मे उष्णतापे मम विधूनकं व्यजनकं विजानीहि ॥ १० ॥

॥टीका–किंच। (नंदीचुस्सगाईइत्यादि) नंदीचुस्सगाइति द्रव्यसंयोगनिष्पादितोपग्रलक्षणचूर्णोनिधीयते। तमेवंभूतं चूर्णं प्रकर्षेण येन केनचित्प्रकर्षेणाहरानयेति तथाऽऽतपस्य वृष्टेर्वासंरक्षणाय छत्रं तथोपानहौ च ममानुजानीहि। नमे शरीरमेनिर्विनावर्तते ततोददस्वेति। तथा शस्त्र दात्रादिकं सूपछेदनाय पत्रशाकछेदनार्थं ढौकयस्व। तथा वस्त्रमंबरं परिधानार्थं गुलिकादिना रंजय यथा नीलमीषन्नीलं सामस्त्येन वा नीलं नवत्युपलक्षणार्थत्वाद्रक्तं यथा नवतीति ॥ ए ॥ तथा । (सुफणिंचेत्यादि) सुष्टु सुखेन वा फण्यते क्वाथ्यते तक्रादिकं यत्र तत्सुफणि स्थालीपिठरादिकं नाजनमनिधीयते तच्छाकपाकार्थमानय । तथा आमलकानि धात्रीफलानि स्नानार्थं पित्तोपशमनायाभ्यवहारार्थं वा तथौदकमाह्रियते येन तडदकाहरणं कुटवर्धनिकादि । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद्घृततैलाद्याहरणं स वैं वा गृहोस्करं ढौकस्वेति । तिलकः क्रियते यया सा तिलककर्णी दंतमयी सुवर्णात्मिका वा शलाका यया गोरोचनादियुक्तया तिलकः क्रियतइति । यदिवा गोरोचनया तिलकः क्रियते साच तिलककर्णीत्युच्यते । तिलकाः क्रियंते पिष्यंते वा यत्र सा तिलककर्णीत्युच्यते । तथांजनं सौवीरकादि । शलाका अक्ष्णोरंजनार्थं शलाका अंजनशलाका तामाहरेति। तथा ग्रीष्मे उष्माभितापे सति मे मम विधूनकं व्यजनकं विजानीहि ॥ १० ॥

संडासगंच फणिहंच, सीहलि पासगंच आणाहि ॥आदसगंच पयच्छाहि, दंतपरकालणं पवेसाहि ॥ ११ ॥ पूयफलं तंबोलयं, सूई सुत्तगंच जाणाहि ॥ कोसंयमोचमेहाए, सुप्पुक्खलगंच खारगालणंच ॥ १२ ॥

तादृशीं देहि येनाहमविनष्टयौवना नवामीति ॥ ७ ॥ कुष्ठमुत्पलं तगरमगरंच सुगंधिद्रव्यमुशीरेण वीरणमूलेन संपिष्टं सुगंधि स्याद्यतस्तत्तथा कुरु । तैलं मुखमाश्रित्य (निलिंजएत्ति) अभ्यंगाय ढौकय मुखाभ्यंगार्थं तैलं तथाविधमानयेत्यर्थः । वेणुफलानि वंशकार्याणि करंमकादीनि सन्निधानं वस्त्रादेर्व्यवस्थापनं तदर्थमानय ॥ ८ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (अडुअंजणीमित्यादि) अथशब्दोऽधिकारांतरप्रदर्शनार्थः । पूर्वं लिंगस्थोपकरणान्यधिकृत्याभिहितमधुना गृहस्थोपकरणान्यधिकृत्याभिधीयते । तद्यथा (अंजणीमिति) अंजणिकां कज्जलाधारभूतां नलिकां मम प्रयच्छस्वेत्युत्तरत्र क्रिया । तथा कटककेयूरादिकमलंकारं वा तथा (कुक्कुटयंति) खुंखुणकं मे मम प्रयच्छ येनाहं सर्वालंकारविभूषिता वीणाविनोदेन भवंतं विनोदयामि । तथा लोध्रं च लोध्रकुसुमं च । तथा (वेणुफलासियंति) वंशात्मिका श्लक्ष्णत्वक् काष्ठिका सा दंतैर्वामहस्तेन प्रगृह्य दक्षिणहस्ते नवीणावद्वाद्यते । तथौषधगुटिकां तथाभूतामानय येनाहमविनष्टयौवना भवामीति ॥ ७॥ तथा (कुट्ठमित्यादि) कुष्ठमुत्पलकुष्ठं तथाऽगरुं तगरंच एते द्वेअपि गंधिकद्रव्ये । एतत्कुष्ठादिकमुशीरेण वीरणीमूलेन संपिष्टं सुगंधि भवति यतस्तत्तथा कुरु, तथा तैलं लोध्रकुंकुमादिना संस्कृतं मुखमाश्रित्य (भिलिंजएत्ति) अभ्यंगाय ढौकयस्व । एतदुक्तं भवति । मुखाभ्यंगार्थं तथाविधं संस्कृतं तैलमुपाहरेति येन कांत्युपेतं मे मुखं जायते (वेणुफलाईति) वेणुकार्याणि करंडकपेटिकादीनि सन्निधिः सन्निधानं वस्त्रादेर्व्यवस्थानं तदर्थमानयेति ॥ ८ ॥

नंदीचुस्रगाइं पाहराहिं, बत्तोवाणहंच जाणाहिं ॥ सत्थंच सूवछेज्जाए आणीलंच वत्थयं रयावेहि ॥ ए ॥ सुफणिंच साग पागाए, आमलगाइंदगाहरणंच ॥ तिलगकरणिमंजणसलागं, घिंसु मेविहूणयं विजाणेहि ॥ १० ॥

अर्थ—(नंदीचुस्रगाहिं पाहराहिंके०)इव्यसंयोगे नीपजाव्युं एवुं नंदीचूर्ण ते उष्ठ रंगवाने अर्थे कोइक प्रकारे लावो (बत्त के०) आताप तथा वृष्टी राखवा नणी छत्र लावो तथा (उवाणहंचजाणाहिंके०) उपानह जे मोजडी प्रमुख ते पग राखवाने अर्थे सम्यक् प्रकारे लावो (सत्थंचसुवछेज्जाएके०) दात्रादिक शस्त्र नीलाशाक पत्रादिक छेदवाने अर्थे लावो (आणीलंचवत्थयंरयावेहिके०) नीला वस्त्र रंगावी आपो लालवस्त्र रंगावी आपो एरीते वचन कहे ॥ ए ॥ (सुफणिंचसागपागाए के०)रुडी हांमली पत्रशाक अन्नादिक पकाववाने अर्थे लावो तथा (आमलगाइंके०) पित्तोपशमाववाने अर्थे अथवा स्नान करवाने अर्थे आमला लावो (दगाहरणंच के०) पाणी राखवाने अर्थे घडो घडूलो

चंदालगंच करगंच, वच्चघरंच आउसो खणाइ ॥ सरपायं च जायाए, गोरहगंच सामणे राए ॥ १३ ॥ घडिगंच सडिंडिमयंच, चेलगोलं कुमारजूयाए ॥ वासं समन्निआवसं, आवसहंच जाण जत्तंच ॥ १४ ॥

अर्थ-(चंदालगंच के०) देवपूजाने अर्थे चंगेरी प्रमुख जाजन तथा (करगंचके०) करुउं मदिरानुं जाजन ते आणी आपो तथा (वच्चघरंचआउसोखणाहिके०) अहो आयुष्मन् संचारुखण एटले पुरिष विष्टा घरमां नपडे माटे घरने नलीया संचारो तथा कूइ खणावो वली (सरपायंचजायाएके०) शरपात एटले धनुष्य बाण पुत्र रमाडवाने अर्थे लइ आवो (गोरहगंचसामणेराए के०) गोरहगं एटले त्रण वर्षनो बलदीउ श्रमणना पुत्रने अर्थे रमत करवासारुं लइ आवो ॥१३॥(घडिगंचसडिंडिमयंचके०) घडिगं एटले कूल्हाडी सडिंडिम एटले वाजिंत्रविशेष तेणसहित तथा (चेलगोलंके०)गोलदडी(कुमारजूयाएके०)कुमरक्रीडाने अर्थे लइ आवो जे दडीयें करी माहारा बालक रमत करे (वासंसमन्निआवन्नंके०) तथा हेश्रमण वर्षाकाल आव्यो ते कारणे (आवसहंचके०) वर्षाकालमां निवास करवा योग्य घर करावी आपो के जे थर्कंप्रकंपेएँ नही तथा (जाणजत्तंचके०) तेवर्षाकाल योग्य एटले वर्षाकालमां वेग खाइयें एमे शर्शांडुलादिक लइ आवोः ॥१४॥

॥ दीपिका-चंदालकं देवतार्चनाद्यर्थं ताम्रमयं जाजनं एतच्च मथुरायां चंदालगमित्युच्यते। करकोजलाधारोमद्यजाजनं वा आनय । तथा वर्चोगृहं पुरीपोत्सर्गस्थानं आयुष्मन् खन संस्कुरु । शरपातं वाणक्षेपस्थानं धनुस्तज्जाताय मत्पुत्राय राय ढौकय । गोरहगं त्रिवर्षं वलीवर्दं वाऽनय श्रमणस्यापत्यं श्रामणिस्तस्मै श्रामणये गंत्र्यादिकृते नविष्यतीति ॥ १३ ॥ घटिकां मृन्मयकुल्लडिकां सडिंडिकां पटहादिवादित्रेण सह गोलं कंडुकं कुमारजूताय कुल्लकरूपाय मत्पुत्राय क्रीडार्थं देहि। हे श्रमण वर्षं प्रावृट्कालोयमन्यापन्नः समापन्नः । प्रातस्ततश्चावसथं गृहं वर्षाकालयोग्यं नक्तं च तंडुलादिकं च जानीहि निष्पादय । येन सुखेन वर्षाकालोतिवाह्यते । यदुक्तं । मासैरष्टभिरह्ना च पूर्वेण वयसाऽयुपा ॥ तत्कर्तव्यं मनुष्येण यस्यांते सुखमेधते ॥ १४ ॥

॥टीका-किंचान्यत्(चंदालगंचेत्यादि)चंदालकमिति देवतार्चनिकाद्यर्थं ताम्रमयं जाजनं। एतच्च मथुरायां चंदालकत्वेन प्रतीतमिति । तथा करकोजलाधारोमदिराजाजनं वा तदानयेति क्रिया। तथा वर्चोगृहं पुरीपोत्सर्गस्थानं तदा ऽयुष्मन् मदर्थं खन संस्कुरु। तथा शराइपवः पात्यंते क्षिप्यंते येन तच्छरपातं धनुस्तज्जाताय मत्पुत्राय कृते ढौकय । तथा (गोर

अर्थ- (संमासकं के०) चीपीउं जेणेकरी नाशिकाना नीमाला खूचीए काढीए तेने संमासक कहिए वली (फणिहंचके०) कांसकी जेणेकरी माथाना वाल समारिए ते तथा (सीहलिपासगंचआणाहि के०) वेणी बांधवाने अर्थे ऊननी कांकशी ए वस्तुउं आणी आपो (आदसगंचके०) आदर्शकं आसमंतात् दृश्यते आत्मा यस्मिन् स आदर्शः जेणे करी मुख वर्णादिक रूप शरीर देखाय तेने आरीशो कहिए ते (पयच्छाहिके०) आणी आपो (दंतपरकालणंपवेसाहिके०) दंतप्रक्षालन करवाने अर्थे दातण माहारा समीपे ला वो ॥११॥ (पूयफलंके०) पुंगफलते सोपारी (तंबोलयंके०) नागरवेलीना पानना बीडा प्रमुख तथा (सूईसुत्तगंचजाणाहिके०) सूत्र शीववाने अर्थे सूई ए वस्तुउं लइ आवो (कोसंयके०) घटादिक भाजन (मोचमेहाएके०)मोचप्रस्रवणंतेनमेहसेचन एटले लघुनीति करवा निमित्त रात्रीने समये मने बाहेर निकलता बीक लागेछे तेमाटे ते भांजन आणी आपो (सुप्पुके०) तंडुलादिक धान सोधवाने अर्थे सुपडुं लावो (खलगंचके०) धान खांम वाने अर्थे उखलो लइ आवो वली (खारगालणंचके०) जेमां नाखीने साजी प्रमुख खार गालीयें ते पात्र लावो अथवा लवणादिक खार लावो ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—संडासिकं नासिकाकेशोत्पाटनं फणिहं केशसमारचनाय कंकतकं सीहलिपा सकं वीणासंयमनार्थमूर्णामयं कंकणं चानय आदर्शकं दर्पणं प्रयच्छ दंतप्रक्षालनं दंतकाष्ठं मर्दंतिके प्रवेशय ॥११॥ पूगफलं तांबूलं सूचीसूत्रं च जानीहि देहि। कोशं घटादिभाज नं मोचमेहायानय । मोचः प्रस्रवणं तेनमेहः सेचनं तदर्थं भाजनमानय । तथा शूर्पं तंडुलादिशोधनं उदूखलं क्षारस्य सर्जिकादेर्गलनकं चानयेति ॥ १२ ॥

॥ टीका—एवं (संमासगंचेत्यादि) संडासिकं नासिकाकेशोत्पाटनं फणिहं केशसं यमानार्थं कंकतकं तथा (सीहलिपासगंति) वीणासंयमनार्थमूर्णामयं कंकणं चानय ढौ कयेति । एवमासमंतादृश्यते आत्मा यस्मिन् सआदर्शः सएवआदर्शकस्तं प्रयच्छ ददस्वे ति। तथा दंताः प्रक्षाल्यंते अपगतमलाः क्रियंते येन तद्दंतप्रक्षालनं दंतकाष्ठं तन्मदंतिके प्रवेशयेति ॥ ११ ॥ (पूयफलंचेत्यादि) पूगफलं प्रतीतं तांबूलं नागवल्लीदलं तथा सू चीं च सूत्रं च सूच्यर्थं वा सूत्रं जानीहि ददस्वेति तथा कोशमिति वारकादिभाजनं तन्मो चमेहाय समाहर । तत्र मोचः प्रस्रवणं कायिकेत्यर्थः । तेन मेहः सेचनं तदर्थं भाजनं ढौकय। एतडुक्तं भवति । बहिर्गमनं कर्तुमहमसमर्था रात्रौभयादतो मम यथारात्रौ ब हिर्गमनं न भवति तथा कुरु । एतच्चान्यस्याप्यधमतमकर्तव्यस्योपलक्षणं डष्टव्यं । त था शूर्पं तंडुलादिशोधनं तथोदूखलं तथा किंचन क्षारस्य सर्जिकादेर्गालनकमित्येवमा दिकमुपकरणं सर्वमप्यानयेति ॥ १२ ॥

न्निः पुरुषाः कर्मकराइवादिश्यंते ॥ १५॥ जातः पुत्रः सएव फलं गृहस्थानां तस्मिन् पुत्रे समुत्पन्ने तडुद्देशेन याविमंबनास्ताआह । अमुं दारकं गृहाण त्वं रमे अहंतु व्यापारवती अथवा एनं जहाहि परित्यज नाहमस्य वार्तामपि पृछामि । कुपिता पुनः साब्रूते मयायं नवमासानुदरेणोढस्त्वंतु उत्संगेपि नधत्से एवमुक्तोनरस्तडुक्तं सर्वं कुरुते । यतः । ददाति प्रार्थितः प्राणान्, मातरं हंति तत्कृते ॥ किं न दद्यात्किं न कुर्यात्स्त्रीन्निरन्यर्थितोनरः ॥१॥ ददाति शौचपानीयं पादौ प्रक्षालयत्यपि ॥ श्लेष्माणमपि गृण्हाति स्त्रीणां वशगतोनरः ॥ २ ॥ अथ पुत्रपोषिणस्ते नराएके नारवहाः स्युः । यथातु उष्ट्राजारं वहंति तत्तुल्याः ॥ १६ ॥

॥ टीका–एवंच (पाउल्लाइति) मौंजे काष्ठपाडुके वा संक्रमणार्थं पर्यटनार्थं निरूपय यतोनाहं निरावरणपादा नूमौपदमपि दातुं समर्थेति । अथवा पुत्रे गर्न्नस्थे दोहदः पुत्रदौहदः अंतर्वर्त्तीफलादावन्निलाषविशेषस्तस्मै तत्संपादनार्थं स्त्रीणां पुरुषाः स्ववशीकृता दासाइव क्रयक्रीताइवाज्ञाप्याआज्ञापनीयान्नवंति । यथा दासाअलज्जितैर्योग्यत्वादाज्ञाप्यंते एवं तेपि वराकाः स्नेहपाशावपाशिताविषयार्थिनः स्त्रीन्निः संसारावतरणवीथीन्निरादिश्यंतइति ॥ १५ ॥ अन्यच्च । (जाएफलेइत्यादि) जातः पुत्रः सएव फलं गृहस्थानां । तथाहि । पुरुषाणां कामन्नोगः फलं । तेषामपि फलं प्रधानकार्यं पुत्रजन्मेति । तडुक्तं । इदं तत्स्नेहसर्वस्वं, सममाढ्यदरिद्रयोः ॥ अचंदनमनौशीरं, हृदयस्यानुलेपनं ॥१॥ यत्तत्रपनिकेत्युक्तं, बालेनाव्यक्तन्नाषिणा ॥ हित्वा सौख्यं च योगं च तन्मे मनसि वर्तते ॥ २ ॥ यथा लोके पुत्रसुखं नाम द्वितीयं सुखमात्मनइत्यादि । तदेवं पुत्रः पुरुषाणां परमान्युदयकारणं तस्मिन् समुत्पन्ने जाते तडुद्देशेन या विडंबनाः पुरुषाणां न्नवंति । अमुं दारकं गृहाण त्वमहंतु कर्मासक्ता न मे ग्रहणावसरोस्ति । अथचैनं जहाहि परित्यज नाहमस्य वार्तामपि पृछाम्येवं कुपितासती ब्रूते मयायं नवमासानुदरेणोढस्त्वं पुनरुत्संगेनाप्युद्वहन् स्तोकमपिकालमुद्विजसइति । दासदृष्टांतस्त्वादेशदानेनैव साम्यं नजते नादेशनिष्पादनेनैव । तथाहि । दासोन्नयाडुद्न्नादेशं विधत्ते सतु स्त्रीवशगोऽनुग्रहं मन्यमानोमुदितश्च तथादेशं विधत्ते । यदेव रोचते मह्यं, तदेव कुरुते प्रिया । इतिवेत्ति न जानाति तत्प्रियं यत्करोत्यसौ ॥ १ ॥ ददाति प्रार्थितः प्राणान् मातरं हंति तत्कृते ॥ किं नदद्यात्किं न कुर्यात्स्त्रीन्निरन्यर्थितो नरः ॥ २ ॥ ददाति शौचपानीयं, पादौ प्रक्षालयत्यपि ॥ श्लेष्माणमपि गृण्हाति स्त्रीणां वशगतो नरः ॥३॥ तदेवं पुत्रनिमित्तमन्यद्वा यत्किंचिन्निमित्तमुद्दिश्य दासमिवादिशंति । अथ तेपि पुत्रान् पोषितुं शीलं येषांते पुत्रपोषिणउपलक्

हगंति) ञ्यहायणं बलीवर्दं च ढौकयेति (सामणेराएत्ति) श्रमणस्यापत्यं श्रामणिस्तस्मै श्रामणिपुत्राय त्वत्पुत्राय गंत्र्यादिकृते नविष्यतीति॥१३॥तथा (घटिगंचेत्यादि) घटिकां मृन्मयकुल्लुडिकां डिंडिमेन पटहकादिवादित्रविशेषेण सह तथा (चेलगोलंति) वस्त्रात्मकं कंडुकं कुमारनूताय कुल्लकनूताय राजकुमाररूपाय वा मत्पुत्राय क्रीडनार्थमुपानयेति। तथा वर्षमिति प्रावृट्कालोयमन्यापन्नोऽन्निमुखं समापन्नोऽतआवसथं गृहं प्रावृट्कालनिवासयोग्यं तथा नक्तंच तंडुलादिकं तत्कालयोग्यं जानीहि निरूपय निष्पादय।येन सुखेनैवाऽनागतपरिकल्पितावसथादिना प्रावृट्कालोतिवाह्यतेऽइति। तडुक्तं । मासैरष्टनिरह्ना च, पूर्वेण वयसाऽऽयुषा ॥ तत्कर्तव्यं मनुष्येण, यस्यांते सुखमेधते ॥ १४ ॥

आसंदियंच नवसुत्तं, पाउल्लाइं संकमट्ठाए ॥ अडु पुत्तदोहलट्ठाए,
आणप्पा हवंति दासावा ॥ १५ ॥ जाए फले समुप्पन्ने, गेण्हसुवाणं
अहवा जहाहि ॥ अहं पुत्तपोसिणो एगे, नारवहा हवंति उट्टावा॥१६

॥ अर्थ-(आसंदियंचके०) बेशवानिमित्ते मांची आणी आपो पणते केवी लावो के जे (नवसुत्तंके०) नवासूत्रे वणी होय अथवा चर्म थकी वणी होय तेवी लइ आवो (पाउल्लाइं संकमट्ठाए के०) वरसादमां चालतां पगे कादव नलागे तेना अर्थे काष्ठनी पावडी माहारा सारुं आणी आपो (अडुके०) अथवा (पुत्तदोहलट्ठाएके०) गर्नस्थें पुत्रना मोहोला संपादवाने अर्थे वस्तुउलावो एम(आणप्पाहवंतिदासावाके०)आज्ञापेनवंतिदासाइव एटले स्त्री जेछे ते पुरुषने पोतानी आज्ञामां प्रवर्त्तावे स्नेह पाशे बंधाणा एवा विषयार्थी पुरुष स्त्रीना दास थाय ॥१५॥ (जाएफलेसमुप्पन्नेके०) हवे जात एटले गृहवासनेविषे पुत्ररूप फल उत्पन्न थया छता जे विटंबनाउ थाय ते कहेछे, (गेण्हसुवाणं अहवाजहाहिके०) कोइक स्त्री गृहना कार्ये व्याकुल थई थकी पुरुष प्रत्ये कहे के ए बालक तमे संनालो अथवा एनो त्याग करो (अहंके०)हुं एनी वेठ करी शकती नथी में नवमाश सुधी उदरे धस्यो अने तमे क्षणमात्र पण पुत्रने खोलामां लेता नथी; एम क्रोधना वचन बोले तेवारे (एगेके०) कोइएक पुरुष आक्रोशतांये (पुत्तपोसिणोके०) स्त्रीनो वशवर्त्ती थको पुत्रनो पोषक थाय (नारवहा हवंति उट्टावाके०) जेम उंटनो नारवाहक जेटलो नार उंट उपर नाखे तेटलो नार आरडतो थकोउपाडे तेम ते पुरुष पण स्त्रीनीपाशेउंटतुल्य जाणवा॥१६

॥ दीपिका-आसंदिकां मंचिकां ।किंनूतां। नवं सूत्रं वल्कलादि यस्यां सा नवसूत्रा तां (पाउल्लाइं) मौंजकानि काष्ठपाडुकावा संक्रमणार्थं पर्यटनार्थं अथवा पुत्रे गर्नस्थिते दोहदोछेदस्तदर्थं स्त्रीणां पुरुषाआज्ञापनीयाः स्युः । यथा दासाआज्ञाप्यंते जनैस्तथा स्त्री

॥ टीका–किंचान्यत् (राउविइत्यादि) रात्रावप्युत्थिताः संतोरुदंतं दारकं धात्रीवत् सं स्थापयंत्यनेकप्रकारैरुल्लापैः । तद्यथा । सामिउसणीगरस्स यणक्कउरस्सय हत्थकप्पगिरि पट्टणसीहपुरस्स चउणयस्स भिन्नस्सय कुच्छिपुरस्सयकस्रकुज्जछायामुहसोरियपुरस्स य इत्येवमादिभिरसंबद्धैः क्रीडनकलापैः स्त्रीचित्तानुवर्तिनः पुरुषास्तत् कुर्वंति येनोपहा स्यतां सर्वस्य व्रजंति । सुष्टु न्हीर्लज्जा तस्यां मनोंतः करणं येषांते सुन्हीमनसोलज्जालवो पि ते संतोविहाय लज्जां स्त्रीवचनात्सर्वजघन्यान्यपि कर्माणि कुर्वते । तान्येव सूत्रावयवेन दर्शयति । वस्त्रधावकावस्त्रप्रक्षालकाहंसाइव रजकाइव भवंति । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद न्यदप्युदकवहनादिकं कुर्वंति ॥ १७ ॥ किमेतत्केचन कुर्वंतीति येनैवमभिधीयते बाढं कु र्वंतीत्याह । (एवं बहुइत्यादि) एवमिति पूर्वोक्तं स्त्रीणामादेशकारणं पुत्रपोषणवस्त्रधा वनादिकं तद्वहुभिः संसाराभिष्वंगिभिः पूर्वं कृतं कृतपूर्वं । तथापरे कुर्वंति करिष्यंति च ये भोगकृते कामभोगार्थमैहिकामुष्मिकापायमपर्यालोच्याभिमुख्येन भोगानुकूल्येनापन्नाव्य वस्थिताः सावद्यानुष्ठानेषु प्रतिपन्नाइति यावत् । तथा योरागांधः स्त्रीवशीकृतः सदासवदर्श कितान्निस्ताभिः प्रत्यपरेपि कर्मणिनियोज्यते । तथा वागुरापतितः परवशोमृगइव धार्यते ना त्मवशोभोजनादिक्रियापि कर्तुं लभते । तथा प्रेष्यइव कर्मकरइव क्रीतइव वर्चः शोधनादा वपि नियोज्यते। तथा कर्तव्याकर्तव्यविवेकरहिततया हिताहितप्राप्तिपरिहारशून्यत्वात् पशु भूतइव । यथाहि पशुराहारभयमैथुनपरिग्रहाभिज्ञएवं केवलमसावपि सदनुष्टानरहितत्वा त्पशुकल्पः।यदिवा स स्त्रीवशगोदासमृगप्रेष्यपशुभ्योप्यधमत्वान्न कश्चित् । एतदुक्तं भवति सर्वाधमत्वात्तस्य तत्तुल्यं नास्त्येव येनासावुपमीयते । अथवा न सकश्चिदित्युभयभ्रष्टत्वा त् । तथाहि न तावत्प्रव्रजितोसौ सदनुष्ठानरहितत्वान्नापिगृहस्थस्तांबूलादिपरिभोगरहि तत्वाल्लोचिकामात्रधारित्वाच्च।यदिवा ऐहिकामुष्मिकानुष्ठायिनां मध्ये न कश्चिदिति ॥१८॥

एवं खु तासु विन्नप्पं, संथवं संवासंच वज्जेज्जा॥ तज्जातिआ इमे कामा वज्जकराय एवमरकाए॥१९॥ एवं भयं णसेयाय, इइ से अप्पगं निरुं भित्ता ॥ णोइत्थि णोपसू, भिरकुणो सयं पाणिणा णिलज्जेज्जा ॥२०॥

अर्थ–हवे उपदेश कहेछे (एवंखुत्तासुविन्नप्पंके०) एम जे पूर्वोक्त स्त्रीनो विनव्यो मायानुं कारण जाणीने (संथवंके०) तथा तेनुं संस्तव (संवासंचके०) तेनुं संवास एटले भेखुं व शवुं तेने उत्तमपुरुष (वज्जेज्जाके०) वर्जे त्याग करे (तज्जातिआइमेकामा के०) त ज्जाति एटले ते स्त्रीना संग थकी छे उत्पत्ति जेनी एवा ए प्रत्यक्ष कामभोग ते (वज्ज करायएवमरकाए के०) अवद्यकराएवमाख्यातं एटले पापकर्म कारी दुर्गतिना दातार

णार्थेत्वाऽस्य सर्वादेशकारिणएके केचन मोहोदये वर्तमानाः स्त्रीणां निदेशवर्तिनोऽपह स्तितैहाकामुष्मिकापायाउष्ट्राइव परवशान्नारवाहानवंतीति ॥ १६ ॥

राउवि उठिया संता, दारगंच संठवंतिधाईवा ॥ सुहिरामणा विते संता वत्थधोवा हवंति हंसावा ॥ १७ ॥ एवं बहुहिं कए पुवं, भोगठाए जेभि यावन्ना ॥ दासे मिइव पेसेवा ॥ पसुभूतेव से ण वा केइ ॥ १८ ॥

अर्थ-(राउवि उठियासंता के०) रात्रने विषे पण निद्रामांथी उठीने बालक रडतो होय तेने राखे बालकने रमाडे कोनीपेरे तो के (दारगंचसंठवंतिधाईवाके०) रुदंतं दारकं धात्रीवत् संस्थापयंति एटले धात्रीनी पेरे राखे जेम धात्री बालकने रुडीरीते पाले तेम ते पुरुष पण बालकने पाले (सुहिरामणावितेसंताके०) कदापि ते पुरुष सुहिराम एटले घणो लज्जावंत होय तोपण स्त्रीने वचने निर्लज्ज थाय (वत्थधोवा हवंति हंसावा के०) हंस एटले धोबीनी पेरे स्त्रीना तथा बालकना वस्त्र धोवे तथा बीजापण जेकांइ कार्य कहे ते सर्व दासनी पेरे करे ॥१७॥ (एवंके०) ए पूर्वोक्त प्रकारे स्त्रीनुं किंकरपणुं (पुवंके०) पूर्वे अतीत कालने विषे (बहुहिंके०) घणा पुरुषोए (कएके०) कर्युं अने वर्त्तमान काले पण स्त्रीनुं दासत्वपणुं घणा पुरुषो करेछे तथा आगमिक काले पण करशे (भोगठाएजेभियावन्ना के०) भोगने अर्थे जे अभिमुख एटले संमुख थया तेना ए हवाल थाय एवा रागांध पुरुषजे स्त्रीने वश वर्त्ते थयाते (दासेके०)दास समान तथा (मिइव के०) पाशमां पडेला मृग समान तथा (पेसेवाके०)वेचातो लीधेलो चाकर ते समान तथा (पसुभूतेवसेणवाकेइ के०) तिर्यंच समान पण न कहेवाय किंबहुना ते कोइ सरीखान कहेवाय एवो कोइ पदार्थ नथी के जेनी उपमा एवा अधमने आपीने तेनी तुल्यना करी बतावीए. ते पुरुष सत्क्रिया थकीरहित माटे साधुपण नही अने तांबुलादिक परिभोग थकी रहित माटे गृहस्थ पण न कहेवाय माटे उभय भ्रष्ट जाणवा. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका-रात्रावप्येके नराउत्थाय धात्रीवत्तं रुदंतं दारकं बालं संस्थापयंति । सुष्ठुन्ही र्लज्जा तस्यां मनो येषांते सुन्हीमनसोलज्जावंतोपि संतोलज्जां त्यक्त्वा स्त्रीवशगाहीनकर्माण्यपि कुर्वंति । तान्येवाह । वस्त्रधावकावस्त्रप्रक्षालकाः स्युः । यथा हंसारजकाइव । अस्योपलक्षणादन्यदपि जलवहनादि कुर्वंति ॥ १७ ॥ एवं पूर्वोक्तं बहुभिर्नरैः पूर्वकृतं कृतपूर्वं भोगकृतये नराअभ्यापन्नाव्यवस्थिताः सावद्यकार्येषु सक्ताः । तथा योरागांधः सदासइव मृगइव मूर्खोहीनकर्मण्यपि प्रेष्यते योज्यते पशुभूतः स न कश्चित् । न दीक्षितः सत्क्रिया रहितत्वात् । नापिगृहस्थः तांबूलादिभोगरहितत्वात् अतोऽसौ नकश्चित् ॥ १८॥

भिक्खू ॥ तम्हा अज्झत्थविसुद्धे सुविमुक्के, आमोरकाए परिव्वएज्जा सि(पाठां तरं विहरे आमुरकाए)त्तिबेमि॥२२॥इति श्रीइत्थी परिन्ना चतुर्थाध्ययनं समत्तं

अर्थ-(सुविसुद्धलेसेके०) शुद्ध निर्मल लेश्यावंत चित्तनो व्यापारछे जेनो एवो (मेहावी के०) पंमित ते (परकिरियंचके०) परनी करेली स्त्रियादिकसंबंधीनी क्रिया अथवा जोगने अर्थे परने हाथे पोताने विषे स्पर्शादिक जे क्रिया कराववी तेने (वज्जएनाणीके०)ज्ञानवंत पुरुष मने वचने अने कायाये करवुं कराववुं ने अनुमोदवुं एम त्रिविधे वर्जे अर्थात् काम जोगने टाले तथा(सव्वफाससहे अणगारेके०)अन्य सर्व शीतादिक परिसह जे कह्याछे तेने ते अणगार स्पर्शे थको सहे एटले सहन करे ॥२१॥ (इच्चेवमाहु सेवीरेके०) एम ए पूर्वोक्त समस्त उपदेश श्री माहावीर देवे आहु एटले कह्योछे ते श्रीमाहावीर परमेश्वर केवाछे तो के(धुअरए धुअमोहेके०) पाप रज रहित तथा मोहरहित छे (तम्हाके०)तेमाटे(सेभिक्खू के०)ते साधु सम्यक्दर्शन चारित्रे करी युक्त थको मुक्तिने साधे (अज्झत्थ विसुद्धेसुके०) अध्यवसाय निर्मल थको (विमुक्के आमोरकाए परिव्वएज्जासिके०) विमुक्त आमोक्षाय परिव्रजेत् संयमानुष्ठाने इति एवो भिक्षु स्त्रीसंगादिक क्लेश थकी विमुक्त थयो थको ज्यांसुधी मोक्षे जाय त्यांसुधी सूधो संयम पाले. तिबेमिनु अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २२ ॥ ए स्त्री परिज्ञा नामे चोथा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो. ॥

॥ दीपिका-सुविशुद्धा लेश्या मनोवृत्तिर्यस्य सुविशुद्धलेश्योमेधावी मर्यादावान् परस्य स्त्र्यादेः संबंधिनीं क्रियां ज्ञानी विवेकवान् वर्जयेत् मनसा वाचा कायेन सर्वस्पर्शसहोऽनगारः शीतोष्णदंशमशकादिसहनकृत्यः स्यात् ॥ २१ ॥ इत्येवं पूर्वोक्तं तत्सर्वं भगवान् वीरोधुतं क्षिप्तं रजः स्त्रीसंबंधकृतं कर्म येन स धुतरजाः धुतमोहआह उक्तवान् तस्मात्तभिक्षुरध्यात्मविशुद्धोनिर्मलचित्तः सुविमुक्तः स्त्रीसंबधेन रहितआमोक्षाय सर्वकर्मक्षयं यावत् विहरेत्संयमोद्यतोभवेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२२॥ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां चतुर्थाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका-अपि च । सुविसुद्धइत्यादि)सुष्ठु विशेषेण शुद्धा स्त्रीसंपर्कपरिसंहाररूपतया निष्कलंका लेश्याऽतःकरणवृत्तिर्यस्य स तथा सएवंभूतोमेधावी मर्यादावर्ती परस्मै स्त्र्यादि पदार्थी क्रिया परक्रिया तां च ज्ञानी विदितवेद्योवर्जयेत्परिहरेत्। एतदुक्तं भवति। विषयोपभोगोपाधिना नान्यस्य किमपि कुर्यान्नाप्यात्मनः स्त्रिया पादधावनादिकमपि कारयेत्। एतच्च परक्रियावर्जनं मनसा वच सा कायेन वर्जयेत्तथा ह्यौदारककामभोगार्थं मनसा न गच्छति नान्यं गमयति गच्छंतमपरं नानुजानीते एवं वाचा कायेन च सर्वेप्यौदारिके नव भेदाएवं दिव्येपि

छे एम श्रीतीर्थंकर गणधरे कह्युंछे ॥ १ए ॥ (एवंनयं के०) एम स्त्रीना संवास थकी घणा नयना कारण उत्पन्न थायछे माटे (णसेयायसेके०) ते श्रेयकारी कल्याणकारी न थी (इइ के०) ए हेतु जाणीने (अप्पगं के०) पोताना आत्माने (निरुंभित्ताके०) स्त्रीना संग थकी निरुंधीने एटले निवारीने संमार्गने विषे स्थापन करीने (निरकूके०) चारित्रिउ जे होय ते (णोइब्रिणोपसू के०) स्त्रीअने पशु एटले तिर्यंचनो सहवास करे नही (णोसयंपाणिणाणिलिजेज्जाके०) तथा पोताना हाथथी स्पर्श मात्रपणनकरे॥२०॥

॥ दीपिका—खुर्वाक्यालंकारे । एतत्पूर्वोक्तं तासु स्त्रीषु विषये यद्विज्ञप्तमुक्तं तत्तथा स्त्रीभिः सार्धं संस्तवं परिचयं वासंच एकत्र निवासंच त्यजेत् । यतः । ताभ्यः स्त्रीभ्योजातिरुत्पत्तिर्येषांते तज्जातिकाइमे कामाः । पुनः किंभूताः । अवद्यं पापं तस्य कारकास्तएवमाख्याताास्तीर्थकृद्भिः ॥ १ए ॥ एवं पूर्वोक्तप्रकारेण भयहेतुत्वाद्भयं स्त्रीसंबंधरूपं नश्रेयसे इति हेतोः सभिक्षुरात्मानं निरुध्य न स्त्रियं नापि पशुं लीयेत संश्रयेत स्त्रीपशुभ्यां संवासं त्यजेत् । तथा स्वहस्तेनवा अंगस्य (णिलिज्जेज्जति) जातेन संबंधं न कुर्यात् । यतो हस्तकर्मणापि चारित्रं शबलीभवति ॥ २० ॥

॥ टीका—सांप्रतमुपसंहारद्वारेण स्त्रीसंगपरिहारमाह । (एवंखुइत्यादि) एतत्पूर्वोक्तं । खुशब्दोवाक्यालंकारे । तासु यत् स्थितं तासां वा स्त्रीणां संबंधि यद्विज्ञप्तमुक्तं । तद्यथा । यदि सकेशया मया सह न रमसे ततोहं केशानप्यपनयामीत्येवमादिकं तथा स्त्रीभिः सार्धं संस्तवं परिचयं तत्संवासं च स्त्रीभिः सहैकत्र निवासं चात्महितमनुवर्तमानः सर्वापायभीरुस्त्यजेज्जह्यात् । यतस्ताभ्योजातिरुत्पत्तिर्येषां ते कामास्तज्जातिकारमणीसंपर्कोत्थास्तथाऽवद्यं पापं वज्रं वा गुरुत्वादधः पातकत्वेन पापमेव तत्करणशीलाऽवद्यकरावज्रकरावेत्येवमाख्यातास्तीर्थकरगणधरादिभिः प्रतिपादिताइति ॥ १ए ॥ सर्वोपसंहारार्थमाह । (एवं भयमित्यादि) एवमनंतरनीत्या भयहेतुत्वात् स्त्रीभिर्विज्ञप्तं तथा संस्तवस्तत्संवासश्च भयमित्यतः स्त्रीभिः सार्धं संपर्कोन श्रेयसे सदनुष्ठानहेतुत्वात्तस्येत्येवं परिज्ञाय सभिक्षुरवगतकामभोगविपाकआत्मानं स्त्रीसंपर्कान्निरुंध्य सन्मार्गेप्यवस्थाप्य यत्कुर्यात्तद्दर्शयति । नस्त्रियं नरकवीथीप्रायां नापि पशुं लीयेताश्रयेत स्त्रीपशुभ्यां सह संवासं परित्यजेत् स्त्रीपशुपंमकवर्जिताशय्येतिवचनात्तथास्वकीयेन पाणिना हस्तेनावाच्यस्य (णिलिज्जेज्जति) नसंबाधनं कुर्यात् । यतस्तदपि हस्तसंबाधनं चारित्रं शबलीकरोति । यदिवा स्त्रीपश्वादिकं स्वेन पाणिना नस्पृशेदिति ॥ २० ॥

सुविसुद्धलेसे मेहावी, परकिरिअंच वज्जए नाणी॥ मणसा वयसा काएण सव्वफासस्सहे अणगारे ॥२१॥ इच्चेव माहु से वीरे, धुअरए धुअमोहे से

ते एवा डुकृत एटले पापफलसहित ते नरकावासाने पुरस्तात् एटले आगल कहेशे ते तमे एकाग्रचित्ते सांजलो ॥ १ ॥

॥ दीपिका—अथ पंचमाध्ययनमारज्यते । तत्र उपसर्गजीरोः स्त्रीवशगस्य नरकपातः स्यात्तत्र च यादृश्योवेदनाः स्युस्ताअत्रोच्यंते इति । प्रथमोद्देशकस्यादिसूत्रमिदं । (पुछिस्सेति) जंबूस्वामिना सुधर्मस्वामी पृष्टः किंजूतानरकाइत्यादिपृष्टः सुधर्मस्वाम्याह । य देतजगवताऽहंपृष्टस्तदेतत्केवलिनः श्रीवीरमहर्षेः पुरस्तात्पूर्वं पृष्टवानहं कथमजितापान्वितानरकाः । हेमुने एतदजानतो मे त्वं जानन् ब्रूहि । कथं केनप्रकारेण नुवितर्के बालाअज्ञानरकमुपयांति ॥१॥ एवं मया पृष्टोमहानुजावइदं प्रश्नोत्तरमब्रवीत् । काश्यपोवीरआशुप्रज्ञोजगवान् इदमाह । यथाहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्यामि त्वं शृणु । डुःखंनरकडुःखं अर्थतः परमार्थतो डुर्गं विषमं । पुनः किंजूतं । आसमंताद्दीनमादीनं तद्विद्यते यस्य सआदीनिकोऽत्यंतद्दीनत्वाश्रयस्तं डुष्कृतं पापं विद्यते यत्र स डुष्कृतिकस्तं पुरस्तादग्रतः कथयिष्ये ॥२॥

॥टीका—उक्तं चतुर्थाध्ययनं सांप्रतं पंचममारज्यते । अस्य चायमजिसंबंधः । इहाद्याध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणाजिहिता । तदनंतरं स्वसमये बोधोविधेयइत्येतद्द्वितीयेऽध्ययने ऽजिहितं । संबुध्देन चानुकूलप्रतिकूलाउपसर्गाः सम्यक्सोढव्याइत्येतत्तृतीयेऽध्ययने प्रतिपादितं । तथा संबुध्देनैव स्त्रीपरीषहश्च सम्यगेव सोढव्यइत्येतच्चतुर्थेऽध्ययने प्रतिपादितं । सांप्रतमुपसर्गजीरोः स्त्रीवशगस्यावश्यं नरकपातोजवति । तत्र च यादृक्षावेदनाः प्राडुर्जवंति ताअनेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यंते । तदनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि उपक्रमादीनि वक्तव्यानि । तत्रोपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोद्विधा । अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राध्ययनार्थाधिकारोनिर्युक्तिकारेण प्रागेवाजिहितः । तद्यथा । उपसर्गजीरुणो (थीवसस्सनरएसु होज्जउववाउ)इत्यनेन उद्देशार्थाधिकारस्तु निर्युक्तिकृताजिहितोऽध्ययनार्थाधिकारांतर्गतइति । सांप्रतं निक्षेपः सचत्रिविधः । उघनिष्पन्नोनामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्चेति । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने तु नरकविजक्तिरितिद्विपदं नाम । तत्र नरकपदनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । णिरए छक्कं दव्वं, णिरयाउ इहमेव जे जवे असुजा ॥ खेत्तं णिरउगासो कालोणिरएसुचेवठ्ठी॥६४॥जावेउणिरयजीवा कम्मुदउ चेव णिरयपाउग्गा । सोऊणणिरयडुःखं, तवचरणेहोइजइयव्वं ॥ ६५ ॥ णिरयेछक्कमित्यादिगाथाद्वयं । तत्र नरकशब्दस्य नामस्थापना इव्यक्षेत्रकालजावजेदात् षोढा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने क्षुस्से । इव्यनरकआगमतोनोआगमतश्च । आगमतोज्ञाता तत्र चानुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरजव्यशरीरव्यतिरिक्तइहैव मनुष्यजवे तिर्यग्जवे ये केचनाऽशुजकारित्वादशुजाः सत्वाः कालकसौकरिकादयइति । यदिवा यानि कानि चिदशुजानि

नव नेदास्ततश्चाष्टादशनेदनिन्नमपि ब्रह्म बिनृयात् । यथाच स्त्रीस्पर्शपरीषहः सोढव्यएवं स र्वानपि शीतोष्णदंशमशकतृणादिस्पर्शानपि सहेत । एवंच सर्वस्पर्शसह्योऽनगारः साधुर्नवती ति ॥ २१ ॥ कएवमाहेति दर्शयति। (इच्चेवमाहुरित्यादि) इत्येवं यत्पूर्वमुक्तं तत्सर्वं सवीरोनग वानुत्पन्नदिव्यज्ञानः परहितैकरतश्चाह उक्तवान् । यतएवमतोधूतमपनीतं रजः स्त्रीसंपर्का दिकृतं कर्म येन सधूतरजाः । तथा धूतोमोहोरागद्वेषरूपोयेन सतथा । पाठांतरं वा धूतोऽप नीतोरागमार्गोरागपंथा यस्मिन् स्त्रीसंस्तवादिपरिहारात्तत्तथा तत्सर्वं नगवान् वीरएवाह । य तएवं तस्मात्सनिकुरध्यात्मविशुद्धः सुविशुद्धांतःकरणः सुष्ठु रागद्वेषात्मकेन स्त्रीसंपर्केण मु क्तः सन्नामोक्षायाशेषकर्मक्षयंयावत्परिसमंतात्संयमेऽनुष्ठाने व्रजेन्नवेत्संयमोद्योगवान् नवे दिति। इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इति चतुर्थं स्त्रीपरिज्ञाध्ययनं परिसमाप्तं

हवे नरयविनत्ति नामा पांचमुं अध्ययन श्रीजंबूस्वामी पूछेछे अने श्रीसुधर्म स्वामी जंबू प्रत्ये कहेछे के पूर्वे चोथा अध्ययनमां अनाचारी कह्या तेवा अनाचारी जे होय तेने नरकगति प्राप्त थाय माटे नरयविनत्ति नामा पांचमुं अध्ययन कहेछे.

पुछिस्सहं केवलियं महेसिं, कहं नितावा णरगा पुरबा ॥ अ
जाणउ मे मुणि बूहि जाणं, कहिं नु बाला नरयं उविंति ॥ १ ॥
एवं मए पुठे महाणुनावे, इणमोब्बवी कासवे आसुपन्ने ॥ पवे
दइस्सं डुहमठ्डुग्गं, आदीणियं डुक्कडियं पुरबा ॥ २ ॥

अर्थ–(पुछिस्सहंकेवलियंमहेसिंके०) सुधर्मस्वामी कहेछे जे तमे मने पूछोछो के नरक केवाछे तथा जीव केवे कर्मे करी नरके जाय तथा त्यां केवी वेदनाछे तेम में पण (पुरबाके०) पूर्वे केवली महर्षि श्री माहावीर देवने पुछयुं हतुं के हे नगवन् (अनितावा के०) तापसहित (णरगाके०) नरकना नय जे तीव्र डुःख रूपछे ते (कहंके०) केवाछे (अ जाणउमेके०) अजाणता एवा मुजने (मुणिके०) हे मुनि तमे (जाणंबूहिके०) केवल ज्ञाने करी जाणता थका कहो के (कहिंनुबालानरयंउविंतिके०)केवीरीते बाल एटले अज्ञानी जी व नरकमां जइ उपजे ॥१॥ (एवंमएपुठेके०) एम में विनय सहित पुछयुं ठतां (महाणुनावे के०) महोटोछे अनुनाव एटले माहात्म्य जेनो (आसुपन्नेके०) आशुप्रज्ञ एटले सर्वत्र सदा उपयोग थकी केवल ज्ञानवंत एवा (कासवेके०) काश्यप श्रीमहावीर देव तेणे (इ णमोब्बवीके०)एमज कह्युं ते प्रमाणे हुं तमने कहीश (पवेदइस्संडुहमठ्डुग्गंके०) प्रवेदि तंडुःखमेवार्थडुर्गं एटले डुःखनु कारणछे माटे डुर्गमस्थानक नरकावासा कह्याछे (आदीणि यंडुक्कडियंपुरबाके०)आदीनिकंडुकृतिनो पुरस्तात् एटले अत्यंत दीनपुरुषे जेनो आश्रयकस्यो

रूपणं । ऊर्ध्वलोकविनक्तिः सौधर्माद्यानुपर्युपरिव्यवस्थिता द्वादशदेवलोकाः नवग्रैवेयकानि पंचमहाविमानानि । तत्रापि विमानेंद्रकावलिप्रविष्टपुष्पावकीर्णकवृत्तत्र्यस्रचतुरस्रादिविमानस्वरूपनिरूपणमिति । दिगाश्रयणेन तु पूर्वस्यां दिशि व्यवस्थितं क्षेत्रमेवमपरास्वपीति । इव्याश्रयणाद्वालिक्षेत्रादिकं गृह्यते । स्वाम्याश्रयणाच्च देवदत्तस्य क्षेत्रं यज्ञदत्तस्य वेति । यदिवा क्षेत्रविनक्तिरार्याऽनार्यक्षेत्रनेदाद्द्विधा । तत्राप्यार्यक्षेत्रमर्धषड्विंशतिजनपदोपलक्षितं राजगृहमगधादिकं गृह्यते । रायगिहमगहचंपा, अंगातहता मलित्तिवंगाय ॥ कंचणपुरंकलिंगा, वाराणसीचेव कासीय ॥ १ ॥ साकेयकोसलागय, पुरंचकुरुसौरियंकुसुट्टाय ॥ कंपिल्लं पंचाला, अहिछत्ताजंगलाचेव ॥ २ ॥ वारवईयसुरट्टा मिहिलविदेहायवछकोसंवी ॥ नंदिपुरंसंदिल्ला, नद्दलिपुरमेवमलयाय ॥ ३ ॥ वइराडवछवरणा, अछातहमित्तियावइदशस्रा ॥ सुत्तीमईयचेदी, वीयनयं सिंधुसौवीरा ॥४॥ महुरायसूरसेणा, पावानंगीयमासपुरिवट्टा ॥ साविछीयकुलाणा, कोमीवरिसंचलाढाय ॥ ५ ॥ सेयवियाविय्णयरि, केययअद्धंचआरियंनणियं ॥ जछुप्पत्तिजिणाणं, चक्कीणंरामकिण्हाणं ॥ ॥ ६ ॥ अनार्यक्षेत्रं धर्मसंज्ञारहितमनेकधा । तदुक्तं । सगजवणसवरवव्वर, कायमुरुंमो डुगोणपक्कणया ॥ अरकागहूणरोमस पारसखसखासियाचेव ॥ १ ॥ डुविलयलवोसवाक्कस, निल्लंदपुलिंदकोंचनमररूया ॥ कौंचायचीणचंचुय, मालंदमिलाकुलरकाय॥ ॥ २ ॥ केकयकिरायहयमुह, खरमुहतह तुरगमेढगमुहाय ॥ ॥ हयकस्रागयकस्रा, अस्रेयअणारियाबहवे ॥ ३ ॥ पावायचंमदंमा, अणारियाणिग्घिणाणिरणुकंपा ॥ धम्मोत्तिअरकराइं, जेसुणणज्जंतिसुविणोवि ॥ ४ ॥ कालविनक्तिस्तु अतीताऽनागतवर्तमानकालनेदात्त्रिधा । यदि चैकांतसुषमादिकक्रमेणाऽवसर्पिण्युत्सर्पिण्युपलक्षितं द्वादशारं कालचक्रं । अथवा । समयावलियमुहुत्ता, दिवसमहोरत्तपरकमासाय ॥ संवछरयुगपलिया, सागरउस्सप्पिपरियट्टेत्येवमादिकाकालविनक्तिरिति । नावविनक्तिस्तु जीवाजीवनेदाद्द्विधा। तत्र जीवनावविनक्तिरौदयिकोपशमिक,क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारणामिक, सान्निपातिक, नेदात् षट्प्रकारा । तत्रौदयिकोगतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाऽज्ञानाऽसंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्नेदक्रमेणैकविंशतिनेदनिन्नः । तथौपशमिकः सम्यक्त्वचारित्रनेदाद् द्विविधः । क्षायिकः सम्यक्त्वचारित्रज्ञानदर्शनदानलानजोगोपनोगवीर्यनेदान्नवधा । क्षायोपशमिकस्तु ज्ञानाज्ञानदर्शनदानादिलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचनेदाः । तथा सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमनेदक्रमेणाष्टादशधेति । पारिणामिकोजीवनव्यानव्यत्वादिरूपः सान्निपातिकस्तु द्विकादिनेदात् षड्विंशतिनेदः । संनवीतु पञ्चदशतिविधोयमेव गतिनेदात्पंचधेति । अजीवनावविनक्तिस्तु मूर्तानां वर्णगंधरसस्पर्शसंस्थानपरिणामः । अमूर्तानां गतिस्थित्यवगाहवर्तनादिकइति । सांप्रतं समस्तपदापेक्षया नरकविनक्तिरिति । नरकाणां विनागोविन

स्थानानि चारकादीनि याश्च नरकप्रतिरूपावेदनास्ताः सर्वाद्रव्यनरकाइत्यभिधीयंते। यदिवा कर्मद्रव्यनोकर्मद्रव्यनेदाद् द्रव्यनरकोद्वेधा। तत्र नरकवेद्यानि यानि बद्धानि कर्माणि तानि चैकनविकस्य बद्धायुष्कस्याभिमुखनामगोत्रस्य चाश्रित्य द्रव्यनरकोनवति। नोकर्मद्रव्यनरकस्त्विहैव येऽशुनारूपरसगंधवर्णशब्दस्पर्शाइति। क्षेत्रनरकस्तु नरकावकाश कालमहाकालरौरवमहारौरवप्रतिष्ठानाऽभिधानादिनरकाणां चतुरशीतिलक्षसंख्यानां विशिष्टोनूनागः। कालनरकस्तु यत्र यावतीस्थितिरिति। नावनरकस्तु ये जीवानरकायुष्कमनुनवंति तथा नरकप्रायोग्यः कर्मोदयइति। एतदुक्तं नवति। नरकांतर्वर्तिनोजीवास्तथा नरकायुष्कोदयापादिताऽसातावेदनीयादिकर्मोदयाश्चैतद्द्वितयमपि नावनरकइत्यभिधीयते। तदेवं श्रुत्वाऽवगम्य तीव्रमसह्यं नरकदुःखं क्रकचपाटनकुंनीपाकादिकं परमाधार्मिकापादितं परस्परोदीरणाकृतं स्वानाविकं च तपश्चरणे संयमानुष्ठाने नरकपातपरिपंथिनि स्वर्गापवर्गागमनैकहेतोर्वाऽत्महितमिच्छता प्रयतितव्यं परित्यक्तान्यकर्तव्येन यत्नोविधेय इति। सांप्रतं विनक्तिपदनिक्षेपार्थमाह। णामंठवणादविए, खेत्ते काले तहेव नावेय। एसोउ विनत्तीए णिक्खेवोबविहोहोइ ॥१॥ (नामंठवणेत्यादि) विनक्तेर्नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालनावनेदात् षोढा निक्षेपस्तत्र नामविनक्तिर्यस्य कस्य चित्सचित्तादेर्द्रव्यस्य विनक्तिरिति नाम क्रियते। तद्यथा। स्वादयोष्टौ विनक्तयस्तिबादयश्च। स्थापनाविनक्तिस्तु यत्र ताएवं प्रातिपदिकाधातोर्वा परेण स्थाप्यंते पुस्तकपत्रकादिन्यस्तावा। द्रव्यविनक्तिर्जीवाजीवनेदाद् द्विधा। तथापि जीवविनक्तिः सांसारिकेतरनेदाद्द्विधा। तत्राप्यसांसारिकजीवविनक्तिर्द्रव्यकालनेदात् द्वेधा। तत्रद्रव्यतस्तीर्थातीर्थसिद्धादिनेदात्पंचदशधा। कालतस्तु तत्प्रथमसमयसिद्धादिनेदादनेकधा। सांसारिकजीवविनक्तिरिंद्रियजातिनवनेदात्रिधा। तत्रेंद्रियविनक्तिरेकेंद्रियविकलेंद्रियपंचेंद्रियनेदात्पंचधा। जातिविनक्तिः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसनेदात् षोढा। नवविनक्तिर्नारकतिर्यङ्मनुष्यामरनेदाच्चतुर्धा। अजीवद्रव्यविनक्तिस्तु रूप्यरूपिद्रव्यनेदाद्द्विधा। तत्र रूपिद्रव्यविनक्तिश्चतुर्धा। तद्यथा। स्कंधाः स्कंधदेशाः स्कंधप्रदेशाः परमाणुपुजलाश्च। अरूपिद्रव्यविनक्तिर्दशधा। तद्यथा। धर्मास्तिकायोधर्मास्तिकायस्य देशोधर्मास्तिकायस्य प्रदेशः। एवमधर्माकाशयोरपि प्रत्येकं त्रिनेदता द्रष्टव्या। अद्धासमयश्च दशमइति। क्षेत्रविनक्तिश्चतुर्धा। तद्यथा। स्थानं दिशं द्रव्यं स्वामित्वं चाश्रित्य। तत्र स्थानाश्रयणादूर्ध्वाधस्तिर्यग्विनागव्यवस्थितोलोकोवैशाखस्थानस्थपुरुषइव कटिस्थकरयुग्मइति द्रष्टव्यः। तत्राप्यधोलोकविनक्तीरत्नप्रनाद्याः सप्त नरकपृथिव्यस्तत्रापि सीमंतकादिनरकेंद्रकावलिकप्रविष्टपुष्पावकीर्णकवृत्तत्र्यस्रचतुरस्रादिनरकस्वरूपनिरूपणं। तिर्यग्लोकविनक्तिस्तु जंबूद्वीप,लवणसमुद्र, धातकीखंड,कालोदसमुद्रेत्यादिद्विगुणद्विगुणवृद्ध्या द्वीपसागरस्वयंनूरमणपर्यंतस्वरूपनि

छेदनं तथा पातनं निष्कुटादधोवज्ज्रभूमौ प्रक्षेपस्तथाप्रतोदनं व्यथनं तथा सूच्यादिना नासिकादौ वेधस्तथा रज्ज्वादिना क्रूरकर्मकारिणं बध्नंति। तथा तादृग्विधलताप्रहारैस्ता डयंत्येवं दुःखोत्पादनं दारुणं शातनपातनवेधनबंधनादिकं बहुविधं प्रवर्तयंति व्यापा रयंतीति। अपिच। अंतगयफिफिसाणिय, हियं कालेज्जफुप्फु सेचक्के। सबलाएरति याणं, कहेतिंतहिंअपुन्नाणं ॥ ७३ ॥ (अंतगयेत्यादि)। तथा सबलाख्यानरकपाला स्तथाविधकर्मोदयसमुत्पन्नक्रीडापरिणामाअपुण्यभाजां नारकाणां यत्कुर्वंति तद्दर्शय ति। तद्यथा। अंत्रगतानि यानि फिफिसानि अंत्रांतर्वर्तीनि मांसविशेषरूपाणि हृदयं ति पाटयंति तथा तद्गतं (कालेज्जंति)। हृदयांतर्वर्ति मांसखंडं। तथा (फुप्फुसेत्ति) उदरांतवर्तीन्यंत्रविशेषरूपाणि तथा वल्कलान् वध्रानाऽकर्षयंति। नानाविधैरुपायैरशर णानां नारकाणां तीव्रां वेदनामुत्पादयंतीति। अपिच। असिसत्तिकोंततोमर, सूलतिसू लेसुसूइवियगासु ॥ पोएतिरुद्दकम्माउ, णरगपालातहिंरोद्दा ॥ ७४ ॥ (असिसत्तीत्या दि)। तथा अन्वर्थाभिधानारौद्राख्यानरकपालारौद्रकर्माणोनानाविधेष्वसिशक्त्या दिषु-प्रहरणेषु नारकानशुभकर्मोदयवर्तिनः प्रोतयंतीति। तथा। भंजंतिअंगमंगाणि, ऊरूबाहूसिराणिकरचरणा। कप्पेंतिकप्पणीहिं, उवरुद्दापावकम्मरया॥७५॥ (भंजंतीत्या दि) तथोपरुद्राख्याः परमाधार्मिकाणामंगप्रत्यंगानि शिरोबाहूरुकादीनि तथा करचरणांश्च भंजंति मोटयंति पापकर्माणः कल्पनीभिः कल्पयंति पाटयंति। तत्रास्त्येव दुःखोत्पादनं य त्ते न कुर्वंतीति। अपिच। मीरासुसुंठएसुय, कंडूसुयपयणएसुयपयंति। कुंभीसुयलोहियसुय, एयंतिकालाउणेरतिए॥ ७६ ॥ (मीरासुइत्यादि) तथा कालाख्यानरकपालाः सुरामीरासु दीर्घचुल्लीषु तथा शुंठकेषु तथा कंडकेषु प्रचंडकेषु तीव्रतापेषु नारकान् पचंति तथा कुंभीपूष्ट्रिकाकृतिषु तथा वल्लीष्वायसकवल्लिषु नारकान् व्यवस्थाप्य जीवन्मत्स्यानिव प चंति। अपिच। कप्पंतिकागिणीमं, सगाणिछीदंतिसीहपुछाणि ॥ खावंतियाणरइए, मह कालापावकंमरए ॥ ७७ ॥ (कप्पंतीत्यादि) महाकालाख्यानरकपालाः पापकर्मनिर तानारकान्नानाविधैरुपायैः कदर्थयंति। तद्यथा। काकिणीमांसकानि श्लक्ष्णमांसखं डानि कल्पयंति नारकान् कुर्वंति तथा (सीहपुछाणित्ति)। पृष्टीवर्धास्तांश्छिंदंति। त था ये प्राक् मांसाशिनोनारकाआसन् तान् स्वमांसानि खादयंतीति। अपिच। हत्थेपाएऊ रू, बाहुसिरापायअंगमंगाणि ॥ छिंदंतिपगाणंतू असिणेरइएनिरयपाला ॥ ७८ ॥ (ह त्थेत्यादि) असिनामानोनरकपालाअशुभकर्मोदयवर्तिनोनारकानेवं कदर्थयंति। तद्य था। हस्तपादोरुबाहुशिरःपार्श्वादीन्यंगप्रत्यंगानि छिंदंति प्रकाममत्यर्थं खंडयंति। तुश ब्दोऽपरदुःखोत्पादनविशेषणार्थइति। तथा।कस्रोट्ठणसकरचरण दसणठ्ठण फुग्गऊरुबाहू णं ॥ छेयणभेयणसाडण, असिपत्तधणूहिपाडंति ॥ ७९ ॥ (कस्रोठ्ठइत्यादि)। असि

क्तिस्तामाह ॥ पुढवीफासंअसुा,णुवक्कमणिरयणवालवहणंच ॥ तिसुवेदेतिअताणाअणु नागंचेव सेसासु ॥ ६७ ॥ (पुढवीफासमित्यादि)। पृथिव्याः शीतोष्णरूपायास्तीव्रवेदनोत्पादकः स्पर्शः संपर्कः पृथिवीसंस्पर्शस्तमनुनवंति। तमेव विशिनष्टि। अन्येन देवादिना उपक्रमितुमुपशमयितुं योनशक्यते सोन्यानुपक्रमस्तमपराचिकित्स्यमित्यर्थः । तमेवंनूतमपराऽसाध्यं पृथिवीस्पर्शं नारकाः समनुनवंति । उपलक्षणार्थत्वाच्चास्य रूपगंधस्पर्शशब्दानप्येकांतेनाशुनान्निरुपमाननुनवंति । तथा नरकपालैः पंचदशप्रकारैः परमाधार्मिकैः कृतमुजराऽसिकुंतक्रकचकुंनीपाकादिकं वधमनुनवंत्याद्यासु तिसृषु रत्न,शर्करा,वालुकाख्यासु पृथिवीषु स्वकृतकर्मफलनुजोनारकाअत्राणाअशरणाः प्रनूतकालं यावदनुनवंति । शेषासु चतसृषु पृथिवीषु पंकधूमतमोमहातमःप्रनाख्यासु परमाधार्मिकनरकपालानावेपि स्वतएव तत्कृतवेदनायाः सकाशाद्यस्तीव्रतरोऽनुनावोविपाकोवेदनासमुद्घातस्तमनुनवंति । परस्परोदीरितडुःखाश्च नवंतीति। सांप्रतं परमाधार्मिकानामाद्यासु तिसृषु पृथिवीषु वेदनोत्पादकान् स्वनामग्राहं दर्शयितुमाह । अंबेअंबरिसीचेव, सामेयसबलेविय ॥ रोद्देवरुद्दकालेय, महाकालेत्तिआवरे ॥ ६८ ॥ असिपत्तेधणुंकुन्नेवालुवेयरणीविय ॥ खरस्सरेमहाघोसे, एवंपन्नरसाहिया ॥ ६९ ॥ गाथाद्वयंप्रकटार्थं । एवं ते चांबाइत्यादयः परमाधार्मिकायादृक्षां वेदनां परस्परोदीरणडुःखं चोत्पादयंति । तां दर्शयितुमाह । धाडेंति पहाडेंतिय, हणंतिविंधंतितहणिसुंनंति। मुंचंतिअंबरतले; अंबाखलुतबणेरइया ॥ ७० ॥ (धाडेंतीत्यादि)। तत्रांबानिधानाः परमाधार्मिकाः स्वनवनान्नरकावासं गत्वा क्रीडया नारकान् अत्राणान् सारमेयानिव शूलादिप्रहारैस्तुदंतो (धाडेंतेत्ति) प्रेरयंति । स्थानात् स्थानांतरं प्रापयंतीत्यर्थः । तथा (पहाडेंतित्ति) स्वेच्छयेतश्चेतश्चाऽनाथं नमयंति तथांऽबरतले प्रक्षिप्य पुनर्निपततं मुजरादिना घ्नंति तथा शूलादिना विध्यंति तथा (निसुंनंतित्ति) कृकाटिकायां गृहीत्वा नूमो पातयंति अधोमुखं अथोत्क्षिप्यांऽबरतले मुंचंतीत्येवमादिकया विडंबनया तत्र नरकपृथिवीषु नारकान् कदर्थयंति। किंचान्यत् । उहयहयेयतहियं, णिस्सन्नेकप्पणीहिकप्पंति ॥ विडुलगवडुलगछिन्ने अंबरसीतबणेरइए ॥ ७१ ॥ (उहएत्यादि)। उप सामीप्येन मुजरादिना हताउपहताः पुनरप्युपहताएव खड्गादिना हताउपहतहतास्तान्नारकान् तस्यां नरकपृथिव्यां निःसंज्ञकान् नष्टसंज्ञान् मूर्छितान्सतः कर्पणीनिः कल्पयंति छिंदंतीतश्चेतश्च पाटयंति । तथा द्विदलचटुलकछिन्नानिति मध्यपाटितान् खंडशश्छिन्नांश्च नारकांस्तत्र नरकपृथिव्यामंबर्षिनामानोसुराः कुर्वंतीति । तथा । साडणपाडणतोमण, बंधणरज्जुलयप्पहारेहिं ॥ सोमाणेरतियाणं, पवत्तयंतीअपुन्नाणं ॥ ७२ ॥ (साधनेत्यादि)। तथा अपुण्यानां तीव्राऽसातोदये वर्तमानानां नारकाणां श्यामाख्याः परमाधार्मिकाएतच्चैतच्च प्रवर्तयंति ।तद्यथा। सातनमंगोपांगानां

नाइत्येवं पृष्टः सुधर्मस्वाम्याह । यदेतद्भगवताऽहं पृष्टस्तदेतत्केवलिनमतीतानागतवर्तमानसूक्ष्मव्यवहितपदार्थवेदिनं महर्षिमुग्रतपश्चरणकारिणमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहिष्णु श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिनं पुरस्तात्पूर्वं पृष्टवानस्मि । यथा कथं किंनूताश्चनितापान्वितानरकानरकावासान्नवंतीत्येतदजानतोमे मम हेमुने जानन् पूर्वमेव केवलं ज्ञानेनाऽवगच्छन् ब्रूहि कथय । कथंतु केन प्रकारेण किमनुष्ठायिनः। नुरिति वितर्के। बालाश्चज्ञाहिताहितप्राप्तिविवेकरहितास्तेषु नरकेषूपसामीप्येन तद्योग्यकर्मोपादानतया यांति गच्छंति ॥ १ ॥ किंनूताश्च तत्र गतानां वेदनाः प्रादुष्यंतीत्येतच्चाह । (पृष्टवानिति) (तथा एवंमइत्यादि) एवमनंतरोक्तं मया विनेयेनोपगम्य पृष्टोमहांश्चतुस्त्रिंशदतिशयरूपोऽनुनावोमाहात्म्यं यस्य स तथा प्रश्नोत्तरकाले चेदं वक्ष्यमाणं। मोइति वाक्यालंकारे। केवलालोकेन परिज्ञाय मत्प्रश्ननिर्वचनमब्रवीदुक्तवान् । कोसौ । काश्यपोवीरोवर्धमानस्वामी आशुप्रज्ञः सर्वत्र सदोपयोगात् सचैवं मया पृष्टोनगवानिदमाह । यथा। यदेतद्भवता पृष्टस्तदहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्याम्यग्रतोदत्तावधानः शृणुवेति । तदेवाह । दुःखमिति नरकं दुःखहेतुत्वात् असदनुष्ठानं। यदिवा नरकावासएव दुःखयतीतिदुःखं। अथवा असातावेदनीयोदयात् तीव्रपीडात्मकं दुःखमित्येतच्चार्थतः परमार्थतोविचार्यमाणं दुर्गं गहनं विषमं दुर्विज्ञेयं। असर्वज्ञेन तत्प्रतिपादकप्रमाणानावादित्यनिप्रायः । यदिवा (दुहमठ दुग्गंति) दुःखमेवार्थोयस्मिन् स दुःखनिमित्तोवा दुष्प्रयोजनोवा दुःखार्थोनरकः। सच दुर्गोविषमोदुरुत्तरत्वात् तं प्रतिपादयिष्ये । पुनरपि तमेव विशिनष्टि । आसमंताद्दीनमादीनं तद्विद्यते यस्मिन्सआदीनिकोऽत्यंतदीनसत्त्वाश्रयस्तद्दुःष्कृतमसदनुष्ठानं पापं वा तत्फलं वा असातावेदनीयोदयरूपं तद्विद्यते यस्मिन्स दुष्कृतिकस्तं पुरस्तादग्रतः प्रतिपादयिष्ये । पागंतरं वा (दुक्कडिणंति) दुष्कृतं विद्यते येषां ते दुष्कृतिनोनारकास्तेषां संबंधि चरितं पुरस्तात्पूर्वस्मिन् जन्मनि नरकगतिगमनयोग्यं यत्कृतं प्रतिपादयिष्यतइति॥ २ ॥

जे केइ बाला इह जीवियठी, पावाइं कम्माइं करंति रुद्दा ॥ ते घोररूवे तमिसंधयारे, तिव्वाभितावे नरए पडंति ॥ ३॥ तिव्वं तसे पाणिणो थावरेया, जे हिंसति आयसुहं पडुच्चा ॥ जे लूसए होइ अदत्तहारी, ण सिक्कती सेयवियस्स किंचि ॥ ४ ॥

अर्थ—(जेकेइबालाके०) जे कोइक महारंनीया बाल एटले अज्ञानी (इहजीवियठीके०) आसंसारने विषे असंयमे जीवितव्यना अर्थी एवा जीव (पावाइंकम्माइंकरंतिरुद्दाके०) रौद्र एटले प्राणीने नयना उपजावनार एवा अनेक पापकर्मकरे (तेघोररूवेतमिसंधयारे के०) तेवा पुरुष तीव्रपापोदयने लीधे घोररूप एटले अत्यंत बीहामणे रूपे त

प्रधानाः पत्रधनुर्नामानोनरकपालाअसिपत्रवनं बीनत्सं कृत्वा तत्र बायार्थिनः समा गतान् नारकान् वराकान् अस्यादिनिः पाटयंति तथा कर्णौष्ठनासिकाकरचरणदशॅन स्तनस्फिगूरुबाहूनां बेदनन्नेदनशातनादीनि विकुर्वितवाताहतचलिततरुपातितासिप त्रादिना कुर्वंतीति । तडुक्तं । बिन्नपादन्नुजस्कंधा, श्बिन्नकर्णौष्ठनासिकाः ॥ निन्नतालु शिरोमेढ्रानिन्नाक्षिहृदयोदराः ॥ १ ॥ किंचान्यत् कुंनीसुचपब्बएसुय, लोहियसुयकुंडलो हि कुंनीसु ॥ कुंन्नीयणरयपाला हणंतिपाडंतिणरएसु ॥ ८० ॥ (कुंनीसुइत्यादि) कुं निनामानोनरकपालानारकान्नरकेषु व्यवस्थितान् निघ्नंति तथा पाचयंति । क्वेति द शॅयति । कुंनीषूष्ट्रिकाकृतिषु तथा पचनेषु कडिल्लकाकृतिषु तथा लौहीष्वायसना जनविशेषेषु पाचयंति । तथा । तडवडस्सनज्जंति, नज्जणेकलंबुवालगापव्हे । वालूगाणे रइया लोलंतीअंबरतलंमि ॥ ८१ ॥ (तडवडेत्यादि) वालुकाख्याः परमाधार्मिकाना रकानत्राणांस्तत्रवालुकानृतन्नाजने चणकानिव (तमतडित्ति) स्फुटतः (नज्जंति) नृज्जंति प चंति । क्वेत्याह । कदंबपुष्पाकृतिवालुकाकदंबवालुका तस्याः पृष्ठमुपरितलं तस्मिन् पात यित्वांऽबरतलेच लोलयंतीति । किंचान्यत् । पूयरुहिरकेसष्ठिवाहिणीकलकलेंतजलसो या ॥ वेयरणिणिरयपालाणेरइएक्पवाहंति ॥ ८२ ॥ (पूयरुहिरेत्यादि) । वैतरणीना मानोनरकपालावैतरणीं नदीं विकुर्वंति । साच पूयरुधिरकेशास्थिवाहिनीमहान्नयानका कलकलायमानजलाश्रिता तस्यांच क्षारोष्णजलायामतीव बीनत्सदर्शनायां नारकान् प्रवा हयंतीति ॥ तथा । कप्पेंतिकरकरएहिं, तब्बिंतिपरोप्परंसुएहिंति ॥ सिंवलितमारुहंती, खरस्वरातब्बणेरइए ॥ ८३ ॥ (कप्पेंतीत्यादि) । खरस्वराख्यास्तु परमाधार्मिकानर कानेवं कदर्थयंति । तद्यथा । क्रकचपातैर्मध्यं मध्येन स्तंन्नमिव तान् पातानुसारेण कल्प यंति पाटयंति । तथा परशुन्निश्च तानेव नारकान् परस्परमन्योन्यं तक्ष्यंति सर्वशोदेहाव यवापनयनेन तनून् कारयंति । तथा शाल्मलीं वज्रमयन्नीषणकंटकाकुलां खरस्वरैरारटं तोनारकानारोहयंति पुनरारूढानाकर्षयंतीति ॥ अपिच । न्नीएयपलायंते समंततोतब्बते णिरुंनंति ॥ एसुणोजहापसुवहे, महघोसातब्बणेरइए ॥ ८४ ॥ (न्नीएइत्यादि) । महाघो षान्निधानान्नवनपत्यसुराधमविशेषाः परमाधार्मिकाव्याधाइव परपीडोत्पादनेनैवाऽतु लं हर्षमुद्वहंतोक्रीमया नानाविधैरुपायैर्नारकान् कदर्थयंति तांश्च न्नीतान् प्रपला यमानान् मृगानिव समंततः सामस्त्येन तत्रैव पीडोत्पादनस्थाने निरुंनंति प्रतिबध्नं ति पशून् बस्तादिकान् । यथा पशुवधे समुपस्थिते नश्यतस्तद्वधकाः प्रतिबध्नंत्ये वं तत्र नरकावासे नारकानिति । गतोनामनिष्पन्नोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगु णोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (पुब्बिस्सहमित्यादि) जंबूस्वामिना सुधर्मस्वामी पृष्टः त द्यथा । न्नगवन् किंनूतानारकाः कैर्वा कर्मन्निरसुमतां तेषूत्पादः कीदृश्योवा तत्रत्यावेद

इयंखेत्तंजाणई केवइयंखेत्तंपासइ गोयमाणोबहुययरं खेत्तंजाणइणो बहुययत्तरंपासइ इत्तरियमेवखेत्तंजाणइइत्तरियमेवपासइइत्यादि । तथा तीव्रोडुःसहः खदिरांगारमहाराशितापादनंतगुणोऽभितापः संतापोयस्मिन् सतीव्राभितापस्तस्मिन् एवंभूते नरके बहुवेदनेऽपरित्यक्तविषयाभिष्वंगाः स्वकृतकर्मगुरवः पतंति तत्र च नानारूपा वेदनाः समनुभवंति । तथाचोक्तं । अच्छंडियविसयसुहो, पडइअविज्झायसिविसिहाणिवहे ॥ संसारोदहिवलयं, सुहंमिडुःखागरेनिरए ॥ १ ॥ पायकंतोरउलमुद्द, कुद्दरुच्छलियंरुहिरगंडूसे कयच्छुकत्तडुहाविरिक्कंविवईणदेहच्छे ॥ २ ॥ जंतंतरभिज्जंतु, ब्भलंतसंसद्दभरियदिशिविवरे ॥ मज्झेतुप्फिडियसमुब्भलंतसीसहिसंथाए ॥ ३ ॥ सुक्कक्कंदकडाहु, कढंतडुक्कयकयंतकम्मंते ॥ मूलविभित्तुखित्तु,च्छदेहणित्तंतपब्भारे ॥ ४ ॥ वद्धंधयारडुग्गं बंधणायारडुच्छरकिलेसे ॥ भिन्नकरचरणसंकर, रुहिरवसाडुग्गमप्पवहे ॥ ५ ॥ गिच्छमुहणिद्दउक्कि,त्तबंधणोमुच्छकंविरकबंधे ॥ दडगहियतत्तसंडा, सयग्गविसुमुरकुम्भियजीहो ॥ ६ ॥ भिरकंकुसग्गकड्डिय, कंटयरुरकग्गजज्जरसरीरे ॥ निमिसंतरंपि डुल्लह,सुरकेवरकेडुःखंमि ॥ ७ ॥ इयभीसणंमिणिरए, पडंतिजेविविहसत्तवहिनिरया ॥ सच्चप्पडायनरा, जयंमिकयपावसंघाया ॥ ८ ॥ इत्यादि ॥ ३ ॥ किंचान्यत् । (तिव्वंतसेत्यादि) । तथा तीव्रमतिभिरनुकंपं रौद्रपरिणामतया हिंसायां प्रवृत्तः । त्रस्यंतीतित्रसाद्वींद्रियादयस्तांस्तथा स्थावरांश्च पृथिवीकायादीन् यः कश्चिन्महामोहोदयवर्ती हिनस्ति व्यापादयति । आत्मसुखंप्रतीत्य स्वशरीरसुखकृते नानाविधैरुपायैर्यः प्राणिनां लूपकउपमर्दकारी भवति तथा अदत्तमपहर्तुं शीलमस्याऽसावदत्तहारी परद्रव्यापहारकस्तथा न शिक्षते नाभ्यसति । नादत्ते (सेयवियस्सत्ति) सेवनीयस्यात्महितैपिणा सदनुष्ठाने यस्य संयमस्य किंचिदिति । एतडुक्तं भवति । पापोदयाद्विरतिपरिणामं काकमांसादेरपि मनागपि नविधत्ते इति ॥४॥

पागब्भि पाणे बहुणंतिवाती, अनिव्वते घातमुवेति बाले ॥ णिहो
णिसं गच्छति अंतकाले, अहोसिरं कट्टु उवेइ डुग्गं ॥५॥ हण छिं
दहभिंद णं दहेति, सद्दे सुणिंता परहम्मियाणं ॥ ते नारगाभ
भयभिन्नसन्ना, कंखंति कन्नामदिसं वयामो ॥ ६ ॥

अर्थ-(पागब्भिके०) प्रागल्भिक एटले धृष्टपणे पापनेविषे निशंकथतो (पाणेबहुणंतिवाती के०) बहुनांप्राणानतिपाती घणाप्राणीउंनो अतिपाती विनाशक एटले जीवघातक, धृष्टपणे बोलनार शास्त्रमांहे जे हिंसाते हिंसा नही एवा वचननो बोलनार (अनिव्वते के०) अनिवृत्त एटले क्रोध थकी उपशम्यो नथी, एवो थतो (बालेके०) बाल एटले अज्ञा

मिसंधयारे एटले महाअंधकारे सहित ज्यां आंखे करी कांइज देखाय नही मात्र अवधिज्ञाने करी थोडुं थोडुं घुकनी पेरे देखे अने (तिव्वाभितावेनरएपडंतिके०) ज्यां खेरना अंगाराथी अनंतगणो तापछे एवा नरकनेविषे पडेछे ॥ ३ ॥ (तिव्वंतसेके०) जे पुरुष तीव्रपणे करी बेंड्रीयादिक त्रस (पाणिणोके०) जीव अने (थावरेयाके०) पृथवीकायादिक स्थावर जीव तेने (जेहिंसतिआयसुहंपडुच्चके०) येहिनस्तिआत्मसुखंप्रतीत्य एटले जे पुरुष सदाकाल स्वात्मसुखनो अर्थी जाणी करीने हणे तथा (जेलूसएहोइके०)जे प्राणीउनुं उपमर्दन करनार होय तथा (अदत्तहारीके०) परड्व्यापहारक एटले अदत्तदाननो लेनार होय तथा (णसिरकतीसेयवियस्सकिंचिके०) नशिक्ष्यतेसेवनीयस्य किंचित् एटले सेववा योग्य एवा जे व्रत पच्चखाणादिक छे ते नकरे अर्थात् अविरति छतोज रहे परंतु काकमांसादिकनी पण विरति करी शके नही. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—ये केचिद्बालाअज्ञाजीवितार्थिनः संयमजीवितार्थेन पापानि कर्माणि रौद्राः कुर्वंति ते नरके पचंति । यडुक्तमागमे । केहसुभंतेजीवानेरइअत्ताएकाम्मंपकरंतीति । किंभूते नरके । घोररूपे अतिभयानके तथा (तमिसंधयारेत्ति) बहुलतमोंधकारे यत्रात्मापि नोपलभ्यते केवलमवधिनापि मंदंमंदमुलूकाइवाह्नि पश्यंति । तथा चागमः । कण्हलेसेणंभंतेणेरइकण्हलेस्संनेरइअंपाणिहाएउहिणा सव्वातासमभ्भासमभिलोएमाणीकेवइयंखेत्तं जाणइपासइ इत्तिरिअमेवखेत्तं जाणइपासइ इत्यादि । पुनः किंभूते नरके । तीव्रोडुःसहः खादिरांगारमहाराशितापादनंतगुणाभितापः संतापोयस्मिन् स तीव्राभितापस्तस्मिन् ॥ ३ ॥ तीव्रं निर्दयोयस्त्रसान् ढींड्रियादीन् स्थावरांश्च पृथ्वीकायादीन हिनस्ति हंति आत्मसुखं प्रतीत्य स्वशरीरसुखकृते यः प्राणिनां लूषकउपमर्दकारी अदत्तहारी अदत्तग्राही सन शिक्षते नाभ्यसति (सेयविअस्सत्ति) सेवनीयस्य संयमस्य किंचित् मांसादेरपि निवर्ततइत्यर्थः ॥ ४ ॥

॥ टीका—यथाप्रतिज्ञातमाह । (जेकेइत्यादि) ये केचन महारंभपरिग्रहपंचेंड्रियवधपिशितभक्षणादिके सावद्यानुष्ठाने प्रवृत्ताबालाअज्ञारागद्वेषोत्कटास्तिर्यग्मनुष्याइहास्मिन्संसारेऽसंयमजीवितार्थिनः पापोपादानभूतानि कर्माण्यनुष्ठानानि रौद्राः प्राणिनां भयोत्पादकत्वेन भयानकहिंसानृतादीनि कर्माणि कुर्वंति तएवंभूतास्तीव्रपापोदयवर्तिनोघोररूपेऽत्यंतभयानके (तमिसंधयारेत्ति) बहुलतमोंधकारे यत्रात्मापि नोपलभ्यते चक्षुषा केवलमवधिनापि मंदंमंदमुलूकाइवाह्नि पश्यंति । तथाचागमः । कण्हलेसेणंभंतेणेरइएकण्हइलेस्संणेरइअंपाणयाएउहिणासव्वउ समंतासमभिलोएमाणेकेव

द। (हणछिंदहेत्यादि)। तिर्यङ्मनुष्यनवात्सत्वानरकेषूत्पन्नाअंतर्मुहूर्तेन निर्लूनांडज सन्निजानि शरीराण्युत्पादयंति। पर्याप्तिनावमागताश्चातिनयानकान् शब्दान् परमाधार्मिकजनितान् शृण्वंति। तद्यथा। हतं मुद्गरादिना छिदितं खड्गादिना निन्नं शूलादिना दग्धं मुर्मुरादिना। णमितिवाक्यालंकारे। तदेवंनूतान् कर्णासुखान शब्दान् नैरवान् श्रुत्वा तेतु नारकानयोद्भ्रांतलोचनान्नयेन नीत्या निन्ना नष्टा संज्ञाऽतःकरणवृत्तिर्येषांते तथा नष्टसंज्ञाश्च कांदिशं व्रजामः कुत्र गतानामस्माकमेवंनूतस्यास्य महाघोरारवदारुणस्य दुःखस्य त्राणं स्यादित्येतत्कांक्षंतीति ॥ ६ ॥

इंगालरासिं जलियं सजोतिं, ततोवमं नूमिमणुक्कमंता ॥ तेमज्झमाणा कलुणं थणंति, अरहस्सरा तछ चिरघितीया ॥७॥ जइ ते सुया वेयरणीनिदुग्गा, णिसिउ जहा खुरइव तिक्खसोया ॥ तरंति ते वेयरणींनिदुग्गां, उसुचोइयासत्ति सुहम्ममाणा ॥ ८ ॥

अर्थ–एम चिंतवी नयत्रांत बतां नाशता थकां जे पामे ते कहेछे. (इंगालरासिंजलियंसजोति के०) खदिरांगार एटले खयरना अंगाराना पुंज ज्वाला कराल ज्योति सहित एवीजे नूमि (ततोवमं के०) तेनीछे उपमा जेने (नूमिमणुक्कमंता के०) एवी नूमिने अतिक्रमता (तेमज्झमाणा के०) तेनारकी अत्यंत दाऊता बलता थका (कलुणंथणंति के०) करुनमहाशब्दास्तनंति करुण एटले घणा दीनस्वरे आक्रंद करे परंतु ते नारकी केवाछे तोके (अहरहस्सरा के०) जेनो स्वर प्रगट जाणवामां आवे नही एटले जेवा गुंगाना शब्द तेवा शब्दे बोले वली केवाछे तोके (तछचिरछीतीया के०) त्यां घणोकाल रेवानी स्थितिछे जेनी एटले उत्कृष्ट तेत्रीश सागरोपमनी स्थिति अने जघन्य दश हजार वर्षनी स्थिति जाणवी. ॥ ७ ॥ गुरु शिष्य प्रत्यें कहेछे के (जइतेसुयाके०) जेते सांनलीछे शुं सांनलीछे. (वेयरणीनिदुग्गाके०) वेतरणी नामनी नदी घणी दुर्ग एटले विषम केवी विषमछे तोके (णिसिउजहाखुरइवतिक्खसोया के०) क्षुर एटले वुरीनी पेरे तीक्ष्णछे स्रोत एटले पाणीनुं पूर जेने विषे एवी (वेयरणींनिदुग्गां के०) ते वेतरणी नदी माहा विषम तेमां (तेके०) ते नारकीउ नरकनी नूमिना तापे तप्या बता पाणीना अर्थि तरस्या थका (तरंति के०) तरे पण केवा बता तरे तोके त्यां जवाने अण इछता (उसुचोइयाके०) बाणना चोया एटले प्रेर्या तथा (सत्तिसुहम्ममाणा के०) शक्ति नाले करी हणाता थका ते नदीने दुखे पीडया बता बलात्कारे ते वेतरणी नदी अगाधछे माटे तरवाने असमर्थ बता पण तरे तेवारे घणाज दुःखी थाय पछी तरवाने नौकानी वांछा करे तेवारे फरी अत्यंत दुःखी थाय ते आगली गाथायें कहेछे. ॥ ८ ॥

नी (घातं के०) नरकने (उपैतिके०) पामे (अंतकालेकें०) अंतकाले एटले मरणका ले (अहोसिरंकट्टु के०) नीचुं मस्तक करी (णिहोणिसं के०) अधोगतियें अंधकारने विषे (गच्छतिके०) जाय (डुग्गंके०) डुर्ग विषम स्थानके छेदनभेदनादिक डुःखने (उवेइ के०) पामे ॥५॥ हवे ते नारकी पर्याप्त भावे पोहोता थका परमाधार्मिकना शब्द सांभले ते कहेछे (हणके०) मुझरादिके करी हणो (छिंदहके०) खड्गादिकेकरी छेदो (भिंदणंके०) शूलादिके करी भेदो (दहेतिके०) अग्नीये करी बालो इत्यादिक करणने डुःखकारी एवा (परहम्मियाणं के०) परमाधार्मिकना (सद्देके०) शब्दने (सुणिंताके०) सांभलीने (ते नारगाउ के०) ते नारकीउ (भयभिन्नसन्नाके०) भयेकरीने नाश पाम्याछे संज्ञा एटले मनव्यापार जेना तथा गात्र पण भागाछे एवा बतां (कंखंतिके०) एवी वांछना करेके (कन्नामदिसंवयामो के०) कांदिशंव्रजामः एटले अमे कयी दिशाये नाशी जइये के ज्यां गया थका अमने भय टली जाय. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—प्रागल्भ्यं धाष्टर्यं विद्यते यस्य स प्रागल्भी बहूनां प्राणिनामतिपाती हिंसकः सर्पहिंसादिवत् अनिर्वृत्तः कदाचिदप्यनुपशांतः सन् घातं नरकमुपैति बालःस अंतकालेन्यक् नीचैः (निसंति) अंधकारं गच्छति स्वपापेनाधःशिरःकृत्वा डुर्गं विषमं पीडास्थानमुपैति ॥ ५ ॥ हतंमुझरादिना, छिन्नंखड्गादिना भिन्नं शूलादिना दग्धं वन्हिना । णंवाक्यालंकारे । तदेवंभूतान् परमाधार्मिकाणां शब्दान् शृण्वंति श्रुत्वा वा ते नारकाभयेन भिन्ना नष्टा संज्ञा येषां ते तथा कांदिशं व्रजेम इति कांक्षंति ॥ ६ ॥

॥ टीका—तथा (पागब्भिपाणेइत्यादि)। प्रागल्भ्यं ध्याष्टर्यं तद्विद्यते यस्य सप्रागल्भी बहूनां प्राणिनां प्राणानतीव पातयितुं शीलमस्य सभवत्यतिपाती। एतडुक्तं भवति । अतिपात्यपि प्राणिनः प्राणानतिधाष्टर्याद्वदति । यथा वेदाभिहिता हिंसाऽहिंसैव भवति। तथा राज्ञामयं धर्मोयडुत आखेटकेन विनोदक्रिया । यदिवा। नमांसभक्षणे दोषो,न मद्ये न च मैथुने । प्रवृत्तिरेषा भूतानां, निवृत्तिस्तुमहाफलाइत्यादि । तदेवं क्रूरसिंहकृष्णसर्पवत् प्रकृत्यै प्राणातिपातानुष्ठायी अनिर्वृतः कदाचिदप्यनुपशांतः क्रोधाग्निना दह्यमानोयदिवा लुब्धकमत्स्यादिवधकजीविकाप्रसक्तः सर्वदा परिणामपरिणतोऽनुपशांतोहन्यते प्राणिनः स्वकृतकर्मविपाकेन यस्मिन् सघातोनरकस्तमुपसामीप्येनैति। याति कोबालोऽज्ञो रागद्वेषोदयवर्ती सोंतकाले मरणकाले (निहोत्ति) न्यगधस्तात् (णिसंति) अधोंधकारं गच्छतीत्यर्थः । यथा तेन डुश्चरितेनाधः शिरःकृत्वा डुर्गं विषमं यातनास्थानमुपैति अवाक्शिरा नरके पततीत्यर्थः ॥ ५ ॥ सांप्रतं पुनरपि नरकांतर्वर्तिनोनारका यदनुभवंति तद्दर्शयितुमा

लोखंमना (कीलेहिंके०) खीला तेणेकरी (विद्धंतिके०) वींधाय (नावंउविंतेके०) नावायें चढया (सइविप्पहूणाके०) स्मृतिविप्रहीणा स्मृतिहीन एटले विवेकरहित थाय तथा (अन्नेतुके०) अन्य वली परमाधार्मिक लोक ते नारकीउने नाशी जता देखीने (सूलाहिंतिसूलियाहिंदीहाहिंके०) त्रिशूलसहित एवी दीर्घ एटले लांबी शूलीयें (विद्धूणअहेकरंतिके०) वींधी करीने नीचा धरतिने विषे नाखे ॥ए॥ (केसिंच बंधित्तुगलेसिलाउ के०) केटलाक नारकीने परमाधार्मिक लोक तेमना गलामां अत्यंत वजनदार शिला बांधीने (महालयंसि के०) माहा अगाध उंमा एवा (उदगंसिबोलंति के०) पाणीमां बोले फरी तेमांहेथी काढीने पढी (कलंबुयावालुयमुम्मुरेयके०) कलंबू फूल शरखी वेलूने विषे तथा मुम्मुरेय एटले अग्नीने विषे (लोलंति के०) आघा पाछा घाले अत्यंत तप्तरेती मांहे चणानी पेरे शेके (तत्थअन्ने के०) त्यां वली अन्य परमाधार्मिको (पच्चंतिअके०) ते नारकीने मांसनी पेशीनी पेरे पचावे तुहंपियाइ मांसाइ इत्यादि. ॥ १० ॥

॥ दीपिका–तान् नारकान् वैतरणीजलतप्तान् लोहकीलाकुलां नावमागच्छंतः पूर्वारूढा असाधुकर्माणः परमाधार्मिकाः कीलेषु कंठेषु विध्यंति तेच विध्यमानावैतरणीजलेन नष्टसंज्ञाः स्मृतिविप्रहीणागतकर्तव्यविवेकाः स्युः। अन्ये पुनर्नरकपालानारकैः क्रीडंतस्तान् त्रिशूलिकाभिः शूलाभिर्दीर्घाभिर्विध्वा अधोनूमौ लालयंति ॥ए॥ केषांचिन्नारकाणांगले ते परमाधार्मिकाः शिलां बध्वा महति जले बोलंति मज्जयंति ततः समाकृष्य पुनर्वैतरणीनद्याः कलंबुकावालुकायां मुर्मुराग्नौ लोलयंति अन्येच नारकान् तत्र नारकावासे त्रष्टकक्षिप्तमांसवत् पचंति ॥ १० ॥

॥ टीका–किंच (कीलेहीत्यादि) तांश्च नारकानत्यंतक्षारोष्णेन दुर्गंधेन वैतरणीजले नाभितप्तानायसकीलाकुलां नावमुपगच्छतः पूर्वारूढाअसाधुकर्माणः परमाधार्मिकाः कीलेषु कंठेषु विध्यंतीति । तेच विध्यमानाः कलकलायमानेन सर्वस्रोतोनुयायिना वैतरणीजलेन नष्टसंज्ञाअपि सुतरां स्मृत्या विप्रहीणाअपगतकर्तव्यविवेकान्नवंति । अन्ये पुनर्नरकपालानारकैः क्रीडंतस्तान्नष्टांस्त्रिशूलिकाभिर्दीर्घिकाभिरायताभिर्विध्वा अधोनूमौ कुर्वंतीति ॥ ए ॥ अपिच (केसिंचइत्यादि) केषां चिन्नारकाणां परमाधार्मिकाम हतीं शिलां गले बध्वा महत्युदके (बोलंतित्ति) निमज्जयंति । पुनस्ततः समाकृष्य वैतरणीनद्याकलंबुकावालुकायां मुर्म्मुराग्नौ च लोलयंति अतितप्तवालुकायां चणकानिव सभंततोवोलयंति । तथान्ये तत्र नरकावासे स्वकर्मपाशावपाशितान्नारकान् सुंठके प्रोतकमांसपेशीवत् पचंति नर्जयंतीति ॥ १० ॥

॥ दीपिका—अंगाररराशिं ज्वलितं सह ज्योतिषा वह्निना वर्तत इति सज्योतिर्नूमिस्तेनोपमा यस्यां सा तडुपमा तामंगारतुल्यां नूमिमाक्रमंतस्ते नारकादह्यमानाः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति । तत्र बादराग्नेरन्नावात्तडुपमां नूमिमित्युक्तं । एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तं । अन्यथा नारके चिरस्थितिकालस्थितयः । तथाहि । उत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि जघन्यतस्तु दशवर्षसहस्राणि तिष्ठति ॥ ७ ॥ सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । यदि ते त्वया श्रुता वैतरणी नाम क्षारोष्णरुधिराकारजलवाहिनी नदी अनिडुर्गा विषमा ।यथा निशितस्तीक्ष्णः क्षुरः स्यादेवं तीक्ष्णानि स्रोतांसि प्रवाहायस्याः सा तीक्ष्णस्रोताः। तथा ते नारकातापतप्ताजलं पातुमिछवो वैतरणीमतिडुर्गां तरंति । किंनूताः ।इषुणा शरेण प्रतोदेने व प्रेरिताः शक्तिनिः शस्त्रविशेषैर्हन्यमानाः । तृतीयार्थे सप्तमी ॥ ८ ॥

॥ टीका—तेच नयोद्भ्रांतादिक्षु नष्टायदनुनवंति तद्दर्शयितुमाह । (इंगालेत्यादि) अंगाररराशिं खदिरांगारपुंजं ज्वलितं ज्वालाकुलं तथा सह ज्योतिषोद्योतेन वर्ततइति सज्योतिर्नूमिस्तेनोपमायस्याः सा तडुपमा तामंगारसन्निनां नूमिमाक्रमंतस्ते नारकादंदह्यमानाः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति । तत्र बादराग्नेरन्नावात्तडुपमां नूमिमित्युक्तं । एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तमन्यथा नारकतापस्येहत्याग्निना नोपमा घटते । तेच नारकामहानगरदाहाधिकेन तापेन दह्यमानाअरहस्वराअप्रकटस्वरामहाशब्दाः संतस्तत्र तस्मिन्नरकावासे चिरं प्रनूतं कालं स्थितिरवस्थानं येषां ते । तथा ह्युत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि जघन्यतोदशवर्षसहस्राणि तिष्ठंतीति ॥ ७ ॥ (जइतेसुयाइत्यादि) । सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रतीदमाह । यथा नगवतेदमाख्यातं यदिते त्वया श्रुता श्रवणपथमुपागता वैतरणी नाम क्षारोष्णरुधिराकारजलवाहिनी नदी आनिमुख्येन डुर्गानिडुर्गा डुःखोत्पादिका । तथा निशितोयथा क्षुरस्तीक्ष्णानि शरीरावयवानां कर्तकानि स्रोतांसि यस्याः सा । तथा तेच नारकास्तप्तांगारसन्निनां नूमिं विहायोदकं पिपासवोऽनितप्ताः संतस्तापापनोदायाऽनिषिषिक्षवोवा तां वैतरणीमनिडुर्गां तरंति ।कथंनूताः।इषुणा शरेण प्रतोदेनेव चोदिताः प्रेरिताः शक्तिनिश्च हन्यमानास्तामेव नीमां वैतरणीं तरंति ।तृतीयार्थे सप्तमी॥८॥

कीलेहिं विझंति असाहुकम्मा, नावं उविंते सइ विप्पहूणा ॥
अन्नेतु सूलाहिं तिसूलियाहिं, दीहाहिं विद्धूण अहे करंति ॥९॥
केसिंच बंधित्तु गले सिलाउ, उदगं सि बोलंति महालयंसि ॥ क
लंबुयावालुय मुम्मुरेय, लोलंति पच्चंति अ तब अन्ने ॥ १० ॥

अर्थ—(असाहुकम्माके०) पढीते असाधुकर्मी पापकारक एवा नारकी ते नावमाहेलाजे

भितापमंधतमसं डुष्प्रतरं डुरुत्तरं महांतं विशालं नरकं महापापोदयाद्व्रजंति । तत्र च नरके ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् सर्वतः समाहितः सम्यगाहितोव्यवस्थापितोग्निर्जाज्वलतीति । पच्यते च । (समूसिउंजलगणीजियांइ) यत्र नरके सम्यगूर्ध्वंश्रितः समुच्छ्रितोऽग्निः प्रज्वलति तं तथाभूतं नरकं वराकाव्रजंति. ॥ ११ ॥ किंचान्यत् (जंसिगुहाएइत्यादि) यस्मिन्नरके ऽतिगतोऽसुमान् गुहायामित्युष्ट्रिकाकृतौ नरके प्रवेशितोज्वलनेऽग्नावतिवृत्तोवेदनाभि भूतत्वात्स्वकृतं डुश्चरितमजानन् लुप्तप्रज्ञोऽपगतावधिविवेकोदंदह्यते । तथा सदा सर्वकालं पुनः करुणप्रायं कृत्स्नं वा घर्मस्थानमुष्णस्थानं तापस्थानमित्यर्थः । (गाढंति) अत्यर्थमु पनीतं ढौकितं डुष्कृतकर्मकारिणां यत् स्थानं तत्ते व्रजंति । पुनरपि तदेव विशिनष्टि । अ तिडुःखरूपोधर्मः स्वभावोयस्मिन्निति । इदमुक्तं भवति । अक्षिनिमेषमात्रमपि कालं नत स्य डुःखस्य विश्रामइति । तडुक्तं । अछि णिमीलणमेत्तं णत्थि सुहं डुरकमेव पडिबद्धं ॥ णिरए णेरइयाणं, अहोणिसं पच्चमाणाणं ॥ १ ॥ १२ ॥

चत्तारि अगणिउ समारभित्ता, जेहिं कूरकम्मा भितविंति बालं॥
ते तछ चिठंति भितप्पमाणा, मछावजीवंतुवजोतिपत्ता ॥१३॥ सं
तछणं नाम महाहितावं, ते नारया जछ असाहुकम्मा ॥ हत्थेहि
पाएहिय वंधिऊणं, फलगंवतछंति कुहाडहत्था ॥ १४ ॥

अर्थ-(चत्तारिअगणिउ समारभित्ता के०) चारेदिशे चार अग्नी समारंभीने एटले प्रज्वलित करीने (जेहिं के०) जे नरकावासने विषे (कूरकम्मा के०) क्रूरकर्मना कर नार एवा परमाधार्मिको ते (अभितविंतिबालंके०) अज्ञानी एवा बापडा नारकीउने तपावे (तेतछचिठंतिभितप्पमाणाके०) तेनारकी त्यां पूर्वोक्त रीते ताप सहन करता कदर्थता अत्यंत डुःख भोगवता बतां घणा काल सुधी रहे कोनीपेंरे तोके (मछावजीवंतुवजोति पत्ता के०) जेम जीवता मत्स्य अग्नी पासे मूक्या बता अत्यंत तापनु डुःख पामे पण परवश पणाने लीधे त्यांथी नासी शके नही, तेमते नारकीउ पण जाणी लेवा. ॥ १३ ॥ (संतछणंनाम के०) त्यां ते नरकमांहे नारकीउने भाठवा बेदवानुं जे स्थानकबे ते केवुंबे तोके (महाभितापं के०) सर्वने महा डुःखनुं कारणबे (जछ के०) ज्यां (असाहुकम्मा के०) असाधुकर्मि एवा परमाधार्मिको (कुहाडहत्था के०) हाथमां कुहाडो लइने (तेनारया के०) ते नारकीउने पकडीने (हत्थेहि पाएहियवंधि ऊणंके०) तेना हाथ तथा पग बांधी(फलगंवतछंतिके०)काष्टनी पेरे भाठे बेदे. ॥ १४ ॥

॥दीपिका-(चत्तारित्ति) चतसृष्वपि दिक्षु चतुरोग्नीन् समारभ्य प्रज्वाल्य यत्र नरके क्रूरक

असूरियं नाम महाभितावं, अंधतमं डुप्पतरं महंतं ॥ उड्ढं अ
हेअं तिरियं दिसासु, समाहिउ जड गणीझियाइं ॥ ११ ॥ जं
सी गुहाए जलणेतिउट्टे, अविजाणउ मस्सइ लुत्तपन्नो ॥ सया
य कलूणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अतिडुरकधम्मं ॥१२॥

अर्थ—)असूरियंनामके०) नथी ज्यां सूर्य तेने असूर्य स्थानक कहिए एटले कुंनीने, आकारे माहाअंधकाररूप नरकावास, तथा ज्यां (महाभितावं के०) माहा अत्यंत तापछे (अंधतमं के०) अत्यंत अंधकारछे, एवा (डुप्पतरं महंतंके०) महोटा विशाल डुस्तर स्थानकने पापना उदयथी ते नारकी पामेछे. (जडके०) जे नरकावासमां सर्वकाल (उड्ढंअहेअंतिरियं दिसासु के०) उंचुं नीचुं अने तिर्छुं एटले सर्व दिशाउने विषे (अगणीझियाइंके०) प्रज्वलित अग्नीने (समाहित के०)स्थाप्यो छे अर्थात् ज्यां सदा काल अग्नी बल्यां करेछे एवा कष्ट मांहे नारकीउने पाडे. ॥ ११ ॥ (जंसीगुहाए जल णतिउट्टेके०) जे नरकावासने विषे उंटने आकारें गुफाछे ते गुफा मांहे प्रवेश करतोज अ ग्नीना आवर्त्तमां पडे एवो (अविजाणउ के०) अज्ञाण बापडो पोताना कर्मने नथी जाणतो तथा(लुत्तपन्नोके०) लुप्तप्रज्ञो एटले जेनी प्रज्ञा लोपाइ गइछे, एवो छतो ते नार की त्यां(मस्सइके०) दाझे बले (सयायकलुणंके०) सर्वकाल करुणप्राय दयामणु एवुं (पुण घम्मठाणंके०) पूर्ण तापनुं स्थानक त्यां (गाढोवणीयंके०) आकरा पापकर्मे करी ढोयुं (अ तिडुरकधम्मंके०) ज्यां अत्यंत डुःखरूपनुंज धर्म एटले स्वनावछेएवुं स्थानक नारकी पामे.

॥ दीपिका—(असूर्येति) नविद्यते सूर्योयस्मिन् सोऽसूर्योनरकोंधकारमयस्तं महाभि तापं अंधतमसं डुष्प्रतरं महांतं नरकं पापोदयाद् व्रजंति ।तत्र च नरके उर्ध्वमधस्तिर्यक् च सर्वदिक्षु समाहितोव्यवस्थापितोऽग्निः प्रज्वलतीति ॥ ११ ॥ (जंसीति) यस्मिन् न रके प्राणी गुहायामिव ज्वलनेऽग्नौऽतिवृत्तः प्राप्तवेदनानुगतः स्वकृतं पापमजानन् लुप्तप्रज्ञो गतप्रज्ञाविवेकोदंदह्यते । तथा सदा करुणं पुनर्दीनं घर्मस्थानमापत्स्थानं गाढमत्यर्थमु पनीतं डुष्कृतेन अतिडुःखरूपोधर्मस्वनावोयस्मिन् तत्तथा एवंविधं स्थानं ते व्रजंति नय त्र डुःखविश्रामः । यतः । अछिनिमीलणमेत्तं, नछिसुहंडुरकमेवअणुबद्धं ॥ निरएनेरइआ णं, अहोनिसंपच्चमाणाणं ॥ १२ ॥

॥ टीका—तथा (असूरियमित्यादि) । नविद्यते सूर्योयस्मिन् सोऽसूर्योनरकोबहु लांधकारः कुंनीपाकाकृतिः सर्वएव वा नरकावासोऽसूर्योव्यपदिश्यते । तमेवंनूतं महा

त्मनी कडाहमां नाख्या थका अत्यंत टलवले, तेनी पेरे ते नारकीउ पण वेदना सहन करता थका टलवले.॥ १५ ॥ (नोचेवतेतत्थमसीनवंति के०) पण ते नारकी त्यां पचाव्या थका बलीने जस्म नथाय, (णमिज्जतीतिव्वनिवेयणाए के०) मरण पामे नही शरीर ढांके नही. अत्यंत उग्र वेदनाये पण पोताना कृतकर्म (तमाणुजागं के०) ते कर्मनो अनुजाग जे विपाक तेने (अणुवेदयंता के०) अनुवेदता एटले जोगवता थका (डुःखंतिडुखीइहडुक्कडेणं के०) सीतोस्नवेदना दहन हनन छेदन जेदन ताडन तर्जनादिक तथा तक्षण त्रिशूलारोपण कुंजीपाक सालम्ली वृक्षादिके करी उपजावेला जे डुःख, ते डुखेकरी डुखीथका पोताना करेला डुकृतने योगे त्यां जीवता थका ज रहे पण आयुष्य पूरण कस्या विना मरण पामेज नही. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका-(रुहिरेत्ति) ते नरकपालास्तान्नरकान् स्वरुधिरे तप्तकवल्यां प्रक्षिप्ते पुनः पचंति । वर्चःप्रधानानि समुच्छ्रितानि अंत्राण्यंगानि वा येषांते तथा तान् । जिन्नं चूर्णितमुत्तमांगं शिरोयेषांते तथा तान् । के पचंतीत्याह । परिवर्तयंतउत्तानानधोमुखांश्च कुर्वंतः। णंवाक्यालंकारे । तान् स्फुरतइतश्चेतश्च विव्हलान् सजीवमत्स्यानिव लोहकवल्यां पचंति ॥ १५ ॥ (णोचेवेति) ते च नारकाएवं वन्हिनापच्यमानाअपि नमषीजवंति नजस्मसात्नवंति नरकानुजावात् । तथा तीव्रवेदनया नापरमग्निप्रक्षिप्तमत्स्यादिकमप्यस्ति यन्मीयते उपमीयते । अथवा तीव्रानिवेदनयापि अननुजूतस्वकर्मत्वान्नम्रियंते तं छेदनजेदनादिकमनुजागं कर्मविपाकमनुवेदयंतोऽनुजवंतस्तिष्ठंति । तथा कृतेन डुष्कृतेन डुःखिनोडुःखयंति पीडयंति. ॥ १६ ॥

॥ टीका-अपिच (रुहिरेपुणोइत्यादि) ते परमाधार्मिकास्तान्नारकान्स्वकीये रुधिरे तप्तकवल्यां प्रक्षिप्ते पुनः पचंति । वर्चःप्रधानानि समुच्छ्रितान्यंत्राण्यंगानि वा येषांते तथा तान् जिन्नचूर्णितमुत्तमांगं शिरोयेषां ते तथा तानिति । कथं पचंतीत्याह । परिवर्तयंतउत्तानानवाङ्मुखान् वा कुर्वंतः । णमिति वाक्यालंकारे । तान् । स्फुरतइतश्चेतश्च विव्हलमात्मानं निक्षिपंतः सजीवमत्स्यानिवायसकवल्यामिति. ॥ १५ ॥ तथा (णोचेवेत्यादि) तेच नारकाएवं बहुशः पच्यमानाअपि नोनैव तत्र नरके पाकेवा नरकानुजावे वा सति मषीजवंति नैव जस्मसाद्भवंति । तथा तत्तीव्रानिवेदनया नापरमग्निप्रक्षिप्तमत्स्यादिकमप्यस्ति यन्मीयते उपमीयते अनन्यसदृशीं तीव्रां वेदनां वाचामगोचरामनुजवंतीत्यर्थः । यदिवा तीव्रानिवेदनयाप्यननुजूतस्वकृतकर्मत्वान्नम्रियंतइति प्रजूतमपि कालं यावत्तत्तादृशं शीतोस्नवेदनाजनितं तथा दहनछेदनजेदनतक्षणत्रिशूलारोपणकुंजीपाकशाल्मल्यारोहणादिकं परमाधार्मिकजनितं परस्परोदीरणनिष्पादितंचानुजागं कर्मणां विपाकमनुवेदयं

र्माणोनरकपालास्तंबालं मूर्खं अनितापयंति भटित्रवत् पचंति तेनारकास्तत्राभितप्य मानाः कदर्थ्यमानास्तिष्ठंति । यथा मत्स्याजीवंतोज्योतिःप्राप्ता अग्निगताः पीड्यंते तथा पीड्यमानाः ॥ १३ ॥ (संतब्रणमिति) नामेति संभावनायां । संतक्षणं छेदनं महाभि तापं महाडुःखोत्पादकं । ततस्ते यत्र नरकावासे असाधुकर्माणः क्रूरकर्माणोनरकपालाः कुगारहस्तान् हस्तैः पादैश्च बध्वा फलकमिव काष्ठखंममिव तक्षणुवंति छिंदंति. ॥ १४ ॥

॥ टीका-अपिच । (चत्तारिइत्यादि) चतसृष्वपि दिक्षु चतुरोग्नीन् समारभ्य प्रज्वाल्य यस्मिन्नरकावासे क्रूरकर्माणोनरकपालाअभिमुख्येनात्यर्थं तापयंति भटित्रवत्प चंति बालमज्ञं नारकंपूर्वकृतडुश्चरितं । तेतु नारकजीवाएवमभितप्यमानाः कदर्थ्यमानाः स्वकर्मनिगडितास्तत्रैव प्रभूतं कालं महाडुःखाकुले नरके तिष्ठंति । दृष्टांतमाह । यथाजीवंतोमत्स्यामीनाउपज्योतिरग्नेः समीपे प्राप्ताः परवशत्वादन्यत्र गंतुमसमर्थास्तत्रैव तिष्ठंत्येवं नारकाअपि । मत्स्यानां तापासहिष्णुत्वादग्नावत्यंतं डुःखमुत्पद्यतइत्यतस्तद्ग्रह णमिति ॥ १३ ॥ किंचान्यत् (संतबमित्यादि) समेकीभावेन तक्षणं संतक्षणं । नामश ब्दः संभावनायां । यदेतत्संतक्षणं तत्सर्वेषां प्राणिनां महाभितापं महाडुःखोत्पादकमित्येवं संभाव्यते । यदेवं ततः किंचित्याह । ते नारकानरकपालायत्र नरकावासे स्वभवनादागताअसाधुकर्माणः क्रूरकर्माणोनिरनुकंपाः कुगारहस्ताः परशुपाणयस्तान्नारकानत्राणान् हस्तैःपादैश्च बध्वा संयम्य फलकमिव काष्ठशकलमिव तक्षणुवंति तनूकुर्वंति छिंदंतीत्यर्थः १४

रुहिरे पुणो वच्च समुस्सिअंगे, भिन्नुत्तमंगे परिवत्तयंता॥ पयंति
णं णेरइए फुरंते, सजीवमच्छेव अयोकवल्ले ॥ १५॥ नोचेव ते तब
मसीभवंति, णमिज्जती तिवभिवेयणाए ॥ तमाणुभागंअणुवेदयं
ता, डुक्कंति डुक्की इह डुक्कडेणं ॥ १६ ॥

अर्थ-(रुहिरेके०) ते परमाधार्मिको ते नारकीजीवोनुज रक्त, काढीने कडाहमां नाखी (पुणोके०) फरी तेज लोहीमां ते नारकीउने पचावे ते नारकीउ केवाछे तोके (व चकेo) डुर्गंध वस्तु तेणेकरी (समुस्सिके०) खरडयाछे (अंगेके) अंग जेमना एवा ते नारकीने केवीरीते पचावे तोके (भिन्नुत्तमंगेके०) प्रथम तेमनुं उत्तमांग भेदीने पछी (प रिवत्तयंता के०) परिवर्त्तयंता एटले समु होय तेने उपरांठु होय करे अने उपरांठु तेने समु करे अर्थात् उलटावी पलटावीने पचावे. (पयंतिणंणेरइएफुरंते के०) त्यां पचता थका ते नारकी तापे करी विव्हल छता आघा पाछा उछलता हालता थका धूजे, ट लवले, कोनीपेरे तोके (सजीवमच्छेवअयोकवल्ले के०) जेम जीवता मत्स तप्त लोखं

॥ टीका–किंचान्यत् । (तेहिंचेत्यादि) तस्मिंश्च महायातनास्थाननरके । तमेव विशिनष्टि । नारकाणां लोलने सम्यक् प्रगाढाव्याप्तोभूतः सतथा तस्मिन्नरके शीतार्ताः संतो गाढमत्यर्थं सुष्टु तप्तमग्निं व्रजंति । तत्राप्यग्निस्थानेऽ निर्दग्धे दह्यमानाः सातं सुखं मनागपि नलभंते । अरहितोनिरंतरोऽभितापोदाहोयेषांते अरहिताभितापास्तथापि तान्नारकास्तेनरकपालास्तापयंतीत्यर्थः । तप्ततैलाग्निना दहंतीति ॥ १७ ॥ अपिच (सेसुव्वई त्यादि) सेशब्दोऽथशब्दार्थे । अथानंतरं तेषां नारकाणां नरकपालैरौद्रैः कदर्थ्यमानानां भयानकोहाहारवप्रचुरआक्रंदनशब्दोनगरवधइव श्रूयते समाकर्ण्यते दुःखेन पीडयोपनीतान्युच्चरितानि करुणाप्रधानानि यानि पदानि हामातस्तात कष्टमनाथोहं शरणागतस्तव त्रायस्व मामित्येवमादीनां पदानां तत्र नरके शब्दः श्रूयते । उदीर्णमुदयप्राप्तं कटुविपाकं कर्म येषां तथोदीर्णकर्माणोनरकपालामिथ्यात्वहास्यरत्यादीनामुदये वर्तमानाः पुनः पुनर्बहुशस्ते (सहंतित्ति) सप्रभसं सोत्साहं नारकान् दुखयंत्यतस्तदसह्यं नानाविधैरुपायैर्दुःखमसातवेदनीयमुत्पादयंतीति ॥ १८ ॥

पाणेहि णं पावविउ जयंति, तं से पवरकामि जहा तहेणं॥ दंमेहिं तहा सरयंति बाला, सव्वेहिं दंमेहि पुरा कएहिं ॥१ए॥ ते हम्ममाणा णरगे पडंति, पुन्ने दुरूवस्स महाभितावे॥ ते तत्र चिठंति दुरूवभक्की, तुट्टंति कम्मोवगया किमीहि ॥ २० ॥

अर्थ–णंवाक्यालंकारेडे (पाणेहिणंपावविउजयंतिके०) ते पापिष्ट परमाधार्मिको नारकी प्राणीना इंद्री विमुक्त करे उपांग वेगलाकरे (तंसेपवरकामिजहातहेणं के०)ते नारकीने एटला दुःख सावास्ते करे तेना कारण तमने यथा तथ्य कहुंछुं (तहा के०) त्यां (दंमेहिं के०) दुःख विशेष एटले पाछला नवना करेला कर्म तेने (सरयंति के०) संजारीने तेनरकपाल पुरुषो तेने कहेछे अरे बापडा तें पूर्वभवने विषे मांसभक्षण, मद्यपान, जीवघात, मृषावाद, चोरी, परस्त्रीगमन, कस्याछे, ते सांप्रत ताहारे उदय आव्याछे, तेने योगे तुं दुःख नोगवेछे, माटे आम सावास्ते आरडेछे. एरीते (बाला के०) ते परमाधार्मिक पुरुषो (सव्वेहिं के०) सर्वथा प्रकारे (दंमेहि के०) ते नारकीने दुःखरूप दंमेकरी(पुराकएहिंके०)पूर्वकृत कर्मना उदय थकी पीडा करे. ॥१ए॥(तेहम्ममाणाणरगेपडंति के०) ते नारकी हणाया थका पांचसें योजन उंचा उछलीने नरकने एकदेसें पडे ते नरक केवाछे तोके (पुन्नेदुरूवस्स महाभितावे के०) दुष्टरूप माहातापे करी पूर्णछे, नाना प्रकारना दुःख तथा मल सहितछे, (तेतछचिठंतिदुरूवभक्की के०)

तः समनुवेदयंतः समनुजवंतस्तिष्ठंति। तथा स्वकृतेन हिंसादिनाऽष्टादशपापस्थानरूपेण सततोदीर्णडुःखेन डुःखिनोडुःखयंति पीडयंते नाक्षिनिमेषमपिकालं डुःखेन मुह्यंतइति ॥१६

तेहिंच ते लोलणसंपगाढे, गाढं सुतत्तं अगणिं वयंति ॥ न तब्ब
सायं लहती निडुग्गे, अरहियानितावा तहवी तविंति ॥१७॥
से सुच्चई नगरवहेव सद्दे, डुहोवणीयाणि पयाणि तत्र ॥ उदिसक
म्माणउदिसकम्मा, पुणोपुणो ते सरहं डुहेति ॥ १८ ॥

अर्थ-(तेहिंच के०) ते नरकावासने विषे (तेके०) ते नारकीने (लोलणसंपगाढे के०)आलोलवे एटले आघा पाबा करवे करी अत्यंत व्याप्त शीतार्त बता एवा नारकी सुखने अर्थे (गाढंसुतत्तंअगणिंवयंतिके०)अत्यंततप्त अग्नीने विषे जाय, परंतु(नतब्बसायंलहतीनिडुग्गे के०) त्यां विषम अग्नीस्थानने विषे पण शातान पामे (अरहितानितावा तहवीतविंतिके०) निरंतर ज्यां आकरो तापबे एवा नरकने विषे परमाधार्मिक तेने तपावे, तेल तप्तकरी तेने कष्ट आपे,एम अनेक प्रकारे परमाधार्मिक देवो नारकीजीवोने वेदना करेबे. ॥ १७ ॥ (सेसुच्चईनगरवहेवसद्देके०) तेनरकमांहे नारकीना आक्रंद शब्द नगरना वधजेवा संनलायबे जेम कोइएक नगरनो नाश करे तेवारे माहा कोलाहल शब्द थाय एवो आक्रंद शब्द हामात, हातात, हुं अनाथ ताहारे सरणागतबुं, मुजनेराख, इत्यादि शब्द सांनलीये (डुहोवणीयाणिपयाणितब्बके०) डुखोपनीतानिपदानितत्रनरकेशब्दः एटले त्यां नरकने विषे करुणा प्रलाप सहित एवा पूर्वोक्त पदोना दयामणा शब्द बोले (उदिसुकम्माणउदिसुकम्मा के०) जेने कटुक विपाकरूप कर्म वर्त्तमानकाले उदय थयाबे एवा नारकीने मोहनीय कर्मना उदयवाला एवा परमाधार्मिक देवो (पुणोपुणोतेके०) ते पुनःपुनःपूर्वोक्तरीते (सरहंडुहेतिके०) उत्साह सहित नारकीउने एटला डुःख करे.॥१८॥

॥ दीपिका-(तेहिंचेति) तत्र नरके नारकाणां लोलनेनेतःपरतोघोलनेन संप्रगाढे व्याप्ते शीतार्तानारकागाढमत्यर्थं सुतप्तमग्निंव्रजंति । तत्राप्यग्निस्थानेऽनिडुर्गे सातं सुखं न लनंते । अरहितोनिरंतरोऽनितापोयेषांतेऽरहितानितापास्तथापि तान्नरकपालास्तापयंति तप्ततैलादिना दहंतीति ॥१७॥ (सेइति) से अथ तेषां नारकाणां नयानकः शब्दोनगरवधइव श्रूयते। यथा नगरसंबधी महानाक्रंदः स्यात्तादृशोडुःखेनोपनीतानामुच्चारितानां पदानां हामातः हातातइत्यादीनां तत्र शब्दः श्रूयते । उदीर्णमुदयप्राप्तं कर्म येषांते तथा तेषामुदीर्णकर्माणोनरकपालामिथ्यात्वहास्यरत्यादीनामुदये वर्तमानाः पुनःपुनस्ते सरहंसोत्साहं नारकान् डुःखयंति ॥ १८ ॥

सया कसिणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अतिडुक्खधम्मं॥ अंदूसु पक्खिप्प विहत्तुदेहं, वेहेण सीसं से निताक्यंति ॥२१॥ छिंदंति बालस्स खुरेण नक्कं, उठेवि छिंदंति डुवेवि कन्ने ॥ जिप्नं विणिक्कस्स विहत्थिमित्तं, तिरकाहिं सूलाइ नितावयंति ॥ २२ ॥

अर्थ-(सयाकसिणंपुणघम्मठाणं के०) सर्वदाकाले ते नरक परिपूर्ण घर्म एटले आतापनुं स्थानक त्यां (गाढोवणीयं के०) कर्मने उदयें ढोया एवा नारकी (अतिडुक्खधम्मं के०) अत्यंतडुःखनो धर्म एटले स्वजावछे ज्यां (अंदूसुपक्खिप्पविहत्तुदेहं के०) ते स्थानके नारकीनो शरीर निवडबंधमांहे प्रक्षेपीने (वेहेणसीसंसे के०) मस्तके छिडकरी तेने (नितावयंति के०) तपावे सर्व शरीर चर्मनी पेरे विस्तारीने खीलायें करी उखेडे. ॥ २१ ॥ ते परमाधार्मिक (बालस्स के०) ते अज्ञानी नारकीउंना (खुरेण के०) क्षुर एटले छुरीयें करीने (नक्कंके०) नासिकाने (छिंदंतिके०) छेदे तथा (उठेविछिंदंतिडुवेविकन्ने के०) उष्ठ छेदे तथा बंने कान पण छेदे तथा मद्यमांसादि मृषाबोलवुं इत्यादि पाप तेमने संजारी आपीने (जिप्नंविणिक्कस्सविहत्थिमित्तं के०) ते नारकीनी एक विहत्थ प्रमाण जीन बाहेर काढीने (तिरकाहिंसूलाइनितावयंतिके०) तीक्ष्ण सूलियें करी संतापे, छेदे एरीते ते नारकीने पीडे वेदना आपे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका-(सयेति) सदा कृत्स्नं संपूर्णं घर्मस्यातपस्य स्थानमुष्णस्थानं जवति गाढैर्दृढैः कर्मनिरुपनीतं ढौकितं अतिडुःखमेव धर्मः स्वजावोयस्यतत् एवंविधे स्थाने स्थितोजंतुः अंडुषु निगडेषु देहं विहृत्य प्रक्षिप्य तथा शिरश्च(से)तस्य वेधनेनारकस्य रंध्रोत्पादनेनानितापयंति कीलकैश्च सर्वाण्यंगानि विध्वा चर्मवत् कीलयंति ॥ २१ ॥ (छिंदंतीति) दं नरकपालाः बालस्याज्ञस्य क्षुरप्रेण नासिकां छिंदंतीति। तथा उष्ठौ कर्णौच द्वावपि छिंदंतेति तथा जिव्हां वितस्तिमात्रां बहिर्निष्काश्य तीक्ष्णशूलाभिरनितापयंति अपनयंति ॥

॥ टीका-किंचान्यत् (सयाकसिणमित्यादि) सदा सर्वकालं कृत्स्नं संपूर्णं । पुनस्तत्र नरके घर्मप्रधानं उष्णप्रधानं स्थितिस्थानं नारकाणां जवति । तत्रहि प्रलयातिरिक्ताग्निवातादीनामत्यंतोष्णरूपत्वात्तच्च दृढैर्निधत्तनिकाचितावस्थैः कर्मभिर्नारकाणामुपनीतं ढौकितं। पुनरपि विशिनष्टि।अतीव डुःखमसातावेदनीयं धर्मः स्वजावोयस्य तत्तथा तस्मिंश्चैवंविधे स्थाने स्थितोऽसुमान् अंडुषु निगडेषु देहं विहृत्य प्रक्षिप्य च यथा शिरश्च (से)तस्य नारकस्य वेधेन रंध्रोत्पादनेनानितापयंतीति ॥ २१ ॥ अपिच (छिंदंतिबालस्सेत्यादि) ते परमाधार्मिकाः पूर्वडुश्चरितानि स्मरयित्वा बालस्याज्ञस्य निर्विवेकस्य प्रायशः सर्वदा वेदनास

त्यांते नारकी अशुची वस्तुना आहारी छता घणोकाल सुधी रहे (तुट्टंति कम्मोवगया किमीहिं के०) कर्मने वस पडया एवा नारकीने परमाधार्मिक विकूर्विने पीडे. ॥ २० ॥

॥दीपिका–(पाणेहिणमिति) णं वाक्यालंकारे। ते पापानरकपालाः प्राणैः शरीरेंद्रियादिनिर्वियोजयंति येनैवं डुःखं ते जनंते तद्दुःखकारणं जे जवतां याथातथ्येन सत्यतया प्रवक्ष्यामि तेषां दंमैर्नरकविशेषैस्तत्र बालानरकपालाः पूर्वकृतं स्मारयंति । पूर्वजवे त्वं मांसानि खादसि पिबसिमद्यं गछसि परदारान् । सांप्रतं विपाकप्राप्तेन कर्मणा किमेवमाक्रंदसीत्येवं पुराकृतैः सर्वैर्दंमैर्डुःखविशेषैस्तादृशमेव डुःखमुत्पादयंति. ॥ १९ ॥ (तेइति) ते नारका हन्यमानानष्टाः संतोऽन्यस्मिन् घोरतरे नरके पतंति। किंजूते पूर्णे जृते। डुरूपं विष्ठासृङ्मांसादिमलं तस्यजृते महाजितापेऽतिसंतापोपेते तत्र नरके डुरूपस्याशुच्यादेर्जक्षिणस्तिष्ठंति । तथा कृमिजिर्नरकपालकृतैः परस्परकृतैश्च तुद्यंते व्यथ्यंते । तथा चागमः । उठीसत्तमासुणं पुढवीसुनेरइया पहूमहंताइं लोहिअकुंथुरूवाइं विउव्विता अन्नमन्नस्स कायं समचउरंगेमाणा २ अणुखायमाणा २ चिठंति ॥ २० ॥

॥ टीका–तथा (पाणेहिणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । प्राणैः शरीरेंद्रियादिजिस्ते पापाः पापकर्मणोनरकपालावियोजयंति शरीरावयवानां पाटनादिजिः प्रकारैर्विकर्तनादवयवान् विश्लेषयंति। किमर्थमेवं कुर्वंतीत्याह । तद्दुःखकारणं जेयुष्माकं प्रवक्ष्यामि याथातथ्येनावितथं प्रतिपादयामीति । दंडयंति पीडामुत्पादयंतीति दंमाडुःखविशेषास्तैर्नारकाणामापादितैर्बालानिर्विवेकानरकपालाः पूर्वकृतं स्मारयंति । तद्यथा । तदा रुष्टस्त्वं खादसि समुत्कृत्य प्राणिनां मांसं तथा पिबसि तं तद्रसं मद्यं च गछसि परदारान् सांप्रतं तद्विपाकापादितेन कर्मणाऽजितप्यमानः किमेवं रारटीषीत्येवं सर्वैः पुराकृतैर्दंडैर्दुःखविशेषैः स्मरयंतस्तादृक्जूतमेव डुःखविशेषमुत्पादयंतोनरकपालाः पीमयंतीति ॥ १९ ॥ किंच (तेहम्ममाणाइत्यादि) ते वराकानारकाहन्यमानास्तोद्यमानानरकपालेन्योनष्टेऽन्यस्मिन् घोरतरे नरकैकदेशे पतंति गछंति । किंजूते नरके पूर्णे जृते । डुष्टं रूपं यस्य तद्दुरूपं विष्ठासृग्मांसादिकं मलं तस्य जृते तथा महाजितापिते संतापोपेते ते नारकाः स्वकर्मावबद्धास्तत्रैवंजूते नरके डुरूपजक्षिणोऽशुच्यादिजक्षकाः प्रजूतं कालं यावत्तिष्ठंति । तथा कृमिजिर्नरकपालापादितैः परस्परकृतैश्च स्वकर्मोपगताः स्वकर्मढौकितास्तुद्यंते व्यथ्यंते इति । तथाचागमः । उठीसत्तमासुणं पुढवीसु नेरइयाहूपमहंताइं लोहिकुंथुरूवाइं विउव्वित्तअन्नमन्नस्सकायंसमचउरंगे माणामाणा अणुखायमाण अणुखायमाणा चिठंति ॥ २० ॥

गुणा परेणापरेण प्रकर्षेण । तथा पुनः किंभूता महती बृहत्तरा (अहियपोरिसीयेति) पुरुषप्रमाणाऽधिकसमुच्छ्रिता उष्ट्रिकाकृतिः ऊर्ध्वं व्यवस्थिता लोहितपूर्णा ॥ २४ ॥

॥ टीका–तथा । (तेतिप्पमाणेत्यादि) ते छिन्ननासिकोष्ठजिव्हाः संतः शोणितं तिप्यमानाः क्षरंतोयत्र यस्मिन् प्रदेशे रात्रिंदिनं गमयंति । तत्र बालाअज्ञास्तालसंपुटाइव पवनेरितशुष्कतालपत्रसंचयाइव सदा स्तनंति दीर्घविस्वरमाक्रंदंतस्तिष्ठंति तथा प्रद्योतितावन्हिना ज्वलितास्तथा क्षारेण प्रदिग्धांगाः शोणितं पूयं मांसं चाहर्निशं गलंतीति. ॥ २३ ॥ किंच । (जइतेसुताइत्यादि) पुनरपि सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्य भगवद्वचनमाविष्करोति । यदिते त्वया श्रुता आकर्णिता । लोहितं रुधिरं पूयं रुधिरमेव पक्वं ते द्वे अपि पक्वं शीलं यस्यां सा लोहितपूयपाचिनी कुंभी । तामेव विशिनष्टि । बालोऽभिनवप्रत्ययोग्निस्तेन तेजोभितापः सएव गुणोयस्याः सा बालाग्नितेजोगुणा परेण प्रकर्षेण तप्तेत्यर्थः । पुनरपि तस्याएव विशेषणं महती बृहत्तरा (अहियपोरुस्सीयंति) पुरुषप्रमाणाधिका समुच्छ्रितोष्ट्रिकाकृतिरूर्ध्वं व्यवस्थिता लोहितेन पूयेन च पूर्णा सैवंभूता कुंभी समंततोऽग्निना प्रज्वलिताऽतीव बीभत्सदर्शनेति. ॥ २४ ॥

पक्खिप्प तासु पययंति बाले, अट्टस्सरे ते कलुणं रसंते ॥ तएहा इया ते तउ तंबतत्तं, पज्जिज्जमाणाट्टतरं रसंति ॥ २५ ॥ अप्पेण अप्पं इह वंचइत्ता, भवाहमे पुव्वसते सहस्से ॥ चिठंति तत्था बहुकूरकम्मा, जहा कडं कम्म तहासि भारे ॥ २६ ॥ समज्जिणित्ता कलुसं अणज्जा, इठेहिं कंतेहि य विप्पहूणा ॥ ते दुब्भिगंधे कसिणेयफासे, कम्मोवगाकुणिमे आवसंतित्तिबेमि ॥ २७ ॥ इति निरयविभत्तिएपढमोउद्देसोसमत्तो ॥

अर्थ–हवे त्यां कुंभीमांहे नारकीने शुं करे ते कहेछे. (पक्खिप्पतासुके०) ते परमाधार्मिक कुंभीमांहे घालीने (अट्टस्सरेतेकलुणंरसंते के०) आर्त शब्द करता तथा करुण प्रलाप करता एवा ते बापडा (बालेके०) अज्ञान नारकीने (पययंतिके०) प्रकर्षे करी पचावे (तएहाइयातेतउतंबतत्तंके०) तृषाये पीड्या थका पाणी मागे तेवारे तेने त्रांबु उकालीने तेनो रस (पज्जिज्जमाणके०) पीवरावे तेवारे ते (अट्टतररंसंतिके०) घणामां घणे दीनस्वरे करुणाकारी विलाप करे ॥ २५ ॥ (अप्पेणअप्पंइहवंचइत्ता के०) जेणे इह एटले आ मनुष्य भवमां अल्पसुखने अर्थे परोपघाति पणुं आदरीने पोताना आत्मायें करी पोताना आत्मानेज वंच्यो (भवाहमेपुव्वसतेसहस्से के०) तथा पूर्वे जन्मे अधम एवा लुब्धकादिकना शतसहस्र भव भोगवी घणा कर्मोपार्जीने (चिठंतितत्थाबहुकूरकम्माके०)

मुद्धातोपगतस्य क्षुरप्रेण नासिकां छिंदंति तथौष्ठावपि द्वावपि कर्णौ छिंदंति तथा मद्य मांसरसाऽभिलिप्सोर्मृषाभाषिणोजिव्हां वितस्तिमात्रामाक्षिप्य तीक्ष्णाभिः शूलाभिरभि तापयंत्यपनयंति ॥ २२ ॥

ते तिप्पमाणा तलसंपुडंव, राइंदियं तब थणंति बाला ॥ गलंति ते सोणिअपूयमंसं, पज्जोइया खारपइद्धियंगा ॥२३॥ जइ ते सुता लो हितपूअपाई, बालागणी तेअगुणा परेणं ॥ कुंभी महंताहियपोर सीया, समूसिता लोहियपूयपुसा ॥ २४ ॥

अर्थ--(ते के०) तेनारकी कान होठ प्रमुख अंगोपांगना छेदन थकी (तिप्पमाणा के०) लोहिजरता थका (तलसंपुडंव के०) सुका ताडवृक्षना पान जेम पवने उडता शब्द करे, तेनीपेरे (राइंदियंतबथणंतिबालाके०) ते बाल अज्ञानी निरविवेकी एवा नारकी बापडा रात्र दिवश त्यां आक्रंद शब्द करे (गलंतितेसोणियपूयमंसं के०) त्यांते नारकीना अंगोपांग छेद्या पछी तेना शरीरमांथी लोही परु तथा मांसादिक जरे (पज्जोइया के०) तेवारे तेंने शेंककरी अग्नीयें प्रज्वालीने (खारपइद्धियंगा के०) लवणादिक खारे अंगोपांग खरड्या छता रुधिर परु अने मांस एटलावाना रात्र दिवस तेमना शरीरमांथी गलता थका रहेछे॥२३॥वली श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबूस्वामी प्रत्ये कहेछे के, (जइते के० (यदि तें श्रीमहावीर भाषित (लोहितपूअपाई के०) रुधिर अने परुनी पात्री एटले रुधिर अने पाकीरुधिर ते परु ए बंने ज्यां पचेछे एवो स्थानक कुंभी भाजन विशेष ते (सुता के०) ते सांभलीछे ते केवीछे तोके (बालागणीके०) नवी अग्नीना (तेअ के०) तेज करता पण (गुणापरेणं के०) गुणे करी अधिकछे एटले अत्यंत बलतीछे (कुंभीमहंताहियपोरसीया के०) एवी पुरुष प्रमाण थकी अधिक मोटी कुंभी भाजन विशेष ते केवीछे तोके (समूसिता के०) ऊंटने आकारे ऊंचीछे अने (लोहियपूयपुसा के०) रुधिर अने परु एणे करी परिपूर्ण भरेलीछे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका-(तेइति) ते नारकाः शोणितं तिप्यमानाः स्त्रवंतोयत्र रात्रिंदिनं गमयंति तत्र प्रदेशे तालसंपुटाइव पवनप्रेरितशुष्कपत्रसंचयाइव सदा विस्वरं स्तनंति क्रंदंति । वन्हिना प्रद्योतिताज्वालिताः क्षारेणप्रदिग्धांगाः शोणितं पूयं मांसं वाऽहर्निशं गलंति. ॥ २३ ॥ (जईति) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं वक्ति । यदि ते त्वया श्रुता लोहितं रुधिरं पूयं पक्करुधिरं ते द्वे अपि पक्तुं शीलमस्याः सा लोहितपूयपाचिनी कुंभी । पुनः किंभूता । बालः प्रत्यग्रोग्निस्तस्यतेजोभितापः सएव गुणोयस्याः सा बालाग्नितेजोभिताप

पाट्यमानाआर्ततरं रसंति रारटंतीति. ॥ १५ ॥ उद्देशकार्थोपसंहारार्थमाह । (अप्पेणेत्यादि) इहास्मिन्मनुष्यन्नवे आत्मना परवंचनप्रवृत्तेन स्वतएव परमार्थतआत्मानं वंचयित्वाऽल्पेन स्तोकेन परोपघातसुखेनात्मानं वंचयित्वा बहुशोनवानां मध्ये अधमानां मध्ये अधमान्नवाधमामत्स्यबंधलुब्धकादीनां नवास्तान्पूर्वजन्मसु शतसहस्रशः समनुन्नूय तेषु न्नवेषु विषयोन्मुखतया सुकृतपराङ्मुखत्वेन वा ऽवाप्य महाघोरातिदारुणं नरकवासं तत्र तस्मिन्मनुष्याः क्रूरकर्माणः परस्परतोदुःखमुदीरयंतः प्रन्नूतं कालं यावत्तिष्ठंति । अत्रकारणमाह । यथा पूर्वजन्मसु यादृग्न्नूतेनाध्यवसायेन जघन्यजघन्यतरादिना कृतानि कर्माणि तथा तेनैव प्रकारेण (से) तस्य नारकजंतोर्न्नारावेदनाः प्रादुर्न्नवंति स्वतः परतउन्नयतोवेति । तथाहि । मांसादाः स्वमांसान्येवाग्निना प्रताप्य न्नक्ष्यंते तथा मांसरसपायिनोनिजपूयरुधिराणि तप्तत्रपूणीव पाय्यंते तथा मत्स्यघातकलुब्धकादयस्तथैव छिद्यंते निद्यंते यावन्मार्यंतेति । तथाऽनृतन्नाषिणां तत्स्मारयित्वा जिव्हाश्छेद्यंते । तथा पूर्वजन्मनि परकीयड्व्यापहारिणामंगोपांगान्यपन्छियंते तथा पारदारिकाणां वृषणछेदः शाल्मल्युपगूहनादिच तैः कार्यंते । एवं महापरिग्रहारंन्नवतां क्रोधमानमायालोन्निनां च जन्मांतरस्वकृतक्रोधादिदुष्कृतस्मारणेन तादृग्विधमेव दुःखमुत्पाद्यतइति कृत्वा सुष्ठूच्यते तथाविधं कर्म तादृग्विधन्नूतएव तेषां तत्कर्मविपाकादितोन्नारइति. ॥ २६ ॥ किंचान्यत् (समज्जिणित्तुइत्यादि) अनार्याअनार्यकर्मकारित्वाद्धिंसानृतस्तेयादिन्निराश्रवद्वारैः कलुषं पापं समर्ज्याशुन्नकर्मोपचयं कृत्वा ते क्रूरकर्माणोदुरन्निगंधे नरके आवसंतीति सटंकः । किंन्नूताः । इष्टैः शब्दादिन्निर्विषयैः कमनीयैः कांतैर्विविधं प्रकर्षेण हीनाविप्रमुक्तानरके वसंति । यदिवा यदर्थं कलुषं समार्जयंति तैर्मातापुत्रकलत्रादिन्निः कांतैश्च विषयैर्विप्रमुक्ताएकाकिनस्ते दुरन्निगंधेन कुथितकलेवरातिशायिनि नरके कृत्स्ने संपूर्णेऽत्यंताशुन्नस्पर्शे एकांतोद्वेजनीये शुन्नकर्मापगताः (कुणिमेत्ति) मांसपेशीरुधिरपूयांत्रफिफिसकल्मषाकुले सर्वामेध्याधमे बीन्नत्सदर्शने हाहारवाक्रंदेन कष्टं मातावदित्यादि शब्दावधीरितदिगंतराले परमाधमे नरकावासे आसमंतादुत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि यावद्यस्यांवा नरकपृथिव्यां यावदायुस्ताववसंति तिष्ठंति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीतिपूर्ववत्. ॥ २७ ॥ इति नरक विन्नक्तेः प्रथमोद्देशकः समाप्तः

हवे पांमाध्ययननांबीजो उद्देशो प्रारंन्नियें बैये एने विषे पण एज नरकना न्नाव कहेबे.

अहावरं सासयदुक्खधम्मं, तं न्ने पवक्खामि जहातहेणं ॥ बाला
जहा दुक्कडकम्मकारी, वेदंति कम्माइं पुरेकडाइं ॥ १ ॥ हवेहि

अत्यंत क्रूर पापकर्मना धणी दुःखवेदना नोगववाने घणोकाल सुधी त्यां नरकने विषे रहे (जहाकडंकम्मतहासिनारे के०) यथाकृतानिकर्माणि जेवां अध्यवसायेकरी जेवाजना वे कर्म कीधां होय तेवाज नरकमां पण सिनार शब्दे दुःख उपजे जेम मांस न क्षण करनारने तेनाज शरीरमांथी मांसकापी अग्नीवर्ण करी खवरावे, मद्यपानीने तप्त कथीरनो रस पीवरावे, मत्सघातकीने छेदे, नेदे, असत्य नाषण करनारनी जिव्हा छेदे, परधनापहारीना अंगोपांग छेदे, लंपटना वृषण छेदे, साल्मली वृक्षनुं आलिंगन करावे इत्यादिक जेणे जेवा कर्म उपार्ज्यां होय तेने ते सरखाज दुःख परमाधार्मिको उपजावे. ॥ २६ ॥ (समज्जिणित्ताकलुसंअणज्जा के०) ते पापी अनार्य माता पिता अने स्त्रियादि कने अर्थे घणा कलुष एटले पापकर्म उपार्जन करीने पढी (इट्ठेहिंकंतेहियविप्पहूणा के०) इष्टजे मातापिता तथा कांता एटले स्त्रियादिक ते थकी विप्पहूणा एटले रहित अर्थात् एकाकी बता (तेडुब्गिगंधेकसिणेयफासेके०) ते डुर्निगंध दुःखे करी नर्यो तथा अशुन स्पर्शवान एवा नरकने विषे (कम्मोवगाकुणिमेआवसंतिके०) कर्मोपगता अशुन क र्मने लीधे कुणि एटले मांस पेसी रुधिर परु आंतरमा फेफसुं इत्यादिक कस्मले करी समाकुल एवा नरक स्थानमां घणोकाल अवश्य पणे रहीने पूर्वोक्त दुःख सहन करे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो.॥२७॥इति नरकविन्नक्तियनाम प्रथमोद्देशकनुंअर्थसमाप्तः

॥ दीपिका—(परिक्पेति) कुंनीषु तान् आर्तस्वरान् करुणं दीनं रसंतः प्रक्षिप्य प्रप चंति ते तृषार्ताः सलिलं प्रार्थयंतस्तप्तं त्रपु पाय्यंते । पाय्यमानाश्चार्ततरं रसंति रारटंति ॥ २५ ॥ (अप्पेणेति) इह नरन्नवे आत्मनैवात्मानं वंचयित्वा नवानामधमान्नवाधमा अधमन्नवामत्स्यवधलुब्धकादीनां नवास्तान् पूर्वजन्मनि शतसहस्रशः समनुनूय क्रूरक र्माणस्ते नरके बहुप्रनूतकालं तिष्ठंति यथा येन प्रकारेण यादृशाध्यवसायेन पूर्वनवे कृ तानि कर्माणि तथा से तस्य नारकस्य नारावेदनाः स्युः ॥ २६ ॥ (समज्जिणित्तेति) अ नार्याः पापकर्मकारिणः कलुषं पापं समर्ज्य अर्जयित्वा ते नारकाडुरन्निगंधिनरके वसं ति । किंनूताः । इष्टैः कांतैः शब्दादिविषयैर्विहीनाः।नरके किंनूते।कृत्स्ने संपूर्णेऽस्पर्शेऽत्यं ताशुनस्पर्शे कर्मोपगताआशु कर्मबद्धाः कुणिमे रुधिराद्याकुले आसमंतादुत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिं शत्सागराणि वसंतीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २७ ॥ इतिपंचमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः

॥ टीका—तासु च यत्क्रियते तद्दर्शयितुमाह । (परिक्पेत्यादि) तासु प्रत्यग्निना दी प्तासु लोहितपूयशरीरावयवकिल्बिषपूर्णासु डुर्गंधासु च बालान्नारकांस्त्राणरहितानार्त स्वरान् करुणं दीनं रसंतः प्रक्षिप्य प्रपचंति तेच नारकास्तथा कदर्थ्यमानाविरसमाक्रं दंतस्तृषार्ताः सलिलं प्रार्थयंतोमद्यं ते अतीव प्रियमासीदित्येवं स्मरयित्वा तप्तं यत्त्रपु

मक्षिनिमेषमपि कालमविद्यमानं सुखलेशं याथातथ्येन यथाव्यवस्थितं तथैव कथयामि । नात्रोपचारोर्थवादोवा विद्यतइत्यर्थः । बालाः परमार्थमजानानाविषयसुखलिप्सवः सांप्रतेक्षिणः कर्मविपाकमनवेक्ष्यमाणायथा येन प्रकारेण दुष्टं कृतं दुष्कृतं तदेव कर्मानुष्ठानं तेनवा दुष्कृतेन कर्मज्ञानावरणादिकं तद्दुष्कृतकर्म तत्कर्तुं शीलं येषांते दुष्कृतकर्मकारिणस्तएवंभूताः पुराकृतानि जन्मांतरार्जितानि कर्माणि यथावेदयंति तथा कथयिष्यामीति ॥ १ ॥ यथाप्रतिज्ञातमाह । (हत्थेहीत्यादि) परमाधार्मिकास्तथाविधकर्मोदयात् क्रीडायमानास्तान्नारकान् हस्तेषु पादेषु बध्वोदरं क्षुरप्रासिनिर्नानाविधैरायुधविशेषैर्विकर्तयंति विदारयंति । तथा परस्य बालस्येवाकिंचित्करत्वाद्वालस्य लकुटादिभिर्विविधं हतं पीडितं देहं गृहीत्वा वर्धं चर्मशकलं स्थिरं बलवत्पृष्टतः पृष्टिदेशे उध्धरंति विकर्तयंत्येवग्रतः पार्श्वतश्चेति ॥ २ ॥

बाहू पकप्पंति समूलतो से, थूलं वियासं मुहे आडहंति ॥ रहंसि जुत्तं सरयंति बालं, आरुस्स विझंति तुदेण पिठे ॥ ३॥ अयंव तत्तं जलियं सजोइ, तऊवमं भूमि मणुक्कमंता ॥ ते डज्झमाणा कलुणं थणंति, उसुचोइया तत्तजुगेसु जुत्ता ॥ ४ ॥

अर्थ–ते परमाधार्मिको (बाहूपकप्पंतिसमूलतोसेके०) त्रण नरकपृथ्वीने विषे नारकीना अधस्तन अने चारनरकपृथ्वीमां मूलथी आरंभीने बन्ने बाहु कापे, तथा (थूलंके०) मोहोटो लोहनो गोलो तपावी (मुहेके०) ते नारकीनुं मुख (वियासंके०) विकाशीने एटले मुख उघाडीने तेमांहे (आडहंतिके० नाखे तथा (रहंसिजुत्तंसरयंतिबालंके०) लोखंडना रथमां जोतरी पूर्वना करेला कर्म संभलावीने ते नारकीने खेडे हलावे तथा (आरुस्सविझंति तुदेणपिठे के०) अत्यंत रोश करीने ते नारकीना पुठनाभागने आरे करी वींधे ॥ ३ ॥ (अयंवतत्तंजलियंसजोइके०) जेम लोखंडनो गोलो तप्त अग्नीयें सहित जाज्वल्यमान होय अथवा उष्ण कथीर होय (तऊवमंभूमिमणुक्कमंताके०) तेनीठे उपमां जेने एटले तेना सरखी तप्त एवीजे भूमि, तेने अतिक्रमता एटले बलती पृथवीपर चालता (तेडज्झमाणाके०) ते नारकी बलता थका (कलुणंथणंतिके०) करुण एटले दयामणा शब्द करे अर्थात् हेमात हेतात इत्यादिक विलाप करे (उसुचोइयाके०) तथा आरे करी चोया एटले प्रेर्या थका (तत्तजुगेसुजुत्ताके०) तप्त एवा धूंसरे जोतर्या थका जेम गलिया बलद चालतां आरडे तेम ते नारकी आरडयां करे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–(बाहूइति) (से)तस्य नारकस्य तिसृषु नरकपृथिवीषु परमाधार्मिकाअप

पाएहि य बंधिऊणं, उदरं विकत्तंति खुरासिएहिं ॥ गिण्हंतु बालस्स विहत्तु देहं, वद्धं थिरं पिठतो उद्धरंति ॥ २ ॥

अर्थ-(अहके०) अथ एटले हवे (अवरंके०) अपर एटले बीजा (सासयडुरकधम्मं के०) शाश्वतडुःखनो धर्म एटले स्वभावछे जेने विषे एवा नरकना डुःख ज्यां सुधी जीवे त्यांसुधी ते नारकी जेमभोगवे (तंभेके०) तेम तमने (जहातहेणं के०) यथा तथ्य (पवरकामि के०) कहीशुं; एटले जेरीते श्रीवीरपरमेश्वरना मुखथी सांभळ्युंछे तेरीते तमोने कहीशुं (डुक्कडकम्मकारी के०) डुकृत कर्मना करनार एवा (बाला के०) अज्ञानी निर्विवेकीजीव ते (जहा के०) जेरीते (पुरेकडाइंकम्माइं के०) पोताना पूर्वकृतकर्मने (वेदंति के०) वेदेछे भोगवे छे तेरीते कहीशुं ॥१॥ त्यां परमाधार्मिक देव (हछेहिपाएहियबंधिऊणं के०) ते नारकीना हाथ पग बांधीने (खुरासिएहिं के०) छुरे करी तथा खड्गे करी (उदरंविकत्तंति के०) पेटने कापे ते केवीरीते कापे तोके (गिण्हंतुबालस्सविहत्तुदेहंके०) बाल नारकीने ग्रहणकरी एटले पकडीने तेना शरीरने लाकडादिके हणीने खंमो खंम करे (वद्धंथिरंपिठतोउद्धरंति के०) आगला भागनुं सबल चर्म ते पुठ प्रदेशे काढे अने पुठनुं चर्म ते आगल काढे तथा मावा पाशानुं चर्म जमणे पासे काढे अने जमणी बाजुनुं चर्म मावी बाजुए काढे एरीते चामडी उखेडी नाखे॥२॥

॥ दीपिका-अथ द्वितीयस्यादिसूत्रमिदं । (अहावरमिति) अथापरमन्यद्वक्ष्यामि । शश्वद्भवतीति शाश्वतं यावदायुस्तच्च तद्दुःखंच तदेव धर्मः स्वभावोयस्मिन् सतथा एवंभूतं नरकं तथ्येन सत्यतया (भे) भवतां कथयामि । बालानिर्विवेकाडुष्कृतकर्मकारिणः पुराकृतानि पापानि कर्माणि वेदयंति तथा वदिष्यामि ॥ १ ॥ (हछेहिंति) परमाधार्मिकास्तान्नारकान् हस्तपादेषु बद्ध्वा उदरं क्षुरप्रासिभिरायुधविशेषैर्विकर्तयंति विदारयंति तथा बालस्य लकुटादिभिर्विविधं हतं देहं गृहीत्वा वर्ध्रं चर्मशकलं स्थिरं बलवत् पृष्ठतः पृष्ठदेशे उद्धरंति वेष्टयंति, ॥ २ ॥

॥ टीका-उक्तः प्रथमोद्देशकः सांप्रतं द्वितीयः समारभ्यते। अस्य चायमभिसंबंधः। इहानंतरोद्देशके यैः कर्मभिर्जंतवोनरकेषूत्पद्यंते यादृगवस्थाश्च भवंत्येवं तत्प्रतिपादितमिहापि विशिष्टतरं तदेव प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं (अहावरमित्यादि) अथेत्यानंतर्ये। अपरमित्युक्तादन्यद्वक्ष्यामीत्युत्तरेण संबंधः। शश्वद्भवतीति शाश्वतं यावदायुस्तच्च तडुःखं च शाश्वतं डुःखं तद्धर्मः स्वभावोयस्मिन् यस्य वा नरकस्य सतथा तमेवंभूतं नित्यडुःखस्वभाव

नारकीने (संपगाढंसि के०) अत्यंत वेदनाक्रांत एवुं नरक अथवा तेवो मार्ग तेने विषे (पवज्जमाणा के०) चलावता थका (सिलाहि हम्मंतिनिपातिणीहिं के०) साहमु सि लायेंकरी हणीने नीचो पाडी नाखे,परंतु ते आगल जइ शके नही(संतावणी नामचिर हितीयाके०) तथा संतापनी नामे कुंनी त्यां शाश्वतिछे तेमांहे गयो छतो (संतप्पतीज त्थ असाहुकम्मा के०) ज्यां माठा कर्मनो करनार बापडो घणु संताप सहन करे ॥६॥

॥ दीपिका–(बालेति) बाला अज्ञाः प्रज्वलितलोहपथमिव ते आक्रंदंति । तथा यस्मिन्ननिडुर्गे विषमे कुंनीशाल्मल्यादिप्रपद्यमानानसम्यग्गुपगछंति ततस्ते कुपितानरकपा लाः प्रेष्यानिव कर्मकरानिव दंडैर्हत्वा पुरतोग्रतः कुर्वंति ॥ ५ ॥ (तेइति) ते नारकाः संप्र गाढमसह्यं नरकं प्रपद्यमानाअनिमुखपातिनीनिः शिलानिरसुरैर्हन्यंते । संतापनी कुंनी साच चिरस्थितिका तत्रतः प्राणी वेदनाग्रस्तआस्ते यत्र संतप्यतेऽत्यर्थमसाधुकर्मा ॥ ६ ॥

॥ टीका–अन्यच्च (बालावलाइत्यादि) बालानिर्विवेकिनः प्रज्वलितलोहपथमिव तप्तां नुवं (पविज्जलंति) रुधिरपूयादिना पिछिलां वलादनिछंतोऽनुक्रम्यमाणा विरसमारसं ति। तथा यस्मिन्ननिडुर्गे कुंनीशाल्मल्यादौ प्रपद्यमानानरकपालचोदितानसम्यग्गछंति । त तस्ते कुपिताः परमाधार्मिकाः प्रेष्यानिव कर्मकरानिव वलीवर्दवछा दंमैर्हत्वा प्रतोदे न प्रतुद्य पुरतोग्रतः कुर्वंति नते स्वेछया गंतुं स्थातुं वा लनंतइति ॥५॥ किंच (तेसंपगा ढमित्यादि) ते नारकाः संप्रगाढमिति वहुवेदनात्वेन सह्यं नरकं मार्गं वा प्रपद्यमाना गंतुं स्थातुं वा तत्राऽशक्नुवंतोऽनिमुखपातिनीनिः शिलानिरसुरैर्हन्यंते। तथा संतापयतीति संतापनी कुंनी साच चिरस्थितिका । तत्रतोऽसुमान् प्रनूतं कालं यावदतिवेदनाग्रस्तआस्ते यत्रच संतप्यते पीड्यतेऽत्यर्थमसाधुकर्मा जन्मांतरकृताशुनानुष्ठानइति ॥ ६ ॥

कंदूसु पक्खिप्प पयंति बाला, ततोवि दड्ढा पुण उप्पयंति ॥ ते उड्ढका
एहिं पखज्जमाणा, अवरेहिं खज्जंति सणप्फएहिं ॥ ७ ॥ समू
सियं नाम विधूमठाणं, जं सोयतत्ता कलुणं थणंति ॥ अहेसिरं
कट्टु विगत्तिऊणं, अयंव सत्थेहिं समोसवेंति ॥ ८ ॥

अर्थ–वली नरकना डुःख कहेछे. (बाला के०) ते बाल नारकीने परमाधार्मिक लो को (कंदूसु के०) कंदू नामा नाजन विशेष तेने विषे (पक्खिप्प के०) प्रक्षेपीने (प यंतिके०) पचवे (ततोविदड्ढापुणउप्पयंतिके०) तेवारे ते नारकी दाऊता थका वलता चणानी पेरे उंचा उछले (तेउड्ढकाएहिंपखज्जमाणाके०) त्यां आकाशमां वली तेने डोण काकादिक पक्षीउं त्रोडता थका खाता थका (अवरेहिं के०) त्यां थकी बीजा स्या

रनारकाश्चाधस्तनचतसृषु पृथिवीषु मूलतआरभ्य बाहून् प्रकर्तयंति छिंदंति । तथा मुखे विकाशं कृत्वा स्थूलं बृहल्लोहगोलादिकं प्रक्षिपंतआदहंति । तथा रहसि एकांते युक्तं स्व कृतकर्मानुरूपवेदनां कुर्वतोबालमज्ञं स्मारयंति जन्मांतरकर्म । आरुष्य च रोषं कृत्वा पृष्ठे प्रतोदेन विध्यंति ॥ ३ ॥ (अयमिति) तथा अयोगोलवज्ज्वलितां ज्योतिर्भूतां त दुपमां वा भूमिमनुक्रमंतोगछंतस्ते दह्यमानाः करुणं दीनं स्तनंति आक्रंदंति तप्तेषु युगे षु युक्तागलिवृषाइव इषुणा प्रतोदादिना विध्यमानाः स्तनंति ॥ ४ ॥

॥ टीका—अपिच । (बाहूपकप्पंतीत्यादि) (से)तस्य नारकस्य तिसृषु नारकपृथिवीषु परमाधार्मिकाअपरनारकाश्चाधस्तनचतसृषु चापरनारकाएव मूलतआरभ्य बाहून् प्रक र्तयंति छिंदंति तथा मुखे विकाशं कृत्वा स्थूलं बृहत्तप्तायोगोलादिकं प्रक्षिपंतआसमंताद्द हंति । तथा रहस्येकांतिनं युक्तमुपपन्नं युक्तियुक्तं स्वकृतवेदनानुरूपंतत्कृतजन्मांतरानुष्ठानं तं बालमज्ञं नारकं स्मारयंति । तद्यथा । तप्तत्रपुपानावसरे मद्यपस्त्वमासीस्तथा स्वमांसभ क्षणावसरे पिशिताशी त्वमसीत्येवं दुःखानुरूपमनुष्ठानं स्मारयंतः कदर्थयंति तथा नि ष्कारणमेवारूष्य कोपं कृत्वा प्रतोदादिना पृष्ठदेशे तं नारकं परवशं विध्यंतीति ॥ ३ ॥ तथा (अयंवेत्यादि) तप्तायोगोलकसन्निभां ज्वलितज्योतिर्भूतां तदेवंरूपां तदुपमां वा भूमिमनुक्रामंतस्तां ज्वलितां भूमिं गछंतस्ते दह्यमानाः करुणं दीनं विस्वरं स्तनंति रा रटंति तथा तप्तेषु युगेषु युक्तागलिबलीवर्दाइवेषुणा प्रतोदादिना विध्यमानाः स्तनंतीति॥

बालाबलाभूमिमणुक्कमंता, पविज्जलं लोहपहं च तत्तं ॥ जंसी
भिदुग्गे सि पवज्जमाणा, पेसेव दंमेहिं पुराकरंति ॥५॥ ते संपगा
ढं सि पवज्जमाणा. सिलाहि हम्मंति निपातिणीहिं ॥ संतावणी
नाम चिरछितीया. संतप्पती जछ असाहुकम्मा ॥ ६ ॥

अर्थ—(बालके०) अज्ञानी निर्विवेकी (अबलाके०) बल रहित एवा नारकी तेने उस्र लोहना) जेवी (भूमि के०) पृथवीयें बलात्कारें (अणुक्कमंताके०) अतिक्रमावे एटले च लावे तेवारे ते बापडा विरस शब्द करे ते भूमि केवीछे तोके (पविज्जलं लोहपहंचतत्तं के०) प्रज्वलित एटले ज्यां उस्र लोह समान रुधिर अने परुनो कर्दमछे एवीछे (जंसीभि दुग्गे सिपवज्जमाणाके०) तथा जे विषम स्थानके कुंभीपाक शाल्मली वृक्ष प्रमुख विषम स्थानकछे (पेसेवके०) त्यां चालता कर्मकरनी पेरे अथवा गलियाबलदनीपेरे(दंमेहिंके०) दंमादिके ताडना करीने (पुराकरंतिके०) आगलकरी चलावे पण ते नारकी पोतानी इछायें आगल जवाने अथवा पोताने गमेते स्थानके रहीजवा पणु पामे नही. ॥ ५ ॥ (तेके०) ते

धार्मिको ते नारकीउनुं चर्म उखेडी नाखे पढी ते नारकीना चर्म रहित एवा अंगने (प क्खीहिंखऊंति अउमुहेहिं के०) वज्र समानछे चांच जेमनी एवा काक समली गृद्ध पक्षीउ तेने खाय, एरीते नरकपाले छेदन नेदन मूर्छित कस्यां थका पण ते नारकी मरण पामे नही तेनुं कारण कहेछे (संजीवणी नामचिरछितीया के०) संजीवनी नामे एवी साश्वति कुंनीछे (जंसीपया के०) जेहने विषे पोहोता थका प्राणी (हम्मइपावचे या के०) पापसहित एवा परमाधार्मिकलोक तेने हणे छेदे नेदे परंतु तेणे करी ते मरे नही किंतु पारानी पेरे तेनुं शरीर फरी मली जाय ॥ए॥ (तिरकाहिंसूलाहि के०) तेपर माधार्मिक पुरुषो तीक्ष्ण वज्रवत् सूलिये करीने नारकीना शरीरने (अनितावयंति के०) अनितापयंति एटले पीडे जेम (लकुं के०) लुब्धक एवा जे कुतरादिक तेने (वसोगयं के०) वसोपगतं एटले वश पड्या एवां (सोयरयंव के०) स्वापद मृगादिक पशु ते जेम मरणांत कदर्थना पामे तेम (ते के०) ते नारकीजीवो पण (सूलविद्धा के०) सूलियें विंध्या थका (कलुणंथणंति के०) दीनस्वरें अरडाट करे एकतो अन्यंतर शोकादिक अने वीजो बाहिर हननादिके करी (गिलाणाके०) गिलान छता एम (डुह उके०) बन्ने प्रकारे (एगंतडुरकं के०) एकांत दुःख नोगवे परंतु मरण पामे नही॥१०॥

॥ दीपिका—(समूसिआइति) तत्र नरके स्तंनादौ ऊर्ध्वबाहवोऽधःशिरसः श्वपाकैरजवल्लं बिताः (विसूणिअंगत्ति) उत्कृत्तांगाअपनीतत्वचोजोहमुखैः पक्षिनिर्वज्रचंचुनिः काक गृध्रादिनिर्नद्दयंते । एवंते परमाधार्मिककृतैः परस्परकृतैः स्वानाविकैर्वा डुःखैश्छिन्नन्निन्ना अपि न म्रियंते। अतोज्ञायते संजीवनी नरकनूमिर्यस्यां खंमशश्छिन्नोपि न म्रियते स्वायु षि सतीति। सर्वे प्रजाः प्राणिनोयस्मिन्नरके पापचेतसोहन्यंते मुजरादिनिः । नरकानुनावा च मुमूर्षवोपि नम्रियंते ॥ए॥(तिरकाहिंति) तीक्ष्णानिः शूलानिस्तापयंति । कमिव। वशमुपग तं सूकरादिकं लब्ध्वा यथा कदर्थयंति। ते नारकाः शूलविद्धाअपि नम्रियंते पारदवन्मिलंति ततः करुणं स्तनंति दीनमाक्रंदंति उनयतोंतर्बहिश्च ग्लानाएकांतडुःखमनुनवंति ॥१०॥

॥ टीका—अपिच (समूसियाइत्यादि) तत्र नरके स्तंनादौ ऊर्ध्वं बाहवोऽधःशिरसोवा श्वपाकैर्बस्तवल्लंबिताः संतः (विसूणियंगत्ति) उत्कृत्तांगाअपगतत्वचः पक्षिनिरयोमुखै र्वज्रचंचुनिः काकगृध्रादिनिर्नद्दयंते। तदेवं ते नारकानरकपालापादितैः परस्परकृतैः स्वाना विकैर्वा छिन्नान्निन्नाः क्वथितामूर्छिताः संतोवेदनासमुद्घाते गताअपि संतोन म्रियंते अतोव्यपदिश्यते संजीवनीवत् संजीवनी जीवितदात्री नरकनूमिः। तत्र गतः खंम शश्छिन्नोपि नम्रियते स्वायुषि सतीति । साच चिरस्थितिकोत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत् याव त्सागरोपमाणि । यस्यां च प्राप्ताः प्रजायंतइति प्रजाः प्राणिनः पापचेतसोहन्यंते मुजरा

नकनी दिशा तरफ नासे (सणप्फएहिं के०) त्यां वली अन्य सिंह व्याघ्रादिक तेने (खजंति के०) खाए ॥ ७ ॥ नाम शब्द संभावनायेंछे (समूसियं के०) उंचु चिताने आकारे एवुं (विधूमठाणं के०) अग्नीनुं स्थानकछे (जं के०) ते स्थानक पामिने (सोयतत्ता के०) शोके तप्त थका (कलुणंथणंति के०) दीनस्वरे करीने आक्रंद करे तथा परमाधामीउ ते नारकीनुं (अहेसिरंकट्टु के०) मस्तक नीचुं करीने (विगत्तिऊणंअयंवके०) शरीर विकूर्वि भेदीने लोहनी पेरे (सत्थेहिं के०) शस्त्र जे मुज्ञरादिक तेणेकरी (समोसवेंति के०) खंम खंम एटले टुकडा टुकडा करे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–(कंदूसुइति) तं बालं कंदूसु कुंभीषु प्रक्षिप्यासुराः पचंति । ततः पाकस्थानात्ते दह्यमानाश्चणकाइव भृज्यमानाउत्पतंति ऊर्ध्वमुच्चलंति । तेच (उड्डकाएहिंति) डोणैः काकैर्वैक्रियैः प्रखाद्यमानान्नक्ष्यमाणानश्यंतोनष्टाः संतोऽपरैः (सणप्फएहिंति) सनखपदैः सिंहव्याघ्रादिनिर्नक्ष्यंते ॥ ७ ॥ (समूसिअमिति) सम्यगुछ्रितं चितिकाकृति विधूमस्याग्नेः स्थानं विध्वंसस्थानं यत् प्राप्य शोकतप्ताः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति । नामेति संभावनायां । संभाव्यंते तत्रैतावेदनाइति । तथा अधः शिरोमस्तकं कृत्वा देहं विकर्त्य छित्त्वा (समोसवेंतित्ति) खंडशः खंमयंत्यसुराः ॥ ८ ॥

॥ टीका–(तथा कंदूसुपक्खिप्पइत्यादि) तं बालं वराकं नारकं कंदूषु प्रक्षिप्य नरकपालाः पचंति । ततः पाकस्थानात् ते दह्यमानाश्चणकाइव भृज्यमानाऊर्ध्वं पतंत्युत्पतंति ते च ऊर्ध्वमुत्पतिताः (उड्डकाएत्ति) डोणैः काकैर्वैक्रियैः प्रखाद्यमानान्नक्ष्यमाणाअन्यतोनष्टाः संतोऽपरैः (सणफएहिंति) सिंहव्याघ्रादिभिः खाद्यंते भक्ष्यंतेइति ॥ ७ ॥ किंच (समूसियंनामेत्यादि) सम्यगुछ्रितं चितिकाकृति । नामशब्दः संभावनायां । संभाव्यते एवंविधानि नरकेषु यातनास्थानानि । विधूमस्याग्नेः स्थानं विधूमस्थानं । यत्प्राप्य शोकवितप्ताः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंतीति । तथा अधःशिरः कृत्वा देहंच विकर्त्ययोव च्छस्त्रैस्तच्छेदनादिभिः (समोसवेंतित्ति) खंमशः खंमयंतीति ॥ ८ ॥

समूसिया तब विसूणियंगा, पक्खीहिं खज्जंति अउमुहेहिं ॥ सं
जीवणी नाम चिरहितीया, जंसीपया हम्मइ पावचेया ॥ ९ ॥
तिक्खाहिं सूलाहि भितावयंति, वसोगयं सोयरयं व लद्धुं ॥ ते सू
लविद्धा कलुणं थणंति, एगंतडुक्खं डुहउ गिलाणा ॥ १० ॥

अर्थ–(तब के०) त्यां नरकने विषे (समूसिया के०) उंचा थांभादिकने विषे (विसूणियंगा के०) नीचे मस्तके बांधीने जेम खाटकी बालीनुं चर्म उखेडे तेम परमा

क्षिपंति । स असाधुकर्मा तस्यां चितायामावर्तते विलीयते । यथा सर्पिर्घृतं ज्योतिर्मध्ये अग्निमध्ये पतितं विलीयते तथापि नम्रियते नवस्वभावत्वात् ॥ १२ ॥

॥ टीका–तथा (सयाजलमित्यादि) सदा सर्वकालं ज्वलद्देदीप्यमानमुष्णरूपत्वात् स्थानमस्ति । निहन्यंते प्राणिनः कर्मवशगायस्मिन् तन्निहमाघातस्थानं तच्च महाविस्तीर्णं यत्राकाष्ठोऽग्निर्ज्वलन्नास्ते तत्रैवं नूते स्थाने नवांतरे बहुक्रूरकर्माणस्तद्विपाकापादितेन पापेन बद्धास्तिष्ठंतीति । किंनूताः । अरहस्वगवृहदाक्रंदशब्दाश्चिरस्थितिकाः प्रनूतकालस्थितयइत्यर्थः ॥ ११ ॥ तथा (चियामहंतीव इत्यादि) महतीश्चिताः समारच्य नरकपालास्तं नारकं विरसं करुणं दीनमारसंतं तत्र क्षिपंति । सचासाधुकर्मा तस्यां चितायां गतः सन्नावर्तते विलीयते । यथा सर्पिर्घृतं ज्योतिर्मध्ये पतितं इवीनवत्येवमसावपि विलीयते नच तथापि नवानुनावात्प्राणैर्विमुच्यते ॥ १२ ॥

सदा कसिणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अइडुरकधम्मं ॥ हत्थे
हिं पाएहिय बंधिऊणं, सत्तुव मंमेहिं समारनंति ॥ १३ ॥ नंजं
ति बालस्स वहेण पुठी, सीसंपि निंदंति अउवणेहिं॥ते निन्नदे
हा फलगंव तठा, तत्ताहिं आराहिं णियोजयंति ॥ १४ ॥

अर्थ–हवे वली डुःखनो बीजो प्रकार कहेठे. (सदाकसिणंपुणघम्मठाणं के०) त्यां सर्वकाल संपूर्ण घर्म एटले उष्ण आतापनुं स्थानक जे स्थानके (गाढोपनीतंके०) ते नारकीने निबडकर्मे आणी ढोक्या थका (अइडुरकधम्मं के०) ज्यां अत्यंत डुःखरूप धर्मनो स्वनावठे एवा स्थानके (हत्थेहिंपाएहियबंधिऊणंके०) नरकपाल ते नारकीना हाथ अने पग बांधीने (सत्तुवके०) शत्रुनी पेरे (डंमेहिंके०) दंमेकरी (समारनंतिके०) संमारंने ताडना करे ॥ १३ ॥ (नंजंतिबालस्सवहेणपुठि के०) ते परमाधार्मिको दंमादिके करी बाल अज्ञ एवा नारकीनी पीठने नांजे तथा (अउवणेहिंके०) लोढाना घणे करीने (सीसंपिनिंदंतिके०) मस्तकने पण नेदी नाखे, चूर्ण करीनाखे वली अपि शब्द थकी बीजा पण अंगोपांग एजरीते मुजरे करी नेदी नाखे (तेनिन्नदेहाके०) ते नारकी चूर्ण थयाथी निन्नदेह ठतां (फलंगवतठाके०) पाटीआनी पेरे बन्ने पासे करवते करी ठेद्या थका (तत्ताहिंआराहिंके) तप्त आरे करी खोसता थका तप्त कथीरादिकना मार्गने विषे (नियोजयंति के०) ते नारकीने प्रवर्त्तावे इतिनाव एटले तप्त कथीरना रसनुं पान कराववाने विषे नियोजे एटले प्रवर्त्तावे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(सदेति) सदा कृत्स्नं संपूर्णं घर्मस्थानं गाढैर्दृढैः कर्मभिरुपनीतं प्रापितं

रादिनिर्नरकानुनावाच्च मुमूर्षवोप्यत्यंतपिष्टाअपि न म्रियंते ऽपितु पारदवन्मिलंतीति॥९॥ अपिच (तिरकाहीत्यादि) पूर्वडुष्कृतकारिणं तीक्ष्णानिरयोमयीनिः शूलानिरनेकपालानारकमनितापयंति। किमिव। वशमुपगतं श्वापदमिव। कालपृष्ठसूकरादिकं स्वातंत्र्येण लब्ध्वा कदर्थयंति ते नारकाः शूलादिनिर्विद्धाअपि नम्रियंते केवलं करुणं दीनं स्तनंति। नच तेषां कश्चित्राणायालं। तथैकांतेनोनयतोंतर्बहिश्च ग्लानाअपगतप्रमोदाः सदा डुःखमनुनवंतीति॥ १०॥

सया जलं नाम निहं महंतं, जंसी जलंतो अगणी अकहो॥
चिहंति बद्धा बहुकूरकम्मा, अरहस्सरा केइ चिरहितीया॥
॥११॥ चिया महंतीउ समारनित्ता,बिन्नंति ते तं कलुणं रसंतं॥
आवट्टती तह असाहुकम्मा, सप्पी जहा पडियं जोइमझे॥१२॥

अर्थ-(सयाजलंनाम के०) सर्व काल निरंतर जलतुं बलतुं एवे नामे (निहंके०) ज्यां प्राणीने हणीयें ते (महंतं के०) मोहोटुं स्थानकछे (जंसीजलंतोअगणी अकहो के०) जे स्थानकें काष्ट रहित अग्नि प्रज्वलेछे त्यां (बद्धाबहुकूरकम्मा कें०) घणा कूरकर्मे बांध्या थका घणा कालसुधी (चिहंतिकें०) रहे केवा थका तिष्टे तोकें (अरहस्सराकेइ कें०) मोहोटा बीहामणा आक्रंद स्वर करता थका तथा (चिरहितीयाके०) घणाकाल नी स्थितीछे जेमनी एवा थका रहे॥ ११॥ (चियामहंतीउ कें०) ते परमाधार्मिक त्यां नरकने विषे मोहोटी अग्नीनी चिता (समारनित्ता के०) समारंनीने तेमां अनेक काष्ट प्रक्षेपीने (बिन्नंतितेतंकलुणंरसंतंके०) तेमांहे नारकीनेनाखे ते त्यां दाफता थका करुण स्वरे आक्रंद करता (तहके०) त्यां ते चितामांहे गयाथका (असाहुकम्माके०)असाधुकर्मना करनार एवा नारकी (आवट्टतीके०) आवर्त्ते,विलय थइ जाय कोनी पेरे तोके (जहाके०) जेम (सप्पि के०) घृत ते (जोइमझेके०) ज्योतिजे अग्नी तेमांहे (पडियंके०) पड्यो थको विलय थइ जाय तेनीपेरे विलयथाय परंतु घृततो अग्नीमांहे सर्वथा बली जाय पण नारकी जीव ते अग्नीमां मरण पामेनही॥ १२॥

॥ दीपिका-(सयेति) सदा ज्वलद्दीप्यमानं स्थानं। किंनूतं। निहन्यंते प्राणिनोयस्मिन् निहमाघातस्थानं महद्विस्तीर्णमस्ति। यस्मिन् स्थानेऽकाष्ठोग्निर्ज्वलन्नास्ते। तत्र बहुकूरकर्माणः केचिच्चिरस्थितिकाअरहस्सराबृहदाक्रंदशब्दास्तिष्ठंति॥ ११॥ (चियेति) महतीश्चिताः समारन्य नरकपालास्ते तं नारकं करुणं दीनं रसंतमाक्रंदंतं तत्र

(कंटइलं के०) कांटावाली एवी (महंतं के०) महोटी (नूमि के०) नूमिकानी वे लुने विषे (अणुक्कमंता के०) अतिक्रमावे ते जेम जेम आकरा चलावे तेम तेम दुःख पामे तथा (विवस्सुचित्ते के०) मूर्छित एवा नारकीउने (विवधतप्पेहिंके०) अनेक नरकपालो त्रापें करी वांधीने (समीरियाके०) तेना पूर्वकृत पापकर्म प्रकाशीने (कोट्टवलिंकरंति के०) कोट एटले नगरनी वलिवाकुल जेम दशोदिशे सैकडाखंम थइ विखरी जाय तेम परधार्मिको ते नारकीना खंमो खंम करी विखेरी नाखे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका-(अनिजुंजिआइति) रौद्रकर्मणि अपरान्नारकान् हननव्यापारेऽनियुज्य व्यापार्य असाधुकर्मणइपुचोदितान् शरानिघातप्रेरितान् हस्तिवहं वाहयंति नरकपालाः। यथा हस्ती वाह्यते समारुह्य एवं तान् वाहयंति । तस्य नारकस्योपर्येकं द्वौ त्रीन् वा समारोप्य ततस्तं वाहयंति । अतिन्नारारोपणेनावहंतमारुष्य रोषंकृत्वा प्रतोदादिना विध्यंति । सेतस्य नारकस्य (ककाणउत्ति) मर्मणि विध्यंति छिंदंति ॥ १५॥ (वालाइति) वालाः परवशामहतीं रुधिरादिप्रपिच्छिलां कंटकाकुलां नूमिमनुक्रामंतोमंदगतयोबलात्प्रेर्यंते । तथान्यान् तर्पकाकारान् विषस्सुचित्तान् मूर्छितान् विविधमनेकधाबद्धानरकपालाः पापेन समीरिताः प्रेरितास्तान् कुट्टयित्वा वलिं कुर्वंति खंडशः छित्वा इतश्चेतश्चक्षिपंति ॥ १६ ॥

॥ टीका-(अनिजुंजियाइत्यादि) रौद्रकर्मण्यपरनारकहननादिकेऽनियुज्य व्यापार्य यदिवा जन्मांतरकृतं रौद्रं सत्वोपघातकार्यमनियुज्य समारयित्वा असाधून्यशोन्ननानि जन्मांतरकृतानि कर्माण्यनुष्ठानानि येषांते तथा तानिपुचोदितान् शरानिवातप्रेरितान हस्तिवहं वाहयंति नरकपालाः। यथा हस्ती वाह्यते समारुह्यैवं तमपि वाहयंति । यदिवा हस्ती महांतं नारं वहत्येवंतमपि नारकं वाहयंत्युपलक्षणार्थत्वादस्योष्ट्रवहं वाहयंतीत्याद्यप्यायोज्यं कथं। वाहयंतीति दर्शयति । तस्य नारकस्योपर्येकं. द्वौ त्रीन् वा समारुह्य समारोप्य ततस्तं वाहयंति। अतिन्नारारोपणेनावहंतमारुष्य क्रोधं कृत्वा प्रतोदादिना विध्यंति तुदंति। सेतस्य नारकस्य (काकणउत्ति) मर्माणि विध्यंतीत्यर्थः ॥ १५ ॥ अपिच (बालाबलाइत्यादि) बालाइव बालाः परतंत्राः पिछिलां रुधिरादिना तथा कंटकाकुलां नूमिमनुक्रामंतोमंदगतयोबलात्प्रेर्यंते । तथान्यान् विषस्सुचित्तान् मूर्छितांस्तर्पकाकारान्विविधमनेकधा बद्धानरकपालाः समीरिताः पापेन कर्मणा चोदितास्तान्नारकान् कुट्टयित्वा खंमशः कृत्वा (वलिकरिंति) नगरवलिवदितश्चेतश्च क्षिपंतीत्यर्थः । यदिवा कोष्ठवलिं कुर्वंतीति ॥ १६ ॥

वेतालिए नाम महान्नितावे, एगायते पव्वयमंतलिक्खे ॥ हम्मंति
तत्था बहुकूरकम्मा, परं सहस्साण मुहुत्तगाणं ॥१७॥ संवाहिया

अतिःदुखमेव धर्मः स्वनावोयस्मिन् तत्तथा । एवंविधे स्थाने नारकं हस्तैः पादैर्बध्वा त त्र प्रक्षिपंति क्षिप्वाच शत्रुमिव दंमैः समारनंते ताफयंति ॥ १३ ॥ (नंजंतित्ति) बा लस्य नारकस्य व्यथेन लकुटादिप्रहारेण पृष्ठं नंजंति अयोघनैर्लोहघनैः शीर्षं निंदंति चूर्णयंति । अपिशब्दादन्यान्यप्यंगानि चूर्णयंति । ते निन्नदेहानारकाः फलकमिवोना न्यां पार्श्वान्यां क्रकचादिनावतष्टाद्दिधाकृतास्ततप्तानिरारानिः पीड्यमानास्तत्त्रपुपानादि के कर्मणि नियोज्यंते व्यापार्यंते ॥ १४ ॥

॥ टीका—अथायमपरोनरकयातनाप्रकारस्तमाह । (सयाकसिणमित्यादि) सदा स र्वकालं कृत्स्नं संपूर्णं पुनरपरं घर्मस्थानमुष्णस्थानं दृढैर्निधत्तनिकाचिकावस्थैः कर्मनिरु पनीतं ढौकितमतीव दुःखरूपोधर्मः स्वनावोयस्मिंस्तदतिदुःखधर्मं तदेवंनूते यातनास्था ने तमत्राणं नारकं हस्तेषु पादेषु च बद्ध्वा तत्र प्रक्षिपंति । तथा तदवस्थमेव शत्रुमिव दंडैः समारनंते ताडयंति ॥ १३ ॥ किंच । (नंजंतिबालस्सेत्यादि) बालस्य वराकस्य नारकस्य व्यथयतीति व्यथोलकुटादिप्रहारस्तेन पृष्ठं नंजयंति मोटयंति तथा शिरोप्य योमयेन घनेन निंदंति चूर्णयंत्यपिशब्दादन्यान्यप्यंगोपांगानि द्रुघणघातैश्चूर्णयंति । ते नार कान्निन्नदेहाश्चूर्णितांगोपांगाः फलकमिवोनान्यां पार्श्वान्यां क्रकचादिना अवतष्टास्तनूकृताः संतस्तप्तानिरारानिः प्रतुद्यमानास्तत्त्रपुपानादिके कर्मणि विनियोज्यंते व्यापार्यंतइति ॥ १४

अनिजुंजिया रुद्द असाहुकम्मा, उसुचोइया हत्थिवहं वहंति ॥ ए
गं दुरूहित्तु दुवे ततोवा, आरुस्स विझंति ककाणउसो ॥ १५ ॥
बाला बलानूमिमणुक्कमंता, पविज्जलं कंटइलं महंतं ॥ विब
द्धतप्पेहिं विवएचित्ते, समीरिया कोट्टबलिं करिंति ॥ १६ ॥

अर्थ—(अनिजुंजिया रुद्द असाहुकम्माके०) रौड एवा असाधु कर्मि एटले अन्य नार कीउने हणवादिक कार्ये पापना करनार अथवा पूर्वे नवना करेला एवा रौड अ साधु कर्म तेने प्रेरता थका एटले पूर्वकृत दुष्कृतने स्मरण करावीने (उसुचोइया ह त्थिवहंवहंति के०) सरानिघात एटले बाणादिके करी जेम हस्तिने चलावियें वाहियें तेम ते परधार्मिको माहावतनी पेरे ते नारकीउने वाहे अथवा उंटनी पेरे वाहे एटले चलावे (एगंदुरूहित्तुदुवेततोवा के०) तेना उपर एक बे अथवा त्रणरूपे आरूढ थइ ने दुःख आपे (आरुस्सविझंतिककाणउसोके०) क्रोधेकरीने ककाणउ एटले तेना मर्म स्थानकने आरादिकेकरी विंधे ॥१५॥ (बालाके०) अज्ञ एवा नारकीने (बलाके०) बला त्कारे करी (पविज्जलं के०) रक्त अने परु तद्रूप रौड कर्दमें करी विषम तथा

पीमिताडुष्कृतं पापं विद्यते येषांते डुष्कृतिनोमहापापाः । अहोअहनि तथा रात्रौ च परितप्यमानाअतिडुःखेन पीड्यमानाः संतः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति । तथैकांतेन कूटानि डुःखोत्पत्तिस्थानानि यस्मिन् तथा तस्मिन्नेवं नूते नरके महति विस्तीर्णे पतिताः प्राणिनस्तेनच कूटेन गलयंत्रपाशादिना पाषाणसमूहलक्षणेन वा तत्र तस्मिन्विषमे हताः । तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् स्तनंत्येव केवलमिति ॥ १८ ॥

नंजंति णं पुव्वमरीसरोसं, समुग्गरे ते मुसले गहेतुं ॥ ते भिन्नदेहा रुहिरं वमंता, उमुद्धगा धरणितले पडंति ॥ १९ ॥ अणासिया नाम महासियाला, पागब्भिणो तच सया सकोवा ॥ खज्जंति तह्रा बहुकूरकम्मा, अदूरए संकलियाहि बद्धा॥ २० ॥

अर्थ-(पुव्वमरीसरोसंतेके०) पूर्व जन्मना वैरी, सरखा तेपरमाधार्मिक रोम सहित कोपायमान थका (समुग्गरेमुसलेगहेतुं के०) मुजर सहित मुसल ग्रहण करीने ते नारकीना मस्तकादिकने (नंजंतिणं के०) नांगी नाखे तेवारे (तेनिन्नदेहारुहिरंवमंता के०) तेनारकी बापडा निन्नदेही थका लोहिवमता उता प्राबल्ये करी (उमुद्धगा के०) अधो मुख करी (धरणितलेपडंति) धरणीतलने विषे पडे. ॥१९॥ त्यां (अणासियाके०)नुख्या अहीं नाम शब्द संनावनायेडे (महाके०) अने महोटा शरीरना प्रमाणवाला (पागब्भिणो के०) प्रगल्भित एटले डुष्ट (सयासकोवाके०) सदाकाल क्रोध सहित एवा (सियाला के०) सीयालिया जीवने (तह्रके०) ते नरकने विषे परमाधार्मिको विकूर्वै ते (तह्राके०) त्यां नारकीमां (अदूरएसंकलियाहिबद्धा के०) ढुकडा शांकले करी बांध्या थका एवाजे (बहुकूरकम्मा के०) माहा पापी अत्यंत कूर कर्मना करनार नारकीउ तेने (खज्जंति के०) खंम खंम करी नक्षण करे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका-(नंजंतीति) णं वाक्यालंकारे । पूर्वमरयोजन्मांतरवैरिणइव परमाधार्मिकानारकावा अन्येषामंगानि सरोषं समुजराणि मुसलानि गृहीत्वा नंजंति ते नारकानिन्नदेहारुधिरं वमंतोऽधोमुखाधरणितले पतंति ॥ १९ ॥ महांतः शृगालानरकपालविकुर्विताअनाशिनोबुनुक्षिताः । नामेति संनावने । संनाव्यते एतत्तत्र । प्रगल्भिताधृष्टारौद्ररूपायत्र सदा सकोपाः संनवंति । तत्र तैः सृगालादिनिर्बहुकूरकर्माणः शृंखलादिनिर्लोहनिगडैर्बद्धाअदूरगाः परस्परसमीपएव वर्त्तिनः खाद्यंते नक्ष्यंते ॥ २० ॥

॥ टीका-अपिच (नंजंतिणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । पूर्वमरयइवारयोज

दुक्कडिणो थणंति, अहोय राउ परितप्पमाणा॥ एगंतकूम्मे नरए महंते, कूम्मेण तत्था विसमे हताउ ॥ १८ ॥

अर्थ—अहीं नाम शब्द संभावनाने अर्थे जाणवो (वेयालिए के०) विकूर्व्यो एवो (महाभितापे के०) माहा दुःखनुं कारण (एगायते के०) घणो लांबो एवो (पव्वयके०) पर्वत नरकमांहे (अंतरिक्खे के०) आकाश पर्यंत उंचोविकुर्वे निष्पादे (तत्थाके०) त्यां ते पर्वत उपरथी (बहूकुरकम्मा के०) अत्यंत पापकर्मना करनार एवा घणा नारकी पडतां थ कां अंधकाररूपे दृष्टीयें कांइ पण देखे नही परंतु हस्त स्पर्श मात्रे थाय अने चडता थकां तो परमाधार्मिक तेने (हम्मंति के०) हणे पीडा आपे त्यां (परंसहस्साणमुहुत्तगाणंके०) हजार थकी घणा मूहुर्त्त अधिक एटले उपलक्षणथी घणा काल सुधी एवुं दुःख पामे ॥ १७ ॥ (दुक्कडिणो के०) ते नारकी माहा पाप कर्मना करनार ते (संबा हिया के०) संबाधिता एटले अत्यंत पीडया थका (थणंति के०) आक्रंद करे (अ होयराउपरितप्पमाणा के०) अहोरात्र परितप्तमान थका करुण आक्रंद करे (एगंतकू म्मे नरएमहंते के०) एकांत एटले निश्चयरूप कूट एटले दुःखोत्पत्तिनुं स्थान ज्यांहे एवुं महंत एटले विस्तीर्ण नरकने विषे (कूम्मेण तत्था विसमेहताउ के०) त्यां विषम कूट पासादिक गलयंत्रादिकें करी हणाता थका आक्रंद करे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—(वेयालिएति) नामेति संभावने। संभाव्यते यन्नरकेषु। यथांतरिक्खे महा भितापे महादुःखे एकशिलाघटितोदीर्घः (वेयालिएत्ति) वैक्रयः परमाधार्मिकनिष्पादि तः पर्वतस्तत्र हस्तस्पर्शिकया समारुहंतोनारकाबहुकूरकर्माणोहन्यंते पीडयंते सहस्र संख्यानां मुहूर्तानां परं प्रकृष्टं कालं प्रभूतं कालं हन्यंतेइत्यर्थः ॥ १७॥ (संबाहियाइति) दुष्कृतं विद्यते येषांते दुष्कृतिनः संबाधिताः पीमिताअहनि रात्रौ च परितप्यमानाएकां तेन कूटानि दुःखोत्पत्तिस्थानानि यस्मिन् तथा तस्मिन् एवंविधे महति नरके कूटेन गलयंत्रपाशादिना तत्र विषमे हताः सुनिश्चितं स्तनंति ॥ १८ ॥

॥ टीका—(किंच। वेयालिए इत्यादि) नामशब्दः संभावनायां। संभाव्यते एतन्नरकेषु यथांतरिक्खे महाभितापे महादुःखैककार्येएकशिलाघटितोदीर्घः (वेयालिएति) वैक्रि यः परमाधार्मिकनिष्पादितः पर्वतस्तत्र तमोरूपत्वान्नारकाणामतोहस्तस्पर्शिकतया स मारुहंतोनारकाहन्यंते पीडयंते बहूनि कूराणि जन्मांतरोपात्तानि कर्माणि येषां ते त था सहस्रसंख्यानां मुहूर्तानां परं प्रकृष्टं कालं सहस्रशब्दस्योपलक्षणार्थत्वा त्प्रभूतं का लं हन्यंतइति यावत् ॥ १७ ॥ तथा। (संबाहियाइत्यादि) समेकीभावेन बाधिताः

दुःखयंति निरंतर मविश्रामं तत्र चिरस्थितिकं तं हन्यमानस्य नारकस्य नकिंचित्त्राणं स्यात् । यथा शीतेंद्रेण लक्ष्मणस्य नरकदुःखमनुभवतस्त्राणोद्यतेनापि नत्राणं कृतमिति एकः स्वयं प्रत्यनुभवति दुःखं । यतो मया परिजनस्यार्थे, कृतं कर्म सुदारुणं ॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलभोगिनइति ॥ २२ ॥

॥ टीका—अपिच (सदाजलेत्यादि) सदा सर्वकालं जलमुदकं यस्यां सा तथा सदा जलाभिधाना वा नदी सरिदतिदुर्गा अतिविषमा प्रकर्षेण विविधमत्युष्णं क्षारपूयरुधिराविलजलं यस्यां सा (पविज्जलेत्ति) रुधिराविलत्वात् पिच्छिला विस्तीर्णगंभीरजला वा । अथवा प्रदीप्तजला वा । एतदेव दर्शयति । अग्निना तप्तं सच्छिलीनं द्रवतां गतं यल्लोहमयस्तद्वत्तप्ताऽतितापविलीनलोहसदृशजलेत्यर्थः । यस्यां च सदाजलायां अभिदुर्गायां नद्यां प्रपद्यमानाः (एगायत्ति) एकाकिनोऽत्राणाअनुक्रमणं तस्यां गमनं प्लवनं कुर्वंतीति ॥ २१ ॥ सांप्रतमुद्देशकार्थमुपसंहरन् पुनरपि नारकाणां दुःखविशेषं दर्शयितुमाह (एयाइंफासाइंइत्यादि) एते अनंतरोद्देशकद्वयाश्चेत्यतिकटवोबालमशरणं स्पृशयंति दुःखयंति निरंतरमविश्रामं (अक्षिनिमीलयमित्यादिपूर्ववत्) तत्र तेषु नरकेषु चिरं प्रभूतं कालं स्थितिर्यस्य बालस्यासौ चिरस्थितिकस्तं । तथाहि । रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिः सागरोपमं तथा द्वितीयायां शर्करप्रभायां त्रीणि तथा बालुकायां सप्त पंकायां दश धूमप्रभायां सप्तदश तमःप्रभायां द्वाविंशतिर्महातमःप्रभायां सप्तमपृथिव्यां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि तत् उत्कृष्टा स्थितिरिति । तत्र गतस्य कर्मवशाऽपादितोत्कृष्टस्थितिकस्य परैर्हन्यमानस्य स्वकृतकर्मफलभुजो न किंचित्त्राणं भवति । तथाहि । किल शीतेंद्रेण लक्ष्मणस्य नरकदुःखमनुभवतस्तत्त्राणोद्यतेनापि न त्राणं कृतमिति श्रुतिः । तदेवमेकोसहायोयदर्थं यत्पापं समर्जितं तैरहितस्तत्कर्मविपाकजं दुःखमनुभवति नकश्चिद्दुःखसंविभागं गृह्णातीत्यर्थः । तथाचोक्तं । मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म सुदारुणं । एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलभोगिनइत्यादि ॥२२

जं जारिसं पुव्वमकासिकम्मं,तमेव आगछति संपराए ॥ एगंतदुक्खं भवमज्ञणित्ता, वेदंति दुक्खी तमणंतदुक्खं ॥ २३ ॥ एताणि सोच्चा णारगाणि धीरे, नहिंसए किंचण सव्वलोए ॥ एगंतदिठी अपरिग्गहेउ, वुज्झिज्ज लोयस्सवसं नगछे ॥२४॥ एवं तिरिक्के मणुया सुरेसुं, चतुरत्तणं तं तयणुविवागं ॥ ससव्वमेयं इति वेदइत्ता, कंखेजकालं धुयमायरेज्जत्तिबेमि ॥ २५ ॥ इति श्रीनरयविभत्तीनाम पंचमाध्ययनंसंमत्तं ॥

न्मांतरवैरिणइव परमाधार्मिकायदिवा जन्मांतरापकारिणोनारकाअपरेषामंगानि सरोषं सकोपं समुजराणि मुसलानि गृहीत्वा नंजंति गाढप्रहारैरामर्दयंति तेच नारकास्त्राण रहिताः शस्त्रप्रहारैर्निन्नदेहारुधिरमुद्दहंतोऽधोमुखाधरणितले पतंतीति ॥ १ए ॥ किंच (अणासियाइत्यादि) महादेहप्रमाणामहांतः शृगालानरकपालविकुर्विताअनशिताबुनुक्षिताः । नामशब्दः संनावनायां । संनाव्यतएतन्नरकेषु । अतिप्रगल्निताअतिधृष्टारौडरूपानिर्नयास्तत्र तेषु नरकेषु संनवंति । सदावकोपानित्यकुपितास्तैरेवंनूतैः सृगालादिनिस्तत्र व्यवस्थिताजन्मांतरकृतबहुक्रूरर्माणः शृंखलादिनिर्बद्धाअयोमयनिगडनिगडिताअदूरगाः परस्परसमीपवर्तिनोजन्नयंते खंडशः खाद्यंतइति ॥ २० ॥

सयाजला नाम नदी निडुग्गा, पविज्जलं लोहविलीणतत्ता ॥
जंसी निडुग्गंसि पवज्जमाणा, एगायताणुक्कमणं करंति ॥२१॥
एयाइं फासाइं फुसंति बालं, निरंतरं तब चिरहितीयं ॥ एण ह
म्ममाणस्स उ होइ ताणं, एगोसयं पच्चणु होइ डुक्खं ॥ २२ ॥

अर्थ-(सयाजला नाम नदीनिडुग्गा के०) ते नरकने विषे सदाकाल पाणीए नरपूर एवी महाविषम नदीरूप स्थानछे. अंहीं नाम शब्द संनावनायेंछे तेमां (पविज्जलंलोहविलीणतत्ता के०) अग्नीमां गल्यो एवो लोहनो गोलो तेना सरखुं उस पाणीछे जे पाणी पीता थका घणुं खारुं तथा उस लागे माटे विषमछे (जंसीनिडुग्गंसि पवज्जमाणा के०) जे एवी विषम नदी तेने विपे ते नारकी प्रेर्या थका जाता थका हालता थका (एगाय ताणुक्कमणं करंति के०) एकाकी अशरण ष्ठवन करता परवश पड्या थका डुःख नोगवे. ॥ २१ ॥ (एयाइं के०) ए पूर्वोक्त बन्ने उद्देशामां जे नारकीना डुःख कह्या तेने (बालंके०) बाल अज्ञानी एवा नारकीना जीवो ते (फुसंतिके०) फरसे छे सहन करेछे (निरंतरं तब चिरहितीयं के०) जेनी निरंतर घणा काल सुधी रेहेवानी स्थितिछे एवा नारकी त्यां (एणहम्ममाणस्स उहोइताणंके०) हणाता थका तेने कोइपण त्राण सरण एटले राखवाने समर्थ नथी (सयंके०) पोते (एगो के०) एकलो थकोज (पच्चणुहोइडुक्खं के०) नाना प्रकारना पोताना उपार्ज्यां डुःख नोगवे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका-सदा जलं यस्यां सा सदाजला नाम नदी अनिडुर्गा विपमा पविज्जला रुधिरादिपिच्छिला अग्नितप्तं सद्विलीनं डवीनूतं यल्लोहं तद्वत्तया डवीनूततप्तलोहजलेत्यर्थः । यस्यां नद्यां प्रपद्यमानानारकाएकाकिनोऽत्राणाअनुक्रमणं गमनं कुर्वंति ॥ २१ ॥ एते पूर्वोक्ताः स्पर्शाडुःखविशेषाः परमाधार्मिककृताः स्वानाविकाश्च बालं नारकं स्पृशंति

नुरूपं विपाकं सबुद्धिमान् सर्वमेतदिति पूर्वोक्तं विदित्वा ध्रुवं संयममाचरन् कालं कांक्षेत् ।कोर्थः। चतुर्गतिकसंसारे दुःखमेव केवलं मत्वा संयमानुष्ठानरतोयावज्जीवं मृत्युकालं प्रतीक्षेत । इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २५ ॥ इति पंचमाध्ययने द्वितीयोद्देशकः ॥ ॥ इतितपोगच्छे श्रीहेमविमलसूरिशिष्यहर्षकुलपंडितप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां नरकविभक्त्याख्यं पंचमाध्ययनं समाप्तं. ॥ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (जंजारिसमित्यादि) यत्कर्म यादृशं यदनुभावं यादृक्स्थितिकं वा कर्म पूर्वं जन्मांतरे ध्यकार्षीत् कृतवांस्तत्तादृगेव जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थित्यनुभावभेदं संपराये तथा तेनैव प्रकारेणानुगच्छति । एतदुक्तं भवति । तीव्रमंदमध्यमैर्वैधाध्यवसायस्थानैर्यादृशैर्यद्बद्धं तत्तादृगेव तीव्रमंदमध्यमेव विपाकमुदयं गच्छतीति । एकांतेनावश्यं सुखलेशरहितं दुःखमेव यस्मिन्नरकादिके भवे सतथा तमेकांतदुःखं भवमर्जयित्वा नरकभवोपादानभूतानि कर्माण्युपादायैकांतदुःखिनस्तत्पूर्वनिर्दिष्टं दुःखमसातवेदनीयप्रतिकारं वेदयंत्यनुभवंतीति ॥२३॥ पुनरप्युपसंहारव्याजेनोपदेशमाह् ।(एयाणिसोच्चाइत्यादि) एतान्पूर्वोक्तान्नरकान् स्वाहय्या व्यपदेशइतिकृत्वा नरकदुःखविशेषान् श्रुत्वा निशम्य धीर्बुद्धिस्तया राजतइति धीरोबुद्धिमान् प्राज्ञःएतत्कुर्यादिति दर्शयति।सर्वस्मिन्नपि त्रसस्थावरभेदभिन्ने लोके प्राणिगणे नकमपि प्राणिनं हिंस्यान्नव्यापादयेत् । तथैकांतेन निश्चयजीवादितत्वेषु दृष्टिः सम्यक् दर्शनं यस्य सएकांतदृष्टिर्निष्प्रकंपसम्यक्त्वइत्यर्थः । तथा नविद्यते परिसमंतात्सुखार्थं गृह्यतइति परिग्रहोयस्य सावष्यपरिग्रहः।तुशब्दादाद्यंतोपादाना द्वा मृषावादादत्तादानमैथुनवर्जनमपि द्रष्टव्यं । तथा लोकमशुभकर्मकारिणं तद्विपाकं फलं भुंजन् वा यदिवा कषायं लोकं तत्स्वरूपतोबुध्येत जानीयान्नतु तस्य वशं गच्छेदिति ॥२४॥ एतदनंतरोक्तं दुःखविशेष मन्यत्राप्यतिदिशन्नाह।(एवमित्यादि) एवमशुभकर्मकारिणामसुमतां तिर्यङ्मनुष्यामरेष्वपि चतुरंतं चतुर्गतिकमनंतमपर्यवसानं तदनुरूपं विपाकं स बुद्धिमान् सर्वमेतदिति पूर्वोक्तया नीत्या विदित्वा ज्ञात्वा ध्रुवं संयममाचरन् कालं मृत्युकालमाकांक्षेत् । एतदुक्तं भवति । चतुर्गतिकसंसारांतर्गतानामसुमतां दुःखमेव केवलं यतोध्रुवोमोक्षः संयमोवा तदनुष्ठानरतोयावज्जीवं मृत्युकालं प्रतीक्षेतेति । इति परिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२५॥ इतिपंचमं नरकविभक्त्यध्ययनं परिसमाप्तं. ॥

अथ द्वितीये सूत्रकृतांगे पष्ठमध्ययनं प्रारभ्यते।पांचमां अध्ययनने विषे नरकना दुःख कह्या ते श्रीमहावीरदेवे उपदेश्या छे ते माटे आ छठा अध्ययनने विषे श्री महावीर परमात्मानी गुणो त्किर्तनीपूर्वक स्तुति करेछे.

अर्थ–(जंजारिसंपुव्वमकासिकम्मंके०) जे जीवे जेवाभावे पाछला जन्मांतरे कर्म कीधाछे (तमेव के०) ते कर्म तेवीज विधियें (संपराए के०) संसारमां भमता थका चारगति नेविषेजीवने (आगच्छतिके०) उदय आवे (एगंतडुरकंभवमज्जणित्ताके०) परंतु नरकमांहे तो एकांत निःकेवल डुःखरूप भव उपार्जीने (वेदंतिडुरकीतमणंतडुरकं के०) ते नारकी जीव डुःखी थका अनंत डुःख वेदे ॥ २३ ॥ हवे उपदेश स्वरूप कहेछे. (एताणि के०) ए पूर्वोक्त (णरगाणिसोच्चा के०) नरकना तीव्र डुःख सांभलीने (धीरेके०) जे धैर्यवंत पुरुषछे ते शुं करे ते देखाडेछे. (नहिंसएकिंचण सव्वलोए के०) जेथकी नरकना डुःख न भोगवे एवा सर्व चतुर्दश रज्ज्वात्मक लोकने विषे जेकांइ त्रस अने स्थावर जीवछे तेकोइने हणे नही तथा (एगंतदिट्ठीके०) एकांत दृष्टी एटले निश्चल सम्यक्त्व धारक तथा (अपरिग्गहेउ के०) परिग्रह रहित एवो छतो तु शब्दथी मृषावादादिकनु वर्जन पण जाणी लेवुं तथा (लोयस्स के०) लोक ते इहां प्रस्तावथकी अशुभ कर्मकारी लेवो तथा कषाय लोक लेवो तेना स्वरूपने (बुज्झिज्जके०) जाणीने एवा लोकने (वसं के०) वशमां (नगच्छे के०) नपोहोचे ॥ २४ ॥ (एवंतिरिक्खेमणुयासुरेसुं के०) ए जेम अशुभ कर्मिने नरकगति कही तेम तिर्यंच मनुष्य तथा देवतानी गति एम बधिमली (चतुरत्तणंतं के०) चतुर्गतिक संसारने विषे अनंत (तयणुविवागं के०) तदनुरूप विपाक एटले अनंत एवो कर्मनो जे विपाक (ससव्वमेयंइतिवेदइत्ता के०) सबुद्धिमान् सर्वमेतदितिविदित्वा एटले पंमित पुरुष ए पूर्वोक्त सर्वने इति एम जाणीने जेरीते श्रीभगवंते कह्योछे तेरीते (कंखेज्जके०) कांक्षा करे एटले वांछे सुंवांछेतोके (कालं के०) काल एटले ज्यांसुधी मरण प्राप्त थाय त्यांसुधी (धुयंके०) ध्रौव एटले संयमने (आयरेज्ज के०) आचरे एतावता चारित्रविना जीव चतुर्गतिक संसारमां भ्रमण करे ते कारण माटे जाव जीव सुधी त्रिविधे दयाधर्म रूप निरतिचार चारित्र पालवाने वांछे अने सर्वथा पापनो त्याग करे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ २५ ॥ इति श्री नरकविभक्तिनामे पांचमा अध्ययननो अर्थ संपूर्ण थयो ॥

॥ दीपिका–यत्कर्म यादृशं पूर्वजन्मांतरे अकार्षीत् कृतं तत्तादृशमेव संपराये संसारे अनुगच्छति। एकांतेन डुःखमेव भवोयस्मिन् सएकांतडुःखभवस्तमर्जयित्वा डुःखिनस्तमनंत डुःखंवेदयंति॥२३॥ एतान्नरकान् श्रुत्वा धीरोनहिंस्यात्कंचन प्राणिनं सर्वलोके एकांतदृष्टिर्निश्चलसम्यक्त्वोऽपरिग्रहः। तुशब्दान्मृषावादादिवर्जनमपि ज्ञेयं। तथा लोकं अशुभकर्मकारिणं तद्विपाकंच भुंजानं बुध्यते जानीयात् नतु तस्य वशं गच्छेत् ॥ २४ ॥ एवमशुभकर्मकारिणामसुमतां तिर्यङ्मनुष्यामरेष्वपि चतुरंतं चतुर्गतिकमनंतमपर्यवसानं तद

॥टीका—उक्तं पंचममध्ययनं ।अधुना षष्ठमारभ्यते । अस्य चाऽयमभिसंबंधः।अत्रानंतरा ध्ययने नरकविभक्तिः प्रतिपादिता । सा च श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिनाऽभिहितेत्यत स्तस्यैवाऽनेन गुणकीर्तनद्वारेण चरितं प्रतिपाद्यते । शास्तुर्गुरुत्वेन शास्त्रस्य गरीयस्त्वमि ति कृत्वेत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोमहावीरगुणगणोत्कीर्त्तनरूपः।निक्षेपस्तु द्विधा । ओघनिष्प न्नोनामनिष्पन्नश्च । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपे ऽध्ययनं । नामनिष्पन्नेतु महावीरस्तवः । तत्र म हच्छब्दस्य वीरइत्येतस्य स्तवस्यच प्रत्येकं निक्षेपोविधेयः । तत्रापि यथोद्देशस्तथानिर्देश इतिकृत्वा पूर्वं महच्छब्दोनिरूप्यते । तत्राऽस्त्ययऽयं महच्छब्दोबहुत्वे । यथा महाजनइति अस्तिबृहत्त्वे । यथा महाघोषोऽस्तीत्यर्थे यथा महानयमित्यऽस्ति प्राधान्ये यथा महापु रुषइति । तत्रेह प्राधान्ये वर्तमानोगृहीतइत्येतन्निर्युक्तिकारोदर्शयितुमाह । पाहन्नेमहसद्दो, दव्वे खेत्ते य कालनावेय ॥ वीरस्सउणिरक्केउ चउक्कउंहोइणायव्वो ॥ १ ॥पाहन्नमहसद्दोइत्यादि तत्र महावीरस्तवइत्यत्र योमहच्छब्दः सप्राधान्ये वर्तमानोगृहीतः । तच्च नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालनावनेदात् षोढा ।प्राधान्ये नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यप्राधान्यं ।ज्ञशरीरनव्य शरीरव्यतिरिक्तं सचित्ताचित्तमिश्रनेदात् त्रिधा । सचित्तमपि द्विपदचतुष्पदे नरहस्त्यश्वा दिकमपदेषु प्रधानं कल्पवृक्षादिकं । यदि वेहेव ये प्रत्यक्षारूपरसगंधस्पर्शैरुत्कृष्टाः पौंम रीकादयः पदार्थाः । अचित्तेषु वैडूर्यादयोनानाप्रनावमणयोमिश्रेषु तीर्थकरोविनूषित इति । क्षेत्रतः प्रधानासिद्धिर्धर्मश्रयणान्महाविदेहं चोपनोगांगीकरणेन तु देवकुर्वादि कं क्षेत्रं कालतः प्रधानं त्वेकांतसुषमादि । योवा कालविशेषोधर्मचरणप्रतियोग्यइति । नावप्रधानंतु क्षायिकोनावस्तीर्थकरशरीरापेक्षयौदयिकोवा । तत्रेहद्वयेनाऽप्यधिकारइ ति । वीरस्य द्रव्यक्षेत्रकालनेदाच्चतुर्धा निक्षेपः । तत्र ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तोद्रव्य वीरोद्रव्यार्थे संग्रामादावद्भुतकर्मकारितया शूरोयदिवा यत्किंचित् वीर्यवद् द्रव्यं तत् द्र व्यवीरंऽतत्नवति । तद्यथा। तीर्थकृदनंतबलवीर्योलोकमलोकं कंडुकवत् प्रक्षेप्तुमलं । तथा मंदरं दंडं कृत्वा रत्नप्रनां पृथिवीं छत्रवद्बिभृयात् ।तथा चक्रवर्तिनोपि बलं दोसोलावत्तीसा। तथा विषादिनां मोहनादिसामर्थ्यमिति । क्षेत्रवीरस्तु योयस्मिन् क्षेत्रेऽद्भुतकर्मकारी वीरोवा यत्र वर्ण्यते। एवं कालेऽप्यायोज्यं । नाववीरोयस्य क्रोधमानमायालोनैः परीष हादिनिश्चात्मनोजेता । तथाचोक्तं । कोहं माणं च मायं च, लोनं पंचेंदियाणिय ॥ दुज्जयंचेव अप्पाणं सव्वमप्पेजिएजियं ॥ १ ॥ योसहस्संसहस्साणं संगामेदुज्जयेजिणे । एक्कंजिणेज्जअप्पाणं एसेसपरमोजउ ॥ २ ॥ तथा । एक्कोपरिनमउजए, वियडंजिणके सरीसलीलाए ॥ कंदप्पदुद्दाढो मयणोविड्डारिउजेण ॥३॥ तदेवं वर्धमानस्वाम्येव परी षहोपसर्गैरनुकूलप्रतिकूलैरपराजितोऽद्भुतकर्मकारित्वेन गुणनिष्पन्नात् नावतोमहावीर

पुछिस्सु णं समणा माहणाय, अगारिणोया परतिछिआय ॥
से केइ णेगंतहियं धम्ममाहु, अणेलिसं साहु समिक्खयाए॥१॥
कहंच णाणं कह दंसणं से, सीलं कहं नायसुतस्स आसी॥ जा
णासि णं भिक्खु जहातहेणं, अहासुतं बूहि जहाणिसं तं ॥ २॥

अर्थ–(पुछिस्सुणं के०) पूर्वोक्त नरकना डुःख सांभलीने संसारना भयथी बीकपाम्या उद्भग्या एवा पुरुषो श्रीसुधर्म स्वामिने पूछेछे ते कोण पूछेछे तोके (समणा के०) साधु तथा (माहणायके०) ब्राह्मण तथा (अगारिणोया के०) आगारीते गृहस्थ क्षत्रिया दिक तथा (परतिछिआयके०) अन्य तीर्थिकते शाक्यादिक तापस प्रमुख जाणवा ए सर्वे शुं पुछेछे ते कहेछे. (सेकेइणेगंत के०) ते कयो एकांत (हियके०) हितनो कर नार एवो (अणेलिसं के०) अनीदृशमतुल एटले निरुपम शाश्वत (साहुसमिक्खयाए के०) साधु समीक्षाये यथास्थित तत्व ज्ञाने करी ज्ञातपुत्र श्रीमहावीरदेवे निरतो (ध म्मं के०) धर्म (आहु के०) कह्योछे के जेणे करी जीव सुख पामे. ॥ १ ॥ (कहंचणा णं के०) केवुं ज्ञान वली (कहंदंसणंसे के०) दर्शन चारित्ररूप केवुं तथा (सीलंकहं के०) यम नियमरूप शील केवुंछे ए बधुं (नायसुतस्सआसीके०) ज्ञातपुत्र एटले क्षत्रि य शिरोमणी सिद्धार्थ राजाना पुत्र श्रीमहावीरने विषे केवुं हतुं ते (भिक्खू के०) अ हो भगवन् (जाणासिणं के०) ए सर्वे जेरीते तमे जाणोछो (जहातहेणं के०) यथा तथ्य एटले सत्य निरुपण रूप (अहासुतं के०) जेम तमे सांभल्युं छे (जहाणिसंतं के०) यथानिशांतं एटले सांभलीने जेम हृदयने विषे धारण कर्युंछे तेम अमने (ब्रूहिके०) कहो.

॥ दीपिका–अथ षष्ठमारभ्यते। पूर्वाध्ययने नरकविभक्तिरुक्ता श्रीवीरेण। ततोत्र श्रीवीर स्यैव गुणाउच्यंते तस्येदमादिसूत्रं (पुछिस्सुणमिति) जंबूस्वामी सुधर्माणमाह। यथा के नैवंभूतोधर्मउक्तइत्येतद्दवोमां पृष्टवंतः श्रमणाः साधवादयस्तथा ब्राह्मणाब्रह्मचर्या द्यनुष्ठानरताअगारिणः क्षत्रियादयोयेच शाक्यादयः परतीर्थिकास्ते सर्वेपि पृष्टवंतः।किंतदि त्याह। योसो इमं धर्मं एकांतहितमाह उक्तवान् अनीदृशमनन्यसदृशमतुल्यमित्यर्थः। साध्वी चासौ समीक्षा तत्वपरिछित्तिश्च साधुसमीक्षा सासमता तया उक्तवान ॥१॥ तस्य श्रीवीरस्य ज्ञानं किंभूतं च दर्शनं शीलंच यमनियमरूपं कीदृगासीत्। हेसुधर्मस्वामिन् यन्मयापृष्टं तद्याथातथ्येन त्वंजानासि। णं वाक्यालंकारे। यथाश्रुतं श्रुत्वा च यथानिशां तमवधारितं तथा त्वं ब्रूहि इति पृष्टः सुधर्मा वीरगुणानाह ॥ २ ॥

यथाश्रुतं त्वया श्रुत्वा च यथानिशांतमित्यवधारितं यथा दृष्टं तथा सर्वं ब्रूह्याचद्वेति ॥२॥

खेयन्नेसे कुसले (सुपन्नेपा०) महेसी, अणंतनाणीय अणंतदंसी॥
जसस्सिणो चक्खुपहठियस्स, जाणाहि धम्मंच धिइं पेहि
॥ ३ ॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसाय जे थावर जेह पाणा॥
सेणिच्चणिच्चेहि समिक्ख पन्ने, दीवेव धम्मं समियं उदाहु ॥ ४ ॥

अर्थ–एम श्री सुधर्म स्वामिने पुछ्या थका सुधर्मस्वामि श्री महावीर देवना गुण कहेछे. (सेके०) ते श्री महावीरदेव (खेयन्नेके०) खेदज्ञ एटले संसारी जीवोने कर्म विपाक थकी उत्पन्न थयुं जे खेद एटले दुःख तेने जाणे जाणीने उपदेश आपी तेना दुःख टालवाने सामर्थवान तथा (कुसले के०) कर्म विदारवाने निपुण अने (महेसी के०) महोटा रुषीश्वर साधु तथा (अणंतनाणीय के०) अनंत अविनाशी जेनुं ज्ञान प्रगटयुंछे (अणंतदंसीके०) अनंत अविनाशी जेमनुं दर्शन प्रगटयुं छे (जसस्सिणोके०) यशस्वी एटले जेनो यश त्रण भुवनमां व्याप्योछे (चक्खुपहठियस्स के०) लोकने चक्षुभूत समानछे केमके लोकना भावना जे भेद ते सर्व परिछेछे माटे लोकने चक्षुने स्थानके वर्तेछे (जाणाहि धम्मंच के०) एवा श्री महावीर प्रणीत जे श्रुत चारित्ररूप धर्म तेने धर्म जाणो. (धिइंच के०) तथा तेज संयमने विषे धृति एटले धैर्यपणु तेपण श्रीमहावीरनोज (पेहि के०) प्रेक्ष्यो एटले देखो एटले श्रुत चारित्ररूप संयमने विषे जेहने रतिछे धैर्यछे. ॥ ३ ॥ (उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासु) के० उंचोनीचो अने तिर्छो एटले चौदराज लोक मांहे पूर्वादिक अढार द्रव्य दिशाउ अने अढार भावदिशाउ मध्ये (तसायजेथावरजेहपाणा के०) जे बेंद्रियादिक त्रस प्राणी अने एकेंद्री पृथवियादिक जे स्थावर प्राणीउछे (सेणिच्चणिच्चेहिसमिक्खपन्ने के०) तेने भगवंत नित्यानित्य भेदे द्रव्य पर्याय भेदे सम्यक् प्रकारे जाणे एवा श्रीमहावीर वीतराग देव तेणे संसार समुद्र मांहे पडता बुडतां प्राणीने (दीवेव के०) द्वीप समान एवो (समियं के०) समभावि (धम्मं के०) धर्म (उदाहु के०) कह्यो छे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–सभगवान् वीरः खेदं प्राणिनां कर्मविपाकजं दुःखं जानातीति खेदज्ञः कुशलोनिपुणोमहर्षिस्तपश्चरणानुष्ठायी अनंतज्ञानी अनंतदर्शीच । विशेषग्राहकं ज्ञानं सामान्यग्राहकं दर्शनं तेद्वेअपि यस्यानंते तस्य यशस्विनोभगवतोलोकस्य चक्षुःपथे लोचनमार्गे स्थितस्य भवस्थकेवलिनइत्यर्थः । तस्य धर्मं संसारतारणसमर्थं धृतिंच संयमनिश्चलतां जानीषे । ततः (पेहित्ति) कथय । अथवा तथैवेति यथा धर्मस्तथा धृतिरपी

इति नएयते । यदिवा ड्रव्यवीरोव्यतिरिक्तएकन्नविकादिः । क्षेत्रवीरोयत्र तिष्ठत्यऽसौ व्या वर्ण्यते वा कालोऽप्येवमेव । नाववीरोनोआगमतोवीरनामगोत्राणि कर्माण्यनुनवन् स च वीरवर्धमानस्वाम्येवेति ॥ स्तवनिक्षेपार्थमाह ॥ थुइणिरकेवोचउहा, अंगतुअनूसणेहिं दवसुती ॥ नावेसंताणगुणा, णकित्तणाजेजहिंनणिया ॥ २ ॥ (थुइणिरकेवोइत्यादि) स्तुतेः स्तवस्य नामादिश्चतुर्धा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने पूर्ववत् । ड्रव्यस्तवस्तु ज्ञश रीरन्नव्यशरीरव्यतिरिक्तोयः कटककेयूरस्त्रक्चंदनादिनिः सचित्ताचित्तड्रव्यैः क्रियतइति । नावतस्तु वस्तुतः सद्भूतानां विद्यमानानां गुणानां ये यत्र नवंति तत्कीर्तनमिति ॥ सांप्रतं आद्यसूत्रसंस्पर्शी द्वारेण सकलाध्ययनसंबंधप्रतिपादिकां गाथां निर्युक्तिकृदाह । पुछिस्सु जंबुणामो,अक्का सुहम्मा तउकहेसीय । एवमहाप्पवीरो, जयमाहाकु तहा जएका हिं ॥ ३ ॥ जंबूस्वामी आर्यसुधर्मस्वामिनं श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिगुणान् पृष्टवान् अतोऽसावपि नवान् सुधर्मस्वाम्येवंगुणविशिष्टोमहावीरइति कथितवान् । एवं चाऽसौ न गवान् संसारस्य जयमन्निनवं चाह । ततोयूयमपि यथा नगवान् संसारं जितवान् तथै व यत्नं विधत्त । सांप्रतं निक्षेपानंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (पुछिस्सुणमित्यादि) । अस्य चाऽनंतरसूत्रेण सहायं संबंधः।तद्यथा । तीर्थकरो पदिष्टेन मार्गेण ध्रुवमाचरन् मृत्युमुपेक्षेतेत्युक्तं । तत्र किंनूतोऽसौ तीर्थकृत् येनोप दिष्टोमार्गइत्येतत् पृष्टवंतः श्रमणायतयइत्यादि । परंपरसूत्रसंबंधस्तु बुध्येत ॥ यडुक्तं । प्रागित्येतच्च यडुत्तरत्र प्रश्नवचनं वक्ष्यते तच्च बुध्यतेत्यनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्य सूत्रस्य संहितादिक्रमेण व्याख्या प्रतन्यते । साचाऽयमनंतरोक्तां बहुविधां नरकविनक्तिं श्रुत्वा संसाराडुद्विग्नमनसः केनेयं प्रतिपादितेत्येतत् सुधर्मस्वामिनमप्राक्षुः पृष्टवंतः । णमितिवाक्यालंकारे । यदिवा जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमेवमाह । यथा केनैवं नूतोधर्म संसारोत्तरणे समर्थः प्रतिपादितइत्येतद्भवोमां पृष्टवंतः । तद्यथा । श्रमणानिर्ग्रं थादयोब्राह्मणाब्रह्मचर्याद्यनुष्ठाननिरतास्तथाऽऽगारिणः क्षत्रियादयोयेच शक्यादयः पर तीर्थिकास्ते सर्वेऽपि पृष्टवंतः । किंतदिति दर्शयति । सकोयोऽसावेनं धर्मं डुर्गतिप्रसृतजं तुधारकमेकांतहितमाहोक्तवान् अनीदृशमतुलमित्यर्थः । तथा साध्वीचाऽसौ समीक्षा च साधुसमीक्षा यथावस्थिततत्त्वपरिछित्तिस्तया यदिवा साधुसमीक्षया समतयोक्तवानिति ॥ ॥ १ ॥ तथा तस्यैव ज्ञानादिगुणावगतये प्रश्नमाह । (कहंचणाणमित्यादि) कथं केन प्रकारेण नगवान् ज्ञानमवाप्तवान् किंनूतं वा तस्य नगवतोज्ञानं विशेषावबोधकं । किं नूतं च तस्य दर्शनं सामान्यार्थपरिछेदकं शीलं च यमनियमरूपं कीदृक् ज्ञाताः क्षत्रियास्ते षां पुत्रोनगवान् वीरवर्धमानस्वामी तस्याऽऽसीदनूदिति यदेतन्मया पृष्टं तत् निक्षोसुध र्मस्वामिन् याथातथ्येन त्वं जानीषे सम्यगवगछसि । (णमितिवाक्यालंकारे) तदेतत्सर्वं

तथाचोक्तं । जहापुसस्सकहइतहातुरुसस्सकहइइत्यादि समं वा धर्ममुत्प्राबल्येनाऽऽह उक्तवान् । प्राणिनामनुग्रहार्थं न पूजासत्कारार्थमिति ॥ ४ ॥

से सबदंसी अभिभूयनाणी, णिरामगंधे धिइमं ठितप्पा ॥ अणु
त्तरे सब जगंसि विज्जं, गंथा अतीते अभए अणाऊ ॥ ५ ॥ भ
भूइपमे अणिए अचारी, उहंतरे धीरे अणंतचस्कु ॥ अणुत्तरे
तप्पति सूरिएवा, वइरोयणिं देवतमं पगासे ॥ ६ ॥

अर्थ-(सेके०) ते भगवंत (सब्बदंसीके०) सर्वदर्शि एटले लोकालोकने देखनार वली (अभिभूतनाणी के०) बावीश परिसहने जीतवा थकी केवल ज्ञानी थया (णिरामगंधेके०) निरामगंध एटले मूलोत्तर गुण विशुद्ध संयम पालक तथा (धिइमंके०) धैर्यवंत (ठितप्पाके०) स्थितात्मा एटले समस्त कर्मना क्षय थकी आत्म स्वरूपमांज जें स्थित थयाछे तथा (अणुत्तरेसब्बजगंसिविज्जं के०) अनुत्तर एटले प्रधान सर्व जगतमां निरुपम ज्ञाता माटे विद्वान् एटले भली बुधिवंतछे तथा (गंथाअतीतेके०) ग्रंथ थकी अतीत एटले निर्ग्रंथ बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहितछे. (अभएके०) सप्त भय रहितछे तेना नाम कहेछे पेलुं इहलोकभय बीजुं परलोकभय त्रीजुं आदान भय चोथुं अकस्मात् भय पांचमुं वेदना भय छठुं अपकीर्त्तिभय सातमुं मरण भय तथा (अणाऊ के०) चारप्रकारना आयुकर्म करी रहितछे ॥ ५ ॥ (सके०) ते भगवंत (भूइपमे के०) भूति प्राज्ञ एटले अनंत ज्ञानी तथा (अणिएअचारी के०) अप्रतिबद्ध विहारी जाणवा (उहंतरेके०) उघ एटले संसाररूप समुद्रने तरनार (धीरेके०) धीर एटले निश्चल (अणंतचस्कु के०) अनंत ज्ञानरूप चक्षुना धरनार (अणुत्तरेतप्पतिसूरिएवा के०) जेम सूर्य सर्व थकी अधिक तपे तेम भगवंत ज्ञाने करी सर्व थकी उत्तम प्रधानछे (वइरोयणिंदेवतमंपगासे के०) तथा वैरोचनेंद्र एटले अग्नी जेम अंधकारने दूर करी अधिक प्रकाशकरेछे तेम श्रीमहावीर यथावस्थित पदार्थना प्रकाशक जाणवा ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—ससर्वदर्शी अभिभूय द्वाविंशतिपरीषहान् पराजित्य ज्ञानं च केवलाख्यं विद्यते यस्य सज्ञानी निर्गतआमोविशोधिकोटिरूपोगंधोयस्मात्सनिरामगंधः । मूलोत्तरगुणविशिष्टचारित्रइत्यर्थः । धृतिमान् स्थैर्यसंपन्नः स्थितात्मा निर्मलात्मा अनुत्तरउत्कृष्टः सर्वस्मिन्जगति विद्वान् सर्वपदार्थवेत्ता ग्रंथाद्बाह्याभ्यंतरपरिग्रहादतीतोनिर्ग्रंथइत्यर्थः । अभयः सप्तभयरहितः । नविद्यते चतुर्विधमप्यायुर्यस्यासावनायुः ॥५॥ भूतिशब्दोत्र वृद्धौ । भूतिप्रज्ञोवृद्धप्रज्ञो ऽनंतज्ञानइत्यर्थः। अनियतचारी उघं संसारं तरतीति उ

ति ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च सर्वदिक्षु चतुर्दशरज्ज्वात्मके ये त्रसाः स्थावराश्च ये प्राणिनस्तान् नित्यानित्याभ्यां समीक्ष्य ज्ञात्वा प्राज्ञोन्नगवान् दीपइव प्रकाशकत्वात् धर्ममुदाह् उक्तवान् समतया । यदागमः । जहापुसस्सकबई तहातुबस्सकबइ इति ॥ ४ ॥

॥ टीका–स एवं पृष्टः सुधर्मस्वामी श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिगुणान् कथयितुमाह् । (खेयन्नएसेइत्यादि) स नगवान् चतुस्त्रिंशदतिशयसमेतः खेदं संसारांतर्वर्तिनां प्राणिनां कर्मविपाकजं डुःखं जानातीति खेदज्ञोडुःखापनोदनसमर्थोपदेशदानात् । यदिवा क्षेत्रज्ञोयथावस्थितात्मस्वरूपपरिज्ञानादात्मज्ञइति । अथवा क्षेत्रमाकाशं तज्जानातीति क्षेत्रज्ञोलोकालोकस्वरूपपरिज्ञातेत्यर्थः । तथा नावकुशानष्टविधकर्मरूपान् लुनाति बिनत्ति कुशलः प्राणिनां कर्मोच्छित्तये निपुणइत्यर्थः । आशु शीघ्रं प्रज्ञा यस्याऽसावाशुप्रज्ञः । सर्वत्र सदोपयोगान्नबद्मस्थइव विचिंत्य जानातीति नावः । महार्षिरिति क्वचित्पाठः । महांश्चासावृषिश्च महर्षिरत्यंतोग्रतपश्चरणानुष्ठायित्वादतुलपरीषहोपसर्गसहनाच्चेति । तथा अनंतमविनाश्यनंतपदार्थपरिच्छेदकं वा ज्ञानं विशेषग्राह्कं यस्यासावनंतज्ञानी । एवं सामान्यार्थपरिच्छेदकत्वेनाऽनंतदर्शी । तदेवं नूतस्य नगवतोयशोनृसुरासुरातिशाय्यतुलं विद्यते यस्य सयशस्वी तस्य लोकस्य चक्षुःपथे लोचनमार्गे नवस्थकेवव्यवस्थायां स्थितस्य लोकानां सूक्ष्मव्यवहितपदार्थाविर्नावनेन चक्षुर्नूतस्य वा जानीह्यवगच्च । धर्मं संसारोद्धरणस्वनावं तत्प्रणीतं वा श्रुतचारित्राख्यं तथा तस्यैव नगवतस्तथोपसर्गितस्याऽपि निष्प्रकंपां चारित्राचलनस्वनावां धृतिं संयमे रतिं तत्प्रणीतां वा प्रेक्षस्व सम्यक्कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोचयेति । यदिवा तैरेव श्रमणादिनिः सुधर्मस्वाम्यनिहितो यथा त्वं तस्य नगवतोयशस्विनश्चक्षुष्पथे व्यवस्थितस्य धर्मं धृतिं च जानीषे । ततोऽस्माकं (पेहित्ति) कथयेति ॥ ३ ॥ सांप्रतं सुधर्मस्वामी तद्गुणान् कथयितुमाह् । (उड्ढंअहेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु सर्वत्रैव चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके ये केचन त्रस्यंतीति त्रसास्तेजोवायुरूपाविकलेंड्रियपंचेंड्रियन्नेदात् त्रिधा । तथा येच स्थावराः पृथिव्यंबुवनस्पतिन्नेदात् त्रिविधाः । एते श्वासादयः प्राणाविद्यंते येषां ते प्राणिनइत्यनेन च शाक्यादिमतनिरासेन पृथिव्याद्येकेंड्रियाणामपि जीवत्वमावेदितं नवति । सन्नगवांस्तान् प्राणिनः प्रकर्षेण केवलज्ञानित्वात् जानातीति प्रज्ञः सएव प्राज्ञोनित्यानित्याभ्यांड्व्यार्थपर्यायार्थाश्रयणात् समीक्ष्य केवलज्ञानेनाऽर्थान् परिज्ञाय प्रज्ञापनायोग्यानाहेत्युत्तरेण संबंधः । तद्यथा । सप्राणिनां पदार्थाविर्नावनेन दीपवत् दीपः । यदिवा संसारार्णवपतितानां सडुपदेशप्रदानतआश्वासहेतुत्वात् दीपइव दीपः । सएवंनूतः संसारोत्तारणसमर्थं श्रुतचारित्राख्यं सम्यक् इतं गतं सदनुष्ठानतया रागद्वेषरहितत्वेन समतया वा ।

अर्थ-(अणुत्तरंधम्ममिणंजिणाणं के०) जे श्रीरूपनादिक प्रनावववंत तीर्थंकरो त तु संबंधी जे निरुपम धर्म तेनो नायक एटले तेने (णेया के०) जाणे एवा (मुणी के०) चारित्रवान (कासव के०) काश्यपगोत्री श्रीमहावीर (आसुपन्ने के०) उता वली प्रज्ञानो जाण (इंदेवदेवाणमहाणुनावे के०) जेम इंड हजारो देवतानो नायक महाप्रनाववंत देवो मांहे प्रधान तेम श्री महावीर केवलज्ञानी (सहस्सणेतादिविणं विसिठे के०) सहस्र पुरुपोमां देवताना नायक जेइंडतेनी पेरे विशिष्ट माहानुनाव जाणवा ॥ ७ ॥ (सेके०) तेनगवंत (पन्नयाअरकयसागरेवा के०) प्रज्ञायें एटलेबुद्धि यें करीने अक्षयठे वा शब्द विशेपणने अर्थेंठे कोनी पेरे तोके जेम समुड जे (महो दहीवावि के०) महोदधी एवो स्वयंनुरमण समुड (अणंतपारे के०) निर्मल जेनु ज लठे इत्यादिक गुणे करी अनंतअपारठे तेम श्रीवीरपण (अणाइलेया के०) अकलुप अकपाइ थका (निरकू के०) निक्षाये आजीविका करेठे यद्यपि निःशेप कर्मक्षय करी त्रैलोक्यने पूज्यठे तथापि निक्षाये आजीवेठे परंतु अक्षीणमाहानसी प्रमुख लब्धीने प्रयुंजता नथी .एवा अनेक गुणयुक्त श्रीमहावीरदेवठे तथा (सक्केवदेवाहिवईजुईमं के०) शक्रेंड देवताना स्वामी तेनी पेरे दीतिमानठे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका-अनुत्तरं धर्मं जिनानामृपनादीनां सर्वंध्ययं मुनिः श्रीवीरोनेता प्रणेता काश्य पोगोत्रेण। आशुप्रज्ञः केवली। नेताइति ताछीलिकस्तृन् । तद्योगे नलोकाव्ययेतिपष्ठीनि पेधाद्धर्ममिति कर्मणिद्वितीया । यथा इंडोदेवसहस्राणां मध्ये महानुनावः। णं वाक्यालं कारे। दिवि स्वर्गे विशिष्टोरूपबलादिनिः।एवं स नगवान् सर्वेन्योविशिष्टोनेता ॥७॥ सनग वान प्रज्ञयाक्षयोऽक्षीणज्ञानइत्यर्थः । यथा महोदधिः सागरः स्वयंनुरमणइवानंतपा रोविस्तीर्णगंनीरजलोऽक्षोन्यश्चानाविलोऽकलुपजलस्तथा नगवानपि अकलुपोपि मुक्तः क र्मबंधात् यथा शक्रोदेवधिपतिर्द्युतिमान् दीप्तिमान् ॥ ८ ॥

॥ टीका-किंच (अणुत्तरमित्यादि) । नाऽस्योत्तरोऽस्तीत्यनुत्तरस्तमिममनुत्तरं धर्मं जिनानामृपनादितीर्थकृता संबंधिनमयं मुनिः श्रीमान् वर्धमानाख्यः काश्यपोगोत्रेणाशु प्रज्ञः केवलज्ञानी उत्पन्नदिव्यज्ञानोनेता प्रणेतेति । ताछीलिकस्तृन् तद्योगे नलोकाव्य यनिष्ठेत्यादिना पष्ठीप्रतिपेधाद्धर्ममित्यत्र कर्मणिद्वितीयैव । यथा चेंडोदिवि स्वर्गे देवसह स्राणां महानुनावोमहाप्रनाववान् । णमितिवाक्यालंकारे । तथा नेता प्रणायकोवि शिष्टोरूपबलवर्णादिनिः प्रधानएवं नगवानपि सर्वेन्योऽपि विशिष्टः प्रणायकोमहानु नावश्चेति ॥ ७ ॥ अपिच (सेपन्नयेत्यादि) असौ नगवान् प्रज्ञायतेऽनयेति प्रज्ञा त या अक्षयोन तस्य ज्ञातव्येर्थे बुद्धिः प्रतिक्षीयते प्रतिहन्यते वा । तस्य हि बुद्धिः वलके

घतरः। धिया राजतेधीरः। अनंततया ऽनंतत्वाच्चक्षुर्ज्ञानं यस्य स तथा। यथा सूर्योऽनुत्तरं सर्वाधिकं तपति यथा वा वैरोचनोऽग्निः सएव प्रज्वलितत्वादिंद्रः सयथा तमोपनीय प्रकाशयति एवमसावपि भगवान् ॥ ६ ॥

॥ टीका-किंचाऽन्यत्। (सेसव्वदंसीत्यादि) सभगवान् सर्वं जगत् चराचरं सामान्येन द्रष्टुं शीलमस्य ससर्वदर्शी। तथाऽभिभूय पराजित्य मत्यादीनि चत्वार्यऽपि ज्ञानानि य द्वर्तते ज्ञानं केवलाख्यं तेन ज्ञानेन ज्ञानी। अनेन चाऽपरतीर्थाधिपाधिकत्वमावेदितं भवति। ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइति कृत्वा तस्य भगवतो ज्ञानं प्रदर्श्य क्रियां दर्शयितुमाह। निर्गतोऽपगतआमोऽविशोधिकोटयाख्यस्तथा गंधोविशोधिकोटिरूपोयस्मात् सभवति निरामगंधः। मूलोत्तरगुणभेदभिन्नां चारित्रक्रियां कृतवानित्यर्थः। तथाऽसह्यपरीषहोपसर्गाभिद्रुतोऽपि निष्प्रकंपतया चारित्रधृतिमान् तथा स्थितोव्यवस्थितोऽशेषकर्मविगमादात्मस्वरूपे आत्मा यस्य स भवति स्थितात्मा। एतच्च ज्ञानक्रिययोः फलद्वारेण विशेषणं। तथा नास्योत्तरं प्रधानं सर्वस्मिन्नऽपि जगति विद्यते सतथा विद्वानिति सकलपदार्थानां करतलामलकन्यायेन वेत्ता। तथा बाह्यग्रंथात् सचित्तादिभेदादांतराच्च कर्मरूपादतीतोऽतिक्रांतोग्रंथातीतोनिर्ग्रंथइत्यर्थः। तथा न विद्यते सप्तप्रकारमपि भयं यस्याऽसावभयः समस्तभयरहितइत्यर्थः। तथा न विद्यते चतुर्विधमप्यायुर्यस्य सभवत्यनायुर्दग्धकर्मबीजत्वेन पुनरुत्पत्तेरभावादिति ॥ ५ ॥ अपिच (सभूइपन्नेइत्यादि)। भूतिशब्दोवृद्धौ मंगले रक्षायां च वर्तते। तत्र भूतिप्रज्ञः प्रवृद्धप्रज्ञः। अनंतज्ञानवानित्यर्थः। तथा भूतिप्रज्ञोजगद्रक्षाभूतिप्रज्ञः। एवं सर्वमंगलभूतिप्रज्ञइति। तथा अनियतमप्रतिबद्धं परिग्रहोयोगाच्चरितुं शीलमस्याऽसावनियतचारी। तथौघं संसारसमुद्रं तरितुं शीलमस्य स तथा धीर्बुद्धिस्तया राजतइति धीरः परीषहोपसर्गाऽक्षोभ्योवा धीरः। तथा अनंतं ज्ञेयानंततया नित्यतया वा चक्षुरिव चक्षुः केवलं ज्ञानं यस्याऽनंतस्यवा लोकस्य प्रदार्थप्रकाशकतया वा चक्षुर्भूतोयः सभवत्यनंतचक्षुः। तथा यथा सूर्योऽनुत्तरं सर्वाधिकं तपति न तस्मादधिकस्तापेन कश्चिदस्ति। एवमसावपि भगवान् ज्ञानेन सर्वोत्तमइति। तथा वैरोचनोऽग्निः सएव प्रज्वलितत्वात् इंद्रोयथाऽसौतमोऽपनीय प्रकाशयति एवमसावपि भगवानज्ञानतमोऽपनीय यथावस्थितपदार्थप्रकाशनं करोति ॥ ६ ॥

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं, णेया मुणी कासव आसुपन्ने ॥ इं
देव देवाण महाणुभावे सहस्सणेता दिवि णं विसिठे ॥७॥ से प
न्नया अरकय सागरेवा, महोदहीवावि अणंतपारे ॥ अणाइ
लेया अकसाइ मुक्के (पाठांतरे भिक्खु) सक्केव देवाहिवई जुईमं ॥८॥

राणां मुदाकरोहर्षजनकोऽनेकैर्गुणैर्वर्णरसगंधादिभिरुपेतोविराजते एवं भगवानपि ॥ ॥ ए ॥ समेरुर्योजनसहस्राणां शतमुच्चैस्त्वेन त्रीणि कंडकानि यस्य सत्रिकंडकः । तथाहि । भौमं जांबूनदं वैडूर्यंचेति । सकिंभूतः । पंडकं वनं वैजयंतीकल्पं पताकाभूतं शिरसि स्थितं यस्य सपंडकवैजयंतः सनवनवतिर्योजनसहस्राणि ऊर्ध्वोछ्रितः अधोपि सहस्रमेकमवगाढः ॥ १० ॥

॥ टीका–किंच (सेवीरिएणमित्यादि) । स भगवान् वीर्येणौरसेन बलेन धृतिसंहननादिभिश्च वीर्यांतरायस्य निःशेषतः क्षयात् प्रतिपूर्णवीर्यस्तथा सुदर्शनोमेरुर्जंबुद्वीपनाभिभूतः । तथा नगानां पर्वतानां सर्वेषां श्रेष्ठः प्रधानस्तथाभगवानपि वीर्येणाऽन्यैश्च गुणैः सर्वश्रेष्ठइति । तथा यथा सुरालयः स्वर्गस्तन्निवासिनां मुदाकरोहर्षजनकः प्रशस्तवर्णरसगंधस्पर्शप्रभावादिभिर्गुणैरुपेतोविराजते शोभते । एवं भगवानप्यनेकैर्गुणैरुपेतोविराजतइति । यदिवा यथा त्रिदशालयोमुदाकरो ऽनेकैर्गुणैरुपेतोविराजतइति । एवमसावपि मेरुरिति ॥ ए ॥ पुनरपि दृष्टांतभूतमेरुवर्णनायाह । (सयंसहस्साण मित्यादि) समेरुर्योजनसहस्राणां शतमुच्चैस्त्वेन । तथा त्रीणि कंडान्यस्येति त्रिकंडः । तद्यथा भौमं जांबूनदं वैडूर्यमिति । पुनरप्यसावेव विशेष्यते । पंमकवैजयंतइति । पंमकवनं शिरसि व्यवस्थितं वैजयंतीकल्पं पताकाभूतं यस्य सतथाऽसावूर्ध्वमुछ्रितोनवनवतिर्योजनसहस्राण्यधोऽपि सहस्रमेकमवगाढइति. ॥ १० ॥

पुठे णभे चिठइ भूमिवठिए, जं सूरिया अणुपरिवट्टयंति ॥ से
हेमवन्ने बहुनंदणेय, जंसी रतिं वेदयंती महिंदा ॥ ११ ॥ से पव
ए सद्दमहप्पगासे, विरायती कंचणमठवन्ने ॥ अणुत्तरे गिरिसु
य पवङ्गगे, गिरीवरे से जलिएव भोमे ॥ १२॥

अर्थ–ते मेरु पर्वत (णभे के०) आकाशे (पुठे के०) फरशीने (चिठइ के०) रह्योछे तथा (भूमिके०) भूमिकाने (वठिएके०) अवगाही रह्योछे तिर्छो उंचो अने नीचो एमलोक व्यासछे (जंसूरियाअणुपरियट्टयंतिके०) जे मेरु पर्वतने चोमर अगीआरशेने एकवीश योजनने अंतरे सूर्य प्रमुख ज्योतषी देवो परिभ्रमण करता थका प्रदक्षिणा करी रह्याछे तथा (सेहेमवन्ने के०) ते मेरुपर्वत सुवर्णमय छे तथा (बहुके०) घणा परंतु अंहीं नंदनादिक चार जाणवा एवा (नंदणेयके०) रलीयामणा वनछे, जेने विषे, एटले पहेली भूमिकाने विषे भद्रशाल वनछे ते उपर पांचशे योजन उंचु बीजुं नंदन वनछे ते उपर साढी बाशठ हजार योजन उंचु चडता वली त्रीजुं सोमनस वनछे ते

ज्ञानाख्या साच साद्यपर्यवसाना कालतोऽव्यक्षेत्रनावैरप्यनंता। सर्वसाम्येन दृष्टांतानावादे कदेशेन त्वाह। यथा सागरइति। अस्य वा विशिष्टत्वात् विशेषणमाह। महोदधिरिव स्वयंनूरमणइवाऽनंतपारः। यथाऽसौ विस्तीर्णोगंनीरजलोऽक्षोन्यश्च। एवं तस्याऽपि नगवतो विस्तीर्णा प्रज्ञा स्वयंनूरमणानंतगुणोगंनीरो ऽक्षोन्यश्च। यथा चासौ सागरोऽनाविलोऽकलुषजल एवं नगवानपि तथाविधकर्मलेशानावादकलुषज्ञानइति। तथा कषायाविद्यंते यस्याऽसौकषायी नकषायी अकषायी। तथा ज्ञानावरणीयादिकर्मबंधनाद्विमुक्तोमुक्तः। निक्कुरिति क्वचित्पाठः। तस्याऽयमर्थः। सत्यपि निःशेषांतरायक्षये सर्वलोकपूज्यत्वेच तथापि निक्षामात्रजीवित्वात् निक्कुरेवाऽसौ नाऽक्षीणमहानसादिलब्धिमुपजीवतीति। तथा शक्रइव देवाऽधिपतिर्द्युतिमान् दिप्तिमानिति ॥ ८ ॥

से वीरिएणं पडिपुन्नवीरिए, सुदंसणेवा णगसव्वसेठे॥ सुरालएवा
सि मुदागरे से, विरायए णेगगुणोववेए ॥ ९॥ सयं सहस्साणउ
जोयणाणं, तिकंम्फगे पंम्फगवेजयंते॥ से जोयणेणवणवतिसहस्से
उद्धुस्सितो हेठसहस्समेगं ॥ १० ॥

अर्थ-(सेवीरिएणंपडिपुन्नवीरिए के०) ते नगवंत श्रीमहावीर वीर्यांतराय कर्मना क्षय थकी बलेकरी प्रतिपूर्ण वीर्यवानछे एटले संघयणादिके बलवान छे (सुदंसणेवा णगसव्वसेठे के०) सुदर्शन शब्दे मेरुपर्वत ते जेम सर्व पर्वतमां श्रेष्ठछे तेम नगवंत पण ऐश्वर्यगुणे करी सर्वमां श्रेष्ठछे वली (सुरालएवासि के०) देवलोकना निवासी देवताने (सेके०) तेमेरुपर्वत (मुदाकर के०) हर्षनो करनारछे (अणेगगुणोववेए के०) प्रशस्त एवा अनेक वर्णादिक गुणे करी (विरायएके०) विराजमान एटले शोनेछे तेम श्रीनगवानप ण जाणवा ॥९॥ तेमेरु पर्वत (सयंसहस्साणउजोयणाणंके०) सतसहस्र योजन प्रमाण सर्वांगे उंच पणे जाणवो तेमज (सेके०) ते पर्वतना (तिकंम्फे के०) त्रण कांम्फछे एक नूमिमय बीजो सुवर्णमय त्रीजो वैमूर्यमयछे अने (पंम्फगवेजयंते के०) पंम्फगवनछे ते वेजयंति एटले ध्वजा समान शोनेछे (सेजोयणेणवणवतिसहस्से के०) ते मेरु पर्वत णवणवति एटले नवाणु हजार योजन (उद्धुस्सितो के०) उंचो जाणवो अने (हेठसहस्समेगं के०) नीचे नूमि मध्ये एक हजार योजननो कंदछे एम सर्व मली एक लाख योजन प्रमाणछे ॥ १० ॥

॥ दीपिका-सनगवान् वीर्येण बलेन प्रतिपूर्णवीर्यः सुदर्शनोमेरुर्जंबूद्वीपमध्यगतोय था नगानां पर्वतानां सर्वेषां श्रेष्ठस्तथा नगवान् गुणैः श्रेष्ठः। यथाच सुरालयः स्वर्गः सु

नुत्तरस्तथा गिरिषु मध्ये पर्वभिर्मेखलादिभिर्दंष्ट्रापर्वतैर्वा दुर्गोविषमः सामान्यजंतूनां दुरारोहोगिरिवरः पर्वतप्रधानः । तथाऽसौ मणिभिरौषधीभिश्च देदीप्यमानतया नौमइव नूदेशइव ज्वलितइति ॥ १२ ॥

महीइ मज्झंमि ठिते णगिंदे, पन्नाय ते सुरिय सूद्धलेसे ॥ एवं सि
रीए उस नूरिवन्ने, मणोरमे जावइ अच्चिमाली ॥ १३ ॥ सुदंस
णस्सेव जसो गिरिस्स, पचुच्चई महतो पव्वयस्स ॥ एतोवमे
समणे नायपुत्ते, जातीजसो दंसणनाणसीले ॥ १४ ॥

अर्थ-(महीइमज्झंमिठिते के०) मही एटले पृथवीने वचमां आवेलो जे जंबूद्वीप तेना मध्यनागे एटले वचमां वर्तेछे (णगिंदे के० नगेंद्र एटले सर्व पर्वतोंना इंद्र सर खो ए मेरु पर्वत जाणवो (ते के०) ते पर्वत लोकमां (सूरिय के०) सूर्यनी पेरे (सु द्धलेसे के०) विसुद्धनिर्मल कांतिवानछे एम (पन्नाय के०) प्रकर्षे करी जाणीये (एवं के०) ए प्रकारे करी (सिरीएउस के०) लक्ष्मीये सहित ते मेरू रत्न (नूरिवन्ने के०) अनेक वर्णे करी सहितछे तथा (मणोरमे जावइ अच्चिमाली के०) मनने रमाडनार तथा जेनी ज्योति अर्चिमाली एटले सूर्य तेनी पेरे दशे दिशिने विषे प्रकाश पामेछे ॥१३॥ हवे ए मेरु पर्वतनी उपमाउं श्रीमहावीर नगवंतनी साथे जोडेछे. (सुदंसणस्सेवज सोगिरिस्स के०) सुदर्शन नामा जे गिरि एटले पर्वत तेनोजे यश (पचुच्चई के०) क हियेछैए तेवो (महतोपव्वयस्सके०) महोटो मेरुपर्वत जाणवो (एतोवमेके०) एमेरुनी उ पमाये (समणेनायपुत्ते के०) श्रमण तपश्वी ज्ञातपुत्र श्रीमहावीर देव जाणवा (केवी रीते तोके (जातीजसो दंसणनाणसीलेके०) जातियें करी, यशे करी, दर्शने करी, ज्ञाने करी अने शीले करी समस्त जेटला धर्म मार्गना प्रकाशकोछे तेमां श्रीमहावीर देव प्रधानछे.

॥ दीपिका-महारत्नप्रनाष्टथिव्यामध्यदेशे जंबूद्वीपस्तन्मध्ये स्थितोनगेंद्रः प्रकर्षे ण ज्ञायते सूर्यवत् शुद्धलेश्यः सूर्यसमतेजाः। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण श्रिया समेरुर्नूरिवर्णो ऽनेकवर्णरत्नोपेतत्वात् मनोरमः अर्चिमाली सूर्यइव द्योतयति दिशः ॥ १३ ॥ एतद्यशः कीर्तनं सुदर्शनस्य गिरेर्मेरोः प्रोच्यते महतः पर्वतस्य एतदुपमएततुल्यः श्रमणोजात पुत्रः श्रीवीरः सजात्या यशसा दर्शनज्ञानाभ्यां शीलेन वा श्रेष्ठः । अर्शआदित्वान्मत्व र्थीयाच्प्रत्ययेन योज्यं- ॥ १४ ॥

॥ टीका-किंच (महीइइत्यादि) । मत्यां रत्नप्रनाष्टथिव्यां मध्यदेशे जंबूद्विपस्तस्याऽपि बहुमध्यदेशे सोमनस, विद्युत्प्रन, गंधमादन माल्यवंत, दंष्ट्रापर्वतचतुष्टयोपशोभितः समनू

पछी बत्रीश हजार योजन उंचु चडता शीखर उपर चोथु पंमग वन रखंमछे (जंसीरतिं वेदयंतीमहिंदाके०) जे पर्वतने विषे महेंद्र पण क्रीडा करवाने अर्थे स्वर्ग थकी आवी ने रती सुख भोगवेछे ॥ ११ ॥ (सेपव्वए के०) ते पर्वत वली केवोछे तोके मंदर मेरु सुदर्शन सुरगिरि इत्यादिक (सद्द के०) शब्दे करी (महप्पगासे के०) मोहोटो प्रकाशवान एटले प्रसिद्ध एवो छतो (विरायतीके०) शोभेछे तथा (कंचणमछवन्ने के०) सुवर्णनी पेरे देदीप्यमान सुकुमाल वर्णछे (अणुत्तरे गिरिसुयपव्वदुग्गे के०) सर्व पर्वत मां अनुत्तर एटले प्रधान एवी पर्व एटले मेखलायें करी दुर्ग एटले विषमछे अर्थात् सामान्य जीवने चढता विषमछे तथा (गिरिवरेसेजलि एवभोमे के०) प्रधान मणी अने औषधियें करी देदीप्यमान भूमि सरखो पृथवी प्रदेशनी पेरे जाणवो. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—नभसि स्पृष्टोलग्नोभूमिंवा अवगाह्य स्थितः । यं मेरुं सूर्याआदित्याअनु परिवर्तयंति पार्श्वतोभ्रमंति सहेमवर्णः। बहूनि चत्वारि नंदनानि यस्य सतथा। तथाहि भूमौ भद्रशालवनं १ ततः पंचयोजनशतान्यतिक्रम्य नंदनंवनं २ ततोद्विषष्ठियोजन सहस्राणि पंचशताधिकान्यतिक्रम्य सौमनसवनं ३ ततः षट्त्रिंशत्सहस्राण्यारुह्य शिखरे पंडकवनं ४ इति मेरोश्चत्वारि वनानि। तथा यस्मिन् मेरौ महेंद्रारतिं वेदयंत्यनुभवंति ॥ ११ ॥ सपर्वतोमेरुर्मंदरः सुदर्शनः सुगिरिरित्यादिभिः शब्दै र्महान् प्रकाशः प्रसिद्धिर्यस्य सशब्दमहाप्रकाशोविराजते। कांचनस्य मृष्टः शुद्धोवर्णोयस्य सतथा अनुत्तरउत्कृष्टः। गिरिषु मध्ये पर्वभिर्मेखलाभिर्दुर्गोविषमोगिरवरमणिभिरोषधीभिश्च ज्वलितोदीप्यमानइव भूमिदेशं ॥ १२ ॥

॥ टीका—तथा (पुढेणभेइत्यादि)। नभसि स्पृष्टोलग्नोनभोव्याप्य तिष्ठति । तथा भूमिं चावगाह्य स्थितइति ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्लोकसंस्पर्शी । यथा यं मेरुं सूर्यादयोज्योतिष्काअनुपरिवर्त्तयंति यस्य पार्श्वतोभ्रमंतीत्यर्थः । तथाऽसौ हेमवर्णोनिष्टप्तजांबूनदाभस्तथा बहूनि चत्वारि नंदनवनानि यस्य सबहुनंदनवनः । तथाहि । भूमौ भद्रशालवनं ततः पंचयोजनशतान्यारुह्य मेखलायां नंदनं तथाद्विषष्टियोजनसहस्राण्यधिकान्यतिक्रम्य सौमनसं ततः षट्त्रिंशत्सहस्राण्यारुह्य शिखरे पंडकवनमिति । तदेवमसौ चतुर्नंदनवनाद्युपेतोविचित्रक्रीडास्थानसमन्वितः। यस्मिन् माहेंद्राअप्यागत्य त्रिदशालयाद्रमणीयतरगुणेन रतिं रमणक्रीडां वेदयंत्यनुभवंतीति ॥ ११ ॥ अपिच (सेपव्वएइत्यादि) समेवाख्योऽयं पर्वतोमंदरोमेरुः सुरगिरिरित्येवमादिभिः शब्दैर्महान् प्रकाशः प्रसिद्धिर्यस्य सशब्दमहाप्रकाशोविराजते शोभते । कांचनस्येव मृष्टः श्लक्ष्णःशुद्धो वा वर्णोयस्य सतथा । एवं नविद्यते उत्तरः प्रधानोयस्याऽसाव

रहित एवुं निर्दोष शुक्ल ध्यान सुवर्णनी पेरे उज्वलजे अथवा गंफ शब्दे उदकनुं फेण ते सरखुं उज्वलने तथा (संखिंदु के०) शंख अने चंद्रमा तेनीपेरे (एगंतवदातसुक्कं के०) एकांत अवदात एटले अत्यंत शुक्ल एवुं शुक्ल ध्यानने, तेने ध्यावे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—यथा निषधोगिरिवराणां गिरीणामायतानां मध्ये दीर्घत्वेन श्रेष्ठस्तथा वलयायतानां मध्ये रुचकः पर्वतः श्रेष्ठः। सहि रुचकद्वीपांतवर्ती मानसोत्तरगिरिरिव वृत्ता यतोऽसंख्येययोजनानि परिक्षेपेण स जगवान् तदुपमोजगति संसारे जूतिप्रज्ञः प्रजूत ज्ञानोमुनीनां मध्ये प्रज्ञः। एवं तत्स्वरूपविद उदाहुरुक्तवंतः॥१५॥ अणुत्तरं उत्कृष्टधर्ममुदी र्य कथयित्वा ऽनुत्तरं प्रधानं ध्यानं ध्यायति सुष्ठु शुक्लवत् शुक्लं ध्यानं अपगतं गंडं दोषो यस्मात्तदपगंडं निर्दोषं शुक्लं। अथवा अपगंडमुदकफेनं तत्तुल्यं शंखेंदुवत् एकांतावदातं शुक्लध्यानोत्तरजेदद्वयं ध्यायति। तथाहि। योगनिरोधकाले सूक्ष्मं काययोगं निरुंधन् शु क्लध्यानस्य तृतीयं जेदं सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाताख्यं तथा निरुद्धयोगं चतुर्थं शुक्लध्यानजेदं व्युपरतक्रियमनिवृत्त्याख्यं ध्यानं ध्यायतीति ॥ १६ ॥

॥ टीका—पुनरपि दृष्टांतद्वारेणैव जगवतोव्यावर्णनमाह। (गिरिवरेत्यादि) यथा नि षधोगिरिवरोगिरीणामायतानां मध्ये जंबुद्वीपेऽन्येषु वा द्वीपेषु दैर्घ्येण श्रेष्ठः प्रधानः तथा वलयाऽऽयतानां मध्ये रुचकः पर्वतोऽन्येन्योवलयाय तत्वेन। यथा प्रधानः सहि रुचक द्वीपांतर्वर्ती मानुषोत्तरपर्वतइव वृत्तायतोऽसंख्येययोजनानि परिक्षेपेणेति। तथा सज गवानपि तदुपमः। यथा वाऽऽयतवृत्तताभ्यां श्रेष्ठश्च। एवं जगवानपि जगति संसारे जूति प्रज्ञः प्रजूतज्ञातप्रज्ञयाश्रेष्ठइत्यर्थः। तथा परमुनीनां मध्ये प्रकर्षेण जानातीति प्रज्ञः। एवं तत्स्वरूपविद उदाहुरुदाहृतवंतउक्तवंतइत्यर्थः ॥ १५ ॥ किंचाऽन्यत् (अणुत्तरमि त्यादि) नाऽस्योत्तरः प्रधानोऽन्योधर्मोविद्यते इत्यनुत्तरः। तमेवंजूतं धर्मं उत् प्राबल्येन ईरयित्वा कथयित्वा प्रकाश्याऽनुत्तरं प्रधानं ध्यानवरं ध्यानश्रेष्ठं ध्यायति॥ तथाहि। उ त्पन्नज्ञानोजगवान् योगनिरोधकाले सूक्ष्मं काययोगं निरुंधन् शुक्लध्यानस्य तृतीयं जेदं सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाताख्यं। तथा निरुद्धयोगं चतुर्थंशुक्लध्यानजेदं व्युपरतक्रियमनिवृत्ता ख्यं ध्यायति। एतदेव दर्शयति। सुष्ठु शुक्लवछुक्लं ध्यानं। तथा अपगतं गंडमपद्रव्यं यस्य तदपगतगंमं निर्दोषार्जुनसुवर्णवत् शुक्लं। यदिवा गंडमुदकफेनं तत्तुल्यतिति जावः। तथा शंखेंदुवदेकांतावदातं शुचं शुक्लं शुक्लध्यानोत्तरं जेदद्वयं ध्यायतीति ॥ १६ ॥

अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेसकम्मं स विसोहइत्ता॥ सिद्धिं ग
ते साइमणंतपत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेण॥१७॥ रुक्खेसु णाते

नागे दशसहस्रविस्तीर्णः शिरसि सहस्रमेकमधस्तादपि दशसहस्राणि नवतियोजनानि योजनैकादशनागैर्दशनिरधिकानि । विस्तीर्णश्चत्वारिंशद्योजनोच्छ्रितचूडोपशोनितोनगेंद्रः पर्वतप्रधानोमेरुः प्रकर्षेण लोके ज्ञायते सूर्यवच्छुद्धलेश्यआदित्यसमानतेजाः । एवमनंतरोक्तप्रकारया श्रिया । तुशब्दाद्विशिष्टतरया समेरुर्नूरिवर्णोऽनेकवर्णोऽनेकवर्णरत्नोपशोनितत्वात् । मनोंऽत.करणं रमयतीति मनोरमोर्चिमालीवादित्यइव स्वतेजसा द्योतयति दशदिशः प्रकाशयतीति ॥१३॥ सांप्रतं मेरुदृष्टांतोपक्षेपेण दार्ष्टांतिकं दर्शयति । (सुदंसणेत्यादि) एतदनंतरोक्तं यशः कीर्तनं सुदर्शनस्य मेरुगिरेर्महापर्वतस्य प्रोच्यते ।सांप्रतमेतदेव नगवति दार्ष्टांतिके योज्यते। एषाऽनंतरोक्तोपमा यस्यसएतडुपमः । कोऽसौ । श्रीम्यतीति श्रमणस्तपोनिष्टप्तदेहोज्ञाताः क्षत्रियास्तेषां पुत्रः श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामीत्यर्थः । सच जात्या सर्वजातिन्योयशसाऽशेषयशस्विन्योदर्शनज्ञानान्यां सकलदर्शनज्ञानिन्यः शीलेन समस्तशीलवद्भ्यः श्रेष्ठः प्रधानः । अक्षरघटनातु जात्यादीनां कृतद्वंद्वानामतिशायने अर्शआदित्वादच्प्रत्ययविधानेन विधेयेति ॥ १४ ॥

> गिरिवरेवा निसहो ययाणं, रुयएव सेठे वलयायताणं ॥ तउव
> मे से जगनूइपन्ने, मुणीण मझे तमुदाहु पन्ने ॥ १५ ॥ अणुत्तरं
> धम्ममुईरइत्ता, अणुत्तरं जाणवरं झियाइं ॥ सुसुक्कसुक्कं अप
> गंमसुक्कं, संखिंडएगंतवदातसुक्कं ॥ १६ ॥

अर्थ-(गिरिवरेवानिसहोययाणं के०) जेम लांब पणे समस्त पर्वतमां निषध पर्वत श्रेष्ठछे तथा (रुयएवसेठेवलयायताणं के०) जेम वर्त्तुलाकार समस्त पर्वतमांहे रुचक नामा पर्वत श्रेष्ठछे (तउवमेसेजगनूइपन्ने के०) तेनी उपमायें श्रीमहावीर देवजगतमां नूतिप्रज्ञ एटले प्रज्ञायें करी श्रेष्ठ जाणवा (मुणीणमझेके०) समस्त मुनिउमांहे (तमुदाहुपन्ने के०) तत्स्वरूप जाणवाने अत्यंतज्ञानवंत जाणवा प्रकर्षेणजानातीति प्रज्ञ ए नावजाणवो ॥ १५ ॥ ते श्रीमहावीर (अनुत्तरंधर्मं के०) प्रधान एवोजे सर्वोत्तम धर्म तेने (उदिरयित्वा के०) प्ररुपीने प्रकाशीने (अणुत्तरंझाणवरं के०) प्रधानमां प्रधान एवोजे शुक्लध्यान तेने (झियाइं के०) ध्यावे ते नगवंतने योग निरुंध काले सूक्ष्म काययोग रुंधनावसरे शुक्ल ध्याननो त्रीजो नेद जे सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपति एवे नामेछे ते थाय तथा योगनिरोध थया पछी शुक्लध्याननो चोथो नेद उपरतक्रिया अने अनिवृत्ति नामे ध्यावे ते ध्यान वर्णवेछे (सुसुक्कसुक्कंअपगंमसुक्कं के०) सुष्टु प्रधान शुक्लवस्तुनी परे शुक्ल उज्वल अपगंम एटले दोष रहित अर्थात मिथ्यात्व रूप काट कलंक तेणे करी

क्रीडां वेदयंत्यनुभवंति । वनेषु च मध्ये यथा नंदनं देवानां क्रीडास्थानं प्रधानं । एवं भगवानपि ज्ञानेन केवलाख्येन समस्तपदार्थाविर्भावकेन शीलेन च चारित्रेण यथा ख्यातेन श्रेष्ठः प्रधानोभूतिप्रज्ञः प्रवृद्धज्ञानोभगवानिति ॥ १८ ॥

थणियंव सद्दाण अणुत्तरे उ, चंदोव ताराण महाणुभावे ॥ गंधे
सु वा चंदणमाहु सेठं, एवं मुणीणं अपडिन्नमाहु ॥ १९॥ जहा
सयंभू उदहीण सेठे, नागेसु वा धरणिंदमाहुसेठे ॥ खोउदए
वा रसवेजयंते, तवोवहाणे मुणिवेजयंते ॥ २० ॥

अर्थ—जेम (सद्दाण के०) शब्दमां (थणियंव के०) स्तनितं एटले मेघनी गर्जनानो शब्द (अणुत्तरेउके०) प्रधान एटले रुडो कह्योछे तथा (चंदोवताराणमहाणुभावे के०) जेम ग्रह नक्षत्र अने ताराने विषे चंद्रमा महानुभाव कह्योछे तथा(गंधेसुवाचंदणमाहुसेठंके०) जेमसमस्त गंधमां गोशीर्ष बावना चंदन श्रेष्ठ कह्युंछे (एवं के०) एम (मुणीणं के०) समस्त साधुमां (अपडिन्नमाहुके०) अप्रतिज्ञ एटले आलोक परलोकनी आशंसा करवानी जेने प्रतिज्ञा नथी अर्थात् इहलोक परलोकनी आशंसा रहित एवा श्रीमहावीरने मोहोटा श्रेष्ठ कह्याछे ॥ १९ ॥ (जहासयंभूउदहीणसेठे के०) जेम समस्त समुद्रमां स्वयंभूरमण समुद्र श्रेष्ठ कह्योछे (नागेसुवाधरणिंदमाहुसेठे के०) जेम नागकुमार देवोमां धरणेंद्रनामा इंद्र श्रेष्ठ कह्योछे (खोउदएवारसवेजयंतेके०) जेम इक्षुरसोदक समस्त रसमां प्रधान वेजयंत एटले वखाण्योछे (तवोवहाणेमुणिवेजयंतेके०) तेम तप उपधाने करी तपो विशेषे करी समस्त मुनिमां श्रीमहावीर ने प्रधानवखाण्याछे॥२०॥

॥ दीपिका—यथा शब्दानां मध्ये स्तनितं मेघगर्जितमनुत्तरं प्रधानं । तुर्विशेषणे । यथा ताराणां मध्ये चंद्रोमहानुभावः श्रेष्ठः । गंधेषु मध्ये यथा चंदनं श्रेष्ठं तज्ज्ञा आहुः । तथा मुनीनां मध्ये भगवंतं श्रेष्ठमाहुः । किंभूतं । नास्य प्रतिज्ञा इहलोकपरलोकाशंसिनी विद्यते इत्यप्रतिज्ञस्तं ॥ १९ ॥ स्वयंभुवस्ते यत्रागत्य रमंतइति स्वयंभूरमणः सयथा उदधीनां समुद्राणां मध्ये श्रेष्ठः । नागेषु भवनपतिविशेषेषु धरणेंद्रं श्रेष्ठमाहुः । (खोउदए त्ति) इक्षुरसइव उदकं यस्य सइक्षुरसोदकः समुद्रोयथा रसमाश्रित्य वैजयंतः प्रधानः । एवं तपउपधानेन तपोविशेषेण मुनिर्भगवान् वैजयंतः प्रधानः ॥ २० ॥

॥ टीका—अपिच (थणियमित्यादि) यथा शब्दानां मध्ये स्तनितं मेघगर्जितं तदनुत्तरं प्रधानं । तुशब्दोविशेषणार्थः समुच्चयार्थो वा । तारकाणां च नक्षत्राणां मध्ये यथा

जह सामलीवा, जस्सिं रतिं वेययंती सुवन्ना ॥ वणेसु वाणंदण माहु सेढं, नाणेण सीलेण य नूतिपन्ने ॥ १८ ॥

अर्थ—ते नगवंत शैलेसी अवस्थायें शुक्लध्याननना चोथा नेदने अनंतर (साइके०) सादि अने (अणंतके०) अनंत एवी (सिद्धिंगते के०) सिद्धिगतिने विषे पोहोंता ते सिद्धिकेवीछे तोके, (अणुतरग्गं के०) सर्वमां उत्तम तथा लोकने अग्रे वर्त्तमानछे ते कारण माटे (परमंमहेसी के०) परम प्रधान मोहोटा रूषीश्वर श्रीमहावीर देवछे जे (नाणेणसीलेणयदंसणेणके०) ज्ञाने करी दर्शनेकरी चारित्रशीलेकरी (असेसकम्मंसविसोहइत्ताके०) समस्तज्ञानावर्णादिक आठेकर्मने शोधी कर्म खपावीने मुक्तिनेविषे (पत्तेके०) पोहोता. ॥१७॥ वली उपमायें करी नगवंतने स्तवेछे ; (जहके०) जेम (रुरकेसुके०) वृक्षो मांहे (णातेके०) प्रसिद्ध देवकुरु उत्तरकुरुने विषे व्यवस्थित एवुं (सामलीवाके०) साहमली वृक्ष मोहोटुंछे (जस्सिंके०) जेनेविषे (सुवन्नाके०) सुवर्ण कुमारकादिक नुवनपति देवो आवीने (रतिंवेययंती के०) रतिवेदेछे एटले क्रीडा रूप सुख नोगवेछे तथा जेम (वणेसुवाके०) वनने विषे (णंदण के०) नंदन वन (सेढंके०) श्रेष्ठ (आहुके०) कह्युंछे उत्तम शोनाये करी सहित कह्युंछे तेम (नाणेणसीलेणयनूतिपन्ने के०) ज्ञान अने शील एटले चारित्र तेणे करी, श्री महावीर महाप्राज्ञ एटले मोहोटा जाणवा. ॥१८॥

॥ दीपिका—अनुत्तरां प्रधानां अग्र्यां च सर्वोत्तमां परमां सिद्धिं गतिं साद्यनंतां प्राप्तोमहर्षिः सअशेषं कर्म विशोध्यापनीय केन ज्ञानेन दर्शनेन शीलेनच कर्म क्षपयित्वा ॥ ॥ १७ ॥ वृक्षेषु मध्ये यथा ज्ञातः प्रसिद्धोदेवकुरुस्थितः कूटशाल्मलीवृक्षः। यस्मिन्वृक्षे सुपर्णानवनपतिविशेषारतिं क्रीडां वेदयंतीति । वनेषु मध्ये यथा नंदनं वनं श्रेष्ठमाहुस्तथा नगवान् ज्ञानेन शीलेनच श्रेष्ठोनूतिप्रज्ञः प्रवृद्धज्ञानः ॥ १८ ॥

॥ टीका—अपिच (अणुत्तरग्गमित्यादि) तथाऽसौ नगवान् शैलेऽश्यवस्थापादितशुक्लध्यानचतुर्थनेदानंतरं साद्यपर्यवसानां सिद्धिं गतिं पंचमीं प्राप्तः । सिद्धिगतिमेव विशिनष्टि । अनुत्तरा चासौ सर्वोत्तमत्वादग्र्याच लोकाग्रव्यवस्थितत्वादनुत्तराग्र्या तां परमां प्रधानां महर्षिरसावत्यंतोग्रतपोविशेषनिष्टप्तदेहत्वादशेषं कर्म ज्ञानावरणादिकं विशोध्यापनीय च विशिष्टेन ज्ञानेन दर्शनेन शीलेनच क्षायिकेन सिद्धिं गतिं प्राप्त इति मीलनीयं ॥ १७ ॥ पुनरपि दृष्टांतद्वारेण नगवतः स्तुतिमाह । (रुरकेसुणाएइत्यादि) वृक्षेषु मध्ये यथा ज्ञातः प्रसिद्धोदेवकुरुव्यवस्थितः शाल्मलीवृक्षः सच नवनपतिक्रीमास्थानं । यत्र व्यवस्थिताअन्यतश्चागत्य सुपर्णाजवनपतिविशेषारतिं रमण

मृगाणां श्वापदानां मध्ये सिंहः प्रधानः। जरतक्षेत्रापेक्षया यथोदकानां मध्ये गंगोदकं प्रधानं यथा च पक्षिणां मध्ये गरुडोऽपरनामा वेणुदेवः प्रधानस्तथानिर्वाणपथदेशकानां ज्ञातपुत्रः श्रीवीरः प्रधानोयथास्थितमोक्षार्थवादित्वात् ॥ २१ ॥ योधानां मध्ये यथा विश्वा संपूर्णा सेना यस्य सविश्वसेनश्चक्री ज्ञातः पुष्पेषु यथाऽरविंदं प्रधानमाहुः क्षत्रियाणां मध्ये यथा दांताउपशांतावाक्येनवा शत्रवोयस्मात्सदांतवाक्यश्चक्रवर्ती प्रधानस्तथा ऋषीणां मध्ये श्रीवर्धमानः श्रेष्ठः ॥ २२ ॥

॥ टीका-(हत्थीसुइत्यादि) हस्तिषु करिवरेषु मध्ये यथा ऐरावतं शक्रवाहनं ज्ञातं प्रसिद्धं दृष्टांतनूतं वा प्रधानमाहुस्तज्ज्ञाः। मृगाणां च श्वापदानां मध्ये यथा सिंहः केसरी प्रधानस्तथा जरतक्षेत्रापेक्षया सलिलानां मध्ये यथा गंगासलिलं प्रधानजावमनुजवति। पक्षिषु मध्ये यथा गरुत्मान् वेणुदेवाऽपरनामा प्राधान्येन व्यवस्थितः। एवं निर्वाणं सिद्धिक्षेत्राख्यं कर्मच्युतिलक्षणंवा स्वरूप तस्तडपायप्राप्तिहेतुतोवा वदितुं शीलं येषां ते तथा तेषां मध्ये ज्ञाताः क्षत्रियास्तेषां पुत्रोऽपत्यं ज्ञातपुत्रः श्रीमन्महावीरवर्धमान स्वामी सप्रधानइति यथावस्थितनिर्वाणार्थवादित्वादित्यर्थः ॥ २१ ॥ अपिच (जोहेसुइत्यादि) योधेषु मध्ये ज्ञातोविदितोदृष्टांतनूतोवा विश्वा हस्त्यश्वरथपदातिचतुरंगबलसमेता सेना यस्य सविश्वसेनश्चक्रवर्ती यथाऽसौप्रधानः पुष्पेषु च मध्ये यथाऽरविंदं प्रधानमाहुः। तथा क्षतात् त्रायंतइति क्षत्रियास्तेषां मध्ये दांताउपशांतायस्य वाक्येनैव शत्रवः सदांतवाक्यश्चक्रवर्ती यथासौ श्रेष्ठः। तदेवं बहून् दृष्टांतान् प्रशस्तान् प्रदर्श्याऽधुना नगवंतं दार्ष्टांतिकं स्वनामग्राहमाह। तथा ऋषीणां मध्ये श्रीमान् वर्धमानस्वामी श्रेष्ठइति ॥ २२ ॥

दाणाण सेठं अन्नयप्पयाणं, सच्चेसुवा अणवज्जं वयंति ॥ तवेसु
वा उत्तमबंजचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥ २३ ॥ ठिईण से
ठा लवसत्तमावा, सन्ना सुहम्माव सन्नाण सेठा ॥ निव्वाणसेठा
जह सव्वधम्मा, ण णायपुत्ता परमत्थि नाणी ॥ २४ ॥

अर्थ-(दाणाणसेठंअन्नयप्पयाणं) जेम समस्त दानने विषे अनयदान श्रेष्ठ कह्युं (सच्चेसुवाअणवज्जंवयंति के०) जेम सत्य वचनमां निरवद्य एटले जे वचनना उच्चारे करी परने पीडा उत्पन्न नथाय ते वचन श्रेष्ठ वखाण्युंछे (तवेसुवाउत्तमबंजचेरं के०) जेम सर्व तपमां नवविध ब्रह्मगुप्ति सहित ब्रह्मचर्य श्रेष्ठकह्योछे (लोगुत्तमेसमणेनायपुत्ते के०) तेम लोकमां उत्तम श्रमण तपस्वी श्रीमहावीर देव श्रेष्ठ वखाण्याछे. ॥ २३ ॥

चंड्रोमहानुनावः सकलरजनिवृत्तिकारिण्या कांत्यामनोरमः श्रेष्ठः। गंधेष्विति गुणगुणि नोरन्नेदान्मतुब्लोपाद्वा । गंधवत्सु मध्ये यथा चंदनं गोशीर्षकारव्यं मलयजं वा तज्ज्ञाः श्रेष्ठमाहुः । एवं मुनीनां महर्षीणां मध्ये नगवंतं नाऽस्य प्रतिज्ञा इहलोकपरलोकानां शंसिनी विद्यते इत्यप्रतिज्ञस्तमेवंनूतं श्रेष्ठमाहुरिति ॥ १९ ॥ अपिच । (जहा सयंनूइत्यादि) स्वयं नवंतीति स्वयंनुवोदेवास्ते तत्राऽऽगत्य रमंतीति स्वयंनूरमणस्तदेवमुदधीनां समुड्राणां मध्ये यथा स्वयंनूरमणः समुड्रः समस्तद्वीपसागरपर्यंतवर्ती श्रेष्ठः प्रधानोनागेषु च नवनपतिविशेषेषु मध्ये धरणेंड्रं नागेंड्रं यथा श्रेष्ठमाहुः । तथा (खोडदएइति) इक्कुरसइवोदकं यस्य सइक्कुरसोदकः सयथा रसमाश्रित्य वैजयंतः प्रधानः स्वगुणैरपरसमुड्राणां पताकेवोपरि व्यवस्थितः । एवं तपडपधानेन विशिष्टतपोविशेषेण मनुते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिर्नगवान् वैजयंतः प्रधानः समस्तलोकस्य महातपसा वैजयंतीवोपरि व्यवस्थितइति ॥ २० ॥

हत्नीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मिगाणं सलिलाण गंगा, प
रकीसुवा गेरुले वेणुदेवे, निव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ॥ २१ ॥
जोहेसु णाए जह वीससेणे, पुप्फेसुवा जह अरविंदमाहु॥खत्तीण
सेठे जह दंत्तवक्के, इसीण सेठे तह वद्धमाणे ॥ २२ ॥

अर्थ–(हत्नीसुएरावणमाहुणाएके०) जेम हस्तिउने विषे इंड्रनुवाहन ऐरावणहस्ति प्रधान कह्योछे. (सीहोमिगाणंके०) जेम मृग प्रमुख स्वापद जनावरोमां सिंह प्रधानकह्योछे (सलिलाणगंगाके०) नरतक्षेत्रनी अपेक्षायें जेमपाणीमां गंगानदिनुंपाणी निर्मल कह्युंछे(परकीशुवागेरुलेवेणुदेवेके०) जेम समस्त पक्षीउमां गरुड मोहोटो कह्योछे अपरनामे वेणुदेव ए जेम प्रधान कह्याछे (निव्वाणवादीणिहके०) तेम निर्वाणजे मोक्ष मार्ग तेना स्थापन करनारा वादीलोक मां (णायपुत्ते के०) श्रीमहावीर मोहोटा कह्याछे. ॥२१॥ (जहके०) जेम (जोहेसु के०) योड्शुनटो मां (णाएके०) ज्ञातविदित (वीससेणेके०) विश्वसेन एटले चक्रवर्त्ति प्रधान कह्योछे (पुप्फेसुवाजहअरविंदमाहु के०) जेम फूलमां अरविंद कमल मोहोटुं कह्युंछे (खत्तीणसेठेजहदंतवक्के के०) जेम क्षत्रीमां दंतवाक्य एटले चक्रवर्त्ति प्रधान कह्योछे (तह के०) तेम (इसीणके०) समस्त ऋषीउ मां (वद्धमाणे के०) श्रीवर्द्धमान स्वामि (सेठे के०) श्रेष्ट कह्याछे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–हस्तिषु यथा ऐरावतं इंड्रगजं ज्ञातं प्रसिद्धं दृष्टांतनूतमाहुस्तज्ज्ञाः । यथा

॥ टीका–तथा (दाणाणमित्यादि)। तथा स्वपरानुग्रहार्थमर्थिने दीयतइति दान नमनेकधा। तेषां मध्ये जीवानां जीवितार्थिनां त्राणकारित्वादजयदानं श्रेष्टं। तडुक्तं। दीयते म्रियमाणस्य, कोटिं जीवितमेव वा। धनकोटिं नगृण्हीयात्, सर्वोजीवितुमिछति गोपालांगनादीनां दृष्टांत द्वारेणार्थोवु द्धौसुखेनारोहतीति। अतोऽजयप्रदानप्राधान्यख्या पनार्थं कथानकमिदं। वसंतपुरे नगरे अरिदमनोनाम राजा सच कदाचिच्चतुर्वधूसमेतो वातायनस्थः क्रीडायमानस्तिष्ठति। तेन कदाचिच्चौरोरक्तकरवीरकृतमुंडमालोरक्तपरिध नोरक्तचंदनोपलिप्तश्च प्रहतवध्यडिंडिमोराजमार्गेण नीयमानः सपत्नीकेन दृष्टोदृष्ट्वा च ताजिः पृष्टं किमनेनाकारीति। तासामेकेन राजपुरुषेणाऽऽवेदितं यथा परद्रव्यापहारेण रा जविरुद्धमिति। ततएकया राजा विज्ञप्तोयथा योजवता मम प्राग्वरः प्रतिपन्नः सोऽधुना दीयतां यथाऽहमस्योपकरोमि। किंचित् राज्ञापि प्रतिपन्नं ततस्तया स्नानादिपुरःसरमलंका रेणाऽलंकृतोदीनारसहस्रव्ययेन पंचविधान् शब्दादीन् विषयानेकमहःप्रापितः पुनर्द्विती ययाऽपितथैव द्वितीयमहोदीनारशतसहस्रव्ययेन लालितः। ततस्तृतीयया तृतीयमहोदी नारकोटिव्ययेनसत्कारितः। चतुर्थ्यातु राजानुमत्या मरणाद्रक्षितो ऽजयप्रदानेन। ततोऽ सावऽन्याजिर्हसितानाऽस्य त्वया किंचिद्दत्तमिति। तदेव तासां परस्परवहूपकारविषये विवादे राज्ञाऽसावेव चौरः समाहूय पृष्टोयथाकेन तव वहूपकृतमिति तेनाऽप्यजाणि। यथा न मया मरणमहाजयजीतेन किंचित् स्नानादिकं सुखं विज्ञायीति। अजयप्रदानाकर्णनेन पुनर्जन्मानमिवात्मानमवैमीति। अतः सर्वदानानामजयप्रदानं श्रेष्ठमिति स्थितं। तथा स त्येषु च वाक्येषु च यदनवद्यमपापं परपीडानुत्पादकं तत्श्रेष्ठं वदंति। नपुनः परपीडोत्पाद कं सत्यं सद्भ्योहितं सत्यमितिकृत्वा। तथाचोक्तं। लोकेऽपि श्रूयते वादो, यथा सत्येन कौशि कः॥ पतितोवधयुक्तेन, नरके तीव्रवेदने। अन्यच्च। तहेवकाणंकाणत्ति पंमगंपंमगत्तिवा। वाहियंवाहिरोगित्ति, तेणंचोरोत्तिनोवदे॥ तपस्सु मध्ये यथैवोत्तमं नवविधब्रह्मगुप्त्युपेतं ब्रह्मचर्यं प्रधानं जवति। तथा सर्वलोकोत्तमरूपसंपदा सर्वातिशायिन्या क्षायकज्ञानदर्शनाज्यां शीलेन ज्ञातपुत्रोजगवान् श्रमणः प्रधानइति॥ २३॥ किंच (विईणमित्यादि) स्थितिमतां मध्ये यथा लवसत्तमाः पंचानुत्तरविमानवासिनोदेवाः सर्वोत्कृष्टस्थितिवर्तिनः प्रधानायदि किल तेषां सप्तलवाआयुष्कमजविष्यत्ततः सिद्धिगमनमजविष्यदिति। अतोलवसत्तमास्तेऽजिधीयंते। सजानां च पर्षदांच मध्ये यथासौधर्माधिपपर्षच्छ्रेष्ठा बहुजिः क्रीडास्थानैरुपेतत्वात्तथा। यथा सर्वेऽपि धर्मानिर्वाणफलमेव स्वदर्शनं ब्रुवते। यतः एवं ज्ञातपुत्रात् वीरवर्धमानस्वामिनः सर्वज्ञात् सकाशात् परं प्रधानं अन्यद्विज्ञानं नास्ति सर्वथैव जगवानपरज्ञानिज्योऽधिकज्ञानोजवतीति जावः॥ २४॥

(ठिईणसेठालवसत्तमावा के०) जेम स्थितिमां प्रधान जव सप्तम देवता एटले पंचा नुत्तर विमानवासी देवो कह्याछे कारणके तेमनुं मनुष्यमां सात जव प्रमाण आयु कर्म जो शेष रह्युं होत तो मुक्ति पामत तेमाटेएने जव सप्तम देवो कहियें (सजासुहम्मावस जाणसेठा के०) अन्य सजाउंमां जेम सौधर्मी सजा श्रेष्ठ कहीछे (निव्वाणसेठाजहस व्वधम्मा के०) जेम समस्त धर्मोने विषे निर्वाण जे मोक्ष ते प्रधान कह्योछे केमके अन्य दर्शनीउं पण पोत पोताना धर्मने विषे मोक्ष प्रधान बोलेछे माटे. (णायपुत्ता परमत्नीनाणी के०) तेम ज्ञात पुत्र श्रीमहावीर थकी अन्य कोइ ज्ञानी नथी एटले सर्वे मां उत्तम ज्ञानवंत श्रीमहावीर देव जाणवा. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—यथा दानानां मध्येऽजयप्रदानं श्रेष्ठं । यडुक्तं । दीयते म्रियमाणस्य कोटिं जीवि तमेव वा ॥ धनकोटिं न गृएहीयात्सर्वोजीवितुमिछति ॥ १ ॥ अत्रदृष्टांतः । वसंतपुरे अरिदमनोराजा चतुर्वधूयुक्तोऽन्यदा गवाक्षे क्रीडति तेन सपत्नीकेन चौरोवधस्थानं नीय मानोदृष्टः पत्निजिः पृष्टं किमनेनापराद्धं । एकेन राजनरेण तत्स्वरूपमुक्तं । अनेन चौर्यं कृतं। ततएकया पत्न्या नृपपार्श्वे पूर्वदत्तोवरोमार्गितएकदिनं चौरोमोच्यइति । राज्ञापि प्रतिपन्नं ततस्तया स्नानजोजनसत्काराद्रिपूर्वकमलंकारैरलंकृतोदीनारसहस्रव्ययेन श ब्दादिविषयान् प्रापितोदिनमेकं पालितश्चौरः । द्वितीयदिने द्वितीयया दीनारलक्षव्ययेन लालितस्तृतीयदिने तृतीयया दीनारकोटिव्ययेन सत्कारितश्चतुर्थ्यातु राज्ञोनुमत्या मर णाद्रक्षितोनान्यत्किंचिडुपकृतं सान्यपत्नीजिर्हसिता नानया किंचिद्दत्तमिति । ततस्तासां बहूपकारविषये विवादे जाते राज्ञा चौरएव कार्यं पृष्टोयथा तव कया बहूपकृतमिति तेनोक्तं मया मरणमहाजयजीतेन स्नानादिसुखं किंचिन्न ज्ञातं । अग्रे पुनरजयदानाकर्ण नात्परमं सुखमनुजवामीति सर्वदानानामजयदानं श्रेष्ठमिति स्थितं । सत्येषु वाक्येषु यदनवद्यं पीडानुत्पादकं वाक्यं तत्श्रेष्ठं । सत्यं तदेव यत्परपीडानुत्पादकं । यतः । लो केपि श्रूयते वादोयथाऽसत्येन कौशिकः ॥ पतितोवधयुक्तेन नरके तीव्रवेदने ॥ १ ॥ तथा तहेव काणंकाणित्ति पंमगंपंमगत्ति वा ॥ वाहिअं वाहिरोगिति ताणं चोरित्ति नोवत्ते इति ॥ तपःसु यथा ब्रह्मचर्यमुत्तमं तथा लोकोत्तमः श्रमणोज्ञातपुत्रः श्रीवीरः ॥२३॥ स्थितिमतां मध्ये यथा लवसप्तमाः पंचानुत्तरविमानस्थादेवाः सर्वोत्कृष्टस्थितयः प्रधानाः। तेषां यदि सप्तलवाआयुष्कमजविष्यत्ततः सिद्धिगमनमजविष्यदिति। यथा सजानां मध्ये सौधर्मी सजा श्रेष्ठा। यथा सर्वधर्मानिर्वाणश्रेष्ठामोक्षप्रधानाः।कुदर्शिनोपि स्वधर्मे निर्वाण फलदमाहुः। एवं ज्ञातपुत्रात् श्रीवीरात् परोज्ञानी नास्तीति सर्वेभ्योधिकज्ञानइत्यर्थः॥२४

प्रकारं कर्मेतिशेषः । तथा विगता प्रलीना सबाह्याभ्यंतरेषु वस्तुषु गृद्धिर्गार्ध्यमभिलाषोय स्य सविगतगृद्धिः। तथा सन्निधानं सन्निधिः सच द्रव्यसन्निधिः। धनधान्यद्विपदचतुष्पदरूपोभावसन्निधिस्तु मायाक्रोधादयोवा सामान्येन कषायास्तमुभयरूपमपि सन्निधिं न करोति भगवांस्तथाऽऽशुप्रज्ञः सर्वत्र सदोपयोगाच्छद्मस्थवन्मनसा पर्यालोच्य पदार्थपरिछित्तिं विधत्ते । सएवंभूतस्तरित्वा समुद्रमिव पारं महाभवौघं चतुर्गतिकं संसारसागरं बहुव्यसनाकुलं सर्वोत्तमं निर्वाणमासादितवान् । पुनरपि तमेव विशिनष्टि । अभयं प्राणिनां प्राणरक्षारूपं स्वतः परतश्च सदुपदेशदानात् करोतीत्यभयंकरः । तथाऽष्टप्रकारं कर्म विशेषेणेरयति प्रेरयतीति वीरः। तथाऽनंतमपर्यवसानं नित्यं ज्ञेयानंतत्वाद्वानंतं चक्षुरिव चक्षुः केवलज्ञानं यस्य सतथेति ॥२५॥ किंचाऽन्यत् (कोहंचेत्यादि) निदानोच्छेदेन हि निदानिनउच्छेदोभवतीति न्यायात् संसारस्थितेश्च क्रोधादयः कारणमतएतानध्यात्मदोषांश्चतुरोऽपि क्रोधादीन् कषायान्वांत्वा परित्यज्य असौ भगवानर्हत्तीर्थकृत् जातः तथामहर्षिश्चैवं परमार्थतोमहर्षित्वं भवति यद्यध्यात्मदोषान भवति नान्यथेति । तथा न स्वतः पापं सावद्यमनुष्ठानं करोति नाप्यन्यैः कारयतीति ॥ २६ ॥

किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं, अन्नाणियाणं पडियच्च ठाणं ॥ से सववायं इति वेयइत्ता, उवठिए संजमदीहरायं ॥ २७ ॥ से वारिया इत्थि सराइभत्तं, उवहाणवं दुरकखयठयाए ॥ लोगं विदित्ता आरं पारंच, सवं पभू वारिय सववारं ॥ २८ ॥ सोच्चाय धम्मं अरहंत भासियं,समाहितं अठपदोपसुद्धं ॥ तं सद्दहाणाय जणा अणाऊ, इंदावदेवाहिव आगमिस्संतित्तिबेमि ॥ २९ ॥ इति श्री वीरथुतीनाम षष्ठमध्ययनं सम्मत्तं ॥

अर्थ—(किरियाकिरियंके०) क्रियावादीना एकशोने एंशी भेद, अक्रियावादीना चोराशी भेद (वेणइयके०) विनयवादीना बत्रीश भेद, अने (अन्नाणियके०) अज्ञान वादीना सडसठ भेद ए सर्व मली त्रणशोने त्रेशठ थयांते पाखमी दर्शनीउंना (अणुवायंके०) अनुवाद एटले भेद जाणवा ए चारे दर्शनीना (स्थानके०) दर्शन स्वरूप तेने (पडियच्च के०) दुर्गति जवाना कारण जाणीने (सेके०) ते श्रीमहावीर देव (सववायंके०) सर्ववादने (इतिवेयइत्ताके०) जाणीने उन्मार्गनो त्याग करीने (संजमेसदीहरायं के०) चारित्ररूप धर्मने विषे दीर्घरात्रं एटले जावजीव सुधी (उवठिए के०) उपस्थित एटले सावधान थयाछे ॥२७॥ (सेके०) ते भगवंते (इत्थिसराइभत्तं के०) स्त्री सहित रात्री भोजन तथा उपलक्षणथी प्रणातिपातादिकने पण (वारिया के०) निवार्याछे वली (दुःरकखयठ

पुढोवमे धुणइ विगयगेहि, नसंन्निहिं कुवति आसुपन्ने ॥ तरिउं समुद्दंच महाभवोघं, अभयंकरे वीर अणंतचक्खू ॥ २५ ॥ कोहं च माणंच तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा ॥ एआणि वंता अरहामहेसी ण कुवई पाव ण कारवेइ ॥ २६ ॥

अर्थ-(पुढोवमेके०) जेम पृथवी सकल पदार्थने आधार भूतछे तेम श्रीमहावीर सर्व सत्वने अभय प्रदाने करी रुडा उपदेशना दान थकी आधारभूतछे. (धुणइके०) अष्टप्रकारना कर्म खपाव्याछे (विगयगेहि के०) विगतगृधि एटले अभिलाष रहित थयाछे वली (नसंन्निहिंकुवति के०) संनिध नकरे एटले कांइ पण संचय करे नही तथा (आसुपन्नेके०) उतावली प्रज्ञाना धणी एटले केवली एवा भगवंत जाणवा (तरिउंसमुद्दंचमहाभवोघं के०) तथा समुद्रनी पेरे तरवाने दुस्तर एवो मोहोटो संसार समुद्र तेने तरीने मुक्तियें पोहोताछे, वली श्रीमहावीर केवाछे तोके. (अभयंकरेके०) अभय करनार एटले सर्व जीवना भयना टालनारछे तथा (वीरके०) शूरवीरछे (अणंतचक्खू के०) अनंत चक्षुना धणी एटले सर्व स्वरूप देखेछे जाणेछे. ॥ २५ ॥ (कोहंचमाणंचतहेवमायं के०) क्रोध वली मान तथा माया तेमज वली (लोभंके०) लोभते परवंचना रूप जाणवो (चउत्थंके०) एचार (अज्झत्थदोसा के०) अध्यात्म दोषछे तेने संसार वधारवाना कारण जाणीने (एआणिवंता के०) एचारे कषायने छांमीने श्रीमहावीर (अरहामहेसी के०) अरहंत थया महारिषी थया ते कारण माटे (णकुवईपावणकारवेइ के०) श्रीमहावीर स्वामि पोते पाप करे नही तथा बीजा पासे पाप करावे नही अने पापकर्मना करनारनी अनुमोदना पण करे नही. ॥ २६ ॥

॥ दीपिका-यथा पृथ्वी सर्वंसहा तथा भगवानपि तदुपमः । विगतगृद्धिर्गताभिलाषो धुनात्यपनयति कर्मेति । आशुप्रज्ञः सदायोगज्ञानः सन्निधिं न करोति । द्रव्यसन्निधिर्धनधान्यादिर्भावसन्निधिर्मायाक्रोधादिस्तं द्विविधमपि सन्निधिं न करोति सतरित्वा समुद्रमिव महाभवौघं संसारप्रवाहं निर्वृतोऽभयंकरः प्राणिनां वीरोऽनंतचक्षुरनंतज्ञानः ॥ ॥ २५ ॥ क्रोधं मानं मायां लोभं चतुर्थमध्यात्मदोषानात्मदोषरूपान् कषायान् एतान् वांत्वा त्यक्त्वा ऽर्हन्महर्षिः स्वयं पापं न करोति न कारयत्यन्यैः ॥ २६ ॥

॥ टीका-किंचाऽन्यत् (पुढोवमेइत्यादि) सहि भगवान् यथा पृथिवी सकलाधारा वर्तते तथा सर्वसत्वानामभयप्रदानतः सदुपदेशदानाद्वा सत्वाधारइति । यदिवा यथा पृथ्वी सर्वंसहा एवं भगवान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहतइति । तथा धुनात्यपनयत्यष्ट

त्र तत्राश्रमे रतः ॥ शिखी मुंमीजटी वापि सिद्ध्यते नात्र संशयः॥१॥ तथा विनयादेव मोक्षइत्येवं गोशालकमतानुसारिणोविनयेन चरंतीति वैनायिकाव्यवस्थिताः । तथाऽज्ञानमेवैहिकामुष्मिकायाऽलमित्येवमज्ञानिकाव्यवस्थिताइत्येवं रूपं तेषामभ्युपगमं परिज्ञाय स्वतः सम्यगवगम्य सम्यगवबोधेन तथा सएव वीरवर्धमानस्वामी सर्वमन्यमपि बौद्धादिकं यं कंचन वादमपरान् सत्वान् यथावस्थिततत्वोपदेशेन वेदयित्वा परिज्ञाप्योपस्थितः सम्यगुत्थानेन संयमे व्यवस्थितोनतु यथा अन्ये । तडुक्तं । यथा परेषां कथका विदग्धाः, शास्त्राणि कृत्वा लघुतामुपेताः ॥ शिष्यैरनुज्ञामलिनोपचारैर्वक्तृत्वदोषास्त्वयि ते न संति १ ॥ दीर्घरात्रमिति यावज्जीवं संयमोत्थानेनोत्थितइति ॥ २१॥ अपि च (सेवारिएइत्यादि) सन्नगवान् वारयित्वा प्रतिषिध्य । किंतदित्याह । स्त्रियमिति स्त्रीपरिन्नोगमैथुनमित्यर्थः । सहरात्रिनक्तेन वर्ततइति सरात्रिनक्तं । उपलक्षणार्थत्वादस्याऽन्यदपि प्राणातिपातनिषेधादिकं डष्टव्यं । तथा उपधानं तपस्तद्विद्यते यस्याऽसौ उपधानवान् तपोनिष्टप्तदेहः । किमर्थमिति दर्शयति । डःखयतीति डःखमष्टप्रकारं कर्म तस्य क्षयोऽपगमस्तदर्थं । किंच लोकं विदित्वा आरमिहलोकाख्यं पारं परलोकाख्यं । यदिवा आरं मनुष्यलोकं पारमिति नरकादिकं स्वरूपतस्तत्प्राप्तिहेतुं ततश्च विदित्वा सर्वमेतत् प्रत्नुर्नगवान् सर्ववारं बहुशोनिवारितवान् । एतडुक्तं नवति। प्राणातिपातनिषेधादिकं स्वतोऽनुष्टाय परांश्च स्थापितवान् । नहि स्वतोऽस्थितः परांश्च स्थापयितुमलमित्यर्थः । तडुक्तं । ब्रुवाणोऽपि न्याय्यं, स्ववचनविरुद्धं व्यवहरन्, परान्नालं कश्चिद्दमयितुमदांतः स्वयमिति ॥ नवान्निश्चित्यैवं मनसि जगदाधाय सकलं स्वमात्मानं तावद्दमयितुमदांतं व्यवसितइति ॥ तथा तिलयरोचउनाणी, सुरमहिउ सिज्जियव्व धूयामि ॥ अणिगूहियबलविरउ सव्वत्थामेसु उज्जमइ इत्यादि ॥ २७ ॥ सांप्रतं सुधर्मस्वामी तीर्थकरगुणानाख्याय स्वशिष्यानाह (सोच्चायेत्यादि) श्रुत्वा च डुर्गतिधारणाद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यमर्हद्भिर्नाषितं सम्यगाख्यातमर्थपदानि युक्तयोहेतवोवा तैरुपशुद्धमवदातं सद्युक्तिकं सद्धेतुकंवा । यदि वाऽर्थैरनिधेयैः पदैश्च वाचकैः शब्दैः उप सामीप्येन शुद्धं निर्दोषं । तमेवंनूतमर्हद्भिर्नाषितं धर्मं श्रद्दधानास्तथाऽनुतिष्ठंतोजनालोकाअनायुषोऽपगतायुः कर्माणः संतः सिद्धाः सायुषश्चेंद्राद्या देवाधिपाआगमिष्यंतीति । इतिशब्दः परिसमाप्तौ । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ २९ ॥ इति वीरस्तवाख्यं षष्ठमध्ययनं परिसमाप्तमिति ॥ ग्रंथसंख्या ३००

हवे सातमुं अध्ययन प्रारंन्निये तैयें ठठा अध्ययनने विषे श्रीमहावीरनुं स्तवन करतां श्रीमहावीरने सुशील कह्या, हवे आ सातमां अध्ययनने विषे ते थकी विपरीत कुशीलिया होयठे जे अरहट घटीकाने न्यायें संसारमांहे न्रमण करे तेनुं स्वरूप कहेठे.

याए के०) कर्मरूप डुःख क्षय करवाने अर्थे (उवहाणवं के०) उपधानवंत थया एट ले तपश्या करी देह शोषवीने कर्म खपाव्या (लोगंविदित्ता आरंपारंच के०) इह लोक अने परलोक ए बंनेने जाणीने (सव्वंपनूवारियसव्ववारं के०) सर्व पापना स्था नकने प्रनूत पणे पोते वारंवार निवार्याछे ॥ २७ ॥ हवे श्रीसुधर्म स्वामि पोताना शिष्य प्रत्ये कहेछे (धम्मं अरहंत नासियंके०) अरिहंतनो नाषेलोजे धर्म ते केवोछे तो के (समाहितं अछपदोपसुद्धं के०) सम्यक् प्रकारे अर्थे करी पदे करी शुद्ध एटले उज्वल युक्ति सहित तेने (सोच्चाय के०) सांनलीने (तं के०) ते धर्मने (सद्दहाणाय के०) सर्द्दहता एटले सत्य करी मानता थका (जणा के०) अनेक जन (अणाऊ के०) कर्म रहित थयीने अनायुष्य थया एटले सिद्ध थया (इंदावदेवाहिव आगमिस्संतिके०) अथवा आगमिक काले इंड्रादिक पदवी पाम्या तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २९ ॥ इतिश्री वीरस्तुतिनामे छहा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका–क्रियावादिनामक्रियावादिनां वैनयिकानामज्ञानिकानां स्थानं पक्षं सम्यक्प्रका रं प्रतीत्य परिछिद्य ज्ञात्वा सनगवान् सर्ववादं निवेदयित्वा सर्वकुदर्शनिनां स्वरूपं ज्ञात्वा दीर्घ कालं यावज्जीवं संयमे उपस्थितः ॥ २७ ॥ सनगवान् स्त्रीनोगं मैथुनं सरात्रिनोजनसहितं वारयित्वा उपलक्षणादन्यदपि प्राणातिपातादिकं ग्राह्यं । उपधानवान् तपोविशेषयुक्तो डुःखक्षयार्थं आरं पारंच लोकं इह लोकं परलोकं च विदित्वा ज्ञात्वा प्रनुर्नगवान् सर्वं वारं बहुशोनिवारितवान् । कोर्थः । अहिंसादिकं स्वयं विधाय परांश्च स्थापितवान् न हि स्वयमधर्मे स्थितः परान् धर्मे स्थापयितुमलं । यडुक्तं स्तुतिकृता । ब्रुवाणोपि न्या य्यं स्ववचनविरुद्धं व्यवहरन् परं नालं कश्चिद्दमयितुमदांतः स्वयमिति ॥ नवान्निश्चित्यैवं मनसि जगदाधाय सकलं स्वमात्मानं तावद्दमयितुमदांतं व्यवसितइति ॥ २७ ॥ श्रु त्वा धर्ममर्हद्भाषितं सम्यगाख्यातमर्थपदैर्युक्तिनिरुपशुद्धं निर्मलं तं धर्मं श्रद्दधानाज नास्तथा कुर्वंति यथा नायुःकर्माणः सिद्धाः सायुषश्च इंद्राद्यादेवाधिपा आगमिष्यंती ति इति ब्रवीमीति ॥ २९ ॥ इति वीरस्तवाख्यं षष्ठमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् (किरिएइत्यादि) तथा सनगवान् क्रियावादिनमक्रियादिनां वैनयिका नामज्ञानिकानांच स्थानं पक्षमन्युपगतमित्यर्थः । यदिवा स्थीयतेऽस्मिन्निति स्थानं डुर्गति गमनादिकं प्रतीत्य परिछिद्य सम्यगवबुध्यत्यर्थः । एतेषां च स्वरूपमुत्तरत्र प्रत्यक्षेण व्याख्या स्यामः । लेशतस्त्विदं । क्रियैव परलोकसाधनायाऽलमित्येवं वादितुं शीलं येषांते क्रियावा दिनस्तेषां हि दीक्षातएव क्रियारूपायामोक्षइत्येवमन्युपगमः । अक्रियावादिनस्तु ज्ञानवादि नस्तेषां हि यथावस्थितवस्तुपरिज्ञानादेव मोक्षः । तथाचोक्तं । पंचविंशतितत्वज्ञो, य

॥ टीका—उक्तं षष्ठमध्ययनं सांप्रतं सप्तममारभ्यते । अस्य चाऽयमभिसंबंधः । इहाऽनंतराध्ययने महावीरगुणोत्कीर्त्तनतः सुशीलपरिभाषा कृता । तदनंतरं तद्विपर्यस्ताः कुशीलाः परिभाष्यंते । तदनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्यावर्णनीयानि । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोऽयं ॥ तद्यथा । कुशीलाः परतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयोवा स्वयूथ्याअशीलाश्च गृहस्थाः परि समंतात् भाष्यंते प्रतिपाद्यंते तदनुष्ठानतस्तद्विपाकदुर्गतिगमनाश्च निरूप्यंतइति । तथा तद्विपर्ययेण क्वचित्सुशीलाश्चेति । निक्षेपस्त्रिधा । ओघनामसूत्रालापकभेदात् । तत्रौघनिष्पन्ननिक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने कुशीलपरिभाषेति । एतदधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । सीलेचउक्कं दवे,पाउरणाभरणभोयणादीसु॥ भावेउ ओहसीलं, अभिरकमासेवणा चेव ॥ ८८ ॥ (शीलेचउक्कमित्यादि) शीले शीलविषये निक्षेपे क्रियमाणे चतुष्कमिति नामादिश्चतुर्धा निक्षेपः । तत्राऽपि नामस्थापने क्षुणे तदनादृत्य द्रव्यमिति द्रव्यशीलं प्रावरणाभरणभोजनादिषु द्रष्टव्यं । अस्याऽयमर्थः । योहि फलनिरपेक्षस्तत्स्वभावादेव क्रियासु प्रवर्त्तते सतच्छीलस्तत्रेह प्रावरणशीलइति। प्रावरणप्रयोजनाभावेऽपि ताच्छील्यान्नित्यप्रावरणस्वभावप्रावरणे वा दत्तावधानः । एवमाभरणभोजनादिष्वपि द्रष्टव्यमिति । योवा यस्य द्रव्यस्य चेतनाचेतनादेः स्वभावस्तद्द्रव्यशीलमित्युच्यते । भावशीलं तु द्विधा ओघशीलमाभीक्ष्ण्यसेवनाशीलमिति । तत्रौघशीलं व्याचिख्यासुराह । ओहेसीलंविरति, विरयाविरईयअविरतीअसीलं ॥ धम्मेणाणतवादी, अपसत्थअहम्मकोवादी ॥८९॥ (ओहेत्यादि)। तत्रौघः सामान्यं । सामान्येन सावद्ययोगविरतोऽविरतोवा शीलवान् भण्यते तद्विपर्यस्तोऽशीलवानिति । आभीक्ष्ण्येवायां त्वनवरतसेवनायां तु शीलमिति ॥ तद्यथा । धर्मे धर्मविषये प्रशस्तं शीलं यद्गताऽनवरता पूर्वज्ञानार्जनं विशिष्टतपःकरणं वा । आदिग्रहणादनवरताभिग्रहग्रहणादिकं परिगृह्यते । अप्रशस्तभावशीलं त्वधर्मप्रवृत्तिर्बाह्या । आंतरा तु क्रोधादिषु प्रवृत्तिः । आदिग्रहणात् शेषकषायाश्चौर्याभ्याख्यानकलहादयः परिगृह्यंतइति ॥ सांप्रतं कुशीलपरिभाषाख्यस्याऽध्ययनस्याऽन्वर्थतां दर्शयितुमाह । परिभासियाकुशीलाय,एउजावंति अविरताकेइ ॥ सुत्तिपसंसासुद्धो, कुंतिदुगुंछाअपरिसुद्धो ॥९०॥ (परिभासियाइत्यादि) । परि समंतात् भाषिताः प्रतिपादिताः कुशीलाः कुत्सितशीलाः परतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयश्च । चशब्दात् यावंतः केचनाऽविरताअस्मिन्नित्यतइदमध्ययनं कुशीलपरिभाषेत्युच्यते । किमिति कुशीलाअशुद्धाग्रह्यंते इत्याह । सुरित्ययं निपातः प्रशंसायां शुद्धविषये वर्त्तते । तद्यथा सौराज्यमित्यादि । तथा कुरित्ययमपि निपातोजुगुप्सायामशुद्धविषये वर्तते । कुतीर्थं कुग्रामइत्यादि । यदि कुत्सितशीलाः कुशीलाः कथंतर्हि परतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयश्च तथाविधाभवंतीत्याह । अफासुयपडिसेविय, णामंभुज्जोयशीलवादीय । फासुं वयंतिसीलं, अफासुयामोअभुंजंता ॥९१॥

पुढवीय आऊ अगणीय वाऊ, तण रुक्ख बीयाय तसाय पाणा॥
जे अंमया जेय जराउपाणा; संसेययया जे रसयाभिहाणा ॥१॥
एयाइं कायाइं पवेदिताइं, एतेसु जाणे पडिलेह सायं॥ एतेण
काएणय आयदंमे, एते सु याविप्परियासुविंति ॥ २ ॥

अर्थ--(पुढवीयआऊअगणीयवाऊ के०) पृथ्वीकाय अप्पकाय अने वायुकाय अं हीं चकार थकी ए चारे निकाय सूक्ष्म अने बादरना नेदे करी बे प्रकारे जाणवा तथा (तणरुक्खबीयाय के०) तृण वृक्ष बीज शालीप्रमुख वनस्पतिकाय जाणवी अने (तसायपाणा के०) त्रसते बेंद्रियादिक जीव जाणवा तेना अनेक प्रकारछे ते कहेछे. (जेअंमया के०) जेइंमा थकी उपना एवा पंखी तथा सर्प प्रमुख तथा (जेयजराउपाणाके०) जे जराउते गाय प्रमुख जीव जाणवा अने (संसेययाके०) संस्वेदज एटले प्रस्वेद थकी उत्पन्न थयला एवा जुं माकण प्रमुख जीव जाणवा वली (जेरसयाभिहाणा के०) रसजाः ते जे सोवीरादिकने विषे उपजे तेनाज वर्ण सरखा जे जीव होय ते जाणवा. एरीते जीवना नेद कह्या ॥ १ ॥ (एयाइंकायाइं पवेदिताइं के०) ए पूर्वोक्त पृथिव्यादिक छ जीवनी निकाय श्रीतीर्थंकर देवे कहीछे (एतेसुजाणेपडिलेहसायं के०) ए छ जीवनिकायजेछे ते सातासुखने जाणेछे वांछेछे एटले सर्वजीव सुखाभिलाषीछे (एतेणकाएणयआयदंमेके० (ए छ कायने जे दंमे घात करे दीर्घकाल पीडा आपे तेने जे फल थाय ते कहेछे (एतेसुयाविप्परियासुविंति के०) ते जीव एज छ कायने विषे विपर्यासमुपयंति एटले विनाश पामे अर्थात् वारंवार एने विषेज परिभ्रमण करे ॥ २ ॥

॥ दीपिका--सांप्रतं सप्तमं । पूर्वस्मिन् वीरस्तवेन सुशीलतोक्ता । अत्र तद्विपरीताः कुशीलाः परिभाष्यंते । यथा । (पुढवीति) पृथिवीकायिकाअप्कायिकाअग्निकाया वायवश्च । चशब्दात्सूक्ष्मबादरभेदाः । तृणानि कुशादीनि वृक्षाअश्वत्थाद्याः । बीजानि शाल्यादीनि एते त्रयोपि वनस्पतयः। त्रसाः प्राणिनो द्वींद्रियादयः । अंमजाः पक्षिसर्पादयो जरायुजागोमहिष्याजाद्याः संस्वेदजायूकामत्कुणकुस्यादयः रसजाभिधानादधिसौवीरादिषु रूतपक्ष्मतुल्याः ॥ १ ॥ ते पूर्वोक्ताः कायाजीवनिकायाः प्रवेदिताः कथिताजिनैः । छांदसत्वात्क्लीबलिंगता । एतेषु प्राणिषु सातं सुखं जानीहि । सर्वे जीवाः सुखैषिणइति प्रत्युपेक्षस्व पर्यालोचय।यथा एभिः कायैः पीडयमानैरात्मा दंडयते । एतत्पीमयाऽऽत्मदंमः स्यात्। तथा एतान् ये पीमयंति ते एतेष्वेव पृथिव्यादिकायेषु विविधं परिसमंतात् आशु क्षिप्रमुपयांति व्रजंति ॥ २ ॥

ति । सर्वेपि सत्वाः सातपिणोऽदुःखद्विषश्चेति ज्ञात्वा प्रत्युपेक्षस्व कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोचयेदिति । यैर्भिः कायैः समारभ्यमाणैः पीड्यमानैरात्मा दंड्यते तत्समारंभाद्वा त्सदंभोजवतीत्यर्थः । अथवैऽभिरेव कायैर्य आयतदंमादीर्वदंभाः । एतडुक्तं जवति । ए तान् कायान् ये दीर्घकालं दंभयंति पीमयंतीति तेषां यन्नवति तद्दर्शयति । ते एतेष्वेव पृथि व्यादिकायेषु विविधमनेकप्रकारं परि समंतादाशु क्षिप्रमुपसामीप्येन यांति व्रजंति । तेष्वे व पृथिव्यादिकायेषु विविधमनेकप्रकारं नूयोनूयः समुत्पद्यंतइत्यर्थः । यदिवा विपर्यासो व्यत्ययः सुखार्थिनिः कायसमारंभः क्रियते तत्समारंभेणच दुःखमेवाऽप्यते नसुखमि ति । यदिवा कुतीर्थिकामोक्षार्थमेतैः कार्येर्या क्रियां कुर्वंति तया संसारएव नवतीति ॥२॥

जाईपहं अणुपरिवट्टमाणे, तस थावरेहिं विणिघायमेति ॥
से जाति जातिं बहुकूरकम्मे, जं कुव्वती मिज्जति तेण बाले ॥३॥
अस्सिंच लोए अडुवा परत्था, सयग्गसोवा तह अन्नहावा ॥
संसारमावन्न परंपरं ते, बंधंति वेदंतिय दुन्नियाणि ॥ ४ ॥

अर्थ–(जाइपहंअणुपरिवट्टमाणेके०) एकेंद्रियादिकथी मांमीने पंचेंद्रिय पर्यंत जीव नी जातीने तेने विषे एक स्थानकथी बीजे स्थानके परिन्रमण करता थका (तसथावरेहिं विणिघायमेतिके०) त्रस तथा स्थावर जीवने विषे विनिघातमेल्य एटले उत्पत्ति अने वि नाश पामे (सेजातिजातिं बहुकूरकम्मे के०) ते क्रूर कर्मना करनार जाति जातिने विषे उत्पत्ति पामीने (जंकुव्वती मिज्जतितेणबालेके०) ते बाल अज्ञानी जे वली त्यां दुष्ट एवा पापकर्म करे तो वली तेहीज दुष्ट कर्म करी एटले चोर अथवा परदारा गमन इत्यादिक दोषे वली विनाश पामे ॥ ३ ॥ (अस्सिंचलोए अडुवापरत्था के०) जे कर्म करे ते कर्म आजन्मने विषे अथवा परजन्मने विषे विपाक आपे (सयग्गसोवा के०) अथवा एकज कर्म सो सहस्र लाख क्रोम संख्याता असंख्याता इत्यादिक घणा नवलगे पण विपाक आपे जेवा विधियें कर्म कस्यो होय तेवा विधियें नोगवे (वा के०) अथवा (तह के०) तथा (अन्नहा के०) अन्यविधिये पण नोगवे शिरछेदादिक हस्तपाद छेदनादिक दुःख पामे (संसार मावन्न परंपरंते के०) एवीरीते ते कुशीलिया अरहट्ट घटीकाने न्याये संसारने विषे फरीफरी नव परंपराये परिन्रमण करता थका दुःख नोगवे तथा (बंधंति वेदंतिय दुन्नियाणिके०) एकेक छेदनादिक दुःखे पीड्या थका ते दुःखना योगेकरी वली नवा नवा कर्म बांधे तेने फरी नोगवे पण नोगव्या विना बूटेज नही. ॥४॥

॥ दीपिका–जातिवधं जन्ममरणे अनुपरिवर्तमाने एकेंद्रियादिषु पर्यटन् त्रसस्था

(अफासुयइत्यादि) अस्त्यऽयं शीलशब्दस्तत्स्वानाव्ये। तथाहि। यः फलनिरपेक्षः क्रियास्वा नरणादिषु प्रवर्तते सचेह ड्व्यशीलत्वेन प्रदर्शितः। अस्त्युपशमप्रधाने चारित्रे। तथाहि। तत्प्रधानः शीलवानयं तपस्वीति। तद्विपर्ययेण डुःशीलइति। सचेह नावशीलग्रहणेनो पात्तइति। इहच यतीनां ध्यानाध्ययनादिकं मुक्त्वा धर्माधारशरीरतत्पालनाहारव्यापारं च मुक्त्वा नाऽपरः कश्चिद्व्यापारोऽस्तीत्यतस्तदाश्रयणेनैव सुशीलत्वं च चिंत्यते। तत्र कु तीर्थिकः पार्श्वस्थादिर्वा। अप्राशुकं सचित्तं प्रतिसेवितुं शीलमस्य सनवत्यप्राशुकप्रतिसे वी। नामशब्दः संनावनायां। नूयः पुनर्धाष्टर्याच्छीलवंतमात्मानं वदितुं शीलं यस्य स शीलवादी। किमित्येवं यतः प्राशुकमचेतनं शीलं वदति। इदमुक्तं नवति। यः प्रा शुकमुजमादिदोषरहितमाहारं नुंक्ते तं शीलवंतं वदंति तज्ज्ञाः। तथाहि। यतयोप्राशुक मुजमादिदोषडुष्टमेवाऽऽहारमनुंजानाः शीलवंतोनएयंते नेतरइति स्थितं। नोशब्दस्य निपातत्वेनाऽवधारणार्थत्वादिति। अप्राशुकनोजित्वेन कुशीलत्वं प्रतिपादयितुं दृष्टांत माह। जहणामगोयमाचं, डीदेवगावारिनद्दगाचेव॥ जेअग्निहोत्तवादी, जलसोयंजेयइ छंति॥ ए२॥ (जहणामेइत्यादि) यथेति दृष्टांतोपक्षेपार्थी। नामशब्दोवाक्यालंकारे। गौतमाइति गोव्रतिकागृहीतशिक्षं लघुकायं वृषनमुपादाय धान्याद्यर्थं प्रतिगृहमटंति। तथा (चंमीदेवगाइति)। चक्रधरप्रायाः। एवं वारिनद्रकाअब्नक्षाः शैवलाशिनोनित्यं स्नानपानादिधावनानिरतावा। तथा ये चाऽन्येऽग्निहोत्रवादिनोऽग्निहोत्रादेव स्वर्गगमन मिच्छंति ये चान्ये जलशौचमिच्छंति नागवतादयस्ते सर्वेऽप्यप्राशुकाहारनोजित्वात् कुशी लाइति। चशब्दात् ये च स्वयूथ्याः पार्श्वस्थादयउजमाद्यशुद्धमाहारं नुंजंते तेऽपि कुशी लाइति। गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः॥ सांप्रतं सूत्रालापकनिष्पन्ने निक्षेपे अस्खलितादि गुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं। (पुढवीएइत्यादि) पृथिवी पृथिवीकायिकाः सत्वाः। चकारः स्वगतनेदसंसूचनार्थः। सचाऽयंनेदः। पृथिवीकायिकाः सूक्ष्मावादराश्च। ते च प्रत्येकं पर्याप्तकाऽपर्याप्तनेदेन द्विधा। एवमप्कायिकाअपि। तथाऽग्निकायिकावायुकायिका श्च ड्रष्टव्याः। वनस्पतिकायिकान् नेदेन दर्शयति। तृणानि कुशादीनि। वृक्षाश्चाम्ब्रादयोबी जानि शाल्यादीनि। एवं वल्लीगुल्मादयोऽपि वनस्पतिनेदाड्रष्टव्याः। त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रिया दयः प्राणाःप्राणिनोये चांमाज्जाताअंडजाः शकुनिसरीसृपादयः। ये च जरायुजाजंबालवेष्टि ताः समुत्पद्यंते तेच गोमहिष्यजाविकमनुष्यादयः। तथा संस्वेदाज्जाताःसंस्वेदजायूकामत्कु णकृम्यादयः ये च रसजानिधानादधिसौवीरकादिषु रूतपक्ष्मसन्निनाइति॥१॥ नानानेदनि न्नं जीवसंघातं प्रदर्श्याऽधुना तडुपघाते दोषं दर्शयितुमाह। (एयाइमित्यादि)। एते पृथिव्या दयः कायाजीवनिकायानगवद्भिः प्रवेदिताः कथिताः। छांदसत्वान्नपुंसकलिंगिता॥ एते षु च पूर्वं प्रतिपादितेषु पृथिवीकायादिषु प्राणिषु सातं सुखं जानीहि। एतडुक्तं नव

रइयं ॥ १ ॥ जइ पविससिपायालं, अडइं बदारिं गुहं समुद्दंवा ॥ पुव्वकयाउ नचुक्कसि अप्पाणं घायसेजइवि ॥ २ ॥

जे मायरं वा पियरं च हिच्चा, समणव्वए अगणिं समारभिज्जा ॥
अहाहु से लोए कुसीलधम्मे, भूताइं जे हिंसति आयसाते ॥५॥
उज्जालउ पाण निवातएज्जा, निव्वावउ अगणि निवायवेज्जा ॥
तम्हा उमेहावि समिक्ख धम्मं, ण पंडिए अगणि समारभिज्जा ॥६॥

अर्थ-(जेमायरंवा पियरंचहिच्चा के०) जे कोइ माता पितादिकने हिला एटले छांमीने अने स्वजन वर्गनो त्याग करीने (समणव्वएके०) श्रमणने व्रते उद्या अर्थात् अमे साधुछैयें एवुं जाणता छता (अगणिं समारभिज्जा के०) उद्देशादिक परिभोगे करी अग्नीनो समारंभ करे अथवा करावे तथा अनुमोदे (अहाहुसेलोए कुसीलधम्मेके०) तेवा पाखंमी लोकते कुशील धर्मि जाणवा एम श्रीतीर्थंकर गणधरादिक कहेछे (भूताइं जेहिंसति आयसाते के०) जे पोताना आत्मसुखने अर्थे प्राणीनी हिंसाकरेछे ते कुशीलिया जाणवा. ॥ ५ ॥ (उज्जालउपाण निवातएज्जा के०) जे अग्नि उज्वाले प्रदीप्त करे ते त्रस अने स्थावर जीवोनो अतिपात एटले विनाशकरे अने (निव्वावउ अगणि निवायवेज्जाके०) तेम वली ते अग्नीने पाणीयें करी बुजावतां थका पण अनेक त्रस अने स्थावर जीव हणायछे एमज अग्नीने अजुआलतां तथा उलवतां थकां पण प्राणीउनो घात थायछे (तम्हाउ के०) तेमाटे (मेधाविके०) पंमित सदसद्विवेकनो जाण (समिक्खधम्मंके०) हिंसानो त्याग करी तथा दयामां धर्मछे एम विमाशीने (णपंमिए अगणिसमारभिज्जाके०) पंमित अग्निकायनो समारंभ करे नही ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-ये ज्ञाततत्वामातरं पितरं स्वजनवर्गं हित्वा श्रमणव्रते स्थितावयमिव्यंगीकृत्याऽग्निकायं समारभंते अग्न्यागारं कुर्युः पचनपाचनादौ । अथ तीर्थकृतएवमाहुः सोयं पाखंडिलोकः कुशीलः कुत्सितशीलोधर्मोयस्य सतथा योभूतानि प्राणिनोहिनस्ति आत्मसाते आत्मसुखार्थं ॥ ५ ॥ अग्निमुज्वालयन् सोग्निकायमपरांश्च पृथ्व्यादिजीवान् स्थावरत्रसांश्च निपातयेत् तथा अग्निकायं निर्वापयेत् तदाश्रितानन्यांश्च प्राणिनोनिपातयेत् । अग्निज्वालकनिर्वापकयोर्योज्वालयति समहाकर्मबंधकः । तथा चागमः । दोभंतेपुरिसा असेमस्सेण सद्धिं अगणिकायं समारभंति । तत्थणं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ एगेपुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ तेसिं भंते पुरिसाणं कयरे पुरसे महाकम्मतराए अप्पकम्मतराए वा गोयमा जेणं पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेणं म

वरेषु समुत्पन्नोबहुशोविनिघातं विनाशमेति सजातिमुत्पत्तिं प्राप्य बहुक्रूरकर्मा यत्क र्म करोति तेन कर्मणा म्रियते हिंस्यते ॥ ३ ॥ अस्मिन् लोकेऽन्यस्मिन् जन्मनि वा कर्माणि विपाकं ददति शताग्रशोवा बहुषु जन्मसु यद्यथा आचरंति तथैवोदीर्यते अन्यथावा । एवं ते कुशीलाः संसारमापन्नाः परं परं प्रकृष्टं प्रकृष्टं दुःखमनुभवंति । आर्तध्यानोपहताश्चापरं बध्नंति वेदयंतिच दुर्नीतानि कर्माणि दुष्टं नीतानि दुर्नीतानि दुष्कृतानि । नहि स्वकृतकर्मणोनाशोस्ति । यदुक्तं । माहोहिरेविसन्नो जीवतुमं विमणदुम्मणो दीणो ॥ एहुविंतिए ण फिट्टइ तं दुःखं जं पुरा रईअमिति ॥ ४ ॥

॥ टीका—यथा चाऽसावायतदंडोमोक्षार्थी तान् कायान् समारभ्य तद्विपर्यासात् संसारमाप्नोति तथा दर्शयति । (जाईपहमित्यादि) जातीनामेकेंद्रियादीनां पंथाजातिपथः । यदिवा जातिरुत्पत्तिर्वधोमरणं जातिश्च वधश्च जातिवधं तदनुपरिवर्तमानएकेंद्रियादिषु पर्यटन् जन्मजरामरणानि वा बहुशोऽनुभवंस्त्रसेषु तेजोवायुद्वींद्रियादिषु स्थावरेषु च पृथिव्यंबुवनस्पतिषु समुत्पन्नः सन् कायदंडविपाकजेन कर्मणा बहुशोविनिघातंविनाशमेत्यवाप्नोति सआयतदंडोऽसुमान् जातिं जातिमुत्पत्तिमुत्पत्तिमवाप्य बहूनि क्रूराणि दारुणान्यनुष्ठानानि यस्य सभवति बहुक्रूरकर्मा सएवंभूतोनिर्विवेकः सदसद्विवेकशून्यत्वात् बालइव बालोयस्यामेकेंद्रियादिकायां जातौ यत्प्राण्युपमर्दकारि कर्म कुरुते सतेनैव कर्मणा मीयते म्रियते पूर्यते । यदिवा मीङ्हिंसायां मीयते हिंस्यते । अथवा बहुक्रूरकर्मेति चौरोऽयं पारदारिकइति वा इत्येवं तेनैव कर्मणा मीयते परिछिद्यतइति ॥ ३ ॥ क्व पुनरसौ तैः कर्मभिर्मीयते इति दर्शयति (अस्सिंचेत्यादि) यान्याशुकारीणि कर्माणि तान्यस्मिन्नेव जानाति जन्मनि विपाकं ददति ।अथवा परस्मिन् जन्मनि नरकादौ तस्य कर्मविपाकं ददत्येकस्मिन्नेव जन्मनि विपाकं तीव्रं ददति (शताग्रशोवेति) बहुषु जन्मसु येनैव प्रकारेण तदशुभमाचरति तथैवोदीर्यते । तथा (अन्यथावेति) इदमुक्तं भवति । किंचित्कर्म तद्भवतएव विपाकं ददाति किंचिच्च जन्मांतरे । यथा मृगापुत्रस्य दुःखविपाकाख्ये विपाकश्रुतांगश्रुतस्कंधे कथितमिति दीर्घकालस्थितिकं स्वपरजन्मांतरितं वेद्यते येन प्रकारेण सकृत्तथैवाऽनेकशोवा । यदिवाऽन्येन प्रकारेण सकृत्सहस्रशोवा शिरश्छेदादिकं हस्तपादछेदादिकं चाऽनुभूयतइति । तदेवं ते कुशीलाआयतदंडाश्चतुर्गतिकसंसारमापन्नाअरहट्टघटीयंत्रन्यायेन संसारं पर्यटंतः परं परं प्रकृष्टं प्रकृष्टं दुःखमनुभवंति। जन्मांतरकृतं कर्मानुभवंतश्चैकमार्तध्यानोपहताअपरं बध्नंति वेदयंति च दुष्टं नीतानि दुर्नीतानि दुष्कृतानि । नहि स्वकृतस्य कर्मणोविनाशोऽस्तीतिभावः । तदुक्तं । माहोहिरेविसन्नो, जीवतुमं विमणदुम्मणो दीणो । एहुविंतिए णफिट्टइ, तं दुःखं जं पुरा

व्वावेइ सेणं पुरिसे अण्णतरागं पुढविकायं समारनइ जाव अण्णतरागं तसकायं समारनइ बहुतरागं अगणिकायं समारनइ । से एतेणंअठेणं गोयमा एवं वुच्चइ ॥ अपि चोक्तं । नूयाणं ए समाघाउ, । हव्ववाहेण संसउइत्यादि । यस्मादेवं तस्मान्मेधावी सदसद्विवेकः सश्रुतिकः समीक्ष्य धर्मं पापाड्डीनः पंडितोनाग्निकायं समारनते । सए व च परमार्थतः पंडितोयोऽग्निकायसमारंनकृतात् पपान्निवर्ततइति ॥ ६ ॥

पुढवीवि जीवा आऊवि जीवा, पाणाइ संपाइम संपयंति ॥ संसेय
या कठसमस्सियाय, एते दहे अगणि समारनंते ॥ ७ ॥ हरिया
णि नूताणि विलंबगाणि, आहार देहाय पुढो सियाइं ॥ जे छिंद
ती आयसुहं पडुच्च, पगप्निपाणे बहुणंतिवाती ॥ ८ ॥

अर्थ-हवे अग्नीनो समारंन करवा थकी बीजा जीवो केवीरीते हणाय ते कहेले. (पुढवीविजीवाआऊविजीवा के०) पृथवी तेपण जीव अने आऊ एटले पाणी तेपण जीव (पाणाइसंपाइम के०) तथा संपातिमप्राणी ते पतंगीया प्रमुख (संपयंति के०) त्यां सम्यक् प्रकारे पडे तथा (संसेययाकठसमास्सियाय के०) संस्वेदजा ते काष्ठ तथा ठाणादिकने विषे उत्पन्न थएला जीव काष्ठनिश्रितघुणादिककीडीप्रमुख जाणवा (एतेदहेअगणिसमारनंते के०) एटला स्थावर जंगमजीवने जे अग्नीनो समारंन करे ते दहे एटले बाली नाखे ॥ ७ ॥ तथा (हरियाणि के०)हरीकाय ते अंकुरादिक समस्त वनस्पति जाणवी ए सर्वे (नूताणि के०) जीव ते (विलंबगाणि के०) विलंबक जाणवा विलंबक शब्दे जीवनो आकार धारण करे जेम कलल अर्बुद मांस पेशी एटली अवस्था गर्नमां थाय अने गर्न प्रसव्या पछी बाल कुमार तरुण वृद्ध एटली अवस्था मनुष्य धारण करे तेम शाल्यादिक वनस्पति पण अंकूर मूल स्कंध पत्र शाखादिक विशेष जे ठे ते पण वर्द्धमान थका बाल तरुण वृद्धावस्थादिक नाव पामे ठे तथा ए हरितादिक जेठे तेना मूल पत्र शाखादिकने विषे (पुढोसियाइं के०) पृथक् पृथक् जुदा जुदा जीव जाणवा एटला वनस्पतिने (आहारदेहाय के०) आहार तथा शरीरने अर्थे (जेछिंदतीआयसुहंपडुच्चके०) जे आत्माना सुखने अर्थे एटले एने छेदवा थकी माहारा आत्माने सुख थशे एवी आत्मसुखनी प्रतीते जे छेदे (पगप्निपाणेबहुणंतिवाती के०) ते पुरुष धीठाइ पणे घणाजीवोना घातनो करनार जाणवो ॥८॥

॥ दीपिका-पृथ्वीजीवाआपोपिजीवास्तदाश्रिताश्चप्राणाः संपातिमाः शलनादयस्तेच

हाकम्मतराए जेसे पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ सेणं पुरिसे अप्पकम्मतराए से केणठेणं भंते एवं वुच्चत्ति तहेव गोयमा तत्रणं जेसे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेणं पुरिसे बहुतरागं पुढविकायं समारजति । एवं आउकायं समारजति एवं वाउकायं वणस्सतिकायं अप्प तरागं अगणिकायं समारजति तत्रणं जेसे पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ सेणं पुरिसे अप्प तरागं पुढविकायं समारजति जाव अप्पतरागं तसकायं समारजति बहुतरागं अगणि कायं समारजति सेणं अठेणं गोयमा एवं वुच्चत्ति जे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेणं पुरिसे महाकम्मतराए जेणं पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ सेणं पुरिसे अप्पकम्मतराएइति । तस्मान्मेधावी पंमितोधर्मं समीक्ष्याऽग्निकायं नसमारजते ॥ ६ ॥

॥ टीका—एवं तावदोघतः कुशीलाः प्रतिपादिताः । तदधुना पाषंडकानधिकृत्याह । (जेमायरंवेत्यादि) ये केचनाऽविदितपरमार्थाधर्मार्थीमुत्रितामातरं पितरंच त्यक्त्वा मातापि त्रोर्डस्त्यज त्वात् तडपादानमन्यथा भ्रातृपुत्रादिकमपि त्यक्त्वेति डष्टव्यं । श्रमणव्रते किल वयं समुपस्थिताइत्येवमन्युपगम्याऽग्निकायं समारजंते पचनपाचनादिप्रकारेण । कृतकारि तानुमत्योद्देशिकादिपरिजोगाच्चाऽग्निकायसमारंजं कुर्युरित्यर्थः । अथेति वाक्योपन्यासार्थः। आहुरिति तीर्थकृजणधरादयएवमुक्तवंतोयथा सोऽयं पाषंडिकोलोकोगृहस्थलोकोवा ऽग्निकायसमारंजात् कुशीलः कुत्सितशीलोधर्मोयस्य सकुशीलधर्मा । अयं किंनूतइति दर्श यति ॥ अनूवन् जवंति जविष्यंतीति नूतानि प्राणिनस्तान्यात्मसुखार्थं हिनस्ति व्यापाद यति । तथाहि । पंचाग्नितपसा निष्टप्तदेहास्तथाऽग्निहोत्रादिकया च क्रियया पाषंडिकाः स्व र्गावाप्तिमिछंतीति । तथा लौकिकाः पचनपाचनादिप्रकारेणाऽग्निकायं समारजमाणाः सुखमजिलषंतीति ॥ ५ ॥ अग्निकायसमारंजे च यथा प्राणातिपातोजवति तथा द र्शयितुमाह (उज्जालउइत्यादि) तपनतापनादिप्रकाशहेतुं काष्ठादिसमारंजेण योऽग्निका यं समारजते सोऽग्निकायमपरांश्च पृथिव्याद्याश्रितान् स्थावरांस्त्रसांश्च प्राणिनोनिपात येत्। त्रिन्योवा मनोवाक्कायेन्यआयुर्बलेंडियेन्योवा पातयेन्निपातयेत् । तथाऽग्निका यमुदकादिना निर्वापयेत् विध्या पयंस्तदाश्रितानऽन्यांश्च प्राणिनोनिपातयेन्निपातयेत्६। । तत्रोज्वालकनिर्वापकयोर्योऽग्निकायमुज्ज्वलयति सबहूनामन्यकायानां समारंजकः । त था चाऽऽगमः । दोजंते पुरिसा अन्नमन्नेण सिद्धिं अगणिकायं समारम्जंति तत्रणं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से एगेणं पुरिसे अगणिकायं निव्ववइ तेसिं जंते पुरिसा णं कयरे पुरिसे महाकम्मतराए अप्पकम्मतराए ॥ गोयमा तत्रणं जेसे, पुरिसे अगणि कायं उज्जालेइ सेणं पुरिसे बहुतरागं पुढविकायं समारजति ॥ एवं आउकायं वाउकायं वणस्सइकायं अप्पतरागं अगणिकायं समारजइ तत्रणं जेसे पुरिसे अगणिकायं नि

बुया बुयाणा, णरा परे पंचसिहा कुमारा ॥ जुवाणगा मज्झिम थेरगाय, (पाठांतरे पोरुसाय) चयंति ते आउखए पलीणा ॥ १० ॥

अर्थ-(जातिंच के०) उत्पत्ति एटले मूलादिक कोमल तथा (वुड्ढिंच के०) वृद्धि एटले शाखा प्रशाखादि जे वनस्पति तेनो (विणासयंते के०) विनाश करतो होय तथा (बीयाइ के०) बीजादिक एटले तेना फलनो विनाश करतो होय तेने (अस्संजय आयदंमेके०) असंयत एटले गृहस्थ अथवा प्रव्रजित अन्यलिंगी अथवा स्वलिंगी आत्मानो दंमनार कहिए तेजीव प्राणीने उपघाते पोताना आत्मानो उपघात करेछे (अहाहुसे लोएअणज्जधम्मेके०) जे आत्म सुखने अर्थे हरीकायने छेदे तेने लोकमांहे अनार्य धर्मि श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे (बीयाइंजेहिंसतिआयसाते के०) जे प्राणी धर्मोपदेशे आत्मसुखने अर्थे बीजादिक वनस्पतिकायने छेदे, छेदावे तथा अनुमोदे तथा एवो धर्मोपदेश करे ते पापकर्मी अनार्य जाणवो. ॥ ए ॥ (गप्राइमिज्जंति के०) वनस्पतिकायना विनाशक प्राणीउ घणा जन्मसुधि गर्नादिक अवस्थाने विषे वर्त्तताज मरण पामे एटले कलल अर्बुदादिक अवस्थायें वर्त्तता थकाज मरण पामे तथा जन्म्या पछी (वुयावुयाणाके०) बोलता अणबोलता थका तथा (णरापरेके०) अन्य मनुष्य (सिहाकुमाराके०) न्हानी चोटलीना धणी कुमारावस्थायें स्थित थका मरे तथा (जुवाणगा के०) युवानवय तरुणवय तथा (मज्झिम के०) मध्यमवय (थेरगायके०) थविर वय ए सर्व अवस्थाने विषे (आउखए पलीणा के०) आयुष्यना क्षय विषे प्रलीन थका एटले स्वकर्म नोगवता दीन डुखी क्षुध तृषादिक सहन करता थका (चयंतितेके०) ते पापी जीवो शरीर त्याग करे एटले जेवुं पाप समाचरे तेवुं नोगवे ॥ १० ॥

॥ दीपिका–जातिं पत्रांकुरादिनेदां वृद्धिं च विनाशयन् बीजानिच फलानि विनाशयन् असंयतोगृहस्थः प्रव्रजितोवा आत्मदंमः परहिंसया आत्मानमेव हंतीत्यात्मदंडः। अथेति वाक्यालंकारे। आहुरुक्तवंतोजिनाः। तदेवाह। सलोके निर्दयोऽनार्यधर्मा क्रूरकर्मकारी स्यात्। योबीजानि वनस्पतिकायमात्मसुखार्थं हिनस्ति ॥ ए ॥ वनस्पतिकायोपमर्दकागर्नादिकावस्थासु म्रियंते तथाऽब्रुवंतोऽब्रुवंतश्च व्यक्तवाचोऽव्यक्तवाचश्च तथा परे नराः पंचशिखाः कुमाराः संतोम्रियंते युवानोमध्यमपौरुषामध्यमवयसोवृद्धाश्च। एवं सर्वावस्थासु आयुःक्षयोप्रलीनाः संतोदेहं त्यजंति ॥ १० ॥

॥ टीका–किंच। (जातिंचेत्यादि)। जातिमुत्पत्तिं तथाऽकुरपत्रमूलस्कंधशाखाप्रशाखानेदेन वृद्धिं च विनाशयन् बीजानिच तत्फलानि विनाशयन् हरितानि छिनत्तीति। असंय

संपतंति । संस्वेदजाः करीषादिष्विंधनेषु घुणपिपीलिकादयः काष्ठसमाश्रिताश्च ये एतान् प्राणिनः सदहेत् योग्निं समारभते ॥७॥ हरितानि भूतानि जीवरूपाणि तथा जीवाकारं विलंबंते धारयंतीति विलंबकानि । यथा मनुष्या कललाऽर्बुदमांसपेशीगर्भप्रसवबालकुमारयुवमध्यमस्थविरावस्थां धरंति तथा हरितान्यपि । किंभूतानि पृथक् मूलस्कंधशाखा पत्रपुष्पादिस्थानेषु प्रत्येकं श्रितानि नतु मूलादौ । एकएव जीवः एतानि भूतानि आहारार्थं देहोपचयार्थमात्मसुखं प्रतीत्याश्रित्य यश्छिनत्ति सप्रागल्भ्यात् धार्ष्ट्यात् बहूनां प्राणिनामतिपाती हिंसकः स्यात् तथाच नधर्मोनात्मसुखं चेति ॥ ८ ॥

॥ टीका—कथमग्निकायसमारंभेणाऽपरप्राणिवधोभवतीत्याशंक्याह । (पुढवीत्यादि) । नकेवलं पृथिव्याश्रिताद्वींद्रियादयोजीवायापि च पृथ्वी मृल्लक्षणा असावपि जीवाः । तथा आपश्च द्रवलक्षणाजीवास्तदाश्रिताश्च प्राणाः संपातिमाः शलभादयस्तत्र संपतंति । तथा संस्वेदजाः करीषादिष्विंधनेषु घुणपिपीलिकाः कृम्यादयः काष्ठाद्याश्रिताश्च ये केचन एतान् स्थावरजंगमान् सदहेद्योऽग्निकायं समारभते ऽतोऽग्निकायसमारंभोमहादोषायेति ॥ ७ ॥ एवं तावदग्निकायसमारंभकास्तापसास्तथा पाकादनिवृत्ताः शाक्यादयश्चोऽपदिष्टाः । सांप्रतं ते चाऽन्ये वनस्पतिसमारंभादनिवृत्ताः परामृश्यंते इत्याह (हरियाणीत्यादि) हरितानि दूर्वांकुरादीन्येतान्यप्याहारादेर्वृद्धिदर्शनात् भूतानि जीवाः । तथा विलंबकानीतिं जीवाकारं यांति विलंबंति धारयंति । तथाहि । कललार्बुदमांसपेशीगर्भप्रसवबालकुमारयुवमध्यमस्थविरावस्थांतोमनुष्योभवति । एवं हरितान्यपि शाल्यादीनि जातान्यभिनवानि संजातरसानि यौवनवंति परिपक्वानि जीर्णानि परिशुष्काणि मृतानि । तथा वृक्षाअप्यंकुरावस्थायां जाताइत्युपदिश्यंते मूलस्कंधशाखाप्रशाखादिभिर्विशेषैः परिवर्धमानायुवानः पोताइत्युपदिश्यंतइत्यादि शेषास्वप्यवस्थास्वायोज्यं । तदेवं हरितादीन्यऽपि जीवाकारं विलंबयंति । ततएतानि मूलस्कंधशाखापत्रपुष्पादिस्थानेषु पृथक् प्रत्येकं व्यवस्थितानि नतु मूलादिषु सर्वेष्वऽपि समुदितेषु । एकएव जीवएतानि च भूतानि संख्येयाऽसंख्येयानंतभेदभिन्नानि वनस्पतिकायाश्रितान्याहारार्थं वा देहक्षतसंरोहणार्थं चात्मसुखं प्रतीत्याश्रित्य यश्छिनत्ति सप्रागल्भ्यात् धार्ष्ट्यावष्टंभाद्बहूनां प्राणिनामतिपाती भवति तदतिपाताच्च निरनुक्रोशतया नधर्मोनाऽप्यात्मसुखमित्युक्तं भवति ॥ ८ ॥

जातिंच वुड्ढिंच विणासयंते, बीयाइ अस्संजय आयदंमे ॥ अहाहु से लोए अणज्जधम्मे, बीयाइ जे हिंसति आयसाते ॥ ए॥ गप्भाइ मिज्जंति

च नेद वर्जवा थकी मोक्ष थायछे ते आहार पंचकना नाम कहेछे एक लशण बीजो प लाडु त्रीजो करन्नी एटले दुग्ध चोथो गौमांस पांचमुं मद्य (एगेग्रसीचदगसेवणेणंके०) तथा एकेक वादी शीतलोदकना उपन्नोग थकी मोक्ष कहेछे एटले जेम पाणी बाह्यमल उतारेछे तेम अंतरंग मल पणते पाणीज उतारेछे एम कहेछे (हुएणएगेपवयंतिमोरकं के०) कोइएक वली हुताशन एटले अग्नीना होम थकी मोक्षछे एम प्ररूपेछे जेम सुव र्णादिकना मलने अग्नी बोलेछे तेम आत्मना मलनो पण अग्नीज नाश करेछे. ॥ १ २ ॥

॥ दीपिका—हेजंतवो यूयं संबुध्यध्वं मनुष्यत्वं दुर्लनं तथा नरतिर्यगादिगतिषु नयं दृष्ट्वा बालिशेन मूर्खेण विवेकस्यालंन्नोविवेकश्चेन न लन्यते इतिज्ञात्वा एकांतदुखाज्ज्व रितइवायं लोकः । यदुक्तं । जन्मदुःखं जरादुःखं, रोगा य मरणाणि अ ॥ अहोदुः रके हु संसारो जच कीसंति जंतुणो इति । तथा तएहाइ असपाणं कूगेठायस्स नुत्तपत्ति त्ति । दुःखसयंसंपउत्तंजरिअमिवजगंकालइ । एवंन्नूतोलोकोदुष्कर्मकारी विपर्यासमुपै ति सुखार्थी पापं कुर्वन् दुःखमेव प्राप्नोति ॥ ११ ॥ उक्तः कुशीलविपाकः । अथ तदर्शना न्युच्यंते । इह नवे एके मूढामोक्षं प्रवदंति । केन आहारस्य संपइलस्तं जनयतीत्याहारसं पज्ञनं लवणं तस्य वर्जनेन लवणवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । लवणं हि सर्वरसमूलं तद् र्जनाच्च रसपंचकं तस्य वर्जनेन । लवणपंचकं चेदं । सैधवं १ सौवर्चलं २ बिडं ३ रौमं ४ सामुद्रंचेति । तथा पाठांतरं आहारउपंचकवज्जणेणं । आहारतः आहारमाश्रित्य पंचक वर्जनं । तथाहि । लशुनं १ पलांडुः २ करन्नीक्षीरं ३ गोमांसं ४ मद्यंचेति । एवमाहा रपंचकवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । तथा एकेन शीतोदकसेवनेन सचित्तजलपरिन्नोगादेके मोक्षं वदंति । यथा जलेन बाह्यमलस्य विनाशस्तथांतरस्यापी त्यर्थः । एके हुतेन वन्हिहो मेन मोक्षं प्रवदंति । कोर्थः । ते मोक्षायाग्निहोत्रे जुव्हति वदंतिच यथाग्निः स्वर्णादी नां मलं दहति तथात्मनोपीति ॥ १२ ॥

॥ टीका—किंचाऽन्यत् (संबुज्झहेत्यादि) हेजंतवः प्राणिनः संबुध्यध्वं यूयं नहि कुशी लपापंडिकलोकस्त्राणाय नवति । धर्मंच सुदुर्लनत्वेन संबुध्यध्वं । तथाचोक्तं । माणुस्स खेत्तजाई, कुलरूवारोग्गमाउयंबुद्धी ॥ सवणोग्गहसद्धासंममोयलोगंमि दुल्लहाइं ॥ तदेव मकृतधर्माणां मनुष्यत्वमतिदुर्लनमित्यवगम्य तथा जातिजरामरणरोगशोकादीनि नरक तीर्यक्षुच तीव्रदुःखतया नयं दृष्ट्वा तथा बालिशेनाऽज्ञेन सद्विवेकस्याऽलंनइत्येतच्चा ऽवगम्य तथा निश्चयनयमवगम्य एकांतदुःखोयं ज्वरितइव लोकः संसारप्राणिगणः । तथा चोक्तं । जम्मदुःखं जरादुःखं, रोगायमरणाणिय । अहोदुरकोदुसंसारो, जछ कीसंतिपा

तोगृहस्थः प्रव्रजितोवा तत्कर्मकारी गृहस्थएव सच हरितछेदं विधायात्मानं दंमय तीत्यात्मदंडः सहि परमार्थतः परोपघातेनाऽऽत्मानमेवोऽपहंति । अथ शब्दोवाक्यालं कारे । आहुरेवमुक्तवंतइति दर्शयति । योहरितादिछेदकोनिरनुक्रोशः सोऽस्मिन् लोकेऽ नार्यधर्मा क्रूरकर्मकारी नवतीत्यर्थः । सच एवंनूतोयोधर्मोपदेशेनात्मसुखार्थं वा बीजान्यऽस्यचोपलक्षणार्थत्वात् वनस्पतिकायं हिनस्ति सपाषंडिकलोकोऽन्योवाऽनार्य धर्मा नवतीति संबंधः ॥ ए ॥ सांप्रतं हरितछेदकर्मविपाकमाह (गब्नाइमिज्ंतिइत्या दि) । इह वनस्पतिकायोपमर्दकाबहुषु जन्मसु गर्नादिकास्ववस्थासु कललार्बुदमां सपेशीरूपासु म्रियंते । तथा ब्रुवंतोऽब्रुवंतश्च व्यक्तवाचो ऽव्यक्तवाचश्च । तथा परेनराः पं चशिखाः कुमाराः संतोम्रियंते । तथा युवानोमध्यमवयसः स्थविराश्च । क्वचित्पागे (मज्ञिमपोरुसायत्ति) । तत्र मध्यमामध्यमवयसः (पौरुसायत्ति) । पुरुषाणां चरमाव स्थां प्राप्ताअत्यंतवृद्धाएवेति यावत् । तदेवं सर्वास्वप्यवस्थासु बीजादीनामुपमर्दकाः स्वायुषः क्षये प्रलीनाः संतोदेहं त्यजंतीति । एवमपरस्थावरजंगमोपमर्दकारिणामप्य नियतायुष्कत्वमायोजनीयं ॥ १० ॥

संबुज्ञहा जंतवो माणुसत्तं, दहुं नयं बालिसेणं अलंनो ॥ एगं
तडुक्खे जरिएव लोए, सक्कम्मणा विप्परियासुवेइ ॥ ११ ॥ इहे
गमूढा पवयंति मोक्खं, आहारसंपज्जणवज्जणेणं ॥ एगेयसी उद
गसेवणेणं, हुएण एगे पवयंति मोक्खं ॥ १२ ॥

अर्थ- (जंतवो के०) अहो जीवो तमे (संबुज्ञहा के०) बुजो जे (माणु सत्तं के०) मनुष्यपणुं पामवुंडुर्लनछे एम जाणो डुल्लहेखलुमाणुस्सेनवे इत्यादिक वचने बुजो एटले प्रतिबोध पामो (दहुंनयंबालिसेणंअलंनो के०) तथा नरक तिर्यंचादिक गतिने विषे अनेक डुःखछे तेनो नय देखीने बालिस एटले अज्ञान पणाने लीधे सद् विवेक पामवो डुर्लनछे एवीरीते जाणो (एगंतडुक्खेजरिएवलोए के०) तथा ए लोक एकांत डुखीछे ज्वरित एटले जेम ज्वराक्रांत जीव डुःखी होय तेम ए सर्व लोक (सक्क म्मणाविप्परियासुवेइ के०) पोत पोताना कर्मरूप तापे करी व्याकुल बता संसा रमां विपर्यास एटले फरी फरी नाश पामेछे ॥ ११ ॥ (इहेगमूढापवयंति के०) अं हीं धर्म स्थापना अधिकारे कोइएक मूर्ख कुशील दर्शनी एम कहछे के (आहारसंप ज्जणवज्जणेणं के०) आहारेणसंपचक एटले लवण तेने वर्जवा थकी (मोक्खं के०) मोक्षछे एटले सर्व रसनु सार लवणछे यतः लवणाविहूणारसा इतिवचनात् तथा पाठां तरे (आहारउपंचकवज्जणेणं के०) आहारपंचकंलवणपंचकंचेदं आहार आश्री पां

मके पाणी नाखवा थकी तदाश्रित जीवोनो घात थायछे तेमाटे एम कह्याथकी मोक्ष प्राप्त नथाय तथा (खारस्सलोणस्सअणासएणंके०) खार एटले लवणने अण जमवे करी पण मोक्ष नथी जो लुंण नखावा थकी मोक्ष प्राप्ति थती होय तो जे देशमां सर्वथा लुंण मललुंज नथी तो त्यां निवाश करनारा लोकोने डुर्गति पण नथाय परंतु ए वचन असंबंध जाणवो (तेमज्जमंसंलसणंचनोच्चा के०) अने ते मूर्ख मद्य मांस तथा लशण नो परिनोग करी ने (अन्नत्थवासंपरिकप्पयंतिके०) मोक्षार्थि थका अन्यत्र स्थानके वाशकरे एटले तेने पण सुशीलविना मोक्ष नथी एतावता तेने संसारमां निवास कल्पे ॥१३॥ (उदगेण जेसिद्धिमुदाहरंति के०) जे मूर्ख पाणीये करी मोक्ष प्ररूपेछे (सायंचपायंउदगंफुसंता के०) एटले संध्या प्रनात अने चकारना ग्रहण थकी मध्यानने विषे पाणीनो स्पर्श करवा थकी मुक्ति कहेछे तेपण मुधा जाणवो केमके (उदगस्सफासेणसियायसिद्धि के०) उदकना स्पर्शे थकी जो सिद्धि थाय तो (सिक्षंसुपाणाबहवेदगंसि के०) पाणीमांहे सर्व काल माछला प्रमुख जीवो रहेछे अथवा जाल पण पाणीमां रहेछे तेने पण मुक्ति होवी जोइयें तेम तो थतुं नथी कारणके पाणी जेम अनिष्ट मलने हरण करेछे तेमज इष्ट मल जे सुगंध ड्रव्य छे तेने पण हरण करेछे. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–प्रातःस्नानादिषु नास्ति मोक्षः । तथा क्षारस्य पंचप्रकारलवणस्यानशनेनाऽपरिनोगेण मोक्षोनास्ति ते मूढामद्यं मांसं लशुनादिकंवा जुक्त्वाऽन्यत्र मोक्षात् संसारेवा समवस्थानं परिकल्पयंति नतु मोक्षगामिनः स्युः शीलं विना ॥ १३ ॥ ये उदकेन सिद्धिमुदाहरंति सायमपराएहे प्रातः प्रनाते उपलक्षणान्मध्यान्हे एवं त्रिकालमुदकं स्पृशंतोजलेन स्नानादिकं कुर्वंतः प्राणिनः सिद्धिं यांतीति केचिद्वदंति तन्न युक्तं । यतोजलस्य स्पर्शमात्रेण यदि सिद्धिः स्यात्तदा जलाश्रितामत्स्यबंधादयोबहवः सिध्येयुः। स्नानंच यतीनां दोषायैव । यडुक्तं । स्नानं मददर्पकरं कामांगं प्रथमं स्मृतं । तस्मात्कामं परित्यज्य न ते स्नांति दमे रताः ॥१॥ तथा । नोदकक्लिन्नगात्रोहि स्नातइत्यनिधीयते॥ सस्नातोयोव्रह्मस्नातः सबाह्याभ्यंतरः शुचिरिति ॥ १४ ॥

॥ टीका–तेषामसंबद्धप्रलापिनामुत्तरदानायाह । (पाउसिणाणादिइत्यादि)। प्रातःस्नानादिषु नास्ति मोक्षइति प्रत्यूषजलावगाहनेन निःशीलानां मोक्षोनजवति । आदिग्रहणात् हस्तपादादिप्रक्षालनं गृह्यते। तथा ह्युदकपरिनोगेन तदाश्रितजीवानामुपमर्दः समुपजायते। नच जीवोपमर्दान्मोक्षावाप्तिरिति। नचैकांतेनोदकं बाह्यमलस्याप्यपनयने समर्थमथाऽपिस्यात्तथाप्यांतरमलं नशोधयति। नावशुध्या तद्बुद्धेरयनावरहितस्यापि तद्बुद्धिः

णिणो ॥ १ तथा । तगहाऽहस्सपाणं, कूरोन्नायस्सन्नुक्कएतेती ॥ डुःकसहसंपनुत्तं जरियमिवजगंकलयलेइ ॥१॥ इत्यत्र चैवं नूतलोके आनार्यकर्मकारी स्वकर्मणोविपर्यासमुपैति सुखार्थी प्राण्युपमर्दं कुर्वन् डुःखं प्राप्नोति । यथा मोक्षार्थी संसारं पर्यटतीति ॥ ॥ ११ ॥ उक्तः कुशीलविपाकोऽधुना तद्दर्शनान्यनिधीयंते । (इहेगेत्यादि) इहेति मनुष्यलोके मोक्षगमनाधिकारे वा एके केचन मूढाअज्ञानाऽऽन्नादितमतयः परैश्च मोहिताः प्रकर्षेण वदंति प्रतिपादयंति । किंतत् मोक्षं मोक्षावाप्तिं । केनेति दर्शयंति । आह्रियतइत्याहारउदनादिस्तस्य संपद्रसपुष्टिस्तां जनयतीत्याहरसंपज्जननं लवणं । तेन ह्याहारस्य रसपुष्टिः क्रियते तस्य वर्जनं तेनाऽऽहारसंपज्जनवर्जनेन लवणवर्जनेन मोक्षं वदंति । पाठांतरंवा । आहारसपंचयवज्जणेण आहारसलवणपंचकमाहारसपंचकं । लवणपंचकं चेदं । तद्यथा । सैंधवं सौवर्चलं बिडं रौमं सामुद्रं चेति । लवणेन हि सर्वरसानामनिव्यक्तिर्नवति । तथाचोक्तं । लवणविहूणायरसा, चरकुविहूणायइंदियग्गामा । धम्मोदयापरहिउ, सोरकंसंतोसरहियंतो ॥ १ ॥ तथा लवणं रसानां तैलं स्नेहानां घृतं मेध्यानामिति । तदेवंनूतलवणपरिवर्जनेन रसपरित्यागएव कृतोनवति तत्त्यागाच्च मोक्षावाप्तिरित्येवं केचन मूढाः प्रतिपादयंति । पाठांतरंवा आहारउपंचकवज्जणेण ।आहारतइति ल्यब्लोपे कर्मणि पंचमी । आहारमाश्रित्य पंचकं वर्जयंति । तथा लसणं पलांडुः करलीक्षीरं गोमांसं मद्यं चेत्येतत्पंचकवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । तथैके वारिनद्रकादयोनागवतविशेषाः शीतोदकसेवनेन सचित्ताप्कायपरिनोगेन मोक्षं प्रवदंति । उपपत्तिं च ते अनिदधति । यथोदकं बाह्यमलमपनयति एवमांतरमपि । वस्त्रादेश्च यथोदकाच्छुद्धिरुपजायते एवं बाह्यशुद्धिसामर्थ्यदर्शनादांतरापि शुद्धिरुदकादेवेति मन्यंते । तथैके तापसब्राह्मणादयोहुतेन मोक्षं प्रतिपादयंति । ये किल स्वर्गादिफलमनाशंस्य समिधाघृतादिनिर्द्रव्यविशेषैर्हुताशनं तर्पयंति ते मोक्षायाग्निहोत्रं जुह्वति । शेषास्त्वन्युदयायेति । युक्तिं चात्र ते आहुः । यथा ह्यग्निः सुवर्णादीनां मलं दहत्येवं दहनसामर्थ्यदर्शनादात्मनोऽप्यांतरं पापमिति ॥१२॥

पाउसिणाणादिसु णत्थि मोरको,खारस्स लोणस्स अणासएणं ॥
ते मज्जमंसं लसणंच नोच्चा, अन्नत्ववासं परिकप्पयंति ॥ १३ ॥
उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति, सायंच पायं उदगं फुसंता ॥ उदगस्स फासेण सियाय सिद्धि, सिज्जंसु पाणा बहवे दगंसि ॥ १४॥

अर्थ—हवे ए पूर्वोक्त दर्शनीउने उत्तर कहेछे. (पाउसिणाणादिसुके०) प्रातःस्नानादिके करी आदि शब्द थकी हस्त पादने धोवे करी (णत्थिमोरको के०) मोक्ष नथी के

(उदयंजइ कम्ममलंहरेज्जाके०) उदक जो अशुन्न कर्मरूप मलने हरण करे तो (एवं सुहं के०) एमज शुन्न एटले पुण्य तेने पण हरण करे अने जो पुण्यने हरण नकरे तो कर्म मल पण अपहरी शकेनही माटे (इज्ञामित्तमेवं के०) जे उदक थकी सिद्धि कहेछे ते ए वचन इज्ञामात्रज बोलेछे (अंधंवणेयारमणुस्सरित्ताके०) जेम जात्यंध पुरुष मार्ग देखाडनार होय तो तेनी पछवाडे चालवा थकी वांछित मार्ग पामियें नही (पाणाणिचेवंविणिहंतिमंदाके०) तेम मूर्ख प्राणी पण धर्मनी बुद्धियें प्राणीउंनो विनाशक एवा शौच मार्गनो सेवन करता थका मोक्षपामे नही एम नगवंत कहेछे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—उदकेन यदि मुक्तिः स्यात्तदा मत्स्याः कूर्माश्च सरीसृपाजलसर्पामज्जवोज लवायसाउष्ट्राजलचरविशेषादकराक्षसाजलमानुषास्ते प्रथमं सिध्येयुः । नचैवं दृष्टमिष्टं वा । ततोऽस्थानमयुक्तमेतदिति कुशलानिपुणावदंति ये उदकेन सिद्धिमुदाहरंति ॥ १७॥ उदकं यदि कर्ममलं हरेत् एवं शुन्नं पुण्यमपि हरेत् । अथ पुण्यं नहरेदेवं कर्ममलमपि न हरेदतइज्ञामात्रमेतज्जलं कर्मापहारीति ॥ यथा जात्यंधाश्चान्यं जात्यंधमेव नेतारमनुसृत्य गछंतः कुपथाश्रिताः स्युः । एवं स्मार्तमार्गानुसारिणोजलशौचपरामंदामूर्खाः प्राणिनएव विनिघ्नंति व्यापादयंति ततश्च नानिप्रेतस्थानगामिनः स्युः ॥ १६ ॥

॥ टीका—किंच (मछायइत्यादि) । यदि जलसंपर्कात्सिद्धिः स्यात् ततोये सततमुदकावगाहिनोमत्स्याश्चकूर्माश्च सरीसृपाश्च तथा मज्जवस्तथोष्ट्राजलचरविशेषास्तथोदकराक्षसा जलमानुषाकतयोजलचरविशेषाएते प्रथमं सिद्धेयुर्नचैतद्दृष्टमिष्टं । ततश्च ये उदकेन सिद्धिमुदाहरंत्येतदस्थानमयुक्तमसांप्रतं कुशलनिपुणामोक्षमार्गाभिज्ञावदंति ॥ १७ ॥ किंचाऽन्यत् । (उदयमित्यादि) यद्युदकं कर्ममलमपहरेदेवं शुन्नमपि पुण्यमपहरेत् अथ पुण्यं नापहरेदेवं कर्ममलमपि नापहरेत् । अतइज्ञामात्रमेवैतद्यदुच्यते जलकर्मापहारीति । एवमपि व्यवस्थिते ये स्नानादिकाः क्रियाः स्मार्तमार्गमनुसरंतः कुर्वंति ते यथा जात्यंधाअपरं जात्यंधमेव नेतारमनुसृत्य गछंतः कुपथश्रुतयोनवंति नाऽन्निप्रेतं स्थानमवाप्नुवंति । एवं स्मार्तमार्गानुसारिणोजलशौचपरायणामंदाअज्ञाः कर्तव्याकर्तव्यविवेकविकलाः प्राणिनएव तन्मयात् तदाश्रितांश्च पूतरकादीन विनिघ्नंति व्यापादयंति अवश्यं जलक्रियया प्राणव्यपरोपणस्य संनवादिति ॥ १६ ॥

पावाइं कम्माइं पकुव्वतोहिं, सिउदगं तू जइ तं हरिज्जा॥सिझं सुएगे दगसत्तघाती. मुसं वयंते जलसिद्धिमाहु॥ १७ ॥ हुतेण जे

स्यात् ततोमत्स्यबंधादीनामपि जलानिषेकेण मुक्त्यवाप्तिः स्यात् । तथा क्षारस्य पंच प्रकारस्याऽपि लवणस्याऽनशनेनाऽपरिनोगेन मोक्षोनास्ति । तथाहि । लवणपरिनोगरहितानां मोक्षोनजवतीत्ययुक्तिकमेतत् । नचाऽयमेकांततोलवणमेव रसपुष्टिजनकमिति क्षीरशर्करादिनिर्व्यनिचारात् । अपिचाऽसौ प्रष्टव्यः । किं इव्यतोलवणवर्जनेन मोक्षावाप्तिरुत नावतः । यदि इव्यतस्ततोलवणरहितदेशे सर्वेषां मोक्षः स्यान्नचैवं दृष्टमिष्टंवा । अथ नावतस्ततो नावएव प्रधानं किं लवणवर्जनेनेति । तथा ते मूढामद्यमांसलशुनादिकं वा नुक्त्वा अन्यत्र मोक्षादन्यत्र संसारे वा समवस्थानं तथाविधानुष्ठानमसद्भावात् सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपमोक्षमार्गस्याऽनुष्ठानाच्च परिकल्पयंति समंतान्निष्पादयंतीति ॥ १३ ॥ सांप्रतं विशेषेण परिजिहीर्षुराह । (उदगेणेत्यादि) तथा ये केचन मूढाउदकेन शीतवारिणा सिद्धिं परलोकमुदाहरंति प्रतिपादयंति । सायमपराण्हे वकाले वा प्रातश्च प्रत्युषसिच आद्यंतग्रहणात् मध्यान्हे च । तदेवं संध्यात्रयेऽप्युदकं स्पृशंतः स्नानादिकां क्रियां जले न कुर्वंतः प्राणिनोविशिष्टां गतिमाप्नुवंतीति केचनोदाहरंति । एतच्चासम्यक् । यतोय द्युदकस्पर्शमात्रेण सिद्धिः स्यात् ततउदकसमाश्रितामत्स्यबंधादयः क्रूरकर्माणोनिरनुक्रोशा बहवः प्राणिनः सिद्ध्येयुरिति । यदपि तैरेवोच्यते । बाह्यमलापनयनसामर्थ्यमुदकस्य दृष्टमिति तदपि विचार्यमाणं नघटते । यतोयथोदकमनिष्टमलमपनयत्येवमन्निमतमप्यंगरागं कुंकुमादिकमपि नयति । ततश्च पुण्यस्याऽपनयनादिष्टविघातकृद्विरुद्धः स्यात् । किंच यतीनां ब्रह्मचारिणामुदकस्नानं दोषायैव । तथाचोक्तं । स्नानं मददर्पकरं, कामांगं प्रथमं स्मृतं । तस्मात्कामं परित्यज्य,नते स्नांति दमे रताः ॥ अपिच । नोदकक्लिन्नगात्रो हि, स्नातइत्यनिधीयते ॥ सस्नातोयोव्रतस्नातः सबाह्यान्यंतरः शुचिः ॥ १४ ॥

मह्राय कुम्माय सिरीसिवाय, मग्गूय उट्टादगरस्कसाय ॥ अ
ठाणमेयं कुसला वयंति, उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति ॥ १५ ॥
उदयं जइ कम्ममलं हरेज्जा, एवं सुहं इज्ञामित्तमेवं ॥ अंधंव
णेयारमणुस्सरित्ता; पाणाणि चेवं विणिहंति मंदा ॥ १६ ॥

अर्थ—(मह्रायकुम्मायसिरीसिवाय के०) जो उदकना स्पर्श थकी मोक्ष थायतो माछला कूर्मक एटले केमका तथा सर्प (मग्गूयके०) जलकाग (उट्टाके०) जलचरविशेष (दगरस्कसाय) जलमाणस एटले मनुष्याकृति जेवा राक्षस ए सर्व मोक्षगामी थशे (अट्टाणमेयंकुसलावयंतिके०) ते कारण माटे जे कुशल एटले तीर्थंकर देव तेणे ए अस्थान अयुक्त कह्युंछे तो शुं कह्युंछे तोके (उदगेणजेसिद्धिमुदाहरंतिके०) उदक थकी जेमोक्ष कहेछे ते पुरुष अज्ञानी पापिष्ट पाखंमी अल्पमति वाला जाणवा ॥ १५ ॥

मृषा वदंति ॥ १७ ॥ किंचाऽन्यत् (हुतेणेत्यादि) अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामइत्य स्माद्वाक्यात् ये केचन मूढाहुतेनाऽग्नौ द्रव्यप्रक्षेपेण सिद्धिं सुगतिगमनादिकां स्वर्गा वाप्तिलक्षणामुदाहरंति प्रतिपादयंति । कथंभूताः सायमपराण्हे विकालेवा प्रातः प्रत्यु षसि अग्निं स्पृशंतोयथेष्टैर्द्रव्यैरग्निं तर्पयंतस्ततएव यथेष्टगतिमभिलपंति । आहुश्चै वं ते यथा अग्निकार्यात्स्यादेव सिद्धिरिति । तत्रच यद्येवमग्निस्पर्शेन सिद्धिर्भवेत् । ततस्त स्मादग्निं स्पृशतां कुकर्मिणामंगारदाहककुंभकारायस्कारादीनां सिद्धिः स्यात् । यदपि च मं त्रपूतादिकं तैरुदाह्रियते तदपिच निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति । यतः कुकर्मिणा मप्यग्निकार्ये भस्मापादनमग्निहोत्रिकादीनामपि भस्मसात्करणमिति नातिरिच्यते कुक र्मिभ्योऽग्निहोत्रादिकं कर्मेति । यदप्युच्यते अग्निमुखावैदेवाः । एतदपियुक्तिविकलत्वात् वाङ्मात्रमेव विष्टादिभक्षणेन चाऽग्नेस्तेषां बहुतरदोषोत्पत्तेरिति ॥ १८ ॥

अपरिक्ख दिठ्ठं णहु एव सिद्धी, एहिंति ते घायमबुज्झमाणा॥भूए
हिं जाणं पडिलेह सातं, विज्जंगहायं तसथावरेहिं ॥१९॥ थणं
ति लुप्पंति तसंति कम्मी, पुढो जगा परिसंखाय भिक्खू॥ तम्हा
विऊ विरतोआयगुत्ते, दठ्ठुं तसेया पडिसंहरेज्जा ॥ २० ॥

अर्थ–माटे (अपरिक्खदिठ्ठंणहुएवसिद्धीके०) जे स्नान अने होमादिके करी सिद्धि बोले छे ते अविमाश्यो बोलेछे केमके एवा कारणो थकी सर्वथापि सिद्धि नथाय (एहिंतिते घायमबुज्झमाणा के०) ते अबुध एटले तत्वना अजाण धर्मनी बुद्धियें पाप करतां थका घात पामशे (भूएहिंजाणंपडिलेहसातं के०) एवुं जाणी करीने भूत एटले प्राणी मात्रने साता एटले सुख प्रतिलेखीने तेने हणे नही एम (विज्जंके०) विद्वान् विवेकने (गहा यके०) गृहीने (तसथावरेहिंके०) त्रस अने स्थावर जीवोने सुख प्रियछे दुःख अप्रियछे एवुं ज्ञानेकरी जाणे यदुक्तं पढमंनाणंतओदया इतिवचनात्॥१९॥परंतु जे कुशीलिया छेतेप्राणीउ नो उपमर्दन करवा थकी सातामानेछे तेने फलकहेछे ते पृथिव्यादिकना आरंभे सुखाभिला षी छता नरकादिक गतिने विषे जाय पछी त्यां (थणंतिके०)आक्रंद करे तथा (लुप्पंतिके०) खड्गादिक शस्त्रे छेदन थयाथी कदर्थमान थका (तसंतिके०) नाशीजाय एम (कम्मी के०) ते पाप सहित प्राणी दुःखी थाय (तम्हाके०) ते कारणे (भिक्खूके०) चारि त्रिउ (पुढोजगापरिसंखाय के०) जुदा जुदा जीवोने जाणीने (विऊके०) विद्वान होयते (आयगुत्तेके०) आत्म गुप्तिवंत छतो (विरतोके०) संयम आचरे (दठ्ठुंतसेयापडिसंहरेज्जा के०) त्रस अने स्थावर जीवनी हिंसाकारणी एवी क्रियादेखीने ते थकी निवर्त्ते ॥२०॥

॥ दीपिका–अग्निहोत्रेण जलेन वा यैः सिद्धिरुक्ता तैरपरीक्ष्य दृष्टं युक्तिविकलमुक्तं ।

सिद्धिमुदाहरंति, सायंच पायं अगणिं फुसंता ॥ एवं सिया
सिद्धि हवेज्ज तम्हा, अगणिं फुसंताण कुकंमिणंपि ॥ १८ ॥

अर्थ-(पावाइं कम्माइं पकुव्वतोहिंके०) जे जीव प्रकर्षे करी जीव घातादिक अनेक पाप कृत्यो करी कर्म उपार्जीने पछी (सिउदगंतूजइतंहरिज्जाके०) सीतोदक एटले त्रिसंध्याये पाणीनो स्पर्श करी उपार्जित कर्मनो नाश करीने सिद्धिपामे तो (सिज्कंसुएगेदगसत्त घाती के०) पाणीने योगे करी कोइ एक जीवघातक एवा माछीगर प्रमुख पण सीजे (मुसंवयंतेजलसिद्धिमाहु के०.) तेमाटे जे उदक थकी सिद्धि कहेछे ते मृषावाद बोले छे ॥ १७ ॥ (हुतेणजे सिद्धिमुदाहरंति के०) हुताशन जे अग्नि ते थकीजे मोक्ष कहेछे (सायंचपायं अगणिंफुसंता के०) एटले संध्या प्रनात अने मध्यान्हे एम त्रिसंध्यायें अग्नीने फरसवे करी घृतादिकनुं अग्नीनेविषे होम करवे करी सिद्धिछे एम अग्नी होत्री नामना दर्शनीउ कहेछे तेने पूछीयें जे (एवंसिया सिद्धिहवेज्जतम्हाके०) एम करवा थकी जो सिद्धि थति होय तो (अगणिं फुसंताण कुकंमिणंपि के०) अग्नीना फरशनारा कुकर्मि एवा लोहकार अंगार दाहक कुंनकार नाडनूंजा सोनी प्रमुख ने पण मोक्ष प्राप्ति थवी जोइये केमके ए लोहकार प्रमुखतो सदा अग्नि तर्प्पण करता थकाज रहेछे माटे ते डुर्गतिमां नहीज जाय. यद्यपि ते दर्शनीउ मंत्रनुं कारण देखाडे तो तेने एम कहेवुं केजे अत्यंत तमारा आज्ञाकारी होय ते एवुं तमारुं बोलवुं प्रमाण करशे परंतु अन्य जनो ए वात माने नही जेम तेम नस्म करणे सरखा तो मंत्रेकरी शुं विशेषछे॥१८॥

॥ दीपिका-पापानि कुर्वतः प्राणिनोयत्कर्म बध्यते तत्कर्म यदि जलमपहरेत्।यद्येवं स्यात्तदा जलसत्वघातिनोजलप्राणिहिंसकाः सर्वे सिध्येयुर्नचैवमस्ति तस्माद्ये जलेन सिद्धिमाहुस्ते मृषावदंति ॥१७॥ अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामइत्यादिवाक्यात् ये मूढाहुतेनाऽग्नौ हव्यरूपेण सिद्धिं सजतिमुदाहरंति वदंति। किंनूताः सायमपराण्हे प्रातः प्रनातेऽग्निं स्पृशंतस्तर्पयंतः सिद्धिमिछंति। एवं यदि सिद्धिः स्यात्ततस्तस्मादग्निं स्पृशतां कुकर्मिणामंगारकदाहककुंनकारायस्कारादीनां सिद्धिः कथं न स्यात् ॥ १८ ॥

॥ टीका-अपिच (पावाइंइत्यादि । पापानि पापोपादानजूतानि कर्माणि प्राण्युपमर्दकारीणि कुर्वतोसुमतोयत्कर्मोपचीयते तत्कर्म यद्युदकमपहरेत् । यद्येवं स्यात् तर्हि यस्मादर्थे यस्मात्प्राण्युपमर्दकर्मोपादीयते जलावगाहनाच्चाऽपगछति तस्माडदकसत्वघातिनः पापनूयिष्ठाअप्येवं सिध्येयुः । नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । जलावगाहनात्सिद्धिमाहुस्ते

जे धम्मलद्धं विणिहाय भुंजे, वियडेण साहट्टु य जे सिणाइ॥ जे धोवती लूसयतीव वत्थं, अहाहु सेणा गणियस्स दूरे ॥२१॥ कम्मं परिन्नाय दगंसि धीरे, वियडेण जीविज्ज य आदिमोक्खं ॥ संवीय कंदाइ अभुंजमाणे, विरतेसि णाणाइसु इत्थियासु ॥ २२ ॥

अर्थ—(जे के०) जे शीतल विहारी (धम्म के०) शुद्ध निर्दोष एवा आहारने ल द्ध के० लहीने (विणिहायभुंजे के०) संनिधि करी जमे तथा (वियडेणसाहट्टुयजे सिणाइ के०) विकट एटले फासु पाणीयें करी अंगोपांग संकोची प्रासुक प्रदेश देशी देश थकी अथवा सर्व थकी स्नान करे तथा (जेधोवतीलूलयतीववत्थं के०) जे वस्त्र धोवे तथा लुसे एटले लांबुंहोय तेने फाडीने न्हानो करे तथा न्हानुं होय तेने सांधी ने मोहोटुं करे इत्यादिक वातो शोभाने अर्थे जे करे (अहाहुसेणागणियस्सदूरेके०) ते संयम थकी दूर वर्त्तेने एम श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे. ॥ २१ ॥ (कम्मंपरिन्नायदगं सिधीरे के०) जे धीर बुधिमंत पुरुष होय ते उदकने विषे कर्मबंध जाणीने (वियडे णजीविज्जयआदिमोक्खं के०) जावजीव सुधी फासु पाणी पीए (सवीयकंदाइअभुंज माणे के०) ते साधु बीज कंदादिक अणभोगवतो (विरतेसिणाणाइसुइत्थियासुके०) स्नान अभ्यंग उटंगणादिकने विषे तथा स्त्रीने विषे विरति होय पणकुशील दोष आचरे नही ॥२२

॥ दीपिका—अथ स्वयूथ्यकुशीलानाह । (जेइति) । ये शीतलविहारिणोधर्मेण सु धिकया लब्धमुद्देशकक्रीतादिदोपरहितमाहारं विनिधाय व्यवस्थाप्य सन्निधिकृतेवा भुंज ते तथा विकटेन प्रासुकोदकेनापि संकोच्यांगानि प्रासुकोदकेनापि देशसर्वस्नानं कुर्वंति तथा ये वस्त्रं धावंति प्रक्षालयंति लूषयंति शोभार्थं दीर्घं सच्छिदार्थं न्हस्वं वा संधाय दीर्घं करोति (सेणागणिअस्स) निर्ग्रंथभावस्य दूरे वर्तते इति तीर्थकृतआहु. ॥ २१ ॥ उ क्ताः कुशीलाअथ सुशीलाउच्यंते।धीरोबुद्धिमान् उदकारंभे सति कर्म बध्यतइति प्रतिज्ञा य विकटेन प्रासुकोदकेन सौवीरादिना जीव्यात् प्राणधारणं कुर्यात्। आदिः संसारस्तस्मा न्मोक्षआदिमोक्षः संसारविमुक्तियावदित्यर्थः । अथवा धर्महेतूनामादिभूतं शरीरं तद्विमु क्तियावद्यावज्जीवमित्यर्थः । ससाधुर्बीजकंदादीनभुंजानः स्नानादिषु विरतः । आदिश ब्दाढ्यंगोद्वर्तनादिभ्योपिविरतअन्यासुच विचिकित्सादिक्रियासु निवर्तते तथा स्त्रीषु वि रतोऽन्यास्त्रवेभ्योपि विरतः कुशीलदोषैर्न युज्यते॥ २२ ॥

॥ टीका—सांप्रतं स्वयूथ्याः कुशीलाअभिधीयंतइत्याह।(जेधम्मलद्धमित्यादि) ये केच

यतो नैवमेव सिद्धिः। ते परमार्थमबुध्यमानाअजानंतः प्राणिघातेन संसारे ज्रमिष्यंति॥ ततोविद्वान् विवेकी सातं सुखं प्रत्युपेक्ष्य नूतैः प्राणिनिस्त्रसस्थावरैर्जानीयाद्यथाव स्थितत्वं गृहीत्वा । कोर्थः । सर्वे जीवाः सुखैपिणोडुःखद्विषश्च। नच सुखैपिणां डुःखोत्पा दकत्वेन स्वस्य सुखं स्यादिति ॥ १९ ॥ ते आरंन्निणोनरकादिगतास्तनंत्याक्रंदंति लु प्यंते छियंते खड्गादिनिः। एवं पीडयमानास्त्रसंति पलायंते ।कर्माणि विद्यंते येषांते कर्मि णः सपापाः पृथक् जगाइति जंतवः । एवं परिसंख्याय ज्ञात्वा निक्कुस्तस्माद्विद्वान् पंडितो विरतः पापादात्मगुप्तोदांतात्मा त्रसान् स्थावरांश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तडुपघातक्रियां प्र तिसंहरेन्निवर्तयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका–उक्तानि पृथक् कुशीलदर्शनानि अयमपरस्तेषां सामान्योपालंनइत्याह । (अ परिस्कदिछमित्यादि । यैर्मुमुक्कुनिरुदकसंपर्केणाऽग्निहोत्रेण वा प्राएयुपमर्दकारिणा सिद्धि रिति । तेच परमार्थमबुध्यमानाः प्राण्युपघातेन पापमेव धर्मबुध्या कुर्वतोघात्यंते वा व्या पाद्यंते नानाविधैः प्रकारैर्यस्मिन् प्राणिनः संघातः संसारस्तमेष्यंति । अप्कायतेजःकाय समारंनेण हि त्रसस्थावराणामवश्यं नावी विनाशस्तन्नाशेच संसारएव न सिद्धिरित्यनि प्रायः । यतएवं ततोविद्वान् सदसद्विवेकी यथावस्थिततत्वं गृहीत्वा त्रसस्थावरैर्नूतैर्जं तुनिः कथं सांप्रतं सुखमवाप्यतइति एतत्प्रत्युपेक्ष्य जानीहि अवबुध्यस्व । एतडुक्तं नव ति । सर्वेऽप्यसुमंतः सुखैषिणोडुःखद्विषोनच तेषां सुखैषिणां डुःखोत्पादकत्वेन सुखा वाप्तिर्नवतीति । यदिवा । (विज्जंगहायत्ति) विद्याज्ञानं गृहीत्वा विवेकमादाय त्रस स्थावरैर्नूतैर्जंतुनिः करणनूतैः सातं सुखं प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जानीह्यवगच्छेति । यत उक्तं ।(पढमं नाणं तवोदया एवं चिठइ संजए । अन्नाणीकिंकाही किंवाणाहीछेयपावगमि त्यादि) ॥ १९ ॥ ये पुनः प्राण्युपमर्देन सातमनिलषंतीत्यशीलाः कुशीलाश्च ते संसारे एवंविधाअवस्थाअनुनवंतीत्याह (थणंतिलुप्पंतीत्यादि) तेजस्कायसमारंन्निणोनूतस मारंनेण सुखमनिलषंतोनारकादिगतिगतास्तीव्रडुःखैः पीडयमानाअसह्यवेदनाग्रातमा नसाअशरणाः स्तनंति केवलं करुणमाक्रंदंतीति यावत् । (तथालुप्यंतीति) । छि द्यंते खड्गादिनिरेवं च कदर्थ्यमानास्त्रस्यंति प्रपलायंते । कर्माण्येषां संतीति कर्मिणः स पापाइत्यर्थः । तथा पृथक्जगाइति जंतवइति । एवं परिज्ञाय ज्ञात्वा निक्कणशीलोनिक्कुः साधुरित्यर्थः । यस्मात्प्राण्युपमर्दकारिणः संसारांतर्गताविलुप्यंते तस्माद्विद्वान् पंडितोवि रतः पापानुष्ठानादात्मा गुप्तोयस्य सोऽयमात्मगुप्तोमनोवाक्कायगुप्तइर्थः। दृष्ट्वाच त्रसान्।च शब्दात्स्थावरांश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तडुपघातकारिणीं क्रियां प्रतिसंहरेन्निवर्तयेदिति ॥ २० ॥

जे धम्मलद्धं विणिहाय भुंजे, वियडेण साहट्ठु य जे सिणाइ॥ जे धो
वती लूसयतीव वत्थं, अहाहु सेणा गणियस्स दूरे ॥२१॥ कम्मं
परिन्नाय दगंसि धीरे, वियडेण जीविज्जय आदिमोक्खं ॥ संवीय
कंदाइ अभुंजमाणे, विरतेसि णाणाइसु इत्थियासु ॥ २२ ॥

अर्थ-(जे के०) जे शीतल विहारी (धम्म के०) शुद्ध निर्दोष एवा आहारने ल
द्धं के० लहीने (विणिहायभुंजे के०) संनिधि करी जमे तथा (वियडेणसाहट्ठुयजे
सिणाइ के०) विकट एटले फासु पाणीयें करी अंगोपांग संकोची प्रासुक प्रदेशे वेशी
देश थकी अथवा सर्व थकी स्नान करे तथा (जेधोवतीलूसयतीववत्थं के०) जे वस्त्र
धोवे तथा लुसे एटले लांबुंहोय तेने फाडीने न्हानो करे तथा न्हानुं होय तेने सांधी
ने मोहोटुं करे इत्यादिक वातो शोभाने अर्थे जे करे (अहाहुसेणागणियस्सदूरेके०)
ते संयम थकी दूर वर्त्तेछे एम श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे. ॥ २१ ॥ (कम्मंपरिन्नायदगं
सिधीरे के०) जे धीर बुधिमंत पुरुष होय ते उदकने विषे कर्मबंध जाणीने (वियडे
णजीविज्जयआदिमोक्खं के०) जावजीव सुधी फासु पाणी पीए (सवीयकंदाइअभुंज
माणे के०) ते साधु बीज कंदादिक अणभोगवतो (विरतेसिणाणाइसुइत्थियासुके०) स्नान
अभ्यंग उटंगणादिकने विषे तथा स्त्रीने विषे विरति होय पणकुशील दोष आचरे नही ॥२२

॥ दीपिका-अथ स्वयूथ्यकुशीलानाह । (जेइति)। ये शीतलविहारिणोधर्मेण सु
धिकया लब्धमुद्देशकक्रीतादिदोषरहितमाहारं विनिधाय व्यवस्थाप्य सन्निधिकृतेवा भुंज
ते तथा विकटेन प्रासुकोदकेनापि संकोच्यांगानि प्रासुकोदकेनापि देशसर्वस्नानं कुर्वंति
तथा ये वस्त्रं धावंति प्रक्षालयंति लूषयंति शोभार्थं दीर्घं सच्छिदार्य न्हस्वं वा संधाय दीर्घं
करोति (सेणागणिअस्स) निर्ग्रंथभावस्य दूरे वर्तते इति तीर्थकृतआहु. ॥ २१ ॥ उ
क्ताः कुशीलाअथ सुशीलाउच्यंते। धीरोबुद्धिमान् उदकारंभे सति कर्म बध्यतइति प्रतिज्ञा
य विकटेन प्रासुकोदकेन सौवीरादिना जीव्यात् प्राणधारणं कुर्यात्। आदिः संसारस्तस्मा
न्मोक्षआदिमोक्षः संसारविमुक्तिंयावदित्यर्थः । अथवा धर्महेतूनामादिभूतं शरीरं तद्विमु
क्तिंयावद्यावज्जीवमित्यर्थः । ससाधुर्बीजकंदादीनभुंजानः स्नानादिषु विरतः । आदिश
ब्दादभ्यंगोद्वर्तनादिभ्योपिविरतअन्यासुच विचिकित्सादिक्रियासु निवर्तते तथा स्त्रीषु वि
रतोऽन्यास्त्रवेभ्योपि विरतः कुशीलदोषैर्न युज्यते॥ २२ ॥

॥ टीका-सांप्रतं स्वयूथ्याः कुशीलाअभिधीयंतइत्याह।(जेधम्मलद्धमित्यादि) ये केच

न शीतलविहारिणोधर्मेण सुधिकया लब्धं धर्मलब्धं । उद्देशकक्रीतकृतादिदोषरहितमित्यर्थः।तदेवंभूतमप्याहारजातं निधाय व्यवस्थाप्य सन्निधिं कृत्वा भुंजंते । तथा ये विकटेन प्राशुकोदकेनाऽपि संकोच्यांगानि प्राशुकएव प्रदेशे देशसर्वस्नानं कुर्वंति । तथा योवस्त्रं धावति प्रक्षालयति तथा लूषयति शोभार्थं दीर्घमुत्पाटयित्वा ह्रस्वं करोति ह्रस्वंवा संधाय दीर्घं करोति । एवं लूषयति । तदेवं स्वार्थं परार्थं वा योवस्त्रं लूषयति।अथाऽसौ (णागणियस्सत्ति) निर्ग्रंथभावस्य संयमानुष्ठानस्य दूरे वर्तते न तस्य संयमोभवत्येवं तीर्थंकरगणधरादयआहुरिति ॥ २१ ॥ उक्ताः कुशीलास्तत्प्रतिपक्षभूताः शीलववंतः प्रतिपाद्यंतइत्येतदाह । (कम्मंपरिणायइत्यादि) । धिया राजते इति धीरोबुद्धिमान् (उदगंसित्ति) उदकसमारंभे सति कर्मबंधोभवति । एवं परिज्ञाय किंकुर्यादित्याह । विकटेन प्राशुकोदकेन सौवीरादिना जीव्यात् प्राणसंधारणं कुर्यात् । चशब्दात् अन्येनाऽप्याहारेण प्राशुकेनैव प्राणवृत्तिं कुर्यात् । आदिः संसारस्तस्मान्मोक्षआदिमोक्षः संसारविमुक्तिंयावदिति । धर्मकारणानां तावदादिभूतं शरीरं तद्विमुक्तिं यावज्जीवमित्यर्थः । किंचाऽसौ साधुर्बीजकंदादीन् भुंजानः । आदिग्रहणात् मूलपत्रफलानि गृह्यंते । एतान्यऽप्यपरिणतानि परिहरन् विरतोभवति । कुतइति दर्शयति ।स्नानाभ्यंगोद्वर्तनादिषु क्रियासु निष्प्रतिकर्मशरीतयाऽन्यासु चिकित्सादिक्रियासु न वर्तते । तथा स्त्रीषु च विरतः वस्तिनिरोधग्रहणात् अन्येऽप्याश्रया गृह्यंते । यश्चैवंभूतः सर्वेभ्योऽप्याश्रवद्वारेभ्योविरतोनाऽसौ कुशीलदोषैर्युज्यते तदयोगाच्च न संसारे बंभ्रमीति । ततश्चन दुःखितः स्तनति नापि नानाविधैरुपायैर्विलुप्यतइति ॥२२॥

जे मायरं च पियरं च हिच्चा, गारं तहा पुत्तपसुं धणंच॥कुलाइं जे
धावइ साउगाइं, अहाहु से सामणियस्स दूरे ॥ २३ ॥ कुलाइं
जे धावइ साउगाइं, आघातिधम्मं उदराणुगिद्धे ॥ अहाहु से
आयरियाण सयंसे, जो लावएज्जा असणस्स हेऊ ॥ २४ ॥

अर्थ—(जेमायरंच पियरंचहिच्चा के०) जे कुशीलिया माता तथा पिता प्रमुख कुटुंब त्यागीने (गारं के०) आगार एटले घर (तहा के०) तथा (पुत्तपसुंधणंच के०) पुत्र अने पशु जे गवादिक तथा धनने त्यागी पंचमहाव्रत अंगीकार करी पछी रसगृद्धियें आसक्त थता जिव्हालोलपी सरस आहारने गवेषता थका (कुलाइं जेधावइ साउगाइंके०) मोहोटा कुलने विषे रूडा रसनो आहार पामवाने अर्थे जे भ्रमण करे (अहाहुसेसामणियस्सदूरे के०) ते चारित्र थकी दूर जाणवा एम श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे. ॥ २३ ॥ (कुलाइं जे धावइ साउगाइं के०) जे स्वादुक कुलने विषे रसलंपट थका गोचरी करवाने जाय (आघातिधम्मं उदराणुगिद्धेके०) एवा उदर गृद्ध पेटार्थि थका जेने जेवो धर्म

रूचे तेने तेवो उपदेश आपे (अहाहुसे आयरियाणसयंसेके०) ते पुरुषो आर्य धर्मने सो मे जागे उपलक्षणथकी सहस्त्र लाख क्रोडमे जागे पण पोहोचे नही एम श्री तीर्थंकरा दिक कहेछे (जोलावएज्ञा असणस्सहेककेo) तथा जे साधु आहार वस्त्रादिकोने अर्थे बीजाने मुखे पोताना गुण केवरावे लाल पाल करे तेपण कुशीलिया जाणवा. ॥२४॥

॥ दीपिका—यः कुशीलोमातरं पितरं वा उपलक्षणाद्भ्रातृडुहित्रादिकमपि हित्वा अगा रं गृहं पुत्रमपत्यं पशुं हस्त्यश्वगोमहिष्यादिकं धनं च त्यक्त्वा पुनर्हीनतया स्वाडुका नि स्वाडुनोजनवंति कुलानि गृहाणि धावति गछति असौ श्रामण्यस्य श्रमणत्वस्य दूरे एवमाहुस्तीर्थकृतः ॥ २३ ॥ यः कुलानि स्वाडुनोजनवंति धावति गछति गत्वा निक्षा र्थं प्रविश्य यद्यस्मै रोचते कथादिकं तत्तस्याख्याति। किंनूतः । उदरेऽनुगृद्ध उदरन्नरणव्य ग्रः सआर्याणां उत्तमगुणानां शतांशे अधिवर्तते शतोपलक्षणात्सहस्रांशादेरप्यधिव र्तते । योऽशनःस्यात्तस्य हेतुं लापयति स्वप्रशंसां करोति ॥ २४ ॥

॥ टीका—पुनरपि कुशलानेवमधिकृत्याह । जेमायरंचेत्यादि । ये केचनाऽपरिणतस म्यक्धर्माणस्त्यक्त्वा मातरंच पितरंच मातापित्रोर्डुस्त्यजत्वाडुपादानं। अतोच्चातृडुहित्रादि कमपि त्यक्त्वेति एतदपि डृष्टव्यं । तथा अगारं गृहं पुत्रमपत्यं पशुं हस्त्यश्वरथगोमहि ष्यादिकं बंधनं च त्यक्त्वा सम्यक् प्रव्रज्योज्ञानेनोत्थाय पंचमहाव्रतनारस्य स्कंधं दत्वा पुन र्हीनसत्वतया रससातादिगैारवगृद्धोयः कुलानि गृहाणि स्वाडुकानि स्वाडुनोजनवंति धावति गछति । अथाऽसौश्रामण्यस्य श्रमणनावस्य दूरे वर्त्तते एवमाहुस्तीर्थंकरगणधरा दयइति ॥२३॥ एतदेव विशेषेण दर्शयितुमाह (कुलाइंजेधावतीत्यादि) कुलानि स्वाडुनो जनवंति धावतिगछति)तथा गत्वा धर्ममाख्याति निक्षार्थंवा प्रविष्टोयद्यस्मै रोचते कथासंबं धस्तं तस्याऽऽख्याति । किंनूतइति दर्शयति । उदरेऽनुगृद्ध उदरानुगृद्धः। उदरन्नरणव्यग्रस्तुंद परिमृजइत्यर्थः।इदमुक्तं नवति। योह्युदरगृद्धआहारादिनिमित्तं दानश्रद्धकाख्यानि कुलानि गत्वाऽऽख्यायिकाः कथयति सकुशीलइति। अथाऽसावाचार्यगुणानां वा शतांशे वर्ततइति। योह्यन्नस्य हेतुं नोजननिमित्तमपरवस्त्रादिनिमित्तं वा आत्मगुणानपरेणालापयेद्भाणयेत्। असावप्यार्यगुणानां सहस्रांशे वर्तते। किमंगं पुनर्यः स्वतएवाऽऽत्मप्रशंसां विदधातीति २४

णिक्खम्म दीणे परन्नोयणंमि, मुहमंगलीए उदराणुगिद्धे ॥ नी वारगिद्धेव महावराहे, अदूरए एहइ घातमेव ॥ २५ ॥ अन्न स्स पाणस्सिहलोइयस्स, अणुप्पियं नासति सेवमाणे ॥ पास छयं चेव कुसीलयंच, निस्सारए होइजहा पुलाए ॥ २६ ॥

न शीतलविहारिणोधर्मेण सुधिकया लब्धं धर्मलब्धं। उद्देशकक्रीतकृतादिदोषरहितमित्यर्थः।तदेवंभूतमप्याहारजातं निधाय व्यवस्थाप्य सन्निधिं कृत्वा भुंजंते । तथा ये विकटेन प्रासुकोदकेनाऽपि संकोच्यांगानि प्रासुकएव प्रदेशे देशसर्वस्नानं कुर्वंति । तथा योवस्त्रं धावति प्रक्षालयति तथा लूषयति शोभार्थं दीर्घमुत्पाटयित्वा ऱ्हस्वं करोति ऱ्हस्वंवा संधाय दीर्घं करोति । एवं लूषयति । तदेवं स्वार्थं परार्थं वा योवस्त्रं लूषयति।अथाऽसौ (णागणियस्सत्ति) निर्ग्रंथभावस्य संयमानुष्ठानस्य दूरे वर्तते न तस्य संयमोभवत्येवं तीर्थंकरगणधरादयआहुरिति ॥ २१ ॥ उक्ताः कुशीलास्तत्प्रतिपक्षभूताः शीलववंतः प्रतिपाद्यंतइत्येतदाह । (कम्मंपरिणायइत्यादि) । धिया राजते इति धीरोबुद्धिमान् (उदगंसित्ति) उदकसमारंभे सति कर्मबंधोभवति । एवं परिज्ञाय किंकुर्यादित्याह । विकटेन प्रासुकोदकेन सौवीरादिना जीव्यात् प्राणसंधारणं कुर्यात् । चशब्दात् अन्येनाऽप्याहारेण प्रासुकेनैव प्राणवृत्तिं कुर्यात् । आदिः संसारस्तस्मान्मोक्षआदिमोक्षः संसारविमुक्तिंयावदिति । धर्मकारणानां तावदादिभूतं शरीरं तद्विमुक्तिं यावज्जीवमित्यर्थः । किंचाऽसौ साधुर्बीजकंदादीन् भुंजानः।आदिग्रहणात् मूलपत्रफलानि गृह्यंते । एतान्यऽप्यपरिणतानि परिहरन् विरतोभवति । कुतइति दर्शयति ।स्नानाभ्यंगोद्वर्तनादिषु क्रियासु निष्प्रतिकर्मशरीतयाऽन्यासु चिकित्सादिक्रियासु न वर्तते । तथा स्त्रीषु च विरतः वस्तिनिरोधग्रहणात् अन्येऽप्याश्रया गृह्यंते । यश्चैवंभूतः सर्वेभ्योऽप्याश्रव द्वारेभ्योविरतोनाऽसौ कुशीलदोषैर्युज्यते तदयोगाच्च न संसारे बंभ्रमीति । ततश्चन दुःखितः स्तनति नापि नानाविधैरुपायैर्विलुप्यतइति ॥२२॥

जे मायरं च पियरं च हिच्चा, गारं तहा पुत्तपसुं धणंच॥कुलाइं जे
धावइ साउगाइं, अहाहु से सामणियस्स दूरे ॥ २३ ॥ कुलाइं
जे धावइ साउगाइं, आघातिधम्मं उदराणुगिद्धे ॥ अहाहु से
आयरियाण सयंसे, जो लावएज्जा असणस्स हेऊ ॥ २४ ॥

अर्थ-(जेमायरंच पियरंचहिच्चा के०) जे कुशीलिया माता तथा पिता प्रमुख कुटुंब त्यागीने (गारं के०) आगार एटले घर (तहा के०) तथा (पुत्तपसुंधणंच के०) पुत्र अने पशु जे गवादिक तथा धनने त्यागी पंचमहाव्रत अंगीकार करी पछी रसगृद्धियें आसक्त थता जिव्हालोलपी सरस आहारने गवेषता थका (कुलाइं जेधावइ साउगाइंके०) मोहोटा कुलने विषे रूडा रसनो आहार पामवाने अर्थे जे भ्रमण करे (अहाहुसेसामणियस्सदूरे के०) ते चारित्र थकी दूर जाणवा एम श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे. ॥ २३ ॥ (कुलाइं जे धावइ साउगाइं के०) जे स्वादुक कुलने विषे रसलंपट थका गोचरी करवाने जाय (आघातिधम्मं उदराणुगिद्धेके०) एवा उदर गृद्ध पेटार्थि थका जेने जेवो धर्म

(किंचअन्नस्सेत्यादि) सकुशीलोऽन्नस्य पानस्य वा कृतेऽन्यस्य वैहिकार्थस्य वस्त्रादेः कृते अनुप्रियं भाषते। यद्यस्य प्रियं तत्तस्य वदतोऽनुपश्चाद्भाषते अनुभाषते। प्रतिशब्दकव त् सेवकवद्वा राजाद्युक्तमनुवदतीत्यर्थः। तमेव दातारमनुसेवमानश्चाहारमात्रगृद्धः सर्व मेतत्करोतीत्यर्थः। सचैवंभूतः सदाचारभ्रष्टः पार्श्वस्थभावमेव व्रजति कुशीलतां च गच्छति। तथा निर्गतएकांततः सारश्चारित्राख्योयस्य सनिःसारः। यद्विा निर्गतस्य सारोनिः सारः सविद्यते यस्याऽसौ निःसारवान् पुलाकइव निष्कणोभवति यथा एवमसौ संय मानुष्ठानं निःसारीकरोति। एवंभूतश्चाऽसौलिंगमात्रावशेषोबहूनां स्वयूथ्यानां तिरस्कार पदवीमवाप्नोति परलोके च निकृष्टानि यातनास्थानान्यऽवाप्नोति ॥ २६ ॥

> अन्नातपिंडेण हियासएज्जा, णो पूयणं तवसा आवहेज्जा ॥ सद्दे
> हिं रूवेहिं असज्जमाणं, सव्वेहि कामेहि विणीय गेहिं ॥२७॥ स
> व्वाइं संगाइं अइच्च धीरे, सव्वाइं दुक्खाइं तितिक्खमाणे ॥ अखिले
> अगिद्धे अणिएयचारी, अभयं करे भिक्खु अणाविलप्पा ॥२८॥

अर्थ-हवे सुशीलियानुं आचरण कहेछे. (अन्नातपिंडेणहियासएज्जाके०) जे अ ज्ञात कुलने विषे पिंड एटले आहार पाणी लीयें अंत प्रांत आहारे करी संयम पाले पण दीनपणु अंगीकार करे नही (णोपूयणंतवसाआवहेज्जा के०) तथा तपश्चर्यायें करी पूजा सत्कारने वांछे नही एटले राजादिकनी पूजाने निमित्ते तपश्या करे नही परंतु आत्मार्थे करे यदुक्तं इहलोगठ्याएतवमायहेज्जा इत्यादिक भाव जाणीने तथा (सद्दे हिं के०) शब्दने विषे (रूवेहिं के०) रूपने विषे (असज्जमाणं के०) असह्यमान ए टले तत्पर नहोय अने (सव्वेहिकामेहिविणीयगेहिं के०) सर्व कामने विषे गृद्ध पणु टालीने रागद्वेष नकरे तेने साधु जाणवो ॥ २७ ॥ (सव्वाइंसंगाइंअइच्च के०) सम स्त संग तेमां स्नेह ते अभ्यंतर संग अने धन धान्यादिक बाह्य संग एवेप्रकारना संग थकी अतीत एटले रहित (धीरे के०) विवेकवान् (सव्वाइंदुक्खाइंतितिक्खमाणे के०) तथा सर्व शारीरिक अने मानसिक दुःख तेने सहन करनार एटले परीसहोपसर्ग ज नित दुःखनो सहन करनार (अखिले के०) ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी संपूर्ण (अगिद्धे के०) कामभोगनी अभिलाष रहित तथा (अणिएयचारी के० अनियतचारी एटले अप्रतिबद्ध विहारी (अभयंकरे के०) सर्व जीवने अभयनो करनार एवो (भिक्खु के०) साधु ते (अणाविलप्पा के०) विषय कषाये करी अनाकुल एटले कषायने उपश मावने करी निर्मल थयोछे जेनो आत्मा एवो साधु महानुभाव जाणवो ॥ २८ ॥

अर्थ—(णिक्कम्मदीणेपरनोयणंमि के०) जे पोतानुं धनादिक गंमीने पढी परनो जनने विषे दीन एटले दयामणो थाय (उदराणुगिद्धेके०) एम उदरगृद्धथको रहेते (मुहमंगलिक के०) गृहस्थने बंदीजननी पेरे मुखेंमंगलिक वचन कहे गृहस्थनी प्रसंसाकरे यतः सोएसोजस्सगुणा, विरयंतनवारियादसदिसासु, इहराकहासुच्चसि पच्चक्खं अब्बदिठोसि ॥ १ ॥ इत्यादिक वचन पेटनें अर्थें बोले (नीवारगिद्धेवमहावराहे के०) जेम महोटो सूअर नीवार एटले चावलना कणने विषे गृद्धथतो (अदूरएएहइघातमेव के०) अदूर एटले तरत घात पामे तेम कुशीलिया पण आहार गृद्धथता संसार मांहे अनंता मरण पामे ॥ २५ ॥ ते कुशीलिया (अन्नस्स के०) अन्नने अर्थें (पाणस्स के०) पाणीने अर्थे तथा (हलोइयस्स के०) अन्य वस्त्रादिकने अर्थें (अणुप्पियंना सतिसेवमाणे के०) जेने जेवुं गमतुं होय तेना आगल तेवुंज बोले सेवकनी पेरे जेम सेवक पोताना राजाने गमतुं बोले तेम ए कुशीलिया पण बोले ते (पासब्बयंचेवकुसीलयंच के०) सदाचार थकी भ्रष्ठ एवा पासब्बानो नाव तथा कुशीलियानो नाव पामे ते केवो थाय तोके (निस्सारएहोइजहापुलाए के०) निःसार थाय जेम पुलाक एटले धानना गोतरा तूस निःसार होयछे तेम तेपण तेना सरखोज निःसार जाणवो ॥२६॥

॥ दीपिका—योनिष्क्रम्य प्रव्रज्य पराहारविषये दीनः सन् बंदिवन्मुखमांगलिकः स्यात् मुखेन परप्रशंसावाक्यानि वक्ति औदर्यं प्रतिगृद्धः । किमिव । नीवारोमृगादिनक्ष्यविशेषस्तत्र गृद्धआसक्तोयथा महावराहः सूकरः संकटे प्रविष्टः सन्नदूरएव शीघ्रमेव घातं विनाशमेष्यति एवमसावपि कुशीलः ॥ २५ ॥ सकुशीलोऽन्नस्य पानस्य ऐहिकार्थस्य वस्त्रादेः कृतेतु प्रियं नाषते ऽनुकूलंवक्ति सेवकवत्सेवमानएवंनूतश्च पार्श्वस्यतां कुशीलतां च गच्छति निःसारोनवति यथा पुलाकस्तुपः ॥ २६ ॥

॥ टीका—किंच (णिक्कमेत्यादि) । योह्यात्मीयं धनधान्यहिरण्यादिकं त्यक्त्वा निष्क्रांतोनिष्क्रम्य च परनोजने पराहारविषये दीनोदैन्यमुपगतोजिव्हेंद्रियवशादार्त्तोवंदिवन्मुखमांगलिकोनवति । मुखेन मंगलानि प्रशंसावाक्यानि ईदृशस्तादृशस्त्वमित्येवं दैन्यनावमुपगतोवक्ति । उक्तंच । सोएसोजस्सगुणा, वियरंतनवारियादसदिसासु । इहराकहासु सुच्चसि, पच्चक्खंअब्बदिठोसि । इत्येवमौदर्यं प्रतिगृद्धोऽ ध्युपपन्नः । किमिव । नीवारः सूकरादिमृगनक्ष्यविशेषस्तस्मिन् गृद्धआसक्तमनागृहीत्वा च स्वयूथं महावराहोमहाकायः सूकरः । एवकारोऽवधारणे । अवश्यं तस्य विनाशएव नाऽपरा गतिरस्तीति । एवमसावपि कुशीलआहारमात्रगृद्धः संसारोदरः पौनःपुन्येन विनाशमेवैति ॥ २५ ॥

भारस्स जाता मुणि भुंजएज्जा, कंखेज्ज पावस्स विवेग भिक्खू ॥
डुक्खेण पुठ्ठे धुयमाइएज्जा, संगामसीसेव परं दमेज्जा ॥ २९ ॥
अविहम्ममाणे फलगावतठ्ठी, समागमं कंखति अंतकस्स ॥
णिधूय कम्मं ण पवंचुवेइ, अरकरकएवा सगडं तिबेमि ॥ ३० ॥
इतिश्री कुसील परिभासिय सत्तमाभ्यणं सम्मत्तं ॥

अर्थ–(भारस्सजातामुणि भुंजएज्जाके०) भार एटले संयम तेनी यात्रा निरवाह करवाने अर्थे चारित्रिउ शुद्ध निर्दोष आहार ग्रहण करे (कंखेज्जपावस्सविवेगभिरकू के०) तथा साधु पूर्वे आचरित पापकर्मनो विवेक एटले पृथक् भाव वांछे (डुक्खेणपुठ्ठेधुयमाइएज्जा के०) तथा परीसहादिक उपने थके डुःखने फरश्यो ठतो धौव शब्दे संयम अथवा धौव शब्दे मोक्ष तेने ग्रहण करे कोनीपेरे तोके (संगामसीसेवके०) जेम कोइक शूरवीर सुभटने संग्रामने मस्तके शत्रुयें पराभव्यो थको (परंदमेज्जाके०) परंते फरी शत्रुने दमन करे तेम चारित्रिउ कर्मरूप शत्रुथी उपना जे उपसर्ग अने परीसह तेथी पराभव्य पाम्यो थको पण कर्मने दमे अने आत्मस्वरूपने साधे ॥ २९ ॥ (अविहम्ममाणे के०) परीसहोपसर्गे हणातो थको पणते साधु सम्यक् अहियाशे कोनीपेरे तोके (फलगावतठ्ठीके०) फलग एटले पाटीआनीपेरे तिष्टे एटले रहे जेम पाटीउ बन्ने पाशे ठेदातु थकुं पण राग द्वेष नकरे तेम साधुपण उपसर्ग परिसह उपने थके राग द्वेष रहित थको रहे (समागमंकंखतिअंतकस्स के०) अंतक एटले मृत्यु आववानो समागम वांछे अर्थात् पंमित मरण वांछे पण तपश्चायें करी शरीर शोषवाने लीधे डुर्बलता पामवा थकी मनमां शंका तथा भय आणे नही (णिधूयकम्मंणपवंचुवेइके०) ज्ञानावर्णादिक अष्ट प्रकारना कर्म खपावीने वली प्रपंच एटले संसारने न पामे एटले मुक्ति पामे (अरकरकएवासगडंतिबेमिके०) जेम अक्ष एटले धुरी तेना क्षय थकी गाडलुं सम विषम मार्गे नचाले तेम साधु मोक्ष पहोता पठी संसार मांहे पाछा आवे नही. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो.॥३०॥इति कुशील परिभाषा नामे सातमा अध्ययननो अर्थ समाप्तयो.

॥ दीपिका–भारस्य संयमभारस्य यात्रानिर्वाहस्तदर्थं मुनिर्भुंजीत आहारं गृण्हीयात्. तथा भिक्षुः पापस्य कर्मणोविवेकं विनाशं कांक्षेत् डुःखेन परीषहादिना स्पृष्टः सन् धूतं संयमं आददीत गृण्हीयात् यथा संग्रामशीर्षे कश्चित् सुभटः परं शत्रुं दमयत्येवं साधुः कर्मशत्रून् दमयेत् ॥ २९ ॥ परीषहैर्हन्यमानः पीड्यमानोपि सम्यक् सहते । यथा फलकं उभाभ्यां पार्श्वाभ्यां तष्टं घटितं सत्तनु भवत्येवं साधुरपि तपसा डुर्बलतनुः स्यात्

॥ दीपिका—अज्ञातपिंडः अंतः प्रांतः अज्ञातेन्यः पूर्वापराऽपरिचितेन्यः कुलेन्यउंछ वृत्या लब्धस्तेनात्मानमधिसहे वर्तयेत् नच तपसा पूजनं सत्कारमावहेत् नसत्कारार्थी त पः कुर्यादित्यर्थः । यडुक्तं । परलोकादिकं धाम, तपः श्रुतमिति ह्यं ॥ तदेवार्थित्वनिर्लुप्त सारं तृणलवायते इति । शब्दैर्मनोज्ञैरूपैश्चासक्तन् आसक्तिमकुर्वन् सर्वैरपि कामैरिष्ठाम दनैर्गृद्धिं विनीय त्यक्त्वा संयममनुपालयेत् ॥२७॥ सर्वान् संगानतीत्य त्यक्त्वा धीरोवि वेकी सर्वाणि डुःखानि परीषहोपसर्गजनितानि तितिक्षमाणोऽधिसहन् अखिलोज्ञाना दिसंपूर्णोऽगृद्धः कामेष्वनियतचारी अप्रतिबद्धविहारी जीवानामनयंकरोनिक्षुः सा धुरनाविलात्मा निष्कषायात्मा सुशीलः स्यात् ॥ २७ ॥

॥टीका—उक्ताः कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूतान् सुशीलान् प्रतिपादयितुमाह ।(अन्नातपिंडेत्या दि) अज्ञातश्चाऽसौ पिंडश्चाऽज्ञातपिंमः अंतःप्रांतइत्यर्थः । अज्ञातेन्योवा पूर्वापरासंस्तुतेन्यो वा पिंमोऽज्ञातउंछवृत्त्या लब्धस्तेनात्मानमधिसहेत वर्तयेत् पालयेत् । एतडुक्तं नवति अंतप्रांतेन लब्धेनाऽलब्धेन वा न दैन्यं कुर्यात् । नाऽप्युत्कृष्टेन लब्धेन मदं विदध्यात् । ना ऽपि तपसा पूजनसत्कारमावहेत् न पूजनसत्कारनिमित्तं तपः कुर्यादित्यर्थः । यदिवा पूजासत्कारनिमित्तत्वेन तथाविधार्थित्वेन वा महतापि केनचित्तपोमुक्तिहेतुकं न निःसारं कुर्यात् । तडुक्तं । परलोकाधिकं धाम तपःश्रुतमिति ह्यं ॥ तदेवाऽर्थित्वनिर्लुप्तसारं तृण लवायते । तथा च रसेषु गृद्धिं न कुर्यात् । एवं शब्दादिष्वपीति दर्शयति । शब्दैर्वेणुवीणा दिनिराक्षिप्तः संस्तेष्वसक्तन्नासक्तिमकुर्वन् कर्कशेषुच द्वेषमगन्नन् तथा रूपैरपि मनोज्ञेतरै रागद्वेषमकुर्वन् । एवं सर्वैरपि कामैरिष्ठामदनरूपैः सर्वेन्योवा कामेन्यो गृद्धिं विनीयाऽपनीय संयममनुपालयेदिति । सर्वथा मनोज्ञेतरेषु विषयेषु रागद्वेषं न कुर्यात् । तथाचोक्तं । सद्दे सुयनद्दयपावएसुसोयविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयव्वं ॥ १ ॥ रूवेसुयनद्दयपावएसुचक्कुविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयव्वं ॥२॥ गंधेसुयनद्दयपावएसु, घाणविसयमुवगएसु । तुठेण० ॥ ३ ॥ नरकेसुयनद्दयपावएसु; रस ण विसयमुवगएसु, तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयव्वं ॥ ४ ॥ फासेसुयनद्दयपावए सु, फासविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयानहोयव्वं ॥ ५ ॥ २७ ॥ यथाचें डियनिरोधोविधेयएवमपरसंगनिरोधोऽपि कार्यइति दर्शयति (सव्वाइंइत्यादि) सर्वान् बा ह्यांश्च इव्यपरिग्रहलक्षणानतीत्य त्यक्त्वा धीरोविवेकी सर्वाणि डुःखानि शारीरमानसानि त्यक्त्वा परीषहोपसर्गजनितानि तितिक्षमाणोऽधिसहन्नऽखिलोज्ञानदर्शनचारित्रैः संपू र्णस्तथा कामेष्वगृद्धस्तथा नियतचारी अप्रतिबद्धविहारी तथा जीवानामनयंकरोपि निक्षणशीलोनिक्षुः साधुरेवमनाविलोविषयकषायैरनाकुलआत्मा यस्याऽसावनाविला त्मा संयममनुवर्त्ततइति ॥ २७ ॥

हंचेयंपवुच्चई के०) केवीरीते ए प्रकर्षे करी वीर्य कहेछे. ॥ १ ॥ (कम्ममेगेपवेदेंतिके०) एकतो अष्ट प्रकारे कर्म क्रिया अनुष्टानरूप वीर्य कहेछे (अकम्मंवावि के०) अथवा अकर्म एटले जीवनुं सहेज स्वरूप तेने पण एक वीर्य कहेछे एम बे प्रकारे वीर्य कहेछे (सुव्वयाके०) अहोसुव्रतो (एतेहिंदोहिंगणेहिं के०) एज बे स्थानके करी बल वीर्यना नेद जाणो एटले एक सकर्मक अने बीजो अकर्मकना नेदे करी बे प्रकारनो वीर्य जाणवो (जेहिंदीसंतिमच्चिया के०) जेने विषे व्यवस्थित सर्व मनुष्यो देखायछे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथाष्टमं । पूर्वं कुशीलसुशीलावुक्तौ तौच वीर्यतः स्यातामिति वीर्यमत्रोच्यते । (डुहेति) द्विधा द्विप्रकारकमेतद्वीर्यं सुष्टु आख्यातं तीर्थकृदादिनिः । इदं वीर्यं द्विनेदं प्रोच्यतइति । वीर्यं जीवस्य शक्तिविशेषः । तत्र किंनु वीरस्य सुनटस्य वीरत्वं केन वा हेतुनाऽसौवीरइत्युच्यते। तुशब्दोवितर्के ॥ १ ॥ किंतद्वीर्यं किंवा वीरत्वमित्याह । (कम्मेति) कर्मक्रिया अनुष्ठानमित्येव वीर्यमिति प्रवेदयंति ॥ अथवाऽष्टप्रकारं कर्म कारणे कार्योपचारात् तदेव वीर्यमित्युच्यते। तथाहि । नावनिष्पन्नं कर्म उदयिकनावोपि कर्मोदयनिष्पन्नइति बालवीर्यं १ द्वितीयनेदस्त्वयं।कर्मरहितोऽकर्मा वीर्यांतरायक्षयजनितं जीवस्य सहजं वीर्यं। चशब्दाच्चारित्रमोहनीयोपशमक्षयोपशमजनितं हेसुव्रताएवंनूतं पंडितवीर्यं जानीत२ द्वान्यां द्वान्यां स्थानान्यां बालपंडितवीर्यान्यां व्यवस्थितं वीर्यमित्युच्यते।येन्योययोर्वा व्यवस्थितामर्त्यामनुष्याअपदिश्यंते । तथाहि । अनेककार्यंपूद्यमवंतं नरं दृष्ट्वा वीर्यवानयमित्युच्यते तथा वीर्यांतरायक्षयादनंतबलयुक्तोयं मर्त्यइत्यपदिश्यते ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तं सप्तममध्ययनं सांप्रतमष्टममारन्यते ॥ अस्य चाऽयमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूताः श्रीसुशीलाः प्रतिपादिताः।तेषांच कुशीलत्वं च संयमवीर्यांतरायोदयात्तत्क्षयोपशमाच्च नवतीत्यतोवीर्यप्रतिपादनायेदमुपदिश्यते तदनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराणि उपक्रमादीनि वक्तव्यानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोऽयं ॥ (बालबालपंडितपंडितवीर्यनेदात्त्रिविधमपि वीर्यं परिज्ञाय पंडितवीर्ये यतितव्यमिति । नामनिष्पन्ने तु निक्षेपे वीर्याध्ययनवीर्यनिक्षेपाय निर्युक्तिकृदाह । (विरिएढक्कंदव्वे, सचित्ताचित्तमीसगंचेव ॥ डुपयचउप्पयअपयं, एयंतिविहंतिसच्चित्तं ॥ १ ॥) (विरिएढक्कमित्यादि) वीर्ये नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालनावनेदात् षोढा निक्षेपः । तत्राऽपि नामस्थापने क्षुसे द्रव्यवीर्यं द्विधा ।आगमतो नोआगमतश्च। आगमतोज्ञाता तत्र चाऽनुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तसचित्ताचित्तमिश्रनेदात्त्रिधा वीर्यं सचित्तमपि द्विपदचतुष्पापदनेदात् त्रिविधमेव । तत्र द्विपदानां अर्ह

अरक्तद्विष्टश्च मृत्योः समागमं प्राप्तिमाकांक्षेत अष्टप्रकारं कर्म निर्धूयापनीय प्रपंचं संसारं नोपैति नयाति । यथा अक्षस्य क्षये विनाशे सति शकटं समविषमपथरूपं प्रपंचं याति उपष्टंनकारणानावात् एवं साधुः कर्मक्षये संसारं नयातीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३० ॥ समाप्तं कुशीलपरिन्नाषाख्यं सप्तमाध्ययनं ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् (नारस्सजाताइत्यादि) । संयमनारस्य यात्रार्थं पंचमहाव्रत नारनिर्वाहणार्थं मुनिः कालत्रयवेत्ता ज़ुंजीत आहारग्रहणं कुर्वीत । तथा पापस्य कर्मणः पूर्वचरितस्य विवेकं पृथग्नावं विनाशमाकांक्षेन्निक्षुः साधुरिति । तथा डुःखय तीति डुःखं परीषहोपसर्गजनितापीडा तेन स्पृष्टोव्याप्तः सन् धूतं संयमं मोक्षंवा आददीत गृण्हीयात् । यथा सुनटः कश्चित् संग्रामशिरसि शत्रुनिरनिद्रुतः परं शत्रुं दमयति । एवं परं कर्मशत्रुं परीषहोपसर्गानिद्रुतोदमयेदिति ॥ २ए ॥ अपिच (अविहम्ममाणे त्यादि) परीषहोपसर्गैर्हन्यमानोऽपि सम्यक् सहते । किमिव । फलकवदवकृष्टः । यथा फलकमुनान्यमपि पार्श्वान्यां तष्टं घट्टितं सत्तनु नवति अरक्तद्विष्टं वा संनवत्येवमसावपि साधुः सबाह्याभ्यंतरेण तपसा निष्टप्तदेहस्तनुर्डर्बलशरीरोऽरक्तद्विष्टश्चांतकस्य मृत्योः समागमं प्राप्तिमाकांक्षत्यनिलपति । एवं चाऽष्टप्रकारं कर्म निर्धूयाऽपनीय नपुनः प्रपंचं जातिजरामरणरोगशोकादिकं प्रपंच्यते । बहुधा नटवद्यस्मिन् सप्रपंचः संसारस्तं नोपैति नयाति । दृष्टांतमाह । यथा ऽक्षस्य क्षये विनाशे सति शकटं गंत्र्यादिकं समविषमपथरूपं प्रपंचमुपष्टंनकारणानावान्नोपयाति । एवमसावपि साधुरष्टप्रकारस्य कर्मणः क्षये संसारप्रपंचं नोपयातीति । गतोऽनुगमोऽनया।पूर्ववदिति शब्दःपरिसमाप्त्यर्थे ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३० ॥ समाप्तंच कुशीलपरिन्नाषाख्यं सप्तमाध्ययनं ॥

हवे आवमुं वीर्याध्ययन कहेबे सातमाअध्ययनमां कुशीलियानो आचार कह्यो ते आचार संयमनेविषे वीर्यांतराय कर्मना उदय थकी थायबे तेमाटे आ अध्ययनमां सुशीलियानो वीर्य देखाडेबे तेथी ए अध्ययननुं नाम वीर्याध्ययनबे.

डुहावेयं सुयरकायं,वीरियंति पवुच्चई ॥ किंतु वीरस्स वीरत्तं, कहं चेयं पवुच्चई ॥१॥ कम्ममेगे पवेदेंति,अकम्मं वावि सुव्वया ॥ एते हिं दोहि ठाणेहिं, जेहिं दीसंति मच्चिया ॥ २ ॥

अर्थ–(डुहावेयंसुयरकायं के०) तेनजो वीर्य पराक्रम बे प्रकारे श्रीजिनेश्वरे कह्युंबे (वीरियंतिपवुच्चई के०) तेवीर्य प्रकर्षे करी कहिएबैयें (किंतुवीरस्सवीरत्तं के०) तु एवा वितर्के करी वीर नामा सुनटनुं केवुं वीर पणुं अने केवीरीते ए वीर केवायबे तथा (क

र्थं पटुमतिना प्रोच्यमानं नशक्नोति सांप्रतं परिणमयितुं संभाव्यते त्वेपपरिकर्म्यमाणः शक्नोत्यमुमर्थं परिणमयितुमिति । वाग्वीर्यमपि द्विविधं । संभवे संभाव्येच । तत्र संभवे तीर्थकृतां योजननिर्हारिणी वाक् सर्वस्वभावानुगताच । तथाऽन्येषामपि क्षीरमध्वास्रवादिलब्धिमतां वाचः सौभाग्यमिति । तथा । हंसकोकिलादीनां संभवति स्वरमाधुर्यं । संभाव्येतु संभाव्यते श्यामायाः स्त्रियागानमाधुर्यं । तथाचोक्तं । श्यामा गायति मधुरं, काली गायति खरंच रुक्षंचेत्यादि । तथा संभावयामएनं श्रावकदारकमकृतमुखसंस्कारमप्यक्षरेषु यथावदभिलप्स्येष्विति । तथा संभावयामः शुकसारिकादीनां वाचोमानुषभाषापरिणामः। कायवीर्यमप्यौरस्यं। यद्यस्य बलं तदपि द्विविधं संभवे संभाव्येच। यथा चक्रवर्तिबलदेववासुदेवादीनां यद्बाहुबलादिकायबलं । तद्यथा कोटिशिलात्रिपृष्ठेन वामकरतलेनोद्धृता । यदिवा (सोलसरायसहस्साइत्यादि) यावदपरिमितबलाजिनवरेंदाइति । संभाव्येतु संभाव्यते तीर्थकरोलोक,मलोके कंडुकवत् प्रक्षेप्तुं तथा मेरुं दंडवद्गृहीत्वा वसुधां छत्रकवद्धर्तुमिति । तथा संभाव्यते अन्यतरसुराधिपोजंबूद्वीपं वामहस्तेन छत्रवद्धर्तुमयत्नेनैव मंदिरमिति । तथा संभाव्यते अयं दारकः परिवर्धमानः शिलामेनामुद्धर्तुं हस्तिनं दमयितुमश्वं वाहयितुमित्यादि । इंद्रियबलमपि श्रोत्रेंद्रियादिस्वविषयग्रहणसमर्थं पंचधैकैकं द्विविधं संभवे संभाव्येच। संभवे यथा श्रोत्रस्य द्वादशयोजनानि विषयः । एवं शेषाणामपि योयस्य विषयइति । संभाव्ये तु यस्य कस्यचिदनुपहतेंद्रियस्य श्रांतस्य क्रुद्धस्य पिपासितस्य परिग्लानस्य वा अर्थग्रहणसमर्थमपि इंद्रियं सद्यथोक्तदोषोऽपशमे तु सति संभाव्यते विषयग्रहणायेति । सांप्रतमध्यात्मिकं वीर्यं दर्शयितुमाह । उज्जमधितीधीरत्तं, सोंडीरत्तंखमायगंभीरं । उवयोगं योगतव, संजमादियहोइअज्झप्पो (उज्जमधीत्यादि)। आत्मन्यधीत्यध्यात्मं तत्र भवमाध्यात्मिकमांतरशक्तिजनितं सात्विकमित्यर्थः । तच्चाऽनेकधा । तत्रोद्यमोज्ञानतपोऽनुष्ठानादिषूत्साहः । एतदपि यथा योगं संभवे संभाव्ये च योजनीयमिति । धृतिः संयमे धैर्यं चित्तसमाधानमिति । धीरत्वं परीषहोपसर्गाक्षोभ्यता शौंडीर्यं त्यागसंपन्नता षट्खंडमपि भरतं त्यजतश्चक्रवर्तिनोन मनः कंपते । यदिवाऽऽपद्यविषण्णता । यदिवा विषमेऽपिकर्तव्ये समुपस्थिते पराभियोगमकुर्वन् ममैवैतत्कर्तव्यमित्येवं हर्षायमाणोऽविषण्णोविधत्तइति । क्षमावीर्यंतु परैराक्रुश्यमाणोऽपि मनागपि मनसा नक्षोभमुपयाति भावयति । तच्चेदं । आक्रुष्टेन मतिमता तत्वार्थगवेषणे मतिः कार्या । यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किंतु कोपेन ॥ २ ॥ तथा (अक्कोसहणणमारण धम्मब्भंसाण बालसुलभाणं ॥ लाभं मन्नइ धीरो, जहुत्तराणं अभावंमि ॥ १ ॥) गांभीर्यवीर्यं नाम परीषहोपसर्गैरधृष्यत्वं । यदिवा यन्मनश्चमत्कारकारिण्यपि स्वानुष्ठाने अनौद्धत्यं। उक्तंच। (तुच्छुब्बलेइ जंहे, इक्कणयं रित्तयं कणकणेइ । भरियाइं ण खुब्भंती, सुपु

चक्रवर्त्तिबलदेववासुदेवादीनां यद्वीर्यं स्त्रीरत्नस्य वा यस्यवा यद्वीर्यं तदिह ड्व्यवीर्यत्वेन ग्राह्यं । तथा चतुष्पदानामश्वहस्तिरत्नादीनां सिंहव्याघ्रशरजादीनां वा परस्य यद्वोढव्ये धावने वा वीर्यं तदिति । तथाऽपदानां गोशीर्षचंदनप्रनृतीनां शीतोष्णकालयोरुष्णशीतवीर्य परिणामइति । अचित्तवीर्यप्रतिपादनायाह ॥ अचित्तं पुणविरयं, आहारावरणपहरणा दीसु ॥ जहउसहीणजणियं, विरियं रसवीरियविवागो ॥ २ ॥ (अचित्तंपुणेत्यादि) अचित्तड्व्यवीर्यं त्वाऽऽहारावरणप्रहरणेषु यद्वीर्यं तडुच्यते । तत्राऽऽहारवीर्यं सद्यः प्राणकरा हृद्याघृतपूर्णाः कफापहाइत्यादि । उषधीनां च शल्योद्धरणसंरोहणविषापहारमेधाक रणादिकं रसवीर्यं विपाकवीर्यं च । तडुक्तं । चिकित्साशास्त्रादौ तदिह ग्राह्यमिति । तथा योनिप्राजृतकान्नानाविधं ड्व्यवीर्यं ड्ष्टव्यमिति । तथा। आवरणेकववादी, चक्कादीयंचपहर णेहोंति ॥ खित्तंमि जंमि खेत्ते,काले जं जंमि कालंमि । तथा(आवरणेइत्यादि) आवरणे कव चादीनां प्रहरणे चक्रादीनां यद्भवति वीर्यं तडुच्यंतइति । अधुना क्षेत्रकालवीर्यं गाथापश्चा र्धेन दर्शयति । क्षेत्रवीर्यंतु देवकुर्वादिकं क्षेत्रमाश्रित्य सर्वाण्यपि ड्व्याणि तदंतर्गतान्युत्कृष्ट वीर्यवंति जवंति । यद्वा डुर्गादिकं क्षेत्रमाश्रित्य कस्यचिद्वीर्योल्लासोजवति । यस्मिन्वा क्षेत्रे वीर्यं व्याख्यायते तत्क्षेत्रवीर्यमिति । एवं कालवीर्यमप्येकांतसुखमादावाऽऽयोज्य मिति । तथाचोक्तं । वर्षासु लवणममृतं, शरदिजलं गोपयश्चहेमंते ॥ शिशिरे चामलक रसो, घृतंवसंते गुडश्चांऽते ॥१॥ तद्यथा । ग्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैंधवयुतां मेघावनद्धेंबरे, तुल्यां शर्करया शरद्यमलया शुंठ्या तुषारागमे । पिप्पल्या शिशिरे वसंतसमये क्षौद्रेण संयोजि तां, पुंसां प्राप्य हरीतकीमिव गदानश्यंतु ते शत्रवः ॥ १ ॥ जाववीर्यप्रतिपादनायाह । (जावोजीवस्स सवीरियस्स विलयंमि लद्धिणेगविहा ॥ उरस्सिंदिय अज्झप्पिएसु ब हुसोबहुवीहियं (जावोजीवस्सेत्यादि) सवीर्यस्य वीर्यशक्त्युपेतस्य जीवस्य वीर्य विषये अनेकविधा लब्धिस्तामेव पश्चार्धेन दर्शयति । तद्यथा । उरसि जवमौरस्यं शा रीरबलमित्यर्थः । तथेंड्रियबलमाध्यात्मिकं बलं बहुशोबहुविधं ड्ष्टव्यमिति । ए तदेव दर्शयितुमाह । (मणवइकालाआणा पाणुसंजवतहायसंजवे । सोत्तादीणं सहा, दिएविसएसुगहणंच ॥ ४ ॥ (मणवइइत्यादि) आंतरेण व्यापारेण गृहीत्वा पुजलात्मनोयोग्यान् मनस्त्वेन परिणमयति जाषायोग्यान् जाषात्वेन परिणमयति काय योग्यान् काययोग्यत्वेन अन्नपानयोग्यान् तद्भावेनेति । तथा मनोवाक्कायादीनां त द्भावपरिणतानां यद्वीर्यं सामर्थ्यं तद्द्विविधं । संजवे संजाव्येच । संजवे तावत्तीर्थकृताम नुत्तरोपपातिकानांच सुराणामतीव पटूनि मनोड्व्याणि जवंति । तथाहि । तीर्थकृताम नुत्तरोपपातिकसुरमनःपर्यायज्ञानिप्रश्नव्याकरणस्य ड्व्यमनसैव करणात् । अनुत्तरो पपातिकसुराणांच सर्वव्यापारस्यैव मनसा निष्पादनादिति । संजाव्ये तु योहि यम

कर्म्म क्रियानुष्ठानमित्येतदेके वीर्यमिति प्रवेदयंति । यदिवा कर्माष्टप्रकारं कारणे कार्यो पचारात् तदेव वीर्यमिति ।तथा ह्यौदयिकज्ञावनिष्पन्नं कर्मेत्यपदिश्यते । औदयिकोपिच ज्ञावः कर्मोदयनिष्पन्नएव बालवीर्यं । द्वितीयज्ञेदस्त्वयं । न विद्यते कर्मोऽस्येत्यकर्मा । वीर्यांतरायक्षयजनितं जीवस्य सहजं वीर्यमित्यर्थः । चशब्दात् चारित्रमोहनीयोपशमज नितंच । हेसुव्रताएवंजूतपंडितवीर्यं जानीत यूयं । आज्यामेव द्वाज्यां स्थानाज्यां सकर्म काकर्मकापादितं बालपंडितवीर्याज्यां व्यवस्थितं वीर्यमित्युच्यते । यकाज्यां ययोर्वा व्य वस्थितामर्त्येषु ज्ञवामर्त्याः (दिस्संतइति) दृश्यंतेऽपदिश्यंतेवा । तथाहि । नानाविधासु क्रियासु प्रवर्तमानमुत्साहबलसंपन्नं मर्त्यं दृष्ट्वा वीर्यवानयं मर्त्यइत्येवमपदिश्यते । तथा न दावारककर्मणः क्षयादनंतबलयुक्तोऽयं मर्त्यइत्येवमपदिश्यते दृश्यतेचेति ॥ २ ॥

पमायं कम्ममाहंसु अप्पमायं तहावरं ॥ तब्भावादेसउवावि, बा
लं पंडियमेववा ॥ ३ ॥ सछमेगेतु सिरकंता, अतिवायाय पा
णिणं ॥ एगे मंते अहिज्जंति, पाणजूयविहेडिणो ॥ ४ ॥

अर्थ–(पमायंकम्ममाहंसु के०) श्रीतीर्थंकर देव प्रमादने कर्म कहेछे तेप्रमाद क हेछे मद्यविसयकसाया निद्दाविहगाय पंचमेज्ञणियाइत्यादि (अप्पमायंतहावरंके०) तथा अप्रमादने अकर्म कहेछे (तब्भावादेसउवाविबालंपंडियमेववा के०) जे प्रमादि थको कर्म करे ते बालवीर्य कहिए अने जे अप्रमादि थको कर्म करे ते पंमितवीर्य कहिए ते बाल अने पंमितवीर्य आवीरीतेछे अज्ञव्यने अनादि अपर्यवसित अने ज्ञव्यने अना दि सपर्यवसित अथवा सादि सपर्यवसित जाणवो ॥ ३ ॥ (सछमेगेतुसिरकंता के०) कोइएक शस्त्र एटले खड्गादि हथीयार धनुष्य विद्यादिक शीखे अथवा शास्त्र एटले ज्योति षादिक शास्त्र तथा निमित्त वैद्यक औषध प्रमुख शीखे शावास्तेशीखेतोके (पाणिणंके०) जीवोने (अतिवायायके०) अतिपात एटले विनाश करवाने अर्थे शीखे (एगेमंतेअहिज्जंति के०) तथा कोइएक हिंसक मंत्रादिक जणीने जे अथर्वणयाग अश्वमेध मनुष्य मेध अ जामेध प्रमुख करे ए (पाणके०) बेंड्रियादिक त्रस जीव तथा (जूतके०) पृथिव्यादिक स्थावरजीव तेने (विहेडिणोके०) विविध प्रकारे हणवा निमित्ते पूर्वोक्त मंत्रादि जणे ॥४॥

॥ दीपिका–प्रमादमेव कर्म आहुस्तीर्थकृतः ।कर्महेतुत्वात्प्रमादः कर्मैव ।अप्रमादं चा परं कर्म आहुः । कोर्थः । प्रमादात्कर्म वध्यते सकर्मणश्च क्रिया बालवीर्यं ।तथा अप्रमत्त स्य कर्मा‌ज्ञावस्तस्यच पंमितवीर्यं । तज्ञावदेशतः बालवीर्यस्य पंमितवीर्यस्य ज्ञावस्तेनादे शोव्यपदेशस्तत्र बालवीर्यमज्ञव्यानामनाद्यनंतं। ज्ञव्यानामनादिसांतं सादिसांतं वा । पंमि

रिसविन्नाण नंडाइं ॥ १ ॥) उपयोगवीर्यं साकारानाकारनेदात् द्विविधं । तत्र साकारोप योगोऽष्टधा ऽनाकारश्चतुर्धा । तेन चोपयुक्तः स्वविषयस्य ड्व्यक्षेत्रकालनावरूपस्य परिछे दं विधत्तइति । तथा योगवीर्यं त्रिविधं । मनोवाक्कायनेदात् । तत्र मनोवीर्यमकुशलमनो निरोधः कुशलमनसश्च प्रवर्तनं मनसोवा एकत्वीनावः करणं । मनोवीर्येणहि निर्ग्रंथसंय ताः प्रवृद्धपरिणामाश्चवस्थितपरिणामाश्च नवंतीति । वाग्वीर्येण तु नापमाणोऽपुनरु क्तं निरवद्यं च नाषते । कायवीर्येतु यस्तु समाहितपाणिपादः कूर्मवदवतिष्ठतइति । तपो वीर्यं द्वादशप्रकारं तपोयद्बलादग्लायन् विधत्तइति । एवं सप्तदशविधेयं संयमे एकत्वाद्यऽध्य वसितस्य यद्बलात्प्रवृत्तिस्तत्संयमवीर्यं । कथमहमतिचारं संयमेन प्राप्नुयामित्यध्यव सायिनः प्रवृत्तिरित्येवमाद्यऽध्यात्मवीर्यमित्यादिच नाववीर्यमिति । वीर्यप्रवादपूर्वेचाऽनंतं वीर्यं प्रति पादितं । किमिति यतोऽनंतार्थं पूर्वं नवति । तत्रच वीर्यमेव प्रतिपाद्यते । अनंता र्थता चातआगंतव्या । तद्यथा । (सव्वणईणं जाहोज्जवालुया गणणमागयासत्ती । तत्तोबहुय तरागो अत्थो एगस्स पुव्वस्स ॥ १ ॥ सव्वसमुदाणजलं जइ पत्थमियं हविज्ज संकलियं । एत्तोबहु यतरागो, अत्थोएगस्स पुव्वस्स ॥ २ ॥) तदेवं पूर्वार्थस्याऽनंत्या द्वीर्यस्य च तदर्थत्वादनंतता वी र्यस्येति । सर्वमप्येतद्वीर्यं त्रिधेति प्रतिपादयितुमाह । (सव्वंपिय तं तिविहं, पंमियबालवि रियंच । अहवावि होंति डुविहं, अगारअणगारियंचेव ॥ १ ॥) (सव्वंपियमित्यादि) सर्व मप्येतद्भाववीर्यं पंडितबालमिश्रनेदात् त्रिविधं । तत्रनागाराणां पंडितवीर्यं बालपंडित वीर्यं त्वगाराणां गृहस्थानामिति । तत्र यतीनां पंडितवीर्यं सादिसपर्यवसितं । सर्वविर ति प्रतिपत्तिकाले सादितासिद्धावस्थायां तदनावात्सांतं । बालपंमितवीर्यं तु देशवि रतिसद्भावकाले सादि । सर्वविरतिसद्भावे तद्भ्रंशेवा सपर्यवसानं । बालवीर्यं त्वविरतिल क्षणमनव्यानामनाद्यपर्यवसितं नव्यानां त्वनादिसपर्यवसितं । सादि सपर्यवसितं तु विरति न्रशात् सादिता । पुनर्जघन्यतांतर्मुहूर्तादुत्कृष्टतो ऽपार्द्धपुजलपरावर्तात् विरतिसद्भवात् सांत तेति । साद्यपर्यवसितस्य तृतीयनंगकस्य त्वसंनवएव । यदिवा पंडितवीर्यं ससर्वविरतिलक्ष णं । विरतिरपि चारित्रमोहनीयक्षयक्षयोपशमलक्षणात्रिविधैवाऽतोवीर्यमपि त्रिधैव नवति गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः । तदनुसूत्रानुगमे स्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । त च्चेदं । (डुहावेदंसुयरकायमित्यादि) द्वे विधे प्रकारावऽस्येति द्विविधं द्विप्रकारं । प्रत्य क्षासन्नवाचित्वात् इदमोयदनंतरं प्रकर्षेणोच्यते वीर्यं तद्विनेदं सुष्टुआख्यातं स्वाख्यातं तीर्थं करादिनिः । चोवाक्यालंकारे । तत्रेऽरगतिप्रेरणयोः । विशेषेण ईरयति प्रेरयति अनिहितं ये न तद्वीर्यं जीवस्य शक्तिविशेषइत्यर्थः । तत्र किंतु वीरस्य सुनटस्य वीरत्वं केनवा कारणे नाऽसौवीरइत्यनिधीयते । तुशब्दोवितर्कवाची । एतद्वितर्कयति । किंत द्वीर्यं वीरस्य वा किं त द्वीरत्वमिति ॥ १ ॥ तत्र नेद द्वारेण वीर्यस्वरूपमाचख्यासुराह ॥ (कम्ममेगेइत्यादि)

माइणो कट्टु मायाय, कामन्नोगे समारन्ने ॥ हंता वेत्ता पगप्भित्ता आयसायाणुगामिणो ॥ ५ ॥ मणसा वयसाचेव, कायसा चेव अंतसो ॥ आरउ परउ वावि, डुहावियं असंजया ॥ ६ ॥

अर्थ-(माइणोकट्टुमायायके०) कोइएक मायावि पुरुष माया केलवीने (कामन्नोगेसमारन्नेके०) शब्दादिक विषय रूप कामन्नोगनो समारंन्न करे एटले पोतानाचित्तने विषे आशक्त उता काम सेवना करे एवा ते (आयसायाणुगामिणोके०) पोताना आत्म सुखना अर्थि विषय गृद्ध उता (हंतावेत्ता पगप्भित्ता के०) जीवना हणनार तथा अंगोपांगना वेदनार तथा पेटना कापनार थाय ॥ ५ ॥ (मणसावयसाचेव के०) मने करी वचने करी चेव पदपूर्णार्थेढे अने (कायसा के०) कायायें करी (अंतसोके०) आशक्त उता तंडुल मन्ननी पेरे कर्म बांधता तथा(आरउके०) आरत आलोकने विषे (परउवाविके०) अथवा परलोकने विषे पण (डुहाविय के०) ए बन्ने लोकने विषे कृत्य कारीत पणे करी ते जीव घातना करनार पुरुष निश्चें थकी (असंजया के०) असंयति जाणवा. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-मायाविनोमायां परवंचनानि कृत्वा कामन्नोगान् समारन्नंते सेवंते । तदेवमात्मना सातानुगामिनः स्वसुखलिप्सवः प्राणिनां हंतारः स्युः । तथा वेत्तारः कर्णनासादेः प्रकर्तयितारः पृष्ठोदरादेः ॥ ५ ॥ मनसा वाचा कायेन अंतशः कायेनाशक्तोपि तंडुलमत्स्यवन्मनसैव कर्म बध्नाति तथा आरतः परतश्चेति इह लोकपरलोकयोर्द्विधापि कृतकारिताच्यां च संयताजीवोपघातकारिणः ॥ ६ ॥

॥ टीका-(अधुना सब्बमित्येतत्सूत्रपदं सूत्रस्पर्शिकया निर्युक्तिकारः स्पष्टयितुमाह । सब्बमसिमादीयं, विज्ञामंतेयदेवकयं । पत्नीवकरुणअग्गेय, वायुतहमीसगंचेवा ।) (सब्बमित्यादि) शस्त्रं प्रहरणं तच्चाऽसिः खड्गादिस्तदादिकं तथा विद्याधिष्ठितं मंत्राधिष्ठितं तदेव कर्मकृतं दिव्यक्रियानिष्पादितं। तच्च पंचविधं । तद्यथा । पार्थिवं वारुणमाग्नेयं वायव्यं तथैव व्याद्दिमिश्रं चेति । किंचाऽन्यत् । माइणोइत्यादिसूत्रं । माया परवंचनादिका बुद्धिः सा विद्यते येषांते मायाविनस्तएवंनूतामायाः परवंचनानि कृत्वा एकग्रहणे तज्जातीयग्रहणादेव क्रोधिनोमानिनोलोन्निनः संतः कामान् इछारूपान् तथा न्नोगांश्च शब्दादिविषयरूपान् समारन्नंते सेवंते। पाठांतरंवा (आरंन्नायेतिवट्टइ) त्रिन्निर्मनोवाक्कायैरारंन्नार्थं वर्त्तते । वहून् जीवान् व्यापादयन् वध्नन् अपध्वंसयन् आज्ञापयन् न्नोगार्थी वित्तोपार्जनार्थं प्रवर्त्ततइत्यर्थः । तदेवमात्मसातानुगामिन. स्वसुखलिप्सवोऽःखद्विषोविषयेषु गृद्धाः कषायकलुषितांतरात्मानः संतएवंनूताजवंति । तद्यथा । हंता

तवीर्यंतु सादिसांतमेव ॥३॥ बालवीर्यमाह। शस्त्रं प्रहरणं शास्त्रंवा धनुर्वेदायुर्वेदादिकमेके शिक्षंते प्राणिनामतिपाताय विनाशाय गृण्हंति । एके बालवीर्यवंतोमंत्रानभिचारकानधीयते । किंभूतान् प्राणिनोद्वींद्रियाद्याः । भूतानि पृथिव्यादीनि तेषां हेठकान् बाधकान्॥४॥

॥ टीका–इह बालवीर्यं कारणे कार्योपचारात्कर्मैव वीर्यत्वेनाभिहितं । सांप्रतं कारणे कार्योपचारादेव प्रमादं कर्मत्वेनापदिशन्नाह । (पमायमित्यादि)। प्रमाद्यंति सदनुष्ठानरहिताभवंति प्राणिनोयेन सप्रमादोमद्यादिः । तथाचोक्तं । (मद्यविसयकसाया, णिद्दाविगहाय पंचमे भणिया । एसपमायपमाउ, णिद्दिहो वीयरागेहिं ॥ १ ॥) तमेवंभूतं प्रमादं कर्माहुरुक्तवंतस्तीर्थकरादयोऽप्रमादंच तथाऽपरकर्मेकमाहुरिति । एतडुक्तं भवति । प्रमादापहतस्य कर्म बध्यते सकर्मणश्च यत्क्रियानुष्ठानं तद्बालवीर्यं । तथाऽप्रमत्तस्य कर्माभावोभवति । एवंविधस्य च पंडितवीर्यं भवति। एतच्च बालवीर्यं पंमितवीर्यमिति वा प्रमादवतः सकर्मणोबालवीर्यमप्रमत्तस्याऽकर्मणः पंमितवीर्यमित्येवमायोज्यं । (तब्भावादेसउवापीति) तस्य बालवीर्यस्य कर्मणश्च पंमितवीर्यस्य वा भावः सत्ता सतद्भावस्तेनाऽऽदेशोव्यपदेशस्ततस्तद्यथा बालवीर्यमभव्यानामनादि अपर्यवसितं भव्यानामनादि सपर्यवसितं वा सादिसपर्यवसितं चेति । पंमितवीर्यं तु सादिसपर्यवसितमेवेति ॥ ३ ॥ तत्र प्रमादापहतस्य सकर्मणोयद्बालवीर्यं तद्दर्शयितुमाह । (सत्थमेगेइत्यादि) । शस्त्रं खड्गादिप्रहरणं शास्त्रंवा धनुर्वेदायुर्वेदादिकं प्राण्युपमर्दकारि तत् सुष्ठु सातगौरवगृद्धाएके केचन शिक्षंते उद्यमेन गृण्हंति । तच्च शिक्षितं सत् प्राणिनां जंतूनां विनाशाय भवति। तथाहि । तत्राऽपदिश्यते एवंविधमालीढप्रत्यालीढादिभिर्जीवव्यापादयितव्ये स्थानं विधेयं । तडुक्तं । मुष्टिना छादयेल्लक्ष्यं, मुष्टौ दृष्टिं निवेशयेत् । हतं लक्ष्यं विजानीयाद्यदि मूर्धा न कंपते । १ । (तथा) एवं लावकरसः क्षयिणे देयोऽभयारिष्टाख्योमद्यविशेषश्चेति । तथैवं चौरादेः शूलारोपणादिकोदंडोविधेयः । तथा चाणिक्याभिप्रायेण परोवंचयितव्योऽर्थोपादानार्थं तथा कामशास्त्रादिकं चोद्यमेनाऽशुभाध्यवसायिनोधीयते । तदेवं शस्त्रस्य धनुर्वेदादेः शास्त्रस्य वा यदभ्यसनं तत्सर्वं बालवीर्यं । किंचैके केचन पापोदयान् मंत्रानभिचारकानाऽऽथर्वणानश्वमेधपुरुषमेधादिकं विधीयते । किंभूतानिति दर्शयति । प्राणा द्वींद्रियादयोभूतानि पृथिव्यादीनि तेषां विविधमनेकप्रकारं हेठकान् बाधान् रुक्संस्थानीयान् मंत्रान् पठंतीति । तथाचोक्तं । षट्शतानि नियुज्यंते, पशूनां मध्यमेऽहनि । अश्वमेधस्य वचनान्न्यूनानि पशुभिस्त्रिभिरित्यादि ॥ ४ ॥

स्पर्शाअसातोदयविपाकिनोनवंतीति ॥ ७ ॥ किंचाऽन्यत्संपराइयणियछंतीत्यादि) द्विविधं कर्म ईर्यापथं सांपरायिकंच । तत्र संपरायाबादरकपायास्तेन्यआगतं सांपरायिकं तज्जीवोपमर्दकत्वेन वैरानुषंगितयाऽऽत्मदुष्कृतकारिणः स्वपापविधायिनः संतोनियछं ति बध्नंति । तानेव विशिनष्टि । रागद्वेपाश्रिताः कपायकलुषितांतरात्मानः सदसद्विवेक विकलत्वात् बालाइव बालास्ते चैवंभूताः पापमसद्वेद्यं बव्हनंतं कुर्वंति विदधति ॥८॥

एयं सकम्मवीरियं, बालाणं तु पवेदितं॥इत्तो अकम्मविरियं, पं

डियाणं सुणेहमे ॥ए॥ दविए बंधणुम्मुक्के, सवउ छिन्नबंधणे ॥ प

णोल्लपावकं कम्मं,सल्लं कंततिअंतसो पाठांतरे सल्लंकंतंति अप्पणो१०

अर्थ-(एयंसकम्मवीरियं के०) एपूर्वोक्त अनुक्रमे सकर्म वीर्य कह्यो ते कर्म बांधवा नुं कारणछे माटे ए (बालाणंतुपवेदितं के०) ए बालनुं वीर्य कह्युं (इत्तो के०) ए बालवीर्य कह्यानंतर (अकम्मविरियं के०) अकर्म वीर्य ते (पंडियाणंसुणेहमे के०) पंडितनु वीर्य जाणवो ते हुं कहुंछुं माटे हे शिष्यो तमे सांभलो ॥ए॥ (दविएके०) मुक्ति गमन योग्य एवो जीव द्रव्य (बंधणुके०) राग द्वेप रूप जे कपाय तेथकी(मुक्केके०) मुक्त ए टले रहित (सवउछिन्नबंधणे के०) सर्वथा प्रकारे कर्म बंधननो छेद्य करनार एवोछतो (पणोल्लपावकंकम्मं के०) पाप कर्मने क्षय करी (सल्लंकंततिअंतसो के०) जेने पामीने जीव समस्त सल्य कापे अथवा पाठांतरे (सल्लंकंततिअप्पणोके०)पोताना शल्य कापे ॥१०॥

॥ दीपिका-तत् पूर्वोक्तं बालानां सकर्मवीर्यं प्रवेदितं । यथा जमदग्निना स्वनार्यायामकार्य प्रवृत्तः कृतवीर्योव्यापादितस्तत्पुत्रेण कार्तवीर्येण जमदग्निर्हतः पुनर्जमदग्निपुत्रेण परशु रामेण सप्तवारान् क्षत्रियाहताः पुनः कृतवीर्यसुतेन सुनूमेन त्रिःसप्तवारान् ब्राह्मणाह ताइति बालानां कर्मवीर्यमिति । इतऊर्ध्वमकर्मवीर्यं पंडितानां तन्मे मम कथयतः शृ णुत यूयं ॥ ए ॥ इव्योनव्योमुक्तियोग्योऽकपायीत्यर्थः। बंधनोन्मुक्तः कर्मरहितः सर्वत श्छिन्नबंधनः सूक्ष्मबादरकपायमुक्तः प्रणुद्य प्रेर्य पापं कर्म तत्कारणनूतान् आश्रवान् वा त्यक्त्वा शल्यतुल्यमशेपं कर्म कृंतत्यपनयति ॥ १० ॥

॥ टीका-एवं बालवीर्यं प्रदर्श्योपसंजिघृक्षुराह । (एयंसकम्मेत्यादि) । एतत् यत् प्राक् दर्शितं । तद्यथा । प्राणिनामतिपातार्थं शस्त्रं शास्त्रं वा केचन शिक्षंते । तथा परे विद्यामं त्रान् प्राणिबाधकानधीयते । तथाऽन्येमायाविनोनानाप्रकारां मायां कृत्वा कामनोगार्थं मारंनान् कुर्वते । केचन पुनरपि परे वैरिणस्तत्कुर्वंति येन वैरैरनुबध्यंते । तथाहि । जमदग्निना स्वनार्याकार्यव्यतिकरे कृतवीर्योविनाशि तत्पुत्रेणतु कार्तवीर्येण जमदग्निः

रः प्राणिव्यापादयितारस्तथाछेत्तारः कर्णनासिकादेस्तथा प्रकर्तयितारः पृष्ठोदरादेरिति ॥ ५ ॥ तदेतत्कथमित्याह (मणसाइत्यादि) अधुना सव्वमित्येतत्सूत्रपदं तदेतत्प्राण्यु पमर्दनं मनसा वाचा कायेन कृतकारितानुमतिनिश्चांतशः कायेनाऽशक्तोऽपि तंडुलम त्स्यवन्मनसैव पापानुष्ठानानुमत्या कर्म बध्नातीति । तथाऽऽरतः परतश्चेति लौकिकी वा यु क्तिरिति । एवं पर्यालोच्यमानाऐहिकामुष्मिकयोर्द्विधापि स्वयंकरणेन परकरणेनवा संयता जीवोपघातकारिणइत्यर्थः ॥ ६ ॥

वेराइं कुवई वेरी, तउ वेरेहिं रज्जती॥पावोवगाय आरंभा, डुक्क
फासाय अंतसो ॥७॥ संपराइय णियछंति, अत्तडुक्कडकारिणो ॥
रागदोसस्सिया बाला, पावं कुवंति ते बहु ॥ ७ ॥

अर्थ-(वेराइंकुवईवेरीके०) जीव घातनो करनार पुरुष ते विरोधरूप वैर ने अनेक जीवो नी साथे करे (तउवेरेहिंरज्जतीके०) तथा ते वैरे करी परलोके पण राचे एटले वैर सा थें संबंध करे (पावोवगायआरंभाके०) पापना समीप गामी एवा सावद्यानुष्ठानरूप आरं भना करनार ते (डुक्कफासायअंतसो के०) अंत काले विपाकावसरे असातावेदनीय ना उदय थकी डुःखनो स्पर्श पामे. ॥ ७ ॥ (संपराइयणियछंति के०) साते कर्म बां धवाना बे प्रकार कह्याछे एक इर्यापथिकिक्रिया अने बीजी सांपराइकिक्रिया ए बे थकी जीव कर्मनो बंध बांधेछे (अत्तडुक्कडकारिणो के०) आत्म डुष्कृतकारी एटले स्वयं पापकारी (रागदोसस्सियाबाला के०) रागद्वेषाश्रित एटले राग द्वेषे व्याकुल बाल एटले अज्ञा नी सदसद् विवेक रहित एवा छता (पावंकुवंतितेबहुके०) ते पुरुषो पोताना आत्माना घात करनार एटले आत्माने डुःखना देनारा एवा घणा पाप करे. ॥ ७ ॥

॥ दीपिका-वैरी सजीवोवैराणि करोति ततोऽपैरवैरैरनुरुध्यते वैरपरंपरानुषंगी स्या दित्यर्थः । आरंभाः पापोपगाः पापयुक्ताअंतशोविपाककालडुःखदायिनः स्युः ॥ ७ ॥ आत्मडुष्कृतकारिणः स्वपापविधायिनः सांपरायिकं कर्म नियछंति बध्नंति। ते किंभूताः रा गद्वेषाश्रिताबालाः पापं कुर्वंति बहूनंतं । कर्मद्विधा । ईर्यापथं सांपरायिकंच तत्र संपराया बादरकषायास्तेन्यआगतं सांपरायिकं जीवघातहेतुत्वेन कषायोछं कर्म बध्नंतीत्यर्थः॥ ७ ॥

॥ टीका-सांप्रतं जीवोपघातविपाकदर्शनार्थमाह । (वेराइंइत्यादि) । वैरमस्यास्ती ति वैरी सजीवोपमर्दकारी जन्मशतानुबंधीनि वैराणि करोति । ततोऽपि च वैरादपैरवैरै रनुरुध्यते । वैरपरंपरानुषंगी भवतीत्यर्थः । किमिति । यतः पापं उपसामीप्येन गछंती ति पापोपगाः । कएते आरंभाः सावधानरूपाः। अंतशोविपाककाले डुःखं स्पृशंतीति डुःख

तथा मांमलिकादिकना स्थानके तिर्यंचने विषे पण क्यांएक इष्टजोग नूम्यादिक स्थानके ते सर्व स्थानने (चइस्संति के०) गंमशे (एसंसउ के०) एमां संदेहकरवो नही तथा (णायएहि के०) ज्ञाति गोत्री (सुहीहिया के०) सुहृद एटले बांधवादिक (अणियंतेअयंवासे के०) ए सर्वनुं अनित्य अशाश्वत एवो वासके ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—नैय्यायिकं मोक्षनयनशीलं श्रुताख्यातं धर्ममुपादाय गृहीत्वा समीहते सम्यक् मोक्षाय ईहते चेष्टते जूयोजूयः पुनः पुनः दुःखावासं बालवीर्यवान् स्यात् यथाय था बालवीर्यवान् स्यात् तथातथाऽशुजत्वं दुर्ध्यानं प्रवर्धते ततश्च नरकादिदुःखं ॥११॥ स्थानानि विद्यंते येषांते स्थानिनोदेवलोकादिशुजस्थानवर्तिनः स्थानानि त्यक्ष्यं ति नात्र संशयोऽशाश्वतत्वादिंद्रत्वचक्रित्वादीनां । यतः । सुचिरतरमुषित्वा बांधवैर्वि प्रयोगः सुचिरमपि हि रंत्वा नास्ति जोगेषु तृप्तिः ॥ सुचिरमपि हि पुष्टं याति नाशं शरीरं, सुचिरमपि विचिंत्योधर्मएकः सहायः ॥ १ ॥ इतिज्ञातकैः स्वजनैः सुहृद्भिश्च सहवासोय मनियतः कियत्कालस्थायी ननित्यः ॥ १२ ॥

॥ टीका—यदुपादाय शल्यमपनयति तद्दर्शयितुमाह । (नेयाउयमित्यादि) नयनशी लोनेता । नयतेस्ताच्छीलिकस्तृन् । सचाऽत्र सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकोमोक्षमार्गः श्रु तचारित्ररूपोवा धर्मोमोक्षनयनशीलवान् गृह्यते । मार्गं धर्मं वा मोक्षं प्रति नेतारं सुष्ठु तीर्थकरादिभिराख्यातं स्वाख्यातं तमुपादाय गृहीत्वा सम्यक् मोक्षाय चेष्टते ध्यानाध्यय नादावुद्यमं विधत्ते ।धर्मध्यानारोहणालंबनायाह । जूयोजूयः पौनःपुन्येन यद्बालवीर्यं त दतीतानागतानंतनवग्रहणेषु दुःखमावासयतीति दुःखावासं वर्तते । यथा यथाच बाल वीर्यवान् नरकादिषु दुःखवासेषु पर्यटति तथातथा चास्याऽशुजाध्यवसायित्वाद शुतमेव प्रवर्धते इत्येवं संसारस्वरूपमनुपेक्ष्यमाणस्य धर्मध्यानं प्रवर्ततइति ॥ ११ ॥ सां प्रतमनित्यजावनामधिकृत्याह । (ठाणीविविहेत्यादि)। स्थानानि विद्यंते येषांते स्थानिनः । तद्यथा देवलोके इंद्रस्तत्समानानि त्रयस्त्रिंशत्पार्षद्यादीनि मनुष्येष्वपि च क्रवर्तिबलदेववासुदेवमहामंमलिकादीनि । तिर्यक्ष्वपि यानि कानिचिदिष्टानि जोगजू म्यादौ स्थानानि तानि सर्वाण्यपि विविधानि नानाप्रकाराण्युत्तमाधममध्यमानि तेषु स्था निनस्त्यक्ष्यंति नात्र संशयोविधेयइति । तथाचोक्तं । अशाश्वतानि स्थानानि सर्वाणि दि वि चेह च देवासुरमनुष्याणामृद्धयश्च सुखानिच तथाऽयं ज्ञातिभिः सहबंधुभिः सार्धं सहान्यै श्च मित्रैः सुहृद्भिर्यः संवासः सोऽनित्योऽशाश्वतइति । तथाचोक्तं । सुचितरमुषित्वा बांध वैर्विप्रयोगः सुचिरमपिहि रंत्वा नास्ति जोगेषु तृप्तिः । सुचिरमपि हि पुष्टं याति नाशं शरीरं ॥

जमदग्निसुतेन परशुरामेण सप्तवारान् निःक्षत्रा पृथिवी कृता । पुनः कार्तवीर्यसुतेन तु सुभूमेन त्रिःसप्तकृत्वोब्राह्मणाव्यापादिताः । तथाचोक्तं । अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान् । अधिकां कुरुते हि यातनां, द्विषतां जातमशेषमुद्धरेत् ॥१॥ तदेवं कषायवशगाः प्राणिनस्तत्कुर्वंति । येन पुत्रपौत्रादिष्वपि वैरानुबंधोभवति । तदेतत्सकर्मणां बालानां वीर्यं । तुशब्दात्प्रमादवतां च प्रकर्षेण वेदितं प्रवेदितं प्रतिपादितमिति यावत् । अतऊर्ध्वमकर्मणां पंडितानां यद्वीर्यं तन्मे मम कथयतः शृणुत यूयमिति॥ए॥ यथाप्रतिज्ञातमेवाह (दविएइत्यादि) द्रव्योभव्योमुक्तिगमनयोग्यः । द्रव्यं च भव्यइति वचनात् । रागद्वेषविरहाद्वा द्रव्यभूतोऽकषायीत्यर्थः । यदिवा वीतरागइति । वीतरागोऽल्पकषायइत्यर्थः । तथाचोक्तं । किंसक्कावोत्तुंजे, सरागधम्मंमि कोइअकसायी । संतेविजोकषाए, निगिएहइसोवि तत्तुल्लो ॥१॥ सच किंभूतोभवतीति दर्शयति । बंधनात्कषायात्मकान्मुक्तोबंधनोन्मुक्तः । बंधनं तु कषायाणां कर्मस्थितिहेतुत्वात् । तथाचोक्तं । (बंधछिइकसायवसा इति) यदिवा बंधनोन्मुक्तइव बंधनोन्मुक्तः । तथा परः सर्वतः सर्वप्रकारेण सूक्ष्मबादररूपं छिन्नमपनीतं बंधनं कषायात्मकं येन सछिन्नबंधनः । तथा प्रणुद्य प्रेर्य पापं कर्म कारणभूतान्वाऽऽश्रवानपनीय शल्यवच्छल्यं शेषकं कर्म तत् कृंतत्यपनयत्यंतशोनिरवशेषतो विघटयति । पाठांतरंवा । (सल्लंकंतइअप्पणोत्ति) शल्यभूतं यदष्टप्रकारं कर्म तदात्मनः संबधि कृंतति छिनत्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

नेयाउयं सुयरकायं, उवादाय समीहए॥ भुज्जोभुज्जो डुहावासं, असुहत्तं तहातहा ॥ ११ ॥ ठाणी विविहठाणाणि, चइस्संति ण संसउ ॥ अणियंते अयं वासे, णायएहि सुहीहिय ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे जे वस्तु पामीने शल्यने छेदे ते देखाडेछे. (नेयाउयंसुयरकायंके०)न्याय एटले ज्ञान दर्शन चारित्ररूप जे मोक्ष मार्ग श्री तीर्थंकर देवनो भाष्यो (उवादायके०) तेने उपादान एटले ग्रहण करीने (समीहएके०) धर्म ध्याननने विषे उद्यम करे अने (भुज्जोभुज्जो डुहावासंके०) जे बालवीर्यवंतते वली वली अनंतभव ग्रहणने विषे जेम जेम नरकादिक डुःखना आवासोने विषे पर्यटन करे (तहातहा के०) तेम तेम (असुहत्तंके०) अशुभत्वं एटले डुर्ध्यानपणु प्रवर्द्धमान थाय एवो संसारनुं स्वरूप जाणीने पंमित पुरुष धर्मध्यानने विषे प्रवर्त्ते ॥ ११ ॥ हवे संसारनुं अनित्य पणु देखाडेछे. (ठाणीविविहठाणाणि के०) जे जीवना विविध प्रकारना प्रधान स्थानकछे तद्यथा देवलोकमां इंद्र तथा सामानिक त्रयस्त्रिंशकादिकना स्थानछे मनुष्यने विषे चक्रवर्त्ती वासुदेव बलदेव

यति। सहसम्मत्या स्वमत्यावा विशिष्टाभिनिबोधिकज्ञानेन श्रुतज्ञानेनावधिज्ञानेन वा स्वप राववोधकत्वात् ज्ञानस्य तेन सह धर्मस्य सारं ज्ञात्वेत्यर्थः । अन्येन्योवा तीर्थंकरगण धराचार्यादिभ्यइलापुत्रवत् श्रुत्वा चिलातपुत्रवद्दा धर्मसारमुपगच्छति । धर्मस्य वा सारं चारित्रं तत्प्रतिपद्यते तत्प्रतिपत्तौच पूर्वोपात्तकर्मक्षयार्थं पंडितवीर्यसंपन्नोरागादिबंधन विमुक्तोबालवीर्यरहितउत्तरोत्तरगुणसंपत्तये समुपस्थितोऽनगारः प्रवर्धमानपरिणामः प्र त्याख्यातं निराकृतं पापकं सावद्यानुष्ठानरूपं येनाऽसौ प्रत्याख्यातपापकोभवतीति ॥१४॥

जं किंचुवक्कमं जाणे, आउक्खेमस्स अप्पणो ॥ तस्सेव अंतरा खिप्पं, सिक्खं सिक्खेज्ज पंडिए ॥१५॥ जहा कुम्मे सअंगाइं, स ए देहे समाहरे ॥ एवं पावाइं मेधावी, अज्झप्पेण समाहरे ॥ १६ ॥

अर्थ-(जंकिंच के०) जे कोइ प्रकारे करी (अप्पणो के०) पोतानो (आउखेम स्सके०) खेमे कुशले करी आयुष्यनो (उवक्कमंजाणेके०) उपक्रम एटले विनाश जाणे अर्थात् पोतानुं मरण जाणे (तस्सेवअंतराखिप्पंके०) तेना अंतराले एटले विचाले क्षिप्र एटले उतावलो (सिक्खंसिक्खेज्जपंडिएके०) ते पंडित संलेपणारूप शिक्षा शीखे अने ते शि क्षाने मरणावधि सुधि अंगीकार करे ॥१५॥ (जहाके०) जेम (कुम्मेसअंगाइंके०) कांचवो पोताना अंग तथा हाथ मस्तकादिक उपांगने (सएदेहेसमाहरे के०) पोताना देहने विषे गोपवे (एवं के०) एरीते (मेधावी के०) पंडितजे छे ते पण (पावाइं के०) पापजे सावद्यानुष्ठान रूप तेने (अज्झप्पेण के०) अध्यात्म एटले सम्यक् दर्शन ज्ञा नादिक भावनायें करी (समाहरे के०) उपसंहरे एटले मरण काल सुधी संलेप णायें करी पापकर्मने निर्जरे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका-आयुःक्षेमस्य स्वायुषउपक्रमं क्षयं जानीयात् ज्ञात्वा च तस्योपक्रमस्य कालस्य वा अंतराले क्षिप्रमेव अनाकुलः पंडितः संलेखनारूपां शिक्षां भक्तपरिज्ञेंगितमर णादिकां वा शिक्षेत् ॥१५॥ यथा कूर्मः स्वान्यंगानि स्वके देहे समाहरेद्गोपायेत् एवं मेधावी पंडितः पापानि पापानुष्ठानान्यध्यात्मना सम्यक् ज्ञानादिभावनया समाहरेदुपसंहरेत्॥१६

॥ टीका-किंचान्यत् (जंकिंचुवक्कममित्यादि) उपक्रम्यते संवर्त्यते क्षयमुपनीयते आयुर्येन सउपक्रमस्तं यं कंचन जानीयात् । कस्यायुःक्षेमस्य स्वायुषइति । इदमुक्तं भव ति । स्वायुष्कस्य येन केनचित्प्रकारेणोपक्रमोभावी यस्मिन्वा काले तत्परिज्ञाय तस्योपक्र मस्य कालस्यवा अंतराले क्षिप्रमेवाऽनाकुलोजीवितानाशंसी पंडितोविवेकी संलेखना

सुचिरमपि विचिंत्यो धर्मएकः सहायइति ॥१॥ चकारौ धनधान्यद्विपदचतुष्पदशरीराद्यनित्यत्वनावनार्थौ । अशरणाद्यशेषनावनार्थंचा ऽनुक्तसमुच्चयार्थमुपात्ताविति ॥ १२ ॥

एवमादाय मेहावी, अप्पणो गिद्धिमुद्धरे ॥ आरियं उवसंपज्जे,
सव्वधम्ममकोवियं ॥ १३ ॥ सहसंमइए णच्चा, धम्मसारं सुणे
तु वा ॥ समुवठिएउ अणगारे पच्चरकाय पावए ॥ १४ ॥

अर्थ—(एवमादायमेहावीके०) एरीते पंमित पुरुषे अवधारीने (अप्पणोगिद्धिमुद्धरे के०) पोतानो ममत्व स्वनाव उद्धरे एटले स्वजनादिकने विषे ममत्व नकरे (आरियंउवसंपज्जेके०) आर्यजे वीतराग प्रणीत मोक्षमार्गरूप धर्म तेने आदरे तेधर्म केवो ले तोके (सव्वधम्ममगोवियंके०) सर्व धर्ममांहे प्रधान अगोपित एटले अदूषितले प्रगटले ॥१३॥ हवे शुद्धधर्म परिज्ञान जेरीते थाय तेरीते कहेछे. (सहसंमइएणच्चाके०)जाति स्मरणादिके करी तथा पोतानी मतिये करी जाणीने (वाके०) अथवा अन्य गुर्वादिक पाशेथी (धम्मसारंसुणेतुके०) धर्मनो सार जे चारित्र तेने सांनलीने अंगीकार करे(समुवठिएउअणगारे के०) पंमित वीर्यें संपन्न एवो साधु संयमने विषे उद्यमवंत थको (पच्चरकायपावए के०) पापकर्म जे सावद्यानुष्ठान तेने पच्चरके एटले निराकरे ॥१४॥

॥ दीपिका—सर्वमनित्यमेवमादाय एवं ज्ञात्वा मेधावी आत्मनोगृद्धिं ममत्वमुद्धरेत् त्यजेत् आर्यं मोक्षमार्गमुपसंपाद्येताधितिष्ठेदाश्रयेत् । किंनूतं सर्वैः कुतीर्थधर्मैरकोपितोऽदूषितश्च ॥१३॥ धर्मसारं धर्मरहस्यं ज्ञात्वा (सहसंमइएइत्यादि) ज्ञातेनतीर्थकरादिन्योवा श्रुत्वा चारित्रं प्रतिपद्यते । उपस्थितउत्तरोत्तरगुणसंपत्तयेऽन्युद्यतोऽनगारः प्रत्याख्यातं निराकृतं पापं येन सप्रत्याख्यातपापकः स्यात् ॥ १४ ॥

॥ टीका—अपिच । (एवमादायेत्यादि) अनित्यानि सर्वाण्यपि स्थानानीत्येवमादायावधार्य मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः सदसद्विवेकी वा आत्मनः संबंधिनीं गृद्धिं गार्ध्यं ममत्वमुद्धरेदपनयेन्ममेदमहमस्य स्वामीत्येवं ममत्वं क्वचिदपि न कुर्यात् । तथा । आराज्जातः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्योमोक्षमार्गस्तमुपसंपद्येताऽधितिष्ठेत् समाश्रयेदिति । किंनूतं मार्गमित्याह । सर्वैः कुतीर्थकधर्मैरकोपितोऽदूषितः स्वमहिम्नैव दूषयितुमशक्यत्वात् प्रतिष्ठां गतः । यदिवा सर्वैर्धर्मैः स्वनावैरनुष्ठानरूपैरगोपितं कुत्सितकर्त्तव्यानावात् प्रकटमित्यर्थः ॥ १३ ॥ सुधर्मपरिज्ञानंच यथा नवति तद्दर्शयितुमाह । (सहसंमइएइत्यादि) धर्मस्यसारः परमार्थोधर्मसारस्तं ज्ञात्वाऽवबुध्य । कथमिति दर्शि

॥ दीपिका—अनशने शेषकाले वा हस्तौ पादौ च संहरे व्यापारान्निवर्तयेत्। तथा मन श्चित्तं पंचेंद्रियाणि च विषयेभ्योनिवर्तयेत् पापकमशुभं परिणामं नाषादोषं च सावद्यां नाषां संहरेत्॥ १ ७॥ आयतार्थं मोक्षं सुष्ठु आदाय गृहीत्वा कामक्रोधादिकं जयेत् एतद्वीरस्य वीरत्वं तथा सातगौरवं सुखशीलता तत्र निवृतोऽनुद्यमउपशांतः क्षमावान् नविद्यते निहा माया यस्यासावनिहोमायाप्रपंचरहितश्चरेत्संयमे ॥ १ ८ ॥

॥ टीका—संहरणप्रकारमाह (साहरेत्यादि) पादपोपगमने इंगिनमरणे नक्तपरिज्ञा यां शेषकाले वा कूर्मवद्धस्तौ पादौ च संहरेद्व्यापारान्निवर्त्तयेत् । तथा मनोऽतःकरणं तच्चाऽकुशलव्यापारेभ्योनिवर्तयेत् । तथा शब्दादिविषयेभ्योऽनुकूलप्रतिकूलेभ्योऽरक्तद्वि ष्टतया श्रोत्रेंद्रियादीनि पंचाऽपींद्रियाणि । चशब्दः समुच्चये । तथा पापकं परिणाममैहि कामुष्मिकाशंसारूपं संहरेदित्येवं नाषादोषंच तादृशपापरूपं संहरेत् मनोवाक्काय गुप्तः सन् दुर्लनं संयममवाप्य पंमितमरणं वाऽशेषकर्मक्षयार्थं सम्यगनुपालयेदिति । तंच संयमे पराक्रममाणं कश्चित् पूजासत्कारादिना निमंत्रयेत् । तत्राऽऽत्मोत्कर्षोन का र्यइति दर्शयितुमाह ॥ १ ७ ॥ (अणुमाणं चेत्यादि) चक्रवर्त्यादिना सत्कारादिना पूज्य मानेनाऽणुरपि स्तोकोऽपि मानोऽहंकारोन विधेयः किमुत महान् । यदि वोत्तममरणो पस्थितेनोग्रतपोनिष्टप्तदेहेन वा अहोऽहमित्येवंरूपस्तोकोऽपि गर्वोन विधेयः । तथा पंमुरार्ययेव स्तोकाऽपि माया न विधेया किमुत महतीत्येवं क्रोधलोनावपि न विधेयावि ति । एवं द्विविधयापि परिज्ञया कषायांस्तद्विपाकांश्च परिज्ञाय तेभ्योनिवृत्तिं कुर्यादिति । पाठांतरंवा। अश्माणंचमाइंच तंपरिस्साचपंमिए। अतीव मानोतिमानः सुनूमादीनामिव तं दुःखावहमित्येवं ज्ञात्वा परिहरेत्। इदमुक्तं नवति। यद्यपि सरागस्य कदाचिन्मानोदयः स्या त्तथाप्युदयप्राप्तस्य विफलीकरणं कुर्यादित्येवं मायायामप्यायोज्यं । पाठांतरंवा । (सुयं मे इहमेगेसिं, एयं वीरस्स वीरियं ।) येन बलेन संग्रामशिरसि महति सुनटे परानीकं वि जयते तत्परमार्थतोवीर्यं ननवत्यपितु येन कामक्रोधादीन् विजयते तद्वीरस्य म हापुरुषस्य वीर्यमिहैवाऽस्मिन्नेव संसारे मनुष्यजन्मनि चैकेषां तीर्थंकरादीनां संबंधि वाक्यं मया श्रुतं वा । पाठांतरंवा । (आयतट्ठं समादाय, एवं वीरस्स वीरियं) आ यतोमोक्षोऽपर्यवसितावस्थानत्वात् । सचाऽसावर्थश्च तदर्थोवा तत्प्रयोजनोवा सम्यक् दर्शनज्ञानचारित्रमार्गः सआयतार्थस्तं दृष्ट्वाऽऽदाय गृहीत्वा योधृतिबलेनकामक्रोधादि विजयाय च पराक्रमते । एतद्वीरस्य वीर्यमिति यदुक्तमासीत् किंतु वीरस्य वीरत्वमिति तद्यथाभवति तत्तथाख्यातं । किंचाऽन्यत् सातगौरवं नाम सुखशीलता तत्र निवृत स्तदर्थमनुद्युक्तइत्यर्थः । तथा क्रोधाग्निजयादुपशांतः शीतीनूतः शब्दादिविषयेभ्यो

नुरूपां शिक्षां नक्तपरिज्ञेंगितमरणादिकां वा शिक्षेत् । तत्र ग्रहणशिक्षया यथावन्मरण विधिं विज्ञायाऽऽसेवनाशिक्षया सेवेतेति ॥१५॥ किंचान्यत् । (जहाकुम्मेइत्यादि) । यथेत्यु दाहरणप्रदर्शनार्थः । यथा कूर्मः कच्छपः स्वान्यंगानि शिरोधरादीनि स्वके देहे समाहरेद्गोप येदव्यापाराणि कुर्यादेवमनयैव प्रक्रियया मेधावी मर्यादावान् सदसद्विवेककी वा पापानि पापरूपाण्यनुष्ठानान्यध्यात्मना सम्यक् धर्मज्ञानादिनावनया समाहरेडुपसंहरेन्मरणकाले चोपस्थिते सम्यक्संलेखनया संलिखितकायः पंमितमरणेनाऽऽत्मानं समाहरेदिति ॥१६॥

साहरे हत्नपाएय, मणं पंचेंदियाणिय ॥ पावकं च परीणामं, नासा दोसंच तारिसं ॥ १७ ॥ अणुमाणंच मायंच, तं पडिन्नाय पंमिए ॥ (पाठां तरं अइमाणं च माइंच तं परिणाय पंडिए) द्वितीय पाठांतरं (सुयंमे इहमेगेसिं, एयं वीरस्स वीरियं (तृतीय पाठांतरं । आयतठं समादा य एयं वीरस्स वीरियं) ॥ सातागारवणिहुए, उवसंते णिहेचरे ॥ १८ ॥

अर्थ-(साहरे हत्नपाएयके०) काचबानी पेरे हाथ पग अंगोपांगादिकने गोपवीराखे (मणंपंचेदियाणियके०) तथा मनना अकुशल व्यापार तथा श्रोत्रादिक सर्व इंद्रिउना विषय थकी निवर्त्ते तथा (पावकंचपरीणामंके०) मननो पाप मय परिणाम एटले माठो अनिप्राय (नासादोसंचतारिसंके०) ज्यारे कांइ प्रयोजन पडे त्यारे तेवोजजे पापरूप नाषानो दोष तेने पण संवरे ॥१७॥ तथा कोइ पूजा सत्कार करे तेवारे मान टालवुं ते आश्री कहेठे. (अणुमाणंच मायंचके०) अल्पमान अल्पमाया अने चकारथकी अनुक्रमे क्रोध तथा लोन पण लेवो (तंपडिन्नाय पंमिए के० तेंने जाणीने पंमित विवेकी जन होयते अंहीं पा ठांतरे अइमाणमिति अत्यंतमान अत्यंतमाया तेमज अत्यंत क्रोध अने लोन एनो सर्वथा प्रकारे त्याग करे एम पण कह्युंठे बीजुं पाठांतर (सुयंमेइ हमेगेसिं के०) एरीते में गु रुनी पासेथी सम्यक् प्रकारे सांनल्युंठे के (एयंवीरस्स वीरियं के०) ए क्रोधादिकना जय थी वीर पुरुषनुं वीर्य पराक्रम जाणवुं पण जे संग्राममां शत्रुने ह णेते परमार्थे वीर सुनट नकहेवाय तीजुंपाठांतर (आयतठंके०) मोक्षनो अर्थि आत्महितेष्ट एवो साधु (स मादायके०) ते चारित्रने रुडीरीते ग्रहण करीने पठी क्रोधादिकने जीतवानो उद्यम करे (एयंवीरस्सवीरियंके०) ए प्रकारे वीर पुरुषनुं वीर्य जाणवो तथा (सातागारवणिहुए के०) सातागारवने विषे निवृत्त एटले अनुद्युक्त अर्थात् साता गारवे करी रहित तथा (उवसंतेणिहेचरे के०) उपशांत एटले कषायना जीतवा थकी क्षमावान् तथा माया रहित ठतो संयमानुष्ठान आचरे ए शुद्ध मार्गनो नाव जाणवो ॥ १८ ॥

तातिचारइत्येवंभूतं वा मनसापि न प्रार्थयेत् । कायेनापि सर्वतः सबाह्याभ्यंतरगनः संवृतोगुप्तोदांतइंद्रियदमेन आदानं सम्यक्दर्शनादिकं सुष्टु आहारं गृण्हीयात् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंच (पाणेइत्यादि) प्राणप्रियाणां प्राणिनां प्राणान्नातिपातयेत् । तथा परेणाऽदत्तं दंतशोधनमात्रमपि नाददीत नगृण्हीयात् । तथा । सद्भादिना मायया वर्त्ततइति सादिकं समायं मृपावादं न ब्रूयात् । तथाहि । परवंचनार्थं मृषावादोऽधिक्रियते सच न मायामंतरेण भवतीत्यतोमृषावादस्य माया आदिभूता वर्त्तते । इदमुक्तं भवति । योहि परवंचनार्थं समायोमृपावादः सपरिह्रियते । यस्तु संयमगुप्त्यर्थं नमया मृगाऽप लब्धाइत्यादिकः सन दोपायेति । एपयः प्राक् निर्दिष्टो धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्वभावोवा (वुसीमउत्ति) छांदसत्वान्निर्देशार्थस्त्वयं । वस्तूनि ज्ञानादीनि तद्वतोज्ञानादिमतइत्यर्थः । यदिवा । (वुसीमउत्ति) वश्यस्य आत्मवशगस्य वश्येंद्रियस्येत्यर्थः ॥ १९ ॥ अपिच (अइक्कमंतीत्यादि) प्राणिनामतिक्रमं पीडात्मकं महाव्रतातिक्रमंवा मनोऽवष्टब्धतया परतिरस्कारंवा इत्येवंभूतमतिक्रमं वाचा मनसाऽपि न प्रार्थयेत । एतद्द्वयनिषेधेच कायातिक्रमोदूरतएव निषिद्धोभवति । तदेवं मनोवाक्कायः कृतकारितानुमतिभिश्च नवकेन भेदेनातिक्रमं न कुर्यात् । तथा इंद्रियदमनेन तपसा वा दांतः सन् मोक्षस्यादानमुपादानं सम्यग्दर्शनादिकं सुष्ठूद्युक्तः सम्यग्विस्रोतसिकारहितआहरेत् आददीत गृण्हीयादित्यर्थः॥ २०॥

कडंच कज्जमाणंच, आगमिस्संच पावगं ॥ सव्वं तं णाणुजाणंति,
आयगुत्ता जिइंदिया ॥२१॥ जे अवुद्धा महाभागा, वीरा अस
मत्त दंसिणो ॥ असुद्धं तेसि परक्कतं, सफलं होइ सव्वसो ॥२२॥

अर्थ–(कडंचकज्जमाणंच के०) साधुने उद्देशीने जे कोइ अनार्य पुरुषे कर्युं एवुं जे पाप तथा वर्त्तमान काले जे पाप करेछे (आगमिस्संचपावगंके०)तथा आगामिक काले जे पाप कर्म सावद्यानुष्ठान आरंभादिक साधुने अर्थे जे करशे (सव्वंतंणाणुजाणंति के०) ते सर्वने मन वचन अने कायायें करी अनु मोदे नही ते कोण अनुमोदे नही तोके (आयगुत्ताजिइंदिया के०) जे महानुभाव आत्मगुप्त जितेंद्रिय होय ते एवा पाप कृत्यने अनुमोदे नही. ॥ २१ ॥ (जेअवुद्धामहाभागा के०) जे अबुद्ध तत्व मार्गना अजाण परंतु व्याकर्णादिक भणेला तेथी लोक मांहे पूज्य मोटा केवाय एवा (वीरा के०) वीर पुरुष पण (असमत्तदंसिणो के०) सम्यक्त्व परिज्ञान थकी विकल होय (असुद्धंतेसिपरक्कंतं के०) एवा पुरुषनुं जे कांइ दान तप नियमादिकने विषे पराक्रम एटले उद्यम ते अशुद्ध जाणवो (सफलंहोइसव्वसो के०) ते सर्व कर्मबंधना

ऽप्यनुकूलप्रतिकूलेन्योऽरक्तद्दिष्टतयोपशांतोजितेंद्रियत्वात्तेन्योनिवृत्तइति । तथा निहन्यं ते प्राणिनः संसारे यया सा निहा माया नविद्यते सा यस्याऽसावनिहोमायाप्रपंच रहितइत्यर्थः । तथा मानरहितोलोभवर्जितइत्यपि ड्रष्टव्यं । सचैवंभूतः संयमानुष्ठानं चरेत् कुर्यादिति । तदेवं मरणकालेऽन्यदा वा पंडितोवीर्यवान् महाव्रतेपूद्यतः स्यात् । तत्राऽपि प्राणातिपातविरतिरेव गरीयसीति कृत्वा तत्प्रतिपादनार्थमाह । (उडूमहे तिरियंवा जेपाणा तसथावरा ॥ सव्वछ विरतिं कुक्का, संति निव्वाणमाहियं॥१॥) अयंच श्लोकोन सूत्रादर्शेषु दृष्टष्टीकायांतु दृष्टइति कृत्वा लिखितउत्तानार्थश्चेति ॥ १८ ॥

पाणेय णाइवाएज्जा, अदिन्नं पियणादए॥ सादियं ण मुसं बूया एस धम्मे बुसीमउ ॥ १९ ॥ अतिक्कम्मंति वायाए,मणसा वि न पछए ॥ सवउ संवुमे दंते, आयाणंसु समाहरे ॥ २० ॥

अर्थ-(पाणेयणाइवाएज्जा के०) प्राणीउना प्राणने हणे नही (अदिन्नं पियणा दए के०) तथा दंत शोधनमात्र पण अदत्त लीए नही (सादियंणमुसंवूया के०) माया सहित मृषावाद न बोले केम के परवंचना निमित्त जे मृषा बोलाय छे ते मायाविना बोलातुं नथी किंतु माया सहितज बोलायछे ते माटे मृषानी आदि ते मायाज जाणवी तेवी मायाने परिहरे त्यागे (एसधम्मेबुसीमउ के०) संयमवंतनो तथा जीतेंद्रिय साधुनो एहिज धर्म सत्य जाणवो ॥ १९ ॥ (अतिक्कम्मंतिवायाए के०) महाव्रतोनुं अतिक्रम एटले उलंघन करवानी वचने करी (मणसाविनपछए के०) तथा मने करी पण प्रार्थना करे नही ए बन्नेना निषेधवा थकी त्रीजो कायानो अतिक्रम दूर थकीज निषेध्यो एम पोतानी मेलेज जाणी लेवो (सव्वउसंवुमेदंते के०) सर्व थकी करण करावण तथा अनुमतियें करी बाह्याभ्यंतर भेदेकरी संवृत गुप्तेंद्रिय एवो छतो (आयाणं सुसमाहरे के०) आदान एटले सम्यक् दर्शनादिकनुं ग्रहण करे तथा सुध्धआहार ग्रहण करे एम ग्रहण करेली चारित्रने सम्यक् प्रकारे शुध्द क्रियासहित पाले.॥२०॥

॥ दीपिका-प्राणिनां प्राणान् नातिपातयेत् परेणाऽदत्तं किंचिन्नाददीत नगृह्णीयात् सह आदिना मायया वर्तते इति सादिकं समायं मृषावादं न ब्रूयात्।परवंचनार्थं मृषावादोऽधिक्रियते च न मायामंतरेण स्यात्ततोमृषावादस्य माया आदिभूता । कोर्थः । योहि परवंचनार्थं समायोमृषावादः सत्यज्यते । यस्तु संयमगुप्त्यर्थं नमया मृगादृष्टाइत्यादिकः स न दोषाय (एसधम्मोबुसीमउत्ति) वस्तुमतः वस्तूनि ज्ञानादीनि विद्यते यस्य स वस्तुमान् साधुस्तस्य अथवा वश्यस्य वशीकृतेंद्रियस्येत्यर्थः ॥ १९ ॥ अतिक्रमं महाव्र

र्थैः। तेषां च बालानां यत्किमपि तपोदानाध्ययनयमनियमादिषु पराक्रांतमुद्यमकृतस्तद शुद्धमविशुद्धकारि प्रत्युत कर्मबंधाय भावोपहतत्वात् सनिदानत्वाच्चेति कुवैद्यचिकित्सा वद्विपरीतानुबंधीति। तत्र तेषां पराक्रांतं सहफलेन कर्मबंधेन वर्ततइति सफलं सर्वश इति सर्वोऽपि तत्क्रिया तपोनुष्ठानादिका कर्मबंधायैवेति ॥ २२ ॥

जेय बुद्धा महाभागा, वीरा सम्मत्तदंसिणो॥सुद्धं तेसिं परक्कंतं,
अफलं होइ सव्वसो ॥ २३॥ तेसिंपि तवो असुद्धो, निक्खंता जे
महाकुला ॥ जन्ने वन्ने वियाणंति, नसिलोगं पवेज्जए ॥ २४ ॥

अर्थ-(जेयबुद्धामहाभागा के०) जे बुद्ध तत्व मार्गना जाण एवा तीर्थंकरादिक मोटा पूज्य पुरुष (वीरासम्मत्तदंसिणो के०) घनघाती कर्म विदारवाने सुभवीर सम्यक्त्व दृष्टि होय (सुद्धंतेसिंपरक्कंतं के०) तेमनो जेटलो नियमादिक क्रिया अनुष्ठानने विषे उद्यमने ते सर्व शुद्ध निर्मल जाणवो (अफलंहोइसव्वसो के०) ते सर्व उद्यम कर्मबंधना कारणने विषे अफल थाय किंतु सुवैद्यचिकित्सानीपेरे ते कर्म निर्जरानुंज कारण थाय ॥२३॥ तेसिंपितवोअसुद्धोके०) तेनुं तपजे अनशनादिक ते पण अशुद्ध जाणवुं ते कोनुं अशुद्ध जाणवुं तोके(निक्खंताजेमहाकुलाके०) जेमोटा इक्ष्वाकादिक कुल तेथकी नीकलीने चारित्रिया थया ठता पण (जन्नेवन्नेवियाणंति के०) जे मुनीश्वर पूजा सत्कारने अर्थे तप करे तेनो तप पण निःफल माटे अशुद्ध जाणवो अने जे तप करतां अनेरा गृहस्थादिक जाणे नही (नसिलोगंपवेज्जए के०) जे तपमां पोतानी श्लाघा प्रसंसा नबोले ते तप आत्मनेहिते जाणवो ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—ये बुद्धाज्ञाततत्वामहाभागामहापूजाभाजोवीराः सम्यक्दर्शिनास्तज्ज्ञास्तेषां यत्पराक्रांतमनुष्ठितं तत् शुद्धमफलं कर्मबंधरहितं भवति सर्वतः ॥२३ ॥ महत्कुलं येषांते महाकुलानिष्क्रांताः प्रव्रजितास्तेषामपि पूजासत्काराद्यर्थं यत्तपस्तदशुद्धं स्यात् यत्तपः क्रियमाणं नान्ये विजानंति तत्कार्यं नैवात्मश्लाघां प्रवेदयेत् प्रकाशयेत्॥ २४ ॥

॥ टीका—सांप्रतं पंडितवीर्येणाधिकृत्याह । (जेयबुद्धाइत्यादि) ये केचन स्वयंबुद्धास्तीर्थकराद्यास्तच्छिष्यावा बुद्धबोधितागणधरादयोमहाभागामहापूजाभाजोवीराः कर्मविदारणसहिष्णवोज्ञानादिभिर्वा गुणैर्विराजंतइतिवीराः । तथा सम्यक्त्वदर्शिनः परमार्थतत्ववेदिनस्तेषां भगवतां यत्पराक्रांतं तपोऽध्ययनयमनियमादावनुष्ठितं तच्छुद्धमवदातं निरुपरोधं सातगौरवशल्यकषायादिदोषाकलंकितं कर्मप्रतिबंधमफलं भवति तन्निरनुबंधनि

कारणने विषे सफल थाय पण मूर्ख वैद्यनी चिकित्सानी पेरे कर्म निर्ज्जराना कारण ने विषे सफल न थाय ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—साधूद्देशेन यदन्यैः कृतं पापकं कर्म तथा वर्तमाने काले क्रियमाणं तथा आगामिकाले यत्करिष्यते तत्सर्वं नानुजानंति नानुमोदंते आत्मगुप्ताजितेंद्रियाः साधवः ॥ २१ ॥ अबुद्धाअज्ञातपरमार्थाव्याकरणशुष्कतर्कादिज्ञानेन जातमदाअपि तत्वानवबोधादज्ञातपरमार्थाएव । यडुक्तं । शास्त्रावगाहपरिघट्टनतत्परोपि नैवाबुधः समभिगच्छति वस्तुतत्वं ॥ नानाप्रकाररसन्नावगतापि दर्वी स्वादं रसस्य सुचिरादपि नैव वेत्ति॥१॥ अबुधाअपि महानागाः । नागशब्दः पूजावाची । कोर्थः । अपंडिताअपि त्यागादिगुणै र्लोकपूज्यावीराः सुन्नटवादं वहंतोप्यसम्यक्दर्शनामिथ्यादृष्टयइत्यर्थः । तेषां बालानां पराक्रांतमनुष्ठानमशुद्धं नशुद्धिहेतु प्रत्युत कर्मबंधाय तत्पराक्रांतं सहफलेन कर्मबंधेन वर्ततइति सफलं सर्वतः स्यात् ॥ २२ ॥

॥ टीका—तथा किंचाऽन्यत् । (कडंवेत्यादि) । साधूद्देशेन यदपरैरनार्यकल्पैः कृतमनुष्ठितं पापकं कर्म तथा वर्त्तमानेच काले क्रियमाणं तथाऽऽगामिनिच काले यत्करिष्यते तत्सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिर्नानुजानंति नाऽनुमोदंति तडुपन्नोगपरिहरेणेति न्नावः । यद्यप्यात्मार्थं पापकं कर्म परैः कृतं क्रियते करिष्यते च । तद्यथा । शत्रोः शिरश्छिन्नं छिद्यते छेत्स्यतेवा तथा चौरोहतोहन्यते हनिष्यते वा इत्यादिकं परानुष्ठानं नाऽनुजानंति नच बहुमन्यंते । तथाहि । यदि परः कश्चिदशुद्धेनाहारेणोपनिमंत्रयेत्तमपि नानुमन्यंतइति । कएवंनूतान्नवंतीति दर्शयति । आत्माऽकुशलमनोवाक्कायनिरोधेन गुप्तोयेषां ते तथा जितानि वशीकृतानि इंद्रियाणि श्रोत्रादीनि यैस्ते तथा एवंनूताः पापकर्म नाऽनुजानंतीति स्थितं ॥ २१ ॥ अन्यच्च (जेयाबुद्धाइत्यादि) ये केचनाऽबुद्धाधर्मं प्रत्यविज्ञातपरमार्थाव्याकरणशुष्कतर्कादिपरिज्ञानेन जाताऽवलेपाः पंमितमानिनोऽपि परमार्थवस्तुतत्वाऽनवबोधादबुद्धाइत्युक्तं । नच व्याकरणपरिज्ञानमात्रेण सम्यक्त्वव्यतिरेकेण तत्वाववोधोन्नवतीति । तथा चोक्तं । शास्त्रावगाहपरिघट्टनतत्परोऽपि नैवाऽबुधः समभिगच्छति वस्तुतत्वं ॥ नानाप्रकाररसन्नावगताऽपि दर्वी, स्वादं रसस्य सुचिरादपि नैव वेत्ति ॥१॥ यदिवाऽबुद्धाइव बालवीर्यवंतस्तथा महांतश्चते नागाश्च महानागाः । नागशब्दः पूजावचनः । ततश्च महापूज्याइत्यर्थः । लोकविश्रुताइति । तथा वीराः परानीकन्नेदिनः सुन्नटाइति । इदमुक्तं न्नवति पंमिताअपि त्यागादिनिर्गुणैर्लोकपूज्याः । अपिच । तथा सुन्नटवादं वहंतोऽपि सम्यक्तत्वपरिज्ञानविकलाः केचन न्नवंतीति दर्शयति । न सम्यगसम्यक् तद्भावोऽसम्यक्त्वं तद्दृष्टं शीलं येषांते तथा मिथ्यादृष्टयइत्य

वगरणो तस्सहुदेवा विपणमंतीति । अल्पं जापते यः सुव्रतः क्रोधाद्युपशमात् क्षांतोऽ न्निनिर्वृतोलोभालोभजयादनातुरोदांतोजितेंद्रियस्तथा वीतगृद्धिर्निरीहः सदा यतेत संयमे ॥ कषाया यस्य नोछिन्ना यस्य नात्मवशं मनः ॥ इंद्रियाणि नगुप्तानि प्रव्रज्या तस्य जीविकेति ॥२५॥ ध्यानं धर्मध्यानादि तत्र योगोमनोवाक्कायव्यापारस्तं समाहृत्य सम्यगाहृत्य कायं देहं सर्वतोव्युत्सृजेत् त्यजेत् तथा तितिक्षां क्षांतिपरीषहादिसहनरूपां परमां प्रधानां ज्ञात्वा आमोक्षाय सर्वकर्मक्षयाय परिव्रजेत् संयमक्रियां कुर्यादिति। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२६॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां वीर्याख्यमष्टमाध्ययनं समाप्तं ॥ ८ ॥

॥ टीका—अपिच अप्पपिंमाइत्यादि । अल्पं स्तोकं पिंमशितुं शीलमस्याऽसावल्पपिंमाशी यत्किंचनाशीति जावः । तथाचाऽऽगमः । हेजंतवआसीयजत्थतत्थवसुहोवगयनिद्दा॥ जेणवतेणसंतुठ, वीरमुणिड सितेअप्पा ॥ १ ॥ तथा (अठकुक्खिअंमगमत्तप्पमाणेकवलेआहरे माणे अप्पाहारे डुवालसकवलेहिं ॥ २ ॥ अवड्डोमोयरिया । सोलसेहिंडुभागपत्ते ॥ चउवीसंउमोदरियांसंपमाणपत्ते वत्तीसंकवलासंपुण्णहारे ॥ ३ ॥ अतएकैककवलाहान्यादिनोदरता विधेया । एवं पाने उपकरणेवोचोनोदरतां विदध्यादिति । तथाचोक्तं । थोवाहारोथोवजणिउअजोहोइ थोवनिद्दोअ ॥ थोवोवहिउपकरणोतस्सहुदेवाविपणमंति ॥ तथा सुव्रतः साधुरल्पं परिमितं हितं च जापेत सर्वदा विकथारहितोजवेदित्यर्थः। जावातऔदर्यमधिकृत्याह । जावतः क्रोधाद्युपशमात् क्षांतः क्षांतिप्रधानस्तथाऽन्निनिर्वृतोलोजादिजयान्निरातुरस्तथा इंद्रियनोइंद्रियदमनाद्दांतोजितेंद्रियः । तथाचोक्तं । कषायायस्य नोछिन्ना, यस्य नात्मवशंमनः । इंद्रियाणि न गुप्तानि, प्रव्रज्या तस्य जीवनं ॥१॥ एवं विगता गृद्धिर्विषयेषु यस्य सविगतगृद्धिराशंसादोषरहितः सदा सर्वकालं संयमानुष्ठाने यतेत यत्नं कुर्यादिति ॥ २५ ॥ अपिच (झाणजोगमित्यादि । ध्यानं चित्तरोधलक्षणं धर्मध्यानादिकं तत्र योगोविशिष्टमनोवाक्कायव्यापारस्तं ध्यानयोगं समाहृत्य सम्यगुपादाय कायं देहमकुशलयोगप्रवृत्तं व्युत्सृजेत् परित्यजेत् । सर्वतः सर्वेणाऽपि प्रकारेण हस्तपादादिकमपिपरपीडाकारि न व्यापारयेत्। तथा तितिक्षां क्षांतिपरीषहोपसर्गसहनरूपां परमां प्रधानां ज्ञात्वा आमोक्षायाऽशेषकर्मक्षयं यावत्परिव्रजेदिति संयमानुष्ठानं कुर्यास्त्वमिति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २६ ॥ समाप्तं चाऽष्टमं वीर्याख्यमध्ययनमिति ॥

हवे नवमुं अध्ययन प्रारंभियेडैयें. आठमां अध्ययनमां बालनुं अने पंमितनुं वीर्य कह्युं तेमां पण पंमितना वीर्यनुं जे धर्म ते धर्मने विषे साधु उद्यम करे तेमाटे आ नवमां अध्ययनमां ते धर्मनुं स्वरूप कहेछे.

र्जरार्थमेव नवतीत्यर्थः । तथाहि । सम्यक्दृष्टीनां सर्वमपि संयमतपःप्रधानमनुष्ठानं नवति संयमस्य चानाश्रयरूपत्वात् तपसश्च निर्जराफलत्वादिति । तथाच पठ्यते । (संयमेणएहयफलेतवेवोदाणफलेऽति) ॥ २३ ॥ किंचाऽन्यत् (तोसिंपीत्यादि) मह त्कुलमिक्ष्वाकादिकं येषांते महाकुलालोकविश्रुताः शौर्यादिनिर्गुणैर्विस्तीर्णयशसस्तेषा मपि पूजासत्काराद्यर्थमुत्कीर्त्तनेन वा यत्तपस्तदशुद्धं नवति । यच्च क्रियमाणमपि तपो नैवाऽन्ये दानश्रद्धादयोजानंति तत्तथानूतमात्मार्थिना विधेयं । अतोनैवात्मश्लाघां प्रवेदयेत् प्रकाशयेत् । तद्यथा । हेउत्तमकुलीन इन्योवा सांप्रतं पुनस्तपोनिष्टप्तदेहइति । एवं स्वयमाविष्करणेन न स्वकीयमनुष्ठानं फल्गुतामापादयेदिति ॥ २४ ॥

अप्पपिंमासि पाणासि, अप्पं नासेज्ज सुव्वए ॥ खंते न्निनिवुमे
दंते; वीतगिद्धी सदा जए ॥ २५ ॥ जाणजोगं समाहट्टु, कायं
विउसेज्ज सव्वसो ॥ तितिरकं परमं णच्चा आमोरकाए परिव्वएज्जा
सित्ति बेमि ॥ २६ ॥ इतिश्रीवीरिइनामम ठमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ–(अप्पपिंमासिपाणासिके०) अल्पाहारनो जमनार तथा अल्प पाणीनो वापरनार (अप्पंनासेज्जसुव्वए के०) तथा सुव्रति साधु अल्प नाषणनुं करनार परने हि तरूप वचननु बोलनार (खंतेन्निनिवुमेदंतेके०) क्षमावंत क्रोधादिकना उपशम थकी कषायने अनावे सीतल परिणामि तथा इंद्रिर्उनो दमनार (वीतगिद्धीके०) लोल्यता र हित (सदाजएके०) एरीते साधु जे ठे ते सर्व काल संयमने विषे यत्न करे ॥ २५ ॥ (जाणजोगंसमाहट्टुके०) शुनध्यान एटले धर्मध्यानदिकना योग तेने सम्यक् आदरीने (कायंविउसेज्जसव्वसोके०) कायाना अकुशल योगनी प्रवर्त्तिनो त्याग करे सर्वथा प्रकारे हस्त पादादिके करी पण परने पीडा नकरे (तितिरकंपरमंणच्चा के०) तितिक्षा एटले परीसह अने उपसर्गनुं जे सहन करवुं तेने परम प्रधान कर्म निर्ज्जरानुं कारण जाणीने (आ मोरकाएपरिव्वएज्जासिके०) ज्यांसुधी मोक्ष नपामे त्यांसुधी दीक्षा पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्व वत् जाणवो ॥ २६ ॥ इतिश्रीवीर्यनामा आठमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका–अल्पं पिंडमश्नातीति अल्पपिंडाशी एवं पानेपि योज्यं । यदागमः । अठ्ठ नुकुक्कियंअप्पमाणे कवले आहारेमाणे अप्पाहारे डुवालसकवलेहि अवट्टमो अरिया सोलसहिं १ डुनागयते २ चउवीसेहिं पउणोमो अरिअरि आतीसेहिंपमाणवत्तो बीत्तीसहिं पुणेहारेत्ति । अतएवैकैकवलहान्या ऊनोदरता कार्या । एवं पाने उपकरणे च ऊनोदरतां कुर्यात् । यडुक्तं । योवीहारोघावज्जणि उवजोहोऽघोवनिद्दो । अघोवोवहि उ

ने बालपंमितभेदेन द्विरूपं वीर्यं प्रतिपादितं। अत्राऽपि तदेव पंमितवीर्यं धर्मं प्रति यद्रुद्य मं विधत्ते अतोधर्मः प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेन धर्माध्ययनमायातं। अस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि उपक्रमादीनि प्राग्वत् व्यावर्णनीयानि। तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोऽयं। तद्यथा। धर्मोऽत्र प्रतिपाद्यतइति तमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह। (धम्मोपुबुद्दिठ्ठो नावधम्मेण एछ अहिगारो। एसेच होइ धम्मं, एसेवसमाहिमग्गोत्ति १। (धम्मोपुबुद्दिठ्ठोइत्यादि)। दुर्गतिगमनधरणलक्षणोधर्मः प्राक् दशवैकालिकश्रुतस्कंधषष्ठाऽध्ययने धर्मार्थकामाख्ये उद्दिष्टः प्रतिपादितः। इहतु नावेन धर्मेणाधिकारः। एषएवच नावधर्मः परमार्थतोधर्मोनवति। अमुमेवार्थमुत्तरयोरप्यध्ययनयोरतिदिशन्नाह। एषएवच नावसमाधिर्नावमार्गश्च नवतीत्यवगंतव्यमिति। यदि वैषएवच नावधर्मएषएवच नावसमाधिरेषएवच तथा नावमार्गोनवति नतेषां परमार्थतः कश्चिन्नेदः। तथाहि। धर्मः श्रुतचारित्राख्यः क्षांत्यादिलक्षणोवा दशप्रकारोनवेत् नावसमाधिरप्येवंप्रकारएव। तथाहि। सम्यगाधानमारोपणं गुणानां क्षांत्यादीनामिति समाधिः। तदेव मुक्तिमार्गोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्राख्योनावधर्मतया व्याख्यातयितव्यइति॥ सांप्रतमतिदिष्टस्यापिस्थानाशून्यार्थं धर्मस्य नामादिनिक्षेपं दर्शयितुमाह। (णामंठवणाधम्मो, दव्वधम्मोय नावधम्मोय। सचित्ताचित्तमीसग,गिहत्थदाणेदवियधम्मे। २।) (नामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यनावनेदाच्चतुर्धा धर्मस्य निक्षेपः।तत्राऽपि नामस्थापनेऽनादृत्य ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तोधर्मः सचित्ताचित्तमिश्रनेदात् त्रिधा। तत्राऽपि सचित्तस्य जीवच्छरीरस्योपयोगलक्षणोधर्मः स्वनावः। एवमचित्तानामपि धर्मास्तिकायानां योयस्य स्वनावः सतस्य धर्मइति। तथाहि। (गइलरकणउधम्मो, ठाणलरकणोअहम्मोय। नायणं सव्वदव्वाणं, नहअवगाहलरकणं। १। पुजलास्तिकायोऽपिग्रहणलक्षणइति। मिश्रद्रव्याणां च क्षीरोदकादीनां योयस्य स्वनावः सतद्धर्मतयाऽवगंतव्यइति। गृहस्थानांच यः कुलनगरग्रामादिधर्मोगृहस्थेन्योगृहस्थानां वा योदानधर्मः सद्रव्यधर्मोऽवगंतव्यइति। तथाचोक्तं। अन्नं पानं च वस्त्रंच, आलयः शयनासनं। शुश्रूषा वंदनं तुष्टिः पुण्यं नवविधं स्मृतं। १। नावधर्मस्वरूपनिरूपणायाह। (लोइयलोउत्तरिउ, डुविहोपुणहोंतिनावधम्मोउ। डुविहोवि डुविहतिविहो, पंचविहो होंतिणायव्वो। ३। (लोइयइत्यादि)। नावधर्मोनोआगमतो द्विविधः। तद्यथा। लौकिकोलोकोत्तरश्च। तत्र लौकिकोद्विविधः। गृहस्थानां पाखंडिकानां च लोकोत्तरस्त्रिविधः। ज्ञानदर्शनचारित्रनेदात्। तत्राऽप्यानिनिबोधकं ज्ञानं पंचधा। दर्शनमप्यौपशमिक,सास्वादन,क्षायोपशमिक,वेदक,क्षायिक नेदात् पंचविधं।चारित्रमपि सामायिकादिनेदात् पंचविधं। गाथाक्षराणि त्वेवं नेयानि। तद्यथा। नावधर्मोलौकिकलोकोत्तरनेदाद्विधा। द्विविधोऽपि चायं यथासंख्येन द्विविधस्त्रिविधः। तत्रैव लौकिकोगृहस्थपाखंडिकनेदात् द्वि

कयरे धम्मे अरकाए, माहणेण मतीमता ॥ अंजुधम्मं जहात
चं, जिणाणं तं सुणेहमे ॥ (पाठांतरे। जणगातं सुणेहमे ॥
॥ १ ॥ माहणा खत्तिया वेस्सा, चंमाला अड वोक्कसा॥ एसिया
वेसिया सुद्दा, जेय आरंनणिस्सिया॥ २ ॥

अर्थ—श्रीसुधर्मस्वामि प्रत्यें श्रीजंबूस्वामि बे हाथ जोडीने पुठेठे, के (माहणेणम तीमता के०) माहण मतिमंत एटले केवली नगवंत एवा श्रीमहावीर देव तेणे (क यरेधम्मेअरकाए के०) सम्यक् प्रकारे करीने केवा प्रकारनो धर्म कह्योठे एम श्रीजंबुस्वा मियें पुठया थका, श्री सुधर्म स्वामि बोल्या, (अंजुधम्मं के०) श्रीवीतराग प्रणीत धर्म ते रुजु एटले सरल शुद्ध (जहातचं के०) साचो यथावस्थित (जिणाणंतंसुणेहमे के०) एवो धर्म श्रीतीर्थंकरनुं कहेलो तेहुं कहुंबुं ते तमे सांजलो पागंतरं (जणगातं सुणेहमेके०) एवो धर्म ते अहो जन, एटले लोको हुं कहुंबुं, ते प्रत्ये तमे सांजलो ॥ १ ॥ (माहणाखत्तियावेस्सा के०) ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य अने (चंमाला के०) चांमाल निषाद (अडके०) अथवा (वोक्कसा के०) वोक्कसते अवांतरजाति तेमां जे ब्राह्मण अने शुद्रथकी उत्पन्न थयो ते, निषाद एटले चांमाल अने ब्राह्मण तथा वै श्यनी स्त्रीथी थयो ते अंबष्ठ, चंमालणी अने ब्राह्मण थकी थयो ते वोक्कस अंहीं माता पितानो पक्ष जूदो जाणवो (एसिया के०) मृगलुब्धकः हस्तितापसादिक (वे सिया के०) वणिकादिक व्यापारमां अजीविका करनार (सुद्दा के०) शूद्र करसणी प्रमुख (जेयआरंनणिस्सिआ के०) इत्यादिक जे ठे ते आरंनना करनार ठे, तेमज बीजा पण पाखंमी प्रमुख आरंनना करनार अनेकठे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ नवमाध्ययनं। पूर्वाध्ययने बालपंडितवीर्यमुक्तं पंडितवीर्यंच तदेव य द्धर्मं प्रति उद्यमं कुरुते अतोत्र धर्मः प्रोच्यते। तस्येदमादिसूत्रं। (कतरेत्ति) जंबूनामा सु धर्माणमुद्दिश्याह। कतरोधर्मआख्यातोमाहनेन श्रीवीरेण मतिमता ज्ञानवता। सुध र्मा आह। रुजुमवक्रं यथातथ्यं सत्यं जिनानां तं धर्मं मम कथयतः शृणुत यूयं ॥ १ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याश्चांडालाअथ वोक्कसाअवांतरजातीयाः। तद्यथा। ब्राह्मणेन शूद्र्यां जातोनिषादः। ब्राह्मणेनैव वैश्यायां जातोऽबष्ठः। तथा निषादेनांबष्ठ्यां जातो वोक्कसः। एषिकामृगलब्धकाहस्तितापसाश्च ये मांसहेतोर्मृगान् हस्तिनश्च एषंति वैश्यावणि जोमायाप्रधानाः कलाजीविनः शूद्राः कृषीवलादयः येचान्ये नानाविधारंननिश्रिताः॥ २॥

॥ टीका—अष्टमानंतरं नवमः समारन्यते ॥ अस्य चायमनिसंबंधः। इहानंतराध्यय

अर्थ-(परिग्गहे के०) परिग्रह द्विपद, चतुष्पद, धन, धान्य हिरण्य, सुवर्णादिकने विषे ममत्व तेमां (निविठाणंके०) गृध्र बता (वेरंतेसिंपवड्ढई के०) एवा पुरुष आरंभना करनार तेने निःकेवल वैरनी वृद्धि थायबे. अथवा पाठांतरे (पावंतेसिंपवड्ढई के०) तेवा आरंभना करनार पुरुषोने जमदग्नि कृतवीर्यनी पेरे पापनी वृद्धि थायबे ज्यां जेरीते प्राणीउनी हिंसा करे त्यां तेरीते संसार मांहे दुःखना विनागी थाय. (आरंभसंभियाकामा के०) तथा कामनोगजे बे, ते आरंभ संवृतबे आरंभे करी पुष्टबे अनेक पापना कारणे करी नरयाबे, (नतेदुःखविमोयगा के०) ते कारण माटे ते दुःख थकी बूटे नही ॥ ३ ॥ जेथकी प्राणीना प्राणने हणियें तेने (आघाय के०) मरण कहिए. ते मरणने अर्थे जे (किच्चमाहेउके०) कृत्य करवुं एटले मरणनुं जे कार्य करवुं अर्थात् अग्निसंस्कार जलांजली, प्रदान, पितृ पिंम, प्रमुख एटलावाना करीने पढी (नाइउ विसएसिणो के०) ज्ञाति, गोत्री, स्वजन, पुत्र, कलत्रादिक एसर्व विषयानिलाषी बता होय तेमनुं उपार्जन करेलुं जे वित्त एटले धन (तंवित्तंके०) तेधन (अन्नेहरंतिके०) अन्य जे पूर्वोक्त अग्नि संस्कार प्रमुखना करनारा पुरुषो ते लिये, एटले अंगीकार करे. अने ते धननो उपार्जनार (कम्मीकम्मेहिंकिच्चती के०) अनेक कुकर्म करी दुर्गतीयें पोहोतो बतो ते कर्मे करी संसारमां किच्चती एटले पीडाय बेदाय. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका-परिग्रहनिविष्टानां ममतासक्तानां तेषां पूर्वोक्तानां वैरं वर्धते । जमदग्निकृतवीर्यादीनामिव रिपवस्ते आरंभसंभृताआरंभपुष्टाः कामेषु प्रवृत्तास्ते एवंविधादुःखविमोचकान स्युः ॥ ३ ॥ आघातोमरणं तस्य कृत्यमग्निसंस्कारजलांजलिदानपितृपिंमादिकं तदाधातुमाधाय कृत्वा पश्चाज्ज्ञातयः स्वजनाअन्येऽपि विषयैषिणः संतस्तस्य तद्वित्तं धनं हरंति गृण्हंति । यडुक्तं । ततस्तेनार्जितैर्द्रव्यैर्दारैश्च परिरक्षितैः ॥ क्रीडंत्यन्ये नराराजन् हृष्टतुष्टाअलंकृताइति । सतु द्रव्योपार्जकः कर्मवान् कृतैः कर्मभिः संसारे कृत्यते पीड्यते ॥ ४ ॥

॥टीका-किंच (परिग्गहेइत्यादि) परिसमंतात् गृह्यतइति परिग्रहोद्विपदचतुष्पदधनधान्यहिरण्यसुवर्णादिषु ममीकारस्तत्र निविष्टानामध्युपपन्नानां गार्ध्यं गतानां पापमसातवेदनीयादिकं तेषां प्रागुक्तानामारंभनिश्रितानां परिग्रहे निविष्टानां प्रकर्षेण वर्द्धते वृद्धिमुपयाति जन्मांतरेष्वपि दुर्मोचं नवति । क्वचित्पाठः (वेरंतेसिंपवड्ढइत्ति)। तत्र येन यस्य यथा प्राणिनउपमर्दः क्रियते सतथैव संसारांतवर्ती शतशोदुःखनाक् नवति । जमदग्निकृतवीर्यादीनामिव पुत्रपौत्रानुगं वैरं प्रवर्द्धतइति नावः । किमित्येवं । यतस्ते

विधः । लोकोत्तरोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रनेदात् त्रिविधः । ज्ञानादीनि प्रत्येकं त्रीण्यपि पंचधैवेति । तत्र ज्ञानदर्शनचारित्रवतां साधूनां योधर्मस्तं दर्शयितुमाह । (पासबोसम्म कुसीलं, संघवोणकिरचट्टतीकाउ । सूयगडेअज्जयणे, धम्मंमि निकाइतंएयं ॥४॥) पासबोसम्मेत्यादि)। साधुगुणानां पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः । तथा संयमानुष्ठानेऽवसीदंतीत्यवसन्नाः।तथा कुत्सितं शीलं येषांते कुशीलाएतैः पार्श्वस्थादिनिः सह संस्तवः परिचयः सहसंवासरूपोन किल यतीनां वर्त्तते कर्तुमतः सूत्रकृतेंऽगेधर्माख्येऽध्ययने एतस्मिन्निकाचितं नियमितमिति ॥ गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (कयरेइत्यादि) ॥ जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । कतरः किंनूतोडुर्गतिगमनलक्षणोधर्मआख्यातः प्रतिपादितो (माहणेणंति) मा जंतून् व्यापादयेत्येवं विनेयेषु वाक्प्रवृत्तिर्यस्याऽसौ माहनोनगवान् वीरवर्धमानस्वामी तेन। तमेव विशिनष्टि । मनुतेऽवगच्छति जगत्त्रयं कालत्रयोपेतं यया सा केवलज्ञानाख्या मतिः सा अस्याऽस्तीति मतिमान् तेनोत्पन्नकेवलज्ञानेन नगवतेति पृष्टे सुधर्मस्वाम्याह रागद्वेषजितोजिनास्तेषां संबंधिनं धर्मं (अंजुमिति) रुजुं मायाप्रपंचरहितत्वादवक्रं । तथा (जहातच्चमिति) यथावस्थितं मम कथयतः शृणुत यूयं । नतु यथाऽन्यैस्तीर्थिकैर्दंनप्रधानोधर्मोनिहितस्तथा नगवताऽपीति (पाठांतरंवा) जणगातं सुणेहमे) जायंतइति जनालोकास्तएव जनकास्तेषामामंत्रणं हेजनकाः तंधर्मं शृणुत यूयमिति ॥ १ ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तोऽर्थः सूक्तोनवतीत्यतोयथोद्दिष्टप्रतिपक्षनूतोऽधर्मस्तदाश्रितांस्तावद्दर्शयितुमाह । (माहणेत्यादि)। ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्यास्तथा चांमालाः अथ वोक्कसाअवांतरजातीयाः । तद्यथा । ब्राह्मणेन शूद्र्यांजातोनिषादोब्राह्मणेनैव वैश्यायां जातोऽबष्ठस्तथा निषादेनांबष्ठ्यां जातोवोक्कसः । तथा एषितुं शीलमित्येषिकामृगलुब्धकाहस्तितापसाश्च मांसहेतोर्मृगान् हस्तिनश्च एष्यंति तथा कंदमूलफलादिकं च । तथा ये चाऽन्ये पाखंडकानानाविधैरुपायैर्नैक्ष्यमेष्यंत्यन्यानिवा विषयसाधनानि ते सर्वेऽप्येषिकाइत्युच्यंते । तथा वैशिकावणिजोमायाप्रधानाकलोपजीविनः । तथा शूद्राः कृषीवलादयः । आनीरजातीयाः कियंतोवा वक्ष्यंतइति दर्शयति। ये चाऽन्येवर्णापसदानानारूपसावद्यारंननिश्रितायंत्रपीडननिर्लांछनकर्मांगारदाहादिनिः क्रियाविशेषैर्जीवोपमर्दकारिणस्तेषां सर्वेषामेव जीवापकारिणां वैरमेव प्रवर्धतइत्युत्तरश्लोकेक्रियेति॥ २

परिग्गहनिविठ्ठाणं, वेरं तेसिं पवड्ढई ॥ (पाठांतरे पावं तेसिं पवड्ढई)
आरंनसंनिया कामा, नते डुक्कविमोयगा ॥ ३ ॥ आघाय किच्चमाहेउं,
नाइउ विसएसिणो ॥ अन्ने हरंति तं वित्तं, कम्मी कम्मेहिं किच्चती ॥४ ॥

पियाइत्यादि) माताजननी पिताजनकः स्नुषापुत्रवधूः भ्रातासहोदरः । तथा भार्या कलत्रं पुत्राश्चौरसाः स्वनिष्पादिताएते सर्वेऽपि मात्रादयोये चान्ये श्वशुरादयस्ते तव संसारचक्रवाले स्वकर्मभिर्विलुप्यमानस्य त्राणाय नाऽलं समर्थाभवंतीति । इहाऽपि ताव न्नैते त्राणाय किमुताऽमुत्रेति । दृष्टांतश्चाऽत्र कालसौकरिकसुतः सुलसनामा अभयकुमा रस्य सखा । तेन महासत्वेन स्वजनाऽभ्यर्थितेनाऽपि नप्राणिष्वपकृतमपि त्वात्मन्येवेति ॥ ५ ॥ किंचान्यत् (एयमहमित्यादि) धर्मरहितानां स्वकृतकर्मविलुप्यमानानामैहि कामुष्मिकयोर्नकश्चित्त्राणायेति एनं पूर्वोक्तमर्थं सप्रेक्षापूर्वकारी प्रत्युपेक्ष्य विचार्याऽवगम्य च परमः प्रधानभूतोमोक्षः संयमोवा तमनुगच्छतीति तच्छीलश्च परमार्थानुगामुकः सम्य क्दर्शनादिस्तंच प्रत्युपेक्ष्य।क्त्वाप्रत्ययांतस्य पूर्वकालवाचितया क्रियांतरसव्यपेक्षत्वात्।त दाह । निर्गतं ममत्वं बाह्याभ्यंतरेषु वस्तुषु यस्मादसौ निर्ममः । तथा निर्गतोऽहंकारोऽ भिमानः पूर्वैश्वर्यजात्यादिमदजनितस्तथा तपःस्वाध्यायलोभादिजनितोवा यस्मा दसौ निरहंकारोरागद्वेषरहितइत्यर्थः । सएवंभूतोभिक्षुर्जिनैराहितः प्रतिपादितोऽनु ष्ठितोवा योमार्गोजिनानां वा संबंधी योऽभिहितोमार्गस्तं चरेदनुतिष्ठेदिति ॥ ६ ॥

चिच्चा वित्तंच पुत्तेय,णाइउ य परिग्गहं ॥ चिच्चाण अंतगं सोयं
(चिच्चाणणंतगंसोयं,) इति पाठांतरं । निरवेस्को परिव्वए ॥ ७ ॥
पुढवी आउगणि वाऊ, तणरुक्क सबीयगा ॥ अंमया पोय जरा
ऊरस संसेय उब्भिया ॥ ८ ॥

अर्थ-(वित्तंचपुत्तेय के०) वित्तते धन अने पुत्रादिक तेने (चिच्चा के०) त्यक्त्वा एटले छांमीने वली (णाइउयके०) ज्ञाति, स्वजन, स्त्री, स्वसुर, वेवाही प्रमुख तथा (परि ग्गहं के०) परिग्रह तेना उपर ममत्व भाव ते सर्वने (चिच्चाके०) त्यक्त्वा एटले छां मीने एवाक्यालंकारेछे तथा (तंसोयं के०) तथा भूतशोक तेने त्यागीने अथवा पाठांत रनुं अर्थ कहेछे. मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषायरूप बंधना कारण, अने (णणंतगं के०) जेनो कोइरीते अंत एटले पार न आवे एवो सोयं के० शोक तेनो त्याग करीने (निरवेस्को के०) निरपेक्ष एटले विषयादिकने अण वांछतो थको (परिव्वए के०) सं यम पाले तेने साधु जाणवो ॥ ७ ॥ (पुढविआउगणिवाऊ के०) पृथवीकाय, अ प्पकाय, तेऊकाय अने वायुकाय तथा (तणरुक्कसबीयगा के०) तृण वृक्ष बीज शा लि प्रमुख ए पांचमी वनस्पतिकायनी जाति ए सर्व स्थावर जीवो जाणवाः अने (अं मया के०) इंमा थकी उपजे जे वाग्रुलि प्रमुख (पोतजके०) हस्तियादिक तथा (ज

कामेषु प्रवृत्ताः कामाश्चारंभैः सम्यग् भृताआरंभपुष्टाआरंभाश्च जीवोपमर्दकारिणोऽतोन ते कामसंभृताआरंभनिश्रिताः परगृहे निविष्टाः डुःखयतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्म तद्विमो चकाभवंति तस्याऽपनेतारोभवंतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ किंचाऽन्यत् (आघायमित्यादि) आहन्यंते अपनयंति विनाश्यंते प्राणिनां दश प्रकाराअपि प्राणायस्मिन् सआघा तोमरणं तस्मै तत्र वा कृतमग्निसंस्कारजलांजलिप्रदानपितृपिंमादिकमाघातं कृत्यं तदा धातुमादाय कृत्वा पश्चात् ज्ञातयः स्वजनाः पुत्रकलत्रभ्रातृव्यादयः। किंभूताः। विषयान न्वेष्टुं शीलं येषां तेऽन्येऽपि विषयैषिणः संतस्तस्य डुःखार्जितं वित्तं इव्यजातमपहरंति स्वीकुर्वंति। तथाचोक्तं। ततस्तेनार्जितैर्इव्य,दारैश्च परिरक्षितैः॥ क्रीडंत्यन्ये नराराजन्, हृष्टास्तुष्टाह्यलंकृताः ॥ १ ॥ सतु इव्यार्जनपरायणः सावद्यानुष्ठानवान् कर्मवान् पापी स्वीकृतैः कर्मभिः संसारे कृत्यते छिद्यते पीड्यतइति यावत् ॥ ४ ॥

माया पिया ण्हुसा भाया,भज्जा पुत्ताय उरसा॥ नालं ते तव ताणा
य, लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥ ५ ॥ एयमठ्ठं सपेहाए, परमठ्ठाणु
गामियं ॥ निम्ममो निरहंकारो, चरे भिक्खू जिणाहियं ॥ ६ ॥

अर्थ-(मायापियाण्हुसाभाया के०) माता पिता स्नुषा एटले बोकरानी स्त्री तथा भाइ (भज्जापुत्तायउरसा के०) भार्या, पुत्र अंगजातिक एटला सर्व (लुप्पंत स्ससकम्मुणा के०) ए जीवने कर्म विपाक भोगवता थकां (नालंतेतवताणाय के०) तेवखते त्राणभणी नथाय एटले डुःख टालवाने असमर्थ थाय ॥ ५ ॥ धर्मरहित जी वने रांखवा कोइ समर्थ नथी (एयमठ्ठंसपेहाए के०) ए अर्थ आलोची एटले सम्य क् प्रकारे विमासीने (परमठ्ठाणुगामियं के०) परमार्थजे मोक्ष तेनो अनुगामि एटले मोक्षनो साधक (निम्ममोनिरहंकारो के०) निर्ममत्व तथा निरहंकारी एवोथतो (चरे भिक्खूजिणाहियं के०) ते साधु जिनभाषित जे संयम मार्गछे तेने आचरे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-माता पिता स्नुषापुत्रवधूः भ्राता भार्या पुत्राश्च औरसाःस्वांगजाएते स र्वे तव त्राणाय रक्षणाय नालं नसमर्थाः। तव किंभूतस्य। स्वकर्मणा लुप्यमानस्य पीड्य मानस्य। दृष्टांतोत्र कालसौकरिकसुतः सुलसोऽभयकुमारस्य मित्रं तेन महात्मना स्वजना भ्यर्थितेनापि न प्राणिहिंसा कृता ॥ ५ ॥ एतं पूर्वोक्तमर्थं प्रेक्ष्य विचार्य परमार्थोमोक्ष स्तमनुगच्छतीति परमार्थानुगामुकस्तं सम्यक्दर्शनादिकं विचार्य निर्ममोनिरहंकारोभि क्षुर्जिनाहितं जिनोक्तं मार्गं चरेत् ॥ ६ ॥

॥ टीका-स्वजनाश्च तद्दूव्योपजीविनस्तत्राणाय नभवंतीति दर्शयितुमाह। (माया

सौवीरकादजीतारसजास्तथा संस्वेदाज्जाताः संस्वेदजायूकामत्कुणादयः । उद्भिज्जाः खंजरीटकदर्डुरादयइति । आज्ञातन्नेदाहि डुःखेन रक्ष्यंतइत्यतोनेदेनोपन्यासइति ॥ ८ ॥

एतेहिं बहिं काएहिं, तं विज्ञं परिजाणिया ॥ मणसा कायवक्केणं, णारंन्नी ण परिग्गही ॥९॥ मुसावायं वहिद्धंच, उग्गहंच अजाइय ॥ सत्था दाणाइं लोगंसि, तं विज्ञं परिजाणिया ॥ १० ॥

अर्थ–(एतेहिंबहिंकाएहिंके०) पूर्वोक्त ब कायजीवो ते त्रस स्थावर तथा सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता ना न्नेदे करी (तंविज्ञंपरिजाणियाके०) ते बकायने पंमित ज्ञ परिज्ञायें करी न्नलीपरे जाणीने अने प्रत्याख्यान परिज्ञाये (मणसाकायवक्केणं के०) मन, वचन अने काया एत्रण करणे करी (णारंन्नीणपरिग्गहीके०) साधु आरंन्न परिग्रह नकरे केमके ए आरंनपरिग्रहथकी पूर्वोक्त बकायं जीवोनी विराधना थायछे माटेसाधु आरंन्नी परिग्रही नथाय. ए प्राणातिपात विरमण नामा प्रथम व्रतनो अधिकार कह्यो ॥९॥ हवे बीजो व्रत आदि कहेछे (मुसावायं के०) असत्य बोलवुं (वहिद्धंचके०) तथा मैथुन ते न्नोग कामादिक (उग्गहंच के०) परिग्रह तथा (अजाइय के०) अदत्तदान ए मृषावादादिक अव्रतजेछे ते (लोगंसि के०) लोक मांहे (सत्थके०) शस्त्ररूपछे, तथा शस्त्रनी पेरे (आदानके०) कर्म ग्रहण करवानुं कारणछे, (तंविज्ञंपरिजाणियाके०) तेने विद्वान् ए एले पंमित ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये परिहरे ॥ १० ॥

॥ दीपिका–एन्निः षड्भिः कायैर्नारंन्नी नापि परिग्रही स्यात् विद्वान पंडितोज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया मनोवाक्कायैरारंन्नं परिग्रहंच परिहरेदिति श्लोकद्वयार्थः ॥ ९ ॥ मृषावादं विद्वान् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् अवहिद्धं मैथुनं अवग्रहंपरिग्रहमयाचितमदत्तादानं एतानि मृषावादादीनि प्राण्युपघातकारित्वात् शस्त्राणि तथा आदानानि कर्मोपादानकारणान्यस्मिन् लोके तदेतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १० ॥

॥ टीका–एन्निः पूर्वोक्तैः षड्भिरपि कायैस्त्रसस्थावररूपैः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकन्नेदन्निन्नैर्नारंन्नी नाऽपि परिग्रही स्यादिति संबंधः । तदेतद्विद्वान् सश्रुतिकोज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया मनोवाक्कायकर्मन्निर्जीवोपमर्दकारिणामारंन्नं परिग्रहं च परिहरेदिति ॥ ९ ॥ शेषव्रतान्यधिकृत्याह । (मुसावायमित्यादि) मृषा असद्भूतोवादोमृषावादस्तं विद्वान् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् तथाऽवहिद्धमितिमैथुनं अवग्रहं परिग्रहमयाचितमदत्तादानं । यदिवाऽ वहिद्धमिति मैथुनग्रहोऽवग्रहमयाचित

रायुज के०) मनुष्यादिक (रसज के०) कीटादिक (संस्वेदजके०) जुं प्रमुख (उन्नि ज्ज के०) तीडादिक ए सर्व त्रसकाय जीवोजाणवा. ॥ ७ ॥

॥ दीपिका–वित्तं धनं पुत्रांश्च ज्ञातीन् स्वजनान् त्यक्त्वा परिग्रहं चांतरंममत्वं । ण कारोवाक्यालंकारे अंतं गड्तीत्यंतगोडुष्परित्यजइत्यर्थः । तं तथानूतं शोकरूपं त्य क्त्वा निरपेक्षः पुत्राद्यपेक्षारहितः परिव्रजेत् संयमे चरेत् । यडुक्तं । नलियाअवइरकंता, निरावइरकागयाअविग्घेणं ॥ तम्हापवयणसारे, निरावइरकेणहोअवंइति ॥ ७ ॥ पृथि वी आपः अग्नयः वायवः तृणानिकुशादीनि वृक्षाअशोकाम्रादयः सबीजानि शालिगो धूमादीनि तद्युक्ताएते त्रयोपि वनस्पतयः एते पंचाप्येकेंडियाः । अंमजाः पक्षिगृहकोकि लाद्याः पोतजाहस्त्यादयः जरायुजागोमनुष्यादयः रसाद्दधिसौवीरादेर्जातारसजाः सं स्वेदजायूकामत्कुणादयः उन्निज्जाःखंजरीटदर्डुराद्याः एते त्रसाः ॥ ७ ॥

॥ टीका–अपिच (चिच्चाइत्यादि) संसारस्वनावपरिज्ञानपरिकर्मितमतिर्विदितवेद्यः सम्यक् त्यक्त्वा परित्यज्य किंतद्वित्तं ड्व्यजातं तथा पुत्रांश्च त्यक्त्वा पुत्रेष्वधिकस्नेहोन्न वतीति पुत्रग्रहणं । तथा ज्ञातीन् स्वजनांश्च त्यक्त्वा तथा परिग्रहं चांतरं ममरूपत्वं । णकारोवाक्यालंकारे । अंतं गड्तीत्यंतगोडुष्परित्यजइत्यर्थः । अंतकोविनाशकारीत्यर्थः । आत्मनि वा गड्तीत्यात्मगआंतरइत्यर्थः । तं तथानूतं शोकं त्यक्त्वा परित्यज्य श्रोतोवामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषायात्मकं कर्माश्रवद्वारनूतं परित्यज्य पागंतरंवा । (चिच्चाणणंतगंसोयं) अंतं गड्तीत्यंतगं नअंतगमनंतगं । श्रोतःशोकं परित्य ज्य निरपेक्षः पुत्रदारधनधान्यहिरण्यादिकमनपेक्ष्यमाणः सन् मोक्षाय परिसमंता त् संयमानुष्ठाने व्रजेत् परिव्रजेदिति । तथा चोक्तं । (नलियाअवयरकंता, निरावय रकागयाअविग्घेणं ॥ तम्हापवयणसारे, निरावयरकेणहोयवं॥ १ ॥ नोगेअवयरकंता, प डंति संसारसागरे घोरे । नोगेहिनिरवपरका, तरंति संसारकंतारमिति ॥ २॥ सएवं प्रव्रजि तः सुव्रतावस्थितात्माऽहिंसादिषु व्रतेषु प्रयतेत ॥ ७ ॥ तत्राऽहिंसाप्रसिध्यर्थमा ह । (पुढवीआउइत्यादिश्लोकद्वयं) तत्र पृथिवीकायिकाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तक नेदनिन्नाः । तथाऽप्कायिकाअग्निकायिकावायुकायिकाश्चैवंनूताएव । वनस्पतिकायि कान् लेशतः सन्नेदानाह । तृणानि कुशवच्चकादीनि वृक्षाश्चूताशोकादिकाः । सह बीजैर्व र्तंतइति सबीजानि तु शालिगोधूमयवादीनि एते एकेंडियाः पंचापिकायाः।षष्ठत्रसकायनि रूपणायाह । अंडजाः शकुनिगृहकोकिलकसरीसृपादयः । तथा पोताएव पोतजाहस्तिश रनादयः । तथा जरायुजाये जंबालवेष्टिताः समुत्पद्यंते गोमनुष्यादयः । तथा रसात् दधि

ध्मातः पुरुषउत्तानीजवति सउच्छ्रायोमानः।छांदसत्वान्नपुंसकलिंगता।जात्यादीनामेतत्स्था नानां बहुत्वात् तत्कार्यस्याऽपि मानस्य बहुत्वमतोबहुवचनं । चकाराः स्वगतभेदसंसू चनार्थाः समुच्चयार्थावा। धूनयेति प्रत्येकं क्रिया योजनीया । तद्यथा । पलिकुंचनंमायां धूनय धूनीहि वा । तथा जजनं लोजं तथा स्थंडिलं क्रोधं तथा उच्छ्रायं मानं । विचित्रत्वात् सूत्रस्य क्रमोल्लंघननिर्देशोन दोषायेति । यदिवा रागस्य डुस्त्यज त्वात् लोजस्य च मायापूर्वकत्वादित्यादावेव मायालोजयोरुपन्यासइति । कषायपरित्यागे विधेये पुनरपरं कारणमाह। एतानि पलिकुंचनादीनि अस्मिन् लोके आदानानि वर्त्तते । तदेतद्विद्वान् ज्ञपरिज्ञया परिज्ञानप्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याचक्षीत ॥ ११ ॥ पुनरप्युत्त रगुणानधिकृत्याह । (धावणमित्यादि) धावनं प्रक्षालनं हस्तपादयोर्वस्त्रादेरंजनमपि तथा विरेचनं निरूहात्मकमधोविरेकोवा । वमनमूर्ध्वविरेकस्तथांऽजनं नयनयोरिति । एवमादिकमन्यदपि शरीरसंस्कारादिकं यत् संयमपलिमंथकारि संयमोपघातरूपं तदेत द्विद्वान् स्वरूपतस्तद्विपाकतश्च परिज्ञाय प्रत्याचक्षीत ॥ १२ ॥

गंधमल्लसिणाणंच, दंतपक्खालणं तहा ॥ परिग्गहित्थिकम्मंच,
तं विज्जं परिजाणिया ॥१३॥ उद्देसियं कीयगडं, पामिच्चं चेव
आहडं ॥ पूयं अणेसणिज्जंच, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १४ ॥

अर्थ-(गंधमल्लसिणाणंच के०) सुगंधिक ड्व्यते गंध, माल्यते फूल अने शरीर स्नान ते शरीरप्रक्षालन देश थकी तथा सर्व थकी करवुं तथा (दंतपक्खालणंके०) दांतप्र क्षालन ते दातणप्रमुखनुं करवुं (तहाके०) तथा (परिग्गहि के०) सचेत अचेतादि कनो परिग्रह (इत्थिकम्मंच के०) स्त्रीकर्म ते तिर्यंच मनुष्य देवी प्रमुख ने हस्तकर्म कुचेष्टादिकनुं करवुं (तंविज्जंपरिजाणिया के०) ए सर्वने पंमित अशुन जाणीने वर्जे ॥ ॥ १३ ॥ (उद्देशिकं के०) साधुने निमित्ते करेलो आहार (क्रीतंक्रीतं के०) साधुने अर्थे मूल आपीने लीधेलो आहार (पामिच्चंचेव के०) साधुने अर्थे उधारे लीधेलो आहार वली (आहडं के०) साधुने अर्थे ग्रहस्थे सामो आण्यो एवो आहार (पुयं अनेषणिज्जंच के०) आधाकर्मिना कण सहित आहार (तंविज्जंपरिजाणिया के०) किं बहुना एवधो अनेशणिय सदोष आहार जाणीने पंमित पुरुष एने परिहरे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका-गंधाः कोष्टपुटाद्यामाल्यंपुष्पादि स्नानं शरीरक्षालनं दंतप्रक्षालनं प रिग्रहः सचित्तादेः स्त्रीकर्म स्त्रियोनरतिरश्च्यस्तासां वशीकरणादिकर्म हस्तकर्म सावद्या नुष्ठानंवा तत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १३ ॥ उद्देशिकं साधुदेशेन यत्कृतं। क्रीतं क्रयस्ते

मित्यनेनाऽदत्तादानं गृहीतं । एतानिच मृषावादादीनि प्राण्युपतापकारित्वात् शस्त्रा णीव शस्त्राणि वर्तंते । तथा दीयते गृह्यतेऽष्टप्रकारं कर्मैभिरिति । कर्मोपादानकारणान्य स्मिन् लोके तदेतत्सर्वं विद्वान् ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१०॥

पलिउंचणंच भयणंच, थंभिल्लुस्सयणाणिया ॥ धूणादाणाइं लो
गंसि, तं विज्ञं पारिजाणिया॥११॥ धोयणं रयणं चेव,बत्थीकम्मं
विरेयणं ॥ वमणं जणपलीमंथं, तं विज्ञं परिजाणिया ॥ १२ ॥

अर्थ–(पलिउंचणंचके०) माया तथा (भयणंचके०) लोभ (थंभिल्लके०) जे निर्विवे क पणा थकी थंभिलनी पेरे होय ते क्रोध (उस्सयणाणियाके०) जे अपध्याने करी सच्या दिकनी पेरे उंचु होय तेने मान कहिए (धुणाके०) एचारेनो त्यागकरे केम के (दाणाइ लोगंसि के०) एचार कषायने लोकमां कर्म ग्रहण करवाना कारण कह्यां ले तेमाटे (तं विज्ञंपरिजाणिया के०) एने पंमित ज्ञपरिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे. ॥ ११ ॥ (धोयणंरयणं के०) हाथ पग वस्त्रादिकने धोवुं तथा रंगवुं (चेवके०) वली (बत्थिकम्मं के०) नख रोमादिकनुं समारवुं (विरेयणं के०) परवाल लेवो (वमनंके०) वमन करवुं (अंजण के०) आखनुं आंजवुं (पलिमंथं के०) अन्यकोइ शरीर संस्का रादिक जेणे करी संयमनो उपघात थाय तेवा सर्वकारणोने जाणीने पंमित परिहरे॥१२॥

॥ दीपिका–परिकुंच्यते आत्मा वक्रतां प्राप्यते येन तत् परिकुंचनं माया । भज्यते सर्व त्र आत्मा प्रव्हीक्रियते येन सभजनोलोभः । यडुदयेनात्मा सदद्विवेकविकलत्वात् स्थंमि लवत्स्यात् सस्थंडिलः क्रोधः। यस्मिन् सति आत्मा उच्छ्रितः स्याडुन्नतः सउच्छ्रायो मानः। बांदसत्वात्क्लीबत्वं । एतानि धूनय त्यज। किंभूतानि आदानानि बंधकारणानि तदेतद्वि द्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ ११ ॥ धावनं हस्तपादवस्त्रादेः। रंजनं तस्यैव। बस्तिकर्मानु वासनरूपं । विरेचनमधोविरेकः । वमनमूर्ध्वविरेकः । अंजनं नयनयोः। एवमन्यदपि य त्संयमपलिमंथकारि संयमोपघातकारि तत्परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १२ ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् (पलिउंचणमित्यादि) पंचमहाव्रतधारणमपि कषायिणोनि ष्फलं स्यादतस्तत्साफल्यापादनार्थं कषायनिरोधोविधेयइति दर्शयति ॥ परिसमंतात् कुंच्यंते वक्रतामापद्यंते क्रियायेन मायाऽनुष्ठानेन तत्पलिकुंचनं मायेति भण्यते । तथा भ ज्यते सर्वत्राऽऽत्मा प्रव्हीक्रियते येन सभजनोलोभस्तं तथा यडुदयेन ह्यात्मा सदसद्विवेक विकलत्वात् स्थंभिलवद्भवति सस्थंडिलः क्रोधः। यस्मिंश्च सत्यूर्ध्वं श्रयति जात्यादिना दर्पा

गोरोचनांजनं गृद्धिर्गार्ध्यं रसेषु उपघातकर्म परोपघातक्रिया उच्छोलणं अयतनया शीतोदकादिना हस्तपादादिप्रक्षालनं कल्कं लोध्रादिद्रव्येण शरीरोद्वर्तनं तत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १५ ॥ असंयतैः सार्धं संप्रसारणं पर्यालोचनं तत्संप्रसारणं परिहरेत् । कृता शोभना गृहकरणादिक्रिया येन सकृतक्रियइत्येवमसंयतानुष्ठानप्रशंसा प्रश्नस्यायतनं प्रकटीकरणं प्रश्ननिर्णयकारणं । सागारिकः शय्यातरस्तस्य पिंडं जुगुप्सितं हीनं वर्णपिंडं वा तदेतत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंच । (आसूणिमित्यादि) येन घृतपानादिना आहारविशेषेण रसायनक्रियया वा अशूनः सन आसमंतात् शूनीभवति बलवानुपजायते तदाशूनीत्युच्यते । यदिवा (आसूणिति) श्लाघा यतःश्लाघया क्रियमाणया आसमंतात् शूनः । शूनोलघुप्रकृतिः कश्चिद्दर्पाध्मातत्वात् स्तब्धोभवति । तथा अक्ष्णां रागोरंजनं सौवीरादिकमंजनमिति यावत् । एवं रसेषु शब्दादिषु विषयेषु वा गृद्धिंगार्ध्यं तात्पर्यमासेवा तयोपघातकर्मेत्युच्यते । तदेव लेशतोदर्शयति । (उच्छोलणंति) अयतनया शीतोदकादिना हस्तपादादिप्रक्षालनं तथा कल्कं लोध्रादिद्रव्यसमुदायेन शरीरोद्वर्तनकं तदेतत्सर्वं बंधनायेत्येवं विद्वान पंडितोज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१५॥ अपिच । (संपसारायइत्यादीति । असंयतैः सार्धं संप्रसारणं पर्यालोचनं परिहरेदिति वाक्यशेषः । एवं संयमानुष्ठानं प्रत्युपदेशदानं तथा (कयकिरिए) नाम कृता शोभना गृहकरणादिक्रिया येन सकृतक्रियइत्येवमसंयतानुष्ठानप्रशंसनं तथा प्रश्नस्यादर्शः प्रश्नादेरायतनमाविष्करणं कथनं यथावस्थितप्रश्ननिर्णयनानि। यदिवा प्रश्नायतनानि लौकिकानां परस्परव्यवहारे मिथ्याशास्त्रगतसंशयेवा प्रश्ने सति यथावस्थितार्थकथनद्वारेणायतनानि निर्णयनानीति । तथा सागारिकः शय्यातरस्तस्य पिंडमाहारं । यदिवा सागारिकपिंडमिति सूतकगृहपिंडं जुगुप्सितं वर्णापसदपिंडं च। चशब्दःसमुच्चये। तदेतत्सर्वं विद्वान् ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१६

अट्ठावयं नसिक्खिज्जा, वेहाईयं च णोवए ॥ हत्थकम्मं विवायंच
तं विज्जं परिजाणिया ॥ १७ ॥ पाणहा उयछत्तंच, णालीयं वालवीयणं ॥ परकिरियं अन्नमन्नंच, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १८॥

अर्थः–(अट्ठावयं नसिक्खिज्जाके०) अर्थपदं एटले अर्थ पदते धन धान्य उपार्जवानो उपाय, न शीखे अथवा बीजे अर्थे अष्टापदं एटले द्यूतक्रीडा नशीखे, (वेधादिकंचके०) अधर्मना वचन (णोवदेके०) नबोले, अथवा हिंसाकारी वचन बोले नही, तथा (हत्थकम्मं के०) कुशील प्रसिद्ध छे (विवायंच के०) कलह अथवा बीजो कोइपण विवाद

न क्रीतं । पामिच्चं साध्वर्थमन्यतउच्छिन्नकं गृह्यते । चकारः समुच्चये । आहृतं यद्गृहस्थैः साध्वर्थमानीयते पूयं आधाकर्मावयवसंपृक्तं अनेषणीयं यत्केनापि दोषेण अशुद्धं तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १४ ॥

॥ टीका–अपिच । (गंधमल्लइत्यादि) गंधाः कोष्ठपुटादयः। माल्यंजात्यादिकं । स्नानंच शरीरप्रक्षालनं देशतः सर्वतश्च । तथा दंतप्रक्षालनं कदंबकाष्ठादिना । परिग्रहः सच्चित्तादेः स्वीकरणं । तथा स्त्रियोदिव्यमानुषतैरश्च्यः। तथा कर्महस्तकर्म सावद्यानुष्ठानंवा । तदेतत्सर्वं कर्मोपादानतया संसारकारणत्वेन परिज्ञाय विद्वान् परित्यजेदिति ॥१३॥ किंचान्यत् । (उद्देसियमित्यादि) साध्वाद्युपदेशेन यद्दानाय व्यवस्थाप्यते तडुद्देशिकं । तथा क्रीतं क्रयस्तेन क्रीतं गृहीतं क्रीतक्रीतं । (पामिच्चंति) साध्वर्थं अन्यतउद्यतकं यद्गृह्यते तत्तडुच्यते । चकारः समुच्चयार्थः । एवकारोऽवधारणार्थः । साध्वर्थं यद्गृहस्थेन नीयते तदाहृतं । तथा पूयमिति आधाकर्मावयवसंपृक्तं शुद्धमप्याहारजातं जवति । किंबहुनोक्तेन यतः केनचिद्दोषेणाऽनेषणीयमशुद्धंतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय संसारकारणतया निस्पृहः सन् प्रत्याचक्षीतेति ॥ १४ ॥

आसूणि मक्खिरागंच, गिधुवघायकम्मगं ॥ उच्छोलणंच कक्कंच,
तं विज्जं परिजाणिया ॥ १५ ॥ संपसारी कयकिरिए, पसिणाय
तणाणिय ॥ सागारियंच पिंमंच, तंविज्जं परिजाणिया ॥१६ ॥

अर्थ–(आसूणि के०) घृतपानादिक औषध जेणे करी प्राणी बलवंत मत्त थाय. अथवा आशून एटले सुन्य जेणेकरी आत्मा शून्यथको रहे तथा (अक्कीरागंच के०) आंखनुं अंजनादिक तथा (गृद्धिके०) रसलोल्यता तथा (उपघातकर्मकं के०) जे करवा थकी परजीवने उपघात थाय ते कर्म, तथा (उच्छोलनंच के०) हाथ पग वस्त्रादिकनुं पखालवुं तथा (कक्कंच के०) लोध्रादिक ड्व्ये करी शरीरनुं उगटणु करवुं ए सर्वने कर्म बंधनुं कारण जाणीने पंमित परिहरे ॥ १५ ॥ (संपसारीकयकिरए के०) असंयतिनी साथें पर्यालोचन एटले आलोचन करवुं तथा असंयमाचरण करवुं करावं तथा असंयतिना अनुष्ठाननी प्रसंसा करवी तथा (पसिणायतणाणियके०) प्रश्नजे लोक व्यवहार ज्योतिषादिक तेनो निर्णय करवो तथा (सागारियंचपिंमंचके०) सागारिक जे सय्यात्तर तेना घरनो पिंम लेवो ए सर्वने पापना कारण जाणी पंमित परिहरे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–येन घृतपानादिना आशुनी स्यात् बलवान् जवति तदाशुनी । अक्षिरा

अर्थ-(उच्चारं के०) वडीनीत (पासवणं के०) लघुनीत तेनो (हरिएसुणकरेमु निः के०) मुनि हरित काय वनस्पति उपर स्थंमिल नकरे (वियडेणवाविसाहट्टु के०) फासु पाणियें करी वनस्पतिकाय हरितकाय बीजने कदापि (णावमज्जेकयाइविके०) पर हां नकरे एटले निश्चयकी दूरन करे ॥ १ए ॥ (परमत्तेअन्नपाणं के०) पर एटले अन्य गृहस्थ तेने घेर कांसादिकना भाजनने विषे अन्न पाणी आहारादिकने (णभुंजेज्ज कयाइवि के०) कदापि भुंजे नही एटले जमे नही (परवत्थंअचेलोवि के०) पोते अ चेलक एटले वस्त्र रहित उतां पण परजे गृहस्थादिकतेनुंजे वस्त्र तेने नभोगवे एटले ए सर्वने संयम विराधवाना कारण जाणीने जे पंमित होय ते परिहरे ॥ २० ॥

॥ दीपिका-उच्चारं प्रस्रवणं च हरितेषु नकुर्यान्मुनिः। तथा विकटेन प्रासुकजलेनापि संहृत्यापनीय बीजानि हरितानि वा नाचमेत ननिर्लेपनं कुर्यात्किमुताविकटेन ॥ १ए॥ परस्य गृहस्थस्यामत्रं भाजनं तत्रान्नपानं नभुंजीत। कदाचिदपि पूर्वकर्मपश्चात्कर्मादिदोषा त् अचैलोपि सन् परवस्त्रं गृहस्थवस्त्रं नबिभृयात्। यदिवा ऽचैलोजिनकल्पी तस्य सर्वम पि वस्त्रं परवस्त्रमेव तन्न बिभृयात् तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २० ॥

॥ टीका-तथा (उच्चारमिति) उच्चारप्रस्रवणादिकां क्रियां हरितेषूपरिबीजेषु वा स्थं डिले वा मुनिः साधुर्नकुर्यात्तथा विकटेन विगतजीवेनाप्युदकेन संहृत्यापनीय बीजानि ह रितानि वा नाचमेत ननिर्लेपनं कुर्यात् किमुताविकटेनेतिभावः ॥ १ए ॥ किंच (परमत्ते इत्यादि) परस्य गृहस्थस्यामत्रं भाजनं परामत्रं तत्र पुरःकर्म पश्चात्कर्म तद्भयात् हृतनष्टा दिदोषसंभवाच्चान्नं पानंच मुनिर्न कदाचिदपि भुंजीत। यदिवा पतद्गृहधारिणश्छिद्रपाणेः पाणिपात्रं परपात्रं। यदिवा पाणिपात्रस्याछिद्रपाणेर्जिनकल्पिकादेः पतद्गृहः परपात्रं त त्र संयमविराधनाभयान्नभुंजीत तथा परस्य गृहस्थस्य वस्त्रं परवस्त्रं तत्साधुरचैलोपि सन् पश्चात्कर्मादिदोषभयात् हृतनष्टादिदोषसंभवाच्च नबिभृयात्। यदिवा जिनकल्पिका दिकोऽचैलोभूत्वा सर्वमपि वस्त्रं परवस्त्रमिति कृत्वा नबिभृयादेतत्सर्वं परपात्रभोजनादि कं संयमविराधकत्वेन ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥ २० ॥

आसंदीपलियंकेय, णिसिज्जं च गिहंतरे ॥ संपुछणं सरणंवा, तं

विज्जं परिजाणिया ॥ २१॥ जसं कित्ति सलोयंच, जाय वंदण पू

यणा ॥ सवलोयंसि जे कामा, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २२ ॥

अर्थ-(आसंदीपलियंकेयके०) गृहस्थनुं आसन जे मांची प्रमुख तथा पर्यंकासन ते

पंमित ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे ॥ १७ ॥ (पाणहा नयबत्तंच के०) पावडी तथा खासडा तथा ताप टालवाने अर्थे बत्र तथा (णालीयं के०) न लीमांहे पाश घाली नाखे द्युत रमत विशेष (वालवीयणंच के०) चामर मोर पीठ प्रमुखना वींजणा तथा (परकिरियं के०) अन्य गृहस्थ पाशेथी क्रिया करावे तथा (अन्नमन्नंच के०) अन्योन्य एटले माहो मांहे क्रियानुं करवुं एटले बीजो आपणी करे आपणे बीजानी करिए तेक्रिया जाणवी. ए सर्व कर्म बंधना हेतुबे एम तेने ज्ञ प रिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें करी पंमित परिहरे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–अर्थोधनधान्यादिः पदं शास्त्रं प्राण्युपघातकं नशिक्षेत् । अथवा अष्टा पदं द्यूतक्रीडां नशिक्षेत नापि पूर्वशिक्षितमनुशीलयेत् वेधोधर्मानुवेधस्तस्मादतीतं वे धातीतमधर्मप्रधानं वचोनवदेत् हस्तकर्म प्रतीतं ।अथवा हस्तक्रिया परस्परं हस्तव्यापारे प्रधानः कलहः। विवादं शुष्कवादं तदेतद्बधकारणं परिहरेत् ॥ १७ ॥ उपानहौ काष्ठपा डुके आतपवारणाय बत्रं च नालिका द्यूतक्रीडा वालैर्मयूरपिछैर्व्यजनकं परेषां क्रिया अन्योन्यकार्यमन्यकार्यं सकरोति तस्य चान्यः । तदेतत्सर्वं विद्वान् कर्मबंधहेतुत्वेन ज्ञप रिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ १८ ॥

॥ टीका किंचान्यत् । (अष्टापयमित्यादि) अर्थते इत्यर्थोधनधान्यहिरण्यादिकः पद्य ते गम्यते येनार्थस्तत्पदं शास्त्रं अर्थार्थं पदमर्थपदं चाणक्यादिकमर्थशास्त्रं तन्न शिक्षे न्नाभ्यसेन्नाप्यपरप्राण्युपमर्दकारि शास्त्रं शिक्षयेत् । यदिवा अष्टापदं द्यूतक्रीडाविशेषस्तं नशिक्षेत नापि पूर्वशिक्षितमनुशीलयेदिति । तथा वेधोधर्मानुवेधस्तस्मादतीतमधर्मप्र धानं वचोनोवदेत् । यदिवा वेधइति वर्ध्रवेधोद्यूतविशेषस्तजतं वचनमपि नोवदेदास्तां तावत्क्रीडनमिति हस्तकर्म प्रतीतं । यदिवा हस्तकर्म हस्तक्रिया परस्परं हस्तव्यापार प्रधानः कलहस्तं तथा विरुद्धवादं शुष्कवादमित्यर्थः । चःसमुच्चये । तदेतत्सर्वं संसा रभ्रमणकारणं ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याचक्षीत ॥१७॥ किंच (प णहावेवेइत्यादि) उपानहौ काष्ठपाडुके च तथाऽतपादिनिवारणाय बत्रं तथा नालिका द्यूतक्रीडाविशेषस्तथा वालैर्मयूरपिछैर्वा व्यजनकं तथा परेषां संबंधिनी क्रियामन्योन्यपरस्य रतो ऽन्यनिष्पाद्यामन्यः करोत्यपरनिष्पाद्यां चापरइति । चःसमुच्चये । तदेतत्सर्वं विद्वान् पं मितः कर्मोपादानकारणत्वेन ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति॥१८

उच्चारं पासवणं,हरिएसु ण करे मुणी ॥ वियडेण वा विसाहट्टु,
णावमज्जे कयाइवि ॥ १ए॥ परमत्ते अन्नपाणं, ण भुंजेज्ज कया
इवि ॥ परवत्थं अचेलोवि, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २० ॥

अर्थ- (जेणेह के०) जे (अन्नपाणं के०) अन्नपाणीयें करीने आलोकने विषे (णिव्वहेनिरकू के०) साधुपोतानो निरवाह करे आजीविका करे तेवा अन्न पान ने (तहाविहं के०) तथाविध देखीने द्रव्य, क्षेत्र, काल अने नावनी अपेक्षायें शुद्ध निर्दोष ग्रहण करे. (अणुप्पयाणमन्नेसिं के०) वली एज अन्न पाणीनुं वीजा असंयतिने देवुं ते सर्वने ज्ञ परिज्ञायें अनर्थनुं हेतु जाणीने पंमित परिहरे ॥ २३ ॥ (एवं के०) एरीते (महामुणी के०) महामुनि (निग्गंथे के०) बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहित एवा (महावीरे के०) श्री वर्द्धमान स्वामी तेणे (उदाहु के०) कह्याले. (सेके०) ते श्री वर्द्धमान केवाछे, तोके (अणंतनाणदंसी के०) अनंत ज्ञान दर्शनना धरनारछे. तेणे धम्मंदेसितवंसुतं के०) ए श्रुत चारित्र रूप धर्म उपदेश्यो छे सिद्धांत रहस्य प्रकाश्योछे.

॥ दीपिका- येनान्नपानेन इहास्मिन् लोके निर्क्षुर्निर्वहेत् संयमयात्रां कुर्यात् तत्तथा विधमन्नं पानं वा शुद्धं गृण्हीयात्तेषामन्नादीनामनुप्रदानं गृहस्थानां परतीर्थिकानां स्वयूथ्यानां वा संयमोपघातकं नकुर्यात्तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २३ ॥ एवं पूर्वोक्तं निर्ग्रंथः श्रीवीरोमुनिः उदाहृतवान् कथितवान् । बाह्याभ्यंतरग्रंथरहितत्वान्निर्ग्रंथः । अनंतं ज्ञानं दर्शनं च यस्यासावनंतज्ञानदर्शी सन्नगवान् धर्मचारित्ररूपं श्रुतं च सिद्धांतं देशितवान् प्रकाशितवान् ॥ २४ ॥

॥ टीका- किंचान्यत् । (जेणेहमित्यादि) येनान्नेन पानेन वा तथाविधेनेति सुपरिशुद्धेन कारणापेक्षयात्वशुद्धेन वा इहास्मिन् लोके इदं संयमयात्रादिकं दुर्निक्षारोगातंकादिकं वा निर्क्षुर्निर्वहेन्निर्वाहयेद्वा यदन्नं पानंवा तथाविधं द्रव्यक्षेत्रकालनावापेक्षयाशुद्धं कल्पं गृण्हीयात्तथैतेषामन्नादीनामनुप्रदानमन्यस्मै साधवे संयमयात्रानिर्वहणसमर्थमनुतिष्ठेत् । यदिवा येनकेनचिदनुष्ठितेन संयमं निर्वहेन्निर्वाहयेदसारतामापादयेत्तथाविधमशनं पानं वाऽन्यद्वा तथाविधमनुष्ठानं नकुर्यात् । तथैषामशनादीनामनुप्रदानं गृहस्थानां परतीर्थिकानां स्वयूथ्यानां वा संयमोपघातकं नानुशीलयेदिति तदेतत्सर्वं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा सम्यक्परिहरेदिति ॥ २३ ॥ यदुपदेशेनैतत्कुर्यात्तद्दर्शयितुमाह (एवंउदाहुइत्यादि) एवमनंतरोक्तया नीत्या उद्देशकादेरारभ्य (उदाहुत्ति) उदाहृतवानुक्तवान्निर्गतो बाह्याभ्यंतरोग्रंथोयस्मात्सनिर्ग्रंथोमहावीरइति श्रीमद्वर्धमानस्वामी महांश्चासौ मुनिश्च महामुनिःअनंतं ज्ञानं दर्शनं च यस्यासावनंतज्ञानदर्शी सन्नगवान् धर्मं चारित्रलक्षणं संसारोत्तरणसमर्थं वा तथा श्रुतं च जीवादिपदार्थसूचकं देशितवान् प्रकाशितवान् ॥ २४ ॥

ना उपर बेसवुं तथा (निसिज्जंचगिहंतरेके०) गृहस्थना घरने अंतरे अथवा गृहस्थना घरमां बेसवुं (संपुछनं के०) गृहस्थने कुशलादिकनुं पुछवुं (वाके०) तथा (सरणं के०) पूर्वक्रीडादिकनुं संभारवुं ए सर्वने जाणीने पंडित परिहरे ॥ २१ ॥ जे सर्व व्यापि तेने (जसंके०) यश कहिए अने जे एकदेश व्यापि तेने (कित्तिके०) किर्त्ति कहिए तेज (सिलोयंचके०) श्लाघानी (जायके०) जाति जाणवी तथा (वंदणपूयणाके०) राजादिकनी वंदना पूजा सत्कार वस्त्रादिके करी करावबानी जे वांछा करवी, तथा (सव्वलोयंसिजेकामा के०) सर्व लोकमां जे विषय इछा कामरूप तेनी वांछना करवी, ए सर्वने पंडित कर्म बंधना कारण जाणीने परिहरे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—आसंदीआसनविशेषः पर्यंकःशयनविशेषः । तथा द्वयोर्गृहयोर्मध्ये निषद्यामवस्थानं परिहरेत् गृहस्थकुले कुशलादिसंप्रछनं पूर्वक्रीडितस्मरणं तदेतत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ २१ ॥ संग्रामादिभवं यशः । दानादिभवा कीर्तिः । तपोज्ञानादिभवा श्लाघा तथा नृपादिभिर्वंदना पुष्पादिभिः पूजनं तथा सर्वलोकइछामदनरूपाये कामास्तदेतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २२ ॥

॥ टीका—(आसंदीत्यादि) आसंदीत्यासनविशेषः । अस्य चोपलक्षणार्थत्वात्सर्वोप्यासनविधिर्गृहीतः । तथा पर्यंकः शयनविशेषस्तथा गृहस्यांतर्मध्ये गृहयोर्वा मध्ये निषद्यां वाऽऽसनंवा संयमविराधनाभयात्परिहरेत् । तथाचोक्तं । गंभीरझुसिराएते, पाणाडुप्पडिलेहगा ॥ अगुत्ती बंभचेरस्स, इछीउ बाविसंकणाइत्यादि । तथा तत्र गृहस्थगृहे कुशलादिप्रछनं आत्मीयशरीरावयवप्रछनंवा तथा पूर्वक्रीडितस्मरणं चेत्येतत्सर्वं विद्वान् विदितवेद्यः सन्ननर्थायेति ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ २१ ॥ अपि च । (जसंकित्तिमित्यादि) बहुसमरसंघट्टनिर्वहणशौर्यलक्षणं यशः । दानसाध्या कीर्तिः जातितपोबहुश्रुत्यादिजनिताश्लाघा तथा याच सुरासुराधिपतिचक्रवर्तिबलदेववासुदेवादिभिर्वंदना तथा तैरेव सत्कारपूर्विका वस्त्रादिना पूजना तथा सर्वस्मिन्नपि लोके इछामदनरूपाये केचन कामास्तदेतत्सर्वं यशःकीर्तिमपकारितया परिज्ञाय परिहरेदिति ॥ २२ ॥

जेणेह णिव्वहे भिक्खू, अन्नपाणं तहाविहं ॥ अणुप्पयाणमन्नेसिं,
तं विज्जं परिजाणिया ॥ २३ ॥ एवं उदाहु निग्गंथे, महावीरे महा
मुणी ॥ अणंतनाणदंसी से, धम्मं देसि तवं सुतं ॥ २४ ॥

द्विवसंपि नासमाणो,साहूवरुगुत्तयंपत्तो ॥१॥ यदिवा यत्रान्यः कश्चिद्दत्तादिकोनापमाणस्त त्रांतरएव सश्रुतिकोहमित्येवमनिमानवान्ननापेत।तथा मर्म गच्छतीति मर्मगं वचोन (वंफेज्जत्ति) नानिलपेत्। यद्वचनमुच्यमानं तथ्यमतथ्यंवा सद्यस्य कस्यचिन्मनःपीडामाधत्ते तद्विवेकी न नापेतेति नावः। यदिवा मामकं ममीकारः पक्षपातस्तं नापमाणो (नवंफेज्जति) नानिलपेत्तथा मातृस्थानं मायाप्रधानं वचोविवर्जयेत्। इदमुक्तं नवति। परवंचनबुध्या गूढाचारप्रधानोन्नाषन्नाणोऽनापमाणोवाऽन्यदावा मातृस्थानं नकुर्यादिति । यदातु वक्तुकामोनवति तदा नैतद्वचः परस्यात्मनोरुनयोर्वा बाधकमित्येवं प्राग्वि चिंत्य वचनमुदाहरेत्। तडुक्तं। पुवं बुद्धीएपेहित्तापच्छावक्कमुदाहरे इत्यादि ॥२७॥ अपिच। (तन्निमेत्यादि) सत्या असत्या सत्यासृषा असत्यामृषेत्येवंरूपासु चतसृषु नाषासु मध्ये तत्रेयं सत्यामृषेत्ये तदनिधानात्तृतीया नाषा। साच किंचिन्मृषा किंचित्सत्या इत्येवंरूपा। तद्यथा दशदारका अस्मिन्नगरे जातामृताः। तदत्र न्यूनाधिकसंनवेसति संख्यायाव्यनिचारात्सत्यामृषात्वमिति। यां चैवंरूपां नाषामुदित्वा अनुपश्चान्नापणात्क्षणांतरेवा तत्क्षनितेन दोषेण तप्यते पीड्यते क्लेशनाग्नवति।यद्विवा अनुतप्यते किंममैवंनूतेन नापितेनेत्येवं पश्चात्तापं विधत्ते। ततश्चेदमुक्तं नवति मिश्रापि नाषा दोषाय किंपुनरसत्या द्वितीया समस्तार्थविसंवादिनी। तथा प्रथमापि नाषा सत्या या प्राण्युपतापेन दोषानुषंगिणी सा न वाच्या। चतुर्थाप्यसत्या मृषा नाषा बुधैरनाचीर्णा सा न वक्तव्येति। सत्यायाअपि दोषानुषंगित्वमधिकृत्याह । यद्वचः (छन्नंति) क्षणुहिंसायां हिंसाप्रधानं। तद्यथा वध्यतांचौरायं लूयंतांकेदाराः दम्यंतां गोरथकाइत्यादि । यदिवा छन्नंति प्रच्छन्नं यल्लोकैरपि प्रच्छाद्यते तत्सत्यमपि न वक्तव्यमिति । एषाऽऽज्ञा अयमुपदेशोनिर्ग्रंथोनगवांस्तस्ये ति ॥ २६ ॥

होलावायं सहीवायं, गोयावायं च नोवदे ॥ तुमं तुमंति अमणुन्नं, सवसो तं ण वत्तए ॥ २७ ॥ अकुसीले सया निक्खू, णेव संसग्गियं नए ॥ सुहरूवा तत्थुवस्सग्गा, पडिबुज्झेज्ज तेविऊ ॥२८॥

अर्थ-(होलावायं के०) होलावादते देश विशेषे हुरवचन विशेषछे तेमाटे होल्या एम नबोले; तथा (सहीवादं के०) हे सखी एम पण न बोले; (गोयावायंचनोवदेतु के०)गोत्रनो प्रकाशकरी बोलाववो जे तुं अमुक नीच गोत्रीगो एवुं वचन पण नबोले; (तुमंतुमंतिअणुमन्नंके०) तुंतुं एवो असमनोज्ञ तिरस्कारनुं असुहामणुं वचन ते (सव्वसोतंणवत्तए के०) सर्वथा प्रकारे नबोले; केमके साधुने एवा वचन बोलवा युक्त नथी. ॥ २७ ॥ (अकुसीलेसया निक्खू के०) सर्व काल साधु अकुशील होय ब्रह्मचारी

नासमाणो नन्नासेज्जा, णेव वंफेज्जमम्मयं ॥ मातिहाणं विवज्जे
ज्जा, अणुचिंतिय वियागरे ॥ २५ ॥ तत्थिमात इया नासा, जं
वदित्ता णुतप्पती ॥ जं बन्नं तं न वत्तवं, एसा आणाणियंठिया ॥२६॥

अर्थ-(नासमाणोनन्नासेज्जा के०) गुरुवादिक मोहोटा पुरुष बोलता होय तेनी व चमां नडकीने नबोले, तथा (मम्मयंके०) मर्मनुं वचन जेना बोलवा थकी कोइ जीव दुह वाय एवा वचन बोले नही. (मातिहाणंविवज्जेज्जा के०) मातृस्थान एटले मायायें करी प्रधान वचन बोलवानुं पण वर्जे तो सुं बोले तोके (अणुचिंतियवियागरे के०) कार्य विशेषे विमाशीने बोले जे नाषा बोलवा थकी कांइ पण डुषण नलागे तेवी ना षा प्रकाशे ॥ २५ ॥ (तत्थिमातइयानासा के०) एक सत्या बीजी असत्या त्रीजी स त्यामृषा चोथी असत्यामृषा ए चार नाषा माहेली त्रीजी नाषा जे कांइक सत्य अने कांइक असत्य ठे तेपण नबोले (जंवदित्ताणुतप्पती के०) जे नाषाना बोलवा थकी पठी घणो पश्चाताप करवो पडे, एटले परनवे एना उदयथी डुःखी थाय तेवारे पश्चा त्ताप करे (जंबन्नंतंनवत्तवं के०) जे सावद्य एवुं हिंसाकारी वचन ते नबोले, एटले आ अमुक चोरठे एने मारो, आ धातुनो प्रयोग करो, अथवा आ खेत्र खेडो एवी नाषा नबोले. (एसाआणाणियंठियाके०) एवी आज्ञा निर्ग्रंथ श्रीमाहावीर देवनीठे ॥२६॥

॥ दीपिका-योहि नाषासमितः सन्नाषमाणोपि धर्मकथां कथयन्नपि अनाषकएव । उक्तंच । वयणविहत्तीकुसलो, वउगयं बहुविहं वियाणंतो । दिवसंपि नासमाणो, साहू वइगुत्तयंपत्तो ॥ १ ॥ अथवा यत्र रत्नाधिकोनाषमाणः स्यात्तत्रांतरे नन्नाषेत । मर्मगं व चनं नकांक्षेत् । यद्वचनमुक्तं सत्परपीडामाधत्ते तन्न नाषेतेत्यर्थः । मातृस्थानं मायाप्रधानं वचोविवर्जयेत् अनुविचिंत्य विचार्य व्यागृणीयात् वदेत् ॥ २५ ॥ सत्या १ असत्या२ सत्यामृषा ३ असत्यामृषा ४ एताश्चतस्रोनाषाः । तत्रेयं तृतीया नाषा साच किंचित्सत्या किंचिन्मृषा । यथा दशदारकाअत्रपुरे जातामृतावा तदत्र न्यूनाधिकसंनवेसति संख्या व्यनिचारात्सत्यामृषात्वं । यां नाषामुदित्वा इहलोके वा अनितप्यते क्लेशनाग्नवति । कोर्थः । मिश्रापि नाषा दोषाय किंपुनरसत्येति । तथा यद्वचः (बंन्नत्ति) क्षणुहिंसया हिंसाप्र धानं प्रबन्नंवा यल्लोकैराबाद्यते तत्सत्यमपि नवाच्यं एषाज्ञा निर्ग्रंथोनगवान् तस्य. ॥२६

॥ टीका-किंचान्यत् (नासमाणे इत्यादि) योहि नाषासमितः सन्नाषमाणोपि धर्मक थासंबंधनापकएव स्यात् । उक्तंच । वयणविहत्तीकुशलो, वउगयं बहुविहं वियाणंतो ।

नन्नड अंतराएणं, परगेहे ण णिसीयए ॥ गामकुमारियं किड्डं,
नातिवेलं हसे मुणी ॥ २९ ॥ अणुस्सुड उरालेसु, जयमाणो परि
व्वए ॥ चरियाए अप्पमत्तो, पुढो तड हियासए ॥ ३० ॥

अर्थ- (नन्नड अंतराएणं के०) जरा रोगादिक कारणविना (परगेहेणणिसीयए के०) गृहस्थना घरने विषे नबेशे एटले गृहस्थने घेर नबेशवुं ए साधुनो उत्सर्ग मार्ग कह्योछे. अने अपवादे तो जरारोगादिक कारण विना नबेशे तथा कोइएक लब्धीमंत धर्मोपदेशादिक वचन देवाने कारणे पण बेशे तथा (गामकुमारियंकिड्डं के०) ग्रामने विषे बालक क्रीडा हास्य कंदर्प हस्तस्पर्श आलिंगनादिक गेडा दडि इत्यादिक क्रीडाने (नातिवेलंहसेमुणीके०) साधु नकरे वली पडिलेहणादिक क्रियानी मर्यादा ने जगवंतनी आज्ञा थकी विरुध जाणीने अतिक्रमे नही हसे नही ॥२९॥ (अणुस्सुड उरालेसु के०) उदार उद्भट प्रधान एवा गृहस्थना कामजोगादिक देखी तथा सांजलीने तेनी वांछा करे नही; तथा (जयमाणोपरिव्वए के०) संयमने विषे यत्नकरतो शुद्ध चारित्र पाले (चरियाएअप्पमत्तो के०) विहार करवाने विषे प्रमाद नकरे, अप्रमत्त पणे विचरे (पुढोतडहियासए के०) त्यां विहार करवानेविषे उपसर्ग परिसह उपने थके तेने फरश्यो थको अदीनपणे सम्यक्रीते अहियासे ॥ ३० ॥

॥ दीपिका-साधुर्भिक्षानिमित्तं ग्रामादौ प्रविष्टः सन् परोगृहस्थस्तस्य गृहे ननिषीदेत नोपविशेत्। यदिवा देशनालब्धिमान् कश्चित्तत्सहायोगुर्वनुज्ञातः कथंचित्तथाविधस्य धर्मदेशनानिमित्तमुपविशेदपि । तथा ग्रामे कुमारकास्तेषामियं ग्रामकुमारिका क्रीडा हास्यकंदर्पहस्तसंस्पर्शालिंगनादिका अथवा क्रीडा वट्टकंडुकादिका तां मुनिर्नोकुर्यात् अतिवेलं वेलामर्यादा तामतिक्रम्य नहसेन्मुनिः । यदागमः । जीवेणंभंतेहसमाणे उस्सूयमाणेवाकाइकम्मवगडीउ बंधइ गोयमा सत्तविहबंधएवा अठविहबंधएवाइत्यादि ॥ २९ ॥ उदारेषु शब्दादिविषयेषु अनुत्सुकोऽनासक्तोयतमानः संयमे परिव्रजेन्मूलोत्तरगुणेषूद्यमं कुर्यात् । चर्यायां भिक्षादिकायामप्रमत्तः स्यात् स्पृष्टः परीषहादिभिस्तत्राऽदीनोऽध्यासहेत् सम्यक् सह्यात् ॥ ३० ॥

॥ टीका-किंचान्यत् (नन्नडेत्यादि) तत्र साधुर्भिक्षादिनिमित्तं ग्रामादौ प्रविष्टः सन् परोगृहस्थस्तस्य गृहं परगृहं तत्र ननिषीदेन्नोपविशेत् उत्सर्गतोस्यापवादं दर्शयति।नान्यत्रांतरायेणेति। अंतरायः शक्त्यभावः सच जरसा रोगातंकाभ्यां स्यात्तस्मिं चांतराये सत्युपवि

थको रहे (एवसंसग्गियंनए के०) तथा जिनशासनथी विरुद्ध एवा अनाचारी पास त्थादिकनो त्रिविधे संसर्ग नकरे ते पासत्थादिकनो संसर्ग केवोछे तोके जेना थकी (सु हरूवा तत्रुवस्सग्गा के०) सुखरूप जे संयम तेना घातना करनार एवा एना थकी उपसर्ग उत्पन्न थायछे केमके ते प्रायें सातागारव पणे वर्त्तनारा होय छे तेमाटे तेनी साथे सुविहित पुरुष संसर्ग करे तो तेपण सातागारव पणाने पामे. तेथी सुखरूप सं यमनो घातक थायछे माटे (पडिबुझेज्जतेविक के०) पंमित जे होय ते प्रतिबोध पा मीने एवा स्वेछाचारीउनो संसर्ग तेने डुःखनुं कारण जाणीने त्याग करे. ॥ २७ ॥

॥ दीपिका—होलाइति वादोहोलावादः सखेइति वादः सखिवादः गोत्रप्रकटनेन वादो गोत्रवादः काश्यपगोत्रावासिष्ठगोत्रावेत्यादि एवंरूपं वादं साधुर्नवदेत् (तुमंति) इत्थं त्वमिति तिरस्कारवाक्यं अमनोज्ञं परस्य मनःप्रतिकूलं सर्वशः सर्वथा साधूनां वक्तुं न वर्तते ॥ २७ ॥ नकुशीलोऽकुशीलः सदाभिक्षुर्नकुशीलैः संसर्गं नजेत सेवेत । सुखरूपा सातागौरवस्वनावास्तत्र कुशीलसंगे उपसर्गाः संयमोपघातकारिणः प्राडुष्यंति तद्विद्वा न् विवेकी प्रतिबुध्येत जानीयात् कुशीलसंगं त्यजेदित्यर्थः ॥ २७ ॥

॥ टीका—किंच (होलावायमित्यादि) होलेत्येवं वादोहोलावादस्तथासखेत्येवं वादः स खिवादस्तथा गोत्रोद्घाटनेन वादोगोत्रवादोयथा काश्यपसगोत्रोवासिष्ठसगोसत्रोवेति इत्ये वंरूपं वादं साधुर्नोवदेत्तथा (तुमंतुमं) तिरस्कारप्रधानमेकवचनातंबहुवचनोच्चारणयो ग्येऽमनोज्ञं मनःप्रतिकूलरूपमन्यदप्येवंनूतमपमानापादकं सर्वशः सर्वथा तत्साधूनां वक्तुं न वर्ततइति। यदाश्रित्योक्तं निर्युक्तिकारेण। तद्यथा। पासत्थोसण्णकुशीलसंथवोणकिलव ट्टएकाउं तदिदमित्यादि ॥२७॥ (अकुशीलेत्यादि) कुत्सितं शीलमस्येति कुशीलः सच पार्श्वस्थादीनामन्यतमः नकुशीलोअकुशीलः सदा सर्वकालं निक्षणशीलोभिक्षुः कुशीलो ननवेन्नचापि कुशीलैः सार्धं संसंर्गं सांगत्यं नजेत सेवेत। तत्संसर्गदोषोद्विनावयिषयाह। सुखरूपाः सातागौरवस्वनावास्तत्रतस्मिन् कुशीलसंसर्गे संयमोपघातकारिणउपसर्गाः प्राडुष्यंति। तथाहि। कुशीलवक्तारोनवंति। कः किल प्रासुकोदकेन हस्तपाददंतादिके प्रक्षा ल्यमानेदोषः स्यात्तथा नाशरीरोधर्मोनवति इत्यतोयेन केनचित्प्रकारेणाधाकर्मसान्निध्या दिना तथा उपानच्छत्रादिनाच शरीरं धर्माधारं वर्तयेत्। उक्तंच। अप्पेण बहुमेसेज्जा एयं पंडियलरकणंइति। शरीरं धर्मसंयुक्तं रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ शरीरात्स्रवते पापं पर्वतात्स लिलं यथा ॥ १॥ तथा सांप्रतमल्पानि संहननानि अल्पधृतयश्च संयमे जंतवइत्येवमादि कुशीलोक्तं श्रुत्वा अल्पसत्वास्तत्रानुषज्जंत्येवं विद्वान् विवेकी प्रतिबुध्येत जानीयात् बु ध्वा चापायरूपकुशीलसंसर्गं परिहरेदिति ॥ २७ ॥

त् । आर्याणि शुनानि कर्तव्यानि बुद्धानामाचार्याणामंतिके समीपे शिक्षेताभ्यसेदनेन नित्यंगुरुकुले वासः सेवनीयइति ज्ञापितं ॥ ३२ ॥

॥ टीका—परीषहोपसर्गाधिसहनमेवाधिकृत्याह । (हम्ममाणोऽत्यादि). हन्यमानो यष्टिमुष्टिलकुटादिनिरपि न कुप्येन्नकोपवशगोनवेत्तथा डुर्वचनान्युच्यमानआक्रुश्यमानो निर्नत्स्यमानोन संज्वलेन्न प्रतीपं वदेन्नमनागपि मनोऽन्यथात्वं विदध्यात् किंतु सुमनाः सर्वं कोलाहलमकुर्वन्नधिसहेतेति ॥ ३१ ॥ किंचान्यत् । (लद्धेकामेऽत्यादि) लब्धान् प्राप्तानप्राप्तानपि कामानिच्छामदनरूपान्गंधालंकारवस्त्रादिरूपान्वा वैरस्वामिवन्नप्रार्थयेन्नानुमन्येत नगृह्णीयादित्यर्थः । यदिवा यत्र कामावसायितया गमनादिलब्धिरूपान् कामांस्तपोविशेष लब्धानपि नोपजीव्यान्नाप्यनागतान् ब्रह्मदत्तवत्प्रार्थयेदेवं च कुर्वतोनावविवेकआख्यातआविर्नावितोनवति । तथा आर्याण्यार्याणां कर्तव्यानि अनार्यकर्तव्यपरिहारेण । यदिवा आचर्याणि मुमुक्षुणां यान्याचरणीयानि ज्ञानदर्शनचारित्राणि तानि बुद्धानामाचार्याणामंतिके समीपे सदा सर्वकालं शिक्षेताभ्यसेदित्यनेन हि शीलवता नित्यं गुरुकुलवास आसेवनीयइत्यावेदितं नवतीति ॥ ३२ ॥

सुस्सूसमाणो उवासेज्जा, सुपन्नं सुतवस्सियं ॥ वीराजे अत्तपन्नेसी, धितिमंता जिइंदिया ॥ ३३ ॥ गिहेदीवमपासंता, पुरिसादाणिया नरा ॥ ते वीरा बंधणुम्मुक्का, नावकंखंति जीवियं ॥३४॥

अर्थ—(सुस्सूसमाणोउवासेज्जाके०) सांनलवा वांछतो एवो जे साधु ते पोताना गुरुनी रुडी वैयावच्चादिक विश्रामणादिके करी सेवा करे, ते गुरु केवाहोय तोके (सुपन्नं सुतवस्सियंके०) स्वपर सिद्धांत जाणवाने नलीछे प्रज्ञा जेनी एटले रुडा गीतार्थ तथा रुडा तपना करनार एवा गुरुनी सेवा करे; ते केवा पुरुष गुरुनी सेवा करे तोके (वीरा के०) कर्मने जीतवा समर्थ तथा (जेअत्तपन्नेसी के०) जे सत्य बुद्धिना गवेषण हार तथा (धितिमंताजिइंदिया के०) धैर्यवंत एटले जेमनुं संयममां एकाग्र चित्तछे, अने जीतेंद्रिय एवा जे पुरुष होय ते गुरुनी सेवा करे ॥ ३३ ॥ (पुरिसादाणियानरा के०) जे पुरुषादानीय एटले सत्यमार्गनी गवेषणा करनार एवा मनुष्य ते एम जाणेछे जे (गिहेके०) गृहस्थने नावे रेंवा थकी (दीवंके०) ज्ञानरूप दीपक अथवा संसारनो उद्धार तेने (अपासंता के०) नथी देखता माटे चारित्र आदरेछे, (तेवीराबंधणुम्मुक्का के०) ते वीर पुरुष राग द्वेषादिक बंधनथी रहित थका (नावकंखंतिजीवियं के०) असंयमे जीवितव्य वांछे नही एटले जीववाने अर्थे असंयम करे नही ॥ ३४ ॥

शेयदिवोपशमलब्धिमान् कश्चित्सुसहायोगुर्वेनुज्ञातः कस्यचित्तथाविधस्य धर्मदेशनानिमित्तमुपविशेदपि। तथा ग्रामे कुमारकाग्रामकुमारकास्तेषामियं ग्रामकुमारिका ऽसौक्रीडा हास्यकंदर्पहस्तसंस्पर्शनालिंगनादिका। यदिवा वट्टकंडुकादिका तां मुनिर्नकुर्यात्तथा वेला मर्यादातामतिक्रांतमतिवेलं नहसेन्मर्यादामतिक्रम्य मुनिः साधुर्ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबंधनयान्नहसेत्। तथा चागमः। जीवेणं नंते हसमाणे उस्सूयमाणे वाकाइकम्मपगडीउ बंधइ गोयमा सत्तविह बंधएवा अठविहबंधएवाइत्यादि ॥ २९ ॥ किंच (अणुस्सुउइत्यादि) उरालाउदाराः शोजनामनोज्ञाये चक्रवर्त्यादीनां शब्दादिषु विषयेषु कामनोगा वस्त्राजरणगीतगंधर्वयानवाहनादयस्तथा आज्ञैश्वर्यादयश्चैतेषूदारेषु दृष्टेषु श्रुतेषु वा नोत्सुकः स्यात्। पाठांतरंवा। ननिश्रितोऽनिश्रितो ऽप्रतिबद्धः स्याद्यतमानश्च संयमानुष्ठाने परिसमंतान्मूलोत्तरगुणेषु उद्यमं कुर्वन् व्रजेत्संयमं गछेत् तथा चर्यायां निक्षादिकायामप्रमत्तःस्यात् नाहारादिषु रसगार्ध्यं विदध्यादिति । तथा स्पष्टश्चानिद्रुतश्च परीषहोपसर्गैस्त्रादीनमनस्कः कर्मनिर्जरां मन्यमानोविषहेत सम्यक् सह्यादिति ॥ ३० ॥

हम्ममाणो ण कुप्पेज्जा, वुच्चमाणो नसंजले ॥ सुमणे अहियासिज्जा, णय कोलाहलं करे ॥३१॥ लद्धे कामे ण पछेज्जा, विवेगे एव माहिए ॥ आयरियाइं सिक्खेज्जा, बुद्धाणं अंतिए सया ॥ ३२ ॥

अर्थ—(हम्ममाणोणकुप्पेज्जाके०) कोइए लाकडी अने मुष्ट्यादिके करी हण्यो उतो क्रोध नकरे (वुच्चमाणोनसंजलेके०) तथा डुर्वचने करी आक्रोश उपजाव्यो थको पण क्रोध नकरे, अने प्रति वचन पण नबोले; (सुमणेअहियासिज्जाके०) किंतु सुमन थको पूर्वोक्त परीसहने सहन करे, परंतु (णयकोलाहलंकरे के०) तेवा परीसहनी पीडायें पीड्यो थको कोलाहल नकरे ॥३१॥ (लद्धकामेणपछेज्जाके०) प्राप्त थएला कामनोगने प्रार्थे नही एटले नोगवे नही, (विवेगेएवमाहिए के०) ए साधुनो विवेक श्रीतीर्थंकरें कह्योछे, (आयरियाइंसिक्खेज्जा के०) तथा जे आचरवायोग्य एवा ज्ञान, दर्शन अने चारित्रादिक तेने शीखे, परंतु कोनी पाशेथी शीखे तोके (बुद्धाणंअंतिएसया के०) गुरु जे आचार्य तेनी पाशेथी सदा शीखे एटले गुरु कुल वास कह्यो. ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका—हन्यमानोयष्ट्यादिनिर्न कुप्येत कोपं न कुर्यात् डुर्वचनैरुच्यमानआक्रुश्यमानोन संज्वलेत नप्रलापं वदेत् सुमनाः कोलाहलमकुर्वन्नधिसहेत ॥ ३१ ॥ लब्धानपि कामान् नोगांश्च वैरस्वामिवन्नप्रार्थयेन्नगृह्णीयात् एवंकुर्वतोहि विवेकआविर्नावितः स्या

सोन्नवंति । यदिवा आदानीयोहितैषिणां मोक्षस्तन्मार्गोवा सम्यक्दर्शनादिकः पुरुषाणां मनुष्याणामादानीयः सविद्यते येषामिति विगृह्य मत्वर्थीयोऽर्शआदिन्योजिति । तथा यएवं नूतास्ते विशेषेणेरयंत्यष्टप्रकारं कर्मेति वीरास्तथा बंधनेन सवाह्याभ्यंतरेण पुत्रकलत्रादि स्नेहरूपेणोत्प्राबल्येन मुक्तावंधनोन्मुक्ताः संतोजीवितमसंयमजीवितं प्राणधारणंवा ना विकांक्षंति नाभिलषंतीति ॥ ३४ ॥

अगिद्धे सद्दफासेसु, आरंन्नेसु अणिस्सिए ॥ सवं तं समयाती तं, जमेतं लवियं बहु ॥ ३५ ॥ अइमाणंच मायंच, तं परिस्नाय पंम्फिए ॥ गारवाणिय सवाणि, णिवाणं संधए मुणित्तिवेमि ॥ ॥ ३६ ॥ इति श्रीधम्मनामं नवमज्झयणं सम्मत्तं.

अर्थ–(अगिद्धेसद्दफासेसु के०) शब्द गंध रूप रस स्पर्शादिकने विषे अगृद्ध एटले अमूर्छित तथा (आरंन्नेसु के०) छ कायना आरंभने विषे (अनिश्रित के०) प्रवर्त्ते नही, (सव्वंतंसमयातीतं के०) ए सर्व निषेधवाना कारण कह्या, ते सर्वने सिद्धांत थकी विपरीत जाणीने आचरवा नही. (जमेतंलवियंबहु के०) तथा जे विधि द्वारे कह्युंछे ते सर्व सिद्धांतने अनुसारे जाणीने आचरवुं ॥ ३५ ॥ (अतिमाणंचमायंच के०) अत्यंत मान अत्यंत माया च शब्द थकी क्रोध लोभ पण लेवा (तंपरिन्नायपंम्फिए के०) ए चार कषायने पंमित ज्ञ परिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये करी परिहरे (गारवाणियस वाणि के०) तथा रसगारव ऋद्धिगारव अने सातागारव ए सर्वेने सर्वथा परिहरे (णि वाणंसंधएमुणि के०) साधु चारित्रिउं मोक्षने संधए एटले वांछे. त्तिवेमिनो अर्थ पूर्वव त् जाणवो ॥ ३६ ॥ इतिश्री धर्म नामा नवमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका–शब्दस्पर्शेषु । आद्यंतग्रहणान्मध्यग्रहणं । रूपगंधरसेष्वप्यगृद्धोऽनासक्त आरंभेष्वनिश्रितोऽप्रवृत्तः । सर्वमेतदध्ययनादेरारभ्य निषेधत्वेन यल्लपितमुक्तं मया वहु तत्समयाज्ञैनागमादतीतमितिकृत्वा निषिद्धं ॥ ३५ ॥ अतिमानं तत्सहचरं क्रोधं माया तत्कार्यभूतं लोभं च तत्सर्वं पंमितः परिहरेत् सर्वाणि गारवाणि ऋद्धिरससातरूपाणि त्यक्त्वेति शेषः । साधुर्निर्वाणं मोक्षं सर्वकर्मक्षयं वा संदध्यात् । इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ॥ ३६ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां नवमं धर्माध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (अगिद्धेत्यादि) अगृद्धोऽनध्युपपन्नोमूर्छितः । क । शब्दस्पर्शेषु मनोज्ञेष्वाद्यंतग्रहणान्मध्यग्रहणमतोमनोज्ञेषु रूपेषु गंधेषु रसेषु वा अगृद्धइति द्रष्टव्यं ।

॥ दीपिका—शुश्रूषमाणोगुर्वादेर्वैय्यावृत्यं कुर्वाणोगुरुमुपासीत सेवेत । गुरुं किंनूतं । सुप्रज्ञं गीतार्थं सुतपस्विनं संयमवंतं । यडुक्तं । नाणस्स होइ नागी, थिरयरउं दंसणे चरित्तेय ॥ धन्ना आवकहाए गुरुकुलवासं न मुंचंति ॥ १ ॥ ये वीराआत्मप्रज्ञान्वेषिणआत्महितान्वेपकाधृतिः संयमे रतिस्त ६ंतोजितेंडियास्ते गुरुकुलवासिनः स्युः । यडुक्तं । जस्स धिई तस्स तवो जस्स तवो तस्स सुग्गई सुलहा ॥ जे अधिइमंतपुरिसा तवोवि खलु डुल्लहो तेसिमिति ॥ ३३॥ गृहे गृहस्थत्वे दीपं नावदीपं श्रुतज्ञानमपश्यंतोऽप्राप्नुवंतोनराः सम्यक् प्रव्रज्यापुरुषादानीयाः पुरुषाणामादानीयाआश्रयणीयामहतोपि महीयांसः स्युरित्यर्थः। यएवंनूतास्ते वीराबंधनोन्मुक्ताजीवितमसंयमजीवितं नावकांक्षंति नाभिलषंति ॥ ३४ ॥

॥ टीका—यडुक्तं बुद्धानामंतिके शिक्षेत्तत्स्वरूपनिरूपणायाह । (सुस्सूसमाणाइत्यादि) गुरोरादेशं प्रति श्रोतुमिच्छा शुश्रूषा गुर्वादेर्वैय्यावृत्त्यमित्यर्थः । तां कुर्वाणोगुरुमुपासीत सेवेत । तस्यैव प्रधानगुणद्वय द्वारेण विशेषणमाह। सुष्ठु शोजना वा प्रज्ञास्येति सुप्रज्ञः स्वसमयपरसमयवेदी गीतार्थइत्यर्थः । तथा सुष्ठु शोजनं वा सबाह्याभ्यंतरं तपोस्यास्तीति सुतपस्वी तमेवंनूतं ज्ञानिनं सम्यक्चारित्रवंतं गुरुं परलोकार्थी सेवेत । तथा चोक्तं।नाणस्स होइ नागी,थिरयरउं दंसणे चरित्तेय॥ धन्ना आवकहाए गुरुकुलवासं नमुंचंति। यएवं कुर्वंति तान् दर्शयति।यदिवा के ज्ञानिनस्तपस्विनइत्याह । वीराः कर्मविदारणसहिष्णवोधीरावा परीषहोपसर्गाक्षोभ्याः । धिया बुध्या राजंतीति वा धीराये केचनासन्नसिद्धिगमनाआप्तोरागादिविप्रमुक्तस्तस्य प्रज्ञा केवलज्ञानाख्या तामन्वेष्टुं शीलं येषां ते आप्तप्रज्ञान्वेषिणः सर्वज्ञोक्तान्वेषिणइतियावत् । यदिवा आत्मप्रज्ञान्वेषिणआत्मनः प्रज्ञा ज्ञानमात्मप्रज्ञा तदन्वेषिणआत्मज्ञत्वान्वेषिणआत्महितान्वेषिणइत्यर्थः । तथा धृतिः संयमे रतिः सा विद्यते येषां ते धृतिमंतः । संयमधृत्या हि पंचमहाव्रतनारोद्वहनं सुसाध्यं नवतीति । तपःसाध्या च सुगतिर्हस्तप्राप्तेति । तडुक्तं । जस्स धिई तस्स तवो, जस्स तवो तस्स सुग्गई सुलहा ॥ जे अधिइमंतपुरिसा तवोवि खलु डुल्लहो तेसिं ॥१॥ तथा जितानि वशीकृतानि स्वविषयरागद्वेषविजयेनेंडियाणि स्पर्शनादीनि यैस्ते जितेंडियाः शुश्रूषमाणा यथोक्तविशेषणविशिष्टानवंतीति ॥३३॥ तदनिधित्सुराह । गिहेदीवमित्यादि) गृहे गृहवासे गृहपाशेवा गृहस्थनावइतियावत् । दीवंति । दीपीदीप्तौ दीपयति प्रकाशयतीति दीपः । सच नावदीपः श्रुतज्ञानलानः। यदिवा द्वीपःसमुडादौ प्राणिनामावासनूतः सच नावद्वीपः संसारसमुडे सर्वज्ञोक्तचारित्रलानस्तदेवंनूतं दीपं द्वीपं वा गृहस्थनावेऽपश्यंतोऽप्राप्नुवंतः संतः सम्यक् प्रव्रज्योबानेनोत्थितानुत्तरोत्तरगुणलानेनैवंनूता नवंतीति दर्शयति। नराः पुरुषाः पुरुषोत्तमत्वाद्धर्मस्य नरोपादानमन्यथा स्त्रीणामप्येतद्गुणनाक्त्वं नवत्यथवा देवादिव्युदासार्थमिति । मुमुक्षूणां पुरुषाणामादानीयाआश्रयणीयाः पुरुषादानीयामहतोपि महीयां

दिक स्थावर जीवोछे ते समस्त जीवोने (हत्थेहिंपाएहिंय के०) हाथें करी, पगे करी अथवा समस्त कायायें करी (संजमिता के०) संयत छतो एनी हिंसा नकरे उपलक्ष ण थकी एने कोइ पण कदर्थना नकरे तथा (अदिन्नमन्नेसुयणोगहेज्जा के०) अन्यनु अदत्तदान ग्रहण करे नही ए अर्थथी परिग्रह मैथुन मृषावादादिकने पण नसेवे ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथदशमाध्ययनमारभ्यते । पूर्वं धर्मउक्तः सच समाधौ सति स्यादित्यत्र समाधिरुच्यते । (आघंमईममित्यादि । आघंमाख्यातवान् इमं वक्ष्यमाणं धर्मं मति मान् अर्हन् अनुविचिंत्य ज्ञानेन ज्ञात्वा । धर्मं किंभूतं । ऋजुमवक्रं समाधिंच सम्यगधी यते मोक्षंप्रति योग्यः क्रियते आत्मायेन ससमाधिस्तमिमं समाधिरूपं धर्मं शृणुत यूयं । नविद्यते प्रतिज्ञा आकांक्षा तपसि क्रियायांवा यस्यासावप्रतिज्ञोनिस्पृहोभिक्षुः समा धिं धर्मं प्राप्तः नविद्यते निदानमारंभरूपं भूतेषु जंतुषु यस्यासावनिदानः सावद्यानुष्ठानर हितः परिव्रजेत् संयमे चरेत् ॥ १॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च त्रिषु लोकेषु प्राच्यादिदिक्षु च ये त्रसाः स्थावरा श्च ये प्राणिनः । एतान् प्राणिनोहस्तपादाभ्यां संयम्य बध्वा साधुः उप लक्षणादन्यथा वा कदर्थयित्वा दुःखोत्पादं न कुर्यात् । तथा अन्येभ्योदत्तं नगृह्णीयात् तृतीयव्रतोपलक्षणादन्यान्यपि व्रतानि पालयेत्समाधिमाश्रयेदित्यर्थः ॥ २ ॥

॥ टीका—नवमानंतरं दशममारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः। इहानंतराध्ययने धर्मो ऽभिहितः सचाविकलः समाधौसति भवत्यतोधुना समाधिः प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबंधे नायातस्याऽध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोगद्वाराणि वाच्यानि । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्था धिकारोयं । तद्यथा । धर्मे समाधिःकर्तव्यःसम्यगाधीयते व्यवस्थाप्यते तन्मार्गेवा प्रति येना त्मा धर्मध्यानादिना ससमाधिर्धर्मध्यानादिकः सच सम्यक्ज्ञात्वा स्पर्शनीयः । नामनिष्पन्नं तु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । आयाणपदेणाघं गोणं णामं पुणो समाहित्ति॥णि क्खिविऊण समाहिं, भावसमाही इपगयंतु ॥ ५ ॥ (आयाणपदेणाघमित्यादि) आदीय ते गृह्यते प्रथममादौ यत्तदादानमादानंच तत्पदंच सुबंतं तिङंतंवा तदादानपदं तेनाघंति नामास्याध्ययनस्य यस्मादध्ययनादाविदं सूत्रं । (आघंमईमंमणुवीइ धम्ममित्यादि) य थोत्तराध्ययनेषु चतुर्थमध्ययनं प्रमादाप्रमादाभिधायकमप्यादानपदेनासंक्खयमित्युच्यते गुणनिष्पन्नं पुनरस्याध्ययनस्य नामसमाधिरिति । यस्मात्सएवात्र प्रतिपाद्यते तं च स माधिं नामादिना निक्षिप्य भावसमाधिनेह प्रकृतमधिकारइति । समाधिनिक्षेपार्थमा ह । णामंठवणादविए, खेत्ते काले तहेव भावेय ॥ एसोउ समाहीए, णिक्खेउ छव्विहोहोइ ॥ ॥ ६ ॥ (णामंठवणाइत्यादि) नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् । एषतु समाधिनि क्षेपः षड्विधोभवति । तुशब्दोगुणनिष्पन्नस्यैव नाम्नोनिक्षेपोभवतीत्यस्यार्थस्याविर्भाव

तयेतरेषु वाऽविष्टइत्यपि वाच्यः। तथा आरंनेषु सावद्यानुष्ठानरूपेष्वनिश्रितोऽसंबद्धोऽप्रवृत्तइत्यर्थः। उपसंहर्तुकामआह। सर्वमेतदध्ययनादेरारन्य प्रतिषेध्यत्वेन यल्लपितमुक्तं मया बहु तत्समयादार्हतादागमादतीतमतिक्रांतमिति कृत्वा प्रतिषिद्धं।यदपिच विधिद्वारेणोक्तं तदेतत्सर्वं कुत्सितसमयातीतं लोकोत्तरं प्रधानं वर्तते ।यदपिच तैः कुतीर्थिकैर्बहु लपितं तदेतत्सर्वं समयातीतमिति कृत्वा नानुष्ठेयमिति ॥ ३५ ॥ प्रतिषेध्य प्रधाननिषेध द्वारेण मोक्षानिसंधानेनाह (अतिमाणंचेत्यादि) अतिमानोमहामानस्तं। च शब्दात्सहचरितं क्रोधंच तथा मायां चशब्दात्तत्कार्यनूतं लोनंच तदेतत्सर्वं पंडितोविवेकी ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरें त्तथा सर्वाणि गारवाणि कृद्धिरससातरूपाणि सम्यक् ज्ञात्वा संसारकारणत्वेन परिहरेत्परिहृत्यच मुनिःसाधुर्निवाणमशेषकर्मक्षयरूपं विशिष्टाकाशदेशं वा संधयेदनिसंदध्यात् प्रार्थयेदितियावत्। इतिः परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३६ ॥ समाप्तं धर्माख्यं नवममध्ययनमिति ॥

हवे दशमुं समाधि नामे अध्ययन कहेछे नवमां अध्ययनने विषे धर्म कह्यो, ते धर्मे समाधि विना थाय नही माटे दशमां अध्ययनमां समाधिनुं स्वरूप कहेछे.

आघं मईमंमणुवीय धम्मं, अंजू समाहिं तमिणं सुणेह ॥ अप्प
डिन्ने निस्कू समाहिपत्ते, अणियाणनूते सुपरिवएज्जा ॥ १ ॥ उड्ढं
अहेयं तिरियं दिसासु,तसा य जे थावर जेय पाणा॥हत्थेहिं पाए
हिं य संजमित्ता, अदिन्नमन्ने सुयणो गहेज्जा ॥ २ ॥

अर्थ–(आघंमईमंमणुवीयधम्मं के०) मतिमंत एटले केवली नगवान् तेणे केवलज्ञाने करी विचारीने धर्म कह्यो, ते धर्म केवोछे तोके (अज्जुके०) कृजु एटले सरलता पणु (समाहिंतमिणंसुणेहके०) तेनेज समाधि कहिए. ते समाधि श्री केवली नगवंते मने उपदेशीछे तेमज श्री सुधर्म स्वामि जंबुप्रत्ये कहेछे के हुं तमने कहुंछुं ते तमे सांनलो जे एवो साधु होय ते समाधिने प्राप्त थयो एरीते जाणो ते साधु केवो होय ते कहेछे. (अप्पडिन्नेके०) जेने तप संयम पालता थका इह लोक तथा परलोकना सुखनी वांछा करवी एवी प्रतिज्ञा नथी तेने अप्रतिज्ञ कहिए; एवो, तथा (अनिदाननूतेके०) निदान रहित एटले आश्रव रहित एवो छतो (सुपरिवएज्जा के०) रुडीरीते संयम पाले ते (निस्कूके०) साधु (समाहिपत्ते के०) समाधि प्राप्त जाणवो ॥ १॥ (उड्ढंअहेयंतिरियं दिसासुके०) उंचा नीचा अने तिर्छा एम दिशो दिशे एटले सर्व लोकमांहे दिशि विदिशिने विषे (तसायजेथावरजेयपाणा के०) जे बेइंडियादिक त्रश जीवो तथा पृथ्विकाया

ज्ञानः समाख्यातवानेतच्च वक्ष्यमाणमाख्यातवानिति (आघंति) आख्यातवान् कोसौ । मतिमान् मननं मतिः समस्तपदार्थपरिज्ञानं तद्विद्यते यस्यासौ मतिमान् केवलज्ञानीत्यर्थः । तत्रासाधारणविशेषणोपादानात्तीर्थकृद् गृह्यते । असावपि प्रत्यासत्ते र्वीरोवर्धमानस्वामी गृह्यते । किमाख्यातवान् धर्मं श्रुतचारित्राख्यं । कथं । अनुविचिंत्य केवलज्ञानेन ज्ञात्वा प्रज्ञापनयोग्यान् पदार्थानाश्रित्य धर्मं नापते । यदिवा ग्राहकमनुविचिंत्य कस्यार्थस्यायं ग्रहणसमर्थस्तथाकोयं पुरुषः कंच नतः किंदर्शनमापन्नइत्येवं पर्यालोच्य धर्मशुश्रूषवोवा मन्यंते । यथा प्रत्येकमस्मदभिप्रायमनुविचिंत्य नगवान् धर्मं नापते युगपत्सर्वेषां स्वनापापरिणत्या संशयापगमादिति । किंनूतं धर्मं नापते । ऋजुमवक्रं यथावस्थितस्वरूपं वस्तुस्वरूपनिरूपणतोन । यथा शाक्याः सर्वं क्षणिकमन्युपगम्य कृतनाशाकृताभ्यागमदोषनयात्संतानाभ्युपगमं कृतवंतस्तथावनस्पतिमचेतनत्वेनाभ्युपगम्य स्वयं न छिंदंति तच्छेदनादावुपदेशं तु ददति तथा कार्षापणादिकं हिरण्यं स्वतोनस्पृशंत्य परेणतु तत्परिग्रहतः क्रयविक्रयं कारयंति । तथा सांख्याः सर्वमप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनावं नित्यमभ्युपगम्य कर्मबंधमोक्षानावप्रसंगदोषनयादाविर्नावतिरोनावावाश्रितवंतइत्यादिकौटिल्यनावपरिहारेणावक्रं तथ्यं धर्ममाख्यातवान् । तथा सम्यगधीयते मोक्षं तन्मार्गंवा प्रत्यात्मा योग्यः क्रियते व्यवस्थाप्यते येन धर्मेण सधर्मः समाधिस्तं समाख्यातवान् । यदिवा धर्ममाख्यातवांस्तत्समाधिं च धर्मध्यानादिकमिति सुधर्मस्वाम्याह तमिमं धर्मं समाधिं वा नगवडुपदिष्टं शृणुत यूयं । तद्यथा । नविद्यते ऐहिकामुष्मिकरूपा प्रतिज्ञा आकांक्षा तपोनुष्ठानं कुर्वतोयस्यासावप्रतिज्ञोनिक्षणशीलोनिक्षुः । तुर्विशेषणे । नावनिक्षुरसावेव परमार्थतः साधुधर्मं धर्मसमाधिंच प्राप्तोसातिति । तथा नविद्यते निदानमारंनरूपं नूतेषु जंतुषु यस्यासावनिदानः सएवंनूतः सावद्यानुष्ठानरहितः परिसमंतात्संयमानुष्ठाने व्रजेजच्छेदिति । यदिवा अनिदाननूतोऽनाश्रवनूतः कर्मोपादानरहितः सुष्ठु परिव्रजेत् । सुपरिव्रजेत् यदिवा अनिदाननूतान्यनिदानकल्पानि ज्ञानादीनि तेषु परिव्रजेत् । अथवा निदानं हेतुः कारणं डुःखस्यातोनिदाननूतः कस्यचिद्दुःखमनुपादयन् संयमे पराक्रमेतेति ॥१॥ प्राणिपातादीनितु कर्मणोनिदानानि वर्तंते । प्राणातिपातोपि ड्व्यक्षेत्रकालनावनेदाच्चतुर्धा । तत्र प्राणातिपातमधिकृत्याह ॥ (उड्ढंअहेइत्यादि) सर्वोपि प्राणातिपातः क्रियमाणः प्रज्ञापकापेक्षयोर्ध्वमधस्तिर्यक् क्रियते । यदिवा ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्रूपेषु त्रिषुलोकेषु तथा प्राच्यादिषु दिक्षु विदिक्षु चेति । ड्व्यप्राणातिपातस्त्वयं । त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादयोयेच स्थावराः पृथिव्यादयः । चकारः स्वगतनेदसंसूचनार्थःकालप्राणातिपातसंसूचनार्थो वा । दिवा रात्रौ वा प्राणाः । प्राणिनां नावप्राणातिपातंत्वाह । एतान प्रागुक्तान् प्राणिनोहस्तपादाभ्यां बध्वा उपलक्षणार्थत्वादस्यान्यथावा कदर्थयित्वा यत्तेषां डुःखोत्पादनं तन्न कुर्या

नार्थइति । नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य इव्यादिकमधिकृत्याह । पंचसु विसएसु सुने, सु दवंमि नावसमाहित्ति ॥ खेत्तंतु जम्मि खेत्ते, काले कालो जहिं जोक ॥ ७ ॥ (पंचस्वि त्यादि) पंचस्वपि शब्दादिषु मनोज्ञेषु विषयेषु श्रोत्रादींद्रियाणां यथा स्वप्राप्तौ सत्यां य स्तुष्टिविशेषः सद्व्यसमाधिस्तदन्यथा त्वसमाधिरिति । यदिवा इव्ययोर्द्रव्याणां वा सन्मिश्रा णामविरोधिनां सतां न रसोपघातोन्नवत्यपितु रसपुष्टिः सद्व्यसमाधिः । तद्यथा क्षीरशर्क रयोर्दधिगुडचातुर्जातकानां चेति । येनवा इव्येणोपयुक्तेन समाधिपानकादिना समाधिर्न वति तद्व्यं । इव्यसमाधिस्तुलादावारोपितं वा यत् इव्यं समतामुपैतीत्यादिकोद्व्य समाधिरिति । क्षेत्रसमाधिस्तु यस्य यस्मिन्वा क्षेत्रे व्यवस्थितस्य समाधिरुत्पद्यते सक्षेत्र प्राधान्यात् क्षेत्रसमाधिर्यस्मिन्वा क्षेत्रे समाधिर्व्यावर्ण्यतइति । कालसमाधिरपि यस्य यं का लमवाप्य समाधिरुत्पद्यते । तद्यथा । शरदिगवां नक्तमुलूकानामहनि बलिन्नुजां यस्य वा या वंतं कालं समाधिर्नवति यस्मिन्वा समाधिर्व्याख्यायते सकालप्राधान्यात् कालसमाधिरि ति । नावसमाधिंत्वधिकृत्याह । नावसमाहिंचवुविह, दंसणणाणे तवे चरित्तेय ॥ चउसुवि समाहियप्पा संमंचरणहिर्ड साहू ॥ ८ ॥ (नावसमाहीत्यादि) नावसमाधिस्तु दर्शनज्ञान तपश्चारित्रनेदाच्चतुर्धा । तत्र चतुर्विधमपि नावसमाधिं समासतोगाथापश्चार्धेनाह । मुमुक्षु णा चर्यतइति चरणं । तत्र सम्यक्चरणे चारित्रे व्यवस्थितः समुद्युक्तः साधुर्मुनिश्चतुर्ष्व पि नावसमाधिनेदेषु दर्शनज्ञानतपश्चारित्ररूपेषु सम्यगाहितोव्यवस्थापितआत्मा येन ससमाहितात्मा नवति । इदमुक्तं नवति । यःसम्यचरणे व्यवस्थितः सचतुर्विधना वसमाधिसमाहितात्मा नवति योवानावसमाधिसमाचितात्मा नवति ससम्यक्च रणे व्यवस्थितोद्रष्टव्यइति । तथाहि । दर्शनसमाधौ व्यवस्थितोजिनवचननावितां तःकरणोनिर्वातशरणप्रदीपवन्नकुमतिवायुनिर्न्नाम्यते । ज्ञानसमाधिना तु यथा यथा पूर्वश्रुतमधीते तथातथातीव नावसमाधावुद्युक्तोनवति । तथा चोक्तं । जहजह सु यमवगाहइ अइसयरसपसरसंजुयमउवं । तहतह पल्हाइ मुणी णव णवसंवेगस ढाए । चारित्रसमाधावपि विषयसुखनिस्पृहतया निष्किंचनोपि परं समाधिमाप्नोति । तथाचोक्तं । तणसंथारणिसन्नो मखिुतरोन्नढरागनयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं क त्तोतं चक्कवट्टीवि ॥ नैवास्ति राजराजस्येत्यादि तपःसमाधिनापि निकृष्टतपसोपि नग्ला निर्नवति । तथा क्षुत्तृष्णादिपरीषहेन्योनोद्विजते । तथा अन्यस्ताभ्यंतरतपोध्यानाश्रितम नाः सनिर्वाणस्थइव नसुखडःखाभ्यां बाध्यतइत्येवं चतुर्विधनावसमाधिस्थः सम्यक्चर णव्यवस्थितोन्नवति साधुरिति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः । सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलिता दिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं (आघंमईममित्यादि) अस्य चायमनंतरसूत्रेण सह संबंधः । तद्यथा । अशेषगारवपरिहारेण मुनिर्निर्वाणमनुसंधयेदित्येतन्नगवानुत्पन्नदिव्यना

तमसंयमजीवितं तस्यार्थी आयमा श्रवरूपं न कुर्यात्। तथा सुतपस्वी निकुः चयं आहारौषध्यादेः संचयं न कुर्यात् ॥ ३ ॥ सर्वेंद्रियनिर्वृतः संवृतेंद्रियइत्यर्थः । कासु प्रजासु स्त्रीषु। स्त्रीषु संवृतेंद्रियः स्यादिति सर्वतोविप्रमुक्तोनिःसंगः सन चरेत्संयमाध्वनि पृथक् पृथक् पृथिव्यादिकायेषु सत्वान् प्राणिनोऽपिशब्दा द्वनस्पतिकायेऽनंतानपि पश्य। किंनूतान् दुःखार्तान् स्वकर्मणा संसारकटाहे परिपच्यमानान् ॥ ४ ॥

॥ टीका—ज्ञानदर्शनसमाधिमधिकृत्याह । (सुयरकायधम्मेत्यादि) सुप्राख्यातः श्रुतचारित्राख्योधर्मोयेन साधुनाऽसौ स्वाख्यातधर्माऽनेन ज्ञानसमाधिरुक्तोनवति।नहि विशिष्टपरिज्ञानमंतरेण स्वाख्यातधर्मत्वमुपपद्यतइति नावः। तथा विचिकित्साचित्तविप्लुतिर्वि द्वज्जुगुप्सा वा तां वितीर्णोतिक्रांतः। तदेव च निःशंकं यज्जिनैः प्रवेदितमित्येवं निःशंकतया न कचिच्चित्तविप्लुतिं विधत्तइत्यनेन दर्शनसमाधिः प्रतिपादितोनवति । येन केनचित्प्रासुकाहारोपकरणादिगतेन विधिनात्मानं यापयति पालयतीति लाढः सएवंनूतः संयमानुष्ठानं चरेदनुतिष्ठेत्तथा प्रजायंतइतिप्रजाः पृथिव्यादयोजंतवस्तास्वात्मतुल्यआत्मवत्सर्वप्राणिनः पश्यतीत्यर्थः। एवंनूतएव साधुर्नवतीति । तथाचोक्तं । जह ममणपियं दुःखं, जाणिय एमेव सव्वजीवाणं ॥ णहणइणहणावेई, सममणइ तेण सोसमणो ॥ १ ॥ यथाच समाकुश्यमानस्याभ्याख्यायमानस्य दुःखमुत्पद्यते एवमन्येषामपीत्येवं मत्वा प्रजास्वात्मसमो नवति । तथा इहासंयमजीवितार्थी प्रनूतकालं सुखेन जीविष्यामीत्येतदध्यवसायी आयं कर्माश्रवलक्षणं न कुर्यात्तथा चयमुपचयमाहारोपकरणादेर्धनधान्यद्विपदचतुष्पदादेर्वा परिग्रहलक्षणं संचयमत्यर्थं सुष्टु तपस्वी सुविकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोनिकुर्नकुर्यादिति ॥३॥ किंचान्यत् । (सर्वेंदियइत्यादि) सर्वाणि च तानि इंद्रियाणिच स्पर्शनादीनि तैरनिनिर्वृतः संवृतेंद्रियोजितेंद्रियइत्यर्थः। क। प्रजासु स्त्रीषु । तासु हि पंचप्रकाराअपि शब्दादयोविषया विद्यंते। तथाचोक्तं , कलानि वाक्यानि विलासिनीनां, गतानि रम्याण्यवलोकितानि ॥ रतानि चित्राणिच सुंदरीणां, रसोपि गंधोपि च चुंबनादेः ॥ १ ॥ तदेवं स्त्रीषु पंचेंद्रियविषयसंनवात्तद्विषये संवृतसर्वेंद्रियेण नाव्यमेतदेव दर्शयति । चरेत्संयमानुष्ठानमनुतिष्ठेत् मुनिः साधुः सर्वतः सबाह्याभ्यंतरात्संगाद्विशेषेण प्रमुक्तोनिःसंगोनिष्किंचनश्चेत्यर्थः। स एवंनूतः सर्वबंधनविमुक्तः सन पश्यावलोकय पृथक् पृथिव्यादिषु कायेषु सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकनेदनिन्नान्सत्वान्प्राणिनोऽपिशब्दा द्वनस्पतिकाये साधारणशरीरिणोऽनंतान प्येकत्वमागतान् पश्य । किंनूतान् । दुःखेनासातवेदनीयोदयरूपेण दुःखयतीतिवा दुःखमष्टप्रकारं कर्म तेनार्तान् पीडितान्परिसमंतात्संसारकटाहोदरे स्वकृतबंधनेन परिपच्यमा

त् ।यदि चैते प्राणिनोहस्तौ पादौ संयम्य संयतकायः सन्न हिंस्यात् । चशब्दादुछ्वासनिश्वास कासकासितक्षुतवातनिसर्गादिषु सर्वत्र मनोवाक्कायकर्मसु संयतोभगवान् भावसमाधिमनु पालयेत्तथा परैरदत्तं नगृह्णीयादिति तृतीयव्रतोपन्यासः।अदत्तादाननिषेधाच्चार्थतः परिग्र होनविधोभवति नापरिगृहीतमासेव्यतइति मैथुननिषेधोप्युक्तः । समस्तव्रतपालनोपदे शाच्च मृषावादोप्यर्थतोनिरस्तइति ॥ २ ॥

सुयरकायधम्मे वितिगिछतिसे, लाढे चरे आयतुले पयासु ॥
आयं न कुज्जा इह जीवियही,चयं नकुज्जा सुतवस्सि भिरकू॥३॥
सविंदियाभिनिवुम्म पयासु, चरे मुणी सवतो विप्पमुक्के ॥ पासा
हि पाणे य पुढोवि सत्ते, दुरकेण अट्टे परितप्पमाणे ॥ ४ ॥

अर्थ-(सुयरकायधम्मे के०) समाधिवंत जे साधु ले ते एम जाणेके श्रीवीतरागें जे धर्म भाष्योले, ते रुडो कह्योले. ए श्रुताख्यात धर्म एवो होय एम साधु जाणे एटले गी तार्थ पणुं कह्युं; तथा (वितिगिछतिसे के०) जे श्रीवीतरागे कह्युं तेने संदेह रहित पणे तहत्ति करी मानतो थको रहे; एटले ज्ञान दर्शन रूप समाधि कही तथा (लाढेच रेके०) निर्दोष आहारनो लेनार एवो लतो विचरे एटले संयम पाले तथा (पयासु के०) प्रजा एटले सर्वजीवने (आयतुले के०) पोताना आत्मतुल्य करी लेखवे, तथा (आयंन कुज्जाइहजीवियही के०) जीववाने अर्थे आय एटले आश्रव नकरे अर्थात् असंयमाश्र व नकरे तथा (सुतवस्सिभिरकू के०) सुतपस्वी एवो साधु (चयंनकुज्जा के०) धन धान्यादिक परिग्रहनो संचय नकरे. ॥३॥ (सविंदियाभिनिवुम्मेपयासुके०) समस्त इंद्रिय नो संवर करीने निराभिलाषी थाय, ते कोनेविषे तोके प्रजा एटले स्त्रीने विषे निराभि लाषी थाय अर्थात् स्त्रीने देखी पांचे इंद्रियोनो संवर करे. (चरेमुणीसवतोविप्पमुक्केके०) तथा सर्व थकी विप्रमुक्त एटले स्वजनादिक द्रव्य संग अने क्रोधादिक भाव संग ए सर्व संग थकी रहित थयो लतो एवो साधु संयम आचरे. (पाणेयपुढोविसत्ते के०) तथा प्रत्येक जुदा जुदा पृथविकायादिकजे सत्व एटले जीवले तेमने (दुरकेणअट्टे के०) दुःखे करीआर्त्त (परितप्पमाणे के०) परितप्पमान एटले संसाररूप कडाहमां कर्मरूप इंधणेकरी पचता एवा (पासाहिके०) देखीने समाधिवान साधु सर्व जीवनी दया पाले.

॥ दीपिका-सुष्ठु आख्यातोधर्मोयेन सस्वाख्यातधर्मा जुगुप्साचित्तविप्लुतिस्तां तीर्णोऽति क्रांतः। येन केन चिदाहारोपकरणादिनाऽऽत्मानं यापयतीति लाढः सएवंभूतश्चरेत्संयमे। पु नःकिंभूतः । प्रजासु प्राणिषु आत्मतुल्यआत्मवत्सर्वप्राणिनः पश्यतीत्यर्थः । तथा जीवि

रौद्रध्यानात्कर्म करोति बध्नाति । यथा राजगृहनगरोत्सवनिर्गतजनसमूहे कश्चिद्द्रमको भिक्षार्थी वांछिताहारमप्राप्तोवैभारगिरिशिलापातनोद्यतः सएव दैवात् शिलाधःपतितः शिलाचूर्णितः सप्तमपृथ्वीं जगामेति। एवमादीनभोजी कर्म बध्नाति एवं मत्वा ज्ञात्वा एकांतेन समाधिर्ज्ञानादिभावसमाधिस्तमाहुः संसारतारणक्षमं जिनाः।बुद्धोज्ञाततत्वः समाधौ ज्ञानादिके विवेकेवा रतोव्यवस्थितः प्राणातिपाताद्विरतः स्थितात्मा मर्यादावान् स्यात् ॥६॥

॥टीका—अपिच (एतेसुइत्यादि) एतेषु प्राग्निर्दिष्टेषु प्रत्येकं साधारणप्रकारेपूपतापक्रियया बालवद्बालोज्ञश्चशब्दादितरोपि संघट्टनपरितापनोपद्रवणादिकेनानुष्ठानेन पापानि कर्माणि प्रकर्षेण कुर्वाणस्तेषुच पापेषु कर्मसु सत्सु एतेषु वा पृथिव्यादिजंतुषु गतः संस्तेनैव संघट्टनादिना प्रकारेणाऽनंतशआवर्त्यते पीड्यते दुःखभाग्भवतीति । पाठांतरंवा एवं तु बाले) एवमित्युपप्रदर्शने । यथा चौरः पारदारिकोवासदनुष्ठानेन हस्तपादछेदान् बंधवधादींश्चावाप्नोत्येवं सामान्यदृष्टेनानुमानेनान्योपि पापकर्मकारी इहामुत्रच दुःखभाग्भवति (आउट्टतित्ति) कचित्पाठः । तत्राशुभान् कर्मविपाकान् दृष्ट्वा श्रुत्वा ज्ञात्वा वा तेभ्योऽसदनुष्ठानेभ्यआउट्टतित्ति निवर्तते । कानि पुनः पापस्थानानि येभ्यः पुनः प्रवर्तते निवर्तते वा इत्याशंक्य तानि दर्शयति । अतिपाततः प्राणातिपाततः प्राणव्यपरोपणाद्धेतोस्तच्चाशुभं ज्ञानावरणादिकं कर्म क्रियते समादीयते तथा परांश्च भृत्यादीन प्राणातिपातादौ नियोजयन् व्यापारयन् पापं कर्म करोति।तुशब्दान्मृषावादादिकंच कुर्वन् कारयंश्च पापकं कर्म समुच्चिनोतीति ॥ ५ ॥ किंचान्यत् (आदीणवित्तीत्यादि) आसमंताद्दीना करुणास्पदा वृत्तिरनुष्ठानं यस्य कृपणवनीपकादेः सभवत्यादीनवृत्तिरेवंभूतोपि पापं कर्मकरोति। पाठांतरंवा आदीनभोज्यपि पापं करोतीति । उक्तंच । पिंडोलकेव्व दुःसीले णरगाउणमुच्चइ। सकदाचिद्भोजनमाहारमलभमानोऽल्पसत्वादार्तरौद्रध्यानोपगतोप्यधः सप्तम्यामप्युत्पद्येत। तद्यथा।असाविव राजगृहनगरोत्सवनिर्गतजनसमूहोवैभारगिरिशिलापातनोद्यतः सदैवात्स्वयं पतितपिंडोपजीवीति तदेवमादीनभोज्यपि पिंडोलकादिवज्ञ्जनः पापं कर्म करोतीत्येवं मत्वा अवधार्य एकांतेनात्यंतेन च योभावरूपोज्ञानादिसमाधिस्तमाहुः संसारोत्तरणाय तीर्थकरगणधरादयः । द्रव्यसमाधयोहि स्पर्शादिसुखोत्पादकाअनैकांतिकाअनात्यंतिकाश्च भवंत्यंतेचावश्यमसमाधिमुत्पादयंति । तथाचोक्तं । यद्यपि निषेव्यमाणा, मनसः परितुष्टिकारकाविषयाः ॥ किंपाकफलादनवद्भवंति पश्चादतिदुरंताइत्यादि । तदेवं बुद्धोऽवगततत्वः सचतुर्विधे ज्ञानादिके समाधावैकांतिकात्यंतिकसुखोत्पादके रतो व्यवस्थितोविवेकेवा आहारोपकरणकषायपरित्यागरूपे द्रव्यभावात्मके रतः सन्नेवंभूतश्च स्यादित्याह । प्राणानां दशप्रकाराणामप्यतिपातोविनाशस्तस्माद्विरतः स्थितः

नान् क्राथ्यमानान् यदिवा डुःप्रणिहितेंडियानार्तध्यानोपगतान्मनोवाक्कायैः परितप्यमानान् पश्येति संबंधोजगनीयइति ॥ ४ ॥

एतेसु बालेय पाठांतरे (एवं बालेय) पकुव्वमाणे, आवट्टती पाठांतरे (आउट्टती) कम्मसु पावएसु ॥ अतिवायतो कीरति पावकम्मं, निउंजमाणे उ करेइ कम्मं ॥ ५ ॥ आदीणवित्तीव पाठांतरे (आदीणनोइ वि) करेति पावं, मंताउ एगंतसमाहिमाहु ॥ बुद्धे समाहीयरते विवेगे, पाणातिवाता विरते ठियप्पा पाठांतरंवा (ठियच्ची) ॥ ६ ॥

अर्थ-(एतेसु के०) ए पूर्वोक्त पृथिव्यादिक जीवोने (बालेय के०) अज्ञानी जीव अनेक संघटन परिताप उपद्रवादिके करी (पकुव्वमाणे के०) पाप कर्म करतो थको वली तेजीव तेहिज पृथिव्यादिक जीवोने विषे आवीने (आवट्टती के०) घणा डुःख पामे. (कम्मसुपावएसुके०) जे पापकर्म पोते जेवा प्रकारे कर्युं होय ते पाप कर्म तेवा प्रकारे तेजीव नोगवे. हवे ते पाप कहेछे. (अतिवायतोकीरतिपावकम्मंके०) अतिवाय एटले जीवनी घात तेथकी ज्ञानावर्णादिक पाप कर्मने समाचरे (निउंजमाणेउ करेइकम्मंके०) तथा बीजा सेवकादिकने पण जीवघातनी प्रेरणा करतो थको पाप कर्म बांधे, एटले हिंसा करतो करावतो तथा अनुमोदतो थको पाप कर्मनुं बंध करे; एमज मृषावादादिकने पण सेवतो सेवरावतो अनुमोदन करतो थको पाप कर्मनुं बंध करे. ॥५॥ (आदीणवित्तीवकरेतिपावं के०) दीन एटले दयामणी एवी, आहार लेवानी जेनी वृत्तिछे तेने आदीन वृत्ति कहिए; एवो छतो पण पापकर्म बांधे, केमके आहारनी लोल्यता थकी आर्त्त रौड़ ध्याने वर्त्ते ते थकी कर्म बांधे, (मंताउएगंतसमाहिमाहुके०) एवुं जाणीने श्रीतीर्थंकर गणधरे संसार तरवारनुं कारण एकांते आहारादिकने अर्थे पण अरत्यादिक नकरे एवी समाधि कहीछे. (बुद्धसमाहीयरतेविवेगे के०) ते कारणे बुद्ध एटले तत्वनो जाण एवो साधु समाधिने विषे रत होय ते साधु विवेकी एवो छतो शुं करे ते कहेछे (पाणातिवाताविरतेठियप्पाके०) प्राणातिपात जे जीवनी हिंसा ते थकी विरमीने संयमने विषे जेनो आत्मा सत्यमार्गेने विषे व्यवस्थितछे एवो थाय ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-एतेषु प्राणिषु बालोज्ञः संघट्टपरितापोपद्रवादि प्रकुर्वाणस्तेषु पापेषु कर्मसु सत्सु आवर्त्यते डुःखनाग्नवति अतिपाततोहिंसातः पापकर्मक्रिया नबध्यते परान् नृत्यादीन् नियोजयन् कर्म करोति प्राणातिपातादिकं कुर्वन् कारयंश्च कर्म बध्नातीति ॥ ५ ॥ आसमंताद्दीना करुणा वृत्तिस्तया नोजी आहारग्राही शोजनाद्दारमप्राप्नुवन्नार्त

लासादिषु आसक्तोबालोज्ञोऽव्यमंतरेण स्त्रीप्राप्तिर्नस्यादिति तदुपायनूतं परिग्रहं प्रकुर्वाणः पापमेव बध्नाति ॥ ८ ॥

॥ टीका—किंच (सव्वंजगमित्यादि) सर्वं चराचरं जगत् प्राणिसमूहं समतया प्रेक्षितुं शीलमस्य समतानुप्रेक्षी समतापश्यकोवा नकश्चित्प्रियोनापि द्वेष्यइत्यर्थः । तथा चोक्तं । नवि यस कोइविस्सो, पिउसव्वेसु चेवजीवेसु । तथा (जहममणपियं दुःखमित्यादि) समतोपेतश्च न कस्यचित्प्रियमप्रियं वा कुर्यान्निःसंगतया विहरेदेवं हि संपूर्णनावसमाधियुक्तोनवति । कश्चित्तु नावसमाधिना सम्यग्ज्ञानेनोत्थाय परीषहोपसर्गैस्तर्जितोदीननावमुपगम्य पुनर्विषस्सोनवति विषयार्थीवा कश्चिद्गार्हस्थ्यमप्यवलंबते रससातागौरवगृद्धोवा पूजासत्काराभिलापी स्यात्तदनावे दीनः सन् पार्श्वस्थादिनावेन वा विषस्सोनवति । कश्चित्तथा संपूजनं वस्त्रपात्रादिना प्रार्थयन् श्लाघाभिलाषीच व्याकरणगणितज्योतिषनिमित्तशास्त्राण्यधीते कश्चिदिति ॥ ७ ॥ किंचान्यत् (आहकडंचेत्यादि) साधूनाधायोद्दिश्य कृतं निष्पादितमाधाकर्मेत्यर्थः । तदेवंनूतमाहारोपकरणादिकं निकाममत्यर्थं यः प्रार्थयते स निकाममीणः । तथा निकाममत्यर्थं आधाकर्मादीनि तन्निमित्तनिमंत्रणादीनि वा सरति चरति तच्छीलश्च सतथा एवंनूतं पार्श्वस्थावसन्नकुशीलानां संयमोद्योगे विषस्सानां विषस्सुनावमेषते सदनुष्ठानविषस्सतया संसारपंकावसन्नोनवतीति यावत् । अपिच स्त्रीषु रमणीष्वासक्तोऽभ्युपपन्नः पृथक्पृथक् तद्भाषितहसितविब्बोकशरीरावयवेष्विति । बालवद्बालोज्ञः सदसद्विवेकविकलस्तदवसक्ततया च नान्यथा द्रव्यमंतरेण तत्संप्राप्तिर्नवतीत्यतो येन केनचिदुपायेन तदुपायनूतं परिग्रहमेव प्रकर्षेण कुर्वाणः पापं कर्म समुच्चिनोतीति॥८

वेराणुगिद्धे (पाठांतरे आरंनसत्तो) णिचयं करेति, इउ चुतेसु दुहमठ्ठुग्गं ॥ तम्हा उ मेधावि समिरकधम्मं, चरे मुणी सव्वउ विप्पमुक्के ॥ ए ॥ आयं ण कुज्जा पाठांतरे (छंदं ण कुज्जा) इह जीवियठी, असज्जमाणोय परिव्वएज्जा ॥ णिसम्म नासीय विणीय गिद्धिं,हिंसन्नियं वा ण कहं करेज्जा ॥१०॥

अर्थ--(वेराणुगिद्धेके०) जे कोइ परोपताप रूप कर्मेकरी वैरनुं अनुबंध करे तेने वेरानुगृद्ध कहिये. अथवा (आरंनसत्तोणिचयंकरेति के०) आरंनने विषे आसक्त ठतो कर्मनो संचय करे एवो पुरुष (इउचुतेसुके०) अहीं थकी चवीने ते (दुहमठ्ठुग्गंके०) परमार्थ थकी डुर्ग एटले विषम डुष्कर एवुं नरकादिक स्थानकने पामे, (तम्हाउ के०)ते कारण माटे (मेधाविके०) पंमित होय ते (समिरकधम्मं के०) सम्यक् प्रकारे आलोचीने श्रुत चारित्ररूप धर्मजे श्रीवीतरागे नाष्योठे, तेने विषे (चरेके०) विचरे एवो (मुणी

सम्यक् मार्गेषु आत्मा यस्य सः । पाठांतरंवा (ठियच्चित्ति) स्थिता शुद्धस्वभावात्मना अ र्चिर्लेश्या यस्य सभवति स्थितार्चिः सुविशुद्धस्थिरलेश्यइत्यर्थः ॥ ६ ॥

सव्वं जगं तं समयाणुपेही, पियमप्पियं कस्सइ णो करेजा ॥ उठा
य दीणोय पुणो विसन्नो, संपूयणं चेव सिलोयकामी ॥७॥ आहा
कडं चेव निकाममीणे नियामचारीय विसणमेसी ॥ इत्थीसु सत्तेय
पुढोय बाले, परिग्गहं चेव पकुव्वमाणे ॥ ८ ॥

अर्थ–(सव्वंजगंके०) सर्वजगत् एटले जीव अर्थात् ब निकायना जीव (तंके०) ते स र्वेने (समयाणुपेहीके०) समता भावे करी पोताना आत्मा समान देखे (पियमप्पियं के०) प्रीतिभावते राग अप्रीतिभाव ते द्वेष ए बन्ने (कस्सइके०) कोइ उपरे (णोकरे ज्जा के०) नकरे, एटले कोइ उपर सारुं मातुं चिंतवे नही, (उठायदीणोयके०) तथा कोइक चारित्र आदरी पढी तेने पालवा असमर्थ एटले दीन थाय (पुणोविसन्नोके०) वली विषयाभिलाषी थको गृहस्थपणु आदरे कंमरीकनी पेरे संसारमांहे खुचे, वली को इएक (संपूयणंचेव के०) वस्त्र पात्रादिके करी पूजा वांछे तथा (सिलोयकामी के०) लोकमांहे पोतानी श्लाघा कराववा माटे व्याकर्ण ज्योतिषादिक कुशास्त्र पण भणे, एवो पुरुष समाधि थकी भ्रष्ट जाणवो. ॥ ७ ॥ (अहाकडंचेवनिकाममीणे के०) आ धाकर्मि उद्देशी आहारने अत्यंत वांछतो थको तेवो आहार लेवाने अर्थे (नियामचा रीय के०) अत्यंत भ्रमण करे एवो बतो (विसन्नमेसिं के०) संसार रूप कादवमांहे खूतोज रहे. (इत्थीसुसत्तेयपुढोयबाले के०) स्त्रीने विषे आसक्त जुदा जुदा ते रमणी ना हाव भाव विलासने विषे गृद्ध बतो द्रव्य विना स्त्रीनी प्राप्ति नथाय एम विचारी ते बाल एटले अज्ञानी पुरुष (परिग्गहंचेवपकुव्वमाणे के०) परिग्रहजे धन धान्यादिक तेनो संचय करतो थको वली घणा पाप कर्मने उपार्जे अर्थात् पापनो संचय करे. ॥८॥

॥ दीपिका–सर्वं जगत् प्राणिगणं समतयानुप्रेक्षतइति समतानुप्रेक्षी प्रियमप्रियं वा कस्यचिन्न कुर्यात् निःसंगोविहरेदित्यर्थः । कश्चित्तु सम्यगुत्थानेनोत्थाय परीषहाभिर्दी नः पुनर्विषण्णः स्यात् संयममादृत्यापि पश्चात्पार्श्वस्थादिभावं प्रतिपद्यते कश्चिदित्यर्थः। तथा संपूजनं वस्त्रपात्रादिना प्रार्थयेत् श्लोककामी श्लाघाभिलाषी व्याकरणगणितनि मित्तादिशास्त्राण्यधीते कश्चित् ॥ ७ ॥ आधाकर्म आहारोपाध्यादिकं (निकाममीणे त्ति) अत्यर्थाभिलाषी तथा आधाकर्मादिनिमंत्रणेषु निकामचारी अत्यंतं प्रवृत्तोविष ण्णभावं संयमे शीतलत्वं एषते श्रयति । तथा स्त्रीषु सक्तः पृथक् तद्भाषितहसितवि

व्युपमर्दरूपया अन्वितां युक्तां कथां न कुर्यात् । नतत्प्रब्रूयात् यत्परात्मनोरुजयोव बाधकं वचइति जावः । तद्यथा । अश्नीतपिवत खादतमोदत हतछिंदत प्रहरतपचते त्यादिकथां पापोपादानजूतां नकुर्यादिति ॥ १० ॥

आहाकडं वा ण णिकामएज्जा, णिकामयं तेयण संथवेज्जा॥ धुणे
उरालं अणुवेहमाणे, विच्चाण सोयं अणवेरकमाणो ॥ ११ ॥ ए
गंतमेयं अन्निपत्थएज्जा, एवं पमोरको न मुसंति पासं॥ एस पमो
रको अमुसे वरेवि, अकोहणे सच्चरते तवस्सी ॥ १२ ॥

अर्थ—(आहाकडंवाणणिकामएज्जा के०) आधाकर्मि प्रमुख आहारादिकनो सर्व था प्रकारें साधु अन्निलाष करे नही (णिकामयंतेयणसंथवेज्जा के०) तथाजे आधा कर्मि आहारनी वांछना करे एवा पासत्थादिक तेने संस्तवे नही एटले तेनी साथे परि चय करे नही. तथा (उरालं के०) शरीर तेने (धुणे के०) कृश करे (अणुवेहमा णो के०) निर्जराने आलोचीने एम विचारेजे शरीरने कृश करियें तो निर्जरा थाय. एम चिंतवी शरीर कृश करतां कदाचित् शोक दुःखउपजे तो (विच्चाणसोयंअणवेरकमा णे के०) शरीरनु ममत्व अण करतो ते शोक छांमी चारित्र पाले, संयम गुणे साव धान थाय. ॥ ११ ॥ (एगंतमेयंअन्निपत्थएज्जा के०) साधु एकत्व पणानीज प्रार्थना करे एटले एकत्व पणु वांछे कारणके जीव एकलो आव्यो तथा परजवे दुर्गतिने विषे जाय तेवारे पण एकलोज जाय पण कोइ एने सहायी थाय नही, एकलोज कर्म बांधे एकलोज नोगवे, ते माटे एकत्व नावना नावे (एवंपमोरको नमुसंतिपासं के०) एम ए कत्व नावनायें प्रकर्षे करी मोक्ष एटले संगरहित पणो, थाय. एम देखीने मृषा एटले अलीक नाषा बोले नही (एसप्पमोरकोके०) एम एकत्व नावनानो अन्निप्राय ते प्रकर्षे करी मोक्षने (अमुसेवरेविके०) मृषा रहित एवो प्रधान सत्यपणु एनेज नाव समाधि कहिए जे साधु (अकोहणे के० अक्रोधि क्षमावंत (सच्चरतेके०) सत्यने विषे रत (तवस्सीके० तथा तपस्वी एवो चारित्रानुष्ठानवान् एवो जे साधु ते साधु नावसमाधिवंत जाणवो.॥ १२॥

॥ दीपिका—आधायकृतमाधाकर्मादि न कामयेन्नाभिलषेत् तथाविधाहारमन्निलष माणात् पार्श्वस्थादीन्नसंस्तुयात् तैः समं परिचयं न कुर्यात् उदारं उदारिकशरीरं विकृष्टतप सा निर्जरामनुप्रेक्षमाणोधुनीयात् कृशं कुर्यात् । तथानुकाम्यपि शोकं त्यक्त्वाऽनपेक्षमा णः शरीरनिरापेक्षोधुनीयात् ॥ ११ ॥ एकत्वमसहायत्वं प्रार्थयेत् एकत्वनावनां नाव येदित्यर्थः । एवमेकत्वनावनया प्रकर्षेण मोक्षः स्यादिदं न मृषा इति पश्य सत्यमेवैतदि

के०) साधु (सवउविप्पमुक्के के०) सर्व संग थकी विप्र मुक्त बतो विचरे ॥ ए ॥ (इहजीवियठी) साधु आ संसार मांहे आजीविकाने अर्थे (आयंके०) लान एटले ड्व्यादिक उपार्जन करवानो उपाय ते (णकुज्जा के०) नकरे तथा (असज्जमाणोयपरिवएज्जा के०) गृह पुत्र कलत्रादिकनो समागम अणकरतो थको संयमने विषे प्रवर्त्ते, शुद्ध चारित्रपाले (णिसम्मनासीयविणीयगिद्धिंके०) तथा कोइ कार्य उपना थका विमासीने बोले पण ऊंरु बोले नही एटले शब्दादिक पांच प्रकारना विषयने विषे गृद्धपणु टालीने आलोचीने बोले अर्थात् (हिंसन्नियंवाणकहंकरेज्जा के०) प्राणीनी हिंसाकारक एवी कथा नकरे, एटले जे वचन थकी जीव हणाय नही तेवा वचन बोले ॥ १० ॥

॥ दीपिका—वैरानुगृद्धः परोपतापसक्तोनिचयं कर्मबंधं करोति । इतोनवाच्च्युतः सडुःखमुपैति । किंनूतं डुःखं । अर्थेडुर्गं परमार्थविषमं तस्मान्मेधावी विवेकी धर्मं समीक्ष्य विचार्य मुनिः सर्वतोविप्रमुक्तोनिःस्पृहः सन् चरेत्संयमे ॥ए॥ आयमिति । आयं ड्व्यादिसंचयं नकुर्यात् । इहनवे असंयमजीवितार्थी तथा असज्जमानः संगमकुर्वन्परिव्रजेत् गृद्धि आसक्तिविषयेषु विनीय त्यक्त्वा निशम्य पर्यालोच्य नाषकोनवेत् हिंसयान्वितां युक्तां कथां नकुर्यान्न ब्रूयात् ॥ १० ॥

॥ टीका—तथा (वेराणुगिद्धेइत्यादि) येन केन कर्मणा परोपतापरूपेण वैरमनुबध्यते जन्मांतरशतानुयायि नवति तत्रगृद्धोवैरानुगृद्धः । पाठांतरंवा (आरंनसत्तोत्ति) आरंने सावद्यानुष्ठानरूपे सक्तोलग्नोनिरनुकंपोनिचयं ड्व्योपचयं तन्निमित्तापादितकर्मनिचयं स्थानाच्च्युतोजन्मांतरं गतः सन् वा करोत्युपादत्ते सएवंनूतउपात्तवैरः कृतकर्मोपचय इत्यतोऽस्मात्स्थानाच्च्युतोजन्मांतरंगतः सन्ः डुःखयतीति डुःखं नरकादिकयातनास्थानमर्थतः परमार्थतोडुर्गं विषमं डुरुत्तरमुपैति । यतएवं तत्तस्मान्मेधावी विवेकी मर्यादावान्वा संपूर्णसमाधिगुणं जानानोधर्मं श्रुतचारित्राख्यं समीक्ष्यालोच्यांगीकृत्य मुनिः साधुः सर्वतः सबाह्यन्यंतरात्संगाद्विप्रमुक्तोऽपगतः संयमानुष्ठानं मुक्तिगमनैकहेतुनूतं चरेदनुतिष्ठेत् रुयारंनादिसंगाद्विप्रमुक्तोनिःश्रितनावेन विहरेदिति यावत् ॥ ए ॥ किंचान्यत् (आयंणकुज्जाइत्यादि) आगच्छतीत्यायोड्व्यादेर्लानस्तन्निमित्तापादितोऽष्टप्रकारकर्मलानोतमिहास्मिन् संसारे असंयमजीवितार्थी नोगप्रधानजीवितार्थीत्यर्थः । यद्दिवा आजीविकानयात् ड्व्यसंचयं न कुर्यात् । पाठांतरंवा (छंदंणकुज्जाइत्यादि) छंदः प्रार्थनानिलाषइंद्रियाणां स्वविषयानिलाषोवाद नकुर्यात्तथा असज्जमानः संगमकुर्वन् गृहपुत्रकलत्रादिषु परिव्रजेडद्युक्तविहारी नवेत्तथा गृद्धिं गार्ध्यं विषयेषु शब्दादिषु विनीयापनीय निशम्यावगम्य पूर्वोत्तरेण पर्यालोच्य नाषकोनवेत् । तदेव दर्शयति । हिंसया प्रा

हि थको तथा संयमने विषे अरति अने असंयमने विषे रति तेने टालीने (तणाइ फा संतहसीयफासं के०) तृणादिकनो कठोर स्पर्श सहन करे. आदिशब्दथकी ऊंचो नीचो प्रदेश तेनो स्पर्शपण जाणवो ते स्पर्शनेपण सहन करे तथा शीत प्रमुखनुं स्पर्श तथा (उएहंचदंसंच हियासएज्जा के०) उष्णनो स्पर्श. दंशमसकादिकनो स्पर्श तेनेपण साधु सम्यक् प्रकारे सहन करे तथा (सुप्भिंच डुप्भिंचतितिरकएज्जाके०) समाधिवंत साधु सुनिरगंध डुरन्निगंधना परिसहने पण सम्यक् प्रकारे अहियासे एटले सहन करे ॥ १४॥

॥ दीपिका—स्त्रीषु यन्मैथुनं न स्यात् आरतआसमंताद् रतोऽसक्तः परिग्रहमकुर्वन् उच्चावचेषु ननाविधेषु विषयेषु अरक्तद्विष्टस्त्रायी परेषां त्राणभूतोनिःसंशयं भिक्षुरेवंभूतः साधुः समाधिप्राप्तः स्यात् ॥ १३॥ अरतिं रतिंवा अभिभूय भिक्षुस्तृणादिस्पर्शान् शीतोष्णस्पर्शान् दंशमशकादीन् परीषहांश्चाधिसहेत सुरभिमसुरभिं वा गंधं तितिक्षेत्सहेत ॥ १४ ॥

टीका—किंचा न्यत् (इत्थीसुइत्यादि) दिव्यमानुषतिर्यग्रूपासु त्रिविधास्वपि स्त्रीषु विषय भूतासु यन्मैथुनमब्रह्म तस्मादासमंतान्नरतोऽरतोनिवृत्तइत्यर्थः । तु शब्दात्प्राणातिपातादि निवृत्तश्च । तथा परिसमंताद्गृह्यते इति परिग्रहोधनधान्यद्विपदचतुष्पदादिसंग्रहः। तथा आत्माऽत्मीयग्रहस्तं चैवाकुर्वाणः सन्नुच्चावचेषु नानारूपेषु विषयेषु । यदिवोच्चाउत्कृष्टाअवचाजघन्यास्तेष्वरक्तद्विष्टस्त्राय्यपरेषांच त्राणभूतोविशिष्टोपदेशदानतोनिःसंशयं निश्चयेन परमार्थतोभिक्षुः साधुरेवंभूतोमूलोत्तरगुणसमन्वितोभावसमाधिं प्राप्तोभवति नापरः कश्चिदिति । उच्चावचेषु वा विषयेषु वा भावसमाधेः प्राप्तोभिक्षुर्न संश्रयं याति नानारूपान् विषयान् नसंश्रयतीत्यर्थः ॥ १३ ॥ विषयाननाश्रयन् कथं भावसमाधिमाप्नुयादित्याह । (अरइंरइंचेत्यादि) सद्भावभिक्षुः परमार्थदर्शी शरीरादौ निस्पृहोमोक्षगमनैकप्रवणश्च या संयमेऽरतिरसंयमेच रतिर्वा तामभिभूय एतदधिसहेत । तद्यथा । निष्किंचनतया तृणादिकान् स्पर्शानादिग्रहणान्निम्नोन्नतभूतप्रदेशस्पर्शांश्च सम्यगधिसहेत तथा शीतोष्णदंशमशकक्षुत्पिपासादिकान् परीषहानक्षोभ्यतया निर्जरार्थमध्यासहेदधिसहेत तथा गंधं सुरभिमितरं च सम्यक् तितिक्षयेत्सह्यात् । चशब्दादाक्रोशवधादिकांश्च परिषहान्मुमुक्षुस्तितिक्षयेदिति ॥ १४ ॥

गुत्तो वईएय समाहिपत्तो, लेसं समाहट्टु परिव्वएज्जा ॥ गिहं न
छाए णवि छायएज्जा, समिस्सभावं पयहे पयासु ॥ १५ ॥ जे के
इ लोगंमि उ अकिरियआया, अन्नेण पुट्ठा धुयमादिसंति ॥ आ
रंभसत्ता गढिताय लोय, धम्मं ण जाणंति विमुक्कहेउं ॥ १६ ॥

ति विचारय एषएव एकत्वाभिप्रायः अमृषारूपः सत्योवरः प्रधानश्च । यदि वा अक्रोधनः सत्यरतस्तपस्वी सएव भावसमाधिवान् वरः प्रधानः स्यात् ॥ १२ ॥

॥ टीका—अपिच । (आहाकडंचेत्यादि) साधूनाधाय कृतमाधाकृतमौद्देशिकमाधाकर्मेत्यर्थः । तदेवंभूतमाहारजातं निश्चयेनैव नकामयेन्नाभिलषेत्तथा विहारादिकंच निकामं निश्चयेनाभिलषेत् पार्श्वस्थादींस्तत्संपर्कदानप्रतिग्रहसंभाषणादिभिर्न संस्थापयेन्नोपबृंहयेत्तैर्वा सार्धं संस्तवं न कुर्यादिति । किंच (उरालंति) औदारिकं शरीरं विशिष्टतपसा कर्मनिर्जरामनुप्रेक्षमाणोधुनीयात् कृशं कुर्यात् । यदिवोरालंति बहुजन्मांतरसंचितं कर्म तडुदारं मोक्षमनुप्रेक्षमाणोधुनीयादपनयेत्तस्मिंश्च तपसा धूयमाने कृशीभवति । शरीरके कदाचित् शोकः स्यात्तं त्यक्त्वा याचितोपकरणवदनप्रेक्षमाणः शरीरकं धुनीयादिति संबंधः ॥११॥ किंचापेक्षेतेत्याह । (एगंतमेवेत्यादि) एकत्वमसहायत्वमभिप्रार्थयेदेकत्वाध्यवसायी स्यात् । तथाहि । जन्मजरामरणरोगशोकाकुले संसारे स्वकृतकर्मणा विलुप्यमानानामसुमतां न कश्चित्त्राणसमर्थः सहायः स्यात् । तथाचोक्तं । एकोमेसासउअप्पा, णाणदंसणसंजुउ ॥ सेसामेबाहिराभावा, सवे संयोगलरकणाइत्यादिकामेकभावनां भावयेदेवमनयैकत्वभावनया प्रकर्षेण मोक्षः प्रमोक्षोविप्रमुक्तसंगता न मृषा अलीकमेतद्भवतीत्येवंपश्य। एषचैकत्वभावनाभिप्रायः प्रमोक्षोवर्तते अमृषारूपः सत्यश्चायमेव। तथा वरोपिप्रधानोप्ययमेव भावसमाधिर्वा। यदिवा तपस्वी तपोनिष्टप्तदेहोऽक्रोधनः। उपलक्षणार्थत्वादस्यामानोनिर्मायोनिर्लोभः सत्यरतश्च एषएव प्रमोक्षोऽमृषा सत्योवरः प्रधानश्च वर्ततइति॥१२

इत्थीसु या आरय मेहुणाउ, परिग्गहं चेव अकुवमाणे ॥ उच्चावएसु विसएसु ताई, निस्संसयं भिरकु समाहिपत्ते ॥ १३ ॥ अरईरइंच अभिभूय भिरकू, तणाइफासं तह सीयफासं ॥ उण्हंच दंसंच हियासएज्जा, सुब्भिंव डुब्भिंव तितिरकएज्जा ॥ १४ ॥

अर्थ—(इत्थीसुया के०) स्त्रीने विषे (मेहुणाउ के०) मैथुन सेववा थकी (आरय के०) निवर्त्ते (परिग्गहं चेवअकुवमाणे के०) तथा धन धान्यादिक परिग्रहनो संचयअणकरतो थको तथा (उच्चावएसु विसएसुताईके०) नाना प्रकारना मनोज्ञ एवा वचनना जे प्रकार तेने विषे अथवा नाना प्रकारना विषय तेने विषे राग द्वेषे रहित होय, तथा त्राइ एटले उकायनो रक्षपाल थको (निस्संसयं भिरकु समाहिपत्ते के०) एवो भाव समाधिने विषे प्राप्त थयलोजे साधु, ते विषयने निसंश्रय एटले नपामे एटले विषयने वांछे नही ॥ १३ ॥ हवे भाव थकी समाधि जीरीते साधु पामे ते देखाडेले. (अरइं रइंच अभिभूय भिरकू के०) ते भाव साधु परमार्थनो जाण शरीरादिकने विषे निस्पृ

प्रजायंतइति प्रजास्तासु तद्विषये येन कृतेन सन्मिश्रभावोभवति तत्प्रजह्यात्। तदुक्तं भव ति। प्रव्रजितोपि सन् पचनपाचनादिकां क्रियां कुर्वन् कारयंश्च गृहस्थैः सन्मिश्रभावं भजते यदिवा प्रजाः स्त्रियस्तासु ताभिर्वा यः सन्मिश्रीभावस्तमविकलसंयमार्थी प्रजह्यात्परि त्यजेदिति ॥ १५ ॥ अपिच । (जेकेइइत्यादि) ये केचन अस्मिन् लोके अक्रियआत्मा येषामभ्युपगमे तेऽक्रियात्मानः सांख्यास्तेषां हि सर्वव्यापित्वादात्मा निष्क्रियः पठ्यते । तथाचोक्तं । अकर्ता निर्गुणोभोक्ता, आत्मा कपिलदर्शनइति । तुशब्दोविशेषणे । सचै तद्विशिनष्टि । अमूर्तत्वव्यापित्वाभ्यामात्मनोऽक्रियत्वमेव बुध्यते । तेचाक्रियात्मवादिनो ऽन्येनाक्रियत्वे सति बंधमोक्षौ नघटेते इत्यभिप्रायवता मोक्षसद्भावं पृष्टाः संतोऽक्रियावा ददर्शनेपि धूतं मोक्षं तदभावमादिशंति प्रतिपादयंति तेतु पचनपाचनादिके स्नानार्थं जलावगाहनरूपे वाऽरंभे सावद्ये सक्ताअध्युपपन्नालोके मोक्षैकहेतुभूतं धर्मं श्रुतचा रित्राख्यं न जानंति कुमार्गग्राहिणोन सम्यगवगच्छंतीति ॥ १६ ॥

पुढोय छंदा इह माणवाउ, किरियाकिरीणं च पुढोय वायं ॥जायस्स वा लस्स पकुव देहं, पाठांतरे (जायाई वालस्स पगप्नणाए) पवट्टती वेरम संजतस्स ॥ १७ ॥ आउक्खयं चेव अबुज्झमाणे, ममाति से साहसकारि मंदे ॥ अहोयराउ परितप्पमाणे, अट्टेसु मूढे अजरामरेव ॥ १८ ॥

अर्थ-(इहमाणवाउ के०) आलोकने विषे जे मनुष्यछे ते प्रत्येकमनुष्य (पुढोयछंदा के०) पृथक् पृथक् जुदा जुदा छंद एटले अभिप्राय वालाछे ते अभिप्राय कोण कोणते देखाडेछे (किरियाकिरीणंचपुढोयवायं के०) क्रियावादी एम कहेछे के सर्वकाल क्रियाज सफलछे. अने अक्रियावादी एम कहेछे के क्रिया कयाविनाज सर्व इच्छित पदार्थनी प्राप्ति थायछे. एमज वली बीजा विनय प्रमुख वादीउ पण जाणी लेवा ए सर्व पुढोय एटले पृथ क पृथक वायं एटले वदेछे; परंतु ते धर्मना अजाण बापडा (जायस्सवालस्सपकुव्वदे हं के०) जात एटले उत्पन्न थयेला बालकनी देहं एटले शरीर तेने खंम खंम करी ने पोताने सुख उपजावे छे, तथा पाठांतरे जायाइवालस्सपगप्भणाए एवो पण पाठ छे एवीरीते करतां ते (असंजतस्स के०) असंयति एटले संयम रहित थका (पवट्ट तीवेर के०) वेरने वधारेछे एटले जे जीवनी उपघात करे तेते जीवनी साथे वैरनी वृ द्धि थायछे. ॥ १७ ॥ ते बापडा (आउक्खयं के०) आयुष्यना क्षयने (अबुज्झमा णे के०) अजाणता एटले आयुष्य खूटेछे तेने नथी जाणता. अहीं चेव पदपूर्णार्थे छे एवा छता (ममाति के०) अत्यंत ममत्व करेछे एटले आ माहारुं हुं एनो एवा

अर्थ—(गुत्तोवईएयसमाहिपत्तो के०) वचने करी गुप्त मौनव्रती एटले विचारीने धर्म संबंधनुं भाषण करनार एवो साधु भाव समाधिने विषे पोहोतो कहेवाय; तथा (लेसंसमाहट्टु परिवएज्जा के०) कृष्ण, नील अने कापोत ए त्रण अशुभलेश्याने परिहरिने तेज, शुक्ल अने पद्म ए त्रण शुभ लेश्याने ग्रहण करीने संयमानुष्ठान पाले, (गिहंनछाएणविछायएज्जा के०) तथा पोते घरने छाहे नही बीजाने हाथे छवरावे नही उपलक्षण थकी छवरावताने अनुमोदे नही; तथा बीजा पण गृहस्थ पणाना कर्तव्यने परिहरे तथा (पयासु के०) प्रजालोकने विषे (समिस्सभावं के०) विषयमिश्रित भाव नो (पयहे के०) त्याग करे जे पचन पाचनादिक क्रिया करता गृहस्थ समान थाय ते नकरे अथवा प्रजा एटले स्त्री तेनी साथें मिश्रभावनो त्याग करे एटले स्त्री थकी दूर रहे. ॥ १५ ॥ (जेकेइ लोगंमिउ अकिरियआया के०) जे कोइ सांख्य दर्शनी लोक मांहे एम कहेछे के आत्मा अक्रियछे आत्माने क्रिया नथी, पण प्रकृति सर्व क्रिया करेछे एम बंध मोक्षने अण मानता थका बोलेछे (अन्नेणपुठ्ठा धुयमादिसंति के०) तेने अन्य दर्शनी कोइ पूछे के तमारा मते जो आत्मा कर्त्ता नथी तो बंध मोक्ष केम घटे तेवारे तेने फरी एमज कहेके अमारा दर्शनमांज ध्रुव एटले मोक्षछे परंतु अन्य कोइ दर्शने मोक्ष नथी एवा ते (आरंभसत्ता गढितायलोय के०) पचन पाचन स्नानादिकना आरंभने विषे आसक्त छता अत्यंत गृद्ध एवा थका रहेछे परंतु ते कहेवाछे तोके आ लोकने विषे (धम्मंणयाणंतिविमुक्कहेउं के०) मोक्षनो हेतु एवो जे श्रुत चारित्र रूप धर्म तेने नथी जाणता एवाछे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—वाचा गुप्तोमौनव्रती समाधिप्राप्तः स्यात् । शुद्धां लेश्यां समाहृत्यादाय परिव्रजेत् संयमेगृहं स्वतोन्येनवा न छादयेत् अपरमपि गृहसंस्कारं किंचिन्न कुर्यात् । तथा प्रजाः स्त्रियस्तासु मिश्रभावमेकत्वं प्रजह्यात्त्यजेत् ॥ १५ ॥ ये केचिल्लोकेऽक्रियात्मानोऽक्रियावादिनः सांख्याः । तुर्विशेषेणे । तेऽन्येनाऽक्रियत्वे सति बंधमोक्षौ नघटेते इत्यभिप्रायवता पृष्टाः संतोधूतं मोक्षं क्रियासाध्यमादिशंति । तेतु पचनाद्यारंभसक्तास्तु लोके धर्मं श्रुतचारित्राख्यं विमोक्षहेतुं न जानंति ॥ १६ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् (गुत्तोवईए इत्यादि) वाचि वाचा वा गुप्तोवाग्गुप्तोमौनव्रती सुपर्यालोचितधर्मसंबंधभाषीवेत्येवं भावसमाधिं प्राप्तोभवति । तथा शुद्धां लेश्यां तैजस्यादिकां समाहृत्योपादाय अशुद्धांच कृष्णादिकामपहृत्य परिसमंतात्संयमानुष्ठानेन व्रजेद्गच्छेदिति । किंचान्यत् गृहमावसथं स्वतोन्यैर्वा नविछादयेडुपलक्षणार्थत्वादस्यापरमपि गृहादेरुरगवत्परकृतबिलनिवासित्वात्संस्कारं न कुर्यात् । अन्यदपि गृहस्थकर्तव्यं परिजिहीर्षुराह ।

पिच । (आउरकयमित्यादि) आयुषोजीवनलक्षणस्य क्षयआयुष्कक्षयस्तमारंभप्रवृत्त छिन्नहृदमत्स्यवडुदकक्षये सत्यवबुध्यमानोतीव ममइति ममत्ववानिदं मे अहमस्य स्वामीत्येवं समंदोज्ञः साहसं कर्तुं शीलमस्येति साहसकारीति । तद्यथा । कश्चिद्वणि ङ् महाक्लेशेन महार्घाणि रत्नानि समासाद्योज्जयिन्याबहिरवासितः । सच राजचौरदायाद भयाद्रात्रौ रत्नान्येवमेवंच प्रवेशयिष्यामित्येवं पर्यालोचनाकुलोरजनीक्षयं न ज्ञातवान् अन्हेव रत्नानि प्रवेशयन् राजपुरुषैरत्नेभ्यश्च्यावितइति एवमन्योपि किंकर्तव्यताकुलः स्वायुषः क्षयमबुध्यमानः परिग्रहेष्वारंभेषु च प्रवर्तमानः साहसकारी स्यादिति । तथा कामभोगतृषितोऽन्हि रात्रौ च परिसमंतात् द्रव्यार्थी परितप्यमानोमंमणवणिग्वदार्तध्या यी कायेनापि क्लिश्यते । तथाचोक्तं । अजरामरवद्बालः, क्लिश्यते धनकाम्यया ॥ शाश्व तं जीवितं चैव, मन्यमानोधनानिच ॥ १ ॥ तदेवमार्तध्यानोपहतः । कइयावच्चइसत्तो, किंभंडंकत्तकित्तियाभूमीत्यादि । तथा उरकणइखणइणिहणइरत्ति नसुयइदियाविय ससंको इत्यादि चित्तसंक्लेशात्सुष्टु मूढोजरामरवणिग्वदजरामरवदात्मानंमन्यमानोऽपगत शुभाध्यवसायोहर्निशमारंभे प्रवर्ततइति ॥ १७ ॥

जहाहि वित्तं पसवोय सव्वं,जे बंधवा जेय पियाय मित्ता॥लाल
प्पती से विय एइ मोहं, अन्ने जणा तंसि हरंति वित्तं ॥१७॥ सी
हं जहा खुड्डमिगा चरंता,दूरे चरंती परिसंकमाणा ॥ एवं तु मे
हावि समिरक धम्मं, डुरेण पावं परिवज्जएज्जा ॥ २० ॥

अर्थ-(जहाहि के०) यथा दृष्टांते (वित्तं के०) सुवर्णादिक द्रव्य तथा (पसवोय के०) गाय भेंश प्रमुख पशुउं (सव्वं के०) ए सर्व तारो त्याग करजे माटे एमने विषे ममत्व करीश नही. वली (जेबंधवा जेयपियायमित्ता के०) यथा दृष्टांते भाइ माता पिता स्वसुरादय प्रिय मित्र ते पण परमार्थ थकी तने काम नही आवे तोपण तुं बा पडो तेमने अर्थे विलाप करेछे. (लालप्पतीसेविय एइमोहं के०) लालप्यते सोपिमो हंउपेति एटले वित्त पुत्रादिकने अर्थे लाल पाल करेछे एम ते बापडो कुंभरीकनी पेरे मोहपाशे पड्यो थको (अन्नेजणातंसि हरंतिवित्तं के०) पछी तेनुं उपार्जन करेलुं वित्त तेने बीजा जन अपहरे ए प्रकारे जीवतां तथा मरण पाम्या पछी पण तेने क्लेश ज थाय ॥ १७ ॥ (जहाके०) जेम खुड्डमिगाचरंता के० (क्षुद्र मृग एटले न्हानाएवा मृग प्रमुख अटवीनेविषे विचरनार जीवोते (सीहंके०) सिंहनामा जनावर थकी (दू रेचरंतीपरिसंकमाणा के०) बीहीता थका सिंहने दूर टालीने वेगला थका चरे; (एवं

ममत्वने नथी मूकता (सेसाहसकारिमंदे के०) ते महोटा साहासीक एटले पाप थकी बीता नथी एवा मंद एटले अज्ञानी (अहोयराउपरितप्पमाणे के०) अहोरात्र परित प्तमान एटले द्रव्यने अर्थे मम्मण श्रेष्ठिनी पेरे पश्चाताप करे कायक्लेशकरे तथा (अ ट्टेसुमूढेअजरामरेव्व के०) आर्त्तवंत थया थका एवा ते मूर्ख संसारने विषे परिभ्रमण करे परंतु अजरामर वणिकनी पेरे कोइ काले मनमां एम नजाणे जे अमने जरा अने मरण अवश्य आवशे एमविचारेनही. एवाते मूर्ख अज्ञानी जाणवा ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–पृथक्छंदानानाभिप्रायाइह मनुष्यलोके मानवाः । तुर्निश्चये । क्रियाक्रिय योः पृथक्त्वेन क्रियावादमक्रियावादं च समाश्रिताः।जातस्य उत्पन्नस्य बालस्याज्ञस्य सु खैषिणोदेहं (पकुव्वत्ति) खंडशःकृत्वाऽऽत्मसुखमुत्पादयंति। एवंकुर्वतोऽसंयतस्य वैरं प्राणि षु प्रवर्धते ॥ १७ ॥ आयुःक्षयं जीवितांतमबुध्यमानोऽजानन् साहसमविमृश्य प्रवृत्ति स्तत्करणशीलः साहसकारी मंदोममायमिति ममत्ववान् भवति । यथा कश्चिद्वणिक् महता क्लेशेन बहुमूल्यरत्नानि प्राप्य उज्जयिन्याबहिरावासितः सच राजचौरदायादभयाद्रा त्रौ रत्नान्येवमेवं नगरे नयामीत्येवं विचाराकुलोनिशाक्षयं नज्ञातवान् दिवैव रत्नानि प्र वेशयन् राजपुरुषैर्धृतोरत्नानि गृहीतानिचेति । एवमन्योपि किंकर्तव्यताकुलः स्वायुःक्ष यमजानन् ममतया साहसकारी स्यादिति । अन्हि रात्रौ च परितप्यमानोमंमणवणि ग्वदार्तध्यानी अर्थेषु मूढोऽजरामरवत्क्लिश्यते ।यतः । अजरामरवद्बालः क्लिश्यते धन काम्यया ॥ निरंतरं मन्यमानः शाश्वतं जीवितं धनमिति ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (पुढोयछंदाइत्यादि) पृथक् नाना छंदोऽभिप्रायोयेषां ते पृथ क्छंदाइहास्मिन्मनुष्यलोके मानवामनुष्याः । तुरवधारणे । तमेव नानाभिप्रायमाह । क्रि याऽक्रिययोः पृथक्त्वेन क्रियावादमक्रियावादंच समाश्रिताः।तद्यथा । क्रियैव फलदा पुं सां, नज्ञानं फलदं मतं ॥ यतः स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो, न ज्ञानात्सुखितोभवेत् ॥१॥ इत्येवं क्रियैव फलदायित्वेनाभ्युपगताः क्रियावादमाश्रिताएवमेतद्विपर्ययेणाऽक्रियावादमाश्रि ताः।एतयोश्चोत्तरस्वरूपं न्यक्षेण वक्ष्यते।तेच नानाभिप्रायामानवाः क्रियाक्रियादिकं पृ थग्वादमाश्रितामोक्षहेतुं धर्ममजानानाआरंभेषु सक्ताइंद्रियवशगाररससातागारवाभि लाषिणएतत्कुर्वंति । तद्यथा । जातस्योत्पन्नस्य बालस्याज्ञस्य सदसद्विवेकविकलस्य सु खैषिणोदेहं शरीरं पकुव्वति खंडशः कृत्वात्मनः सुखमुत्पादयंति । तदेवं परोपघातक्रियां कुर्वतोऽसंयतस्य कुतोप्यनिवृत्तस्य जन्मांतरशतानुबंधिवैरं परस्परोपमर्दकारि प्रकर्षेण व र्धते। पाठांतरंवा (जायाइबालस्सपगप्नणाए) बालस्याज्ञस्य हिंसादिषु कर्मसु प्रवृत्तस्य निरनुकंपस्य या जाता प्रगल्भता धार्ष्ट्यं तया वैरमेव प्रवर्धतइति संबंधः ॥ १७ ॥ अ

वरिवएज्जा ॥ २१ ॥ मुसं न बूया मुणिअत्तगामी, णिव्वाणमेयं कसिणं समाहिं ॥ सयं न कुज्जाउ न कारवेज्जा, करंतमन्नोपि य णाणुजाणे ॥ २२ ॥

अर्थ-(संबुज्झमाणेउणरेमतीमं के०) मतिमंत प्रज्ञावंत एवो मनुष्य सम्यक् प्रकारे धर्मने जाणतो थको (पावाउअप्पाणनिवट्टएज्जा के०) पोताना आत्माने पाप थकी निवर्त्तावे; (हिंस के०) जीवनो घात ते थकी (प्रसूत के०) उत्पन्न थयां एवांजे (दुहाई के०) शारीरीक अने मानशीक दुःख तेने (मत्ता के०) जाणीने शुंजाणीने तोके (वेराणुबंधीणिमहब्भयाणि के०) वैरानुबंधावैरना कारण जाणीने महाभयना उपजावनार एवा आश्रवोनो निरोध करे; एटले सर्व आश्रवनुं मूळ ते हिंसा जाणवी; माटे हिंसाथकीनिवर्त्ते ते साधु भावसमाधिवंत जाणवो. अथवा पाठांतरे सनिव्वाणभूएउपरिव्वएज्जा)॥ २१ ॥ (मुणिअत्तगामी के०) मोक्ष गामी मुनि (मुसंनबूया के०) मृषा बोले नही. (णिव्वाणमेयंकसिणंसमाहिंके०) ए मृषावादनो जे परिहार एज मोक्षरूप समाधिनु पण संपूर्ण कारण जाणवुं माटे ते मृषावादने (सयंनकुज्जाउके०) साधु पोते करे नही, तथा (नकारवेज्जाके०)बीजा पाशे करावे नही, तथा (करंतमन्नोपियणाणुजाणे) अन्य कोइ करतो होय तेने अनुमोदे नहीं एवोसाधु भावसमाधिवंत जाणवो ॥ २२ ॥

॥ दीपिका-मतिमान्नरः साधुः सम्यक्धर्मं बुध्यमानः पापात्सावद्याचरणादात्मानं निवर्तयेत् हिंसातः प्रसूतानि जातानि दुःखानि वैरानुबंधीनि कर्मबंधहेतूनि महाभयंकराणि इति मत्वा स्वं पापान्निवर्तयेत् ॥ २१ ॥ आप्तोमोक्षस्तगामी मुनिर्मृषावादं न ब्रूयात् एतदेव मृषावर्जनं कृत्स्नं संपूर्णं समाधिं भावसमाधिमाहुः । यथा मृषावादस्तथा अन्य व्रतातिचारमपि न कुर्यात्स्वयं नाप्यपरेण कारयेत् अन्यं कुर्वंतमपि नानुजानीयात् ॥२२॥

॥ टीका-अपिच । (संबुज्झमाणेत्यादि) मननं मतिः सा शोभना यस्यासौ मतिमान् । प्रशंसायां मतुप् । तदेवं शोभनमतियुक्तोमुमुक्षुर्नरः सम्यक्श्रुतचारित्राख्यं धर्मं वा भावसमाधिं वा बुध्यमानस्तु विहितानुष्ठाने प्रवृत्तिं कुर्वाणस्तु तदेव पूर्वं तान्निषिद्धाचरणान्निवर्तेतातस्तत्प्रदर्शयति। पापात् हिंसानृतादिरूपात्कर्मणआत्मानं निवर्तयेत्। निदानोच्छेदेन हि निदानिनउच्छेदोभवतीत्यतोऽशेषकर्मक्षयमिच्छन्नादावेवनव द्वाराणि निरुंध्यादित्यभिप्रायः । किंचान्यत् । हिंसा प्राणिव्यपरोपणं तया ततोवा प्रभूतानि जातानि यान्यशुभानि कर्माणि तान्यत्यंतं नरकादिषु यातनास्थानेषु दुःखानि दुःखोत्पादकानि वर्तंते । तथा वैरमनुबध्नंति तच्छीलानिच वैरानुबंधीनि जन्मशतसहस्रदुर्मोचान्यतएव महद्भयं येभ्यः सकाशात्तानि महाभयानीत्येवं च मत्वा मतिमानात्मानं पापान्निवर्तयेदिति । पा

तुमेहाविसमिरकधम्मंके०) ए दृष्टांते पंमित जेहे तेपण सम्यक् प्रकारें श्रीवीतराग नाषित श्रुत चारित्ररूप धर्मने आलोचीने (डुरेणपावं परिवक्काएक्काके०) हिंसादिक सावद्यानुष्ठानरूपजे क्रिया तेने पापरूप जाणीने तेनाथी दूर रहे एरीते साधु सुंधूसंयम पाले.॥२०

॥दीपिका–वित्तं ड्व्यं पशवोगोमहिष्याद्यास्तान् सर्वान् जहाहि त्यज। बांधवा मातापित्रादयः सेतस्य येच मित्राणि सुहृदस्तेपि तस्य न किंचित्तत्वतः कुर्वंति सोपिच विश्वाद्यर्थं लालप्यते नृशं विलपति मोहमुपैतिच धनवानपि मम्मणवणिग्वत् धान्यवानपि तिलकश्रेष्ठिवत् एवमयमपि असमाधिमाप्नोति। यच्च तेनार्जितं धनं तदन्यजनास्तस्य जीवतएव मृतस्यच हरंति गृह्णंति। तस्यतु क्लेशएव केवलं॥ १९ ॥ यथा क्षुड्रास्तुड्रा मृगाश्चरंतोऽटव्यामटंतः सिंहं दूरे त्यक्त्वा चरंति। यतः परिशंकमानाः सर्वतोन्नयाकुला एवं मेधावी धर्मं समीक्ष्य विचार्य पापं दूरेण परिवर्जयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (जहाहिवित्तमित्यादि) वित्तं ड्व्यजातं तथा पशवोगोमहिष्यादयस्तान् सर्वान् जहाहि परित्यज। तेषु ममत्वं माकृथाः। ये बांधवामातृपित्रादयः श्वशुरादयश्च पूर्वापरसंस्तुतायेच प्रियामित्राणि सहपांसुक्रीडितादयस्ते एते मातापित्रादयोन किंचित्तस्य परमार्थतः कुर्वंति सोपिच वित्तपशुबांधवमित्रार्थी अत्यर्थं पुनः पुनर्वा लपति लालप्यते। तद्यथा हेमातः हेपितइत्येवं तदर्थं शोकाकुलः प्रलपति तदार्जनपरश्च मोहमुपैति। रूपवानपि कंडरीकवत् धनवानपि मम्मणवणिग्वत् धान्यवानपि तिलकश्रेष्ठिवदित्येवमसावप्यसमाधिमान् मुह्यते। यच्च तेन महता क्लेशेनापरप्राण्युपमर्दनोपार्जित्तं वित्तं तदन्ये जनाः सेतस्यापहरंति जीवतएव च तस्य वा तस्य च क्लेशतः केवलं पापबंधश्चेत्येवं मत्वा पापानि कर्माणि परित्यजेत्तपश्चरेदिति ॥ १९ ॥ तपश्चरणोपायमधिकृत्याह। (सीहंजहेत्यादि) यथा क्षुड्रमृगाः क्षुड्राटव्यपशवोहरिणजात्याद्याश्चरंतोऽटव्यामटंतः सर्वतोबिन्यतः परिशंकमानाः सिंहं व्याघ्रं वा आत्मोपड्रवकारिणं दूरेण परिहृत्य चरंति विहरंत्येवं मेधावी मर्यादावान्। तुर्विशेषणे। सुतरां धर्मं समीक्ष्य पर्यालोच्य पापं कर्मसदनुष्ठानं दूरेण मनोवाक्कायकर्मनिः परिहृत्य परिसमंताद्व्रजेत्संयमानुष्ठायी तपश्चारी च नवेदिति दूरेण वा पापं पापहेतुत्वात्सावद्यानुष्ठानं सिंहमिव मृगः स्वहितमिच्छन् परिवर्जयेत्त्यजेदिति ॥ २० ॥

संबुज्फमाणे उ णरे मतीमं, पावाउ अप्पाण निवट्टएज्जा ॥ हिंसप्पसूयाइं डुहाइं मत्ता, वेराणुबंधीणि महब्नयाणि ॥ पाठांतरे सनिवाण नूएउ

संयमानुष्ठानने पाळे तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २४ ॥ इतिश्री समाधि नामक दशमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका—उज्ञमादिदोषशुद्धे आहारादौ स्यात्कदाचिल्लाते प्राप्ते सति रागद्वेषाभ्यां साधुर्न दूषयेत् । यतः । बायालीसेसणसं, कडंमि गहणंमि जीवनहुछलिउ । इण्हिंजइ नछलिज्जसि, भुंजंतोरागदोसेहिं इति । अमूर्छितोनासक्तः शुभाहारे नचाध्युपपन्नस्तमेवाहारं पुनःपुनर्नाभिलषमाणः संयमयात्रार्थमेवाहारयेत् । तथा धृतिमान् ग्रंथाद्विमुक्तो नच पूजनार्थी श्लोकः कीर्तिस्तत्कामी तदभिलाषुकोन स्यात् एवंभूतः परिव्रजेत ॥ ॥ २३ ॥ गृहान्निःसृत्य निरावकांक्षी निस्पृहः कायं शरीरं व्युत्सृज्य विचिकित्सामकुर्वन् छिन्ननिदानोभवेत् । तथा जीवितं नापि । मरणमभिकांक्षेत भिक्षुर्वलयात्संसाराद्विमुक्तः संयमे संचरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २४ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां समाध्याख्यं दशमाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—उत्तरगुणानधिकृत्याह (सुद्धेसियाइत्यादि) उज्ञमोत्पादनैषणाभिः शुद्धे निर्दोषे स्यात्कदाचिल्लाते प्राप्ते पिंडेसति साधूरागद्वेषाभ्यां न दूषयेत् । उक्तंच । बायालीसेसणसं, कडंमिगहणंमि जीवनहुछलिउ ॥ इण्हिंजइन छलिज्जसि, भुंजंतोरागदोसेहिं ॥१॥ तत्रापि रागस्य प्राधान्यख्यापनायाह । नमूर्छितोऽमूर्छितः सकृदपि शोभनाहारलाभे सतिगृद्धिमकुर्वन्नाहारयति तथा नाध्युपपन्नस्तमेवाहारं पौनःपुन्येनानभिलषमाणः केवलं संयमयात्रापालनार्थमाहारमाहारयेत् । प्रायोविदितवेद्यस्यापि विशिष्टाहारसन्निधावभिलाषातिरेकोजायतइत्यतोऽमूर्छितोऽनध्युपपन्नइति च प्रतिषेधद्वयमुक्तं । उक्तंच । भुत्तभोगो पुरा जोवि, गीयत्थोविय भाविउ ॥ संते साहारमाईसु, सोविखिप्पंतु खुज्झइ ॥ १ ॥ तथा संयमे धृतिर्यस्यासौ धृतिमान् सबाह्याभ्यंतरेण ग्रंथेन विमुक्तस्तथा पूजनं वस्त्रपात्रादिना तेनार्थः पूजनार्थः सविद्यते यस्यासौ पूजनार्थी तदेवंभूतोन भवेत् । तथा श्लोकः श्लाघा कीर्तिस्तत्कामी नतदभिलाषुकः परिव्रजेदिति । कीर्त्यर्थी न कांचन क्रियां कुर्यादित्यर्थः॥२३॥अध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह । (णिरकम्मेत्यादि) गेहान्निःसृत्य निष्क्रम्य च प्रव्रजितोपि भूत्वा जीवितेपि निराकांक्षी कायं शरीरं व्युत्सृज्य निष्प्रतिकर्मतया चिकित्सादिकमकुर्वन् छिन्ननिदानोभवेत् । तथा न जीवितं नापि मरणमभिकांक्षेत् भिक्षुः साधुर्वलयात्संसारवलयात्कर्मबंधनाद्वा विप्रमुक्तः संयमानुष्ठानं चरेत् । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २४ ॥ इति समाध्याख्यं दशमाध्ययनं समाप्तं ॥

गंतरंवा । (निव्वाणभूएयपरिव्वएज्जा) अस्यायमर्थः । यथाहि निर्वृतौ निर्व्यापारत्वात्कस्य चिदुपघाते न वर्तते एवं साधुरपि सावद्यानुष्ठानरहितः परिसमंताद् व्रजेदिति ॥ २१ ॥ तथा (मुसंणबूयाइत्यादि) आप्तोमोक्षस्तद्गामी तद्गमनशीलआत्महितगामीवा आप्तोवा प्रक्षीणदोषः सर्वज्ञस्तदुपदिष्टमार्गगामी मुनिः साधुर्मृषावादमनृतमयथार्थं न ब्रूयात्सत्य मपि प्राण्युपघातकमिति । एतदेव मृषावादवर्जनं कृत्स्नं संपूर्णं भावसमाधिं निर्वाणं चा हुः । सांसारिकाहि समाधयः स्नानभोजनादिजनिताः शब्दादिविषयसंपादितावा अनैकांति काऽनात्यंतिकत्वेन दुःखप्रतीकाररूपत्वेन वाऽसंपूर्णावर्तंते । तदेवं मृषावादमन्येषां वा व्रतानामतिचारं स्वयमात्मना न कुर्यान्नाप्यपरेण कारयेत्तथा कुर्वंतमप्यपरं मनो वाक्कायकर्मभिर्नानुमन्यतइति ॥ २२ ॥

सुद्धे सिया जाए न दूसएज्जा, अमुच्छिए णय अज्झोववन्ने ॥ धिति मं विमुक्के ण य पूयणट्ठी, न सिलोयगामीय परिव्वएज्जा ॥ २३ ॥ निक्कम्मगेहाउ निरावकंखी, कायं विउसेज्ज नियाणछिन्ने ॥ णो जीवियं णो मरणावकंखी, चरेज्ज भिक्खू वलया विमुक्के तिबेमि ॥ २४ ॥ इति समाहिनाम दसमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ-(सुद्धेसिया जाएनदूसएज्जाके०) उद्गम, उत्पादन अने एषणा ए त्रणे दोष रहित एवो सुद्धो निर्दोष आहार प्राप्त थयो अथवा न थयो उता पण कदापि साधु राग द्वेषे करी पोताने दुषवे नही तथा (अमुच्छिए के०) अमूर्छित अगृद्ध एटले लोलुपता रहित (णयअज्झोववन्ने के०) फरी फरी ते रूडा आहारनी वांछा नकरे तथा (धि तिमंविमुक्के णयपूयणट्ठी के०) धृतिमंत तथा बाह्याभ्यंतर ग्रंथी रहित तथा पूजानो अर्थी न थाय (नसिलोय कामीय परिव्वएज्जा के०) तथा श्लाघाने अर्थे क्रिया न करे परंतु कर्म निर्जराने अर्थे मोक्षने अर्थे संयमने विषे प्रवर्त्ते एवो समाधिवंत साधु जाणवो ॥ २३ ॥ (निक्कमगेहाउ के०) गृहस्थावास थकी निकलीने चारित्र आदरी ने (निरावकंखी के०) जीवितव्यने विषे निरापेक्षी उतो (कायंविउसेज्ज के०) शरीर उपर ममत्व मूकीने पोतानी काया वोसिरावे तथा (नियाणछिन्ने के०) परभवे देव अथ वा राजादिक थवानुं नियाणु नकरे (णोजीवियंणोमरणावकंखी के०) जीवितव्य अ ने मरणने वांछे नही एटले पूजा सत्कारनी प्राप्तियें करी जीवितव्य नवांछे अने उपसर्ग परिसह उपने थके मरण पण नवांछे एवो (भिक्खू के०) साधु ते (वलयाविमुक्के के०) कर्मबंध थकी मूकाणो अथवा वलय एटले संसार थकी मूकाणो थको (चरेज्जके०)

नादृत्य ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यमार्गमधिकृत्याह । "फलगलयं दोलणचिं,भर ज्जुदवणबिलप्पास मग्गेय । खलिगअयपरिकप हे तत्तजलाकासदव्वंमि" ॥ १० ॥ (फ लकेत्यादि) फलकैर्मार्गः फलकमार्गः । यत्र कर्दमादिभयात् फलकैर्गम्यते । लतामार्गस्तु यत्र लतावलंबेन गम्यते । अंदोलनमार्गोपि यत्रांदोलनेन दुर्गमतिलंघ्यते । वेत्रमार्गोयत्र त्रलतोपष्टंभेन जलादौगम्यते इति । तद्यथा । चारुदत्तोवेत्रलतोपष्टंभेन वेत्रवतीं नदीमु त्तीर्य परकूलं गतः । रज्जुमार्गस्तु यत्र रज्वाकिंचिदतिदुर्गमतिलंघ्यते । दवनंति यानं तन्मा र्गोदवनमार्गः । बिलमार्गोयत्र तु गुहाद्याकारेण बिलेन गम्यते । पाशप्रधानोमार्गः पा शमार्गः पाशकूटकवागुरान्वितोमार्गइत्यर्थः । कीलकमार्गोयत्र वालुकोत्कटे मरुकादि विषये कीलकाभिज्ञानेन गम्यते । अजमार्गोयत्र वस्त्येनाजेन गम्यते । तद्यथा । सुव र्णभूम्यां चारुदत्तोगतइति । पक्षिमार्गोयत्र भारुडादिपक्षिभिर्देशांतरमवाप्यते । छत्रमार्गो यत्र छत्रमंतरेण गंतुं न शक्यते । जलमार्गोयत्र नावादिना गम्यते । आकाशमार्गोविद्या धरादीनामयं सर्वोपि फलकादिकोद्रव्ये द्रव्यविषये ऽवगंतव्यइति । क्षेत्रादिमार्गप्रतिपाद नायाह । "खेत्तंमि जंमि खेत्ते, काले कालो जहिं हवइ जोउ । भावंमि होंति दुवि हो, पसछतह अप्पसछोय ३ ॥ ११ ॥ (खेत्तंमीत्यादि) क्षेत्रमार्गे पर्यालोच्यमाने य स्मिन् क्षेत्रे ग्रामनगरादौ प्रवेशोवा शालिक्षेत्रादिके वाक्षेत्रे योयाति मार्गोयस्मिन्वा क्षेत्रे व्याख्यायते सक्षेत्रमार्गः । एवं कालेप्यायोज्यं । भावे त्वालोच्यमाने द्विविधोपि भवति भावमार्गः । तद्यथा । प्रशस्तोऽप्रशस्तश्चेति । प्रशस्ताप्रशस्तभेदप्रतिपादनायाह । "दुवि हंमि वितिगभेदो, णेवो तस्स विणिच्छिउ दुविहो ॥ सुगतिफलदुग्गतिफलो, पगयं सु गतीफले णिजं ४ ॥ १२ ॥ (दुविहंमीत्यादि) द्विविधेपि प्रशस्ताप्रशस्तरूपे भावमार्गे प्र त्येकं त्रिविधोभवति । तत्राप्रशस्तोमिथ्यात्वाविरतिरज्ञानं चेति । प्रशस्तस्तु सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्ररूपइति । तस्य प्रशस्ताप्रशस्तरूपस्य भावाभावमार्गस्य विनिश्चयोनिर्णयः फलं कार्यं । निष्ठाद्वेधा । तद्यथा । प्रशस्तः सुगतिफलोऽप्रशस्तश्च दुर्गतिफलइति । इह तु पुनः प्रशस्ताऽधिकारः सुगतिफलेन प्रशस्तमार्गेणेति । तत्राप्रशस्तं दुर्गतिफलं मार्गं प्रतिपिपा दयिषुस्तत्कर्तॄन्निर्दिदिक्षुराह । "दुग्गइफलवादीणं, तिन्नि तिसहासतादृवादीणं ॥ खेमे य खे मरूवे, चउक्कगं मग्गमादीसु ५ ॥ १३ ॥ (दुग्गईत्यादि) दुर्गतिः फलं यस्य सदुर्गतिफ लस्तद्वदनशीलादुर्गतिफलवादिनस्तेषां प्रवादुकानां त्रीणि त्रिषष्ट्यधिकानि शतानि भ वंति । दुर्गतिफलमार्गोपदेष्टृत्वंच तेषां मिथ्यात्वोपहतदृष्टितया विपरीतजीवादितत्वाभ्युप गमात् । तत्संख्या चैवमवगंतव्या । तद्यथा । असियसयंकिरियाणं, अकिरियवाईण होइ चु लसीई ॥ असाणियसत्तही, वेणइयाणं च बत्तीसं ॥१॥ तेषांच स्वरूपं समवसरणाध्ययने वक्ष्यतइति । सांप्रतं मार्गभंगद्वारेण निरूपयितुमाह । तद्यथा । एकः क्षेमोमार्गस्तस्करसिंह

हवे मोक्ष मार्ग नामे अगीआरमुं अध्ययन कहेछे. पूर्वला दशमां अध्ययनमां समाधि कही, ते समाधि तो ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप जाणवी ते कारणे एनुं सेवन करिए तो मोक्ष प्राप्ति थाय, माटे आ अध्ययनमां मोक्ष मार्ग कहेछे.

कयरे मग्गे अक्खाए, माहणेण मईमता ॥ जं मग्गं उज्जु पाविता, उहं तरति डुत्तरं ॥ १ ॥ तं मग्गं णुत्तरं सुद्धं, सवडुक्खविमोक्खणं ॥ जाणासि णं जहा भिक्खू, तं णो बूहि महामुणी ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीजंबुस्वामी श्रीसुधर्मस्वामि प्रत्ये पूछेछे के, (कयरेमग्गे के०) मोक्षमार्ग साधन करवानो एवो कयो धर्ममार्ग (माहणेणमईमताके०) मतिमंत एटले केवलज्ञानवंत श्रीमहावीर परमेश्वर तेणे (अक्खाएके०) कह्योछे. (जंमग्गंउज्जुपाविताके०) जेज्ञान दर्शन चारित्ररूप सरल मार्ग पामिने प्राणी (उहंतरंतिडुत्तरं के०) तरतां थकां डुस्तर एवा संसार समुद्रने तरीने पार पामे ॥ १ ॥ सर्वनाहितने अर्थें जे मार्ग श्रीसर्वज्ञे उपदेश्योछे, (तंमग्गणुत्तरंसुद्धं के०) तेमार्ग शुद्धो निर्दोष अनुत्तर एटले निरुपम (सवडुक्खविमोक्खणं के०) समस्त डुःखथकी मुकावनार एवो मार्ग (जाणासिणंजहाभिक्खू के०) अहो भगवंत जेवो तमे जाणोछो (तंणोबूहिमाहामुणी के०) ते वो हे महामुनीश्वर अमने कहो. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथैकादशमारभ्यते । पूर्वाध्ययने समाधिरुक्तः सच मार्गे सति स्यादिति मार्गोऽत्र प्रतिपाद्यते । यथा । (कयरेइत्यादि) जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमाह । कतरः कोमार्गआख्यातोमाहनेन मतिमता श्रीवीरेण । यं मार्गं मुक्तिप्राप्तिरूपं ऋजुमवक्रं प्राप्योघं संसारं तरति प्राणी ॥१॥ तं मार्गमनुत्तरं श्रेष्ठं शुद्धं निर्दोषं सर्वडुःखविमोक्षणं हे मुने त्वं यज्जानीषे । णमिति वाक्यालंकारे । तं मार्गं नोऽस्माकं हेमहामुने ब्रूहि ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तं दशमाध्ययनं तदनंतरमेकादशमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने समाधिः प्रतिपादितः सच ज्ञानदर्शनतपश्चारित्ररूपोवर्तते । भावमार्गोप्येवमात्मकएवेत्यतोमार्गोऽनेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यतेइत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोग द्वाराणि वाच्यानि । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । प्रशस्तोज्ञानादिकोभावमार्गस्तदाचरणं चात्राभिधेयमिति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे मार्गइत्यस्याध्ययनस्य नाम । तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । "णामं ठवणा दविए, खेत्ते काले तहेव भावेय ॥ एसो खलु मग्गस्सय, णिक्खेवो छविहो होइ" ॥ ए ॥ (णामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदान्मार्गस्य षोढा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने सुगमत्वाद्

मार्गाधिकारे सम्यक्त्वाख्यातिरूपो ऽवगंतव्यः। तथा मार्गइति पूर्वस्माद्विशुध्या विशिष्टतरो मार्गः सचेह सम्यक्ज्ञानावाप्तिरूपो ऽवगंतव्यः। तथा न्यायइति निश्चयेनायनं विशिष्टस्थान प्राप्तिलक्षणं यस्मिन् सति सन्यायः। सचेह सम्यक्चारित्रावाप्तिरूपो ऽवगंतव्यः।सत्पुरुषाणामयं न्यायएव। यद्वतावाप्तयोः सम्यग्दर्शनज्ञानयोस्तत्फलभूतेन सम्यक्चारित्रेण योगो भवतीत्यतोन्यायशब्देनात्र चारित्रयोगो ऽभिधीयतइति। तथा विधिरिति। विधानं विधिः सम्यक्ज्ञानदर्शनयोर्यौगपद्येनावाप्तिस्तथा धृतिरिति धरणं धृतिः सम्यक्दर्शने सति चारित्रावस्थानं भानुशादाविव विशिष्टज्ञानाभावाद्विवक्ष्यैवमुच्यते। तथा सुगतिरिति शोभना गतिरस्मात्ज्ञानचारित्राच्चेति सुगतिः। ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइति न्यायात्सुगतिशब्देन ज्ञानक्रिये अभिधीयेते। दर्शनस्यतु ज्ञानविशेषत्वादत्रैवांतर्भावो ऽवगंतव्यः। तथाहि। हितमिति परमार्थतोमुक्त्यवाप्तिस्तत्कारणं वा हितं तच्च सम्यग्दर्शनचारित्राख्यमवगंतव्यमिति। अत्र च संपूर्णानां सम्यग्दर्शनादीनां मोक्षमार्गत्वेसति य द्व्यस्तसमस्तानां मोक्षमार्गत्वेनोपन्यासः स प्रधानोपसर्जनविवक्षया न दोषायेति। तथा सुखमिति सुखहेतुत्वात्सुखमुपशमश्रेण्यामुपशामकं प्रत्यपूर्वकरणानिवृत्तिबादरसूक्ष्मसंपरायरूपा गुणत्रयावस्था। तथा पथ्यमिति पथि मोक्षमार्गे हितं पथ्यं तच्च क्षपकश्रेण्यां पूर्वोक्तं गुणत्रयं तथा श्रेयइत्युपशमश्रेणिमस्तकावस्था उपशांतसर्वमोहावस्थेत्यर्थः। तथा निर्वृतिहेतुत्वान्निर्वृतिः क्षीणमोहावस्थेत्यर्थः। मोहनीयविनाशेऽवश्यं निर्वृतिसद्भावादितिभावः। तथा श्रेयइति निर्वाणमिति घनघातिकर्मचतुष्टयरूपेण कर्मक्षयेण केवलज्ञानावाप्तिस्तथा शिवं मोक्षपदं तत्करणशीलं शैलेश्यवस्थागमनमित्येवमेतानि मोक्षमार्गत्वेन किंचिद्भेदाभ्भेदेन व्याख्यातान्यभिधानानि। यदिवैते पर्यायशब्दा एकार्थिकामोक्षमार्गस्येति। गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपस्तदनंतरं सूत्रानुगमे ऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं (कयरेमग्गेइत्यादि) विचित्रत्वात्त्रिकालविषयत्वाच्च सूत्रस्यागामुकं पृच्छकमाश्रित्य सूत्रमिदं प्रवृत्तमतोजंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमिदमाह। तद्यथा। कतरः किंभूतोमोक्षोऽपवर्गावाप्तिसमर्थोऽस्यां त्रिलोक्यामाख्यातः प्रतिपादितोभगवता त्रैलोक्योद्धरणसमर्थेनैकांतहितैषिणा माहनेनेत्येवमुपदेशः प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनस्तीर्थकृत्तेन। तमेव विशिनष्टि। मतिर्लोकालोकांतर्गतसूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टातीतानागतवर्तमानपदार्थाविर्भाविकाकेवलज्ञानाख्या यस्यास्त्यसौ मतिमांस्तेन प्रशस्तंभावमार्गं मोक्षगमनंप्रति ऋजुं प्रगुणं यथावस्थितपदार्थस्वरूपनिरूपण द्वारेणावक्रं सामान्यविशेषनित्यानित्यादिस्याद्वाद समाश्रयणात्तदेवं भूतं मार्गं ज्ञानदर्शनतपश्चारित्रात्मकं प्राप्य लब्ध्वा संसारोदरविवरवर्ती प्राणी समग्रसामग्रीकउघमिति भवौघं संसारसमुद्रं तरत्यत्यंतदुस्तरं तदुत्तरगुणसामर्थ्यादेव दुष्प्रापकत्वात्। तदुक्तं। माणुस्स खेत्तजाई, कुलरूपा रोगमाउयं वुद्धी॥ समणोग्गहसद्धासं, यमोयलोयंमि दुल्लहाइंइत्यादि॥१॥ सएव पृच्छकः पुनरप्याह। (तं

व्याघ्राद्युपद्रवरहितत्वात्तथा क्षेमरूपश्च समत्वात्तथा छायापुष्पफलवद्वृक्षोपेतजलाश्रया कुलत्वाच्च । तथा परः क्षेमोनिश्चौरः किंत्वक्षेमरूपउपलशकलाकुलगिरिनदीकंटकगर्तशता कुलत्वेन विषमत्वात्तथाऽपरोक्षेमस्तस्करादिनयोपेतत्वात्क्षेमरूपश्चोपलशकलाद्यनावतया समत्वात्तथाऽन्योनक्षेमोनापि क्षेमरूपः सिंहव्याघ्रतस्करादिदोषदुष्टत्वात्तथा गर्तपाषाणनि म्नोन्नतादिदोषदुष्टत्वाच्चेति । एवं नावमार्गोप्यायोज्यः । तद्यथा । ज्ञानादिसमन्वितोद्रव्य लिंगोपेतश्च साधुः क्षेमः क्षेमरूपश्च । तथाऽक्षेमोऽक्षेमरूपस्तु सएव नावसाधुः कारणिको द्रव्यलिंगरहितः । तृतीयनंगकगतानिन्हवाः परतीर्थिकागृहस्थाश्चरमनंगकवर्तिनोद्रष्ट व्याः । एवमनंतरोक्तप्रक्रियया चतुष्कं नंगकचतुष्टयं मार्गादिष्वायोज्यं । आदिग्रहणादन्य त्रापि समाध्यादावायोज्यमिति।सम्यक्मिथ्यात्वमार्गयोः स्वरूपनिरूपणायाह। सम्मप्पणि उ मग्गो, णाणे तह दंसणे चरित्तेय ॥ वरगपरिव्वायादी, विसोमिछत्तमग्गोत्ति ६ ॥१४॥(स मप्पणिउइत्यादि) सम्यग्ज्ञानं दर्शनं चारित्रं चेत्ययं त्रिविधोपि नावमार्गः सम्यग्दृष्टिनिर्ग णधरादिनिः सम्यग्वा यथावस्थितवस्तुतया च निरूपणया प्रणीतस्तैरेव सम्यगाचीर्णआसे वितोमार्गोमिथ्यात्वमार्गो ऽप्रशस्तमार्गोनवतीति। तुशब्दो स्य दुर्गतिफलनिबंधनत्वेनऽ विशे षणार्थइति । स्वयूथ्यानामपि पार्श्वस्थादीनां षड्जीवनिकायोपमर्दकारिणां कुमार्गाश्रित त्वं दर्शयितुमाह । इड्ढिरससायगुरुया, छज्जीवनिकाय घायनिरयाए ॥ जेउदिसंति मिग्गं, कुमग्गमग्गस्सिता तेउ " ॥१५॥ (इड्ढिरसेत्यादि) ये केचन अपुष्टधर्माणः शीतल विहारिणोक्र्द्धिरससातगौरवेण गुरुकागुरुकर्माणआधाकर्माद्युपनोगेन षड्जीवनि कायव्यापादनरताश्चापरे तेन्योमार्गं मोक्षमार्गमात्मानुचीर्णमुपदिशंति । तथाहि । शरी रमिदमाद्यं धर्मसाधनमिति मत्वा कालसंहननादिहानेश्चाधाकर्माद्युपनोगोपि न दोषाये त्येवं प्रतिपादयंति तच्चैवं प्रतिपादयंतः कुत्सितमार्गास्तीर्थकरास्तन्मार्गाश्रितानवंति । तु शब्दादेतेपि स्वयूथ्याएतदुपदिशंतः कुमार्गाश्रितानवंतीति किंपुनस्तीर्थिकाइति।प्रशस्तशास्त्र प्रणयनेन सन्मार्गाविष्करणायाह । " तवसंजमप्पहाणा, गुणधारी जे वयंति सप्नावं ॥ सवजगजीवहियं, तमाहुसम्मप्पणीयमिणं " ॥१६॥ (तवसंयमेत्यादि) तपः सबाह्यान्यंतरं द्वादशप्रकारं तथा संयमः सप्तदशनेदःपंचाश्रवविरमणादिलक्षणस्ताभ्यां प्रधानास्तपःसंय मप्रधानास्तथाऽष्टादशशीलांगसहस्राणि गुणास्तद्धारिणोगुणधारिणोये सत्साधवस्तएवं नूतार्थं सद्भावं परमार्थं जीवाजीवादिलक्षणं वदंति प्रतिपादयंति । किंनूतं सर्वस्मिन् जग ति ये जीवास्तेन्यो हितं पथ्यं तद्रक्षणतस्तेषां सदुपदेशदानतोवा । तं सन्मार्गं सम्यङ्मार्ग ज्ञाः सम्यगविपरीतत्वेन प्रणीतमाहुरुक्तवंतइति । सांप्रतं सन्मार्गस्यैकार्थिकान् दर्शयितुमा ह।" पंथो मग्गो णेउ, वहिधीतिसुगतीहियसुवहं ॥ पछं सेयं णिव्वुइ, णिवाणं शिवकरंचेव " ॥ १७ ॥ (पंथोमग्गोणेउइत्यादि) देशाद्विवक्षितदेशांतरप्राप्तिलक्षणः पंथाः सचेह नाव

तद्व्याप्रवणं मार्गं (पडिसाहिस्सेत्ति) प्रतिकथयेत् । मार्गसारं मार्गपरमार्थं यं नवंतो न्येषां प्रतिपादयिष्यंति तन्मे मम कथयतः शृणुत यूयमिति । पाठांतरंवा (तेसिंतुइमं मग्गं आइक्खेज्जसुणेहमेत्ति) उत्तानार्थं ॥ ४ ॥

अणुपुव्वेण महाघोरं, कासवेण पवेइयं ॥ जमादाय इउ पुव्वं, स
मुद्दं ववहारिणो ॥५॥ अतरिं सुतरंतेगे, तरिस्संति आणागया ॥
तं सोच्चा पडिवक्खामि, जंतवो तं सुणेहमे ॥ ६ ॥

अर्थ-(अणुपुव्वेण के०) आनुपूर्वि एटले अनुक्रमे (पंचिंदिअत्तणं माणुसत्तणं) इत्यादिक अनुक्रमे करीने (महाघोरं के०) पालतां अत्यंत दुष्कर ठे एवो जे मार्गनो सार ते (कासवेणपवेइयं के०) काश्यपजे श्रीमहावीर देव तेणे नाष्यो एटले कह्यो; (ज मादाय के०) जेमार्गना ग्रहण करवा थकी (इउपुव्वंके०) पूर्वे अतीतकाले घणा सत्पुरुष दुस्तर एवो संसार समुद्र तस्याठे ते उपर दृष्टांत कहेठे. (समुद्दंववहारिणो के०) जेम व्यवहारीआ वस्तुनां लोनी थका दुस्तर समुद्र तरे तेनी पेरे तस्याठे ॥५॥ (अतरिं सुतरंतेगे के०) जे मार्ग ग्रहण करीने अतीतकाले अनंताजीव संसार समुद्र तस्या (तरिस्संति अणागया के०) अने हमणा पण संख्याता जीव संसार समुद्र तरेठे, तथा आगमिक काले पण अनंता जीव तरशे, एम त्रणे काले संसार समुद्रने जेवडे तरेठे एवो जे मोक्षनो मार्ग (तंश्रुत्वा प्रतिवक्ष्यामि के०) तेने सांजलीने अंगीकार करे ते मार्ग सम्यक् प्रकारे तमने कहीशुं (जंतवोतं सुणेहमेके०) माटे अहो जीवो ते सर्व हुं कहुंतुं माटे एकाग्रचित्ते तमे सांजलो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-यथाहमनु पूर्वेण परिपाट्या मार्गं वच्मि तथा शृणुत यूयं। किंभूतं मार्गं का पुरुषैर्दुष्पाल्यत्वान्महाघोरं काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्ररूपितं यं मार्गमादाय गृहीत्वा इतः सन्मार्गोपादानात्पूर्वमादावेवाऽनुष्ठितत्वात्संसारं तरंति । यथा व्यवहारिणः सांयात्रिकाः पोतेन समुद्रं तरंति ॥ ५ ॥ यं मार्गमाश्रिताः पूर्वं बहवोऽतीर्णुस्तीर्णाः संसारं सांप्रतमप्येके तरंति महाविदेहादौ तथा ऽनागतकाले तरिष्यंति । एवंभूतं तं मार्गं श्रुत्वा तीर्थकृद्भ्यः अहं प्रतिवक्ष्यामि । हेजंतवोहेप्राणिनः तं मार्गं मम कथयतः शृणुत यूयमिति सुधर्मस्वामिवचनं ॥ ६ ॥

॥ टीका-पुनरपि मार्गाभिष्टवं कुर्वन्सुधर्मस्वाम्याह । (अणुपुव्वेणेत्यादि) यथाहमनु पूर्व्येणानुपरिपाट्या कथयामि तथा शृणुत। यदिवा यथा चानुपूर्व्या सामग्र्या वा मार्गो वाप्यते तच्छृणुत। तद्यथा । पढमिल्लगाणउदएइत्यादितावद्यावत् । बारसविहेकसाए, ख

मग्गेइत्यादि) योसौ मार्गः सत्वहिताय सर्वज्ञेनोपदिष्टोऽशेषैकांतकौटिल्यवक्ररहितस्तं मार्गं । नास्योत्तरः प्रधानोस्तीत्यनुत्तरस्तं शुद्धोऽवदातोनिर्दोषः पूर्वापरव्याहतिदोषापगमात्सावद्यानुष्ठानोपदेशाभावाद्वा तमिति । तथा सर्वाण्यशेषाणि बहुभिर्भवैरुपचितानि दुःखकारणत्वाद्दुःखानि कर्माणि तेभ्योविमोक्षणं विमोचकं तमेवं भूतं मार्गमनुत्तरं निर्दोषं सर्वदुःखक्षयकारणं हेभिक्षो यथा त्वं जानीषे । णमितिवाक्यालंकारे । तथा तं मार्गं सर्वज्ञप्रणीतं नो ऽस्माकं हेमहामुने ब्रूहि कथयेति ॥ २ ॥

जइ णो केइ पुछिज्जा,देवा अडुव माणुसा ॥ तेसिं तु कयरं मग्गं आइक्खेज्ज कहाहिणो ॥३ ॥ जइ णो केइ पुछिज्जा, देवा अडुव माणुसा ॥ तेसि मं पडिसाहिज्जा मग्गसारं सुणेहमे ॥ ४ ॥

अर्थ—यद्यपि मुजनेतो तमारी प्रतिते मार्ग सुगमछे, परंतु अन्य कोइने मार्ग हुं केवीरीते कहुं एवा अभिप्रायें पूछुंछुं. (जइणोकेइपुछिज्जा के०) यद्यपि अमने कोइ पूछे कोण पूछे तोके (देवाअडुवमाणुसा के०) देवो अथवा मनुष्यजे चक्रवर्त्यादिक ते पूछे (तेसिंतुकयरंमग्गं के०) तेवारे तेने कयो मार्ग (आहिक्खेज्जकहाहिणो के०) कहीए ते तमे कहो. ॥ ३ ॥ एम श्रीजंबुस्वामियें पूछ्या थका श्रीसुधर्मस्वामि कहेछे. (जइणोकेइपुछिज्जादेवाअडुवमाणुसा के०) यद्यपि तमने कोइ देव अथवा मनुष्य संसार भ्रांतिनो भंग करनार एवा मार्गनी वात पूछे, तेवारे (तेसिमंपडिसाहिज्जा के०) तेने तमारे जे मार्ग कहेवो (मग्गसारंसुणेहमे के०) तेमार्गनो सार हुं तमने कहुंछुं ते तमे सांभळो.

॥ दीपिका—यदि नोऽस्माकं केचन पृछेयुः।देवाअथवा मनुष्यास्तेषामहं। तुरेवार्थे।कतरं मार्गं (आइक्खेज्जत्ति) आचक्षामि आचक्ष्वा तत्कथय नोऽस्माकमिति ॥ ३ ॥ यदि केचित्सुजनबोधयोवोयुष्माकं मार्गं पृछेयुः । के । ते देवामनुष्यावा तेषां पृछतामिमं धर्मं प्रति कथयेत्साधुस्तंमार्गं सारं मम कथयतः शृणुत यूयं ॥ ४ ॥

॥ टीका—यद्यप्यस्माकमसाधारणगुणोपलब्धेर्युष्मत्प्रत्ययेनैव प्रवृत्तिः स्यात्तथाप्यन्येषां किंभूतोमार्गोमयाख्येयइत्यभिप्रायवानाह । (जइणेत्यादि) यदा कदाचिन्नोस्मान् केचन सुजनबोधयः संसारोद्विग्नाः सम्यग्मार्गं पृछेयुः । के ते देवाश्चतुर्निकायास्तथा मनुष्याः प्रतीताः बाहुल्येन तयोरेव प्रश्नसद्भावात्तदुपादानं। तेषां पृछतां कतरं मार्गमहमाख्यास्ये कथयिष्ये तदेतदस्माकं त्वं जानानः कथयेति ॥ ३ ॥ एवंपृष्टः सुधर्मस्वाम्याह । (जइवोइत्यादि) यदि कदाचिद्वोयुष्मान् केचन देवामनुष्यावा संसारं भ्रांतिपराभग्नाः सम्यग्मार्गं पृछेयुस्तेषां पृछतामिममिति वक्ष्यमाणलक्षणं षड्जीवनिकायप्रतिपादनगर्भं

तथा गणधरे कह्याछे. (एतावएजीवकाए के०) एटलीज ए जीवनी निकायछे (णावरे कोइंविज्जई के०) परंतु एथकी उपरांत वीजी कोइ जीवनी निकाय नथी. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—पृथिवीजीवाः पृथक् प्रत्येकं सत्वाजंतवो ज्ञेयाः । आपश्च जीवाएवमग्नि कायाजीवावायुजीवाश्च पृथक्सत्वाः प्रत्येकजीवास्तृणानि कुशादीनि वृक्षाश्चूताद्याः बीजानि शाल्यादीनि एतेच वनस्पतिभेदाः ॥ ७॥ अथापरे त्रसाः प्राणिनोद्वित्रिचतुःपं चेंद्रियाएवं षट्कायाआख्यातास्तीर्थकृद्भिः । एतावान् जीवराशिर्नापरो विद्यते कश्चित् ॥ ८॥

॥ टीका—चारित्रमार्गस्य प्राणातिपातविरमणमूलत्वात्तस्य च तत्परिज्ञानपूर्वकत्वादतो जीवस्वरूपनिरूपणार्थमाह । (पुढवीजीवाइत्यादि) पृथिव्येव पृथिव्याश्रितावाजीवास्तेच प्रत्येकशरीरत्वात्पृथक् प्रत्येकं सत्वाजंतवोऽवगंतव्याः । तथा आपश्च जीवाएवमग्निकाया श्च तथापरे वायुजीवास्तदेवं चतुर्महाभूतसमाश्रिताः सत्वाः प्रत्येकशरीरिणोऽवगंतव्याः । एतएव पृथिव्यप्तेजोवायुसमाश्रिताः सत्वाः प्रत्येकशरीरिणोवक्ष्यमाणवनस्पतेस्तु सा धारणा साधारणशरीरत्वेनापृथक्त्वमप्यस्तीत्यस्यार्थस्य दर्शनाय पुनः पृथक् सत्वग्रहणमि ति । वनस्पतिकायस्तु यः सूक्ष्मः ससर्वोपि निगोदरूपः । साधारणबादरस्तु साधारणा ऽसाधारणश्चेति । तत्र प्रत्येकशरीरिणोऽसाधारणस्य कतिचिद्भेदान्निर्दिदिक्षुराह । तत्र तृ णानि दर्भवीरणादीनि वृक्षाश्चूताशोकादयः सहबीजैः शालिगोधूमादिभिर्वर्ततइति सबी जकाएते सर्वेपि वनस्पतिकायाः सत्वाअवगंतव्याः । अनेनच बौद्धादिमतनिरासः कृ तोवगंतव्यइति । एतेषां च पृथिव्यादीनां जीवानां जीवत्वेन प्रसिद्धिस्वरूपनिरूपणमाचा रे प्रथमाध्ययने शास्त्रपरिज्ञाख्ये न्यक्षेण प्रतिपादितमिति नेह प्रतन्यते ॥ ७ ॥ षष्ठजी वनिकायप्रतिपादनायाह । (आहावरेत्यादि) तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयएकेंद्रियाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तकभेदेन प्रत्येकं चतुर्विधाः । अथानंतरमपरेऽन्ये त्रसंतीति त्रसा द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाः कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादयः। तत्र द्वित्रिचतुरिंद्रियाः प्रत्येकं पर्या प्तकापर्याप्तकभेदात्षड्विधाः । पंचेंद्रियास्तु संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तकापर्याप्तकभेदाच्चतुर्विधाः । तदे देवमनंतरोक्तया नीत्या चतुर्दशभूतग्रामात्मकतया व्याख्यातास्तीर्थकरगणधरादिभिः । एतावानेवतद्भेदात्मकएव संक्षेपतोजीवनिकायोजीवराशिर्भवत्यंडजोद्भिज्जसंस्वेदजादेरत्रैवां तर्भावान्नापरोजीवराशिर्विद्यते कश्चिदिति ॥ ८ ॥

सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं, मतिमं पडिलेहिया ॥ सव्वे अकंतदुक्खाय,
अतो सव्वे अहिंसया ॥९॥ एयं खु णाणिणो सारं, जं न हिंसति
कंचण ॥ अहिंसा समयं चेव, एतावंतं विजाणिया ॥ १० ॥

विएउवसामिएयजोगेहिं ॥ लघ्नइचरित्तलानो, इत्यादि तथा चत्तारिपरमंगाणीत्यादि। किंनूतं मार्गं तमेव विशिनष्टि। कापुरुषैः संग्रामप्रवेशवत् डुरध्यवसायत्वान्महानयानकं काश्यपोमहावीरवर्धमानस्वामी तेन प्रवेदितं प्रणीतं मार्गं। कथयिष्यामीत्यनेन स्वमनी षिकापरिहारमाह। ये शुद्धमार्गमुपादाय गृहीत्वा ऽतइति सन्मार्गोपादानात् पूर्वमादावे वानुष्ठितत्वाद्दुस्तरं संसारं महापुरुषास्तरंति । अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतमाह । व्यवहारः प एयक्रयविक्रयलक्षणोविद्यते येषांते व्यवहारिणः सांयात्रिकाः। यथा ते विशिष्टलानार्थिनः किंचिन्नगरं यियासवोयानपात्रेण डुस्तरमपि समुद्रं तरंत्येवं साधवोप्यात्यंतिकैकांतिका बोधसुखैषिणः सम्यग्दर्शनादिना मार्गेण मोक्षं जिगमिषवोडुस्तरं नवौघं तरंतीति ॥ ५ ॥ मार्गविशेषणायाह। (अतरिंसुइत्यादि) यं मार्गं पूर्वं महापुरुषाचीर्णमव्यनिचारिण माश्रित्य पूर्वस्मिन्ननादिके काले बहवोऽनंताः सत्वाअशेषकर्मकचीवरविप्रमुक्तान्नवौ घं संसारमतीर्षुस्तीर्णवंतः सांप्रतमप्येके समग्रसामग्रीका असंख्येयाः सत्वास्तरंति। महा विदेहादौ सर्वदा सिद्धिसद्भावाद्वर्तमानत्वं न विरुध्यते। तथाऽनागतेच काले पर्यवसाना त्मकेऽनंतात्मकेऽनंताएव जीवास्तरिष्यंति। तदेवं कालत्रयेपि संसारसमुड्रोत्तारकं मोक्ष गमनैककारणं प्रशस्तं नावमार्गमुत्पन्नदिव्यज्ञानैस्तीर्थकृद्भिरुपदिष्टं तं चाहं सम्यक् श्रुत्वा ऽवधार्य च युष्माकं शुश्रूषूणां प्रतिवक्ष्यामि प्रतिवादयिष्यामि। सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं निश्रीकृत्यान्येषामपि जंतूनां कथयतीत्येतद्दर्शयितुमाह। हे जंतवोऽनिमुखीनूय तं चारित्र मार्गं मम कथयतः शृणुत यूयं। परमार्थकथनेऽत्यंतमादरोपादानार्थमेवमुपन्यासइति ॥६॥

पुढवीजीवा पुढो सत्ता, आउजीवा तहागणी॥ वाउजीवा पुढो
सत्ता, तणरुक्खा सबीयगा ॥७॥ अहावरा तसा पाणा, एवं छक्का
य आहिया ॥ एतावए जीवकाए, णावरे कोइविज्जई ॥ ८ ॥

अर्थ– (पुढवीजीवापुढोसत्ता के०) पृथिवीकाय जीव तेपण जुदा जुदा जाणवा (आउजीवा के०) तेमज अपकायना जीव; उस धूयरी प्रमुख पृथक् पृथक् जाणवा (तहागणी के०) तथा अग्नीकायना पण इंगाल ज्वाल मूंमर प्रमुख जीवो जुदा जुदा जाणवा तथा (वाउजीवापुढोसत्ता के०) वायुकायना जीव पण जुदा जुदा जाणवा अने (तणरुक्खासबीयगा के०) तृण वृक्षनी जाती तथा बीज ते शाली प्रमुख ए सर्व वनस्पति कायना जीव जाणवा. ॥ ७ ॥ (अहावरातसापाणा के०) अथानंतर अवरा एटले ए पूर्वे जे स्थावर जीवो कह्या तेथकी अपर बीजा बेंद्रियादिक प्राण ते त्रसजीवो जाणवा (एवंछक्कायआहिया के०) ए प्रमाणे छकायना जीवो श्री तीर्थंकर

धाश्रयोपसर्पणादिन्यो हेतुन्यो वनस्पतेश्चैतन्यसिद्धिः । द्वींद्रियादीनां तु पुनः कृम्यादीनां स्पष्टमेव चैतन्यं तद्वेदनाश्चोपक्रमिकाः स्वाजाविकाश्च समुपलन्यमानामनोवाक्कायैः कृत कारितानुमतिन्निश्च नवकेन नेदेन तत्पीडाकारिणउपमर्दान्निवर्तितव्यमिति ॥ ए ॥ एतदे व समर्थयन्नाह । (एयंखुइत्यादि) खुशब्दोवाक्यालंकारेऽवधारणेवा । एतदेवानंतरोक्तं प्राणातिपातनिवर्तनं ज्ञानिनोजीवस्वरूपतत्ध्थकर्मबंधवेदिनः सारं परमार्थप्रधानं ! पुन रप्यादरख्यापनार्थमेतदेवाह । यत्कंचनप्राणिनमनिष्टदुःखं सुखैषिणं न हिनस्ति प्रनूतवे दिनोपि ज्ञानिनएतदेव सारतरं ज्ञानं यत्प्राणातिपातनिवर्तनमिति । ज्ञानमपि तदेव पर मार्थतोयत्पीडातोनिवर्तनं । यथोक्तं । किंताए पढियाए, पयकोडीए पयालनूयाए ॥ ज ञित्तियं ण णायं, परस्स पीडा न कायवा ॥१॥ तदेवमहिंसाप्रधानः समयआगमः संकेतो वापदेशरूपस्तदेवंनूतमहिंसासमयमेतावंतमेव विज्ञाय किमन्येन बहुना परिज्ञानेनैताव तैव परिज्ञानेन मुमुक्षोर्विवक्षितकार्यपरिसमाप्तेरतोन हिंस्यात्कंचनेति ॥ १० ॥

उड्ढं अहेय तिरियं, जे केइ तसथावरा ॥ सवछ विरतिं विज्जा, सं
ति निवाणमाहियं ॥ ११ ॥ पनू दोसे निराकिच्चा, ण विरुज्झेज्ज के
णई ॥ मणसा वयसा चेव, कायसा चेव अंतसो ॥ १२ ॥

अर्थ–(उड्ढंअहेयतिरियं के०) उंचो नीचो अने तीर्गो एतावता सर्व लोकने विषे (जेकेइतसथावरा के०) जे कांइ त्रस अने स्थावर जीवछे, (सवछविरतिंविज्जा के०) ते सर्वजीवनी निवृत्तिकरे एटले प्राणातिपात थकी निवर्ते, (संतिनिवाणमाहियं के०) एहिज विरति, शांति अने निर्वाण श्रीतीर्थंकरे कह्युंछे. ॥ ११ ॥ (पनूदोसेनिराकिच्चा के०) प्रजु एटले समर्थ इंद्रीयनो जीपनार मिथ्यात्व अविरति प्रमादादिक दोषने नि राकरी एटले अवगणीने (णविरुज्झेज्जकेणई के०) कोइ पण जीवनीसाथे विरोध जा व नकरे, (मणसावयसाचेव के०) मने करी वचने करी वली (कायसाचेवअंतसोके०) कायायें करी निश्चय थकी कोइ पण जीवनी साथे जावज्जीवसुधी विरोध नकरे. ॥१२॥

॥ दीपिका–ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् ये केचन त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनस्तत्र सर्वत्र प्राणिनि विरतिं प्राणातिपातनिवृत्तिं विजानीयात्कुर्यात् । एषैव विरतेः शांतिहेतुत्वाच्छांतिर्वर्तते । त था निर्वाणहेतुत्वान्निर्वाणमप्याख्याता एषैव विरतिः ॥११॥ प्रजुः समर्थोदोषान् मिथ्या त्वविरतिप्रमादकषायादीन् निराकृत्याऽपनीय केनापि प्राणिना सार्धं न विरुध्येत केनैव सह विरोधं न कुर्यात् मनसा वचसा कायेन चांततः परमार्थतः केनापि नविरुध्येत॥१२॥

अर्थ—ए पूर्वोक्त ढ जीवनी निकाय कही हवे जे कांइ करवुं ते देखाडेछे. (सवाहिं अ णुजुत्तीहिं के०) समस्त अनुयुक्ति एटले जीवितव्य साधवाना कारण तेणेकरी जीवने सम्यक् प्रकारे उलखीने (मतिमं के०) बुद्धिवंत पुरुष जीवादिक तत्वने (पडिलेहिया के०) प्रतिलेखी एटले आलोचीने, (सव्वे अकंत डुरकाय के०) सर्वजीवो डुःख थकी आक्रांत थायछे, एटले एकांते डुःख कोइने वल्लभ नथी सर्व सुखना अर्थीछे, (अतो के०) ते कारण माटे (सव्वेअहिंसया के०) पृथव्यादिक सर्व जीवोने हणे नही, छए कायनी दया पाले ॥ ए ॥ (एयं खुणाणिणोसारं के०) एहिज निश्चय थकी ज्ञानी ने जाणवानो सारछे, (जंनहिंसतिकंचण के०) जे कोइ जीवनो विनाश नकरे परमा र्थ थकी तेनेज ज्ञानी कहीये, के जे कोइ परजीवने पीडा उपजाववा थकी निवर्त्ते उ क्तंच किंताए पडियाए इति वचनात् (अहिंसा समयंचेव के०) अहिंसा जे दया तेज निश्चये थकी आगमनुं तत्व जाणवुं (एतावंतं विजाणिया) किंबहुना एटलुंज जाणीने दयाने विषे यत्न करवो परंतु घणुं जाणे शुं फलछे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका—सर्वान्निरनुकूलयुक्तिनिर्मतिमान् पृथिव्यादिजीवान् प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जी वत्वेन प्रसाध्य तथा सर्वे जीवाअकांतडुःखाअनभिमतडुःखाः सुखैषिणश्चेति मत्वाऽतो मतिमान्सर्वान्प्राणिनोन हिंस्यात् ॥ ए ॥ खुर्वाक्यालंकारे निश्चयेवा । एतदेव ज्ञानिनः सारं यत्कंचन प्राणिनं न हिनस्ति अहिंसाप्रधानं संयममेतावंतमेव विज्ञानं यन्न हिंस्या त्कंचन किंबहुना ज्ञातेन एतावता ज्ञातेन विवक्षितकार्यसिद्धिः ॥ १० ॥

॥ टीका—तदेवं षड्जीवनिकायं प्रदर्श्य यत्तत्र विधेयं तद्दर्शयितुमाह । (सवाहींत्यादि) सर्वायाः कार्श्नानुरूपाः पृथिव्यादिजीवनिकायसाधनत्वेनानुकूलायुक्तयः साधनानि । य दिवा सिद्धविरुद्धानैकांतिकपरिहारेण पक्षधर्मत्वसपक्षसत्वविपक्षव्यावृत्तिरूपतया यु क्तिसंगतायुक्तयस्तानिर्मतिमान् सद्विवेकी पृथिव्यादिजीवनिकायान्प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जीवत्वेन प्रसाध्य तथा सर्वेपि प्राणिनोऽकांतडुःखाडुःखद्विषः सुखलिप्सवश्च मत्वाऽतोम तिमान् सर्वानपि प्रणिनोन हिंस्यादिति । युक्तयश्च तत्प्रसाधिकाः संक्षेपेणेमाइति । सा त्मिका पृथिवी तदात्मनां विद्रुमलवणोपलादीनां समानजातीयांकुरसद्भावादर्शोविकारां कुरवत् । तथा सचेतनमंभोभूमिखननादाविष्कृतस्वभावसंभवाद्दर्डुरवत् । तथा सात्मकं तेजस्तद्योग्याहारवृध्या वृध्युपलब्धेर्बालकवत् । तथा सात्मकोवायुरपराप्रेरितनियततिरश्ची नगतिमत्वाद्गोवत् । तथा सचेतनावनस्पतयोजन्मजरामरणरोगादीनां समुदितानां सद्भावात्स्त्रीवत्तथा क्षतसंरोहणाहारोपादानदौहृदसद्भावस्पर्शसंकोच सायान्हस्वापप्रबो

नूतानि प्राणिनः समारभ्य संताप्य तं साधुमुद्दिश्य साध्वर्थं यत्कृतं तादृशमाधाकर्म दोष दुष्टमाहारादिकं न गृह्णीयात् नक्तं पानंच सुसंयतोगृहीतव्रतस्तादृशं न भुंजीत ॥१४॥

॥ टीका—उत्तरगुणानधिकृत्याह । (संवुडे इत्यादि) आश्रवद्वाराणां रोधेनेंद्रियनि रोधेन च संवृतः सन्निकुमहती प्रज्ञा यस्यासौ महाप्रज्ञोविपुलबुद्धिरित्यर्थः । तदनेन जी वाजीवादिपदार्थाभिज्ञता वेदिता भवति । धीरोऽक्षोभ्यः क्षुत्पिपासादिपरीषहैर्न क्षोभ्यते । तदेव दर्शयति । आहारोपधिशय्यादिके स्वस्वामिना तत्संदिष्टेन वा दत्ते सत्येषणां चरत्ये षणीयं गृह्णातीत्यर्थः । एषणायाएषणायांवा गवेषणग्रहणेषणग्रासरूपायां त्रिविधायाम पि सम्यगितः समितः ससाधुर्नित्यमेषणासमितः सन्ननेषणां परिवर्जयन परित्यजन्सं यममनुपालयेत् । उपलक्षणार्थत्वादस्य शेषाभिरपीर्यासमित्यादिभिः समितोऽष्टव्यइति ॥ १३ ॥ अनेषणीयपरिहारमधिकृत्याह (भूयाइंइत्यादि) अभूवन् भवंति भविष्यंति च प्राणिनस्तानि भूतानि प्राणिनः समारभ्य संरंभसमारंभारंभैरुपतापयित्वा तं साधुमुद्दि श्य साध्वर्थं यत्कृतं तदकल्पितमाहारोपकरणादिकं तादृशमाधाकर्मदोषदुष्टं सुसंयतः सु तपस्वी तदन्नं पानकं वा न भुंजीत । तु शब्दस्यैवकारार्थत्वान्नैवाभ्यवहरेदेवं तेन मार्गोऽ नुपालितोभवति ॥ १४ ॥

पूईकम्मं न सेविज्जा, एस धम्मे वुसीमउ ॥ जं किंचि अभिकंखे
ज्जा, सवसो तं नभोत्तए ॥ १५ ॥ हणंतं णाणुजाणेज्जा, आयगु
त्ते जिइंदिए ॥ ठाणाइं संति सढीणं, गामेसु नगरेसु वा ॥ १६ ॥

अर्थ—(पूईकम्मंनसेविज्जाके०) शुद्धाहार पण जो आधाकर्मिकना एक कण सहि त होय तो ते अशुद्ध थाय, तेमाटे तेने पूतिकर्म कहिए; एवो आहारादिकने नलेवे ए टले नभोगवे (एसधम्मे के०) एवो धर्माचार ते (वुसीमउ के०) साचा संयमवंतनो जाणवो तथा (जंकिंचि के०) जेकांइ निर्दोष आहार होय परंतु तेने (अभिकंखेज्जा के०) सदोष करी जाणे तेपण सशंकित थयो माटे (सवसोतंनभोत्तए के०) ते सर्वथा प्रकारे भोगववुं नकल्पे ॥१५॥ (ठाणाइंसंतिसढीणंके०) श्रद्धावंतना स्थान श्रद्धावंत धर्मवंतना आश्रय (गामेसुनगरेसुवाके०) एवा ग्रामने विषे अथवा नगरने विषे साधु रह्या छे त्यांनो आश्रीत कोइएक कूप खनन सत्रुकारकादिकनो करावनार एवो पुरुष साधुने पू छे, जे एमां धर्मछे किंवा नथी एम पुछयां थकां (आयगुत्तेजिइंदिए के०) आत्मगुप्त तथा जितेंद्रिय एवो साधु, (हणंतंणाणुजाणेज्जा के०) आरंभेकरी प्राणी हणाता होय तेवा कार्यने अनुमोदे नही, जे ए तुं रुडुं काम करेछे एम कहे नही ॥ १६ ॥

॥ टीका–सांप्रतं क्षेत्रप्राणातिपातमधिकृत्याह । (उड्डमहेत्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च ये केचन त्रसास्तेजोवायुद्वींड्रियादयस्तथा स्थावराः पृथिव्यादयः किंबहुनोक्तेन सर्वत्र प्राणिनि त्रसस्थावरसूक्ष्मबादरनेदनिन्ने विरतिं प्राणातिपातनिवृत्तिं विजानीयात्कुर्यात्। परमार्थतएवमेवासौ ज्ञाता नवति। यदि सम्यक् क्रियतइति एपैवच प्राणातिपातनिवृत्तिः परेषामात्मनश्च शांतिहेतुत्वाच्छांतिर्वर्तते । यतोविरतिमतोनान्ये केचन बिन्यति नाप्यसौ नवांतरेपि कुतश्चिद्विन्नेति । अपिच निर्वाणप्रधानैककारणत्वान्निर्वाणमपि प्राणातिपातनिवृत्तिरेव। यदिवा शांतिरुपशमःशांतता निवृत्तिर्निर्वाणं विरतिमांश्चार्तरौड्ध्यानानावाडुपशांतिरूपोनिर्वृतिनूतश्च नवति ॥ ११ ॥ किंचान्यत् । (पनूदोसेइत्यादि) इंड्रियाणां प्रनवतीति प्रनुर्वा वश्येंड्रियइत्यर्थः । यदिवा संयमाचारकाणि कर्माण्यनिनूय मोक्षमार्गे पालयितव्ये प्रनुः समर्थः सएवंनूतः प्रनुर्दूषयंतीति दोषामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगास्तान्निराकृत्याऽपनीय केनापि प्राणिना सार्धं नविरुध्येत न केनचित्सह विरोधं कुर्यात्त्रिविधेनापि योगेनेति मनसा वाचा कायेन चैवांतशोयावज्जीवं परोपकारक्रियया न विरोधं कुर्यादिति ॥ १२ ॥

संवुमे से महापन्ने, धीरे दत्तेसणं चरे ॥ एसणासमिए णिच्चं, व
ज्जयंते अणेसणं ॥१३॥ नूयाइंच समारंन त मुद्दिस्साय जं कडं॥
तारिसं तु ण गिण्हेज्जा, अन्नपाणं सुसंजए ॥ १४ ॥

अर्थ–(संवुमेसेमहापन्नेके०) आश्रवनो रोधकरी संवरने पाम्यो ते महाप्राज्ञ एटले विपुल बुद्धिवंत तथा (धीरेदत्तेसणंचरेके०) परीसह जीतवाने धीर सुनट समान एवो ठतो दीधेली एषणाने वरे; अर्थात् दातारेदीधो एषणीक निर्दोष एवोजे आहारतेने लिए (एसणासमिएणिच्चंके०) एषणा एटले आहारनी गवेषणा तेने विषे समिति सहित नित्यसदाकाल (वज्जयंतेअणेसणं के०) अनेषणीयने वर्जतो थको संयम पाले ॥१३॥ (नूयाइंचसमारंन के०) नूत एटले प्राणीनो समारंन करीने (तमुद्दिस्सायजंकडंके) यतिने अर्थे उद्देशीने कीधो एवो जे आधाकर्मिक आहार (तारिसंके०) तादृस एटले तेवो (अन्नपाणं के०) अन्न, पान, वस्त्र, पात्र अने शय्यादिक (णगिण्हेज्जा के०) तेने जे ग्रहण करे नही, ते (सुसंजए के०) सुसंयत जाणवो. ॥ १४ ॥

दीपिका–इंड्रियैः संवृतः समहाप्रज्ञोविपुलमतिर्धीरोऽक्षोन्योनिक्षुर्दत्तेषणां चरेत् आहारोपधिशय्यादिकं स्वामिना दत्तं सदेषणीयं गृह्णातीत्यर्थः।एषणायां गवेषणग्रहणग्रासरूपायां त्रिविधायामपि समितः सम्यक्तयाऽनेषणां वर्जयन् नित्यं संयममनुपालयेत्॥१३॥

अत्थित्तिनोवए के०) तेकारणे आ तमारा अनुष्ठाने पुण्यछे एम पण साधु नकहे. ॥१८॥

॥ दीपिका—केनचिद्राजादिना कूपखननसत्रदानादिप्रवृत्तेन पृष्टः साधुः किमस्मदनुष्ठानेऽस्ति पुण्यमाहोस्विन्नास्तीत्येवं नूतां गिरं समारभ्य निशम्यास्तिपुण्यं नास्तिवेत्येवमुभयथापि महाभयमिति मत्वा नानुमन्येत ॥ १७ ॥ अन्नपानादिदानार्थं पाकादिक्रियायां ये प्राणिनोहन्यंते त्रसाःस्थावराश्च तेषां संरक्षणार्थं साधुरत्र पुण्यमस्तीति नोवदेत्॥१८॥

॥ टीका—सावद्यानुष्ठानानुमतिं परिहर्तुकामआह । (तहागिरमित्यादि) केनचिद्राजादिना कूपखननसत्रदानादिप्रवृत्तेन पृष्टः साधुः किमस्मदनुष्ठाने अस्ति पुण्यमाहोस्विन्नास्तीत्येवं नूतां गिरं समारभ्य निशम्याश्रित्य चास्ति पुण्यं नास्तिवेत्येवमुभयथापि महाभयमिति मत्वा दोषहेतुत्वेन नानुमन्येत ॥१७॥ किमर्थं नानुमन्येतइत्याह (दाणट्ठयाइत्यादि) अन्नपानदानार्थमाहारमुदकंच पचनपाचनादिकया क्रियया कूपखननादिकया चोपकल्पयेत् । तत्र यस्माद्धन्यंते व्यापाद्यंते त्रसाः स्थावराश्च जंतवस्तस्मात्तेषां रक्षानिमित्तं साधुरात्मगुप्तोजितेंद्रियोऽत्र भवदीयानुष्ठाने पुण्यमित्येवं नो वदेदिति ॥ १८ ॥

जेसिं तं उवकप्पंति, अन्नपाणं तहाविहं ॥ तेसिं लाभं तरायंति,
तम्हा णत्थित्ति णो वए॥ १९ ॥ जे य दानं पसंसंति, वहमिछंति
पाणिणं ॥ जेयणं पडिसेहंति वितिछेयं करंति ते ॥ २० ॥

अर्थ—अने (जेसिंतं उवकप्पंति के०) जे लोकने निमित्ते उपकल्पे एटले वांछे शुं वांछे तोके (अन्नपाणंतहाविहंके०) अन्न पाणी तथाविध दोषे दुष्ट अनेक प्रकारे करी नीपजावेछे तथापि तेनो निषेध करे तो (तेसिंलाभंतरायंतिके०) तेने लाभांतराय रूप आहार देवानुं विघ्न थाय (तम्हा के०) ते कारणे आ तमारे अनुष्ठाने पुण्य (णत्थित्तिके०) नथी (नोवए के०) एम पण नकहे. ॥१९॥ (जेयदानंपसंसंति के०) तेमाटे जे कोइ परमार्थनो जाण यति दाननी प्रशंसाकरे ते (वहमिछंतिपाणिणं के०) ते प्राणीना वधनी इछा करेछे, (जेयणंपडिसेहंतिके०) अने जे यति दान आपवानो निषेध करे (वित्तिछेयंकरंतिते के०) तो ते यति अनेक जीवोनी आजीविकानो छेद करेछे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका—येषां जंतूनां कृते तदन्नपानादिकं धर्मबुध्या उपकल्पयंति निष्पादयंति तन्निषेधे तेषामाहारार्थिनां लाभांतरायोविघ्नोभवेत् । तस्मात्कूपखननसत्रादिकर्मणिनास्ति पुण्यमित्यपि नो वदेत् ॥ १९ ॥ प्रपासत्रादिदानं ये प्रशंसंति ते प्राणिनां वधमिछं

॥ दीपिका—आधाकर्माद्यविशुद्धिकोट्यवयवेनापि संपृक्तं पूतिकर्म तन्न सेवेत । एषधर्मः (वुसीमउत्ति) सम्यक्संयमवतोयत्किंचिदनिकांक्षेतानुष्ठानं तत्र सर्वशः सर्वप्रकारमप्याहारादिकं पूतिकर्म नोक्तुं न कल्पते ॥ १५ ॥ धर्मश्रद्धावतां ग्रामेषु स्थानान्याश्रया विद्यंते तत्र तत्स्थानाश्रितः कश्चिद्धर्मबुध्या कूपतडागखननप्रपासत्रादिकां क्रियां कुर्यात्ते न च किमत्र धर्मोस्ति नास्तीत्येवं पृष्टः साधुस्तं प्राणिनोघ्नंतं नानुजानीयात् । किंनूतः साधुः आत्मगुप्तोमनोवाक्कायगुप्तोजितेंद्रियः ॥ १६ ॥

॥ टीका— किंच (पूतीत्यादि) आधाकर्माद्यविशुद्धकोट्यवयवेनापि संपृक्तं पूतिकर्म तदेवंनूतमाहारादिकं न सेवेत नोपभुंजीत । एषोऽनंतो धर्मकल्पस्वन्नावः (वुसीमउत्ति) सम्यक् संयमवतोऽऽयमेवानुष्ठानकल्पोयदुताशुद्धमाहारादिकं परिहरतीति । किंच । यद्यप्यशुद्धत्वेनाभिशंकेत किंचिदप्याहारादिकं तत्सर्वशः सर्वप्रकारमप्याहारोपकरणपूतिकर्म नोक्तुं न कल्पतइति ॥ १५ ॥ किंचान्यत् (हणंतमित्यादि) धर्मश्रद्धावतां ग्रामेषु नगरेषु वा खेटखर्वटादिषु वा स्थानान्याश्रयाः संति विद्यंते तत्र तत्स्थानाश्रितः कश्चिद्धर्मोपदेशेन किल धर्मश्रद्धालुतया प्राण्युपमर्दकारिणां धर्मबुध्या कूपतडागखननप्रपासत्रादिकां क्रियां कुर्यात्तेन च तथानूतक्रियायाः कर्ता किमत्र धर्मोस्ति नास्तीत्येवं पृष्टोवा तदुपरोधाद्भयाद्वा तं प्राणिनोघ्नंतं नानुजानीयात् । किंनूतः सन्नात्मना मनोवाक्कायरूपेण गुप्तआत्मगुप्तस्तथा जितेंद्रियोवश्येंद्रियः सावद्यानुष्ठानं नानुमन्यते ॥ १६ ॥

तहागिरं समारप्न, अत्थि पुन्नंति णोव ए॥ अहवा णत्थि पुन्नंति,
एवमेयं महप्नयं ॥ १७॥ दाणध्याय जे पाणा, हम्मंति तस
थावरा ॥ तेसिं सारखणध्याए, तम्हा अत्थित्ति णोवए ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे ए स्वरूप विशेषे दीपावेछे अहो मुनीश्वर आ अमारे अनुष्ठाने पुण्यछे किंवा नथी एम पुछ्यां थकां (तहा के०) ते साधु (गिरंसमारप्न के०) एवी वाणी कहे. के आ समारंन्न करवामां (अत्थिपुन्नंतिणोवए के०) पुण्यछे एम पण मुख थकी कहे नही; (अहवा के०) अथवा (णत्थिपुन्नंति के०) एमां पुण्य नथी एम पण मुख थकी कहे नही. (एवमेयं महप्नयं के०) एम ए बने प्रकारने दोषना हेतु तथा महानयना कारण जाणीने एवी नाषा नबोले ॥ १७ ॥ हवे जे कारणे एवी नाषा नबोले ते कारण कहेछे. (दाणध्यायजेपाणा के०) दानने अर्थे अनेक लोकने अन्नपाणी आपवा सारुं जे प्राणी एटले जीव (तसथावरा के०) त्रस अने स्थावर (हम्मति के०) हणायछे (तेसिंसारक्खणध्याएके०) तेजीवोने राखवाने अर्थे (तम्हा

करकिरणैर्यात्यनंताविनाशं तेनोदासीनन्नावं व्रजति मुनिगणः कूपवप्रादिकार्ये ॥ १ ॥ एवं रजसः कर्मणआयं लाभं हित्वा त्यक्त्वाऽनवद्यन्नापिणोनिर्वाणं मोक्षं प्राप्नुवंति ॥ ॥ २१ ॥ येषां निर्वाणं मोक्षएव परमं प्रधानं ते बुद्धाज्ञाततत्वाः। यथा नक्षत्राणां मध्ये चंद्रमाप्रधानएवं मोक्षमेवाश्रित्य प्राप्य ये प्रवृत्तास्ते एव बुद्धानां मध्ये प्रधानाः। त स्मात्सदा सर्वकालं यतः प्रयत्नवान् इंद्रियदमने दांतोमुनिर्निर्वाणं संधयेन्निर्वाणार्थं सर्वाः क्रियाः कुर्यादित्यर्थः ॥ २२ ॥

॥ टीका—तदेवं राज्ञा अन्येन वेश्वेरेण कूपतडागयागसत्रदानाद्युद्यतेन पुण्यसन्नावं पृष्टैर्मुमुक्षुनिर्यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह। (डुहर्वीत्यादि) यद्यस्ति पुण्यमित्येवमूचुस्ततोनंतानां सत्वानां सूक्ष्मबादराणां सर्वदा प्राणत्यागएव स्यात्प्रीणनमात्रंतु पुनः स्वल्पानां स्वल्पकालीयमतोस्तीति न वक्तव्यं। नास्ति पुण्यमित्येवं प्रतिषेधेपि तदर्थिनामंतरायः स्यादित्यतो द्विधाप्यस्ति नास्ति वा पुण्यमित्येवं ते मुमुक्षवः साधवः पुनर्न न्नाषंते किंतु पृष्टैः सन्निर्मौनं समाश्रयणीयं। निर्बंधेत्वस्माकं द्विचत्वारिंशद्दोषवर्जितआहारः कल्पते। एवंविधविषये मुमुक्षूणामधिकारएव नास्तीति। उक्तंच। सत्यं वप्रेषु शीतं शशिकरधवलं वारि पीत्वा प्रकामं, व्युच्छिन्नाशेषतृष्णाः प्रमुदितमनसः प्राणिसार्थान्नवंति ॥ शोषं नीते जलौघे दिनकरकिरणैर्यात्यनंताविनाशं, तेनोदासीनन्नावं व्रजति मुनिगणः कूपवप्रादिकार्ये ॥१ तदेवमुन्नयथापि न्नाषिते रजसः कर्मणआयोलान्नोन्नवतीत्यतस्तं चायं रजसोमौनेनानवद्यन्नापणेन वा हित्वा त्यक्त्वा तेऽनवद्यन्नापिणोनिर्वाणं मोक्षं प्राप्नुवंतीति ॥२१॥ अपिच। निव्वाणमित्यादि) निर्वृतिर्निर्वाणं तत्परमं प्रधानं येषां परलोकार्थिनां बुद्धानां ते तथा तानेव बुद्धान्निर्वाणवादित्वेन प्रधानानित्येवं दृष्टांतेन दर्शयति। यथा नक्षत्राणामश्विन्यादीनां सौम्यत्वप्रमाणप्रकाशकत्वैरधिकश्चंद्रमाएवं परलोकार्थिनां बुद्धानां मध्ये ये स्वर्गचक्रवर्तिसंपन्निदानपरित्यागेनाशेषकर्मक्षयरूपं निर्वाणमेवान्निसंधाय प्रवृत्तास्त एव प्रधानानापरइति। यदिवा यथा नक्षत्राणां चंद्रमाः प्रधानन्नावमनुन्नवत्येवं लोकस्य निर्वाणं परमं प्रधानमित्येवं बुद्धाअवगततत्वाः प्रतिपादयंतीति। यस्माच्च निर्वाणं प्रधानं तस्मात्कारणात्सदा सर्वकालं यतः प्रयतः प्रयत्नवान् इंद्रियनोइंद्रियदमनेन दांतो मुनिः साधुर्निर्वाणमन्निसंधयेन्निर्वाणार्थं सर्वाः क्रियाः कुर्यादित्यर्थः ॥ २२ ॥

वुज्झमाणाण पाणाणं किच्चंताण सकम्मणा ॥ आघाति साहु तं दीवं, पतिठे सा पवुच्चई ॥ २३ ॥ आयगुत्ते सया दंते, छिन्नसोए अणासवे ॥ जे धम्मं सुद्धमक्खाति, पडिपुन्नमणालिसं ॥ २४ ॥

ति येच निषेधंति प्रतिषेधयंति तेप्यगीतार्थाः प्राणिनां वृत्तिछेदं आजीविकाविघ्नं कुर्वंति २०

॥ टीका—यद्येवं नास्तिपुण्यमिति ब्रूयात्तदेतदपि न ब्रूयादित्याह । (जेसिमित्यादि) येषां जंतूनां तदन्नपानादिकं किल धर्मबुध्योपकल्पयंति तथाविधं प्राण्युपमर्ददोषडुष्टं निष्पादयंति तन्निषेधेच यस्मात्तेषामाहारपानार्थिनां तल्लाजांतरायोविघ्नोनवेत्तदजावेन तु पीड्येरंस्तस्मात्कूपखननसत्रादिके कर्मणि नास्ति पुण्यमित्येतदपि नोवदेदिति ॥ १९ ॥ एनमेवार्थं पुनरपि समासतः स्पष्टतरं बिनणिषुराह । (जेयदाणमित्यादि) ये केचन प्रपासत्रादिकं दानं बहूनां जंतूनामुपकारीति कृत्वा प्रशंसंति श्लाघंते ते परमार्थानभिज्ञाः प्रजूततरप्राणिनां तत्प्रशंसा द्वारेण वधं प्राणातिपातमिबंति । तद्दानस्य प्राणातिपातमंतरेणानुपपत्तेः । येपिच किल सूक्ष्मधियोवयमित्येवं मन्यमानाआगमसङ्गावानभिज्ञाः प्रतिषेधंति निषेधयंति तेप्यगीतार्थाः प्राणिनां वृत्तिछेदं वर्तनोपायविघ्नं कुर्वंतीति ॥ २० ॥

डुहर्जवि ते ण जासंति, अबिवा नबिवा पुणो ॥ आयं रयस्स हेच्चाणं, निव्वाणं पाउणंति ते ॥ २१ ॥ निव्वाणं परमं बुद्धा, णक्खत्ताणव चंदमा ॥ तम्हा सदा जए दंते, निव्वाणं संधए मुणी॥२२॥

अर्थ—(अबिवानबिवा के०) अस्ति अथवा नास्ति एम न कहे एटले पुण्यछे किंवा पुण्य नथी एवी (डुहर्जवि के०) बन्ने प्रकारनी वाणीने (पुणोके०) वली (तेके०) तेसाधु (णजासंति के०) जापेनही; केमके ए थकी (रयस्सके०) कर्मरूप रज तेनो (आयं के०) लाज तेने (हिच्चाके०) जाणीने तेवी वाणीने उच्चार करवानो त्याग करे, (निव्वाणंपाउणंतितेके०) ते साधु निर्वाण प्रत्ये पामे; एटले अनवद्य जाषक एवो साधु संसाररहित थाय ॥ २१ ॥ (निव्वाणंपरमंबुद्धा के०) निर्वाण एटले मोक्ष तेने परम प्रधान जाणे, (णक्खत्ताणवचंदमाके०) नक्षत्रचंद्रमानी पेरे, जेम नक्षत्रमां चंद्रमा प्रधानछे, तेम तत्वना जाण पुरुष सर्व गतिर्जमां मुक्तिने प्रधान कहेछे. (तम्हाके०) तेमाटे (सदाजएदंतेके०) संयमवंत पुरुष ते निरंतर प्रयत्नवान इंड्रियनुं दमन करनार थको (निव्वाणंसंधए मुणीके०) एवो साधु मोक्षने साधे अर्थात् सर्व क्रिया मोक्षने अर्थे करे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—द्विधापि ते पुनः साधवोन जाषंते अस्ति पुण्यं नास्तिवा इति किंतु पृष्टैः सद्भिर्मौनमेवाश्रयणीयं । निर्बंधेत्वस्माकं निर्दोषाहारः कल्पते । एवंविधविषये साधूनामधिकारएव नास्तीति वक्तव्यं । यडुक्तं । सत्यं वप्रेषु शीतं शशिकरधवलं वारि पीत्वा प्रकामं, व्युछिन्नाशेषतृष्णाः प्रमुदितमनसः प्राणिसार्थाजवंति ॥ शोषं नीते जलौघे दिन

आत्मगुप्तस्तथा सदा सर्वकालमिंद्रियनोइंद्रियदमनेन दांतोवश्येंद्रियोधर्मध्यानध्यायी वे त्यर्थः । तथा छिन्नानि त्रोटितानि संसारस्रोतांसि येन सतथा । एतदेव स्पष्टतरमाह निर्गतआश्रवः प्राणातिपातादिकः कर्मप्रदेश द्वाररूपोयस्मात्सनिराश्रवोयएवंभूतः संशु द्धं समस्तदोषाऽपेतं धर्ममाख्याति । किंभूतं धर्मं प्रतिपूर्णं निरवयवतया सर्वविरत्याख्यं मोक्षगमनैकहेतुमनीदृशमनन्यसदृशमद्वितीयमिति यावत् ॥ २४ ॥

तमेव अवि जाणंता, अबुद्धा बुद्धमाणिणो ॥ बुद्धा मोत्तियम
न्नंता, अंतएते समाहिए ॥ २५ ॥ तेय बीओदगं चेव, तमुद्दिस्सा
य जं कडं ॥ भोच्चा झाणं झियायंति, अखेयन्ना असमाहिया ॥ २६ ॥

अर्थ—(तमेवअविजाणंता के०) ते शुद्ध प्रतिपूर्ण धर्मना आचारनुं जे जाणपणु तेने विषे (अबुद्धाबुद्धमाणिणो के०) अबुद्ध एटले अविवेकी छतां. पोतामां पंमित पणु मानता थका जे अमेज धर्मना जाणछैयें, (बुद्धामोत्तियमन्नंता के०) तत्वना जाण एवा बुद्धिमान अमेज छैयें, एवीरीते मानता एवा जनो (अंतएतेसमाहिए के०) ते भाव समाधि थकी अत्यंत दूर वर्त्तनार जाणवा ॥ २५ ॥ एवा कोण पुरुष ते कहेछे. (तेयबीओदगंचेव के०) ते शाक्यादिक अन्य दर्शनी अथवा एवा जे स्वतीर्थिक पासछा दिक तेबीज एटले शाली गोधूमादिक तथा उदक ते सचित्तपाणी तथा (तमुद्दिस्सायजंकडं के०) तेने अर्थे उद्देशीने जे आहारादिक कीधो ते सर्वने अविवेकी पणे जीव्हाना लं पटी छता (भोच्चा के०) भोगवी ने (झाणंझियायंति के०) आर्त्त ध्यान ध्यावे, एट ले संघनो भोजनादिक थशे तेवारे आपणने पण मलशे, एवो आर्त्त ध्यान ध्यावे ते तात्विके (अखेयन्ना असमाहिया के०) धर्माधर्मने विषे अखेदज्ञ एटले अनिपुण तथा एवा ध्यानना ध्यावनार सदा असंतोषी होय माटे असमाधिवंत जाणवा ॥२६॥

॥ दीपिका—तमेवं धर्ममजानानाअबुद्धानिर्विवेकाबुद्धमानिनः पंडितंमन्याबुद्धाः स्मोवयमिति मन्यमानाः समाधेः सम्यग्दर्शनादंते पर्यंतेऽतिदूरे वर्तते इति तेऽन्ये तीर्थिकाज्ञेयाः ॥ २५ ॥ बीजानि शालिगोधूमादीनि उदकमप्रासुकजलं च शाक्यादय स्तानुद्दिश्य तद्भक्तैर्यदाहारादिकं कृतं तत्सर्वं भुक्त्वा सातर्धिरसगौरवासक्ताः संघभक्ता दिक्रियया तदवाप्तिकृते आर्तं ध्यानं ध्यायंति । नहि ऐहिकसुखार्थिनां परिग्रहवतां धर्म ध्यानं स्यात् । यतः । ग्रामक्षेमगृहादीनां, गृहक्षेत्रजनस्य च । यस्मिन् परिग्रहोदृष्टो, ध्यानं तत्र कुतः शुभमिति । मोहस्यायतनं धृतेरपचयः शांतेः प्रतीपोविधि,र्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य भवनं पापस्य वासोनिजः ॥ दुःखस्य प्रभवः सुखस्य निधनं ध्यानस्य क

अर्थ–(बुझमाणाण पाणाणं के०) संसार समुद्रमां विचरता प्राणी (किच्चंताण सकम्मणा के०) पोतपोताना कर्मेकरी छेदन भेदननी कदर्थना पामता एवा असरण जीवोने पण (आघातिसाद्धुतं दीवं के०) श्रीतीर्थंकर गणधरनो कहेलो आश्वासभूत द्वीप समान एवो सम्यक् दर्शनादिक धर्म जाणवो, (पतिठेसापवुच्चई के०) एने संसार समुद्रमां परिभ्रमणनो टालनार कहिए ॥२३॥ एवा धर्मनो प्ररुपनार कोण ते कहेछे. (आयगुत्तेसयादंतेके०) आत्माजेनो गुप्तछे ते आत्मगुप्त कहिए तथा सदादांत एटले सर्वकाल पांचेंद्रियनो संवर करनार (छिन्नसोए के०) जेणे संसारना स्रोत छेद्याछे (अणासवेके०) अनाश्रव एटले प्राणातिपातादिक आश्रव रहित (जेधम्मं सुद्धमक्खाति के०) एवो जे होय ते सुद्धो धर्म कहे ते धर्म केवोछे, तो के (पडिपुन्न के०) प्रतिपूर्ण सर्व विरतिरूप तथा (अणालिसं के०) निरुपमछे. एटले एवो धर्म अन्य दर्शनीउना कोइपण शास्त्रमां कह्यो नथी माटे ए धर्म उपमारहित छे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–संसारसागरे मिथ्यात्वकषायादिनिर्वाह्यमानानां संमुखं नीयमानानां तथा स्वकर्मभिः कृत्यमानानां पीड्यमानानां प्राणिनां परोपकारनिरतस्तीर्थकारणतस्तीर्थकरो गणधरादिर्वा साधु शोभनं द्वीपमाश्वासभूतमाख्याति। यथा समुद्रपतितस्य जंतोः कश्चित्सुखार्थं द्वीपं वक्ति तथा संसारभ्रमणविश्रामहेतुं सम्यग्दर्शनादिकं जिनादिर्वक्ति एषा संसारभ्रमणविरतिरूपा प्रतिष्ठाप्रोच्यते तज्ज्ञैः ॥ २३ ॥ आत्मा गुप्तोयस्य सआत्मगुप्तः सदांतोवशीकृतेंद्रियः। तथा छिन्नानि त्रोटितानि संसारस्रोतांसि येन सछिन्नस्रोतानिराश्रवः कर्मबंधरहितएवंभूतोयः सशुद्धं निर्दोषं धर्ममाख्याति कथयति। किंभूतं धर्मं प्रतिपूर्णं सर्वविरतिरूपमनीदृशमनन्यसदृशं ॥ २४ ॥

॥ टीका–किंचान्यत्। (बुझमाणाण इत्यादि) संसारसागरस्रोतोभिर्मिथ्यात्वकषायप्रमादादिकैरुह्यमानानां तदभिमुखं नीयमानानां तथा स्वकर्मोदयेन निकृत्यमानानामशरणानामसुमतां परहितैकरतः कारणवत्सलस्तीर्थकृदन्योवा गणधराचार्यादिकस्तेषामाश्वासभूतं साधुं शोभनं द्वीपमाख्याति। यथा समुद्रांतः पतितस्य जंतोर्जलकल्लोलाकुलितस्य मुमूर्षोरतिश्रांतस्य विश्रामहेतुं द्वीपं कश्चित्साधुर्वत्सलतया समाख्यात्येवं तथाभूतं द्वीपं सम्यग्दर्शनादिकं संसारभ्रमणविश्रामहेतुं तीर्थपरतीर्थिकैरनाख्यातपूर्वमाख्यात्येवं च कृत्वा प्रतिष्ठानं प्रतिष्ठा संसारभ्रमणविरतिलक्षणैषा दर्शनाद्यवाप्तिसाध्या मोक्षप्राप्तिः प्रकर्षेण तत्वज्ञैरुच्यते प्रोच्यतइति ॥ २३ ॥ किंभूतोऽसावाश्वासद्वीपोभवति कीदृग्विधेन वाऽसावाख्यायतइत्येदाह। (आयगुत्ते इत्यादि) मनोवाक्कायैरात्मा गुप्तोयस्य स

अर्थ-(जहाढंकायकंकाय के०) जेम ढंक पक्षी विशेष, तथा कंक पक्षी विशेष (कुललामग्गुकासिहा के०) कुलला पक्षी विशेष मूंगु पक्षी विशेष काक पक्षी विशेष एसर्व पक्षी मांसना अर्थि मांसनी इहा एटले वांछाना करनार छे. ते (मच्छेसणंझि यायंति के०) माछलानी प्राप्तिनी एषणाने ध्यावतां थकां रहेछे. (ध्राणंतेकलुसा धमं के०) एवा मांसाहारी जीवो ते सर्वकाल कलुष एटले मलीन एवुं माछलानी गवे षणानुं अधम ध्यान ध्यावेछे. ॥ २७ ॥ (एवंतुसमणाएगे के०) ए प्रकारे कोइएक अन्यतीर्थिक अथवा पासह्यादिक कुशीलिया श्रमण (मिछदिठि के०) मिथ्यादृष्टी (अणारिया के०) अनार्य ते (विसएसणंझियायंति के०) विषयनी एषणा एटले, श ब्द रूप रस गंधनी प्राप्तिने ध्यावेछे (कंकावाकलुसाहमा के०) ते पूर्वोक्त कंकादिक प क्षीनी पेरे कलुषित चित्त वाला अधम पुरुषो जाणवा. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका-यथा ढंकादयः पक्षिविशेषाजलाश्रयनिवासाआमिषजीविनोमत्स्यप्रा प्तिं ध्यायंति तत्ध्यायिनश्च ते कलुषाधमाः स्युः । एवं शाक्यादयोविषयप्राप्तिं ध्यायंतः क लुषाधमाश्च स्युः ॥ २७ ॥

टीका-यथा चैते रससातागौरवतयार्तध्यायिनोजवंति तथा दृष्टांतद्वारेण दर्शयितु माह । (जहाढंकायइत्यादि) यथेत्युदाहरणन्यासार्थः ।यथा येन प्रकारेण ढंकादयः पक्षि विशेषाजलाश्रयाआमिषजीविनोमत्स्यप्राप्तिं ध्यायंत्येवंनूतं च ध्यानमार्तरौद्रध्यानरूपत याऽत्यंतकलुषमधमं च जवतीति ॥२७॥ दार्ष्टांतिकं दर्शयितुमाह । (एवमित्यादि) एवमि ति यथा ढंकादयोमत्स्यान्वेषणपरं ध्यानं ध्यायंति तत्ध्यायिनश्च कलुषाधमाजवंत्येवमेव मिथ्यादृष्टयः श्रमणाएके शाक्यादयोऽनार्यकर्मकारित्वात्संरंजपरिग्रहतया अनार्याः संतो विषयाणां शब्दादीनां प्राप्तिं ध्यायंति तत्ध्यायिनश्च कंकाइव कलुषाधमाजवंतीति ॥२८॥

सुद्धं मग्गं विराहित्ता, इहमेगेउ डुम्मती॥ उम्मग्गगता डुक्खं,
घायमेसंति तं तहा ॥ २९ ॥ जहा आसाविणिं नावं, जाइअंधो
डुरूहिया ॥ इछइ पारमागंतुं, अंतराय विसीयंती ॥ ३० ॥

अर्थ-(सुद्धंमग्गंविराहित्ताके०)शुद्धमार्गजे सम्यक्दर्शनादिक तेने कुमार्गनी प्ररुपणाये विराधता एवा (इहके०) आसंसारमांहे (मेगेउडुम्मतीके०) कोइएक डुराचारी पोताना दर्शनना अनुरागे प्रवर्त्तता (उम्मग्गगताडुक्खं के०) उन्मार्ग गत एटले अरिहंत नाषी त तत्व थकी विपरीत मार्गे प्राप्त थया छता डुःखजे अष्ट प्रकारना कर्म असातोदयरू प तेणे करी (घायमेसंतितंतहा के०) तथा प्रकारे ते घात एटले नरकादिकगतिमांहे

ष्टोरिपुः प्राज्ञस्यापि परिग्रहोग्रहइव क्लेशाय नाशाय च ॥ १ ॥ तथा ते कुतीर्थिकाध र्माधर्मविवेके ऽखेदज्ञाअनिपुणाअसमाहिताश्च समाधेर्मोक्षमार्गाद्दूरस्थाइत्यर्थः ॥ २६ ॥

॥ टीका–एवंनूतधर्मव्यतिरेकिणां दोषाभिधित्सयाऽह। (तमेवेत्यादि) तमेवंनूतं शुद्धं प रिपूर्णमनीदृशं धर्ममजानानाअप्रबुद्धाअविवेकिनः पंडितमानिनोवयमेव प्रतिबुद्धाधर्मत त्वमित्येवं मन्यमानानावसमाधेः सम्यग्दर्शनाख्याद्ंते पर्यंते विदूरे वर्ततइति तेच सर्वेपि प रतीर्थिकाद्रष्टव्याइति ॥२५॥ किमिति ते तीर्थिकानावमार्गरूपात्समाधेर्दूरे वर्ततइत्याशंक्या ह।(तेयबीउदगमित्यादि) तेच शाक्यादयोजीवाजीवानभिज्ञतया बीजानि शालिगोधूमादी नि तथा शीतोदकमप्राशुकोदकं तांश्चोद्दिश्य तद्भक्तैर्यदाहारादिकं कृतं निष्पादितं तत्सर्वमवि वेकितया शाक्यादयोनुक्त्वाऽन्यवहृत्य पुनः सातर्द्धिरसगौरवासक्तमनसः संघनक्तादिक्रिय या तदवाप्तिकृते आर्तं ध्यानं ध्यायंति । नह्यैहिकसुखैषिणां दासीदासधनधान्यादिपरिग्रहव तांधर्मध्यानं नवतीति । तथाचोक्तं। ग्रामक्षेत्रगृहादीनां गृहक्षेत्रजनस्य च॥ यस्मिन्परिग्र होदृष्टो, ध्यानं तत्र कुतः शुनमिति । तथा । मोहस्यायतनं धृतेरपचयः शांतेः प्रतीपो विधि,र्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य नवनं पापस्य वासोनिजः॥ डुःखस्य प्रनवः सुखस्य निध नं ध्यानस्य कष्टोरिपुः, प्राज्ञस्यापि परिग्रहोग्रहइव क्लेशाय नाशाय च ॥ १ ॥ तदेवं पच नपाचनादिक्रियाप्रवृत्तानां तदेव चानुप्रेक्षमाणानां कुतः शुनध्यानस्य संनवइति । अपि च । ते तीर्थिकाधर्माधर्मविवेके कर्तव्ये अखेदज्ञाअनिपुणाः। तथाहि। शाक्यामनोज्ञाहा रवसतिशय्यासनादिकं रागकारणमपि शुनध्याननिमित्तत्वेनाध्यवस्यंति । तथाचोक्तं । म णुसंनोयणं नुच्चेत्यादि । तथा मांसं कल्किकमित्यपदिश्य संज्ञांतरसमाश्रयणान्निर्दोषं म न्यंते बुद्धसंघादिनिमित्तं चारंनं निर्दोषमिति । तडुक्तं । मंसनिवत्तिं काउं,सेवइ दंतिक्कगंतिध णिनेया॥ इयवइक्कणारंनं, परववएसा कुणइ बालो॥ १ ॥ नचैतावन्निर्दोषता।नहि लू तादिकं शीतलिकाद्यभिधानांतरमात्रेणान्यथात्वं नजते विषं वा मधुरकाभिधानेनेति । ए वमन्येषामपि कापिलादीनामाविर्नावतिरोनावाभिधानाभ्यां विनाशोत्पादावभिदधताम नैपुण्यमाविष्करणीयं। तदेवं ते वराकाः शाक्यादयोमनोज्ञनोजिनः सपरिग्रहतयार्त ध्यायिनोऽसमाहितामोक्षमार्गाख्याद्भावसमाधेरसंवृततया दूरेण वर्ततइत्यर्थः ॥ २६ ॥

जहा ढंकाय कंकाय कुललामगुकासिहा॥ मब्वेसणं झियायंति,
झाणं ते कलुसाधमं ॥ २७ ॥ एवंतु समणाएगे, मिब्बहिट्ठी अ
णारिया॥ विसएसणं झियायंति, कंकावा कलुसाहमा ॥ २८ ॥

रूप धर्म तेने ग्रहण करीने (कासवेणपवेदितं के०) ते धर्म काश्यपगोत्री श्रीमहावीर देवे कह्यो ते धर्मने आदरवा थकी फल जे थाय ते कहेछे (तरेसोयंमहाघोरं के०) ते माहाघोर एवो संसार समुद्रनो श्रोत एटले प्रवाहरूप स्थानक तेने तरे अर्थात् संसार समुद्रने उलंघीने पारपामे, (अत्तत्ताएपरिव्वए के०) ते कारण माटे आत्मानो त्राइ एटले रक्षपाल एवो साधु ते एहिज सम्यग् धर्मने समाचारे ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका—एवमेके शाक्यादयः श्रमणामिथ्यादृष्टयोऽनार्याभावस्रोतःकर्माश्रवरूपं कृत्स्नं समापन्नाः संतोमहाभयं पौनःपुन्येन दुःखमागंतारआगमनशीलाः स्युः संसार सागरोत्तरणं न स्यादिति ॥३१॥ इमं प्रत्यक्षं धर्मं । चः पुनरर्थे। काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्रणीतं आदाय गृहीत्वा भावस्रोतः संसारपर्यटनं महाघोरं तरेल्लंघयेत् । तदेवं जिनप्रणीतधर्माटनेनासता आत्मनस्त्राणाय नरकादिभ्योरक्षणाय परिव्रजेत्संयमानुष्ठायी स्यात् । क्वचित्पश्चार्धस्यायं पाठः । (कुज्जाभिरकूगिलाणस्स, अगिलाएसमाहिए)। भिक्षुः साधु र्ग्लानस्य वैयावृत्यमग्लानोऽपरिश्रांतः कुर्यात्समाधिना ग्लानस्य समाधिमुत्पादयन् ॥३२॥

॥ टीका—दार्ष्टांतिकमाह । (एवंत्वित्यादि) एवमेव श्रमणाएके शाक्यादयोमिथ्यादृष्टयोऽनार्याभावस्रोतःकर्माश्रवरूपं कृत्स्नं संपूर्णमापन्नाः संतस्ते महाभयं पौनःपुन्येन संसारपर्यटनतया नारकादिस्वभावं दुःखमागंतारआगमनशीलाभवंति । न तेषां संसारोदधेरास्राविणीं नावं व्यवस्थितानामिवोत्तरणं भवतीति भावः ॥ ३१ ॥ यतः शाक्यादयः श्रमणाः मिथ्यादृष्टयोऽनार्याः कृत्स्नं स्रोतः समापन्नाः महाभयमागंतारोभवंति ततइदमपदिश्यते । (इमंचेत्यादि) इदमिति प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिदमोनंतरं वक्ष्यमाणलक्षणं सर्वलोकप्रकटं च दुर्गतिनिषेधेन शोभनगतिधारणाद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यं । चशब्दः पुनःशब्दार्थे । सच पूर्वस्माद्व्यतिरेकं दर्शयति । यस्मात्कौ-क्षोदनिप्रणीतधर्मस्यादातारोमहाभयं गंतारोभवंति इमं पुनर्धर्ममादाय गृहीत्वा काश्यपेन श्रीवर्धमानस्वामिना प्रवेदितं प्रणीतं तरेल्लंघयेद्भावस्रोतः संसारपर्यटनस्वभावं । तदेव विशिनष्टि । महाघोरं दुरुत्तरत्वान्महाभयानकं । तथाहि । तदंतर्वर्तिनोजंतवोगर्भाद्गर्भं जन्मतोजन्म मरणान्मरणं दुःखाद्दुःखमित्येवमरघट्टघटीन्यायेनानुभवंतोऽनंतमपि कालमासते । तदेवं काश्यपप्रणीतधर्मादानेन सता आत्मनस्त्राणं नरकादिरक्षा तस्मै आत्मत्राणाय परिःसमंतात्परिव्रजेत्संयमानुष्ठायी भवेदित्यर्थः । क्वचित्पश्चार्धस्यान्यथा पाठः । कुज्जाभिरकू गिलाणस्स. अगिलाएसमाहिए ॥ भिक्षुः साधुः ग्लानस्यवैयावृत्यमग्लानोऽपरिश्रांतः कुर्यात्सम्यक्समाधिना ग्लानस्य वा समाधिमुत्पादयन्निति ॥ ३२ ॥

अनेक प्रकारेकरी जन्ममरणछेदन नेदनादिक डुःखनी वेदना पामे. ॥ २ए ॥ (जहाके०) जेम (जाइअंधोके०) जात्यंध पुरुष (आसाविणिंके०) शतछिड् सहित एवी (नावंके०) नावने विषे (डुरूहिया के०) बेसीने (इछति पारमागंतुंके०) समुड् तरी पार पाम वानी इछा करे पण तेवी नावा थकी समुड्नो शीरीते पार पामे ? (अंतरायविसीयंती के०) ते पुरुष अंतराले विषीदंति एटले वचमांज बुडे, परंतु पार पामे नही. ॥ ३० ॥

॥ दीपिका– शुद्धं निर्दोषं मोक्षमार्गप्ररूपणया विराध्य दूषयित्वा इह संसारे एके शाक्यादयोडुर्मतयउन्मार्गगताडुःखं घातं च मृतिं ते शाक्यादयस्तथा तेन प्रकारेण एषं ति अन्वेषयंति डुःखमरणे शतशः प्रार्थयंतीत्यर्थः ॥ २ए ॥ यथा जात्यंधआस्राविणीं शतछिड्रां नावमारुह्य पारमागंतुमिछति। न चासौ छिड्नावारूढः पारगतः स्यात् किंत र्हि अंतराले जलमध्यएव विषीदति निमज्जति ॥ ३० ॥

॥ टीका–किंच (शुद्धमित्यादि) शुद्धमवदातं निर्दोषं मार्गं सम्यग्दर्शनादिकं मोक्षमार्गं कुमार्गप्ररूपणया विराध्य दूषयित्वा इहास्मिन्संसारे मोक्षमार्गप्ररूपणप्रस्तावे वा एके शाक्यादयः स्वदर्शनानुसारेण महामोहाकुलितांतरात्मानोडुष्टा पापोपादानतया मति र्येषां ते डुष्टमतयः संतउन्मार्गेण संसारावतरणरूपेण गताः प्रवृत्ताउन्मार्गगताडुःख यतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्मासातोदयरूपं वा तद्दुःखं घातं चांतशस्तथा सन्मार्गविराधन तया उन्मार्गगमनं चैषंत्यन्वेषयंति। डुःखमरणे शतशः प्रार्थयंतीत्यर्थः. ॥ २ए ॥ शाक्यादीनां चापायं दिदर्शयिषुस्तावद्दृष्टांतमाह । (जहाआसाविणिमित्यादि) यथा जात्यंधआस्राविणीं शतछिड्रां नावमारुह्य पारमागंतुमिछति। नचासौ सछिड्तया पार गामी नवति किंतर्ह्यंतरालएव जलमध्यएव विषीदति निमज्जतीत्यर्थः ॥ ३० ॥

एवंतु समणा एगे, मिछदिछी अणारिया ॥ सोयं कसिणमाव
न्ना, आगंतारो महप्नयं ॥ ३१ ॥ इमंच धम्ममादाय, कासवेण
पवेदितं ॥ तरे सोयं महाघोरं, अत्तत्ताए परिव्वए॥ ३२ ॥

अर्थ–हवे ए दृष्टांत अन्यतीर्थिक साथे जोडेछे (एवंतुसमणाएगे के०) एरीते कोइ एक अन्य दर्शनी श्रमण (मिछदिछी अणारिया के०) मिथ्यादृष्टी अनाचारी विपरीत मार्गना उपदेशक विपरीत बुद्धिना धणी ते (सोयंकसिणमावन्ना के०) श्रोत एट ले कर्मनो आश्रव तेने विषे संपूर्ण पोहोच्या थका (आगंतारोमहप्नयं के०) आवते काले महानय एटले अत्यंत बीहामणा एवा नरकादिकना डुःख पामे. ॥३१॥ (इमंचध म्ममादाय के०) एम सर्वलोक प्रसिद्ध छकाय जीवोनो वाछल कारी एवो श्रुत चारित्र

सामसमणुचरंतस्स कसाया जस्स उक्कडा होंति ॥ मन्नामि उच्छुपुप्फंच निप्फलं तस्स सा मस्सं ॥१॥ तन्निष्फलत्वेच न मोक्षसंभवः । तथाचोक्तं । संसारादपलायनप्रतिभुवोरागादयो मे स्थितास्तृष्णाबंधनबध्यमानमखिलं किंवेत्सि नेदं जगत् ॥ मृत्यो मुंच जराकरेण परुषं के शेषु मामाग्रहीरेहीत्यादरमंतरेण भवतः किंनागमिष्याम्यहं ॥१॥इत्यादि । तदेवमेवंभूतक पायपरित्यागादभिन्नप्रशस्तभावानुसंधनया निर्वाणानुसंधानमेव श्रेयइति ॥ ३४ ॥

संधए साहुधम्मंच, पाठांतरं (सद्दए साहुधम्मंच) पावधम्मं णिराकरे ॥ उवहाणवीरिए भिक्खू, कोहं माणंच पत्थए ॥ ३५ ॥
जे य बुद्धा अतिक्कंता, जे य बुद्धा अणागया ॥ संति तेसिं पइ ठाणं, भूयाणं जगती जहा ॥ ३६ ॥

अर्थ-(संधएसाहुधम्मंच के०) साधुनो धर्मजे क्षमादिक दश प्रकारनोछे तेने स म्यक् जाणीने वृद्धि करे एटले सम्यक् उपदेशीने वृद्धि पमाडे पाठांतरे (सद्दए साहुध म्मंच के०) दश प्रकारनायतिधर्म उपर श्रद्धा राखे. (पावधम्मंणिराकरे के०) पाप धर्म जे जीवोनो मर्दन करतो थको धर्मनेभावे प्रवर्त्ते तेने पापधर्म कहिए, तेने निराक रे एटले तेनुं उत्थापन करीने (उवहाणवीरिएभिक्खू के०) उपधान जे तप तेने विषे बलवीर्य फोरवतो एवो साधु (कोहंमाणंचपत्थए के०) क्रोध अने मानने प्रार्थे नही. चशब्द थकी साधु वर्तमान काले एवीरीते संयम पाले. ॥ ३५ ॥ ए धर्म श्रीमहावीर देवे कह्यो किंवा अन्य जिनोए पण कह्यो ते कहेछे. (जेयबुद्धाअतिक्कंता के०) जे तीर्थंकर अतीत काले थया, तथा (जेयबुद्धाअणागया के०) जे तीर्थंकर अनागत काले थशे चशब्द थकी जे तीर्थंकर वर्त्तमान काले विराजमान छे, ते सर्व एज धर्म ना कहेनार जाणवा (संतितेसिंपइठाणं के०) तेनो प्रतिष्ठान एटले अवलंबननो स्था नक ते शांति एटले समस्त जीवनी दया जाणवी, कोनीपेरे तोके (जहाके०) जेम (भूयाणंजगती के०) समस्त जीवोने आधारभूत पृथवीरूप स्थानक छे, तेम सर्व तीर्थंकर देवोने जीवदया रूप शांतिनुं स्थानक ते आधारभूत जाणवो. ॥ ३६ ॥

॥ दीपिका-साधुधर्मं संयमं संधयेत् वृद्धिं प्रापयेत् तथा पापधर्मं हिंसात्मकं निरा कुर्यात् । उपधानं तपस्तत्र वीर्योभिक्षुः क्रोधं मानं च न प्रार्थयेन्नवर्धयेत् ॥ ३५ ॥ ये बुद्धास्तीर्थंकृतोऽतिक्रांताअतीताये चाऽनागताः । चशब्दाद्वर्तमानाजिनेंद्रास्तेषां सर्वेषां शांतिर्भावमार्गः प्रतिष्ठानमाधारः । अथवा शांतिर्मोक्षः प्रतिष्ठानमाधारः । मोक्षश्च भाव मार्गं विना नस्यादित्यतः सर्वेपि जिनाएनं भावमार्गं प्रतिष्ठानमुक्तवंतोऽनुष्ठितवंतश्चेति ग

विरए गामधम्मेहिं जे केइ जगई जगा ॥ तेसिं अत्तुवमायाए, थामं कुवं परिव्वए ॥ ३३ ॥ अइमाणं च मायं च, तं परिन्नाय पंमिए ॥ सव्वमेयं णिराकिच्चा, णिवाणं संधए मुणी ॥ ३४ ॥

अर्थ–विरति साधु संयमानुष्ठानने शीरीतें पाले ते उपर कहेछे. (विरएगामधम्मेहिंके०) ग्रामधर्मजे शब्दादिक विषय ते थकी विरति थको अने (जेकेइजगईजगा के०) जेकांइ जगत्रमांहे त्रस अने स्थावर जीवछे (तेसिंअत्तुवमायाए के०) तेने पोताना आत्म तुल्यनी उपमायें देखीने तेने राखवाने अर्थे (थामंकुवं के०) बलवीर्य फोरवतो थको (परिव्वए के०) संयम पाले. ॥ ३३ ॥ अइमाणंचमायंच के०) जे कारणे मान जे छे ते चारित्रने अतिक्रमे छे तेमाटे तेने अतिमान कहिए. एना साथें क्रोध पण लेवो एम ज अतिमाया अने चशब्द थकी लोभ पण लेवो (तं के०) ते चार कषायने (पंमिए के०) पंमित विवेकी जन होय ते एने संयमना शत्रु (परिन्नाय के०) ज्ञपरिज्ञायें करी जाणीने (सव्वमेयंणिराकिच्चा के०) एसर्व कषायने संसारनुं कारण जाणीने तेने प्रत्याख्यान परिज्ञायें करी निराकरीने (णिव्वाणंसंधएमुणीके०) साधु मोक्षने सधे वांछाकरे.

॥ दीपिका–ग्राम्यधर्माः शब्दादिविषयास्तेभ्योविरताः संत्येके केचन जगति जगाः प्राणिनोजीवितार्थिनस्तेषामात्मोपमया तद्रक्षणाय स्थामं सामर्थ्यं कुर्वन् परिव्रजेत्संयमे ॥ ३३ ॥ अतिमानं च मायां चशब्दात्क्रोधलोभौ गृह्येते । एवं कषायव्रतं परिज्ञाय पंमितः सर्वमेतं भवहेतुं निराकृत्य निर्वाणमनुसंधयेत् मोक्षार्थी प्रशस्तभावानुगतः स्यात् । सतिच कषाये न संयमः सफलतां याति । यतः । सामन्नमणुचरंतस्स, कसाया जस्स उक्कडा होंति । मस्सामि उच्छुपुप्फंच, निप्फलं तस्स सामस्संइति ॥ ३४ ॥

॥ टीका–कथं संयमानुष्ठाने परिव्रजेदित्याह । (विरएइत्यादि) ग्रामधर्माः शब्दादयो विषयास्तेभ्योविरतामनोज्ञेतरेष्वरक्तद्विष्टाः संत्येके केचन जगति पृथिव्यां संसारोदरे (जगाइति) जंतवोजीवितार्थिनस्तेषां दुःखद्विषामात्मोपमया दुःखमनुत्पादयन्तद्रक्षणे सामर्थ्यं कुर्यात्कुर्वंश्च संयमानुष्ठाने परिव्रजेदिति ॥ ३३ ॥ संयमविघ्नकारिणामपनयनार्थमाह । (अइमाणंचेत्यादि) अतीव मानोऽतिमानश्चारित्रमतिक्रम्य योवर्तते चकारादेतद्देश्यः क्रोधोपि परिगृह्यते । एवमतिमायां चशब्ददतिलोभं च तमेवंभूतं कषायव्रतं संयमपरिपंथिनं पंमितोविवेकी परिज्ञाय सर्वमेनं संसारकारणभूतं कषायसमूहं निराकृत्य निर्वाणमनुसंधयेत्सति च काषायकदंबके नसम्यक् संयमः सफलतां प्रतिपाद्यते । तदुक्तं ।

र्यवान कर्मविदारवाने सूरवीर, दीधो एषणीक आहार ग्रहण करवाने विषे विचरे (निवुमेकालमाकंखी के०) तथा निवृत्त उपशांत कषाय वालो एवो हतो मरण कालसुधी संयमने वांछे (एवंकेवलिणोमयं के०) एम केवल ज्ञानीउनो मतछे अने तेज केवल ज्ञानीउनो प्रकाश्यो मार्ग श्रीमहावीर देव कहेछे, पण महारी बुद्धिये हुं केतो नथी. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ३७ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगना प्रथमश्रुतस्कंधने विषे मोक्षमार्गनामे एकादशमां अध्ययनो अर्थ समाप्त थयो. ॥

॥ दीपिका–अथ तं साधुं प्रतिपन्नव्रतं उच्चावचाः शुभाशुभाः स्पर्शाः परीषहोपसर्गाः स्पृशेयुः पीडयेयुः । सच साधुस्तैः पीडितोन विहन्यात् न संयमात्त्यजेत् । यथा वातेन वायुना महागिरिर्मेरुर्न चलेत् । परीषहोपसर्गजयश्चाभ्यासवशाद्विधेयः । यथा कश्चिद्गोपस्तदहर्जातं तर्णकमुत्पाट्य गवांतिकं नयति आनयति च ततोसौ क्रमेण प्रत्यहं वर्धमानमपि वत्समुत्पाटयन्नभ्यासवशाद्द्विवर्षत्रिवर्षमपि तमुत्पाटयति । एवं साधुरप्यभ्यासात्परीषहोपसर्गजयं विधत्ते ॥३७॥ ससंवृतः साधुर्महाप्रज्ञः सम्यग्दर्शनज्ञानवान् धीरः परीषहादिनिरक्षोभ्यः परेण दत्ते आहारादिके एषणां चरेत् त्रिविधयैषणया युक्तः संयमे चरेत् तथा निर्वृतः शीतीभूतकालं मृत्युकालं यावदभिकांक्षेत् । एतन्मया यत्पूर्वोक्तं तत्केवलिनः सर्वज्ञस्य मतमिति । ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाहेति ॥३७॥ इत्येकादशं मार्गाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका–प्रतिपन्नभावमार्गेण च यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह । (अहसुमित्यादि) अथ मार्गप्रतिपत्त्यनतरं साधुं प्रतिपन्नव्रतं संतं स्पर्शाः परीषहोपसर्गरूपाउच्चावचागुरुलघवोनानारूपावा स्पृशेयुः । सच साधुस्तैरभिद्रुतः संसारस्वभावमपेक्षमाणः कर्मनिर्जरांच न तैरनुकूलप्रतिकूलैर्विहन्यात् नैवं संयमानुष्ठानान्मनागपि विचलेत्किमिव महावातेनेव महागिरिर्मेरुरिति। परीषहोपसर्गजयश्चाभ्यासक्रमेण विधेयोऽभ्यासवतोहि दुष्करमपि सुकरं भवति । अत्र दृष्टांतः। तद्यथा कश्चिद्गोपस्तदहर्जातं तर्णकमुत्क्षिप्य गवांतिके नयत्यानयति वा ततोसावनेनैव क्रमेण प्रत्यहं प्रवर्द्धमानमपि वत्समुत्क्षिपन्नभ्यासवशाद्द्विहायनं त्रिहायणमप्युत्क्षिपत्येवं साधुरप्यभ्यासात् शनैःशनैः परिषहोपसर्गजयं विधत्तइति ॥३७॥ सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिहीर्षुरुक्तशेषमधिकृत्याह । (संवुडेइत्यादि) सएवं साधुः संवृताश्रवद्वारतया संवरसंवृतोमहती प्रज्ञा यस्यासौ महाप्रज्ञः सम्यग्दर्शनज्ञानवांस्तया धीर्बुद्धिस्तया राजतइति धीरः परीषहोपसर्गाऽक्षोभ्योवा सएवंभूतः सन् परेण दत्ते सत्याहारादिके एषणां चरेत्रिविधयाप्येषणया युक्तः सन् संयममनुपालयेत्तथा निवृतः कषायोपशमाच्छीतीभूतकालं मृत्युकालं यावदभिकांक्षेत् । एतन्मया प्राक् प्रतिपादितं तत्केवलिनः सर्वज्ञस्य तीर्थकृ

म्यंते । नूतानां प्राणिनां यथा त्रिलोकी प्रतिष्ठानमेवं सर्वेपि बुद्धाः शांतिप्रतिष्ठानाः ॥३६॥

॥ टीका–किंच । (संधएइत्यादि) साधूनां धर्मः क्षांत्यादिकोदशविधः सम्यग्दर्शनचारित्राख्योवा तमनुसंधयेद्वृद्धिमापादयेत् । तद्यथा । प्रतिक्षणमपूर्वज्ञानग्रहणेन ज्ञानं तथा शंकादिदोषपरिहारेण सम्यग्जीवादिपदार्थाधिगमेन च सम्यग्दर्शनमस्खलितमूलोत्तरगुणसंपूर्णपालनेन प्रत्यहमपूर्वज्ञानग्रहणेन चारित्रंवृद्धिमापादयेदिति । पाठांतरंवा (सद्दहेसाधुधम्मंच) पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टसाधुधर्मं मोक्षमार्गत्वेन श्रद्दधीत निःशंकतया गृह्णीयाच्चशब्दात्सम्यगनुपालयेच्च । तथा पापं पापोपादानकारणं धर्मं प्राण्युपमर्देन प्रवृत्तं निराकुर्यात्तथोपधानं तपस्तत्र यथाशक्त्या वीर्यं यस्य सनवत्युपधानवीर्यस्तदेवंनूतोन्निक्षुः क्रोधं मानं च न प्रार्थयेन्नवर्धयेद्वेति ॥ ३५ ॥ अथैवंनूतं नावमार्गं किं वर्धमानस्वाम्येवोपदिष्टवानुतान्येपीत्येतदाशंक्याह । (जेयबुद्धाइत्यादि) ये बुद्धास्तीर्थकृतोऽतीते नादिके कालेऽनंताः समतिक्रांतास्ते सर्वेप्येवंनूतं नावमार्गमुपन्यस्तवंतस्तथा ये चानागता नविष्यदनंतकालनाविनोनंताएव तेप्येवमेवोपन्यसिष्यंति । चशब्दाद्वर्तमानकालनाविनश्च संख्येयाइति । न केवलमुपन्यस्तवंतोऽनुष्ठितवंतश्च गम्यंते । तद्दर्शयति । शमनं शांतिर्नावमार्गस्तेषामतीतानागतवर्तमानकालनाविनां बुद्धानां प्रतिष्ठानमाधारोबुद्धत्वस्यान्यथानुपपत्तेः । यदिवा शांतिर्मोक्षः सतेषां प्रतिष्ठानमाधारस्ततस्तदवाप्तिश्च नावमार्गमंतरेण न नवतीत्यतस्ते सर्वेप्येनं नावमार्गमुक्तवंतोऽनुष्ठितवंतश्च गम्यंते । शांतिप्रतिष्ठानत्वे दृष्टांतमाह । नूतानां स्थावरजंगमानां यथा जगती त्रिलोकी प्रतिष्ठानमेवं ते सर्वेपि बुद्धाः शांतिप्रतिष्ठानाइति ॥ ३६ ॥

अहणं वयमावन्नं, फासा उच्चावया फुसे ॥ ण ते सुविणिहणे
ज्जा वाएणव महागिरी ॥ ३७ ॥ संवुडे से महापन्ने, धीरे दत्तेस
णं चरे ॥ निव्वुडे कालमाकंखी, एवं केवलिणो मयंतिबेमि ॥३८॥
इति मोक्षमार्गनामकं एकादसममज्जयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ–(अहणंवयमावन्नंके०) अथ हवे व्रतप्रतिपन्न संयम ग्राहित साधुने (फासाउच्चावयाफुसे के०) सम विषमादिक उंचा नीचा अनुकूल प्रतिकूल एवा परिसह फरशे (णतेसुविणिहणेज्जा के०) तोपण तेणे करीने ते धर्मथकी नचुके एटले धर्म थकी भ्रष्ट नथाय, कोनी पेरे तोके (वाएणवमहागिरी के०) जेम वायरे करी मेरुपर्वत मोलायमान नथाय, तेम परिसह उपने थके साधुजन व्रत थकी मोलायमान नथाय. ॥३७॥ (संवुडेसेमहापन्ने के०) ते साधु संवरवान महाप्रज्ञावंत, (धीरेदत्तेसणंचरे के०) धै

कान्युपगमसमूहरूपाणि इमानि यानि प्रावाडुकाः परतीर्थिकाः पृथक् पृथक् वदंति। क्रियामस्तीत्यादिकां वदंतीति क्रियावादिनः १ अक्रियां नास्तीत्यादिकां वदंतीत्यक्रियावादिनः २ तृतीयावैनयिकाः ३ चतुर्थास्त्वज्ञानिकाः ४ इमानि चत्वारि समवसरणान्युच्यंते ॥ १ ॥ अथैतेषामज्ञानिकाएव सर्वापलापिनस्तानेवादावाह । (अण्णाणीति) अज्ञानिकास्तावदादौ प्रदर्श्यंते । अज्ञानिकाः किल वयं कुशलाइति वादिनोपि संस्तुताश्च संबुद्धाः अतएव विचिकित्सा चित्तशुद्धिश्चित्तभ्रांतिस्तां न तीर्णानातिक्रांताः । तथाहि। केचित्सर्वज्ञं मन्यंते केचित्तं निषेधंति एके सर्वगतमात्मानं वदंत्यन्ये देहमात्रमपरे अंगुष्ठपर्वमात्रं । केचित् श्यामाकतंडुलमात्रमन्ये मूर्तममूर्त्तं हृदयमध्यवर्तिनं ललाटस्थितमित्यादि । एषामेकवाक्यता कथं स्यात् । नचातिशयज्ञानी कश्चिदस्ति यद्वाक्यं प्रमाणीक्रियते । तथा ज्ञानवतां प्रमादोबहुदोषः । ततोवरमज्ञानमेवेति वदंतश्चित्तभ्रांतिं नातिक्रांताश्रकोविदाः सम्यक्परिज्ञानविकलाअकोविदेन्यः स्वशिष्येन्यआहुः । तथा तेऽननुविचिंत्य अविचिंत्य नाषणान्मृषाऽसत्यं वदंति ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तमेकादशमध्ययनं । सांप्रतं द्वादशमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने मार्गोनिहितः सच कुमार्गव्युदासेन सम्यग्मार्गतां प्रतिपाद्यतेऽतः कुमार्गव्युदासं चिकीर्षुणा तत्स्वरूपमवगंतव्यमित्यतस्तत्स्वरूपनिरूपणार्थमिदमध्ययनमायातमस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोऽयं । तद्यथा । कुमार्गानिधायिनां क्रियाक्रियाज्ञानिवैनयिकानां चत्वारि समवसरणानीह प्रतिपाद्यंते । नामनिष्पन्ने तु निक्षेपे समवसरणमित्येतन्नामनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । समवसरणंमिचउक्कं सचित्ताचित्तमीसगं दव्वे ॥ खेत्तंमि जंमि खेत्ते,काले जं जंमि कालंमि' ॥ १७ ॥ (समवसरणमित्यादि) समवसरणमिति सृगतावित्येतस्य धातोः समवोपसर्गपूर्वस्य ल्युडंतस्य रूपं । सम्यगेकीभावेनावसरणमेकत्रगमनं मेलापकः समवसरणं तस्मिन्नपि केवलं समाद्यौ षड्विधोनामादिकोनिक्षेपस्तत्रापि नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यविषयं पुनः समवसरणं नोआगमतोज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तं सचित्ताचित्तमिश्रभेदात्त्रिविधं । सचित्तमपि द्विपदचतुष्पदापदभेदात्त्रिविधमेव । तत्र द्विपदानां साधुप्रभृतीनां तीर्थकृज्जन्मनिष्क्रमणप्रदेशादौ मेलापकः । चतुष्पदादीनां गवादीनां निपानप्रदेशादौ । अपदानां तु वृक्षादीनां स्वतोनास्ति समवसरणं विवक्षया तु काननादौ भवत्यपि । अचित्तानां तु द्व्यणुकाद्यादीनां तथा मिश्राणां सेनादीनां समवसरणसद्भावोऽवगंतव्यइति । क्षेत्रसमवसरणं तु परमार्थतोनास्ति विवक्षया तु यत्र द्विपदादयः समवसरंति व्याख्यायते च समवसरणं यत्र तत्क्षेत्रप्राधान्यादिदमुच्यते । एवं कालसमवसरणमपि द्रष्टव्यमिति । इदानीं भाव

तोमतं । एतच्च जंबूस्वामिनमुद्दिश्य सुधर्मस्वाम्याह । तदेतद्यत्त्वया मार्गस्वरूपं प्रश्नितं तन्मया न स्वमनीषिकया कथितं तर्हि केवलिनोमतमेतदित्येवं नवता ग्राह्यं । इतिः परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३७ ॥ इति मार्गाख्यमेकादशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ हवे समवसरण नामे बारमुं अध्ययन प्रारंनिए बैए अगीयारमां अध्ययनने विषे मोक्ष मार्ग कह्यो ते मोक्षने तो जे कुमार्ग मूकीने सुमार्गने पडिवजे ते अंगीकार करे माटे मार्ग प्रतिपत्ति चारित्रियें कुमार्गने परिहरवो ए अधिकारे बारमो अध्ययन प्रारंनियेंबैए.

चत्तारि समोसरणाणिमाणि, पावाडुया जाइं पुढोवयंति ॥ कि
रियं अकिरियं विणियंति तइयं, अन्नाण माहंसु चउबमेव ॥१॥
अणाणिया ता कुसलावि संता, असंथुयाणो वितिगिबतिन्ना ॥
अकोविया आहु आकोवियेहिं, अणाणुवीइत्तु मुसं वयंति ॥२॥

अर्थ–(चत्तारिसमोसरणाणिमाणि के०) ए आगल वखाणशे ते चार प्रकारना समोसरण एटले परतीर्थिकनो समुदाय जाणवो ते (पावाडुयाजाइंपुढोवदंति के०) प्रावाडुक एटले कुवादि ते जुडं जुडं बोलेबे ते केवीरीते तोके एकवादि (किरियं के०) क्रियानेज सफल कहेबे. तथा बीजो वादि (अकिरियं के०) अक्रियानेज सफल कहेबे अने (विणियंतितइयं के०) त्रीजोवादि विनयज प्रधानबे एम बोलेबे (अन्नाणमाहंसुचउबमेव के०) अन्यवली चोथो अज्ञानवादि ते अज्ञाननेज प्रधान पणे मानेबे ॥ १ ॥ हवे एपूर्वोक्त चारे वादिउमाना सर्व प्रकारे असंबंध प्रलापि अज्ञातिक एवा जे अज्ञानवादि तेनेज पहेला कहेबे. (अणाणियाताकुसलाविसंता के०) ते अज्ञानवादि अज्ञानी बता एम कहेबेजे अमेज पंमित बैयें एम मानेबे परंतु ते (असंथुया के०) असंबंधनाषी जाणवा ते (णोवितिगिबतिन्ना के०) चित्तनीजे ब्रांति तेथकी तर्या नथी माटे मृषावादि जाणवा ते अज्ञानवादि (अकोविया आहुअकोवियेहिं के०) सम्यक् धर्म प्ररुपवाने अनिपुण एटले साक्षात् सत्यधर्मनुं ज्ञान जाणवाने असमर्थबे माटे ए अकोविद बे तो एना समीपे सांनले एवा जे एमना शिष्य तेपण अकोविद एटले मूर्ख जाणवा जेमाटे ते एवुं असंबंध वचन बोलेबे के अज्ञान एज श्रेयबे तो एवुं तेमनुं बोलवुं जेबे तेने मूर्खज मान्य करेबे ॥ सरिसासरिसेहिंरच्चंति इतिवचनात् एम ते (अणाणुवीइत्तुमुसंवयंति के०) अनालोची थका सर्वकाल मृषाज बोलेबे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–सांप्रतं द्वादशमारन्यते । पूर्वं मार्गउक्तः सच कुमार्गपरित्यागात्सम्यग्नवतीति इह कुमार्गत्यागउच्यते । यथा (चत्तारित्ति) चत्वारि समवसरणानि परतीर्थि

प्यसद्भूतार्थप्रतिपादनान्मिथ्यादृष्टयएव । तथा ह्येकांतेन जीवास्तित्वप्रतिषेधे कर्तुरभावा न्नास्तीत्येतस्यापि प्रतिषेधस्याभावस्तदभावाच्च सर्वास्तित्वमनिवारितमिति ॥ तथा न ज्ञा नमज्ञानं तद्विद्यते येषां ते ज्ञानिनस्ते ह्यज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वदंत्येतेपि मिथ्यादृष्टयएव । तथा ह्यज्ञानमेव श्रेयइत्येतदपि न ज्ञानमृतेभणितुं पार्यते तदभिधानाच्चावश्यं ज्ञानम भ्युपगतं तैरिति । तथा वैनयिकाविनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिमभिलपंतोमिथ्यादृ ष्टयोयतोन ज्ञानक्रियाभ्यामंतरेण मोक्षावाप्तिरिति । एषां च क्रियावाद्यादीनां स्वरूपं त न्निराकरणं चाचारटीकायां विस्तरेण प्रतिपादितमिति नेह प्रतन्यते । सांप्रतमेतेषां भेद संख्यानिरूपणार्थमाह । " असियसयं किरियाणं, अकिरियाणं च होइ चुलसीति ॥ अन्ना णियसत्तठी, वेणइयाणं च बत्तीसा ." ॥ २१ ॥ (असियेत्यादि) क्रियावादिनामशीत्यधि कं शतं भवति तच्चानया प्रक्रियया । तद्यथा । जीवादयोनव पदार्थाः परिपाट्या स्थाप्यं ते । तदधः स्वतः परतइति भेदद्वयं ततोप्यधोनित्यानित्यभेदद्वयं ततोप्यधस्तात्परिपाट्या कालस्वभावनियतीश्वरात्मपदानि पंच व्यवस्थाप्यंते । ततश्चैवं चारणिकाप्रक्रमः । तद्य था । अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कालतः । तथाऽस्ति जीवः स्वतोऽनित्यः कालतएव । ए वं परतोपि भंगद्वयं । सर्वेपि च चत्वारः कालेन लब्धाः । स्वभावनियतीश्वरात्मपदान्य पि प्रत्येकं चत्वारएव लभंते । ततश्च पंचापि चतुष्ककाविंशतिर्भवंति । साधि जीवपदा र्थेन लब्धा । एवमजीवादयोप्यष्टौ प्रत्येकं विंशतिं लभंते । ततश्च नवविंशतयोमीलि ताः क्रियावादिनामशीत्युत्तरशतं भवतीति । इदानीमक्रियावादिनां नसंत्येव जीवादयः पदार्थाइत्येवमभ्युपगमवतामनेनोपायेन चतुरशीतिरवगंतव्या । तद्यथा । जीवादीन् प दार्थान् सप्तान्लिख्य तदधः स्वपरभेदद्वयं व्यवस्थाप्यं । ततोप्यधः कालयदृच्छानियति स्वभावेश्वरात्मपदानि षड्व्यवस्थाप्यानि । भंगकानयनोपायस्त्वयं । नास्ति जीवः स्वतः कालतः । तथा नास्ति जीवः परतः कालतः । एवं यदृच्छानियतिस्वभावेश्वरात्मभिः प्र त्येकं द्वौद्वौ भंगकौ लभ्येते । सर्वेपि द्वादश । तेऽपि च जीवादिपदार्थसप्तकेन गुणिता श्चतुरशीतिरिति । तथाचोक्तं । कालयदृच्छानियतिस्वभावेश्वरात्मतश्चतुरशीतिः । नास्तिक वादिगणमते न संति भावाः स्वपरसंस्थाः । सांप्रतमज्ञानिकानामज्ञानादेव विवक्षितका र्यसिद्धिमिच्छतां ज्ञानं तु सदपि निष्फलं बहुदोषत्वाच्चेत्येवमभ्युपगमवतां सप्तषष्टिरनेनो पायेनावगंतव्या । जीवाजीवादीन् नव पदार्थान् परिपाट्या व्यवस्थाप्य तदधोऽमी सप्त भंगकाः संस्थाप्याः । सत् असत् सदसत् अवक्तव्यं सदवक्तव्यं असदवक्तव्यं सद सदवक्तव्यमिति । अभिलापस्त्वयं । सन् जीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन १ असन् जीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन, २ सदसन् जीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन ३ अव क्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन ४ सदवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेत ५ अ

समवसरणमधिकृत्याह । " नावसमोसरणं पुण, णायवं छविहंमि नावंमि ॥ अहवा किरिय अकिरिया, अन्नाणी नेव वेणइया ॥ १ए ॥ (नावसमवसरणमित्यादि) नावानामौदयिकादीनां समवसरणमेकत्र मेलकोनावसमवसरणं । तत्रौदयिकोनावएकविंशतिनेदः । तद्यथा ।गतिश्चतुर्धा ।कषायाश्चतुर्विधाः। एवं लिंगं त्रिविधं । मिथ्यात्वाज्ञानाऽसंयतत्वाऽसिद्धत्वानि प्रत्येकमेकैकविधानि।लेश्याः कृष्णादिनेदेन षड्विधानवंति । औपशमिकोद्विविधः । सम्यक्त्वचारित्रोपशमनेदात् । क्षायोपशमिकोप्यष्टादशनेदनिन्नः । तद्यथा। ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायनेदाच्चतुर्धा । अज्ञानं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविनंगनेदात्रिविधं । दर्शनं चक्षुरवधिदर्शनन्नेदात्रिविधमेव । लब्धिर्दानलाननोगोपनोगवीर्यनेदात्पंचधा । सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाः प्रत्येकमेकप्रकाराइति । क्षायिकोनवप्रकारः।तद्यथा। केवलज्ञानं केवलदर्शनं दानादिलब्धयः पंच सम्यक्त्वं चारित्रं चेति। जीवत्वनव्यत्वानव्यत्वनेदात्पारिणामिकस्त्रिविधः।सान्निपातिकस्तु द्वित्रिचतुःपंचकसंयोगैर्नवति । तत्र द्विकसंयोगः संसिद्धस्य क्षायिकपारिणामिकनावद्वयसन्नावादवगंतव्यः । त्रिकसंयोगस्तु मिथ्यादृष्टिसम्यग्दृष्ट्यविरतानामौदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनावसन्नावादवगंतव्यः । तथा नवस्थकेवलिनोप्यौदयिकक्षायिकपारिणमिकसन्नावाद्विज्ञेयइति । चतुष्कसंयोगोपि क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामौदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनावसन्नावात्तथोपशमिकसम्यग्दृष्टीनामौदयिकोपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसन्नावाच्चेति । पंचकसंयोगस्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामुपशमश्रेण्यां समस्तोपशांतचारित्रमोहानां नावपंचकसन्नावाद्विज्ञेयइति । तदेवं नावानां द्विकत्रिकचतुष्कपंचकसंयोगात्संनविनः सान्निपातिकनेदाः षड्नवंत्येतएव त्रिकसंयोगचतुष्कसंयोगगतिनेदात्पंचदशधा प्रदेशांतरेऽनिहिताइति । षड्विधे नावे नावसमवसरणं निर्युक्तिकृदेव दर्शयति । क्रियां जीवादिपदार्थोस्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनः । एतद्विपर्यस्ताअक्रियावादिनस्तथा ज्ञानिनोज्ञाननिन्हववादिनस्तथा वैनयिकाविनयेन चरंति तत्प्रयोजनावा वैनयिकाः । एषां चतुर्णामपि सप्तनेदानामाक्षेपं कृत्वा यत्र विक्षेपः क्रियते तन्नावसमवसरणमित्येतच्च स्वयमेव निर्युक्तिकारोऽत्यगाथया कथयिष्यति । सांप्रतमेतेषामेवानिधानान्वर्थतादर्शनद्वारेण स्वरूपमाविष्कुर्वन्नाह । "अत्थित्ति किरियवादी, वयंति णत्थियकिरियवादीया ॥ अन्नाणी अन्नाणं, विणइत्ता वेणइयवादी" ॥ २० ॥ (अत्थित्तीत्यादि) जीवादिसन्नावपदार्थोस्त्येवेत्येवं सावधारणक्रियान्युपगमोयेषां ते अस्तीति क्रियावादिनस्ते चैवंवादित्वान्मिथ्यादृष्टयः । तथाहि । यदि जीवोस्त्येवेत्येवमन्युपगम्यते ततः सावधारणत्वान्न कथंचिन्नास्तीत्यतः स्वरूपसत्तावत्पररूपापत्तिरिति स्यादेवंच नानेकं जगत् स्यान्नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । तथा नास्त्येव जीवादिकः पदार्थइत्येवं वादिनोऽक्रियावादिनस्ते

शकालादीनां च गतिस्थित्यवगाहपरत्वापरत्वादिस्वरूपापादनादिति । तथा चोक्तं । कः कंटकानामित्यादि । तथा नियतिरपि कारणत्वेनाश्रीयते । तथातथा पदार्थानां नियते रेव नियतित्वात् । तथाचोक्तं । प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेणेत्यादि । तथा पुरा कृतं यत्त्र शुनाशुनमिष्टानिष्टफलकारणं । तथा चोक्तं । यथायथा पूर्वकृतस्य कर्मणः फलं निधान स्थमिहोपतिष्ठते ॥ तथातथा पूर्वकृतानुसारिणी प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्तते ॥ १ ॥ तथा । स्वकर्मणा युक्तएव सर्वोह्युत्पद्यते जनः ॥ सयथाऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमि च्छतीत्यादि । तथा पुरुषकारोपि कारणं यस्मान्नपुरुषकारमंतरेण किंचित्सिध्यति । तथा चोक्तं । न दैवमिति संचिंत्य त्यजेडुद्यममात्मनः ॥ अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेन्यः प्राप्तुमर्हति ॥ १ ॥ तथा । उद्यमाच्चारुचित्रांगि नरानद्राणि पश्यति ॥ उद्यमात्कृमिकीटोपि निनत्ति महतोडुमान् ॥ २ ॥ तदेवं सर्वानपि कालादीन् कारणत्वेनान्युपगच्छन् तथात्मपुण्यपापपरलोकादिकं चेच्छन् क्रियावादी सम्यग्दृष्टि त्वेनान्युपगंतव्यः । शेषकास्तु वादाअक्रियावादाज्ञानवादवैनयिकवादामिथ्यावादाइ त्येवं इष्टव्याः । तथाहि । अक्रियावाद्यत्यंतनास्तिकोऽध्यक्षसिद्धं जीवाजीवादिपदा र्थजातमपन्हुवन् मिथ्यादृष्टिरेव नवति । अज्ञानवादी तु सति मत्यादिके हेयोपादे यप्रदर्शके ज्ञानपंचके ऽज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वदन् कथं नोन्मत्तः स्यात्तथा विनयवाद्य पि विनयादेव केवलात् क्रियासाध्यां सिद्धिमिच्छन्नपकर्णयितव्यः । तदेवं विपरीतावा निधायकाएते मिथ्यादृष्टयो ऽवगंतव्याः । ननुच क्रियावाद्यप्यशीत्युत्तरशतनेदोनवति तत्रतत्र प्रदेशे कालादीनन्युपगच्छन्नेव मिथ्यावादित्वेनोपन्यस्तस्तत्कथमिह सम्यग्दृष्टित्वे नोच्यतइति । उच्यते । सतत्रास्त्येव जीवइत्येवं सावधारणतयाऽन्युपगमं कुर्वन् का लएवैकः सर्वस्यास्य जगतः कारणं तथा स्वनावएव नियतिरेव पूर्वकृतमेव पुरुषकारएवे त्येवमपरनिरपेक्षतयैकांतेन कालादीनां कारणत्वेनाश्रयणान्मिथ्यात्वं । तथाहि । अ स्त्येव जीवइत्येवमस्तिना सह जीवस्य सामानाधिकरण्यात् । यद्यदस्ति तत्तज्जीवइति प्रा प्तमतोनिरवधारणपक्षसमाश्रयणादिह सम्यक्त्वमनिहितं । तथा कालादीनामपि स मुदितानां परस्परसव्यपेक्षाणां कारणत्वेनेहाश्रयणात्सम्यक्त्वमिति । ननुच कथं कालादीनां प्रत्येकं निरपेक्षाणां मिथ्यात्वस्वनावत्वे सति समुदितानां सम्यक्त्वसद्भावः । नहि यत्प्रत्येकं नास्ति तत्समुदायेपि नवितुमर्हति सिकतातैलवत् । नैतदस्ति प्रत्येकं प्रत्येकं पद्मरागादिमणिष्वविद्यमानापि रत्नावली समुदाये नवंती दृष्टा । नच दृष्टे ऽनुपपन्नं नामेति यत्किंचिदेतत् । तथाचोक्तं । कालो सहावणियई, पुव्वकयं पुरिसकारणे गंता ॥ मिछत्तं ते चेव उ, समासउ होंति संमत्तं ॥ १ ॥ सव्वे विय कालाइ इय समुदा येण साहगा नणिया ॥ जुज्जुत्तियएमेवय, सम्मं सव्वस्स कज्जस्स ॥ २ ॥ नहि काला

सदवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवातेन ज्ञातेन ६ सदसदवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवातेन ज्ञातेन ७ एवमजीवादिष्वपि सप्त नंगकाः । सर्वेपि मिलितास्त्रिषष्टिस्तथाऽपरे ऽमी च त्वारोनंगकाः । तद्यथा । सती नावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया १ असती नावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया २ सदसती नावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया ३ अवक्तव्या नावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया ४ सर्वेपि सप्तषष्टिरित्युत्तरं नंगकत्रयमुत्पन्ननावावयवोपेक्षमिह नावोत्पत्तौ न संनवतीति नोपन्यस्तं । उक्तंच । अज्ञानिकवादिमतं नव जीवादीन् सदादिसप्तविधान् ॥ नावोत्पत्तिः सदसद्वेधा वाच्या च कोवेत्ति ॥ १ ॥ इदानीं वैनयिकानां विनयादेव केवलात्परलोकमपीछतां द्वात्रिंशदनेन प्रक्रमेण योज्याः । तद्यथा । सुरनृपतियतिज्ञानिस्थविराधममातृपितृषु मनसा वाचा कायेन दानेन चतुर्विधोविनयोविधेयः । सर्वेप्यष्टौ चतुष्ककामिलिता द्वात्रिंशदिति । उक्तं च वैनयिकमतं विनयश्चेतोवाक्कायदानतः कार्यः । सुरनृपतियतिज्ञानिस्थविराधम मातृपितृषु सदा ॥ १ ॥ सर्वे प्येते क्रियाज्ञानिवैनयिकवादिनेदाएकीकृतास्त्रीणि त्रिष ष्ट्यधिकानि प्रावाडुकमतशतानि नवंति । तदेवंवादिनां मतनेदसंख्यां प्रदर्श्याऽधुना ते षामध्ययनोपयोगित्वं दर्शयितुमाह । “ तेसिं मताणुमएणं पन्नवणावन्निया इहऽज्ञयणे॥ सब्नावणिछयहं, समोसरणमाहु तेणं तु ” ॥ २२ ॥ (तेसिंमताणुमएणंइत्यादि) तेषां पूर्वोक्तवादिनां मतमनिप्रायस्तेन यदनुमतं पक्षीकृतं तेन पक्षीकृतेन पक्षीकृताश्रयणेन प्र ज्ञापना प्ररूपणा वर्णिता प्रतिपादिता इहास्मिन्नध्ययने गणधरैः । किमर्थमिति दर्श यति । तेषां यः सद्भावः परमार्थस्तस्य निश्चयोनिर्णयस्तदर्थं तेनैव कारणेनेदमध्ययनं सम वसरणाख्यमाहुर्गणधराः । तथाहि । वादिनां सम्यगवसरणं मेलापकस्तन्मतनिश्चयार्थ मस्मिन्नध्ययने क्रियतइत्यतः समवसरणाख्यमिदमध्ययनं क्रियते । इदानीं तेषां सम्यग् मिथ्यात्ववादित्वं विनागेन यथा नवति तथा दर्शयितुमाह । “ सम्मद्दिही किरिया, वा दीमिछाय सेसगा वाई ॥ जहि ऊणमिछवाय, सेवहवायं इमं सवं ॥ २३ ॥ (सम्मद्दि हीत्यादि) सम्यगविपरीता दृष्टिर्दर्शनं पदार्थपरिछित्तिर्यस्यासौ सम्यग्दृष्टिः । कोसावित्या ह । क्रियामस्तीत्येवंनूतां वदितुं शीलमस्येति क्रियावादी । अत्रच क्रियावादीत्येतदनि त्तिकिरियवादीत्यनेन प्राक् प्रसाधितं सदनूद्यसम्यग्दृष्टित्वं विधीयते तस्याऽसिद्धत्वादिति। तथाहि । अस्ति लोकालोकविनागः । अस्त्यात्मा अस्ति पुण्यपापविनागः । अस्ति त त्फलं स्वर्गनरकावाप्तिलक्षणं । अस्ति कालः कारणत्वेनाशेषस्य जगतः प्रनववृद्धिस्थि तिविनाशेषु साध्येषु तथा शीतोष्णवर्षावनस्पतिपुष्पफलादिषु चेति । तथाचोक्तं । का लः पचति नूतानीत्यादि । तथास्तिस्वनावोपि कारणत्वेनाशेषस्य जगतः स्वोनावः स्वनाव इति कृत्वा तेनहि जीवाजीवनव्यत्वमूर्तत्वानां स्वरूपानुविधानात् । तथा धर्माऽधर्माका

द्वाक्यं प्रमाणीक्रियेत । न चासौ विद्यमानोप्युपलक्ष्यते ऽर्वाग्दर्शिना । नासर्वज्ञः सर्वं जानातीति वचनात् । तथाचोक्तं । सर्वज्ञोसाविति ह्येतत्तत्कालेऽपि बुभुत्सुभिः ॥ तज्ज्ञान ज्ञेयविज्ञानशून्यैर्विज्ञायते कथं॥१॥ नच तस्य सम्यक् तदुपायपरिज्ञानाभावात्संभवः संभवा भावश्चेतरेतराश्रयत्वात् ।तथाहि । न विशिष्टपरिज्ञानमृते तदवाप्त्युपायपरिज्ञानमुपायमंतरे ण नचोपेयस्य विशिष्टपरिज्ञानस्यावाप्तिरिति । नच ज्ञानं ज्ञेयस्य स्वरूपं परिछेत्तुमलं । त थाहि । यत्किमप्युपलभ्यते तस्यार्वाग्मध्यपरभागैर्भाव्यं । तत्रार्वाग्भावस्यवोपलब्धेर्नेतर योस्तेनैव व्यवहितत्वात् । अर्वाग्भागस्यापि भागत्रयकल्पनात्तत्सर्वारातीय भागपरिकल्प नया परमाणुपर्यवसानता परमाणोश्च स्वाभाविकविप्रकृष्टत्वादर्वाग्दर्शिनिनां नोपलब्धि रिति । तदेवं सर्वज्ञस्याभावादसर्वज्ञस्य च यथावस्थितवस्तुस्वरूपापरिछेदात्सर्ववादि नां च परस्परविरोधेन पदार्थस्वरूपाभ्युपगमात् यथोत्तरपरिज्ञानिनां प्रमादवतां बहुतर दोषसंभवादज्ञानमेव श्रेयः । तथाहि । यद्यज्ञानवान् कथंचित्पादेन शिरसि हन्यात् तथापि चित्तशुद्धेर्न तथाविधदोषानुषंगी स्यादित्येवमज्ञानिनएवंवादिनः संतोऽसं बद्धानचैवं विधां चित्तविप्लुतिं वितीर्णाइति । तत्रैवं वादिनस्ते अज्ञानिकाअकोविदा अनिपुणाः सम्यक् परिज्ञानविकलाइत्यवगंतव्याः । तथाहि । यत्तैरभिहितं ज्ञानवादि नः परस्परविरुद्धार्थवादितया न यथार्थवादिनइति तन्नवलसर्वज्ञप्रणीतागमाभ्युपगम वादिनामयथार्थवादित्वं ।नचाभ्युपगमवादाएव बाधायै प्रकल्प्यंते । सर्वज्ञप्रणीतागमाभ्यु पगमवादिनां तु न क्वचित्परस्परतोविरोधः सर्वज्ञत्वान्यथानुपपत्तेरिति । तथाहि । प्रक्षी णाऽशेषावरणतया रागद्वेषमोहानामनृतकारणानामभावान्न तद्वाक्यमयथार्थमित्येवं तत्प्रणीतागमवतां न विरोधवादित्वमिति । ननुच स्यादेतद्यदि सर्वज्ञः कश्चित्स्यान्नचासौ संभवतीत्युक्तं प्राक्।सत्यमुक्तमयुक्तं तूक्तं।तथाहि । यत्तावदुक्तं नचासौ विद्यमानोप्युपल क्ष्यते ऽर्वाग्दर्शिभिस्तदयुक्तं।यतोयद्यपि परचेतोवृत्तीनां दुरन्वयत्वात्सरागावीतरागाइव चेष्टं ते वीतरागाः सरागाइवेत्यतः प्रत्यक्षेणानुपलब्धिस्तथापि संभवानुमानस्य सद्भावात्तद्बाध कप्रमाणाभावाच्च तदस्तित्वमनिवार्यं । संभवानुमानं त्विदं व्याकरणादिना शास्त्राभ्यासेन संक्रियमाणायाः प्रज्ञायाज्ञानातिशयोज्ञेयावगमं प्रत्युपलब्धस्तदत्र कश्चित्तथाभूताभ्या सवशात्सर्वज्ञोपि स्यादिति । नच तदभावसाधकं प्रमाणमस्ति । तथाहि । न तावदर्वा ग्दर्शिभिः प्रत्यक्षेण सर्वज्ञाभावः साधयितुं शक्यस्तस्यहि तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानशून्यत्वादशू न्यत्वाभ्युपगमेच सर्वज्ञत्वापत्तिरिति । नाप्यनुमानेन तदव्यभिचारिलिंगाभावादिति । ना प्यनुमानेन सर्वज्ञाभावः साध्यते । तस्य सादृश्यबलेन प्रवृत्तेः । नच सर्वज्ञाभावे साध्ये तादृग्विधं सादृश्यमस्ति येनासौ सिध्यतीति । नाप्यर्थनिष्पत्त्या तस्याः प्रत्यक्षादिप्रमा णपूर्वकत्वेन प्रवृत्तेः । प्रत्यक्षादीनां च तत्साधकत्वेनाप्रवर्तमानात्तस्याप्यप्रवृत्तिः । ना

दी हिंतो, केवलएहिं तु जायए किंचि ॥ इह मुग्गरंधणादिवि, ता सवे समुदिता हेक ॥ ३ ॥ जह णेगलरकणगुणा, वेरुलियादीमणीविसंजुत्ता ॥ रयणावलीवएसं, ण लहं ति महघमुल्लावि ॥ ४ ॥ तह णियवादसुविणि, छियावि अणाणपरकनिरवेरका ॥ स म्मदं सणसदं, सवेवि णयाणपाविंति ॥ ५ ॥ जह पुण तेचेव मणी, जहा गुणविसे सनागपडिबद्धा ॥ रयणावलित्तिजणइ, चयंतिपाडिक्कसस्राउं ॥ ६ ॥ तह सवे णयवा या, जहाणुरूवविणिउत्तवत्तवा ॥ सम्मदं सणसदं, लनंति ण विसेससस्राउं ॥ ७ ॥ तम्हा मिछदिठी, सवे विणया सपरकपडिबद्धा ॥ असोस्रनिस्सिया पुण, हवंति सम्म त्तसझावा ॥ ८ ॥ यतएवं तस्मात्त्यक्त्वा मिथ्यात्ववादं कालादिप्रत्येकैकांतकारणरूपं से वध्वमंगीकुरुध्वं सम्यग्वादं परस्परसव्यपेक्षकालादिकारणरूपमिममिति मयोक्तं प्रत्यक्षाव सन्नं सत्यमवितथमिति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः । सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणो पेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं तच्चेदं । (चत्तारीत्यादि) अस्य च प्राक्तनाध्ययनेन सहायं संबं धः । तद्यथा । साधुना प्रतिपन्नजावमार्गेण कुमार्गाश्रिताः परवादिनः सम्यक्परिज्ञाय प रिहर्तव्यास्तत्स्वरूपाविष्करणं चानेनाध्ययनेनोपदिश्यते इत्यनंतरसूत्रस्यानेन सूत्रेण सह संबंधोयं । तद्यथा । संवृतोमहाप्रज्ञोवीरोदत्तेषणां चरन्नजिनिर्वृतः सन् मृत्युकालमजिकां क्षेदेतत्केवलिनोजाषितं । तथा परतीर्थिकपरिहारं च कुर्यात् एतच्च केवलिनो मतं । अ तस्तत्परिहारार्थं तत्स्वरूपनिरूपणमनेन क्रियते । चत्तारीति संख्यापदमपरसंख्यानिवृत्त्य र्थं समवसरणानि परतीर्थिकाज्युपगमसमूहरूपाणि यानि प्रावाडुकाः पृथग्वदंति तानि चामूनि अन्वर्थाजिधायिजिः संज्ञापदैर्निर्दिश्यंते । तद्यथा । क्रियामस्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनस्तथाऽक्रियां नास्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां तेऽक्रिया वादिनस्तथा तृतीयावैनयिकाश्चतुर्थास्त्वज्ञानिकाइति ॥ १ ॥ तदेवं क्रियाऽक्रियावैनयि काज्ञानवादिनः सामान्येन प्रदर्श्याधुना तद्रूपणार्थं तन्मतोपन्यासं पश्चानुपूर्व्याप्यस्ती त्यतः पश्चानुपूर्व्याकर्तुमाह । यदि चैतेषामज्ञानिकाएव सर्वापलापितयाऽत्यंतमसंबद्धाश्च तस्तानेवादावाह । (अस्राणियाइत्यादि) अज्ञानं विद्यते येषामज्ञानेन वा चरंतीत्य ज्ञानिकाः । अज्ञानिकावा तावत्प्रदर्श्यंते । ते चाज्ञानिकाः किल वयं कुशलाइत्येवं वादि नोपि संतोऽसंस्तुताज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वादितया असंबद्धाः । असंस्तुतत्वादेव विचिकि त्सा चित्तविप्लुतिश्चित्तज्रांतिः संशीतिस्तां न तीर्णानातिक्रांताः । तथाहि । ते ऊचुर्यएते ज्ञानिनस्ते परस्परविरुद्धवादितया असंबद्धाअसंस्तुतत्वादेव विचिकित्सान यथार्थवा दिनोजवंति । तथा ह्येके सर्वगतमात्मानं वदंति तथान्ये असर्वगतं अपरे अंगुष्ठपर्वमा त्रं केचन श्यामाकतंडुलमात्रमन्ये मूर्तममूर्तं हृदयमध्यवर्तिनं ललाटव्यवस्थितमित्या द्यात्मपदार्थएव सर्वपदार्थपुरःसरे तेषां नैकवाक्यता । नचातिशयज्ञानी कश्चिदस्तीति य

सच्चं असच्चं इति चिंतयंता, असाहु साहुत्ति उदाहरंता ॥ जे मे जणा वेणइया अणेगे, पुढावि नावं विणइंसु णाम ॥३॥ अणो वसंखा इति ते उदाहू, अठे स उ नासइ अम्ह एवं ॥ लवाव संकीय अणागएहिं, णो किरिय माहंसु अकिरियवादी ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे विनयवादिने जुदा जुदा करी कहेछे. (सच्चंअसच्चंइतिचिंतयंता के०) जे साचुं ते जुठुं एवुं चिंतवता थका (असाहुसाहुत्तिउदाहरंता के०) तथा जे असाधु होय तेने साधु एम कहेता थका (जेमेजणावेणइयाअणेगे के०) ए पूर्वोक्त रीते जे कोइ जन एटले लोक बोले ते लोकने विनयवादि जाणवा एटले एक विनयज मोक्षनुं कारणछे, गुणागुणनो विशेष कांइ नथी एवीरीते बोलता अजाण लोक सरखा एवाते विनयवादि अनेक प्रकारना एटले बत्रीश प्रकारनाछे (पुढाविन्नावंविणइंसुणाम के०) ते विनयवादिने कोइए पुछ्या थकां एम कहेके ए विनयज सरवार्थसिद्धिनुं कारकछे पण बीजुं कांइ जगतमां श्रेय नथी एम कहे अहीं नाम शब्द संभावनार्थे छे. ॥ ३ ॥ (अणोवसंखाइतितेउदाहू के०) उपसंख्या एटले सम्यक् परिज्ञान ते जेने विषे नथी अर्थात् मूढमति छता एवा विनयवादि एम कहेछे के (अठेसउनासइअम्हएवं के०) अर्थ जे स्वर्ग अने मोक्षादिक तेनी प्राप्ति अमाराज दर्शन थकीछे पण अन्य कोई दर्शनने विषे नथी, एम कहेछे. हवे अक्रियावादिनुं मत कहेछे. (लवावसंकियअणागएहिं के०) लव एटले कर्म तेना अपशंकी एटले सांकणहार एवा लोकायित शाक्यादिक बौद्ध तेना दर्शनने विषे आम कह्युंछे के अतीत अनागत कालछे अने वर्त्तमान काल नथी कारणके क्षणिकपणाने लीधे सर्व पदार्थ क्षणिकछे एवां वचन थकी अणागएहिं एटले जेकांइ कर्त्तव्य करिए ते अनागतज कहेवाय अने कर्म करिए ते तो वर्त्तमान काले होय तेज कर्मलागे तेमाटे एना मते क्रिया पण नथी एवुं सिद्ध थयुं ते कारणे क्रियानुं उपजावेलुं जे शुभाशुभ कर्मनुं बंध ते पण केवीरीते सिद्ध थाय एवीरीते ते अक्रियावादि नास्तिक मतना धारक कर्मथकी नथी शंकाता एवा थका (णोकिरियमाहंसुके०) क्रियाने कर्म बंध मानता नथी तेमाटे एने (अकिरियवादीके०) अक्रियावादि कहिए.

॥ दीपिका—अथ वैनयिकान्निराकुर्वन्नाह । (सच्चमित्यादि) सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गइति सत्यमपि असत्यं मन्यमानाविनयादेव मोक्षइत्यसत्यमपि सत्यतया चिंतयंतस्तथा असाधुमपि विनयप्रतिपत्त्या साधुमुदाहरंतः कथयंतः । केते इत्याह । ये इमे प्रत्यक्षावैनयिकाअनेके द्वात्रिंशद्भेदास्तेच जनेन पृष्टाः संतोऽन्यैर्नैर्वा विनयं

प्यागमेन तस्य सर्वज्ञसाधकत्वेनापि दर्शनान्नप्रमाणपंचकाभावरूपेणाभावेन सर्वज्ञाभावः सिध्यति । तथाहि । सर्वत्र सर्वदा न संभवति तद्ग्राहकप्रमाणमित्येतदर्वाग्दर्शिनोव क्तुं न युज्यते तेन हि देशकालविप्रकृष्टानां पुरुषाणां यद्विज्ञानं तस्य ग्रहीतुमशक्यत्वा त्तद्ग्रहणे वा तस्यैव सर्वज्ञत्वापत्तेः । नचार्वाग्दर्शिनां ज्ञानं निवर्तमानं सर्वज्ञाभावं भाव यति तस्याऽव्यापकत्वात् । नचाव्यापकव्यावृत्त्या पदार्थव्यावृत्तिर्युक्तेति । नच वस्त्वंतर विज्ञानरूपोभावः सर्वज्ञाभावसाधनायालं । वस्त्वंतरसर्वज्ञयोरेकज्ञानसंसर्गप्रतिबंधाभावा त् । तदेवं सर्वज्ञबाधकप्रमाणाभावात्संभवानुमानस्य च प्रतिपादितत्वादस्ति सर्वज्ञस्त त्प्रणीतागमाभ्युपगमाच्च मतभेददोषोदूरापास्तइति । तथाहि । तत्प्रणीतागमाभ्युपगम वादिनामेकवाक्यतया शरीरमात्रव्यापी संसार्यात्मास्ति तत्रैव तद्गुणोपलब्धेरिति । इतरे तराश्रयदोषश्चात्र नावतरत्येव । यतो ऽभ्यस्यमानायाः प्रज्ञायाज्ञानातिशयः स्वात्मन्यपि दृष्टोनच दृष्टेऽनुपपन्नं नामेति । यदप्यभिहितं । तद्यथा । नच ज्ञानं ज्ञेयस्य स्वरूपं परिछे त्तुमलं सर्वत्रार्वाग्भावेनेत्यवधानात्सर्वारातीयभागस्य च परमाणुरूपतयाऽतींद्रियत्वादित्ये तदपि वाङ्मात्रमेव । यतः सर्वज्ञज्ञानस्य देशकालस्वभावव्यवहितानामपि ग्रहणान्ना स्ति व्यवधानसंभवः । अर्वाग्दर्शिज्ञानस्याप्यवयव द्वारेणाऽवयविनि प्रवृत्तेर्नास्ति व्यवधा नं । न ह्यवयवी स्वावयवैर्व्यवधीयतइति युक्तिसंगतं । अपि चाज्ञानमेव श्रेयइत्यत्राऽ ज्ञानमिति किमयं पर्युदासआहोस्वित्प्रसज्यप्रतिषेधस्तत्र यदि ज्ञानादन्यदज्ञानमिति ततः पर्युदासवृत्त्या ज्ञानांतरमेव समाश्रितं स्यान्नाज्ञानवादइति । अथ ज्ञानं न भवतीत्यज्ञानं तुच्छोनीरूपोज्ञानाभावः सच सर्वसामर्थ्यरहितइति कथंश्रेयानिति । अपिच ज्ञानं श्रेय इति प्रसज्यप्रतिषेधेन ज्ञानं श्रेयोभवतीति क्रियाप्रतिषेधएव कृतः स्यादेतच्चाध्यक्षबाधि तं । यतः सम्यगज्ञानादर्थं परिछिद्य प्रवर्तमानोर्थक्रियार्थी न विसंवादयतइति । किंचाऽ ज्ञानप्रमादवद्भिः पादेन शिरःस्पर्शनेपि स्वल्पदोषवतां परिज्ञायैवाज्ञानं श्रेयइत्यभ्युपगम्य ते । एवंच सति प्रत्यक्षएव स्यादभ्युपगमविरोधोनानुमानं प्रमाणमिति । तथा तदेवं सर्वथा तेऽज्ञानवादिनोऽकोविदाधर्मोपदेशं प्रत्यनिपुणाः स्वतोऽकोविदेभ्यएव स्वशिष्येभ्य आहुः कथितवंतः । छांदसत्वाच्चैकवचनं सूत्रेकृतमिति । शाक्याअपि प्रायशोऽज्ञानिका अविज्ञोपचितं कर्मबंधं न यांतीत्येवं यतस्तेऽभ्युपगमयंति । तथा येच बालमत्तसुप्तादयो ऽस्पष्टविज्ञानाअबंधकाइत्येवमभ्युपगमं कुर्वंति ते सर्वेप्यकोविदाइष्टव्याइति । तथाऽ ज्ञानपक्षसमाश्रयणाच्चाननुविचिंत्य भाषणान्मृषा ते सदा वदंति । अनुविचिंत्य भाषणं यतोज्ञाने सति भवति तत्पूर्वकत्वाच्च सत्यवादस्यातोज्ञानानभ्युपगमादननुविचिंत्य भाष णाभावस्तदभावाच्च तेषां मृषावादित्वमिति ॥ २ ॥

मेवापादयति ततश्च विवक्षितार्थविनाशनात्तेषामेवं वादिनामज्ञानावृतत्वमेवावशिष्यते नाभिप्रेतार्थावाप्तिरित्युक्तावैनयिकाः । सांप्रतमक्रियावादिदर्शनं निराचिकीर्षुः पश्चार्धमाह । लवं कर्म तस्मादपशंकितुमपसर्तुं शीलं येषां ते लवापशंकिनोलोकायतिकाः शाक्यादयश्च तेषामात्मैव नास्ति कुतस्तत्क्रिया तज्जनितोवा कर्मबंधइति । उपचारमात्रेण त्वस्तिबंधः । तद्यथा । बद्धामुक्ताश्च कथ्यंते, मुष्टिग्रंथिकपोतकाः ॥ नचान्ये द्रव्यतः संति, मुष्टिग्रंथिकपोतकाः ॥ १ ॥ तथा बौद्धानामयमन्युपगमोयथा क्षणिकाः सर्वसंस्काराइत्यस्थितानां च कुतः क्रियेत्यक्रियावादित्वं योपि स्कंधपंचकान्युपगमस्तेषां सोपि संवृतमात्रेण न परमार्थेन यतस्तेषामयमन्युपगमस्तद्यथा विचार्यमाणाः पदार्थान कथंचिदप्यात्मानं विज्ञानेन समर्पयितुमलं तथा ह्यवयवी तत्वातत्त्वान्यां विचार्यमाणोनघटां प्रांचति । नाप्यवयवाः परमाणुपर्यवसानतयाऽतिसूक्ष्मत्वाज्ज्ञानगोचरतां प्रतिपद्यंते । विज्ञानमपि ज्ञेयाजावेनामूर्तस्य निराकारतया न स्वरूपं बिभर्ति । तथा चोक्तं । यथा यथार्थाश्चिंत्यंते, विविच्यंते तथातथा ॥ यद्येतत्स्वयमर्थेन्यो,रोचते तत्र के वयमिति । प्रच्छन्नलोकायतिकाहि बौद्धास्तत्रानागतैः क्षणैः । चशब्दादतीतैश्च वर्तमानक्षणस्यासंगतेर्नक्रिया नापिच तज्जनितः कर्मबंधइति । तदेवमक्रियावादिनोनास्तिकवादिनः सर्वापलापितयालवावशंकिनः संतोनक्रियामाहुस्तथा अक्रियआत्मा येषां सर्वव्यापितया तेप्यक्रियावादिनः सांख्यास्तदेवं लोकायतिकाबौद्धसांख्याअनुपसंख्यया अपरिज्ञानेनेत्येतत्पूर्वोक्तमुदाहृतवंतस्तथैव तत्त्वाज्ञानेनैवोदाहृतवंतस्तद्यथास्माकमेवमन्युपगमोर्थोऽवन्नासते युज्यमानकोजवतीति ॥ तदेवंश्लोकपूर्वार्द्धं काकाक्षिगोलकन्यायेनाक्रियावादिमतेप्यायोज्यमिति ॥४॥

सम्मिस्सन्नावं व गिरागहीए,से मुम्मुई होइ अणाणुवाई॥ इमं
डुपक्कं इममेगपक्कं, आहंसु बलायतणं च कम्मं ॥ ५ ॥ ते एव
मक्कंति अबुज्झमाणा, विरूवरूवाणि अकिरियवाई ॥ जे मा
यइत्ता बहवे मणूसा, न्नमंति संसारमणोवदग्गं ॥ ६ ॥

अर्थ-(सेके०) ते लोकायिक परवादी (वगिरागहीए के०) पोतानी वाणीयें करी ग्रह्या अर्थने विषे पण वली पोतानेज वचने निषेध करतां थकां (सम्मिस्सन्नावंके०) मिश्रन्नावनेज अंगीकार करेछे एटले पोते बोलता थकाज जेनी अस्ति कहे तेनीज वली नास्ति कहे तेमज जेनी नास्ति कहे तेनीज अस्ति कहेछे एरीते मिश्रन्नाव जाणवो केमके जे नास्तिक जीवादिक पदार्थनो अन्नाव कहेछे तेपण पोते पोताना शास्त्रे करी पोताना शिष्यने पोतानो मार्ग शीखावेछे के सर्व पदार्थ शून्यपणेछे तेवारे पोते तथा

ग्राहितवंतोविनयादेव स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्युक्तवंतः ॥ ३ ॥ न उपसंख्याऽनुपसंख्याऽप रिज्ञानं तयाऽज्ञानेन व्यामूढमतयस्ते वैनयिकाइति । अथ क्रियावादिमतमाह । (लवा वसंकीति) लवंकर्म तस्मादपशंकितुमपसर्तुं शीलं येषां ते लवापशंकिनोलोकायतिकाना स्तिकाः शाक्यादयश्च तेषामात्मैव नास्ति कुतः क्रिया । बौद्धाएवमाहुः । अनागतैः क्ष णैश्च शब्दादतीतैश्च वर्तमानक्षणस्यासंगतेर्नक्रिया नापि तज्जनितः कर्मबंधः । तदेवमक्रि यावादिनोनास्तिकान क्रियामाहुः । तथाऽक्रियआत्मा येषां सर्वव्यापितया तेप्यक्रिया वादिनः सांख्याः । तदेवं नास्तिकबौद्धसांख्याअज्ञानेन एतत्पूर्वोक्तं कथितवंतः । अथ मर्थो ऽस्माकमवजासते । पूर्वार्धमत्रापि व्याख्यातं ॥ ४ ॥

॥ टीका—सांप्रतं वैनयिकवादं निराचिकीर्षुः प्रक्रमते । (सच्चमसच्चमित्यादि) स ज्ञ्योहितं सत्यं परमार्थोयथावस्थितपदार्थनिरूपणं वा मोक्षोवा तडुपायनूतोवा संय मः सत्यं तदसत्यमित्येवं विचिंतयंतोमन्यमानाएवमसत्यमपि सत्यमिति मन्यमानाः । तथाहि । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्योमोक्षमार्गः सत्यस्तमसत्यत्वेन चिंतयंतोविनयादे व मोक्षइत्येतदसत्यमपि सत्यत्वेन मन्यमानास्तथा असाधुमप्यविशिष्टकर्मकारिणं वंद नादिकया विनयप्रतिपत्त्या साधुमित्येवमुदाहरंतः प्रतिपादयंतोऽसम्यग्यथावस्थितधर्म स्य परीक्षकायुक्तिविकलं विनयादेव धर्मइत्येवमन्युपगमात् । कएते इत्येतदाह । ये इमे बु द्ध्या प्रत्यक्षासन्नीकृताजनाइव प्राकृतपुरुषाइव जनाविनयेन चरंति वैनयिकाविनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्येवं वादिनोऽनेके बहवो द्वात्रिंशभ्देदभिन्नत्वात्तेषां तेच विनय चारिणः केनचिद्धर्मार्थिना पृष्टाः संतोऽपि शब्दादपृष्टावा जावं परमार्थं यथार्थोपलब्धं स्वा जिप्रायं वा विनयादेव स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्येवं व्यनैषुर्विनयितवंतः सर्वदा सर्वस्य सर्वसिद्ध ये विनयं ग्राहितवंतः । नामशब्दः संजावनायां । संजाव्यतएवं विनयात्स्वकार्यसिद्धिरि ति । तडुक्तं । तस्मात्कल्याणानां सर्वेषां जाजनं विनयइति ॥ ३॥ किंचान्यत् (अणोवसंखा इत्यादि) संख्यानं संख्या परिछेदः । उप सामीप्येन संख्या उपसंख्या सम्यग्यथावस्थिता र्थपरिज्ञानं नोपसंख्याऽनुपसंख्या तयाऽनुपसंख्यया ऽपरिज्ञानेन व्यामूढमतयस्ते वैनयि काः स्वाग्रहग्रस्ताइत्येतद्यथा विनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्युदाहृतवंतएतच्च ते म हामोहाच्छादिताउदाहुरुदाहृतवंतः । यथैवं सर्वस्य विनयप्रतिपत्त्या स्वोर्थः स्वर्गमोक्षादि कोऽस्माकमवजासते आविर्जवति प्राप्यते इति यावत् । अनुपसंख्योदाहृतिश्च तेषामेव मवगंतव्या । तद्यथा । ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षसद्भावे सति तदपास्य विनयादेवैकस्मात्तदवा प्त्यन्युपगमादिति । यदप्युक्तं । सर्वकल्याणजाजनं तदपि सम्यग्दर्शनादिसंजवे सति विन यस्य कल्याणजाक्त्वं जवति नैकस्येति तद्रहितोविनयोपेतः सर्वस्य प्रब्हतयाऽन्यत्कारण

कुर्वाणाः सन्मिश्रीनावमस्तित्वनास्तित्वाभ्युपगमं ते नास्तिकादयः कुर्वंति । वाशब्दात्प्रति पेधे वाच्येऽस्तित्वमेव कथयंति । तथाहि । नास्तिकास्तावत्स्वशिष्येभ्योजीवाद्यनावप्रति पादकं शास्त्रं वदंतोनांतरीयकतयाऽत्मानं कर्तारं करणं च शास्त्रं कर्मतापन्नांश्च शिष्यान वश्यमंगीकुर्युः । सर्वशून्यत्वे त्वस्य त्रितयस्यानावान्मिश्रीनावोव्यत्ययोवा स्यादेव । त था बौद्धादिः कश्चित्स्याद्वादिना सम्यग्घेतुदृष्टांतैर्व्याकुलीकृतः सन् (मुम्मुईहोइत्ति) ग द्गद्नाषित्वेनाव्यक्तनाषी स्यात् । अथवा मूकादपि मूकोमूकमूकः स्यात् । प्राकृतशैल्या छांदसत्वाच्चैवं प्रयोगः । स्याद्वादिनोक्तं साधनमनुवदितुं शीलमस्येत्यनुवादी तन्निषेधाद ननुवादी व्याकुलितमनाअनुवादमपि कर्तुं न शक्नोतीति । स्वमतमाश्रित्याह । (इमंड पक्खमित्यादि) इदमस्मदंगीकृतं मतमेकः पक्षोस्येत्येकपक्षं निष्प्रतिपक्षमित्यर्थः । इदं च परमतं द्वौ पक्षौ यस्य तद्विपक्षं सप्रतिपक्षमित्यर्थः । तथा स्याद्वादिसाधनोक्तौ छलायतनं छलं नवकंबलोदेवदत्तइत्यादिकमाहुरुक्तवंतः । चशब्दादस्य च दूषणाना सादिकं कर्मच एकपक्षद्विपक्षादिकं । अथवा षट् आयतनानि उपादानकारणानि आ श्रवद्वाराणि श्रोत्रादीनींद्रियाणि यस्य कर्मणस्तत् षडायतनं कर्मेत्येवमाहुः ॥ ५ ॥ तेऽक्रि यावादिनश्चार्वाकबौद्धाद्याएवमाख्यांति परमार्थमबुध्यमानाअजानंतोविरूपरूपाणि नाना प्रकाराणि शास्त्राणि रूपयंति । तद्यथाहि दानेन महानोगोदेहिनां सुरगतिश्च शीलेन ना वनयाच मुक्तिस्तपसा सर्वाणि सिध्यंति । तथा पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति चत्वारि नूतान्येव संति न कश्चिदात्मा । तथा बौद्धाः सर्वं क्षणिकं निरात्मकमित्यादीनि शास्त्राणि वदंति ते च मूढाअज्ञामनुष्यायदर्शनमादाय गृहीत्वाऽनवदग्रमनंतं संसारं न्रमंति ॥ ६ ॥

॥ टीका—सांप्रतमक्रियावादिनामज्ञानविजृंनितं दर्शयितुमाह । (सम्मिस्सत्तमित्यादि) स्वकीयया गिरा वाचा स्वाभ्युपगमेनैव गृहीते तस्मिन्नर्थे नांतरीयकतया वा समागते स ति तस्याऽयातस्यार्थस्य गिरा प्रतिषेधं कुर्वाणाः सन्मिश्रीनावमस्तित्वं नास्तित्वापगमं ते लोकायतिकादयः कुर्वंति । चशब्दात्प्रतिषेधे प्रतिपाद्येऽस्तित्वमेव प्रतिपादयंति । तथा हि । लोकायतिकास्तावत्स्वशिष्येभ्योजीवाद्यनावप्रतिपादकं शास्त्रं प्रतिपादयंतोनांतरी यकतयात्मानं कर्तारं करणं च शास्त्रं कर्मतापन्नांश्च शिष्यानवश्यमभ्युपगच्छेयुः । सर्वशू न्यत्वे त्वस्य त्रितयस्यानावान्मिश्रीनावोव्यत्ययोवा । बौद्धाअपि मिश्रीनावमेवमुपगताः । तद्यथा । गंता च नास्ति कश्चिद्गतयः षड् बौद्धशासने प्रोक्ताः ॥ गम्यतइति च गतिः स्या त्श्रुतिः कथं शोननां बौद्धी ॥ १ ॥ तथा कर्म च नास्ति फलं चास्तीत्यसति चात्मनि का रके कथं षड्गतयोज्ञानसंतानस्यापि संतानव्यतिरेकेण संवृतिसत्वात् क्षणस्य चास्थितत्वेन क्रियानावान्न नानागतिसंनवः । सर्वाण्यपि कर्माण्यबंधनानि प्ररूपयंति स्वागमे । तथा पंच

शास्त्र अने शिष्य ए क्यांछे एम नविचारे तेमाटे ए असंबंध वचनना बोलनार माटे ए ने मिश्रनाव सहित जाणवा तथा सांख्यदर्शनी एम कहेछे के आत्मा सर्वव्यापि छे तथा अक्रियछे ए पण असमंजस बोले छे कारणके ए दर्शनवाला एम कहेछे के प्रकृतिने वियोगें मोक्षछे जो एमछे तो आत्माने बंधमोक्षनो सद्भाव थाप्यो एम सिद्ध थयुं कारणके प्रकृतिनो बंध हतो तेनो वियोग थवाथी मोक्ष थयो एथी स्पष्ट मालम पडेछे के बंध मोक्षनो सद्भाव थयो अने बंध मोक्षना सद्भावने लीधे आत्मा सक्रियछे एवुं एम नाज बोलवा उपरथी जणायछे तो पोतानाज वचनथी जेनुं स्थापन कर्युं तेने पोतानाज वचनथी उछापेछे एरीते मिश्रनाव सर्व दर्शनीउनो जाणवो ए वर्णिका मात्र लख्युंछे (सेमुम्मुईहोइअणाणुवाई के०) ते अक्रियावादी आदेदेइने जे परवादीछे ते जैन मतानुसारीने अनेक हेतु दृष्टांते करी व्याकुल छतो तेनो उत्तर आपवाने असमर्थ थाय मुम्मुई एटले मूक सरखो थाय अर्थात् कांइपण बोली शके नही ते दर्शनी केवो जाणवो तोके अनानुवादी एटले जिननाषित वचन सांनलीने पछी बोलवा असमर्थ एवो छतो मौन नावनेज अंगीकार करे इत्यर्थः हवे यद्यपि ते दर्शनीउ जैनमतानुसारीने सन्मुख बोली नशके तथापि कदाग्रहे पड्या थका पोताना पक्षनुं स्थापन करे तेनी रीत कहेछे. (इमंडुपरकंइममेगपरकंके०) एम अमारो एक पक्ष छे ते एम डुपक्ष जाणवो एटले ए पक्षना शुं वखाण करिए ए अमारा पक्षने त्रीजो कोइ उछापी नशके एवो ए पक्ष उत्तमछे अहीं पूर्वापर विरोध वचनछे ते नाव पाछलना मिश्रनाव कहेवाथी कह्युंछे ए डुपरक शब्दनो अर्थछे अथवा जे पोतानुं खोटुं होय तेने साचुं करे तेने उत्सूत्रनाषण करवाने लीधे डुपक्ष एटले आनवमां तथा परनवमां विमंबना थाय ए पण डुपरक शब्दनो अर्थ छे तथा ते परवादि जेवारे पोची नशके तेवारे (आहंसुछलायतणंचकम्मं के०) छलायतन एटले छले करी बोले ते छल त्रण प्रकारनाछे एक वाक्छल, बीजो सामान्यछल अने त्रीजो उपचारछल एवां छले करी बोलीने पोतानो एक पक्ष स्थापन करे तथा कर्म एटले एक पक्षादि स्थापन करवाने अर्थे बोले ॥ ५ ॥ (तेएवमरकंति के०) ते बौद्धादिक परवादीउ सत्यमार्गेने अजाणता मिथ्यात्व पमले आवखा थकां असंबंध वचन बोले एवाते (अबुज्झमाणा के०) तत्वने अजाणता (विरूवरूवाणिअकिरियवाई के०) विरूपरूप नाना प्रकारना कुशास्त्रनी प्ररूपणा करे एवाते अक्रियावादि नास्तिकादिक मिथ्यात्वी छे (जेमायईत्ताबहवेमणूसा के०) जेमनो मत ग्रहण करीने घणा मनुष्य मिथ्यात्वे मोह्या थका (नमंतिसंसारमणोवदग्गं के०) अनंत संसार परिच्रमण करेछे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—गिरा स्ववाचा स्वांगीकारेण गृहीते तस्मिन्नर्थे तस्यार्थस्य गिरा प्रतिषेधं

ते । तच्चेदं । प्राणी प्राणिज्ञानमित्यादिपूर्ववत् । तथेदमेकः पक्षोस्येत्येकपक्षं इहैव जन्मनि तस्य वेद्यत्वात् । तच्चेदमविज्ञोपचितं परिज्ञोपचितमीर्यापथं स्वप्नादिकं चेति । तदेवं स्याद्वादिनानियुक्ताः स्वदर्शनमेवमनंतरोक्तया नीत्या प्रतिपादयंति । तथा स्याद्वादिना धनोक्तौ लवायतनं लवं नवकंबलोदेवदत्तइत्यादिकमाहुरुक्तवंतः । च शब्दादन्यच्च दूषणाभासादिकं । तथा कर्मच एकपक्षद्विपक्षादिकं प्रतिपादितवंतइति । यदिवा षडायतनानि उपादानकारणानि आश्रवद्वाराणि श्रोत्रेंद्रियादीनि यस्य कर्मणस्तत्षडायतनं कर्मेत्येवमाहुरिति ॥५॥ सांप्रतमेव तद्दूषणायाह । (तएवमसंकंतीत्यादि) ते चार्वाकबौद्धादयोऽक्रियावादिनएवमाचक्षते । सद्भावमबुध्यमानामिथ्यामलपटलच्छादितात्मानः परमात्मानं च व्युद्ग्राहयंतोविरूपरूपाणि नानाप्रकाराणि शास्त्राणि प्ररूपयंति । तद्यथा । दानेन महाभोगोदेहिनां सुरगतिश्च शीलेन ॥ भावनया च विमुक्तिस्तपसा सर्वाणि सिध्यंति ॥ १ ॥ तथा पृथिव्यापस्तेजोवायुरित्येतान्येव चत्वारि भूतानि विद्यंते नापरः कश्चित्सुखदुःखभागात्मा विद्यते । यदि चैतान्यप्यविचारितरमणीयानि न परमार्थतः संतीति स्वप्नेंद्रजालमरुमरीचिकानिचयद्विचंद्रादिप्रतिभासरूपत्वात्सर्वस्येति । तथा सर्वं क्षणिकं निरात्मकं मुक्तिस्तु शून्यता दृष्टेस्तदर्थाः शेषभावनाइत्यादीनि नानाविधानि शास्त्राणि व्युद्ग्राहयंत्यक्रियात्मानोऽक्रियावादिनइति । तेच परमार्थमबुध्यमानायद्दर्शनमादाय गृहीत्वा बहवोमनुष्याः संसारमनवदग्रमपर्यवसानमरहट्टघटीन्यायेन भ्रमंति पर्यटंति । तथाहि । लोकायतिकानां सर्वशून्यत्वे प्रतिपाद्ये न प्रमाणमस्ति । तथाचोक्तं । तत्त्वान्युपहतानीति, युक्त्यभावेन सिध्यति ॥ नास्ति चेत्सैव नस्तत्त्वं, तत्सिद्धौ सर्वमस्तु सत् ॥ १ ॥ नच तत्प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं । अतीतानागतभावतया पितृनिबंधनस्यापि व्यवहारस्यासिद्धेस्ततः सर्वसंव्यवहारोछेदः स्यादिति । बौद्धानामप्यत्यंतक्षणिकत्वेन वस्तुत्वाभावः प्रसज्जति । तथाहि । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सत् । नच क्षणः क्रमेणार्थक्रियां करोति । क्षणिकत्वहानेर्नापि यौगपद्येन तत्कार्याणामेकस्मिन्नेव क्षणे सर्वकार्यापत्तेर्नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । नच ज्ञानाधारमात्मानं गुणिनमंतरेण गुणभूतस्य संकलनाप्रत्ययस्य सद्भावइत्येतच्च प्रागुक्तप्रायं । यच्चोक्तं दानेनमहाभोगो,इत्यादि तदार्हैतैरपि कथंचिदिष्यतएवेति नचाभ्युपगमाएव बाधायैप्रकल्प्यंतइति ॥ ६ ॥

णाइच्चो उएइ ण अत्थमेति, ण चंदिमा वड्ढति हीयती वा ॥ स
लिला ण संदंति ण वयंति वाया, वंझो णियतो कसिणे हु लोए
॥७॥ जहाहि अंधे सह जोतिणावि, रूवाइ णो पस्सति हीणणे
त्ते ॥ संतंपि ते एवमकिरियवाई, किरियं ण पस्संति निरुद्धपन्ना ॥ ८ ॥

जातकशतानि च बुद्धस्योपदिशंति । तथा । मातापितरौ हत्वा बुद्धशरीरे च रुधिरमुत्पाद्य ॥ अर्हद्वधं च कृत्वा स्तूपं नित्त्वा च पंचैते ॥ १ ॥ निरंतरमावीचिनरकं यांत्येवमादिकस्यागमस्य सर्वशून्यत्वे प्रणयनमयुक्तिसंगतं स्यात् । तथा । जातिजरामरणरोगशोकोत्तममध्यमाधमत्वानि च नस्युः । एवएव च नानाविधकर्मविपाकोजीवास्तित्वं कर्तृत्वं कर्मवत्त्वं चावेदयति । तथा । गंधर्वनगरतुल्या, माया स्वप्नोपपातधनसदृशा ॥ मृगतृष्णानीहारां बुचंडिकालातचक्रसमाइति नाषणाच्च स्पष्टमेव मिश्रीनावोपगमनं बौद्धानामिति । यदि वा नानाविधकर्मविपाकान्युपगमात्तेषां व्यत्ययएवेति । तथाचोक्तं । यदि शून्यस्तव पक्षो, मत्पक्षनिवारकः कथं नवति ॥ अथ मन्यसे न शून्यस्तथापि मत्पक्षएवासावित्यादि । तदेवं बौद्धाः पूर्वोक्तया नीत्या मिश्रीनावमुपगतानास्तित्वं प्रतिपादयंतोऽस्तित्वमेव प्रतिपादयंति । तथा सांख्याअपि सर्वव्यापितया अक्रियमात्मानमन्युपगम्य प्रकृतिवियोगान्मोक्षसद्भावं प्रतिपादयंतस्तेप्यात्मनोबंधं मोक्षं च स्ववाचा प्रतिपादयंति । ततश्च बंधमोक्षसद्भावे सति स्वकीयया गिरा सक्रियत्वे गृहीते सत्यात्मनः सन्मिश्रीनावं व्रजंति यतोन क्रियामंतरेण बंधमोक्षौ घटेते । वाशब्दादक्रियत्वे प्रतिपाद्ये व्यत्ययएव सक्रियत्वं तेषां स्ववाचा प्रतिपाद्यते । तदेवं लोकायतिकाः सर्वे नावान्युपगमेन क्रियानावं प्रतिपादयंति । बौद्धाश्च क्षणिकत्वात्सर्वशून्यत्वाच्चाक्रियामेवान्युपगमयंतः स्वकीयागमप्रणयनेन चोदिताः संतः सन्मिश्रीनावं स्ववाचैव प्रतिपाद्यंते । तथा सांख्याश्चाक्रियमात्मानमन्युपगच्छंतोबंधमोक्षसद्भावं च स्वान्युपगमेनैव सन्मिश्रीनावं व्रजंति । व्यत्ययं चैतत्प्रतिपादितं । यदिवा बौद्धादिः कश्चित्स्याद्वादिनासम्यग्घेतुदृष्टांतैर्व्याकुलीक्रियमाणः सन् सम्यगुत्तरं दातुमसमर्थोयत्किंचन नाषितया (मुम्मुईहोइत्ति) गज्जदनाषित्वेनाऽव्यक्तनाषी नवति । यदिवा प्राकृतशैल्या छांदसत्वाच्चायमर्थोऽड्रष्टव्यः । तद्यथा । मूकादपि मूकोमूकमूकोनवति । एतदेव दर्शयति । स्याद्वादिनोक्तं साधनमनुवदितुं शीलमस्येत्यनुवादी तत्प्रतिषेधादननुवादी सद्धेतुनिर्व्याकुलितमनामौनमेव प्रतिपाद्यतइति नावः । अनुनाष्य च प्रतिपक्षसाधनं तथाऽदूषयित्वा च स्वपक्षं प्रतिपादयंति । तद्यथा । इदमस्मदन्युपगतं दर्शनमेकः पक्षोस्येति एकपक्षमप्रतिपक्षतयैकांतिकमविरुद्धार्थानिधायितया निष्प्रतिबाधं पूर्वापराविरुद्धमित्यर्थः । इदं चैवंनूतमपि सदित्याह । द्वैपक्षावस्येति द्विपक्षं सप्रतिपक्षमनैकांतिकं पूर्वापरविरुद्धार्थानिधायितयाऽविरोधिवचनमित्यर्थः । यथाच विरोधिवचनत्वं तेषां तथा प्राग्दर्शितमेव । यदि त्वेतदस्मदीयं दर्शनं द्वैपक्षावस्येति द्विपक्षं कर्मबंधनिर्जरणं प्रतिपक्षद्वयसमाश्रयणात् । तत्समाश्रयणं चेहामुत्र वेदना चौरपारदारिकादीनामिव । तेहि करचरणनासिकादिकामिहैव पुष्पकल्पां स्वकर्मणोविडंबनामनुनवंत्यमुत्र च नरकादौ तत्फलनूतां वेदनां समनुनवंतीति । एवमन्यदपि कर्मोन्नयवेद्यमन्युपगम्य

विद्यते कुतस्तस्योद्गमनमस्तगमनं वा । यच्च जाज्वल्यमानं तेजोमंडलं दृश्यते तद्भ्रां तमतीनां द्विचंद्रादिप्रतिभासं मृगतृष्णिकाकल्पं वर्तते । तथा न चंद्रमावर्धते शुक्लपक्षे नाप्युत्तरपक्षे प्रतिदिनमपहीयते नसंधानसलिलानि उदकानि स्यंदंते पर्वतनिर्झरेभ्यो न स्रवंति तथा वाताः सततगतयोन वांति । किंबहुनोक्तेन कृत्स्नोप्ययं लोकोवंध्यो ऽर्थशून्योनियतोनिश्चितोभावरूपइति यावत् । सर्वमिदं यदुपलभ्यते तन्मायास्वप्नेंद्र जालमिति ॥ ७ ॥ एतत्परिहर्तुकामआह (जहाहि अंधेइत्यादि) यथा ह्यंधोजात्यंधः पश्चाद्वा हीननेत्रोऽपगतचक्षुः रूपानि घटपटादीनि ज्योतिषापि प्रदीपादिनापि सहवर्त मानोन पश्यति नोपलभते एवं तेप्यक्रियावादिनः सदपि घटपटादिकं वस्तु तत्क्रियां चाऽस्तित्वादिकां परिस्पंदादिकां वा क्रियां न पश्यंति । किमिति यतोनिरुद्धा आच्छादि ता ज्ञानावरणादिना कर्मणा प्रज्ञा ज्ञानं येषां ते तथा । तथाहि । आगोपालांगनादिप्र तीतः समस्तांधकारक्षयकारी कमलाकरोद्घाटनपटीयानादित्योद्गमः प्रत्यहं भवनुपलभ्य ते । तत्क्रियाच देशादेशांतरावाप्त्याऽन्यत्र देवदत्तादौ प्रतीताऽनुमीयते । चंद्रमाश्च प्रत्यहं क्षीयमाणः समस्तक्षयं यावत्पुनः कलाभिवृद्ध्या प्रवर्धमानः संपूर्णावस्थायां यावदध्य क्षेणैवोपलक्ष्यते । तथा सरितश्च प्रावृषि जलकल्लोलाविलाः स्यंदंत्योदृश्यंते वायवश्च वातावृक्षभंगकंपादिभिरनुमीयंते । यच्चोक्तं भवता सर्वमिदं मायास्वप्नेंद्रजालकल्पमि ति तदसत् । यतः सर्वाभावे कस्यचिद् मायारूपस्य सत्यस्याभावान्मायायाएवाऽभावः स्यात् । यश्च मायां प्रतिपादयेत् यस्य च प्रतिपाद्यते सर्वशून्यत्वे तयोरेवाभावात्कुतस्त द्व्यवस्थितिरिति । तथा स्वप्नोपि जाग्रदवस्थायां सत्यां व्यवस्थाप्यते तस्याअभावे त स्याप्यभावः स्यात्ततः स्वप्नमभ्युपगच्छता भवता तत्रांतरीयकतया जाग्रदवस्थावश्यमभ्युप गता भवति तदभ्युपगमेच सर्वशून्यत्वहानिः । नच स्वप्नोप्यभावरूपएव स्वप्नेप्यनुभूतादेः सद्भावात् । तथा चोक्तं । अणुहूयदिठचिंतिय, सुयपयइविपारदेव पाणूया ॥ सुमिणस्स निमित्ताइं पुसं पावंच णाभावो ॥ १ ॥ इंद्रजालव्यवस्थाप्यपरसत्यत्वे सति भवति तद भावेतु केन कस्य चेंद्रजालं व्यवस्थाप्येत । द्विचंद्रप्रतिभासोपि रात्रौ सत्यामेकस्मिंश्च चंद्रमस्युपलंभकसद्भावे च घटते न सर्वशून्यत्वे । नचाभावः कस्यचिदप्यत्यंततुच्छरूपोस्ति । शशविषाणकूर्मरोमगगनारविंदादीनामत्यंताभावप्रसिद्धानां समासप्रतिपाद्यस्यैवार्थस्याभा वोन प्रत्येकपदवाच्यार्थस्येति । तथाहि । शशोप्यस्ति विषाणमप्यस्ति किंत्वत्र शशम स्तकसमवायिविषाणं नास्तीत्येतत्प्रतिपाद्यते । तदेवं संबंधमात्रमत्र निषिध्यते नात्यं तिकोवस्त्वभावइति । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यमिति । तदेवं विद्यमानायामप्यस्तीत्यादिका यां क्रियायां निरुद्धप्रज्ञास्तीर्थिकाअक्रियावादमाश्रिताइति । अनिरुद्धप्रज्ञास्तु यथाव स्थितार्थवेदिनोभवंति । तथाहि । अवधिमनःपर्यायकेवलज्ञानिनस्त्रैलोक्योदरविवरव

अर्थ—हवे सर्व शून्यवादिनो नेद कहेछेः ते शून्यवादी एम कहेछे के समस्त लोक प्रसिद्ध जगत्प्रदीप समान एवो (णाइच्चो के०) सूर्य नथी वली ते सूर्य (णाउएइके०) उगतो नथी तथा (णाअछमेति के०) अस्तपण थातो नथी ए जे देदीप्यमान सूर्य मंमल देखायछे ते मात्र चित्तनो च्रम जाणवो मृगतृष्णा समान ए सर्व च्रमछे तथा (णाचंदिमावड्ढति हीयती के०) चंड्मानी कला वृद्धि पामती नथी तेम हीन पण थती नथी एटले शुक्ल पक्षादिने विषे जे वृद्धि प्रमुख चंड्मानी देखायछे ते सर्व च्रम छे (वा के०) अथवा तथा (सलिला के०) नदीना पाणी ते (णासंदंति के०) नथी श्रवता एटले नदीन्हदादिक पण नथी तथा (णवयंतिवाया के०) वायरो पण वातो नथी (वंझोणियतो कसिणे हुलोए के०) तो हु इति निश्चे ए लोक संपूर्ण वंध्यसमान अर्थ शून्य छे अर्थात् ए जगतमां कांइ नथी जे कांइ देखायछे ते सर्व स्वप्नेंड्जाल समान जाणवुं ॥ ७ ॥ (जहाहि अंधेसह जोतिणावि के०) जेम जाति अंध एटले नेत्रहीन पुरुष दीपे करी सहित छतां पण (हीणणेत्ते के०) हीननेत्रपणाने लीधे (रूवाइ के०) रूपादिक जे घटपटादिक विद्यमान पदार्थोछे तेने (णोपस्सति के०) देखी शके नही (संतंपिते एवमकिरियवाई के०) तेम ते अक्रियावादिउंमां छतिक्रिया विद्यमान छता पण ते (किरियं के०) क्रियाने (निरुद्धपन्ना के०) जेमनी प्रज्ञा एटले बुद्धिनिरोध थइछे अर्थात् बुद्धिहीन एवाते अक्रियावादी लोको पोतामां क्रिया विद्यमान छता पण तेने (णपस्संतिके०) मिथ्यात्वादिक दोषेकरी नथी देखता. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—आदित्योनोद्गच्छति नास्तमेति । कोर्थः । आदित्यएव तावन्न विद्यते कुतस्तस्योद्गमनमस्तगमनं च । यच्चेदं ज्वलत्तेजोमंडलं दृश्यते तद्भ्रांतमतीनां द्विचंड्प्रतिनासमृगतृष्णातुल्यमिति । तथा न चंड्मावर्धते हीयते वा सलिलानि पर्वतनिर्झरेन्यो न स्यंदंते न स्रवंति वाताम वांति । किंबहुना कृत्स्नः संपूर्णोप्ययं लोकोवंध्योर्थशून्योनियतोनिश्चितोनावरूपइत्यर्थः । सर्वमिदं यडुपलन्यते तन्मायास्वप्नेंड्जालप्रायमिति ॥ ७ ॥ यथाह्यंधोजात्यंधः पश्चाद्वा हीननेत्रोगतचक्षुर्घटपटादिरूपाणि ज्योतिषा प्रदीपादिनाऽपि सद्वर्तमानोन पश्यति । एवंतेप्यक्रियावादिनः सदपि घटपटादिकं वस्तु न क्रियां चास्तित्वादिकां परिस्पंदादिकां वा न पश्यंति । यतोनिरुद्धाआछादिता प्रज्ञा ज्ञानं येषांते निरुद्धप्रज्ञाः अतएव ते न जानंतीति ॥ ८ ॥

॥ टीका—पुनरपि शून्यमताविर्नावनायाह । (णाइच्चो उएईत्यादि) सर्वशून्यवादिनोह्यक्रियावादिनः सर्वाप्यक्षामादित्योद्गमनादिकामेव क्रियां तावन्निरुंधंतीति दर्शयति । आदित्योहि सर्वजनप्रतीतोजगत्प्रदीपकल्पोदिवसादिकालविनागकालकारी सएव तावन्न

मित्तमधीत्य लोकेऽतीतानागतानि वस्तूनि जानंति। नच शून्यादिष्वेतद्घटते तस्मादप्रमाणकमेव तैरुच्यते ॥ ए ॥ पराभिप्रायमाह। (केईनिमित्तेत्यादि) छांदसत्वाल्लिंगव्यत्ययः। कानिचिन्निमित्तानि तथ्यानि सत्यानि भवंति। केषांचित्तु निमित्तानां निमित्तवेदिनां वा तन्निमित्तज्ञानं विपर्यासं व्यत्ययमेति। आर्हतानामपि निमित्तव्यभिचारोदृश्यते किंपुनस्तीर्थिकानां। तदेवं निमित्ते व्यभिचारमुपलभ्यतेऽक्रियावादिनोविद्यासद्भावं विद्यामनधीयानाः (आहंसुविज्जापलिमोरकमेव) विद्यायाः श्रुतस्य व्यभिचारेण तस्य परिमोक्षं परित्यागमाहुः। अथवा क्रियायाअभावाक्रियया ज्ञानेनैव मोक्षं कर्मक्षयरूपमाहुरिति। क्वचिच्चरमपादस्यैवं पाठः। (जाणासुलोगंसिवयंतिमंदत्ति) विद्यामनधीत्यैव स्वयमेव लोके भावान् वयं जानीमइति मंदाजडावदंति। मंदत्वं कथमिति चेडुच्यते। सम्यग्विलोकितस्य निमित्तस्य नास्ति व्यभिचारः। यत्रापि दृश्यते व्यभिचारः सोप्यज्ञाततादृगन्यनिमित्तसद्भावात्। यथा किल बुद्धः स्वशिष्यानाकार्योक्तवान्। द्वादशवार्षिकमत्र दुर्भिक्षं भावि। यूयं देशांतरं गछत। तेच गछंतस्तेनैव निषिद्धाः। मागछत यूयं इहाद्यैव पुण्यवान् महासत्त्वः संजातस्तत्प्रभावात्सुभिक्षं भविष्यतीति। तदेवमन्यनिमित्तसद्भावान्नकथंचिन्निमित्तव्यभिचारइति ॥ १० ॥

॥ टीका–तदाह। (संवत्सरमित्यादि) सांवत्सरमिति ज्योतिषं। स्वप्नप्रतिपादकोग्रंथः स्वप्नस्तमधीत्य। लक्षणं श्रीवत्सादिकं। च शब्दादांतरबाह्यभेदभिन्नं निमित्तं वाक्प्रशस्तशकुनादिकं। देहे भवं दैहं मषकतिलकादि। उत्पाते भवमौत्पातिकमुल्कापातदिग्दाहनिर्घातभूमिकंपादिकं। तथाष्टांगंच निमित्तमधीत्य। तद्यथा। भौममुत्पातमांतरिक्षमांगं स्वरं लक्षणं व्यंजनमित्येवं रूपं नवमपूर्वतृतीयाचारवस्तुविनिर्गतं सुखदुःखजीवितमरणलाभाऽलाभादिसंसूचकं निमित्तमधीत्य लोकेऽस्मिन्नतीतानि वस्तूनि अनागतानिच जानंति परिछिंदंति। नच शून्यादिवादेष्वेतद् घटते तस्मादप्रमाणकमेव तैरभिधीयतइति। एवंव्याख्याते सति आह परः। ननु व्यभिचार्यपि श्रुतमुपलभ्यते। तथाहि। चतुर्दशपूर्वविदामपि षट्स्थानपतितत्वमागमउद्घुष्यते किंपुनरष्टांगनिमित्तशास्त्रविदां। अत्र चांगवर्जितानां निमित्तशास्त्राणामानुष्टुभेन छन्दसा त्रयोदशशतानि सूत्रं तावंत्येव सहस्राणि वृत्तिस्ता वत्प्रमाणलक्षणा परिभाषेति। अंगस्य त्रयोदशसहस्राणि सूत्रं तत्परिमाणलक्षणा वृत्तिरपरिमितं वार्तिकमिति ॥ ए ॥ तदेवमष्टांगनिमित्तवेदिनामपि परस्परतः षट्स्थानपतितत्वेन व्यभिचारित्वमतइदमाह। (केइनिमित्ताइत्यादि) छांदसत्वात्प्राकृतशैल्या वा लिंगव्यत्ययः। कानिचिन्निमित्तानि तथ्यानि सत्यानि भवंति। केषांचित्तु निमित्तानां निमित्तवेदिनां वा बुद्धिवैकल्यात्तथाविधक्षयोपशमाभावेन तन्निमित्तज्ञानं वि

तिनः पदार्थान् करतलामलकन्यायेन पश्यंति । समस्तश्रुतज्ञानिनोपि आगमबलेनातीतानागतानर्थान् विदंति । येऽप्यन्येऽष्टांगनिमित्तपारगास्तेपि निमित्तबलेन जीवादि पदार्थपरिछेदं विदधति ॥ ८ ॥

संवछरं सुविणं लक्खणं च, निमित्तदेहं च उपाइयं च ॥ अठंग
मेयं बहवे अहित्ता, लोगंसि जाणंति अणागताइं ॥ ए ॥ केई
निमित्ता तहिया भवंति, केसिं च तं विप्पडिएति णाणं ॥ तेविज्ज
भावं अणहिज्जमाणा, आहंसु विज्जापरिमोक्खमेव ॥ पाठांतरे ॥
(जाणासु लोगंसि वयंति मंदा ॥ १० ॥

अर्थ-(संवछरं के०) ज्योतिषग्रंथ (सुविणं के०) स्वप्न शुभाशुभना शास्त्र (लक्खणं के०) श्रीवत्सादिक लक्षण सामुद्रिक शास्त्र ते च शब्द थकी अभ्यंतर भेदरूप पण जाणवा तथा (निमित्त के०) निमित्त प्रसिद्ध शकुनादिक शास्त्र जाणवा (देहंके०) देहना लक्षण मत्स तिलकादिक जाणवा (उपाइयंच के०) उत्पात ते भूमिकंपादिकनी सूचनाकरनार शास्त्र एम (अठंगमेयंबहवेअहित्ता के०) अष्टांगनिमित्तनुं घणा लोक पठन करीने अर्थात् अष्टांगनिमित्त भणीने (लोगंसिजाणंतिअणागताइं के०) आलोकने विषे अतीत अनागतादिक वस्तुने जाणेछे. तेटलुं पण ए शून्यवादी जाणता न थी जेम कोइ संनिपाती यथातथ्य वस्तुने उलखे नही तेना दृष्टांते ए शून्यवादी पण जाणीलेवा ॥ ए ॥ तेमां वली (केईनिमित्तातहियाभवंति के०) कोइएक निमित्तियायें पोताना मुख थकी निमित्त प्रकाश्यो थको तेनो निमित्त जेम कहे तेमज थायछे एटले साचो थायछे वली (केसिंचतंविप्पडिएतिणाणं के०) कोईकनो निमित्तादि ज्ञान विपर्यासपणाने पामेछे एटले विघटेछे तथा (तेविज्जभावंअणहिज्जमाणा के०) ते एवी विद्याना भावनो अभ्यास कस्या विना एटले एवी विद्याने अण भल्या थका कहेछे के (आहंसुविज्जापरिमोक्खमेव के०) अथवा पाठांतरे (जाणासुलोगंसिवयंतिमंदाके०) कोइएक मंद एटले मूर्ख एवा अक्रियावादी प्रमुख एमज कहेछेके अमेज आलोक मांहे अशेष एटले समस्त भावने जाणीयें छैयें ॥ १० ॥

॥ दीपिका-सांवत्सरं ज्योतिषं । स्वप्नप्रतिपादकोग्रंथः स्वप्नः । लक्षणं श्रीवत्सादिकं । निमित्तं शकुनादिकं । देहे भवं दैहं मषतिलकादि । उत्पाते भवमौत्पातिकमुल्कापातदिग्दाहादिकमित्यादि । अष्टांगनिमित्तं । यथा भौमं १ उत्पातं २ स्वप्नं ३ आंतरिक्षं ४ आंगं ५ स्वरं ६ लक्षणं ७ व्यंजनमित्येवं नवमपूर्वतृतीयाचारवस्तुनिर्गतं सुखदुःखादिसूचकं नि

ले कहेछे ते पोताने अभिप्रायें लोकने जाणीने अमे यथावस्थित तत्वना जाणछैए ए वीरीते बोलीने क्रियानुं स्थापन करेछे (तहातहासमणामाहणाय के०) तथा तथा ए टले ते ते प्रकारें अर्थात् जेवा जेवा प्रकारनी क्रिया प्रवर्त्ते तेम तेम एटले तेवा तेवा प्रकारनुं स्वर्ग नरकादिक फल पण जाणवुं एरीते ते शाक्यादिकना श्रमण ब्राह्मण क्रियाथकीज सिद्धि कहेछे. (सयंकडंणन्नकडंचडुक्खं के०) तथाजे कांइ आ जगत् मांहे डुःख सुखछे ते सर्व पोतानुं करेलुं तथा परनुं करेलुं पण नथाय परंतु सर्व भवितव्यतानुं करेलुं थायछे हवे एमना मतनुं निराकरण करेछे (आहंसु विज्जाचरणंपमोक्खं के०) तीर्थंकर गणधरादिक विद्या एटले ज्ञान अने चरण एटले चारित्र एणेकरी मोक्षछे एट ले संसारीजीवोने ज्ञान अने क्रियानेसंयोगे करी प्रकर्षे जैनमार्गे मोक्षछे एम कहेछे. ॥ ॥ ११ ॥ (तेचक्खुलोगंसिहणायगाउ के०) ते तीर्थंकर गणधरादिक केवाछे तोके लो कमांहे चक्षुने स्थानकेछे तथा आ लोकने विषे नायक एटले स्वामि छता (मग्गाणुसा संतिहितंपयाणं के०) आलोकने विषे पोताना प्रजालोकने आ भवें तथा परभवें हित कारी एवो सम्यक् धर्म मार्ग प्रकाशेछे. (तहातहासासयमाहुलोए के०) तथा तथा एटले जेवा जेवा प्रकारें ए लोक पंचास्तिकायरूप ते द्रव्यास्तिक नयना अभिप्रायें शाश्वतो थाय तेवा तेवा प्रकारे कहे अथवा जेम जेम रागद्वेषनी वृद्धि तेम तेम संसारनी वृद्धि थाय एम कहे (जंसी के०) जे संसारने विषे (पयासंपगाढा के०) प्रजा एटले जीव ते राग द्वेषे व्याप्त छता नाना प्रकारे रह्याछे (माणवके०) तो हे मानव तुं एम जाण ॥१२॥

॥ दीपिका— अथ क्रियावादिमतमाह । ये क्रियातएव मोक्षमिछंति तएवमाख्यां ति । स्वाभिप्रायेण लोकं स्थावरजंगमात्मकं समेत्य ज्ञात्वा किल वयं यथावस्थितवस्तु ज्ञातारइत्यंगीकृत्य सर्वमस्त्येवेति सनिश्चयं कथयंति । तथा तेन प्रकारेण यथायथा क्रिया तथातथा स्वर्गनरकादिफलमिति । ते श्रमणास्तीर्थिकाब्राह्मणावा क्रियातएव सि द्धिमिछंति । तथा यत्किंचित्संसारे डुःखं तथा सुखं च तत्सर्वं स्वयमात्मनाऽन्येन कालेश्व रादिना । नचैतदक्रियावादे घटते । तत्र हि अक्रियत्वादात्मनोऽकृतयोरेव सुखडुःखयोः संभवः स्यादिति । (तस्मादाहंसु विज्जाचरणं पमोक्खंति) विद्याज्ञानं । चरणंक्रिया । ते द्वे अपि विद्येते कारणत्वेन यस्येति समासंकृत्वा अर्शआदित्वान्मत्वर्थीयोच्प्रत्ययः । अ सौ विद्याचरणोमोक्षः । ज्ञानक्रियासाध्यइत्यर्थः । एवंविधं मोक्षमाहुस्तीर्थकृदादयः॥ ११ ॥ ते तीर्थकरादयइहास्मिन् लोके चक्षुर्लोचनतुल्यइत्यर्थः । ते लोके नायकाः प्रधानाः । तुर्विशेषणे । मार्गं ज्ञानादिकं प्रजानां हितं प्राणिनामनर्थवारकं सद्गतिप्रापकं चानुशासं ते कथयंति तथा तथा शाश्वतं लोकं संसारमाहुर्जिनाः । यथायथा मिथ्यात्ववृद्धिः ।

पर्यासं व्यत्ययमेति । आर्हतानामपि निमित्तव्यनिचारः समुपलन्यते किंपुनस्तीर्थिकानां । तदेवं निमित्तशास्त्रस्य व्यनिचारमुपलन्यते ऽक्रियावादिनोविद्यासद्भावमनधीयानाः संतोनिमित्तं तथा चान्यथा च नवतीति मत्वा ते (आहंसुविज्ञापलिमोरकमेव) विद्यायाः श्रुतस्य व्यनिचारेण तस्य परिमोक्षं परित्यागमाहुरुक्तवंतः । यदिवा क्रियायाश्च नावाद्विद्यया ज्ञानेनैव मोक्षं सर्वकर्मच्युतिलक्षणमाहुरिति । क्वचिच्चरमपादस्यैवं पाठः (जाणासुलोगंसिवयंतिमंदत्ति) विद्यामनधीत्यैव स्वयमेव लोकमस्मिन् वा लोके नावान् स्वयं जानीमएवं मंदाजडावदंति । नच निमित्तस्य तथ्यता । तथाहि । कस्यचित्क्वचित्क्षुतेऽपि गच्छतः कार्यसिद्धिदर्शनाच्छकुनसद्भावेपि कार्यविघातदर्शनादतोनिमित्तबलेनादेशविधायिनां मृषावादएव केवलमिति । नैतदस्ति । नहि सम्यगधीतस्य श्रुतस्यार्थे विसंवादोऽस्ति । यदपि षट्स्थानपतितत्वमुद्घोष्यते तदपि पुरुषाश्रितक्षयोपशमवशेन । नच प्रमाणानासव्यनिचारे सम्यक्प्रमाणव्यनिचाराशंकां कर्तुं युज्यते । तथाहि । मरुमरीचिकानिचये जलग्राहि प्रत्यक्षं व्यनिचरतीति कृत्वा किंसत्यजलग्राहिणोपि प्रत्यक्षस्य व्यनिचारोयुक्तिसंगतोनवति । नहि मशकवर्तिरग्निसिद्धावुपदिश्यमाना व्यनिचारिणीति सत्यधूमस्यापि व्यनिचारोनहि सुविवेचितकार्यकारणं व्यनिचरतीति । ततश्च प्रमातुरयमपराधोन प्रमाणस्यैव सुविवेचितं निमित्तं श्रुतमपि न व्यनिचरतीति । यश्च क्षुतेपि कार्यसिद्धिदर्शनेन व्यनिचारः शंक्यते सोऽनुपपन्नः । तथाहि । कार्याकूतात् क्षुतेपि गच्छतः कार्यसिद्धिः सापांतरालेंतरशोननिमित्तबलात्संजातेत्येवमवगंतव्यं । शोननिमित्तप्रस्थितस्यापीतरनिमित्तबलात्कार्यव्याघातइति । तथाच श्रुतिः । किल बुद्धः स्वशिष्यानाहूयोक्तवान् यथा द्वादशवार्षिकमत्र डुर्निक्षं नविष्यतीत्यतोदेशांतराणि गच्छत यूयं ते तद्वचनाजच्छंतस्तेनैव प्रतिषिद्धायथा मागच्छत यूयमिहाद्यैव पुण्यवान् महासत्वः संजातस्तत्प्रनावात्सुनिक्षं नविष्यति । तदेवमंतरा परनिमित्तसद्भावात्तद्व्यनिचारशंकेति स्थितं ॥ १० ॥

ते एवमरकंति समिच्च लोगं, तहा तहा समणा माहणा य ॥
सयं कडं णन्नकडं च डुरकं, आहंसुविज्जा चरणं पमोरकं ॥ ११ ॥
ते चरकुलोगंसिह णायगा उ, मग्गाणुसासंति हितं पयाणं ॥ त
हा तहा सासयमाहु लोए, जंसीपया माणव संपगाढा ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे क्रियावादीनो मत दूषवेछे. (तेएवमरकंतिसमिच्चलोगं के०) जे एकली मात्र क्रिया करवा थकीज मोक्षनी वांछना करेछे तेक्रियावादि एवीरीते आख्याति एट

तथागतास्तीर्थकरत्वं केवलज्ञानं च गताः श्रमणाः साधवोब्राह्मणाः संयताऽसंयताः। लौकिकी वाचोयुक्तिः। किंभूतास्तएवमाख्यांतीति संबंधः। तथातथेति वा क्वचित्पाठः। यथायथा समाधिमार्गोव्यवस्थितस्तथातथा कथयंति। एतच्च कथयंति। यथा यत्किंचित्संसारांतर्गतानामसुमतां दुःखमसातोदयस्वभावं तत्प्रतिपक्षभूतं च सातोदयापादितं सुखं तत्स्वयमात्मनाकृतं नान्येन कालेश्वरादिना कृतमिति। तथा चोक्तं। सव्वो पुव्वकयाणं, कम्माणं पावए फलविवागं॥ अवराहे सुगुणेसुय णिमित्तमित्तं परो होइ॥ १॥ एतच्चाहुस्तीर्थकरगणधरादयः। तद्यथा। विद्या ज्ञानं चरणं चारित्रं क्रिया तत्प्रधानोमोक्षस्तमुक्तवंतोनज्ञानक्रियाभ्यां परस्परनिरपेक्षाभ्यामिति। तथा चोक्तं। क्रियां च संज्ञानवियोगनिष्फलां क्रियाविहीनां च विबोधसंपदं॥ निरस्यताक्लेशसमूहशांतये, त्वया शिवाया लिखितेव पद्धतिः॥ १॥ ११॥ किंच (तेचक्खुलोगंसिहेत्यादि) ते तीर्थकरगणधरादयोऽतिशयज्ञानिनोऽस्मिन् लोके चक्षुरिव चक्षुर्वर्तंते। यथाहि चक्षुर्योग्यदेशावस्थितान् पदार्थान् परिछिनत्ति। एवं तेऽपि लोकस्य यथावस्थितपदार्थाविष्करणं कारयंति। यथाऽस्मिन् लोके ते नायकाः प्रधानाः। तुशब्दो विशेषणे। सदुपदेशदानतोवा नायकाइत्येतदाह। मार्गं ज्ञानादिकं मोक्षमार्गं अनुशासंति कथयंति प्रजायंतइतिप्रजाः प्राणिनस्तेषां। किंभूतं। हितं सजतिप्रापकमनर्थनिवारकं। किंच चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके पंचास्तिकायात्मके वा येन प्रकारेण द्रव्यास्तिकनयाभिप्रायेण यद्वस्तु शाश्वतं तत्तथा आहुरुक्तवंतः। यदिवा लोकोयं प्राणिगणः संसारांतर्वर्ती यथायथा शाश्वतोभवति तथातथैवाहुः। तद्यथा। यथायथा मिथ्यादर्शनाभिवृद्धिस्तथातथा शाश्वतोलोकः। तथाहि। तत्र तीर्थकराहारकवर्ज्याः सर्वएव कर्मबंधाः संभाव्यंतइति। तथाच महारंभादिभिश्चतुर्भिः स्थानैर्जीवानरकायुष्कं यावन्निवर्तयंति तावत्संसारानुछेदइति। अथवा यथायथा रागद्वेषादिवृद्धिस्तथातथा संसारोपि शाश्वतइत्याहुः। यथायथा च कर्मोपचयमात्रा तथातथैव संसाराभिवृद्धिरिति। दुष्टमनोवाक्कायाभिवृद्धौ वा संसाराभिवृद्धिरवगंतव्या। तदेवं संसारस्याभिवृद्धिर्भवति। यथाऽस्मिंश्च संसारे प्रजायंतइति प्रजाजंतवः हे मानव। मनुष्याणामेव प्रायशउपदेशार्हत्वान्मानवग्रहणं। सम्यग्नारकतिर्यङ्नरामरभेदेन प्रगाढाः प्रकर्षेण व्यवस्थिताइति॥ १२॥

जे रक्खसा वा जमलोइया वा, जे वासुरा गंधव्वा य काया॥
आगासगामी य पुढोसिया जे, पुणोपुणो विप्परिया सुवंति॥
॥१३॥ जमाहु उहं सलिलं अपारगं, जाणाहि णं भवगहणं दु
मोक्खं॥ जंसी विसन्ना विसयंगणाहिं, दुहउ वि लोयं अणुसंचरंति॥१४

तथाहि । तत्र तीर्थकराहारकवर्ज्याः सर्वएव कर्मबंधाः संभाव्यंते । कर्मबंधाच्च संसारवृ द्धिः । अथवा यथायथा रागद्वेषवृद्धिस्तथा तथा संसारोपि शाश्वतइत्याहुः । यस्मिन्सं सारे प्रजाजंतवः हेमानव संप्रगाढाः स्थिताः ॥ १२ ॥

॥ टीका—सांप्रतं क्रियावादिमतं दुदूषयिषुस्तन्मतमाविष्कुर्वन्नाह । (तएवमरकंती त्यादि) ये क्रियातएव ज्ञाननिरपेक्षायादीक्षादिलक्षणायामोक्षमिच्छंति तेएवमाख्यांति तद्यथा । अस्ति माता पिता अस्ति सुचीर्णस्य कर्मणः फलमिति । किंकृत्वा तएवं क थयंति क्रियातएव सर्वं सिध्यतीति स्वाभिप्रायेण लोकं स्थावरजंगमात्मकं समेत्य ज्ञात्वा किल वयं यथावस्थितवस्तुनोज्ञातारइत्येवमभ्युपगम्य सर्वमस्त्येवेत्येवं सावधारणं प्र तिपादयंति न कथंचिन्नास्तीति कथमाख्यांति । तथा तेन प्रकारेण यथायथा क्रिया तथा तथा स्वर्गनरकादिकं फलमिति ते च श्रमणास्तीर्थिकाब्राह्मणावा क्रियातएव सिद्धि मिच्छंति । किंच यत् किमपि संसारे दुःखं तथा सुखं च तत्सर्वं स्वयमेवात्मना कृतं नान्येन कालेश्वरादिना नचैतदक्रियावादे घटते । तत्र ह्यक्रियात्वादात्मनोऽकृतयोरेव सुखदुःखयोः संभवः स्यादेवंच कृतनाशाकृतागमौ स्यातां । अत्रोच्यते । सत्यमस्त्यात्मसुखदुःखादिकं । नन्वस्त्येव । तथाहि । यद्यस्त्येवं सावधारणमुच्येत ततश्च न कथंचिन्नास्तीत्यापन्नमेवंच स ति सर्वं सर्वात्मकमापद्येत । तथाच सर्वलोकस्य व्यवहारोच्छेदकः स्यात् । नच ज्ञानर हितायाः क्रियायाः सिद्धिस्तदुपायपरिज्ञानाभावात् । नचोपायमंतरेणोपेयमवाप्यतइ ति प्रतीतं । सर्वा हि क्रिया ज्ञानवत्येव फलवत्युपलक्ष्यते । उक्तंच । ज्ञानस्य ज्ञानि नां चैव निंदाप्रद्वेषमत्सरैः ॥ उपेक्षितैश्च विघ्नैश्च ज्ञानघ्नं कर्म बध्यते ॥ १ ॥ पढमं नाणं तउ दया, एवं चिठति सवसंजए ॥ अन्नाणी किं काही, किंवा नाहीछेयपावयं ॥ १ ॥ इत्यतोज्ञानस्यापि प्राधान्यं नापि ज्ञानादेवसिद्धिः क्रियारहितस्य पंगोरिव कार्यसिद्धेरनु पपत्तिरित्यालोच्याह । (आहंसुविज्ञाचरणं पमोरकंति) न ज्ञाननिरपेक्षायाः क्रियायाः सिद्धिरंधस्येव नापि क्रियाविकलस्य ज्ञानस्य पंगोरित्येवमवगम्याहुरुक्तवंतस्तीर्थकरगण धरादयः । किमाहुः । मोक्षं । कथं । विद्यां च ज्ञानं चरणंच क्रिया ते द्वे अपि विद्येते का रणत्वेन यस्येति विगृह्यार्शआदित्वान्मत्वर्थीयोच् । असौ विद्याचरणोमोक्षः । ज्ञान क्रियासाध्यइत्यर्थः। तमेवं साध्यं मोक्षं प्रतिपादयंति । यदिवान्यथा वा पातनिका केनै तानि समवसरणानि प्रतिपादितानि । यच्चोक्तं यच्च वक्ष्यते इत्येतदाशंक्याह । (तेए वमरकंतोत्यादि) अनिरुद्धा क्वचिदप्यस्खलिता प्रज्ञायते ऽनयेति प्रज्ञा ज्ञानं येषां तीर्थ कृतां तेऽनिरुद्धप्रज्ञास्तएवमनंतरोक्तया प्रक्रियया सम्यगाख्यांति प्रतिपादयंति । लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं स्थावरजंगमाख्यं वा समेत्य केवलज्ञानेन करतलामलकन्यायेन ज्ञात्वा

प्राधान्यख्यापनार्थं । तथा कायाः पृथिवीकायादयः षडपि गृह्यंतइति । पुनरन्येन प्रकारेण सत्वान्संज्ञिपृक्षुराह । ये केचनाकाशगामिनः संप्राप्ताकाशगमनलब्धयश्चतुर्विधदेवनिकायविद्याधरपक्षिवायवः । तथा येच पृथिव्याश्रिताः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियास्ते सर्वेपि स्वकृतकर्मभिः पुनःपुनर्विविधमनेकप्रकारं पर्यासं परिक्षेपमरहट्टघटीन्यायेन परिभ्रमणमुपसामीप्येन यांति गच्छंतीति ॥ १३ ॥ किंचान्यत् । (जमाहुरित्यादि) । यं संसारसागरमाहुरुक्तवंतस्तीर्थंकरगणधरादयः । तद्विदः कथमाहुः स्वयंभुरमणसलिलौघवदपारं । यथा स्वयंभुरमणसलिलोघोन केनचिज्जलचरेण स्थलचरेण वा लंघयितुं शक्यते एवमयमपि संसारसागरः सम्यग्दर्शनिनमंतरेण लंघयितुं न शक्यतइति दर्शयति । जानीहि अवगच्छ। णमिति वाक्यालंकारे । भवगहनमिदं चतुरशीतियोनिलक्षप्रमाणं यथासंभवं संख्येयाऽसंख्येयानंतस्थितिकं दुःखेन मुच्यतइतिदुर्मोक्षं दुरुत्तरमस्तिवादिनामपि किंपुनर्नास्तिकानां । पुनरपि भवगहनोपलक्षितं संसारमेव विशिनष्टि । यत्र यस्मिन् संसारे सावद्यकर्मानुष्ठायिनः कुमार्गपतिताअसत्समवसरणग्राहिणो विषण्णाअवसक्ताविषयप्रधानाअंगनाविषयांगनास्तानिर्यदि वा विषयाश्चांगनाश्च विषयांगनास्तानिर्वशीकृताः सर्वत्र सदनुष्ठाने ऽवसीदंति तएवंविषयांगनादिके पंचके विषण्णा द्विधाप्याकाशाश्रितं पृथिव्याश्रितंच लोकं यदि वा स्थावरजंगमलोकमनुसरंति गच्छंति । यदिवा द्विधापि लिंगमात्रप्रव्रज्य याऽविरत्याचरागद्वेषाभ्यां वा लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं स्वकृतकर्मप्रेरिताअनुसंचरंति बंभ्रम्यंतइति ॥ १४ ॥

न कम्मणा कम्म खवेंति वाला, अकम्मणा कम्म खवेंति धीरो ॥ मेधाविणो लोभमया वतीता, पाठांतरे (लोभभयावतीता) संतोसिणो नोपकरेंति पावं ॥ १५ ॥ ते तीयउप्पन्नमणागयाइं, लोगस्स जाणंति तहागयाइं॥णेतारो अन्नेसि अणन्नणेया, बुद्धा हु ते अंतकडा भवंति ॥१६॥

अर्थ—(नकम्मणाकम्मखवेंतिवाला के०) अज्ञानी एवो मिथ्यामतिवालुं जीव कर्मजे सावद्यारंभ तेणे करी पूर्वकृतकर्मने खपावे नही परंतु ताहमां नवा कर्मनुं बंध करे (अकम्मणाकम्मखवेंतिधीरा के०) आश्रवने सर्व प्रकारें रोधन करवा थकी सैलेसी करणावस्थायें धीर एटले महासत्ववंत एवो पुरुष कर्मने खपावेछे. (मेधाविणोलोभमयावतीता के०) जे मेधावि एटले पंमित महानुभाव होय ते लोभमय एटले परिग्रह तेथकी अतीत एटले रहित होय (संतोसिणोनोपकरेंतिपावं के०) एम संतोषी थतो पाप नकरे ॥ १५ ॥ जे पुरुष एवा होय ते केवा थाय ते कहेछे. (तेतीयउप्पन्नमणागयाइं के० ते) श्रीवीतराग अतीत, अनागत अने वर्तमान ए त्रणे काल आश्री

अर्थ–हवे ते नाना प्रकार कहेछे. (जेरस्कसावाजमलोइयावा के०) जे राक्षस व्यंतरादिक यमलोकिका जे परमाधार्मिकादिक देवो (जेवासुरा के०) जे वैमानिक ज्योतिषादिक देवो (गंधव्वाय के०) गांधर्व एटले विद्याधरादिक तथा (कायके०) पृथिविकायादिक (आगासगामीय के०) आकाशगामि एवा पक्षीउ तथा वायुप्रमुख तथा (पुढोसियाजे के०) पृथिविने विषे आश्रित एवा जे अनेक बेंद्रियादिक जीव ते सर्व (पुणोपुणोविप्परियासुवंति के०) पोत पोताना कर्मे करी वलीवली चतुर्गतिक रूप संसारमां परिभ्रमण करेछे ॥ १२ ॥ (जमाहुउहंसलिलंअपारगं के०) श्रीतीर्थंकर गणधरादिक ते ए जे उघ एटले संसार तेने अपार स्वयंभूरमण समुद्र सरखो कहेछे (जाणाहि के०) एम तुं जाण अहीं णं वाक्यालंकारेछे (नवगहणं के०) ते समान संसार गहनछे (डुमोरकं के०) डुर्मोक्ष एटले अत्यंत डुस्तरछे (जं सीविसन्नाविसयंगणाहिं के०) अस्तिवादीने पणजो एमछे एटले सम्यक् प्रवर्तकने पण आ अपार संसारसमुद्र अत्यंत डुस्तर छे तो नास्तिकवादीने तो अत्यंत डुस्तर होय एमां के वुंज शुं जे आ संसारने विषे सावद्य धर्मना प्रवर्त्तक कुमार्गे पतित पांचेंद्रिय संबंधी विषयना सेवनार तथा अंगना जे स्त्री तेने वश पड्याछता रहेछे ते (डुहउविलोयंअणुसंचरंति के०) त्रस स्थावररूप बे प्रकारनुं जे लोक तेमांहे राग द्वेषेकरीपरिभ्रमणकरे.

॥ दीपिका–ये राक्षसाः । राक्षसग्रहणात्सर्वे व्यंतराज्ञेयाः । यमलौकिकात्मानोऽवर्ष्यादयोभवनपतयः । येच सुरावैमानिकाः । चशब्दाज्ज्योतिष्काः । ये गंधर्वाविद्याधराः । कायाः पृथिवीकायादयः षट् । पुनः प्रकारांतरेण जीवान् आकाशगामिनः संप्राप्तलब्धयश्चतुर्विद्यादेवाविद्याधराः पक्षिणोवायवश्च । ये च पृथिव्याश्रिताः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियास्ते सर्वेपि कर्मभिः संसारे विपर्यासं परिभ्रमणमुपयांति गच्छंति ॥ १२ ॥ यं संसारं समुद्रमाहुर्जिनाः । किंभूतं । स्वयंभुरमणसलिलौघवदपारं जानीहि त्वं । णमितिवाक्यालंकारे । भवगहनं संसारारण्यं डुःखेन मुच्यतइति डुर्मोक्षं डुस्तरमस्तिवादिनामपि किंपुनर्नास्तिकानां । यस्मिन् संसारे सावद्याचारे विषसाआसक्ताविषयप्रधानाअंगनाविषयांगनास्तानिवेशीकृताद्विधापि स्थावरजंगमं लोकमनुचरंति गच्छंति संसारे भ्रमंतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

॥ टीका–लेशतोजंतुभेदप्रदर्शन द्वारेण तत्पर्यटनमाह । (जेरस्कसाइत्यादि) ये केचन व्यंतरभेदाराक्षसात्मानः । तद्ग्रहणाच्च सर्वेपि व्यंतरा गृह्यंते । तथा यमलौकिकात्मनोऽवर्ष्यादयस्तडुपलक्षणात्सर्वेभवनपतयस्तथा येच सुराः सौधर्मादिवैमानिकाः । चशब्दाज्ज्योतिष्काः सूर्यादयस्तथा ये गांधर्वाविद्याधराव्यंतरविशेषावा । तद्ग्रहणं च

तीत्यतआह। (तेतीयइत्यादि) ते वीतरागाअल्पकपायावा लोकस्य पंचास्तिकायात्मक स्य प्राणिलोकस्य वाऽतीतान्यन्यजन्माचरितानि उत्पन्नानि वर्तमानावस्थायीन्यनागतानि च नवांतरनावीनि सुखडुःखादीनि तथागतानि यथावस्थितानि तथैवाऽवितथं जानंति न विनंगज्ञानिनइव विपरीतं पश्यंति। तथाहि। आगमः। अणगारेणं नंतेमाई मिछादिठी रायगिहेण यरेसंमोहए वाणारसीए नयरीए रूवाइं जाणाइ पासइ जावसे दंसणे विवज्ञा से नवतीत्यादि। ते चातीतानागतवर्तमानज्ञानिनः प्रत्यक्षज्ञानिनश्चतुर्दशपूर्वविदोवा ऽप्रत्यक्षज्ञानिनोऽन्येषां संसारोत्तितीर्पूणां नव्यानां मोक्षंप्रति नेतारः सछुपदेशं प्रत्युपदेष्टारोनवंति। नच ते स्वयंबुद्धत्वादन्येन नीयंते तत्वाववोधं कार्यंतइत्यनन्यनेयाहिताहितप्राप्तिपरिहारंप्रति नान्यस्तेषां नेता विद्यतइति नावः। ते च बुद्धाः स्वयंबुद्धास्तीर्थकरगणधरादयः। हुशब्दश्च शब्दार्थे विशेषणेच। तथाच प्रदर्शितएव। तेच नवांतकराः संसारोपादाननूतस्य वा कर्मणोंतकरानवंतीति ॥ १६ ॥

ते णेव कुवंति ण कारवंति, नूताहिसंकाइ डुगुंठमाणा ॥ सयाजता विप्पणवंति धीरा, विसत्ति धीरा पाठांतरे (विस्सतिवीरा) य हवंति एगो ॥ १७ ॥ म्हरे य पाणे वुड्ढे य पाणे, ते आत्तठ पासइ सवलोए ॥ उवे हती लोगमिणं महंतं, बुद्धेऽपमत्तेसु परिवएज्ञा ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे तेमनी क्रिया केवी होय ते कहेछे. (ते के०) ते वीतराग सम्यक् ज्ञानी ते सावद्यानुष्ठानरूप एवी जे (नूताहि संकाइ डुगुंठमाणा के०) नूत एटले प्राणी तेनी हिंसानी शंकायें डुगंछित एटले प्राणीनी हिंसाने निंदता थका (णेवकुवंति के०) पोते हिंसा करे नही तथा (णकारवंति के०) अन्य पाशे हिंसा करावे नही. उपलक्षण थकी जे हिंसा करतो होय तेने अनुमोदे नही तेमज मृषा पोते बोले नही बीजा पाशे बोलावे नही तथा बोलताने अनुमोदन आपे नही एरीते सर्व पंचमहाव्रतोने सदाकाल पाले एम (सयाजता के०) सर्व काल यत्नवंत एटले पाप थकी निवर्त्ते (विप्पणवंतिधीरा के०) संयमने विषे नम्र होय विनयवंत होय एवा धैर्यवंत शुनट तुल्य ठतो संयमरूप नूमिने विषे कर्मरूप शुनटोने जीतवा समर्थ एवो (विसुत्तिधीरायहवंतिएगोके०) कोइएक शुद्ध सम्यक् मार्ग जाणी धैर्यवंत शूरवीर थाय ते परीसहादिकने जीते ॥ १७ ॥ हवे शुं जाणीने सावद्यानुष्ठान नकरे ते कहेछे. (म्हरेयपाणे वुड्ढेयपाणे के०) म्हरा एटले बालक ते अंही पृथिविकायादिक तथा बेंद्रीयादिक लघु जातीना जीवो लेवा तेपण जीवछे अने वुड्ढेय एटले महोटा हस्ति प्रमुख ते पण जीवछे एवुं जाणीने (तेआत्तउपासइ सवलोए के०) ते सहुजीवने सर्व चौद रज्वात्मक

(लोगस्सजाणंतितहागयाइं के०) तथागत एटले यथावस्थित जेमछे तेवीरीतें लोक मांहे सर्वे जीवोना भावी सुखडुःखादिकना जाण एवा थाय परंतु विभंग ज्ञानीनी पेरे आधुंपाछुं नजाणे (णेतारोअन्नेसिअणन्नणेया के०) एवा जीवो अन्य जीवोने संसारनो पार पमाडे परंतु तेने अन्य कोइ तत्वनो देखाडनार नथाय किंतुते डुइतिनिश्चें पोतेज (बुद्धाके०) तत्वना जाण थका (अंतकडाभवंतिके०) कर्मनो अंतकरनार होयछे ॥१६॥

॥ दीपिका–कर्मणा सावद्यारंभेण कर्म पापं न क्षपयंति बालामूढाः । अकर्मणा आश्रवनिरोधेन तु कर्म क्षपयंति धीरामहासत्त्वाः । मेधाविनः प्रज्ञावंतोलोभमयं परिग्रहमेवातीतालोभातीतावीतरागाः संतोषिणः संतुष्टास्ते एवंविधाअवीतरागाअपि पापं कर्म न कुर्वंति । लोभभयादतीताइति क्वचित्पाठः । लोभश्च भयं च लोभाद्वा भयं तस्मादतीताअतएव संतोषिणइति । लोभाईभावं दर्शयताऽपरकषायेभ्योभयस्याधिकत्वमुक्तं ॥ १५ ॥ ते वीतरागाअतीतानि पूर्वजन्मकृतानि प्रत्युत्पन्नानि वर्तमानानि अनागतान्यागामिभवभावीनि सुखडुःखानि लोकस्य प्राणिगणस्य तथागतानि यथास्थितानि जानंति ते जिनाः श्रुतकेवलिनोवा ऽन्येषां प्राणिनां मोक्षंप्रति नेतारः प्रापकास्तेच स्वयंबुद्धत्वादन्येन न नीयंते तत्त्वावबोधं कार्यंतइत्यनन्यनेयास्तेबुद्धाज्ञाततत्त्वास्तीर्थकरगणधरादयोहुनिश्चितमंतकराः संसारपारगाभवंति ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (णकम्मणेत्यादि) ते एवमसत्समयसरणाश्रितामिथ्यात्वादिनिर्दोषैरभिभूताः सावद्येतरविशेषानभिज्ञाः संतः कर्मक्षपणार्थमप्युद्यतानिर्विवेकतया सावद्यमेव कर्म कुर्वते । नच कर्मणा सावद्यारंभेण कर्म पापं क्षपयंत्यपनयंत्यज्ञत्वाद्बाला इव बालास्तइति । यथाच कर्म क्षिप्यते तथा दर्शयति । अकर्मणात्वाश्रवनिरोधेन तु अंतशः शैलेश्यवस्थायां कर्म क्षपयंति धीरामहासत्त्वाः सद्वैद्याइव चिकित्सयाऽऽमयानिति । मेधा प्रज्ञा विद्यते येषांते मेधाविनोहिताहितप्राप्तिपरिहाराभिज्ञालोभमयं परिग्रहमेवातीताः परिग्रहातिक्रमाल्लोभातीतावीतरागाइत्यर्थः । संतोषिणोयेन केनचित्संतुष्टाअवीतरागाअपीति । यदिवा यतएवाऽतीतलोभाअतएव संतोषिणइति । तएवंभूताभगवंतः पापमसदनुष्ठानापादितं कर्म न कुर्वंति नाददति । क्वचित्पाठः । लोभभयादतीताः । लोभश्च भयं च समाहारद्वंद्वः । लोभाद्वा भयं तस्मादतीताः संतोषिणइति । न पुनरुक्ता शंका विधेयेत्यतोलोभातीतत्वेन प्रतिषेधांशोदर्शितः । संतोषिणइत्यनेन च विध्यंशइति । यदिवा लोभातीतग्रहणेन समस्तलोभाभावः । संतोषिणइत्यनेनतु सत्यप्यवीतरागत्वेनोत्कटलोभाइति । लोभाभावं दर्शयन्नपरकषायेभ्योलोभस्य प्राधान्यमाह । येच लोभातीतास्तेऽवश्यं पापं न कुर्वंतइति स्थितं ॥ १५ ॥ येच लोभातीतास्ते किंभूताभगवं

पुनस्तानि नूतानि यच्चंकयाऽरंन्ने जुगुप्संति संतइत्येतदाशंक्याह । (डहरेयइत्यादि) ये केचन डहरेति लघवः कुंथ्वादयः सूक्ष्मावा ते सर्वेपि प्राणाः प्राणिनोये च वृक्षा बादरशरीरिणस्तान्सर्वानप्यात्मतुल्यान् आत्मवत्पश्यति सर्वस्मिन्नपि लोके यावत्प्रमाणं मम तावदेव कुंथोरपि यथावा मम दुःखमननिमतमेवं सर्वलोकस्यापि सर्वेषामपि प्राणिनां दुःखमुत्पद्यते दुःखादुद्विजंति । यथाचागमः । पुढविकाएणं नंते अक्कंते समाणे केरिसयं वेयणं वेएइइत्याद्याः सूत्राजापकाइति मत्वा तेपि नाक्रमितव्यान संघट्टनीया इत्येवं यः पश्यति तथा लोकमिमं महांतमुत्प्रेक्षते षड्जीवसूक्ष्मबादरनेदैराकुलत्वान्महांतं । यदिवाऽनादिनिधनत्वान्महान् लोकः । तथाहि । कालतोनव्याअपि केचन सर्वेणापि कालेन न सेत्स्यंतीति । यद्यपि द्रव्यतः षड्द्रव्यात्मकत्वात् क्षेत्रतश्चतुर्दशरज्जुप्रमाणतया सावधिकोलोकस्तथापि कालतोनावतश्चानाद्यनिधनत्वात्पर्यायाणां चानंतत्वान्महान लोकस्तमुत्प्रेक्षतइति । एवंच लोकमुत्प्रेक्षमाणोबुद्धोऽवगंतव्यः । सर्वाणि प्राणिस्थानान्यशाश्वतानि तथा नात्रापसदे संसारे सुखलेशोप्यस्तीत्येवं मन्यमानोऽप्रमत्तेषु संयमानुष्ठायिषु मध्ये तथानूतएव परिसमंताद्व्रजेद्यदिवा बुद्धः सन् प्रमत्तेषु गृहस्थेषु अप्रमत्तः सन् संयमानुष्ठाने परिव्रजेदिति ॥ १८ ॥

जे आयउ परउ वा वि णच्चा, अलमप्पणो होंति अलं परेसिं ॥
तं जोइनूतं च सया वसेज्जा, जे पाउ कुज्जा अणुवीति धम्मं॥१९॥
अत्ताण जो जाणति जो य लोगं, गइं च जो जाणइ णागइं च॥
जो सासयं जाण असासयं च, जातिं मरणं च जणोववायं॥२०॥

अर्थ-(जेआयउपरउवाविणच्चा के०) जे कोइ पोताना आत्माने तथा परना आत्माने सम्यक् प्रकारे जाणे एटले जेवीरीते पोताना आत्माने जाणे तेवीरीते परना आत्माने पण जाणे (अलमप्पणोहोंतिअलंपरेसिं के०) ते पुरुष पोताने उद्धरवाने समर्थ होय अने बीजाने पण उद्धरवाने समर्थ थाय (तंजोइनूतंचसयावसेज्जा के०) ते ज्योतिनूत प्रकाशवान चंद्रादित्य प्रदीपसमान गुरुने जाणीने सर्व काले सेवे (जेपाउकुज्जाअणुवीतिधम्मं के०) जे विचारीने श्रीवीतराग नाषित धर्मना स्वरूपने सम्यक् प्रकारें करी प्रगट करे ॥ १९ ॥ (अत्ताणजोजाणतिजोयलोगं के०) जे पोताना आत्माने सम्यक् प्रकारे जाणे जे लोकालोकनुं स्वरूप जाणे (गइंचजोजाणइणागइंचके०) जे जीवनी गति आगति जाणे अथवा चारे गतिनुं स्वरूप जाणे तथा अनागतनुं स्वरूप जाणे एटले ज्यां गयो थको जीव फरी नआवे एवी जे मोक्षगति तेना स्वरूपने जाणे (जोसासयंजाणअ

लोकने विषे पोतानाआत्म समान देखे (उवेहती लोगमिणं महंतं के०) ए महांत लोक एटले संसार तेने सारीरीते आलोचीने सर्वस्थानक अशाश्वता जाणीने आ संसारमां कोइ सुख नथी एवो जाणीने (बुद्ध के०) जे पंमित तत्वना जाण होय ते (अप्पमत्तेसुपरिव्वएज्जा के०) अप्रमत्तपणे संयमने विषे प्रवर्त्ते शुद्धो संयम पाले १८

॥ दीपिका—ते तीर्थंकरादयः पापं कर्म नैव कुर्वंति स्वयं । नवाऽन्येन कारयंति कुर्वंतमन्यं नानुजानंति नूताभिशंकया प्राणिघातनयेन पापं कर्म जुगुप्समानाः । एवं विधास्ते सदा सर्वकालं यताः संयताविप्रणमंति विविधं संयमानुष्ठानं प्रति प्रव्हीनवंति तत्पराः स्युर्धीराः । तथा एके केचन गुरुकर्माणो (विणत्ति) विज्ञप्तिर्ज्ञानं तन्मात्रेणैव वीरानानुष्ठानेन स्युः । नच ज्ञानमात्रेण सिद्धिः । यतः । अधीत्य शास्त्राणि नवंति मूर्खा, यस्तु क्रियावान् पुरुषः सविद्वान् ॥ संचिंत्यतामोषधमातुरं हि न ज्ञानमात्रेण करोत्यरोगम् ॥ १ ॥ १७ ॥—ये डहराजघवः कुंथ्वाद्याः सूक्ष्मावा ते सर्वेपि प्राणाः प्राणिनोये च वृद्धाबादरास्तान् सर्वानात्मवत्पश्यति सर्वलोके । तथा लोकमिमं षड्जीवैराकुलत्वान्महांतमुत्प्रेक्षते । अनाद्यनंतत्वाद्वा महांतं । यतोनव्याअपि केचन सर्वेणापि कालेन नसेत्स्यंतीति । यद्यपि द्रव्यतः षड्द्रव्यात्मकत्वात् क्षेत्रतश्चतुर्दशरज्जुमानत्वात्परिमितोलोकस्तथापि कालतोऽनाद्यनंतत्वाद्भावतः पर्यायाणामंतत्वान्महान् लोकस्तमुत्प्रेक्षते । बुद्धोज्ञाततत्त्वोऽप्रमत्तेषु यतिषु तथानूतएव परिव्रजेत्संयमे ॥ १८ ॥

॥ टीका—यावदद्यापि नवांतं न कुर्वंति तावत्प्रतिषेध्यमंशं दर्शयितुमाह । (तेणेव कुव्वंतीत्यादि) ते प्रत्यक्षज्ञानिनः परोक्षज्ञानिनोवा विदितवेद्याः सावद्यमनुष्ठानं नूतोपमर्दाभिशंकया पापं कर्म जुगुप्संतः संतोन स्वतः कुर्वंति नाप्यन्येन कारयंति कुर्वंतमप्यपरं नानुमन्यन्ते । तथा स्वतोन मृषावादं जल्पंति नान्येन जल्पयंति नाप्यपरं जल्पंतमनुजानंत्येवमन्यान्यपि महाव्रतान्यायोज्यानीति । तदेवं सदा सर्वकालं यताः संयताः पापानुष्ठानान्निवृत्ताविविधं संयमानुष्ठानं प्रति प्रणमंति प्रव्हीनवंति । के ते वीरामहापुरुषाइति । तथैकेचन हेयोपादेयं विज्ञायाऽपिशब्दात्सम्यक् परिज्ञाय वा तदेव निःशंकं यज्जिनैः प्रवेदितमित्येवं कृतनिश्चयाः कर्मणि विदारयितव्ये वीरानवंति । यदिवा परीषहोपसर्गानीकविजया द्वीरा इति । पांगतरंवा (विस्सुति वीराय नवंति एगे) एके केचन गुरुकर्माणोल्पसत्त्वाः विज्ञप्तिर्ज्ञानं तन्मात्रेणैव वीरानत्वनुष्ठाने नच ज्ञानादेवाऽभिलपिताचाप्तिरुपजायते । तथाहि । अधीत्यशास्त्राणि नवंति मूर्खायस्तुक्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ॥ संचिंत्यतामौषधमातुरं हि न ज्ञानमात्रेण करोत्यरोगं ॥ १ ॥ १७ ॥ कानि

क्रिया ॥ १ए ॥ किंचान्यत् । (अत्ताणमित्यादि) योह्यात्मानं परलोकयायिनं शरीरा द्व्यतिरिक्तं सुखडुःखाधारं जानाति यश्चात्महितेषु प्रवर्तते सञ्चात्मज्ञोनवति । ये न चात्मा यथावस्थितस्वरूपोऽहंप्रत्ययग्राह्योनिज्ञातोन्नवति तेनैवायं सर्वोपि लोकः प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपोविदितोन्नवति सएव चात्मज्ञोस्तीत्यादिक्रियावादं नापितुमर्हतीति द्वितीयवृत्तांतस्य क्रिया । यश्च लोकं चराचरं वैशाखस्थानस्थकटिस्थकरयुग्मपुरुषा कारं चशब्दादलोकं चानंताकाशास्तिकायमात्रं जानाति । यश्च जीवानामागतिमागमनं कुतः समागतानारकास्तिर्यंचोमनुष्यादेवाः कैर्वा कर्मनिर्नारकादित्वेनोत्पद्यंतइत्येवं यो जानाति । तथाऽनागतं चाऽनागमनं च कुत्र गतानां नागमनं न्नवति चकारात्तज्ञमनोपायं च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं योजानाति । तत्रानागतिः सिद्धिरशेषकर्मच्युतिरूपा लोकाग्रा काशदेशस्थानरूपा वा थाह्या साच सादिरपर्यवसाना । यश्च शाश्वतं नित्यं सर्ववस्तुजातं ड्रव्यास्तिकनयाश्रयादशाश्वतं वा नित्यं प्रतिक्षणविनाशरूपं पर्यायनयाश्रयणात् चकारा न्नित्यानित्यं चोन्नयाकारं सर्वमपि वस्तुजातं योजानाति । तथाहि । आगमः । णेरइया दवध्याएसासयानावध्याएअसासया । एवमन्येपि तिर्यगादयोऽष्टव्याः । अथवा निर्वाणं शाश्वतं संसारोऽशाश्वतस्तत्रगतानां संसारिणां स्वकृतकर्मवशगानामितश्चेतश्च गमनादिति । तथा जातिमुत्पत्तिं नारकतिर्यङ्मनुष्यामरजन्मलक्षणां च मरणं वाऽऽयुष्कक्षयलक्षणं । त था जायंतइति जनाः सत्वास्तेषामुपपातं जानाति सच नारकदेवयोर्नवतीति । अत्रच ज न्मचिंतायामसुमतामुत्पत्तिस्थानं योनिर्जेणनीया साच सचित्ताचित्तमिश्राच तथा शीता उष्णा मिश्राच तथा संवृता विवृता मिश्राचेत्येवं सप्तविंशतिविधेति । मरणं पुनस्तिर्यङ्म नुष्ययोश्च्यवनं ज्योतिष्कवैमानिकानामुद्वर्तनं न्नवनपतिव्यंतरनारकाणामिति ॥ २० ॥

अहो वि सत्ताण विउट्टणं च, जो आसवं जाणति संवरं च ॥
डुक्खं च जो जाणति निज्जरं च, सो नासिउ मरिहइ किरियवादं
॥ २१ ॥ सद्देसु रूवेसु असज्जमाणो, गंधेसु रसेसु अदुस्समा
णे ॥ णो जीवितं णो मरणाहिकंखी, आयाणगुत्ते वलया विमु
क्के तिबेमि ॥ २२ ॥ इतिश्री समवसरणमध्ययनं द्वादशमं संमत्तं ॥

अर्थ-(अहोविसत्ताण विउट्टणंच के०) अधोगतियें नरकादिकने विषे अशुन्न कर्म ने विपाके जीवने शरीर पीडादिक संताप उपजेढे ते सर्व जाणे (जोआसवंजाणतिसंव रंच के०) जे आश्रव इंड्रिय कषाय योग अने अव्रत इत्यादिक सर्व जाणे तथा संवर ते समिति गुप्ति अने परिसह इत्यादिक सर्व जाणे (डुक्खंचजोजाणतिनिज्जरंच के०)

सासयंचके०) तथा जे शाश्वता पदार्थ अने अशाश्वता पदार्थने पण जाणे (जातिंमरणंचज णोववार्य के०) तथा जे जीवना जन्म अने मरणने पण जाणे तथा जन एटले लो क तेनुं उपपात एटले उत्पत्ति देव नारकादिकने विषे थायछे ते पण जाणेछे ॥ २० ॥

॥ दीपिका—यआत्मनः स्वयं सर्वज्ञोगणधरादिर्वा परतस्तीर्थकरादेर्जीवादीन् पदार्था न् ज्ञात्वा परेन्यउपदिशति सआत्मनस्त्रातुमलं समर्थः परेषांच तं सर्वज्ञं गणधरादिकं वा ज्योतिर्नूतं पदार्थप्रकाशकत्वाच्चंद्रादित्यतुल्यं सदाऽऽवसेत सेवेत नित्यं गुरुसेवी नवे त् । यतः । नाणस्स होइ नागी, थिरयरउदंसणाचरित्तेय ॥ धन्ना आवकडाए गुरुकुलवा सं नमुंचंति ॥ १ ॥ ते के इत्याह । ये धर्मं श्रुतचारित्राख्यं साधुधर्मं श्राद्धधर्मंवाऽनुवि चिंत्य विचार्य तमेव धर्मं प्राडुष्कुर्युर्यथोक्तानुष्ठानतः प्रकटयेयुस्ते गुरुसेविनः स्युः॥१ए॥ आत्मानं यो जानाति यश्च लोकं चराचरं चशब्दादलोकं च जानाति । यश्च जीवानां ग तिमागतिं जानाति अनागतिं कुत्र गतानां नागमनं स्यादिति। यश्च शाश्वतं नित्यं सर्वं व स्तु इव्यास्तिकनयादशाश्वतं वा ऽनित्यं पर्यायनयाश्रयणात् चशब्दान्नित्यानित्यं च सर्वं योजानाति । यदागमः । णेरइआदव्वठ्या एसासयाजावठ्ाएअसासया । एवं तिर्यगाद योपि । अथवा शाश्वतं मोक्षमशाश्वतं नवं तथा जातिमुत्पत्तिं मरणं च नारकादीनां तथा जनानां सत्त्वानामुपपातं जानाति । उपपातोदेवनारकयोरुत्पत्तिरन्येषां ज्ञेया॥२०॥

॥ टीका—किंच । (जेआयउइत्यादि) यः स्वयं सर्वज्ञआत्मनस्त्रैलोक्योदरविवरवर्ति पदार्थदर्शी यथावस्थितं लोकं ज्ञात्वा तथा यश्च गणधरादिकः परतस्तीर्थकरादेर्जीवा दीन् पदार्थान् विदित्वा परेन्यउपदिशति सएवंनूतोहेयोपादेयवेद्यात्मनस्त्रातुमलमा त्मानं संसारावटात्पालयितुं समर्थोनवति । तथा परेषां सडुपदेशदानतस्त्राता जायते तं सर्वज्ञं स्वतएव सर्ववेदिनं तीर्थकरादिकं परतोवेदिनं च गणधरादिकं ज्योतिर्नूतं पदा र्थप्रकाशकतया चंद्रादित्यप्रदीपकल्पमात्महितमिछन् संसारडुःखोद्विग्नः कृतार्थमात्मा नं नावयन् सततमनवरतमावसेत सेवेत गुर्वंतिकएव यावज्जीवं वसेत् । तथाचोक्तं । नाणस्स होइ नागी, थिरपरउ दंसणे चरित्तेय ॥ धन्ना आवकहाए, गुरुकुलवासं ण मुंचंति । कएवं कुर्युरिति दर्शयति । ये कर्मपरिणतिमनुविचिंत्य माणुस्सखेत्तजाइत्या दि डुर्लनां च सद्धर्मावाप्तिं सद्धर्मंवा श्रुतचारित्राख्यं क्षांत्यादिकं दशविधसाधुधर्मं वा ऽनुविचिंत्य पर्यालोच्य ज्ञात्वा वा तमेव धर्मं यथानुष्ठानतः प्राडुष्कुर्युः प्रकटयेयुस्ते गुरु कुलवासं यावज्जीवमासेवंतइति । यदिवा ये ज्योतिर्नूतमाचार्यं सततमासेवंति तथा आगमज्ञाधर्ममनुविचिंत्य लोकं पंचास्तिकायात्मकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं वा प्राडुष्कुर्युरिति

गनिरोधस्वनावं चकारात्पुण्यपापे च योजानीते तथा दुःखमसातोदयरूपं तत्कारणं च योजानाति सुखं च तद्विपर्ययनूतं योजानाति तपसा निर्जरांच । इदमुक्तं नवति । यः कर्मबंधहेतून् तद्विपर्यासहेतूंश्च तुल्यतया जानाति । तथाहि । यथाप्रकारायावंतः, संसारावेशहेतवः ॥ तावंतस्तद्विपर्यासा, निर्वाणावेशहेतवः ॥ १ ॥ सएव परमार्थतोनापितुं वक्तुमर्हति । किंतदित्याह । क्रियावादमस्ति जीवोऽस्ति पुण्यमस्ति च पूर्वाचरितस्य कर्मणः फलमित्येवं वादमिति । तथाहि।जीवाजीवाश्रवसंवरबंधपुण्यपापनिर्जरामोक्षरूपान वापि पदार्थाः श्लोकद्वयेनोपात्तास्तत्र यश्चात्मानं जानातीत्यनेन जीवपदार्थोलोकमित्यनेनाजीवपदार्थस्तथा गत्या गतिः शाश्वतेत्यादिनानयोरेव स्वनावोपदर्शनं कृतं । तथाश्रवसंवरौ स्वरूपेणैवोपात्तौ । दुःखमित्यनेन तु बंधपुण्यपापानि गृहीतानि तदविनानावित्वाद्दुःखस्य । निर्जरायास्तु स्वानिधानेनैवोपादानं तत्फलनूतस्य मोक्षस्योपादानं द्रष्टव्यमिति । तदेवमेतावंतएव पदार्थास्तदन्युपगमे नवास्तीत्यादिकः क्रियावादोऽन्युपगतोनवतीति । यश्चैतान् पदार्थान् जानात्यन्युपगच्छसपरमार्थतः क्रियावादं जानाति ।ननुचाऽपरदर्शनोक्तपदार्थपरिज्ञानेन सम्यक्त्वादिकं कस्मान्नान्युपगम्यते तदुक्तपदार्थानामेवाघटमानत्वात् । तथाहि । नैयायिकदर्शनेन तावत्प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टांतसिद्धांतावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितंडाहेत्वानासछलजातिनिग्रहस्थानानीत्येते षोडश पदार्थाश्चनिहिताः । तत्र हेयोपादेयप्रवृत्तिरूपनया येन पदार्थपरिछित्तिः क्रियते तत्प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणं । तच्च प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दनेदाच्चतुर्द्धा । तत्रेंद्रियपदार्थसंनिकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेशमव्यनिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं । तदत्रेंद्रियार्थयोर्यः संबंधस्तस्माद्यदुत्पन्नं नानिव्यक्तं ज्ञानं न सुखादिकमव्यपदेश्यमिति । व्यपदेशत्वेनाशब्दप्राप्तेरव्यनिचारि तद्विचंद्रज्ञानवद्व्यनिचरतीति व्यवसायात्मकमिति । निश्चयात्मकं प्रत्यक्षं तत्रास्य प्रत्यक्षता न बुध्यते । तथाहि । यत्रात्मार्थग्रहणंप्रति साक्षाद्व्याप्रियते तदेव प्रत्यक्षं । तच्चावधिमनःपर्यायकेवलात्मकं।एतच्चापरोपाधिद्वारेण प्रवृत्तेरनुमानवत्परोक्षमिति । उपचारप्रत्यक्षं तु स्यान्नचोपचारस्तत्त्वचिंतायां व्याप्रियतइति।अनुमानमपि पूर्ववच्छेपवत्सामान्यतोदृष्टमिति त्रिधा । तत्र कारणात्कार्यानुमानं पूर्ववत्कार्यात्कारणानुमानं शेपवत्सामान्यतोदृष्टांतनूतमेकं विकसितं दृष्ट्वा पुष्पिताश्चूताजगतीति । यदिवा देवदत्तादौ गतिपूर्विकां स्थानात् स्थानांतरावाप्तिं दृष्ट्वाऽऽदित्ये गत्यनुमानमिति । तत्राप्यन्यथानुपपत्तिरेव गमिका न कारणादिकं तयाविना कारणस्य कार्यंप्रति व्यनिचारात् । यत्रतु सा विद्यते तत्र कार्यकारणादिव्यतिरेकेणापि गम्यगमकनावोदृष्टः । तद्यथा । नविष्यति शकटोदयः कृत्तिकादर्शनादिति । तदुक्तं । अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं॥ नान्यथाऽनुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ १ ॥ अपिच प्रत्यक्षस्याप्रामाण्ये तत्पूर्वकस्या

तथा पापोदयथकी डुःख उत्पन्न थाय ते जाणे अने तपत्नक्षणथकी पुण्यना बेता लीश नेद पण जाणे वली निर्जराना बारनेदने पण जाणे (सोनासिउमरिहइकिरय वादं के०) तथा बंधना चार नेदने पण जाणे ते परमार्थथकी क्रियावाद बोलवा योग्य थाय ॥ २१ ॥ एवा जे सम्यक् वादी तेने फल देखाडेढे. (सद्देसुरूवेसुअसज्जमा णो के०) शब्द जे वीणा वंश प्रमुख श्रोत्रेंड्रियने सुखना आपनार तेने विषे तथा रूप ते अनेक काष्टकर्म चित्रकर्म तथा लिप्यकर्मादिकने विषे असज्जमान एटले तेना उपर रागद्वेषने टालतो थको तथा (गंधेसुरसेसुअडुस्समाणे के०) गंधने विषे, रसने विषे अडुसमान एटले द्वेषने अण करतो थको (णोजीवितंणोमरणाहिकंरकी के०) जीवितव्य अने मरणनी वांबा नकरे समता नावे वर्ते (आयाणगुत्ते के०) आदान एटले संयम तेने विषे गुप्त एटले तेनो रक्षपाल बतो (वलयाविमुक्के के०) वलय एटले माया तेना थकी विमुक्त बतो संयम पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२२॥ इतिश्री द्वितियसूत्रकृतांगनेविषे समवसरण नामे बारमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका—सत्त्वानां स्वकर्मजुजामधोनारकादौ विकुट्टनीं पीडां योजानाति । यश्चाश्र वं संवरं च जानाति तथा डुःखं चशब्दात्सुखंच तथा तपसा निर्जरां च जानाति । कोर्थः । बंधहेतून् कर्मक्षयहेतूंश्च तुल्यतया जानाति । यतः । यथाप्रकारायावंतः, संसा रावेशहेतवः ॥ तावंतस्तद्विपर्यासा, निर्वाणावेशहेतवः ॥१॥ सएव तत्त्वतोजाषितुं वक्तुम र्हति क्रियावादं जीवाद्यस्तित्वरूपमिति । अत्रान्यमतखंडनं वृत्तितोज्ञेयं ॥ २१ ॥ शब्दे षु रूपेषु मनोज्ञेषु असक्तन् संगमकुर्वन् गंधेषु रसेष्वमनोज्ञेषु अद्विष्यन् द्वेषमकुर्वन् । श ब्दादिषु इंड्रियविषयेष्विष्टानिष्टेषु रागद्वेषरहितइत्यर्थः । एवंविधोजीवितमसंयमजीवितं ना जिकांक्षेत् परीषहोपसर्गैः पीडितोमरणमपि नाजिकांक्षेत् । आदानं संयमस्तेन गुप्तः स हि वलयं जाववलयं माया तया विमुक्तइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ समाप्तं सम वसरणाख्यं द्वादशमध्ययनं ॥

॥ टीका—किंच (अहोविइत्यादि) सत्वानां स्वकृतकर्मफलजुजामधस्तान्नारकादौ डु ष्कृतकर्मकारिणां विविधां विरूपां वा कुट्टनां जातिजरामरणरोगशोककृतां शरीरपीडां च शब्दात्तदजावोपायं योजानाति । इदमुक्तंजवति । सर्वार्थसिद्धादारतोधःसप्तमीं नरकजु वं यावदसुमंतः सकर्माणोविवर्तंते तत्रापि ये गुरुतरकर्माणस्तेऽप्रतिष्ठाननरकयायिनोज वंतीत्येवं योजानीते तथा आश्रवत्यष्टप्रकारकं कर्म येन स आश्रवः सच प्राणातिपात रूपोरागद्वेषरूपोवा मिथ्यादर्शनादिकोवेति तं तथा संवरणमाश्रवनिरोधरूपं यावदशेषयो

इति यत्सिद्धावन्यस्यार्थस्यानुषंगेण सिद्धिः सोधिकरणसिद्धांतः । यथेंद्रियव्यतिरिक्तोज्ञानात्माऽस्ति दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणादिति । तत्रानुषंगिणोर्थाइंद्रियनानात्वं नियतविषयाणींद्रियाणि स्वविषयग्रहणलिंगानि च ज्ञातुर्ज्ञानसाधनानि स्पर्शादिगुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं गुणाधिकरणमनियतविषयाश्चेतनाइति । पूर्वार्थसिद्धावेतेऽर्थाः सिध्यंति नैतैर्विना पूर्वार्थः संभवतीति । अपरीक्षितार्थाभ्युपगमात्तद्विशेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धांतः । तद्यथा । किंशब्दइति विचारे कश्चिदाह । अस्तु द्रव्यं शब्दः सतु किंनित्योऽथानित्यइत्येवं विचारः । सचायं चतुर्विधोपि सिद्धांतोन ज्ञानविशेषादतिरिच्यते । ज्ञानविशेषस्यात्मगुणत्वाद्गुणस्य च गुणिग्रहणेन ग्रहणादपृथग्गुपादानमिति । अथावयवाः प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि । तत्र साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञाय नित्यः शब्दोऽनित्योवेति । हिनोति गमयति प्रतिज्ञातमर्थमिति हेतुः । तथोत्पत्तिधर्मकत्वात्साध्यसाधर्म्यात्तद्धर्मभावे दृष्टांतः । उदाहरणं यथा घटइति। वैधर्म्योदाहरणं यदि नित्यं न भवति तदुत्पत्तिमदपि न भवति यथाकाशमिति । तथा न तथेति वा पक्षधर्मोपसंहारउपनयः । तद्यथा । अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद्घटवत्तथाचायं । अनित्यत्वाभावे कृतकत्वमपि नभवत्याकाशवत् तथाऽयमिति । प्रतिज्ञाहेत्वोः पुनर्वचनं निगमनं तस्मादनित्यइति । तत्रामी पंचाप्यवयवायदि शब्दमात्रं ततः शब्दस्य पौद्गलिकत्वात्पुद्गलानां चाजीवग्रहणेन ग्रहणान्नपृथग्गुपादानं न्याय्यमथतज्जं ज्ञानं ततोजीवग्रहणेनैवोपादानमिति । ज्ञानविशेषपदार्थताभ्युपगमे च पदार्थबहुत्वं स्यादनेकप्रकारत्वाज्ज्ञानविशेषाणामिति। संशयादूर्ध्वं भवितव्यताप्रत्ययः सदर्थपर्यालोचनात्मकस्तर्कः । यथा भवितव्यमत्र स्थाणुना पुरुषेणवेत्ययमपि ज्ञानविशेषएव । नच ज्ञानविशेषाणां ज्ञातुरभिन्नानां पृथक्पदार्थपरिकल्पनं समनुजानते विद्वांसः । संशयतर्काभ्यामुत्तरकालभावी निश्चयात्मकः प्रत्ययः । निर्णयोयमपि प्राग्वन्न ज्ञानादतिरिच्यते । किंचास्य निश्चयात्मकतया प्रत्यक्षादिप्रमाणांतर्भावान्न पृथक्निर्देशोन्याय्यइति । तिस्रः कथावादोजल्पोवितंडा चेति । तत्र प्रमाणतर्कसाधनोपालंभः सिद्धांताविरुद्धः पंचावयवोपपन्नः प्रतिपक्षपरिग्रहोवादः । सच तत्त्वज्ञानार्थं शिष्याचार्ययोर्भवति । सएव विजिगीषुणा सार्धं छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालंभोजल्पः । सएव प्रतिपक्षस्थापनाहीनोवितंडेति । तत्रासां तिसृणामपि कथानां भेदएव नोपपद्यते यतस्तत्त्वचिंतायां तत्त्वनिर्णयार्थं वादोविधेयोन छलजल्पादिना तत्त्वागमः कर्तुं पार्यते । छलादिकं हि परवंचनार्थमुपन्यस्यते । नच तेन तत्त्वावगतिरिति।सत्यपि भेदे नैषां पदार्थता यतोयदेव परमार्थतोवस्तुवृत्त्या वस्त्वस्ति तदेव परमार्थतयाऽभ्युपगंतुं युक्तं । वादास्तु पुरुषेच्छावशेन भवंतोऽनियतावर्तंते ते न तेषां परमार्थतेति । किंच पुरुषेच्छानुविधायिनोवादाः कुक्कुटलावकादिष्वपि पक्षप्रति

प्यनुमानस्याप्रामाण्यमिति । प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानं । यथा गौर्गवयस्तथा ऽत्रच संज्ञासंज्ञिसंबंधप्रतिपत्तिरुपमानार्थोऽत्रापि सिद्धायामन्यथानुपपत्तावनुमानलक्षण त्वेन तत्रैवांतर्भावात्पृथक्प्रमाणत्वमनुपपन्नमेव । अथ नास्त्यनुपपत्तिस्ततोव्यभिचाराद प्रमाणतोपमानस्य । शाब्दमपि न सर्वं प्रमाणं किंतर्ह्याप्तप्रणीतस्यैवागमस्य प्रामाण्यान्न चार्हद्व्यतिरेकेणापरस्याप्तता युक्तियुक्तेत्येतच्चान्यत्र निर्लोडितमिति । किंच सर्वमप्येत त्प्रमाणमात्मनोज्ञानं । ज्ञानं चात्मनोगुणः पृथक्पदार्थतयाभ्युपगंतुं न युक्तोरूपरसादी नामपि पृथक्पदार्थतापत्तेः । अथ प्रमेयग्रहणेनेंद्रियार्थतया तेप्याश्रिताः सत्यमाश्रिता नतु युक्तियुक्ताः । तथाहि । द्रव्यव्यतिरेकेण तेषामभावात्तद्ग्रहणेच तेषामपि ग्रहणं सिद्धमेवेति न युक्तं पृथगुपादानं । प्रमेयं त्वात्मशरीरेंद्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभा वफलडुःखापवर्गाः । तत्रात्मा सर्वस्य द्रष्टोपभोक्ता चेछाद्वेषप्रयत्नसुखडुःखज्ञानानुमेयः। सच जीवपदार्थतया गृहीतएवाऽस्माभिरिति । शरीरं तु तस्य भोगायतनं भोगायतनानीं द्रियाणि भोक्तव्याइंद्रियार्थाः । एतदपि शरीरादिकं जीवाजीवग्रहणेनोक्तमस्माभिरिति । उपयोगोबुद्धिरित्येतच्चज्ञानविशेषः । सच जीवगुणतया जीवोपादानतयोपात्तएव । सर्व विषयमंतःकरणं युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिलिंगं मनस्तदपि द्रव्यमनःपौजलिकमजीवग्रहणेन गृहीतं भावमनस्त्वात्मगुणत्वाज्जीवग्रहणेनेति । आत्मनः सुखडुःखसंवेदनानां निवर्तनका रणं प्रवृत्तिः सापि पृथक्पदार्थतया नाभ्युपगंतुं युक्ता । तथाहि । प्रवृत्तिरित्यात्मेछा सा चात्मगुणएवात्माऽभिप्रायतया ज्ञानविशेषत्वादात्मानं दूषयतीति दोषः । तद्यथा । अ स्यात्मनो नवेदं शरीरमपूर्वमनादित्वादस्य नाप्यनुत्तरत्वात्संततेरिति । योयमात्मनोध्यवसा यः सदोषोरागद्वेषमोहादिकोवा दोषः । अयमपि दोषोजीवाभिप्रायतया तदंतर्भावीति न पृथग्वाच्यः । प्रेत्यभावः परलोकसद्भावोयमपि ससाधनोजीवाजीवग्रहणेनोपात्तः । फलमपि सुखडुःखोपभोगात्मकं तदपि जीवगुणे एवांतर्भवतीति न पृथगुपदेष्टव्यमिति । डुःखमित्येतदपि विविधबाधनायोगरूपमिति फलादतिरिच्यते । जन्ममरणप्रबंधोछेदरूप तया सर्वडुःखप्रहाणलक्षणोमोक्षः सचास्माभिरुपात्तएवेति । किमित्यनवधारणात्मकः प्रत्ययः संशयोऽसावपि निर्णयज्ञानवदात्मगुणएवेति । येन प्रयुक्तः प्रवर्तते तत्प्रयोजनं तदपीछाविशेषणत्वादात्मगुणएव । अविप्रतिपत्तिविषयापन्नोऽर्थोदृष्टांतोऽसावपि जीवा जीवयोरन्यतरः । नचैतावतास्य पृथक्पदार्थता युक्ताऽतिप्रसंगादवयवग्रहणेन च तस्योत्त रत्र ग्रहणादिति । सिद्धांतश्चतुर्विधः । तद्यथा । सर्वतंत्राविरुद्धस्तंत्रेऽधिकृतोर्थः सर्वतंत्र सिद्धांतः । यथा स्पर्शनादीनींद्रियाणि स्पर्शादयइंद्रियार्थाः प्रमाणैः प्रमेयस्य ग्रहणमि ति समानं । तंत्रसिद्धः परतंत्रासिद्धः प्रतितंत्रसिद्धांतोयथा सांख्यानां नाऽसतआत्मला भोनच सतः सर्वथाविनाशइति । तथा चोक्तं । नासतोजायते भावोनाभावोजायते सत

ज्ञात्यंतरं हि सइत्यादि। अथ रूपरसगंधस्पर्शारूपिद्रव्यवृत्तेर्विशेषगुणास्तथा संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे इत्येते सामान्यगुणाः सर्वद्रव्यवृत्तित्वा त्। तथा बुद्धिः सुखदुःखेछा द्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराआत्मगुणाः। गुरुत्वं पृथिव्यु दकयोर्द्रव्यस्वभावत्वेन परोपाधिकत्वं पृथिव्युदकाग्निपु स्नेहोऽम्भस्येव वेगाख्यः संस्कारो मूर्तद्रव्येष्वेव आकाशगुणः शब्दइति। तत्र संख्यादयः सामान्यगुणारूपादिवद्द्रव्यस्व भावत्वेन परोपाधिकत्वाद्गुणाएव न भवंति। अथापि स्युस्तथापि न गुणानांपृथक्त्व व्यवस्था। तत्पृथक्त्वभावे द्रव्यस्वरूपहानेर्गुणपर्यायवत् द्रव्यमिति कृत्वा नांतरीयक तया द्रव्यग्रहणेनैव ग्रहणं न्याय्यमिति न पृथग्भावः। किंच तस्य भावस्तत्वमित्युच्यते। भावप्रत्ययश्च यस्य गुणस्य हि भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशस्तदभिधाने त्वतलावित्यनेन भव ति। तत्र घटोरक्तउदकस्याहारकोजलवान् सर्वैरेव घटउच्यते। अत्र च घटस्य भावोघट त्वं रक्तस्य भावोरक्तत्वं आहारकस्यभावआहारकत्वं जलवतोभावोजलवत्वमित्यत्र घटसा मान्यरक्तगुणक्रियाद्रव्यसंबंधरूपाणां गुणानां सद्भावात् द्रव्ये पृथुबुध्नाकारउदकाद्याहरण क्षमे कुटकाख्ये शब्दस्य घटादेरभिनिवेशस्तत्र त्वतलाविह च रक्ताख्यकोगुणोयत्सद्भावात्कत रश्चतद् द्रव्यं यत्र शब्दनिवेशोयेन भावप्रत्ययः स्यादिति। किमिदानीं रक्तस्य भवोरक्तत्व मिति न भवितव्यं भवितव्यमुपचारेण। तथाहि। रक्तइत्येतद्द्रव्यत्वेनोपचर्य तस्य सामा न्यं भावइति रक्तत्वमिति। नचोपचारस्तत्वचिंतायामुपयुज्यते शब्दसिद्धावेव तस्य कृता र्थत्वादिति। शब्दश्चाकाशस्य गुणएव न भवति तस्य पौद्गलिकत्वादाकाशस्य चामूर्तत्वा दिति। शेषं तु प्रक्रियामात्रं न साधनदूषणयोरंगं। क्रियापि द्रव्यसमवायिनी गुणवत्पृथ गाश्रयितुं न युक्तेति। अथ सामान्यं तद्द्विधा परमपरंच। तत्र परं महासत्वाख्यं द्रव्यादि पदार्थव्यापि। तथाचोक्तं। सदिति यतोद्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता अपरं च द्रव्यत्वगुण त्वकर्मत्वात्मकं। तत्र न तावन्महासत्तायाः पृथक्पदार्थता युज्यते यतस्तस्यां यः सदि ति प्रत्ययः सकिमपरसत्तानिबंधनउत स्वतएव तत्। यद्यपरसत्तानिबंधनस्तत्राप्ययमेव विकल्पोऽतोऽनवस्था। अथ स्वतएव ततस्तद् द्रव्यादिष्वपि स्वतएव सत्प्रत्ययोभविष्य तीति किमपरसत्तयाऽजागलस्तनकल्पया विकल्पितया। किंच द्रव्यादीनां किं सतां सत्तया सत्प्रत्ययउताऽसतां तत्। यदि सतां स्वतएव सत्प्रत्ययोभविष्यति किंतया। असत्यप क्षेतु शशविषाणादिष्वपि सत्तायोगात्सत्प्रत्ययः स्यादिति। तथाचोक्तं। स्वतोर्थाः संतु सत्तावत्सत्तया किं सदात्मनां॥ असदात्मसु नैषा स्यात्सर्वथाऽतिप्रसंगतइत्यादि। एतदे व दूषणमपरसामान्येऽप्यायोज्यं तुल्ययोगक्षेमत्वात्। किंचास्माभिरपि सामान्यविशेष रूपत्वाद्वस्तुनः कथंचित्तदिष्यतएवेति तस्यच कथंचित्तदव्यतिरेकात्तद्द्रव्यग्रहणेनैव ग्रह णमिति। अथ विशेषास्ते चात्यंतव्यावृत्तिबुद्धिहेतुत्वेन परैराश्रीयंते। तत्रेदं चिंत्यते।

पक्षपरिग्रहेण नवंत्यतस्तेषामपि तत्त्वप्राप्तिः स्यान्नचैतदिष्यतइति । असिद्धानैकांतिक विरुद्धाहेत्वानासाः । हेतुवदानासंतइति हेत्वानासास्तत्र सम्यग्घेतूनामपि न तत्त्वव्यव स्थितिः किंपुनस्तदानासानां। तथाहि। इह यन्नियतं वस्त्वस्ति तदेव तत्त्वं नवितुमर्हति हे तुवस्तु। क्वचिद्वस्तुनि साध्ये हेतवः क्वचिदहेतवइत्यनियतास्तइति । अथ छलं अर्थविघा तोऽर्थविकल्पोपपत्तेरिति । तत्रार्थविशेषे विवक्षितेऽनिहिते वक्तुरनिप्रायादर्थांतरकल्पना वाक्छलं ।यथा नवकंबलोऽयं देवदत्तः। अत्र च नवः कंबलोऽस्येति वक्तुरनिप्रायः।विग्रहे च विशेषोन समासे । तत्रायं छलवादी नवः कंबलोऽस्येत्येतद्भवतानिहितमिति कल्प यति नचायं तथेत्येवं प्रतिषेधयति । तत्र छलमित्यसदर्थानिधानं। तद्यदि छलं न तर्हि तत्त्वं तत्त्वं चेन्न तर्हि छलं परमार्थरूपत्वात्तस्येति। तदेवं छलं तत्त्वमित्यतिरिक्ता वाचोयु क्तिः। दूषणानासास्तु जातयस्तत्र सम्यक्दूषणस्यापि न तत्त्वव्यवस्थितिरनियतत्वात् । अनियतत्त्वं च यदेवैकस्मिन् सम्यक् दूषणं तदेवान्यत्र दूषणानासं पुरुषशक्त्यपेक्षत्वाच्च दू षणानासव्यवस्थितेरनियतत्त्वमिति । कुतः पुनर्दूषणानासरूपाणां जातीनामवास्तव त्वात्तासामिति। वादकाले वादी प्रतिवादी वा येन निगृह्यते तन्निग्रहस्थानं तच्च वादिनो साधनांगवचनं प्रतिवादिनस्तद्दोषोद्भावनं विहाय यदन्यदनिधीयते नैयायिकैस्तत्प्रलापमा त्रमिति । तच्च प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञांतरं प्रतिज्ञाविरोधइत्यादिकमेतच्च विचार्यमाणं न निग्रहस्थानं नवितुमर्हति नवदपि च पुरुषस्यैवापराधं कर्तुमलं न त्वेतत्तत्त्वं नवितुमर्हति। वक्तृगुणदोषौ हि परार्थे अनुमानेऽधिक्रियेते नतु तत्त्वमिति। तदेवं न नैयायिकोक्तं तत्त्वं तत्त्वेनाश्रयितुं युज्यते तस्योक्तनीत्या सदोषत्वादिति।नापि वैशेषिकोक्तं तत्त्वमिति।तथाहि। द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानावास्तत्त्वमिति । तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुराकाशं कालोदिगात्मा मनइति नव द्रव्याणि । तदत्र पृथिव्यप्तेजोवायूनां पृथग्द्रव्यत्वमनुपप न्नं । तथाहि । तएव परमाणवः प्रयोगविस्रसान्यां पृथिव्यादित्वेन परिणमंतोपि न स्व कीयं द्रव्यत्वं त्यजंति। नचावस्थानेदेन द्रव्यनेदोयुक्तोऽतिप्रसंगादिति । आकाशकाल योश्चास्मानिरपि द्रव्यत्वमन्युपगतमेव । दिशस्त्वाकाशावयवनूतायाअनुपपन्नत्वं पृथ ग्द्रव्यत्वमतिप्रसंगदोषादेव। आत्मनश्च स्वशरीरमात्रव्यापिनउपयोगलक्षणस्यान्युपग तद्रव्यत्वमिति। मनसश्च पुद्गलविशेषतया पुद्गलद्रव्येऽतर्नावइति परमाणुवद्भावान्म नसश्च जीवगुणत्वादात्मन्यंतर्नावइति। यदपि तैरनिधीयते यथा पृथिवीत्वयोगात्पृथिवीति तदपि स्वप्रक्रियामात्रमेव। यतोनहि पृथिव्याः पृथग्नूतं पृथिवीत्वमपि येन तद्योगात्पृ थिवी नवेदपि तु सर्वमपि यदस्ति तत्सामान्यविशेषात्मकं नरसिंहाकारसुनयस्वनावमिति। तथा चोक्तं । नान्वयः सहनेदत्वा,न्न नेदोन्वयवृत्तितः ॥ मृद्भेदद्वयसंसर्ग, वृत्तिजात्यंतरं घटः ॥ १ ॥ तथा नरस्य सिंहरूपत्वान्न सिंहोनररूपतः ॥ शब्दविज्ञानकार्याणां नेदा

क्तिकमेव स्वदर्शनानुरागेणाभ्युपगम्यतइति । आत्मनश्चाकर्तृत्वाभ्युपगमे कृतनाशोऽकृताग मश्च स्यात् । बंधमोक्षाभावश्च निर्गुणत्वे च ज्ञानशून्यतापत्तिरित्यतोबालप्रलापमात्रं । प्र कृतेश्चाचेतनायाआत्मार्थं प्रवृत्तिर्युक्तिविकलेति । अथ बौद्धमतं निरूप्यते । तत्रहि पदा र्थाः द्वादशायतनानि । तद्यथा । चक्षुरादीनि पंच रूपादयश्च विषयाः पंच शब्दायतनं धर्मा यतनंच धर्माः सुखादयो द्वादशायतनपरिछेदकत्वे प्रत्यक्षानुमाने द्वेएव प्रधाने प्रमाणे । तत्र चक्षुरादीन्द्रियाण्यजीवग्रहणेनैवोपात्तानि । भावेंद्रियाणितु जीवग्रहणेनेति । रूपाद यश्च विषयाअजीवापादनेनोपात्तान पृथगुपादातव्याः । शब्दायतनं तु पौजलिकत्वाहन्द स्याजीवग्रहणेन ग्रहणं । नच प्रतिव्यक्ति पृथक्पदार्थता युक्तिसंगतेति । धर्मात्मकं सुखं डुः खंच यद्यसातोदयरूपं ततोजीवगुणत्वाज्जीवेंतर्नावः । अथ तत्कारणं कर्म ततः पौज लिकत्वादजीवइति । प्रत्यक्षं च तैर्निर्विकल्पकमिष्यते तच्चानिश्चयात्मकतया प्रवृत्तिनिवृ त्त्योरनंगमित्यप्रमाणमेव । तदप्रामाण्ये तत्पूर्वकत्वादनुमानमपीति । शेषस्त्वाक्षेपपरिहारो न्यत्र सुविचारितइति नेह प्रतन्यतइत्यनया दिशा मीमांसकलोकायतमताश्रितितत्वनिराक रणं सुबुध्या विधेयं । तयोरत्यंतलोकविरुद्धपदार्थानां श्रयणान्न साक्षादुपन्यासः कृतइति । तस्मात्पारिशेष्यसिद्धाअर्हदुक्तानव सप्त पदार्थाः सत्यास्तत्परिज्ञानं च क्रियावादे हेतु र्नापरपदार्थपरिज्ञानमिति ॥ २१ ॥ सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिहीर्षुः सम्यग्वादपरिज्ञान फलमादर्शयन्नाह । (सद्देसुइत्यादि) शब्देषु वेणुवीणादिषु श्रुतिसुखदेषु रूपेषु च नय नानंदकारिष्वासंगमकुर्वन् गार्ध्यमकुर्वाणोऽनेन रागोगृहीतस्तथा गंधेषु कुथितकलेवरादि षु रसेषु चांतप्रांताशनादिषु अडुष्यमाणोमनोज्ञेषु द्वेषमकुर्वन्निदमुक्तं भवति । शब्दादिष्विं द्रियविषयेषु मनोज्ञेतरेषु रागद्वेषाभ्यामनपदिश्यमानोजीवितमसंयमजीवितं नाभिकांक्षे न्नापि परीषहोपसर्गैरभिडुतोमरणमभिकांक्षेत् । यदिवा जीवितमरणयोरनभिलाषी संय ममनुपालयेदिति । तथा मोक्षार्थिनादीयते गृह्यतइत्यादानं संयमस्तेन तस्मिन्वा सति गुप्तोयदिवा मिथ्यात्वादिनादीयते इत्यादानमष्टप्रकारं कर्म तस्मिन्नादातव्ये मनोवाक्का यैर्गुप्तः समितश्च तथा भाववलयं माया तया विमुक्तोमायामुक्तः । इति परिसमाप्त्यर्थं । ब्र वीमीति पूर्ववत् । नयाः पूर्ववदेव ॥ २२ ॥ समाप्तं समवसरणाख्यं द्वादशमध्ययनमिति ॥

हवे यथातथ्य नामे तेरमो अध्ययन प्रारंनियें ठेयें. बारमां अध्ययनमां जुदा जुदा दर्श नीठना समवसरण कह्या नंतर तेरमां अध्ययनमां यथातथ्य एटले सत्य स्वरूप देखाडे वे.

आहत्तहीयं तु पवेयइस्सं, नाणप्पकारं पुरिसस्स जातं ॥ सत्त
अधम्मं असत्त असीलं, संतिं असंतिं करिस्सामि पाउं ॥ १ ॥

या तेषु विशेषबुद्धिः सा नापरविशेषहेतुका ऽऽश्रयितव्याऽनवस्थानयात्। स्वतः समाश्र यणेच तद्वद्द्रव्यादिष्वपि विशेषबुद्धिः स्यान्किंद्रव्यादिव्यतिरिक्तैर्विशेषैरिति । द्रव्यादि व्यतिरिक्तास्तु विशेषाश्चस्मान्निरप्याश्रीयंते सर्वस्यसामान्यविशेषात्मकत्वादिति । एतत्तु प्रक्रियामात्रं । तद्यथा । नित्यद्रव्यवृत्तयोंऽत्याविशेषानित्यद्रव्याणिच चतुर्विधाः परमा णवोमुक्तात्मानोमुक्तमनांसि चेति निर्युक्तिकत्वादपकर्णयितव्यमिति । समवायस्त्वयुत सिद्धानामाधाराधेयनूतानां यइह प्रत्ययहेतुः ससमवायइत्युच्यते । असावपि नित्यश्चैक श्चाश्रीयते। तस्यच नित्यत्वात्समवायिनोपि नित्याश्चापद्येरन् । तदनित्यत्वे च तस्याप्यनि त्यत्वापत्तिस्तदाधाररूपत्वात्तस्य तदेकत्वाच्च सर्वेषां समवायिनामेकत्वापत्तिस्तस्य चानेक त्वमिति । किंचायं समवायः संबंधस्तस्य च द्विष्टत्वादयुतसिद्धत्वमेव दंडदंडिनोरिव वीर णानांच कटोत्पत्तौ तद्रूपतया विनाशः कटरूपतयोत्पत्तिरन्वयरूपतया व्यवस्थानमिति डुग्धदध्नोरिवेत्येवं वैशेषिकमतेपि न सम्यक्पदार्थावस्थितिरिति । सांप्रतं सांख्यदर्शने त त्वनिरूपणं प्रक्रम्यते । तत्र प्रकृत्यात्मसंयोगात्सृष्टिरुपजायते । प्रकृतिश्च सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था ततोमहान् महतोऽहंकारोऽहंकारादेकादशेंद्रियाणि पंचतन्मात्राणि तन्मा त्रेन्यः पंचनूतानीति चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं सचाकर्ता निर्गुणोऽन्नोक्तेति। तत्र परस्परवि रुद्धानां सत्त्वादीनां गुणानां प्रकृत्यात्मनां नियामकं गुणिनमंतरेणैकत्रावस्थानं न युज्य ते कृष्णसितादिगुणानामिव ।नच महदादिविकारे जन्ये प्रकृतिवैषम्योत्पादने कश्चिद्धेतुस्त द्व्यतिरिक्तवस्त्वंतरानन्युपगमादात्मनश्चाकर्तृत्वेनाकिंचित्करत्वात्स्वन्नाववैषम्यान्युपगमेतु निर्हेतुकत्वापत्तेर्नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वा स्यादिति । उक्तंच । नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वा, हेतोरन्यानपेक्षणात् ॥ अपेक्षातोहि नावानां, कादाचित्कत्वसंनवः ॥ १ ॥ अ पिच । महदहंकारौ संवेदनादनिन्नौ पश्यामः । तथाहि । बुद्धिरध्यवसायोऽहंकार श्चाहं सुख्यहं डुःखीत्येवमात्मनः प्रत्ययस्तयोश्चिद्रूपतयाऽऽत्मगुणत्वं न जडरूपायाः प्रकृते र्विकारावेताविति । अपिच येयं तन्मात्रेन्योनूतोत्पत्तिरिष्यते। तद्यथा। गंधतन्मात्रा त्पृथिवी रसतन्मात्रादापः रूपतन्मात्रात्तेजः स्पर्शतन्मात्रा द्वायुः शब्दतन्मात्रादाकाशमिति सापि न युक्तिक्षमा । यतो यदि बाह्यनूताश्रयेणैतदन्निधीयते तदयुक्तं । तेषां सर्वदान्ना वान्नकदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वा । अथ प्रतिशरीराश्रयणादेतडुच्यते । तत्र किल त्वगस्थिकठिनलक्षणा पृथ्वी श्लेष्मासृगद्रवलक्षणाआपः पक्तिलक्षणंतेजः प्राणापानल क्षणोवायुः सुषिरलक्षणमाकाशमिति तदपि न युज्यते । यतोऽत्रापि केषांचिच्छरीराणां शुक्रासृग्द्रवोत्पत्तिर्न तत्र तन्मात्राणां गंधोपि समुपलक्ष्यते।अदृष्टस्यापि कारणत्वकल्पने ऽतिप्रसंगः स्यात् । अंडजोद्भिज्जांकुरादीनामप्यन्यतएवोत्पत्तिर्नेवंती समुपलक्ष्यते । तदे वं व्यवस्थिते प्रधानमहदहंकारादिकोत्पत्तिर्या सांख्यैः स्वप्रक्रिययाऽन्युपगम्यते तत्तैर्निर्यु

॥ टीका–अथानंतरं त्रयोदशमारज्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने प रवादिमतानि निरूपितानि तन्निराकरणं चाऽकारि तच्च याथातथ्येन नवति तदिह प्रति पाद्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराणि नवंति। तत्राप्युपक्रम द्वारांतर्गतार्थाधिकारोयं । तद्यथा । शिष्यगुणदीपना । अथानंतराध्ययनेषु धर्मसमाधि मार्गसमवसरणाख्येषु यदवितथं याथातथ्येन व्यवस्थितं यच्च विपरीतं वितथं तदपि लेशतोऽत्र प्रतिपादयिष्यतइति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे याथातथ्यमिति नाम तदधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । "णामतहं ठवणतहं, दव्वतहं चेव होइ नावतहं ॥ दव्वतहं पुण जो ज स्स सन्नावोहिंति दव्वस्स" ॥ १४ ॥ (णामतहमित्यादि) अस्याध्ययनस्य याथातथ्य मिति नाम । तच्च यथाशब्दस्य नावप्रत्ययांतस्य नवति । तत्र यथाशब्दोल्लंघनेन तथा शब्दस्य निक्षेपं कर्तुं निर्युक्तिकारस्यायमनिप्रायः । इह यथाशब्दोयमनुवादे वर्तते तथा शब्दश्च विधेयार्थे । तद्यथा । यथेदं तथैवेदं नवता विधेयमित्यनुवादविधेययोश्च विधेयां शएव प्रधानजावमनुजवतीति । यदिवा याथातथ्यमिति तथ्यमतस्तदेव निरूप्यतइति । तत्र यथाजावस्तथ्यं यथावस्थितवस्तुता । तन्नामादिश्चतुर्धा । तत्र नामस्थापने सुगमे । ड्व्यतथ्यं गाथापश्चार्धेन प्रतिपादयति । तत्र ड्व्यतथ्यं पुनर्योयस्य सचित्तादेः स्वनावोड् व्यप्राधान्याद्यद्यस्य स्वरूपं तद्यथोपयोगलक्षणोजीवः कठिनलक्षणा पृथिवी ड्व्यलक्षणा आपइत्यादि । मनुष्यादेर्वा योयस्य मार्दवादिस्वनावोऽचित्तड्व्याणां च गोशीर्षचंदनकंब लरत्नादीनां ड्व्याणां स्वनावः । तद्यथा । उण्हे करेइ सीयं,सीए उण्हत्तणं पुण नवे इ ॥ कंबलरयणादीणं, एस सहावो मुणेयव्वो ॥ १ ॥ नावतथ्यमधिकृत्याह । "नावत हं पुण नियमा, णायव्वं छव्विहंमि नावंमि ॥ अहवा वि नाणदंसण, चरित्तविणएण अ ज्झप्पे" ॥ १५ ॥ (नावतहमित्यादि) नावतथ्यं पुनर्नियमतोऽवश्यंनावतया षड्विधे औ दयिके नावे ज्ञातव्यं । तत्र कर्मणामुदयेन निर्वृत्तऔदयिकः कर्मोदयापादितोगत्याद्यनु नावलक्षणस्तथा कर्मोपशमेन निर्वृत्तऔपशमिकः कर्मानुदयलक्षणइत्यर्थः । तथा क्षया ज्जातः क्षायिकोऽप्रतिपातिज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणस्तथा क्षयाडपशमाच्च जातः क्षायोप शमिकोदेशोदयोपशमलक्षणः । परिणामेन निर्वृत्तः पारिणामिकोजीवाजीवनव्यत्वादिल क्षणः पंचानामपि नावानां द्विकादिसंयोगान्निष्पन्नः सान्निपातिकइति । यदिवा अध्या त्मन्यांतरं चतुर्धा नावतथ्यं ड्ष्टव्यं । तद्यथा । ज्ञानदर्शनचारित्रविनयतथ्यमिति । तत्र ज्ञानतथ्यं मत्यादिकेन ज्ञानपंचकेन यथास्वमवितथोविषयोपलंनः । दर्शनतथ्यं शंकाद्य तिचाररहितं जीवादितत्त्वश्रद्धानं । चारित्रतथ्यं तु तपसि द्वादशविधे संयमे सप्तदशवि धे सम्यगनुष्ठानं । विनयतथ्यं द्विचत्वारिंशद्भेदभिन्ने विनये ज्ञानदर्शनचारित्रतपउपचारिक रूपे यथायोगमनुष्ठानं ज्ञानादीनां तु वितथाऽसेवनेनाऽतथ्यमिति । अत्र च नावतथ्येना

अहोयराउंञ समुट्ठिएहिं, तहागएहिं पडिलप्न धम्मं ॥ समा
हिमाघातमजोसयंता, सडारमेवं फरुसं वयंति ॥ २ ॥

अर्थ—(आहत्तहीयंतुपवेयइस्सं के०) यथातथ्य सम्यक् ज्ञाननो स्वरूप हवे प्रवे दिसुं एटले कहीशुं तथा (पुरिसस्स के०) जीवने (नाणप्पकारं के०) नानाप्रकारना ज्ञानादिक जे (जातं के०) उत्पन्न थाय तेपण हवे कहीशुं तथा (सउंअधम्मं के०) सत्पुरुषनुं धर्म जे श्रुत चारित्ररूप जे डुर्गति थकी राखनार ते धर्म अने (असउंअ सीलं के०) असत्पुरुष एटले परतीर्थिक तथा ग्रहस्थ अने पासडादिक तेनो सील एटले डुष्टाचार. ते कहीशुं तथा (संतिं के०) शांति एटले निर्वाणरूप अने (असंतिं के०) संसारच्रमणरूप ए बन्नेने (करिष्यामि प्राड के०) प्रगट करी शुं ॥१॥ (अहोयराउंअस मुट्ठिएहिंके०) रात्रना तेम दिवसना पण सम्यक् प्रकारे उठ्या एटले सावधान थया एवा जे निन्हवादिक जमाली प्रमुख स्वदर्शनी तथा बोटिकादिक अन्यदर्शनी ते(तहागएहिंप डिलप्नधम्मं के०) तथा प्रकारे तीर्थंकरादिक पाशेथी संसारथकी निकलवानुं उपाय एवो जे पंमित धर्म तेने पामीने जमाली प्रमुखनी पेरे कर्मने उदयें ते श्रीतीर्थंकर ना षित एवो (समाहिमाघात के०) समाधिवंत एटले सम्यक् दर्शनादिक धर्म तेने (अ जोसयंता के०) अण सेवता थका कदाग्रहि पणाने लीधे मिथ्यात्वना प्रेर्या स्वछंदे यथा तथा एटले जेम तेम बोलता श्रीसर्वज्ञना मार्गने उडापता अने कुमार्गनो उपदेश कर ता एरीते प्रवर्त्तता (सडार मेवंफरुसंवयंति के०) कदापि पोताने आचारना शिखावनार एवा गुरु जे महानुनाव ते प्रत्यें पण कगेर वचन बोले ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ त्रयोदशं याथातथ्याध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (अहत्ते ति) यथातथाजावोयाथातथ्यं तत्त्वज्ञानादिकं पुरुषस्य जंतोर्जातमुत्पन्नं तदहं प्रवेदयि ष्यामि कथयिष्यामि । तुशब्दोविशेषणे । वितथाचारिणस्तद्दोषांश्च कथयिष्यामि । नाना प्रकारं वा चित्रं पुरुषस्य स्वनावं प्रशस्तरूपं प्रवेदयिष्यामि । तथा । सतः सत्पुरुषस्य धर्मं श्रुतचारित्राख्यं शीलमुद्यतविहारित्वं शांतिं निर्वृतिं मोक्षं (करिस्सामिपाउंति) प्राडुष्करि ष्ये प्रकटयिष्यामि । तथाऽसतोऽशोननस्य परतीर्थिकस्य गृहस्थस्य पार्श्वस्थादेर्वा चश ब्दसमुच्चितमधर्मं पापं तथाऽशीलं कुत्सितशीलमशांतिं संसारं प्राडुष्करिष्ये ॥१॥ अहोरा त्रं समुच्चितानिन्हवाबोटिकाश्च तेन्यः श्रुतधरेन्यस्तथागतेन्योवा तीर्थकृद्भ्योधर्मं श्रुतचा रित्राख्यं प्रतिलन्य प्राप्यापि मंदनाग्यतया जमालिप्रमुखइवात्मोत्कर्षात्तीर्थंकरैराख्यातं समाधिं मोक्षमार्गमजोषयंतोऽसेवमानाः सर्वज्ञोक्तं मार्गं विध्वंसयंति ते निन्हवाबोटिका श्च परेणाचार्यादिना चोदिताः संतस्तं शास्तारं चोदकं पुरुषं निष्ठुरं वदंति ॥ २ ॥

त्योस्तीत्येवंरूपोनिमानोवर्जनीयस्त्यांज्योयतिजनेन। साधुलोकेनापरोपि ज्ञानिना जात्या दिकोमदोन विधेयः किंपुनर्ज्ञानमदः। तथा चोक्तं ॥ ज्ञानं मददर्पहरं, माद्यति यस्तेन तस्य कोवैद्यः ॥ अगदोयस्य विषायति, तस्य चिकित्सा कथं क्रियंते ॥ १ ॥ गतोनामनिष्पन्नो निक्षेपः सांप्रतं सूत्रालापकनिष्पन्नस्य निक्षेपस्यावसरः सच सूत्रे सति नवति। सूत्रंच सूत्रा नुगमे सचावसरः प्राप्तोऽतः सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं। (आह त्तहीत्यादि) अस्य चानंतरसूत्रेण सहायं संबंधः। तद्यथा। वलयाविमुक्तेत्यनिहितं। नावव लयं रागद्वेषौ ताभ्यां विनिर्मुक्तस्यैव याथातथ्यं नवतीत्याद्यनेन संबंधेनायातस्यास्य सूत्रस्य व्याख्या प्रतन्यते। यथातथानावोयं याथातथ्यं तत्त्वं परमार्थस्तच्च परमार्थचिंतायां सम्य कूज्ञानादिकं तदेव दर्शयति। ज्ञानप्रकारं प्रकारशब्दआद्यर्थे। आदिग्रहणाच्च सम्यग्दर्शनचा रित्रे गृह्येते। तत्र सम्यग्दर्शनमौपशमिकक्षायोपशमिकं गृह्यते। चारित्रं तु व्रतसमितिकषाया णां धारणरक्षणनिग्रहादिकं गृह्यते। एतत्सम्यगूज्ञानादिकं पुरुषस्य जंतोर्यज्ञातमुत्पन्नं त दहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्यामि। तुशब्दोविशेषणे। वितथाचारिणस्तद्दोषांश्चाविर्नावयि ष्यामि। नानाप्रकारं वा विचित्रं पुरुषस्य स्वनावमुच्चावचप्रशस्ताप्रशस्तरूपं प्रवेदयिष्या मि। नानाप्रकारं स्वनावफलंच पश्चार्धेन दर्शयति। सतः सत्पुरुषस्य शोजनस्य सदनुष्ठा यिनः सम्यगूदर्शनचारित्रज्ञानवतोधर्मं श्रुतचारित्राख्यं पुनर्गतिगमनधरणलक्षणं वा तथा शीलमुद्युक्तविहारित्वं तथा शांतिं निर्वृतिमशेषकर्मक्षयलक्षणां (करिस्सामिपाउत्ति) प्राउष्करिष्ये प्रकटयिष्यामि यथावछ्नावयिष्यामि। तथाऽसतोऽशोजनस्य परतीर्थिक स्य गृहस्थस्य पार्श्वस्थादेर्वा च शब्दः समुच्चितमधर्मं पापं तथा कुशीलं कुत्सितशील मशांतिं चानिर्वाणरूपां संसृतिं प्राउर्नावयिष्यामीति। अत्र च सतोधर्मं शीलं शांतिंच प्राउष्करिष्याम्यसतश्चाधर्ममशीलमशांतिंचेत्येवं पदघटना योजनीया अनुपात्तस्यच चशब्दे नाक्षेपोद्रष्टव्यइति ॥१॥ जंतोर्गुणदोषरूपं नानाप्रकारं स्वनावं प्रवेदयिष्यामीत्युक्तं तदर्शी यितुकामआह। (अहोयमित्यादि) अहोरात्रमहर्निशं सम्यगुब्बितानिन्हवाबोटिका श्च सदनुष्ठानवंतस्तेन्यः श्रुतधरेन्यस्तथा तथागतेन्योवा तीर्थकृद्न्योधर्मं श्रुतचारित्राख्यं प्रतिलन्य संसारनिःसरणोपायं धर्ममवाप्यापि कर्मोदयान्मंदनाग्यतया जमालिप्रनृतयइ वात्मोत्कर्षात्तीर्थकृदाद्याख्यातं समाधिं सम्यग्दर्शनादिकं मोक्षपद्धतिमजोपर्यंतोऽसेवंतः सम्यगकुर्वाणानिह्नवाबोटिकाश्च स्वरुचिविरचितव्याख्याप्रकारेण निर्दोषं सर्वज्ञप्रणीतं मार्गं विध्वंसयंति कुमार्गं प्ररूपयंति ब्रुवते चासौ सर्वज्ञएव न नवति। यः क्रियमाणं कृतमि त्यध्यक्षविरुद्धं प्ररूपयति। तथा यः पात्रादिपरिग्रहान्मोक्षमार्गमाविर्नावयति। एवं स र्वज्ञोक्तमश्रद्दधानाः अश्रद्धानं कुर्वंतोप्यपरे धृतिसंहननदुर्बलतया यथारोपितं संयमनारं

धिकारः। यदि वा जावतथ्यं प्रशस्ताप्रशस्तजेदाद्द्विधा। तदिह प्रशस्तेनाधिकारं दर्शयितु माह। "जह सुत्तं तह अबो, चरणं चारो तहत्ति णायवं॥ संतंमिय पसंसाए, असंतीपगयं डुगुंबाए"॥ २६॥ (जहसुत्तमित्यादि) यथा येनप्रकारेण यथापद्धत्त्या सूत्रं व्यवस्थितं तथा तेनैव प्रकारेणार्थोव्याख्येयोनुष्ठेयश्च। एतदर्शयति। चरणमाचरणमनुष्ठातव्यं। यदिवा सिद्धांतसूत्रस्य चारित्रमेवाचरणमतोयथासूत्रं तथा चारित्रमेतदेव चानुष्ठेयमेतच्च याथातथ्यमिति ज्ञातव्यं। पूर्वार्धस्यैव जावार्थं गाथापश्चार्धेन दर्शयितुमाह। यद्वस्तुजातं प्रकृतं प्रस्तुतं यथार्थमधिकृत्य सूत्रमकारि तस्मिन्नर्थे सति विद्यमाने यथावद्व्याख्यायमाने संसारोत्तारणकारणत्वेन प्रशस्यमाने वा याथातथ्यमिति जवति विवक्षिते त्वर्थे सत्यविद्यमाने संसारकारणत्वेन वा जुगुप्सायां सत्यां सम्यगनुष्ठीयमाने वा याथातथ्यं न जवति। इदमुक्तं जवति। यदि यथासूत्रं येन प्रकारेण व्यवस्थितं तथैवार्थोयदि जवति व्याख्यायते ऽनुष्ठीयते च संसारनिस्तरणसमर्थश्च जवति ततोयाथातथ्यमिति जवति। असति त्वर्थे क्रियमाणे संसारकारणत्वेन जुगुप्सिते वा जवति याथातथ्यमिति गाथातात्पर्यार्थः। एतदेव दृष्टांतगर्जं दर्शयितुमाह। "आयरियपरंपर्येण आगयं जोज छेयबुद्धीए॥ कोवेइ छेयवाई जमालिनासंचणासिहत्तित्ति॥ २७॥ (आयरिएइत्यादि) आचार्याः सुधर्मस्वामिजंबुनामप्रजवार्यरक्षिताद्यास्तेषां प्रणालिकापारंपर्यं तेनागतं यद्व्याख्यानं सूत्राजिप्रायस्तद्यथा व्यवहारतयाजिप्रायेण क्रियमाणमपि कृतं जवति। यस्तु कुतर्कदर्पाध्मातमानसोमिथ्यात्वोपहतदृष्टिकया छेकबुध्या निपुणबुध्या कुशाग्रशेमुषीकोहमिति मत्वा कोपयति दूषयति अन्यथा तमर्थं सर्वज्ञप्रणीतमपि व्याचष्टे कृतं कृतमित्येवं ब्रूयात्। वक्तिच नहि मृत्पिंडक्रियाकालएव घटोनिष्पद्यते कर्मगुणव्यपदेशानामुपलब्धेः। सएव छेकवादी निपुणोहमित्येवं वादी पंडिताजिमानी जमालिना समोजमालिनिन्हववत् सर्वज्ञमतविकोपकोविनंक्ष्यत्यरहघट्टघटीयंत्रन्यायेन संसारचक्रवाले बंज्रमिष्यतीति। नचासौ जानाति वराकोयथायं लोकोघटार्थाः क्रियामृत्खननाद्याघटएवोपचरति तासांच क्रियाणां क्रियाकालनिष्ठाकालयोरेककालत्वात् क्रियमाणमेव कृतं जवति। दृश्यते चायं व्यवहारोलोके। तद्यथा। अद्यैव देवदत्ते निर्गते कान्यकुब्जं देवदत्तोगतइति व्यपदेशस्तथा दारुणि छिद्यमाने प्रस्थकोयं व्यपदेशइत्यादि। सांप्रतमन्यथावादिनोऽपायदर्शनद्वारेणोपदेशं दातुकामआह। ण करेति डुःखमोरकं, उद्धममाणोवि संजमतवेसु॥ तम्हाअत्तुक्करिसो वज्जेअवो जतिजणेणं॥ २८॥ (णकरेइत्यादि) योहि डुर्गृहीतविद्यालवदर्पाध्मातः सर्वज्ञवचनैकदेशमप्यन्यथा व्याचष्टे सएवंजूतः सत्संयमतपस्तडुद्यमं कुर्वाणोशारीरिकमानसानां डुःखानामसातोदयजनितानां मोक्षं विनाशं न करोत्यात्मगर्वाध्मातमानसोपि यतएवं तस्मादात्मोत्कर्षोऽहमेव सिद्धांतार्थवेदी नापरः कश्चिन्मत्तु

वदेयुः ॥ ३ ॥ येऽज्ञाततत्त्वाः परेण पृष्टाः कस्मादाचार्यादधीतं नवद्भिरिति ते स्वमाचार्यं ज्ञानाभिमानेन (पलिउंचयंतित्ति) निन्हुवते । अथवा सदपि प्रमादस्खलितमाचार्यादि ना पृष्टाः संतोमातृस्थानेनावर्णवादभीतानिन्हुवते । ते एवं कुर्वाणाआदानं मोक्षमर्थं वंचयंति । एवं कुर्वाणास्तेऽसाधवइहास्मिन् जगति साधुमानिनोमायान्विताएष्यंति या स्यंत्यनंतशोघातं विनाशं संसारं वा । एकं तावत्स्वयमसाधवोद्वितीयं साधुमानिनः । उक्तंच । पावं काऊण सयं, अप्पाणं सुद्धमेव ववहरइ ॥ डुगुणं करेइ पावं, बीअं बालस्स मंदत्तं ॥१॥ तदेवमात्मोत्कर्षदोषाद्बोधिलाभमप्युपहत्यानंतभवभाजः प्राणिनः स्युरिति ॥४॥

॥ टीका–किंच । (विसोहियमित्यादि) विविधमनेकप्रकारं शोधितः कुमार्गप्ररूपणा पनयनद्वारेण निर्दोषतां नीतोविशोधितः सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राख्योमोक्षमार्गस्तमेवं भूतं मोक्षमार्गं ते स्वाग्रहग्रस्तागोष्ठामाहिलवदनुपश्चादाचार्यप्ररूपणातः कथयंत्यनुकथ यंति । ये चैवंभूताआत्मोत्कर्षात्स्वरुचिविरचितव्याख्याप्रकारव्यामोहिताआत्मभावेन स्वा भिप्रायेणाचार्यपारंपर्येणायातमप्यर्थं व्युदस्यान्यथा व्यागृणीयुर्व्याख्यानयेयुस्तेहि गंभी राभिप्रायं सूत्रार्थं कर्मोदयात्पूर्वापरेण यथावत्परिणामयितुमसमर्थाः पंडितमानिनउत्सू त्रं प्रतिपादयंति । आत्मभावव्याकरणं च महतेऽनर्थायेति दर्शयति । सएवंभूतः स्वकी याभिनिवेशादस्थानिकोऽनाधारोबहूनां ज्ञानादिगुणानामभाजनं भवतीति । ते चामी गु णाः । सुस्सूसइ पडिपुच्छइ, सुणेइ गेण्हइ य ईहएआवि ॥ तत्तो अपोहएवा, धारेइ करे इ वा सम्मं ॥१॥ यदि वा गुरुशुश्रूषादिना सम्यक्ज्ञानावगमस्ततः सम्यगनुष्ठाने च म तः सकलकर्मक्षयलक्षणोमोक्षइत्येवंभूतानां गुणानामनायतनमसौ । क्वचित्पाठः । (अ ठाणिएहोंतिबहूणिवेसत्ति) अस्यायमर्थः । अस्थानमभाजनमसौ भवति सम्यक्ज्ञाना दीनां गुणानां । किंभूतोबहुरनर्थसंपादकत्वेनासदभिनिवेशोयस्य सबहुनिवेशः । यदिवा गुणानामस्थापनिकोऽनाधारोबहूनां दोषाणां च निवेशः स्थानमाश्रयइति । किंभूताः पु नरेवं भवंतीति दर्शयति । ये केचन डुर्गृहीतज्ञानलवाऽवलेपिनोज्ञाने श्रुतज्ञाने शंका ज्ञा नशंका तया मृषावादं वदेयुः । एतडुक्तं भवति । सर्वज्ञप्रणीते आगमे शंकां कुर्वंत्ययं तत्प्र णीतएव नभवेदन्यथा वाऽस्यार्थः स्यात् । यदिवा ज्ञानशंकया पांडित्याभिमानेन मृषा वादं वदेयुर्यथाहं ब्रवीमीति तथैव युज्यते नान्यथेति ॥ ३ ॥ किंचान्यत् । (जेयाविपुछा इत्यादि) ये केचनाविदितपरमार्थाः स्वल्पतया समुत्सेकिनोऽपरेण पृष्टाः कस्मादाचार्या त्सकाशादधीतं श्रुतं भवद्भिरिति । ते तु स्वकीयमाचार्यं ज्ञानावलेपेन निन्हवानोऽपरं प्र सिद्धं प्रतिपादयंति । यद्विवा मयैवैतत्स्वतउत्प्रेक्षितमित्येवं ज्ञानावलेपात् (पलिउंचयं तित्ति) निन्हुवते । यदिवा सदपि प्रमादस्खलितमाचार्यादिना लोचनादिके अवसरे पृ

बोद्धुमसमर्थाः क्वचिद्दिपीदंतोऽपरेणाचार्यादिना वत्सलतया चोदिताः संतस्तं शास्तारमनुशासितारं चोदकं पुरुषं वदंति कर्कशं निष्ठुरं निर्जरं प्रतीपं चोदयंतीति ॥ २ ॥

विसोहियं ते अणुकाहयंते, जे आत्तनावेण वियागरेज्जा ॥ अघाणिए होइ बहूगुणाणं, पाठांतरे (बहूणिवेसे) जे णाणसंकाइ मुसं वदेज्जा ॥३॥ जे यावि पुठा पलिउंचयंति, आयाणमठं खलु वंचयित्ता ॥ असाहुणो ते इह साहुमाणी, मायन्नि एसंति अणंतघातं ॥ ४ ॥

अर्थ—ते स्वाग्रहि पुरुष (विसोहियंते के०) ते विशोधित शुद्धनिर्दोषमार्ग तेने (अणुकाहयंते के०) आचार्यनी प्ररूपणा थकी उच्छापिने कहे एटले (जेआत्तनावेणवियागरेज्जा के०) जे पोताना नावे एटले स्वछंदे बोले (अघाणिएहोइबहूगुणाणं के०) ते अहाछंद पणा थकी घणा गुणा जे ज्ञानादिक तेनो आस्थान थाय केमके ए स्वानिनिवेश मिथ्यात्वना नाव थकी करीने (जेणाणसंकाइ के०) जे ज्ञान शंका एटले श्रीजिनागमनेविषे शंका लावीने (मुसंवदेज्जा के०) मृषाबोले स्वकल्पित जेवो रुचे तेवो बोले तेणे करीने घणा गुणानो आस्थान एटले कुनाजन थाय ॥ ३ ॥ (जे आविपुठापलिउंचयंति के०) जे कोइ पूछे जे तमे कोनी पासेथी नण्याछो तेवारे पोताना आचार्यनुं नाम गोपवीने बीजानुं नाम कहे (आयाणमठंखलुवंचयित्ता के०) ते निश्चे थकी आत्मार्थी जे मोक्षनो अर्थ तेने वंचेछे एतावता ते मुक्तिने नपामे (असाहुणोतेइहसाहुमाणी के०) परमार्थथकी ते असाधु थको पण आ जगतने विषे पोतामां साधुपणु करी माने तथा बीजाउने कहीने पोतामां साधु पणो मनावे (मायन्निएसंतिअणंतघातं के०) ते मायावी साधु आसंसारनेविषे अनंत घात पामे एटले अनंत काल पर्यंत संसारमां परिभ्रमण करे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—विशोधितोमोक्षमार्गस्तं ते कदाग्रहिणोगोष्ठामाहिलवदनुपश्चादाचार्यप्ररूपणातः कथयंति अनुकथयंति । ये आत्मोत्कर्षादात्मनावेन स्वानिप्रायेणाचार्यपारंपर्यागतमप्यर्थं व्युदस्यान्यथा व्यागृणीयुर्व्याख्यांति । आचार्यपरंपरामज्ञात्वा स्वानिप्रायेण सूत्रार्थव्याख्यानं महतेऽनर्थाय । इदमेव दर्शयति । सएवंनूतोऽस्थानिकोऽनाधारोबहूनां ज्ञानादिगुणानां स्यात् । क्वचित्पाठः । (अघाणिएहोइबहूणिवेसत्ति) अस्यार्थः । अस्थानमनाजनं सम्यक्ज्ञानादीनां । किंनूतोबहुरनर्थकारकत्वेनाऽसदनिनिवेशोयस्य सबहुनिवेशः । ते पुनः किंनूताइत्याह । ये ज्ञानशंकया मृषा वदेयुः । कोर्थः । जिनोक्तागमे शंकां कुर्वंत्ययं तदुक्तएव नस्यादिति । अथवा ज्ञानशंकया पांमित्यानिमानेन मृषा

॥ दीपिका—यः स्वनावेन क्रोधनोरोपी नवति यश्च जगदर्थनापी योयथावस्थितः पदार्थस्तं तथैव नापते । तद्यथा । ब्राह्मणं डोडमिति वक्ति वणिजं किराटमिति शूड्माजीरमिति श्वपाकं चांमालमिति काणं काणमेव वक्ति । खंजं खंजमेव चौरं चौरमिति । अंधमंधमित्यादि कविणं योवक्ति सजगदर्थनापी निष्ठुरनापीत्यर्थः । व्यवशितं समाप्तं दृढं कलहं यः पुनरुदीरयेत् प्रज्वालयेत् सोऽधश्च । यथांधोदंडमेवं गोदंडमार्गं गृहीत्वा व्रजन् घृष्यते कंटकश्वापदादिनिः पीडयते । एवं सोपि (अविद्योसियंति) अप्रशांतकलहः पापकर्मा घृष्यते पीडयते संसारपीडानिः ॥ ५ ॥ योविग्रहिकः कलहप्रियोऽन्यायनापी न समोमध्यस्थोनवति अकंजा प्राकंजा माया कलहोवा मायाप्राप्तः कलहप्राप्तोवा सरागद्वेषवान् मायावांश्च नवतीत्यर्थः । एतद्दोषदर्शी उपपातकारी आचार्यादेशकरः न्हीर्लज्जासंयमस्तत्र मनोयस्य सन्हीमनाः एकांतेन तत्त्वेषु दृष्टिर्यस्य सएकांतदृष्टिः । एगंतसड्डित्तिपाठे एकांतश्रद्धावान् जिनागमे । अमायि निर्मायं रूपं यस्यस तथा उद्मरहितइत्यर्थः ॥ ६ ॥

॥ टीका—मानविपाकमुपदर्श्याधुना क्रोधादिकषायदोषमुद्भावयितुमाह । (जेकोहणे इत्यादि) योह्यविदितकषायविपाकः प्रकृत्यैव क्रोधनोनवति तथा जगदर्थनापी यश्च नवति । जगत्यर्थाजगदर्थायै यथा व्यवस्थिताः पदार्थास्तानानापितुं शीलमस्य जगदर्थनापी तद्यथा ब्राह्मणं डोडमिति ब्रूयात्तथा वणिजं किराटमिति शूड्माजीरमिति श्वपाकं चांडालमित्यादि तथा काणं काणमिति तथा खंजं कुब्जं वडनमित्यादि तथाकुष्टिनं कविणमित्यादि योयस्य दोषस्तं तेन खरं परुषं ब्रूयात् यः सजगदर्थनापी। यदिवा जयार्थनापी यथैवात्मनोजयोनवति तथैवाविद्यमानमप्यर्थं नापते तच्छीलश्च येन केनचित्प्रकारेणाऽसदर्थनाषणेनाप्यात्मनोजयमिच्छतीत्यर्थः । (विउसियंति) विविधमवसितं पर्यवसितमुपशांतं दृढं कलहं यः पुनरप्युदीरयेत् । एतडुक्तं नवति । कलहकारिनिर्मिथ्याडुष्कृतादिना परस्परं क्षामितेपि तदुद्ब्रूयाद्येन पुनरपि तेषां क्रोधादयोनवंति । सांप्रतमेतद्विपाकं दर्शयति । यथाह्यंधश्चक्षुर्विकलोदंडपथं गोदंडमार्गं प्रमुखोज्ज्वलं गृहीत्वाऽऽश्रित्य व्रजन् सम्यगकोविदतया घृष्यते कंटकश्वापदादिनिः पीडयते एवमसावपि केवलं लिंगधार्यनुपशांतक्रोधः कर्कशनाप्यधिकरणोदीपकस्तथा (अविउसियत्ति) अनुपशांतदृढः पापमनार्यं कर्मानुष्ठानं यस्यासौ पापकर्मा घृष्यते चतुर्गतिके संसारे यातनास्थानगतः पौनःपुन्येन पीडयतइति ॥५॥ किंचान्यत् । (जेविग्गहिएइत्यादि) यः कश्चिदविदितपरमार्थोविग्रहोयुद्धं सविद्यते यस्यासौ विग्रहिकोयद्यपि प्रत्युपेक्षणादिकाः क्रियाविधत्ते तथापि युद्धप्रियः कश्चिन्नवति तथाऽन्याय्यं नापितुं शीलमस्य सोऽन्यायनापी यत्किंचन नाष्यऽस्था

ष्टाः संतोमातृस्थानेनाऽवर्णवादनयान्निन्हुवते । तएवं पलिउंचकानिन्हवं कुर्वाणाश्चादी यतइत्यादानं ज्ञानादिकं मोक्षोवा तमर्थं वंचयंति भ्रंशयंत्यात्मनः । खलुरवधारणे । वंचयंत्येव । एवमनुष्ठायिनश्चासाधवस्ते परमार्थतस्तत्त्वचिंतायामिहास्मिन् जगति साधुविचारेवा साधुमानिनश्चात्मोत्कर्षायाऽसदनुष्ठानमानिनोमायान्वितास्ते एष्यंति यास्यंत्यनंतशोबहुशोघातं विनाशं संसारं वा अनवदग्रसंसारकांतारमनुपरिवर्तयिष्यंतीति । दोषद्वयदुष्टत्वात्तेषामेकं तावत्स्वयमसाधवोद्वितीयं साधुमानिनः । उक्तंच । पावं काऊण सयं, अप्पाएणं शुद्धमेव ववहरइ ॥ डुगुणं करेइ पावं, बीयं बालस्स मंदत्तं ॥ १ ॥ तदेवमात्मोत्कर्षदोषाद्बोधिलाजमप्युपहत्यानंतसंसारजाजोनवंत्यसुमतइति स्थितं ॥ ४ ॥

जे कोहणे होइ जगठ्ठनासी, विउसियं जे उ उदीरएज्जा ॥ अंधे
व से दंमपहं गहाय, अविउसिए घासति पावकम्मी ॥ ५ ॥
जे विग्गहीए अनायनासी, न से समे होइ अझंझपत्ते ॥ उव
वायकारी य हरीमणे य, एगंतदिठीय अमाइरूवे ॥ ६ ॥

अर्थ–(जे कोहणेहोइजगठ्ठनासी के०) जे क्रोधी थाय ते जगतार्थनाषी होय जगतार्थनाषी एटले जेमां जेवो दोष होय तेने तेवो कहे अर्थात् काणाने काणो कहे खोडाने खोडो कहे टुंटाने टुंटो कहे पांगलाने पांगलो कहे कोढीने कोढी कहे एवो प्रगट निठुर नाषण करनार होय (विउसियंजेउ के०) जे उपशमावेलो एवो जे कलह तेने वली (उदीरएज्जा के०) उदीरे ए पुरुषने जे फल थाय ते कहेछे. (सेके०) ते पुरुष (अंधेवदंमपहंगहाय के०) जेम कोइ आंधलो पुरुष लाकडी ग्रहण करीने मार्गने विषे जातो थको अनेक कंटक चतुष्पदादिके करी पीडाय तेम (अविउसिए के०) अकोविद एवोजे कलहकारी (पावकम्मी के०) पापकर्माचारी जीव ते पण (घासतिके०) चतुर्गतिक संसारमांहे डुःख पामे ॥ ५ ॥ (जेविग्गहीए के०) जेकोइ विग्रह एटले कलहकारी होय ते यद्यपि क्रिया तो केटलीक करे तथापि ते क्रिया विग्रह एटले युद्धप्रिय थाय तथा (अनायनासी के०) अन्यायनो बोलनार होय (नसेसमेहोइअझंझपत्ते के०) ते पुरुष कलहरहित एवा सम्यक् दृष्टी तेना सरखो समनावी नहोय ते माटे साधु कलहकारी नहोय परंतु साधु केवो होय ते कहेछे. (उववायकारीयहरीमणेय के०) उपपातकारी एटले आचार्यनी आज्ञापालक तथा लज्जावंत मनवालो होय एटले अनाचार करतो थको आचार्यादिक थकी लज्जा पामे तथा (एगंतदिठीय के०) एकांतदृष्टी एटले जीवादिक पदार्थनो ज्ञाता होय एकांत श्रद्धावंत होय तथा (अमाइरूवे के०) मायारहित होय एवा पुरुषने साधु कहिए. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–क्वचित्प्रमादसंचलने सति आचार्यादिना बह्वप्यनुशास्यमानस्तथैव सन्मार्गानुसारिणी वा लेश्या चित्तवृत्तिर्यस्य सतथार्थः । एवंभूतोयः सपेशलोमृष्टवाक्यः सूक्ष्मदर्शित्वात् । पुरुषजातः सएव तत्त्वपुरुषार्थकारी सएव जात्यन्वितः सत्कुलोत्पन्नः। सुशीलोहि कुलीनः स्यान्नसुकुलोत्पत्तिमात्रेण सएव सुष्ठु अतिशयेन ऋजुः संयमस्तस्य करणशीलः सएव समोमध्यस्थः झंझा क्रोधोमाया वा तामप्राप्तोभवति ॥ ७ ॥ यश्चापि वसु द्रव्यं संयमस्तद्वंतमात्मानं मत्वा तथा संख्या ज्ञानं तद्वंतमात्मानं मत्वा परमार्थमपरीक्ष्य वादमात्मोत्कर्षवादं कुर्यात् । तथा तपसा सहितोहमिति मत्वाऽन्यं जनं बिंबभूतं जलचंद्रवदर्थशून्यं पश्यति अवगणयतीत्यर्थः ॥ ८ ॥

॥ टीका–पुनरपि सद्गुणोत्कीर्तनायाह । (सपेशलेइत्यादि) योहि कटुसंसारोद्विग्नः क्वचित्प्रमादस्खलिते सत्याचार्यादिना बह्वप्यनुशास्यमानश्चोद्यमानस्तथैव सन्मार्गानुसारिण्यर्चा लेश्या चित्तवृत्तिर्यस्य भवतीति तथार्चः । यश्च शिक्षां ग्राह्यमाणोपि तथार्चोभवति सपेशलोमिष्टवाक्योविनयादिगुणसमन्वितः सूक्ष्मः सूक्ष्मदर्शित्वात्सूक्ष्मभाषित्वाद्वा सूक्ष्मः सएव पुरुषजातः सएव परमार्थतः पुरुषकार्यकारी नापरोयोऽनायुधतपस्विजनपराजिते नापि क्रोधेन जीयते तथाऽसावेव जात्यन्वितः सुकुलोत्पन्नः । सच्छीलान्वितोहि कुलीन इत्युच्यते न सुकुलोत्पत्तिमात्रेण । तथा सएव सुष्ठ्वतिशयेन ऋजुः संयमस्तत्करणशीलोऋजुकरः । यदिवा (उज्जुचारेत्ति) यथोपदेशं यः प्रवर्तते नतु पुनर्वक्रतयाऽचार्यादिवचनं विलोमयति प्रतिकूलयति यश्च तथार्चः पेशलः सूक्ष्मभाषी जात्यादिगुणान्वितः क्वचिदवक्रः समोमध्यस्थोनिंदायां पूजायां च न रुष्यति नापि तुष्यति तथा झंझा क्रोधोमाया वा तां प्राप्तोझंझाप्राप्तः । यदि वाऽझंझाप्राप्तैर्वीतरागैः समस्तुल्योभवतीति ॥ ७॥ प्रायस्तपस्विनां ज्ञान तपोऽवलेपोभवतीत्यतस्तमधिकृत्याह । (आविक्षप्पंइत्यादि) यश्चापि कश्चिल्लघुप्रकृतिरल्पतयाऽत्मानं वसु द्रव्यं तच्च परमार्थचिंतायां संयमस्तद्वंतमात्मानं मत्वाऽहमेवात्र संयमवान् मूलोत्तरगुणानां सम्यग्विधायी नापरः कश्चिन्मत्तुल्योस्तीति । तथा संख्यायंते परिच्छिद्यंते जीवादयः पदार्थायेन तज्ज्ञानं संख्येत्युच्यते तद्वंतमात्मानं मत्वा तथा सम्यक् परमार्थमपरीक्ष्यात्मोत्कर्षवादं कुर्यात्तपसा द्वादशभेदभिन्नेनाहमेवात्र सहितोयुक्तो न मत्तुल्योविकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोस्तीत्येवं मत्वाऽऽत्मोत्कर्षाभिमानीत्यन्यं जनं साधुलोकं गृहस्थलोकं वा बिंबभूतं जलचंद्रवत्तदर्थशून्यं कूटकार्षापणवद्वा लिंगमात्रधारिणं पुरुषाकृतिमात्रं वा पश्यत्यवमन्यते । तदेवं यद्यन्मदस्थानं जात्यादिकं तत्तदात्मन्येवारोप्यापरमवधूतं पश्यतीति ॥ ८ ॥

नन्नाषी गुर्वाद्यधिक्षेपकरोवा यश्चैवंनूतोनासौ समोरक्तद्विष्टतया मध्यस्थोनवति । तथा नाप्यऊंऊां प्राप्तोकलहप्राप्तोवा नन्नवत्यमायाप्राप्तः । यदिवा अऊंऊाप्राप्तैरकलहप्राप्तैः सम्यग्दृष्टिनिरसौ समोन नवति यतः, अतोनैवंविधेन नाव्यमपितुक्रोधनेनाकर्कशनाषिणा चोपशांतयुद्धानुदीरकेण न्यायनाषिणाऽऊंऊाप्राप्तेन मध्यस्थेन च नाव्यमिति । एवमनंतरोद्दिष्टदोषवर्जीसन्नुपपातकार्याचार्यनिर्देशकारी यथोपदेशं क्रियासु प्रवृत्तः । यदिवोपायकारित्ति) सूत्रोपदेशप्रवर्तकस्तथा न्हीर्लज्जासंयमोमूलोत्तरगुणनेदनिन्नस्तत्र मनोयस्यासौ न्हीमनाः । यदिवाऽनाचारं कुर्वन्नाचार्यादिन्योलज्जते सएवमुच्यते । तथैकांतेन तत्त्वेन जीवादिषु पदार्थेषु दृष्टिर्यस्यासावेकांतदृष्टिः।पागंतरंवा (एगंतसड्ढित्ति) एकांतेन श्रद्धावान् मौनींद्रोक्तमार्गे एकांतेन श्रद्धालुरित्यर्थः।चकारः पूर्वोक्तदोषविपर्यस्तगुणसमुच्चयार्थः । तद्यथा । ज्ञानपलिउंचकोक्रोधीत्यादि । तावदऊंऊाप्राप्तइति स्वतएवाह । (अमाइरूवेत्ति) अमायिनोरूपं यस्यासावमायिरूपोऽशेषछद्मरहितइत्यर्थः । न गुर्वादीन् छद्मनोपचरति नाप्यन्येन केनचित्सार्धं छद्मव्यवहारं विधत्तइति ॥ ६ ॥

स पेसले सुहुमे पुरिसजाए, जच्चन्निए चेव सुउज्जुयारे ॥ बहुंपि
अणुसासिए जे तहच्चा, समे हु से होइ अऊंऊपत्ते ॥ ७ ॥ जे
आवि अप्पं वसुमंति मत्ता, संखाय वायं अपरिस्क कुज्जा ॥ त
वेण वाहं सहिउत्ति मत्ता, असं जणं पस्सति बिंबनूयं ॥ ८ ॥

अर्थ—(सपेसले के०) तेने आचार्यादिके घणो शिखव्यो छतो पण यथार्थ तेवाज नावें वर्त्ते पण गुरु वचन विरोधि नथाय तेने पेशल एटले मनोहर विनयादिक गुणवंत जाणवो. तथा (सुहुमे के०) सूक्ष्म नावनो देखनार तथा (पुरुषजात के०) परमार्थथकी पुरुषार्थनो साधक तथा (जच्चन्निए के०) तेवीज जातिसहित सत्कुलोत्पन्न जाणवो (चेव के०) निश्चय थकी (सुउज्जुयारे के०) ते रुजु आचारी एटले सरल मार्गे प्रवर्त्ते तेवा पुरुषने (बहुंपिअणुसासिएजेतहच्चा के०) आचार्यादिके घणो शिखाव्यो छतो मुखनुं राग फेरवे नही अर्थात् प्रसन्न मन राखे (समेहुसेहोइअऊंऊपत्ते के०) ते पुरुष श्रीवीतराग समान कलह रहित थाय ॥ ७ ॥ (जेआविअप्पंवसुमंतिमत्ता के०) जे कोइ लघुप्रकृति पोताने आत्माने वसुमंत एटले संयमवंत जाणीने (संखायवायंअपरिस्ककुज्जा के०) सम्यक् परमार्थ अपरीक्ष थको आत्मोत्कर्षे अनिमान करे (तवेणवाहंसहिउत्तिमत्ता के०) तथा हुंज तपे करी सहितछुं माहारा समान बीजो कोइ तपस्वी नथी एवीरीते जाणीने अनिमान धारण करी (असंजणंपस्सतिबिंबनूयं के०) अन्य जन ने बिंबनूत गुणसुन्य आकार मात्र देखे एटले जलचंद्रमानी पेरे जाणे ॥ ८ ॥

र्थः प्रयोजनं तेन आत्मानं व्युत्कर्पयेत् मदवंतं कुर्यात् तथा च सु संयमस्तमादायान्य तरेण ज्ञानादिना मदस्थानेन माद्यति ससर्वज्ञमतं तत्त्वतोन वेत्तीति नावः ॥ ए ॥ योजात्या ब्राह्मणः क्षत्रियजातीयोवा उग्रपुत्रः क्षत्रियविशेषः (लेछइत्ति) क्षत्रियवि शेषएव । एवं विशिष्टकुलोजूतः प्रव्रजितः परदत्तनोजी शुद्धाहारग्राही गोत्रे उच्चैर्गोत्रे उ त्पन्नोपि नैव स्तंजं गर्वं यायात् । किंनूते गोत्रे मानबद्धे अनिमानास्पदे ॥ १० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (एगंतकूडेइत्यादि) कूटवत्कूटं यथा कूटेन मृगादिर्बद्धः पर वशः सन्नेकांतडुःखनाग्नवति । एवं नावकूटेन स्नेहमयेनैकांततोऽसौ संसारचक्रवालं प र्येति तत्र वा प्रकर्षेण लीयते प्रलीयतेऽनेकप्रकारं संसारं बंभ्रमीति । तुशब्दात्कामादिना वा मोहेन मोहितोबहुवेदने संसारे प्रलीयते । यश्चैवंनूतोऽसौ न विद्यते न कदाचन सं नवति । मुनीनामिदं मौनं तच्च तत्पदं च मौनपदं संयमस्तत्र मौनींडिवा पदे सर्वज्ञप्र णीतमार्गे नासौ विद्यते । सर्वज्ञमतमेव विशिनष्टि । गां वाचं त्रायतेऽर्थाविसंवादनतः पा लयतीति गोत्रं तस्मिन्समस्तागमाधारनूतइत्यर्थः । उच्चैर्गोत्रे वा वर्तमानस्तदनिमानग्र हग्रस्तोमौनींडपदे न वर्तते । यश्च माननं पूजनं सत्कारस्तेनार्थः प्रयोजनं तेन माननार्थे न विविधमुत्कर्षयेदात्मानं योहि माननार्थेन लानपूजासत्कारादिना मदं कुर्यान्नासौ स र्वज्ञपदे विद्यतइति पूर्वेण संबंधः । तथा वसु इव्यं तच्चेह संयमस्तमादाय तथान्यतरेण ज्ञानादिना मदस्थानेन परमार्थमबुध्यमानोमाद्यति पठन्नपि सर्वशास्त्राणि तदर्थं वा गछ न्नपि नासौ सर्वज्ञमतं परमार्थतोजानातीति ॥ ए ॥ सर्वेषां मदस्थानानामुत्पत्तेरारन्य जातिमदोबाह्यनिमित्तनिरपेक्षोयतोनवत्यतस्तमधिकृत्याह । (जेमाहणेइत्यादि) योहि जात्या ब्राह्मणोनवति क्षत्रियोवा इक्ष्वाकुवंश्यादिकः । तन्नेदमेव दर्शयति । उग्रपुत्रः क्ष त्रियविशेषजातीयः । तथा (लेछइत्ति) क्षत्रियविशेषएव । तदेवमादिविशिष्टकुलोनूतोय थावस्थितसंसारस्वनाववेदितया यः प्रव्रजितस्त्यक्तराज्यादिगृहपाशबंधनः परैर्दत्तं नोक्तुं शीलमस्य परदत्तनोजी सम्यक्संयमानुष्ठायी गोत्रे उच्चैर्गोत्रे हरिवंशस्थानीये समुत्पन्नोपि नैव स्तंजं गर्वमुपयायादिति । किंनूते गोत्रे अनिमानबद्धे अनिमानास्पदे इति । एतडुक्तं नवति । विशिष्टजातीयतया सर्वलोकानिमान्योपि प्रव्रजितः सन् कृतशिरस्तुंडमुंडनोनिक्षा र्थं परगृहाण्यटन् कथं हास्यास्पदं गर्वं कुर्यान्नैवासौ मानं कुर्यादिति तात्पर्यार्थः ॥१०॥

न तस्स जाई व कुलं व ताणं, णस्मृत्थ विज्जा चरणं सुचिन्नं ॥ णि
क्खम्म से सेवइ गारिकम्मं, ण से पारए होइ विमोयणाए ॥ ११ ॥

एगंत कूम्हेण उ से पलेइ, ण विज्जती मोणपयंसि गोत्ते ॥ जे माण
णठेण विउक्कसेज्जा, वसुमन्नतरेण अबुज्झमाणे ॥ ए ॥ जे माह
णो खत्तियजायए वा, तहुग्गपत्ते तह लेछई वा ॥ जे पवईए
परदत्तनोई, गोत्तेण जे थप्नति माणबद्धे ॥ १० ॥

अर्थ–ते पुरुष (एगंतकूम्हेणउसेपलेइ के०) एकांत कूटपाशे करीने जेम मृग कूटपासे पडथो थको डुःखनु विनागी थायछे तेनी पेरे ते मंदबुद्धि पण संसारमांहे परिब्रमण करे ते पुरुष कदापि (मोणपयंसि के०) मौनपद एटले संयमपद तेनेविषे (णविज्जती के०) सर्वथा प्रकारे विद्यमान नथी एम समजवुं तथा ते पुरुष (गोत्ते के०) उंचगोत्रने विषे पण न प्रवर्त्ते किंतु ते अत्यंत हीन गोत्रनेज पामे तथा (जे माणणठेणविउक्कसेज्जा के०) जे मान एटले पूजाने अर्थें व्युत्कर्ष एटले विविध प्रकारे अनिमान करे तेपण संयमने विषे नथी एम जाणवुं तथा जे (वसु के०) संयमने ग्रहण करीने पढी (अन्नतरेण के०) मंदविपाकना उदय थकी अन्य कोइ मद स्थानकने विषे माचे ते (अबुज्झमाणे के०) निश्चें थकी परमार्थने अजाणतो अज्ञानी थको संसारमां परिब्रमण करे ॥ ए ॥ (जेमाहणोखत्तियजायएवा के०) तथा जे ब्राह्मणजाति अथवा क्षत्रियजाति ते इक्ष्वाकुवंशादिक तेना नेद कहेछे. (तहुग्गपत्तेतहलेछईवा के०) तथा जे उग्रपुत्र तथा लेछई एटले राजपुत्र विशेष नवमल्लिक नवलेछिक एटला कुलमां उत्पन्न थयला संसारने असार जाणीने राज्य प्रमुख त्यागीने (जेपवईए के०) जे प्रवर्जित थया एटले चारित्रवान थया ते एवा बता पण (परदत्तनोई के०) पारको दीधो एवो जे आहार तेने नोगवे एटले शुद्धाहार ग्रहण करे (गोत्तेणजेथप्नतिमाणबद्धे के०) परंतु गोत्रने विषे गर्व नकरे एटले शुद्धाहारनुं ग्रहण करनार एवो चारित्रीउ पोताना उंच गोत्रने विषे गर्व करे नही गोत्र केवोछे तोके मानबद्ध एटले ब्राह्मण तथा क्षत्रीय वंशना उपना स्वनावे पोताना वंशना अनिमानी थायछे तेम बतां पण चारित्र आदस्या पढी कोइपण प्रकारना गोत्रनुं आहार ग्रहण करे परंतु शुद्धाहार ग्रहण करे पण पोताना गोत्रनो गर्व करीने तेवाज गोत्रनो अशुद्ध आहार लेवानी इच्छा चारित्रिउ करे नही ए अनिप्रायछे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका–यथा कूटेन पाशेन बद्धोमृगादिः परवशोडुःखी स्यात्तथा नावकूटेन स्नेहेन एकांततोऽसौ संसारं पर्यैति बंब्रमीति । मौनपदे संयमे सन् प्रवर्तते। किंनूते संयमे गोत्रे गां वाचं त्रायतइति गोत्रं सर्वागमाधारनूतं तस्मिन् । यश्च माननं सत्कारस्तस्या

॥ टीका–न चासौ मानः क्रियमाणोगुणायेति दर्शयितुमाह । (नतस्सजाईत्यादि) नहि तस्य लघुप्रकृतेरभिमानोद्धुरस्य जातिमदः कुलमदोवा क्रियमाणः संसारं पर्यटत स्त्राणं भवति । नह्यभिमानोजात्यादिकऐहिकामुष्मिकगुणयोरुपकारीति । इहच मातृसमु द्भवाजातिः पितृसमुत्थं कुलं एतच्चोपलक्षणमन्यदपि मदस्थानं न संसारत्राणायेति । यत्पुनः संसारोत्तारकत्वेन त्राणसमर्थं तद्दर्शयति । ज्ञानं च चरणं च ज्ञानचरणं तस्मादन्यत्र संसारोत्तारणत्राणाशा न विद्यते । एतच्च सम्यक्त्वोपबृंहितं सत् सुष्ठु चीर्णं सुचीर्णं संसा राडुत्तारयति । ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइति वचनात् । एवंभूते सत्यपि मोक्षमार्गे निष्क्रम्या पि प्रव्रज्यां गृहीत्वापि कश्चिदपुष्टधर्मा संसारोन्मुखः सेवतेऽनुतिष्ठत्यभ्यस्यति पौनःपुन्ये न विधत्ते अगारिणां गृहस्थानामंगं कारणं जात्यादिकं मदस्थानं पाठांतरं वा (अगारि कम्मंति) अगारिणां कर्मानुष्ठानं सावद्यमारंभं जातिमदादिकं वा सेवते । नचासावगा रिकर्मणां सेवकोऽशेषकर्ममोचनाय पारगोभवति । निःशेषकर्मक्षयकारी न भवतीति भा वः । देशमोचनात्तु प्रायशः सर्वेषामेवासुमतां प्रतिक्षणमुपजायतइति ॥ ११ ॥ पुनरप्य भिमानदोषाविर्भावनायाह । (णिकिंचणेइत्यादि) वाह्येनार्थेन निष्किंचनोपि भिक्षण शीलोभिक्षुः परदत्तभोजी तथा सुष्ठुरूक्षमंतप्रांतं वल्लचणकादि तेन जीवितुं प्राणधारणं कर्तुं शीलमस्य स सुरूक्षजीवी एवंभूतोपि यः कश्चिद्गारवक्रियोभवति । तथा श्लोक कामी आत्मश्लाघाभिलापी भवति । सचैवंभूतः परमार्थमबुध्यमानएतदेवाकिंचनत्वं सुरूक्षजीवित्वं वात्मश्लाघा तत्परतया आजीवमाजीविकामात्मवर्तनोपायं कुर्वाणः पुनःपुनः संसारकांतारे विपर्यासं जन्मजरामरणरोगशोकोपद्रवमुपैति गच्छति तदुत्तरणा यात्युद्यतोवा तत्रैव निमज्जतीत्ययं विपर्यासइति ॥ १२ ॥

जे भासवं भिक्कु सुसाहुवादी, पडिहाणवं होइ विसारएय ॥
अगाढपन्ने सुविभावियप्पा, अन्नं जणं पन्नसा परिहवेज्जा॥१३॥
एवं ण से होइ समाहिपत्ते, जे पन्नवं भिक्कु विउक्कसेज्जा ॥ अ
हवा वि जे लाभमयावलित्ते, अन्नं जणं खिंसति बालपन्ने॥ १४ ॥

अर्थ–(जे भासवंभिक्कुसुसाहुवादी के०) जे साधु भाषाना गुण तथा दोषनो जाण तथा सुसाहुवादी एटले प्रिय वचननो बोलनार एटले क्षीराश्रव मध्वाश्रव लब्धीवा लो वली (पडिहाणवंहोइ के०) प्रतिभाववंत एटले उत्पातिकादिक चार प्रकारनी बुद्धिनो पारंगामि होय तथा (विसारएय के०) विशारद एटले पंमित अर्थ ग्रहण करवाने समर्थ (आगाढपन्ने के०) आगाढप्रज्ञ एटले प्रस्ताववेता अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र,

णिक्किंचणे भिक्कु सुलूहजीवी, जे गारवं होइ सलोगगामी ॥
आजीवमेयं तु अबुज्झमाणो,पुणोपुणो विप्परियासुवेंति ॥ १२ ॥

अर्थ-(नतस्सजाईव कुलंवताणं के०) ते अभिमानी पोताना गोत्रसंबंधी मदना करनारने जाति एटले जे मातानुं पक्ष अने कुल एटले पितानुं पक्ष ए बंनेनुं मद त्राणने अर्थे न थाय कारणके संसारमां भ्रमण करतां प्राणीने मातानी जाति अने पितानुं कुल ते कांइ त्राण भणी नथाय हवे जे पदार्थ जीवने त्राण थाय ते कहेछे (ण सुविज्जाचरणं सुचिन्नं के०) विद्या एटले ज्ञान अने चरण एटले चारित्र सुचीर्ण एटले ए बन्नेने सारीरीते आचस्या थकी मुक्तिनुं कारण थायछे. अर्थात् ज्ञान अने क्रिया ए बे विना बीजो कोई जीवने शरण नथी (णिरकम्मसेसेवइगारिकम्मं के०) माटे जे पुरुष ग्रहस्थपणा थकी णिरकम्म एटले निकली चारित्र आदरीने फरी आगारीनो कर्त्तव्य जे जातिमदादिक तेने सेवे अथवा सावद्यारंजादिक सेवे (णसेपारए होइविमोयणाए के०) ते पुरुष संसारनो पारंगामि न थाय केमके ज्ञान. दर्शन अने चारित्र एज मुक्तिना कारणछे परंतु जातिकुलादिकनो मद ते कांई मुक्तिनो कारण नथी एम जाणवुं ॥ ११ ॥ (णिक्किंचणेभिक्कु सुलूहजीवि के०) जे निकिंचन निपरिग्रही सुलुक्कजीवी एटले अंतप्रांत आहारनो लेनार होय तेने भिक्कु एटले साधु जाणवो अने (जेगारवं होइसलोगगामी के०) जे गर्ववंत होय श्लाघा एटले प्रसंसानो कामि एटले वांछा करनार होय (आजीवमेयं तुअबुज्झमाणो के०) ते जीव आजीविका मात्रनो करनार छता शुद्ध संयमनो अजाण एवो छतो (पुणोपुणोविप्परियासुवेंति के०) ते जीव फरी फरी विपर्यासने पामे एटले वली वली जन्ममरणादिके करीने घणो संसारने विषे परिभ्रमण करे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका-तस्याभिमानवतोजातिमदः कुलमदोवाऽत्र संसारभ्रमणे शरणं नस्यात्। मातृभवा जातिः पितृभवं कुलमेतडुपलक्षणादन्यदपि मदस्थानं न त्राणाय। यत्राणं तदाह। सुचीर्णं विद्या ज्ञानं चरणं चारित्रंच तस्मादन्यत्र त्राणाशा न विद्यते। ज्ञानक्रियाभ्यामेव मोक्षइति वचनात्। एवंसत्यपि कश्चित् निष्क्रम्य प्रव्रज्या गृहीत्वापि अगारिणां गृहस्थानां कर्म सावद्यक्रियां सेवते न च कर्ममोचनाय पारगोभवति ॥ ११ ॥ बाह्यार्थेन निष्किंचनोभिक्षुः सुरूक्षजीवी वल्लचणकादिप्रांताहारएवंभूतोपि कश्चिद्गौरवप्रियोभवति। तथा श्लोककामी आत्मश्लाघाभिलाषी च स्यात्। नचैवंभूतो निष्किंचनत्वादिकमाजीवमात्मवर्तनोपायं कुर्वाणः परमार्थमबुध्यमानः संसारे विपर्यासं जन्ममरणाद्युपद्रवमुपैति ॥ १२ ॥

वासनया वासितआत्मा यस्यासौ सुविन्नावितात्मा । तदेवमेनिः सत्यन्नाषादिन्निर्गुणैः शोन्ननः साधुर्न्नवति । यश्चैन्निरेव निर्जराहेतुन्नूतैरपि मदं कुर्यात्तद्यथाऽहमेव न्नाषाविधिज्ञ स्तथा साधुवाद्यहमेवच न मत्तुल्यः प्रतिन्नानवानस्ति नापि मत्समानोलौकिकोलोको त्तरशास्त्रार्थविशारदोऽवगाढप्रज्ञः सुन्नावितात्मेति चैवमात्मोत्कर्षवानन्यं जनं स्वकीयया प्र ज्ञया परिन्नवेत् एवं मन्यते । तथाहि । किमनेन वाऽकुंठेन डुडुरुढेन कुंडिकाकार्पासिक तुल्येन खसूचिना कार्यमस्ति कचित्सन्नायां धर्मकथावसरे वेत्येवमात्मोत्कर्षवान् न्न वति । तथाचोक्तं । अन्यैः स्वेच्छारचितानर्थविशेषान् श्रमेण विज्ञाय ॥ कृत्स्नं वाङ्मयमितइति खादत्यंगानि दर्पेणेत्यादि ॥ १३ ॥ सांप्रतमेतद्दोषान्निधित्सया ह । (एवंणसेइत्यादि) एवमनंतरोक्तया प्रक्रियया परपरिन्नवपुरःसरमात्मोत्कर्षं कु र्वन्नशेषशास्त्रार्थविशारदोपि तत्त्वार्थगाढप्रज्ञोप्यसौ समाधिं मोक्षमार्गं ज्ञानदर्शनचारित्र रूपं धर्मध्यानाख्यं वा न प्राप्तोन्नवत्युपर्यैवासौ परमार्थोदन्वतः प्लवते । कथंन्नूतोन्नव तीति दर्शयति । योह्यविदितपरमार्थतयात्मानं सम्यक्सुपीकं मन्यमानः स्वप्रज्ञया न्निक्षु रुत्कर्षगर्वं कुर्यान्नासौ समाधिं प्राप्तोन्नवतीति प्राक्तनेन संबंधः । अन्यदपि मदस्थानदोष मुद्भावयति । अथवेति पक्षांतरे । योह्यल्पांतरायोलब्धिमानात्मकृते परस्मै चोपकरणादिक मुत्पादयितुमलं सलघुप्रकृतितया लान्नमदावलिप्तोन्नवति तदवलिप्तश्च समाधिमप्राप्तो न्नवति । सचैवंन्नूतोऽन्यं जनं कर्मोदयादलब्धिमंतं खिंसइत्ति निंदति परिन्नवति वक्ति च नमत्तुल्यः सर्वसाधारणः शय्यासंस्तारकाद्युपकरणोत्पादकोविद्यते किमन्यैः स्वोदरन्नरण व्यग्रतया काकप्रायैः कृत्यमस्तीत्येवं बालप्रज्ञोमूर्खप्रायोऽपरजनापवादं विदध्यादिति तदेवं प्रज्ञामदावलेपादन्यस्मिन् जने निंद्यमाने बालसदृशैर्न्नूयते यतोतः प्रज्ञामदोन विधे योन केवलमयमेव विधेयोन्यदपि मदस्थानं संसारजिहीर्षुणा नविधेयमिति ॥ १४ ॥

पन्नामयं चेव तवोमयंच, णिन्नामए गोयमयं च न्निक्खू ॥ आ
जीवगं चेव चउत्थमाहु, से पंमिए उत्तम पोग्गलेसे ॥ १५ ॥ ए
याइं मयाइ विगिंच धीरा, ण ताणि सेवंति सुधीरधम्मा ॥ ते स
वगोत्तावगया महेसी, उच्चं अगोत्तं च गतिं उवेंति ॥ १६ ॥

अर्थ–(पन्नामयंचेवतवोमयंच के०) प्रज्ञानो मद तेम वली तपनो मद एटले हुं बुद्धिवान छुं हुं तपस्यावान छुं एवो जे मद तेने (णिन्नामए के०) नमाडे एटले एवो मद नकरे तथा (गोयमयंचन्निक्खू के०) गोत्रनो मद साधु नकरे एटले माहरो उंच गोत्रछे हुं उत्तम कुलमां जन्म पाम्योछुं एवो अहंकार साधु नकरे (आजीवगंचेवचउ

काल अने नावनो जाण तथा (सुविनावियप्पा के०) नानाप्रकारनी नावनायें करी ने नाव्योछे आत्मा जेमनो एवो छतो (अन्नंजणंपन्नसापरिहवेज्जा के०) अन्य जन प्रत्ये पोतानी प्रज्ञाये करी एटले पोताना जाणपणे करी पराजवे अर्थात् एम जाणे जे माहारा समान कोइ ज़ाण पुरुष नथी एरीते बीजाने तृणवत गणे. ॥ १३ ॥ एवा साधुने दोष कहेछे. (एवंणसेहोइसमाहिपत्ते के०) एरीते अहंकारनो कर नार जे साधु होय ते समाधिने प्राप्त थयो न कहेवाय (जेपन्नवंनिरकुविउक्कसेज्जा के०) जे साधु प्रज्ञावंत थईने व्युत्कर्ष एटले गर्वने धारण करे (अहवाविजेलानमयावलित्ते के०) अथवा जे कोइ साधु अल्पांतराय थको लानवान् एटले बीजाने उपकरण आ पवाने समर्थ छतो लाननां मदे करी लिप्त थाय एटले मत्त थाय (अन्नंजणंखिंसति बालपन्ने के०) अन्य जनने खिंसे एटले बीजानी निंदा करे अने एम विचारे जे सर्व साधारण सय्या संस्तारक प्रमुख लाववाने हुंज समर्थछुं बीजा बापडा शुं? पेट नरवाने पण समर्थ नथी एवो साधु बाल एटले मूर्ख बुद्धिवालो जाणवो. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—नाषावान् नाषागुणदोषज्ञोयोनिक्कुः सुसाधुवादी हितमितवादी प्रतिना नमुत्पत्तिक्याद्विबुद्धिस्तद्वान् विशारदोऽर्थग्रहणसमर्थः । अगाढा तत्त्वनिष्ठा प्रज्ञा बु द्धिर्यस्य सोगाऽढप्रज्ञः सुविनावितोधर्मवासनावासितआत्मायस्य सतथा । एनिर्गुणैः साधुर्नवति यश्च मदवानन्यं जनं स्वकीयया प्रज्ञया परिनवेत् ॥ १३ ॥ तद्दोषानाह । ए वं परपरिनवकारी समाधिर्धर्मध्यानं तत्र प्राप्तोन नवति । यः प्रज्ञावान् निक्कुरुत्कर्षेत् ग र्वं कुर्यात् । अथवा योलानमदावलिप्तः स्यात् लानमदेन व्याप्तः स्यात्सोन्यं जनं निंदति बालप्रज्ञोमूर्खप्रायस्तन्निंदयाच समाधिं न प्राप्नोतीति ॥ १४ ॥

॥ टीका—यस्मादमी दोषाः समाधिमाख्यातमसेवमानानामाचार्यपरिनाषिणां वा त स्मादमीनिः शिष्यगुणैर्नाव्यमित्याह । (जेनासवमित्यादि) नाषागुणदोषज्ञतया शो ननजाषायुक्तोनापावान् निक्कुः साधुस्तथा सुष्ठु साधु शोननं हितं मितं प्रियं वदितुं शी लमस्येत्यसौ सुसाधुवादी क्षीरमध्वाश्रववादीत्यर्थः। तथा प्रतिना नामौत्पत्तिक्याद्विबुद्धि गुणसमन्वितत्वेनोत्पन्नप्रतिनत्वं तत्प्रतिनानं विद्यते यस्यासौ प्रतिनानवान् अपरेणा क्षिप्तस्तदनंतरमुत्तरदानसमर्थः । यदिवा धर्मकथावसरे कोयं पुरुषः कंच देवताविशेषं प्रणतः कतरद्वा दर्शनमाश्रितइत्येवमासन्नप्रतिनतया यथायोगमाचष्टे तथा विशारदोऽर्थ ग्रहणसमर्थोबहुप्रकारार्थकथनसमर्थोवा चशब्दाच्च श्रोत्रनिप्रायज्ञस्तथा अगाढाऽवगाढा परमार्थपर्यवसिता तत्त्वनिष्ठा प्रज्ञा बुद्धिर्यस्यासावगाढप्रज्ञस्तथा सुष्ठु विविधं नावितोधर्मे

सुप्रतिष्ठितोधर्मः श्रुतचारित्राख्योयेषां ते सुधीरधर्माणस्ते चैवंनूताः परित्यक्तसर्वमदस्थाना महर्षयस्तपोविशेषशोषितकल्मषाः सर्वस्माडच्चैर्गोत्रादेरपगतागोत्रोपगताः संतउच्चां मोक्षाख्यां सर्वोत्तमां वा गतिं व्रजंति गडंति चशब्दात्पंचमहाविमानेषु कल्पेषु कल्पातीतेषु वा व्रजंति। अगोत्रोपलक्षणाच्चान्यदपि नामकर्मायुष्कादिकं तत्र नविद्यतइति इष्टव्यं ॥ १६ ॥

निरकू मुयच्चे कय दिठधम्मे, पाठांतरे (तहदिठधम्मे) गामं च णगरं च अणुप्पविस्सा ॥ से एसणं जाण मणेसणं च, अन्नस्स पाणस्स अणाणुगिद्धे ॥ १७ ॥ अरतिं रतिं च अनिनूय निरकू, बहूजणे वा तह एगचारी ॥ एगंतमोणेण वियागरेज्जा, एगस्स जंतो गति रागतीय ॥ १८ ॥

अर्थ-(निरकू के०) ते साधु (मुयच्चे के०) शरीर संस्काररहित (कयदिठधम्मे के०) तथा दृष्ट एटले दीठोठे यथावस्थित धर्म जेणे अथवा दृढधर्मि एटले धर्मने विषे दृढ एवो ठतो कोइक अवसरे (गामंचणगरंचअणुप्पविस्सा के०) निक्षादिकने अर्थे ग्राम नगर झोण सवादिकने विषे प्रवेश करे (सेएसणंजाणमणेसणंच के०) ते एषणा एटले आहारनी शुद्धि जाणतो तथा अनेषणीय एटले आहारना अशुद्धता पणाने पण जाणतो थको उजमादिक दोषने सम्यक् प्रकारे टालतो थको (अन्नस्स पाणस्सअणाणुगिद्धे के०) अन्नने विषे तथा पाणीने विषे अगृद्ध थको लोलुपता रहित एवो ठतो साधु विचरे ॥ १७ ॥ (अरतिंरतिंचअनिनूयनिरकू के०) कदाचित साधुने अंतप्रांत नोजने तथा अस्ताने करी कर्म योगें संयमने विषे अरति उपजे अने असंयमने विषे रति उपजे तेवारे संसारनुं स्वनाव अस्थिर जाणीने नरकादिकना डःखने स्मरण करतो थको उत्पन्न थयली रति अरतिनुं निराकरण करे एम रति अरतिने जीतीने सूधो संयम पाले (बहूजणेवातहएगचारीके०) तथा घणा जन सहित ठतो तथा एकचारी एटले एकलो ठतो पूठ्यो अथवा नपूठ्यो थको पण (एगंतमोणेणवियागरेज्जा के०) एकांत निरवद्य नाषा बोले कारणके अन्यजनोनो दाक्षिण्यपणो ते जीवने त्राण नणो नथाय तेमाटे धर्मकथाने प्रस्तावें साधु एकांत निरवद्य नाषा बोले अने बीजे प्रस्तावे मौन रहे (एगस्सजंतोगतिरागतीय के०) जीवने गति आगति ते एकला नेज करवी पडेडे. त्यारे जीवने एकलो परलोक गमनागमन करता एक धर्म विना बीजो कोइ सहायकारी नथी एवीरीते साधु पोताना मनमां जाणे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका-सनिक्षुर्मृतेव स्नानादिसंस्काराऽनावादर्चा शरीरं यस्य समृताऽर्चः। तथा

ह्रमाहु के०) आसमंतथ्री जीते आजीविकाअर्थः एटले चोथो आजीविक एटले अर्थ अर्थात् धन तेनो मद साधु नकरे एम बीजो पण कोइ प्रकारनो मद नकरे (सेपंमि एउत्तमपोग्गलेसे के०) ते पंमित उत्तम पुजलने विषे पोते निस्पृह एवा आत्मावालो ते साधु जाणवो ॥ १५ ॥ (एयाइंमयाइविगिंचधीरा के०) ए पूर्वोक्तजे प्रज्ञादिक मद ना स्थानक कह्या तेने धैर्यवान साहसीक पुरुष संसारना कारण जाणीने पोताना आत्मा थकी जूदा करे (एताणिसेवंतिसुधीरधम्मा के०) एटला मदना स्थानकने सुप्र तिष्ठित जेनो धर्मछे एवा पुरुष नसेवे एटले आदरे नही (तेसव्वगोत्तावगयामहेसी के०) ते समस्त गोत्रादिक मदरहित एवो महाऋषीश्वर जे होय एवाने फल कहेछे. (उच्चंअ गोत्तंचगतिंजवेंति के०) उंच अने अगोत्र एटले जेने विषे . नामगोत्रादिक कर्म नथी तेवी गति पामे एटले ते साधु मोक्षने विषे जाय ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–प्रज्ञा बुद्धिस्तया मदस्तं तपोमदं च निर्नामयेन्निश्चयेनापनयेत् गोत्रमदं च निर्नामयेत् । आजीवोर्थनिचयस्तं गछत्याजीवगोऽर्थमदस्तं च चतुर्थं नामयेत् ॥ तु शब्दाछेषानपि मदान् वर्जयेत् सपुजलआत्मा पंडितउत्तमश्च स्यात् ॥ १५ ॥ एतानि प्र ज्ञादीनि मदस्थानानि विगिंच पृथक्कुर्याद्वर्जयेत् । धीराज्ञाततत्त्वाः । सुधीरः सुप्रतिष्ठि तोधर्मोयेषां ते सुधीरधर्माणएवंनूतास्तानि मदस्थानानि नासेवंते ते सर्वस्माडुच्चैर्गोत्रा देरपगतामहर्षयउच्चां मोक्षाख्यां गतिं व्रजंति । अगोत्रां गोत्रकर्मोपलक्षणादन्यदपि कर्म तत्र न विद्यतइति ॥ १६ ॥

॥ टीका–तद्दर्शयितुमाह । (पन्नामयंचेवेत्यादि) प्रज्ञया तीक्ष्णबुध्या मदः प्रज्ञाम दस्तंच तपोमदं निश्चयेन नामयेन्निर्नामयेदपनयेदहमेव यथाविधशास्त्रार्थस्य वेत्ता तथा हमेव विकृष्टतपोविधायी नापि तपसोग्लानिमुपगछामीत्येवं रूपं मदं न कुर्यात्तथोच्चै र्गोत्रे इक्ष्वाकुवंशहरिवंशादिके संनूतोहमित्येवमात्मकं गोत्रमदंच नामयेदिति । आसमं ताज्जीवंत्यनेनेत्याजीवोऽर्थनिचयस्तं गछत्याश्रयत्यसावाजीवगोऽर्थमदस्तं च चतुर्थं नाम येच्चशब्दाछेषानपि मदान्नामयेत्तन्नामनाच्चा सौ पंमितस्तत्त्ववेत्ता नवति । तथाऽसावेव स मस्तमदापनोदकउत्तमपुजलआत्मा नवति । प्रधानवाची वा पुजलशब्दस्ततश्चायमर्थः । उत्तमोत्तमोमहतोपि महीयान् नवतीत्यर्थः ॥ १५॥ सांप्रतं मदस्थानानामकरणीयत्वमुप दर्श्योपसंजिहीर्षुराह । (एयाइंइत्यादि) एतानि प्रज्ञादीनि मदस्थानानि संसारकारणत्वेन सम्यक्परिज्ञाय (विगंचत्ति) पृथक्कुर्यादात्मनोऽपनयेदिति यावत् । धीर्बुद्धिस्तया राजंतइति धीराविदितवेद्यानैतानि जात्यादीनि मदस्थानानि सेवंत्यनुतिष्ठंति । के एते । ये सुधीराः

मेन करणनूतेन व्यागृणीयात् धर्मकथावसरेऽन्यद्वा संयमावाधया किंचित्धर्मसंबद्धं ब्रूयात् । किंपरिगणय्यैतत्कुर्यादित्याह । यदिवा किमसौ ब्रूयादिति दर्शयति । एकस्याऽसहायस्य जंतोः शुनाशुनसहायस्य गतिर्गमनं परलोके नवति तथाऽऽगतिरागमनं नवांतराऽुपजायते कर्मसहायस्यैवेति । उक्तंच । एकः प्रकुरुते कर्म नुनक्त्येकश्च तत्फलं ॥ जायते म्रियते चैक, एकोयाति नवांतरमित्यादि । तदेवं संसारे परमार्थतोन कश्चित्सहायोधर्ममेकं विहायैतद्विगणय्य मुनीनामयं मौनः संयमस्तेन तत्प्रधानं वा ब्रूयादिति ॥ १७ ॥

सयं समेच्चा अडुवा वि सोच्चा, नासेज धम्मं हियर्यं पयाणं ॥
जे गरहिया सणियाणप्पउंगा, ण ताणि सेवंति सुधीरधम्मा १९
केसिंचि तक्काइ अवुश्न नावं, खुदंपि गछेज असद्दहाणे॥आउस्स
कालाइचरं वधाए, लद्धाणु माणे य परेसु अट्ठे ॥ २० ॥

अर्थ-(सयंसमेच्चा अडुवाविसोच्चा के०) चतुर्गतिक संसारनुं कारण मिथ्यात्वादिक ठे तथा मोक्षस्वरूपनुं कारण सम्यक् ज्ञानादिकठे एवुं परोपदेशविना स्वयं पोतेज जाणीने अथवा गुर्वादिकनी पाशेथी श्रवण करीने (नासेज्जधम्मंहियर्यपयाणं के०) समस्त प्रजा एटले त्रस तथा स्थावर जीवोने हितकारक एवो श्रुतचारित्ररूप जे धर्म तेने नापे एटले कहे एवो साधु जाणवो ए उपादेयपणु कह्यो हवे हेयपणु एटले जे पदार्थ ठांमवा योग्यठे ते कहेठे (जेगरहिया के०) जे मिथ्यात्व अविरति प्रमादादिक एवा पदार्थ जे जगतमांहे गरहा एटले निंदनीक ठे तथा (सणियाण के०) नीयाणा सहित एवा जे (प्पउंगा के०) प्रयोग होय तेने (णताणिसेवंति सुधीरधम्मा के०) जे धर्मने विषे धीर पुरुष होय ते नसवे न आचरे ॥ १९ ॥ (केसिंचि तक्काइ अवुज्झ नावं के०) कोईएक मिथ्यादर्शनीनो अनिप्राय जाण्याविना साधु तथा श्रावकनो धर्म स्थापन करवानी इहाये कदाचित् साधु तेपर तीर्थिक आगल तिरस्कारना वचन बोले (खुद्दंपिगछेज्जअसद्दहाणे के०) तेवारे ते मिथ्यादर्शनी श्री वीतरागना वचनउपर असद्दहणा करतो थको क्षुद्रपणुं करे एवो ठतो विरूप करे जेम पालक प्रोहितनो स्कंदसूरिउपर क्षुद्रनाव थयो तेनी पेरे जाणवुं (आउस्सकालाइचरंवधाए के०) आयुष्यना कालनुं प्रमाण घणो होय तेने घटाडे अर्थात् आयुष्यनुं विनाश करे (लद्धाणुमाणे यपरेसुअट्ठे के०) ते माटे साधु जन आगलानुं अनिप्राय लईने पठी तेना आगल अर्थ प्रकाशे स्वपरोपकारने अर्थे बोले अन्यथा मौनमेव श्रेय ॥ २० ॥

॥ दीपिका-स्वयं नवस्वरूपं समेत्य ज्ञात्वाऽथवाऽन्यस्मात् श्रुत्वाऽन्यस्मै धर्मं नापेत।

कृतआचरितोहृष्टोऽव्यवस्थितोऽवगतश्च धर्मोयेन सतथा । एवंनूतोग्रामं नगरं वाऽनुप्र विश्य निक्षार्थमेषणां गवेषणग्रहणैषणां तथाऽनैषणामुजमदोषादिकां च जानन्नन्नस्य पानस्य वाऽननुगृध्धोऽनासक्तः सम्यग्विहरेत् ॥ १७ ॥ अरतिं रतिं वाऽनिनूय त्यक्त्वा नि क्षुरेकांतमौनेन संयमेन व्यागृणीयात् धर्मसंबंधं ब्रूयात् । किंनूतः साधुः । बहवोजनाः संयमसहायायस्य सबहुजनोगछवासी। अथवा एकचारी एकछविहारी जिनकल्पादिर्वा । किंब्रूयादित्याह । एकस्य जंतोः कर्मानुगतस्य परलोके गतिरागतिश्च स्यादिति ॥ यतः । ए कः प्रकुरुते कर्म,नुनक्त्येकश्च तत्फलं ॥ जायते म्रियते चैक,एकोयाति नवांतरमिति ॥ १८॥

॥ टीका–किंच । (निरकूमुयच्चेइत्यादि) सएवं मदस्थानरहितोनिक्षणशीलोनिक्षुः । तं विशिनष्टि । मृतेच स्नानविलेपनादिसंस्काराजावादर्चा तनुः शरीरं यस्य समृतार्चः । यदिवा मोदनं मुत् तद्भूता शोननाऽर्चा पद्मादिका लेश्या यस्य सनवति मुदर्चः प्रशस्तदर्श लेश्यः । तथा दृष्टोऽवगतोयथावस्थितोधर्मः श्रुतधर्मचारित्राख्योयेन सतथा चैवंनूतः क्वचिदवसरे ग्रामं नगरमन्यद्वा मगादिकमनुप्रविश्य निक्षार्थमसावुत्तमधृतिसंहननोपप न्नः सन्नेषणां गवेषणग्रहणैषणादिकां जानन् सम्यगवछन्ननैषणां चोजमदोषादिकां तत्प रिहारं विपाकं च सम्यगवगछन्नन्नस्य पानस्य वा नतु गृध्धोऽनध्युपपन्नः सम्यग्विहरेत् । त थाहि । स्थविरकल्पिकाद्विचत्वारिंशद्दोषरहितां निक्षां गृण्हीयुर्जिनकल्पिकानां तु पंचस्व निग्रहो द्वयोर्ग्रहस्ताश्चेमाः । संसठमसंसठा,उध्ड तह होंति अप्पलेवाय ॥ उग्गहिया पग्गहिया, उझियधम्माय सत्तमीया ॥ १ ॥ अथवा योयस्यानिग्रहः सतस्यैषणा अप रात्वनैषणेत्येवमेषणानैषणानिज्ञः क्वचित्प्रविष्टः सन्नाहारादावमूर्छितः सम्यक्शुद्धां नि क्षां गृण्हीयादिति ॥ १७ ॥ तदेवं निक्षोरनुकूलविषयोपलब्धिमतोप्यरक्तद्विष्टतया तथा दृष्टमप्यदृष्टं श्रुतमप्यश्रुतमित्येवं नावयुक्ततया च मृतकल्पदेहस्य सुदृष्टधर्मणएषणानेष णानिज्ञस्यान्नपानादावमूर्छितस्य सतः क्वचिद्ग्रामनगरादौ प्रविष्टस्याऽसंयमे रतिररतिश्च संयमे कदाचित्प्राडुष्यात्सा चापनेतव्येत्येतदाह । (अरइंरइंचेत्यादि) महामुनेरप्यस्ना नतयामलाविलस्यांतप्रांतवल्लचणकादिनोजिनः कदाचित्कर्मोदयाऽरतिः संयमे समुत्पद्ये त तां चोत्पन्नामसौ निक्षुः संसारस्वनावं परिगणय्य तिर्यङ्नारकादिडुःखं चोत्प्रेक्ष्यमाण श्चलं संसारिणामायुरित्येवं विचिंत्यानिनवेदनिनूय वाऽसावेकांतमौनेन व्यागृणीयादित्यु त्तरेण संबंधः । तथा रतिं वाऽसंयमे सावद्यानुष्ठाने अनादिनवाच्यासाडुत्पन्नामनिनवेदनि नूय संयमोद्युक्तोनवेदिति । पुनः साधुमेव विशिनष्टि । बहवोजनाः साधवोगछवासितया संयमसहायायस्य सबहुजनस्तथैकएव चरति तछीलश्चैकचारी सच प्रतिमाप्रतिपन्नएकछ विहारी जिनकल्पादिर्वा स्यात्सच बहुजनएकाकीवा केनचित्पृष्टोऽपृष्टोवैकांतमौनेन संय

यथार्हं धर्मदेशना विधेया । यश्चैतदबुध्वा किंचिद्धर्मदेशना द्वारेण परविरोधकृच्चोब्रूयात् सपरस्माद्दैहिकामुष्मिकयोर्मरणादिकमपकारं प्राप्नुयादिति । यतएवं ततोऽन्वयमनुमानं येन परानिप्रायपरिज्ञाने सजन्वयानुमानः परेषु प्रतिपाद्येषु यथायोगं यथार्हप्रतिपत्त्याऽर्थान् सद्धर्मप्ररूपणादिकान् जीवादीन् स्वपरोपकाराय ब्रूयादिति ॥ २० ॥

कम्मं च छंदं च विगिंच धीरे, विणइज्ज सव्वउ आयनावं ॥ रू
वेहिं लुप्पंति नयावहेहिं, विज्जं गहाय तसथावरेहिं ॥ २१ ॥
न पूयणं चेव सिलोयकामो, पियमप्पियं कस्सइ णो करेज्जा ॥
सवे अणठे परिवज्जयंते, अणाउले या अकसाइ निक्कू ॥२२॥
आहत्तहीयं समुपेहमाणे, सवेहिं पाणेहिं णिहाय दंमं ॥ णो जी
वियं णो मरणाहिकंखी, परिवएज्जा वलयाविप्पमुक्केत्तिबेमि ॥
॥ २३ ॥ इति श्रीआहत्तहियंनाम त्रयोदशमध्ययनं सम्मत्तं ॥

अर्थ-(कम्मंचछंदंचविगिंचधीरे के०) धैर्यवान बुद्धिमान साधु देशनाने अवसरे श्रोतानो कर्म एटले अनुष्ठान तथा छंद एटले चित्तनो नाव एने जुदा जुदा जाणीने एतावता सम्यक्रीते जाणीने यथायोग्य नाव धर्म कहे तथा (विणइज्जउसव्वउआय नावंके०) तथा श्रोता पुरुषनुं आयनाव एटले आत्मनाव ते विषयउपर गृद्धपणुं एटले मिथ्या परिणाम तेने सर्वथा प्रकारे विशेषे करी निर्घाटे एटले दूरकरे अने गुणनेविषे तेने स्थापे (रूवेहिंलुप्पंतिनयावहेहिं के०) वली रूप जे स्त्रियादिकना अंगोपांगना जोवावाला एवा अल्प बुद्धिवान् तुछ प्राणी ते धर्मथकी लोपाए इह लोके छेदनादिक पीडा पामे परलोके नरकादिकना ङःख पामे माटे ए नयना करनारछे ए धर्मथकी त्रष्ट करे एम कोई श्रोता कहे श्रोता स्त्रीनो गृद्ध होय तेवारे अपवाद धरे (विज्जंगहायतसथावरेहिं के०) तेवारे पंमित आगलानो नाव ग्रहण करीने त्रस तथा स्थावर जीवोने हितनो करनार एवो धर्मोपदेश करे ॥ २१ ॥ (नपूयणंचेवसिलोय कामी के०) साधु देशना आपतो थको पूजन तथा वस्त्रादिकना लानना वांछा नकरे तथा श्लाघा एटले आत्मानी प्रशंसा तेनी पण वांछा नकरे तथा (पियमप्पियंकस्सइ णोकरेज्जा के०) राग अने द्वेष कोइनी साथे सर्वथा नकरे अथवा कोइनी निंदा विकथा पण नकरे (सवेअणठेपरिवज्जयंते के०) एम सर्वथा प्रकारे अनिष्ट अनर्थकारी एवी पूजा सत्काराादिक वस्तु तेने समस्तपणे वर्जे (अणाउलेयाअकसाइनिक्कू के०) तथा अनाकुल एटले क्रोधादिक रहित आलशरहित तथा कषायरहित एवो छतो

किंभूतं धर्मं प्रजानां जीवानां हितदं। ये च गर्हितानिंद्याः सह निदानेनाऽऽशंसारूपेण वर्त्तते ते सनिदानाः प्रयोगाव्यापाराः कर्मबंधहेतवस्तान् सुधीरधर्माणोभिक्षवोन सेवं ते ॥ १९ ॥ केषांचिन्मिथ्यादृशां भावमभिप्रायमबुध्वाऽज्ञात्वा तीर्थिकतिरस्कारप्रायं वचोवदेत् कश्चित्साधुः श्रावकोवा सच तद्वचोश्रद्दधानः क्षुद्रत्वमपि गछेत् विरूपं कुर्यात् पालकपुरोहितइव स्कंदकाचार्यस्य सक्रुपितोवक्तुर्यदायुस्तस्य व्याघातरूपं क्षयस्वभावं कालातिचारं दीर्घस्थितिकमप्यायुः संवर्तयेत् ।कोर्थः । पुरुषविशेषं ज्ञात्वा हि देशना कार्या ।अन्यथा श्रोता विरुद्धवचः श्रवणकुपितोमरणाद्युपसर्गमपि वक्तुः कुर्यादिति तस्माल्लब्धमनुमानं पराभिप्रायज्ञानं येन सलब्धानुमानः परेषु प्रतिपाद्येषु यथायोगमर्थान् जीवादिकान् वदेत् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (सयंसमेच्चेत्यादि) स्वयमात्मना परोपदेशमंतरेण समेत्य ज्ञात्वा चतुर्गतिकं संसारं तत्कारणानि च मिथ्यात्वाविरत्यतिप्रमादकषाययोगरूपाणि तथाऽशेषकर्मक्षयलक्षणं मोक्षं तत्कारणानि च सम्यग्दर्शनज्ञानंचारित्राण्येतत्सर्वं स्वत एवावबुध्यान्यस्माद्वाचार्यादेः सकाशाछ्रुत्वाऽन्यस्मै मुमुक्षवे धर्मं श्रुतचारित्राख्यं भाषेत। किंभूतं । प्रजायंतइति प्रजाः स्थावरजंगमाजंतवस्तेभ्योहितं सडुपदेशदानतः सदोपकारिणं धर्मं ब्रूयादिति । उपादेयं प्रदर्श्य हेयं प्रदर्शयति । ये गर्हिताजुगुप्सितामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाः कर्मबंधहेतवः सह निदानेन वर्त्ततइति सनिदानाः प्रयुज्यंतइतिप्रयोगाव्यापाराधर्मकथाप्रबंधावा ममास्मात्सकाशात्पूजालाभसंस्कारादिकं भविष्यंतीत्येवंभूतनिदानाऽऽशंसारूपांस्तांश्चारित्रविघ्नभूतान् महर्षयः सुधीरधर्माणोन सेवंते नानुतिष्ठंति । यदि वा ये गर्हिताः सनिदानावाक्प्रयोगास्तद्यथा कुतीर्थिकाः सावद्यानुष्ठानविरतानिःशीलानिर्व्रताः कुटलवेंटलकारिणइत्येवंभूतान्परदोषोद्घट्टनया मर्मवेधिनः सुधीरधर्माणोवाक्कंटकान् नसेवंते नब्रुवतइति ॥ १९ ॥ किंचान्यत् । (केसिंतक्कायेत्यादि) केषांचिन्मिथ्यादृष्टीनां कुतीर्थिकभावितानां स्वदर्शनाग्राहिणां तर्कया वितर्केण स्वमतिपर्यालोचनेन भावमभिप्रायं डुःष्टांतःकरणवृत्तित्वमबुध्वा कश्चित्साधुः श्रावकोवा स्वधर्मस्थापनेछया तीर्थिकतिरस्कारप्रायं वचोब्रूयात् सच तीर्थिकस्तद्वचोऽश्रद्दधानोरोचयन्नप्रतिपाद्यमानोऽति कटुकं भावयेत् क्षुद्रत्वमपि गछेद्विरूपमपि कुर्यात् । पालकपुरोहितवत् स्कंदकाचार्यस्येति । क्षुद्रत्वगमनमेव दर्शयति । सनिंदावचनकुपितोपि वक्तुर्यदायुस्तस्यायुपोव्याघातरूपं परिक्षयस्वभावं कालातिचारं दीर्घस्थितिकमप्यायुः संवतेत्।एतडुक्तं भवति । धर्मदेशनाहि पुरुषविशेषं ज्ञात्वा विधेया ।तद्यथा । कोयं पुरुषोराजादिः कंचन देवताविशेषं नतः कतरद्वा दर्शनमाश्रितोऽभिगृहीतोनभिगृहीतोवाऽयमित्येवं सम्यक् परिज्ञाय

यातनास्थाने प्राणिनोविषयासक्तावेदनामनुजवंतीत्येवं विद्वान् पंमितोधर्मदेशनाभिज्ञो गृहीत्वा परानिप्रायं सम्यगवगम्य पर्षदं त्रसस्थावरेन्योहितं धर्ममाविर्भावयेत् ॥ २१ ॥ पूजासत्काराद्दिनिरपेक्षेण च सर्वमेव तपश्चरणादिकं विधेयं विशेषतोऽधर्मदेशनेत्येतदनि प्रायवानाह । (नपूयणंचेत्यादि) साधुर्देशनां विदधानोन पूजनं वस्त्रपात्रादिलाजरूप मनिकांक्षन्नापि श्लोकं श्लाघां कीर्तिमात्मप्रशंसां कामयेदनिलपेत्तया श्रोतुर्यत्प्रियं राज कथाविकथादिकं छलितकथादिकं च तथाऽप्रियं च तत्समाश्रितदेवताविशेषनिंदादिकं न कथयेदरक्तद्विष्टतया श्रोतुरनिप्रायमनिसमीक्ष्य यथावस्थितं कथयेत् । उपसंहारमाह । सर्वानर्थान् पूजासत्कारलाजानिप्रायेण स्वकृतान् परदूषणतया च परकृतान् वर्जयन् परिहरन् कथयेदनाकुलः सूत्रार्थादनुत्तरन्नकषायोनिकुर्भवेदिति ॥ २२ ॥ सर्वाध्ययनोप संहारार्थमाह । (आहत्तहीयमित्यादि) यथातथाजावोयाथातथ्यं धर्ममार्गसमवरणा ख्याध्ययनत्रयोक्तार्थं तत्त्वं सूत्रानुगतं सम्यक्त्वं चारित्रं वा तत्प्रेक्ष्यमाणः पर्यालोचय न् सूत्रार्थं सदनुष्ठानतोन्यसन् सर्वेषु स्थावरजंगमेषु सूक्ष्मबादरजेदनिन्नेषु पृथिवीकाया दिषु दंड्यंते प्राणिनोयेन सदंमः प्राणव्यपरोपणविधिस्तन्निधाय परित्यज्य प्राणात्ययेपि याथातथ्यं धर्मं नोल्लंघयेदिति । एतदेव दर्शयति । जीवितमसंयमजीवितं दीर्घायुष्कं वा स्थावरजंगमजंतुदंडेन नानिकांक्षी स्यात् परीषहपराजितोवेदनासमुद्घातहतोवा त द्वेदनामसहमानोजलानलसंपातापादितजंतूपमर्देन नापि मरणानिकांक्षी स्यात् । तदेवं याथातथ्यमुत्प्रेक्ष्यमाणः सर्वेषु प्राणिषूपरतदंमोपजीवितमरणानपेक्षी संयमानुष्ठानं चरे दुद्युक्तविहारी जवेन्मेधावी मर्यादाव्यवस्थितोविदितवेद्योवा वलयेन मायारूपेण मोह नीयकर्मणा वा विविधं प्रकर्षेण मुक्तोविप्रमुक्तइति । इतिपरिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्व वत् ॥ २३ ॥ समाप्तं च याथातथ्यं त्रयोदशमध्ययनमिति ॥

हवे ग्रंथ परित्याग नामा चौदमो अध्ययन कहेछे. तेरमां अध्ययनमां यथा सत्य पणो कह्यो ते यथा सत्य पणो तो बाह्याज्यंतररूप द्विविध परिग्रहना त्याग विना न थाय माटे आ चौदमां अध्ययनमां ग्रंथ परित्याग पणो कहेछे.

गंथं विहाय इह सिक्खमाणो, उठाय सुबंजचेरं वसेज्जा ॥ उवा
यकारी विणयं सुसिक्खे, जे छेय विप्पमायं न कुज्जा ॥ १ ॥ ज
हा दियापोतमपत्तजातं, सावासगा पविउं मन्नमाणं ॥ तमंचाइयं
तरुणमपत्तजातं, ढंकाइ अवत्तगमं हरेज्जा ॥ २ ॥

अर्थ-(गंथं के०) धनधान्य हिरण्यादिक बाह्य ग्रंथ अने क्रोधादिक अत्यंतर ग्रंथ ए द्विविध ग्रंथने (विहाय के०) त्यागीने (इह के०) आ प्रवचनने विषे (सिक्ख

साधु, धर्मनी प्ररूपणा करे ॥ २२ ॥ (आहत्तहीयंसमुपेहमाणे के०) यथातथ्य सत्य मार्ग जे सूत्रगत छे तेने आलोचतो सम्यक् प्रकारें अनुष्ठानने अभ्यासतो थको (सव्वेहिं पाणेहिंणिहायदंडके०) सर्व प्राणी मात्र जे त्रस अने स्थावर जीवोछे तेनो दंड एटले विनाशनुं त्याग करीने प्राणांते पण धर्मनुं उल्लंघन नकरे (णोजीवियंणोमरणाहिकंखीके०) जीवितव्य अने मरणनी वांछारहित समताभावसहित थको (परिव्वएज्जावलयाविप्पमुक्के के०) सुधो संयम पाले ते साधु वलय एटले मिथ्यात्व मोह गहनथकी विप्रमुक्त थाय तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२३॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगना प्रथमश्रुतस्कंधनेविषे यथातथ्य नामे तेरमां अध्ययननो अर्थ संपूर्ण थयो. ॥

॥ दीपिका–धीरोबुद्धिमान् श्रोतुः कर्मानुष्ठानं गुरुलघुकर्मत्वं वा तथा छंदमभिप्रायं (विगिंच) विवेचयेज्जानीयात् ज्ञात्वा च धर्मकथां कुर्वन् सर्वथा सर्वप्रकारेण पर्षद आत्मभावं मिथ्यात्वादिकं व्यपनयेत् विषयासक्तिं व्यपनयेत् । यतोरूपैर्नयनमनोहारिभिर्भयावहैः संसारभयकारिभिस्तुच्छसत्त्वाविलुप्यंते धर्मात् बाध्यंते एवं विद्वान् पंडितो गृहीत्वा पराभिप्रायं त्रसस्थावरेभ्योहितं धर्मं वदेत् ॥२१ ॥ साधुर्देशनां कुर्वन् पूजनं वस्रुपात्रादिलाभरूपं न वांछेत् नापिश्लोकं श्लाघां कामयेत् तथा श्रोतुः प्रियं राजकथादिकमप्रियं तदाश्रितदेवनिंदादिरूपं न कथयेत् । एवं सर्वान् दोषान् परिवर्जयेदनाकुलः साधुरकषायी भवेत् ॥ २२॥ योयाथातथ्यं सम्यक्चारित्रं प्रेक्षमाणः पर्यालोचयन् सर्वेषु प्राणिषु दंडं हिंसां निधाय त्यक्त्वा जीवितमसंयमजीवितं न कांक्षेन्नापि मरणाभिकांक्षी स्यात् । तदेवं वलयेन मायामोहेन विप्रमुक्तः परिव्रजेत्संयमानुष्ठानं चरेत्साधुः । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २३ ॥ याथातथ्याख्यं त्रयोदशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका–अपिच । (कम्मंचछंदंचेत्यादि) धीरोऽक्षोभ्यः सद्बुध्यलंकृतोवा देशनावसरे धर्मकथाश्रोतुः कर्मानुष्ठानं गुरुलघुकर्मभावं वा तथा छंदमभिप्रायं सम्यग्विवेचयेज्जानीयात् ज्ञात्वा च पर्षदनुरूपामेव धर्मकथिकोधर्मदेशनां कुर्यात्सर्वथा यथा तस्य श्रोतुर्जीवादिपदार्थावगमोभवति । यथाच मनोन दूष्यतेऽपितु प्रसन्नतां व्रजत्येतदभिसंधिमानाह । विशेषेण नयेदपनयेत्पर्षदः पापभावमशुद्धमंतःकरणं तुशब्दाद्विशिष्टगुणारोपणं च कुर्यात् । आयभावं ति क्वचित्पाठः । तस्यायमर्थः । आत्मभावोऽनादिभवाभ्यस्तोमिथ्यात्वादिकस्तमपनयेद्यदिवात्मभावोविषयगृध्नुताऽतस्तमपनयेदिति । एतद्दर्शयति । रूपैर्नयनमनोहारिभिः स्त्रीणामंगप्रत्यंगार्द्धकटाक्षनिरीक्षणादिभिरल्पसत्त्वाविलुप्यंते सद्धर्माद्बाध्यंते । किंभूतैरूपैर्भयावहैः । भयमावहंति भयावहानि । इहैव तावद्रूपादिविषयासक्तस्य साधुजनजुगुप्सा नानाविधाश्च कर्णनासिकाविकर्तनाविडंबनाः प्रादुर्भवंति जन्मांतरे तिर्यङ्नरकादिके

थोपुव्वुद्दिठोइत्यादि) ग्रंथोऽव्यन्नावन्नेदन्निन्नः कुह्लकनैर्ग्रंथ्यं नाम उत्तराध्ययनेष्वध्ययनं। तत्र पूर्वमेव सप्रपंचोऽन्निहितः। इह तु ग्रंथं ऽव्यन्नावन्नेदन्निन्नं यः परित्यजति शिष्यश्राचा रादिकं वा ग्रंथं योधीते सशिष्योद्विविधोद्विप्रकारोज्ञातव्योन्नवति। तद्यथा। प्रव्रज्यया शिक्ष्या च। यस्य प्रव्रज्या दीयते शिक्षां वा यो ग्राह्यते सद्विप्रकारोपि शिष्यइह पुनः शिक्षा शिष्येण प्रकृतमधिकारोयः शिक्षां गृह्णाति शिक्षकस्तच्छिक्षयेह प्रस्तावइत्यर्थः। य थाप्रतिज्ञातमधिकृत्याह। " सो सिरकगो य डुविहो, गहणे आसेवणा य णायवो ॥ ग हणंमि होंति तिविहो सुत्ते अत्थे तडुन्नएय, ॥ ३० ॥ (सोसिरकगोयडुविहोइत्यादि) यः शिक्षां गृह्णाति सद्विविधोद्विप्रकारकोन्नवति। तद्यथा। ग्रहणे प्रथममेवाचार्यादेः सका शाच्छिक्षां इच्छामिच्छातहक्कारादिरूपां गृह्णाति शिक्षति तथा शिक्षितां वाज्यस्यति अहर्नि शमनुतिष्ठति सएवंविधोग्रहणासेवनान्नेदन्निन्नः शिष्योज्ञातव्योन्नवति। तत्रापि ग्रह णपूर्वकमासेवनमिति कृत्वाऽऽदावेव ग्रहणशिक्षामाह। शिक्ष्या ग्रहणे उपादानेऽधिकृते त्रिविधोन्नवतीति शिक्षकः। तद्यथा। सूत्रेऽर्थे तडुन्नयेच सूत्रादीन्यादावेव गृह्णन् सूत्रादि शिक्षकोन्नवतीति न्नाव.। सांप्रतं ग्रहणोत्तरन्नाविनीमासेवनामधिकृत्याह। (" आसेव णाए डुविहो, मूलगुणे चेव उत्तरगुणेय ॥ मूलगुणे पंचविहो, उत्तरगुणे वारसविहो उ" ॥ ३१ ॥ (आसेवनेइत्यादि) यथावस्थितसूत्रानुष्ठानमासेवना तया कारणन्नूतया द्विविधोन्नवति शिक्षकः। तद्यथा मूलगुणे मूलगुणविषये आसेवमानः सम्यक् मूलगु णानामनुष्ठानं कुर्वन् तथोत्तरगुणे चोत्तरगुणविषयं सम्यगनुष्ठानं कुर्वाणोद्विरूपोप्यासेव नाशिक्षकोन्नवति। तत्रापि मूलगुणे पंचप्रकारः। प्राणातिपातादिविरतिमासेवमानः पं चमहाव्रतधारणात्पंचविधोन्नवति मूलगुणेष्वासेवनाशिक्षकः। तथोत्तरगुणविषये सम्य क्पिंडविशुध्यादिकान् गुणानासेवमानउत्तरगुणानासेवनाशिक्षकोन्नवति। ते चामी उत्त रगुणाः। पिंडस्स जावि सोही, समिईहो न्नावणा तवो डुविहा ॥ पडिमा अन्निग्गहा विय, उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥ १ ॥ यदिवा सत्स्वप्येतेषूत्तरगुणेषु प्रधाननिर्जराहेतु तया तपएव द्वादशगुणमुत्तरगुणत्वेनाधिकृत्याह। उत्तरगुणे उत्तरगुणविषये तपोद्वाद शन्नेदन्निन्नं यः सम्यक् विधत्ते सआसेवनाशिक्षकोन्नवतीति। शिष्योह्याचार्यमंतरेण न न्नवत्यतआचार्यनिरूपणमाह। " आयरिंउ विय डुविहो, पञ्चावंतो य सिरिकवंतो य॥ सिरकावंतो डुविहो गहणे आसेवणे चेव ॥ ३२ ॥ गाहाविंतो तिविहो, सुत्ते अत्थेय त डुन्नए चेव ॥ मूलगुणउत्तरगुणो, डुविहो आसेवणाए उ" ॥ ३३ ॥ (आयरिंउ वि यइत्यादिगाथाद्वयं शिष्यापेक्ष्या हि आचार्योद्विविधोद्विन्नेदः। एकोयः प्रव्रज्यां ग्राह यत्यपरस्तु यः शिक्षामिति। शिक्ष्यन्नपि द्विविधः। एकोयः शिक्षाशास्त्रं ग्राहयति पा ठयत्यपरस्तु तदर्थं दशविधचक्रवालसमाचार्यनुष्ठानतः सेवयति सम्यगनुष्ठानं कारयति।

माणो के०) सम्यक् प्रकारे संयममार्ग शुद्धक्रियारूप शील सीखतो थको (उट्ठायसु के०) संयमने विषे उद्यम करीने सुशोभन एवा (बंभचेरंवसेज्जा के०) ब्रह्मचर्यव्रतनुं नव वाडसहित आश्रय करे (उवायकारीविणयंसुसिरके के०) तथा जावजीव सुधी उपायकारी एटले गुरुनी आज्ञा पालतो शोभन प्रकारे करीने विनयज शीखे (जेछेय विप्पमायंनकुज्जा के० जे माह्या पुरुष छे ते ए कार्यने विषे प्रमाद नकरे ॥ १ ॥ हवे गुरु उपदेशविना पोताने छंदे गछथकी निकलीने जे एकाकी पणे विचरे तेने घणा दोषनी प्राप्ति थाय ते उपर दृष्टांत कहेछे (जहादिया के०) यथा दृष्टांते जेम पक्षी ना (पोतअपत्तजातं के०) बालक ने ज्यां सुधी पांख आवी नथी त्यांसुधी ते पांख विनानो एवो छतो (सावासगापविउंमन्नमाणं के०) पोताना माला थकी उडवानी वांछा करतो थको पांख फडफडावे परंतु (तमंचाइयं तरुणमपत्तजातं के०) आकरो उडीजवाने असमर्थ थाय अने तेने पांखो थकी हीन मांसपेसी समान एवो न्हानो तरुण देखीने (ढंकाइअव्वत्तगमंहरेज्जा के०) मांसाहारी एवा ढंकादिक पक्षीउ तेने अपहरीने तेनो विनाश करे ते बालक केवोछे तो के अव्यक्तगतासिवा असमर्थ एटले त्यां थी नाशी जवाने असमर्थ एवोछे ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथ चतुर्दशं ग्रंथाध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (गंथमिति) इह प्रवचने ग्रंथं धनादिकं त्यक्त्वा शिक्षमाणोग्रहणसेवनाशिक्षां सेवमानः सदुछानेनोछाय सुष्ठु शोभनं ब्रह्मचर्यमाश्रित्य वसेत्तिष्ठेदाचार्यवचनस्यावपातोनिर्देशस्तत्कारी आचार्यकथितकारी विनयं सुष्ठु शिक्षेत् कुर्यात् तथा यश्छेकोनिपुणः स विप्रमादं विविधं प्रमादं न कुर्यात् ॥ १ ॥ यथाद्विजपोतः पक्षिशिशुर्नविद्यते पत्रजातं पक्षोद्भवोयस्य सोऽपत्रजातः पक्षहीनस्तं स्वकीयादावासकात् प्लवितुमुत्पतितुं मन्यमानं तत्र पतंतमुपलभ्य तं (अचाइयंति) पक्षाभावाजंतुमसमर्थमपत्रजातमिति कृत्वा ढंकादयोमांसाहाराः सत्वा अव्यक्तगमं गमनाभावे नष्टुमसमर्थं हरेयुर्व्यापादयेयुः ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तं त्रयोदशमध्ययनं सांप्रतं चतुर्दशमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने याथातथ्यमिति सम्यक्चारित्रमभिहितं तच्च बाह्याभ्यंतरग्रंथपरित्यागादवदातं भवति । तत्त्यागश्चानेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्युपक्रमादीनि भवंति । तत्रोपक्रमद्वारांतर्गतोऽर्थाधिकारोयं । तद्यथा । सबाह्याभ्यंतरग्रंथपरित्यागोविधेयइति नामनिष्पन्ने तु निक्षेपे आदानपदाद्गुणनिष्पन्नत्वाच्च ग्रंथतइति नाम तं ग्रंथमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । " गंथोपुव्वुद्दिट्ठो, दुविहो सिस्सो य होंति णायव्वो ॥ पव्वावण सिरकावण, पगवं सिरकावणाए उ " ॥ १९ ॥ (गं

पछी तेने अनेक क्षुद्र पाखमीरूप जे ढंकपक्षीउ ते पोताने वसगामी जाणता थका तेने विप्रतारीने संयमरूप जीवितव्य थकी चुकावे (दियस्सछावंचअपत्तजायं के०) पांखरहित एवो जे पक्षीनो बालक तेनी पेरे ते अगीतार्थ शिष्यने (हरिसुणंपावधम्माअणेगे के०) ते पापधर्मि एवा अनेक पाखंमी तेने संयम थकी हरण करे ॥ ३ ॥ ए माटे चारित्रवान साधुए सर्वकाल गुरुपाशे रहेवो ते कहेछे. (उसाणमिछेमणुएसमाहिं के०) जावजीव सुधी गुरुनी पाशे रहेवानी वांछा करे जे सुसाधु छे ते एवीज सन्मार्गरूप समाधिनी वांछा करे एटले परमार्थथकी मनुष्य तेनेज कहिए के जे गुरुकुलवासे वसतो थको पोताना नापेला अंगीकार करेलां सन्मार्गनो निर्वाह करे (अणोसिएणंतकरिंतिणच्चा के०) गुरुकुलवासे अणवसतो एटले स्वछंदाचारी छतो संसारनो अंत नकरे उलटो अनंत संसारी थाय संसारनी वृद्धि करे एवुं जाणीने (उन्नासमाणेदवियस्सवित्तं के०) सर्वकाल गुरुकुलवासे वशे गुरुनी सेवा करे एम मुक्तिगमन योग्य साधुना आचारने अत्यंत दीपावतो थको जिनन्नाषित धर्मने दीपावे एवुं जाणीने (णणिक्कसेबहिया आसुपन्ने के०) आसुप्रज्ञ एटले जे पंमित होय ते गछथकी बाहेर नीकले नही अर्थात् स्वछंदी नथाय ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–दृष्टांतयोजनामाह । एवमुक्तप्रकारेण शिक्षकं नवदीक्षितं सूत्रार्थविकलमगीतार्थमपुष्टधर्माणं पाखंडिकाः प्रतारयंति प्रतार्यच गछान्निःसारयंति निःसारितंच संतमस्माकं वश्यमित्येवं मन्यमानाअजातपक्षं द्विजशावं पक्षिपोतमिव ढंकादयः पापकर्माणः कुतीर्थिकाः स्वजनाराजादयोवाऽनेके हृतवंतोहरंति हरिष्यंति चेति कालत्रयोपलक्षणार्थं नूतनिर्देशः ॥ ३ ॥ अवसानं गुरोरंतिके स्थानं समाधिसन्मार्गानुष्ठानरूपं यावज्जीवमिछेन्मनुजः साधुर्यावज्जीवं गुरुकुलवासी स्यादित्यर्थः । गुरोरंतिकेऽनुषितोऽव्यवस्थितः कर्मणोऽनंतकरोंऽतकारी नस्यादिति ज्ञात्वा गुरुं सेवेत तद्विहितस्य विज्ञानमुपहासोन्नवेत् । यतः । नहि न्नवति निर्विगोपकमनुपासितगुरुकुलस्य विज्ञानं ॥ प्रकटितपश्चान्नागं, पश्यत नृत्यं मयूरस्य ॥ १ ॥ द्रव्यस्य मुक्तियोग्यस्य साधोर्वृत्तमनुष्ठानमुन्नासयन्ननुतिष्ठन् ननिष्कसेन्ननिर्गछेन्गछाद्बहिरासुप्रज्ञः पंडितः ॥ ४ ॥

॥ टीका–एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं प्रदर्शयितुमाह । (एवंतुसेहंपीत्यादि) एवमित्युक्तप्रकारेण । तुशब्दः पूर्वस्माद्विशेषं दर्शयति । पूर्वं ह्यसंजातपक्षत्वादव्यक्तता प्रतिपादिता इहत्वपुष्टधर्मतयेति । अयं विशेषोयथा द्विजपोतमसंजातपक्षं स्वनीडान्निर्गतं क्षुद्रसत्वाविनाशयंति एवं शिष्यकमन्निनवप्रव्रजितं सूत्रार्थानिष्पन्नमगीतार्थमपुष्टधर्माणं सम्यगपरिणतधर्मपरमार्थं संतमनेकपापधर्माणः पाषंडिकाः प्रकारयंति प्रतार्यच गछस

तत्र सूत्रार्थं तडुनयन्नेदाद्ग्राहयन्नप्याचार्यस्त्रिधा नवति । आसेवनाचार्योपि मूलोत्तर न्नेदाद्विविधोन्नवति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपस्तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (गंथंविहेत्यादि) इह प्रवचने ज्ञातसंसारस्वन्नावः सन् सम्यगनुष्ठानेनोत्थितोग्रथ्यते आत्मा येन सग्रंथोधनधान्यहिरण्यद्विपदचतुष्पदादिकस्तं विहाय त्यक्त्वा प्रव्रजितः सन् उत्थानेनोत्थाय च ग्रहणरूपामासेवनारूपां च शिक्षां च कुर्वाणः सम्यगासेवमानाः सुष्ठु शोनन नवनिर्ब्रह्मचर्यगुप्तिनिर्गुप्तमाश्रित्य ब्रह्मचर्यं वसे त्तिष्ठेत् यदिवा ब्रह्मचर्यमिति संयमस्तदावसेत्तं सम्यक् कुर्यात् । आचार्यांतिके याव ज्जीवं वसमानोयावदन्युद्यतविहारं न प्रतिपाद्यते तावदाचार्यवचनस्यावपातोनिर्देशस्त त्कार्यावपातकारी वचननिर्देशकारी सदाज्ञाविधायी विनीयतेऽपनीयते कर्म येन सवि नयस्तं सुष्ठु शिक्षेत्विदध्यात् ग्रहणासेवनाभ्यां विनयं सम्यक्परिपालयेदिति । तथा य श्छेकोनिपुणः संयमानुष्ठाने सदाचार्योपदेशे वा विविधं प्रमादं न कुर्यात् । यथाहि आतुरः सम्यग्वैद्योपदेशं कुर्वन् श्लाघां लनते रोगोपशमंचैवं साधुरपि सावद्यग्रंथपरि हारी पापकर्मन्नेषजस्थानन्नूतान्याचार्यवचनानि विदधदपरसाधुन्यः साधुकारमशेषकर्म क्षयं वा प्राप्नोतीति ॥ १ ॥ यः पुनराचार्योपदेशमंतरेण स्वछंदतया गच्छान्निर्गत्य एका किविहारितां प्रतिपद्यते सच बहुदोषन्नाग् नवतीत्यस्यार्थस्य दृष्टांतमाविर्नावयन्नाह । (जहादियाइत्यादि) यथेति दृष्टांतोपप्रदर्शनार्थः । यथा येन प्रकारेण द्विजपोतः प क्षिशिशुरव्यक्तस्तमेव विशिनष्टि । पतंति गच्छंति तेनेति पत्रं पक्षपुटं नविद्यते पत्रजातं प क्षोन्नवोयस्यासावपत्रजातस्तत्र स्वकीयादावासकात् स्वनीडात् प्लवितुमुत्पतितुं मन्यमानं तत्रतत्र पतंतमुपलन्य तं द्विजपोतं (अचाइयंति) पक्षान्नावाद्गंतुमसमर्थमपत्रजात मिति कृत्वा मांसपेशीकल्पं ढंकादयः क्षुद्रसत्त्वाः पिशिताशिनोऽव्यक्तगमं गमनान्नावे नष्टुमसमर्थं हरेयुश्चंच्वादिनोत्क्षिप्य नयेयुर्व्यापादयेयुरिति ॥ २ ॥

एवं तु सेहंपि अपुठधम्मं, निस्सारियं वुसिमं मन्नमाणा ॥ दि
यस्स गवं च अपत्तजायं, हरिसुणं पावधम्मा अणेगे ॥ ३ ॥
उसाणमिछे मणुए समाहिं; अणोसिए णंतकरिंति णच्चा ॥ न
न्नासमाणे दवियस्स वित्तं, ण णिक्कसे बहिया आसुपन्नो ॥ ४ ॥

अर्थ-(एवंतु के०) एरीते जेम ते अव्यक्त एवोजे पक्षीनो बालक तेनो बीजा ढं कादिक क्षुद्र पक्षीउ विनाश करे तेम ते (सेहंपिअपुठधम्मं के०) अगीतार्थ नवदिक्षी त शिष्य पण (निस्सारियंवुसिमंमन्नमाणा के०) गछरूप माला थकी नीकल्यो तो

जे ठाणउं य सयणासणे य, परक्कमे यावि सुसाहुजुत्ते॥समितीसु गुत्तीसु य आयपन्ने, वियागरिंते य पुढो वएज्जा ॥ ५ ॥ सद्दाणि सोच्चा अदु भेरवाणि, अणासवे तेसु परिव्वएज्जा॥ निद्दं च भिक्खू न पमाय कुज्जा, कहंकहं वा वितिगिच्छ तिन्ने ॥ ६ ॥

अर्थ—(जेके०) जे वैराग्य आदरी चारित्रवंत थको (ठाणउंय के०) स्थान आश्री कायोत्सर्गादिकने विषे (सयणासणेय के०) तथा शयन अने आशनने विषे च कार शब्दथकी गमनने विषे (परक्कमेयावि के०) पराक्रम एटले बल फोरवे ते केवो थको फोरवे तोके (सुसाहुजुत्ते के०) रुडा आचारसहित एवो थतो (समितीसुगुत्तीसुयआयपन्ने के०) पांच समिति अने त्रण गुप्तिने विषे आयपन्न एटले सम्यक् जाण (वियागरिंतेयपुढोवएज्जा के०) अथवा अन्यने उपदेश देतो ते उपदेशने गुरु प्रसाद थकी जाणीने तेने जुदो जुदो विचार कहे. ॥५॥ (सद्दाणिसोच्चाअदुभेरवाणि के०) शब्द ते वंशना वीणादिक कर्णने सुखना करनार तथा भैरव एटले कर्णने दुःखना करनार एवा शब्द सांभलीने (अणासवे के०) ते शब्दादिकने विषे राग द्वेष रहित एवो थतो (सुपरिव्वएज्जा के०) सूधो संयम पाले (निद्दंचभिक्खूनपमायकुज्जा के०) तथा निद्रारूप जे प्रमाद ते पण भिक्षु नकरे ए प्रकारे प्रवर्त्ततो (कहंकहंवावितिगिच्छतिन्ने के०) कोई पण प्रकारे वितिगिछ एटले संदेह तेथकी निःक्रांत थाय एटलेसंदेह रहित थाय. ॥६॥

॥ दीपिका—प्रव्रज्यां प्रति उद्यतोनित्यं गुरुकुलवासतः स्थानतश्च स्थानमाश्रित्य तथा शयनतश्चासनतः। चकाराद्गमनमाश्रित्य तथा तपश्चरणादौ पराक्रमतश्च साधोरुद्यतविहारिणोये समाचारास्तैः समायुक्तः स्थानशयनासनादावुपयुक्तइत्यर्थः। समितिषु गुप्तिषु चागताउत्पन्ना प्रज्ञा यस्य सआगतप्रज्ञः संजातकृत्याकृत्यविवेकः सतः स्यात्। परस्यापि व्याकुर्वन् कथयन् पृथक् समितिगुप्तीनां पालनं तत्फलंच वदेत् ॥५॥ शब्दान् मनोहरान् श्रुत्वाऽथवा भैरवान् कर्णकटून् श्रुत्वा तेषु शब्देष्वनाश्रवोमध्यस्थोभूत्वा परिव्रजेत्संयमानुष्ठायी स्यात्। तथा निद्रां प्रमादरूपां भिक्षुर्नकुर्यात्। तदेवं गुरूपदेशात् कथंकथमपि विचिकित्सां विप्लुतिरूपां वितीर्णोनिष्क्रांतः स्यात् ॥ ६ ॥

॥ टीका—तदेवं प्रव्रज्यामभ्युद्यतोनित्यं गुरुकुलमावसन् सर्वत्र स्थानशयनासनादावुपयुक्तोभवति तदुपयुक्तस्य च गुणमुद्भावयन्नाह। (जेठाणउं यइत्यादि) योहि निर्विण्णसंसारतया प्रव्रज्यायामभ्युद्यतोनित्यं गुरुकुलवासतः स्थानतश्च स्थानमाश्रित्य तथा

सुझान्निःसारयंति निःसारितंच संतं विषयोन्मुखतामापादितमपगतपरलोकनयमस्माकं वश्यमित्येवं मन्यमानाः । यदिवा (बुसिति) चारित्रं तदसदनुष्ठानतोनिःसारं मन्यमानाअजातपक्षं द्विजशावकमिव पक्षिपोतमिव ढंकादयः पापधर्माणोमिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषायकलुषितांतरात्मानः कुतीर्थिकाः स्वजनाराजादयोवाऽनेके बहवोहृतवंतोहरंति हरिष्यंति चेति कालत्रयोपलक्षणार्थं नूतनिर्देशइति । तथाहि । पापंडिकाएवमगीतार्थं प्रतारयंति । तद्यथा । युष्मद्दर्शनेनाग्निप्रज्वालनविषापहारशिखाछेदादिकाः प्रत्यया दृश्यंते तथाऽणिमाद्यष्टगुणमैश्वर्यंच नास्ति तथा न राजादिनिर्बहुनिराश्रितं । याप्यहिंसोच्यते नवदागमे सापि जीवाकुलत्वाल्लोकस्य डुःसाध्या नापि नवतां स्नानादिकं शौचमस्तीत्यादिकानिः शगोक्तिनिरिंद्रजालकल्पानिर्मुग्धजनं प्रतारयंति स्वजनादयश्चैवं विप्रलंनयंति । तद्यथा । न नवंतमंतरेणास्माकं कश्चिदस्ति पोषकः पोष्योवा त्वमेवास्माकं सर्वस्वं त्वया विना शून्यमानाति तथा शब्दादिविषयोपनोगामंत्रणेन सद्धर्माच्च्यावयंति। एवं राजादयोपि डुष्टव्यास्तदेवमपुष्टधर्माणमेकाकिनं बहुनिः प्रकारैः प्रतार्यापहरेयुरिति। ॥ ३ ॥ तदेवमेकाकिनः साधोर्यताबहवोदोषाः प्राडुर्नवंत्यतः सदा गुरुपादमूले स्थातव्यमित्येतद्दर्शयितुमाह । (उसाणमिछेइत्यादि) अवसानं गुरोरंतिके स्थानं तद्यावज्जीवं समाधिं सन्मार्गानुष्ठानरूपमिछेदनिलपेन्मनुजोमनुष्यः साधुरित्यर्थः । सएव परमार्थतोमनुष्योयोयथाप्रतिज्ञातं निर्वाहयति । तच्च सदागुरोरंतिके व्यवस्थितेन सदनुष्ठानरूपं समाधिमनुपालयता निर्वाह्यते नान्यथेत्येतद्दर्शयति । गुरोरंतिकेऽनुषितोव्यवस्थितः स्वछंदविधायी समाधिः सदनुष्ठानरूपस्य कर्मणोयथाप्रतिज्ञातस्य वा नांतकरोनवतीति ज्ञात्वा सदा गुरुकुलवासोऽनुसर्तव्यस्तद्रहितस्य विज्ञानमुपहास्यप्रायं नवतीति । उक्तंच । नहि नवति निर्विगोपकमनुपासितगुरुकुलस्य विज्ञानं ॥ प्रकटितपश्चान्नागं पश्यत नृत्यं मयूरस्य ॥ १ ॥ तथा जांगलविलग्नवालुकां पार्ष्णिप्रहारेण प्रगुणां दृष्ट्वाऽपरोऽनुपासितगुरुरज्ञोराज्ञीं संजातगलगंडां पार्ष्णिप्रहारेण व्यापादितवानित्यादयोऽनुपासितगुरोर्बहवोदोषाः संसारवर्धनाद्यानवंतीत्यवगम्यानया मर्यादया गुरोरंतिके स्थातव्यमिति दर्शयति । अवनासयन्नुद्भासयन् सम्यगनुतिष्ठन् इव्यस्य मुक्तिगमनयोग्यस्य सत्साधोरागद्वेषरहितस्य सर्वज्ञस्य व्यावृत्तमनुष्ठानं तत्सदनुष्ठानतोऽवनासयेद्धर्मकथिकः कथनतोवोद्भासयेदिति । तदेवं यतोगुरुकुलवासोबहूनां गुणानामाधारोनवत्यतोन निष्कसेन्ननिर्गछेत गछात्कुर्वंतिकाद्वा बहिः स्वेछाचारी ननवेदाशुप्रज्ञइति क्षिप्रप्रज्ञस्तदंतिके निवसन् विषयकषायान्यामात्मानं ह्रियमाणं ज्ञात्वा क्षिप्रमेवाचार्योपदेशात्स्वतएव वा निवर्तयति सत्समाधौ व्यवस्थापयतीति ॥ ४ ॥

मादे खलना पाम्यो हतो तेने न्हाने अथवा वडेराये शीखामण दीधी हतां (रायंणिए णाविसमव्वएणं के०) अथवा रत्नाधिक जे आचार्य अथवा सरखा पर्याय वालाये शीखामण आपीहतां (सम्मंतयंथिरतोणाभिगछे के०) तेमनी शीखामण सम्यक् प्रकारे नमाने (णिज्जंतएवाविअपारएसे के०) ते संसार प्रवाहे वाहाडीजतो संसारनो पारंगामी नथाय एटले मुक्तिगामी नथाय ॥ ७ ॥ (विउठिते के०) अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ तेणे साधुने (समयाणुसिठे के०) सिद्धांतने अनुसारे शीखव्यो हतो एटले जेवीरीते तमे समाचरोठो तेम तमारा आगमने विषे कह्युं नथी (डहरेणवुड्ढेण उचोइएया के०) तथा न्हाने अथवा महोटे शीखामण चोयणा आपी हता (अत्तुठियाएवडदासिएवा के०) एटले अत्यंत कार्यनी करनारी तथा पाणीनी भरनारी एवी दासी तेणे (आगारिणंवासमयाणुसिट्ठे के०) सिद्धांतने अनुसारे चोयणा कस्यो हतो एटले जेम तमे चालोठो तेम गृहस्थ पण नचाले इत्यादिक वचने करी चोयणा कस्यो हतो शुं करे ते कहेछे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–ससाधुर्गुरुसमीपे वसन् डहरेण लघुना वृद्धेन वाऽनुशाशितः प्रमादाचरणनिषिद्धः । अथवा वयोधिकेन पर्यायज्येष्ठेन समवयसा वाऽनुशासितः कुप्यति तदनुशासनं सम्यक्स्थितोऽपुनःकरणतया नाभिगछेन्नप्रतिपद्येत । अप्रतिपद्यमानश्च संसारप्रवाहे नीयमानोन संसारपारगः स्यात् ॥ ७ ॥ विरुद्धोठानेनोठितोव्युठितोऽन्यतीर्थिकोगृहस्थोवा मिथ्यादृष्टिस्तेन प्रमादस्खलितोचोदितः स्वसमयेन । तद्यथा । नैवंविधमनुष्ठानं भवतामागमेव्यवस्थितमिति । तथा डहरेण लघुना वृद्धेन वाऽनाचारे प्रवृत्तश्चोदितस्तथाऽतीवाऽकार्यकरणं प्रति उठिताऽथवा दासीत्वेनात्यंतमुठिता तया । तथा दास्या अपिदासीत्वेन घटदास्या जलवाहिन्यापि चोदितोन क्रोधं कुर्यात् तयाऽगारिणां गृहस्थानां यः समयोनुशासितोगृहस्थानामप्येतन्नयुज्यते कर्तुं किं पुनः साधूनामितिचोदितोपि न कुप्येत् ॥ ८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (डहरेणेत्यादि) सगुर्वंतिके निवसन् कचित् प्रमादस्खलितः सन् वयःपर्यायाभ्यां क्षुल्लकेन लघुना चोदितः प्रमादाचरणं प्रतिषिद्धस्तथा वृद्धेन वा वयोधिकेन श्रुताधिकेनवाऽनुशासितोऽभिहितः । तद्यथा । भवद्विधानामीदृक्प्रमादाचरणमासेवितुमयुक्तं । तथा रत्नाधिकेनवा प्रव्रज्यापर्यायाधिकेन श्रुताधिकेनवा समवयसा वाऽनुशासितः प्रमादस्खलिताचरणंप्रति चोदितः कुप्यति । यथाहमप्यनेन रंकप्रायेणोत्तमकुलप्रसूतः सर्वजनसंमतइत्येवं चोदितइत्येवमनुशास्यमानोन मिथ्यादुष्कृतं ददाति न सम्यगुठानेनोत्तिष्ठति नापि तदनुशासनं सम्यक्स्थितोऽपुनःकरणतया भि

शयनतश्चासनतः । एकश्चकारः समुच्चये द्वितीयोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । चकाराज्जमनमाश्रि त्यागमनंच तथा तपश्चरणादौ पराक्रमतश्च साधोरुद्युक्तविहारिणोये समाचारास्तैः समा युक्तः सुसाधुर्हि यत्र स्थानं कायोत्सर्गादिकं विधत्ते तत्र सम्यक्प्रत्युपेक्षणादिकां क्रियां करोति कायोत्सर्गं च मेरुरिव निष्प्रकंपशरीरोनिस्पृहोविधत्ते तथा शयनं च कुर्वन् प्रत्युपे क्ष्तं संस्तारकं तद्भुवं कायं वोचितकाले गुरुर्निरनुज्ञातः स्वपेत्तत्रापि जाग्रदिव नात्यंतं निःसहइति । एवमासनादिष्वपि तिष्ठता पूर्ववत्संकुचितगात्रेण स्वाध्यायध्यानपरायणे न सुसाधुना नवितव्यमिति । तदेवमादिंसुसाधुक्रियायुक्तोगुरुकुलनिवासी सुसाधुर्नव तीति स्थितं । अपिच गुरुकुलवासे निवसन् पंचसु समितिष्वीर्यासमित्यादिषु प्रविचा राऽप्रविचाररूपासु तथा तिसृषु च गुप्तिषु प्रविचाराप्रविचाररूपासु आगतोत्पन्ना प्रज्ञा य स्यासावागतप्रज्ञः संजातकर्तव्याकर्तव्यविवेकः स्वतोनवति परस्यापिच व्याकुर्वन् कथय न् पृथक्पृथग्गुरोः प्रसादात्परिज्ञातस्वरूपः समितिगुप्तीनां यथावस्थितस्वरूपप्रतिपालनं तत्फलंच वदेत्प्रतिपादयेदिति ॥ ५ ॥ ईर्यासमित्याद्युपेतेन यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह । (सद्दाणीत्यादि) शब्दान् वेणुवीणादिकान् मधुरान् श्रुतिपेशलान् श्रुत्वा समाकर्ण्याऽथ नैरवान् नयावहान् कर्णकटूनाकर्ण्य शब्दानाश्रवति तान् शोननत्वेनाशोननत्वेनवा गृह्णातीत्याश्रवोनाश्रवोऽनाश्रवस्तेष्वनुकूलेषु प्रतिकूलेषु श्रवणपथमुपगतेषु शब्देष्वना श्रवोमध्यस्थोरागद्वेषरहितोनूत्वा परिसमंताद् व्रजेत्परिव्रजेत् संयमानुष्ठायी नवेत्तथा निद्रांच निद्राप्रमादंच निक्कुः सत्साधुः प्रमादांगत्वान्न कुर्यात् । एतडुक्तंनवति । शब्दा श्रवनिरोधेन विषयविषयप्रमादोनिषिद्धोनिद्रानिरोधेन निद्राप्रमादश्चशब्दादन्यमपि प्रमा दं विकथाकषायादिकं न विदध्यात् । तदेवं गुरुकुलवासात् स्थानशयनासनसमितिगुप्ति ष्वागतप्रज्ञः प्रतिषिद्धसर्वप्रमादः सद्गुरोरुपदेशादेव कथंकथमपि विचिकित्सां चित्तविप्लुति रूपां वितीर्णोऽतिक्रांतोनवति । यदिवा मद्गृहीतोयं पंचमहाव्रतनारोऽतिडुर्वहः कथंकथमप्यं तं गच्छेदित्येवंनूतां विचिकित्सां गुरुप्रसादाद्वितीर्णोनवति ।अथवा यां कांचिच्चित्तविप्लुतिं देश सर्वगतां तां कृत्स्नां गुर्वंतिके वसन् वितीर्णोनवत्यन्येषामपि तदपनयनसमर्थः स्यादितिह

डहरेण वुड्ढेण णुसासिए ज, रातिणिएणावि समव्वएणं ॥ स
म्मं तयं थिरतो णान्निगच्छे, णिज्जंतए वा वि अपारएसे ॥ ७ ॥
विउद्वितेणं समयाणुसिठ्ठे, डहरेण वुड्ढेणउ चोइएय ॥ अच्चु
ठियाए घडदासिए वा, अगारिणं वा समयाणुसिठ्ठे ॥ ८ ॥

अर्थ—डहरेणवुड्ढेणणुसासिएजराके०) ते साधु गुरु सन्मुख वसतो कोइ कारणे प्र

ए दृष्टांते शिष्य पण एम जाणे जे (तेणेवमज्झंइणमेवसेयं के०) मुजने एहिज शिक्षानो मार्ग श्रेयकारी कहेछे (जमेबुहासमणुंसासयंति के०) जे मुजने बुद्ध पंडित गुरु आचार्यादिक सम्यक् रीते पुत्रनीपरे शिखामण शिक्षा आपेछे ते शिखामणने श्रेयकारी मानीने आदरे ॥ १० ॥

॥दीपिका–तेषु स्खलितनोदकेषु न क्रुध्येत्। यतः। आकुष्टेनमतिमतातत्वार्थविचारणे मतिः कार्या। यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किंनु कोपेन ॥ १ ॥ तथा तं नोदकं न प्रव्यथेत न दंमादिप्रहारेण पीमयेत्। नचापि किंचित्परुषं पीडाकारि वदेत् नोदितश्च तथा करिष्यामीति प्रतिशृणुयादंगीकुर्यात् इदं नोदनं ममश्रेयोयतएतद्भयात्क्वचित्प्रमादं न कुर्यात् ॥ ए ॥ वने मूढस्य दिग्भ्रांतस्य कस्यचिद्यथाऽमूढामार्गज्ञामार्गमनुशासंति कथयंति। किंनूतं मार्गं प्रजानां हितं। एवं तेनाप्यसदनुष्ठायिना नोदिते न कुपितव्यं किंतु ममैवं श्रेयइति मंतव्यं। यदेतद्बुधाः सम्यगनुशासयंति सन्मार्गे प्रापयंति ॥ १० ॥

॥ टीका–एतदेवाह। (णतेसुकुप्पेइत्यादि) तेषु स्वपरपक्षेषु स्खलितचोदकेष्वात्महितं मन्यमानोन क्रुध्येदन्यस्मिन् वा डुर्वचनेऽन्निहिते न कुप्येदेवं चिंतयेत्। आक्रुष्टेन मतिमता तत्वार्थविचारणे मतिः कार्या॥ यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किंनु कोपेन ॥ १ ॥ तथा नाप्यपरेण स्वतोऽधमेनापि चोदितोऽर्हन्मार्गानुसारेण लोकाचारगत्या वाऽनिहितः परमार्थं पर्यालोच्य तं चोदकं प्रकर्षेण व्यथेद्दंडादिप्रहारेण पीमयेन्नचापि किंचित्परुषं तत्पीडादिकारि वदेत् ब्रूयात्। ममैवायमसदनुष्ठायिनोदोषोयेनायमपि मामेवं चोदयति चोदितश्चैवंविधं नवता असदाचरणं न विधेयं। एवंविधे च पूर्वार्षिनिरनुष्ठितमनुष्ठेयमित्येवंविधवाक्यं तथा करिष्यामीत्येवं मध्यस्थवृत्त्या प्रतिशृणुयादनुतिष्ठेच्च मिथ्याडुष्कृतादिना निवर्तेत। यदेतच्चोदनं नामैतन्ममैवश्रेयोयतएतद्भयात्क्वचित्पुनः प्रमादं न कुर्यान्नैवासदाचरणमनुतिष्ठेदिति ॥ ए ॥ अस्यार्थस्य दृष्टांतं दर्शयितुमाह। (वणंसीत्यादि) वने गहने महाटव्यां दिग्भ्रमेण कस्यचिद्व्याकुलितमतेर्नष्टसत्पथस्य यथा केचिदपरे कृपाकृष्टमानसाश्चमूढाः सदसन्मार्गज्ञाः कुमार्गपरिहारेण प्रजानां हितमशेषापायरहितमीप्सितस्थानप्रापकं मार्गं पंथानमनुशासंति प्रतिपादयंति। सच तैः सदसद्विवेकिंनिः सन्मार्गावतरणमनुशासितश्चात्मनः श्रेयोमन्यते। एवं तेनाप्यसदनुष्ठायिना चोदितेन नकुपितव्यमपितु ममायमनुग्रहइत्येवं मंतव्यं। यदेतद् बुद्धाः सम्यगनुशासयंति सन्मार्गेऽवतारयंति पुत्रमिव पितरस्तन्ममैवश्रेय इति मंतव्यं ॥ १० ॥

अह तेण मूढेण अमूढगस्स, कायव्व पूया सविसेसजुत्ता॥ एउ
वमं तब उदाहु वीरे, अणुगम्म अबं उवणेति सम्मं ॥ ११॥

गह्रेत् प्रतिपद्यते चोदितश्च प्रतिचोदयेदसम्यक्प्रतिपाद्यमानश्चासौ संसारस्रोतसा नीय मानउह्यमानोऽनुशास्यमानः कुपितोसौ न संसारार्णवस्य पारगोनवति । यदिवाऽऽचा र्यादिना सडुपदेशदानतः प्रमादस्खलितनिवर्तनतोमोक्षं प्रति नीयमानोप्यसौ संसारस मुइस्य तदकरणतोऽपारगएव नवतीति ॥ ७ ॥ सांप्रतं स्वपक्षचोदनानंतरतः स्वपरचोद नामधिकृत्याह । (विउठिएणमित्यादि) विरुद्धोबानेनोत्थितोव्युत्थितः परतीर्थिकोगृह स्थोवा मिथ्यादृष्टिस्तेन प्रमादस्खलितोचोदितः स्वसमयेन तद्यथा नैवंविधमनुष्ठानं नव तामागमे व्यवस्थितं येनानिप्रवृत्तोसि । यदिवा व्युत्थितः संयमाद्भ्रष्टस्तेनापरः साधुः स्खलितःसन् स्वसमयेनार्हत्प्रणीतागमानुसारेणानुशासितोमूलोत्तरगुणाचरणे स्खलितः संचोदितआगमं प्रदर्श्यानिहितः । तद्यथा । नैतत्त्वरितगमनादिकं नवतामनुज्ञातमि ति । तथान्येन वा मिथ्यादृष्ट्यादिना क्षुल्लकेन लघुतरेण वयसा वृद्धेन वा कुत्सिताचा रप्रवृत्तश्चोदितस्तुल्यात्समानवयसावा तथातीवाकार्यकरणं प्रति उत्थिता अत्युत्थिता । यदि वा दासीत्वेन अत्यंतमुत्थिता दास्याअपि दासीति । तामेव विशिनष्टि । घटदास्या जल वाहिन्यापि चोदितोन क्रोधं कुर्यात् । एतदुक्तंनवति । उत्थितयापि कुपितयापि चोदि तः स्वहितं मन्यमानः सुसाधुर्नकुप्येत् किंपुनरन्येनेति । तथा अगारिणां गृहस्थानां यः समयोनुष्ठानं तत्समयेनानुशासितोगृहस्थानामपि एतन्नयुज्यते कर्तुं यदारब्धं नवतेत्ये वमात्मावमेनापि चोदितोममैवतच्छ्रेयइत्येवंमन्यमानोमनागपि न मनोदूषयेदिति ॥ ८ ॥

ण तेसु कुज्झे ण य पव्वहेज्जा,ण यावि किंची फरुसं वदेज्जा ॥तहा
करिस्संति पडिस्सुणेज्जा, सेयं खु मेयं ण पमाय कुज्जा ॥९॥ व
णंसि मूढस्स जहा अमूढा,मग्गाणुसासंति हितं पयाणं ॥ तेणे
व मज्झं इणमेव सेयं, जमे बुहा समणुसासयंति ॥ १० ॥

अर्थ-(णतेसुकुज्झेणयपव्वहेज्जा के०) ते शीखामण आपनारना उपर ते साधु क्रो ध नकरे तथा तेने व्यथे नही एटले दंडादिके प्रहार करीने तेने पीडा उत्पन्न करे न ही तथा (णयाविकिंचीफरुसंवदेज्जा के०) तथा किंचित् मात्र कठोर वचन बोले नही परंतु तेमना वचन सांनलीने आवीरीते कहे के(तहाकरिस्संतिपडिस्सुणेज्जाके०) जेम तमे कहोडो हुं तेमज करीश एम तेना वचन मान्य करे (सेयंखुमेयंणपमायकु ज्जा के०) मनमां एम विचारेजे मने एहिज शिक्षारूप श्रेयकारी दान आपेछे एवुं जा णीने प्रमाद नकरे ॥ ९ ॥ (वणंसिमूढस्सजहाअमूढा के०) जेम वन एटले गहन अटवीने विषे कोइएक मूर्ख दिशिमूढ थइ नूली पडयो तेने कोइक अमूढ पुरुष मार्गनुं देखाडनार (मग्गाणुसासंतिहितंपयाणं के०) प्रजालोकने हितकारी एवो मार्ग देखाडे

पूजा विधेयेति ॥ अस्मिन्नर्थे बह्वोदृष्टांताः संति । तथा । गेहंमि अग्गिजाला, उलंमि ज हणामडज्झमाणंमि । जो बोहेइ सुयंतं सो तस्स जणो परमबंधू ॥१॥ जहवा विसजं जु तं, नत्तमिहमिहनोत्तुकामस्स ॥ जोवि सदोसं साहइ. सो तस्स जणो परमबंधू ॥ २ ॥ ॥ ११ ॥ अयमपरः सूत्रेणैव दृष्टांतोऽनिधीयते । (णेयाजहेत्यादि) यथाहि सजलज लधराच्छादितबहलांधकारायां रात्रौ नेता नायकोऽटव्यादौ स्वन्यस्तप्रदेशोपि मार्गं पंथानमं धकारावृतत्वात्स्वहस्तादिकमपश्यन्न जानाति न सम्यक् परिछिनत्ति । सएव प्रणेता सूर्यस्या दित्यस्याभ्युद्गमेनापनीते तमसि प्रकाशिते दिक्चक्रे सम्यगाविर्भूते पाषाणदरीनिम्नोन्नता दिके मार्गं जानाति विवक्षितप्रदेशप्रापकं पंथानमभिव्यक्तचक्षुः परिछिनत्ति दोषगुणवि चारणतः सम्यगवगछतीति ॥ १२ ॥

एवं तु सेहेवि अपुठधम्मे, धम्मं न जाणाइ अबुज्झमाणे ॥ से
कोविए जिणवयणेण पछा, सूरोदए पासति चक्खुणे वा ॥१३॥
उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसा य जे थावरा जे य पाणा ॥
सया जए तेसु परिव्वएज्जा, मणप्पउसं अविकंपमाणे ॥ १४ ॥

अर्थ-(एवंतुसेहेविअपुठधम्मं के०) एरीते नवदीक्षित शिष्य पण प्रथमतो धर्मने अण फरसवाने लीधे अपंडित (धम्मंनजाणातिअबुज्झमाणे के०) अगीतार्थ अबुज्झ थको धर्मने नजाणे शुद्ध सिद्धांतना जे अर्थ ते थकी रहित होय पछी (सेके०) ते हिज शिष्य गुरुकुल वासे वसतो थको (जिणवयणेणपछा के०) जिनवचन थकी सम स्त सूत्रार्थ विचारने समजीने (कोविए के०) पंडित थाय (सूरोदएपासतिचक्खुणेवा के०) जेम सूर्योदय थकी निर्मल नेत्र वालो पुरुष सर्व मार्गने जाणे तेम सुशिष्य प ण हृदयरूप नेत्रे करी आगमरूप सूर्य प्रकाशित यथार्थ निर्मल धर्मरूप मार्गने जा णे ॥ १३ ॥ ते शिष्य जाण थयो थको शुं देखे ते कहेछे. (उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासुके०) उंचो नीचो अने तिर्छो एतावता सर्व लोकमांहे (तसायजेथावराजेयपाणा के०) त्रस अने स्थावर जे जीवोछे तेने विषे (सयाजएतेसुपरिव्वएज्जा के०) ते सर्वकाल यत्नकरतो संयम पाले रूडी क्रिया करे तेने विषे (मणप्पउसंअविकंपमाणेके०) मने करी प्रद्वेष न करे अविकंप एटले) शुद्ध संयमने विषे अमोल निश्चल एकाग्रनावसहित एवो रहे॥१४

॥ दीपिका-एवं पूर्वोक्तप्रकारेण शिष्यकोप्यपुष्टधर्मा अगीतार्थः सूत्रार्थमबुध्यमानोधर्मं न जानाति सएव पश्चाद्गुरुकुलवासाज्जिनवचनेन कोविदः स्यात् । यथा सूर्योदये गता

णेता जहा अंधकारंसि राउ, मग्गं ण जाणाति अपस्समाणे॥
से सूरिअस्स अप्पुग्गमेणं, मग्गं वियणाइ पागसियंसि ॥१२॥

अर्थ–(अहतेणमूढेण अमूढगस्स के० हवे ते मूर्ख पुरुषे मार्ग पामे बते मार्गनो देखाडनार जे अमूढ पुरुष तेनो उपकार जाणीने (कायवपूयासविसेसजुत्ता के०) तेनी सविशेष विस्तार युक्त पूजा करवी (एउंवमंतबउदाहुवीरे के०) उपमा त्यां कही को ए कही तोके श्रीवीरपरमेश्वरे कही (अणुगम्मअब्रं उवणेतिसम्मं के०) ते पुरुष अर्थ एटले परमार्थ जाणी सम्यक् प्रकारे पोताने तेनो करेलो उपकार जाणी एम विचारे जे आ पुरुषे मने मिथ्यात्वरूप गहन वनना दुःख थकी रुमो उपदेश आपीने बोमाव्योबे तेमाटे एनी नक्ति करवी ॥ ११ ॥ (णेताजहाअंधकारंसिराउ के०) जेम णेता एटले मार्गनो जाण पुरुष चक्षु सहित बतां पण अत्यंत अंधकारमय रात्रीने विषे (मग्गंणजाणातिअपस्समाणे के०) मार्गने नजाणे केमके अंधकारमां दृष्टी पडे नही माटे अणदेखतो बतो मार्गनजाणे (सेसूरिअस्सअप्पुग्गमेणं के०) परंतु तेज पुरुष सूर्योदय थयाथी अंधकार विनाश पामे तेवारें (मग्गंवियाणातिपगासियंसि के०) सर्व जगतमां विशेष प्रकाश थयो बता वली सम्यक् प्रकारे तेमार्गने जाणे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–यथा तेन मूढेन सन्मार्गे प्रापितेन तस्यामूढस्य सन्मार्गोपदेष्टुः पुलिंदादेरपि पूजा विशेषयुक्ता कर्तव्या । एतामुपमामुदाहृतवान् कथितवान् वीरस्तीर्थकृत् अनुगम्य ज्ञात्वार्थं परमार्थं सम्यगात्मन्युपनयति परमोपकारं । कोर्थः । अहमनेन मिथ्यात्ववनाज्जन्ममरणाद्यनेकोपद्रवबहुलात्सदुपदेशदानेनोत्तारितस्ततोमयाऽस्य परमोपकारिणोविनयादिभिः पूजा कर्तव्येति । यथा । गेहम्मि अग्गिजाला, उलंमि जहाण मउफमाणंमि ॥ जो बाहेइ सुयंतं, सो तस्स जणो परमबंधूइति ॥११॥ यथा महांधकारायां रात्रौ नेता नायकोऽटव्यादौ स्वभ्यस्तप्रदेशोपि मार्गं न जानाति स्वहस्तादिकमप्यपश्यन् । सएव नेता सूर्यस्याभ्युद्गमेनोदयेन प्रकाशिते दिक्चक्रे मार्गं विशेषेण जानाति॥१२

॥टीका–पुनरप्यस्यार्थस्य पुष्ट्यर्थमाह । (अहत्तेणेत्यादि) अथेत्यानंतर्यार्थे वाक्योपन्यासार्थेवा । यथा तेन मूढेन सन्मार्गावतारितेन तदनंतरं तस्यामूढस्य सत्पथोपदेष्टुः पुलिंदादेरपि परमुपकारं मन्यमानेन पूजा विशेषयुक्ता कर्तव्या । एवमेतामुपमामुदाहृतवाननिहितवान् वीरस्तीर्थकरोन्योवा गणधरादिकोऽनुगम्य बुध्वाऽर्थं परमार्थं चोदनाकृतं परमोपकारं सम्यगात्मन्युपनयति । तद्यथाऽहमनेन मिथ्यात्ववनाज्जन्मजरामरणाद्यनेकोपद्रवबहुलात्सदुपदेशदानेनोत्तारितस्ततोमयाऽस्य परमोपकारिणोऽभ्युत्थानविनयादिभिः

कालेण पुछे समियं पयासु, आइरकमाणो दवियस्स वित्तं ॥ तं सोय
कारी पुढो पवेसे, संखा इमं केवलियं समाहिं ॥ १५ ॥ अस्सिं सुठि
च्चा तिविहेण तायी, एएसु या संति निरोहमाहु ॥ ते एवमरकंति तिलो
गदंसी, ण भुज्जमेयंति पमायसंगं ॥ १६ ॥

अर्थ-(कालेण के०) ते साधु काल प्रस्तावे एटले अवशर लइने जे आचार्य (पयासु के०) प्रजा एटले जीवोने विषे (समियं के०) सम परिणामे वर्त्तता होय तेवा आचार्यनी पासे सूत्र अने अर्थ (पुछे के०) पूछे (आइरकमाणोदवियस्सवित्तं के०) अने ते आचार्य पण मुक्तिगमनयोग्य जे पुरुष एवा पुरुषना शुद्ध व्रत आचारने जाणतो थको वंदनीक पूजनीक होय पंचाचारनो पालनार होय (तंसोयकारीपुढोपवेसे के०) तेवा आचार्य गुरुना वचन श्रवण करतो थको जुदा जुदा अर्थ विचार हृदयने विषे धारण करी राखे (संखाइमंकेवलियंसमाहिं के०) सन्मार्ग रूप केवली भाषित सम्यक् ज्ञानादि लक्षण धर्म तद्रूप समाधि ने पोताना हृदयने विषे स्थापन करे ॥ १५ ॥ (अस्सिंसुठिच्चातिविहेणतायी के०) एरीते गुरुकुल वासे वसतो एवो चारित्रिउ ते पूर्वोक्त श्रुतरूप धर्म मार्ग सांभलीने मोक्ष मार्ग ग्रहण करीने त्रिविध प्रकारे त्रायी थाय एटले मन वचन अने कायायें करी छकायनो रक्षपाल थाय (एएसुयासंतिनिरोहमाहु के०) ए समिति गुप्तिने विषे स्थित रहिने शांति तथा निरोध एटले समस्त कर्मनो क्षय करे एम कहेछे (तेएवमरकंतितिलोगदंसी के०) ते कोण कहेछे तोके त्रैलोक दर्शि एटले सर्वज्ञ पुरुषो एम कहेछे (णभुज्जमेयंतिपमायसंगं के०) वली ते साधु कदापि क्षण मात्र पण प्रमादनो संग करेनही तथा ए प्रमाद करवो एवो उपदेश पण करे नही ते पंमित साधु जाणवो. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–सम्यगितं सदाचारानुष्ठायिनं कंचिदाचार्यादिकं प्रजासु जंतुविषये चतुर्दशभूतग्रामविषयं किंचित् कालेनावसरं ज्ञात्वा पृछेत् । सच तेन पृष्टआचार्यादिराचक्षाणःसेव्यः स्यात् । किमाचक्षाणइत्याह । द्रव्यस्य वीतरागस्य वृत्तमनुष्ठानं संयमं वाऽचक्षाणोमान्यः स्यात् । आचार्यवचनं श्रोत्रे कर्णे कर्तुं शीलमस्य श्रोत्रकारी आज्ञाविधायी सन् पृथगुपन्यस्तमादरेण हृदये प्रवेशयेत् । केवलिकं केवलिना कथितं समाधिं सन्मार्गमिमं वक्ष्यमाणं संख्याय सम्यक् ज्ञात्वा यथोपदेशं प्रवर्तकः सम्यक् चेतसि धारयेदिति ॥ १५ ॥ अस्मिन् गुरुकुलवासे सुष्ठु स्थित्वा त्रिविधेन मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमतिभिर्वा जंतूनां त्रायी रक्षकः । एतासु समितिगुप्तिषु स्थितस्य शांतिः सर्वद्वंद्वविनाशः

वतरणश्चक्षुषा घटादीन् पश्यति जनस्तथा जिनागमेनापि जीवादयः पदार्थालक्ष्यंतइ त्यर्थः ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च दिक्षु त्रसाश्च ये स्थावराः सूक्ष्मबादरादिभेदाश्च ये प्रा णिनस्तेषु सदायत्तः परिव्रजेत् संयमानुष्ठायी भवेत् तथाऽविकंपमानः संयमादविचलन् तेषु प्राणिषु मनसापि प्रद्वेषं न गछेत् ॥ १४ ॥

॥ टीका—एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमधिकृत्याह । (एवंतुसेहेत्यादि) यथा ह्यसा वंधकारावृतायां रजन्यामतिगहनायामटव्यां मार्गं न जानाति सूर्योद्गमेनापनीते तमसि पश्चाज्ज्ञानात्येवं तु शिष्यकोऽभिनवप्रव्रजितोपि सूत्रार्थानिष्पन्नोऽपुष्टोऽपुष्कलः सम्यगपरि ज्ञातोधर्मः श्रुतचारित्राख्योडुर्गतिप्रसृतजंतुधरणस्वभावोयेनासावपुष्टधर्मा सचाऽगीतार्थसू त्रानभिज्ञत्वादबुध्यमानोधर्मं जानातीति नसम्यक् परिछिनत्ति । सएव तु पश्चाद्गुरुकुलवा साज्जिनवचनेन कोविदोऽन्यस्तसर्वज्ञप्रणीतागमत्वान्निपुणः सूर्योदयेऽपगतावरणश्चक्षुषेव य थावस्थितान् जीवादीन् पदार्थान् पश्यति । इदमुक्तंभवति । यथाहि इंडियार्थसंपर्कात्सा क्षात्कारितया परिस्फुटाघटपटादयः पदार्थाः प्रतीयंते एवं सर्वज्ञप्रणीतागमेनापि सूक्ष्मव्य वहितविप्रकृष्टस्वर्गापवर्गदेवतादयः परिस्फुटानिःशंकं प्रतीयंतइति । अपिच कदाचिच्च क्षुषान्यथाभूतोप्यर्थोऽन्यथा परिछिद्यते । तद्यथा । मरुमरीचिकानिचयोजलभ्रांत्या किंशु कनिचयोग्न्याकारेणापीति । नच सर्वज्ञप्रणीतागमस्य क्वचिदपि व्यभिचारः । तद्व्यभि चारे हि सर्वज्ञत्वहानिप्रसंगात् तत्संभवस्य चासर्वज्ञत्वेन प्रतिषेद्धुमशक्यत्वादिति ॥१३॥ शिक्षकोहि गुरुकुलवासितया जिनवचनाभिज्ञोभवति तत्कोविदश्च सम्यक् मूलोत्तरगुणान् जानाति । तत्र मूलगुणानधिकृत्याह । (उड्ढंअहेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् दिक्षु विदि क्षु चेत्यनेन क्षेत्रमंगीकृत्य प्राणातिपातविरतिरभिहिता । ड्व्यतस्तु दर्शयति । त्रस्यंतीति त्रसास्तेजोवायुद्वींडियादयश्च तथा ये च स्थावराः स्थावरनामकर्मोदयवर्तिनः पृथि व्यब्वनस्पतयस्तथाचैतद्भेदाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकरूपादशविधप्राणधारणात्प्रा णिनस्तेषु सदा सर्वकालमनेन तु कालमधिकृत्य विरतिरभिहिता । यत्तः परिव्रजेत्परि समंता द्व्रजेत् संयमानुष्ठायी भवेत् । भावप्राणातिपातविरतिं दर्शयति । स्थावरजंगमेषु प्राणिषु तदपकारे उपकारेवा मनागपि मनसा प्रद्वेषं नगछेदास्तांतावद्दुर्वचनदंडप्रहारादि कं तेष्वपकारिष्वपि नामंगलं चिंतयेदविकंप्यमानः संयमादचलन् सदाचारमनुपालयेदि ति । तदेवं योगत्रिककरणत्रिकेण ड्व्यक्षेत्रकालभावरूपां प्राणातिपातविरतिं सम्यगरक्ष द्विष्टतया ऽनुपालयेदेवं शेषाण्यपि महाव्रतान्युत्तरगुणांश्च ग्रहणासेवनाशिक्षासमन्वितः सम्यगनुपालयेदिति ॥ १४ ॥

मन योग्यनो आचार जे मोक्ष मार्ग एटले समिहित अर्थ एवो सांजलीने तेने सम्यक् प्रकारे हृदयने विषे अवधारीने (पडिन्नाणवंहोईविसारएय के०) प्रतिन्नावंत एटले बुद्धिवंत थाय तथा विशारद एटले सांजलनारने ते मोक्षमार्गनो अर्थ प्रकाशे एवो (आयाणअठी के०) मोक्षार्थी तथा (वोदाण के०) बार प्रकारनो तप तथा (मोणं के०) संयम तेने (उवेच्च के०) प्राप्त करीने (सुद्धेणउवेतिमोरकं के०) शुद्ध निर्दोष एवा आहारे करी अवशाने मोक्षने पामे ॥ १ ७ ॥ हवे गुरुकुलवासे वसतांजे करे ते देखाडेछे (संखाइधम्मंचवियागरंति के०) ते साधु गुरु पाशेथी सांजलीने पछी तेने सम्यक् प्रकारे जाणीने अन्य जनोने धर्म प्रकाशे (बुद्धाहुतेअंतकराजवंति के०) एवा बुद्ध एटले तत्वना जाण ते जन्मांतरे संचितजे कर्म तेना अंतना करनार थाय (तेपारगादोएहविमोयणाए के०) ते यथावस्थित धर्मना प्रकाशक बन्नेने एटले पोताने तथा परने कर्म थकी मुकाववे करीने संसारना पारंगामी थाय (संसोधितंपएहमुदाहरंति के०) जे सम्यक् सोधी पूर्वापर अविरोध द्रव्य क्षेत्र काल नाव जाणी ने प्रश्न कहे एतावता ते गीतार्थ सत्य धर्म प्रकाशता थका पोताना जीवने अने परना जीवने तारनार थाय पुछनारने समाधिना करनार थाय. ॥ १ ८ ॥

॥ दीपिका–सगुरुकुलवासी जिक्षुः साध्वाचारं निशम्य ज्ञात्वा स्वतः समाहितं वार्थं मोक्षं ज्ञात्वा प्रतिन्नानवानुत्पन्नबुद्धिर्विशारदश्च जवति । आदीयते मोक्षार्थिभिरित्यादानं ज्ञानादि सएवार्थः सविद्यते यस्य स आदानार्थी ज्ञानादिप्रयोजनवान् व्यवदानं तपः । मौनं संयमः । तौ तपःसंयमौ उपेत्य प्राप्य शुद्धेन निर्दोषाहारेणात्मानं यापयन् मोक्षमुपैति । (नउवेइमारंकचित्पाठः) मारं संसारं न उपैति न ज्रमतीति ॥ १ ७ ॥ संख्या सद्बुद्धिस्तया धर्मं ज्ञात्वा परेषां ये व्यागृणंति कथयंति ते बुद्धाज्ञाततत्वाः कर्मणामंतकराजवंति । ते शुद्धधर्मप्ररूपकाद्वयोरपि परात्मनोः कर्मपाशमोचनेनपारगाः स्युः । ते च सम्यक् शोधितं पूर्वापरविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति । कोर्थः परेण कंचिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्य कथयेत् ॥ १ ८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (णिसम्मेत्यादि) सगुरुकुलवासी जिक्षुः इव्यस्य वृत्तं निशम्यावगम्य स्वतः समीहितं चार्थं मोक्षार्थं बुध्वा हेयोपादेयं सम्यक् परिज्ञाय नित्यं गुरुकुलवासतः प्रतिन्नानवानुत्पन्नप्रतिन्नोजवति । तथा सम्यक् स्वसिद्धांतपरिज्ञानाच्छ्रोतृणां यथावस्थितार्थानां विशारदोजवति प्रतिपादकोजवति । मोक्षार्थिनाऽऽदीयत इत्यादानं सम्यक् ज्ञानादिकं तेनार्थः सएवार्थः आदानार्थः विद्यते यस्यासावादानार्थी सएवंजूतो

स्यात्। तथा च निरोधं कर्मक्षयमाहुस्तद्विदः। एवं त्रिलोकदर्शिनस्तीर्थंकरास्ते आख्यांति कथयंति न पुनर्नूय एतं प्रमादसंगं विषयादिकं विधेयत्वेन कथितवंतः ॥ १६ ॥

॥ टीका—गुरोरंतिके वसतो विनयमाह । (कालेणेत्यादि) सूत्रमर्थं तडुनयं वा विशिष्टे न प्रष्टव्यकालेनाचार्यादेरवसरं ज्ञात्वा प्रजायंतइति प्रजाजंतवस्तासु जंतुषु विषये चतुर्दश नूतग्रामसंबधं कंचिदाचार्यादिकं सम्यगितं सदाचारानुष्ठायिनं सम्यक् वा समंताद्वा जंतु गतं पृत्नेदिति । सच तेन पृष्टआचार्यादिराचक्षाणः शुश्रूषयितव्योनवति। यदाचक्षाणस्तद्द र्शयति । मुक्तिगमनयोग्योनव्योऽव्यरागद्वेषविरहाद्वा द्रव्यं तस्य द्रव्यस्य वीतरागस्य तीर्थंकरस्य वा वृत्तमनुष्ठानं संयमं ज्ञानं वा तत्प्रणीतमागमं वा सम्यगाचक्षाणः सपर्यया ऽयं माननीयोनवति । कथमित्याह । तदाचार्यादिना कथितं श्रोत्रे कर्णे कर्तुं शीलमस्य श्रोत्रकारी यथोपदेशकारी सदाज्ञाविधायी सन् पृथक्पृथगुपन्यस्तमादरेण हृदये प्रवेश येच्चेतसि व्यवस्थापयेत् । व्यवस्थापनीयं दर्शयति । संख्याय सम्यक् ज्ञात्वा इममिति वक्ष्यमाणं केवलिनइदं कैवलिकं केवलिना कथितं सन्मार्गं सम्यक् ज्ञानादिकं मोक्षमार्ग माचार्यादिना कथितं यथोपदेशं प्रवर्तकः पृथग्विविक्तं हृदये पृथग्व्यवस्थापयेदिति ॥ ॥ १५ ॥ किंचान्यत् । (अस्सिंइत्यादि) अस्मिन् गुरुकुलवासे निवसता यच्छ्रुतं श्रुत्वा च सम्यक् हृदयव्यवस्थापनद्वारेणावधारितं तस्मिन् समाधिनूते मोक्षमार्गे सुष्ठुस्थित्वा त्रिविधेनेति मनोवाक्कायगुप्तिनिः कृतकारितानुमतिनिर्वाऽत्मानं त्रातुं शीलमस्येति त्रा यी जंतूनां सडुपदेशदानतस्त्राणकरणशीलोवा तस्य स्वपरत्रायिणएतेषु च समितिगु प्त्यादिषु समाधिमार्गेषु स्थितस्य शांतिर्नवत्यशेषद्वंद्वोपरमोनवति । तथा निरोधमशेष कर्मक्षयरूपमाहुस्तद्विदः प्रतिपादितवंतः । कएवमाहुरित्यादि । त्रिलोकमूर्ध्वाधस्तिर्यग् लक्षणं द्रष्टुं शीलं येषांते त्रिलोकदर्शिनस्तीर्थकृतः सर्वज्ञास्ते एवमनंतरोक्तया नीत्या सर्वे नावान् केवलालोकेन दृष्ट्वाचक्षते प्रतिपादयंतीति । एतदेवं समितिगुप्त्यादिकं संसारो त्तारणसमर्थं ते त्रिलोकदर्शिनः कथितवंतोन पुनर्नूयएवं प्रमादसंगं मद्यविषयादिकं सं बंधविषयत्वेन प्रतिपादितवंतः ॥ १६ ॥

निसम्म से निक्कु समीहियठं, पडिनाणवं होई विसारए य ॥
आयाणअठी वोदाणमोणं, उवेच्च सुद्धेण उवेति मोक्खं ॥ १७ ॥
संखाइ धम्मं च वियागरंति, बुद्धा हु ते अंतकरा नवंति ॥
ते पारगा दोण्हवि मोयणाए, संसोधितं पण्ह मुदाहरंति ॥ १८ ॥

अर्थ—(सेनिक्कु के०) ते गुरुकुलवासी साधु (निसम्मसमीहियठं के०) मुक्तिग

न नसेवे एटले अहंकार नकरे पोतानी मोहोटाइ प्रकाशे नही तथा हुं बहुश्रुतवुं एम पण नकहे (णयाविपन्नेपरिहासकुज्जा के०) तथा पोताने प्रज्ञावंत जाणीने परनो परिहास्य एटले उपहास्य नकरे एटले कोइने अज्ञानी जाणीने तेने हास्यना वचन बोले नही (णयासियावायवियागरेज्जा के०) तथा कोइने आशीर्वादना वचन नबोले एटले तमे बहु धनवान् बहु पुत्रवान् दीर्घायुष्यवान् हो इत्यादिक वचन नकहे ॥ १९ ॥ तथा (नूतान्निसंकाए के०) नूत एटले प्राणी तेनी हिंसानी शंकायें सावद्य वचन जाणीने आशीर्वाद न आपे (डुगुंछमाणे के०) पापने निंदतो थको (णणिव्वहेमंतपदेणगोयं के०) तथा मंत्रपद एटले विद्यामंत्रे करीने गोत्र एटले संयम तेने निःसार नकरे (णकिंचिमिछेमणुएपयासु के० वली धर्मनो प्ररूपक साधु ते धर्मनो प्रकाश करतो थको सांजलनार पुरुषोनी पाशेथी वस्त्रादिकना लाजनी इछा करे नहिं निरीह थतो धर्म प्रकाशे तथा (असाहुधम्माणि के०) असाधुनो हिंसारूप वस्तुदान तर्प्पणादिक एवो जे धर्म तेने सेवे नही एटले (णसंवएज्जा के०) एवो सावद्य धर्म नबोले. ॥ २० ॥

॥ दीपिका–सप्रश्नस्योदाहर्ता कुतश्चिन्निमित्तात् श्रोतुः कुपितोपि सूत्रार्थं न छादयेत् स्वाचार्यं वा नापलपेत् परगुणान् वा न छादयेत् । शास्त्रार्थं नोलूपयेत् न विडंबयेत् मौनं न सेवेत नाप्यात्मगुणानां प्रकाशनं कुर्यात् न च प्रज्ञावान् परिहासं कुर्यात् न चाशीर्वादं बहुपुत्रोबहुधान्योदीर्घायुस्स्वं नूयाइत्यादि व्यागृणीयात् ॥ १९ ॥ नूतेषु प्राणिषु नूताभिशंका उपमर्दशंका तयाऽऽशीर्वादं सावद्यं जुगुप्सां न ब्रूयात् तथा गोत्रं मौनं मंत्रपदेन विद्यासाधनविधिना ननिर्वाहयेत् न निःसारं कुर्यात् । प्रजासु जीवेषु मनुजोऽव्याख्यां कुर्वन्नकिमपि लाजमिछेत् तथाऽसाधूनां धर्मान्स्नानतर्पणादिकान् न संवदेन्न ब्रूयात्. ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ टीका–सच प्रश्नमुदाहरन् कदाचिदन्यथापि ब्रूयादतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह । (णोछायएइत्यादि) सप्रश्नस्योदाहर्ता सर्वार्थाश्रयत्वाद्रत्नकरंडकल्पः कुत्रापि कुत्तिकापणकल्पोवा चतुर्दशपूर्विणामन्यतरोवा कश्चिदाचार्यादिभिः प्रतिनानवानर्थविशारदस्तदेवंभूतः कुतश्चिन्निमित्तात् श्रोतुः कुपितोपि सूत्रार्थं न छादयेन्नान्यथा व्याख्यां नयेत्स्वाचार्यं वा नापलपेद्धर्मकथां वा कुर्वन्नार्थं छादयेदात्मगुणोत्कर्षाभिप्रायेण वा परगुणान्नछादयेत्तथा परगुणान्नलूपयेन्नविडंबयेच्छास्त्रार्थं वा नापसिद्धांतेन व्याख्यानयेत्तथा समस्तशास्त्रवेत्ताहं सर्वलोकविदितः समस्तसंशयापनेता न मत्तुल्योहेतुयुक्तिभिरर्थप्रतिपादयितेति एवमात्मकं मानमभिमानं गर्वं नसेवेत नाप्यात्मनोबहुश्रुतत्वेन तपस्वित्वेन वा प्रकाशनं कुर्याच्चशब्दादन्यदपि पूजासत्कारादिकं परिहरेत्तथा नचापि प्रज्ञावान् सश्रुतिकः परि

ज्ञानादिप्रयोजनवान् । इत्यादानं द्वादशप्रकारं तपोमौनं संयमआश्रवनिरोधरूपस्तदेवमे तौतपःसंयमावुपेत्य प्राप्य ग्रहणसेवनरूपया द्विविधयापि शिक्षया समन्वितः सर्वत्र प्रमाद रहितः प्रतिज्ञावान् विशारदश्च शुद्धेन निरुपाधिना उद्गमादिदोषशुद्धेन चाहारेणात्मानं यापयन्नशेषकर्मक्षयलक्षणं मोक्षमुपैति । नउवेइमारंतिकचित्पाठः । बहुशोम्रियंते स्वकर्मपर वशाः प्राणिनोयस्मिन् समारः संसारस्तं जातिजरामरणरोगशोकाकुलं शुद्धेन मार्गे णात्मानं वर्तयन् उपैति । यदिवा मरणं प्राणत्यागलक्षणं मारस्तं बहुशोनोपैति । तथा हि । अप्रतिपतितसम्यक्त्वउत्कृष्टतः सप्ताष्टौवा जवान् म्रियतेनोर्ध्वमिति ॥१७॥ तदेवं गुरुकुलनिवासितया धर्मे सुस्थिताबहुश्रुताः प्रतिज्ञानवंतोऽर्थविशारदाश्च यत्कुर्वंति त दर्शयितुमाह । (संखाइइत्यादि) सम्यक् ख्यायते परिज्ञायते यया सा संख्या सद्बुद्धिस्त या स्वतोधर्मं परिज्ञायापरेषां यथावस्थितं धर्मं श्रुतचारित्राख्यं व्यागृणंति प्रतिपादयंति। यदिवा स्वपरशक्तिं परिज्ञाय पर्षदं वा प्रतिपाद्य चार्थं सम्यगवबुध्य धर्मं प्रतिपादयंति । ते चैवंविधाबुद्धाः कालत्रयवेदिनोजन्मांतरसंचितानां कर्मणामंतकराजवंति । अन्येषां कर्मापनयनसमर्थोजवतीति दर्शयति । ते यथावस्थितधर्मप्ररूपकात् द्वयोरपि परा त्मनोः कर्मपाशविमोचनया स्नेहादिनिगडविमोचनया वा करणजूतया संसारसमुद्रस्य पारगाजवंति । ते चैवंजूताः सम्यक्बोधितं पूर्वोत्तराविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति । तथाहि । पूर्वं बुध्वा पर्यालोच्य कोयं पुरुषः कस्य चार्थस्य ग्रहणसमर्थोऽहंवा किंजूतार्थप्रति पादनशक्तइत्येवं सम्यक् परीक्ष्य व्याकुर्यादित्यथवा परेण किंचिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक्परीक्ष्योदाहरेत्सम्यगुत्तरं दद्यादिति । तथाचोक्तं । आयरियसयाधारि एणं अज्ञेण सरियमुणिएण ॥ तोसंघमज्झयारे, ववहरिउंजेसुहंहोंति ॥ १ ॥ गीतार्थायथावस्थितं धर्मं कथयंतः स्वपरतारकाजवंतीति. ॥ १८ ॥

णोछायए णो विय लूसएज्जा, माणं ण सेवज्ज पगासणं च ॥ ण
यावि पन्ने परिहास कुज्जा, ण या सियावाय वियागरेज्जा ॥ १९ ॥
जूताजिसंकाइ डुगुंब्रमाणे, ण णिव्वहे मंतपदेण गोयं ॥ ण किं
चिमिछे मणुए पयासु, असाहुधम्माणि ण संवएज्जा ॥ २० ॥

अर्थ— ते प्रश्न कहेता थकां कदापि अन्यथा पण केवाय ते माटे तेनु निषेध कहे छे. ते धर्मनु प्ररूपक पुरुष पूछता सूत्रना अर्थने (णोछायए के०) ढाके नही एटले अन्यथा नवखाणे (णोवियलूसएज्जा के०) तथा पारका गुण लूसे नही एटले पोता ने अजिमाने करी अन्यने विटंबना करे नही तथा (माणंणसेवज्जपगासणंच के०) मा

बीजी असत्यामृषा एटले एकतो सत्य नाषा अने बीजी व्यवहारारिक ए रीते बे नाषा बोले (वियागरेज्जा समयासुपन्ने के०) तथा राजायें अने रांके पुबचो थको प्रज्ञावंत महानुनाव एवो साधु बन्नेने समनावे धर्म कहे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–हास्यं न संधयेन्नकुर्यान्नकारयेत् । तथा पापधर्मान सावद्यरूपान्नकुर्या त्तथा उजानिष्किंचनः सन् तथ्यमपि परुषं वचः कठिनं वाक्यं ज्ञपरिज्ञया विजानीय प्र त्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेत् । तथा पूजासत्कारादिकमवाप्य न तुन्नोजवेनोन्मादं गछे त् । तथा नविकत्थयेन्नात्मानं श्लाघयेत् तथा व्याख्यानावसरेऽनाविलोऽनोनादिनिरपे क्षः स्यात्तथाऽकषायोनिक्षुः स्यात् ॥ २१ ॥ साधुर्व्याख्यानं कुर्वन्नशंकितनावोप्यर्थनि र्णयवेत्तापि शंकेत औद्धत्यं परिहरेत् तथा विनज्यवादं स्याद्वादं व्यागृणीयात् कथयेत् । सत्या असत्या मृषावेति नाषाद्वयं वदेत् समुत्थितैः साधुनिः सह विहरन् सुप्रज्ञः सन्म तिर्नृपतिद्रमकयोः समतया रागद्वेषरहितोधर्मं व्यागृणीयात्. ॥ २२ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (हासंपीत्यादि) यथा परात्मनोर्हास्यमुत्पद्यते तथा शब्दा दिकं शरीरावयवमन्यान् वा पापधर्मान् सावद्यान्मनोवाक्कायव्यापारान्नसंधयेन्नविदध्या त् । तद्यथा । इदं छिंधि निंधि तथा कुप्रावचनिकान् हास्यप्रायं नोत्प्रासयेत्तद्यथा शो ननीयं नवदीयं व्रतं । तद्यथा । मृद्वी शय्या प्रातरुहाय पेया, मध्ये नक्तं पानकं चापरा एहे । ड्राक्षाखंडं शर्करां चार्धरात्रे, मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टइत्यादिकं परदोषोन्नाव नप्रायं पापबंधकमिति कृत्वा हास्येनापि नवक्तव्यं । तथा उजारागद्वेषरहितः सबाह्या न्यंतरग्रंथत्यागाद्वा निष्किंचनः संस्तथ्यमिति परमार्थतः सत्यमपि परुषं वचोपरचेतो विकारि ज्ञपरिज्ञया विजानीयात्प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेत् । यदिवा रागद्वेषवि रहादोजास्तथ्यं परमार्थभूतमकृत्रिममप्रतारकं परुषं कर्म संश्लेषानावान्निर्ममत्वादल्पस त्त्वैर्डरनुष्ठेयत्वाद्वा कर्कशमंतप्रांताहारोपनोगाद्वा परुषं संयमं विजानीयात्तदनुष्ठानतः सम्यगवगछेत्तथा स्वतः किंचिदर्थविशेषं परिज्ञाय पूजासत्कारादिकमवाप्य न तुन्नोन्न वेन्नोन्मादं गछेत्तथा नविकत्थयेन्नात्मानं श्लाघयेत् परं वा सम्यगवबुध्यमानोनोविकत्थ येन्नात्यंतं च मदयेत् तथा नाकुलोव्याख्यानावसरे धर्मकथनावसरे वा नाविलोलानादि निरपेक्षोनवेत् । तथा सर्वदा अकषायः कषायरहितोनवेन्निक्षुः साधुरिति ॥ २१ ॥ सां प्रतं व्याख्यानविधिमधिकृत्याह । (संकेज्जेत्यादि) निक्षुः साधुर्व्याख्यानं कुर्वन्नर्वाग्द र्शित्वादर्थनिर्णयं प्रति अशंकितनावोपि शंकेत औद्धत्यंपरिहरन्नहमेवार्थस्य वेत्ता नापरः कश्चिदित्येवं न गर्वं कुर्वीत किंतु विषममर्थं प्ररूपयन् साशंकमेव कथयेद्यदिवा विन ज्यवादः स्याद्वादस्तं सर्वत्रास्खलितं लोकव्यवहाराविसंवादितया सर्वव्यापिनं स्वानुनव

हासं केवलिप्रायं ब्रूयाद्यदिवा कथंचिदवबुध्यमाने श्रोतरि तडुपहासप्रायं परिहासं न विदध्यान्नापि चाशीर्वादं बहुपुत्रोबहुधनोबहुधर्मोदीर्घायुस्त्वं नूयाइत्यादिव्यागृणीयात् नाषासमितियुक्तेन नाव्यमिति ॥ १ए ॥ किंनिमित्तमाशीर्वादोन विधेयइत्याह । (नूया निसंकाइइत्यादि) नूतेषु जंतुषूपमर्दशंका तयाशीर्वादं सावद्यं सपापं जुगुप्समानोन ब्रूयात्तथा गात्रायतइति गोत्रं मौनं वाक्संयमस्तं मंत्रपदेन विद्यापमार्जनविधिना न निर्वाहयेन्न निःसारं कुर्यात् । यदिवा गोत्रं जंतूनां जीवितं मंत्रपदेन राजादिगुप्तनाषणपदेन राजादीनामुपदेशदानतोननिर्वाहयेन्नापनयेत् । एतडुक्तं नवति । नराजादिना सार्धं जंतुजीवितोपमर्दकं मंत्रं कुर्यात्तथा प्रजायंतइति प्रजाजंतवस्तासु प्रजासु मनुजोमनुष्यो व्याख्यानं कुर्वन् धर्मकथां वा नकिमपि लाजपूजासत्कारादिकमिछेदनिलषेत्तथा कुत्सितानामसाधूनां धर्मान् वस्तुदानतर्पणादिकान्नसंवदेन्नब्रूयाद्यदिवा नासाधुर्धर्मान् ब्रुवन् संवादयेदथवा धर्मकथां व्याख्यानंवा कुर्वन् प्रजास्वात्मश्लाघारूपां कीर्तिं नेछेदिति. ॥ २०॥

हासं पि णो संधति पावधम्मे, उए तहीयं फरुसं वियाणे ॥
णो तुछए णो य विकंथइज्जा, अणाइले या अकसाइ निक्कू ॥२१॥
संकेज्ज या संकितनाव निक्कू, विनज्जवायं व वियागरेज्जा ॥ ना
साडयं धम्म समुठितेहिं, वियागरेज्जा समया सुपन्ने ॥ २२ ॥

अर्थ-(हासंपिणोसंधति के०) तथा जे थकी पोताने अने परने हास्य उपजे ते नकहे तथा (पावधम्मे के०) पापधर्म एटले सावद्य धर्म नबोले (उएतहीयं के०) तथा राग द्वेष रहित अकिंचन एवो बतो साधु सत्य वचनज बोले अनेजे (फरुसंवियाणे के०) परुष एटले कठण निठुर वचन होय तेने ज्ञ परिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे तथा (णोतुछए के०) पूजा सत्कारादिकने पामतो थको उन्माद न करे तथा (णोयविकंथइज्जा के०) पोतानी यश कीर्ति देखीने श्लाघा नकरे तथा (अणाइलेया के०) अणाकुल होय एटले धर्म करतो थको आकुल नथाय तथा (अकसाइनिक्कू के०) कषाय रहित एवो साधु जाणवो ॥ २१॥ (संकेज्जयासंकित नावनिक्कू के०) साधु सूत्र अर्थने विषे निःशंकित बतो पण शंका राखे एटले सगर्व नथाय ए अर्थ जेरीते हुं जाणुबुं तेरीते बीजो कोइ जाणतो नथी एम नकहे एकांत वाद टाले तथा (विनज्जवायं ववियागरेज्जा के०) स्याद्वादवचन बोले सिद्धांतनो सर्व प्रथक् प्रथक् अर्थ वेचीने व्याख्या करे तथा (नासाडयं धम्मसमुठितेहिं के०) संयमने विषे सम्यक् प्रकारे उठ्या एवा साधु धर्म कथाने अवसरे बे नाषा बोले एकतो सत्या नाषा अने

॥ दीपिका—तस्यैवं भाषाद्वयेन वदतः कश्चिन्मेधावी तथैव तमर्थमाचार्यादिना कथितमनुगच्छन् सम्यगवबुध्यते । अन्यस्तु मंदमतिर्वितथमन्यथैव विजानीयात् । तंच सम्यगनवबुध्यमानं तथातथा तेन प्रकारेण कर्कशवचनेन वदेत् । यथाऽसौ तमर्थं बुध्यते न कुत्रचित्कुद्धमुखोनादरेण कथयेन्मनःपीडामुत्पादयेत् । तथा प्रश्नकर्तुर्भाषां नविहिंस्यान्नतिरस्कुर्यात् निरुद्धं स्तोकमर्थं न दीर्घयेत् अन्योन्यकथनेन दीर्घं कुर्यात् । तथा चोक्तं । सोअट्ठो वत्तवो, जो नस्सइ अस्करेहिं थोवेहिं ॥ जो पुण थोवा वहु अ,स्करेहिं सो होइ निःसारोइति ॥ २३ ॥ यः स्तोकाक्षरैर्नावबुध्यते तं प्रतिपूर्णभाषी पर्यायशब्दैर्भावार्थकथनैश्च समालपेत् समंताद्भाषेत यथा सअवबुध्यते तथा कुर्यादित्यर्थः । तथाऽचार्यादेः सकाशादर्थं निशम्य श्रुत्वा सम्यगर्थदर्शी सत्पदार्थवेत्ता तीर्थकृताज्ञया निरवद्यं शुद्धं वचनमभियुंजीत वदेत् । एवं वाऽभियुंजन् भिक्षुः पापविपाकं लाभसत्कारादिं निरपेक्षतया कांक्षमाणोनिर्दोषं वचनमभिसंधयेत् ॥ २४ ॥

॥ टीका—(किंचान्यत् । (अणुगछमाणेइत्यादि) तस्यैवं भाषाद्वयेन कथयतः कश्चिन्मेधावितया तथैव तमर्थमाचार्यादिना कथितमनुगछन् सम्यगवबुध्यते । अपरस्तु मंदमेधावितया वितथमन्यथैवाभिजानीयात्तंच सम्यगनवबुध्यमानं तथातथा तेन हेतूदाहरणसद्युक्तिप्रकटनप्रकारेण मूर्खस्त्वमसि तथा डुर्डुरूढः खसूचिरित्यादिना कर्कशवचनेनाभिनर्त्सयन् यथातथासौ बुध्यते तथा साधुः सुष्टु बोधयेन्न कुत्रचित्कुद्धमुखहस्तौष्ठनेत्रविकारैरनादरेण कथयन् मनःपीडामुत्पादयेत्तथा प्रश्नयतस्तद्भाषामपशब्दादिदोपडुष्टामपि धिग्मूर्खासंस्कृतमते किंवाऽनेन संस्कृतेन पूर्वोत्तरव्याहतेन वोच्चारितेनेत्येवं नविहिंस्यान्न तिरस्कुर्यादसंबद्धोद्घट्टनस्तं प्रश्नयितारं न विडंबयेदिति । तथा निरुद्धमर्थं स्तोकं दीर्घवाक्यैर्महता शब्ददर्डुरेणार्कविटपिकोष्टिकान्यायेन नकथयेन्निरुद्धं वा स्तोककालीनं व्याख्यानं व्याकरणतर्कादिप्रवेशनद्वारेण प्रसक्त्यानुप्रसक्त्या नदीर्घयेन्नदीर्घकालिकं कुर्यात् । तथाचोक्तं । सो अट्ठो वत्तवो, जो नस्सइ अस्करेहिं थोवेहिं ॥ जो पुण थोवो बहु अ, स्करेहिं सो होइ निःसारो ॥ तथा ॥ किंचित्सूत्रमल्पाक्षरमल्पार्थं वा इत्यादि चतुर्भंगिका तत्र यदल्पाक्षरं महार्थं तदिह प्रशस्यतइति ॥ २३ ॥ अपिच । (समालवेज्जाइत्यादि) यत्पुनरतिविषमत्वादल्पाक्षरैर्न सम्यगवबुध्यते तत्सम्यक् शोभनेन प्रकारेण समंतात्पर्यायशब्दोच्चारणतोभावार्थकथनतश्चालपेद्भाषेत समालपेन्नाल्पैरेवाक्षरैरुक्त्वा कृतार्थोभवेदपितु ज्ञेयगहनार्थभाषणे सद्धेतुयुक्त्यादिभिः श्रोतारमुपेक्ष्य प्रतिपूर्णभाषी स्यादस्खलिताहीनाक्षरार्थवादी भवेदिति । तथाचार्यादेः सकाशाद्यथावदर्थं श्रुत्वा ऽवगम्य निशम्य च यथावस्थितमर्थं यथागुरुसकाशादवधारितमर्थं प्रतिपाद्यं इष्टं

सिद्धं वदेदथवासम्यगर्थान् विनज्य पृथक्कृत्वा तद्वादं वदेत्तद्यथा नित्यं वादं द्रव्यार्थत या पर्यायार्थतया त्वनित्यवादं वदेत्तथा स्वद्रव्यक्षेत्रकालनावैः सर्वेपि पदार्थाः संति पर द्रव्यादिनिस्तु न संति। तथाचोक्तं । सदैव सर्वं कोनेच्छेत्स्वरूपादिचतुष्टयात् । असदे व विपर्यासान्नचेन्न व्यवतिष्ठतइत्यादिकं विनज्यवादं वदेदिति । विनज्यवादमपि नाषा दितयेनैव ब्रूयादित्याह । नाषयोराद्यचरमयोः सत्यासत्यामृषयोर्द्विकं नापाद्विकं त द्भाषा द्वयं क्वचित्पृष्टोऽपृष्टोवा धर्मकथावसरेऽन्यदावा सदा वा व्यागृणीयात् नाषेत । किंनू तः सन् सम्यक् सत्संयमानुष्ठानेनोच्छिताः समुच्छिताः सत्साधवस्तद्युक्तविहारिणोन पुन रुदायिनृपमारकवत्कृत्रिमास्तैः सम्यगुच्छितैः सह विहरंश्चक्रवर्तिद्रमकयोः समतया रागद्वेष रहितोवा शोननप्रज्ञोनाषा द्वयोपेतः सम्यग्धर्मं व्यागृणीयादिति ॥ २२ ॥

अणुगच्छमाणे वि तहंवि जाणे, तहातहा साहु अ कक्कसेणं ॥
ए कुवई नास विहंसइज्जा, निरुद्धगं वावि न दीहइज्जा ॥ २३ ॥
समालवेज्जा पडिपुन्ननासी, निसामिया समिया अठ्ठदंसी ॥
आणाइसुद्धं वयणं निउंजे अनिसंधए पावविवेगनिक्कु ॥ २४ ॥

अर्थ–(अणुगच्छमाणे वि तहंवि जाणेके०) हवे तेने बे नाषायेंकरी धर्म कहेता थका कोइ एक पंमित होय ते समी रीते समजे अने कोइएक मूर्ख होय ते विपरीत पणे समजे एटले तेने अर्थनी पूरे पूरी समजण न पडे तो (तहातहा साहुअकक्कसेणं के०) तेम तेम साधु ते श्रोताने मधुर नाषाये करी सम्यक् समजावे सत्यमार्ग देखाडे परंतु (एकुवईनासविहंसइज्जा के०) तेनी नाषाने अवहिले नही तथा तेने ति रस्कार नकरे तथा तेनी नाषाने निंदे नही (निरुद्धगंवाविनदीहइज्जा के०) थोडो सूत्रा र्थ थोडा काल सुधी कहे पण व्याकर्ण तर्के करी घणो काल सुधी आलजाल कही विस्तारे नही. यतः सोअच्छोवत्तवो, जोनणई अरकरेहिं थोवेहिं। जाउण थोवोबहु अरक रेहिं सोहोईनिस्सारो ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ २३ ॥ (समालवेज्जापडिपुन्ननासीके०) जे अत्यंत विषम अर्थ होय ते सम्यक् प्रकारे विस्तारीने बोले जेम श्रोता पुरुष सुखे स मजे तेम प्रतिपूर्ण नाषाये करी बोले अरकलियं अविच्चामेलिउं इत्यादिक पूरण नाषे (निसामियासमिया अठ्ठदंसी के०) तथा गुरुने समीपे सांनलीने सम्यक् प्रकारे अर्थ देखीने नलीरीते ते अर्थने विचारीने (आणाइसुद्धं वयणं [illegible] के०) आज्ञा विशुद्ध वचन प्रयुंजे एम उत्सर्ग अपवाद मार्गने दर्शावनारि [illegible] कहेतो थको (अ निसंधए पावविवेगनिरकुके०) साधु पापनु विवेक [illegible] परिहार करे. ॥ २४

निपुण तथा व्यक्त स्पष्ट ते अविमास्यो नकरे (सअरिहइनासितंतंसमाहित्तिवेमिके०)ते साधु श्रीवीतराग प्रणीत सूधो समाधि धर्म मार्ग नापवाने योग्य थाय त्तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २७ ॥ एरीते ग्रंथनामा चौदमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका–(यथोक्तानि जिनैस्तानि सुष्ठु शिक्षेत शिक्षितश्च देशनायां यतते । देशनोद्यतोपि योयस्य कर्तव्यस्य कालस्तां वेलामतिक्रम्य न वदेत् कर्तव्यमर्यादां नातिलंघयेदित्यर्थः । सदृष्टिमान् यथावस्थितपदार्थान् श्रद्दधानोदृष्टिं सम्यक्दर्शनं नलूपयेन्नदूपयेत् । कोर्थः । देशनां व्याख्यानं वा कुर्वन् तथा कथयेद्यथाश्रोतुः सम्यक्त्वं स्थिरीभवति । यश्चैवंभूतः सजानाति भापितुं तं सर्वज्ञोक्तं समाधिं ज्ञानदर्शनचारित्राख्यं २५ सर्वज्ञोक्तं नलूपयेन्नदूषयेत्प्रछन्नभापी भवेत्सिद्धांतार्थं शुद्धं प्रछन्नंवा न गोपयेदथ प्रछन्नमर्थमपरिणताय न भापेत । तथाचोक्तं । अप्रशांतमतौ शास्त्रसद्भावप्रतिपादनं ॥ दोषायाभिनवोदीर्ण,शमनीयमिव ज्वरे ॥ १ ॥ त्रायी स्वपररक्षकोन सूत्रमतिकल्पनया कुर्वीत । परहितकरः शास्ता तस्मिन् शास्तरि याभक्तिर्बहुमानस्तयाऽनुविचिंत्य वादं वदेत् । अनेनोक्तेनागमबाधा कापि न स्यादिति । तथा श्रुतं सम्यगाराधयन् प्रतिपादयेत् सुखशीलः स्यादित्यर्थः ॥ २६ ॥ शुद्धं सूत्रं प्रवचनं यस्य सशुद्धसूत्रः उपधानवान् तपश्चरणयुक्तोयोधर्मं सम्यक् वेत्ति तत्रतत्रोत्सर्गापवादादौ आदेयवाक्योग्राह्यवचनः स्यात् तथा कुशलोनिपुणोव्यक्तोनासमीक्ष्यकारी समाधिं ज्ञानादिकं भापितुमर्हति योग्यः स्यादिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २७ ॥ इति चतुर्दशं ग्रंथाध्ययनं समाप्तं ॥ ६ ॥

॥ टीका–पुनरपि भापाविधिमधिकृत्याह । (अहोबुद्दियाइत्यादि) यथोक्तानि तीर्थकरगणधरादिभिस्तान्यहर्निशं सुष्ठु शिक्षेत ग्रहणशिक्षया सर्वज्ञोक्तागमं सम्यक् गृहीयादासेवनाशिक्षया त्वनवरतमुद्युक्तविहारितया सेवेताऽन्येषांच तथैव प्रतिपादयेदिति । प्रसक्तलक्षणनिवृत्तये त्वपदिश्यते सदा ग्रहणासेवनाशिक्षयोर्देशनायां यतेत सदा यतमानोपि योयस्य कर्तव्यस्य कालोऽध्ययनकालोवा तां वेलामतिलंघ्य नातिवेलं वदेदध्ययनकर्तव्यमर्यादां नातिलंघयेत्सदनुष्ठानं प्रतिव्रजेद्वा यथावसरं परस्पराबाधया सर्वाः क्रियाः कुर्यादित्यर्थः । सएवंगुणजातीयोयथाकालवादी यथाकालचारी च सम्यक् दृष्टिमान् यथावस्थितार्थान् पदार्थान् श्रद्दधानोदेशनां व्याख्यानं वा कुर्वन् दृष्टिं सम्यक्दर्शनं नलूपयेन्नदूपयेत् । इदमुक्तंभवति । पुरुषविशेषं ज्ञात्वा तथातथा कथनीयमपसिध्धांतदेशनापरिहारेण यथायथा श्रोतुः सम्यक्त्वं स्थिरीभवति । नपुनः शंकोत्पादनतोदूष्यते यश्चैवंविधः सजानात्यवबुध्यते भापितुं प्ररूपयितुं समाधिं सम्यक्दर्शनचारित्राख्यं सम्यक्

शीलमस्य भवति सम्यगर्थदर्शी सएवंभूतः संस्तीर्थकराज्ञया सर्वज्ञप्रणीतागमानुसारेण शुद्धमवदातं पूर्वापराविरुद्धं निरवद्यं वचनमभियुंजीतोत्सर्गविषयेसति उत्सर्गमवादविषये वा ऽपवादं तथा स्वपरसमययोर्यथास्वं वचनमभिवदेत् । एवं चाभियुंजन् भिक्षुः पापविवेकलाभं सत्कारादिं निरपेक्षतया कांक्षमाणोनिर्दोषं वचनमभिसंधयेदिति ॥ २४ ॥

अहाबुइयाइं सुसिरकएज्जा, जइज्जया णातिवेलं वदेज्जा ॥ से दिठिमं दिठिण लूसएज्जा, से जाणई भासिउं तं समाहिं ॥ २५ ॥ अलूसए णो पछन्नभासी, णो सुत्तमछं च करेज्ज ताई ॥ सछारभत्ती अणुवीइ वायं सुयं च सम्मं पडिवाययंति ॥ २६ ॥ से सुद्धसुत्ते उवहाणवं च, धम्मं च जे विंदति तछतछ ॥ आदेज्जवक्के कुसले वियत्ते, स अरिहइ भासिउं तं समाहित्तिबेमि ॥ २७ ॥ इतिग्रंथनामा चउदसमअयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ– (अहाबुइयाइंसुसिरकएज्जा के०) श्रीतीर्थंकरादिके जेम वचन कह्यांछे तेमज भलीरीते शीखे (जइज्जयाणातिवेलंवदेज्जा के०) तेमज पाले तेमज मुखथी भाषे एटले प्रकाशे तथा वेलं एटले मर्यादा उल्लंघे नही वली सावद्य वचन बोले नही (सेदिठिमंदिठिणलूसएज्जा के०) एवो ते दिठिमं एटले सम्यक् दृष्टीवंत ते पोतानो सम्यक् दर्शन लूसाए नही तेवी रीते प्ररूपणा करे (सेजाणईभासिउंतंसमाहिं के०) ते पुरुष श्रीतीर्थंकरभाषित समाधि मार्ग बोली जाणे ॥ २५ ॥ (अलूसएणोपछन्नभासी के०) आगमार्थ कहेतो थको लूसे नही एटले अपशब्द बोली सूत्रार्थ डुषवेनही तथा प्रछन्नभाषी नथाय एटले सूत्रार्थ गोपवे नही सूत्रनो भलो अर्थ प्रकाशे (णोसुत्तमछंच करेज्जताई के०) तथा त्राई एटले छकायनो रक्षपाल एवो साधु सूत्र अर्थ अन्यथा नकरे (सछारभत्तीअणुवीइवायंके०) गुरूनी भक्तिआलोचीने बोले पण गुरूनी अभक्ति थाय तेम नबोले (सुयंचसम्मंपडिवाययंतिके०) जेरीते श्रुतने सम्यक् प्रकारे करीने गुरूसमीपेंसांभल्युं होय तेरीतेज अर्थ बोले अन्यथाक्षणोबंदोभवति ॥ २६ ॥ (सेसुद्धसुत्ते के०) ते साधुनुं ए रीते उपदेशादिक अवशरे प्रकाशतो सूत्र शुद्ध कहेवाय (उवणावंचके०) तथा उपधानवंत एटले जें सूत्रनो जे तप सिद्धांतोमां कह्योछे तेने उपधान कहियें तेनो करनार (धम्मंचजेविंदतितछतछके०) जेजे धर्म सम्यक् जाणे तेते धर्म त्यां त्यां अंगीकार करे जेम जेम श्रीवीतरागनी आज्ञा मले तेम तेम धर्मभाषे पण श्रीवीतरागनी आज्ञा विरूद्ध नबोले (आदेज्जवक्केकुसलेवियत्तेके०) एवो जेथाय ते आदेय वचन एटले समस्त लोकने ग्राह्य माननीक वचन बोले तथा कुशल

अर्थ-(जमतीतंपडुप्पन्नं के०) जे द्रव्यादिक पदार्थ अतीतकाले थया तथा जे वर्त्तमान कालें वर्त्तेछे (अगमिस्सं चणायउ के०) तथा अगमिक कालें जे थशे तेना यथावस्थित स्वरूपनो प्ररुपवो तेथी प्ररूपणाना अधिकारी पणा माटे नायक कहियें (सव्वमन्नंतितंताई के०) ते सर्व द्रव्यादिक चतुष्क संपूर्ण जाणे ते जाणतो बतो सर्व प्राणीउनो रक्षपाल (दंसणावरणंतए के०) ते दर्शनावरणीय कर्मनो अंतकरनार जाणवो अर्थात् ते दर्शनावरणादिक घातीकर्म चतुष्कने खपावे ॥ १ ॥ (वितिगिछाए के०) संदेह एटले मिथ्याज्ञान तेनो (अंतए के०) अंतकारक (जे जाणंतिअणेलिसं के०) जे घातीकर्मनो खपावनार ते सर्व निरुपम जाणे एटले तेना जेवो ज्ञानवंत बीजो कोइ नहीं (अणेलिसस्स अक्काया के०) एम जे निरुपम ज्ञानेकरी पदार्थनो प्रकाश करनार (णसेहोइतहिंतहिं के०) ते तिहां तिहां बौद्धादि दर्शनीने विषे न प्रवर्त्ते एटले ते प्राणी जिनमत टालीने अन्य दर्शनीने विषे तत्व न जाणे ॥ २ ॥

॥ दीपिका-अथ पंचदशमादानीयाध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (जमतीत्यादि) यदतीतं प्रत्युत्पन्नं वर्तमानं यदनागतमेष्यत्कालनाविद्रव्यं तस्य सर्वस्यापि यथावस्थितस्वरूपनिरूपणतोनायकः प्रणेता त्रायी सर्वप्राणिरक्षकः सर्वं मन्यते जानाति यो दर्शनावरणांतकोमध्यग्रहणादघातिकर्मचतुष्कस्यांतकृद्रष्टव्यः सएव सर्वज्ञइति ॥१॥ विचिकित्सायाः संशयस्यांतकः क्षयकृद्यः सअनीदृशं जगज्जानाति । यादृशं कर्मक्षयतः सर्वज्ञं सामान्यविशेषात्मकं जगज्जानाति तादृशमन्योबौद्धादिर्न जानातीत्यनीदृशमित्युक्तं । अनीदृशस्य च यथाख्याता प्ररूपकोनासौ तत्र तत्र बौद्धादिके दर्शनः स्यात् । किंतु जिनप्रवचनेऽर्हन्नेव त्रिकालवर्तिवस्तूनामाख्यातेति ॥ २ ॥

॥ टीका-अथ चतुर्दशाध्ययनानंतरं पंचदशमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने सबाह्याभ्यंतरस्य ग्रंथस्य परित्यागोविधेयइत्यभिहितं । ग्रंथपरित्यागाच्चायतचारित्रोभवति साधुस्ततोयादृगसौ यथासंपूर्णमायतचारित्रतां प्रतिपाद्यते तदनेनाध्ययेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्युपक्रमादीनि भवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । आयतचारित्रेण साधुना भाव्यं । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे आदानीयमिति नाम।मोक्षार्थिनाऽशेषकर्मक्षयार्थं यज्ज्ञानादिकमादीयते तदत्र प्रतिपाद्यतइति कृत्वा आदानीयमिति नाम संवृत्तं। पर्याय द्वारेणच प्रतिपादितं सुग्रहं भवतीत्यतआदानशब्दस्य तत्पर्यायस्य च ग्रहणशब्दस्यच निक्षेपं कर्तुकामोनिर्युक्तिकृदाह । "आदाणे गहणंमि य णिक्खेवो होंति दोन्नवि चउक्को । एगठं नाणठं, च होज्ज पगयं तु आदाणे" ॥ ३४ ॥ (आदाणेइत्यादि) अथवा (जमतीयंति) अस्याध्ययनस्य नाम

व्यवस्थानाख्यं वा तं सर्वज्ञोक्तं समाधिं सम्यगवगछतीति ॥ २५ ॥ किंचान्यत् (अलू सएइत्यादि) सर्वज्ञोक्तमागमं कथयन्नोलूषयेन्नान्यथापसिद्धांतव्याख्यानेन दूषयेत्तथा न प्रछन्ननाषी नवेत् सिद्धांतार्थमविरुद्धमवदातं सार्वजनीनं तत्प्रछन्ननाषणेन न गोपयेत्। यदिवा प्रछन्नं वाऽर्थपरिणताय न नाषेत नसिद्धांतरहस्यमपरिणतशिष्यविध्वंसनेन दोषायैव संपद्यते । तथाचोक्तं । अप्रशांतमतौ शास्त्र, सद्भावप्रतिपादनं ॥ दोषायानिनवोदीर्णे, शमनीयमिव ज्वरेऽइत्यादि । नच सूत्रमन्यत् स्वमतिविकल्पनतः स्वपरत्रायी कुर्वीतान्यथा सूत्रं तदर्थंवा संसारत्रायी त्राणशीलोजंतूनां नविदधीत । किमित्यन्यथा सूत्रं नकर्तव्यमित्याह । परहितैकरतः शास्ता तस्मिन् शास्तरि या व्यवस्थिता नक्तिर्बहुमानस्तया तद्भक्त्या ऽनुविचिंत्यमानेनोक्तेन न कदाचिदागमबाधा स्यादित्येवं पर्यालोच्य वाचं वदेत्तथातथा तछुतमाचार्यादिन्यः सकाशात्तथैव सम्यक्त्वाराधनामनुवर्तमानोऽन्येन्यकुणमोक्तं प्रतिपद्यमानः प्रतिपादयेत् प्ररूपयेन्न सुखशीलतां मन्यमानोयथाकथंचित्तिष्ठेदिति ॥ २६ ॥ अध्ययनोपसंहारार्थमाह । (सेसुद्धसुत्तेऽइत्यादि) ससम्यग्दर्शनस्यालूषकोयथावस्थितागमस्यप्रणेता ऽनुविचिंत्य नाषकः शुद्धमवदात्तं यथावस्थितवस्तुप्ररूपणतो ऽ ध्ययनतश्च सूत्रं प्रवचनं यस्यासौ शुद्धसूत्रः । तथोपधानं तपश्चरणं यद्यस्य सूत्रस्यानिहितमागमे तद्विद्यते यस्यासावुपधानवान् तथा धर्मं श्रुतचारित्राख्यं यः सम्यक् वेत्ति विंदतेवा सम्यक् लनते तत्र तत्रेति । यत्राज्ञाग्राह्योर्थः सत्राज्ञयैव प्रतिपत्तव्योहेतुतस्तु सम्यग्घेतुना । यदिवा स्वसमयसिद्धोर्थः स्वसमये व्यवस्थापनीयः परसिद्धश्च परस्मिन्नथवोत्सर्गापवादयोर्व्यवस्थितोर्थस्ताभ्यामेव यथास्वंप्रतिपादयितव्यएतद्गुणसंपन्नश्चादेयवाक्योग्राह्यवाक्योनवति । तथा कुशलोनिपुणआगमप्रतिपादने सदनुष्ठाने च व्यक्तः परिस्फुटोनासमीक्ष्यकारी । यश्चैतद्गुणसमन्वित : सोर्हति योग्योनवति तं सर्वज्ञोक्तं ज्ञानादिकं वा नावसमाधिं नाषितुं प्रतिपादयितुं नापर : कश्चिदिति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् । गतोनुगमोनया : प्राग्वद्याख्येया : ॥ २७ ॥ समाप्तं चतुर्दशं ग्रंथाख्यमध्ययनमिति ॥

हवे पंदरमुं आदान नामे अध्ययन प्रारंनिये बैयें आदान एटले ग्रहण करवुं एटले रूडी शिक्षारूप चारित्रानुष्ठानने ग्रहण करवुं तेनुं द्रव्ये करी तथा नावे करी शुद्ध स्वरूप कहेबे.

जमतीतं पडुप्पन्नं, आगमिस्सं च णायर्ज ॥ सवमन्नंति तं ताई,
दंसणावरणं तए ॥ १ ॥ अंतए वितिगिछाए, जे जाणंति अ
णेलिसं ॥ अणेलिसस्स अस्काया, ण से होइ तहिं तहिं ॥२॥

बाधितमिति नैषदोषः । यस्य हि वादिनः क्षणमात्रं वस्तु तस्यायं दोषोयस्यतु पूर्वोक्त लक्षणानुगतमन्वयि द्रव्यमस्ति अस्यायं दोषएव न भवति । तथाहि । तत्परिणामि द्रव्य मेकस्मिन्नेव क्षणे एकेन स्वभावेनोत्पद्यते परेण विनश्यत्यनंतधर्मत्वाद्वस्तुनइति । य त्किंचिदेतत् । तदेवं द्रव्यस्य विवक्षितपरिणामेन परिणमतोयआद्यः समयः सद्रव्यादि रिति स्थितं द्रव्यस्य प्राधान्येन विवक्षितत्वादिति । सांप्रतं भावादिमधिकृत्याह । " आ गमणो आगमउ भावादी तं दुहा उवदिसंती ॥ णो अगमउ भावो, पंचविहो होइ णायव्वो ॥ ३७ ॥ आगमउ पुण आदी, गणिपिंडगं होइ बारसं गंतु । गब्भसि लोगो पदपादअरकराइ चउ तब्बादी " ॥ ३८ ॥ (आगमइत्यादि) भावोंतःकरणस्य परिणति विशेषस्तं बुधास्तीर्थकरगणधरादयोव्यपदिशंति प्रतिपादयंति । तद्यथा आगमतोनोआगम तश्च । तत्र नोआगमतः प्रधानपुरुषार्थतया चिंत्यमानत्वात्पंचविधः पंचप्रकारोभवति । तद्यथा । प्राणातिपातविरमणादीनामाद्यः प्रतिपत्तिसमयइति । तथा (आगमउइत्यादि) आगममाश्रित्य पुनरादिरेवं द्रष्टव्यः । तद्यथा । यदेतद्गणिनआचार्यस्य पिटकं सर्व स्वमाधारोवा तद्द्वादशांगं भवति । तुशब्दादन्यदप्युपांगादिकं द्रष्टव्यं । तस्य प्रवचनस्यादि भूतोयोग्रंथस्तस्याप्याद्यः श्लोकस्तत्राप्याद्यं पदं तस्यापि प्रथममक्षरमेवंविधोबहुप्रकारो भावादिर्द्रष्टव्यइति । तत्र सर्वस्यापि प्रवचनत्वसामायिकमादिस्तस्यापि करोमीति पदं तस्यापि ककारो द्वादशानां त्वंगानामाचारांगमादिस्तस्यापि शास्त्रपरिज्ञाध्ययनमस्यापि च जीवोद्देशकस्तस्यापि सुयंतिपदं तस्यापि सुकारइति पदमादिरित्यस्य च प्रकृतांगस्य सम याध्ययनमादिस्तस्यापि उद्देशकश्लोकपादपदवर्णादिर्द्रष्टव्यइति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षे पस्तदनंतरमस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (जमतीयमित्यादि) अ स्य चानंतरसूत्रेण संबंधोवक्तव्यः सचायं । तद्यथा । आदेयवाक्यः कुशलोव्यक्तोर्हति त थोक्तं समाधिं भाषितुं यश्च यदतीतं प्रत्युत्पन्नमागामिच सर्वमवगच्छति सएव भाषितुमर्ह ति नान्यइति । परंपरसूत्रसंबंधस्तु यएवातीतानागतवर्तमानकालत्रयवेदी सएवाशेषबंधना नां परिज्ञानात्रोटयिता वेत्येतद्बुध्येतेत्यादिकः संबंधोऽपरसूत्रैरपि स्वबुध्या लगनीयइ ति । तदेवं प्रतिपादितसंबंधस्यास्य सूत्रस्य व्याख्या प्रस्तूयते । यत्किमपि द्रव्यजातमती तं यच्च प्रत्युत्पन्नं यच्चानागतमेष्यत्काललभावि तस्यासौ सर्वस्यापि यथावस्थितस्वरूपनि रूपणतोनायकः प्रणेता । यथावस्थितवस्तुस्वरूपप्रणेतृत्वं च परिज्ञानेसति भवत्यत स्तदपदिश्यते सर्वमतीतानागतवर्तमानकालत्रयभावतोद्रव्यादिचतुष्कस्वरूपतोद्रव्यपर्या यनिरूपणतश्च मनुतेऽसौ जानाति सम्यक् परिछिनत्ति तत्सर्वमवबुध्यते जानानश्च विशि ष्टोपदेशदानेन संसारोत्तारणतः सर्वप्राणिनां त्रायसौ त्राणकरणशीलः । यदिवा अयव यपयमयतयणयगतावित्यस्य धातोर्ल्युट् प्रत्ययः । तयनं तायः सविद्यते यस्यासौ तायी ।

तच्चादानपदेनादावादीयते इत्यादानं तच्च ग्रहणमित्युच्यते । तत्रादानग्रहणयोर्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । (आदाएेइत्यादि) आदीयते कार्यार्थिना तदित्यादानं । कर्मणिल्युट् प्रत्ययः करणेवा । दीयते गृह्यते स्वीक्रियते विवक्षितमनेनेति कृत्वा आदानं च पर्यायतोग्रहणमित्युच्यते ॥ तत आदानग्रहणयोर्निक्षेपोभवति चौचतुष्कौ । तद्यथा । नामादानं स्थापनादानं द्रव्यादानं भावादानंच । तत्र नामस्थापने क्षुरे । द्रव्यादानं वित्तं यस्माल्लौकिकैः परित्यक्तान्यकर्तव्यैर्महता क्लेशेन तदादीयते तेन वाऽपरंद्विपदचतुष्पदादिकमादीयतइति कृत्वा । भावादानंतु द्विधा प्रशस्तमप्रशस्तं क्रोधाद्युदयमिथ्यात्वाविरत्यादिकं वा । प्रशस्तं तूत्तरोत्तरगुणश्रेण्या विशुद्धाध्यवसायकंडकोपाख्यानं सम्यक्ज्ञानादिकं वेत्येतदर्थप्रतिपादनपरमेतदेव चाध्ययनं द्रष्टव्यमित्येवं ग्रहणेपि नामादिकश्चतुर्धा निक्षेपोद्रष्टव्यः । भावार्थोप्यादानपदस्येव द्रष्टव्यस्तत्पर्यायत्वादस्येति । एतच्च ग्रहणं नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रार्थनयाभिप्रायेणादानपदेन सहालोच्यमानं शक्रेंद्रादिवदेकार्थमभिन्नार्थं भवेत् शब्दसमभिरूढैवंभूतशब्दनयाभिप्रायेण च नानार्थं भवेत् । इहतु प्रकृतं प्रस्तावश्चादाने आदानविषये आदानपदमाश्रित्यास्याभिधानमाकार्यादानीयं वा ज्ञानादिकमाश्रित्य नाम कृतमिति आदानीयाभिधानस्यान्यथा वा प्रवृत्तिनिमित्तमाह । “ जं पढमस्संतिमए, बितियस्स उ तह वेज्जआदिंमि ॥ एतेणादाणिज्जं, एसो अन्नोवि पज्जाउ ” ॥ ३५ ॥ (जंपढमस्सेत्यादि) यत्पदं प्रथमश्लोकस्य तदर्धस्य चांते पर्यंते तदेव पदं शब्दतोर्थतउभयतश्च द्वितीयश्लोकस्यादौ तदर्धस्य वादौ भवत्येतेन प्रकारेणाद्यंपदसदृशत्वेनादानीयं भवत्येष आदानीयाभिधानप्रवृत्तेः पर्यायोऽन्योवा विशिष्टज्ञानाद्यादानीयोपादानादिति । केचित्तु पुनरस्याध्ययनस्यांतादिपदयोः संकलनात्संकलिकेति नाम कुर्वते । तस्याअपि नामादिकश्चतुर्धानिक्षेपोविधेयः । तत्रापि द्रव्यसंकलिका निगडादौ भावसंकलनात्तूत्तरोत्तरविशिष्टावसायसंकलनमिदमेव वा ऽध्ययनमाद्यंतपदयोः संकलनादिति । येषामादानपदेनाभिधानं तन्मतेनादौ यत्पदं तदादानपदमतश्चादेर्निक्षेपं कर्तुकामआह । “ णामादी ठवणादी, दव्वादी चेव होंति भावादी ॥ तं दव्वादी पुण दव्वस्स जो सभावो सएठाणे ३६ (णामादी इत्यादि) आदेर्नामादिकश्चतुर्धा निक्षेपः । नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य द्रव्यादि दर्शयति । द्रव्यादिः पुनर्द्रव्यस्य परमाएवादेर्यः स्वभावः परिणतिविशेषः स्वके स्थाने स्वकीये पर्याये प्रथममादौ भवति सद्रव्यादिर्द्रव्यस्य दध्यादेर्यआद्यः परिणतिविशेषः क्षीरस्य विनाशकालसमकालीनएवमन्यस्यापि परमाएवादेर्द्रव्यस्य योयः परिणतिविशेषः प्रथममुत्पद्यते ससर्वोपिद्रव्यादिर्भवति । ननुच कथं क्षीरविनाशसमयएव दध्युत्पादः । तथाहि । उत्पादविनाशौ भावाभावरूपौ वस्तुधर्मौ वर्तेते । न च धर्मोधर्मिणमंतरेण भवितुमर्हत्यतएकस्मिन्नेव क्षणे तद्धर्मिणोर्दधिक्षीरयोः सत्तामाप्नोत्येतच्च दृष्टेष्ट

मोक्ष मार्गछे त्यां त्यां (सेयसव्वेसुआहिए के०) तेहिज नावने सत्यकरी जाणवा (स यासच्चेणसंपन्नेके०) जे सदा एटले सर्वकाल एवा सत्य वचने करी संपन्न होय ते शुं करे तेकहेछे (मित्तिनूएसुकप्पएके०) नूत एटले प्राणी मात्रने विषे मैत्रीनाव कल्पे सर्व जीव आत्मा मात्रने समान करी लेखवे एटले जेवो पोतानो आत्मा तेवो परनो आत्मा जाणे ॥३॥ (नूएहिंनविरुझेज्जाके०) त्रस अने स्थावर जेनूत एटले प्राणीसाथे विरोध न करे एटले प्राणी मात्रनेहणे नही (एसधम्मेवुसीमउके०) एवो धर्म वुसीमउ एटले संयमवंतनो जाणवो (साहूजगंपरिन्नायके०) साधु सर्व लोकमांहे त्रस अने स्थाव र जीवोने रुडीपेरे जाणीने (अस्सिंजीवितनावणाके०) शुद्ध धर्मनेविषे नावना नावे ॥४॥

॥ दीपिका–तत्र तत्र यद्यत्तेनार्हता जीवाजीवादिवस्तु स्वाख्यातं तत्र तत्र न विरोधः । सच सर्वज्ञः सत्यः स्वाख्याता । तथाचोक्तं । वीतरागाहि सर्वज्ञा, न मिथ्या ब्रुवते वचः॥ यस्मात्तस्माद्वचस्तेषां, तथानूतार्थदर्शिनां ॥१॥ सदा सर्वकालं सत्येन संपन्नः ससर्वज्ञो नूतेषु प्राणिषु मैत्रीं कल्पयेत् कुर्यात् । यतः मातृवत्परदाराणि, परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥ आत्मवत्सर्वनूतानि, यः पश्यति सपश्यतीति ॥२॥ नूतैः प्राणिनिः सह न विरुध्येत । न विरोधं कुर्यात् एष धर्मः (वुसीमउत्ति) तीर्थकस्य साधोर्वा तथा वुसीमं साधुस्तीर्थकृद्वा जग द्विश्वं परिज्ञाय आगमतः स्वयंच ज्ञात्वा यस्मिन् नावनाः पंचविंशतिर्द्वादशवा ताजी वितनावनाजीवसमाधानकारिणीर्नावयेत् ॥ ४ ॥

॥ टीका–सांप्रतमेतदेव कुतीर्थिकानामसर्वज्ञत्वमर्हतश्च सर्वज्ञत्वं यथानवति तथा सोपपत्तिकं दर्शयितुमाह ।(तहिंतहिमित्यादि) तत्रतत्रेति वीप्सापदं । यद्यनेनार्हता जी वाजीवादिकं पदार्थजातं तथा मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाबंधहेतवइति कृत्वा संसारकारणत्वेन तथा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गइति मोक्षांगतयेत्येतत्सर्वं पूर्वोत्तराविरोधितया युक्तिनिरुपपन्नतया सुष्ठाख्यातं स्वाख्यातं तीर्थिकवचनं तु नहिं स्या नूतानीति नणित्वा तडुपमर्दकारंनाभ्यनुज्ञानात्पूर्वोत्तराविरोधितया तत्रतत्र चिंत्यमानं निर्युक्तिकत्वान्नस्वाख्यातं नवति । सचाविरुद्धार्थस्याख्याता रागद्वेषमोहानामनृतकारणा नामसंनवात्सद्भूयोहितत्वाच्च सत्यः स्वाख्यातस्तत्स्वरूपविद्भिः प्रतिपादितः ॥ रागादयो ह्यनृतकारणं ते च तस्य न संत्यतः कारणानावात्कार्यानावइति कृत्वा तद्वचोनूतार्थप्र तिपादकं ॥ तथा चोक्तं । वीतरागाहि सर्वज्ञा, मिथ्यान ब्रुवते वचः । यस्मात्तस्माद्व चस्तेषां, तथानूतार्थदर्शिनां । ननु च सर्वज्ञत्वमंतरेणापि हेयोपादेयमात्रपरिज्ञानादपि सत्यता नवत्येव । तथा चोक्तं । सर्वं पश्यतु वा मावा, तत्वमिष्टं तु पश्यति । कीट

सर्वे गत्यर्थाज्ञानार्थाइति कृत्वा सामान्यस्य परिछेदकोमनुते इत्यनेकविशेषस्य तदनेकसर्वज्ञः सर्वदर्शी चेत्युक्तं नवति । नच कारणमंतरेण कार्यं नवतीत्यतइदमपदिश्यते । दर्शनावरणीयस्य कर्मणोंतकोमध्यग्रहणेतु घातिचतुष्टयस्यांतकृद्दृष्टव्यइति ॥ १ ॥ यश्च घातिचतुष्टयांतकृत्सईदृग्नवतीत्याह । (अंतएइत्यादि) विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः संशयज्ञानं तस्यासौ तदावरणक्षयादंतकृत् संशयविपर्ययमिथ्याज्ञानानामविपरीतार्थपरिछेदादंते वर्तते । इदमुक्तंनवति । तव दर्शनावरणक्षयप्रतिपादनात् ज्ञानाद् निन्नं दर्शनमित्युक्तं नवति । ततश्च येषामेव सर्वज्ञस्य ज्ञानं वस्तुगतयोः सामान्यविशेषयोरचिंत्यशक्त्युपेतत्वात्परिछेदकमित्येषोयेषामन्युपगमः सोऽनेन पृथगावरणप्रतिपादनेन निरस्तोनवतीति । यश्च घातिकर्मांतकृदतिक्रांतसंशयादिज्ञानः सोऽनीदृशमनन्यसदृशं जानीते नतत्तुल्योवस्तुगतसामान्यविशेषांशपरिछेदकउनयरूपेणैव विज्ञानेन विद्यतइतीदमुक्तं नवति । न तज्ज्ञानमितरजनज्ञानतुल्यमतोयडुक्तं मीमांसकैः सर्वज्ञस्य सर्वपदार्थपरिछेदकत्वेऽन्युपगम्यमाने सवेदा स्पर्शरूपरसगंधवर्णशब्दपरिछेदादनन्निमतद्व्यरसास्वादनमपि प्राप्नोति तदनेन व्युदस्तं इष्टव्यं । यदप्युच्यते सामान्येन सर्वज्ञसद्भावेपि ज्ञेषहेतोरन्नावादर्हत्येव संप्रत्ययोनोपपद्यते । तथा चोक्तं । अर्हन्न यदि सर्वज्ञो, बुद्धोनेत्यत्र का प्रमा । अथोन्नावपि सर्वज्ञौ मतन्नेदस्तयोः कथमित्यादि । एतत्परिहारार्थमाह । अनीदृशस्यानन्यसदृशस्य यः परिछेदकआख्याताच नामासौ तत्र तत्र दर्शने बौद्धादिकोन्नवति तेषां इव्यपर्याययोरनन्युपगमादिति । तथाहि । शाक्यमुनिः सर्वं क्षणिकमिछन् पर्यायानेवेछति न इव्यं । इव्यमंतरेण च निर्बीजत्वात् पर्यायाणामप्यन्नावः प्राप्नोत्यतः पर्यायानिछताऽवश्यमकामेनापि तदाधारनूतं परिणामिइव्यमेष्टव्यं तदनन्युपगमाच्च नासौ सर्वज्ञइति । तथा अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वन्नावस्य इव्यस्यैवैकस्यान्युपगमादध्यक्षावसीयमानानामर्थक्रियासमर्थानां पर्यायाणामनन्युपगमान्निष्पर्यायस्य इव्यस्याप्यन्नावात्कपिलोपि न सर्वज्ञइति तथा क्षीरोदकवदन्निन्नयोर्इव्यपर्याययोरन्नेदेनान्युपगमाडुलूकस्यापि न सर्वज्ञत्वाच्च तीर्थांतरीयाणां मध्ये न कश्चिदप्यनीदृशस्यानन्यसदृशस्यार्थस्य द्रव्यपर्यायोन्नयरूपस्याख्याता नवतीत्यर्हन्नेवातीतानागतवर्तमानत्रिकालवर्तिनोर्थस्य स्वाख्यातेति न तत्रतत्रेति स्थितं ॥ २ ॥

तहिं तहिं सुयरकायं, से य सच्चे सुआहिए॥ सया सच्चेण संपन्ने, मित्तिनूएसु कप्पए ॥ ३ ॥ नूएहिं न विरुश्केज्जा, एस धम्मे बुसीमठ ॥ साहूजगं परिन्नाय, अस्सिं जीवितन्नावणा ॥ ४ ॥

अर्थ-(तहिंतहिंसुयरकायंके०) जे जे नाव श्रीवीतरागें ज्यां ज्यां नलीपेरे कह्यां डे एटले मिथ्यात्व अविरत प्रमदादिकते संसारनुं कारणडे अने ज्ञान दर्शन चारित्र ते

॥ दीपिका—नावनानिर्योगः सध्यानरूपोनावनायोगस्तेन शुद्धआत्मा यस्य संतथा एवंविधः सन् त्यक्तसंसारस्वनावोनौरिव जलोपरि तिष्ठति । एवमाख्याता नौरिवानुकूलवातप्रेरिता तीरं प्राप्ता स्यादेवं चारित्रवान् जीवपोतस्तपोवायुवशात्सर्वडुःखात्मकः संसारोत्त्रुटयत्यपगच्छति ॥ ५ ॥ मेधावी मर्यादावान् त्रुटयति मुच्यते सर्वबंधनेन्यः । किंकुर्वन् पापकं सावद्यकार्यं लोके ज्ञपरिज्ञया जानन् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ तस्य नवं कर्म अकुर्वतः पूर्वसंचितानि पापकर्माणि त्रुटयंति ॥ ६ ॥

॥ टीका—सन्नावनानावितस्य यन्नवति तद्दर्शयितुमाह । (नावणाइत्यादि) नावनानिर्योगः सम्यक् प्रणिधानलक्षणोनावनायोगस्तेन शुद्धआत्मा अंतरात्मा यस्य सतथा । सच नावनायोगशुद्धात्मा परित्यक्तसंसारस्वन्नावोनौरिव जलोपर्यवतिष्ठते संसारोदन्वतइति नौरिव यथा जले निमज्जनत्वेन प्रत्याख्याता एवमसावपि संसारोदन्वति न निमज्जतीति । यथा चासौ नियामकाधिष्ठाताऽनुकूलवातेरिता समस्तद्वंद्वापगमात्तीरमास्कंदत्येवमायतचारित्रवान् जीवपोतः सदागमकर्णधाराधिष्ठितस्तपोमारुतवशात्सर्वडुःखात्मकात्संसारात्त्रुटयत्यपगच्छति मोक्षाख्यं तीरं सर्वद्वंद्वोपरमरूपमवाप्नोतीति ॥ ५ ॥ अपिच । (तिउट्टइत्यादि) सहि नावनायोगशुद्धात्मा नौरिव जले संसारे परिवर्तमानस्त्रिन्योमनोवाक्कायेन्योऽशुन्नेन्यस्त्रुटयति यदिवातीव सर्वबंधनेन्यस्त्रुटयति मुच्यते। अतित्रुटयति संसारादतिवर्तत मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः सदसद्विवेकी वाऽस्मिन् लोके चतुर्दशरज्ज्वात्मके नूतस्य ग्रामलोकेवा यत्किमपि पापकं कर्म सावद्यानुष्ठानरूपं तत्कार्यंवा अष्टप्रकारं कर्म तत् ज्ञपरिज्ञया जानन् प्रत्याख्यानपरिज्ञया च तडुपादानं परिहरन् ततस्त्रुटयति तस्यैवं लोकं कर्मवा जानतोनवानि कर्माण्यकुर्वतोनिरुद्धाश्रवद्वारस्य विप्रकृष्टतपश्चरणवतः पूर्वसंचितानि कर्माणि त्रुटयंति निवर्ततेवा नवं च कर्माकुर्वतोऽशेषकर्मक्षयोनवतीति ॥ ६ ॥

अकुवर्ज णवं णत्थि, कम्मं नाम वि जाणइ ॥ विन्नाय से महावीरे, जेण जाइ ण मिज्जइ ॥ ७ ॥ णमिज्जइ महावीरे, जस्स नत्थि पुरे कडं ॥ वा ठवं जलमच्चेति, पिया लोगंसि इत्थिज ॥ ८ ॥

अर्थ—(अकुवर्जणवंणत्थि के०) कारण के जे समस्त क्रिया रहित होय एवा अण करताने नवा कर्मनो बंध नथी (कम्मंनामविजाणइ के०) तेवारे अष्ट प्रकारना जे कर्म तेना विपाकनुं निर्ज्जरवो ते सम्यक् जाणे (विन्नायसेमहावीरे के०) ते कर्म रूप शत्रुनो विदारण करवा थकी श्रीमहावीरदेव कर्मना वंधने तथाकर्मनी निर्ज्जराने जाणी

संख्यापरिज्ञानं, तस्य नक्कोपयुज्यते इत्याशंक्याह । सदा सर्वकालं सत्येनावितथजाषणेन संपन्नोसौ । अवितथजाषणत्वं च सर्वज्ञे सति जवति नान्यथा । तथाहि । कीटसंख्यापरिज्ञानासंजवे सर्वत्रापरिज्ञानमाशंकेत । तथा चोक्तं । सदृशे बाधासंजवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यादिति सर्वत्रानाश्वासस्तस्मात्सर्वज्ञत्वं तस्य जगवतोऽष्टव्यमन्यथा तद्वचःसत्यता न स्यात् । सत्योवाऽसंयमः संतः प्राणिनस्तेज्योहितत्वादतस्तेन तपः प्रधानसंयमेन जूतार्थहितकारिणा सदा सर्वकालं संपन्नोयुक्तएतजुणसंपन्नश्चासौ जूतेषु जंतुषु मैत्री तल्लक्षणपरतया जूतदयां कल्पयेत् कुर्यात् । इदमुक्तं जवति । परमार्थतः सर्वज्ञस्तत्त्वदर्शितया योजूतेषु मैत्रीं कल्पयेत् । तथा चोक्तं। मातृवत्परदाराणि परड्व्याणि लोष्टवत् ॥ आत्मवत्सर्वजूतानि यः पश्यति सपश्यति ॥१॥ यथा जूतेषु मैत्री संपूर्णजावमनुजवति तथा दर्शयितुमाह । (जूएहिंइत्यादि) जूतैः स्थावरजंगमैः सह विरोधं नकुर्यात्तडुपघातकारिणमारंजं तद्विरोधकारणं दूरतः परिवर्जयेदित्यर्थः । सएषोऽनंतरोक्तोजूताविरोधकारी धर्मः स्वजावः पुण्यारव्योवा (बुसीमर्उत्ति) तीर्थकृतोयं सत्संयमवतोवेति । तथा सत्संयमवान् साधुस्तीर्थकृज्जगच्चराचरजूतग्रामारव्यं केवलालोकेन सर्वज्ञप्रतीतागमपरिज्ञाने न वा परिज्ञाय सम्यगवबुध्यास्मिन् जगति मौनींड्वा धर्मे जावनाः पंचविंशतिरूपाद्वादशप्रकारावा या अनिमतास्ताजीवितजावनाजीवसमाधानकारिणीः सत्संयमांगतया मोक्षकारिणीर्जावयेदिति ॥ ४ ॥

जावणा जोगसुद्धप्पा, जलेणावाव आहिया ॥ नावाव तीरसंपन्ना, सवडुरका तिउट्टइ ॥ ५ ॥ तिउट्टई उ मेधावी, जाणं लोगंसि पावगं ॥ तुट्टंति पावकम्माणि, नवं कम्ममकुव्वए ॥ ६ ॥

अर्थ–जे जावनाजावे तेने जे होय ते देखाडेछे. (जावणाजोगसुद्धप्पा के०) जावनाना योगेकरी जेनो विशुद्ध निर्मल आत्माछे (जलेणावावआहिया के०) ते पुरुष संसार रूप समुड्ने विषे नौका समान कह्याछे ते उपर दृष्टांत कहेछे (नावावतीरसंपन्ना के०) जेम नावा समुड्ने तीरे पोहोचाडे तेम ते पुरुषना उपदेश थकी जीव चारित्ररूप प्रवहणे करीने (सवडुरकातिउट्टइ के०) संसारना सर्व डुःख थकी मुकाए अने मोक्षरूप कांठे पोहोचे ॥ ५ ॥ (मेधावी के०) पंमित (तिउट्टईउ के०) सर्व डुःख थकी मूकाए ते पंमित केवो होय तोके (जाणंलोगंसिपावगंके०) सर्वलोकने विषे जे पाप एटले सावद्यानुष्ठान तेनो जाण होय एवाने (तुट्टंतिपावकम्माणिके०) पूर्वना संचित सर्व पाप कर्म त्रूटे (नवंकम्ममकुव्वएके०) वली नवा कर्म नकरे एटले नबांधे एटले तेजीव अकर्मि थाय सर्व कर्मोना क्षय युक्त थाय ॥ ६ ॥

न्संसारोदरे नपुनर्जायते नपरिछिद्यते तदभावाच्च नम्रियते । यदिवा जात्या नारकोयं तिर्यग्योनिकायमिति । एवं नमीयते न परिछिद्यते ऽनेनच कारणाभावात्संसाराविर्भाव नेन । यत्कैश्चिदुच्यते । ज्ञानमप्रतिघं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ॥ ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सह सिद्धं चतुष्टयमित्येतदपि व्युदस्तं भवति । संसारस्वरूपं विज्ञाय तदभावः क्रियते नपुनः सांसिद्धिकः कश्चिदनादिसिद्धोस्ति तत्प्रतिपादकायायुक्तेरसंभवादिति ॥ ७ ॥ किंपुनः कारणमसौन जात्यादिना मीयते इत्याशंक्याह । (णमिज्जतीत्यादि) असौ महावीरः परित्यक्ताशेषकर्मा न जात्यादिना मीयते परिछिद्यते न म्रियते वा जातिजरामरणरोगशोकैर्वा संसारचक्रवाले पर्यटन् न म्रियते न पूर्यते किमिति । यतस्तस्यैव जात्यादिकं भवति यस्य पुरस्कृतं जन्मशतोपात्तं कर्म विद्यते यस्य तु भगवतोमहावीरस्य निरुद्धाश्रवद्वारस्य नास्ति न विद्यते पुरस्कृतं पुरस्कृतकर्मोपादानाभावाच्च न तस्य जातिजरामरणैर्मरणं संभाव्यते । तदाश्रवद्वारनिरोधाश्रयाणां च प्रधानः स्त्रीप्रसंगस्तमधिकृत्याह । वायुर्यथा सततगतिरस्खलिततयाऽग्निज्वालां दहनात्मकामप्येत्यतिक्रामति पराभवति न तया पराभूयते । यएवं लोके मनुष्यलोके हावभावप्रधानत्वात्प्रियादयितास्तत्प्रियत्वाच्च डुरतिक्रमणीयाअत्येत्यतिक्रामतिनतानि र्जीयते तत्स्वरूपावगमात्तज्जयविपाकदर्शनाच्चेति । तथाचोक्तं । स्मितेन भावेन मदेन लज्जया, पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षितैः ॥ वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया, समस्तभावैः खलु बंधनं स्त्रियः ॥ १ ॥ स्त्रीणां कृते भ्रातृयुगस्य भेदः, संबंधिभेदे स्त्रियएव मूलं ॥ अप्राप्तकामाबहवोनरेंद्रा, नारीभिरुत्सादितराजवंशाः॥ २ इत्येवं तत्स्वरूपं परिज्ञाय तज्जयं विधत्ते नैताभिर्जीयतइति स्थितं । अथ किंपुनः कारणं स्त्रीप्रसंगाश्रवद्वारेण शेपाश्रवद्वारोपलक्षणं क्रियते नप्राणातिपातादिनेति । अत्रोच्यते । केषांचिद्दर्शनिनामंगनोपभोगआश्रवद्वारमेव भवति । तथाचोचुः । न मांसभक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा भूतानां, निवृत्तिस्तु महाफला इत्यादि तन्मतव्युदासार्थमेवमुपन्यस्तमिति । यदिवा मध्यमतीर्थकृतांचतुर्यामएव धर्मइहतु पंचयामोधर्मइत्यस्यार्थस्याविर्भावनायानेनोपलक्षणमकारि । अथवा पराणि व्रतानि सापवादानीदंतु निरपवादमित्यस्यार्थस्याविर्भावनाय प्रकटनायैवमकारि । अथवा सर्वाण्यपि व्रतानि तुल्यानि एकखंडेन सर्वविराधनमिति कृत्वा येन केनचिन्निर्देशोन दोपायेति॥ ८॥

इत्थिर्ज जे ण सेवंति, आइमोक्खा हु ते जणा ॥ ते जणा बंधणुम्मुक्का,
नावकंखंति जीवियं ॥ ए॥ जीवितं पिठ्ठकिच्चा, अंतं पावंति
कम्मुणं॥ कम्मुणा संमुहीभूता, जे मग्गमणुसासई॥ १० ॥

अर्थ-(इत्थिर्जजेणसेवंति के०) जे पुरुषो स्त्रीने नथी सेवता (आइमोक्खाहुतेजणा

ने ते प्रमाणे करे (जेणजाइणमिज्झइ के०) जे करे थके फरी संसारमां नउपजे अने उपजवाने अभावे फरी मरण पण न पामे. ॥ ७ ॥ (णमिज्झइमहावीरे के०) ए महा सुभट तुल्य श्रीमहावीर संसार चक्रमां मरण पामे नही (जस्सनछिपुरेकडं के०) जेने पूर्वना करेला कर्म रह्या नथी तो ते नवाकर्म बांधवानी वांछा नकरे ए कारण जाणवो जे कारण माटे आ संसारमांहे स्त्रीनो संग प्रधानछे परंतु तेने स्त्री पराभवी नशके. दृष्टांत कहेछे (वाउव्वजालमच्चेति के०) जेम वायु अग्नीनी ज्वालामां प्रवेश करीने तेने अतिक्रमि जाय परंतु वायु पोते प्रज्वले नही (पियालोगंसिइछिउ के०) तेम लोकने विषे स्त्री प्रियछे ते स्त्री अग्नि ज्वाला समानछे परंतु वायु सरखा साधुने जीपी नशके तेमाटे महावीर सुभटने कर्मनो बंध नथी ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—कामपि क्रियामकुर्वतोयोगप्रत्ययाभावान्नवं कर्म नास्ति न भवति । एतद्गुणोपेतश्च नमनं नाम कर्मनिर्जरणं कर्मच जानाति ज्ञात्वाच कर्मबंधं समहावीरः कर्मदारणक्षमस्तत्करोति येन कृतेन न पुनर्जायते जन्माभावाच्च नम्रियते ॥ ७ ॥ महावीरस्त्यक्ताशेषकर्मा न म्रियते जन्ममरणे न प्राप्नोति यस्य नास्ति पुरस्कृतं कर्म वायुर्यथाग्निज्वालामत्येति अतिक्रामति न तया जीयते एवं लोके प्रियावल्लभास्त्रियोडुरतिक्रमणीयास्ताअतिक्रामति न ताभिर्जीयते। यडुक्तं। स्मितेन भावेन मदेन लज्जया पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षणैः॥ वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया, समस्तपाशं खलु बंधनं स्त्रियः ॥१॥ स्त्रीणां कृते भ्रातृयुगस्य भेदः संबंधिभेदे स्त्रियएव मूलं ॥ अप्राप्तकामाबहवोनरेंड्रानारीभिरुत्सादितराजवंशाइत्यादि ॥ ८ ॥

॥ टीका—केषांचित्सत्यामपि कर्मक्षयानंतरं मोक्षावाप्तौ तथापि स्वतीर्थनिकारदर्शनतः पुनरपि संसाराभिगमनं भवतीदमाशंक्याह । (अकुव्वउ इत्यादि) तस्याऽशेषक्रियारहितस्य योगप्रत्ययाभावात्किमप्यकुर्वतोपि नवं प्रत्यग्रं कर्म ज्ञानावरणीयादिकं नास्ति नभवति कारणाभावात्कार्याभावइति कृत्वा कर्माभावे च कुतः संसाराभिगमनं कर्मकार्यत्वात्संसारस्य तस्य चोपरताशेषद्वंद्वस्य स्वपरकल्पनाभावाड्रागद्वेषरहिततया स्वदर्शननिकाराभिनिवेशोपि नभवत्येव । सचैतद्गुणोपेतः कर्माष्टप्रकारमपि कारणतस्तद्विपाकतश्च जानाति नमनं नाम कर्मनिर्जरणं तच्च सम्यक् जानाति। यदिवा कर्म जानाति तन्नामास्य चोपलक्षणार्थत्वात्तद्भेदांश्च प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशरूपान्सम्यगवबुध्यते । संभावनायां वा नामशब्दः। संभाव्यते चास्य भगवतः कर्मपरिज्ञानं विज्ञायच कर्मबंधनं तत्संचरणनिर्जरणोपायं चासौ महावीरः कर्मदारणसहिष्णुस्तत्करोति येन कृतेनास्मि

अणुसासणं पुढो पाणी, वसुमं पूयणासुते॥ अणासए जते दंते, दढे आरयमेहुणे ॥ ११ ॥ णीवारे व ण लीएज्जा, छिन्नसोए अणाविले ॥ अणाइले सया दंते, संधिं पत्ते अणेलिसं ॥१२॥

अर्थ-(अणुसासणं पुढोपाणी के०) जेनो अनुशासन एटले उपदेश दान ते सर्व प्राणिने विषे पृथक् पृथक् जुदो जुदो परणमे कोनी पेरे तोके पृथ्वीने विषे जेम उदक जुदो जुदो परणमे तेनी पेरे जेनो उपदेश परणमेछे तथा (पूयणासु के०) पूजानेविषे (वसुमं के०) द्रव्यवंत एनो नावार्थ कहेछे जे देवतादिक समवसरणादिक पूजा करे छे त्यां त्यां तेने द्रव्य थकी नोगछे परंतु ते नाव थकी नोग नथी तेकारण माटे संयमवंत (ते के०) तेहिज जाणवा ए वचन श्रीतीर्थंकर देव आश्री कह्याछे वली (अणासएजतेदंते के०) आश्रव रहित जयणावंत तथा इंद्रियनो दमन करनार (दढे आरयमेहुणे क०) संयमने विषे दृढ अने मैथुन थकी विरत एटले विषय रहित ॥ ११ ॥ (णीवारेवणलीएज्जा के०) मैथुनने नीवार समान जाणे जेम सूकरादिकने खावानी वस्तु आपी लोजावीने मारी नाखीये अथवा दुःख आपीये तेम मैथुनने एवो जाणीने स्त्रीनो संग नकरे ते केवो पुरुष जाणवो तोके (छिन्नसोए अणाविले के०) स्रोत एटले जे संसार तेमां अवतरवाना द्वारजे विषय कषायादिकछे ते जेणे छेद्याछे वली राग द्वेष थकी रहित तथा (अणाइलेसयादंते के०) अनाकुल एटले अक्षोन सदा दांत गुणवान् एवोछतो (संधिंपत्ते अणेलिसं के०) कर्म विवर लक्षणनी सिद्धि पामे एवी बीजी वस्तु कोइ जगतमां नथी तेमाटे ए सिद्धिने कोइ उपमा नथी ॥१२॥

॥ दीपिका-अनुशासनं देशनाकरणं पृथक् पृथक् नव्यानव्यप्राणिषु सर्वज्ञः करोति । नव्येषु देशना न सम्यक् परिणमति तथापि न सर्वज्ञस्य दोषः । तडुक्तं । सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य सल्लोकबांधव तवापि खिलान्यनूवन् ॥ तन्नाद्भुतं खगकुलेष्विहतामसेषु, सूर्यांशवोमधुकरीचरणावदाताइति । किंनूतः सर्वज्ञोवसुमान् चारित्री । पुनः किंनूतः पूजनं देवादिकृताशोकादिकमास्वादयति उपभुंक्ते पूजनास्वादकः । ननु देवादिकृतस्याधाकर्मणः समवसरणादेरुपनोगात्कथमसौ चारित्रीत्याशंक्याह । (अणासएत्ति) न विद्यते आशयः पूजानिप्रायोयस्य स अनाशयः द्रव्यतः समवसरणादिके विद्यमानेपि नावतोसौ नास्वादकोगार्ध्यानावात् । यस्मादसौ यतोयत्नवान दांतः संवृतेंद्रियः दृढः संयमे आरतमपगतं मैथुनं यस्य सतथा गतकामानिलाषः ॥ ११ ॥ नीवारः पशूनां वध्यस्थानप्रापणीयनूतोनक्ष्यविशेषस्ततुल्यं मैथुनं ततोनीवारे मैथुनं न लीयेत न प्रस

के०) ते पुरुषोने आदि एटले प्रथम मोक्षगामी जाणवा (तेजणाबंधणुम्मुक्का के०) तेपुरुषो स्त्रीना बंधन थकी मूकाणा थका (नावकंखंतिजीवियंके०) जीवित श ब्दे बीजो असंयमपणोकांइ पण वांछे नही कारणके परिग्रहादिकनुं मूल कारण सर्व स्त्रीजछे ॥ ए ॥ (जिवितंपिछ्रउकिच्चाके०) ते पुरुष असंयमने निषेधिने (अंतंपावं तिकम्मुणंके०) सर्व कर्मनो अंत करे (कम्मुणासंमुहीनूताके०) ते रुडा अनुष्ठाने करी मोक्षने सन्मुख थका (जेमग्गमणुसासईके०) जे श्रीवीतराग प्रणीत मार्गछे तेमार्गने लोकोना हितने अर्थे प्रकाशे अने पोते पण तेहिज समाचरे ॥ १० ॥

॥ दीपिका—ये नराः स्त्रियोनासेवंते स्त्रीप्रसंगं त्यजंति ते जनाआदिः प्रधानोमोक्षो येषां ते आदिमोक्षाः प्रधाननूतमोक्षपुरुषार्थसाधकाः स्युः । तथा ते जनाः कर्मबंधनो न्मुक्काजीवितं नावकांक्षंति ॥ ए ॥ जीवितमसंयमजीवितं पृष्ठतः कृत्वा निराकृत्य कर्म णामंतं प्राप्नुवंति मोक्षमप्राप्ताअपि कर्मणाविशिष्टानुष्ठानेन मोक्षस्य सन्मुखीनूतायेमार्गम नुशासंति अन्येन्योवदंति स्वयंच कुर्वंति ॥ १० ॥

॥ टीका—अधुना स्त्रीप्रसंगाश्रवनिरोधफलमाविर्नावयन्नाह । (इछिउइत्यादि) येम हासत्वाः कटुविपाकोयं स्त्रीप्रसंगइत्येवमवधारणतया स्त्रियः सुगतिमार्गार्गलाः संसारवी थीनूताः सर्वाविनयराजधान्यः कपटजालशताकुलामहामोहनशक्तयोन सेवंते नतत्प्रसंग मनिलषंति । तएवंनूताजनाइतरजगातीताः साधवआदौ प्रथमं मोक्षोऽशेषद्वंद्वोपरमरू पोयेषांते आदिमोक्षाः । हुरवधारणे । आदिमोक्षाएव तेऽवंगतव्याः । इदमुक्तं नवति । सर्वाऽविनयास्पदनूतः स्त्रीप्रसंगोयैः परित्यक्तस्तएवादिमोक्षाः प्रधाननूतमोक्षाख्यपुरुषा र्थोद्यताः । आदिशब्दस्य प्रधानवाचित्वान्न केवलमुद्यतास्तेजनाः स्त्रीपाशबंधनोन्मुक्त तयाऽशेषकर्मबंधनोन्मुक्ताः संतोनावकांक्षंति नानिलषंति असंयमजीवितमपरमपि परि ग्रहादिकं नानिलषंते । यदिवा परित्यक्तविषयेछाः सदनुष्ठानपरायणामोक्षैकतानाजीवितं दीर्घकालजीवितं नानिकांक्षंतीति ॥ए॥ किंचान्यत् । (जीवियमित्यादि) जीवितमसंयमजी वितं पृष्ठतः कृत्वाऽनादृत्य प्राणधारणलक्षणं वा जीवितमनादृत्य सदनुष्ठानपरायणाः कर्म णां ज्ञानावरणादीनामंतं पर्यवसानं प्राप्नुवंति । अथवा कर्मणा सदनुष्ठानेन जीवितनिरपे क्षाः संसारोदन्वतोंऽतं सर्वद्वंद्वोपरमरूपं मोक्षाख्यमाप्नुवंति । सर्वडुःखविमोक्षलक्षणं मोक्षमप्राप्ताअपि कर्मणा विशिष्टानुष्ठानेन मोक्षस्य संमुखीनूताघातिचतुष्टयक्रियया उत्प न्नदिव्यज्ञानाः शाश्वतपदस्यानिमुखीनूताः । कएवंनूता इत्याह । ये विपच्यमानतीर्थंक न्नामकर्माणः समासादितदिव्यज्ञानामोक्षं मोक्षमार्गं ज्ञानदर्शनचारित्ररूपमनुशासंति स त्वहिताय प्राणिनां प्रतिपादयंति स्वतश्चानुतिष्ठंतीति ॥ १० ॥

अणेलिसस्स खेयन्ने, ण विरुज्जिज्ज केणइ ॥ मणसा वयसा चेव, कायसा चेव चरकुमं ॥ १३ ॥ से हु चक्कू मणुस्साणं, जे कंखाए य अंतए ॥ अंतेण खुरो वहती, चक्कं अंतेण लोट्टती ॥ १४ ॥

अर्थ- (अणेलिसस्सखेयन्नेके०) अणेलिस एटले संयम तेने विषे जे खेदज्ञ एटले निपुण होय ते (णविरुज्जिज्जकेणइके०) कोइजीवनी साथे विरोध नकरे सर्वजीवोनी साथे मैत्री नाव आणे (मणसावयसाचेवके०) मन वचन पुनः । (कायसाचेव चरकुमंके०) कायाए करी त्रिकरण शुद्धे जे एम करे तेनेज परमार्थ थकी चक्कुवंत निर्मल दृष्टीवालो जाणवो ॥ १३ ॥ (सेहुचक्कूमणुस्साणंके०) हुइति निश्चें तेहिज पुरुष संयमी मनुष्योनी चक्कु जेवो जाणवो (जेकंखाएयअंतएके०) जे पुरुष कांक्षा एटले विषय तृष्णानो अंतकरे ते संसार अने कर्मनो अंतकारी जाणवो तेनाउपर दृष्टांत कहेले (अंतेणखुरोवहतीके०) बेहडे जेम बुरी कोइ पदार्थ बेदवाने अर्थें अत्यंत तीक्ष्ण धारायें वहे धारने अंते बेदन क्रियामां समर्थ होय (चक्कंअंतेण लोट्टतीके०) जेम गाडानोपइडो पण अंते प्रवर्त्ते तेम मोहादिकने अंते मुक्तिरूप कार्य सिद्ध थाय ॥ १४ ॥

॥ दीपिका-अनीदृशः संयमस्तस्य खेदज्ञोनिपुणः केनचित्सार्द्धं नविरोधं कुर्वीत मनोवचःकायैः सएव परमार्थतश्चक्कुष्मान् नवति ॥ १३ ॥ सएव संयमी मनुष्याणां चक्कुर्नूतोयः कांक्षायानोगेछायाअंतकोंतवर्ती । यथा क्कुरोनापितोपकरणमंतेन वहति चक्रं रथांगमंतेनैव मार्गे वर्तते तथा साधुरपि विषयाद्यंतवर्ती मोक्कसाधकः ॥ १४ ॥

॥ टीका-किंच । (अणेलिसस्सेत्यादि) अनीदृशोऽनन्यसदृशः संयमोमौनींडधर्मो वा तस्य तस्मिन् वा खेदज्ञोनिपुणोऽनीदृशखेदज्ञश्च केनचित्सार्धं न विरोधं कुर्वीत सर्वेषु प्राणिषु मैत्रीं नावयेदित्यर्थः । योगत्रिककरणत्रिकेणेति दर्शयति । मनसांऽतःकरणेन प्रशांतमनास्तथावाचोहितमितनाषी तथा कायेन निरुद्धोडुष्प्रणिहितसर्वकायचेष्टोदृष्टिपूतपादचारी परमार्थतश्चक्कुष्मान् नवतीति ॥ १३ ॥ अपिच । (सेहुचक्कूइत्यादि) हुरवधारणे । सएव प्राप्तकर्मविवरोऽनीदृशस्य खेदज्ञोनव्यमनुष्याणां सदसत्पदार्थाविर्नावनान्नेत्रनूतोवर्तते । किंनूतोसौ यः कांक्षायानोगेछायाअंतकोविषयतृष्णायाः पर्यंतवर्ती । किमंतवर्तीति विवक्कितमर्थं साधयत्येवेत्यमुमर्थं दृष्टांतेन साधयन्नाह । अंतेन पर्यंतेन क्कुरोनापितोपकरणं तदंतेन वहति तथा चक्रमपि रथांगमंतेनैव मार्गे प्रवर्तते । इदमुक्तंनवति । यथा क्कुरादीनां पर्यंतएवार्थकार्येवं विषयकषायात्मकोमोहनीयांतएवापसदसंसारक्कयकारीति ॥ १४ ॥

ज्येत । किंभूतः छिन्नानि स्रोतांसि आश्रवद्वाराणि येन सछिन्नस्रोताः । अनाविलोऽकलुषः । एवंभूतोऽनाविलः सन् सदा दांतः स्यात् । एवंविधश्च कर्मविवररूपं भावसंधिमनीदृशमनन्यसदृशं प्राप्तः स्यात् ॥ १२ ॥

॥ टीका–अनुशासनप्रकारमधिकृत्याह । (अणुशासणमित्यादि) अनुशास्यंते सन्मार्गेऽवतार्यंते सदसद्विवेकतः प्राणिनोयेन तदनुशासनं धर्मदेशनया सन्मार्गावतारणं तत्पृथक्पृथक् भव्यादिषु प्राणिषु क्ष्मित्युदकवत्स्वाशयवशादनेकधा भवति । यद्यपि च अभव्ये तदनुशासनं न सम्यक् परिणमति तथापि सर्वोपायज्ञस्यापि नसर्वज्ञस्य दोषः । तेषामेव स्वभावपरिणतिरियं यया तद्वाक्यममृतभूतमेकांतपथ्यं समस्तद्वंद्वोपघातकारि न यथावत् परिणमति । तथा चोक्तं । सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य, यल्लोकबांधवतयाप्यखिलान्यभूवन् । तन्नाद्भुतं खगकुलेष्विह तामसेषु, सूर्यांशवोमधुकरीचरणावदाताः ॥१॥ किंभूतोसावनुशासकइत्याह । वसु द्रव्यं सच मोक्षंप्रति प्रवृत्तस्य संयमस्तद्विद्यते यस्यासौ वसुमान् पूजनं देवादिकृतमशोकादिकमास्वादयत्युपभुंक्तइति पूजनास्वादकः । ननु चाधाकर्मणोदेवादिकृतस्य समवसरणादेरुपभोगात्कथमसौ सत्संयमवानित्याशंक्याह । न विद्यते आशयः पूजाभिप्रायोयस्यासावनाशयः । द्रव्यतोविद्यमानेपि समवसरणादिके भावतोनास्वादकोसौ तद्गतगार्ध्याभावात् सत्यप्युपभोगे । यतः सत्संयमवानेवासावेकांते संयमपरायणत्वात्कुतोयतइंद्रियनोइंद्रियाभ्यां दांतः । एतद्गुणोपि कथमित्याह । दृढः संयमे । आरतमुपरतमपगतं मैथुनं यस्यसआरतमैथुनोऽपगतेछामदनकामः । इछामदनकामाभावाच्च संयमे दृढोसौ भवति आयतचारित्रत्वाच्च दांतोसौ भवति । इंद्रियनोइंद्रियदमाच्च प्रयतः प्रयत्नवत्त्वाच्च देवादिपूजनास्वादकस्तदनास्वादनाच्च सत्यपि द्रव्यतः परिभोगे सत्संयमवानेवासाविति ॥११॥ अथकिमित्यसावुपरतमैथुनइत्याशंक्याह । (णीवारे इत्यादि) नीवारं सूकरादीनां पशूनां वध्यस्थानप्रवेशनभूतोभक्ष्य विशेषस्तत्कल्पमेतन्मैथुनं । यथाहि असौ पशुर्नीवारेण प्रलोभ्य वध्यस्थानमतिनीयमानोनानाप्रकारावेदनाः प्राप्यते एवमसावप्यसुमान् नीवारकल्पेनानेन स्त्रीप्रसंगेन वशीकृतोबहुप्रकारायातनाः प्राप्नोत्यतोनीवारप्रायमेतन्मैथुनमवगम्य न तस्मिन् ज्ञाततत्त्वोलीयेत न स्त्रीप्रसंगं कुर्यात् । किंभूतः सन्नित्याह । छिन्नान्यपनीतानि स्रोतांसि संसारावतरणद्वाराणि यथाविषयमिंद्रियवर्तनानि प्राणातिपातादीनि वा आश्रवद्वाराणि येन सछिन्नस्रोताः । यथाऽनाविलोकलुषोरागद्वेषासंपृक्ततया मलरहितोनाकुलोवा विषयाप्रवृत्तेः स्वछचेताएवंभूतश्चानाकुलोवा सदा सर्वकालमिंद्रियनोइंद्रियाभ्यां दांतोभवति ईदृग्विधश्च कर्म विवरलक्षणं भावसंधिमनीदृशमनन्यतुल्यं प्राप्तोभवतीति ॥ १२ ॥

त्तरीये प्रवचने श्रुतमागमे । एवंभूतः सुधर्मस्वामी वा जंबूस्वामिनमुद्दिश्यैवाह । यथा मयैतल्लोकोत्तरीये भगवत्यर्हत्युपलब्धं तद्यथा अवाप्तसम्यक्त्वादिसामग्रीकः सिध्यति वैमानिकोवा भवतीति । मनुष्यगतावेवैतन्नान्यत्रेति दर्शयितुमाह ॥ सुयंमेइत्यादि पश्चार्द्धं । तच्च मया तीर्थकरांतिके श्रुतमवगतं । गणधरः स्वशिष्याणामेकेषामिदमाह । यथा मनुष्यएवाशेषकर्मक्षयात्सिद्धिगतिभाग्भवति नामनुष्यइति । एतेन यच्छाक्यैरभिहितं । तद्यथादेवएवाशेषकर्मप्रहाणं कृत्वा मोक्षभाग्भवति तदपास्तं भवति । नह्यमनुष्येषु गतित्रयवर्तिषु सच्चारित्रपरिणामाभावाद्यथा मनुष्याणां तथामोक्षावाप्तिरिति ॥ १६ ॥

अंतं करंति डुरकाणं, इहमेगेसि आहियं ॥ आघायं पुण एगेसिं, डुल्लभे यं समुस्सए ॥ १७ ॥ इउविद्धंसमाणस्स, पुणो संबोहि डुल्लभा ॥ डुल्लहाउ तहच्चाउ, जे धम्मठं वियागरे ॥ १८ ॥

अर्थ-(अंतंकरंतिडुरकाणं के०) मनुष्य सर्व दुःखनो अंत करे पण मनुष्यनी जाति विना अन्य जातीने मुक्ति नथी (इहमेगेसिआहियंके०) एम कोइएके कह्योछे तथा गणधरादिके एम कह्योछेके (आघायंपुणएगेसिंके०) ए मनुष्य संबंधी देह पामवो एक एक बहुल कर्मिजीवोने अत्यंत (डुल्लभेयंसमुस्सएके०) डुर्लभछे वली वली मनुष्य जन्म पामवो डुर्लभछे चुलग पासके इत्यादिक दृष्टांते डुर्लभछे ॥ १७ ॥ (इउविद्धंसमाणस्सके०) ए मनुष्य देह थकी विध्वंस एटले भ्रष्ट थयजाने एटले जे मनुष्य जन्म हास्या एवाने (पुणोसंबोहिडुल्लभाके०) अन्यगतीने विषे बोधी एटले सम्यक्त्व ज्ञान पामवो डुर्लभछे (तहच्चाउके०) तथार्चा एटले लेश्या चित्तना परिणाम अथवा अर्चा एटले मनुष्यनुं शरीर ते (डुल्लहाउके०) दुःप्राप्यछे (जेधम्मठंवियागरेके०) वली धर्मनो अर्थजे वियागरे एटले शुधो प्रकाशे एवो शरीर धारी मनुष्य पणुं पण डुर्लभछे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका-इह एकेषां वादिनामारव्यातं यत् देवाएवांतकरामोक्षगामिनः स्युरिति न तथा इहार्हते प्रवचने । इदमन्यत् पुनरेकेषां गणधरादीनामारव्यातं यदयं मानुष्यः शरीरसमुछ्रयोडुर्लभः । यतः । ननु पुनरिदमतिडुर्लभ, मगाधसंसारजलधिविभ्रष्टं ॥ मानुष्यं खद्योतक,तडिल्लताविलसितप्रतिममित्यादि ॥ १७ ॥ इतोमनुष्यभवाद्विध्वंसमानस्य जीवस्य पुनः संबोधिधर्मप्राप्तिर्डुर्लभा तथाभूता सम्यक्त्वप्राप्तियोग्याऽर्चा लेश्या डुर्लभा । जंतूनां ये धर्मरूपमर्थं व्याकुर्वंति ये धर्मप्रतिपत्तियोग्याइत्यर्थः । तेषां तथाभूताची डुर्लभा स्यात् ॥ १८ ॥

अंताणि धीरा सेवंति, तेण अंतकरा इह ॥ इह माणुसए ठाणे,
धम्ममाराहिउं णरा ॥ १५ ॥ णिठियठा व देवावा, उत्तराए इ
मं सुयं ॥ सुत्तं च मेयमेगेसिं, अमणुस्सेसु णे तहा ॥ १६ ॥

अर्थ—(अंताणिधीरासेवंतिके०) तेम धीर पुरुष पण अंत सेवे एटले विषयनो अंत करे तथा अंत प्रांत आहार सेवे (तेणअंतकराइहके०) ते कारणे आ संसारने विषे अंतना करनार जाणवा (इहमाणुसएठाणेके०) आमनुष्य लोक रूप स्थानकने पाम्या थका (धम्ममाराहिउंणराके०) एवा मनुष्य धर्मजे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्ररूप तेने आराधीने मुक्ति गामी थाय ॥ १५ ॥ (णिठियठावदेवावाके०) एवा संयमना पालनार पुरुषो निष्ठितार्थ एटले सिद्धिने पामे अथवा प्रचुर कर्मने सद्भावें देवत्व पणाने विषे सौधर्मादिक विमाने उपजे (उत्तराएइमंसुयंके) ए वचन उत्तरा एटले लोकोत्तर प्रवचने में सांनल्युंछे एरीते श्रीसुधर्मा स्वामी श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे. (सुत्तंचमेयमेगेसिंके०) में श्रीतीर्थंकरादिक समीपे सांनल्युंछे जे (अमणुस्सेसुणेतहाके०) ए मोक्षनी प्राप्ति ते मनुष्यनी गति टालीने अन्यत्र नथी ते कारण माटे मनुष्य पणे संयम पालवाने विषे प्रमाद नकरवो ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—अंतान् अंतप्रांताहारान् सेवंते वीरास्तेन संसारस्यांतकरास्ते इहार्यक्षेत्रे स्युः । यतइह मनुष्यलोके स्थाने नराधर्ममाराध्य निष्ठितार्थाः स्युः ॥ १५ ॥ केचिन्निष्ठितार्थाः कृतकृत्याः स्युः केचिद्देवाः । एतल्लोकोत्तरीये प्रवचने श्रुतं मयेति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । एतच्च मया तीर्थंकरांते श्रुतं । गणधरः स्वशिष्याणामेकेषामिदमाह । अमनुष्येषु मनुष्यवर्जितेषु नतथा नमोक्षावाप्तिः स्यादित्यर्थः ॥ १६ ॥

॥ टीका—अमुमेवार्थमाविर्नावयन्नाह । (अंताणीत्यादि) अंतान् पर्यंतान् विषयकषायतृष्णायास्तत्परिकर्मणार्थमुद्यानादीनामाहारस्य वांतप्रांतादीनि धीरामहासत्वाविषयसुखनिस्पृहाः सेवंते ऽन्यस्यंति तेन चांतप्रांताभ्यसनेनांतकराः संसारस्य तत्कारणस्य वा कर्मणः क्षयकारिणोनवंति । इहेति मनुष्यलोके आर्यक्षेत्रे न केवलं तएव तीर्थंकरादयोऽन्येऽपीह मानुष्यलोके स्थाने प्राप्ताः सम्यग्दर्शनज्ञावज्ञानचारित्रात्मकं धर्ममाराध्य नरामनुष्याः कर्मनूमिगर्नेऽयुत्क्रांतिजसंख्येयवर्षायुषः संतः सदनुष्ठानसामग्रीमवाप्य निष्ठितार्थाउपरतसर्वद्वंद्वानवंति ॥ १५ ॥ इदमेवाह । (णिठियठाइत्यादि) निष्ठितार्थाः कृतकृत्यानवंति केचन प्रचुरकर्मतया सत्यामपि सम्यक्त्वादिकायां सामग्र्यां न तद्भवएव मोक्षमास्कंदंति । अपितु सौधर्माद्याः पंचोत्तरविमानावसानादेवानवंतीति । एतल्लोको

स्याज्ञानक्रियोपेतस्य यत् स्थानं तत्प्राप्तस्य जन्मकथा कुतः । तस्य जन्ममरणे न नव तइत्यर्थः ॥ १९ ॥ मेधाविनोज्ञानिनस्तथा नवच्रमणेन गतास्तथागताः कुतः कदाचि डुत्पद्यंते नवेनोत्पद्यंतएवेत्यर्थः । तथागताअर्हद्गणधरादयोऽप्रतिज्ञाअनिदानाअनुत्तराः सर्वज्ञत्वात्ते लोकस्य चक्षुर्नूताः स्युः ॥ २० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (जेधम्ममित्यादि) ये महापुरुषावीतरागाः करतलामलकवत्स कलजगद्द्रष्टारस्तएवंनूताः परहितैकरताः शुद्धमवदातं सर्वोपाधिविशुद्धं धर्ममाख्यांति प्र तिपादयंति स्वतः समाचरंति च प्रतिपूर्णमायतचारित्रसद्भावात्संपूर्णं यथाख्यातचारित्र रूपं वाऽनीदृशमनन्यसदृशं धर्ममाख्यांत्युपतिष्ठंति । तदेवमनीदृशस्यानन्यसदृशस्य ज्ञा नचारित्रोपेतस्य यत् स्थानं सर्वद्वंद्वोपरमरूपं तदवाप्तस्य कुतोजन्मकथा जातोमृतोवे त्येवंरूपा कथा स्वप्नांतरेपि तस्य कर्मबीजानावात् कुतोविद्यतइति । तथोक्तं । दग्धे बीजे यथाऽत्यंतं, प्राडुर्नवति नांकुरः ॥ कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति नवांकुरइत्यादि ॥ १९ ॥ किंचान्यत् । (कउकयाइत्यादि) कर्मबीजानावात्कुतः कस्मात्कदाचिदपि मेधा विनोज्ञानात्मकास्तथा पुनरावृत्त्याऽगतास्तथागताः पुनरस्मिन् संसारेऽशुचिगर्नाधाने स मुत्पद्यंते न कथंचित्कदाचित्कर्मोपादानानावाडुत्पद्यंतइत्यर्थः । तथा तथागतास्तीर्थकृद्ग णधरादयोन विद्यंते प्रतिज्ञा निदानबंधनरूपा येषां तेऽप्रतिज्ञानिदानानिराशंसाः सत्वहि तकरणोद्यताअनुत्तरज्ञानत्वादनुत्तरालोकस्य जंतुगणस्य सदसदर्थनिरूपणकारणतश्चक्षुर्नू ताहिताहितप्राप्तिपरिहारं कुर्वंतः सकललोकलोचननूतास्तथागताः सर्वज्ञान्नवंतीति॥ २०॥

अणुत्तरे य ठाणे से, कासवेण पवेदिते। जं किच्चा णिवुमा एगे,
निठं पावंति पंमिया ॥ २१ ॥ पंमिए वीरियं लद्धुं, निग्घायाय
पवत्तगं ॥ धुणे पुवकडं कम्मं, णवं वा वि ण कुवती ॥ २२ ॥

अर्थ–(अणुत्तरेयठाणेसेके०) अनुत्तर एटले प्रधान संयमरूप स्थानक ते (कास वेणपवेदितेके०) काश्यप श्रीमहावीर देवे कह्यो (जंकिच्चाके०) जे संयम स्थानक पा लीने (णिवुमाएगेके०) एक महापुरुष उपशांत कषायवंत एवा थता (निठंपावंतिपंमिया पंमित विवेकना जाण संसारनो अंत पामे ॥ २१ ॥ (पंमिएवीरियंलद्धुंके०) सदसद्विवेकना जाण ते संयमनो वीर्य बल पामीने निःशेष समस्त । ५.०) निर्घातन करवाने अर्थे (पवत्तगंके०) प्रवर्त्तक ए पंमित वी पामवो डुर्लन तेने पामीने (धुणेपुवकडंकम्मंके०) पूर्वकृत कर्मने धुणे एवंवाविणकुवतीके०) कोइ नवा कर्मने नकरे ॥ २२ ॥

॥ टीका—इदमेव स्वनामग्राहमाह । (अंतकरेंतीत्यादि) नह्यमनुष्याअशेषङःखानामं तं कुर्वंति तथाविधसामग्र्यानावाद्यथैकेषां वादिनामाख्यातं । तद्यथा । देवाएवोत्तरोत्त रं स्थानमास्कंदंतोऽशेषक्लेशप्रहाणं कुर्वंति न तथेहार्हते प्रवचने इति । इदमन्यत् पुन रेकेषां गणधरादीनां स्वशिष्याणां वा गणधरादिनिराख्यातं । तद्यथा । युगसमिलादिन्या यावाप्तः कथंचित्कर्मविवरात् योयं शरीरसमुछ्रयः सोकृतधर्मोपायैरप्यसुमद्भिर्महासमुद्र प्रभ्रष्टरत्नवत्पुनर्डर्लनोनवति । तथाचोक्तं । ननु पुनरिदमतिडर्लन,मगाधसंसारजलधिविभ्र ष्टं ॥ मानुष्यं खद्योतक,तडिल्लताविलसितप्रतिममित्यादि ॥१७॥ अपिच (इउविद्धंसेइत्या दि) इतोऽमुष्मात् मानुष्यनवात्सद्धर्मतोवा विध्वंसनस्याकृतपुण्यस्य पुनरस्मिन् संसारे पर्यटतोबोधिः सम्यक्दर्शनावाप्तिः सुडर्लनोत्कृष्टतः अपार्धपुजलपरावर्तकालेन यतोनवति तथा डर्लना डरापा तथानूता सम्यक्दर्शनप्राप्तियोग्यर्चा लेश्यांतःपरिणतिरकृतधर्माणा मिति । यदि वाऽर्चा मनुष्यशरीरं तदप्यकृतधर्मबीजानामार्यक्षेत्रसुकुलोत्पत्तिसकलेंद्रिय सामग्र्यादिरूपं डर्लनं नवति । जंतूनां धर्मरूपमर्थं व्याकुर्वंति ये धर्मप्रतिपत्तियोग्याइत्य र्थः । तेषां तथानूतार्चा सुडर्लना नवतीति ॥ १८ ॥

जे धम्मं सुद्धमक्खंति, पडिपुन्नमणेलिसं ॥ अणेलिसस्स जं
ठाणं, तस्स जम्मकहा कउ ॥ १ए ॥ कउ कयाइ मेधावी, उप्प
ज्जंति तहागया ॥ तहागया अप्पडिन्ना, चक्खू लोगस्सणुत्तरा ॥२०॥

अर्थ—(जेधम्मंसुद्धमक्खंतिके०) जे श्रीवीतरागादिक महापुरुषो शुद्ध निर्मल ध र्म कहे अने पोते पण तेजरीते समाचरे (पडिपुन्नके०) प्रतिपूर्ण (अणेलिसंके०) अनीदृश एटले सम्यक् चारित्रिउ (अणेलिसस्सजंठाणंके०) जेनो ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप मोक्ष स्थानकछे परंतु बीजो स्थानक नथी (तस्सजम्मकहाकउके०) ते ने जन्मकथा क्यांथी होय एटले कर्मने क्षयें जन्म मरणनो अनाव होय ॥ १ए ॥ (कउकयाइमेधावीके०) कदाचित् मेधावी एटले सम्यक् ज्ञानवंत क्यांथकी आवीने (उप्पज्जंतिके०) उपजे खरा परंतु ते केवा होय तोके (तहागयाके०) तेमज कर्म खपावीने गया (तहागयाअप्पडिन्नाके०) जे कर्मखपावीने गया जेने निदान प्र तिज्ञा नही ते अप्रतिज्ञ निराशंस एवा होय तेने संसार मांहे उत्पत्ति अने मरण नथी जे कारणे तथागत श्रीतीर्थंकरादिक निदान रहित निराशंस (चक्खूलोगस्सणुत्तराके०) तथा लोकने अनुत्तर सर्वोत्तम प्रधान ज्ञानथकी चक्षुनूत जाणवा ॥ २० ॥

॥ दीपिका—ये सर्वज्ञाः शुद्धं धर्ममाख्यांति परिपूर्णमनन्यसदृशं । तदेवमनन्यसदृश

समुद्र थकी तस्या (देवावाअन्नविंसुतेके०) अथवा सर्वथा कर्मना क्षयना अनावे दे वत्व पणे वैमानिकमां जइ उपना एकावतारी प्रमुख थया ॥ २४ ॥ (अन्नविंसुपुराधीराके०) पूर्वे अतीतकाले घणा चारित्रिया थया अने वर्त्तमान काले पणछे तथा (आगमिस्सावितुव्वताके०) आगमिक काले पण घणा सुव्रत संयमानुष्ठानो थशे ते केवा थशे तोके (दुन्निबोहस्समग्गस्सके०) दुर्निबोध एटले दुर्लन एवोजे ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप मार्ग ते (अंतंपाउकरातिन्नेकें०) परम उत्कृष्टो पामीने तेहिज मार्गना प्रकाशक बता संसार समुद्रने पूर्वे तस्या वर्त्तमाने तरेछे अने आगमिक काले तरशे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २५ ॥ एरीते पंदरमां यतिनामा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका-अन्यजीवैर्यदनुपूर्वं कर्म आश्रित्य संयमात्संमुखीनूतोयन्मतमष्टनेदं तत् कर्म हित्वा मोक्षस्यानिमुखीनूतः ॥ २३ ॥ सर्वसाधूनां यन्मतमनिप्रेतं तत्संयमस्थानं शल्यकर्तनं कर्मछेदकं । तत्संयमस्थानं साधयित्वा बहवः संसारं तीर्णामोक्षं प्राप्ताः । अथवा देवाअनूवन् नवंति नविष्यंतिच ॥ २४ ॥ पुरा पूर्वं बहवोधीराअनूवन् अनागते काले सुव्रतान्नविष्यंति च वर्तमानकाले तथानूताः संतिच। ये दुर्निबोधस्य दुष्प्रापस्य मार्गस्य दर्शनचारित्राख्यस्यांतं परमकाष्टामवाप्य तस्यैव प्रादुष्कराः स्वतः सन्मार्गसेविनोऽन्येषां च प्रादुर्नावकाः संतः संसारं तीर्णास्तरंति तरिष्यंति चेति ॥ २५ ॥ इति आदानीयाख्यं पंचदशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका-किंच (नकुव्वतीत्यादि) महावीरः कर्मदारणसहिष्णुः सन्नानुपूर्व्येण मिथ्यात्वविरतिप्रमादकषाययोगैर्यत्कृतं रजोऽपरजंतुनिस्तदसौ न करोति न विधत्ते । यतस्तत्प्राक्तनोपात्तरजसैवोपादीयते सच तत्प्राक्तनं कर्मावष्टन्य सत्संयमात्संमुखीनूतस्तदनिमुखीनूतश्च यन्मतमष्टप्रकारं तत्सर्वं हित्वा त्यक्त्वा मोक्षस्य सत्संयमस्य वा सम्मुखीनूतोऽसाविति ॥ २३ ॥ अन्यच्च (जम्मयमित्यादि) सर्वसाधूनां यन्मतमनिप्रेतं तदेतत्संयमस्थानं । तद्विशिनष्टि। शल्यं पापानुष्ठानं तज्जनितं वा कर्म तत्कर्तयति छिनत्ति तच्छल्यकर्तनं तच्च सदनुष्ठानं तद्युक्तविहारिणः साधयित्वा सम्यगाराध्य बहवः संसारकांतारं तीर्णाः । अपरे तु सर्वकर्मक्षयानावात् देवाअनूवन् ते चाप्तसम्यक्त्वाः सच्चारित्रिणोवैमानिकत्वमवापुः प्राप्नुवंति प्राप्स्यंतिचेति ॥ २४ ॥ सर्वोपसंहारार्थमाह । (अन्नविंसुइत्यादि) पुरा पूर्वस्मिन्ननादिके काले बहवोमहावीराः कर्मविदारणसहिष्णवः अनूवन् नूतास्तथा वर्तमाने च काले कर्मनूमौ तथानूतान्नवंति तथागामिनि चानंते काले तथानूताः सत्संयमानुष्ठायिनोनविष्यंति । किंकृतवंतः कुर्वंति करिष्यंतिचेत्याह । यस्य दुर्निबोधस्याती

॥ दीपिका—अनुत्तरं स्थानं संयमरूपं काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं कथितं यत्संयम स्थानं कृत्वाऽनुपाल्यैके निर्वृतामोक्षं गतानिष्ठां नवपर्यंतं प्राप्नुवंति पंडिताः ॥ २१ ॥ पंडितः संयमवीर्यं लब्ध्वा पूर्वकृतं कर्म धुनीयादपनयेत्। वीर्यं किंनूतं निर्घाताय निर्जरणाय प्रवर्तकं। नवं च कर्म न कुर्यात् ॥ २२ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् (अणुत्तरेयइत्यादि) न विद्यते उत्तरं प्रधानं यस्मादनुत्तरं तच्च तत्संयमाख्यं काश्यपेन काश्यपगोत्रेण श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिना प्रवेदितमाख्यातं। तदस्य चानुत्तरत्वमाविर्नावयन्नाह। यदनुत्तरं संयमस्थानं एके महासत्वाः सदनुष्ठायिनः कृत्वाऽनुपाल्य निर्वृतानिर्वाणमनुप्राप्ताः। निर्वृताश्च संतः संसारचक्रवालस्य निष्ठां पर्यवसानं पंडिताः पापाड्डीनाः प्राप्नुवंति। तदेवं नूतं संयमस्थानं काश्यपेन प्रवेदितं सदनुष्ठायिनः संतः सिद्धिं प्राप्नुवंतीति तात्पर्यार्थः ॥२१॥ अपिच (पंडिएइत्यादि) पंडितः सदसद्विवेकज्ञोवीर्यं कर्मोद्दलनसमर्थं सत्संयमवीर्यं तपोवीर्यंवा लब्ध्वाऽवाप्य। तदेव वीर्यं विशिनष्टि। निःशेषकर्मणोनिर्घातायनिर्जरणाय प्रवर्तकं पंडितवीर्यं तच्च बहुनवशतडुर्लनं कथंचित्कर्मविवरादवाप्य धुनीयादपनयेत्। पूर्वन्नवेष्वनेकेषु यत्कृतमुपात्तं कर्माष्टप्रकारं तत्पंडितवीर्येण धुनीयात् नवं चानिनवं चाश्रवनिरोधान्नकरोत्यसाविति ॥ २२ ॥

एए कुव्वती महावीरे, अणुपुव्वकडं रयं ॥ रयसा संमुहीनूता, कम्मं हेच्चाण जं मयं ॥ २३॥ जं मयं सव्वसाहूणं, तं मयं सल्लगत्तणं॥ साहइत्ताण तं तिन्ना, देवावा अन्नविंसु ते ॥ २४ ॥ अन्नविंसु पुरा धीरा, आगमिस्सावि सुव्वता ॥ डुन्निबोहस्स मग्गस्स, अंतं पाउकरातिन्नेतिबेमि ॥२५॥ इतिपनरसमंजंमइयंनामज्ञयणं सम्मत्तं॥

अर्थ—(एकुव्वतीमहावीरेके०) श्रीमहावीर उत्तम साधु ते नकरें शुं नकरे तोके (अणुपुव्वकडंरयंके०) आनुपूर्वी मिथ्यात्व अविरति प्रमाद अनुक्रमे कीधुं जे पापरूप रज ते नकरे (रयसासंमुहीनूताके०) पापरूप रजेकरी संमुहीनूत एटले एकठा कीधा जे अष्टप्रकारना कर्म (कम्मंहेच्चाणजंमयंके०) ते कर्मने हिवा एटले हणीने सत्य संयम पालीने मोक्षने संमुख थाय ॥ २३ ॥ (जंमयंसव्वसाहूणंके०) जे संयम रूप स्थानक ते सर्व साधु चारित्रियानो मनो वांछित स्थानक जाणवो (तंमयंसल्लगत्तणंके०) वलीते संयमानुष्ठान केहेवो तोके एटले शल्यनो नेदनार (साहइत्ताणतंतिन्नाके०) एवा सम्यक् ीने घणा प्राणी सर्वथा कर्मने अनावे संसार

योग्योव्युत्सृष्टकायोनिष्प्रतिकर्मशरीरः समाहनइति श्रमणइति भिक्षुरिति निर्ग्रंथइति भगवतोक्ते शिष्यः प्रत्याह। हेभगवन् योऽसौ पूर्वोक्तपंचदशाध्ययनार्थानुष्ठायी साधुर्माह नादिशब्दवाच्यइति तत्कथं स्यादिति नोऽस्माकं ब्रूहि हेमहामुने ॥ १ ॥

॥ टीका—उक्तं पंचदशमध्ययनं सांप्रतं षोडशमारभ्यते। अस्य चायमभिसंबंधः। इ हानंतरोक्तेषु पंचदशस्वप्यध्ययनेषु येऽर्थाअभिहिताविधिप्रतिषेधद्वारेण तान् तथैवाच रन् साधुर्भवतीत्येतदनेनाध्ययनेनोपदिश्यते। ते चामी अर्थाः। तद्यथा। प्रथमाध्य यने स्वसमयपरसमयपरिज्ञानेन सम्यक्त्वगुणावस्थितोभवति। द्वितीयाध्ययने ज्ञाना दिभिः कर्मविदारणहेतुभिरष्टप्रकारकं कर्म विदारयन् साधुर्भवति। तथा तृतीयाध्ययने य थानुकूलं प्रतिकूलोपसर्गान् सहमानः साधुर्भवति। चतुर्थे तु स्त्रीपरीषहस्य दुर्जयत्वात्त ज्जयकारीति। पंचमेतु नरकवेदनाभ्यः समुद्विजमानस्तत्प्रायोग्यकर्मणोविरतः सन्साधुत्व मवाप्नुयात्। षष्ठेतु यथा श्रीवीरवर्धमानस्वामिना कर्मक्षयोद्यतेन चतुर्ज्ञानिनापि संयमं प्र ति प्रयत्नः कृतस्तथान्येनापि छद्मस्थेन विधेयमिति। सप्तमे तु कुशीलदोषान् ज्ञात्वा त त्परिहारोद्यतेन सुशीलावस्थितेन भाव्यं। अष्टमेतु बालवीर्यपरिहारेण पंडितवीर्योद्यतेन सदा मोक्षाभिलाषिणा भाव्यं। नवमे तु यथोक्तं क्षांत्यादिकं धर्ममनुचरन् संसारान्मुच्य तइति। दशमे तु संपूर्णसमाधियुक्तः सुगतिभाग्भवत्येकादशेतु सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रा ख्यं सन्मार्गं प्रतिपन्नोऽशेषक्लेशप्रहाणं विधत्ते। द्वादशेतु तीर्थिकदर्शनानि सम्यग्गुणदोषवि चारणतोविजानन्न तेषु श्रद्धानं विधत्ते। त्रयोदशे तु शिष्यगुणदोषविज्ञः सद्गुणेषु वर्तमा नः कल्याणभाग्भवति। चतुर्दशे तु प्रशस्तभावग्रंथितभावितात्मा विस्रोतसिकारहितोभ वति। पंचदशेतु यथावदायतचरित्रोभवति भिक्षुस्तदुपदिश्यतइति। तदेवमनंतरोक्तेषु पं चदशस्वध्ययनेषु येऽर्थाः प्रतिपादितास्तेत्र संक्षेपतः प्रतिपाद्यंतइत्यनेन संबंधेनायातस्या स्याध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोगद्वाराणि भवंति। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारो ऽनंतरमेव संबंधप्रतिपादनेनैवाभिहितः। नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे गाथाषोडशकमिति नाम। तत्र गाथानिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह। "णामं ठवणा गाहा, दव्वगाहा य भावगाहा य॥ पोत्थगपत्तगलिहिया, सो होइ दव्वगाहाउ॥ १३९॥ (णामंठवणेत्यादि) तत्र गाथा यानामादिकश्चतुर्धा निक्षेपस्तत्रापि नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्यगाथामाह। तत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यगाथा पत्रकपुस्तकादिन्यस्ता। तद्यथा। जयतिणवण लिणकुवलयवियसियसयरावत्तपत्तलदलच्छो॥ वीरोगयंदमयगलसुललियगयविक्कमो भगवं ॥ १॥ अथ चेयमेव गाथा षोडशाध्ययनरूपा पत्रकपुस्तकन्यस्ता द्रव्यगाथेति। भावगा थामधिकृत्याह। "होंति पुण भावगाहा, सागारुवउंगभावणिप्पन्ना॥ महुराभिहाणजु

वडुष्प्रापकस्य ज्ञानदर्शनचारित्राख्यस्यांतं परमकाष्ठामवाप्य तस्यैव मार्गस्य प्राडुःप्राका श्यं तत्करणशीलाः प्राडुष्कराः स्वतः सन्मार्गानुष्ठायिनोऽन्येषांच प्राडुर्भावकाः संतः संसारार्णवं तीर्णास्तरंति तरिष्यंतिचेति । गतोऽनुगमः । सांप्रतं नयास्तेच प्राग्वत् ड्रष्टव्याः । इतिरध्ययनपरिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १५ ॥ इति आदानीयाख्यं पंचदशाध्ययनं समाप्तं ॥

हवे सोलमुं गाहा नामे अध्ययन प्रारंभिये बैए पंदरमां अध्ययनमां जे विधिरूप तथा प्रति निषेधरूप भाव कह्या ते यथोक्त विधि आचरतो सुसाधु कहेवाय एवा भावे आ सोलमो अध्ययन कहेछे.

अहाह भगवं एवं, से दंते दविए, वोसठकाएत्ति वच्चे, माहणे
त्ति वा, समणेत्तिवा भिक्खूत्तिवा, णिग्गंथेत्तिवा, पडिआह भंते
कहं तु दंते दविए वोसठकाएत्ति वच्चे माहणेत्तिवा समणेत्ति
वा भिक्खूत्तिवा णिग्गंथेत्तिवा तंनो बूहि महामुणी ॥ १ ॥

अर्थ-(अहाहभगवं एवं के०) यथाह भगवान् हवे श्री भगवंत महावीरदेव सभा मांहे एम कहेछे. (सेदंते दविए के०) ते साधु इंड्रियोने दमवे करी दांत तेणे करी मुक्तिगमन योग्य तथा (वोसठ के०) निःप्रतिकर्म एवो (काएत्तिवच्चे के०) शरीरछे जेहनो तेने एम कहेवो (माहणेत्तिवा के०) त्रस अने स्थावर जीवोने माहणो एवो जेनो उद्देशछे ते माहण कहिये अथवा नव विध ब्रह्मचर्यनी गुप्ति थकी माहण एटले ब्राह्मण कहिए (समणेत्तिवा के०) तथा श्रमण एटले तपस्वी शुद्ध क्रिया अनुष्ठान ना करनार (भिक्खूत्तिवा के०) आरंभनो त्याग करे निर्दोष भिक्षायें प्रवर्ते अथवा अष्ट प्रकारना कर्मने भेदे तेमाटे भिक्षु कहिए (णिग्गंथेत्तिवा के०) तथा बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित माटे निर्ग्रंथ कहिए (एम श्री भगवाने कहे थके शिष्य पूछे छे के केवीरीते (दंतेदविए के०) दांत मुक्तिगमन योग्य (वोसठकाएत्ति के०) तथा शरीरनी शोभा शुश्रूषा रहित तेने (वच्चे के०) कहिये शुं कहियें तोके (माहणेत्तिवा के०) माहण कहिये तथा (समणेत्तिवा के०) श्रमण कहिए तथा (भिक्खूत्तिवा के०) भिक्षु कहिए (णिग्गंथेत्तिवा के०) तथा निर्ग्रंथ कहिए (तंनोबूहिमहामुणी के०) ते हे महामुनि ए चार शब्दनो अर्थ अमने कहो. ॥ १ ॥

॥ दीपिका-अधुना गाथाषोडशाख्यं षोडशाध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (अहेति) । अथाह भगवान् सर्वज्ञः । एवमसौ साधुर्दांतः संवृतेंड्रियः । ड्रव्यं मुक्तिगमन

त्वाद्दा जात्यसुवर्णवत् शुद्धद्रव्यभूतस्तथा व्युत्सृष्टोनिष्प्रतिकर्मशरीरतया कायः शरीरं येन सनवति व्युत्सृष्टकायः । तदेवंभूतः सन् पूर्वोक्ताध्ययनार्थेषु वर्तमानः प्राणिनः स्था वरजंगमसूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकभेदभिन्नान् (माहणत्ति) प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनोनव ब्रह्मचर्यगुप्तिगुप्तोब्रह्मचर्यधारणाद्दा ब्राह्मणइत्यनंतरोक्तगुणकदंबकयुक्तः साधुमहितोब्राह्म णइति वा वाच्यः। तथा श्राम्यति तपसा खिद्यतइति कृत्वा श्रमणोवाच्योऽथवा समं तुल्यं मित्रादिषु मनोंतःकरणं यस्य ससमनाः सर्वत्रवासी चंदनकल्पइत्यर्थः । तथाचोक्तं । ण त्थियसिकोइवेसो, इत्यादि । तदेवं पूर्वोक्तगुणकलितः श्रमणः सममनावा इत्येवं वाच्यः सा धुरिति । तथा भिक्षणशीलोभिक्षुर्भिनत्ति वा ऽष्टप्रकारं कर्मेति भिक्षुः ससाधुर्दांतादिगुणोपे तोभिक्षुरिति । तथा सबाह्याभ्यंतरग्रंथाभावान्निर्ग्रंथः । तदेवमनंतरोक्तपंचदशाध्ययनोक्ता र्थाऽनुष्ठायी दांतोद्रव्यभूतोव्युत्सृष्टकायश्च सनिर्ग्रंथइति वाच्यइति । एवं भगवतोक्ते सति प्र त्याह तच्छिष्योभगवन् भदंत भयांत भवांत इति वा योऽसौ दांतोद्रव्यभूतोव्युत्सृष्टकायः सन् ब्राह्मणः श्रमणोभिक्षुर्निर्ग्रंथइति वाच्यः । तदेतत्कथं यद्भगवतोक्तं ब्राह्मणादिशब्दवा च्यत्वं साधोरित्येतन्नोऽस्माकं ब्रूहि आवेदय महामुने यथावस्थितत्रिकालवेदिन् ॥ १ ॥

इतिविरए सवपावकम्मेहिं, पिज्जदोसकलह, अप्नखाण, पेसु न्न, परपरिवाय, अरतिरति, मायामोस, मिच्छादंसणसल्ल, विरए, समिए सहिए, सयाजए, णो कुज्जे, णो माणी, माहणेत्ति, वच्चे॥२॥

अर्थ—एम शिष्यें पूछे थके हवे भगवंत ब्राह्मणादिक चार नामनो यथाक्रमे भेद सहित अर्थ कहेछे. (इतिविरएसवपावकम्मेहिंके०) जेणे प्रकारें सर्व पाप कर्मारंभक्रिया थकी निवर्त्यों (पिज्जके०) प्रेम ते राग अने (दोसके०) द्वेष ते अप्रीति (कलहके०) कुवचननुं बोलवुं (अप्नखाणके०) अभ्याख्यान एटले अछता दोषनुं प्रकाशवुं (पेसुन्नके०) पर ना गुणनुं अण सहेवुं अने पारका दोषने प्रकाशवुं (परपरिवायके०) पारका दोष बी जा आगल प्रकाशवा (अरतिके०) संयमने विषे अरति (रतिके०) असंयम विषया दिकने विषे रति (मायामोसके०) परवंचना मृषा अलिक भाषानुं बोलवुं (मिच्छादं सणसल्लके०) मिथ्यादर्शन शल्य एटले अतत्वने विषे तत्वनी बुद्धि तेनेज शल्य कहिए ए सर्व थकी (विरएके०) विरत एटले निवर्त्योछे वली (समिएसहिएके०) पांच समिति ए समिता थका ज्ञान दर्शन अने चारित्र सहित प्रवर्ते (सयाजएके०) सदा संयमने विषे प्रयत्न करे एटले सावधान थको रहे एवो छतो (णोकुज्जेके०) कोइना उपर क्रोध नकरे तथा (णोमाणीके०) अभिमान रहित होय उपलक्षणथकी माया तथा लोभरहित एवा गुणे सहितजे होय ते (माहणेत्तिवच्चेके०) माहण एटले ब्राह्मण जाणवा ॥ २ ॥

त्ता, तेणं गाहाति णं बिंति"॥ ४० ॥ (होंतिपुंणइत्यादि) नावगाथा पुनरियं नवति। तद्यथा। योऽसौ साकारोपयोगः क्षायोपशमिकनावनिष्पन्नोगाथां प्रति व्यवस्थितः सा नावगाथेत्युच्यते। समस्तस्यापि च श्रुतस्य क्षायोपशमिकनावे व्यवस्थितत्वात्। तत्र चानाकारोपयोगस्यासंनवादेवमनिधीयते इति। पुनरपि तामेव विशिनष्टि। मधुरं श्रुति पेशलमनिधानमुच्चारणं यस्याः सा मधुरानिधानगाथा युक्ता। गाथा छंदसोपनिबद्धस्य प्राकृतस्य मधुरत्वादित्यनिप्रायोगीयते पठ्यते मधुराक्षरप्रवृत्त्या गायंति वा तामिति गाथा। यतएवमतस्तेन कारणेन गाथामिति तां ब्रुवते। णमिति वाक्यालंकारे। एनां वा गाथामिति। अन्यथावा निरुक्तमधिकृत्याह। "गाहीकयावअत्था,अहवणसामुद्दएण छंदेणं॥ एएण होंति गाहा, एसो अन्नोवि पज्जाउ,, ॥ ४१ ॥ (गाहीकयावइत्यादि) गाथीकृताः पिंडीकृताविक्षिप्ताः संतएकत्र मीलिताअर्थायस्याः सा गाथेत्यथवा सामुद्रेण छंदसा वा निबद्धा सा गाथेत्युच्यते। तच्चेदं छंदोऽनिबद्धं च यल्लोकेगाथेति तत्पंडितैः प्रोक्तं। एषोऽनंतरोक्तोगाथाशब्दस्य पर्यायोनिरुक्तस्तात्पर्यार्थोड्रष्टव्यः। तद्यथा। गीयतेऽसौ गायंति वा तामिति गाथीकृतावार्थाः सामुद्रेण वा छंदसेति गाथेत्युच्यते। अन्योवास्वयमभ्यूह्य निरुक्तविधिना विधेयइति। पिंडितार्थग्राहित्वमधिकृत्याह।,, पन्नरससुअज्ञयणे,पिंडितत्थेसुजो अवितहत्ति ॥ पिंडियवयणेणत्थं गेहेतिम्हा ततो गाहा,, ॥४२॥ (पन्नरससुइत्यादि) पंचदशस्वप्यध्ययनेषु अनंतरोक्तेषु पिंडितार्थानि तेषु सर्वेष्वपि यएवं व्यवस्थितोऽर्थस्तमवितथं यथावस्थितपिंडितार्थवचनेन यस्माद्ग्रथ्नात्येतदध्ययनं षोमशं ततः पिंमितार्थग्रथनाद्गाथेत्युच्यतइति। तत्त्वनेदपर्यायैर्व्याख्येति कृत्वा सूत्रार्थमधिकृत्याह। "सोलसमे अज्ञयणे, अणगारगुणाणवणण नणिया॥ गाहा सोलसणामं, अज्ञयणमिणं उवदिसंति ॥ ४३ ॥ (सोलसमेइत्यादि) षोमशाध्ययने ऽनगाराः साधवस्तेषां गुणाः क्षांत्यादयस्तेषामनगारगुणानां पंचदशस्वप्यध्ययनेष्वनिहितानामिहाध्ययने पिंमितार्थवचनेन यतोवर्णनानिहिताऽतोगाथाषोमशानिधानमध्ययनमिदं व्यपदिशंति प्रतिपादयंति। उक्तोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोनिर्युक्त्यानुगमस्तदनंतरं स्पर्शिकनिर्युक्त्याऽनुगमस्यावसरः सच सूत्रे सति नवति सूत्रं च सूत्रानुगमेऽसावप्यवसरप्राप्तएवातोऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं। (अहाहनगवमित्यादि) अथेत्ययं शब्दोऽवसानमंगलार्थः। आदिमंगलं तु बुध्यतेत्यनेनानिहितं। तेनाद्यंतयोर्मंगलत्वात्सर्वोपि श्रुतस्कंधोमंगलमित्येतदनेनावेदितं नवति। आनंतर्येवा शब्दः। पंचदशाध्ययनानंतरं तदर्थसंग्राहीदं षोमशमध्ययनं प्रारन्यते। अथानंतरमाह नगवानुत्पन्नदिव्यज्ञानः सदेवमनुजायां पर्षदीदं वक्ष्यमाणमाह। तद्यथा। एवमसौ पंचदशाध्ययनोक्तार्थयुक्तः ससाधुर्दांतइंद्रियदमनेन इव्यनूतोमुक्तिगमनयोग्यत्वात् इव्यंच नव्येइति वचनात् रागद्वेषकालिकायइव्यरहित

अर्थ–(एहविसमणे के०) जे माहणना लक्षण कह्या ते अंहीं सर्व जाणवा वली श्रमणना विशेष कहेछे जे (अणिस्सिए के०) अनाश्रित अप्रतिबंध विहारी तथा (अणियाणे के०) नियाणा रहित (आदाणंच के०) कषाय थकी रहित (अतिवायं च के०) अतिपातंच एटले जीवहिंसा तथा (मुसावायंचके०) मृषावाद (वहिद्धंचके०) मैथुन परिग्रह ए सर्वने ज्ञ परिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे एटले मूलगुण कह्या हवे उत्तर गुण कहेछे (कोहंचमाणंचमायंचलोहंच के०) क्रोध मान, माया तथा लोभ अने (पिज्जंच के०) प्रेम शब्दे राग (दोसंच के०) द्वेष एने पण सम्यक् प्रकारें संसारना कारण जाणीने परिहरे (इच्चेव के०) एरीते (जउजउ के०) जे जे (आदाणाउ के०) कर्मनो बंध (अप्पणोपदेसेहेऊ के०) जे थकी पोताना आत्माने प्रद्वेष हेतु एटले अ वगुणना कारण देखे (तउतउआदाणतो के०) ते ते सावद्यानुष्टान थकी चारित्रिउ (पुव्वंपडिविरते के०) पूर्वेज एटले आगल थकीज आत्म हित वांछतो थको विरति करे (पाणाइवायाए के०) प्राणातिपात नकरे एवो छतो (दंते के०) दांत एटले इंद्रि यनो दमनार (दविए के०) द्रविक एटले मुक्तिगमन योग्य (वोसठ्ठकाए के०) निष्प्र तिकर्म शरीरवालो एटले शरीरनी शुश्रूषायें रहित (समणेत्तिवच्चे के०) एवा गुणे स हित विशिष्ट श्रमण कहेवो. ॥ २ ॥

॥ दिपीका–अत्रापि पूर्वोक्तगुणसमूहे वर्तमानः श्रमणोपि वाच्यः । एतद्गुणयुक्तेनापि भाव्यमित्याह । अनिश्रितोऽप्रतिबद्धशरीरादौ अनिदानोनिराकांक्षः । आदानं कषायः परिग्रहोवा अतिपातोहिंसा मृषावादं वहिद्धं मैथुनं । उक्तामूलगुणाः । उत्तरगुणानाह । क्रोधं मानं मायां लोभं च प्रेम द्वेषं च इत्यादिकं सम्यक् परिज्ञाय परिहरेदिति । एवं यतो यतः कर्मोपादानादपायं पश्यति प्रद्वेषहेतूंश्च ततस्ततोहिंसादिकादानात्पूर्वमेव प्रतिविरतो भवेत् विरतिं कुर्यादित्यर्थः। एवंभूतोदांतः शुद्धोऽभ्यभूतोव्युत्सृष्टकायः श्रमणोवाच्यः॥२॥

॥ टीका–सांप्रतं श्रमणशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमुद्भावयन्नाह । अत्राप्यनंतरोक्ते विरत्या दिके गुणसमूहे वर्तमानः श्रमणोपि वाच्यः । एतद्गुणयुक्तेनापि भाव्यमित्याह । निश्रये नाधिक्येन चाश्रितोनिश्रितः ननिश्रितोऽनिश्रितः क्वचिच्छरीरादावप्यप्रतिबद्धस्तथा न वि द्यते निदानमस्येत्यनिदानोनिराकांक्षोऽशेषकर्मक्षयार्थी संयमानुष्ठाने प्रवर्तेत तथा दीय ते स्वीक्रियते ऽष्टप्रकारं कर्म येन तदादानं कषायः परिग्रहः सावद्यानुष्टानं वा तथाऽ तिपातनमतिपातः प्राणातिपातइत्यर्थः । तं च प्राणातिपातं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्या नपरिज्ञया परिहरेदेवमन्यत्रापि क्रिया योजनीया।तथा मृषावादोऽलीकवादस्तं च तथा वहिद्धंति मैथुनपरिग्रहौ तौच सम्यक् परिज्ञाय परिहरेत् । उक्तामूलगुणाः । उत्तरगुणान

॥ दीपिका—इति पृष्टे नगवान् माहनादीनां चतुर्णामनिधानानामर्थमाचष्टे। इत्येवं पूर्वोक्ताध्ययनार्थवृत्तिर्विरतः सर्वपापकर्मन्यस्तथा प्रेम रागः द्वेषोऽप्रीतिरूपः कलहोरादिः अन्याख्यानमसदनियोगः पैशुन्यं परगुणमत्सरेण तद्दोषोद्घट्टनं । परपरिवादः काक्कापरदोषापादनं अरतिः संयमे रतिर्विषयेषु । माया परवंचनं मृषावादोऽसदर्थानिधानं मिथ्यादर्शनं तत्वेऽतत्त्वमतत्वेच तत्वमिति मतिः । तदेव शल्यं एतेन्योविरतः । तथा समितः संगतः पंचसमितिनिः सहितोज्ञानादिनिः सदा यत्तः संयमे कस्यापि न कुप्येत नापि मानी । उपलक्षणात् मायालोनान्यामपि निवृत्तइत्यादि गुणकल्पितः साधुर्माहनइति वाच्यः ॥ २ ॥

॥ टीका—इत्येवं पृष्टोनगवान् ब्राह्मणादिनां चतुर्णामप्यनिधानानां कथंचिन्नेदान्निन्नानां यथाक्रमं प्रवृत्तिनिमित्तमाह । इत्येवं पूर्वोक्ताध्ययनार्थवृत्तिः सन् विरतोनिवृत्तः सर्वेन्यः पापकर्मन्यः सावद्यानुष्ठानरूपेन्यः सतथा तथा प्रेम रागानिष्वंगलक्षणं द्वेषोऽप्रीतिलक्षणः कलहो द्वंद्वाधिकरणमन्याख्यानमसदनियोगः पैशुन्यं परगुणासहनतया तद्दोषोद्घट्टनमितियावत्। परस्य परवादः काक्कापरदोषापादनं अरतिश्चित्तोद्वेगलक्षणा संयमे तथा रतिर्विषयानिष्वंगोमाया परवंचनतया कुटिलमतिर्मृषावादोऽसदर्थानिधानं गामश्वं ब्रुवतोनवति मिथ्यादर्शनमतत्त्वे तत्त्वानिनिवेशस्तत्वेवा तत्त्वमिति । यथा । णत्थिणणिच्चो कुणइकयं वेइ णत्थि णिव्वाणं ॥ णत्थिय मोरको वाउ छमिछत्तस्सगणाइंइत्यादि । एतदेव शल्यं तस्मिंस्ततोवा विरतइति । तथा सम्यगितः समितईर्यासमित्यादिनिः पंचनिः समितिनिः समितइत्यर्थः । तथा सह हितेन परमार्थनूतेन वर्ततइति. सहितः । यदिवा सहितोयुक्तोज्ञानादिनिस्तथा सर्वकालं यतः प्रयतः सत्संयमानुष्ठानेन तदनुष्ठानमपि न कषायैर्निःसारी कुर्यादित्याह । कस्यचिदप्यपकारिणोपि न कुप्येत आक्रुष्टः सन्न क्रोधवशगोनूयात् नापि मानी नवेत् डुष्करतपोयुक्तोपि न गर्वं विदध्यात् । तथा चोक्तं । जइ सो वि निज्जरमउ, पडिसिद्धो अठमाणमहाणेहिं ॥ अवसेसमयठाणा परिहरियव्वा पयत्तेणं । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाड्रागोपि मायालोनात्मकोन विधेयइत्यादिगुणकलितः साधुर्माहनइति निःशंकं वाच्यइति ॥ २ ॥

एछवि समणे अणिस्सिए, अणियाणे, आदाणंच, अतिवायंच, मुसावायंच वहिछंच,कोहंच,माणंच मायंच,लोहंच, पिज्जंच, दोसंच,इच्चेव जउजउ आदाणं अप्पणोपद्देसेहेऊ तउतउ आदाणतो पुव्वं पडिविरते,पाणाइवायाए दंते दविए वोसठकाए समणेत्ति वच्चे ॥ ३

र्मोगे आत्मा यस्य सस्थितात्मा संख्याय ज्ञात्वा संसारासारतां परदत्तनोजी एवंगुण युतोनिक्कुर्वाच्यः ॥ ४ ॥

॥ टीका—सांप्रतं निक्कुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमधिकृत्याह । अत्रापीति । ये ते पूर्वमु क्ताः पापकर्मविरत्यादयोमाहनशब्दप्रवृत्तिहेतवोऽत्रापि निक्कुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्ते तए वावगंतव्याः । अमी चान्ये । तद्यथा । न उन्नतोऽनुन्नतः शरीरेणोछ्रितः नावोन्नतस्त्वनि मानग्रहग्रस्तस्तत्प्रतिषेधात्तपोनिर्जरांमदमपि न विधत्ते । विनीतात्मतया प्रश्रयवान् यतएतदेवाह । विनयालंकृतोगुर्वादावादेशदानोद्यतोऽन्यदा वात्मानं नामयतीति नामकः सदा गुर्वादौ प्रह्वोनवति । विनयेन चाष्टप्रकारं कर्म नामयति वैयावृत्त्योद्य तोऽशेषमप्यपनयतीत्यर्थः । तथा दांतइंद्रियनोइंद्रियाच्यां तथा शुद्धात्मा शुद्धद्रव्यनू तोनिष्प्रतिकर्मतया व्युत्सृष्टकायश्च परित्यक्तदेहश्च । यत्करोति तद्दर्शयति । सम्यक् विधूया पनीय विरूपरूपान् नानारूपाननुकूलप्रतिकूलानुच्चावचान द्वाविंशतिपरीषहान् तथा दिव्यादिकानुपसर्गांश्चेति । तद्विधूननं तु यत्तेषां सम्यक् सहनं तैरपराजितता परीषहोप सर्गांश्च विधूयाध्यात्मयोगेन सुप्रणिहितांतःकरणतया धर्मध्यानेन शुद्धमवदातमादानं चरित्रं यस्य सशुद्धादानोनवति । तथा सम्यगुत्थानेन सच्चारित्रोद्यमेनोत्थितस्तथा स्थि तोमोक्षाध्वनि व्यवस्थितः परीषहोपसर्गैरप्यधृष्यआत्मा यस्य सस्थितात्मा तथा सं ख्याय परिज्ञायाऽसारतां संसारांतस्य डुष्प्रापतां कर्मनूमेर्बोधेः सुडुर्लनत्वं चावाप्य च सक लां संसारोत्तरणसामर्ग्रीं सत्संयमकरणोद्यतः परैर्गृहस्थैरात्मार्थं निर्वर्तितमाहारजातं तैर्दत्तं नोक्तुं शीलमस्य परदत्तनोजी सएवं गुणकलितोनिक्कुरिति वाच्यः ॥ ४ ॥

एत्थवि णिग्गंथे, एगे, एगविऊ बुद्धे, संछिन्नसोए सुसंजते सु
समिते, सुसामाइए, आयवायपत्ते, विऊ डुहत्रवि सोयपलि
छिन्ने, णोपूयणसक्कारलान्नट्ठी, धम्मठ्ठी धम्मविऊ णियोगपडि
वन्ने, समियंचरे, दंते दविए, वोसठ्ठकाए निग्गंथेत्ति वच्चे, ॥ ५ ॥

अर्थ—(एत्थविणिग्गंथेके०) हवे निर्ग्रंथनो विशेष कहेछे. अहींयां पण पूर्वला गुण सर्व लेवा वलीजे विशेष गुणछे ते कहेछे (एगेके०) एकलो राग द्वेष रहित तथा (ए गविऊबुद्धेके०) पोताने एकलोज जाणे एटले संसारमां महारो कोइ संबंधी नथी ए वो बुद्ध एटले तत्वनो जाण (संछिन्नसोएके०) सम्यक् प्रकारें जेणे आश्रवने छेद्योछे तथा (सुसंजतेके०) सुसंयत एटले काछवानी पेरें गुप्तेंद्रिय (सुसमितेके०) रुडी स मितिए करी समितो (सुसामाइएके०) सुसामायिकवंत एटले जेने शत्रु मित्र समानछे

धिकत्वात् । क्रोधमप्रीतिलक्षणं मानं स्तंनात्मकं मायां च परवंचनात्मकां लोनं मूर्बास्व नावं तथा प्रेमानिष्वंगलक्षणं तथा द्वेषं स्वपरात्मनोर्बाधारूपमित्यादिकं संसारावतरणमार्गं मोक्षाध्वनोपध्वंसकं सम्यक् परिज्ञाय परिहरेदिति । एवमन्यस्मादपि यतोयतः कर्मोपादनादिहामुत्र चानर्थहेतोरात्मनोपायं पश्यति प्रद्वेषहेतूंश्च ततस्ततःप्राणातिपातादिकादनर्थदंडदानात् पूर्वमेवानागतमेवात्महितमिछन् प्रतिविरतोनवेत् सर्वस्मादनर्थहेतुनूताड नयलोकविरुद्धाछा सावद्यानुष्ठानान्मुमुक्षुर्विरतिं कुर्यात् । यश्चैवंनूतोदांतः शुद्धोऽव्यनूतोनिष्प्रतिकर्मतया व्युत्सृष्टकायः सश्रमणोवाच्यः ॥ ३ ॥

एबवि निक्कू अणुन्नए, विणीए, नामए दंते दविए, वोसछकाए, संविधुणीय विरूवरूवे, परीसहोवसग्गे, अष्नप्पजोगसुद्धादाणे, उवछिए, ठिअप्पा, संखाए परदत्तनोई निक्कूत्ति वच्चे ॥४॥

अर्थ—हवे निक्कु शब्दनो विशेष कहेबे (एबवि निक्कू के०) अंहीयां निक्कुने विषे पण जे पूर्वे ब्राह्मण श्रमणना गुण कह्या ते सर्व जाणवा अने वली अनेरा विशेष कहेबे (अणुन्नए के०) अनिमान रहित (विणीए के०) विनीत एटले विनयवंत (नामए के०) संयमने विषे आत्मानो नमाडनार (दंतेदविएवोसछकाए के०) ए त्रण शब्दना अर्थ पूर्ववत् जाणवा (संविधुणीय के०) सम्यक् प्रकारे सहन करे शुं सहन करे ते कहेबे (विरूवरूवे के०) विरूपरूप एटले अनुकूल प्रतिकूल एवा नाना प्रकारना (परीसहोवसग्गे के०) उपसर्ग परीसहने सहन करे तथा (अष्नप्पजोगसुद्धादाणे के०) अध्यात्मयोगे करी निर्मल चित्तने परिणामे शुद्ध चारित्रवंत थको (उवछिए के०) उपस्थित एटले चारित्रने विषे उठ्यो सावधान थयो (ठिअप्पाके०) परीसह उपसर्गे करी अंगजीतबे जेहनो आत्मा (संखाए के०) संसारनी असारता बोधिनुं डुर्लन पणु जाणतो (परदत्तनोई के०) पारका दीधेला आहारनुं जमनार एटले निर्दोष आहारी (निक्कूत्तिवच्चे के०) एवाने निक्कु कहेवो ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—अत्रापि पूर्वोक्तमाहनशब्दप्रवृत्तिहेतवोत्रापि निक्कुशब्दप्रवृत्तिहेतवस्तएव ज्ञेयाः । अमी चान्ये अनुन्नतोमदरहितोनावनीतोनदीनः दांतोविनयेन नामकोगुर्वादौ प्रह्वोऽव्यनूतव्युत्सृष्टकायः सम्यक् विधूयापनीय विरूपान् नानाविधान् परीषहोपसर्गान् । परीषहा द्वाविंशतिः उपसर्गादेवादिकृतास्तद्विधूननं सम्यक् सहनं अध्यात्मयोगेन शुनचेतसा शुद्धं आदानं चारित्रं यस्य सतथा सम्यगुछितः संयमोद्यतः स्थितोमोक्ष

यिकं समशत्रुमित्रनावोयस्य ससुसामायिकः । तथात्मनउपयोगलक्षणस्य जीवस्यासंख्ये यप्रदेशात्मकस्य संकोचविकाशनाजः स्वकृतफलजुजः प्रत्येकसाधारणतया व्यवस्थितस्य इव्यपर्यायतया नित्यानित्याद्यनंतधर्मात्मकस्य वा वादआत्मवादस्तं प्राप्तआत्मवादप्राप्तः सम्यग्यथावस्थिततात्मस्वतत्त्ववेदीत्यर्थः । तथा विद्वानवगतसर्वपदार्थस्वनावोन व्यत्ययेन पदार्थानवगच्छति । यतोयत् कैश्चिदनिधीयते तद्यथैकएवात्मा सर्वस्वनावतया विश्वव्यापी श्यामाकतंडुलमात्रोंऽगुष्ठपर्वपरिमाणोवेत्यादिकोसद्भूतान्युपशमः परिहृतोनवति । तथा विधात्मसद्भावप्रतिपादकस्य प्रमाणस्यानावादित्यनिप्रायः । तथा छिधापीति इव्यतोनावतश्च । तत्र इव्यस्रोतांसि यथा स्वविषयेष्विंडियप्रवृत्तयः । नावस्रोतांसि तु शब्दादिष्वेवानुकूलप्रतिकूलेषु रागद्वेषोद्भवस्तान्युनयरूपाएयपि स्रोतांसि संवृतेंड्रियतया रागद्वेषानावाच्च परिछिन्नानि स्रोतांसि येन परिछिन्नस्रोतास्तथानपूजासत्कारलानार्थी किंतु निर्जरापेक्षी सर्वास्तपश्चरणादिकाः क्रियाविदधति । एतदेव दर्शयति । धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्तेनार्थः सएवार्थोधर्मार्थः सविद्यते यस्यासौ धमार्थीति । किमिति । इदमुक्तं नवति । नपूजाद्यर्थं क्रियासु प्रवर्तते अपितु धर्मार्थीति । किमिति । यतो धर्मं यथावत्तत्फलानि च स्वर्गावाप्तिलक्षणानि सम्यक् वेत्ति धर्मं च सम्यक् ज्ञानतः । यत्करोति तदर्शयति । नियोगो मोक्षमार्गः सत्संयमोवा तं सर्वात्मना नावतः (प्रतिपन्ननियोगपडिवन्नोत्ति) तथाविधश्च यत्कुर्यात् तदाह । (समियंति) समतां समनावरूपां वा शीतचंदनकल्पां चरेत् सततमनुतिष्ठेत् । किंनूतः सन्नाह । दांतोइव्यनूतोव्युत्सृष्टकायश्चैतद्गुणसमन्वितः सन् यत्पूर्वोक्तमाहनश्रमणनिक्षुशब्दानां प्रवृत्तिनिमित्तं तत्समन्वितश्च निर्ग्रंथइति वाच्यः । तेपि माहनादयः शब्दानिर्ग्रंथशब्दप्रवृत्तिनिमित्ताविनानाविनोनवंति । सर्वेप्येते निन्नव्यंजनाअपि कथंचिदेकार्थाइति ॥ ५ ॥

से एवमेव जमह जाणह नयंतारो त्तिबेमि ॥ ६ ॥ इतिसोडसमं गाहानामझयणं सम्मतं ॥ पढमो सुअखंधो सम्मत्तो ॥ १ ॥

अर्थ–हवे श्रीसुधर्म स्वामी जंबू प्रनृति साधु प्रत्ये कहेछे के (सेएवमेवजाणहजमह के०) तमे एम जाणोके जे में कह्यो ते निश्चे करी सत्य छे एम जाणो कारणके हुं सर्वज्ञनी आज्ञायें कहुंछुं. ते सर्वज्ञ नगवंत तीर्थंकर देव परोपकारी केवाछे तोके (नयंतारो के०) महानय थकी राखनारछे माटे तेमना कहेला वचन हुं तमने कहुंछुं. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. एरीते श्रीसुधर्म स्वामियें जंबूस्वामि प्रत्यें कह्यो. ए गाहानामे सोलमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो. इति श्रीसुयगडांग सूत्रना प्रथम श्रुतस्कंधनो बालावबोध लेश्यार्थ समाप्तः ॥

(आयवायपत्तेके०) आत्म वादे पहोतो एटले आत्माने वादे उपयोग लक्षण जीव असंख्य प्रदेशी जीव संकोच विकाशनो भजनार द्रव्य पर्यायरूप नित्यानित्य भेद भिन्न पोताना करेला कर्मनुं भोगवनार इत्यादिक आत्मवादे पहोतो एटले आत्म तत्वनो जाण (विऊके०) तथा विद्वान् पंमित शुद्धमार्गनो जाण (दुहउविसोयप लिछिन्नेके०) तथा द्रव्य अने भावना भेदे करी बन्ने प्रकारना आश्रव रूपिया स्रोत जेणे परिछेद्याछे तथा (णोपूयणसक्कारलाभठीके०) पूजा सत्कारना लाभनो अर्थी न थाय किंतु निर्ज्जरानो अर्थी थाय (धम्मठीके०) धर्मनो अर्थी (धम्मविऊके०) धर्मनो जाण शुद्धमार्गनो गवेषण हार (णियोगपडिवन्नेके०) नियोगप्रतिपन्न एटले मोक्षमार्गे पहोतो एवो छतो (समियंचरेके०) समता आचरे एवो थको (दंतेदविएवोस ठकाएके०) दांत द्रविक वोसठकाए तेने (निग्गंथेत्तिवच्चेके०) निर्ग्रंथ कहेवो ॥ ५ ॥

॥ दीपिका—अत्रापि गुणगणे वर्तमानोनिर्ग्रंथोवाच्यः । अमी चान्ये गुणाः । एकोराग द्वेषरहितः । एकमेव परलोकगामितयात्मानं वेत्तीत्येकवित् बुद्धस्तत्त्वज्ञः सम्यक् छिन्नानि भावस्त्रोतांसि आश्रवद्वाराणि येन ससंछिन्नस्रोताः सुसंयतः सुसमितः समितिभिः सुष्ठु सामायिकं समभावोयस्य स तथा आत्मवादप्राप्तः सम्यगात्मस्वरूपवेदी विद्वान् ज्ञातसर्वपदार्थः द्विधा द्रव्यतोभावतश्च स्त्रोतांसि परिछिन्नानि येन सतथा द्रव्यस्त्रोतांसि विषयेंद्रियप्रवृत्तयः । भावस्त्रोतांसि तु शब्दादिषु शुभाशुभेषु रागद्वेषोत्पत्तिः । तानि येन त्यक्तानि तथा नोपूजासत्कारार्थी तथा धर्मार्थी धर्मवित् नियोगोमोक्षस्तं प्रतिपन्नः समतां चरेत् कुर्यात् दांतोद्रव्यभूतोव्युत्सृष्टकायः । एवंभूतः पूर्वोक्तमाहनादिगुणयुतश्च निर्ग्रंथोवाच्यः ॥ ५ ॥

॥ टीका—तथाऽत्रापि गुणगणे वर्तमानोनिर्ग्रंथइति वाच्यः । अमी चान्ये अपदिश्यंते । तद्यथा । एकोरागद्वेषरहिततया उजाः । यदिवाऽस्मिन् संसारचक्रवाले पर्य्यटन्नसुमान् स्वकृतसुखदुःखफलभाक्त्वेनैकस्यैव परलोकगमनतया सदैककएव भवति । तत्रोद्यत विहारी द्रव्यतोप्येककोभावतोपि गछांतर्गतस्तु कारणिकोद्रव्यतोभाज्योभावतस्त्वेककएव । तथैकमेवात्मानं परलोकगामिनं वेत्तीत्येकवित् न मे कश्चिद्दुःखपरित्राणकारी सहायोस्तीत्येवमेकवित् । यदिवैकांतेन विदितसंसारस्वभावतया मौनींद्रमेव शासनं तथ्यं नान्यदित्येवं वेत्तीत्येकांतवित् अथवैकोमोक्षः संयमोवा तं वेत्तीति । तथा च बुद्धोऽवगत तत्त्वः सम्यक् छिन्नान्यपनीतानि भावस्त्रोतांसि संवृतत्वात्कर्माश्रवद्वाराणि येन सतथा सुष्ठु संयतः कूर्मवत्संयतगात्रोनिरर्थककायक्रियारहितः सुसंयतस्तथा सुष्ठु पंचभिः समितिभिः सम्यगितः प्राप्तोज्ञानादिकं मोक्षमार्गमसौ सुसमितस्तथा सुष्ठु समभावतया सामा

॥ दीपिका—एते चत्वारोभिन्नाअपि कथंचिदेकार्थाइति । सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । सेतत् यन्मयोक्तं एवमेव जानीत यूयं यस्मादहं सर्वज्ञाज्ञया वच्मि । नच भतोगवं भयात्रातारोवा सर्वज्ञाअन्यथा वदंति अतोमडुक्तमेवमेवावगछतेति । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत्. ॥ ६ ॥ ॥ इति श्रीतपागछाधिराजश्रीहेमविमलसूरीश्वरशिष्य हर्षकुलपंडितप्रणीतायां सूत्रकृतांगदीपिकायां गाथाषोडशाख्यं षोडशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—सांप्रतमुपसंहारार्थमाह । (सेएवमेवजाणहइत्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिप्रभृतीनुद्दिश्येदमाह । सेइति । तद्यन्मया कथितमेव जानीत यूयं । नान्योमछचसि विकल्पोविधेयः । यस्मादहं सर्वज्ञाज्ञया ब्रवीमि । नच सर्वज्ञाभगवंतः परहितैकरता भयात्रातारोरागद्वेषमोहान्यतरकारणाभावादन्यथा ब्रुवते । अतोयन्मयाऽऽदितः प्रभृति कथितं तदेवमेवावगछेदिति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् । उक्तोनुगमः सांप्रतं नयास्ते च नैगमादयः सप्त । नैगमस्य सामान्यविशेषात्मतया संग्रहव्यवहारप्रवेशात्संग्रहादयः षट् । समभिरूढेवंभूतयोः शब्दनयप्रवेशान्नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दाः पंच । नैगमनस्याप्यंतर्भावाच्चत्वारोव्यवहारस्यापि । सामान्यरूपविशेषतया सामान्यविशेषात्मनोः संग्रहर्जुसूत्रयोरंतर्भावात्संग्रहर्जुसूत्रशब्दास्त्रयस्तेपि च ड्व्यास्तिकपर्यायास्तिकांतर्भावाद्द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकाभिधानौ द्वौ नयौ । यदि वा सर्वेषामेव ज्ञानक्रिययोरंतर्भावात् ज्ञानक्रियाभिधानौ द्वौ तत्रापि ज्ञाननयोज्ञानमेव प्रधानमाह क्रियानयश्च क्रियामिति । नयानांच प्रत्येकं मिथ्यादृष्टित्वाज्ज्ञानक्रियाश्च परस्परापेक्षतया मोक्षांगत्वाडुभयमात्रप्रधानं । तच्चोभयं सत्क्रियोपेते साधौ भवतीति । तथाचोक्तं । णायम्मिगिण्हियव्वे, अगिण्हियव्वंमि चेव अत्थंमि ॥ जइ यव्वमेव इति जो उवएसो सो नउ नाम ॥ १ ॥ सव्वेसिंपि णयाणं, बहुविहवत्तव्वयं णिसामेत्ता ॥ तं सव्वनयविसुद्धं जं चरणगुणट्ठीउ साहुत्ति ॥ ६ ॥ समाप्तं षोडशाख्यं षोडशमध्ययनं तत्समाप्तौ च समाप्तः प्रथमः श्रुतस्कंधइति ॥

॥ इति श्रीद्वितीये सूत्रकृतांगे, गुर्जरभाषासहितः
श्रीहर्षकुलकृतदीपिकायुक्तः शीलंगाचार्यकृतटी
कासंयुतश्च, प्रथमः श्रुतस्कंधः समाप्तः ॥

सांनळ्युं ठे में आयुष्यवंत एवा (नगवया के०) नगवंते (एवमरकाय के०) एम कह्युं ठे (इह के०) ए वचन थकी सुयगडांगने बीजे श्रुतस्कंधे (खलु) ए शब्द वाक्यालंकारने अर्थे (पोंमरीएणामअयणे के०) पुंमरीक नामे अध्ययन ते पुंमरीक कमलनी उपमायें थशे (तस्सणं के०) ते कारणे एवो नाम कह्यो तेनुं (अयमठेपस्नुते के०) एजे आगल कहेशे ते अर्थ जाणवो ॥ १ ॥ (सेज हाणामए के०) ते जेमठे तेम कहेवो. नाम इति संनावनाने अर्थेठे. जेम कोइ एक (पुरकरिणीसिया के०) पुष्करणी एटले कमल सहित वावडीठे ते केवीठे तोके (ब हुउदगाके०) घणो अगाध जेमां पाणीठे (बहुसेयाके०) घणो जेमां कर्दमठे (बहुपुरक लालद्दा के०) घणो पुष्करणी पणो संपूर्णठे अर्थात् पुष्करणीनो अर्थ जेणे लाधोठे एटले जेवो नाम तेवा परिणामे एवी (पुंमरिकिणी के०) पुंमरिकिणी एटले श्वेत क मल सहित वावडीठे (पासादिया के०) निर्मल जले करीने प्रसन्न चित्त कारणीठे (दरिसणिया के०) घणा लोकने देखवा योग्यठे (अनिरूवा के०) जेने विषे सर्व काल हंस चक्रवाक गजमहिषादि रूपठे ते कारणे अनिरूपठे (पडिरूवा के०) स्वठ नाव थकी सर्व रूप प्रत्यें वंचेठे ते माटे प्रतिरूपठे ॥ २ ॥ (तीसेणंपुरकरिणीए के०) ते पुष्करणीने विषे (तठतठदेसेदेसे के०) त्यां त्यां ते ते प्रदेशे (तहिंतहिंब हवेपउमरपोंमरीयाबुइया के०) त्यां त्यां घणा प्रधान पुंमरीक नामे पद्म एटले कमल नगवंत श्रीमहावीर देवे कह्याठे (अणुपुव्वुठिया के०) ते कमल आनुपूर्वियें उग्या (ऊ सियाके०) पाणी थकी उपर वर्त्तेठे (रुइलाके०) दीपता (वन्नमंताके०) प्रधान वर्ण वाला कमलठे (गंधमंता के०) सुगंधवाला (रसमंता के०) रसवाला (फासमं ता के०) सुकोमल स्पर्श सहित ठे (पासादिया के०) प्रासादनीक प्रसन्नचित्तकार णीक (दरिसणिया के०) लोकने देखवा योग्य (अनिरूवा के०) अनिरूप (पडि रूवा के०) प्रतिरूप ॥ ३ ॥ (तीसेणंपुरकरिणीए के०) ते पुष्करणीने विषे (बहुमश देसनाए के०) घणा मध्य प्रदेशना नागने विचाले (एगेमहंपउमवरपोंमरीएबुइए के०) एक महोटुं प्रधान पोंमरीक नामा कमल बोल्युंठे (अणुपुवुठिए के०) ते आनुपूर्वियें चडती चडती पांखडीयें करी उग्योठे उस्सिते रुइले वन्नमंते गंधमंते रसमंते फासमं ते पासादीए जाव पडिरूवे एम यावत् प्रतिरूप सुधीना अर्थ पूर्ववत् जाणवा ॥ ४ ॥ (सव्वावंतिचणं के०) इत्यादिक सर्व समग्र नाव णं एवे वाक्यालंकारे जाणवा (तीसे णंपुरकरिणीए के०) ते पुष्करणीने विषे (तठतठदेसेदेसे के०) त्यां त्यां प्रदेशे एटले एवा समग्रनागोने विषे (तहिंतहिंबहवेपउमवरपोंमरीयाबुइयाके०) त्यां त्यां पूर्वोक्त गुण सहित एवा घणा पुंमरीक कमल बोल्याठे ते सर्व अणुपुव्वुठिया ऊसिया रुइला जावपडि

ॐ नमो श्री वीतरागाय

अथश्री द्वितीय सूत्रकृतांगे द्वितीय श्रुतस्कंधस्य बालावबोध दीपिकासहितस्य टीकायुतस्य प्रारंभः

मूल गद्य--सुयं मे आउसंतेणं भगवया एव मरकाय इह खलु पोंमरीए णामज्झयणे तस्सणं अयमठे पन्नत्ते ॥ १ ॥ से जहा णामए पुरकरिणी सिया बहुउदगा बहुसेया बहुपुरकला लद्धठा पुंमरिकिणी पासादिया दरिसणिया अभिरूवा पडिरूवा ॥ २ ॥ तीसेणं पुरकरिणीए तत्र तत्र देसे देसे तहिं तहिं बहवे पउमवरपोंमरीया बुइया अणुपुव्वुठिया ऊसिया रुइला वन्नमंता गंधमंता रसमंता फासमंता पासादिया दरिसणिया अभिरूवा पडिरूवा ॥ ३ ॥ तीसेणं पुरकरिणीए बहुमज्झदेसभाए एगेमहं पउमवरपोंमरीए बुइए अणुपुव्वुठिए उस्सिते रुइले वन्नमंते गंधमंते रसमंते फासमंते पासादीए जावपडिरूवे ॥ ४ ॥ सव्वावंतिचणं तीसेणं पुरकरिणीए तत्र तत्र देसे देसे तहिं तहिं बहवे पउमवरपोंमरीया बुइया अणुपुव्वुठिया ऊसिया रुइला जावपडिरूवा सव्वावंतिचणं तीसेणं पुरकरिणीए बहुमज्झदेसभाए एगं महं पउमवरपोंमरीए बुइए अणुपुव्वुठिए जावपडिरूवे ॥ ५ ॥ अह पुरिसे पुरिछिमाउ दिसाउ आगम्म तं पुरकरिणी तीसे पुरकरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुठियं ऊसियं जावपडिरूवं तएणं से पुरिसे एवं वयासि अहमंसी पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिते वियत्ते मेहावी अबाले मग्गठे मग्गविऊ मग्गस्सगतिपराकमण्णू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निरिकस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से पुरिसे अभिक्कमेति तं पुरकरिणी जावंजावंचणं अभिक्कमेइ तावंतावंचणं महंते उदए महंते सेए पहीणे तीरं अपत्ते पउमपरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरा पोरकरिणीए सेयंसि निसन्ने पढमे पुरिसजाए ॥ ६ ॥

अर्थ--हवे श्री सुधर्म स्वामि जंबू स्वामि प्रत्ये कहेछे (सुयंमेआउसंतेणं के०)

स्य सप्ताध्ययनानि । तेषु प्रथमं पुंडरीकाध्ययनं तस्येदमादिसूत्रं । (सुयंमेइति) श्रुतं
मया आयुष्मता नगवता एवमाख्यातं । इह प्रवचने । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । पौंड
रीकाख्यमध्ययनं पुंडरीकेण श्वेतपद्मेन उपमा यत्र तत्पौंडरीकं । तस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः ।
णं वाक्यालंकारे ॥ १ ॥ तद्यथा । नामशब्दः संनावनायां । संनाव्यते पुष्करिणीदृष्टांतः
पुष्कराणि पद्मानि यस्यां सा पुष्करिणी वापी स्यात् । किंनूता । बहूदका बहूदकप्रचुरा ।
सीयंते यस्मिन्नसौ सेयः कर्दमः सयस्यां बहुसेया बहुपुष्कला बहुसंपूर्णा लब्धोनामानु
गतोर्थोयया सा लब्धार्था पुंडरीकिणी श्वेतपद्मप्रचुरा प्रासादिका निर्मला दर्शनीया शो
नना । अनितः सर्वतोरूपाणि हंसचक्रादीनि यस्यां सा तथा प्रतिरूपा प्रतिबिंबवती नि
र्मलत्वात्तस्यां सर्वत्र प्रतिबिंबानि वीक्ष्यंते ॥ २ ॥ तस्यां पुष्करिण्यां । तत्रतत्रेति पुंडरी
कैर्व्याप्तिमाह । देशेदेशे इत्यनेन तु एकैकप्रदेशे प्राचुर्यमाह । तस्मिंस्तस्मिन्नित्यनेन तु
नास्त्येवासौ प्रदेशोयत्र तानि न संतीति । अथवा अत्यादरज्ञापनाय एकार्थान्येवैता
नि त्रीणि पदानि । तेषु पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु बहूनि पद्मान्येव वराणि पौंडरीकाणि
श्वेतशतपत्राण्युक्तानि आनुपूर्व्येण विशिष्टरचनया स्थितानि उच्छ्रितानि पंकजले अति
लंघ्य उपरि व्यवस्थितानि रुचिं कांतिं लांतीति रुचिलानि दीप्तिमंति शोननवर्णगंधरस
स्पर्शवंति प्रासादीयानि दर्शनीयानि अनिरूपाणि प्रतिरूपाणि ॥ ३ ॥ तस्यां पुष्करि
ण्यां । णं वाक्यालंकारे । मध्यदेशे एकं पद्मवरमेव पुंडरीकमुक्तं शेषव्याख्या पूर्ववत् ॥४॥
(सव्वावंतित्ति) सर्वस्याअपि तस्याः पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु बहूनि पद्मानि तथा सर्व
स्याश्च तस्याबहुमध्यदेशे पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं महदेकं पौंडरीकं विद्यतइति ॥ ५ ॥ अ
थ पूर्वस्यादिशः कश्चिदेकः पुरुषः समागम्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे तटे स्थित्वा त
तत्पद्मं प्रासादीयादिविशेषणं सपुरुषएवं वक्ष्यमाणं वदेत् । (अहमंसित्ति) अहमस्मि
पुरुषः कुशलः पंडितः क्षेत्रज्ञोव्यक्तोबाल्यादतिक्रांतोमेधावी अबालोमध्यमवयामार्ग
स्थः सद्भिराचीर्णमार्गस्थोमार्गवित् मार्गस्य या गतिर्गमनं तया पराक्रमं विवक्षितदेश
गमनं तज्जानातीति मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः एवंविधोऽहमेतत्पद्मवरपुंडरीकं पुष्करिणी
मध्यस्थं उत्क्षेप्स्यामि उत्खनिष्यामीति कृत्वा इहागतइत्युक्त्वा सपुरुषस्तां पुष्करिणीम
निक्रामेत् संमुखं गच्छेत् । यावच्च यावच्च तदवतरणेच्छुः संमुखं गच्छेत्तावत्तावच्च । णं वा
क्यालंकारे । तस्याः पुष्करिण्यामहदगाधमुदकं महांश्च सेयः कर्दमः । ततः समहाकर्दमोद
काभ्यामाकुलः प्रहीणस्तीरं विनक्तिव्यत्ययात्तीराद्भ्रष्टः । अप्राप्तश्च पद्मवरपुंडरीकं । तस्याः
सेयः कर्दमस्तस्मिन्निपस्रोनिमग्नस्तीरपद्मयोरंतरंतरालएव तिष्ठति (नोहव्वाएत्ति) नार्वाक्
तटवर्ती (नोपाराएत्ति) नापि पारगमनाय समर्थः । एवमसावुनयभ्रष्टः प्रथमः पुरु
षजातः पुरुषजातीयः ॥ ६ ॥

रूवा सव्वावंतिचणं इत्यादिक उपमायें जाणवा (तीसेणंपुक्करिणीएबहुमज्झदेसनाएके०) ते पुष्करणीना बहु मध्यदेश नागने विषे (एगंमहं के०) एक महोटुं (पउमवरपोंमरिएबुइए के०) प्रधान पौंमरिक कमल बोल्योछे अणुपुव्वुठिए जावपडिरूवे सुधी अर्थ पूर्वे लखाइ गयुंछे ॥५॥ (अहपुरिसेके०) अथ हवे एक पुरुष (पुरिछिमाउदिसाउके०) पूर्वदिशा थकी (आगम्मके०) आवीने (तंके०) ते (पुक्करिणींके०) पुष्करणी (तीसे पुक्करिणीएके०) तेपुष्करणीना (तीरेठिच्चाके०) तीरने विषे उनो रहीने (तंमहंएगंपउमवर पोंमरीयंके०) ते महोटुं एक पौंमरीक कमल पूर्वोक्त गुण सहित तेने (पासंतिके०)देखे ते कमलकेवो तोके अणुपुव्वुठियं उस्सियं जावपडिरूवं इत्यादिकना अर्थ पूर्वे लखाइ गयाछे एवी शोना सहित ते पौंमरीक कमलने देखीने (तत्तेणं के०) तेवारे (सेपुरिसे के०) ते पुरुष (एवंवयासि के०) एम बोल्यो शुं बोल्यो ते कहेछे (अहमंसीपुरिसे के०) हुं पुरुषछुं परंतु केवोछुं तोके (खेयन्ने के०) परपीडानो जाण तथा अवसरनो जाणछुं (कुसलेपंमिते के०) डाह्यो पंमितछुं (वियत्ते के०) विवेक युक्त (मेहावी के०) परिणत बुद्धिवालो छुं (अबाले के०) बाल पणा रहित (मग्गछे के०) मार्गस्थ एटले मार्गने विषे स्थित रह्यो (मग्गविऊ के०) रुडा मार्गनो जाण (मग्गस्सगति के०) मार्गनी गतिना (परक्कमण्णू के०) पराक्रम तेनो जाणछुं (अहमेयंके०) तेजणी हुं ए (पउमवरपोंमरीयंके०) प्रधान पौंमरीक कमलने ए पुष्करणी थकी (उन्निक्खिस्सामित्ति के०) उद्धरीश (कट्टु के०) एम करीने (इतिवच्चा के०) ए पूर्वोक्त वचन बोलतो जेटले (सेपुरिसे के०) ते पुरुष (अनिक्कमेति के०) पुष्करणी मांहे प्रवेश करेछे (तंपुक्करिणीके०) ते पुष्करिणी मांहे (जावंजावंचणंअनिक्कमेइके०) जेम जेम जायछे अतिक्रमेछे (तावंतावंचणंके०)तेम तेम ते पुरुष पुष्करणी मांहे (महंते उदए के०) महोटा अगाध पाणीने विषे (महंतेसेए के०) घणा कादवने विषे (पहीणेतीरं के०) एक कांठो मूकी बीजे कांठे (अपत्तेके०) अण पहोतों एटले न पहोतो अने (पउमवरपोंमरीयंके०) पौंमरीक कमले पण पहोतो नही तेने उद्धरी पण शक्यो नही (णोहव्वाए के०) कांठे रह्यो नही (णोपाराएके०) पार पण पाम्यो नही कमलपण लइ नशक्यो (अंतरापोक्करिणीए के०) विचाले पुष्करणी मांहेज (सेयंसि के०) कादवने विषे (निसन्ने के०) खुची रह्यो एटले बेहु तीर थकी भ्रष्ट थयो अने कमलने पण उद्धरी न शक्यो अने पोते पण कादवमां खुची रह्यो नीकली शक्यो नही (पढमेपुरिसजाए के०) एटले प्रथम पुरुष जात जाणवो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—श्रीसूत्रकृतांगस्य प्रथमः श्रुतस्कंधउक्तः ॥ अथ द्वितीयः प्रारभ्यते । त

ता। अर्थाधिकारः पौंडरीकोपमया स्वसमयगुणव्यवस्थापनं । समवतारेतु यत्र यत्र स मवतरति तत्रतत्र लेशतः समवतारितमेवेति। उपक्रमानंतरं निक्षेपः सच नामनिष्पन्ने निक्षेपे पौंडरीकमित्यस्याध्ययनस्य नाम तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । " णामंठवणा द विए, खेत्ते कालेय गणणसंगणे ॥ नावेय अठमे खलु, णिक्खेवो पुंडरीयस्य " ॥ ३ ॥ (णामंठवणेत्यादि) पौंडरीकस्य नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालगणनासंस्थापनभावात्म कोऽष्टधा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्यपौंमरीकमभिधित्सुराह । " जो जीवो नविउ खलु, उववज्जि कामो पुंडरीयस्य ॥ सोदव्वपुंडरीउ, नावंमि विजा णउ नणिउ " ॥४॥ (जोजीवोइत्यादि) यः कश्चित्प्राणधारणलक्षणोजीवोभविष्यतीति नव्यस्तदेव दर्शयति। उत्पत्तुकामः समुत्पित्सुस्तथाविधकर्मोदयात्पौंडरीकेषु श्वेतपद्मेषु वनस्पतिकायविशेषेष्वनंतरनवे नावी सद्रव्यपौंमरीकः। खलुशब्दोवाक्यालंकारे । नावपौं मरीकं त्वागमतः। पौंडरीकपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तइति । एतदेव द्रव्यपौंडरीकं विशेषत रं दर्शयितुमाह । " एगनविएयबद्धा, उएय अनिमुहिय नामगोएय ॥ एते तिन्न देसा, दव्वंमिय पोंमरीयस्स " ॥ ५ ॥ एकेन नवेन गतेनानंतरनवएव पौंडरीकेषूत्पत्स्यते स एकनविकस्तथा तदासन्नतरः पौंडरीकेषु बद्धायुष्कस्ततोप्यासन्नतमोनिमुखनामगोत्रोऽ नंतरसमयेषु यः पौंडरीकेषूत्पद्यते । अनंतरोक्ताएते त्रयोदेशविशेषाद्रव्यपौंमरीकेऽवगंत व्याइति । नूतस्य नाविनोवा नावस्य हि कारणं तु यल्लोके । तद्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतना चेतनं कथितमिति वचनात् । इहच पुंडरीककंडरीकयोर्भ्रात्रोर्महाराजपुत्रयोः सदसदनुष्ठा नपरायणतया शोननत्वमवगम्य तडुपमयाऽन्यदपि यच्छोननं तत्पौंडरीकमितरत्तु कंमरकमि ति । तत्र च नरकवर्जासु तिसृष्वपि गतिषु ये शोननाः पदार्थास्ते पौंमरीकाः शेषास्तु कांमरीकाइत्येतत्प्रतिपादयन्नाह । " तेरिच्छिया मणुस्सा, देवगणा चेव होंति जेय व रा ॥ ते होंति पुंमरीया, सेसा पुण कंमरीयाउ " ॥ ६ ॥ (तेरिच्छियाइत्यादि) कंठ्या तत्र तिर्यक्षु प्रधानस्य पौंमरीकत्वप्रतिपादनार्थमाह । " जलयर थलयर खयरा, जे पवराचेव होंति कंताय । जे वसनावमणुमया,ते होंति पुंमरीयाउ " ॥ ७ ॥ जलचरेषु मत्स्यकरिमकरादयः स्थलचरेषु सिंहादयोबलवर्णरूपादिगुणयुक्ताउरःपरिसर्पे मणिफणि नोभुजपरिसर्पेषु नकुलादयः खचरेषु हंसमयूरादयः इत्येवमन्येपि स्वनावेन प्रकृत्या लो कानुमतास्ते च पौंमरीकाइव प्रधानाभवंति । मनुष्यगतौ प्रधानाविष्करणायाह । " अ रिहंत चक्कवत्ती चारणविज्जाहरा दसाराय ॥ जे अन्ने इतिमंता, तेहोंति पोंमरीया उ ॥ ८ ॥ सर्वातिशायिनीं पूजामर्हंतीत्यर्हंतः । ते निरुपमरूपादिगुणोपेतास्तथा चक्रव र्तिनः पट्खंडनरतेश्वरास्तथाचारश्रमणाबहुविधैश्वर्यनूतलब्धिकलापोपेतामहातपस्विनस्त था विद्याधरावैताढ्यपुराधिपतयस्तथा दाशार्हाहरिवंशकुलोद्भवाः । अस्य चोपलक्षणार्थं

टीका–प्रथमश्रुतस्कंधानंतरं द्वितीयः समारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतरश्रुतस्कंधे योर्थः समासतोऽभिहितोऽसावेवानेन श्रुतस्कंधेन सोपपत्तिकोव्यासेनाभिधीयते । तएव विधयः सुसंगृहीताभवंति येषां समासव्यासाभ्यामभिधानमिति । यदि वा पूर्वश्रुतस्कंधोक्तएवार्थोऽनेन दृष्टांतद्वारेण सुखावगमार्थं प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्य श्रुतस्कंधस्य संबंधीनि सप्त महाध्ययनानि प्रतिपाद्यंते । महांति च तान्यध्ययनानि च पूर्वश्रुतस्कंधाध्ययनेभ्योमहत्वादेतेषामिति । तत्र महच्छब्दाध्ययनशब्दयोर्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । णामंठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावेय ॥ एसो खलु महं तंमि निरकेवो छव्विहो होंति ॥ १ ॥ (णामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावात्मकोमहति षड्विधोनिक्षेपोभवति । तत्र नामस्थापने सुज्ञाते द्रव्यमहदागमतो नोआगमतश्च । आगमतोज्ञाता तत्र चानुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं सचित्तमिश्रभेदात्त्रिधा । तत्रापि सचित्तद्रव्यमहतऔदारिकं शरीरं तत्रौदारिकं योजनसहस्रपरिमाणं मत्स्यशरीरं वैक्रियं तु योजनशतसहस्रपरिमाणं । तैजसकार्मणे तु लोकाकाशप्रमाणे । तदेतदौदारिकवैक्रियतैजसकार्मणरूपं चतुर्विधं द्रव्यं सचित्तमहदचित्तमहत् समस्तलोकव्याप्यचित्तमहास्कंधः । मिश्रं तु तदेव मत्स्यादिशरीरं क्षेत्रमहत् लोकाकाशं कालमहत्सर्वाद्धाभावमहदौदयिकादिभावरूपतया षोढा । तत्रौदयिकोभावः सर्वसंसारिषु विद्यतइति कृत्वा बह्वाश्रयत्वान्महान् भवति । कालतोप्यसौ त्रिविधः । तद्यथा । अनाद्यपर्यवसितोऽभव्यानामनादिसपर्यवसितोभव्यानां सादिसपर्यवसितोनारकादीनामिति । क्षायिकस्तु केवलज्ञानदर्शनात्मकः साद्यपर्यवसितत्वात्कालतोमहान् क्षायोपशमिकोप्याश्रयबहुत्वादनाद्यपर्यवसितत्वाच्च महानिति । औपशमिकोपि दर्शनचारित्रमोहनीयानुदयतया शुभभावत्वेन च महान् भवति । पारिणामिकस्तु समस्तजीवाजीवाश्रयमहत्वान्महानिति । सान्निपातिकोप्याश्रयबहुत्वादेव महानिति उक्तं । महदध्ययनस्यापि नामादिकं षोढानिक्षेपं दर्शयितुं निर्युक्तिकृदाह । "णामंठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावेय ॥ एसो खलु अज्झयणे निरकेवो छव्विहो होंति" ॥ २ ॥ (नामंठवणेत्यादि) अध्ययनस्य नामादिकः षोढा निक्षेपः । सचान्यत्र न्यक्षेण प्रतिपादितइति नेह प्रतन्यते । अत्रच श्रुतस्कंधे सप्त महाध्ययनानि तेषामाद्यमध्ययनं पौंमरीकारव्यं तस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि प्ररूपणीयानि । तत्रोपक्रमआनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता, अर्थाधिकार, समवतार, भेदात्षोढा । तत्र पूर्वानुपूर्व्यां प्रथममिदं पश्चानुपूर्व्यां सप्तमगच्छगतायाः श्रेण्याअन्योन्याभ्यासोभे द्विरूपोने सति पंचाशच्छतान्यष्टात्रिंशदधिकानि भवंति नाम्नितु षट् । तत्रापि क्षायोपशमिके भावे सर्वस्यापि च श्रुतस्य क्षायोपशमिकत्वात्प्रमाणचिंतायां जीवगुणप्रमाणे वक्तव्यतायां सामान्येन सर्वेष्वध्ययनेषु स्वसमयवक्तव्य

धपरिमंमलादीनि च संस्थानानि इतराणि कंमरीकान्यप्रवराणि नवंतीति यावत् । सांप्रतं नावपौंमरीकप्रतिपादनानिधित्सयाह । " उदएयउ वसमिए खलु, खइए य तहा खउ वसमिएय ॥ परिणामसन्निवाए, जे पवरा ते वि ते चे व ॥ १४ ॥ (उदयेइत्यादि) औदयिके नावे तथौपशमिके क्षायिकक्षायोपशमिके पारिणामिके सान्निपातिकेच नावे चिंत्यमानेषु तेषु वा मध्ये ये प्रवराः प्रधानास्तेष्वौदयिकादयोनावास्तएव पौंडरीकाएवावगंतव्यास्तथौदयिके नावे तीर्थकराअनुत्तरोपपातिकसुरास्तथान्येपि सितशतपत्रादयः पौंमरीका औपशमिके समस्तोपशांतमोहाः क्षायिके केवलज्ञानिनः क्षायोपशमिके विपुलमतिश्चतुर्दशपूर्वविल्परमावधयोन्यस्ताः समस्तावा पारिणामिके नावे नव्याः सान्निपातिके नावे द्विकादिसंयोगाः सिद्धादिषु स्वबुध्या पौंडरीकत्वेन योजनीयाः शेषास्तु कांडरीका इति । सांप्रतमन्यथांनावपौंडरीकप्रतिपादनायाह । " अहवावि नाणदंसण, चरित्तविणए तहेव अप्पे ॥ जे पवरा होंति मुणी, ते पवरा पुंडरीयाउ ॥ १५ ॥ (अहवेत्यादि) अथवापि नावपौंडरीकमिदं । तद्यथा । सम्यक्ज्ञाने तथा सम्यग्दर्शने सम्यक्चारित्रज्ञानादिके विनये तथाऽध्यात्मनि च धर्मध्यानादिके प्रवराः श्रेष्ठामुनयोनवंति ते पौंमरीकत्वेनावगंतव्यास्ततोऽन्ये कंमरीकाइति । तदेवं संनविनमष्टधा पौंडरीकस्य निक्षेपं प्रदर्श्याधुनेह येनाधिकारस्तमाविर्जीवयन्नाह । " एहं पुण अहिगारो, वणस्सतीकायपुंमरीएणं ॥ नावंमि य समणेणं, अप्पयणे पुंमरीए य " ॥ १६ ॥ (एहंपुणेत्यादि) अत्र पुनर्दृष्टांतप्रस्तावे ऽधिकारोव्यापारः सचित्ततिर्यग्योनिकैकेंद्रियवनस्पतिकायद्रव्यपौंडरीकेन जलरुहेणवा औदयिकनाववर्तिना वनस्पतिकायपौंडरीकेण सितशतपत्रेण तथा नावे श्रमणेन सम्यग्दर्शनचारित्रविनयाध्यात्ममूर्तिना सत्साधुनाऽस्मिन्नध्ययने पौंडरीकाख्ये ऽधिकारइति । गता निक्षेपनिर्युक्तिरधुनासूत्रस्पर्शितकनिर्युक्तेरवसरः । साच सूत्रे सति नवति । सूत्रंच सूत्रानुगमे सचावसरप्राप्तोऽतोऽस्खलितादिगुणोपतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (सुयंमेआउसंतेणमित्यादि) अस्य चानंतरं सह सूत्रेण संबंधोवाच्यः । सचायं । (सेएवमेवं जाणह जमहं नयंतारोत्ति) तमेव देवं जानीत नयस्य त्रातारं । तद्यथा । श्रुतं मयाऽऽयुष्मता नवतेवमाख्यातमादिसूत्रेण च सह संबंधोयं । तद्यथा । यन्नगवताख्यातं मया च श्रुतं तद्बुध्येतेत्यादि । किं तन्नगवताख्यातमित्याह । इह प्रवचने सूत्रकृत् द्वितीयश्रुतस्कंधे वा । खलुशब्दो वाक्यालंकारे । पौंडरीकानिधानमध्ययनं पौंडरीकेण सितशतपत्रेणात्रोपमा नविष्यतीति कृत्वाऽतोस्याध्ययनस्यपौंडरीकमिति नाम कृतं तस्य चायमर्थः । णमिति वाक्यालंकारे । प्रज्ञप्तः प्ररूपितः ॥ १ ॥ (सेजहत्ति) तद्यथार्थः सच वाक्योपन्यासार्थः । नामशब्दः संनावनायां । संनाव्यते पुष्करिणी दृष्टांतः । पुष्कराणि पद्मानि तानि विद्यंते यस्यामसौ पुष्करिणी स्याद्भवेदेवंनूता । तद्यथा बहुप्रचुरमगाधमुदकं यस्यां सा बहूदका बहूदकप्रचुरा

त्वादन्येपीक्ष्वाक्वादयः परिगृह्यंते । एतदेव दर्शयति । ये चान्ये महर्धिमंतोमहेन्यः कोटीश्वरास्ते सर्वेपि पौंडरीकान्नवंति । तु शब्दस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् । येचान्ये विद्याकलापोपेतास्ते पौंडरीकाइति । सांप्रतं देवगतौ प्रधानस्य पौंडरीकत्वं प्रतिपादयन्नाह । नवणवइयाणमंतर, जोतिसवेमाणियाणि देवाणं ॥ जे तेसिं पवरा खलु, ते होंति पुंडरीयाउ ॥ ए ॥ नवनपतिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकानां चतुर्णां देवनिकायानां मध्ये ये प्रवरा प्रधानाइंदसामानिकादयस्ते प्रधानाइति कृत्वा पौंडरीकानिधानान्नवंति । सांप्रतमचित्तद्रव्याणां यत्प्रधानं तत्पौंमरीकत्वप्रतिपादनायाह । " कंसाणं दूसाणं, मणिमोत्तियसिलप्पवालमादीणं ॥ जे तेसिं पवरा खलु ते होंति पोंमरीयाउ ॥ १० ॥ कांस्यानां मध्ये जयघंटादीनि दूष्याणां चीनांशुकादीनि मणीनामिंद्रनीलवैदूर्यपद्मरागादीनि रत्नानि मौक्तिकानां यान्यनेकवर्णसंस्थानप्रमाणाधिकानि । तथा शिलानां मध्ये पांमुकंबलादयः शिलास्तीर्थकृज्जन्मानिषेकसिंहासनाधारनूतास्तथा प्रवालानां यानि वर्णादिगुणोपेतान्यादिग्रहणाज्जात्यचामीकरं तद्विकाराश्चान्नरणविशेषाः परिगृह्यंते । तदेवमनंतरोक्तानि कांस्यादीनि प्रवराणि तानि चित्तपौंमरीकाण्यनिधीयंतइति। मिश्रद्रव्यपौंमरीकं तु तीर्थकृच्चक्रवर्त्यादयएव प्रधानकटककेयूराद्यलंकारालंकृताइति । द्रव्यपौंडरीकानंतरं क्षेत्रपौंमरीकानिधित्सयाह । " जाइं खेत्ताइं खलु, सुहाणुनावाइं होंति लोगंमि ॥ देवकुरुमादियाइं, ताइं खेत्ताइं पवराइं " ॥ ११ ॥ (जाइमित्यादि) यानि कानिचिदिह देवकुर्वादीनि शुनानुनावानि क्षेत्राणि तानि प्रवरणानि पौंडरीकानिधानानि नवंति । सांप्रतं कालपौंडरीकप्रतिपादनायाह । " जीवा नवद्दितीए, कायवितीए य होंति जे पवरा॥ ते होंति पौंमरीया, अवसेसा कंडरीयाउ ॥ १२ ॥ (जीवाइत्यादि) जीवाः प्राणिनोनवस्थित्या च ये प्रवराः प्रधानास्ते पौंडरीकान्नवंति शेषास्त्वप्रधानाः कंमरीकाइति । तत्र नवनस्थित्या देवाअनुत्तरोपपातिकाः प्रधानान्नवंति । तेषां यावद्भवं शुनानुनावत्वात्कायस्थित्या तु मनुष्याः शुनकर्मसमाचाराः सप्ताष्टनवप्रमाणानि मनुष्येषु पूर्वकोट्यायुष्केष्वनुपरिवर्त्यानंतरनवे त्रिपल्योपमायुष्केषूत्पादमनुनूय ततोदेवेषूत्पद्यतइति कृत्वा ततस्ते कायस्थित्या पौंमरीकान्नवंत्यवशिष्टास्तु कंडरीकाइति । कालपौंडरीकानंतरं गणनासंस्थानपौंडरीकद्वयप्रतिपादनायाह । " गणणाए रज्जू खलु संगणं चेव होंति चउरंसं । एयाइं पोंमरीगाइं होंति सेसाइं इयराइं " ॥ १३ ॥ (गणणाएइत्यादि) गणनया संख्यया पौंमरीकं चिंत्यमानं दशप्रकारस्य गणितस्य मध्ये रज्जुगणितं प्रधानत्वात्पौंमरीकं । दशप्रकारं तु गणितमिदं । परिकम्मुरज्जुरासी, ववहारे तह कलासवस्रे य ॥ पुग्गलजावंतावे, घणे य घणवग्ग वग्गेय । एषां संस्थानानां मध्ये समचतुरस्रं संस्थानं प्रवरत्वात्पौंमरीकमित्येवमेते द्वे अपि पौंमरीके शेषाणि तु परिकर्मादीनि गणितानि न्यग्रो

रे ॥ ५ ॥ अथानंतरमेवंभूतपुष्करिण्याः पूर्वस्यादिशः कश्चिदेकः पुरुषः समागत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे तटे स्थित्वा तदेतत्पद्मप्रासादादिप्रतिरूपांतविशेषणकलापोपेतं स पुरुषः पूर्वदिग्भागव्यवस्थितएवमिति वक्ष्यमाणनीत्या वदेत् ब्रूयात् । (अहमंसेत्ति) अहमस्मि पुरुषः । किंभूतः कुशलोहिताहितप्रवृत्तिनिपुणस्तथा पापाद्भीनः पंडितोधर्मज्ञो देशकालज्ञः क्षेत्रज्ञोव्यक्तोवालभावान्निष्क्रांतः परिणतबुद्धिर्मेधावी प्लवनोत्प्लवनयोरुपायज्ञस्तथा वालोमध्यमवयाः षोडशवर्षोपरिवर्ती मार्गस्थः सद्भिराचीर्णमार्गेव्यवस्थितस्तथा सन्मार्गज्ञस्तथा मार्गस्य या गतिर्गमनं वर्तते· तया यत्पराक्रमणं विवक्षितदेशगमनं तज्जानातीति पराक्रमज्ञः । यदिवा पराक्रमः सामर्थ्यं तज्ज्ञोहमात्मज्ञइत्यर्थः । तदेवंभूतविशेषणकलापोपेतोऽहमेतत्पूर्वोक्तविशेषणकलापोपेतं पद्मवरपौंडरीकं पुष्करिणीमध्यंदेशावस्थितमहमुत्क्षेप्स्यामीति कृत्वेहागतइत्येतत्पूर्वोक्तं तत्प्रीत्योक्त्वाऽसौपुरुषस्तां पुपुष्करिणीमभिमुखं क्रामेत् अभिमुखं गच्छेद्यावद्यावच्चासौ तदवतरणाभिप्रायेणाभिमुखं क्रामेत्तावत्तावच्च । णमिति वाक्यालंकारे । तस्याश्च पुष्करिण्यामहदगाधमुदकं तथा महांश्च सेयः कर्दमस्ततोऽसौ महाकर्दमोदकाभ्यामाकुलीभूतः प्रहीणस्तद्विवेकेन रहितस्त्यक्त्वा तीरं सुब्व्यत्ययाद्वा तीरात्प्रहीणः प्रभ्रष्टोऽप्राप्तश्च विवक्षितं पद्मवरपौंडरीकं तस्याः पुष्करिण्यास्तस्यां वा यः सेयः कर्दमस्तस्मिन्निषण्णोनिमग्नआत्मानमुद्धर्तुमसमर्थस्तस्माच्च तीरादपि प्रभ्रष्टस्ततस्तीरपद्मयोरंतरालएवावतिष्ठते । यतएवमतः (नोहव्वाएत्ति) नावीक्तटवर्त्यसौ भवति (नोपाराएत्ति) नापि विवक्षितप्रदेशप्राप्त्या पारगमनाय समर्थोभवति । एवमसावुभयभ्रष्टोमुक्तमुक्तोलीवदनर्थायैव प्रभवतीत्ययं प्रथमः पुरुषएव पुरुषजातः पुरुषजातीयइति ॥ ६ ॥

अहावरे दोच्चे पुरिसजाए अह पुरिसे दक्खिणाउ दिसाउ आगम्म तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुठियं पासादीयं जाव पडिरूवं तंच एत्थ एगं पुरिसजातं पासंति तं पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने तएणं से पुरिसे तं पुरिसं एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसे अखेयन्ने अकुसले अपंमिए अवियत्ते अमेहावी वाले णोमग्गठे णोमग्गविऊ णोमग्गस्सगतिपरक्कमस्सू जन्नं एस· पुरिसे अहंखेयन्ने अहंकुसले जाव पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामि णो खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निखेयव्वं जहा णं

तथा सीयंतेऽवबध्यंते यस्मिन्नसौ सेयः कर्दमः सयस्यां सा बहुसेया प्रचुरकर्दमा च ब हुश्वेतपद्मसद्भावात् स्वछोदकसंभवाच्च बहुश्वेता वा तथा बहुपुष्कला बहुसंपूर्णा प्रचुरोदकभृतेत्यर्थः। तथा लब्धः प्राप्तः पुष्करिणीशब्दान्वर्थतयार्थोयया सा लब्धार्थाऽथवाऽऽस्थानमास्था प्रतिष्ठा सा लब्धा यया सा लब्धास्था तथा पौंडरीकाणि श्वेतशतपत्राणि विद्यंते यस्यां सा पौंडरीकिणी। प्रचुरार्थेन मत्वर्थीयोत्पत्तेर्बहुपद्मेत्यर्थः। तथा प्रसादः प्रसन्नता निर्मलजलता सा विद्यते यस्याः सा प्रसादिका प्रासादावा देवकुलसन्निवेशास्ते विद्यंते यस्यां समंततः प्रासादिका दर्शनीया शोभना सत्संनिवेशतोद्रष्टव्या दर्शनयोग्या तथाऽभिमुख्ये च सदावस्थितानि रूपाणि राजहंसचक्रवाकसारसादीनि गजमहिषमृगयूथादीनि वा जलांतर्गतानि वा करिमकरादीनि वा यस्यां साऽभिरूपेति तथा प्रतिरूपाणि प्रतिबिंबानि विद्यंते यस्यां सा प्रतिरूपा। एतडुक्तं भवति। स्वछत्वात्तस्याः सर्वे प्रतिबिंबानि समुपलभ्यंते तदतिशयरूपतया वा लोकेन तत्प्रतिबिंबानि क्रियते सा प्रतिरूपेति। यदिवा (पासादीयादरिसणीयाअभिरूवापडिरूवत्ति) पर्यायाइत्येते चत्वारोप्यतिशयरमणीयत्वख्यापनार्थमुपात्ताः ॥ २ ॥ तस्याश्च पुष्करिण्याः। णमिति वाक्यालंकारे। तत्र तत्रेत्यनेन वीप्सापदेन पौंमरीकैर्व्यापकत्वमाह। देशेदेशे इत्यनेन त्वेकैकप्रदेशे प्राचुर्यमाह। तस्मिंस्तस्मिन्नित्यनेन तु नास्त्येवासौ पुष्करिण्याः प्रदेशोयत्र तानि न संतीति। यदिवा देशेदेशइत्येतत्प्रत्येकमभिसंबध्यते। तत्रतत्रेति। कोर्थोदेशेदेशे तस्मिंस्तस्मिन्निति चार्थोदेशैकदेशइति। यदिवा अत्यादरख्यापनायैकार्थान्येवैतानि त्रीण्यपि पदानि। तेषु च पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु बहूनि प्रचुराणि पद्मान्येव वराणि श्रेष्ठानि पौंडरीकाणि पद्मवरपौंडरीकाणि। पद्मग्रहणं छत्रव्याघ्रव्यवछेदार्थं। पौंडरीकग्रहणं श्वेतशतपत्रप्रतिपत्त्यर्थं। वरग्रहणमप्रधाननिवृत्त्यर्थं। तदेवंभूतानि बहूनि पद्मवरपौंडरीकाणि (बुइयत्ति) उक्तानि प्रतिपादितानि विद्यंतइत्यर्थः। आनुपूर्व्येण विशिष्टरचनया स्थितानि तथोछ्रितानि पंकजले अतिलंघ्योपरि व्यवस्थितानि तथा रुचिर्दीप्तिस्तां लात्याददति रुचिलानि सद्दीप्तिमंति तथा शोभनवर्णगंधरसस्पर्शवंति तथा प्रसादीयानि अभिरूपाणि प्रतिरूपाणि ॥ ३ ॥ तस्याश्च पुष्करिण्याः सर्वतः पद्मावृतायाः। णमिति वाक्यालंकारे। बहुदेशमध्यभागे निरुपचरितमध्यदेशे एकं महत्पद्मवरपौंडरीकमुक्तमानुपूर्व्येण व्यवस्थितमुछ्रितं रुचिलवर्णगंधरसस्पर्शवत् तथा प्रासादीयं दर्शनीयं अभिरूपतरं प्रतिरूपतरमिति ॥ ४ ॥ सांप्रतमेदेवानंतरोक्तं सूत्रद्वयं सव्वावत्तिचणंतीत्यनेन विशिष्टमपरं सूत्रद्वयं द्रष्टव्यं। अस्यायमर्थः (सव्वावंतित्ति) सर्वस्याअपि तस्याः पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु यथोक्तविशेषणविशिष्टानि बहूनि पद्मानि तथा सर्वस्याश्च तस्याबहुमध्यदेशभागे यथोक्तविशेषणविशिष्टं महदेकं पौंडरीकं विद्यतइति। उभयत्रापि चः समुच्चये। णमिति वाक्यालंका

णो खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निखेयव्वं जहा णं एते पुरिसा मन्ने अहमंसि पुरिसे खेयन्ने जाव मग्गस्सगतिपरक्कमस्सू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से पुरिसे तं पुक्खरिणिं जावजावंचणं अभिक्कमे ताव तावंचणं महंते उदए महंते सेए जाव णिसन्ने चउठे पुरिसजाए ॥ ए ॥

अर्थ– (अहावरे के०) अथ हवे प्रथम पुरुष अनंततर (दोच्चेपुरिसजाए के०) बीजो पुरुष जात कहेछे (अहपुरिसेके०) अथ हवे ए बीजो पुरुष (दक्खिणाउदिसाउ आगम्म के०) दक्षिण दिशा थकीआव्यो (तंपुक्खरिणिंके०) ते पुष्करणीने विषे (तीसेपुक्खरिणीएतीरेठिच्चा के०) ते पुष्करणीने कांठे उनो रहीने (तंमहंएगंपउमवरपोंमरीयंके०) ते महोटो प्रधान पोंमरीक कमलने (पासंति के०) दीठो ते कमल केवोछे तो के अणुपुव्वुठियं पासादीयं जावपडिरूवं) इत्यादिक पूर्ववत् शोभायें करी सहित छे (तंच के०) त्यां ते पुरुषे (एउके०) अंहीया (एगंपुरिसजातंपासंतिके०) एक पुरुष जात दीठो (तंपहीणेतीरेके०) ते पुरुष वावडीना कांठाथी भ्रष्ट (पउमवरपोंमरीयंके०) प्रधान पुंमरीक कमलने (अपत्तेके०) अण पाम्यो थको (णोहव्वाएके०) वावडीनो बीजो कांठो अणपाम्यो (णोपाराएके०) कमल उद्धरवाने पण असमर्थ (अंतरापोक्खरिणीएके०) पुष्करणीने विचालें (सेयंसिके०) कादवमांहे (णिसन्नेके०) खुतोछे (तए णंसेपुरिसेके०) तेवार पछी ते पुरुष (तंपुरिसंके०) ते कादवमां खुचेला पुरुष प्रत्ये (एवंवयासीके०) एम कहेवा लागो के (अहोणंइमेपुरिसेके०) अहो हे पुरुष अखेयन्ने अकुसले अपंमिए अवियत्ते अमेहावी बाले णोमग्गछे णोमग्गविऊ णोमग्गस्स गति परक्कमस्सू ए नव पदनुं अर्थ सुलनछे (जन्नंएसपुरिसेके०) जे कारणे ए पुरुष पोताना आत्माने (अहंखेयन्नेके०) हुं खेदज्ञछुं (अहंकुसलेके०) हुंकुसलछुं (जावपउमवरपोंमरीयंउनिक्खिस्सामिके०) इत्यादिक जाणतो यावत् प्रधान पुंमरीक कमल हुं उध्दरीश एवा नावे अहीं आव्यो परंतु (णोखलुएयंपउमवरपोंमरीयं के०) निश्चें थकी पुंमरीक कमल उध्दरी शक्यो नथी अने कादवमांज खूतोछे (एवंउन्निखेयव्वं जहाणंएसपुरिसेमन्नेके०) जेम तेपुरुष पोताने महोटो माह्यो मानीने कमल उध्दरवा गयो तेज विधियें ए बीजो पुरुष पण पोताने माने ॥७॥ (अहमंसिपुरिसेके०) हुं पुरुष खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गछे मग्गविऊ मग्गस्सगतिपरिक्कमस्सू इत्यादिक पोतामां माह्या पणो मानतो (अहमेयंके०) हुं ए (पउमवरपोंमरीयंउन्निक्खिस्सामित्तिके०) प्रधान पुंमरीक कमलने उध्दरीश (कट्टुके०) एमकरी (इतिवच्चा के०) एवुं कहीने (सेपुरिसे

एस पुरिसे मन्ने ॥ ७ ॥ अहमंसि पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गठे मग्गविऊ मग्गस्सगतिपरक्कमस्सू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इति वच्चा से पुरिसे अभिक्कमे तं पुक्खरिणिं जावजावंचणं अभिक्कमेइ तावतावंचणं महंते उदए महंते सेए पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने दोच्चे पुरिसजाते अहावरे तच्चे पुरिसजाते अह पुरिसे पच्छिमाउ दिसाउ आगम्म तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं एगं महं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुठियं जाव पडिरूवं ते तत्र दोन्नि पुरिसजाते पासंति पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए जाव सेयंसि णिसन्ने तएणंसे पुरिसे एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना अकुसला अपंमिया अवियत्ता अमेहावी बाला णोमग्गठा णोमग्गविऊ णोमग्गस्सगतिपरक्कमस्सू जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामो नोय खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निक्खेतवं जहाणं एए पुरिसा मन्ने अहमंसि पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गठे मग्गविऊ मग्गस्सगतिपरक्कमस्सू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा सेपुरिसे अभिक्कमे तं पुक्खरिणिं जाव जावंचणं अभिक्कमे तावतावंचणं महंते उदए महंते सेए जावअंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने तच्चे पुरिसजाए ॥ ८ ॥ अहावरे चउत्थे पुरिसजाए अह पुरिसे उत्तराउ दिसाउ आगम्म तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुठियं जावपडिरूवं ते तत्र तिन्नि पुरिसजाते पासंति पहीणे तीरं अपत्ते जाव सेयंसि णिसन्ने तएणं से पुरिसे एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना जावणोमग्गस्सगतिपरिक्कमस्सू जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामि

पश्यति। किंभूतं । तीरात्परिभ्रष्टमनवाप्तपद्मवरपौंडरीकमुभयभ्रष्टमंतरालएवावसीदंतं च दृष्ट्वा तमेवमवस्थं पुरुषं ततोसौ द्वितीयः पुरुषस्तं प्राक्तनं पुरुषमेवं वदेत् ॥ अहोइति खेदे। सर्वत्र णमिति वाक्यालंकारे। इहव्योयोयं कर्दमे निमग्नः पुरुषः सोखेदज्ञोऽकुशलोऽ पंडितोव्यक्तोमेधावी बालोनमार्गस्थोनोमार्गज्ञोनोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः । अकुशलत्वा दिके कारणमाह । यद्यस्मादेषपुरुषएतत्कृतवान् । यदहं खेदज्ञः कुशलइत्यादि भणित्वा पद्मवरपौंडरीकमुत्क्षेप्स्यामीत्येवं प्रतिज्ञातवान् । नचैतत्पद्मवरपौंडरीकमेवमनेन प्रकारेण यथाऽनेनोत्क्षेप्तुमारब्धं नैवमुत्क्षेप्तव्यं यथायं पुरुषोमन्यतइति॥७॥ ततोहमेवा स्योत्क्षेप णे कुशलइति दर्शयितुमाह । (अहमंसीत्यादि) जावदोच्चेपुरिसाजाएत्ति। सुगमं ॥ ८ ॥ तृतीयं पुरुषमधिकृत्याह।(अहावरेतच्चेइत्यादि) सुगमं यावच्चतुर्थः पुरुष जातइति ॥ ९ ॥

अह भिक्खू लूहे तीरठी खेयन्ने जाव परक्कमस्सू अन्नतराउ दिसाउ वा अणुदिसाउ वा आगम्म तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं एगं महंतं पउमवरपोंमरीयं जावपडिरूवं ते तठ चत्तारि पुरिसजाए पासंति पहीणे तीरं अपत्ते जाव पउमवर पोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरापुक्करिणीए सेयंसि णिसन्ने तएणं से भिक्खू तं एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना जाव णो मग्गस्स गति परक्कमस्सू जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामो णो खलु एयं पउमवपोंमरीयं एयं उन्निखेतवं जहा णं एते पुरिसा मन्ने अहमंसि भिक्खू लूहे तीरठी खेयन्ने जाव मग्ग स्स गतिपरक्कमस्सू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उस्सिक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से भिक्खू णो अभिक्कमे तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा सद्दं कुज्जा उप्पयाहि खलु भो पउमवरपोंमरीया उप्पया हि अहसे उप्पति ते पउमवरपोंमरीए ॥ १० ॥ किट्टिए नाए समणाउसो अठ्ठे पुण से जाणितवे भवति भंतेति समणं भगवं महावीरं बहवे निग्गंथाय निग्गंथीउय वंदंति नमंसंति वंदेत्ता नमंसित्ता एवं वयासि किट्टिए नाए समणाउसो अठ्ठं पुण से ण जाणामो स मणाउसोत्ति समणे भगवं महावीरे तेय बहवे निग्गंथेय निग्गंथीउय आ

के०) ते पुरुष (अभिक्कमेतंपुरकरिणिंके०) ते पुष्करणीमां चाल्यो (जावजावंचणंअ भिक्कमेइके०) जेम जेम ते कमल सामो आवीने मांहे प्रवेश कस्यो (तावतावंचणं के०) तेमतेम (महंतेउदएके०) ऊंडापाणी मांहे (महंतेसेएके०) महोटा कादवमां हे खूतो (पहीणेतीरंके०) वाव्यनातीर थकी पण भ्रष्ट थयो (अपत्तेपउमवरपोंमरीयं के०) अने प्रधान पुंमरीक कमलने पण अण पाम्यो (णोहव्वाएके०) एक कांठा थकी भ्रष्ट (णोपाराएके०) अने बीजा कांठाने पण नपाम्यो तथा कमल पण उद्धरी नशक्यो (अंतरापोरकरिणीएके०) पुष्करणीने विचाले ज (सेयंसिके०) कादव मांहे (णिसन्ने कें०) खूची रह्यो (दोच्चेपुरिसजातेके०) एटले बीजो पुरुष जात कह्यो. ॥ अथ हवे ए बीजो पुरुष कह्यानंतर त्रीजो पुरुष कहेछे ए त्रीजो पुरुष पश्चिमदिशा थकी आवी पुष्करणीने कांठे उनो रहीने आगला पुरुषनी पेरे समस्त वचन बोली कमल उद्धरवा ने अर्थें पुष्करणीमां प्रवेश कस्युं पण ते कमलने उद्धरी नशक्यो पोते पुष्करणीने अं तराले पाणी अने कादव मांहे खूतो एटले त्रीजो पुरुष जात कह्यो॥ ७ ॥ हवे चोथो पुरुष उत्तर दिशा थकी आवीने पुष्करणीने तीरे उनो रही आगला त्रण पु रुषनी रीतेज वचन बोली तेमनी पेरेज कमल उद्धरवाने पुष्करणी मांहे प्रवेश कस्यो परंतु तेपण कमल उद्धरी नशक्यो अने वाव्यने अंतरालें ते त्रण पुरुषोनीपेरे कादव मांहेज खूची रह्यो एटले चोथो पुरुष जात कह्यो ॥ ए ॥

॥ दीपिका—अथापरोद्वितीयः पुरुषजातः पुरुषइति । अथ कश्चित्पुरुषोदक्षिणदिग्भा गादागत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा पश्यति पद्मं तीरस्थश्च तं पूर्वस्थितं पुरु षमेकं पश्यति । तीराद्भ्रष्टं पद्ममप्राप्तं उनयभ्रष्टं दृष्ट्वा सद्वितीयः पुरुषस्तमेवं वदेत् अहोखेदे ! णं वाक्यालंकारे । योयं कर्दमे निमग्नः पुरुषः सोखेदज्ञोऽकुशलोऽपंडितोऽ व्यक्तोमेधावी बालोन मार्गस्थोनोमार्गज्ञोनोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः । यस्मादेवपुरुषः कुश लइत्युक्त्वा पद्ममुत्क्षेप्स्यामीत्येवं प्रतिज्ञां कृतवान् । नचैतत् पद्ममेवमुत्क्षेप्तव्यं यथायं पुरु षोमन्यतइति नावः । शेषं सुगमं ॥ ७ ॥ ततः (अहमंसीत्यादि) अहमेवास्य पुंडरी कस्योत्क्षेपणे कुशलइतिनावः । शेषं सुगमं (अहावरेतच्चेत्ति) सुगमं । ॥ ७ ॥ (अहा वरेंचउछेत्ति) सुगमं ॥ ए ॥

॥ टीका—अथ प्रथमपुरुषादनंतरमपरोद्वितीयः पुरुषजातः पुरुषइति । अथवेति वा क्योपन्यासार्थे । अथ कश्चित्पुरुषोदक्षिणदिग्भागादागत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च पुष्करि ण्यास्तीरे स्थित्वा तत्रस्थश्च पश्यति । महदेकं पद्मवरपौंडरीकमानुपूर्व्येण व्यवस्थितं प्रा सादीयं यावत्प्रतिरूपमत्र चास्मिंश्च प्रतीते तीरे व्यवस्थितस्तंच पूर्वव्यवस्थितमेकं पुरुषं

रिणिं के०) ते पुष्करणी मांहे पेगो नहीं (तीसेपुरकरिणीएतीरेठिच्चा के०) ते पुष्करणीने कांठे रहीनेज (सद्दंकुज्जा के०) शब्द करेछे (उप्पयाहिखलुनोपउमवपोंमरीयाउप्पयाहि के०) अहोपुंमरीक कमल ए पुष्करणी मांहेथी उपडीने बाहेर आव बाहेर आव एम बे वार कह्यो (अहसेउप्पतितेपउमवरपोंमरीएके०) हवे ते पुंमरीक कमल त्यांथी उपड्यो ॥१०॥ (किट्टिए के०) हवे ए दृष्टांत देखाडीने (नाएसमणाउसोके०) श्रीमहावीर देव शिष्य आगले अंतर नाव मेलवेछे के अहो आयुष्यमंत श्रमण महात्मा उ तमने ए दृष्टांत कह्यो तेना (अठे के०) अर्थने (पुण के०) वली (से के०) ते (जाणितव्वे नवति के०) जाणोछो एम कहे थके तेवारे (नंतेति के०) हे नगवान् एवो शब्द कहीने (समणंनगवंमहावीरं के०) तपस्वी नगवंत श्रीमहावीरदेवने (बहवेनिग्गंथाय के०) घणानिर्ग्रंथ (निग्गंथीउंयवदंति के०) घणी साधवी ते श्रीमहावीर देवने वांदे (नमंसंति के०) नमस्कार करे (वंदेत्ता के०) वंदना करीने (नमंसित्ता के०) नमस्कार करीने (एवंवयासि के०) एम बोल्या (किट्टिएनाएसमणाउसो के०) के हे नगवंत श्रमणआयुष्यमंत तमे जे दृष्टांत कह्यो तेना (अठं के०) अर्थने (पुण के०) वली (से के०) ते (णजाणामो के०) अमे नथी जाणता तेवारे श्रीमहावीर देव (समणाउसोत्ति के०) हे श्रमणो आयुष्यमंत साधुउ एवो शब्द कहीने (समणेनगवंमहावीरे के०) श्रमण नगवंत श्रीमहावीर देव (तेयवहवेनिग्गंथेय के०) ते घणा निर्ग्रंथ (निग्गंथीउय के०) घणी साधवीने (आमंत्तेता के०) आमंत्रण करीने (एवंवयासी के०) एम कहेछे (हंनोसमणाउसोते के०) अहो साधुउ तमे पुछ्यो ते (आइक्खामि के०) हुं तमने कहुंछुं (विन्नावेमि के०) प्रगटार्थ कहुंछुं (किट्टेमि के०) तेना पर्याय कहुंछुं (पवेदेमिके०) हेतु दृष्टांते करी तमारे चित्तने सुगम थाय तेम कहुंछुं (सअठं के०) अर्थ सहित (सहेउंके०) हेतुये सहित (सनिमित्तंके०) कारण सहित (नुज्जोनुज्जो के०) वली वली (उवदंसेमिके०) देखाडीश (सेबेमिके०) ए हुं कहुंछुंते तमे सांनलजो॥११॥

॥ दीपिका—अथ पंचमं पुरुषमाश्रित्याह । अथ निक्षुर्निर्दोपाहारनोजी रूक्षोरागद्वेषरहितस्तीरार्थी संसाराब्धितीराभिलाषी । खेदज्ञइत्यादिविशेषणानि पूर्वं व्याख्यातानि । यावन्मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः सचान्यतरस्यादिशोवा आगत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा तन्महदेकं पद्मवरपौंडरीकं पश्यति तांश्चतुरः पुरुषान्पश्यति पंकनीरमग्नान् । दृष्ट्वा च सनिक्षुरेवं वदेत् अहो इमे चत्वारोपि पुरुषाअक्षेत्रज्ञाअकुशलाल मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञाः । यस्मात्ते पुरुषाएवं ज्ञातवंतोयथा वयं पुंडरीकमुन्निक्षेप्स्यामउत्खनिष्यामः । नच तत्पुंडरीकमेवमुत्क्षेप्तव्यं यथैते मन्यंते । किंतु अहमस्मि निक्षुरूक्षोयावन्मार्गस्य ग

मंतेत्ता एवं वयासी हं भोसमणाउसो ते आइक्कामि विभावेमि किट्टेमि पवेदेमि सअहं सहेउं सनिमित्तं भुज्जोभुज्जो उवदंसेमि सेबेमि ॥ ११ ॥

अर्थ—(अहके०) हवे चोथा पुरुष नंतर पांचमो पुरुष कहेछे ते केवोछे तोके (भिक्खू के०) भिक्षुए शील पचन पाचनादिक सावद्यानुष्ठान रहित निर्दोष आहार भोजी (लूहे के०) राग द्वेष रहित (तीरही के०) संसार समुड्ना तीरनो अर्थी (खेयन्ने के०) खेदज्ञ एटले समस्त जीवोना खेदनो जाण (जावपरक्कमस्सू के०) यावत् मार्गेनी गतिना पराक्रमनुं जाण अंही बीजो आगलनो वर्णन सर्व करवो एवो जाण पुरुषते (अन्नतराउदिसाउवाअणुदिसाउवा के०) अन्य कोइएक दिशा थकी अथवा विदिशा थकी (आगम्म के०) आवीने (तंपुक्करिणिं के०) ते पुष्करणी (तीसेपुक्करिणीएतीरेठिच्चा के०) ते पुष्करणीने कांठे रहीने (तंएगंमहंतंपउमवरपोंमरीयंके०) ते एक महोटुं प्रधान पुंमरीक कमलने (पासंति के०) दीठो (जावपडिरूवं के०) ते कमल ज्यांलगे प्रतिरूप सुधी पूर्वे वर्णन करेलुंछे तेवो कमल दीठो (तेतबचत्तारिपुरिसजाएपासंति के०) तेणे त्यां चार पुरुषजात पूर्वोक्त चारदिशाना आवेला दीठा ते चारे पुरुष (पहीणेतीरं के०) वाव्यना तीर थकी भ्रष्ट अने (अपत्तेजावपउमवरपोंमरीयंणोहव्वाएणोपाराए के०) पुंमरीक कमलने पण यावत् नथी पाम्या (अंतरापुक्करिणीएके०) वाव्यने विचाले (सेयंसि के०) कादव मांहे (णिसन्ने के०) खुताछे तेनें देखीने (तएणंसे भिक्खू के०) तेवार पछी ते भिक्षु साधु (तं के०) ते चार पुरुषोने (एवंवयासि के०) एम बोल्यो (अहोणंइमेपुरिसा के०) अहो ए पुरुष बापडा (अखेयन्ना के०) अखेदज्ञ (जावणोमग्गस्सगतिपरक्कमस्सू के०) यावत् मार्गेनी गतिना पराक्रमना अजाण (जन्नंएतेपुरिसाके०) जेम ए पुरुष (एवंमन्नेके०) एम जाणे जे (अम्हेतंपउमवरपोंमरीयंउन्निक्किस्साम्मो के०) अमे ए कमल उद्धरी सुं तेवा विधियें उद्धरवाने अर्थें गया परंतु (णोखलु के०) निश्चें थकी नहीज (एयंपउमवरपोंमरीयंके०) ए पोंमरीक कमलने (एयंउन्निक्केतवं के०) एम उद्धरी शके नही (जहाणंएतेपुरिसामन्ने के०) जेम ए चार पुरुष जाणेछे ते विधियें कमल उद्धरी शकाय नही (अहमंसिभिक्खुलूहे के०) जेमाटे हुं साधु राग द्वेष रहित (तीरही के०) संसारना तीरनो अर्थी (खेयन्नेके०) खेदज्ञ (जावमग्गस्सगतिपरक्कमस्सूके०) यावत् मार्गेनी गतिना पराक्रमनुं जाण (अहमेयंपउमवरपोंमरीयंउन्निक्किस्सामित्ति के०) हुं ए पुंमरीक कमल निश्चे थकी उद्धरीश (कट्टु के०) एम करीने (इतिवच्चा के०) एवुं वचन कहीने (सेभिक्खु के०) तेसाधु (णोअभिक्कमे तं पुक्क

हावीरवर्धमानस्वामी स्वशिष्यानाह । कीर्तिते कथिते प्रतिपादिते मयास्मिन् ज्ञाते उदा हरणे श्रमणाआयुष्मंतोऽर्थः पुनरस्य ज्ञातव्योनवति नवद्भिरेतडुक्तं नवति । नास्योदा हरणस्य परमार्थं यूयं जानीथैवमुक्ते नगवता ते बहवोनिर्ग्रंथानिर्ग्रंथ्यश्च तं श्रमणं नगवंतं महावीरं ते निर्ग्रंथादयोवदंति कायेन नमस्यंति तत्प्रह्वैः शब्दैः स्तुवंति वंदित्वा चैवं वक्ष्य माणं वदेयुः । तद्यथा । कीर्तितं प्रतिपादितं ज्ञातमुदाहरणं नगवता अर्थं पुनरस्य न सम्यक् जानीमइत्येवं पृष्टोनगवान् श्रमणोमहावीरस्तान्निर्ग्रंथादीनेवं वदेत् । हंतेति संप्रे षणे । हेश्रमणाआयुष्मंतोयन्नवद्भिरहं पृष्टस्तत्सोपपत्तिकमाख्यामि नवतां तथा विन्नावया म्याविर्नावयामि प्रकटार्थं करोमि तथा कीर्तयिष्यामि पर्यायकथन द्वारेणेति । तथा प्रवे दयामि प्रकर्षेण हेतुदृष्टांतैश्चित्तसंततावारोपयामि । अथ चैकार्थिकानि चैतानि कथं प्रति पादयामीति दर्शयति । सहार्थेन दार्ष्टांतिकेन सार्थः वर्ततइति पुष्करिणीदृष्टांतस्तं तथा सह हेतुना अन्वयव्यतिरेकरूपेण वर्ततइति सहेतुस्तं तथानूतमार्गं प्रतिपादयिष्यामि यथा ते पुरुषाअप्राप्तप्रार्थितार्थाः पुष्करिणीकर्दमे कुरुत्तारे निमग्नाएवं वक्ष्यमाणास्तीर्थि काअपारगाः संसारसागरस्य तत्रैव निमज्जंतीत्येवंरूपोर्थः सोपपत्तिकः प्रदर्शयिष्यते । तथा सह निमित्तेन उपादानकारणेन सहकारिकारणेन वा वर्ततइति सनिमित्तं सकारणं दृष्टां तार्थं नूयोऽपरैर्हेतुदृष्टांतैरुपदर्शयामि सोहं सांप्रतमेव ब्रवीमि शृणुत यूयमिति ॥ ११॥

लोयंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो पुक्करिणीबुइया कम्मंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो सेउदए बुइए कामन्नोगेयं खलु मए अप्पा हट्टु समणाउसो से सेए बुइए जण जाणावयंच खलु मए अपाहट्टु स मणाउसो तेवहवे पउमवरपोंमरीए बुइए रायाणंच से खलु मए अप्पाह ट्टु समणाउसो से एगे महंपउमवरपोंमरीए बुइए अन्नउत्थियाय खलु म ए अप्पाहट्टु समणाउसो ते चत्तारिंपुरिसजाया बुइया धम्मंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से निक्कू बुइए धम्मतित्थंच खलु मए अप्पाहट्टु स मणाउसो सेतीरे बुइए धम्मकहंच खलुमए अप्पाहट्टु समणाउसो से स द्दे बुइए निव्वाणंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से उप्पाए बुइए एव मेयंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से एवमेयं बुइयं ॥ १२ ॥

अर्थ–खलु इति वाक्यालंकारे (लोयंचमएके०) एलोक जे मनुष्य खेत्र ते में (अप्पा हट्टु के०) पोता थकी जाणीने (समणाउसो के०) अहोआयुष्यमंत श्रमणो (पुक्क रिणीबुइयाके०) पुष्करणी कही अने (कम्मंचखलुमए के०) अष्ट प्रकारना कर्म ते

तिपराक्रमज्ञोऽहमेवैतत्पुंडरीकमुत्खनिष्यामीत्युक्त्वा सन्निक्षुर्नातिक्रामेत्तां पुष्करिणीं न प्रविशेत्तस्यास्तीरे स्थित्वा तटस्थएव शब्दंकुर्यात् । तद्यथा । उत्पत हेपुंडरीक उत्पत इति शब्दश्रवणात्तडुत्पतितं पुंडरीकं ॥ १० ॥ दार्ष्टांतिकं योजयन् श्रीवीरः शिष्यानाह । कीर्तिते कथिते ज्ञाते दृष्टांते हेश्रमणाआयुष्मंतोऽर्थः पुनरस्य ज्ञातव्योनवति नवद्भिः । एवमुक्ते नगवता बहवोनिर्ग्रंथानिर्ग्रंथ्यश्च श्रमणं नगवंतं महावीरं वंदंति कायेन नमस्यंति शब्दैः स्तुवंति । वंदित्वा नमस्कृत्वाच एवं वदेयुः । तद्यथा । कीर्तितं ज्ञातमुदाहरणं नगवता । अर्थं पुनरस्य न जानीमइति पृष्टोनगवान् तान् बहून्निर्ग्रंथादीनेवं वदेत् । हंतेति आमंत्रणे । हेश्रमणाआयुष्मंतोयन्नवद्भिरहं पृष्टस्तदाख्यामि आविर्नावयामि प्रकटयामि कीर्तयामि पर्यायैः प्रवेदयामि हेतुदृष्टांतैः । एकार्थिकान्येव वा एतानि कथमाख्यामीत्याह । सार्थः सहेतुरन्वयव्यतिरेकरूपः कारणं कार्यसाधनं तेन युतं नूयोनूयउपदर्शयामि ॥ ११ ॥

॥ टीका–सांप्रतमपरं पंचमं तद्विलक्षणं पुरुषजातमधिकृत्याह । (अहनिरकूलूहे इत्यादि) अथेत्यानंतर्ये । चतुर्थपुरुषादयमनंतरः पुरुषस्तस्यामूनि विशेषणानि । निक्षणशीलोनिक्षुः पचनपाचनसावद्यानुष्ठानरहिततया निर्दोषाहारन्नोजी तथा रूक्षोरागद्वेषरहितः । तौहि कर्मबंधहेतुतया स्निग्धौ । यथाहि स्नेहान्नावाड्जोन लगति तथा रागद्वेषान्नावात्कर्मरेणुर्नलगत्यतस्तड्हितोरूक्षइत्युच्यते । तथा संसारसागरस्य तीरार्थी तथा क्षेत्रज्ञः खेदज्ञोवा । पूर्वं व्याख्यातान्येव विशेषणानि । यावन्मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः सचान्यतरस्यादिशोनुदिशोवाऽऽगत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा समंतादवलोकयेद्दा बहुमध्यदेशन्नागे तन्महदेकं पद्मवरपौंमरीकं पश्यति तांश्चतुरः पुरुषान् पश्यति यत्र च व्यवस्थितानिति । किंनूतांस्त्यक्ततीरानप्राप्तपद्मवरपुंमरीकान् पंकजलावमग्नान् पुनस्तीरमप्यागंतुमसमर्थान् दृष्ट्वाच तांस्तदवस्थान् ततोसौ निक्षुरेवमिति वक्ष्यमाणनीत्या वदेत् । तद्यथा । अहोइति खेदे णमितिवाक्यालंकारे । इमे पुरुषाश्चत्वारोपि अखेदज्ञायावन्नोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञायस्मात्ते पुरुषाएवं ज्ञातवंतोयथा वयं पद्मवरपौंडरीकमेवमनेन प्रकारेण यथैते मन्यंते तथोत्क्षेप्तव्यं । अपि त्वहमस्मिन् निक्षुरूपोयावङति पराक्रमज्ञएतद्गुणविशिष्टोऽहमेतत्पौंडरीकमुत्क्षेप्स्यामि उत्खनिष्यामि समुद्धरिष्यामीत्येवमुक्त्वाऽसौ नातिक्रामेत् तां पुष्करिणीं न प्रविशेत् । तत्रस्थएव यत्कुर्यात्तद्दर्शयति । तस्यास्तीरे स्थित्वा तथाविधं शब्दं कुर्यात्तद्यथा ऊर्ध्वमुत्पतोत्पत । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । हे पद्मवरपौंडरीक तस्याः पुष्करिण्यामध्यदेशात्त्वमुत्पतोत्पत । अथ तच्छब्दश्रवणानंतरं तडुत्पतितमिति ॥ १० ॥ तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं दर्शयितुकामः श्रीमन्म

व्यापाराः । सकर्दमः । यथा पंकेमग्नमात्मानमुद्धर्तुं दुःशक्यं । एवंविषयेष्वपीति विषय पंकयोः साम्यं । जनं सामान्यलोकं जानपदा आर्यदेशजातास्तानाश्रित्य तानिबहूनि पुंडरीकाणि उक्तानि राजानं चक्रवर्त्यादिकमाश्रित्य पद्मवरपुंडरीकमुक्तं । अन्यतीर्थिकानाश्रित्य ते चत्वारः पुरुषाउक्ताः । तेषां राजपुंडरीकोद्धरणे सामर्थ्याभावाद्धर्मं चाऽऽत्मन्याश्रित्य सन्निक्षुरुक्तः । तस्यैव राजपुंडरीकोद्धरणेसमर्थत्वात् धर्मतीर्थं च खल्वाश्रित्य मया तत्तीरमुक्तं धर्मदेशनां चाश्रित्य मया सन्निक्षोः संबधी शब्दउक्तः । निर्वाणं मोक्षंचाश्रित्य पुंडरीकस्योत्पातउक्तः । एवमेतल्लोकादिकं च खल्वात्मन्याश्रित्य मया श्रमणायुष्मन् से एतत्पुंष्करिण्यादिकं दृष्टांतत्वेनकिंचित्साधर्म्यादेवमुक्तं ॥ १२ ॥

॥ टीका—तदधुना नगवान् पूर्वोक्तस्य दृष्टांतस्य यथास्वं दार्ष्टांतिके दर्शयितुमाह ॥ (लोगंचेत्यादि) लोकमिति मनुष्यक्षेत्रं । चशब्दउत्तरापेक्षया समुच्चयार्थः । खलुरिति वाक्यालंकारे । मयेत्यात्मनिर्देशः । योयं लोकोमनुष्याधारस्तमात्मन्याहृत्य व्यवस्थाप्य अपाहृत्य वा आयुष्मन् श्रमण आत्मनावा मयाऽऽहृत्य न परोपदेशतः सा पुंष्करिणी प आधारनूतोक्ता । तथा कर्म चाष्टप्रकारं यद्बलेन पुरुषपौंडरीकाणि नवंति । तदेवंनूतं कर्म मयात्मन्याहृत्य आत्मनावा आहृत्यअपाहृत्य वा । एतडुक्तं नवति । हेश्रमण आयुष्मन् सर्वावस्थानां निमित्तनूतं कर्माश्रित्य तडुदकं दृष्टांतत्वेनोपन्यस्तं कर्मचात्र दार्ष्टांतिकं नविष्यति । तत्रेछामदनकामाः शब्दादयोविषयास्ते एव जुज्यंतइतिनोगाः । यदिवा कामाइछारूपामदनकामास्तु नोगास्तान् मयात्मन्याहृत्य सेयः कर्दमोऽनिहितस्तथा पंके निमग्नोडुःखेनात्मानमुद्धरत्येवं विषयेष्वासक्तोनात्मानमुद्धर्तुमलमित्येतत्कर्दमविषययोःसाम्यमिति । यथा जनं सामान्येन लोकं तथा जनपदे नवाजानपदाविशिष्टार्यदेशोत्पन्नागृह्यंते । ते चार्द्धषड्विंशतिजनपदोन्नवाइति तांश्च समाश्रित्य मया दार्ष्टांतिकत्वे नांगीकृत्य तानि तानि बहूनि पद्मवरपौंडरीकाणि दृष्टांतत्वेनानिहितानि । तथा राजानमात्मन्याहृत्य तदेकं पद्मवरपौंडरीकं दृष्टांतत्वेनानि हितं तथान्यतीर्थिकान् समाश्रित्य ते चत्वारः पुरुषजाताअनिहितास्तेषां राजपौंडरीकोद्धरणे सामर्थ्यवैकल्यात् । तथा धर्मंच खल्वात्मन्याहृत्य श्रमणायुष्मन सन्निक्षुः रूढवृत्तिरहितस्तस्यैव चक्रवर्त्यादिराजपद्मवरपौंडरीकोद्धरणसामर्थ्यसद्भावाद्धर्मं तीर्थंच खल्वाश्रित्य मया तत्तीरमुक्तं । तथा सद्धर्म देशनां चाश्रित्य मया सन्निक्षुसंबंधी शब्दोऽनिहितस्तथा निर्वाणं मोक्षपदशेषं कर्मक्षयरूपमीषत् प्राग्नाराख्यं नूनागोपर्यवस्थितक्षेत्रखंडं चात्मन्याहृत्य सपद्मवरपौंडरीकस्योत्पातोऽनिहितइति । सांप्रतं समस्तोपसंहारार्थमाह । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण एतल्लोकादिकंच खल्वात्मन्याहृत्याश्रित्य मया श्रमणायुष्मन् से एतत्पुष्करिण्यादिकं दृष्टांतत्वेन किंचित्साधर्म्यादेवमेतडुक्तमिति ॥ १२ ॥

में (अप्पाहट्टुके०) पोताथकी जाणीने (समणाउसोके०) हेसाधुउं (सेउदएके०) ते पाणी (बुइएके०) कह्यो (कामभोगेयंके०) कामभोगने खलुइति वाक्यालंकारे (मएके०) में (अप्पाहट्टुके०) पोता थकी जाणीने (समणाउसोके०) हेसाधुउं (सेके०) तेने (सेएके०) कर्दम (बुइएके०) कह्यो जेकर्दममांहे खुता थका जीव पोते पोताने उद्धरी नशके अने (जणके०) सामान्यलोक ते (जाणवयंचके०) जनपद एटले आर्य देशना उपना एवा अनेक लोक तेने (खलु मएके०) में निश्चेकरी (अप्पाहट्टुके०) पोताथकी जाणीने (समणाउसोके०) हे आयुष्यमंत श्रमणो (तेबहवेके०) तेवा घणा एक (पउमवरपोंमरीएबुइए के०) पद्मकमलो कह्या तथा (रायाणंचसेखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोके०) राजा जे सामान्य लोकना अधिपति केवायछे तेने में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो (एगेमहंपउमवरपोंमरीएबुइएके०) एक महोटुं पुंमरीक कमल कह्यो अने जे (अन्नउत्थियायके०) अन्यतीर्थिक क्रियावादि अक्रियावादि प्रमुख (तेके०) तेने (खलुमएअप्पा हट्टुसमणाउसो के०) में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो (चत्तारिपुरिसजायाबुइया के०) चार पुरुष जात कह्या तेउं राजारूपमहोटो कमल तेने उद्धरवाने असमर्थ कह्या अने (धम्मंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोसेनिरकूबुइए के०) जे श्रुतचारित्ररूप धर्म तेने में पोता थकी जाणीने हेश्रमणो निक्कु एटले अणगार कह्यो जेमां पुंमरीक कमलरूप राजाने उद्धरवानी समर्थाइ कही (धम्मतित्थंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसो सेतीरेबुइए के०) तथाजे धर्मतीर्थते निश्चें में पोता थकी जाणीने तीर एटले कांठो कह्यो (धम्मकहंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोसेसद्देबुइएके०) तथा जेधर्म कथा ते निश्चें में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो तेने में शब्द कह्यो (निव्वाणंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोसेउप्पाएबुइए के०) तथा जे मोक्षपद ते निश्चें में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो तेने में कमलनो उद्धरवो कह्यो (एवमेयंच के०) ए पूर्वोक्त सर्व लोकादिकपदार्थ ते खलु शब्दवाक्यालंकारेंछे (मएके०) में (अप्पाहट्टुके०) आप थकी जाणीने (समणाउसो के०) हेश्रमणो आयुष्यमंतो (सेएवमेयंबुइयंके०) तेने पुष्करणी कमल प्रमुख एरीते में कह्या एटले सामान्य प्रकारें दृष्टांत कह्यो हवे विशेष थकी राजा उद्धरणादिकभाव कहेछे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—लोकं मनुष्यक्षेत्रं । चशब्दः समुच्चये । खलुर्वाक्यालंकारे । मया (अप्पाहट्टुत्ति) आत्मनि आहत्य व्यवस्थाप्य अथवा आत्मना स्वयमाहत्या ज्ञात्वा न परोपदेशतः सा पुष्करिणी उक्ता । कर्म चाष्टप्रकारं खलु मयात्मनि आहत्य आत्मना वा आहत्य हेश्रमण आयुष्मन् तडुदकमुक्तं पुंडरीकोत्पत्तिकारणं । कामइछारूपा भोगामदन

पुव्वेणं के०) अनुक्रमे (लोगं के०) लोकपणे (उववन्ना के०) उपना छे (तंजहा के०) ते देखाडेछे (आरियावेगे के०) एक आर्य मनुष्यते साढा पचीश देशना उपना (अणारियावेगे के०) एक अनार्य देशना उपना ते संग यवन सवर बब्बरादिक जाणवा (उच्चागोत्तावेगे के०) एक उंचगोत्रना उपना (णीयागोयावेगे के०) एक नीचगोत्रना उपना (कायमंतावेगे के०) एक लांबा दीर्घ काय वाला (रहस्समंतावेगे के०) एक ऱ्हस्व न्हानी काय वाला (सुवन्नावेगे के०) एक रुडा वर्ण वाला (डुवन्नावेगे के०) एक माठा वर्ण वाला (सुरूवावेगे के०) एक नला रूपवाला (डुरूवावेगेके०) एक माठा रूप वाला (तेसिंचणंमणुयाणं के०) ते मनुष्य मांहे वली (एगेरायाजवइ के०) एक राजा होय ते राजा केवोहोय तोके (महयाहिमवंत के०) महोटो हिमवंत (मलय के०) मलयाचल (मंदरके०) मेरुपर्वत (महिंद के०) महेंइ एनी पेरे जेनु (सारेके०) सामर्थ्यपणुछे (अच्चंतविसुद्धरायकुलवंसप्पसूतेके०) अत्यंत निर्मल दोष रहित राजानु कुल उत्तम क्षत्रीयनो कुल तेने विषे जन्म पाम्याछे (निरंतररायलरकण के०) आंतरा रहितजे राजाना लक्षण तेणेकरी (विराइयंगमंगे के०) विराजमान एटले शोनायमानछे शरीरना अंगोपांग जेना (बहुजण के०) घणालोक (बहुमाण के०) घणो मान आपीने (पूइए के०) पूजेछे (सव्वगुणसमिद्धे के०) समस्त राजाना जे गुणछे तेणेकरी समृद्धिवान एटले संपूर्णछे (खत्तिएके०) क्षत्रिय जातवंत (मुदिए के०) सर्वकाल प्रमोद सहित (मुद्धाभिसित्ते के०) मातापितादिक परिवार मलीने राजाभिषेक कीधोछे (माउपिउसुजाए के०) माता पिता सुजातवंतछे अथवा माता पितानो सुविनीत सुपुत्रछे (देयप्पिए के०) वत्सल तथा करुणाना गुणे करी सहित (सीमंकरे के०) मर्यादानोकरनार (सीमंधरे के०) मर्यादानो धरनार (खेमंकरे के०) कल्याणनो करनार उपद्रवनो टालनार (खेमंधरे के०) कल्याणनो धरनार (मणुस्सिंदे के०) मनुष्यनुं इंइ (जणवयपिया के०) जनपद एटले देशना लोकने पिता समान (जणवयपुरोहिए के०) जनपद एटले देशना लोकने शांतिनु करनार उपद्रवनुं निवारक (सेउकरे के०) मार्गनो देखाडनार (केउकरे के०) अद्भुत कार्यनो करनार (नरपवरेके०) मनुष्य मांहे प्रधान (पुरिसपवरे के०) पुरुषमांहे प्रधान (पुरिससीहे के०) पुरुष मांहे सिंह समान (पुरिसआसीविसे के०) पुरुष मांहे आशीविष सर्प समान अपराध खमे नही (पुरिसवरपोंमरीए के०) पुरुष मांहे प्रधान पुंमरीक कमल समान (पुरिसवरगंधहत्थी के०) पुरुष मांहे प्रधान गंध हस्ति समान (अड्ढे के०) धन धान्यादिके परिपूर्ण (दित्ते के०) दीपता (वित्ते के०) पहोला (विछिन्न के०) विस्तीर्ण एवा (विउल के०) विपुल एटले घणा (नवण के०) घर (सयणासण के०) पल्यंका

इह खलु पाईणंवा पडीणंवा उदीणंवा दाहिणंवा संतेगतिया मणुस्सा न वंति अणुपुव्वेणं लोगं उववन्ना तं जहा आरियावेगे अणारियावेगे उ च्चागोत्तावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे रहस्समंतावेगे सुवन्नावेगे डु वन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे तेसिंचणं मणुयाणं एगे राया नवइ महयाहिमवंतमलयमंदरमहिंदसारे अच्चंतविसुद्धरायकुलवंसप्पसूते निरंतररायलरकणविराइयंगमंगे बहुजणबहुमाणपूइए सव्वगुणस मिद्धे खत्तिए मुदिए मुद्धानिसित्ते माउपिउसुजाए दयप्पिए सीमंकरे सी मंधरे खेमंकरे खेमंधरे मणुस्सिंदे जणवयपिया जणवयपुरोहिए सेउक रे केउकरे नरपवरे पुरिसपवरे पुरिससीहे पुरिसआसीविसे पुरिसवर पौंमरीए पुरिसवरगंधहत्थी अड्ढे दित्ते वित्ते विछिन्नविउलनवणसय णासणजाणवाहणाइस्से बहुधणबहुजातरूवरतए आउगपउगसंपउ त्ते विछडियपउरनत्तपाणे बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पनूते प डिपुस्सकोसकोठागाराउधागारे बलवं डुबलपच्चामिए उहयकंटयं म लियकंटयं उद्धयकंटयं निहयकंटयं अकंटयं उहयसत्तू निहयसत्तू मलि यसत्तू उद्धियसत्तू निज्जियसत्तू पराइयसत्तू ववगयडुभिरकमारिनयवि प्पमुक्कं रायवन्नउ जहाउववाइए जावपसंतडिंबमरमरज्जं पसाहेमाणे विहरंति तस्सणं रन्नो परिसा नवइ उग्गा उग्गपुत्ता नोगा नोगपु त्ता इरकागाइ इरकागाइ नायना नायना कोरवा कोरवा नट्टा नट्टपुत्ता माहणा माहणपुत्ता लेछइ लेछइपुत्ता पसछारो पसछारोपुत्ता सेणावइ सेणावइपुत्ता ॥ १३ ॥ तेसिंचणं एगतीए सड्ढानवइ कामंतं समणावा माहणावा संपहारिंसु गमणाए तछ अन्नतरेणं धम्मेणं पन्नत्तारोवयं इ म्मेणं धम्मेणं पन्नवइस्सामो सेएवंमायाणह नयंतारो जेहामए एस धम्मे सुयरकाए सुपन्नते नवइ ॥ १४ ॥

अर्थ—(इहखलुके०) ए मनुष्य लोक मांहे खलुइति वाक्यालंकारे (पाईणंवाके०) पूर्वदिशि (पडीणंवाके०) पश्चिमदिशि (उदीणंवाके०) उत्तरदिशि (दाहिणंवाके०) दक्षणदिशि ए चार दिशि अथवा विदिशिए (संतेगतियामणुस्सानवंतिके०) कोइ एक मनुष्य होय ते (अणु

तेना पुत्र (सेणावइसेणावइपुत्ताके०) सेनाधिपतिना पुत्र इत्यादिक सनावर्णन थकी जाणवो.॥१३॥(तेसिंचणं के०) तेमांहे (एगतीएके०) कोइ एक पुरुष (सड्ढीनवइके०) धर्म करवाने श्रद्धावंत धर्मार्थी होय तेने एवो (कामंतं के०) धर्मार्थी जाणीने (समणावा माहणावाके०) श्रमण ब्राह्मण मली (संके०) सम्यक् प्रकारे पोतानो धर्मप्रतिबोधवानिमित्त (पहारिंसुगमणाए के०) तेना समीपे आलोचवो चिंतवे ते केवो (तन्नअन्नतरेणंधम्मेणंपन्नत्तारोवयं के०) त्यां अमे अमारा धर्मना प्ररूपणहार आपणो धर्म प्ररूपशुं एवो आलोची राजाने संमुख आवी बोल्या (इम्मेणंधम्मेणंपन्नवइस्सामो के०) ए आगल कहे छे ते धर्म परूपशुं तेज कहेछे (सेएवंमायाणह के०) अमे धर्म कहीशुं ते एम जाणो (नयंतारो के०) अहो नय थकी राखनार (जेहामए के०) जेम ए प्रकारे अमारो (एसधम्मेसुयरकाएसुपन्नत्तेनवइ के०) ए धर्म स्वाख्यात सप्रज्ञप्तछे. ॥१४॥

॥ दीपिका–एवंसामान्येन दृष्टांतयोजनामुक्त्वा विशेषेण तामाह । (इहेति) इहास्मिन् लोके । खलुर्वाक्यालंकारे । प्राच्यां प्रतीच्यां दक्षिणायामुदीच्यामन्यतरस्यां वा दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्यानवंति । आनुपूर्व्येणेमं लोकमाश्रित्योत्पन्नाः । तद्यथा । आर्याआर्यदेशोत्पन्नास्तदन्येऽनार्याएके उच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्राएके कायो महाकायः प्रांशुत्वं तद्विद्यते येषां ते कायवंतोऽह्रस्ववंतोवामनकुब्जादयः सुवर्णाः शोननकांतयोऽडर्वर्णाः कृस्नरूक्षादिवर्णाएके सुरूपाएके डुष्टरूपास्तेषांमध्ये महान् कश्चिदेकोराजा नवति । किंनूतः । महाहिमवन्मलयमंदरमहेंद्राणामिव सारं सामर्थ्यं धनं वा यस्य सतथा । इत्येवं राजवर्णकोयावडुपशांतडिंबडमरं राज्यं प्रसाधयन् तिष्ठति । तत्र डिंबं परानीकनयं डमरं स्वराष्ट्रक्षोनः । तस्य च राज्ञः पर्षत् सना नवति । तद्यथा । उग्रातत्कुमाराश्च उग्रपुत्राः । एवं नोगपुत्रादयोपि ज्ञेयाः । (लेहइत्ति) लिप्सुकोवणिगित्यर्थः । प्रशास्तारोबुध्युपजीविनोमंत्र्यादयः सेनापतयश्च एके ॥ १३ ॥ तेषां मध्ये कश्चिदेवैकः श्रद्धावान् धर्मलिप्सुर्नवति । कामं निश्चितं तं श्रद्धावंतं श्रमणावा तदंतिकगमनाय प्रधारितवंतस्तत्प्रतिबोधाय तत्समीपे गमनं चिंतितवंतः । तत्रान्यतरेण धर्मेण स्वसमयप्रसिद्धेन प्रज्ञापयितारोवयमिति विचिंत्य तं राजानं स्वकीयेन धर्मेण प्रज्ञापयिष्यामएवं संप्रधार्य राजांतिकं गत्वा एवमूचुः । यथाहं वदामि एवं नवंतोयूयं जानीत यथा येन प्रकारेण मयैषधर्मः स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोनवतीत्येवं तीर्थिकः स्वमतानुरागी राजादेः स्वानिप्रायेणोपदेशं ददाति । तत्राद्यः पुरुषस्तज्जीवतच्छरीरवादी राजानमुद्दिश्यैवं धर्मदेशनां चक्रे ॥ १४ ॥

॥ टीका–तदेवं सामान्येन दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोर्योजनां कृत्वाऽधुना विशेषणप्रधाननूत

दिक आशन भद्रासन (जाण के०) पालखीप्रमुख (वाहणाइसे के०) गाडी घोडादिक तेणेकरीने आकीर्ण (बहुधण के०) घणो धन (बहुजातरूव के०) घणो सुवर्ण (रतए के०) घणो रजत एटले रुपु (आउगपउगसंपउत्ते के०) अर्थ लाभ बमणा बमणादिक तेहवो उपाय व्यापारादिक तेणे करी संयुक्तछे (विछडियपउरभत्तपाणे के०) घणा भात पाणी लोक जमेछे विशेषे देवरावेछे (बहुदासीदास के०) घणा दासी तथा दासछे (गोके०) वृषभ (महीस के०) भेंस (गवेलग के०) गाय गेटी गाडरा बकरी ते (प्पभूते के०) प्रभूत एटले घणाछे वली (पडिपुस्रु के०) प्रतिपूर्णछे (कोसके०) लक्ष्मीना भंमार (कोठागारा के०) धानना भंमार (उद्धागारे के०) खड्ग त्रिसूल भालादिकना भंमार (बलवं के०) पोते बलवंतछे (डुब्बल के०) डुर्बलछे (पवामिए के०) वैरी जेना (उहतकंटयं के०) विणास्याछे समस्त गोत्री जेणे (मलियकंटयं के०) ऋद्धि अपहारीने मान भंग कीधाछे गोत्री जेणे (उद्दयकंटयं के०) उदेश थकी काढयाछे गोत्री जेणे (निहयकंटयं के०) जेणे गोत्रीने हराव्याछे (अकंटयंके०) प्रतिमल वैरीयें रहितछे (उहयसत्तूके०) विणास्याछे शत्रू जेणे (निहियसत्तूके०) जेणे शत्रुने हराव्याछे (मलियसत्तूके०) ऋद्धि अपहरीने मान भंग कस्याछे वैरी जेणे (उद्धियसत्तुके०) उदेश थकी कढाव्याछे वैरी जेणे (निज्जियसत्तुके०) विशेष थकी जीत्याछे वश कस्याछे वैरी जेणे (पराइयसत्तू के०) तेना राज्यने लेवे करी पराजय पमाड्याछे शत्रु जेणे वली (ववगय के०) वपगत एटले गयाछे जेना राज्यने विषे शुं गयाछे ते कहेछे (डुब्भिक्खके०) डुकाल डुर्भिक्ष (मारिके०) देवादिकना करेला मारी मरकीना भय (भयके०) वैरीना भय थकी (विप्पमुक्कके०) रहितछे (रायवन्नउके०) एरीते राजानुं वर्णन (जहाउववाइए के०) जेम उववाइ सूत्रमां वर्णन कस्योछे तेना सरिखो (जावपसंत के०) ज्यांलगे उपशमाव्याछे (डिंबमरमरं के०) स्वचक्र परचक्रना भय ज्यां नथी एवो राज्य (पसाहेमाणे के०) पालतो थको (विहरति के०) विचरेछे (तस्सणंरन्नो के०) हवे तेराजानी (परिसाभवंति के०) परषदा केवी होए ते कहेछे. (उग्गाउग्गपुत्ता के०) उग्रकुलना उपना ते उग्रकुलना पुत्र (भोगाभोगपुत्ता के०) भोगकुलना उपना ते भोगकुलना पुत्र (इरकागाइरकागाइ के०) श्रीआदीश्वरनो वंश जे इक्ष्वाग तेना उपना ते इक्ष्वागवंशना पुत्र (नायानानायानाके०) ज्ञातकुलना उपना ते ज्ञातकुलना पुत्र (कोरवाकोरवा के०) कौरवकुलना उपना ते कौरवकुलना पुत्र (भट्टाभट्टपुत्ताके०) सुभटकुलना उपना ते सुभटना पुत्र (माहणामाहणपुत्ताके०) ब्राह्मणकुलना उपना ते ब्राह्मणना पुत्र (लेछइलेछइपुत्ताके०) लछाधिपति वणिक् जाति विशेष तेना पुत्र (पसछारोपसछारोपुत्ता के०) घणो जेने घरे लक्ष्मीनो विस्तार होय तेने घेर उपना ते

स्वदर्शनानुरंजितोन्यस्यापि राजादेः स्वाभिप्रायेणोपदेशं ददाति । तत्रायः पुरुषजातस्त ज्जीवतच्छरीरवादी राजानमुद्दिश्यैवं धर्मदेशनां चक्रे ॥ १४ ॥

तं जहा उड्ढंपादतला अहे केसग्गमच्छया तिरियंतेयपरियंते जीवे एस आयापज्जवे कसिणे एसजीवे जीवति एसमय णोजीवइ सरीरे धरमाणे धरइ विणठंमिय णोधरइ एयं तं जीवियं भवति अदहणाए परेहिं निज्जइ अगणिज्जामिए सरीरे कवोतवन्नाणि अट्ठीणि भवंति आसंदीपं चमापुरिसा गामं पच्चागच्छंति एवं असंते असंविज्जमाणे जेसिंतं असं ते असंविज्जमाणे तेसिंतं सुयरकायं भवति अन्नोभवति जीवो अन्नं सरी रं तम्हा तेएवं नोविपडिवेदेंति अयमाउसो आयादीहेतिवा हस्सेतिवा परिमंमलेतिवा वट्टेतिवा तंसेतिवा चउरंसेतिवा आयतेतिवा छलंसिए तिवा अठंसेतिवा किण्हेतिवा णीलेतिवा लोहियहालिद्दे सुक्किलेतिवा सुब्भिगंधेतिवा डुब्भिगंधेतिवा तित्तेतिवा कडुएतिवा कसाएतिवा अंबि लेतिवा महुरेतिवा कक्खडेतिवा मउएतिवा गुरुएतिवा लहुएतिवा सि एतिवा उसिणेतिवा निद्धेतिवा लुक्खेतिवा एवं असंते असंविज्जमाणे जे सिंतं सुयरकायं भवति अन्नोजीवो अन्नंसरीरं तम्हा तेणो एवं उवलब्भंति १५

अर्थ—हवे त्यां आदि पुरुषजात ते तज्जीव तच्छरीरवादी जीव छे ते राजाने उद्देशी पोताना धर्मनी देशना आपेछे (तंजहा के०) ते जेमछे तेम कहेछे (उड्ढंपादतला के०) पगना तलीआ थकी उपरें अने (अहेकेसग्गमच्छया के०) मस्तकना केशाग्र थकी नीचे त था (तिरियंतेयपरियंते जीवेके०) तिर्छो त्वचा जे चामडी ते पर्यंत जीव जाणवो एटला सी म शरीर थकी निकलतो जीव जुदो देखातो नथी तेथीज जणायछे के तेज शरीर अने तेज जीव एटले एशरीर तेहज जीवछे परंतु ए शरीर थकी आत्मा जुदोछे एम न जाणवुं (एसआयापज्जवेकसिणे के०) ए जे शरीरछे तेहिज आत्मानुं संपूर्ण पर्याय अवस्था विशेष जाणवो (एसजीवेजीवति के०) जेटलो काल ए काया जीवे तेटलो काल ए जीव पण जीवे (एसमयणोजीवइ के०) ए शरीर मरण पामे तेवारे जीव पण म रण पामे पण णोजीवइ एटले जीवे नहीं (सरीरेधरमाणेधरइ के०) ए शरीर ज्यां सुधी पांचभूतने धरे त्यां सुधी आत्माने पण धरे (विणिठंमिय णोधरइके०) ए शरीर विणठे

राजदार्ष्टांतिकं तडुद्धरणार्थत्वात्सर्वप्रयासस्येति दर्शयितुमाह । (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन्मनुष्यलोके । खलु वाक्यालंकारे । इहास्मिन् लोके प्राच्यां प्रतीच्यां दक्षिणायामुदीच्यामन्यतरस्यां वा दिशि संति विद्यंते एके केचन तथाविधामनुष्या आनुपूर्व्येणेमं लोकमाश्रित्योत्पन्नान्नवंति तानेवानुपूर्व्येण दर्शयति । तद्यथेत्युपन्यासार्थः । आराद्याताः सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्यास्तत्र क्षेत्रार्याअर्धषड्विंशतिजनपदोत्पन्नास्तद्व्यतिरिक्तास्त्वनार्याएके केचन नवंति । ते चानार्याः क्षेत्रोत्पन्नाअमी डृष्टव्याः ॥ सगजवणसवरबब्बर,कायमुरुडोडुगोडपक्किणिया ॥ आवगाहो णरोमय,पारसखसखवासिया चेव ॥ १ ॥डोंबिलयतत्नसबोक्कस,निल्लंधपुलिंदकोंबन्नमररुया ॥ कोंचाय चीण चंचुय,मालव दमिलाकुलंपाय ॥ २ ॥ कैकयकिरीयहयमुह,खरमुह तह तुरगमेंढयमुहाय ॥ हयकसुगयकसुा, असे य अणारिया बहवो ॥ ३ ॥ पावायचंडदंडा,अणारिया णिग्घिणा णिरणुकंपा ॥ धम्मोत्ति अरकराइं, जे सुण णज्जंतिसुमिणेविइत्यादि । तथोच्चैर्गोत्रमिक्ष्वाकुवंशादिकं येषां ते तथाविधाएके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिनः । वाशब्दउत्तरापेक्षया विकल्पार्थः । तथा नीचैर्गोत्रं सर्वजनावगीतं येषांते तथा एके केचन नीचैर्गोत्रोदयवर्तिनोन सर्वे । वाशब्दः पूर्ववदेव । ते चोच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्रा वा । कायोमहाकायः प्रांशुत्वं तद्विद्यते येषां ते कायवंतस्तथा न्हस्ववंतोवामनककुब्जवडनादयएके केचन तथाविधनामकर्मोदयवर्तिनस्तथाशोननवर्णाः सुवर्णाः प्रतप्तचामीकरचारुदेहास्तथा डुर्वर्णाः कृसरूक्षादिवर्णाएके केचन तथा सुरूपाः सुविनक्तावयवचारुदेहास्तथा डुष्टरूपाडुरूपाबीनत्सदेहास्तेषां चोच्चैर्गोत्रादिविशेषणविशिष्टानां महान् कश्चिदेवैकस्तथाविधकर्मोदयाडाजा नवति सविशेष्यते महाहिमवन्मलयमंदरमहेंडाणामिव सारः सामर्थ्यं विनवोवा यस्य सतथा इत्येव राजवर्णकोयावडुपशांतार्डिबडमरं राज्यं प्रसाधयंस्तिष्ठतीति । तत्र डिंबः परानीकस्तृगालिकोडमरः स्वराष्ट्रक्षोनः। पर्यायावेतावत्यादरख्यापनार्थमुपात्तौइति । तस्य चैवंविधगुणसंपडुपेतराज्ञएवंविधा पर्षन्नवतीति । तद्यथा । उग्रास्तत्कुमाराश्चोग्रपुत्राः । एवं नोगपुत्रादयोपि डृष्टव्याः ॥ शेषंसुगमं । यावत्सेनापतिपुत्रइति । णवरंलेन्नइत्ति । लिप्सुकः सवणिगादिस्तथा प्रशास्तारोबुध्युपजीविनोमंत्रिप्रनृतयः ॥ १३ ॥ तेषां च मध्ये कश्चिदेवैकः श्रद्धावान् धर्मलिप्सुः काममित्येवधृतार्थेऽवधृतमेतद्यथायं धर्मश्रद्धालुरवधार्यं च तं धर्मलिप्सुतया श्रमणाब्राह्मणावा संप्रधारितवंतः समालोचितवंतोधर्मप्रतिबोधनिमित्तं तदंतिकगमनाय तत्र चान्यतरेण धर्मेण स्वसमयप्रसिद्धेन प्रज्ञापयितारोवयमित्येवं नाम संप्रधार्य तं राजानं स्वकीयेन धर्मेण प्रज्ञापयिष्यामएवं संप्रधार्य राज्ञोंतिकं गत्वैव मूचुः । तद्यथा । एतद्यथाहं कथयिष्यामि एवमितिच वक्ष्यमाणनीत्या नवंतोयूयं जानीत नयात्रातारोवा यथा येन प्रकारेण मयैपधर्मः स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोनवतीत्येवं तीर्थिकः

आकतुल समान सुंहालो फरशछे (गुरुएतिवा के०) लोहवत् भारी फरशछे (लहुएति वा के०) अर्कतुलवत् हलवो फरशछे (सिएतिवा के०) शीतल फरशछे (उसिणेति वा के०) उष्ण फरशछे (निद्धेतिवा के०) चीकणो फरशछे (लुक्खेतिवा के०) लुखो फरशछे एटला फरश मांथी आत्मानो कयो फरशछे (एवंअसंतेअसंविज्जमाणेजेसिं के०) ए कारण माटे जे आत्माने अछतो अविद्यमान कहे (तंसुयक्खायंभवति के०) तेनो पक्ष भलो स्वाख्यात जाणवो वली जे (अन्नोजीवो के०) अन्य जीव (अन्नंस रीरं के०) अने शरीर पण अन्यछे एम कहेछे (तम्हाके०) तस्मात् (तेणो एवंउवलभं ति के०) ते एवातना अजाण पणाने लीधे नथी जाणता माटे ते नास्तिकछे.॥ १५ ॥

॥ दीपिका–तद्यथा । ऊर्ध्वं पादतलादधश्च केशाग्रमस्तकात्तिर्यक्च त्वक्पर्यंतो जीवः। कोर्थः । यदेव शरीरं सएव जीवः । न शरीरादन्यः कश्चिदात्मास्ति । अयं कायएवात्मनः पर्यंतोऽवस्थाविशेषः कृत्स्नः संपूर्णः शरीरोपलंभे जीवएवोपलब्धइत्य र्थः। एपकायोयावज्जीवति तावज्जीवोपि जीवतीत्युच्यते । एपकायोयदा मृतस्तदा जीवोपिमृतइति व्यपदिश्यते । यावच्छरीरमभ्यंगं धरति तिष्ठति तावज्जीवोपि विनष्टे शरी रे जीवोपि न धरति विनष्टइत्यर्थः । तदेवं यावदेतच्छरीरसच्युतं तावदेव जीवस्य तज्जीवि तं भवति विनष्टे शरीरे तद्रूपोजीवोपि विनष्टइति कृत्वाऽऽदहनायासमंताद्दहनार्थं श्म शानादौ नीयतेऽसौतस्मिंश्च शरीरेऽग्निना ध्मापिते कपोतवर्णान्यस्थीनि केवलमुपलभ्यंते न कश्चित्तदपरोजीवः । ते च तद्बांधवाजघन्यतोपिच चत्वारः । आसंदी मंचकः सपंचमो येषांते आसंदीपंचमाः पुरुषास्तं कायमग्निना ध्मापयित्वा स्वं ग्रामं प्रत्यागच्छंति । यदि पुन रात्मा कायाद्भिन्नः स्यात्तदा निर्गच्छन् दृश्येत नच दृश्यते तस्मात्तज्जीवस्तदेव शरीरमिति स्थितं । एवमुक्तनीत्याऽसौ जीवोऽसन्नविद्यमानोयेषामयं पक्षोयत्काये तिष्ठन् गछंश्च संवे द्यमानोऽननुभूयमानोजीवइति तेषां तत् स्वाख्यातं भवति । येषां पुनरन्योजीवोऽन्यच्छरीर मेवंभूतोऽप्रमाणकएवांगीकारस्तस्मात्ते मूढतया प्रवर्तमानाएवं वक्ष्यमाणं न विप्रतिवेदयंति जानंति । यथा हे आयुष्मन् अयमात्मा शरीराद्भिन्नः स्वीक्रियमाणः किंपरिमाणः स्या दिति वाच्यं । किंदीर्घः किंन्ह्रस्वइत्यादि संस्थानेषु किंपरिमंडलइत्यादि वर्णेषु किंकृष्णइ त्यादि गंधयोः किं सुरभिगंधइत्यादि । रसेषु किं तिक्तइत्यादि स्पर्शेषु किंकर्कशइत्यादि । तदेवं संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शानामनावादसन्नविद्यमानोऽसंवेद्यमानोपि येषां तत् स्वा ख्यातं भवति यथान्योजीवोन्यच्छरीरमिति पक्षस्तस्मात्पृथगविद्यमानत्वात् ते जीववादि नोनैवात्मानमुपलभंते ॥ १५ ॥

॥टीका–तद्यथोर्ध्वमुपरि पादतलादधश्च केशाग्रमस्तकात्तिर्यक् च त्वक्पर्यंतोजीवः। एत

छते जीवनो पण विनाश थाय एाोधरइ एटले पछी जीवने धरी न शके (एयंतंजीवियंनवति के०) ए जीवनो जीवितव्य छे तेथी शरीर विणशे थके आत्मा पण विणशे एवो करीने (अद ह णाएपरेहिंनिज्जइके०) अन्यलोक बालवाने अर्थे स्मशानादिकने विषे लेइजाय (अगणि ज्जामिएसरीरे के०)तेवारे अग्नीयें करी शरीर प्रज्वाले छते त्यां निःकेवल(कवोतवन्नाणिके०) कपोत वर्णे (अठीणिनवंति के०) अस्थि एटले हाम देखायछे परंतु तेथकी अन्य आ त्मादिक पदार्थ कोइ देखाय नहीं के जे थकी आत्मानुं अस्तिपणु अमे जाणीयें (आ संदीपंचमापुरीसागामंपच्चागछंति के०) तथा पांचमो जेनो मांचोछे एवा चार पुरुष ते मुवेलाने प्रज्वालीने पोताने गामे आवे माटे जो आत्मा शरीर थकी जुदो होय तो श रीर थकी निकलतो देखाय अने ते जेवारे नथी देखातो तो जाणियें छैए जे तेहिज शरीर अने तेहीज जीवछे (एवंके०) एरीते (असंतेके०) जीव अछतोछे (असंविज्जमाणे के०) अविद्यमान जातो थको जाणवामां नथी आवतो (जेसिंतंअसंते के०) जेनो ए पक्षछे के जीव अछतोछे (असंविज्जमाणे के०) अविद्यमानछे जेनो एवो पक्षछे (तेसिंतं के०) तेनो ए पूर्वोक्त वचन (सुयरकायंनवति के०) स्वाख्यातछे एम जाण वो अने जेनो (अन्नोन्नवतिजीवो के०) जीव अन्यछे अने (अन्नंसरीरं के०) शरीर पण अन्यछे एवुं जे कहेछे ते गामरी प्रवाहे पड्या थका (तम्हा के०) तस्मात् (ते एवं के०) ते एवो (नोविपडिवेदेंति के०) जे आगल कहेशे ते नथी जाणता. तेज कहेछे (अयमाउसो के०) अहो आयुष्यमंत ए जीव शरीर थकी जुदो गणीए तो एनो शो प्रमाणछे (आयादीहेतिवा के०) आत्मा शुं दीर्घ एटले लांबोछे (हुस्से तिवा के०) किंवा न्हस्व एटले अंगुल अथवा तंडुल प्रमाण न्हानोछे (परिमंमलेति वा के०) किंवा चुडी अथवा चंद्र मंमलने आकारेंछे (वट्टेतिवा के०) किंवा वाटला लाडुने आकारेंछे (तंसेतिवा के०) किंवा त्रिखूणा सीघोडाने आकारेंछे (चउरंसेति वा के०) चौखूणोछे (आयतेतिवा के०) थांना सरीखो लांबोछे (छलंसिएतिवाके०) छखूणा छहांशनोछे (अठंसेतिवा के०) आठहांसनो आठ खूणोछे (किण्हेतिवाके०) काले वर्णेछे (णीलेतिवा के०) नीले वर्णेछे (लोहियहालिद्दसुक्किलेतिवा के०) लाल वर्णेछे किंवा हलदर जेवा पीले वर्णेछे किंवा उज्वले वर्णेछे (सुब्भिगंधेतिवा के०) सु रभिगंध कपूर समानछे (डुब्भिगंधेतिवा के०) डुर्गंध गुमडादि समानछे अथवा रस आश्री (तित्तेतिवा के०) तीखो रस मिरची समानछे (कडूएतिवा के०) कडवुंरस नीमडा समानछे (कसाएतिवा के०) कसायलो काचाफल समान रसवालोछे (अंबिलेति वा के०) खाटा रस समानछे (महुरेतिवा के०) मिसरी समान मधुर रसेछे तथा स्पर्शआश्री (करकडेतिवा के०) कर्कश खरखरो फरशछे (मउएतिवा के०)

सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे मंसाउअढिं अन्निनिवटित्ताणं उवदं सेज्जा अयमाउसो मंसे अयं अढी एवमेव नत्थि केइ पुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे करय लाउ आमलकं अन्निनिवटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो करतले अयं आमलए एवमेव णत्थि केइपुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे दहिउ नवनीयं अन्निनिव टित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो नवनीयं अयंतु दही एवमेव णत्थि केइपुरिसे जाव सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे तिलेहिंतो तिल्लं अन्नि निवटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो तेल्लं अयं पिन्नाए एवमेव जाव स रीरं से जहा णाम एकेइपुरिसे इक्कूतोखोतरसं अन्निनिवटित्ताणं उवदं सेज्जा अयमाउसो खोतरसे अयं छोए एवमेव जाव सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे अरणीतोअग्गिं अन्निनिवटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो अरणी अयं अग्गी एवमेव जाव सरीरं एवं असंते असंविज्जमाणे जेसिं तं सुयरकायं नवति तं अन्नोजीवो अन्नं सरीरं तम्हा ते मिछा ॥ १६ ॥

अर्थ-(सेजहाणामए के०) ते जेम यथा दृष्टांते छे तेम कही देखाडे छे. नाम इति संनावनायेछे (केइपुरिसे के०) कोइ एक पुरुष (कोसीउ के०) पडीयार थकी (असिंके०) खड्ग काढीने (अन्निनिवटित्ताणंके०) देखाडे अने (उवदंसेज्जा के०) कहे (अयमाउसो के०) हे आयुष्यमंतो आ (असी के०) तलवार (अयंकोसी के०) ए पडियार एम जुदा जुदा देखाडी आपे (एवमेवणत्थिकेइपुरिसेअन्निनिवटित्ताणंउवदंसेत्तारोअयमाउसोआयाइयंसरीरं के०) जेम ए पडिहार अने ए खड्ग एम बन्ने जुदा जुदा करी देखाडे तेम एवो कोइ पुरुष शरीर अने जीवने जुदो जुदो करी देखाडनार जगत मांहे नथी (सेजहाणामए के०) ए वचन यथा दृष्टांते करी देखाडेछे नाम इति संनावनायेंछे (केइपुरिसेमुंजाउइसियं के०) जेम कोइ एक पुरुष मुंज एटले तृण थकी तेनो गर्न नूत जे शली तेने (अन्निनिवटित्ताणं के०) जुदा जुदा काढीने (उवदंसेज्जा के०) देखाडे जे ए तृण अने ए शली एम देखाडे के (अयमाउसोके०) अहो आयुष्यमंत (मुंजेइयंइसियं के०) ए तृण अने ए शली (एवामेवनत्थिकेइपुरिसेउवदंसेत्तारोअयमाउसोआयाइयंसरीरं के०) एम आत्मा अने शरीरने जुदो जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष

डुक्तं नवति। यदेवैतच्छरीरं सएव जीवोनैतस्माच्छरीराव्द्यतिरिक्तोस्त्यात्मेत्यतस्तत्प्रमाणएव नवत्यसावित्येवंच कृत्वैषआत्मायोयं कायोऽयमेव च तस्यात्मनः पर्यवः कृत्स्नः संपूर्णः पर्यायोऽवस्थाविशेषः तस्मिंश्च कायात्मन्यवाप्ते तदव्यतिरेकाज्जीवोप्यवाप्तएव नवति । एषच कायोयावंतं कालं जीवेदविकृतश्चास्ते तावंतमेव कालं जीवोपि जीवतीत्युच्यते । तदव्यतिरेकात्तथैव कायोयदा मृतोविकारनाग्नवति तदा जीवोपि न जीवति जीवशरीरयोरेकात्मकत्वात् । यावदिदं शरीरं पंचनूतात्मकमव्यंगं चरति तावदेव जीवोपीति । तस्मिंश्च विनष्टे सत्येकस्यापि नूतस्यान्यथानावे विकारे सति जीवस्यापि तदात्मनोविनाशस्तदेवं यावदेतच्छरीरं वातपित्तश्लेष्माधारं पूर्वस्वनावादप्रच्युतं तावदेव तज्जीवस्य जीवितं नवति । तस्मिंश्च विनष्टे तदात्मा जीवोपि विनष्टइतिकृत्वा आदहनायासमंतादहनार्थं श्मशानादौ नीयते यतोऽसौ तस्मिंश्च शरीरेऽग्निध्मापिते कपोतवर्णान्यस्थीनि केवलमुपलन्यंते न तदतिरिक्तोऽपरः कश्चिद्विकारः समुपलन्यते यतआत्मास्तित्वशंकास्यात् । ते च तद्बांधवाजघन्यतोपि चत्वारः । आसंदी मंचकः सपंचमोयेषांते आसंदीपंचमाः पुरुषास्तं कायमग्निनाध्मापयित्वा पुनः स्वग्रामं गच्छंति। यदि पुनस्तत्रात्मा निजशरीराद्भिन्नः स्यात्ततः शरीरान्निर्गच्छन्दृश्येत नचोपलन्यते तस्माज्जीवस्तदेव शरीरमिति स्थितं। तदेवमुक्तनीत्याऽसौ जीवोऽसन्नविद्यमानस्तत्र तिष्ठन् गच्छंश्चासंवेद्यमानोयेषामयं पक्षस्तेषां तत्स्वाख्यातं नवति । येषां पुनरन्योजीवोन्यच्छरीरमेवंनूतोऽप्रमाणकएवान्युपगमस्तस्मात्ते स्वयमूढ्याप्रवर्तमानाएवमिति वक्ष्यमाणं तेनैव विप्रतिवेदयंति जानंति । तद्यथा । आयुष्मन् शरीराद्बहिरन्युपगम्यमानः किंप्रमाणकः स्यादितिवाच्यं । तत्र किं दीर्घः शरीरात्प्रांशुतरः उत ऱ्हस्वोंगुष्ठश्यामाकतंडुलादिपरिमाणोवा । तथा संस्थानानां परिमंडलादीनां मध्ये किंसंस्थानस्तथा कृष्णादीनां वर्णानां मध्ये कतमवर्णवर्ती तथा किंगंधः षण्णां रसानां मध्ये कतमरसवर्ती तथा ऽष्टानां स्पर्शानां मध्ये कतमोयस्पर्शोवर्तते। तदेवं संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शान्यरूपतया कथमप्यसावगृह्यमाणोऽसन्नसौ तथापि केनापि प्रकारेण संवेद्यमानोपि येषां तत्स्वाख्यातं नवति यथान्योजीवोन्यच्छरीरकमित्ययं पक्षस्तस्मात्पृथगविद्यमानत्वात्ते शरीरात्पृथगात्मवादिनोनैव वक्ष्यमाणनीत्यात्मानमुपलनंते ॥ १५ ॥

से जहा णाम एकेइ पुरिसे कोसीउ असिं अनिनिवट्टित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो असी अयं कोसी एवमेव णत्थि केइपुरिसे अनिनिवट्टित्ताणं उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे मुंजाउ इसियं अनिनिवट्टित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो मुंजे इयं इसियं एव मेव नत्थि केइपुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं

कायाद्भिन्नोजीवइति । अत्रार्थे बहून् दृष्टांतानाह । तद्यथा । कश्चित्पुरुषोमुंजात्तृणविशेषात् (इसिअंति) तद्भंभूतां शलाकां पृथक् कृत्य दर्शयेत् तथा मांसादस्थि करतलादामलकं दध्नोनवनीतं तिलेन्यस्तैलं इक्षोरसमरणितोऽग्निमभिनिवृत्य पृथक् कृत्य दर्शयेदेवं शरीरादपि जीवं नास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतोसन्नात्मा शरीरात्पृथगसंवेद्यमानश्चेति । येषां च स्वमतानुरागादेतत्स्वाख्यातं नवति । यदन्योजीवोन्यच्च शरीरमिति । एवमात्मा च पृथक् नोपलभ्यते तस्मात्तन्मिथ्या ॥ १६ ॥

॥टीका—तद्यथा नाम कश्चित्पुरुषः कोशतः परिवारादसिं खड्गमभिनिर्वर्त्य समाकृष्यान्येषामुपदर्शयेत्तद्यथाऽयमायुष्मानसिः खड्गोयं च कोशः परिवारएवमेव जीवशरीरयोरपिनास्त्युपदर्शयिता । तद्यथाऽयं जीवइदंच शरीरमिति । नचास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतः कायाद्भिन्नोजीवइति । अस्मिंश्चार्थे बह्वोदृष्टांताः संतीत्यतोदर्शयितुमाह । तद्यथा वा कश्चित्पुरुषोमुंजात् तृणविशेषात् (इसियंति) तद्भंभूतां शलाकां पृथक्कृत्य दर्शयेत् । तथा मांसादस्थि तथा करतलादामलकं तथा दध्नोनवनीतं तिलेन्यस्तैलमिति । तथेक्षोरसं तथाऽरणितोऽग्निमभिनिर्वर्त्य दर्शयेदेवमेव शरीरादपि जीवमिति । नचास्त्येवमुपदर्शयितातोऽसन्नात्माशरीरात्पृथगसंवेद्यमानश्चेति । प्रयोगश्चात्र सुखडुःखभाक् परलोकायायीनास्त्यात्मा तिलशश्छिद्यमानोपि शरीरकेपृथगनुपलब्धेर्घटात्मवत् व्यतिरेकेणच कोशखड्गवत्तदेवंयुक्तिभिः प्रतिपादितोप्यात्माभवेत् । येषां पृथगात्मदिनां स्वदर्शनानुरागादेतत्स्वाख्यातं नवति । तद्यथा । अन्योजीवः परलोकानुयायी अमूर्तोऽन्यच्च तद्भववृत्तिमूर्तिमच्छरीरमेतच्च पृथङ्नोपलभ्यते तस्मात्तन्मिथ्या यैः कैश्चिदुच्यते यथास्त्यात्मा परलोकानुयायीति ॥ १६ ॥

सेहंता तंहणह खणह छणह मदह पयह आलुंपह विलुंपह सहसाकारेह विपरामुसह एतावतावजीवे णत्थि परलोएवा ते णो एवं विप्पडिवेदेंति तंकिरियाइवा अकिरियाइवा सुक्कडेइवा डुक्कडेइवा कल्लाणेइवा पावएइवा साहुइवा असाहुइवा सिद्धाइवा असिद्धाइवा निरएइवा अनिरएइवा एवंतेविरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामभोगाइं समारंभंति भोयणाए ॥ १७ ॥ एवं एगेपागब्भिया णिक्खम्म मामगं धम्मं पन्नवेंति तंसद्दहमाणा तंपत्तियमाणा तंरोयमाणा साहु सुयक्खाए समणेतिवा माहणेतिवा कामं खलु आउसो तुमं पूययामि तं जहा असणेणवा पाणेणवा खाइमेणवा साइमेणवा

नथी (सेजहाणामए के०) ते वली यथा दृष्टांते करी देखाडेछे (केइपुरिसेमंसाउंअठी अभिनिव्वटित्ताणंउवदंसेज्जा के०) कोइक पुरुष मांस थकी हाम जुदा काढीने देखाडेके (अयमाउसो के०) अहो आयुष्यमंतो (मंसेअयंअठीके०) आ मांस अने ए हाड (एवामेवणत्थिकेइपुरिसेउवदंसेत्तारोअयमाउसोआयाइयंसरीरं के०) एम आ आत्मा अने ए शरीर एने जुदो जुदो देखाडनार कोइ पुरुष नथी (सेजहाणामएकेइपुरिसेकरयलाउ आमलकंअभिनिव्वटित्ताणंउवदंसेज्जा के०) यथा दृष्टांते कोइ एक पुरुष करतल एटले हथेली थकी आमलो जुदो करी देखाडे (अयमाउसोकरतलेअयंआमलए के०) हे आयुष्यमंतो आ हथेली अने आ आमलो (एवमेवनत्थिकेइपुरिसेउवदंसेत्तारोअयमाउसोआयाइयंसरीरंके०) एम आ आत्मा अने आ शरीर एरीते जुदा जुदा करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी (सेजहाणामएकेइपुरिसेदहीउंनवनीयंअभिनिव्वटित्ताणंउवदंसेज्जाअयमाउसोनवनीयं अयं तुदहीएवामेवनत्थिकेइपुरिसेजावसरीरं के०) यथा दृष्टांते केइ एक पुरुष दही थकी माखण जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमंतो आ माखण अने आ दही एम आ आत्मा अने आ शरीर एरीते जुदा जुदा करी देखाडनार कोइ पुरुप नथी. एमज यथा दृष्टांते कोइ एक पुरुष तिल थकी तेलने जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमंतो आ तेल अने आ खल एम आत्मा अने शरीरने कोइ पुरुष जुदो करी देखाडनार नथी एमज यथा दृष्टांते कोइ एक परुष सेलडी थकी सेलडीनो रश जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमंतो आ इक्षुरस अने आ छोतरा एम आत्मा अने शरीरने जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी यथादृष्टांते कोइ एक पुरुष अरणी थकी अग्नी जुदो काढीने देखाडे के हे आयुष्यमंतो आ अग्नि अने आ अरणी एम शरीर अने अत्माने जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी. ॥ (एवंअसंतेके०) एम अछतो अने (असंविज्जमाणे के०) अविद्यमान जे आत्माछे तेने पूर्वोक्त पदार्थोने जेम जुदा जुदा करी देखाडे तेम ए आत्मा अने शरीरने जुदो जुदो करी देखाडनार जगतमां कोइ पुरुष नथी (जेसिंतंसुयखायंनवतितंके०) ते कारण माटे तेहिज जीव अने ते हिज शरीर ए पक्ष सत्य स्वाख्यात जाणवो (तम्हाके०) तस्मात् (अन्नोजीवोके०) अन्य जीव अने (अन्नंसरीरंके०) शरीर पण अन्यछे ए वचन (तेमिच्छाके०) तेमिथ्याछे ॥१६॥

॥ दीपिका–आत्मनास्तित्वं दृष्टांतैराह । (सेजहा इत्यादि) तद्यथा नाम कश्चित्पुरुषः कोशतः प्रत्याकारादसिं खड्गमभिनिवृत्य समाकृष्यान्येषामुपदर्शयेत् । तद्यथा । अयमायुष्मन् असिः खड्गः । अयं च कोशप्रत्याकारः । एवमेव जीवशरीरयोर्नास्त्युपदर्शयिता तथायं जीवइदंच शरीरमिति नास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतोन

थका तथा (साहुसुयरकाएके०) ए अमारो धर्म जलो रुडो स्वाख्यातछे अने अनेरा दर्शनी बापडा मुगध लोकने परलोकनो जय देखाडी आ लोकना सुख थकी वंचेछे ते कारणे (समणेतिवाके०) अहो श्रमणो (माहणेतिवाके०) अहो ब्राह्मणो तेहिज जीव अने तेहिज शरीर ए धर्मने घणोज सारो कहीने (कामंखलुके०) निश्चे थकी ए धर्मने इवो (आउसोके०) अहो आयुष्मंतो अमे तमने उछ्खा नहीकां क्यां एक कपटी दर्शनी यें तमने वेंच्यो हतो तेकारणे अमे तमारा उपकारी छैए माटे अमने (तुमंपूययामि के०) तुमे पूजो प्रत्युपकार करो (तंजहाके०) तेहिज कहेछे (असणेणवा पाणेणवा खाइमेणवा साइमेणवाके०) अशने करी पाने करी खादिमे करी स्वादिमे करी ए चतुर्विध आहारे करी पूजो (वत्थेणवाके०) वस्त्रे करी (पडिग्गहेणवाके०) पात्रादिके करी (कंवलेणवाके) कंवले करी (पायपुंछणेणवाके०) पायपुंछणे करी पूजो प्रतिलाजो (तछेगेपूयणाएकें०) त्यां कोइ एक एवी पूजाने विषे (समाउंछिसुके०) गृद्ध थया अथवा (तछेगेपूयणाएनिकाइंसु के०) त्यां कोइ एक पूजाने विषे प्रवर्त्तमान थका एवा राजादिक लोकने ते नास्तिको पोताना धर्मने विषे निश्चल करे अने तेने कहेके ए अमारो उपदेश्यो धर्म टालीने अनेरो धर्म आदरशो नही ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—एतदध्यवसायी सनास्तिकः स्वतः प्राणिनां हंता व्यापादकः स्यात् अन्येषामपिवक्ति । हणहइत्यादि । घातयत क्षणत क्षणनं हिंसा दहत पचत आलुंपत विलुंपत सहसा कारयत विपरामृशत एतावान् शरीरमात्रएव तावज्जीवोजीवाजावाच्च नास्ति परलोकः । ततस्तेन न तज्जीवतच्छरीरवादिनोनास्तिकाए तच्च विप्रतिवेदयंते नांगीकुर्वंति । तद्यथा । क्रियां सदनुष्ठानात्मिकामक्रियां वाऽसदनुष्ठानरूपां सुकृतं वा डुष्कृतं वा कल्याणंवा पापकंवा साधुकृतमसाधुकृतंवा इत्यादिका चिंतैव नास्ति । कोर्थः । सुकृतानि साधुत्वात्कल्याणफलानि डुष्कृतान्यसाधुत्वाद्विरूपफलानीति । आत्मानं विनाऽसौ चिंता न युज्यतइत्यर्थः । तथा सुकृतेन सिद्धिर्डुष्कृते नासिद्धिस्तथा डुष्कृतेनैव नरकः अनरकस्तिर्यङ्नरामरगतिरूपः स्यादित्यादिका चिंता न युक्ता । जीवस्यैवाजावात् (एवंतेत्ति) एवमुक्तप्रकारेण ते नास्तिकाविरूपरूपैः कर्मसमारंजैः सावद्यानुष्ठानैर्विरूपान् कामजोगान् समारजंते समाददति तडपजोगार्थं ॥ १७ ॥ एवमुक्तप्रकारेणैके नास्तिकाः प्रागल्जिकाः प्रागल्न्येन चरंति धृष्टतां प्राप्ताआत्मा नास्तीति वदंति । तथा निष्क्रम्य स्वतानुगतां प्रव्रज्यां गृहीत्वा मामकं धर्मं मदीयोऽयं धर्मइत्यंगीकृत्य परेन्यः प्रज्ञापयंति । यद्यपि नास्तिकानां नास्ति दीक्षा तथापि बौद्धादिमते प्रव्र

वछेणवा पडिग्गहेणवा कंबलेणवा पायपुंछणेणवा तछेगे पूयणाए समाउहिंसु तछेगेपूयणाए निकाइंसु ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे ए पक्ष ग्रहण करनार नास्तिकछे ते देखाडेछे एवा अध्यवसायें प्रवर्त्ततो एवो नास्तिकवादि (सेहंताके०) ते पोते पण प्राणीओने हणे केमके ते प्राणातिपातने विषे दोष ने अण जाणतो थको छे माटे बीजानें पण जीवघात करवानो उपदेश आपे ते उपदेश क हेछे. (तंहणहके०) ते खड्गादिके करी प्राणीउने हणो एमां दोष नथी (खणहके०) पृथिव्यादिकने खणो (छणहके०) छेदो (महहके०) बाळो दहन करो (पयहके०) पचावो रसोइ करो (आलुंपहके०) लूंटो (विलुंपहके०) विशेषे लूंटो (सहसाक्कारे हके०) वस्त्र पात्रादिक सर्व अण विमास्या करो (विपरामुसहके०) इत्यादिक विपरी त मतिनुं उपदेश आपे (एतावतावजीवेणछिके०) एटले जीव नथी जेटले शरीर ते टलेज जीवछे (परलोएवाके०) परलोक पण नथी तो परलोकने अनावे पोतानी इछा प्रमाणे खाउ पीउ लाड करो (तेणोएवंविप्पडिवेदेंतिके०) अंही श्री सुधर्म स्वामि श्रीजंबू स्वामिने कहेछे केपरलोकने अनावे पुण्य पाप पण नथी जेनो एवो पक्षछे ते बापडा नास्ति क मतिना धणी एवाछे ते आगल वक्ष्यमाण एटले जे आगल हुं कहीश तेने नथी जा णता (तंकिरियाइवाके०) ते क्रिया एटले रुडा अनुष्ठानने नथी जाणता (अकिरिया इवाके०) माठा अनुष्ठानने नथी जाणता (सुक्कडेइवाडुक्कडेइवाके०) रुडुंकर्युं नथी जाणता तथा माठुंकर्युं नथी जाणता (कल्लाणेइवापावएइवा के०) पुण्यने नजा णे पाप नजाणे (साहुइवाअसाहुइवा के०) साधु तथा असाधुने नथी जाणता (सिद्धाइवाअसिद्धाइवा के०) सिद्धने नजाणे असिद्ध एटले संसारने नजाणे (निरए इवाअनिरएइवाके०) नारकी अने अनारकी जे तिर्यंच मनुष्य अने देवता तेने पण नजा णे (एवंतेविरूवरूवेहिं के०) एरीते ते नास्तिकवादि विरूपरूप आत्मानो अनाव पडिवजीने (कम्मसंमारंनेहिंके०) नाना प्रकारना कर्मने समारंने ते नाना प्रकारना कर्म ने करवे करीने (विरूवरूवाइंकामनोगाइंसमारंनंतिनोयणाएके०) नाना प्रकारना काम नोगने संमारंने नोजननेअर्थेनोगवे ॥ १७ ॥ (एवंएगेपागप्निायाके०) एरीते एक नास्तिक वादि अत्यंत धृष्ठ थका एम कहे छे के (णिरकम्मके०) ए आत्मा शरीर थकी जुदो नथी एटले तेहिज शरीर अने तेहिज जीव एवा धृष्ठ पणे प्रवर्त्ते तथा पोताना दर्शन ने अनुसारे प्रवर्ज्या ग्रहण करीने (मामगंधम्मंपन्नवेंतिके०) महारो धर्म सत्यछे एवी प्ररूपणा करे (तंसदहमाणाके०) तेनास्तिकवादिनो नाषेलो जे धर्म तेने सर्दहता (तं पत्तियमाणा के०) तथा तेने सत्य करीमानता (तंरोयमाणा के०) तेने विषे रुचि करता

मूर्तिमतः शरीरादन्यदमूर्तं ज्ञानमात्मन्यनुभूयते तस्य चामूर्तेनैव गुणिना भाव्यमतः श रीरात्पृथग्भूतश्चात्माऽमूर्तोज्ञानवत्तदाधारभूतोस्तीति । नचात्माभ्युपगममंतरेण तज्जीव तच्छरीरवादिनः किंचिद्विचार्यमाणं मरणमुपपद्यते । दृश्यंते च तथाभूतएवशरीरे म्रिय माणामृताश्च । कुतः समागतोहं कुत्र चेदं शरीरं परित्यज्य यास्यामि तथेदं मे शरीरं पुराणं कर्मेत्यधमादिकाः शरीरात्पृथग्भावेनात्मनि संप्रत्ययाश्चानुभूयंते । तदेवमपि स्वा नुभवसिद्धेप्यात्मनि एके केचन नास्तिकाः पृथक्जीवास्तित्वमश्रद्दधानाः प्रागल्भिकाः प्रागल्भ्येन चरंति धृष्टतामापन्नाश्चभिदधति । तद्यथा । अयमात्मा शरीरात्पृथग्भूतः स्यात्ततः संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शान्यतमगुणोपेतः स्यात् । नच ते वराकाः स्वदर्शनानु रागांधतमसावृतदृष्टयएतद्विदंति । तथा मूर्तस्यायं धर्मोनामूर्तस्य । नहि ज्ञानस्य सं स्थानादयोगुणाः संभाव्यंते । नच तत्तदभावेपि नास्तीत्येवमात्मापि संस्थानादिगुणरहि तोपि विद्यतइति । एवं युक्तियुक्तमप्यात्मानं धाष्ट्यान्नाभ्युपगच्छंति तथा निष्क्रम्यच स्व दर्शनविहितां प्रव्रज्यां गृहीत्वा नान्योजीवः शरीराद्विद्यतइत्येवं योधर्मोमदीयोयमित्येव मभ्युपगम्य स्वतोऽपरेषां च तं तथाभूतं धर्मं प्रतिपादयंति । यद्यपि लोकायतिकानां ना स्ति दीक्षादिकं तथाप्यपरेण शाक्यादिना प्रव्रज्याविधानेन प्रव्रज्य पश्चाल्लोकायतिकमधी यानस्य तथाविधपरिणतेस्तदेवाभिरुचितमतोमामकोयं धर्मः स्वयमभ्युपगच्छंत्यन्येषां च प्रज्ञापयंति । यदिवा नीलपटाद्यभ्युपगंतुः कश्चिदस्त्येव प्रव्रज्याविशेषइत्यदोषइति । सां प्रतं तत्प्रतिज्ञापितशिष्यव्यापारमधिकृत्याह । (तंसद्दहमाणेत्यादि) तं नास्तिकवाद्यु पन्यस्तं धर्मं विषयिणामनुकूलं श्रद्दधानाः स्वमतावतिशयेन रोचयंतस्तथा प्रतिपादयंतो वितथभावेन गृह्णंतस्तथा तत्र रुचिं कुर्वंतस्तथा साधुशोभनमेतद्यथास्वाख्यातोयथाव स्थितोभवतोधर्मोन्यथा सति हिंसादिष्ववर्तमानः परलोकभयात्सुखसाधनेषु मांसम द्यादिष्वप्रवृत्तिं कुर्वंतोमनुष्यजन्मफलवर्जिताभवेयुः । ततः शोभनमकारि भवता हेश्र मण ब्राह्मण इतिवा यदयं तज्जीवतच्छरीरधर्मोऽस्माकमावेदितः काममिष्टे तदस्माकं ध र्मकथनं । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । हेआयुष्मंस्त्वया वयमभ्युद्धृताः कार्पटिकैस्तीर्थिकै र्वंचिताः स्युरिति । तस्मादुपकारिणं त्वां भवंतं पूजयामोहमपि कंचिदायुष्मतोभगवतः प्रत्युपकारं करोमि । तदेव दर्शयति । तद्यथा । (असणेत्यादि) सुगमं यावत्पादपुंछन कमिति । तत्रैके पूर्वोक्तया पूजया पूजायां वा (समाउट्टिंसुत्ति) समावृताः प्रव्हीभू तास्ते राजानः पूजां प्रति प्रवृत्तास्तदुपदेष्टारोवा पूजामध्युपपन्नाः संतस्तं राजादिकं स्वद र्शनप्रतिपन्नमेके केचन स्वदर्शनस्थित्या हिताहितप्राप्तिपरिहारेषु निकाचितवंतोनियमि तवंतः । तथाहि । भवतेदं तच्छरीरमित्यभ्युपगंतव्यमन्योजीवोन्यच्च शरीरमित्येतत् परि त्याज्यमनुष्ठानमपि एतदनुरूपमेतद्विधेयमित्येवं निकाचितवंतइति ॥ १७ ॥

ज्य पश्चान्नास्तिकीनूते संनवति प्रव्रज्या। अथवा नीलपटाद्यंगीकृतः कश्चिदस्त्येव प्रव्रज्या विशेषइति। तं नास्तिकधर्मं श्रद्दधानारोचयंतः स्वमतौ प्रतियंतोऽवितथनावेन गृह्णंतः साधुशोजनमेतद्यथा स्वाख्यातोजवता धर्मः। हेश्रमण ब्राह्मण शोजनं कृतं यदयं तज्जीव तच्छरीरधर्मोऽस्माकमुक्तः काममिष्टमेतदस्माकं। खलुर्वाक्यालंकारे। हे आयुष्मन् उप कारिणं त्वां पूजयाम्यहमिति तच्छिष्यावदंति। पूजामेवाह। (असणेत्यादि) सुगमं। यावत् पादपुंछनकमिति। तत्रैके पूजायां (समाउट्टिंसु) समावृत्ताः प्रह्वीनूताराजाद यः। एके तत्र स्वमतस्थित्या निकाचितवंतस्तं नृपादिकं स्वधर्मे नियमितवंतइत्यर्थः १७

॥ टीका—एतदध्यवसायीच सल्लोकायतिकः स्वतः प्राणिनामेकेंद्रियादीनां हंता व्यापादको नवति प्राणातिपाते दोषानावमन्युपगम्यान्येषामपि प्राण्युपघातकारिणामुपदेशं ददाति। तद्यथा। प्राणिनः खड्गादिना घातयत पृथिव्यादिकं खनतेत्यादिसुगमं। यावदेतावानेव शरीरमात्रएव जीवस्ततः परलोकिनोऽनावान्नास्ति परलोकोऽतस्तदनावाच्च यथेष्टमासत। तथाचोक्तं। पिब खादच साधु शोजने यदतीतं वरगात्रि तन्न ते॥ नहि नीरुगतं निवर्त ते समुदयमात्रमिदंकलेवरं। तदेवं परलोकयायिनोजीवस्यानावान्नपुण्यपापे स्तोनापि पर लोकइत्येवं येषां पक्षस्ते लोकायतिकास्तज्जीवतच्छरीरवादिनोनैवैतद्वक्ष्यमाणं प्रतिवेदयंति अन्युपगछंति। तद्यथा। क्रियांवा सदनुष्ठानात्मिकामक्रियांवा असदनुष्ठानरूपां एवं नैव ते विप्रतिवेदयंति। यदिहि आत्मा तत्क्रियावांन्नकर्मणोनोक्ता स्यात्ततोपापनयात्सदनुष्ठान चिंता स्यात्तदनावाच्च सत्क्रियादिचिंतापि दूरोत्सादितैव। तथा सुकृतं डुष्कृतं वा कल्या णमिति पापमिति वा साधुकृतमसाधुकृतमित्यादिका चिंतैव नास्ति। तथाहि। सुकृता नां कल्याणविपाकिनां साधुतया ऽवस्थानं डुष्कृतानां च पापविपाकिनामसाधुत्वेनावस्था नमेतडुनयमपि सत्यात्मनि तत्फलनुजि संनवति तदनावाच्च कुतोनर्थकौ हिताहितप्रा प्तिपरिहारौ स्यातां। तथा सुकृतेन कल्याणेन साध्वनुष्ठानेनाशेषकर्मक्षयरूपासिद्धिस्तथा डुष्कृतेन पापानुबंधिना असाध्वनुष्ठानेन नरकोनरकेवा तिर्यक्नरामरगतिलक्षणं स्यादित्ये वमात्मिका चिंतैव न नवेत्तदाधारस्यात्मसद्भावस्यानन्युपगमादिति नावः। पुनरपि लोकाय तिकानुष्ठानदर्शनायाह। (एवंतेइत्यादि) एवमनंतरोक्तेन प्रकारेण ते नास्तिकाआत्मानावं प्रतिपाद्य विरूपं नानाप्रकारं रूपं स्वरूपं येषांते तथा कर्मसमारंनाः सावद्यानुष्ठानरूपाः पशुघातमांसनक्षणसुरापाननिर्लांछनादिकास्तैरेवंनूतैर्नानाविधैः कर्मसमारंनैः कृषीवलानु ष्ठानादिनिर्विरूपकान् कामनोगान् समारनंतेसमाददति तडुपनोगार्थमिति ॥ १७ ॥ सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतमुपसंजिघृक्षुः प्रस्तावमारचयन्नाह। (एवंचेगइत्यादि)

वादि (पहीणापुव्वसंजोगं के०) पूर्वे संयोगजे पुत्र कलत्रादिक ते थकी पण भ्रष्ट थया अने (आयरियंमग्गं के०) आर्य मार्गनेपण (असंपत्ता के०) अणपाम्या एटले नपाम्या (इतिके०) एम उनय भ्रष्ट थया थका (तेणोहव्वाएके०) ते एवा प्रकारे पुष्करणीने तीरे पण रह्या नहीं अने (णोपाराएके०) पार पण पहोता नहीं (अंतराकामनोगेसुविसन्ना के०) विचाले कामनोगरूप कादवने विषेज खूता थका रह्या ते पुंमरीक कमल सरखा राजाने उद्धरी नशके (इतिपढमपुरुषजाएतज्जीवतच्छरीरएतिआहिएके०) इति तज्जीव तच्छरीरवादिनामा एम प्रथम पुरुष जात कह्यो ॥ १ए ॥

॥ दीपिका–ये नागवतादिलिंगमंगीकृत्य पश्चान्नास्तिकाः संवृतास्तेषां पूर्वमादौ प्रव्रज्याग्रहणावसरएतत् परिज्ञातं नवति । यत् श्रमणायतयोनविष्यामोऽनगाराः किंचन इव्यं तद्रहितानिष्किंचनाअपुत्राअपशवः परदत्तनोजिनोनिक्षवः किंचित्पापं कर्म सावद्यं नकरिष्यामइति समुडाय पश्चान्नास्तिकतां प्राप्तास्ते आत्मना स्वयं सावद्यादप्रतिविरताअनिवृत्तानवंति । स्वयं सावद्यमाददते स्वीकुर्वंति अन्यानप्यादापयंति ग्राहयंत्यादानं समनुजानंति । एवमेव स्त्रीप्रधानाः कामनोगाः स्त्रीकामनोगास्तेषु मूर्छितागृद्धाअध्युपपन्नाआधिक्येन नोगेषु लुब्धारागद्वेषार्ताः संतोनात्मानं संसारात्समुच्छेदयंति । नापि परं समुच्छेदयंति नाप्यन्यान् प्राणिनोनूतानि जीवान् सत्वान् समुच्छेदयंत्यसदनिप्रायप्रवृत्तत्वात् । ते चैवंविधालोकायतिकाः पूर्वसंयोगात्पुत्रादिकात्प्रहीणाभ्रष्टाआर्यमार्गं सदनुष्ठानरूपमसंप्राप्ताइति लोकद्वयसदनुष्ठानभ्रष्टाअंतरालएव नोगेषु विषमास्तिष्ठंति न पुंडरीकोत्क्षेपादिकार्यं साधयंतीत्ययं तज्जीवतच्छरीरवादीप्रथमः पुरुषः समाप्तः ॥ १ए ॥

॥ टीका–तत्र ये नागवतादिकं लिंगमन्युपगताः पश्चाल्लोकायतग्रंथश्रवणेन लोकायताः संवृतास्तेषामादौ प्रव्रज्याग्रहणकालएवैतत्परिज्ञातं नवति । तद्यथा । परित्यक्तपुत्रकलत्राः श्रमणायतयोनविष्यामोऽनगारागृहरहितास्तथा निष्किंचनाः किंचनइव्यं तद्रहितास्तथाऽपशवोगोमहिष्यादिरहिताः परदत्तनोजिनः स्वतः पचनपाचनादिक्रियारहितत्वात् निक्षणशीलानिक्षवः किंच द्वश्यतेऽन्यदपि यत्किंचित्पापं सावद्यं कर्मानुष्ठानं तत्सर्वं नकरिष्यामीत्येवं सम्यगुडानेनोडाय पूर्वं पश्चाल्लोकायतिकमुपगताआत्मनः स्वतः कर्मन्योऽप्रतिविरतानवंति । विरत्यनावेपि यत्कुर्वंति तद्दर्शयति । पूर्वं सावद्यारंनान्निवृत्तिं विधाय नीलपटादिकं च लिंगमास्थाय च स्वयमात्मना सावद्यमनुष्ठानमाददते स्वीकुर्वंति अन्यान्यप्यादापयंति ग्राहयंत्यन्यमप्यादानं परिग्रहं स्वीकुर्वंतं समनुजानंति । एवमेव पूर्वोक्तप्रकारेण स्त्रीप्रधानाः स्त्रियोपलक्षितावा काम्यंतइति कामाजुज्यंतइति नोगास्तेषु सातबहु

पुव्वमेव तेसिं णायं नवति समणा नविस्सामो अणगारा अकिंचणा अपुत्ता अपसू परदत्तनोइणो निरकुणोपावं कम्मं णोकरिस्सामि समुठीए ते अप्पणो अप्पडिविरया नवंति सयमाइयंति अन्नेवि आदियावेंति अन्नंपि आयतं तं समणुजाणंति एवमेव ते इछिकामनोगेहिं मुछिया गिद्धा गढिया अझोववन्ना लुद्धा रागदोसवसट्टा ते णोअप्पाणं समुछेदेंति ते णोपरं समुछेदेंति णोअण्णाइं पाणाइं नूताइं जीवाइं सत्ताइं समुछेदेंति पहीणा पुव्वसंजोगं आयरियं मग्गं असंपत्ता इति ते णोहव्वाए णोपाराए अंतराकामनोगेसु विसन्ना इति पढमे पुरिसजाए तज्जीव तच्छरीरएति आहिए॥ १ए॥

अर्थ-(पुव्वमेवके०) एरीते पहेलोज (तेसिंके०) तेनास्तिक मतिओने (णायंनवतिके०) एवो विपरीत ज्ञान होय के (समणानविस्सामोके०) अमे श्रमण संयति थइशुं (अणगाराके०) घर रहित थइशुं (अकिंचणाके०) परिग्रह रहित थइशुं (अपुत्ताके०) पुत्र मित्र कलत्रादिथी रहित थइशुं (अपसूके०) गोमहिषादिकथी रहित थइशुं (परदत्तनोइणोके०) अन्यनो दीधेलो आहार नोगवीशुं पोते पचन पाचनादिक क्रियाथी रहित थइशुं (निरकुके०) निक्षाचर बता (णोपावकम्मंणोकरिस्सामिके०) पाप कर्म सावद्यानुष्ठान करीशुं नहीं (समुठीएके०) ऐवो नाव पडिवजीने सम्यक्प्रकारे उठी सावधान थइने पबी नास्तिक नाव प्राप्त करे लोकायतिक मार्गे आव्या थका (तेअप्पणोअप्पडिविरया नवंतिके० (ते आप पोते पापकर्म थकी अविरत थाय पोतानीज प्रतिज्ञा थकी भ्रष्ट थाय एवा थका जे करे ते कहेबे (सयमाइयंतिके०) सावद्यानुष्ठान हिंसा मृषावादादिक स्वयं पोते आदरे (अन्नेविआदियावेंतिके०) अन्यने आदरावे (अन्नंपिआयतंके०) अन्यकोइ आदरतो होय (तंसमणुजाणंतिके०) तेने अनुमोदे (एवमेवतेके०) एरीते ते (इछिकामनोगेहिंमुछियाके०) स्त्री संबंधी काम नोगने विषे मूर्छित (गिद्धाके०) गृद्ध एटले तेना अनिलाषी (गढियाके०) अधिक काम नोगने विषे बंधाणा (अझोववन्ना के०) कामनोगने विषे एकाग्र चित्ते थया (लुद्धा के०) लुब्ध थया (रागदोसवसट्टा के०) राग द्वेषने विषे पहोता (तेणोअप्पाणंसमुछेदेंति के०) ते पोताना आत्माने कर्म पास थकी न बोडावे (तेणोपरंसमुछेदेंति के०) ते अन्यने पण कर्म बंध थकी नबोडावे (णोअण्णाइं पाणाइं नूताइं जीवाइं सत्ताइं समुछेदेंतिके०) ते अन्य प्राणी नूत जीव सत्व तेने पण कर्म पास थकी बोडावी नशके एवा नास्तिक

एम यावत् कोइएक मनुष्य कुरूपवंत छे इत्यादिक अर्थ आगल लखाइ गयाछे (ते सिंचणं के०) ते मनुष्य मांहे (महंएगेरायाजवइ के०) एक महोटो राजा होय तेके वो तोके (महाएवंचेव के०) महोटो हिमवंत पर्वतादिक समान होय (णिरविसेसं के०) एमज पूर्ववत निरविशेष (जावसेणावइपुत्ता के०) यावत् सेनापतिना पुत्र केवा (तेसिंचणं के०) तेमांहे (एगेतिएसड्डाजवंति के०) कोइ एकने धर्म करवानी श्रद्धा होय एटले धर्मार्थी होय (कामंतं के०) तेने धर्मार्थी जाणीने (समणा य माहणाय के०) श्रमण अने ब्राह्मण मलीने तेना समीपे धर्म प्रतिबोधवा निमित्ते (पहारिंसुगमणाए के०) आलोचवो चिंतवीने आवे (तत्र के०) त्यां (अन्नयरेणंध म्मेणंपन्नत्तारोवयं के०) अनरो पोतानो धर्म प्ररूपण हार एटले धर्मोपदेशक थइने (इमेणं के०) ए आगल कहेशे तेरीते (धम्मेणंपन्नवइस्सामो के०) राजानी आगल धर्म कहीशुं एम आलोचीने (तेएवं के०) तेएम (मायाणहजयंतारो के०) माहरो धर्म क हुंछुं अहो जयथकी राखनार ते (जहाए के०) जेम (एसधम्मे के०) महारो एधर्म (सुअरकाए के०) स्वाख्यात (सुपन्नत्तेजवंति के०) रुडो प्ररूपवो होय ॥२०॥ हवे ते राजा आगल जेवी रीते धर्म प्ररूपे तेवी रीते आगल कहेछे.

॥ दीपिका—अथापरोद्वितीयः पुरुषजातः पंचजिर्नूतैः पृथिव्यप्तेजोवायुव्योमाद्यैश्चर ति पांचनौतिकः। सांख्याजीवस्य तृणमोटनेप्यसामर्थ्यं । नूतरूपायाः प्रकृतेरेव सर्वकर्तृ त्वमिति तन्मतं । नास्तिकविशेषोवा पंचनूतव्यतिरिक्तनास्तित्वांगीकारात् । (आहिज्जइ) आख्यायते । अत्र च प्रथमपुरुषगमेन इह खलु पाईणंवा इत्यादिकोग्रंथः सुपन्नत्ते ज वतीत्येतदंतोज्ञेयः ॥ २० ॥

॥टीका—प्रथमपुरुषानंतरं द्वितीयं पुरुषजातमधिकृत्याह । (अहावरेदोच्चे इ त्यादि) अथशब्दआनंतर्यार्थे । प्रथमपुरुषानंतरमपरोद्वितीयः पुरुषएव पुरुषजातः पंचजिः पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यैश्चरति पांचनौतिकः । पंचवा नूतानि अन्युपगम द्वारे ण विद्यंते यस्यसपंचनूतिको मत्वर्थीयष्ठन् । सच सांख्यमतावलंब्यात्मनस्तृणकुब्जीकर णेप्यसामर्थ्यान्युपगमात् इष्टव्योलोकायतमतावलंबी नास्तिकोनूतव्यतिरिक्तत्वान्युपगमा दाख्यायते प्रथमपुरुषानंतरमयं पंचनूतात्मवाद्यनिधीयते चेति । अत्र च प्रथमपुरुषगम ने (इहखलुपाईणं) चेत्यादिकोग्रंथः सुपस्त्तेजवतीत्येतत्पर्यवसानोवगंतव्यइति ॥ २० ॥

इहखलु पंचमहन्नूता जेहिं नोकज्जइ किरियातिवा अकिरियातिवा सु कडेतिवा डुक्कडेतिवा कल्लाणेतिवा पावएतिवा साहुतिवा सिद्धितिवा असिद्धितिवा णिरएतिवा अणिरएतिवा इति अंतसो तणमायमवि ॥२१॥

लतया ऽजितेंड्रियाः संतस्तेषु कामन्नोगेषु मूर्बिताएकीनावतामापन्नागृद्धाः कांक्षावंतो ग्रथिताश्रवबद्धाअध्युपपन्नाआधिक्येन नोगेषु लुब्धारागद्वेषार्तारागद्वेषवशगाः कामन्नोगांधावा तएवं कामन्नोगेषु आश्रवबद्धाः संतोनात्मानं संसारात्कर्मपाशाद्वा समुद्धेदयंति मोचयंति नापि परं सडुपदेशदानतः कर्मपाशावपाशितं समुद्धेदयंति कर्मबंधात्रोटयंति नाप्यन्यान् दशविधप्राणवर्तिनः प्राणान् प्राणिनस्तथा वानूवन् न्नवंति न्नविष्यंतिच नूतानि तथा वा आयुष्कधारणाज्जीवास्तांस्तथा सत्वास्तथाविधवीर्यांतरायक्षयोपशमापादितवीर्यगुणोपेतास्तान्नसमुद्धेदयंति । असदन्निप्रायप्रवृत्तत्वात् । ते चैवंविधास्तज्जीवतत्बरीरवादिनोलोकायतिकाअजितेंड्रियतया कामन्नोगावसक्ताः पूर्वसंयोगात्पुत्रदारादिकात्प्रहीणाः प्रन्नष्टाआराद्याताः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्योमार्गः सदनुष्ठानरूपस्तमसंप्राप्ताइत्येवं पूर्वोक्तया नीत्या ऐहिकामुष्मिकलोकद्वयसदनुष्ठानन्नष्टाअंतरालएव न्नोगेषु विषस्मास्तिष्ठंति । न विवक्षितं पौंमरीकोत्क्षेपणादिकं कार्यं प्रसाधयंतीति । अयं च प्रथमःपुरुषस्तज्जीवतत्बरीरवादी परिसमाप्तइति ॥ १ए ॥

अहावरे दोच्चे पुरिसजाए पंचमहप्नूतिएति आहिज्जइ इह खलु पाइणंवा संतेगतियामणुस्सा न्नवंति अणुपुवेणं लोयं उववन्ना तं जहा आरियावेगे अणारियावेगे एवं जाव डुरूवावेगे तेसिंचणं महंएगे राया न्नवइ महाएवंचेव णिरविसेसं जाव सेणावइपुत्ता तेसिंचणं एगेतिए सड्ढा न्नवंति कामंतं समणाय माहणाय पहारिंसु गमणाए तत्र अन्नयरेणं धम्मेणं पन्नत्तारो वयं इमेणं धम्मेणं पन्नवइस्सामो सेएवं मायाणहन्नयंतारो जहाए एसधम्मे सुअरकाए सुपन्नत्ते न्नवंति ॥ २० ॥

अर्थ–(अहावरेदोच्चेपुरिसजाए के०) अथ हवे अपर एटले बीजो पुरुषजात कोणबे ते हुं कहुंबुं माटे हे श्रमणो तमे सांन्नलो (पंचमहप्नूतिएति के०) जे पुरुष पृथ्व्यादिक पांच महान्नूत तत्वे करी माने ते पांच महान्नूतिक पुरुष सांख्यमति (आहिज्जइ के०) कहिए ते प्रथम पुरुषनी परे ज्यांलगे राजसन्नामां आवी राजा प्रत्ये पोतानो धर्म रुडो करी प्रकाशे तेनी पेरे कहेबे (इहखलुपाइणंवाके०) निश्चे आ संसारमां पूर्वादिक दिशिने विषे (संतेगतियामणुस्सान्नवंतिके०) कोइएक मनुष्य पंचमहान्नूतिक सांख्यमतिबे (अणुपुवेणंलोयंउववन्ना के०) ते अनुक्रमे लोकमांहे उपना (तंजहाके०) ते कहेबे (आरियावेगेके०) एक आर्य मनुष्यते साडा पचीश आर्य देशना उपना (अणारियावेगे के०) एक अनार्य मनुष्यते अनार्य देशना उपना (एवंजावडुरूवावेगे के०)

तथा दुष्टं कृतं दुष्कृतमेतदपि रजस्तमसोरुत्कटतया प्रवर्तते । एवं कल्याणमिति वा पापकमितिवा साध्वितिवा असाध्विति वा इत्येतत्सत्वादीनां गुणानामुत्कर्षानुत्कर्षतया यथा संनवमायोजनीयं । तथेप्सितार्थनिष्ठानं सिद्धिविपर्ययः स्वसिद्धिर्निर्वाणं वा सिद्धिः संसारः संसारिणां तथा नरकः पापकर्मिणां यातनास्थानमनरकस्तिर्यङ्मनुष्यामराणामेतत्सर्वं सत्वादिगुणाधिष्ठिता नूतात्मिका प्रकृतिर्विधत्ते । लोकायताभिप्रायेणापीहैव तथा विधसुखदुःखावस्थाने स्वर्गनरकाविर्तीत्येवमंतशस्तृणमात्रमपि यत्कार्यं तन्नूतैरेव प्रथानरूपापन्नैः क्रियते । तथा चोक्तं । सत्वं लघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टंनकं चलंच रजः ॥ गुरुवरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतोवृत्तिरित्यादि । तदेवं सांख्याभिप्रायेणात्मनस्तृणकुब्जीकरणेप्यसामर्थ्याल्लोकायतिकाभिप्रायेण त्वात्मनएवाभावान्नूतान्येव सर्वकार्यत्वात्कर्तृणीत्येवमन्युपगमस्तानिच समुदायरूपापन्नानि नानास्वनावं कार्यं कुर्वंति ॥ २१ ॥

तं च पिहुद्देसेणं पुढोन्नूतसमवातं जाणेज्जा तं जहा पुढवी एगे महब्भूते आऊ दुच्चे महब्भूते तेऊतच्चेमहब्भूते वाऊचउत्थेमहब्भूते आगासे पंचमे महब्भूते इच्चेते पंचमहब्भूया अणिम्मिया अणिम्माविता अकडा णोकित्तिमा णोकडगा अणाइया अणिहणा अवंझा अपुरोहिता सतंता सासता आयछठा पुण एगे एवमाहु सतो णत्थि विणासो असतो णत्थि संन्नवो ॥ २२ ॥

अर्थ—(तंचपिहूदेसेणंपुढोन्नूतसमवातंजाणेज्जाके०) ते पांचनूतनो समवाय पृथक् एटले जुदो जुदो जाणवो (तंजहाके०) ते कहेछे. (पुढवीएगेमहब्भूते के०) पृथवी पर्वतादिक ए एक महान्नूत जाणवो (आऊदुच्चेमहब्भूते के०) पाणी नदी सरोवर समुद्रादिकनो ए वीजो महान्नूत जाणवो (तेऊतच्चेमहब्भूते के०) अग्नि ते उष्ण अन्नवालानो कारण ए त्रीजो महान्नूत जाणवो (वाऊचउत्थेमहब्भूते के०) वायु वृक्ष कंपननो लक्षण ए चोथो महान्नूत जाणवो (आगासेपंचमेमहब्भूते के०) आकाश अवकाश लक्षण ए पांचमो महान्नूत जाणवो (इच्चेतेपंचमहब्भूया के०) ए पांच महान्नूत ते (अणिम्मिया के०) ईश्वरादिके नीपजाव्या नथी (अणिमाविता के०) हवे नीपजाववा पण नथी (अकडा के०) कोइना करेला नथी (णोकित्तिमा के०) घटादिकपदार्थनी पेरे कृत्रिम नथी (णोकडगा के०) तेनी निष्पत्तिने विषे अन्य कोइनी अपेक्षा नथी (अणाइया के०) तेनी आदि नथी (अणिहणा के०) तेनो अंत नथी (अवंझा के०) अवंध्यते समस्त कार्यना करनार जाणवा (अपुरोहिता के०) तेओने कार्यने विषे प्रवर्त्तावनार कोइ नथी (सतंता के०) स्वाधीनछे (सा

अर्थ-(इहखलु के०) निश्चें आसंसारने विषे (पंचमहप्नूता के०) पांच महोटा नूत सर्व जगतमां व्यापी रह्याछे (जेहिंनोकज्जइकिरियातिवाअकिरियातिवा के०) ते हिज पांच नूते अमे क्रिया अक्रिया सर्व करियें परंतु जेहिं एटले जे छगे आत्मा ए वे नामे पदार्थछे ते क्रिया अक्रिया नोकज्जइ एटले नथी करतो तथा सुकडेतिवा डुक्कडेतिवा कल्लाणेतिवा पावएतिवा साहुतिवा सिद्धितिवा असिद्धितिवा णिरएतिवा अणिरएतिवा एटले सुकृत करणी डुष्कृत करणी कल्याण कारी क्रिया पापकारी क्रिया साधु एटले नली क्रिया असाधु एटले माठी क्रिया सिद्धि एटले मोक्ष जवा योग्य क्रिया असिद्धि एटले मोक्ष न जवा योग्यक्रिया नरक जवा योग्य क्रिया नरके नजवा योग्य क्रिया ए सर्व आत्मा नथी करतो (अंतसोतणमायमवि के०) ए कारणे सांख्यने मते जे कांइ सूक्ष्म तृणनु नमाववो तेनो पण उपदेश पांच नूतज करेछे पण आत्मा सर्वथा कांइ पण नथी करतो ॥ २१ ॥

॥ दीपिका-सांख्यनास्तिकयोर्मतमाह । इह मते पंच महानूतानि यैर्नोऽस्माकं क्रिया व्यापारता वा नक्रियते सुकृतं डुष्कृतंवा कल्याणं पापकमिति या साध्वितिवा सिद्धिर्मुक्तिरसिद्धिः संसारोनरकोऽनरकस्तिर्यङ्नरामरगतिः । एतत्सर्वं सत्वरजस्तमोरूपा प्रकृतिरेव नूतरूपा करोति । आत्मा केवलमुपनुंक्ते नतु करोति किंचित् । नास्तिकान्निप्रायेणापि इहैव सुखडुःखे स्वर्गनरकौ इत्युच्यतइति । एवमंतशस्तृणमात्रमपि यत्कार्यं तद्भूतैरेव प्रकृतिरूपापन्नैः क्रियते । एवं सांख्यमते आत्मा किंचित्करः । नास्तिकमतेतु आत्मनः सर्वथाप्यनावस्ततो द्वयोरपि नूतान्येव सर्वकार्यकर्तृणीति ॥ २१ ॥

॥ टीका-सांप्रतं सांख्यस्य लोकायतिकस्य चान्युपगमं दर्शयितुमाह । (इहखलुपंच महप्नूताइत्यादि) इहास्मिन् संसारे द्वितीयपुरुषवक्तव्यताधिकारे वा । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । पृथिव्यादीनि पंचमहानूतानि विद्यंते महांति च तानिच महानूतानि सर्वव्यापितयान्युपगमात् महत्वं । तानिच पंचैव । परस्य षष्ठस्य क्रियाकर्तृत्वेनानन्युपगमाद्यैर्हि पंचनिर्नूतैरप्युपगम्यमानैर्नोऽस्माकं क्रिया परिस्पंदात्मिका चेष्टारूपा क्रियते क्रिया वा निर्व्यापारतया स्थितिरूपा क्रियते । तथाहि । तेषां दर्शनं सत्वरजस्तमोरूपा प्रकृतिर्नूतात्मनूताः सर्वाअर्थक्रियाः करोति पुरुषः केवलमुपनुंक्तेऽध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयतीति वचनात् । बुद्धिश्च प्रकृतिरेव तद्विकारत्वात् । तस्याश्च प्रकृतेर्नूतात्मिकायाः सत्वरजस्तमसां चयापचयान्यां क्रियाक्रिये स्यातामिति कृत्वा नूतेन्यएव क्रियादीनि प्रवर्तंते तद्व्यतिरेकेणापरस्यानावादिति नावः । तथा सुष्ठु कृतं सुकृतमेतच्च सत्वगुणाधिक्येन नवति ।

प्रति प्रवर्तयिता येषां तान्यपुरोहितानि स्वतंत्राणि स्वकार्यकर्तृत्वं प्रत्यपरनिरपेक्षाणि शाश्वतानि नित्यानि वा नकदाचिदनीदृशं जगदिति वचनात्तदेवंभूतानि पंच महाभूतान्यात्मषष्ठानि। पुनरेके एवमाहुरात्माऽवा किंचित्कारः सांख्यानां लोकायतिकानां पुनः कायाकारपरिणतान्येव भूतान्यभिव्यक्तचेतनानि आत्मव्यपदेशं भजंतइति । तदेवं सांख्याभिप्रायेण सतोविद्यमानस्य प्रधानादेर्नास्ति विनाशोऽत्यंताभावरूपोनाप्यसतः शशविषाणादेः संभवः समुत्पत्तिरस्ति कार्यस्य विद्यमानस्यैवोत्पत्तिरिष्टा नासतः सर्वस्मात्सर्वस्योत्पत्तिप्रसंगात् । तथाचोक्तं । नासतोजायते भावोऽनाभावोजायते सतइत्यादि तथा असतः खरविषाणादेरकरणादुपादानकारणस्यच मृत्पिंडादेर्घटार्थिनोपादानादिभ्यश्च हेतुभ्यः कारणे सत्कार्यवादः ॥ २२ ॥

एतावतावजीवकाए एतावतावअत्थिकाए एतावतावसव्वलोए ए
तं मुहं लोगस्स करणयाए अवियंतसो तणमायमवि ॥ २३ ॥

अर्थ—(एतावतावजीवकाए के०) ते सांख्य एम कहेछे के जीवकाय जे छे एटलोज पांच भूत जाणवो कार्यनो करनार पण एटलोज जाणवो (एतावतावअत्थिकाए के०) वली एटलोज अस्तिकाय टाली बीजो पदार्थ पण कोइ नथी (एतावतावसव्वलोए के०) एटलोज सर्वलोक पांचभूत आत्मिक जाणवो (एतंमुहंलोगस्सकरणयाए के०) लोकने करवे एहिज मुख्य प्रधान कारण जाणवो (अवियंतसोतणमायमवि के०) तृण मात्र कार्यनुं करनार पण ए पांचभूत टाली बीजो कोइ नथी ॥ २३ ॥

॥ दीपिका—एतावानेव भूतमात्रएव जीवकायः। एतावानेवास्तिकायोनापरः कश्चित्पदार्थः एतावानेव सर्वलोकः । तथा एतदेव पंचभूतास्तित्वं मुख्यं कारणं लोकस्य सांख्यस्य हि प्रधानात्मन्यांसृष्टेरुत्पत्तिर्नास्तिकस्यतु भूतान्येवांतशस्तृणमात्रमपि कार्यं कुर्वंति ॥ २३ ॥

॥ टीका—तदेवमेतावानेव तावदिति सांख्योलोकायतिकोवा माध्यस्थ्यमवलंब्यमानएवमेवाह । तद्यथा । निर्युक्तिनिर्विचार्यमाणस्तावदेतावानेव जीवकायोयदुत पंचमहाभूतानि यतस्तान्येव सांख्याभिप्रायेण प्रधानरूपतापन्नानि सत्वादिगुणोपचयापचयाभ्यां सर्वकार्यकर्तृण्यात्मा वा किंचित्करत्वादसत्कल्पएव लोकायतस्यतु सनास्त्येवेत्यतएतावानेव भूतमात्रएव जीवकायस्तथा एतावानेव भूतास्तित्वमात्रएवास्तिकायोनापरः कश्चित्तीर्थिकाभिप्रेतः पदार्थोस्तीति । तथा एतावानेव सर्वलोकोयदुत पंचमहाभूतानि प्रधानरूपापन्नान्यात्मा चाकर्ता निर्गुणः सांख्यस्य लोकायतिकस्यतु पंचभूतात्मकाएव लोकास्तदतिरिक्तस्यापरस्य पदार्थस्याभावादिति । तथा एतदेव पंचभूतास्तित्वं मुख्यं कारणं लोक

सता के०) शाश्वता ले (आयबहा के०) आत्माले जेने बहो एवा ए पांचमहान्नूत जाणवा (पुणएगेएवमाहु के०) एक वली एम कहेले (सतोणविविणासोके०) लतो विद्यमान पदार्थ तेनो विनाश नथी (असतोणविसंनवो के०) अविद्यमान शशशृं गादिकनो उत्पत्तिनो संनव नथी ए कारणे सांख्य दर्शनवालो आत्माने कर्त्ता नथी मान तो जो आत्मा कर्त्ता होय तो अलति वस्तु उपजावे ते कारणे आत्मा कर्त्ता नथी. ॥२२॥

॥ दीपिका-तं च नूतानां समवायं पृथग्नूतपदोद्देशेन जानीयात् । तद्यथा । पृथिव्ये का महान्नूतमित्यादि । एषां कायाकारतया यः समवायः सएकत्वे लक्ष्यते । इत्येतानि पंच महान्नूतान्यनिर्मितानि कालेश्वरादिना केनचिदकृतानि परेणाऽनिर्मापयितव्यानि अ कृतानि विश्रसापरिणामेन निष्पन्नत्वात् । तथा न घटवत्कृत्रिमाणि अनादीनि अनि धनानि आद्यंतरहितानि अवंध्यान्यवश्यकार्यकर्तॄणि नविद्यते पुरोहितः कार्ये प्रतिवर्त यिता येषां तान्यपुरोहितानि स्वतंत्राणि शाश्वतानि नित्यानि आत्मषष्ठानि पंच महान्नूता नीत्येकआहुः । सांख्यानामात्मा किंचित्करः । नास्तिकानांतु कायाकारपरिणतानि नूता न्येवानिव्यक्तचैतन्यान्यात्मव्यपदेशं लनंते । तदेवं सांख्यमते सतोविद्यमानस्य प्रधा नादेर्नास्तिविनाशोऽसतः शशविषाणादेर्नास्ति संनवः । यडुक्तं । नासतोजायतेनावो नानावोजायतेसतइति ॥ २२ ॥

॥ टीका-तंच तेषां समवायं पृथग्नूतपदोद्देशेन जानीयात् । तद्यथा । पृथिव्येका काठिन्यलक्षणा महान्नूतं । तथापोद्रवलक्षणामहान्नूतं तथा तेजउष्णोद्योतलक्षणं तथा वायुर्धृतिकंपनलक्षणस्तथावगाहदानलक्षणं सर्वद्रव्याधारनूतमाकाशमित्येवं पृथग्नूतपदो देशेनकायाकारतया यस्तेषां समवायः सएकत्वेपि लक्ष्यते इत्येतानि पूर्वोक्तानि पृ थिव्यादीनि संख्याह्युपादीयमाना संख्यांतरं निवर्तयतीति कृत्वा नन्यूनानि नाप्यधिका नि विश्वव्यापितया महांति त्रिकालनवनान्नूतानि । तदेवमेतान्येव पंच महान्नूतानि प्रकृ तेर्महान् महतोहंकारस्तस्माच्च गणः षोडशकस्तस्मादपि षोडशकात्पंचन्यः पंचनूतानी त्येवं क्रमेण व्यवस्थितान्यपरेण लोकेश्वरादिना केनचिदनिर्मितान्यनिष्पादितानि । तथा परेणानिर्मापयितव्यानि तथा कृतानि न केनचित्तानि क्रियंते । अत्रेंद्रधनुरादिवद्विस्रसा परिणामेन निष्पन्नत्वात्तथा नघटवत्कृत्रिमाणि कर्तृकरणव्यापारसाध्यानि ननवंतीत्य र्थः । तथा परानावतया नोनैव कृतकानि । अपेक्षितपरव्यापारस्वनावनिष्पत्तौ नावः कृतकइतिव्यपदिश्यते । तानि च विस्रसापरिणामेन निष्पन्नत्वात्कृतकव्यपदेशनांजि न नवंति तथा नाद्यनिधनानि अवंध्यान्यवश्यकार्यकर्तॄणि तथा न विद्यते पुरोहितः कार्ये

अने (णोपाराए के०) पार पण पाम्या नही इहलोक परलोकथी च्रष्ट थया थका (अं तराकामन्नोगेसुविसस्मा के०) विचाले कामन्नोगने विषे संसार मांहेज खूता रहे पण पुंमरक कमल सरखा राजाने उद्धरी शके नही (दोच्चेपुरिसजाए के०) ए बीजो पुरुष जात (पंचमहन्नूत्तिएतिआहिए के०) ए पंचमहान्नूतिक नामे कह्यो. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—आत्मनोऽकिंचित्करत्वात्सांख्यमतेऽसत्वान्नास्तिकमते न कर्मनिर्बंधइत्याह। सक्रयार्थी पुरुषः क्रीणन् किंचिद्वस्तु मूल्येन गृह्हन् परं क्रीणयन् मूल्येन ग्राहयन् तथा प्राणिनोघ्नन् हिंसन् परैर्घातयन् तथा पचन् पाचयन् एतानि कुर्वतोन्यानप्यनुजानन्नप्यं तशः पुरुषमपि पंचेंद्रियं विक्रीय हत्वा घातयित्वाऽत्रापि पंचेंद्रियवधे नास्ति दोषः। अत्रेवं जानीहि किंपुनरेकेंद्रियवधइत्यपिशब्दार्थः। ततस्ते नैवैतद्विप्रतिवेदयंति जानंति। तद्यथा। क्रिया वलनात्मिका सावद्यानुष्ठानरूपा अक्रिया स्थानरूपा यावदेवमेव विरूपविरूपैर्नाना रूपैः कर्मसमारंनैः सावद्यानुष्ठानैर्विरूपरूपान्नानाप्रकारान् कामोपन्नोगान् समारन्नंते स्वयं अन्यांश्च कारयंति नास्त्यत्र दोषइति प्रतार्य एवमेव तेऽनार्याविप्रतिपन्नाविरुद्धं मार्गं प्रति पन्नास्तमात्मीयं धर्मं श्रद्दधानाआत्मीयांगीकारं रोचयंतस्तद्धर्मस्याख्यातारं प्रशंसयंतः। त द्यथा। स्वाख्यातोन्नवता धर्मइत्यादितावन्नेयं। यावदंतरा कामन्नोगेषु विषस्माइह परलोकच्र ष्टानात्मत्राणाय नापि परेषामिति द्वितीयः पुरुषजातः पंचमहान्नौतिकोव्याख्यातः ॥२४॥

॥ टीका— सचैवंवाद्येकत्रात्मनोऽकिंचित्करत्वादन्यत्र वात्मनोसत्वादसदनुष्ठानैरप्या त्मा पापैः कर्मन्निर्न बध्यतइति दर्शयितुमाह (सेकिणमित्यादि) सेतियः कश्चित्पुरुषः क्रयार्थी क्रीणन् किंचित् क्रयेण गृह्हंस्तथापरं क्रापयंस्तथाहि प्राणिनोघ्नन् हिंसन् तथा परैर्घातयन् व्यापादयन् तथा पचन् पाचनादिकां क्रियां कुर्वंस्तथाऽपरैश्च पाचयन्। अस्य चोपलक्षणार्थत्वात् क्रीणतः क्रयतोघ्नतोघातयतः पचतः पाचयतश्चापरांस्तथाप्यंतशः पुरुष मपि पंचेंद्रियं विक्रीय घातयित्वापि पंचेंद्रियघाते नास्ति दोषोत्रैवंजानीहि अवगछ किंपुन रेकेंद्रियवनस्पतिघातइत्यपिशब्दार्थः। ततश्चैवंवादिनः सांख्याबार्हस्पत्यावा नोनैवैतद्वद्य माणं विप्रतिवेदयंति जानंति। तद्यथा। क्रिया परिस्पंदात्मिका सावद्यानुष्ठानरूपाएवम क्रिया स्थानादिलक्षणा यावदेवमेव विरूपरूपैरुच्चावचैर्नानाप्रकारैर्जलस्नानावगाहनादिकै स्तथा प्राण्युपमर्दकारिन्निः कर्मसमारंन्नैर्विरूपरूपान्नानाप्रकारान् सुरापानमांसन्नक्षणाग म्यागमनादिकान् कामोपन्नोगान् समारन्नंते स्वतः परांश्चोदयंति नास्त्यत्र दोषइत्येवं प्रता र्यसत्कारणाय प्रेरयंत्येवं च तेऽनार्याअनार्यकर्मकारित्वादार्यान्मार्गाद्विरुद्धं मार्गं प्रतिप न्नाः। तथाहि। सांख्यानामचेतनत्वात्प्रकृतेः कार्यकर्तृत्वं नोपपद्यते। अचेतनत्वं तु त

स्यैतदेव चरणकरणतया सर्वकार्येषु व्याव्रियते । तथाहि । सांख्यस्य प्रधानात्मन्यां सृ ष्टिरुपजायते । लोकायतिकस्यतु नूतान्येवांतस्तृणमात्रमपि कार्यं कुर्वंति तदतिरिक्तस्या परस्यानावादिति नावः ॥ २३ ॥

से किणंकिणावेमाणे हणंघायमाणे पयंपयावेमाणे अविअंतसो पुरिस मविक्किणित्ता घायइत्ता एडंपि जाणाहिं णत्थिदोसो ते णोएवं विप्पडिवे देंति तंजहा किरियाइवा जाव णिरएइवा एवंते विरूवरूवेहिं कम्म समारंनेहिं विरूवरूवाइं कामनोगाइं समारनंति नोयणाए एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्ना तं सद्दहमाणा तं पत्तियमाणा जावइति ते णो हवाए णोपाराए अंतरा कामनोगेसु विसस्मा दोच्चे पुरिसजाए पंचम हनूतिएत्ति आहिए ॥ २४ ॥

अर्थ–हवे एक वादी एम कहेढे के आत्मा सर्वथापि नथी वली एक वादी एम क हेढे के आत्माढे परंतु क्रिया कांइ करतो नथी तो तेने मते आत्माने शुनाशुन कर्म नो बंध नथी एवो देखाडेढे (सेकिणंकिणावेमाणे के०) ते क्रियानो अर्थी पुरुष कोइएक जातनो क्रियाणो लेतो अथवा अन्य पाशे लेवरावतो (हणंघायमाणे के०) तथा प्राणीउने हणतो अथवा अनेरा पाशे हणावतो (पयंपयावेमाणे के०) पचन पाच नादि क्रिया पोते करतो अथवा अनेरा पाशे करावतो थको (अविअंतके०) पण निश्चेकरी जाणे (सोपुरिसमविक्किणित्ताके०) अथवा ते पुरुष पंचेंडीने मोले वेचातु लेइने (घायइ त्ताके०) हणतो थको (एडंपिजाणाहिंके०) अहींयां पण ते एवुं जाणे के (णत्थिदोसो के०) ते हिंसाना दोषनो विनागी न थाय एवो जाणी यथाछंदे हिंसादिक सावद्य व्यापा रमां प्रवर्त्ते (तेणोएवंविप्पडिवेदेंतिके०) ते बापडा मूर्ख एटलो न जाणे शुं नजाणे (तंज हाके०) ते कहेढे (किरियाइवाके०) क्रिया एटले रूडो अनुष्ठान ते नजाणे (जावणिरए इवाके०) ज्यां शुधी नरक नजाणे एम सर्व पूर्ववत् जाणवो (एवंतेविरूवरूवेहिं के०) एम ते नाना प्रकारना (कम्मसमारंनेहिंके०) कर्मनो समारंन करता (विरूवरूवाइंका मनोगाइंसमारनंति के०) न्हाना प्रकारना कामनोगने समारंने (नोयणाए के०) आहारने अर्थे नोगवता (एवमेवतेअणारियाविप्पडिवन्ना के०) एरीते ते अनार्य पो तानो धर्म रुडो करी प्ररूपता कामनोगने विषेमूर्छाणा थका (तंसद्दहमाणा के०) ते पाखंमी धर्म ने सर्दहता थका (तंपत्तियमाणा के०) तेनी प्रतीत करता थका (जाव इतिते के०) ज्यां शुधी ए प्रकारे ते (णोहवाए के०) तीरे पण रह्या नही

अर्थ—हवे अपर त्रीजो पुरुष जात कहेछे जे ईश्वर लोकनो करनार छे एवुं मानेछे ते मते एने ईश्वर कारणिक कहेछे खलु इति निश्चे आ मनुष्य लोकने विषे पूर्वोक्तरीते पूर्वादिक चार दिशिये कोइएक मनुष्य होय ते अनुक्रमे लोक मांहे उपना तेमां कोइ एक आर्य देशना उपना ते ज्यां सुधी महोटो राजा होय तेने परपदा होय ते वली ज्यां सुधी सेनापतिना पुत्र इत्यादिक परखदा सुधी कहेवुं तेमांहे कोइ एक धर्मनी श्रद्धावान होय धर्मार्थी होय तेने धर्मार्थी जाणीने श्रमण ब्राह्मण मली धर्म प्रतिबोधवा निमित्ते आलोचीने ते पूर्वोक्त राजादिकने संमुख जइने अंहीं यावत् पूर्वोक्त रीते सन्नादिकनु प्रस्ताव सर्व कहेवो पछीते राजादिकने तेईश्वरकारणिक पुरुष आवी पोतानो स्वाख्यात सुप्रज्ञ धर्म वर्णवेछे. ॥ २५ ॥

॥ दीपिका—अथापरस्तृतीयः पुरुषजातईश्वरोजगतः कारणं यस्य सईश्वरकारणिक आत्माऽद्वैतवादी व्याख्यायते । (इहखलुइत्यादि) प्राच्यादिषु दिक्षु एकस्यां दिशि स्थितः कश्चिदेवं ब्रूयात् । यथा राजानमुद्दिश्य तावद्यावत्स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोधर्मोभवति॥२५॥

॥ टीका—सांप्रतमीश्वरकारणिकमधिकृत्याह । (अहावरेइत्यादि) अथ द्वितीयपुरुषानंतरं तृतीयईश्वरकारणिकआख्यायते । समस्तस्यापि चेतनाचेतनरूपस्य जगतईश्वरः कारणं। प्रमाणं चात्र तनुभुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादीयते ईश्वरकर्तृकमिति साध्योधर्मः संस्थानविशेषत्वात्कूपदेवकुलादिवत्तथा स्थित्वा प्रवृत्तेर्वास्यादिवत्। उक्तंच। अज्ञोजंतुरनीशः स्या,दात्मनः सुखदुःखयोः॥ ईश्वरप्रेरितोगच्छे,त्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा इत्यादि। तथा पुरुष एवेदं यद्भूतं यच्च भव्यमित्यादि । तथा चोक्तं। एकएव हि भूतात्मा भूते भूते प्रतिष्ठितः॥ एकधा बहुधाचैव दृश्यते जलचंद्रवदित्यादि । तदेवमीश्वरकारणिकआत्मा द्वैतवादी वा तृतीयः पुरुषजातआख्यायते । (इहखलुइत्यादि) इहैव पुरुषजातप्रस्तावे । खलुशब्दोवाक्यालंकारे ।प्राच्यादिषु दिक्ष्वन्यतमस्यां व्यवस्थितः कश्चिदेवं ब्रूयात् । तद्यथा। राजानमुद्दिश्य तावद्यावत्स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोधर्मोभवति ॥ २५ ॥

इह खलु धम्मा पुरिसादिया पुरिसोत्तराया पुरिसपणीया पुरिससंभूया पुरिसपज्जोतिता पुरिसअभिसमण्णागया पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा णामए गंमेसिया सरीरे जाए सरीरे संवुड्ढे सरीरे अभिसमण्णागए सरीरमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मा पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा णाम ए अरईसिया सरीरे जाया सरीरे संवुड्ढा सरीरे अ

स्याश्चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमिति वचनात् आत्मैव प्रतिबिंबोदयन्यायेन करिष्यतीति चेत्त दपि न युक्तिसंगतं । यतोऽकर्तृत्वादात्मनोनित्यत्वाच्च प्रतिबिंबोदये न युज्यते । किंचानि त्यत्वात्प्रकृतेर्महदादिविकारतया नोत्पत्तिः स्यात् । अपिच । नासतोजायते भावोनाभा वोजायते सतइत्याद्यभ्युपगमात्प्रधानात्मनोरेव विद्यमानत्वान्महदहंकारादेरनुत्पत्तिरेवैक त्वाच्च प्रकृतेरेकात्मवियोगेसति सर्वात्मनां वियोगः स्यादेकसंबंधेवा सर्वात्मनां प्रकृतिसंयो गोन पुनः कस्य चित्तत्त्वपरिज्ञानात् प्रकृतिवियोगे मोक्षोऽपरस्य तु विपर्ययात्संसारइत्येवं जगद्वैचित्र्यं नस्यादात्मनश्चाकर्तृत्वे तत्कृतौ बंधमोक्षौ नस्यातामेतच्च दृष्टेष्टबाधितं नापि कारणे सत्कार्यवादोयुक्तिभिरनुपपाद्यमानत्वात् । तथाहि । मृत्पिंडावस्थायां घटोत्पत्तेः प्राग्घटसंबंधानां कर्मगुणव्यपदेशानामभावाद्घटार्थिनां च क्रियासु प्रवृत्तेर्न कारणे कार्यमि ति लोकायतिकस्यापि भूतानामचेतनत्वात्कर्तृत्वानुपपत्तिः । कायाकारपरिणतानां चै तन्याभिव्यक्त्यभ्युपगमेच मरणाभावप्रसंगः स्यात्तस्मान्न पंचभूतात्मकं जगदिति स्थितं। अपि चेदं ज्ञानं स्वसंवित्तिसिद्धमनात्मधर्मिणमुपस्थापयति । नच भूतान्येवं धर्मित्वेन परिकल्पयितुं युज्यंते तेषामचेतनत्वादथ कायाकारपरिणतानां चैतन्यधर्मोभविष्यती त्येतदप्ययुक्तं । यतः कायाकारपरिणामएव तेषामात्मानमधिष्ठातारमंतरेण न भवितुम र्हति निर्हेतुकत्वप्रसंगान्निर्हेतुकत्वेच नित्यं सत्वमसत्वंवा स्यादिति । तदेवंभूतव्यतिक्त आत्मा तस्मिंश्च सति सदनुष्ठानतः पुण्यपापे ततश्च जगद्वैचित्र्यसिद्धिरिति । एवं व्यवस्थि ते तेऽनार्याः सांख्यालोकायतिकावा पंचमहाभूतप्रधानाभ्युपगमेन विप्रतिपन्नायत्कुर्यु स्तद्दर्शयितुमाह । (तंसद्दहमाणाइत्यादि) तमात्मीयमभ्युपगमं ये चोक्तया नीत्या निर्युक्ति कत्वमपि श्रद्दधानाः पंचमहाभूतात्मप्रधानस्य सर्वकार्याणि उपगच्छंति । तदेवंच सत्य मित्येवं प्रतिपादयंतः प्रतिपद्यमानास्तदेव चात्मीयमभ्युपगमं रोचयंतस्तद्धर्मस्याख्यातारं प्रशंसयंतः । तद्यथा । स्वाख्यातोभवता धर्मोऽस्माकमयमत्यंतमभिप्रेतइत्येवं ते तदध्यव सायाः सावद्यानुष्ठानेनाप्यधर्मोन भवतीत्यध्यवसायिनः स्त्रीकामेषु मूर्छिताइत्येवं पूर्ववज्ज्ञे यं। यावत्तदंतरे कामभोगेषु विषणाऐहिकामुष्मिकोभयकार्यभ्रष्टानात्मत्राणाय नापि परेपा मिति । भवत्येवं द्वितीयः पुरुषजातः पंचमहाभूताभ्युपगमिकोव्याख्यातइति ॥ २४ ॥

अहावरे तच्चे पुरिसजाए ईसरकारणिए इति आहिज्जइ इह खलु पासा दीणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति अणुपुव्वेणं लोयं उववन्ना तं आरि यावेगे जाव तेसिंचणं महंते एगे राया भवइ जाव सेणावइपुत्ता तेसिं चणं एगतीए सड्ढा भवइ कामं तं समणाय माहणाय पहारिंसुगमणाए जाव जहा मए एसधम्मे सुअक्खाए सुपन्नत्ते भवइ॥ २५ ॥

के०) पुरुष जे ईश्वर ते थकी उत्पन्न थया ते (जावअभिभूयचिठंति के०) यावत् ईश्वरनेज व्यापि रहेछे परंतु ईश्वर थकी कांइ जुदा नथी.

वली बीजो दृष्टांत कहेछे. जेम (अरइसियाके०) अरति एटले चित्तनो उद्वेग पणो ते शरीर थकीज उपजे अने शरीर थकीज वृद्धि पामे अने शरीर मांहेज व्यापि रहेछे तेम ए धर्म जे पदार्थ ते पण पुरुष थकीज उपजे पुरुष थकीज वृद्धि पामे अने पुरुष मांहेज व्यापिरहेछे वली त्रीजो दृष्टांत कहेछे. (वम्मिएसियाके०) जेम वम्मिजे पृथवी तेनो विकार होय ते पृथवीने विषेज उपजे पृथवी थकीज वृद्धि पामे अने पृथवीने विषेज व्यापिने रहे तेम ए धर्म अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा वली चोथो दृष्टांत कहेछे. जेम कोइएक वृक्ष होय ते पृथवी थकी उपजे पृथवीने विषेज वृद्धि पामे अने पृथवीनेज व्यापि रहे तेम ए धर्म अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा. वली पांचमो दृष्टांत कहेछे. जेम पुष्करिणी होय ते पृथवी थकी उपजे पृथवी थकी वृद्धि पामे अने पृथवीने विषेज व्यापि रहे तेम ए पदार्थ अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा. वली छठ्ठो दृष्टांत कहेछे. जेम घणा पाणी मांहे कमल होय ते कमल जल थकी नीपजे जल थकीज वृद्धि पामे अने जल मांहेज व्यापि रहे तेमज ए पदार्थ पण ईश्वर थकीज नीपजे ईश्वर थकीज वृद्धि पामे अने ईश्वरनेज व्यापि रहे वली सातमो दृष्टांत कहेछे. जेम पाणीनुं बुदबुदो होय ते जल थकीज नीपजे जल थकीज वृद्धि पामे अने जल मांहेज व्यापि रहे तेम ए पदार्थो सर्व ईश्वर थकीज उपजेछे इत्यादिक सर्व जाणी लेवुं ॥ २६ ॥

॥ दीपिका–इह खलु धर्माः स्वभावाश्चेतनाचेतनरूपाः पुरुषईश्वरआत्मा वा कारणमादिर्येषां ते पुरुषादिकाईश्वरकारणिकाआत्मकारणिकावा तथा पुरुषएव उत्तरं कार्यं येषांते पुरुषोत्तरास्तथा पुरुषेण प्रणीताः पुरुषेण द्योतिताः प्रकाशीकृतायथा सूर्येण घटादयः । ते च धर्माजीवानां जन्ममरणरोगशोकादयः । अजीवधर्मास्तु मूर्तद्रव्याणां वर्णगंधरसस्पर्शाः । अमूर्तद्रव्याणां धर्माधर्माकाशानां गत्यादिकाधर्माः सर्वेपीश्वरकृताः । आत्माद्वैतवादे चात्मविवर्ताः । सर्वेऽप्येते पुरुषमेवाभिभूय व्याप्य तिष्ठंति । अत्रार्थे दृष्टांतान् बहूनाह । (सेजहानामएइत्यादि) सेजहा तद्यथा । नामेति संभावनायां । गंडं स्यात् । संभाव्यते हि प्राणिनां कर्मवशगानां गंडादिरोगइति । गंडं च शरीरे जातं शरीरावयवभूतं तथा शरीरे वृद्धिमुपगतं शरीरवृध्या तस्य वृद्धिरिति । शरीरेऽभिसमन्वागतं न तदवयवोपि शरीरात्पृथग्भूतइति । शरीरमेवाभिभूय पीडयित्वा तिष्ठति । एवमेव येऽमी धर्माश्चेतनाचेतनरूपास्ते सर्वेपीश्वरकर्तृकाः । न ते ईश्वरात्पृथक्कर्तुं न शक्यंते यथा गंडं शरीरविकारभूतं तद्विनाशेच शरीरमेव तिष्ठति एवं धर्माः पुरुषादिकाः पुरुषवि

भिसमण्णागया सरीरमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा णामए वम्मिएसिया पुढविजाए पुढविसंवुड्ढे पुढविअभिस्समण्णागए पुढविमेव अभिभूय चिठइ एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा णामए रुक्खेसिया पुढविजाए पुढविसंवुड्ढे पुढविअभिसमण्णागए पुढविमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा णामए पुक्खरिणी सिया पुढविजाया जाव पुढविमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्माविपुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति से जहा णामए उदगपुक्खलेसिया उदगजाए जाव उदगमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा णामए उदगबुब्बुएसिया उदगजाए जाव उदगमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति ॥ २६ ॥

अर्थ-(इहखलुधम्मापुरिसादियाके०) आ संसारने विषे. खलु एवे वाक्यालंकारे धर्म जे सचेतना अचेतनारूप स्वभाव ते पुरुषादिक जाणवा एटले एम कह्युंजे एनी आदिनुं करनार पुरुष शब्दे ईश्वरछे तेकारणे पुरुषादिक एम पाठ कह्यो तथा (पुरिसोत्तरायाके०) पुरुषज जेने उत्तर एटले प्रधानछे तथा (पुरिसप्पणीया के०) पुरुष प्रणीत एटले एनो अधिष्ठाता पण पुरुष ईश्वरजछे तथा (पुरिससंभूयाके०) पुरुष थकीज उपना (पुरिसपज्जोतिता के०) पुरुषजे ईश्वर तेणेज प्रगट कस्या जेम प्रदीप मणी अने सूर्यादिके घटपटादिक पदार्थ प्रगट कस्या तेनी पेरे जाणी लेवुं (पुरिसअभिसमण्णागया के०) जीवने जन्म जरा मरण रोग शोक वर्ण गंध रस स्पर्श मूर्त्तिपणो ए अनागतादिक धर्म ते सर्व पदार्थ ईश्वरना अनुगामीछे (पुरिसमेवअभिभूयचिठंति के०) किंबहुना ए सर्व पुरुषनेज व्यापीने रहेछे (सेजहाणामए के०) ए अर्थ उपर दृष्टांत देखाडेछे जेम णाम एवे संभावनाये (गंमेसिया सरीरेजाएके०) पुरुषने शरीरे गंम एटले गुंबडो रोग विशेष थाय ते तेज शरीरने विपे उपनो (सरीरेसंवुड्ढे के०) तेज शरीरने विषे वृद्धि पाम्यो (सरीरे अभिसमण्णागए के०) शरीरने पछवाडेज अनुगत गामिछे (सरीरमेवअभिभूयचिठंति के०) शरीरने विपेज व्यापि रहेछे पण तेनो अवयव शरीर थकी बाहेर नथी (एवमेव के०) एमज (धम्मावि के०) ए पदार्थ मात्रजेछे ते पण (पुरिसादिया

रूपं स्यात्तत्र पृथिव्यां जातं पृथिवीसंवर्द्धं पृथिव्यभिसंबंधागतं पृथिवीमेवाभिसंभूय ति ष्ठत्येवं दार्ष्टांतिकेप्यायोज्यं । एवमेव यदेतच्चेतनरूपं तत्सर्वमीश्वरकारणिकमात्मविवर्त रूपं वा नात्मनः पृथग्भवितुमर्हति पृथिव्यां वल्मीकवत्तथा तद्यथा नाम वृक्षोऽशोका दिकः स्यात्सच पृथिवीजातइति दृष्टांतदार्ष्टांतिके पूर्ववदायोज्ये । तद्यथा । नामपुष्क रिणी स्यात्तडागरूपा भवेत्साच पृथिव्यामेव जातेत्यादि प्राग्वच्चर्च्यस्तथा तद्यथा नामपु ष्कलं प्रचुरमुदकं पुष्कलमुदकप्राचुर्यं तत्र तद्भमेत्याद्युदकमेव यावदुदकमेवाभिभूय तिष्ट त्येवं दार्ष्टांतिकेप्यायोज्यं । तथा तद्यथा नामोदकबुद्बुदः स्यादत्रापि दृष्टांतदर्ष्टांतिके न तस्मादवयविनः पृथग्भूतइति सुगमं ॥ १६ ॥

जंपिय इमं समणाणं णिग्गंथाणं उद्दिठं पणियं वियं जियं डवालसंगं गणिपिम्मयं तंजहा आयारो सूयगडो जाव दिठिवातो सव्वमेवं मिहा ण एयं तहियं णएयं आहातहियं इमं सच्चं इमं तहियं इमं आहात हियं एवं सन्नं कुव्वंति ते एवं सन्नं संठवेंति तेएवं सन्नं सोवठवयंति तमेवं ते तज्जाइयं डुक्खं णातिउट्टंति सउणी पंजरं जहा ॥१७॥ ते णो एवं विप्पडि वेदेंति तंजहा किरियाइवा जाव अणिरएइवा एवमेव ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामन्नोगाइं समारम्भंति भोयणाए एव मेव ते अणारिया विप्पडिवन्ना एवं सदहमाणा जावइति ते णोहव्वाए णोपाराए अंतरा कामन्नोगेसु विसस्सेति तत्रे पुरिसजाए ईसरकारणि एत्ति आहिए ॥ १८ ॥

अर्थ–हवे जे ईश्वरे कह्यो ते सर्व सत्यछे अने बीजो सर्व मिथ्या छे एवो भाव कहेछे (जंपियइमंके०) जे ए प्रत्यक्ष लक्षण (समणाणंणिग्गंथाणंके०) श्रमण निग्रंथनो (उ द्दिठंके०) उदेस्यो एटले ते निग्रंथने अर्थे भाष्यो (पणियंवियंजियं के०) तेने अर्थे प्रग ट कह्यो (डुवालसंगंगणिपिम्मयं के०) द्वादशांगी गणि पिटक एटले आचार्यनो भंडा र (तंजहा के०) तेना नाम कहेछे. (आयारो के०) आचारांग (सूयगडो के०) सू त्रकृतांग इत्यादिक (जावदिठिवातो के०) ज्यांसुधी दृष्टिवाद लोक बिंदुसार नामा पूर्व पर्यंत (सव्वमेवंमिहा के०) ए सर्व मिथ्याछे कारण के ए कांइ ईश्वरकृत नथी एतो सर्व पोतानी इछायें कल्पितछे माटे मिथ्याछे जेम कोइ छताने अछतो कहे अछताने छतो कहे जेम कोइ साधुने चोर कहे अने चोरने साधु कहे तथा गायने घोडो कहे अने घोडाने गाय कहे तेमज आत्मा कर्त्ता नथी तेने जे कर्त्ता कहेछे अने जे ईश्वर कर्त्ताछे

काररूपान पुरुषात् पृथग्भवंति तद्विकारापगमे चात्मानमेवाश्रित्य तिष्ठंति । एवमन्यदृष्टांताअपि भाव्याः । (सेजहेत्यादि) अरतिश्चित्तोद्वेगरूपा साच शरीरजातेत्यादि । यथावा वल्मीकं पृथिवीविकाररूपं पृथिव्यां जातमित्यादि । एवं सर्वमीश्वरकारणिकमात्मविवर्तरूपं वा । यथा वा वृक्षोऽशोकादिः पृथिवीजातः । यथा वा पुष्करिणी तडागरूपा पृथिव्यामेव जातेत्यादि प्राग्वत् । तथा उदकपुष्कलमुदकप्राचुर्यं मुदकजातमित्यादि यथावा उदकबुद्बुदइत्यादि सुगमं ॥ २६ ॥

॥ टीका—सचायं । इह खलु धर्माः स्वभावाश्चेतनाचेतनरूपाः पुरुषईश्वरआत्मावा कारणमादिर्येषांते पुरुषादिकाईश्वरकारणिकाआत्मकारणिकावा तथा पुरुषएवोत्तरं कार्यं येषांते पुरुषोत्तरास्तथा पुरुषेण प्रणीताः सर्वस्य तदधिष्ठितत्वात् तदात्मकत्वाद्वा तथा पुरुषेण द्योतिताः प्रकाशीकृताः प्रदीपमणिसूर्यादिनेव घटपटादयइति । तेच धर्मा जीवानां जन्मजरामरणव्याधिरोगशोकसुखदुःखजीवनादिकाः । अजीवधर्मास्तु मूर्तिमतां द्रव्याणां वर्णगंधरसस्पर्शाअमूर्तिमतां द्रव्याणां धर्माधर्माकाशानां गत्यादिकाधर्माः । सर्वेपीश्वरकृताआत्माद्वैतवादेवाऽत्मविवर्ताः सर्वेप्येते पुरुषमेवाभिभूय व्याप्य तिष्ठंति । अस्मिन्नर्थे दृष्टांतानाविर्भावयन्नाह । (सेजहाणामएइत्यादि) सेशब्दस्तच्छब्दार्थे । नामशब्दः संभावनायां । तद्यथा । नाम गंडं स्याद्भवेत्संभाव्यते च शरीरिणां संसारांतर्गतानां कर्मवशगानां गंडादिसमुद्भवस्तच्च शरीरे जातं शरीरावयवसंभूतं तथा शरीरे वृद्धिमुपगतं शरीराभिवृद्धौ च तस्याभिवृद्धिस्तथा शरीरेऽभिसंबंधागतं शरीरमाभिमुख्येन व्याप्य व्यवस्थितं न तदवयवोपि शरीरात्पृथग्भूतइति भावः । तथा शरीरमेवाभिभूयाभिमुख्येन पीडयित्वा तिष्ठति । यदिवा तदुपशमे शरीरमे वाश्रित्य तद्गंडं तिष्ठति न शरीराद्बहिर्भवति । एतदुक्तं भवति । यथा तत्पिटकं शरीरैकदेशभूतं नयुक्तिशतेनापि शरीरात्पृथग्दर्शयितुं शक्यते एवमेवामी धर्माश्चेतनाचेतनरूपास्ते सर्वेपीश्वरकर्तृकान ते शरीरात्पृथक्कर्तुं पार्यंते । यदिवा सर्वव्यापिनआत्मनस्त्रैलोक्योदरविवरवर्तिपदार्थात्मनोये केचन धर्माः प्रादुःषंति ते पृथक्कर्तुं नशक्यंते तथा तद्गंडं शरीरविकारभूतं तदपृथग्भूतं तद्विनाशेच शरीरमेवावतिष्ठते । एवमेव सर्वेपि धर्माः पुरुषादिकाः पुरुषकारणिकाः पुरुषविकाररूपा नपुरुषात्पृथग्भवितुमर्हंति तद्विकारापगमेवाऽत्मानमेवाश्रित्यावतिष्ठंति न तस्माद्बहिर्भवंतीति शास्त्रेच दृष्टांतप्राचुर्यमविरुद्धं । यदिवाऽस्मिन्नर्थे बहवोदृष्टांताः । संभवंतीश्वरकर्तृत्ववादस्याद्वैतवादस्यच सुप्रसिद्धत्वाद्दृष्टांतबहुत्वमित्याह । (सेजहाइत्यादि) तद्यथा नामारतिश्चित्तोद्वेगलक्षणः स्याद्भवेत् । साच शरीरजाताइत्यादि गंडवन्नेया । दार्ष्टांतिकेप्येवमेव सर्वे धर्माः पुरुषादिकाः पुरुषप्रभवाइत्यादिपूर्ववन्नेयं । तथा यथा नाम वल्मीकं पृथ्वीविकार

वं वादिनस्तदंगीकारजानीयं दुःखं दुःखहेतुत्वान्नातिवर्तंते न त्रोटयंति । यथा शकुनिः पक्षी पंजरं न त्रोटयति एवं तेपि तदुपदेशात्कर्मबंधनं नातिवर्तंते ॥ २४ ॥ ते कदाग्र हग्रस्ताएत द्वक्ष्यमाणं नविप्रतिवेदयंति न जानंति । तद्यथा । इयंक्रियाइत्यादि यावदन रकइत्येवं निर्विवेकत्वान्न जानंति । एवमेव यथाकथंचिन्ने विरूपरूपैः कर्मसमारंजैर्वि रूपरूपान् कामजोगान् समारजंते जोजनाय उपजोगाय । एवं ते अनार्याविप्रतिपन्नाः स्वपक्षं प्रतियंति श्रद्दधतीति पूर्ववत् । यावत्ते कामजोगेषु विपन्नाः । इत्ययमीश्वरकार णिकआत्माद्वैतवादी तृतीयः पुरुषजातः संपूर्णः ॥ २८ ॥

॥ टीका–तदेवं यदीश्वरकृतत्वेनाज्युपगम्यते तत्सर्वं तथ्यमपरं मिथ्या इत्येतदाविर्जावय न्नाह । (जंपियेत्यादि) यदपि चेदं संव्यवहारतः प्रत्यक्षासन्नजूतं श्रमणानां यतीनां निर्ग्रं थानां निष्किंचनानामुद्दिष्टं तदर्थं प्रणीतं व्यंजितं तेषामजिव्यक्तीकृतं द्वादशांगं गणिपिटकं तद्यथाचारइत्यादि यावद्दृष्टिवादः सर्वमेतन्मिथ्या अनीश्वरप्रणीतत्वात्स्वरुचिविरचितरथ्या पुरुषवाक्यवत्तथ्यं नैतत्तथ्यंमिथ्येत्यनेनोजूतोद्भावनमाविष्कृतमचौरत्ववत् । नैतत्तथ्यमित्य नेन तु सद्भूतार्थनिन्ह्वोयथानास्त्यात्मेति तथा नैतद्याथातथ्यमवस्थितार्थः । तथावस्थि तमिति जावोनेन सद्भूतार्थनिन्ह्वेनासद्भूतार्थारोपणमाविष्कृतं । तद्यथा । गामश्वं ब्रुवतो श्वं वा गामित्येकार्थिकानि चैतानि शक्रेंद्रादिवद्द्रष्टव्यानि । तदेवं यदि तद्द्वादशांगं गणि पिटकं तदनीश्वरप्रणीतत्वान्मिथ्येति स्थितमिदं तु पुनरीश्वरकर्तृकत्वं नामात्माद्वैतं वा सत्यं यथावस्थितार्थप्रतिपादनात् । तथेदमेव तथ्यं सद्भूतार्थोद्भासनात्तदेवं ते ईश्वरकार णिकाआत्माद्वैतवादिनोवा । एव मनंतरोक्तया नीत्या सर्वं तनुजुवनकारणादिकमीश्वर कारणिकं तथा सर्वं चेतनमचेतनं वाऽऽत्मनि निवर्तितस्वजावमात्मनएव सर्वाकारतयोत्प त्तेरित्येवं संज्ञानं संज्ञा तामेवं कुर्वंत्यन्येषांच ते स्वदर्शनानुरक्तमनसः संज्ञां स्थापयंति तथा एवंजूतां संज्ञां वक्ष्यमाणेन न्यायेन नियुक्तिकामपि नुष्ठूपलामीप्येन तदायाह्नितया तदाजिमुखायुक्तीर्निर्णापवः स्थापयंति प्रतिष्ठापयंति । ते चैवं वादिनस्तमीश्वरकर्तृत्ववाद मात्माद्वैतवादंवा नातिवर्तंते तदज्युपगमजातीयं च दुःखं दुःखहेतुत्वाद्दुःखं नातिवर्तंते न त्रोटयंति । अस्मिन्नर्थे दृष्टांतमाह । यथा शकुनिः पक्षिविशेषोलावकादिकः पंजरं ना तिवर्तते पौनःपुन्येन ज्रांत्वा तत्रैव वर्तते एवं तेप्येवंजूताज्युपगमवादिनस्तदापादितक र्मबंधं नातिवर्तंते नवा त्रोटयंति ॥ २७ ॥ तेच स्वाजिमानग्रहग्रस्तानेत द्वक्ष्यमाणं विप्रतिवे दयंति न सम्यक् जानंति । तद्यथेयं क्रियासदनुष्ठानरूपेयं चाक्रिया तद्विपरीतेत्येवं स्वाग्रहि णोनान्यत् शोजनमशोजनं वा यावदयमनरकइत्येवं सद्विवेकरहितत्वान्नावधारयंत्येवमेव य थाकथंचित्ते विरूपरूपैः कर्मसमारंजैर्नानाप्रकारैः सावद्यानुष्ठानैद्रव्योपार्जनोपायजूतैर्द्रव्य मुपादाय विरूपरूपान्कामजोगान्नुच्चावचान्समाचरंति जोजनायोपजोगार्थमित्येवमनार्यास्ते

तेने अकर्त्ता कहेछे तेमाटे (णएयंतहियंके०) ए तथ्य नथी (णएयंआहातहियंके०) ए यथातथ्य नथी हवे ए दर्शनी जेने सत्य करी माने ते कहेछे. (इमंके०) ए ईश्वर कारणिक छे एमजे मानीये तेहिज (सच्चंके०) सत्यछे (इमंतहियंके०) तेहिज तथ्य जाणवो (इमंआहातहियंके०) एज यथा तथ्यविशेषे जाणवो एरीते ते ईश्वर कारणिक पोताना दर्शनने अनुरागे (एवंसन्नंकुव्वति के०) एवी संज्ञा करे (तेएवंसन्नंसंठवेंति के०) ते बीजा आगल पण एवीज संज्ञा स्थापन करे यद्यपि एवात युक्ति शून्यछे तथापि (तेएवं सन्नं सोवठ्ठवयंतिके०) ते एवी संज्ञाने अनेक हेतु युक्ति दृष्टांते करी स्थापेछे (तमेवंते तज्जाइयंडुक्खं के०) ते कारणे ते उत्सूत्रने स्थापवे करी उत्पन्न थाय जे डुःख ते डुःखने (णातिउट्टंति के०) त्रोडी नशके तेना उपर दृष्टांत कहेछे (सउणीपंजरंजहा के०) जेम शकुनी एटले पक्षी ते पांजराने त्रोडी नशके भ्रमण करी करीने वली तेहिज पांजरा मांहे रहे तेम ते पूर्वोक्त अन्य दर्शनीउं पण संसार रूप पांजरा मांहेज रहे परंतु मोक्षे जइ शके नही अने बीजाने पण मोक्षे पोचाडी नशके ॥ १७ ॥ (तेणोएवं विप्पडिवेदेंति के०) ते अन्य दर्शनी पांखमी बापडा आटली वात नथी जाणता शुं नथी जाणता (तंजहा के०) ते कहेछे. (किरियाइवा के०) रुडो अनुष्ठान नथी जाणता (जावअणिरएतिवा के०) यावत् अनरक पर्यंत नथी जाणता (एवमेव के०) एम अणजाणता थका (तेविरूवरूवेहिंकम्मसमारंभेहिं के०) ते नाना प्रकारना सावद्यकर्मने करवे करी (विरूवरूवाइंकामभोगाइंसमारभंति के०) अनेक प्रकारना कामभोग समारंभे भोगवे (भोयणाए के०) भोजनने अर्थे एरीते ते अनार्य पोताना धर्मने रुडो देखाडी प्ररूपता छता कामभोगने विषे मूर्छाणा थका एमते पाखंमी धर्मे राजादिकने सद्दावता थका ज्यांलगे ते तीरे पण रह्या नही अने पारपण पाम्या नही एम आलोक थकी चूका अने परलोके पण पोता नही विचाले संसार मांहे काम भोग रूप कादवने विषेज खुता थका रहे ते राजारूप पुंमरीक कमलने उद्धरी शके नही ए त्रीजो पुरुष जात ईश्वर कारणिक कह्यो. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—ईश्वरकर्तृ सत्यमन्यन्मिथ्येत्याह । यदपि चेदं श्रमणानां यतीनां निर्ग्रंथानां निष्किंचनानामुद्दिष्टं प्रणीतं व्यक्तीकृतं द्वादशांगं गणिपिटकं । तद्यथा । अचारः सूत्रकृतांगमित्यादि यावदृष्टिवादः । सर्वमेतन्मिथ्याऽनीश्वरप्रणीतत्वात् नैतत्तथ्यं नैतद्याथातथ्यं न यथास्थितार्थकथकं । इदं पुनरीश्वरकर्तृत्वं आत्माद्वैतंच सत्यं इदमेव तथ्यं इदमेव याथातथ्यं । तदेवं ते पूर्वोक्तनीत्या संज्ञां कुर्वंति ज्ञानं दधते अन्येभ्यश्च संज्ञां संस्थापयंति । ते एवं संज्ञामुपस्थापयंति सुष्ठु उपसामीप्येन युक्तिभिः स्थापयंति । ते चै

अहावरे चउछे पुरिसजाए णियतिवाइएत्ति आहिज्जइ इह खलु पाई णंवा तहेव जावसेणावईपुत्तावा तेसिंचणं एगताए सद्धा नवइ कामं तं समणाय माहणाय संपहारिं सुगमणाए जाव मए एस धम्मे सुअक्खा ए सुपन्नते नवइ ॥ २ए ॥

अर्थ—अथ हवे अनेरो चोथो पुरुषजात नियतवादि कहिये ठैयें जे कार्य सिद्धिने विषें नवितव्यता टालीने बीजो कारण कांइ पण न माने ते नियतवादि कहिए. खलु एवे वाक्यालंकारे ए मनुष्य लोकने विषे पूर्वादिक चारदिशि मांहेलो कोइएक पुरुष होय ते ज्यां सुधी सेनापतिना पुत्र इत्यादिक परषदा कहेवी तेमांहे कोइएकने धर्मनी श्रद्धा होय धर्मार्थी होय एवो धर्मार्थी जाणीने व्राह्मण श्रमण मली तेने धर्म प्रति वोधवा निमित्ते आलोची राजादिकने संमुख जइने पोतानो धर्म प्ररूपे ते नियतवादि राजादिकनी पाशें पोताना धर्मनी स्थापना जे रीते करे तेरीते कहेछे. ॥ २ए ॥

॥ दीपिका—अथापरश्चतुर्थः पुरुषजातोनियतिवादी आख्यायते । इह खलुपाईणं इत्यादिप्राग्वत् । यावदेषधर्मः स्वाख्यातोनवतीति ॥ २ए ॥

॥ टीका—सांप्रतं चतुर्थपुरुषजातमधिकृत्याह । (अहावरेइत्यादि) अथ तृतीयपुरुषानंतरमपरश्चतुर्थः पुरुषएव पुरुषजातोनियतिवादिकआख्यायते प्रतिपाद्यते सचैवमाह। नात्र कश्चित्कालेश्वरादिकः कारणं नापि पुरुषकारः समानक्रियाणामपि कस्यचिदेव नियतिवादवलादर्थसिद्धेरतोनियतिरेव कारणं । उक्तंच । प्राप्तव्योनियतिवलाश्रयेण योर्थः सोवश्यं नवति नृणां शुनोऽशुनोवा ॥ नूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने नान्नाव्यं नवति न नाविनोस्ति नाशइत्यादि ॥ २ए ॥

इह खलु डवे पुरिसा नवंति एगे पुरिसे किरियामाइक्खइ एगे पुरिसे णो किरियामाइक्खइ जेयपुरिसे किरियामाइक्खइ जेपुरिसे णोकिरियामाइक्खइ दोवि ते पुरिसा तुल्ला एगद्य कारणमावन्ना ॥ ३० ॥

अर्थ—(इहखलुडवेपुरिसानवंति के०) आ संसार मांहे खलु एवे वाक्यालंकारे बे पुरुष होय तेमांहे (एगेपुरिसेकिरियामाइक्खइ के०) एक पुरुष क्रिया वोले (एगेपुरिसेणोकिरियामाइक्खइ के०) अने एक पुरुष अक्रिया वोले त्यां एक देश थकी बीजे देशे जइयें ते क्रिया जाणवी अनेजे देशांतरने विषे नजावुं एम उपक्रम विना कार्य प्रा

विरुद्धं मार्गं विप्रतिपन्नान सम्यग्वादिनोन्नवंति । तथाहि । सर्वमीश्वरकर्तृकमित्यत्राच्यु पगमे किमसावीश्वरः स्वतएवापरान् क्रियासु प्रवर्तयेडुतापरेण प्रेरितस्तत्र यद्याद्यः पक्षस्त द्वदन्येषामपि स्वतएव क्रियासु प्रवृत्तिर्नविष्यति कियंतर्गडुनेश्वरकल्पनेन । अथासावप्यपर प्रेरितः सोप्यपरेणेत्येवमनवस्थालता नन्नोमंडलमालिनी प्रसर्पति । किंचासावीश्वरोमहा पुरुषतया वीतरागोपेतः सन्ननेकान्नरकयोग्यासु क्रियासु प्रवर्तयत्यपरांस्तु स्वर्गापवर्गयोग्या स्वित्यथ ते पूर्वशुनाशुनचरितोदयादेव तथाविधासु तासु क्रियासु प्रवर्तंते सतु निमित्त मात्रमेतदपि नयुक्तिसंगतं । यतः प्राक्तनाशुनाशुनप्रवर्तनमपि तदायत्तमेव । तथा चो क्तं । अज्ञोजंतुरित्यादि । अथ तदपि प्राक्तनमन्येन प्राक्तनतरेण कारितमित्येवमनादिहे तुपरंपरेत्येवं च सति ततएव शुनाशुने स्थाने नविष्यतः किमीश्वरपरिकल्पनेन । तथा चो क्तं । शास्त्रौषधादिसंबंधाच्चैत्रस्य व्रणरोहणे ॥ असंबद्धस्य कः स्थाणोः कारणत्वं नक ल्पतइत्यादि । यच्चोक्तं । सर्वं तनुनुवनकरणादिकं बुद्धिमत्कारणपूर्वकं संस्थानविशेषत्वा त् देवकुलवदित्येतदपि नयुक्तिसंगतं । यतएतदपि साधनं नन्नवदनिप्रेतमीश्वरं साधयति तेन सार्धं व्याप्त्यसिद्धेः । देवकुलादिके दृष्टांतेऽनीश्वरस्यैव कर्तृत्वेनाच्युपगमात् । नच सं स्थानशब्दप्रवृत्तिमात्रेण सर्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वं सिध्यति । अन्यथानुपपत्तिलक्षण स्य साध्यसाधनयोः प्रतिबंधस्यानावात् । अथाविनानावमंतरेणैव संस्थानमात्रदर्शना त्साध्यसिद्धिः स्यादेवंच सत्यतिप्रसंगः स्यात् । उक्तंच । अन्यथा कुंनकारेण मृद्विकारस्य कस्यचित् ॥ घटादेः कारणात्सिद्धेर्वल्मीकस्यापि तत्कृतिरित्यादि । नचेश्वरकर्तृत्वे जगद्वै चित्र्यं सिध्यति तस्यैकरूपत्वादित्युक्तप्रायमिति । आत्माद्वैतपक्षस्त्वत्यंतमयुक्तिसंगतत्वा न्नाश्रयणीयः । तथाहि । तत्र न प्रमाणं न प्रमेयं नप्रतिपाद्यं न प्रतिपादकोन हेतुर्न दृष्टांतोन तदान्नासोन्नेदेनावगम्यते । सर्वस्यैव जगतएकत्वं स्यादात्मनोन्निन्नत्वात् तदना वेच कः केन प्रतिपाद्यते इत्यप्रणयनमेव शास्त्रस्यात्मनश्चैकत्वात्तत्कार्यमप्येकाकारमेव स्यादित्यतोनिर्हेतुकं जगद्वैचित्र्यं । तथाच सति । नित्यं सत्वमसत्वं वा, हेतोरन्यानपेक्ष णात् ॥ अपेक्षातोहिन्नावानां, कादाचित्कत्वसंनवइत्यादि । तदेवमीश्वरकर्तृत्वमात्माद्वैतप क्षश्च युक्तिविचार्यमाणोन कथंचिद्घटां प्रांचति । तथा ते स्वदर्शनमोहमहितास्तज्जातीया दुःखात् शकुनिः पंजरादिव नातिमुच्यंते विप्रतिपन्नाश्च तत्प्रातिपादिकान्निर्युक्तिनिस्तदेव स्वपक्षं प्रतियंति श्रद्दधतीति पूर्ववन्नेयं । (यावत् णोहव्वाएणोपाराएअंतराकामनोगेसु विसएसुत्ति) इत्ययं तृतीयः पुरुषजातईश्वरकारणिकइति । सद्येवमाह । यस्य बुद्धि र्न लिप्येत हत्वा सर्वमिदं जगत् ॥ आकाशमिव पंकेन नासौ पापेन लिप्यतइत्याद्यसमंज सनापितया त्यक्त्वा पूर्वसंयोगमप्राप्तोविवक्षितं स्थानमंतरालएव कामन्नोगेषु मूर्छितोवि षएसुइत्यवगंतव्यमिति ॥ १७ ॥

अनुनवुंछुं (अहमेय मकासिके०) ए सुख दुःखादिक अनुनवुंछुं ते माहाराज करेलाछे (परोवा के०) अथवा पर एटले वीजो पण (जं के०) जे दुःख अनुनवेछे शोक अनुनवेछे जूरेछे तेना शरीरनो वल उंछुं थायछे पीडा अनुनवेछे परितापना अनुनवेछे ते (परोएवमकासिके०) तेणेज अनरे एम कीधोछे अथवा माहारे विषे वीजो कोइ सुख दुःखादिक उपजावे तेपण माहाराज करेलाछे (एवंके०) एम (सेवालेके०) ते वाल अज्ञानी (सकारणंवा के०) स्वकारण अथवा (परकारणंवाके०) पर कारण सर्व दुःखादिक जे छे ते पुरुपकार कारणकरी मानेछे (एवं के०) एम (विप्पडिवेदेंति के०) जाणेछे (कारणमावन्ने के०) ए जे पुरुपकार कारणने मानेछे ते वाल जाणवा ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका—वालोज्ञः पुनरेवं विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्नः कारणमुद्दिश्य । तद्यथा । योहमस्मि (दुःखामित्ति) दुःखमनुनवामि (सोयामित्ति) शोकमनुनवामि (जूरामित्ति) दुष्कृतप्रवृत्तमात्मानं गर्हामि अनर्थावातौ विस्तरयामीत्यर्थः । तिप्पामि शरीरवलात्क्षरामि पीडामि पीडामनुनवामि परितापमनुनवामि । एवं यत्सुखदुःखादिकमनुनवामि तदहमेवाकार्पं परोवा यःदुखादिकमनुनवति मयिवाऽऽपादयति तत्स्वयमेव कृतमिति । एवं सपुरुपकारणमापन्नः स्वकृतं परकृतं वा दुःखादि सर्वं पुरुपकारकृतमिति जानीते वालइत्यर्थः ॥ ३१ ॥

॥ टीका—नियतिवादी परमतोद्भिन्नावविपयाह । (वालेपुणइत्यादि) वालोज्ञः पुरुपः कालेश्वरवादीत्यादिकः । पुनरिति विशेपणार्थस्तदेव दर्शयति । एवमिति । वक्ष्यमाणनीत्या विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्नः सुखदुःखयोः स्वकृतएव पुरुपः कालेश्वरादिर्वा कारणमित्येवमभ्युपपन्नोनान्यन्नियत्यादिकं कारणमस्तीति । तदेवाह । तद्यथा । योहमस्मिन् दुःखमिति शारीरं मानसं दुःखमनुनवामि तथा शोचामीष्टानिष्टवियोगसंप्रयोगकृतं शोकमनुनवामि तथा (तिप्पामित्ति) शारीरवलं क्षरामि तथा (पीडामित्ति) सवाह्यान्यंतरया पीडया पीडामनुनवामि तथा (परितप्पामित्ति) परितापमनुनवामि तथा (जूरामित्ति) अनार्यकर्मणि प्रवृत्तमात्मानं गर्हामि अनर्थावाप्तौ विस्तरयामीत्यर्थः । तदेवं यदहं दुःखमनुनवामि तदहमेवाकार्पं परपीडया कृतवानस्मीत्यर्थः । तथा परोपि यद्दुःखशोकादिकमनुनवति मयि चापादयति तत्स्वयमेव कृतमिति । तदेव दर्शयति । परोवेत्यादि । तथा परोपि यन्मां दुःखयति शोचयतीत्यादि प्राग्वन्नेयं । तत्सर्वमहमकार्पमित्येवं भ्रान्त्यामाकलितोऽज्ञोज्ञोवा वालएवं विप्रतिवेदयते जानीते स्वकारणंवा परकारणंवा सर्वं दुःखादिपुरुपकारणमिति जानीते एवं पुरुपकारकारणमापन्नइति ॥ ३१ ॥

त्ति थाय तेने अक्रिया कहिए (जेयपुरिसेकिरियामाइरकइ के०) जे पुरुष क्रिया कहेछे अने (जेपुरिसेणोकिरियामाइरकइ के०) जेपुरुष अक्रिया कहेछे (दोवितेपुरिसातुल्ला के०) ए क्रियावादि अने अक्रियावादि बंने पुरुष तुल्य एटले सरखा जाणवा (एगट्ठा कारणमावन्ना के०) ए बेनुं एकज अर्थछे कारणके ते नियतने वशें वर्त्ते जो ते पोताने वशें होय तो सरखा नकहेवाय ॥ ३० ॥

॥ दीपिका–नियतिवादी स्वमतमाह । इह द्वौ पुरुषौ नवतः । एकः क्रियामाख्याति । देशाद्देशांतरप्राप्तिः क्रिया सा नियतेरेवस्यात् एवमक्रियापि । द्वावेतौ नरौ तुल्यौ नियतिवशवर्तित्वात् एकार्थौ एककारणापन्नत्वात् क्रियाक्रिये नियत्येककारणाधीनेइत्यर्थः ॥ ३० ॥

॥ टीका–इह खलु (डुवेपुरिसानवंतीत्यादि) इहास्मिन् जगति । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । द्वौ पुरुषौ नवतस्तत्रैकः क्रियामाख्याति । क्रिया हि देशाद्देशांतरावाप्तिलक्षणा पुरुषस्य नवतीति न कालेश्वरादिना चोदितस्य नवत्यपितु नियतिप्रेरितस्यैवमक्रियापि । यदि तावतंत्रौ नवतः । ततः क्रियावादमक्रियावादंच समाश्रितौ द्वावपि नियत्यधीनत्वात्तुल्यौ । यदि पुनस्तौ स्वतंत्रौ नवतस्ततः क्रियाक्रियानेदान्नतुल्यौ स्यातामित्यत एकार्थावेककारणापन्नत्वादिति नियतिवशेनैव तौ नियतिवादमनियतिवादं चाश्रिताविति नावः । उपलक्षणार्थत्वाच्चान्योपि यःकश्चित्कालेश्वरादिपक्षांतरमाश्रयति । सोपि नियतिचोदितएव डष्टव्यइति ॥ ३० ॥

बाले पुण एवं विप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने अहमंसि डुरकामिवा सोयामिवा जूरामिवा तिप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामिवा अहमेयमकासिपरोवा जं डुरकइवा सोयाइवा जूराइवा तिप्पाइवा पीडाइवा परितप्पाइवा परोएवमकासि एवं सेबाले सकारणंवा एवं विप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने॥ ३१ ॥

अर्थ–हवे ए नियतवादी परमतने विनावेछे (बालेपुणएवं विप्पडिवेदेंतिके०) ते परमतवादी बाल एटले अज्ञाने करी वली ऊजाणे ते कहेछे. (कारणमावन्ने के०) सुख डुःखादिकने उपजवे ईश्वरादिकनुं कारण माने ते कहेछे (अहमंसि डुरकामिवा के०) हुं आ जगत मांहे शारीरिक तथा मानसिक डुःख अनुनवुंछुं (सोयामिवाके०) इष्ट वियोग अने अनिष्ट संयोगनो करेलो शोक अनुनवुंछुं (जूरामिवा के०) अनर्थनी प्राप्तियें स्मरणायें ऊरुंछुं अथवा अर्थ प्राप्तियें विचरुंछुं (तिप्पामिवा के०) शरीरनो बल उछुं थायछे (पीडामिवाके०) बाह्याच्यंतर पीडा अनुनवुंछुं (परितप्पामिवाके०) परितापना

छे ते सर्वे नियतनेज वशेंछे एवो देखाडेछे (सेवेमि के०) ते नियतवादी युक्तियें निश्चें करी बोलेछे (पाईणंवा के०) पूर्वादिक चार दिशिने विषे (जे तसथावरापाणाके०) जे कांइ त्रस अने स्थावर प्राणीछे (ते एवंसंघायमागछंति के०) ते एम जे कांइ शरीरादिक संबंध पामेछे ते नियतिनेज वशें पामेछे परंतु बीजो कर्मादिक कारण तेने कांइ न थी (ते एवंविपरियासमावज्जंति के०) ते एम बाल कुमार यौवन अने वृद्ध अवस्थादिक नानाप्रकारना पर्याय पामेछे ते सर्वे नियति थकीज अनुनवेछे (ते एवंविवेगमागछंतिके०) तथा ते एम नियति थकीज विवेक एटले शरीर ते थकी पृथक् नाव पामेछे (ते एवंविहाणमागछंति के०) तथा ते एम नियति थकीज विधान एटले अवस्था विशेष अर्थात् कुब्ज काणो खंज वामन जरा मरण रोग शोकादिक पामेछे (ते एवंसंगतियंतिउवेहाए के०) एरीते ते त्रस अने स्थावर प्राणी नियतने वशे एटला नावने अनुनवेछे हवे श्रीसुधर्म स्वामि श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहे छे के एवा नियतवादि पुरुषो मात्र एक नियतनोज पक्ष अनुसरीने परलोकनी बीक नराखता सावद्यानुष्ठान करेछे परंतु (णोएवंविप्पडिवेदेंतिके०) ते एवो नथी जाणता शुं नथी जाणता (तंजहा के०) ते कहेछे (किरियातिवा जाव अणिरएतिवा के०) क्रिया अक्रिया सिद्धि असिद्धि इत्यादिक यावत् नरक अनरक पर्यंतने नथी जाणता (एवंते के०) एम ते सर्वे दोष एक नियत उपरे स्थापन करीने (विरूवरूवे हिंकम्मसमारंनेहिं विरूवरूवाइंकामनोगाइंसमारनंति नोयणाए के०) नानाप्रकारना कर्म समारंने नोजननेअर्थें अने नोगने अर्थें नाना प्रकारना कामनोगने समारंने ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका–मेधावी नियतिवादी कारणमापन्नः स्वकारणं परकारणं वा उद्दिश्य प्रवृत्तिर्न पुरुषकारकृता यतोनहि कस्यचिदात्माऽनिष्टोयेनानिष्टाङ्ःखोत्पादिकाः क्रियाः समारनंते किंतुनियत्यैवायमनिछन्नपि तत्कार्यते येन ङःखनाग्नवति । एवमसौ कारणमापन्नोवेत्तीति कारणं वात्र एकस्याऽसदनुष्ठानपरस्यापि न ङःखमुत्पद्यते ततोनियतिरेव कर्त्रीति । एतदेवाह । (सेवेमित्ति) सोहं नियतिवादी ब्रवीमि ये केचित्त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनस्ते नियतितएव औदारिकादिशरीरसंबंधमागछंति बालकुमारादिकं विविधं पर्यायं नियतितएवानुनवंति नियतितएव विवेकं शरीरात्पृथग्नावं प्राप्नुवंति । विधानमवस्थाविशेषं कुब्जकाणांधत्वजरामरणादिकमागछंति तदेवं ते प्राणिनोनियत्यैव संगतिं यांति नानाविधसुखङःखनाजः स्युः । एवं नियतिवादोत्प्रेक्षया एतद्वक्ष्यमाणं न विप्रतिवेदयंति न जानंति । तद्यथा । क्रियाअक्रियाइत्यादि यावद्विरूपरूपान् कामान् नोगान् नोजनायोपनोगार्थं समारनंते ॥ ३१ ॥

मेहावि पुण एवं विप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने अहमंसि डुक्कामिवा सो यामिवा जूरामिवा तिप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामिवा णोअहं एव मकासि परोवा जं डुक्काइवा जाव परितप्पाइवा णोपरो एवमकासि एवं से मेहावि सकारणंवा परकारणंवा एवंविप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने से बे मि पाईणंवा जे तसथावरा पाणा तेएवं संघायमागच्छंति ते एवं विपरियासमावज्जंति तेएवं विवेगमागच्छंति तेएवं विहाणमागच्छंति तेएवं संगतियंति उवेहाए णोएवं विप्पडिवेदेंति तंजहा किरियातिवा जावणिरएतिवा अणिरएतिवा एवंते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंन्नेहिं विरूवरूवाइं काम न्नोगाइं समारन्नंति न्नोयणाए ॥ ३९ ॥

अर्थ–हवे ए नियतवादी लोक ते पूर्वोक्त पुरुषकार कारणने बालत्व पणो मानीने पोताना मतनी स्थापना करेछे. (मेहाविपुणएवंविप्पडिवेदेंति के०) वली पंमित एवा नियत पक्ष ग्राही एम जाणेछे शुं जाणेछे ते कहेछे. (कारणमावन्ने के०) सुख डुःख जे उपजेछे तेने नियतटाली बीजो कारण कांइ जाणवो नही ते उपर कहेछे डुक्कामिवा सोयामिवा इत्यादि पाठनो अर्थ पूर्व प्रमाणे लखेछे हुं सुख डुःख अनुन्नवुंछुं हुं शोक अनुन्नवुंछुं जुरुछुं शरीरनो बल ओछुं थायछे पीडा अनुन्नवुंछुं परितापना अनुन्नवुंछुं (णो अहंएवमकासि के०) ते में नथी कर्युं किंतु नियतने न्नवितव्यताना बलथकी माहारे विषे आव्योछे परंतु पुरुषकारादिक प्रमाण कांइ नथी जे कारण माटे कोइपुरुष पोताना आत्माने अनिष्ट नथाय एम वांछेछे तो शावास्ते ते शुं करवाने एवो करें के जे थकी ते डुःखी थाय परंतु अहींया नियतज प्रमाणछे (परोवा के०) अथवा पर एटले बीजो (जंडुक्काइवा के०) जे कांइ डुःख अनुन्नवेछे (जावपरितप्पाइवा के०) यावत् परितापना अनुन्नवेछे ते पण (णोपरोएवमकासि के०) तेणे कीधो नथी परंतु नियति अने न्नवितव्यताने योगेंज सर्व उपजेछे)एवंसेमेहाविके०) एम ते मेधावि एटले पंमित पुरुष (सकारणंवापरकारणंवा के०) पोताने डुःखनो कारण अथवा परने डुःखनु कारण न्नवितव्यता छे परंतु न्नवितव्यता टाली बीजो कोइ पण कारण नथी (एवंविप्पडिवेदेंति के०) एम ते नियतवादि जाणेछे के जगत मांहे कोइ एक पापना करनारने पण डुःख उपजतुं नथी अने कोइएक सुकृतना करनारने डुःख उपजेछे माटे अंहींया पुरुषजे ईश्वर तेनुं कारण कांइपण नथी देखातुं किंतु (कारणमावन्ने के०) नियतज कारण देखायछे एमाटे न्नवितव्यता बलीष्टछे हवे बीजो पण जे कांइ जगत मांहे

नही अने पार पण पोता नही विचाले कामनोगने विषे खूता रहे ते पोताने पण उध्दरी शके नही अने राजारूप पुंमरीक कमलने पण उध्दरी शके नही ते आ लोक थकी पण ज्रष्ट थया अने मुक्तियें पण पोचे नही परंतु विचाले संसार मांहेज खुची रहे ए चोथो पुरुषजात नियत वादी कह्यो ॥ ३३ ॥

॥ दीपिका–तदेवं ते नियतिवादिनो ऽनार्याविप्रतिपन्नास्तं निर्युक्तिकं नियतिवादं श्रद्दधानाइत्यादि तावन्नेयं यावदंतरा कामनोगेषु विषस्मा इति चतुर्थः पुरुषजातः संपूर्णः ॥३३॥

॥ टीका–तदेवमेव पूर्वोक्तया नीत्या तेऽनार्याविरूपं नियतिमार्गं प्रतिपन्नाविप्रतिपन्नाः। अनार्यत्वं पुनस्तेषां निर्युक्तिकस्यैव नियतिवादस्य समाश्रयणात् । तथा ह्यसौ नियतिः किं स्वतएव नियतिस्वज्ञावा उतान्यया नियत्या नियम्यते किंवाऽतस्तत्र यद्यसौ स्वयमेव तथा स्वज्ञावः सर्वपदार्थानामेव तथा स्वज्ञावत्वं किं न कल्प्यते किं बहुदोषया नियत्या समाश्रितया । अथान्यया नियत्या तथा नियम्यते साप्यन्ययेत्येवमनवस्था । तथा नियतेः स्वज्ञावत्वान्नियतिस्वज्ञावया तया ज्ञवितव्यं न नानास्वज्ञावयेति । एकत्वाच्च नियतेस्तत्कार्येणाप्येकाकारेणैव ज्ञवितव्यं । तथाच सति जगद्वैचित्र्याज्ञावः । नचैतद्दृष्टमिष्टंवा । तदेवं युक्तिनिर्विचार्यमाणा नियतिर्नकथंचिद्घटते । यदप्युक्तं । द्वावपि तौ पुरुषौ क्रियाक्रियावादिनौ तुल्यौ एतदपि प्रतीतिबाधितं । यतस्तयोरेकः क्रियावाद्यपरस्त्वक्रियावादीति कथमनयोस्तुल्यत्वमथैकया नियत्या तथा नियतित्वात्तुल्यता अनयोरेतच्च निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति । नियतेरप्रमाणत्वात् । अप्रमाणत्वं च प्राग्लेशतः प्रदर्शितमेव । यदप्युक्तं । यद्दुःखादिकमहमनुज्ञवामि तन्नाहमकार्षमित्यादि तदपि बालवचनप्रायं । यतोजन्मांतरकृतं शुज्ञमशुज्ञंवा तदिहोपज्ञुज्यते स्वकृतकर्मफलेश्वरत्वादसुमतां । तथा चोक्तं । यदिह क्रियते कर्म, तत्परत्रोपज्ञुज्यते । मूलसिक्तेषु वृक्षेषु, फलं शाखासु जायते । तथा यदुपात्तमन्यजन्मनि शुज्ञाशुज्ञं वा स्वकर्मपरिणत्या तच्छक्यमन्यथा नोकर्तुं देवासुरैरपि हि । तदेवं ते नियतिवादिनोनार्याविप्रतिपन्नास्तमेव निर्युक्तिकं नियतिवादं श्रद्दधानास्तमेव च प्रतीयंते इत्यादि तावन्नेयं यावदंतरा कामनोगेषु विषस्माइति । चतुर्थः पुरुषजातः समाप्तः ॥ ३३ ॥

इच्चेते चत्तारि पुरिसजाया णाणापन्ना णाणाछंदा णाणासीला णाणादिठ्ठी णाणारुई णाणारंन्ना णाणाअज्झवसाणा संजुत्ता पहीणपुव्वसंजोगा आरियं मग्गं असंपत्ता इति ते णोहव्वाए णो पाराए अंतरा कामनोगेसु विसस्मा ॥ ३४ ॥

॥ टीका–तदेवं नियतिवादी पुरुषकारकारणवादिनोबालत्वमापाद्य स्वमतमाह । (मेहावीत्यादि) मेधा मर्यादा प्रज्ञा वा तद्वान् मेधावी नियतिवादपक्षाश्रय्येवं विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्नइति नियतिरेव कारणं सुखाद्यनुभवस्य । तद्यथा योऽहमस्मिन् डुःखयामि शोचयामि तथा (तिप्पामित्ति) क्षरामि (पीडामित्ति) पीडामनुभवामि (परितप्पामित्ति) परितापमनुभवामि नाहमेवाकार्षं डुःखमपि तु नियतितएवैतन्मय्यागतं न पुरुषकारादिकृतं । यतोनहि कस्यचिदात्मानिष्टोयेनानिष्टाडुःखोत्पादिताः क्रियाः समारभंते नियत्यैवासावनिछन्नपि तत्कार्यते येन डुःखपरंपराभाग्भवति कारणमापन्नइति परेप्ष्येवमेव योजनीयं । एवं सति नियतिवादी मेधावीति सोल्लुंठमेतत्सकिल नियतिवादी दृष्टं पुरुषकारं परित्यज्यादृष्टनियतिवादाश्रयेण महाविवेकीत्येवमुल्लंघ्यते स्वकारणं परकारणं च डुःखादिकमनुभवन्नियतिकृतमेतदेवं विप्रतिवेदयति जानाति कारणमापन्नं नियतिकारणं चात्रैकस्यासदनुष्ठानरतस्यापि नडुःखमुत्पद्यते परस्य तु सदनुष्ठायिनोपि तद्भवति यतोनियतिरेव कर्त्रीति । तदेवं नियतिवादे स्थिते परमपि यत्किंचित्तत्सर्वं नियत्यधीनमिति दर्शयितुमाह (सेबेमीत्यादि) सोहं नियतिवादी युक्तितोनिश्चित्य ब्रवीमीति प्रतिपादयामि । ये केचन प्राच्यादिषु दिक्षु त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादयः स्थावराश्च पृथिव्यादयः प्राणिनस्ते सर्वेप्येवं नियतितएवौदरिकादिशरीरबंधमागछंति नान्येन केनचित्कर्मादिना शरीरं ग्राह्यंते तथा बालकौमारयौवनस्थविरवृद्धावस्थादिकं विविधपर्यायं नियतितएवानुभवंति तथा विवेकं शरीरात्पृथग्भावमनुभवंति । तथा नियतितएव विविधं विधानमवस्थाविशेषं कुब्जकाणखंजवामनकजरामरणरोगशोकादिकं बीभत्समागछंति । तदेवं ते प्राणिनस्त्रसाः स्थावराएवं पूर्वोक्तनीत्या संगतिं यांति नियतिमापन्नानानाविधविधानभाजोभवंति । तएव वा नियतिवादिनः संगइयंति नियतिमाश्रित्य तडुत्प्रेक्ष्या नियतिवादोत्प्रेक्ष्या यत्किंचन कारितया परलोकभीरवोनो नैव तद्वक्ष्यमाणं विप्रतिवेदयंति । तद्यथा । क्रिया सदनुष्ठानरूपा अक्रियाऽसदनुष्ठानरूपाइत्यादि यावदेवं ते नियतिवादिनस्तडुपरि सर्वं दोषजातं प्रक्षिप्य विरूपरूपैः कर्मसमारंभैर्विरूपरूपान् कामभोगान्भोजनायोपभोगार्थं समारभंतइति ॥ ३२ ॥

एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्नाइं तंसद्दहमाणा जावइति ते
णोहव्वाए णोपाराए अंतरा कामभोगेसु विसण्णा चउत्थे पुरिस
जाए णियइवाइ एत्ति आहिए ॥ ३३ ॥

अर्थ–एरी ते ते अनार्य पुरुष कामभोगने विषे गृद्ध थता पोतानो धर्म रुडो करी प्ररूपता ते पाखंमी धर्म राजादिकने सद्दीवता थका ज्यां सुधी एम ते कांठे पण रह्या

न्नावेगे डुवन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे तेसिंचणं खेत्तवत्थूणि परिग्गहिया णि नवंति तं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा तेसिंचणं जण जाणवयाइं परिग्ग हियाइं नवंति तं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा तहप्पगारेहिं कुलेहिं आगम्म अनिनूय एगे निरकायरियाए समुठिता सतोवावि एगे णाय उय उवग रणंच विप्पजहाय निरकायरियाए समुठिता असतोवा वि एगे णाय उय उवगरणंच विप्पजहाय निरकायरियाए समुठिता जेते सतोवा असतोवा णाय उय अणाय उय उवगरणंच विप्पजहाय निरकायरियाए सुमुठिता॥३८

अर्थ—हवे पांचमो पुरुष स्वतीर्थिक कहियेंठयें (सेवेमि के०) जे पुरुष कामनोगने विषे अनासक्तठतो अंतराले नखुचे पुंमरीक कमलने उद्धारवा समर्थ ते हुं कहुंहुं (पाईणंवासंतेगतियामणुस्सा के०) पूर्वादिक दिशियें कोइ एक मनुष्य होय ते कहे वो होय (तंजहा के०) ते कहेठे. एक आर्य एक अनार्य एक उंचगोत्रना उपना एक नीचगोत्रना उपना एक महोटी कायाना धणी एक न्हानी कायाना धणी एक सारावर्ण वाला एक मागवर्ण वाला एक स्वरूपवान् एक कुरूपवान् (तेसिंचणं के०) ते पूर्वोक्त आर्यादिक पुरुषने (खेत्तवत्थूणिपरिग्गहियाणिनवंति के०) क्षेत्रते उघाडी नूमिका शाली क्षेत्रादिक तथा वस्तु ते घर हाट प्रमुख ढाकेली नूमिका ए परिग्रह होय (तंअप्प यरोवानुज्जयरोवा के०) तेअल्पतर एटले थोडा होय अथवा प्रनूततर एटले घणा होय वली (तेसिंचणंजणजाणवयाइंपरिग्गहियाइंनवंति के०) तेने जन एटले लोक जानपद एटले देश ए परिग्रह होय (तंअप्पयरोवानुज्जयरोवा के०) तेपण अल्पतर एटले थोडा होय अथवा प्रनूततर एटले घणा होय (तहप्पगारेहिंकुलेहिं आगम्मअनिनूय के०) तथा ते आर्यादिक तथा प्रकारना कुलने विषे आगम्म एटले जन्म पामीने कोइ एक महासत्ववंत पुरुष विषय कषायने जीपीने (एगेनिरकायरियाए के०) कोइएक निक्षाचर्याने विषे (समुठिता के०) सम्यक् प्रकारे उठ्या सावधान थया (सतोवाविएगेणायउयउ वगरणंच के०) कोइएक महा सत्ववंत पुरुष विद्यमान एवा णायउय एटले ज्ञाति स्वजनादिक तथा उपकरण ते धन धान्य सुवर्ण रूपादिक अनेक प्रकारनाते तेने (विप्प जहाय के०) त्यागीने (निरकायरियाए के०) निक्षाचर्याने विषे (समुठिता के०) सम्यक् प्रकारे उठ्या एटले चारित्रिया थया (असतोवाविएगेणायउवगरणंचविप्पजहा यनिरकायरियाएसमुठिता के०) कोइ एक महा सत्ववंत पुरुष ते अठता ज्ञाति स्वजन उपकरणादिक अनेक प्रकारनाठे तेने त्यागीने निक्षाचर्याने विषे सम्यक् प्रकारे सावधान

अर्थ-(इच्चेतेचत्तारिपुरिसजाया के०) एरीते ते पूर्वोक्त चार पुरुष जात तेमां एक जीव तच्चरीरवादी बीजो पंचमहानूतिक त्रीजो ईश्वरकारणी अने चोथो नियतवादी ए चार पुरुषते (णाणापन्ना के०) नानाप्रकारनी प्रज्ञा एटले बुद्धिवाला तथा नाना प्रकारना अनिप्राय वाला नाना प्रकारना शील एटले आचार वाला नाना प्रकारनी दृष्टी वाला नाना प्रकारनी रुची वाला नाना प्रकारना आरंनना करनार नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी (संजुत्ता के०) संयुक्त बता पोताना धर्मनेविषे सावधान थया (पहीणपुव्वसंजोगा के०) पूर्व संयोगजे माता पिता पुत्र कलत्रादिकनो संबंध तेनेत्यागीने (आरियंमग्गंअसंपत्ता के०) आर्य मार्गने अण पाम्या एमते कांठे पण न रह्या पार पण नपाम्या विचाले कामनोगने विषे खूता एटले परतीर्थिक चार पुरुष कह्या॥ ३४ ॥

॥ दीपिका-इत्येते चत्वारः पुरुषानानाप्रज्ञानानामतयोनानाछंदानानानिप्रायानानाशीलाअनेकाचारानानादृष्टयोऽनेकदर्शनानानारुचयोनानाप्रकारआरंनोधर्मानुष्ठानं येषां ते तथा नानाप्रकारेणाध्यवसायेन संयुक्ताधर्मार्थेमुद्यताः प्रहीणपूर्वसंयोगामातापितृकलत्रादिसंबंधरहिताआर्यं निर्दोषं मार्गमसंप्राप्ताः (णोहव्वाएत्ति) ऐहिकसुखनाजः (णोपराएत्ति) नापि नवपारगाः स्युः किंतु अंतरालएव कामनोगेषु विषणाः ॥ ३४ ॥

॥ टीका-सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । (इच्चेतेइत्यादि) इत्येते पूर्वोक्तास्तज्जीवतच्चरीरपंचमहानूतेश्वरकर्तृनियतिवादपक्षाश्रयिणश्चत्वारः पुरुषानानाप्रकारा प्रज्ञा मतिर्येषां ते तथा नानानिन्नश्छंदोऽनिप्रायोयेषां ते तथा नाना प्रकारं शीलमनुष्ठानं येषां तथा नानारूपा दृष्टिर्दर्शनं येषां ते तथा नानारूपा रुचिश्चेतोनिप्रायोयेषां ते तथा नानाप्रकारआरंनोधर्मानुष्ठानं येषां ते तथा नानाप्रकारेण परस्परनिन्नेनाध्यवसायेन संयुक्ताधर्माधर्मार्थेमुद्यताः प्रहीणः परित्यक्तः पूर्वसंयोगोमातृपितृकलत्रपुत्रसंबंधोयैस्ते तथा । आराद्यातः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्योमार्गोनिर्दोषः पापलेश्यासंपृक्तस्तमार्यं मार्गमसंप्राप्ताइति पूर्वोक्तयानीत्या ते चत्वारोपि नास्तिकादयो (णोहव्वाएइत्ति) परित्यक्तत्वान्मातृपित्रादिसंबंधस्य धनधान्यहिरण्यादिसंचयस्य च नैहिकसुखनाजोनवंति । तथा (णोपाराएत्ति) असंप्राप्तत्वादार्यस्य मार्गस्य सर्वोपाधिविशुद्धस्य प्रगुणमोक्षपद्धतिरूपस्य न संसारपारगामिनोनवंति न परलोकसुखनाजोनवंतीति कित्वंतरालएव गृहवासार्यमार्गयोर्मध्यवर्तिनएव कामनोगेषु विषणाअध्युपपन्नादुष्पारपंकमग्नाइव करिणोविषीदंतीति स्थितं ॥ ३४ ॥

सेबेमि पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा नवंति तंजहा आयरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे हस्समंतावेगे सुव

नांस्तथोपकरणं च कामन्नोगांगं धनधान्यहिरण्यादिकं विविधं प्रकर्षेण हित्वा त्यक्त्वा निक्षाचर्यायां सम्यगुत्थिताअसतोवा ज्ञातीनुपकरणंच विप्रहाय निक्षाचर्यायामेके केच नापगतस्वजनविन्नवाः समुत्थिताः ॥ ३५ ॥

पुव्वमेव तेहिं णायं नवइ तं जहा इह खलु पुरिसे अन्नमन्नं ममठाए एवं विप्पडिवेदेंति तं जहा खेत्तंमे वत्थूमे हिरसंमे सुवन्नंमे धणंमे धस्संमे कंसंमे दूसंमे विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरय णसंतसारसावतेयंमे सद्दामे रूवामे गंधामे रसामे फासामे एते खलु मम कामन्नोगा अहमवि एतेसिं ॥ ३६ ॥ सेमेहावि पुव्वमेव अप्पणो ए वं समन्निजाणेज्जा तं जहा इह खलु मम अन्नयरे डुक्के रोयातंके समुप्प ज्जेज्जा अणिठे अकंते अप्पिए असुन्ने अमणुन्ने अमणामे डुक्के णोसु हे सेहंता नयंतारो कामन्नोगाइं मम अन्नयरं डुक्कं रोयातंकं परियाइय ह अणिठं अकंते अप्पियं असुन्नं अमणुन्नं अमणामं डुक्कं णोसुहं त हिं डुक्कामिवा सोयामिवा जूरामिवा तप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामि वा इमाउ ममे अन्नयराउ डुक्काउ रोगातंकाउ पडिमोयउ अणिठाउ अ कंताउ अप्पियाउ असुन्नाउ अमणुन्नाउ अमणामउ डुक्काउ णोसुहाउ एवमेव णोलद्धपुव्वं नवइ ॥ ३७ ॥

अर्थ-(तेहिं के०) ते पुरुषने (पुव्वमेव के०) प्रथम चारित्र लेवाना वखतेज एवो (णायंनवइ के०) जाणवुंछे (तंजहा के०) ते कहेछे. (इह के०) आ जगत मांहे खलु इति वाक्यालंकारे (पुरिसे के०) ते पुरुषे (अन्नमन्नं के०) अनेरी अनेरी वस्तु एटले असुक असुक जुदी जुदी वस्तु (ममठाए के०) महारा उपन्नोगने अर्थें थशे (एवं के०) एम (विप्पडिवेदेंति के०) वेद प्रवितियति एटले जाणवुंछे (तंजहा के०) ते वस्तुना नाम कहेछे. (खेत्तंमे के०) आ क्षेत्र महारुंछे (वत्थूमे के०) ए घर हाट महाराछे (हिरसंमे के०) आ रूपुं महारुंछे (सुवस्संमे के०) आ सोनु महारुं छे (धणंमे के०) आ धन महारुंछे (धन्नंमे के०) आ धान्य महारुंछे (कंसंमे के०) आ कांसाना नाजन महाराछे (दूसंमे के०) आ डुष्य एटले वस्त्र महाराछे (विपुल, ध ण, कणग, रयण, मणि, मोत्तिय, संख, सिल, प्पवाल, रत्त, रयण, संत सार साव तेयंमे के०) एम विस्तीर्ण धन कनक सोलजातिना रत्न सात जातना मणी मोक्तिको संख

थया (जेते के०) हवे जे ते (सतोवा असतोवा के०) छतो अथवा अछतो एवो (णा यउय के०) ज्ञाति स्वजनादिक नोपरिग्रह (अणायउय के०) ज्ञाति स्वजनादिकथी रहित पणानोपरिग्रह (उवगरणंच के०) तथा धन धान्य सुवर्णादिक नोपरिग्रह तेने (वि प्पजहाय के०) त्यागीने (निरकायरियाए के०) निक्षाचर्याने विषे एटले चारित्रने वि षे (समुछिता के०) सम्यक् प्रकारे उठ्या सावधान थया ॥ ३५ ॥

॥ दीपिका—अथलोकोत्तरं पंचमं निक्षुं पुरुषमाह । तदहं ब्रवीमि । यत्प्राच्यादिदिशमु द्दिश्य एके केचन मनुजाः संति नवंति । तद्यथा आर्याआर्यदेशोत्पन्नास्तद्विपरीताअना र्याउच्चैर्गोत्रोद्भवानीचैर्गोत्रोद्भवाः कायवंतउच्चशरीराऱ्हस्वावामनादयः सुवर्णाडुर्वर्णाः सुरू पाडुरूपास्तेषां वाऽऽर्यादीनां क्षेत्राणि शालिक्षेत्रादीनि वस्तूनि गृहाणि परिगृहीतानि स्वीकृ तानि नवंति । किंनूतानि अल्पतराणि प्रनूततराणि वा । तथा तेषां जनपदाः स्वीकृता नवंति तेप्यल्पतराः प्रनूततरावा । तेष्वार्यादिषु तथा प्रकारेषु कुलेषु आगम्य जन्म ल ब्ध्वा ऽनिनूय विषयादीन् प्रव्रज्यां गृहीत्वा एके केचन सत्ववंतोनिक्षाचर्यायां समुछि ताउद्यताः । तथा सतोविद्यमानान् ज्ञातीन् स्वजनानुपकरणं च धनधान्यादिकं विप्रहा य त्यक्त्वा असतोवा ज्ञातीनुपकरणंच त्यक्त्वा समुछिताः प्रव्रज्योद्यताः ॥ ३५ ॥

॥ टीका—उक्ताः परतीर्थिकाः सांप्रतं लोकोत्तरं निक्षावृत्तिं निक्षुं पंचमं पुरुषजातमधि कृत्याह । (सेबेमीत्यादि) याहक्कामनोगेष्वसक्तः सन्नंतरा नोवसीदति पद्मवरपौंडरीको ऊरणाय च समर्थोनवति तदेतदहं ब्रवीमीति । अस्य चार्थस्योपदर्शनाय प्रस्तावमारच यन्नाह । प्राच्यादिकामन्यतरां दिशमुद्दिश्यैके केचन मनुष्याः संति नवंति । तद्यथा । आ र्यदेशोत्पन्नामगधादिजनपदोद्भवास्तथाऽनार्याः शकयवनादिदेशोद्भवास्तथा चोच्चैर्गोत्रोद्भ वाइक्ष्वाकुहरिवंशादिकुलोद्भवास्तथा नीचैर्गोत्रोद्भवावर्णापसदसंनूतास्तथा कायवंतः प्रां शवस्तथा ऱ्हस्वावामनकादयस्तथा सुवर्णाडुर्वर्णाः सुरूपाः कुरूपावा एके एव केचन पर वशान्नवंति तेषां चार्यादीनां । णमितिवाक्यालंकारे । क्षेत्राणि शालिक्षेत्रादीनि वस्तूनि खातोछ्रितादीनि तानि परिगृहीतानि स्वीकृतानि नवंति । तान्येव विशिनष्टि । अल्पतराणि स्तोकतराणि वा प्रनूततराणिवा नवंति । तथा तेषामेव च जानपदाः परिगृहीतानवंति तेऽल्पतराः प्रनूततरावा नवेयुस्तेषु चार्यादिविशिष्टेषु तथाप्रकारेषु कुलेष्वागम्यैवंनूतानि गृहाणि गत्वा तथा प्रकारेषु वा कुलेष्वागम्य जन्म लब्ध्वाऽनिनूयच विषयकषायादीन् प रीषहोपसर्गान् वा सम्यगुछानेनोछाय प्रव्रज्यां गृहीत्वैके केचन तथाविधसत्ववंतोनिक्षा चर्यायां सम्यगुछितास्तथा सतोविद्यमानानपिवा एके केचन महासत्वोपेताज्ञातीन् स्वज

त कारी (अप्पियाउं के०) अप्रियकारी (असुनाउं के०) असुनकारी (अमणुन्नाउं के०) अमनोज्ञ (अमणामउंके०) अरुचता विशेषे अमनोज्ञ पीडाकारी एवा (डुरकाउं के०) डुःख (णोसुहाउं के०) नथी जेमांहे लेश मात्र शुख एवा जे डुःख ते थकी हे काम नोगादिको तमे मने मूकावो (एवमेव के०) एवीरीते जे कामनोगादिकने प्रार्थना करेठे तोपण (णोलद्धपुव्वंनवइ के०) ते कामनोगापूर्वलब्धोननवति एटले ते काम नोगादिक जेठे तेणे कोइ मनुष्यने पूर्वोक्त डुःख थकी मूकाव्यो ठे एवो पूर्वे क्यां जाणवामां आव्युं नथी. ॥ ३७ ॥

॥ दीपिका—ये निक्षाचर्योद्यतास्तैः पूर्वमेव प्रव्रज्याग्रहणकालएतज्ज्ञातं स्यात् । तद्यथा । अन्य छस्तूद्दिश्य पुरुषः प्रव्रजितः प्रव्रज्यां ग्रहीतुकामोवा एवं विप्रतिवेदयति जानाति । तद्यथा । क्षेत्रं वास्तुगृहं हिरण्यं सुवर्णं कनकं धनंगोमहिष्यादि धान्यं शाल्यादि कांस्यं कांस्यपात्रादि दूष्यं वस्त्रादि । तथा विपुलानि धनकनकादीनि शंखादक्षिणावर्ताः मुक्तशैलादिकाः शिलाः प्रवालंविद्रुमं रक्तरत्नं पद्मरागादि सत्सारं शोजनसारं शूलमल्यादि स्वापतेयं द्रव्यं सर्वमेतन्ममोपन्नोगाय नविष्यति । तथा शब्दरूपगंधरसस्पर्शामे कामनोगाअहमप्येतेषां नोगानां संबंधी ॥ ३६ ॥ अयमपि नोगसंबंधीति विचार्य समेधावी पूर्वमेवात्मना एवं समनिजानीयात् । तद्यथा । इह जन्मनि ममान्यत् डुःखं शिरोवेदनादिकं आतंकोवा आशु जीवितापहारी शूलादिकः । सकिंनूतः । अनिष्टोऽकांतोऽशुनोऽमनोज्ञः । अवनामयतीत्यवनामः पीडाविशेषकारी डुःखरूपः । नशुनोऽशुनकर्मकृतत्वात् । पुनर्डुःखोत्पादनमत्यंतडुःखज्ञापनार्थं । तदेवंनूतं डुःखं रोगातंकं वा हंतइति खेदे हेनगवंतः कामनोगायूयं मया पालितास्ततोयूयमपीदं डुःखं रोगातंकं वा (परियाइयह) विनज्य गृह्णीत । अत्यंतडुःखपीडितः पुनस्तान्येव विशेषणान्याह । अनिष्टादिविशेषणानि पूर्वं प्रथमांतानि पुनर्द्वितीयांतानि सांप्रतं पंचम्यंतानि । सचायमर्थः पूर्वं लब्धोन नवति । कोर्थः । नहि ते नोगादयोनरं डुःखान्मोचयंतीतिपूर्वं नज्ञातं॥३७॥

॥ टीकाः—ते पूर्वोक्तविशिष्टानिक्षाचर्यायामन्युद्यताः पूर्वमेव प्रव्रज्याग्रहणकालएव तैरेतज्ज्ञातं नवति । तद्यथा (इहेत्यादि) इह जगति । खलुवाक्यालंकारे । अन्यदन्य छस्तूद्दिश्य ममैतन्नोगाय नविष्यतीत्येवमसौ प्रव्रज्यां प्रतिपन्नः प्रवव्रजिषुर्वा प्रवेदयति जानात्येवं परिछिनत्ति । तद्यथा । क्षेत्रं शालिक्षेत्रादिकं वास्तु खातोछ्रितादिकं हिरण्यं धर्मेलानादिकं सुवर्णकनकं धनंगोमहिष्यादिकं धान्यंगोधूमादिकं कांस्यंकांस्यपात्रादिकं तथा विपुलानि प्रनूततराणि धनकनकरत्नमणिमौक्तिकानि (शंखशिलंति) मुक्तशैला

ते दक्षिणावर्त्त प्रमुख शीलते कशवटी प्रवाला रक्तरत्न तथा संत एटले छतो सार एटले प्रधान एवो सावतेयं एटले धन ए सर्व मह्हारा उपन्नोगने अर्थें थशे (सद्दामे के०) शब्द वंशादिकना (रूवामे के०) रूप स्त्रियादिकना (गंधामे के०) गंध ते कस्तूरी कर्पूरादिक वस्तुना (रसामे के०) रसमधुरादिक वस्तुना (फासामे के०) स्पर्श मृडु कठणादिक वस्तुना (एते के०) ए समस्त वस्तु ते खलु इति निश्चे (ममकामन्नोगा के०) ए कामन्नोग ते माह्हाराछे अने (अहमवि के०) हुंपण (एतेसिं के०) एनोछु ॥२६॥ हवे (से मेहावि के०) ते पंमित (पुवमेव के०) पूर्वे (अप्पणो के०) पोताना हृदय साथे (एवं के०) एवुं (समन्निजाणेज्जा के०) सम्यक् प्रकारे जाणे आलोचे एटले प्रथम थीज पोताना हृदयसाथें विचारे के ए मह्हाराछे किंवा नथी एवो विचारे ते शुं विचारे (तंजहा के०) ते कहेछे. (इहखलु के०) आ संसारनेविषे निश्चे (ममअन्नयरे के०) मह्हारा शरीरने विषे अन्य कोइ एक (डुक्के के०) डुःख मस्तक पीडादिक (रोयातंके के०) रोगातंक एटले असाध्य रोग शूलादिक (समुप्पज्जेज्जा के०) उपजे ते रोग केवोहोय ते कहेछे. (अणिठे के०) अनिष्टकारी (अकांते के०) आक्रांतकारी (अप्पिए के०) अप्रिय कारी (असुन्ने के०) अशुनकारी (अमणुन्ने के०) अमनोज्ञ एटले मनने गमे नही (अमणामे के०) विशेष प्रकारें पीडानो करनार (डुक्के के०) डुःख रूप (णोसुहेसेहंता के०) नथी ज्यां लवलेशमात्र सुख, एवो डुःख उपने थके ते पूर्वोक्त कामन्नोगादि योग्य जे वस्तुछे ते प्रत्ये एवुं कहे के (नयंतारो के०) अहो नय थकी राखनाराउ (कामन्नोगाइं के०) धन धान्यादिक तथा शब्दादिक कामन्नोगो तुमे (मम के०) मह्हारे शरीरे (अन्नयरंडुःखं के०) अनेरा डुःख जे (रोयातंकं के०) रोगातंक शूलादिक उपनाछे (परियाइयह के०) तेने तमे वेहेंची ल्यो मह्हारे अर्थें (अणिठं के०) अनिष्ट कारी (अकंतं के०) अक्रांत कारी (अप्पियं के०) अप्रियकारी (असुन्नं के०) असुन्नकारी (अमणुन्नं के०) अमनोज्ञ (अमणामं के०) विशेषे अमनोज्ञ पीडाकारी (डुक्कं के०) डुःखरूप (णोसुहं के०) नथी ज्यां लव लेश मात्र सुख (तहिं के०) तेणेकरी (डुक्कामिवा के०) आकरो डुःखी छुं (सोयामिवा के०) शोक अनुन्नवुंछुं (जूरामिवा के०) जुरुंछुं (तप्पामिवा के०) मह्हारो रुदय तपेछे बीजायछे (पीडामिवा के०) पीडा अनुन्नवुंछुं (परितप्पामिवा के०) विशेषे पीडा अनुन्नवुंछुं इत्यादिक (इमाउ के०) ए (ममे के०) मने (अस्सुयराउ के०) अनेरा (डुक्काउ के०) डुःख जे पूर्वोक्त मस्तक पीडादिक असाध्य (रोगातंकाउपडीमोहय के०) रोग आंतक शूलादिक जे थकी तत्काल प्राणनो नाश थाय ते थकी तमे मने मूकावो एवा (अणिठाउ के०) अनिष्टकारी (अकंताउ के०) आक्रां

॥ अर्थ-(इहखलु के०) आ जगत् मांहे निश्चें थकी (कामन्नोगा के०) ते काम न्नोगादिकजेंछे ते, पूर्वोक्त दुःखिया जीवने (णोताणाएवाके०) त्राणन्नणी नथाय. (णोसर णाएवा के०) अथवा शरण न्नणी नथाय. (पुरिसेवा के०) ते पूर्वोक्त दुःखी पुरुषने पूर्वोक्त रोगादिक उपने थके त्राण शरण न्नणी नथाय. हवे रूडा कामन्नोगनी लीलानो अंत देखाडे छे (एगता कें०) एकदा (पुव्विं के०) प्रथम व्याधि उत्पन्न कालें, अथवा जरा जीर्ण कालें, अथवा राजादिकना उपद्रवने कालें पुरुष, (कामन्नोगेविप्पजहंति के०) ए कामन्नोगने मूके छे. (कामन्नोगावाएगतापुव्वंपुरिसंविप्पजहंतिके०) अथवा ए काम न्नोग पोतेंज एकदा द्रव्यादिकने अन्नावें विषयान्निलाषी पणुं छतांज ते पुरुषने त्यागी मूकेछे; ते कारण माटे जे पंमित पुरुष होय ते एवीरीते अवधारण करे के, (अन्नेखलुकामन्नोगा के०) निश्चें करी ए कामन्नोगादिक जेछे ते, महारा थकी अन्यछे जुदाछे. (अन्नोअहमंसि के०) हुं पण ए कामन्नोगथकी अन्यछुं जुदोछुं. जो एमछे तो, (सेकिमंगपुणवयं के०) ते शा अर्थें वली अमे (अन्नमन्नेहिंकामन्नोगेहिं मुछामो के०) अनित्य अशाश्वत एवा जे ए कामन्नोग, तेने विषे मूर्छा एटले ममत्व करिये, केमके एवुं ए ममत्व करवुं तेतो व्यर्थछे. (इतिसंखाएणंके०) एरीते कोइ महा सत्ववंत पुरुष ते कामन्नोगादिकने पूर्वोक्त रीते व्यर्थ जाणीने, (वयंचकामन्नोगेहिंविप्पजहिस्सामो के०) अमे ए कामन्नोगादिकनो त्याग करशुं. एवो अध्यवसाय करे ते महापुरुष जाणवो. वली अन्य बीजुं वैराग्यनुं कारण कहेछे. (सेमेहाविजाणेज्जा के०) ते पंमित एम जाणे जे, (बाहिरंगमेत्तं के०) ए नव विध परिग्रह तथा शब्दादिक विषय जे छे ते दुःखथकी राखनार नथी; एतो सर्व बाहिरंग संयोगि छे एटले बाह्यरूपछे, एवुं पंमित जाणेछे. ॥ ३७ ॥

॥ दीपिका-एतदेवाह । इह न्नवे खलु कामन्नोगान त्राणाय वा स्युः । पुरुषः प्राणी एकदा पूर्वं कामन्नोगान् त्यजति कामन्नोगावा एकदा कदाचित्पुरुषं त्यजंति । सचैवं जानाति अन्ये न्निन्नाः खलु मत्तः कामन्नोगाएतेन्यश्च न्निन्नोऽहं एवं सति वयमेतेषु अन्यन्नूतेषु कामन्नोगेषु मूर्छां कुर्मइत्येवं केचिन्महापुरुषाः परिसंख्याय सम्यक् ज्ञात्वा, कामन्नोगान् वयं विप्रजहिष्यामस्त्यक्ष्यामइत्यध्यवसायिनः स्युः । पुनर्वैराग्यकारणमाह । समेधावी एतत्क्षेत्रादिकं बाह्यांगं वर्ततइति जानीयात् ॥ ३७ ॥

॥ टीका-एतदेव लेशतोदर्शयति (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन् । खलुवाक्यालंकारे । ते कामन्नोगाअत्यंतमन्यस्तान तस्य दुःखितस्य त्राणाय शरणाय वा न्नवंति । सुलालितानामपि कामन्नोगानां पर्यवसानं दर्शयितुमाह । (पुरिसेवाइत्यादि) पुरिशयनात्पुरुषः एकदा व्याध्युत्पत्तिकाले वाऽन्यस्मिन्वा राजाद्युपद्रवे तान्कामन्नोगान् परित्यजति । सवा पुरुषोद्रव्याद्यन्नावे

दिकाः शिलाः प्रवालं विद्रुमं । यदिवा (शिलप्पवालंति) श्रियायुक्तं प्रवालं श्रीप्रवालं वर्णादिगुणोपेतं तथा (रत्तरयणंति) रक्तरत्नं पद्मरागादिकं तथा सत्सारं शोभन सारमित्यर्थः । शूलमण्यादिकं तथा स्वापतेयं शुद्धं इव्यजातं सर्वमेतत्पूर्वोक्तं मे ममोपभोगाय भविष्यति । तथा शब्दावेणवादयोरूपाण्यंगनादीनि, गंधाः कोष्ठपुटाद योरसामधुरादयोमांसरसादयोवा, स्पर्शामृडादयएते सर्वेपि खलु मे कामभोगायाहमप्ये षां योगक्षेमार्थं प्रभविष्यामीत्येवं संप्रधार्य; ॥ ३६ ॥ समेधावी पूर्वमेवात्मानं विजानीया देवं पर्यालोचयेत् । तद्यथा । इह संसारे । खलुशब्दोऽवधारणे । इहैवास्मिन्नेव जन्मनि म नुष्यभवे ममान्यतरडुःखं शिरोवेदनादिकं आतंकोवाऽऽशु जीवितापहारी शूलादिकः समु त्पाद्यते । तमेव विशिनष्टि । अनिष्टोऽकांतोऽप्रियोऽशुभोऽमनोज्ञोऽवनामयतीत्यवनामः पीडाविशेषकारी डुःखरूपोयदि वा नमनागमनाक् मे मम नितरामित्यर्थः । डुःखयतीति डुःखं पुनरपि डुःखोत्पादनं अत्यंतडुःखप्रतिपादनार्थं सुखलेशस्यापि परिहारार्थं च नोनै व शुभकर्मविपाकोदितत्वादिति । अत्रच यडुक्तं पुनरुच्यते तदत्यादरख्यापनार्थं तद्विशे षप्रतिपादनार्थं वेति । तदेवंभूतं डुःखं रोगातंकं वा हंतइतिखेदे भयात्त्रातारोयूयं क्षेत्रवस्तु हिरण्यसुवर्णधनधान्यादिकाः परिग्रहविशेषाः शब्दादयोवा विषयास्तथा हे भगवंतः! कामभोगायूयं मया पालिताः परिगृहीताश्च ततोयूयमपीदं डुःखं रोगातंकं वा (परि याइयहत्ति) विभागशः परिगृह्णीत यूयं । अत्यंतपीडयोद्विग्नः पुनस्तदेव डुःखं रोगातंकं वा विशेषणद्वारेणोच्चारयति । अनिष्टमप्रियमकांतमशुभममनोज्ञममनाग्भूतमवनामकं वा डुःखमेवैतन्नोशुभमित्येवंभूतं ममोत्पन्नं यूयं विभजताहमनेनातीव डुःखामीति डुःखि तइत्यादि पूर्ववन्नेयमित्यतोऽमुष्मान्मामन्यतरस्माडुःखाद्रोगातंकाद्वा प्रतिमोचयत यूयं । अनिष्टादिविशेषणानि तु पूर्ववद्व्याख्येयानि । प्रथमं प्रथमांतानि पुनर्द्वितीयांतानि सां प्रतं पंचम्यंतानीति । नचायमर्थस्तेन डुःखितेनैवमेवेति यथाप्रार्थितस्तथैव लब्धपूर्वोभ वति । इदमुक्तंभवति । नहि ते क्षेत्रादयः परिग्रहविशेषानापि शब्दादयः कामभोगास्त डुःखितं डुःखाद्विमोचयंतीति ॥ ३७ ॥

इह खलु कामभोगा णोताणाएवा णोसरणाएवा पुरिसेवा एगता पुविं कामभोगे विप्पजहंति कामभोगावा एगता पुविं पुरिसं विप्पजहंति अन्ने खलु कामभोगा अन्नो अहमंसि से किमंगपुण वयं अन्नमन्नेहिं काम भोगेहिं मुच्चामो इति संखाएणं वयंच कामभोगेहिं विप्पजहिस्सामो से मेहावि जाणेज्जा बाहिरंगमेत्तं ॥ ३८ ॥

अर्थ–(इणमेवउवणीयतरागं के०) आ जे आगल कहेशे ते घणाज आसन्न ढुकडा व र्त्तेछे. (तंजहा के०) ते कहेछे. (मायामे के०) माता महारी, पिता महारो, जाइ महारो, बहेन महारी, जार्या एटले स्त्री महारी, पुत्र महारा धूता एटले बेटी महारी, पेसा एटले दास महारा, (नत्तामे के०) मित्र महारा सखाइ महारा, अथवा पोत्रा तथा ज्यातमहारी (सुन्हामेके०) स्नुषा एटले पुत्रनी वहु महारी, (पियामेके०) प्रिय (सहामे के०) सखा (सुहामेके०) सुहृत् एटले सज्जन महारा, (सयणसंगथसंथुयामेके०) स्वजन संस्तुत श्वशुरकुलादिक पित्तरियादिक ए सर्व महारा, तथा जेनी साथे घणो आलाप संलाप परिचय थाय ते सर्व महारा, (एतेखलुममणायउके०) ए सर्व निश्चे थकी महारा ज्ञातिना घणाज ढूकडा संबंधीछे. अने (अहमवि के०) हुंपण (एतेसिं के०) एहोनो हुं ए मने उपकार करशे, हुं एने उपकार करीश. (एवं के०) एरीते (सेमेहावि के०) ते पंमित (पुव्वमेव के०) पूर्वे (अप्पणा के०) पोताना आत्माने विषे (एवंसमनिजाणेज्जा के०) एम समस्त प्रकारें जाणे मनमांहे विचारे जे, (इहखलुमम के०) आ जवने विषे निश्चे मुजने (अन्नयरे के०) अनेरो कोइ (डुक्केरोयांतकेसमुपज्जेज्जाअणिहेजावडुक्केणोसुहे के०) डुःख शूलादिक असाध्य रोग अनिष्ट यावत् डुःख कारी, अने नथी जेमां लेशमात्र सुख एवा रोगादिक उपने थके तेवारे ते पुरुष ते डुःखे डुःखित हतो, (सेहंताके०) माता पितादिक ज्ञाति गोत्री स्वजनादिकने प्रार्थना करे के, (जयंतारोके०) अहो जय थकी राखनारा एवा (णायउ के०) ज्ञाति गोत्रीउ! (इम के०) एम (मम के०) मने (अन्नयरं के०) अनेरो डुःख रोगातंक शूलादिक उपनुंछे ते तमो वहेंची ल्यो. केमके ए अनिष्टकारी ज्यांसुधि लवलेश मात्र सुख नही (तहिंडुक्कामिवा के०) तेवा डुःखे करी अत्यंत डुखीउं सोचुउं, यावत् पीडा अनुजवुंछुं. (इमाउणंअन्नयरातोडुक्कातो के०) एमज अनेरे डुःखे अत्यंत डुःखीउं, शोक परिताप पीडा अनुजवुं छुं, ते कारणे ए डुःक तथा रोग आंतक थकी मुजने (परिमोएह के०) मूकावो. परंतु अनिष्टकारी ज्यांसुधि जेमांहे लेश मात्र सुख नथी एवा डुःख थकी मूकाववाने (एवमेवणो लद्धपुव्वंजवइके०) एरीते ते अर्थ मागतो लीये नही एटले ते डुःखने वहेंचीलीये नही; अर्थात् ते ज्ञाती, गोत्री, तेने डुःख थकी मूकववाने समर्थ नथाय. ॥२ए॥ (तेसिंवाविजयंताराणं के०) अथवा ते जयथकी राखनारा एवा जे (ममणाययाणं के०) महारा ज्ञाति, गोत्री, तेने पण अनेरो कोइएक डुःख रोगांतक उपजे ते केवो उपजे तोके अनिष्टकारी यावत् नथी जेमां लेशमात्र सुख एवो रोग उपने थके हुंपण ते जयथकी राखनार थइश ज्ञाती गोत्रीयोनो डुःख रोगातंक वहेची लइश, कारणके तेवा अनिष्टकारी जेमांहे लेशमात्र सुख नथी एवा डुःख थकी महारा ज्ञाती गोत्री डुःखी थाय यावत्

तैः कामन्नोगैर्विषयोन्मुखोपि त्यज्यते । सचैवमवधारयति अन्ये मत्तोनिन्नाः खल्वमी का मन्नोगास्तेन्यश्चान्योहमस्मि । तदेवं व्यवस्थिते "किमिति वयं पुनरेतेष्वनित्येषु परन्नूतेष्व न्येषु कामन्नोगेषु मूर्बां कुर्म" इत्येवं केचन महापुरुषाः परिसंख्याय सम्यक् ज्ञात्वा, कामन्नो गान्वयं विप्रजहिष्यामस्त्यद्व्यामइत्येवमध्यवसायिनोन्नवंति । पुनरपरं वैराग्योत्पत्तिका रणमाह । (सेमेहावी) समेधावी श्रुतिकः एतज्जानीयात् । यदेतत्क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुव र्णशब्दादिविषयादिकं डुःखपरित्राणाय न नवतीत्युपन्यस्तं तदेतद्वाह्यांतरं वर्तते ॥ ३७ ॥

इणमेव उवणीयतरागं तं जहा मायामेपितामे न्नायामे न्नगिणीमे न्नज्जामे पुत्तामे धूतामे पेसामे नत्तामे सुण्हामे सुहामे पियामे सहामे सयणसंगथसं थुयामे एते खलु मम णायउ अहमवि एतेसिं एवं से मेहावि पुव्वमेव अ प्पणाएवं समन्निजाणेज्जा इह खलु मम अन्नयरे डुक्खे रोयातंके समुप्पज्जे ज्जा अणिठे जाव डुक्खे णोसुहे सेहंता न्नयंतारो णायउ इम मम अन्नयरं डुक्खं रोयातंकं परियाइयह अणिठं जाव णोसुहं तार्हि डुक्खामिवा सो यामिवा जाव परितप्पामिवा इमाउमे अन्नयराती डुक्खाती रोयातंको प रिमोएह अणिठाउ जाव णोसुहाउ एवमेव णोलद्ध पुव्वं न्नवइ ॥३ए॥ ते सिंवावि न्नयंताराणं मम णाययाणं अन्नयरे डुक्खे रोयातंके समुपज्जेज्जा अणिठे जाव णोसुहं सेहंता अहमेतेसिं न्नयंताराणं णाययाणं इमं अन्नयरं डुक्खं रोयातंकं परियाइयामि अणिठं जाव णोसुहं मामे डुक्खं तुवा जाव मामे परितप्पंतुवा इमाउणं अण्णयराउ डुक्खातो रोयातंकाउ परिमोएमि अणिठाउ जाव णोसुहाउ एवमेव णोलद्धपुव्वं न्नवइ अन्न स्स डुक्खं अन्नोन परियाइयंति अन्नेन कडं अन्नो नोपडिसंवेदेंति॥४०॥ पत्तेयं जायतियं पत्तेयं मरइ पत्तेयं चयइ पत्तेयं उववज्जइ पत्तेयं ऊंऊा पत्ते यं सन्ना पत्तेयंमन्ना एवं विन्नू वेदणाइति खलु णातिसंजोगा णोताणाएवा णोसरणाएवा पुरिसेवा एगता पुव्विं णातिसंजोए विप्पजहंति णातिसं जोगावा एगता पुव्विं पुरिसं विप्पजहंति अन्ने खलु णातिसंजोगा अन्नो अहमंसि सेकिमंग पुणवयं अन्नमन्नेहिं णातिसंजोगेहिं मुच्चामो इति सं खाएणं वयं णातिसंजोगं विप्पजहिस्सामो ॥ ४१ ॥

दिविशेषणोडुःखातंकः समुत्पद्यते, ततोऽसौ तद्दुःखडुखितोज्ञातीन् एवमन्यर्थयेत्। यथा ममान्यतरं दुःखमुत्पन्नं परिगृण्हीत यूयं अहमनेनोत्पन्नेन डुःखातंकेन पीडयिष्यामीति ततोऽस्माद्दुःखान्मां परिमोचयत यूयमिति॥३ए॥ इदं सर्वं प्राग्वत् योज्यं। यावदेवं नोपलब्ध पूर्वं नवति। यतः अन्यस्य डुःखमन्योन पर्याददाति न गृण्हाति अन्येन कृतं कर्म अन्यो न प्रतिसंवेदयति नानुनवति ॥ ४० ॥ यतःयस्मात्प्रत्येकं जीवोजायते, प्रत्येकं म्रियते, प्रत्येकं त्यजति परिग्रहं प्रत्येकमुत्पद्यते । यडुक्तं । एकस्य जन्ममरणे, गतयश्च शुनाशु नानवावर्ते ॥ तस्मादाकालिकहितमेकेनैवात्मनः कार्यं ॥ १ ॥ तथा प्रत्येकं ऊंका कलहः । तद्ग्रहणात्कपायाग्रह्यंते प्रत्येकमेव जीवानां कपायोदयः स्यादित्यर्थः । संज्ञापदार्थपरिछित्तिः सापि प्रत्येकं (मन्नत्ति) मननं चिंतनं पर्यालोचनमिति यावत् । प्रत्येकमेव विद्यान् प्रत्येकं वेदनाः (इतिखलुत्ति) इति पूर्वोक्तप्रकारेण खलु अमी ज्ञातिसंयोगा न त्राणाय न शरणाय। उत्पन्नपीडार्तिनिवारणं त्राणं, अनागतार्तिसंरक्षणं शरणं । यतः पुरुषएकदा ज्ञातिसंयोगान् विप्रजहाति, ज्ञातिसंयोगावा पुरुपं परित्यजंति तस्मादन्ये ज्ञातिसंयोगाअहमन्योस्मीति नावनीयं । एवं सति किमिति पुनर्वयमन्यैरन्यैर्ज्ञातिसंयोगै मूर्छा कुर्मः । मूर्छाकरणं न युक्तमित्यर्थः। इति संख्याय ज्ञात्वा, वयं "ज्ञातिसंयोगान् त्यक्ष्यामः परिहरिष्याम" इति कृताध्यवसायाज्ञानतत्त्वाः स्युः ॥ ४१ ॥

॥ टीका–इदमेव चान्य द्वक्ष्यमाणमुपनीततरमापन्नतरं वर्तते । तद्यथा । माता, पिता, नाता, नगिनीत्यादयोज्ञातयः पूर्वापरसंस्तुताएते खलु ममोपकाराय ज्ञातयोनविष्यंति, अहम"प्येतेषांस्नाननोजनादिनोपकरिष्यामी" त्येवंसमेधावीपूर्वमेवात्म नैवंसमनिजानीयादित्यादि।एवं पर्यालोचयेत्कल्पितवानिति वा।एतदध्यवसायी चासौ स्यादिति दर्शयितुमाह। (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन्नवे मम वर्तमानस्यानिष्टादिविशेषणविशिष्टोडुःखातंकः समुत्पद्येत ततोऽसौ तद्दुःखडुःखितोजानीते । तमेवमन्यर्थयेत् । तद्यथा । ममान्यतरं डुःखातंकमुत्पन्नं परिगृण्हीत यूयमहमनेनोत्पन्नेन डुःखातंकेन पीडयिष्यामीत्यतोमुष्मान्मां परिमोचयत यूयमिति। नचैतत्तेन डुःखितेन लब्धपूर्वं नवति नहि ताज्ञातयस्तं डुःखान्मोचयितुमलमितिनावः॥३ए॥ नासौ तेषां डुःखमोचनायालमिति दर्शयितुमाह. (तेसिंवावीत्यादि) सर्वं प्राग्वद्योजनीयं यावदेवमेव नो लब्धपूर्वं नवतीति । किमित्येवं नोपलब्धपूर्वं नवतीत्याह । (असुस्सडुःखमित्यादि) सर्वस्यैव संसारोदरविवरवर्तिनोऽसुमतः स्वकृतकर्मोदयाद्यद्दुःखमुत्पद्यते तदन्यस्य संबंधि डुःखमन्योमातापित्रादिकोनप्रत्यापिधत्ते न तस्मात्पुत्रादेर्डुःखेनासह्येनात्यंतपीडिताःस्वजनाः नापि डुःखमात्मनि कर्तुमलं । किमित्येवमाशंक्याह । (असेएकडमित्यादि) अन्येन जंतुना कषायवशगेन इंद्रियानुकूलतयाऽनिला

महारा ज्ञाति विशेषे पीडा अनुनवे माटे एने पण अनेरा कोइ डुःख थकी, रोगातंक थकी, मुकावशुं. एवुं यद्यपि ते पोताना मन मांहे जाणे परंतु ते अनिष्टकारी जेमां लेश मात्र सुख नथी एवा डुःख ते ज्ञाती गोत्रीने उपने थके ते मांहेथी वहेंची नशके, एटले तेमनु डुःख पोते लइ शके नही कारणके, (अन्नस्सडुक्खंअन्नोनपरियाइयंति के०) अनेरानुं डुःख अनेरो वहेंची लइ शके नही, एटले एकनुं डुःख बीजो वहेंची लइ शके नही. (अन्नेनकडं के०) अनेरानुं करेलुं कर्म (अन्नोनोपडिसेवेदेंति के०) अनेरो नोगवे नही. जेणे जे कीधुं होय ते तेहिज नोगवे ॥४०॥ (पत्तेयंजायतियंके०) जीव प्रत्येक प्रत्येक उपजेछे. (पत्तेयंमरइ के०) प्रत्येक प्रत्येक मरण पामेछे. (पत्तेयंचयइ के०) प्रत्येक प्रत्येक धन धान्यादिक ने ढांमेछे. (पत्तेयंउववज्जइ के०) प्रत्येक प्रत्येक उपार्जन करेछे संग्रहेछे. (पत्तेयंझंझा के०) प्रत्येक प्रत्येक झंझायक कलह लहेछे. (पत्तेयंसन्ना के०) प्रत्येक प्रत्येकने संज्ञा एटले पदार्थनुं परिज्ञानछे, ते कोइएकने अल्पछे, कोइएकने घणुंछे. एम तरतम योग ज्ञान उपजेछे. (पत्तेयंमन्ना के०) प्रत्येक प्रत्येक चित्तनो चिंतवनछे. (एवंविन्नूवेदणाइतिके०) एरीते विन्नू एटले जाणवुं. प्रत्येक प्रत्येक सुख डुःखरूप वेदनानो अनुनव थायछे, एतावता एकनुं करेलुं बीजो न नोगवे. (एवं के०) ए कारणे खलु इति निश्चे (णातिसंजोगा के०) ज्ञातिनो जे संयोगछे ते जीवने (णोताणाएवा के०) त्राण नणी नथाय. (णोसरणाएवा के०) जीवने शरण नणी न थाय. (पुरिसेवाएगतापुव्विंणातिसंजोएविप्पजहंति के०) एकदा प्रस्तावे ज्ञाति संयोगने ते पुरुष प्रथम ढांमे. (णातिसंजोगावाएगतापुव्विंपुरिसंविप्पजहंति के०) अथवा एकदा प्रस्तावे ज्ञाति संयोग ते पुरुषने प्रथमथीज ढांमे ते कारणे, (अन्नेखलुणातिसंजोगाके०) निश्चे ए ज्ञातिना संयोग जे छे, ते मुज थकी अन्यछे. (अन्नोअहमंसि के०) अने हुं एना थकी अन्यछुं एटले जुदोछुं जो एमछे तोपण (सेकिमंगपुणवयंके०) किशोर कोमल वचने करी वली अम्हे ते (अनमन्नेहिं के०) माहो मांहे (णातिसंयोगेहिं के०) ज्ञातिना संयोग साथे (मुच्छामो के०) मूर्छा कीधीछे. ते मूर्छा करवी योग्य नथी (इतिसंखाएणं के०) एवुं जाणीने (वयंणातिसंजोगंविप्पजहिस्सामो के०) अमे ज्ञाति संयोग ढांमशुं. एवो अध्यवसाय जेनो होय तेने पंमित जाणवो. ॥४१॥

॥ दीपिका—इदमेव च वक्ष्यमाणमुपनीततरमासन्नतरं वर्तते । तद्यथा । माता, पिता, न्राता, नगिनी, नार्या, पुत्रः, सुता, स्नुषा, प्रियः, सखा सुहृत्, इत्यादि ज्ञातयः पूर्वापरसंस्तुताएते खलु ज्ञातयोममोपकाराय नविष्यंति अहमप्येतेषां ज्ञातीनामुपकरिष्यामीत्येवं समेधावी पूर्वमेवात्मना एवं समनिजानीयाद्विचारयेत् । इह नवे ममानिष्टा

अणुपुव्वेणं विप्पजहियव्वं नविस्सति एयं संखाए सेन्निक्कू न्निकायरियाए स मुट्ठिए डुहउ लोगं जाणेज्जा तं जीवाचेव अजीवाचेव तसाचेव थावराचेव॥४३॥

अर्थ–हवे वली वीजुं विशेष वैराग्यनुं कारण कहेछे. (सेमेहाविजाणेज्जावाहिरंग मेयं के०) ते पंमित एवुं जाणेजे ए आगल कहेशे ते सर्व वाह्यछे. ए स्वजनादिक स र्वे वाह्यछे. एवुं पूर्वे कह्युं; वली (इणमेव के०) ए थकी (उवणीयतरागंके०) आस न ढुकडां एटले घणा नजीक जे छे (तंजहा के०) ते देखाडेछे. (हत्थामे के०) हाथ म्हारा अशोक पल्लव सरखा अनेक शत्रुउंना विनाश करनार, तथा स्वजन जनोना म नोरथ पूरणहार, एवा हस्त वीजाना नथी एम चिंतवना करे. (पायामे के०) पग म्हारा काछवा सरखा उंचा, तथा पद्म जेवा सुंवालाछे. एवा वीजाना नथी (वाहामे के०) तथा वाहू म्हारा नोगल समान अनेक शत्रुना विनाश करनाराछे. एवा वी जाना नथी (ऊरूमे के०) साथल म्हारा केलना गर्ने समानछे (उदरंमे के०) पेट म्हारुं अत्यंत सुवालुं माछला समानछे. (सीसंमे के०) मस्तक म्हारुं अत्यंत सुंद रछे. (सीलम्मे के०) आचार म्हारो वहुज रूडोछे. (आउमेके०) आयुष्य म्हारुं सव लछे एटले घणुंछे. (वलंमे के०) शरीरनुं वल म्हारुं घणुंछे. (वन्नोमेके०) वर्ण मा हारो गौर छे. (तयामे के०) त्वचा म्हारी शीघ्रछे. (छायामे के०) कांती म्हारी सुंदर छे. (सोयंमे के०) श्रोत्र एटले कान म्हारा नलाछे. (चक्कूमे के०) चक्कु म्हारी नि र्मलछे. (घाणंमे के०) नासिका म्हारी नली तीक्ष्ण छे (जिप्नामे के०) जिव्हा म्हा री रुडीछे. (फासामेके०) स्पर्शेंद्रिय म्हारी सुंदरछे. (ममातिकंति के०) एटला ए वाना म्हारा घणाज सारांछे एवी शरीरनी ममता करे के, जेवा म्हारा शरीरना अवयव छे तेवा वीजाना नथी एम जाणे. (वयाउपडिजूरत्ति के०) परंतु ते हस्तादिक शरीरना अवयव जे छे ते केवाछे तोके, वयना परिणाम थकीज जीर्ण थायछे. ते जीर्ण थवाथी ते प्राणी पूर्वोक्त सुंदर अवयवो थकी भ्रष्ट थाय (तंजहा के०) जे थकी भ्रष्ट थाय तेना नाम कहेछे. आयुष्य थकी, वल थकी, वर्ण थकी, त्वचा थकी, कांति थकी, श्रोत्र एटले कान थकी, यावत् स्पर्शेंद्रियादिक पांचेइंद्रिय थकी, उछुं थाय. (सुसंधितासंधीवि संधीनवइके०) जेरुडी रीते जानुं कूर्प्परादिकनी संधि मलीछे ते विसंधि एटले विपरित संधि थाय. (वलितरंगेगाएनवंतिके०) शरीर सर्व वलियां रूप तरंग तेणे करी आकुल थाय, शरीर एवुं थाय जे, पोतानेज उद्वेग करे तो पछी वीजाने उद्वेग करे तेमां केवुंजचुं? (किएहाके सापलियानवंति के०) काला केशछे ते सपेत थाय. (तंजहाके०) ते कहेछे किंवहुना (जंपियंइमंसरीरगं के०) जे ए शरीर सारुं मनोहर (उरालंआहारोवइयं के०) उदा

णिा ज्ञानावृतेन मोहोदयवर्तिना यत्कृतं कर्म तडुदयमन्यः प्राणी नोप्रतिसंवेदय ति, नानुनवति तदनुनवने ह्यकृतागमकृतनाशौ स्यातां । नचेमौ युक्तिसंगतावतोयद्येन कृतं तत्सर्वं सएवानुनवति । तथाचोक्तं । परकृतकर्मणि यस्मान्नाक्रामति संक्रमोविना गोवा ॥ तस्मात्सत्वानां कर्म यस्य यत्तेन तद्वेद्यं ॥१॥४०॥ यस्मात्स्वकृतकर्मफलेश्वराजंतव स्तस्मात्तदेतद्भवतीत्याह । (पत्तेयमित्यादि) एकमेकं प्रत्येकं सर्वोप्यसुमान् जायते, त था क्षीणे चायुषि प्रत्येकमेव म्रियते । उक्तंच । एकस्य जन्ममरणे, गतयश्च शुनाशुना नवावर्ते ॥ । तस्मादाकालिकहितमेकेनैवात्मनः कार्यमिति ॥१॥ तथा प्रत्येकं क्षेत्रवस्तु हिरण्यसुवर्णादिकं परिग्रहं शब्दादींश्च विषयान्मातापितृकलत्रादिकं च त्यजति, यथा प्रत्ये कमुपपद्यते युज्यते, परिग्रहस्वीकरणतया तथा प्रत्येकं फंफाकलहस्तद्ग्रहणात्कषायाः प रिगृह्यंते । ततः प्रत्येकमेवासुमतां मंदतीव्रतया कषायोद्भवोनवति । तथा संज्ञानं संज्ञा पदार्थपरिछित्तिः । सापि मंदमंदतरपटुपटुतरनेदात्प्रत्येकमेवोपजायते । सर्वज्ञादारतस्तरत मयोगेन मतेर्व्यवस्थितत्वात् । तथा प्रत्येकमेव । (मन्नत्ति) मननं चिंतनं पर्यालोचन मिति यावत् । तथा प्रत्येकमेव (विन्नुत्ति) विद्वांस्तथा प्रत्येकमेव सातासातरूपवेद ना सुखडुःखानुनवः । उपसंजिघृक्षुराह । (इतिखलुइत्यादि) इत्येवं पूर्वोक्तेन प्रकारे ण यतोनान्येन कृतमन्यः प्रतिसंवेदयते प्रत्येकं जातिजरामरणादिकं । ततः खल्वमी ज्ञा तिसंयोगाः स्वजनसंबंधाः संसारचक्रवाले पर्यटतोत्यंतपीडितस्य तडुद्धरणेन त्राणाय न त्राणं कुर्वंति, नाप्यनागतसंरक्षणतः शरणाय नवंति । किमिति । यतः पुरुषएकदा क्रो धोदयादिकाले ज्ञातिसंयोगान् विप्रजहाति परित्यजति, स्वजनाश्च न बांधवाइति व्यवहा रदर्शनात् ज्ञातिसंयोगादेकदा तदसदाचारदर्शनतः पूर्वमेव तं पुरुषं परित्यजंति स्वसंबं धाडुत्तारयंति । तदेवं व्यवस्थिते एतद्भावयेत्तद्यथान्ये खल्वमी ज्ञातिसंयोगामत्तोनिन्ना एन्यश्चान्योहमस्मि । तदेवं व्यवस्थिते किमिति पुनर्वयमन्यैरन्यैर्ज्ञातिसंयोगैर्मूर्छां कु र्मोन तेषु मूर्छा क्रियमाणा न्याय्यैवं संख्याय ज्ञात्वा, प्रत्याकलय्य वयमुत्पन्नवैराग्याज्ञाति संयोगांस्त्यक्ष्यामइत्येवं कृताध्यवसायिनोविदितवेद्यान्नवंतीति ॥ ४१ ॥

से मेहावि जाणेज्जा बाहिरंगमेयं इणमेव उवणियतरागं तं जहा हज्ञमे पा यामे बाहामे ऊरूमे उदरंमे सीसंमे सीलम्मे आउमे बलंमे वन्नोमे तयामे छायामे सोयंमे चरकूमे घाणंमे जिप्नामे फासामे ममाइजंसि वयाउपडि जूरइ तंजहा आउउ बलाउ वन्नाउ तयाउ गयाउ सोयाउ जाव फा साउ सुसंधिता संधीविसंधी नवइ बलितरंगेगाए नवइ किण्हा केसा प लिया नवंति तंजहा जंपियं इमं सरीरगं उरालं आहारोवइयं एयंपिय

ह्नवसदृशौ तथा नुजौ करिकराऽकारौ परपुरंजयौ प्रणयिजनमनोरथपूरकौ शत्रुशतजीवितांतकरौ यथा मम न तथान्यस्य कस्यापीत्येवं पादावपि पद्मगर्नसुकुमारावित्यादि सुगमं। यावत्स्पर्शाः स्पर्शनेंद्रियं ममाति ममीकरोति। यादृङ् मे, न तादृगन्यस्येति नावः। एतच्च हस्तपादादिकं स्पर्शनेंद्रियपर्यवसानं शरीरावयवसंबंधित्वेन विवक्षितं यत्किमपि वयसः परिणामात्कालकृतावस्थाविशेषात् (परिजूरइत्ति) जीर्णतां यांति प्रतिक्षणं विशरारुतां याति तस्मिंश्च प्रतिशरीरं विशीर्यति शरीरे प्रतिसमयमसौ प्राणी एतस्माद्भ्रश्यते। तद्यथा। आयुषः पूर्वनिबद्धात्समयादिहान्याऽपचीयते आवीचीमरणाभ्युपगमात्। तथा बलादपचीयते तथा वयसोयौवनावस्थायाश्चवमाने शरीरे प्रतिक्षणं शिथिलीनवत्सु संधिबंधनेषु बलादवश्यं भ्रश्यते। तथा वर्णात्त्वचश्छायातोऽपचीयते तत्र च सनत्कुमारदृष्टांतोवाच्यः तथा जीर्यति शरीरे श्रोत्रादीनींद्रियाणि सम्यक् स्वविषयं परिछेत्तुमलं। तथाचोक्तं। बाल्यं वृद्धिर्वयोमेधा, त्वक्चक्षुःशुक्रविक्रमाः॥ दशकेषु निवर्तंते मनः सर्वेंद्रियाणि च॥१॥ विशिष्टवयोहान्या सुसंधितः सुबद्धः संधिर्जानुकूर्परादिकोविसंधिर्नवति विगलितबंधनोनवतीत्यर्थः। तथा वलितरंगाकुलं सर्वतः शिराजालवेष्टितमात्मनोपि शरीरमिदमुद्वेगकृद्भवति किंपुनरन्येषां। तथाचोक्तं। वलिसंततमस्थिशेषितं शिथिलस्नायुवृतं कलेवरं॥ स्वयमेव पुमान् जुगुप्सते, किमु कांताः कमनीयविग्रहाः॥१॥ तथा कृष्णाः केशावयःपरिणामे जलप्रक्षालिताधवलतां प्रतिपद्यंते। तदेवं वयःपरिणामापादितसन्मतिरेतद्भावयेत्। तद्यथा। यदपीदं शरीरमुदारं शोन्ननावयवरूपोपेतं विशिष्टाहारोपचितमेतदपि मयावश्यं प्रतिक्षणं विशीर्यमाणमायुषः क्षये विप्रहातव्यं नविष्यतीत्येतदवगम्य शरीरानित्यतया संसारासारतां संख्यायावगम्य परित्यक्तसमस्तगृहप्रपंचो निष्किंचनतामुपगम्य सनिक्षुर्देहदीर्घसंयमयात्रार्थं निक्षाचर्यायां समुत्थितः सन् द्विधा लोकं जानीयादिति। तदेव लोकद्वैविध्यं दर्शयितुकामआह। तद्यथा। जीवाश्च प्राणधारणास्तद्विपरिताश्चाजीवाधर्माधर्माकाशादयः। तत्र तस्य निक्षोरहिंसाप्रसिद्धये जीवान् विनागेन दर्शयितुमाह। जीवाअप्युपयोगलक्षणा द्विधा। तद्यथा। त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादयः तथा तिष्ठंतीति स्थावराः पृथिवीकायादयः। तेपि सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकादिनेदेन बहुधाऽऽष्टव्याः। एतेषु चोपरि बहुधा व्यापारः प्रवर्तते॥४२॥

इह खलु गारञा सारंन्ना सपरिग्गहिया संतेगतिया समणा माहणावि सारंन्ना सपरिग्गहावि जेइमे तसा थावरा पाणा ते सयं समारन्नंति अन्नेणावि समारंन्नावेंति अस्संपि समारन्नं तं समणुजाणंति॥४३॥ इह खलु गारञा सारंन्ना सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सा

र रुडा आहारें करी वृद्धिने पमाड्युं. (एयंपियं के०) एने पण (अणुपुवेणं के०) अनुक्रमे वयने परिणामे (विप्पजहियवंजविस्सति के०) बांमवुं थशे. (एयंसंरकाए के०) एवुं जाणीने (सेजिरकू के०) ते साधु पंमित समस्त धन धान्यादिक बाह्य परिग्रह बांमीने तथा राग द्वेषादिक अंतरंग परिग्रह बांमीने (जिरकायरियाएसमुट्ठिए के०) जिक्षाचर्याने विषे सावधान थाय. (डुहउलोगंजाणेज्जा के०) ते साधु बे प्रकारे लोकने जाणे (तंके०) ते बे प्रकार कहेढे. (जीवाचेवके०) एक जीवते जीवास्तिकाय प्राणिमात्र जाणवा. बीजो (अजीवाचेव के०) धर्मास्तिकायादिक पांचड्व्य अजीव जाणवा. हवे ए जिक्कु चारित्रियाने दया जाणवाने अर्थे जीवना जेद कहेढे. (तसाचेवथावराचेव के०) एक त्रस ते बेइंड्रियादिक जाणवा. बीजा स्थावरते पृथ्वी कायादिक जाणवा ते वली सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ताना जेदेंकरी घणा प्रकारें जाणवा. ॥ ४२ ॥

॥ दीपिका—वैराग्योत्पत्तिकारणमेवाह । समेधावी जानीयात् । तद्यथा । बाह्यतरमेतत् यज्ज्ञातिसंबंधनं इदमन्यडुपनीततरमासन्नतरं ज्ञातिज्यः शरीरावयवानामासन्नतरत्वात् । तद्यथा । हस्तौमे मनोहरौ एवं पादौ बाहू ऊरू शीर्षमुदरमायुर्बलं वर्णस्त्वक् बाया श्रोत्रं चक्षुर्घ्राणं जिह्वास्पर्शइति सर्वं ममाति ममीकरोति. यादृङ् मे, न तादृगन्यस्येति जावः । एतच्च हस्तपादादिकं वयसः परिणामात्. (परिजूरइत्ति) परिजीर्णतां यांति । तद्यथा । आयुषः सकाशाद्धीयते बलात् वर्णात् त्वचश्चायातः श्रोत्रात् यावत्स्पर्शाद्धीयते । अत्रच सनत्कुमारचक्रिदृष्टांतोवाच्यः । शरीरे हीयमाने श्रोत्रादीनींड्रियाण्यपि हीयंते । यडुक्तं । बाल्यं वृद्धिर्वयोमेधा,त्वक्चक्षुःशुक्रविक्रमाः ॥ दशकेषु निवर्तंते मनः सर्वेंड्रियाणि च । तथा सुसंधितः सुबद्धः संधिर्जानुकूर्परादिकोविसंधिर्जवति । गात्रं शरीरं वलितरंगाकुलं शिराजालवेष्टितं जवति । यतः । वलिसंततमस्थिशेषितं,शिथिलस्नायुवृतं कलेवरं ॥ स्वयमेव पुमान् जुगुप्सते किमुकांताः कमनीयविग्रहाइति । तथा कृष्णाः केशाः पलिताः श्वेताः स्युः । यदपीदं शरीरमुदारं शोजनं विशिष्टाहारोपचितं एतदपि मयाऽवश्यं विप्रहातव्यं त्यक्तव्यं जविष्यति इत्यवगम्य संसारासारतां संख्याय ज्ञात्वा सजिक्कुर्जिक्षाचर्यायां समुत्थितः सन् द्विधा लोकं जानीयात् । तद्यथा । जीवाअजीवाश्च । जीवांद्विविधाः त्रसाः स्थावराश्च । एतेषामुपरि बहुधा व्यापारः प्रवर्तते ॥ ४२ ॥

॥ टीका—सांप्रतमन्येन प्रकारेण वैराग्योत्पत्तिकारणमाह । (समेहावीत्यादि) सश्रुतिकएतद्वक्ष्यमाणं जानीयात् । तद्यथा । बाह्यतरमेतद्यज्ज्ञातिसंबंधनमिदमेवान्यडुपनीततरमासन्नतरं शरीरावयवानां जिन्नज्ञातिज्यआसन्नतरत्वात् । यथा हस्तौ ममाशोकप

प्रवर्ज्या पालशुं इत्यर्थः । (कस्सणंतंहेउं के०) वली तेनी निश्रायें विचरवुं ते नुं कारण शुं? एवा संदेहें शिष्यें पूछे थके तदनंतर आचार्य ते शिष्यनो अभिप्राय जाणीने तेने उत्तर आपेछे. (जहापुव्वंतहाअवरं के०) जेम ग्रहस्थने सारंभि सपरिग्रही पणु प्रथम होय तेम पछी पण होय. (जहाअवरंतहापुव्वं के०) अने कोइ एकश्रमण ब्राह्मण पण ग्रहस्थने भावें होय तेवारे सारंभि सपरिग्रही होय तेमज पछी प्रवर्ज्याना अवसरे पण तेवाज सारंभी सपरिग्रही थका वर्त्ते तो ते पण ग्रहस्थ सरखाज जाणवा केमके जेम पछी प्रवर्ज्याने अवसरेछे तेम प्रथम ग्रहस्थने भावे पण तेवाज हता. ए कारणे निरारंभि थका चारित्रियायें सारंभिनो आश्रय ग्रहण करवो जेम ए गृहस्थ सारंभि सपरिग्रही प्रत्यक्ष देखायछे तेम देखाडेछे. (अंजूएतेअणुवरयाअणुवट्ठिया के०) ए वात प्रगट पणेछे के ए गृहस्थादिक सावद्यानुष्ठान थकी अनुपरत एटले निवर्त्या नथी जे कारण माटे ते सारंभी, सपरिग्रही प्रत्यक्ष पणेछे. अने जे कोइ चारित्र ग्रहिने पछी सावद्यानुष्ठानने विषे प्रवर्त्ते. आधाकर्मादिक आहार लिये तेपण (पुणरवि के०) वली पण (तारिसगाचेवके०) तादृश तेवाज जाणवा. जेम पछी प्रवर्ज्याने अवसरे वर्त्तेछे तेम प्रथम गृहस्थने भावे पण वर्त्तता हता ॥ ४५ ॥

॥ दीपिका—तमेवाह । इह संसारे खलु गृहस्थाः सारंभाः सपरिग्रहाः संति विद्यंते । एके केचन श्रमणाः शाक्यादयोब्राह्मणाश्च सारंभाः सपरिग्रहाः । यतोयइमे त्रसाः स्थावराः प्राणिनएतान् स्वयं समारभंते अन्यांश्च समारंभयंति समारंभं कुर्वतश्चान्यान् समनुजानंति ॥४३॥ एवं प्राणातिपातं प्रदर्श्य परिग्रहमाह । इह खलु गृहस्थाः सारंभाः सपरिग्रहाः संति श्रमणाब्राह्मणाअपि तादृशाः । यइमे कामभोगाः कामाः स्त्रीसंगादयो भोगाः स्रक्चंदनगीतादयः । एते सचित्ताअचित्तावा तान् स्वयं परिगृह्णंति अन्यान् परिग्राहयंति परंच परिगृह्णंतं समनुजानंति ॥४४॥ उपसंहारमाह । इह खलु गृहस्थाः श्रमणाब्राह्मणाश्च सारंभाः सपरिग्रहाइति ज्ञात्वा भिक्षुरेवं चिंतयेत्. अहमेव खलु अनारंभोऽपरिग्रहश्च । ये चामी गृहस्थादयः सारंभाः सपरिग्रहास्तदेतन्निश्रयाब्रह्मचर्यं श्रामण्यं वत्स्यामआचरिष्यामोऽनारंभाअपरिग्रहाः संतोधर्माधारदेहधारणार्थमाहारादिकृते सारंभसपरिग्रहगृहस्थनिश्रयां प्रव्रज्यां करिष्यामइत्यर्थः । शिष्यः प्राह । कस्य हेतोर्गृहस्थस्य श्रमणादिनिश्राकरणं? आचार्यआह । यथा पूर्वमादौ सारंभपरिग्रहत्वं तेषां तथा पश्चादपि सर्वकालमपि गृहस्थाः सारंभादिदोषडष्टाः श्रमणाश्च पूर्वं गृहस्थत्वे सारंभास्तथा परस्मिन्नपि प्रव्रज्याकाले तथाविधाएव ते यथा परमपरस्मिन् प्रव्रज्याकाले तथा पूर्वं गृहस्थत्वेपीति । ततः साधुभिरनारंभैः सारंभाश्रयणं कार्यं । गृहस्थासारंभत्वमाह (अंजू

रंन्ना सपरिग्गहा जेइमे कामन्नोगा सचित्तावा अचित्तावा ते सयं परिगिण्हंति अन्नेणवि परिगिण्हावेंति अन्नंपि परिगिण्हंतं समणुजाणंति ॥ ४४ ॥ इह खलु गारब्बा सारंन्ना सपरिग्गहा संते गतिया समणा माहणावि सारंन्ना सपरिग्गहा अहं खलु अणारंन्ने अपरिग्गहे जे खलु गारब्बा सारंन्ना सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारंन्ना सपरिग्गहा एते चेव निस्साए बंन्नचेरंवा संवसिस्सामो कस्सणं तं हेउं जहा पुवं तहा अवरं जहा अवरं तहा पुवं अंजू एते अणुवरया अणुवछिया पुणरवि तारिसगा चेव ॥ ४५ ॥

अर्थ—हवे ए जीवोना उपमर्दक देखाडेछे. (इहखलु के०) आ संसारने विषे निश्चें थकी (गारब्बासारंन्ना के०) ग्रहस्थ जेछे ते सारंन्नी, तथा (सपरिग्गहिया के०) सपरिग्रहिया जाणवा. (संतेगतियासमणामाहणावि के०) तथा कोइ एक श्रमण अने ब्राह्मणछे तेपण (सारंन्नासपरिग्गहावि के०) सारंन्नी अने सपरिग्रहीछे. ते सारंन्नी सपरिग्रही केवाछे ते कहेछे. (जेइमेतसाथावरापाणा के०) जे कोइ ए त्रस अने स्थावर प्राणीछे (तेसयंसमारन्नंति के०) तेनो स्वयं पोते समारंन्न करेछे (अन्नेणाविसमारंन्नावेंति के०) अन्य बीजापासें आरंन्न करावेछे (असुंपिसमारन्नंतंसमणुजाणंति के०) बीजो कोइ आरंन्न करतो होय तेने अनुमोदन आपेछे. ॥४३॥ हवे ए सारंन्नी सपरिग्रहिने प्राणातिपात देखाडीने नोगांगन्नूत परिग्रह देखाडेछे. अंही इहखलु इत्यादिकनो अर्थ लखेछे. आ जगत् मांहे निश्चे थकी ग्रहस्थ सारंन्नी सपरिग्रही होयछे अने कोइएक श्रमण ब्राह्मण पण सारंन्नी सपरिग्रहीछे. (जेइमेकामन्नोगासचित्तावाअचित्तावाके०) जे ते स्त्रियादिकना नोगने अर्थें पुष्प, चंदन, गीत, वाजित्रादिक करावे ते सचित्त अने अचित्त परिग्रह जाणवो. (तेसयंपरिगिण्हंतिके०) ते स्वयं पोते कामन्नोगना अर्थी थका सचित्ताचित्तरूप परिग्रह अंगीकार करे. (अन्नेणविपरिग्गिण्हावेंतिके०) बीजा पासें परिग्रहावे. (अन्नंपिपरिग्गिण्हंतंसमणुजाणंतिके०) बीजोजे परिग्रहे तेने अनुमोदन आपे. ॥ ४४ ॥ एम आ जगत् मां ग्रहस्थ सारंन्नी सपरिग्रहीछे अने केटलाएक श्रमण ब्राह्मण पण सारंन्नी सपरिग्रहीछे एवुं जाणीने निक्षु चारित्रिउ एवुं चिंतवे जे (अहं के०) हुं खलु इति निश्चें निरारंन्नी निःपरिग्रहीछुं. तो जे ए ग्रहस्थ तथा श्रमण ब्राह्मण सारंन्नी सपरिग्रहीछे एनी निश्रायें अमे ब्रह्मचर्य आदरशुं एतावता निरारंन्न निःपरिग्रही थका धर्माधारन्नूत देहने प्रतिपालवा निमित्ते आहारादिकने अर्थें सारंन्नी सपरिग्रही एवा ग्रहस्थनी निश्रायें

ष्ठानेभ्योऽनुपरताः परिग्रहारंभाच्च सत्संयमानुष्ठानेन चानुपस्थिताः सम्यगुत्थानमकृतवंतोपि कथंचिद्धर्मकरणायोत्थितास्तेप्युद्दिष्टभोजित्वात्सावद्याऽनुष्ठानपरत्वाच्च गृहस्थाभावेऽनुष्ठानमनतिवर्तमानाः पुनरपि तादृशाएव गृहस्थकल्पाएवेति ॥ ४५ ॥

जे खलु गारत्था सारंभा सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा इहतो पावाइं कुवंति इति संखाए दोहिंवि अंतेहिं अदिस्समाणो इति भिक्खू रीएज्जा ॥ ४६ ॥ सेबेमि पाईणंवा जाव एवं से परिस्रायकम्मे एवं से ववेयकम्मे एवं सेविअंतकारए भवतीति मक्खायं॥४७॥

अर्थ–(जेखलुगारत्थासारंभासपरिग्गहा के०) जे निश्चे थकी ग्रहस्थ सारंभी सपरिग्रहीछे (संतेगतियासमणामाहणाविसारंभासपरिग्गहा के०) अने कोइ एक श्रमण ब्राह्मण पण सारंभी अने सपरिग्रहीछे (इहतोपावाइंकुवंति के०) ए कारणे ए बन्ने पापना करनारा जाणवा (इतिसंखाए के०) एवुं जाणीने (दोहिंविअंतेहिं के०) आरंभ अने परिग्रह ए बेउ थकी अंत एटले दूर रहे (अदिस्समाणो के०) आरंभ अने परिग्रह थकी अदृश्य मान थतो (इतिभिक्खूरीएज्जा के०) एम चारित्रवान् साधु निरवद्य आहारनुं भोजन करनार थको संयमानुष्ठानने विषे प्रवर्ते ॥४६॥ (सेबेमिके०) वली तेज अर्थ विशेषें करी कहुंछुं (पाईणंवा के०) पूर्व पश्चिम उत्तर अने दक्षिण दिशि थकी आव्यो एवो साधु निरारंभी निःपरिग्रही संयमने विषे प्रवर्त्तमान थको (जावएवंसेपरिस्रायकंमे के०) ज्यां सुधी एम ते साधु ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें पच्चखीने (एवंसेववेयकम्मे के०) एम ते कर्मना अंतनो करनार थाय (एवंसेविअंतकारएभवतीतिमक्खायं के०) ए प्रकारे ते योगनिरोधे करी विशेष अंतकारी थाय एम श्री तीर्थंकर गणधरें कह्युंछे ॥ ४७ ॥

॥ दीपिका–उपसंहारमाह । (जेखलुत्ति) येऽमे गृहस्थादयस्ते द्विधापि रागद्वेषाभ्यामुभाभ्यां पापानि कुर्वंति इति संख्याय ज्ञात्वा द्वयोरप्यंतयोरागद्वेषयोरनुपलभ्यमानः सन् इत्येवंभूतोभिक्षुः संयमे रीयेत प्रवर्तेत । कोर्थः । यऽमे ज्ञातिसंयोगायश्चायं धनादिपरिग्रहः यच्चेदं हस्ताद्यवयवयुक्तं शरीरं यच्चायुर्बलवर्णादिकं तत्सर्वमसारमनित्यं । गृहस्थश्रमणब्राह्मणाश्च सारंभपरिग्रहाः एतत्सर्वं ज्ञात्वा भिक्षुः संयमे रीयेत तिष्ठेदितिस्थितं ॥४६॥(सेबेमि) सोहं ब्रवीमि प्राच्यादिशोन्यतरस्याः समागतः सन्भिक्षुर्द्वयोरपि रागद्वेषयोरदृश्यमानः संयमे रीयमाणः सन् एवं पूर्वोक्तप्रकारेण परिज्ञातकर्मा स्यात् ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्यातकर्मा स्यादित्यर्थः । एवं सयोगनिरोधेन व्यंतकारकः विशेषेणकर्मणामंतकारकः स्यादिति तीर्थकृद्गणधरादिभिराख्यातं ॥ ४७ ॥

इति) व्यक्तमिदं ये गृहस्थाः सावद्यादनुपस्थिताअनुद्यताः । येपि शाक्यादयः प्रव्रजिता स्तेप्युद्दिष्टनोजित्वात्सावद्यानुष्ठानपरत्वात्पुनरपि तादृशाएव गृहस्थतुल्याएव ॥ ४५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं तडुपमर्दकव्यापारकर्तॄन् दर्शयन्नाह । (इहखलुइत्यादि) इहास्मि न्संसारे । खलुवाक्यालंकारे । गृहमागारं तत्र तिष्ठंतीति गृहस्थास्तेच सहारंनेण जीवो पमर्दकारिणा वर्तते सारंनास्तथा सहपरिग्रहेण द्विपचतुष्पदधनधान्यादिना वर्ततइति स परिग्रहाः । न केवलं तएवान्येपि संति विद्यंते एके केचन श्रमणाः शाक्यादयस्तेच पच नपाचनाद्यनुमतेः सारंनादास्यादिपरिग्रहाच्च सपरिग्रहास्तथा ब्राह्मणाश्चैवंविधाएव । ए तेषां च सारंनकत्वं स्पष्टतरं सूत्रेणैव दर्शयति । यइमे प्राग्वर्णितास्त्रसाः स्थावराश्च प्रा णिनस्तावत्स्वयमेवापरप्रेरिताएव समारनंते तडुपमर्दकं व्यापारं स्वतएव कुर्वंतीत्यर्थः । त थान्यांश्च समारंनं कुर्वतश्चान्यान् समनुजानंते ॥४३॥ तदेवंप्राणातिपातं प्रदर्श्य नोगांगनूतं परिग्रहं दर्शयितुमाह । यइमे प्रत्यक्षाः कामप्रधानानोगाः कामनोगाः काम्यंतइति कामाः स्त्रीगात्रपरिष्वंगादयोनुज्यंतइति नोगाः स्रक्चंदनवादित्रादयस्तएते सचित्ताः सचेतनाअ चेतनावा नवेयुस्तडुपादाननूतार्थास्तांश्च सचित्तानचित्तान्वाऽर्थांस्ते कामनोगार्थिनोगृहस्था दयस्ततएव परिगृण्हंति अन्येनच परिग्राहयंति अपरंच परिगृण्हंतं समनुजानंतइति ॥४४॥ सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । इहास्मिन् जगति विद्यंते गृहस्थास्तथाविधश्रमणाब्राह्मणाश्च सा रंनाः सपरिग्रहाइत्येवं ज्ञात्वा सनिक्षुरेवमवधारयेदहमेवात्र खल्वनारंनोऽपरिग्रहश्च । ये चामी गृहस्थादयः सारंनादिगुणयुक्तास्तदेतन्निश्रयास्तदाश्रयेणच ब्रह्मचर्यं श्रामण्यमाचरि ष्यामोऽनारंनाअपरिग्रहाः संतोधर्माधारदेहप्रतिपालनार्थमाहारादिकृते सारंनपरिग्रहस्य निश्रयां प्रव्रज्यां करिष्यामइत्यर्थः । ननु च यदि तन्निश्रयापुनरपि विहर्तव्यं किमर्थं? ते त्यज्यंतइति जाताशंकः पृच्छति। कस्य हेतोः केन कारणेन तदेतद्गृहस्थश्रमणब्राह्मणत्यज नमनिहितमित्याचार्योपि विदितानिप्रायउत्तरं ददाति । यथा पूर्वमादौ सारंनपरिग्रहत्वं तेषां तथा पश्चादपि सर्वकालमपि गृहस्थाः सारंनादिदोषडुष्टाः श्रमणाश्च केचन यथा पू र्वं गृहस्थानावे सारंनाः सपरिगृहास्तथा परस्मिन्नपि प्रव्रज्याकाले तथाविधाएव तइति । अधुनोनयपदाव्यनिचारित्वप्रतिपादनार्थमाह । यथा परमपरस्मिन् प्रव्रज्याप्रतिपत्तिका ले तथा पूर्वमपि गृहस्थनावादावपीति । यदि वा कस्य हेतोस्तद्गृहस्थाद्याश्रयणं क्रियते यतिनेत्याह । यथा पूर्वं प्रव्रज्यारंनकाले सर्वमेव निक्षादिकं गृहस्थायत्तं तथा पश्चादप्य तः कथंनु नामानवद्यावृत्तिर्नविष्यतीत्यतः साधुनिरनारंनैः सारंनाश्रयणं विधेयं । तथा चैते गृहस्थादयः सारंनाः सपरिग्रहाश्च । तथा प्रत्यक्षेणैवोपलन्यंतइति दर्शयितुमाह । (अं जूइत्ति) व्यक्तमेतदेते गृहस्थादयोयदि वांजूइति प्रगुणेन न्यायेन स्वरसप्रव्रज्यासावद्यानु

पद्धवेंति सवेपाणा जावसत्ता णहंतवा णअज्जावेयवा णपरिघेतवा ण परितावेयवा णउद्दवेयवा एसधम्मे धुवे णीतिए सासए समिच्चं लोगं खे यन्नेहिं पवेदेंति एवंसे निख्कू विरते पाणातिवायतो जाव विरते परिग्गहा तो णोदंतपख्कालणेणं दंतपख्कालेज्जा णोअंजणं णोवमणं णोधूवणं णोतं परिआविएज्जा ॥ ४ए ॥

अर्थ–(तत्र के०) त्यां कर्मबंधने प्रस्तावे खलु इति वाक्यालंकारे (नगवंता के०) नगवंत श्रीतीर्थंकरदेवे (ठ जीवनिकायहेउ के०) ठजीवनिकाय कर्मबंधना कारण (पसुत्ता के०) कह्याठे (तंजहा के०) ते ठ कायना नाम कहेठे (पुढवीकाएजा वतसकाए के०) पृथ्वी कायथी मांमीने यावत् त्रसकाय पर्यंत ठ जीव निकाय जाणवा तेने पीडतां पीडावता जेम डुःख उपजे तेम दृष्टांते करी देखाडेठे (सेजहाणामए के०) ते जेम नाम एवी संनावनायें (मम के०) मुजने (अस्सायं के०) असाता उपजे शा थकी असाता उपजे ते कहेठे (दंमेणवा के०) दंमादिकेंकरी हणता थका (अठीणवा के०) अस्थिखंमे करी हाडकायें करी (मुठीणवा के०) मुष्टीयें करी (लेलूणवा के०) पाषाणे करी (कवालेणवा के०) ठीकरीयें करी (आउट्टिज्जमाणस्सवा के०) आक्रोश करताथका तथा सन्मुख नाखता थका (हम्ममाणस्सवा के०) अथवा हणता थका (तज्जिज्जमाणस्सवा के०) तर्जना करता थका (ताडिज्जमाणस्सवा के०) ताडना करता थका (परियाविज्जमाणस्सवा के०) परितापना करता थका (किलाविज्जमाणस्सवा के०) किलामणाकरताथका (उद्दविज्जमाणस्सवा के०) उद्वेग करता थका तथा जीवने काया थकी रहित करताथका (जावलोमुख्कणणमायमवि के०) यावत् शरीर मांहेथी एक रोम उखेडवा मात्र एवुं पण (हिंसाकारगं के०) हिंसानु कारण तेथी पण (डुख्कंनयंपडिसंवेदेंमि के०) डुःख अने नय हुं वेडं अनुनवुं (इच्चेवंजाण के०) ए प्रकारे तेजाणे के (सवेजीवा के०) सर्व जीवते सर्व पंचेंद्रियजीव जाणवा (सवेनूता के०) सर्व नूतते सर्व वनस्पति प्रमुखना जीव जाणवा (सवेपाणा के०) सर्व प्राणी ते सर्व बे इंद्रियादिक विकलेंदि जीव जाणवा (सवेसत्ता के०) सर्वसत्व ते पृथिव्यादिक सर्वजीव जाणवा ते जीवोने (दंमेकरी हणता थका (जावकवालेणवा के०) यावत् ठीकरीयें करी हणता थका (आउट्टिज्जमाणावा के०) आक्रोश करता थका (हम्ममाणावा के०) हणता थका (तज्जिज्जमाणावा के०) तर्जना करता थका (ताडिज्जमाणावा के०) ताडना करता थका (परियाविज्जमाणावा के०) परितापना करता थका (किलाविज्जमाणावा

॥टीका–सांप्रतमुपसंहरति। (जेखलुइत्यादि) यइमे गृहस्थादयस्ते द्विधापि सारंभसपरि ग्रहत्वाभ्यामुनाभ्यामपि पापान्युपाददते। यदिवा रागद्वेपाभ्यामुनाभ्यामपि पापान्युपाददते यदिवा गृहस्थप्रव्रज्यापर्यायाभ्यामुनाभ्यां पापानि कुर्वंतइत्येवं संख्याय परिज्ञाय द्वयोरप्येत योरारंभपरिग्रहयोरागद्वेषयोर्वा दृश्यमानोनुपलभ्यमानोयदिवा रागद्वेषयोर्यवत्तावभावौ तयोरादिश्यमाने रागद्वेषाभाववृत्तित्वेनापदिश्यमानः सन्नित्येवंभूतोनिक्षणशीलोऽनवद्या हारभोजी सत्संयमानुष्ठाने रीयेत प्रवर्तेत। एतडुक्तं भवति। ये इमे जातिसंयोगायश्चायं ध नधान्यादिकः परिग्रहोयच्चेदं हस्तपादाद्यवयवयुक्तं शरीरं यच्च सदायुर्बलवर्णादिकं तत्सर्वम शाश्वतमनित्यं स्वप्नेंद्रजालसदृशमसारं। गृहस्थश्रमणब्राह्मणाश्च सारंभाः सपरिग्रहाश्चै तत्सर्वं परिज्ञाय सत्संयमानुष्ठाने भिक्षुरीयेतेति स्थितं॥ ४६ ॥ सपुनरप्यहमधिकृतमेवार्थं विशेषिततरं सोपपत्तिकं ब्रवीमीति। तत्र प्रज्ञापकापेक्षया प्राच्यादिकायादिशोन्यतरस्याः स मायातः सन्भिक्षुर्द्वयोरप्येतयोरदृश्यमानतया सत्संयमे रीयमाणः सन् एवमनंतरोक्तेन प्रका रेण ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिज्ञातकर्मा भवति। पुनरप्येवमिति परि ज्ञातकर्मत्वाद्व्यपेतकर्मा भवति अपूर्वस्याबंधकोभवतीत्यर्थः। पुनरेवमित्यबंधकयोगनिरो धोपायतः पूर्वोपचितस्य कर्मणोविशेषेणांतकारकोभवतीत्येतच्च तीर्थंकरगणधरादिभि र्ज्ञातज्ञेयैर्व्याख्यातमिति ॥ ४७ ॥

तत्थ खलु भगवंता छज्जीवनिकायहेऊं पण्णत्ता तंजहा पुढवीकाए जाव त सकाए से जहा णामए मम अस्सायं दंडेणवा अट्ठीणवा मुट्ठीणवा लेलू णवा कवालेणवा आउट्टिज्जमाणस्सवा हम्ममाणस्सवा तज्जिज्जमाणस्स वा ताडिज्जमाणस्सवा परियाविज्जमाणस्सवा किलाविज्जमाणस्सवा उद्द विज्जमाणस्सवा जावलोमुक्खणणमायमवि हिंसाकारगं डुक्खं भयंपडिसं वेदेमि इच्चेवं जाण सव्वे जीवा सव्वेभूता सव्वेपाणा सव्वेसत्ता दंडेणवा जाव कवालेणवा आउट्टिज्जमाणावा हम्ममाणावा तज्जिज्जमाणावा ताडिज्ज माणावा परियाविज्जमाणावा किलाविज्जमाणावा उद्दविज्जमाणावा जाव लोमुक्खणणमायमवि हिंसाकारगं डुक्खं भयं पडिसंवेदेंति एवं नच्चा स व्वेपाणा जाव सत्ता णहंतव्वा णअज्जावेयव्वा णपरिघेतव्वा णपरितावेयव्वा णउद्दवेयव्वा॥ ४८ ॥ सेबेमि जेयअतिता जेयपडुप्पन्ना जेयआगमिस्सा मि अरिहंता भगवंता सव्वे ते एवमाइक्खंति एवंभासंति एवंपण्णवेंति एवं

वाद थकी, तथा अदत्तादान थकी, तथा मैथुन एटले कुशील थकी, (जावविरतेपरिग्ग हातो के०) यावत् परिग्रह थकी, विरति करतो थको जेवा आचारें प्रवर्त्ते, ते आचार कहेछे. (णोदंतपरकालणेणं दंतपरकालेज्जा के०) दंत पक्षालने करी दंत धोवे नही, एतावता जावजीव सुधी दातण न करे. (णोअंजणं के०) जावजीव सुधी सौनाग्यने अर्थे आंखमां अंजन नाखे नही. (णोवमणं के०) वमन विरेचनादिक क्रिया न करे, (णोधूवणे के०) शरीर वस्त्रादिकनुं धूपन न करे (णोतंपरिआविएज्जा के०) कासादि रोगने मटाडवा माटे धूम पान पण न करे, ते निक्षु एटला वाना पोते आचरे नही.॥४ए॥

॥ दीपिका—प्राणातिपातेन कर्मबंधप्रस्तावे खलु नगवता षड्जीवनिकायाहेतुत्वेनोक्ताः । तद्यथा । पृथिवीकायोयावत्त्रसकायः । एतेषां डुःखं दृष्टांतेनाह । तद्यथा नाम ममासातं डुःखं दंडेन अस्थ्ना मुष्टिना लेलुना लोष्टेन कर्परेण आकोटयमानस्य संकोच्यमानस्य हन्यमानस्य कशादिनिस्ताडयमानस्य कुड्यादावनिघातादिना परिताप्यमानस्याग्न्यादावन्येन प्रकारेण परिक्रम्यमाणस्यापड्राव्यमानस्य मार्यमाणस्य यावल्लोमोत्खननमात्रमपि हिंसाकरं डुःखं नयं च यन्मयि क्रियते तत्सर्वमहं संवेदयामि इत्येवं जानीहि । तथा सर्वे प्राणाजीवानूतानि सत्वाइत्येकार्थिकाः कथंचिन्नेदेन वा व्याख्येयाः । तथाहि । प्राणाद्वित्रिचतुःखाःस्युर्नूतानि तरवः स्मृताः ॥ जीवाः पंचेंद्रियाः प्रोक्ताः शेषाः सत्वाइतीरिताइति । एषां दंडादिना कोटयमानानां यावल्लोमोत्खनननमात्रमपि डुःखं प्रतिसंवेदयतां । एतच्च हिंसाकरं डुःखं नयं चोत्पन्नं ते सर्वेपि प्राणिनः साक्षादनुनवंत्यतः सर्वेपि प्राणिनोन हंतव्यान आज्ञापयितव्यावलान्न कार्ये प्रयोक्तव्यान परिग्राह्यान परितापयितव्यानापड्रावयितव्याः ॥४०॥ सोहं साधुर्ब्रवीमि न स्वमत्या किंतु तीर्थकृदाज्ञयेत्याह । येअतीतायें च प्रत्युत्पन्नावर्तमानाः सीमंधरादयोये चागमिष्याअनागताः पद्मनानादयोऽर्हंतोनगवंतः सर्वेप्येवमाख्यांति एवं नाषंते स्वत एवं प्रज्ञापयंति हेतुनिरेवं प्ररूपयंति नामादिनिर्यथा सर्वेप्राणा न हंतव्याइत्यादि । एषधर्मो ध्रुवोनित्यः शाश्वतः समेत्य ज्ञात्वा, लोकं खेदज्ञैस्तीर्थंकरैः प्रवेदितः । एवं ज्ञात्वा सनिक्षुर्विरतः प्राणातिपाताद्यावत्परिग्रहान्महाव्रतपालनार्थमुत्तरगुणाः कथ्यंते । (नोदंतइत्यादिना) निष्किंचनः सन् साधुर्नो दंतप्रक्षालनेन काष्ठेन दंतान् प्रक्षालयेत् नोअंजनं नेत्रयोर्विनूषार्थं कुर्यात्, वमनं विरेचनादि न कुर्यात्, वस्त्राणां धूपनं न कुर्यात् कासाद्यपनोदनार्थं धूमं न पिबेत् ॥४ए॥

॥ टीका—कथं पुनः प्राणातिपातविरतिव्रतादिव्यवस्थितस्य कर्मापगमोनवतीत्युक्तं यतस्तत्प्रवृत्तस्यात्मौपम्येनप्राणिनां पीडोत्पद्यते तया च कर्मबंधइत्येवं सर्वं मनस्याधा

के०) किलामणा करता थका, (उद्दविक्कमाणावा के०) उद्वेग करता थका, तथा जीव ने काया थकी रहित करता थका, (जावलोमुक्कणणमायमवि के०) यावत् एक रोम उखेडवा मात्र एवुं पण (हिंसाकारगं के०) हिंसानु कारण ते थकी पण, (डुक्कं नयंपडिसंवेदेंति के०) ते जीवो डुःख अने नय एवुंज वेदे अनुनवे एटले जेवुं डुःख मने वेदवुं पडे, तेवुं डुःख सर्व जीवने वेदवुं पडे. एम सर्व जीवोने पोता सरखुं डुःख देखाडीने अन्य जीवोने शिक्षानो उपदेश आपेठे. (एवंनच्चा के०) एवुं जाणीने (सव्वेपाणाजावसत्ता के०) सर्व प्राणी, सर्वनूत, सर्वजीव अने सर्व सत्वने (णहंतव्वा के०) हणवा नही, (णअज्जावेयव्वा के०) दंमादिकें करी ताडवा नही, (णपरिघेतव्वा के०) बलात्कारें करी दासनी पेठें परिग्रहवा नही, एटले बलात्कारे करी चाकरनी पेठें कोइ कार्यने विषे प्रेरवा नही. (णपरितावेयव्वा के०) शारीरिक मानसी पीडाने उपजावीने परितापवा नही. (किलविच्चमाणवा णउद्दवेयव्वा के०) किलामणा करी करी उपड्रववा नही, तथा काया थकी रहित करवा नहीं ॥४ए॥ हवे सुधर्म स्वामी कहेठे. (सेबेमिके०) ए वचन जे हुं कहुं बुं, ते पोतानी मतियें नथी कहेतो पण एम सर्व तीर्थंकरनी आज्ञाठे, ते देखाडेठे; (जेयअतीता के०) जे अतीत कालें तीर्थंकर थया, (जेयपडुप्पन्ना के०) जे वर्त्तमान कालें तीर्थंकर वर्त्तेठे, (जेयआगमिस्सामि के०) जे आगमिक कालें थशे ते (अरिहंत के०) पूजा सत्कार योग्य (नगवंता के०) ज्ञानवंतआश्चर्यादिक गुणे करी संयुक्त एवा (सव्वेते के०) समस्त श्री अरिहंत नगवंत ते (एवमाइक्कंति के०) एम सामान्य थकी कहेठे (एवंनासंति के०) एम अर्धमागधीनाषायें नांखेठे (एवंपन्नवेंति के०) एम शिष्यने देशना आपेठे (एवंपरूवेंति के०) एम सम्यक् प्रकारें प्ररूपे ठे के, (सव्वेपाणा जावसत्ता के०) सर्वे प्राणीथी मांमीने यावत् सर्व सत्व ने (णहंतव्वा के०) हणवा नही, दंमादिकें करी ताडवा नही, वली बलात्कारें दासनी पेठें परिग्रहवा नही, शारीरिक मानसी पीडा उत्पन्न करीने, परितापवा नही उपड्रववा नही, जीव काया थकी रहित करवा नही, (एसधम्मेधुवे के०) ए धर्म प्राणीनी दया लक्षण डुर्गतियें जाता जीवने राखनार ते धर्म केवोठे तोके, ध्रुव एटले निश्चल (णीतिए के०) नित्य सदा सर्वकालठे, कोइ काले जेनो क्षय नथी (सासएके०) शाश्वतठे, तेने (समिच्चंके०) केवल ज्ञाने करी आलोचीने शुं आलोचीने? तो के, (लोगं के०) चौद रज्वात्मक लोक एटले षट् जीव निकायरूप लोक तेने डुःखरूप समुड्मांहे पड्यो देखीने (खेयन्नेहिं के०) खेदज्ञ एटले बीजा जीवोनां डुःखोना जाणनार, एवा श्रीतीर्थंकर नगवंते (पवेदेंति के०) पूर्वोक्त जीवदयालक्षण धर्म नांख्यो. (एवं के०) ए प्रकारें जाणीने (सेनिक्खूविरते के०) ते साधु निवर्त्यो (पाणातिवायतो के०) प्राणातिपात एटले हिंसा थकी, तेमज मृषा

वा णाएणवा विन्नाएणवा इमेणवा सुचरिय तवनियमबंभचेरवासेण इमेणवा जायामायावुत्तिएणं धम्मेणं इउवए पेच्चा देवेसिया कामभोगा वसवत्ति सिद्धेवा अडुक्खमसुभे एठविसिया एठविणोसिया ॥ ५० ॥

अर्थ-(सेभिरकू के०) ते चारित्रियो (अकिरिए के०) सावद्य क्रिया रहित, (अलूसए के०) जीवनो अहिंसक, (अकोहे के०) क्रोधरहित (अमाणे के०) मानरहित (अमाए के०) मायारहित (अलोहे के०) लोभरहित (उवसंतेपरिनिवुडे के०) एकारणे उपशांत परिनिवृत समाधिवंत एवो थतो, (णोआसंसंपुरतोकुज्जा के०) आशंसा न करे एटले जन्मांतरे कामभोगनी प्रार्थना न करेः (इमेणमेदिठेणवा के०) वली आ जन्मने विषे आमोसही इत्यादिक लब्धि पाम्या तेथी तपश्यानुं फल प्रत्यक्ष दीठुं. तथा वली (सुएणवा के०) सिद्धांत भणवा थकी (मुएणवा के०) मनन करवाना (णाएणवा के०) ज्ञानेकरी (विन्नाएणवा के०) विज्ञानेकरी, (इमेणवा के०) एवा धर्मेकरी (सुचरिय के०) सुकृतरूप आचरण (तव के०) तप अनशनादिक (नियम के०) नियम अभिग्रहादिक (बंभचेर के०) ब्रह्मचर्यने विषे (वासेण के०) वसवा थकी (इमेणवा के०) ए धर्मेकरी (जायामायावुत्तिएणं के०) संयमयात्रामात्रा वृत्तिरूप एटले मानोपेत आहार लेवे करी (धम्मेणंइउवएपेच्चादेवेसिया के०) एवा धर्मेकरी अहींयां थकी चवीने परभवांतरें देवत्व पणु पामुं एवी आशंसा पण न करे (कामभोगावसवत्ति के०) अथवा नाना प्रकारना कामभोग म्हारे वशवर्ति थाउं एवी प्रार्थना पण नकरे (सिद्धि के०) अष्ट प्रकारनी अणिमा महिमादिकजे सिद्धि छे ते सिद्धियें करी सिद्धियें सहित थाउं, एवी आशंसा नकरे (अडुक्खमसुभे के०) दुःख रहित थाउं, शुभाशुभ कर्मरहित थाउं, तथा मध्यस्थ थाउं, एवी आशंसा पण न करे. एवी आशंसाने न करवानुं कारण कहेछे. (एठविसियाएठविणोसिया के०) तपश्चरण करतां मनःप्रार्थितसिद्धि होय अथवा न होय ए कारणे वांछा न करे ॥ ५० ॥

॥ दीपिका-मूलोत्तरगुणसंग्रहमाह । सभिक्षुः नविद्यते सावद्या क्रिया यस्य सोऽक्रियः सांपरायिककर्माबंधकइत्यर्थः । यतः प्राणिनामलूषकोऽहिंसकस्तथाऽक्रोधोऽमायोऽलोभउपशांतः परिनिर्वृतः शीतीभूतआशंसां जन्मांतरे कामभोगावाप्तिवांछां न पुरस्कुर्यात् । (इमेणत्ति) अमुना तपश्चरणफलेन दृष्टेनामर्षौषध्यादिना श्रुतेन पारलौकिकेनाईकधम्मिलब्रह्मदत्तादीनां तपश्चरणफलेन (मएणत्ति) मननं च जातिस्मरणादिज्ञानेन आचार्यादेः सकाशाद्विज्ञातेनावगतेन ममापि विशिष्टं फलं भविष्यतीत्येवं नाशंसां विदध्यात् । त

याह । (तन्नखलुइत्यादि) तत्रेति कर्मबंधप्रस्तावे । खलुवाक्यालंकारे । नगवतोत्पन्न ज्ञानेन तीर्थकृता षड्जीवनिकायाहेतुत्वेनोपन्यस्ताः । तद्यथा । पृथिवीकायोयावत्त्रसका योपीति । तेषांच पीड्यमानानां यथा डुःखमुत्पद्यते तथा स्वसंवित्तिसिद्धेन दृष्टांतेन द र्शयितुमाह । तद्यथाच मे ममासातं डुःखं वक्ष्यमाणैः प्रकारैरुत्पद्यते तथान्येषामपीति तद्यथा । दंडेनास्थ्ना मुष्टिना लेलुनालोष्टेन कपालेन कर्परेण आकोट्यमानस्य संकोच्यमा नस्य हन्यमानस्य कशादिनिस्तर्ज्यमानस्यांगुल्यादिनिस्ताड्यमानस्य कुड्यदावनिघातादिना परितप्यमानस्याद्ययादावन्येन प्रकारेण वा परिक्लाम्यमानस्य तथापद्राव्यमाणस्य मार्यमा णस्य यावल्लोमोत्खननमात्रमपि हिंसाकरं डुःखं नयं च यन्मयि क्रियते तत्सर्वमहं संवेद यामीत्येवं जानीहि । यथा सर्वे प्राणाजीवानूतानि सत्वाइत्येते एकार्थिकाः कथंचिन्नेद माश्रित्य व्याख्येयास्तत्रैतेषां दंडादिना कुट्यमानानां यावल्लोमोत्खननमात्रमपि डुःखं प्रतिसंवेदयतामेतच्च हिंसाकरं डुःखं नयं चोत्पन्नं ते सर्वे प्राणिनः प्रतिसंवेदयंति सा क्षादनुनवंतीत्येवमात्मोपमया पीड्यमानानां जंतूनां यतोडुःखमुत्पद्यतेऽतः सर्वे प्राणि नोन हंतव्यान व्यापादयितव्याबलात्कारेण व्यापारे न प्रयोक्तव्यास्तथा न परिग्राह्यान परितापयितव्यानापद्रावयितव्याः ॥ ४७ ॥ सोहं ब्रवीम्येतन्न स्वमनीषिकतया किंतु सर्व तीर्थकराज्ञयेति दर्शयति (येअतीएइत्यादि) ये केचन तीर्थकृतऋषनादयोऽतीतायेच विदेहेषु वर्तमानाः सीमंधरादयोये चागामिन्यामुत्सर्पिण्यां नविष्यंति ब्रह्मनानादयोऽर्ह तोऽमरासुरनरेश्वराणां पूजार्हानगवंतऐश्वर्यादिगुणकलापोपेताः सर्वेप्येवं ते व्यक्तवाचा आख्यांति प्रतिपादयंति । एवं सदेवमनुजायां पर्षदि नाषंते स्वतएव न यथा बौद्धानां बोधिसत्वप्रनावात् कुड्यादिदेशनतइत्येवं प्रकर्षेण ज्ञापयंति हेतूदाहारणादिनिः । एवं प्ररूपयंति नामादिनिर्यथा सर्वे प्राणान हंतव्याइत्यादि । एषधर्मः प्राणिरक्षणलक्षण प्राग्व्यावर्णितस्वरूपोध्रुवोऽवश्यंनावी नित्यः क्षांत्यादिरूपेण शाश्वतइत्येवं चानिसमेत्य केवलज्ञानेनावलोक्य, लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं खेदज्ञैस्तीर्थकृद्भिः प्रवेदितः कथितइत्ये वं सर्वं ज्ञात्वा, सन्निक्षुर्विदितवेद्योविरतः प्राणातिपाताद्यावत्परिग्रहादिति । एतदेव दर्शयितुमाह । (णोदंतइत्यादि) इह पूर्वोक्तमहाव्रतपालनार्थमनेनोत्तरगुणाः प्रतिपा द्यंते । तत्रापरिग्रहोनिष्किंचनः ससाधुर्नो दंतप्रक्षालनेन कदंबादिकाष्ठेन दंतान् प्रक्षाल येत्तथा नो अंजनं सौवीरादिकं विनूषार्थमक्ष्णोर्दद्यात्तथा नो वमनविरेचनादिकाः क्रि याः कुर्यात्तथा नो शरीरस्य स्वीयवस्त्राणां वा धूपनं कुर्यान्नापि कासाद्यपनयनार्थं तं धू मं योगवर्तिनिष्पादितमापिबेदिति ॥ ४ए ॥

सेन्निक्खू अकिरिए अलूसए अकोहे अमाणे अमाए अलोहे उवसं ते परिनिवुडे णोआसंसं पुरतोकुज्जा इमेणमे दिठ्ठेणवा सुएणवा मुएण

सेभिक्खू सद्देहिं अमुछिए रूवेहिं अमुछिए रसेहिं अमुछिए गंधेहिं अमुछिए फासेहिंअमुछिए विरए कोहाउ माणाउ मायाउ लोभाउ पेज्जाउ दोसाउ कलहाउ अप्भक्खाणाउ पेसुन्नाउ परपरिवायाउ अरइरइउ मायामोसाउ मिछादंसणसल्लाउ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते सेभिक्खू ॥ ५१ ॥ जेइमे तसथावरा पाणा भवंति ते णो सयं समारंभइ णोवसेहिं समारंभावेंति अन्नं समारभंतं नसमणुजाणंति इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते सेभिक्खू ॥ ५२ ॥ जेइमे कामभोगा सचित्तावा अचित्तावा ते णो सयं परिगिण्हंति णोअन्नेणं परिगिण्हावेंति अन्नं परिगिण्हंतंपि णसमणुजाणइ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरतो सेभिक्खू ॥ ५३ ॥

अर्थ-(सेभिक्खू के०) ते साधु (सद्देहिंअमुछिए के०) शब्दने विषे अमूर्छित (रूवेहिंअमुछिएके०) रूपने विषे अमूर्छित (रसेहिंअमुछिए के०) रस मधुरादिकने विषे अमूर्छित (गंधेहिंअमुछिए के०) सुरभिगंधादिकने विषे अमूर्छित (फासेहिंअमुछिएके०) स्पर्शने विषे अमूर्छित (विरएके०) निवर्त्त्यो, शा थकी निवर्त्त्यो ? ते कहेले क्रोध थकी, मान थकी, माया थकी, लोभ थकी, राग थकी, द्वेष थकी, कलह थकी, अन्याख्यान एटले जुतुं आल देवा थकी, चाडी करवा थकी, परना अवर्णवाद बोलवा थकी, अरति थकी, रति थकी, माया सहित मृषावाद बोलवा थकी, अने मिथ्यात्वदर्शन शल्य ए थकी निवर्त्त्यो (इतिसेमहतोआयाणाउके०) एवो ते चारित्रिउ महोटा कर्मबंधना कारण थकी, (उवसंतेके०) उपशम्यो (उवठिएके०) उपस्थित एटले सावधान थयो (पडिविरतेके०) विशेषें निवर्त्त्यो (सेभिक्खू के०) ते चारित्रिउ ॥५१॥ (जेइमेतसथावरापाणाभवंति के०) जे ए त्रस अने स्थावर प्राणीउले (तेणोसयंसमारभंति के०) तेनो पोते समारंभ करे नही (णोवसेहिंसमारंभावेंति के०) बीजा पासे समारंभ करावे नही (अन्नंसमारंभंतंनसमणुजाणंति के०) बीजा समारंभ करता होय तेने अनुमोदे नही (इतिसे के०) एवो ते चारित्रिउ (महतो के०) महोटा (आयाणाउ के०) कर्मबंधना कारण थकी (उवसंते के०) उपशम्यो (उवठिएके०) उपस्थित एटले सावधान थयो (पडिविरते के०) विशेषे निवर्त्त्यो (सेभिक्खूके०) ते चारित्रिउ ॥५२॥ (जेइमेकामभोगा के०) जे आ जगत् मांहे काम भोगले ते कहेले (सचित्तावा के०) सचित्त (अचित्तावा के०)

थाऽमुना सुचरितेन तपोनियमब्रह्मचर्यवासेन तथाऽमुना यात्रामात्रावृत्तिना धर्मेण इतोऽस्माद्भवात् च्युतस्य प्रेत्य, जन्मांतरे देवः स्यामहं तत्रस्थस्यच कामन्नोगावशवर्तिनःस्युः। सिद्धोवाऽडुःखःअशुन्नः शुन्नाशुन्नकर्मापेक्ष्या एवंनूतोहं स्यामिति एवमाशंसां न विदध्यात्। अत्रापि तपश्चरणे सत्यपि डुर्ध्यानसद्भावात्कदाचित्सिद्धिर्मुक्तिरणिमादिसिद्धिर्वा स्यात्कदाचिच्च न स्यात् एवं सति साधोराशंसां कर्तुं न युक्तेति इहलोकार्थं परलोकार्थं कीर्तिवर्णश्लोकाद्यर्थं च तपोन विधेयमिति स्थितं ॥ ५० ॥

॥ टीका—सांप्रतं मूलगुणोत्तरगुणप्रस्तावमुपसंजिघृक्षुराह। (सेनिरकूइत्यादि) समूलोत्तरगुणव्यवस्थितोन्निक्षुर्नास्य क्रिया सावद्या विद्यतेइत्यक्रियः संवृतात्मकतया सांपरायिककर्माबंधकइत्यर्थः। कुतएवंनूतोयतः प्राणिनामलूषकोऽहिंसकोऽनुपमर्दकइत्यर्थः। तथा न विद्यतेक्रोधोयस्येत्यक्रोधएवममानोऽमाय्यलोन्नः कषायोपशमाच्चोपशांतः शीतीनूतस्तडुपशमाच्च परिनिर्वृतइव परिनिर्वृतः। एवं तावदैहिकेन्यः कामन्नोगेन्योविरतः पारलौकिकेन्योपि विरतइति दर्शयति।(नोआसंसंइत्यादि) नो नैवाशंसां पुरस्कृत्य ममानेन विशिष्टतपसा जन्मांतरे कामन्नोगावाप्तिर्नविष्यतीति।एवंनूतामाशंसां न पुरस्कुर्यादित्येतदेव दर्शयितुमाह। (इमेणमेइत्यादि) अस्मिन्नेव जन्मन्यमुना विशिष्टतपश्चरणफलेन दृष्टेनामर्षौषध्यादिना पारलौकिकेन च श्रुतेनाईकधम्मिल्लब्रह्मदत्तादीनां तथा (मुएणवत्ति) मननंज्ञानं जातिस्मरणादिना ज्ञानेन तथाऽचार्यादेः सकाशाद्विज्ञानेनावगतेन ममापि विशिष्टं नविष्यतीत्येवं नाशंसां विदध्यात्। तथाऽमुना सुचरित्रतपोनियमब्रह्मचर्यवासेन तथाऽमुना वा यात्रावृत्तिना धर्मेणानुष्ठितेनातोस्माद्भवाच्युतस्य प्रेत्य जन्मांतरे स्यामहं देवस्तत्रस्थस्यच मे वशवर्तिनः कामन्नोगान्नवेयुरशेषकर्माऽवियुतोवा सिद्धोऽडुःखोशुन्नाशुन्नकर्मप्रकृत्यपेक्ष्येत्येवं नूतोहं स्यामागामिकालइत्येवमाशंसां न विदध्यादिति। यदिवा विशिष्टतपश्चरणादिनाऽऽगामिनि काले ममाणिमा लघिमेत्यादिकाऽष्टप्रकारा सिद्धिर्नविष्यतीत्यनया च सिद्ध्या सिद्धोहमडुःखोऽशुन्नोवाम ध्यस्थइत्येवंरूपामाशंसां न कुर्यात्। तदकरणे च कारणमाह। (एडविइत्यादि) अत्रापि विशिष्टतपश्चरणे सत्यपि कुतश्चिन्निमित्ताद्दुष्प्रणिधानसद्भावे सति कदाचित्सिद्धिः स्यात्कदाचिच्च नैवाशेषकर्मक्षयलक्षणा सिद्धिः स्यात्। तथाचोक्तं। जे जत्तियाडहेऊ नविस्स ते चे व तत्तिया मोरकेइत्यादि। यदिवाऽत्राप्यणिमाद्यष्टगुणकारणे तपश्चरणादौ सिद्धिः स्यात्कदाचिच्च न स्यात् तद्विपर्ययोपि वा स्यादित्येवं व्यवस्थिते प्रेक्षापूर्वकारिणां कथमाशंसा कर्तुं युज्यते इति। सिद्धिश्चाष्टप्रकारेयं। अणिमा १ गरिमा २ लघिमा ३ महिमा ४ प्राप्तिः ५ प्राकाम्यं ६ ईशित्वं ७ वशित्वं ८ यत्र कामावसायित्वमिति।तदेवमैहिकार्थमामुष्मिकार्थं च कीर्तिवर्णश्लोकाद्यर्थं च तपोन विधेयमिति स्थितं ॥ ५० ॥

जंपियं इमं संपराइयं कम्मं कज्जइ णो तं सयं करेंति णोअसाणं कारवेंति अन्नंपिकरें तं णसमणुजाणइ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते ॥५४॥ से भिक्खूजाणेज्जा असणंवा अस्सिं पडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं भूताइं जीवाइं सत्ताइं समारंभ समुद्दिस्स कीतं पामिच्चं अछिज्जं अणिसठं अभिहडं आहट्टुदेसियं तंचेतियंसियातं णो सयं भुंजई णोअसेणं भुंजावेंति अन्नंपि भुंजंतं णसमणुजाणइ इति से महतो अयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते ॥ ५५ ॥

अर्थ-(सेभिक्खू के०) ते चारित्रिउ (जंपियं के०) जे (इमं के०) ए (संपराइयं कम्मंकज्जइ के०) सांपरायिक एटले जे कर्मे करी संसार मांहे परिभ्रमण करियें ते सांपरायिक कर्म कहिए जे कारणे करी बंधाय ते कारण प्रद्वेष निन्हव मात्सर्य अंतराय आशातना उपघातादिक ए कर्मबंधना कारणछे (णोतंसयंकरेति के०) ते स्वयं पोते नकरे (णोअसाणंकारवेंति के०) बीजा पासें करावे नही (अन्नंपिकरेंतं णसमणुजाणइके०) बीजो करतो होय तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहतोआयाणाउ के०) एवो ते मोहोटा कर्मबंधना कारण थकी (उवसंते के०) उपशम्यो (उवठिए के०) सावधान थयो (पडिविरतेके०) विशेषें निवर्त्यो ते भिक्षु कहिए ॥५४॥ हवेचारित्रियानी आहार विशुद्धि कहेछे. (सेभिक्खूजाणेज्जा के०) ते चारित्रिउ एम जाणे ते कहेछे. जे (असणंवाके० एवंभूत आहार अशन पान खादिम स्वादिम जाणे (अस्सिंपडियाए के०) साधुने निमित्ते कोइएक प्रकृति भद्रक श्रावक गृहस्थ ते (एगंसाहम्मियं समुद्दिस्स के०) एक साधर्मिक साधुने समुद्देशीने (पाणाइं भूताइं जीवाइं सत्ताइं समारंभ के०) प्राणी भूत जीव सत्वनो आरंभ करे मर्दन करे (समुद्दिस्स के०) तथा साधुने निमित्ते उद्देशीने (कीतं के०) वेचातुं लीये (पामिच्चं के०) उछीतुं लावे (अछिज्जं के०) बीजानुं पाडीलीए (अणिसठं के०) बीजानी वस्तु होय ते तेना धणीने कह्या विना साधुने आपे (अभिहडंआहट्टुदेसियं के०) ग्रामादिक थकी साधुने सन्मुख लावे एवो आहार आधाकर्मादिक दोषें करी दुष्ट (तंचेतियंसिया के०) ते आहार साधुनें दीधो अने साधुए पण अजाणता लीधो परंतु एवो दोष दुष्ट आहार जाणीने (तेणोसयंभुंजइ के०) ते आहार साधु पोते जमे नही (णोवअसेणंभुंजावेंति के०) तथा बीजाने तेवो आहार जमाडे नही अने (अन्नंपिभुंजंतंणसमणुजाणइ के०) बीजो कोइ एवो आहार जमतो होए तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहतोआ

अचित्त (तेणोसयंपरिगिएहंति के०) ते कामनोगनें पोते परिग्रहे नही अंगीकार करें नही (णोअन्नेणंपरिगिएहावेंति के०) बीजा पासें परिग्रहावे नही (अन्नंपरिगिएहंतं पि एसमणुजाणइ के०) बीजो परिग्रहतो होय तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहंतो के०) एवोते चारित्रिउं महोटा (आयाणाउ के०) कर्मबंधना कारण थकी (उवसंते के०) उपशम्यो (उवहिए के०) सावधान थयो (पडिविरए के०) विशेषे निवर्त्यो (सेनिरकू के०) ते चारित्रिउं ॥ ५३ ॥

॥ दीपिका—अथ रागद्वेषानावमाह । (सेनिरकूइत्यादि) सनिक्षुः शब्देषु शुनाशुनेष्व मूर्बितोऽद्विष्टश्च । एवं रूपगंधरसस्पर्शेष्वपि वाच्यं । तथा विरतः क्रोधमानमायालोनेन्य स्तथा प्रेमतोदोषात् कलहादन्याख्यानात् पैशुन्यात् परपरिवादात् अरतितोरतितोमाया मृषातोमिथ्यादर्शनशल्याद्विरतः सनिक्षुर्योमहतः कर्मोपादानादुपशांतसंयमे उपस्थितः सावद्येन्यः प्रतिविरतः सनिक्षुः स्यात् ॥५१॥ येइमे त्रसाः स्थावराः प्राणिनोनवंति तान् स्वयं न समारनते नैवान्यैः समारंनयंते अन्यं समारनमाणं न समनुजानाति इत्येवं म हतः कर्मोपादानादुपशांतः प्रतिविरतः सनिक्षुःस्यात् ॥५२॥ येमी कामनोगाः सचित्ताअ चित्तावा तान् स्वयं न परिगृएहाति नान्येन परिग्राहयति अन्यं परिगृएहंतं न समनुजा नाति इत्येवं कर्मोपादानाद्विरतः सनिक्षुः स्यात् ॥ ५३ ॥

॥ टीका—सांप्रतमनुकूलप्रतिकूलेषु शब्दादिषु विषयेषु रागद्वेषानावं दर्शयितुमाह । (सेनिरकूइत्यादि) सनिक्षुः सर्वाशंसारहितोवेणुवीणादिषु शब्देष्वमूर्बितोऽगृद्धोऽनध्युप पन्नस्तथा रासनादिशब्देषु कर्कशेषु द्विष्टः एवं रूपरसगंधस्पर्शेष्वपि वाच्यमिति । पुनरपि सामान्येन क्रोधाद्युपशमं दर्शयितुमाह (विरएकोहाउइत्यादि) क्रोधमानमायालोनेन्यो विरतइत्यादिसुगमं । यावदिति । (सेमहयाआयाणाउउवसंतेउवहिएपडिविरएसेनिरकू त्ति) सनिक्षुर्नवति योमहतः कर्मोपादानादुपशांतः सन्स्वयमेवोपस्थितः सर्वपापेन्यश्च विर तइति ॥५१॥ एतदेवमहतः कर्मोपादनाद्विरमणं साक्षाद्दर्शयितुमाह । (जेइमेइत्यादि) ये केचन त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनोनवंति तान् सर्वानपि नोनैव स्वयं सत्साधवः समारनं ते प्राएयुपमर्दकमारनंतइतियावत् । तथा नान्यैः समारंनयंते नचान्यान् समारंनमाणान् समनुजानतइत्येवं महतः कर्मोपादानादुपशांतः प्रतिविरतोनिक्षुर्नवतीति ॥५२॥ सांप्रतं सामान्यतः सांपरायिककर्मोपादानकामनोगनिवृत्तिमधिकृत्याह । (जेइमेइत्यादि) ये केच नामी काम्यंतइति कामाञ्जुज्यंत इतिनोगास्तेच सचित्ताअचित्तावा नवेयुस्तांश्च नस्वतो गृएहीयान्नाप्यन्येन ग्राहयेत् नाप्यपरं गृएहंतं समनुजानीयादित्येवं कर्मोपादानाद्विरतो निक्षुर्नवतीति ॥ ५३ ॥

परिणामितमविहिंसितं सम्यक् निर्जीवमित्यर्थः। एषितं भिक्षाचर्याविधिप्राप्तं वैषिकं केवलसाधुवेषप्राप्तं नपुनर्निमित्तादिनोत्पादितं सामुदानिकं मधुकरवृत्त्यास्तोकं स्तोकं गृहीतं प्रज्ञस्येदं प्राज्ञं गीतार्थोपात्तमशनं तदपि वेदनावैयावृत्त्यादिकारणे सति। यडुक्तं। वेयण १ वेयावच्चे, २ इरियठाएय ३ संजमठाए ४ । तह पाणवत्तियाए ५ छठं पुण धम्म चिंताए ।६। एषु कारणेष्वाहारं गृह्णीयात्। तदपि प्रमाणयुक्तं नातिमात्रं। यडुक्तं। अद्धम सणस्स सवजणस्स कुज्जादवस्सदोनाए॥ वायपवियारणठा, छप्नागं ऊणगं कुज्जाइति॥१॥ अक्षस्य शकटस्य उपांजनमभ्यंगः व्रणस्यच लेपनं तडुपमयाऽऽहारमाहरेत्। यतः। अप्नंगे णवसगमं णतरइविणाउजो साहू॥ सो रागदोसरहिउं, मत्ताइविहीइ तंसेवे॥१॥ एतदेवाह। संयमयात्रायां मात्रा संयमयात्रामात्रा यावत्याहारमात्रया संयमयात्रा प्रवर्तते तया संयमयात्रामात्रया वृत्तिर्यस्य तत्तथा। तदपि बिलप्रवेशपन्नगभूतेनात्मनाऽऽहारमाहरेत्। कोर्थः। यथा बिलं प्रविशन् सर्पस्तूर्णं प्रविशति एवं साधुनापि स्वादमगृह्णताऽहारः शीघ्रं प्रवेशयितव्यः। अथवा सर्पेणेवाहारोऽलब्धास्वादं भक्षणीयइति। तद्यथा। अन्नमन्नकाले सूत्रार्थपौरुषीकरणोत्तरकालं पानकं पानकाले न तृषितोभुंजीत न बुभुक्षितः पानकं पिबेत्। वस्त्रं वस्त्रकाले ग्राह्यं लयनं गुहादिकमाश्रयस्तस्य वर्षास्वत्यवश्यमुपादानमन्यदात्वनियमः। शयनं संस्तारकः शयनकाले तत्रागीतार्थानां प्रहरद्वयं निद्राविमोक्षोगीतार्थानां तु प्रहरमेकमिति॥ ५६ ॥

॥ टीका–पुनरेवं जानीयादित्यादि। तद्यथा। गृहं विद्यते येषां तेषां गृहस्थानामेवंभूतोवक्ष्यमाणः पराक्रमः सामर्थ्यमाहारनिवर्तनं प्रत्यारंभस्तेनच यदाहारजातं निर्वर्तितं यस्य चार्थाय यत्कृते तच्चेति तमिति दत्तं निष्पादितं स्याद्भवेत्। यत्कृते च निष्पादितं तत्स्वनामग्राहमाह। तद्यथा। आत्मनः स्वनिमित्तमेवाहारादिपाकनिर्वर्तनं कृतमिति तथा पुत्रार्थं यावदादेशायादिश्यते यस्मिन्नागते संभ्रमेण परिजनस्तदातदाशनदानादिव्यापारः सआदेशकः प्राघूर्णकस्तदर्थंवा पृथक् प्रग्रहणार्थं विशिष्टाहारनिर्वर्तनं क्रियते तथा श्यामा रात्रिस्तस्यामशनमाशः श्यामाशस्तदर्थं प्रातरशनं प्रातराशः प्रत्यूषस्येव भोजनं तदर्थं सन्निधिः संनिचयोविशिष्टाहारसंग्रहस्य संचयः क्रियते। अनेन चैतत्प्रतिपादितं भवति। बालवृद्धग्लानादिनिमित्तं प्रत्यूषादिसमयेष्वपि भिक्षाटनं क्रियते तस्य चायमभिहितः संभवः। सच (संनिहिति) संचयइहैकेषां मानवानां भोजनार्थं भवति तत्र भिक्षुरुद्यतविहारी परकृतपरनिष्ठितमुद्गमोत्पादनैषणाशुद्धमाहारमाहरेत्। अत्र च परकृतपरनिष्ठिते चत्वारोभंगाः। तद्यथा। तस्य कृतं तस्यैव च निष्ठितं तस्य कृतमन्यस्य निष्ठितमन्यस्य कृतं तस्यैव निष्ठितमन्यस्य कृतमन्यस्य निष्ठितमित्ययं चतुर्थोभंगः सूत्रे

याणाउंतवसंतेउवहिए पडिविरतेके०) एरीते ते महोटा कर्मबंधना कारण एवा जे आहारना दोष ते थकी उपशम्यो सावधान थयो विशेषें निवर्त्यो तेने साधु कहिए ॥५५॥

॥ दीपिका—यदपीदं सांपरायिकं कर्म तच्च प्रद्वेषनिन्हवमात्सर्यांतरायासातनोपघातैर्बध्यते तत्कर्म कारणंवा न कृतकारितानुमतिभिः करोति सभिक्षुः कथ्यते ॥५४॥ सभिक्षुर्यत्पुनरेवंभूतमाहारं जानीयात् (अस्सिंपडियाए) एतत्प्रतिज्ञया एकं साधुं साधर्मिकं समुद्दिश्य कश्चित्प्रकृतिभद्रकः श्रावकः साध्वाहारदानार्थं प्राणिनः समारभ्य प्राणिघातकमारंभं कृत्वा समुद्दिश्य तत्पीडां सम्यगुद्दिश्य क्रीतं (पामिच्चं) उच्छिन्नकमाछेद्यमन्यस्मादाछिद्य गृहीतमनिसृष्टं परेणाननुमतमभ्याहृतं साधुसंमुखमानीतमाहृत्य उपेत्य ज्ञात्वा साध्वर्थं कृतमुद्देशिकमेवंभूतमाहारं साधवे दत्तं स्यात्साधुनावाऽकामेन गृहीतं स्यात्तद्दोषदुष्टं ज्ञात्वा स्वयं न भुंजीत अन्येन न भोजयेत् नच भुंजानमन्यं समनुजानीयात् एवं दुष्टाहारान्निवृत्तोभिक्षुः स्यात् ॥ ५५ ॥

॥ टीका—सांप्रतं सामान्यतः सांपरायिककर्मोपादाननिषेधमधिकृत्याह । (जंपियइय इत्यादि) यदपीदं सपर्येति तासुतासु गतिष्वनेककर्मणेति सांपरायिकं तच्च तत्प्रद्वेषनिन्हवमात्सर्यांतरायासातनोपघातैर्बध्यते तत्कर्म तत्कारणं वा न कृतकारितानुमतिभिः करोति सभिक्षुरभिधीयतइति ॥५४॥सांप्रतं भिक्षाविशुद्धिमधिकृत्याह । (सेभिक्खूइत्यादि) सभिक्षुर्यत्पुनरेवंभूतमाहारजातं जानीयात् (अस्सिंपडियाएत्ति) एतत्प्रतिज्ञयाऽऽहारदानप्रतिज्ञया यदि वास्मिन्पर्याये साधुपर्याये व्यवस्थितमेकं साधुं साधर्मिकं समुद्दिश्य कश्चिछ्रावकः प्रकृतिभद्रकोवा साध्वाहारदानार्थं प्राणिनः प्रव्यक्तेंद्रियान् भूतानि त्रिकालभावीनि जीवानायुष्कधरणलक्षणान्सत्वान्सदा सत्वोपेतान्समारभ्य तदुपमर्दकमारंभं विधाय समुद्दिश्य तत्पीडां सम्यगुद्दिश्य, क्रीतं क्रयेण द्रव्यविनिमयेन (पामिच्चंति) उद्यतकमाछेद्यमित्यन्यस्मादाछिद्य निसृष्टमिति परेणानुत्संकलितमभ्याहृतमिति साध्वभिमुखं ग्रामादेरानीतमाहृत्योपेत्य साध्वर्थं कृतमुद्देशिकमित्येवंभूतमाहारजातं साधवे दत्तं स्यात्तच्चाकामेन तेन परिगृहीतं स्यात्। तदेवं दोषदुष्टं च ज्ञात्वा स्वयं न भुंजीत नाप्यपरेण भोजयेन्नच भुंजानमपरं समनुजानीयादित्येवं दुष्टाहारदोषान्निवृत्तोभिक्षुर्भवतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥

सेभिक्खू अह पुणेवं जाणेज्जा तं विज्जति तेसिं परक्कमे जस्सट्ठा तेवइयं सियातं जहा अप्पणो से पुत्ताणं धूयाणं सुण्हाणं धातीणं णातीणं राईणं दासाणं दासीणं कम्मकराणं कम्मकरीणं आदेसाणं पुढोपहेणाए सामासाए पातरासाए सन्निहीसंचएकज्जंति इहमेगेसि माणवाणं भोयणा

अर्थ-(सेन्निरकूके०) ते चारित्रिउं आहार, उपधी, शयन, स्वाध्याय, अने ध्यानादि कना (मायन्नेके०) मात्रा एटले विधिनो जाण छतो (अन्नयरंदिसंअणुदिसंवाके०) अन्य दिशि अथवा विदिशि प्रत्यें (पडिवन्ने के०) आश्रित होतो एटले अंगीकार करतो छतो (धम्मंआइरके के०) धर्म कहे. जे धर्म जेने करवा योग्य होय तेने तेवो उपदेश आपे (विन्नए के०) धर्म अने अधर्मना फल जुदा जुदा करी देखाडे (किट्टे के०) धर्मनी कीर्त्ति करे, प्रशंसा करे वली परना हितने अर्थे साधु चारित्रिउं (उवट्ठिएसुवा के०) उपस्थित एटले उद्यमवंत एवा शिष्यने विषे तथा (अणुवट्ठिएसुवा के०) अनुपस्थित एटले कौतुकार्थी शिष्यने विषे (सुस्सूसमाणेसु के०) सांनलवा वांछताने विषे पोताना आत्माना तथा परना हित नणी (पवेदए के०) धर्म कहे. जे धर्म कहे ते देखाडेछे. (संति के०) उपशम ते कषायनुं जीपवुं तथा (विरतिं के०) विरति ते प्राणातिपातादिक थकी निवर्त्तवुं एवो धर्म प्ररूपे (उवसमंके०) इंद्रिय तथा नोइंद्रियनुं उपशमाववुं एटले राग द्वेषनो अनाव करवो (निव्वाणं के०) तथा निरवाणते सर्व जीवोने समाधिरूप एटले मोक्ष कहे तथा (सोयवियं के०) शौचते व्रतनुं निर्मल पणु एटले जेम व्रतने मल नलागे तेवीरीते धर्म कहे (अज्जवियं के०) आर्जव एटले सरलता मायानो अनाव (मद्दवियं के०) कोमल मृडुनावयुक्त तेवा विधिये धर्म कहे (लाघवियं के०) तथा कर्म हलवां थाय तेवा विधियें धर्म कहे. हवे सर्व शुनानुष्ठानतु मूल कारण कहेछे (अणतिवातियं के०) अहिंसा आदरवानो उपदेश आपे ते कोनी अहिंसा? ते कहेछे (सव्वेसिंपाणाणंके०) सर्व प्राणीनी (सव्वेसिंनूताणं के०) सर्वनूत सर्वजीव (जावसत्ताणं के०) यावत् सर्व सत्वनी अहिंसाने (अणुवाइंकिट्टिएधम्मं के०) विचारीने धर्मोपदेश आपे एटले समस्त जीवमात्रनी जे प्रकारे हिंसा नथाय ते प्रकारें धर्म कहे ॥ ५७ ॥

॥ दीपिका-आहारादिमात्रज्ञः सन्निक्षुः अन्यतरां दिशमनुदिशंवा प्रतिपन्नोधर्ममाख्यापयेत् कथयेत् यद्येन साधुना गृहस्थेन वा विधेयं तद्यथायोगं विन्नजेत् धर्मफलानि कीर्तयेत् उपस्थितेषूद्यतेषु अनुपस्थितेषु कौतुकादिप्रवृत्तेषु शुश्रूषमाणेषु श्रोतुं प्रवृत्तेषु प्रवेदयेत् । यत्कथयेत्तदाह । शांतिः क्षमा तत्प्रधाना विरतिस्तां कथयेत् । उपशममिंड्यिदमं निर्वाणं मोक्षं (सोयवियं) शौचं नावशौचमित्यर्थः । आर्जवं निर्मायत्वं मार्दवं मृडुनावोविनीतत्वमितिनावः । लाघवं कर्मलघुत्वक्रिया । अतिपातोहिंसा सविद्यते यस्यसोतिपातिकस्तन्निषेधादनतिपातिकस्तं सर्वेषां प्राणिनां यावत्सत्वानां धर्ममनुविविच्य विचिंत्य, कीर्तयेत् । कोर्थः । सर्वप्राणिरक्षानूतं धर्मं कथयेदित्यर्थः ॥ ५७ ॥

णोपात्तोऽयं च शुद्धोद्वितीयश्चान्यस्य निष्ठितत्वात्तत्राधाकर्मोद्देशिकादयउद्गमदोषाः षोड श तथोत्पादनादोषाधात्रीदूत्यादिकाः षोडशैव तथैषणादोषाः शंकितादयोदश । एवमेनि र्द्विचत्वारिंशद्दोषैरहितत्वाछुद्धं । यथाशस्त्रमग्न्यादिकं तेनानीतं प्रासुकीकृतं शस्त्रपरिणा मितमिति शस्त्रेण स्वकायपरकायादिना निर्जीवीकृतं वर्णगंधरसादिनिश्च परिणमितं हिं साप्राप्तं हिंसितं विरूपं हिंसितं विहिंसितं नसम्यक् निर्जीवीकृतमित्यर्थः । तत्प्रतिषेधाद विहिंसितं निर्जीवमित्यर्थः । तदप्येषितमन्वेषितं निक्षाचर्याविधिना प्राप्तं वैषिकमिति केवल साधुवेषावाप्तं नपुनर्जात्याद्याजीवनतोनिमित्तादिना चोत्पादितं तदपि सामुदानिकं समुदा नं निक्षासमूहस्तत्र नवं सामुदानिकं । एतडुक्तं नवति । मधुकरवृत्त्यावाप्तं सर्वत्र स्तोकंस्तोकं गृहीतमित्यर्थः । तथा प्राज्ञस्येदं प्राज्ञं गीतार्थेनोपात्तमशनमाहारजातं तदपि वेदनावैय्या वृत्त्यादिके कारणेसति तत्रापि प्रमाणयुक्तं नातिमात्रं । प्रमाणं चेदं । अद्धमसणस्स स व्वं जणस्स कुक्षादवस्स दोनाए । वाउपवियारणछाबन्नागं ऊणयं कुक्षत्ति । एतदपि न व र्णबलाद्यर्थं किंतु यावन्मात्रेणाहारेण देहः क्रियासु प्रवर्तते । तत्र दृष्टांतद्वयमाह । त द्यथा । अक्षस्योपांजनमन्यंगोव्रणस्य च लेपनं प्रलेपस्तडुपमया आहारमाहरेत् । तथाचो क्तं । अप्पंगेण वसगमं एतरइ विगइं विणाइ जो साहू । सो रागदोसरहिउ मत्तादविही इत्तं सेवे । एतदेव दर्शयति । संयमयात्रायामात्रा संयमयात्रामात्रा यावत्याहारमात्रया संयमयात्रा प्रवर्तते सा तथा तया संयमयात्रामात्रया वृत्तिर्यस्य तत्तथा तदपि बिलप्रवे शपन्नगनूतेनात्मनाऽऽहारमाहरेत् । एतडुक्तं नवति । यथाहिर्बिलं प्रविशन् तूर्णं प्रविश त्येवंसाधुनाप्याहारस्तत्स्वादमनास्वादमन्यवहार्यतइति । तदेवाहारजातं दर्शयितुमाह । अन्नं नक्तमन्नकाले सूत्रार्थपौरुष्युत्तरकालं निक्षाकाले प्राप्ते पुरः पश्चात्कर्मपरिहृतं नव ति । यथोक्तनिक्षाटनेन ग्रहणकालावाप्तं नैक्षं परिनोगकाले नुंजीत । तथा पानकं पान काले नातितृषितोनुंजीत नाप्यतिबुनुक्षितः पानकं पिबेदिति । तथा वस्त्रं वस्त्रकाले गृ एहीयाडुपनोगंवा कुर्यात्तथा लयनं गुहादिकमाश्रयस्तस्य वर्षास्ववश्यमुपादानमन्यदात्व नियमस्तथा शय्यतेऽस्मिन्निति शयनं संस्तारकः सच शयनकाले । तत्राप्यगीतार्थानां प्र हरद्वयं निद्राविमोक्षोगीतार्थानां प्रहरमेकमिति । ॥ ५६ ॥

सेनिक्खू मायन्ने अन्नयरं दिसं अणुदिसंवा पडिवन्ने धम्मं आ
इक्खे विनए किट्टे उवठिएसुवा अणुवठिएसुवा सुस्सूसमाणेसु प
वेदए संतिविरतिं उवसमं निवाणं सोयवियं अज्जवियं मद्दवि
यं लाघवियं अणतिवातियं सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं नूताणं जा
व सत्ताणं अणुवाइं किट्टिए धम्मं ॥ ५७ ॥

म्ममाइक्खेज्जा के०) पाणीने हेतुयें पण धर्म नकहे एवो संयति होए (णोवत्थस्सहेउंधम्ममाइक्खेज्जा के०) तथा वस्त्रने हेतुयें धर्म न कहे (णोलेणस्सहेउंधम्ममाइक्खेज्जा के०) उपाश्रय वस्ति पामवाने हेतुयें धर्म न कहे (णोसयणस्सहेउंधम्ममाइक्खेज्जा के०) तथा पाट पाटलादिक सयनने हेतुयें धर्म नकहे (णोअन्नेसिंविरूवरूवाणंकामभोगाणंहेउंधम्ममाइक्खेज्जा के०) नाना प्रकारना कामभोगने हेतुयें धर्म नकहे (अगिलाएधम्ममाइक्खेज्जा के०) अग्लान पणे धर्मकहे एटले पूछ्यो थको धर्म कहेवानो प्रमाद नकरे (नन्नत्थकम्मनिज्जरट्ठाएधम्ममाइक्खेज्जा के०) एक कर्मनिर्जरानुं कारण टाली. अनेरे अर्थे धर्म नकहे. ॥५७॥ हवे एवी रीते धर्म कहेवा थकी जे फल थाय ते देखाडेछे. (इहखलुतस्सभिक्खुस्स के०) आ जगत् मांहे खलु इति वाक्यालंकारे ते गुणवंत साधुने (अंतिए के०) समीपे (धम्मंसोच्चा के०) धर्म सांभलीने (णिसम्मउट्ठाएणं के०) सम्यक् हृदयने विषे धारण करीने, संयमने विषे सावधान थइने, (उट्ठायवीरा के०) धर्ममार्गे प्रवर्त्तता वीर एटले कर्म विदारवाने समर्थ (अस्सिंधम्मे समुट्ठियाके०) एवो धर्मजे सम्यक् ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप तेने विषे पहोता (जेतस्सभिक्खू के०) जे ते साधुने समीपें धर्म सांभलीने. ते साधु केवाछे तोके सम्यक् हृदय धरीने सयंमने विषे सावधान थइ धर्म मार्गें प्रवर्त्तता कर्मविदारवाने समर्थ ए सम्यक् ज्ञानादिक ने विषे सावधान थया (तेएवंसव्वोवगता के०) ते एम सर्व कर्म खपावीने मोक्षे पहोता (तेएवंसव्वोविरता के०) ते एम सर्व अढारे पापस्थानक थकी निवर्त्त्या. (तेएवंसव्वोवसंता के०) ते एम सर्व प्रकारे उपशांत एटले कषाय जीपीने (तेएवंसव्वताएपरिनिव्वुडे के०) ते एम सर्व प्रकारें समर्थ पणे करीने शीतलीभूत थइ मोक्षे पहोता (त्तिबेमि के०) श्रीसुधर्मस्वामि श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे के साधुने समीपे धर्म सांभल्यानुं फल में कह्युं ते जेवीरीते श्रीभगवंत श्रीमहावीर देव पासेंथी में सांभल्युंछे तेवीरीते तमने कह्युं ॥ ५७ ॥

॥ दीपिका–सभिक्षुर्धर्मं कीर्तयन्नान्नस्य हेतोर्धर्ममाचक्षीत । तथा पानवस्त्रलयनशयननिमित्तं न धर्ममाख्याति । विरूपरूपाणां शुभाशुभानां कामभोगानां हेतोर्न धर्ममाख्याति । अग्लानतया धर्ममाख्याति । निर्जरां विनाऽन्यकार्यार्थं न धर्मं वदेत् ॥५७॥ अथोपसंहारमाह । इह जगति खलु तस्य भिक्षोरंतिके समीपे धर्मं श्रुत्वा निशम्यावगम्य सम्यगुत्थानेनोत्थाय वीराः समर्थाये ते चैवंभूताः सर्वस्मिन् मोक्षकारणे उपगताः प्राप्ताः सर्वोपगतास्तेचैवं सर्वेभ्यः पापस्थानेभ्यउपरतानिवृत्ताः सर्वोपरतास्तेचैवं सर्वोपशांता

॥ टीका–सन्निकुराहारोपधिशयनस्वाध्यायादीनां मात्रां जानातीति तद्विधिज्ञः सन् अन्यतरां दिशमनुदिशंवा प्रतिपन्नः समाश्रितोधर्ममाख्यापयेत् यद्येन विधेयस्तद्यथा नो गं विनजेद्धर्मफलानि च कीर्तयेदाविर्नावयेत्तच्चैकार्थप्रवृत्तेन साधुना सम्यगुपस्थितेषु वा कौतुकादिप्रवृत्तेषु शुश्रूषमाणेषु श्रोतुं प्रवृत्तेषु स्वपरानिप्रायं वेदयेदावेदयेत्प्रकथयेदितिया वत् । श्रोतुमुपस्थितेषु यत्कथयेत्तद्दर्शयितुमाह । (संतिविरइइत्यादि) शांतिरुपशमः क्रोधजयस्तत्प्रधाना प्राणातिपातिन्योविरतिः शांतिविरतिः । यदिवा शांतिरशेषक्लेशापग मरूपा तस्यै तदर्थं विरतिस्तां कथयेत्तथोपशममिंद्रियोपशमरूपं रागद्वेषाजावजनितं तथा निर्वृतिं निर्वाणमशेषद्वंद्वोपरमरूपं तथा (सोयवियंति) शौचं तदपि नावशौचं सर्वोपाधिशुद्धता व्रतामालिन्यं । (अज्जवियंति) आर्जवममायित्वं तथा मार्दवं मृडुनावं सर्वत्र प्रश्रयवत्वं विनयनम्रतेति यावत् । तथा (लाघवियंति) कर्मणां लाघवापादनं कर्मगुरोरात्मनः कर्मापनयनतोलघ्ववस्थासंजननं । सांप्रतमुपसंहारद्वारेण सर्वशुनानुष्ठा नानां मूलकारणमाह । अतिपतनमतिपातः प्राण्युपमर्दनं तद्विद्यते यस्यासावतिपातिक स्तत्प्रतिषेधादनतिपातिकस्तं सर्वेषां प्राणिनां नूतानां यावत्सत्वानां धर्ममनुविधिमनुवि चिंत्य, वा कीर्तयेत्कथयेत् । इदमुक्तं नवति सर्वप्राणिनां रक्षानूतं धर्मं कथयेदिति ॥ ५७ ॥

सेनिरकू धम्मं किट्टमाणे णो अन्नस्स हेउं धम्म माहिरकेज्जा णोपाणस्स हेउं धम्ममाइरकेज्जा णोवत्थस्सहेउं धम्ममाइरकेज्जा णोलेणस्स हेउं धम्ममाइरकेज्जा णोसयणस्सहेउं धम्ममाइरकेज्जा णोअन्नेसिं विरूवरूवाणं कामन्नोगाणं हेउं धम्ममाइरकेज्जा अगिलाए धम्ममाइरकेज्जा नन्नब कम्मनिज्जरछाए धम्ममाइरकेज्जा ॥५८॥ इहखलु तस्स न्निरकुस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म नुछाणेणं उछाय वीरा अस्सिंस धम्मे समुछिया जे तस्सन्निरकू अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म सम्मं उछाणेणं उछायवीरा अस्सिंसधम्मे समुछिया तेएवं सवोवगता तेएवं सवोवरता तेएवं सवोवसंता तेएवं सवताए परिनिवुमेत्तिबेमि ॥ ५ए ॥

अर्थ–(सेनिरकू के०) ते साधु (धम्मंकिट्टमाणे के०) धर्म कहेतो थको (णो अन्नस्सहेउं धम्ममाइरकेज्जा के०) अन्न एटले आहारने हेतुयें धर्म न कहे ते आवी रीते के आ अमुक मनुष्य धनवंतछे माटे महारी पासेंथी धर्म सांनलीने म ने मनो वांछित आहार आपशे, एवो विचार करे नही तथा वली (णोपाणस्सहेउंध

जें न पहोतो. परमार्थथकी प्रधान पौंमरीक कमल समान चक्रवर्त्यादिक पुरुष जाणवा तेनी प्राप्ति केवलज्ञानीने होय, अथवा न होय किंतु केवलज्ञान विना पण चारित्रिउ कहे वाय तेकारणे पत्ते अपत्ते एवुं स्याद्वाद पद कह्युं (एवंसेभिरकू परिस्सायकम्मेपरिस्सायसंगे के०) एरीतें ते साधुयें परिज्ञायें करी जाण्युं अने प्रत्याख्यान परिज्ञायें करी पच्चख्युं जे एवा कर्मबंधना कारणने तथा बाह्याभ्यंतर संगने जेणे वली (परिस्सायगेहवासेके०) परिज्ञात गृहवास जेणे असार करी जाण्यो तथा (उवसंते के०) इंद्रिय अने नोइंद्रिय जेणे उप शमाव्यां (समिएके०) पांच समितिए समित (सहिएके०) ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी सहित (सयाजएके०) सर्वकाल संयत यत्नवंत (सेवंवयणिज्जेके०) एवो ते चारित्रिउ सर्व गुणेयुक्त होय ते केवो होय? (तंजहा के०) ते कहेछे. (समणेतिवा के०) श्रमण तप स्वी सममन एटले शत्रु मित्र उपर समभाव होय ते श्रमण जाणवो. (माहणेतिवाके०) कोइपण प्राणीमात्रने महणो एवो जेनो उपदेश होय तेने माहण ब्राह्मण कहिए (खंते तिवा के०) क्षमावंत (दंतेतिवाके०) दांत एटले इंद्रियोनो दमनार (गुत्तेतिवा के०) त्रणगुप्ते गुप्तो (मुत्तेतिवा के०) मुक्ति एटले निर्लोभी (इसीतिवा के०) ऋषी विशिष्ट तपश्चर्या सहित जीवनो रक्षा करनार (मुणीतिवा के०) जगत्नी त्रिकालावस्थाना स्व रूपनो ज्ञाता (कतीतिवा के०) परमार्थ थकी पंमित जेनुं सर्व कोइ कीर्त्तन करे तेजा णवो (विऊतिवा के०) रूडी विद्यासहित विद्वान् सद्विद्योपेत तथा (लिरकूतिवा के०) निरवद्याहारनो लेनार (लूहेतिवा के०) लूक्ष अंतप्रांत आहारी (तीरट्ठीति वा के०) तथा संसारनो तीररूपजे मोक्ष तेनो अर्थी (चरणकरणपारविउ के०) च रण एटले मूलगुण, अने करण एटले उत्तरगुण, तेनो पारपर्यंत गमन जाणे एटले च रण करनो पारंगामि जाणवो तेमाटे चरणकरण पारविउ एम कह्युं. (इतिबेमि के०) श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे के ए वचन हुं श्रीतीर्थंकरना वचनने अनुसा रे कहुंछुं. एरीतें श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे प्रथम पौंमरीकनामा अध्य यननो बालावबोध समाप्त थयो ॥ ६० ॥

॥ दीपिका–एवं पूर्वोक्तगुणः सन्भिक्षुर्धर्मार्थी धर्मवित् नियागः संयमोमोक्षोवा तं प्रतिपन्नः सचैवंभूतः पंचमपुरुषस्तं वाऽश्रित्य तद्यथेदं प्राग्दर्शितं तत्सर्वमुक्तं । सच प्राप्तो वा स्यात्पद्मवरपुंडरीकं राजादिपुरुषं । तत्प्राप्तिश्च तत्त्वतः केवलज्ञानावाप्तौसत्यां स्यात् अप्राप्तौवा स्यात् मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानैर्व्यस्तैः समस्तैर्वा युतः सचैवंभूतोभिक्षुः परिज्ञातकर्मविपाकः परिज्ञातसंगस्त्यक्तसंबंधः परिज्ञातोनिःसारतया गृहवासोयेन सतथा उपशांतोदांतेंद्रियः समितः समितिभिः सह हितेन वर्ततेयः ससहितः सदायतः संयतः

स्तेचैवं सर्वात्मतया सर्वसामर्थ्येन सदनुष्ठाने उद्यताःपरिनिर्वृतानिर्वाणं प्राप्ताइ ति ब्रवीमीति ॥ ५ए ॥

॥ टीका—सांप्रतं धर्मकीर्त्तनं यथा निरुपधि नवति तथा दर्शयितुमाह। (सेनिरकूइत्यादि) सनिक्कुः परकृतपरनिष्ठिताहारनोजी यथाक्रियाकलानुष्ठायी शुश्रूषन् सुधर्मं कीर्तयन्नान्नस्य हेतोर्ममायमीश्वरोधर्मकथाप्रश्रवणे विशिष्टमाहारजातं दास्यतीति। एतन्निमित्तं न धर्ममाचक्षीत तथा पानवस्त्रलयनशयननिमित्तं न धर्ममाचक्षीत । नान्येषां विरूपरूपाणामुच्चावचानां कार्याणां कामनोगानां वा निमित्तं तथा धर्ममाचक्षीत ग्लानिमनुपगच्छन् न धर्ममाचक्षीत कर्मनिर्जरायाश्चान्यत्र न धर्मं कथयेदपरप्रयोजननिरपेक्षएव धर्मकथयेदिति ॥५७॥ धर्मकथाश्रवणफलदर्शन द्वारेणोपसंजिघृक्षुराह।(इहखलुतस्सेत्यादि) इहास्मिन् जगति । खलु वाक्यालंकारे । तस्य निक्षोर्गुणवतोंतिके समीपेपूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं धर्मं श्रुत्वा निशम्यावगम्य सम्यगुडानेनोडाय धीराः कर्मविदारणसहिस्रवोये चैवंनूतास्ते एवं पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टानुष्ठानतया सर्वस्मिन्नपि मोक्षकारणसम्यग्दर्शनादिके उपसामीप्येन गताः सर्वोपगतास्तथैवं सर्वेन्य उपरताः सर्वोपरतास्तथा तएवं सर्वोपशांताजितकषायतया शीतलीनूतास्तथा एवं सर्वात्मतया सर्वसामर्थ्येन सदनुष्ठानेनोद्यमं कृतवंतोये चैवंनूतास्तेऽशेषकर्मक्षयं कृत्वा परि समंतान्निर्वृताअशेषकर्मक्षयं कृतवंतइति ब्रवीमीति पूर्ववत्॥५७

एवं सेन्निरकू धम्मठी धम्मविऊ णियागपडिवन्ने से जहेयं बुत्तियं अडुवा पत्ते पउमवरपोंमरीयं अडुवा अपत्ते पउमवरपोंमरीयं एवं सेन्निरकू परिणायकम्मे परिणायसंगे परिणायगेहवासे उवसंते समिए सहिए सयाजए सेवं वयणिज्जं तंजहा समणेतिवा माहणेतिवा खंतेतिवा दंतेतिवा गुत्तेतिवा मुत्तेतिवा इसीतिवा मुणीतिवा कतीतिवा विऊतिवा न्निरकूतिवा लूहेतिवा तीरघीतिवा चरणकरणपारवित्तिबेमि॥ ॥ इति बितियं सुयरकं धस्स पोंमरीयं नाम पढमज्झयणं सम्मत्तं ॥ ६० ॥

अर्थ—हवे अध्ययन परिसमाप्ति नणी कहेछे. (एवंसेन्निरकूधम्मठीके०) एम पूर्वोक्त गुण युक्त ते साधु धर्मनो अर्थी (धम्मविऊ के०) धर्मनो जाण, (णियागपडिवन्ने के०) मोक्ष अथवा संयमने विषे प्रतिपन्न एवो पांचमो पुरुष, (सेजहेयंबुत्तियं के०) ते आश्रीने जेम पूर्वे कह्युं (अडुवापत्तेपउमवरपोंमरीयं के०) ते अथवा प्रधान पौंमरीक कमलने पहोतो (अडुवाअपत्तेपउमवरपोंमरीयं के०) अथवा प्रधान पौंमरीक कम

अधिगारो ॥ २ ॥ अवियद्दुनारियकम्मा, नियमा उक्कस्स निरयठितिगामी । ते विहुजि णोवदेसेण तेणेव नवेण सिज्झंति ॥ ३ ॥ जलमालकद्दमालं, बहुविहवल्लिगहणं च पुक्खरणी । जंघाहिव बाहाहिव नावाहिवतं डुरवगाहा ॥ ४ ॥ पउमं उल्लंघेत्तुं, उपरमाणस्सहोनवावत्ती । किंनल्लिसेउवाउ, जेणुल्लंघेज्ज अविवन्नो ॥ ५ ॥ विज्जावदेव कम्मं, अहवा आगासियाविउवणया । पउमं उल्लंघेत्तुं नएसइणमोजिणुरकाउ ॥ ६ ॥ सुद्दप्पउंग विज्जासिद्धाउ जिणस्स जाणणेविज्जा । नवियजणपोंडरीयाउ जाए सिद्धिगतिमुवेंति ॥ ॥ ७ ॥ (उवमाइत्यादि) इहोपमा दृष्टांतः पौंडरीकेण श्वेतशतपत्रेण कृतस्तस्येहान्यहितत्वात् तस्यैव चोपचयेन सर्वावयवनिष्पत्तिर्याबद्विशिष्टोपायेनोद्धरणं । दार्ष्टांतिकाधिकारस्तु पुनरत्र नणितोनिहितश्चक्रवर्त्यादिर्निर्नव्यस्य जिनोपदेशेन सिद्धिरिति तस्यैव पूज्यमानत्वादिति । पूज्यमेव दर्शयितुमाह । (सुरमणुएइत्यादि) सुरादिषु चतुर्गतिकेषु जंतुषु मध्ये मनुजाश्चरित्रस्य सर्वसंवररूपस्य प्रनवः शक्तावर्त्तंते न शेषाः सुरादयः । तेष्वपि मनुजेषु महाजननेतारश्चक्रवर्त्यादयोवर्त्तंते तेषु प्रबोधितेषु प्रधानानुगामित्वात् इतरजनः सुप्रतिबोधएव नवतीत्यतोत्र चक्रवर्त्यादिना पौंडरीककल्पेनाधिकारइति । पुनरप्यन्यथामनुजप्राधान्यं दर्शयितुमाह । (अविपहुइत्यादि) गुरुकर्माणोपि मनुजाश्चासंकलितनरकायुषोपि नरकगमनयोग्याअपि तेष्वेवंनूतजिनोपदेशात्तेनैव नवेन समस्तकर्मक्षयात् सिद्धिगामिनोनवंतीति । तदेवं दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोस्तात्पर्यार्थं प्रदर्श्य दृष्टांतनूतपौंडरीकाऽधारायाः पुष्करिण्याडुरवगाहित्वं सूत्रालापकोपात्तनिर्युक्तिकृद्दर्शयितुमाह । (जलमालेत्यादि) जलमालामित्यर्थप्रचुरजलां तथा कर्दममालामप्रतिष्ठिततलतया प्रनूततरपंकां तथा बहुविधवल्लिगहनां च पुष्करिणीं जंघान्यां वा बाहुन्यां नावा वा डुस्तरां पुष्करिणीं दृष्ट्वेति क्रियाध्याहारः–किंचान्यत् । (पउमइत्यादि) तन्मध्ये पद्मवरपौंडरीकं गृहीत्वा समुत्तरतोऽवश्यं व्यापत्तिः प्राणानां नवेत् किं तत्र कश्चिडुपायः सनास्ति येनोपायेन गृहीतकमलः सन् तां पुष्करिणीमुल्लंघयेन्नविपन्नइति । तडुल्लंघनोपायं दर्शयितुमाह । (विद्यावेत्यादि) विद्या वा काचित्प्रज्ञप्त्यादिका देवता कर्मवाऽथवाऽकाशगमनलब्धिर्वा कस्यचिन्नवेत्तेनासावविपन्नोगृहीतपौंडरीकः सन्नुल्लंघयेत्तां पुष्करिणीमेषच जिनैरुपायः समाख्यातः । सर्वोपसंहारार्थमाह । (सुद्धप्पेत्यादि) शुद्धप्रयोगविद्यासिद्धा जिनस्यैव विज्ञानरूपा नान्यस्य कस्यचिद्यया विद्यया तीर्थंकरदर्शितया नव्यजनपौंडरीकाः सिद्धिमुपगच्छंतीति । गतोनुगमः सांप्रतं नयास्तेच पूर्ववद्रष्टव्याइति ॥ समाप्तं पौंडरीकाख्यं द्वितीयश्रुतस्कंधप्रथमाध्ययनमिति ॥ ६० ॥ ॥

सएवंनूतगुणएतद्वचनीयएतैर्नामभिर्वाच्यः स्यात् । तद्यथा । श्रमणोवा माहनोवा ब्र ह्मचारित्वाद्ब्राम्हणोवा, क्षांतोवा, दांतोवा, गुप्तिभिर्गुप्तोवा, निर्लोनत्वान्मुक्तोवा, ऋषिर्वा. कृत मस्यास्तीति कृती पुण्यवान् वित् विद्योपेतोभिक्षुर्वा, अंतप्रांताहारत्वेन रूक्षोवा, संसाराब्धेस्ती रार्थीवा, चरणं मूलगुणाः, करणमुत्तरगुणास्तेषां पारं पर्यंतगमनं वेत्तीति चरणकरणपा रवित् । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह ॥ ॥ इतिद्वि तीयश्रुतस्कंधस्य पुंडरीकाध्ययनं प्रथमं समाप्तम् ॥ ६० ॥

॥ टीका–सांप्रतमध्ययनोपसंहारार्थमाह । (एवंसेभिरकूइत्यादि) एवमिति पूर्वो क्तविशेषणकलापविशिष्टः सभिक्षुः पुनरपि सामान्यतोविशिष्यते । धर्मः श्रुतचारित्राख्य स्तेनार्थी यथावस्थितं परमार्थतोधर्मं सर्वोपाधिविशुद्धं जानातीति धर्मवित्तथा नियागः संयमोमोक्षोवा कारणे कार्योपचारं कृत्वा तं प्रतिपन्नोनियागप्रतिपन्नः सचैवंनूतः पंचम पुरुषजातस्तं चाश्रित्य यथेदं प्राक् प्रदर्शितं तत्सर्वमुक्तं । सच प्राप्तोवा स्यात्पद्मवरपौंड रीकमनुग्राह्यं पुरुषविशेषं चक्रवर्त्यादिकं । तत्प्राप्तिश्च परमार्थतः केवलज्ञानावाप्तौ सत्यां नवति । साक्षाद्यथावस्थितवस्तुस्वरूपपरिच्छित्तेरप्राप्तोवास्यान्मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानै र्व्यस्तैः समस्तैर्वा समन्वितः सचैवंनूतः प्राग्व्यावर्णितगुणकलापोपेतोभिक्षुः परि समं तात् ज्ञातं कर्म स्वरूपतोविपाकतस्तडुपादानतश्च येन सज्ञातकर्मा तथा परिज्ञातः संगः सं बंधः सबाह्याभ्यंतरोयेन सतथा परिज्ञातोनिःसारतया गृहवासोयेन सतथोपशांतइंद्रियनो इंद्रियोपशमात्तथा समितः पंचभिः समितिभिस्तथा सह हितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादि भिर्वा सहितः समन्वितः सदा सर्वकालं यतः संयतः एतद्वचनीयस्तद्यथा श्राम्यतीति श्रम णः समनावा तथा मा प्राणिनोजहि व्यापादयेत्येवं प्रवृत्तिरुपदेशोयस्य समाहनः सब्रह्मचा रीवा ब्राम्हणः क्षांतः सक्षमोपेतोदांतइंद्रियनोइंद्रियदमनेन तथा तिसृभिर्गुप्तिभिर्गुप्तः तथा मुक्तइवमुक्तस्तथाविशिष्टचरणोपेतोमहर्षिस्तथा । मनुते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिस्त था कृतमस्यास्तीति कृती पुण्यवान् परमार्थपंडितोवा तथा विद्वान् सद्विद्योपेतस्तथा भिक्षु र्निरवद्याहारतया भिक्षणशीलस्तथांऽतप्रांताहारत्वेन रूक्षस्तथा संसारतीरनूतोमोक्षस्तदर्थी तथा चर्यतइति चरणं मूलगुणाः क्रियतइति करणमुत्तरगुणास्तेषां पारं तीरं पर्यंतगमनं तद्वे त्तीति करणचरणविदिति । इतिशब्दः परिसमाप्तौ । ब्रवीमीतितीर्थंकरवचनादार्यः सुधर्मस्वा मी जंबूस्वामिनमुद्दिश्य एवं नणति तथाहं न स्वमनीषिकया ब्रवीमीति ॥ सांप्रतं समस्ताध्य यनोपात्तदृष्टांतदार्ष्टांतिकयोस्तात्पर्यार्थं गाथाभिर्निर्युक्तिकृद्दर्शयितुमाह । जबमयपुंडरीए, तस्सेवय उवनएणनिकुत्ती । अधिगारो पुण नणिउ, जिणोवदेसेण सिद्धिति ॥ १ ॥ सु रमणुयतिरियनिरउ. वंगेसुमणुया पहूचरित्तम्मि ॥ अवियमहाजणनेयभिचक्कवट्टिमि

स्थानक, अने बीजो अनुपशांत स्थानक ॥१॥ (तह्णं के०) त्यां (जेसे के०) जे कहेशे ते (पढमह्राणस्सअह्म्मपरकस्सविन्नंगेके०) प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो विन्नंग एटले विचार. (तस्सणंअयमठ्ठेपस्मुतेके०) तेनो ए अर्थ कहेछे. (इहखलुपाईणंवाके०) ए संसार मांहे पूर्वादिक दिशिमांहे अनेरी दिशायें (संतेगतियामणुस्साजवंति के०) केटलाएक मनुष्यछे. ते केवाछे (तंजहाके०) ते कहेछे. एक आर्य, एक अनार्य, एक उंचगोत्रना उपना, एक नीचगोत्रना उपना, एक महोटी कायावाला, एक न्हानी काया वाला, एक शुन्नवर्णना शरीरवाला, एक माठावर्णवाला, एक सुरूपवान् अने एक कुरूपवान् ॥२॥ (तेसिंचणंइमंए तारूवंके०) ते आर्यादिक मनुष्यने एवो एतादृशरूपजे आगल कहेशे (दंमसमादाणं के०) दंम समादान एटले पापरूप संकल्पनुं ग्रहणते, (संपेहाए के०) आलोचवुं ते चतुर्गतिक, जीवने होय (तंजहा के०) ते चारगतिना नाम कहेछे. (णेरइएसुवा के०) एक.नारकीमां हे (तिरिरकजोणिएसुवाके०) तिर्यंचनी योनी मांहे (मणुस्सेसुवाके०) मनुष्य मांहे (देवेसुवाके०) देवतामांहे ए चतुर्गतिक जीव जाणवा. तेमांहे (जेयावन्नेके०) जे अनेरा (तहप्पगारा के०) तथा प्रकारना (पाणाविन्नू के०) प्राणि जाणवा (वेयणंवेयंति के०) ते प्राणी एवा ढता वेदना जे साता असातारूप तेने वेदे एटले अनुन्नवे. अत्र चतुर्नंगी कहेछे. एक संज्ञिया जीवजेछे ते वेदनाने अनुन्नवे तथा जाणे पण, अने बीजा सिद्धना जीव जेछे ते वेदनाने मात्र जाणे, पण अनुन्नवे नहीं. तथा त्रीजा असंज्ञिया जीव जेछे ते वेदनाने अनुन्नवे, पण जाणे नही. चोथा अजीव जेछे ते वेदनाने अनुन्नवे पण नहीं, अने जाणे पण नहीं, तेमांहें अहीं पहेला अने त्रीजा नंगनो अधिकारछे ॥३॥ (तेसिंपियणं इमाइं के०) ते नारकियादिकने एजे आगल कहेशे ते. (तेरसकिरिया ह्राणाइं नवंतीतिमरकायं के०) तेर क्रियाना स्थानक होय, ते श्रीतीर्थंकर गणधरे एम कह्या (तंजहा के०) तेना नाम कहेछे. एक (अह्रादंमे के०) अर्थ दंम, बीजो (अणह्रादंमे के०) अनर्थदंम, त्रीजो (हिंसादंमेके०) हिंसादंम, चोथो (अकम्मादंमे के०) अकस्मात् दंम, पांचमो (दिह्रीविपरियासियादंमे के०) दृष्टि विपर्यास दंम, छह्रो (मोसवत्तीए के०) मृषावाद प्रत्ययिक दंम, सातमो (अदिन्नादाणवत्तिए के०) अदत्तादान प्रत्ययिक दंम, आठमो (अज्ञ्ञ वत्तिएके०) अध्यात्मिक ते मननुं डुर्ध्यान प्रत्ययिक तेरूप दंम, नवमो (माणवत्तिएके०) मान प्रत्ययिक दंम, दशमो (मित्तदोसवत्तिए के०) मित्र उपर द्वेप करवो ते मित्रदोप प्रत्ययिक दंम, अगीयारमो (मायावत्तिए के०) परने वंचवुं ते मायाप्रत्ययिक दंम, बारमो (लोनवत्तिए के०) लोन प्रत्ययिक दंम, तेरमो (इरियावहिए के०) इरियापथिक प्रत्ययिक दंम. हवे अनुक्रमे ए तेर क्रिया स्थानकोनो विचार कहेछे. ॥ ४ ॥

॥ अथ द्वितीयक्रियास्थानाख्याध्ययनस्य प्रारंनः ॥

हवे बीजुं अध्ययन प्रारंनियें बैयें. पहेला अध्ययनमां पौंमरीक कमलने दृष्टांते अन्यतीर्थिकने कर्मना बंधक कह्या, तथा साधुने कर्मथी मूकावनारा कह्या. हवे ते कर्म बार क्रिया स्थानकें करी बांधीयें अने तेरमे क्रिया स्थानके मूकीयें तेकारणे बीजा अध्ययनमां क्रियास्थानक कहेछे.

सुयंमे आउसंतेणं नगवया एवमरकायं इह खलु किरियाठाणे णामश्रयणे पसत्ते तस्सणं अयमठे इह खलु संजूहेणं दुवे ठाणे एवमाहिज्जंति तंजहा धम्मेचेव अधम्मेचेव उवसंतेचेव अणुवसंतेचेव ॥१॥ तब णं जेसे पढमस्स ठाणस्स अहम्मपरकस्स विनंगे तस्स णं अयमठे पसते इह खलु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा नवंति तं जहा आरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे हस्समंतावेगे सुवन्नावेगे दुवन्नावेगे सुरूवावेगे दुरूवावेगे॥२॥ तेसिंचणं इमं एतारूवं दंमसमादाणं संपेहाए तं जहा णेरइएसुवा तिरिरकजोणिएसुवा मणुस्सेसुवा देवेसुवा जेयावन्ने तहप्पगारा पाणाविन्नू वेयणं वेयंति॥३॥तेसिं पियणं इमाइं तेरसकिरियाठाणाइं नवंतीति मरकायं तंजहा अठादंमे अणठादंमे हिंसादंमे अकम्मादंमे दिठीविपरियासियादंमे मोसवत्तिए अदिन्नादाणवत्तिए अश्रवत्तिए माणवत्तिए मित्तदोसवत्तिए मायावत्तिए लोनवत्तिए इरियावहिए ॥ ४ ॥

अर्थ-(सुयंमे के०) श्रीसुधर्मस्वामी जंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे. के, में सांनल्युंछे (आउसंतेणंनगवयाएवमरकायं के०) आयुष्यवंत नगवंते मने एम कह्युं छे ते में जेम सांनल्युंछे. तेम हुं तुज प्रत्ये कहुंछुं. (इहखलु के०) निश्चेंकरी आ जिनशासनने विषे (किरियाठाणेणामश्रयणेपसुते के०) क्रियास्थान नामे अध्ययन प्ररूप्युं. (तस्सणंअयमठे के०) तेनो ए अर्थछे. (इहखलु के०) अहिंयां खलु एवी संनावनायें (संजूहेणं के०) संक्षेपें करी (दुवेठाणेएवमाहिज्जंति के०) एकशुन, बीजोअशुन एम बे स्थानक, कहियें. (तंजहा के०) तेना नाम कहेछे. (धम्मेचेवअधम्मेचेव के०) एक धर्मस्थानक अने बीजो अधर्मस्थानक, (उवसंतेचेवअणुवसंतेचेव के०) एक उपशां

धकारणानि सम्यक्परिहर्तव्यानि तद्विपरीतानि च मोक्षसाधनानि आसेवितव्यानि इत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि नवंति । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोयं । तद्यथा कर्मणां संबधोऽनेन प्रतिपाद्यते तद्विमोक्षश्चेति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे क्रियास्थानमिति द्विपदं नाम । तत्रापि क्रियापदनिक्षेपार्थं प्रस्तावमारचयन्निर्युक्तिकदाह । "किरियाउन्नणियाउ, किरियागणंति तेण अज्ञयणं ॥ अहिगारो पुण नणिउ, बंधे तह मोरकमग्गेय" ॥ १५७ ॥ (किरियाउ इत्यादि) तत्र क्रियंतइति क्रियास्ताश्च कर्मबंधकारणत्वेनावश्यकांतर्वर्तिनि प्रतिक्रमणाध्ययने (पडिक्कमामितेरसहिंकिरियागणेहिंति) अस्मिन्सूत्रेऽनिहिताः । यदि वैदिकक्रियानणिताअनिहितास्तेनेदमध्ययनं क्रियास्थानमित्युच्यते । तच्च क्रियास्थानं क्रियावत्स्वेव नवति नाक्रियावत्सु । क्रियावंतश्च केचिद्बध्यंते केचिन्मुच्यंतेऽतोध्ययनार्थाधिकारः पुनरनिहितोवंधे तथा मोक्षमार्गेचेति । तत्र नामस्थापने सुगमत्वादनाहृत्य इव्यादिकां क्रियां प्रतिपादयितुमाह । " दवे किरिए अवणय, पयोगुवायकरणिज्ज समुदाणे ॥ इरियावहसंमत्तो, सम्मत्तेचैव मिछत्ते" ॥ १५ए ॥ दवेइत्यादि) तत्र इव्यविषये या क्रिया एजनता । एजृकंपने । जीवस्याजीवस्य वा कंपनरूपा चलनस्वन्नावा सा इव्यक्रिया । सापि प्रयोगाद्विस्रसया वा नवेत् । तत्राप्युपयोगपूर्विका वाऽनुपयोगपूर्विका वाऽक्षिनिमेषमात्रादिका वा सा सर्वा इव्यक्रियेति । नावक्रियात्वियं । तद्यथा प्रयोगक्रिया उपायक्रिया करणीयक्रिया समुदानक्रिया ईर्यापथक्रिया सम्यक्त्वक्रिया मिथ्यात्वक्रिया चेति । तत्र प्रयोगक्रिया मनोवाक्कायलक्षणा त्रिधा । तत्र स्फुरन्निर्मनोइव्यैरात्मनउपयोगोनवत्येवं वाक्काययोरपि वक्तव्यं । तत्र शब्दे निष्पाद्ये वाक्काययोर्द्वयोरप्युपयोगः । तथा चोक्तं । गिएहइ य काइएणं, णिसिरइ तहवा इएण जोगेण ॥ गमनादिका तु कायक्रियैव । उपायक्रियातु घटादिकं इव्यं येनोपायेन क्रियते । तद्यथा । मृत्खननमर्दनचक्रारोपणदंडचक्रसलिलकुंनकारव्यापारैर्यैर्वन्निरुपायैः क्रियते सा सर्वोपायक्रिया । करणीयक्रियातु यद्येन प्रकारेण करणीयं तत्तेनैव क्रियते नान्यथा । तथाहि । घटोमृत्पिंडादिकयैव क्रियते न पापाणसिकतादिकयेति ३ समुदानक्रियातु यत्कर्म प्रयोगगृहीतं समुदायावस्थं सत्प्रकृतिस्थित्यनुन्नावप्रदेशरूपतया यया व्यवस्थाप्यते सा समुदानक्रिया । साच मिथ्यादृष्टेरारन्य सूक्ष्मसंपरायं यावत् नवति । ४ ईर्यापथक्रिया तूपशांतमोहादारन्य सयोगिकेवलिनं यावदिति ५ सम्यक्त्वक्रिया तु सम्यग्दर्शनयोग्याः कर्मप्रकृतीः सप्तसप्ततिसंख्या यया बध्नाति साऽनिधीयते । मिथ्यात्वक्रिया तु सर्वाः प्रकृतीर्विंशत्युत्तरसंख्यास्तीर्थकराहारकशरीरतदंगोपांगत्रिकरहिता यया बध्नाति सामिथ्यात्वक्रियेत्यन्निधीयते । सांप्रतं स्थाननिक्षेपार्थमाह । " नामं ठवणा दविए, खेत्ते द्धाउद्ध उवरवीवसहि । संजम प

॥ दीपिका—अथ द्वितीयं क्रियास्थानाध्ययनमारन्यते तस्येदमादिसूत्रं (सुयंमेइत्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । श्रुतं मया आयुष्मता नगवतैवमाख्यातं । इह खलु क्रियास्थानं नामाध्ययनं नवति । अस्य चायमर्थः । (संजूहेणं) सामान्येन संक्षेपेण द्वे स्थाने नवतः । ये केचन क्रियावंतस्तेऽनयोरेवं स्थानयोराख्यायंते । तद्यथा । धर्मे चैव अधर्मेचैव । उपशांतं धर्मस्थानमनुपशांतमधर्मस्थानं ॥१॥ तत्र णमितिवाक्यालंकारे । योऽसौ प्रथमानुष्ठेयतया प्रथमस्याधर्मपक्षस्य विनंगोविचारः । तस्यायमर्थः । इह जगति प्राच्यादिषु दिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्याः । तद्यथा । आर्याअनार्याः उच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्राः कायवंतउन्नताऱ्हस्ववंतोनीचशरीराः सुवर्णाः सुकांतयोदुर्वर्णानिस्तेजसः सुरूपादूरूपाश्च ॥२॥ तेषामार्यादीनामिदं वक्ष्यमाणमेतद्रूपं दंडसमादानं पापोपादानं (संपेहाएत्ति) संप्रेक्ष्य तद्यथा नारकेषु तिर्यग्योनिषु मनुष्येषु ये चान्ये तथा प्रकाराः सुवर्णदुर्वर्णाः प्राणिनोविद्वांसोवेदनां सातासातरूपां विदंति अनुनवंति । अत्र चत्वारोनंगाः । तथाहि । संज्ञिनोवेदनामनुनवंति जानंतिच १ सिद्धास्तु वेदनाजानंति नानुनवंति २ असंज्ञिनोऽनुनवंति न पुनर्जानंति ३ अजीवास्तु न जानंति नाप्यनुनवंति ४ इह प्रथमतृतीयाभ्यामधिकारोद्वितीयचतुर्थावस्तुनूताविति ॥३॥ तेषां नारकादीनामिमानि वक्ष्यमाणानि त्रयोदश क्रियास्थानानि नवंतीत्याख्यातं तीर्थकृदादिनिः । तद्यथा । स्वार्थायदंडः पापोपादानमर्थदंडः १ निष्प्रयोजनं सावद्यक्रियानर्थदंडः २ हिंसा प्राणिघातस्तयादंडोहिंसादंडः ३ अकस्मादनुपयुक्तस्य दंडोऽकस्माद्दंडः। अन्यस्य क्रिययाऽन्यस्य घातइत्यर्थः ४ दृष्टेर्विपर्यासोरज्जुविषये यथा सर्पबुद्धिस्तया दंडो दृष्टिविपर्यासदंडः यथा शरादिक्षेपेण लेष्टुकादिबुध्या चटकादिहननं ५ मृषावादप्रत्ययिकः ६ अदत्तादानप्रत्ययिकः ७ अध्यात्मिकोदंडोयथा निर्निमित्तमेव दुर्मनाश्चिंतातुरस्तिष्ठति ८ मानप्रत्ययिकोदंडोयथाऽष्टमदस्थानोपगतः परं हीनं मन्यते ९ मित्राणामुपतापेन दोषोमित्रदोषस्तत्प्रत्ययिकोदंडः १० माया परवंचनबुद्धिस्तयादंडः ११ लोनप्रत्ययिकः १२ ईर्याप्रत्ययिकोदंडः समितिगुप्तियुतस्य दोषयुक्तस्य सामान्येन कर्मबंधः स्यात्॥ ४ ॥

॥ टीका—व्याख्यातं प्रथमाध्ययनं सांप्रतं द्वितीयमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने पुष्करिणीपौंडरीकदृष्टांतेन तीर्थिकाः सम्यङ्मोक्षोपायानावात्कर्मणां बंधकाः प्रतिपादिताः सत्साधवश्च सम्यग्दर्शनादिमोक्षमार्गप्रवृत्तत्वान्मोचकाः सदुपदेशदानतोपरेषामपीति । तदिहापि यथा कर्म द्वादशनिः क्रियास्थानैर्बध्यते यथाच त्रयोदशेन मुच्यते तदेतत्पूर्वोक्तमेव बंधमोक्षयोः प्रतिपादनं क्रियते । अनंतरसूत्रेण चायं संबंधः । तद्यथा । निक्षुणा चरणकरणविदा कर्मक्षपणायोद्यतेन द्वादश क्रियास्थानानि कर्मबं

तीति दंडः पापोपादानसंकल्पस्तस्य समादानं ग्रहणं (संपेहाएत्ति) संप्रेक्ष्य । तच्चतुर्गति कानामन्यतमस्य जवतीति दर्शयति । (तंजहेत्यादि) तद्यथा नारकादिषु ये चान्ये त थाप्रकारास्तद्वर्तिनः सुवर्णदुर्वर्णादयः प्राणाः प्राणिनोवि द्वांसोवेदनाज्ञानं तद्वेदयं त्यनुजवंति । यदिवा सातासातरूपां वेदनामनुजवंतीत्यत्र चत्वारोजंगाः । तद्यथा । संज्ञि नोवेदनामनुजवंति विदंतिच १ सिद्धास्तु विदंति नानुजवंति २ असंज्ञिनोऽनुजवंति न पुनर्विदंति ३ अजीवास्तु न विदंति नाप्यनुजवंतीति ४ इह पुनः प्रथमतृतीयान्यामधि कारोद्वितीयचतुर्थाववस्तुजूताविति । तेषांच नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवानां तथाविधज्ञानव तामिमानि वक्ष्यमाणलक्षणानि त्रयोदशस्थानानि जवंतीत्येवमाख्यातं तीर्थकरगणधरा दिनिरिति । कानि पुनस्तानीति दर्शयितुमाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथेत्ययमुदाहरणवा क्योपन्यासार्थः । आत्मार्थाय स्वप्रयोजनकृते दंडोऽर्थदंडः पापोपादानं १ तथाऽनर्थदं डइति निष्प्रयोजनमेव सावद्यक्रियानुष्ठानमनर्थदंडः । तथा हिंसनं हिंसा प्राण्युपमर्दरूपा तया सैव वा दंडोहिंसादंडः तथा ऽकस्मादनुपयुक्तस्य दंडो ऽकस्माद्दंडोऽन्यस्य क्रिययान्यस्य व्यापादनमिति ४ तथा दृष्टेर्विपर्यासोरज्जुमिव सर्पबुद्धिस्तया दंडोदृष्टिविपर्यासोऽबुद्धिदं डस्तद्यथा लेष्टुकादिबुध्या शराद्यनिपातेन चटकादिव्यापादनं । तथा मृषावादप्रत्यविकः सच सद्भूतनिन्हवासद्भूतारोपणः ६ तथा अदत्तस्य परकीयस्यादानं स्वीकरणमदत्तादानं स्तेयं तत्प्रत्ययिकोदंडइति ७ तथाऽत्मन्यध्यध्यात्मं तत्र जव अत्यात्मिकोदंडस्तद्यथा नि र्निमित्तमेव दुर्मनाउपहृतमनःसंकल्पोहृदयेन न्ह्रियमाणश्चिंतासागरावगाढः संतिष्ठते ८ तथा जात्याद्यष्टमदस्थानोपहृतमनाः परावमदर्शी तस्य मानप्रत्ययिकोदंडोजवति ए तथा मित्राणामुपतापेन दोषोमित्रदोषस्तत्प्रत्ययिकोदंडोजवति १० तथा माया पर वंचनबुद्धिस्तया दंडोमायाप्रत्ययिकः ११ तथा लोजप्रत्ययिकोलोजनिमित्तोदंडइति १२ तथा एवं पंचनिः समितिनिः समितस्य तिसृनिर्गुप्तिनिर्गुप्तस्य सर्वोपयुक्तस्येर्याप्रत्ययिकः सामान्येन कर्मबंधोजवति । एतच्च त्रयोदशं १३ क्रियास्थानमिति ॥ ४ ॥

पढमे दंमे समादाणे अट्ठादंमे वत्तिएत्ति आहिज्जइ सेजहा णामए केइ पुरिसे आयहेउंवा णाइहेउंवा आगारहेउंवा परिवारहेउंवा मित्तहेउंवा णागहेउंवा जूतहेउंवा जरकहेउंवा तं दमं तसथावरेहिं पाणेहिं सयमे व णिसिरिंति असेणविणिसिरावेंति असंपि णिसिरिंतं समणुजाण इ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ पढमे दंमसमादाणे अट्ठादंमवत्तिएत्ति आहिए ॥ ५ ॥

भुग्गहजोहे, अचल गणण संधणा भावे, ॥ १६० ॥ (नामंठवणेत्यादि) इयंच गाथा ऽऽचारप्रथमश्रुतस्कंधे द्वितीयाऽध्ययने लोकविजयाख्ये (जेगुणे से मूलगणे) इत्यत्र स्थानशब्दस्य सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यां प्रबंधेन व्याख्यातेति नेह प्रतन्यते । इह पुनर्यया क्रियया येन च स्थानेनाधिकारस्तद्दर्शयितुमाह । " समुदाणियाणिह तउ, समं पउत्तेय भावगणंमि ॥ किरियाहिं पुरिस यावा, इएउ सव्वेपरिक्केवो,, ॥ १६१ ॥ (समुदाणीत्यादि) क्रियाणां मध्ये समुदानिकाक्रिया व्याख्याता; तस्याश्च कषायानुगतत्वात् बहवो भेदा यतस्ततस्तासां सामुदानिकानां क्रियाणामिह प्रकारे (गेणउत्ति) अधिकारो व्यापारः सम्यक्प्रयुक्तेच भावस्थाने । तच्चेह विरतिरूपं संयमस्थानं प्रशस्तभावसंधान रूपंच गृह्यते । सम्यक्प्रयुक्तभावस्थानग्रहणसामर्थ्यादैर्यापथिका क्रियापि गृह्यते । सामुदानिका क्रियाग्रहणाच्चाप्रशस्तभावस्थानान्यपि गृहीतान्याभिश्च पूर्वोक्ताभिः क्रियाभिः पूर्वोक्तान् पुरुषान् तद्द्वारायातान्प्रावाडुकांश्च परीक्षते सर्वानपीति । यथा चैवं तथा स्वतएव सूत्रकारस्तं (जहासे एगइयामणुस्साभवंतीत्यादि) तथा प्रावाडुकपरिक्षायामपि (णायउ उगरणंचविप्पजहा भिरकायरियाए समुठिया) इत्यादिना वक्ष्यतीति गतोनिर्युक्त्यनुगमः । सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (सुयंमे आउसंतेणमित्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । श्रुतं मयाऽऽयुष्मता भगवतैवमाख्यातमिह खलु क्रियास्थानं नामाध्ययनं तस्यचायमर्थः । (इह खलु संजूहेणंति) सामान्येन संक्षेपेण समासतो द्वे स्थाने भवतः । ये क्रियावंतस्ते सर्वेप्यनयोः स्थानयोरेवमाख्यायंते । तद्यथा धर्मेचैवाधर्मेचैव । इदमुक्तं भवति धर्मस्थानमधर्मस्थानंच । यदिवा धर्मादनपेतं धर्मं विपरीतमधर्मं । कारणशुद्ध्या च कार्यशुद्धिर्भवतीत्याह । उपशांतं यत्तद्धर्मस्थानमनुपशांतं वाऽधर्मस्थानं तत्रोपशांते उपशमप्रधाने धर्मस्थाने ऽधर्मस्थानेवा केच न महासत्वाः समासन्नोत्तरगुणादयोवर्तंते । परेच तद्विपर्यस्ते विपर्यस्तमतयः संसाराभिष्वंगिणोऽधोऽधोगतयोवर्तंते । इहच यद्यप्यनादिभवाभ्यासादिंद्रियानुकूलतया प्रायशः पूर्वमधर्मप्रवृत्तोभवति पश्चात्सडुपदेशयोग्याचार्यसंसर्गाद्धर्मस्थाने प्रवर्तते । तथाप्यभ्यर्हितत्वात्पूर्वं धर्मस्थानमुपशमस्थानंच प्रदर्शितं पश्चात्तद्विपर्यस्तमिति ॥ १ ॥ सांप्रतं तु यत्र प्राणिनामनुपदेशः स्वपरप्रवृत्त्यादावेव स्थानं भवति तदधिकृत्याह । (तत्रणंइत्यादि) तत्रेति वाक्योपन्यासार्थे । णमिति वाक्यालंकारे । योऽसौ प्रथमानुष्ठेयतया प्रथमस्याधर्मपक्षस्य स्थानस्य विविधोभंगोविभंगोविचारस्तस्यायमर्थइति । इहास्मिन् जगति प्राच्यादिषु दिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्याः पुरुषास्तेचैवं भूताभवंतीत्याह । तद्यथा । आराद्याताः सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्यास्तद्विपरीताश्चाऽनार्याएके केचन भवंति यावद्दूरूपाः सुरूपाश्चेति । तेषां चाऽऽर्यादीनामिदं वक्ष्यमाणमेतद्रूपं । दंडय

अहावरे दोच्चे दंमसमादाणे अणघादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे तसा पाणा नवंति ते णो अच्चाए णोअजिणाए णो मंसाए णोसोणियाए एवं हिययाए पित्ताए वसाए पिछाए पुछाए वालाए सिंगाए विसाणाए दंताए दाढाए णहाए एहारुणिए अघीए अघिमंजाए णोहिंसंसुमेत्ति णोहिंसिंतिमेत्ति णोहिंसिस्संतिमेत्ति णोपुत्तपोसणाए णोपसुपोसणयाए णोआगारपरिवूहणताए णोसमणमाहणवत्तणाहेनं णोतस्स सरीरगस्स किंचिविप्परियाहित्ता नवंति सेहंता छेत्ता नेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता उज्झिउं वाले वेरस्स आनागी नवंति अणघादंमे ॥ ६ ॥ से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे थावरा पाणा नवंति तंजहा इक्कडाइवा कडिणाइवा जंतुगाइवा परगाइवा मोरकाइवा तणाइवा कुसाइवा कुछगाइवा पप्पगाइवा पलालाइवा ते णोपुत्तपोसणाए णोपसुपोसणाए णोआगारपडिवूहणयाए णोसमणमाहणपोसणयाए णोतस्स सरीरगस्स किंचिविपरियाइ नवंति सेहंता छेत्ता नेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दविइत्ता उज्झिउं वाले वेरस्स आनागी अणघादंमे ॥ ७ ॥ सेजहा णामए केइ पुरिसे कच्छंसिवा दहंसिवा उदगंसिवा दवियंसिवा वलयंसिवा णूमंसिवा गहणंसिवा गहणविडुग्गंसिवा वणंसिवा वणविडुग्गंसिवा पव्वयंसिवा पव्वयविडुग्गंसिवा तणाइं ऊसविय सयमेव अगणिकायं णिसिरिंति असेणवि अगणिकायं णिसिरावेंति असंपि अगणिकायं णिसिरिंतं समणुजाणइ अणघादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियंसावज्जेंति आहिज्जइ दोच्चे दंमसमादाणे अणघादंमवत्तिएत्ति आहिए ॥ ८ ॥

अर्थ—(अहावरेदोच्चेदंमसमादाणेअणघादंमवत्तिएत्तिआहिज्जइ के०) हवे अपर बीजो क्रिया स्थानक अनर्थदंम, प्रत्ययिक कहियें छैयें (सेजहाणामए के०) ते यथादृष्टांते नाम एवी संनावनायें जेम (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुष, निःकारणे, निर्विवेक पणे, जीवहिंसा करे; तें कहेछे. (जेइमेतसापाणानवंति के०) जे ए संसार मांहे प्रत्यक्ष लक्षण त्रस प्राणी, छागादिक छे ते प्राणीने निरर्थक हणे, ते केवीरीते हणे तोके (तणोअच्चाए के०) तेजीवोने शरीरने अर्थें न हणे, (णोअजिणाए के०) चर्मने अर्थें न ह

अर्थ-(पढमे दंमसमादाणे के०) त्यां पहेलोजे क्रिया स्थानक ते (अट्ठादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ के०) अर्थ दंम प्रत्ययिक एवे नामे कहियेंछैयें (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते कहेछे. णाम एवी संजावनायें छे. (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुष, (आयहेउंवा के०) पोताने अर्थें, अथवा (णाइहेउंवा के०) ज्ञाति स्वजनादिकने अर्थें, (आगारहेउंवा के०) घरने अर्थें, (परिवारहेउंवा के०) दास दासी कुमारादिक परिवारने अर्थें, (मित्तहेउंवा के०) मित्रने अर्थें, (णागहेउंवा के०) नागकुमार देवताने अर्थें, (जूतहेउंवा के०) जूत देवताने अर्थें, (जरकहेउंवा के०) यक्ष देवताने अर्थें, (तंदंमंतसथावरेहिंपाणेहिं के०) ते दंम, त्रस अने स्थावर प्राणीउने विषे (सयमेवणिसिरिंति के०) स्वयमेव एटले पोतेंज उपघात करे. (अन्नेणविणिसिरावेंति के०) अनेरा बीजा पासें उपघात करावे. (अन्नंपिणिसिरिंतंसमणुजाणइ के०) अनेरो बीजो कोइ उपघात करतो होय तेने अनुमोदे. (एवंखलु के०) एरीतें निश्चें थकी (तस्सतप्पत्तियंसावज्जंति के०) करण करावण अने अनुमतियें करी करे, तेहने तत्प्रत्ययिक सावद्य पाप कर्म (आहिज्जइ के०) बंधाय (पढमेदंमसमादाणेअट्ठादंमवत्तिएत्तिआहिए के०) एटले प्रथम क्रिया स्थानक अर्थदंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्युं. ॥ ५ ॥

॥ दीपिका-प्रथमं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययइत्याख्यायते । तद्यथा नाम कश्चित्पुरुषः आत्महेतुमात्मार्थं ज्ञातिहेतुं स्वजनाद्यर्थं आगारहेतुं गृहार्थं परिवारार्थं मित्रनागजूतयक्षाद्यर्थं तं दंडं त्रसस्थावरेषु प्राणिषु स्वयं निसृजति निक्षिपति अन्येनापि कारयति अन्यं निसृजंतं समनुजानीते एवं तस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्म आधीयते संबध्यते एतत्प्रथमं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययिकमित्याख्यातं ॥ ५ ॥

॥ टीका-यथोद्देशस्तथा निर्देशइतिकृत्वा प्रथमात्क्रियास्थानादारज्य व्याचिख्यासुराह । (पढमे त्यादि) यत्प्रथममुपात्तं दंडसमादानमर्थायदंडमित्येवमाख्यायते । तस्यायमर्थः । तद्यथा नामकश्चित्पुरुषः । पुरुषग्रहणमनुक्तमुपलक्षणं । सर्वोपि चातुर्गतिकः प्राण्यात्मनिमित्तमात्मार्थं तथाज्ञिज्ञातिनिमित्तं स्वजनाद्यर्थं तथाऽगारं गृहं तन्निमित्तं तथा परिवारोदासीकर्मकरादिकः परिकरोवा गृहादेर्वृत्त्यादिकस्तन्निमित्तं तथा मित्रनागजूतयक्षाद्यर्थं तथाजूतं स्वपरोपघातरूपं दंडं त्रसस्थावरेषु स्वयमेव निसृजति निक्षिपति दंडमिव दंडमुपरि पातयति प्राण्युपमर्दकारिणीं क्रियां करोतीत्यर्थः । तथाऽन्येनापि कारयत्यपरं दंडं निसृजंतं समनुजानीते । एवं कृतकारितानुमतिजिरेव तस्याऽनात्मज्ञस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यक्रियोपात्तं कर्माधीयते संबध्यतेइति । एतत्प्रथमं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययिकमित्याख्यातमिति ॥ ५ ॥

प्पगाइवा के०) प्रसिद्ध तृण विशेष, एटला मांहे सर्वकाष्ट जाणवा (पलालएइवा के०) पलाल इत्यादि अनेक जगत् मांहेछे ते, पुत्र पोषवाने निमित्ते नहीं, तथा पशु पोषण करवाने अर्थें पण नहीं, आगार समारवाने अर्थे पण नहीं, श्रमण ब्राह्मणना पोष ण करवाने अर्थे पण नहीं, पोताना शरीरना पोषण करवाने अर्थे पण नही, एटले आत्मा ना त्राणने अर्थे पण नहीं किंतु? क्रीडा निमित्ते अथवा व्यसने करी निरर्थक ते जीव नो हणनार थाय. ते दंमादिके प्रहार करी छेदे, नेदे, अनेरा अंगनो अवयव कापे, ग ल उतारे; नाना प्रकारना पीडा कारी उपद्रव करे, एरीते ते बाल अविवेकी निःकेवल वैरनो विनागी थाय. एम वनस्पतिकाय आश्रि अनर्थ दंम कह्यो. ॥७॥ (हवे अग्निकाय आ श्रि अनर्थ दंम कहेछे. ते यथा दृष्टांते नाम एवी संनावनायें जेम कोइएक पुरुष विवे क विकल थको (कहंसिवा के०) कच्छादिकने विषे, (उदगंसिवा के०) पाणीने विषे, (दहंसिवा के०) इहने विषे, (दवियंसिवा के०) समुड तथा नदीने विषे, (वलयंसि वा के०) नदियें वेष्टित नूमिकाने विषे, णूमंसिवा के०) गर्त्तादिक तथा नीचीनूमिका ने विषे, (गहणंसिवा के०) जल रहित स्थानक तथा अटवी माहेला क्षेत्रने विषे, (गहणविडुग्गंसिवा के०) गहन अटवीमां वली विषम स्थानकने विषे (वणं सिवा के०) वनने विषे, (वणविडुग्गंसिवा के०) वनमांहे विषम स्थानकने वि षें, (पव्वयंसिवा के०) पर्वतने विषे, (पव्वयविडुग्गंसिवा के०) पर्वतमांहे विषम स्था नकने विषे, इत्यादिक देशस्थानकनेविषे, वर्त्ततो (तणाइंऊसविय के०) तृण दर्नादिक ए कगा करी करीने (सयमेवअगणिकायंणिसिरंति के०) वलीवली पोते अग्नि करवाने अ र्थें अग्निकायने तेमां प्रक्षेपे (असेणविअगणिकायंणिसिरावेंति के०) अन्य पासेंअग्नि प्र क्षेपावे एटले बीजा पासें जलावे, (असंपिअगणिकायंणिसिरंतंसमणुजाणइ के०) बीजो कोइ अग्निकायने तेमांहे प्रक्षेपतो होय तेने अनुमोदे,(अणहादंमेएवंखलु के०) अनर्थ दंम एम निश्चे तेने (तस्सतप्पत्तियं के०) तत्प्रत्ययिक एटले ते आश्रित (सावज्जेंति के०) साव द्य कर्म (आहिज्जइ के०) बंधाय. एटले (दोच्चेदंमसमादाणेअणहादंमवत्तिएतिआहिए के०) ए बीजो क्रियास्थानक अनर्थ दंम समादान प्रत्ययिक कह्यो. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–अथापरं द्वितीयं दंडसमादानमनर्थदंडप्रत्ययिकमित्यनिधीयते । तद्य थानाम कश्चित्पुरुषोनिर्निमित्तमेव प्राणिनोहंति । तदेवाह । ये इमे त्रसाः प्राणिनस्तान् अर्चाशरीरं तदर्थं नहंति । अजिनं चर्म नापि तदर्थं । एवं मांसशोणितहृदयपित्तव सापिछपुछवालशृंगविषाणदंतदंष्ट्रानखस्नाय्वस्थिमज्जाइत्यादिनिमित्तमुद्दिश्य नैवाऽहिंसि षुर्नापि हिंसंति नापि हिंसयिष्यंति मां मदीयं चेति तथा नो पुत्रपोषणाय नापि पशु

णे, (णोमंसाए के०) मांसने अर्थें न हणे, (णोसोणियाए के०) शोणितने अर्थें न हणे, (एवंहिययाए के०) एमज हियो एटले हृदयना मांस ने अर्थें न हणे, (पित्ताए के०) पित्तने अर्थें न हणे, (वसाए के०) वसाने अर्थें न हणे, (पिछाए के०) पिछने अर्थें न हणे, (पुछाए के०) पुछने अर्थें न हणे, (वालाए के०) वाल रोमने अर्थें न हणे, (सिंगाए के०) सिंगडाने अर्थें न हणे, (विसाणाए के०) वृषण प्रताल पोइसने अर्थें न हणे, (दंताए के०) दांतने अर्थें न हणे, (दाढाए के०) दाढने अर्थें नहणे (णहाए के०) नखने अर्थें न हणे, (ण्हारुणिए के०) नसा नाडीने अर्थें न हणे, (अठिए के०) अस्थिने अर्थें न हणे, (अठिमिंजाए के०) हाडकानी मिंजाने अर्थें न हणे, एटला ए कारणने अर्थें कोइ जीवने हणे नहीं, परंतु कारण विना जीवने हणे, (णोहिंसंसुमित्ति के०) अतीतकाले पण एटला कारण नणी जीव हण्या नथी, तथा (णोहिंसिंतिमेत्ति के०) वर्त्तमान काले पण हणे नहीं. (णोहिंसिस्संतिमेत्ति के०) आगमिक कालें पण हणशे नहीं, (णोपुत्तपोसणाए के०) एवुं पण न जाणे जे ए जीवनो विनाश करीने महारा पुत्रनुं पोषण करीश. (णोपसुपोसणयाए के०) पशुनुं पोषण करशुं, एम पण न जाणे, (णोआगारपरिबूहणताए के०) ग्रह घरनी वृद्धि शांतिक पुष्टिकादिक निमित्तें पण हणे नहीं. (णोसमणमाहणवत्तणाहेउं के०) श्रमण ब्राह्मणनुं पोषण करवा निमित्तें पण न हणे. (णोतस्ससरीरगस्सकिंचिविप्परियादित्तानवंति के०) तथा पोताना शरीरना परित्राणने अर्थें एटले पोषणनेअर्थें पण न हणे. किंतु? क्रीडा निमित्तें, अथवा व्यसने करी निरर्थक पणे (सेहंता के०) ते जीवनो हणनार थाय दंमादिक ना प्रहारे करी जीवने हणे, (छेत्ता के०) जीवोना कर्ण नासिकादिक छेदे, (नेत्ता के०) नेदे, शूलिकारोपण करे (लुंपइत्ता के०) अंगना अवयव कापी नाखे (विलुंपइत्ता के०) चामडी उपाडी उखेडी नाखे, (उद्दवइत्ता के०) नाना प्रकारना पीडाकारी उपद्रव उपजावे, (उज्झिउंबालेवेरस्सआनागीनवंति के०) एतावता तेबाल विवेक ढांमीने निःकेवल वैरनो विनागी थाय. (अणठादंमे के०) एटले त्रस जीव आश्रित अनर्थ दंम कह्यो. ॥६॥ (हवे स्थावर जीव आश्रित अनर्थ दंम कहेछे. (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते जेम. (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुष मार्गे जतो थको निरर्थक निर्विवेकपणे वृक्षना पल्लवने दंमादिके करी जाटकी नाखे, परंतु लेवानी वांछा कांइ न होय, वली (जेइमेथावरापाणानवंति के०) जे ए स्थावर प्राणी होय (तंजहा के०) ते देखाडेछे. (इक्कडाइवा के०) तृण विशेष प्रसिद्धछे (कडिणाइवाजंतुगाइवापरगाइवा के०) वांसथकी उपनुं जे तृण विशेष, जेणे करी फुल गुंथाय ते जाणवुं (मोरकाइवा के०) नदीमां थायछे ते, (तणाइवा के०) तृण प्रसिद्ध (कुसाइवा के०) माल, (कुछगाइवा के०) वनस्पति विशेष, (प

रपादादिछेदनतः परमाऽधार्मिकवत्प्राणिनां निर्निमित्तमेव नानाविधोपायैः पीडोत्पादको नवति तथा जीविताद्प्यपद्राविता नवति सच सद्विवेकमुज्झित्वात्मानं वा परित्यज्य बालवद्बालोऽज्ञोऽसमीक्षितकारितया जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य नागी नवति ॥ ६ ॥ तदेवं निर्निमित्तमेवं पंचेंद्रियप्राणिपीडनतोयथानर्थदंडोनवति तथा प्रतिपादितं । अधुना स्थावरानधिकृत्योच्यते । (सेजहेत्यादि) यथाकश्चित्पुरुषोनिर्विवेकः पथि गछन् वृक्षादेः पल्लवादिकं दंडादिना प्रध्वंसयन् फलनिरपेक्षस्तछीलतया व्रजति । एतदेव दर्शयति (जे इमेइत्यादि) ये केचनामी प्रत्यक्षाः स्थावरावनस्पतिकायाः प्राणिनोनवंति तद्यथेक्कडादयोवनस्पतिविशेषाउक्तानार्थास्तदिहेक्कडा ममानया प्रयोजनमित्येवमनिसंधाय न छिनत्ति केवलं तत्पत्रपुष्पादिनिरपेक्षस्तछीलतया छिनत्तीत्येतत्सर्वत्र योजनीयमिति । तथा न पुत्रपोषणाय नो पशुपोषणाय नागारप्रतिबृंहणाय नश्रमणब्राह्मणप्रवृत्तये नापि शरीरस्य किंचित्त्राणं नविष्यतीति केवलमेवासौ वनस्पतिहंताछेत्तेत्यादियावज्जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य नागी नवति । अयं वनस्पत्याश्रयोऽनर्थदंडोऽनिहितः ॥७॥ सांप्रतमग्न्याश्रितमाह । (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः सदसद्विवेकविकलतया कछादिकेषु दशसु स्थानेषु वनदुर्गपर्वतेषु तृणानि कुशइषीकादीनि पौनःपुन्येनोर्ध्वाधस्थानि कृत्वाऽग्निकायं हुतनुजं निसृजति प्रक्षेपयत्यन्येन वाग्निकायं बहुसत्वापकारी दवार्थं निसर्जयति प्रक्षेपयत्यन्यंच निसृजंतं समनुजानीते । तदेवं योगत्रिकेण कृतकारितानुमतिनिस्तस्य यत्किंचनकारिणस्तत्प्रत्ययिकं दवदाननिमित्तं सावद्यं कर्म महापातकमाख्यातं द्वितीयमनर्थदंडसमादानमाख्यातमिति ॥ ८ ॥

आहावरे तच्चे दंमसमादाणे हिंसादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे ममंवा ममिंवा अन्नंवा अन्निंवा हिंसंसुवा हिंसइवा हिंसिस्संइवा तंदंमं तसथावरेहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरिंति अस्सेणवि णिसिरावेंति अन्नंपि णिसिरिंतं समणुजाणइ हिंसादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ तच्चे दंमसमादाणे हिंसादंमवत्तिएत्ति आहिए॥ ए॥

अर्थ—हवे अपर त्रीजो क्रियास्थानक हिंसादंम प्रत्ययिक कहेछे. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुष (ममंवा के०) मुजने (ममिंवा के०) महारा पिताने हणेछे, हण्योछे, हणशे, एम पुरुषाकार वहेतो पोताना मरण थकी मरतो वीकराखतोके, ए महारो विनाश करशे एवुं जाणीने सर्प्प सिंहादिक जीवोने हणे, जेम कंसें देवकीना पुत्रने हण्या तेनी पेठे जाणी लेवुं. (अन्नंवा के०) अथवा अन्य महारा गोत्री

पोषणाय अगारं गृहं तस्य परिबृंहणं वृद्धिस्तदर्थं नोहिनस्ति तथा श्रमणब्राह्मणवर्तनहे तुं यत्पाल्यते तस्य शरीरस्य किमपि परित्राणाय तत्प्राणिहिंसनं न स्यात् इत्यादिहेतून् विनाऽसौ क्रीडया हंता नवति दंडादिनिश्छेत्ता कर्णादीनां नेत्ता शूलादिना लुंपयिता अंगा वयवकर्तनतोविलुंपयिता नेत्रोत्पाटनचर्मकर्तनादितोजीवितादपड्डावयिता सच सद्वि वेकमुज्झित्वा बालोऽझोवैरस्य नागी नवति। पंचेंद्रियजीवपीडातोऽनर्थदंडनक्तः॥६॥ अथ स्थावरानाश्रित्याह। यथा कश्चित्पुरुषः पथि गछन् निर्निमित्तमेव वृक्षादेः पल्लवादिकं दंडादिना प्रध्वंसयति। एतदेवाह। येऽमी स्थावरावनस्पतिकायाः प्राणिनः स्युः। त द्यथा। इक्कडादयोवनस्पतिविशेषास्तान् पत्रपुष्पफलादि निरपेक्षः क्रीडया छिनत्ति न पु त्रपोषणायेत्यादि पूर्ववत्। यावज्जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य नागी नवति। अयमनर्थदंडो वनस्पत्याश्रयनक्तः॥७॥ सांप्रतमग्न्याश्रितमाह। तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः कछे नदीजल वेष्टिते वृक्षादिमति प्रदेशे न्हदेप्रतीते उदकेजलाशयमात्रे (दवियंसि) तृणादिद्रव्यसमु दाये वलये वृत्ताकारनद्यादिजलकुटिलगतियुक्तप्रदेशे तमे अवतमसे गहने वृक्षवल्लीसमु दाये गहनविडुर्गे पर्वतैकदेशावस्थितवृक्षवल्लीसमुदाये वनविडुर्गे नानाविधवृक्षसमूहे एतेषु कछादिषु दशस्थानेषु तृणानि उत्सर्प्य ऊर्ध्वीकृत्य, स्वयमेवाऽग्निकायं निसृजति निक्षिपति अन्येन वाऽग्निकायं निसर्जयति निक्षेपयति अन्यमप्यग्निकायं निसृजंतं समनु जानीते अयमनर्थदंडः। तदेवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं दवदाननिमित्तं सावद्यं कर्मव्या ख्यातं। एतच्च द्वितीयमनर्थदंडसमादानमाख्यातमिति ॥ ८ ॥

॥ टीका—अथापरं द्वितीयं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययिकमित्यभिधीयते तदधुना व्या ख्यायते। तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोनिर्निमित्तमेव निर्विवेकतया प्राणिनोहिनस्ति। तदे व दर्शयितुमाह। (जेइमेइत्यादि) ये केचनामी संसारांतर्वर्तिनः प्रत्यक्षांबष्ठादयः प्राणि नस्तांश्चासौ हिंसन्नर्चाशरीरं नो नैवार्चायै हिनस्ति तथाऽजिनं चर्म नापि तदर्थमेवं मां सशोणितहृदयपित्तवसापिछपुछवालशृंगविषाणनखस्नाय्वस्थिमज्जा इत्येवमादिकं कार णमुद्दिश्य नैवाहिंसिषिषुर्नापि हिंसयिष्यंति मां मदीयं चेति तथा नो पुत्रपोषणायेति पुत्रा दिकं पोषयिष्यामीत्येतदपि कारणमुद्दिश्य न व्यापादयति तथा नापि पशूनां पोषणाय तथाऽगारं गृहं तस्य परिबृंहणमुपचयस्तदर्थंवा न हिनस्ति तथा न श्रमणब्राह्मणवर्तनाहे तुं तथा यत्नेन पालयितुमारब्धं नोत स्य शरीरस्य किमपि परित्राणाय तत्प्राणव्यपरो पणं नवति इत्येवमादिकं कारणमनपेक्ष्यैवासौ क्रीडया तछीलतया व्यसनेन वा प्राणिनां हंता नवति दंडादिनिः। तथा छेत्ता नवति कर्णनासिकाविकर्तनतस्तथा नेत्ता शूला दिना तथा लुंपयितान्यतरांगावयवविकर्तनतस्तथा विलुंपयिताऽक्ष्युत्पाटनचर्मविकर्त्तनक

वइ इहखलु से अन्नस्स अघाए अन्नं फुसंति अकम्मादंमे॥१०॥से जहा णा मए केइ पुरिसे सालीणिवा वीहीणिवा कोद्दवाणिवा कंगूणिवा परगाणिवा रालाणिवा णिलिज्जमाणे अन्नयरस्स तणस्स वहाए सत्थं णिसिरेज्जा से सामगं तणगं कुमुदगं वीहीऊसियं कलेसुयं तणं छिंदिस्सामित्ति कट्टु सालिंवा वीहिंवा कोद्दवंवा कंगुंवा परगंवा रालयंवा छिंदित्ता नवइ इति खलु से अन्नस्स अघाए अन्नं फुसंति अकम्मादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जं आहिज्जइ चउठे दंमसमादाणे अकम्मादंमवत्तिए आहिए॥११॥

अर्थ—हवे चोथो क्रिया स्थानक अकस्मात् प्रत्ययिक दंम कहियेंछेयें. जेम कोइएक लुब्धकादिक पुरुष कछने विषे, अथवा यावत् वन गहन पर्वतादिकने विषे, (मियवत्तिए के०) मृगें करी जेनी आजीविका वर्त्तेछे ते मृगवर्त्तिक (मियसंकप्पे के०) तथा मृगने विषे, जेनो संकल्पछे. (मियपणिहाणे के०) मृगनेविषे जेनो प्रणिधान एटले अंतःकरणछे एवो छतो (मियवहाएगंता के०) मृगना वधने अर्थे वन पर्वतादिकने विषे जइने, (एएमियत्तिकाउं के०) आ अमुक मृग नजीक देखायछे एमकरीने (अन्नयरस्समियस्सवहाए के०) ते अन्य मृगना वधने अर्थें (उसुआयामेत्ताणंणिसिरेज्जा के०) धनुष्य बाण ताकीने मूके चलावे. (सेमियंवहिस्सामित्तिकट्टु के०) ते मृगनो वध करीश, एम करीने एटले ते मृगने वेधशुं एवा नावें बाण मूके थके वचालें अन्य जीव हणाए. ते कहेछे (तित्तिरंवा के०) तित्तर, (वट्टगंवा के०) वर्त्तक, (चडगंवा के०) चकलो, (लावगंवा के०) लावक, (कवोयगंवा के०) कपोत, (कविंवा के०) होलो, (कविंजलंवा के०) कपिंजल, ए माहेला जीवोने (विधिंत्तान्नवइ के०) विंधनारो होयछे. (इहखलुसेअन्नस्सअघाए के०) अहीं निश्चें ते अन्यने अर्थें प्राणघात चिंतव्यो, अने वचमां (अन्नंफुसंति के०) अन्यनो घात करे एटले एकने हणवानो प्रयोग कस्यो तेनी वचमां वीजा प्राणीनो घात करे, ते कारणे एने (अकम्मादंमे के०) अकस्मात् दंम कहियें.॥१०॥

हवे वनस्पति आश्रित अकस्मात् दंम कहेछे. जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक करसणी पुरुष (सालीणिवा के०) सालधान (वीहीणिवा के०) व्रीहीधान्य (कोद्दवाणिवा के०) कोद्राधान्य, (कंगूणिवा के०) कांगणीधान्य, (परगाणिवा के०) बंटीधान्य, (रालाणिवा के०) रालो धान्य, इत्यादिक सर्व चोवीश जातना धान्यछे, ते धान्यनुं (णिलिज्जमाणे के०) निदान करतां थकां (अन्नयरस्सतणस्सवहाए के०) ते धान्य मांहेलुं शाल्यादिक तृण कापवाने अर्थें (सत्थंणिसिरेज्जा के०) दात्रादिक शस्त्र, वाहे एट

स्वजनादिकने हणशे. (अन्निवा के०) अथवा तेना कोइएक बीजाने (हिंसंसुवा के०) अतीतकालें हण्योछे. (हिंसइवा के०) वर्तमान कालें हणेछे. (हिंसिस्सइवा के०) आगमिक कालें हणशे. (तंदमंतसथावरेहिंपाणेहिंसयमेवणिसिरिंतिके०) एम जाणीने दंमेक रीत्रसस्थावर प्राणीनो पोते घात करे, बीजानी पासें घात करावे, अथवा अन्य कोइ घात करतो होए तेने अनुमोदन आपे. ए हिंसादंम, एम निश्चें एने प्रत्ययें एटले ते आश्रित सावद्यकर्म बंधाय; एटले त्रीजो क्रिया स्थानक हिंसादंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो.॥ए॥

॥ दीपिका–अथ तृतीयमाह । अथापरं तृतीयं दंडसमादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोमामयं घातयिष्यतीति मत्वा, सर्पादिकं हंति यथा कंसोदेवकीसुतान् परशुरामोवा यथा कार्तवीर्यं जघान । मदीयं पितरमन्यदीयस्य वा कस्यचित्सुवर्णपशुप्रनृतेरयमुपद्रवकारीति मत्वा, तत्र दंमं निसृजति तदेवं मां मदीयं अन्यमन्यदीयं वा हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यतीत्येवं संनाविते त्रसे स्थावरे वा तं दंमं स्वयं निसृजति अन्येन निसर्जयति अन्यं निसृजंतं समनुजानीते । एतत्तृतीयं दंडसमादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यातम् ॥ ए ॥

॥ टीका–तृतीयमधुना व्याचिख्यासुराह । (अहावरे इत्यादि) अथापरं तृतीयं दंडसमादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः पुरुषकारं वहन् स्वतोमरणनीरुतया वा मामयं घातयिष्यतीत्येवं मत्वा, कंसवद्देवकीसुतान् नावतो जघान मदीयं वा पितरमन्यं वा मामकं ममीकारोपेतं परशुरामवत्कार्तवीर्यं जघाना न्यं वा कंचनार्यं सर्पसिंहादिकं व्यापादयिष्यतीति मत्वा सर्पादिकं व्यापादयति अन्यदीयस्य वा कस्यचिद्धिरण्यपश्वादेरयमुपद्रवकारीति कृत्वा तत्र दंडं निसृजति । तदेवमयं मां मदीयमन्यदीयं वा हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यतीतिवेत्येवं संनाविते त्रसे स्थावरे वा तं दंडं प्राणव्यपरोपणलक्षणं स्वयमेव निसृजति अन्येन निसर्जयति निसृजंतं वाऽन्यं समनुजानीते । इत्येतत्तृतीयं दंडसमादानं हिंसाप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ ए ॥

अहावरे चउत्थे दंमसमादाणे अकम्मादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे कछंसिवा जाव वणविडुग्गंसिवा मियवत्तिए मियसंकप्पे मियपणिहाणे मियवहाए गंता एए मियत्तिकाउं अन्नयरस्स मियस्स वहाए उसुआयामेत्ताणं णिसिरेज्जा स मियं वहिस्सामित्ति कट्टु तित्तिरंवा वट्टगंवा चडगंवा लावगंवा कवोयगंवा कविंवा कविंजलंवा विधित्ता न

रूपोयस्यासौ मृगसंकल्पः । एतदेव दर्शयति । मृगेषु प्रणिधानमंतःकरणवृत्तिर्यस्यासौ मृगप्रणिधानः क्व मृगान्ड्रक्ष्यामीत्येतदध्यवसायी सन् मृगवधार्थं कच्छादिषु गंता भवति तत्रच गतः सहृष्ट्वा मृगानेते मृगाइत्येवं कृत्वा तेषां मध्येऽन्यतरस्य मृगस्य वधार्थमिषुं श रं (आयामेतत्ति) आयामेन समाकृष्य मृगमुद्दिश्य निसृजति सचैवंसंकल्पोभवति। तथा ऽहं मृगं हनिष्यामीति इषुं क्षिप्तवान् सच तेनेषुणा तित्तिरादिकं पक्षिविशेषं व्यापादयि ता भवति । तदेवं खल्वसावन्यस्यार्थाय निक्षिप्तो दंडो यदाऽन्यं स्पृशति घातयति तदा ऽकस्मादंडइत्युच्यते ॥१०॥ अधुना वनस्पतिमुद्दिश्याकस्माद्दंडउच्यते (सेजहेत्यादि) तद्य थानाम कश्चित्पुरुषः कृषीवलादिः शाल्यादेर्धान्यजातस्य श्यामादिकं तृणजातमपनयन् धान्यशुद्धिंकुर्वाणः सन्नन्यतरस्य तृणजातस्यापनयनार्थं शस्त्रं दात्रादिकं निसृजेत्सच श्या मादिकं तृणं छेत्स्यामीति कृत्वाऽकस्माच्छालिंवा राजकंवा छिंद्याद्भूणीयस्यैवासावकस्मा छेत्ता भवति. इत्येवमन्यस्यार्थायान्यकृते ऽन्यंवा स्पृशति छिनत्ति । यदिवा स्पृशतीत्य नेनापि परितापं करोतीति दर्शयति । तदेवं खलु तस्य तत्कर्तुस्तत्प्रत्ययिकमकस्माद्दंड निमित्तं सावद्यमिति पापमाधीयते संबध्यते । तदेतच्चतुर्थंदंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्य यिकमाख्यातमिति ॥ ११ ॥

अहावरे पंचमे दंमसमादाणे दिठ्ठिविपरियासियादंमवत्तिएत्ति आहिज्ज इ से जहा णामए केइ पुरिसे माइहिंवा पिइहिंवा भाइहिंवा भगिणीहिंवा भज्जाहिंवा पुत्तेहिंवा धूताहिंवा सुण्हाहिंवा सद्धिं संवसमाणे मित्तं अमि त्तमेव मन्नमाणे मित्तेहयपुव्वे भवइ दिठ्ठि विपरियासियादंमे ॥१२॥ से ज हा णामए केइपुरिसे गामघायंसिवा णगरघायंसिवा खेडकव्वडमंमवघा यंसिवा दोणमुहघायंसिवा पट्टणघायंसिवा आसमघायंसिवा सन्नि वेसघायंसिवा निग्गमघायंसिवा रायहाणिघायंसिवा अतेणं तेणमि त्ति मन्नमाणे अतेणं हयपुव्वे भवइ दिठ्ठिविपरियासियादंमे एवं खलु त स्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ पंचमे दंमसमादाणे दिठ्ठिविपरिया सिया दंमवत्तिएत्ति आहिए ॥१३॥

अर्थ—हवे अपर पांचमो दृष्टिविपर्यास नामे क्रिया स्थानक कहियें छैए. ते जेम नाम एवी संभावनायें. कोइएक पुरुष माता, पिता, भाइ, बेन, भार्या, पुत्र, दीकरी, पुत्रनी वहु, प्रमुख परिवार (सद्धिंसंवसमाणे के०) सहित वसतो थको ज्ञाति पालवाने अर्थे (मित्तंअमित्तमेवमन्नमाणे के०) पोताना मित्रने दृष्टिना विपर्यास थकी “ ए महारो

छे चलावे. (सेसामगंतणगंकुमुडुगं के०) ते मनमांहे एवुं जाणे छेजे हुं ए श्यामादिक ककुमु द तृणविशेषने छेदिश. पछी (वीहीकसियंकलेसुयं के०) व्रीहीकलेसुकादिक धान्य,उंचु करीने ए धान्यमाहेलुं (तणंछिंदिस्सामित्तिकट्टु के०) तृण छेदीश. एप्रकारें करीने,पछी ते तृणो छेद तो थको शाली, व्रीही, कोड्वा, कंगुणी, बंटी, रालो, इत्यादिक धान्यनो (छिंदित्तानवंति के०) छेदनारो थाय (इतिखलुसे के०) एप्रकारे निश्चें ते (अन्नस्सअट्ठाए के०) अन्यना घातनो अर्थ चिंतवतो थको (अन्नंफुसंति के०) अन्यनो घात उपजावे एटले तृणोने छे दतो थको धान्यने छेदे, ते कारणे (अकम्मादंम्हे के०) एने अकस्मात् दंमकहिए, एम निश्चें तेने ते निमित्तें एटले तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय. एप्रकारें ए चोथो क्रिया स्थानक अकस्मात् दंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो. ॥ ११ ॥

॥ दीपिका—अथापरं चतुर्थं दंडसमादानमकस्मादंडप्रत्ययिकमाख्यायते । अकस्मा दित्ययंशब्दोमगधदेशे लोके संस्कृतएवोच्चार्यते ततइहापि तथैवोक्तः । तद्यथानाम क श्चित्पुरुषोलुब्धकादिः कच्छादिषु गत्वा मृगैर्वृत्तिर्जीविका यस्य समृगवृत्तिकोमृगेषु संकल्पो यस्यसतथा मृगेषु प्रणिधानं चित्तवृत्तिर्यस्यसतथा मृगवधार्थं कच्छादिषु गंता नवति तत्रच गतः सएते मृगाइति कृत्वा ऽन्यतरस्य मृगस्य वधार्थमिषुं शरमायामेन समाकृष्य, निसृजति सच मृगं हनिष्यामीति कृत्वा इषुं क्षिप्तवान् सच तेनेषुणा तित्तिरं, वर्तकंवा ला वकंवा,कपोतकंवा, कपिंवा, कपिंजलंवा, पक्षिविशेषं व्यापादयिता नवति । इह खल्वसा वन्यस्यार्थाय निक्षिप्तोदंडोयदाऽन्यं स्पृशति घातयति सोऽकस्मादंडइत्युच्यते ॥१०॥ अथ व नस्पतिमुद्दिश्येममेव दंडमाह । तद्यथानामकश्चित्पुरुषः कृषीवलादिः शालिव्रीहिकोद्रवकं गुरालादिधान्यस्य श्यामतृणककुमुदकलेसुकतृणानि तृणविशेषास्तानि (णिलिज्जमा णे) अपनयन् धान्यशुद्धिं कुर्वाणोऽन्यतरस्य तृणस्य छेदाय शस्त्रं दात्रादिकं निसृजेत् । सच श्यामादिकं तृणं छेत्स्यामीति कृत्वाऽकस्माच्छालिं वा यावद्रालादिकं वा छिंद्यात् । र क्षणीयस्यैवाऽकस्मादसौ छेत्ता स्यादित्यन्यस्य कृतेऽन्यं स्पृशति छिनत्ति । एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकमकस्मादंडनिमित्तं सावद्यं पापमाधीयते संबध्यते । एतच्चतुर्थं दंडसमादान मकस्मादंडप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ ११ ॥

॥ टीका—अथापरं चतुर्थं दंडसमादानमकस्मादंडप्रत्ययिकमाख्यायते । इह चाक स्मादित्ययंशब्दोमगधदेशे सर्वेणाप्यागोपालांगनादिना संस्कृतएवोच्चार्यतइति तदिहा पि तथानूतएवोच्चारितइति । तद्यथा नामकश्चित्पुरुषोलुब्धकादिकः कच्छे वा यावद्वन डुर्गेवा गत्वा मृगैर्हरिणैराटव्यपशुनिर्वृत्तिर्वर्त्तनं यस्यस मृगवृत्तिकः सचैवंनूतोमृगेषु संक

तु व्यापादयेत्तेन च दृष्टिविपर्यासवता मित्रमेव हतपूर्वं नवतीति अतोदृष्टिविपर्यासदं डोयं ॥१२॥ पुनरप्यन्यथा तमेवाह। (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः पुरुष कारमुद्वहन् ग्रामघातादिके विभ्रमे भ्रांतचेतादृष्टिविपर्यासादचौरमेव चौरोयमित्येवं म न्यमानोव्यापादयेत्। तदेवं तेन भ्रांतमनसा विभ्रमाकुलेनाचौरएव हतपूर्वोनवति सोऽयं दृष्टिविपर्यासदंडः। तदेवं खलु तस्य दृष्टिविपर्यासवत् तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्मा धीयते। तदेवं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १३ ॥

अहावरे ठठे किरियाठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे आयहेउंवा णाइहेउंवा अगारहेउंवा परिवारहेउंवा सयमेव मुसंवयंति अस्सेणंवि मुसंवयावेंति मुसंवयंतंपि अस्सं समणुजाणइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ ठठे किरियाठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिए॥१४॥

अर्थ–हवे बहो क्रिया स्थानक मृषावादप्रत्ययिक कहेछे. पूर्वोक्त पांचने दंमसमादान पणे कह्या. कारण के, तेमांहे प्रायः परनो उपघात थायछे, अने अहींथी हवे क्रिया जछे माटे एने क्रियास्थान एवी संज्ञा करवी अने हवे एथकी आगलजे क्रिया स्थानक कहेशे, ते थकी प्रायः परजीवनो विनाश नथी, तेमाटे तेने क्रियास्थान संज्ञा कहेवाय अने पूर्वना पांच स्थानने दंमसमादान एवी संज्ञाछे. एटलुं विशेष जाणवुं.

हवे बहो क्रिया स्थानक विचारियें छैयें. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुष (आयहेउंवा के०) पोताने अर्थें (णाइहेउंवा के०) ज्ञाति गोत्रीने अर्थें (अगारहेउंवा के०) घरने अर्थें (परिवारहेउंवा के०) परिवार जे दास दासी तेने अर्थें (सयमेवमुसंवयंति के०) स्वयमेव मृषावाद बोले एटले जेम हुं कोइ प्रकारे चोर नथी अथवा म्हारो परिवार कोइ चोर नथी एवो मृषावाद बोले. (अस्सेणंविमुसंवयावेंति के०) अन्य पासें मृषावाद बोलावे, (मुसंवयंतंपिअस्संसमणुजाणइत्ति के०) अन्य कोइ मृषावाद बोले तेने अनुमोदे, एरीते त्रिश्वें करण करावण अनुमोदन थकी मृषावाद बोले तेने तत्प्रत्ययिक सावद्यकर्म बंधाय. ए बहो क्रियास्थानक मृषावाद प्रत्ययिक कह्यो.॥१४॥

॥ दीपिका–अथापरं षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यायते। तद्यथानाम कश्चित्पुरुषआत्मनिमित्तं ज्ञातिपरिवारनिमित्तंवा स्वयमेव मृषावादं वदति नायं मदीयइत्यादि तथाऽचौरं चौरं वदति तथाऽन्येन मृषावादं वादयति अन्यं मृषावादं वदंतं समनुजानीते। एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते वध्यते। एतत्षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यातं। पूर्वोक्तानां पंचानां क्रियास्थानानां सत्यपि क्रियास्थानत्वे प्राय

शत्रुछे " एम जाणतो थको (मित्तेहयपुव्वेनवइ के०) मित्रने हणे. एटले ए पुरुष शत्रुनो विनाश करवा वांछतो मित्रनेज हणे तेने मित्रज हत पूर्व थाय. (दिठिविपरियासियादंमे के०) एने दृष्टि विपर्यास दंम कहियें. ॥ १२ ॥

वली बीजी रीतें देखाडेछे, ते जेम कोइएक पुरुष (गामघायंसिवा के०) गामनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (णगरघायंसिवा के०) नगरनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (खेडकव्वडमंमबघायंसिवा के०) खेड कव्वड मंमपनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (दोणमुहघायंसिवा के०) डोणमुखनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (पट्टणघायंसिवा के०) पट्टणनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (आसमघायंसिवा के०) आश्रमनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (सन्निवेसघायंसिवा के०) सन्निवेशनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (निग्गमघायंसिवा के०) निगमनी घाते प्रवर्त्ततो थको, रायहाणिघायंसिवा के०) राजधानीनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (अतेणंतेणमित्तिमन्नमाणेके०) अचोरने चोर करी जाणतो थको, (अतेणंहयपुव्वेनवंति के०) अचोर एटले साधुनेज हणे तेथी साधुज हत पूर्वथाय, तेथी ए दृष्टि विपर्यास दंम कहिए. एम निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय। ए पांचमो क्रियास्थानक दृष्टिविपर्यास नामे दंम समादान कह्यो. ॥१३॥

॥ दीपिका–अथापरं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमित्याख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषश्चारन्नट्टादिर्मातृपितृन्नगिनीनार्यापुत्रडुहितृस्नुपादिन्निः सार्धं वसन् ज्ञातिपालनाय मित्रमेव दृष्टिविपर्यासादमित्रोयमिति मन्यमानोहन्यात्तेनच दृष्टिविपर्यासान्मित्रमेव हतपूर्वं स्यादतोदृष्टिविपर्यासदंडोऽयं॥ १२ ॥ पुनरन्यथा तमेवाह । यथावा कश्चित्पुरुषोग्रामघातादिके विच्रांतचेतादृष्टिविपर्यासादचौरमेव चौरोयमिति मन्यमानोहन्यात् । एवं तेन च्रांतेनाचौरएव हतपूर्वः स्यात् । ग्रामादिलक्षणं चेदं । ग्रामोवृत्यावृतः स्यान्नगरमुरुचतुर्गोपुरोद्भासिशोन्नं । खेटं नद्यद्रिवेष्टं परिवृतमन्नितः खर्वटं पर्वतेन ॥ ग्रामैर्युक्तं मटं बंदलितदशशतैः पत्तनं रत्नयोनिं डोणाख्यं सिंधुवेलावलयितमथ संबाधनंवाऽद्रिशृंगेइति । आश्रमस्तापसस्थानं । सन्निवेशः सार्थकटकादिवासः । निगमोबहुवणिग्वासः । राजधानी राजकुलस्थानं । सोयं दृष्टिविपर्यासदंडः । तदेवं खलु तस्य दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । इदं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १३ ॥

॥ टीका–अथापरं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासदंडप्रत्ययिकमित्याख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषश्चारन्नट्टादिकोमातृपितृच्रातृन्नगिनीनार्यापुत्रडुहितृस्नुपादिन्निः सार्धं वसंस्तिष्ठन् ज्ञातिपालनकृते मित्रमेव दृष्टिविपर्यासादमित्रोयमित्येवं मन्यमानोहन्या

अहावरे अठमे किरियाठाणे अप्नत्ववत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णाम ए केइ पुरिसे णत्थिणं केइकिंविसंवादेंति सयमेव हीणे दीणे डुठे डुम्मणे उहयमणसंकप्पे चिंतासोगसागरसंपविठे करतलपल्लहत्तमुहे अट्टज्झाणोवगए नूमिगयदिठिएझियाइ तस्सणं अप्नत्वया आसंसइया चत्तारि ठाणा एवमाहिज्जइ तं कोहे माणे माया लोहे अप्नत्वमेव कोहमाणमायालोहे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ अठमे किरिया ठाणे अप्नत्ववत्तिएत्ति आहिए ॥ १६ ॥

अर्थ—हवे अपर आठमो क्रिया स्थानक अध्यात्मिकप्रत्ययिक नामे कहेले. अध्यात्मिक केहेतां जे कर्म बंधनुं कारण एवो नाव चित्त थकी उपजे, तेमाटे अध्यात्मिक कहिये. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुषछे तेने (णत्थिणं केइकिंविसंवादेंति के०) कोइ विखवादनुं कारण नथी. विखवाद एटले परानव तेने कोइ करे नही, तथापि ते पुरुष, (सयमेवके०) पोतेज (हीणेदीणेडुठेडुम्मणेके०) हीन, दीन, डुष्ट, अने डुर्मन एटले सुंमा मन वालो थाय. (उहयमणसंकप्पे के०) अनवस्थित चित्त संकल्प एवो थको, (चिंतासोगसागरसंपविठे के०) चिंता शोक रूप समुइमांहे पेगे एवो थको, जे अवस्था करे, ते देखाडेले. (करतलपल्लहत्तमुहे के०) हाथना तलाने विषे स्थाप्युंले मुख जेणे एटले गालने विषे हाथ देइने (अट्टज्झाणोवगए के०) आर्त्तध्यान सहित (नूमिगयदिठिएझियाइ के०) नूमिनी सन्मुख एकाग्रचित्तें जोतो निर्विवेक पणे आर्त्त, रौइ, ध्यान ध्यावे (तस्सणंअप्नत्वया के०) तेने अध्यात्मनी (आसंसइया के०) आशंसा मिश्रित (चत्तारिठाणाएवमाइज्जइतं के०) चार स्थानक कहिए. ते कहेले पेहेलो क्रोध, बीजुं मान, त्रीजी माया, अने चोथो लोन (अप्नत्वमेव के०) ते पोताना मनथीज उत्पन्नथाय ए क्रोध, मान, माया, अने लोन, ए चारे करी जीवनो मन दोष डुष्ट थाय. एरीते निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय. तेमाटे ए आठमो क्रिया स्थानक आध्यत्मिक प्रत्ययिक एवे नामें कह्यो. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—अथापरमष्टमं क्रियास्थानमाध्यात्मिकमंतःकरणोद्भवमाख्यायते । यथा कश्चिन्नरस्तस्य नास्ति कश्चिद्विसंवादयिता परानवकरस्तथाप्यसौ स्वयमेव हीनोदीनो डुष्टोडुर्मनाअपहृतमनःसंकल्पः चिंताप्रधानः शोकश्चिंताशोकस्तत्र प्रविष्टः करतले पर्यस्तं स्थितं मुखं यस्य सतथा आर्तध्यानोपगतोनूमिगतदृष्टिर्ध्यायति तस्यैवमाध्यात्मिकानि चित्तोद्भवानि असंशयितानि निःसंशयानि चत्वारि स्थानानिस्युः । तानि चैवमा

परोपघातित्वादंडसमादानसंज्ञा कृता । षष्ठादिषु च प्रायोन परघातः स्यादतः क्रियास्थानसंज्ञोच्यते ॥ १४ ॥

॥ टीका-अपरं षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यायते । तत्रच पूर्वोक्तानां क्रियास्थानत्वे प्रायशः परोपघातोनवतीति कृत्वा दंडसमादानकृता षष्ठादिषुच बाहुल्येन न परव्यापादानं नवतीत्यतः क्रियास्थानमित्येषा संज्ञोच्यते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः स्वपक्षावेशादाग्रहादात्मनि कृतं निमित्तं यावत्परिवारनिमित्तं वा सद्भूतार्थनिन्हवरूपमसद्भूतोद्भावनस्वनावं स्वयमेव मृषावादं ववति । तद्यथा नाहं मदीयोवा कश्चिच्चौरः सच चौरमपि सद्भूतमप्यर्थमपलपति तथा परमचौरं चौरमिति वदति तथान्येन मृषावादं नाणयति तथान्यांश्च मृषावादं वदतः समनुजानीते । तदेवं खलु तस्य योगत्रिककारणत्रिकेण मृषावादं वदतस्तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते संबध्यते । तदेतत्षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १४ ॥

अहावरे सत्तमे किरियाठाणे अदिन्नादाणवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे आयहेउंवा जाव परिवारहेउंवा सयमेव अदिन्नं आदियइ अन्नेणंवि अदिन्नं आदियावेंति अदिन्नं आदियंतं अन्नं समणुजाणइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ सत्तमे किरियाठाणे अदिन्नादाणवत्तिएत्ति आहिए ॥ १५ ॥

अर्थ-हवे अपर सातमो क्रिया स्थानक अदत्तादान प्रत्ययिक कहेछे. ते जेम नाम एवी संनावनायें. कोइ एक पुरुष पोताना आत्माने अर्थें ज्ञातिगोत्रीने अर्थें यावत् परिवारने अर्थें पोते अदत्तादान ग्रहण करे, बीजाने अदत्तादान लेवरावे, अदत्तादान बीजो कोइ लेतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीते निश्चें थकी तेने अदत्तादान तत्प्रत्ययिक कर्म बंधाय; एटले सातमो क्रियास्थानक अदत्तादान प्रत्ययिक कह्यो.॥ १५ ॥

॥ दीपिका-अथाऽपरं सप्तमं क्रियास्थानं अदत्तादानप्रत्ययिकमाख्यायते । इदं प्राग्वत् ॥ १५ ॥

॥ टीका-अथापरं सप्तमं क्रियास्थानं अदत्तादानप्रत्ययिकमाख्यायते । एतदपि प्राग्वज्ज्ञेयं । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषआत्मनिमित्तं यावत्परिवारनिमित्तं परद्रव्यमदत्तमेव गृण्हीयादपरंच ग्राहयेद्गृण्हंतमप्यपरं समनुजानीयादित्येवं तस्यादत्तादानप्रत्ययिकं कर्म संबध्यते । इति सप्तमं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ १५ ॥

नो पक्ष, तेना मदें करीने, (कुलमएणवा के०) कुल एटले पितानो पक्ष, तेना मदें करीने, (बलमएणवा के०) शरीरनुं बल, तेना मदें करीने, (रूवमएणवा के०) रूपने मदें करीने, (तवमएणवा के०) तपने मदें करीने, (सुयमएणवा के०) श्रुतज्ञानने मदें करीने, (लाभमएणवा के०) लाभने मदें करीने, (ईस्सरियमएणवा के०) ऐश्वर्य एटले ठकुराइने मदें करीने, (पन्नामएणवा के०) प्रज्ञाना मदें करीने, एटलाना मद (अन्नतरेणवा के०) अथवा अन्य एटले बीजा कोइ (मयट्ठाणेणं के०) मदना स्थानकें करीने (मत्तेसमाणे के०) मातो थतो (परंहिलेंति के०) बीजानी हेलना करे, (निंदेंति के०) निंदा करे, (खिंसति के०) खष्ट करे, (गरहति के०) गर्हा करे, (परिभवइ के०) पराभव करे, (अवमन्नेति के०) अपमान करे, (इत्तरिएअ य के०) ए बापडो जघन्य एटले जातिकुलादिकें हीनछे. (अहमंसिपुणविसिठ्ठजाइकु लबलाइगुणोववेए के०) हुं वली विशेष जाति, कुल, बलादिकगुणेकरी सहितछुं (एवंअप्पाणंसमुक्कस्से के०) एम पोताना आत्माने उत्कर्ष एटले अहंकार करे. हवे एवा मद करनारने विपाक देखाडेछे. (देहाचुए के०) ते पुरुष आ लोक मांहे पण निंदा अने गर्हानुं स्थानक थाय, अने परलोके पण निंदा अने गर्हानुं स्थानक थाय. देहाचुए एटले आ शरीरथकी चवीने परभवे (कम्मबित्तिए के०) कर्मद्वितीय (अवसेपयाइ के०) एतावता कर्मने वश वर्त्ततो चतुर्गतिक संसार मांहे परिभ्रमण करे (तंजहा के०) ते कहेछे (गप्नाउगप्नं के०) एक गर्भ थकी मरण पामिने, वली बीजा गर्भ मांहे उपजे. (जम्माउजम्मं के०) एक जन्म थकी बीजुं जन्म पामे, (माराउमारं के०) मरण थकी मरण पामे, (णरगाउणरगं के०) नरक थकी निकलीने वली नरकांतरे नरकमां जइने तीव्र दुःख भोगवे, एटले ते नरकमांहे थी निकलीने, सिंह मत्स्यादिक मांहे उत्पन्न थाय, फरी त्यांथी मरण पामीने तीव्रतर नरकांतरें जाय. एतावता ते (चंमे के०) रौद्र अहंकारी (थद्धे के०) स्तब्ध अनम्र शील (चवले के०) चपल एवा लक्षणेयुक्त (माणियाविभवइ के०) ते अभिमानी पुरुष होय एम निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय, ए नवमो क्रिया स्थानक मान प्रत्ययिक नामे कह्यो ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—अथापरं नवमं क्रियास्थानं मानप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथा कश्चित्पुरुषो जात्यादिगुणोपेतः सन् जातिकुलबलरूपतपःश्रुतलाभैश्वर्यप्रज्ञामदाख्यैरष्टभिर्मदस्थानैर न्यतरेण वा मत्तः परं हीनबुद्ध्या हीलयति, निंदति, जुगुप्सते, गर्हति, परिभवति। यथाय मितरोजघन्योहीनोमत्तः कुलादिभिः । अहं पुनर्विशिष्टकुलादिगुणोपेतएवमात्मानमुत्क

ख्यायंते । तद्यथा । क्रोधमानमायालोजस्थानानि । तेच क्रोधमानमायालोजाआत्मोद्भवाः । एजिरेव मनोडुष्टं स्यात् । एवं तस्य तत्प्रत्ययिकमध्यात्मनिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते । तदेवमष्टममाध्यात्मिकाख्यं क्रियास्थानमाख्यातं ॥ १६ ॥

॥ टीका—अथापरमष्टमं क्रियास्थानमाध्यात्मिकमित्यंतःकरणोद्भवमाख्यायते । तद्यथा नामकश्चित्पुरुषश्चित्तोपेक्षाप्रधानस्तस्य च नास्ति कश्चिद्विसंवादयिता । न तस्य कश्चिद्विसंवादेन परिजावेनवा सद्भूतोद्भावनेनवा चित्तडुःखमुत्पादयति तथाप्यसौ स्वयमेव वर्णापसदवद्दीनोडुर्गतवद्दीनोडुश्चित्ततया डुष्टोडुर्मनास्तथोपहतोऽस्वज्ञतया मनःसंकल्पो यस्य सतथा चिंतैव शोकइति सागरश्चिताप्रधानोवा शोकश्चिताशोकसागरप्रविष्टः । तथाजूतश्च यदवस्थोजवति तदर्शयति । करतले पर्यस्तं मुखं यस्य सतथाऽहर्निशं जवति तथार्तध्यानोपगतोऽपगतसद्विवेकतया धर्मध्यानदूरवर्ती निर्निमित्तमेव द्वंद्वोपहतवद्ध्यायति । तस्यैवं चिंताशोकसागरावगाढस्य सतआध्यात्मिकान्यंतःकरणोद्भवानि मनःसंश्रितान्यसंशयितानि वा निःसंशयितानि चत्वारि वक्ष्यमाणानि स्थानानि जवंति । तानि चैव समाख्यायंते । तद्यथा क्रोधस्थानं, मानस्थानं, मायास्थानं, लोजस्थानमिति । ते चावश्यं क्रोधमानमायालोजाआत्मनोऽधिजवंत्याध्यात्मिकाएजिरेव सद्भिर्डुष्टं मनोजवति । तदेव तस्य डुर्मनसः क्रोधमानमायालोजवतएवमेवोपहतमनःसंकल्पस्य तत्प्रत्ययिकमध्यात्मनिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते संबध्यते । तदेवमेतक्रियास्थानमाध्यात्मिकाख्यमाख्यातमिति॥१६॥

अहावरे णवमे किरियाठाणे माणवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए के
इ पुरिसे जातिमएणवा कुलमएणवा बलमएणवा रूवमएणवा तवमएणवा सुयमएणवा लाजमएणवा ईस्सरियमएणवा पन्नामएणवा अन्नतरेणवा मयठाणेणं मत्ते समाणे परं हिलेंति निंदेंति खिंसति गरहति परिजवइ अवमणेति इत्तरिए अय अहमंसि पुण विसिठे जाइकुलबलाइगुणोववेए एवं अप्पाणं समुक्कस्से देहाचुए कम्मबित्तिए अवसेपयाइं तंजहा गप्नाउगप्नं जम्माउजम्मं माराउमारं णरगाउणरगं चंमे थद्धे चवले माणियावि जवइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ णवमे किरियाठाणे माणवत्तिएत्ति आहिए ॥ १७ ॥

अर्थ—अथ हवे अपर नवमो क्रियास्थानक मान प्रत्ययिक नामे कहिए छैएं. ते जेम नाम एवी संजावनायें कोइएक पुरुष (जातिमएणवा के०) जाति एटले माता

नी परपरिन्नवेसति चंडरोझेनवति परस्यापकरोति तदनावे ह्यात्मानं व्यापादयति। तथा स्तव्यश्चपलोयत्किंचनकारी मानी सन्सर्वोप्येतदवस्थोनवतीति। तदेवं तत्प्रत्ययि कं माननिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते संबध्यते। नवममेतत्क्रियास्थानमाख्यातमिति॥१७॥

अहावरे दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णाम ए केइ पुरिसे माइहिंवा पिताहिंवा नाईहिंवा नइणीहिंवा नज्जाहिंवा धूयाहिंवा पुत्तेहिंवा सुण्हाहिंवा सद्धिं संवसमाणे तेसिं अन्नयरंसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंमं निवत्तेति तं जहा सीउदगवियडंसि वा कायं उब्बोलित्तानवति उसिणोदगवियडेणवा कायं उसिंचित्ता नवति अगणिकाएणं कायं उवडहित्तानवति जोतेणवा वेतेणवा णेतेणवा तयाइ वा कसेणवा छियाएवा लयाएवा पासाइं उद्दालित्तानवति दंमेणवा अठीणवा मुठीणवा लेलूणवा कवालेणवा कायंआउडित्ता नवति तहप्पगारे पुरिसजाए संवसमाणे डुम्मणा नवति पवसमाणे सुमणा नवति तहप्पगारे पुरिसजाए दंमपासी दंमगुरुए दंमपुरक्कडे अहिए इमंसि लोगंसि संजलणे कोहणे पिठिमंसियावि नवति एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जंति दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिएत्ति आहिए॥१८॥

॥ अर्थ—अथ हवे अपर दशमो क्रिया स्थानक मित्र दोष प्रत्ययिक कहियेंछेयें. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुष माता, पिता, नाइ, बेन, स्त्री, बेटी, पुत्र, पुत्रनीस्त्री, तेवहु जाणवी. (सिद्धिंसंवसमाणे के०) एटला सायें वसतो थको (तेसिंअन्नयरंसि के०) ते मातापितादिकथी कोइ अनेरो अजाण पणे अनानोग थकी (अहालहुगंसि के०) यथा कथंचित् न्हानो डर्वचन प्रमुखनो अथवा काय थकी हस्त पादादिकनो संघट्ट प्रमुख एवो (अवराहंसि के०) अपराध थये छते (सयमेव के०) पोतेंज क्रोधें करी धमतो थको तेने (गुरुयंदंमंनिवत्तेति के०) महोटो दंम करे. (तंजहा के०) ते कहेछे (सीउदगवियडंसिवा के०) सीतल पाणीयें करी सीतकालने विषे (कायंउब्बोलित्तानवति के०) ते अपराधीनु शरीर ठंमापाणी मांहे बोले. एवा अकार्यनो करनार थाय तथा (उसिणोदगवियडेणवाकायंउसिंचित्तानवति के०) उष्णकालें अत्यंत उष्ण पाणीयें करीने उष्ण तेलें करीने तेना शरीरनेसिंचे शरीरनुं शोषण करनार थाय, (अगणिकाएणंकायंउवडहित्तानवंति के०) अग्निकायें करीने तेना शरीरनुं दहन करनार

र्षयेत् । एवं जात्यादिमदमत्तः सन् इहैव निंद्यः स्यात् । अत्रच जात्यादिमदद्व्यादिसंयोगैर्नंगाज्ञेयाः । तथाहि । जातिमदः कस्यचिन्न कुलमदः, १ कस्यचित्कुलमदएव, न जातिमदः २ कस्यचिद्द्वयं ३ कस्यचिडुनयमपि न. ४ एवं पदद्वयेन चत्वारोनंगाः । पदत्रयेणाष्टौ, पदचतुष्टयेन षोडश, पंचनिः पदैर्द्वात्रिंशत् षड्भिश्चतुःषष्टिः सप्तनिः १२७ अष्टनिः २५६ सर्वत्र मदानावरूपश्चरमनंगः शुद्धइति । समानी देहाच्च्युतोमृतः सन् कर्मद्वितीयः कर्मसहायोऽवशः परवशः प्रयाति नवांतरं । तद्यथा गर्नाजर्नं जन्मनएकस्मात्परं जन्म, मारान्मरणान्मारं मरणांतरं व्रजति नरकतुल्याच्चंडालादिवासान्नरकं रत्नप्रनादिकं याति । अथवा नरकाडुद्धृत्य सिंहमत्स्यादावुत्पद्य पुनरतितीव्रं नरकांतरं याति । तदेवं मानी परपरिनवे सति चंडोरौद्रोऽन्यं हंति तदनावे आत्मानमेव हंति स्तब्धश्चपलो यत्किंचनकारी स्यात् मानी सन् एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं माननिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते बद्ध्यते । नवममेतक्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ १७ ॥

॥ टीका—अथापरं नवमं क्रियास्थानं मानप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोजात्यादिगुणोपेतः सन् जातिकुलबलरूपतपःश्रुतलानैश्वर्यप्रज्ञामदाख्यैरष्टनिर्मदस्थानैरन्यतरेणवा मत्तः परमवबुध्या हीलयति तथा निंदति, जुगुप्सते, गर्हति, परिनवति, एतानि चैकार्थिकानि कथंचिद्भेदं चोत्प्रेक्ष्य व्याख्येयानीति । यथा परिनवति तथा दर्शयति । इतरोयं जघन्योहीनजातिकः कुलबलरूपादिनिर्दूरमपभ्रष्टः सर्वजनावगीतोयमिति । अहं पुनर्विशिष्टजातिकुलबलादिगुणोपेतएवमात्मानं समुत्कर्षयेदिति । सांप्रतं मानोत्कर्षविपाकमाह । (देहाचुएइत्यादि) तदेवं जात्यादिमदोन्मतः सन्निहैव लोके गर्हितोनवति । अत्र जात्यादिपदद्व्यादिसंयोगाडुष्टव्यास्ते चैवं नवंति । जातिमदः, कस्य चिन्न कुलमदोऽपरस्य कुलमदो,न जातिमदः परस्योनयमपरस्यानुनयमित्येवं पदत्रयेणाष्टौ चतुर्निः षोडशेत्यादि यावदष्टनिः पदैः षट्पंचाशदधिकं शतद्वयमिति । सर्वत्र मदानावरूपचरमनंगः शुद्धइति । परलोकेऽपिच मानी डुःखनाग्नवतीत्यनेन प्रदर्श्यते । स्वायुषः क्षये देहाच्च्युतोनवांतरं गच्छन्नुनाशुनकर्मा द्वितीयः कर्मपरायत्तत्वादवशः परतंत्रः प्रयाति । तद्यथा गर्नाजर्नं पंचेंद्रियापेक्षं तथा गर्नाजर्नं विकलेंद्रियेपूत्पद्यमानः पुनरगर्नाजर्नमेवं गर्नादगर्नमेतच्च नरककल्पगर्नडुःखापेक्षायामनिहितमुत्पद्यमानडुःखापेक्षया त्विदमनिधीयते । जन्मनएकस्मादपरं जन्मांतरं व्रजति । तथा मरणं मारस्तस्मान्मारांतरं व्रजति तथा नरकदेश्याच्च्वपाकादिवासाद्रत्नप्रनादिकं नरकांतरं व्रजति । यदिवा नरकात्सीमंतकादिकाडुद्धृत्य सिंहमत्स्यादावुत्पद्य पुनरपि तीव्रतरं नरकांतरं व्रजति । तदेवं नटवद्रंगनूमौ संसारचक्रवाले स्त्रीपुंनपुंसकादीनि बहून्यवस्थांतराण्यनुनवंति । तदेवं मा

पताडयिता नवति । तथाविधे पुरुषे स्वल्पापराधेपि महादंडकारिणि एकत्र वासं कुर्वंति मातापित्रादयोऽडुर्मनसः स्युः । तस्मिन् प्रवसति दूरं गच्छति सति सहवासिनः सुमनसः सुखिनः स्युः । तथाप्रकारस्तादृशः पुरुषोदंडस्य पार्श्वे दंडपार्श्वे नछिद्यते यस्यासौ, दंडप्रवृत्तोदंडः पुरस्कृतोयेन सदंडपुरस्कृतोऽस्मिन् लोके स्वस्य परेषां चाऽहितः परलोकेप्यहितः संज्वलनः क्रोधकारी क्रोधनोवधबंधादिषु अविमृश्य प्रवृत्तिकृत् पृष्ठिमांसखादकः परम मोंद्घट्टनतः । एवं तस्य स्वल्पापराधेपि महादंडकर्तुस्तद्दंडप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते बध्यते । तदेतद्दशमं क्रियास्थानमाख्यातमिति । अन्ये पुनरष्टमं क्रियास्थानमात्मदोषप्रत्ययिकमाचक्षते । नवमंतु परदोषप्रत्ययिकं । दशमं पुनः प्राणवृत्तिकमिति ॥ १७ ॥

॥ टीका—अथापरं दशमं क्रियास्थानं मित्रदोषप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः प्रभुकल्पोमातापितृसुहृत्स्वजनादिभिः सार्धं परिवसंस्तेषांच मातापित्रादीनामन्यतमे नानाभोगतया यथाकथंचिल्लघुतमेप्यपराधे वाचिके डुर्वचनादिके तथा कायिके हस्तपादादिके संघट्टरूपे कृते सति स्वयमेवात्मना क्रोधध्मातोगुरुतरं दंडं डुःखोत्पादकं निवर्तयति करोति । तद्यथा शीतोदके विकटे प्रभूते शीतेवा शिशिरादौ तस्यापराधकर्तुः कायमधोबोलयिता नवति तथोष्णोदकविकटेन कायं शरीरमपसिंचयिता । तत्र विकटग्रहणाडुष्णतैलेन कांजिकादिनावा कायमुपतापयिता नवति तथाऽग्निकायेनोल्मुकेन तप्तायसावा कायमुपदाहयिता नवति तथा जोत्रेणवा वेत्रेणवा नेत्रेणवा त्वचा वासनादिकपाजनतया वाऽन्यतरेण वा दवरकेण ताडनतस्तस्यापराधकर्तुः शरीरपार्श्वाणि उद्दालयितुं चर्माणि लुंपयितुं नवति तथा दंडादिना कायमुपताडयिता नवति । तदेवमल्पापराधिन्यपि महाक्रोधदंडवति तथा प्रकारे पुरुषजाते एकत्र वसति सति तत्सहवासिनोमातापित्रादयोऽडुर्मनसस्तदनिष्टाशंकया नवंति तस्मिंश्च प्रवसति देशांतरे गच्छति गतेवा तत्सहवासिनः सुमनसोनवंति । तथाप्रकारश्च पुरुषजातोऽल्पेप्यपराधे महांतं दंडं कल्पयतीत्येतदेव दर्शयितुमाह । दंडस्य पार्श्वे दंडपार्श्वे तछिद्यते यस्यासौ दंडपार्श्वी स्वल्पतया स्तोकापराधे कुप्यति दंडं च पातयति । तमप्यतिगुरुमिति दर्शयितुमाह । दंडेन गुरुकोदंडगुरुः । यस्यच महान् दंडोनवति असौ दंडेन गुरुर्नवति । तथा दंडः पुरस्कृतः सदा पुरस्कृतदंडइत्यर्थः । सचैवंनूतः स्वस्य परेषां चास्मिन् लोकेऽस्मिन्नेव जन्मनि अहितः प्राणिनामहितदंडपातनात् तथा परस्मिन्नपि जन्मन्यसावहितस्तच्छीलतया चासौ यस्य कस्यचिदेव येन केनचिदेव निमित्तेन क्षणेक्षणे संज्वलयतीति संज्वलनः सचात्यंतक्रोधनोवधबंधनविच्छेदादिषु शीघ्रमेव क्रियासु प्रवर्तते तदभावेप्युत्कटद्वेषतया मर्मोद्घट्टनतः पृष्ठिमांसमपिखादेत्तत्तदसौ ब्रूयात् । येनासावपि परः संज्वलयेत् ज्वलितश्चान्येषामपकुर्यात् त

थाय, (जोतेणवा के०) जोत्रे करी, (वेतेणवा के०) वेत्रें करी, अथवा (णेतेणवा के०) नेतरे करी, (तयाइवाके०) त्वचायें करी, अथवा (कसेणवाके०) ताजणे चाबखुकें करी, (बियाएवा के०) नाडायें करी, (लयाएवा के०) लता एटले वेलुयें करी, दोरडीयेंकरी (पासाइंउद्दालित्तानवति के०) तेना पार्श्वनागना चामडाने उखेडनार थाय, (दंमेणवा के०) दंमे करी लाकडीयें करी, (अठीणवा के०) हाडकायें करी, (मुठीणवा के०) मुष्टियें करी, (लेलूणवा के०) पाषाणने कटके करी, (कवालेणवा के०) ठींकरीयें करी, कपालादिकेंकरी, (कायंआउडित्तानवति के०) तेना शरीरने ताडनार थाय, किंबहुना (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारना दंमना करनार एवा (पुरिसजाए के०) पुरुष जाति जे तथा प्रकारना कुकर्मना करनार होए तेनी साथे (संवसमाणे के०) एकठां रहेतां बता सज्जन पुरुष जे माता पितादिक ते पण (डुम्मणानवंति के०) डुर्मन थइने देशांतर जता रहे पढी (पवसमाणे के०) ते थकी अलगा रहेवाथी (सुमणानवंति के०) सुमन थाय, एटले तेने बोडयाथी हर्षित थाय. एवा (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारना (पुरिसजाए के०) पुरुष जाति जे थोडा अपराधीने पण दंमना देनार, (दंमपासीके०) अल्पापराधने विषे अति कोपकरनार, ते दंडपार्श्वी (दंमगुरुएके०) दंमेंकरी आकरो दंम करे, (दंमपुरेक्कडेके०) तेने सर्व काल दंमज अग्रेसर बे. ते पुरुष (अहिएइमंसिलोगंसिके०) आलोकने विषे पण पोताना जीवने अहित कारी अने (अहिएपरंसिलोगंसि के०) परलोकने विषे पण पोताना जीवने अहित कारीबे तेनुं कारण शुं? तोके तेजीव, (संजलणे के०) क्षणे क्षणे ज्वले, (कोहणे के०) क्षणेक्षणे क्रोध करे, (पिठिमंसियाविनवति के०) पृष्ठ मांस नक्षण करनार होय, पुंठे पाबल अवर्णवादनो बोलनार होय, एम निश्चें तेहने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्तें सावद्य कर्म बंधाय. ए दशमो क्रिया स्थानक मित्र दोष प्रत्ययिक नामे कह्यो. ॥ १० ॥

॥ दीपिका—अथापरं दशमं क्रियास्थानं मित्रदोषप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः प्रजुकल्पोमातापितृसुहृत्स्वजनादिनिः सार्धं संवसन् तेषां मातापित्रादीनामन्यतमेनाऽनानोगतोयथाकथंचिल्लघुतमेप्यपराधे स्वयमेवात्मनाक्रोधतोगुरुतरं दंडं वर्तयति करोति । तद्यथा शीतोदकविकटे शिशिरादावतिशीतोदके कायं शरीरमपराधिनोऽवबोलयिता नवति तथा उष्णोदकविकटेन कायमपसिंचयिता नवति । विकटग्रहणाडुष्णतैलकांजिकादिना अग्निकायेन उल्मुकेन तप्तलोहेनवा कायमुपदाहयिता नवति । (जोएणत्ति) जोत्रेण वेत्रेणवा नेत्रोवृक्षविशेषस्तेन कशादिनावा लतयावा शरीरपार्श्वाणि उद्दालयितुं चर्माणि लुंपयितुं नवति । दंडेन अस्थ्ना मुष्टिना लेष्टुना कपालेन नांडखंडेन कायमु

एक प्ररूपवुंछे तेने ठेकाणे (अन्नंआइरकंते के०) अन्य बीजुं कांइक जुदूंज प्ररूपे ॥ १ए॥ (सेजहाणामए के०) ते यथादृष्टांते नाम एवी संन्नावनायें जेम. (केइपुरिसे के०) कोइ एक पुरुष संग्राम थकी निकल्यो, (अंतोसल्ले के०) तीर नालादिकना शल्यें क री सशल्य छतो (तंसल्लं के०) ते शल्यने (णोसयंणिहरति के०) वेदना थकी बीहि तो थको पोतें पोताने हाथे काढे नही, (णोअन्नेणणिहरावेंतिके०) बीजाने हाथे पण कढावे नही, (णोपडिविद्धंसेइ के०) तथा वैद्यने उपदेशें औषधादिक प्रयोगें करीने पण ते शल्यनो विध्वंस थशे नही (एवमेव के०) एम जाणीने, (निएहवेइ के०) ते शल्यने गोपवी राखे. (अविउट्टमाणे के०) पुछ्यो थको कहे नही, (अंतोअंतो रियाइके०) ते डुःखें पीड्यो थको माहोमांहे डुःखी थाय, (एवमेव के०) एम ते (माइमायंकट्टु के०) मायावी पुरुष, माया शल्यें करीने तेणे जे कोइ अकार्य कस्या हो य ते (णोआलोएइ के०) गुरु समक्ष आलोवे नही (णोपडिक्कमेइके०) पडिकमे नहीं (णोणिंदइ के०) आत्मानी साखें निंदे नहीं, (णोगरहइ के०) परसाक्षीक गर्हे न हीं (णोविउट्टइ के०) तेवा अकार्य करवा थकी निवृत्तिपामे नहीं (णोविसोहेइ के०) शुन्नन्नाव रूप पाणीयें करी ते अतिचारनुं कलंक पखाले नहीं, (णोअकरणाएअप्पुट्ठेइ के०) तेवा अकार्यने अणकरवाने उठे नहीं एटले अण करवानो उद्यम न करे, (णो अहारिहंतवोकम्मंपायच्छित्तपडिवज्जइ के०) यथायोग्य तप कर्म रूप प्रायश्चित पडिव जे नहीं. एरीतें (माइ के०) ते मायावी पुरुष (अस्सिंलोएपच्चायाइके०) आ लोक मांहे पण अविश्वासनी प्रसिद्धि पामे (माइपरंसिलोएपच्चायाइ के०) मायावी पुरुष परलोके नरकादिक पीडाना स्थानकने विषे वली वली अरहट्ट घटिकाने न्यायें गतिआ गति करे, तथा मायावी पुरुष परनी (निंदइ के०) निंदा करे, (गरहइ के०) गर्हा करे (पसंसइ के०) अने पोतानी पोते प्रशंसा करे, (णिच्चरइ के०) अकार्यने वि षे रती करे, (णनियट्टइ के०) अकार्य थकी निवर्त्ते नहीं (णिसिरियंदंमंछाएति के०) अकार्य करीने पोतानो अपराध ढांकी राखे एरीते (माइअसमाहड के०) माया वी पुरुष अपहारे एटले त्यागकरे; शेनो त्यागकरे? ते कहेछे. (सुहलेस्सेयाविन्नवइ के०) शुन्न लेश्यानो त्याग करे अने सर्व कालें अशुन्न लेश्यायें करी प्रवर्त्तमान थको होए एरीते निश्चे तेने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्तें सावद्य कर्मबंधाय. एटले अगी आरमो क्रिया स्थानक मायाप्रत्ययिक नामे कह्यो. ॥ २० ॥

॥ दीपिका—अथापरमेकादशं क्रियास्थानमाख्यायते । तद्यथा । ये केचनामी न्नवंति पुरुषाः । किंन्नूताः । गूढाचारागलकर्तकग्रंथिछेदकादयस्ते बहूपायैर्विश्वासमुत्पाद्य, विरू

देवं खलु तस्य महादंडं प्रवर्तयितुस्तद्दंडप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माऽधीयते। तदेतद्दशमं क्रियास्थानं मित्रद्रोहप्रत्ययिकमाख्यातमिति। अपरे पुनरष्टमं क्रियास्थानमात्मदोषप्रत्ययिकमाचक्षते. नवमंतु परदोपप्रत्ययिकंच. दशमं पुनः प्राणवृत्तिकं क्रियास्थानमिति ॥१८॥

अहावरे एक्कारसमे किरियाठाणे मायावत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे नवंति गूढायारा तमोकसिया उलुगपत्तलहुया पव्वयगुरुया ते आयरियाविसंता अणारियाउ नासाउवि पउज्जंति अन्नहासंतं अप्पाणं अन्नहामन्नंति अन्नंपुछा अन्नंवागरंति अन्नं आइक्खियव्वं अन्नंआइक्खंते॥१९॥से जहा णामए केइ पुरिसे अंतोसल्ले तं सल्लं णोसयं णिहरति णोअन्नेण णिहरावेति णोपडिविद्धंसेइ एवमेव निण्हवेइ अविउट्टमाणे अंतोअंतोरियाइ एवमेव माई मायं कट्टु णोआलोएइ णोपडिक्कमेइ णोणिंदइ णोगरहइ णोविउट्टइ णोविसोहेइ णोअकरणाए अब्भुट्ठेइ णोअहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जइ माइ अस्सिंसलोए पच्चायाइ माइ परंसिलोए पच्चायाइ निंदइ गरहइ पसंसइ णिच्चरइ णनियट्टइ णिसिरियं दंडंछाएति माइ असमाहडसुहलेस्सेयावि नवइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ एक्कारसमे किरियाठाणे मायावत्तिएत्ति आहिए॥२०॥

अर्थ—हवे अपर अगिआरमो क्रिया स्थानक मायाप्रत्ययिक कहियें ठेयें (जेइमे नवंति के०) जे आ जगत्मांहे पुरुषछे ते कया पुरुष तोके, (गूढायारा के०) गूढाचारी एटले धूतारा, ठगारा, गंठीछोडा प्रमुखछे ते नाना प्रकारना उपायें करीने लोकने विश्वास उपजावीने वंचे. (तमोकसिया के०) अंधाराने विषे विचरनारा, अर्थात् लोक थकी ठाना क्रियाना करनारा, (उलुगपत्तलहुयाके०) ते पोतें जाते घूवडनी पांख थकी पण हलकाछे परंतु (पव्वयगुरुया के०) पोताने पर्वत थकी पण महोटा माने, (तेआयरियाविसंता के०) ते आर्य देशमां उत्पन्न थया होय तेम ठतां पण परने वंचवाने अर्थे शठ पणे, पोताने गोपववा नणी (अणारियाउनासाउविपउज्जंति के०) अनार्य देशनी नाषा बोले, अथवा पोतानी कल्पित नाषा जे बीजाथी अजाणी होय तेवी नाषा बोले, (अन्नहासंतं के०) लिपी पण तेवी अजाणी अन्य लखे (अप्पाणंअन्नहामन्नंति के०) पोतें वली बीजी रीते माने, (अन्नंपुछा के०) अन्य कांइ पुछे थके (अन्नंवागरंति के०) अन्य कहे, (अन्नंआइक्खियव्वं के०) अन्य कांहिं

काषिकाः पराऽविज्ञाताः क्रियाः कुर्वंतीत्यर्थः । तेच स्वचेष्टयैवोलूकपत्रवल्लघवः कौशिक पिछ्वल्लघीयांसोपि पर्वतवद्गुरुमात्मानं मन्यंते । यदिवा कार्यप्रवृत्तेः पर्वतवन्नो लंघ यितुं शक्यंते ते चाऽऽर्यदेशोत्पन्नाअपि संतः शाठ्यादात्मप्रछादनार्थमपरभयोत्पादनार्थं चाऽनार्यभाषाः प्रयुंजंते परव्यामोहार्थं स्वमतिपरिकल्पितभाषाभिरपराऽविदिताभिर्भाषं ते तथाऽन्यथाऽव्यवस्थितमात्मानमन्यथासाध्वाकारेण मन्यंते व्यवस्थापयंति तथाऽ न्यत्पृष्टाःमातृस्थानतोऽन्यदाचक्षते । यथाम्रान् पृष्टाः कोविदारकानाचक्षते । वादकालेवा कश्चिन्नाथवादितया व्याकरणे प्रवीणस्तर्कमार्गमवतारयति । यथावा शरदि वाजपेयेन यजेतेत्यस्य वाक्यस्यार्थं पृष्टस्तदर्थानभिज्ञः कालातिपातार्थं शरत्कालं व्यावर्णयति। तथा ऽन्यस्मिंश्चार्थे कथयितव्येऽन्यमेवार्थमाचक्षते । तेषां सर्वार्थविसंवादिनां कपटप्रपंचचतु राणां विपाकोद्भवनाय दृष्टांतं दर्शयितुमाह ॥ ११ ॥ (सेजहेत्यादि) यथानाम कश्चित्पुरु षः संग्रामादपक्रांतोऽतर्मध्ये शल्यं तोमरादिकं यस्य सोंऽतःशल्यः सच शल्यघट्टनवेदनाभी रुतया तच्छल्यं न स्वतोनिर्हरत्यपनयति उद्धरति तथाप्यन्येन नोद्धारयति नापि तच्छल्यं वै द्योपदेशेनौषधोपयोगादिभिरुपायैः प्रतिध्वंसयति विनाशयति अन्येन केनचित्पृष्टोवाऽपृष्टो वातच्छल्यं निष्प्रयोजनमेव निन्हुतेऽपलपति तेन च शल्येनासावंतर्वर्तिना (अविउट्ट माणेत्ति) पीड्यमानः (अंतोत्ति) मध्येमध्ये पीड्यमानोपि रीयते व्रजति तत्कृतां वेदनाम सहमानः क्रियासु प्रवर्ततइत्यर्थः । सांप्रतं दार्ष्टांतिकमाह । (एवमेवेत्यादि) यथाऽसौ स शल्योऽदुःखभाग्भवत्येवमेवासौ मायी मायाशल्यवानन्यत्कृतमकार्यं तन्मायया गूहयन् मायां कृत्वा न तां मायामन्यस्मै आलोचयति कथयति नापि तस्याः स्थानात्प्रतिक्रामति न ततोनिवर्तते नाप्यात्मसाक्षिकं तन्मायाशल्यं निंदति । तद्यथा धिङ्मां यदहमेवंभूत मकार्यं कर्मोदयात्कृतवांस्तथा नापि परसाक्षिकं गर्हति आलोचनार्हसमीपे गतोनापि च जुगुप्सते तथा (नोविउट्टत्ति) नापि तन्मायाख्यं शल्यमकार्यकरणात्मकं विविधमने कप्रकारं त्रोटयत्यपनयति । यच्चास्यापराधस्य प्रायश्चित्तं तत्तेन पुनस्तदकरणतया निवर्त्त यतीत्यर्थः।नापि तन्मद्यादिकमकार्यं सेवित्वा लोचनार्हायात्मानं निवेद्य,तदकार्यकरणतया ऽभ्युत्तिष्ठते प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यापि नोद्युक्तविहारी भवतीत्यर्थः। तथा नापि गुर्वादिभि रभिधीयमानोपि यथार्हमकार्यनिर्वहणयोग्यं प्रायश्चित्तं शोधयतीति । प्रायश्चित्तं तपः कर्मविशिष्टं चांद्रायणाद्यात्मकं प्रतिपद्यते ऽभ्युपगच्छति । तदेवं मायया सत्कार्यप्रछादको ऽस्मिन्नेव लोके मायावीत्येवं सर्वकार्येष्वेवाविश्रंभणत्वेन प्रत्यायाति प्रख्यातिं याति त थाभूतश्च सर्वस्यापि विश्वास्योभवति । तथाचोक्तं । मायाशीलः पुरुषइत्यादि । तथाति मायावित्वादसौ परस्मिन् लोके जन्मांतराऽवाप्तौ सर्वाऽधमेषु यातनास्थानेषु नरकतिर्य गादिषु पौनःपुन्येन प्रत्यायाति भूयोभूयस्तेष्वेवारघट्टघटीयंत्रन्यायेन प्रत्यागच्छतीति

पं कुर्वंति चंडप्रद्योतादेरजयकुमारादिवत् तमसि कषितुं शीलं येषांते तमःकषिणस्तएव तमःकाषिकाः पराविज्ञाताः क्रियाः कुर्वंतीत्यर्थः। तेच उलूकपिच्छवल्लघवोपि पर्वतवद्गु रुमात्मानं मन्यंते आर्याअपि संतस्ते परव्यामोहार्थमनार्यभाषा (विउवंति) प्रयुंजंते अन्यथा स्थितमात्मानमन्यथा साध्वाचारेण मन्यंते व्यवस्थापयंति अन्यत् पृष्टामाययाऽ न्यदेव वदंति आम्रान् पृष्टा निंबान् वदंति। व्याकरणं पृष्टस्तदज्ञस्तर्कमवतारयति। यथा वा शरदि वाजपेयेन यजेतइत्यस्य वाक्यस्यार्थं पृष्टस्तदर्थानभिज्ञः कालविलंबार्थं शर त्कालमेव वर्णयति (अन्नमाइक्खियव्वंति) अन्यस्मिन्नर्थे कथयितव्येऽन्यमेवाख्यांति ॥१९॥ (सेजहेति) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः संग्रामान्निर्गतेंऽतर्मध्ये शल्यं यस्य सोंतःशल्यः सवे दनाभीतः स्वयं शल्यं ननिर्हरति नकृषति नाप्यन्येन कर्षयति। नापि वैद्योपदेशादोषध प्रयोगैः प्रतिध्वंसयति विनाशयति अन्येन दृष्टस्तच्छल्यं निन्हुतेऽपलपति तेन शल्येन (अ विउट्टमाणेत्ति) पीड्यमानः (अंतोअत्ति) मध्ये पीड्यमानोपि रीयते व्रजति वेदनां स हमानोपि क्रियासु प्रवर्त्ततइत्यर्थः। दृष्टांतं योजयति (एवमेव मायीति) यथा सशल्यो दुःखभाग्भवति एवमेव मायी, कृतं कार्यं निगूहयन् मायां कृत्वाऽन्यस्मै नालोचयति नकथयति न तस्मात्स्थानात्प्रतिक्रमति न निवर्त्तते न आत्मसाक्षिकं निंदति नापिपरसा क्षिकं गर्हति आलोचनार्हसमीपे गतोनापि च जुगुप्सते (नविउट्टइत्ति) न वित्रोटयत्यपन यति मायाशल्यं नविशोधयति नापि पुनस्तदाकरणतयाऽभ्युत्तिष्ठते नापि यथार्हं तपःक मेरूपं प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यते। तदेवं मायावी अस्मिन् लोकेऽविश्वासतया प्रत्याख्यातिं याति। यदुक्तं। मायाशीलः पुरुषोयद्यपि, नकरोति कंचिदपराधं ॥ सर्पइवाऽविश्वास्यो भवति तथाप्यात्मदोषहतइति ॥ तथा मायावी परस्मिन् लोके नरकतिर्यगादिषु प्रत्या याति भूयोभूयोयाति (निंदंगाहयति) परं निंदयित्वा आत्मप्रशंसया तुष्यति। एवंचा सौ लब्धप्रसरोऽधिकं निश्चरति तथाविधानुष्ठायी भवति। तत्रच गृद्धस्तस्मान्मातृस्थाना न्ननिवर्त्तते दंडं निसृज्य हिंसां कृत्वा प्रच्छादयत्यपलपति अन्यस्यवा मस्तके क्षिपति समाया वी असमाहृतशुभलेश्योऽनंगीकृतशुभध्यानश्चापि भवति। एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययि कं मायाशल्यप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते। एतदेकादशक्रियास्थानं मायाप्रत्ययिकमा ख्यातमिति ॥ २० ॥

॥ टीका–अथापरमेकादशं क्रियास्थानमाख्यायते। तद्यथा ये केचनामी भवंति पु रुषाः। किंविशिष्टाः। गूढाआचारायेषां ते गूढाचारागलकर्तकग्रंथिच्छेदादयस्तेच ना नाविधैरुपायैर्विश्रंभमुत्पाद्य पश्चादपकुर्वंति प्रद्योतादेरभयकुमारादिवत्। तथा माया शीलत्वेनाप्रकाशकचारिणस्तमसि कषितुं शीलं येषांते तमसिकाषिणस्तएवच तमः

येने विषे रहस्यना करनार, ए सर्व प्रायः त्रसजीवोनी विराधना नकरे परंतु एकेंद्रियनी विराधनायें उपजीवन करे, (णोबहुसंजया के०) ते घणा संयत नहीं, (णोबहुपडि विरया के०) घणी हिंसा थकी निवर्त्त्या नथी, एटले सर्व प्राणातिपात विरमणव्रतादि कने विषे न प्रवर्त्ते; किंतु? द्रव्य थकी केटलाएक व्रत पाले, अने सर्व विरतिनुं कारण जे सम्यक् दर्शनछे, ते गुण तेमांहे नथी ते कारणे, (सव्वपाणभूतजीवसत्तेहिं के०) सर्व प्राणी, भूत, जीव, अने सत्वथकी अविरत, हिंसा थकी अविरत (तेअप्पणो के०) ते पारकंभी पोते, (सच्चामोसाइं के०) घणां सत्यामृषावचन (एवंविउंजंति के०) एम आगल केहे. जेरीतें बोले तेज कहेछे. (अहंणहंतव्वो के०) हुं ब्राह्मण पणा थकी मने दंमादिकें हणवो नही, (अन्नेहंतव्वा के०) अन्य शुद्रादिकने हणवा. (अ हंणअज्ञावेयव्वो के०) तथा हुं वर्णोत्तम छुं, माटे मने आज्ञा करवी नहीं एटले मने कांइ आदेश आपवो नही. तथा (अन्नेअज्ञावेयव्वा के०) शुद्रादिक आज्ञापयितव्यछे एट ले तेमने आदेश आपवो. (अहंणपरियेतव्वो के०) हुं वर्णोत्तमछुं, माटे मने बला त्कारें ग्रहण करवो नही, (अन्नेपरियेतव्वा के०) अन्य शुद्रादिकने बलात्कारें ग्रह ण करवा. (अहंणपरितावेयव्वो के०) तथा मने परितापवो नही, (अन्नेपरितावेय व्वा के०) अन्य शुद्रादिकने परितापवा. (अहंणउद्दवेयव्वो के०) तथा मने उपद्रव करवो नही, तथा जीव, काया थकी रहित करवो नही, (अन्नेउद्दवेयव्वा के०) अन्य शुद्रादिकने उपद्रवो करवा. एम ते परपीडाना उपदेशना करनार मूढ, असंबंध प्रला पी (एवमेवतेइत्थिकामेहिंमुच्छिया के०) एरीते पूर्वोक्त प्रकारे ते मूढ परमार्थना अजाण थका स्त्रियादिकना कामभोगने विषे मूर्छित थका (गिद्धा के०) गृद्ध एटले ते कामभोगना अभि लाषी छता, (गढिया के०) कामभोगने विषे आसक्त छता (गरहिया के०) निंदवा योग्य, अत्यंत आसक्त छता (अज्झोववन्ना के०) अभ्युपपन्न एटले कामभोगने विषे एकाग्र चित्त थया छता (जाववासाइंचउपंचमाइं के०) यावत् चार पांच वर्ष सुधी अथवा (छद्दसमाइं के०) छ अथवा दश वर्ष एटलो काल तेमांहे ते तीर्थिक (अप्पयरोवा के०) अल्पतर एटले अल्प काल सुधी (भुज्जयरोवा के०) अथवा घणा काल सुधी घर वास छांमीने (भुंजित्तुभोगभोगाइं के०) वली काम भोग जे शब्दादिक विषयछे तेने धर्मने पाखंमे भोगवीने, (कालमासे कालंकिच्चा के०) मरण प्रस्तावे काल करीने कांइ एक बालतपना प्रभावथी (अन्नयरेसु आसुरिएसु किब्बिसिएसु ठाणेसु उववत्तारो भवं ति के०) तेने अनेरा आसुरिक किल्बिषीने स्थानकें उपजवुं थाय, (ततोविप्पमुच्चमाणे के०) ते स्थानकथी आयुष्यने क्षये चवीने (भुज्जोभुज्जोएलमूयत्ताए के०) वलीवली मनुष्य भव पामे, तोपण एल एटले बोडा, काणा, अथवा मूयत्ता एटले मुंगा तथा

तथा नानाविधैः प्रपंचैर्वंचयित्वा, परं निंदति जुगप्सते । तद्यथाऽयमज्ञः पशुकल्पोनानेन किमपि प्रयोजनमित्येवं परं निंदयित्वाऽत्मानं प्रशंसयति । तद्यथा ह्यसावपि मया वंचितइत्येवमात्मप्रशंसया तुष्यति । तथा चोक्तं । येनापत्रपते साधुरसाधुस्तेन तुष्यतीति । एवं चासौ लब्धप्रसरोऽधिकं निश्चयेन वा चरतीति तथाविधानुष्ठायी नवतीति निश्चरति । तत्रच गृद्धःसंस्तस्मान्मातृस्थानान्न निवर्तते तथासौ मायावलेपेन दंडं प्राण्युपमर्दकारणं निसृज्य पातयित्वा पश्चाह्लादयत्यपलपति अन्यस्य चोपरि प्रक्षिपतिसच मायावी सर्वदा वंचनपरायणः संस्तन्मनाः सर्वानुष्ठानेष्वेवंनूतोनवति । असमाहृताऽनंगीकृता शोजना लेश्या येन सतथार्त्तध्यानोपहततयाऽसावशोजनलेश्यइत्यर्थः । तदेवमपगतधर्मध्यानोसमाहितोशुद्धलेश्यश्चापि नवति । तदेवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं मायाशल्यप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माऽधीयते । तदेकादशं क्रियास्थानं मायाप्रत्ययिकं व्याख्यातं ॥ १० ॥

अहावरे बारस्समे किरियाठाणे लोनवत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे नवंति तंजहा आरन्नियाआवसहिया गामंतिया कण्हुईरहस्सिया णोबहुसंजया णोबहुपडिविरया सवपाणनूतजीवसत्तेहिं ते अप्पणो सच्चामोसाइं एवं विउंजंति अहं ए हंतवो अन्ने हंतवा अहं ए अज्जावेयवो अन्ने अज्जावेयवा अहं एं परिघेतवो अन्ने परिघेतवा अहं ए परितावेयवो अन्ने परितावेयवा अहं ए उद्दवेयवो अन्ने उद्दवेयवा एवमेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया गरहिया अझोववन्ना जाव वासाइं चउपंचमाइं बहसमाइं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा नुंजित्तुंनोगनोगाइं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु आसुरिएसु किब्बिसिएसु ठाणेसु उववत्तारो नवंति ततोविप्पमुच्चमाणे नुज्जोनुज्जो एलमूयत्ताए तमूयत्ताए जाइमूयत्ताए पच्चायंति एव खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ डुवालसमे किरियाठाणे लोनवत्तिएत्ति आहिए ॥ २१ ॥

अर्थ—हवे अपर बारमो क्रियास्थानक लोनप्रत्ययिक कहिए बैयें. (जेइमेनवंति के०) जे आगल कहेशे ते पुरुष कोण ? (तंजहा के०) ते कहेबे. (आरन्निया के०) अरण्यमां वसनारो, कंदमूलफलाहारी, वृक्षने मूले वसनारो, वली (आवसहिया के०) कोइएक पानडानी पर्णकूटी करीने तेमां रहे, (गामंतिया के०) तथा कोइएक आजीविका निमित्तें ग्रामने समीपें निवास करी रहे, (कण्हुईरहस्सिया के०) कोइएक का

चइह प्रत्यायांति । तदेवं तेषां तीर्थिकानां तत्प्रत्ययिकं सावद्यानुष्ठाननिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते । तदेतल्लोनप्रत्ययिकं द्वादशं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

॥ टीका—एतानि चानर्थदंडादीनि एकादश क्रियास्थानानि सामान्येनाऽसंयतानां न्नवंति। इदंतु द्वादशं क्रियास्थानं पाखंडिकानुदिश्याऽनिधीयते (अहावरेइत्यादि) एकादशात् क्रियास्थानादनंतरमथापरं द्वादशं क्रियास्थानं लोनप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथा । य इमे वक्ष्यमाणाअरण्ये वसंत्यरण्यकास्ते च कंदमूलफलाहाराः संतः केचन वृक्षमूले वसंति, केचनावसथेषूटजाकारेषु गृहेषु, तथापरे ग्रामादिकमुपजीवंतोग्रामस्यांते समीपे वसंतीति ग्रामांतिकास्तथा क्वचित्कार्ये मंडलप्रवेशादिके रहस्यं येषांते क्वचिडाहसिकास्तेच न बहुसंयतान सर्वसावद्यानुष्ठानेन्योनिवृत्ताः । एतडुक्तं न्नवति । नबाहुल्येन त्रसेषु दंडसमारंन्नं विदधति एकेंडियोपजीविनस्त्वविगानेन तापसादयोन्नवंतीति तथा न बहुविरता न सर्वेष्वपि प्राणातिपातविरमणादिषु व्रतेषु प्रवर्तंते किंतु? ड्व्यतः कतिपयव्रतव्रतिनोन न्नावतोमनागपि तत्करणस्य सम्यग्दर्शनस्यान्नावादित्यन्निप्रायः । इत्येतदाविर्नावयितुमाह । (सव्वपाणेत्यादि) ते ह्यारण्यादयः सर्वप्राणिन्नूतजीवसत्वेन्यआत्मना स्वतोविरतास्तडुपमर्दकारंन्नादविरताइत्यर्थः। तथा पाषंडिकाआत्मना स्वतोबहूनि सत्यामृषान्नूतानि वाक्यान्येवं वक्ष्यमाणनीत्या विशेषेण युंजंति प्रयुंजंति ब्रुवतइत्यर्थः। यदि वासत्यान्यपि तानि प्राण्युपमर्दकत्वेन मृषान्नूतानि सत्यामृषाण्येवं ते प्रयुंजंतीति दर्शयति । तद्यथाऽहं ब्राह्मणत्वादंडादिनिर्न हंतव्योऽन्येतु शूड्त्वाद्धंतव्याः । तथाहि । त द्वाक्यं । शूडं व्यापाद्य प्राणायामं जपेत् किंचिद्वा दद्यात् तथा क्षुड्सत्वानामनस्थिकानां शकटन्नारमपि व्यापाद्य ब्राह्मणं न्नोजयेदित्यादि। अपरं चाहं वर्णोत्तमत्वात् नाज्ञापयितव्योन्येतु मत्तोऽधमाः समाज्ञापयितव्यास्तथा नाहं परितापयितव्योऽन्येतु परितापयितव्यास्तथाहं वेतनादिना कर्मकरणाय न ग्राह्योऽन्येतु शूडाग्राह्याइति । किंबहुनोक्तेन नाहमुपड्रावयितव्योजीवितादपरोपयितव्योऽन्येतु अपरोपयितव्याइति । तदेवं तेषां परपीडोपदेशनतोऽतिमूढतयाऽसंबद्धप्रलापिनामज्ञानावृतानामात्मंन्नरीणां विषमदृष्टीनां न प्राणातिपातविरतिरूप व्रतमस्त्यस्य चोपलक्षणार्थत्वात् मृषावादादत्तादानविरमणान्नावोप्यायोज्यः । अधुना लनादिन्नावान्यासाद्दुस्त्यजत्वेन प्राधान्यात् सूत्रेणैवाब्रह्माधिकृत्याह । (एवमेवेत्यादि) एवमेव पूर्वोक्तेनैव कारणत्वेनातिमूढत्वादिना परमार्थमजानास्ते तीर्थिकाः स्त्रीप्रधानाः कामाः स्त्रीकामाः । यदिवा स्त्रीषु कामेषु च शब्दादिषु मूर्छितागृद्धाग्रथिताअध्युपपन्नाः । अत्र चात्यादरख्यापनार्थं प्रन्नूतपर्यायग्रहणं । एतच्च स्त्रीषु शब्दादिषुच प्रवर्तनं प्रायः प्राणिनां प्रधानं संसारकारणं । तथा चोक्तं । मूलमेयमहम्मस्स महादोससमु

(तमूयत्ताएजाइमूयत्ताएपच्चायंति के०) ते जात्यंध एटले जन्म थकी अंध, तथा जन्म थकी बहेरा, एवा थाय. एम प्रत्यागछंति एटले फरीने आ लोकमां आवेछे. एरीते निश्चें थकी तेने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्ते सावद्य कर्म बंधाय. ए बारमो लोभप्रत्ययिक नामे क्रिया स्थानक कह्यो. ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—एतान्येकादश क्रियास्थानानि सामान्येनाऽसंयतानां भवंति । इदंतु द्वादशं क्रियास्थानं पाखंडिकानुद्दिश्य कथ्यते ॥ अथापरं द्वादशं क्रियास्थानं लोभप्रत्ययिक माख्यायते । तद्यथा । यइमे भवंत्यारण्यकाअरण्यवासिनआवसथिकाउटजवासिनोग्रा मांतिकाग्रामादिकमुपजीवंतोग्रामस्यांते समीपे वसंतीति (कण्हुई) क्वचित्कार्ये मंडल प्रवेशादिके रहस्यं येषां ते क्वचिद्राहसिकास्तेच न बहुसंयतान सर्वसावद्यनिवृत्ताश्च प्राय इत्यर्थः । एतएव न बहुविरतान सर्वव्रतपालकाः किंतु ? द्रव्यतः कतिपयव्रताभावतः स म्यक्त्वाभावात् । एतदेवाह । (सबपाणेत्ति) तेआरण्यकादयः सर्वप्राणिभूतजीवसत्वेभ्य आत्मना स्वतोविरताः सत्यामृषाभूतानि वाक्यान्येवं वक्ष्यमाणनीत्या वियुंजंति विशेषे ण प्रयुंजंति कथयंतीत्यर्थः । तद्यथाहं ब्राह्मणत्वाद्दंडादिभिर्न हंतव्योऽन्येशूद्रत्वाद्धंतव्याः । तथा च तद्वाक्यं शूद्रं व्यापाद्य प्राणायामं जपेत् । तथा क्षुद्रसत्वानामनस्थिकानां शकटभा रमपि व्यापाद्य ब्राह्मणं भोजयेदित्यादि । तथाहं न आज्ञापयितव्योऽन्येतु मत्तोऽधमाः स मापयितव्याः । नाहं परितापयितव्योऽन्ये परितापयितव्याः । अहं मूल्येन कर्मकरणा य न ग्राह्योऽन्ये ग्राह्याः । नाहमपद्रावयितव्योजीवितादपरोपयितव्योऽन्येत्वपद्रावयित व्याः । तदेवं तेषां परपीडोपदेशान्न प्राणातिपातविरतिव्रतमस्ति । उपलक्षणान्मृषावा दादत्तादानविरतिव्रताभावोपि ज्ञेयः । तुर्यव्रतमाश्रित्याह । (एवमेवत्ति) एवं पूर्वोक्त प्रकारेण स्त्रीषु कामेषु च मूर्छितागृद्धाग्रथिताअध्युपपन्नाः । कियंतं कालमासक्ताइत्याह । (जाववासाइत्ति) यावद्वर्षाणि चतुःपंचषड्दशकानि । अयं च मध्यमः कालः । एताव त्कालग्रहणं च साभिप्रायं । प्रायस्तीर्थिकाअतिक्रांतवयसएव व्रजंति तेषां च एतावानेव कालः संभाव्यते । यदिवा मध्यग्रहणात्तत्ऊर्ध्वमधश्च गृह्यतइत्याह । तस्माच्च उपात्ता त्कालादल्पतरः प्रभूततरोवापि कालः स्यात् । तत्रच ते त्यक्त्वापि गृहवासं भुक्त्वापि भो गान् स्त्रीभोगान् स्त्रीभोगे सत्यवश्यं शब्दादयोभोगभोगास्तान् भुक्त्वा ते हि वयं प्रव्रजिता इति नच भोगेभ्योनिवृत्ताअज्ञानित्वात्ते एवंभूतपरिणामाः कालमासे स्वायुःक्षये कालं कृत्वा विकृष्टतपसोपि आसुरिकेषु किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पादयितारोभवंति । तस्मादपि स्थानाद्विप्रमुच्यमानाश्च्युताएडमूकत्वेनोत्पद्यंते । यथा एडकोव्यक्तवाक् तथायमपि । (त मूयत्ताएत्ति) तमस्त्वेन जात्यंधतयाऽत्यंताज्ञानावृततया वा जातिमूकत्वेनापगतवा

र्शने । एतान्यनर्थदंडादीनि लोनप्रत्ययिकक्रियास्थानपर्यवसानानि द्वादश क्रियास्था नानि । कर्मग्रंथिद्रावणाद्भवः संयमः सविद्यते यस्यासौ द्रविकोमुक्तिगमनयोग्यतया वा द्रव्यनूतः श्रमणः साधुः । तमेव विशिनष्टि । मावधीरित्येवं प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनस्तेनैवंत गुणविशिष्टेनैतानि सम्यग्यथावस्थितवस्तुस्वरूपनिरूपणतोमिथ्यादर्शनाश्रितानि संसारका रणानीति कृत्वा ज्ञपरिज्ञया ज्ञातव्यानि प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहर्तव्यानि नवंतीति ॥ १२॥

अहावरे तेरसमे किरियाठाणे इरियावहिएत्ति आहिज्जइ इह खलु अ त्तत्ताए संवुमस्स अणगारस्स इरियासमियस्स नासासमियस्स एस णासमियस्स आयाणनंमत्तणिरकेवणासमियस्स उच्चारपासवणखे लसिंघाण जल्लपारिठावणियासमियस्स मणसमियस्स वयसमिय स्स कायसमियस्स मणगुत्तस्स वयगुत्तस्स कायगुत्तस्स गुत्तिंदियस्स गुत्तबंनयारिस्स आउत्तंगछमाणस्स आउत्तंचिठमाणस्स आउत्तंणि सियमाणस्स आउत्तंतुयट्टमाणस्स आउत्तंनुंजमाणस्स आउत्तंनास माणस्स आउत्तंवत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं गिण्हमाणस्सवा णि क्खिवमाणस्सवा जाव चरकुपम्हणिवायमवि अत्थिविमाया सुहुमा किरि या इरियावहिया नाम कज्जइ सापढमसमए बद्धा पुठा वितीयसमए वेइया तइयसमए णिज्जिता सावद्धा पुठा उदीरिया वेइया णिज्जित्ता से यं काले अकम्मयावि नवंति एवं खलु तस्स तप्पतियं सावज्जंति आहि ज्जइ तेरसमे किरियाठाणे इरियावहिएति आहिज्जइ ॥ से बेमि जेयअ अतीता जेयपडुपन्ना जेयआगमिस्सा अरिहंता नगवंता सवेते एया इं चेव तेरसकिरियाठाणाइं नासिंसुवा नासेंतिवा नासिस्संतिवा पन्न विंसुवा पन्नविंतिवा पन्नविस्सिंवा एवंचेव तेरसमं किरियाठाणं सेविंसु वा सेवंतिवा सेविस्संतिवा ॥ १३ ॥

अर्थ—हवे अपर तेरमो क्रिया स्थानक इरिया पथिक नामे कहिए बैए (इहखलुअ त्तत्ताए के०) निश्चे आ जगत्मांहे आत्म नाव पामवाने अर्थे (संवुमस्स के०) मन, वचन, अने कायायें करी संवृत एटले संवर सहित एवा (अणगारस्स के०) साधुने इरियावहि क्रिया कहियें. ते साधुना गुण कहेछे. ईर्यासमितिए समितो, नाषासमिति ए समितो, एषणासमितिए समितो, आदान नांरू मात्रा निक्षेपण समितिए समि

स्सयमित्यादि । स्त्रीसंगासक्तस्यावश्यंभाविनी शब्दादिविषयासक्तिरित्यतः स्त्रीकामग्रहणं। तत्र चासक्तायावंतं कालमासते तत्सूत्रेणैव दर्शयति । याव द्वर्षाणि चतुःपंचषड्दशकानि । अयंच मध्यमकालोगृहीतः । एतावत्कालोपादानं च साभिप्रायं प्रायस्तीर्थिकाअतिक्रांतवयसएव प्रव्रजंति तेषां चैतावानेव कालः संभाव्यते । यदिवा मध्यग्रहणात्ततऊर्ध्वमधश्च गृह्यते इति दर्शयति । तस्माच्चोपात्तादल्पतरः प्रभूततरोवापि कालोभवति । तत्रच ते त्यक्त्वापि गृहवासं भुक्त्वा भोगभोगान् इति स्त्रीभोगे सति अवश्यं शब्दादयोभोगाः भोगभोगास्तान्भुक्त्वा तेच किल वयं प्रव्रजिताइति नच भोगेभ्योविनिवृत्ताः । यतोमिथ्यादृष्टितया ज्ञानांधत्वात्सम्यग्विरतिपरिणामरहितास्तेचैवंभूतपरिणामाः स्वायुषः कालमासे कालं कृत्वा निकृष्टतपसोपि संतोऽन्यतरेष्वासुरिकेषु किल्बिषिकेषु स्थानेपूत्पादयितारोभवंति । ते ह्यज्ञानतपसा मृताअपि किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पत्स्यंते तस्मादपि स्थानादायुषः क्षयाद्विप्रमुच्यमानाश्च्युताः किल्बिषिकबहुलास्तत्कर्मशेषेणैलवन्मूकाएलमूकास्तद्भावेनोत्पद्यंते । किल्बिषिकस्थानाच्च्युतः सन्ननंतरभवे वा मानुषत्वमवाप्य यथैलमूकोऽव्यक्तवाक् समुत्पद्यतइति । तथा (तममूयत्ताये त्ति) तमस्त्वेन जात्यंधतया अत्यंताऽज्ञानावृततया वा तथा जातिमूकत्वेनापगतवाचइह प्रत्यागच्छंतीति । तदेवंभूतं खलु तेषां तीर्थिकानां परमार्थतः सावद्यानुष्ठानादनिवृत्तानामाधाकर्मादिप्रवृत्तेस्तत्प्रायोग्यभोगभाजां तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । तदेतद्भोभप्रत्ययिकं द्वादशं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

इच्चेयाइं डुवालस किरियाठाणाइं दविएणं समणेणवा माहणेणवा सम्मं सुपरिजाणिअव्वाइं भवंति ॥ २२ ॥

अर्थ—एरीते ए बारे क्रिया स्थानक तेने (दविएणं के०) मुक्ति गमन योग्य एवा जे श्रमण तथा ब्राह्मणो होय तेणे (सम्मंसुपरिजाणिअव्वाइंभवंति के०) सम्यक् प्रकारे संसारना कारण जाणीने. प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरवा ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—उपसंहारमाह । (इच्चेइत्यादि) इत्येतान्यनर्थदंडादीनि द्वादश क्रियास्थानानि कर्मग्रंथिद्रावणाद्द्रवः संयमः सविद्यते यस्यासौ द्रविकस्तेन श्रमणेन साधुना मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य समाहनस्तेन सम्यक् सुपरिज्ञातव्यानि संसारकारणानीति ज्ञात्वा, परिहर्तव्यानि भवंति ॥ २२ ॥

॥ टीका—सांप्रतमेतेषां द्वादशानामप्युपसंहारार्थमाह । (इच्चेयाइत्यादि) इतिरूपप्रद

ए तेर जे क्रियाना स्थानक ने ते मात्र एक श्रीवर्द्धमान स्वामियेंज नथी कह्या. किंतु? अन्य बीजा पण सर्वे तीर्थंकरें कह्याछे. एवो नाव देखाडेछे. (सेवेमि के०) श्री सुधर्मस्वामि जंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे के, में श्री महावीर पासेंथी सांजल्याछे जे पूर्वोक्त अर्थ, ते तुजने कह्या. ते अर्थ (जेयअतीता के०) अतीतकालें जे तीर्थंकर थया (जेयपडुपन्ना के०) तथा जे तीर्थंकर हमणा वर्त्तमान कालेंछे, वली (जेआगमिस्सा के०) जे आगमिककालें तीर्थंकर थशे, (अरिहंता के०) ते श्री अरिहंत पूजा सत्कार करवा योग्य, (जगवंता के०) ऐश्वर्यादिकगुण युक्त, (सवेतेएयाइंचेव के०) ते सर्वे तीर्थंकरें निश्चे थकी, ए (तेरसकिरियाठाणाइं के०) तेर क्रियाना स्थानक जेछे ते अतीतकालें नांख्या, वर्त्तमान काले नांखेछे,अने आगमिक काले नांखशे. विशेषे प्ररूप्या. विशेषें प्ररूपेछे, अने विशेषें प्ररूपशे. एम निश्चें ए तेरमो क्रिया स्थानक अतीतकालें सेव्यो. वर्त्तमान कालें सेवेछे, अने आगमिक कालें सेवशे. जेम जंबूद्दीपने विषे बे सूर्य सरखो प्रकाश करेछे, तथा जेम प्रदीप सरखुं अजवालुं करेछे, तेम तीर्थंकर पण त्रणेकालें वर्त्तमान छता, सरखो उपदेश आपेछे. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–अथापरं त्रयोदशं क्रियास्थानमीर्यापथिकं नाम आख्यायते । ईरणं ईर्या तस्यास्तया वा पंथाईर्यापथः सविद्यते यस्य तदीर्यापथिकं । एतच्च शब्दव्युत्पत्तिनिमित्तं । प्रवृत्तिनिमित्तंतु इदं । सर्वत्रोपयुक्तस्य निकषायस्य समीक्षितमनोवाक्कायक्रियस्य या क्रिया तया यत्कर्म तदीर्यापथिकं सैव वा क्रिया ईर्यापथिका । तस्याः स्वरूपमाह । (इहखलु इत्यादि) आत्मनावार्थं संवृतस्याऽनगारस्य ईर्यादिकाभिः पंचभिः समितिभिर्मनोवाक्कायैः समितस्य तिसृभिर्गुप्तिभिर्गुप्तस्य गुप्तेंद्रियस्य नवब्रह्मचर्यगुप्तिरक्षितब्रह्मचारिणश्च उपयुक्तं गछतस्तिष्ठतोनिषीदतस्त्वग्वर्तनां कुर्वाणस्य तथा उपयुक्तमेव वस्त्रं पतद्ग्रहं कंबलं पादपुंछनंवा गृह्णतोनिक्षिपतोवा यावच्चक्षुःपक्ष्मनिपातमपि उपयुक्तं कुर्वतः सतोऽस्ति विद्यते विमात्रा विविधा मात्रा सूक्ष्मा क्रिया ईर्यापथिकानाम केवलिनापि क्रियते । यतः सयोगी जीवः क्षणमप्येकं निश्चलः स्थातुं नशक्तोऽतिवह्निताप्यमानजलवत्कार्मणशरीरानुगतः सदा परिवर्तमानएवास्ते । ततः केवलिनोपि सूक्ष्मगात्रसंचाराः स्युस्तैश्च कर्म बध्यते तदीर्यापथिकं तस्य याऽवस्था सा क्रिया । (सापढमेति) निकषायिणा यत्कर्म बध्यते तत्प्रथमसमये बद्धं स्पृष्टं चेति तत्क्रियैव बद्धस्पृष्टेत्युक्ता । द्वितीयसमये वेदिताऽनुनूता तृतीयसमये निर्जीर्णा । केवलयोगनिमित्तं यत्कर्म बध्यते तस्य न सांपरायिकस्येव स्थितिः किंतु प्रकृतितः सातावेदनीयं तत् १ स्थितितोद्विसमयास्थितिकं २ अनुनावतः शुनानुनावमनुत्तरसुरसुखातिशायि ३ प्रदेशतो बहुप्रदेशमस्थि

तो, उच्चार एटले वडीनीत, अने पासवण एटले लघुनीत, खेलसिंघाणजल्ल एटले थूंक, बडखो, नाकनो मेल, श्लेष्म, शरीरनो मेल, तेने पारिष्ठापन एटले परठववा रू प समितिए समितो, (मणसमियस्स के०) मनसमितवंत, (वयसमियस्स के०) वचनसमितवंत, (कायसमियस्स के०) कायसमितवंत, (मणगुत्तस्स के०) मनगुप्तें गुप्तो, (वयगुत्तस्स के०) वचनगुप्तें गुप्तो, (कायगुत्तस्स के०) कायगुप्तें गुप्तो, (गुत्तिंदियस्स के०) गुप्तेंद्रिय एटले इंद्रियोनो गोपवनार, (गुत्तबंनयारिस्स के०) गुप्त ब्रह्मचारी, एटले नववाडे विशुद्ध, ब्रह्मचर्यनो पालनार, (आउत्तंगछ माणस्स के०) उपयोग सहित सावधान पणे चालनार, (आउत्तंचिठमाणस्सके०) सावधान पणे उनो रहेनार, (आउत्तंणिसियमाणस्स के०) सावधान पणे बेसनार, (आ उत्तंतुयट्टमाणस्स के०) सावधान पणे शयन करनार, (आउत्तंभुजमाणस्स के०) सावधान पणे नोजन करनार, (आउत्तंनासमाणस्स के०) सावधान पणे बोलनार, (आउत्तंवत्थंपडिग्गहंकंबलंपायपुंछणंगिह्हमाणस्सवा के०) सावधान पणे वस्त्र, पात्र, कांबल, पायपुंछणने लेतो, तथा (णिक्खिवमाणस्सवा के०) निक्षेप एटले तेने सा वधान पणे मूकतो, तथा (जावचक्खूपम्हणिवायमवि के०) किंबहुना यावत् चक्षु नी पांपण एटले मिषोन्मिष मात्र, ते पण उपयुक्त पणे करतो, एवो जे साधु तेने एछे. (सुहुमाकिरियाइरियावहियानामकज्जइ के०) सूक्ष्मकिरिया इरियावहि नामे छे, पर तु ते क्रिया केवी छे, तोके (अविविमायाके०) विविध प्रकारें जेनी मात्राछे एवी क्रियाछे ते लागे, ए क्रिया केवलीने पण लागे, कारणके केवली पण सयोगीछे ते सयोगी जीव तो एक क्षणवार पण अग्निना ताप मांहे पाणीनी पेरें निश्चल रही शके नही, ते कारणे इरियावहि क्रिया लागे. (साके०) ते क्रिया कषाय विना (पढमसमए के०) पहेला समयने विषे (बद्धा के०) बंधाय. (पुट्ठा के०) फरशे, तथा (बितीयसमएवेइया के०) बीजा समयने विषे वेदाय एटले एनुं वेदवुं थाय, अने (तइयंसमएणिज्जिना के०) त्रीजा समयने विषे निर्जराय एटले एनुं निर्जरवुं थाय, ते कहे छे. (साबद्धा पुट्ठाउदीरियावेइयाणिज्जिना के०) ते क्रिया बंधाए, फरशाए, उदिराए, वेदाय, अने नि र्जराए, जे कारण माटे कर्मबंधनी स्थिति कषायितछे ते इरियावहिना धणी होय तेने ते नथी. केमके, कषाय वालाने सांपरायिक कर्म बंधायछे. परंतु ते कषाय, इरियावहिवाला ने नथी ए कारणे ते इरियावहि क्रिया (सेयंकाले के०) ते आगमिककालें त्रीजा स मयने विषे (अकम्मयाविभवंति के०) अकर्मता पणें होय, एटले कर्म रहितपणे होय. तेथी वीतरागनेज इरियावहि क्रिया लागे. एरीतें निश्चें तेहने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमि त्तें सावद्य कर्म बंधाय. ए तेरमो क्रिया स्थानक इरियावहि एवे नामे कह्यो. ॥ १३ ॥

स्पृष्टेत्युक्ता तथा द्वितीयसमये वेदितेत्यनुभूततृतीयसमयेऽतिजीर्णा । एतदुक्तं भवति। कर्मयोगनिमित्तं बध्यते तत्स्थितिश्च कपायायत्ता तदभावाच्च न तस्य सांपरायिकस्येव स्थितिः किंतु योगसद्भावाद्बध्यमानमेव स्पृष्टतां संश्लेषं याति । द्वितीयसमये त्वनुभूय ते तच्च प्रकृतितः सातावेदनीयं स्थितितो द्विसमयस्थितिकमनुभावतः शुभानुभावं अनुत्तरोपपातिकदेवसुखातिशायि देशतोबहुप्रदेशमस्थिरबंधं बहुव्ययंच । तदेवं सेर्यापथिका क्रिया प्रथमसमये बद्धस्पृष्टा द्वितीयसमये उदिता वेदिताऽतिजीर्णा भवति (सेयंकालेत्ति) आगामिनि तृतीयसमये तत्कर्मापेक्षया कर्मतापि च भवति । एवं ताव द्वीतरागस्येर्याप्रत्ययिकं कर्माधीयते संबध्यते । तदेतत्त्रयोदशं क्रियास्थानं व्याख्यातं। ये पुनस्तेभ्योऽन्ये प्राणिनस्तेषां सांपरायिकोबंधस्तेतु यानि प्रागुक्तानीर्यापथवर्ज्यानि द्वादश क्रियास्थानानि तेषु वर्तंते तेपां तद्वर्तिनामसुमतां मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगनिमित्तः सांपरायिकोबंधोभवति । तत्रच प्रमादस्तत्र कषायायोगाश्च नियमाद्भवंति । कषायिणश्च योगायोगिनस्त्वेते भाज्याः । तत्र प्रमादकषायप्रत्ययिकोबंधोऽनेकप्रकारा स्थितिः । तद्रहितस्तु केवलयोगप्रत्ययिकोद्विसमयस्थितिरेवेर्याप्रत्ययिकइति स्थितं॥ २३ ॥ एतानि त्रयोदश क्रियास्थानानि भगवद्वर्धमानस्वामिनैवोक्तान्यपि त्वन्यैरपीत्येतद्दर्शयितुमाह । (सेबेमीत्यादि) सोहं ब्रवीमीति यत्प्रागुक्तं तद्वा ब्रवीमीति। तद्यथा । ये तेऽतिक्रांताऋषभादयस्तीर्थकृतोयेच वर्तमानाः क्षेत्रांतरे सीमंधरस्वामिप्रभृतयोयें चागामिनः पद्मनाभादयोऽर्हंतोभगवंतः सर्वेंपि ते पूर्वोक्तान्येतानि त्रयोदश क्रियास्थानान्यभाषंतभाषंते भाषिष्यंतेच । तथा तत्स्वरूपतस्तद्विपाकतश्च प्ररूपितवंतः प्ररूपयंति प्ररूपयिष्यंतिच। तथैतदेव त्रयोदशं क्रियास्थानं सेवितवंतः सेवंते सेविष्यंतेच। तथाहि जंबूद्वीपे सूर्यद्वयं तुल्यप्रकाशं भवति । यथा वा सदृशोपकरणाः प्रदीपास्तुल्यप्रकाशाभवंत्येवं तीर्थंकृतोपि निरावरणत्वात् कालत्रयवर्तिनोपि तुल्योपदेशाभवंति॥ २४

अउत्तरंचणं पुरिसविजयं विभंगमाइक्खिस्सामि इह खलु णाणापण्णाणं णाणाछंदाणं णाणासीलाणं णाणादिट्ठीणं णाणारूईणं णाणारंभाणं णाणाभवसाणं संजुत्ताणं णाणाविहपावसुयाज्झयणं एवं भवइ॥२५॥ तंजहा भोमं उप्पायं सुविणं अंतलिक्खं अंगं सरं लक्खणं वंजणं इत्थिलक्खणं पुरिसलक्खणं हयलक्खणं गयलक्खणं गोणलक्खणं मिंढलक्खणं कुक्कडलक्खणं तित्तिरलक्खणं वट्टगलक्खणं लावयलक्खणं चक्कलक्खणं छत्तलक्खणं चम्मलक्खणं दंडलक्खणं असिलक्खणं म

बंधं बहुव्ययंच ४ । तदेवं सारक्रिया प्रथमसमये बद्धस्पृष्टा द्वितीयसमये उदिता निर्जीर्णा स्यात् । (सेयंकालेत्ति) एष्यत्काले आगामिनि तृतीयसमये तत्कर्मापेक्षया कर्मतापि नवति । एवं खलु तस्य वीतरागस्य तत्प्रत्ययिकमीर्याप्रत्ययिकं कर्माधीयते बध्यते । एतत्रयोदशं क्रियास्थानमाख्यातं । ये पुनस्तस्मादन्ये प्राणिनस्तेषां मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगनिमित्तः सांपरायिकोबंधः स्यात् । केवलयोगनिमित्तस्तु वीतरागस्यैव । सच द्विसमयस्थितिकइति ॥ २३ ॥ सोहं ब्रवीमि येऽतीतायेच प्रत्युत्पन्नाये चागामिनोर्हंतो नगवंतः सर्वे ते एतान्येव त्रयोदश क्रियास्थानानि अनाषिषुर्नाषंते नाषिष्यंतेच विपाकतः प्रज्ञापितवंतः प्रज्ञापयंति प्रज्ञापयिष्यंतिच । तथैतदेव त्रयोदशं क्रियास्थानं सेवितवंतः सेवंति सेविष्यंते च ॥ २४ ॥

॥ टीका—अथापरं त्रयोदशं क्रियास्थानमीर्यापथिकं नामाख्यायते । ईरणमीर्या तस्यास्तया वा पंथाईर्यापथस्तत्र नवमीर्यापथिकमेतच्च शब्दव्युत्पत्तिनिमित्तं । प्रवृत्तिनिमित्तं त्विदं सर्वत्रोपयुक्तस्य निकषायस्य समीक्षितमनोवाक्कायक्रियस्य या क्रिया तया यत्कर्म तदीर्यापथिकं सैव वा क्रिया ईर्यापथिकेत्युच्यते । सा कस्य नवति किंनूता वा कीदृक्कर्मफलावा इत्येतद्दर्शयितुमाह । (इहखलुइत्यादि) इह जगति प्रवचने संयमेवा वर्तमानस्य । खलुशब्दोऽवधारणेऽलंकारेवा । आत्मनोनावआत्मत्वं तदर्थमात्मत्वार्थं संवृतस्य मनोवाक्कायैः परमार्थतएवंनूतस्यैवात्मनावोऽपरस्य त्वसंवृतस्यात्मतत्त्वमेव नास्ति सद्भूतात्मकार्यकारणात् । तदेवमात्मार्थं संवृतस्यानगारस्येर्यापथिकादिनिः पंचन्निः समितिन्निर्मनोवाक्कायैः समितस्य तथा तिसृन्निर्गुप्तस्य । पुनर्गुप्तिग्रहणमेतान्निरेव गुप्तिन्निर्गुप्तोनवतीत्यस्यार्थस्याविर्नावनायात्यादरख्यापनार्थं वेति । तथा गुप्तेंद्रियस्य नवब्रह्मचर्यगुप्त्युपेतब्रह्मचारिणश्च सततस्तथोपयुक्तं गच्छतस्तिष्ठतोनिषीदतोमुनेस्त्वक्वर्तनां कुर्वाणस्य तथोपयुक्तमेव वस्त्रं पतद्ग्रहं कंबलंवा पादपुंछनकं वा गृह्णतोनिक्षिपतोवा यावच्चक्षुः पक्ष्मनिपातमप्युपयुक्तं कुर्वतः सतोऽत्यंतमुपयुक्तस्याप्यस्ति विद्यते विविधा मात्रा विमात्रा तदेवंविधा सूक्ष्माक्षिपक्ष्मसंचलनरूपादिकेर्यापथिकानाम क्रिया केवलिनापि क्रियते । तथाहि । सयोगी जीवोन शक्नोति क्षणमप्येकं निश्चलः स्थातुमग्निना ताप्यमानोदकवत्कार्मणशरीरानुगतः सदा परिवर्तयन्नेवास्ते । तथा चोक्तं । केवलीणं नंते अस्सिसमयं सिजेसु आगासयएसेसु इत्यादि । तदेवं केवलिनोपि सूक्ष्मगात्रसंचारान्नवंतीहच कारणे कार्योपचारात्तया क्रियया यद्बध्यते कर्म तस्य कर्मणो याअवस्थास्ताः क्रियाः । ताएव दर्शयितुमाह । (सापढमसमयेइत्यादि) यासावकाषिणः क्रिया तया यद्बध्यते कर्म तत्प्रथमसमयएव बद्धं स्पृष्टंचेति कृत्वा तत्क्रियैव बद्ध

कह्याछे, तथा (उप्पायं के०) उत्पातिक, कपिहसितादिक, तथा आकाश थकी रुधिरवृष्ट्यादिक (सुविणं के०) स्वप्नते रात्रीने विषे गजवृषनादिक दर्शन, (अंतलिरकं के०) उल्कापात मेघ वृष्ट्यादिक तथा (अंग के०) अंग नेत्र बाहु स्फुरणादिक, (सरं के०) काकशिवादिक स्वर विचारणा, (लरकणं के०) पद्म, यव, शंख, चक्रादिक लक्षण, (वंजणं के०) मस तिलकादिक, (इत्थिलरकणंपुरिसलरकणं के०) स्त्रीलक्षण, तथा पुरुषना लक्षण, ते सामुद्रिकादिक प्रसिद्धछे. (हयलरकणं के०) घोडाना लक्षण, (गयलरकणंके०) हाथीना लक्षण, (गोणलरकणं के०) गौ वृषभना लक्षण, (मिंढलरकणं के०) मिंढाना लक्षण, (कुक्कडलरकणंके०) कुकडाना लक्षण, (तित्तिरलरकणं के०) तित्तिरपक्षीना लक्षण, (वट्टगलरकणं के०) वर्तकना लक्षण, (लावयलरकणं के०) लावकना लक्षण, (चक्कलरकणं के०) चक्रना लक्षण, (छत्तलरकणंके०) छत्रना लक्षण, (चम्मलरकणं के०) चर्मना लक्षण, (दंमलरकणं के०) दंमना लक्षण (असिलरकणं के०) खड्गना लक्षण, (मणिलरकणं के०) मणि चंद्र सूर्यकांतादिकना लक्षण, (कागिणिलरकणं के०) कागिणिना लक्षण, एवीरीते एना प्ररूपक शास्त्र जाणवां. ॥ २६ ॥ हवे मंत्रविद्या कहेछे. (सुभगाकरं के०) जे थकी दुर्भाग्य वंत प्राणी सौभाग्य वंत थाय. (दुब्भगाकरं के०) जेथकी सौभाग्य वंत प्राणी दौर्भाग्यवंत थाय. (गब्भाकरं के०) जे विद्याने बले गर्भाधान ऊपजे तेवी विद्या, (मोहणकरं के०) लोकने व्यामोह ऊपजे तथा वेदनो उदय दीपे, (आहव्वणिं के०) आथर्वणीविद्या एटले तत्काल अनर्थनी करनारी विद्या, (पागसासणिं के०) इंद्रजाल विद्या, (दव्वहोमं के०) मधु घृतादिक द्रव्य, उच्चाटनादिक कार्य निमित्तें होमीए ते द्रव्यहोम जाणवो (खत्तियविज्जं के०) क्षत्रीनी धनुर्विद्यादिक विद्या, (चंदचरियं के०) चंद्रमानु चरित्र चंद्रमानोवार जाणे (सूरचरियंके०) सूर्यनु चरित्र सूर्यनो वार जाणे, (सुक्कचरियं के०) शुक्रनुं चरित्र शुक्रनो वार जाणे, (वहस्सइचरियंके०) बृहस्पतिनुं चरित्र बृहस्पतिनो वार जाणे, एवं नवग्रह चरित्र ते ज्योतिष शास्त्र प्रसिद्ध जाणवुं. तथा (उक्कापायं के०) उल्कापात, (दिसादाहं के०) दिग्दाह (मियचक्कं के०) आरण्यक जीव तेनो ग्राम नगरने विषे प्रवेश करतां दर्शनथाय, अथवा शब्द शुभाशुभ चिंतवियें ते मृगचक्र कहिए. (वायसपरिमंमलं के०) काकादिक पक्षीना शब्दादिकनो विचार कहे एवीविद्या (पंसुवुट्ठिं के०) पंसु धूल वृष्टि, (केसवुट्ठिं के०) केश वृष्टि, (मंसवुट्ठिंके०) मांस वृष्टि, (रूहिरवुट्ठिं के०) रुधिरवृष्टि, तेनुं शुभाशुभ फल, जे शास्त्रने विषे चिंतवियें. ते शास्त्रो (वेतालिं के०) वेतालि नामे विद्या केटला एक अक्षर प्रमाणछे ते केटला एक दिवस जपतां अचेतन काष्ठ माहें चेतन ऊगडे (अद्धवेतालिं के०) ते दंमने उपशमावे,

णिलरकणं कागिणिलरकणं ॥ २६ ॥ सुभगाकरं डुब्भगाकरं गप्नाकरं मोहणकरं आहव्वाणिं पागसासणिं दव्वहोमं खत्तियविज्जं चंदचरियं सूरचरियं सुक्कचरियं वहस्सइचरियं उक्कापायं दिसादाहं मियचक्कं वायसपरिमंमलं पंसुवुहिं केसवुहिं मंसवुहिं रूहिरवुहिं वेतालिं अद्धवेतालिं उसोवणिं तालुघाडणिं सोवागिं सोवरिं दामिलिं कालिंगिं गोरिं गंधारि उवतिणिं उप्पयणिं जंभणिं थंभणिं लेसणिं आमयकरणिं विसल्लकरणिं पक्कमणिं अंतद्धाणिं आयमिणिं एवमाइआउ विज्जाउ अन्नस्स हेउं पउंजंति पाणस्स हेउं पउंजंति वत्थस्स हेउं पउंजंति लेणस्स हेउं पउंजंति सयणस्स हेउं पउंजंति अन्नेसिंवा विरूवरूवाणं कामभोगाण हेउं पउंजंति तिरिछं तेविज्जं सेवेंति ते अणारिया विप्पडिवन्ना कालमासे कालं किच्चा अन्नयराइं आसुरियाइं क्रिब्बिसियाइं ठाणाइं उववत्तारो भवंति ततोवि विप्पमुच्चमाणा भुज्जोएलमूयताए तमअंधयाए पच्चायंति ॥ २७ ॥

अर्थ—हवे जे कांइ ए तेरमां क्रियास्थानकने विषे पाप न कह्युं, ते कहेछे. (अडुत्तरंच णं के०) जे कांइ तेरमां क्रियास्थानकने विषे नकेवाणुं ते आगले ग्रंथे कहिए छेए (पुरिसविजयंविभंगेमाइक्खिस्सामिके०) हवे पुरुषविचय अथवा पुरुषविजय एटले केटला एक अल्पसत्ववंत पुरुषनो विभंग एटले ज्ञानक्रियाविशेष कहीशुं (इहखलु के०) आ मनुष्यक्षेत्रने विषे निश्चें थकी (णाणापन्नाणं के०) नाना प्रकारनी जेनी प्रज्ञाछे तथा (णाणाछंदाणं के०) नाना प्रकारें जेनो अभिप्रायछे (णाणासीलाणं के०) नाना प्रकारें जेनो आचारछे (णाणादिट्ठीणं के०) नाना प्रकारें जेनी दृष्टीछे एतावता त्रणशेंने त्रेसठ जेनुं प्रमाणछे. तेकारणे नाना दृष्टिना जाणवा (णाणारूईणं के०) आहार, विहार, शयन, आभरण, यान, वाहन, गीत, अने वाजित्रादिकनेविषे जुदी जुदी जेनी रुचिछे. (णाणारंभाणं के०) तथा नाना प्रकारना जेना आरंभ एटले कर्षण, पशुपालन, शिल्पकर्म, इत्यादिक जेने आरंभछे. (णाणाऋवसाणं के०) नाना प्रकारना शुभाशुभ अध्यवसाय तेणेकरी (संजुत्ताणं के०) सहित जे वर्त्तेछे. (णाणाविहपावसुयाज्झयणं के०) तेना ए आगलजे केहेशे ते प्रमाणे, नाना प्रकारें पापश्रुताध्ययन (एवंभवइ के०) एम होय. ॥२५॥ (तंजहा के०) ते कहेछे. (भोमं के०) भूमिनिर्घात एटले भूमिकंपादिक जे ग्रंथ

वाक्यालंकारे। पुरुषाविचीयंते मृग्यंते येन सपुरुषविचयः पुरुषविजयोवा अल्पसत्वानां केषांचित्पुरुषाणां ज्ञानलवेनार्थानुबंधिना विजयस्तस्य विजंगं ज्ञानविशेषं चाख्यास्यामि। यादृशानां चासौ विजंगः स्यात्तानाह। (इहखलुइत्यादि) इह जगति नानाप्रज्ञाविचित्रमतयः पुरुषानानाछंदाविचित्राजिप्रायानानाशीलानानारूपादृष्टिरंतः करणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा तेषांच त्रीणि शतानि त्रिषष्ठ्यधिकानीति प्रमाणं ज्ञेयं। तथा नानारुचीनां नानारंजाणां नानाध्यवसायसंयुतानां इह लोकप्रतिबद्धानां परलोकपराङ्मुखानां तेषां नानाविधं पापश्रुताध्ययनं जवति॥२५॥तद्यथा। जूमौ जवं जौमं निर्घातजूकंपादिकं उत्पातं कपिहसितादि स्वप्नं गजादि, आंतरिक्षं मेघादि, आंगं बाहुनेत्रस्फुरणादि, स्वरलक्षणं काकस्वरादिलक्षणं, मत्स्ययवश्रीवत्सादि व्यंजनं तिलमाषादि स्त्रीलक्षणं रक्तपाणिपादादिकं। एवं पुरुषहयगजगोमिंढकुक्कुटतित्तिरवर्तकलावकचक्रछत्रचर्मदंडासिमणिकाकिणीरत्नलक्षणानि॥ २६ ॥ सुजगमाकरोति सुजगाकाराविद्या, दुर्जगमाकरोति दुर्जगाकारा, गर्जकरा मोहनकरा आथर्वणी अथर्वणाख्या, सद्योऽनर्थकारिणी विद्या पाकशासनी इंद्रजालविद्या कणवीरपुष्पादिनिर्द्रव्यैरुच्चाटनादिकार्यैर्होमोयस्यां सा द्रव्यहोमा, क्षत्रविद्या धनुर्वेदादिका, तामधीत्य प्रयुंजते। ज्योतिषविद्यामाह। (चंदचरियमित्यादि) चंद्रचरित्रं, नक्षत्रयोगराहुग्रहणादिकं सूर्यचरित्रं, तथैव शुक्रबृहस्पतिचरितं उदयास्तवर्षकालादि। उल्कापातदिग्दाहमंडलविचारेण शुजाशुजकारिणोमृगाहरिणशृगालादयआरण्यास्तेषां दर्शनं ग्रामप्रवेशादौ शुजाशुजं यत्र चिंत्यते सग्रंथोपि मृगचक्रं वायसादीनां पक्षिणां स्थानस्वरादिकं शुजाशुजं चिंत्यते तद्वायसपरिमंडलं पांसुकेशमांसरुधिरवृष्टयोऽनिष्टफलायत्र शास्त्रे चिंत्यंते तत्तन्नाम· तथा वैतालीविद्या सा च किल कतिजिर्जपैर्दंडमुछापयति। अर्धवैताली तं दंडमुपशमयति। उपस्वापिनी, तालोद्घाटनी, श्वपाकी, शांबरी, द्राविडी, कालिंगी, गौरी, गांधारी, अवपतनी, उत्पतनी, जृंजणी, स्तंजनी, श्लेषणी, आमयकरणी. विशल्यकरणी, प्रक्रामणी, अंतर्धानकरणी इत्यादिका विद्या अधीयते। आदिशब्दात्प्रज्ञप्त्यादयोग्राह्याः। एताश्च विद्याः पाखंडिकागृहस्थावा स्वयूथ्याद्रव्यलिंगधारिणोवा अन्नपानवस्त्रलयनशयनार्थं प्रयुंजंति अन्येषां वा विरूपरूपाणां विचित्राणां कामजोगानां कृते प्रयुंजंति। सामान्येन विद्यासेवनमनिष्टमित्याह। (तिरिमिति) तिरश्चानामननुकूलां सदनुष्ठानप्रतिघातकारिणीं तेऽनार्याविप्रतिपन्नां विद्यां सेवंते तेच यद्यपि क्षेत्रार्याजापार्यास्तथाप्यनार्यकर्मकारित्वादनार्याएव ज्ञेयाः। तेच कालमासे मरणावसरे कालं कृत्वा यदि कथंचिद्देवलोकगामिनोजवंति ततोन्यतरेषु आसुरीयकेषु किल्बिषिकादिस्थानेषु उत्पत्स्यंते ततोपि विप्रमुक्ताश्च्युतायदि मनुष्येषूत्पद्यंते तदा एडमूकत्वेनाऽव्यक्तजाषित्वेन तमस्त्वेनांधतया मूकतयावा. प्रत्यायांति ततोनरकतिर्यगादिषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥

(उसोवणिंके०) उपस्वापिनी विद्या, (तालुघाडणिंके०) ताला उघाडवानी विद्या; तालो द्घट्टनी (सोवागिं के०) चांमालिणीश्वापकी विद्या, (सोवरिंके०) शांबरी विद्या. (दामिलिंके०) डाविडीविद्या (कालिंगिंके०) कालिंगी विद्या, (गोरिंके०) गोरी विद्या (गंधारिंके०) गांधारी विद्या, (उवतिणिं के०) अवपतनी नीचे पाडवानी विद्या, (उप्पयणिंके०) उत्पतनी एटले उंचे जवानी विद्या. (जंनणिंके०) जूंनणी विद्या, (थंनणिंके०) स्तंजनी विद्या (लेसणिं के०) श्लेषनी विद्या (आमयकरणिं के०) आमय करणी विद्या (विसल्लकरणिं के०) विशल्य करणी विद्या (पक्कमणिं के०) प्रक्रामणी फेर चडावानी विद्या (अंतद्धाणिं के०) अदृश्य करणि विद्या (आयमणिं के०) आत्मणी विद्या, (एवमाइआउविज्जाउ के०) इत्यादिक विद्याउ आदि शब्दथकी प्रज्ञप्त्यादिक विद्याउ लेवी ते विद्याउने जे शास्त्रो थकी जाणीयें. तेवां शास्त्रो नणीने पांखंमी, परदर्शनी अथवा गृहस्थ, अथवा स्वपक्षीक इव्यलिंगी साधु ते ए पूर्वोक्त विद्याउने (अन्नस्सहेउं के०) अन्नने अर्थें (पउंजंति के०) प्रयुंजे (पाणस्सहेउंपउंजंति के०) पाणीने अर्थें प्रयुंजे (वत्थस्सहेउंपउंजंति के०) वस्त्रने अर्थें प्रयुंजे (लेणस्सहेउंपउंजंति के०) उपाश्रयने अर्थें प्रयुंजे (सयणस्सहेउंपउंजंति के०) शयनने अर्थें प्रयुंजे (अन्नेसिंवाविरूवरूवाणंकामनोगाणहेउंपउंजंति के०) अथवा बीजा नाना प्रकारना कामनोगने अर्थें प्रयुंजे ते पुरुष (तिरिच्छं तेविज्जंसेवेंति के०) तिरछि एटले रूडा अनुष्ठाननी हणनारी एवी ते विद्याने सेवे (तेअणारियाविप्पडिवन्ना के०) ते अनार्य जाणवा. यद्यपि क्षेत्रें करी अने नाषायें करी तो आर्यछे तथापि, मिथ्यात्व ना आसेवन थकी, अनार्य कर्मना करनार, अनार्य, अनाचारी, केवाय ते (कालमासे कालंकिच्चा के०) आयुष्यने क्षये कालने अवसरे काल करीने अज्ञान तपने प्रमाणे यद्यपि देवलोकें जाय तथापि ते,(अन्नयराइं आसुरियाइं किव्विसियाइं ठाणाइं उववत्तारो नवंति के०) तेउनुं अनेरा आसुरी किल्विषिकादिक स्थानकोने विषे उपजवुं थाय. (ततोविविप्पमुच्चमाणाके०) त्यां थकी चवीने (नुज्जोके०) वली मनुष्यमां उपजे तो केवा थाय तोके (एल के०) बेरा थाय. (मूयताए के०) मुंगा थाय, (तमअंधयाए के०) आंधला एवा ते जीव थाय. त्यार पछी (पच्चायंति के०) नरक तिर्यचादिक गतिने विषे परिच्रमण करे; अधर्मपक्ष आश्री एटले व्रतधारीने पापनो विपाक कह्यो. हवे गृहस्थ उद्देशिने अधर्म पक्ष कहेछे. ॥ २७ ॥

॥ दीपिका—सांप्रतं त्रयोदशसु क्रियास्थानेषु यन्नोक्तं पापस्थानं तदाह । इदमुत्तरं अस्मात्क्रियास्थानप्रतिपादनादुत्तरं यदत्र नोक्तं तदुत्तरग्रंथेनोच्यते । चसमुच्चये । एं

णायाता तामधीत्य प्रयुंजते। तथा नानाप्रकारं ज्योतिषमधीत्य व्यापारयतीति दर्शयति (चंदचरियमित्यादि) चंद्रस्य ग्रहपतेश्चरितं चंद्रचरितमिति। तच्च वर्णसंस्थानप्रमाण प्रज्ञानक्षत्रयोगराहुग्रहादिकं। सूर्यचरितंत्विदं। सूर्यस्यमंडलपरिमाणराशिपरिभोगोद्यो तावकाशराहूपरागादिकं। तथा शुक्रचारोविथीत्रयचारादिकस्तथा बृहस्पतिः शुभाशुभ फलप्रदः संवत्सरराशिपरिभागादिकश्च तथोल्कापातादिग्दाहाश्च वायव्यादिषु मंडलेषु भवंतः शस्त्राग्निक्षुत्पीडाविधायिनोभवंति। तथा मृगाहरिणशृगालादयश्चारण्यास्तेषां द र्शनरुतं ग्रामनगरप्रवेशादौ सति शुभाशुभं यत्र चिंत्यते तन्मृगचक्रं। तथा वायसादीनां प क्षिणां यत्र स्थानादिकं स्वराश्रयेणाऽशुभफलं चिंत्यते तद्वायसपरिमंडलं। तथा पांसु केशमांसरुधिरादिवृष्टयोऽनिष्टफलदायत्र शास्त्रे चिंत्यंते तत्तदभिधानमेव भवति। त था विद्यानानाप्रकाराः क्षुद्रकर्मकारिण्यस्ताश्चेमाः। वैतालीनामविद्या। नियताक्षरप्रतिब द्धा। साच किल कतिभिर्जपैर्दंडमुत्थापयति तथार्थवैताली तमेवोपशमयति। तथोपस्वा पिनी तालोदघाटनी श्वापाकी शांबरी तथा परिडाविडी कालिंगी गौरी गांधार्यवपतन्युत्पतत नीजृंभणी स्तंभनी श्लेषणी आमयकरणी विशल्यकरणी प्रक्रामण्यंतर्धानकरणीत्येवमादि काविद्याश्चधीयंते। आसां चार्थः संज्ञातोऽवसेयइति न वरं। स्वापिनीडाविडीकालिंग्य स्तद्देशोद्भवास्तद्भापानिबद्धावा चित्रफलाः। अवपतनी तुजपत्स्वतएवपतत्यन्यं वापात यत्येवमुत्पतन्यपि द्रष्टव्या। तदेवमेवमादिकाविद्या। आदिग्रहणात्प्रज्ञप्त्यादयो गृह्यंते। एताश्च विद्याः पापंडिकाअविदितपरमार्थागृहस्थावास्वयूथ्यावाद्रव्यलिंगधारिणोभपा नाद्यर्थं प्रयुंजंति अन्येषां वा विरूपाणामुच्चावचानां शब्दादीनां कामभोगानां कृते प्रयुं जंति। सामान्येन विद्यासेवनमनिष्टकारीति दर्शयितुमाह। (तिरिच्छमित्यादि) तिरश्ची नामनुकूलां सदनुष्ठानप्रतिपादिकां घातिकां ते अनार्यविप्रतिपन्ना विद्यां सेवंते। तेच य द्यपि क्षेत्रार्यभाषार्या स्तथापि मिथ्यात्वहतबुद्धयोऽनार्यकर्मकारित्वादनार्याएव द्रष्टव्या स्तेच स्वायुषःक्षये कालमासे कालंकृत्वा यदि कथंचिद्देवलोकगामिनोभवंति ततोऽन्यतरे षु आसुरीयकेषु किल्बिषिकादिषु स्थानेषूत्पत्स्यंते ततोपि विप्रमुक्ताश्च्युतायदिवा मनुष्ये षूत्पत्स्यंते तत्रच तत्कर्मशेषतयैडमूकेनाव्यक्तभाषिणस्तमस्त्वेनांधतया मूकतया वा प्र त्यागच्छंति ततोपि नानाप्रकारेषु यातनास्थानेषु नरकतिर्यगादिषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥

से एगईउ आयहेउंवा णायहेउंवा सयणहेउंवा आगारहेउंवा परि वारहेउंवा नायगंवा सहवासियंवा णिस्साए अडुवा अणुगामिए अडुवा उवचरए अडुवा पडिपहिए अडुवा संधिछेदए अडुवा गंठिछे दए अडुवा उरब्भिए अडुवा सोवरिए अडुवा वागुरिए अडुवा सोन

॥ टीका–सांप्रतं त्रयोदशसु क्रियास्थानेषु यन्नानिहितं पापस्थानं तद्भिनणिषुराह । (अडुत्तरमित्यादि) अस्मात्रयोदशक्रियास्थानप्रतिपादनाडुत्तरं यत्र न प्रतिपादितं तदधुनोत्तरनूतेनानेन सूत्रसंदर्नेण प्रतिपाद्यते । यथाऽऽचारे प्रथमश्रुतस्कंधे यन्नानिहितं तडुत्तरनूतानिश्चूलिकानिः प्रतिपाद्यते । तथा चिकित्साशास्त्रे मूलसंहितायां श्लोकस्थाननिदानशारीरचिकित्सितकल्पसंज्ञकायां कायं यन्नानिहितं तडुत्तरेऽनिधीयते एवमन्यत्रापि बंदःस्वित्यादावुत्तरसद्भावोऽवगंतव्यः । तदिहापि पूर्वेण यन्नानिहितं तदनेनोत्तरग्रंथेन प्रतिपाद्यतइति । च समुच्चये । णमितिवाक्यालंकारे । पुरुषाविचीयंते मृग्यंते विज्ञान द्वारेणान्वेष्यंते येन सपुरुषविचयः पुरुषविजयोवा केषांचिदल्पसत्वानां तेन ज्ञानबलेनावधिप्रयुक्तेनानर्थानुबंधेनाविजयादिति । सच विनंगवदवधिविपर्ययवद्भिनंगोज्ञानविशेषः पुरुषविचयश्चासौ विनंगश्च पुरुषविचयविनंगस्तमेवंनूतं ज्ञानविशेषमाख्यास्यामि प्रतिपादयिष्यामि । यादृशानां चासौ नवति तांल्लेशतः प्रतिपादयितुमाह । (इह खलुइत्यादि) इह जगति मनुष्यक्षेत्रे प्रवचने वा नानाप्रकाराविचित्रक्षयोपशमात् प्रज्ञायतेऽनयेति प्रज्ञा सा विचित्रा येषां ते नानाप्रज्ञास्तया वाऽल्पाल्पतराल्पतमया चिंत्यमानाः पुरुषाः षट्स्थानपतितानवंति । यथा बंदोऽनिप्रायः सनानायेषां ते तथा तेषां नानाशीलानां तथा नानारूपा दृष्टिरंतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा तेषामिति । तेषांच त्रीणि शतानि षष्ठ्यधिकानि प्रमाणमवगंतव्यं । तथा नाना रुचिर्येषां ते नानारुचयः । तथाहि । आहारविहारशयनासनाबादनानरणयानवाहनगीतवादित्रादिषु मध्ये ऽन्यस्यान्यारुचिर्नवति तेषां नानारुचीनामिति । तथा नानारंनाणां कृषिपाशुपाल्यविपणिशिल्पिकर्मसेवादिष्वन्यतरमारंनेणेति । तथा नानाध्यवसायसंयुतानां शुनाध्यवसायनाजां इहलोकमात्रप्रतिबद्धानां परलोकनिष्पिपासानां विषयतृषितानामिदं नानाविधं पापश्रुताध्ययनं नवति ॥२५॥ तद्यथा नूमौ नवं निर्घातनूकंपादिकं, तथोत्पातं कपिहसितादिकं, तथा स्वप्नं गजवृषनसिंहादिकं, तथांऽतरिक्षं मेघादिकं, तथांगे नवमांगं अक्षिबाहुस्फुरणादिकं, तथा स्वरलक्षणं काकस्वरगंनीरस्वरादिकं तथा लक्षणं यवमत्स्यपद्मशंखचक्रश्रीवत्सादिकं व्यंजनं तिलकमाषादिकं, तथा स्त्रीलक्षणं रक्तकरचरणादिकं, एवंपुरुषादीनां काकिणीरत्नपर्यंतानां लक्षणप्रतिपादकशास्त्रपरिज्ञानमवगंतव्यं ॥२६॥ तथा मंत्रविशेषरूपाविद्याः तद्यथा । डुर्नगमपि सुनगमाकरोमि सुनगकारां, तथा सुनगमपि डुर्नगमाकरोमि डुर्नगकारां, तथा गर्नकरां गर्नाधानविधायिनीं तथा मोहोवेदादयोवा तत्करणशीलामाथर्वणानिधानां सद्योऽनर्थकारिणीं विद्यामन्नीधीयते तथा पाकशासनीमिंद्रजालसंज्ञिकां तथा नानाविधैर्द्रव्यैः कणवीरपुष्पादिनिर्मधुघृतादिनिर्वोच्चटनादिकैः कार्यैर्होमोहवनं यस्यां सा द्रव्यहवना तां तथा क्षत्रियाणां धनुर्वेदादिकापरा वा या स्वगोत्रक्रमे

अथवा श्वभिश्चरति शौवनिकः शुनां पालकइत्यर्थः । अथवा (सोवणियंतएत्ति) श्वभिः पापर्द्धिंकुर्वन्मृगादीनामंतं करोतीत्यर्थः ॥ २७ ॥

॥ टीका–सांप्रतं गृहस्थानुद्दिश्याधर्मपक्षसेवनमुच्यते । (सेएगइउइत्यादि) सएकः कदाचिन्निस्त्रिंशः सांप्रत्यापेक्ष्यपगतपरलोकाध्यवसायः कर्मपरतया भोगलिप्सुः संसारस्वभावानुवर्त्यात्मनिमित्तं चेत्येतान्यनुगामुकान्यकर्तव्यहेतुभूतानि चतुर्दशासदनुष्ठानानि विधत्ते तद्यथा ज्ञातयः स्वजनास्तन्निमित्तं तथाऽगारनिमित्तं गृहसंस्कारणार्थं सामान्येनवा कुटुंबार्थं पारिवारनिमित्तंवा दासीदासकर्मकरादिपरिकरकृते तथा ज्ञातएवज्ञातकः परिचितस्तं समुद्दिश्य तथा सहवासिकंवा प्रातिवेश्मिकंवा निश्रीकल्येतानि वक्ष्यमाणानि कुर्यादिति संबंधः । तानिच दर्शयितुमाह । (अडुवेत्यादि) अथवेत्येवं वक्ष्यमाणावेक्षया पक्षांतरोपलक्षणार्थः । गच्छंतमनुगच्छतीत्यनुगामुकः सचाऽकाचाध्यवसायेन विवक्षितस्यला व्यपेक्षया विरूपकर्तव्यचिकीर्षुस्तं गच्छंतमनुगच्छति । अथवा तस्यापकर्तव्यस्यापकारावसरापेक्ष्युपचारकोभवत्यथवा तस्य प्रातिपथिकोभवति प्रतिमुखं संमुखीनमागच्छत्यथवाऽऽत्मस्वजनार्थं संधिच्छेदकोभवति चौर्यं प्रतिपद्यते अथवौरभ्रैर्मेषैश्चरत्यौरभ्रिकोथवा सौकरिकोभवत्यथवा शकुनिभिः पक्षिभिश्चरतीति शकुनिकोऽथवा वागुरया मृगादिबंधनोज्ज्वा चरति वागुरिकोथवा मत्स्यैश्चरति मात्स्यकोथवा गोपालभावं प्रतिपद्यतेऽथवा गरघातकः स्यादथवा श्वभिश्चरति शौवनिकः शुनां परिपाकोभवतीत्यर्थोऽथवा (सोवणियंति) श्वभिः पापर्द्धिं कुर्वन्मृगादीनामंतं करोतीत्यर्थः ॥ २७ ॥

से एगईउ आणुगामियभावं पडिसंधाय तमेव आणुगामियाणु गामियं हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहारं आहारेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ ॥२९॥ से एगईउ उवचरयं भावं पडिसंधाय तमेव उवचरियं हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहारं आहारेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ ॥३०

अर्थ–हवे ए चौद स्थानकने प्रत्येके प्रथम थकी विवर्णकरीने कहेछे. (सेएगईउ आणुगामियभावपडिसंधाय के०) ते कोइ एक पुरुष आत्माने अर्थे कोइ एक ग्रामांतरे जनारा पुरुषनी पासें द्रव्यछे एवुं जाणीने (तमेवआणुगामियाणुगामियं के०) तेमज तेनी पछवाडे जाय, पछी तेने विश्वास उपजावीने (हंता के०) तेने हणे, छेदे, भेदे, लुंटे, विशेषे लुंटे, (उद्दवइत्ता के०) उपद्रव करे, जीवितव्य थकी विनाश करे, पछी

णिए अहवा मछिए अहवा गोघायए अहवा गोवालए अहवा सोव
णिए अहवा सोवणियंतिए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे गृहस्थ उद्देशीने अधर्म पक्ष कहेछे. (सेएगईउ के०) ते गृहस्थ कोइ एक महा निर्दय परलोक थकी न बिहितो थको, संसारना सुख वांछतो छतो जे कर्कश कर्म करे ते कहेछे. (आयहेउंवा के०) पोताने निमित्तें अथवा (णायहेउंवा के०) ज्ञातिने निमित्तें (सयणहेउंवा के०) स्वजनने निमित्तें (आगारहेउंवा के०) घरने निमित्तें (परिवारहेउंवा के०) परिवारने निमित्तें (नायगंवा के०) परिचित एटले जाणेला पुरुषने निमित्तें (सहवासियंवाणिस्साए के०) सहवासि एटले पाडोशीनी निश्राये, एटलां अकार्य करे, ते कहेछे. (अहुवा के०) अथवा (अणुगामिए कें०) अकार्य करवाने अर्थें बीजो जतो होय तेनी पछवाडे जाय, (अहुवाउवचरए के०) अथवा अकार्य करवाने अर्थें तेने अनेक उपचार करे विश्वासे, (अहुवापडिपहिएके०) अथवा प्रतिपथिक एटले मार्गें जता माणासनी सन्मुख आवे (अहुवासंधिछेदएके०) संधिछेदक, एटले चोरी करे, (अहुवागंठिछेदए के०) अथवा ग्रंथिछेद करे, एटले गंठी छोडो थाय, (अहुवाउरष्भिए के०) अथवा छाली एटले गाडरां चरावे (अहुवासोवरिए के०) अथवा सूवर डुक्कर चरावे (अहुवावागुरिए के०) अथवा वाघरी थाय, एटले मृग मारवानां कर्म करे (अहुवासोउणिए के०) अथवा शकुनी एटले पक्षीउने पाश नाखे, (अहुवामछिए के०) अथवा माछी थाय, (अहुवागोघायए कें०) अथवा गोघातक कसाइ थाय, गायने मारे, अथवा गोधाने नाथे (अहुवागोवालए के०) गोवालिया पणु करे, इत्यादिक नीचकर्म करे, (अहुवासोवणिए के०) कुतरानो राखनार थाय, (अहुवा सोवणियंतिए के०) कुतराये करी शिकार खेले. इत्यादिक बधा मलीने चउद प्रकारें करी अनेक जीवोनो विनाशकरे. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—अथ गृहस्थानुद्दिश्याधर्मसेवामाह । (सेएगईउआयहेउंवा) सएकः कदाचिन्निस्त्रिंशआत्मनिमित्तं ज्ञातिहेतुंवा अगारहेतुं गृहसंस्करणार्थं परिवारहेतुंवा ज्ञातकः परिचितस्तं समुद्दिश्य सहवासिकं प्रातिवेश्मिकं निश्रीकृत्य एतानि कुर्यात् । तान्येवाह । (अहुवेत्ति) अथवेति पक्षांतरापेक्षया । गछंतमनुगछतीत्यनुगामुकः सचाकार्यकरणमनास्तं गछंतमनुगछति । अथवाऽन्यस्य विरूपकरणावसरापेक्षी उपचारकः स्यात् । अथवा उरभ्रेण चरत्यौरभ्रिकः । अथवा सौकरिकः । अथवा शकुनिभिश्चरति शाकुनिकः अथवा वागुरिकः अथवा मात्स्यिकःअथवा गोघातकः अथवा गोपालत्वं श्रयति

र्मभिरनुष्ठानैर्महापातकभूतैर्वा तीव्रानुभावैर्दीर्घस्थितिकैरात्मानमुपाख्यापयिता भवति त थाह्ययमसौ महापापकारीत्येवमात्मानं लोके ख्यापयत्यष्टप्रकारैः कर्मभिरात्मानं तथा बंधयति यथा लोके तद्विपाकापादितेनावस्थाविशेषेण सता नारकतिर्यङ्नरामररूपत या ख्यापयतीति ॥ २९॥ तदेवमेकः कश्चिदकर्तव्याभिसंधिना परस्य स्वापतेयवतस्तद्वंचनार्थमुपचरकभावं प्रतिज्ञाय पश्चात्तं नानाविधैर्विनयोपायैरुपचरति उपचर्य च विश्रंभे पा तयित्वा तद्द्रव्यार्थी तस्य हंता छेत्ता यावदपद्रावयिता भवतीत्येवमसावात्मानं पापैः कर्मभिः ख्यापयतीति ॥ ३० ॥

से एगईउ पाडिपहियभावं पडिसंधाय तमेव पाडिपहेठिच्चा हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहारं आहारेति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता भवइ ॥ ३१ ॥ से एगईउ संधिछेदगभावं पडिसंधाय तमेव संधिं छेत्ता भेत्ता जाव इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता भवइ ॥ ३२ ॥

अर्थ—ते कोइएक पुरुष (पाडिपहियभावंपडिसंधाय के०) धनवंत पुरुष जाणी, मार्गमां सन्मुख आवे, पछी (तमेवपडिपहेठिच्चा के०) तेने तेमज विश्वास उपजावी सन्मुख स्थित रहीने, हणी, छेदी, भेदी, लुंटीने, विशेषें लुंटीने, उपद्रव करे, जीवितव्य थकी विनाश करीने तेनुं धनलेइने अनेक प्रकारना आहार आहारे ते पुरुष महोटा क्रूर पापकर्मना अनुष्ठाने करी पोताना आत्माने दुर्गतिमां पाडे नरकादिक गतिने विषे विख्यात थाय ॥३१॥ कोइएक पुरुष धनवंत पुरुष जाणीने संधिछेदक एटले खातर पाडवानो भाव आदरीने, आजीविकाने अर्थे पारकुं धनलीए, छेदे, भेदे इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं॥३२॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चित्प्रतिपथेनाभिमुखेन चरतीति प्रातिपथिकस्तद्भावं प्रतिपद्य तस्यार्थवतोविश्रंभतोहंतेत्यादि पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ एकः कश्चित्संधिछेदकभावं खात्रखननत्वं प्रतिपद्य ततोसौ संधिं छिंदन् खात्रं खनन् प्राणिनां छेत्तास्यादित्यादि ॥ ३२ ॥

॥ टीका—अथैकः कश्चित्प्रतिपथेनाभिमुखेन चरति प्रातिपथिकस्तद्भावं प्रतिपद्यापरस्यार्थवतस्तदेव प्रतिपथिकत्वं कुर्वन् प्रतिपथे स्थित्वा तस्यार्थवतोविश्रंभतश्छेत्ता यावदपद्रावयिता भवतीत्येवमसावात्मानं पापैः कर्मभिः ख्यापयतीति ॥३१॥ अथैकः कश्चिद्विरूपकर्मणा जीवितार्थी संधिछेदकभावं खात्रखननत्वं प्रतिपद्यानेनोपायेनात्मानमहं कर्तयिष्यामीत्येवं प्रतिज्ञां कृत्वा तमेव प्रतिपद्यते ततोसौ संधिं छिंदन् खात्रं खनन् प्राणिनां

तेनुं धनलइने ते धनेकरी अनेक प्रकारें (आहारंआहारेंति के०) अहार आहारे. (इतिसेमहयापावेहिंकम्मेहिंअत्ताणंउवरकाइत्ताभवइ के०) एवी रीतें ते पुरुष महोटा क्रूर पाप कर्मानुष्ठाने, पोताना आत्माने दुर्गतिमांहे पाडे. नरक तिर्यंचगतिने नामे विख्यात थाय ॥ २९ ॥ ते कोइएक पुरुष धनवंतनी वंचना निमित्तें (उवचरयंभावंपडिसंधाय के०) उपचारक भाव आदरीने तेमज नाना प्रकारना उपाय करी विश्वास उपजावी तेने हणी, छेदी, भेदी, लुंटी, विशेषे लुंटी, उपद्रव करी, जीवितव्यथकी विनाशकरीने तेनु धनलेइने, तेधने करी अनेक प्रकारना आहार आहारे. एरीते ते पुरुष महोटा क्रूर पापानुष्ठाने करीने पोताना आत्माने दुर्गतिमांहे पाडे चतुर्गतिक संसारमांहे परिभ्रमणकरे नरकादि गतिने विषे विख्यात थाय ॥ ३० ॥

॥ दीपिका—एवमेतेषां चतुर्दशकर्तव्यानामुद्देशं कृत्वा तानि प्रत्येकं विवृणोति । तत्रैकः कश्चिदात्माद्यर्थं ग्रामांतरं गछन् पुरुषस्य समीपे किंचिद्द्रव्यं ज्ञात्वा तद्गिधृक्षुस्तस्यानुगामुकभावं प्रतिसंधाय सहगमनेनानुकूल्यं प्रतिपद्य वंचनावसरं समीहमानोगछंतमनुगछति । अवसरं लब्ध्वा तस्य हंता, दंडादिभिश्छेत्ता, खड्गादिना भेत्ता, वज्रमुष्ट्यादिना लुंपयिता, केशाकर्षणादिभिर्विलुंपयिता, कशाप्रहारादिभिः अपद्रावयिता, जीवितविनाशकः स्यात् इत्यादि कृत्वाऽहारमाहारयति इत्येवमसौ महद्भिः पापैः कर्मभिरात्मानमुपख्यापयिता भवति । अयं महापापकारीत्येवं लोके ख्यापयति ॥२९॥ तदेवमेकः कश्चिद्धनवतः कस्यचिदुपचरकभावमाश्रित्य तं विश्वासे पातयित्वा धनादिकृते तस्य हंता छेत्ता इत्यादि । एवमसौ महद्भिः पापैरुपख्यापयिता भवति ॥ ३० ॥

॥ टीका—तदेवमेतानि चतुर्दशाप्युद्दिश्य प्रत्येकमादितःप्रभृति विवृणोति । (सेएगइउइत्यादि) तत्रैकः कश्चिदात्मार्थं अपरस्य गंतुर्ग्रामांतरं किंचिद्द्रव्यजातमवगम्य तदादित्सुस्तस्यैवानुगामुकभावं प्रतिसंधाय सहगंतृभावेनानुकूल्यं प्रतिपद्य विवक्षितवंचनावसरकालाद्यपेक्षी तमेव गछंतमनुव्रजति तमेव चाभ्युत्थानविनयादिभिरत्यंतोपचारैरुपचर्यानुव्रज्य च विवक्षितमवसरं लब्ध्वा, तस्यासौ हंता दंडादिभिस्तथा छेत्ता खड्गादिना हस्तपादादेस्तथा भेत्ता वज्रमुष्ट्यादिना तथा लुंपयिता केशाकर्षणादिकदर्थनतस्तथा विलुंपयिता कशाप्रहारादिभिरत्यंतदुःखोत्पादनेन तथा द्रावयिता जीविताद्व्यपरोपणतोभवतीत्येवमादिकं कृत्वाऽहारमाहारयत्यसौ । एतदुक्तं भवति । गलकर्तकः कश्चिदन्यस्य धनवतोऽनुगामुकभावं प्रतिपद्य तं बहुविधैरुपायैर्विश्रंभे पातयित्वा भोगार्थी मोहांधः सांप्रतेक्षितया तस्य । रिक्थवतोप्रकृत्याहारादिकां भोगक्रियां विधत्ते । इत्येवमसौ महद्भिः क्रूरैः क

॥ दीपिका—अथैकः कश्चित्सौकरिकः श्वपचश्चांडालः खाटिकइत्यर्थः। तद्भावमाश्रित्य महिषं वान्यं त्रसं प्राणिनं हंतीति तस्य हंता छेत्ताइत्यादि ॥३५॥ अथैकः कश्चिद्वागुरिकत्वमाश्रित्य मृगं वाऽन्यं प्राणिनं हंति तस्यच हंता नवति शेषं पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

॥ टीका—अत्रांतरे सौकरिकपदं तच्च स्वबुध्या व्याख्येयं। सौकरिकाः श्वपचाश्चांडालाः खट्टिकाइत्यर्थः ॥३५॥ अथैकः कश्चित्क्रुडसत्वोवागुरिकन्नावं लुब्धकत्वं प्रतिसंधाय प्रतिपद्य वागुरया मृगं हरिणमन्यंवा त्रसं प्राणिनं शशादिकमात्मवृत्यर्थं स्वजनाद्यर्थंवा व्यापादयति तस्यच हंता छेत्ता नवति। शेषं पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

से एगइर्ठ सउणियं नावं पडिसंधाय सउणिंवा अस्रतरंवा तसं पाणं हंता जाव उवस्काइत्ता नवइ ॥३७॥ से एगइर्ठ मिन्नियन्नावं पम्भिसंधाय मछंवा अस्रतरं वा तसं पाणं हंता जाव उवस्काइत्ता नवइ ॥ ३८ ॥

अर्थ—कोइएक पुरुष, शाकुनी एटले पक्षीउनो विनाश करीने, अजीविका करे; एवो थको अनेक पक्षीउने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥ ३७ ॥ कोइएक पुरुष अधमाधम माछी थइने अनेक माछलादिक जलचर जीवोने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु. ॥ ३८ ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चिच्छकुनालावकादयस्तैश्चरति शाकुनिकस्तद्भावमाश्रित्य शकुनमन्यं वा त्रसं हंति तस्य च हननादिकां क्रियां करोतीति ॥ ३७ ॥ अथैकः कश्चिन्मात्स्यिकन्नावमाश्रित्य मत्स्यं वाऽन्यं त्रसं वा जलचरं प्राणिनं हन्यात्। शेषं सुगमं ॥३८॥

॥ टीका—अथैकः कश्चिदधमोपापजीवी शकुनालावकादयस्तैश्चरति शाकुनिकस्तद्भावं प्रतिसंधाय तन्मांसाद्यर्थी शकुनमन्यं वा त्रसं व्यापादयति तस्यच हननादिकां क्रियां करोतीति। शेषं पूर्ववत् ॥३७॥ अथैकः कश्चिदधमाधमोमात्स्यिकन्नावं प्रतिपद्य, मत्स्यं वाऽन्यं जलचरं प्राणिनं व्यापदयेद्धननादिकाः क्रियाः कुर्यात्। शेषं सुगमं ॥ ३८ ॥

से एगईर्ठ गोघायन्नावं पडिसंधाय तमेव गोणवा अस्रयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवस्काइत्ता नवइ ॥३९॥ से एगईर्ठ गोवालन्नावं पडिसंधाय तमेव गोवालंवा परिजविय परिजवियहंता जाव उवस्काइत्ता नवइ॥ ४० ॥

अर्थ—कोइएक अधर्मी पुरुष, क्रूरकर्मनो करनार, गौघातकनो नाव आदरी, गाय, अथवा बीजा त्रस जीवोने छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३९ ॥ कोइएक पुरुष, क्रूर

छेत्ता भेत्ता विलुंपयिता भवतीत्येतच्च कृत्वाऽहारमाहरयतीत्येतच्चोपलक्षणमन्यांश्च काम भोगान् स्वतो भुंक्तेऽन्यदपि ज्ञातिगृहादिकं पालयतीत्येवमसौ महद्भिः पापैः कर्मभिरा त्मानमुपख्यापयति ॥ ३२ ॥

से एगइउ गंठिछेदभावं पडिसंधाय तमेवगंठिं छेत्ता भेत्ता जाव.इति से मह या पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ३३ ॥ से एगइउ उर भियभावं पडिसंधाय उरभंवा अण्णतरं तसं पाणहंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ एसो अभिलावो सवत्थ ॥ ३४ ॥

अर्थ—कोइएक पुरुष गंठी छोडानो भाव आदरीने, घुर्घुरादिक अनेक उपायकरी लोकने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥३३॥ कोइएक पुरुष औरभ्रिकभाव उरभ्र एटले उरणा बकरां तेना मांसादिकें करी आजीविका करे; ते उरभ्रिक उरणा तथा अ न्यत्रस प्राणीने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३४ ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चिद्ग्रंथिछेदकभावं प्रतिपद्य घुर्घुरादिना ग्रंथिछेत्तास्यादित्यादि ॥३३॥ अथैकः कश्चिदधर्मवृत्तिः उरभ्राउरणकास्तैश्चरति औरभ्रिकः। सच तद्गूर्णया तन्मां सादिना वात्मानं वर्तयति सतद्भावं प्रतिपद्य उरभ्रंवाऽन्यंवा त्रसं प्राणिनं स्वपुष्टये हं ति तस्य वा हंता छेत्ता इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३४ ॥

॥ टीका—अथैकः कश्चिदसदनुष्ठायी घुर्घुरादिना ग्रंथिछेदकभावं प्रतिपद्य तमेवानुया ति। शेषं पूर्ववत् ॥ ३३ ॥ अथैकः कश्चिदधर्मकर्मवृत्तिरुरभ्राउरणकास्तैश्चरति यः स औरभ्रिकः सच तद्गूर्णया तन्मांसादिना वात्मानं वर्तयति तदेवमसौ तद्भावं प्रतिपद्योरभ्रं वाऽन्यंवा त्रसं प्राणिनं स्वमांसपुष्ट्यर्थं व्यापादयति तस्य सवा हंता छेत्ता भेत्ता भवतीति शेषंपूर्ववत् ॥ ३४ ॥

से एगईउ सोवरिय भावं पडिसंधाय महिसंवा अण्णतरंवा तसं पाणं जाव उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ३५ ॥ से एगईउ वागुरिवभावं पडिसंधाय मियंवा अण्णतरंवा तसं पाणं हंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ३६ ॥

अर्थ—कोइएक पुरुष सौकरिक एटले खाटकीनो भाव अंगीकार करीने खाटकी थइने अनेक महिषादिक तथा बीजा त्रस जीवोने हणे, छेदे, भेदे, यावत् संसार परिभ्रमण करे इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥३५॥ ते कोइएक पुरुष, पापात्मा वाघरी पणु आदरीने मृ गादिक तथा बीजा त्रस जीवोने हणे छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥ ३६ ॥

॥ टीका–अथैकः कश्चिज्जघन्यकर्मकारी शौवनिकभावं प्रतिपद्य सारमेयपापर्द्धिभावं प्रतिज्ञाय तमेव श्वानं तेन वा परं मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिनं व्यापादयेत्तस्य च हननादिकाः क्रियाः कुर्यादिति ॥ ४१ ॥ अथैकः कश्चिदनार्योनिर्विवेकः (सोवणियंतियं भावंति) श्वभिश्चरति शौवनिकः अंतोस्यास्तीत्यंतिकोंऽतेवा चरत्यंतिकः पर्यंतवासीत्यर्थः । शौवनिकश्चासावंतिकश्च शौवनिकांतिकः क्रूरसारमेयपरिग्रहः प्रत्यंतनिवासीच प्रत्यंतनिवासिभिर्वा श्वभिश्चरतीति तदसौतद्भावं प्रतिसंधाय डुष्टसारमेयपरिग्रहं प्रतिपद्य, मनुष्यं वा कंचनपथिकमभ्यागतमन्यं वा मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिनं हंता भवति । अयं च ताच्छीलिकस्तृन् लुट् प्रत्ययोवा डृष्टव्यः । तृचि तु साध्याहारं प्राग्वद्व्याख्येयं । तद्यथा । पुरुषं व्यापादयेत्तस्य च हंता छेत्ता इत्यादि । तृंनलुट्प्रत्ययौ प्रागपि योजनीयाविति । तदेवमसौ महाक्रूरकर्मकारी महद्भिः कर्मभिरात्मानमुपख्यापयिता भवतीति ॥ ४२ ॥

से एगइउ परिसामज्झाउ उठित्ता अहमेयं हणामित्ति कट्टु तित्तिरंवा वट्टगंवा लावगंवा कवोयगंवा कविंजलंवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता भवइ ॥ ४३ ॥ से एगइउ केणइ आयाणेणं विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडुवा सुराथालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणंवा सयमेव अगणिकाएणं सस्साइं झामेइ अन्नेणवि अगणिकाएणं सस्साइं झामावेइ अगणिकाएणं सस्साइं झामंतंपि अन्नं समणुजाणइ इति से महया पावकम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता भवइ ॥ ४४ ॥

अर्थ–हवे कांहिं एक पापनुं विशेष कारण कहेछे. जे प्रथम कह्युं, अने हवे कहेशे, तेमां विशेष एटलुंजछे के, प्रथमजे जीवहिंसा कही ते हिंसा लोक थकी प्रछन्न पणे करे, अने हवे जे कहेशे ते हिंसा लोकमां प्रगट पणे करे, एटलुं विशेष जाणवुं. ते एवी रीतें के, जेम कोइएक पुरुष मांस भक्षण करवानी इछायें, अथवा व्यसनने लीधे अथवा क्रीडाने निमित्तें (परिसामज्झाउउठित्ता के०) परिषदामांहेथी उठीने (अहमेयं के०) हुं आ अमुक जीवने (हणामित्तिकट्टु के०) हणीश. एवी प्रतिज्ञा करीने, पछी (तित्तिरंवा के०) तित्तर, अथवा (वट्टगंवा के०) वर्त्तक, अथवा (लावगंवा के०) लावक, अथवा (कवोयगंवा के०) कपोत पक्षी, अथवा (कविंजलंवा के०) कपिंजल एटले पारेवां, तथा सारस पक्षिविशेष जाणवां, अथवा (अन्नयरंवा के०) अन्य (तसंपाणं के०) त्रस जीवने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक यावत् पोताना आत्माने कर्मबंधन विषे पाडे ॥ ४३ ॥ हवे कोइएक पुरुष, प्रकृतियें क्रोधी छतो, (केणइ के०)

कर्मनो करनार गोपालभाव आदरीने, क्रोधें चड्यो थको गायने गोकुल मांहेथी टाली तेने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ४० ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चित्क्रूरकर्मा गोघातकभावमाश्रित्य गामन्यं वा त्रसं हंति तस्य हंता स्यात् ॥ ३९ ॥ अथैकः कश्चिद्गोपालभावं प्रतिपद्य तां गां परिविच्य पृथक् कृत्वा तस्याहंता भवति । शेषं पूर्ववत् ॥ ४० ॥

॥ टीका—अथैकः कश्चिद्गोपालभावं प्रतिपद्य कस्याश्चिद्गोः कुपितः सन् तां गां परिविच्य पृथक् कृत्वा तस्याहंता छेत्ता भेत्ता भूयोभूयोभवति । शेषं पूर्ववत् ॥ ३९ ॥ अथैकः कश्चित्क्रूरकर्मकारी गोघातकभावं प्रतिपद्य, गामन्यतरं वा त्रसं प्राणिनं व्यापादयेत्तस्य च हननादिकाः क्रियाः कुर्यादिति ॥ ४० ॥

से एगइउ सोवणियभावं पडिसंधाय तमेव सुणगंवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवस्काइत्ता भवइ ॥४१॥ से एगइउ सोवणियंतियं भावं पडिसंधाय तमेव मणुस्संवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव आहारं आहारेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवस्काइत्ता भवइ ॥४२॥

अर्थ—कोइएक पुरुष शौवनिकभाव एटले श्वानें करी आहार करुं एवो भाव आदरीने अनेक जीवने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ४१ ॥ कोइएक पुरुष श्वानने पाले, श्वाननो परिग्रह करे, तेणे करी कोइएक आवता जता पथिकने, अथवा बीजा जीवने हणे, छेदे, भेदे, आहार आहारे इत्यादिक एरीते ते क्रूरकर्मे करी चतुर्गतिक संसार मांहे पडे ॥ ४२ ॥ एटले आजीविका निमित्त पापनुं कारण कह्युं.

॥ दीपिका—अथैकः कश्चित् श्वपापर्धिभावं प्रतिज्ञाय तमेव श्वानं परंवा त्रसं मृगसूकरादिकं हन्यात्तस्यच हंतेत्यादिपूर्ववत् ॥ ४१ ॥ अथैकः कश्चिदनार्यः (सोवणियंतियंति) श्वभिश्चरति शौवनिकः अंतोस्यास्तीत्यंतिकः अंते वा चरति अंतिकः पर्यंतवासी शौवनिकश्चासौ अंतिकश्च शौवनिकांतिकः क्रूरसारमेयपरिग्रहः प्रत्यंतनिवासी च तदसौ तद्भावमाश्रित्य मनुष्यं कंचन पथिकमन्यंवा मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिनं हंता भवति ।'हंता इत्यत्र ताच्छीलिकस्तृन् । श्वस्तनीता वा तृच् स्यात्तदाध्याहारेण पूर्ववन्नेयं । तथा पुरुषं हंति तस्य स हंता छेत्तेत्यादि । तृन्श्वस्तन्यौ प्रागपि योज्यौ । सचैवं महद्भिः पापकर्मभिरात्मानमुपख्यापयिता स्यादिति ॥ ४२ ॥

ति प्रतिज्ञां कृत्वा पश्चात्तित्तिरादिकं हंता छेतेति नेतेत्ति ताच्छीलिकस्तृन् तृच्प्रत्ययोवा। तस्य वा हंतेत्यादि यावदात्मानं पापेन कर्मणा ख्यापयिता नवतीति ॥४३॥ इह चाधर्मे पाक्षिकेष्वनिधीयमानेषु सर्वेपि प्राणद्रोहकारिणः कथंचिदनिधातव्यास्तत्र पूर्वमनपराधकृ द्वाश्चनिहिताः सांप्रतमपराधकृद्धान् दर्शयितुमाह ॥ (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चि त्प्रकृत्या क्रोधनोऽसहिष्णुतया केनचिदादीयतइत्यादानं शब्दादिकं कारणं तेन विरुद्धः स मानः परस्यापकुर्यात्। शब्दादानेन तावत्केनचिदाकुष्टोनिंदितोवाचा विरुध्येत। रूपादा नेनतु बीनत्सं कंचन दृष्ट्वाऽपशकुनाध्यवसायेन कुप्येत। गंधरसादिकं त्वादानं सूत्रेणै व दर्शयितुमाह। अथवा खलस्य कुथितादिविशिष्टस्य दानं खलस्य वाल्पधान्यादेर्दानं ख लदानं तेन कुपितोऽथवा सुरायाः स्थालकं कोशकादि तेन विवक्षितलाजाऽनावात् कुपि तः। गृहपत्यादेरेतत् कुर्यादित्याह। स्वयमेवाग्निकायेनाग्निना तत्सस्यानि खलकवर्तीनि शा लिव्रीह्यादीनि ध्मापयेद्दहेदन्येन वा दाहयेद्दहतोवाऽन्यान्समनुजानीयादित्येवमसौमहापा पकर्मनिरात्मानमुपख्यापयिता नवतीति ॥ ४४ ॥

से एगइउ केणइ आयाणेणंवा विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अ डुवा सुराघालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा उट्टाणवा गो णाणवा घोडगाणवा गद्दनाणवा सयमेव घूराउ कप्पेंति अन्नेणवि क प्पावेंति कप्पंतंपि अन्नं समणुजाणइ इति से महया जाव नवइ ॥४५॥

अर्थ-अथ हवे कोइएक पुरुष कोइएक आदान एटले कारणे करी रीसाणो थको, अन्नने दाने अथवा धान्यना खलाने विषे अल्प दाने, अथवा कोइएक अधिकारादिकने विषे वांछित लाभने अनावे, गृहपतिनां अथवा गृहपतिनां पुत्रनां (उट्टाणवाके०) उंट, अथवा(गोणाणवा के०) वृषन, (घोडगाणवा के०) घोडो, (गद्दनाणवा के०) गर्दन, तेनो (सयमेवघूराउकप्पेंति के०) जंघादिक अवयव कल्पे छेदे, नेदे, बंधन, नाथ, वाग प्रनृति आदि लेइने पोतेज कापे, बीजा पासें कपावे, बीजो कापतो होय तेने अनुमो दन आपे, एरीतें ते पुरुष महोटुंपापोपार्जन करे ॥ ४५ ॥

॥ दीपिका-अथैकः कश्चित्केनचित्खलदानादिनाऽदानेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबं धिनउष्ट्रादेः स्वयमेव परशुप्रनृतिशस्त्रेण (घूराउत्ति) जंघाद्यवयवान् कल्पयति छिनत्ति अन्येन छेदयति छिंदंतं समनुजानीते। एवं पापकर्मणात्मानं प्रसिद्धिं नयति ॥ ४५ ॥

॥ टीका-सांप्रतमन्येन प्रकारेण पापोपादानमाह। (सेएगइउइत्यादि) अथैकः क श्चित्केनचित्तु खलदानादिनाऽनेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबंधिनउष्ट्रादेः स्वयमेवात्मना प

कोइएक (आयाणेणंके०) शब्दादिक कारणे करी रीसाणो बतो, (विरुद्धेसमाणे के०) आगलानो विरोध करे. ते कारण कहेछे. (अडुवाखलदाणेणं के०) सडेलां अन्न तेने दाने करीनें, अथवा धान्यने खले अल्प दाने करीने, (अडुवासुराथालएणंके०) अथवा थाल कोशादिक, कोइएक अधिकारादिक, तेने विषे वांबित लानने अनावे रीसाणो थको (गाहवतीणवाके०) गृहपतिना, अथवा (गाहावइपुत्ताणंवा के०) गृहपतिना पुत्रना धान्य खलादिकने (सयमेवके०) पोतें (अगणिकाएणंके०) अग्नि कायें करी, (सस्साइंके०) ते धान्यादिकने (ज्ञामेइ के०) बाले. (अन्नेणविअगणिकाएणंसस्साइंज्ञामावेइ के०) अथवा रीसाणो थको बीजा पासें अग्निकायें करी ते धान्यादिकने बलावे. (अगणिकाएणंसस्साइंज्ञामंतंपिअन्नंसमणुजाणइ के०) बीजो कोइ अग्नि कायें करी ते धान्यने बालतो होय, तेने अनुमोदे. एरीतें ते महोटा पापकर्मे करी पोताना आत्माने बांधे. यावत् चतुर्गतिक संसार मांहे परिच्रमण करे ॥ ४४ ॥

॥ दीपिका—उक्ता सदा जीवनोपायनूता वृत्तिः। अथ कचित्कुतश्चिन्निमित्तात्सावद्यांगीकारं दर्शयति । पूर्वं वृत्तिरुक्ता प्रछन्नं वा प्राणिघातं कुर्यादिह तु कुतश्चिन्निमित्तात्साक्षाज्जनमध्ये प्राणिघातप्रतिज्ञया प्रवर्तते इत्याह । अथैकः कश्चिद्व्यसनेन क्रीडया कुपितोवा पार्षदोमध्ये गतउत्थाय एवं प्रतिज्ञां कुर्यात् । अहमेनं प्राणिनं हनिष्यामीति प्रतिज्ञां कृत्वा तित्तिरादिकं हंता इत्यादि यावदात्मानं पापकर्मणा उपख्यापयिता नवति । पूर्वमपराधं विना क्रुद्धाउक्ताः॥४३॥ अथाऽपराधक्रुद्धान्दर्शयति। अथैकः कश्चित्प्रकृत्या क्रोधनः केनचिदादीयतइत्यादानं शब्दादिकं कारणं तेन विरुद्धः परस्य घातं कुर्यात् केनचिच्छब्देन क्रुष्टोनिंदितोवा विरुध्येत रूपेण बीनत्सं कंचित् दृष्ट्वाऽपशकुनोयमिति ध्यात्वा कुप्येत । गंधरसादिकं सूत्रेणैवाह। (अडुवाखत्ति) खलस्य कुपितस्य दानं खलके वाल्पधान्यादेर्दानं खलदानं तेन कुपितः। अथवा सुरायाः स्थालकं कोशकादि तेन वांबितलानानावात् कुपितोगृहपतेर्गृहपतिपुत्राणां वा स्वयं अग्निकायेन खलकवर्त्तीनि सस्यानि ध्मापयेद्दहेत् अन्येन वा दहतोऽन्यान्वा समनुजानीयात् । एवमसौ महापापैरात्मानमुपख्यापयिता स्यात्४४

॥ टीका—उक्ता सदा जीवनोपायवृत्तिरिदानीं कचित्कुतश्चिन्निमित्तादभ्युपगमं दर्शयति । (सेएगइउइत्यादि) अयं चात्र पूर्वस्माद्विशेषः । पूर्वत्र वृत्तिः प्रतिपादिता प्रछन्नं वा प्राणव्यपरोपणं कुर्यात्। इतरस्तु कश्चिन्निमित्तात्साक्षाज्जनमध्ये प्राणिव्यापादनप्रतिज्ञां विधायोद्यछतइति दर्शयति। अथैकः कश्चिन्मांसादनेछया व्यसनेन क्रीडया कुपितोवा पर्षदोमध्यादन्युत्थायैवंनूतां प्रतिज्ञां विदध्यात् । यथाहमेनं वक्ष्यमाणं प्राणिनं हनिष्यामी

आजरणादिक द्रव्य, पोतें अपहरे, बीजाने हाथे अपहरावे,बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदे, एम करतो जीव घणां पाप कर्मोपार्जन करे ॥ ४७ ॥

॥ दीपिका–अथैकः केनचिदादानेन कुपितोगृहपत्यादेः कुंडलादि द्रव्यमपहरेत् । शेषं पूर्ववत् ॥ ४७ ॥

॥ टीका–अपिच (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चित्केनचिदादानेन कुपितोगृहपत्यादेः संबंधि कुंडलादिकं द्रव्यजातं स्वयमेवापहरेदवशिष्टं पूर्ववत् ॥ ४७ ॥

से एगइउ केणइवि आदाणेणं विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडु वा सुरावालएणं समणेणवा माहणेणवा छत्तगंवा दंमगंवा नंमगंवा म त्तगंवा लठिंवा निसिगंवा चेलगंवा चिलिमिलिगंवा चम्मगंवा छेयण गंवा चम्मकोसियंवा सयमेव अवहरंति जाव समणुजाणइ इति से म हया जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥ ४८ ॥

अर्थ–हवे पाखंमी दर्शन उपर कोप्यो थको, जे करे; ते देखाडेछे. कोइएक कारणे रीसाणो छतो वादीयें जीत्यो अथवा पोताना दर्शनने दृष्टिरागें अथवा अन्न अने धान्यने थोडे दाने, अथवा कोइएक अधिकारादिकने विषे वांछितलाजने अजावे, कोप्यो थको श्रमण अथवा ब्राह्मण तेनां दंम, छत्र, माटीना नांम, मात्रो, लाकडी, वेसवानो पाट, वस्त्र, मटको, ढांकवानो वस्त्र, चर्म, चर्मछेदनी तरवार, चर्मनी कोथली इत्यादिक अनेक उपकरण पोतें अपहरे, बीजा ने हाथे अपहरावे, बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीते घणा कर्म उपार्जन करे. एटला कारणे क्रोधें करी पापनुं विशेषपणुं कह्युं ॥ ४८ ॥

॥ दीपिका–अथ पाखंडिकोपरिकोपमाह । अथैकः कश्चित्स्वमतानुरागेण वादपराजितो वा अन्येन वा केनचिन्निमित्तेन कुपितः श्रमणानां ब्राह्मणानां छत्रकं वा नांडं किंचिद्वस्तु दंडकं वा नांडकं किंचिद्वस्तुमात्रकं पात्रं (लठिगं) यष्टिं (निसिगं) वृसीमासनमिति यावत् । चेलकं वस्त्रं (चिलिमिलिगं) प्रछादपटीं चर्मकं पाडकादि चर्मछेदनकं शस्त्रादि चर्मकोशं शस्त्रक्षेपकोछलकं स्वयमपहरेत् । शेषंपूर्ववत् ॥ ॥ ४८ ॥

॥ टीका–सांप्रतं पाखंडिकोपरि कोपेन यत्कुर्यात्तद्दर्शयितुमाह । (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चित्स्वदर्शनानुरागेण वा वादपराजितोवान्येनवा केनवा केनचिन्निमित्तेन कु

रथ्वादिना (घूराउत्ति) जंघाः खलकावा कल्पयति छिनत्यन्येन वा छेदयति अन्यंवा छिंदंतं समनुजानीते इत्येवमसावात्मानं पापेन कर्मणोपाख्यापयिता भवति ॥ ४५ ॥

से एगइउ केणइ आयाणेणं वा विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडु वा सुराथालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा उट्टसालाउवा गोणसालाउवा घोडगसालाउवा गद्दभसालाउवा कंटकबोंदियाए पडिपेहित्ता सयमेव अगणिकाएणं ऊामेइ अन्नेणवि ऊामावेइ ऊामंतं पि अन्नं समणुजाणइ इति से महया जाव भवइ ॥ ४६ ॥

अर्थ–वली बीजी रीतें देखाडेछे. कोइएक पुरुष, कोइएक कारणथी रीसाणो थको, अथ वा वली अन्नने दाने, तथा धान्यने, थोमे दाने अथवा कोइएक अधिकारादिकने विषे वांछित लाभने अभावे, गृहपति अथवा गृहपतिना पुत्रनां उंटशाला, वृषभशाला, अश्वशाला, गर्दभशालाने, कांटा ढांकीने पोतें अग्निकायें करी बाले, बीजा पासें बलावे, बीजो बालतो होय तेने अनुमोदे, एवी क्रिया करतो जीव, घणा पापकर्म उपार्जन करी, संसार मांहे परिभ्रमण करे ॥ ४६ ॥

॥ दीपिका–अथैकः कश्चित्केनचिन्निमित्तेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबंधिनामुष्ट्रादीनां शालाः गृहाणि (कंटक बोंदियाएति) कंटकशाखाभिः प्रतिविधाय पिहित्वा स्वयमग्निना दहेत् । शेषं पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

॥ टीका–किंच (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चित्केन चिन्निमित्तेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबंधिनामुष्ट्रादीनांशालागृहाणि (कंटकबोंदियाएति) कंटकशाखाभिः प्रतिविधाय पिहित्वा स्थगित्वा, स्वयमेवाग्निना दहेत् । शेषं पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

से एगइउ केणइ आयाणेणं विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडुवा सुराथालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा कुंमलंवा मणिंवा मोत्तियंवा सयमेव अवहरइ अन्नेणवि अवहरवइ अवहरंतं पि अन्नं समणुजाणइ इति से महया जाव भवइ ॥ ४७ ॥

अर्थ–कोइएक पुरुष, कोइएक कारणे रीसाणो थको, अन्न अथवा धान्यना खलाने विषे, अल्प धान्यना दाने अथवा कांहिंएक अधिकारादिकनेविषे वांछित लाभने अभावे, गृहपति अथवा गृहपतिना पुत्रना काननां कुंमल, अथवा मणी, रत्न, मोती, अथवा बीजा

तहा कंटकबोंदियाहिं पडिपेहित्ता सयमेव अगणिकाएणं झामेइ जाव समणु जाणइ ॥ ५१ ॥ से एगइउ णोवितिगिंछइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणंवा जाव मोत्तियंवा सयमेव अवहरइ जाव समणु जाणइ॥ ५२ ॥ से एगइउ णोवितिगिंछइ तंसमणांवा माहणाणंवा छत्तगंवा दंमगंवा जाव चम्मछेदणगंवा सयमेव अवहरइ जाव समणुजाणइ इति सेमहया जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥ ५३ ॥

अर्थ–एरीतेंज वली कोइएक पुरुष, गृहपति अथवा गृहपतिना पुत्रना उंट, गाय, बलद, घोडा, गर्दन्नना बंधन, तथा वाग, नाथ, प्रमुख पोतें कापे, बीजाने हाथे कपावे बीजो कापतो होय तेने अनुमोदे ॥ ५० ॥ तथा तेमज ते गृहपतिना तथा गृहपतिना पुत्रना उंटनीशाला, यावत् गर्दन्ननी शालाने कांटा थकी ढांकीने पोते बाले, बीजाने हाथे बलावे, बीजो बालतो होए तेने अनुमोदे ॥ ५१ ॥ तथा तेमज ते गृहस्थना अथवा गृहस्थना पुत्रना कुंमलादिक आनरण, तथा मौक्तिकादिक द्रव्य, पोतें अपहरे, बीजाने कहिने तेने हाथे अपहरावे, बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदे ॥ ५२ ॥ तथा कोइएक पुरुष, श्रमण ब्राह्मणना दंम छत्रादिक यावत् चर्मछेदक ए उपकरणोने पोतें अपहरे बीजाने हाथे अपहरावे अपहरतो होय तेने अनुमोदे ए प्रथम लखेला पांच आलावा, तथा पाछलना आलावा चार ते सरखाजछे परंतु ते सकारण, अने निष्कारण, एटलुं विशेषछे. ॥ ५३ ॥

॥ दीपिका–अथैकोनिस्त्रिंशतया गृहपत्यादिसंबंधिनामुष्ट्रादीनां जंघाद्यवयवान् छिंद्यात्यादि ॥ ५० ॥ कश्चिदुष्ट्रादिबंधनं गृहाणि दहेत् ॥ ५१ ॥ सुगमं ॥ ५२ ॥ निर्निमित्तमेवै तत्कुर्यात् व्याख्या पूर्ववत् ॥ ५३ ॥

॥ टीका–तथेहामुत्रच दोपापर्यालोचकोनिस्त्रिंशतया गृहपत्यादिसंबंधिनां क्रमेलकादीनां जंघादीनवयवांश्छिंद्यात् ॥ ५० ॥ तथा शालां दहेत् ॥ ५१ ॥ तथा गृहपत्यादेः संबधि कुंडलमणिमौक्तिकादिकमपहरेत् ॥ ५२ ॥ तथा श्रमणब्राह्मणादीनां दंडादिकमुपकरणजातमपहरेदित्येवं प्राक्तनाएवालापकाआदानकुपितस्य येऽनिहितास्ततएव तदन्नावे नानिधातव्याइति ॥ ५३ ॥

से एगइउ समणंवा माहणंवा दिस्सा णाणाविहेहिं पावकम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता नवइ अडवाणं अछराए आफालित्ता नवइ अडवाणं

पितः सन्नेतत्कुर्यादित्याह । तद्यथा । श्राम्यंतीति श्रमणास्तेषामन्येषामपि तथाभू तानां केनचिदादानेन कुपितः सन् दंडकादिकमुपकरणजातमपहरेत् अन्येन वा हारये दन्यंवा हरंतं समनुजानीयात् इत्यादिपूर्ववत् ॥ ४८ ॥

से एगइर्ज णोवितिगिंछइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा सयमेव अगणिकाएणं उसहीर्ज झामेइ जाव अन्नंपि झामंतं समणुजाणइ इति से महया जाव उवरकाइत्ता भवति ॥ ४९ ॥

अर्थ—हवे निःकारण पापनुं विशेष कहेछे. अथ कोइएक पुरुष, अत्यंत मूर्खछतो (णोवितिगिंछइकें०) एवो विचार करे नहीं के, अकार्य करवा थकी मने आ भवमां अथ वा परभवमां अनिष्टफलनी प्राप्ति थशे, अथवा महारो अनुष्ठान अत्यंत मागोछे एवुं आलोचे नहीं, एवो छतो आलोक तथा परलोक विरुद्ध क्रिया करे ते देखाडेछे गृहप तिना अथवा गृहपतिना पुत्रना धान्यने निःकारणे पोतें अग्निकायें करी प्रज्वाले, बी जाने हाथे प्रज्वालावे, बीजो कोइ प्रज्वालतो होय तेने अनुमोदे ॥ ४९ ॥

॥ दीपिका—पूर्वं विरोधिनोऽभिहिताः अथ इतरे कथ्यंते । अथैकः कश्चिन्मूढतया (णोवितिगिंछइत्ति) न विमर्षति नविचारयति यन्ममानेन कृतेन परलोकेऽनिष्टं भावि । अथवा मदीयमिदमनुष्ठानं पापानुबंधीति न वेत्ति एवंभूतश्च गृहपत्यादेर्निमित्तमेव त त्कोपं विनैव स्वयमग्निना सस्यानि शालिव्रीह्यादीनि दहेदित्यादि ज्ञेयं ॥ ४९ ॥

॥ टीका—एवं तावद्विरोधिनोऽभिहिताः सांप्रतमितरेऽभिधीयंते । (सेएगइर्जइत्यादि) अथै कः कश्चित् दृढमूढतया (नोवितिगिंछिइत्ति) न विमर्षति नमीमांसते । यथाऽनेन कृतेन ममा ऽमुत्राऽनिष्टफलं स्यात् तथा मदीयमिदमनुष्ठानं पापानुबंधीत्येवं न पर्यालोचयति तद्भावाप न्नाश्च यत्किंचनकारितया इहलोकपरलोकविरोधिनीः क्रियाः कुर्यात् । एतदेवोद्देशतोदर्शयति तद्यथा गृहपत्यादेर्निमित्तमेव तत्तत्कोपमंतरेणैव स्वयमेवात्मनाग्निकायेनौषधीः शालिव्री ह्यादिकाः ध्मापयेद्दहेत्तथाऽन्येन दाहयेद्दहंतं च समनुजानीयादित्यादि ॥ ४९ ॥

से एगइर्ज णोवितिगिंछइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा उट्टाणवा गोणाणवा घोडगाणवा गद्दभाणवा सयमेव घूराउकप्पइ अन्नेणवि क प्पावेति अन्नंपि कप्पंति तं समणुजाणइ ॥५०॥ से एगइर्ज णोवितिगिंछ इ तं गाहावतीणवा गहावइपुत्ताणवा उट्टसालाउवा जाव गद्दभसाला

॥ टीका–सांप्रतं विपर्यस्तदृष्टयोऽगाढमिथ्यादृष्टयोऽनिधीयंते (सेएगइउइत्यादि) अथै कः कश्चिदनिगृहीतमिथ्यादृष्टिरनड्कः साधुप्रत्यनीकतया श्रमणादीनां निर्गछतां प्रविश तां वा स्वतश्च निर्गछन् प्रविशन् वा नानाविधैः पापोपादानजूतैः कर्मनिरात्मानमुपख्या यिता जवतीत्येतदेव दर्शयति । अथवेत्ययमुत्तरापेक्षया पक्षांतरोपग्रहार्थः । कचित्साधु दर्शने सति मिथ्यात्वोपहतदृष्टितयाऽपशकुनोयमित्येवं मन्यमानः सन् दृष्टिपथादपसारयन् साधुमुद्दिश्यावज्ञयाप्सरायाश्च पुटिकायाः स्फालयिता जवत्यथवा तत्तिरस्कारमापादय न् परुषं वचोब्रूयात् । तद्यथौदनमुंमनिरर्थककायक्लेशपरायणडुर्बुद्धेऽपसराग्रतस्तदसौ ज्रुकुटिं विदध्यादसत्यंवा ब्रूयात् तथा निक्षाकालेनापि (से) तस्य निक्षोरन्येन्योनिक्षा चरेन्योऽनु पश्चात्प्रविष्टस्य सतोऽत्यंतडुष्टतयाऽन्नादेर्नदापयिता जवत्यपरंच दानोद्यतं नि षेधयति तत्प्रत्यनीकतयैतच्च ब्रूते । इमे पाखंडिकाजवंति तएवंजूताजवंतीत्याह । (चो सुंत्ति) तृणकाष्ठहारादिकमधमकर्म विद्यते येषां ते तद्वंतस्तथा जारेण कुटुंबजारेण पोट्ट लिकादिजारेण वाऽऽक्रांताः पराजग्नाः सुखलिप्सवोऽलसाः क्रमागतं कुटुंबं पालयितुमसम र्थास्तया पाखंमव्रतमाश्रयंति । तथाचोक्तं । गृहाश्रमपर इत्यादि । तथा (वेसलगत्ति) वृषलाअधमाः शूद्रजातयस्त्रिवर्गप्रतिवारकास्तथा कृपणाः क्लीबा अकिंचित्कराः श्रमणा जवंति प्रव्रज्यां गृह्णंतीति ॥ ५४ ॥

ते इणमेव जीवितं धिज्जीवितं संपडिवुहेंति नाइ ते पारलोगस्स अट्ठाए किंचिवि सिलीसंति ते डुक्कंति तेसोयंति तेजूरंति तेतिप्पंति तेपिट्टं ति तेपरितप्पंति तेडुक्कण जूरण सोयण तिप्पण पिट्टण परितिप्पण वहवंधणपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया जवंति ते महया आरंनेणं ते महया समारंनेणं तेमहया आरंनसमारंनेणं विरूवरूवेहिं पाव कम्मे किच्चेहिं उरालाइं मणुस्सगाइं जोगजोगाइं जुंजित्तारो जवंति ॥ तं जहा अन्नं अन्नकाले पाणं पाणकाले वत्थं वत्थकाले लेणंलेणकाले सयणंसयणकाले पुव्वावरंचणं ण्हाए कयवलिकम्मे कयकोउयमंगल पायच्छित्ते सिरस्साण्हाए कंठेमालाकडे आवद्धमणिसुवन्ने कप्पियमा लामउली पडिवद्धसरीरवग्घारियसोणिसुत्तगमल्लदामकलावे अ हतवत्थपरिहिए चंदणोक्खितगायसरीरे महति महालियाए कूडा गारसालाए महति महालयंसि सीहासणंसि इत्थीगुम्मसंपरि वुडे स

फरुसंवदित्ता नवइ कालेणवि से अणुपविठस्स असणंवा पाणंवा जा
व णोदेवावेत्ता नवइ जे इमे नवइ वोनमंता नारक्कंता अलसगा वे
सलगा किवणगा निउक्कमा वणगा समणगा पव्वयंति ॥ ५४ ॥

अर्थ–हवे मिथ्यादृष्टिना पापनो अधिकार विशेष कहेछे. कोइएक मिथ्यादृष्टि पुरुष, श्रमण तपस्वी साधुनो निंदक होय, ते श्रमण अथवा ब्राह्मणने निसरतां पेसतां (दिस्सा के०) देखीने नानाप्रकारना पापोपार्जन करीने पोताना आत्माने डुर्गतिने विषे पाडे, तेज कारण कहेछे. (अडुवाणंअब्बराएके०) क्यांहिं एक साधुने देखीने पोतानी मिथ्यादृष्टीयें करी एवुं जाणेजे, ए मने अपशकुन थयुं. एम जाणतो थको पोतानी दृष्टिआगलथी ते साधुने अलगो करावे, अथवा (आफालित्तानवइ के०) चपटीयें करी साधुने आस्फाले एटले तेने तिरस्कार करे, (अडुवाणंफरुसंवदित्तानवइ) अथवा कठोर वचन बोले, अरे मूर्ख! निरर्थक कायक्लेशना करनार! हे डुर्बुद्धि! माहारा आगलथी दूरथइजा. एवा कठोर वचन बोले, तथा (कालेणविसेअणुपविठस्स के०) निक्षावेलायें ते चारित्रियाने अन्न पाणीने अर्थे आव्यो देखीने तेने (असणंवापाणंवा के०) अशन पानादिक देतां अत्यंत डुष्टपणे पोतें निंदे अने (जावणोदेवावेत्तानवइ के०) बीजो कोइ अशनपानादिक आपतो होय तेने निषेधे, तथा एवां डुर्वचन बोले के, (जेइमेनवइ के०) जे ए पाखंमीने आपवा थकी कांही फल नथी एम कहे (वोनमंता के०) ए तृण काष्ठना नारानो आणनारछे (नारक्कंता के०) ए कुंटुबना नारनो निर्वाह करी शक्यो नथी, ते कारणे मुंमित थयोछे. (अलसगा के०) आलसु क्रमागत कुटुंब धर्म पालवाने असमर्थ, माटे पाखंमी थयोछे (वेसलगा के०) वृषल कोइएक कुइ जातिकछे तथा (किवणगानिउक्कमा के०) कृपण, निरुद्यमी, कोइपण कार्यनो उद्यम करी नशके ते कारणे (वणगासमणगापव्वयंति के०) प्रवज्या लिए. ॥ ५४ ॥

॥ दीपिका–अथैकः कश्चिदनिगृहीतमिथ्यादृष्टिः साधुप्रत्यनीकः श्रमणं ब्राह्मणं साधुं दृष्ट्वा, अपशकुनोयमिति मन्यमानः पापकर्मभिरात्मानमुपख्यापयिता नवति (अडुवाणंति) अथवा साधुं दृष्ट्वाऽवज्ञयाऽप्सरायाश्च पुटिकाया आस्फालयिता नवति परुषं कठिनं वचोब्रूयात् निक्षाकालेपि (से) तस्य निक्षोर्निक्षार्थमनुप्रविष्टस्यान्नादेर्दापयिता न नवति प्रत्यनीकः सन्निदं ब्रूते ।(जेइमेत्ति) पाखंडिकाः स्युस्ते चोन्नमंतस्तृणकाष्ठहारादिकं कर्म तद्धियते येषां तेचोन्नमंतः नाराक्रांताः कुटुंबं पालयितुमसमर्थास्ते पाखंडव्रतमाश्रयंति । तथा वृषलाअधमाः कृपणाः क्लीबाअकिंचित्कराः श्रमणाः स्युः प्रव्रज्यां गृण्हंतीति॥५४॥

प्रलंबित (सोणिसुत्तगमल्लदामकलावे के०) कडने विषे कंदोरोछे जेने एवो. अने फुलनीमा लाना समूह पेरतो एवो, (अहतवत्थपरिहिए के०) अत्यंत बहु धोला निर्दोष वस्त्र पेहेरे, (चंदणोक्खितगायसरीरे के०) चंदने करी गात्रने विलेपन करे एवो थको, (महतिम हालियाए के०) अत्यंत महोटी (कूडागारसालाए के०) कूटने आकारें शिला तेने वि षे (महतिमहालयंसिसीहासणंसि के०) महोटा सिंहासने बेगे थको (इत्थिगुम्मसंप रिवुडे के०) स्त्रीना वृंदे परवर्यो (सव्वराइएणं के०) सर्व रात्री संबंधि (जोइणा के०) प्रदीपनी ज्योति (झियायमाणाणं के०) तेना अजवाला थकि (महयाहयनट्टगीयवाइ यं के०) महोटा नट्ट, गीत, वाद्यादिक वाजीत्रादिकने शब्दें, (तंतीतलतालतुडियतघणमुइं गपडुपावाइयंरवेणं के०) वीणा, हाथना ताल, कांशियाना ताल, तुरी एटले वाजीत्र, हाथ विशेष, घन ध्वनि सरखो जेनो घोषछे, मृदंग, पटह, माह्या पुरुषें वजाव्याछे, तेने शब्दें करी, (उरालाइंमाणुस्सगाइं के०) उदार प्रधान मनुष्य संबंधीया (नोगनोगाइं के०) कामनोगने (भुंजमाणे के०) नोगवतो थको (विहरइ) विचरे ॥ ७५ ॥

॥ दीपिका–अथ गृहस्थानामत्यंतविपरीतमतीनामसदाचारत्वं प्रकटयन्नाह । ते साधुधर्मप्रत्यनीकाइदमेव जीवितं परापवादप्रकटनजीवितं धिक्जीवितं कुत्सितं जीवि तं संप्रतिबृंहंति प्रशंसंति ते परलोकस्यार्थाय किंचित्सदनुष्ठानं न शिक्षयंते नाश्रयंते तेऽ पवादैः परान् डुःखयंति आत्मानंच अज्ञानांधास्तत्कुर्वंति येन शोचंते परानपि शोचयंति ते परान् (जूरयंति) गर्हंति ते स्वकर्मभिः पीड्यंते (तेतिप्पंति) सुखाच्यावयंत्यात्मा नं परांश्च ते पापेन परितप्यंतेऽतर्दह्यंते परांश्च परितापयंति । एवं ते डुःखनशोचनादि क्लेशादिप्रतिविरताः स्युस्ते महतारंभेण प्राणिघातरूपेण महता समारंभेण प्राणि परितापरूपेण विरूपरूपैश्च नानाविधैः पापकर्मकृत्यैरुदारानुत्कृष्टान्मद्यमांसादियुतान् मानुष्यकान् मनुष्यनवयोग्यान् नोगेभ्योऽप्युत्कटानोगान्नोगनोगास्तान् नोक्तारःस्युः ॥ तद्यथा अन्नमन्नकाले यथेप्सितं तस्य पापानुष्ठानात्संपद्यते । एवं पानवस्त्रशयना सनादिकं सपूर्वापरं सत्पूर्वकृत्येन स्नानादिना परकृत्येन विलेपननोजनादिना वर्ततइति सपूर्वापरं । कोऽर्थः । यद्यदा प्रार्थ्यते तत्तदा संपद्यतइति । तद्यथा । स्नातः कृ तं देवतानिमित्तं बलिकर्म येन सःकृतबलिकर्मा कृतानि कौतुकान्यवतारणकादीनि मंगल सुवर्णचंदनाक्षतदूर्वासिद्धार्थादीनि प्रायश्चित्तानि डुःखप्रतिघातकानि येन सःकृतकौतुक मंगलप्रायश्चित्तः । शिरसि स्नातः कल्पितोयोमालाप्रधानोमुकुटः सविद्यते यस्य सःक ल्पितमालामुकुटी प्रतिबद्धशरीरोदृढांगः । (वग्घारितं) प्रलंबितं श्रोणी श्रोत्रं कटिसू त्रं मल्लदामकलापश्च येन सतया कंठे कृतमालः । आविद्धानि परिहितानि मणिसुव

वराइएणं जोइणाज्झियायमाणाणं मह्या ह्यनट्टगीयवाइयं तंतीतल तालतुम्नियघणमुइंगपडुपावाइयं रवेणं उरालाइं माणुस्सगाइं भोग भोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥ ५५ ॥

अर्थ—(तेइणमेवजीवितंधिज्झीवि के०) ते साधुना अवर्णवादि एम कहे जे आ साधुनुं जीवितव्य धिक् छे. (तंसंपडिबुंहेंति के०) अने पोताने प्रशंसे जे अमे भला छैए, एरीते ते इह लोक प्रतिबंध साधुना निंदक मोहांध पुरुष ते साधुनो अपवाद बोले, (नाइतेपारलोगस्सअट्ठाएकिंचिविसिलीसंति के०) ए पुरुष, परलोकना अर्थनो साधनार एवो स्वल्प मात्र कांहींपण अनुष्ठान करे किंतु? परने डुर्वचनादिकें करी पीडा उपजावे (तेडुरकंति के०) ते अज्ञानना अंधकारे डुःखी थाय. (तेसोयंति के०) ते अ धिक शोचे, अन्यने शोक करावे (तेजूरंति के०) ते जूरे तथा परने निंदे. (तेतिप्पंति के०) ते पोताने तथा परने सुख थकी चूकावे (तेपिट्टंति के०) ते पोतें पीडाय, अने बीजाने पीडावे. (तेपरितप्पंति के०) ते पोते माहोमांहे दाफे, बीजाने दफावे, (तेडुरकणजूरणसोयण के०) ते पुरुष, एरीते डुःख, जूरण, शोक, इत्यादिक करतो करावतो थको (तिप्पण के०) सुखनो टालनार (पिट्टण के०) पीडानो करनार, (परितिप्प ण के०) पश्चात्ताप करनार, (वहबंधण के०) वध बंधननो करनार (परिकिलेसाउ के०) महोटा क्लेश, तेथकी (अप्पडिविरयाभवंति के०) नथी निवर्त्या ते पुरुष, एवा छता ते महोटा आरंभ प्राण वध रूप तथा महोटा समारंभ परजीवने किलामणा उपजा वी ते महोटा आरंभ समारंभे करीने नाना प्रकारना पापनुष्ठाने करीने प्रधान मनुष्य भाव संबधिया मधु मांसादिक अनेक काम भोगने भोगवतो थको विचरनारो थाय. (तंजहा के०) तेज कहेछे (अन्नंअन्नकाले के०) अन्नने काले अन्न, (पाणं पाणकाले के०) पाणीने कालें पाणी, (वत्थंवत्थकाले के०) वस्त्रने कालें वस्त्र, (ले णंलेणकाले के०) घरने कालें घर (सयणंसयणकाले के०) शयनने कालें शयन, (पु व्वावरंचणंण्हाए के०) पहेले पहोरे, अने वली पाछले पहोरे स्नान करे, (कयबलिक म्मे के०) देवतादिक निमित्त बलि कर्म करे, (कयकोउय के०) अनेक कौतुक उत्ता रणादिक करे, (मंगलपायच्छित्ते के०) दधि, दूर्वादिक मंगल करे, डुःस्वप्नादिकना निवा रणने अर्थें ए क्रिया करे, (सिरसाण्हाएकंठेमालाकडे के०) शिरें स्नान करीने कंठे माला पेरे, (आबद्धमणिसुवन्नेकप्पियमालामउली के०) आबद्ध एटले ग्रंपहेरे? तोके, मणि अने सुवर्ण, यथा योग्य स्थानके पहेरे, अनेक हार, अर्धहार, कटीसूत्र, इत्यादिक आ भरणे करीने, (पडिबद्धसरीरवग्घारीय के०) प्रतिबंध नाम दृढ शरीर देहछे जेनो एवो,

गतप्रायश्चित्तः । तथा कल्पितश्चासौ मालाप्रधानोमुकुटश्च सतया विद्यते यस्य सनवति कल्पितमालामुकुटी । तथा प्रतिबद्धशरीरोदृढावयवकायोयुवेत्यर्थः । तथा (वग्घारियंति) प्रलंबितं श्रोणीसूत्रं कटिसूत्रं मल्लदामकलापश्च येन सतथा तदेवमसौ शिरसि स्नातः नानाविधविलेपनावलिप्तश्च कंठे कृतमालस्तथाऽपरयथोक्तभूषणभूषितः सन्महत्या मुच्चायां (महालियाएत्ति) विस्तीर्णायां कूटागारशालायां तथा महति महालये विस्तीर्णे सिंहासने भद्रासने समुपविष्टः स्त्रीवृंदेन युवतिजनेन सार्द्धमपरपरिवारेण संपरिवृतो वेष्टितोयस्तथा महता बृहत्तरेण प्रहतगीतवादित्रतंत्र्यादिरवेणोदारान्मानुष्यकान् भोगाभोगान्भुंजानोविहरति प्रविचरति विजृंभतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥

तस्सणं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंचजणा आवुत्ता चेव अब्भुठंति भणह देवाणुप्पिया किंकरेमो किंआहारेमो किंउवणेमो किंआचिट्ठामो किंभेहियं इछियं किंभेआसगस्स सयइ तमेवपासित्ता अणारिया एवं वयंति देवे खलु अयंपुरिसे देवसिणाए खलु अयं पुरिसे देवजीवणिज्जे खलु अयंपुरिसे अन्नेण विचणं उवजीवंति तमेव पासित्ता आरिया वयंति अभिक्कंतकूरकम्मे खलु अयंपुरिसे अति धुत्ते अइयायरक्खे दाहिणगामिए नेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं दुल्लहबोहियाएयावि भविस्सइ ॥ ५६ ॥

अर्थ-(तस्सणंएगमविआणवेमाणस्सके०) ते पुरुषने कोइ एक कार्य उपने एक माणसने आज्ञा देतां (जावचत्तारिपंचजणाके०) यावत् चार, पांच, पुरुष (आवुत्ताचेव के०) अणबोलाव्या (अब्भुठंतिके०) उठी सावधान थइने एम कहेके, (भणहदेवाणुप्पियाके०) हेस्वामि! आज्ञा आपो ? हे देवाणुप्रिय सरल स्वभावि! (किंकरेमोके०) शुं कार्य अमे करियें ? जेवो आपनो हुकम होय ते करवाने तैयारछेए. (किंआहारेमो के०) केवो आहार करशो? किंवा केवो आहार निपजावीये ? (किंउवणेमोके०) शुं वस्तु लावी आपुं? (किंआचिठामो के०) शुं स्थापना करू? तथा केवां आभरण पेरशो ? (किंभेहियंइछियं के०) शुं तमारा हृदयने वल्लभछे. एटले शुं इछोछो ? (किंभेआसगस्सईके०) शुं तमारा मुखने सयई रुचेछे? जेकांइ तमारा मुख मांहेथी वचन निकले ते अमे करियें, (तमेवपासित्ताके०) ते राजादिकने देखीने (अणारियाएवंवयंतिके०) अनार्य एवुं कहे के, (देवेखलु अयंपुरिसे के०) खलुइति निश्चे ए पुरुष देव, (देवसिणाए खलु अयं पुरिसे के०) ए पुरुष देव स्नातक, (देवेजीवणिज्जे खलुअयं पुरिसे के०) ए पुरुषनो देवताना

णीनि येन सतथा अहतमखंडितं वस्त्रं परिहितं येन सतथा चंदनेन उक्षितं सिक्तं गात्रं शरीरावयवायस्य सतथा नानाविधविलेपनावलिप्तइत्यर्थः । महत्यामुच्चायां (महालियाइति) विस्तीर्णायां कूटागारशालीयां महति महालये विस्तीर्णे सिंहासने नडासने स्थितः । स्त्रीगुल्मेन स्त्रियोयुवतयः गुल्मोऽन्यः परिवारस्तेन परिवृतः, निशि सर्वरात्रिसंबंधिना ज्योतिषा प्रदीपादिनिवेन क्रियमाणेन दीप्यमानेन महता बृहत्तरेण प्रहतनाटयगीतवादित्रतंत्रीतलतालत्रुटिकघनमृदंगपटुप्रवादितरवेण उदारान् मानुष्यकान् नोगनोगान् भुंजानोविहरति ॥ ५५ ॥

॥ टीका—सांप्रतमेषामगारिकाणामत्यंतविपर्यस्तमतीनामसद्वृत्तमाविर्नावयन्नाह । (तेइणमेवइत्यादि) तेहि साधुवर्गापवादिनः सद्धर्मप्रत्यनीकाइदमेव जीवितं परापवादोद्घाट्टनजीवितं धिक्जीवितं कुत्सितं जीवितं साधुजुगुप्सापरायणं संप्रतिबृंहंत्येतदेवासद्वृत्तजीवितं प्रशंसंतीति नावः । ते चेह लोकप्रतिबद्धाः साधुजुगुप्साजीविनोमोहांधाः साधूनपवदंति नापिच ते पारलौकिकस्यार्थस्य साधनमनुष्ठानं किंचिदपि स्वल्पमपि श्लिष्यंते समाश्रयंति । केवलं ते परान् साधून् वाचादिनिरनुष्ठानैर्डुःखयंति पीडामुत्पादयंति आत्मनः परेषांच । तथा ते ज्ञानांधास्तथा तत्कुर्वंति येनाधिकं शोचंते परानपि शोचयंति डुर्नाषितादिनिः शोकं चोत्पादयंति तथा ते परान् (जूरयंति) गर्हंति तथा तिप्यंति सुखाद्व्यावयंत्यात्मानं परांश्च तथा ते वराकाअपुष्टधर्माणोऽसदनुष्ठानाः स्वतः पीडयंते परांश्च पीडयंति तथाते पापेन कर्मणा परितप्यंतेऽतर्दह्यंते परांश्च परितापयंति । तदेवं तेऽसद्वृत्तयः संतोडुःखीनः शोचनादिक्लेशादप्रतिविरताः सदा नवंति । एवं नूताश्च संतस्ते महताऽऽरंनेण प्राणिव्यापादनरूपेण तथोनान्यामप्यारंनसमारंनाच्यां विरूपरूपैश्च नानाप्रकारैः सावद्यानुष्ठानैः पापकर्मकृत्यैरुदारानत्यंतोद्भटान्समग्रसामग्रीकान् मधुमद्यमांसाद्युपेतान् मानुष्यकान् मनुष्यनवयोग्यान् नोगेन्योप्युत्कटान् नोगान् ते सावद्यानुष्ठायिनोनोक्तारोनवंति ॥ एतदेवदर्शयितुमाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथेत्युपदर्शने । अन्नमन्नकाले यथेप्सितं तत्पापानुष्ठानात्संपद्यते । एवं पानवस्त्रशयनासनादिकमपि । सर्वमेतद्यथाकालं सपूर्वापरं संपद्यते सहपूर्वेण पूर्वाह्णकर्तव्येनापरेण चापराह्णकर्तव्येन । यदिवा पूर्वं यत्क्रियते स्नानादिकं तथा परंच यत्क्रियते विलेपननोजनादिकं तेन सह वर्ततइति सपूर्वापरं । इदमुक्तंनवति । यद्यदा प्रार्थ्यते तत्तदा संपद्यतइति । अनिलषितार्थप्राप्तमेव लेशतोदर्शयितुमाह । तद्यथा । विनूत्या स्नातस्तथा कृतं देवतादिनिमित्तं बलिकर्म येन स तथा तथाकृतानि कौतुकान्यवतारणकादीनि मंगलानिच सुवर्णचंदनदध्यक्षतदूर्वासिद्धार्थकादर्शस्पर्शनादीनि तथा डुःस्वप्नादिप्रतिघातकानि प्रायश्चित्तानि येन सकृतकौतुकमं

क्षयोः कृष्णपक्षः । ततोऽस्य दिगादिकमप्रशस्तमुक्तं । अन्यदपि अबोधिलाभादिकं योज्यं । (आगमिस्सत्ति) सचाऽऽगामिकाले डुर्लनबोधिकः स्यादिति ॥ ५६ ॥

॥ टीका–तस्यच क्वचित्प्रयोजने समुत्पन्ने सति एकमपि पुरुषमाज्ञापयतोयावच्चत्वारः पंचवा पुरुषाअनुक्ताएव समुपतिष्ठंते । तेच किंकुर्वाणाएत द्वक्ष्यमाणमूचुः । तद्यथा । नणाज्ञापय स्वामिन्! धन्यावयं येन नवताप्येवमादिश्यंते किंकुर्मइत्यादिसुगमं । याव द्भृदयेप्सितमिति । तथा किंच ते युष्माकमास्यकस्य मुखस्य स्वदते स्वाडु प्रतिनाति? यदिवा यदेवास्य नवदीयास्यस्य स्रवति निर्गछति तदेव वयं कुर्मइति । तथा तमेवेत्यादि । तमेव राजानं तथा क्रीडमानं दृष्ट्वा अन्येऽनार्याएवं वदंति । तद्यथा । देवः खल्वयंपुरुषस्तथा देवस्नातकोदेवश्रेष्ठोवहूनामुपजीव्यस्तथा तमेवंनां प्रतेक्षितया सदनुष्ठायिनं दृष्ट्वा आर्याविवेकिनः सदाचारवंतएवं ब्रुवते तद्यथाऽन्निक्रांतक्रूरकर्मा खल्वयं पुरुषोहिंसादिक्रियाप्रवृत्तइत्यर्थः । तथा धूयते रेणुव द्वायुनासंसारचक्रवाले ज्ञाम्यते येन तद्धूतं कर्म । औणादिकोनक्प्रत्ययः । अतीव प्रनूतंधूतम ष्टप्रकारं कर्म यस्य सोतिधूतस्तथाऽतीवात्मनः परैः पापकर्मनिः रक्षा यस्य सोत्यात्मरक्षस्तथा दक्षिणस्यां दिशि गमनशीलोदक्षिणगामुकः । इदमुक्तं नवति । योहि क्रूरकर्मकारी साधुनिंदापरायणस्तद्दाननिषेधकः सन् दक्षिणगामुकइत्युक्तं । इदमेवाह । (नेरइएइत्यादि) नरकेषु नवोनारकः कृष्णपक्षोस्यास्तीति कृष्णपाक्षिकस्तथा आगामिनि काले नरकाडुद्भृतोडुर्लनबोधिकश्चायं वाहुल्येन नविष्यतीति । इदमुक्तं नवति । दिक्षुमध्ये दक्षिणा दिग् शस्ता गतिषु नरकगतिः, पक्षयोः कृष्णपक्षः तदस्य विषयोस्येंद्रियानुकूलवर्तिनः परलोकनिस्पृहमतेः साधुप्रद्वेषिणोदानांतरायविधायिनोदिगादिकमशस्तं दर्शितमन्यदपि यदशस्तं तिर्यग्गत्यादिकमबोधिलाभादिकं च तद्योजनीयमस्येति । एतद्विपरीतस्य तु विषयनिःस्पृहस्य इंद्रियानुकूलस्य परलोकनीरोः साधुप्रशंसावतः सदनुष्ठानरतस्य दक्षिणगामुकत्वं सुदेवत्वं शुक्लपाक्षिकत्वं तथा सुमानुषतया तस्य सुलनबोधित्वमित्येवमादिकं सद्धर्मानुष्ठायिनः सर्वं नवतीति ॥ ५६ ॥

इच्चेयस्स ठाणस्स उठियावेगे अनिगिझंति अणुठियावेगे अनिगिझंति अनिझंझाउरा अनिगिझंति एसठाणे अणारिए अकेवले अप्पडिपुन्ने अणेयाउए असंसुद्धे असल्लगत्तणे असिद्धिमग्गे अमुत्तिमग्गे अनिवाणमग्गे अणिज्जाणमग्गे असवडुरकपहीणमग्गे एगंतमिच्छे असाहु एसखलु पढमस्स ठाणस्स अधम्मपरकस्स विनंगे एवमाहिए ॥५७॥

जेवो जीवछे, निश्चे ए पुरुष घणा लोकने आजीविकानो करनारछे, एने (अन्नेणविचणं उव जिवंति के०) बीजा घणा पुरुषो सेवेछे, एरीतें ते राजादिकने देखीने अनार्य लोको कहे अने तेना वखाण करे. हवे (तमेव पासित्ता के०) वली ते राजादिकने देखीने (आ रियावयंति के०) आर्य पुरुष जे होयते एवुं कहेके (अनिक्कंतकूरकम्मेखलुअयं पुरिसे के०) निश्चे ए पुरुष अत्यंत क्रूर कर्मी हिंसादिक क्रियाने विषे प्रवर्त्तेछे, (अतिधूत्तेके०) तथा ए पुरुष अत्यंत धूर्तछे घणां कर्मे करी सहितछे, तथा (अइयायरक्केके०) घणां कर्मेकरी आपणा आत्माने संसार मांहे राखनारछे, (दाहिणगामिए नेरइए के०) त था ए दक्षणगामि नारकीमां उपजनार, प्रायः जे क्रूरकर्मना करनार, साधुना निंदक, सा धुने दान आपवानो निषेध करनार होय, ते दक्षिणगामि नारकीमांहे उपजे. तेमाटे ए पुरुष दक्षिण गामि जाणवो. (कसहपरिकएके०) कृष्ण पाक्षिक नारकी थशे; कृष्ण पक्षि क नारकी मांहे शुं विशेषछे? ते कहेछे. (आगमिस्साणं डुल्लहबोहियाएयावित्नविस्सइ के०) आगमिक कालें डुर्लन बोधी थशे एटले शुं कह्युं? जे, दिशि मांहे दक्षिणदिशि, अने अप्रशस्त गतिमांहे नरकगति, तथा पक्ष मांहे कृष्ण पक्ष, एटला वाना अप्रशंस्तछे तेम विषयांध पुरुष जे छेते परलोकना निस्पृहि, एवा साधुने देखीने तेने दानांतरायना कर नार थायतो एवा अप्रशस्त पुरुषने बोधबीज पामवुं डुर्लनछे. तथा जे ए थकी विपरी त विषयने विषे निस्पृहि, परलोकना नीरु, तथा साधुनी प्रशंसाना करनार, एवा पुरुष उत्तरदिशि तथा देवतानी गति अने शुक्लपक्ष, एटला वानां पामे तेने मनुष्य नवमां बो धबीज पामवुं सुलनछे. ॥ ५६ ॥

॥ दीपिका—तस्यैवंनूतस्य पुरुषस्य क्वचित्कार्ये सति एकपुरुषमाज्ञापयतोयाव च्चत्वारः पंचवा पुरुषाअनुक्ताएव समुपतिष्ठंते एवं वदंति च नण स्वामिन्! किंकु र्मोवयं किमाहराम आनयामः? किमुपनयामोढौकयामः? (किंआचिंधामोत्ति) किंनू षणादि परिधापयामः? किं युष्माकं हृदयेप्सितं? किंयुष्माकमास्यकस्य मुखस्य (सयइ त्ति) स्वदते स्वाडु प्रतिनाति? अथवा यदेव तवास्यस्य स्रवति तव मुखान्निर्गछति तदे व वयं कुर्मइति। (तमेवपासित्तत्ति) यं राजानं तथाक्रीडमानं दृष्ट्वा अनार्याएवं वदंति देवः खलु अयं पुरुषोदेवस्नातकोदेवश्रेष्ठोबहूनामुपजीव्योऽन्योप्येनमुपजीवति तथा तं तादृशमसदाचारं दृष्ट्वाऽर्याविवेकिनोवदंति अनिक्रांतक्रूरकर्मा अयं पुरुषोहिंसादि क्रियाप्रवृत्तः अतिधूर्तोबहुलकर्मा अतीवात्मानं पापैरक्षतीत्यत्यात्मरक्षः दक्षिणदिग्गामी नैरयिकः कृष्णपाक्षिकः। कोर्थः। यः क्रूरकर्मा साधुप्रत्यनीकस्तद्दाननिषेधकः सदक्षिण दिशि नरकतिर्यगादिरुत्पद्यते। दिक्षु मध्ये दक्षिणा दिक् अप्रशस्ता गतिषु नरकगतिः प

वशगा भवंतीत्यर्थः । तथा एके केचन सांप्रतेक्षिणस्तस्मात्स्थानादनुपस्थितागृहस्थाए व संतः (अभिगिझंतित्ति) झंजा तृष्णा तदातुराः संतोऽर्थेष्वत्यर्थं लुभ्यंते यतएवमतो दःस्थानमनार्यानुष्ठानपरत्वादनार्यं महापुरुषानुचीर्णं भवति तथा नविद्यते केवलमस्मि न्नित्यकेवलमशुद्धमित्यर्थः । तथेतरपुरुषाचीर्णत्वादपरिपूर्णं सद्गुणविरहात्तुछमित्यर्थः । तथा न्यायेन चरति नैयायिकं न नैयायिकमनैयायिकमसन्न्यायवृत्तिकमित्यर्थः । तथा र गेलगेसंवरणे । शोभनं लगनं संवरणं इंद्रियसंयमरूपं सल्लगस्तद्भावःसल्लगत्वंवा विद्यते सल्लगत्वमस्मिन्नित्यसल्लगत्वमिंद्रियासंवरणरूपमित्यर्थः । यदिवा शल्यवच्छल्यं मायानुष्ठा नकार्यं तज्जायति कथयति तच्छल्यगं यत्परिज्ञानं तन्मात्रेत्यशल्यगत्वमिति । तथा विद्यते सिद्धेर्मोक्षस्य विशिष्टस्थानोपलक्षितस्य मार्गोयस्मिंस्तदसिद्धिमार्गं तथा नविद्यते मुक्ते रशेषकर्मप्रच्युतिलक्षणायामार्गः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकोयस्मिंस्तदमुक्तिमार्गं तथा न विद्यतेः परिनिर्वृतेः परिनिर्वाणस्यात्मस्वास्थ्योत्पत्तिरूपस्य मार्गः पंथा यस्मिन् स्थाने तदपरिनिर्वाणमर्गं तथा नविद्यते सर्वे दुःखानां शारीरमानसानां प्रक्षयमार्गः सदुपदेशा त्मकोयस्मिंस्तदसर्वदुःखप्रक्षीणमार्गं । कुतएवंभूतं तत्स्थानमित्याशंक्याह । (एगंतेत्या दि) एकांतेनैव तत्स्थानं यतोमिथ्याभूतं मिथ्यात्वोपहतबुद्धीनां यतस्तद्भवत्यतएवासा ध्वसदृत्तत्वान्नह्ययं सत्पुरुषसेवितः पंथा येन विषयांधाः प्रवर्ततइति । तदयं प्रथमस्य स्था नस्याधर्मपाक्षिकस्य पापोपादानभूतस्य विभंगोविभागोविशेषः स्वरूपमिति यावत् ॥५७॥

अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपरकस्स विभंग एव माहिज्जइ इह ख लु पाईणंवा पडीणंवा उदीणंवा दाहिणंवा संतेगइया मणुस्सा भवंति तं जहा आयरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमं तावेगे हस्समंतावेगे सुवन्नावेगे दुवन्नावेगे सुरूवावावेगे दुरूवावेगे तेसिं चणं खेत्तवछूणि परिग्गहियाइं भवंति एसोआलावगो जहा पोंमरीए तहा णेतव्वो तेणेव आलावेण जाव सव्वोवसंता सव्वताए परिनिव्वुमंत्तिवेमि॥५८॥ एसठाणे आरिए केवले जाव सव्वदुक्खपहीणमग्गे एगंतसम्मे साहु दोच्च स्स ठाणस्स धम्मपरकस्स विभंगे एव माहिए ॥५९॥

अर्थ—हवे अपर बीजुं स्थानक धर्म पक्षनो विभंग एटले विचार कहियेंछेए. निश्चें आ जगत् मांहे पूर्वदिशियें, पश्चिमदिशियें, उत्तरदिशियें, अने दक्षिण दिशियें, अथवा विदि शियें, एवा कोइएक मनुष्यछे; ते कहेछे. एक आर्य, एक अनार्य, एक उंचगोत्रना उपना, एक नीचगोत्रना उपना, एक महोटी कायाना धणी, एक न्हानी कायाना धणी, एक

अर्थ-(इच्चेयस्सठाणस्सउठियावेगेके०) ए पूर्वोक्त स्थानक ऐश्वर्य लक्षण शृंगार मूल तेने कोइएक पाखंमीने मार्गे प्रवर्त्तता, परमार्थना अजाण, एवा पुरुष (अभिगिज्झंतिके०) वांछे, नियाणादिक चिंतवे, तथा वली (अणुठियावेगेके०) कोइएक अनुत्थित गृहस्थ तेपण (अभिगिज्झंति के०) वांछे, (अभिझंझाउरा के०) तृष्णावंत लोनिया तदातुर थका ते राजानी पदवीने (अभिगिज्झंति के०) वांछे, (एसठाणेअणारिए के०) ए स्थानक अनार्य छे, महा पुरुषने अनाचीर्ण, (अकेवलेके०) एने विषे केवल ज्ञान नथी ए कारण माटे अशुद्ध तथा (अप्पडिपुन्ने के०) अप्रतिपूर्ण सद्गुण रहित तथा पूर्णता रहित त था (अणेयाउए के०) अन्याय प्रवर्तक एटले न्यायमार्ग जेमां नथी, (असंसुद्धे के०) मलयुक्त (असल्लगत्तणे के०) तथा शल्यनुं कापनार नथी, (असिद्धिमग्गेके०) ए स्था नक थकी सिद्धिनो मार्ग नथी, एटले ए स्थानक सर्वडुःखना क्षयनो करनार नथी, (अमुत्तिमग्गे के०) कर्मबंधनुं स्थानक छे. (अनिव्वाणमग्गे के०) असमा धिनुं स्थानक छे. (अणिज्जाणमग्गेके०) मोक्षने नजाणवानो मार्ग छे, (असव्वडुक्खप हीणमग्गे के०) सर्वथा सर्वडुःखना क्षयनो मार्ग नथी, एवुं ए स्थानकछे. (एगंतमिछे के०) ए एकांत मिथ्यात्वनुं स्थानकछे, एकारणे ए (असाहु के०) असाधुनो मार्गछे एसखलुके०) निश्चे थकी ए (पढमस्सठाणस्स के०) प्रथम स्थानकनुं (अधम्मपरकस्स (वनंगे के०) अधर्म पक्षना विनंग एटले विचार (एवमाहिए के०) एम कह्यो. ॥ ५७ ॥

॥ दीपिका-अस्योपसंहारमाह । इत्येतस्य स्थानस्य सावद्यरूपस्य एके उत्थिताः पा खंडाश्रिता (अभिगिज्झंति) लुभ्यंते लोनवशगाः स्युः । अनुष्ठिताग्टहस्थाअपि संतोलु भ्यंते (झंजाउरा) तृष्णातुरालुभ्यंते अतइदं स्थानमनार्यं अकेवलमशुद्धं अप्रतिपूर्णं गुणशून्यत्वातुच्छं अनैयायिकमन्यायवृत्तिकं असंशुद्धं समलं शल्यं मायानुष्ठानमकार्ये न श ल्यकर्तनमशल्यकर्तनं । नविद्यते सिद्धेर्मार्गोयस्मिन् तदसिद्धिमार्गं नविद्यते मुक्तेर्मार्गोज्ञाना दिकोयस्मिन् तदमुक्तिमार्गं नविद्यते निर्वाणस्य चित्तस्वास्थ्यस्य मार्गोयस्मिन् तत्तथा अनि र्वाणमार्गं न संसारनिर्याणमार्गरूपमित्यर्थः । न सर्वडुःखप्रक्षेपमार्गरूपं यस्मादेकांतेन मिथ्यादृशां असाधु असदाचारत्वात् । एषखलु प्रथमस्थानस्याधर्मपक्षस्य विनंगोविशेषः स्वरूपमिति यावत् आख्यातः कथितः ॥ ५७ ॥

॥ टीका-सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । (इच्चेइयस्सेत्यादि) इत्येतस्य पूर्वोक्तस्य स्थानस्य ऐश्वर्यलक्षणस्य शृंगारमूलस्य संसारिकस्य परित्यागबुध्या एके केचन विपर्यस्तमतयः पा षंडिकोत्थानेनोत्थिताः परमार्थमजानातः (अभिगिज्झंतित्ति) आभिमुख्येन लुभ्यंते लोन

ना के०) कृष्यादिक महाआरंभना करनार, तथा (महापरिग्गहा के०) क्षेत्र, धन, धान्य, द्विपद, चतुःपदादिक, अनेक परिग्रहवंत अधर्मिक अधर्मानुय एटले अधर्मनीज अनुमोदना करनारा, (अधम्मिठा के०) अधर्मज जेने इष्टछे वल्लभछे, (अधम्मरकाई के०) अधर्मना बोलनार, अथवा अधर्मथीजे ख्याति जेनी, अधर्मे करी आजीविकाना करनार. एटले अधर्मेज जीवे, प्राण धारण करे. तथा अधर्मज देखे तथा अधर्मनेज अंगीकार करवा प्रलोके एटले देखे, ते अधर्मे प्रलोइ केवाय. (अधम्मपलज्जणा के०) अधर्मने विषे राचे, अधर्मशील एटले अधर्मज जेनो स्वभावछे, (समुदायारा के०) तथा चारनो समुदाय छे जेनो (अधम्मेणंचेववित्तिंकप्पेमाणाविहरंति के०) तथा जे अधर्मे करीनेज वृत्ति कल्पीने विचरे. कालक्षेप करे ॥६१॥

॥ दीपिका–उक्तानि अधर्मधर्ममिश्रस्थानानि । अथ तेषां स्थानिनोऽभिधीयंते । अथवा पूर्वोक्तमेव प्रकारांतरेण विशिष्टतरमाह । अथापरः प्रथमस्थानस्य धर्मपक्षस्य विभंगोविभागएवमाख्या यते । (इहखलुइत्यादि) एते च प्रायोगृहस्थाएव स्युरित्याह । (गिहत्था) गृहस्थाः (महेछा) महारंभाः महापरिग्रहाअधर्मेण चरंत्याधर्मिकाअधर्मानुज्ञाः अधर्मिष्ठानिस्त्रिंशाः अधर्माख्यायिनोऽधर्मवादिनः अधर्मजीविनोऽधर्मप्रलोकिन अधर्मे प्रकर्षेण रज्यंतइत्यधर्मप्ररक्तकाः अधर्मशीलः समुदाचारोयत्किंचनकारित्वं येषां ते तथा अधर्मेण वृत्तिं जीविकां कल्पयंतः कुर्वंतोविहरंति तिष्ठंति । पापानुष्ठानमाह ॥६१॥

॥ टीका–उक्तान्यधर्मधर्ममिश्रस्थानानि । सांप्रतं तदाश्रिताः स्थानिनोऽभिधीयंते । यदिवा प्राक्तनमेवान्येन प्रकारेण विशेषिततरमुच्यते । तत्रायमधर्मस्थानकमाश्रित्याह (अहावरेइत्यादि) अथापरोन्यः प्रथमस्य स्थानस्याधर्मपाक्षिकस्य विभंगोविभाग आख्यायते (इहखलु इत्यादि) सुगमं । यावन्मनुष्याएवंस्वभावाभवंतीति । एते च प्रायोगृहस्थाएवं भवंतीत्याह । (महेछाइत्यादि) महती राज्यविभवपरिवारादिका सर्वातिशायिनी स्वछांतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते महेछास्तथा महानारंभोवहनोष्ट्रमंडलिकागंत्रीप्रवाहकृषिपिंडपोषणादिकोयेषां ते महारंभाः । ये चैवं भूतास्ते महापरिग्रहाधनधान्यद्विपदचतुष्पदवास्तुक्षेत्रादिपरिग्रहवंतः कचिदप्यनिवृत्ताअतएवाधर्मेण चरंतीत्यधर्मिकास्तथा धर्मिष्ठानिस्त्रिंशकर्मकारित्वादधर्मबहुलास्ततश्चाधर्मे कर्तव्ये अनुज्ञाअनुमोदनं येषां ते भवंत्यधर्मानुज्ञा एवमधर्ममाख्यातुं शीलं येषां ते तथा एवमधर्मप्रायजीविनस्तथा अधर्ममेव प्रविलोकयितुं शीलं येषां ते भवंत्यधर्मप्रविलोकिनस्तथा धर्मप्रायेषु कर्मसु प्रकर्षेण रज्यंतइति अधर्मरक्ताः । रलयोरैक्यमिति रस्य स्थाने लकारोऽत्र कृत इति ।

सारावर्ण वाला, एक माठा वर्ण वाला, एक सुंदर स्वरूपवान्, एक कुरूपवान्, तेने क्षेत्र एटले उघाडी भूमिका, अने वस्तु एटले घर हाट, प्रमुख एवो परिग्रह होय, इत्यादि (एसोआलावगोजहापोंमरीएतहाणेतव्वो के०) ए समस्त आलावो जेम पूर्वेना पौंमरीकाध्ययनमां कह्योछे तेमज जाणवुं, एटले "तेणेवअलावेणजावसव्वोवसंता सव्वत्ताएपरिनिव्वुमंत्तिबेमि" एटला सुधीनो पाठ पौंमरीक अध्ययनमांछे. ते प्रमाणे अहीं पण जाणी लेवुं. अर्थात् तेज आलावे ज्यां सुधी सर्व प्रकारे उपशांत एटले कषायने जीपीने तथा सर्व प्रकारे सर्व पापस्थानकथकी उपशम्या. ए कारणे सर्वात्मा, सर्व जीव उपर समभावे वर्त्तमान, शीतलीभूत थया. ए प्रमाणे श्रीसुधर्मेस्वामि जंबूप्रत्यें कहेछे के ते आलावो सर्व आहीं जाणवो. ॥ ५७ ॥ ए स्थानकने आर्य रूडुं जाणवुं. एने विषे केवल ज्ञान होय यावत् ए सर्व दुःख क्षय करवानो मार्ग छे, एकांत सम्यक्मार्ग, एकांत सम्यक्दृष्टीनो मार्ग ते कारणे ए साधुनुं स्थानक जाणवुं एटले बीजुं स्थानक धर्मपक्ष, तेनो विभंग एटले विचार एरीतें कह्यो. ॥ ५९ ॥

दीपिका–(अहावरेत्ति) अथापरोद्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विभंगोविशेषएवमाख्यायते । तद्यथा (पाईणंति) प्राचीनं प्रतीचीनमुदीचीनं दक्षिणंवा दिग्भागमाश्रित्य संत्येके केचन कल्याणभाजः पुरुषाः । तद्यथा आर्या एके अनार्याइत्यादि यथा पुंडरीकाध्ययने तथेहापि सर्वं वाच्यं यावत्ते एवं सर्वपापस्थानेभ्यउपशांताअतएव सर्वात्मतया परिनिर्वृता इत्यहं ब्रवीमि॥५७॥ एतत्स्थानमार्यं महापुरुषाचरितं केवलमित्यादिप्राग्वद्विपरीतं ज्ञेयं । यावद्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विभंगोविशेषआख्यातः ॥ ५९ ॥

टीका–सांप्रतं द्वितीयं धर्मोपादानभूतं पक्षमाश्रित्याह । (अहावरेइत्यादि) अथेत्य धर्मपाक्षिकस्थानादनंतरमयमपरोद्वितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य पुण्योपादानभूतस्य विभंगोविभागः स्वरूपं समाधीयते सम्यगाख्यायते । तद्यथा प्राचीनं प्रतीचीनमुदीच्यं दक्षिणंवा दिग्विभागमाश्रित्य संतिवि द्यंते एके केचन कल्याणपरंपराभाजः पुरुषामनुष्यास्तेच वक्ष्यमाणस्वभावाभवंति । तद्यथेत्ययमुपप्रदर्शनार्थः । आर्याएके केचनार्यदेशोत्पन्नास्तथाऽनार्याः शकयवनशबरबर्बरादयइत्याद्येवं । यथा पौंडरीकाध्ययने तथेहापि सर्वं निरवयवं भणितव्यं एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण सर्वेभ्यः पापस्थानेभ्यउपशांतास्तथा अतएव सर्वात्मतयापरिनिर्वृताइत्यहमेवं ब्रवीमि ॥५७॥ तदेवमेतत्स्थानं कैवलिकं प्रतिपूर्णं नैयायिकमित्यादि प्राग्वद्विपर्ययेण नेयं । यावद्वितीयस्य स्थानस्य धार्मिकस्यैव विभंगो विभागः स्वरूपमाख्यातमिति ॥ ५९ ॥

या के०) अणविमास्या कार्यना करनार, (उक्कंचण के०) तथा शूलिकारोपणने विषे ऊर्ध्वमहोटुं करवुं (वंचण के०) वंचणा. एटले परने रगवानी बुध्धिराखे, जेम अनयकुमारने चंडप्रद्योतनी गणिकायें वंच्यो, तेनी पेरें वंचक, (मायाणियडि के०) वंचवानीबुद्धियें वाणीयानी पेरें मायानियड नियड एटले बगनी वृत्तियें वंचवानें अर्थे साधुने स्वरूपे रहे जेम उदायिराजाने चलेईकियें वंच्यो, मार्यो, तेनी पेरें जाणी लेवुं (कूडके०) मृषा बोलवुं. (कवडसाइ के०) कपट एटले रूप पालटवुं तथा नापादिक परावर्ति एटले प्रकारें (संपउग के०) तथा ते तोलानु न्यूनाधिक करवुं तथा नेलसेलनुं करवुं इत्यादिक व्यापार जाणवो (बहुला के०) घणाठे बहुलकर्म, ते उपर योगी सन्यासीनी कथा जाणवी. (डुस्सीला के०) डुःशील (डुव्वया के०) डुष्टव्रत वाला (डुप्पडियाणंदा के०) डुःखें आनंद पमाडियें जेने डुःखें हर्ष पमाडियें डुराराध्य इत्यर्थः एवा (असाहु के०) असाधु (सव्वाउ के०) सर्वथा प्रकारें (पाणाइवायाउ के०) प्राणातिपात थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या, (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी (जावसव्वाउपरिग्गहाउ के०) यावत् सर्वथा परिग्रह थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीव सुधी (सव्वतोकोहाउ के०) सर्वथा प्रकारें क्रोध थकी (जावमिछादंसणसल्लाउ के०) यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या. (सव्वाउके०) सर्वथा (ण्हाणुचणके०) स्नान, (मद्दणके०) मर्दन, करावबुं (वस्नके०) वर्ण ते अंबीर, गुलाल, (गंधके०) सुवास, (विलेवणके०) विलेपन करवा थकी, (सद्दके०) शब्द, गीत, वाद्यादिकना (फरिसके०) आठ जातना स्पर्श, (रूवके०) रूप, सुंदराकारादिक, (गंध के०) कर्पूरादिकनी सुगंध (मल्लालंकाराउ के०) माला, अलंकार ते थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीव सुधी (सव्वाउ के०) सर्वथा (सगड के०) शकट एटले गाडां (रह के०) रथ (जाणके०) वहेल (जुग के०) पुरुषे उपाड्यो आकाश यान तथा (गिल्लि के०) मोली, अथवा उंटना पलाण (थिल्लिके०) हस्तिना पलाण, (सिया के०) शिबिका. ते देशविशेष प्रसिद्ध यान शिबिका (संदमाणियाके०) शिबिका देशविशेषें अन्यजातिठेः (सयणासणजाणवाहण के०) पर्यंकादिक आसयान वाहनादिकना (नोग के०) नोग थकी तथा (नोयण के०) नोजन (पविछर के०) घर वखारो (विहीउ के०) तेना विस्तारथी (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी (सव्वाउ के०) सर्व (कयविक्कय के०) क्रय वक्रय एटले लेवो वेचवो (मासद्धमासरूवग के०) माप अर्ध माप रूपादिक (संववहाराउ के०) इत्यादिक लेवा देवा रूप व्यापार थकी (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या. (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी सर्वथा हिरण्य एटले रु

तथाऽधर्मशीलाअधर्मस्वभावास्तथाऽधर्मात्मकः समुदाचारोयत्किंचनानुष्ठानं येषांते भवं त्यधर्मशीलसमुदाचारास्तथाऽधर्मेण पापेन सावद्यानुष्ठानेनैव दहनांकननिर्लांछनादिके कर्मणा वृत्तिर्वर्तनं कल्पयंतः कुर्वाणाविहरंतीति कालमतिवाहयंति ॥ ६१ ॥

हण छिंद भिंद विगत्तगा लोहियपाणी चंमा रुद्दा खुद्दा साहस्सिया उक्कंचण वंचण मायाणियडि कूडकवडसाइ संपउगबहुला दुस्सीला दुव्वया दुप्पडियाणंदा असाहु सव्वाउ पाणाइवायाउ अप्पडिविरया जाव जीवाए जाव सव्वाउ परिग्गहाउ अप्पडिविरया जाव जीवाए सव्वउ कोहाउ जाव मिछादंसणसल्लाउ अप्पडिविरया सव्वाउ एहाणुम्मद्दण म हण वस्सगंधविलेवणसद्द फरिसरसरूव गंधमल्लालंकाराउ अप्पडिविरया जावजीवाए सव्वाउ सगड रहजाण जुगगिल्लिथिल्लिसिया संदमाणिया सयणासणजाण वाहणभोगभोयणपविछरविहीउ अप्पडिविरया जावजीवाएसव्वाउ कयविक्कयमासद्धमासरूवगसंववहाराउ अप्पडिविरया जावजीवाए सव्वाउहिरस्स सुवस्सधणधस्स मणिमोत्तियसंखसिलप्पवालउ अप्पडिविरया जावजीवाए सव्वाउ कूडतुलकुडमाणाउ अप्पडिविरया जावजीवाए सव्वाउ आरंभ समारंभाउ अप्पडिविरया जावजीवाए उ सव्वाउ करणकाराणाउ अप्पडिविरया जावजीवाए सव्वाउ पयण पायाणाउ अप्पडिविरया जावजीवाए सव्वाउ कुट्टणपिट्टणतज्जणताडणावहबंधपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया जावजीवाए जेआवस्से तहप्पगारे सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा जे अणारिएहिं कज्जंति ततो अप्पडिविरया जावजीवाए ॥ ६२ ॥

अर्थ—हवे एनो अधर्माचार कहेछे. ते पोते अधर्मी छता बीजाने पण एवा आदेश आपे ते कहेछे, के, (हण के०) अरे एने हणो, (छिंद भिंद के०) कर्णादिक, छेदी शूलादिकें करी भेदी, (विगत्तगाके०) एनां चर्म उखेडो, इत्यादिक कहीने प्राणीउने दुःखना उपजावनार थाय, ए कारणे (लोहियपाणी के०) सर्वकाल लोहीयें करी हाथ राताछे परंतु तेउ जीवोने हणीने कोइ वारें हाथ पण धोवे नहीं, (चंमा के०) तीव्रक्रोध, (रुद्दा के०) रौद्र ध्यान, शोचरहितकर्मना करनार, (खुद्दाके०) क्षुद्र दुष्ट, नूंमा, (साहस्सि

करेइ इमंनक्कउठसीसमुहछिन्नयं करेइ वेयगछहियं अंगछहियं इमंपुक्का प्फोडियं करेइ इमंणयणुप्पाडियं करेइ इमंदंसणुप्पाडियं वसणुप्पाडियं जिप्नुप्पाडियं उलंवियं करेइ घसियं करेइ घोलियं करेइ सूलाइयं करेइ सूलाभिन्नयं करेइ खारवत्तियं करेइ वझवत्तियं करेइ सीहपुछियंगं करेइ वसनपुछियंगं करेइ दवग्गिदहयंगं कागणिमंसरकावियंगं जत्तपाणनिरुध्दगं इमं जावजीवं वहवंधणं करेइ इमं अन्नयरेणं असुन्नेणं कुमारेणं मारेइ ॥ ६३ ॥

अर्थ–हवे वली वीजा प्रकारें अधर्मिक पुरुषनो विशेष कहेठे. यथादृष्टांतें नामएवी संज्ञावनायें कोइएक पुरुष. कलम एटले वटाणा, चणा, मसूरनी दाल, तल, मग, मास एटले अडद, निप्फाव एटले वाल, (कुलठ के०) तुवर, (आलिसंदग पलिमंथग मादिएहिं के०) चउथ, कालाचणा, आदेइने जे धान्य विशेषठे तेने पचन पाचनादिक क्रियायें करी पोताने तथा परने अर्थे (अयंते के०) अयत्नठता निर्दय जावें (कूरेके०) क्रूरपणे डुष्ट थको (मिठादंमंपउंजंति के०) मिथ्या दंम प्रयूजे (एवमेव के०) एरीतें (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारें पूर्वोक्त जे (पुरिसजाए के०) पुरुषजाति ठे ते निर्दय पणे त्तितर, वर्त्तक, लावक, कपोतपक्षी, कपिंजलपक्षी, मृग, पाम्हो, सूवर, मयूर, गौ नकुलादिक, जलचर घो,काचवो, अने जूजपुरी सर्प इत्यादिक प्राणीने विषे अर्थी अथवा अनर्थी थको यत्नविना निर्दय जावे क्रूर डुष्ट थकोमिथ्यादंम प्रयूजे;एवा पुरुषने परिवार पण एवोज सांपडे “ यथा राजा तथा प्रजा ” इतिवचनात् ते देखाडेठे. (जावियसेवाहिरियापरिसाजवइ के०) जेपण तेनी वाहेरनी परिषदा होय (तंजहा के०) ते कहेठे (दासेइवा के०) ए दास आपणी दासीनो पुत्रठे (पेसेइवा के०) ए प्रेक्षक काम काज उपने ज्यां त्यां मोकलवुं (जयएइवा के०) जृत ते मजूरीनो करनार, तथा (जाइल्लेइवा के०) जागीक, पट्टादिक जागें कर्षणादिकने विषे प्रवर्त्ते, (कम्मकरएइवा के०) कामनो करनार प्रसिध्द ते कर्मकर कहियें (जोगपुरिसेइवा के०) स्वतंत्र जोगने माटें राखेलो दास तेपण वाहेरनी परिषदा मांहे कोइ रूडो पुरुष होय. (तेसिंपियणं के०) तेनो पण (अन्नयरंसिवा के०) अन्य कोइ एकनो (अहालहुगंसिके०) यथा शब्दादिक सांजलेठते पठी तेनो एवो न्हानो (अवराहंसिके०) अपराध उपने ठते ते नायकना दासादिकपण (सयमेवगुरुयंदंमंनिवत्तेइके०) पोतें तेने महोटो दंम करे. (तंजहा के०) ते केवा दंम करे. ते कहेठे (इमंदंमेह के०) एने दंमो, एनुं सर्व

पुं, तथा सुवर्ण, धन, धान्य, चिंतामणी प्रमुख मणी, तथा मौक्तिक दक्षणावर्त्त शंख, राजपट, प्रवालादिक परिग्रह, तेथकी अनिवृत्त्या; तथा जावजीवसुधी सर्व कूडां तोलां, कूडां मापथकी, नथी निवृत्त्या; तथा जावजीव सुधी सर्व आरंभ जे कर्षणादिक, तथा समारंभ विशेष, तेथकी नथी निवृत्त्या, तथा जावजीवसुधी सर्वथा करण करावण थकी नथी निवृत्त्या, तथा जावजीव सुधी पचन ते पोतें पचाववानुं करे, तथा पचावण ते बीजा पासें पचाववानुं करावे, ए क्रिया थकी नथी निवृत्त्या, तथा सर्व कुटण पिट्टन तर्जन अंगुलीयेंकरी तर्जना करे चपटीयादिकें करी ताडन करे, वध, बंधन करे, इत्यादिक जीवने क्लेषना कारण थकी नथी निवृत्त्या, तथा जावजीव सुधी जे बीजां, तथाप्रकारें पाठल कह्यां एवा सपापकारी परपीडानां करनार, सावद्य कर्म, (अबोहिया के०) बोधबीजना नसाडनार एवां (कम्मता के०) कर्म, परजीवने परितापना करनार जे अनार्य पुरुषोने करवा योग्य, तेथकी पण जावजीव सुधी निवृत्त्या नथी. ॥ ६१ ॥

॥दीपिका-(हणछिंदत्ति) जहि दंडादिना, छिंधि कर्णादिकं, भिंधि शूलादिना, एवं परोपदेशं ददते । किंभूताः विकर्तकाः प्राणिनां चर्मापनेतारस्तेनैव लोहितपाणयश्चंडारौद्राः निस्त्रिंशाः क्षुद्राः साहसिकाअविचारितकारिणः उत्कुंचनवंचनमायानिकृतिकूटकपटादिभिः सहातिसंप्रयोगोगार्ध्यं तेन बहुलाः । तत्र शूलाद्यारोपणार्थमूर्ध्वं कुंचनमुत्कुंचनं वंचनं प्रतारणं । यथाऽभयकुमारः प्रद्योतगणिकाभिर्धर्मवंचनया वंचितः । माया, वंचनबुद्धिः प्रायोवणिजामिव निकृतिस्तु बकवृत्त्या देशभाषावेषादिविपर्ययकरणं कूटं तु लामानादेर्न्यूनाधिककरणं, कपटं यथाषाढभूतिना वेषपरावृत्त्याचार्योपाध्यायसंघाटकार्थं चत्वारोमोदकालब्धाः एवं मायायुतानराः । पुनः किंभूताः । दुःशीलाश्चिरं परिचिताअपि शीघ्रं विसंवदंतोदुष्टव्रताडुःखेन प्रत्यानंद्यंते हर्षंतइति दुष्प्रत्यानंद्याअसाधवः पापाः सर्वतः प्राणातिपातादप्रतिविरतालोकनिंद्यादपि ब्राह्मणघातादेरनिवृत्ताइति सर्वग्रहणं । एवं यावज्जीवं सर्वतोमृषावादाऽदत्तादानमैथुनपरिग्रहादप्रतिविरताः । एवं सर्वेभ्यः क्रोधमानमायालोभेभ्यस्तथा प्रेमद्वेषकलहाभ्याख्यानपैशुन्यपरिवादाऽरतिरतिमायामृषावादमिथ्यादर्शनशल्यादिभ्योऽविरताः स्नानोद्वर्तनवर्णकविलेपनशब्दस्पर्शरूपरसगंधमाल्यालंकारादप्रतिविरताः सर्वतः शकटरथादेर्यानादिकात्प्रविस्तरविधेः परिकरादप्रतिविरताः । अत्र शकटरथादिकमेव यानं शकटरथयानं युग्यंतरोत्क्षिप्तं चाकाशयानं (गिल्लित्ति) दोलिका (थिल्लित्ति) तुरगद्वयनिर्मितं यानं (संदमाणियत्ति) शिबिकाविशेषः । तथा सर्वतः क्रयविक्रायाभ्यां योमापकार्धमाषकरूपकनाणकादिभिः संव्यवहारस्तस्माद विरताः सर्वस्माद्धिरण्यसुवर्णधान्यमणिमौक्तिकशंखशिलाप्रवालादिपरिग्रहात् कूटतुलाकूटमानात्

तेषां बाह्या पर्षद्भवति । तद्यथा दासः स्वदासीसुतः प्रेष्यः प्रेषणयोग्यः नृतकोमूल्यगृहीतः भागिकः कृष्यादौ सद्भागग्राही कर्मकरः प्रतीतः भोगपरोनायकाश्रितः कश्चित् ते दासादयोऽन्यतरस्मिन्स्वल्पेऽप्यपराधे स्वयं गुरुतरं दंडं प्रयुंजंति । सच नायकस्तेषां दासादीनां यथा लघौ स्वल्पेऽपराधेपि गुरुदंडं वक्ष्यमाणं प्रयुंक्ते । तद्यथा इमं दासं दंडयत यूयमित्यादि सुगमं । यावदिममन्यतरेणाऽशुभेन कुत्सितमारेण मारयतइति॥ ६३ ॥

॥ टीका–पुनरन्यथा बहुप्रकारमधार्मिकपदं प्रतिपिपादयिषुराह । (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथेत्युपदर्शनार्थोनामशब्दः संभावनायां संभाव्यते । अस्मिन्विचित्रे संसारे केचनैवंभूताः पुरुषाः केवलमसूरतिलमुद्गादिषु पचनपाचनादिकया क्रियया स्वपरार्थमयताअप्रयत्नवंतोनिष्कृपाः क्रूरामिथ्यादंडं प्रयुंजंति । मिथ्यैवाऽनपराधिष्वेव दोषमारोप्य दंडोमिथ्यादंडस्तं विदधति । तथैवेमे प्रयोजनं विनैव तथाप्रकाराः पुरुषानिष्करुणाजीवोपघातनिरतास्तित्तिरवर्तकलावकादिषु जीवनप्रियेषु प्राणिष्वयताः क्रूरकर्माणोदंडं प्रयुंजंति । तेषां च क्रूरधियां "यथा राजा तथा प्रजा" इति प्रवादात् परिवारोपि तथाभूतएव भवतीति । तथा दर्शयितुमाह । (जावियसेइत्यादि) यापिच तेषां बाह्या पर्षद्भवति । तद्यथा । दासः स्वदासीसुतः प्रेष्यः प्रेषणयोग्योभृत्योभृत्यदेश्योभृतकोवेतवेनोदकाद्यानयनविधायी तथा भागिकोयः षष्ठ्यंशादिलाभेन कृष्यादौ व्याप्रियते कर्मकरः प्रतीतस्तथा नायिकाश्रितः कश्चिद्भोगस्तदेवं ते दासादयोऽन्यस्य लघावप्यपराधे गुरुतरं दंडं प्रयुंजंति प्रयोजयंतिच । सच नायकस्तेषां दासादीनां बाह्यपर्षद्भूतानामन्यतरस्मिंस्तथा लघावपराधे शब्दश्रवणादिके गुरुतरं दंडं वक्ष्यमाणं प्रयुंक्ते । तद्यथा । इमं दासं प्रेष्यादिकंवा सर्वस्वापहारेण दंडयत यूयमित्यादि सूत्रसिद्धं यावदिममन्यतरेणाशुभेन कुत्सितमारेण व्यापादयत यूयं ॥ ६३ ॥

जावियसे अभिंतरिया परिसा भवइ तंजहा मायाइवा पियाइवा भायाइवा भगिणीइवा भज्जाइवा पुत्ताइवा धूताइवा सुण्हाइवा तेसिंपियणं अन्नयरंसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंमं णिवत्तेइ सीउदगवियडंसि उगेलित्ता भवइ जहा मित्तदोसवत्तिए जाव अहिए परंसि लोगंसि तेडक्खंति सोयंति जूरंति तिप्पंति पिट्टंति परितप्पंति ते डुक्खणसोयणजूरणपिट्टणपरितप्पणवहबंधणपरिकिलेसाउ अपडिविरया भवंति ॥ ६४ ॥

अर्थ–(जावियसेअभिंतरियापरिसाभवइके०) जे पण तेनी अभ्यंतरनी परिषदा होय

स अपहरी ल्यो, (इमंमुंमेह के०) एने सर्वमुंमन करावो (इमंतज्जेह के०) एने अंगु लीयें करी तर्जना करो, (इमंतालेह के०) एने चिपटे करी ताडन करो, (इमंअडुयं बंधणंकरेहके०) एने पठवाडे बाहु करीने बंधने बंधन करो, (इमंनियलबंधणंकरेहके०) एना हाथमां बेडी नाखीने बंधन करो, (इमंहडिबंधणंकरेह) एने हडनुं बंधन करो, (इ मंचारगबंधणंकरेह के०) एने नाकसी बंधन करो, (इमंनियलजुयलसंकोडियमोडियंक रेहके०) एने बेडीना युगलें करी संकोच करो, मोडिय एटले अंगोपांग नंग करी मरडो, अथवा एना हाथ पग संकोचीने बांधो, (इमंहब्रछिन्नयंकरेह के०) एना हाथ छेदन करो, (इमं पायछिन्नयं करेह के०) एना पग छेदन करो (इमंकन्नछिन्नयंकरेह के०) एमज एना कान छेदन करो, (इमंनक्कउठसीसमुहछिन्नयंकरेहके०) एनुं नाक छेदन करो, एना होठ, एनुं मस्तक, एनुं मुख, छेदन करो, (वेयगछहियंअंगछहियं के०) एनुं वेदछेद करो, एना जीवतांज हैयाने छेदो, कापो, एम करो. (इमंपुरकाप्फोडियंकरेहके०) एना शरीरनी खालने उपाडो एम करो, (इमंणयणुप्पाडियंकरेह के०) एनी आंख उखेडो एटले चक्नुकाढो, एम करो. (इमंदंसणुप्पाडियंवसणुप्पाडियंजिप्नुप्पाडियंउलंबियंकरेह के०) एना दांत काढो, वृषण काढो, एनी जीन काढो. एने उंचो बांधोएने कूप, पर्वत नदीने नाखो एम करो, (घसियंकरेह के०) एने पग बांधीने घसो, (घोलियं करेहके०) एने विषे आंबांनी पेंहें घोलो, (सूलाइयंकरेहके०) एने शूली उपर आरोपण करो, (सूलान्नि न्नयंकरेहके०) एने त्रिशूलें नेद करो, (खारवत्तियं करेहके०) एने शस्त्रें करी छेदीने लू णनुं पाणी सींचो (वप्नवत्तियं करेह के०) एनुं शरीर मान्नें करी, काशें छेदो. (सीहपु छियंगं करेह के०) एने सिंहने पुंछडे बांधो, (वसनपुछियंगं करेह के०) एने बलदने पुंछडे बांधो (दवग्गिंदड्ढयंगं के०) एने दावानल मांहे बालो, (कागणिमंसरकावियंगंके०) एने काक पक्षीनु मांस काढीने खवरावो, तथा एनुं पोतानुं मांस काढीने एनेज खव रावो, (नत्तपाणनिरुद्धगंके०) एने नात पाणीनो निरोध करो, (इमंजावजीवंवहबंधणंकरेह के०) एने जावजीव सुधी बांधी मूको, वध, बंधन करो, (इमंअन्नयरेणंअसुनेणंकुमारेणंमारे हके०) एम एने बीजा केटलाएक अशुन मारें करीने मारो, इत्यादिक एवा दंम तेने आपे. ६ ३

॥ दीपिका–अधार्मिकपदमेव सविस्तरमाह । (सेजहेत्ति) तद्यथा । नामसंनावने । संनाव्यंते अत्र नवे केचिदेवंनूतानराः ये कलममसूरादिषु पचनादिक्रिययाऽयताअयत्न वंतोनिष्क्रियाः क्रूराः मिथ्या अपराधं विना दोषमारोप्य दंडोमिथ्यादंडस्तं प्रयुंजंति । त था एवमेव प्रयोजनं विनैव तथाप्रकारानिर्दयाः पुरुषास्तित्तिरिवर्तकादिप्राणिष्वयताः क्रू रकर्माणोमिथ्यादंडं प्रयुंजंति तेषां परिकरोपि तादृशः स्यादित्याह (जावियसेत्ति) यापिच

अर्थ–एरीतें ते पूर्वोक्त स्वनाव वालो पुरुष निर्दय थको वाह्याभ्यंतर एवी पोतानी जे प रिपदा तेने पण पीडानो करनार एवो, बतो स्त्रियादिकना काम नोगने विषे मूर्बित गृद्ध एट ले लोनी, नोगने विषे पोतें गुंथाणो थको परम आसक्त बतो, यावत् चार, तथा पांच, तथा सात, तथा दश वर्ष एम अल्प काल अथवा घणोकाल सुधी नोगववा योग्य नोग नोगवीने, घणा जीवोनी साथे अनेक जातना वैर उपजावी वैरनावना स्थानकनो संचय करीने, ज्यां घ णापापरूप हिंसादिक क्रूर कर्म संनारीकरी करेला कर्मने प्रेरेतो एवा बतो, नरक रूप स्था नकने पामे. (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते जेम (अयगोलइवा के०) लोहनो गोलो, (सेलगोलइवा के०) पाषाणनो गोलो, तेने (उदगंसिपक्खित्तेसमाणे के०) पाणीना इहमां हे अथवा नदी तलाव मांहे नाख्यो थको, (उदगतलमइवइत्ताइ के०) उपलुं तलुं अति क्रमीने पाणीना तलामां जइ पेसे, (अहेधरणितलपइहाणेनवइ के०) नीचे धरतिना त लाने विषे जइ वेसेबे. (एवमेव के०) एरीतें (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारें, ए पूर्वोक्त प्र कारना डुष्ट निर्दय नास्तिक वादि प्रमुख एवा जे (पुरिसजाते के०) पुरुष जातिबे ते (वज्ज वहुलेके०) घणा पापरूप कर्म, (धूतवहुलेके०) घणी कर्मरूपरज (पंकवहुलेके०) घणो क र्मरूप कादव, (वेरवहुले के०) घणो जीवोनी साथे वैरनाव, (अप्पत्तियवहुले के०) अविश्वासलायक एवुं मननुं डुर्ध्यान (अयसवहुले के०) घणो अपयश (दंनवहु ले के०) घणुं कपट परने वंचवा पणु बे जेमां, (णियडिवहुले के०) घणो वेष तथा नापानु पलटाववुंबे जेमां (साइवहुले के०) सातिशय इव्य साथें गुणहीन पुरुषोना इव्यनुं मेलाववुं (उस्सन्नंतसपाणघाती के०) प्रायः त्रस प्राणी जीवनो घात करनार, ते (कालमासेकालंकिच्चा के०) कालने अवसरें काल करीने (धरणितलमइवइत्ताइ के०) पृथ्वीना तलाने सहस्र योजन प्रमाण अतिक्रमि जाये; जइने, (अहेणरगतल पइहाणेनवइ के०) नीचें नरकना तलियाना स्थानकने विषे तेनुं पडवुं थायबे. ॥६५॥

॥दीपिका–(एवमेवत्ति) एवमेव ते निर्दयाः स्त्रीप्रधानेषु कामेषु मूर्छिता गृद्धाग्रथिता अध्युपपन्नायावद्वर्षाणि चतुःपंचषट्सप्त वा दशवाल्पतरंप्रनूततरं वा कालं नोगान् नु क्त्वा वैरायतनानि वैरानुबंधान् प्रविसूय उत्पद्य वहूनि पापकर्माणि संचित्य वर्धयित्वा उत्पन्नं प्रायः संनारकृतेन कर्मणा प्रेर्यमाणानरकतलप्रतिष्ठानाः स्युः । यथाऽयोगोलः शिलागोलकोवा उदकक्षिप्तउदकतलमतिवर्त्य उल्लंघ्याधोधरणितलप्रतिष्ठानोनवति एवमे व सनरोवज्रं वध्यमानं कर्म तद्बहुलः धूनं प्राग्वद्धं कर्म तत्प्रचुरः पंकवहुलः पंकपाप वैरवहुलः (अप्पत्तियत्ति) मनसोडुर्ध्यानं दंनोमायया परवंचनं निकृतिर्नाषावेषादिपरा वर्त्तेन परद्रोहवुद्धिः सातिशयेन इव्येणहीनइव्यस्य मेलनं सातिः तद्बहुलः अयशोवहु

जहा के०) ते कहेछे. माता, अथवा पिता, अथवा नाइ, नगनी, स्त्री, पुत्र, बेटी, पुत्रनीस्त्री, इत्यादिक माहेली परिषदावालामांथी कोइकनो पण अजाण पणे यथा न्हानो सरखो अपराध उपने थके पोतेंज तेने महोटो दंम करे, मारे, शीतकालें तेना शरीरने टाढापाणीमां बोले, एवा अकार्य करे, ए जेम पूर्वे मित्रदोष प्रत्ययिक क्रियास्थानक कह्युंछे, तेमज अहीयां पण जाणीलेवुं. एवा दंमनो करनार पुरुष, ते यावत् आ लोकने विषे अहित कारी अने परलोकने विषे आत्माने अहितकारी थाय ते अनेक जीवने डुःख उपजावे, शोक उपजावे, जूरावे, तपावे, पीटे, परिताप आपे, ते घणा जीवोने डुःखदायक शोकनो करनार गर्हा, निंदा करावनार, पीटीने पीडानो उपजावनार, परिताप करावनार, वध करावनार, बंधन करावनार, एवा महोटा क्लेश उपजाववाना कर्म थकी, जावजीव नथी निवृत्या एवो थका होय ॥ ६४ ॥

॥ दीपिका—यापि च तेषामन्यंतरा पर्षद्भवति मातापित्रादिका मित्रदोषःप्रत्ययिकाख्यदशमक्रियास्थानवज्ज्ञेयं यावदहितोऽस्मिन् लोके। ते क्रूरकर्माणः स्वल्पापराधिनामपि गुरुतरदंडकरणाद्दुःखयंति शोकयंति यावद्वधबंधपरिक्लेशादप्रतिविरताभवंति ॥ ६४ ॥

टीका—यापिच क्रूरकर्मवतामन्यंतरा पर्षद्भवति । तद्यथा । माता पित्रादिका मित्रदोष प्रत्ययिकक्रियास्थानवद्ज्ञेयं यावदहितोयमस्मिन् लोके इति । तथाहि । आत्मनोऽपथ्यकारि परस्मिन्नपि लोके । तदेवं ते मातृपित्रादीनां स्वल्पापराधिनामपि गुरुतरदंडापादनतोऽदुःखमुत्पादयंति तथा नानाविधैरुपायैस्तेषां शोकमुत्पादयंति शोकयंतीत्येवं ते प्राणिनां बहुप्रकारपीडोत्पादकाः यावद्वधबंधपरिक्लेशादप्रतिविरताभवंति ॥ ६४ ॥

एवमेव ते इच्छिकामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववन्ना जाव वासाइं चउपंचमाइं छद्दसमाइवा अप्पतरोवा भुज्जतरोवा कालं भुंजित्तु भोग भोगाइं पविसुइत्ता वेरायतणाइं संचिणित्ता बहूइं पावाइं कम्माइं उस्सन्नाइं संभारकडेण कम्मणा से जहा णामए अयगोलइवा सेलगोलइवा उदगंसि पक्खित्ते समाणे उदगतलमइवइत्ताइ अहे धरणितल पइठाणे भवइ एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाते वज्जबहुले धूतबहुले पंकबहुले वेरबहुले आप्पत्तियबहुले दंभबहुले णियडिबहुले साइबहुले अयसबहुले उस्सन्नतसपाणघाती कालमासे कालंकिच्चा धरणितलमइवइत्ताइ अहे णरगतलपइठाणे भवइ ॥ ६५ ॥

अगणिवन्नाभा कक्खडफासा दुरुहियासा असुभा णरगा असुभा णरए
सु वेयणाउ ॥ ६६ ॥

अर्थ-(तेणंणरगाके०) ते नरकनुं स्वरूप कहेछे. (अंतोवट्टा के०) सीमंतादिक नरकावा सा माहेली कोरें वाटलाआकारेछे, (वाहिंचउरंसा के०) बाहेर चारखुणाछे. (अहेखुरप्प संगणसंठिया के०) नीचें सजायानी धारने आकारें संस्थितछे एटले रह्याछे. (णिच्चंधकार तमसा के०) नित्य सर्वकाल मेघ छायानी पेठें, कृष्णपक्षनी रात्रीनी परें, महाअंधकारे यु क्तछे बहुल अंधकारछे. (ववगयचंदसूरगहनक्खत्तजोइसप्पहा के०) बुधादिक ग्रह, चंद्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ज्योतिष्य प्रकाश, ते थकी व्यपगत एटले रहितछे. (मेदवसामंसरुहिरपूयपम्ह लचिक्खल्ललित्ताणुलेवणतला के०) मेद, वसा, मांस, रुधिर, परसेवो, तेना पम्हल एटले समूह तेना कादवें करी अनु लिप्तछे जेना भूमितल एवाछे, एटले जे एकवार लिपीयें तेने लिप्त कहियें अने जे वारंवार लिपीयें तेने अनुलिप्त कहियें, (असुईवीसापरमदुब्भिगं धाकण्हा के०) अशुचि बीभत्सविष्टायें खरड्या कुत्सित एटले मांससमान दुर्भिगंध, खराब कृष्णवर्ण वाला (अगणिवन्नाभाके०) मशाणनो अग्नि, तथा धम्या लोहना अ ग्निनी ज्वालाउना जेवा वर्ण थाय ते समान आकारछे जेनो, जे अत्यंत कठोर, सह न करता अत्यंत दुःसहछे (कक्कसफासादुरुहियासा अशुभके०) दुःखे सहन थाय एवा खरखरा कर्कश फरशछे जेने विषे, एवा अशुभ (णरगा के०) नरकने विषे (अशुभ णरए सुवेयणाउ के०) महा अशुभ वेदना प्रवर्त्तेछे. ॥ ६६ ॥

॥ दीपिका-नरक स्वरूपमाह । ते नरकाअंतर्वृत्तावहिश्चतुरस्राः अधश्च क्षुरप्रसंस्थान स्थिताः । एतच्च संस्थानं पुष्पावकीर्णानां तेपामेव प्रचुरत्वात् । आवलिकां गतास्तु वृत्त त्र्यस्रचतुरस्रसंस्थानाएव तथा नित्यांधकारतमसा भृशं तमोबहुलाः व्यपगतग्रहचंद्रसूर्यन क्षत्रज्योतिष्पथाः । मेदवसामांसरुधिरपूयपटलैर्लिप्तानि अनुलेपनप्रधानानि तलानियेषां ते तथा । तथा अशुचयोविस्राः कुथितमांसादिलिप्तत्वात् परमदुरभिगंधाः कृष्णाग्निवर्णाभाः कर्कशस्पर्शादुःखेनाधिसह्यंते यतोऽशुभास्तत्र नरकेषु अशुभादुःसहावेदनाः ॥ ६६ ॥

॥ टीका-नरकस्वरूपनिरूपणमाह । (तेणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । ते नरकाः सीमंतकादिकाबाहुल्यमंगीकृत्यांतर्मध्ये वृत्तावहिरपि चतुरस्राअधश्च क्षुरप्रसंस्था नसंस्थिताः । एतच्च संस्थानं पुष्पावकीर्णानाश्रित्योक्तं तेपामेव प्रचुरत्वात् । आवलिका प्रविष्टास्तु वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रसंस्थानाएव भवंति । तथा नित्यमेवांधतमसं येपु ते नित्यां धतमसाः । क्वचित्पाठोनित्यांधकारतमसाइति । मेघावच्छिन्नांबरतलकृष्णपक्षरजनीवत् तमो

नः प्रायस्त्रसघाती कालमासे स्वायुःक्षये कालं कृत्वा धरणितलं रत्नप्रनादिकायाः पृथिव्यास्तलमतिलंघ्याऽधोनरकतलप्रतिष्ठानः स्यात् ॥ ६५ ॥

॥ टीका—तेच विषयासक्ततया एतत्कुर्वंतीत्येतद्दर्शयितुमाह । (एवमेवइत्यादि) एवमेव पूर्वोक्तस्वनावाएवं ते निष्कृपानिरनुक्रोशाबाह्याभ्यंतरपर्षदोरपि कर्णनासाविकर्तनादिना दंडपातनस्वनावाः स्त्रीप्रधानाः कामाः स्त्रीकामाः यदिवा स्त्रीषु मदनकामविषयनूतासु कामेषुच शब्दादिषु इछाकामेषु मूर्छितागृद्धाग्रथिताअध्युपपन्नाः । एते च शक्रपुरंदरादिवत्पर्यायाः कथंचिद्भेदं वाश्रित्य व्याख्येयाः । तेच नोगासक्ताव्यपगतपरलोकाध्यवसायायावद्वर्षाणि चतुःपंचषट् सप्तवा दशवाल्पतरं वा कालं नुक्त्वा नोगासक्ततयाच परपीडोत्पादनतो वैरायतनानि वैरानुबंधाननुप्रसूयोत्पाद्य विधाय तथा संचयित्वा संचिंत्योपचित्य बहूनि प्रनूततरकालस्थितिकानि क्रूराणि क्रूरविपाकानि नरकादिषु यातनास्थानेषु क्रकचपाटन शाल्मल्यवरोहणतप्तत्रपुपानात्मकानि कर्माण्यष्टप्रकाराणि बद्धस्पृष्टनिधत्तनिकाचनावस्थानि विधाय तेनच संनारकृतेन कर्मणा प्रेर्यमाणास्तत्कर्मगुरवोवा नरकतलप्रतिष्ठानानवंतीत्युत्तरक्रिययापादितबहुवचनरूपयेति संबंधः । अस्मिन्नेवार्थे सर्वलोकप्रतीतं दृष्टांतमाह । (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथानामायोगोलकोऽयस्पिंडः शिलागोलकोवृत्तात्मशकलंवोदके प्रक्षिप्तः समानसलिलतलमतिवर्त्यातिलंघ्याधोधरणीतले प्रतिष्ठानोनवति । अधुना दार्ष्टांतिकमाह । (एवमेवेत्यादि) यथासावयोगोलकोवृत्तत्वाछीघ्रमेवाधोयात्येवमेव तथाप्रकारः पुरुषजातः । तमेव लेशतोदर्शयति । वज्जवद्वज्जं गुरुत्वात्कर्म तद्बहुलस्तत्करण प्रचुरस्तथा बध्यमानकर्मगुरुरित्यर्थः । तथा धूयतइति धूतं प्राग्बद्धं कर्म तत्प्रचुरः । पुनः सामान्येनाह । पंकयतीति पंकं पापं तद्बहुलस्तथा । तदेव कारणतोदर्शयितुमाह । वैरबहुलो वैरानु बंधप्रचुरस्तथा (पत्तियंति) मनसोडुष्प्रणिधानं तत्प्रधानस्तथा दंनोमायया परवंचनं तडुत्कटस्तथा निंकृतिर्मायावेपनाषापरावृत्तिछद्मना परडोहबुद्धिस्तन्मयस्तथा सातिबहुलइतिसातिशयेन डव्येणापरस्य हीनगुणस्य डव्यस्य संयोगः सातिस्तद्बहुलस्तत्करणप्रचुरस्तथाऽयशोश्लाघासद्वृत्ततया. निंदा यानि यानि परापकारनूतानि कर्मानुष्ठानानि विधत्ते तेषु तेषु कर्मसु करचरणछेदनादिषु अयशोनाग्नवतीति । सएवंनूतः पुरुषः कालमासे स्वायुपः क्षये कालं कृत्वा पृथिव्यारत्नप्रनादिकायास्तलमतिवर्त्य योजनसहस्रपरिमाणमतिलंघ्य नरकतलप्रतिष्ठानोऽसौ नवति ॥ ६५ ॥

तेणं णरगा अंतोवट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिया णिच्चंधकारतमसा ववगयगहचंदसूरनरकत्तजोइसप्पहा मेदवसामंसरुहिरपूयपमलचिरकललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमडुब्भिगंधा कण्हा

॥ टीका–तथाच वेदनयाभिभूतास्तेषु नरकेषु नारकानैवाक्षिनिमेषमपि कालं निद्रायं ते नाप्युपविष्टाद्यवस्थाअक्षिसंकोचनरूपामीषन्निद्रामवाप्नुवंति । नह्येवंभूतवेदनाभिभूतस्य निद्रालाभोभवतीति दर्शयति । तामुज्वलां तीव्रानुभावेनोत्कटामित्यादि विशेषणविशिष्टां यावद्वेदयंत्यनुभवंतीति ॥ ६७ ॥

से जहाणामए रुक्खसिया पव्वयग्गे जाए मूले छिन्ने अग्गे गरुए ज
ओणित्तं जओ विसमं जओदुग्गं तओपवडंति एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए
गब्भातोगब्भं जम्मातोजम्मं माराओमारं णरगाओ णरगं दुक्खाओ दुक्खं दाहि
णगामिए णेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं दुल्लभबोहिएयावि भवइ
एसठाणे अणारिए अकेवले जाव असव्वदुक्खपहीणमग्गे एगंतमिच्छे
असाहू पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिए ॥६८॥

अर्थ–(सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते नाम एवी संभावनाये जेम कोइएक (रुक्खसिया के०) वृक्ष होय, (पव्वयग्गेजाए के०) पर्वतने अग्रे उपनो (मूलेछिन्ने के०) मूल मांहेथी छेद्यो (अग्गेगरुएके०) अग्रे भारी एवो छतो ते वृक्ष (जओणित्तं जओविसमं के०) ज्यां ज्यां नीचा खाडानु स्थानक होय, ज्यां त्यां विषम, समान नही, (जओदुग्गंके०) ज्यां ज्यां दुर्गम कष्टस्थान होय, (तओपवडंतिके०)त्यां ते वृक्ष उतावलो पडे. (एवमेवतहप्पगारे के०) एदृष्टांते तथा प्रकारना दुष्ट असाधु कर्मकारी पुरुष जाति ते कर्मरूपी वायरे प्रेर्यो छतो उतावलो नीचो नरकगतिमां जइ पडे; फरी त्यां थकी उद्धर्यो थको फरी गर्भ थकी गर्भ, जन्म थकीजन्म, मरण थकी मरण पामे, नरकथकी नरक पामे, दुःख थकी वली दुःख पामे, एरीते दक्षणदिशिनो जनारो, नारकी, कृष्णपक्षी ते दीर्घसंसार पणाने लीधे आगमिक काले दुर्लभ बोधि थाय ए स्थानक अनार्य अकेवल यावत् जेमां सर्वदुःख थकी छुटवानो मार्ग नथी एकांत मिथ्यात्व असाधुनो मार्ग जाणवो ए प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो विचार एम कह्यो. ॥ ६८ ॥

॥ दीपिका–(सेजहत्ति) तद्यथा नामकश्चिद्वृक्षः पर्वताग्रे जातोमूले छिन्नः शीघ्रं यथा निम्नं नीचं स्थानं ततः पतति एवमसावसाधुरपि नरके पतति ततोप्युद्धृतो गर्भाद्गर्भे याति एवं न तस्य किंचित्त्राणं भवति यावदागामिन्यपि कालेऽसौदुर्लभ बोधिः स्यात् (एसठाणत्ति) तदेतत् स्थानमनार्यं यावदेकांतमिथ्यारूपमसाधु । तदेवं प्रथमस्याधर्मपाक्षिकस्य स्थानस्य विभंगोविभागः समाख्यातः ॥ ६८ ॥

बहुलास्तथा व्यपगतोग्रहसूर्यचंद्रज्योतिःपथोयेषां ते तथा । पुनरप्यनिष्टापादनार्थं तेषा मेव विशेषणान्याह । (मेदवसेत्यादि) डुष्कृतकर्मकारिणां ते नारकास्तदुःखोत्पादनायैवं नूतान्नवंति । तद्यथा । मेदवसामांसरुधिरपूयादीनां पटलानि संघास्तैर्लिप्तानि पिच्छिलीकृतान्यनुलेपनतलान्यनुलेपनप्रधानानि तलानि येषां ते तथा अशुचयोविष्ठासृक्क्लेदप्रधानत्वादतएव विश्राः कुथितमांसादिकल्पकर्दमावलिप्तत्वात् । एवं परमडुर्गंधाः कुथितगोमायुकलेवरादपि असह्यगंधास्तथा कलाग्निवर्णानारूपतः । स्पर्शतस्तु कर्कशः कठिनोवज्र कंटकादप्यधिकतरः स्पर्शोयेषां ते तथा किंबहुनाऽतीव डुःखेनाधिसह्यंते । किमिति । यतस्ते नरकाः पंचानामपींड्रियार्थानामशोननत्वादशुनास्तत्रच सत्वानामशुनकर्मकारिणामुदग्रदंडपातिनांच वज्रप्रचुराणां तीव्राअतिडःसहवेदनाः शारीराः प्राडुर्नवंति ॥ ६६ ॥

णोचेव णरएसु नेरइया णिद्दायं तिवा पलायंतिवा सूइंवा रतिंवा धीतिं वा मतिंवा उवलन्नंते तेणं तञ उज्जलं विउलं पगाढं कडुयं कक्कसं चंमं डुक्कं डुग्गं तिवं डुरुहियासं णेरइया वेयणं पच्चणुन्नवमाणा विहरंति ॥६७॥

अर्थ–(णोचेवणरएसुनरइया के०) पणते नरकने विषे जे नारकी जीवोछे ते एटलावा नां पामता नथी शुं नथी पामता ? तोके (णिद्दायंतिवा के०) निद्रा नथी पामता, (पलायंतिवाके०) घणी निद्रा जे प्रचला ते पण नथी पामता, (सूइंवाके०) श्रुति एटले विशेष ज्ञाननी स्मृति तेपण नथी पामता, (रतिंवा के०) चित्तने विषे रति पामता नथी, (धतिंवा के०) विशेष धैर्य धृतिने पण नथी पामता, तथा (मतिंवा के०) बुद्धिने पण (उवलन्नंते के०) पामे नहीं (तेणंतञउज्जलं के०) ते नारकी ते नरकने विषे प्रवर्त्तमान थका उज्वली केतां तीव्र उत्कृष्ट (विउलं के०) विस्तीर्ण (पगाढं के०) आकरी, (कडुयं के०) कडवी, (कक्कसं के०) कर्कश, (चंमं के०) रौद्र, (डुक्कं के०) डुःखनुं कारण, (डुग्गंतिवं के०) तीव्र डुर्ग, तीक्ष्ण, (डुरुहियासं के०) डुःखे सहन करवा योग्य (णेरइयावेयणं के०) नरकने विषे नारकीने वेदनाने (पच्चणुन्नवमाणाविहरंतिके०) नोगवता थका विचरेछे. काल अतिक्रमण करेछे ते उपर दृष्टांत कहेछे. ॥ ६७ ॥

॥ दीपिका–(णोचेवत्ति) तेषु नरकेषु वेदनानिनूता न निद्रायंते न प्रचलायंते ईषन्निद्रामपि नगछंतीत्यर्थः । श्रुतिंवा रतिंवा धृतिंवा मतिंवा नोपलन्नंते ते नारकास्तत्र उज्वलामुत्कटां विपुलां प्रगाढां कटुकां कर्कशां चंडां डुःखरूपां तीव्रां डुरधिसह्यां नरकवेदनां प्रत्यनुनवमानास्तिष्ठंति ॥ ६७ ॥

यते। तद्यथा (इहखलुइत्यादि) प्राच्यादिषु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते ते चै वंभूतान्नवंतीति। तद्यथा। न विद्यते सावद्यआरंनोयेषांते तथा अपरिग्रहानिष्किंचनाः धर्मेण चरंतीति धार्मिकायावद्धर्मेणैवात्मनोवृत्तिं परिकल्पयंति तथा सुशीलाः सुव्रताः सु प्रत्यानंदाः सुसाधवः सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरताएवं यावत्परिग्रहाद्विरताइति। तथा ये चान्ये तथाप्रकाराः सावद्याआरंनायावदबोधिकारिणस्तेन्यः सर्वेन्योपि विरताइति॥६९

से जहा णामए अणगारा नगवंतो इरियासमिया नासासमिया एस णासमिया आयाणनंममत्तणिरकेवणासमिया उच्चारपासवणखेलसिं घाणजल्लपारिठावणियासमिया मणसमिया वयसमिया कायसमिया मणगुत्ता वयगुत्ता कायगुत्ता गुत्ता गुत्तिंदिया गुत्तबंनचारी अकोहा अ माणा अमाया अलोना संता पसंता उवसंता परिणिवुमा अणासवा अग्गंथा बिन्नसोया निरुवलेवा कंसपाइ वमुक्कतोया संखइव णिरंज णा जीवइव अपडिहयगती गगणतलंपिव निरालंबणा वाउरिव अपडि वंधा सारदसलिलइव सुद्धहियया पुरकरपत्तंइव निरुवलेवा कुम्मोइव गुत्तिंदिया विहगइव विप्पमुक्का खग्गविसाणंव एगजाया नारंमपरकीव अप्पमत्ता कुंजरोइव सोंमीरा वसनोइव जातथिमा सीहोइवडुद्धरिसा मं दरोइवअप्पकंपा सागरोइवगंनीरा चंदोइवसोमलेसा सूरोइव दित्ततेया जच्च कंचणगंचइव जातरूवा वसुंधराइव सव्वफासविसहा सुहुयहुयासणो विव तेयसा जलंता णत्थिणं॥७०॥तेसिंनगवंताण कत्थविपडिवंधेनवइ से पडिवंधे चउविहे पणते तं जहा अंमएइवा पाठांतरेबोमजेइवा पोयएइवा उग्गहेइवा पग्गहेइवा जन्नंजन्नंदिसं इच्छंति तन्नं तन्नं दिसं अपडिबद्धा सुइनूया अप्पलहुनूया अप्पग्गंथा संजमेणं तवसा अप्पाणं नावेमाणे विहरंति॥७१॥तेसिणं नगवंताणं इमा एतारूवा जाया माया वित्ती होत्था तंजहा चउछेनत्ते छछेनत्ते अछमेनत्ते दसमेनत्ते डुवालसमे नत्ते चउदसमे नत्ते अद्धमासिएनत्ते मासिएनत्ते दोमासिए तिमासिए चाउम्मासिए पं चमासिए छम्मासिए अडुत्तरंचणं उक्खित्तचरया णिक्खित्तचरया उक्खि त्तणिक्खित्तचरगा अंतचरगा पंतचरगा लूहचरगा समुदाणचरगा सं

॥ टीका–एवं तावदयोगोलपाषाणदृष्टांतः शीघ्रमधोनिमज्जनार्थप्रतिपादकः प्रदर्शितो ऽधुना शीघ्रपातार्थप्रतिपादकमेवापरं दृष्टांतमधिकृत्याह। (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथा नाम कश्चिद्वृक्षः पर्वताग्रे जातोमूले छिन्नः शीघ्रं यथा निम्नं पतति एवमसावप्यसाधुकर्म कारी तत्कर्मवातेरितः शीघ्रमेव नरके पतति ततोप्युद्वृतोगर्भाद्गर्भमवश्यं याति न तस्य किंचित्राणं भवति यावदागामिन्यपि काले दुर्लभधर्मप्रतिपत्तिर्भवतीति । सांप्रतमुपसंहरति (एसठाणेइत्यादि.) तदेतत्स्थानमनार्यं पापानुष्ठानपरत्वाद्यावदेकांतमिथ्यारूपमसाधु । तदेवं प्रथमस्याधर्मपाक्षिकस्य स्थानस्य विभंगोविभागः स्वरूपमेव व्याख्यातः ॥ ६८ ॥

अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्म पक्खस्स विभंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाइणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति तंजहा अणारंभा अपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया धम्मिठा जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति सुस्सीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा सुसाहु सव्वतो पाणातिवायाउ पडिविरया जावजीवाए जावजेयावन्ने तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा कज्जंति ततोविपडिविरता जाव जीवाए॥६९

अर्थ–अथ हवे बीजो स्थानक धर्म पक्षनो विचार कहियें छेयें. आजगत् मांहे निश्चें पूर्वादिक दिशिने विषे कोइएक मनुष्य एवाछे ते कहेछे. निरारंभी, निःपरिग्रही धार्मिक धर्मानुगामि, धर्मज जेने इष्टछे. यावत् धर्मेकरी वृत्ति आजीविका करता थका विचरे छे. सुशील, सुव्रत, रूडा आनंद पामनारा, सुसाधु, तथा सुखसाध्य पदवीरूप गुणे करी विराजमान, ते पुरुष सर्वथा प्राणातिपात थकी निवृत्या, जावजीव सुधी यावत्. जे बीजा, तथा प्रकारनां पापकारी, सावद्यकर्म अबोधिना करनार बीजा प्राणीने परितापना करनार कार्य करियें, तेवा कार्य थकी पण निवृत्या छे. ॥ ६९ ॥

दीपिका–अथापरस्य द्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विभंगः स्वरूपमेवमाख्यायते । यथा प्राच्यादिदिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते केचिन्मनुष्याभवंति । तद्यथा अनारंभाअपरिग्रहाधार्मिकाधर्मानुगाधार्मिष्ठाधर्मेणैव वृत्तिं कल्पयंतोविहरंति तथा सुशीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदाः सुसाधवः सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरतायावत्परिग्रहाद्विरताः । ये चान्ये तथाप्रकाराः सावद्याअबोधिकारिणः कर्मकाः कर्महेतवः परप्राणपरितापनकरा आरंभाक्रियंते ततोविरताः ॥ ६९ ॥

॥ टीका–अथापरस्य द्वितीयस्य विभंगोविभागः स्वरूपमेवं वक्ष्यमाणनीत्या व्याख्या

जल्लपारिठावणिया समितियें समिता) एटले वडीनीत, लघुनीत, थूंक नासीकानो सीं घाण, शरीरनो मल, तेने जयणा सहित परठवे. एमपांच समितियें समिता, मन समि तियें सहित, वचन समितियें सहित, काय समितियें सहित, मन ने असंयम थकी गो पवीने प्रवर्तावे, माटे मनगुप्तियें गुप्त, वचनने असंयमथी गोपवीने प्रवर्त्तावे, माटे वच न गुप्तियें गुप्त, कायाने असंयमथी गोपवीने प्रवर्त्तावे, माटे कायगुप्तियें गुप्त, एरीतें त्र ण गुप्तियें गुप्त, तथा गुप्तेंद्रिय एटले असंयम थकी इंद्रियोने गोपवी राखनार, नववा डविशुद्ध ब्रह्मचर्यना पालनार, क्रोध रहित, मान रहित, माया रहित, लोज रहित, संता एटले मध्यवर्त्तियें, अने पसंता, एटले बाह्य वृत्तियें उवसंता, एटले उपशांतते उजय थापि शांतवृत्तिवाला, परिनिवृत्ता एटले समस्त संताप वर्जीत, अनाश्रय एटले पाप क र्म बंध थकी रहित, अग्रंथा एटले हिरण्यादिक परिग्रह थकी रहित, छिन्नश्रोत एटले छेद्योछे संसारनो प्रवाह जेणे, तथा निरुवलेवा एटले निर्लेप कर्म मल थकी रहित, कं सपातीवमुक्कतोया एटले कांसाना पात्रनी पेठें पापरूप पाणी जेने छवतुं नथी; जेम कांसा ना पात्रने पाणी न लागे तेम, ते साधुने पापरूप पाणी लागे नहीं, तथा शंखनी पेठें निरंजन एटले रागादिक रंग रहित, जीवनी पेठें अप्रतिहत गतिवाला जाणवा, एटले जेम जीवनी गति अप्रतिहतछे स्खलाय नही, तेम साधुने पण देश नगरादिकने विषे वि हार करवाने विषे अप्रतिहत अस्खलित गतिछे. आकाशनी पेठें निरालंब एटले आका श जेम स्तंजादिकना आलंबने रहितछे तेम, साधु पण गाम, नगर, कुलना आलंबनथी रहितछे. वायुनी पेठें अप्रतिबंध थका ग्रामने विषे एक रात्र, अने नगरने विषे पांच रा त्र, विचरे. गामेएगराइयं णगरेपंचराइया इति वचनात् शारद एटले शीतकाल तेनुं स लील एटले पाणी तेनी पेठें अथवा आश्विन, अने कार्तिक मासना पाणीजेम निर्मलहो य, तेनी पेठें निर्मल हृदय वाला, (पुक्खरपत्तंइवनिरूवलेवा) एटले जेम कमलना पत्रने पाणी तथा कादव न लागे तेम, साधुने कर्म रूप लेप न लागे. काचवानी पेठें गुप्तेंद्रि य, जेम काचवो, चार पग अने पांचमी ग्रीवा गोपवीने प्रवर्त्ते तेम, साधु इंद्रियो गोप वीने प्रवर्त्ते. पक्षीनी पेठें विप्रमुक्त, अनियतवासी, एटले पक्षी जेम सर्व परिवार स्थान कनी ममता रहित होय, तेम साधुपण परिवारादिकनी ममताथी रहित होय. (खग्गवि साणंवएगजाया) एटले गेंमानुं शींगडुं जेम एक होय, तेम साधु, राग द्वेष रहित थको क होय. जारंमपक्षीनी पेठें अप्रमत्त होय, जेम जारंम पक्षी अप्रमादी होयछे, तेम सा धु प्रमाद रहित थको धर्म कार्यने विषे प्रवर्त्ते. कुंजरनी पेठें शूरवीर एटले जेम हस्ती शूरवीर होय, तेम साधु कषायादिक निवारवाने शूरवीर होय, परंतु कायर पणुं जणा वे नहीं, वृषजनी पेठें बलवंत जेम बेल जार उपाडे अंगीकार करे निर्वाह करे तेम सा

सठचरगा असंसठचरगा तज्जात्तसंठचरगा दिठलाभिया अदिठला भिया पुठलाभिया अपुठलाभिया भिरकुलाभिया अभिरकुलाभिया अन्नायचरगा अन्नायलोगचरगा उवनिहिया संखादत्तिया परिमित पिंमवाइया सुद्धेसणिया अंताहारा पंताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुबाहारा अंतजीवी पंतजीवी आयंबिलिया पुरिमढिया विग इया अमज्ञमंसा ससिणो णोणियामरसभोइ ठाणाइया पडिमाठाणा इया उक्कडुआसणिया णेसज्जिया वीरासणिया दंमायतिया लगंमसाइ णो अप्पाउडाअगत्तया अकंमुया अणिठुहा धुतकेसमंसरोमनहा सवगा यपडिक्कम विप्पमुक्का चिठंति॥७२॥तेणं एतेणं विहारेणं विहरमाणा बहुइ वासाइं सामन्नपरियागं पाउणंति बहुबहु आबाहंसि उप्पन्नंसिवा अणु प्पन्नंसिवा बहुइंभत्ताइं पच्चरकाइ पच्चरकाइत्ता बहुइं वासाइं अणसणाइ बेदिंति अणसणाइं बेदित्ता जस्सठाएकीरति नग्गभावे मुंमभावे अ ण्हाणभावे अदत्तंवणगे अछत्तए अणोवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कठसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे परघरपवेसे लद्धाअलद्ध माणाअमा णणाउ हीलणाउ निंदणाउ खिंसणाउ गरहणाउ तज्जणाउ तालणाउ उ च्चावयागामकंटगा बावीसंपरीसहो वसग्गअहियासिज्जंति तमठंआरा हंति तमठ आराहित्ता चरमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं अणंत अणुतरं निव्वाघातं निरावरणं कसिणं पडिपुस्रं केवलवरणाणदंसणसमुप्पाडेंति समुप्पाडेंतित्ता ततोपच्छा सिज्झंतिबुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सवायं ति सवडुरकाणं अंतकरेंति ॥ ७३ ॥

अर्थ—वली बीजे प्रकारें साधुना गुण देखाडे ठे. ते यथा नाम एवी संभावनायें जे म कोइएक उत्तम संघयणवंत, महाबलें करी सहित अणागार भगवंत होय, ते केवा होय? तोके इर्या समितियें समिता, भाषासमितिये समिता, एटले सत्यनिरवद्य भा षाना बोलनार, एषणासमितियें समिता, एटले बेंतालीश दोषरहित, आहारनी गवेष णाना करनार, (आयाणभंममत्तणिरकेवणासमितियेंसमिता) एटले माटीनुं भाजन, तथा मात्रा, अने वस्त्रादिक ने जयणायें पुंजी प्रमार्जीने मूकनारा, (उच्चारपासवणखेलसिंघाण

क्षमण, त्रण मास क्षमण, चतुर्मासिक, पंच मासिक, छ मासिक, एवां तपना करनारा, (अडुत्तरंचरणं के०) अथवा एक साधु एवा अभिग्रहना करनाराछे, ते कहेछे. (उक्खि त्तचरया के०) उत्क्षिप्तचर्या एटले पोताने अर्थें हांमली मांहे थकी काढ्युं एवुं जे कु मार अन्न तेना लेनारा, (णिक्खित्तचरया के०) निक्षिप्तचर्या एटले पिरसवाने अर्थे हांमली मांहेथी काढी वली हांमली मांहे प्रक्षेप्यो, एवो जे आहार तेनी गवेषणा करनारा, (उक्खित्तणिक्खित्तचरगा के०) पूर्वोक्त बन्ने जातना आहारनी गवेषणा करनारा, (अं तचरगा के०) जे गाममांहे ससता मूल्यनो आहार मले, तेना लेनारा, (पंतचर गा के०) नीरस आहार जमता थका, तेमांथी जे वध्यो होय तेना लेनारा, (लूह चरगा के०) जावजीव सुधी लूखा आहारना लेनारा. (समुदाणचरगा के०) हर्ष सहित जे आहार आपे तेना लेनारा, (संसठ्ठचरगा के०) खरडे हाथे आहार आपे तेना ले नारा, (असंसठ्ठचरगा के०) अण खरडे हाथे आहार आपे तेना लेनारा, (तज्जात संसठ्ठचरगा के०) ते जे द्रव्यें हाथ अथवा कडछी खरडी होय तेवा हाथे करी, अथ वा तेवी कडछीये करी, तेज आहार आपे, तेवा आहारना लेनारा, (दिठ्ठलाभिया के०) दीठा आहारनाज लेनारा, तथा (अदिठ्ठलाभिया के०) अणदीठो आहार, तथा अणदीठो दातार, तेनी गवेषणा करनारा, (पुठ्ठलाभिया के०) तथा पुछीनेज आहारना लेनारा, (अपुठ्ठलाभिया के०) अणपुछ्या आहारना लेनारा, (भिक्खूलाभिया के०) थोडुं अन्न आपे अने हेलणा करे एवा तुछ आहारना लेनारा, (अभिक्खूलाभिया के०) अतुछ आहारना लेनारा, (अन्नायचरगा के०) ज्यां कोइ पण ओलखे नहीं त्यां अज्ञात आहारना लेनारा, (अन्नायलोगचरगाके०) अज्ञात लोकना कुत्सित अन्नना लेनारा, (उवनिहिया के०) जे आहार पोता थकी नजीक जाणे, तेना लेनारा, (संखादत्तिया के०) दात्तिनी संख्याना करनारा, (परिमित्तपिंमवाइयाके०) प्रमा णोपेत पिंमना लेनारा, (सुध्देसणिया के०) शुध्दएषणिक दोष रहित एवा आहार ना गवेषण हार, (अंताहारा के०) अंताहारी एटले वाल, चणकादिकना आहारना गवेषनारा, (पंताहारा के०) तेज टाढुं उगर्युं, एवा अन्नना लेनारा, (अरसा हारा के०) हिंग जीरादिकना वघारें रहित एवा अरस आहारना लेनारा (विरसाहा रा के०) जूना धान्य खांमेलाना आहारना लेनारा, (लूहाहारा के०) लूक्ष आहारना लेनारा, (तुछाहाराके०) तुछआहारना लेनारा,(अंतजीवीके०) अंताहारें जीवे,(पंतजीवी के०) प्रांतआहारें जीवे, (आयंबिलिया के०) कूर, अडदना, बाकला लेइ, आयंबिल सदाय करे. (पुरंमढिया के०) सर्व काल बे पहोर दिवस वित्या पछी आहार जमे, (णिव गइया के०) सर्वकाल निवी करे, विगय रहित अन्न जमे, (अमज्जमंसासरसीणो के०)

धु पण, व्रतभार निर्वाह करवाने सामर्थ्यवान् धर्मधुरंधर जाणवो, सिंहनी पेठें डुर्द्धर्ष एटले सिंह जेम बीजा मृगादिक जानवरोने डुर्द्धर्ष एटले तेनाथी पराभवाये नही, तेम साधु पण परीसह उपसर्गादिकें करी पराभवाये नहीं. मंदर एटले मेरुपर्वतनी पेठें अप्रकंप, जेम मेरुपर्वत कंपायमान न थाय, तेम साधु पण परीसह अने उपसर्गादिकें कंपायमान न थाय. समुड्नी पेठें गंभीर, एटले समुड् जेम गंभीर होयछे, तेम साधु हर्ष शोकादिक कारण रहित थका गंभीर होय. चंड्मानी पेठें सोम लेश्यावंत एटले चंड्मा जेम शीतल प्रकृतिवंत होय, तेम साधु सर्वकाल मननो उद्धार करनारो, महा शीतल प्रकृति सहित होय, सूर्यनी पेठें दीप्ततेज एटले सूर्य जेम तेजवंत होयछे, तेम साधुपण तपश्चर्यायें करी तेजवंत प्रतापवंत देखायछे. साचा सुवर्णनी पेठें जातिरूप सतेज, एटले सुवर्णने जेम मेल न लागे, तेम साधुने पण कर्म मेल नलागे. वसुंधरानी पेठें सर्व स्पर्श सहे एटले पृथ्वी जेम कांटा, कांकरी, अग्न्यादिकना सर्व स्पर्श सहन करे, तेम साधु पण क्षमागुणें सहित थको, टाढ तापादिकना स्पर्शने सहन करे. सुहुयहुतासणोविव तेयसाजलंता एटले रुडे ड्व्यें घृतादिक सींचतां जेम हुताशन जे अग्नि ते सदा ते यसा एटले तेजवंत देखायछे जाज्वल्यमान देखायछे तेम,साधु पण ज्ञान तेजें करी सर्वकाल तेजवंत देखायछे. ॥ ७० ॥ (णत्थिणंतेसिंभगवंताणंके०) ते भगवंत महिमावंत साधुने नथी कछविपडिबंधेभवइ एटले क्यांहि पणप्रतिबंध नथी. सेपडिबंधे चउविहेपन्नत्ते एटले ते प्रतिबंध चार प्रकारनो कह्योछे, ते कहेछे. (अंमएइवा के०) जे अंम थकी उपजे एवा पक्षी कीडा मयूरादिक ते आश्री प्रतिबंध नथी, (पोयएइवा के०) पोत ते हस्त्यादिकना बालक ते आश्रित प्रतिबंध नथी, उग्गहेइवा के०) उग्रह एटले वस्ति पीठ फलगादिक तेनो पण प्रतिबंध नथी, (पग्गहेइवा के०) उधीक उपग्रहिक उपकरण तेनिमित्त प्रतिबंध नथी, (जन्नंजन्नंदिसंइछंति के०) जे जे दिशायें विहार करवा वांछे, (तन्नंतन्नंदिसं अप्पडिबद्धा के०) ते ते दिशायें अप्रतिबंध पणे विचरे. (सुइभूया के०) शुचिर्भूत निर्मलांतर आत्मावंत (अप्पलहुभूया के०) अल्प लघुभूत एटले अल्प परिग्रही थका, (अप्पग्गंथाके०) अल्प ग्रंथवंत बहुश्रुत, (संजमेणंतवसा के०) संयम अने तपें करी (अप्पाणंभावेमाणे के०) पोताना आत्माने भावता थका, (विहरंति के०) विचरे.॥७१॥ (तेसिणं भगवंताणं के०) ते भगवंत एटले साधुने, (इमाएतारूवा के०) एवा ए तद्रूप (जायामायावित्तिहोछा के०) संयमयात्रा एटले संयमनो निर्वाह, तेने अर्थें, मात्रावृत्ति प्रमाणोपेत भातपाणी लेवुं, ते तपें करी निर्मल थाय. (तंजहा के०) ते कहेछे. एक उपवास, बे उपवास, त्रण उपवास, चार उपवास, पांच उपवास, छ उपवास, सात उपवास, अर्द्धमासना उपवास, एक मास क्षमण, बे मास

उ के०) जन्मनां कर्मरूपकरणीने उघाडी, हेलना करतां पण समता जाव धरे. (निंद णाउ के०) कोइ निंदा करे, (खिंसणाउ के०) कोइ बीजा लोकोनी साखें हेलना करे, (गरहणाउ के०) कोइ तेना मुख अगलज हेलना करे, (तज्जणाउ के०) कोइ तर्जना करे, (तालणाउ के०) कोइ ताडना करे, (उच्चावयागामकंटगा के०) उंचा नीचा ग्रामकंटक एटले ग्रामीण लोकना वचन, पांच इंद्रियने कंटक समान, तेने सहन करे, (बावीसंपरीसहोवसग्ग के०) बावीश परिसह अने देवादिकना करेला उप सर्गादिक ए सर्वने (अहियासिज्जंति के०) मन वचन अने कायायें करी, अहियासे एटले सहन करे, (तमठ्ठंआराहंति के०) साधु ते अर्थ जे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रू प तेने आराधे, (तमठ्ठंआराहित्ता के०) ते ज्ञान दर्शन चारित्ररूप अर्थ आराधिने, (चरमेहिंउस्सासनिस्सासेहिं के०) छेला उश्वास, निःश्वासें ज्ञान उपजे ते केवो ज्ञान उपजे, ते कहेछे. (अणतं के०) अंतरहित, (अणुत्तरं के०) प्रधान, (निव्वाघायं के०) निव्याघात, (निरावरणं के०) आवर्ण रहित, (कसिणं के०) कृत्स्नं संपूर्ण, (पडिपु स्नं के०) परिपूर्ण एवो, (केवलवरणाणदंसणसमुप्पाडेंति के०) प्रधान केवलज्ञान अने केवलदर्शन, पामे (समुप्पाडेतित्ताके०) ते केवल ज्ञान अने केवल दर्शन उपजा वीने एटले पामिने, (ततोपच्छा के०) तेवार पछी (सिज्झंतिके०) सीजे एटले तेने सर्व अर्थनी सिद्धि थाय, (बुज्झंति के०) चउदराज लोकनुं स्वरूप बुझे, (मुच्चंति के०) स र्व दुःख थकी मूकाय, (परिनिव्वायंति के०) कर्मरूप दावनलने उपशमाववे करी शी तलीजूत थाय (सव्वदुक्खाणं अंतकरेंति के०) सर्व दुःखनो अंत करे, ॥ ७३ ॥

॥दीपिका—प्रकारांतरेण पुनः साधुगुणानाह। (सेजहत्ति) तद्यथानाम केचन जगवंतोऽन गाराजवंति। ईर्यासमिताइत्यादि सुगमं। यावत्सुहुतहुताशनइव दीप्तवन्हिरिव तेजसाज्वलं तो दीप्यमानाः॥७०॥(णत्थिणंति)नास्ति तेषां कुतश्चित्प्रतिबंधः। प्रतिबंधश्चतुर्विधः। तद्यथा। अंमजोहंसादिः। अंडकंवा मयूरांडकादि क्रीडामयूरादिहेतुः स्यात्तेन तत्र निबंधः स्यात्। पोतजे हस्त्यादौ पोतके वा शिशुत्वात्प्रतिबंधः स्यात्। अथवा (अंमजेइवाबोंडजेइवाइ तिपाठांतरं) अंडजं शणिकादिवस्त्रं बोंडजं कार्पासं वस्त्रं तत्र प्रतिबंधः स्यात् (उग्गहेइवा) अवगृहीतं परिवेषणार्थमुत्पाटितं जक्तपानं प्रगृहीतं जोजनार्थमुत्पाटितं तदेव। अथवा अवग्रहिकं वसतिपीठफलकादि औपग्रहिकं वा दंडकाद्युपधिजातं प्रगृहीतंतु रजोहरणाद्यो घिकोपधिरूपं तत्र प्रतिबंधः स्यात्। (जसुंति) यां यां दिशमिछंति विहर्तुं तां तां दिशं वि हरंति। किंजूताः। अप्रतिबद्धाः शुचिर्जूताजावशुद्धिमंतः श्रुतिजूतावा प्राप्तसिद्धांताः लघुता अल्पोपधयोऽगौरवाश्च अनल्पग्रंथावद्धागमाः न विद्यते आत्मनः संबधी ग्रंथोहिरण्यादिर्ये

मद्य मांसना परित्यागी होय, (णोणियामरसन्नोइ के०) सर्व काल अत्यंत सरस आ हार लीये नहीं, (ठाणाइया के०) सर्वकाल कायोत्सर्गना करनारा, (पडिमठाइया के०) प्रतिमाना वहणनारा, (उक्कडआसणिया के०) एक स्थानकें केटलो एक काल निवृत्तियें रहे,(णिसज्जियाके०) निषेधआसनना बेसनारा एटले निषेध पदार्थयुक्तपृथ्वीपर बेसे, (वीरासणिया के०) वीरासने करी रहे, बाजोठ उपर बेशी, पग नीचामूके, पढी बाजोठ दूर करीने तेज आसने बेसे. (दंमायतिया के०) दंमनी पेठें लांबो थयो थको रहे. (लगंमसाइणो के०) वांका काष्ठनी पेठें शयन करे, मस्तक, पानी अने वासो, तेने नूमीलागे, परंतु बीजे नलागे (अप्पाउडाअगत्तया के०) वस्त्र रहित, वस्त्ररूप प्रावरण न राखे, (अकंडुयाके०) शरीरें खाजी नखणे, (अणिठुहाके०) मुखनुं थूंक परठवे नहीं, (धुतकेसमंसरोमनहाके०) माथाना केश, गुह्यस्थानकना केश, दाढीमुठना केश, काखली ना केश, शरीरनां रोम, तथा नख. समारे नही, (सव्वगायपडिक्कमविप्पमुक्का के०) सर्व गात्र एटले शरीरनी शुश्रूषा करवा थकी विप्रमुक्त, एटले मूकाणा थका, (चिठंतिके०) रहे. ॥७४॥ (तेणंएतेणंविहारेणंविहरमाणा के०) तेसाधु एवा उग्र विहारे करी विचरता थ का (बहुइंवासाइं के०) घणाएक वर्ष (सामन्नपरियागंपाउणंति के०) चारित्र पर्याय पाले. एवो चारित्र पाली (बहुबहुआबाहंसि के०) रोगादिकनी आबाधा (उपन्नंसिवा के०) उपनी, तथा (अणुपन्नंसिवा के०) अणउपने ठते (बहुइंनत्ताइंपच्चरकाइके०) घणानात पाणी पच्चरके. (पच्चरकाइत्ता के०) ते पच्चरकीने (बहुइंवासाइंअणसणाइंठे दिंति के०) घणा काल सुधी अनशन पाले, (अणसणाइंठेदित्ता के०) ते अनशन पाली ने किंबहुना शुंजाशुंकहेवाथी? (जस्सठाएकीरतिके०) जे साधुधर्मने अर्थे आधर्म एवोके, लोहगोलकनी पेठें निरास्वाद खड्गधारानी पेठें डुःसाध्य,एवो चारित्र पाले. (नग्गनावेके०) नग्नपणानो नाव एटले प्रमाणोपेत वस्त्रपहेरें, (मुंमनावे के०) पांचइंडियो तथा चार कषायनो संवर करे, (अएहाणनावे के०) अंघोल स्नान नो त्यागनाव करे, (अदंतंव णगे के०) दातण करवानो परिहार करे, (अठत्तएके०) मस्तकें ठत्र धरावे नही, (अणोवाहणए के०) पगरखानो त्याग करे, (नूमिसेज्जा के०) नूमिकाने विषे शय न करे, (फलगसेज्जा के०) पाट, पाटीया उपर शयन करे, (कठसेज्जा के०) काष्ठ, पाषाण उपर शयन करे (केसलोए के०) मस्तकें केशनो लोच करे, (बंनचेरवासे के०) ब्रह्मचर्यने विषे वास करे, अर्थात् ब्रह्मचर्यने पाले, (परघरपवेसे के०) निक्षा ने अर्थे पारका घरने विषे ज्रमण करे, (लद्धाअलद्ध के०) त्यां परघर ज्रमण करतां कदाचित् निक्षानो प्राप्तिथाय, अथवा नथाय, तोपण समता नाव धरे, (माणाअ माणणाउ के०) मान, अथवा अपमान, देता थका पण समता नाव धरे. (हीलणा

तत्यपि कंबलवस्त्रादिधारणाजावः अनुपानत्कता पाडुकाद्यजावः जूमिशयनं फलकशयनं काष्ठशयनं केशलोचः ब्रह्मचर्यधारणं। निक्षार्थं परगृहप्रवेशः लब्धमानापमानानि हेलन हिंसागर्हातर्जनताडनानि उच्चावचग्रामकंटकाः शुजाशुजाइंडियविषयारागद्वेषरहिततया सोढव्याइत्यर्थः । द्वाविंशतिः परीषहाः । देवादिकृताउपसर्गाश्चाध्यास्यंते यदर्थमेताड ष्कराः क्रियाः क्रियंते तमर्थं सम्यक् ज्ञानदर्शनचारित्राख्यमाराध्य चरमरुच्छ्वासनिःश्वासैः प्रांतसमयं यावदित्यर्थः । ततोऽनंतमनुत्तरं निर्व्याघातं प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञानदर्शनमाप्नु वंति ततः सिध्यंति मोक्षमाप्नुवंतीति ॥ ७३ ॥

॥ टीका–पुनरन्येन प्रकारेण साधुगुणान् दर्शयितुमाह । (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम केचनोत्तमसंहननधृतिबलोपेताअनगाराजगवंतोजवंतीति । ते पंचजिः समितिजिः समिताः । एवमित्युपदर्शने। औपपातिकमाचारांगसंबंधि प्रथममुपांगं । तत्र साधुगुणाः प्रबंधेन व्यावर्ण्यंते तदिहापि तेनैव क्रमेण इष्टव्यमित्यतिदेशः । यावन्नूतमपनीतं केशश्मश्रुलोम नखादिकं यैस्ते तथा सर्वगात्रपरिकर्मविप्रमुक्तानिष्प्रतिकर्मशरीरास्तिष्ठंतीति॥७०॥७१॥७२ तेचोग्रविहारिणः प्रव्रज्यामनुपाल्य, बाधारूपे रोगातंके समुत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा जक्तप्रत्याख्यानं विदधति । किंबहुनोक्तेन यत्कृतेऽयमयोगोलकवन्निरास्वादः करवालधारामार्गवद्दुरध्यवसायः श्रमणजावोऽनुपाल्यते तमर्थं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्यमाराध्य व्याहतमनंतं मोक्षकारणं केवलज्ञानमाप्नुवंति केवलज्ञानावाप्तेरूर्ध्वं सर्वदुःखविमोक्षलक्षणं मोक्षमवाप्नुवंतीति ॥ ७३ ॥

एगच्चाए पुणएगे जयंतारो जवंति अवरेगंपुण पुव्वकम्मावसेसेणं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवताए उववत्तारो जवंति तंजहा महड्डिएसु महजुत्तिएसु महापरिक्कमेसु महाजसेसु महाबलेसु महाणुजावेसु महासुखेसु तेणं तब देवा जवंति महड्डिया महजुत्तिया जाव महासुखा हारविराइयवछा कडगतुडियथंजियजुया अंगय कुंमल मठगंमयल कन्नपीढधारी विचित्तहलाजरणा विचित्तमालामउलिमउडा कल्लाणगंधपवरवलपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा जासुरबोंदीपलंबवणमालधरा दिव्वेणं रूवेणं दिव्वेणं वन्नेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघाएणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्डिए दिव्वाए जुत्तीए दिवाए पन्नाए दिव्वाए गयाए दिव्वाए अच्चाए दिव्वेणं तेयणं दिव्वाए लेसाए दसदिसाउ उज्जो

षां तेऽनात्मग्रंथाइति वा॥ ७१॥तेषां साधूनां भगवतां (इमाए) तद्रूपायात्रामात्रा वृत्तिः संयम यात्राप्रमाणाजीविकाऽभवत्। तद्यथा। चतुर्थभक्तमेकोपवासः षष्ठभक्तं यावत्षण्मासिकं। अथच (उक्खित्तचरयत्ति) उत्क्षिप्तं स्वकार्याय पाकभाजनादुद्धृतं तदर्थमभिग्रहतश्चरंति तद्गवेषणाय गच्छंतीति उत्क्षिप्तचरकाः। (निक्खित्तचरयत्ति) निक्षिप्तभाजनादनुद्धृतं तदर्थमभिग्रहतश्चरंति तद्गवेषणाय गच्छंतीति निक्षिप्तचरकाः। (उक्खित्तनिक्खत्तचरयत्ति) पाकभाजनादुत्क्षिप्तं तत्रैवाऽन्यत्र वा स्थाने यदन्नं तदर्थमभिग्रहवंतश्चरंति। अंतेन प्रांतेन रूक्षेण भक्तादिना चरंति ये ते तथा समुदानेन भिक्षया चरंतीति (संसठेन) खरंटितेन हस्तादिना दीयमानं संसृष्टमुच्यते उक्तविपरीतमसंसृष्टं तेन चरंति (तज्जायत्ति) तज्जातेन देयद्रव्याविरोधिना यत्संसृष्टं हस्तादि तेन चरंति ते तथा। (दिठ्ठलाभियत्ति) दृष्टस्यैव भक्तादेर्लाभः अदृष्टस्यापकवरकादिमध्यान्निर्गतस्य श्रोत्रादिभिः कृतोपयोगस्य भक्तादेर्लाभस्तेन चरंति ये ते तथा। (पुठ्ठलाभियत्ति) पृष्टस्यैव हे साधो! किंते दीयते इत्यादिप्रश्नेन योलाभः सयेषामस्ति ते तथा। एवमपृष्टलाभिकाविपरीताः। भिक्षेव भिक्षा तुछमवज्ञातं वा तल्लाभोयेषामस्ति ते तथा अभिक्षालाभिका विपरीताः। अज्ञातचरकाअज्ञातगृहेषु चरंतीत्यभिग्रहवंतः अन्नं भोजनं वा ग्लायंति अन्नग्लायिकास्तेच अभिग्रहविशेषात्प्रातरेवान्नं गृएहंति(उवणिहिया) उपनिहितं यथाकथंचिदासन्नीभूतं तेन चरंति ये ते उपनिहितकाः संख्याप्रधानादत्तयोयेषां ते तथा। प्रातरेवग्रएहंभक्तादि(परिमियत्ति) परिमितः पिंडपातः अर्धपोषादिलाभोयेषामस्ति ते तथा। (सुद्धेसणिया) शुद्धेपणाः शुद्धस्य वा निर्व्यंजनस्य क्रूरादेरेषणा येषामस्ति ते अंतप्रांतवल्लचणकादिः सआहारोयेषां ते तथा। विरसं नीरसं शीतलीभूतं रूक्षाहाराः (अंबिलिया) आचाम्लं ओदनकुल्मापादि तेन चरंतीति। निर्विकृतिकाः घृतादिविकृतित्यागिनः अमद्यमांसाशिनः मद्यमांसं नाश्नंतीति। (नोनियागत्ति) ननित्यं रसभोजिनः (नेसज्जीया) निषद्यायुतायां भूमौ उपविशनं तया चरंतीति नैषद्यकाः। वीरासनं सिंहासननिविष्टस्य भून्यस्तपादस्य सिंहासनापनोदे सति यादृशमवस्थानं तद्यस्यास्ति सवीरासनिकः (दंडायतिया) दंडस्येवायतमायामोयेषां ते दंडायतिकाः। लगंमं वक्रकाष्ठं तद्वत् शेरते ये ते लगंमशायिनः पार्श्विका शिरश्च पृष्ठमेव वा भूमौ लगति तया शयनं कुर्वंति आतापकाआतापनाग्राहिणः (अप्पाउडा) अप्रावृताः प्रावरणवर्जकाः (अगंडुया) अकंडूयकाः (अनिठ्ठहा) अनिष्ठीवनाः (धुतमंससत्ति) धूतानि भीतिकर्मतया त्यक्तानि केशश्मश्रुरोमाणि शिरोजकूर्चकक्षादिलोमानि यैस्ते तथा सर्वशरीरपरिकर्मणा रहिताइत्यर्थः॥ ७२॥(तेणंति) ते साधवएवं विहृत्य बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायमनुपाल्य (आबाहंसत्ति) रोगातंके उत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा भक्तप्रत्याख्यानं कुर्वंति। किं बहुना यत्कृते क्रियते नग्नभावोमुंडभावश्च (अएहाणगे) स्नानाभावः अदंतधावनं अछत्रकं शिरसि आतपे प

संठाणेणं के०) दिव्य संस्थान समचतुरस्र रूप तेणे करी सहित, (दिव्वाएइड्डीए के०) दिव्य वैमानादिकनी रूद्धि, तेणे करी सहित, (दिव्वाएजुत्तीए के०) दिव्यद्युति एटले प्रधान अन्योन्य नक्तियें करी सहित, (दिव्वाएप्पनाए के०) दिव्य प्रना एटले कांती तथाविध इव्य जोडवाने प्रनावे महात्में करी सहित, (दिव्वाएछायाए के०) दिव्य प्रतिबिंब एवा रूपें करी सहित, (दिव्वाएअच्चाए के०) दिव्य अर्चा, (दिव्वेणंतेयणं के०) प्रधान एवी शरीर थकी निकलति जे तेजनी ज्वाला तेणे करी सहित, एटले दिव्यतेजें करी सहित, (दिव्वाएलेसाएके०) अन्यंतरना परिणामरूप शुक्लादिक लेश्यायें करी सहित थका, (दसदिसाउज्जोवेमाणा के०) प्रधान शरीर माहेली कांतियें करी दशेदिशा उने उज्वल करता, (पन्नासेमाणा के०) दशेदिशाउने अलंकारता प्रकाशता, (गइकल्लाणा के०) देवता संबंधिनी गतियें करी प्रधान, (विइकल्लाणा के०) देवता संबंधिनी स्थितियें करी कल्याण एटले प्रधान, (आगमेसिनदया विनवंति के०) आगमिक कालें नइक प्रधान मनुष्य नव रूप संपदा पामवा आश्री तथा रूडा धर्म प्रतिपत्ति सहित प्रत्यें पामवा आश्री आगमिक कालें नइक कहावे. ए स्थानक आर्य यावतु सर्व दुःख थकी रहित थवानो मार्ग एकांत सम्यक्, सत्य, सुसाधुनुं स्थानक छे, एटले बीजुं स्थानक धर्मपक्षनो विचार एम कह्यो. ॥ ७४ ॥

॥ दीपिका—(एगच्चाएत्ति) एके पुनरेकयार्चया एकेन शरीरेण एकनवाद्वा मोक्षंगंतारः स्युः। एके पुनः पूर्वकर्मावशेषे सति कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवलोकेषु देवतयोत्पद्यंते। तद्यथा। महर्द्धिमहाद्युतिमहाशुक्लमहाबलमहानुनावमहासुखेषु देवलोकेषु। देवास्ते प्येवंनूताइत्याह। महर्द्धिकादयस्तथा हारविराजितवक्षसः कटकत्रुटितस्तंनितनुजाः अंगदकुंडलमृष्टगंडतलकर्णपीठधराविचित्रहस्तानरणाः विचित्रमालामुकुलितमुकुटाः परिहितकल्याणप्रवरवस्त्राः कल्याणप्रवरमाल्यानुलेपनधराः (नासुरबोंदी) नास्वरशरीराः प्रलंबवनमालाधराः (दिव्वेणंति) दिविनवं दिव्यं तेन रूपेण यावद्दिव्यया इव्यलेश्यया युतादशदिशोविद्योतयंतः प्रनासयंतोगत्या देवलोकरूपया कल्याणाः शोननाः स्थित्या उत्कृष्टमध्यमया कल्याणाः (आगमेसित्ति) आगामिनि काले नइकाः शोननमनुष्यनवं प्राप्ताः सद्धर्मप्रतिपत्तारः स्युः। तदेतत्स्थानमार्यं साधु श्रेष्ठं। एतद्दितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य विनंगोविचारः समाख्यातः ॥ ७४ ॥

॥ टीका—एके पुनरेकयार्चयैकेन शरीरेणैकस्माद्वा नवात्सिद्धिगतिं गंतारोनवंति अथ ते पुनस्तथाविधपूर्वकर्मशेषे सति तत्कर्मवशगाः कालंकृत्वा वैमानिकेषु देवेषूत्पद्यंते तत्रे

वेमाणा पन्नासेमाणा गइकल्लाणा ठिइकल्लाणा आगमेसिन्नद्दयावि नवंति एसठाणे आयरिए जाव सवडुक्कपहीणमग्गे एगंतसम्मे सुसाहू दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपरकस्स विनंगे एवमाहिए ॥ ७४ ॥

अर्थ-(एगच्चाए के०) एम कोइ एक पुरुष (पुणे के०) वली (एगे के०) एक ज शरीरें एटले तेज एक नवमां (नयंतारोनवंति के०) सिद्धिगति गामि होय. (अवरेपुण के०) अपर एटले बीजा वली (पुवकम्मवसेसेणं के०) जेने पूर्वकृत कर्म अवशेष रह्यां होय तो तेवा पुरुष (कालमासेकालंकिच्चा के०) कालने अवसरें काल करीने (अन्नयरेसु के०) अन्यत्र (देवलोएसु के०) देवलोकने विषे (देवत्ताएउववत्तारो नवंति के०) देव पणे उपजनार थाय (तंजहा के०) ते देवलोक केवा होय तेकहेछे (महड्डिएसु के०) महर्द्धिक महोटी रुद्धिना धणी, (महज्जुत्तिएसु के०) महाद्युतिवान, (महापरिक्कमेसु के०) महोटा पराक्रम वाला, (महाजसेसु के०) महोटा यशना धणी, (महाबलेसु के०) महोटा बलवान, (महाणुनावेसु के०) महोटा अतिशयवान एवा महानुनाव वैक्रियादिक शक्तियें करी सहित होय. (महासुखेसु के०) महोटा सुखना धणी, एटला वाना जेस्थानकने विषेछे (तेणंतञ्चदेवानवंति के०) ते त्यां देवता पणे होय, ते देवता केवा होय. ते कहेछे. महोटी रुद्धियादिक गुणें सहित यावत् महोटां सुख सहित (हारविराइयवच्चा के०) हारें करी विराजित शोनायमानछे, हृदय कमल जेनां वली (कडगतुडियथंनियनूया अंगयं के०) कटक, केयूर, अंगदादिकें करी स्तंनितछे नुजा जेनी, वली देदीप्यमान (कुंमलमट्ठगंमयल के०) कुंमलें करी घसायेला एवा गालना तट जेणे शोन्नित कर्याछे (कन्नपीढधारी के०) कुंमलना आधार माटें कानछे माटे कर्णपीठ धारी कह्या अथवा कर्णपीठते काननुं आनरण विशेष जाणवुं. ते आनर्ण कुंमलछे, तेना धरनारा. (विचित्तहच्चाञरणा के०) विचित्रप्रकारना मुद्रादिक आनरण जेना हाथमां रहेलांछे तेणेकरीसहित (विचित्तमालामउलिमउडाके०) विचित्र प्रकारनी माला सहित मुकुटना धरनार, (कल्लाणगंधपवरवच्चपरिहिया के०) कल्याणकारी सुगंधित वस्त्रना पेरनार, तथा (कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा के०) कल्याणकारी प्रवर माल्य विलेपनना धरनार, (नासुरबोंदीपलंबवणमालधरा के०) देदीप्यमान शरीर प्रलंब एवी लटकतिजे वनमाला रूप आनर्ण विशेष, तेना धरनारा, (दिव्वेणंरूवेणं के०) प्रधान रूपें करी सहित, (दिव्वेणंवन्नेणं के०) दिव्य वर्णेंकरी सहित, (दिव्वेणंगंधेणं के०) दिव्य गंधें करी सहित, (दिव्वेणंफासेणंके०) दिव्य स्पर्शें करी सहित, (दिव्वेणंसंघाएणं के०) दिव्य शरीरनो संघातन समुदाय तेणे करी सहित, (दिव्वेणं

प्राणातिपात थकी, अत्यंत पणे विरम्याछे विरक्त थयाछे, जाव जीव सुधी एकेक प्राणी जे पृथिव्यादिक ढार तेने हणवा थकीअत्यंत विरम्या नथी उंसख्या नथी, एटले एक सूक्ष्म प्राणातिपात थकी अविरता इत्यादिक सर्वपद, जेवां अविरतने आलावे कह्यांछे, तेवां आहीं पण जाणीलेवां, परंतु एटलुं विशेषछे जे; एक पक्षें विरति, अने एक पक्षें अविरति, (जावजेयावस्से के०) यावत् जेकांइ अनेरा तथाप्रकारना पूर्वोक्त सावद्य अबोधिनां कारण एवा कर्म रूप व्यापार, बीजा जीवोने परितापना करनार नीपजावीयें, ते थकी पण एक पक्षें विरति, अने एक अपक्षें अविरति, ते विरताविरत कहियें. ॥७५॥

॥ दीपिका–अथापरस्य तृतीयस्थानकस्य मिश्रकाख्यस्य विनंगः स्वरूपमाख्यायते। (इहखलु इत्यादि) एतच्च यद्यपि मिश्रत्वाद्धर्माधर्माभ्यां युतं नवति तथापि धर्मेनूयिष्ठत्वाद्धार्मिकपक्षएवावतरति। यथा बहुषु गुणेषु मध्यपतितोऽल्पदोषोन स्वरूपं लनते कलंकश्व चंद्रिकायां बहूदकमध्यपतितोमृत्खंडावयवोन जलं कलुषयितुमलं एवमधर्मोपि धर्मे, ततोयं मिश्रपक्षोधर्मपक्षएवेति स्थितं। इह जगति प्राच्यादिदिक्षु एके शुनकर्माणो मनुष्याः स्युः। तद्यथा अल्पेछाः अल्पारंनाधार्मिकवृत्तयः शीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदाः साधवः स्युः। तेच एकस्मात् स्थूलात् संकल्पकृतात्प्राणातिपातान्निवृत्ताः। एकस्माच्च सूक्ष्मादारंनजादप्रतिविरताः। एवं शेषाण्यपि व्रतानि वाच्यानि। (जावजेयावन्नेत्ति) ये चान्ये सावद्याः कर्मारंनास्तेन्यएकस्माद्यंत्रपीडानिर्लांछनकृपीवलादेर्निवृत्ताः। एकस्माच्च क्रयविक्रयादेरनिवृत्ताः ॥ ७५ ॥

॥ टीका–अथापरस्य तृतीयस्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विनंगः समाख्यायते। (इहखलुइत्यादि) एतच्च यद्यपि मिश्रत्वाद्धर्माधर्माभ्यामुपेतं तथापि धर्मेनूयिष्ठत्वाद्धार्मिकपक्षएवावतरति। तद्यथा। बहुषु गुणेषु मध्यपतितोदोषोनात्मानं लनते कलंकश्व चंद्रिकायास्तथा बहूदकमध्यपतितोमृत्तकलावयवोनोदकं कलुषयितुमलं एवमधर्मोपि धर्ममिति स्थितं। धार्मिकपक्षएवायं। इहास्मिन् जगति प्राच्यादिषु दिक्षु एके केचन शुनकर्माणोमनुष्यानवंतीति। अल्पाः स्तोकाः परिग्रहारंनेष्विछांतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा एवंनूताधार्मिकवृत्तयः प्रायः सुशीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदाः साधवोनवंतीति। तथैकस्मात् स्थूलात्संकल्पकृतात् प्रतिनिवृत्ताएकस्माच्च सूक्ष्मादारंनजादप्रतिनिवृत्ताएवं शेषाण्यपि व्रतानि संयोज्यानि। एतस्मादपि सामान्येन निवृत्ताइत्यतिदिशन्नाह। (जेयावन्नेइत्यादि)। ये चान्ये सावद्यानरकादिगमनहेतवः कर्मसमारंनास्तेन्यएकस्माद्यंत्रपीडननिर्लांछनकृषीवलादेर्निवृत्ताएकस्माच्च क्रयविक्रयादेरनिवृत्ताइति ॥ ७५ ॥

ड्सामानिकत्रयस्त्रिंशल्लोकपालपार्षदात्मरक्षप्रकीर्णेषु नानाविधसमृद्धिषु भवंतीति भत्वा नियोगिककिल्बिषिकादिष्विति । तदेवाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथा महर्ध्यादिषु देवलोके षूत्पद्यंते । देवास्त्वेवंभूताभवंतीति दर्शयति । (तेणंतब्देवा इत्यादि) ते देवानानाविध तपश्चरणोपात्तशुभकर्मणोमहर्ध्यादिगुणोपेताभवंतीत्यादिकः सामान्यगुणवर्णकः । ततो हारविराजितवक्षसइत्यादिकआभरणवस्त्रपुष्पवर्णकः । पुनरतिशयापादनार्थं दिव्यरूपादिप्रतिपादनं चिकीर्षुराह । (दिव्वेणंरूवेणमित्यादि) दिविभवं दिव्यं तेन रूपेणोपात्ताया वद्दिव्यया ड्व्यलेश्ययोपेतादशापि दिशः समुद्योतयंतस्तथा प्रभासयंतोऽलंकुर्वंतोगत्या देव लोकरूपया कल्याणाः शोभनागत्या वा शीघ्ररूपया प्रशस्तविहायोगतिरूपया वा कल्याणास्तथा स्थित्या उत्कृष्टमध्यमया कल्याणास्ते भवंति तथाऽऽगामिनि काले भड्काः शोभनमनुष्यभवरूपसंपडुपेतास्तथा सद्धर्मप्रतिपत्तारश्च भवंतीति । तदेतत्स्थानमार्यमेकांतेनैव सम्यग्भूतं सुसाध्विति । एत द्वितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य विभंगएवमाख्यातः॥ ७४॥

अहावरे तच्चस्स ठाणस्स मीसगस्स विभंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति तंजहा अप्पिछा अप्पारंभा अप्परिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव धम्मेणं चेव वित्तिकप्पेमाणा विहरंति सुसीला सुव्वया सुपडियाणंदा साहू एगच्चाउ पाणाइवायाउ पडिविरता जावजीवाए एगच्चाउ अप्पडिविरया जाव जेयावन्ने तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरितावणकरा कज्जंति ततोवि एगच्चाउ अप्पडिविरया ॥ ७५ ॥

अर्थ—अथ हवे अपर त्रीजुं स्थानक मिश्रपक्ष तेनो विचार कहियें बैयें; यद्यपि ए स्थानक धर्म अधर्में करीने मिश्रितछे, तथापि एमां धर्मनुं बाहुल्य पणुछे, तेमाटें ए धर्मपक्षज जाणवो. आ जगत् मांहे निश्चें पूर्वादिक दिशिने विषे कोइ एक मनुष्य एवा छे, ते कहेछे. अल्प इछावाला, अल्पारंभी एटले थोडेज आरंभे व्यापारादिक साथें संबंधछे जेने, अल्प परिग्रही एटले थोडोज परिग्रह संग्रह करवानी मूर्छा संबंधि बुद्धि छे जेनी, धर्मानुगामि एटले धर्मजे श्रुत चारित्ररूप तेनीकेडे चालनार, यावत् देश थकी चारित्रने अखंम पालवे करी श्रुतने आराधवे करी आजीविका करता थका विचरेछे. भलो छे आचार जेनो,भलां व्रतछे जेने, सुप्रत्यानंद, साधु एटले सुखसाध्यसाधु, तथा साधुने विषेज आनंद हर्ष सहित वर्त्तेछे, तथा (एगच्चाउपाणाइवायाउ के०) एकेक प्राणी जे बे इंद्रियादिक त्रस जीवोछे, तेने हणवा थकी निवर्त्या एवा, तथा एकेक स्थूल

न प्रकृतिरूपजे पाप, तेना स्वरूपने उपलब्ध एटले पाम्याछे, तथा (आसव के०) आश्रव ते शुभाशुभकर्मनुं आववुं, अने (संवर के०) संवर ते आवता कर्मनुं रोकवुं संवरवुं, तथा (वेयणा के०) वेदना ते साता असातारूप बे प्रकारनी, (णिज्जराके०) निर्ज्जराते कर्मनुं खपाववुं, (किरियाहिगरण के०) क्रियाअधिकरण एटले घर, हाट, खड्ग, कटारी, उखल, मुसल थकी कर्म बंधाय ते, (बंधके०) बंध चार प्रकारना तथा (मोक्खके०) कर्म थकी मूकाववुं ते जाणवाने विषे (कुसला के०) माह्याछे, (असहेज्ज के०) कोइ कष्ट पड्या थकी देवादिकनी सहायतानी वांछा न करे सहायरहित धर्मना करनार होय. (देवासुरनागसुवन्नजक्खरक्खसकिंनरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगाइए हिंके०) तथा देव एटले वैमानिक देवो, असुर एटले असुर कुमार भवनवासी देवो, नाग कुमार, सुवर्ण कुमार, यक्ष, राक्षस, किंन्नर, किंपुरिस, अश्वमुख गरुड, गंधर्व, महोरगादिक, (देवगणेहिं के०) इत्यादिक देवताना समूह ते, (निग्गंथाउपावयणाउ के०) निर्ग्रंथना एटले भगवंतना प्रवचन थकी तेने (अणइक्कमणिज्जा के०) चलावी नशके, भोलवी नशके. (इणमेनिग्गंथेपावयणेणिस्संकिया के०) तथा ए निर्ग्रंथना प्रवचनने विषे निःशंकित एटले संदेहरहित होय, एटले जे श्रीवीतराग बोल्या तेज सत्य छे एम जाणे. (णिक्कंखियाके०) सूत्र छोडी बीजुं शास्त्र वांछे नही, (निव्वितिगिछा के०) धर्मना फलने विषे संदेहरहित होय, तथा सूत्रोक्त साधुना मार्गने विषे डुगछारहित होय, (लद्धछा के०) सूत्रसांभलवा थकी लाधाछे सूत्रना अर्थ जेने, (गहीयछा के०) धारणायें करी ग्रह्याछे अर्थ जेणे, (पुछियछा के०) संशय उत्पन्न थया थकी पूछीने खरा कर्याछे अर्थ जेणे, (विणिछियछा के०) वारंवार विशेषें पूछीने निश्चित कर्याछे अर्थ जेणे, (अभिगयछा के०) प्राप्त थयेला अर्थने पूछ्या पछी, निर्णय करी धार्याछे अर्थ जेणे, एटले प्रकारें तत्वार्थना जाण, (अछिमिंजपेम्माणुरागरत्ता के०) अस्थि अने हाड मांहेली मिंजा जे धातु विशेष ते भगवंतना सिद्धांतरूप कसुंबादिकने विषे प्रेमरूप रागें करी रंगाणाछे एटले रागरक्तछे, तथा पांच मांहे मल्या थका एवी धर्मनी कथा कहे के, (अयमाउसो के०) अहो आयुष्मंतो! (निग्गंथेपावयणेके०) निर्ग्रंथ एटले साधु संबंधि जे प्रवचनसिद्धांत छे (अयंपरमछेके०) एज आत्माने अर्थें उत्कृष्ट मोक्ष साधन रूप मार्गछे. (सेसेअणछे के०) अने शेष बीजा कपिलादिकना ग्रंथ, तथा धनधान्यादिक पुत्रकलत्रादिक ए सहु अनर्थ कारीछे, ए सर्व असार एवोजे आ संसार तेनी वृद्धिनां कारण रूपछे. एवी कथा करे, एरीतें निर्ग्रंथना प्रवचनने विषे रागीछे, (उसियफलिहा के०) निर्मल स्फाटिकना जेवुं चित्तछे जेनुं, (अवगुयदुवारा के०) जेना घरना बारणा भोगल रहित एटले सर्व काल उघाडां छे,

से जहा णामएसमणोवासगा भवंति अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्णपा वा आसवसंवरवेयणाणिज्जरा किरियाहिगरणबंधमोरककुसला असहे ज्ज देवासुरनागसुवन्नजरकरकसकिंनरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगा इए हिं देवगणेहिं निग्गंथाउ पावयणाउ अणइक्कमणिज्जा इणमे निग्गंथे पा वयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया निव्वितिगिछा लद्धठा गहीयठा पुछियठा विणिछियठा अभिगयठा अठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता अयमाउसो नि ग्गंथे पावयणे अयं परमठे सेसे अणठे उसियफलिहा अवगुयदुवा रा अचियत्तं तेउरपरघरपवेसा चाउद्दसठमुद्दिठपुण्णिमासिणीसुपडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा समणे निग्गंथे फासुए सणिज्जेणं असण पाणखाइमसाइमइमेणं वठपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं उसहभेसज्जेणं पी ठफलगसेज्जासंथारएणं पडिलाभेमाणा बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमणपच्च रकाणपोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमा णा विहरंति ॥७६॥ तेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा बहुइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणंति पाउणंतित्ता आबाहंसि उप्पन्नंसिवा अ णुप्पन्नंसिवा बहुइं भत्ताइं अणसणाए पच्चरकाए बहुइं भत्ताइं अणसणाए पच्चरकाएत्ता बहुइं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ बहुइं भत्ताइं अणासणाए छेदेइत्ता आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अन्न यरेसु देवलोएसु देवताए उववतारोभवंति तंजहा महड्ढिएसु महज्जु इएसु जाव महासुखेसु सेसं तहेव जाव एसठाणे आयरिए जाव एगं तसम्मे साहू तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगेएवं आहिए ॥ ७७ ॥

अर्थ—वली विशेष कहियेछेयें. ते यथा दृष्टांते नाम एवी संभावनायें जेम कोइ एक उत्तम पुरुष, विशिष्ट उपदेश सांभवालवाने अर्थें (समणोवासगाभवंति के०) श्रमणो पासकनो धर्म सेवन करे, ते श्रमणोपासक विशेषतः धर्मना करनार जाणवा, ते श्रम णोपासकना लक्षण कहेछे. (अभिगय के०) अभिगत एटले उलख्याछे जाण्याछे (जी वाजीवा के० जीव जे चेतन लक्षण रूप, अने अजीव जे चेतनरहित, एटले जीवा जीवना उलखनार, तथा (उवलद्धपुण्णपावा के०) शुभ प्रकृतिरूपजे पुण्य, अने अशु

टा द्युतिने विषे, यावत् घणा सुख तेने विषे, इत्यादिक शेष बोल पूर्ववत् एटले तेमज जाणवा. ज्यांसुधी एवुं स्थानक आर्य एटले धर्मपक्ष साधुनुं कह्युं. यावत् एकांत सम्यक्त्व मार्ग साधु त्यांसुधीनो आलावो बधो केवो. ए त्रीजुं स्थानक जे मिश्रपक्ष तेनुं विचार स्वरूप कह्युं. एटले धर्म पक्ष, अधर्मपक्ष, अने मिश्रपक्ष, ए त्रणे पक्ष कह्या.॥ १७ ॥

॥ दीपिका–तान् विशेषतआह । (सेजहत्ति) तद्यथा श्रमणोपासकाअधिगतजीवाजीवाउपलब्धपुण्यपापाः । इह प्रायः सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यंते । टीकानुगतं सूत्रं तु प्रायोन दृश्यते । परं इममेवादर्शमंगीकृत्य मया विवरणं क्रियते इति सूत्रांतरविसंवाददर्शनान्न व्यामोहोविधेयइति । तेच श्रावकाआश्रवसंवरवेदनानिर्जराक्रियाधिकरणबंधमोक्षकुशलाः (असहेज्जत्ति) असहायाअपि देवासुरादिभिर्नैर्ग्रंथ्यात्प्रवचनमतादनतिक्रमणीयाअकंपनीयाः (इणमेत्ति) अस्मिन्नेव नैर्ग्रंथे प्रवचने निःशंकितानिःकांक्षानिर्विचिकित्सालब्धार्थागृहीतार्थाविनिश्चितार्थाअधिगतार्था (अस्थिमिंजा) अस्थिमध्यं यावत्प्रेमानुरागरक्ताः दर्शनेत्यंतं भावितमतयइत्यर्थः । अत्रार्थे कथानकं । राजगृहे कश्चित्परिव्राजकोविद्यासिद्धोयांयां स्त्रियं रम्यां पश्यति तांतामपहरति ततोलोकैर्नृपाय विज्ञप्तं राज्ञोक्तं गछत स्वस्थानं यूयं सुखं तिष्ठत अहं तं दुरात्मानं यदि पंचपदिनैर्नलभे तदा वन्हौ प्रविशामि । गतानागरिकाः स्थानं राज्ञा आरक्षकास्तदन्वेषणाय नियुक्ताः स्वयं च खड्गपाणिर्भ्रमति नृपः। नचोपलभ्यते चौरस्ततः पंचमदिने तांबूलपुष्पादि गृण्हन् रात्रौ नृपेण दृष्टः परिव्राट् तत्पृष्ठगामिना राज्ञा नगरोद्यानवृक्षकोटरप्रवेशेन गुहाभ्यंतरे प्रविश्य हतः सः । ततः समर्पितं यद्धनं यस्य सत्कं स्त्रियोपि। तत्रैका कामिनी अत्यंतमोपथैर्भावितानेछति स्वपतिमपि ततः प्राज्ञैरुक्तं अस्याश्चौरास्थीनि दुग्धेन सह संघृष्य यदि दीयंते तदासौ तदाग्रहं मुंचति ततः स्वजनैरेवं कृतं । यथायथा चासौ तदस्थीनि भक्षयति तथा स्नेहोयाति सर्वास्थिपाने च गतः सर्वोपि चौरस्नेहः अनुरक्ताभून्निजे भर्तरि। तदेवं यथा सात्यंतं भाविता नेछत्यपरं तथा श्रावकाअपि नितरां भाविताः शासने नशक्यंतेऽन्यथाकर्तुं अत्यंतं सम्यक्त्वौपधभावितत्वादिति । श्रावकाः किंभूताः । (अयमाउसोत्ति) इदमायुष्मन् जैनं शासनं अर्थस्तत्त्वभूतं अयमेव परमार्थः शेषोऽनर्थइति चिंतयंतः । तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु प्रतिपूर्णं पोषधं सम्यक्त्वमनुपालयंतः (उसियफलिहत्ति) उछ्रितानि स्फाटिकानि चित्तानि येषांते तथा वर्धमानपरिणामाइत्यर्थः । (अवगुयदुवारत्ति) अप्रावृतानि द्वाराणि येषांते तथा सन्मार्गलाभान्नकुतोपि भयं कुर्वंतीत्युद्घाटितद्वाराः (अचियत्तत्ति) अचियत्तोऽनभिमतोंऽतःपुरप्रवेशवत्परगृहप्रवेशोयेषांते तथा श्रमणान्निर्ग्रंथान् प्रासुकेनैषणीयेन अशनादिना वस्त्रप्रतिग्रहकंबलपादपुंछनेन औषधभेषजे

(अचियत्तंतेउरपरघरपवेसा के०) राजाना अंतःपुरनी पेठें लोकना घरने विषे प्रवेश क रवानो जेणे त्याग कस्योछे, अथवा अप्रीतिकारि छे परदर्शनादिकना घरने विषे प्रवेश जेनो, एतावता परतीर्थिकने पर घर जाणीनें, घणा मजबूत कारणो विना, तेमने घरे न जाय, तथा (चाउद्दसहमुद्दिह के०) चतुर्दशी, अष्टमी, अने उद्दिष्टा एटले महाकल्या णिक तिथि (पुस्निमासिणीसु के०) पूर्णिमा चतुर्मासिक तिथि, एटला दिवसोने विषे (पडिपुन्नंपोसहंसम्मंअणुपालेमाणा के०) प्रतिपूर्ण पोसहने सम्यक् प्रकारें पालता थका विचरेछे. वली ते श्रावक कहेवाछे तोके, (समणेनिग्गंथे के०) श्रमण तपस्वी निर्ग्रंथने (फासुएसणिज्जेणं के०) प्रासुक एटले निर्जीव एषणीक, एटले बहेंतालीश दो रहित एवो (असणपाणखाइमसाइमेणं के०) अशन, पान, खादिम, स्वादिम, (वत्थप डिग्गहकंबलपायपुंछणेणं के०) तथा वस्त्र, पात्र, कंबल, पायपुंछण, (उसहनेसज्जेणंके०) औषध, नैषज्य, (पीढफलगसेज्जासंथारएणंपडिलानेमाणा के०) पीठ, फलक, शय्या, संथारो तेणेकरी प्रतिलानता थका, (बहुहिंसीलवयगुणवेरमणपच्चरकाणपोसहोववासेहिं के०) घणां एक शीलव्रत तथा शीलते शुनाचार, तथा स्थूल प्राणातिपात, वेरमणादिक गुण व्रत ते देशव्रतादिक योग्य पणे लीधेला, तथा नवकारसी पोरसी प्रमुख पच्चरकाण ना करनार, तथा पौषध सहित उपवासना करनार, (अहापरिग्गहिएहिं के०) तथा यथा परिग्रहित एटले पोतानी इछा माफक आदस्याछे जेणे; ते शुं आदस्याछे? तोके (तवोक म्मेहिं के०) तप कर्म, तेणे करी, (अप्पाणंनावेमाणाविहरंति के०) पोताना आत्मानें ना वता थका विचरेछे. ॥७६॥ (तेणंएयारूवेणंविहारेणंविहरमाणा के०) ते एतद्रूप पणे एटले एवा पूर्वोक्त श्रावकने आचारें प्रवर्त्तता थका, (बहुइंवासाइं के०) घणा वर्ष सुधी (स मणोवासगपरियागं के०) श्रमणोपासकना पर्यायने (पाउणंति के०) पाले, (पाउ णंतित्ताके०) पालीने (आबाहंसिउप्पन्नंसिवा के०) रोगादिक आबाधा उपनी, (अ णुप्पन्नंसिवा के०) अथवा अनुत्पन्न एटले नउपनी छते (बहुइंनत्ताइं के०) घणा नात पाणीनो (अणसणाएपच्चरकाए के०) अनशनपच्चरके (पच्चरकाएता के०) एम घणा नक्त पाननो अनशन पच्चरिकने (बहुइंनत्ताइंअणसणाछेदइ के०) ते अनशनने विषे घणा नक्त पानने छेदे, एटले परिहरे. (छेदेइत्ता के०) छेदी एटले परिहरीने, घ णादिवस अनशन पालीने (आलोइयपडिक्कंता के०) आलोचे पडिकमे एटले जे पाप लागां होय, ते अरिहंतादिक आगल प्रकाशीने तेनां मिथ्या डुष्कृतादिक आपीने (समाहि पत्ता के०) ज्ञानादिकनी निर्व्याघात पणे समाधि पामिने एटले पडिकमीने समाधि प्राप्त थइने, मरणना अवसरें काल करीने एटले समाधि मरण करीने अनेरा देवलोकने विषे देवता पणे उपजनार थाय. ते कहेछे, महोटी ऋद्धिछे वैमानिकादिकनी तेने विषे, महो

नि स्फाटिकानीव स्फाटिकानि अंतःकरणानि येषांते तथा । एतडुक्तं नवति । मौनींद्रद र्शनावाप्तौ सत्यां परितुष्टमानसाइति । तथा अप्रावृतानि द्वाराणि यैस्ते तथा उद्घाटित गृह द्वारास्तिष्ठंति सद्दर्शनलानेन न कस्यचिद्बिन्यति शोननमार्गपरिग्रहे नोद्घाटितशिरसो विश्रब्धं तिष्ठंतीति अचिंतयन्तोऽननिमतोऽतःपुरप्रवेशवत्परगृह द्वारप्रवेशोऽन्यतीर्थिकप्र वेशोयेषां ते तथा अनवरतं श्रमणानुद्युक्तविहारिणोनिर्ग्रंथान् प्रासुकेनैषणीयेनाशनादिना तथा पीठफलकशय्यासंस्तारकादिनाच प्रतिलानयंतस्तथा बहूनि वर्षाणि शीलव्रतगुणव्रत प्रत्याख्यानपोपधोपवासैरात्मानं नावयंतस्तिष्ठंति ॥ ७६ ॥ तदेवं ते परमश्रावकाः प्रनूतकाल मणुव्रतशिक्षाव्रतानुष्ठायिनः साधूनामौषधवस्त्रपात्रादिनोपकारिणः संतोयथोक्तं यथाशक्ति सदनुष्ठानं विधायोत्पन्ने वा कारणेऽनुत्पन्नेवा नक्तं प्रत्याख्यायालोचितप्रतिक्रांताः समाधि प्राप्ताः संतः कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवेषूत्पद्यंतइति । एतानि चानिगतजीवाजी वादिकानि पदानि हेतुहेतुमद्भावेन नेतव्यानि । तद्यथा यस्मादनिगतजीवास्तस्मादुपल ब्धपुण्यपापाः । यस्मादुपलब्धपुण्यपापास्तस्मादुत्थितमनसः । एवमुत्तरत्रापि एकैकं पदंत्य जन्निरेकैकं चोत्तरं गृहृन्निर्वाच्यं । तेच परेण पृष्टाअपृष्टावाएतदूचुः । तद्यथाऽयमेव मौ नींद्रोक्तोमार्गः सदर्थः । शेषस्त्वनर्थोयस्मादेवं प्रतिपद्यंते तस्मात्ते समुत्थितमनसः संतः साधुधर्मं श्रावकधर्मं च प्रकाशयंतोविशेषेणैकादशोपासकप्रतिमाः स्पृशंतो विहरंतोऽष्टमी च तुर्दश्यादिषु पोपधोपवासादौ साधून् प्रासुकेन प्रतिलानयंति पाश्चात्ये च कालेसंलिखि तकायाः संस्तारकश्रमणनावं प्रतिपद्य नक्तं प्रत्याख्यायायुषः क्षये देवेषूत्पद्यंते । ततोपि च्युताः सुमानुषनावं प्रतिपद्य तेनैव नवेनोत्कृष्टतः सप्तस्वष्टसु नवेषु सिद्ध्यंतीति । तदे तत्स्थानं कल्याणपरंपरया सुखविपाकमिति कृत्वाऽर्यमिति । अयं विनंगस्तृतीयस्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्याख्यातइति. ॥ ७७ ॥

अविरइं पडुच्च बाले आहिज्जइ विरइं पडुच्च पंमिए आहिज्जइ विरया विरइं पडुच्च बालं पंमिए आहिज्जइ तत्तणं जासा सवतो अविरइ एसठा णे आरंन्नठाणे अणारिए जाव असवडुःखप्पहीणमग्गे एगंतमिछे अ साहू तत्तणं जासा सवताविरइ एसठाणे अणारंन्नठाणे आरिए जा व सवडुक्खप्पहीणमग्गे एगंतसम्मे साहू तत्तणं जासा सवत विरया वि रई एसठाणे आरंन्नणोरंन्नठाणे एसठाणे आरिए जाव सवडुक्खप्पही णमग्गे एगंतसम्मे साहू ॥ ७८ ॥

अर्थ–हवे ए त्रणे स्थानकनें संक्षेपें करी सविशेष कहेबे. (अविरइंपडुच्च के०)

न पीठफलकशय्यासंस्तारकेण प्रतिलाभयंतोबहूनि । शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौष धोपवासैर्यथा परिगृहीतैस्तपःकर्मभिरात्मानं भावयंतस्तिष्ठंति ॥७६॥ (तेणंति) ते श्रमणोपा सकाएतद्रूपेण विहारेण विहरमाणाबहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकं पर्यायं प्रपाल्य रोगातं के समुत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा भक्तं प्रत्याख्याय स्वायुःक्षये देवेषूत्पद्यंते ततोपि च्युताः सुमानुष भवं प्राप्य तेनैव भवेनोत्कृष्टतः सप्तसु अष्टसु वा भवेषु सिध्यंति । तदेवं स्थानमार्यं तृ तीयस्य स्थानस्यायं विभंगोविचारआख्यातः ॥ ७७ ॥

॥ टीका–तांश्च विशेषतोदर्शयितुमाह (सेजहेत्यादि) विशिष्टोपदेशार्थं श्रमणानुपास ते सेवंतइति श्रमणोपासकास्तेच श्रमणोपासनतोऽभिगतजीवाजीवस्वभावास्तथोपलब्धपु ण्यपापाः । इह च प्रायः सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यंते न टीकासंवादेकोप्यस्मा भिरादर्शः समुपलब्धोतएकमादर्शमंगीकृत्यास्माभिर्विवरणं क्रियते इत्येतदवगम्य सूत्रवि संवाददर्शनाच्चित्तव्यामोहोविधेयइति । ते श्रावकाः परिज्ञातबंधमोक्षस्वरूपाः संतोन धर्मा च्चाल्यंते मेरुरिव निष्प्रकंपाद्दढमार्हते दर्शनेऽनुरक्ताः । अत्र चार्थे सुखप्रतिपत्त्यर्थं दृष्टांत भूतं कथानकं । तच्चेदं । तद्यथा राजगृहे नगरे कश्चिदेकः परिव्राट् विद्यामंत्रौषधिलब्ध सामर्थ्यः परिवसति सच विद्यादिबलेन पत्तने पर्यटन् यां यामभिरूपतरामंगनां पश्यति तां तामपहरति ततः सर्वैर्नागरैराज्ञे निवेदितं । यथा देव! प्रत्यहं पत्तनं मुष्यते केनापि नीयते सर्वसारमंगनाजनोपि यस्तस्यानभिमतः सोऽत्र केवलमास्ते । तदेवं क्रियतां प्रसादस्तदन्वे षणेनेति । राज्ञाभिहितं गच्छत यूयं विश्रब्धाभवतावश्यमहं तं डुरात्मानं लप्स्ये । किंचय दि पंचषैरहोभिर्न लभे चौरं विमर्षयुक्तोपि च त्यक्ष्याम्यात्मानमहं ज्वालामालाकुले वन्हौ तदेवं कृतप्रतिज्ञं राजानं प्रणम्य निर्गतानागरिकाः । राज्ञा च सविशेषं नियुक्ताआरक्षकाः । आत्मनाप्येकाकी खड्गखेटकसमेतोन्वेष्टुमारब्धोन चोपलभ्यते चौरस्ततोराज्ञा निपुणतरम न्वेषता पंचमेऽहनि भोजनतांबूलगंधमाल्यादिकं गृण्हन् रात्रौ स्वतोनिर्गतेनोपलब्धः सपरिव्राट् तत्पृष्ठगामिना नगरोद्यानवृक्षकोटरप्रवेशेन गुहाभ्यंतरं प्रविश्य व्यापादितस्त दनंतरं समार्पितं यद्यस्य सत्कमंगनाजनोपीति । तत्र चैका सीमंतिनी अत्यंतमौषधिभा विता नेच्छत्यात्मीयमपि भर्तारं ततस्तद्भिर्भिरभिहितं यथाऽस्याः परिव्राट्सत्कान्यस्थीनि डुग्धेन सह संघृष्य यदि दीयते तदेयं तदाग्रहं मुंचति ततस्तत्स्वजनैरेवमेव कृतं यथा यथा चासौ तदस्थ्यभ्यवहारं विधत्ते तथातथा तत्स्नेहानुबंधोऽपैति सर्वास्थिपाने चापगतः प्रेमानुबंधस्तदनुरक्ता निजे भर्तरि । तदेवं यासावत्यंतं तेन परिव्राजा नेच्छत्यपरमेवं श्रावक जनोपीति नितरां भावितात्मा मौनींद्रशासने न शक्यते अन्यथाकर्तुमत्यंतं सम्यक्त्वौषधे न वासितत्वादिति । पुनरपि श्रावकान् विशिनष्टि (जावउसियफलिहाइत्यादि) उच्छ्रिता

प्रतीत्य पापाल्लीनः पंडितः परमार्थज्ञोवेत्येवमाधीयते व्याख्यायते तथा विरताविरतिं चा श्रित्य बालपंमितइत्येतत्प्राग्वदायोज्यमिति । किमित्यविरतिविरत्याश्रयेण बालपंमित्या पनिरित्याशंक्याह । तत्थणमित्यादि । तत्र पूर्वोक्तेषु येयं सर्वात्मना सर्वस्मात् अविरति विरतिपरिणामाभावः। एतत्स्थानं सावद्यारंभस्थानमाश्रयस्तदाश्रित्य सर्वाण्यपि कार्याणि क्रियंते । यतएवमतएतदनार्यस्थानं निःशूकतया यत्किंचनकारित्वाद्यावदसर्वदुःखप्रक्षीण मार्गोयं तथैकांतमिथ्यारूपोसाधुरिति । तत्र चेयं विरतिः सम्यक्त्वापूर्विका भावद्यारंभा न्निवृत्तिः सावद्यानुष्ठानरहितत्वात्संयमस्थानं तत्र चैतत्स्थानमार्यस्थानं । आराद्यातं स र्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्यं तथा सर्वदुःखप्रक्षीणमार्गोऽशेषकर्मक्षयपथस्तथैकांतः सम्यग्भूतः । एतदेवाह । साधुरिति । साधुभूतानुष्ठानात्साधुरिति । तत्रच येयं विरताविरतिरभिधीयते सैव मिश्रस्थानभूता तदेव तदारंभरूपस्थानमेतदपि कथंचिदार्यमेवं पारंपर्येण सर्वदुःख प्रक्षीणमार्गस्तथैकांतसम्यग्भूतः साधुश्चेति तदेवमनेकविधोयमधर्मपक्षोधर्मपक्षस्तथा मि श्रपक्षश्चेति संक्षेपेणाभिहितपक्षत्रयसमाश्रयणेन ॥ ७८॥

एवमेव समणुगम्ममाणा इमेहिं चेव दोहिं ठाणेहिं समोअवतरंति तंज हा धम्मेचेव अधम्मेचेव उवसंतेचेव अणुवसंतेचेव तठणं जे से पढमठा णस्स अधम्मपक्कस्स विभंगे एवमाहिए तस्सणं इमाइं तिन्नि तेवठाइं पावाडयसयाइं भवंतीति मरकाइं तंजहा किरियावाईणं अकिरियावाई णं अन्नाणियवाईणं वेणइयवाईणं तेवि निवाणमाहंसु तेवि परिमोरक माहंसु तेवि लवंति सावगा तेवि लवंति सावइत्तारो ॥ ७९ ॥

अर्थ-(एवमेव के०) एप्रकारें (समणुगम्ममाणा के०) अन्य बीजा जे मार्ग, अ नेक उन्मार्गछे ते सर्व, (इमेहिंचेवदोहिंठाणेहिंसमोअवतरंति के०) ते निश्चें थकी ए बे स्थानकने विषे अवतरेछे समायछे. (तंजहा के०) ते बे स्थानकनां नाम कहेछे. (धम्मेचेवअधम्मेचेव के०) एक धर्म स्थानक, बीजुं अधर्म स्थानक, (उवसंतेचेवअणु वसंतेचेवके०) एक ज्यां कषायादिक उपशम्याछे ते उपशांत स्थानक जाणवुं, अने बीजुं ज्यां कषायादिक उपशम्या नथी ते अनुपशांत स्थानक जाणवुं. (तठणंजेसेपढमठाणस्स अधम्मपरकस्सविभंगेएवमाहिए के०) त्यां ए बेहु स्थानक मांहे प्रथम स्थानक, ते अधर्म पक्षछे, तेनुं स्वरूप विचार एम कहियें. (तस्सणं के०) ते अधर्मपक्ष स्थानक मांहे (इमाइं के०) ए (तिन्नितेवठाइंपावाडयसयाइंभवंतीतिमरकाइ के०) त्रणशेंने त्रेशठ प्रावाडक एटले पाखंमीना भेद अवतरेछे, एम भगवंतें कह्युंछे. (तंजहा के०)

अविरति एटले असंयम ते आहीं सम्यक्त्वने अनावें जोपण मिथ्यादृष्टिनी विरतिछे, तोप ण तेने अविरतिज कहेवाय ; ते अविरति आश्री तेने (बालेआहिज्जइ के०) बाल कहि यें, (विरईपडुच्चपंमिएआहिज्जइ के०) अने विरति एटले सावद्य परित्यागरूप ते आश्री तेने पंमित परमार्थनो जाण कहियें, (विरयाविरईपडुच्चबालपंमिएआहिज्जइ के०) त था विरताविरत एटले कांइक संयम कांइक असंयम ते आश्री तेनें बाल पंमित कहियें, (तन्नणंजासासव्वतोअविरइ के०) त्यां पूर्वोक्त त्रण स्थानकने विषे जे सर्व थकी अविरति स्थानकछे एटले जेमां सर्वथा विरति परिणामनो अनावछे. (एसहाणे के०) ए स्थानक ते (आरंनहाणे के०) आरंननुं स्थानक, (अणारिए के०) अनार्य, (जावअसव्वडुरकप्प हीणमग्गे के०) यावत् सर्व डुःख थकी मूकाववानो मार्ग नथी. (एगंतमिच्छेअसाहु के०) एकांत मिथ्यात्व मार्ग असाधु एटले ए सारो मार्ग नहीं. हवे बीजुं धर्मपक्षनुं स्थानक कहेछे. (तन्नणंजासासव्वताविरइ के०) त्यां जे सर्व थकी विरति सम्यक् पूर्वक आरंन परित्यागरूप (एसहाणे के०) ए स्थानक (अणारंनहाणे के०) अनारंननुं स्थानक (आरिए के०) आर्य, (जावसव्वडुरकप्पहीणमग्गे के०) यावत् सर्व डुःख थकी मुका ववानो मार्ग, (एगंतसम्मेसाहु के०) एकांत सम्यक्त्व साधु मार्ग जाणवो. हवे त्रीजुं मिश्रपक्षनुं स्थानक कहेछे. (तन्नणंजासासव्वउविरयाविरइएसहाणेआरंनणोरंनहाणे के०) त्यां जे सर्व थकी विरताविरत एटले संयमासंयमरूप स्थानक ते आरंन अने अनारंन रूप स्थानक जाणवुं. (एसहाणे के०) ए स्थानक (आरिए के०) आर्य यावत् सर्व डुःख थकी मूकाववानो मार्ग एकांत सम्यक् नलो मार्ग जाणवो. ॥ ७८ ॥

॥ दीपिका—अथेदं पक्षत्रयमुपसंहरन् संक्षेपतोवक्ति। अविरतिं प्रतीत्याश्रित्य बालआ धीयते स्थाप्यते विरतिमाश्रित्य बालपंडितइत्युच्यते । तत्र वा अविरतिः। एतत् स्थानं यावन्नायं सर्वडुःखक्षयमार्गः किंतु? एकांतमिथ्यात्वमार्गोऽसाधुः । तत्र या सर्वविरतिः एतत्स्थानमनारंनस्थानं आर्यं यावदयं सर्वडुःखक्षयमार्गः साधुः शोननः । या सर्वतो विरताविरतिः । इदं स्थानमारंनानारंनस्थानं । इदमपि स्थानमार्यं परंपरया सर्वडुःख क्षयमार्गः एकांतः सम्यक् साधुः ॥७८॥

॥ टीका—उक्ता धार्मिकाअधार्मिकास्तडुनयरूपाश्चानिहिताः।सांप्रतमेतदेव स्थानत्रिकमु पसंहारद्वारेण संक्षेपतोबिनणिषुराह । (अविरइइत्यादि) येयमविरतिरसंयमरूपा स म्यक्त्वानावान्मिथ्यादृष्टेर्ऽव्यतोविरतिरप्यविरतिरेव तां प्रतीत्याश्रित्य बालवद्वालोऽज्ञः सद सद्विवेकविकलत्वात् इत्येवमाधीयते व्यवस्थाप्यते आख्यायते वा तथा विरतिं चाश्रित्य

देन । परतः पदेनापि षट् जाताः १२ एवमजीवादिपदार्थेषु प्रत्येकं १२ ततो द्वादश स प्तनिर्गुणिताजाताः ८४ एते क्रियावादिभेदाः । अज्ञानिकभेदाः ६७ । यथा । जीवाजी वाद्यानव पदार्थाः स्थाप्यंते । उत्पत्तिश्च दशमी नवपदार्थानामधः प्रत्येकं सप्त सत्वाद यः स्थाप्याः । तद्यथा । सत्वं असत्वं सदसत्वं अवाच्यत्वं सदवाच्यत्वं असदवाच्यत्वं स दसदवाच्यत्वं चेति । नवसप्तनिर्गुणिताजाताः ६३ । उत्पत्तेश्चत्वारएवाद्याविकल्पाः । त द्यथा । सत्वं सदसत्वं अवाच्यत्वं चेति । शेषविकल्पत्रयं तु उत्पत्तेरनंतरं पदार्थावयवापेक्षं अतउत्पत्तौ न संभवतीति चत्वारएव भेदास्त्रिषष्टिमध्ये क्षिप्ताजाताः ६७ । एषामर्थोले शोयथा । कोजानाति जीवः सन्नित्येकोभेदः १ कश्चिदपि नजानाति तद्ग्राहकप्रमाणाभा वादित्यर्थः । ज्ञातेन वा किं तेन प्रयोजनं । ज्ञातस्य कदाग्रहतया परलोकप्रतिपंथित्वात् । एवमसदादयोपि भंगाभाव्याः । उत्पत्तिरपि किंसतोऽसतः सदसतोवाच्यस्य वेति कोजा नाति । ज्ञातेनवा नकिंचिदपि प्रयोजनं । इत्यज्ञानिकभेदाः । वैनयिकाः ३२ । यथा । सुरनृपतियतिज्ञातिस्थविराधममातृपितृरूपेषु अष्टसु स्थानेषु कायेन मनसा वाचा दाने नच देशकालोपपन्नेन विनयः कार्यइति चत्वारः कायादयः स्थाप्याः । चत्वारश्चाष्टभि र्गुणिताजाताः ३२ । एवं सर्वेपि मीलिताजाताः ३६३ परवादिभेदाः । एषां विशेषव्या ख्या प्रथमांगतोज्ञेया । ते सर्वे प्रावाडुकाजैनाइव निर्वाणं मोक्षमाहुः । तेपि लपंति वदं ति धर्मदेशनां यथा हेश्रावकाः ! शृएवंतीति श्रावकाः । एवं गृहीत यूयं यथाहं देशयामीति । तथा तेपि धर्मश्रावयितारः संतएवं लपंति तदनेनोपायेन स्वर्गमोक्षप्राप्तिरिति ॥ ७९ ॥

॥ टीका—सांप्रतमसावपि मिश्रपक्षोधर्माधर्मसमाश्रयणेनानयोरंतर्वर्ती भवतीति दर्श यति । (एवमेवेत्यादि) एवमेव संक्षेपेण सम्यगनुगम्यमानाव्याख्यायमानाः सम्यगनु गृह्यमाणाअनयोरेव धर्माधर्मस्थानयोरनुपतंति । किमिति । यतोयडुपशांतस्थानं तद्ध र्मपक्षस्थानमनुपशांतस्थानमधर्मपक्षस्थानमिति । तत्रच यदधर्मपाक्षिकं प्रथमं स्थानं तत्रामूनि त्रीणि पष्ट्यधिकानि प्रावाडुकशतान्यंतर्भवंतीति । एवमाख्यातं पूर्वाचार्यैरिति । एतानि वा सामान्येन दर्शयितुमाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथेत्युपदर्शनार्थः । क्रियां ज्ञा नादिरहितामेकामेव स्वर्गापवर्गसाधनत्वेन वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनस्ते च दीक्षा तएव मोक्षं वदंतीत्येवमादयोऽष्टव्याइति । तेषांच बहवोभेदास्तथा क्रियां परलोक साधनत्वेन वदितुं शीलं येषां ते तथा तेषामिति अज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वदितुं शीलं येषां ते भवंत्यज्ञानवादिनस्तेषां तथा विनयएव परलोकसाधने प्रधानं कारणं येषांते तथा तथा तेषामिति । अत्रच सर्वत्र पष्ठीबहुवचनेनेदमाह । तद्यथा क्रियावादिनामशीत्युत्तरश तं अक्रियावादिनां चतुरशीतिरज्ञानिकानां सप्तषष्टिर्वैनयिकानां द्वात्रिंशदिति । तत्र सर्वे

ते कहेछे. (किरियावाईणं के०) एक क्रियावादी, तेना एकसोने एंशी भेदछे. (अकिरियावाईणं के०) बीजा अक्रियावादी तेना चोराशी भेदछे. (अन्नाणियवाईणं के०) त्रीजा अज्ञानवादी, तेना सडसठ भेदछे (वेणइयवाईणं के०) चोथो विनयवादी, तेना बत्रीश भेदछे. एम सर्वे मली त्रणशेंने त्रेसठ भेदोछे. (तेवि निवाणमाहंसु के०) ते पण सर्वे पोत पोताना मतने अनुरागें निर्वाण एटले मोक्षनो मार्ग कहेछे. (तेवि परिमोरकमाहंसु के०) तेपण कर्म थकी मूकाववानो उपाय कहेछे. (तेविलवंतिसावगा के०) तेपण कहेछेके अहो श्रावको! अमे जे धर्म प्ररूपीयें छैयें ते धर्म तमे आदरो (तेविलवंतिसावइत्तारो के०) तेपण कहेछे के, अमे धर्मना संभलावनारा छैयें.॥१९॥

॥ दीपिका—मिश्रपक्षोपि धर्माधर्मयोरेवांतर्भवतीत्याह। एवमेव संक्षेपेण समनुगम्यमानाव्याख्यायमानाः सम्यगनुगृह्यमाणाअनयोरेव धर्माधर्मपक्षयोरनुपतंति । उपशांतस्थानं धर्मपक्षः अनुपशांतस्थानमधर्मस्थानं (तछणंति) तत्रच यत्प्रथमस्थानस्याधर्मपक्षस्य स्थानं तत्रामूनि त्रीणि त्रिषष्ट्यधिकानि प्रावाडुकशतान्यंतर्भवंतीत्येवमाख्यातं पूर्वाचार्यैः । तद्यथा । क्रियावादिनः अक्रियावादिनः अज्ञानिकवादिनवैनयिकवादिनः। अत्र षष्ठीबहुवचनेनेदमाह । क्रियावादिनामशीत्युत्तरंशतं १८० अक्रियावादिनां चतुरशीतिः ८४ अज्ञानिकानां सप्तषष्टिः ६७ वैनयिकानां द्वात्रिंशत् ३२ सर्वे मिलिताः ३६३ मौलभेदाः। भेदानयने प्रकारश्चायं । जीवाजीवाश्रवसंवरनिर्जरापुण्यपापबंधमोक्षरूपान् नव पदार्थान् विन्यस्य जीवपदार्थस्याधः स्वपरभेदौ स्थाप्यौ । तयोरधोनित्यानित्यभेदौ तयोरप्यधः काल १ श्वरा २ त्म ३ नियति ४ स्वभाव ५ भेदाः पंच स्थाप्याः । ततएवं भेदाः कार्याः । अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कालतः १ अस्तिजीवः स्वतोनित्यईश्वरतः २ एवमात्मनियतिस्वभावैरपि । एवं पंच भेदानित्यपदेन लब्धाः । अनित्यपदेनापि पंच। एते दश विकल्पाः स्वतःपदेन लब्धाः। एवं दश विकल्पाः परतः पदेनापि । जाता विंशतिर्जीवपदेन । एवमजीवाद्यष्टपदैरपि विंशतिर्विंशतिः स्युः । नवभिर्विंशतिभिश्चाशीत्यधिकं शतं । एते क्रियावादिभेदाः । न कस्यचित्पदार्थस्य क्रिया संभवति । उत्पत्त्यनंतरमेव विनाशात् । क्षणिकाः सर्वसंस्काराः अस्थिराणां कुतः क्रिया इत्यादि ये वदंति तेऽक्रियावादिनः । तेषां भेदाः ८४ । यथा । पुण्यपापवर्जितजीवाजीवादिपदार्थसप्तकस्य न्यासः । तस्याधः प्रत्येकं स्वपरभेदौ असत्वादात्मनोनित्यानित्यविकल्पौ नस्तः । कालादीनां पंचानामधस्तात्षष्ठी यदृछा स्थाप्या । इह यदृछावादिनः सर्वेप्यक्रियावादिनएव । ततः प्राक् यदृछा नोक्ता । ततएवं भेदाः कार्याः । नास्ति जीवः स्वतः कालतः १ नास्तिजीवः स्वतईश्वरतः २ एवमात्मादिभिरपि। एवं षड्भेदाः स्वतः प

अर्थ-(तेसव्वेपावाउयाआदिकराधम्माणं के०) ते सर्व प्रावाडुक एटले पाखंमी पोताने ठंदे धर्मना आदिना करनार कहियें, परंतु ते (णाणापन्ना के०) नाना प्रकारनी बुद्धि वाला, (णाणाबंदा के०) नाना प्रकारना अभिप्राय वाला, (णाणासीला के०) नानाप्रकारना आचारवाला, (णाणादिठी के०) नाना प्रकारनी दृष्टि वाला, (णाणारुई के०) नाना प्रकारनी रुची वाला, (णाणारंना के०) नाना प्रकारना आरंभना करनारा, (णाणाज्ञवसाणसंजुत्ता के०) नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करीने सहित एवा थका, पोतपोतानुं (एगंमहंमंमलिबंधंकिच्चा के०) एक महोटुं मंमल बांधि करीने, एटले पंक्ति करीने, (सव्वेएगयाउचिठंति के०) ते सर्व एकज प्रदेशें तिष्ठंति एटले बेगाठे. ॥ ८० ॥

॥ दीपिका-ते सर्वे प्रावाडुकाआदिकराः स्वधर्माणां। नानाप्रज्ञानानाठंदानानाभिप्रायानानाविधादृष्टिर्दर्शनं येषां ते तथा नानाविधा रुचिर्येषां ते तथा नानाविधारंभानानाविधाध्यवसायसंयुक्ताएकं महांतमंडलिबंधं कृत्वा तिष्ठंति ॥८०॥

॥ टीका-तदेवं सर्वेप्रावाडुकामोक्षांगभूतामहिंसां न प्राधान्ये न प्रतिपद्यंतइति दर्शयितुमाह। (तेसव्वेइत्यादि) प्रवदनशीलाः प्रावाडुकाः सर्वेपि त्रिषष्ठ्युत्तरत्रिशतपरिमाणाअपि आदिकरायथा स्वं धर्माणां। येपिच तच्छिष्यास्तेपि सर्वे नानाभिन्ना प्रज्ञा ज्ञानं येषांते नानाप्रज्ञाः। आदिकराइत्यनेनेदमाह । स्वरुचिविरचितास्ते नत्वनादिप्रवाहायाताः। ननु चार्हतानामपि आदित्वविशेषणमस्त्येव सत्यमस्ति किंतु अनादिर्हेतुपरंपरेत्यनादित्वमेव तेषांच सर्वज्ञप्रणीतागमानाश्रयणान्निबंधनाभावस्तदभावाच्च भिन्नपरिज्ञानमतएव नानाठंदाः। ठंदोऽभिप्रायः। भिन्नाभिप्रायाइत्यर्थः।तथाहि। उत्पादव्ययध्रौव्यात्मके वस्तुनि सांख्यैरेकांतेनाविर्भावतिरोभावाश्रयणादन्वयिनमेव पदार्थं सत्यत्वेनाश्रित्य नित्यपक्षं समाश्रितास्तथा शाक्याअत्यंतक्षणिकेषु पूर्वोत्तरभिन्नेषु पदार्थेषु सत्सु सएवायमिति प्रत्यभिज्ञा प्रत्ययः सदृशापरापरोत्पत्तिर्विवर्तथानां भवतीत्येतत्पक्षसमाश्रयणादनित्यपक्षं समाश्रिताइति। तथा नैयायिकवैशेषिकाः केषांचिदाकाशपरमाण्वादीनामेकांतेन नित्यत्वमेवकार्यद्रव्याणांच घटपटादीनामेकांतेनानित्यत्वमेवाश्रिताः। एवमनया दिशाऽन्येपि मीमांसकतापसादयोऽभ्यूह्याइति। तथा ते तीर्थिकानानाशीलं येषां ते तथा शीलं व्रतविशेषः सच भिन्नस्तेषामनुभवसिद्धएव। तथा नाना दृष्टिर्दर्शनं येषांते तथा नानारुचिरेषां ते नानारुचयस्तथा नानारूपमध्यवसानमंतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा इदमुक्तं भवति। अहिंसा परमं धर्मांगं। साच तेषां नानाभिप्रायत्वादविकलत्वेन व्यवस्थिता। तस्याएव सूत्रकारः प्राधान्यं दर्शयितुमाह। ते सर्वेपि प्रावाडुकायथास्वपक्षमाश्रिताएकत्र प्रदेशे संयुतामंमलिबंधमाधाय तिष्ठंति ॥८०॥

प्येते मौलास्तच्छिष्याश्च प्रवदनशीलत्वात्प्रावाडुकास्तेषां च नेदसंख्या परिज्ञानोपायश्चा चारएवाजिहितइति नेह प्रतन्यते । ते सर्वेप्यार्हताश्व परिनिर्वाणमशेषद्वंद्वोपरमरूपव र्णगंधरसस्पर्शस्वजावमनुपचरितपरमार्थस्थानं ब्रह्मपदाख्यमबाधात्मकं परमानंदसुखस्व रूपमाहुरुक्तवंतस्तथा तेपि प्रावाडुकाः संसारबंधनान्मोचनात्मकं मोक्षमाहुः । पूर्वेण नि रुपाधिकं कार्यमेव निर्वाणाख्यमुक्तमनेन तु तदेव कारणोपाधिकमित्ययं विशेषः । तत्र येषामप्यात्मा नास्ति ज्ञानसंततिवादिनां तेषामपि कर्मसंततेः संसारनिबंधनजूतायाविछे दान्मोक्षजावाविरोधः । तेषां चोपादानक्षयादनागतानुत्पत्तेः संततिछेदएव मोक्षः प्रदी पस्येव तैलवर्त्यजावे निर्वाणमिति । तथाचाहुः । न तस्य किंचिद्भवति न जवत्येव केव लमिति । एतच्च तेषां महामोहविजृंजितं । यतः । कर्म चास्ति फलं चास्ति कर्ता नैवास्ति कर्मणां ॥ संसारमोक्षवादित्वमहोह्यांध्यविजृंजितमिति ॥ येषां चात्मास्ति सांख्यादीनां तेषां प्रकृतिविकारवियोगोमोक्षः क्षेत्रज्ञस्य पंचविंशतितत्त्वपरिज्ञानादेव विद्यमानैःप्रधानवि कारैर्विमोचनं मोक्षइति । तेषामप्येकांतनित्यवादितया मोक्षाजावः । एवमन्येपि नैया यिकवैशेषिकादयः संसाराजावमिछंतोपि न मुच्यंते सम्यग्दर्शनादिकस्योपायस्याजावादि त्यन्यूह्याह । यदि न तेषां मोक्षः कथं ते लोकस्योपास्याजवंतीत्याशंक्याह । तेपि तीर्थि कालपंति ब्रुवते मोक्षं प्रति धर्मदेशनां विदधति । शृण्वंतीति श्रावकाः हेश्रावका! एवं गृण्ही त यूयं यथाहं देशयामि तथा तेऽपि धर्मश्रावयितारः संतएवं लपंति जापंते यथाऽनेनोपा येन स्वर्गमोक्षावाप्तिरिति तद्वचनं मिथ्यात्वोपहतबुद्ध्योवितथमेव गृण्हंति कूटपण्यदायि नां विपर्यस्तमतयएवेति । तदेवमादितीर्थिकास्तच्छिष्याश्च पारंपर्येण मिथ्यादर्शनानुजावा त्परान्प्रतारयंति तेपिच तेषां प्रतारयंति आहुः कथमेते प्रवाडुकामिथ्यावादिनोजवंति । अ त्रोच्यते । यतस्तेप्यहिंसां प्रतिपादयंति नच तां प्रधानमोक्षांगजूतां सम्यगनुतिष्ठंति । कथं सांख्यानां तावज्ज्ञानादेव धर्मोन तेषामहिंसाप्राधान्येन व्यवस्थितः किंतु पंचयमाइत्यादि कोविशेषइति । तथा शाक्यानामपि दश कुशलाधर्मपथाअहिंसापि तत्रोक्ता नतु सैव ग रीयसी धर्मसाधनत्वेन तैराश्रिता । वैशेषिकाणामपि अजिसेवनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुल वासप्रस्थादानयज्ञादिनक्षत्रमंत्रकालनियमाद्दष्टास्तेषु चाजिषेचनादिषु पर्यालोच्यमानेषु हिंसैव संपद्यते वैदिकानां हिंसैव गरीयसी धर्मसाधनं यज्ञोपदेशात् तस्य च तयाविनाजा वादित्यजिप्रायः । उक्तंच । ध्रुवः प्राणिवधोयज्ञे ॥ ७९ ॥

ते सवे पावाउया आदिकरा धम्माणं णाणापन्ना णाणाछंदा णाणासीला णाणादिठ्ठी णाणारुई णाणारंज्ञा णाणाश्रवसाणसंजुत्ता एगंमहं मंम लिबंधं किच्चा सवे एगयाउ चिठ्ठंति ॥ ८० ॥

न्हाना प्रकारनी प्रज्ञावाला, यावत् नाना प्रकारना जे अध्यवसाय तेणे करी संयुक्त एवा परदर्शनी ते आगल आवीने, (एवंवयासी के०) एवुं कहेले के (हंनोपावाउया के०) अहो प्रावाडुको! (आइगराधम्माणं के०) तमे धर्मनी आदिना करनारछो; (णाणापन्नाजावणाणाज्ञवसाणसंजुत्ता के०) तमे न्हाना प्रकारनी बुद्धिवाला, तथा न्हाना प्रकारना जे अध्यवसाय तेणें करी संयुक्तछो ते माटे, (इमंतावतुम्हेसागणियाणंइंगालाणंके०) ए तुमे अग्नियें बलता अंगारा तेणे करी सहित एवोश्रा एक लोहनुं (पाइंके०) नाजन (बहुपडिपुन्नं के०) घणुं प्रतिपूर्ण तेने (गहायमुहुत्तयं के०) ग्रहण करीने, एक मुहूर्त मात्र (पाणिणाधरेह के०) हाथ मांहे धरी राखो, (णोबहुसंमासगंसंसारियंकुज्जा के०) घणी संमासानो सहाय मकरोः (णोबहुअग्गियंन्नणियंकुज्जाके०) घणो अग्निने स्तंननी एटले स्थंनि राखे तेवी विद्यानुं सहाय मकरो (णोबहुसाहम्मियवेयावडियंकुज्जाके०) घणो मांहोमांहे साधर्मिकनुं वैयावच्च नो करवो, एटले अग्नि दीधानो उपशमाववुं मकरो. (णोबहुपरधम्मियंवेयावडियंकुज्जा के०) घणो परधर्मिकनो माहो मांहे वैयावच्चनो करवो एटले अग्नि दीधानो उपशमाववुं मकरो. मात्र (उज्जुयाके०) सरल थका (णियागपडिवन्नाके०) मोक्षमार्ग प्रतिपन्न थका,(अमायंकुव्वमाणापाणिपसारेह के०) माया रहित पणु करता थका हाथ पसारो. (इतिवच्चाके०) एम कहीने, (सेपुरिसेके०) ते पुरुष (तंसागणियाणंइंगालाणंपाइंबहुपडिपुन्नं के०) ते अग्नि बलता अंगरानुं नाजन घणु प्रतिपूर्ण नरीने (अउमएणंसंमासएणंगहाय के०) लोहना संमासा सहित ग्रहीने (तेसिंपावाउयाणंके०) ते प्रावाडुकना (पाणिंसु के०) हाथनी उपरें (णिसिरिंति के०) मूके. (तएणंके०) तेवारें (तेपावाडुयाआइगराधम्माणं के०) ते प्रावाडुक धर्मनी आदिना करनार (णाणापन्नाजावणाणाज्ञवसाणसंजुत्ता के०) नाना प्रकारनी प्रज्ञा वाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित एवा छता ते प्रावाडुकने हाथमां अग्नि आपे छते (पाणिंपडिसाहरंति के०) पोताना हाथ पाछा खेंचे एम पाछा हाथ करता देखीने (तएणं के०) तेवारें (सेपुरिसे के०) ते पुरुष ते सर्व प्रावाडुक धर्मना अदिना करनार नाना प्रकारनी प्रज्ञावाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित ते प्रत्यें (एवंवयासी के०) एम कहेके (हंनोपावाडुया के०) हे प्रावाडुको! पोताना छंदे धर्मनी आदिना करनाराउ! नाना प्रकारनी प्रज्ञा वाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित (कम्हाणंतुब्नेपाणिंपडिसाहरह के०) शाकारणे तमे हाथ पाछा खेचोछो. तेवारें ते बोल्या (पाणिंनोमहिज्जाके०) अमारा हाथ नथी बलताशुं ? अमारा हाथ बलेछे दाजेछे ते कारण माटे हाथ पाछा खेची लीधाछे तेवारे ते पुरुष फरी बोल्यो के (दड्ढेकिंनविस्सइ के०) तमारो हाथ दाजवाथी शुं थवानुंछे एवुं सानली फरी ते

पुरिसेयं सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपमिपुन्नं गहाय अठमएणं संमासएणं गहाय ते सवे पावाउए आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाश्नवसाणसंजुत्ते एवं वयासीहंनो पावाउया आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाअश्नवसाणसंजुत्ता इमं ताव तुम्ह सागणिया णं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं गहाय मुहुत्तयं पाणिणा धरेह णोबहु संमासगं संसारियं कुज्जा णो बहुअग्गिथंन्नणियं कुज्जा णोबहु साह म्मियवेयावडियं कुज्जा णोबहुपरधम्मियवेयावडियं कुज्जा उज्जयाणिया गपडिवन्ना अमायं कुवमाणा पाणिं पसारेह इति वुच्चा से पुरिसे तेसिं पावाडुयाणं तं सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं अठमएणं संमासएणं गहाय पाणिंसु णिसिरिंति तएणं तेपावाडुया आइगरा ध म्माणं णाणापन्ना जाव णाणाश्नवसाणसंजुत्ता पाणिंपडिसाहरंति तए णं से पुरिसे ते सवे पावाउए आदिगरे धम्माणं जाव णाणाश्नवसाणसं जुत्ता एवं वयासी हंनो पावाडुया आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाश्नवसाणसंजुत्ता कम्हाणं तुम्मे पाणिं पडिसाहरह पाणिं नोमहि ज्जा दड्डे किं नविस्सइ डुरकंति मन्नमाणा पडिसाहरह एसतुला एस प्पमाणे एस समोसरणे पत्तेयंतुला पत्तेयं पमाणे पत्तेयं समोसरणे तत्रणं जेते समणा माहणा एवमातिरकंति जाव परुवेंति सवे पाणाजाव सत्ता हंतवा अज्जावेयवा परिघेतवा परितावेयवा किलामेतवा उद्दवेतवा तेआगंतुछेयाए तेआगंतुन्नेयाए जाव ते आगंतु जाइजरामरणजोणि जम्मणसंसारपुणनवगप्रवासनवपवंच कलंकलीनागिणो नविस्संति ॥

अर्थ–तेवारें कोई एक (पुरिसेयं के०) पुरुष जैन मार्गनो जाण ते तेमने अहिंसा दिकने विषे पाडवाने अर्थें (सागणियाणंइंगालाणं के०) अग्नियें बलता अंगारा तेणे करी एक लोढानुं (पाइंके०) पात्र एटले नाजन नरीने (बहुपडिपुन्नं के०) घणो प्र तिपूर्ण नरीने (अठमएणं के०) लोहना (संमासएणंगहाय के०) संमासी सहित ग्र हण करीने (तेसवेपावाउए के०) ते सर्व प्रावाडुक एटले परदर्शनी (आइगराधम्माणं के०) पोतपोताना धर्मनी आदिना करनार, (णाणापन्नाजावणाणाश्नवसाणंसंजुत्तेके०)

न संमतं तथा सर्वजीवानामित्येतत्प्रमाणं । एषा युक्तिः तदेतत्समवसरणं एषधर्मविचारः । आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति सपश्यतीति प्रत्येकं तुलासाम्यमित्यादि (तब्भणंति) तत्र एवं सति ये श्रमणब्राह्मणादयएवमाख्यांति । सर्वे प्राणाहंतव्या दंडादिभिः परितापयितव्याधर्मार्थेमरघट्टादिवहनादिभिः परिग्राह्याः श्राद्धादौ मत्स्याइव अपद्रावयितव्यायागादौ मेषाइव । एवं ये भाषंते ते आगामिनि काले स्वशरीरस्य छेदाय भेदायच भाषंते । तथाऽगामिनि काले जातिजरामरणानि बहूनि प्राप्नुवंति योन्यां जन्म योनिजन्म तद्बहुशोगर्भजावस्थायां जनंते संसारप्रपंचांतर्गतास्तेजोवायुषु उच्चैर्गोत्रोद्व लनेन कलंकलीभावभाजोदुःखव्याकुलाः स्युः ॥ ८१ ॥

॥ टीका–तेषां चैवं व्यवस्थितानामेकः कश्चित्पुरुषस्तेषां संविदर्थं ज्वलतामंगाराणां प्रतिपूर्णां पात्रीमयोमयं भाजनमयोमयेनैव संदंशकेन गृहीत्वा तेषां ढौकितवानुवाच तान् । यथा भो प्रावाडुकाः! सर्वोक्तविशेषणविशिष्टाइदमंगारभृतं भाजनमेकैकं मुहूर्तं प्रत्येकं सांसारिकाणामिवाऽग्निस्तंभनं विधत्ते नापिच साधर्मिकाऽन्यधार्मिकाणामग्निदाहोपशमादिनोपकारं कुरुतइति ऋजवोमायामकुर्वाणाः पाणिं प्रसारयत? तेपिच तथैव कुर्युस्ततोऽसौ पुरुषः तद्भाजनं पाणौ समर्पयति तेपिच दाहशंकया हस्तं संकोचयेयुरिति । ततोसौ तानुवाच । किमिति पाणिं प्रतिसंहरत? यूयं एवमभिहितास्ते ऊचुर्दाहभयादिति । एतदुक्तं भवति । अवश्यमग्निदाहभयान्न कश्चिदग्न्यभिमुखं पाणिं ददातीत्येतत्परोयं दृष्टांतः । पाणिना दग्धेनापि किंभवतां भविष्यतीति दुःखमिति चेद्यद्येवं भवंतोदाहापादित दुःखभीरवः सुखलिप्सवस्तदेवंसति सर्वेपि जंतवः संसारोदरविवरवर्तिनएवंभूताएवेत्येवमात्मतुलयाऽत्मौपम्येन यथा मम नाभिमतं दुःखमित्येवं सर्वजंतूनामित्यवगम्याहिंसैव प्राधान्येनाश्रयणीया तदेतत्प्रमाणं एषा युक्तिः । आत्मवत्सर्वभूतानि यःपश्यति सपश्यति । तदेव समवसरणं सएषधर्मविचारोयत्राहिंसा संपूर्णा ॥ तत्रैव परमार्थतोधर्मइत्येवं व्यवस्थिते तत्र ये केचनाविदितपरमार्थाः श्रमणब्राह्मणादयएवं वक्ष्यमाणमाचक्षते परेषामात्मदार्ढ्योत्पादनायैवं भाषंते तथैवमेवं धर्मं प्रज्ञापयंति व्यवस्थापयंति तथान्येन प्राण्युपतापकारिणा प्रकारेण परेषां धर्मं प्ररूपयंति व्याचक्षते । तद्यथा । सर्वे प्राणाइत्यादि यावद्धंतव्यादंडादिभिः परितापयितव्याधर्मार्थेमरघट्टादिवहनादिभिः परिग्राह्याविशिष्टकाले श्राद्धादौ रोहितमत्स्याइव तथाऽपद्रावयितव्यादेवतायागादिनिमित्तं बस्तादयइवेत्येवं ये श्रमणादयः प्राणिनामुपतापकारिणीं भाषां भाषंते आगामिनि काले ऽनेकशोबहुशः स्वशरीरछेदायच भाषंते तथा ते सावद्यभाषिणोभविष्यंति काले जातिजरामरणानि बहूनि प्राप्नुवंति । योन्यां जन्म योनिजन्म तदनेकशोबहुशोगर्भेष्वपु

प्रावाडुक पासेंभी दर्शनीर्त बोल्या के, अमने डुःख उपजेबे, तेवारें फरी ते पुरुष बोल्यो के, (डुरकंतिमन्नमाणा के०) जो तमे डुःख जाणता अग्निनी दाऊ थकी बीहिता थका हाथ ने (पडिसाहरहके०) पाठा करोडो ? तो जेम तमे डुःख थकी बीक राखोडो, तेम सर्व जीवने (एसतुल्लाके०) ए तुल्य एटले बराबर ने; (एसप्पमाणेके०) एप्रमाणे जाणवुं. (एससमो सरणे के०) ए समोसरण) पत्तेयंतुल्ला के०) प्रत्येक प्रत्येकने सरखुं, अने (पत्तेयंप्प माणे के०) प्रत्येक प्रत्येकने प्रमाण, एवुं (पत्तेयंसमोसरणेके०) प्रत्येक प्रत्येकने समोस रण जाणवुं. (तबणंजेतेसमणामाहणाएवमातिरकंति के०) त्यां जे श्रमण ब्राह्मण एम कहेबे (जावपरूवेंतिके०) यावत् एम प्ररूपे ने के, (सवेपाणाजावसत्ताहंतवा के०) सर्व प्राणी, यावत् सर्व सत्वने हणवा, (अज्जावेयवाके०) दंम काशादिकें करी ताडवा, (प रिघेतवा के०) बलात्कारें करी दासनी पेठें परिग्रहवा. (परितावेयवा के०) शारीरिक मानसीक पीडा उपजाववी, (किलामेतवा के०) किलामण उपजाववी. (उद्दवेतवा के०) उपद्रववा, तथा जीव, काया थकी रहित करवा. एवां वचनना बोलनारा, (ते आगंतुढेयाए के०) ते आगमिक कालें वारंवार पोताना शरीरनुं छेदन पामशे. (तेआ गंतुनेयाए के०) ते आगमिक कालें नालादिकें करी पोताना शरीरनुं नेदन पामशे, (जावतेआगंतुं के०) यावत् ते जीव आगमिक कालें (जाइजरामरण जोणिजम्मणं के०) जाति, जरा, मरण, तथा नवी नवी योनी मांहे उपजवुं, तथा जन्मना डुःख (संसारके०) एरीतें संसार मांहे परिच्रमण करतां (पुणनव के०) वली वली नव नवा नवनुं करवुं, (गप्नवास के०) वली वली गर्नवास मांहे वसवुं, एरीतें (नवपवं च के०) संसारनो प्रपंच एटले संसारनो विस्तार, (कलंकलि के०) कलकलाट एटले डुःखें करी व्याकुल पणुं, तेना (नागिणोनविस्संति के०) विनागी थशे. ॥ ८१ ॥

॥ दीपिका–(पुरिसेयत्ति) एकः कश्चित्पुरुषः साग्निकानां ज्वलतामंगाराणां प्रतिपूर्णां (पाइं) पात्रीं अयोमयेन लोहमयेन संदंशकेन गृहीत्वा तेषां ढौकितवान् उवाच । नोः प्रावाडुकाः ! इदमंगारनृतं नाजनं एकैकं मुहूर्तं प्रत्येकं बिनृत यूयं ? । नचेदं संदंशकं सांसारिकं नापि चाग्निस्तंनं विदध्युः । नापिच साधर्मिकानामग्निदाहोपशमादिना उपकारं कुर्युरिति । ऋजवोमायामकुर्वाणाः पाणिं प्रसारयत तेपि तथैव कुर्युः ततोसौ नर स्तन्नाजनं तत्पाणौ समर्पयति । तेपि च दाहनयाद्धस्तं संकोचयंति । ततोसौ पुरुषस्तान् प्राह किमिति पाणिं संहरत यूयं ? । ते प्राहुर्दाहनयात् । नरः प्राह । दग्धेन हस्तेन किंनावि ? । डुःखमिति चेदेवं यूयं दाहोत्पन्नडुःखनीरवः सुखलिप्सवः । एवं सति सर्वेपि जंतवः संसारवर्तिनएवंविधाएवेति आत्मतुलया आत्मतुल्यत्वेन यथा मम डुःखं

रशे नहीं. एवी रीतें स्वदर्शनी पण, जे पूर्वोक्त नापा बोलशे ते सीजसे नही एम निश्चे जाणवुं. हवे जे उत्तम पुरुषने एवी तुल्यता राखवी जे सर्व जीव प्रत्येक तुल्य, प्रत्येक प्रमाण, एप्रमाणे प्रत्येक समोसरण पण छे ॥ ८१ ॥

॥ दीपिका—ते नराबहूनां दंडनादीनां शरीरदुःखानां नाजनं नवंति तथा मातृमरणादीनां मानसदुःखानां तथाऽन्येषामप्रियसंयोगार्थनाशादिनिर्दुःखनागिनोनविष्यंति । किं बहुना । (अणादियंति) अनादिकं नविद्यतेऽवदग्रोंऽतोयस्य सोऽनवदग्रोऽनंतः तं दीर्घाध्वानं चतुर्गतिमार्गं चातुरंतं संसारकांतारमनुपरिवर्तिष्यंते अरहट्टघटीवद्भ्रमिष्यंति न बोधं प्राप्स्यंति न सेत्स्यंति सर्वदुःखानामंतं न करिष्यंति एपतुला एतत्साम्यं यत्सावद्याचारान सिध्यंति कुमतिनः स्वमतेपि औद्देशिकादिनोजिनस्तथैव एतत्प्रमाणं प्रत्यक्षादिकं प्रत्यक्षेण चौराद्याबाध्यमानाद्दश्यंते । एवमन्येपि एतत्समवसरणं आगमविचारः प्रत्येकं प्रतिजीवमिदं साम्यं इष्टव्यं ॥ ८१ ॥

॥ टीका—तथा ते बहूनां दंडादीनां शारीराणां दुःखानामात्मानं नाजनं कुर्वंति तथा ते निर्विवेकामातृवधादीनां मानुषाणां दुःखानां तथान्येषामप्रियसंयोगार्थनाशादिनिर्दुःखदौर्मनस्यानामानागिनोनविष्यंतीति । किंबहुनोक्तेनोपसंहारव्याजेन । गुरुतरमर्थसंबंधं दर्शयितुमाह । (अणादियं इत्यादि) नास्यादिरस्तीत्यनादिः संसारः। तदनेनेदमुक्तंनवति । यत्कैश्चिदनिहितं यथायमंमकादिक्रमेणोत्यादितइत्येतदपास्तं । नविद्यतेऽवदग्रं पर्यंतो यस्य सोयमनवदग्रोऽपर्यंतइत्यर्थः । तदनेनेदमुक्तं नवति । यदुक्तं कैश्चिद्यथा प्रलयकालेऽशेषसागरजलप्लावनं द्वादशादित्योक्रमेन चात्यंतदाहइत्यादिकं सर्वं मिथ्येति दीर्घमित्यनंतपुजलपरावर्तरूपं कालावस्थानं तथा चत्वारोंतागतयोयस्य सतथा चातुर्गतिकइत्यर्थः। तत्संसारएव कांतारः संसारकांतारोनिर्जलः सनयस्त्राणरहितोऽरण्यप्रदेशः कांतार इति । तदेवंनूतं नूयोनूयः पौनःपुन्येनानुपरिवर्तिष्यंते अरहट्टघटीन्यायेन तत्रैव भ्रमंतः स्थास्यंतीत्यतएवाह । यतस्ते प्राणिनां हंतारः कुतएतदिति चेत्सावद्योपदेशादेतदपि कथमिति चेदतऔद्देशिकादिपरिनोगानुज्ञयेत्येवमवगंतव्यमित्यतस्ते कुप्रावचनिकानैव सेत्स्यंति नैव ते लोकाग्रस्थानमाक्रमिष्यंति तथा न ते सर्वपदार्थान् केवलज्ञानावाप्त्या नोत्स्यंते । अनेन ज्ञानातिशयनावमाह । तथा न तेऽष्टप्रकारेण कर्मणा मोक्ष्यंते। अनेनाप्यसिद्धेरकैवल्यावाप्तेश्च कारणमाह । तथा परिनिर्वृतिः परिनिर्वाणमानंदसुखावाप्तिस्तां ते नैव प्राप्स्यंते तेनापि सुखातिशयानावः प्रदर्शितोनवतीति । तथा नैते शारीरमानसानां दुःखानामात्यंतिकमंतं करिष्यंतीत्यनेनाप्यपायातिशयानावः प्रदर्शितोनवति । एषातु

त्क्रांतजावस्थायां प्राप्नुवंति. तथा संसारप्रपंचांतर्गतास्तेजोवायुपूच्चैर्गोत्रो छजनेन कलं कलीनावनाजोनवंति बहुशोन्नविष्यंति च ॥ ७१ ॥

ते बहुणं दंमणाणं बहूणं मुंमणाणं तज्जणाणं तालणाणं अडुबंधणाणं जाव घोलणाणं माइमरणाणं पितामरणाणं नाइमरणाणं नगिणीमरणाणं नज्जापुत्तधूत्तसुण्हामरणाणं दारिद्दाणं दोहग्गाणं अप्पियसंवासाणं पियविप्पन्नगाणं बहुणं डुक्कदोमणस्साणं आन्नागिणो नविस्संति अणादियंचणं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं नुज्जोनुज्जो अणुपरियट्टिस्संति ते णोसिज्झिस्संति णोबुज्झिस्संति जाव णोसवडुक्काणं अंतं करिस्संति एस तुल्ला एस पमाणे एस समोसरणे पत्तेयं तुल्ला पत्तेयं पमाणे पत्तेयं समोसरणे ॥ ७२ ॥

अर्थ-(तेबहूणंदंमणाणं के०) ते जीव घणा दंमाशे, (बहूणंमुंमणाणं के०) ते जीव घणा शरीरादिकें मुंमाशे, (तज्जणाणं के०) अंगुलीयादिकनी तर्जना पामशे, (तालणाणं के०) दंमादिकें ताडना पामशे, (अडुबंधणाणं के०) बंधीखानानां बंधन पामशे, (जावघोलणाणं के०) यावत् आंबानी पेठें घोलाशे, (माइमरणाणं के०) ते जीव मातानां मरणनां डुःखने पामशे, (पितामरणाणं के०) पितानां मरण, (नाइमरणाणंके०) नाइनां मरण, (नगिणीमरणाणंके०) बेहेननां मरण, (नज्जापुत्तधूतसुण्हामरणाणंके०) नार्यानां मरण, पुत्रनां मरण, दीकरीनां मरण, पुत्रनीवहुनां मरण थशे, तेने देखीने डुःख पामशे, डुःखी थशे, ते पुरुष, (दारिद्दाणंके०) दरिद्री थशे, (दोहग्गाणं के०) दौर्नागी थशे, (अप्पियसंवासाणंके०) अप्रियकारीयो साथें तेनो संवास थशे, (पियविप्पडगाणं के०) ते प्राणी प्रियकारी वस्तुनो विप्रयोग एटले वियोग पामशे, (बहूणंडुरकदोमणस्साणं के०) घणां डुःख अने दौर्मनस्य पणानो (आन्नागिणोन्नविस्संति के०) विन्नागी थशे, तेपुरुष, (अणादियंचणं के०) आदि रहित, (अणवयग्गं के०) अंत रहित, (दीहमद्धं के०) दीर्घकालपर्यंत एटले घणाकालसुधी (चाउरंतसंसारकंतारं के०) चारगतिरूप अंत अवयवछे जेने विषे तेने चाउरंत कहियें एवी संसार रूप अटवी तेने विषे, (नुज्जोनुज्जो के०) वली वली (अणुपरियट्टिस्संति के०) परिज्रमण परावर्त्तन करशे, (तेणोसिज्झिस्संति के०) ते पांचमी जीव सीजशे नही, एटले पोताना कार्यनी सिद्धि करशे नही, (णोबुज्झिस्संति के०) लोकालोकना स्वरूपने बुजशे नही, (जावणोसवडुरकाणंअंतंकरिस्संति के०) यावत् ते प्राणी सर्वडुःखनो अंत क

इच्चेतेहिं बारसहिं किरियाठाणेहिं वट्टमाणा जीवा णोसिज्झिसु णोबुज्झिसु णोमुच्चिंसु णोपरिणिव्वाइंसु जाव णोसव्व डुक्खाणं अंतंकरेसुवा णो करेंतिवा णोकरिस्संतिवा ॥ ७४ ॥

अर्थ—ए पूर्वोक्त बार क्रियाना स्थानकने विषे वर्त्तता एवाजे जीव, ते कोइ अतीत कालें सिधा नथी, बुज्या नथी, कर्म थकी मूकाणा नथी, निवृत्या नथी, यावत् सर्वडुःखनो अंत पण कोइयें अतीत कालें कस्यो नथी, वर्त्तमान कालें करता नथी, आगमिक कालें पण करशे नही. कारणके, ए बार क्रियाना स्थानक जे ले, ते अधर्मपक्षने मळताज ले. ॥ ७४ ॥

॥ दीपिका—अथोपसंहरति । (इच्चेतेहिंति) इत्येतेषु द्वादशसु क्रियास्थानेषु अधर्मे पक्षोऽवतार्यते । ततएतेषुवर्त्तमानाजीवान सिद्धान सिध्यंति न सेत्स्यंति न मुक्तान मुच्यंते मोक्ष्यंते न बुद्धान बुध्यंते न नोत्स्यंते न सर्वडुःखानामंतं चक्रुर्न कुर्वंति न करिष्यंति ॥७४॥

॥ टीका—नणितानि क्रियास्थानाति सांप्रतमुपसंजिघृक्षुरेतदेव पूर्वोक्तं समासेन विनणिषुराह (इच्चेतेहिंइत्यादि) इत्येतेषु द्वादशसु क्रियास्थानेष्वधर्मपक्षोऽनुपशमरूपः समवतार्यते न एतेषु वर्तमानाजीवाअतीते काले सिद्धान वर्तमाने सिध्यंति न नविष्यंति सेत्स्यंति तथा न बुबुधिरे न बुध्यंते नच नोत्स्यंते तथा न मुमुचुर्न मुंचंति नच मोक्ष्यंते तथा न निवृत्ता न निर्वर्त्यंते नचनिर्वास्यंति तथा न डुःखानामंतं ययुर्न पुनर्यांति नच यास्यंतीति॥७४

एयंसि चेव तेरसमे किरियाठाणे वट्टमाणा जीवा सिज्झिसु बुज्झिसु मुच्चिंसु परिणिव्वाइंसु जाव सव्वडुक्खाणं अंतं करेसुवा करंति करिस्संतिवा एवं से निक्खु आयठी आयहिते आयगुत्ते आयजोगे आयपरक्कमे आयरक्खिए आयाणुकंपए आयनिप्फेडए आयाणमेवपडिसा हरेज्जासि त्तवेमि ॥७५॥ इति वीयसुयखंधस्सकिरियाठाणंनामवीयमज्झयणंसम्मत्तं॥

अर्थ—ए पूर्वें कह्युंजे निश्चें तेरमुं क्रिया स्थानक तेने विषे वर्त्तता एवा जे जीव, ते जीव अतीत कालें सिधा तत्वमार्गने बुज्या, आठ कर्म थकी मूकाणा. परिनिवृत्त शीतलीनूत थया, यावत् सर्व डुःखनो अतीत कालें अंत कीधो, वर्त्तमान कालें अंत करे ले, अने आगमिक कालें अंत करशे, एम ते साधु चारित्रिउ बार क्रिया स्थानकनो वर्जनार मोक्षार्थी, आत्मार्थी, आत्मानुं हित चिंतवनार, आत्मानो गोपवनार, मनादिक

ला तदेतडुपमानं यथा सावद्यानुष्ठानपरायणाः सावद्यनाषिणश्च कुप्रावचनिकान सिध्यंत्ये वं स्वयूथ्या अप्यौद्देशिकादिपरिनोगिनोन सिध्यंतीति। तदेतत्प्रमाणं प्रत्यक्षानुमानादिकं। तथाहि। प्रत्यक्षेणैव जीवपीडाकारि चौर्यादिर्बंधनान्न मुच्यते। एवमन्येपीत्यनुमानादि कमप्यायोज्यं। तथा तदेतत्समवसरणमागमविचाररूपमिति प्रत्येकंच प्रतिप्राणि प्रतिप्रा वाडुकमेतत्तुलादिकं इष्टव्यमिति ॥ ८२ ॥

तछणं जे ते समणा माहणा एवमाइक्खंति जाव परूवेंति सव्वे पाणा स व्वेनूया सव्वेजीवा सव्वेसत्ता णहंतव्वा णअज्ञावेयव्वा णपरिघेतव्वा णउद्दवेय व्वा तेणो आगंतुछेयाए तेणोआगंतुनेयाए जाव जाइजरामरणजोणि जम्मण संसारपुणप्नवगप्नवासन्नवएवं कलंकलीनागिणो नविस्संति तेणोबहूणं दंमणाणं जाव णोबहूणं मुंमणाणं जाव बहूणं डुक्खदोमण स्साणं णोनागिणो नविस्संति अणादियंचणं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसारकंतारे नुज्जोनुज्जो णोअणुपरियट्टिस्संति तेसिं स्सिझंति जाव सव्वडुक्खाणं अंतं करिस्संति ॥ ८३ ॥

अर्थ—त्यांजे श्रमण ब्राह्मण, सर्व जीवने पोताना आत्मा समान लेखवीने एवो धर्म कहेशे, यावत् प्ररूपशे, के सर्व प्राणी, सर्वनूत, सर्व जीव, सर्व सत्वने हणवा नही, एकांतदया पालवी, यावत् सर्व सत्वने उपड्रववा नही, ते पुरुषो, आगमिक कालें पोताना शरीरनुं छेदन नहीं पामशे, ते आगमिक कालें नेदन नहीं पामशे, ते पुरुष यावत् जाति, जरा, मरण, वली वली योनीमांहे उपजवुं, जन्मनुं डुःख, संसारमांहे परिन्रमण करवुं, वली वली गर्नवास मांहें वसवुं, संसारनो विस्तार प्रपंच, तथा कलकलाट तेनो विनागी नहीं थशे. ते पुरुष, घणो दंमाशे नहीं, यावत् डुःख दौर्मनस्य पणानो विनागी नहीं थशे, आदिरहित अंतरहित दीर्घ पंथछे, एटले दीर्घ काल पर्यंत चारगति रूप संसार, तद्रूप अटवीने विषे वली वली परिन्रमण परावर्त्त नही करशे. ए रीतें दया धर्मना प्ररूपनार पुरुषो सीजशे कार्यसिद्धि करशे, यावत् सर्व डुःखनो अंत करशे. ॥ ८३ ॥

॥ दीपिका—अथैतद्विपरीतानाह। (तछणंति) तत्र ये ज्ञातव्याः श्रमणमाहनास्ते ए वमाख्यांतीत्यादि सर्वं पूर्वसूत्रविपरीतं वाच्यं ॥ ८३ ॥

॥ टीका—ये पुनर्विदिततत्वाआत्मौपम्येनात्मतुलया सर्वजीवेष्वहिंसां कुर्वाणाएवमा चक्षते। तद्यथा सर्वेपि जीवाडुःखद्विषः सुखलिप्सवस्ते न हंतव्याइत्यादि। तदेवं पूर्वोक्तं दंडनादिकं सप्रतिपेधं नयनीयं यावत्संसारकांतारमचिरेणैव ते व्यतिक्रमिष्यंतीति ॥ ८३

समाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् । नयाः पूर्ववद्व्याख्येयाः ॥ समाप्तं क्रियास्थानाख्यं द्वितीयमध्ययनमिति ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ अथ द्वितीयश्रुतस्कंधे तृतीयाध्ययनप्रारंभः ॥

हवे बार क्रिया स्थानकने वर्जनार एवा चारित्रवान पुरुषें शुद्धाहार लेवो, ते कारण माटे हवे आहार परिज्ञा नामे त्रीजुं अध्ययन प्रारंभियें छैयें.

सुयंमे आउसं तेणं भगवया एव मरकायं इह खलु आहारपरिन्नाणाम ज्झयणे तस्सणं अयमठे इह खलु पाईणंवा सव्वतो सव्वावंतिचणं लो गंसि चत्तारि वीयकाया एव माहिज्जंति तंजहा अग्गवीया मूलवीया पोरवीया खंधवीया तेसिंचणं अहा वीएणं अहावगासेणं इहेगतिया सत्ता पुढवीजोणिया पुढविसंभवा पुढवीवुक्कमये तज्जोणिया तस्सं भवा तडवक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्थवुक्कमा णाणाविह जोणियासु पुढवीसु रुक्खत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसिं णाणाविहजो णियाणं पुढवीणं सिणेह माहारेंति ॥१॥ ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउसरीरं तेउसरीरं वाउसरीरं वणस्सइसरीरं णाणाविहाणतसथा वराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति परिविध्दं तं सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारियं विपरिणयं सारूवियकडं संतं अवरेवियणं तेसिं पुढविजो णियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावन्ना णाणागंधा णाणारसा णाणाफा सा णाणासंठाणसंठिया णाणाविहसरीरपुग्गलविउव्वित्ता तेजीवा क म्मोववन्नगा भवंति तिमरकायं ॥ २ ॥

अर्थ-(सुयंमेआउसंतेणं के०) श्रीसुधर्मस्वामी जंबू प्रत्यें कहेछे के, में एवुं सांभल्युं छे जे, आयुष्यमंत (भगवयाएवमरकायं के०) भगवंत श्रीमहावीर देवें एम कह्युंछे (इहखलु के०) निश्चें आ जिनशासनने विषे (आहारपरिन्नाणामज्झयणे के०) आ हारपरिज्ञा एवे नामे अध्ययन कह्युं. (तस्सणंअयमठे के०) तेनो ए अर्थ आगल क हेछे. (इहखलु के०) निश्चें आ जगत् मांहे (पाईणंवा के०) पूर्वादिक चारदिशिने विषे तथा विदिशिने विषे (सव्वतोसव्वावंतिचणंलोगंसि के०) सर्व थकी सर्व, एतावता सर्व लोकने विषे (चत्तारिवीयकाया के०) चार, बीज कायना प्रकार एटले उत्पत्तिना

योगने स्ववश करनार, ते आत्मयोगी कहेवाय. आत्माना सुखनें अर्थे पराक्रमनो करनार, आत्मानो रक्षक, आत्माने अनुकंपानो करनार, आत्मानो संसार थकी निस्तार करनार, आत्माने ए बार क्रियाना स्थानक थकी निवृत्तावे, तेने महा पुरुष जाणियें. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ए श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे क्रिया स्थानक नामे बीजा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो. ॥ ७५ ॥

॥ दीपिका–तथा एतस्मिन् त्रयोदशे क्रियास्थाने धर्मपक्षावतारः । ततोत्र वर्तमाना जीवाः सिद्धाः सिध्यंति सेत्स्यंतीत्यादि । तदेवं सभिक्षुर्द्वादशक्रियास्थानवर्जकोऽधर्मपक्षत्यागी धर्मपक्षस्थस्त्रयोदशक्रियास्थानवर्ती आत्मनोर्थः आत्मार्थः सविद्यते यस्य स आत्मार्थी आत्महितः आत्मा गुप्तोयस्य सतथा आत्मयोगः कुशलमनःप्रवृत्तिरूपः सयस्यास्ति सआत्मयोगी आत्मपराक्रमः स्वयं संयमानुष्ठानप्रवृत्तः । आत्मा रक्षितोडुर्गतिपाताद्येन सआत्मरक्षितः आत्मानमनर्थपरिहारेणानुकंपते इत्यात्मानुकंपकः (आयनिप्फेडएत्ति) आत्मानं संयमेन संसारचारकान्निष्कासयतीति आत्मानं द्वादशक्रियास्थानेभ्यः प्रतिसंहरेत्समहापुरुषः । इतिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ७५ ॥ इति तपागच्छाधिपतिश्रीहेमविमलसूरीश्वरशिष्यहर्षकुलपंडितप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीय श्रुतस्कंधस्य क्रियास्थानाख्यं द्वितीयमध्ययनं समाप्तं ॥ ॥ ॥

॥ टीका–सांप्रतं त्रयोदशं क्रियास्थानं दर्शयितुमाह । (एवमित्यादि) एतस्मिंस्त्रयोदशे क्रियास्थाने वर्तमानाजीवाः सिद्धाः सिध्यंति सेत्स्यंतीति यावत्सर्वडुःखानामंतं करिष्यंतीति स्थितं । तदेवं सभिक्षुर्यः पौंडरीकाध्ययनेऽभिहितो द्वादशक्रियास्थानवर्जकः अधर्मपक्षानुपशमपरित्यागी धर्मपक्षे स्थितउपशांतआत्मनोवार्थः आत्मार्थः सविद्यते यस्य सतथा योह्यन्यमपायेभ्योरक्षति स आत्मार्थ्यात्मवानित्युच्यते । हिताचाराश्चचौरादयोनात्मवंतोऽयंत्वात्महितऐहिकामुष्मिकापायभीरुत्वात्तथात्मागुप्तोयस्य तथा । एतडुक्तं भवति । स्वयमेवासौ संयमानुष्ठाने पराक्रमते तथात्मयोगी आत्मनोयोगः कुशलमनःप्रवृत्तिरूपआत्मयोगः सयस्यास्ति । सदाधर्मध्यानावस्थितइत्यर्थः । तथात्मा पापेभ्योडुर्गतिगमनादिभ्योरक्षितोयेन सतथा डुर्गतिगमनहेतुनिबंधनस्य सावद्यानुष्ठानस्य निवृत्तत्वादितिभावः । तथात्मानमेवानर्थपरिहारद्वारेणानुकंपते शुभानुष्ठानेन सज्ञतिगामिनं विधत्तइति । तथात्मानं सम्यग्दर्शनादिकेनानुष्ठानेन संसारचारकान्निःसारयतीति । तथात्मानमनर्थभूतेभ्यो द्वादशेभ्यः क्रियास्थानेभ्यः प्रतिसंहरेत् । यदि वोपदेशआत्मानं सर्वपापेभ्यः प्रतिसंह्रियात् सर्वानर्थेभ्योनिवर्तयेदित्येतस्मिन्महापुरुषे संभाव्यतइति । इतिः परि

शरीरनें आहारतां पृथवीने पीडा उपजावे नहीं. ॥ १ ॥ पछी (तेजीवा के०) ते जीव, (आहारेंतिपुढवीसरीरं के०) पृथवीनु शरीर आहारे, एमज (आउसरीरं के०) अपकायनुं शरीर, (तेउसरीरं के०) तेज कायनुं शरीर, (वाउसरीरं के०) वायुकायनुं शरीर, (वणस्सइसरीरं के०) वनस्पतिकायनुं शरीर, (णाणाविहाणतसथावराणं पाणाणंसरीरं के०) तथा नाना प्रकारनां त्रस अने स्थावर प्राणीउनां शरीर आहारे, परंतु तेमने पीडा नउपजावे. तेनुं कारण कहेछे, जेम अंमजादिक जीव गर्जस्थ छतां माताना उदरनो आहार करे, परंतु माताने पीडा उपजावे नहीं, तेम अंहीं पण जाणी लेवुं. तथा उपन्या पछी वृद्धि प्राप्त अनेक वर्ण रसादिक गुण सहित थाय, तेवारें पण कांइ पीडा उपजावे एरीतें ते जीव पृथवीकाय प्रमुख जीवोनुं (सरीरंअचित्तंकुवंति के०) शरीर अचित्त करे. (परिविद्धत्थं के०) परिविध्वंस करे. (तंके०) ते वनस्पतिना जीव तेणे (सरीरंपुवाहारियं के०) पृथवी कायादिकनुं जे शरीर पूर्वे आहार्युं, ते अधुना हमणा वनस्पतिना जीव उत्पद्यमान उपजता, अथवा उपना (तयाहारियं के०) त्वचाने स्पर्शे करी आहारीने, (विपरिणयं के०) परिणमावीने (सारूवियकडंसंतं के०) पोतानी काया सरखां रूप करे, (अवरेवियणं के०) अपर एटले अन्य बीजां शरीर मूल, शाखा, प्रतिशाखा, पत्र, पुष्प, फलादिक, एवां रूप करे. तथा (तेसिं पुढवीजोणियाणं के०) ते पृथवीयोनिक (रुरकाणं के०) वृक्ष, तेनां (सरीरा के०) शरीर, ते (णाणावन्नाणं के०) नाना प्रकारना वर्ण, (णाणागंधा के०) नाना प्रकारना गंध, (णाणारसा के०) नाना प्रकारना रस, (णाणाफासा के०) नाना प्रकारना स्पर्श, (णाणासंगणसंविता के०) नाना प्रकारना संस्थानें करी संस्थित, (णाणाविहसरीरपुग्गलविउविता के०) तथा नाना प्रकारना शरीरना पुज्ञलें करी विकूर्व्या थका होय, एरीतें (तेजीवा के०) तेजीव (कम्मोववन्नगाभवंति तिमरकायं के०) वनस्पतिने विषे तथाविध कर्मने उदये उपना होय. परंतु आंहीं काल, ईश्वरादिक कारण कोइ समजवो नही. एम जगवंत श्रीतीर्थंकर देवें कह्युं छे. एटले पृथवीयोनिक वृक्ष कह्या ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथाहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (सुयं मे इत्यादि) श्रुतं मयाऽऽयुष्मन्जगवतेदमाख्यातं आहारपरिज्ञानाख्यमध्ययनं । तस्य चायमर्थः । प्राच्यादिदिक्षु सर्वतः (सवावंतित्ति) सर्वस्मिन् लोके चत्वारोवीजकायावीजप्रकाराजवंति । तद्यथा । अग्रे वीजं येषामुत्पद्यते तेऽग्रवीजास्तालसहकारादयः । अथवाऽग्र।एवोत्पत्तौ कारणं येषां तेऽग्रवीजाः कोरंटादयः । मूलवीजाआर्द्रकादयः पर्ववीजा

नेद होय. (एवमाहिज्जंइ के०) ते आ प्रकारें तीर्थंकरें कह्या. (तंजहा के०) ते कहेछे. (अग्गबीया के०) जेने अग्रें बीज उपजे ते अग्र बीज कहेवाय ते तिल, ताल, सह कारादिक अथवा शाल्यादिक जाणवा, तथा जे अग्र तेने विषे उत्पत्तिना कारणने पामे तेपण, अग्र बीज कहेवाय, ते कोरंटकादिक जाणवा; एटले ए प्रथम नेद जाणवो. तथा (मूलबीयाके०) आईकादिक ए बीजो नेद जाणवो ; (पोरबीयाके०) पर्व बीज ते सेलडी प्रमुख, ए त्रीजो नेद जाणवो. (स्कंधबीयाके०) स्कंधबीज ते सालरा नाग र्जुन प्रमुख, ए चोथो नेद जाणवो. (तेसिंचणंके०) ते चार प्रकारना वनस्पतिकाय (अ हाबीएणंके०) यथा जे जेनुं बीज उत्पत्ति कारण, ते यथा बीज एटले ते तेनुं बीज जाणवुं. जेम शालीना अंकुरनुं शाली बीज उत्पत्ति कारणछे, एम अन्यत्र स्थानकें पण जाणी लेवुं. (अहावगासेणं के०) तथा जे जेनो अवकाश एटले उत्पत्ति स्थानक पृथवी, पाणी, काल, आकाश, बीज, संयोग, एने यथावकाश कहियें. एम यथा बीजें तथा यथावकाशें करीने, (इहेगतियासत्ता के०) आ जगत्मांहे कोइ एक सत्व, तथाविध कर्मना उदय थकी, वनस्पतिने विषे उपजनार छतो उपजे, ते वनस्पतिने विषे उपजतां (पुढवीजोणि याके०) पृथवीयोनिक थाय. यद्यपि तेनुं वनस्पतिज बीज कारणछे परंतु, आधार विना उत्पत्तिनो अनावछे, ते कारण माटें पृथवीयोनिक कह्या. जेम शेवालादिक कर्दमना आ धारेंछे, पण पृथ्वी विना थाय नही, एम आहीं पण जाणी लेवुं. (पुढविसंनवाके०) पृथ वीने विषे वनस्पतिकायनो संनवछे (पुढवीवुक्कमाके०) तथा पृथवीने विषे विविध एटले नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमणछे जेनुं ते पृथवीवुक्कमाकहियें एटले एम कह्युंजे पृथवीने विषे ते वनस्पतिकायनी उपर उपर वृद्धिछे (तज्जोणिया के०) ते पृथवीयोनिक होय. (तस्संनवाके०) ते पृथवीने विषे वनस्पतिकायनो संनवछे,(तडवक्कमाके०)ते पृथवीने विषे नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमणछे,(कम्मोवगाके०)ते जीव तथाविध वनस्पतिकाय संनवि कर्मे प्रेर्यमान छता त्यां वनस्पतिने विषे उपशमीप पृथवीने विषे जाय; ते कारणे एने कम्मो वगा कहियें, एटले ते जीव कर्मना वशंगत वनस्पतिकाय थकी आवीने वली तेज वनस्प तिकायने विषे उपजे,पण अन्यत्रथी आव्या अन्यत्र नउपजे. जेम कुसम पुरियें वाव्यां एवां बीजोना मधुरायें अंकुरो नमले, ज्यां जेहनुं बीज, त्यांज तेना अंकुरोनी उत्पत्ति जाणवी. (कम्मणियाएणंके०) तथा ते जीव कर्मने कारणे आकर्षित (तछवुक्कमाके०) त्यां पृथ विने विषे तथा वनस्पतिने विषे, वुक्कमा एटले आव्या छता (णाणाविहजोणितासुपुढ वीसु के०) नाना प्रकारयोनी पृथवीने विषे (रुरकत्ताए के०) रूंख पणे (विउट्टंतिके०) उपजे, (तेजीवातेसिंणाणाविहजोणियाणंपुढवीणं के०) ते जीव ते नाना प्रकार योनी पृथवीनो (सिणेहमाहारेंति के०) स्नेह आहारे तेहीज तेनो आहार. ते पृथवीना

तत्राहारपदनिक्षेपार्थमाह निर्युक्तिकारः ॥ "नामंठवणादविए, खेत्ते भावेय होंति बोधव्वो ॥ एसो खलु आहारे, निरकेवो होइ पंचविहो" ॥ १ ॥ (नामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रभावरूपः पंचप्रकारोभवति निक्षेपआहारपदाश्रयइति । तत्र नामस्थापनेऽनादृत्य द्रव्याहारं प्रतिपादयितुमाह । "दव्वेसच्चित्तादी, खेत्ते नगरस्स जणवउ होइ ॥ भावाहारो तिविहो, उंए लोमेयपरकेवे" ॥ २ ॥ (दव्वेइत्यादि) द्रव्याहारे चिंत्यमाने सचित्तादिराहारस्त्रिविधोभवति । तद्यथा । सचित्तोऽचित्तोमिश्रश्च । तत्रापि सचित्तः पड्विधः पृथिवीकायादिकः । तत्र सचित्तस्य पृथिवीकायस्य लक्षणादिरूपापन्नस्याहारोऽष्टव्यः । तथाप्कायादेरपीति । एवंमिश्रोऽचित्तश्चायोज्यः नवरमग्निकायमचित्तं प्रायशोमनुष्याआहारयंति उदनादेस्तद्रूपत्वादिति । क्षेत्राहारस्तु यस्मिन्क्षेत्रे आहारः क्रियते उत्पद्यते व्याख्यायते । यदिवा नगरस्य योदेशोधान्यधनादिनोपभोग्यः सक्षेत्राहारः । तद्यथा । मथुरायाः समासन्नोदेशः परिभोग्योमथुराहारो मावरकाहारः खेडाहारइत्यादि । भावाहारस्त्वयं । क्षुधोदयाद्भक्षपर्यायोपपन्नं वस्तु यदाहारयति सभावाहारइति । तत्रापि प्रायशआहारस्य जिव्हेंद्रियविषयत्वात्तिक्तकटुककषायाम्ललवणमधुररसागृह्यंते । तथाचोक्तं । राईभत्ते भावउ तित्तेवाजावमधुरेत्यादि । अन्यदपि प्रसंगेन गृह्यते । तद्यथा खरविशदमभ्यवहार्यं भक्ष्यं । तत्रापि पुष्पाढ्यउदनः प्रशस्यते न शीतः । उदकंतु शीतमेव । तथाचोक्तं शैत्यमपां प्रधानोगुणः । एवं तावदभ्यवहार्यं द्रव्यमाश्रित्य भावाहारः प्रतिपादितः । सांप्रतमाहारकमाश्रित्य भावाहारं निर्युक्तिकृदाह । भावाहारस्त्रिविधस्त्रिप्रकारोभवति । आहारकस्य जंतोस्त्रिभिः प्रकारैराहारोपादानादिति । प्रकारानाह । (उहेत्ति) तैजसेन शरीरेण तत्सहचरितेनच कर्मणा कार्मणेनाभ्यां द्वाभ्यामप्याहारयति यावदपरमौदारिकं शरीरं न निष्पद्यते । तथाचोक्तं । तेएण कम्मएणं आहारेइ अणंतरं जीवो ॥ तेण परं मिस्सेणं, जाव शरीरस्स निप्पत्ती ॥ १ ॥ तथा । उआहाराजीवा, सव्वे आहारगाअपज्जत्ता ॥ लोमाहारस्तु शरीरपर्याप्त्युत्तरकालं बाह्यया त्वचा लोमभिराहारोलोमाहारस्तथा प्रक्षेपेण कवलादेराहारः प्रक्षेपाहारः सच वेदनीयोदयेन चतुर्भिः स्थानैराहारसंज्ञावाभवति । तथाचोक्तं । चउहिं गणेहिं आहारसणासमुप्पज्जइ तंजहा उमोरुयाए लुहावेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं मई एतयठोवउगेणंति । सांप्रतमेतेषां त्रयाणामप्येकयैव गाथया व्याख्यानं कर्तुमाह । "सरीरेणोयाहारो, तयाय फासेण लोमआहारो ॥ परकेवाहारो पुण, कावलितो होइनायव्वो" ॥ ३ (सरीरेणेत्यादि) तैजसेन कार्मणेनच शरीरेणौदरिकादिशरीरानिष्पत्तेर्मिश्रेणच यआहारः ससर्वोप्योजाहारइति केचिद्व्याचक्षते । औदरिकादिशरीरपर्याप्त्या पर्याप्तकोपींद्रियानापानभाषामनःपर्याप्तिभिरपर्याप्तकः शरीरेणाहारयन् उजाहारइति गृह्यते । तदुत्तरकालं त्वचा स्पर्शेंद्रियेण आहारः सलोमाहारइति । प्रक्षेपाहारस्तु कावलिकः कवलप्रक्षेपनिष्पा

इक्षुप्रमुखाः स्कंधबीजाः सल्लक्यादयः । नागार्जुनीयास्तु पठंति । वणस्सइकायाइयाणं पंचविहा बीजवक्कंति ॥ एवमाहिज्जइ तं अग्गमूलपोर खंधबीयरुहा ॥ छठाविएगंतियासं मुछिमाबीयाजायंते । यथा दवदग्धभूमौ हरितानि विविधानि उत्पद्यंते (तेसिंचणंति) तेषां चतुर्विधानामपि वनस्पतिकायानां यद्यस्य बीजं तद्यथा बीजं तेन यथाबीजेन । कोर्थः ? । शाल्यंकुरस्य शालिबीजमुत्पत्तिकारणं एवमन्यदपि ज्ञेयं । योयस्यावकाशोयद्यस्योत्पत्तिस्थानं तद्यथावकाशं तेन इह जगति एके केचन जीवावनस्पतौ उत्पद्यमानाअपि पृथिवीयोनिकाः पृथिवीसंभवाः । कोर्थः ? । बीजादुत्पद्यमानोवनस्पतिकायः पृथिव्याधारे समुत्पद्यते । यथा शैवलकर्दमादयोजलाधारे जायंते तथा वनस्पतयोभूमौ जायंते इत्यर्थः । तथा पृथिव्यां व्युत्क्रमोवृद्धिर्येषां ते तथा एवं ते तद्योनिकास्तत्संभवास्तद्व्युत्क्रमाः कर्मोपगाः कर्मप्रेर्यमाणाः कर्मनिदानेन तत्र पृथिव्यां वनस्पतौ वा व्युत्क्रांताआगताः संतोनानाविधयोनिकासु पृथिवीषु पसुं कायानां उत्पत्तिस्थानभूतासु सचित्ताचित्तमिश्रासु वृक्षतया विवर्तंते जायंते । तेच तत्रोत्पन्नास्तासां पृथिवीनां स्नेहं स्निग्धभावमाहारंति गृह्हंति ॥१॥ तेच तत्रोत्पन्नाआहारंति पृथिवीशरीरं । एवमप्कायतेजोवायुवनस्पतिशरीरमपि । नानाविधानां त्रसस्थावराणां प्राणिनां यच्छरीरं तत्स्वकायेनाश्रित्याचित्तं कुर्वंति । यदिवा परिविध्वस्तं पृथिव्यादिशरीरं पूर्वाहारितमिति पूर्वमुत्पत्तिसमये पृथिव्यादिभिरेव आहारितमासीत् । तदधुना वनस्पतिजीवस्तत्रोत्पद्यमानउत्पन्नोवा त्वचा स्पर्शेनाहारयति आहार्यंच स्वकायत्वेन विपरिणामितं स्वकायेन सह (सारूविक्ति) स्वरूपतः नीतं तन्मयं स्यात् (अवरेवियत्ति) अपराण्यपि पृथिवीकानां वृक्षाणां शरीराणि नानावर्णादीनि यथा स्कंधस्यान्योवर्णादिर्मूलस्यान्यएव एवं यावन्नानाविधशरीरपुद्गलविकुर्विताः स्युः । तथाहि । नानारसवीर्यविपाकानानापुद्गलोपचयात्सुरूपसंस्थानादृढाल्पसंहननाश्च स्युरिति । ते जीवावनस्पतिकायाः कर्मोत्पन्नाएव न पुनः कालेश्वरादिना तत्रोत्पद्यंत इत्याख्यातमर्हदादिभिः ॥ २ ॥

॥ टीका—द्वितीयाध्ययनानंतरं तृतीयमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । कर्मक्षपणार्थमुद्यतेन भिक्षुणा द्वादशक्रियास्थानरहितेनांत्यक्रियास्थानसेविना सदाहारगुप्तेन भवितव्यं । धर्माधारभूतस्य शरीरस्याधारोभवत्याहारः । सच मुमुक्षुणोद्देशकादिरहितोग्राह्यः । तेनच प्रायः प्रतिदिनं कार्यमित्यनेन संबंधेनाहारपरिज्ञाध्ययनमायातं । अस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराण्युपक्रमादीनि भवंति । तत्रेदमध्ययनं पूर्वानुपूर्व्या तृतीयं पश्चानुपूर्व्या पंचममानुपूर्व्यांत्वनियतमित्यर्थाधिकारः । पुनरत्राहारः शुद्धाशुद्धभेदेन निरूप्यते । निक्षेपस्त्रिविधओघादिस्तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं । नामनिष्पन्ने तु आहारपरिज्ञेति द्विपदंनाम ।

वक्रद्वयेतु त्रिसमयोत्पत्तौ मध्यसमयेनाहारकइति इतरयोस्त्वाहारकइति । वक्रत्रये तु चतुःसमयोत्पत्तिके मध्यवर्तिनोः समययोरनाहारकश्चतुःसमयोत्पत्तिश्चैवं भवति । त्रस नाड्या बहिरुपरिष्टादधोधस्ताद्वा पर्युत्पद्यमानो दिशोविदिशि विदिशोवादिशि यदोत्पद्यतेत दा लभ्यते । तत्रैकेन समयेन त्रसनाडीप्रवेशोद्वितीयेनोपर्यधोवा गमनं तृतीयेनच बहिर्निः सरणं चतुर्थेन तु विदिक्कूत्पत्तिदेशप्राप्तिरिति । पंचसमयास्तु त्रसनाड्याबहिरेव विदिशो विदिग्युत्पत्तौ लभ्यते । तत्रच मध्यवर्तिषु अनाहारकइत्यवगंतव्यं । आद्यंतसमययोस्त्वा हारकइति । केवलिसमुद्घातेपि कार्मणशरीरवर्तित्वात् तृतीयचतुःपंचसमयेष्वनाहार कोद्रष्टव्यः । शेषेषु तुत्वौदरिकत मिश्रवर्तित्वा तृतीयचतुः पंचम समयेष्वना हारको द्र ष्टव्यः शेषेषुतु त्वौदारिकतन्मिश्रवर्तित्वादाहारकइति । (मुहुत्तमद्धंचत्ति) अंतर्मुहू र्तं गृह्यते । तत्र केवली स्वायुषःक्षये सर्वयोगनिरोधे सति ह्रस्वपंचाक्षरोगिरणमात्रकालं यावदनाहारकइत्येवमवगंतव्यं । सिद्धजीवास्तु शैलेश्यवस्थायाआदिसमयादारभ्यानंत मपि कालमनाहारकाइति । सांप्रतमेतदेव स्वामिविशेषविशेषिततरमाह । " एकंच दोव समए, केवलिपरिवज्जिया अणाहारा ॥ पंचमि दोणि लोए, यपूरिए तिन्नि समयाउ ॥७॥ (एकंचेत्यादि) केवलपरिवर्जिताः संसारस्याजीवाएकं द्वौवा अनाहारकाभवंति । तेच द्विविग्रहत्रिविग्रहोत्पत्तौ त्रिचतुःसामयिकायां द्रष्टव्याः । चतुर्विग्रहपंचसमयो त्पत्तिस्तु स्वल्पसत्वाश्रितेति न साक्षाडुपात्ता । तथा चान्यत्राप्यभिहितं । एकं द्वौवा नाहारकः । वाशब्दात् त्रीन् वा आनुपूर्व्या अन्युदग्रवत्कृष्टतोविग्रहगतौ चतुरः समया नागमेऽभिहिताः । तेच पंचसमयोत्पत्तौ लभ्यंते नान्यत्रेति । भवस्थकेवलिनस्तु समुद् घाते मंथे तत्करणोपसंहारावसरे तृतीयपंचसमयौ द्वौ लोकपूरणाच्चतुर्थसमयेन सहि तास्त्रयः समयाभवंतीति । पुनरपि निर्युक्तिकारः सादिकमपर्यवसानं कालमनाहारकत्वं दर्शयितुमाह । " अंतोमुहुत्तमद्धं, सेलेसीए भवे अणाहारा ॥ सादीयमनिहणंपुण, सिद्धायणाहारगाहोंति " ॥ ८ ॥ (अंतोमुहुत्तमित्यादि) शैलेश्यवस्थायाआरभ्य सर्वथानाहारकः सिद्धावस्थाप्राप्तावनंतमपि कालं यावदिति । पूर्वंतु कावलिकाख्यव्य तिरेकेण प्रतिसमयमनाहारकः कावलिकेनतु कादाचित्कइति । ननु केवलिनोघाति कर्मक्षयेनंतवीर्यत्वान्न भवत्येवकावलिकआहारकः । तथाहि । आहारादाने यानि वेद नीयादीनि षट्कारणान्यभिहितानि तेषां मध्ये एकमपि नविद्यते केवलिनि तत्कथमसा वाहारं बहुदोषदुष्टं गृह्णीयात्? । तत्र न तावत्तस्यवेदनोत्पद्यते तद्वेदनीयस्य दग्धरज्जु स्थानिकत्वात्सत्यामपि न तस्य तत्कृता पीडा अनंतवीर्यत्वात् । वैयावृत्यकरणंतु भगव ति सुरासुरनराधिपतिसंभवेन संभाव्यतएवेति । ईर्यापथः पुनः केवलज्ञानावरणपरिक्षया त्सम्यगवलोकयत्येवासौ । संयमस्तु तस्य यथाख्यातचारित्रिणोनिष्ठितार्थत्वादनंतवीर्य

दितइति ज्ञातव्योनवति। पुनरप्येषामेव स्वामिविशेषेणविशेषमाविर्नावयन्नाह। "उयाहारा जीवा, सव्वेअपजत्तगामुणेयव्वा ॥ पज्जत्तगायलोमे,परकेवेहोइनायव्वा" ॥४॥ (उयाहारइत्यादि) यः प्रागुक्तः शारीरेणौजसाहारस्तेनाहारेणाहारकाजीवाः सर्वेप्यपर्याप्तकाज्ञातव्याः । सर्वानिः पर्याप्तिनिरपर्याप्तास्ते वेदितव्याः । तत्र प्रथमोत्पत्तौ जीवः पूर्वशरीरपरित्यागे विग्रहेणाविग्रहेण चोत्पत्तिदेशे तैजसेन कार्मणेन शरीरेण तप्तस्नेहपतितसंपानकवत्तत्प्रदेशस्थानात्पुजलानादत्ते तडुत्तरकालमपि यावदपर्याप्तकावस्था तावदोजआहारइति। पर्याप्तकास्त्विंद्रियादिनिः पर्याप्तिनिः पर्याप्ताः केषांचिन्मतेन शरीरपर्याप्तकावा गृह्यंते । तदेवं ते लोमाहारानवंति । तत्र स्पर्शेंडियेणोष्णादिना तत्तच्छायया शीतवायुनोदकेन प्रीयते प्राणी गर्नस्थोपि पर्याप्त्युत्तरकालं लोमाहारएवेति । प्रक्षेपाहारे तु नजनीया यदैव प्रक्षेपं कुर्वंति तदैव प्रक्षेपाहारानान्यदा लोमाहारता तु वाय्वादिस्पर्शात्सर्वदैवेति । सच लोमाहारश्चक्षुष्मतामर्वाग्दृष्टिमतां न दृष्टिपथमवतरत्यतोऽसौ प्रतिसमयवर्ती प्रायशः । प्रक्षेपाहारस्तूपलन्यते प्रायः सच नियतकालीयः। तद्यथा । देवकुरूत्तरकुरुप्रनवाअष्टमनक्ताहाराः संख्येयवर्षायुषामनियतकालीयः प्रक्षेपाहारइति । सांप्रतं प्रक्षेपाहारं स्वामिविनागेन दर्शयितुमाह । "एगिंदियदेवाणं, नेरइयाणंच नत्थि परकेवो ॥ सेसाणं परकेवो, संसारत्थाणजीवाणं" ॥ ५ ॥ (एगिंदियइत्यादि) एकमेव स्पर्शेंडियं येषां नवंत्येकेंडियाः पृथिवीकायादयस्तेषां देवनारकाणांच नास्ति प्रक्षेपस्तेहि पर्याप्त्युत्तरकालं स्पर्शेंडियेणैवाहारयंतीति कृत्वा लोमाहाराः। तत्र देवानां मनसा परिकल्पिताः शुनाःपुजलाः सर्वेणैव कायेन परिणमंति नारकाणां त्वशुनाइति । शेषास्त्वौदारिकशरीराद्वींडियादयस्तिर्यङ्मनुष्यास्तेषां प्रक्षेपाहारइति। तेषां संसारस्थितानां कायस्थितेरेवानावात्प्रक्षेपमंतरेण कावलिकआहारोजिव्हेंडियसद्भावादिति । अन्येत्वाचार्याअन्यथा व्याचक्षते । तत्र यो जिव्हेंडियेण स्थूलः शरीरे प्रक्षिप्यते सप्रक्षेपाहारः । यस्तु घ्राणदर्शनश्रवणैरुपलन्यते धातुनावेन परिणमति सउजाहारः । यःपुनः स्पर्शेंडियेणैवोपलन्यते धातुनावेन प्रयाति स लोमाहारइति । सांप्रतं कालविशेषमधिकृत्याऽनाहाकानन्निधित्सुराह । "एक्कंच दोव समए, तिन्निव समए मुहुत्तमद्धंवा ॥ सादीयमनिहणंपुण, कालमणाहारगाजीवा ॥ ६ ॥ (एक्कंचेत्यादि) तत्र । विग्गहगइमावन्ना, केवलिणो समुहया अयोगीया ॥ सिद्धाय अणाहारा, सेसा आहारगाजीवा । अस्यालेशतोयमर्थः । नत्पत्तिकाले विग्रहगतौ वक्रगतिमापन्नाः केवलिनोलोकपूरणकाले समुद्घातावस्थिताअयोगिनः शैलेश्यवस्थाः सिद्धाश्चानाहारकाः शेषास्तु जीवाहारकाइत्यवगंतव्यं । तत्र नवाद्भवांतरं यदा समश्रेण्या याति । तदा नाहारकोन लन्यते । यदापि विश्रेण्यामेकेन वक्रेणोत्पद्यते तदापि प्रथमसमये पूर्वशरीरस्थेनाहारितं द्वितीयेत्ववक्रसमये समाश्रितशरीरस्थेनेति ।

वर्त्ततेऽतोन मोहविपाकस्वन्नावा क्षुदिति। तदेवं व्यवस्थिते यत्कैश्चिदाग्रहगृहीतैरनि धीयते यथा प्रवर्त्यते कृतार्थं नायुर्ज्ञानादयोन हीयंते जगडुपकृतावनंतं वीर्यं किं गततृपो ज्ञुक्तिस्तदेतत् प्लवते यतश्छद्मस्थावस्थायामप्येतदस्तीति तत्रापि किमिति ज्ञुंक्ते तत्र सम स्तवीर्यांतरायक्षयान्नावान्मुक्तिसद्भावइतिचेत्तदयुक्तं। यतः किं तत्रायुषोपवर्तनं स्यात् किंवा चतुर्णां ज्ञानानां काचिद्धानिःस्यायेन न ज्ञुक्तिरिति। तस्माद्यथा दीर्घकालस्थितेरायुष्कं कारणमेवमाहारोपि। यथा सिद्धिगतेर्व्युपरतक्रियस्य ध्यानस्य चरमक्षणः कारणमेवं सम्य क्त्वादिकमपीति। अनंतवीर्यतापि तस्याहारग्रहणे सति न विरुध्यते। यथा तस्य देवछंदा दीनि विश्रामकारणानि गमनविषीदनानिच न्नवंत्येवमाहारक्रियापि विरोधान्नावान्नह्यत्र बलवत्तरवीर्यवतोऽल्पीयसी क्षुदिति। एवंच स्थिते यत्किंचिदेतत्। अपि चैकादशपरीषहावे दनीयकृता जिने प्राडःष्यंति। अपरेतु एकादशज्ञानावरणीयादिकृतास्तत्क्षयेऽपगता इती यमप्युपपत्तिः केवलिनि ज्ञुक्तिं साधयति। तथाहि। क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यादिरि ति स्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाञ्चालान्नरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञानदर्शना नीत्येते द्वाविंशतिर्मुमुक्षुणा परिसोढव्याः परिषहास्तेषांच मध्ये ज्ञानावरणीयोद्भवौ प्रज्ञा ज्ञानाख्यौ दर्शनीयमोहनीयसंन्नवोदर्शनीयपरिषहोंतरायोद्भोलान्नपरिषहोस्ति। चारित्र हनीयसंन्नूतास्त्वमी नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्यायाञ्चासत्कारपुरस्काराः। एते चैकादशापि जिने केवलिनि न संन्नवंति तत्कारणानामपगतत्वात्। नहिकारणान्नावे क्वचित्कार्योपपत्तिः। शेषास्त्वेकादश जिने संन्नवंति तत्कारणस्य वेदनीयस्य विद्यमानत्वात्। तेचामी क्षुत्पि पासाशीतोष्णदंशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलाख्याः। एतेच वेदनीयप्रन्नवास्तत्र केव लिनि विद्यंते। नच निदानानुच्छेदे निदानिनउच्छेदः संन्नाव्यते अतःकेवलिनि क्षुद्वेदनी यादिपीडा संन्नाव्यते। केवलमसावनंतवीर्यत्वान्न विह्वलीनवति। नचासौ निष्ठितार्थो निःप्रयोजनमेव पीडामधिसहते। नच शक्यते वक्तुमेवंन्नूतमेव तस्य न्नगवतः शारीरं यडुत क्षुत्पीडा न बाधते आहारमंतरेण वर्तते यथास्वन्नावेनैव प्रस्वेदादिरहितमेव प्रक्षेपाहार रहितं इत्येतच्चाप्रमाणकत्वादपकर्णनीयं। अपिच केवलोत्पत्तेः प्राग्ज्ञुक्तेरन्न्युपगमात्केव लोत्पत्तावपि तदेवौदारिकं शरीरमाहाराद्युपसंस्कार्यमथान्यथान्नावः कैश्चिडुच्यते असाव पि युक्तिरहितत्वादन्न्युपगममात्रकएवेति। तदेवं देशोन पूर्वकोटिकालस्य केवलस्थितेः सं न्नवादौ दरिकशरीरस्थितेश्च यथायुष्कं कारणमेवं प्रक्षेपाहारोपि। तथाहि। तैजसशरीरेण मृडुकृतस्यान्न्यवहृतस्य द्रव्यस्य स्वपर्याप्त्या परिणामितस्योत्तरोतरपरिणामक्रमेणौदारिक शरीरिणामनेन प्रकारेण क्षुडुद्भवो न्नवति वेदनीयोदये सतीयं च सामग्री सर्वापि न्नगवति केवलिनि संन्नवति तत्किमर्थमसौ न ज्ञुंक्ते नच घातिचतुष्टयस्य सहकारिकारणान्नावोस्ति येन तदन्नावात्तदन्नावइत्युच्यते। तदेवं संसारस्थाजीवाविग्रहगतौ जघन्येनैकं समयं उत्कृ

त्वान्नाहारग्रहणाय कारणीनवति । प्राणवृत्तिस्तु तस्यानुपवर्तित्वात् आयुषोऽनंतवीर्यत्वा च्चान्यथा सिद्धेव धर्मचिंतावसरस्त्वपगतोनिष्ठितार्थत्वात् । तदेवं केवलिनः कावलिका काहारोबंधहपायत्वान्न कथंचिद्घटतइति स्थितं। अत्रोच्यते। तत्र तावद्यडुक्तं घातिकर्मक्षये केवलज्ञानोत्पत्तावनंतवीर्यत्वान्न केवलिनोनुक्तिरिति । तदागमाननिज्ञस्य तत्वविचाररहित स्य युक्तिहृदयमजानतोवचनं । तथाहि यदाहारनिमित्तं वेदनीयं कर्म तत्तस्य तथैवास्ते । किमिति ? । सा शारीरी स्थितिः प्राक्तनी नजवति प्रमाणंच अस्ति केवलिनोनुक्तिः समग्र सामग्रीकत्वात्पूर्वनुक्तिवत् । सामग्रीचेयं प्रक्षेपाहारस्य तद्यथापर्याप्तत्वं वेदनीयोदयः आहारपक्तिनिमित्तं तैजसशरीरं दीर्घायुष्कत्वंचेति । तानिच समस्तान्यपि केवलिनि सं ति । यदपि दग्धरज्जुसंस्थानिकत्वमुच्यते वेदनीयस्य। तदप्यनागमिकमयुक्तिसंगतंच आग मेह्यत्यंतोदया सा तस्य केवलिन्यनिधीयते युक्तिरपि । यदि घातिकर्मक्षयाज्ज्ञानादयस्त स्याजूवन् वेदनीयोद्भवायाः क्षुधः किमायातं येनासौ न जवति । नतयोश्छायातपयोरिव सहानवस्थानलक्षणानामपि नावानावयोरिव परस्परपरिहारलक्षणः कश्चिद्विरोधोस्ती ति। सातासातयोश्चांतर्मुहूर्तपरिवर्तमानतया यथा सातोदयएवमसातोदयोऽपीत्यनंतवीर्य त्वे सत्यपि शरीरबलापचयः क्षुद्वेदनीयोद्भवा च पीडा जवत्येव । नचाहारग्रहणे तस्य किं चित्क्षीयते केवलमाहोपुरुषिकामात्रमेवेति । यदप्युच्यते वेदनीयस्योदीरणायाअनावा त्प्रनूततरपुजलोदयानावाच्चात्यंतं वेदनीयपीडानावइति वाङ्मात्रं । तथाह्यविरतसम्यग्द ष्ट्यादिष्वेकादशसु स्थानेषु वेदनीयगुणश्रेणीसद्भावात्प्रनूतपुजलोदयसद्भावः किंतेषु प्राक्त नेन्योऽधिकपीडासद्भावइति । अपिच योजिने सातोदयस्तीव्रः किमसौ प्रचुरपुंजलोदयं नेति अतोयत्किंचिदेतदिति । तदेवं सातोदयवदसातोदयोपि केवलिन्यवतारितइति तयोरं तर्मुहूर्तकालेन परिवर्तमानत्वात् । यद्यपि क्वचित्कैश्चिदनिधीयते विपच्यमानतीर्थंकरनाम्नो देवस्य च्यवनकाले षण्मासकालं यावदत्यंतं सातोदयएवेत्यसावपि यदिस्यान्न ततोबाधायै केवलिनां नुक्तेरनिवारितत्वात् । यदप्युच्यते आहारविषयाकांक्षारूपा क्षुद्भवति अनिकां क्षावाऽहारपरिग्रहबुद्धिः साच मोहनीयविकारस्तस्य चापगतत्वात्केवलिनोन नुक्तिरिति । एतदप्यसमीचीनं । यतोमोहनीयविकारात्क्षुन्न जवति तद्विपाकस्य प्रतिपक्षनावनया प्र तिसंख्यानेन निवर्त्यमानत्वात् । तथाहि । कषायाः प्रतिकूलनावनया निवर्त्यंते । तथा चोक्तं । उपसमेण हणे कोहं माणं मद्दवयाजिणे॥मायं वज्जवनावेन लोनं संतुढिए जिणे। मिथ्यात्वसम्यक्त्वयोश्च परस्परनिवृत्तिर्नावना कृता प्रतीतैव । वेदोदयोपि विपरीतनावन या निवर्तते । तडुक्तं । काम जाना मिते मूलं, संकल्पात्किल जायसे ॥ ततस्तं नकरिष्या मि, ततोमे न नविष्यसि ॥ १ ॥ हास्यादिषट्कमपि चेतोविकारूपतया प्रतिसंख्यानेन निवर्तते क्षुद्वेदनीयंतु रोगशीतोष्णादिवज्जीवपुजलविपाकितया न प्रतीपवासनामात्रेण नि

शेवालजंबालादेरुदकवदिति । तथा पृथिव्यां संजवः सदा जवनं येषां वनस्पतीनां तथा । इ दमुक्तं जवति न केवलं ते तद्योनिकायस्थितिकाश्चेति । तथा पृथिव्यामेव विविधमुत्प्राबल्येन क्रमः क्रमणं येषां ते पृथिव्युत्क्रमाः । इदमुक्तं जवति । पृथिव्यामेव तेषामूर्ध्वं क्रमणलक्षणाद्वृ द्धिर्जवति । एवंच ते तद्योनिकास्तत्संजवास्त व्युत्क्रमाइत्येतदनूद्याप्यपरं विधातुकामआह । (कम्मोवगाइत्यादि) तेहि तथाविधेन वनस्पतिकायसंजवेन कर्मणा प्रेर्यमाणास्तेष्वेव वन स्पतिरूपसामीप्येन तस्यामेव च पृथिव्यां गढंतीति कर्मोपगाजएयंते । तेहि कर्मवशगावन स्पतिकायादागत्य तेष्वेव पुनरपि वनस्पतिरूत्पद्यंते न चान्यत्रोत्ताअन्यत्र जविष्यंतीति । उक्तंच । कुसुमपुरोप्ते बीजे, मथुरायां नांकुरः समुन्नवति ॥ यत्रैव तस्य बीजं तत्रैवोत्प द्यते प्रसवः । तथा ते जीवाः कर्मनिदानेन कारणेन समाकृष्यमाणास्तत्र वनस्पतिका ये वा व्युक्रमाः समागताः संतोनानाविधयोनिकासु पृथिवीष्वित्यन्येषामपि षसां का यानामुत्पत्तिस्थानजूतासु सचित्ताऽचित्तमिश्रासु वा श्वेतकृष्णादिवर्णतिक्तादिरससुरन्यादि गंधमृडकर्कशादिस्पर्शादिकैर्विकल्पैर्बहुप्रकारासु जूमिषु वृक्षतया विविधं वर्तंते तेच तत्रो त्पन्नास्तासां पृथिवीनां स्नेहं स्निग्धनावमाददते सएवच तेषामाहारइति । नच ते पृथि वीशरीरमाहारयंतः पृथिव्याः पीडामुत्पादयंति ॥१॥ एवमप्कायतेजोवायुवनस्पतीनामा योज्यं । अत्रच पीडानुत्पादनेऽयं दृष्टांतः । तद्यथा । अंडोजवाद्याजीवामातुरूष्मणा वि वर्धमानागर्नस्थाएवोदरगतमाहारयंतोनातीव पीडामुत्पादयंत्येवमसावपि वनस्पतिका यिकः पृथिवीस्नेहमाहारयन्नातीव तस्याः पीडामुत्पादयति उत्पद्यमानः समुत्पन्नश्च वृद्धि मुपगतोऽसदृशवर्णरसाद्युपेतत्वात् बाधां विदध्यादपीति । एवमप्कायस्य जौमस्यांतरि क्षस्य वा शरीरमाहारयंति तथा तेजसोजस्मादिकं शरीरमाददति । एवं वाय्वादेरपीति इष्टव्यं । किंबहुनोक्तेन नानाविधानां त्रसस्थावराणां प्राणिनां यछरीरं तत्ते समुत्पद्यमा नाअचित्तमपि स्वकायेनावष्टभ्य प्रासुकीकुर्वंति । यद्विवा परिविध्वस्तं पृथिवीकायादिश रीरं किंचित्परितापितं कुर्वंति ते वनस्पतिजीवाएतेषां पृथिवीकायादीनां तछरीरं पूर्वमा हारितमिति तैरेव पृथिवीकायादिनिरुत्पत्तिसमये आहारितमासीत् स्वकायत्वेन परिणा मितमासीत् । तदधुना वनस्पतिजीवस्तत्रोत्पद्यमानउत्पन्नोवा त्वचा स्पर्शेनाहारयत्याहा र्य च स्वकायत्वेन विपरिणामयति विपरिणामितं च तछरीरं स्वकायेन सह स्वरूपतां नी तं सत्तन्मयतां प्रतिपद्यते । अपराएयपि मूलशाखाप्रतिशाखापत्रपुष्पफलादीनि तेषां पृ थिवीकायिकानां वृक्षाणां नानावर्णानि । तथाहि । स्कंधस्यान्यथानूतोवर्णोमूलस्य चान्या दृशइति । एवं यावन्नानाविधशरीरेषु पुजलविकुर्वितास्ते जवंतीति । तथाहि । नानारस वीर्यविपाकानानाविधपुजलोपचयात्सुरूपकुरूपसंस्थानास्ते जवंतीति । तथा दृढाल्पसंहन नाः कृशस्थूलस्कंधाश्च जवंत्येवमादिकानानाविधस्वरूपाणि विकुर्वंतीति स्थितं । केषां

ष्टतः समयत्रयं नवस्थकेवली च समुद्घातावस्थः समयत्रयमनाहारकः शैलेश्यवस्थायां त्वंतर्मुहूर्तं। सिद्धास्तु सादिकमपर्यंतं कालमनाहारकाइति स्थितं। सांप्रतं प्रथमाहारग्रहणं येन शरीरेण करोति तदर्शयति । जोएण कम्मएणं, आहारेइ अणंतरं जीवा ॥ तेण परं मीसेणं, जीवसरीरस्स पज्जत्ती ,, ॥ ए ॥ (जोएणेत्यादि) ज्योतिस्तेजस्तदेव तत्र वा नवं तैजसं कार्मणेन चाहारयति। तैजसकार्मणे हि शरीरे आसंसारनाविनी ताभ्यामेवोत्पत्तिदेशं गताजीवाः प्रथममाहारं कुर्वंति ततः परमौदारिकमिश्रेण वैक्रियमिश्रणेन वा यावच्छरीरं निष्पद्यते तावदाहारयंति । शरीरनिष्पत्तौ त्वौदारिकेण वैक्रियेण वाऽहारयंतीति स्थितं। सांप्रतं परिज्ञानिक्षेपार्थमाह । ” णामं ठवणपरिन्ना, दव्वनावेय होइ नायव्वा ॥ दव्वपरिन्ना तिविहा, नावपरिन्ना नवे डुविहा,, ॥१०॥ (णाममित्यादि) तत्र नामस्थापना ड्व्यनाववनेदात्परिज्ञा चतुर्धा । तत्रापि नामस्थापने क्षुसत्वादनादृत्य ड्व्यपरिज्ञां प्रतिपादयन् गाथापरार्द्धमाह । ड्व्यपरिज्ञेति । ड्व्यस्य ड्व्येण वा परिज्ञा सा च परिच्छेद्यड्व्यप्रधान्यात्तस्यच सचित्ताचित्तमिश्रनेदेन त्रैविध्यात्त्रिविधेति । नावपरिज्ञापि ज्ञपरिज्ञाप्रत्याख्यानभेदेन द्विविधेति । शेषास्त्वागमनोआगमज्ञशरीरव्यतिरिक्तादिकोविचारः शस्त्रपरिज्ञावद्द्रष्टव्यः। गतानिक्षेपनिर्युक्तिरधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (सुयंमे आउसंतेणमित्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । श्रुतं मयाऽऽयुष्मता तु नगवतेदमाख्यातं । तद्यथा । आहारपरिज्ञेदमध्ययनं तस्य चायमर्थः। प्राच्यादिषु दिक्षु सर्वतइत्यूर्ध्वाधोविदिक्षु च (सव्वावंतित्ति) सर्वस्मिन्नपि लोके क्षेत्रे प्रज्ञापकनावदिगाधारनूतेऽस्मिन् चत्वारोबीजकायाबीजमेव कायोयेषां ते तथा । बीजं वक्ष्यमाणं । चत्वारोबीजप्रकाराः समुत्पत्तिनेदाऩवंति । तद्यथा । अग्रे बीजं येषामुत्पद्यते ते तलतालीसहकारादयः शाल्यादयोवा । यदिवाऽग्राण्येवोत्पत्तौ कारणतां प्रतिपद्यंते येषां कोरंटादीनां ते अग्रबीजास्तथा मूलबीजाआर्द्रकादयः पर्वबीजास्त्विक्षुवादयः स्कंधबीजाः सल्लक्यादयः। नागार्जुनीयास्तु पठंति । वणस्सइकाइयाण पंचविहा बीजवक्कंती ॥ एवमाहिज्जइ तंजहा अग्गमूलपोरुखंधबीयरुहाछट्ठाविएगेंदियासमुच्छिमाबीया जायंते । यथा दग्धवनस्थलीषु नानाविधानि हारितान्युद्भवंति पद्मिन्योवाऽभिनवतडागादाविति । तेषां च चतुर्विधानामपि वनस्पतिकायानां यद्यस्य बीजमुत्पत्तिकारणं तद्यथाबीजं तेन यथा बीजेनेति । इदमुक्तं नवति । शाल्यंकुरस्य शालिबीजमुत्पत्तिकारणं । एवमन्यदपि ड्रष्टव्यं । यथावकाशेति । योयस्यावकाशः यद्यस्योत्पत्तिस्थानमथवा नूम्यंबुकालाकाशबीजसंयोगाययथावकाशे गृह्यंते तेनेति । तदेवं यथाबीजं यथावकाशेन चेहास्मिन् जगत्येके केचन सत्वाये तथाविधकर्मोदया द्वनस्पतिपूत्पित्सवस्तेहि वनस्पतावुत्पद्यमानाअपि पृथिवीयोनिका नवंति यथा तेषां वनस्पतिबीजं कारणमेवमाधारमंतरेणोत्पत्तेरनावात्पृथिव्यपि

पक्रमजेनो (कम्मोवगाके०) कर्मना वशं गत वनस्पतिकायथी आवी वली तेहीज वनस्पतिकायने विषे (कम्मनियाणेणं के०) कर्मना कारण थकी आकर्षिता (तछवुक्कमाके०) त्यां आव्या बता (पुढवीजोणिएहिंरुक्खेहिं के०) पृथ्वीयोनिक वृक्षनी पेठें (रुक्खत्ताएविउट्टंतिके०) वृक्ष पणे उपजे. ते जीव तेहीज पृथ्वीयोनिक वृक्षनो स्नेह आहार आहारे, तेणे करी उपचय पामे. हवे ते जीवो शुं आहारे? तोके पृथ्वी, अप, तेज, वायु अने वनस्पतिना शरीर, तथा नाना प्रकारना, त्रस स्थावर जीवोनां शरीर, अचित्त करे; परंतु तेने पीडा न उपजावे, परिविध्वंस करे. ते शरीरने पूर्वे आहारखुं ते, अथवा हमणा उपजतां आहारेछे, अथवा उपना पछी आहारेछे, त्वचाने स्पर्श करी आहारीने परिणमावीने, पोतानी काया सरखां रूप करे. इत्यादिक बीजुं सर्व पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३ ॥

॥ दीपिका–पूर्वं पृथिव्यां ये वृक्षाउत्पद्यंते ते उक्ताः। अत्र तु वृक्षेष्वेव ये वृक्षाजायंते तान् वक्ति (अहावरंति) अथापरमेतदाख्यातं पुरार्हता। इहैके सत्वावृक्षएव योनिरुत्पत्तिस्थानमाश्रयोयेषां ते वृक्षयोनिकावृक्षाः। इहच पूर्वं पृथिवीयोनिकेषु वृक्षेषु कथितं यत्तदेवात्र व्याख्येयं पूर्ववत् ॥ ३ ॥

॥ टीका–सांप्रतं तद्योनिकेष्वेव वनस्पतिषु अपरे समुत्पद्यंतइत्येतद्दर्शयितुमाह। (अहावरमित्यादि) सुधर्मस्वामी शिष्योद्देशेनेदमाह। अथापरमेतदाख्यातं पुरा तीर्थकरेण। यदिवा तस्यैव वनस्पतेः पुनरपरं वक्ष्यमाणमाख्यातं। तद्यथेहास्मिन् जगत्येके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिनः सत्वाः प्राणिनोवृक्षाएव योनिरुत्पत्तिस्थानमाश्रयोयेषां ते वृक्षयोनिकाः। इहच यत्पृथिवीयोनिकेषु वृक्षेष्वभिहितं तदेतेष्वपि वृक्षयोनिकेषु वनस्पतिषु तदुपचयकर्तृ सर्वमायोज्यं यावदाख्यातमिति ॥ ३ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडवक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तछ वुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउतेउवाउवणस्सइसरीरं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुवंति परिविद्धत्थं तं सरीरं पुवाहारियं तयाहारियं विपरिणामियं सारूविकडं संतं अवरेवि यणं तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावन्ना जाव ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीति मक्खायं ॥ ४ ॥

चिन्नाक्यादीनां वनस्पत्याद्याः स्थावरजीवाएव न नवंतीति अतस्तत्प्रतिपेधार्थमाह । (ते जीवाइत्यादि) ते वनस्पतिषूत्पन्नाजीवाउपयोगलक्षणत्वाज्जीवानां । तेषामप्याश्रयोत्स र्पणादिकया क्रिययोपयोगोलक्ष्यते । तथा विशिष्टाहारोपचयाऽपचयाभ्यां शरीरोपचयाप चयसद्भावादनेकजीवाः स्थावरास्तथा छिन्नप्ररोहणात्स्वापात्सर्वत्वगपहरणे मरणादित्येव मादयोहेतवोऽत्र डृष्टव्याः। यदत्र कैश्चित्स्पष्टेपि वनस्पतीनां चैतन्ये सिद्धानैकांतिकत्वादिक मुक्तं स्वदर्शनानुरागात्तदपकर्णनीयं। नहि सम्यगार्हतमताभिज्ञोसिद्धविरुद्धानैकांतिकोपन्या सेन व्यामोह्यते सर्वस्य कथंचिदभ्युपगतत्वात्प्रतिपिद्धत्वाच्चेति ते जीवास्तत्र वनस्पतिषु तथा विधेन कर्मणा उपपन्नगाः। तच्चेदं एकेंद्रियजातिस्थावरनामवनस्पतियोग्यायुष्कादिकमिति तत्कर्मोदयेन तत्रोत्पन्नाउच्यंते न पुनः कालेश्वरादिना तत्रोत्पाद्यंते इत्येवमाख्यातं तीर्थ करादिभिरिति । एवंतावत्पृथिवीयोनिकावृक्षाअभिहिताः ॥ २ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवु क्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडुवक्कमा कम्मोवगा कम्मनियाणेणं तत्त वुक्कमा पुढवीजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं पुढवी जोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आ उतेउवाउवणस्सइसरीरं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचि त्तं कुव्वंति परिविद्धत्थं तं सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारियं विप्परिणामियं सा रुविकडं संतं अवरेवि यणं तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणाव न्ना णाणागंधा णाणारसा णाणाफासा णाणासंठाणसंठिया णाणाविह सरीरपुग्गलविउव्विया ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीतिमक्खायं ॥ ३ ॥

अर्थ–हवे तद्योनिक वनस्पतिने विषे अन्य बीजा जीव उपजे, ए देखाडेछे, श्री सु धर्मस्वामी श्री जंबूस्वामि प्रत्यें कहेछे के, वली वनस्पतिनो (अहावरंपुरक्खायं के०) अ पर एटले बीजो प्रकार, पूर्वें श्री तीर्थंकर देवें कह्योछे, ते हवे कहेछे. (इहेगतिया के०) कोइ एक (सत्ता के०) जीव प्राणी, (रुक्खजोणिया के०) वृक्षज जेनी योनि एटले उत्पत्तिस्थानकछे, ते पृथ्वीयोनिक वृक्षने विषे वृक्ष पणेज उपजे. (रुक्खसंभवा के०) ते पृथ्वीयोनिक वृक्षने विषे वनस्पतिकायनो संभवछे. (रुक्खवुक्कमा के०) तथा वृ क्षने विषे नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमण छे जेनो, एटले वृद्धिछे. (तज्जोणिया के०) तद्योनिकछे, (तस्संभवा के०) तत्संभवछे, (तडुवक्कमा के०) तेना सरखोछे उ

लपत्रपुष्पफलबीजनूतेषु दशसु स्थानेषु जीवाः समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पद्यमानावृक्षयोनिकावृक्षव्युत्क्रमाश्चोच्यंते इति । शेषंपूर्ववत् । इहच प्राक्चतुर्विधार्थप्रतिपादकानि सूत्राण्यनिहितानि । तद्यथा । वनस्पतयः पृथिव्याश्रितानवंतीत्येकं तच्छरीरं १ अप्कायादिशरीरं वाऽहारयंतीति द्वितीयं २ तथा विवृक्षास्तदाहारितं शरीरमचित्तं विध्वस्तंच कृत्वात्मसात्कुर्वंतीति तृतीयं ३ अन्यान्यपि तेषां पृथिवीयोनिकानां वनस्पतीनां शरीराणि मूलस्कंधकंदादीनि नानावर्णानि नवंतीति चतुर्थं ४ एवमत्रापि वनस्पतियोनिकानां वनस्पतीनामेवंविधार्थप्रतिपादकानि चतुःप्रकाराणि सूत्राणि इष्टव्यानीति यावत्ते जीवावनस्पत्यवयवमूलस्कंधादिरूपाः कर्मोपपन्नगानवंत्येवमाख्यातं ॥ ४ ॥

अहावरं पुरक्कायं इहेगइया सत्ता रुक्कजोणिया रुक्कसंनवा रुक्कवुक्कमा तज्जोणिया तस्संनवा तडुवक्कमा कम्मोवगा कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा रुक्कजोणिएसु रुक्केसु मूलत्ताए कंदत्ताए खंधत्ताए तयत्ताए सालत्ताए पवालत्ताए पत्तत्ताए पुप्फत्ताए फलत्ताए बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्कजोणियाणं रुक्काणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउतेउवाउवणस्सइ णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुवंति परिविद्धडं तं सरीरगं जाव सारूविकडं संतं अवरेवियणं तेसिं रुक्कजोणियाणं मूलाणं कंदाणं खंधाणं तयाणं सालाणं पवालाणं जाव बीयाणं सरीरा णाणावन्ना णाणागंधा जाव णाणाविहसरीरं पुग्गल विउविता ते जीवा कम्मोववन्नगा नवंतीति मक्कायं॥८

अर्थ—अथ हवे अन्य स्थानक पूर्वे तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक वृक्षयोनिक तथा अन्य तेना अवयवरूप प्राणी उपजे तथा जे एक वनस्पतिनो जीव सर्व वृक्षना अवयव व्यापारें, अन्य जीव वली तेना अवयव व्यापारें, ते वृक्षने विषे मूलपणे, कंद पणे, स्कंध पणे, त्वचा पणे, शाखा पणे, पत्र पणे. फूल पणे, फल पणे अने बीज पणे, प्रवाल एटले अंकुरपणे, एटला स्थानकें उपजे. ते जीव त्यां उपजता वृक्षयोनिक वृक्षनो स्नेह आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. यावत् ते जीव मूल कंदादिक वनस्पतिना अवयवरूप कर्म तेने वशें त्यां उपजे. एम श्रीतीर्थंकरें कह्युंछे. ॥ ८॥

॥ दीपिका—अथवृक्षोपर्युत्पन्नान् वृक्षानाश्रित्याह । (अहावरमिति) अथापरमेतदाख्यातं । इहैके सत्वावृक्षयोनिकाः स्युः । तस्यैकस्य वनस्पतेर्मूलारंनस्य उपचयकारिण

अर्थ–हवे वनस्पतिना अवयवोनो अधिकार कहेछे. (अहावरंपुरस्कायं के०) अथ हवे अपर स्थानक तीर्थंकरें कह्युंछे, ते कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव, वृक्ष ज जेनी योनि एटले उत्पत्तिस्थानकछे, वृक्षने विषेज जेनो संनवछे, एटले वृद्धिछे वृक्षने विषेज जेनुं नाना प्रकारें संक्रमणछे, ते योनिक ते संनवछे कर्मना वशंगत वन स्पतिकाय थकी आवी वली तेज वनस्पतिने विषे कर्मने कारणें आकर्षिता त्यां आ व्या छता, वृक्षयोनिक वृक्षने विषे वृक्ष पणे उपजे. ते जीव तेहज वृक्षयोनिक वृक्ष नो स्नेह आहारे ते जीव आहारे पृथ्वी, अप, तेज, वायु, अने वनस्पति कायनां शरीर, त्रस अने स्थावर प्राणीनां शरीर अचित्त करे परिविध्वंस करे ते वनस्पतिना जीव पृथ्वी कायादिकनुं जे शरीर पूर्वें आहार्युं, तथा हमणां उपजतां अथवा उपनां पछी जे आ हारेछे, ते त्वचाने स्पर्शें करी आहारीने परणमावीने पोतानी काया सरखां रूप करे, ते अवयवरूप रूप करे, ते कहेछे. एक मूल, बीजुं कंद, त्रीजी त्वचा, चोथी शाखा, पांचमां प्रवाल एटले नवांकुर, छठा पुष्प, सातमां पत्र, आठमां फल, नवमां बीज, दश मो स्कंधनूत, ते वृक्षनां ए दश स्थानकने विषे जीव उपजे छे. ते वृक्ष योनिक, ते वृक्ष ना शरीर नाना प्रकारना वर्ण वाला यावत् ते वनस्पतिना जीव कर्मना उदयें उपना होय. एरीतें नगवंत श्री तीर्थंकर देवें कह्या, परंतु काल ईश्वरादिक कारण कोइ नथी. ॥४॥

॥ दीपिका–अथापरमेतदाख्यातं । इदं वनस्पत्यवयवसूत्रं । यथा इहैके जीवावृक्षयो निकाः स्युस्तदवयवाश्रिताश्चान्ये वनस्पतिरूपाएव जीवाः स्युः । तथाहि । योहि एकोव नस्पतिजीवः सर्ववृक्षावयवव्यापी स्यात् तस्य चापरे तदवयवेषु मूल १ कंद २ त्वक् ३ शाखा ४ प्रवाल ५ पुष्प ६ पत्र ७ फल ८ बीज ए स्कंध, १० नूतेषु दशस्थानेषु जीवाः समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पद्यमानावृक्षयोनिकावृक्षोनवावृक्षव्युत्क्रमाश्चोत्पद्यंते इति शेषं पूर्ववत् । इह चत्वारि सूत्राणि यथापूर्वमुक्तानि । यथा वनस्पतयः पृथिव्याश्रिता नवंतीत्येकं १ तच्छरीरमप्कायादिशरीरं चाहारयंति २ वृक्षास्तदाहारितं शरीरमचित्तं वि ध्वस्तंच कृत्वात्मसात्कुर्वंति ३ अन्यान्यपि तेषां पृथिवीयोनिकानां वनस्पतीनां शरीराणि मूलकंदादीनि नानावर्णानि नवंति ४ एवमत्रापि चत्वारि सूत्राणि ज्ञेयानि ॥ ४ ॥

॥ टीका–सांप्रतं वनस्पत्यवयवानधिकृत्याऽऽह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदा ख्यातं तदर्शयति । इहास्मिन् जगत्येके न सर्वे तथाविधकर्मोदयवर्तिनोवृक्षयोनिकाः स त्वानवंति तदवयवाश्रिताश्च परे वनस्पतिरूपाएव प्राणिनोनवंति । तथा योह्येकोवनस्प तिजीवः सर्ववृक्षावयवव्यापी नवति तस्य चापरे तदवयवेषु मूलकंदस्कंधत्वक्शाखाप्रवा

तं वनस्पतिशरीरमाहारयंति तथा पृथिव्यप्तेजोवाय्वादीनां शरीरकमाहारयंति तथा तच्छरीरमाहारितं सदचित्तं विध्वस्तं परिणामितमात्मसात्कृतं स्वकायावयवतया अवस्थापयंत्यपराणिच तेषामध्यारुहाणां नानाविधरूपरसगंधस्पर्शोपेतानि नानासंस्थानानि शरीराणि नवंति ते जीवास्तत्र स्वकृतकर्मोपपन्ना नवंतीत्येतदाख्यातमिति प्रथमं सूत्रं ॥ ६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता अझारोहजोणिया अझारोहसंनवा जाव कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा रुरकजोणिएसु अझारोहेसु अझारोहत्ताए विनुट्टंति ते जीवा तेसिं अझारोहजोणियाणं अझारोहाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति ते जीवा पुढवीसरीरं जाव सारूविकडं संतं अवरेवि यणं तेसिं अझारोहजोणियाणं अझारोहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरें कहुंछे, ते कहेछे. जे प्रथम वृक्षयोनिक वृक्षने विषे अध्यारोह कह्या,तेनेज विषे वली बीजा प्रदेश वृद्धिना करनार एवा अध्यारोह वनस्पति पणे उपजे; ते जीव अध्यारोह प्रदेशने विषे उपना ते वृक्षयोनिक अध्यारोहनो स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणवुं. एटले अध्यारोहनुं बीजुं सूत्र कह्युं. ॥७॥

॥ दीपिका—प्राग्वृक्षयोनिकेषु वृक्षेष्वध्यारोहाउक्ताः । अत्र तेष्वेवान्ये प्रतिप्रदेशोपचयकर्तारोऽध्यारोहवनस्पतित्वेन जायंते । तेच जीवाअध्यारोहप्रदेशेषूत्पन्नाअध्यारोहजीवास्तेषां स्वयोनिनूतानि शरीराणि आहारयंति तत्र पराण्यपि पृथिव्यादिनि शरीराण्याहारयंति अपराणि वाऽध्यारोहसंनवानामध्यारुहजीवानां नानावर्णकादिकानि शरीराणि नवंत्येवमाख्यातमिति द्वितीयं सूत्रं ॥ ४ ॥

॥ टीका—द्वितीयं त्विदमथापरं पुराख्यातं । ये ते प्राग्वृक्षयोनिषु वृक्षेषु अध्यारुहाः प्रतिपादितास्तेष्वेवोपरि प्रतिप्रदेशोपचयकर्तारोऽध्यारुहवनस्पतित्वेनोपपद्यंते । तेच जीवाअध्यारुहप्रदेशेषूत्पन्नाअध्यारुहजीवास्तेषां स्वयोनिनूतानि शरीराण्याहारयंति । तथाऽपराण्यपि पृथिव्यादीनि शरीराणि आहारयंति अपराणि चाध्यारुहसंनवानामध्यारुहजीवानां नानाविधवर्णकादिकानि शरीराणि नवंतीत्येवमाख्यात. ॥ ७ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता अझारोहजोणिया अझारोहसंनवा जाव कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा अझारोहजोणिएसु अझारोह

स्ते वृक्षयोनिकाउच्यंते । यदिवा मूलस्कंधादिकाः पूर्वोक्तदशस्थानवर्तिनस्ते एवमुच्यंते। अत्रापि सूत्रचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ ५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं वृक्षोपर्युत्पन्नान् वृक्षानाश्रित्याह । (अथावरमिति) अथापरमेतत्पुरा ऽऽख्यातं यद्वक्ष्यमाणमिहैके सत्वावृक्षयोनिकान्नवंति । तत्र ये ते पृथिवीयोनिकावृक्षास्ते ष्वेव प्रतिप्रदेशतया येपरे समुत्पद्यंते तस्यैकस्य वनस्पतेर्मूलारंनकस्योपचयकारिणस्ते वृ क्षयोनिकाइत्यनिधीयंते । यदिवा ये ते मूलकंदस्कंधशाखादिकाः पूर्वोक्तदशस्थानवर्तिन स्तएवमनिधीयंते तेषुच वृक्षयोनिकेषु वृक्षेषु कर्मोपादननिष्पादितेषु उपर्युपरि अध्यारोहं तीत्यध्यारुहावृक्षोपरिजातावृक्षानिधानाः कामवृक्षानिधानावा इष्टव्यास्तदन्नावेऽवापरे व नस्पतिकायाः समुत्पद्यंते वृक्षयोनिकेषु वनस्पतिष्विति । इहापि प्राग्वच्चत्वारि सूत्रा णि इष्टव्यानि ॥ ५ ॥

अहावरं पुरक्कायं इहेगतिया सत्ता रुरकजोणिया रुरकसंनवा रुरकवु क्कमा तज्जोणिया तस्संनवा तडवक्कमा कम्मोववन्नगा कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा रुरकजोणिएहिं रुरकेहिं अज्ञारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुरकजोणियाणं रुरकाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं जाव सारूविकडं संतं अवरेवि यण तेसिं रुरकजोणियाणं अज्ञारुहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे वृक्ष उपरना वृक्ष आश्री कहेछे. अथ हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरें क ह्युंछे. आजगत्मांहे कोइ एक वृक्षयोनिक सत्व एटले जीव होयछे त्यां जे पृथ्वीयोनिक वृक्ष, ते वृक्षने विषेज बीजा मूलादिक वृद्धिना करनार, ते वृक्षयोनिक वृक्षने विषे अव यवरूपे उपजे, तेनी उपर उपर जे आरूढे ते वल्ली वृक्षादिक अथवा पींपलादिक वड वृक्षनी उपर उपजे, ते कामवृक्षादिक जाणवा. ते कारणे एने अध्यारोह वृक्ष कहियें, ते अध्यारोह, वृक्षनोज स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणी लेवुं ते यावत् पो ताना कर्मने वशे उपजे. एटले अध्यारोहनुं प्रथम सूत्र कह्युं ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–वृक्षयोनिकेषु एके अध्यारोहाजायंते वृक्षोपरिजातावृक्षाअध्यारोहाइत्यु च्यंते । तेच वल्लीवृक्षानिधानाः । शेषं प्राग्वत् । इदं प्रथमसूत्रं ॥ ६ ॥

॥ टीका–तद्यथा योनिकेषु वृक्षेष्वपरेऽध्यारुहाः समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पन्नाः स्वयोनिभू

स्कंधत्वक्शाखाप्रवालपत्रपुष्पफलबीजत्वेन जायंते ते तथा कर्मोपगान्नवंतीत्याख्यात मिति चतुर्थं सूत्रं ॥ ए ॥

॥ टीका–इदंतु चतुर्थकं । तद्यथा (अहावरमित्यादि) अथापरमिदमाख्यातं । तद्यथा इहैके सत्वाअध्यारुहयोनिकेष्वध्यारुहेषु मूलकंदस्कंधत्वक्शाखाप्रवालपत्रपुष्पफलबीज नावेनोत्पद्यंते तेच तथाविधकर्मोपगान्नवंतीत्येतदाख्यातमिति शेषं तदेवेति ॥ ए ॥

अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंन्नवा जाव णाणाविहजोणियासु पुढवीसु तणत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहजोणियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेंति जाव ते जीवा कम्मोववन्ना न्नवंती तिमरकायं॥१०॥एवं पुढविजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति जावमरकायं ॥ ११ ॥ एवं तणजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति तणजोणियं तणसरीरं च अहारेंति जावमरकायं ॥१२॥ एवं तणजोणिएसु तणेसु मूलत्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति तेजीवा जावएव मरकायं ॥१३॥ एवं उसहीणवि चत्तारि आलावगा ॥१४॥ एवं हरियाणवि चत्तारि आलावगा॥१५॥

अर्थ–हवे वली वृक्ष वर्जीने बीजा वनस्पतिकायना विशेष आश्री कहेछे. हवे बीजुं स्थानक पूर्वे तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक पृथ्वीकाय योनिक पृथ्वीनेविषे वनस्पतिकायनो संन्नवछे, पृथ्वीव्युत्क्रमछे, यावत् नाना प्रकारें योनिक, पृथ्वीने विषे तृणपणे उपजे, ते पृथ्वीनो आहार आहारे. इत्यादिक जेम वृक्षनो पहेलो आलावो कह्यो हतो, तेमज जाणवो. एमज चार आलावा जेम वृक्षना कह्याछे, तेम तृणना पण जाणवा ॥ १० ॥ बीजे आलावे पृथ्वीयोनिक तृणनेविषे उपजे. आगलनुं सर्व पूर्ववत् जाणवुं, ॥ ११ ॥ त्रीजे आलावे तृणयोनिक तृणनेविषे तृणपणे उपजे. शेषं पूर्ववत् जाणवुं ॥ १२ ॥ चोथे आलावे तृणयोनिक तृणने विषे मूलकंदादिकने नावें उपजे. शेषं पूर्ववत् जाणवुं, ॥ १३ ॥ (एवंउसहीणविचत्तारिआलावगा के०) एज रीतें उषधि एटले धान्यनी जाति तेना पण चार आलावा जाणवा ॥ १४ ॥ (एवंहरियाणविचत्तारिआलावगा के०) एवं हरितकाय आश्री पण चार आलावा जाणवा. ए सर्व मली ने वीश आलावा थया. ॥ १५ ॥

॥ दीपिका–अथ वृक्षवर्जितं शेषवनस्पतिमाश्रित्याह । अथापरमिदमाख्यातं । इहै

त्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारंति पुढविसरीरा आउसरीरा जाव सारूविक डं संतं अवरेवि यणं तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ८ ॥

अर्थ-अथ हवे अन्य स्थानक तीर्थंकरें कह्युंछे. आजगत् मांहे कोइ एक जीव, अध्यारोहयोनियाछे, ते अध्यारोह योनिया तेने विषे वली अध्यारोह पणे उपजे, ते अध्यारोहयोनिक अध्यारोहनां शरीर आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. आहीं पूर्वे बीजा सूत्रमां वृक्षयोनिक अध्यारोहनां शरीर बीजा अध्यारोह जीव अहारे, अने आ त्रीजा सूत्रमां अध्यारोहयोनिक अध्यारोह जीवनां शरीर अहारे, एटलुं विशेषछे. ए अध्यारोहनुं त्रीजुं सूत्र कह्युं. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका-एके सत्वाअध्यारोहसंभवेषु अध्यारोहेषु अध्यारोहत्वेन जायंते। येच एवं जायंते तेऽध्यारोहयोनिकानाध्यारोहाणां यानि शरीराणि तान्याहारयंति। द्वितीयसूत्रे वृक्षयोनिकानामध्यारोहाणां यानि शरीराणि तान्यपरेऽध्यारोहाजीवाआहारयंति। अत्रतु अध्यारोहयोनिकानां अध्यारोहजीवानां शरीराणीति विशेषः। इदं तृतीयसूत्रं ॥ ८ ॥

॥टीका-तृतीयं त्विदं (अहावरमित्यादि) अथापरं पुराख्यातं। तद्यथा। इहैके सत्वा अध्यारुहसंभवेष्वध्यारुहत्वेनोपपद्यंते। ये चैवमुत्पद्यंते तेऽध्यारुहजीवाआहारयंति। तृतीये त्वध्यारुहयोनिकानामध्यारुहर्जीवानां शरीराणि द्रष्टव्यानीति विशेषः॥ ८ ॥

अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता अज्झारोहजोणिया अज्झारोह संभवा जाव कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा अज्झारोहजोणिएसु अज्झारोहेसु मूलत्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सिणेहमाहारेंति जाव अवरेवि यणं तेसिं अज्झारोहजोणियाणं मूलाणं जाव बीयाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ए ॥

अर्थ-हवे अध्यारोहनुं चोथुं सूत्र श्री तीर्थंकरें कह्युंछे, ते कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव, अध्यारोहयोनिक ते अध्यारोहने विषे मूल कंदादिक अवयव थइने उपजे, ते त्यां उपना थका तेनां शरीर आहारे, इत्यादिक अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ए॥

॥ दीपिका-अथापरमिदमाख्यातं इहैके सत्वाअध्यारुहयोनिकेष्वध्यारोहेषु मूलकंद

वनस्पतिपणे, कंडुकनामा वनस्पतिपणे, उवह्लिणिकानामा वनस्पतिपणे, निव्वेह्णीय नामा वनस्पतिपणे, सछत्रपणे, छत्तगचाए पणे, वासाणितापणे, कुरुनामा वनस्पति पणे, उपजे. ते जीव तेहीज नानाविध योनिक पृथ्वीनो स्नेह आहारे ते जीव पृथिव्या दिकनां शरीर आहारीने, यावत् पोतानी काया सरखां रूप करे. बीजा पण तेवा पृथ्वीयोनिक आयनामा वनस्पतिः यावत् कुरनामा वनस्पतिनां शरीर जेवां रूप करे ते शरीर नाना प्रकारना वर्णवालां होय. इत्यादिक यावत् पूर्ववत् भगवंते कह्युं ए कुहण नामा वनस्पतिनो विशेष ते आश्री एकज आलावो जाणवो. कारण के, ते योनिक बीजा नथी, तेथी एना शेष त्रण आलावा नथी. एनुं विशेष श्रीपन्नवणा थकी जाणवुं. एवं सर्व मली एकवीश आलावा पृथ्वीयोनिक वनस्पतिना कह्या. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–आर्यादयोवनस्पतिविशेषालोकतोज्ञेयाः । कुहणेषु तु एकएवालापकोवाच्यः । शेषास्त्रयोन संति तद्योनिकानामन्येषामभावादिति ॥ १६ ॥

॥ टीका–इह चामी वनस्पतिविशेषालोकव्यवहारतोऽनुगंतव्याः प्रज्ञापनातोवावसेया इति । अत्रार्थे सर्वेषामेव पृथिवीयोनिकत्वात्पृथिवीसमाश्रयत्वेनाभिहिताः । इह च स्थावराणां वनस्पतेरेव प्रस्पष्टचैतन्यलक्षणत्वात्तस्यैव प्राक्प्रदर्शितं चैतन्यं ॥ १६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगसंभवा जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं उदगजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं जहा पुढविजोणियाणं चत्तारि गमा अज्झारुहाणवि तहेव तणाण उसहीणं हरियाणं चत्तारि आलावगा भणियव्वाएक्केक्के तहा उदगजोणियाणं रुक्खाणं इक्कक्के ॥ १७ ॥

अर्थ–हवे अप्काययोनिक वनस्पतिनुं विशेष देखाडेछे. ते अनेरुं स्थानक पूर्वें श्री तीर्थंकर देवें कह्युंछे, ते कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव उदकयोनिक उदक संभव शैवलादिक वनस्पति ते जीव, यावत् कर्मने उदयें नानाविध योनिक पाणीने विषे वृक्षपणे उपजे. त्यां उपना थका नानाविध योनिक उदकनो स्नेह आहारे. पृथ्वीकायादिकनुं शरीर आहारे. इत्यादिक यावत् बीजुं सर्व पूर्वनी पेरें जाणवुं. ए जेम पूर्वें पृथ्वीयोनिकवृक्षना चार आलावा कह्या, तेम आहीं पण अप्काययोनिक वृक्षना चार आला

के सत्वाः पृथिवीयोनिकाः पृथिवीसंनवाइत्यादयोयथावृक्षेषु चत्वारि सूत्राणि एवं तृणा न्यप्याश्रित्य ज्ञेयाः । ते चामी नानाविधासु पृथिवीयोनिषु तृणत्वेनोत्पद्यंते पृथिवीशरीरं चाहारयंतीत्येकं, ॥१०॥ पृथिवीयोनिकेषु तृणेषूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति द्वितीयं ॥११॥ तृणयोनिकेषु तृणेषूत्पद्यंते तृणयोनिकतृणशरीरं चाहारयंतीति तृतीयं ॥ १२ ॥ तृणयोनिकेषु तृणावयवेषु मूलादिषु दशस्थानेषूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति चतुर्थं सूत्रं ॥ १३ ॥ (एवंउसहीणं) इत्यादि सुगमं ॥ १४ ॥ १५ ॥

॥ टीका–सांप्रतवृक्षव्यतिरिक्तं शेषवनस्पतिकायमाश्रित्याह । (अथावरमित्यादि) अ थापरमिदमाख्यातं यडुत्तरत्र वक्ष्यते । तद्यथा । इहैके सत्वाः पृथिवीयोनिकाः पृथिवी संनवाः पृथिवीव्युत्क्रमाइत्यादयोयथावृक्षेषु चत्वारआलापकाएवं तृणान्यप्याश्रित्य इष्ट व्याः । ते चामी नानाविधासु पृथिवीयोनिषु तृणत्वेनोपपद्यंते पृथिवीशरीरं चाहारयंति ॥१०॥ द्वितीयंतु पृथवीयोनिकेषु तृणेषूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति ॥ ११ ॥ तृतीयं तु तृणयोनिकेषु तृणेषूत्पद्यंते तृणयोनिकशरीरं चाहारयंतीति ॥१२॥ चतुर्थं तृणयोनिकेषु तृणावयवेषु मूलादिषु दशप्रकारेषूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंत्येवं यावदाख्यातमिति ॥१३॥ एवमौषध्याश्रयाश्चत्वारआलापकाजणनीयाः ॥१४॥ नवरमोषधिग्रहणं कर्तव्यमेवं हरिताश्रयाश्चत्वारआलापकाजणनीयाः । कुहणेषु त्वेकएवालापकोऽष्टव्यस्तद्योनिकानाम परेषामनावादिति नावः ॥ १५ ॥

अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंनवा जाव कम्म नियाणेणं तब वुक्कमा णाणाविहजोणियासु पुढवीसु आयत्ताए वायत्ताए कायत्ताए कूहणत्ताए कंडुकत्ताए उवेहणियत्ताए निवेहणियत्ताए सबत्ताए बत्तगत्ताए वासाणियत्ताए कूरत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहजो णियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेंति तेवि जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जा व संतं अवरेवियणं तेसिं पुढविजोणियाणं आयत्ताणं जाव कूराणं सरी रा णाणावन्ना जावमरकायं एगोचेव आलावगो सेसा तिन्नि णत्थि ॥ १६ ॥

अर्थ–अथ हवे अन्य स्थानक पूर्वें तीर्थंकर देवें कह्युंठे. आ जगत् मांहे कोइ एक सत्व, पृथ्वीयोनिक पृथ्वीने विषे संनवठे. यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां उप ना ठता नाना प्रकारनी योनीने विषे, पृथ्वीने विषे, आयनामा वनस्पति पणे, वाय नामा वनस्पति पणे, कायनामा वनस्पति पणे कुहणत्ताए एटले तोईकोडी नामा

जोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं जाव पुक्खल च्छिभगाणं सरीरा णाणावसा जावमक्खायं एगोचेव आलावगो ॥१८॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक पूर्वें तीर्थंकरे कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव उदकयोनिक उदकने विषे वनस्पतिकायनो संजव, यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या उता नानाविध योनिक उदकने विषे उदक पणे, अवनक पणे, पणग एटले पन्य पणे, सेवाल पणे, कलंबुक पणे, आहडपणे, कसेरुग पणे, कछ्नाण पणे, उत्पलनामा कमलनी जाति पणे, लाल वर्णे सूर्यविकाशी कमलनी जाति पणे, चंद्रविकासी कमलनी जाति पणे, नलिन कमलनी जाति पणे, सुनग कमल पणे, सुगंध कमलनी जाति पणे, पुंमरीक एटले धवलश्वेत कमलनी जाति पणे, महापुंमरीक एटले अत्यंत धवलश्वेत कमलनी जाति पणे,सो पांखडीछे जेनी एवा कमलनी जाति पणे पुष्कर जे थकी पान निकले ते पणे उपजे; हजार पांखडी छे जेनी एवा कमलनी जाति पणे, एम कह्लारनी जाति पणे, कोकणा पणे, अरविंद कमल पणे, तामरस कमल पणे, वीस मृणाल पणे, पुष्कर पणे, उपजे ; एटले एवा एवा नावें उपजे, ते जीव नानाविध योनिक उदकनो स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् कहेवुं. एनो एकज आलावोछे, पण बीजा आलावा नथी. ए उदक योनिक वनस्पतिनाएकवीश आलावा, एम बधामली वनस्पतिकायना बेहेंतालीश आलावा थया ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–एतेषामुदकाकृतीनामवकपनकादीनामन्यस्य प्रागुक्तविकल्पस्याजावादेक एवालापकः स्यात् । एते जलाश्रिताः कलंबकाहडादिवनस्पतयोलोकतोज्ञेयाः ॥ १८ ॥

॥ टीका–एतेषां हि उदकाकृतीनां वनस्पतिकायानां तथावयवपनकशैवलादीनामपरस्य प्रागुक्तस्य विकल्पस्याजावादिति । एते च उदकाश्रयावनस्पतिविशेषाः कलंबुकाहडादयोलोकव्यवहारतोवसेयाइति ॥ १८ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता तेसिं चेव पुढवीजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं रुक्खजोणिएहिं अज्झारोहेहिं अज्झारोहजोणिएहिं अज्झारुहेहिं अज्झारोहजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं पुढविजोणिएहिं तणेहिं तणजोणिएहिं तणेहिं तणजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं एवं उसहीहिं वि तिन्नि आलावगा एवं हरिएहिं वि तिन्नि आ

वा जाणवा. ए सर्व मळी पच्चीश आलावा थया ॥ २५ ॥ तेमज अध्यारोहना पण उदक योनि आश्री चार आलावा कहेवा तेमज तृणना पण चार आलावा उदकयोनी आश्री कहेवा. ॥ ३३ ॥ तथा उंषधिना पण चार आलावा कहेवा ॥ ३७ ॥ एम हरितकायना पण चार आलावा आहिं उदकयोनिकने विषे जाणवा. एम एकेकना चार चार आलावा करतां बधा मळीने वीश आलावा उदक योनिक वनस्पतिना थया; तथा एकवीश आलावा पूर्वे पृथ्वीयोनिक वनस्पतिना कह्याछे, ए बधा मळीने एकतालीश आलावा वनस्पतिना थया ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—अथाप्काययोनिकस्य वनस्पतेः स्वरूपमाह । अथापरमाख्यातं । इहैके सत्वाउदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तेच कर्मवशगानानाविधयोनिकेषु जलेषु वृक्षत्वेन पनकशैवलादित्वेन जायंते तेच जलशरीरमाहारयंति न केवलं तदेवान्यदपि पृथिव्यादिशरीरमाहारयंति। यथा पृथ्वीयोनिकानां वृक्षाणां चत्वारआलापकास्तथा जलयोनिकानां वृक्षाणां न स्युः। तत्रोत्पन्नानामन्यविकल्पानावात् किंतर्हि? एकएवाऽऽलापकः स्यात्॥ १७॥

॥ टीका—सांप्रतमप्काययोनिकस्य वनस्पतेः स्वरूपं दर्शयितुमाह । (अथावरमित्यादि) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणमाख्यातं । तद्यथा । इहैके सत्वास्तथाविधकर्मोपचयाडुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तथोदके संनवोयेषां ते तथा यावत्कर्मनिदानेन संदानितास्तडुपक्रमान्नवंतीति । तेच तत्कर्मवशगानानाविधयोनिषूदकेषु वृक्षत्वेन व्युत्क्रामंत्युत्पद्यंते । येच जीवाउदकयोनिकावृक्षत्वेनोत्पन्नास्ते तच्छरीरमुदकं शरीरमाहारयंति न केवलं तदेवान्यदपि पृथिवीकायादिशरीरमाहारयंतीति । शेषं पूर्ववत् । यथा पृथिवीयोनिकानां वृक्षाणां चत्वारआलापकाएवमुदकयोनिकानामपि वृक्षाणां नवंतीत्येवं इष्टव्यं । अपरस्य प्रागुक्तस्य विकल्पानावादिति किंतर्हि? एकएवालापकोन्नवति ॥ १७ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगसंन्नवा जाव कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए अवगत्ताए पणगत्ताए सेवालत्ताए कलंबुगत्ताए हडत्ताए कसेरुगत्ताए कच्छन्नाणियत्ताए उप्पलत्ताए पउमत्ताए कुमुयत्ताए नलिणत्ताए सुन्नगत्ताए सोगंधियत्ताए पोंमरियमहापोंमरियत्ताए सयपत्ताए सहस्सपत्ताए एवं कहलारकोकणयत्ताए अरविंदत्ताए तामरसत्ताए निसनिसमुणालपुक्खलत्ताए पुक्खलछिन्नगत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविह

वेहेंतालीश बधामली चमोतेर आलावा थया.॥१९॥ ते जीव ते वनस्पतिने विषे उपना थका पृथ्वीयोनिक,उदकयोनिक. वृक्षयोनिक अध्यारोहयोनिक,तृणयोनिक,उंषधियोनिक, हरितयोनिक, वृक्षनो, अध्यारोहनो, तृणनो,उंषधिनो, हरितनो,मूलनो, यावत् बीजनो, आयनो, कायनो,यावत् कुरवंदनो, उदकनो, अवगाहिनो,यावत् पुरकलवि एटले जे थकी पान निकले तेनो, स्नेह आहारे ते जीव पृथ्व्यादिकनां शरीर आहारीनें यावत् आप णां सरखां रूप करे. इत्यादिक अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ते जीव वृक्षयोनिक, अध्यारोह योनिक तृणयोनिक, यावत् पुरकलवि योनिक, त्रसप्राणिनां, शरीरना नाना प्रकारना वर्ण, गंध, रस, स्पर्शवाला होय. ते पोताना कर्मने वश जाणवा. यावत् एम श्री तीर्थंकर गणधरादिकें कह्युं. त्यां सुधीनो आलावो जाणवो. एटले वनस्पतिकायनुं सरूप कह्युं, अनें पृथ्वीकायादिक चार जातिनां एकेंद्रियनां सरूप आगल कहेशे ॥ २० ॥

॥ दीपिका—अथ प्रकारांतरेण वनस्पत्यालापकत्रयमाह । पृथिवीयोनिकैर्वृक्षैर्वृक्षयोनिकै र्मूलादिभिरिति । एवं वृक्षयोनिकैरध्यारुहैः अध्यारुहयोनिकैरध्यारुहैः अध्यारुहयोनिकै र्मूलादिभिरिति । एवमन्येष्वपि तृणादयोज्ञेयाः । एवमुदकयोनिष्वपि वृक्षेषु योज्यं।१९॥ते व नस्पतिषूत्पन्नाजीवाः पृथिवीयोनिकानां तथा उदकानां वृक्षाध्यारोहतृणौषधिहरितयोनि कानां वृक्षाणां यावत् स्नेहमाहारयंतीत्येतदाख्यातं । तत्र त्रसानां शरीरमाहारयंतीत्यंते ज्ञे यं । इति वनस्पतीनां स्वरूपमुक्तं । शेषाः पृथिवीकायादयश्चत्वारएकेंद्रियाअग्रे वक्ष्यंते॥२०॥

॥ टीका—सांप्रतमन्येन प्रकारेण वनस्पत्याश्रयमालापकत्रयं दर्शयितुमाह । तद्य था। पृथिवीयोनिकैर्वृक्षैर्वृक्षयोनिकैर्वृक्षैस्तथा वृक्षयोनिकैर्मूलादिभिरिति । एवं वृक्षयोनिकै रध्यारुहैस्तथाध्यारुहयोनिकैर्मूलादिभिरिति । एवमन्येपि तृणादयोऽद्रष्टव्याः । एवमुद कयोनिकेष्वपि वृक्षेषु योजनीयं ॥१९॥ तदेवं पृथिवीयोनिकवनस्पतेरुदकयोनिकवनस्प तेश्च भेदानुपदर्श्याऽधुना तदनुवादेनोपसंजिघृक्षुराह । (तेजीवाइत्यादि) ते वनस्पति षूत्पन्नाजीवाः पृथिवीयोनिकानां तथोदकवृक्षाध्यारुहतृणौषधिहरितयोनिकानां वृक्षाणां यावत्स्नेहमाहारयंतीत्येतदाख्यातमिति। तथा त्रसानां प्राणिनां शरीरमाहारयंत्येतदवसा ने द्रष्टव्यमिति । तदेवं वनस्पतिकायिकानां सुप्रतिपाद्यचैतन्यानां स्वरूपमभिहितं । शे षाः पृथ्वीकायादयश्चत्वारएकेंद्रियाउत्तरत्र प्रतिपादयिष्यंते ॥ २० ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं मणुस्साणं तंजहा कम्मभूमगाणं अकम्म भूमगाणं अंतरदीवगाणं आरियाणं मिलुक्खयाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावकासेणं इत्थीए पुरिस्ससयं कम्मकडाए जोणिए एत्थणं मेहुणवत्ति

लावगा पुढविजोणिएहिंवि आएहिं काएहिं जाव कूरेहिं उदगजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणियेहिं मूलेहिं जाव बीएहिं एवं अझारुहेहिंवि तिसि तणेहिंवि तिसि आलावगा उसहीहिंवि तिसिहरि एहिंवि तिसि उदगजोणिएहिं उदएहिं अवएहिं जाव पुक्खलच्छिन्न एहिं तसपाणत्ताएविउट्टंति ॥ १९ ॥ तेजीवा तेसिं पुढवीजोणियाणं उदगजो णियाणं रुक्खजोणियाणं अझारोहजोणियाणं तणजोणियाणं उसहीजो णियाणं हरियजोणियाणं रुक्खाणं अझारुहाणं तणाणं उसहीणं हरि याणं मूलाणं जाव बीयाणं आयाणं कायाणं जावं करवाणं उदगाणं अ वगाणं जाव पुक्खलच्छिन्नगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पु ढवीसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं रुक्खजोणियाणं अझारोहजोणि याणं तणजोणियाणं उसहिजोणियाणं हरियजोणियाणं मूलजोणिया णं कंदजोणियाणं जाव बीयजोणियाणं आयजोणियाणं कायजोणिया णं जाव कूरजोणियाणं उदगजोणियाणं अवगजोणियाणं जाव पुक्खल च्छिन्नगजोणियाणं तसपाणाणं सरीरा णाणावन्ना जाव मक्खायं ॥ २० ॥

अर्थ—हवे अन्यत्र प्रकारें वनस्पतिनुं स्वरूप कहेछे. हवे अनेरुं स्थानक पूर्वें श्री तीर्थंक रदेवें कह्युं. आजगत् मांहें कोइ एक जीव ते पृथ्वीयोनिक वृक्षें करी, तथा वृक्षयोनि क वृक्षें करी, तथा वृक्ष योनिक मूलें करी, यावत् बीजें करी, तथा वृक्षयोनिक अ ध्यारोहें करी, तथा अध्यारोहयोनिक अध्यारोहें करी, तथा अध्यारोहयोनिक मूलें करी, यावत् बीजें करी, पृथ्वीयोनिक तृणें करी, तृणयोनिक तृणें करी, तृणयोनिक मू लेंकरी, यावत् बीजें करी, ए प्रकारें ए त्रणना त्रण त्रण आलावा जाणवा. ए रीतेंज व ली उषधियें करी पण, त्रण, त्रण, आलावा जाणवा. एमज हरितकायना पण त्रण आलावा जाणवा. पृथ्वीयोनिक, आयनामा वनस्पति, कायनामा वनस्पति, यावत् कुरंवा दनामा वनस्पति, उदकयोनिकना वृक्षें करी, वृक्षयोनिकना वृक्षें करी, वृक्षयोनिकना मूलें करी, यावत् बीजें करी, एमज अध्यारोहना पण त्रण आलावा जाणवा. तृणना पण त्रण आलावा जाणवा. उषधियें करी पण, त्रण आलावा जाणवा, हरितें करी पण त्रण आलावा जाणवा, उदकयोनिक उदक अवकपनक यावत् पुस्करुच्छि जे थकी पान निकले तेने विषे, त्रस प्राणि पणे उपजे. ए सर्वे, बत्रीश आलावा थया. अने आगलना

के०) संयोग उपजे. ते संयोग उपने छते त्यां जीव. तैजस कार्मण शरीरें करी उपजे. (तेडुह उविसिणेहंसंचिणंतिके०) ते जीव उपजतां छतां प्रथम समयें वेहुनो स्नेह संचिणे एट ले आहारे, ते आहारीने, (तछणंजीवा के०) त्यां ते जीव (इछित्ताएपुरिसत्ताएणपुंसग त्ताएविउट्टंति के०) स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक पणे उपजे. (तेजीवामाउउयंपिउसुक्कंतं के०) तेजीव माता संबंधि रक्त, अने पिता संबंधि शुक्र, ते (तडुनयंसंसठं के०) वेहु मिश्रित एकतुं नजेलुं डुगछनिक (कलुसंकिव्विसंके०) कलुष मलीन बीनत्स (तंपढमत्ताए के०) तेनो, प्रथम समयने विषे (आहारमाहारेंति के०) आहार आहारे. (ततोप छा के०) त्यार पछी, (जंसेमाया के०) जे तेनी माता (णाणाविहाउरसविईउ आहारमाहारेंति के०) नाना प्रकारना रसवाला आहार आहारे, (ततोएगदेसेणंउय माहारेंतिके०) तेवार पछी तेनो एक देशे उज आहार आहारे. (आणुपुवेणवुड्डापलिपा गमणुविन्नाके०) ते स्नेहें करी ते जीवनी अनुक्रमें निष्पति उपजे. एवा अनुक्रमें वृद्धियें पहोंते छते (ततोकायातोअनिनिवट्टमाणाके०) तेवार पछी तेनी काया थकी एटले तेनी योनि थकी निकले (इछिवेगयाजणयंतिके०) ते एक स्त्री थइ निकले, (पुरिसंवेगयाज णयंति के०) एक पुरुष थइ निकले, (णपुंसगंवेगयाजणयंति के०) एक नपुंसक थइ निकले, (तेजीवाम्हरासमाणाके०) ते जीव बालक थका (माउक्कीरंसप्पिआहारेंतिके०) माताना स्तननुं डुग्ध आहारे तथा मोटो थाय त्यारे घृत आहारे. तेवार पछी (आणुपुवे णंवुड्डाके०) अनुक्रमें वधता थका (उयणंकुम्मासंतसथावरेयपाणेतेजीवाआहारेंति के०) उदन चावलादिक अडदादिक तथा त्रस अने स्थावर प्राणी पण आहारे. (पुढविसरीरं के०)पृथ्वीनुं शरीर जे लवणादिक ते आहारे.ते आहार्यो छतो (जावसारूविकडंसंतंके०) पोताना शरीर सरखो करे, एटले पोतानी काया रूप करे, एटले ते आहार धातु पणे परिणमावे. (अवरेवियणंतेसिं के०) तथा बीजां पण तेने (णाणाविहाणं के०) नाना प्रकारना (मणुस्सगाणं के०) कर्मनूमीने विषे उपना एवा मनुष्यनां, अकर्मनूमी ना मनुष्यनां, अंतरद्वीपना मनुष्यनां, आर्य मनुष्यना, म्लेछ मनुष्यनां, शरीर, नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शें करी सहित थकां, एवां पोताना कर्मने वशें उपजे. इत्या दिक पूर्ववत् यावत् श्री तीर्थंकर गणधरें कह्युं ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—अथ त्रसकायेषु पूर्वं मनुष्यानाह । अथापरमाख्यातं । नानाविधानां म नुष्याणां स्वरूपमुक्तमित्यर्थः । तद्यथा । कर्मनूमिजाइत्यादिमनुष्याणां (यथाबीजेनेति) यद्यस्य बीजं तत्र शुक्राधिकं नरस्य शोणिताधिकं स्त्रियाः उनयसमता नपुंसकस्य कारणमि ति । यथावकाशेनेति । योयस्यावकाशोमातुरुदरकुक्षिप्रमुखस्तत्र वामा कुक्षिः स्त्रियाः, द

याएव णामं संजोगे समुप्पज्जइ ते डुहतोवि सिणेहं संचिणंति तत्थणं जीवा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए णपुंसगत्ताए विउट्टंति ते जीवा माउओयं पिउसुक्कं तं तडुभयं संसठ्ठं कलुसं किविसं तं पढमत्ताए आहारमाहारेंति ततो पछा जं से माया णाणाविहाउ रसविईउ आहारमाहारेंति ततो एगदेसेणं उय माहारेंति आणुपुवेण वुड्ढा पलिपागमणुविन्ना ततोकायातो अभिनिवट्ट माणा इत्थिं वेगया जणयंति पुरिसं वेगया जणयंति णपुंसगं वेगया जणयं ति ते जीवा मृहरा समाणा माउक्खीरं सप्पिं आहारेंति आणुपुवेणं वुड्ढा उ यणं कुम्मासं तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव सा रूवि कडं संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं मणुस्सगाणं कम्मभूम गाणं अकम्मभूमगाणं अंतरद्दीवगाणं आरियाणं मिलक्खूणं स रीरा णाणावणा भवंतीतिमक्खायं ॥ ७१ ॥

अर्थ—हवे त्रसकायनो अवसर छे. ते त्रसकाय तो एक नारकी, बीजा तिर्यंच, त्रीजा मनुष्य, अने चोथा देवता, ए चार प्रकारे छे. तेमांहें नारकी अप्रत्यक्ष पणे अनुमान ग्राही जाणवा. अथवा डुष्कृत कर्मनां जे फल तेना भोगवनार छे, तेने आहार पण, एकांते अशुभ पुज्गल थकी नीपनो उंज थकीछे, पण प्रक्षेप थकी नथी, अने देवता पण हमणां प्रायः अनुमानगम्यछे, तेनो आहार एकांत शुभछे, तेनो पण उंजाहारछे. परंतु प्रक्षेपकृत नथी. देवतानो आहार बे प्रकारेछे. एक आभोगिक बीजो अनाभोगि क, तेमां जे अनाभोगिक ते समय समयपर छे अने आभोगिक ते, जघन्यथीतो चतुर्थ भक्तें आहार, अने उत्कृष्ट तेत्रीश हजार वर्षे आहारछे. हवे तिर्यंच अने मनुष्य मांहें प्रथम मनुष्यनुं स्वरूप कहेछे. अथ हवे बीजुं अन्य स्थानक श्री तीर्थंकर देवें प रापूर्वें कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारनां मनुष्यछे, एक आर्य, एक अनार्य, एक पन्नर कर्म भूमीनां उपनां, एक त्रीश अकर्म भूमीनां उपना, एक अंतर द्वीपनां उप नां, एक आर्य, एक म्लेछ छे. (तेसिंचणंअहाबीएणं के०) तेनें यथा बीजें करी एटले स्त्री पुरुष नपुंसकने भेदें करी, जे जेनुं बीज ते यथा बीज, तेणें करी, तथा यथावकाशें एटले मातानी कुक्षादिक जेम वाम कुक्षें स्त्री उपजें, दक्षिण कुक्षें पुरुष उपजे, अने वाम दक्षिणाश्रित नपुंसक उपजे, इत्यादिक यथावकाशें करी, (इत्थीएपुरिसस्सयंके०) स्त्री पुरुषना वेदनो उदय छते (कम्मकडाएजोणिएणं के०) पूर्वकर्म निर्मित योनिने विषे (एत्थणंमेहुण वत्तियाएवणामंके०) आहीं मैथुन प्रत्ययिक नाम अरणी अने काष्टनी पेठें(संजोगेसमुप्पज्जइ

किल वामा स्त्रियोदक्षिणा कुक्षिः पुरुषस्योजयाश्रितः पंढइति। अत्र चाविध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजमिति चत्वारोजंगाः । तत्राप्याद्यएव जंगकउत्पत्तेरवकाशोन शेषेषु त्रिष्विति। अत्रच स्त्रीपुंसयोर्वेदोदये सति पूर्वकर्मनिर्वर्तितायां योनौ मैथुनप्रत्यायिकोरताजिलाषोदय जनितोऽग्निकारणयोररणिकाद्वयोरिव संयोगः समुत्पद्यते तत्संयोगेच तच्छुक्रशोणिते समुपादाय तत्रोत्पित्सवोजंतवस्तैजसकार्मणाज्यां शरीराज्यां कर्मरज्जुसंदानितास्तत्रोत्पद्यंते। तेच प्रथममुजयोरपि स्नेहमाचिन्वंत्यविध्वस्तायां योनौ सत्यामिति। विध्वस्यते तु योनिः पंचपंचाशिका नारी सप्तसप्ततिः पुरुषइति। तथा द्वादशमुहूर्तानि यावच्छुक्रशोणिते अविध्वस्तयोनिके जवतस्ततऊर्ध्वं ध्वंसमुपगछतइति । तत्र जीवाउजयोरपि स्नेहमाहार्य स्वकर्मविपाकेन यथास्वं स्त्रीपुन्नपुंसकजावेन (विउट्टंतित्ति) वर्तंते समुत्पद्यंतइति यावत् । तडत्तरकालं च स्त्रीकुक्षौ प्रक्षिप्ताः संतः स्त्रियाऽऽहारितस्याहारस्य निर्यासं स्नेहमाददति तत्स्नेहेनच तेषां जंतूनां क्रमोपचयादानेन क्रमेण निष्पत्तिरुपजायते। सत्ताहं कललं होइ सत्ताहं होइ बुब्बुयं इत्यादि । तदेवमनेन क्रमेण तदेकदेशेनवा मातुराहारमोजसा मिश्रेणवा लोमजिर्वाऽऽनुपूर्व्येणाहारयंति यथाक्रममानुपूर्व्येण वृद्धिमुपागताः संतोगर्जपरिपाकं गर्जनिष्पत्तिमनुप्रपन्नास्ततोमातुः कायादजिनिवर्तमानाः पृथग्जवंतः संतस्तद्योनेर्निर्गछंति । तेच तथाविधकर्मोदयादात्मनः स्त्रीजावमप्येकदा जनयंत्युत्पादयंत्यपरे केचन पुंजावं नपुंसकजावंच। इदमुक्तं जवति। स्त्रीपुंनपुंसकजावः प्राणिनां स्वकृतकर्मनिर्वर्तितो जवति न पुनर्योयादृगिहजवे सोमुष्मिन्नेव तादृगेवेति । तेच तदहर्जातबालकाः संतः पूर्वजवाज्यासादाहाराजिलाषिणोजवंति मातुः स्तन्यमाहारयंति तदाहारेण चानुपूर्व्येण च वृद्धास्तडत्तरकालं नवनीतदध्योदनादिकं यावत्कुल्माषान् जुंजंते तथाहारत्वेनोपगतास्त्रसांस्थावरांश्च प्राणिनस्ते जीवाआहारयंति तथा नानाविधंपृथिवीशरीरं लवणादिकं सचेतनं वाऽऽहारयंति तच्चाहारितमात्मसात्कृतं सारूप्यमापादितं सत् रसासृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्राणि धातवइति सप्तधा व्यवस्थापयंत्यपराण्यपि तेषां नानाविधमनुष्याणां शरीराणि नानावर्णान्याविर्जवंति । तेच तद्योनिकत्वात्तदाधारजूतानि नानावर्णानि शरीराण्याहारयंतीत्येवमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं जलचराणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा मछाणं जाव सुसमाराणं तेसिंचणं अहाबीएणं आहावगासेणं इच्छीए पुरिसस्सयकम्मकडा तहेव जाव ततो एगदेसेणं उयमाहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा पलिपागमणुविन्ना ततोकायाउ अजिनिवट्टमाणा अंडं वेगया जणयंति पोयं वेगया जणयंति से अंडे उब्जिज्जमाणे इछिं वेगया

क्षिणा नरस्य, उभयाश्रिता पंढस्येति । तत्र चाविध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं१ विध्वस्ता यो निर्विध्वस्तं बीजं२ विध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं ३ अविध्वस्ता योनिर्विध्वस्तं बीजं । चतुर्षु भंगेषु आद्यभंगएव उत्पत्तेरवकाशोन शेषेषु त्रिषु । अत्रच स्त्रीपुंसयोर्वेदोदये सति पूर्वकर्मकृतायां योनौ मैथुनप्रत्ययिकोरताभिलाषोदयजनितोऽग्निकारणयोररणिकाष्ठयोरिव संयोगोजायते तत्संयोगेच तच्छुक्रशोणिते तैजसकार्मणाभ्यां गृहीत्वा तत्रोत्पद्यंते जीवाः । (तेडुहओत्ति) ते जीवाः प्रथममुभयोरपि स्नेहमाचिन्वंति अविध्वस्तयोनौ । विध्वस्यते तु योनिः । पंचपंचाशिका नारी सप्तसप्ततिकः पुमानिति । द्वादशमुहूर्तान् यावद्बीजमविध्वस्तं स्यात् ततऊर्ध्वं ध्वंसयंति तत्र जीवाः कर्मवशतः स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन (विउट्टंति) जायंते ते जीवामातुः ऋतुं शोणितं पितुः शुक्रं तत्तडुभयसंसृष्टं कलुषं किल्बिषं बीभत्सं तत्प्रथमतयाऽऽहारमाहारयंति ततः पश्चात्सेतस्य माता यन्नानाविधरसवंतमाहारमाहारयति तत्स्नेहेन तेषां जंतूनां वृद्धिः स्यात् ततस्तदेकदेशेन त्वगेकदेशेनवा मातुराहारमोजसा मिश्रेण वा लोमभिर्वाऽऽहारयति आनुपूर्व्येण यथाक्रमं पुष्टावृद्धिं प्राप्ताजीवागर्भपरिपाकं गर्भनिष्पत्तिमनुप्रपन्नास्ततोमातुः कायादभिनिवर्तमानाः पृथग्भवंतोनिर्गच्छंति । कर्मवशादात्मनः स्त्रीभावमेके जनयंति एके पुंभावं नपुंसकभावं वा तेच डहराबालाः संतोमातुः क्षीरं स्तन्यमाहारयंति वृद्धाःसंतः सर्पिर्घृतं धान्यमोदनं कुल्माषान् भुंजते नानाविधान् त्रसस्थावरान् प्राणिनोजीवान् आहारयंति । नानायोनिकजंतुशरीराण्याहारयंतीत्यर्थः । नानामनुष्याणां शरीराणि केचित्तद्योनिकत्वादाहारयंति इत्याख्यातं ॥२१॥

॥ टीका–सांप्रतं त्रसकायस्यावसरः सच नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवभेदभिन्नः । तत्र नारकाअप्रत्यक्षत्वेनानुमानग्राह्याडुष्कृतकर्मफलभुजः केचन संतीत्येवं ते ग्राह्याः । तदाहारोप्येकांतेनाशुभपुजलनिवर्तितओजसा प्रक्षेपेणेति । देवाअप्यधुना बाहुल्येनानुमानगम्याएव तेषामप्याहारः शुभएकांतेनोजोनिवर्तितोन प्रक्षेपकृतइति । सचाऽभोगनिवर्तितोनाभोगकृतश्च । तत्र नाभोगकृतः प्रतिसमयभावी आभोगकृतश्च जघन्येन चतुर्भक्तकृतउत्कृष्टतस्तु त्रयस्त्रिंशद्वर्षसहस्रनिष्पादितइति । शेषास्तु तिर्यङ्मनुष्यास्तेषांच मध्ये मनुष्याणामभ्यर्हितत्वात्तानेव प्राग्दर्शयितुमाह । (अथावरं पुरस्कायमित्यादि) अथानंतरमेव तु पुरा पूर्वमाख्यातं । तद्यथा । आर्याणामनार्याणां च कर्मभूमिजाऽकर्मभूमिजादीनां मनुष्याणां नानाविधयोनिकानां स्वरूपं वक्ष्यमाणनीत्या समाख्यातं । तेषांच स्त्रीनपुंसकभेदभिन्नानां यथा बीजेनेति । यद्यस्य बीजं तत्र स्त्रियाः संबंधि शोणितं पुरुषस्य शुक्रं एतडुभयमप्यविध्वस्तं शुक्राधिकं सन्मनुष्यस्य, शोणिताधिकं स्त्रियास्तत्समता नपुंसकस्य कारणतां प्रतिपद्यते तथा यथावकाशेनेति । योयस्यावकाशोमातुरुदरकुक्ष्यादिकस्तत्रापि

॥ टीका—एवं तावज्जलव्युत्क्रांतजमनुष्याः प्रतिपादितास्तदनंतरं संमूर्छनजानामवसरस्तांश्चोत्तरत्र प्रतिपादयिष्यामि सांप्रतं तिर्यग्योनिकास्तत्रापि जलचरानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणं पूर्वमाख्यातं । तद्यथा । नानाविधजलचरपंचेंद्रियतिर्यग्योनिकानां संबंधिनः कांश्चित्स्वनामग्राहमाह । तद्यथा । (मच्छाणंजावसुसुमाराणमित्यादि) तेषां मत्स्यकच्छपमकरग्राहसुंसुमारादीनां यस्य यथा यद्बीजं तेन तथा यथावकाशेन योयस्योदरादाववकाशस्तेन स्त्रियाः पुरुषस्यच स्वकर्मनिर्वर्तितायां योनावुत्पद्यंते । तेच तत्राभिव्यक्तामातुराहारेण वृद्धिमुपगताः स्त्रीपुंनपुंसकानामन्यतमेनोत्पद्यंते तेच जीवा जलचरागर्भाद्व्युत्क्रांताः संतस्तदनंतरं यावद्डहरंतिलघवस्तावदप्स्नेहमप्कायमेवाहारयंति । आनुपूर्व्येणच वृद्धाः संतोवनस्पतिकायं तथापरांश्च त्रसांस्थावरांश्चाहारयंति यावत्पंचेंद्रियानप्याहारयंति । तथा चोक्तं । अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तरः॥ तिमिंगिलगिलोप्यस्ति, तद्गिलोप्यस्ति राघव !॥१॥ तथा ते जीवाः पृथिवीशरीरं कर्दमस्वरूपं क्रमेण वृद्धिमुपगताः संतआहारयंति तच्चाऽऽहारितं सत्समानरूपीकृतमात्मसात्परिणामयंति शेषं सुगमं । यावत्कर्मोपगताभवंतीत्येवमाख्यातं ॥ २२ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं एगखुराणं दुखुराणं गंमीपदाणं सणप्पयाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थिपुरिसस्सयकम्मजाव मेहुणवत्तिए णामं संजोगे समुपज्जइ ते दुहउ सिणेहं संचिणंति तच्छणं जीवा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए जाव विउट्टंति ते जीवा माउउयं पिउसुक्कं एवं जहा मणुस्साणं इत्थिंवि वेगया जणयंति पुरिसंपि नपुंसगंपि तेजीवा डहरा समाणा माउक्खीरं सप्पिं आहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तसथावरेयपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं एगखुराणं जाव सणप्पयाणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खायं ॥२३॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारना चतुष्पद स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिया जीवछे, ते कहेछे. एक खुर ते अश्वादिक, द्विखुर ते गो महिष वृषभादिक , गंमीपद ते हस्त्यादिक, तथा षट्पद ते सिंह व्याघ्रादिक, ते यथा बीजें यथावकाशें इत्यादिक पूर्वनी पेठें ते जीवोनी उत्पत्ति जाणवी. ते जीव उप

जणयंति पुरिसं वेगया जणयंति नपुंसगं वेगया जणयंति ते जीवा म्हरा समाणा आउसिणेहमाहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सतिकायं तसथा वरेयपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं ते सिं णाणाविहाणं जलचरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मछाणं सुसुमाराणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ २१ ॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वें तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारना जलचारी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिक जीवछे, ते कहेछे. माछलां,कछप, मगरमछ, नक्र, चक्र, पाठीन, पीठ, ग्राहक, सुसुमारादिक, तेने यथाबीजें करी स्त्रियादिकना भेदें करी, यथावकाश एटले मातानी कुक्ष्यादिक जेम वाम कुक्षें स्त्री उपजे, इत्यादिक यथावकाशें करी स्त्री पुरुषादिक वेदने उदयें कर्म निवर्त्तित पूर्वयोनिने विषे, अहीं मैथुन प्रकृतिय नाम अरणीय काष्ठनी पेठें संयोगें उपजे. (तहेव के०) तेमज यावत् ते जीव माता नी कुक्षियें उपना पछी एक देशें उंज आहारे, अनुक्रमें वृद्धिये पोहोतो छतो तेवार पछी ते काया थकी एटले योनिथकी कालें करी निकले, निकलता थका त्यां एक जण अंम रूप, एक पोत रूप, त्यां अंमथकी उद्भिद्यमान ते स्त्री पुरुष नपुंसक पणे उपजे; ते जीव बालक छतां अप्कायनो स्नेह आहारे. पछी अनुक्रमें वर्द्धमान थका एटले वृद्धि पाम्या थका वनस्पतिकायनुं शरीर तथा त्रस अने स्थावर प्राणीने आहारे. ते जीव पृथ्वीनुं शरीर आहारे यावत् पोतानी काया सरखां रूप करे. अन्य पण ते नाना प्रकारें जलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिक यावत् सुसुमारना सरखा रूप करे ते कर्मने वशें उपजे, ते नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शवान् थाय. एम श्री तीर्थंकरें कह्युं ॥ २१ ॥

॥ दीपिका–गर्भजमनुष्याउक्ताः संमूर्छनजाश्चाग्रे वक्ष्यंते सांप्रतं तिर्यग्योनिकास्तत्रापि पूर्वं जलचरानाह । अथापरं तिर्यग्योनिकानां जलजरपंचेंद्रियाणां स्वरूपमाख्यातं प्रथमं मत्स्यकछपमकरग्राहसुशुमारादीनां यस्य यद्बीजं यस्योदराद्यवकाशोयस्तेन स्त्रियाः पुरुषस्य च कर्मकृतायां योनौ जायंते । तेच तत्र मातुराहारेण वृद्धाः स्त्रीपुंनपुंसकानामन्यतमत्वेन जायंते गर्भनिर्गताबालाः संतो ऽपांस्नेहमप्कायमेवाहारयंति । वृद्धास्तु वनस्पतिकायं अन्यान् त्रसस्थावरांश्च यावत्पंचेंद्रियानपि आहारयंति । यडुक्तं । अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम अस्तिमत्स्यस्तिमिंगिलः । तिमिंगिलगिलोप्यस्ति तग्निलोप्यस्ति राघव ! । तथा ते जीवाः पृथ्वीशरीरं कर्दमस्वरूपमाहारयंति तच्चाऽऽहारितं सत्स्समानरूपीकृतं आत्मसात्परिणामियंति । शेषं सुगमं ॥ २१ ॥

सालिया सर्प्प, महोरग तथा हजार योजन प्रमाण शरीर वाला, इत्यादिक जीव छे. तेने यथा बीजें यथावकाशें इत्यादिक पूर्ववत् ते जीवनी उत्पत्ति जाणवी. एक अंमरूप निपजे, एक पोतरूप नीपजे, ते ते अंमथकी उद्भिद्यमान पुरुष, स्त्री, अने नपुंसक थाय. ते जीव बालक थका वायुकाय आहारे. पछी अनुक्रमें वधता थका वनस्पति काय तथा त्रस स्थावर प्राणी आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणवुं ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—अथ उरःपरिसर्प्पानाह । उरःपरिसर्प्पा अहिप्रमुखा अंमजत्वेन पोतजत्वे नवा गर्भान्निर्गछंति तेच निर्गतामातुरूष्माणं वायुं चाहारयंति तेषां च जातिविशेषात्तेनैवाहारेण वृद्धिर्जायते । शेषं सुगमं ॥ २४ ॥

॥ टीका—सांप्रतमुरःपरिसर्पानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) नानाविधानां बहुप्रकाराणामुरसा ये प्रसर्प्पंति तेषां । तद्यथा अहीनामजगराणामाशालिकानां महोरगाणां यथावकाशेन यथाबीजत्वेन चोत्पत्त्यांमजत्वेन पोतजत्वेनवा गर्भान्निर्गछंतीति । तेच निर्गता मातुरूष्माणं वायुं चाहारयंति तेषां जातिप्रत्ययेन तेनैवाहारेण क्षीरादिनैव वृद्धिरुपजायते । शेषं सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ २४ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा गोहाणं नउलाणं सिहाणं सरडाणं सल्लाणं सरघाणं खाराणं घरकोइलियाणं विस्संभराणं मुसगाणं मंगुसाणं पयलाइयाणं बिरालियाणं जोहाणं चउप्पाइयाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थिए पुरिसस्सय जहा उरपरिसप्पाणं तहाभाणियव्वं जाव सारूवि कडं संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं भुयपरिसप्पपंचिंदियथलयरतिरिक्खाणं तं गाहाणं जावमक्खायं ॥ २५ ॥

अर्थ—हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वें श्रीतीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहे नाना प्रकारे भुजपरि सर्प्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिक छे ते कहेछे. गोहजाति, नोलिउ, सिहल, सरड किरकाटीया प्रमुख, सलगा, सरवा, खारा, जीवविशेष घरकोइला, एटले गिलोइ, विसंभरा एटले छपका, मुसक एटले उंदर, खसकला पयालि, विरालि एवीरीतें चतुष्पद भुजपरिसर्प्प जीवविशेष छे ते जीवोनी उत्पत्ति यथा बीजें करी यथावकाशें करी

जतां मातानुं रक्त अने पितानुं शुक्र इत्यादिक आहारे. एम मनुष्यनी पेठें एक स्त्री, एक पुरुष, एक नपुंसक थाय. ते जीव बालक बतां मातानुं डुग्धादिक आहारे, पबी अनुक्रमे वधता वनस्पतिकाय अने त्रस स्थावर प्राणिनो आहार करे. इत्यादिक ते स्थलचारि चतुष्पदनां शरीर नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शवान् कर्मने वशें थाय इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥ २३ ॥

॥ दीपिका–अथस्थलचरानाह । अथापरमाख्यातं नानाविधानां चतुष्पदानां स्वरूपं । तद्यथा । एकखुराणामश्वखरादीनां द्विखुराणां गोमहिष्यादीनां गंमीपदानां हस्तिगंडकादीनां सनखपदानां सिंहव्याघ्रादीनां यथाबीजेन यथावकाशेन सर्वपर्याप्तिमवाप्य उत्पद्यंते उत्पन्नाश्च मातुः स्तन्यमाहारयंति वृद्धिं प्राप्ताः परेषां शरीरमप्याहारयंति । शेषं सुगमं ॥ २३ ॥

॥ टीका–सांप्रतं स्थलचरानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातं नानाविधानां चतुष्पदानां तद्यथा एकखुराणामित्यश्वखरादीनां तथा द्विखुराणां गोमहिष्यादीनां तथा गंमीपदानां हस्तिगंमकादीनां तथा सनखानां सिंहव्याघ्रादीनां यथाबीजेन यथावकाशेन सकलपर्याप्तिमवाप्योत्पद्यंते तथोत्पन्नाः संतस्तदनंतरं मातुः स्तन्यमाहारयंतीति । क्रमेणच वृद्धिमुपगताः संतोपरेषामपि शरीरमाहारयंति शेषं सुगमं । यावत्कर्मोपगताभवंतीति ॥ २३ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा अहीणं अयगराणं असालियाणं महोरगाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इबीए पुरिस जावएबणं मेहुणे एवं तं चेव नाणत्तं अंमं वेगइया जणयंति पोयं वेगइया जणयंति से अंमे उप्निज्जमाणे इबिं वेगइया जणयंति पुरिसंपि णपुंसगंपि ते जीवा महरा समाणा वाउकायमाहारेंति आणुपुवेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तसथावरपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं उरपरिसप्पथलयरतिरिक्खपंचिंदियअहीणं जाव महोरगाणं सरीरा णाणावन्ना णाणागंधा जावमक्खायं ॥ २४ ॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वें तीर्थंकरें कह्युंडे. आ जगत्मांहें नाना प्रकारे उरपरिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनियाडे: ते कहेडे. अही सर्प्प, अजगर सर्प्प, अ

ष्मणाऽऽहारितेन वृद्धिं प्राप्तं सत् कललावस्थां त्यक्त्वा चंचूप्रमुखान् अवयवान्निष्पाद्य भेदं याति (माउगात्तसिणंति) मातृगात्रोष्माणमित्यर्थः । ततः पश्चादपि जननीसमानी तेनाहारेण वृद्धिं प्राप्नोति । शेषं प्राग्वत् ॥ २६ ॥

॥ टीका—सांप्रतं खेचरानुद्दिश्याह । अहावरमित्यादि) नानाविधानां खेचराणामुत्प त्तिरेवं इष्टव्या । यथा चर्मपक्षिणां चर्मकीटवल्गुलीप्रभृतीनां तथा लोमपक्षिणां सारसरा जहंसकाकवकादीनां समुजपक्षिविततपक्षिणां बहिर्द्वीपवर्तिनामेतेषां यथाबीजेन य थावकाशेन चोत्पन्नानामाहारक्रियैवमुपजायते । तद्यथा । सा पक्षिणी तदंडकं पक्षा भ्यामावृत्य तावत्तिष्ठति यावत्तदंडकं तदूष्मणाहारितेन वृद्धिमुपगतं सत् कललावस्थां परित्यज्य चंच्वादिकानवयवान् परिसमापय्य भेदमुपयाति तदुत्तरकालमपि मात्रोपनीते नाहारेण वृद्धिमुपयाति । शेषं प्राग्वत् ॥ २६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया णाणाविहसंभवा णाणाविहवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडुवुक्कमा कम्मोवगा कम्मणि याणेणं तह वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पोग्गलाणं सरीरेसुवा स चित्तेसुवा अचित्तेसुवा अणुसूयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहा णं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढवि सरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं अणुसूयगाणं सरीरा णाणावसा जावमक्खायं ॥ २७ ॥

अर्थ—हवे पूर्वे कह्यो जे मनुष्य तथा तिर्यंचनो अधिकार तेथकी अपर एटले बीजुं स्थानक तीर्थंकरे कह्युं छे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव कर्मने उदये वर्त्तता नानाविध योनिया पोताना करेलां कर्मने विशेषे नानाविध संभवे छे. नानाविधना आव्या छता ते जो णिया ते संभव तदुपक्रम कर्मना वशंगत कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या छता, ना ना प्रकारना त्रस अने स्थावर जीवोना पुजलने विषे,शरीरने विषे, सचित्तने विषे,अचित्तने विषे,अपर शरीरनी निश्राये उपजे.ते विकलेंद्रिय जीव जाणवा अहीं सचित्त ते मनुष्यादि कना शरीरने विषे जू लीख,इत्यादिक नावें उपजे.तथा अचित्त ते मनुष्यने परिभुज्यमाण एवा मंचादिकने विषे मांकडादिकने नावें उपजे.ते जीव उपना थका ते नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणीना स्नेह आहारे. ते जीव पृथ्वीनुं शरीर आहारीने, यावत् पो तानी काया सरखां रूप करे. अनेरा पण ते त्रस अने स्थावर योनिक अपर शरीरनी

इत्यादिक जेम पूर्वे उरःपरिसर्पनो विचार कह्यो तेम जाणवो. ते जीव अनुक्रमे वधता थका पृथ्व्यादिकनो आहार करे. इत्यादिक सर्व अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ २५ ॥

॥ दीपिका–भुजपरिसर्प्पानाह। भुजपरिसर्प्पाणां गोधानकुलादीनां यथाबीजेन यथाव काशेनोत्पत्तिः स्यात् । तेच अंडजत्वेन पोतजत्वेन वा उत्पन्नामातुरूष्मणा वायुना चाऽऽहारितेन वृद्धिं यांति । शेषं सुगमं ॥ २५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं भुजपरिसर्पानुद्दिश्याह (अहावरमित्यादि) नानाविधाभ्यां भुजाभ्यां ये परिसर्प्पंति तेषां । तद्यथा । गोधानकुलादीनां स्वकर्मोपात्तेन यथाबीजेन यथाव काशेन चोत्पत्तिर्भवति । ते चांडजत्वेन पोतजत्वेन चोत्पन्नास्तदनंतरं मातुरूष्मणा वायुना वा हारितेन वृद्धिमुपयांति । शेषं सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ २५ ॥

अहावरं पुरक्कायं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदियतिरिक्कजोणियाणं तंजहा चम्मपक्कीणं लोमपक्कीणं समुग्गपक्कीणं विततपक्कीणं ते सिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इडीए जहा उरपरिसप्पाणं नाणत्तं ते जीवा डहरा समाणा माउगात्त सिणेह माहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा व णस्सतिकायं तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदियतिरिक्कजोणियाणं चम्मपक्कीणं जावमक्कायं ॥ २६ ॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युं छे. आ जगत् मांहे नाना प्रकारें खेचर पंचेंद्रिय तिर्यंचछे, ते कहेछे. चर्मपक्षी ते वल्गुली प्रमुख, लोमपक्षी ते सारस राजहंसा दिक, तथा समुद्गपक्षी अने विततपक्षी ए बे जाति, मनुष्य क्षेत्र थकी बाहेर जाणवी. ते खेचर जातिने यथाबीजें यथावकाशें जेम उरःपरिसर्प्पनी पूर्वे उत्पत्ति कही, तेमज ए जीवनी पण उत्पत्ति जाणवी. ते जीव बालक छता मातानो स्नेह आहारे. इत्यादिक आलावो सर्व पूर्ववत् जाणवो. ॥ २६ ॥

॥ दीपिका–अथ खेचरानाह । खेचराणामुत्पत्तिरेवं ज्ञेया । तद्यथा । चर्मपक्षिणां चर्मकीटवल्गुलीचर्मचटकादीनां लोमपक्षिणां सारसराजहंसकाकबकादीनां समुद्गप क्षिणोविततपक्षिणश्च बहिर्द्वीपवर्तिनस्तेषां यथाबीजेन यथावकाशेन चोत्पन्नानामे वमाहारः स्यात् । सा पक्षिणी तदंडकं स्वपक्षाभ्यामावृत्य तावत्तिष्ठति यावत्तदंडकं तदू

१०४

ए जेम सचित्ताचित्त शरीरनी निश्रायें विकलेंद्रिय जीव उपजेछे तेम, तेना मल, मूत्र, वमना दिकने विषे (दुरूव के०) विरूपरूप एटले कृम्यादिकने जावें उपजे, ते जीव तेऐ वि ष्टादिकने विषे उपना थका तेहिज आहार लीये. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–अथ पंचेंद्रियमूत्रपुरीषोद्भवान् जीवानाह । (एवमित्यादि) एवं पूर्वोक्त प्रकारेण सचित्ताचित्तशरीरनिश्रयायथा विकलेंद्रियाजायंते । तथा तत्संभवेषु मूत्रपुरीष वांतादिषु परे जंतवोऽदुरं विरूपं रूपं येषां ते दुरूपास्तत्संभवत्वेन तद्भावेन जायंते। तेच विष्टादौ शरीरान्निर्गते अनिर्गतेवा उत्पन्नास्तदेव विष्टादिकमाहारयंतीति। शेषं प्राग्वत्॥१८॥

॥ टीका–सांप्रतं पंचेंद्रियमूत्रपुरीषोद्भवानसुमतः प्रतिपादयितुमाह । (एवमित्यादि) एवमिति पूर्वोक्तपरामर्शः । यथा सचित्ताचित्तशरीरनिश्रयाविकलेंद्रियाः समुत्पद्यंते तथा तत्संभवेषु मूत्रपुरीषवांतादिषु अपरे जंतवोऽदुरं विरूपं रूपं येषां कृम्यादीनां ते दुरूपा स्तत्संभवत्वेन तद्भावेनोत्पद्यंते । तेच तत्र विष्टादौ देहान्निर्गतेऽनिर्गतेवा समुत्पद्यमाना उत्पन्नाश्च तदेव विष्टादिकं स्वयोनिभूतमाहारयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ १८ ॥

एवं खुरडुगत्ताए ॥ १९ ॥

अर्थ–हवे सचित्त शरीरनी निश्रायें जे जीव उपजे ते आश्री कहेछे. (एवं के०) जेम मलमूत्रादिकने विषे जीवनी उत्पत्ति थायछे. तेम तिर्यंचना शरीरने विषे खुर एट ले चर्मने विषे कीटकने जावें उपजे एटले गाय, नेंश प्रमुखना चर्म मांहे प्राणियो संमूर्छे, ते तेनुं चर्म मांस नक्षण करे, चर्में विवर करे, ते थकी जे अशुद्ध पुजल निकले तेज आहारे ; तथा अचित्त गवादिक शरीरने विषे पण जीव उपजे तथा सचित्ताचित्त वनस्पति शरीरने विषे पण घूण कीटकादिक संमूर्छे. ते उपजतां तेनुंज शरीर आहा रे. इत्यादिक जाणवुं ॥ १९ ॥

॥ दीपिका–अथ सचित्तदेहाश्रयान् जंतूनाह । (एवंखुरुडुगत्ताएत्ति) यथा मूत्रविष्टाद्य वुत्पादस्तथा तिर्यग्देहेषु (खुरडुगुत्तेत्ति) चर्मकीटत्वेन जायंते । तथाहि ।जीवतामेव गोम हिष्यादीनां चर्मणोंऽतःप्राणिनः संमूर्छंते । तेच तन्मांसचर्मणी नक्षयंति नक्षयंतश्च तच्च र्मणोविवराणि कुर्वंति । गलच्छोणितेषु विवरेषुच तेषु तिष्ठंतस्तदेव शोणितं नक्षयंति तथाऽ चित्तगवादिदेहेपि तथा सचित्ताचित्तवनस्पतिशरीरेपि घुणकीटकाः संमूर्छंते तदेहमे व नक्षयंतीति ॥ १९ ॥

निश्रायें विकलेंड्रियने नावें उपजे. तेनां शरीर नाना प्राकारना वर्ण गंध रस अने स्पर्शी वालां जाणवां. एम यावत् तीर्थंकरें कह्युं ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—उक्ताः पंचेंड्रियामनुष्यास्तिर्यंचश्च । अथ विकलेंड्रियानाह । अथापरमाख्यातं । इहैके सत्वाः कर्मणा तत्रोत्पत्तिस्थाने उपक्रम्य आगत्य नानाविधत्रसस्थावराणां शरीरेषु सचित्तेषु अचित्तेषुवा (अणुसूयत्ताएत्ति) अन्यशरीराश्रिततया परनिश्रयाविवर्त्तते उत्पद्यंतइत्यर्थः । तेच विकलेंड्रियाः सचित्तेषु मनुष्यादिशरीरेषु यूकालिक्षादिकत्वेन जायंते नरभुज्यमानेषु मंचकादिषु अचित्तेषु मत्कुणत्वेनोत्पद्यंते तथा नरशरीरेषु विकलेंड्रियशरीरेषु वा सचित्ताचित्तेषु ते जीवा (अणुसूयत्ताएत्ति) अनुस्यूतत्वेन परिनिश्रयाक्रम्यादित्वेन जायंते । केचित्सचित्तेऽग्नौ मूषिकादितया यत्र चाग्निस्तत्र वायुरिति ते वायूद्भवाअपि ज्ञेयाः । पृथिवीमाश्रित्य कुंथुपिपीलिकादयोवर्षादौ ऊष्मणा संस्वेदजाजायंते उदके पूतरकाडोद्भणकाभ्रमरिकादयः । वनस्पतिकाये पनकभ्रमरादयः एवं ते जीवास्तानि स्वयोनिशरीराणि आहारयंतीत्याख्यातं ॥ १७ ॥

॥ टीका—व्याख्याताः पंचेंड्रियामनुष्यास्तिर्यंचश्च तेषां चाहारो द्विधा । आनोगनिर्वर्तिताऽनानोगनिर्वर्तितश्च । तत्रानानोगनिर्वर्तितः प्रतिक्षणनाव्यनोगनिर्वर्तितस्तु यथास्वं क्षुद्वेदनीयोदयनावीति । सांप्रतं विकलेंड्रियानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथानंतरमेतदाख्यातमिहास्मिन् संसारे एके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिनः सत्वाः प्राणिनोनानाविधयोनिकाः कर्मनिदानेन स्वकृतकर्मणोपादानजूतेन तत्रोत्पत्तिस्थाने उपक्रम्यागत्य नानाविधत्रसस्थावराणां शरीरेषु अचित्तेषु सचित्तेषुवा (अणुसुयत्ताएत्ति) अपरशरीराश्रिततया परनिश्रयाविवर्त्तते समुत्पद्यंते इति यावत् (तेच जीवाविकलेंड्रियाः सचित्तेपु मनुष्यादिशरीरेपु यूकालिक्षादिकत्वेनोत्पद्यंते तथा तत्परिभुज्यमानेषु मंचकादिष्वचित्तेषु मत्कुणत्वेनाविर्नवंति तथाऽचित्तीजूतेषु मनुष्यादिशरीरकेषु विकलेंड्रियशरीरेपुवा ते जीवाअनुस्यूतत्वेन परनिश्रयाक्रम्यादित्वेनोत्पद्यंते । अपरेतु सचित्ते तेजःकायादौ मूषिकादित्वेनोत्पद्यंते । यत्र चाग्निस्तत्र वायुरित्यतस्तडुद्भवाअपि डष्टव्याः । तथा पृथिवीमनुश्रित्य कुंथुपिपीलिकादयोवर्षादावूष्मणा संस्वेदजाजायंते तथोदके पूतरकाडोद्भणकभ्रमरिकाछेदनकादयः समुत्पद्यंते तथा वनस्पतिकाये पनकभ्रमरादयोजायंते । तदेवं ते जीवास्तानि स्वयोनिशरीराण्याहारयंति इत्येवमाख्यातमिति ॥ १७ ॥

एवं डुरूवसंनवत्ताए ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे पंचेंड्रियनां मल सूत्र मांहें उपजता एवा, जीव आश्री कहेछे. (एवंके०)

ते जीव त्यां उपना थता ते नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणियोनो स्नेह आहारे. इत्यादिक शेषं सुगमं ॥ एटले वात योनिक अप्काय देखाड्यो. ॥ ३० ॥

॥ दीपिका–अथाप्कायं वक्तुकामस्तत्कायकारणभूतवायुकथनपूर्वमाह । (अहावरमित्यादि) अथैतदाख्यातं । इहैके सत्वाः कर्मोदयात्तत्र वायुयोनिकेऽप्काये व्युत्क्रम्यागम्य नानाविधानां त्रसानां दर्दुरादीनां प्राणिनां स्थावराणां च हरितलवणादीनां सचित्ताचित्त देहेषु तदप्कायशरीरं वायुयोनिकत्वादप्कायस्य वायुना उपादानहेतुभूतेन निष्पादितं तथा वातेन संगृहीतं अभ्रपटलांतर्निर्वृत्तं तथा वातपरिगतं वायुनाऽन्योन्यानुगतं ऊर्ध्वंगते वाते ऊर्ध्वभागभवति । गगनगतवायुवशाज्जलं व्योम्नि संमूर्छते । अधोगते वाते जलमप्यधः स्यात् तिर्यग्गतेच तिर्यक् वातयोनिकत्वाज्जलस्य यत्र यत्र वायुः परिणमति तत्र तत्र तत्कार्यभूतं जलमपि संमूर्छते । जलभेदान् वक्ति । (उसत्ति) अवश्यायः हिमं महिकाधूमरीकरकाः (हरतणुत्ति) तृणाग्रप्राप्तजलबिंदवः शुद्धोदकं प्रतीतं । इहैके जीवाः शुद्धजले जातानानाविधत्रसस्थावराणां उत्पत्त्याऽऽधारभूतानां स्नेहं भक्षयंति । शेषं सुगमं ॥ ३० ॥

॥ टीका–सांप्रतमप्कायं प्रतिपादयिपुस्तत्कारणभूतवातप्रतिपादनपूर्वकं प्रतिपादयतीत्याह । (अहावरमित्यादि) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणं पुरा पूर्वमाख्यातं । इहास्मिन् जगत्येके सत्वास्तथाविधकर्मोदयानानाविधयोनिकाः संतोयावत्कर्मनिदानेन तत्र तस्मिन्वातयोनिकेऽप्काये व्युत्क्रम्यागत्य नानाविधानां बहुप्रकाराणां त्रसानां दर्दुरप्रभृतीनां स्थावराणांच हरितलवणादीनां प्राणिनां सचित्ताचित्तभेदभिन्नेषु शरीरेषु तदप्कायशरीरं वातयोनिकत्वादप्कायस्य वायुनोपादानकारणभूतेन सम्यक् संसिद्धं निष्पादितं । तथा वातेनैव सम्यक्गृहीतमभ्रपटलांतर्निर्वृत्तं तथा वातेनान्योन्यानुगतत्वात्परिगतं तथोर्ध्वगतेषु वातेषूर्ध्वभागी भवत्यप्कायोगगनगतवातवशाद्दिवि संमूर्छते जलं तथाऽधस्ताद्गतेषु तद्वशाद्भवत्यधोभागीत्यप्कायएवं तिर्यग्गतेषु तिर्यग्भागी भवत्यप्कायः। इदमुक्तं भवति । वातयोनिकत्वादप्कायस्य यत्र यत्रासौ तथाविधपरिणामपरिणतोभवति तत्र तत्र तत्कार्यभूतं जलमपि संमूर्छते । तस्य चाभिधानपूर्वकं भेदं दर्शयितुमाह । तद्यथा । (उसत्ति) अवश्यायः (हिमयेत्ति) शिशिरादौवातेरिताहिमकणामिहिकाः धूमिकाः करकाः प्रतीताः (हरतणुयत्ति) तृणाग्रव्यवस्थितजलबिंदवः शुद्धोदकं प्रतीतमिति । इहास्मिन्नुदकप्रस्तावे एके सत्वास्तत्रोत्पद्यंते स्वकर्मवशगास्तत्रोत्पन्नास्ते जीवास्तेषां नानाविधानां त्रसस्थावराणां स्वोत्पत्त्याधारभूतानां स्नेहमाहारयंति ते जीवास्तच्छरीरमाहारयंति अनाहारकान भवंतीत्यर्थः।शेषं सुगमं यावदेतदाख्यातमिति ॥३०॥

॥ टीका—सांप्रतं सचित्तशरीराश्रयान् जंतून् प्रतिपादयितुमाह । (एवंखुरडगुत्ताएइत्यादि) एवमिति यथा मूत्रपुरीषादावुत्पादस्तथा तिर्यक्शरीरेषु (खुरडगुत्ताएत्ति) चर्मकीटतया समुत्पद्यंते । इदमुक्तं नवति जीवतामेव गोमहिष्यादीनां चर्मणोंतः प्राणिनः संमूर्छंते तेच तन्मांसचर्मणी नक्षयंति नक्षयंतश्चर्मणोविवराणि विदधति गलछोणितेषु विवरेषु तिष्ठंतस्तदेव शोणितमाहारयंति तथा अचित्तगवादिशरीरेपि तथा सचित्ताचित्तवनस्पतिशरीरेपि घुणकीटकाः संमूर्छंते तेच तत्र संमूर्छतस्तछरीरमाहारयंतीति ॥ २९ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मणिया णेणं तबवुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसुवा तं सरीरगं वायसं सिद्धंवा वायसंगहियंवा वायं परिगहियं उड्ढवाएसु उड्ढन्नागी नवति अहेवाएसु अहेन्नागी नवति तिरियंवाएसु तिरियंन्नागी नवति तंजहा उसा हिमए महिया करए हरतणुए सुद्धोदए तेजीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा अहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं उसाणं जावसुद्धोदगाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ३० ॥

अर्थ—हवे अप्कायनुं प्रतिपादन करे बे. हवे बीजुं स्थानक बे. श्री तीर्थंकरें कह्युंबे आ जगत् मांहे कोइ एक जीव तथाविध कर्मने उदयें नानाविध योनिक बता यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या बता नाना प्रकारें त्रस ते दर्डुरादिक अने स्थावर ते हरिकाय लवणादिक प्राणीनां सचित्त अचित्त शरीरने विषे ते अप्कायनुं शरीर वायुयें करी निपजाव्युं तथा (वायसंगहियंवा के०) वायरे करी सम्यक् प्रकारें ग्रह्युं तथा (वायंपरिहियं के०) वायरे करी अन्योन्य परिगत एटले माहोमांहें मेलव्युं तथा (उड्ढवाएसुउड्ढन्नागीनवति के०) ऊर्ध्वगत वायराने विषे ऊर्ध्वगत नागी थाय एटले ऊर्ध्वं वायु थके पाणी पण उपहरो रहे. (अहेवाएसुअहेन्नागीनवतिके०) तथा निचे निचे वायरे निचो होय, (तिरियंवाएसुतिरियंन्नागीनवति के०) तिर्छे वायरे तिर्छो थाय, जे जे परिणामे वायु वर्त्ते, तेम तेम पाणी पण परिणमे (तंजहा के०) हवे तेना नाम कहेबे. (उसा के०) उसपडे ते (हिमएके०) हिम (महिया के०) धूयरी (करए के०) करगडा (हरतणुए के०) तृणने अग्रें स्थित एवा पाणीना बिंडुआ (सुद्धोदए के०) शुद्धोदक ते स्वब पाणी इत्यादिक पाणी जाति मांहें जीव उपजे.

उदगजोणियाणं जीवाण उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरेवियणं जीवाणं उदगजोणियाणं उदगाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ३२ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युं छे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव तथाविध कर्मना उदय थकी उदक योनिक उदकने विषे उपजे. त्यां उपना थका उदक जीवनो स्नेह आहारे, शेषं सुगमं ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका—तदेवं त्रसस्थावरदेहसंभवं जलयोनित्वेन प्रदर्श्याऽधुना निर्विशेषणजलसंभवमेव जलं दर्शयति । (अहावरमिति) इह एके सत्वाउदकयोनिकेषु उदकेषूत्पद्यंते तेच तेषां जलसंभवानां आत्माधारभूतानां शरीरं भक्षयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ ३२ ॥

॥ टीका—तदेवं त्रसस्थावरसंभवमुदकयोनित्वेन प्रदर्श्याऽधुना निर्विशेषणमप्कायसंभवमेवाप्कायं दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) अथापरमाख्यातमिहास्मिन् जगत्युदकाधिकारे वा एके सत्वाः स्वकृतकर्मोदयादुदकयोनिषूदकेषूत्पद्यंते तेच तेषामुदक संभवानामुदकजीवानामात्माधारभूतानां शरीरमाहारयंति । शेषं सुगमं । यावदाख्यातमिति ३२.

अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणियाणं जावकम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु तसपाणत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरेवियणं तेसिं उदगजोणियाणं तसपाणाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ३३ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकर देवें कह्युं. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव कर्मे प्रेर्या थका उदक योनिक उदकने विषे पूयरादिक त्रस प्राण पणे उपजे. ते उपना छता तेनुं शरीर आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३३ ॥

॥ दीपिका—अथ जलाधारभूतान् त्रसानाह । इहैके सत्वाउदकयोनिकेषूदकेषु त्रसप्राणितया पूतरकादित्वेन उत्पद्यंते । तेच उत्पद्यमानाउत्पन्नाश्च तेषां जलयोनिकानां जलानां स्नेहमाहारयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ ३३ ॥

॥ टीका—सांप्रतमुदकाधारानपरान् पूतरकादिकांस्त्रसान्दर्शयितुमाह । (अहावरमि

अहावरं पुरक्खायं इहेगतियासत्ता उदगजोणिया उदगसंभवा जाव कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा तसथावरजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसिं तसथावरजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तोसिं तसथावर जोणियाणं उदगाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे अप्काय योनिक अप्काय देखाडेछे. अथ हवे अपर स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें कोइ एक जीव उदकयोनिक उदकने विषे संभवछे, यावत् कर्मने कारणे करी एटले तथाविध कर्मने उदयें वातवशें उपना एवा त्रस अने स्थावर जीव, तेना शरीरने अधार भूत एवुं उदक जे पाणी ते उदकें उपना त्रस स्थावर योनिक उदक तेने विषे उदक पणे उपजे, ते जीव त्यां उपना थका ते उदकनो स्नेह आहारे. इत्यादिकं शेषं सुगमम् ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका—वातयोनिकं जलमुक्त्वा जलसंभवं जलमाह । (अहावरमित्यादि) इहैके सत्वावातवशोत्पन्नत्रसस्थावरदेहाधारभूतमुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा उदकसंभवास्त्रसस्थावरयोनिकेषु उदकेषु अपरोदकतया उत्पद्यंते । तेच जलसत्वास्तेषां त्रसस्थावरयोनिकानां जलानां स्नेहं पराण्यपि पृथिव्यादिशरीराणि चाहारयंति । तच्च पृथिव्यादिशरीरं भक्षितं सत्सारूप्यमानीयात्मसात्कुर्वंति । अन्यान्यपि तत्र त्रसस्थावरशरीराणि वर्तंते तेषां च नीरयोनिकानां नीराणां नानाविधानि शरीराणि वर्तंते एतदाख्यातं ॥ ३१ ॥

॥टीका—तदेवं वातयोनिकमप्कायं प्रदर्श्याधुनाप्कायसंभवमेवाप्कायं दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) अथापरमाख्यातमिहास्मिन् जगति उदकाधिकारे वा एके सत्वास्तथाविधकर्मोदया द्वातवशोत्पन्नत्रसस्थावरशरीराधारमुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तथोदकसंभवा यावत्कर्मनिदानेन तत्रोत्पित्सवस्त्रसस्थावरयोनिकेषूदकेष्वपरोदकतया विवर्तंते समुत्पद्यंते ते चोदकजीवास्तेषां त्रसस्थावरयोनिकानामुदकानां स्नेहमाहारयंत्यन्यान्यपि पृथिव्यादिशरीराण्याहारयंति । तच्च पृथिव्यादिशरीरमाहारितं सत् सारूप्यमानीयात्मसात्प्रकुर्वंत्यपराण्यपि तत्र त्रसस्थावरशरीराणि विवर्तंते तेषां चोदकयोनिकानामुदकानां नानाविधानि शरीराणि विवर्तंते इत्येतदाख्यातं ॥ ३१ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं

पाषाणादिषु सचित्ताचित्तेषु अग्निजीवाः समुत्पद्यंते । तेच तत्रोत्पन्नास्तेषां त्रसस्थावराणां स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगमं । अन्ये त्रयोप्यालापकाउदकवदृष्टव्याः ॥३४ ॥ अथ वायुकायमाह । इदमग्निकायवद्व्याख्येयं ॥ ३५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं तेजःकायमुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथैतदपरमाख्यातं । इहास्मिन् संसारे एके केचन सत्वाः प्राणिनस्तथाविधकर्मोदयवर्त्तिनोनानाविधयोनयः प्राक् संतः पूर्वजन्मनि तथाविधं कर्मोपादाय तत्कर्मनिदानेन नानाविधानां त्रसस्थावराणां प्राणिनां सचित्तेष्वचित्तेषु शरीरेषु चाग्नित्वेन विवर्तंते प्रादुर्भवंति । तथाहि । पंचेंद्रियतिरश्चां दंतिमहिषादीनां परस्परं युद्धावसरे विषाणसंघर्षे सति अग्निरुत्तिष्टते एवमचित्तेष्वपि तदस्थिसंघर्षादग्नेरुत्थानं तथा द्वींद्रियादिशरीरेष्वपि यथासंभवमायोजनीयं । तथा स्थावरेष्वपि वनस्पत्युपलादिषु सचित्ताचित्तेष्वग्निजीवाः समुत्पद्यंते ते चाग्निजीवास्तत्रोत्पन्नास्तेषां नानाविधानां त्रसस्थावराणां स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगमं यावद्भवंतीत्येवमाख्यातं ।अपरे त्रयोप्यालापकाः प्राग्वदृष्टव्याइति ॥ ३४ ॥ सांप्रतं वायुकायमुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातमित्याद्यग्निकायागमेन व्याख्येयं ॥ ३५ ॥

अहावरं पुरस्कायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तत्र वुक्कम्मा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा पुढवित्ताए सक्करत्ताए वालुयत्ताए इमाउ गाहाउ अणुगंतव्वाउ " पुढवीय सक्करा वा,लुयाय उवले सिलाय लोणूसे ॥ अयत उय तंब सीसग, रुप्प सुवन्नेय वइरेय ॥ १ ॥ हरियाले हिंगुलए, मणोसिला सासगंजणपवाले ॥ अन्नपडलन्नवालुय, बायरकाए मणिविहाणा ॥२॥ गोमेज्जएय रूयए, अंकेफलिहिय लोहियक्खेय ॥ मरगयमसारगल्ले, भूयमोयग इंदणीलेय ॥ ३ ॥ चंदण गेरुय हंसगब्भे, पुलए सोगंधिएय वोद्धव्वे ॥ चंदप्पभ वेरुलिए, जलकंते सूरकंतेय ॥४॥ एयाउ एएसु भाणियव्वाएउ गाहाउ जाव सूरकंताएवि वुट्टंति तेजीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं पुढवीणं जाव सूरकंताणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खायं सेसं तिन्नि आलावगा जहा उदगाणं ॥ ३६ ॥

त्यादि) अथापरमेतदाख्यातमिहैके सत्वाउदकयोनिषु चोदकेषु त्रसप्राणितया पूतरक दित्वेन विवर्त्तते समुत्पद्यंते ते चोत्पद्यमानाः समुत्पन्नाश्च तेषामुदकयोनिनामुदकानां स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ ३३ ॥

अहावरं पुरक्कायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा अगणिकायत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं अगणीणं सरीरा णाणावन्ना जाव मरकायं सेसा तिन्नि आलावगा उदगाणं ॥३४॥ अहावरं पुरक्कायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा वाउक्कायत्ताए विउट्टंति जहा अगणीणं तहा नाणियव्वा चत्तारि गमा ॥ ३५ ॥

अर्थ—हवे अग्निकाय जीव आश्री कहेछे. अथ हवे अनेरुं स्थानक श्री तीर्थंकर देवें कह्युं. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव नाना प्रकारना योनि वाला, ते एवा प्रकारनुं कर्मोपार्जन करीने, नानाविध त्रस अने स्थावर प्राणिना शरीरने विषे सचित्तने विषे, अचित्तने विषे, अग्निकाय पणे उपजे. त्यां उपजता छता, ते त्रस अने स्थावर प्राणीनो स्नेह आहारे. इत्यादिकं शेषं सुगमं ॥ अहीं अग्निकायने विषे शेष त्रण आलावा उदकना आलावानी पेरें जाणी लेवा. ॥३४॥ हवें वायुकाय जीव आश्री कहेछे. हवे अनेरुं स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युं. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव नानाविध योनिक कर्मने वशवर्त्ति थका नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर जीवोनां शरीर सचित्त अने अचित्तने विषे वायुकाय पणे उपजे. इत्यादिक जेम अग्निकायना चार आलावा कह्या. तेम ए वायुकायना पण चार आलावा केहेवा. ॥ ३५ ॥

॥ दीपिका—अथ तेजःकायमाह । एके सत्वाः कर्मोदयान्नानाविधानां त्रसस्थावराणां देहेषु सचित्तेष्वचित्तेषु वाऽग्नित्वेन विवर्त्तंते प्रादुर्भवंति । तथाहि । पंचेंद्रियतिरश्चां दंतिमहिषादीनां परस्परं युद्धावसरे दंतशृंगयोगेऽग्निरुत्पद्यते । एवमचित्तेष्वपि तदस्थिघर्षणादग्निरुत्पत्तिः । विकलेंद्रियशरीरेष्वपि यथासंभवं योज्यं । स्थावरेषु वनस्पति

अथ द्वितीयश्रुतस्कंधे चतुर्थाध्ययनप्रारंभः

हवे चोथुं प्रत्याख्यान क्रियानामा अध्ययन प्रारंभियें छैयें. त्रीजा अध्ययनमां आहार आश्री कर्मबंध थाय. एम कह्यो ते कर्मबंध पच्चरकाण करवाथी टली जायछे, ते कारण माटे चोथुं अध्ययन प्रत्याख्यान क्रिया नामें कहियें छैयें.

सुयंमे आउसंतेणं भगवया एवमरकायं इह खलु पच्चरकाणकिरियाणामज्झयणे तस्सणं अयमठे पसत्ते आया अपच्चरकाणीयावि भवति ॥ आया अकिरिया कुसलेयावि भवति आया मिछा संठियावि भवति आया एगंतदंम्भेयावि भवति आया एगंतबालेयावि भवति आया एगंतसुत्तेयावि भवति आया अवियारमणवयणकायवक्केयावि भवति आया अप्पडिहयअपच्चरकायपावकम्मेयावि भवति एस खलु भगवता अरकाए असंजते अविरते अप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुम्हे एगंतदंम्हे एगंतबाले एगंतसुत्ते सेबाले अवियारमणवयणकायवक्के सुविणमवि ण परसति पावेयसे कम्मे कज्जइ ॥ १ ॥

अर्थ–सुधर्म स्वामी जंबूस्वामि प्रत्यें कहेछे के, (सुयंमे के०) में एम सांभल्युंछे. (आउसंतेणं के०) आयुष्मन् (भगवयाएवमरकायं के०) भगवंत श्री महावीरदेव तीर्थंकर तेणें एम कह्युंछे. (इहखलुपच्चरकाणकिरियाणामज्झयणे के०) ए प्रवचनने विषे खलु ए वाक्यालंकारे प्रत्याख्यानक्रिया नामें अध्ययन, (तस्सणंअयमठेपसत्ते के०) तेनो ए अर्थ जे आगल कहेशे, ते कहेछे, (आयाअपच्चरकाणियाविभवति के०) ए आत्मा जीव मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अने योग सहित स्वभावें रह्यो थको, अप्रत्याख्यानी होय. अपि शब्द थकी तेहीज आत्मा, कोइ एक रूडां कारण थकी पच्चरकाणी पण होय. (आयाअकिरियाकुसलेयाविभवति के०) ए आत्मा रूडा अनुष्ठानें रहित पण होय.अपि शब्द थकी रूडा अनुष्ठानें सहित पण होय,तथा (आयामिछासंठियाविभवति के०) ए आत्मा मिथ्यात्वें संस्थित पण होय, अने अपि शब्द थकी मिथ्यात्व थकी रहित पण होय, (आयाएगंतदंम्भेयाविभवति के०) एकांते प्राणीउने दंभनो करनार पण होय, तथा (आयाएगंतबालेयाविभव बाल पण होय, (आयाएगंतसुत्तेयाविभवति के०) तथा

अर्थ—हवे पृथ्वीकाय जीव आश्री कहेछे. हवे अन्य स्थानक पूर्वे श्री तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें कोइ एक जीव, नाना प्रकार योनिक, यावत् कर्माधीन थका त्यां उपजे. नाना प्रकारना त्रस स्थावर प्राणीनां शरीरने विषे, सचित्तने विषे, अचित्तने विषे, शर्करा एटले कांकरा पणे, वेलु एटले रेति पणे, इत्यादिक (इमाउगाहाउ के०) ए आगलनी चार गाथायें करी पृथ्वीकायना नेद कहेशे ते प्रमाणे. (अणुगंतवाउ के०) सर्व जाणी ले वा. (पुढवीय के०) पृथ्वी पणे (सक्करा के०) कांकरा पणे, (वालुयाय के०) वेलू ते रेती पणे, (उवले के०) उपल एटले पाषाणना कटका पणे, (सिलाय के०) माटी अने पाशाणनी शिलापणे, (लोणूसेके०) समुड्रादिकना लूण ते पणे, उसे एटले उस पणे, ते खारी धूल पणे, (अयत के०) लोह पणे, (उय के०) जसत तरुआ पणे, (तंब के०) त्रांबा पणे, (सिसगं के०) शींसा पणे, (रुप्प के०) रूपा पणे, (सुवस्रेय के०) सुवर्ण पणे, (वइरेय के०) वज्र, ते हीरा पणे, (हरियाले के०) हरिताल पणे, (हिंगुलएके०) हिंगलो पणे, (मणोसिलाके०) मणसील पणे, (सासगंजणेके०) सासग एटले रत्ननीजाति, अंजन एटले सुरमो ते पणे, (पवालेके०) परवालां, (अप्नपमलप्नवालुय के०) अभ्रपडल अने अभ्रवालुक एटले आकाशना जलउस तथा अकाशना जलउस सहित धूल,ए (बायरकाय के०) बादरकाय, पृथ्वीना नेद कह्या. हवे (मणिविहाणा के०) मणिना नेद कहेछे. (गोमेज्जएय के०) गोमेद्य रत्न, (रूयए के०) रजत रत्न, (अंके के०) अंक रत्न, (फलिहिय के०) स्फाटिक रत्न, (लोहियस्केय के०) लोहिताक्ष रत्न, (मरगय के०) मरकत रत्न, (मसारगल्ले के०) मसारगल्ल रत्न, (नूयमोयग के०) नूजमोचक रत्न, (इंदणीलेय के०) इंड्रनील रत्न, (चंदण के०) चंदन रत्न, (गेरुय के०) गेरुक रत्न, (हंसगप्ने के०) हंसगर्न रत्न, (पुलए के०) पुलाक रत्न, (सोगंधिएय के०) सुगंधिक रत्न, (बोधव्वे के०) जाणवां. (चंदप्पन्न के०) चंड्रप्रन्न रत्न, (वेरुलिए के०) वैडूर्य रत्न, (जलकंते के०) जलकंत रत्न, (सूरकंतेय के०) सूर्यकांति रत्न, सुवर्णकांत रत्न पण एनुं नाम छे. ए चार गाथाने विषे, पृथ्वीकायना नाम कह्यांछे. यावत् सूर्यकांत पणे एटले एटला दूर लगे पृथ्वीकायने नावें जीव उपजे. ते जीव त्यां उपजता छता ते नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणीना स्नेह आहारे ; इत्यादिक शेष सुगमछे. ए पृथिवीकायना शेष त्रण आलावा जेम उदकना कह्या तेनी पेंठे जाणी लेवा. ॥ ३६ ॥

॥ दीपिका—अथ पृथिवीकायमाह । इहैके सत्वाः कर्मवशगानानाविधत्रसस्थावराणां देहेषु सचित्तेषु अचित्तेषुवा पृथिवीत्वेनोत्पद्यंते । तद्यथा । सर्प्पशिरस्सु मणयः करिदं

नस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि नवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयम् । तद्यथे ह कर्मोपादानभूतस्याशुभस्य प्रत्याख्यानं प्रतिपाद्यतइति । सांप्रतं निक्षेपस्तत्राप्योघनिष्पन्नेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने प्रत्याख्यानक्रियेति द्विपदं नाम । तत्र प्रत्याख्यानपदनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह ।" णामं ठवणादविए, अइच्छ पडिसेह एय भावेय ॥ एसोपच्चक्खाण,स्स छव्विहो होइनिक्खेवो ,, ॥ १ ॥ (णामंठवणेत्यादि) नामस्थापना द्रव्यादित्साप्रतिषेधभावरूपः । प्रत्याख्यानस्यायं षोढा निक्षेपः । तत्रापि नामस्थापने सुगमे । द्रव्यप्रत्याख्यानं द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्याद्द्रव्ये द्रव्यभूतस्य वा प्रत्याख्यानं । तत्र सचित्ताचित्तभेदमिश्रस्य प्रत्याख्यानं द्रव्यनिमित्तं वा प्रत्याख्यानं यथा धम्मिल्लस्य । एवमपराण्यपि कारकाणि स्वधिया योजनीयानि । तत्र दातुमिच्छा दित्सा न दित्सा अदित्सा तया प्रत्याख्यानमदित्साप्रत्याख्यानं । सत्यपि देये सतिच संप्रदानकारके केवलं दातुर्दातुमिच्छा नास्तीत्यतोऽदित्साप्रत्याख्यानं तथा प्रतिषेधप्रत्याख्यानमिदं । तद्यथा । विवक्षितद्रव्याभावाद्विशिष्टसंप्रदानकारकाभावाद्वा सत्यामपि दित्सायां यः प्रतिषेधस्तत्प्रत्याख्यानं । भावप्रत्याख्यानं तु द्विधाऽतः करणशुद्धस्य साधोः श्रावकस्य वा मूलगुणप्रत्याख्यानमुत्तरगुणप्रत्याख्यानं चेति । चशब्दाद्विविधमपि नोआगमतोभावप्रत्याख्यानं द्रष्टव्यं नान्यदिति । सांप्रतं क्रियापदं निक्षेप्तव्यं । तच्च क्रियास्थानाध्ययने निक्षिप्तमिति । न पुनर्निक्षिप्यते । इह पुनर्भावप्रत्याख्याने नाधिकारइति दर्शयितुमाह ।" मूलगुणे सुयपगयं, पच्चक्खाणे इहं अधीगारो ॥ होज्ज हुतप्पच्चइया, अप्पच्चक्खाणकिरियाउ ,, ॥ २ ॥ (मूलगुणेसुयइत्यादि) मूलगुणाः प्राणातिपातविरमणास्तेषु प्रकृतमधिकारः प्राणातिपातादेः प्रत्याख्यानं कर्तव्यमिति यावत् । इह प्रत्याख्यानक्रियाध्ययने नार्थाधिकारोयदि मूलगुणप्रत्याख्यानं न क्रियते तत्रोपायं दर्शयितुमाह । प्रत्याख्यानाभावेऽनियतत्वाद्यत्किंचनकारितया तत्प्रत्ययिका तन्निमित्ताभावाडुत्पद्यते प्रत्याख्यानक्रिया सावद्यानुष्ठानक्रिया तत्प्रत्ययिकश्च कर्मबंधस्तन्निमित्तश्च संसारइत्यतः प्रत्याख्यानक्रिया मुमुक्षुणा विधेयेति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं (सुयंमेआउसंतेणमित्यादि) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रैः सह संबंधोवक्तव्यः । सचायमिहानंतराध्ययनपरिसमाप्ताविदं सूत्रमाहारगुप्तः समितः सहितः सदा यतेतेत्येतन्मया श्रुतमायुष्मता भगवतेदमाख्यातमेवमनया दिशा परंपरसूत्रैरपि संबंधोऽभ्यूह्यः । इहास्मिन् प्रवचने सूत्रकृतांगेवा । खल्विति वाक्यालंकारे । प्रत्याख्यानक्रियानामाध्ययनं तस्यायमर्थोवक्ष्यमाणलक्षणः । अततीत्यात्मा जीवः प्राणी सचानादिमिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगानुगततया स्वभावतएव प्रत्याख्यान्यपि भवत्यपिशब्दात्सएव कुतश्चिन्निमित्तात्प्रत्याख्यान्यपि । तत्रात्मग्रहणमपरदर्शनव्युदासार्थं । तथाहि । सांख्यानामप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावआत्मा । सच तृणकु

ए आत्मा एकांत सुतो एटले शयन करनार पण होय, (आयाएगंतअवियारमणवयण कायवक्केयाविजवति के०) तथा ए आत्मा एकांत अविचार्युं कोइ कार्य करे, एवा मन वचन अने कायायें करी सहित पण होय, (आयाअपडिहयअपच्चरकायपावकम्मेया विजवति के०) तथा ए आत्मा, अप्रतिहत एटले विरतें करी नथी हण्यां तथा नथी पच्चरव्या पाप कर्म जेणे एवो पण होय, (एसखलुजगवताअरकाए के०) एवो जीव श्री जगवंते कह्योछे वली केवो कह्यो तो के? (असंजते के०) असंयत (अविरते के०) अविरति (अपडिहयपच्चायपावकम्मे के०) अप्रतिहत एटलें नथी हण्यां पच्चरकाणें करीने पाप कर्म जेणे, (सकिरिए के०) क्रिया सहित, (असंवुमे के०) संवर रहित (एगंतदंमे के०) एकांतें दंम, (एगंतबाले के०) एकांते बाल, (एगंत सुत्ते के०) एकांतें सुतो एटले शयन करनार, एवो कह्यो. (सेबालेअवियारमणवयणकायवक्केके०) ते बाल, अविचारवान् एवो मन वचन अने कायायें करी रहित छतो, जे पाप कर्मने (सुविणमविणपस्संति के०) स्वप्नांतरें पण देखे नही. (पावेयसेकम्मेकज्जइ के०) तो पण तेने तेवां पापकर्मनो बंध थायछे. ॥ १ ॥

॥ दीपिका–अथ प्रत्याख्यानक्रियाख्यं चतुर्थमध्ययनमारज्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (सुयंमेइत्यादि) श्रुतं मयाऽऽयुष्मता जगवतेदमाख्यातं । इहांगे प्रत्याख्यानक्रियानामाध्ययनं तस्यायमर्थः । आत्मा स्वजावतएवाऽप्रत्याख्यानी जवति । अपिशब्दात्सकदाचित्प्रत्ख्यान्यपि जवति । आत्मा क्रियाकुशलः सदाचारः स्यादक्रियाकुशलोपि । आत्मा मिथ्यात्वसंस्थितः आत्मा एकांतदंडोहिंसकः स्यात् आत्मा बालः सुप्तोजावसुप्तश्च । अविचाराणि अशोजनानि मनोवचःकायवाक्यानि यस्य स तथा । वाग्ग्रहणेनैव वाक्यस्य गतार्थत्वात्पुनर्वाक्यग्रहणं वाग्व्यापारस्य प्राचुर्यज्ञापनार्थं । तथाऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा अप्रतिहतं अनिवारितं प्रत्याख्यातेन विरत्या पापकर्म येन स तथा एवमेषआत्मा असंयतोऽविरतोऽ प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा सक्रियोऽसंवृतः एकांतदंडः एकांतबालः एकांतसुप्तः स बालोऽविचारमनोवचःकायवाक्यः स एवंजूतः पटुविज्ञानरचितः स्वप्नमपि न पश्यति तेनाप्येवंजूतेनाव्यक्तज्ञानेनापि पापं कर्म बध्यते ॥ १ ॥

॥ टीका–तृतीयाध्ययनानंतरं चतुर्थमारज्यते। अस्य चायमजिसंबंधः । इहानंतराध्ययने आहारगुप्तस्य कर्मबंधोऽ जिहितोऽत्र तत्प्रत्याख्यानं प्रतिपाद्यते । यदि वोत्तरगुणसंपादनार्थं शुद्धेतराहारपरिज्ञोक्ता। सा चोत्तरगुणरूपा प्रत्याख्यानक्रियासमन्वितस्य जवती त्यतआहारपरिज्ञानंतरं प्रत्याख्यानक्रियाध्ययनमारज्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्याऽध्यय

इ हणंतस्स समणक्कस्स सवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि पासउ एवं गुणजातीयस्स पावे कम्मे कज्जइ पुणरवि चोयए एवं बवीति तत्रणं जेते एवमाहंसु असंतएणं मणेणं पावएणं असंतीयाए वत्तिए पावियाए असंतएणं काएणं पावएणं अहणं तस्स अमणक्कस्स अवियारमणवयणकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सउ पावे कम्मे कज्जइ तत्रणं जेते एवमाहंसु मिछा ते एवमाहंसु ॥ ९ ॥

अर्थ—ए प्रकारें कहे थके, (तत्रचोयएपन्नवगंएवंवयासि के०) त्यां शिष्य प्रज्ञापक एटले गुरु प्रत्यें एवुं बोल्यो के, हे जगवन्! (असंतएणं के०) अछते अप्रवर्ते (मणेणं के०) मने (पावयणं के०) पापकर्मने विषे, तथा (असंतियाएवत्तिएपावियाए के०) अछते अप्रवर्त्ते वचनें पापकर्मनें विषे, (असंतएणंकाएणंपावएणं के०) अछते अप्रवर्तें कायायें पापकर्मने विषे, (अहणंतस्स के०) अणहणताने विषे, (अमणक्कस्स के०) पापकर्म उपर मनना परिणाम रहित, (अवियारमणवयकायवक्कस्स के०) अविचारवंत मन वचन काया एवा रहे, एटले पापकर्मना विचार विनाना रहे, (सुविणमविअप्पसउपावकम्मेणोकज्जइ के०) स्वप्नांतरें पण पापकर्मने अण देखता, एटले जे पापकर्म स्वप्नांतरें पण देखे नहीं, तो तेने पापकर्म सर्वथाऽपि लागे नहीं, (कस्सणंतंहेउं के०) तो शा कारणे ते पाप कर्म तेने लागे,? अंहीं अव्यक्त पणा थकी पापकर्म लागे, तेने कांइ बंधनुं कारण जाणवुं नहीं. (चोयएएवंववीति के०) तेहिज वली नोदक शिष्य, पोताना अभिप्रायें करी पापकर्मना बंधनुं कारण आवी रीतें कहेछे. (अन्नयरेणंमणेणंपावएणं के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापकर्मने विषे मनें करी प्रवर्त्ते, (मणवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के०) ते मन निमित्तें पापकर्म करे बांधे, (अन्नयरीएवत्तिएपावियाए के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापकर्मने विषे वचनें करी प्रवर्त्ते, (वत्तिवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के०) ते वचन निमित्तें पापकर्मने करे बांधे, (अन्नयरेणंकाएणंपावएणं के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापने विषे कायाने प्रवर्त्तावे. (कायवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के०) ते कायनिमित्तें पाप कर्म करे, बांधे. (हणंतस्ससमणक्कस्ससवियारमणवयकायवक्कस्स के०) हणताने विषे पापकर्म उपर मन परिणाम सहितने विषे सविचार मनें करी, वचनें करी, अने कायायें करी सहित, (सुविणमविपासउ के०) स्वप्नांतरने विषे पण पापकर्म देखे छे (एवंगुणजातीयस्सपावेकम्मेकज्जइ के०) एम गुण

ङ्गीकरणेप्यसमर्थतया किंचित्करत्वान्न प्रत्याख्यानक्रियायां नवितुमर्हति। बौद्धानामप्या त्मनोनावात् ज्ञानस्य च क्षणिकतया स्थितेरनावात् कुतः प्रत्याख्यानक्रियेति एवमन्य त्रापि प्रत्याख्यानक्रियायाश्चनावोवाच्यः । तथा सदनुष्ठानं क्रिया तस्यां कुशलः क्रियाकुशलस्तत्प्रतिषेधादक्रियाकुशलोप्यात्मा नवति । तथात्मा मिथ्यात्वोदयसंस्थितो नवति तथैकांतेन नापरान् प्राणिनोदंमयतीति दंमस्तदेवंनूतश्चात्मा नवति तथाऽसा रतापादनाङ्गागद्वेषाकुलितत्वाद्वालवद्वालश्चात्मा नवति तथा सुप्तवत्सुप्तः । यथाहि ड्व्यसुप्तः शब्दादीन् विषयान् न जानाति हिताहितप्राप्तिपरिहारविकलश्च तथा नाव सुप्तोप्यात्मैवंनूतएव नवतीत्येवमविचारणीयान्यशोननतया निरूपणीयान्यपर्यालोचनीयानि मनोवाक्कायवाक्यानि यस्य स तथा । तत्र मनोंतःकरणं वाग्वाणी कायोदेहो ऽर्थप्रतिपादकं पदसमूहात्मकं वाक्यमेकं तिङंतं सुबंतंवा । तत्र वाग्ग्रहणेनैव वाक्यार्थस्य गतार्थत्वाद्यत्पुनर्वाक्यग्रहणं करोति तदेवं ज्ञापयतीह वाग्व्यापारस्य प्रचुरतया प्राधान्यं प्रायशस्तत्प्रवृत्त्यैव प्रतिषेधविधानेन तयोरन्येषां प्रवर्त्तनं नवति । तदेवम प्रत्याख्यानक्रियः सन् आत्माऽविचारितमनोवाक्कायवाक्यश्चापि नवतीति । तथा प्रतिहतं प्रतिस्खलितं प्रत्याख्यातं विरतिप्रतिपत्त्या पापकर्माऽसदनुष्ठानं येन सः प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा तत्प्रतिषेधादसनुष्ठानपरश्चात्मा नवति । तदेवमेषपूर्वोक्ताऽसंयतोऽविरतो ऽप्रतिहतप्रख्यातपापकर्मा सक्रियः सावद्यानुष्ठानस्तथानूतश्चासंवृतोमनोवाक्कायैरगुप्तो गुप्तत्वाच्चात्मनः परेषां च दंडहेतुत्वादंडस्तदेवंनूतश्च सन् एकांतेन बालवद्वालः सुप्तवदेकांतेन सुप्तस्तदेवंनूतश्च बालसुप्ततयाऽविचाराख्यविचारितरमणीयानि परमार्थविचारगुणया युक्त्या वा विघटमानानि मनोक्कायवाक्यानि यस्य स तथा। यदिवा परसंबंध्यविचारितमनोवाक्कायवाक्यः सत्क्रियासु प्रवर्त्तते तदेवंनूतोनिर्विवेकतया पटुविज्ञानरहितः स्वप्नमपि न पश्यति तस्य चाव्यक्तविज्ञानस्य स्वप्नमप्यपश्यतः पापं कर्म बध्यते तेनैवंनूतेनाव्यक्तविज्ञानेनापि पापं कर्म क्रियतइति नावः ॥ १ ॥

तब चोयए पन्नवगं एवं वयासि असंतएणं मणेणं पावयणं असंतियाए वतीयाए पावियाए असंतएणं काएणं पावएणं अहणंतस्स अमणस्कस्स अ वियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अप्पस्सउ पावकम्मे णो कज्जइ कस्सणं तंहेउं चोयए एवं बवीति अन्नयरेणं मणेणं पावएणं मणवत्तिए पावे कम्मे कज्जइ अन्नयरीए वत्तिए पावियाए वत्तिवत्तिए पावे कम्म कज्जइ अन्नयरेणं काएणं पावएणं कायवत्तिए पावे कम्मे कज्ज

कारणेन तत्पापं कर्म बध्यते।? नात्र कश्चिदव्यक्तविज्ञानत्वात्पापं कर्म बंधहेतुरिति भावः। तदेवं चोदकएव स्वाभिप्रायेण पापकर्मबंधहेतुमाह।(अन्नयरेणमित्यादि) कर्माश्रवद्वारभूतैर्मनोवाक्कायकर्मभिः कर्म बध्यत इति दर्शयति। अन्यतरेण क्लिष्टेन प्राणातिपातादिप्रवृत्त्या मनसा वाचा कायेनच तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्यतइति।इदमेव स्पष्टतरमाह। अतस्सत्वान्समनस्कस्य समनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमपि पश्यतः अस्पष्टविज्ञानस्यैतद्गुणजातीयस्य पापं कर्म बध्यते न पुनरेकेंद्रियविकलेंद्रियादेः पापकर्मसंभवइति तेषां घातकस्य मनोवाक्कायव्यापारस्याभावात्। अथैतद्व्यापारमंतरेणापि कर्मबंधइष्यते एवंच सति मुक्तानामपिकर्मबंधः स्यात्। न चैतदिष्यते। तस्मान्नैव स्वप्नांतिकमविज्ञोपचितं कर्म बध्यतइति। तत्र यद्येवंभूतैरेव मनोवाक्कायव्यापारैः कर्मबंधोऽभ्युपगम्यते तदेवं व्यवस्थिते सति ये ते एवमुक्तवंतस्तद्यथा विद्यमानैरेवा शुभैर्योगैः पापं कर्म क्रियते मिथ्या तएवमुक्तवंतइति स्थितं॥२॥

तत्थ पन्नवए चोयगं एवं वयासी तं सम्मं जं मए पुव्वेवुत्तं असंतएणं मणेणं पावएणं असंतियाए वत्तिए पावियाए असंतएणं काएणं पावएणं अहणंतस्स अमणक्खस्स अवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सओ पावे कम्मे कज्जति तं सम्मं कस्सणं तं हेउं आचार्या आह तत्थ खलुभगवया छजीवणिकायहेऊपण्णत्ता तं जहा पुढविकाइया जाव तसकाइया इच्चेएहिं छहिं जीवणिकाएहिं आया अपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे निच्चं पसढविओवातचित्तदंडे तं जहा पाणातिवाए जाव परिग्गहे कोहे जाव मिच्छादंसणसल्ले ॥ ३ ॥

अर्थ—एवुं शिष्यें अचार्यना पक्षने दूषण आप्युं, (तत्थ के०) तेवारें (पन्नवएचोयगं के०) आचार्य पोताना शिष्यप्रत्यें (एवंवयासी के०) एवुं बोल्या के,अहो शिष्य! (तंसम्मं जंमएपुव्वेवुत्तंके०) जे में पूर्वे वचन कह्युंके जे मन,वचन, अनें कायानी प्रवर्त्ति विना पण पाप कर्म लागे ते सत्यछे. इत्यादि पाठनो अर्थ सुजन्न छे माटें नथी लख्यो. (तं सम्मं के०) ते सत्य जाणजे,युक्तिसहित जाणजे. एवुं आचार्यनुं वचन सांभली, फरी शिष्य बोल्यो के, (कस्सणंतंहेउं के०) शे कारणे तमारुं वचन सत्य छे ते कहो.? हवे (आचार्याआह के०) आचार्य कहेछे. (तत्थखलुभगवया के०) त्यां खलु ए वाक्यालंकारे भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामी तेणें (छजीवणिकायंहेऊपण्णत्ता के०) छ जीव निकाय कर्मबंधनां कारण कह्यांछे, (तंजहा के०) ते कहेछे. (पुढविकाईया के०) पृथिवीकाय थकी मांमीने (जावतसकाइया के०) यावत् त्रसकाय पर्यंत, (इच्चेएहिंछहिंजीवणिकाएहिं के०)

जातिने यथायोग्यें पापकर्म लागे, बंधाय. (पुणरविचोयएएवंबवीति के०) वली पण नोदक शिष्य, आचार्य प्रत्यें एम कहेछे. (तबणंजेतेएवमाहंसु के०) त्यां जे, ते एम कहेछे के, (असंतएणंमणेणंपावएणं के०) पापकर्मने विषे अछते मनें, (अ संतीयाएवत्तिएपावियाए के०) पापकर्मनें विषे अछते वचने, (असंतएणंकाएणंपाव एणं के०) पापकर्मने विषे अछते कायायें करी, एटलें पापकर्मने विषे मन, वचन, अने कायाने अणप्रवर्त्तावतो. तथा (अहणंतस्सअमणस्कस्सअवियारमणवयणकायवक्क स्सके०) अण हणतानें पाप उपर मन परिणाम रहित अणविचास्या मन वचन अने कायानें विषे, तेणें करी सहित. (सुविणमविअपस्सउपावेकम्मेकज्जइ के०) स्वप्नांत रें पण पापकर्म करवाने विषे, बांधवाने विषे, अणदेखतो एवो जे होय ते पण पापक र्म बांधे, (तबणंजेते के०) त्यां जे ते (एवमाहंसु के०) एम कहेछे. (मिछातेएव माहंसु के०) ते मिथ्या एटले जुठूं कहेछे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–एवं स्थिते शिष्यः प्रज्ञापकमाचार्यमेवमवादीत् अथवा आचार्याभिप्रायं शिष्योऽनूद्य निषेधति । (असंतएणमित्यादि) असता अविद्यमानेन मनसाऽप्रवृत्तेनाऽ शोजनेन तथा वाचा कायेनच पापेनाऽसता तथा सत्वान् घ्नतः अमनस्कस्याविचारमनो वाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमप्यपश्यतः स्वप्नांतिकं च कर्म नोपचयं यातीत्येवं अव्यक्तविज्ञा नस्यापि पापं कर्म न बध्यते । कस्य हेतोः केन कारणेन तत्पापं कर्म बध्यते? । नात्र कश्चिद्व्यक्तविज्ञानत्वात्पापं कर्म बंधहेतुरित्यर्थः । तदेवं शिष्यएव स्वाभिप्रायेण पापक र्मबंधहेतुमाह । (अन्नयरेणंति) कर्माश्रवद्वारभूतेन मनोवाक्कायानामन्यतरेण क्लिष्टेन तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्यते तथा घ्नतः सत्वान् समनस्कस्य सविचारमनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमपि पश्यतः स्पष्टविज्ञानस्य एवं गुणजातीयस्य पापं कर्म बध्यते न पुनरेकेंद्रियवि कलेंद्रियादेः पापकर्मसंभवइति । तेषां घातकस्य मनोवाक्कायव्यापारस्याभावात् । तस्मा न्नैव स्वप्नांतिकमविज्ञोपचितं कर्म विद्यतइति । एवं सति ये ते एवमुक्तवंतस्तद्यथा । विद्य मानैरेवाशुभैर्योगैः पापं कर्म क्रियते मिथ्या ते एवमुक्तवंतइति ॥ २ ॥

॥ टीका–तत्र चैवं व्यवस्थिते चोदकः प्रज्ञापकमेवमवादीत् । अत्र चाचार्याभिप्रायं चोदकोऽनूद्य निषेधयति । (असंतएणमित्यादि) अविद्यमानेनाऽसताऽमनसाऽसत्प्रवृत्तेनाऽ शोभनेन तथा वाचा कायेनच पापेनाऽसता तथा सत्वान् घ्नतस्तथा मनस्कस्याविचारमनो वाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमप्यपश्यतः स्वप्नांतिकंच कर्म नोपचयं यातीत्येवमव्यक्तविज्ञानस्यापि पापं कर्म न बध्यते एवंभूतविज्ञानेन पापं न क्रियतइति यावत् । कस्य हेतोः केन हेतुना केन

पापं कर्म येन सतथा पुनर्नञ्समासेनाऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा यश्चात्मा जंतुस्तथा तद्भवत्वादेव नित्यं सर्वकालं प्रकर्षेण शठस्तथा व्यतिपाते प्राणव्यपरोपणे चित्तं यस्य स व्यतिपातचित्तः स्वपरदंमहेतुत्वाद्दंमः प्रशठश्चासौ व्यतिपातचित्तदंमश्चेति कर्मधारयः। इत्येतदेव प्रत्येकं दर्शयितुमाह (तंजहेत्यादि) तद्यथा प्राणातिपाते विधेये प्रशठचित्तदंमएवं मृषावाददत्तादानमैथुनपरिग्रहेष्वपि वाच्यं यावन्मिथ्यादर्शनशल्यमिति । तेषामिहैकेंद्रियविकलेंद्रियादीनामनिवृत्तत्वान्मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगानुगतत्वं इष्टव्यं। तद्भावाच्च ते कथं प्राणातिपातादिदोषवत्तया व्यक्तविज्ञानाश्चपि स्वप्नाद्यवस्थायामिति ते कर्मबंधकाएव। तदेवं व्यवस्थिते यत्प्रागुक्तं परेण यथा नाव्यक्तविज्ञानानामघ्नताममनस्कानां कर्मबंधइत्येतत् प्लवते ॥ ३ ॥

आचार्यआह तत्र खलु भगवया वहए दिठंते पसत्ते से जहा णामए वहए सिया गाहावइस्सवा गाहावइपुत्तस्सवा रस्रोवा रायपुरिसस्सवा खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणंलक्षूणं वहिस्सामि पहारेमाणे से किंतु हुनाम से वहए तस्स गाहावइस्सवा गाहावइपुतस्सवा रस्रोवा रायपुरिसस्सवा खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणं लक्षूणं वहिस्सामि पहारेमाणे दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभुत्ते मिछासंठित्ते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे भवति एवं वियागरेमाणे समियाए वियागरे चोयए हंता भवति ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे आचार्य एनी उपर दृष्टांत कहेछे. (तत्थखलुभगवया के०) त्यां निश्चें भगवंत श्री महावीर देवें (वहएदिठंते के०) वधकनो दृष्टांत (पसत्ते के०) कह्यो छे. (सेजहाणामए के०) ते जेम नाम एवी संभावनायें कोइ एक पुरुष, (वहएसिया के०) वधक होय ते कोइ एक कारणें कोप्यो थको, (गाहावइस्सवा के०) गृहपति उपर, तथा (गाहावइपुत्तस्सवा के०) गृहपतिना पुत्र उपर, अथवा (रस्रोवा के०) राजा उपर, (रायपुरिसस्सवा के०) अथवा राजानो पुरुष, तेओनो विनाश करवा वांछतो, एवी चिंतवना करे के, (खणंनिद्दाए के०) अवसर पामिने, एना घरमां (पविसिस्सामि के०) प्रवेश करीश (खणंलक्षूणंवहिस्सामि के०) छिद्रादिक पामिनें अथवा देखीने एने हणीश. (पहारेमाणे के०) ते पुरुष एम चिंतवतो, (सेकिंतुहुनामसेवहए के०) ते केवो जाणवो? तु अवधारणे छे नाम संभावनायें छे. तो के, ते वधक कहियें. हवे ते वधक गृहपतिनो, अथवा गृहपतिना पुत्रनो, अथवा राजानो, अथवा राजपुरुषनो, वध

ए ठ जीव निकायने विषे, (आयाअपडिहयपच्चरकायपावकम्मे के०) आत्मा सर्व काल अप्रतिहत एटले हण्यां नथी पच्चरकाणें करी पापकर्म जेणे एवो, तथा (निच्चंपसढविउ वातचित्तदंम्मे के०) नित्य शठ एटले जड जेवो, एनो परमार्थ जाणे नहीं, प्राणघातने विषे चित्तछे जेनुं ते कारणे प्राणीउने दंमनो करनार जाणवो. (तंजहा के०) ते क हेछे (पाणातिवाए के०) प्राणातिपात आदें देइने, (जावपरिग्गहे के०) मृषावाद, अ दत्तादान, मैथुन, यावत् परिग्रह, अने (कोहे के०) क्रोध थी मांमीने, (जावमिछादं सणसल्ले के०) यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य ए अढार पापस्थानकने विषे अनिवृत्ति छे एटले अढार पापस्थानक थकी निवृत्या नथी, ते कारण माटें एकेंड्रियादिक जीवोने पण अपच्चरकाणी क्रियानो बंध लागे छे. ॥ ३ ॥

॥ दीपिका—एवमाचार्यपक्षं दूषयित्वा नोदकेन स्वपक्षे स्थापिते आचार्य आह । तत्र पन्नवएति) आचार्यः स्वमतमनूद्य युक्त्या साधयति (तंसम्मंति) तत्सम्यक् यन्मयोक्तं अव्यक्तयोगानामपि कर्म बध्यतइति तद्युक्तं । एवमुक्ते शिष्यआह । कस्य हेतोः केन का रणेन तत्सम्यक् गिति चेदाह । (तत्रखलु इत्यादि) तत्र भगवता षड्जीवनिकायाः कर्मबंध हेतुत्वेन स्थापिताः । तद्यथा । पृथिवीकायिकाइत्यादि । इत्येतैः षड्जीवनिकायैरात्मा प्रतिहतं विघ्नितं प्रत्याख्यातं नियमितं पापं कर्म येन स तथा जीवेषु विरतः एवंभूतोन स अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नित्यं प्रकर्षेण शठः प्रशठः व्यतिपाते हिंसायां चित्तं यस्य स व्यतिपातचित्तः स्वपरदंमहेतुत्वादंमः प्रशठश्चासौ व्यतिपातचित्तदंमश्चेति । तद्यथा प्राणातिपाते विधेये प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः । एवं मृषावादादिष्वपि वाच्यं यावन्मि थ्यादर्शनशल्यं । तदेवमेकेंड्रियविकलेंड्रियाअपि हिंसादिदोषवत्तया मिथ्यात्वाविरतिप्रमा दकषाययोगाश्रितत्वेन अस्वप्नाद्यवस्थायामपि कर्मबंधइति तन्निरस्तं ज्ञेयम् ॥ ३ ॥

॥ टीका—तदेवं चोदकेनाचार्यपक्षं दूषयित्वा स्वपक्षव्यवस्थापिते सत्याचार्य आह (तत्रपन्नव इत्यादि) तत्राचार्यः स्वमतमनूद्य तस्योपपत्तिकं साधयितुमाह । (तंसम्म मित्यादि) यदेतन्मयोक्तं प्राग् यथा स्पष्टाव्यक्तयोगानामपि कर्म बध्यते तत्सम्यक् शोभनं युक्तिसंगतमित्येवमुक्ते परआह । कस्य हेतोः केन कारणेन तत्सम्यगिति चेदाह (तत्रखलु इत्यादि) तत्रेति वाक्योपन्यासार्थे । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । भगवता वीरवर्द्धमानस्वा मिना षड्जीवनिकायाः कर्मबंधहेतुत्वेनोपन्यस्ताः । तद्यथा पृथिवीकायिकाइत्यादि या वत्त्रसकायिकाइति । कथमेते षड्जीवनिकायाः कर्मबंधस्य कारणमित्याह (इच्चेएहिं मित्यादि) इत्येतेषु पृथिव्यादिषु षड्जीवनिकायेषु प्रतिहतं विघ्नितं प्रत्याख्यातं नियमितं

प्यात्मनो ऽवसरं लब्ध्वाऽपरकार्यक्षणे सति तथा वध्यस्यच छिद्रमपेक्षमाणस्तदवसरा पेक्षी किंचित्कालमुदास्ते सच तत्रौदासीन्यं कुर्वाणोऽपरकार्यं प्रति व्यग्रचेताः संस्तस्मि न्नवसरे वधं प्रत्यस्पष्टविज्ञानोनवति । सचैवंनूतोपि तथा तं वध्यं प्रति नित्यमेव प्रशठ व्यतिपातचित्तदंमोनवत्येवमविद्यमानैरपि प्रव्यक्तैरशुनैर्योगैरेकेंड्रियविकलेंड्रियादयोऽस्पष्ट विज्ञानाअपि मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगानुगतत्वात्प्राणातिपातादिदोषवंतोनवंति । नच तेऽवसरमपेक्षमाणाउदासीनाअप्यवैरिणोन नवंतीति । अत्रच वध्यवधकयोः क्ष णापेक्षया चत्वारोनंगाः । तद्यथा । वध्यस्याऽनवसरोवधकस्य च उनयोर्वाऽनवसरो द्व योरप्यवसरइति । नागार्जुनीयास्तु पठंति । अप्पणो अरकाणया एतस्सवा पुरिसस्स छिदं अलनमाणे णोवहे इतं जयामेरकणो नविस्सइ तस्स पुरिसस्स छिदं लनिस्सामि तया मेस पुरिसे अवस्सं वहयव्वे नविस्सइ एवं मणोपहारे माणेत्ति सूत्रं निगदसिद्धं ॥ ४ ॥

आचार्यआह जहासे वहए तस्स गाहावइस्सवा तस्स गाहावइपुत्त स्सवा रम्नोवा रायपुरिसस्स खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणं लद्धूणं वहिस्सामित्ति पहारेमाणे दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमि त्तनूए मिह्रासंठित्ते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे एवमेव बालेवि सवेसिं पाणाणं जाव सवेसिं सत्ताणं दियावा राउवा सुत्तेवा जागरे माणेवा अमित्तनूए मिह्रासठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे तं पाणाति वाए जाव मिह्रादंसणसल्ले एवंखलु नगवया अरकाए असंजए अवि रए अप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे एगंतबाले एगंतसुत्तेयावि नवइ से बाल अवियारमणवयणकायवक्के सुविणम विणपस्सइ पावेय से कम्मे कज्जइ ॥ ५ ॥

अर्थ—तेवारें अचार्य बोल्या के, अहो शिष्य ! जेम ते वधक पुरुष, ते गृहपति, तथा गृहपतिना पुत्र, अथवा राजा, तथा राज पुरुष उपर विनाशनो नाव चिंतवतो प डो, तेमना विनाशनी क्रिया कस्या विना पण ते वधक कहेवाय; बीजा पदोनो अर्थ सु गम छे माटें आहीं लख्यो नथी. (एवमेव के०) एम ते, (बालेवि के०) बाल जीव पण, सर्व प्राणीने विषे यावत् सर्व सत्व, तेनो दिवसें अथवा रात्रियें सुतां अथवा जागतां, अमित्रनूत एटले शत्रुनूत मिथ्यात्वसंस्थित निरंतर शठ,प्राणिघातने विषे चित्त छे जेनुं, प्राणीयोने दंम कारक, (तं के०) ते कहेछे. प्राणातिपात मृषावादथी मांमी

चिंतवतो अवसर पामिने, तेना घर मांहें प्रवेश करीश, अवसर देखीने तेने हणीश, एम चिंतवतो, दिवसें अथवा रात्रीयें सुतो, अथवा जागतो, अमित्रभूत मिथ्यामित्र पणामां संस्थित एटले माठा कार्यने विषे रह्यो, (निच्चंपसढ के०) नित्यज प्रशठ एट ले एनो परमार्थ जाणे नहीं. (विऊवायचित्त के०) प्राणिघात तेने विषे जेनुं चित्तछे ते कारणे, (दंमेजवति के०) प्राणीउने दंमनो करना होय, ते पुरुष जीवनो विनाश न करतो थको पण वधक कहेवाय, किंवा न कहेवाय ? (एवंवियागरेमाणे के०) एरीतें आचार्यें कहे छते, (समियाएवियागरेचोयएहंताभवति के०) शिष्य बोल्यो के, हे भग वन् ! ए तमें सत्य बोल्या. ते वधक कहेवाय ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–अथाचार्यः स्वमतसिद्धये दृष्टांतमाह । (तछखलुइत्यादि) तत्र खलु भगवता वधकदृष्टांतः प्रज्ञप्तः । तद्यथानाम कश्चिद्वधकः स्यात् गृहपतेर्गृहपतिपुत्रस्य वा राज्ञोराजपुरुषस्य वा उपरि कुतश्चिन्निमित्तात्कुपितः सन् क्षणमवसरं निदाय प्राप्य गृहे पुरे वा घाताय प्रवेक्ष्यामि क्षणमवसरं छिद्रादिकं लब्ध्वा वध्यं हनिष्यामीति संप्रधा रयन् दिवा रात्रौ वा सुप्तोवा जाग्रद्वा मित्रभूतोमिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्त दंमोहिंसाध्यवसायी भवति । अयमर्थः । कोऽपि कस्यापि गृहपत्यादेरुपरि कुपितस्तं हं तुकामोपि यावदवसरं छिद्रं न लभते तावत्कार्यांतरे प्रवृत्तोपि हिंसामकुर्वन्नपि वध्यस्य हिंसावसरापेक्षी नित्यं रागद्वेषाकुलः स्यात् । एवमेकेंद्रियविकलेंद्रियाअपि विरतेरभा वात्तदयोग्यतया हिंसामकुर्वंतोपि तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यंतएवेत्यर्थः ॥ ४ ॥

॥ टीका–सांप्रतमाचार्यः स्वपक्षसिद्धये दृष्टांतमाह । (तछखलुभगवयाइत्यादि) त त्रेति वाक्योपन्यासार्थः । खलु शब्दोवाक्यालंकारे । भगवतैश्वर्यादिगुणोपेतेन चतुस्त्रिंश दतिसमयसमन्वितेन तीर्थकृता वधकदृष्टांतः प्रज्ञप्तः प्ररूपितस्तद्यथा नाम वधकः कश्चि त्स्यादिति कुतश्चिन्निमित्तात्कुपितः सन् कस्यचिद्वधपरिणतः कश्चित्पुरुषोभवति । य स्यासौ वधकस्तं विशेषेण दर्शयितुमाह । (गाहावइस्सवेत्यादि) गृहस्य पतिर्गृहपति स्तत्पुत्रोवाऽनेन सामान्यतः प्राकृतपुरुषोऽभिहितस्तस्योपरि कुतश्चिन्निमित्ताद्वधकः कश्चि त्संवृत्तः सच वधपरिणामपरिणतोपि कस्मिंश्चित्क्षणे पापकारिणमेनं घातयिष्यामीति । तथा राज्ञस्तत्पुत्रस्योपरि कुपितएतत्कुर्यादित्याह । (खणंनिहायइत्यादि) क्षणमवसरं (णिहायत्ति) प्राप्य तथाविधस्य पुरे गृहे वा प्रवेक्ष्यामीत्येतदध्यवसायी भवति तथा क्ष णमवसरं छिद्रादिकं वध्यस्य लब्ध्वा तदुत्तरकालं तं वध्यं हनिष्यामीत्येवं संप्रधारयति। एतदुक्तं भवति । गृहपतेः सामान्यपुरुषस्य राज्ञोवा विशिष्टतमस्य कस्यचिद्वधपरिणतो

(एवमेवेत्यादि) एवमेवेति यथासौ वधकोऽवसरापेक्षितया वध्यस्य व्यापत्तिमकुर्वाणो ऽप्यमित्रभूतोभवत्येवमेवासावपि बालवद्बालोऽस्पष्टविज्ञानोभवत्येव निवृत्तेरभावाद्योग्य तया सर्वेषां प्राणिनां व्यापादकोभवति यावन्मिथ्यादर्शनशल्योपेतोभवति । इदमुक्तं भ वति । यद्यप्युत्थानादिकं विनयं कुतश्चिन्निमित्तादसौ विधत्ते तथाप्युदायिनृपव्यापादक वदंतर्दुष्टएवेति नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंडश्च यथा परशुरामः कृतवीर्यं व्यापाद्यापि तदुत्तरकालं सप्तवारं निःक्षत्रां पृथिवीं चकार (आहत्ति) "अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तु ष्टिमुपैति शक्तिमान् ॥ अधिकां कुरुतेऽरियातनां, द्विषतां मूलमशेषमुद्धरेत् ॥ १ ॥ इत्ये वमसावमित्रभूतोमिथ्याविनीतश्च भवतीति । सांप्रतमुपसंहरन् प्राक् प्रतिपादितमर्थमनु वदन्नाह । (एवंखलुभगवयाइत्यादि) यथासौ वधकः स्वपरावसरापेक्षी सन्न तावद्घात यत्यथवा निवृत्तत्वाद्दोषदुष्टएव एवमसावप्येकेंद्रियादिकोऽस्पष्टविज्ञानोपि तथाभूतएवावि रताप्रतिहतप्रत्याख्यातसत्क्रियादिदोषदुष्टइति । शेषं सुगमं । यावत्पापं कर्म क्रियतइति॥५॥

जहा से वहए तस्सवा गाहावइस्स जाव तस्सवा रायपुरिसस्स पत्तेयं प त्तेयं चित्तसमादाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूते मिछासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंडे भवइ एवमेव बाले सव्वे सिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमादाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूते मिछासंठिते निच्चं पसढ विउवायचित्तदंडे भवइ ॥ ६ ॥

अर्थ-(जहासेवहए के०) जेम ते वधक पुरुष, ते गृहपत्यादिक उपर प्रत्येक प्रत्ये क चित्तें करी विनाश चिंतवतो, दिवसें रात्रियें सुतो, जागतो थको अमित्रभूत एटले शत्रु समान मिथ्यात्व संस्थित निरंतर शठ प्राणघातने विषे चित्तछे जेनूं माटें, प्राणीयोने दंडनो करनार होय. तेने पापकर्म बंधाय. (एवमेव के०) एमज ए बाल जे एकेंद्रिया दिक जीवो छे ते पण सर्व प्राणी, सर्वभूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, तेने विषे अविरति प णाने भावें ते सर्वने विषे प्रत्येक प्रत्येक चित्तें करी विनाश चिंतवतो, दिवसने विषे, रात्रिने विषे, सुतो, जागतो, अमित्र भूत मिथ्यात्व संस्थित, निरंतर शठ, प्राणिघातने विषे चि त्तछे जेनूं, प्राणीयोने दंडनो करनार होय, एम बोलाय. ते कारणें तेने पापकर्म बंधाय॥६॥

॥ दीपिका-तदेवं पूर्वोक्तार्थनिगमनं कृत्वाऽधुना स सर्वप्राणिनां दुष्टात्मा स्यादिति दर्शयति । यथासौ वधकोगृहपत्यादेः प्रत्येकं सर्वेषु वध्येषु घातकचित्तं समादाय प्राप्ताव सरोऽहमेनं हनिष्यामीति कृत्वा दिवा रात्रौवा सुप्तोजाग्रद्वा सर्वावस्थासु सर्वप्राणि

ने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य, एवा अढारे पापस्थानकने विषे अनिवृत्त बतो होय. एम निश्चें जगवंतें कह्युंबे, तेम असंयति अविरति अप्रतिहत एटले पच्चरकाणें करीने पाप कर्म जेणें हण्यां नथी, क्रिया सहित संवर रहित एकांत दंमनो आपनार, एकांत बाल, एकांत शयन करनार होय. ते बाल, अविचारवालां, एवां मन वचन अने काया तेणें करी सहित बतो जे पाप स्वप्नांतरमां पण देखे नहीं. एवां पापकर्मनुं बंधन करे. एम अविरतिपणायें करी तेने पापकर्म लागे ॥ ५ ॥

॥ दीपिका–अथाचार्यएव स्वाभिमतार्थं परप्रश्नपूर्वमाह । (सेकिंतुइत्यादि) आचार्यः स्वयं निर्णीतार्थोपि ईर्ष्यया परं पृच्छति किमसौ वधकपुरुषोहननावसरापेक्षी नित्यं हिंसानुगतचित्तः स्यात्किंवा न? इति पृष्टं परः समतया मध्यस्थः सन् यथास्थितमेव व्यागृणीयात् कथयेत् । तद्यथा हंताचार्यजवत्यसौ अमित्रजूतइति ॥ अथ दार्ष्टांतिकं दर्शयति । (जहासत्ति) यथासौ वधकइत्यादिना दृष्टांतमनूद्य दार्ष्टांतिकं दर्शयति । (एवमेवेत्यादि) यथासौ वधकोऽवसरापेक्षी वध्यस्य हिंसामकुर्वाणोपि अमित्रजूतोजवति एवमसावपि बालो ऽस्पष्टविज्ञानोनिवृत्तेरजावाद्योग्यतया सर्वेषां प्राणिनां हंता स्यात् यावन्मिथ्यादर्शनशल्योपेतः स्यात् । कोर्थः । यद्यपि विनयादिकं कुतश्चित्कारणादसौ विधत्ते तथापि उदायिनृपमारकवदंतर्डुष्टएव नित्यं हिंसानुगतचित्तश्च । यथा परशुरामः कृतवीर्यं हत्वापि ततः सप्तवारं निःक्षत्रां पृथिवीं चकार । यदुक्तं । "अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान् ॥ अधिकां कुरुतेऽरियातनां द्विषतां मूलमशेषमुद्धरेत्" ॥ १ ॥ एवमसावपि अमित्रजूतः स्यादिति । अथ पूर्वोक्तार्थमनुवदन्नुपसंहरति । (एवंखलुजगवयाइत्यादि) यथा वधकोऽनिवृत्तत्वाद्दुष्टएवमेकेंद्रियादिकोऽस्पष्टविज्ञानोपि अविरतत्वाद्दुष्टएवेति । शेषं सुगमं । यावत्पापं कर्म क्रियतइति ॥ ५ ॥

॥ टीका–सांप्रतमाचार्यएव स्वाभिप्रेतमर्थं परप्रयत्नपूर्वकमाविर्जावयन्नाह । (सेकिंतुहुइत्यादि) आचार्यः स्वतोहि निर्णीतार्थोऽसूयया परं पृच्छति । किमिति परप्रश्ने । तुरिति वितर्के । हुशब्दोवाक्यालंकारे । किमसौ वधकपुरुषावसरापेक्षी बिड्मवसरं प्रधारयन् पर्यालोचयन्नहर्निशं सुप्तोजाग्रदवस्थोवा तस्य गृहपतेराज्ञोवा वध्यस्यामित्रजूतोमिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोजवत्याहोस्विन्नेत्येवं पृष्टः परः समतया माध्यस्थ्यमवलंब्यमानोयथावस्थितमेव व्यागृणीयात् । तद्यथा हंताचार्यजवत्यसावमित्रजूतइतीत्यादि ॥ तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं दर्शयितुमाह(जहासेवहएइत्यादि) यथासौ वधकइत्यादिना दृष्टांतमनूद्य दार्ष्टांतिकमर्थं दर्शयितुमाह ।

यनप्रतिपादकानि यथाविधिसूत्राणि विभागतः प्रदर्श्याधुना प्रतिज्ञाहेत्वोः पुनर्वचनं निगमनमित्येतत्प्रतिपादयितुमाह । जहा से वहए तस्सवागाहावइस्स इत्यादि यावन्निच्चं पसढविउवायचित्तदंमेत्ति) एतानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमान्यर्थतः सूत्रैः प्रदर्शितानि । प्रयोगस्त्वेवं द्रष्टव्यः । तत्राप्रतिहतप्रत्याख्यातक्रियआत्मा पापानुबंधीति प्रतिज्ञा सदा षड्जीवनिकायेषु प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वादिति हेतुः स्वपरावसरापेक्षितया कदाचिदव्यापादयन्नपि राजादिवधकवदिति दृष्टांतः । यथासौ वधपरिणामादनिवृत्तत्वा द्वध्यस्यामित्रभूतस्तथाऽत्माऽपि विरतेरभावात्सर्वेष्वपि सत्वेषु नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमइत्युपनयः । यतएवं तस्मात्पापानुबंधीति निगमनम् । एवं मृषावादादिष्वपि पंचावयवत्वं योजनीयमिति । केवलं मृषावादादिशब्दोच्चारणं विधेयं तच्चानेन विधिना नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वात्तथा नित्यं प्रशठादत्तादानचित्तदंमत्वादिति ॥ ६ ॥

णो इणठे समठे चोदक इह खलु बहवे पाणा जे इमेणं सरीरसमणुस्सएणं णो दिठावा सुयावा नाभिमयावा विन्नायावा जेसिं णो पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमायाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूते मिछासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे तं पाणातिवाए जाव मिछादंसणसल्ले ॥ ७ ॥

अर्थ–एम गुरुयें कहे थके, हवे (चोदक के०) शिष्य बोल्योके, हे भगवन्! तमे जे अर्थ कह्यो, ते योग्य नथी (णोइणठेसमठे के०) ते अर्थ समर्थ नथी, तेनूं कारण कहेछे. (इहखलु के०) आ चउदरज्ज्वात्मक लोकमांहें (बहवेपाणा के०) अनंता प्राणीछे (जेइमेणंसरीरसमणुस्सएणं के०) जे आ शरीरें करी, समुणस्सए एटले पुरुषें करी, जीवें दृष्टियें करी कदाचित् कोइ वारें पण (णोदिठावा के०) दीठा नथी, (सुयावा के०) कानें सांभल्या नथी, (नाभिमयावा के०) उंजख्या पण नथी, अथवा (विन्नायावा के०) विशेषें करी, जाण्या पण नथी, (जेसिंणोपत्तेयंपत्तेयंचित्तसमायाए के०) जेणे ए कारणे प्रत्येक प्रत्येक चित्तें करीने ए जीवोनो विनाश चिंतव्यो नथी तो दिवसने विषे, रात्रीने विषे, सुतां, जागतां, अमित्रभूत मिथ्यासंस्थित निरंतर शठ प्राणिना घातनेविषे चित्तछे जेनूं प्राणीने दंमकारक ते केम केहेवाय? अने प्राणातिपात थकी मांमीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य सुधी अढारे पापस्थानकने अण करवाथी तेने कर्मनुं बंधन केम लागे? एतावता तेनें नज लागे. ॥ ७ ॥

॥ दीपिका–एवं षड्जीवनिकायेषु प्रत्येकं अमित्रभूततया पापानुबंधित्वे दर्शिते

नां प्रत्येकममित्रनूतोघ्नन्नपि मिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंम्नोनवति । एवं बालकएकेंड्रियादिरपि सर्वप्राणिनां विरतेरनावात्प्रत्येकं घातकचित्तं समादाय नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंम्नः स्यात्तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यतइति ॥ ६ ॥

॥ टीका—तदेवं दृष्टांतदार्ष्टांतिकप्रदर्शनेन पूर्वप्रतिपादितार्थस्य निगमनं कृत्वाऽधुना सर्वेषामेव प्रत्येकं प्राणिनां डुष्टात्मा नवति इत्येतत्प्रतिपादितुकामआह ।(जहासेवहएइत्यादि) यथाऽसौ वधकः परात्मनोरवसरापेक्षी तथास्य गृहपतेस्तत्पुत्रस्य वाऽन्यहितस्य वा राजादेस्तत्पुत्रस्य चैकमेकं पृथक् पृथक् सर्वेष्वपि वध्येषु घातकचित्तं समादाय प्राप्तावसरोऽहमेनं वैरिणं मद्धाधिविधायिनं पातयिष्यामीत्येवं प्रतिज्ञाय दिवा रात्रौ वा सुप्तोवा जाग्रद्वा सर्वाप्यवस्थासु सर्वेषामेव वध्यानां प्रत्येकममित्रनूतोऽवसरापेक्षितया घ्नन्नपि मिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंम्नोनवति इति रागद्वेषाकुलितोबालवद्बालोज्ञानावृतएकेंड्रियादिरिति । सर्वेषामेव प्राणिनां विरतेरनावात्तद्योग्यतया प्रत्येकं वध्येषु घातकचित्तं समादाय नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंम्नोनवतीति । इदमुक्तं नवति । यथासौ तस्माद्गृहपतीराजानुघाताडुपशांतवैरः कालावसरापेक्षितया वधमकुर्वाणोप्यविरतिसद्भावाद्वैरान्न निवर्त्तते तत्प्रत्ययिकेनच कर्मणा बध्यते । एवं मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहेष्वपि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनार्थविधानेन पंचावयवत्वं वाच्यमिति । इहैव पंचावयवस्य सूत्राणां विनागोड्रष्टव्यः । तद्यथा । आया अपच्चरकाणीयावि नवतीत्यतआरन्य यावत्पावेयसे कम्मे कज्जइत्ति इतीयं प्रतिज्ञा । तत्र परः प्रतिज्ञामात्रेणोक्तमनुक्तसममिति कृत्वा चोदयति । तद्यथा । तछ चोयए पन्नवगं एवं वयासीत्यतआरन्य यावज्जंते एवमाहिंसुमिझंते एवमाहिंसुत्ति । तत्र प्रज्ञापकश्चोदकं प्रत्येवं वदेत् । तद्यथा । यन्मया पूर्वं प्रतिज्ञातं तत्सम्यक् कस्य हेतोः केन हेतुनेतिचेत् तत्र हेतुमाह । तछ खलु नगवया छजीवनिकाया हेऊपन्नत्ताइत्यतआरन्य यावमिछादंसणसल्लेइत्ययं हेतुः । तदस्य हेतोरनैकांतिकत्वव्युदासार्थं स्वपक्षे सिद्धिं दर्शयितुं दृष्टांतमाह । तद्यथा । खलु नगवया वहए दिछंते पन्नत्ते इत्येतदारन्य यावत्तस्याखणं लद्धूणं वहिस्सामीति पहारमाणेत्ति । तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य तत्र च हेतोः सत्तां स्वानिप्रेतां परेण नणयितुमाह । से किंतुहुणाम से वहए इत्यादेरारन्य यावद्भंता नवति । तदेवं हेतोर्दृष्टांते सत्वं प्रसाध्य हेतोः पक्षधर्मत्वं दर्शयितुमुपनयार्थं दृष्टांतधर्मिणि हेतोः सत्तां परेणान्युपगतामनुवदति । जहासे वहए इत्यतआरन्य यावन्निच्चं पसढविउवायचित्तदंडेत्ति । सांप्रतं हेतोः पक्षधर्मत्वमाह । एवमेव बालेयवीत्यादीत्यतआरन्य यावत्पावेयसे कम्मे किज्जइत्ति । तदेवं प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपन

जीवनिकाएहिं जाव कारवेइवि से यतेहिं छहिं जीवनिकाएहिं असंजयं अविरयं अप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मेहिं तं पाणातिवाए ते जावमिछादंसणसल्ले एस खलु जगवया अरकाए असंजए अविरए अपडिहयपच्चरकायपावकम्मे सुविणमवि अपस्साउ पावेयसे कम्मे कज्जइ से तं सन्निदिठंतेणं ॥ ८ ॥

अर्थ–हवे एम शिष्यें कह्यानंतर आचार्य कहेछे. (तछखलुजगवयाडवेदिठंतापसत्ता के०) त्यां निश्चे जगवंतें ए अर्थ उपर वे दृष्टांत कह्याछे. ते जेमछे, तेम कहेछे. (तंसन्निदिठंतेय के०) एक संज्ञिदृष्टांत, अने (असन्निदिठंत्तय के०) वीजो असंज्ञिदृष्टांत (सेकितंसंन्निदिठंते के०) त्यां संज्ञिदृष्टांत, कयो ? ते कहेछे (जेइमेसन्निपंचिंदियापज्जत्तगा के०) जे ए प्रत्यक्ष लक्षण संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्ता जीवछे (एतेसिणं के०) तेमांहे कोइ एक (छजीवनिकाएपडुच्च के०) छ जीवनिकाय आश्री एवी प्रतिज्ञा करे, (तं के०) ते छकायनां नाम कहेछे. (पुढवीकायंजावतसकायं के०) पृथिवीकाय यावत् त्रसकाय पर्यंत (सेएगइउ के०) ते कोइ एक पुरुष एवी प्रतिज्ञा करे के, (पुढवीकाएणंकिच्चंकरेइवि के०) पृथिवीकायें करीनज कार्य करीश (करावेइविके०) अने पृथिवीकायें करीज कार्य करावीश, एवो जेने नियमछे (तस्सणंएवंजवइ के०) तेने एम होय ते कहेछे (एवंखलुअहंपुढवीकाएणं के०) एम निश्चें हुं पृथिवीकायें करी (किच्चंकरेमिविकारवेमिवि के०) कार्य करीश, अने वीजानी पासे पण करावीश परंतु (णोचेवणंसेएवंजवइ के०) तेनें निश्चें एवो अनिप्राय नथी के (इमेणवाइमेणवा के०) अमुक अमुक दिशिना, तथा हुं, अमुक अमुक कोइक कालें, अथवा धोले, नीले, पीले, राते, पृथिवीकायें कार्य करीश अथवा अनेक नेद पृथिवीकायनाछे तेमांहेथी अमुक कोइ एक नेदेंज कार्य करीश, ज्यां सुधी एवो अनिप्राय नथी त्यां सुधी तेनें सर्व पृथिवीकायनूं कर्म लागेछे (सेएतेणंपुढवीकाएणंकिच्चंकरेइविकारावेइवि के०) ते पुरुष ते पृथिवीकायें करी पोतें कार्य करे, वीजा पासें कार्य करावे, (सेणंतातोपुढवीकायाउ के०) ते पुरुष ते पृथिवीकायथकी, (असंजय के०) असंयति अनिवृत्त (अविरय के०) अविरति, (अपडिहयपच्चरकाणपावकम्मेयाविजवइ के०) तथा नथी हएयां पच्चरकाणें करीने पापकर्म जेणे एवो छे, (एवंजावतस्सकाएत्तिनाणियव्वे के०) एम यावत् त्रस काय सुधी एटले छए काय आश्री जाणी लेवुं जेने जे कायनी अविरति होय तेने ते कायनुं कर्म लागे. ए रीतें को

परोव्यनिचारं दर्शयति । (णोइणछेइति) नायमर्थः समर्थोयत्सर्वेऽपि प्राणिनः सर्वे षां जीवानाममित्रनूताइति । तत्र परः स्वपक्तसिद्ध्ये युक्तिमाह । इह बहवोऽनंताः प्राणिनः संति येऽमुना शरीरसमुछ्रयेणानेन शरीरेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुषा न श्रुताः कर्णाच्यां नानिमतानेष्टाः । नच विज्ञाताज्ञानेनेति कथं तद्विषयस्तेषु अमित्रनावः स्यात्! । तेषां जीवानां कदाचिदपि विषयमप्राप्तानां कथं वधं प्रति चित्तसमादानं स्यात्!। न चासौ तान् प्रति प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः स्यात्। शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

॥ टीका—तदेवं सर्वात्मना षट्स्वपि जीवनिकायेषु प्रत्येकममित्रनूततया पापानुबंधि त्वे प्रतिपादिते व्यनिचारं दर्शयन्नाह । (णोइणछेसमछेइत्यादि) नायमर्थः समर्थ इति प्रतिपत्तुं योग्यः । तद्यथा । सर्वे प्राणिनः सर्वेषामेव सत्वानां प्रत्येकममित्रनूता इति । तत्रापरः स्वपक्तसिद्ध्ये सर्वेषां प्रत्येकं मित्रानावं दर्शयितुं कारणमाह । इहा स्मिंश्चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके बहवोऽनंताःप्राणिनः सूक्ष्मबादरनेदनिन्नाः संति । यद्येवं ततः किमित्याह । तेच देशकालस्वनावविप्रकृष्टास्तथानूतावहवः संति । ये प्राणिनः सू क्ष्मादिविप्रकृष्टाद्यवस्था अमुना शरीरसमुछ्रयेणेत्यनेनेदमाह । प्रत्यक्तासन्नवाचित्वादिद मनेनावार्ग्दर्शिज्ञानसमन्वितसमुछ्रयेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुषा न श्रुताः श्रवणेंद्रियेण विशे षतोनानिमताइष्टानच विज्ञाता प्रतिनेदज्ञानेन स्वयमेवेत्यतः कथंचित्तद्विपर्ययस्तस्य मित्र नावः स्यात् अतस्तेषां कदाचिदविज्ञातानां कथं प्रत्येकं वधं प्रतिचित्तसमादानं न नवति । न चासौ तान् प्रति नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवतीति शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

आचार्यआह तछ खलु नगवया डुवेदिठंता पस्रत्ता तं सन्निदिठंतेय असन्निदिठंतेय से किंतं सन्निदिठंते जे इमे सन्निपंचिंदिया पज्जत्तगा ए तेसिणं ठजीवनिकाएं पडुच्चं तं पुढवीकायं जाव तसकायं से एगइउ पुढवी काएणं किच्चं करेइवि कारावेइवि तस्सणं एवं नवइ एवं खलु अहं पुढवी काएणं किच्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं नवइ इमेणवा इमे णवा से एतेणं पुढवीकाएणं किच्चं करेइवि कारावेइवि सेणं तातो पुढवी कायाउ असंजय अविरय अप्पडिहयपच्चक्खाणपावकम्मेयावि नवइ एवं जाव तसकाएत्ति नाणियव्वं से एगइन ठजीवनिकाएहिं किच्चं करे इवि कारावेइवि तस्सणं एवं नवइ एवं खलु अहं ठजीवनिकाएहिं कि च्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं नवइ इमेहिंवा से यतेहिं ठ

कृष्टेषु वधकचित्तं नोत्पद्यते तथाप्यसावविरतिप्रत्ययत्वात्तेष्वमुक्तवैरएव नवत्यस्य चार्थ स्य सुखप्रतिपत्तये जगवता तीर्थकृता द्वौ दृष्टांतौ प्रज्ञप्तौ प्ररूपितौ । तद्यथा । संज्ञिदृष्टां तोऽसंज्ञिदृष्टांतश्च । अथ कोयं संज्ञिदृष्टांतो ये केचन इमे प्रत्यक्षासन्नाः षड्भिरपि पर्याप्ति भिः पर्याप्ताकहापोहविमर्शरूपाः संज्ञा विद्यंते येषां ते संज्ञिनः पंचेंडियाणि येषां ते पंचेंडि याः करणपर्याप्त्या पर्याप्तकाएषां च मध्ये कश्चिदेकः षड्जीवनिकायान् प्रतीत्यैवंजूतां प्र तिज्ञां नियमं कुर्यात् । तद्यथा । षट्सु जीवनिकायेषु मध्ये पृथिवीकायेनैवैकेन वालुका शिलोपललवणादिस्वरूपेण कृत्यं कार्यं कुर्यां । सचैवं कृतप्रतिज्ञस्तेन तस्मिन् तस्मात्तं वा करोति कारयतिच शेषकायेन्योऽहं विनिवृत्तस्तस्यच कृतनियमस्यैवंजूतोजवत्यध्यव सायः । तद्यथैवं खल्वहं पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामिच तस्यच सामान्यकृत प्रतिज्ञस्य विशेषानिसंधिर्नैव जवति । तद्यथा । अमुना कृष्णेनामुना श्वेतेन पृथिवी कायेन कार्यं करोति कारयतिच सतस्मात्पृथिवीकायादनिवृत्तोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपा पकर्मा जवति । तत्र खननस्थाननिषीदनत्वग्वर्तनोच्चारप्रश्रवणादिकरणक्रियासन्नावा देवमप्तेजोवायुवनस्पतिष्वपि वाच्यं । तत्राप्कायेन स्नानपानावगाहनजांमोपकरण धावनादिषु प्रयोगस्तेजःकायेनापि पचनपाचनप्रकाशनादिषु वायुनापि व्यंजनतालवृंत त्यादिव्यापारादिषु प्रयोजनं वनस्पतिनापि कंदमूलपुष्पफलपत्रत्वक्शाखाद्युपयोगएवं विक लेंडियपंचेंडियेष्वप्यायोज्यमिति । तथैकः कश्चित् षट्स्वपि जीवनिकायेषु अविरतोसं यतत्वाच्च तैरसौ कार्यं सावद्यानुष्ठानं स्वयं करोति कारयतिच परैस्तस्यच क्वचिदपि निवृत्ते रजावादेवंजूतोध्यवसायोजवति । तद्यथैवं खल्वहं षड्भिरपि जीवनिकायैः सामान्येन कृ त्यं करोमि न पुनस्तद्विशेषप्रतिज्ञेति । सच तेषु षड्स्वपि जीवनिकायेष्वसंयतोऽप्रतिहतप्र त्याख्यातपापकर्मा जवत्येवं मृषावादेपि वाच्यं । तद्यथेदं मया वक्तव्यमीदृग्जूतं तु न वक्तव्यं सच तस्मान्मृषावादादनिवृत्तत्वादसंयतोजवति । तथा दत्तादानमप्याश्रित्य वक्तव्यं । त द्यथेदं मया दत्तादानं ग्राह्यमिदंतु न ग्राह्यमित्येवं मैथुनपरिग्रहेष्वपीति । तथा क्रोधमान मायालोजेष्वपि स्वयमन्यूह्य वाच्यं । तदेवमसौ हिंसादीन्यकुर्वन्नप्यविरतत्वात्तत्प्रत्ययिकं कर्म चिनोतीत्येवं देशकालस्वजावविप्रकृष्टेष्वपि जंतुष्वमित्रजूतोसौ जवति तत्प्रत्ययिकं च कर्म चिनोतीति सोयं संज्ञिदृष्टांतोऽजिहितः । सच कदाचिदेकमेव पृथिवीकायं व्यापाद यति शेषेषु निवृत्तः कदाचिद्द्वावेवं त्रिकादिकाः संयोगाजणनीयायावत्सर्वानपि व्यापा दयतीति । सचैवं सर्वेषां व्यापादकत्वे न व्यवस्थाप्यते सर्वविषयारंजप्रवृत्तेस्तत्प्रवृत्तिरपि तदनिवृत्तेः । यथा कश्चिद्ग्रामघातादौ प्रवृत्तोयद्यपिच न तेन विवक्षितकाले केचन पुरुषा दृष्टास्तथाप्यसौ तत्प्रवृत्तिनिवृत्तेरजावात्तद्योग्यतया तद्घातकइत्युच्यते इत्येवं दार्ष्टांति केप्यायोज्यम् ॥ ८ ॥

६ एक पुरुष छजीव निकायें करीने कार्य पोतें करे, बीजा पासें करावे, ते पुरुष छजीव निकायने विषे अविरति असंयति केहेवाय. ए आलावानो बीजो अर्थ पूर्वना आलावा मां लखाइ गयोछे, माटें आंहीं लख्यो नथी. ए रीतें जे प्राणी प्राणातिपातथी मांमीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य पर्यंत अढारे पापस्थानकने विषे असंयति अविरति तथा पच्चरकाणें करीने जेणे पापकर्म हण्यां नथी एम अविरतिने नावें होय, तेने स्वप्नां तरें अणदीठु पण पापकर्म बंधाय, लागे. एम निश्चे श्री नगवंतें कह्युंछे, एटले सङ्गीयानो दृष्टांत कह्यो ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—एवं सति न सर्वविषयं प्रत्याख्यानं युज्यते । ये जीवाहिंसादिविषयप्राप्ताः स्युस्तेषामेव प्रत्याख्यानं क्रियते इति परेणोक्ते आचार्यआह । (तत्रखल्वित्यादि) यद्य पि सर्वजीवेषु हिंसापरिणामोनोत्पद्यते तथाप्यविरतिसन्नावात्तद्विषयः कर्मबंधोनव त्येव । अत्र दृष्टांतद्वयमाह । संज्ञिदृष्टांतोऽसंज्ञिदृष्टांतश्च । कोयं संज्ञिदृष्टांतः ? । ये इमे सं ज्ञिपंचेंद्रियास्तेषां मध्ये कश्चिदेकः षड्जीवनिकायान् प्रतीत्याश्रित्य एवं प्रतिज्ञां कुर्यात् । अहं पृथिवीकायेनैव एकेन कृत्यं करोमि कारयामि । सच एवं कृतप्रतिज्ञस्तेन तस्मात् त स्मिन् तंच करोति कारयतिच शेषकायेन्योनिवृत्तस्तस्य चैवंनूतोऽनिप्रायः । तद्यथा । अहं पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामि एवं प्रतिज्ञायां कृतायां विशेषानिप्रायोन स्यात् यत् श्वेतेन कृष्णेनवा पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामिच स तस्मात्पृथिवीकायादनिवृ त्तोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नवति । एवमप्तेजोवायुवनस्पतिष्वपि वाच्यं । य था कश्चिदप्कायादनिवृत्तः कश्चित्तेजस्कायादिति । शेषकायैस्तु व्यापारं करोति कश्चित् ष ट्स्वपि जीवनिकायेषु अनिवृत्तोऽसंयतत्वात्तैः कार्यं करोति कारयति न पुनस्तद्विशेषप्रति ज्ञा एवं मृषावादेऽपि वाच्यं । यथा इदं मया वक्तव्यमनृतं इदं न वक्तव्यं सच तस्मान्मृषावा दादनिवृत्तत्वादसंयतः स्यात् तथा इदमदत्तं मया ग्राह्यं इदंतु न ग्राह्यं । एवं मैथुनपरिग्र हेष्वपि वाच्यं । तथा क्रोधमानमायालोनेष्वपि स्वयं विचार्य वाच्यं । तदेवमसौ हिंसादी न्यकुर्वन्नपि अविरतत्वात्तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्नाति । ततोदेशकालस्वनावविप्रकृष्टेष्वपि जीवेषु अमित्रनूतोऽसौ स्यात् । यथा कश्चिद्ग्रामघातादौ प्रवृत्तः । यद्यपि तेन केचि न्नरान दृष्टास्तथापि तद्घातनिवृत्तेरनावाद्योग्यतया तद्घातकइत्युच्यते । एवं अविरतेः कर्मबंधोज्ञेयः ॥ ८ ॥

॥ टीका—एवं व्यवस्थिते न सर्व विषयं प्रत्याख्यानं युज्यते इत्येवं प्रतिपादिते परेण सत्याचार्यआह । (तत्रखलुनगवयाइत्यादि) यद्यपि सर्वेष्वपि देशकालस्वनावविप्र

पच्चखानकने नथी करता, तो पण तेने विषे अविरतिपणा थकी ते असंज्ञी जीवोने कर्म लागेछे (इच्चेवजावणोचेवमणो के०)तथा यद्यपि ते असंज्ञीया जीव मनना व्यापार रहित छे, (णोचेववई के०) तथा वचनना व्यापार रहितछे, तथापि (पाणाणंजावसत्ताणं के०) सर्वप्राणीने यावत् सर्व सत्वने (डुक्खणत्ताए के०) डुःखने उपजाववे करी, (सोयण त्ताए के०) शोकने उपजाववे करी, (जूरणत्ताए के०) वयनी हानीने करवे करी, (ति प्पणत्ताए के०) मन वचन अने काया ए त्रणेथी पीडवे करी, (पिट्टणत्ताए के०) यष्टि मुष्टिने प्रहारें करी, (परितप्पणत्ताए के०) वाहेर तथा अभ्यंतरने पीडवे करी, एवा ए वा प्रकारें यद्यपि ते असंज्ञीया जीव समस्त जीवोने डुःख नथी उपजावता, तथापि ते विरतिपणाने अनावें सर्व जीवोने डुःखनुं उपजाववुं, शोक, जूरण, तिप्पण, पिट्टण, यावत् वाह्य तथा अभ्यंतरनुं पीडवुं वध वंधननुं करवुं इत्यादिक क्लेशथकी विशेषें करी अनिवृत्त्याछे अविरति कहेवायछे ते विरतिपणाने अनावें ते जीवो तत्प्रत्ययिक कर्मेकरी वधायछे॥ए॥

॥ दीपिका–अथाऽसंज्ञिदृष्टांतमाह । (सेकिंतमिति) ये इमेऽसंज्ञिनस्तद्यथा पृथिवीका यायावद्वनस्पतिकायास्तथा षष्ठाअप्येके त्रसाः यावत्संमूर्छिमपंचेंडियास्ते सर्वेप्यसंज्ञिनो येषां न तर्कोविचारः न संज्ञा दीर्घकालसंबंधिनी न प्रज्ञा स्वबुद्धिकृता न मनोवग्रहादिमतिः न वाक् स्पष्टवर्णा तथा स्वयं करोमि अन्यैः कारयामि कुर्वंतमनुजानामि इत्यनिप्रायोनास्ती ति । तेऽसंज्ञिनोबालाः सर्वेषां जीवानां घातनिवृत्तेरनावाद्योग्यतया घातकाएव अस त्यनाषकाअपि अविरतत्वात् अदत्तग्राहिणोपि दध्यादिग्रहणात् तीव्रनपुंसकवेदोदया न्मैथुननिवृत्तेरनावाच्च मैथुनप्रवृत्ताःपरिग्रहवंतोपि अशनादेः स्थापनात् । एवं क्रोधमान मायालोनायावन्मिथ्यादर्शनसशल्यसद्भावश्च तेषां ज्ञेयः । ततश्च ते कर्मबंधकाः स्युः । त था यद्यपि ते विशिष्टमनोवाग्व्यापाररहितास्तथापि सर्वजंतूनां (डुःखणत्ताएत्ति) डुःखो त्पादनतया शोचनतया शोकोत्पादनत्वेन जूरणं वयोहानिस्तत्कारणतया त्रिन्योमनोवा कायेन्यः पातनं त्रिपातनं तद्भावस्तया (पिट्टणयाए) मुष्टिलोष्टादिनिः कुट्टनेन परिताप नया वहिरंतश्च पीडया तेऽसंज्ञिनोयद्यपि दूरस्थानां विषयगतानां जीवानां डुःखं नोत्पा दयंति तथाप्यविरतत्वाद्दुःखशोचनादेरविरताः स्युस्ततश्च कर्मणा वध्यंते ॥ ए ॥

॥ टीका–संज्ञिदृष्टांतानंतरमसंज्ञिदृष्टांतः प्रागुपन्यस्तः सोऽधुना प्रतिपाद्यते । (सेकिंतं असन्निदिठंतेइत्यादि) संज्ञानं संज्ञा सा विद्यते येषां ते संज्ञिनस्तत्प्रतिषेधादसंज्ञिनोमन सोऽव्यतया अनावात्तीव्राऽतीव्राध्यवसायविशेषरहिताः प्रसुप्तमत्तमूर्छितादिवदिति । ये इ मे संज्ञिनस्तद्यथा पृथिवीकायिकायावद्वनस्पतिकायिकास्तथा षष्ठाअप्येके त्रसाः प्राणिनो विकलेंडियायावत्संमूर्छिनः पंचेंडियास्ते सर्वेप्यसंज्ञिनोयेषां न तत्कार्यविचारोमीमांसावि

से किंतं असन्निदिठंते जेइमे असन्निणो पाणा तं पुढवीकाइया जाव वणस्स इकाइया ठठावेगइया तसा पाणा जेसिं णो तक्काइवा सन्नातिवा पन्नातिवा मणातिवा वईवा सयंवा करणाए अन्नेहिंवा कारावंतए करंतंवा समणुजा णित्तए तेविणं बाले सव्वेसिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूतमिच्छासंठिया निच्चं पसढविउवातचित्तदंमा तं पाणाइवा ते जाव मिच्छादंसणसल्ले इच्चेव जाव णो चेवमणो णो चेववई पाणाणं जाव सत्ताणं डुक्कणत्ताए सोयणत्ताए जूरणत्ताए तिप्पणत्ताए पिट्टणत्ताए परितप्पणत्ताए ते डुक्कणसोयणजावपरितप्पणवहबंधणपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया भवंति ॥ ए ॥

अर्थ–(सेकिंतंअसन्निदिठंते के०) हवें असंज्ञियानो दृष्टांत कयो ? ते कहेछे. (जेइमेअसन्निणोपाणा के०) जे ए असंज्ञी प्राणीउछे (तं के०) ते कहेछे. (पुढवीकाइया के०) पृथिवीकायिक, (जाववणस्सइकाइया के०) यावत् वनस्पतिकाय पर्यंत, ए पांच स्थावर जाणवा. (ठठावेगइयातसापाणा के०) तथा छठा, कोइ एक त्रस प्राणीउ पण असंज्ञीछे (जेसिंणोतक्काइवा के०) जेने तर्क नथी तर्क एटले ए स्तंभछे के, पुरुषछे ए आगल शुंछे ! एवो भाव जेने न उपजे, एटले सारुं करवुं देखीने कहेके, आ रुडूं करेछे एवो भाव जेने नथी, (सन्नातिवा के०) तथा संज्ञा ते जे पूर्वदृष्टनुं उलखवुं ते जेनें नथी (पन्नातिवा के०) तथा जेनें प्रज्ञा एटले बुद्धि नथी, (मणातिवा के०) तथा जेनें मन नथी, (वईवा के०) तथा जेनें वचन नथी, (सयंवाकरणाए के०) तथा जेने पोतें कार्य करवुं नथी, अथवा (अन्नेहिंवाकारावंतए के०) बीजा पासें कार्य करावबुं नथी, (करंतंवासमणुजाणित्तए के०) तथा बीजो कोइ कार्य करतो होय तेने देखीने कहेके, ए रुडूं करेछे. एम कहीने तेने अनुमोदन आपवुं एवो भाव जेनें नथी, (तेविणंबाले के०) ते असंज्ञी बाल अज्ञानी जीव, (सव्वेसिंपाणाणं के०) सर्व प्राणीनो (जावसव्वेसिंसत्ताणंके०) यावत् सर्वसत्वनो (दियावाराउवासुत्तेवाजागरमाणेवा के०) दिवसें रात्रे, सुता, जागता, (अमित्तभूत के०) जीवोनो अमित्रभूत शत्रुसमान बोलियें. कारणके, तेनें तेनुं विरति पणुं नथी. (मिच्छासंठिया के०) ते मिथ्यात्व संस्थित (निच्चंपसढविउवात चित्तदंमा के०) निरंतर शठ एटले परमार्थ नथी जाणता, तथा प्राणघातने विषे जेनुं चित्तछे, तथा प्राणीउने दंमना करनार, (तं के०) ते कहेछे. (पाणाइवातेजावमिच्छादंसणसल्ले के०) प्राणातिपात मृषावादादिकथी यावत् मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत ए अढार पा

कायं संकमंति सन्निकायाउवा असन्निकायं संकमंति सन्निकायाउवा स न्निकायं संकमंति असन्निकायाउवा असन्निकायं संकमंति जे एए सन्नि वा असन्निवा सवे ते मिछायारा निच्चं पसढविउवायचित्तदंमा तं पाणा तिवाए जाव मिछादंसणसल्ले एवं खलु नगवया अक्खाए असंजए अ विरए अपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे ए गंतबाले एगंतसुत्ते से बाले अवियारमणवयकायवक्के सुविणमवि ण प सइ पावेयसे कम्मे कज्जइ ॥ १० ॥

अर्थ-(इतिखलुसेअसन्निणोविसत्ता के०) एणी परें निश्चें ते पृथिवीकायादिक असंज्ञी जीव बता पण (अहोनिसिंपाणातिवाए के०) रात्री दिवस प्राणातिपातने विषे, (उवक्खा इज्जंति के०) कहियें, एटले तेने प्राणातिपातनुं कर्म लागे, एम बोलियें. (जावअहोनि सिंपरिग्गहउवक्खाइज्जंति के०) यावत् रात्री दिवस परिग्रहने विषे प्रवर्त्तता बोलियें, क हियें (जावमिछादंसणसल्लेउवक्खाइज्जंति के०) यावत् मिथ्यादर्शन शल्यने विषे प्रवर्त्तता कहियें, माटें असंज्ञियाने पण पापकर्मनो उपाख्यान विरतिने अनावें कहियें. हवे शिष्य पूछे छे के, एवंनूतएटले वेदांतवादी एम कहे छे के,जे पुरुषछे ते पुरुष पणुंज पामे, अने जे पशु होय ते पशु पणुंज पामे,तेम आंहीं जैनशासनने विषे पण जे संज्ञिया ते संज्ञी पणुंज पामे अने जे असंज्ञीया ते असंज्ञी पणुंज पामे छे. किंवा बीजी कोइ रीतें छे? ते कहो. एम पूछे छते शिष्य प्रत्यें आचार्य कहेछे. (सवजोणियाविखलुसत्तासन्निणोहुच्चा के०) निश्चें सर्वयोनिक सत्व एटले जीव संज्ञिया पणे होइने (असन्निणोहोंति के०) असंज्ञिया पण होय, (असन्निणोहुच्चासन्निणोहोंति के०)असंज्ञिया होइने संज्ञिया होय (होच्चासन्नीअडवाअसन्नी के०) एम संज्ञी अथवा असंज्ञी होय एटले वेदांतवादिनो पक्ष निराधार थयो, तथा कोइ एक संज्ञी पण तेज नवमां मूर्छादिकनी अवस्थायें असंज्ञी थाय एम एकज नवमांहें संज्ञीया मांहेथी असंज्ञीउ थाय, मूर्छाने अनावें ते वली संज्ञीउ पण थाय, जो एकज नवमां एमछे तो जन्मांतरनुं केवुंज शुं! जेम कोइ एक जागतो मनुष्य निद्राना उदय थकी सुतो थको वली निद्राने अनावें जागतोज कहेवाय. ए दृष्टांत संज्ञी असंज्ञी उपर जाणवो. (तच्चसेअविविचित्ता के०) त्यां ते जीवें पूर्वेनुं कर्म जे बांध्युंछे. अथवा उदय आव्युंछे तेने पृथक् अणकीधे, तथा (अविधूणित्ता के०) अण खपावे, तथा (असंमुच्चित्ताके०) अणछेदे, (अणणुताविता के०) अण तपावे, थके (असन्निकाया उवासंन्निकायंसंकमंति के०) पहेलो नंग, असंज्ञिकाय थकी संज्ञिकायें संक्रमे. (स

शिष्टविमर्शोविद्यते यथा कस्यचित्संज्ञिनोमंदमंदप्रकाशे स्थाणुपुरुषोचिते देशे किमयं स्थाणुरुत पुरुषइत्येवमात्मकऊहस्तर्कः संभवति नैवं तेषामसंज्ञिनां तर्काः संभवंतीति। तथा संज्ञानं संज्ञा पूर्वोपलब्धार्थेतदुत्तरकालपर्यालोचना तथा प्रज्ञानं प्रज्ञा स्वबुध्योत्प्रेक्षणं,सएवायमित्येवंभूतं प्रज्ञानंच तथा मननं मनोमतिरित्यर्थः। सा चावग्रहादिरूपा तथा प्रस्पष्टवर्णा वाक्। साच न विद्यते तेषामिति। यद्यपिच द्वींद्रियादीनां जिव्हेंद्रियगलबिवरादिकमस्ति तथापि न तेषां प्रस्पष्टवर्णत्वं। तथा न चैषां पापं हिंसादिकं करोमि कारयामीत्येवंभूताध्यवसायपूर्विकामतिस्तथा स्वयं करोम्यन्यैर्वा कारयामीत्येवंभूतोध्यवसायो न विद्यते तेषां। तदेवं तेप्यसंज्ञिनोबालवद्बालाः सर्वेषां प्राणिनां घातनिवृत्तेरभावात्तद्योग्यतया घातकाव्यापादकाः। तथाहि। द्वींद्रियादयः परोपघाते प्रवर्तंते एव तद्भक्षणादिना अनृतभाषणमपि विद्यते तेषामविरतत्वात् केवलं कर्मपरतंत्राणां वागभावस्तथाऽदत्तादानमपि तेषामस्त्येव दध्यादिभक्षणात्तथेदमस्मदीयमिदंच पारक्यमित्येवंभूतविचाराभावाच्चेति। तथा तीव्रनपुंसकवेदोदयान्मैथुनाविरतेश्च मैथुनसद्भावोपि तथाशनादेः स्थापनात्परिग्रहसद्भावोपीत्येवं क्रोधमानमायालोभायावन्मिथ्यादर्शनशल्यसद्भावश्च तेषामवगंतव्यस्तद्भावाच्च ते दिवा रात्रौवा सुप्ताजाग्रदवस्थावा नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंडाभवंति। तदेव दर्शयितुमाह। (तंजहाइत्यादि) तेह्यसंज्ञिनः क्वचिदपि निवृत्तेरभावात्तत्प्रत्ययिककर्मबंधोपेताभवंति। तद्यथा। प्राणातिपातयावन्मिथ्यादर्शनशल्यवंतो भवंति। तद्युक्तयाच यद्यपि वैशिष्ट्यमनोवाग्व्यापाररहितास्तथापि सर्वेषां प्राणिनां दुःखोत्पादनतया तथा शोचनतया शोकोत्पादनत्वेन तथा जूरणतया जूरणं वयोहानिरूपं तत्करणशीलतया तथा त्रिभ्योमनोवाक्कायेभ्यः पातनं त्रिपातनं तद्भावस्तथा यदिवा (तिप्पणयाएत्ति) परिवेदनतया तथा (पिट्टणया) मुष्टिलोष्टप्रहारेण परितापनतया बहिरंतश्च पीडया ते चासंज्ञिनोपि यद्यपि देशकाले स्वभावविप्रकृष्टानां न सर्वेषां दुःखं समुत्पादयंति तथापि विरतेरभावात्तद्योग्यतया दुःखपरितापक्लेशादेरप्रतिविरता भवंति तत्सद्भावाच्च तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यंते॥ ९॥

इति खलु से असन्निणोवि सत्ता अहोनिसिं पाणातिवाए उवरकाइज्जंति जाव अहोनिसिं परिग्गहे उवरकाइज्जंति जाव मिच्छादंसणसल्ले उवरकाइज्जंति एवंभूतवादी सबजोणियावि खलु सत्ता सन्निणो हुज्जा असन्निणो होंति असन्निणो हुज्जा सन्निणो होंति होच्चा सन्नी अडवा असन्नी तच से अविविचित्ता अविधूणित्ता असंमुच्छित्ता अणणुतावित्ता असन्निकायाउवा सन्नि

कारयितुं न कुर्वंतमनुमंतुं वा प्रवृत्तिरस्ति। ते चाऽहर्निशममित्रभूता मिथ्यासंस्थितानित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंडाः दुःखोत्पादनतया यावत्परितापनपरिक्लेशादप्रतिविरताश्चसंज्ञिनो पि संतोऽहर्निशं सर्वकालमेव प्राणातिपाते कर्तव्ये तद्योग्यतया तदसंप्राप्तावपि ग्रामघातकवदुपाख्यायंते यावन्मिथ्यादर्शनशल्य उपाख्यायंतइति । उपाख्यानं वा संज्ञिनोपि । योग्यतया पापकर्माभिवृत्तेरित्यभिप्रायः । तदेवं दर्शिते दृष्टांतद्वये तत्प्रतिबद्धमेवार्थशेषं प्रतिपादयितुं चोद्यं क्रियते ।तद्यथा। किमेते सत्वाः संज्ञिनश्च भव्याभव्यत्ववन्नियतरूपा एवाहोस्वित्संज्ञिनोभूत्वाऽसंज्ञित्वं प्रतिपद्यंते।असंज्ञिनोपि संज्ञित्वमित्येवं चोदिते सत्याहाचार्यः (सव्वजोणियाविखलुइत्यादि) यदिवा संत्येवंभूतावेदांतवादिनोयएवं प्रतिपादयंति पुरुषः पुरुषत्वमश्नुते पशुरपि पशुत्वमिति। तदत्रापि संज्ञिनः संज्ञिनएव भविष्यंत्यसंज्ञिनो प्यसंज्ञिनइति । तन्मतव्यवच्छेदार्थमाह ।(सव्वजोणियावीत्यादि) यदिवा किं संज्ञिनोऽसंज्ञिकर्मबंधं प्राक्तने सत्येव कर्मणि कुर्वंति किंवा नेत्येवमसंज्ञिनोपि संज्ञिकर्मबंधं प्राक्तने सत्येव कुर्वंत्याहोस्विन्नेत्येतदाशंक्याह । (सव्वजोणियावीत्यादि) सर्वायोनयोयेषां ते सर्वयोनयः संवृतविवृतोभयशीतोष्णभयसचित्ताऽचित्तोभयरूपायोनयइत्यर्थः । तेच नारकतिर्यङ्नरामराअपिशब्दाद्विशिष्टैकयोनयोपि । खल्विति विशेषणे । एतद्विशिनष्टि । तज्जन्मापेक्षया सर्वयोनयोपि सत्वाः पर्याप्त्यपेक्षया यावन्मनःपर्याप्तिर्न निष्पद्यते तावदसंज्ञिनः करणतः संतः पश्चात्संज्ञिनोभवंत्येकस्मिन्नेव जन्मन्यन्यजन्मापेक्षयात्वेकेंद्रियादयोपि संतः पश्चान्मनुष्यादयोभवंतीति । तथाभूतकर्मपरिणामात् पुनर्भव्याभव्यत्ववन्न व्यवस्थानियमोभव्याभव्यत्वे हि न कर्मायत्ते अतोनानयोर्व्यभिचारः।ये पुनः कर्मवशगास्ते संज्ञिनोभूत्वाऽसंज्ञिनोभवंत्यसंज्ञिनश्च भूत्वा संज्ञिनइति वेदांतवादिमतस्य प्रत्यक्षेणैव व्यभिचारः समुपलभ्यते । तद्यथा । संज्ञ्यपि कश्चिन्मूर्छाद्यवस्थायामसंज्ञित्वं प्रतिपद्यते तदपगमेतु पुनः संज्ञित्वमिति जन्मांतरे तु सुतरां व्यभिचारइति । तदेवं संज्ञ्यसंज्ञिनोः कर्मपरतंत्रत्वादन्योन्यानुगतिरविरुद्धा । यथा प्रतिबुद्धोनिद्रोदयात्स्वपिति सुप्तश्च प्रतिबुध्यते इत्येवं स्वापप्रतिबोधयोरन्योन्यानुगमनमेवमिहापीति । तत्र प्राक्तनं कर्म यदुदीर्णं यच्च बद्धमास्ते तस्मिन् सत्येव तदविविच्यापृथक्कृत्य तथाऽविधूयाऽसमुच्छिद्याऽननुताप्यैते चाविविच्यादयश्चत्वारोप्येकार्थिकाअवस्थाविशेषं चाश्रित्य भेदेन व्याख्यातव्याः । तदेवमपरित्यक्तप्राक्तनकर्मणोऽसंज्ञिकायात्संज्ञिकायं संक्रामंति तथा संज्ञिकायादसंज्ञिकायमिति । तथा नारकाः सावशेषकर्माणएव नरकादुद्धृत्य प्रतनुवेदनेषु तिर्यक्षूत्पद्यंते एवं देवाअपि प्रायशस्तत्कर्मशेषतया शुभस्थानेषूत्पद्यंते इत्यवगंतव्यं।अत्र चतुर्भंगकसंभवं सूत्रेणैव दर्शयति । सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुः प्राक् प्रतिपन्नमर्थं निगमयन्नाह । (जेए तेसेत्यादि) ये एते सर्वाभिरपि पर्याप्तिभिः पर्याप्ताः लब्ध्या करणेन च द्विकभाश्चापर्या

न्निकायाउवाअसन्निकायंसंकमंतिके०) बीजो भंग, संज्ञिकाय थकी असंज्ञिकायें संक्रमे, (सन्निकायाउवासन्निकायंसंकमंति के०) त्रीजो भंग, संज्ञिकाय थकी संज्ञिकायें संक्रमे. (असन्निकायाउवाअसन्निकायंसंकमंति के०) चोथो भंग, असंज्ञिकाय थकी असंज्ञिकायें संक्रमे, एवं चतुर्भंग जाणवा. (जेएएसन्निवाअसन्निवा के०) जे ए संज्ञिया अथवा असंज्ञीया छे (सवेतेमिछायारा के०) ए सर्व अपच्चरकाणीने भावें मिथ्याचार वाला जाणवा. ते सर्व जीवने विषे नित्य अत्यंत शठ एटले मूर्ख पण छता प्राणीघातने विषे जेनु चित्तछे तथा प्राणिउने दंमना करनार केवाय. यावत् मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत अढारे पापस्थानकना करनार ते केवाय. ए रीतें भगवंत श्री महावीरदेवें कह्युंके जे असंयति अविरति अप्रतिहत प्रत्याख्यान पापकर्म वाला, तथा सक्रिय असंवर एकांत दंमना करनारा, एकांत बाल, एकांत सुता कह्या. ते बाल अविचारित मन वचन अने कायाना परिणाम वाला छतां जे पापकर्म स्वप्नांतरें पण न देखे, तेनुं पण कर्म तेने लागे ॥१०॥

॥ दीपिका–इति अमुना प्रकारेण । खलु वाक्यालंकारे । ते पृथ्वीकायादयोऽसंज्ञिनः संतोऽहर्निशं प्राणातिपाते कर्तव्ये तद्योग्यतया तदसंप्राप्तावपि ग्रामघातकवडुपाख्यायंते यावन्मिथ्यादर्शनशल्ये उपाख्यायंते।तेच कर्मवशात्सर्वयोनिकाअपि जीवाः पर्याप्त्यपेक्षया यावन्मनःपर्याप्तिर्न निष्पद्यते तावत्करणतोऽसंज्ञिनः संतः पश्चात्संज्ञिनोभवंत्येकस्मिन्नेव जन्मनि । अन्यजन्मनितु एकेंद्रियादयोपि मनुष्यादयः स्युः।परं भव्याभव्यत्ववन्न नियमः । भव्याभव्यत्वेहि न कर्मायत्ते अतोन ताभ्यां व्यभिचारः । ये पुनः कर्मवशगास्ते पुनः संज्ञिनोभूत्वाऽन्यत्रासंज्ञिनः स्युः असंज्ञिनश्च भूत्वा संज्ञिनइति । तत्र यत्कर्म बद्धमस्ति तस्मिन् सत्येव तदविविच्याप्टथक् कृत्याऽविधूयाऽसमुछिद्याऽननुताप्याएते चत्वारोपि शब्दाएकार्थिकाः। तदेवमत्यक्तकर्माणोऽसंज्ञिकायात्संज्ञिकायं संक्रामंति संज्ञिकायादसंज्ञिकायंच संज्ञिकायात्संज्ञिकायं असंज्ञिकायादसंज्ञिकायंच । एवं चत्वारोभंगाः । उपसंहरन्नाह । (जेएतेजीवत्ति) ये एते पर्याप्ताअपर्याप्ताः संज्ञिनोऽसंज्ञिनोवा सर्वे ते मिथ्याचाराअविरतत्वात् तथा सर्वधर्मेषु नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमाः स्युरेवंभूताश्च प्राणातिपातादिषु सर्वेष्वप्याश्रवद्वारेषु वर्तंतइति (एवंखलुत्ति) एवमुक्तनीत्या खलु निश्चितं भगवता आख्यातमित्यादिना पूर्वोक्तमनुवदति । यावत्पापं कर्म क्रियतइति ॥ १० ॥

॥ टीका–तदेवं विप्रकृष्टविषयमपि कर्मबंधं प्रदर्श्योपसंजिहीर्षुराह । (इतिखलुतेइत्यादि) इति रूपप्रदर्शने।खलुशब्दोवाक्यालंकारे विशेषणे वा। किं विशिनष्टि । ये इमे पृथिवीकायादयोऽसंज्ञिनः प्राणिनस्तेषां नतर्को,नसंज्ञा, नमनो, नवाक्, नस्वयं कर्तुं नान्येन

वणिकायहेउंपसत्ता के०) त्यां संयत पणाने जावें जगवत् श्री वीतराग देवें ठ जीवनि काय कारण कह्याठे (तंजहा के०) ते कहेठे. (पुढवीकाइयाजावतसकाइया के०) पृथिवी कायथी मांमीने यावत् त्रसकाय पर्यंत ठे (सेजहाणामए के०) तेने जेम नाम एवो संजाव नायें (ममअस्सातं के०) मुजने अशाता उपजे ठे ते प्रमाणें दंमें करी हणतां थकां अस्थियें करी, मुष्टियें करी, पाषाणें करी, कपाल एटले ठीकरीयें करी ताडता थका. यावत् उद्वेग करता थका, एटले जीव काया थकी रहित करता थका, एक रोम उखेड वा मात्रें करीपण हिंसाकारक दुःख तथा जय हुं वेदुं. ए रीते जाणवुं के, सर्व प्राणी यावत् सर्व सत्वने महारी पेठें दंमना प्रहारें करी, कपाल एटले ठीकरीयें करी आक्रोश करावता ताडता थका, अथवा हणता थका, तर्जनाकरता थका, यावत् उद्वेग करता थका, एक रोम मात्र उखेडवुं एवुं पण हिंसाकारी, कारण ते थकी ते जीवो पण दुःख अने जय एवुंज वेदे (एवंणच्चा के०)एम जाणीने सर्वप्राणी यावत् सर्व सत्वने हणवा नहीं, यावत् उपद्रववा नहीं, ए प्राणीनो दया लक्षण धर्म, ते ध्रौव, नित्य, शाश्वतो, एवो चउद रज्ज्वात्मक लोक जाणीने आलोचीने षट्जीवनिकायरूप दुःख समुद्रमां पड्यो ते पर जीवना दुःखना जाण, एवा खेदज्ञ श्रीजगवंत तीर्थंकर देव तेणे जांप्यो ठे. (एवंसेजिरकू के०) एवुं जाणीने ते साधु प्राणातिपात मृषावादादिक यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य ए अढार पापस्थानक थकी निवृत्त्यो, तथा ते जिक्षु दंत धावनें करी दंत प्र क्षाले नहीं एमज अंजन वमन विरेचनादिकक्रिया न करे, धूपन एटले वस्त्रादिकनुं धूपन न करे (तंपिनआदत्ते के०) एटलांवानां पोतें आदरे नहिं ते जिक्षु चारित्रिउक्रिया रहित ठजीवनिकायनो अहिंसक तथा क्रोध रहित यावत् मान, माया, लोज रहित उ पशांत एटले समाधिवंत परिनिवृत्त एवो ठतो होय तेनें निश्चें संयत विरति प्रतिहत पापकर्मा एटले पच्चरकाणें करी पापकर्मने हणनार, क्रिया रहित संवृत्त, एकांत पंमित एम जगवंतें कह्योठे त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ११ ॥ ए श्री सुयगडांग सूत्रना बीजा श्रुतस्कंधनें विषे प्रत्याख्यान क्रियानामा चोथा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका—अथ संजातवैराग्यः शिष्यः प्रश्नं करोति (सेकिंकुव्वमित्यादि) अथ किं कुर्वन् किंवा कारयन् कथं वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यानपापकर्मा जंतुः स्यात् ?। आचार्यआह। (तत्थखलुत्ति। तत्र संयतत्वसद्भावे । जगवता षड्जीवनिकायाहेतवः प्रज्ञप्ताः। तद्यथा। पृथिवीकायाः यावत्त्रसकायाः । यथाऽविरतस्य षड्जीवनिकाया नरकादिगतिहेतुत्वेनोक्तास्तथा विरतस्य तएव मोक्षहेतवोजवंति । यदुक्तं । "जेजत्ति

प्रकाः अन्योन्यसंक्रमभाजः संज्ञिनोऽसंज्ञिनोवा सर्वेप्येते मिथ्याचाराश्चप्रत्याख्यानित्वादि त्यभिप्रायः । तथा सर्वजीवेष्वपि नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंभाजवंतीत्येवंभूताश्च प्राणा तिपाताद्येषु सर्वेष्वप्याश्रवद्वारेषु वर्ततइति ॥ तदेवं व्यवस्थिते यत्तदुक्तं चोदकेन तद्य थेहाविद्यमानाऽशुभयोगसंभवे कथं पापं कर्म बध्यतइत्येतन्निराकृत्य विरतेरभावात्तद्योग्य तया पापकर्मसद्भावं दर्शयति । (एवं खलुइत्यादि) एवमुक्तनीत्या । खल्ववधारणे ऽलं कारे वा । भगवता तीर्थकृतेत्यादिना यत्प्राक् प्रतिज्ञातं तदनुवदति । यावत्पापं च कर्म क्रियतइति ॥ १० ॥

चोदक से किंकुवं किंकारवं कहं संजयविरयप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे भवइ आचार्यआह तब खलु भगवया छज्जीवणिकायहेउं पण्णत्ता तं जहा पुढवीकाइया जाव तसकाइया से जहा णामए मम अस्सातं दंभेणवा अट्ठीणवा मुट्ठीणवा लेलूणवा कवालेणवा आतोभिज्जमाण स्सवा जाव उद्दविज्जमाणस्सवा जाव लोमुरकणणमायमविहिंसाकारं दुरकं भयं पडिसंवेदेमि इच्चेवं जाणं सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता दंभेणवा जाव कवालेणवा आतोभिज्जमाणेवा हम्ममाणेवा तज्जिज्जमाणेवा ता लिज्जमाणेवा जाव उद्दविज्जमाणेवा जाव लोमुरकणणमायमविहिंसा कारं दुरकं भयं पडिसंवेदेति एवं णच्चा सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता न हंतव्वा जाव ण उद्दवेयव्वा एस धम्मे धुवे णिइए सासए समिच्चलोगं खेयन्नेहिं पवेदिए एवं से भिरकू विरते पाणाइवायातो जाव मिच्छादंसणसल्लाउ से भिरकू णो दंतपरकालेणं दंतेपरकालेज्जा णो अंजणं णो वमणं णो धूव णं तंपि न आदते से भिरकू अकिरिए अलूसए अकोहे जाव अलोभे उवसंते परिनिव्वुडे एस खलु भगवया अरकाए संजयविरयपडिहय पच्चरकायपावकम्मे अकिरिए संवुडे एगंतपंडिएयावि भवइ त्तिबेमि ॥ इति बीयसुयरकंधस्स पच्चरकाण किरियाणाम चउत्थं मज्झयणं सम्मत्तं॥ १ १॥

अर्थ--(चोदक के०) हवे वली शिष्य पूछेछे के हे भगवन् ! (सेकिंकुवंकिंकारवंकहंसंजय के०)ते जीव केवां अनुष्ठान करतो,केवां अनुष्ठान करावतो,केवा प्रकारें संयत (विरय के०) विरति (प्पडिहयपच्चारकायपावकम्मेभवइ के०) प्रतिहत प्रत्याख्यान पापकर्मी होय, ते कहो? एवुं सांभलीने (आचार्याह के०) आचार्य बोल्या. (तबखलुभगवयाछज्जी

अथ पंचमाध्ययनप्रारंभः

हवे चोथा अध्ययननें विषे प्रत्याख्यान क्रिया कही, तेवा आचार वालानें सम्यक् कहेवाय, ते कारणमाटें अनाचारनो त्याग करवो अने आचार अंगीकार करवो; माटें आचार श्रुत, अथवा अनाचार श्रुत, एवे नामें पांचमुं अध्ययन कहियें छेयें. ॥

आदाय बंभचेरं च, आसुपन्ने इमं वई ॥ अस्सिं धम्मे अणायारं, नायरेज्ज कयाइवि ॥ १ ॥

अर्थ-(आदायबंभचेरंच के०) ब्रह्मचर्य ग्रहण करीनें, (आसुपन्नेइमंवई के०) आशुप्रज्ञ एटले विवेकी पुरुष, ए जे आगल कहेशे तेवी वाणी एटले वचन एम न कहे के, आ जगत् शाश्वत छे. इत्यादिक नकहे (अस्सिंधम्मेअणायारं के०) ए धर्मने विषे प्रवर्त्ततो, अनाचार जे सावद्यानुष्ठानरूप, (नायरेज्जकयाइवि के०) तेनें क्यारे पण आचरे नहीं॥१॥

॥ दीपिका-अथ पंचमाध्ययनमारभ्यते तस्यानाचारवर्जनकथनादनाचारश्रुतमिति नाम । अथवा आचारप्रतिपादकत्वादाचरश्रुतमिति नाम । तस्येदं सूत्रं आदाय बंभचेरमिति ब्रह्म सत्यानुष्ठानं चर्यते सेव्यते यस्मिन् तद्ब्रह्मचर्यं जैनेंद्रशासनं आदाय गृहीत्वा आशुप्रज्ञः पंमितः इमां वक्ष्यमाणां वाचं इदं जगत् शाश्वतमेवेत्यादिकां नाचरेन्न वदेत् तथास्मिन् धर्मे स्थितोऽनाचारं नाचरेत्कदाचिदपि ॥ १ ॥

॥ टीका-सांप्रतं पंचममारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने प्रत्याख्यानक्रियोक्ता । सा चाचारसंव्यवस्थितस्य सतोभवतीत्यतस्तदनंतरमाचारश्रुताध्ययनमभिधीयते । यदिवा नाचारपरिवर्जनेन सम्यक् प्रत्याख्यानमस्खलितं भवतीत्यतोनाचारश्रुताध्यनमभिधीयते । यदिवा प्रत्याख्यानयुक्तः सन्नाचारवान् भवतीत्यतः प्रत्याख्यानक्रियानंतरमाचारश्रुताध्ययनं तत्प्रतिपक्षभूतमनाचारश्रुताध्ययनंवा प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्यास्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि भवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । अनाचारं प्रतिषिध्य साधूनामाचारः प्रतिपाद्यते । नाम निष्पन्नेतु निक्षेपे आचारश्रुतमिति द्विपदं नाम । तदनयोर्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । “ णामं ठवणादविए दवे भावेय होंति नायवा ॥ एमेवय सुत्तस्सा, निक्खेवो चउव्विहो होंति,॥१॥ (णामंठवणेत्यादि)तत्राचारोनाम स्थापना द्रव्यभावभेदभिन्नश्चतुर्धा द्रष्टव्यः । एवं श्रुतमपीति । तत्राचारश्रुतयोरन्यत्राभिहितयोर्लाघवार्थमतिदेशं कुर्वन्नाह । “आयारसुयं भणियं,

यायहेऊ, नवस्सते चेव वत्तिया मोरके ॥ गणणाईया लोया, दोसहवि पुसा नवे तुल्लाइति (सेजहत्ति) तद्यथा नाम ममासातं डुःखं दंमादिना नोद्यमानस्य पीड्यमानस्य नवति रोमोत्खननमात्रमपि डुःखमहं प्रतिसंवेदयामि अनुनवामि ततइत्येवं जानीहि त्वं सर्वे पि जीवादंमादिना ताड्यमानाडुःखिनः स्युः रोमोत्खननमात्रमपि डुःखमनुनवंति । एवं ज्ञात्वा सर्वे प्राणान हंतव्याः (एसधम्मेत्ति) एषधर्मोध्रुवोनित्यः परिणामानित्यतायाम पि सत्यां स्वरूपाच्यवनात्तथा सूर्योज्ञतिरिव शश्वन्नवनात् शाश्वतः समेत्यावगम्य लोकं चतुर्दशरज्जुमितं खेदज्ञैः सर्वज्ञैः प्रवेदितः । तदेवं स निक्षुर्निवृत्तः सर्वाश्रवेन्योदंतप्रक्षा लनं न कुर्यात् न नेत्रांजनं न वमनविरेचनादि वस्त्रधूपनंच न आदत्ते स निक्षुः क्रोधा दिरहितोऽलूशकोऽहिंसकोयावदेकांतेन पंमितोनवतीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ११ ॥ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयश्रुतस्कंधस्य चतुर्थाध्ययनं समाप्तम् ॥ ४ ॥

॥ टीका–तदेवमप्रत्याख्यानिनः कर्मसंनवात्तत्संनवाच्च नारकतिर्यङ्नरामरगतिलक्षणं संसारमवगम्य संजातवैराग्यश्चोदकआचार्यं प्रति प्रवणचेताः प्रश्नयितुमाह । (सेकिंकुव मित्यादि) अथ किमनुष्ठानं स्वतः कुर्वन् किंवा परं कारयन् कथंवा केन प्रकारेण संयत विरतप्रतिहतपापकर्मा जंतुर्नवति। संयतस्य हि विरतिसन्नावात्सावद्यक्रिया निवृत्तिस्तन्निवृ त्तेश्च कृतकर्मसंचयान्नावस्तदन्नावान्नरकादिगत्यन्नावइत्येवं पृष्टे सत्याचार्यआह । (तबख लु इत्यादि) तत्र संयमसन्नावे षड्जीवनिकायान्नगवता हेतुत्वेनोपन्यस्ताः । यथा प्रत्याख्या नरहितस्य षड्जीवनिकायाः संसारगतिनिबंधनत्वेनोपन्यस्ताएवं तएव प्रत्याख्यानिनोमो क्षाय नवंतीति । तथा चोक्तं । "जेजेत्तियायहेऊ, नवस्सते चेव वत्तिया मोरके॥ गणणाईया लोगा, दोसहवि पुसहा नवे तुल्लाइत्यादि" । इदमुक्तं नवति । यथात्मनोदंमाद्युपघाते डुः खमुत्पद्यते एवं सर्वेषामपि प्राणिनामित्यात्मोपमया तडुपघातान्निवर्तते एषधर्मः सर्वापा यत्राणलक्षणोध्रुवोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरस्वन्नावोनित्यइति परिणामानित्यतायामपि सत्यां रूपाद्यच्यवनात् तथा आदित्योज्ञतिरिव शश्वन्नवनाच्छाश्वतः परैः क्वचिदप्यस्खलितोयुक्ति संगतत्वादित्यन्निप्रायोयमेवंनूतश्च धर्मः समेत्यावगम्य लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं खेदज्ञैः सर्वज्ञैः प्रवेदितस्तदेवं स निक्षुर्निवृत्तश्च सर्वाश्रवद्वारेन्योदंतप्रक्षालनादिकाः क्रियाः कुर्वन् सावद्यक्रियायाअनावादक्रियोऽक्रियत्वाच्च प्राणिनामलूषकोऽव्यापादकोयावदेकांतेनैवासो पंमितोनवति । इतिः परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् नयाः प्राग्वद्व्याख्येयाः ॥११॥ समाप्तं प्रत्याख्यानाख्यं चतुर्थमध्ययनमिति ॥ ४ ॥

वा एकांत अशाश्वत, (इतिदिठ्ठिनधारए के०) एवी दृष्टि धरे नहीं, एटले पंमित जन एवो पक्ष आदरे नहीं ॥ २ ॥

॥ दीपिका-(अणादीयमिति) अनादिकं जगत्प्रमाणैः सांख्याभिप्रायेण परिज्ञाय अनवदग्रमनंतं च तन्मतएव ज्ञात्वा सर्वमिदं शाश्वतं बौद्धाभिप्रायेणवाऽशाश्वतं इति दृष्टिं न धारयेत् एनं पक्षं नाश्रयेत् ॥ २ ॥

॥ टीका-तत्रानाचरं नाचरेदित्युक्तं । अनाचारश्च मौनींद्रप्रवचनादपरोऽभिधीयते मौनींद्रप्रवचनं तु मोक्षमार्गहेतुतया सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं। सम्यग्दर्शनंतु तत्त्वार्थ श्रद्धानरूपं । तत्त्वं तु जीवाजीवपुण्यपापाश्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षात्मकं तथा धर्मा धर्माकाशपुद्गलजीवकालात्मकं द्रव्यं नित्यानित्यस्वभावं सामान्यविशेषात्मकोऽनाद्यप र्यवसानश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकोलोकस्तत्त्वमिति । ज्ञानंतु मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेव लस्वरूपं पंचधा । चरित्रं, सामायिकं, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धिय, सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यातरूपं पंचधैव मूलोत्तरगुणभेदतोवा नैकधेत्येवं व्यवस्थिते मौनींद्रप्रवचनेन कदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वाऽनाद्यपर्यवसाने लोके सति दर्शनाचारप्रतिपक्षभूतमना चारं दर्शयितुकामआचार्योयथावस्थितलोकस्वरूपोद्घट्टनपूर्वकमाह (अणादीयमित्यादि) नास्य चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्य धर्माधर्मादिकस्यवा द्रव्यस्यादिः प्रथमोत्पत्तिर्विद्य तइत्यनादिकस्तमेवंभूतं परिज्ञाय प्रमाणतः परिछिद्य तथानवदग्रमपर्यवसानंच परिज्ञा याभयात्मकव्युदासेनैकनयदृष्ट्यावधारणात्मकं प्रत्ययमनाचारं दर्शयति शश्वद्भवतीति शाश्वतं नित्यं सांख्याभिप्रायेणाप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं स्वदर्शनेचानुयायिनं सामा न्यांशमवलंब्य धर्माधर्माकाशादिष्वनादित्वमपर्यवसानत्वं चोपलभ्य सर्वमिदं शाश्वत मित्येवंभूतां दृष्टिं नावधारयेदिति एवं पक्षं न समाश्रयेत् । तथा विशेषपक्षमाश्रित्य वर्त्तमाननारकान् समुत्सेत्स्यंतीत्येतच्च सूत्रमंगीकृत्य यत्सत्तत्सर्वमनित्यमित्येवंभूतबौद्ध दर्शनाभिप्रायेण च सर्वत्र शाश्वतमनित्यमित्येवंभूतांच दृष्टिं न धारयेदिति ॥ २ ॥

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणा यारं तु जाणए॥ ३ ॥

अर्थ-हवे एनुं कारण कहेछे. सर्वलोक नित्यज छे अथवा अनित्यज छे, (एएहिंदो हिंठाणेहिं के०) ए बे स्थानकें करीनें (ववहारोणविज्जई के०) लोकनो व्यवहार न प्रवर्त्ते एटले आ लोक, तथा परलोक संबंधि कार्य जे प्रवृत्ति निवृत्ति लक्षण, एवो व्यव

वज्जेयव्वा सया अणायारा ॥ अबहुसुयस्स होज्जा, विरहेणाइअ जइयव्वे,,॥ २॥(आचारसुयमित्यादि) आचारश्च श्रुतं च आचारश्रुतं। दंहैकवद्भावस्तडुभयमपि भणितमुक्तं। तत्राचारः क्षुल्लिकाचारकथायामभिहितः श्रुतं तु विनयश्रुते। भावार्थस्तु वर्जयितव्याः परिहार्याः सदा सर्वकालं यावज्जीवं साधुरनाचारास्तांश्चाबहुश्रुतोऽगीतार्थोन सम्यक् जानातीत्यतस्तस्य विराधना भवेत्। बहुशब्दोऽवधारणे। बहुश्रुतस्यैव विराधना न गीतार्थस्येत्यतोत्र सदाचारे तत्परिज्ञानेच यतितव्यं।तथाहि। मार्गज्ञः पथिकः कुमार्गवर्जनेन नापथगामी भवति न चोन्मार्गदोषैर्युज्यते एवमनाचारं वर्जयन्नाचारवान्भवति न चानाचारदोषैर्युज्यतइत्यतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह। एयस्स पडिसेहो, इहमज्झयणं मिहेति नायव्वा ॥ तोअणगारसुयं इयि, होई नामंतु एयस्स ॥ ३ ॥ (एयस्सइत्यादि) एतस्यानाचारस्य सर्वदोषास्पदस्य डुर्गतिगमनैकहेतोः प्रतिषेधोनिराकरणं सदाचारप्रतिपत्त्यर्थमिहाध्ययने ज्ञातव्यः। सच परमार्थतोऽनगारकारणमिति। ततः। केषांचिन्मतेनैतस्याध्ययनस्याऽनगारश्रुतमित्येतन्नाम भवतीति। गतोनामनिष्पन्नो निक्षेपस्तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं। (आदायबंभचेरमित्यादिश्लोकः) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रैः संबंधोवाच्यस्तत्रानंतरसूत्रेण सहायमेकांतपंमितोभवति। कथमादाय ब्रह्मचर्यमिति। परंपरसूत्रसंबंधस्त्वयं बुध्येत। तथा त्रोटयेद्बंधनं। किंकृत्वेत्याह। आदाय ब्रह्मचर्यमित्येवमन्यैरपि सूत्रैः संबधोवाच्योर्थस्त्वयं। आदाय गृहीत्वा किं तद्ब्रह्मचर्यं सत्यतपोभूतदयेंडियनिरोधलक्षणं तच्चर्यतेऽनुष्ठीयते यस्मिन् तन्मौनींडप्रवचनं ब्रह्मचर्यमित्युच्यते। तदादायाऽऽशुप्रज्ञः पटुप्रज्ञः सदसद्विवेकज्ञश्च। क्त्वाप्रत्ययस्योत्तरक्रियासव्यपेक्षित्वात्तामाह। इमां समस्ताध्ययनेनापि धीयमानां प्रत्यक्षासन्नभूतां वाचं इदं शाश्वतमेवेत्यादिकां कदाचिदपि नाचरेन्नाभिदध्यात् तथाऽस्मिन्धर्मे सर्वज्ञप्रणीते व्यवस्थितः सन्नानाचारं सावद्यानुष्ठानरूपं न समाचरेन्न विदध्यादिति संबंधः। यदिवाऽऽशुप्रज्ञः सर्वज्ञः प्रतिसमयं केवलज्ञानदर्शनोपयोगित्वात्तत्संबंधिनि धर्मे व्यवस्थितइमां वक्ष्यमाणां वाचमनाचारं च कदाचिदपि नाचरेदितिश्लोकार्थः ॥ १ ॥

अणादीयं परिन्नाय, अणवदग्गेति वा पुणो ॥ सासयमसासए वा, इति दिट्ठिं न धारए ॥ २ ॥

अर्थ–हवे आचार अने अनाचार देखाडवानी इच्छायें यथावस्थित लोकस्वरूप प्रकटन पूर्वक कहेछे. (अणादीयंपरिन्नाय के०) ए चौद रज्ज्वात्मक लोक ते अनादि एटले नथी जेनी आदि एटले आदि रहितछे, एवुं जाणीनें (अणवदग्गेतिवापुणो के०) वली जेनो अंत नथी, एवुं जाणीनें, (सासयमसासएवा के०) एकांत शाश्वत, अथ

सिद्धिने योग्य एवा सर्वभव्यजीव सिद्धिनें विषे जशे एम करतां सर्व भव्यजीवनो विछेद थशे. एवुं वचन विवेकी पुरुष न बोले,तथा (सवेपाणाअणेलिसा के०) सर्व प्राणी एटले सर्व जीव ते अणेलिसा एटले सरखा नथी तथा सरखाने तथा विलक्षणने एवुं वचन पण विवेकी जन एकांतें न बोले, तथा (गंठिगाएभविस्संति के०) तथा सर्व प्राणी कर्म ग्रंथि सहित थशे, एटले कर्मनी गांठ सहितज रहेशे, एवुं पण एकांतें वचन न बोले, (सासयंतिवणोवए के०) तथा सर्वज्ञ शाश्वताज सर्वकालें होशे, पण कदापि कालें विछेद नहींज पामे. एवुं वचन पण एकांतें बोले नहीं ॥४॥ (एएहिंदोहिंठाणेहिं के०) ए बे स्थानक जे तीर्थंकर विछेद पामशे, अथवा शाश्वताज रहेशे, अथवा सर्व भव्य जीव सिद्धिने पामशे, अथवा सर्व भव्य जीव कर्म सहितज रहेशे, ए बे स्थानक बे प्रकारना थयां एम कहेवुं, ते. (ववहारोणविज्जती के०) व्यवहार नथी एवुं जाणे. (एएहिंदोहिं ठाणेहिं के०) ए बेहु स्थानकें करी, (अणायारंतुजाणई के०) अनाचार जाणे, एटले दर्शनाचार आश्री अनाचार कह्यो. ॥ ५ ॥

॥ दीपिका-(समुछिहिंति) समुछेत्स्यंति उछेदं यास्यंति शास्तारोभव्याः सर्वभव्यानां मुक्तिगमनेन भव्यशून्योलोकः स्यादित्येवं नो वदेत् । तथा सर्वे प्राणाअनीदृशाविसदृशाविलक्षणाएव न कथंचित्तेषां सादृश्यमस्तीत्यपि नो वदेत् । ग्रंथिकाः कर्मग्रंथोपेता एवं भविष्यंति सर्वे जीवाइत्यपि नो वदेत् । कोर्थः ? । सर्वे प्राणिनः सेत्स्यंत्येव कर्मावृत्तावा भविष्यंतीत्येकमपि पक्षमेकांतेन न वदेत्तथा शाश्वतास्तीर्थकृतइत्यपि न वदेत्॥४॥ (एएहिंति) शास्तारः क्षयं यास्यंति शाश्वतावा भविष्यंतीति । यदिवा सर्वे प्राणाविलक्षणाः सदृशावा तथा ग्रंथिकसत्त्वाएव तद्रहितं वा जगदिति वा एवमनयोः स्थानयोर्व्यवहारोन विद्यते । इदं पक्षद्वयमपि न घटतइत्यर्थः । यतोऽनागतकालस्येव भव्यानामनंतत्वान्निरंतरं मुक्तिगमनेपि न भव्यशून्यं जगदिति । केचिद्भव्याअपि सामग्र्यभावान्न सेत्स्यंति यथा प्रतिमायोग्यमपि दलिकं सामग्रीं विना प्रतिमारूपं न स्यादिति सर्वे जीवाअपि विचित्रकर्मसद्भावाद्विसदृशाः कथंचित् उपयोगामूर्तत्वासंख्यप्रदेशत्वादिधर्मैः सदृशाअपि । तथा सर्वेऽर्हंतः प्रवाहापेक्षया शाश्वताः एकैकापेक्षया अशाश्वताअपीति एताभ्यां द्वाभ्यामेकांतस्थानाभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ५ ॥

॥ टीका-तथान्यमप्यनाचारं प्रतिषेधुकामआह । (समुछिहिंतीत्यादि) सम्यक् निर्विशेषतयोत्सेत्स्यंत्युछेदं यास्यंति क्षयं प्राप्स्यंति सामस्त्येनोत्प्रावल्येन सेत्स्यंति वा सिद्धिं यास्यंति । के? ते शास्तारस्तीर्थकृतः सर्वज्ञास्तच्छासनप्रतिपन्नावा सर्वे निरवशेषाः

हार प्रवर्त्ते नहीं. (एएहिंदोहिंगाणेहिंअणायारंतुजाणए के०) तथा ए बेहु स्थानकें अ नाचार जाणवो, ए कारणें एकांत पक्ष आदरवो नहीं ॥ ३ ॥

॥ दीपिका-(एएहिंति) एताभ्यां एकांतं नित्यं, एकांतमनित्यंचेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते । एकांतनित्ये एकांतानित्येच वस्तुनि व्यवहारोव्यवस्था न घटतइ त्यर्थः । तस्मादेताभ्यां स्थानाभ्यां स्वीकृताभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ३ ॥

॥ टीका-किमित्येकांतेन शाश्वतमशाश्वतं वाऽस्त्वित्येवंनूतां दृष्टिं न धारयेदित्याह । (एएहिंदोहिमित्यादि) सर्वं नित्यमेवानित्यमेव चैताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यामभ्युपगम्य मानाभ्यामनयोर्वा पक्षयोर्व्यवहरणं व्यवहारोलोकस्यैहिकामुष्मिकयोः कार्ययोः प्रवृत्ति निवृत्तिलक्षणोन विद्यते । तथाह्यप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनावं सर्वं नित्यमित्येवं न व्य वह्रीयते प्रत्यक्षेणैव नवपुराणादिनावेन प्रध्वंसानावेन वा दर्शनात्तथैवच लोकस्य प्रवृत्तेरा मुष्मिकेपि नित्यत्वान्मनोबंधमोक्षाद्यनावेन दीक्षायमनियमादिकमनर्थकमिति न व्यवह्री यते । तथैकांतानित्यत्वेनापि न लोकोधनधान्यघटपटादिकमनागतनोगार्थं संगृह्णीयात् तथामुष्मिकेपि क्षणिकत्वादात्मनः प्रवृत्तिर्न स्यात् । तथाच दीक्षाविहारादिकमनर्थकं त स्मान्नित्यानित्यात्मकस्याद्वादे सर्वव्यवहारप्रवृत्तिरतएव तयोर्नित्यानित्ययोः स्थानयोरेकां तत्वेन समाश्रीयमाणयोरैहिकामुष्मिककार्यविध्वंसरूपमनाचारं मौनींद्रागमबाह्यरूपं विजानीयात् । तुशब्दोविशेषणार्थः । कथंचिन्नित्यानित्ये वस्तुनि व्यवहारोयुज्यतइत्येत द्विशिनष्टि । तथाहि सामान्यसमन्वयिनमंशमाश्रित्य स्यान्नित्यमिति नवति तथा विशेषांशं प्रतिक्षणमन्यथाच नवपुराणादिदर्शनतः स्यादनित्यइति नवति । तथोत्पादव्ययध्रौव्याणि चार्हद्दर्शनाश्रितानि व्यवहाराणि नवंति । तथा चोक्तं "घटमौलिसुवर्णार्थी, नाशोत्पादस्थि तिः स्वयं ॥ शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं, जनोयाति सहेतुक" मित्यादि । सदेवं नित्यानित्य पक्षयोर्व्यवहारोन विद्यते तथानयोरेवानाचारं विजानीयादिति स्थितं ॥ ३ ॥

समुच्छिहिंति सत्थारो, सव्वे पाणा अणेलिसा ॥ गंठिगावा न विस्संति, सासयंतिव णो वए ॥४॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, वव हारो ण विज्जइ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥५॥

अर्थ-वली पण अनाचार, निषेधवानें इछतो बतो कहेबे. (समुच्छिहिंति के०) सर्वथापि उछेद पामशे एटले क्षय थइ जाशे,अथवा सर्व सिद्धिने विषे जशे ते कोण जशे तोके (सत्थारो के०) तीर्थंकर सर्वज्ञ, तथा जे तेना शासनमां प्रवर्त्तेबे ते सर्व

त्यं तत्कथं तेषां क्षयः युक्तिरप्यत्र संबधिशब्दावेतो । मुक्तिः संसारं विना न भवति संसारोपि न मुक्तिमंतरेण । ततश्च भव्योछेदे संसारस्याप्यभावः स्यादतोऽभिधीयते नाऽनयोर्व्यवहारोयुज्यतइति ॥ ५ ॥

जे केइ खुद्दगा पाणा, अडुवा संति महालया ॥ सरिसंतेहिंति वेरं
ति असरिसंतीय णो वदे ॥६॥ एएहिं दोहिं गणेहिं, ववहारो ण
विज्जई ॥ एएहिं दोहिं गणेहिं, अणायारंतु जाणए ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे चारित्राचार आश्री कहेछे. (जेकेइखुद्दगापाणा के०) जे कोइ आ जगत्मां लघुप्राणी एटले सूक्ष्मजीवछे. एटले पृथविकायथी मांमीने पंचेंद्रियपर्यंत सूक्ष्म जीवछे, (अडुवासंतिमहालया के०) अथवा जे जीव महाकाय एटले महोटी कायावाळाछे, अहीं न्हानाजीव ते कुंथुआदिक, अने महोटा जीव ते हस्त्यादिक जाणवा. (सरिसंतेहिंतिवेरं के०) ए बेहुनो विनाश करवा थकी सरखुंज वैर होय, एवुं एकांते वचन न बोले (असरिसंतीयणोवदे के०) अथवा असरीखुं होय एटले सरखुं वैर न होय. एवुं वचन पण एकांतें न बोले कारणके, कर्मबंधनें विषे न्हाना मोटानुं कांइ विशेष नथी किंतु? अध्यवसाय विशेष कर्म बंधछे एवुं जाणे, अने बोले ॥६॥ ए बेहु स्थानक बोलतां व्यवरहार प्रवर्त्ते नहीं, एवुं जाणे, तथा एवुं एकांतें बोलतां अनाचारछे एम जाणे.॥७॥

॥ दीपिका—(जेकेइत्यादि) ये केचित् क्षुद्राः प्राणिनएकेंद्रियद्वींद्रियादयोऽल्पकायावा पंचेंद्रियाः । अथवा महालयामहाकायाः संति तेषां क्षुद्राणां कुंथ्वादीनां महतां हस्त्यादीनां च हनने सदृशं वैरं कर्मबंधस्तुल्यइत्येकांतेन नो वदेत् असदृशं वातद्घाते वैरं कर्मबंधइंद्रियज्ञानकायानां विचित्रत्वादित्यपि नो वदेत् । नहि वध्यवशात्कर्मबंधः किंतु? अध्यवसायवशात् तीव्राध्यवसायादल्पमपि सत्वं घ्नतोमहान् कर्मबंधः अकामस्यतु महाकायप्राणिहननेपि स्वल्पबंधइत्यर्थः ॥६॥ (एएहिंइति) एताभ्यां तुल्यातुल्यविरूपाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते अध्यवसायस्यैव बंधाबंधहेतुत्वात् । एताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां प्रवृत्तस्यानाचारं जानीयात् । तथाहि । नहि जीववधे हिंसा स्यात्तस्य नित्यत्वात् । यदुक्तं "पंचेंद्रियाणि त्रिविधं बलंच, उच्छ्वासनिश्वासमथान्यदायुः ॥ प्राणादशैते भगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा" इति । किंच भावापेक्षएव कर्मबंधोयथा वैद्यस्य सम्यक् क्रियां कुर्वतोयद्यपि रोगी म्रियते तथापि न वैद्यस्य कर्मबंधोदुष्टाध्यवसायाभावात् अन्यस्यतु सर्पबुध्या रज्जुमपि घ्नतोभावदोषात्कर्मबंधः । यदागमः । उच्चालियं मियाए, इरियासमि

सिद्धिगमनयोग्यान्नव्यास्ततश्रोच्छिन्नन्नव्यं जगत्स्यादिति शुष्कतर्काभिमानग्रहगृहीतां युक्तिं चाभिदधति जीवसद्भावे सत्यप्यपूर्वोत्पादाभावादन्नव्यस्य च सिद्धिगमनासंन्नवात्कालस्य वाऽनंत्यादनारतसिद्धिगमनसंन्नवेन तद्यथोपपत्तेरपूर्वायाभावाद्भव्योच्छेदइत्येवं नो वदेत्त था सर्वेपि प्राणिनोजंतवोऽनीदृशाविसदृशाः सदा परस्परविलक्षणाएव न कथंचित्तेषां सादृश्यमस्तीत्येवमप्येकांतेन नो वदेत् । यदिवा सर्वेषां न्नव्यानां सिद्धिसद्भावे विशिष्टाः संसारेऽनीदृशाश्चन्नव्याएव न्नवेयुरित्येवं च नो वदेत् । युक्तिं चोत्तरत्र वक्ष्यति । तथा कर्मात्मकोग्रंथोयेषां विद्यते ते ग्रंथिकाः सर्वेपि प्राणिनः कर्मग्रंथोपेताएव न्नविष्यंतीत्येवमपि नो वदेत् । इदमुक्तं न्नवति । सर्वेपि प्राणिनः सेत्स्यंत्येव कर्मावृतावा सर्वे न्नविष्यंतीत्येवमेकमपि पक्षमेकांतिकं नो वदेत् । यदिवा ग्रंथिकाइति ग्रंथिकसत्वान्नविष्यंतीति ग्रंथिन्नेदं कर्तुमसमर्थान्नविष्यंतीत्येवं च नो वदेत्तथा शाश्वताइति शास्तारः सदा सर्वकालं स्थायिनस्तीर्थकरान न्नविष्यंति न समुत्सेत्स्यंति नोच्छेदं यास्यंतीत्येवं नो वदेदिति ॥ ४ ॥ तदेवं दर्शनाचारनिषेधं वाङ्मात्रेण प्रदर्श्याऽधुना युक्तिं दर्शयितुकामश्राह । (एएहिं इत्यादि) एतयोरनंतरोक्तयोर्द्वयोः स्थानयोः । तद्यथा । शास्तारः क्षयं यास्यंतीति शाश्वतावा न्नविष्यंतीति । यदिवा सर्वे शास्तारस्तद्दर्शनप्रतिपन्नावा सेत्स्यंति शाश्वतावा न्नविष्यंति । यदिवा सर्वे प्राणिनोह्यनीदृशाः विसदृशासदृशावा तथा ग्रंथिकसत्वास्तद्रहितावा न्नविष्यंतीत्येवमनयोः स्थानयोर्व्यवहरणं व्यवहारस्तदास्तित्वे युक्तेरन्नावान्न विद्यते । तथाहि । यत्तावदुक्तं सर्वेशास्तारः क्षयं यास्यंतीत्येतदयुक्तं । क्षयनिबंधनस्य कर्मणोन्नावात्सिद्धानां क्षयान्नावोन न्नवस्थकेवल्यपेक्षयेदमभिधीयते तदप्यनुपपन्नं यतोनाद्यनंतानां केवलिना सद्भावात्प्रवाहापेक्षया तदन्नावान्नावः । यदप्युक्तमपूर्वायान्नावे सिद्धिगमनसद्भावेन च व्ययसद्भावाद्भव्यशून्यं जगत् स्यादित्येतदपि सिद्धांतपरमार्थाविदिनो वचनं । यतोन्नव्यराशेराद्धांते न्नविष्यत्कालस्यवानंत्यमुक्तं तच्चैवमुपपद्यते । यदि क्षयोन न्नवति सतिच तस्मिन्नात्यंतं न स्यान्नापि चावश्यं सर्वस्यापि न्नव्यस्य सित्धिगमनेन न्नाव्यमित्यानंत्याद्भव्यानतत् सामग्र्यन्नावाद्योग्यदलिकप्रतिमावत्तदनुपपत्तिरिति । तथा नापि शाश्वताएव न्नवस्थकेवलिनां शास्तॄणां सिद्धिगमनसद्भावात्प्रवाहापेक्षया शाश्वतत्वमेवातः कथंचिच्छाश्वताः कथंचिदशाश्वताइति।तथा सर्वेपि प्राणिनोविचित्रकर्मसद्भावान्नानागतिजातिशरीरांगोपांगादिसमन्वितत्वादनीदृशा विसदृशास्तथोपयोगासंख्येयप्रदेशत्वामूर्तत्वादिभिर्धर्मैः कथंचित्सदृशास्तथोल्लसितसद्वीर्यतया केचिद्भिन्नग्रंथयोपरेच तथाविधपरिणामान्नावाद्ग्रंथिकसत्वाएव न्नवंतीत्येवं व्यवस्थितेनैकांते नैकांतपक्षोन्नवतीति प्रतिपित्धस्तदेवमेतयोरेव द्वयोः स्थानयोरुक्तनीत्या नानाचारं विजानीयादिति स्थितं । श्रपिचागमेश्चनंतानंतास्वप्युत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु न्नव्यानामनंतन्नागएव सित्ध्यतीत्ययमर्थः प्रतिपाद्यते ।यदा चैवंन्नूतं तदानं

अर्थ–हवे आहार आश्री आचार अनाचार कहेछे.(अहाकम्माणिभुंजंति के०) जे साधु आश्री छए कायनुं मर्दन करी,वस्तु जे भोजन उपाश्रयादिक कीधां होय, एटलानो जे उपभोग करे ते, (अण्णमण्णेसकम्मुणा के०) परस्पर मांहोमांहे पोतानें कर्मे, (उवलित्तेति जाणिज्जा के०) उपलिप्त जाणवा. एवुं पण वचन एकांतें न बोले, (अणुवलित्तेतिवापुणो के०)अथवा पोतानां कर्मे करी अनुपलिप्त,एटले उपलिप्त न जाणवा,एवुं पण वचन कांतेतें न बोले,कारणके, जे आधाकर्मिक आहार होय, तेनें पण श्रुतना उपदेशनें अर्थें शुद्ध एवो करीनें जमे तो ते कर्मे करी लेपाय नहीं. अथवा सुजतो आहार होय,परंतु ते आहारनें आहारगृद्धपणे जमे तो, ते कर्मे करी बंधायछे. एवुं जाणीनें, अनेकांत वचन बोले, पण एकांत वचन न बोले ॥८॥ ए बेहुस्थानकें करी व्यवहार न जाणे, अनें ए बेहु स्थानकें करी अनाचार जाणे ॥ ए ॥

॥ दीपिका–(अहाकम्माणित्ति) आधाकर्माणि ये भुंजतेऽन्योन्यं परस्परं तान्स्वकीयेन कर्मणा उपलिप्तान्वा नो वदेत् अनुपलिप्तान्वा न वदेत् । आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमिति कृत्वा भुंजानस्य न बंधः श्रुतोपदेशं विनाऽहारगृध्याऽधाकर्म भुंजानस्यापितु बंधस्तस्मादाधाकर्मभोगे कर्मबंधः स्यान्न स्याद्वा इति वदेत् ॥ ८ ॥ (एएहिंदोहिमिति) आधाकर्मभोगे कर्मबंधःस्यादेव न स्यादेवेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारो न विद्यते द्वाभ्यां स्थानाभ्यां स्वीकृताभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ए ॥

॥ टीका–पुनश्चारित्रमधिकृत्याहारविषयानाचाराचारौ प्रतिपादयितुकामआह । (अहाकम्माणीत्यादि) साधु प्रधानकारणमादायाश्रित्य कर्माण्याधाकर्माणि ।तानितु वस्त्रभोजनवसत्यादीन्युच्यंते । एतान्याधाकर्माणि ये भुजंते एतैरुपभोगं ये कुर्वंत्यन्योन्यं परस्परं तान्स्वकीयेन कर्मणोपलिप्तान् विजानीयादित्येवं नो वदेत्तथाऽनुपलिप्तानितिवा नो वदेत् । एतदुक्तं भवति । आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमिति कृत्वा भुंजानः कर्मणा नोपलिप्यते तदाधाकर्मोपभोगेनावश्यतया कर्मबंधोभवतीत्येवं नो वदेत्तथा श्रुतोपदेशमंतरेणाहारगृध्याऽधाकर्म भुंजानस्य तन्निमित्तकर्मबंधसद्दशत्वासद्दशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारोनिर्युक्तिकत्वान्न युज्यते । तथाहि । न वध्यस्य सद्दशासद्दशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारो निर्युक्तिकत्वान्न युक्तसद्दशत्वमतोनुलिप्तानपि नो वदेद्यथावस्थितमौनींद्रागमज्ञस्य त्वेवं युज्यते वक्तुमाधाकर्मोपभोगे न स्यात्कर्मबंधः स्यान्नेति । यतउक्तं । "किंचिच्छुद्धं कल्पमकल्पंवा स्यादकल्पमपि कल्पं ॥ पिंडः शय्या वस्त्रं पात्रं वा भेषजाद्यं वा" ॥१॥ तथान्यैरप्यभिहितं । उत्पद्येतहि सावस्था देशकालामयान्प्रति॥ यस्यामकार्यं कार्यं स्यात्कर्म कार्यंच

यस्स संकम छाए ॥ वावज्जिज्जकुलिंगी, । मरिज्जतज्जोगमासज्ज ॥ १ ॥ नयतस्स तन्निमि त्तो,बंधेसुहमोविदेसिर्ड समए॥ अणवज्जोउपउंगेण,सव्वनावेणसोजह्मा ॥२॥ इत्यादि॥७॥

॥टीका–अधुना चारित्राचारमंगीकृत्याह॥(जेकेइइत्यादि)ये केचन क्षुद्रकाः सत्वाः प्राणिन एकेंद्रियद्वींद्रियादयोऽल्पकायावा पंचेंद्रियाअथवा महालयामहाकायाः संति विद्यंते तेषां क्षुद्रकाणामल्पकायानां कुंथ्वादीनां महानालयः शरीरं येषां ते महालयाहस्त्यादयस्तेषां च व्यापादने सदृशं वैरमिति वज्रकर्म विरोधलक्षणं वा वैरं सदृशं समानं तुल्यप्रदेशत्वात्सर्वे जंतूनामित्येवमेकांतेन नो वदेत्तथा विसदृशमसदृशं तद्व्यापत्तौ वैरं कर्मबंधोवा इंद्रियविज्ञानकायानां विसदृशत्वात् सत्यपि प्रदेशतुल्यत्वे न सदृशं वैरमित्येवमपि नो वदेत्। यदि हि वध्यापेक्षएवकर्मबंधः स्यात्तद्वशात्कर्मणोपि सादृश्यमसादृश्यंवा वक्तुं युज्यते। नच तद्वशादेव वधोपि त्वध्यवसायवशादपि ततश्च तीव्राध्यवसायिनोऽल्पकायसत्वव्यापादनेपि महद्वैरमकामस्यतु महाकायसत्वव्यापादनेपि स्वल्पमिति ॥ ६ ॥ एतदेवसूत्रेणैव दर्शयितुमाह ॥ (एएहिमित्यादि) आन्यामनंतरोक्ताभ्यां स्थानाभ्यामनयोर्वा स्थानयोरल्पकायसत्वमहाकायव्यापादनापादितकर्मबंधसदृशत्वासदृशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारोनिर्युक्तिकत्वान्न युज्यते ।तथाहि। न वध्यस्य सदृशत्वमसदृशत्वं चैकमेव कर्मबंधस्य कारणमपितु वधकस्य तीव्रनावोमंदनावोज्ञाननावोऽज्ञाननावोमहावीर्यत्वमल्पवीर्यत्वं चेत्येतदपि । तदेवं वध्यवधकयोर्विशेषात्कर्मबंधविशेषइत्येवं व्यवस्थिते वध्यमेवाश्रित्य सदृशत्वासदृशत्वव्यवहारोन विद्यतइति तथा तयोरेव स्थानयोः प्रवृत्तस्यानाचारं विजानीयादिति । तथाहि। यज्जीवसाम्यात्कर्मबंधसदृशत्वमुच्यते तदयुक्तं। यतोनहि जीवव्यापत्त्या हिंसोच्यते ।तस्य शाश्वतत्वेन व्यापादयितुमशक्यत्वादपि त्विंद्रियादिव्यापत्त्या ।तथाचोक्तं।"पंचेंद्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः॥ प्राणादशैते नगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा"॥१॥ इत्यादि। अपिच नावसव्यपेक्षस्यैव कर्मबंधोन्युपेतुं युक्तः। तथाहि। वैद्यस्यागमसव्यपेक्षस्य क्रियां कुर्वतोयद्यप्यातुरविपत्तिर्नवति तथापि न वैरानुषंगोनवेद्दोषानावादपरस्यतु सर्पबुद्ध्या रज्जुमपि घ्नतोनावदोषात्कर्मबंधस्तद्रहितस्यतु न बंधइत्युक्तं चागमे । उच्चालियंमियाएइत्यादि । तंमुलमत्स्याख्यानकं तु सुप्रसिद्धमेव । तदेवंविधवध्यवधकनावापेक्षया स्यात् सदृशत्वं स्यादसदृशत्वमित्यन्यथाऽनाचारइति ॥ ७ ॥

अहाकम्माणि नुंजंति, अमणमणे सकम्मुणा॥ उवलित्तेति जाणिज्जा, अणुवलित्तेति वा पुणो ॥८॥ एएहिं दोहिं गणेहिं, ववहारो ण विज्जई, एएहिं दोहिं गणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥ ए ॥

वीर्यछे, एवी संज्ञा पण करवी नहीं. (नत्थिसव्वत्थवीरियं के०) वली सर्वपदार्थनें विषे सर्वद्रव्यनुं वीर्य नथी, एवी संज्ञा पण करवी नहीं. अहीं एकांतनो निषेध करीनें स्याद्वाद बोलवो. इत्यर्थः ॥ १० ॥ अगीआरमी गाथानो अर्थ, पूर्ववत् जाणवो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका-(जमिदमिति) यदिदमौदारिकं शरीरं आहारकंवा एतद्ग्रहणाद्वैक्रियमपि ग्राह्यं कार्मणं तथा तैजसमपि। एतेषां शरीराणामैक्यमेव तैजसकार्मणयोरभिन्नत्वात्। ततस्त्रयाणामेकत्वमेवेति नो वदेत् इत्यग्रेतनश्लोके संबंधः। तथा शरीराणां सर्वेषां सर्वथा भेदएवेत्यपि नो वदेत् कथंचिदेकत्वस्याप्यंगीक्रियमाणत्वात् तथा। (सव्वत्थ त्ति) सर्वं सर्वत्रास्तीति सांख्याभिप्रायेण सत्वरजस्तमोरूपायाः प्रकृतेरेकत्वात्तस्याएव हि सर्वस्य कारणत्वात्सर्वं सर्वात्मकमेवं सति सर्वत्र घटपटादौ अन्यस्य व्यक्तस्य वीर्यं शक्तिरस्ति सर्वस्य व्यक्तस्य प्रकृतिकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वात्सर्वं सर्वत्र सर्वस्य वीर्यमस्तीति संज्ञां न कुर्यात्। तथा सर्वे भावाः स्वस्वशक्तियुक्ताइति न सर्वस्य सर्वत्र शक्तिरित्यपि संज्ञां न कुर्यात् भेदाभेदस्वरूपत्वात्सर्वभावानामिति ॥१०॥ (एएहिंदोहिंगणेहिंति) द्वाभ्यामेताभ्यां सर्वत्र शक्तिरस्ति नास्तिवेति अथवा शरीराणां सर्वेषां भेदोऽभेदोवेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते युक्तयोन संगछंतीत्यर्थः। एतयोः स्थानयोः प्रवृत्तस्याऽनाचारं जानीयात् ॥११॥

॥ टीका-पुनरप्यन्यथादर्शनं प्रति चागमानाचारं दर्शयितुमाह। (जमिदंउरालमित्यादि) यदि वा योयमनंतरमाहारः प्रदर्शितः स सति शरीरे भवति। शरीरं च पंचधा। तस्य चौदारिकादेः शरीरस्य भेदाभेदं प्रतिपादयितुकामः पूर्वपक्षद्वारेणाह। (जमिदमित्यादि) यदिदं सर्वजनप्रत्यक्षमुदारैः पुद्गलैर्निवृत्तमौदारिकमेतदेवोरालं निस्सारत्वादे तच्च तिर्यङ्मनुष्याणां भवति। तथा चतुर्दशपूर्वविदा क्वचित्संशयादावाह्रियतइत्याहारकमेतद्ग्रहणाच्च वैक्रियोपादानमपि द्रष्टव्यं। तथा कर्मणा निवृत्तं कार्मणमेतत् सहचरितं तैजसमपि ग्राह्यं। औदारिकवैक्रियाहारकाणां प्रत्येकं तैजसकार्मणाभ्यां सह युगपडुपलब्धेः कस्यचिदेकत्वाऽशंका स्यादतस्तदपनोदार्थं तदभिप्रायमाह। तदेव तद्यदेवौदारिकं शरीरं तएव तैजसकार्मणे शरीरे। एवं वैक्रियाहारकयोरपि वाच्यं। तदेवंभूतां संज्ञां नो निवेशयेदित्युत्तरश्लोके क्रिया। तथैतेषामात्यंतिकोभेदइत्येवंभूतामपि संज्ञां नो निवेशयेत्। युक्तिश्चात्र यद्येकांतेनाभेदएव। ततइदमौदारिकमुदारपुद्गलनिष्पन्नं तथैतत्कर्मणा निर्वर्त्तितं कार्मणं सर्वस्यैतस्य संसारचक्रवालस्य भ्रमणस्य कारणभूतं तेजोद्रव्यैर्निष्पन्नं तेजएव तैजसं आहारपक्तिनिमित्तं तैजसलब्धिनिमित्तं चेत्येवं भेदेन संज्ञा निरुक्तं कार्यंच न स्यात्। अथात्यंतिकोभेदएव ततोघटवद्भिन्नयोर्देशकालयोरप्युपलब्धिः स्यात्।

वर्द्धयेदित्यादि ॥८॥ किमित्येवं स्याद्वादः प्रतिपाद्यत इत्याह॥(एएहिंदोहिमित्यादि) आभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यामाश्रिताभ्यामनयोर्व्यवस्थानयोराधाकर्मोपभोगेन कर्मबंधाभावाभावभूत योर्व्यवहारोन विद्यते ।तथाहि। यद्यवश्यमाधाकर्मोपभोगेनैकांतेन कर्मबंधोऽभ्युपगम्येत । एवं चाहाराभावेनापि क्वचित्सुतरामनर्थोदयः स्यात् । तथाहि । क्षुत्प्रपीडितोन सम्यगी र्यापथं शोधयेत्ततश्च व्रजन् प्राण्युपमर्दमपि कुर्यात् मूर्छादिसद्भावतया देहपाते सत्यव इयंभावी.त्रसादिव्याघातोऽकालमरणे चाविरतिरंगीकृता भवत्यार्तध्यानापत्तौच तिर्यग्गति रित्यागमश्च । सव्वत्थ संजमं संजमाउ अप्पाणमेव रक्खेज्जाइत्यादिनापि तदुपभोगे कर्मबं धाभावइति । तथाहि । आधाकर्मण्यपि निष्पाद्यमाने षड्जीवनिकायवधस्तद्वधेच प्रतीतः कर्मबंधइत्यतोऽनयोःस्थानयोरेकांतेनाश्रीयमाणयोर्व्यवहरणं व्यवहारोन युज्यते तथाभ्या मेव स्थानाभ्यां समाश्रिताभ्यां सर्वमनाचारं विजानीयादिति स्थितं ॥ ए ॥

जमिदं उरालमाहारं, कम्मगं च तहेवय ॥ सव्वत्थ वीरियं अत्थि,
णत्थि सव्वत्थ वीरियं॥ १० ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण
विज्जई ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥ ११ ॥

अर्थ—हवे बीजी रीतें परदर्शनी आश्री बोलवानो अनाचार कहेछे. (जमिदंउरालमाहारं कम्मगंचतहेवय के०) जे ए शरीर सर्वलोक प्रसिद्ध औदारिक, ते तिर्यंच अने मनुष्यनुं शरीर जाणवुं, तथा जे चौदपूर्वधर मुनिराज होय, ते कोइ एक संशय उपने छते शरी र करीनें केवली पासें पूछवाने अर्थे मोकले,ते आहारक शरीर जाणवुं. एना ग्रहणथी वैक्रिय शरीर पण ग्रहण करवुं, तथा कार्मण शरीर कर्मपुजलनिबद्ध जाणवुं. तेमज एनुं सहचारी ते तैजस शरीर जाणवुं, ए पांच शरीर जाणवां.हवे कोइ एकनें ए पांच श रीरछे तेमांहेथी औदारिक वैक्रियादिकने विषे एकज शरीरनी आशंका उपजे एटले ते एम कहे के, जे औदारिक शरीर, तेहिज तैजस, कार्मण शरीरछे, अनें तैजस कार्मण शरीर तेहिज औदारिक, वैक्रिय, अनें आहारक शरीरछे. परंतु एवी संज्ञा न करवी, तथा ए पांचे शरीर अत्यंत मांहो मांहे जुदां जुदांछे एवी पण संज्ञा न करवी. त्यारें केवी संज्ञा करवी? तोके,ए जीव आश्री पांचे शरीर अभिन्नछे अने नामनें भेदें,पर्यायनें भेदें,भिन्न पणछे.एम कहेवुं. हवे सर्वद्रव्यनो भेदाभेद देखाडवामाटें कहेछे. (सव्वत्थवीरियंअत्थि के०) स घलुं द्रव्य, सर्वद्रव्यनें विषेछे एवो सांख्यमतनो अभिप्राय जाणवो. ते सांख्य मत एम कहेछे के, सत्व, रज, तमरूपें जे. प्रधाननामा तत्व ते सर्वद्रव्यनुं कारणछे, ए कारणें सर्वद्रव्य सर्वात्मक एवी व्यवस्था एटले सर्वत्र घट पटादिकद्रव्यनें विषे अन्यद्रव्यनुं

सामस्त्येन स्वद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्तिचावक्तव्यं चेति। तथैकांशस्य परद्रव्याद्यपेक्षया स्यान्नास्ति चावक्तव्यं चेति तथैकस्यांशस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु परद्रव्याद्यपेक्षयाऽन्यस्य तु योगपद्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्तिच नास्तिचाऽवक्तव्यं इयं च सप्तभंगी यथायोगमुत्तरत्रापि योजनीयेति ॥ १० ॥ ११ ॥

णत्थि लोए अलोएवा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि लोए अलोएवा, एवं सन्नं निवेसए॥ १२॥ णत्थि जीवा अजीवावा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि जीवा अजीवावा, एवं सन्नं निवेसए॥ १३॥ णत्थि धम्मे अधम्मेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि धम्मे अधम्मेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे सर्वशून्यवादीना मतनुं निराकरण करवानें अर्थें,लोक अनें अलोकनुं अस्तिपणुं देखाडेछे, (णत्थिलोएअलोएवा के०) चतुर्दशरज्ज्वात्मक एवो जे लोक,अथवा पंचास्तिकायरूप एवो जे लोक, ते नथी,एवी संज्ञा न करवी,तथा आकाशास्तिकाय रूप एवो जे अलोक,ते पण नथी.ते एवी संज्ञा पण न करवी. केमके,ए नास्तिकवादीनो मतछे. हवे केवी संज्ञा करवी? ते कहेछे.पंचास्तिकायरूप लोक ते पण छे,तथा आकाशास्तिकाय रूप अलोक ते पणछे, एवी संज्ञा करवी. ए केवलीनो मतछे॥१२॥हवे लोकालोकनुं अस्तिपणुं देखाडीनें तेना विशेषभूत जीव अनें अजीव तेनो अस्तिभाव देखाडेछे. जीव ते, उपयोग लक्षण संसारीक, अथवा मुक्तिगत,ए पण नथी. तथा अजीव ते धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल,अनें कालात्मक ए पण नथी.एवी संज्ञा पण न करवी केमके,ए नास्तिकवादीनो मतछे त्यारें केवी संज्ञा करवी? तोके, जीव पणछे,अनें अजीव पणछे,एवी संज्ञा करवी.ए केवली भगवंतनो मतछे ॥१३॥ हवे एवा जीवनो अस्तिभाव देखाडीनें तेनें सदसत्क्रिया अनुष्ठाननें विषे धर्म, अनें अधर्म कारणछे,ते माटें हवे तेनो अस्तिभाव कहेछे. श्रुतचारित्ररूप जे धर्म, ते कर्मक्षयनो कारणरूपछे. ते पण नथी, तथा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अने योगरूप जे अधर्मछे, ते कर्मबंधनो कारणरूपछे, ते पण नथी, एवी संज्ञा पण न करवी. परंतु धर्म पणछे, अनें अधर्म पणछे, एवी संज्ञा करवी ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—(णत्थिलोएइत्यादि) शून्यवादिमताभिप्रायेण नास्ति लोकः अलोकोपि नास्तीति संज्ञां नो निवेशयेन्न स्थापयेत् अस्ति लोकः पंचास्तिकायात्मकः अस्ति वाऽलो

न नियता युगपडुपलब्धिरित्येवं च व्यवस्थिते कथंचिदेवोपलब्धेर्भेदः कथंचिच्च संज्ञाभेदाद्भेदइति स्थितं । तदेवमौदारिकादीनां शरीराणां भेदाभेदौ प्रदर्श्याधुना सर्वस्यैव द्रव्यस्य भेदाभेदौ प्रदर्शयितुकामः पूर्वपक्षं श्लोकपश्चार्द्धेन दर्शयितुमाह । (सव्वछवीरियमित्यादि) सर्वं सर्वत्र विद्यतइतिकृत्वा सांख्याभिप्रायेण सत्वरजस्तमोरूपस्य प्रधानस्यैकत्वात्तस्यच सर्वस्यैव कारणत्वात् अतः सर्वं सर्वात्मकमित्येवं व्यवस्थिते घटपटाद्यवयवस्य व्यक्तस्य वीर्यं शक्तिर्विद्यते सर्वस्यैव हि व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वादतः सर्वस्य सर्वत्र वीर्यमस्तीत्येवं संज्ञा नो निवेशयेत्तथा सर्वे भावाः स्वभावेन स्वस्वभावव्यवस्थिताइति प्रतिनियतशक्तित्वान्न सर्वत्र सर्वस्य वीर्यं शक्तिरित्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत् ।युक्तिश्चात्र यत्तावडुच्यते सांख्याभिप्रायेण सर्वं सर्वात्मकं देशकालाकारप्रतिबंधात्तु न समानकालोपलब्धिरिति तदयुक्तं। यतोभेदेन सुखडुःखजीवितमरणादूरासन्नसूक्ष्मबादरसुरूपकुरूपादिकं संसारवैचित्र्यमध्यक्षेणाऽनुभूयते ।नच दृष्टेऽनुपपन्नं नाम।नच सर्वं मिथ्येत्यभ्युपपन्नं युज्यते । यतोऽदृष्टहानिरदृष्टकल्पनाच पापीयसी। किंच सर्वथैक्येऽभ्युपगम्यमाने संसारमोक्षाभावतया कृतनाशोकृताभ्यागमश्च बलादापतति। यच्चैतत्सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रधानमित्येतत्सर्वस्य जगतः कारणं तन्निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति निर्युक्तिकत्वादपिच सर्वथा सर्वस्य वस्तुनएकत्वेऽभ्युपगम्यमाने सत्वरजस्तमसामप्येकत्वं स्यात् तद्भेदे च सर्वस्य भेदइति। तथा यदप्युच्यते सत्वस्य व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्सत्कार्यवादत्वाच्च मयूरांडकरंणे चंचुपिच्छादीनां सतामेवोत्पादाभ्युपगमादसडुत्पादे चाम्रफलादीनामप्युत्पत्तिप्रसंगादित्येतद्वाङ्मात्रं । तथाहि। यदि सर्वथा कारणे कार्यमस्ति न तर्ह्युत्पादोनिष्पन्नघटस्येवापिच मृत्पिंडावस्थायामेव घटगताः कर्मगुणव्यपदेशाभवेयुर्नच भवंति ततोनास्ति कारणे कार्यमथाऽनभिव्यक्तमस्तीति चेन्न । तर्हि सर्वात्मना विद्यते नाप्येकांतेनासत्कार्यवाद एव । तद्भावेहि व्योमारविंदानामप्येकांतेनासतोमृत्पिंडादेर्घटादेरिवोत्पत्तिः स्यान्न चैतद्दृष्टमिष्टं वा।अपिचैवं सर्वस्य सर्वस्माडुत्पत्तेः कार्यकारणभावान्नियमः स्यादेवंच न शाल्यंकुरार्थीशालीबीजमेवादद्यापितु यत्किंचिदेवेति नियमेनच प्रेक्षापूर्वकारिणामुपादानकारणादौ प्रवृत्तिरतोनासत्कार्यवादइति।तदेवं सर्वपदार्थानां सर्वज्ञेयत्वप्रमेयत्वादिभिर्धर्मैः कथंचिदेकत्वं तथा प्रतिनियतार्थकार्यतया यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सदितिकृत्वा कथंचिद्भेदइति सामान्यविशेषात्मकं वस्त्विति स्थितं। अनेनच स्यादस्ति स्यान्नास्तीति भंगकद्वयेन शेषभंगकाअपि डष्टव्याः। ततश्च सर्ववस्तु सप्तभंगीस्वभावं। ते चामी स्वडव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया स्यादस्ति परडव्यापेक्षया स्यान्नास्ति अनयोरेव धर्मयोर्यौगपद्येनाभिधातुमशक्यत्वात्स्यादवक्तव्यं तथा कस्यचिदंशस्य स्वडव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्कस्यचिच्चांशस्य परडव्याद्यपेक्षया स्याद्वा नास्तिवा वक्तव्यं चेति । तथैकस्यांशस्य स्वडव्याद्यपेक्षया परस्य तु

दूषणमभिधीयते तदप्यार्हतमताभिज्ञेन । तन्मतं चैवंभूतं ।तद्यथा नैकांतोनावयवाएव नाप्यवयव्येव चेत्यतः स्याद्वादाश्रयणात्पूर्वोक्तविकल्पदोषानुपपत्तिरित्यतः कथंचिल्लोकोस्त्येवमलोकोपीति स्थितं ॥१२॥ तदेवं लोकालोकास्तित्वं प्रतिपाद्याधुना तद्विशेषभूतयोर्जीवाजीवयोरस्तित्वप्रतिपादनायाह । (णत्थिजीवाअजीवेत्यादि) जीवाउपयोगलक्षणाः संसारिणोमुक्तावा ते न विद्यंते तथा अजीवाश्च धर्माधर्माकाशपुद्गलकालात्मकागतिस्थित्यवगाहदानछायातपोद्योतादिवर्त्तनालक्षणान विद्यंतइत्येवं संज्ञां परिज्ञानं नो निवेशयेन्नास्तित्वनिबंधनं त्विदं प्रत्यक्षेणानुपलभ्यमानत्वाज्जीवान विद्यंते कायाकारपरिणतानि भूतान्येव धावनवल्गनादिकां क्रियां कुर्वंतीति । तथात्मा द्वैतवादमताभिप्रायेण पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यमित्यागमात्तथा अजीवान विद्यंते सर्वस्यैव चेतनाचेतनस्यात्ममात्रनिर्वर्त्तित्वान्नो एवं संज्ञां निवेशयेत् किंत्वस्ति जीवः सर्वस्यास्य सुखदुःखादेर्निबंधनभूतः स्वसंवित्तिसिद्धोऽहं प्रत्ययग्राह्यस्तथा तद्व्यतिरिक्ताधर्माधर्माकाशपुद्गलादयश्च विद्यंते । सकलप्रमाणज्येष्ठेन प्रत्यक्षेणानुभूयमानत्वात्तद्गुणानां भूतचैतन्यवादीव वाच्यः । किं तानि भवदभिप्रेतानि भूतानि नित्यान्युताऽनित्यानि।यदि नित्यानि ततोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावत्वान्न कायाकारपरिणतेभ्युपगमः नापि प्रागविद्यमानस्य चैतन्यमुत्पद्यते आहोस्विद्विद्यमानं तावदविद्यमानमतिप्रसंगादभ्युपेतागमलोपाद्वा ऽथविद्यमानमेव सिद्धं तर्हि जीवत्वं तथाऽत्मा द्वैतवाद्यपि वाच्यः। यदि पुरुषमात्रमेवेदं सर्वं कथं घटपटादिषु चैतन्यं नोपलभ्यते तथा तदैक्यभेदनिबंधनानां पक्षहेतुदृष्टांतानामभावात्साध्यसाधनाभावस्तस्मान्नैकांतेन जीवाजीवयोरभावोपितु सर्वपदार्थानां स्याद्वादाश्रयणाज्जीवः स्यादजीवः अजीवोपिच स्यादजीवः स्याज्जीवइत्येतच्च स्याद्वादाश्रयणं जीवपुद्गलयोरन्योन्यानुगतयोः शरीरस्य प्रत्यक्षतयाऽध्यक्षेणैवोपलंभाद्द्रष्टव्यमिति ॥१३॥ जीवास्तित्वेच सिद्धे तन्निबंधनयोः सदसत्क्रियाद्वारायातयोर्धर्माधर्मयोरस्तित्वप्रतिपादनायाह । (णत्थिधम्मेअधम्मेवेत्यादि) धर्मः श्रुतचरित्राख्यात्मकोजीवस्यात्मपरिणामः कर्मक्षयकारणमात्मपरिणामएवमधर्मोपि मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगरूपः कर्मबंधकारणमात्मपरिणामएव।तावेवंभूतो धर्माऽधर्मौ कालस्वभावनियतीश्वरादिमतेन न विद्येते इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्। कालादयएवास्य सर्वस्य जगद्वैचित्र्यस्य धर्माधर्माव्यतिरेकेणैकांततः कारणमित्येवमभिप्रायं कुर्याद्यतः तएवैककान कारणमपितु समुदिताएवेति। तथाचोक्तं । “ नहि कालादी हिंतो, केवले हिंतो जायए किंचि ॥ इहमुग्गरं धणा इवि, तासव्व समुदिया हेऊ ” इत्यादि । यतोधर्माधर्ममंतरेण संसारवैचित्र्यं न घटामियर्त्यतोऽस्ति धर्मः सम्यग्दर्शनादिकोऽधर्मश्च मिथ्यात्वादिकइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेदिति ॥ १४॥

कश्चाकाशास्तिकायमात्रइति संज्ञां निवेशयेत् ॥ १२ ॥ (णत्थिजीवाइति) न संति जीवाश्च जीवावा इति संज्ञां नो निवेशयेत् संति जीवाश्रजीवाश्चेति संज्ञां कुर्यात् ॥ १३ ॥ (णत्थि धम्मइति) नास्ति धर्मः श्रुतचारित्रात्मकः नास्ति वाऽधर्मोमिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोग रूपः एवं संज्ञां न कर्यात् अस्ति धर्मोऽधर्मोवा एवं संज्ञां कुर्यात् ॥ १४ ॥

॥ टीका—तदेवं सामान्येन सर्वस्यैव वस्तुनोनेदानेदौ प्रतिपाद्याधुना सर्वशून्यवादिम तनिरासेन लोकालोकयोः प्रविनागेनास्तित्वं प्रतिपादयितुकामआह । (णत्थिलोए अलोएवाइत्यादि) यदि वा सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्ति सर्वत्र वीर्यमित्यनेन सामान्येन वस्त्व स्तित्वमुक्तं । तथाहि । सर्वत्र वस्तुनोवीर्यं शक्तिरर्थक्रियासामर्थ्यं मनसः स्वविषयज्ञानोत्पा दनं तच्चैकांतेनात्यंतानावाच्छशविषाणादेरप्यस्तीत्येवं संज्ञां न निवेशयेत्सर्वत्र वीर्यं ना स्तीति नो एवं संज्ञां निवेशयेदिति । अनेनावशिष्टं वस्त्वस्तित्वं प्रसाधितमिदानीं तस्यैव वस्तुनईषद्विशेषितत्वेन लोकालोकरूपतयास्तित्वं प्रसाधयन्नाह । (णत्थिलोएअलोएइत्या दि) लोकश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकोधर्माधर्माकाशादिपंचास्तिकायात्मकोवा स नास्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत् । तथाऽऽकाशास्तिकायात्मकस्त्वेकः सच न विद्यते एवेत्येवं सज्ञां नो निवेश येत् । तदनावप्रतिपत्तिनिबंधनं त्विदं । तद्यथा प्रतिनासमानं वस्त्ववयवद्वारेणवा प्रति नासेतावयविद्वारेणवा तत्र न तावदवयवद्वारेण प्रतिनासनमुत्पद्यते निरंशपरमाणूनां प्र तिनासमानासंनवात्सर्वारातीयनागस्य परमाण्वात्मकत्वात्तेषांच छद्मस्थविज्ञानेन द्रष्टुमश क्यत्वात् । तथाचोक्तं “यावद्दृश्यं परस्तावद्भागः सच न दृश्यते ॥ निरंशस्यच नागस्य नास्तिछ द्मस्थ दर्शन” मित्यादि । नाप्यवयविद्वारेण विकल्प्यमानस्यावयविनएवानावात् तथा ह्यसौ स्वावयवेषु प्रत्येकं सामस्त्येनवा वर्त्तेतांऽशांशिनावेनवा सामस्त्येनावयविबहुत्वप्रसंगान्नाप्यं शेन पूर्वविकल्पानतिक्रमेणानवस्थाप्रसंगात्तस्माद्विचार्यमाणं न कथंचिद्वस्त्वात्मकं नावं लनते ततस्तत्सर्वमेवैतन्मायास्वप्नेंद्रजालमरुमरीचिकाविज्ञानसदृशं । तथाचोक्तं । “यथा य थार्थाश्चिंत्यंते विविच्यंते तथा तथा ॥ यद्येते स्वयमर्थिन्योरोचंते तत्र के वय” मित्यादि । तदेवं वस्त्वनावे तद्विशेषलोकालोकानावः सिद्धएवेत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । किंत्वस्ति लोकऊर्ध्वाधस्तिर्यग्रूपोवैशाखस्थानस्थितकटिन्यस्तकरयुग्मपुरुषसदृशः पंचास्तिकायात्म कोवा तद्व्यतिरिक्तश्चालोकोप्यस्ति ।संबधिशब्दत्वाल्लोकव्यवस्थाऽनुपपत्तेरिति नावः । युक्ति श्चात्र यदि सर्वं नास्ति ततः सर्वांतःपातित्वात्प्रतिषेधकोपि नास्तीत्यतस्तदनावात्प्रतिषे धानावोपि च सति परमार्थनूते वस्तुनि माया स्वप्नेंद्रजालादिव्यवस्थान्यथा किमाश्रित्य कोवा मायादिकं व्यवस्थापयेदिति । अपिच “सर्वानावोयथान्नीष्टोयुक्त्यनावेन सिद्ध्यति । सास्ति चेत्सैव नस्तत्वं तत्सिद्धौ सर्ववस्तुस” दित्यादि । यदप्यवयवावयविविनागकल्पनया

सत्तापरसत्तानांतरीयकतोनेतरस्य सत्तेति नाप्यनयाभावः शक्यते वक्तुं निबंधनस्य जगद्वैचित्र्यस्याभावात् । नहि कारणमंतरेण कचित्कार्यस्योत्पत्तिर्दृष्टा । नियतिस्वभावादिवादस्तु नष्टोत्तराणां पादप्रसारिकाणां पादप्रसारिका प्रायोपि च तद्वादेऽभ्युपगम्यमाने सकलक्रियावैयर्थ्यं ततएव सकलकार्योत्पत्तिरित्यतोस्ति पुण्यं पापं चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत् । पुण्यपापे चैवं रूपे । तद्यथा ॥ "पुद्गलकर्म शुभं य,त्तत्पुण्यमिति जिनशासने दृष्टम् ॥ यदशुभमथ तत्पाप,मिति भवति सर्वज्ञनिर्दिष्ट"मिति ॥ १६ ॥

णत्थि आसवे संवरेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि आसवे संवरेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १७ ॥ णत्थि वेयणा णिज्जरावा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि वेयणा णिज्जरावा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे कारण विना कार्यनी उत्पत्ति नथी,माटें पुण्य अनें पाप ए बेनुं कारण आश्रव अनें संवरछे, तेथी हवे आश्रव अनें संवर देखाडेछे. प्राणातिपातादि रूप जे कर्म ग्रहण करवानां कारणछे ते आश्रव जाणवां. अनें जेणें करी आवता कर्मनें रोकी राखीयें तेनें संवर कहियें, माटें ए आश्रव अनें संवर बन्ने नथी, एवी संज्ञा करवी नहीं, परंतु आश्रव पणछे, अने संवर पणछे, एम कहेवुं ॥ १७ ॥ हवे आश्रव अनें संवरनें सद्भावें वेदना अनें निर्जरानो सद्भाव देखाडेछे. वेदना एटले कर्मनुं अनुभववुं, अनें निर्जरा एटले कर्म पुद्गलनुं साडवुं, ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करवी; परंतु वेदना पणछे अनें निर्जरा पणछे. एवी संज्ञा गीतार्थ साधु करे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—(णत्थिआसवेति) आश्रवसंवरसद्भावोंगीकार्यइति ॥ १७ ॥ (णत्थिवेयणेति) वेदना कर्मानुभवरूपा निर्जरा कर्मपुद्गलशाटरूपा एते द्वे अपि न स्तः । यतः पल्योपमसागरोपममसातवेद्यं कर्म अंतर्मुहूर्तेनैव क्षयं याति । यदुक्तं । "जं अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुयाहि वासकोडीहिं ॥ तन्नाणी तिहि गुत्तो, खवेइ ऊसास मित्तेणमित्यादि । तथा क्षपकश्रेण्यां शीघ्रमेव कर्मणः क्षयात् यथाक्रमबद्धस्यानुभवाभावे वेदनायाअभावस्तदभावेच निर्जरायाअप्यभावइत्येवं नांगीकुर्यात् । यतः कस्यचिदेव कर्मणएवमुक्तनीत्या क्षयः अन्यस्य तु प्रदेशानुभवेन भोगसद्भावादस्तिवेदना । यदुक्तं । "पुव्विंदुच्चिन्नाणं दुप्पडिकंताणकम्माणं॥वेइत्ता मोरको नत्थि अवेइत्ताइत्यादि।वेदनासद्भावेच निर्जराप्यस्तीति स्वीकुर्यात्॥१८॥

॥ टीका—न कारणमंतरेण कार्यस्योत्पत्तिरतः पुण्यपापयोः प्रागुक्तयोः कारणभूतावा

एत्थि वंधेव मोरकेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि बंधेव मोरकेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १५ ॥ एत्थि पुसेव पावेवा, णेवं सन्नं निवेस ए ॥ अत्थि पुसेव पावेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १६ ॥

अर्थ—हवे धर्माधर्मनें अस्तिनावें, बंध अनें मोक्षनो सद्भाव देखाडेबे. प्रकृति, स्थिति, अनुनाग, अनें प्रदेशरूप,एवो जे चार प्रकारनो बंध, ते पण नथी, तथा मोक्ष पण नथी, एवी संज्ञा पण न करवी, परंतु ए बंध पणबे अनें मोक्ष पणबे एवी संज्ञा करवी ॥१५॥ हवे बंधना सद्भावें अवश्य पुण्य अनें पापनो पण सद्भावबे. ते कहेबे. पुण्य जे शुन प्रकृतिलक्षण ते पण नथी, तथा पाप जे अशुनप्रकृतिलक्षण ते पण नथी, एवी संज्ञा न करवी, परंतु पुण्य पणबे अनें पाप पणबे. एवी संज्ञा करवी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–(णत्थिबंधेइति) नास्ति बंधोमोक्षोवेति संज्ञां न कुर्यात् बंधमोक्षसद्भाव मंगीकुर्यात् ॥ १५ ॥ (णत्थिपुसमिति) नास्ति पुण्यं सत्कर्म, नास्ति पापमसत्कर्म इति नांगीकार्यं तयोरस्तित्वं मंतव्यं ॥ १६ ॥

॥ टीका–सतोश्च धर्माधर्मयोर्बंधमोक्षसद्भावइत्येतद्दर्शयितुमाह । (णत्थिबंधेवमोरकेवाइत्यादि) बंधः प्रकृतिस्थित्यनुनावप्रदेशात्मकतया कर्मपुजलानां जीवेन स्वव्यापारतः स्वीकरणं । सचामूर्तस्यात्मनोगगनस्येव न विद्यतइत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । तथा तदनावाच्च मोक्षस्याप्यनावइत्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत् । कथंतर्हि संज्ञां निवेशयेदित्युत्तरार्द्धेन दर्शयति।अस्ति बंधः कर्मपुजलैर्जीवस्येत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति । यत्तूच्यते मूर्तस्यामूर्तिमता संबंधोन युज्यतइति तदयुक्तं । आकाशस्य सर्वव्यापितया पुजलैः संबंधोडुर्निवार्यः । तदनावे तद्व्यापित्वमेव न स्यादन्यच्चास्य विज्ञानस्य हृत्पूरमदिरादिना विकारः समुपलन्यते । नचासौ संबंधमृतेऽतोयत्किंचिदेतत् । अपिच संसारिणामसुमतां सदा तैजसकार्मणशरीरसद्भावादात्यंतिकममूर्तत्वं न नवतीति । तथा तत्प्रतिपक्षनूतोमोक्षोप्यस्ति तन्नावे बंधस्याप्यनावः स्यादित्यतोऽशेषबंधनापगमस्वनावोमोक्षोस्तीत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥१५॥ बंधसद्भावें चावश्यं नावी पुण्यपापसद्भावइत्यतस्तन्नावं निषेधद्वारेणाह। (णत्थिपुसइत्यादि) नास्ति न विद्यते पुण्यं शुनकर्मप्रकृतिलक्षणं तथा पापं तद्विपर्ययलक्षणं नास्ति न विद्यते इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । तदनावप्रतिपत्तिनिबंधनं त्विदं । तत्र केषांचिन्नास्ति पुण्यपापमेव ह्युत्कर्षावस्थं सत्सुखडुःखनिबंधनं तथा परेषां पापं नास्ति पुण्यमेव ह्यपचीयमानं पापं कार्यं कुर्यादित्यन्येषां तूनयमपि नास्ति । संसारवैचित्र्यं तु नियतिस्वनावादिकृतं तदेतदयुक्तं । यतः पुण्यपापशब्दौ संबंधिशब्दौ । संबंधिशब्दानामेकस्य

संज्ञा न करवी, परंतु क्रिया पणछे, अनें अक्रिया पणछे. एवी संज्ञा करवी ॥१९॥ हवे क्रियानें सन्नावें क्रोधादिकनो सन्नाव देखाडेछे. जे पोतानें अनें परनें अप्रीतिनुं कारण तें क्रोध जाणवो, तथा जे गर्वलक्षण ते मान जाणवुं, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा पण न करवी, परंतु क्रोध अनें मान ए बेहुछे एवी संज्ञा करवी ॥ २० ॥

॥ दीपिका-(णत्थिकिरियेत्यादि) सांख्यादीनां सर्वव्यापकत्वादात्मनोव्योम्नइव परिस्पंदात्मिका क्रिया न विद्यते बौद्धानांतु क्षणिकत्वात्सर्वन्नावानां प्रतिक्षणमुत्पत्तिरेव नान्या काचित्क्रिया तथा सर्वपदार्थानां प्रतिक्षणमवस्थांतरगमनात्सक्रियत्वमेव अतोऽक्रिया न विद्यते एवं संज्ञां न कुर्यात् किंतु ? अस्ति क्रियाऽक्रियाचेति संज्ञां कुर्यात् । यतः क्रियान्नावे व्योम्नइव वंधे मोक्षान्नावः प्रसज्येत । बौद्धानामपि प्रतिक्षणोत्पत्तिक्रियैव ततोऽस्ति क्रिया तन्नावेच तद्विपक्षनूताऽक्रियाप्यस्तीति ॥१९॥ (णत्थिकोहेवेति) नास्ति क्रोधः तद्दिमानांशएव क्षपकश्रेण्यांच नेदेन क्षपणानंगीकारात् । तथा क्रोधःकिं ? आत्मनोधर्मः किंवा कर्मणउतान्यस्य । तत्रात्मधर्मत्वें सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसंगः । अथ कर्मणस्तत स्तदन्यकपायोदयेपि तडुदयसंगात् अन्यधर्मत्वेऽकिंचित्करत्वमतोनास्ति क्रोधः। एवं मानान्नावोऽपि वाच्यइत्येवं नांगीकुर्यात् । यतः क्रोधाध्मातः पुरुषः प्रत्यक्षेणैवोपलन्यते नायं मानांशोनिमित्तनेदात् । तथा जीवकर्मणोर्द्वयोरप्ययं धर्मस्ततः पूर्वोक्तः प्रत्येकदोपासंन्नवस्ततः क्रोधोमानश्चास्तीति संज्ञां निवेशयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका-वेदनानिर्जरेच क्रियाक्रियत्वे ततस्तन्नावप्रतिपेधनिपेधपूर्वकं दर्शयितुमाह । (णत्थिकिरियाअकिरियावाइत्यादि) क्रिया परिस्पंदलक्षणा तद्विपर्यस्तात्वक्रिया । ते द्वे अपि न स्तोन विद्येते । तथाहि । सांख्यानां सर्वव्यापित्वादात्मनआकाशस्येव परिनिस्पंदिका क्रिया न विद्यते । शाक्यानांतु क्षणिकत्वात्सर्वपदार्थानां प्रतिसमयमन्यथा वान्यथोत्पत्तेः । पदार्थसत्तैव न तद्व्यतिरिक्ता काचित्क्रियास्ति ॥ तथा चोक्तं । नूतिर्येपां क्रिया सैव कारकस्यैव चोच्यतइत्यादि । तथा सर्वपदार्थानां प्रतिक्षणमवस्थांतरगमनात्सक्रियात्वमतोन क्रिया विद्यते इत्येवं सज्ञां नो निवेशयेत् किंतर्ह्यस्ति क्रिया अक्रिया वेत्येवं सज्ञां निवेशयेत् । तथाहि ।शरीरात्मनोर्देशादेशांतरावाप्तिनिमित्ता परिस्पंदात्मिका क्रिया प्रत्यक्षेणैवोपलन्यते ।सर्वथा निष्क्रियत्वे चात्मनोऽन्युपगम्यमाने गगनस्येव वंधमोक्षाद्यन्नावः सच दृष्टेष्टबाधितः । तथा शाक्यानामपि प्रत्यक्षेणोत्पत्तिरेव क्रियेत्यतः कथं क्रियायाअन्नावोपि चैकांतेन क्रियान्नावे संसारमोक्षान्नावः स्यादित्यतोऽस्ति क्रिया तद्विपक्षनूताचाक्रियेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १९ ॥ तदेवं सक्रियात्मनि सति क्रोधादिसन्नावइ

श्रवसंवरौ तत्प्रतिषेधद्वारेण दर्शयितुकामआह। (णत्थिआसवेसंवरेवेत्यादि) आश्रवति प्रविशति कर्म येन सप्राणातिपातादिरूपआश्रवः कर्मोपादानकारणं तथा तन्निरोधः संवरः एतौ द्वावपि न स्तइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्तदभावप्रतिपत्त्या शंकाकारणंत्विदं कायवाङ्मनःकर्मयोगः स आश्रवइति यथेदमुक्तं तथेदमप्युक्तमेव । (उच्चालियंमिपाएइत्यादि) ततश्च कायादिव्यापारेण कर्मबंधो न भवतीति युक्तिरपि । किमयमाश्रवआत्मनोभिन्नउताऽभिन्नः । यदि भिन्नोनामासावाश्रवोघटादिवदभेदेपि नाश्रवत्वं सिद्धात्मनामपि आश्रवप्रसंगात्तदभावेच तन्निरोधलक्षणस्य संवरस्याप्यभावः सिद्धएवेत्येवमात्मकमध्यवसायं न कुर्यात् । यतोयत्तदनैकांतिकत्वं कायव्यापारस्योच्चालयंमि पाए इत्यादिनोक्तं तदस्माकमपि संमतमेव । यतोयमस्मानिरप्युपयुक्तकर्मबंधोऽभ्युपगम्यते निरुपयुक्तस्य कर्मबंधस्तथा भेदाभेदोभयपक्षसमाश्रयणात्तदेकपक्षाश्रितदोपाभावइत्यस्त्याश्रवसद्भावस्तन्निरोधश्च संवरइति । उक्तंच। "योगः शुद्धः पुण्या,श्रवस्तु पापस्य तद्विपर्यासः ॥ वाक्कायमनोगुप्ति,निराश्रवः संवरस्तूक्त" इत्यतोस्त्याश्रवस्तथा संवरश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १७ ॥ आश्रवसंवरसद्भावे चावश्यं भावी वेदनानिर्जरासद्भावइत्यतस्तं प्रतिषेधनिपेधद्वारेणाह । (णत्थिवेयणेत्यादि) वेदना कर्मानुभवलक्षणा तथा निर्जरा कर्मपुजलशाटनलक्षणा । एते द्वे अपि न विद्येते इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । तदभावं प्रत्याशंकाकारणमिदं । तद्यथा । पल्योपमसागरोपमशतानुभवनीयं कर्मातर्मुहूर्तेनैव क्षयमुपयातीत्यभ्युपगमात् । तदुक्तं । "जं अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुयाइं वासकोडीहिं ॥ तन्नाणी तिहि गुत्तोखवेइ ऊसासमित्तेणं"इत्यादि। तथा क्षपकश्रेण्यां च झटित्येव कर्मणोभस्मीकरणाद्यथाक्रमबद्धस्य चानुभवनाभावे वेदनायाअभावस्तदभावाच्च निर्जरायाअपीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । किमिति । यतः कस्यचिदेव कर्मणएवमनंतरोक्तया नीत्या क्षपणात्तपसा प्रदेशानुभवेन चापरस्य तूदयोदीरणाभ्यामनुभवनमित्यतोस्ति वेदना । यतआगमोप्येवंभूतएव । तद्यथा । "पुव्विंडच्चिन्नाणं, डुप्पडिकंताणकम्माणं॥ वेइत्ता मोरको णत्थि अवेइत्ताइत्यादिवेदना सिद्धौ च निर्जरापि सिद्धेवेत्यतोस्ति वेदना निर्जरावेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १८ ॥

णत्थि किरिया अकिरियावा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि कि
रिया अकिरियावा, एवं सन्नं निवेसए॥ १९ ॥ णत्थि कोहेव
माणेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि कोहेव माणेवा, एवं सन्नं
निवेसए॥ २० ॥

अर्थ–हवे वेदना, अनें निर्जरा, ए बन्ने क्रिया अनें अक्रियाना आयतछे. माटें तेनो सद्भाव देखाडेछे क्रिया एटले करवुं,अनें जे ते थकी विपरीत ते अक्रिया,ए बन्ने नथी.एवी

ति स्वीकार्यं ॥ २२ ॥ (णत्थिरागदोसाविति) रागद्वेषौ न स्तइति न स्वीकार्यं तौ वि द्येते इति मतिः कार्या युक्तिः । पूर्वोक्ता ॥ २३ ॥

॥ टीका सांप्रतं मायालोभयोरस्तित्वं दर्शयितुमाह (णत्थिमायावलोभेत्यादि) अत्रा पि प्राग्वन्मायालोभयोरभाववादीनां निराकृत्यास्तित्वं प्रतिपादनीयमिति ॥ २१॥ सांप्रतं तेषांच क्रोधादीनां समासेनास्तित्वं प्रतिपादयन्नाह । (णत्थिपेज्जेवेत्यादि) प्रीतिलक्षणं प्रेम पुत्रकलत्रधनधान्याद्यात्मीयेषु रागस्तद्विपरीतस्त्वात्मीयोपघातकारिणि द्वेषस्तावेतौ द्वावपि न विद्येते । तथाहि । केषांचिदभिप्रायोयद्भुत मायालोभावेवावयवौ विद्येते न तत्समुदायरूपोऽवयव्यस्ति । तथा क्रोधमानावेव स्तः न तत्समुदायरूपोऽवयवी द्वेष इति । तथा ह्यवयवेभ्योयद्यभिन्नोवयवी तर्हि तदभेदात्तएव । नासावथ भिन्नः पृथ गुपलंभः स्याद्घटपटवदितित्येवमसिद्धिकल्पमूढतया नो संज्ञां निवेशयेत् । यतोऽवयवा वयविनोः कथंचिद्भेदइत्येवं भेदाभेदाख्यतृतीयपक्षसमाश्रयणात्प्रत्येकपक्षाश्रितदोषानु पपत्तिरित्येवं चास्ति प्रीतिलक्षणं प्रेमाप्रीतिलक्षणश्च द्वेषइत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ॥२२॥

णत्थि चाउरंते संसारे, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि चाउरंते संसारे, एवं सन्नं निवेसए ॥ २३ ॥ णत्थि देवोव देवीवा, णे वं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि देवोव देवीवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २४ ॥

अर्थ—हवे पूर्वे कह्या जे क्रोधादिक चार कषाय ते कषायनें सद्भावें, संसारनो सद्भा व देखाडेछे. नरक, तिर्यंच, मनुष्य अनें देवता, ए चतुर्गतिलक्षण संसार नथी. एवी संज्ञा न करे, परंतु ए चतुर्गतिलक्षण संसारछे एवी संज्ञा करे ॥ २३ ॥ हवे वली पण एज संसारनो सद्भाव देखाडेछे. भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी, अनें वैमानिक, ए चार जा तना देव, तथा एनी स्त्रियो ते देविउ ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करे, परंतु ए देव प णछे अनें देवीउ पणछे; एवी संज्ञा करे. एवी संभावनायें मनुष्य, नारकी, अनें तिर्यंच नो पण सद्भाव जाणवो ॥ २४ ॥

॥ दीपिका (णत्थिचाउरंतइति) नास्ति चातुरंतः चत्वारोंऽतागतिभेदायत्र ससंसार श्चतुरंतश्चतुर्विधः संसारोनास्ति देवनारकयोरनुपलभ्यमानत्वात् इति संज्ञां न निवेशयेत् अस्ति चतुर्विधः संसारः॰यतः संति सुरनारकाःप्रकृष्टपुण्यपापफलभोगस्यान्यथानुपपत्तेः एवं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २४ ॥ (णत्थिदेवेति) नास्ति देवोदेवी वा इति मतिं न कुर्यात् अस्ति देवोवा देवी इति संज्ञां कुर्यात् अत्र प्रकृष्टपुण्यफलभोगएव हेतुः ॥ २५ ॥

त्येतद्दर्शयितुमाह । (णत्थिकोहेवमाणेवेत्यादि) स्वपरात्मनोरप्रीतिलक्षणः क्रोधः ॥ सचानंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदेन चतुर्धाऽऽगमे पठ्यते । तथैतावद्भेदएव मानोगर्वः । एतौ द्वावपि न स्तोन विद्येते । तथाहि । क्रोधः केषांचिन्मतेन मानांशएवाभिमानग्रहगृहीतस्य तत्कृतावत्यंतक्रोधोदयदर्शनात् क्षपकश्रेण्यां च भेदेन क्षपणानभ्युपगमात् । तथा किमयमात्मधर्मआहोस्वित्कर्मणउतान्यस्येति । तत्रात्मधर्मत्वे सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसंगोऽथ कर्मणस्ततस्तदन्यकषायोदयेपि तदुदयप्रसंगान्मूर्तत्वाच्च कर्मणोहि घटस्येव तदाकारोपलब्धिः स्यादन्यधर्मत्वे त्वकिंचित्करत्वमतोनास्ति क्रोधइत्येवं मानाभावोपि वाच्य इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत् । यतः। कषायः कर्मोदयवर्ती दृष्टेष्ट कृतभ्रुकुटीभंगोरक्तवदनोगलत्स्वेदबिंदुसमाकुलः क्रोधाध्मातः समुपलभ्यते न चासौ मानांशस्तत्कार्याकरणात्तथा परनिमित्तोद्भापिततत्वाच्चेति तथा जीवधर्मकर्मणोरुभयोरप्ययं धर्मस्तत्धर्मत्वेनच प्रत्येकविकल्पदोषानुपपत्तिरनभ्युपगमात्संसार्यात्मनां कर्मणा सार्धं पृथग्भवनाभावात्तदुभयस्यच न नरसिंहवद्दस्त्वंतरत्वादित्यतोऽस्ति क्रोधोमानश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २० ॥

णत्थि माया व लोभेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि माया व लोभेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २१ ॥ णत्थि पेज्जेव दोसेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि पेज्जेव दोसेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २२ ॥

अर्थ—हवे माया अनें लोभनो सद्भाव देखाडेछे, जे परवंचनरूप ते माया, अनें जे सन्निधि संचयरूप ते लोभ, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा न करवी, परंतु माया पणछे, अनें लोभ पणछे एवी संज्ञा करवी ॥ २१ ॥ हवे क्रोधादिक जेछे, तेनो संक्षेप थकी सद्भाव कहेछे. प्रेम एटले प्रीतिलक्षण पुत्र, कलत्र, धन, धान्यादिक, विषेरागता ते राग, तथा अप्रीतिलक्षण ते द्वेष, ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करवी, परंतु राग पणछे, अनें द्वेष पणछे, एवी संज्ञा करवी ॥ २२ ॥

॥ दीपिका (णत्थिमायेवेति) मायालोभौ न स्तः इति सज्ञां न निवेशयेत् मायालोभयोर्निबंधः पूर्ववत् । प्रत्यक्षदृश्यत्वान्मायालोभौ स्तइति सज्ञां निवेशयेत् ॥ २१ ॥ (णत्थिपेज्जेवेति) प्रीतिः प्रेम पुत्रकलत्रधनादिषु रागस्तद्विपरीतोद्वेषस्तौ न स्तः । यतोमायालोभावेव रागः क्रोधमानावेव द्वेषस्ताभ्यां रागद्वेषौ न स्तः अस्ति प्रेमद्वेषोप्यस्तीति संज्ञां कुर्यात यस्माद्रागोवयवी मायालोभौ अवयवो तथा द्वषोऽवयवी क्रोधमानौ अवयवौ अवयवीच अवयवेभ्यः कथंचिद्भिन्नोऽभिन्नश्च तस्मान्मायालोभश्च प्रेमद्वेषश्च कथंचिदस्ति

वाणं के०) पोतानुं स्थानक "इसीवप्नार" एवे नामेंछे ते नथी, एवी संज्ञा न करे परंतु सिद्धि एवुं निज पोतानुं स्थानकछे, एवी संज्ञा चित्तने विषे स्थापन करे ॥ २६ ॥

॥ दीपिका-(णत्थिसिद्धीइति) नास्ति सिद्धिः कर्मक्षयरूपा असिद्धिः संसाररूपा सापि नास्तीति संज्ञां न निवेशयेत् । संसारचातुर्विध्यं पूर्वमेवोक्तं । कियतः कर्मक्षयस्यच पीडोप शमादिना प्रत्यक्षेण दर्शनात्कस्यचिदात्यंतिककर्मक्षयोपि स्यात् तस्मादस्ति सिद्धिरसिद्धि रप्यस्तीति संज्ञां कुर्यात् ॥ २६ ॥ (णत्थिसेहाइति) सिद्धेः सर्वकर्मक्षयरूपायानिजं स्थानं सिद्धिशिलोपरियोजनचतुर्थक्रोशोपरितनषड्भागः स नास्तीति संज्ञां न कुर्यात् अस्ति सिद्धिर्निजं स्थानमिति संज्ञां च कुर्यात् आगमप्रमाणसिद्धत्वात् ॥ २७ ॥

॥ टीका-सर्वभावानां सप्रतिपक्षत्वात्संसारसद्भावे सति अवश्यं तद्विमुक्तिलक्षणया सिद्ध्यापि भवितव्यमित्यतोऽधुना सप्रतिपक्षां सिद्धिं दर्शयितुमाह । (णत्थिसिद्धीत्यादि) सिद्धिरशेषकर्मच्युतिलक्षणा तद्विपर्यस्तांचासिद्धिर्नास्तीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेदपि त्वसि द्धेः संसारविलक्षणायाश्चातुर्विध्येनानंतरमेव प्रसाधितायाअविगाने नास्तित्वं प्रसिद्धं तद्वि पर्ययेण सिद्धेरप्यस्तित्वमनिवारितमित्यतोस्ति सिद्धिरसिद्धिर्वेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति स्थितं । इदमुक्तं भवति । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्य मोक्षमार्गस्य सदावीकर्मक्षय स्य च पीडोपशमादिनाऽध्यक्षेण दर्शनादतः कस्यचिदात्यंतिककर्महानिसिद्धेरस्ति सिद्धिरि ति । तथा चोक्तं । "दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायिनी ॥ क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्योब हिरंतर्मलक्षय"इत्यादि। सर्वज्ञसद्भावोपि संभवानुमानाद्द्रष्टव्यस्तथात्यभ्यस्यमानायाः प्रज्ञा याव्याकरणादिना शास्त्रसंस्कारेणोत्तरोत्तरवृद्ध्या प्रज्ञातिशयोद्रष्टव्यः। तत्र कस्यचिदत्यंता तिशयप्राप्तेः सर्वज्ञत्वं स्यादिति संभवानुमानेन चैतदाशंकनीयं । तद्यथा । ताप्यमानमुद कमत्यंतोष्णतामियान्नाग्निसाद्भवेत् तथा दशहस्तांतरं व्योम्नि योनामोत्प्लुत्य गच्छति। न यो जनमसौ गंतुं शक्तोभ्यासशतैरपीति दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात् । तथाहि । ताप्यमानं जलं प्रतिक्षणं क्षयं गच्छेत्प्रज्ञा तु विवर्द्धते । यदिवा क्लेशोपलब्धेरव्याहतमग्नित्वं तथा प्लव नविषयेपि पूर्वमर्यादायाअनतिक्रमाद्योजनोत्प्लवनाभावस्तत्परित्यागे चोत्तरोत्तरं वृद्ध्या प्र ज्ञाप्रकर्षगमनवद्योजनशतमपि गच्छेदित्यतोदृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात्तदेवं नाशंकनीयमि ति स्थितं । प्रज्ञावृद्धेश्च बाधकप्रमाणाभावादस्ति सर्वज्ञत्वप्राप्तिरिति । यदिवांजनभृतसमुद्ग कदृष्टांतेन जीवाकुलत्वाज्जगतोहिंसायाअनिवार्यत्वात्सिद्ध्यभावः । तथा चोक्तं । "जले जी वाः स्थले जीवाआकाशे जीवमालिनि ॥ जीवमालाकुले लोके कथं भिक्षुरहिंसक"इत्यादि । तदेवं सर्वस्यैव हिंसकत्वात्सिद्ध्यभावइति । तदेतदयुक्तं । तथाहि । सदोषयुक्तस्य पिहि

॥ टीका सांप्रतं कषायसद्भावे सिद्धे सति तत्कार्यभूतोऽवश्यं भावी संसारसद्भाव इत्येतत्प्रतिषेधनिषेध द्वारेण प्रतिपादयितुमाह । (णत्थिचाउरंते इत्यादि) चत्वारोंऽतागति भेदानरकतिर्यङ्नरामरलक्षणायस्य संसारस्यासौ चतुरंतः संसारएव कांतारोभयैकहेतुं त्वात् । सच चतुर्विधोपि न विद्यते अपितु सर्वेषां संसृतिरूपत्वात्कर्मबंधात्मकतया च डुःखैकहेतुत्वादथवा नारकदेवयोरनुपलभ्यमानत्वात्तिर्यङ्मनुष्ययोरेव सुखडुःखोत्क र्षतया तद्व्यवस्थानाद्विविधः संसारः पर्यायनयाश्रयणात्त्वनेकविधोऽतश्चातुर्विध्यं न क थंचिद्घटतइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेदपितु अस्ति चतुरंतः संसारइत्येवं संज्ञां निवेशयेत् । यत्तूक्तमेकविधः संसारस्तन्नोपपद्यते यतोऽध्यक्षेण तिर्यङ्मनुष्ययोर्भेदः समुपलभ्यते न चा सावेकविधत्वे संसारस्य घटते । तथा संभवानुमानेन नारकदेवानामप्यस्तित्वाभ्युपगमा द्वैविध्यमपि न विद्यते । संभवानुमानंतु पुण्यपापयोः प्रकृष्टफलभुजस्तन्मध्यफलभु जां तिर्यङ्मनुष्याणां दर्शनादतः संभाव्यते प्रकृष्टफलभुजोज्यतिषां च प्रत्यक्षेणैव दर्शनाद थ तद्विमानानामुपलंभएवमपि तदधिष्ठातृभिः कैश्चिद्भवितव्यमित्यनुमानेन गम्यते । ग्रहगृ हीतवरप्रदानादिना च तदस्तित्वानुमानमिति तदस्तित्वेतु प्रकृष्टपुण्यफलभुजइव प्रकृष्टपा पफलभुग्भिरपि भाव्यमित्यतोऽस्ति चातुर्विध्यं । संसारस्य पर्यायनयाश्रयणेतु यदनेकवि धत्वमुच्यते तदयुक्तं । यतः सप्तपृथिव्याश्रिताअपि नारकाः समानजातीयाश्रयणादेकप्र काराएव तथा तिर्यंचोपि पृथिव्यादयः स्थावरास्तथा द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाश्च द्विषष्टियोनिल क्षप्रमाणाः सर्वेप्येकविधाएव । तथा मनुष्याअपि कर्मभूमिजाऽकर्मभूमिजांतरद्वीपक संमूर्छनजात्मकभेदमनादृत्यैकविधत्वेनैवाश्रितास्तथा देवाअपि भवनपतिव्यंतरज्योतिष्क वैमानिकभेदेन भिन्नाएकविधत्वेनैव गृहीतास्तदेवं सामान्यविशेषाश्रयणाच्चातुर्विध्यं संसा रस्य व्यवस्थितं नैकविधत्वं संसारवैचित्र्यदर्शनान्नाप्यनेकविधत्वं सर्वेषां नारकादीनां स्व जात्यनतिक्रमादिति ॥ २३ ॥ २४ ॥

णत्थि सिद्धी असिद्धीवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि सिद्धी अ
सिद्धीवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २५ ॥ णत्थि सिद्धी नियं ठाणं, णे
वं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि सिद्धी नियं ठाणं, एवं सन्नं निवेसए ॥ २६ ॥

अर्थ—हवे संसारनें सद्भावें सिद्धिनो सद्भाव देखाडेछे. समस्तकर्मक्षयनुं स्थानक सिद्धि जाणवी. अने तेथकी विपरीत ते असिद्धि जाणवी, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा न करे, परंतु सिद्धि पणछे, अने असिद्धि पणछे, एवी संज्ञा पोताना चित्तनें विषे स्थापन करे ॥२५॥हवे सिद्धिना स्थानकनो सद्भाव कहेछे. समस्तकर्मक्षयलक्षण जे सिद्धि तेनुं, (नियं

द्विपरीतोऽसाधुरपि नास्ति एकस्याप्यनावे द्वितीयस्याप्यनावः द्वयोः परस्परापेक्षत्वात् । एवं संज्ञां न निवेशयेत् । किंतु ? अस्ति साधुः संपूर्णगुणसद्भावात् । तथाहि । सम्यग्दृष्टेररक्तद्विष्टस्य सत्संयमवतः श्रुतानुसारेणाऽऽहारादिकं शुद्धबुद्ध्या गृह्णतः कचिदज्ञानादशुद्धग्रहणसंनवेप्युपयुक्तस्य संपूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति । तदेवं मुक्तिकृते प्रवर्त्तमानस्य साधुत्वं इतरस्यासाधुत्वं मंतव्यं ॥ २७ ॥ (णत्थिकल्लाणमिति) वांछितार्थप्राप्तिः कल्याणं । कल्याणवांश्च कश्चिन्नास्ति सर्वपदार्थानामसारत्वाद्विनश्वरत्वाच्च । पापं पापवान् वा कश्चिन्नास्ति अद्वैतवादिमतेनाऽऽत्मानं विना सर्वस्यानावात् एवं संज्ञां न कुर्यात् एकांतेन सर्वनावानामसारत्वविनश्वरत्वानावादस्ति कल्याणं तद्वांश्च अद्वैतमतस्य मिथ्यात्वात् पापं पापवांश्च विद्यते । अद्वैते हि सुखी दुःखी सुरूपः कुरूपोधनी दरिद्रइत्यादि विश्ववैचित्र्यं न स्यादिति ॥ २९ ॥

॥ टीका—सांप्रतं सिद्धेः साधकानां साधूनां तत्प्रतिपक्षनूतानामसाधूनां चास्तित्वं प्रतिपिपादयिषुः पूर्वपक्षमाह । (णत्थिसाहूअसाहूवाइत्यादि) नास्ति न विद्यते ज्ञानदर्शनचारित्रक्रियोपेतोमोक्षमार्गेव्यवस्थितः साधुः संपूर्णस्य रत्नत्रयानुष्ठानस्यानावात्तदनावाच्च तत्प्रतिपक्षनूतस्यासाधोरप्यनावः परस्परापेक्षित्वादेतद्व्यवस्थानस्यैकतरानावे द्वितीयस्याप्यनावइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेदपित्वस्ति साधुः सिद्धेः प्राक्साधितत्वात् । सिद्धिसत्ता च नसाधुमंतरेण अतः साधुसिद्धिस्तत्प्रतिपक्षनूतस्य वाऽसाधोरिति । यश्च संपूर्णरत्नत्रयानुष्ठानानावः प्रागाशंकितः स सिद्धांतानिप्रायमबुध्वैव । तथाहि । सम्यग्दृष्टेरुपयुक्तस्यारक्तद्विष्टस्य सत्संयमवतः श्रुतानुसारेणाऽऽहारादिकं शुद्धबुद्ध्या गृह्णतः कचिदज्ञानादनेषणीयग्रहणसंनवेपि सततोपयुक्ततया संपूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति । यश्च नक्ष्यमिदं चानक्ष्यं गम्यमिदं वाऽगम्यं प्रासुकमेषणीयमिदमिदंच विपरीतमित्येवं रागद्वेषसंनवेन समनावरूपस्य सामायिकस्यानावः कैश्चिच्चोद्यते तत्तेषां चोदनमज्ञानविजृंनणात् । तथाहि । न तेषां सामायिकवतां साधूनां रागद्वेषतया नक्ष्यानक्ष्यादिविवेकोऽपितु प्रधानमोक्षांगस्य सच्चारित्रस्य साधनार्थमपि चोपकारापकारयोः समनावतया सामायिकं न पुनर्नक्ष्यानक्ष्ययोः समनाववृत्त्येति ॥ २७ ॥ तदेवं मुक्तिमार्गप्रवृत्तस्य साधुत्वमितरस्य चासाधुत्वं प्रदर्श्याधुना च सामान्येन कल्याणपापवतोः सद्भावं प्रतिषेधनिषेधद्वारेणाह । (णत्थिकल्लाणपावेवाइत्यादि) यथेष्टार्थफलसंप्राप्तिः कल्याणं तन्न विद्यते सर्वाऽशुचितया निरात्मकत्वात् सर्वपदार्थानां बौद्धानिप्रायेण तथा तदनावे कल्याणवांश्च न कश्चिद्विद्यते तथात्मा नूतवाद्यनिप्रायेण पुरुषएवेदं सर्वमितिकृत्वा पापं पापवान्वा न कश्चिद्विद्यते तदेवमुनयोरप्यनावः । तथा चोक्तं । "विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि

ताश्रव द्वारस्य पंचसमितिसमितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य सर्वथा निरवद्यानुष्टायिनो द्विचत्वारिंश द्दोषरहितभिक्षान्भुजईर्यासमितस्य कदाचिद्द्रव्यतः प्राणिव्यपरोपणेपि तत्कृतबंधाभावः सर्वथा तस्यानवद्यत्वात् । तथाचोक्तं । उच्चालियंमिपाए, इत्यपि प्रतीतं तदेवं कर्मबंधाभावात्सिद्धेः सद्भावोव्याहतः सामग्र्यभावादसिद्धिसद्भावोपीति ॥ २५॥ सांप्रतं सिद्धानां स्थाननिरूपणायाह । (णत्थिसिद्धीत्यादि) सिद्धेरशेषकर्मच्युतिलक्षणायानिजं स्थानमीषत्प्राग्भाराख्यं व्यवहारतोनिश्चयतस्तु तदुपरि योजनक्रोशषड्भागस्तत्प्रतिपादकप्रमाणाभावात्स नास्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत् । यतोबाधकप्रमाणाभावात्साधकस्य चागमस्य सद्भावात्तत्सत्ता दुर्निवारेति । अपिचापगताशेषकल्मषाणां सिद्धानां केनचिद्विशिष्टेन स्थानेन भाव्यं तच्चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्याग्रभूतं द्रष्टव्यं । नच शक्यते वक्तुमाकाशवत्सर्वव्यापिनः सिद्धाइति यतोलोकालोकव्याप्याकाशं । न चालोके परद्रव्यस्याकाशमात्ररूपत्वात् लोकमात्रव्यापित्वमपि नास्ति विकल्पानुपपत्तेः । तथाहि । सिद्धावस्थायां तेषां व्यापित्वमभ्युपगतमुतप्रागपि न तावत्सिद्धावस्थायां तद्व्यापित्वभवने निमित्ताभावान्नापि प्रागवस्थायां तद्भावे सर्वसंसारिणां प्रतिनियतसुखदुःखानुभवोन स्यान्नच शरीराद्बहिरवस्थितमवस्थानमस्ति । तत्सत्तानिबंधनप्रमाणस्याभावादतः सर्वव्यापित्वं विचार्यमाणं न कथंचिद्घटते तदभावे च लोकाग्रमेव सिद्धानां स्थानं तद्गतिश्च कर्मविमुक्तस्योर्ध्वं गतिरिति। तथाचोक्तं । "लाउ एरंडफले,अग्गीधूमे उसूधणुविमुक्के ॥ गइ पुव्वपउगेणं,एवं सिद्धाणविगईउ" इत्यादि । तदेवमस्ति सिद्धिस्तस्याश्च निजं स्थानमित्येवं संज्ञां निवेशयेदिति॥ २६॥

णत्थि साहू असाहूवा,णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि साहू असाहू वा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २७ ॥ णत्थि कल्लाण पावेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि कल्लाण पावेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे सिद्धिना साधनारा साधुओछे. तेनो सद्भाव कहेछे. ज्ञान, दर्शन, अनें चारित्ररूप रत्नत्रयनें साधे,ते साधु जाणवा, ते पण नथी, तथा ए थकी विपरीत ते असाधु जाणवा, ते पण नथी. एवी संज्ञा न करवी, परंतु साधु पणछे, अनें असाधु पणछे, एवी संज्ञा करवी ॥ २७ ॥ हवे सामान्य प्रकारें कल्याण अनें पापनो सद्भाव देखाडेछे. मनोवांछित अर्थनी प्राप्तिनुं करनारुं एवुं कल्याण, ते पण नथी. तथा ते थकी विपरीत जे पाप, ते पण नथी. एवी संज्ञा न करे, किंतु? कल्याण पणछे, अनें पाप पणछे. एवी संज्ञा करे ॥ २८॥

॥ दीपिका—(णत्थिसाहू इति) नास्ति साधुर्मुनिः संपूर्णचारित्रगुणाभावात् तदभावे त

अन्य वचन आश्रि संयम कहेछे. (असेसंअरकयंवावि के०) आ जगत् मांहे समस्त वस्तु जे घटपटादिकछे ते एकांतें नित्य,शाश्वतछे. एवुं वचन न बोले, (सवडुक्केतिवापुणो के०) तथा वली सर्व जगत् दुःखात्मकज छे, एवुं वचन पण न बोले,जे कारण माटें आ जगत् मांहे एकेक जीवनें तो महा सुखछे, एम बोलायछे यतः " तणसंथारनिसन्नो, विमुणि वरो नहरागमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टिवि". ॥ १ ॥ इति वचनात् । माटें सर्व जगत् दुःखीजछे, एवुं वचन पण न बोले, (वज्झापाणाअवज्झंति के०) तथा ए चोर छे, ए परदारानो सेवनारछे, माटें ए वध करवा योग्य छे एवुं वचन न बोले, अथवा ए अमुक पुरुष अवध्य एटले वध करवा योग्य नथी (इतिवायंननीसरे के०) एवुं वचन पण न बोले, कारणके, एम बोलतां तेना कर्मनी अनुमोदना लागे. ए रीतें सिंह, व्याघ्र, मार्जारादिक हिंसक जीव देखीनें, चारित्रिउ मध्य स्थ पणुं अवलंबन करे. इत्यर्थः ॥ ३० ॥ हवे वली बीजो, वचननो प्रकार, मनशुधी आश्रि देखाडियें छैयें. (दीसंतिसमयाचारा के०) आ जगत् मांहे कोइ एक चारि त्रिया एवा देखायछे. के, समयाचारा एटले सिद्धांतोक्त आचारनें विषे प्रवर्त्तमा न, तथा (निखुणासाहुजीविणो के०) निखुणा एटले दोषरहित एवा आहा रना गवेषण हार, तथा साधुजीवि एटले पोताना आचार पालवा सारु जीवे छे, तथा क्षांत, जितेंद्रिय, जितक्रोध, दृढव्रतवान्, जुसर प्रमाण दृष्टियें मार्गना शोधनार, प्रा सुक उदकना पान करनार, मौनी,छजीवनिकायना रक्षण करनार, किं बहुना. सराग छे, तो पण वीतरागनी पेठें रहेछे, एवा साधु देखीनें (एएमिछोवजीवंति के०) ए मिथ्यात्वो पजीवि बाह्य वृत्तियें करी लोकोनें वंचेछे (इतिदिट्ठिंनधारए के०) एवी दृष्टि धरे नहीं, एतावता एवो भाव मनमांहे चिंतवे नहीं, वचनथकी कहे नहीं, किं बहुना. स्वतीर्थि क परतीर्थिकनें एवुं वचन कहे नहीं ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका—(कल्लाणेपावेति) सर्वथाऽयंकल्याणवानयं सर्वथा पापवान् एवमेकांते व्यवहारो न विद्यते । एकांतपक्षाश्रयणेन यद्वैरं कर्मबंधस्तत् श्रमणाः शाक्यादयोबालाः पंमितमानिनः शुष्कतर्कदर्पोन्मत्तान जानंति ॥ ३० ॥ (असेसमिति) अशेषं सर्वं व स्तु सांख्याभिप्रायेणाक्षतं नित्यं इति न ब्रूयात् । अपिशब्दादनित्यमपि न वदेत् । तथा सर्वं जगद्दुःखात्मकमित्यपि न वदेत् चारित्रादिपरिणतेः सुखस्यापि दर्शनात् । यदुक्तं । " तणसंथारनिसन्नो, विमुणिवरोनहरागमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टी वि" ॥ १ ॥ चोरपारदारिकादयोवध्याअवध्यावा इति न वदेत् । तथा चोक्तं । " मार्जार व्याघ्रसिंहादीन् सत्वव्यापादनोद्यतान् ॥ दृष्ट्वा स्वार्थपरः साधुर्माध्यस्थ्यमवलंबते" इति॥ १॥

हस्तिनि ॥ शुनि चैव श्वपाके च पंमिताः समदर्शिन"इत्येवमेव कल्याणपापकाभावरूपां संज्ञां नो निवेशयेदपि त्वस्ति कल्याणं कल्याणवांश्च विद्यते तद्विपर्यस्तं पापं तद्वांश्च विद्यते इत्येवं संज्ञां निवेशयेत् । तथाहि । नैकांतेन कल्याणाभावोयोबौद्धैरभिहितः सर्वपदार्थानामशुचित्वासंभवात्सर्वाऽशुचित्वेच बुद्धस्याप्यशुचित्वप्राप्तेर्नापि निरात्मनः स्वद्रव्य क्षेत्र कालभावापेक्ष्या सर्वपदार्थानां विद्यमानत्वात्परद्रव्यादिभिस्तु न विद्यंते सदसदात्मकत्वाद्वस्तुनः तडुक्तं स्वपरसत्ताव्युदासोपादानोत्पाद्यं हि वस्तुनोवस्तुत्वमिति । तथात्मा चैतन्या वाभावात्पापाभावोपि नास्त्यचैतन्यावेहि सुखी डुःखी सरोगोनीरोगोसुरूपः कुरूपोडुर्भगः सुभगोऽर्थवान् दरिद्रस्तथायमंतिकोऽयं तु दवीयान् इत्येवमादिकोजगद्वैचित्र्यभावोऽध्यक्षसिद्धोपि न स्यात् ।यच्च समदर्शित्वमुच्यते ब्राह्मणचांमालादिषु तदपि समानपीडोत्पादनतो द्रष्टव्यं ।न पुनः कर्मोपादितवैचित्र्यभावोपि तेषां ब्राह्मणचांमालादीनामस्तीति।तदेवं कथंचित्कल्याणमस्ति तद्विपर्यस्तं तु पापकमिति । नचैकांतेन कल्याणमेव यतः केवलिनां प्रक्षीणघनघातिकर्मचतुष्टयानां सातासातोदयसद्भावात्तथा नारकाणामपि पंचेंद्रियत्वविशिष्टज्ञानादिसद्भावान्नैकांतेन तेऽपि पापवंतइति तस्मात्कथंचित्कल्याणं कथंचित्पापमिति स्थितं ॥ २८ ॥

कल्लाणे पावए वावि,ववहारो ण विज्जइ॥जं वेरं तं न जाणंति, समणा बालपंमिया ॥२९॥ असेसं अक्खयं वावि, सव्वडुक्खेति वा पुणो ॥ वज्झा पाणा न वज्झंति, इति वायं न नीसरे ॥ ३० ॥ दीसंति समियाचारा, भिक्खुणा साहुजीविणो ॥ एए मिच्छोवजीवंति, इति दिठिं न धारए ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे अनेकांत मार्ग देखाडीनें, एकांत मार्गनें, दूषवेछे. ए पुरुष एकांतें कल्याणवंतज छे, अथवा ए पुरुष एकांतें पापवंतज छे, एवो व्यवहार नथी, कारणके, आ जगत् मांहे एकांत कांहीज नथी. ते माटें जे पुरुष पुण्यवंत देखातो होय,परंतु ते अंत्यावस्थामां परिणामविशेषें डुर्गतियें जाय. अथवा जे पापी पुरुष देखातो होय, ते परिणामविशेषें सजतिगामी थाय. ए कारण माटें एकांत न बोले (जेवेरंतंनजाणंति के०) तथा जे वैर, ते कर्मनुं कारणछे एम न जाणे, ते कोण न जाणे ? तोके श्रमण, बाल, एटले मूर्ख, अनें पंमित एटले पंमितपणाना अभिमानी होय ते न जाणे. ते शायकी न जाणे ? तोके जे कारणमाटें ते बाल, मूर्ख, परमार्थभूत, अहिंसालक्षण जे धर्म, तेनो तेनें आश्रय नथी ते कारणें ते निरतो वैरनुं कारण जाणे नहीं. इत्यर्थः ॥ २९ ॥ हवे

तोरन्यानपेक्षणादिति । तथा सर्वं जगदुःखात्मकमित्येवमपि न ब्रूयात्सुखात्मकस्यापि सम्यग्दर्शनादिभावेन दर्शनात् । तथा चोक्तं । "तणसंथारनिसन्नो, विमुणिवरो नट्टरागमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टीवि" ॥१॥ तथा वध्याश्चौरपारदारिकादयोऽवध्यावा तत्कर्मानुमतिप्रसंगादित्येवंभूतां वाचं स्वानुष्ठानपरायणः साधुः परव्यापारनिरपेक्षोन विसृजेत् । तथाहि । सिंहव्याघ्रमार्जारादीन्परसत्वव्यापादनपरायणान् दृष्ट्वा माध्यस्थ्यमवलंबयेत् । तथा चोक्तं । मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यादीनि सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानविनयेष्विति । एवमन्योपि वाक्संयमोऽनुष्टव्यः । तद्यथा । अमी गवादयोवाह्या न वाह्यास्तथामी वृक्षादयश्छेद्यान छेद्यावेत्यादिकं वचोन वाच्यं साधुनेति ॥३०॥ अयमपरोवाक्संयमप्रकारोंऽतःकरणशुद्धिसमाश्रितः प्रदर्श्यते । (दीसंतीत्यादि) दृश्यंते समुपलभ्यंते स्वशास्त्रोक्तेन विधिना निभृतः संयतश्चात्मा येषां ते निभृतात्मानः । क्वचित्पाठः (सम्मियाचारंत्ति) सम्यक् स्वशास्त्रविहितानुष्ठानादविपरीतश्चाचारोऽनुष्ठानं येषां ते सम्यगाचाराः सम्यग्वा इतोव्यवस्थितश्चाचारोयेषां ते समिताचाराः । के ते ? । भिक्षणशीलाभिक्षवोभिक्षामात्रवृत्तयः । तथा साधुना विधिना जीवितुं शीलं येषां ते साधुजीविनः । तथाहि । ते न कस्यचिदुपरोधविधानेन जीवंति तथा क्षांतादांताजितक्रोधाः सत्यसंधादृढव्रतायुगांतरमात्रदृष्टयः परिपूतोदकपायिनोमौनिनस्सदा तायिनोविविक्तैकांतध्यानाध्यासिनोकौकुच्यास्तानेवंभूतानवधार्याअपि सरागाअपि वीतरागाइव चेष्टंते इति मत्वैते मिथ्यात्वोपजीविनइत्येवं दृष्टिं न धारयेन्नैवंभूतमध्यवसायं कुर्यान्नाप्येवं भूतां वाचं निसृजेद्यथैते मिथ्योपचारप्रवृत्तामायाविनइति । छद्मस्थेन ह्यर्वाग्दर्शिनैवंभूतस्य निश्चयस्य कर्तुमशक्यत्वादित्यभिप्रायः । तेच स्वयूथ्यावा भवेयुस्तीर्थांतरीयावा तावुभावपि न वक्तव्यौ साधुना । यतउक्तं । "यावत्परगुणपरदो,षकीर्तने व्यापृतं मनोभवति ॥ तावद्वरं विशुद्धे, ध्याने व्यग्रं मनः कर्तु"मित्यादि ॥ ३१ ॥

दक्खिणाए पडिलंभो, अत्थिवा णत्थिवा पुणो ॥ ण वियागरेज्ज
मेहावी, संतिमग्गं च बुहए ॥३२॥ इच्चेएहिं ठाणेहिं, जिणदिठ्ठेहिं
संजए ॥ धारयंतेउ अप्पाणं, आमोक्खाए परिवएज्जा सित्तिबेमि॥३३॥
इति बीयसुयखंधस्स अणायारणाम पंचमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—वली आचार देखाडेछे. (दक्खिणा के०) दान तेनो प्रतिलंभ एटले गृहस्थें दान देवुं, लेनारें दान लेवुं. एवो व्यापार प्रवर्त्तमान देखी, अस्ति, अथवा नास्ति, एटले गुण, अथवा दूषण' कांइ पण कहे नहीं. (पुणो के०) असंयमनी अनुमोदन अनें दूषण केतां

एवमन्योपि वाक्संयमोज्ञेयः। यथाऽसौ कुतीर्थिकोबालः किमपि न वेत्ति इत्यादिकां पर स्याप्रीतिकारिणीं नाषां न विसृजेत् ॥ यडुक्तं। "अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्जवाप रो ॥ सवसो तं ण नासिज्जा, नासं अहियगामिणीं" इति ॥३१॥ (दीसंतित्ति) दृश्यंते स मिताचाराः शास्त्रोक्ताचारपरानिक्षवोनिक्षामात्रवृत्तयः साधुना विधिना जीवंतीति साधु जीविनः। तथाहि। क्षांतादांताजितेंद्रियाजितकषायास्तायिनस्तानेवंनूतान् मत्वापि एते मिथ्योपजीविनइति दृष्टिं न धारयेत् नैवमनिप्रायं कुर्यात् नाप्येवं वदेत् यथा मिथ्योप चारप्रवृत्तमायाविनएते इति। बद्मस्थेन हि एवंनूतनिश्चयस्य कर्तुमशक्यत्वादिति नावः। तेच स्वयूथ्यावा नवेयुस्तीर्थांतरीयावा उनावपि न वक्तव्यौ साधुना। यडुक्तं। "यावत्प रगुणपरदोषकीर्तने व्याप्टतं मनोनवति। तावद्वरं विशुद्धे,ध्याने व्यग्रं मनः कर्तुं॥१॥३३॥

॥ टीका–तदेवं कल्याणपापयोरनेकांतरूपत्वं प्रसाध्यैकांतं दूषयितुमाह (कल्लाणेपा वएइत्यादि) कल्यं सुखमारोग्यं शोननत्वं वा तदणतीति कल्याणं तदस्यास्तीति कल्याणो मत्वर्थीं याच्प्रत्ययांतोऽर्शआदिन्योजित्यनेन। कल्याणवानिति यावत्। पापकशब्दोपि मत्व र्थीं याच्प्रत्ययांतोद्रष्टव्यः। तदेवं सर्वथा कल्याणवानेवायं तथा पापवानेवायमित्येवंनूतो व्यवहारोन विद्यते तदैकांतनूतस्यार्थस्यैवानावात्तदनावस्यच सर्ववस्तूनामनेकांताश्रयणेन प्राक्प्रसाधितत्वादिति। एतच्च व्यवहारानावाश्रयणं सर्वत्र प्रागपि योजनीयं। तद्यथा। सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्तिवा सर्वत्र वीर्यमित्येवंनूतएकांतिकोव्यवहारोन विद्यते। तथा नास्ति लोकोऽलोकोवा तथा संति जीवाअजीवाइति वेत्येवंनूतोव्यवहारोन विद्यतइति सर्वत्र संबंधनीयं। तथा वैरं वज्रं तद्वत्कर्म वैरं विरोधोवा वैरं तद्येन परोपतापादिनैकांतपक्षस माश्रयणेन वा नवति। तत्ते श्रमणास्तीर्थिकाबालाइव बालारागद्वेषकलिताः पंमिताः पंमि तानिमानिनः शुष्कतर्कदर्पाध्मातान जानंति परमार्थनूतस्याहिंसालक्षणस्य धर्मस्याने कांतपक्षस्यवा नाश्रयणादिति। यदिवा यद्वैरं तत्ते श्रमणाबालाः पंमितावान जानंतीत्ये वं वाचं न निसृजेदित्युत्तरेण संबंधः। किमिति न निसृजेद्यतस्ते किंचिज्ज्ञानंत्येवापिच ते षां तन्निमित्तकोपोत्पत्तेः। यच्चैवंनूतं वचस्तन्न वाच्यं। यतउक्तं। "अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्जवा परो ॥ सवसो तंण नासेज्जा नासं अहियगामिणि"मित्यादि ॥ ३९ ॥ अपरमपि वाक्संयममधिकृत्याह। (असेसमित्यादि) अशेषं कृत्स्नं तत्सांख्यानिप्राये ण कृतं नित्यमित्येवं न ब्रूयात्। प्रत्यर्थं प्रतिसमयं चान्यथान्यथा नावदर्शनात्सएवा यमित्येवंनूतस्यैकत्वसाधकस्य प्रत्यनिज्ञानस्य लूनं पुनर्जातेषु केशनखादिष्वपि प्रदर्श नात्तथापि शब्दादेकांतेन क्षणिकमित्येवमपि वाचं न निसृजेत्सर्वथा क्षणिकत्वे पूर्वस्य सर्वथा विनष्टत्वाडुत्तरस्य निर्हेतुकउत्पादः स्यात्तथाच सति नित्यं सत्वमसत्वंवा हे

एं वयणाणं जो नयाणइविसेसमित्यादिस्थानैरात्मानं वर्तयान्नामोक्षायात्रोपकर्मक्षया र्थं मोक्षं यावत्परिसमंतात्संयमानुष्ठाने व्रजेजवेस्त्वमिति विधेयस्योपदेशः । इति परिस माप्त्यर्थं । ब्रवीमीति पूर्ववत् । नयाश्चनिहिताश्चनिधास्यमानलक्षणाश्चेति ॥ ३३ ॥ समाप्तमनाचारश्रुताख्यं पंचममध्ययनमिति ॥

॥ हवे बहुं अध्ययन प्रारंनियें बैयें ॥

पांचमा अध्ययननें विषे आचारनी आचरणा करवी, अनें अनाचारनी परिहरणा एटले अनाचारनो त्याग करवो. एम कह्युं. हवे ते प्रमाणें जे महानाग्यवान् पुरुषथी करायछे, ते आर्डकुमारना दृष्टांतनी पेठें देखाडेछे. जेम आर्ड्कुमारनो गोशालक साथें वाद थयो, ते रीतेंज आ बहा अध्ययनमां कहेछे. प्रत्येक बुद्ध आर्ड्कुमार, एकदा प्रस्तावें श्री महावीरदेवनी पासें आवतां अंतरालें गोशालकें बोलाव्यो. ते कथा कहेछे.–

पुराकडं अद्द इमं सुणेह, मेगंतयारी समणे पुरासी ॥ से निक्खु
णो उवणेत्ता अणेगे, आइक्खतिण्हिं पुढोविछरेणं ॥ १ ॥ साजी
वियापठविता थिरेणं, सनागउ गणउ निक्खुमझे ॥ आइक्ख
माणो बहुजन्नमडं, नसंधयाती अवरेण पुव्वं ॥ २ ॥

अर्थ–हवे आर्ड्कुमारनें गोशालक बोलावीने कहेछे के, (अद्दइमंसुणेह के०) नो आर्ड्कुमार ! जे हुं कहुंछुं ते तुं सांनल. (पुराकडं के०) परापूर्वें जे जे आ ताहारे तीर्थंकरें कह्युंछे, ते हुं कहुंछुं ते सांनल. ते शुं कह्युंछे? तोके, (मेगंतयारीसमणेपुरासी के०) ए श्रमण नगवंत महावीर पूर्वें प्रथम एकांतचारी विहार करता हता. एटले एकांतें लोक रहित एवा प्रदेशें विचरता हता, अनें अनेक प्रकारनां उग्रतप करता हता, ते हमणां उग्रतप आचरवा थकी नंग थया थका मुजनें ठोडीनें एटले महारो परित्याग करीनें, (सेनिक्खुणोउवणेत्ताअणेगे के०) ते साधु शिष्यो एकठा करीनें अनेक देव, देवी, मनुष्य, अनें स्त्रीना वृंद मांहें बेठा थका धर्म कहेछे. (आइक्खतिण्हिंपुढोविछरेणं के०) तथा घणा शिष्य एकठा करी, तमारा जेवा मुग्ध जननें विप्रतारवा माटें पृथक् पृथक् जुदा जुदा विस्तारें करी धर्म कहेछे ॥ १ ॥ वली गोशालक कहेछे के, (साजीवियापठविताथिरेणं के०) अहो आर्ड्कुमार ! ताहारे गुरुयें घणा लोक मांहें बेशी धर्म देशनानें मिषें आजीविका मांमीछे, केमके, एकाकी विचरतां लोक परानव करेछे, एवुं

थकां वृत्तिछेद थाय. ए कारण माटें, (मेहावी के०) जे पंमित होय, ते अस्ति, नास्ति, न कहे, तेवारें साधु केम बोले? ते कहेछे. (संतिमग्गंचवूहए के०) शांतिमार्ग एटले मोक्षमार्ग ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूपनी वृध्धि थाय; एवुं वचन बोले. एटले जे वचन बोलवा थकी असंयम सावद्य न थाय, तेवुं वचन बोले. इत्यर्थः॥३१॥ हवे अध्ययन परिसमाप्तिनें अर्थें कहेछे. (इच्चेएहिंठाणेहिं के०) एम ए पूर्वोक्तस्थानकें (जिणदिठेहिंसंजए के०) जिन एटले वीतरागनाषित वचनें युक्त, एवा संयत एटले जे चारित्रिया (धारयंतेउ अप्पाणं के०) ते पोताना आत्मानें धारे, क्यां लगें धारे? तोके (आमोरकाएपरिवएज्जासि के०) ज्यां सुधी मोक्ष प्राप्ति थाय, त्यां सुधी धारे. हवे एवो उपदेश शिष्यनी प्रत्यें गुरु कहे. के, अहो शिष्य! तुं आवा आचारें प्रवर्त्तजे. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ ३२ ॥ ए बीजा श्रुतस्कंधनें विषे अनाचार नामें पांचमा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्तथयो.

॥ दीपिका—(दक्किणाएत्ति) दानं दक्षिणा तस्याः प्रतिलंनः प्राप्तिर्दानलाभः सोस्माद्गृहस्थादेः सकाशादस्तिवा नास्तिवा इति न व्यागृणीयान्न वदेन्मेधावी किंतु? शांतिमार्गं मोक्षमार्गं वृंहयेद्वृद्धिं प्रापयेत् यथा मोक्षमार्गवृद्धिर्नवति तथा वदेदित्यर्थः ॥ ३३ ॥ इत्येतैरनेकांतविधायिनिः स्थानैर्जिनोद्दिष्टैः संयतआत्मानं धारयन् आत्मानं प्रवर्तयन् आमोक्षाय कर्मक्षयार्थी परिव्रजेत्संयमे प्रवर्त्तेत ॥इति परिसमाप्तौ। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥३४ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयश्रुतस्कंधेऽनाचारश्रुताख्यं पंचमाध्ययनं समाप्तम् ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (दक्किणाएइत्यादि) दानं दक्षिणा तस्याः प्रतिलंनः प्राप्तिः स दानलाभोऽस्माद्गृहस्थादेः सकाशादस्ति नास्ति वेत्येवं न व्यागृणीयान्मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः। यदिवा स्वयूथस्य तीर्थांतरीयस्य वा दानं ग्रहणंवा प्रतिलाभः सएकांते नास्ति संनवति नास्ति वेत्येवं न ब्रूयादेकांतेन तद्दानग्रहणनिषेधे दोषोत्पत्तिसंनवात् । तथाहि। तद्दाननिषेधेंऽतरायसंनवस्तद्वैचित्र्यंच तद्दानानुमतावप्यधिकरणोद्भवइत्यतोऽस्ति दानं न वेत्येवमेकांतेन न ब्रूयात् । कथं तर्हि ब्रूयादिति? दर्शयति । शांतिर्मोक्षस्तस्य मार्गः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्तमुपबृंहये द्वर्धयेत् । यथा मोक्षमार्गाभिवृद्धिर्नवति तथा ब्रूयादित्यर्थः । एतडुक्तं नवति । पृष्टः केनचिद्विधिप्रतिषेधमंतरेण देयप्रतिग्राहकविषयं निरवद्यमेवं ब्रूयादित्येवमादिकमन्यदपि ॥ ३२ ॥ सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह (इच्चेएहिंमित्यादि) इत्येतैरेकांतनिषेधद्वारेणानेकांतविधायिनिः स्थानैर्वाक्संयमप्रधानैः समस्ताध्ययनोक्तैरागद्वेषरहितैर्जिनैर्दृष्टैरुपलब्धैर्न स्वमतिविकल्पोत्थापितैः संयतः सन् संयमवानात्मानं धारयन्निर्विविधधर्मदेशनावसरे वाच्यं । तथा चोक्तं । "सावज्जणवज्जा

रणमुत्पन्नं धर्मे प्रतिबुद्धं मनः अन्नयं स्मरन् वैराग्यात्कामभोगेष्वनासक्तस्तिष्ठति । पित्रा ज्ञातं मा क्वचिदसौ यायादिति पंचशतसुभटैर्नित्यं रक्ष्यते । आर्द्रककुमारोप्यश्ववाहनिकायां निर्गतः प्रधानाश्वेन दूरं गत्वा पलायितः । ततः प्रव्रज्यां गृह्णन् देवतया निषिद्धोपि प्रव्रज्यान्यतरप्रतिमाप्रतिपन्नोवसंतपुरे कायोत्सर्गस्थोदेवलोकच्युतया तया श्रेष्ठिपुत्र्याऽन्यबालिकाभिः सह क्रीडंत्याऽयं मम भर्त्तेत्युक्ते सन्निहितदेवतया सार्द्धत्रयोदशकोटिमिता सुवर्णवृष्टिः कृता । राजा तत्सुवर्णं गृह्णन् देवतया वारितः । इदं स्वर्णमस्याबालिकायाएवेत्युक्तं च ततस्तत्पित्रा गृहीतं स्वर्णं । अनुकूलोपसर्गं मत्वार्द्रमुनिरन्यत्र गतः। पुत्रीवरणार्थं वराः समायांति पुत्र्या कथितं पितुः एते वराः स्वस्थानं यांतु अहं तस्मै दत्ता त्वया यत्संबंधि हिरण्यं भवता जगृहे। पित्रोक्तं त्वं तं जानीषे कथं ? तयोक्तं । तच्चरणगताभिज्ञानदर्शनाज्जानामि ।ततः सा दानशालायां स्थिता भिक्षार्थिनामाहारं दत्ते। ततो द्वादशवर्षैर्गतैः कदाचिद्भासौ भवितव्यवशात्तत्रैव विहरन् समागतः पादचिन्हदर्शनादुपलक्षितश्च तया।ततः सा बाला सपरिवारा तत्पृष्ठतोगता। आर्द्रककुमारोपि देवतावचनं स्मरन् कर्मोदयात्प्रतिभग्नस्तया सार्द्धं भुनक्ति भोगान् पुत्रोजातः। आर्द्रकेणोक्तं सांप्रतं ते पुत्रोद्वितीयोभून्निर्वाहकः । अहं स्वकार्यमाचरामि तया सुतज्ञापनार्थं कार्पासकर्त्तनमारब्धं । पृष्टं च पुत्रेण किंमातरिदमारब्धं भवत्या? सा प्राह।वत्स ! तव पिता प्रव्रज्यां ग्रहीतुकामः त्वं तु शिशुरद्यापि द्रव्यार्जनेऽसमर्थस्ततोहमनया निंद्यवृत्याऽनया जीवनमिच्छामीति । तेन बालेन तत्कालोत्पन्नबुद्ध्या तत्कर्त्तितसूत्रेण क्वायं मया बद्धोयास्यतीति मन्मनभाषिणोपविष्टएव पिता वेष्टितः । पित्रा चिंतितं यावंतोमी वेष्टनसूत्रतंतवस्तावंति वर्षाणि मया स्थातव्यं । तंतवश्च द्वादश। ततोसौ द्वादशवर्षाणि गृहे तस्थौ । ततः प्रव्रजितः सूत्रार्थनिपुणएकाकी विहरन् राजगृहं प्रतिप्रस्थितस्तदंतराले तद्रक्षणार्थं यानि प्राक् पित्रा पंच राजपुत्रशतानि मुक्तानि तानि कुमारे नष्टे राजभयात्तत्राटव्यां चौर्येण जीवंति। तैश्चार्द्रकमुनिर्दृष्टउपलक्षितश्च। तेन पृष्टास्ते किमिदमनार्यं कर्मारब्धं भवद्भिः? तैश्च राजभयादि कथितं। मुनिवचनात्संबुद्धास्ते प्रव्रजिताः । तथा राजगृहनगरप्रवेशे गोशालकोहस्तितापसाब्राह्मणाश्च वादे पराजिताः । तथार्द्रकुमारदर्शनादेव हस्ती बंधनाद्विमुक्तः । तेच हस्तितापसादयआर्द्रमुनिधर्मकथाक्षिप्ताः श्री वीरपार्श्वे निष्क्रांताः ।राज्ञा ज्ञातस्वरूपेण पृष्टं ।भगवन्! कथं त्वद्दर्शनतः करी बंधनान्मुक्तइत्युक्ते मुनिराह। "न दुक्करं वारणपासमोयणं गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं॥ एयंतु मज्झं पडिहाइ दुक्करं बद्धस्स तक्कावलिएण तंतुणा" ॥१॥ दुष्करमेतन्नरपाशैर्बद्धस्य गजस्य मत्तस्य विमोचनं वने राजन्! एतत्तु मे प्रतिभाति दुष्करं यत्तर्कुकावलितेन तंतुना बद्धस्य मम प्रतिमोचनमिति। स्नेहतंतवोहि जंतूनां दुर्भेदाभवंतीति भावः ॥ आर्द्रकमुनिकथा समाप्ता ॥

जाणीनें, पंक्ति निमित्तें, घणो महोटो परिवार कर्योछे, वली ए तमारो गुरु केवोछे, तो के, अस्थिर एटले प्रथम माहारी साथें एकलो अंत प्रांत आहारी शून्य एवा देवकुला दिक स्थानकोनें विषे रहेतो हतो, अनें तेवो उग्रआचार वेलूना कवलनी पेरें निःस्वाद जाव जीवसुधी करवानें अशक्तछे, ते कारणे महारो समागम मुकीनें घणा शिष्योनें वि प्रतारी एवे घटाटोपें विचरेछे, ते कारणे अस्थिरछे. ते अस्थिर पणुं देखाडेछे. (सन्नाग उं के०) सन्ना जे देव अनें मनुष्यनी परषदा मांहे बेगो (गणउनिरकुमज्जे के०) अने क निक्षुना समुदाय मांहे रहेतो थको (आइरकमाणोबहुजन्नमछं के०) घणालोकनें हितनो कारक, एवो अर्थ कहेतो देखायछे. ते कारणे (नसंधयातीअवरेणपुव्वं के०) मांहोमांहे आचार तेनो संधि मलतो नथी, एटले प्रथमना आचारमां अनें हमणाना आचारमां मांहोमांहे विरोध देखायछे, ते ए प्रकारे के, सिंहासन,अशोक वृक्ष,नामंमल, छत्र, चामरादिक मंमाण जो मोक्षनुं अंग होय तो, प्रथम जे उग्रक्रिया एणे कीधी तेतो निःकेवल क्लेश नणीज कीधी, अथवा जो ते क्रिया कर्म निर्झरवानुं कारण हती, तो हमणानी क्रिया पण बीजानें विप्रतारवानें अर्थे,पाखंमरूप जाणीयें छैयें. वली प्रथमतो मौनपणुं रुडुं जाणीनें अंगीकार कर्युं हतुं, त्यारें हमणा धर्मदेशना आपवानुं शुं कामछे? जो धर्मदेशना देवी, ए रुडुंछे तो पहेलां मौनपणुं आदर्युं हतुं ते अत्यंत अयोग्यछे॥ २॥

दीपिका–अथ षष्ठाध्ययनमारभ्यते । तच्चार्द्रककुमारकथासंबद्धत्वादार्द्रकीयानिधानं । तत्कथाचेयं । मगधदेशे वसंतपुरे सामायिकोनाम कुटुंबी वसति । स वैराग्यतः श्रीधर्मघो षाचार्यपार्श्वे पत्नीयुतः प्रव्रज्यां गृहीत्वा साधुनिः सह विहरति । सोऽन्यदा स्वपत्नीं साध्वीं निक्षामटंतीं दृष्ट्वा रागी जातः । स्वानिप्रायः परस्य साधोस्तेन निवेदितः । तेनापि तत्प्रवर्ति न्यास्तयापि तस्याः साध्व्याः । ततः स्वपतिमनुरक्तं ज्ञात्वा साध्व्या नक्तप्रत्याख्यानपूर्वमा त्मोद्बंधनमकारि । मृत्वा स्वर्गमगात् । तदाकर्ण्य तत्पतिः साधुरपि गुरुमनापृच्छ्य नक्तं प्र त्याख्याय दिवं गतः । ततश्च्युत्वा आर्द्रकपुरे नगरे आर्द्रकसुतआर्द्रकानिधोजातः । साऽपि तत्पत्नी स्वर्गच्युता वसंतपुरे श्रेष्ठिपुत्री जाता । आर्द्रकोपि युवा परमसुनगः संपन्नः। अन्यदार्द्रकपित्रा जनहस्ते राजगृहे श्रेणिकराज्ञः प्राभृतं प्रेषितं । आर्द्रककुमारेण श्रेणि कसुतायाऽनयकुमाराय स्नेहकरणार्थं प्राभृतं तस्यैव हस्तेन प्रेषितं । जनोराजगृहे गत्वा श्रेणिकराज्ञः प्राभृतानि निवेदितवान् संमानितश्च राज्ञा । आर्द्रकप्रहितानि प्राभृतानि चाऽ नयकुमाराय दत्तवान् । कथितानि स्नेहोत्पादकानि वचनानि । अनयेनाचिंति । नूनम सौ नव्यः स्यादासन्नसिद्धिकोयोमया सार्द्धं प्रीतिमिछतीति । ततोऽनयेन प्रथमजिनप्रतिमा बहुप्राभृतयुतार्द्रकुमाराय प्रहिता । इदं प्राभृतमेकांते निरूपणीयमित्युक्तं जनस्य । सोऽप्या र्द्रकपुरं गत्वा यथोक्तं कथयित्वा प्राभृतमार्पयत् । प्रतिमां निरूपयतः कुमारस्य जातिस्म

णेहई ॥ एयं दव्वद्दं खलु,नावेणं होइ रागद्दं ” ॥२॥ (उदगद्दमित्यादि) तत्र द्रव्यार्द्रं द्विधा आगमतोनो आगमतश्च। आगमतोज्ञाता तत्र चानुपयुक्तोऽनुपयोगो द्रव्यमितिकृत्वा नो आगमस्तु ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तं यदुदकेन मृत्तिकादिकं द्रव्यमार्द्रीकृतं तदुदकार्द्रं । सारार्द्रंतु यद्बहिः शुष्कार्द्रमप्यंतर्मध्ये सार्द्रमास्ते यथा श्रीपर्णीसौवर्चलादिकं। छविआर्द्रंतु यत् स्निग्धत्वगूद्रव्यं मुक्ताफलरक्ताशोकादिकं तदनिधीयते वसयोपलितं वासार्द्रं तथा श्लेष्मार्द्रं चक्रलेपाद्युपलितं स्तंनकुड्यादिकं यद्द्रव्यं तत्स्निग्धाकारतया श्लेष्मार्द्रमिनिधीयते। एतत्सर्वमप्युदकार्द्रादिकं द्रव्यार्द्रमेवानिधीयते। खलुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्। नावार्द्रं तु पुनः रागः स्नेहानिष्वंगस्तेनार्द्रं यज्जीवद्रव्यं तन्नावार्द्रमित्यनिधीयते। सांप्रतमार्द्रककुमारमधिकृत्यान्यथा द्रव्यार्द्रं प्रतिपादयितुमाह।“एगनवियबद्धाउ,या अनिमुहउ नामगोएय॥ एते तिन्ना देसा,दव्वमि अद्दगेहोंति”॥३॥ (एगनवियइत्यादि) एकेन नवेन योजीवः स्वर्गादेरागत्यार्द्रककुमारत्वेनोत्पत्स्यते तथा ततोप्यासन्नतरोबद्धायुष्कस्तथा ततोप्यासन्नतमोनिमुखनामगोत्रोयोनंतरसमयमेवार्द्रकत्वेन समुत्पत्स्यते। एते त्रयोपि प्रकारा द्रव्यार्द्रके द्रष्टव्याइति। सांप्रतं नावार्द्रकमधिकृत्याह। “अद्दपुरा अद्दसुतो,नामेण अद्द गोय अणगारो॥ तत्तो समुट्ठियमिणं,अज्झयणं अद्दइज्जंति”॥४॥(अद्दपुराइत्यादि) आर्द्रकायुष्कनामगोत्राण्यनुनवन् नावार्द्रो नवति। यद्यपि शृंगवेरादीनामप्यार्द्रकसंज्ञाव्यवहारोस्ति तथापि नेदमध्ययनं तेन्यःसमुत्थितमतोन तैरिहाधिकारः किंत्वार्द्रककुमारानिधानगारात्समुत्थितमतस्तेनैवेहाधिकारइतिकृत्वा तद्वक्तव्यताऽनिधीयते । एतदेव निर्युक्तिकृदाह । (अद्दपुराइत्यादि) अस्याः समासेनायमर्थः । आर्द्रकपुरे नगरे आर्द्रकोनाम राजा तत्सुतोप्यार्द्रकानिधानः कुमारस्तद्देशजाः किल सर्वेप्यार्द्रकानिधानाएव नवंतीतिकृत्वा सचानगारः संवृत्तस्तस्य च श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिसमवसरणे गोशालकेन सार्द्धं हस्तितापसैश्च वादोनूत्तेनच ते एतदध्ययनार्थोपन्यासेन पराजिताअतइदमनिधीयते । ततस्तस्मादार्द्रकात्समुत्थितमिदमध्ययनमार्द्रकीयमिति गाथासमासार्थः। व्यासार्थं तु स्वतएव निर्युक्तिकृदार्द्रकपूर्वनवोपन्यासेनोत्तरत्र कथयिष्यतीति। ननुच शाश्वतमिदं द्वादशांगमपि गणिपिटकमार्द्रककथानकं तु श्रीवर्द्धमानतीर्थावसरे तत्कथमस्य शाश्वतत्वमित्याशंक्याह।“ कामं डुवालसंगं,जिणवयणं सासयं महाना गं।सव्वज्झयणाइं तहा,सव्वक्खरसन्निवाउय ” ॥५॥ (काममित्यादि) काममित्येतदन्युपगमे इष्टमेवेतदस्माकं।तद्यथा। द्वादशांगमपि जिनवचनं नित्यं शाश्वतं महानागं महानुनावमामर्षौषध्यादिऋद्धिसमन्वितत्वान्न केवलमिदं सर्वाण्यप्यध्ययनान्येवंनूतानि तथा सर्वाक्षरसन्निपाताश्च मेलापकाद्रव्यार्थादेशान्नित्याएवेति । ननुच मतानुज्ञानामनियहस्थानं नवतइत्याशंक्याह।“तहवियकोईअत्थो,उप्पज्जतितम्मि समयंमि॥ पुव्व नणिउ अणुमतो इति इसिनासिए य जहा ” ॥६॥ (तहवियइत्यादि) यद्यपि सर्वमपीदं द्रव्यार्थतः शाश्वतं तथा

सांप्रतं सूत्रं व्याख्यायते तच्चेदं।(पुराकडमिति)यथा गोशालकेन सार्द्धं वादोजूदार्द्रककुमारस्य तथास्मिन्नध्ययने कथ्यते तं चार्द्रमुनिं प्रत्येकबुद्धं श्रीवीरांतिकमागछंतं गोशालोत्रवीद्यथा जोआर्द्रक! यदहं वदामि तछृणु। पुरा पूर्वं जवत्तीर्थकृता यत्कृतं तद्दर्शयति। एकांते जनरहितस्थाने चरतीत्येकांतचारी श्रमणः पुरासीत्तपश्चरणोद्यतः ।सांप्रतं तु तपश्चारित्रनिर्जर्त्सितो मां विहाय देवादिमध्यगतोधर्ममाख्याति। तथा बहून् शिष्यान् उपनीय बहुशिष्यपरिवारं कृत्वा, जवाहशमुग्धानां इदानीं पृथग्विस्तारेण धर्ममाख्याति॥१॥ या जवगुरुणा देशना क्रियते सा जीविका प्रकर्षेण स्थापिता एकाकी विहरन् लोकैः परिजूयतइति। यडुक्तं। "छत्रं छात्रं पात्रं,वस्त्रं यष्टिं च चर्चयति जिक्षुः॥ वेषेण परिकरेण च,कियतापि विना न जिक्षापि"॥१॥ इति कृत्वा तेन परिवारः कृतः। तदनेन दंजप्रधानेन जीविकार्थमिदमारब्धं। किंजूतेन अस्थिरेण पूर्वं मया सार्द्धमेकाकी अंतप्रांताहारेण शून्यवनादौ वृत्तिं कृतवान्। नच तादृशं डुष्करमनुष्ठानं यावज्जीवं कर्तुमलं। ततो मां त्यक्त्वा बहून् शिष्यान् विधायाम्बरेण चरति ततोऽस्थिरश्चपलः पूर्वाचारत्यागात् तथा सजागतोऽयं गणशोऽनेकशोजिक्षुमध्यस्थितश्चाचक्षाणोबहुजनेन्योहितं बहुजन्यमर्थं कथयन् विहरति एतच्चास्यानुष्ठानं पूर्वापरेण न संधत्ते। तथाहि। यदि सांप्रतीयं वृत्तं प्राकारत्रयसिंहासनाशोकवृक्षजामंमलचामरादिकं मोक्षांगमजविष्यत्ततोया प्राक्तन्येकचर्या क्लेशबहुलानेन कृतेनाक्लेशाय केवलमस्येत्यथ सा कर्मनिर्जरणहेतुका परमार्थजूता ततः सांप्रतावस्था परप्रतारकत्वाद्दंजकल्पेत्यतः पूर्वोत्तरयोरनुष्ठानयोर्मौनव्रतिकधर्मदेशनारूपयोः परस्परतोविरोधइति। अतएवास्य चरित्रं पूर्वापरेण न संदधाति पूर्वापरविरोधीत्यर्थः॥ २ ॥

॥टीका–उक्तं पंचममध्ययनं।सांप्रतं षष्ठमारज्यते। अस्य चायमजिसंबंधः। इहानंतराध्ययने आचारः प्रतिपादितोऽनाचारपरिहारश्च सच येनाचीर्णः परिहृतश्चासावधुना प्रतिपाद्यते। यदिवाऽनंतराध्ययने स्वरूपमाचारानाचारयोः प्रतिपादितं तच्चाशंक्यानुष्ठानं न जवत्यतस्तदा सेवकोदृष्टांतजूतआर्द्रकः प्रतिपाद्यतइत्यथवाऽनाचारफलं ज्ञात्वा सदाचारे प्रयत्नः कार्योयथार्द्रककुमारेण कृतइत्येतद्दर्शनार्थमिदमध्ययनं।अस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्युपक्रमादीनि वाच्यानि। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं। तद्यथा आर्द्रककुमारवक्तव्यता यथासावजयकुमारप्रतिमाव्यतिकरात्प्रतिबुद्धस्तथात्र सर्वं प्रतिपाद्यतइति। निक्षेपस्त्रिधा। तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं नाम निष्पन्ने निक्षेपेत्वार्द्रकीयं। तत्रार्द्रपदनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह। "नामं ठवणा अद्दं,दव्वद्दं चेव होइ जावद्दं॥ एसो खलु अद्दस्स उ निक्खेवो चउविहो होइ" ॥१॥ (नामंठवणाअद्दमित्यादि) नामस्थापनाद्रव्यजावजेदाच्चतुर्धार्द्रकस्य निक्षेपोड्रष्टव्यः। तत्र नामस्थापनेऽनादृत्य ड्रव्यार्द्रप्रतिपादनार्थमाह।"उदगद्दं सारद्दं,छवियद्दं खलु तहासि

गरे श्रेणिकस्य राज्ञः स्नेहाविष्करणार्थं परमप्राभृतोपेतं महत्तमं प्रेषयत्यार्द्रककुमारेणासौ दृष्टोयथा कस्यैतानि महार्हाण्यत्युग्राणि प्राभृतानि मत्पित्रा प्रेपितानि यास्यंतीत्यसावक थयद्यथार्यदेशे तव पितुः परममित्रश्रेणिकोमहाराजा तस्यैतानीत्यार्द्रककुमारेणाप्य भाणि किं तस्यास्ति कश्चिद्योग्यः पुत्रोस्तीत्याह। यद्येवं मत्प्रहितानि प्राभृतानि भवता त स्य समर्पणीयानीति भणित्वा महार्हाणि प्राभृतानि समर्प्याभिहितं वक्तव्योसौ मद्वच नाद्यथार्द्रककुमारस्त्वयि स्निह्यतीति सच महत्तमोगृहीतोभयप्राभृतोराजगृहमगाद्गत्वा च राजद्वारपालनिवेदितोराजकुलं प्रविष्टो दृष्टश्च श्रेणिकः प्रणामपूर्वं निवेदितानि प्राभृतानि कथितं च यथासंदिष्टं। तेनाप्यासनाशनतांबूलादिना यथार्हप्रतिपत्त्या सन्मानितोद्वितीये चान्ह्यार्द्रककुमारसत्कानि प्राभृतान्यभयकुमारस्य समर्पितानि कथिता निच तत्प्रीत्युत्पादकानि तत्संदिष्टवचनान्यभयकुमारेणापि पारिणामिक्यबुद्ध्या परिणामि तं नूनमसौ भव्यः समासन्नमुक्तिगमनश्च तेन मया सार्द्धं प्रीतिमिछतीति। तदिदमत्र प्रा प्तकालं यदादितीर्थंकरप्रतिकरप्रतिमासं दर्शनेन तस्यानुग्रहः क्रियतइतिमत्वा तथैव कृ तं महार्हाणिच प्रेपितानि प्राभृतानीति। उक्तश्च। महत्तमोयथा मत्प्रहितप्राभृतमेतदेकां ते निरूपणीयं तेनापि तथैव प्रतिपन्नं गतश्चासावार्द्रकपुरं समर्पितं च प्राभृतं राज्ञोद्वि तीये चान्ह्यार्द्रककुमारस्येति कथितंच यथासंदिष्टं तेनाप्येकांते स्थित्वा निरूपिता प्रतिमा तांच निरूपयतऊहापोहविमर्शनेन समुत्पन्नं जातिस्मरणं चिंतितंच तेन यथा ममाभ यकुमारेण महानुपकारोऽकारि सद्धर्मप्रतिबोधतइति। ततोसावार्द्रकः संजातजातिस्मरणो चिंतयद्यस्य मम देवलोकभोगैर्यथेप्सितं संपद्यमानैस्तृप्तिर्नाभूत्तस्यामीभिस्तुछैर्मानुषैः स्व ल्पकालीनैः कामभोगैस्तृप्तिर्भविष्यतीति कुतस्त्यमित्येतत्परिगणय्य निर्विण्णकामभोगो यथोचितभोगमकुर्वन् राज्ञा संजातभयेन मा क्वचिद्यायात्यतः पंचभिः शतैराजपुत्राणां र क्षयितुमारेभे। आर्द्रककुमारोऽप्यश्ववाहनिकया विनिर्गतः प्रधानाश्वेन प्रपलायितः तत श्च प्रव्रज्यां गृह्णन् देवतया सोपसर्गं भवतोद्यापि भणित्वा निवारितोप्यसावार्द्रकोराज्यं तावन्न करोति कोन्योमां विहाय प्रव्रज्यां ग्रहीष्यतीत्यभिसंधाय तां देवतामवगणय्य प्रव्रजितोविहरन्नन्यदान्यतरप्रतिमाप्रतिपन्नः कायोत्सर्गव्यवस्थितोवसंतपुरे तया देवलो काच्च्युतया श्रेष्ठिदुहित्रा परदारिकामध्यगतया रमत्येपममम भर्तेत्येवमुक्ते सत्यनंतरमे व तत्सन्निहितदेवतयार्द्धत्रयोदशकोटिपरिमाणा शोभनं वृतमनयेति भणित्वा हिरण्य वृष्टिर्मुक्ता तांच हिरण्यवृष्टिं राजा गृह्णन् देवतया सर्पाद्युत्थानतोविधृतोऽभिहितं च तया यथैतद्धिरण्यं जातमस्यादारिकायाः नान्यस्य कस्यचिदित्यतस्तत्पित्रा सर्वं संगो पितमार्द्रककुमारोप्यनुकूलोपसर्गइतिमत्वाऽश्वेनान्यत्र गतोगछतिच। काले दारिकाया वरकाः समागछंति दृष्टौच पितरौ तया किमेषामागमनप्रयोजनं? कथितंच ताभ्यां यथैते

पि कोप्यर्थस्तस्मिन्समये तथा क्षेत्रेच कुतश्चिदार्ड्कादेः सकाशादाविर्नावमास्कंदति सते न व्यपदिश्यते । तथा पूर्वमप्यसावर्थोऽन्यमुद्दिश्योक्तोऽनुमतश्च नवति ऋषिन्नाषितेषूत्तरा ध्ययनादिषु यथेति । सांप्रतं विशिष्टतरमध्ययनोत्थानमाह । " अद्दइएणगोसा,लनिरकु बंनवतीति दंडीणं ॥ जह हत्थितावसाणं,कहियं इणमो तहावुद्धं" ॥७॥ (अद्दइएणेत्या दि) आर्यार्डकेण समवसरणानिमुखमुच्चलितेन गोशालकनिक्षोस्तथा ब्रह्मव्रतिनां त्रिदंमि नां यथा हस्तितापसानां च कथितमिदमध्ययनार्थे जातं तथा वक्ष्ये सूत्रेणेति । सांप्रतं स पूर्वनवमार्डककथानकं गाथानिरेव निर्युक्तिकृदाह । "गामे वसंतपुरये,सामहितोधरणि सहितोनिरकंतो ॥ निरकायरियादिठा,उहासिय नत्तवेहासं" ॥८॥ संवेगसमावन्नो,माईन्न तं च इन्नुदिय लोए ॥ चउकणं अद्दपुरे, अद्दसुउं अद्दउं जाउं ॥ए॥ पीतीयदोषहदूउं पुन्न एमन्नयस्स पन्नवे सोउं ॥ तेणावि सम्मदिठित्ति होज्ज, पडिमारहंमि गया ॥ १० ॥ दहुं संवुको रकिउ य, आसाणवाहणपलातो ॥ पव्वावंतो धरितो, रज्जं न करेति कोअन्नो ॥ ११ ॥ अगणिंतो निरकंतो, विहरइ पडिमाइदारिगाचरिईउ ॥ सुवरणवसुहाराउ, र न्नो कहणं च देवीए ॥ १२ ॥ तं नइ पिता तीसे, पुन्नणकहणं च वरणदोवारे ॥ जाणाइ पायबिंबं,आगमणं कहणनिग्गमणं ॥ १३ ॥ पडिमागतीसमीवे,सपरीवारानिरकपडिवय णं ॥ नोगमुतापुन्नणसु,त्तबंधपुन्नेयनिग्गमणं ॥१४॥ रायगिहागमचोरा,रायनया कहणतेसि दिरकाया ॥ गोसालनिरकुबंनी,तिदंमियातावसेहिं सहवादो ॥१५॥ वादे पराइयत्तो,सव्वे विय सरणमब्नुवगतातो ॥ अद्दगसहिया सव्वे, जिणवीरसासिनिरकंता ॥१६॥ (गामेइत्यादिगा थाष्टकं) आसां चार्थः कथानकादवसेयस्तच्चेदं । मगधजनपदे वसंतपुरे ग्रामे तत्र सामा यिकोनाम कुटुंबी प्रतिवसति । सच संसारन्नयोद्विग्नोधर्मघोषाचार्यांतिके धर्मं श्रुत्वा स पत्नीकः प्रव्रजितः सच सदाचारतः संविग्नैः साधुनिः सार्द्धं विहरतीतरानिः साध्वी निः । सहेति । कदाचिच्चासावेकस्मिन्नगरे निक्षार्थमटंतीं दृष्ट्वा तामसौ तथाविधकर्मोदया त्पूर्वरतानुस्मरणेन तस्यामध्युपपन्नस्तेन चात्मीयोऽनिप्रायोद्वितीयस्य साधोर्निवेदितस्ते नापि चैतत्प्रवर्तिन्यास्तयापि चानिहितं न मम देशांतरे एकाकिन्या गमनं युज्यते न चा सौ तत्राप्यनुबंधं त्यक्ष्यतीत्यतो ममास्मिन्नवसरे नक्तप्रत्याख्यानमेव श्रेयोन पुनर्व्रतवि लोपनमित्यतस्तया नक्तप्रत्याख्यानपूर्वकमात्मोद्बंधनमकारि. मृता सागाच्च देवलोकं । श्रुत्वा चैनं व्यतिकरमसौ संवेगमुपगतश्चिंतितं च तेन । तया व्रतनंगनयादिदमनुष्ठितं म मत्वसौ संजातएवेत्यतोहमपि नक्तप्रत्याख्यानं करोमीत्याचार्यस्यानिवेद्यैवासौ मायाव्यथ च परमसंवेगापन्नोऽसावपि नक्तं प्रत्याख्याय दिवंगतस्ततोपि च प्रत्यागत्यार्डपुरे नगरे आर्डकसुतआर्डकानिधानोजातः । सापिच देवलोकाच्च्युता वसंतपुरे नगरे श्रेष्ठिकुले दारिका जाता इतरोपिच परमरूपसंपन्नोयौवनस्थः संवृत्तोन्यदासावार्डकपिता राजगृहन

दिश्यते तंच राजपुत्रकमार्डककुमारं प्रत्येकबुद्धं जगवत्समीपमागच्चंतं गोशालकोत्रवीद्यथा हे आर्डक! यदहं ब्रवीमि तच्छृणु। पुरा पूर्वं यदनेन जगवत्तीर्थकृता कृतं तच्चेदमिति दर्शयति। एकांते जनरहिते प्रदेशे चरितुं शीलमस्येत्येकांतचारी तथा श्राम्यतीति श्रमणः पुरासीत्तप श्चरणोद्युक्तः सांप्रतं तूग्रैस्तपश्चरणविशेषैर्निर्नर्त्सितोमां विहाय देवादिमध्यगतोसौ धर्मं किल कथयति तथा जिक्षून् बहूनुपनीय प्रजूतशिष्यपरिकरं कृत्वा जवद्विधानां मुग्धजनानामिदा नीं पृथक् पृथग्विस्तरेणाचष्टे धर्ममिति शेषः ॥१॥ पुनरपि गोशालकएव (साजीविए) इ त्याद्याह येयं बहुजनमध्यगतेन धर्मदेशना मुष्मजुरुणारब्धा सा जीविका प्रकर्षेण स्थापि ता प्रस्थापिता एकाकी विहरंल्लौकिकैः परिजूयतइतिमत्वा लोकपंक्तिनिमित्तं महान् परिकरःकृतः। तथाचोच्यते। "छत्रं, छात्रं, पात्रं, वस्त्रं यष्टिं च चर्चयति जिक्षुः॥ वेषेण प रिकरेणच, कियतापि विना न जिक्षापि"॥ तदनेन दंजप्रदानेन जीविकार्थमिदमारब्धं। किंजूतेनास्थिरेण पूर्वं ह्ययं मया सार्धमेकाक्यंतप्रांताशनेन शून्यारामदेवकुलादौ वृ त्तिं कल्पितवान्न च तथाजूतमनुष्ठानं सिकताकवलवन्निरास्वादं यावज्जीवं कर्तुमल मतोमां विहायायं बहून् शिष्यान् प्रतार्यैवंजूतेन स्फुटाटोपेन विहरतीत्यतः कर्तव्ये स्थिरश्चपलः पूर्वचर्यापरित्यागेनापरकल्पसमाश्रयात्। एतदेव दर्शयति। सजायां ग तः सदेवमनुजपर्षदि व्यवस्थितो (गणउत्ति) गणशोबहुशोऽनेकशइति यावत् जि क्षूणां मध्ये गतोव्यवस्थितआचक्षणोबहुजनेन्योहितोबहुजन्योर्थस्तमर्थं बहुजनहितं कथयन् विहरति एतच्चास्यानुष्ठानं पूर्वापरेण न संधत्ते। तथाहि। यदि सांप्रतीयं वृत्तं प्राकारत्रयं सिंहासनाशोकवृक्षजामंमलचामरादिकं मोक्षांगमजविष्यत्ततोया प्रा क्तन्येकचर्या क्लेशबहुला तेन कृता सा क्लेशाय केवलमस्येत्यथ कर्मनिर्जरणहेतुका पर मार्थजूता ततः सांप्रतावस्था परप्रतारकत्वाद्दंजकल्पेत्यतः पूर्वोत्तरयोरनुष्ठानयोर्मौ नव्रतिकधर्मदेशनारूपयोः परस्परतोविरोधइति ॥ २ ॥

एगंतमेवं अडुवा विइण्हिं, दोवग्गमन्नं न समेति जम्हा ॥ पु
विं च इण्हिं च अणागतं वा, एगंतमेवं पडिसंधयाति ॥ ३ ॥ स
मिञ्च लोगं तसथावराणं, खेमंकरे समणे माहणे वा ॥ आइ
क्खमाणोवि सहस्समज्झे, एगंतयं सारयति तहच्चे ॥ ४ ॥

अर्थ—वली गोशालक कहेछे. के, अहो आर्डकुमार! (एगंतमेवं के०) जो एकांत विचरवुंज रूडुंछे, एवुं जाणीनें ताहरे गुरुयें आदर्युं हतुं, तो सदैव तेनोज अंगीका र करवो हतो, (अडुवाविइण्हिं के०) अथवा हमणां अनेक साधुना परिवारें परव

तव वरकाऽस्ति । ततस्तयोक्तं तात ! सकृत्कन्याः प्रदीयंते नानेकशोदत्ता चाहं तस्मै यत्सं बंधं हिरण्यजातं नवद्भिर्गृहीतं ततः सा पित्राऽनाणि । किं त्वं तं जानीषे ? तयोक्तं तत्पादग तानिज्ञानदर्शनतोजानामीति । तदेवमसौ तत्परिज्ञानार्थं सर्वस्य निक्षार्थिनोनिक्षां दापयितुं निरूपिता ततोद्वादशनिर्वर्षैर्गतैः कदाचिच्चासौ नवितव्यतानियोगेन तत्रैव वि हरन्समायातः प्रत्यनिज्ञातश्च तया तत्पादचिन्हदर्शनतस्ततोसौ दारिका सपरिवारा तत्ष्ट ष्टतोजगामार्द्रककुमारोपि देवतावचनं स्मरंस्तथाविधकर्मोदयादवश्यं नवितव्यतानियो गेन च प्रतिनग्नस्तया सार्द्धं नुनक्ति नोगान् पुत्रश्चोत्पन्नः पुनरार्द्रककुमारेणासावनिहिता सांप्रतं ते पुत्रोद्वितीयोहं स्वकार्यमनुतिष्ठामि तया सुतव्युत्पादनार्थं कार्पासिककर्त्तनमारब्धं ष्टष्टा चासौ बालकेन किमंबैतन्नवत्या प्रारब्धमितरजनाचरितं ततोसाऽवबोचद्यथा तव पि ता प्रव्रजितुंकामस्त्वं चाद्यापि शिशुरसमर्थोर्थार्जनेततोहमनाथा स्त्रीजनोचितेनानिंद्ये न विधिनाऽऽत्मानं नवंतं च किल पालयिष्यामीत्येतदालोच्येदमारब्धमिति । तेनापि बा लकेनोत्पन्नप्रनूतया तत्कर्त्तितसूत्रेणैव क्वायं मद्बध्योयास्यतीति मन्मनोनापिणोपविष्टए वासौ पिता परिवेष्टितस्तेनापि चिंतितं यावंतोमी बालककृतवेष्टनतंतवस्तावंत्येव वर्षाणि मया गृहेस्थातव्यमिति निरूपिताश्च तंतवोयावद्द्वादश तावंत्येव वर्षाण्यसौ गृहवासे व्य वस्थितः पूर्णेषु द्वादशसु संवत्सरेषु गृहान्निर्गतः प्रव्रजितश्चेति । ततोसौ सूत्रार्थनिष्पन्न एकाकिविहारेण विहरन् राजगृहानिमुखं प्रस्थितस्तदंतराले च तद्रक्षणार्थं या नि प्राक् पित्रा निरूपितानि पंचराजपुत्रशतानि तस्मिन्नश्वे नष्टे राजनयाद्वैलक्ष्याच्च न रा जांतिकं जग्मुस्तत्राटवीडुर्गेण चौर्येण वृत्तिं कल्पितवंतस्तैश्चासौ दृष्टः प्रत्यनिज्ञातश्च ते च तेन पृष्टाः किमिति नवद्भिरेवंनूतं कर्माश्रितं? तैश्च सर्वं राजनयादिकं कथितमार्द्रकक्कु मारवचनाच्च संबुद्धाः प्रव्रजिताश्च । तथा राजगृहनगरप्रवेशे गोशालकोहस्तितापसाः ब्रा ह्मणाश्च वादे पराजिताः । तथार्द्रककुमारदर्शनादेव हस्ती बंधनाद्विमुक्तस्तेच हस्तिताप सादयश्चार्द्रककुमारधर्मकथाक्षिप्ताजिनवीरसमवसरणे निष्क्रांताः। राज्ञा च विदितवृत्तांत त्वेन महाकुतूहलापूरितहृदयेन पृष्टोनगवान् कथं त्वद्दर्शनतोहस्ती निरर्गलः संवृत्तइति महान् नगवतः प्रनावइत्येवमनिहितः सन्नार्द्रककुमारोब्रवीन्नवमगाथयोत्तरं ॥" ण डुक्करं वारणपासमोयणं,गयस्स मत्तस्स वणंमिरायं ॥ जहा उवत्ता वलिएण तंतुणा, सुडुक्करंमे प डिहाइमोयणं ॥१७॥ (णडुक्करमित्यादि) न डुष्करमेतन्नरपाशैर्बद्धमत्तवारणस्य विमोचनं वनेराजन्नेतत्तु मे प्रतिनाति डुष्करं यच्च तत्रावलितेन तंतुना बद्धस्य मम प्रतिमोचनमिति। स्नेहतंतवोहि जंतूनां डुरुच्छेदानवंतीति नावः । गतमार्द्रककथानकं ॥

नामनिष्पन्ननिक्षेपश्च । तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चे दं।(पुराकडमित्यादि)यथा च गोशालकेन सार्द्धं वादोनूदार्द्रककुमारस्य तथानेनाध्ययनेनोप

नालजाप यस्मादेवं तस्मात्पूर्वापरविरोधः । एवं गोशालकेनोक्ते आर्द्रककुमारः श्लोकपश्चार्द्धेनोत्तरदानायाह । पूर्वं यदेकत्वं मौनव्रतिकत्वं च नगवतः तच्छद्मस्थत्वाद् घातिकर्मचतुष्टयक्षयार्थं सांप्रतं बहुपरिवारस्य यद्धर्मदेशकत्वं तच्छेपकर्मक्षयाय तीर्थकृन्नाम कर्म वेदनार्थंच ततः पूर्वमिदानीमनागतेच काले रागद्वेपरहितत्वादेकत्वनावनया एकत्वमेव धर्मं कथयन् प्रतिसंदधाति न तस्य पूर्वापरविरोधोस्ति आशंसारहितत्वात् ॥ ३ ॥ लानार्थं देशनां करोतीत्याह । समेत्य लोकं यथावस्थितं ज्ञात्वा त्रसस्थावराणां क्षेमंकरोरक्षकः श्रमणो द्वादशधा तपःप्रवृत्तः माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्य स माहनोब्राह्मणोवा समतया धर्ममाचक्षाणोपि मौनी च वाक्संयतएव तथा सहस्राणां मध्ये स्थितोपि एकांतमेव सारयति साधयति तस्मात्तथार्चः तथैव प्राग्वदर्चा लेश्या यस्य स तथार्चः । यदिवार्चा शरीरं तच्च प्राग्वद्यस्य स तथार्चस्तथाह्यशोकाद्यष्टप्रातिहार्योपेतोपि नोत्सेकं याति नापि शरीरसंस्काराय यत्नं विदधाति सहि नगवानात्यंतिकप्रहाणादेकाकी जनपरिवृतोप्येकाकी न तस्य तयोरवस्थयोः कश्चिद्विशेपोस्ति रागद्वेपमुक्तत्वात्पूर्वं पश्चाच्च तुल्याशयइत्यर्थः । यडुक्तं । "रागद्वेषौ विनिर्जित्य, किमरण्ये करिष्यसि ॥ अथ नो निर्जितावेतौ, किमरण्ये करिष्यसी"ति ॥ ४ ॥

॥ टीका–अपिच (एगंतमित्यादि) यद्येकांतचारित्रमेव शोजनं पूर्वमाश्रितत्वात्ततः सर्वदान्यनिरपेक्षैस्तदेव कर्तव्यमथचेदं सांप्रतं महापरिवारवृतं साधु मन्यसे ततस्तदेवादावप्याचरणीयमासीदपिच द्वे अप्येते गयातपवदत्यंतविरोधिनी वृत्ते नैकत्र समवायं गच्छतस्तथा यदि मौनेन धर्मस्ततः किमियं महता प्रबंधेन धर्मदेशनाऽथानयैव धर्मस्ततः किमिति पूर्वं मौनव्रतमालजाप यस्मादेवं तस्मात्पूर्वोत्तरव्याहतिः । तदेवं गोशालकेन पर्यनुयुक्तआर्द्रककुमारः श्लोकपश्चार्द्धेनोत्तरदानायाह । पूर्वं पूर्वस्मिन्काले यन्मौनव्रतिकत्वं या चैकचर्या तच्छद्मस्थत्वाद् घातिकर्मचतुष्टयक्षयार्थं । सांप्रतं यन्महाजनपरिवृतस्य धर्मदेशनाविधानं तत्प्राग्बद्धनवोपग्राहिकर्मचतुष्टयक्षपणोद्यतस्य विशेपतस्तीर्थकरनाम्नोवेदनार्थमपरासां चोच्चैर्गोत्रशुभायुर्नामादीनां शुभप्रकृतीनामिति । यदिवा पूर्वं सांप्रतमनागते च काले रागद्वेपरहितत्वादेकत्वनावनानतिक्रमणाच्चैकत्वमेवानुपचरितं नगवानशेषजनहितं धर्मं कथयन् प्रतिसंदधाति न तस्य पूर्वोत्तरयोरवस्थयोराशंसारहितत्वाद्भेदोऽस्त्यतोयडुच्यते नवता पूर्वोत्तरयोरवस्थयोरसांगत्यं तत् झवतइति ॥ ३ ॥ एतद्धर्मदेशनया प्राणिनां कश्चिडुपकारोनवत्युत नेति ? नवतीत्याह । (समिच्चलोयमित्यादि) सम्यग्यथावस्थितं लोकं षड्द्रव्यात्मकं मत्वावगम्य केवलालोकेन, परिच्छिद्य त्रस्यंतीति त्रसास्त्रसनामकर्मोदया द्वींद्रियादयस्तथा तिष्ठंतीति स्थावराः स्थावरनामकर्मोदयात्स्थावराः पृथिव्यादयस्तेपामुनयेषामपि जंतूनां क्षेमं शांतिः रक्षा तत्करणशीलः क्षेमंक

थयो थको जो साधुपदनुं मानछे तो, प्रथम थकीज ए आचार केम न आदयो ? माटें (दोवग्गमन्नंनसमेतिजम्हा के०) ए बेहु आचार, ठायानी अनें तडकानी पेठें मांहो मां हे मलता नथी, तथा जो मौनपणानें विषे धर्मछे तो ए, धर्मदेशना शा माटें आपे छे ? अथवा जो धर्मदेशनानें विषेज धर्मछे, तो मौनव्रत आदरवानुं शुं कारण हतुं? ते कारण माटें ताहरो गुरु अत्यंत विरुद्धाचारी देखायछे.एवां वचन गोशालकनां सांजली नें हवे गाथाना उत्तरार्द्धवडे आर्द्रकुमार, ते गोशालकनें उत्तर आपेछे. (पुविंचइण्हिंव अणागतंवा के०) पूर्वे कालें जे मौनपणुं अनें एकचर्या, श्री महावीरदेवें आदरी हती ते छद्मस्थ पणाथकी घातियां चार कर्मनो क्षय करवानें अर्थें जाणवी; अनें हमणां जे अनेक लोक आगल धर्मनुं प्रकाशवुं करेछे, ते वली अघातियां चार कर्मनी शुज प्र कृति खपाववानें अर्थे जाणवुं. ए कारणें प्रथम तथा हमणां तथा अनागत एटले आ गमिककालें राग द्वेषनें अनावें, एकत्वपणुंज संजाविये छैयें. (एगंतमेवंपडिसंधयाति के०) तेथी एना प्रथमना अनें पाछलना आचारनो कांइ नेद नथी, माटें जे ताहरा मनथी पूर्वापर आचारनो विरोध जणायछे ते खोटो जाणवो, तुं जोतो खरो ! के, एना धर्मोपदेशें करी केटला एक प्राणीउनें उपकार थायछे के,नथी थतो? ॥३॥ तेहिज क हेछे (समिच्चलोगंतसथावराणं के०) लोक जे षट् द्रव्यात्मक, तेनें समिच्च एटले केवल ज्ञानें करी जाणीनें, त्रस अनें स्थावर जे प्राणीउछे, एतावता चोराशी लक्ष जीवा योनि छे तेनें, (खेमंकरे के०) क्षेमना करनार, तथा (समणे के०) श्रमण एटले बार नेदें तपना करनार, तथा (माहणेवा के०)कोइ जीवनें म हणो एवो जेनो उद्देशछे ते माहण अथवा ब्राह्मण एवा जे श्री महावीर देव, ते प्राणीउना हितनें अर्थे (आइरकमाणोवि सहस्समझे के०) रागद्वेषरहित धर्म, मनुष्यना सहस्रमध्यें प्रकाशता छता (एगंतयंसा रयतितहच्चे के०) तेमज पूर्वेनी पेठें एकांत पणुंज साधेछे. एनी पूर्वेनी अवस्थामां अनें हमणांनी अवस्थामां कांइ पण अंतर नथी,तथा अर्च्चा एटले शुक्र ध्यानरूप जे लेश्या, ते छे जेनें एवा, तथा अशोकादि अष्ट महाप्रातिहार्य तेणें युक्तछे तो पण, अहंकार नथी, तथा शरीर संस्कारजणी यत्न पण करता नथी. ए कारण माटें ते जगवंत अनेक लोकें परवस्या थका पण, राग द्वेषना अनावथकी एकाकीज जाणवा इत्यर्थः ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—(एगंतमेवमित्यादि) यद्येकांतचारित्रमेव शोजनं पूर्वमाश्रितत्वात्ततः सर्वदा निरपेक्षैस्तदेव कर्तव्यं अथ चेदं सांप्रतं परिकरबहुत्वं श्रेयस्तदा पूर्वं तदेव कार्यं द्वे अप्येते ठायातपवदत्यंतं विरोधिनी वृत्ते नैकत्र समवायं गछतस्तथा यदि मौनेन धर्मस्त तः किमियं महता प्रबंधेन धर्मदेशनाऽथानयैव धर्मस्ततः किमिति पूर्वं मौनव्रतमने

कहे, तथा (संवरेय के०) पांच संवर ते सत्तरभेद युक्त संवर ते कहे, (विरतिंइह के०) पठी विरतिनो उपदेश ते संवरना धरनारनें कहे, वली इह एटले आ प्रवचननें विषे (सामणियं सिपन्ने के०) संपूर्ण संयमनें विषे मूलगुण, ते पांच महाव्रतरूप तथा उत्तरगुण, ते संवर विरतिरूप, ते प्रज्ञावंत एवा, स्वामी कहे. वली ते केवाछे, तोके, (लवावसक्की के०) कर्मना टालनार, तथा (समणेत्तिबेमि के०) श्रमण एटले तपस्वी, एवा श्री महावीर देव ते लोकना हितनें अर्थे धर्म कहेता थका आचारवंतज जाणवा. हुं एम कहुंतुं.॥६॥

॥ दीपिका–क्षांतस्याक्रोधस्य दांतस्य मानरहितस्य जितेंद्रियस्य निर्लोभस्य लोभत्यागान्निर्मायस्येत्यपि द्रष्टव्यं । भाषादोषाअसत्यसत्यामृषाककर्कशाऽसभ्यशब्दोच्चारणादयः तद्वर्जकस्य भाषागुणाहितमितदेशकालासंदिग्धभाषणादयः तन्निषेधकस्य सतोधर्मं कथयतोपि नास्ति दोषः । छद्मस्य हि प्रायोमौनमेव श्रेयः । केवलिनस्तु भाषणमपि गुणायेति ॥५॥ कीदृशं धर्मं वक्तीत्याह । पंचमहाव्रतानि साधूनां पंचगुणव्रतानि श्राद्धानां प्रज्ञापितवान् तथैव पंचाश्रवान् प्राणातिपातादिरूपान् तत्संवरं च सप्तदशप्रकारं संयमं विरतिं च कथितवान् इह शासने श्रामण्यं संपूर्णसंयमस्तस्मिन्कर्तव्ये पूर्णकृत्स्ने मूलोत्तरगुणान् पूर्वोक्तान् कथितवान् । किंभूतोऽसौ लवं कर्म तस्मा (दवसक्कइति) अवसर्पणशीलोऽवसर्पी श्रमणइति । अथ गोशालकोवक्ति (बेमित्ति) यदहं ब्रवीमि हे आर्द्रक ! तत्त्वं शृणु ॥६॥

॥ टीका–अपगतरागद्वेषस्य प्रभाषमाणस्यापि दोषाभावं दर्शयितुमाह । (धम्मंकहंतस्से त्यादि) तस्य भगवतोपगतघनघातिकलंकस्योत्पन्नसकलपदार्थाविर्भाविज्ञानस्य जगदभ्युद्धरणप्रवृत्तस्यैकांतपरहितप्रवृत्तस्य स्वकार्यनिरपेक्षस्य धर्मं कथयतोपि तुशब्दस्यापिशब्दार्थत्वान्नास्ति कश्चिद्दोषः। किंभूतस्येत्याह। क्षांतिसंपन्नस्यानेन क्रोधनिरासमाह । तथा दांतस्योपशांतस्यानेन मानव्युदासं। तथा जितानि स्वविषयप्रवृत्तिनिषेधेनेंद्रियाणि येन स जितेंद्रियोऽनेन तु लोभनिरासमाचष्टे मायायास्तु लोभनिरासादेव निरासोद्रष्टव्यस्तन्मूलत्वात्तस्य भाषादोषाअसत्यसत्यामृषकर्कशासभ्यशब्दोच्चारणादयस्तद्विवर्जकस्य तत्परिहर्तुस्तथा भाषायाये गुणाहितमितदेशकालासंदिग्धभाषणादयस्तन्निषेधकस्य सतोब्रुवतोपि नास्ति दोषः छद्मस्थस्य हि बाहुल्येन मौनव्रतमेव श्रेयः समुत्पन्नकेवलस्य तु भाषणमपि गुणायेति ॥ ५ ॥ किंभूतं धर्ममसौ कथयतीत्याह । (महव्वएपंचेत्यादि) महांति च तानि व्रतानि प्राणातिपातविरमणादीनि तानि च साधूनां प्रज्ञापितवान् पंचापि तदपेक्षयाणूनि लघूनि व्रतानि पंचैव तानि श्रावकानुद्दिश्य प्रज्ञापितवांस्तथैव पंचाश्रवान् प्राणातिपातादिरूपान् कर्मणः प्रवेशद्वारभूतांस्तत्संवरं च सप्तदशप्रकारं संयमं प्रतिपादितवान् संवरवतो

रः श्राम्यतीति श्रमणो द्वादशप्रकारतपोनिष्टप्तदेहस्तथा माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनो ब्राह्मणोवा स एवंभूतोनिर्ममोरागद्वेषरहितः प्राणिहितार्थं न लाभपूजाख्यात्यर्थं धर्ममा चक्षाणोपि प्राग्वत् छद्मस्थावस्थायां मौनव्रतिकइव वाक्संयतः। उत्पन्नदिव्यज्ञानत्वाद्भाषा गुणदोषविवेकज्ञतया भाषणेनैव गुणावाप्तेरनुत्पन्नदिव्यज्ञानस्य तु मौनव्रतिकत्वेनेति तथा देवासुरनरतिर्यक्सहस्रमध्येऽपि व्यवस्थितः पंकाधारपंकजवत्तद्दोपव्यासंगाभावान्ममत्व विरहादाशंसादोषविकलत्वादेकांतमेवासौ सारयति प्रख्यातिं नयति साधयतीति याव त्। ननु चैकाकिपरिकरोपेतावस्थयोरस्ति विशेपः प्रत्येक्षेणैवोपलभ्यमानत्वात्सत्य मस्ति विशेषोबाह्यतोन त्वांतरतोपि दर्शयति । तथा प्राग्वदर्चा लेश्या शुक्लध्याना ख्या यस्य स तथार्चः। यदिवार्चा शरीरं तच्च प्राग्वद्यस्य सतथार्चस्तथाह्यसावशोका द्यष्टप्रातिहार्योपेतोपि नोत्सेकं याति नापि शरीरं संस्कारायत्तं विदधाति सहि भगवाना त्यंतिकरागद्वेपप्रहाणादेकाक्यपि जनपरिवृतोप्येकाकी न तस्य तयोरवस्थयोः कश्चि द्विशेपोस्ति । तथाचोक्तं। "रागद्वेषौ विनिर्जित्य,किमरण्ये करिष्यसि । अथ नो निर्जितावे तौ, किमरण्ये करिष्यसि" ॥ इत्यतोबाह्यतनं गमनांतरमेव कषायजयादिकं प्रधानं कार णमिति स्थितं ॥ ४ ॥

धम्मं कहं तस्सउ णत्थि दोसो, खंतस्स दंतस्स जितिंदिय स्स ॥ भासायदोसेय विवज्जगस्स, गुणेयभासाय णिसेवगस्स ॥ ५ ॥ महव्वए पंच अणुव्वएय, तहेव पंचासव संवरेय ॥ विरतिं इह सामणियंमि पन्ने, लवावसक्की समणे त्तिबेमि ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे राग द्वेष विना धर्म कहेतां थकां कोइ प्रकारनो दोष नथी, एवो भाव दे खाडेछे. (धम्मंकहंतस्सउणत्थिदोसो के०) ते भगवंत, समस्त लोकनो उद्धार करवानें प्रवर्त्तमान छता, धर्मदेशना करेछे, तेथी तेनें दोष नथी, ते भगवंत केवाछे तो के, (खंतस्सदंतस्सजितिंदियस्स के०) क्षमावंत, दमितेंद्रिय, एटले इंद्रियना दमनहार,वली जि तेंद्रिय, (भासायदोसेयविवज्जगस्स के०) तथा भाषाना दोष टालनार, अनें (गुणेयभा सायणिसेवगस्स के०) भाषाना गुणना सेवनार, एवा भगवंतें बोलतां थकां, पण तेउनुं मौनव्रत पणुंज जाणवुं ॥ ५ ॥ हवे श्री महावीर भगवंत, केवो धर्म कहे, ते कहेछे. (महव्वएपंचअणुव्वएय के०) पांच महाव्रत जे प्राणातिपातविरमणादिक साधुनो धर्म छे, ते कहे, तथा श्रावक उद्देशीनें स्थूलप्राणातिपात विरमणादिक, पांच अणुव्रत कहे. (तहेव के०) तेमज (पंचासव के०) पांच आश्रव ते कर्मनें आववानां स्थानकछे,ते

॥दीपिका—त्वयेदमुक्तं यत्परार्थं प्रवृत्तस्याशोकादिप्रातिहार्यपरिग्रहः शिष्यादिपरिकरो धर्मदेशना च न दोषायेति यथा तथास्माकमप्येतन्न दोषाय यच्छीतोदकं सचितोदकं तत्सेवनं करोतु । बीजकायोपभोगमाधाकर्माश्रयणं स्त्रीप्रसंगं च करोतु। अनेन स्वपरोप कारः स्यादित्याह (एगंतत्ति) अस्मद्धर्मे प्रवृत्तस्यैकांतचारिणः एकाकिविहारोद्यतस्य तपस्विनोनाभिसमेति न संबध्यते पापं । यद्यपि शीतोदकादीनि ईषत्कर्मबंधाय तथापि धर्माधारस्य शरीरस्य रक्षणाय क्रियमाणानि एकांतचारितपस्विनः कर्मबंधाय न भवंती त्यर्थः ॥ ७ ॥ अस्योत्तरमाह मुनिः । शीतोदकादीनि प्रतिसेवमानाअगारिणोगृहस्थास्ते भवंत्यश्रमणाश्चेति त्वं जानीहि । एतद्भोगे यदि श्रमणत्वं स्यात्तदा गृहस्थत्वं केन स्या दित्यर्थः ॥ ८ ॥

॥टीका—यथाप्रतिज्ञातमेवाह गोशालकः । (सीउदगमित्यादि) भगवतेद मुद्ग्राहितं परा र्थं प्रवृत्तस्याशोकादिप्रातिहार्यपरिग्रहस्तथा शिष्यादिपरिकरोधर्मदेशनाच न दोषायेति । य था तथास्माकमपि सिद्धांते यदेत द्वक्ष्यमाणं तन्न दोषायेति । शीतं च तदुदकं च शीतोदक मप्राशुकोदकं तत्सेवनं परिभोगं करोतु। तथा बीजकायोपभोगमाधाकर्माश्रयणं स्त्रीप्रसंगं च निदधात्वनेन च स्वपरोपकारः कृतोभवतीत्यस्मदीये धर्मे प्रवृत्तस्य एकांतचारिणआ रामोद्यानादिष्वेकाकिविहारोद्यतस्य तपस्विनोनाभिसमेति न संबंधमुपयाति पापमशु भकर्मेति। इदमुक्तं भवत्येतानि शीतोदकादीनि यद्यपीषत्कर्मबंधाय तथापि धर्माधारं शरीरं प्रतिपालयतएकांतचारिणस्तपस्विनोबंधाय न भवंतीति ॥ ७ ॥ एतत्परिहर्त्तुकामआ ह । (सीतोदगमित्यादि) एतानि प्रागुपन्यस्तानि अप्राशुकोदकपरिभोगादीनि प्रतिसे वंतोऽगारिणोगृहस्थास्ते भवंत्यश्रमणाश्चाप्रव्रजिताश्चैवं जानीहि ॥ यतः अहिंसासत्यम स्तेयं, ब्रह्मचर्यमलुब्धता ॥ इत्येतच्छ्रमणलक्षणं चैषां शीतोदकबीजाधाकर्मस्त्रीपरिभो गवतां नास्तीत्यतस्ते नामाकाराभ्यां श्रमणान परमार्थानुष्ठानतइति ॥ ८ ॥

सियाय बीउदग इत्थियाउ, पडिसेवमाणा समणा भवंतु ॥
अगारिणोवि समणा भवंतु, सेवंतिउ तेवि तहप्पगारं ॥९॥ जे
यावि बीउदगभोत्ति भिक्खू, भिक्खं विहंजायति जीवियट्ठी ॥
ते णातिसंजोगमविप्पहाय, कायोवगाणंतकरा भवंति ॥ १० ॥

अर्थ—वली आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो गोशालक! ताहारो मत एवोछे जे एकांतचारी, क्षुधा तृषादिकना सहन करनार,तपस्वी न होय ते केम न होय? तेहनो प्रत्युत्तर सांभल. (सियायबीउदगइत्थियाउ के०) ते जो कदाचित् सचित बीज, सचित पाणी, अनें स्त्री

हि विरतिर्भवतीत्यतोविरतिं च प्रतिपादितवांश्चशब्दात्तत्फलनूतौ निर्जरामोक्षौ च इहास्मि न्प्रवचने लोके वा श्रमणनावः श्रामण्यं संपूर्णः संयमस्तस्मिन् वा विधेयें मूलगुणान् म हाव्रताणुव्रतरूपांस्तथोत्तरगुणान् महाव्रताणुव्रतरूपान् कृत्स्ने संयमे विधातव्ये प्राज्ञइति क्वचित्पाठः। प्रज्ञाने तत्प्रतिपादितवानिति । किंनूतोऽसौ लवं कर्म तस्मा(दवसक्कइति) अ वसर्प्पणशीलोऽवसर्प्पी श्रम्यतीति श्रमणः तपश्चरणयुक्तइत्येतदहं ब्रवीमि स्वयमेव च नग वान्पंचमहाव्रतोपपन्नइंडियनोइंडियगुप्तोविरतश्चासौ लवावसर्प्पीसन् स्वतोन्येपामपि तथा नूतमुपदेशं दत्तवानित्येतद् ब्रवीमीति। यदि वाईककुमारवचनमाकर्ण्यासौ गोशालकस्तत्प्र तिपक्षनूतं वक्तुकामइदमाह । इत्येतद्वक्ष्यमाणं यदहं ब्रवीमि तच्छृणु! त्वमिति ॥ ६ ॥

सीउदगं सेवउ वीयकायं, आहायकम्मं तह इत्थियाउ ॥ एगंत
चारिस्सिह अम्हधम्मे, तवस्सिणो णानिसमेति पावं ॥ ७ ॥
सीतोदगं वा तह बीयकायं, आहायकम्मं तह इत्थियाउ॥एयाइं
जाणं पडिसेवमाणा, अगारिणो अस्समणा नवंति ॥ ८ ॥

अर्थ–हवे एवुं आर्द्रकुमारनुं पूर्वोक्त वचन सांनलीनें,फरी गोशालक कहेठे के,अहो आर्द्रकुमार! तें एम कह्युं जे ए परहित नणी प्रवर्त्तिनें धर्म कहेवायकी दोष नथी, तथा लोक परिवारनो पण दोष नथी,तो हुं कहुं तुं ते पण सांनल. के,जे अमारा सि द्धांतमां कह्युंठे तेनो पण दोष नथी. ते शुं कह्युंठे ! ते कहेठे. (सीउदगंसेवउबीयका यं के०) सचितपाणी तेनें सेवो, एटले पान करो,तथा बीजकायनो उपनोग करो,(आहा यकम्मं के०) तथा आधाकर्मी आहार ल्यो, (तह के०) तेमज(इत्थियाउ के०) स्त्रीनो प्रसंग पण करो,एटले पोताना अनें परना उपकारनु कारण, अनें धर्मनुं आधार एवुं जे शरीर तेनें अर्थे जे कांइ करियें,तेंमां दोष नथी केमके,(एगंतचारिस्सिहअम्हधम्मे के०) अमारा धर्मनें विषे प्रवर्त्तमान तथा आराम उद्यानादिकनें विषे एकाकी विचरतो एवो, (तवस्सिणोणानिसमेतिपावं के०) कोइ एक तपस्वी तेनें पाप लागे नहीं. जे कारण माटें यद्यपि शीतोदकादिक कांइक कर्मबंधनुं कारणठे तथापि तेनो, उपनोग, धर्माधारनूत एवुं जे शरीर तेनें कारणें करतां थकां कांइ पण दोष नथी. इति नावः॥ ७ ॥ हवे वली आर्द्रकुमार कहेठे के, अहो गोशालक! शीतोदक अनें बीजकायनो उपनोग करवो, तथा आधाकर्मी आहार लेवो, अनें स्त्रीयादिकनो प्रसंग करवो, इत्यादिक बोल जे तें पूर्वें कह्या, तेना पडिसेवनारा तो आगारी एटले गृहस्थज कहेवाय, परंतु एवा श्रमण एटले साधु न होय. ॥ ८॥

ऽसावपि द्रव्यतः शेषेण तु बीजोदकाद्युपभोगेन गृहस्थकल्पाएव ते। यत्तु भिक्षाटनादिक मुपन्यस्तं तेषां तद्गृहस्थानामपि केषांचित्संभाव्यते नैतावता श्रमणभावइति ॥ १० ॥

इमं वयंतं तुमपाउ कुवं, पावाइणो गरिहसि सवएव ॥ पावाइ णो पुढो किट्टयंता, सयंसयं दिठिकरेंति पाउ ॥११॥ ते अन्नम न्नस्स विगरहमाणा, अरकंतिउ समणामाहणाय ॥ सतोय अ ही असतोय एडी, गरहामोदिठिं ण गरहामोकिंचि ॥ १२॥

अर्थ–हवे आर्द्रकुमारनां ए पूर्वोक्त वचन सांभलीनें गोशालक बीजो उत्तर आपवानें असमर्थ थतो, अन्य तीर्थिकोनें पोतानां सहायकारी करीनें सोल्लंठ एटले असार वचन बोलेछे के, अहो आर्द्रकुमार! (इमंवयंतंतुमपाउकुवं के०) तुं एवां पूर्वोक्त वचन कहेतो थतो (पावाइणोगरिहसिसवएव के०) सर्व प्रावाडुक एटले अन्यदर्शनीउनें निंदेछेज, कारणके आ जगत् मांहे सर्व दर्शनीउ बीज उदकादिकनुं सेवन करता थका, संसार उच्छेदवानें अर्थें प्रवर्त्तेछे, तो तेनें मानियें नहीं. एवुं वचन सांभलीनें आर्द्रकुमार ते गोशालकनें उत्तर आपवानें अर्थें बोल्यो, ते गाथाना उत्तरार्द्ध वडे कहेछे. के, अहो गोशालक! (पावाइणोपुढोकिट्टयंतासयंसयंदिठिकरेंतिपाउ के०) सर्व प्रावाडुक एटले सर्व दर्शनी पोत पोतानी जुदी जुदी दृष्टीयें जुदी जुदी मतियें पोतपोतानुं दर्शन प्रगट करेछे. जेम ते पोतपोताना दर्शननी स्थापना करेछे, तेम हुं पण अमारा दर्शननी प्रभावना करुंछुं के, सचितपाणी,बीजादिकना परिभोगथकी निःकेवल कर्मनुं बंधनछे,पण एथकी संसारनो उच्छेद कांइ पण नथी. एवो अमारा दर्शननो मतछे, तो अंही निंदा पण शानी? अनें उत्कर्षपण शानो?॥११॥वली आर्द्रकुमार कहेछे. (तेअन्नमन्नस्सविगरहमाणा के०) ए समस्त परवादी परस्पर मांहोमांहे पारका दर्शननें निंदेछे, अनें पोताना दर्शनना गुण बोलेछे, (अरकंतिउसमणामाहणाय के०) ते श्रमण ब्राह्मण सर्व पोतपोताना पक्षनें समर्थेछे अनें परना पक्षनें दूषण आपेछे.तेज गाथाना उत्तरार्द्ध वडे देखाडेछे. (सतोयअहीअसतोयएडी के०) अमारा पक्षनें अंगीकार करवा थकी पुण्यछे, अनें स्वर्गापवर्गादिकनां सुख प्राप्त थायछे, अनें परना पक्षनें अंगीकार करवा थकी पुण्य नथी अनें पुण्यनें अभावें स्वर्गापवर्गादिकनी प्राप्ति पण नथी. ए रीतें सर्व तीर्थिक मांहोमांहे व्याघातें प्रवर्त्तेछे. तेम अमे पण यथावस्थित तत्त्वनुं कथन करनारा छैयें तेणें करी, (गरहामोदिठिंणगरहामोकिंचि के०) एकांतवादीनें अमें कांइ गर्हता नथी, निंदता नथी, केमके, सत्य कहेतां थकां कांइ प्रवाद नथी. इत्यर्थः ॥ १२ ॥

यादिकनो प्रसंग तेना, (पडिसेवमाणासमणानवंतु के०) परिन्नोगना करनार श्रमण होय तो, (अगारिणोविसमणानवंतु के०) आगारी जे गृहस्थबे ते पण श्रमण थाय. केमके, (सेवंतिउतेवितहप्पगारं के०) आगारी पण सचित बीज उदकादिना सेवनारबे, वली धन नें अर्थें देशांतरनें विषे विचरे बे, वली एकला पण परदेशनें विषे घणा काल पर्यंतर हेबे, तथा धनार्थी थका, क्षुधातृषादिकनां कष्ट पण सहन करेबे, माटें ए रीतें ते पण तथा प्र कारनां एटले श्रमण जेवां कष्ट सहन करेबे, ए कारणें ते गृहस्थनें पण तपस्वीज गण वा ॥ ए ॥ वली पण आर्द्रकुमार कहेबे के, (जेयाविबीउदगन्नोत्तिनिरकू के०) जे नि क्षुक बतां, बीज उदकना नोगवनार, इव्यब्राह्मचारी एवा, (निरकंविहंजायतिजीवि यही के०) आजीविका चलाववानें अर्थें निक्षा मागे, (तेणातिसंजोगमविप्पहा य के०) ते ज्ञातिसंयोग बांमीनें (कायोवगाणंतकरानवंति के०) ब कायनामर्दन कर नार एवा, पोतानी कायाना राखनार एवा, अनें कर्मना करनार ते, आगमिककालें अनंत संसारी थशे ॥ १० ॥

॥ दीपिका—आर्द्रकएव पुनराह । यदि बीजादिन्नोजिनः श्रमणाः स्युस्तदागारिणोपि श्रमणाः स्युः तेपि गृहस्थाअपि सेवंते तथाप्रकारमेकत्वविहारादिकं । गृहस्थानामपि पथिकत्वावस्थायामाशंसावतामपि निष्किंचनतयैकाकिविहारित्वं क्षुत्पिपासादिपीडनं नवत्येवेति ॥ए॥ ये चापिनिक्षवोबीजोदकन्नोजिनः संतोनिक्षां च यावंतोजीवितार्थिनस्ते ज्ञातिसंयोगं स्वजनसंबंधं प्रविहाय त्यक्त्वा कायात्कायेषु च उपगबंतीति कायोप नो गास्तडपमर्दारंनप्रवृत्ताः संसारस्यानंतकराः स्युः संसारस्य अंतकरान नवंतीत्यर्थः ॥१०॥

॥ टीका—पुनरप्यार्द्रकएवैतद्दूषणायाह । (सियायेत्यादि) स्यादेतद्भवदीयं मतं य था ते एकांतचारिणः क्षुत्पिपासादिप्रधानतपश्चरणपीडिताश्च तत्कथं ते न तपस्विनइत्येत दाशंक्यार्द्रक आह। यदि बीजाद्युपन्नोगिनोपि श्रमणाइत्येवं नवताभ्युपगम्यते एव तर्ह्यगा रिणोपि गृहस्थाः श्रमणानवंतु तेषामपि देशिकावस्थायामाशंसावतामपि निष्किंचनतयै काकिविहारित्वं क्षुत्पिपासादिपीडनंच संनाव्यते। अतआह (सेवंतिउ) तुरवधारणे सेवंत्ये व तेऽपिगृहस्थास्तथाप्रकारमेकाकिविहारादिकमिति ॥ ए ॥ पुनरप्यार्द्रकोबीजोदकादिन्नो जिनां दोषानिधित्सयाह । (जेयावीत्यादि) ये चापि निक्षवः प्रव्रजिताबीजोदकन्नोजि नः संतोइव्यतोब्रह्मचारिणोपि निक्षां वाऽटंति जीवितार्थिनस्ते तथान्नूताज्ञातिसंयोगं स्वजनसंबंधं विप्रहाय त्यक्त्वा कायात्कायेषु चोपगबंतीति कायोपन्नोगास्तडपमर्दकारंनाप्र वृत्तत्वात्संसारस्यानंतकरानवंतीति। इदमुक्तं। नवति केवलं स्त्रीपरिन्नोगएव तैः परित्यक्तो

स्तु स्वरूपाविर्भावने परापवादः । तथाचोक्तं । "नेत्रैर्निरीक्ष्य बिलकंटककीटसर्पान्, सम्यक् यथा व्रजत तान्परिहृत्य सर्वान् ॥ कुज्ञानकुश्रुतिकुमार्गकुदृष्टिदोषा,न्सम्यग्विचारयति कोत्र परापवादः" इत्यादि । यदिचैकांतवादिनामेवास्त्येव नास्त्येवाभ्युपगमवतामयं परस्परगर्हाख्योदोषोनास्माकमनेकवादिनां सर्वस्यापि सदादेः कथंचिदभ्युपगमात् । एतदेव श्लोकपश्चार्द्धेन दर्शयति (स्वतइति) स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरस्ति तथा (परतइति) परद्रव्यादिभिर्नास्तीत्येवं पराभ्युपगमं दूषयंतोगर्हामोऽन्यानेकांतवादिनस्तत्स्वरूपनिरूपणतस्तु रागद्वेषविरहान्न किंचिद्गर्हामइति स्थितं ॥ १२ ॥

ण किंचि रूवेण भिधारयामो, सदिद्विमग्गं तु करेमि पाउं ॥ म
ग्गे इमे किट्टिए आरिएहिं, अणुत्तरे सप्पुरिसेहिं अंजू
॥१३॥ उड्डं अहेयं तिरियं दिसासु,तसाय जे थावरजेयपाणा॥
नूयाहि संकाभि ड्गुंछमा णा, णो गरहती वुसिमं किंचि लोए ॥१४॥

अर्थ-वली आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो गोशालक ! अमें (णकिंचिरूवेणभिधारयामो के०) कोइ पण श्रमण ब्राह्मणनें रूवेण एटले डुगंछनिक एवा अंगोपांगनें उघाडवे, अथवा जातिना दोषनें अभिधारयामो एटले प्रगट करीनें निंदता नथी, किंतु ? (सदिद्विमग्गंतुकरेमिपाउं के०) स्वदृष्टिमार्ग एटले पोतानुं शासन प्रगट करियें छैयें, अथवा तेउंना मार्गनुं स्वरूप कहियें छैयें. वली जे विधियें ते पोताना मार्गनी स्थिति कहेछे के, " ब्रह्मा लूनशिराः " इत्यादिक ते अमें पण सांभलियें छैयें, परंतु अमें कोइनो अपवाद बोलता नथी. हवे आर्द्रकुमार, गाथाना उत्तरार्द्धवडे पोताना दर्शननुं स्वरूप कहेछे. (मग्गेइमेकिट्टिएआरिएहिं के०) ए मार्ग जे सम्यक् दर्शनादिकछे, ते आर्य एवा जे श्री सर्वज्ञदेव तेणें कह्यो.ते मार्ग केवोछे तोके, (अणुत्तरेसप्पुरिसेहिंअंजू के०) ए मार्ग अनुत्तर एटले एना सरखो बीजो कोइ पण मार्ग जगत् मांहे नथी, वली ते सर्वज्ञ केवाछे तोके सत्पुरुष चोत्रीश अतिशयें करी विराजमान, एवाप्रधान पुरुष जगत् मांहे बीजा कोइ नथी, ते कारणें सत्पुरुष केवायछे, वली ए मार्ग केवोछे तोके, अंजू एटले सरल अकुटिल छे ॥१३॥ वली पण धर्मनुंज स्वरूप कहेछे.(उड्डंअहेयंतिरियंदिसासु के०) ऊर्ध्व अधो अनें तिर्यक् ए समस्त दिशाउंनें विषे एतावता चौदरज्ज्वात्मक लोक मांहे, (तसायजेथावरजेयपाणा के०) जे त्रस अनें स्थावर प्राणीउंछे तेना पालनार, तथा (नूयाहिसंकाभिड्गुंछमाणा के०) प्राणघातनी शंकायें सावद्यानुष्ठाननें ड्गंछता, (णो गरहतीवुसिमंकिंचिलोए के०) एवा संयमवंत पुरुषो लोक मांहे जे छे, ते कोइनें गर्हे

॥ दीपिका—अथ गोशालोन्यतीर्थिकान्सहायान्कृत्वा सोल्लुंठमसारं प्राह । इमां पूर्वोक्तां वाचं त्वं प्रादुष्कुर्वेन्सर्वान् प्रावादुकान् गर्हसि ? । यतः सर्वेपि तीर्थिकाः बीजोदकादिन्नोजिनोपि नवोछेदाय प्रवर्त्तंते ते तुऽप्रावादुकाः पृथक् पृथक् स्वीयां दृष्टिं प्रत्येकं स्वदर्शनं प्रादुष्कुर्वेति प्रकाशयंति । अथवा श्लोकपश्चार्द्धं आर्द्रमुनिराह । सर्वेपि प्रावादुकाः स्वमतं प्रकाशयंति तथा वयमपि स्वदर्शनं प्रादुष्कुर्मोयहीजोदकादिन्नोगिनः कर्मबंधोन नवोछेदइति स्थिते कात्र परनिंदा कोवा आत्मोत्कर्षइति ॥ ११ ॥ ते प्रावादुकाअन्योन्यस्य परदर्शनं गर्हमाणाः स्वदर्शनगुणानाख्यांति यथा स्वतइति स्वकीये पक्षे स्वमतेस्ति पुण्यं अस्वतः परमते नास्ति पुण्यमित्येवं तीर्थिकाः परस्परव्याघातेन प्रवृत्ताः वयं तु तत्वप्ररूपणादेकांतदृष्टिं गर्हाम नहि एकांतपक्षोयुक्तिसंगतइति वदंतो वयं न किंचिन्नर्हामः । काणांधादिवस्तुस्वरूपकथनेन परापवादः । तथाचोक्तं । "नेत्रैर्निरीक्ष्य बिलकंटककीटसर्प्पान्, सम्यग्यथा व्रजत तान्परिहृत्य सर्वान् ॥ कुज्ञानकुश्रुतिकुमार्गकुदृष्टिदोषान्, सम्यग्विचारयत कोत्र परापवाद"इति ॥ १२ ॥

॥ टीका—अधुनैतदाकर्ण्य गोशालकोपरमुत्तरं दातुमसमर्थोऽन्यतीर्थिकान्सहायान् विधाय सोल्लुंठमसारं वक्तुकामआह (इमंवयंत्वित्यादि) इमां पूर्वोक्तां वाचं । तुशब्दोविशेषणार्थः । त्वं प्रादुष्कुर्वेन्प्रकाशयन्सर्वानपि प्रावादुकान् गर्हसि जुगुप्ससे यस्मात्सर्वेऽपि तीर्थिकाबीजोदकादिन्नोजिनोपि संसारोछित्तये प्रवर्त्तंते तेतु नवता नान्युपगम्यंते तेतु प्रावादुकाः पृथक् पृथक् स्वीयां स्वीयां दृष्टिं प्रत्येकं स्वदर्शनं कीर्तयंतः प्रादुष्कुर्वेति प्रकाशयंति । यदिवा श्लोकपश्चार्द्धमार्द्रककुमारआह । सर्वे प्रावादुकायथावस्थितं स्वदर्शनं प्रादुष्कुर्वेति तत्प्रामाण्याच्च वयमपि स्वदर्शनाविर्नावनं कुर्मस्तद्यथा ह्यप्राशुकेन बीजोदकादिपरिन्नोगिनः कर्मबंधएव केवलं न संसारोछेदइतीदमस्मदीयं दर्शनमेवं व्यवस्थिते कात्र परनिंदा कोवात्मोत्कर्षइति ॥ ११ ॥ किंच । (तेअन्नमन्नस्सेत्यादि) तेप्रावादुकाअन्योन्यस्य परस्परेणतु स्वदर्शनप्रतिष्ठाशया परदर्शनं गर्हमाणाः स्वदर्शनगुणानाचक्षते तुशब्दात्परस्परतोव्याहतमनुष्ठानं चानुतिष्ठंति ते च श्रमणानिर्ग्रंथादयोब्राह्मणाद्विजातयः सर्वेप्येते स्वकं पक्षं समर्थयंति परकीयं च दूषयंति। तदेव पश्चार्द्धेन दर्शयति। स्वतइति। स्वकीये पक्षे स्वान्युपगमेस्ति पुण्यं तत्कार्यंच स्वर्गापवर्गादिकमस्त्यतः स्वपरान्युपगमाच्च नास्ति पुण्यादिकमित्येवं सर्वेपि तीर्थिकाः परस्परव्याघातेन प्रवृत्ताअतोवयमपि यथावस्थिततत्वप्ररूपणतोयुक्तिविकलत्वादेकांतदृष्टिं गर्हामोजुगुप्सामोनह्यसावेकांतोयथावस्थिततत्वाविर्नावकोनवतीत्येवं व्यवस्थिते तत्वस्वरूपं वयमाचक्षाणा न किंचिन्नर्हामः काणकुंटोद्घट्टनादिप्रकारेण केवलं स्वपरस्वरूपाविर्नावनं कुर्मोन च व

क्षया जावदिगपेक्षया वा तासु ये त्रसाये च स्थावराःप्राणिनः। चशब्दौ स्वगतानेकन्नेदसंसूच कौ। नूतं सद्भूतं तथ्यं तत्राभिशंकया तथ्यनिर्णयेन प्राणातिपातादिकं पातकं जुगुप्समा नोगर्हमाणोयदिवा नूताभिशंकया सर्वसावद्यमनुष्ठानं जुगुप्समानोनैवापरलोकं कंचन गर्हति निंदति (वुसिमंति) संयमवानिति। तदेवं रागद्वेषवियुक्तस्य वस्तुस्वरूपाविर्भाव ने न काचिद्गर्हेत्यथ तत्रापि गर्हा नवति नह्युष्णोग्निः शीतमुदकं विषं मारणात्मकमित्येव मादि किंचि द्वस्तुस्वरूपमाविर्भावनीयमिति ॥ १४ ॥

आगंतगारे आरामगारे,समणेउ नीते ण उवेति वासं ॥ दक्खा
हुसंते बहवे मणुस्सा, ऊणातिरित्ताय लवालवाय ॥ १५ ॥
मेहाविणो सिक्खिय बुद्धिमंता, सुत्तेहिं अत्थेहिय णिछयन्ना ॥ पु
छिसुमाणे अणगार अन्ने, इति संकमाणो ण उवेति तछ ॥१६॥

अर्थ–हवे गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक बीजा प्रकारें करी फरी आर्द्रकुमार प्र त्यें कहेछे. के, अहो आर्द्रकुमार! ताहरो तीर्थंकर राग, द्वेष, अनें नय, तेणें करी सहित छे, ए कारण माटें ते बीहितो थको (आगंतगारे के०) शून्यघर धर्मशालादिक तथा (आरामगारे के०) उद्यानादिकनें विषे (समणेउनीते के०) श्रमण अनें माहण थ की बीहितो थको (णउवेतिवासं के०) वास करतो नथी, वली शा थकी बीहितो थको वास करतो नथी? ते कहेछे. (दक्खाहुसंते के०) दक्ष एटले माह्या, घणां शास्त्र ना जाणनार, पंमित, (बहवेमणुस्सा के०) एवा घणा पुरुषो ते पूर्वोक्त शून्य घरादिक स्थानकनें विषे आवे, माटें तेवा पुरुषोथकी बीहितो थको, तेवां स्थानकनें विषे ताह रो त्यां गुरु आवतो नथी पण, ते पुरुषो केवाछे तोके, (ऊणातिरित्ताय के०) तमारा तीर्थंकरथकी कोइ एक जात्यादिक गुणें करी ऊणाछे न्यूनछे,तथा कोइ एक अधिकछे, तो तेवानी साथें बोलतां कदाचित् हारी जाय तो मानम्लान थाय, ते कारणमाटें एवां स्थानक छांमीनें त्यागीनें देवादिकनी परषदामांहे एकांतें बेसेछे. वली ते पुरुषो केवाछे तोके, (लवालवाय के०) एकतो लव एटले अनेक विचित्र तर्कना बोलनार, तथा ए क अलव एटले मौनव्रती, अथवा मंत्रवादी छे के, जेनी आगल बोलतां वादीना मुख मांहेथी वचन पण निकले नही, ते कारण माटें तेनी बीकथकी ताहरा तीर्थंकरें आरा म उद्यानादिक मांहे निवास करवानो त्याग कर्योछे ॥ १५॥ वली गोशालक कहेछे के, (मेहाविणोसिक्खियबुद्धिमंता के०) मेधावी जे पंमितछे ते ग्रहण करवा, धारण करवानें सामर्थ्यवान् तथा आचार्यादिकनी पासेंथी शिखेला एवा उत्पातादिक चार प्रकारनी

एटले निंदे नहीं. माटें रागद्वेषरहित पणे यथातथ्य वस्तुनुं स्वरूप केहेतां थकां कांइ निंदा नथी. जो कदापि यथातथ्य वस्तुनुं स्वरूप केहेतां थकां निंदा होय तो, अग्नि उलळे, अनें उदक शीतळळे, विष खाधा थकी मरण नीपजे,इत्यादिक खरुं बोलवुं ते पण युक्त नथी ! परंतु ए रीतें सत्य कहेवामां कांइ दोष नथी ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—न किंचन श्रमणं ब्राह्मणं वा स्वरूपेणाभिधारयामोगर्हणबुध्द्याउद्घट्टयामः । केवलं स्वदृष्टिमार्गं तदंगीकृतं दर्शनं प्राडुष्कुर्मः । तद्यथा । "ब्रह्मा लूनशिराहरिर्दृशि सरुग्व्यालुप्तशिश्नोहरः, सूर्योऽप्युल्लिखितोऽनलोप्यखिलभुक्सोमः कलंकांकितः ॥ स्वर्नाथोपि विसंस्थुलः खलु वपुःसंस्थैरुपस्थैः कृतः, सन्मार्गस्खलनाद्भवंति विपदः प्रायः प्रभूणामपि" । एतच्च तैरेव स्वागमे पठ्यते वयंतु श्रोतारः केवलमिति । मग्गेइमेत्ति । अयं मार्गः सम्यग्दर्शनादिकः कीर्त्तितआर्यैः सर्वज्ञैः। किंभूतोमार्गोऽनुत्तरः प्रधानः । आर्यैः किंभूतैः सत्पुरुषैः । मार्गः किंभूतोंजू प्रकटं ऋजुर्वा ॥१३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च ये त्रसा येच स्थावराश्च प्राणिनस्तेषु भूताभिशंकया प्राणिविनाशशंकया सावद्यक्रियां जुगुप्समानोगर्हन् नैवान्यं लोकं कंचन गर्हते निंदति (बुसिमं) संयमवान् । तदेवं रागद्वेषमुक्तस्य वस्तुस्वरूपकथने न काचिन्निंदा यथा उष्णोऽग्निः शीतलं जलं विषं मारणात्मकं भयंकरः सर्प्पः व्यथकः कंटकइत्यादि ॥ १४ ॥

॥टीका—एतदेव स्पष्टतरमाह । (नकिंचिरूवेणेत्यादि) न कंचन श्रमणं ब्राह्मणं वा स्वरूपेण जुगुप्सितांगावयवोद्घट्टनेन जात्या तल्लिंगग्रहणोद्घट्टनेन वाऽभिधारयामोगर्हणाबुध्द्योद्घट्टयामः केवलं स्वदृष्टिमार्गं तदभ्युपगतं दर्शनं प्राडुष्कुर्मः प्रकाशयामः । तद्यथा । "ब्रह्मा लूनशिराहरिर्दृशिसरुग्व्यालुप्तशिश्नोहरः, सूर्योऽप्युल्लिखितोऽनलोप्यखिलभुक्सोमः कलंकांकितः ॥ स्वर्नाथोपि विसंस्थुलः खलु वपुःसंस्थैरुपस्थैः कृतः, सन्मार्गस्खलनाद्भवंति विपदः प्रायः प्रभूणामपी"त्यादि । एतच्च तैरेव स्वागमे पठ्यते । वयंतु श्रोतारः केवलमिति । आर्द्रककुमारएव परपक्षं दूषयित्वा स्वपक्षसाधनार्थं श्लोकपश्चार्द्धेनाह । अयं मार्गः पंथाः सम्यग्दर्शनादिकः किर्त्तितोव्यावर्णितः । कैरार्यैः सर्वज्ञैरस्त्याज्यधर्मेदूरवर्तिभिः । किंभूतोधर्मोनास्माडुत्तरः प्रधानोविद्यतइत्यनुत्तरः पूर्वापराव्याहतत्वाद्यथावस्थितजीवादिपदार्थस्वरूपनिरूपणाच्च । किंभूतैरार्यैः संतश्च ते पुरुषाश्च सत्पुरुषास्तैश्चतुस्त्रिंशदतिशयोपेतैराविर्भूतः समस्तपदार्थाविर्भावकदिव्यज्ञानैः । किंभूतोमार्गोंऽजूव्यक्तः निर्दोषत्वात्प्रकटः ऋजुर्वा वक्रैकांतपरित्यागादकुटिलइति ॥१३॥ पुनरपि स्वसद्धर्मस्वरूपनिरूपणायाह । (उड्ढंअहेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यग्वेवं सर्वास्वपि दिक्षु प्रकारापे

णोइत्यादि) मेधा विद्यते येषां ते मेधाविनोग्रहणधारणसमर्थास्तथाऽऽचार्यादेः समीपे शिक्षां ग्राहिताः शिक्षितास्तथोत्पत्तिक्यादिचतुर्विधबुद्ध्युपेताबुद्धिमंतस्तथासूत्रेपि सूत्रविषये विनिश्चयज्ञायथावस्थितसूत्रार्थवेदिनइत्यर्थः । ते चैवंभूताः सूत्रार्थविषयं मा प्रश्नमकार्षुरन्येऽनगाराएके केचनेत्येवमसौ शंकमानास्तेषां बिभ्यन्न तत्र तन्मध्ये उपैत्युपगच्छतीति ततश्च न ऋजुमार्गइति नययुक्तत्वात्तस्य तथा म्लेच्छविषयं गत्वा न कदाचिद्धर्मदेशनां च करोत्यार्यदेशेपि न सर्वत्रापितु कुत्रचिदेवेत्यतोविषमदृष्टित्वाद्रागद्वेषवर्त्यसाविति ॥ १६ ॥

णो कामकिच्चा णय बालकिच्चा, रायाभिओगेण कुओ नएणं ॥ वियागरेज्जा पसिणं नवावि, सकाम किच्चं णिहआरियाणं ॥ १७ ॥ गंता च तत्थ अदुवा अगंता, वियागरेज्जा समिया सुपन्ने ॥ अणारिया दंसणाओ परित्ता, इति संकमाणा ण उवेति तत्थ ॥ १८ ॥

अर्थ—एम गोशालकें कहे थके, हवे आर्द्रकुमार गोशालक प्रत्यें कहेछे. के,(णोकामकिच्चा के०) अहो गोशालक! ते भगवंत कामकृत्य नथी. एनो अर्थ कहेछे. के, जे अविमाश्यानो करनार होय ते पोतानें तथा परनें, निरर्थक कार्य करे. परंतु श्री भगवंत तो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, परना हितना करनार, ते पोतानें तथा परनें निरुपकारी केम थाय? ते कारण माटें स्वामी निरर्थक कामना करनार नथी, (णयबालकिच्चा के०) तथा स्वामी बालकृत्य नथी, एटले बालकनी पेरें अणविचार्युं कार्य न करे, (रायाभिओगेण के०) तथा राजाभियोगें करी धर्मदेशनादिकनें विषे प्रवर्त्ते नहीं, (कुओभएणंवियागरेज्जा के०) तथा कोइना भयथकी प्रश्न वागरे एटले कहे नहीं, (पसिणंनवावि के०) उपकार न होय तो कहे नहीं, एटले प्रश्न वागरे नहीं. किं बहुना उपकार विना कोइनें कांइ न कहे. अनुत्तरविमानवासी देवतानें पण, मन थकीज पूछेला प्रश्ननो निर्णय करे.हवे जे ए श्री वीतरागनो धार्मिक थाय ते केवां कार्यो करे? एवी आशंका लावी तेनो प्रत्युत्तर चोथे पदें कहेछे (सकामकिच्चंणिहआरियाणं के०) पोताना कामनें अर्थे एतावता तीर्थंकरनामकर्म खपाववा भणी आर्य क्षेत्रमां आर्य लोकनें प्रतिबोधवा वास्ते धर्म देशना करे, परंतु बीजुं कोइ आत्मप्रशंसादिक कार्य न करे. ॥ १७ ॥ वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (गंताचतत्थ अदुवाअगंता के०) ते भगवंत परहितनें अर्थे त्यां जइनें, अथवा त्यां न जइनें, किंतु जेम जेम भव्य जीवोनो उपकार थाय, तेम तेम (वियागरेज्जा के०) धर्मदेशना आपे. जो उपकार थशे, एम जाणे तो त्यां जइनें पण धर्म देशना आपे अथवा ते उ

बुद्धियें करी सहित, (सुत्तेहिंअत्थेहिंयणिच्चयन्ना के०) वली सूत्र अनें अर्थना निश्चयना करनार, (अणगारअन्ने के०) एवा कोइ एक अन्य अणगार होय ते (पुच्छिंसुमाणे के०) मुजनें कांइ सूत्रार्थ पूछे तेनो उत्तर महाराथकी अपाशे नहीं, तेथी महारुं मान नंग थशे, (इतिसंकमाणोणउवेतितत्थ के०) एवी वातोथी शंका पामतो थको ताहारो गुरु तेवा पूर्वोक्त स्थानकोनें विषे वास करतो नथी, ते कारण माटें तमारो मार्ग रुजु नथी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—एवं गोशालकमतानुसारी त्रैराशिकोनिराकृतोपि पुनराह। योनवतस्तीर्थकरः सरागद्वेषनययुक्तः। तथाहि। आगंतुकानां कार्पटिकादीनां अगारं आगंतागारं आरामेऽगारं आरामागारं तत्रासौ श्रमणोनीतः सर्व न वासमुपैति। किं तत्र नयमित्याह। दक्षाः पंमिताहुर्यस्माद्बहवः संति मनुष्याः। तन्नीतोसौ तत्र न याति। ऊनाः स्वतोहीनाअतिरिक्तावा जात्यादिना संति केचित् तैः पराजितस्य महान् कलाभ्रंशः स्यात्। ते नराः किंनूताः लपावाचालाघोषिततर्कदंमकाः तथाऽलपामौनव्रतिकागुटिकादिविद्यायुक्ताः यद्वशाद्वागेव न निस्सरति मुखात् यन्नयात्तेषु गृहेष्वसौ न यातीति ॥ १५ ॥ मेधाविनोग्रहणधारणसमर्थाबुद्धिमंतः शिक्षिताः सूत्रेर्थेच निश्चयज्ञास्ते ईद्दशाः सूत्रार्थविषयं प्रश्नमाकार्षुरनगाराएके इत्यसौ शंकमानोबिन्यन्न तत्र तेषां मध्ये उपैति याति तथानार्यदेशे न धर्मं कथितवान् आर्येतु देशनां करोति तत्रापि न सर्वत्र किंतु? कुत्रचिदेवेति ततोसौ रागद्वेषाकुलोवीरः ॥ १६ ॥

॥ टीका—सएवं गोशालकमतानुसारी त्रैराशिकोनिराकृतोपि पुनरन्येन प्रकारेणाह। (आगंतागारेइत्यादि) सविप्रतिपन्नः सन्नार्ईकमेवाह। योसौ नवत्संबधी तीर्थकरः सरागद्वेषनययुक्तस्तथाह्यसावागंतुकानां कार्पटिकादीनामगारमागंतागारं तथाऽरामेऽगारमारामागारं तंत्रासौ श्रमणोनवत्तीर्थकरः। तुशब्दएवकारार्थे। नीतएवासौ तपध्वंसननयात्तत्रागंतागारादौ न वासमुपैति न तत्रासनस्थानशयनादिकाः क्रियाः कुरुते। किं तत्र नयकारणमितिचेत्तदाह। दक्षाः निपुणाः प्रनूतशास्त्रविशारदाः। डुशब्दोयस्मादर्थे। यस्माद्बहवः संति मनुष्यास्तस्मादसौ तन्नीतोन वासं तत्र समुपैति न तत्र समातिष्ठते। किंनूताः न्यूनाः स्वतोऽवमाहीनाजात्याद्यतिरिक्तावा ताभ्यां पराजितस्य महांश्छायाभ्रंशइति। तानेव विशिनष्टि। लपंतीति लपावाचालाः घोषितानेकतर्कविचित्रदंमकास्तथा न लपामौनव्रतिकानिष्ठितयोगाः गुटिकादियुक्तावा यद्वशादनिधेयविषयावागेव न प्रवर्तते ततस्तन्नयेनासौ युष्मत्तीर्थकृदागंतागारादौ नैव व्रजतीति ॥१५॥ पुनरपि गोशालकएवाह। (मेहावि

मन्यते न परलोकसुखमिति लाभादर्शनात्तत्र न याति नगवान्नतु द्वेषबुद्ध्या । यदप्युक्तं । पंमितनरगुटिकादिविद्यासिद्धनयान्न तेषां स्थाने यातीत्येतत्प्रलापप्रायं । यतः । स वैरपि तीर्थिकैः सर्वज्ञस्य नगवतोमुखमप्यवलोकयितुं न शक्यते वादस्तु दूरापास्तएवेति॥ १८॥

॥ टीका–एतज्जोशालकमतं परिहर्तुकामआर्द्रकआह । (णोकामकिच्चाइत्यादि) सहि नगवान्प्रेक्षापूर्वकारितया नाकामकृत्योनवति कमनं कामइच्छा न कामोऽकामस्तेन कृत्यं कर्तव्यं यस्यासावकामकृत्यः सएवंनूतोन नवत्यनिछाकारी न नवतीत्यर्थः । योह्युत्प्रेक्षा पूर्वकारितया वर्तते सोऽनिष्टमपि स्वपरात्मनोनिरर्थकमपि कृत्यं कुर्वीत नगवांस्तु सर्वज्ञः सर्वदर्शी परहितैकरतः कथं स्वपरात्मनोर्निरुपकारकमेवं कुर्यात्तथाच बालस्येव कृत्यं यस्य सबालकृत्योन चासौ बालवदनालोचितकारी न परानुरोधान्नापि गौरवाद्धर्मदेशादिकं विधत्तेऽपितु यदि कस्यचिद्भव्यसत्वस्योपकाराय तद्भाषितं नवति ततः प्रवृत्तिर्नवति नान्यथा तथा न राजानियोगेनासौ धर्मदेशनादौ कथंचित्प्रवर्तते ततः कुतस्तस्य नयेन प्रवृत्तिः स्यादित्येवं व्यवस्थिते केनचित्क्वचित्संशयकृतं प्रश्नं व्यागृणीया यदि तस्योपकारोनवत्युपकारमंतरेण नच नैव व्यागृणीयाद्यदिवाऽनुत्तरसुराणां मनःपर्यायज्ञानिनांच द्रव्यमनसैव तन्निर्णयसंनवादतोन व्यागृणीयादित्युच्यते । यद्युच्यते नवता यदि वीतरागोऽसौ किमिति धर्मकथां करोतीति चेदित्याशंक्याह । स्वकामकृत्येन स्वेछाचारिकारितयाऽसावपि तीर्थकृन्नामकर्मणः क्षपणाय न यथाकथंचिदतोऽसावग्लानइहास्मिन्संसारे आर्यक्षेत्रे चोपकारयोग्यआर्याणां हि सर्वहेयधर्मदूरवर्तिनां तदुपकारा धर्मदेशनां व्यागृणीयादसाविति ॥ १७ ॥ किंचान्यत् । (गंतेत्यादि) सहि नगवान् परहितैकरतोगत्वापि विनेयासन्नमथवाप्यगत्वा यथानव्यसत्वोपकारोनवति तथातथा नगवंतोर्हतोधर्मदेशनां विदधत्युपकारे सति गत्वापि कथयंत्यसतितु स्थिताअपि न कथयंतीत्यतोन तेषां रागद्वेषसंनवइति केवलमाशुप्रज्ञः सर्वज्ञः समतया समदृष्टितया चक्रवर्तिद्रमकादिषु पृष्टोवा धर्मं व्यागृणीयात् । जहा पुणस्स कच्छइ तहा तुछस्स कच्छइ इति वचनादित्यतोन रागद्वेषसद्भावस्तस्येति। यत्पुनरनार्यदेशमसौ न व्रजति तत्रेदमाह । अनार्याः क्षेत्रनाषाकर्मनिर्बहिष्कृतादर्शनतोपि परिसमंतादितागताः प्रभ्रष्टाइति यावत्। तदेवमसौ नगवानित्येतत्तेषु सम्यग्दर्शनमात्रमपि कथंचिन्न नवतीत्याशंकमानस्तत्र न व्रजतीति । यदिवा विपरीतदर्शनिनोन नवंत्यनार्याः शकयवनादयस्तेहि वर्तमानसुखमेवैकमंगीकृत्य प्रवर्तंते न पारलौकिकमंगीकुर्वंत्यतः सद्धर्मपराङ्मुखेषु तेषु नगवान्न याति न पुनस्तद्वेषादिबुद्ध्येति । यदप्युच्यते त्वया यथानेकशास्त्रविशारदगुटिकासिद्धविद्यासिद्धादितीर्थिकपरानवनयेन न तत्समाजे गछतीत्येतदपि बालप्रलपितप्रायं । यतः सर्वज्ञस्य नगव

पकार न देखे तो पासें आवेलानें पण धर्म न कहे ए कारणमाटें तेनें रागद्वेषनी सं भावना नथी, तथा (आसुपन्न के०) सर्वज्ञ (समिया के०) समदृष्टि पणें एटले कोइ चक्रवर्त्ति आवी पूछे अथवा कोइ रांक आवी पूछे, अथवा अणपूछे थके पण, धर्म क हे. तथा स्वामी जे अनार्य देशनें विषे जता नथी तेनुं कारण हुं तुनें कहुं बुं ते तुं सां नल. (अणारियादंसणाउपरित्ता के०) अनार्य लोक अनाचारी छता दर्शनथकी पण त्रष्टछे (इतिसंकमाणाणउवेतितब के०) ए माटें शंकामान थका त्यां जता नथी, ते जीव श्री वीतरागनें देखी अवहेलनादिक कर्मोपार्जनकरी पोतानें अनंत संसार नीवृद्धि करशें, एवुं जाणीनें स्वामी त्यां पधारता नथी, परंतु तेमनी सार्थे परमेश्वर ने द्वेषनाव कांइ पण नथी तेमाटें राग, द्वेष, अनें नय, तेमनें कांइ नथी. तथा अहो गोशालक! जे तुं एम कहेछे के, अनेक शास्त्रज्ञ पुरुषना प्रश्नथकी बीहितो थको तेनी सनामांहे रहेतो नथी. ए पण ताहारुं वचन बाल प्रलाप प्राय जाणीयें बैयें, केमके, जे कारण माटें ए महारा गुरु सर्वज्ञ नगवंत केवलीछे तो तेनुं समस्त परवादिउ मुख, पण जोई न शके, तो पछी वादनुं केवुंज शुं ? माटें महारा स्वामीनें परवादीनो पराभ व कांइ नथी ए नगवंत केवलज्ञानें करी पोतानो परनो उपकार देखे त्यां जइनें धर्मो पदेश करे. इत्यर्थः ॥ १७ ॥

दीपिका–इति गोशालकेनोक्ते आर्द्रककुमारआह । सनगवानकामकृत्योन स्यात् अ निछाकारी न नवतीत्यर्थः । यः प्रेक्षापूर्वकारी न स्यात्सोनिष्टमपि स्वपरयोर्निरर्थकमपि कृत्यं कुर्वीत । नगवांस्तु सर्वज्ञः प्रेक्षापूर्वकारी कथं स्वपरयोर्निरुपकारकमेव कुर्यात् बाल स्येव कृत्यं यस्य सबालकृत्योनासौ बालवदनालोचितकारी न राजाभियोगेनासौ देशनां करोति ततः कुतस्तस्य नयेन प्रवृत्तिः स्यादेवं सति केनचित्कृतं प्रश्नं व्यागृणीया द्देयदि त स्योपकारः स्याडुपकारं विना नवा नैव वदेत् । अथवानुत्तरसुराणां मनःपर्यायज्ञानिनां च इव्यमनसैव तन्निर्णयादतोन वदेत् स्वकामकृत्येन स्वेछाकारितया तीर्थकृन्नामकर्मणः क्षपणाय न यथाकथंचिदतोसौ इहार्यक्षेत्रे आर्याणामुपकारसंनवे धर्मं वदेत् ॥ १७॥ गंता चत्ति) सनगवान् गत्वापि शिष्यसमीपं अथवा तत्राऽगत्वा यथा सत्वोपकारः स्यात्तथा व्यागृणीयात् देशनां कुर्यात् उपकारे सति गत्वापि कथयति असतितु स्थितोपि न वदति ततोन तेषां रागद्वेषसंनवः केवलमाशुप्रज्ञः सर्वज्ञः समतया वदेत् । "जहा पुसस्स क बइ तहा तुछस्स कबइ" इतिवचनाच्चक्रवर्तिद्रमकादिषु पृष्टोपृष्टोवा तुल्यं व्यागृणीयादि त्यर्थः । कथमनार्येषु सन यातीत्याह । (अणारियात्ति) अनार्यादर्शनतः सम्यक्त्वात्परीतान्त्रष्टाइति । शंकमानोविचारयन् नगवान्न तत्रोपैति । तेहि वर्त्तमानसुखमेव

हुं एम कहुं छुं,ए कारणें सर्व प्रकारथकी वाणियानी ते स्वामीनें उपमा न संनवे,परंतु देशथकी ज्यां ज्यां स्वामी लान्न देखे, त्यां त्यां विचरे. ए उपमा सत्यछे. इत्यर्थः ॥२०॥

॥ दीपिका—अथ गोशालः प्राह । यथा वणिक् उदयार्थी लान्नार्थी पण्यक्रयाणकं देशांतरे गत्वा विक्रीणाति आयस्य लान्नस्य हेतोर्महाजनसंगं प्रकरोति तडपमया श्रमणोज्ञातपुत्रइत्येवं मे मम मतिः स्यात् वितर्कोविचारणा च ॥ १ए ॥ आर्द्रकमुनिराह । नगवान् सावद्यानुष्ठानरहितोनवं कर्म न कुर्यात् पुरातनं च विधूनाति अपनयति त्यक्त्वा अमतिं विमतिं त्रायी सन्नगवान् परेन्योप्येवमाह । यथा विमतित्यागेन मोक्षगामी स्यादिति । एतावता ग्रंथेन ब्रह्मणोमोक्षस्य व्रतमित्युक्तं तस्य मोक्षानुष्ठानस्य उदयार्थी लान्नार्थी श्रमणोन्नगवान् । ततोवणिग्दृष्टांतः सर्वसाधर्म्येण न प्रवर्त्तते नगवतः सावद्यानुष्ठानरहितत्वात् देशसाधर्म्यंतु युक्तमेव यथा वणिग्यत्र लान्नं पश्यति तत्र क्रियां व्यापारयति तथा नगवानपीति एतदहं ब्रवीमीत्यार्द्रकमुनिराह ॥ २० ॥

॥टीका—पुनरन्येन प्रकारेण गोशालकआह ॥ (पन्नंजहेत्यादि) यथा वणिक् कश्चिडदयार्थी पण्यं व्यवहारयोग्यं नाएकं कर्पूरागरुकस्तूरिकांवरादिकं देशांतरं गत्वा विक्रीणाति तथा आयस्य लान्नस्य हेतोः कारणान्महाजनसंगं विधत्ते तडपमोयमपि नवत्तीर्थकरः श्रमणोज्ञातपुत्रइत्येवं मे मम मतिर्नवति वितर्कोमीमांसावेति ॥ १ए ॥ एवमुक्तोगोशालकेनार्द्रकआह ।(नवंनकुज्जाइत्यादि) योयं नवता दृष्टांतः प्रदर्शितः सकिं सर्वसाधर्म्येणोत देशतः? । यदि देशतस्ततोन नः क्षतिमावहति । यतोवणिग्वत् यत्रैवोपचयं पश्यति तत्रैव क्रियां व्यापारयति न यथाकथंचिदित्येतावता साधर्म्यमस्त्येव । अथ सर्वसाधर्म्येणेति तन्न युज्यते । यतोन्नगवान् विदितवेद्यतया सावद्यानुष्ठानरहितोनवं प्रत्ययं कर्म न कुर्यात् तथा विधूनयत्यपनयति पुरातनं यन्नवोपग्राहि कर्मैवंदृतथा त्यक्त्वा अमतिं विमतिं त्रायी नगवान् सर्वस्य परित्राणशीलोविमतिपरित्यागेन चैवंनूतएव नवतीति नावः । त्रायी वा मोक्षं प्रति। अयवयमयपयचयतयणयगतावित्यस्य रूपं । सएव नगवांनेवाह । यथा विमतिपरित्यागेन चैवंनूतएव नवतीत्येतावता च संदर्नेण ब्रह्मणोमोक्षस्य व्रतं ब्रह्मव्रतमित्येतडक्तं । तस्मिन्न् चोक्ते तदर्थं वाऽनुष्ठाने क्रियमाणे तस्योदयार्थी श्रमणइति ब्रवीम्यहमिति ॥ २० ॥

समारन्नंते वणिया नूयगामं,परिग्गहं चेव ममायमाणा॥ ते णातिसंजोगमविप्पहाय, आयस्स हेउं पगरंति संगं ॥२१ ॥ वित्ते

तः समस्तैरपि प्रावाडुकैर्मुखमप्यवलोकयितुं न शक्यते वादस्तु दूरोत्सादितएवेत्यतः कुतस्तस्य पराभवः । भगवांस्तु केवलालोकेन यत्रैव स्वपरोपकारं पश्यति तत्रैव गत्वा पि धर्मदेशनां विधत्तइति ॥ १७ ॥

पन्नं जहा वणिए उदयघी, आयस्स हेउं पगरेति संगं ॥ तऊवमे
समणे नायपुत्ते, इच्चेव मे होति मती वियक्को ॥१९॥ नवं न कुज्जा
विहुणे पुराणं, विच्चा मइं ताइयमाह एवं ॥ पंन्नावया बंभवतित्ति
वुत्ता तस्सोदयघी समणे त्तिवेमि ॥ ७० ॥

अर्थ–वली बीजा प्रकारें गोशालक कहेछे के,अहो आर्द्रकुमार! (पन्नंजहावणिए उदयही के०) जेम कोइ वाणियो उदयार्थी एटले लाभार्थी छतो व्यवहार योग्यकरियाणुं एटले कर्पूर, अगर, कस्तूरी, अनें वस्त्रादिक, ते देशांतरथकी लेइ आवे (आयस्सहेउंपगरेतिसंगं के०) पोताना लाभनें अर्थें महाजननो संग करे, (तऊवमेसमणेनायपुत्ते के०) तेम तमारो तीर्थंकर श्रमण, ज्ञातपुत्र पण ते वाणियासमान जाणवो. केमके, कोइ एक लाभनें अर्थें अनेक महाजनना वृंद मांहे बेसेछे, (इच्चवमेहोतिमतीवियक्को के०) माटें ए प्रकारें महारी मतिछे, अनें एवो माहारो वितर्कछे, एटले विचारणा छे, इत्यर्थः ॥१९॥ हवे गोशालक प्रत्यें आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो गोशालक! जे, तें ए वाणियानो दृष्टांत देखाड्यो, ते सर्वथकी सरखो, किंवा देशथकी सरखो ? माटें जो ते दृष्टांत देशथकी सरखोछे, ए रीतें तें जो वाणियानो दृष्टांत देखाड्यो होय तो, ए वातें अमनें अलाभ कांइ नथी. कारण के, वाणियो ज्यां ज्यां लाभ देखे, त्यां त्यां क्रय विक्रयादिक व्यापार करे. ए प्रकारें ए तहारो दृष्टांत देश पणाथी सरखोछे. अथवा जो सर्वथकी सरखोछे ? एम तुं कहीश तो, ए वात, घटेज नहीं,कारणके,भगवंत श्री महावीर देव,सावद्यानुष्ठान रहित,(नवंनकुज्जाविहुणेपुराणं के०) तथा ते नवुं कर्म कोइ पण करे नहीं,अनें पुरातन कर्मनें खपावे एवाछे.तथा (विच्चामइं के०) विच्चा एटले विशेषें त्याग करीछे अमइ एटले दुर्मतिनें जेणे, (ताइयमाहएवं के०) त्रायी एटले छ जीवनिकायनो रक्ष पाल, एवं एटले एवा जे श्री महावीर स्वामी ते (पन्नावयाबंभवतित्तिवुत्ता के०) एम कहे के, जेम दुर्गतिनें परित्यागी जीव मुक्तिगामी थाय, एवुं बोलें, स्वामीनुं वचन ते ब्रह्मव्रत छे एटले ब्रह्म शब्दें मोक्ष व्रत कह्युं. एवुं ब्रह्मव्रत रूप जे स्वामिनुं वचन तेनें मान्य करी, अनेक लोक मुक्तियें जाय. एटले दुर्मतिनें परित्यागें जीव मुक्तिगामी थाय. (तस्सोदयठीसमणेत्तिबेमि के०) तेना लाभना अर्थी श्रमण श्री महावीरदेवज जाणवा,

संगं संबंधं कुर्वंति । भगवांस्तु षड्जीवरक्षापरोपरिग्रहस्त्यक्तस्वजनपक्षः सर्वत्राप्रतिबद्धो धर्मार्थिमन्वेषयन् गत्वापि धर्मदेशनां विधत्ते अतोभगवतोवणिग्भिः सार्द्धं न सर्वसाधर्म्य मस्तीति ॥ २१ ॥ पुनरपि वणिजां दोषमुद्भावयन्नाह । (वित्तेसिणोइत्यादि) वित्तं द्रव्यं तदन्वेष्टुं शीलं येषां ते वित्तैषिणस्तथा मैथुने स्त्रीसंपर्के संप्रगाढाअध्यूपपन्नास्तथा ते भो जनार्थमाहारार्थं वणिजइतश्चेतश्च व्रजंति वदंति वा तांस्तु वणिजोवयमेवं ब्रूमोयथैते का मेष्वध्युपपन्नागृध्धाअनार्यकर्मकारित्वादनार्यारसेषुच सातागौरवादिषु गृध्धामूर्छितानन्वे वंभूतान्भगवंतोर्हतः कथं तेषां तैः सह साधर्म्यमिति? । दूरतएव निरस्तैषा कथेति ॥ २२ ॥

आरंभगं चेव परिग्गहं च, अविउस्सिया णिस्सिय आयदंभा ॥
तेसिं च से उदए जं वयासी, चउरंतणंताय दुहायणेह ॥२३॥ णेगं
त णच्चंतिय उदएवं, वयंति ते दोवि गुणोदयंमि ॥ से उदए साति
मणंतपत्ते, तमुदयं साहयइ ताइ णाइ ॥ २४ ॥

अर्थ—वली आर्द्रकुमारज कहेछे. (आरंभगंचेवपरिग्गहंच के०) आरंभ जे सावद्या नुष्ठान रूप, तथा परिग्रह ते धनधन्यादिक, नव प्रकारें तेनी ममत्वनें (अविउस्सियाणि स्सिय के०) न छांमीनें, तेहिज आरंभ परिग्रहनें विषे निश्चें थकी बंधाणा एवा वाणिया होय. वली केवा होय? तोके, (आयदंमा के०) पोताना आत्मानें दंमनार, (तेसिंच सेउदएजंवयासी के०) वली हे गोशालक! तुं कहेछे के, ते वाणिया लाभना अर्थीछे. मार्टे ते लाभ तो एवो वाणियानो जाणवो के, (चउरंतणंतायदुहायणेह के०) ते वाणि यानें जे लाभछे ते लाभ चतुर्गतिक संसारनें,तथा तेना दुःखनें अर्थे थाय, अनें ते वा णियानो लाभ एकांतिक एटले एकांत पण न होय ॥२३॥ वली तेहिज देखाडेछे. (णे गंतणच्चंतियउदएवं के०) वली अहो गोशालक! ते वाणियानो लाभ पण एकांतिक नथी, कोई वारें लाभ वांछतां अलाभ पण थायः तथा आत्यंतिक एटले सर्वकालभावी लाभ पण नथी, कोइ वारें होय, अनें कोइ वारें न पण होय. (वयंतितेदोविगुणोदयं मि के०) ते व्यापारना जाण एम कहेछे के, नफो पण थाय, अथवा टोटो पण थाय, ए बे भाव होय,मार्टे ते बे भाव विगतगुणोदय जाणवा. तो ते लाभथकी शुं, जे एकां तिक अनें आत्यंतिक नहीं, अनें वली ते लाभ अनर्थ भणी प्रवर्त्ते? (सेउदएसातिमणंत पत्ते के०) अनें ते जे श्री भगवंतनो केवलज्ञान प्राप्ति लक्षण, तथा निर्ज्जरानुं कारण, एवो जे लाभ, ते सादि अनंत जाणवो. (तमुदयंसाहयइताइणाइ के०) एवा लाभ सहित पोतें भगवंत छे, अनें बीजानें पण एवो लाभ आपेछे. ते भगवंत कहेवाछे! तो

सिणो मेहुणसंपगाढा, ते भोयणघा वणिया वयंति ॥ वयंतु कामेसु अज्झोववन्ना, अणारिया पेमरसेसु गिद्धे ॥ २२ ॥

अर्थ–वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (समारभंतेवणियाभूयगामं के०) ते वाणियो चतुर्दश प्रकार पणे, भूतग्राम एटले जीवनो समूह समारंभे, एतावता छकायनी हणनार एवी क्रियानें विषे प्रवर्त्ते, एटले क्रयविक्रयनें अर्थें शकट, उंट, घोडा, तथा बलदनें पीडा उपजावे, (परिग्गहंचेवममायमाणा के०) तथा परिग्रह, चतुष्पदादिक तेनें विषे ममत्व करे. वली (तेणातिसंजोगमविप्पहायआयस्सहेउंपगरंतिसंगं के०) ते वाणिया ज्ञाति स्वजनादिकनो संयोग छांमयाविना, लाभनें कारणे अन्य बीजा साथें संबंध करे, अनें श्री वीतराग तो केवा छे ? तो के, छजीवनिकायना रक्षपाल, निःपरिग्रही, ज्ञातिस्वजननो संग त्यागीनें, सर्वत्र अप्रतिबंध निःकेवल धर्मनोज लाभ गवेषता धर्म देशना आपेछे. ए कारणमाटें भगवंत अनें वाणियानें सर्वथकी सरखा पणुं नथी ॥२१॥ वली आर्द्रकुमारज कहेछे के, हे गोशालक ! (वित्तेसिणो के०) वली वाणिया वित्त एटले धनना गवेषण हार होय, तथा (मेहुणसंपगाढा के०) मैथुननें विषे आसक्त होय, (तेभोयणघावणियावयंति के०) तथा भोजननें अर्थें ज्यां त्यां परिभ्रमण करे,माटें अमें ते वाणियानें एवा कहियें छैयें. (वयंतुकामेसुअज्झोववना के०) वली जो. ते वाणीया कामभोगनें विषे गृद्ध, तथा (अणारियापेमरसेसुगिद्धे के०) अनार्य कर्मना करनार, तथा प्रेमरसनें विषे गृद्ध एटले मूर्छित छे, अनें भगवंत श्री अरिहंत देव एवा नथी. तो ते वाणियानी साथें सरखा पणुं भगवंतनें केम कहियें ? ॥ २२॥

॥ दीपिका–वणिजोभूतग्रामं समारभंते हिंसंति परिग्रहं स्वीकुर्वंति ममायमाणाममेदमिति व्यवस्थापयंतः ते वणिजोज्ञातिसंयोगमविप्रहायात्यक्त्वा यस्य लाभस्य हेतोरपरेण सह संगं संबंधं कुर्वंति ॥ २१ ॥ वणिजोवित्तैपिणोधनार्थिनः मैथुने संप्रगाढाः प्रसक्ताः तथा ते भोजनार्थमहारार्थमितश्चेतश्च व्रजंति । वयंतु एवं ब्रूमोयथा ते वणिजः कामेष्वध्युपपन्नागृद्धाअनार्याः प्रेमरसेषु गृध्राः अतोभगवतः सर्वसाधर्म्यं नास्ति ॥ २२॥

॥ टीका–नचैवंभूतावणिजइत्येतदार्द्रककुमारोदर्शयितुमाह । (समारभंतइत्यादि) ते हि वणिजश्चतुर्दशप्रकारमपि भूतग्रामं जंतुसमूहं समारभंते तडपमर्दिकाः क्रियाः प्रवर्त्तयंति क्रयविक्रयार्थं शकटयानवाहनोष्ट्रमंमलिकादिभिरनुष्ठानैरिति तथा परिग्रहं द्विपदचतुष्पदधनधान्यादिकं ममीकुर्वंति ममेदमित्येवं व्यवस्थापयंति ते हि वणिजोज्ञातिभिः स्वजनैः सह यः संयोगस्तमविप्रहायापरित्याज्य यस्य लाभस्य हेतोर्निमित्तादपरेण सार्द्धं

अहिंसयं सव्वपयाणुकंपी, धम्मे ठियं कम्मविवेगहेउं॥ तमाय
दंमेहिं समायरंता, अवोहीए ते पडिरूवमेयं ॥२५॥ पिन्नागपिंमी
मवि विद्धु सूले, केई पएज्जा पुरिसे इमेत्ति॥ अलाउयं वावि कुमा
रएत्ति, स लिप्पती पाणिवहेण अम्हं ॥ २६ ॥

अर्थ–हवे वली कहेछे के, देवोनां करेलां समवसरण, सोनानुं कमल, देवछंदो, सिंहासन, इत्यादिक पदार्थोनो परिभोग करतो थको ते,कर्मा थकी शी रीतें न लेपाय? एवुं गोशालकनुं वचन आशंकीनें,आर्द्रकुमार कहेछे के,(अहिंसयं के०) ए भगवंत श्री महावीर देव सर्वजीवनें अहिंसता एटले अणहणता थका,समवसरणादिकनो उपभोग करेछे,परं तु ते समवसरणादिक उपर, श्री वीतरागदेवनो लगारमात्र पण प्रतिबंध नथी, ए कारण माटें एमनें कर्म न लागे. वली स्वामी कहेवाछे? तो के,(सव्वपयाणुकंपी के०) सर्व प्रजा एटले सर्वजीव तेनी अनुकंपाना करनार,(धम्मेठियंकम्मविवेगहेउं के०) एवा श्री भगवंत धर्मनें विषे प्रवर्त्तता कर्म विवेकना कारण भूत,एवा तेउनें (तमायदंमेहिंसमायरंता के०) आत्मदंम एटले अनेक असमंजस वचनें करी तारा सरखा, आत्मदंमनें आचारता थका वणिक्नो दृष्टांत देछे, माटें (अबोहीएतेपडिरूवमेयं के०) ते अबोधी एटले अज्ञानी प्रतिरूप जाणवा, एयं एटले ए एक तेनुं अज्ञान पणुंज जाणवुं, केमके एक तो पोतें अज्ञान पणे प्रवर्त्ते,ए पेहेलुं अज्ञान पणुं. वली त्रिजगत् पूज्य, सर्व अतिशयना निधान, एवा अरिहंतनें वैश्यादिकनी उपमा आपे, ते बीजुं अज्ञान पणुं.माटें ते जीव एम करता थका पोताना बोध बीजनो नाश करेछे. इत्यर्थः ॥ २५ ॥ हवे इत्यादिक पूर्वोक्त गोशालकनां वचनोनुं निराकरण करीनें आर्द्रकुमार मुनि आगल चाल्या, तेवारें वच्चें शाक्यपुत्रियदर्शी नी एटले बौद्ध मल्या. तेणें एम कह्युं के,हे आर्द्रकुमार! तें गोशालक प्रत्यें वाणियानो दृष्टांत दूषव्यो ते युक्तज कर्युं, कारण के, बाह्य अनुष्ठान, प्रायः शून्यछे, अंतरंग अनु ष्ठाननेंज मोक्षांग प्रधान जाणवुं, ए कारण माटें अमारा सिद्धांतमांहे ते अंतरंगानुष्ठाननुं साधवुं कह्युंछे. ते अमें कहियें छैयें माटें तुं सावधान थको सांभल.? (पिन्नागपिंमीमवि विद्धुसूले के०) पिन्नाग पिंमी एटले खलपिंमी ते अचेतनजछे अनें ते कोइ एक स्थानकें छे तेनीपर कोइ एक पुरुषें वस्त्र नाख्युं, पछी ते खलपिंमनें शूलीयें प्रोइनें, (केइपएज्जा पुरिसेइमेत्ति के०) कोइ एक म्लेछें पुरुषनी बुद्धियें लइनें अग्नि उपर पचाव्यो, तथा वली (अलाउयंवाविकुमारएत्ति के०)तुंबडुं देखीनें ए कुमारछे एवी बुद्धियें एक पुरुषें तेनें अग्नि उपर पचाव्यो,(सलिप्पतीपाणिवहेणअम्हं के०) तो हवे ए बेहुजण, पुरुष अने कु मारहत्यानें पापें लेपाय. अमारा सिद्धांतमांहे ए भावछे. शुभाशुभ बंधनुं मूल, मन परि

के, त्रायी एटले आसन्न भव्यनें दुःखथकी राखनार छे, तथा ज्ञानी एटले जाणेली व स्तु छे विद्यमान जेनें एवा भगवंतनें वाणियानी उपमा केम देवाय ? ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–आरंभपरिग्रहं वाऽव्युत्सृज्याऽत्यक्ता तत्रैव निःसृताबद्धाआत्मैव दंभोहिं सकोयेषां ते तथा तेषां च वणिजामुदयोलाभोयदर्थं ते प्रवृत्ताः यं च त्वं लाभं वदसि स तेषां चतुरंतश्चतुर्गतिकोयः संसारोऽनंतस्तस्मै तदर्थं भवति तथा दुःखाय भवति नच स लाभोऽपि तस्यैकांतिकः ॥ २३ ॥ एतदेवाह । एकांतिकः आत्यंतिकश्च तेषां वणिजामुद योलाभोन विद्यते । लाभार्थं प्रवृत्तस्य हानेरपि दर्शनात् । एवं वदंति तद्विदः तौ च द्वावपि भावौ विगतगुणोदयौ ।कोर्थः।योनैकांतिकः१ अनात्यंतिकश्च २ किं तेन लाभे नेति यः सेतस्य भगवतउदयोलाभोधर्मदेशनादिः सच सादिरनंतश्च एवंभूतमुदयं प्राप्तो ऽन्येषामपि तादृशं साधयति कथयति । त्रायी ज्ञाती च ज्ञातं वस्तु विद्यते यस्य सज्ञा ती ज्ञातसर्वज्ञेयः एवंभूतेन भगवता तेषां पूर्वोक्तानां वणिजां कथं सर्वसाम्यमिति ॥२४॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (आरंभगंचेवइत्यादि) आरंभं सावद्यानुष्ठानं च तथा परिग्रहं वाऽ व्युत्सृज्यापरित्यज्य तस्मिन्नेवारंभे क्रयविक्रयपचनपाचनादिके तथा परिग्रहेच धनधान्यहिर ण्यसुवर्णद्विपदचतुष्पदादिके निश्चयेन श्रिताबद्धा निःश्रितावणिजोभवंति तथात्मैव दंभोदंभ यतीति दंभोयेषां ते भवंत्यात्मदंभाअसदाचारप्रवृत्तेरिति।भावोपि चैषां वणिजां परिग्रहारंभ वतां सउदयोलाभोयदर्थं ते प्रवृत्तायं च त्वं लाभं वदसि सतेषां चतुरंतश्चतुर्गतिकोयः संसा रोऽनंतस्तस्मै तदर्थं भवतीति न चेहासावेकांतेन तत्प्रवृत्तस्यापि भवतीति ॥२३॥ एतदेव दर्शयितुमाह । (णेगंतिणच्चंतिइत्यादि) एकांतेन भवतीत्येकांतिकस्तथा तल्लाभार्थं प्रवृ त्तस्य विपर्ययस्यापि दर्शनात्तथा नाप्यात्यंतिकः सर्वकालभावी तत्क्षयदर्शनात्सतेषां उदयोलाभोनैकांतिकोनात्यंतिकश्चेत्येवं तद्विदोवदंति । तौच द्वावपि भावौ विगतगुणो दयौ भवतः । एतदुक्तं भवति । किं तेनोदयेन लाभरूपेण योनैकांतिकोनात्यंतिकश्च प श्चादर्थायेति । यश्च भगवतः सेतस्य दिव्यज्ञानप्राप्तिलक्षणउदयोलाभोयोवा धर्मदेशनावाप्त निर्जरालक्षणः सच सादिरनंतश्च तमेवंभूतमुदयं प्राप्तोभगवानन्येषामपि तथाभूतमेवोदयं साधयति कथयति श्लाघते वा । किंभूतोभगवांस्त्रायी। अयवयमयपयचयतयणयगतावित्य स्य दंमकधातोर्णिनिप्रत्यये रूपं । मोक्षं प्रति गमनशीलइत्यर्थः । त्रायी वासन्नभव्यानां त्राण करणात्तथा ज्ञाती ज्ञाता क्षत्रियाज्ञातं वा वस्तुजातं विद्यते यस्य सज्ञाती विदितसमस्तवेद्य इत्यर्थः । तदेवंभूतेन भगवता तेषां वणिजां निर्विवेकिनां कथं सर्वसाधर्म्यमिति ॥ २४ ॥

खलस्तस्य पिंडिनिमित्तकं तदचेतनमपि सत् कस्मिंश्चित्संभ्रमे म्लेछादिविषये केनचिन्नश्यता प्रावरणं खलोपरि क्षिप्तं तच्च म्लेछेनान्वेष्टुं प्रवृत्तेन पुरुषोयमिति मत्वा खलपिंड्या सह गृहीतं ततोसौ म्लेछोवस्त्रवेष्टितां तां खलपिंडीं पुरुषबुद्ध्या शूले प्रोतां पावके पचेत् तथाऽलाबुकं तुंबकं कुमारोयमिति मत्वाऽग्नावेव पपाच सचैवंचित्तस्य दुष्टत्वात्प्राणिवध जनितेन पातकेन युज्यते। अस्मत्सिद्धांते चित्तमूलत्वाच्छुभाशुभबंधस्येत्येवं तावदकुशल चित्तप्रामाण्यादकुर्वन्नपि प्राणातिपातप्रतिघातफलेन युज्यते ॥ २६ ॥

अहवावि विद्धूण मिलक्खु सूले, पिन्नागबुद्धीइ नरं पएज्जा ॥
कुमारगं वावि अलाबुयंति, न लिप्पइ पाणिवहेण अम्हं ॥२७॥
पुरिसं च विद्धूण कुमारगं वा, सूलंमि केई पएज्जायतेए ॥ पिन्नाय
पिंडि सति मारुहेत्ता, बुद्धाण तं कप्पति पारणाए ॥ २८ ॥

अर्थ–वली एहिज दृष्टांत विपरीत पणें करीनें कहेछे. (अहवावि के०) अथवा कोइ एक सत्यपुरुषने (पिन्नागबुद्धिइ के०) खलपिंडीनी बुद्धियें करी कोइ एक (मिलक्खु के०) म्लेछ, (सूले के०) शूलियें करी (विद्धूण के०) विंधीनें प्रोइनें (नरं के०) मनुष्यनें, (पएज्जा के०) अग्नियें करी पचावे, अनें (कुमारगंवाविअलाबुयंति के०) तथा कुमार बालकनें देखीनें तेनें तुंबडानी बुद्धि लावीनें, अग्निमां पचावे, ए बेहुजणनें मनपरिणाम विशेष एवुं (नलिप्पइपाणिवहेणअम्हं के०) प्राणवधनुं पाप लागे नहीं, ए अमारा शास्त्रनुं रहस्य जाणवुं ॥२७॥ वली पण तेहिज दृष्टांत कहेछे (पुरिसंचविद्धूण कुमारगंवा के०) पुरुष अथवा कुमारनें (सूलंमि के०) शूलीयें (विद्धूण के०) वींधीनें प्रोइनें (केइपएज्जायतेएके०) कोइ एक पुरुष अग्निनें विषे पचावे (पिन्नायपींडिसतिमारुहेत्ता के०) अनें मनमांहे एवो भाव आणे के ए खलपिंडीछे (बुद्धाणतंकप्पतिपारणाए के०) तेनी बुद्धदर्शीजननें पण पारणा भणी कल्पेतो, अन्य बीजानुं शुं कहेवुं? एतावता मनसायें असंकल्पितछे माटें कर्म न लागे एवो. अमारो मतछे ॥ २८ ॥

॥दीपिका–अथवा सत्यं पुरुषं खलबुद्ध्या कश्चिन्म्लेछः शूले प्रोतमग्नौ पचेत् कुमारकं बालं वाऽलाबुबुद्ध्या पचेन्नासौ प्राणिवधेन लिप्यतेस्माकमिति प्राणिवधाभिप्रायाभावात् ॥ २७ ॥ पुरुषं कुमारकंवा शूले विध्वा कश्चिज्जाततेजसि वन्हौ आरुह्य पचेत् खलपिंडीयमिति मत्वा सतां शोभनं तदेतद्बुद्धानां शाक्यानां कल्पते पारणाय भोजनाय। एवमसंकल्पितं कर्मचयं न यात्यस्मन्मते ॥ २८ ॥

णामज जाणवुं, चित्तमांहे जो जीवघातनो परिणामछे तो अणकर्युं थकुं पण, प्राणघातनुं पाप लागेछे ॥ २६ ॥

॥ दीपिका—असौ नगवान्समवसरणाद्युपनोगं कुर्वन्नप्यहिंसन् । कोर्थः । नहि तत्रार्हतः कोप्याशंसाप्रतिबंधोवास्ति साम्यरसलीनत्वात् । सर्वेषां प्रजाजंतवस्तेषामनुकंपी एवंविधं धर्मे स्थितं तं नवादृशाआत्मदंमैः समाचरंतोवणिगादितुल्यं कुर्वंति एतच्चाबोधेरज्ञातस्य प्रतिरूपं अज्ञानविलसितमित्यर्थः । एवं गोशाले निराकृते बौद्धाः प्राहुस्त्वया वणिग्दृष्टांतदूषणेन बाह्यानुष्ठानदूषितं तद्वरं कृतं यतोऽस्मत्सिद्धांतेप्यांतरमेवानुष्ठानं नवमोक्षयोः प्रधानांगमिति । तत्त्वं शृणु ॥२५॥ पिण्याकः खलस्तस्य पिंमी शकलमचेतनमपि कदाचिन्म्लेछादिविषये संभ्रमे केनचिन्नश्यता खलोपरि वस्त्रं क्षिप्तं तच्च म्लेछेन पुरुषोयमिति बुद्ध्या गृहीतं ततोसौ म्लेछोवस्त्रवेष्टितां खलपिंमीं पुरुषबुद्ध्या शूले प्रोतां पावके पचेत् तथाऽलाबुकं तुंबकं कुमारोयमिति मत्वाऽग्नौ पचेत् अस्माकं मते सप्राणिवधेन लिप्यते चित्तस्य डुष्टत्वात् ॥ २६ ॥

॥ टीका—सांप्रतं कृतदेवसमवसरणपद्मावलीदेवछंदकसिंहासनाद्युपनोगं कुर्वन्नप्याधाकर्मकृतवसतिनिषेधकसाधुवत्कथं तदनुमतिकृतेन कर्मणाऽसौ न लिप्यतइत्येतज्ञोशालकमतमाशंक्याह । (अहिंसयमित्यादि) असौ नगवान् समवसरणाद्युपनोगं कुर्वन्नप्यहिंसकः स नुपनोगं करोति । एतडुक्तं नवति नहि तत्र नगवतोमनागप्याशंसाप्रतिबंधोवा विद्यते स मतृणमणिमुक्तालोष्टकांचनतया तडुपनोगं प्रति प्रवृत्तेर्देवानामपि प्रवचनोद्भिनायिषूणां कथंनु नाम नव्यानां धर्मानिमुखं प्रवृत्तिर्यथा स्यादित्येवमर्थमात्मलानार्थं च प्रवर्त्तनादतोनगवानहिंसकस्तथा सर्वेषां प्रजायंतइति प्रजाजंतवस्तदनुकंपी च तान्संसारे पर्यटतोनुकंपयते तच्छीलश्च तमेवंरूपं धर्मपरमार्थरूपे व्यवस्थितं कर्मविवेकहेतुनूतं नवद्विधाआत्मदंमैः समाचरंतआत्मकल्पं कुर्वंति । वणिगादिनिरुदाहरणैरेतच्चाबोधेरज्ञानस्य प्रतिरूपं वर्तते एकं तावदिदमज्ञानं यत्स्वतः कुमार्गप्रवर्तनं । द्वितीयं चैतत्प्रतिरूपमज्ञानं यद्भगवतामपि जगद्वंद्यानां सर्वातिशयनिधाननूतानामितरैः समत्वापादनमिति ॥ २५॥ सांप्रतमार्द्रककुमारमपहस्तितगोशालकं ततोनगवदनिमुखं गछंतं दृष्ट्वाथांतराले शाक्यपुत्रीयानिक्षवइदमूचुर्यदेत द्वणिग्दृष्टांतदूषणेन बाह्यमनुष्ठानं दूषितं तच्छोननं कृतं नवता यतोऽतिफल्गुप्रायं बाह्यमनुष्ठानं आंतरमेव त्वनुष्ठानं संसारमोक्षयोः प्रधानांगमस्मत्सिद्धांते चैतदेव व्यावर्ण्यते । इत्येतदार्द्रककुमार नो राजपुत्र ! त्वमवहितः शृणु श्रुत्वा चावधारयेति नणित्वा ते निक्षुका आंतरानुष्ठानसमर्थकमात्मीयसिद्धांताविर्नावनायेदमाहुः । (पिन्नागेत्यादि) पिण्याकः

हु कोण ? ते कहेबे. (वयंतिजेयाविपडिस्सुणंति कें०) एक तो जें खलपिंमीनी बुद्धियें पुरुषनें पचावे, अनें तेमांहे पाप नथी एम कहे, अनें बीजो जे तेमनुं एवुं वचन अंगीकार करे, ए बेहुनें नलूं नथी. एवी नावशुद्धियें मोक्ष नथी, माटें हुं एवो मार्गी केम आदरुं? ॥ ३० ॥

॥ दीपिका—स्नातकाबौद्धशिष्यास्तेषां निक्षुकाणां सहस्रद्वयं निजे बौद्धधर्मे कश्चिडुपासकः पचनाद्यारंनं कृत्वापि नोजयेत् ते बहवोपि श्रद्धालवः पुण्यस्कंधं महांतं समावर्ज्यारोप्याख्यादेवान्नवंति महासत्वाः ॥ २९ ॥ बौद्धैरित्युक्ते आर्द्रकः प्राह । यत्तव मते कथितं तत्संयतानामयोग्यरूपमघटमानमिदं यत्प्राणानामिंद्रियादीनां घातेन पापं कृत्वा तदनावं वदंति खलबुद्ध्या पुरुषं घ्रतोपि न पापमिति पुरुषबुद्ध्या खलघाती पापवानिति वचनं तेषां अबोध्ये अबोधिलानार्थं तयोर्द्वयोरपि स्यात् । कौ द्वौ? ये एवं पूर्वोक्तं वदंति येच तेन्यः शृण्वंति तयोर्द्वयोरपि असाध्वेतत् अज्ञानावृतमूढजननावशुद्ध्या शुद्धिर्न स्यादित्यर्थः ॥ ३० ॥

॥ टीका—पुनरपि शाक्यएव दानफलमधिकृत्याह । (सिणायगाणमित्यादि) स्नातकाबोधिसत्वाः। तुशब्दात्पंचशिक्षापदिकादिपरिग्रहः। तेषां निक्षुकाणां सहस्रद्वयं निजे शाक्यपुत्रिये धर्मे व्यवस्थितः कश्चिडुपासकः पचनपाचनाद्यपि कृत्वा नोजयेत्समांसगुडदाडिमेनेष्टेन नोजनेन ते पुरुषामहासत्वाः श्रद्धालवः पुण्यस्कंधं महांतं समावर्ज्य तेनच पुण्यस्कंधेनारोप्याख्यादेवान्नवंत्याकाशोपगाः सर्वोत्तमां देवगतिं गच्छंतीत्यर्थः ॥ २९ ॥ तदेवं बुद्धेन दानमूलः शीलमूलश्च धर्मः प्रवेदितस्तदेह्यागच्छ बौद्धसिद्धांतं प्रतिपद्यस्वेत्येवं निक्षुकैरनिहितः सन्नार्द्रकोऽनाकुलया दृष्ट्या तान्वीक्ष्योवाचेदं वक्ष्यमाणमित्याह । (अजोगरूवमित्यादि) इहास्मिन्नवदीये शाक्यमते संयतानां निक्षूणां यडुक्तं प्राक् दत्यंतेनायोग्यरूपमघटमानकं तथा ह्यहिंसार्थमुत्थितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य पंचसमितिसमितस्य सतः प्रव्रजितस्य सम्यक् ज्ञानपूर्विकां क्रियां कुर्वतोनावशुद्धिः फलवती नवति तद्विपर्यस्तमतेस्त्वज्ञानावृतस्य महामोहाकुलीकृतांतरात्मतया खलपुरुषयोर्विवेकमजानतः कुतस्त्यानावशुद्धिरत्यंतमसांप्रतमेतद्बुद्धमतानुसारिणां यत्खलबुद्ध्या पुरुषस्य शूले प्रोतनपचनादिकं तथा बुद्धस्यैवान्नबुद्ध्यापिशितनक्षणानुमत्यादिकमिति । एतदेव दर्शयति । प्राणानामिंद्रियाणामपगमेन तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्पापमेव कृत्वा रससातागौरवादिगृद्धास्तदनावं व्यावर्णयंत्येतच्च तेषां पापानावव्यावर्णनमबोध्यै अबोधिलानार्थं तयोर्द्वयोरपि संपद्यतेऽतोसाध्वेतत्। कयोर्द्वयोरित्याह । ये वदंति पिण्याकबुद्ध्या पुरुषपाकेपि पातकानावं येच

॥ टीका-अमुमेव दृष्टांतं वैपरीत्येनाह । (अहवावीत्यादि) अथवापि सत्पुरुषं खलबुद्ध्या कश्चिन्म्लेच्छः शूलप्रोतमग्नौ पचेत्तथा कुमारकं बालं तुंबकबुद्ध्याग्नावेव पचेन्नैवमेवासौ प्राणिवधजनितेन पातकेन लिप्यतेऽस्माकमिति ॥ २७ ॥ किंचान्यत् । (पुरिसमित्यादि) पुरुषं वा कुमारं वा विध्वा शूले कश्चित्पचेज्जाततेजस्यग्नावारुह्य खलपिंमीयमिति मत्वा सतीं शोभनां तदेतद्बुद्धानामपि पारणाय भोजनाय कल्पते योग्यं भवति किमुतापरेषामेवं सर्वास्ववस्थास्वचिंतितं मनसा संकल्पितं कर्मचयं नागच्छत्यस्मत्सिद्धांते । तडुक्तं अविज्ञानोपचितं परिज्ञानोपचितमीर्यापथिकं स्वप्नांतिकं चेति कर्मोपचयं न याति ॥ २८

सिणायगाणं तु दुवे सहस्से, जे भोयए णितिए भिक्कुयाणं॥ ते पुन्नखंधं सुमहं जिणित्ता, भवंति आरोप्प महंतसत्ता॥ २ए॥ अजोगरूवं इह संजयाणं, पावं तु पाणा णयसंझकाउं॥ अबोहिए दोषहवि तं असाहु, वयंति जेया विपडिस्सुणंति ॥ ३० ॥

अर्थ-हवे वली शाक्यदर्शनीउ दानफलनो अधिकार कहेछे. (सिणायगाणंतुदुवेसहस्से के०) स्नातक एटले बौद्धमत प्रधान दर्शनी, तेना जे बे सहस्र तेनें (जेभोयएणितिएभिक्कुयाणं के०) जे कोइ पोतानां शाक्यपुत्रीय धर्मे प्रवर्त्ततो एवो उपासक, पचनादिक क्रिया करीनें भिक्कुनें निरंतर जमाडे, (तेपुन्नखंधंसुमहंजिणित्ता के०) ते पुरुष महान् पुण्यस्कंध उपार्जीनें, (भवंतिआरोप्पमहंतसत्ता के०) महोटा सत्ववालो एटले श्रद्धावंत थको आरोप्य एवे नामें सर्वोत्तम देवता थाय. इत्यर्थः॥ २ए ॥ ए रीतें बौद्धदर्शनी पोताना धर्मनुं रहस्य, आर्द्रकुमार प्रत्यें देखाडीनें तेनें कहेवा लागा के, अहो आर्द्रकुमार.! तुं अमारो धर्म मान्य कर! .एवुं कहे थके, हवे आर्द्रकुमार तेमनें कहेछे के, अहो शाक्यदर्शनीउ! (अजोगरूवंइहसंजयाणं के०) अंही तमारा दर्शननें विषे जे पूर्वे भोजन आश्री वचन कह्युं ते, संयतपणानें अयोग्य छे कारणके, अहिंसानें अर्थे प्रवर्त्तमान, समिति अनें गुप्तियें करी सहित, एवा साधु होय, तेनें भावशुद्धि फलदायिनी थाय ए वात खरीछे, परंतु तमारी वक्तव्यतायें, खल अनें पुरुषनी व्यक्ति पण जे न जाणे; तेनेंज भावशुद्धि कही. ए कारणेज बौद्धमतिउ खलपिंमीनी बुद्धियें पुरुषनो विनाश करीनें, तेना गुरुनें मांस भक्षण करावे. ते अत्यंत अयुक्तछे, तेज कहेछे. (पावंतुपाणाणयसंझकाउं के०) प्राणी एटले जीव, तेना विनाशरूप पाप करीनें, प्रकर्षे रसगृद्ध थका वली तेनेंज पुण्य बोले माटें,(अबोहिएदोएहवितंअसाहु के०) ए पाप, अबोधीनुं कारणछे तेथी ते बेहुनें असाधु जाणवा, ते बे

ऽनार्यएव। कः संभवः पिण्याकपिंम्यां पुरुषबुद्धेः? अतोवागप्येषाऽसत्या कथिता तस्मात्पि ण्याककाष्ठादावपि प्रवर्त्तमानेन जीवोपमर्द्दभीरुणा साशंकेनैव प्रवर्त्तितव्यं ॥ ३१ ॥

॥ टीका–परपक्षं दूषयित्वाऽऽर्द्रकः स्वपक्षाविर्भावनायाह । (उड्ढमहेयमित्यादि) ऊर्ध्व मधस्तिर्यक्षु यादिशः प्रज्ञापनादिकास्तासु सर्वास्वपि दिक्षु त्रसानां स्थावराणां च जंतूनां यत्त्रसस्थावरत्वेन जीवलिंगं चलनस्पंदनांकुरोद्भवच्छेदम्लानादिकं तद्विज्ञायते भूताभिशं कया जीवोपमर्दोत्र भविष्यतीत्येवंबुद्ध्या सर्वमनुष्ठानं जुगुप्समानस्तदुपमर्द्दं परिहरन् व देत् कुतोप्यतः कुतोस्तीहास्मिन्नेवंभूतेऽनुष्ठाने क्रियमाणे प्रोच्यमाने वास्मत्पक्षे युष्मदा पादितोदोषइति ॥ ३१ ॥ अधुना पिण्याके पुरुषबुद्ध्याऽसंभवमेव दर्शयितुमाह । (पु रिसेत्यादि) तस्यां पिण्याकबुद्ध्यां पुरुषोयमित्येवमत्यंतजडस्यापि विज्ञप्तिरेव नास्ति त स्मायएवं वक्ति सोऽत्यंतोपुरुषस्तथाभ्युपगमेन तुशब्दस्यैवकारार्थत्वेऽनार्यएवासौ यः पुरु षमेव खलोयमिति मत्वा हतेपि नास्ति दोषइत्येवं वदेत् । तथाहि । कः संभवः पिंम्यां पुरुषबुद्धेरित्यतोवागपीयमीदृगसत्येति सत्वोपघातकत्वात्ततश्च निःशंकप्रहार्यनालोचको निर्विवेकतया बध्यते तस्मात्पिण्याककाष्ठादावपि प्रवर्त्तमानेन जीवोपमर्द्दभीरुणा सा शंकेन प्रवर्त्तितव्यमिति ॥ ३२

वायाभियोगेण जमावहेज्जा, णो तारिसं वायमुदाहरिज्जा ॥ अ
ठाणमेयं वयणं गुणाणं, णो दिक्खिए बूयसुरालमेयं ॥३३॥ लद्धे
अट्ठे अहो एव तुम्हे, जिवाणुभागे सुविचिंतिएव ॥ पुव्वं समुद्दं अ
वरं च पुट्ठे, उल्लोइए पाणितले ठिएवा ॥ ३४ ॥

अर्थ–वली पण आर्द्रकुमार कहेछे के, (वायाभियोगेण के०) वचननें अभियोग पणें एटले (जमावहेज्जा के०) वचन मात्र बोलता थकां पण जें पाप लागे, (णोता रिसंवायमुदाहरिज्जा के०) तादृश तेवुं वचन विवेकी पुरुष न बोले. (अठाणमेयंवय णंगुणाणंणोदिक्खिएबूयसुरालमेयं के०) गुणनुं अस्थानरूप एवुं असार वचन, तेनें जे दीक्षित थाह्यो पुरुष होय ते न बोले, के जे खलपिंम्भनें पुरुष, अनें पुरुषनें खलपिंम, तथा तुंबडानें बालक, अनें बालकनें तुंबडुं, इत्यादिक वचन उत्तम पुरुष न बोले. इत्य र्थः ॥३३॥ वली पण आर्द्रकुमारज कहेछे के, (लद्धेअट्ठेअहोएवतुम्हे के०) अहो शाक्य दर्शनीउं! तमने एवे ज्ञाता पणे करीनें जाणियें छैयें, जे तमोनें विज्ञान ते यथावस्थित तत्व, लाध्युं. एटले तमे तत्व पाम्या. (जिवाणुभागेसुविचिंतिएव के०) तथा तमें जीवनो अनु भाग जे कर्मविपाक, ते रुडीरीतें चिंतव्यो, (पुव्वंसमुद्दंअवरंचपुट्ठे के०) तथा एवा वि

तेन्यः शृण्वंत्येतयोर्द्वयोरपि वर्गयोरसाध्वेतदिति । अपिच नाज्ञानावृतमूढजननावशुद्ध्य शुद्धिर्नवति । यदिच स्यात्संसारमोचकादीनामपि तर्हि कर्मविमोक्षः स्यात्तथा नावशुद्धिमेव केवलामन्युपगच्छतां नवतां शिरस्तुंमुंमनपिंमपातादिकं चैत्यकर्मादिकं चानुष्ठानमनर्थक मापद्यते तस्मान्नैवंविधया नावशुद्ध्या शुद्धिरुपजायतइति स्थितं ॥३०॥

उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, विन्नाय लिंगं तसथावराणं ॥ नूया
निसंकाइ डुगंबमाणा, वदे करेज्जाव कुउ विहत्थि ॥३१॥ पुरिसे
त्ति विन्नत्ति न एवमत्थि, अणारिए से पुरिसे तहा हु ॥ कोसंनवो
पिन्नगपिंमियाए, वायावि एसा बुइया असच्चा ॥ ३२ ॥

अर्थ—हवे आर्द्रकुमार, जैनमार्गना गुण कहेछे. (उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासु के०) ऊंची, नीची, अनें तिर्छि जे दिशिउंछे,ते दिशिउंनें विषे (तसथावराणं के०) त्रस अनें स्थावर जीवोनी (लिंगं के०) अहिनाण, चलन, स्पंदन, अंकुरोन्नवादिक, उत्पत्तिनें (विन्नाय के०) जाणीनें, (नूयानिसंकाइडुगंबमाणा के०) नूत जे जीव तेनी अनिशंकायें के, रखे कोइ जीवनो घात उपजे! एवा नावें पापना नयथकी, सर्व सावद्यानुष्ठाननें डुगंबता जीवनां मर्द्दननें परिहरता थका, (वदे के०) वदे एटले धर्मोपदेश आपे. (करेंज्जाव के०) तथा यावत् क्रिया अनुष्ठान पण करे,(कुउविहत्थि के०) तो हवे एवी रीतें अनुष्ठान करतां, तथा बोलतां अमारा पक्षनें विषे तमारो उपजावेलो दोष कोइ नथी॥३१॥ हवे खलपिंमीनें विषे पुरुपनी बुद्धिनो असंनव देखाडेछे. (पुरिसेत्तिविन्नतिनएवमत्थि के०) खलपिंमीनें विषे ए पुरुपजछे एवी बुद्धि तो जे अत्यंत मूर्ख होय तेनें पण न उपजे? ते कारणें (अणारिएसेपुरिसेतहाहु के०) जे एवी बुद्धि करे, अनें एम कहे के एनें हणवामां दोप नथी, ते निश्चें थकी अनाचारी पुरुष जाणवो,(कोसंनवोपिन्नगपिंमियाए के०) खलपिंमिकानें विषे जे पुरुपनी बुद्धि करवी, ते वातज केम संनवें! माटें (वायाविएसाबुइयाअसच्चा के०) एवी वाणी बोलवी ते पण असत्य कहीछे, माटें एवी नापानो बोलनार निर्विवेकी, कर्म बंधनें करी बंधाय. अनें अनंतो संसार वधारे. इत्यर्थः ॥३२॥

॥ दीपिका—ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च सर्वदिक्षु त्रसस्थावराणां लिंगं जीवत्वचिन्हं विज्ञाय नूताभिशंकया जीवघातोत्र नावीति बुद्ध्या सर्वमनुष्ठानं जुगुप्समानस्तद्घातं परिहरन्वदे त्कुर्यादपीति कुतोस्तीह त्वडुक्तोदोपः । न कश्चित्त्रास्मन्मते दोपोस्तीत्यर्थः ॥ ३१ ॥ तस्यां पिण्याकपिंमयां पुरुपोयमिति विज्ञप्तिर्मतिर्नास्ति जडस्यापि तस्माद्यएवं वक्ति सपुरुपो

अर्थ—हवे आर्द्रकुमार जैनमतनी स्थापना करेछे. (जीवाणुजागंसुविचिंतयंता के०) जिनशासननें विषे प्रतिपन्न जे पुरुष ते, जीवनो अणुजाग अवस्थाविशेष, तेनुं मर्दन जे पी डानी उत्पत्तिरूप डुःख तेनें रुडी रीतें चिंतवता थका, (आहारियाअन्नविहायसोहिं के०) आहारिया एटले अन्नपाणीनें विषे विशुद्धता आदरेछे. एटले बहेंतालीश दोष रहित एवो विशुद्ध आहार लियेछे, परंतु तमारी पेठें मांसादिक पण, पात्रें पड्यो दोष नथी न थाय, तेम तेनें नथी ? अनें तमे तो केवाछो, तो के (नवियागरेछन्नपउपजीवि के०) छिन्नपदोष जीवि एटले हिंसानें स्थानकें करी उपजीवन करोछो, पण इत्यादिक वचन प्रसिद्धपणे न बोलो. तेवा जैनमतना धारक पुरुष न होय ? (एसोणुधम्मोइहसंजयाणं के०) ए पूर्वोक्त निर्दोष आहारनें लेवे करी, छ कायनें पालवे करी, तीर्थंकरनें अनुयायि, होय. ते संयत ए टले साधुनो धर्म जाणवो ॥३५॥ वली आर्द्रकुमार कहेछे, शुं कहेछे? तो के, (सिणायगा णंतुडुवेसहस्से के०)स्नातक जे बौद्धमति दर्शन धारक तेना बे हजार भिक्षुक एटले शाक्य पुत्रीयधर्मे प्रवर्त्तता भिक्षुक तेनें (जेजोयएनिइएनिखुयाणं के०) जे पचन पाचनादिक क्रिया करीनें नित्य जमाडे, तेनें लाज थायछे, पुण्य थायछे, एवुं तमे कहोछो परंतु, (असंजए लोहियपाणिसेऊ के०) ते असंयत लोहितपाणि एटले जेना हाथ सदा काल लोहियें करी खरडयाछे तेवो ते अनार्य पुरुष, (णियछतीगरिहमिहेवलोए के०) प्रथमतो आ लोकमांहेज गर्हा पामे, अनें परलोकें परजवे डुर्गतिमां जाय. केमके एवा सावद्यानुष्ठा नना करनार, अजक्ष अनें अपेयतुं जे दान, तेना अनुमोदनार एवा कुपात्रनें जे दान देवुं. ते कर्म बंधनुं कारणछे ॥ ३६ ॥

॥ दीपिका—सोपहासमुक्त्वार्द्रकमुनिः स्वपक्षमाह जिनमतप्रतिपन्नाः जीवानुजागं सुष्ठु विचिंतयंतोऽन्नविधौ शुद्धिमाहृतवंतः स्वीकृतवंतः । जवतां तु मांसाद्यपि पात्रपतितं न दोषाय तथा छन्नपदं मातृस्थानं तेनोपजीवी सन्न व्यागृणीयात् मायया न वदेदित्यर्थः। एषपश्चाद्धर्मोऽनुधर्मइह जैनमते संयतानां साधूनां अर्हदनुष्ठानानंतरं स्यादित्यनुधर्मः ॥३५॥ स्नातकानां बौद्धानां भिक्षूणां नित्यं यः सहस्रद्वयं जोजयेदित्युक्तं प्राक् तद्दूषय ति । असंयतः सन् रुधिरक्लिन्नपाणिरिहैव लोके सगर्हां नियछति निश्चयेन गछति॥३६॥

॥ टीका—तदेवं परपक्षं दूषयित्वा स्वपक्षस्थापनायाह । (जीवाणुजागमित्यादि) मौ नींद्रशासनप्रतिपन्नाः सर्वज्ञोक्तमार्गानुसारिणोजीवानामनुजागमवस्थाविशेषं तडुपमर्दन पीडां वा सुष्ठु विचिंतयंतः पर्यालोचयंतोन्नविधौ शुद्धिमात्हृतवंतः स्वीकृतवंतोद्विचत्वारिं शद्दोषरहितेनाशुद्धेनाहारेणाहारं कृतवंतोनतु यथा जवतां पिशितादपि पात्रपतितं न दो

ज्ञानें करी तमारो यश पूर्व अनें पश्चिम समुड् सुधी पहोतो, विस्तार पाम्यो, (उलोइए पाणितलेहिएवा के०) तथा तमोयें एवे विज्ञानें करी, अवलोकन करवे करी, ए लोकनें पाणितलस्थितनी पेरें अवलोक्यो, तो अहो ! अमें तमारा विज्ञानना अतिशयनुं वर्णन शुं करियें? एवुं तमारा सरखुं ज्ञातापणुं क्यांही पण देखातुं नथी,जे खलपिंम अनें पुरुष, तथा तुंबडुं, अनें बालकनो अंतर कांइ पण जणाय नहीं, तो वली हवे जाण पणामां बाकी पण शुं रह्युं? ॥ ३४ ॥

॥ दीपिका–वाचानियोगोवागनियोगस्तेन यदावहेत्कुर्यात् पापं कर्म तादृशीं वाचं नोदाहरेन्न वदेत् एतद्वचनं गुणानामस्थानं दीक्षितोन ब्रूयात् उदारं सुष्ठु निःसारमिति यत्खलेपि पुरुषः पुरुषोपि खलः अलाबुकं बालकः बालकोवाऽलाबुकमिति निःसारत्वमि त्यर्थः॥ ३३ ॥ अहो ! एवमंगीकृते सति युष्मानिरथानंतरमर्थस्तत्वं लब्धं जीवानामनु कर्मविपाकः नागः सुविचिंतितः एवंनूतेन ज्ञानेन नवतां यशः पूर्वं समुड्मपरं च पृष्ठं गतमित्यर्थः । नवद्भिरवलोकितएवायं लोकः पाणितलस्थितइवेति ॥ ३४ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (वायानियोगेणमित्यादि) वाचानियोगोवागनियोगस्तेनापि यद्यस्मादावहेत्पापं कर्म ततोविवेकी नाषागुणदोषज्ञोन तादृशीं नाषामुदाहरेन्नानि दध्याद्यतएवं ततोऽस्थानमेतद्वचनं गुणानां नहि प्रव्रजितोयथावस्थितोर्थानिधाय्येत डुदारं सुष्ठु परिस्थूरं निःसारं निरुपपत्तिकं वचनं न ब्रूयात् तद्यथा पिण्याकोपि पुरुषः पुरुषोपि पिण्याकस्तथाऽलाबुकमेव बालकोबालकएवाऽलाबुकमिति ॥३३ ॥ सांप्रतमार्द्रककुमारएव तं निक्षुकं युक्तिपराजितं संतं सोल्लुंठं बिन्नणिषुराह । (लद्धेत्यादि) अहो युष्मानिरथानंतर्ये एवंनूताभ्युपगमे सति लब्धार्थोविज्ञानं यथावस्थितं तत्वमिति तथावगतः सुचिंतितोनवद्भिर्जीवानामनुनागः कर्मविपाकस्तत्पीडेति तथैवंनूतेन विज्ञानेन नवतां यशः पूर्वसमुड्मपरंच पृष्ठं गतमित्यर्थः । तथा नवद्भिरेवंविधविज्ञानावलोकनेनावलोकितः पाणितलस्थइवायं लोकइति अहो! नवतां विज्ञानातिशयोयडुत नवंतः पिण्याक पुरुषयोर्बालालाबुकयोर्वा विज्ञोपाननिज्ञया पापस्य कर्मणोयथैतद्भावानावं प्रा क्कल्पितवंतइति ॥ ३४ ॥

जीवाणुनागं सुविचिंतयंता, आहारिया अन्नविहायसोहिं ॥ न
वियागरे बन्नपत्तपजीवि, एसोणुधम्मोइह संजयाणं ॥ ३५ ॥
सिणायगाणं तु डुवे सहस्से, जे नोयए निइए निक्कुयाणं ॥ अ
संजए लोहियपाणि सेऊ, णियडत गरिहंमिहेव लोए ॥ ३६ ॥

हित मांस करे ॥ ३७ ॥ एवुं मांस करीनें पछी शुं करे, ? ते कहेछे के, (तंभुंजमाणा पिसितंपभूतं के०) ते मांस, प्रभूत एटले घणुं जमतां थकां भोगवतां थका एम कहेछे के, (णउवलिप्पामोवयंरएणं के०) अमें एनी पापरूप रजें करी लेपाता नथी. (इच्चेवमाहंसुअणज्जधम्मं के०) एवुं वचन कहे, ते अनार्यधर्मी जाणवा, कारण के, ते धृष्ट पणुं आदरेछे. (अणारियावालरसेसुगिद्धा के०) ते अनाचारी बाल, एटले अज्ञानी रसगृद्धी थका एवां वचन कहेछे ॥ ३८ ॥

॥ दीपिका—आर्द्रकएव तन्मतमाह । स्थूलमुरभ्रं इह बौद्धमते हत्वा उद्दिष्टभक्तंच प्रकल्प, तन्मांसं लवणतैलाभ्यां संस्कृत्य सपिप्पलीकं कुर्वंति ॥ ३७ ॥ तत्पिशितं मांसं प्रभूतं भुंजानाअपि वयं रजसा नोपलिप्यामहे । एवमनार्यधर्मा दुष्टस्वभावाअनार्या इवाऽनार्याबाला रसेषु मांसादिषु गृद्धाः ॥ ३८ ॥

॥ टीका—एवं तावत्सावद्यानुष्ठानानुमंतॄणामपात्रभूतानां यद्दानं तत्कर्मबंधायेत्युक्तं । किंचान्यत् । (थूलंउरब्भमित्यादि) आर्द्रकुमारएव तन्मतमाविष्कुर्वन्निदमाह स्थूलं बृहत्कायमुपचितं मांसशोणितमुरभ्रमूरणकमिह शाक्यशासने भिक्षुकसंघोद्देशेन व्यापाद्य घातयित्वा तथोद्दिष्टभक्तंच प्रकल्पयित्वा तमुरभ्रं तन्मांसंच लवणतैलाभ्यामुपसंस्कृत्य पाचयित्वा सपिप्पलीकमपरद्रव्यसमन्वितं प्रकर्षेण भक्षणयोग्यं मांसं कुर्वंतीति ॥ ३७ ॥ संस्कृत्यच यत्कुर्वंति तद्दर्शयितुमाह (तंभुंजमाणाइत्यादि) तत्पिशितं शुक्रशोणितसंभूतमनार्याइव भुंजानाअपि प्रभूतं तद्रजसा पापेन कर्मणा न वयमुपलिप्यामहइत्येवं धार्ष्ट्योपेताः प्रोचुरनार्याणामिव धर्मः स्वभावोयेषां ते तथानार्यकर्मकारित्वादनार्याबाला इव बालाविवेकरहितत्वाद्रसेषुच मांसादिकेषु गृद्धाअध्युपपन्नाः ॥ ३८ ॥

जे यावि भुंजंति तहप्पगारं, सेवंति ते पावमजाणमाणा ॥ मणं
न एयं कुसला करेंती, वायावि एसा बुइयाउ मिछा ॥३९॥ सव्वेसिं
जीवाणदयठ्याए, सावज्जदोसं परिवज्जयंता ॥ तस्संकिणो इ
सिणो नायपुत्ता, उद्दिठभत्तं परिवज्जयंति ॥ ४० ॥

अर्थ—हवे ते मांसाशीनें एनो विपाक कहेछे. (जेयाविभुजंतितहप्पगारं के०)जे रसगृद्ध थता तथा प्रकारें मांसनें जमे, (सेवंतितेपावमजाणमाणा के०) ते अज्ञानी पुरुषो निःकेवल पापनुं सेवन करेछे.(मणंनएयंकुसलाकरेंति के०)जे कुशल एटले पंमित होय ते मांसभक्षण करीयें, एवुं मन पण न करे. तथा (वायाविएसाबुइयाउमिछा के०) मांसभक्षणथी दोष

षायेति । तथा उन्नपदोपजीवी मातृस्थानोपजीवी सन् न व्यागृणीयादेषोनंतरोक्तोऽनु पश्चाद्धर्मोनुधर्मस्तीर्थकरानुष्ठानादनंतरं भवतीत्यमुना विशिष्यते। इहास्मिन् जगति प्रवच ने वा सम्यग्यतानां सत्साधूनां नतु पुनरेवंविधो भिक्षूणामिति।यच्च भवद्भिरोदनादेरपि प्राण्यं गसमानतया हेतुभूततया मांसादिसादृश्यं चोत्पद्यते तदविज्ञाय लोकतीर्थोत्तरीयमतं । तथाहि। प्राण्यंगत्वे तुल्येपि किंचिन्मांसं किंचिन्नामांसमित्येवं व्यवह्रियते।तद्यथा गोक्षीररु धिरादेर्भक्ष्याभक्ष्यव्यवस्थितिस्तथा समानेपि स्त्रीत्वे भार्याश्वश्र्वादौ गम्यागम्यव्यवस्थ तिरिति। तथा शुष्कतर्कदृष्ट्या योयं प्राण्यंगत्वादिति हेतुर्भवतोपन्यस्यते। तद्यथा "भक्षणीयं भवेन्मांसं, प्राण्यंगत्वेन हेतुना ॥ ओदनादिवदित्येवं, कश्चिदाहेति तार्किकः" ॥१॥ सो सिद्धानैकांतिकविरुद्धदोषदुष्टत्वादपकर्णनीयः । तथाहि । निरंशत्वाद्वस्तुनस्तदेव मांसं त देव च प्राण्यंगमिति प्रतिज्ञार्थैकदेशादसिद्धः । तद्यथा नित्यः शब्दोनित्यत्वादथ भिन्नं प्रा ण्यंगं ततः सुतरामसिद्धोव्यधिकरणत्वाद्यथा देवदत्तस्य गृहं काकस्य कार्ष्ण्यात्तथानैकांति कोपि श्वादिमांसस्याभक्ष्यत्वादथ तदपि क्वचित्कथंचित्केषांचिद्भक्ष्यमिति चेदेवं च सत्य श्वादेर्भक्ष्यत्वादनैकांतिकत्वं। तथा विरुद्धाव्यभिचार्यपि यथार्थहेतुर्मांसस्य भक्ष्यत्वं साधयत्येवं बुद्धांस्त्वामपूजात्वमपि। तथा लोकविरोधिनी चेयं प्रतिज्ञा। मांसोदनयोरसा म्याद्दृष्टांतविरोधश्चेत्येवं व्यवस्थिते यदुक्तं प्राग्यथाबुद्धानामपि पारणाय कल्पतएतदि ति तदसाध्विति इति स्थितं ॥ ३५ ॥ अन्यदपि भिक्षुकोक्तमार्द्रकुमारोऽनूद्य दूषयितुमाह । (सिणायगाणंतुइत्यादि) स्नातकानां बोधिसत्वकल्पानां भिक्षूणां नित्यं यः सहस्रद्वयं भोजयेदित्युक्तं प्राक् तद्रूपयत्यसंयतः सन् रुधिरक्लिन्नपाणिरनार्यइव गर्हां निंदां जुगुप्साप दवीं साधुजनानामिह लोकएव निश्चयेन गच्छति परलोके वाऽनार्यगम्यां गतिं यातीति॥३६॥

थूलं उरब्भं इह मारियाणं, उद्दिठ्ठभत्तं च पगप्पएत्ता ॥ तं लोणते
ल्लेण उवक्खडेत्ता, सपिप्पलीयं पगरंति मंसं ॥ ३७ ॥ तं भुंजमा
णा पिसितं पभूतं, ण उवलिप्पामो वयं रएणं ॥ इच्चेव माहंसु अ
णज्जधम्मं, अणारिया बाल रसेसु गिद्धा ॥ ३८ ॥

अर्थ—वली पण आर्द्रकुमार ते कुमतिना मतनी वात कहेछे. के,(थूलं के०) महो टी कायायें उपचित मांस शोणित युक्त एवो, (उरब्भं के०) उरणो तेनें (इह के०) आ शाक्यना शासननें विषे संघनी भक्तिनें अर्थें (मारियाणं के०) विनाशीनें मारीनें (उद्दिठ्ठभत्तंचपगप्पएत्ता के०) उद्दिष्ट भोजन कल्पीनें (तंलोणतेल्लेणउवक्खडेत्ता के०) ते मांसनें लूण, अनें तेल साथें पचावीनें, (सपिप्पलीयंपगरंतिमंसं के०) पिप्पली स

पश्यतांतरं । एकस्य क्षणिका तृप्तिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते" ॥ ३ ॥ तदेवं महादोषं मांसादन मिति मत्वा यद्विधेयं तद्दर्शयति । एतदेवंभूतं मांसादनाभिलापरूपं मनोंतःकरणं कुश लानिपुणामांसाशित्वविपाकवेदिनस्तन्निवृत्तिगुणाभिज्ञाश्च न कुर्वंति तदभिलापादात्म नोनिवर्त्तयंतीत्यर्थः । आस्तां तावद्भक्षणं वागप्येषा यथा मांसभक्षणेऽदोषइत्यादिका भारत्य भिहितोक्ता मिथ्या । तुशब्दान्मनोपि तदनुमत्यादौ न विधेयमिति तन्निवृत्तो चेहैवानुपमा श्लाघाऽमुत्र च स्वर्गापवर्गगमनमिति । तथाचोक्तं । "श्रुत्वा दुःखपरंपरामतिघृणां मांसाशिनां दुर्गतिं, ये कुर्वंति शुभोदयेन विरतिं मांसादनस्यादरात् । तद्दीर्घायुरदूषितं गदरुजा संभाव्य यास्यंति ते, मर्त्येषूद्भटभोगधर्ममतिषु स्वर्गापवर्गेषु चेत्यादि" ॥ ३९ ॥ न केवलं मांसादनमेव परिहार्यमन्यदपि मुमुक्षूणां परिहर्तव्यमिति दर्शयितुमाह । (सव्वेसिमित्यादि) सर्वेषां जीवानां प्राणार्थिनां न केवलं पंचेंद्रियाणामेवेति सर्वग्रहणं दयार्थतया दयानिमित्तं सावद्यमारंभं महानयं दोषइत्येवं मत्वा तत्परिवर्जयंतः साधवस्तच्छंकिनोदोषशंकिन ऋषयोमहामुनयोज्ञातपुत्रीयाः श्रीमन्महावीरवर्द्धमानशिष्याः उद्दिष्टं दानाय परिकल्पि तं यद्भक्तपानादिकं तत्परिवर्जयंति ॥ ४० ॥

भूयाभिसंकाए दुगंछमाणा, सव्वेसिपाणाण निहाय दंमं ॥ तम्हा
ण भुंजंति तहप्पगारं, एसोणुधम्मो इह संजयाणं ॥ ४१ ॥ निग्गं
थधम्मंमि इमं समाहिं, अस्सिंस सुठिच्चा अणिहे चरेज्जा ॥ बुद्धे
मुणी सीलगुणोववेए, अवत्थते पाउणती सिलोगं ॥ ४२ ॥

अर्थ—वली पण साधुनो आचार कहेछे. (भूयाभिसंकाएदुगंछमाणा के०) भूत जे प्राणी तेना मर्दननी शंकायें सावद्यानुष्ठाननें दुगंछता निंदता, तथा (सव्वेसिपाणाण निहायदंमं के०) सर्व प्राणीनो दंम एटले विनाश, तेनें निहाय एटले छांमीनें त्याग करीनें सम्यक् आचारें प्रवर्त्तता एवा साधु (तम्हाणभुंजंतितहप्पगारं के०) ते कारणें तथा प्रकारना एटले आधाकर्मादिक दोषें दूपित एवा ते आहारनें ण भुंजंति एटले न जमे, न भोगवे. (एसोणुधम्मोइहसंजयाणं के०) आ जगत्मांहे यतिनो धर्म, ते अणुधर्म, एटले श्री तीर्थंकरनी पछवाडे जाणवो. जेम श्री तीर्थंकरें निर्दोष आहार ग्रहणादिक धर्म आचस्यो, तेम तेनें अनुसारें साधु पण, एहिज धर्म आचरे. इत्यर्थः ॥ ४१ ॥ वली पण साधुनो आचार कहेछे. (निग्गंथधम्मंमिइमंसमाहिं के०) नथी जेनें विषे बाह्य अनें अभ्यंतर ग्रंथि एवो जे धर्म, तेने विषे ए पुर्वोक्त जे समाधि एटले सुजता आहारनुं लेवुं, (अस्सिंसुठिच्चाअणिहेचरेज्जा के०) इत्यादिकनें पामीनें सम्यक् अनुष्ठानरूप समाधिनें

नथी एवी असत्य वाणी पण बोले नहिं. किंबहुनाः वधारे शुं कहियें ॥ ३ए॥ हवे मांसादिक तो अनक्ष्य कहेवाय, त्यारें बीजो आहार साधुनें अनक्ष्य होय के नहीं ? त्यां कहेले के, बीजो पण सदोष आहार, साधुनें परिहरवो (सव्वेसिंजीवाणदयछयाए के०) स र्व जीव एकेंड्यिादिक तेनी दयानें अर्थें, दयानें निमत्तें (सावज्जदोसंपरिवज्जयंता के०) सावद्य जे आरंजादिक, तेनें महा दोषरूप जाणी, परिहरतां थकां (तस्संकिणोइसि णोनायपुत्ता के०) ते सावद्यना दोष थकी शंकाता एटले बीहिता एवा महाक्रुषीश्वर ज्ञात पुत्र श्रीमहावीर देव तेमना शिष्यो होय. ते (उद्दिठ्ठनत्तंपरिवज्जयंति के०) उद्दि ष्टजक्त एटले जे साधुनें देवानें अर्थेज कल्पेलो एवो आहार होय, तेनें परिहरे वर्जे. ए साधुनो आचार जाणवो ॥ ४० ॥

॥ दीपिका—ये बौद्धाअपि तथाप्रकारं मांसं जुंजते ते पापमजानंतोनिर्विवेकिनः सं तः सेवंते । यडुक्तं । "हिंसामूलममेध्यमास्पदमलं ध्यानस्य रौड्स्य य,द्बीनत्सं रुधिराबि लं कृमिगृहं डुर्गंधिपूयादिकं ॥ शुक्रासृक्प्रनवं नितांतमलिनं सद्भिः सदा निंदितं, कोजुंक्ते नरकाय राक्षससमोमांसं तदात्मडुहः ॥ १ ॥ तथा । मां स नक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमि हाद्म्यहं ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥ २ ॥ योऽत्ति यस्य च तन्मांसमुनयोः पश्यतांतरं ॥ एकस्य क्षणिका तृप्तिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते" ॥३॥ तदेवं दोषं मत्वा कुशला मांसानिलाषे मनोन कुर्वंति वागप्येषा न मांसनक्षणे दोषइत्यादिका उक्ता सती मिथ्या निवृत्तिस्तु महागुणाय । यडुक्तं । "श्रुत्वा डुःखपरंपरामतिघृणां मांसाशिनां डुर्गतिं, ये कुर्वं ति शुनोदयेन विरतिं मांसादनस्यादरात् ॥ तद्दीर्घायुरदूषितं तदरुजासंनाव्य यास्यंति ते, मर्त्येषूद्भटनोगधर्ममतिषु स्वर्गापवर्गेषु वा" इति ॥ ३ए ॥ सर्वेषां जीवानां दयार्था य सावद्यदोषं परिवर्जयंतः तद्छंकिनोदोषशंकिनः ऋषयोज्ञातपुत्रीयाः श्री वीरशिष्याउ द्दिष्टनक्तं परिवर्जयंति ॥ ४० ॥

॥ टीका—इत्येतच्च तेषां महतेऽनर्थायेति दर्शयति (जेयावीत्यादि) येचापि रसगौर वगृद्धाः शाक्योपदेशवर्त्तिनस्तथाप्रकारं स्थूलोरच्रंसंस्कृतं घृतलवणमरिचादिसंस्कृतं पि शितं जुंजतेऽश्नंति तेऽनार्याः पापं कल्मषमजानानिर्विवेकिनः सेवंते आददते । तथा चोक्तं । "हिंसामूलममेध्यमास्पदमलं ध्यानस्य रौड्स्य य,द्बीनत्सं रुधिराबिलं कृमिगृहं डुर्गं धिपूयादिकं ॥ शुक्रासृक्प्रनवं नितांतमलिनं सद्भिः सदा निंदितं, कोजुंक्ते नरकाय राक्ष ससमोमांसं तदात्मद्रुहः ॥ १ ॥ अपिच । मां स नक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहं । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥ २ ॥ तथा । योऽत्ति यस्य च तन्मांसमुनयोः

संसारांतरवर्त्यपीह लभते शं मुक्तवन्निर्भयः, संतोषात्पुरुषोमृतत्वमचिराद्यायात्सुरेंद्रा र्चित” इत्यादि ॥ ४२ ॥

सिणायगाणं तु डुवे सहस्से, जे नोयए णितिए माहणाणं ॥ ते पुन्नखंधे सुमहक्कणित्ता, नवंति देवा इति वेयवाउ ॥४३॥ सिणा यगाणं तु डुवे सहस्से, जे नोयए णितिए कुलालयाणं॥ से गछ ति लोलुवसंपगाढे, तिव्वाभितावी णरगाभिसेवी ॥ ४४ ॥

अर्थ—ए रीतें आर्द्रकुमार गोशालक तथा बौधमतिउनें परास्त करीनें आगल चाल्यो तेवा रें, वच्चें ब्राह्मण मल्या, ते ब्राह्मण बोल्या के, अहो आर्द्रकुमार! तें रूडूं कर्युं के, जे ए पूर्वो क्त बेहु मत वेदबाह्य हता, तेनुं तें निराकरण कर्युं, तो हवे ए जैनमत पण वेद बाह्यले. एवुं जाणीनें, तमारा सरखानें आश्रय करवा योग्य नथी केमके, तुं क्षत्री बो अनें क्षत्रीनें सर्व वर्णोत्तम एवा ब्रह्मणनेंज सेववा योग्यबे, परंतु शूद्र सेववा नहीं. ए कारण माटें वेदोक्त विधियें यज्ञादिकमार्गेनी तमारे सेवा करवी. इत्यादिक ते ब्राह्मणो पोतानो मार्ग देखाडेबे.(सिणायगाणंतुडुवेसहस्से के०)स्नातक एटले षट्कर्मने विषे निरत, अनें वेदना जाणनार, पोताना आचारनें विषे तत्पर, नित्य स्नातक, ब्रह्मचारी, एवा वे सहस्र(माहणाणं के०) ब्राह्मणनें(जेनोयएणितिए के०)जे पुरुष नित्य जमाडे, एटले तेनें मनोवांबित आहा र आपे, (तेपुन्नखंधेसुमहक्कणित्ता के०) ते पुरुष घणो महोटो पुण्यनो स्कंध उपार्ज न करीनें, (नवंतिदेवाइतिवेयवाउ के०) देवता थाय. एवुं अमारा वेदनुं वाक्यबे. एम जाणीनें ए वेदोक्त मार्ग आदरवो ॥४३॥ हवे आर्द्रकुमार उत्तर कहेबे के, अहो ब्राह्म णो! (सिणायगाणंतुडुवेसहस्से के०) स्नातकनां वे सहस्रनें (जेनोयएणितिएकुलालया णं के०) जे दातार नित्य जमाडे. ते स्नातक केवाबे तोके, कुलालग एटले मार्जार ते सर खा ब्राह्मण पण जाणवा, कारण के, ए पण सावद्याहार वांबता, सर्वकाल घर घरनें विषे भ्रमण करे एवा, एक निंद्य आजीविकाना करनार, ते कुपात्रनें दान देवाथी,(सेगछति लोलुवसंपगाढे के०)ते लोलपी ब्राह्मण सहित एवो दातापण गछति एटले डुर्गतियें जाय, डुर्गतिमां कया स्थानकें जाय ? तोके, (तिव्वाभितावीणरगाभिसेवी के०) तीव्रवेद नाना सहन करनार, एतावता तेत्रीश सागरोपम पर्यंत पूर्ण आयुष्यें ते बेहु जण नर कना स्थानकनें विषे नारकी थाय ॥ ४४ ॥

॥ दीपिका—एवं गोशालकमते बौद्धमते च निरस्ते द्विजातयः प्राहुः नो आर्द्रकुमार! शो भनं कृतं यदेते वेदबाह्ये द्वे अपि मते क्षिप्ते अथ जैनमतमपि वेदबाह्यं ततोनादरणयोग्यं

विषे स्थित एटले प्रवर्त्तमान एवो साधु अणिहे एटले मायारहित थको अथवा, स्नेहरहित थको, संयमानुष्ठाननें आचरे, एटले पाळे. (बुद्धमुणीसीलगुणोववेए के०) बुद्ध एटले तत्त्वनो जाण, मुणी एटले त्रिकालवेदी, त्रण कालनो जाण, सील एटले आचार ते उपशमादिक तथा गुण, एटले मूलोत्तर गुणरूप तेणें करी उपपेत एटले सहित, एवो साधु, (अच्चत्तेपाउणतीसिलोगं के०) अत्यर्थ एटले सर्वगुणसंपन्न ते, लोक एटलें आ लोकनें विषे, अनें लोकोत्तरनें विषे, संतोषकारक श्लाघानें पाउणत्ती एटले पामे॥४२॥

॥ दीपिका—नूतानां प्राणिनां हिंसानिशंकया सावद्यव्यापारं जुगुप्समानः परिहरन् सर्वेषां प्राणिनां दंमं निहाय त्यक्त्वा साधवस्तथाप्रकारमशुद्धाहारं न नुंजते तस्मादेषो नुधर्मः संयतानामिह जैनमते तीर्थंकराचरणादनुपश्चाच्चर्यतइत्यनुधर्मइति ॥ ४१ ॥ निर्ग्रंथधर्मे साधुमार्गे स्थितइमंपूर्वोक्तं समाधिं प्राप्तोऽस्मिन्समाधौ सुष्ठु स्थित्वाऽनिहोनि मायः सन् चरेत्संयमे बुद्धोज्ञाततत्वोमुनिः शीलेन क्रोधोपमेन गुणैश्च मूलोत्तरनूतैरुपेतो युक्तोत्यर्थं तां सर्वातिशायिनीं श्लाघां प्राप्नोति । यडुक्तं । " राजानं तृणतुल्यमेव मनुते श क्रेपि नैवादरो, वित्तोपार्जनरक्षणव्ययकृताः प्राप्नोति नो वेदनाः ॥ संसारांतरवर्त्यपीह ल नते शं मुक्तवन्निर्नयः, संतोषात्पुरुषोमृतत्वमचिराद्यायात्सुरेंद्रार्चित " इति ॥ ४२ ॥

॥ टीका—किंच । (नूयानिसंकाएइत्यादि) नूतानां जीवानां उपमर्द्दशंकया सावद्यम नुष्ठानं जुगुप्समानापरिहरंतस्तथा सर्वेषां प्राणिनां दंमयतीति दंमः समुपतापस्तं निहाय परित्यज्य सम्यगुत्थिताः सत्साधवोयतस्ततोन नुंजते तथाप्रकारमाहारमशुद्धजातीयमे षोनुधर्मइहास्मिन् प्रवचने संयतानां यतीनां तीर्थंकराचरणादनुपश्चाच्चर्यतइत्यनुना वि शेष्यते । यदि चाणुरिति स्तोकेनाप्यतिचारेण वा बाध्यते शिरीषपुष्पमिव सुकुमारइत्यतो ऽणुता विशेष्यतइति ॥ ४१ ॥ किंचान्यत् ॥ (णिग्गंथधम्ममित्यादि) नास्मिन्मौनींइ धर्मे बाह्याभ्यंतररूपोग्रंथोस्यास्तीति निर्ग्रंथः सचासौ धर्मश्च निर्ग्रंथधर्मः सच श्रुतचारित्रा ख्यः क्षांत्यादिकोवा सर्वज्ञोक्तस्तस्मिन्नेवंनूते धर्मे व्यवस्थितइमं पूर्वोक्तसमाधिमनुप्राप्तो ऽस्मिंश्चाशुद्धाहारपरिहाररूपे समाधौ सुष्ठु अतिशयेन स्थित्वाऽनिहोऽमायोऽथवा निहन्यत इति निहोन निहोऽनिहः परीषहैरपीडितो यदिवा स्निहबंधने स्निहइति स्नेहरूपबंधनर हितः संयममनुष्ठानं चरेत् तथा बुद्धोऽवगततत्वोमुनिः कालत्रयवेदी शीलेन क्रोधाद्युपशम रूपेण गुणैश्च मूलोत्तरगुणनूतैरुपेतोयुक्तइत्येवं गुणकलितोऽत्यर्थंतां सर्वगुणातिशायिनीं सर्व द्वंद्वोपरमरूपां संतोषात्मिकां श्लाघां प्रशंसां लोके लोकोत्तरेवाऽऽप्नोति। तथा चोक्तं । "राजा नं तृणतुल्यमेव मनुते शक्रेपि नैवादरो, वित्तोपार्जनरक्षणव्ययकृताः प्राप्नोति नो वेदनाः॥

अर्थ–वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (दयावरंधम्मडुगंछमाणा के०) जेमां दया प्रधा नछे एवा धर्मनें निंदता, (वहावहंधम्मपसंसमाणा के०) तथा हिंसारूप धर्मनी प्रशं सा करता, (असीलं के०) आचार रहित एवा, (एगंपि के०) एकनें पण (जेनो ययती के०) जे कोइ नृप राजा अथवा बीजो कोइ मूढमति धार्मिक पुरुष, पात्रनी बुद्धियें करी जमाडे, तो (णीयोणिसंजातिकुंउंसुरेहिं के०) ते नृप राजा, अथवा बीजो कोइ मूढमति पुरुष होय, ते निशा एटले सदैव कृष्णांधकार रात्रीसमान काल वर्त्तेछे जेमां एवी नरकनूमिनेंविषे नरकमांहे जाय. ए वचन सत्य करी जाणवुं. अनें तमें कह्युं जे देवता थाय, ते वात मृपाछे तेवा पुरुषनें असुरनें विषे पण गति न जा णवी, तो वैमानिक देवता क्यांथी थाय ! ॥ ४५ ॥ हवे आर्द्रकुमार ब्राह्मणोनो मत परास्त करीनें आगल चाल्यो, एटले एक दंमिया सांख्य मति मल्या, ते एम कहेछे के, अ हो आर्द्रकुमार ! तें रूडूं कीधुं के, जे ए ब्राह्मणो सर्व आरंननें विषे प्रवर्त्तता गृहस्थ छ ता, पोतामां गुरुपणुं मानता, एवा ए राक्स सरखा ब्राह्मणनुं निराकारण कर्युं? सांप्रत अमारा सिद्धांतसाथें तमारासिद्धांतनो कांइ नेद नथी, अमारो सिद्धांत पंचविंशति तत्व रूपछे. हवे ते पण कहुंछुं सांनल, हैयानेविषे धारण कर. (डुहउविधम्मंमिसमुठियामो के०)जे अमारो धर्म, अने तमारो धर्म, ए बेहु सरखाज जाणियें छयें. कारण के, तमारे पण जीवनें अस्तिनावें पुण्य, पाप, बंध, अनें मोक्नो सन्नावछे,अनें अमारे पण एमज छे. तमारे पण पांच महा व्रतछे, अनें अमारे पण अहिंसादिक पांच यमछे,तथा इंड्रिय अनें नोइंड्रियना नियमो तो आपण बेहुनें सरखाजछे तेमाटें बेहुधर्मनें विषे अमनें अने तमने प्रवर्त्ततां सम्यक् प्रकारज जाणवो. अनें(असिंसुठिच्चा के०) एहिज धर्मनें विषे रहिनें, (तहएसकालं के०) तथा अतीतकालें, वर्त्तमानकालें, अनें आगमिक कालें, जे पूर्वो क्त अंगीकार करेला धर्मना प्रतिपालनहार आपणे छयें. तेवा बीजा कोइ नथी.(आया रसीलेवुइएहनाणी के०) तथा आपणो आचार जे यम नियमलक्षण, ते प्रधान शील कह्योछे, परंतु आजीविकानुं कारण आपणनें कोइ पण नथी? तथा वली आपण बेहुनें ज्ञान, मोक्नुं अंग कह्युंछे. (णसंपरायंमिविसेसमछि के०)तथा कर्मं करीनें भ्रमण करेछे प्राणी जेमां ते संपराय कहियें, एवो संपराय जे, संसार, ते जेम तमारे नित्यछे, तेम अमारे पण नित्यजछे. तेमाटें ए सिद्धांतमां अमारे तमारे विशेष कांइ नथी ॥ ४६ ॥

॥ दीपिका–दयया वरं प्रधानं धर्मं जुगुप्समानोनिंदन् वधावहं हिंसाकरं धर्मं प्रशं सन्नेकमपि अशीलं निर्व्रतं षड्जीवोपमर्दनं योन्नोजयेत्किं पुनर्बहून् नृपोराजाऽन्योवा यः क श्चिन्मूढः सवराको निशेव नित्यांधकारत्वान्निशा नरकनूमिस्तां याति कुतस्तस्यासुरेष्वधम

तस्माद्ब्राह्मणसेवैव युक्तेत्याह। स्नातकानां षट्कर्मरतानां विप्राणां सहस्त्र्द्वयं ये नोजयं ति नित्यं ते पुण्यसंबंधं सुमहांतमुर्ज्य देवाः स्युरिति वेदवादः ॥ ४३ ॥ आर्द्रकमुनिरेत दूपयन्नाह। (सिणायेति)। स्नातकानां सहस्त्र्द्वयं ये नोजयंति। किंनूतानां कुलानि गृहाणि मांसार्थिनोयेऽटंति ते कुलाटामार्जाराः कुलाटाइव कुलाटास्तेषां सताद्दग्ब्राह्मण नोजनकोबहुवेदनासु गतिषु याति। किंनूतः लोलुपैरामिषगृद्धैः संप्रगाढोव्याप्तः तीव्रोऽस ह्योनितापोयस्य एवंनूतः सन्नरकानिसेवी स्यात् ॥ ४४ ॥

॥ टीका—तदेवमार्द्रककुमारं निराकृतगोशालकाजीवकबौद्धमतमनिसमीक्ष्य सांप्रतं द्विजातयः प्रोचुः। तद्यथा नो आर्द्रककुमार! शोननमकारि नवता यदेते वेदबाह्ये द्वे अ पि मते निरस्ते तत्सांप्रतमप्यार्हतं वेदबाह्यमेवातस्तदपि नाश्रयणार्हं नवद्विधानां तथा हि नवान् क्षत्रियवरः क्षत्रियाणां च सर्ववर्णोत्तमाब्राह्मणाएवोपास्यान शूद्राश्रतोयागादि विधिना ब्राह्मणसेवैव युक्तिमतीत्येतत्प्रतिपादनायाह। (सिणायगाणंतुइत्यादि) तुशब्दो विशेषणार्थः। षट्कर्मानिरतावेदाध्यापकाः शौचाचारपरतया नित्यं स्नायिनोब्रह्मचारि णः स्नातकास्तेषां सहस्त्र्द्वयं नित्यं ये नोजयेयुः कामिकाहारेण ते समुपार्जितपुण्य स्कंधाः संतोदेवाः स्वर्गनिवासिनोनवंतीत्येवंनूतोवेदवादइति ॥ ४३ ॥ अधुनार्द्रककुमा रएतद्दूषयितुमाह। (सिणायगाणंतुइत्यादि) स्नातकानां सहस्त्र्द्वयमपि नित्यं येनोज यंति। किंनूतानां कुलानि गृहाण्यामिषान्वेषणार्थिनोनित्यं येऽटंति तेकुलाटामार्जाराः कु लाटाइव कुलाटाब्राह्मणाः। यदिवा कुलानि क्षत्रियादिगृहाणि तानि नित्यं पिंमपातान्वेषि णां परतर्कुकाणामालयोयेषां ते कुलालयास्ते निंद्यजीविकोपगतानामेवंनूतानां योसहस्त्र द्वयं नोजयेत्सः सत्पात्रनिक्षिप्तदानोगच्छति बहुवेदनासु गतिषु। किंनूतः सन् लोलुपैरामि षपरैः गृद्धैरससातागौरवाद्युपपन्नैः जिह्वेंद्रियवशगैः संप्रगाढोव्याप्तोयदिवा किंनूते नरके याति लोलुपैरामिषगृध्नुनिरसुमद्भिव्याप्तोयोनरकस्तस्मिन्निति। किंनूतश्चासौ दाता नरका निसेवी नवति तदर्शयति। तीव्रोऽसह्योयोऽनितापः क्रकचपाटनकुंनीपाकतप्तत्रपुपानशा ल्मल्यालिंगनादिरूपः सविद्यते यस्यासौ तीव्रानितापीत्येवंनूतवेदनानितप्तस्त्रयस्त्रिंशत्सा गरोपमानि यावदप्रतिष्ठाननरकाधिवासी नवतीति ॥ ४४ ॥

दयावरं धम्मडुगंछमाणा, वहावहं धम्मपसंसमाणा ॥ एगं
पि जे नोययती असीलं, णियोणिसं जाति कुत सुरेहिं ॥ ४५ ॥
डहनवि धम्मं मिसमुठियामो, अस्सिं सुठिच्चा तह एसकालं ॥
आयारसीले बुइए हनाणी, ण संपरायंमि विसेसमत्थि ॥ ४६ ॥

अपहसितं वा कुर्यात् यत्किंचिद्दा दद्यात् तथा नास्थिजंतूनां शकटनरं मारयित्वा ब्राह्मणं नोजयेदित्येवमादिका देशना विद्वज्जनमनांसि न रंजयतीत्यतोऽत्यर्थमसमंजसमिव लक्ष्यते युष्मद्दर्शनमिति । तदेवमार्द्रककुमारं निराकृतब्राह्मणविवादं जगवदंतिकं गच्छंतं दृष्ट्वा एकदंमिनांतराले एवोचुस्तद्यथा नो आर्द्रककुमार! शोजनं कृतं जवता यदेते सर्वारंजप्रवृत्ताः गृहस्थाः शब्दादिविपयपरायणाः पिशिताशनेन राक्षसकल्पाद्विजानयोनिराकृतास्तत्सांप्रतमस्मत्सिद्धांतं शृणु श्रुत्वाचावधारय । तद्यथा सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतिः प्रकृतेर्महांस्ततोहंकारस्तस्माजणश्च पोडशकस्तस्मादपि पोडशकात्पंच तन्मात्राणि तेन्यः पंच नूतानि तथा चैतन्यं पुरुपस्य स्वरूपमित्येतत्त्वार्दतैरप्याश्रितमतः पंचविंशतितत्वपरिज्ञानादेव मोक्षावाप्तिरित्यतोऽस्मत्सिद्धांतएव श्रेयान्नापरइति ॥ ४५ ॥ तथा न युष्मत्सिद्धांतोतिदूरेण जिद्यतइत्येतद्दर्शयितुमाह । (इहर्दवीत्यादि) योयस्माद्धर्मोजवदीयश्चार्हतः सजनयरूपोपि कथंचित्समानस्तथाहि युष्माकमपि जीवास्तित्वे सति पुण्यपापबंधमोक्षसद्भावोन लोकायतिकानामिव तदजावे प्रवृत्तिर्नापि बौद्धानामिव नवोथारजूतस्यांतरात्मनएवाजावस्तथास्माकमपि पंच यमाअहिंसादयोजवतां च तएव पंचमहाव्रतरूपास्तथेंद्रियनोइंद्रियनियमोप्यावयोस्तुल्यएव तदेवमुजयस्मिन्नपि धर्मे वर्तमाने सम्यगुड्डानोच्छितायूयं वयंच तस्माद्धर्मे सुष्ठु स्थिताः पूर्वस्मिन् काले वर्तमाने एष्येच यथा गृहीतप्रतिज्ञानिर्वोढारोन पुनरन्ये यथाव्रतेश्वरयागविधानेन प्रव्रज्यां मुक्तवंतो मुंचंति मोक्षंति चेति तथाचारप्रधानं शीलमुक्तं यमनियमलक्षणं न फल्गुवल्ककुहकाजीवनरूपमथानंतरं ज्ञानंच मोक्षांगतयाजिहितं तच्च श्रुतज्ञानं केवलाख्यंच यथा स्वमावयोर्दर्शने प्रसिद्धं तथा संपर्ध्यंते स्वकर्मजिर्च्याम्यंते प्राणिनोयस्मिन्ससंपरायः संसारस्तस्मिंश्चावयोर्न विशेपोस्ति । तथाहि । यथा जवतां कारणे कार्यं नैकांतेनासडत्पद्यते अस्माकमपि तथैव इव्यात्मतया नित्यत्वं जवद्भिरप्याश्रितमेव तथोत्पादविनाशावपि युष्मदजिप्रेतावाविर्जावतिरोजावाश्रयादस्माकमपीति ॥ ४६ ॥

अवत्तरूवं पुरिसं महंतं, सणातणं अरकयमव्वयं च ॥ सवे
सु नूतेसु विसव्वतोसे, चंदोवताराहिं समत्तरूवे ॥ ४७ ॥ एवं
ण मिज्जंति ण संसरंती, ण माहणाखत्तिय वेसयस्सा ॥ कीडाय
पक्खीय सरीसिवाय नराय सव्वे तह देवलोए ॥ ४८ ॥

अर्थ—वली एक दंमिज कहेछे. (पुरिसं के०) पुरुप शब्दें जीव तेनें जे रीतें तमें जाणोछो, ते रीतें अमें पण जाणियें छैयें. (अवत्तरूवं के०) आत्मा अव्यक्तरूपछे, कर चरणादिक जे अवयव तेणें करी लख्योनजाय ते कारण माटें अव्यक्तरूपछे

देवेष्वपि प्राप्तिरिति । अथार्द्रकं मुनिमेकदंडिनः सांख्याः प्राहुः नो आर्द्रक! वरं कृतं यदेते सर्वारंनप्रवृत्तामांसाशिनोधिग्जातयोनिरस्ताः । इदानीमस्मत्सिद्धांतं शृणु ॥ ४५ ॥ योयमस्मद्धर्मः यश्च त्वदीयोजैनः सउनयरूपोपि कथंचित्तुल्यः । पंचयमाअस्माकं नवतां तएव महाव्रतानि पुण्यपापबंधमोक्षसद्भावोस्माकं नवतां च तदेवमुनयस्मिन्नपि धर्मे समुत्थितायूयं वयंच पूर्वस्मिन्काले वर्त्तमाने एष्येच गृहीतप्रतिज्ञानिर्वाहकाः आचारप्रधानं शीलमुदितं कथितं अथ ज्ञानं मोक्षांगमुक्तं ताभ्यां आवयोः संपराये संसारे च न विशेषोस्ति ॥ ४६ ॥

॥ टीका—(दयावरमित्यादि) दया प्राणिषु कृपा तया वरः प्रधानोयोधर्मस्तमेवं धर्मं जुगुप्समानोनिंदंस्तथा वधं प्राण्युपमर्दमावहतीति वधावहस्तं तथानूतं धर्मं प्रशंसन्स्तुवन् एकमप्यशीलं निर्व्रतं षड्जीवकायोपमर्देन योनोजयेत् किं पुनः प्रनूतान् नृपोराजन्योवा यः कश्चिन्मूढमतिर्धार्मिकं आत्मानं मन्यमानः सवराकोनिशेव नित्यांधकारत्वान्निशारकनूमिस्तां याति कुतस्तस्यासुरेष्वप्यधमदेवेष्वपि प्राप्तिरिति । तथा कर्मवशादसुमतां विचित्रजातिगमनाज्जातेरशाश्वतत्वमतोन जातिमदोविधेयइति । यदपि कैश्चिडुच्यते यथा ब्राह्मणाब्रह्मणोमुखाद्विनिर्गताबाहुन्यां क्षत्रियाऊरुन्यां वैश्याः पन्नयांशूद्राइत्येतदप्यप्रमाणत्वादति फल्गुप्रायं तदन्युपगमे च न विशेषोवर्णानां स्यादेकस्मात्प्रसूतेर्बुध्नशाखाप्रतिशाखाग्रनूतपनसोडुंबरादिफलवद्ब्रह्मणोवा मुखादेरवयवानां चातुर्वर्ण्यावाप्तिः स्यान्नचैतदिष्यते नवद्भिस्तथा यदि ब्राह्मणादीनां ब्रह्मणोमुखादेरुद्भवः सांप्रतं किं न जायते ? अथ युगादावेतदित्येवं सति दृष्टहानिरदृष्टकल्पना स्यादिति । तथा यदि कैश्चिदन्यधायि सर्वज्ञनिक्षेपावसरे तद्यथा सर्वज्ञरहितोतीतः कालः कालत्वाद्वर्तमानकालवदेवंच सत्येतदपि शक्यते वक्तुं यथा नातीतः कालोब्रह्ममुखादिविनिर्गतचातुर्वर्ण्यसमन्वितः कालत्वाद्वर्त्तमानकालवन्नवति च विशेषे पक्षीकृते सामान्यहेतुरित्यतः प्रतिज्ञार्थैकदेश सिद्धता नाशंकनीयेति। जातेश्चानित्यत्वं युष्मत्सिद्धांतएवाभिहितं। तद्यथा शृगालोवा एषजायते यः सपुरीषोदह्यतइत्यादिना । तथा सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥ त्र्यहेन शूद्रीनवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयीत्यादि लोके चावश्यंनावी जातिपातः । यतउक्तं । " कायिकैः कर्मणां दोषैर्याति स्थावरतां नरः ॥ वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरंत्यजातितां" ॥१॥ इत्यादिगुणैरप्येवंविधैर्न ब्राह्मणत्वं युज्यते। तद्यथा । "षट्शतानि नियुज्यंते पशूनां मध्यमेहनि । अश्वमेधस्य वचनान्यूनानि पशुनिस्त्रिनिरित्यादि वेदोक्तत्वान्नायं दोषइति चेन्नन्विदमभिहितमेव न हिंस्यात्सर्वनूतानीत्यतः पूर्वोत्तरविरोधस्तथा ।" आततायिनमायांतमपि वेदांतगं रणे। जिघांसंतं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा नवेत् ॥ तथा शूद्रं हत्वा प्राणायामं जपेत्

त्मतयाऽसौ स्थितः यथा तारास्वेकएव चंद्रः तथात्मापि सर्वत्र संबध्यतइति ॥४७॥ अ थार्द्रकमुनिराह । आत्मनोऽविकारित्वे आत्माऽद्वैते वा स्वीकृते उर्नगसुनगादिनेदेन जीवा न मीयेरन्न ज्ञायंते स्वकर्मप्रेरितानरकादिगतिषु न संसरंति सर्वव्यापित्वादेकत्वाद्वा तथा न ब्राह्मणान क्षत्रियान वैश्यान प्रेष्यान शूद्रानापि कीटपक्षिसरीसृपाश्च नवंति नरा श्च सर्वेपि देवलोकाश्चेत्येवं गतिनेदोन स्यात् ? ॥ ४८ ॥

॥ टीका—पुनरपि तथैवैकदंमिनः संसारिकजीवपदार्थसाम्यापादनायाहुः । (अवत्तरूव मित्यादि) पुरि शयनात्पुरुषोजीवस्तं यथा नवंतोन्युपगतवंतस्तथा वयमपि तमेव विशि नष्टि। अमूर्त्तत्वादव्यक्तं रूपमस्यासावव्यक्तरूपस्तथा करचरणशिरोग्रीवाद्यवयवतया स्वतो वस्थानात्तथा महांतं लोकव्यापिनं तथा सनातनं शाश्वतं इव्यार्थतया नित्यं नानाविधग तिसंनवेपि चैतन्यलक्षणात्मस्वरूपस्याप्रच्युतेस्तथा क्षयं केनचित्प्रदेशानां खंमशः कर्तुमश क्यत्वात्तथाऽव्ययमनंतेनापि कालेनैकस्यापि तत्प्रदेशस्य व्ययानावात्तथा सर्वेष्वपि नूतेषु कायाकारपरिणतेषु प्रतिशरीरं सर्वतः सामस्त्यान्निरंशत्वादसावात्मा नवति कइव ? चं इइव शशीव तारानिरश्विन्यादिनिर्नक्षत्रैर्यथा समस्तरूपः संपूर्णः संबंधमुपयात्येवम सावपि आत्मा प्रत्येकं शरीरैः सह संपूर्णः संबंधमुपयाति तदेवमेकदंमिनिर्दर्शन साम्यापादनेन सामवादपूर्वकं स्वदर्शनारोपणार्थमार्द्रककुमारोनिहितोयत्रैतानि संपूर्णा नि निरुपचरितानि पूर्वोक्तानि विशेषणानि धर्मसंसारयोर्विद्यंते सएव पक्षः सश्रुतिकेन स माश्रयितव्योनवति । एतानि चास्मदीयएव दर्शने यथोक्तानि संति नार्हतेऽतोनवताप्य स्मद्दर्शनमेवान्युपगंतव्यमिति ॥ ४७ ॥ तदेवमनिहितः सन्नार्द्रकुमारस्तडुत्तरदानायाह । (एवमित्यादि) यद्दिवा प्राक्तनश्लोकः (अवत्तरूवमित्यादि) कोवेदांतवाद्यात्माद्वैतमते न व्याख्यातव्यस्तथाहि ते एकमेवाव्यक्तं पुरुषमात्मानं महांतमाकाशमिव सर्वव्यापिनं स नातनमनंतमक्षयमव्ययं सर्वेष्वपि नूतेषु चेतनाचेतनेषु सर्वतः सर्वात्मतया सोऽव्यव स्थितइत्येवन्युपगतवंतोयथा सर्वास्वपि तारास्वेकएव चंद्रः संबंधमुपयात्येव चासा वपीत्यस्य चोत्तरदानायाह । (एवमित्यादि) एवमिति तथा नवतां दर्शने एकांते नैव नित्योविकार्यात्मान्युपगम्यते इत्येवं पदार्थाः सर्वेपि नित्यास्तथाचसति कुतोबंध मोक्षसद्भावोबंधानावाच्च न नारकतिर्यङ्नरामरलक्षणश्चतुर्गतिकः संसारोमोक्षानावा च्च निरर्थकं व्रतग्रहणं नवतां पंचरात्रोपदिष्टयमनियमप्रतिपत्तिश्चेत्येवं च यडुच्यते न वता यथाऽऽवयोस्तुल्योधर्मइति तदयुक्तमुक्तं । तथा संसारांतर्गतानांच पदार्थानां न सा म्यं तथाहि नवतां इव्यैकत्ववादिनां सर्वस्य प्रधानादनिन्नत्वात्कारणमेवास्ति कार्यंच कार णानिन्नत्वात्सर्वात्मना न विद्यते अस्माकंच इव्यपर्यायोनयवादिनां कारणे कार्यं इव्या

तथा (महंतं के०) महांत एटले समस्तलोकमां व्यापी रह्योबे, तथा (सणातणं के०) सनातन एटले शाश्वतो बे, यद्यपि नाना प्रकारनी गति करेबे तथापि, चैतन्य लक्षण जे आत्मस्वरूपबे ते क्यांहिं पण जतुं नथी, तथा (अरकय के०) अक्षय एटले कोइ पण प्रदेशनो खंम करी न शकीयें तथा (मव्वयंच के०) अव्यय एटले अनंतकालें कोइ एक प्रदेशनो पण व्यय न थाय एटले विच्छेद न थाय. किंबहुना. (सवेसुनूतेसुविसवतोसे के०) सर्वनूतनें विषे, शरीर शरीरप्रत्यें ए आत्मा एकज व्यापी रह्योबे;ते उपर दृष्टांत देखाडेबे. (चंदोवताराहिंसमत्तरूवे के०) जेम चंद्रमा अश्विन्यादिक नक्षत्रें करी, समस्तरूप थको संबंध पामे, तेम ए आत्मा, शरीर शरीर प्रत्यें संपूर्ण संबंध पामे. यडक्तं " एकएव हि नूतात्मा नूते नूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत् " इत्यादि ॥ ४७ ॥ हवे तेप्रत्यें आर्डकुमार कहेबे. (एवंणमिऊंतिणसंसरंती के०) ए रीतें जेम तमारे दर्शनें एकांतवादें आत्मा एक, नित्य, अविकारी, एम जे कहियें, ते संनवे नहीं, एम कहियें तो सर्व पदार्थ नित्य ठरेबे, तेम बतां तो बंध मोक्षनो पण सद्भाव क्यांथी थाय? अनें बंधनें अनावें चतुर्गतिक संसारनो पण अनाव, अनें मोक्षनो पण अनाव थाय. अनें मोक्षनें अनावें तमे जे यम नियमादिक व्रतनुं ग्रहण कहो बो ते पण निरर्थक थशे, ए कारण माटें आत्मा सर्व व्यापी एकजबे. ए जे तमारुं बोलवुंबे ते अयुक्तबे, एम कहेतां तो नरक, तिर्यंच, मनुष्य, अनें देवता, तथा बाल, कुमार, सुनग, डुर्नग, धनाढ्य,दरिद्री, इत्यादिक नेदें जूदा जूदा पदार्थो न जाणियें ? तथा पोताना करेला कर्में करी प्रेर्या जीव, नाना प्रकारनी गतिनें विषे परिभ्रमण पण न करे? (नमाहणाखत्तियवेसयस्साकीडायपरकीयसरीसिवायनरायसव्वेतहदेवलोए के०)तथा आत्मानें सर्वव्यापक पणुंज कहेवा थकी एकत्व नावेंज आत्मा थयो, तेवारें ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य, अनें शूद्र, तथा कीटक, पक्षी, तथा सरीसिव एटले सर्प्प; तथा नर एटले मनुष्य, तथा सर्व देवलोक इत्यादिक, नाना प्रकारनी गतिना गामी जीव न होय? ए कारण माटें आत्मा सर्व व्यापक नथी, तथा आत्मा एक पण नथी, ते माटें तमारो आगम, सर्वज्ञनाषित नथी, अनें सर्वज्ञनाषित विना याथातथ्य न होय ॥ ४८ ॥

॥दीपिका–नवंतः पुरुषजीवं स्वीकृतवंतस्तथा वयमपि। किंनूतं? अव्यक्तरूपं महांतं व्यापकं सनातनं नित्यं अक्षतं प्रदेशानां खंमशः कर्तुमशक्यत्वात् अव्ययं अनंतकालेनापि एकप्रदेशस्यापि व्ययानावात्। तथा सर्वेषु नूतेषु शरीरवत्सु प्रतिशरीरं सर्वतः सामस्त्यादसावात्मा नवति। यथा चंद्रस्तारानिः संपूर्णः समस्तरूपः संबध्यते एवं जीवोपि शरीरैः संपूर्णः संबध्यते अयमेव श्लोकोऽद्वैतवादिवेदांतिमते व्याख्येयः। न वरं सर्वनूतेषु सर्वतः सर्वा

ग्भागपरभागरहितेऽनाद्यनंतइत्यर्थः ॥४९॥ पूर्णेन ज्ञानेन केवलेन समाधियुक्तालोकं चतुर्दशरज्जुमितं ज्ञात्वा इह शासने समस्तं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं कथयंति ते आत्मना तीर्णाः संसारसागरं तारयंति च परं सदुपदेशादिति ॥ ५० ॥

॥ टीका–तदेवं व्यवस्थिते युष्मदागमोयथार्थाभिधायी न भवत्यसर्वज्ञप्रणीतत्वादसर्वज्ञप्रणीतत्वं चैकांतपक्षसमाश्रयणादित्येवमसर्वज्ञस्य मार्गोद्भावने दोषमाविर्भावयन्नाह । (लोयमित्यादि) लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं चराचरं वा लोकमज्ञात्वा केवलेन दिव्यज्ञानावभासेनेहास्मिन् जगति ये तीर्थिकाअजानानाअविद्वांसोधर्मं दुर्गतिगमनमार्गस्यार्गलाभूतं कथयंति प्रतिपादयंति ते स्वतोनष्टा अपरानपि नो त्रायंति क्व? घोरे भयानके संसारसागरे (अणोपारेत्ति) अवार्ग्भागपरभागवर्जितेनाद्यनंतइत्येवंभूते संसारार्णवे आत्मानं प्रक्षिपंतीति यावत् ॥ ४९ ॥ सांप्रतं सम्यक्ज्ञानवतामुपदेष्टॄणां गुणानाविर्भावयन्नाह । (लोयमित्यादि) लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं केवला लोकं न केवलिनोविविधमनेकप्रकारं जानंति विदंतीहास्मिन् जगति प्रकर्षेण जानाति प्रज्ञः पुण्यहेतुत्वात् पुण्यं तेन तथाभूतेन ज्ञानेन समाधिना च युक्ताः समस्तं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं येतु परहितैषिणः कथयंति प्रतिपादयंति ते महापुरुषास्ततः संसारसागरं तीर्णाः परंच तारयंति सदुपदेशदानत इति केवलिनोलोकं जानंतीत्युक्ते यत्पुनर्ज्ञानेनेत्युक्तं तद्बौद्धमतोद्भेदेन ज्ञानाधारआत्मा अस्तीति प्रतिपादनार्थमिति । एतदुक्तं भवति यथाऽऽदेशिकः सम्यक्मार्गज्ञआत्मानं परं च तदुपदेशवर्तिनं महाकांताराद्विवक्षितदेशप्रापणेन निस्तारयत्येवं केवलिनोप्यात्मानं परं च संसारकांताराान्निस्तारयंतीति ॥५०॥

जे गरहियं ठाणमिहावसंति, जेयावि लोए चरणोववेया ॥ उदा
हडं तं तु समं मईए, अहाउसो विप्परियासमेव ॥ ५१ ॥ सं
वच्छरेणाविय एगमेगं,बाणेण मारेउ महागयं तु ॥ सेसाणजीवा
णदयठयाए, वासं वयं वित्ति पकप्पयामो ॥ ५२ ॥

अर्थ– हवे वली मिथ्यावादीनी केवी प्ररूपणा होय ! ते आर्द्रकुमार कहेछे. (जे के०) जे कोइ संसारमांहे वर्तता अशुभ कर्मना करनार, (गरहियं के०) गर्हित एटले निंदित, निर्विवेकीयें आचरण करेलुं (ठाणमिहावसंति के०) एवुं क्रिया अनुष्ठानरूप जे स्थानक, तेनुं इह एटले आ जगत् मांहे सेवन करे, आजीविकानें कारणे तेनो आश्रय करे, (जेयाविलोएचरणोववेया के०) तथा जे वली रूडा उपदेशना देनारा, लोक मांहे विरति परिणामरूप चारित्रें करी सहितछे. (उदाहडंतंतुसमंमईए के०)

त्मतया विद्यते न पर्यायात्मकतया अपिचास्माकमुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमेव सदित्युच्यते जवतांतु ध्रौव्यं युक्तमेव सदिति । यावप्याविर्नीवतिरोजावौ जवतोऽज्येते तावपि नोत्पाद विनाशावंतरेण जवितुमुत्सहेते तदेवमैहिकामुष्मिकचिंतायामावयोर्न कथंचित्साम्यं किं च? सर्वव्यापित्वे सर्वात्मनामविकारित्वे चात्मा हैते चाज्युपगम्यमाने नारकतिर्यङ्नरा मरजेदेन बालकुमारकसुजगडर्जगाढयदरिड्रादिजेदेनवा न मीयेरन्न परिछेद्येरन् नापि स्व कर्मचोदितानानागतिषु संसरंति सर्वव्यापित्वादेकत्वाच्च तथा न ब्राह्मणान क्षत्रियान वै श्यान प्रेष्यान शूड्रा नापि कीटपक्षिसरीसृपाश्च जवेयुस्तथा नराश्च सर्वेपि देवलोकाश्चेत्ये वं नानागतिजेदेनोजिद्येरन्नतोन सर्वव्यापी आत्मा नाप्यात्मा हैतवादोप्यायात्यतः प्रत्ये कं सुखडुःखानुजवः समुपलज्यते तथा शरीरत्वक्पर्यंतमात्रएवात्मा तत्रैव तद्गुणविज्ञा नोपलब्धेरिति स्थितं ॥ ४८ ॥

लोयं अयाणित्ति ह केवलेणं, कहंति जे धम्ममजाणमाणा॥णा
संति अप्पाणपरं च णहा, संसारघोरं मिअणोरपारे ॥ ४९ ॥
लोयं विजाणंति ह केवलेणं, पुन्नेण नाणेण समाहिजुत्ता॥धम्मं
समत्तं च कहंति जेउ, तारंति अप्पाणपरं च तिन्ना ॥ ५० ॥

अर्थ– वली आर्द्रकुमार कहेबे के, (लोयं के०) ए लोक जें चौदरज्ज्वावात्मक, तेनें (अयाणित्तिहकेवलेणं के०) केवलज्ञानें करीनें न जाणे, एवा आ जगत् मांहें (कहं तीजेधम्ममजाणमाणा के०) जे दर्शनीउ अजाणता थका धर्म कहेबे. (णासंति अप्पाणपरंचणहा के०) ते पोताना आत्मानें ज्रष्ट करता थका बीजानें पण ज्रष्ट क रेबे. किंबहुना. (संसारघोरंमिअणोरपारे के०) ते घोर एटले रौड्र, अपारावार, एवो जे संसार ते मांहे पोतें पण पडे, अनें बीजानें पण पाडे ॥ ४९ ॥ हवे आर्द्रकुमार, सम्यक्ज्ञानवंत धर्मना कहेनार, एवा पुरुषोना गुण कहेबे. (लोयंविजाणंतिहकेवलेणं के०) चौद रज्ज्वात्मक लोक, तेनें केवलज्ञानें करी केवली, नानाप्रकारें जाणे. (पुन्ने णनाणेणसमाहिजुत्ता के०) तथा संपूर्ण ज्ञानें करी, समाधिसहित थका, (धम्मंसम त्तंचकहंतिजेउ के०) संपूर्ण श्रुतचारित्ररूप धर्म, परना हितनें अर्थें जे कहे. (तारं तिअप्पाणपरंचतिन्ना के०) ते पोतें पण संसार समुड्र थकी तरे, अनें बीजानें पण तारे. एवो जे जिनेंड्र मार्ग, केवलीजाषित, ते सत्य जाणवो ॥ ५० ॥

॥ दीपिका–लोकं चराचरमज्ञात्वा केवलेन दिव्यज्ञानेन इह जगति ये कथयंति । ध र्ममजानानाः ते स्वयं नष्टाः आत्मना परं च नाशयंति क? घोरे संसारे अणोरपारे अर्वा

त्यासेवंति जीविकाहेतुमाश्रयंति तथाच ये सडुपदेशवर्तिनोलोकेस्मिन् चरणेन विरतिप रिणामरूपेणोपेताः समन्विताास्तेषामुन्नयेषामपि यदनुष्ठानं शोजनाशोजनस्वरूपमपि स तु तदसर्वज्ञैरवाग्दर्शिन्तिः समं सदृशं तुल्यमुदाह्हतं उपन्यस्तं स्वमत्या स्वान्निप्रायेण न पुन र्यथावस्थितपदार्थनिरूपणेनाथवाऽऽयुष्मन् हे एकदंमिन्! विपर्यासमेव विपर्ययमेवो दाहरेदसर्वज्ञोयदशोजनं तन्नोजनत्वेनेतरत्त्वितरथेति यदिवा विपर्यासइति मत्तोन्मत्तप्र लापवदित्युक्तं न्नवतीति ॥ ५१ ॥ तदेवमेकदंमिनोनिराकृत्यार्द्दककुमारोयावद्भगवदंतिकं व्रजति तावद्धस्तितापसाः परिवृत्य तस्थुरिदं च प्रोचुरित्याह । (संवच्चरेणइत्यादि) ह स्तिनं व्यापाद्यात्मनोवृत्तिं कल्पयंतीति हस्तितापसास्तेषां मध्ये कश्चिद्वृद्धतमएतडुवाच तद्यथा न्नो आर्द्दककुमार! सश्रुतिकेन सदाल्पबहुत्वमालोचनीयं तत्र ये अमी तापसाः कंदमूलफलाशिनस्ते बहूनां सत्त्वानां स्थावराणां तदाश्रितानां वोडुंबरादिषु जंगमानामु पघाते वर्त्तंते येपि च न्नैक्षयेणात्मानं वर्तयंति तेप्याशंसादोषदूषिताइतश्चेतश्चाटयमानाः पि पीलिकादिजंतूनां उपघाते वर्तंते वयंतु संवत्सरेणावि अपिशब्दात् षण्मासेन चैकैकं हस्ति नं महाकायं बाणप्रहारेण व्यापाद्य शेषसत्वानां दयार्थमात्मनोवृत्तिं वर्त्तनं तदामिषेण वर्षमेकं यावत्कल्पयामस्तदेवं वयमल्पसत्वोपघातेन प्रन्नूततरसत्वानां रक्षां कुर्मइति॥ ५२॥

संवच्छरेणाविय एगमेगं, पाणं हणंता अणियत्तदोसा ॥ सेसा
णजीवाणवहेलणाय, सियाय थोवं गिहिणोवि तम्हा ॥ ५३ ॥
संवच्छरेणाविय एगमेगं, पाणं हणंता समणे व्वएसु ॥ आया
हिए तं पुरिसे अणज्जे, ण तारिसे केवलिणो न्नवंति ॥५४॥ बुद्ध
स्स आणाए इमं समाहिं, अस्सिं सुठिच्चा तिविहेण ताई ॥तरिउं
समुद्दं च महान्नवोघं, आयाणवंतं समुदाहरेज्जा त्तिबेमि ॥५५॥
इति अद्दइज्जणाम उठमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—हवे आर्द्दकुमार कहेछे के, अहो हस्तितापसो! तमें (संवच्छरेणावियएगमेगंपा णंहणंताअणियत्तदोसा के०) वर्ष वर्ष प्रत्यें, तथा ठ मासप्रत्यें तमे एकेक महोटो जीव हणता थका दोषथकी, निवर्त्त्या एम कहेवाउंज नहीं. (सेसाणजीवाणवहेलणाय के०) कारणके, घणा जीवनें न हणता अनें वर्षमां,तथा छमासमां एकजीवनें हणता एवा तमो नें पंचेंद्रियमहाकाय जीवना वधनो आशंसा दोष पण लागेछे.अनें साधु तो, सूर्य किरणे प्रकाशित मार्गनेंविषे जूसर मात्र दृष्टि शोधता, इर्यासमितें समितावंत छता, बेंतालीश दोष रहित आहारनी गवेषणा करता,आहारना लान्नें, अथवा अलान्नें,समवृत्ति वाला

ए बेहुनो अनुष्ठान तमारी मतियें सरखो कहेवो. (अहाउसोविप्परियासमेव के०)अहो आयुष्मन् एक दंमियाउ! तेथी तेवुं कहेनारानें विपर्यास एटले विपरीत मतिवाला जाणवा.अनें ए प्रमाणे कहेनारनुं वचन उन्मत्त प्रलाप समान जाणियें बैयें. साचुं, अनें जूतुं ए बे धर्म,सरखाज केम होय? ॥५१॥ ए रीतें एकदंमियाना मतनुं निराकरण करीनें जेटले स्वामीना समवसरण नणी आर्द्रकुमार चाल्या,एटले अंतरालें हस्तितापस आवीनें बोल्या के, अहो आर्द्रकुमार! सश्रुतिक पुरुषनें अल्पबहुत्व आलोचवो जोइयें. शामाटें ? तेनुं कारण कहुं ते तुं सांजल. के जे बीजा तापस, कंद, मूल, फलना नक्षण करनार,ते घणा एक स्थावर जीवोनो विनाश करें, तथा ते स्थावरनें आश्रित जे जंगम जीव होय, तेनो पण विनाश करे,तथा जे निक्षा मागीनें पोतानी आजीविका करेडे ते पण,आशंसादोपें करी दूषितडे,कारण के जिहां तिहां परिच्रमण करतां कीडी,मंकोडी प्रमुख अनेक जीवनें डुहवेडे अनें अमेंतो,(संवच्छरेणावियएगमेगं के०) वर्ष वर्ष दिवसें,तथा अपिशब्दें करी ब मासें एकज, (बाणेणमारेउमहागयंतु के०) महाकाय एटले महोटी कायावालो एवो जे हस्ती तेनें बाणनें प्रहारें विनाशीनें, (सेसाणजीवाणदयठयाए के०) शेप बीजा जीवोनी दयानें अर्थें, मात्र ते एकज हस्तीना मांसें करीनें, (वासंवयंवित्तिपकप्पयामो के०) वर्ष दिवस सुधी अमें अमारी आजीविका चलावियें बैयें. ए रीतें थोडा जीवनो उपघात करी, घणा जीवोनी अमें रक्षा करियें बैयें. ए माटें विशेपें करी, अमारो मार्ग बीजा सर्वमार्गथकी श्रेष्ठज जाणवो ॥ ५२ ॥

॥दीपिका–ये गर्हितं निंद्यनिर्विवेकिजनाचरितं स्थानं इह जगत्याश्रयंति ये चापि लोके चरणोपेतं संयमरूपं स्थानं सेवंते तद्द्वयमपि यैरसर्वज्ञैः समं तुल्यमेवोदाहृतं कथितं स्वमत्या स्वाभिप्रायेण। अथायुष्मन् हे सांख्य! विपर्यासइति तन्मत्तोन्मत्तप्रलापवदिति एवमेकदंमिनोनिरस्यार्द्रमुनिर्भगवत्समीपे याति । तावता हस्तितापसास्तमेवं प्रोचुः ॥५१ ॥ नो आर्द्रक! ये तापसाः कंदमूलफलाशिनस्ते बहूनां स्थावराणां तदाश्रितत्रसानांच घातकाः ये च निक्षां सेवंते तेप्याशंसादोषदूपिताः च्रमंतश्च पिपीलिकादिजंतुघातकाः वयं तु संवत्सरेणाप्येकं महागजं बाणेन व्यापाद्य शेषाणां जीवानां दयार्थं आत्मनोवृत्तिं जीविकां तन्मांसेन वर्षं यावत्कल्पयामः कुर्मः ततोवयं बहुजीवरक्षकाः ॥ ५२ ॥

॥ टीका–पुनरप्यार्द्रककुमारएवाह । (जेगरहियमित्यादि) असर्वज्ञप्ररूपणमेवंनूतं नवति । तद्यथा ये केचित्संसारांतर्वर्तिनोऽशुनकर्मणोपेताः समन्वितास्तद्विपाकसहायागर्हितं निंदितं जुगुप्सितं निर्विवेकिजनाचरितं स्थानं पदं कर्मानुष्ठानरूपमिहास्मिन् जग

वधे न लग्नाः तस्मात्स्यादेवं स्तोकं स्वल्पं यस्माद्घ्नंति ततस्तेपि निर्दोषाः॥५३॥ श्रमणव्रतेषु स्थिताअपि संवत्सरेणाप्येकैकं जंतुं येघ्नंति येच उपदिशंति तेऽनार्या आत्महिताः पुरुषाः न तादृशाः केवलिनोनवंति॥५४॥ एवं हस्तितापसान्निरस्याईककुमारं नगवदंतिकं व्रजंतं दृष्ट्वाऽभिनवगृहीतो वनहस्ती चिंतयतिस्म। यद्यहं बंधनमुक्तः स्यां तदाईककुमारं प्रतिबुद्धं तस्करपंचशतोपेतं तथा प्रतिबोधितानेकवादिगणसमन्वितं गत्वा वंदेयो वदेवं हस्तिना चिंतितं तावता तस्य बंधनानि त्रुटितानि आर्द्रमुनिसंमुखं त्वरया चलितः करी ततोलोकैः पूत्कृतं हा हतोयं मुनिरिति हस्ती च ससंभ्रमं मुनिपार्श्वमागत्य त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य दंताग्रस्पृष्टनूमिः साधुं नत्वा वनं ययौ ततः श्रेणिकनृपः सपौरलोकस्तं मुनिं सप्रनावं नत्वा प्रोवाच।नगवन्नाश्चर्यमिदं यदयं करी बंधनान्मुक्तः ततोमुनिराह। हे नृप! नैतदाश्चर्यं यत्करी मुक्तोबंधनात्। यत्तु स्नेहपाशमोचनं तद्दुष्करं तच्च प्रागुक्तं निर्युक्तिकृता। यथा। "न डुक्करं वारणपासमोयणं,गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं॥ जहाउच त्तावलिएण तंतुणा, तं डुक्करं मेपडिहाइ मोयणं॥१॥ अस्यार्थः प्रागध्ययनप्रारंने प्रोक्तः। एवमाईकुमारोनृपं प्रतिबोध्य श्रीवीरांतिकं गत्वा नगवंतं नक्तिनूतआसीनः। नगवानपि तानि पंचापि शतानि प्रव्राज्य तव शिष्यत्वेन ददौ॥ अथाध्ययनोपसंहारमाह। (बुद्धस्सइत्यादि) बुद्धस्य तत्वज्ञस्य श्रीवीरस्याज्ञया इमां समाधिं धर्मावाप्तिं प्राप्यास्मिन्समाधौ सुष्ठुस्थित्वा मनोवाक्कायैस्त्रायी रक्षकस्तीर्त्वाऽतिक्रम्य समुद्रमिव महानवौघं। आदानं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपं विद्यते यस्य सआदानवान् धर्मं परहितैषी उदाहरेत्कथयेत्। इति ब्रवीमीति पूर्ववत्॥ ५५॥ इत्याईकीयाध्ययनमिदं षष्ठं समाप्तम्॥

॥ टीका–सांप्रतमेतदेवाईककुमारोहस्तितापसमतं दूषयितुमाह। (संवछरेणइत्यादि) संवत्सरेणैकैकं प्राणिनं घ्नतोपि प्राणातिपातादनिवृत्तदोषास्ते नवंत्याशंसादोषश्च नवतां पंचेंद्रियमहाकायसत्ववधपरायणानामतिडुष्टोनवति साधूनां तु सूर्यरश्मिप्रकाशितवीथिषु युगमात्रदृष्ट्या गछतामीर्यासमितिसमितानां द्विचत्वारिंशद्दोषरहितमाहारमन्वेषयतां लानालानसमवृत्तीनां कुतस्त्यआशंसादोषः पिपीलिकादिसत्वोपघातोवेत्यर्थः स्तोकसत्वोपघातेनैवंनूतेन दोषानावोनवतान्युपगम्यते तथाच सति गृहस्थाअपि स्वारंनदेशवर्तिनएव प्राणिनोघ्नंतीति शेषाणांच जंतूनां क्षेत्रकालव्यवहितानां नवदनिप्रायेण वधेन प्रवृत्तायतएवं तस्मात्कारणात्स्यादेवं स्तोकमिति स्वल्पं यस्मात् घ्नंति ततस्तेपि दोषरहिताइति॥ ५३॥ सांप्रतमाईककुमारोहस्तितापसान्दूषयित्वा तडुपदेष्टारं दूषयितुमाह। (संवछरेणेत्यादि) श्रमणानां यतीनां व्रतानि श्रमणव्रतानि तेष्वपि व्यवस्थिताः संतएकैकं संवत्सरेणापि ये घ्नंति ये चोपदिशंति तेऽनार्या असत्कर्मानुष्ठायित्वात्तथा आ

होय; तेनें कयो आशंसा दोष ? अनें पिपीलिकानो घात पण केम थाय? अनें तमो एवा म होटा जीवनो उपघात करीनें पण पोतानें निर्दोष मानोबो, ते जो एवी रीतें निर्दोष पणुं थतुं होय तो, आपणी आजीविकानें निमित्तें आरंजनें विषे प्रवर्त्तता (सियायथोवंगिहि णोवितम्हा के०) कदाचित् पोतानुं क्षेत्र टाली अन्य जीवोनो उपघात अण करतां गृहस्थ पण तमारी पेरें थोडा जीव हणतां, घणा जीव पालता थकां तमारा सरखा निर्दोषज जाणवा. एम रखुं ॥५३॥ वली आर्द्रकुमार कहेबेके, (संवछरेणावियएगमेगंपाणंहणंता समणेव्वएसु के०) अहो हस्तितापसो! जे तमारा दर्शनीं, श्रमणना व्रतनें विषे प्रवर्त्तता बता संवत्सर संवत्सर प्रत्यें तथा बमास प्रत्यें एकेक जीव हणे, अनें वली एहिज धर्मनो उपदेश आपे, (आयाहिएतंपुरिसेअणज्जे के०) ते अनार्य अनाचारी पोतानें तथा परनें अहितना करनार जाणवा केम के, (णतारिसेकेवलिणोजवंति के०) ते पुरुष सादृशकेवली न होय? ते अशुद्धमार्गना प्रवर्त्तक अनें सत्यमार्गना द्वेषी जाणवा जे कारणे ते वर्षवर्ष प्रत्यें एकेक जीवनो विनाश करे, तेनुं मांस वर्ष वर्ष दिवस सुधी राखे तेमांहे अनेक असंख्यात बीजा त्रस जीव उपजे, तेथी तेनें पचावतां ते जीवोनो विनाश थाय. ए कारण माटें घणा जीवोनो विनाश करतां पण एम कहे के, अमें थोडा जीवोनो विनाश करियें बैयें, ते माटें तेमिथ्यावादी जाणवा. तेनुं वचन अमें प्रमाण नथी करता. इत्यादिक वचन कही अन्य दर्शनीनें प्रतिबोधि, श्री महावीर देवनें समवसरणें जइ, तीर्थंकरने वांदीनें, आर्द्रकुमार, आज्ञानो आराधक थयो ॥ ५४ ॥ हवे अध्ययन परिसमाप्ति जणी कहेबे. (बुद्धस्सआणाएइमंसमाहिं के०) बुद्ध एटले तत्वना जाण, एवा श्री महावीर देव, तेनी आज्ञायें आ समाधि, धर्मप्राप्ति लक्षण लहीने, (अस्सिंसुठि च्चातिविहेणताई के०) ए समाधिने विषे प्रवर्त्ततो त्रिविध त्रिविध प्रकारें ब कायनो रक्षपाल एवो साधु, (तरिउंसमुद्दंचमहाजवोघं के०) जयंकर संसार समुद्र तरीनें (आयाणवंतंसमुदाहरेज्जा के०) आदानवंत एटले सम्यक् ज्ञान, दर्शन, अने चारित्र सहित थको, एम आर्द्रकुमारनी पेरें यथावस्थित प्ररूपणायें करी परदर्शनीनो निराकरण करीनें मोक्षनो मार्ग प्रगट करे, ते साधु जाणवो. त्तिबेमिनी व्याख्या, पूर्ववत् जाणवी ॥ ५५ ॥ ए अद्दइज्जनामें बठा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—अथार्द्रकुमारः प्राह ॥ संवत्सरेणाप्येकैकं प्राणिनं घ्नंतं प्राणातिपाताद‌निवृत्तत्वान्निवृत्तदोषास्ते स्युः साधूनां तु सूर्यप्रकाशिते मार्गे युगमात्रदृष्ट्या ईर्यासमित्या गबतां निर्दोषाहारान्वेषिणां समचित्तानां क आशंसादोषः? क कीटिकादिघातोवेत्यर्थः। स्तोकजीवघाते च दोषाजावस्तदा गृहस्थाअपि स्वारंजदेशस्थान् जीवान् घ्नंति शेषाणां च जीवानां

ते सम्यक्ज्ञानेनतु यथावस्थितवस्तुप्ररूपणतः समस्तप्रावाडुकवादिनिराकरणेनापरेषां यथावस्थितमोक्षमार्गमाविर्भावयतीति सम्यक्चारित्रेणतु समस्तभूतग्रामहितैषया निरुद्धाश्रवद्वारः सन् तपोविशेषाच्चानेकभवोपार्जितं कर्म निर्जरयति स्वतोन्येषां चैवं प्रकारमेवं धर्ममुपाहरे द्व्याग्रणीयादित्यर्थः । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति नयाश्च प्राग्वदेव वाच्या वक्ष्यंते चोत्तरत्र ॥ ५५ ॥ समाप्तं चेदमार्द्रकीयाख्यं षष्ठमध्ययनमिति ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तमाध्ययन प्रारंभः ॥

छठा अध्ययनमां स्वसमय, परसमय, प्ररूपणायें करी, प्रायः समस्त सुयगडांग सूत्रनें विषे साधुना आचारनी प्ररूपणा करी, हवे आ सातमा अध्ययनमां श्रावकनो आचार कहे छे,अथवा छठा अध्ययनमां परतीर्थिकना वादनुं निराकरण कह्युं, अने हवे आ सातमा अध्ययनमां स्वतीर्थिक साथें वाद कहेशे, ए संबंधें आव्युं जे सातमुं अध्ययन तेने कहेछे.

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था रिद्धि
त्थीत समिद्धे वस्तउ जाव पडिरूवे तस्सणं रायगिहस्स नयर
स्स वहिया उत्तरपुरछिमे दिसीभाए एछणं नालंदानामं वाहि
रिया होछा अणेगभवणस्सयसन्निविठा जाव पडिरूवा ॥ १ ॥

अर्थ-(तेणंकालेणं के०) ते काळनें विषे (तेणंसमएणं के०) ते समयनें विषे, (रायगिहेनामंनयरेहोत्था के०) राजगृह नामा नगर हतुं, ते राजगृहनामा नगर कहेवुं हतुं ? तोके, (रिद्धि के०) भवनादिकें करी सहित, (त्थीत के०) स्फित निश्चल भय रहित, (समिद्धे के०) धन धान्यादिकें करी समृद्धिमान् एटले सहित, (वस्तउजावपडिरूवे के०) यावत् प्रतिरूप एटले स्वर्गनुं प्रतिरूप एनुं वर्णन उववाइ उपांगनी पेठें जाणवुं. यद्यपि ते राजगृह नगर, हमणां पण वर्त्तेछे, तथा आगमिक कालें पण हशे, परंतु सूत्रमांहे अतीत कालेंज वखाण्युं तेनुं कारण शुं ? तोके, जेवुं विशिष्ट लक्षणोपेत अतीतकालें हतुं, तेवुं वर्त्तमान कालें अनें आगमिक कालें नथी. ए कारण जाणवुं. (तस्सणंरायगिहस्सनयरस्सवहिया के०) त्यां ते राजगृह नगरना बाहिरना प्रदेशें, (उत्तरपुरछिमेदिसीभाए के०) ईशानकोणनें विषे (एछणं के०) अंहीयां (नालंदानामंवाहिरियाहोत्था के०) नालंदा एवे नामें बाहिरिया एटले पाडोविशेष हतो. ते

त्मानं परेषां चाहितास्ते पुरुषाः। बहुवचनमार्षत्वान्न। तादृशाः केवलिनोनवंति तथा ह्येक स्य प्राणिनः संवत्सरेणापि घाते येन्ये पिशिताश्रितास्तत्संस्कारेच क्रियमाणे स्थावरजं गमाविनाशमुपयांति ते तैः प्राणिवधोपदेष्टृभिर्न दृष्टाः। नच तैर्निरवद्योपायोमाधुकर्या वृ त्त्या योनवति सदृष्टोतस्तेन केवलमकेवलिनोविशिष्टविवेकरहिताश्चेति। तदेवं हस्तिताप सान्निराकृत्य नगवदंतिकं गच्छंतमार्द्रककुमारं महता कलकलेन लोकेनाभिष्टूयमानं तं समुप लज्य अभिनवं गृहीतः संपूर्णलक्षणसंपूर्णोहस्ती समुत्पन्नस्तथाविधविवेकोचितं यत् य थार्द्रकुमारोयमपकृताशेषतीर्थिकोनिष्प्रत्यूहं सर्वज्ञपादपद्मांतिकं वंदनाय व्रजति तथाहम पियद्यप्यपगताशेषबंधनः स्यां ततएनं महापुरुषमार्द्रककुमारं प्रतिबुद्धतस्करपंचशतोपेतं त था प्रतिबोधितानेकवादिगणसमन्वितं परमया नक्त्यैतदंतिकं गत्वा वंदामीत्येवं यावद सौ हस्ती कृत्यसंकल्पस्तावत्रटत्रटदिति त्रुटितसमस्तबंधनः सन्नार्द्रककुमाराभिमुखं प्रदत्त कर्णतालस्तथोर्ध्वप्रसारितदीर्घकरः प्रधावितस्तदनंतरं लोकेन कृतहाहारवगर्जकलकलेन पूत्कृतं यथा धिक् कष्टं हतोयमार्द्रककुमारोमहर्षिर्महापुरुषस्तदेवं प्रलपंतोलोकाइतश्चेत श्च प्रपलायमानाः। असावपि वनहस्ती समागत्यार्द्रककुमारसमीपं नक्तिसंभ्रमावनताग्रना गोत्तमांगोनिर्वृतकर्णतालस्त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य निहितधरणीतलदंताग्रनागः स्पृष्टकराग्रतच्च रणयुगलः सुप्रणिहितमनाः प्रणिपत्य महर्षिवनाभिमुखं ययाविति। तदेवमार्द्रककुमार तपोनुनावाद्बंधनोन्मुखं महागजमुपलभ्य सपौरजनपदः श्रेणिकराजस्तमार्द्रककुमारं म हर्षिं तत्तपःप्रनावं चाभिनंद्याभिवंद्य च प्रोवाच नगवन्नाश्चर्यमिदं यदसौ वनहस्ती तादृ ग्विधाच्छ्रस्त्रोच्छेद्याच्छृंखलाबंधनाद्युष्मत्तपःप्रनावान्मुक्तइत्येतदतिडुष्करमित्येवमभिहिते आ र्द्रकुमारः प्रत्याह। नो श्रेणिक महाराज! नैतडुष्करं यदसौ वनहस्ती बंधनान्मुक्तोपि त्वेत दुष्करं यत्स्नेहपाशमोचनं एतच्च प्राङ्निर्युक्तिगाथया प्रदर्शितं। साचेयं। "ण डुक्करं वारणपा समोयणं, गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं॥ जहा उवत्तावलिएण तंतुणा, सुडुक्करंमे पडिहाइ मो यणं॥ १॥ एवमार्द्रककुमारेण राजानं प्रतिबोध्य तीर्थकरांतिकं गत्वाऽभिवंद्य च नगवंतं नक्तिनरनिर्भरआसांचक्रे नगवानपि तानि पंचापि शतानि प्रव्राज्य तच्छिष्यत्वेनोपनिन्य इति॥ ५४॥ सांप्रतं समस्ताध्ययनार्थोपसंहारार्थाह। (बुद्धस्सेत्यादि) बुद्धोऽवगत तत्वः सर्वज्ञोवीरवर्द्धनस्वामी तस्याज्ञया तदागमेन इमं समाधिं सद्धर्मावाप्तिलक्षणं अ वाप्यास्मिंश्च समाधौ सुष्ठु स्थित्वा मनोवाक्कायैश्च प्रणिहितेंद्रियोन मिथ्यादृष्टिमनुमन्यते केवलं तदावरणजुगुप्सां त्रिविधेनापि करणेन न विधत्ते सएवंनूतआत्मनः परेषांच त्राण शीलस्तायी वा गमनशीलोमोक्षं प्रति सएवंनूतस्तरीतुमतिलंघ्य समुद्रमिव डुस्तरं महाभवौ घं मोक्षार्थमादीयतइत्यादानं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपं तद्विद्यते यस्यासावादानवान् साधुः सच सम्यग्दर्शनेन सता परतीर्थिकतपःसमृद्ध्यादिदर्शनेन मौनींडादर्शनान्न प्रच्यव

वारणभूषणेष्वपीति त्रिष्वर्थेषु पठ्यते तथापीह प्रतिषेधवाचकेन नञा साहचर्यात्प्रतिषे धार्थएव गृह्यते तत्र चालंशब्दः। नामस्थापना द्रव्यभावभेदाच्चतुर्विधोनिक्षेपोभवति। तत्र नामालं यस्य चेतनस्य वाजमिति नाम क्रियते। स्थापनालंतु यत्र कचिच्चित्रपुस्तकादौ पाप निषेधं कुर्वन्साधुः स्थाप्यते द्रव्यनिषेधस्तु नो आगमतोज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तोद्रव्यस्य चौराद्यात्हतस्यैहिकपापभीरुणा योनिषेधः क्रियते सद्रव्यनिषेधः। एवं द्रव्येण द्रव्याद्द्रव्ये वा निषेधः। भावनिषेधंतु स्वतएव निर्युक्तिकारोलंशब्दस्य संभविनमर्थं दर्शयन्निभणिषुरा ह। "पज्जत्ती भावे खलु, पढमो वीउ भवेअलंकारे॥ ततितो उण्ण डिसेहे, अलसद्दो होई ना यव्वो,,॥ १॥ (पज्जतीभावइत्यादि) पर्याप्तभावः सामर्थ्ये तत्रालंशब्दोवर्तते। अलं मल्लोमल्लाय समर्थइत्यर्थः। लोकोभरोपि विनालं तेताणाएवासरणाएवा। अन्यैरप्युक्तं। "द्रव्यास्तिकरथारूढः पर्यायोद्यतकार्मुकः॥ युक्तिसन्नाहवान्वादी कुवादिभ्योभवत्यलं"॥१॥ अयं प्रथमोलंशब्दार्थोभवति। खलुशब्दोवाक्यालंकारे द्वितीयस्त्वर्थोलंकारविषये भवेत्तं भावनायां लिङ्। तद्यथालंकृतदेवदत्तेन स्वकुलं जगच्च भाभिस्तुनेत्यादि। तृतीयस्त्वलंशब्दा र्थः प्रतिषेधे ज्ञातव्योभवति। तद्यथालं मे गृहवासेन तथालं पापेन कर्मणा। उक्तंच। "अलं कुतीर्थैरिह पर्युपासितैः,रलं वितर्काकुलकाहलैर्मतैः॥अलंच मे कामगुणैर्निषेवितैः, र्भे यंकरायेहि परत्र चेहच" ॥२॥ तदिह प्रतिषेधवाचिनालंशब्देनाधिकारइत्येतद्दर्शयितुमाह। "पडिसेहणणगारस्स इहिसद्देण चेव अलसद्दो॥रायगिहे नयरंमि नालंदा होइ वाहिरिया" ॥३॥ (पडिसेहणेत्यादि) सत्यप्यलंशब्दस्यार्थत्रये नकारस्य सान्निध्यात्प्रतिषेधविधानाद प्येवेह गृह्यते ततश्च निरुक्तविधानादयमर्थः। नालं ददातीति नालंदा वाहिरिकायाः स्त्रियोदे शकत्वेनच नालशब्दस्य स्त्रीलिंगता साच सदैहिकामुष्मिकसुखहेतुत्वेन सुखप्रदा राजगृह नगरवाहिरिका, धनकनकसमृद्धत्वेन सत्साध्वाश्रयत्वेनच सर्वकामप्रदेति। सांप्रतं प्रत्यया र्थं दर्शयितुकामआह "नालंदाए समिवे,मणोरहे भासि इंदभूइसा॥ अज्झयणं उदगस्सउ, एयं नालंदइज्जं तु" ॥४॥(नालिंदाएइत्यादि) नालंदायाः समीपे मनोरथाख्ये उद्याने इंद्रभू तिना गणधरेणोदकाख्यनिर्ग्रंथपृष्टेन तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्तस्यैव भाषितमिदमध्ययनं। ना लंदायां भवं नालंदीयं नालंदासमीपोद्यानकथनेन वा निवृत्तं नालंदीयं। यथाचेदमध्ययनं नालंदायां संवृत्तं तथा "पासावच्चिज्जोपुच्छियाइउ अज्जगोयमं उदगो॥ सावगपुच्छाधम्मं सो उं कहियंमि उवसंता,,॥५॥ अनाथापाभावच्चिज्जेत्यादिकया सूत्रस्पर्शिकगाथयाविष्करिष्य ते। सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं। (तेणंकालेणमि त्यादि) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रैः सह संबंधोवाच्यस्तत्रानंतराध्ययनपर्यंते सूत्रमिदमादान वान् धर्ममुदाहरेत्। धर्मश्च साधुश्रावकभेदेन द्विधा।तत्र पूर्वोक्तेनांगद्वयेन प्रायःसाधुगतोविधि रभिहितोऽनेनतु श्रावकगतोविधिरुच्यते। परंपरसूत्रसंबंधस्त्वयं बुध्येतेत्येतदादिसूत्रं। किं तत्र

पाडो केवोछे ? तोकें, (अणेगनवणसयसन्निविठ्ठा के०) अनेक घरना शेंकडायें करी स हितछे. इत्यादिक (जावपडिरूवा के०) यावत् प्रतिरूप ए वर्णन जाणवुं ॥ १ ॥

॥ दीपिका—अथ सप्तमाध्ययनमारभ्यते । अस्य च नालंदीयमिति नाम । तस्यायम र्थः । नालंदा राजगृहनगरे बाहिरिका तस्यां नवं नालंदीयमिति । पूर्वं सकलेन सूत्र कृतांगेन साध्वाचारः प्ररूपितः । अत्र तु श्रावकविधिरुच्यते । तस्येदं सूत्रं । तस्मिन् का ले तस्मिन् समयेऽवसरे राजगृहं नाम नगरमनवत् । ऋद्धिस्फीतं समृद्धं वर्णकोवाच्यः यावत्प्रतिरूपमनन्यसदृशं तस्य नगरस्य बहिरुत्तरपूर्वस्यां दिशि नालंदानाम बाहिरिका सीत्साचानेकनवनशतसन्निविष्टाऽनेकगृहसंकीर्णेत्यर्थः ॥ १ ॥

॥ टीका—व्याख्यातं षष्ठमध्ययनमधुना सप्तममारभ्यते । अस्यायमनिसंबंधः । इह प्रा ग्व्याख्यातेनाखिलेनापि सूत्रकृतांगेन स्वसमयपरसमयप्ररूपणा द्वारेण प्रायः साधूनामाचा रोऽनिहितोऽनेन तु श्रावकगतोविधिरुच्यते । यदिवानंतराध्ययने परवादनिराकरणं कृत्वा साध्वाचारस्य यउपदेष्टा सउदाहरण द्वारेण प्रदर्शितः । इहतु श्रावकधर्मस्य यउपदेष्टा सउदाहरण द्वारेणैव प्रदर्श्यते । यदिवाऽनंतराध्ययने परतीर्थिकैः सह वादइह तु स्वयूथ्यै रित्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराण्यपवर्णितव्यानि उपक्रमादीनि तत्रापि नामनिष्पन्ने निक्षेपे नालंदीयानिधानमिदमध्ययनमिदं चैवं व्युत्पाद्यते । प्रतिषेध वाचिनोनकारस्य तदर्थस्यैवालंशब्दस्य डुदाञ् दाने इत्येतस्य धातोर्मीलनेन नालं ददातीति नालंदा । इदमुक्तं नवति । प्रतिषेधप्रतिषेधेन धात्वर्थस्यैव प्राकृतस्य गमनात्सदार्थिन्योयथा ऽनिलषितं ददातीति नालंदा राजगृहनगरबाहिरिका तस्यां नवं नालंदीयमिदमध्ययनंअने न चानिधानेन समस्तोप्युपोद्घातउपक्रमरूपश्चावेदितोनवति तत्स्वरूपंच पर्यंते स्वतएव निर्युक्तिकारः पासाविच्चे इत्यादिगाथया निवेदयिष्यतीति । सांप्रतं संनविनमलंशब्दस्य निक्षेपं नादौ परित्यज्य कर्तुमाह । "णाम अलं ववणअलं, दव्वअलं चेव होइ नावअलं॥ एसो असहंमि, निक्खेवो चउव्विहो होइ ,, ॥१॥ (णामअलमिति) तन्नामानोनाः प्रतिषेध वाचकाः । तद्यथा । अगौरघटइत्याद्याकारः प्रायोद्रव्यस्यैव प्रतिषेधवाचीत्यलंदानेन सहा स्यप्रयोगानावमकारस्त्वनागतक्रियायानिषेधं विधत्ते । तद्यथा नो घटोघटैकदेशनिषेधेन त था हास्यादयोनो कषायाः कषायमोहनीयैकदेशनूताः।नकारस्तु समस्तद्रव्यक्रियाप्रतिषेधा निधायी। तद्यथा न द्रव्यं न कर्म न गुणोनावस्तथा नाकार्षं न करोमि न करिष्यामीत्यादि। तथाऽन्यैरप्युक्तं । न याति नच तत्रासीदस्ति पश्चान्नवांशकाङ्क्षहाति पूर्वं नाधारमहो व्यसन संततिः । किंचान्यत् ।"गतं न गम्यते तावदगतं नैव गम्यते । गतागतविनिर्मुक्तं गम्यमानंतु ग म्यत"इत्यादि । तदेवमत्र नकारः प्रतिषेधविधायकोप्युपात्तः। अलंशब्दोपि यद्यप्यलं पर्याप्ति

॥ दीपिका—(तत्थणं) तस्यां नालंदायां लेपोनाम गृहपतिः कुटुंबिकआसीत् सच आ ढ्योदीप्तस्तेजस्वी वित्तोविख्यातोविस्तीर्णविपुलभवनशयनासनयानवाहनाकीर्णोवहुधनो वहुजातरूपरजतः आयोगाअर्थोपायाः प्रयोगः प्रयोजनानि तैः संप्रयुक्तः संयुतः इतश्चे तश्च विछितप्रचुरभक्तपानोवहुदास्यादिपरिवृतोवहुजनस्यापरिभूतआसीत् ॥ २ ॥

॥ टीका—तस्यांचलेपोनाम गृहपतिः कुटुंबिकआसीत्सचाढ्योदीप्तस्तेजस्वी वित्तः सर्वज नविख्यातोविस्तीर्णविपुलभवनशयनासनयानवाहनाकीर्णोवहुधनवहुजातरूपरजतः आ योगः अर्थोपाया यानपात्रोष्ट्रमंफलिकादयस्तथा प्रयोजनमयोगः प्रायोगिकत्वं तैरायोगप्र योगैः संप्रयुक्तः समन्वितस्तथेतश्चेतश्च विछितप्रचुरभक्तपानोवहुदास्यादिपरिवृतोवहुजन स्यापरिभूतश्चासीत्तदियता विशेषणकदंबकेनैहिकगुणाविष्करणेन द्रव्यसंपदभिहिता ॥ २ ॥

सेणं लेवे नामं गाहावई समणोवासएयावि होत्था अभिगयजी वाजीवे जाव विहरइ निग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखि ए निवितिगिछे लद्धठे गहियठे पुछियठे विणिछियठे अभिगहि यठे अठिमिंजा पेमाणुरागरत्ते अयमाउसो निग्गंथे पावयणे अयं अठे अयं परमठे सेसे अणठे उसियफलिहे अप्पावय दुवारे वियत्तंतेउरप्पवेसे चाउद्दसठमुद्दिठपुस्समासिणीसु पडि पुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे निग्गंथे तहाविहेणं एसणिज्जेणं असणपाणं खाइमसाइमेणं पडिलाभेमाणे वहूहिं सीलवयगुणविरमणपच्चरकाणपोसहोववासेहिं अप्पाणं भावे माणे एवंचणं विहरइ ॥ ३ ॥

अर्थ—हवे एनी भाव संपदा कहियें छैयें. (सेणं के०) ते (लेवेनामंगाहावईसमणो वासएयाविहोत्था के०) लेपनामा गृहपति श्रमणोपासक हतो, श्रमण एटले साधु, तेनी जे निरंतर सेवा करे, तेनें श्रमणोपासक कहियें. (अभिगयजीवाजीवेजावविहर इ के०) अभिगत एटले जाण्याछे जीव अनें अजीवना भाव जेणें एवो छतो, यावत् विचरेछे. हवे तेनुं रूडा प्रकारें सम्यक् ज्ञानपणुं कहियें छैयें. (निग्गंथेपावयणेनिस्सं किए के०) जिनशासन प्रवचननें विषे शंकारहित एवो, तथा (निक्कंखिए के०) अन्य दर्शननें विषे निराकांक्ष एटले आकांक्षारहित एवो, तथा (निव्वितिगिछे के०) विद्वा न जे ज्ञानी पुरुषो तेनी निंदा एटले जुगुप्सा तेणे करी रहीत ते कारण माटेज (लद्धठे

बुध्येत यदेत द्दृश्यतइति। सूत्रार्थस्त्वयं। सप्तम्यर्थे तृतीया। यस्मिन्काले यस्मिंश्चावसरे राजगृहं नगरं यथोक्तविशेषणविशिष्टमासीत्तस्मिन् काले तस्मिंश्च समये इदमनिधीयते। राजगृहमेवविशिनष्टि। प्रासादाः संजातायस्मिंस्तत्प्रासादितमानोगवद्वा अतएव दर्शनीयं दर्शनयोग्यं दृष्टिसुखहेतुत्वात्तथानिमुख्येन रूपं यस्य तदनिरूपं तथा प्रतिरूपमनन्यसदृशं प्रतिरूपं वा प्रतिबिंबं वा स्वर्गनिवेशस्य तदेवंनूतं राजगृहंनाम नगरं (होङात्ति) आसीत्। यद्यपि तत्कालत्रयेपि सत्तां बिनर्त्ति तथाप्यतीताख्यानसमाश्रयणादासीदित्युक्तं। तस्य च राजगृहस्य बहिरुत्तरपूर्वस्यां दिशि नालंदानाम बाहिरिका आसीत् साचानेकनवनशतसन्निविष्टा अनेकनवनशतसंकीर्णेत्यर्थः ॥ १ ॥

तङणं नालंदाए बाहिरियाए लेवे नामं गाहावई होङा अड्ढे दित्ते वित्ते विङणविपुलनवणसयणासणजाणवाहणाइस्से बहुधणबहुजायरूवरजते आनुगपङगसंपङत्ते विङडियपङरनत्तपाणे बहु दासी, दास, गोमहिस, गवेलगप्पनूए बहुजणस्स अपरिनूएयावि होङा ॥ २ ॥

अर्थ—(तङणंनालंदाएबाहिरियाए के०) ते नालंदा नामें बाहिरिया एटले पाडाने विषे (लेवेनामंगाहावईहोङा के०) लेप एवे नामें गृहपति कुटुंबी हतो. ते केवो हतो? तोके, (अड्ढे के०) धनवंत, (दित्ते के०) दीप्त तेजस्वी, (वित्ते के०) सर्वजनमां विख्यात, (विङण के०) विस्तीर्ण, (विपुल के०) घणा एवां (नवण के०) नुवन, (सयणासण के०) शय्यासनादिक, तथा (जाणवाहणाइस्से के०) यान एटले रथ वेहेलादिक, वाहन एटले अश्वादिक, तेणें करी इस्से एटले आकीर्ण व्याप्त, (बहुधण के०) घणुं धन, (बहुजायरूवरजते के०) घणुं जात एटले सुवर्ण, तथा रूपुं, तेणे करी सहित, (आङग के०) धननो उपाय एटले यानपात्रादिकनो संग्रह. तथा (पङग के०) प्रयोग एटले व्यापारादिक प्रयोजन तेणे करी (संपङत्ते के०) संप्रयुक्त एटले सहित (वि के०) विशेषें करी (ङडिय के०) ज्यां त्यां नाख्योछे (पङर के०) घणो एवो (नत्तपाणे के०) नातनें पाणी जेणे, एटले जेनें घरे निरंतर लोक जमेछे. विशेषें करी देवरावेछे. (बहुदासीदास के०) घणां दासी, तथा दास, (गोमहिस्स के०) गाय, अनें नेष, (गवेलग के०) गाडर ढाली, तेणें करी (प्पनूए के०) परिवृत्त तेमाटें (बहुजणस्सअपरिनूएआविहोङा के०) घणा लोकोयें पण परानव करी न शकाय एवो हतो. एटला वर्णनें करी एनी ङव्यसंपदा कहीछे. ॥ २ ॥

क्त्वाञ्चालयितुं शक्यते तद्भीत्या न द्वारप्रदानमित्यर्थः। प्रातिहारी राजांतःपुरेपि प्रवेशोय स्य सतथा कोर्थः? पुरेहि कोपि न प्रवेश्यः तत्राप्यसौ प्रतीतगुणत्वे प्रवेशयोग्यइत्यर्थः। तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषु उपदिष्टासु महाकल्याणकसंबंधितया पुण्यतिथित्वेन प्रसि द्धासु तथा पौर्णमासीषु च तिसृष्वपि चतुर्मासकतिथिषु एवंनूतेषु धर्मदिवसेषु सुष्ठु अतिश येन प्रतिपूर्णं संपूर्णमाहारशरीरसत्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पोषधमनुपालयन् तथावि धान् सद्गुणान् श्रमणान् एषणीयेन शुद्धेनाशनादिना प्रतिलानयन् (बहुहिं) बहुभिः शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपोषधोपवासैरात्मानं नावयन् एवं पूर्वोक्तप्रकारेण। च स मुच्चये णं वाक्यालंकारे। विहरति आस्ते ॥ २ ॥

॥ टीका—अधुनाऽमुष्मिकगुणाविर्नावेन नावसंपदन्निधीयते। (सेणंलेवेइत्यादि) ण मिति वाक्यालंकारे। सलेपाख्योगृहपतिः श्रमणान् साधूनुपास्ते प्रत्यहं सेवतइति श्रमणो पासकस्तदनेन विशेषणेन तस्य जीवादिपदार्थाविर्नावकश्रुतज्ञानसंपदा वेदिता नवत्येत देव दर्शयत्यनिगतजीवाजीवेत्यादिना ग्रंथेन। यावदसहायोपि देवासुरादिनिर्देवगणैरनति क्रमणीयोऽनतिलंघनीयोधर्मादप्रच्यावनीयइति यावत्। तदियता विशेषणकलापेन त स्य सम्यक्ज्ञानित्वमावेदितं नवति। सांप्रतं तत्तस्य विशिष्टसम्यग्दर्शनित्वमापादयितुमा ह। (निग्गंथेत्यादि) निर्ग्रंथे आर्हते प्रवचने निर्गता शंका देशसर्वरूपा यस्य सः निःशंकः तदेव सत्यं निःशंकं यज्जिनैः प्रवेदितमित्येवं कृताध्यवसायस्तथा निर्गता कांक्षान्यान्यद र्शनग्रहणरूपा यस्यासौ निराकांक्षस्तथा निर्गता विचिकित्सा चित्तविप्लुतिर्विद्वज्जुगुप्सा यस्यासौ निर्विचिकित्सोयतएवमतोलब्धउपलब्धोर्थः परमार्थरूपोयेन सः लब्धार्थो ज्ञाततत्वइत्यर्थः। तथा गृहीतः स्वीकृतोर्थोमोक्षमार्गरूपोयेन सगृहीतार्थस्तथा विशेषतः पृष्टोर्थोयेन सः पृष्टार्थोयतएवमतोविनिश्चितार्थस्ततोन्निगतः पृष्टनिर्वचनतः प्रतीतोर्थो येन सोन्निगतार्थस्तथाऽस्थिमिंजाऽस्थिमध्यं यावत्सधर्मे प्रेमानुरागेण रक्तोत्यंतसम्यक्त्व वासितांतश्चेताइति यावत्। एतदेवाविर्नावयन्नाह। (अयमाउसोइत्यादि) केनचिद्ध र्मसर्वस्वं पृष्टः सन्नेतदाचष्टे। तद्यथा नो आयुष्मन्निदं निग्रंथमौनींद्रप्रवचनमर्थः सद्भू तार्थस्तथा प्ररूपणतया तथेदमेवाह। अयमेव परमार्थः कषतापच्छेदैरस्यैव शुद्धत्वेन नि र्घटितत्वात्। शेषस्तु सर्वोपि लौकिकतीर्थिकपरिकल्पितोऽनर्थस्तदनेन विशेषणकदंबकेन सम्यक्त्वगुणाविष्करणं कृतं नवति। सांप्रतं तस्यैव सम्यग्दर्शनज्ञानाभ्यां कृतोयोगुणस्त दाविष्करणायाह। (उसियइत्यादि) उछ्रितं प्रख्यातं स्फटिकवन्निर्मलं यशोयस्यासावुछ्रित स्फटिकः प्रख्यातनिर्मलयशाइत्यर्थः। तथाऽप्रावृतमस्थगितं द्वारं गृहमुखं यस्य सोप्रा वृतद्वारः। इदमुक्तं नवति। गृहं प्रविश्य परतीर्थिकोपि यद्यत्कथयति तदसौ कथयतु

के०) प्राप्त थयाछे सिद्धांतना अर्थ जेनें (गहियठे के०) ग्रहण कर्याछे मोक्षमार्गरूप अर्थ जेणे, तथा (पुच्छियठे के०) विशेषें करी पुछ्युंछे मोक्षस्वरूप जेणे, तथा (विणिच्छियठे के०) निश्चय कर्योछे सिद्धांतनो अर्थ जेणे, तथा (अभिगहियठे के०) प्रतीत थयोछे अर्थ जेनें, तथा (अहिमिंजापेमाणुरागरत्ते के०) प्रेमें करीनें रंगित छे अस्थिमिंजा जेनां, एटले अत्यंतछे हृदयनें विषे प्रेम जेनें, तथा (अयमाउसो के०) कोइ एकें स्वधर्मि पुछे थके, तेनें ए प्रकारें उत्तर आपे के, हे आयुष्मन्! (निग्गंथेपावयणे के०) आ जिनप्रवचन निस्संशयछे, तथा सत्यछे. वली (अयमठेअयं परमठे के०) आ जैन शासनरूप अर्थ ए परमार्थरूप छे, तथा (सेसेअणठे के०) अन्य लौकिक सर्वे दर्शन ते पुरुषोनां कल्पना करेलांछे. वली तेना गुणो कहेछे. (उसियफलिहे के०) स्फाटिक सरखुं उज्ज्वलछे यश जेनुं, एटले प्रख्यातछे यश जेनुं, एवो, तथा (अप्पावयडुवारे के०) अप्रावृत एटले निरंतर उघाडुं रहेछे द्वार जेनुं , अनें (वियत्तंतेउरप्पवेसे के०) कोइ एक परतीर्थिक पोताना घरमां आवीने जो स्वधर्म कहे! तो तेनो प्रतिबंध अनुचरो पण करी न शकें, तथा (चाउदसठमुदिठपुस्रमासिणीसु के०) चउदश, आठम, पुन्यम एटले चोमासानी त्रण पुन्यम वगेरे पुण्यतिथीयोनें विषे, (पडिपुन्नंपोसहंसम्मंअणुपालेमाणे के०) परिपूर्ण रूडा प्रकारें पोषधनें पालतो एवो, (समणेनिग्गंथेतहाविहेणंएसणिज्जेणंअसणपाणंखाइमसाइमेणंपडिलाभेमाणे के०) ते प्रकारना धर्मनें पालता एवा जे श्रमण ब्राह्मण,तेनें शुद्ध आहार जलें करी संतोष पमाडतो एवो,तथा (बहुहिंसीलव्वयगुणविरमणपच्चखाणपोसहोववासेहिं के०) शील, व्रत, गुण, विरमण, पच्चखाण, पोषहादिक उपवास, तेणें करीने (अप्पाणंभावेमाणे के०) पोताना आत्मानें भावना करतो एवो छतो (एवंचणंविहरइ के०) ए प्रकारें धर्म आचरण करतो थको विचरेछे. ॥ ३ ॥

॥ दीपिका—सलेपोनाम गृहपतिः श्रमणोपासकोभिगतजीवाजीवइत्यादि । (निग्गंथेत्ति) आर्हते प्रवचने निःशंकितोनिःकांक्षितोऽन्यतमोनिराकांक्षः विचिकित्साचित्तविप्लुतिर्विद्वज्जुगुप्सा वा तद्रहितोनिर्विचिकित्सः लब्धार्थोज्ञाततत्वः गृहीतार्थः स्वीकृतमोक्षमार्गः पृष्टार्थत्वादविनिश्चितार्थः अभिगतः प्रतीतोर्थोयेन सतथा अस्थिमिंजास्थिमध्यं यावद्धर्मे प्रेमानुरागेण रक्तोऽत्यंतं सम्यक्त्ववासितचित्तइत्यर्थः । केनचिद्धर्मं पृष्टः प्राह । अयमायुष्मन्! जैनधर्मोर्थः सत्यः परमार्थरूपशेषः सर्वोप्यनर्थः । (उसियफलिहत्ति) उच्छ्रितं प्रख्यातं स्फटिकवन्निर्मलं यशोयस्य अप्रावृतं अस्थगितं द्वारं गृहस्य येन सोऽप्रावृतद्वारः परतीर्थिकोपि गृहं प्रविश्य धर्मं यदि वदेत् तदनु न तस्य परिजनोपि सम्य

व्यानाम गृहोपयुक्तशेषद्रव्येण कृता उदकशालासीदनेकस्तंभशतसन्निविष्टा प्रासादीया यावत्प्रतिरूपा तस्याश्चोत्तरपूर्वे दिग्भागे हस्तियामाख्योवनखंमआसीत्कृष्णइत्यादिवर्णकोवन खंमस्य वाच्यः ॥ ४ ॥

॥ टीका–तस्य चैवंभूतस्य लेपोपासकस्य गृहपतेः संबंधिनी नालंदायाः पूर्वोत्तरस्य दिशि शेषद्रव्याभिधाना गृहोपयुक्तशेषद्रव्येण कृता शेषद्रव्ये तदेवाभिधानमस्याउदकशालायाः सैवंभूतासीदनेकस्तंभशतसन्निविष्टा प्रासादीया दर्शनीयाभिरूपाप्रतिरूपेति तस्य श्चोत्तरपूर्वेदिग्विभागे हस्तियामाख्योवनखंमआसीत्कृष्णावभासइत्यादिवर्णकः ॥ ४ ॥

तस्सिंचणं गिहपदेसंमि भगवं गोयमे विहरइ भगवंचणं अहे आरामंसि अहेणं उदए पेढालपुत्ते भगवं पासावविज्जे नियंठे मेयज्जे गोत्तेणं जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता भगवं गोयमं एवं वयासी आउसंतो गोयमा अत्थि खलु से केइ पदे से पुच्छियव्वे तंचमे आउसो अहासुयं अहादरिसियंमे वियागरेहि सवायं भगवं गोयमे उदय पेढालपुत्तं एवं वयासी अवियाइ आउसो सोच्चा निसम्म जाणिस्सामो सवायं उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी ॥ ५ ॥

अर्थ–हवे (तस्सिंचणंगिहपदेसंमिभगवंगोयमेविहरइ के०) ते वनखंम गृहप्रदेशनें विषे भगवंत श्री गौतमस्वामी विचरेछे. (भगवंचणंअहेआरामंसि के०) भगवंत श्रीगौतमस्वामी साधुना परिवार सहित आराम हेठल रह्या. (अहेणं के०) अथ हवे ण ए वे वाक्यालंकारें. (उदएपेढालपुत्ते के०) उदकनामें निर्ग्रंथ, पेढालनो पुत्र, अनें (भगवंपासावविज्जेनियंठे के०) श्री पार्श्वनाथना शिष्यनो शिष्य, (मेयज्जेगोत्तेणं के०) गोत्रें करी मेदार्यछे. ते उदकनिर्ग्रंथ, (जेणेवभगवंगोयमेतेणेवउवागच्छइ के०) ज्यां भगवंत श्रीगौतमस्वामी छे, त्यां आव्यो. (उवागच्छइत्ता के०) त्यां आवीनें (भगवंगोयमं एवंवयासी के०) भगवंत श्रीगौतमस्वामी प्रत्यें एवुं बोल्या के, (आउसंतोगोयमा के०) अहो आयुष्यमन् गौतम ! मुजनें तमारा समीपें (अत्थिखलुसेकेइपदेसेपुच्छियव्वे के०) निश्चें ते कोइ एक प्रदेश एटले प्रश्न पुछवोछे. (तंचमेआउसो के०) ते प्रश्न मुजनें, अहो आयुष्यमन्! (आहासुयं के०) यथाश्रुतं एटले जेम तमे श्रीमहावीर स्वामी पासेंथी सांभल्युं, (अहादरिसियंमेवियागरेहि के०) जेम तमें अवधार्युं होय, तेम मु

न तस्य परिजनोप्यन्यथा भावयितुं सम्यक्त्वाच्च्यावयितुं शक्यतइति यावत्। तथा राज्ञां बह्न भांतःपुर द्वारेषु प्रवेष्टुं शीलं यस्य सतथा। इदमुक्तं भवति प्रतिषिद्धान्यजनप्रदेशान्यपि यानि स्थानानि भांडागारांतःपुरादीनि तेष्वप्यसौ प्रख्यातः श्रावकाख्यगुणत्वेनास्खलित प्रवेशस्तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषूपदिष्टासु तथा पौर्णमासीषुच तिसृष्वपि चतुर्मासकतिथिष्वित्यर्थः। एवंभूतेषु धर्मदिवसेषु सुष्ठ्वतिशयेन प्रतिपूर्णोयः पौषधो व्रताभिग्रहविशेषस्तं प्रतिपूर्णमाहारशरीरसंस्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधमनुपालयन् संपूर्णं श्रावकधर्ममनुचरति तदनेन विशेषणकलापेन विशिष्टं देशचारित्रमावेदितं भवति। सांप्रतं तस्यैवोत्तरगुणाख्यापनेन दानधर्ममधिकृत्याह। (समणेणंनिग्गंथइत्यादि) सुगमं (यावत्पडिलाभेमाणेत्ति) सांप्रतं तस्यैव शीलतपोभावनात्मकं धर्ममावेदयन्नाह (बहूहिमित्यादि) बहुभिः शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौषधोपवासैस्तथा यथा परिगृहीतैश्च तपःकर्मभिरात्मानं भावयन्नेवं चानंतरोक्तया रीत्या विहरति धर्ममाचरंस्तिष्ठति। च समुच्चये। णमिति वाक्यालंकारे ॥ ३ ॥

तस्सणं लेवस्स गाहावइस्स नालंदाए बाहिरियाए उत्तर पुरच्छिमे दिसिभाए एत्थणं सेसदविया नामं उदगसाला होत्था अणेगखंभसयसन्निविठ्ठा पासादीया जावपडिरूवा तिस्सेणं सेसदवियाए उदगसालाए उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए एत्थणं हत्थिजामे नामं वणसंडे होत्था किण्हे वसउ वणसंडस्स॥ ४ ॥

अर्थ—(तस्सणं के०) ते लेप नामा गृहपतिनें नालिंदा नामा पाडा थकी, उत्तर अनें पूर्वदिशानें वच्चें, एटले ईशान कोणे (एत्थणंसेसदवियानामंउदगसालाहोत्था के०) जिहां तिहां घर करावतां जे कांइ पाट पीठिकादिक उपकरण उगर्यां होय, वधेलां होय एवां उपकरणें करीने निपजावेली एटले करावेली एवी सेसदविया नामें उदकशाला हती वली ते उदकशाला केवी हती? तोके, (अणेगखंभसयसन्निविठ्ठा के०) अनेक स्तंभना शेंकडा तेना उपर रहेली, तथा तेणें करी सहित, (पासादीयाजावपडिरूवा के०) प्रासादवंत, दर्शनीय यावत् प्रतिरूप,(तिस्सेणंसेसदवियाएउदगसालाएउत्तरपुरच्छिमेदिसिभाए के०) ते सेसदविया नामा उदकशाला थकी ईशान कोणनी दिशायें (एत्थणंहत्थिजामेनामंवणसंडेहोत्था के०) हस्तियाम नामें वनखंड हतो, (किण्हेवसउवणसंडस्स के०) ते वनखंड, काले वर्णें हतो, एनुं विशेष वर्णन जेम, श्री उववाई उपांगमां कह्युंछे तेम जाणवुं.

॥ दीपिका—तस्य लेपस्य गृहपतेः संबंधिनी नालंदायाः पूर्वोत्तरस्यां दिशि शेषद्

देहः संवृत्तइति। सांप्रतं सूत्रमनुश्रियते सउदकोगौतस्वामिसमीपं समागत्य जगवंतमिद मवादीत्तद्यथा आयुष्मन्गौतम! अस्ति मम विद्यते कश्चित्प्रदेशः प्रष्टव्यस्तत्र संदेहात्तंच प्रदेशं यथाश्रुतं जगवता यथाच जगवता संदर्शितं तथैव मम व्यागृणीहि प्रतिपादय। एवं पृष्टः सचायं जगवान् यदिवा सह वादेन सवादं पृष्टः सद्वादं वा शोजनजारतीं वा प्रश्नं पृष्टस्तमुदकं पेढालपुत्रमेवमवादीत्तद्यथाऽपिचायुष्मन्नुदक! श्रुत्वा जवदीयं प्रश्नं निशम्य चावधार्यच गुणदोषविचारणतः सम्यगहं ज्ञास्ये तडच्यतां विश्रब्धं जवता स्वाजिप्रायं सद्वाचं चोदकः पेढालपुत्रोजगवंतं गौतममेवमवादीत् ॥ ५ ॥

आउसो गोयमा अत्थि खलु कुमारपुत्तिया नाम समणा निग्गंथा तुम्हाणं पवयणं पवयमाणा गाहावई समणोवासगं उवसंपन्नं एवं पच्चक्खावेंति णन्नञ्च अनिओएणं गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए तसेहिं पाणेहिं णिहाय दंमं एवंएहं पच्चक्कंताणं डुप्पच्चक्खायं जवइ एवंएहं पच्चक्खावेमाणाणं डुपच्चक्खावियव्वं जवइ एवं ते परं पच्चक्खावेमाणा अतियरंति सयं पत्तिणं कस्सणं तं हेउं संसारिया खलु पाणा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं थावरकायंसि उववन्नाणं गणमेयं घत्तं ॥ ६ ॥

अर्थ-(आउसोगोयमा के०) अहो आयुष्मन् गौतम! (अत्थिखलुकुमारपुत्तियानामंसमणानिग्गंथा के०) निश्चें कुमारपुत्र एवे नामें, श्रमण निर्ग्रंथछे. (तुम्हाणंपवयणंपवयमाणा के०) ते तमारुं प्रवचन बोलतां प्ररूपतां, (गाहावईसमणोवासगंउवसंपन्नंएवंपच्चक्खावेंति के०) गृहपति श्रमणोपासकनियमोद्युक्तनें आवी रीतें पच्चक्खाण करावेछे ते कहेछे के, जेमां त्रसप्राणीयोनो दंम, एटले विनाश, तेनो त्याग करे, ए रीतें प्राणातिपातनी विरति करावेछे. (णन्नञ्चअनिओएणं के०) तथा राजादिकनें अनियोगें जे प्राणीउंनो उपघात थाय, ते टालीनें अन्यनी विरति करावेछे. तो ए रीतें स्थूलप्राणातिपातनी विरति कहेतां थकां, अन्य जीवनें उपघातनी अनुमतिनो दोष लागेछे? ए रीतें शंका जाणीने कहेछे. (गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए के०) गृहपति ग्रहण मोक्षने अर्थें, एटले मूकाववानें अर्थें, एनो विशेष अर्थ आगल कहेशे. एतावता श्री वीरना शासननें विषे श्रावकनें अधिकारें (तसेहिंपाणेहिंणिहायदंमं के०) त्रसप्राणी

जनें कह्यो. (सवायंनगवंगोयमेउदयपेढालपुत्तंएवंवयासी के०) हवे नगवंत श्री गौतमस्वामी वादसहित उदकपेढालपुत्र प्रत्यें एवुं बोल्या के, (अवियाइआउसोसोच्चानिसम्मजाणिस्सामो के०) अपि संनावनायें अहो आयुष्यमन् उदक ? तमारो प्रश्न सांनलीनें गुणदोषनी विचारणायें हैयामां सम्यक् रीतें धारण करीनें हुं जाणीश, तेवी रीतनो प्रश्न यथायोग्य पूछो. (सवायंउदएपेढालपुत्तेनगवंगोयमंएवंवयासी के०) ते वारें ते उदकपेढालपुत्र, वादसहित आ प्रकारें नगवंत श्रीगौतमस्वामी प्रत्यें बोल्या. ॥५॥

॥ दीपिका—तस्मिन् वनखंमगृहप्रदेशे नगवान् गौतमोविहरति तस्मिन्नारामे स्थितः । अथ उदकाख्योनिर्ग्रंथः पेढालपुत्रः पार्श्वापत्यस्य पार्श्वशिष्यस्यापत्यं शिष्यः सच मेदार्यगोत्रेण (जेणेवत्ति) यस्यां दिशि गौतमस्तत्रागत्येदं प्राह । आयुष्मन् नो गौतम ! अस्ति मम कश्चित्प्रदेशः प्रष्टव्यः तं प्रदेशं मम यथाश्रुतं त्वया यथा दर्शितं श्रीवीरेण तथा व्यागृणीहि कथय सचायं नगवान् यदिवा सह वादेन सवादं पृष्टस्तमुदकं पेढालपुत्रमेवमवादीत् । अपिचायुष्मन्नुदक ! श्रुत्वा त्वदीयं प्रश्नं निशम्य चावधार्य गुणदोषविचारेण सम्यक् ज्ञास्येहं तडुच्यतां विश्रब्धं त्वया स्वानिप्रायः सचायं ससद्वाचंवा उदकः पेढालपुत्रोगौतममेवमवादीत् ॥ ५ ॥

॥ टीका—तस्मिंश्च वनखंमप्रदेशे नगवान् गौतमस्वामी श्रीवर्धमानस्वामिगणधरोविहरति । अथानंतरं नगवान् गौतमस्वामी तस्मिन्नारामे सह साधुनिर्व्यवस्थितोऽथानंतरं णमिति वाक्यालंकारे उदकाख्योनिर्ग्रंथः पेढालपुत्रः पार्श्वापत्यस्य पार्श्वस्वामिशिष्यस्यापत्यं शिष्यः पार्श्वापत्यीयः सच मेदार्यगोत्रेण । येनैवेति सप्तम्यर्थे तृतीया । यस्यां दिशि यस्मिन्वा प्रदेशे नगवान् श्रीगौतमस्वामी तस्यां दिशि तस्मिन्वा प्रदेशे समागत्येदं वक्ष्यमाणं प्रोवाचेति । अत्र निर्युक्तिकारोऽध्ययनोबानं तात्पर्यंच गाथया दर्शयितुमाह । “ पासावच्चिज्जो पुच्छियाइउं अज्जगोयमं उदगो ॥ सावगपुच्छा धम्मं सोउ कहियंमि उवसंता ” ॥ १ ॥ (पासावच्चित्यादि) पार्श्वनाथशिष्यउदकानिधानआर्यगौतमं पृष्टवान् किं तच्छ्रावकगतं श्रावकविषयं प्रश्नं तद्यथा नो इंद्रनूते साधो ! श्रावकाणुव्रतदाने सति स्थूलप्राणातिपातादिविषयें तदन्येषां सूक्ष्मबादराणां प्राणिनामुपघाते सत्यारंनजनिते तदनुमतिप्रत्ययजनितः कर्मबंधः कस्मान्न नवति ? तथा स्थूलप्राणातिपातादिविषये व्रतिनस्तमेव पर्यायांतरगतं व्यापादयतोनागरिकवधनिवृत्तस्य तमेवं बहिस्थं व्यापादयतइव तद्व्रतनंगजनितः कर्मबंधः कस्मान्न नवतीत्येतत्प्रश्नस्योत्तरं गृहपतिचौरग्रहणविमोक्षणोपमया दत्तवान् तच्च श्रावकप्रश्नस्यौपम्यं गौतमस्वामिना कथितं श्रुत्वोदकाख्योनिर्ग्रंथउपशांतोपगतसं

तथा एवं प्रत्याख्यापयतां प्रत्याख्यानं कारयतां साधूनां डुष्टं प्रत्याख्यानदानं नवति एवं प्रत्याख्यानं कुर्वंतः कारयंतश्च स्वां प्रतिज्ञामतिचरंत्यतिलंघयंति (कस्सणंतंहेउं) कस्माद्धेतोरित्यर्थः । प्रतिज्ञानंगकारणमाह । (संसारियाइत्यादि) सांसारिकाः खलु प्राणिनः स्थावराअपि प्राणिनस्त्रसतया प्रत्यायांति त्रसाश्च स्थावरत्वेनेति । एवंसति प्रतिज्ञालोपः स्यात् यथा नागरिकोन हंतव्यइति प्रतिज्ञा येन कृता सयदि उद्यानस्थं नागरिकं हन्यात्तदा तस्य किं प्रतिज्ञालोपोन स्यात् ? एवमत्रापि येन त्रसवधनिवृत्तिः कृता स यदि तमेव त्रसं स्थावरकायस्थितं हंति तदा तस्य किं न नवेत्प्रतिज्ञालोपः? नवत्येवेत्यर्थः। त्रसकायान्मुच्यमानाः स्थावरकाये उत्पद्यंते स्थावरकायान्मुच्यमानाश्च त्रसकाये नच किंचिल्लिंगमस्ति येन ज्ञायतेऽयं त्रसोऽनूत्पूर्वं स्थावरोवेति (तेसिंचणं) तेषां त्रसानां स्थावरकाये उत्पन्नानां श्राद्धस्यारंनवतः स्थानमिदं स्थावराख्यं घात्यं स्यात् ॥ ६ ॥

॥ टीका–तद्यथा नो गौतम ! अस्तीत्ययं विनक्तिप्रतिरूपकोनिपातइति वव्हर्थवृत्तिर्गृह्यतस्ततश्चायमर्थः । संति विद्यंते कुमारपुत्रानाम निर्ग्रंथायुष्मदीयं प्रवचनं वदंतस्तद्यथा गृहपतिं श्रमणोपासकमुपसंपन्नं नियमायोत्थितमेव प्रत्याख्यापयंति प्रत्याख्यानं कारयंति । तद्यथा स्थूलेषु प्राणिषु दंमयतीतिदंमः प्राण्युपमर्दस्तं निहाय परित्यज्य प्राणातिपातनिवृत्तिं कुर्वंति।तामेवापवदति।नान्यत्रेति।स्वमनीषिकाया अन्यत्र राजाद्यनियोगेन यः प्राण्युपघातोन तत्र निवृत्तिरिति । तत्र किल स्थूलप्राणिविशेषणात्तदन्येषामनुमतिप्रत्ययदोषः स्यादित्याशंकावानाह ।(गाहावइइत्यादि) अस्य चार्थमुत्तरत्राविर्नावयिष्यामः । येनानिप्रायेणोदकश्चोदितवांस्तमाविष्कुर्वन्नाह (एवंएहमित्यादि) एहमिति वाक्यालंकारे अवधारणेवा। एवमेव त्रसप्राणिविशेषत्वेनापरसूत्रसंनूतविशेषणरहितत्वेन प्रत्याख्यानं गृह्णतां श्रावकाणां डुष्प्रत्याख्यानं नवति प्रत्याख्यानन्नंगसद्भावात्तथैवमेव प्रत्याख्यापयतामपि साधूनां डुष्टं प्रत्याख्यानदानं नवति । किमित्यतआह । एवं ते श्रावकाः प्रत्याख्यानं गृह्णंतः साधवश्च परं प्रत्याख्यापयंतः स्वां प्रतिज्ञामतिचरंत्यतिलंघयंति (कस्सणंहेउंति) प्राकृतशैल्या कस्माद्धेतोरित्यर्थः। तत्र प्रतिज्ञानंगकारणमाह । (सांसारियाइत्यादि) संसारोविद्यते येषां ते सांसारिकाः। खलुरलंकारे।प्राणिनोजंतवः स्थावराः प्राणिनः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः संतोपि तथाविधकर्मोदयात्त्रसतया त्रसत्वेन द्वींद्रियादिनावे प्रत्यायांत्युत्पद्यंते तथा त्रसाअपि स्थावरतयेत्येवं च परस्परगमने व्यवस्थितेत्यवश्यं नावी प्रतिज्ञाविलोपः।तथाहि । नागरिकोमया न हंतव्यइत्येवंनूता येन प्रतिज्ञा गृहीता सयदा बहिरारामादौ व्यवस्थितं नागरिकं व्यापादयेत्किमेतावता तस्य न नवेत्प्रतिज्ञाविलोपः ? एवमत्रापि येन त्रसवधनिवृत्तिः कृता सयदातमेव त्रसं प्राणिनं स्थावरकायस्थितं व्या

ना दंमनो निषेध कह्यो तेने उदक पोताना अनिप्रायें करी दूषवेछे. (एवंपहंपच्च स्कंताणंडुपच्चरकायंनवइ के०) अहो गौतम ! ए एवे वाक्यालंकारे ए रीतें त्रसप्रा णीना दंमनो निषेध करीनें पच्चरकाण करतां डुष्ट प्रत्याख्यान थाय (एवंणहंप च्चरकावेमाणाणंडुपच्चरकावियवंनवइ के०) एम पच्चरकाण करावनारनें पण, डुष्ट प्र त्याख्यान कराव्युं, एम थाय. ते कहेछे. (एवंतेपरंपच्चरकावेमाणा के०) ए रीतें ते पच्चरकाण करनार श्रावक, अनें पच्चरकाण करावनार साधु बेहु, (सयंपत्तिणं के०) पोतानी प्रतिज्ञानें (अतियरंति के०) उल्लंघन करेछे, एतावता व्रतनंग करेछे. (क स्सणंतंहेउं के०) ते केवा हेतु थकी प्रतिज्ञा नंग थाय? ते प्रतिज्ञा नंगनुं कारण कहेछे (सांसारियाखलुपाणा के०) निश्चें संसारी जीव, (थावराविपाणा के०) जे पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु, अनें वनस्पति रूप स्थावर जीव ते पण (तसत्ताएपच्चायंति के०) तेवा कर्मना उदयथकी त्रस पणे उपजे, (तसाविपाणाथावरत्ताएपच्चायंति के०) तथा त्रस जे बेइंडि यादिक जीवोछे ते पण स्थावर पणे उपजे, (थावरकायाउविप्पमुच्चमाणातसकायंसिउवव ज्ञंति के०) स्थावरनी कायथकी मूकाणा त्रसकायनें विषे उपजे. (तसकायाउविप्पमुच्च माणाथावरकायंसिउववज्ञंति के०) त्रसकाय थकी मूकाणा थका स्थावरकायने विषे उप जे ए कारणमाटें (तेसिंचणंथावरकायंसिउववन्नाणं के०) त्रसजीव स्थावरकाय मांहे जे वारें उपना, तेवारें (गणमेयंघत्तं के०) ते स्थानक त्रसकायनुं हणाणुं ए कारण मा टें प्रतिज्ञानंग थाय. जेम कोइ एके एवी प्रतिज्ञा करी जे म्हारे नागरीक पुरुष हणवो नहीं. अने पढी तेज नागरीक पुरुष कोइ आरामादिकने विषे बेगे होय, त्यां तेने हणे तो तेथी शुं तेनी प्रतिज्ञानंग न थाय ? अपितु थायज. तेम अंहीं पण त्रसजीवना घातनी निवृत्ति करी, अनें स्थावर जीवना घातनी निवृत्ति नथी करी तो, जे वारें त्रसजीव स्थावर मांहे आवी उपजे तेवारे तेणे ते त्रसजीवज विणाश्या, एम करतां प्रतिज्ञानो नंग थयो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—नो गौतम ! अछि संति कुमारपुत्रानाम निर्ग्रंथा युष्मदीयं प्रवचनं प्रवदंतः। तथाहि गृहपतिं श्रमणोपासकं उपसंपन्नं नियमग्रहणोद्यतं प्रत्याख्यापयंति प्रत्याख्यानं कारयंति तद्यथा। त्रसेषु दंमं हिंसां निहाय त्यक्त्वा प्राणातिपातनिवृत्तिं कुर्वंति (णस्मुछे ति) नान्यत्र स्वमतेरन्यत्र राजाद्यनियोगेन यः प्राणिघातोन तत्र निवृत्तिरिति तत्र स्थूल प्राणिविशेषणात्तदन्येषां जीवानां हिंसातु मतिदोषः स्यादित्याशंकावान् प्राह । (गाहा वइचोरत्ति) अस्यार्थोऽग्ये नावयिष्यते (एवंण्हति) उदकएवाह। एहमिति वाक्यालं कारे। एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतां श्राद्धानां डुःखप्रत्याख्यातं नवति अप्रत्याख्याननंगसनावा

प नथी, तेम त्रसभूत सत्व, हणवा नही एवी प्रतिज्ञाना करनारनें स्थावरनें हणवा थकी, पच्चरकाणनो भंग न थाय. (एवमेवसइभासाएपरक्कम्मे के०) तो शुंथयो ? के; एनें एवुं भाषानुं पराक्रम (विज्जमाणे के०) विद्यमान छते त्रसनें स्थानकें त्रसभूत एवी भाषानें बोलतां (जेते के०) जे कोइ साधु (कोहावालोहावापरंपच्चरकावेंति के०) क्रोध थकी, अथवा लोभ थकी, परनें एटले बीजानें भूत शब्द टाली त्रस जीवनो पच्चरकाण करावे, तो तेनें मृषावाद लागे, ने एवा पच्चरकाणना लेनारनें अवश्य निश्चें व्रतभंग थाय (अयंपिणोउवएसेकिंणोणेआउएभवइ के०) ए रीतें जोतां, ए उपदेश भलो नथी, ए न्याय मार्ग नथी, हुं एम जाणुछुं. मार्टे (अवियाइंआउसोगोयमा के०) अपिसंभावनायें अहो आयुष्यमन् गौतम ! (तुब्नंपिएवंरोयइ के०) तमनें पण हुं कहुं छुं ए वात रूचे एवीछे. ए वात वखाणवा योग्यछे ॥ ७ ॥

॥ दीपिका—एवं नागरिकदृष्टांतेन त्रसमेव घ्नतः प्रतिज्ञालोपः स्यात् । उदकः पुनः स्वाभिप्रायमाह । एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतां सुप्रत्याख्यातं भवति एवं प्रत्याख्यापयतांच तदेव। एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतां कारयतांच न स्वप्रतिज्ञालोपः। यथा (एसछेत्यादि) एवं गृहस्थः प्रत्याख्याति त्रसभूतेषु वर्तमानकाले त्रसत्वेनोत्पन्नेषु प्राणिषु दंमं वधं निहाय त्यक्त्वा प्रत्याख्यानं करोति। तदिह भूतत्वविशेषणात् स्थावरपर्यायप्राप्तस्य वधेपि न प्रतिज्ञालोपः नान्यत्राभियोगेन राजाद्यभियोगादन्यत्र प्रत्याख्यानं गृहपतिचौरविमोक्षणतयेति सम्यगुक्तं । तस्माद्भूतत्वाविशेषणांगीकारे यथा क्षीरविकृतिप्रत्याख्यायिनोदधिभक्षणेपि न प्रतिज्ञाभंगः तथा त्रसभूतान हंतव्याइति प्रतिज्ञावतः स्थावरहिंसायामपि न प्रत्याख्यानातिचारः । एवं विद्यमाने सति भाषायाः प्रत्याख्यानवाचः पराक्रमे भूताविशेषणाद्दोषपरिहारसामर्थ्ये। एवं दोषपरिहारोपाये सति केचन क्रोधाद्वा लोभाद्वा श्रावकं निर्विशेषणमेव प्रत्याख्यापयंति तेषां मृषावादः स्यात् गृह्णतांच व्रतलोपः । तदेवमयमपि नोस्मदीयोंऽगीकारः किं भवतां नो नैयायिकोन्यायोपपन्नोभवति अपिवायुष्मन्गौतम ! एषपक्षस्तुभ्यमपि रोचते ॥ ७ ॥

॥ टीका—तदेवं व्यवस्थिते नागरिकदृष्टांतेन त्रसमेव स्थावरत्वेनायातं व्यापादयंतोऽवश्यंभावी प्रतिज्ञाविलोपोयतस्ततएवं मडुकया वक्ष्यमाणनीत्या प्रत्याख्यानं कुर्वता सुप्रत्याख्यातं भवत्येवंच ते प्रत्याख्यापयंतोनातिचरंति स्वीयां प्रतिज्ञामित्येतद्दर्शयितुमाह । (एवछेत्यादि) तत्र गृहपतिः प्रत्याख्यानमेवं गृह्णाति तद्यथा त्रसभूतेषु वर्तमानकाले त्रसत्वेनोत्पन्नेषु प्राणिषु दंमयतीतिदंमः प्राण्युपमर्दस्तं विहाय परित्यज्य प्रत्याख्यानं

पादयेत्किं तस्य न भवेत्प्रतिज्ञाविलोपः? भवेदेवेत्यर्थः । एवमपि त्रसस्थावरकाये समुत्प न्नानां त्रसानां यदि तथाभूतं किंचिदसाधारणंलिंगं स्यात्ततस्ते त्रसाः स्थावरत्वेनाप्युत्प न्नाः शक्यंते परिहर्तुं नच तदस्तीत्येतदर्शयितुमाह । (थावरकायाउइत्यादि) स्थावरका यात्सकाशाद्विविधमनेकैः प्रकारैः प्रकर्षेण मुच्यमानाः स्थावरकायायुषा तद्योग्यैश्चापरैः कर्मभिः सर्वात्मना त्रसकाये समुत्पद्यंते तथा त्रसकायादपि सर्वात्मना विमुच्यमानास्त त्कर्मभिः स्थावरकाये समुत्पद्यंते तत्र चोत्पन्नानां तथाभूतत्रसलिंगाभावात्प्रतिज्ञालोप इत्येतत्सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । (तेसिंचणमित्यादि) तेषां त्रसानां स्थावरकाये समुत्प न्नानां गृहीतत्रसप्राणातिपातविरतेः श्रावकस्याप्यारंभप्रवृत्तत्वेनैतत्स्थावराख्यं घात्यं स्थानं भवति तस्मादनिवृत्तत्वात्तस्येति ॥ ६ ॥

एवंण्ह पच्चरकंताणं सुपच्चरकायं भवइ एवंण्ह पच्चरकावेमाणा णं सुपच्चरवावियं भवइ एवं ते परं पच्चरकावेमाणा णातियरं ति सयं पइस्सं णस्त्र अभिनुगेणं गाहावइचोरग्गहणवि मोरकणाया तसन्नूएहिं पाणेहिं णिहाय दंमं एवमेव सइ भा साए परक्कमे विऊमाणे जे ते कोहावा लोहावा परं पच्चरकावेंति अयंपि णो उवएसे णो णेआउए भवइ अवियाइं आउसो गोयमा तुप्रंपि एवं रोयइ ॥ ७ ॥

अर्थ-हवे उदक पोताना अभिप्रायें जेम प्रतिज्ञा भंग न होय, तेम कहेछे. (एवं ण्हंपच्चरकंताणं के०) के जेम हुं कहुंछुं तेम पच्चखाण करतां (सुपच्चरकायंभवइ के०) रूडुं पच्चरकाण थाय (एवंण्हंपच्चरकावेमाणाणं के०) एम पच्चरकाण करावतां थकां (सुपच्चरकावियंभवइ के०) रूडुं पच्चरकाण कराव्युं एम थाय (एवंतेपरंपच्चरकावेमाणाके०) ए रीतें ते श्रावक पच्चरकाण करता थकां अनें साधुए पच्चरकाण करावतां थकां (णा तियरंतिसयंपइस्सं के०) पोतानी प्रतिज्ञानुं उल्लंघन न करे केवी रीतें उल्लंघन न क रे? ते कहेछे. (णस्त्रअभिउगेणंगाहावइचोरग्गहणविमोरकणया के०) जे गृह पति एवी रीतें पच्चरकाण करे के राजादिकना अभियोग थकी अन्य चोरग्रहण चो रीकरी ग्रह्यो ते मोकलणनें न्यायें ए पण युक्त परंतु, (तसन्नूएहिंपाणेहिंणिहायदंमं के०) त्रस भूत प्राणीनो विनाश नहीं करुं, एटले एनो शुं अर्थ? तो के, भूत शब्दनुं विशे षण अधिक कहियें तो पच्चरकाण न भांगे ज्यां सुधी ते त्रसजीव त्रसनें रूपेछे, त्यां सु धी न हणवो, जेम कोइ एकनें डुधनी विगयनो पच्चरकाणछे तेनें दधिनें जमवे करी दो

नुताप उपजे, ते कारणे निश्चें ते अनुतापित नाषा बोलेछे. (अप्राइक्खंतिख लुतेसमणेसमणोवासएवा के०) निश्चें ते श्रमण ब्राह्मण, साधुनें, तथा श्रमणोपा सकनें, अन्याख्यान आपे, एटले जूठो कलंक आपे, (जेहिंविअन्नेहिं के०) तथा जे बी जा पण, (जीवेहिंपाणेहिंनूएहिंसत्तेहिंसंजमयंति के०) जीव, प्राण, नूत, अनें सत्वनें विषे जे संयम पाले, (ताणवि के०) ते पण (तेअप्राइक्खंति के०) तेने अन्याख्यान जा णवुं (कस्सणंतंहेउं के०) तेनो हेतु शुं ? ते कहेछे. (सांसारियाखलुपाणा के०) जे कारण माटें निश्चें संसारी जीव जेछे ते परस्पर जाति माहो मांहे संक्रमे, त्रस जीव विणशीने स्थावर पणे उपजे, अनें स्थावर प्राणी विणशीनें, त्रसपणे उपजे, तथा त्रसकाय सर्वथा त्रसनुं आयुष्य त्यागीनें स्थावरकाय मांहे उपजे, अनें स्थावरजीव सर्वथापि स्थावरनुं आयुष्कर्म त्यागीनें त्रसकायने विषे उपजे, ते त्रसकायनें विषे उप ना त्रसकायनुं स्थानक ए अघात्य एटले घातवानुं कर्म लागे नहीं. जे कारण माटें ते श्रावकें त्रसजीव उद्देशीनें स्थूलप्राणातिपातनो विरमण कस्योछे अनें स्थावरकायने वि षे अविरतिछे ए कारण माटें व्रतनंग न कहेवाय परंतु जे, तमारे अनिप्रायें जुदा जु दा जीव उद्देशीनें प्राणातिपातनी निवृत्ति कीधी, ते कीधे छते अन्य पर्यायें पहोता एवा जीवनी विराधना करतां व्रतनंग थाय, तो कोइनें पण सम्यक् व्रतनुं पालवुं देखातुं न थी. ए कारणें तमे अन्याख्यान नाषा बोलोछो, तथा अहीं नूतशब्दनुं ग्रहण करोछो, ते पण निःकेवल व्यामोहनें अर्थेंजछे. जे कारण माटें नूतशब्द उपमायें प्रवर्त्तेछे, जेम देवलोकनूत नगर, परं नतु देवलोकः तेम अहींयां तमे पण वक्तव्यतायें त्रसनूत केतां त्रस सरखा जीव जाणवा परंनतु त्रस, अथवा जे नूतशब्द तदर्थवाची वर्त्तेछे जेम शी तनूत उदक केतां शीतलजलज जाणवुं. तेम त्रसनूत केतां त्रसज केवाय. अहींयां नू तशब्द केतां पुनरोक्ति दोषछे. एम श्री गौतमस्वामियें नूतशब्दनुं निराकरण कर्युं ॥ ७ ॥

॥ दीपिका—सवादं नगवान् गौतमस्तं उदकं पेढालपुत्रमेवमवादीत् । आयुष्मन्नुदक ! नो खलु अस्मन्यमेतद्रोचते यदिदं त्रसकायविरतौ नूतत्वविशेषणं तदस्मन्यं न रोचतइत्य र्थः। एवंसति ये श्रमणावा ब्राह्मणावा एवमाख्यांति ते यथार्थां नाषां न नाषंते किंतु? अनुतापिनीनाषां नाषंते अन्यथा नाषणेहि परस्यानुतापोनवति तेऽन्याख्यांति श्रमणो पासकान सन्नूतदोषप्रकटनेनान्याख्यानं ददते (जेहिंति) येष्वपि अन्येषु जीवेषु ये सं यमयंति संयमं कुर्वंति तथा ब्राह्मणामया न हंतव्याइत्युक्ते सयदा वर्णांतरे तिर्यक्षु वा स्थितस्तद्वधे ब्राह्मणवधआपद्यते नूतशब्दविशेषणानावात् । एवं सूकरादिर्न हंतव्यइ त्यादिविशेषव्रतानि तेऽन्याख्यांति दूषयंति कस्माद्धेतोः? यस्मात्सांसारिकाः प्राणास्त्रसाः

करोति तदिह नूतत्वविशेषणात्स्थावरपर्यायापन्नवधेपि न प्रतिज्ञाविलोपः । तथा त्रसनूताः सत्वान हंतव्याइत्येवं प्रतिज्ञावंतः स्थावरहिंसायामपि तत्प्रत्याख्यानातिचारः । तदेवं विद्यमाने सति नाषायाः प्रत्याख्यानवाचः पराक्रमे नूतविशेषणाद्दोषपरिहारसामर्थ्ये एवं पूर्वोक्तया नीत्या सति दोषपरिहरणोपाये ते केचन क्रोधाद्वा लोनाद्वा परं श्रावकादिकं निर्विशेषणमेव प्रत्याख्यापयंति तेषां प्रत्याख्यानं ददतां मृषावादोनवति गृह्णतां चावश्यंनावी व्रतविलोपश्ति । तदेवमयमपि नोऽस्मदीयोपदेशोन्युपगमोनूतत्वविशेषणविशिष्टः पक्षः किं नवतां नो नैव नैयायिकोन्यायोपपन्नोनवतीदमुक्तं नवति नूतत्वविशेषणेन हि त्रसान् स्थावरोत्पन्नान् हिंसतोपि न प्रतिज्ञातिचारइत्यपि चैतदायुष्मन् गौतम ! । तुन्यमपि रोचते ॥ ७ ॥

सवायं नगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी आउसंतो उदगा नो खलु अम्हे एवं रोयइ जे ते समणावा माहणावा एवमाइरकंति जाव परूवेंति णो खलु ते समणा वा णिग्गंथावा नासं नासंति अणुतावियं खलु ते नासं नासंति अप्नाइरकंति खलु ते समणे समणोवासएवा जेहिंवि अन्नेहिं जीवेहिं पाणेहिं नूएहिं सत्तेहिं संजमयंति ताणवि ते अप्नाइरकंति कस्सणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं तसकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं ॥ ८ ॥

अर्थ—ए प्रकारें कहे बते, (सवायंनगवंगोयमेउदयंपेढालपुत्तंएवंवयासी के०) वादें सहित नगवान् श्री गौतम, आ प्रकारें उदक पेढालपुत्र प्रत्यें बोल्या के, (आउसंतोउदगानोखलुअम्हेएवंरोयइ के०) अहो आयुष्मन् उदक ! ए जे तें वचन कह्यांछे ते निश्चें अमनें रुचतां नथी, (जेतेसमणावामाहणावाएवमाइरकंति के०) जे ते श्रमण, ब्राह्मण, नूत शब्द घालीनें त्रसजीवनो पच्चरकाण करियें एम कहे, (जावपरूवेंति के०) यावत् प्ररूपे, (णोखलुतेसमणावाणिग्गंथावा के०) निश्चें ते श्रमण निर्ग्रंथ न होय कारण के, (नासंनासंति के०) ते एवी निरति नाषा बोलेछे (अणुतावियंखलुतेनासंनासंति के०) जे अन्यनुं अन्य प्ररूपतां एटले एकनुं बीजुं प्ररूपतां सांनलनारनें केवल अ

नापि प्राणातिपातनिवृत्तौ कृतायामपरपर्यायापन्नं प्राणिनं व्यापादयतोव्रतभंगोनवति त तश्च न कस्यचिदपि सम्यग्व्रतपालनं स्यादित्येवमाख्यातमभूतदोषोद्भावनं नवंतोददति। यदपि नवद्भिर्वर्तमानकालं विशेषणत्वेन किलायं नूतशब्दउपादीयतेऽसावपि व्यामोहाय केवलमुपतिष्ठते । तथाहि । नूतशब्दोयमुपमाने वर्तते । तद्यथा देवलोकनूतं नगरमिदं न देवलोकएव तथापि त्रसनूतानां त्रससदृशानामेव प्राणातिपातनिवृत्तिः कृता स्यान्न तु त्रसानामित्यथ तादर्थ्ये नूतशब्दोयं यथा शीतीनूतमुदकं शीतमित्यर्थः । एवं त्रसनूतास्त्रसत्वं प्राप्तास्तथा च सति त्रसशब्देनैव गतार्थत्वात्पौनरुक्त्यं स्यादथैवमपि स्थिते नूत शब्दोपादानं क्रियते तथा च सत्यतिप्रसंगः स्यात्। तथाहि । कीरनूतविकृतेः प्रत्याख्यानं करोम्येवं घृतनूतं मे ददस्वैवं घटनूतः पटनूतइत्येवमादावप्यायोज्यमिति ॥ ७ ॥

सवायं उदए पेढालपुत्ते नगवं गोयमं एवं वयासी कयरे खलु ते आउसंतो गोयमा तुम्ने वयह तसपाणा तसा आउ अन्नहा सवायं नगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी आउसंतो उदगा जे तुम्ने वयह तसनूता पाणा तसा ते वयं वयामो तसा पाणा जे वयं वयामो तसा पाणा ते तुम्ने वयह तसनूया पाणा एए संति डुवेद्दाणा तुल्ला एगठ्ठा किमाउसो इमे ने सुप्पणीयतराए नवइ तसनूया पाणा तसा इमे ने डुप्पणीयतराए नवइ तसा पाणा तसा ततोएगमाउसो पडिकोसह एक्कं अनिणंदह अयंपि नेदो से णो णेआउए नवइ ॥ ए ॥

अर्थ—हवे वाद सहित उदकपेढाल पुत्र, नगवंत श्री गौतमस्वामि प्रत्यें बोल्यो के, अहो आयुष्मन् गौतम! (तुम्ने के०) तमे (कयरे के०) प्राणीनें केवा (वयह के०) कहोठो? एटले (तसपाणातसा के०) त्रसप्राणीज जे होय तेनेंज त्रस कहोठो. (आउ के०) अथवा (अन्नहा के०) कोइ बीजे प्रकारें कहोठो? एम पुढ्या थका नगवंत श्री गौतमस्वामी वादसहित उदयपेढाल पुत्र प्रत्यें बोल्या के, अहो आयुष्मन् उदक! जे तमें कहोठो के, त्रसनूत प्राणी त्रस एटले अतीत अनें अनागतनो निषेध करी, तमें वर्त्तमान कालज लीधो, ए कारणमाटें जेनें तमें त्रसनूतप्राणी त्रस कहोठो, तेनें अमे त्रसप्राणी त्रस कहियें छैयें, (एएसंतिडुवेठ्ठाणातुल्ला के०) ए बे स्थानक अमारी तमारी वक्तव्यतायें परमार्थेतो, (एगठ्ठ के०) एकार्थ एटले सरखांजछे, एमां अर्थ नेद कांही नथी (किमाउसोइमेनेसुप्पणीयतराएनवइ के०) तो केवी रीतें अहो आयुष्मन्! ए तमारो

स्थावरत्वेन स्थावरास्त्रसत्वेन प्रत्यायांति त्रसकायात्तदायुष्केन मुच्यमानाः स्थावरकाये स्थावरकायाच्च तद्योग्यकर्मणा मुच्यमानास्त्रसकाये उत्पद्यंते तेषां त्रसकाये समुत्पन्नानां स्थानमेतत्त्रसकायाख्यमघात्यं अघातार्ह नवति स्थूलप्राणिघातान्निवृत्तः श्राद्धः तन्निवृत्त्याच त्रसस्थानमघात्यं स्यात् तस्य तीव्राध्यवसायोत्पादकत्वाल्लोकगर्हितत्वाच्च स्थावरकायाच्चानिवृत्तइति तत्स्थानमस्य घात्यमित्युदकआह ॥ ८ ॥

॥ टीका—एवमेतद्यथा मया व्याख्यातमनिहितोगौतमः सद्धाचं सवादं वा तमुदकं पेढालपुत्रमेवं वक्ष्यमाणमवादीत् तद्यथा । नो खल्वायुष्मन्नुदकास्मन्यमेतदेवं तद्यथा त्वयोच्यते तडोचतइति । इदमुक्तं नवति यदिदं त्रसकायविरतौ नूतत्वविशेषणं क्रियते तन्निरर्थकतयास्मन्यं न रोचतइति । तदेवं व्यवस्थिते नो उदक ! एते श्रमणाब्राह्मणावा एवं नूतशब्दविशेषणत्वेन प्रत्याख्यानमाचक्षते । तद्यथा । परैः पृष्टास्तथैवं नाषंते प्रत्याख्यानं स्वतः कुर्वंतः कारयंतश्चैवमिति सविशेषणं प्रत्याख्यानं नाषंते तथैवमेव सविशेषणप्रत्याख्यानरूपणावसरे सामान्येन प्ररूपयंतं एवंच प्ररूपतोन खलु ते श्रमणावा निर्ग्रंथावा व्यर्थां नाषां नाषंतेऽपित्वनुतापयतीत्यनुतापिका तां तथानूतां च खलु ते नाषां नाषंते अन्यथा नाषणे ह्यपरेण जानता बोधितस्य सतोनुतापोनवतीत्यतोनुतापिकेत्युच्यतइति । पुनरपि तेषां सविशेषणप्रत्याख्यानवतामुल्बणदोषोद्भिनावयिषयाह । (अन्नाइरकंतीत्यादि) ते हि सविशेषणप्रत्याख्यानवादिनोयथावस्थितं प्रत्याख्यानं ददतः साधून् गृण्हतश्च श्रमणोपासकानन्याख्यांत्यनूतदोषोद्भावनतोऽन्याख्यानं ददति । किंचान्यत् । (जेहिंवीत्यादि) येष्वप्यन्येषु प्राणिनूतेषु जीवेषु सत्वेषु विषयनूतेषु विशिष्य ये संयमं कुर्वंति संयमयंति। तद्यथा ब्राह्मणोन मया हंतव्यइत्युक्ते सयदा वर्णांतरे तिर्यक्षुवा व्यवस्थितोनवति तद्वधे ब्राह्मणवधआपद्यते नूतशब्दविशेषणात्तदेवं तान्यपि विशेषव्रतानि सुकरोमया न हंतव्यइत्येवमादीनि विशेषणवादिनोऽन्याख्यांति दूषयंति । किमित्यतआह। (कस्सणमित्यादि) कस्माद्धेतोस्तदसद्भूतं दूषणं नवतीति यस्मात्सांसारिकाः खलु प्राणाः परस्परजातिसंक्रमणनाजोयतस्ततस्त्रसाः प्राणिनः स्थावरत्वेन प्रत्यायांति स्थावराश्च त्रसत्वेनेति । त्रसकायाच्च सर्वात्मना त्रसायुष्कं परित्यज्य स्थावरकाये तद्योग्यकर्मोपादानाडुत्पद्यते तथा स्थावरकायाच्च तदायुष्कादिना कर्मणा विमुच्यमानास्त्रसकाये समुत्पद्यंते तेषांच त्रसकाये समुत्पन्नानां स्थानमेतत्त्रसकायाख्यमघात्यमघातार्हं नवति । तस्मात्तेन श्रावकेण त्रसानुद्दिश्य स्थूलप्राणातिपातविरमणं कृतं तस्य तीव्राध्यवसायोत्पादकत्वाल्लोकगर्हितत्वाच्चेति । तत्रासौ स्थूलप्राणातिपातान्निवृत्तस्तन्निवृत्त्याच त्रसस्थानमघात्यं वर्तते स्थावरकायाच्चानिवृत्तइति तद्योग्यतया तत्स्थानं घात्यमिति । तदेवं सन्नवदनिप्रायेण विशिष्टसत्वोद्देशे